Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

KALYAN

Vol. 13

1939-39

G. K. V.
Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110322

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110322
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110322

कल्याण

॥ पुराणं सर्वशास्त्राणां
प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्॥

वर्ष ७३ **पुराणकथाङ्क** संख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय-जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण १,७५,०००)

भगवान् श्रीहरि सबका कल्याण करें

यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्यमासाद्य वन्दितमतीव विविक्तचित्तैः।
तद्वः पुनातु हरिपादसरोजयुग्ममाविर्भवत्क्रमविलङ्घितभूर्भुवः स्वः॥
पायात्स वः सकलकल्मषभेददक्षः क्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्तिः।
श्वासावधूतसलिलोत्कलिकाकरालः सिन्धुः प्रनृत्यमिव यस्य करोति सङ्गात्॥
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

जिनमें जन्म-मृत्युरूप संसारके भय और पीडाओंका नाश करनेकी पूर्ण योग्यता है, पवित्र अन्तःकरणवाले योगिजन जिन्हें ध्यानमें देखकर बारम्बार मस्तक झुकाते हैं, जो वामनरूपसे विराट्रूप धारण करते समय प्रकट होकर क्रमशः भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्गलोकको भी लाँघ गये थे, श्रीहरिके वे दोनों चरणकमल आपलोगोंको पवित्र करते रहें। जो समस्त पापोंका संहार करनेमें समर्थ हैं, जिनका श्रीविग्रह क्षीरसागरके गर्भमें शेषनागकी शय्यापर शयन करता है, उन्हीं शेषनागकी श्वास-वायुसे कम्पित हुए जलकी उत्ताल तरङ्गोंके कारण विकराल प्रतीत होनेवाला समुद्र जिनका सत्सङ्ग पाकर प्रसन्नतासे नृत्य-सा करता जान पड़ता है, वे भगवान् नारायण आपलोगोंकी रक्षा करते रहें। भगवान् नारायण, पुरुषश्रेष्ठ नर, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती तथा उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके 'जय' (इतिहास-पुराण) का पाठ करना चाहिये।

वार्षिक शुल्क (डाक-व्ययसहित) भारतमें ४४.०० रु० विदेशमें ६ पौंड अथवा १० डालर

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

इस अङ्कका मूल्य (डाक-व्ययसहित) भारतमें ४४.०० रु० विदेशमें ६ [illegible] अथवा १[illegible]

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पुराणकथाङ्क'की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-पुराण-विग्रह भगवान् विष्णु	१
मङ्गलाचरण—	
२-स्वस्त्ययन	२
३-विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम्	३
४-नमः सवित्रे	४
५-सुभद्रश्रवसे नमो नमः	४
६-तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि	५
७-नमामि ते रूपमिदं भवानि !	६
८-वेदव्यासं सर्वदाहं नमामि	६
९-व्याससूनुं नतोऽस्मि	७
१०-पुराण-महिमा	८
११-कीर्तनीयः सदा हरिः	१०
प्रसाद-आशीर्वाद—	
१२-पुराण (अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीमद्ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराजके उपदेशामृत)	११
१३-पुराणोंमें धर्म और सदाचार (पूज्यपाद अनन्तश्री ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	१२
१४-पुराणोंमें भगवन्नाम-महिमा (अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)	१४
१५-पुराणोंका परम प्रयोजन—भगवत्प्राप्ति (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज)	१६
१६-सुहृत्-सम्मित पुराण (अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शकराचार्य स्वामी श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराज)	१८
१७-पुराणोंकी वेदवत् प्रतिष्ठा (अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशी-(सुमेरु) पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीशंकरानन्द सरस्वतीजी महाराज)	१९
१८-भगवान्को प्रसन्न करनेवाले आठ भाव-पुष्प	२०
१९-पुराणोंकी महिमा (अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य वरिष्ठ स्वामी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीजी महाराज)	२१
२०-सभी कथाओंका तात्पर्य—भगवत्प्राप्ति (अनन्तश्रीविभूषित श्रीमद्विष्णुस्वामिमतानुयायी श्रीगोपालवैष्णवपीठाचार्यवर्य श्री १०८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)	२२
२१-शास्त्रप्रतिपादित पुराण-माहात्म्य (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	२३
२२-पुराणोंका क्रम और सृष्टिविद्याका निरूपण (महामहोपाध्याय स्व० पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी)	२४
२३-साधु कौन ? असाधु कौन ?	२७
२४-हिंदू-संस्कृतिके पुराणोंपर एक दृष्टि (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	२८
२५-मुक्तिका उपाय (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	३१
२६-पुराण-महिमा (पूज्यपाद श्रीदेवराह्य बाबाजी महाराजके अमृत वचन) [प्रे०—श्रीमदनजी शर्मा शास्त्री]	३३
२७-पुराणोंका महत्त्व (पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)	३४
२८-पुराणोंकी प्रामाणिकता, दार्शनिकता और महत्ता (स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज)	३५
२९-पुराणकी महिमा एवं माहात्म्य (अनन्तश्री स्वामी माधवाश्रमजी महाराज)	३७
३०-भारतीय पुराणोंका महत्त्व (श्री १०८ दण्डी स्वामी श्रीविपिनचन्द्रानन्द सरस्वतीजी 'जज स्वामी')	३८
३१-सिद्धोंकी पौराणिक प्रासंगिकता (गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज)	३९
३२-पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् (पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)	४१
३३-श्रेष्ठ भगवद्भक्त कौन हैं ?	४५
पुराणोंके प्रतिपाद्य विषय—	
३४-प्रधान वर्ण्य विषय	४६
३५-पुराणोंमें सभी शास्त्रों, विद्याओं, कलाओं तथा ज्ञान-विज्ञानका समावेश	४९
पुराणोंमें जीवन-चर्या—	६२
३६-संस्कार	६३
३७-आचार	७१
३८-दैनिक चर्या	७५
३९-देवोपासना	७९
४०-यज्ञ	८८
४१-वर्णाश्रम-धर्म	९२
४२-आश्रम-व्यवस्था	९८
४३-व्रतोपवास	१०१
४४-दान	१०५
४५-दानकी महत्ता	१०७
४६-तीर्थ—	
१-नदी-रूप तीर्थ	१०८
२-भारतके पवित्र कुल-पर्वत	११४
३-सात मोक्षदायिनी पुरियाँ	११८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या
४-चार धाम	११९
५-सप्त बदरी	१२०
६-पञ्चकेदार	१२१
७-पञ्च सरोवर	१२२
८-सप्तक्षेत्र	१२२
९-द्वादश अरण्य	१२४
१०-चतुर्दश प्रयाग	१२६
११-प्रधान द्वादश देवी-विग्रह एवं उनके स्थान	१२६
१२-इक्यावन सिद्ध-क्षेत्र	१२६
४७-तीर्थका फल किसे मिलता है और किसे नहीं मिलता ?	१२७
४८-मानस-तीर्थका महत्त्व	१२८
४९-गृहस्थोंके लिये पुराणोक्त कुछ सामान्य नियम	१२९
५०-महापुराण और उनके पावन प्रसङ्ग—	१३०
१-ब्रह्मपुराण—	१३२
१-परहितके लिये सर्वस्व दान (ला० बि० मि०)	१३४
२-जगन्नाथधाम	१३४
३-अतिथि-सत्कार	१३६
४-भागीरथी गङ्गा	१३७
५-मौतकी भी मौत	१३८
६-प्रतिशोध ठीक नहीं होता (ला० बि० मि०)	१३८
७-व्रतमें जागरण और संगीतका महत्त्व	१४०
२-पद्मपुराण—	
१-संत-समागमके लिये तप (ला० बि० मि०)	१४१
२-सत्यकी महिमा	१४२
३-विश्वहितके लिये आत्मदान	१४३
४-परलोकको न बिगड़ने दें	१४४
५-संतसे वार्तालापकी महिमा	१४४
६-प्रणाम करनेसे ब्रह्माकी आयुकी प्राप्ति	१४५
७-प्रेमियोंके लिये भगवान् भी विह्वल	१४६
८-भगवान् आश्रितोंकी देखभाल करते हैं	१४७
९-पातिव्रत्य-धर्मका महत्त्व	१४८
१०-सबसे बढ़कर धर्म—माता-पिताकी पूजा	१४९
११-सूर्यकी आराधनासे सफेद कोढ़का नाश	१५०
१२-पाँच पितृभक्त पुत्र	१५०
(१) यज्ञशर्मा	१५०
(२) वेदशर्मा	१५०
(३) धर्मशर्मा	१५१
(४) विष्णुशर्मा	१५१
(५) सोमशर्मा	१५२
१३-तृष्णासे मानवता मर जाती है	१५३
१४-सुनीथाकी कथा (ला० बि० मि०)	१५३
१५-सीता-शुकी-संवाद (मो० ला० आ०)	१५६
१६-सत्कर्ममें श्रमदानका अद्भुत फल (ला० बि० मि०)	१५८
३-विष्णुपुराण—	१५९
१-स्त्री, शूद्र और कलियुगकी महत्ता (रा०प०सिं०)	१६०
२-धन्य कौन ?	१६२
३-प्रतिशोधका त्याग (स्वा० ओं० आ०)	१६३
४(क) शिवपुराण—	१६४
१-नारदजीका कामविजय-विषयक अभिमान-भङ्ग	१६७
२-नल-दमयन्तीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त	१६८
३-अभिमानी रावणकी शिव-भक्ति (म०प्र०गो०)	१६९
४-किरातवेषधारी शिवजीकी अर्जुनपर कृपा	१७०
५-गुणनिधिपर भगवान् शिवकी कृपा (म०प्र०गो०)	१७१
६-महान् तीर्थ—माता-पिता	१७२
(ख) वायुपुराण—	१७४
१-पुराणवक्ता सूतजी (ला०बि०मि०)	१७५
२-परमात्मरूप शिव	१७५
३-लोकहितके लिये विषपान (ला०बि०मि०)	१७६
४-कुवलाश्वके द्वारा जगत्की रक्षा	१७७
५-भक्तका अद्भुत अवदान (ला०बि०मि०)	१७८
६-ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य	१७८
७-जहाँ मन, वहीं हम	१७९
८-चरणारविन्दोंकी महिमा	१८०
५-भागवत—	
(क) श्रीमद्भागवतपुराण—	
१-महर्षि सौभरिकी जीवन-गाथा (पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय)	१८१
२-द्रौपदीकी क्षमाशीलता (स्वा० ओं० आ०)	१८५
३-पिबत भागवतं रसम् (आलयम्) (ला०बि०मि०)	१८६
४-भगवान्का अवतार महान् ज्ञानीमें रसोल्लासके लिये	१८७
५-श्रीमद्भागवतमें सापेक्षवादका उदाहरण	१८८
६-कुसंग परमार्थका बाधक (ला०बि०मि०)	१८८
७-दुःख-दर्दकी माँग (ला०बि०मि०)	१८९
८-भगवन्नाम समस्त पापोंको भस्म कर देता है	१९०
९-कथा-श्रवणसे भगवत्प्राप्ति	१९१
(ख) देवीभागवतपुराण—	
१-सत्यव्रत भक्त उतथ्य (ह० कृ० दु०)	१९२
२-सुदर्शनपर जगदम्बाकी कृपा	१९५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या
३-तुलसी (का० ना० मे०)	१९६
४-मुनिवर गौतमद्वारा कृतघ्न ब्राह्मणोंको शाप	१९९
६-नारदपुराण—	२०१
१-देवर्षि नारद	२०३
२-भगवान् विष्णुकी आराधना एवं एकादशी-व्रतकी महिमा (ह० कृ० दु०)	२०६
३-सत्संग एवं भगवान्‌के चरणोदककी महिमा (ह० कृ० दु०)	२०८
४-कुसङ्गका दुष्परिणाम एवं एकादशी-व्रतकी महिमा	२१०
५-पुण्यसलिला भगवती गङ्गा (ह० कृ० दु०)	२११
६-वेदमालिको भगवत्प्राप्ति	२१३
७-मार्कण्डेयपुराण—	
१-राजा खनित्रका सद्भाव (म० प्र० गो०)	२१५
२-राजा राज्यवर्धनको भास्करदेवका वरदान (म० प्र० गो०)	२१७
३-विपुलस्वान् मुनि और उनके पुत्रोंकी कथा (म० प्र० गो०)	२१८
४-राजा विदूरथकी कथा (म० प्र० गो०)	२२१
५-श्रीदुर्गासप्तशतीकी संक्षिप्त कथा	२२३
८-अग्निपुराण—	२२७
१-जडभरत और सौवीर-नरेशका संवाद	२२८
२-भगवान् विष्णुका स्वरूप और उनकी प्राप्तिके उपाय	२३१
९-भविष्यपुराण—	२३२
१-पुराण सुनने-सुनानेका फल	२३३
२-भगवान् सूर्यका परिवार	२३३
३-भगवान् भास्करकी आराधनाका अद्भुत फल	२३४
४-कर्तव्यपरायणताका अद्भुत आदर्श	२३६
१०-ब्रह्मवैवर्तपुराण—	२३७
१-श्रीनारदजीका अभिमान-भङ्ग	२३९
२-गरुड, सुदर्शनचक्र और श्रीकृष्णकी रानियोंका गर्व-भङ्ग	२४०
३-इन्द्रका गर्व-भङ्ग	२४१
४-ब्रह्माजीका दर्पभङ्ग	२४२
५-गणेशजीपर शनिकी दृष्टि	२४३
६-पृथ्वी किनके भारसे पीड़ित रहती है ?	२४४
११-लिङ्गपुराण—	२४५
१-भक्तिके वश भगवान् (ला० बि० मि०)	२४६
२-ज्योतिर्लिङ्गका प्राकट्य	२४६
३-भक्तिसे सर्वातिशायी सामर्थ्य (ला० बि० मि०)	२४७
४-रुद्रावतार नन्दीश्वर (ला० बि० मि०)	२४८
५-महर्षि वसिष्ठकी क्षमाशीलता	२४९
६-आँख खोलनेवाली गाथा	२५०
७-संगीतसे भगवत्प्राप्ति	२५१
८-भगवद्गानमें रोड़ा न अटकावे (ला० बि० मि०)	२५२
९-दरिद्रा कहाँ-कहाँ रहती है ?	२५३
१०-द्वादशाक्षर-मन्त्रकी महिमा (ला० बि० मि०)	२५४
११-विश्वासकी विजय	२५५
१२-परा एवं अपरा विद्याके ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति	२५६
१२-वराहपुराण—	२५७
१-श्रीवराहावतार-कथा	२५८
२-भगवान् नारायणकी सर्वव्यापकता	२६०
३-नारायण-मन्त्रकी महिमा	२६१
४-कर्म-रहस्य	२६३
५-दशावतारोंकी उद्भव-तिथियाँ	२६४
६-गणेशजीकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग और चतुर्थी-तिथिका माहात्म्य	२६५
७-कीर्तन-फल (स्वा० ओं० आ०)	२६६
८-मङ्गल-कामना एवं शान्ति-पाठ	२६७
१३-स्कन्दपुराण—	२६८
१-दीर्घायुष्य एवं मोक्षके हेतुभूत भगवान् शंकरकी आराधना	२६९
२-शबर-दम्पतिकी दृढ़ निष्ठा	२७०
३-सदाचारसे कल्याण	२७१
४-कीड़ेसे महर्षि मैत्रेय	२७२
५-नन्दभद्र (ह० कृ० दु०)	२७४
६-भारतके कुमारिकाखण्डकी कथा (जा०ना०श०)	२७६
७-भोला भक्त विष्णुदास और चक्रवर्ती सम्राट् चोल (ब० दा० वि०)	२७८
१४-वामनपुराण—	२८०
१-श्रीवामनावतार-कथा	२८१
२-भक्ति बड़ी है या शक्ति ?	२८५
३-वामनपुराणमें वाराणसी (आ० प्र०)	२८६
४-सुदर्शनचक्रकी कथा (आ० प्र०)	२८७
५-बलिद्वारा भगवान् वामनका संस्तवन	२८८
१५-कूर्मपुराण—	२८९
१-श्रीकूर्मावतार-कथा	२९०
२-मानव-जीवनकी चरितार्थता मोक्ष-प्राप्तिमें (ला० बि० मि०)	२९१
३-आसक्तिसे विजेता भी पराजित (ला० बि० मि०)	२९२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या
४-जयध्वजकी विष्णुभक्ति (म० प्र० गो०)	२९३
५-शङ्कुकर्णसे शङ्कुकर्णेश्वर (,,)	२९४
१६-मत्स्यपुराण—	२९५
१-श्रीमत्स्यावतारकी कथा	२९६
२-श्राद्धकर्मकी महिमा	२९७
३-अविमुक्त-क्षेत्रमें शिवार्चन एवं तपःकर्मसे यक्षको गणेशत्वप्राप्ति	२९९
४-लवणाचल-दानकी महिमा	३०१
५-मदनद्वादशीव्रतका अद्भुत प्रभाव	३०१
१७-गरुडपुराण—	३०३
१-गया-श्राद्धसे प्रेतत्व-मुक्ति (ला० बि० मि०)	३०५
२-सोमपुत्री जाम्बवती (,,)	३०५
३-और्ध्वदेहिक दानका महत्त्व (र० दे० मि०)	३०६
४-प्रेतकल्पकी कथा (शि० दु०)	३०७
५-सर्वोपरि साधना—वाक्-संयम (स्वा० ओं० आ०)	३११
१८-ब्रह्माण्डपुराण—	३१२
१-चोरीकी चोरी	३१३
२-आदिशक्ति ललिताम्बा	३१४
३-भगवान् श्रीरामको कथाएँ अति प्रिय थीं	३१५
विविध पौराणिक कथाएँ—	
५१-चौबीस अवतारोंकी कथाएँ—	
१-श्रीसनकादि	३१६
२-भगवान् नर-नारायण	३१८
३-भगवान् यज्ञ	३२०
४-ऋषभदेवके अवतारकी कथा	३२१
५-आदिराज पृथुकी अवतार-कथा	३२२
६-धन्वन्तरिके अवतारकी कथा	३२३
७-श्रीमोहिनी	३२५
८-भगवान् हयग्रीव	३२६
९-वामनावतारकी कथा (आ० प्र०)	३२८
१०-गजेन्द्रोद्धारक भगवान् श्रीहरि	३२९
११-परशुरामावतारकी कथा	३३१
१२-भगवान् व्यास	३३३
१३-भगवान् श्रीहंस	३३६
१४-श्रीरामावतारकी कथा	३३७
१५-श्रीकृष्णावतारकी कथा	३३८
१६-भगवान् बुद्ध	३४०
५२-मन्वन्तरके आख्यान—	३४१
१-स्वायम्भुव मनुकी कथा	३४३
२-स्वारोचिष मनुकी कथा	३४४
३-औत्तम मनुकी कथा (म० प्र० गो०)	३४७
४-तामस मनुकी कथा	३५०
५-रैवत मनुकी कथा (म० प्र० गो०)	३५१
६-चाक्षुष मनुकी कथा (,,)	३५३
७-वैवस्वत मनुकी कथा (,,)	३५४
८-सावर्णि मनुकी कथा	३५६
९-दक्षसावर्णि मनुकी कथा	३५७
१०-ब्रह्मसावर्णि मनुकी कथा	३५८
११-धर्मसावर्णि मनुकी कथा	३५८
१२-रुद्रसावर्णि मनुकी कथा	३५८
१३-रौच्य मनुकी कथा (म० प्र० गो०)	३५८
१४-भौत्य मनुकी कथा	३५९
५३-द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके आख्यान—	
१-सोमनाथ (जा० ना० श०)	३६०
२-मल्लिकार्जुन	३६१
३-महाकालेश्वर (जा० ना० श०)	३६२
४-परमेश्वर (ओंकारेश्वर)	३६२
५-केदारेश्वर	३६३
६-भीमशंकर (जा० ना० श०)	३६३
७-विश्वेश्वर (,,)	३६४
८-त्र्यम्बकेश्वर (,,)	३६४
९-वैद्यनाथेश्वर (,,)	३६६
१०-नागेश (,,)	३६६
११-श्रीरामेश्वर (,,)	३६७
१२-घुश्मेश्वर (,,)	३६७
५४-छब्बीस एकादशियोंकी कथाएँ—	
१-अगहन मासकी एकादशियोंकी महिमा (ला० बि० मि०)	३६८
२-पौषमासकी एकादशियोंकी महिमा (ला०बि०मि०)	३६९
३-माघमासकी एकादशियोंकी महिमा (,,)	३७०
४-फाल्गुनमासकी एकादशियोंकी महिमा	३७१
५-चैत्रमासकी एकादशियोंकी महिमा (ला०बि०मि०)	३७१
५५-अद्भुत याचना	३७२
५६-बिना दान दिये परलोकमें भोजन नहीं मिलता	३७३
५७-दानका स्वरूप (स्वा० ओं० आ०)	३७३
५८-पाँच महातीर्थ	३७६
१-पितृतीर्थ	३७६
२-पतितीर्थ	३७६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या
३-समतातीर्थ	३७६
४-अद्रोहतीर्थ	३७७
५-भक्तितीर्थ	३७७
५९-पञ्चगङ्गा-माहात्म्य	३७८
६०-उत्कलदेशके पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी महिमा	३७९
६१-गौओंको घास खिलानेसे श्राद्ध-फल	३७९
६२-कार्तिकमासका माहात्म्य	३८०
(१) कार्तिकमें भगवान् और वेदका जलमें निवास	३८०
(२) कार्तिक-व्रतके पुण्यदानसे एक राक्षसीका उद्धार	३८१
६३-माघमासका माहात्म्य	३८२
(१) माघमासके पुण्यदानसे चार प्राणियोंका उद्धार	३८२
(२) माघ-स्नानसे दिव्यलोककी प्राप्ति (ला० बि० मि०)	३८३
६४-ब्रह्मचर्यके आदर्श—	
१-श्रीहनुमान्‌जी	३८४
२-उत्तङ्क	३८४
६५-दानधर्मके आदर्श—	
१-दैत्यराज विरोचन	३८५
२-महादानी कर्ण	३८६
३-दानधर्मकी महिमा	३८७
६६-देवी षष्ठीकी कथा	३८८
६७-नागपञ्चमी-व्रत-माहात्म्य (शि० पू० पा०)	३९०
६८-उत्तम पति प्राप्त करनेका साधनस्वरूप व्रत	३९२
६९-उपपुराण एवं उनके रोचक आख्यान —	
१-गणेशपुराण—	३९३
१-सच्ची निष्ठाका फल	३९४
२-नृपश्रेष्ठ वरेण्यपर भगवान् गजाननकी कृपा (ह० कृ०दु०)	३९५
२-नरसिंहपुराण—	३९७
१-नृसिंहावतार-कथा	३९८
२-एकमात्र कर्तव्य क्या है ?	४००
३-कल्किपुराण—	४०२
१-कल्कि-अवतारकी कथा	४०३
४-एकाम्रपुराण—	४०५
१-भगवान् श्रीरामका एकाम्रक्षेत्रीय अश्वमेध-यज्ञ	४०७
५-कपिलपुराण—	
१-जगन्नाथ-क्षेत्र	४०९
२-कपिलावतारकी कथा	४१०
६-दत्तपुराण—	४१३
१-भगवान् दत्तात्रेयकी अवतार-कथा	४१४
७-श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराण—	४१५
१-भरतद्वारा शैलूषवंशी गन्धर्वोंका उत्सादन	४१७
८-मुद्गलपुराण—	४१९
१-सत्तुप्रस्थीय मौद्गल्योपाख्यान	४२०
७०-पुराणोंके प्रासङ्गिक चरित्र—	
१-अगस्त्य	४२३
२-अजामिल	४२३
३-अदिति	४२४
४-अन्धतापस	४२४
५-अम्बरीष	४२४
६-अश्विनीकुमार	४२५
७-अहल्या-गौतम	४२५
८-कद्रू	४२५
९-गङ्गा और भगीरथ	४२६
१०-गज	४२६
११-गणिका	४२६
१२-गरुड	४२७
१३-गालव	४२७
१४-चन्द्रमा	४२७
१५-चित्रकेतु	४२८
१६-तपस्विनी	४२८
१७-त्रिशंकु	४२८
१८-दक्ष प्रजापति	४२९
१९-दधीचि	४२९
२०-नल-नील	४३०
२१-नहुष	४३०
२२-मकरी और कालनेमि	४३०
२३-मार्कण्डेय	४३०
२४-ययाति	४३१
२५-रन्तिदेव	४३१
२६-राहु-केतु	४३२
२७-विराध	४३२
२८-वसिष्ठ	४३२
२९-विश्वामित्र	४३२
३०-शृङ्गी	४३३
३१-शिबि	४३३
७१-पौराणिक कथाओंका तात्पर्य—भगवत्प्राप्ति (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी०-एच्०डी०)	४३४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या
७२-मुक्तिका सहज उपाय	४३४
७३-पुराणोंका परम प्रयोजन—श्रेय और प्रेयकी प्राप्ति (आचार्य डॉ॰ श्रीजयमन्तजी मिश्र)	४३५
७४-नम्र निवेदन और क्षमा-प्रार्थना	४३६

चित्र-सूची

(बहुरंगे चित्र)

१-पुराणोंके आदिवक्ता चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा	आवरण-पृष्ठ
२-पुराणपुरुषोत्तम भगवान् विष्णु	१
३-नवग्रह-उपासना	७९
४-महामति गणेशकी मातृ-पितृ-भक्ति	१५०
५-यज्ञमूर्ति भगवान् अग्निदेव	२२७
६-देवों तथा ऋषिगणोंको भगवान् वराहके दिव्य दर्शन	२५७
७-भगवान् विष्णु वामन-रूपमें	२८१
८-भगवान्के चौबीस अवतार	३१६
९-भगवान्के चौबीस अवतार	३४०
१०-मङ्गलमूर्ति भगवान् गणपति	३९३
११-भक्त प्रह्लादपर भगवान् नरसिंहका अनुग्रह	३९७
१२-भगवान् व्यासका पुराण-प्रवचन	४२३

इकरंगे (सादे चित्र)

१-माता पार्वतीके द्वारा ग्राहसे बालककी रक्षा	१३४
२-कपोत दम्पतिद्वारा व्याधका विलक्षण आतिथ्य	१३६
३-भगीरथद्वारा गङ्गाकी स्तुति	१३७
४-नन्दा गायकी धर्मनिष्ठासे व्याघ्रका उद्धार	१४३
५-सप्तर्षियोंके मध्यमें स्थित बालक मार्कण्डेयको ब्रह्माजीद्वारा दीर्घायु होनेका वर-प्रदान	१४६
६-ब्रह्माजीका पतिव्रता शैव्यासे सूर्योदयके लिये निवेदन करना	१४९
७-शिवशर्माद्वारा कोढ़ी माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम	१५२
८-गन्धर्वकुमारको कोड़ोंसे पीटनेपर सुनीथाका शापका भागी बनना	१५४
९-सीताका अपनी सखियोंसे तोतेका जोड़ा पकड़ लानेके लिये कहना	१५६
१०-मुनियोंके पूछनेपर व्यासजीका उन्हें स्त्री, शूद्र तथा कलियुगकी महत्ता बतलाना	१६०
११-मोहभङ्ग होनेपर नारदजीका प्रभु-चरणोंमें पड़ना	१६८
१२-धनुर्धारी अर्जुनपर भगवान् शङ्करका अनुग्रह	१७०
१३-गुणनिधिका शिवमन्दिरमें नैवेद्य चुरानेकी इच्छासे प्रवेश	१७२
१४-अन्तःपुरमें मान्धाताकी कन्याओंद्वारा सौभरिका वरण	१८४
१५-धर्मराजका अपने दूतोंको भगवद्भक्तोंका माहात्म्य बतलाना	१९१
१६-सत्यव्रती उतथ्यका व्याधको समझाना	१९४
१७-सुबाहु और सुदर्शनके द्वारा भगवती दुर्गाका स्तवन	१९६
१८-ब्रह्माजीद्वारा शङ्खचूड तथा तुलसीको दाम्पत्य-सूत्रमें बँधनेका आदेश	१९७
१९-भगवान्का प्रकट होकर परम वैष्णव राजा रुक्माङ्गदको पुत्र-हत्यासे रोकना	२०८
२०-महर्षि उत्तङ्कके धर्मोपदेशसे गुलिक व्याधका उद्धार	२०९
२१-मुनिवर जानन्तिका वेदमालिको ज्ञानोपदेश देना	२१४
२२-महर्षि वसिष्ठसे ब्राह्मणोंकी मृत्युका समाचार सुनकर राजा खनित्रके मनमें निर्वेद होना	२१६
२३-भगवान् सूर्यका राज्यवर्धनकी प्रजाको वरदान देना	२१८
२४-मुनिवर शमीककी आज्ञासे मुनिकुमारोंका पक्षिशावकोंको आश्रमपर लाना	२१९
२५-वत्सप्रीका आलिङ्गन करनेके लिये राजा विदूरथका सिंहासनसे उतरना	२२२
२६-जडभरतका सौवीर-नरेशकी पालकी ढोना	२२८
२७-देवर्षि नारदका राग-रागिनियोंके साथ संवाद	२३९
२८-गरुड एवं सुदर्शनचक्रको काँखमें दबाये श्रीहनुमान्जीका सीता-रामके रूपमें राधा-माधवका दर्शन करना	२४०
२९-शनिकी दृष्टि पड़नेसे पार्वतीकी गोदमें स्थित बालक गणेशका सिर कटना	२४३
३०-महर्षि लोमशद्वारा राजा इन्द्रद्युम्नको शिवभक्तिका उपदेश	२६९
३१-शिवयोगी ऋषभद्वारा रानी सुमति तथा उसके पुत्र भद्रायुको सदाचारका उपदेश	२७१
३२-सत्यव्रतकी नन्दभद्रको सन्मार्गसे च्युत करनेकी असफल चेष्टा	२७५
३३-कुमारीको दर्पणमें बकरीका मुख देखकर अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो जाना	२७७
३४-रोटी चुराकर भागते हुए चाण्डालके पीछे करुणहृदय विष्णुदासका घी देनेके लिये दौड़ना	२७९
३५-ब्रह्मचारी हनुमान्जीका रावणके अन्तःपुरमें माता सीताकी खोज	३८४
३६-उत्तङ्कका पातालसे कुण्डल लाकर गुरुपत्नीको प्रदान करना	३८५
३७-दैत्यराज विरोचनका ब्राह्मणरूपधारी देवराज इन्द्रको अपना सिर काटकार दान करना	३८६
३८-महर्षि अगस्त्यद्वारा श्रीरामको दिव्य आभूषण-प्रदान	३८७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या
३९-विप्रवर पुण्डरीकको देवर्षि नारदद्वारा भक्तिका उपदेश	४००
४०-पुण्डरीकको गरुडारूढ नारायणके दर्शन	४०१
४१-पुत्रका अपना भी सत्तूभाग अतिथि ब्राह्मणको देनेके लिये पितासे निवेदन	४२१
४२-महाराज युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञमें एक अर्धस्वर्णिम-शरीर नेवलेका आगमन	४२२
४३-महर्षि अगस्त्य	४२३
४४-भक्तराज अम्बरीष	४२४
४५-राजा चित्रकेतु	४२८
४६-महर्षि दधीचि	४२९
४७-मुनिवर मार्कण्डेय	४३०
४८-महान् दानी रन्तिदेव	४३१
४९-महर्षि वसिष्ठ	४३२
५०-महर्षि विश्वामित्र	४३२
५१-राजा शिबि	४३३

गीताप्रेस, गोरखपुरद्वारा प्रकाशित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकृत कुछ जीवनोपयोगी पुस्तकें

शिक्षाप्रद पत्र
रामायणके आदर्श पात्र
महाभारतके आदर्श पात्र
तत्त्व-चिन्तामणि भाग १
" भाग २
" भाग ३
" भाग ४
" भाग ५
" भाग ६
" भाग ७
मनुष्यका परम कर्तव्य
कर्मयोगका तत्त्व
आत्मोद्धारके साधन
भक्तियोगका तत्त्व
परमशान्तिका मार्ग
ज्ञानयोगका तत्त्व
प्रेमयोगका तत्त्व
अध्यात्मविषयक पत्र
परमार्थ-पत्रावली भाग १
" भाग २
" भाग ३
" भाग ४
आदर्श भ्रातृ-प्रेम
बाल-शिक्षा
ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री
नवधाभक्ति
आदर्श नारी सुशीला
श्रीमद्भगवद्गीताका तात्त्विक विवेचन
ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप
भारतीय शास्त्रोंमें नारी-धर्म
श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा
भगवान् क्या है ?
भरतजीमें नवधा भक्ति
नारी-धर्म
सामयिक चेतावनी
सत्संगकी कुछ सार बातें
तीन आदर्श देवियाँ
गीतोक्त कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोगका रहस्य
भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय
प्रेमभक्ति-प्रकाश
संत-महिमा
वैराग्य
चेतावनी
सत्यकी शरणसे मुक्ति
भगवान्‌की दया
व्यापार-सुधारकी आवश्यकता
शोकनाशके उपाय
परलोक और पुनर्जन्म
अवतारका सिद्धान्त
ज्ञानयोगके अनुसार विविध साधन
कल्याण-प्राप्तिकी कई युक्तियाँ
धर्म क्या है ?
स्त्रियोंके लिये घरेलू प्रयोग
गीतोक्त सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग
हमारा कर्तव्य
प्रेमका सच्चा स्वरूप
ईश्वर दयालु और न्यायकारी है
तीर्थोंमें पालन करने योग्य उपयोगी बातें
त्यागसे भगवत्प्राप्ति
महात्मा किसे कहते हैं
श्रीमद्भगवद्गीताका प्रभाव
Gems of Truth Part I
" Part II
Sure Steps to God
What is God ?
What is Dharma ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा रचित तथा अनुवादित सत्साहित्य मँगायें

श्रीराधा-माधव-चिन्तन
पद-रत्नाकर
संत-वाणी
सुखी बननेके उपाय
मधुर
सत्संगके बिखरे मोती
भगवन्नाम-चिन्तन
भगवच्चर्चा भाग १
" भाग २
" भाग ३
" भाग ४
" भाग ५
" भाग ६

लोक-परलोक-सुधार भाग १
" भाग २
" भाग ३
" भाग ४
" भाग ५
व्यवहार और परमार्थ
भवरोगकी रामबाण दवा
उपनिषदोंके चौदह रत्न
साधन-पथ
कल्याण-कुंज भाग १
" भाग २
" भाग ३
दिव्य सुखकी सरिता

सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ
मानव-धर्म
श्रीभगवन्नाम
गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य
गोपी-प्रेम
ब्रह्मचर्य
आनन्दकी लहरें
मनको वशमें करनेके कुछ उपाय
भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा
सिनेमा-मनोरंजन या विनाशका साधन
राधा-माधव-रस-सुधा-सटीक
विवाहमें दहेज

स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी आत्मबोध करानेवाली पुस्तकें पढ़ें

गीता-साधक-संजीवनी
गीता-दर्पण
गीताकी राजविद्या
गीतामाधुर्य
गीताका ज्ञानयोग
गीताका भक्तियोग
गीताका आरम्भ
गीताकी विभूति और विश्वरूप-दर्शन
गीताकी सम्पत्ति और श्रद्धा
गीताका कर्मयोग-खण्ड २

गीताका ध्यानयोग
गीता-परिचय
गीताका सारभूत श्लोक
मानसमें नाम-वन्दना
जीवनोपयोगी प्रवचन
कल्याणकारी प्रवचन गुजराती
भगवत्प्राप्तिकी सुगमता
तात्त्विक प्रवचन
सत्संगकी विलक्षणता
वास्तविक सुख

जीवनका सत्य
साधकोंके प्रति
भगवन्नाम
कल्याणकारी प्रवचन प्रथम
" द्वितीय
स्वाधीन कैसे बनें
Benedictory Discourses
Let us know the truth
The Divine Name

विद्यार्थियों और बालकोंके लिये उपयोगी पुस्तकें

पिताकी सीख
बालकोंकी बातें
चोखी कहानियाँ
बड़ोंके जीवनसे शिक्षा
वीर बालक
गुरु और माता-पिताके भक्त बालक
सच्चे और ईमानदार बालक
बालकोंके कर्तव्य
दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ
वीर बालिकाएँ

पढ़ो, समझो और करो—
भाग १से १२तक
बालचित्रमय श्रीकृष्णलीला
भगवान् श्रीकृष्ण
भगवान् श्रीराम
बालचित्र रामायण
बालचित्रमय बुद्ध-लीला
बालचित्रमय चैतन्य-लीला
वर्तमान शिक्षा
आदर्श भ्रातृप्रेम

बालकके गुण
आओ बच्चों तुम्हें बतायें
बालशिक्षा
बालककी दिनचर्या
बालकोंकी सीख
बालकके आचरण
बाल-अमृत-वचन
भक्त बालक
बालकोंकी बोलचाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,८५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१५, जून १९८९ ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-रामराज्याभिषेकके बाद सनकादिका आगमन	४८७
२-कल्याण (शिव)	४८८
३-सारा समय परमोपयोगी बनानेका साधन (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	४८९
४-माता कौसल्याका श्रीरामको संदेश	४९३
५-रोना (पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)	४९४
६-साधक निरन्तर अपनेको देखे (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका प्रवचन) [प्रेषिका—कविता डालमिया]	४९७
७-शरणागति (ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास)	५००
८-जग ले ! [कविता] (श्रीबालकृष्णजी गर्ग)	५०३
९-साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	५०४
१०-उद्धव-संदेश—२७ (डॉ० श्रीमहानामव्रतजी ब्रह्मचारी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, डी०लिट्०) [अनु०—श्रीचतुर्भुजजी तोषणीवाल]	५०६
११-'जीभ मिलावै राम' (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	५०९
१२-शास्त्रीय दान-विधि (स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)	५११
१३-दुर्योधनको मेवा त्यागो साग विदुर घर पाई (संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)	५१३
उपपुराण एवं उनके रोचक आख्यान—	
१४-(१) श्रीमहाभागवतपुराण (देवीपुराण) (डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट)	५१७
(२) पाण्डवोंपर देवी कामाख्याकी कृपा	५२०
१५-पुराणकथाङ्कको शुभाशंसा (श्रीरवीन्द्रनाथजी गुरु)	५२२
१६-कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	५२३
१७-छब्बीस एकादशियोंकी कथाएँ (पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)	५२६
(१) भाद्रपदमासकी एकादशियोंकी महिमा	५२६
(२) आश्विनमासकी एकादशियोंकी महिमा	५२७
(३) कार्तिकमासकी एकादशियोंकी महिमा	५२७
(४) पुरुषोत्तममासकी एकादशियोंकी महिमा	५२८
१८-बुन्देलखण्डका गोचारण-लोकोत्सव (आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्०ए०, साहित्यरत्न)	५२९
१९-पढ़ो, समझो और करो	५३०
२०-मनन करने योग्य	५३२
२१-'कल्याण'के आगामी ६४वें वर्ष वि०सं० २०४७ (सन् १९९० ई०)का विशेषाङ्क 'देवताङ्क'	५३३

चित्र-सूची

१-कालिय नागपर कृपा	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-सनकादिका सत्कार	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य भारतमें २.७० रु० विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य (डाक-व्ययसहित) भारतमें ४४.००रु० विदेशमें ६ पौंड अथवा १० डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

गुरुकुल पत्रिका

वर्ष ६३

संख्या ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,८५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर आषाढ़, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१५, जुलाई १९८९ ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-गुरुकृपासे बालक श्रीरामका स्वस्थ होकर माताके पास पहुँचना	५३५
२-कल्याण (शिव)	५३६
३-कर्मयोगकी सुगमता (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	५३७
४-नाम-संकीर्तन और सत्संग (श्रीरामानन्दनप्रसादजी चौरसिया 'श्रीसंतजी महाराज')	५४०
५ त्यागका स्वरूप और साधन (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	५४१
६-परिवारमें रहकर भगवत्प्राप्ति—बालकोंका लालन-पालन (ब्रह्मलीन परमपूज्य स्वामीजी श्रीशरणानन्दजी महाराजके विचार)	५४६
७ आर्य-संस्कृतिका झरना (श्रीयुत आशुकुमारजी)	५४९
८-साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	५५०
९-उद्धव-संदेश—२८ (डॉ० श्रीमहानामव्रतजी ब्रह्मचारी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, डी०लिट्०) [अनुवादक—श्रीचतुर्भुजजी तोषणीवाल]	५५२
१०-भगवत्प्रेम-चिन्तामणि (डॉ० श्रीशुकरलजी उपाध्याय)	५५५
११-भगवान् श्रीरामसे भरतकी प्रार्थना [कविता]	५५८
१२-सत्संग ईश्वरकृपासे प्राप्त होता है (संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)	५५९
१३-भगवान्‌की भगवत्ता (श्रीजगन्नाथजी वेदालंकार)	५६१
१४-अहल्या-उद्धार [कविता]	५६२
१५-भक्तोंपर संकट क्यों ? (स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)	५६३
१६-रामकथा-मंदाकिनी	५६४
१७-भक्त राजा रत्नग्रीव	५६५
१८-बड़े भाग मानुष तनु पावा (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	५६८
१९-हम शाकाहारी ही क्यों रहें ? (श्रीरामनिवासजी लखोटिया)	५७०
२०-साधनोपयोगी पत्र (परमार्थ-पत्रावली)	५७२
२१-अतिथि-सेवासे पुनर्जीवनकी प्राप्ति [कहानी] (डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')	५७४
२२-युगल-छवि [कविता] (स्वामी श्रीसनातनदेवजी)	५७५
२३-व्रजमें (कुँवर श्रीव्रजेन्द्रसिंहजी 'साहित्यालङ्कार')	५७६
२४-पढ़ो, समझो और करो	५७९
२५-मनन करने योग्य (श्रीताराशंकरजी वंद्योपाध्याय)	५८१

चित्र-सूची

१-भगवान् श्रीरामद्वारा रामेश्वर शिवलिङ्गकी स्थापना	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-बालरूप राम गुरुकी गोदसे उतर भागे	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

प्रत्येक अङ्कका साधारण मूल्य
भारतमें २.०० रु०
विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य
(डाक-व्ययसहित)
भारतमें ४४.०० रु०
विदेशमें ६ पौंड
अथवा १० डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

कल्याण

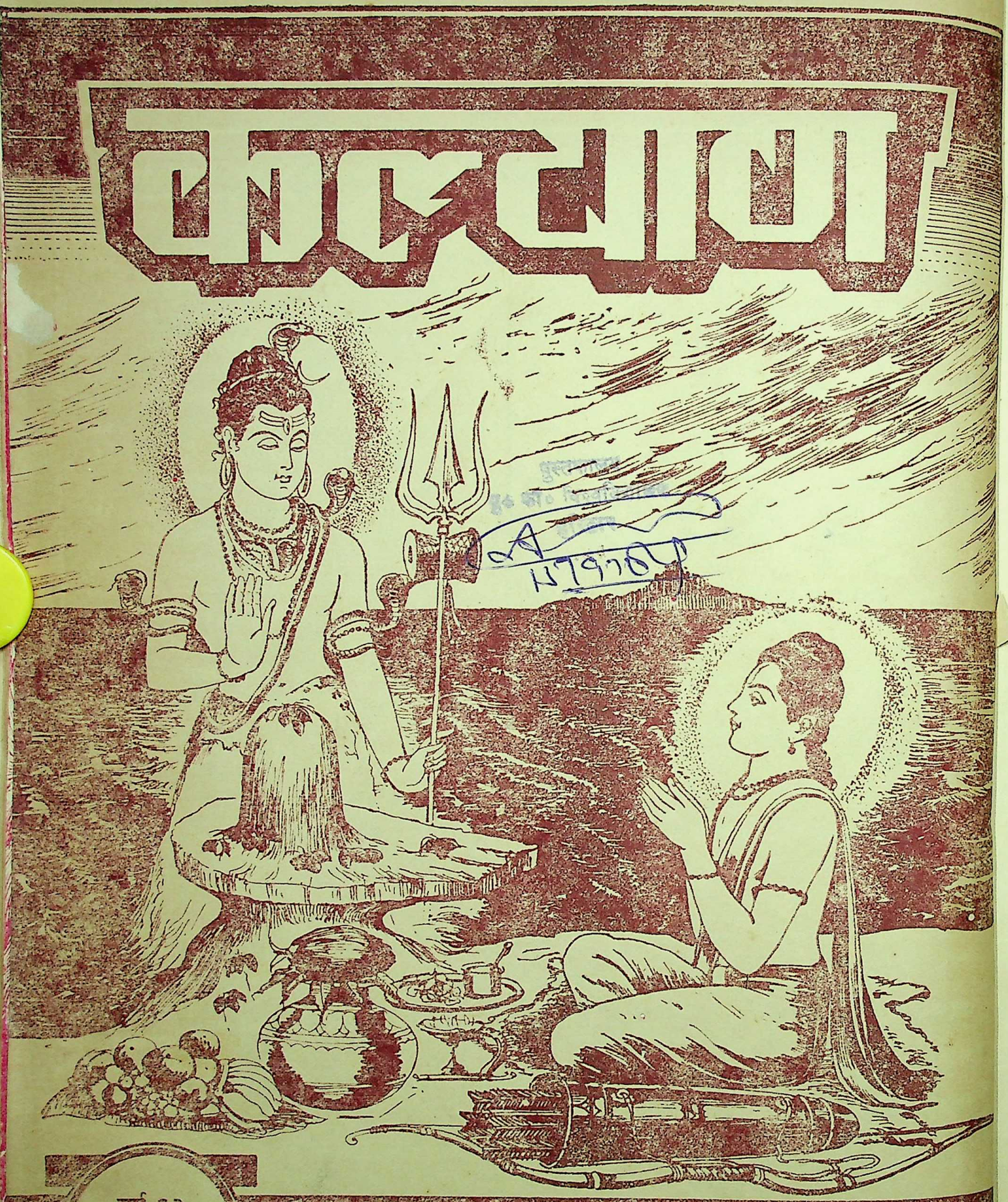

वर्ष ६३
संख्या ४

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा ।
सिव समान प्रिय मोहि न दूजा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,८५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१५, अगस्त १९८९ ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष	५८३
२-कल्याण (शिव)	५८४
३-संसारका वास्तविक स्वरूप (ब्रह्मलीन परम पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	५८५
४-माँके प्रति—समर्पण [कविता] (श्रीराधाकृष्ण श्रोत्रिय 'साँवरा')	५८६
५-अवतार और अधिकारी महापुरुषोंका अलौकिक प्रभाव (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	५८७
६-राम-नामका प्रभाव [कविता] (गो० तुलसीदासजी)	५९०
७-आचार्य शंकरका शक्तितत्त्व-विमर्श (पद्मभूषण पण्डित श्रीबलदेवजी उपाध्याय)	५९१
८-श्रीराधाभावकी एक झाँकी (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	५९५
९-भक्तिकी महिमा (डॉ० श्रीराजेश्वरप्रसादजी चतुर्वेदी, डी० लिट्०)	६००
१०-साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	६०२
११-दीनता (पं० श्रीमूलनारायणजी मालवीय)	६०३
१२-सब कुछ भूलकर प्रभुमें तन्मय हो जाओ (संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)	६०७
१३-मानव-शरीरकी महत्ता (स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)	६१०
१४-शीघ्र चेतो !	६११
१५-भगवत्प्रेम-चिन्तामणि (डॉ० श्रीशुकरत्नजी उपाध्याय)	६१२
१६-उद्धव-संदेश—२९ (डॉ० श्रीमहानामव्रतजी ब्रह्मचारी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, डी०लिट्०) [अनु०—श्रीचतुर्भुजजी तोषणीवाल]	६१५
१७-रामचरितमानसमें परमानन्द-दर्शन (श्रीओमप्रकाशजी अग्रवाल, एम्०ए०, एल्०टी०, साहित्यरत्न)	६१७
१८-गीता-तत्त्व-चिन्तन (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	६१९
१९-साधनोपयोगी पत्र	६२३
२०-भगवती सीता तथा द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त [कहानी]	६२४
२१-पूजा करते समय आपके विचार क्या हों ? (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)	६२६
२२-पढ़ो, समझो और करो	६२७
२३-मनन करने योग्य	६२९

चित्र-सूची

१-संकीर्तनके आचार्य देवर्षि नारद	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-भगवान् शिव	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

प्रत्येक अङ्कका साधारण मूल्य
भारतमें २.०० रु०
विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य
(डाक-व्ययसहित)
भारतमें ४४.०० रु०
विदेशमें ६ पौंड
अथवा १० डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

वर्ष ६३

संख्या ५

कल्याण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,८५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१५, सितम्बर १९८९ ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-माताद्वारा गोपालका बाँधा जाना (सूरसागर, दशम स्कन्ध)	६३१
२-कल्याण (शिव)	६३२
३-ईश्वर (तत्त्वदर्शी महात्मा श्रीतैलङ्ग स्वामीजीका उपदेश)	६३३
४-भक्तकी भावना [कविता]	६३७
५-अवतार और अधिकारी महापुरुषोंका अलौकिक प्रभाव (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६३८
६-प्रार्थनाका महत्त्व और भगवन्नाम-महिमा (प्राचार्य डॉ० श्रीजयनारायणजी मल्लिक)	६४०
७-निर्भरा भक्ति (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	६४४
८-संकोच [कविता] (श्रीरामाधारजी त्रिपाठी 'जीवन')	६४६
९-आचार्य शंकरका शक्तितत्त्व-विमर्श (पद्मभूषण पण्डित श्रीबलदेवजी उपाध्याय)	६४७
१०-साधकोंके प्रति— (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	६५१
११-स्वप्न [कविता] (पं० श्रीरामचन्द्रजी वैद्यशास्त्री 'राम')	६५४
१२-संतमिलन (संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)	६५५
१३-आध्यात्मिक भूख (पं० श्रीराजबलीजी पाण्डेय, एम्० ए०)	६५७
१४-भगवान् वेदव्यास (डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री एम्० ए०, पी-एच्०डी०, डी० लिट्०)	६५९
१५-कान्ताभावकी उपासिका व्रजगोपिकाएँ (श्रीमदनगोपालजी शर्मा)	६६२
१६-उपयोगी साधन (एक संतका प्रसाद)	६६३
१७-पूजा-ध्यान साकारका या निराकारका ? (स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)	६६५
१८-'हनुमानबाहुक'—मन्त्रात्मक काव्य (डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी विद्याविभूषण, साहित्यमार्तण्ड)	६६६
१९-गंडेरियाँ [कहानी] (श्रीदुर्गाशंकरजी व्यास)	६६९
२०-रामफगुआ [कविता] (महात्माजी जय गौरीशंकर सीतारामजी 'कवलबास' पतित)	६७०
२१-गीता-तत्त्व-चिन्तन (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	६७१
२२-साधनोपयोगी पत्र	६७३
२३-पढ़ो, समझो और करो	६७५
२४-जैन बन्धुओंसे नम्र निवेदन	६७७
२५-मनन करने योग्य	६७८

चित्र-सूची

१-पुराणोंके प्रणेता भगवान् व्यासदेव	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-माताद्वारा गोपालका बाँधा जाना	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य
भारतमें २.०० रु०
विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य (डाक-व्ययसहित)
भारतमें ४४.०० रु०
विदेशमें ६ पौंड अथवा १० डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

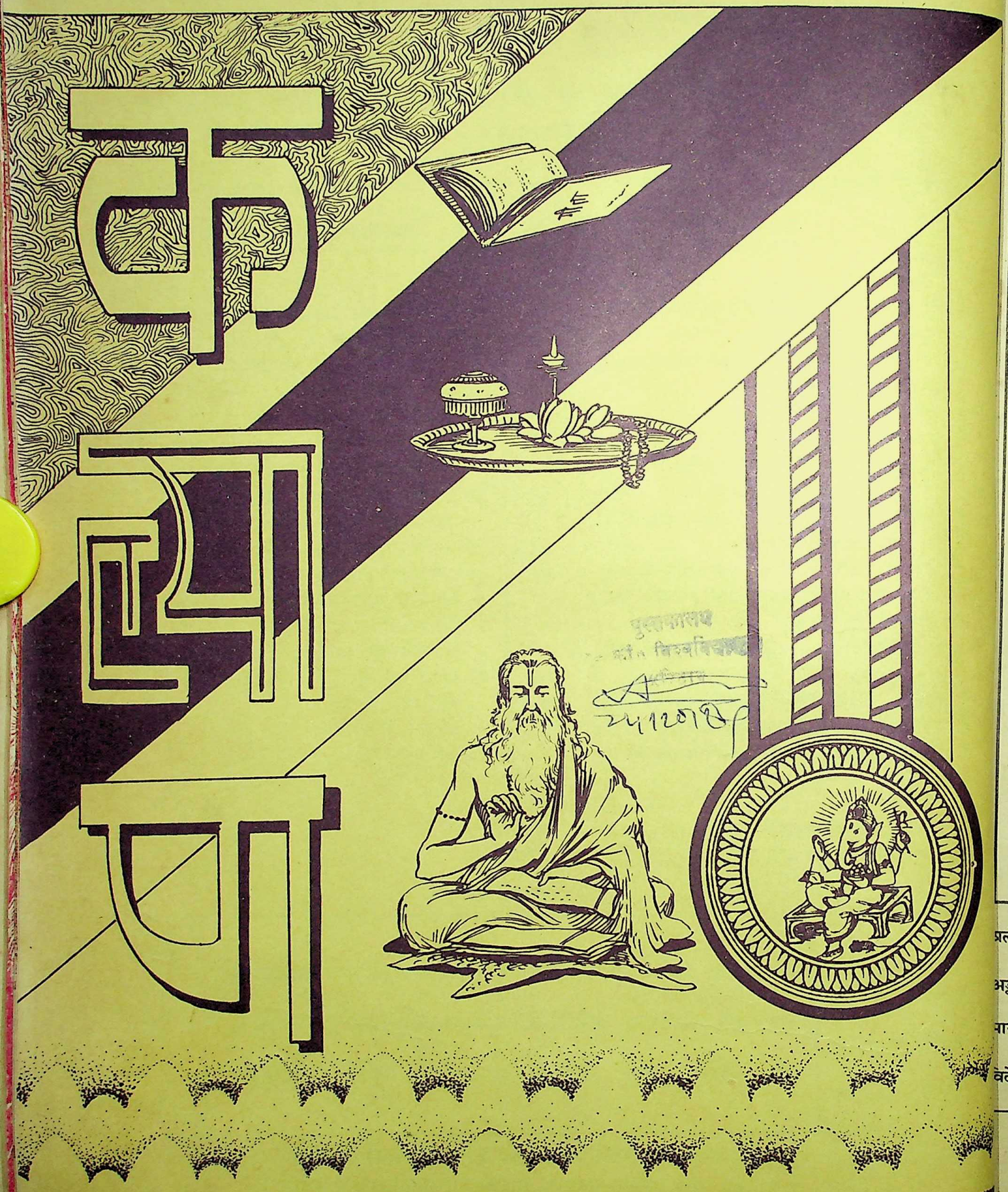

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वर्ष ६३ — संख्या ६

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,८५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१५, अक्टूबर १९८९ ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-पृथ्वी माताद्वारा सीताका स्वागत	६७९
२-कल्याण (शिव)	६८०
३-ईश्वर और धर्म (ब्रह्मलीन परम पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	६८१
४-जिज्ञासा [कविता] (श्रीगौरीशंकरजी मिश्र 'द्विजेन्द्र')	६८३
५-धर्म और उसका प्रचार (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६८४
६-प्रार्थनाका महत्त्व और भगवन्नाम-महिमा (प्राचार्य डॉ० श्रीजयनारायणजी मल्लिक	६८७
७-निर्भरा भक्ति (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	६९०
८-निराकार एवं साकार ब्रह्म (श्रीसुधाकरजी पाण्डेय)	६९३
९-साधकोंके प्रति— (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	६९५
१०-धन्य है ! [कविता] (श्रीप्रेमनारायणजी त्रिपाठी 'प्रेम')	६९९
११-श्रीकृष्ण-भक्तिमें माधुर्य (श्रीसुमनलता वोहरा)	७००
१२-पथिक मन [कविता] (डॉ० श्रीहनुमानप्रसादजी त्रिपाठी)	७०३
१३-अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् (संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)	७०४
१४-रामकृष्णकी रामभक्ति (श्रीअनन्तप्रसादजी शर्मा, एम्० ए०)	७०५
१५-मानसकारकी सर्वात्मवादी चेतना (डॉ० श्रीरामाप्रसादजी मिश्र)	७०८
१६-भागवत-श्रवणसे मुक्ति (स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)	७१०
१७-जय जगदम्बे ! [कविता] (डॉ० श्रीपरमानन्दजी पाण्डेय, एम्० ए०, बी० एल्०, डी०लिट्०)	७११
१८-गीता-तत्त्व-चिन्तन (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	७१२
१९-गोरक्षा एवं दुग्ध-उत्पादन (श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)	७१३
२०-स्वप्न और स्वप्नपर अधिकार (श्रीरामदित्तामलजी भाटिया)	७१५
२१-साधनोपयोगी पत्र	७१६
२२-श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना	७१८
२३-पढ़ो, समझो और करो	७२२
२४-मनन करने योग्य	७२४
२५-श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना	७२५

चित्र-सूची

१-हृषीकेशका पाञ्चजन्य-नाद	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-सीता—धरणीदेवीकी गोदमें	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य भारतमें २.०० रु० विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य (डाक-व्ययसहित) भारतमें ४४.०० रु० विदेशमें ६ पौंड अथवा १० डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

वर्ष ६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,८५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर कार्तिक, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१५, नवम्बर १९८९ ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-आनन्दघनकी खीझ	७२७
२-कल्याण (शिव)	७२८
३-विचार-साधना (स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज)	७२९
४-गो-महिमा और गोरक्षाकी आवश्यकता (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७३३
५-पक्षी (श्रीआत्मारामजी देवकर 'साहित्यमनीषी')	७३७
६-सच्चा धर्म—प्रेम और सेवा (श्रीभगवानदासजी केला)	७३८
७-सावधान [कविता]	७३९
८-पतनोन्मुख मानव-समाजकी रक्षा कैसे हो ? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	७४०
९-कुंज-लीला [पद]	७४३
१०-ममता तू न गयी मेरे मन तें (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	७४४
११-साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	७४९
१२-स्मरण-भक्तिकी साधना (डॉ० श्रीकन्हैयालालजी शर्मा)	७५१
१३-विवेक-वाटिका	७५३
१४-परिधान और मानवी उत्थान (श्रीसन्तकुमारजी अवस्थी, एम्० ए०)	७५४
१५-दुःखोंसे मुक्ति पानेका उपाय (श्रीनृसिंहदेवजी अरोड़ा)	७५६
१६-पाप-निवृत्तिके कतिपय उपाय (स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)	७५८
१७-अमृत, जो सर्वसुलभ है (डॉ० श्रीमनोहरलालजी गोयल)	७६०
१८-शरणागतिकी पुकार (श्रीमोहनजी)	७६२
१९-गीता-तत्त्व-चिन्तन (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	७६३
२०-गीताकी व्यापक दृष्टि (श्रीयुत् चार्ल्स जॉन्स्टन महोदय)	७६५
२१-संत ज्ञानदेव और उनका प्रकरण-ग्रन्थ 'अमृतानुभव' (सुश्री प्रमिला पिपले)	७६६
२२-साधनोपयोगी पत्र	७६८
२३-पढ़ो, समझो और करो	७६९
२४-मनन करने योग्य (श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'व्रजेश')	७७१
२५-सुख कहाँ है ?	७७३

चित्र-सूची

१-माता कौसल्याका लाड-प्यार	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-आनन्दकन्दकी खीझ	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

प्रत्येक अङ्कका साधारण मूल्य
भारतमें २.०० रु०
विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य
(डाक-व्ययसहित)
भारतमें ४४.०० रु०
विदेशमें ६ पौंड
अथवा १० डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

वर्ष ६३

संख्या ८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,८५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१५, दिसम्बर १९८९ ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-वसुदेव-देवकीको बन्धनमुक्त करना	७७५
२-कल्याण (शिव)	७७६
३-विचार-साधना (स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज)	७७७
४-मांस-भक्षण-निषेध (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७८१
५-आत्माका स्वरूप (डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त)	७८६
६-भजन क्यों नहीं होता ? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	७८९
७-भगवान् शिवका मङ्गलमय नृत्य ताण्डव (श्रीगंगारामजी शास्त्री)	७९२
८-साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	७९५
९-ममता तू न गयी मेरे मन तें (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	७९७
१०-परमानन्दमूर्ति श्रीराम (पं० श्रीमिथिलाप्रसादजी त्रिपाठी, साहित्याचार्य, पी-एच्०डी०)	८०१
११-प्रार्थना	८०४
१२-संयमकी शिक्षा (संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)	८०५
१३-भक्त जन-जसवंत (श्रीदिवाकरजी जोगलेकर, साहित्यरत्न)	८०७
१४-आयुर्वेदविज्ञान एवं आचार-रसायन (पं० श्रीवासुदेवजी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य)	८११
१५-श्रीमद्भगवद्गीताकी उपयोगिता	८१२
१६-गीता-तत्त्व-चिन्तन (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	८१३
१७-ईश्वर-प्रार्थनापर महात्मा गाँधीजीके उद्गार	८१४
१८-साधनोपयोगी पत्र	८१५
१९-अमृत-बिन्दु	८१७
२०-पढ़ो, समझो और करो	८१८
२१-मनन करने योग्य	८२२

चित्र-सूची

१-भगवान् विष्णुको सदाशिवद्वारा सुदर्शनचक्रकी प्राप्ति	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-श्रीकृष्णका माता-पिताको बन्धन-मुक्त करना	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य
भारतमें २.०० रु०
विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य
(डाक-व्ययसहित)
भारतमें ४४.०० रु०
विदेशमें ६ पौंड
अथवा १० डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
रामदास जालान द्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ॐ श्रीपरमात्मने नमः
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

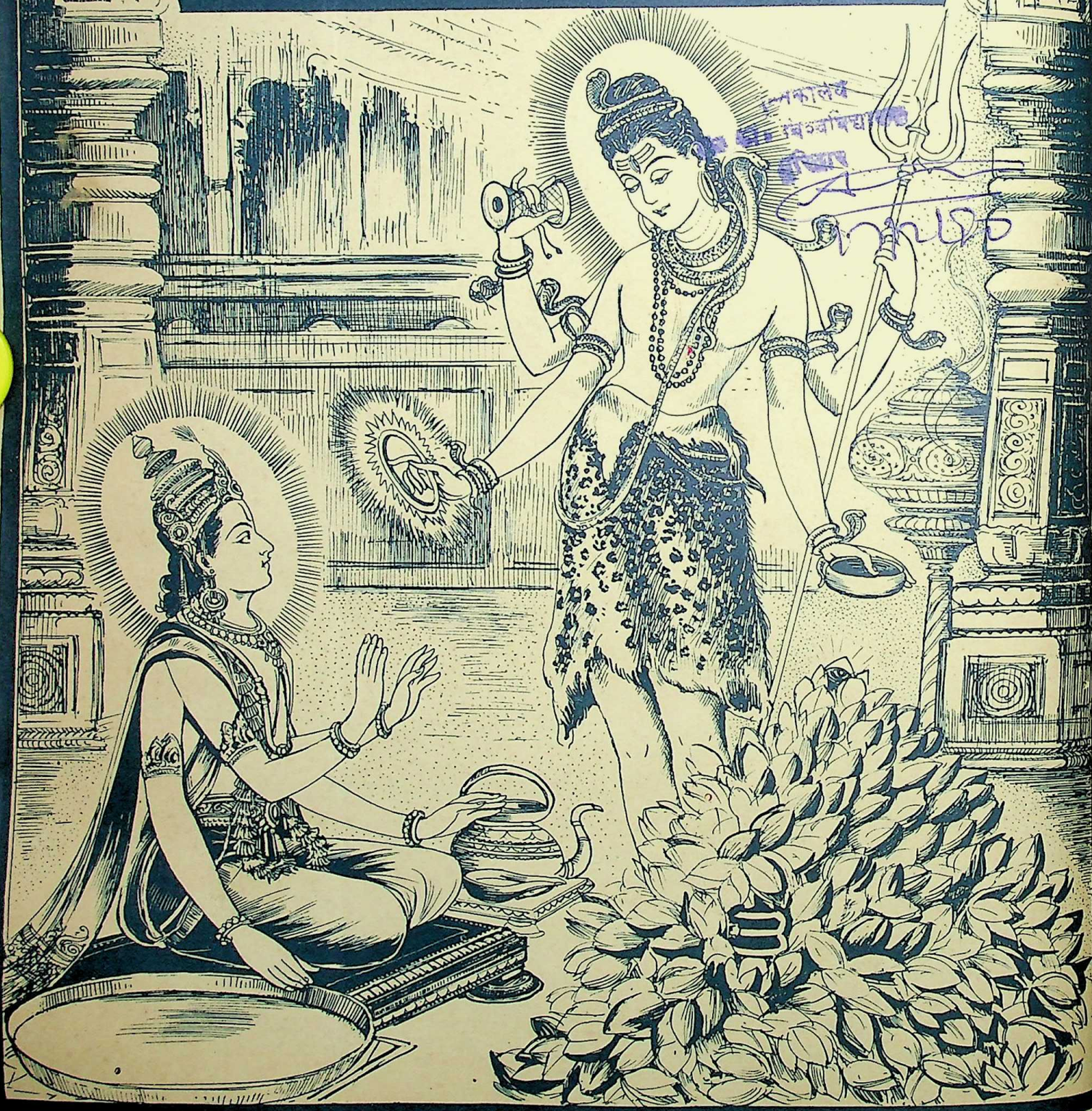

वर्ष ६३ | संख्या ९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भगवान

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,८५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१५, जनवरी १९९० ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-मुरलीमनोहर भगवान् श्रीकृष्ण	८२३
२-कल्याण (शिव)	८२४
३-ध्यानकी आवश्यकता (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८२५
४-वन्दना [कविता]	८२६
५-श्रद्धा-विश्वास (स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती)	८२७
६-राधाकृष्णका दिव्य सौन्दर्य [कविता]	८२९
७-मनुष्यकी अधोमुखी प्रवृत्ति और उससे बचनेके उपाय (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमान-प्रसादजी पोद्दार)	८३०
८-भगवान् श्रीकृष्णका उद्धवजीको अन्तिम उपदेश (महात्मा श्रीभगवत्स्वरूपजी)	८३४
९-आत्मिक पुकार	८३६
१०-साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	८३७
११-मनोनिग्रहका मार्ग—निरन्तर भगवच्चिन्तन (डॉ० श्रीशुकरत्नजी उपाध्याय)	८४०
१२-पार्वतीका पातिव्रत्य (स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी)	८४२
१३-मानव-जीवनका कर्तव्य	८४३
१४-ममता तू न गयी मेरे मन तें (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	८४४
१५-मनुष्य-जातिके कल्याणके लिये गीता सर्वाधिक उपयोगी ग्रन्थ है (श्रीश्यामाचरण दे)	८४६
१६-भगवद्दर्शनमें अन्तराय (संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)	८४७
१७-हिन्दूधर्म सनातनधर्मका ही पर्याय है (प्रो० डॉ० श्रीसीतारामजी झा 'श्याम' एम्०ए, डी०लिट्०)	८४९
१८-क्या ईश्वरकी सर्वज्ञता मनुष्यके पुरुषार्थमें बाधक है ? (स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)	८५१
१९-रुद्राक्ष-महिमा (प्रेषक-डॉ० श्रीजयनारायणजी यादव)	८५२
२०-सरकार ! तुम्हारे नामोंमें [कविता]	८५४
२१-गीता-तत्त्व-चिन्तन (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	८५५
२२-भक्त अम्बालाल [भक्तगाथा] (श्रीमिश्रीलालजी गुप्त)	८५८
२३-गोचारण [कविता]	८६०
२४-अमृत-बिन्दु	८६१
२५-अनन्यशरणागतिसे समाधिलाभ [कहानी]	८६२
२६-साधनोपयोगी पत्र	८६४
२७-पढ़ो, समझो और करो	८६५
२८-मनन करने योग्य	८६८
२९-माँ-बेटेकी बातचीत	८६९
३०-ईश्वर-प्राप्तिके कुछ उपाय	८७०

चित्र-सूची

१-वृषभ-स्वरूप भगवान् धर्मदेव	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-मुरलीमनोहर भगवान् श्रीकृष्ण	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य
भारतमें २.०० रु०
विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य
(डाक-व्ययसहित)
भारतमें ४४.०० रु०
विदेशमें ६ पौंड
अथवा १० डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
रामदास जालान द्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

धर्म

पुस्तकालय
गुरु कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

संख्या १०
वर्ष ६३,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,८५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर माघ, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१५, फरवरी १९९०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-भगवती महालक्ष्मीको वन्दना	८७१
२-कल्याण (शिव)	८७२
३-ईश्वर और संसार (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८७३
४-श्रद्धा-विश्वास (स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती)	८७६
५-निराशा [कविता] (श्रीभगवतीप्रसादजी मिश्र 'नन्दन')	८७९
६-प्रेमभक्तिमें भगवान् और भक्तका सम्बन्ध (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	८८०
७-राम-जानकीकी वैवाहिक शोभा [कविता]	८८२
८-अपने-आपके साथ दुर्व्यवहार मत कीजिये (श्रीचूड़ामन मोतीलालजी मुन्शी)	८८३
९-साधकोंके प्रति— (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	८८६
१०-पुष्टि-मार्ग-प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी एवं उनके सिद्धान्त (श्रीवसन्तकुमारजी सर्राफ)	८८९
११-मानस मन्त्रमय है	८९०
१२-ममता तू न गयी मेरे मन तें (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	८९१
१३-श्रीरामचरितमानसमें अतिथि और आतिथ्य (पं० श्रीछेदीजी साहित्यालंकार, विद्यावाचस्पति)	८९४
१४-जीवन सात्त्विक यज्ञमय बनाना चाहिये (संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)	८९६
१५-मनकी सीख [कविता] (श्रीहरप्रसादजी बड़ौनियाँ 'पागल')	८९८
१६-भक्त आरण्यकमुनि [भक्त-गाथा]	८९९
१७-उसका पता [कविता]	९०१
१८-अंडोंसे सावधान (श्रीरामनिवासजी लखोटिया)	९०[illegible]
१९-गीता-तत्त्व-चिन्तन (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	९०[illegible]
२०-मानव-जीवनकी भूल (स्वामी श्रीदिव्यानन्दजी सरस्वती)	९०[illegible]
२१-जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (श्रीयोगेश्वरजी त्रिपाठी 'योगी')	९०[illegible]
२२-साधनोपयोगी पत्र	९०[illegible]
२३-बंसीधर [कविता] (श्रीप्रमोदजी त्रिपाठी)	९१[illegible]
२४-पढ़ो, समझो और करो	९१[illegible]
२५-मनन करने योग्य	९१[illegible]
२६-जीवेम शरदः शतम्	९१[illegible]
२७-प्रार्थना	९१[illegible]

चित्र-सूची

१-भावमग्न महाप्रभु चैतन्य	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-भगवती श्रीसौभाग्यलक्ष्मी	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

प्रत्येक अङ्कका साधारण मूल्य
भारतमें २.०० रु०
विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वा[illegible] मूल्य
(डाक-व्ययसहित)
भारतमें ४४.०[illegible]
विदेशमें ६[illegible]
अथवा १०[illegible]

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका

रामदास जालान द्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

• ॐ श्रीपरमात्मने नमः •

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

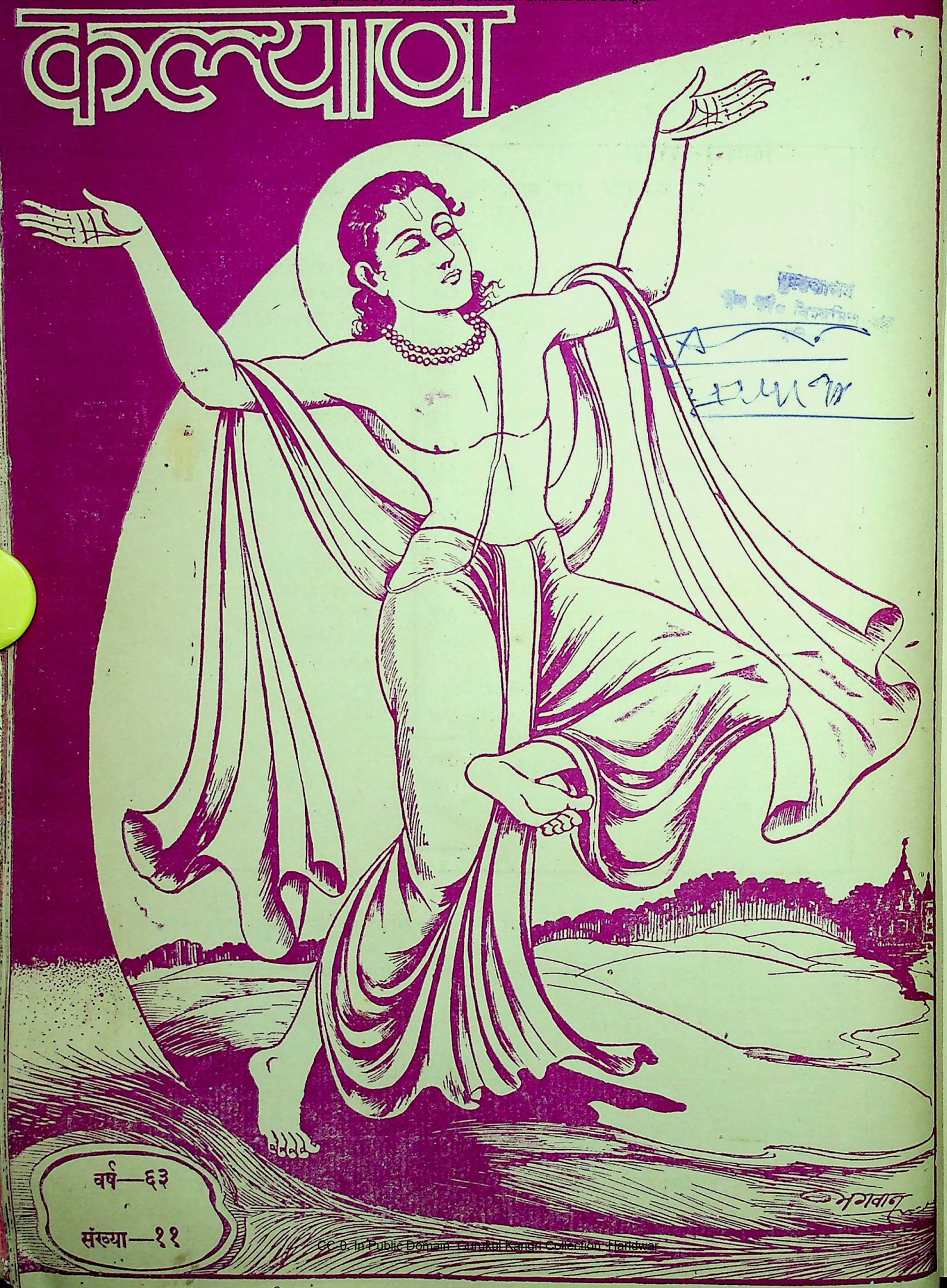

वर्ष—६३

संख्या—११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,८५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१५, मार्च १९९० ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-महाभावरूपा भगवती श्रीराधाकी वन्दना	९१९
२-कल्याण (शिव)	९२०
३-हेतुरहित प्रेमी और दयालु भगवान्‌का सौहार्द (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	९२१
४-जीवन-सौन्दर्यके उत्पादक तत्त्व (श्रीईश्वरलालजी शर्मा 'रत्नाकर' साहित्यरत्न)	९२७
५-प्रतिशोधकी भावनाका त्याग करके प्रेम कीजिये (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	९३०
६-वनमालीकी शोभा [कविता]	९३२
७-श्रद्धा और विश्वास (श्रीलाला लालचन्दजी)	९३३
८-जैसा संग वैसा रंग	९३४
९-साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	९३५
१०-'रामकी भक्ति-भावना' (श्रीओमप्रकाशजी अग्रवाल एम्० ए० (हिन्दी, अंग्रेजी), एल्० टी०, साहित्यरत्न)	९३७
११-सफल जीवन [कविता]	९४०
१२-ममता तू न गयी मेरे मन तें (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	९४१
१३-करने योग्य (श्रीरूपगोस्वामीजी)	९४६
१४-पाप और पुण्यकी कमाई (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	९४७
१५-भक्त किशनसिंहजी [प्रे०—पं० हरद्वारीलालजी शर्मा 'हिन्दी प्रभाकर']	९५०
१६-सबमें स्थित भगवान्‌का तिरस्कार न करो!	९५१
१७-गीता-तत्त्व-चिन्तन (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	९५२
१८-पतित-पावनी गङ्गा (डॉ० श्रीरामसेवकजी दुबे, एम्० एस्० सी०, पी-एच्० डी०)	९५३
१९-पढ़ो, समझो और करो	९५४
२०-मनन करने योग्य	९५७
२१-मनको चेतावनी [कविता]	९५९
२२-सबके कल्याणमें अपना कल्याण	९६०
२३-संज्ञानसूक्त	९६१
२४-संख्या २ से १२ तक प्रकाशित लेखादिकी वार्षिक विषय-सूची	९६२

चित्र-सूची

१-भगवान्‌का वत्स-प्रेम	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-श्रीराधा	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य भारतमें २.०० रु० विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य (डाक-व्ययसहित) भारतमें ४४.०० रु० विदेशमें ६ पौंड अथवा १० डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका

रामदास जालान द्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

वर्ष ६३

संख्या १२

कल्याण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

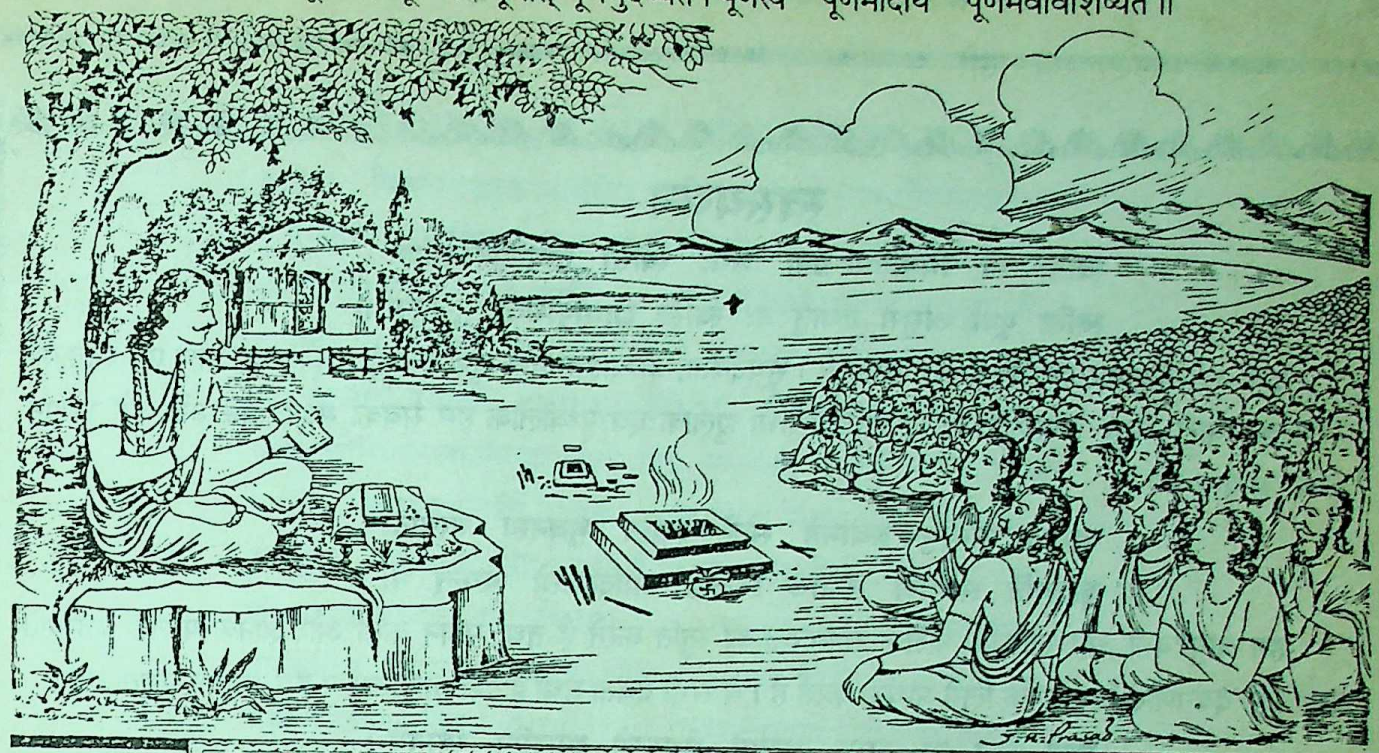

कल्याण

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत्।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया॥

वर्ष ६३ } गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-सं० ५२१५, अप्रैल १९८९ई० { संख्या १ / पूर्ण संख्या ७४६

पुराण-विग्रह भगवान् विष्णु

ब्राह्मं मूर्धा हरेरेव हृदयं पद्मसंज्ञकम्॥
वैष्णवं दक्षिणो बाहुः शैवं वामो महेशितुः। ऊरू भागवतं प्रोक्तं नाभिः स्यान्नारदीयकम्॥
मार्कण्डेयं च दक्षाङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते। भविष्यं दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मनः॥
ब्रह्मवैवर्तसंज्ञं तु बामजानुरुदाहृतः। लैङ्गं तु गुल्फकं दक्षं वाराहं वामगुल्फकम्॥
स्कान्दं पुराणं लोमानि त्वगस्य वामनं स्मृतम्। कौर्मं पृष्ठं समाख्यातं मात्स्यं मेदः प्रकीर्त्यते॥
मज्जा तु गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माण्डमस्थि गीयते। एवमेवाभवद्विष्णुः पुराणावयवो हरिः॥

(पद्मपु०, स्व० ख० ६२। २—७)

'ब्रह्मपुराण भगवान् विष्णुका सिर, पद्मपुराण हृदय, विष्णुपुराण दक्षिणबाहु, शिवपुराण वामबाहु, भागवत जङ्घायुगल, नारदपुराण नाभि, मार्कण्डेयपुराण दक्षिण और अग्निपुराण वाम चरण है। भविष्य उनका दक्षिण जानु, ब्रह्मवैवर्त वाम जानु, लिङ्गपुराण दक्षिण गुल्फ (टँखना), वराहपुराण वाम गुल्फ, स्कन्दपुराण रोम, वामनपुराण त्वचा, कूर्मपुराण पीठ, मत्स्यपुराण मेद, गरुड मज्जा और ब्रह्माण्डपुराण अस्थि है। इस प्रकार भगवान् विष्णु पुराण-विग्रहके रूपमें प्रकट हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वस्त्ययन

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥

दोनों अश्विनीकुमार हम सबका कल्याण करें। सूर्यदेवता, अव्याहतगतिक पूषा देवता, शत्रुनाशक, प्राण एवं शक्तिको प्रदान करनेवाले असुर (वरुणदेव), अदितिदेवी तथा द्युलोक एवं पृथ्वीलोक हम सबका मङ्गल करें और हमें शोभन ज्ञानसे सम्पन्न करें।

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥

हम वायुदेवता और लोकोंके पालक सोमदेवताकी स्तुति करते हैं तथा महान् कर्मों और ज्ञानके पालक बृहस्पति तथा सभी देवगणोंसे कल्याणके लिये प्रार्थना करते हैं। ये सभी देवता तथा द्वादश आदित्यगण हम सबका मङ्गल करें।

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥

सभी देवता शुभ कर्मोंको आरम्भ करते समय हमारा कल्याण करें। संसारके संचालक तथा सबके आश्रय वैश्वानर अग्निदेव हमारा कल्याण करें। ऋभु नामक देवगण पालन और भगवान् रुद्रदेव सभी पाप-तापोंसे हमारी रक्षा करें।

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥

हे अहोरात्रके आत्मस्वरूप मित्रावरुण देव ! आप हम सबका कल्याण करें। हे भूलोक एवं अन्तरिक्षलोकके मार्गोंमें कल्याण करनेवाली पथ्या देवि ! और उनके साथ चलनेवाली तथा धन प्रदान करनेवाली रेवती देवि ! आप हम लोगोंका सर्वत्र कल्याण करें। देवराज इन्द्रदेव एवं परम तेजस्वी अग्निदेव तथा देवमाता अदिति देवि ! आप सभी हम लोगोंका मङ्गल करें।

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥

जैसे सूर्य और चन्द्रमा निरालम्ब अन्तरिक्षमें निरापद एवं राक्षसादिसे अबाधित निर्विघ्न यात्रा करते हैं, विचरण करते हैं, वैसे ही हम भी अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ लोक-यात्रामें स्नेहपूर्वक निर्विघ्न चलते रहें और हम सबका मार्ग मङ्गलमय हो।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्
शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

हे संसारके नेत्र-स्वरूप, देवताओंके हितचिन्तक, पूर्वदिशामें उदित होनेवाले निष्पाप तथा शुद्ध-बुद्ध, निरन्तर गतिशील सूर्यदेव ! आपके अनुग्रहसे हमलोग सौ वर्षोंतक जीते रहें। सौ वर्षोंतक हमारी अविकल दृष्टि-शक्ति एवं श्रवण-शक्ति बनी रहे। सौ वर्षोंतक सुस्पष्ट वाक्शक्ति बनी रहे और सौ वर्षोंतक हम सभी इन्द्रियोंसे सम्पूर्ण शक्तियुक्त होकर अदीन अर्थात् समृद्ध बने रहें और सौ वर्षसे भी अधिक समयतक समृद्धिशाली और सभी शक्तियोंसे सम्पन्न रहें।

ॐ शान्तिः ! ॐ शान्तिः !! ॐ शान्तिः !!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम्

विघ्नेश विघ्नचयखण्डननामधेय श्रीशंकरात्मज सुराधिपवन्द्यपाद ।
दुर्गामहाव्रतफलाखिलमङ्गलात्मन् विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
सत्पद्मरागमणिवर्णशरीरकान्तिः श्रीसिद्धिबुद्धिपरिचर्चितकुङ्कुमश्रीः ।
दक्षस्तने वलयितातिमनोज्ञशुण्डो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
पाशाङ्कुशाब्जपरशूंश्च दधच्चतुर्भिर्दोर्भिश्च शोणकुसुमस्त्रगुमाङ्गजातः ।
सिन्दूरशोभितललाटविधुप्रकाशो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
कार्येषु विघ्नचयभीतविरञ्चिमुख्यैः सम्पूजितः सुरवरैरपि मोदकाद्यैः ।
सर्वेषु च प्रथममेव सुरेषु पूज्यो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
शीघ्राञ्चनस्खलनतुङ्गरवोर्ध्वकण्ठ स्थूलेन्दुरुद्रगणहासितदेवसङ्घः ।
शूर्पश्रुतिश्च पृथुवर्तुलतुङ्गतुन्दो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
यज्ञोपवीतपदलम्भितनागराजो मासादिपुण्यददृशीकृतऋक्षराजः ।
भक्ताभयप्रद दयालय विघ्नराज विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
सद्रत्नसारततिराजितसत्किरीटः कौसुम्भचारुवसनद्वय ऊर्जितश्रीः ।
सर्वत्र मङ्गलकरस्मरणप्रतापो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
देवान्तकाद्यसुरभीतसुरार्तिहर्ता विज्ञानबोधनवरेण तमोऽपहर्ता ।
आनन्दितत्रिभुवनेश कुमारबन्धो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥ (मुद्गलपुराण)

हे विघ्नेश ! हे सिद्धिविनायक ! आपका नाम विघ्न-समूहका खण्डन करेवाला है। आप भगवान् शंकरके सुपुत्र हैं। देवराज इन्द्र आपके चरणोंकी वन्दना करते हैं। आप श्रीपार्वतीजीके महान् व्रतके उत्तम फल एवं निखिल मङ्गलरूप हैं। आप मेरे विघ्नका निवारण करें। सिद्धिविनायक ! आपके श्रीविग्रहकी कान्ति उत्तम पद्मरागमणिके समान अरुण वर्णकी है। श्रीसिद्धि और बुद्धि देवियोंने अनुलेपन करके आपके श्रीअङ्गोंमें कुङ्कुमकी शोभाका विस्तार किया है। आपके दाहिने स्तनपर वलयाकार मुड़ा हुआ शुण्ड-दण्ड अत्यन्त मनोहर जान पड़ता है। आप मेरे विघ्न हर लीजिये। सिद्धिविनायक ! आप अपने चार हाथोंमें क्रमशः पाश, अङ्कुश, कमल और परशु धारण करते हैं, लाल फूलोंकी मालासे अलंकृत हैं और उमाके अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं तथा आपके सिन्दूरशोभित ललाटमें चन्द्रमाका प्रकाश फैल रहा है, आप मेरे विघ्नोंका अपहरण कीजिये। सभी कार्योंमें विघ्न-समूहके आ पड़नेकी आशङ्कासे भयभीत हुए ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवताओंने भी आपकी मोदक आदि मिष्टान्नोंसे भलीभाँति पूजा की है। आप समस्त देवताओंमें सबसे पहले ही पूजनीय हैं। आप मेरे विघ्न-समूहका निवारण कीजिये। सिद्धिविनायक ! आप जल्दी-जल्दी चलने, लड़खड़ाने, उच्चस्वरसे शब्द करने, ऊर्ध्वकण्ठ, स्थूल शरीर होनेसे चन्द्र, रुद्रगण आदि समस्त देवसमुदायको हँसाते रहते हैं। आपके कान सूपके समान जान पड़ते हैं, आप मोटा गोलाकार और ऊँचा तुन्द (तोंद) धारण करते हैं। आप मेरे विघ्नोंका अपहरण कीजिये। आपने नागराजको यज्ञोपवीतका स्थान दे रखा है, आप बालचन्द्रको मस्तकपर धारणकर दर्शनार्थियोंको पुण्य प्रदान करते हैं। भक्तोंको अभय देनेवाले दयाधाम विघ्नराज ! सिद्धिविनायक ! आप मेरे विघ्नोंको हर लीजिये। आपका सुन्दर किरीट उत्तम रत्नोंके सार भागोंकी श्रेणियोंसे उद्दीप्त होता है। आप कुसुम्भी रंगके दो मनोहर वस्त्र धारण करते हैं, आपकी शोभा—कान्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी है और सर्वत्र आपके स्मरणका प्रताप सबका मङ्गल करनेवाला है। सिद्धिविनायक ! आप मेरे विघ्न हर लें। सिद्धिविनायक ! आप देवान्तक आदि असुरोंसे डरे हुए देवताओंकी पीडा दूर करनेवाले तथा विज्ञानबोधके वरदानसे सबके अज्ञानान्धकारको हर लेनेवाले हैं। त्रिभुवनपति इन्द्रको आनन्दित करनेवाले कुमारबन्धो ! आप मेरे विघ्नोंका निवारण कीजिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमः सवित्रे

जयति किरणमाली भासुरः सप्तसप्तिसकलभुवनधामा प्राग्दिगन्ताट्टहासः ।
भवति विगतपापं कीर्तनादेव यस्य प्रचुरकलुषदोषैर्ग्रस्तमङ्गं नराणाम् ॥
उद्यन्तमम्बरतले सुरसिद्धसङ्घाः सब्रह्मदैत्यमुनिकिन्नरनागयक्षाः ।
त्वामर्चयन्ति विबुधाः प्रणतैः शिरोभिश्चञ्चत्किरीटमणिभाभिरनुत्तमाभिः ॥
प्राग्दिग्वधूतिलक भासुरकर्णपूर मन्दाकिनीदयितनाथ जगत्प्रदीप ।
हेमाद्रितापन नभस्तलहाररत्न सन्ध्याङ्गनावदनराग नमो नमस्ते ॥
ब्रह्मण्य सत्य शुभ मङ्गललोकनाथ व्योमाम्बुजेश मुनिसंस्तुत विश्वमूर्ते ।
आर्तस्य शोकहर किङ्करपालकश्च त्वं मे प्रसीद भगवञ्छरणागतस्य ॥
नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥

(स्कन्द०, अवन्ती०, अ० ४३)

किरणोंकी मालासे मण्डित, अत्यन्त प्रकाशमान एवं सात घोड़ोंके रथपर चलनेवाले उन भगवान् सूर्यकी जय हो, जिनका तेज समस्त भुवनोंमें व्याप्त है, जो पूर्व दिशाके अट्टहासकी-सी छवि धारण करते हैं तथा जिनके नामोंका कीर्तन करनेमात्रसे प्रचुर पाप-तापमय दोषोंसे ग्रस्त हुए मनुष्योंके अङ्ग निष्पाप हो जाते हैं। भगवन् ! जिस समय आप आकाशमें उदित होते हैं, उस समय देवताओं और सिद्धोंके समुदाय, ब्रह्मा आदि देवेश्वर, दैत्य, मुनि, किन्नर, नाग, यक्ष तथा ज्ञानी देवगण अपने झुके हुए मस्तकोंद्वारा चमकती हुई मुकुटमणियोंकी उत्तम प्रभावोंसे आपकी अर्चना करते हैं। हे वधूरूपिणी प्राची दिशाके भाल-तिलक ! देदीप्यमान कर्णपूर धारण करनेवाले मन्दाकिनीके प्रियतम नाथ ! सुमेरु पर्वतको प्रकाशित करनेवाले ! आकाशके महान् हाररत्न ! अङ्गनारूपी सन्ध्याके मुखको रञ्जित करनेवाले ! जगत्प्रदीप ! आपको बारंबार नमस्कार है। हे ब्रह्मण्य ! सत्य ! शुभ ! मङ्गल ! लोकनाथ ! आकाशकमल ! ईश ! मुनि-संस्तुत ! विश्वमूर्ते ! आर्तजनोंका शोक नाश करनेवाले ! सेवकोंका पालन करनेवाले ! भगवन् ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ मुझपर प्रसन्न होइये। जो सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र नेत्र हैं, वेदत्रयीमय हैं अथवा त्रिभुवन-स्वरूप हैं, त्रिगुणात्मक शरीर धारण करनेवाले हैं और समस्त विश्वकी उत्पत्ति, पालन तथा संहारके हेतु हैं, उन ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप भगवान् सूर्यको मेरा नमस्कार है।

सुभद्रश्रवसे नमो नमः

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥
तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ (श्रीमद्भा० २।४।१५, १७)

जिन मङ्गलमय भगवान्के मङ्गलमयी कीर्तिका श्रवण सभी प्रकारके मङ्गलोंका विस्तार करता है, जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन और पूजन जीवोंके पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है, उन पुण्यकीर्ति भगवान् पुराण-पुरुष श्रीविष्णुको बारंबार नमस्कार है। बड़े-बड़े तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी, सदाचारी और मन्त्रवेत्ता जबतक अपनी साधनाओंको तथा अपने-आपको उनके (भगवान्के) चरणोंमें समर्पित नहीं कर देते, तबतक उन्हें कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती, जिनके प्रति आत्मसमर्पणकी ऐसी महिमा है, उन कल्याणमयी कीर्तिवाले भगवान् पुराण-पुरुष श्रीविष्णुको बारंबार नमस्कार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखदाता ।
संसारहेतुरपि यः पुनरन्तकालस्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
यं योगिनो विगतमोहतमोरजस्का भक्त्यैकतानमनसो विनिवृत्तकामाः ।
ध्यायन्ति चाखिलधियोऽमितदिव्यमूर्तिं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
यश्चन्द्रखण्डममलं विलसन्मयूखं बद्ध्वा सदा सुरधुनीं शिरसा बिभर्ति ।
वामाङ्गके विधृतवान् गिरिराजपुत्रीं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
यः सिद्धचारणनिषेवितपादपद्मो गङ्गां महोर्मिविषमां गगनात् पतन्तीम् ।
मूर्ध्ना दधे स्रजमिव त्रिजगत्पुनन्तीं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
कैलासगोत्रशिखरे परिकम्पमाने कैलासशृङ्गसदृशेन दशाननेन ।
यः पादपद्मपरिपीडनसेव्यमानस्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
ब्रह्मेन्द्रविष्णुमरुतां च सषण्मुखानां योऽदाद्वरान् सुबहुशो भगवान् महेशः ।
श्वेतं च मृत्युवदनात् पुनरुज्जहार तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
आराधितस्तु तपसा हिमवन्निकुञ्जे धूम्रावृतेन तपसाऽपि परैरगम्यः ।
सञ्जीविनीं समददाद् भृगवे महात्मा तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

(स्कन्दपुराण, अवन्तीखण्ड०, अ० ४९)

'जो इस सम्पूर्ण चराचर-जगत्के कर्ता और इसे अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार सुख-दुःख देनेवाले हैं, जो संसारकी उत्पत्तिके हेतु तथा उसका अन्तकाल भी स्वयं ही हैं, सबको शरण देनेवाले उन्हीं भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। जिनके मोह, तमोगुण और रजोगुण दूर हो गये हैं, वे योगीजन, भक्तिसे मनको एकाग्र रखनेवाले निष्काम भक्त तथा अपरिच्छिन्न बुद्धिवाले ज्ञानी भी जिनका निरन्तर ध्यान करते हैं, उन अनन्त दिव्यस्वरूप शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। जो सुशोभित किरणोंवाले निर्मल अर्धचन्द्रका मुकुट बाँधकर सदा अपने मस्तकपर गङ्गाजीको धारण करते हैं और जिन्होंने अपने वामाङ्गभागमें गिरिराजकिशोरी उमाको धारण कर रखा है, उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। सिद्ध और चारण जिनके चरणारविन्दोंकी सेवा करते रहते हैं और जिन्होंने आकाशसे ऊँची-ऊँची उत्ताल तरङ्गोंके साथ विषम वेगसे गिरती हुई त्रिभुवनपावनी गङ्गाको अपने मस्तकपर पुष्पमालाकी भाँति धारण कर लिया था, उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। जिसके भारसे कैलासपर्वतका शिखर हिलने लगता था, कैलास-शृङ्गके सदृश ही उस विशालकाय दशाननने भी जिनके युगल चरणारविन्दोंकी सेवा की है, उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। जिन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, मरुद्गण और कार्त्तिकेयको अनेक बार बहुत-से वर प्रदान किये तथा अपने भक्त महामुनि श्वेतको मृत्युके मुखसे निकाल लिया था[1], उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। आचार्य शुक्रने हिमालयपर्वतके निकुञ्जोंमें अग्निसे समुत्थित धुएँसे आवृत होकर, उसका पान कर, अन्य किसीसे भी असाध्य तपद्वारा भगवान् शंकरकी आराधना की। इससे प्रसन्न होकर जिन महान् आत्मा महादेवने उन्हें संजीवनी-विद्या प्रदान कर दी[2], उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

१-महामुनि श्वेतकी यह कथा लिङ्गपुराण पूर्वखण्ड अ० ३० में विस्तारपूर्वक प्राप्त होती है।
२-यह कथा मत्स्यपुराण अ० ४७ श्लोक ८२ से १२२ तकमें प्राप्त होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमामि ते रूपमिदं भवानि !

आद्यं महान्तं पुरुषाभिधानं प्रकृत्यवस्थं त्रिगुणात्मबीजम्। ऐश्वर्यविज्ञानविरोधधर्मैः समन्वितं देवि नतोऽस्मि रूपम्॥
सर्वाश्रयं सर्वजगद्विधानं सर्वत्रगं जन्मविनाशहीनम्। सूक्ष्मं विचित्रं त्रिगुणं प्रधानं नतोऽस्मि ते रूपमरूपभेदम्॥
यदेव पश्यन्ति जगत्प्रसूतिं वेदान्तविज्ञानविनिश्चितार्थाः। आनन्दमात्रं प्रणवाभिधानं तदेव रूपं शरणं प्रपद्ये॥
सहस्रमूर्धानमनन्तशक्तिं सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम्। शयानमन्तःसलिले तवैव नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपम्॥
प्रहीणशोकं प्रविहीनरूपं सुरासुरैरर्चितपादपद्मम्। सुकोमलं देवि विभासि शुभ्रं नमामि ते रूपमिदं भवानि॥
नमस्तेऽस्तु महादेवि नमस्ते परमेश्वरि। नमो भगवतीशानि शिवायै ते नमो नमः॥

(कूर्मपु०, पूर्वा०, अ० १२)

हे देवि ! आपका जो रूप आद्य, महापुरुषसंज्ञक प्रधान प्रकृति-अवस्थावाला, सत्त्व-रज आदि तीनों गुणोंका बीजभूत और ऐश्वर्य, विज्ञान एवं अनेक परस्पर विरुद्ध धर्म तथा गुणोंका आश्रय है, मैं उसे प्रणाम करता हूँ। देवि ! जो आपका रूप समस्त संसारका आश्रय, विश्व-विधाता, सर्वत्रगामी, जन्म-जरा-मृत्युसे रहित, अतिसूक्ष्म, विचित्र, त्रिगुणमय, प्रधान तथा निर्गुण एवं सगुण-स्वरूप है, मैं उसे नमस्कार करता हूँ। वेदान्त एवं विज्ञानशास्त्रके द्वारा सुनिश्चित निर्णय-प्राप्त ऋषिगण, जगत्को उत्पन्न करनेवाले आनन्दमात्र आपके जिस ओंकारस्वरूपका सदा ध्यान करते हैं, हम उसकी शरण ग्रहण करते हैं, सहस्र मस्तक, सहस्र भुजा एवं अनन्त शक्तियोंको धारण करनेवाले अन्तःसमुद्रशायी पुराणपुरुष भगवान् नारायण भी आपके ही रूप हैं, मैं आपके उस रूपको प्रणाम करता हूँ। हे भवानी देवि ! तुम निर्गुण-निराकार होती हुई भी सम्पूर्ण शोक-मोहसे शून्य, देवता एवं असुरोंद्वारा अर्चित, सुकोमल चरणकमलवाली, गौरीरूपमें प्रकाशित हो रही हो, मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ। हे षडैश्वर्यसम्पन्न परमेश्वरि महादेवि ! आपको प्रणाम है। समस्त संसारपर शासन करनेवाली हे भगवती शाङ्करि ! मेरा आपको बारंबार नमस्कार है।

वेदव्यासं सर्वदाहं नमामि

पाराशर्यं परमपुरुषं विश्ववेदैकयोनिं
विद्याधारं विमलमनसं वेदवेदान्तवेद्यम्।
शश्वच्छान्तं शमितविषयं शुद्धबुद्धिं विशालं
वेदव्यासं विमलयशसं सर्वदाहं नमामि॥

(पद्म०, उ० खं० २१९।४२)

महर्षि पराशरके पुत्र, परम पुरुष, सम्पूर्ण वैदिक शाखाओंके उत्पत्तिके स्थान, सम्पूर्ण विद्याओंके आधार, निर्मल मनवाले, वेद-वेदान्तोंके द्वारा परिज्ञेय, सदा शान्त, रागशून्य, विशाल विशुद्ध-बुद्धि तथा निर्मल यशवाले महात्मा वेदव्यासजीको मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ।

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति॥

(वायु० १।१।२)

श्रीपराशरजीके पुत्र, सत्यवतीके हृदयको आनन्दित करनेवाले उन भगवान् व्यासकी जय हो, जिनके मुखकमलसे निःसृत शास्त्ररूपी सुधाधाराका संसार पान करता है।

न तेऽस्त्यविदितं किंचित् त्रिषु लोकेषु वै प्रभो॥
सर्वज्ञत्वं महाभाग देवेष्विव बृहस्पतिः।
नमस्यामो महाप्राज्ञं ब्रह्मिष्ठं त्वां महामुनिम्॥
येन त्वया तु वेदार्था भारते प्रकटीकृताः।
कः शक्नोति गुणान् वक्तुं तव सर्वान् महामुने॥
अधीत्य चतुरो वेदान् साङ्गान् व्याकरणानि च।
कृतवान् भारतं शास्त्रं तस्मै ज्ञानात्मने नमः॥
नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे
फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र।
येन त्वया भारततैलपूर्णः
प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः॥

(ब्रह्म० २४५।७-११)

(मुनिगण बोले—) महाभाग भगवान् व्यासजी ! आप देवताओंमें बृहस्पतिकी भाँति सर्वज्ञ हैं। आपको तीनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकोंकी कोई भी वस्तु अज्ञात नहीं है, आपने सम्पूर्ण वेदोंके अर्थको महाभारतमें प्रकाशित किया है तथा आप महामुनि, महाप्राज्ञ एवं ब्रह्मवेत्ता हैं, हम आपको प्रणाम करते हैं। महामुने ! आपके गुणोंका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? आपने अङ्गोंसहित चारों वेदों और उनके भाष्योंको अच्छी तरह पढ़कर महाभारतशास्त्रकी रचना की है। ज्ञानस्वरूप आपको हम प्रणाम करते हैं। आपके नेत्र प्रफुल्लित कमलके समान विशाल हैं। आपने महाभारतरूपी तेलसे भरे हुए ज्ञानपूर्ण दीपकको प्रज्वलित किया है। हे विशाल बुद्धिवाले व्यासजी ! आपको हमारा प्रणाम है।

नमस्तस्मै मुनीशाय तपोनिष्ठाय धीमते।
वीतरागाय कवये व्यासायामिततेजसे ॥
तं नमामि महेशानं मुनिं धर्मविदां वरम्।
श्यामं जटाकलापेन शोभमानं शुभाननम् ॥
मुनीन् सूर्यप्रभान् धर्मान् पाठयन्तं सुवर्चसम्।
नानापुराणकर्तारं वेदव्यासं महाप्रभम् ॥

(बृहद्धर्मपुराण १।१।२३-२५)

जो तपोनिष्ठ, मुनीश्वर, अमिततेजस्वी, महाकवि, रागसे सर्वथा शून्य तथा अत्यन्त निर्मल बुद्धिसे संयुक्त एवं महामुनि शिवस्वरूप, श्यामवर्णके हैं, जिनका मुखमण्डल जटाजूटसे सुशोभित है और जो धर्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं तथा सूर्यके समान प्रभावाले मुनियोंको धर्मशास्त्रोंका पाठ पढ़ानेवाले हैं, ज्योतिर्मय हैं, अत्यन्त कान्तिमान् हैं, सभी पुराणों तथा उपपुराणोंके रचयिता हैं, उन व्यास भगवान्‌को बारंबार नमस्कार हैं।

व्याससूनुं नतोऽस्मि

[शुक-वन्दना]

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥

'जिस समय श्रीशुकदेवजीका यज्ञोपवीत-संस्कार भी नहीं हुआ था, सुतरां लौकिक-वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानका अवसर भी नहीं आया था, उन्हें अकेले ही संन्यास लेनेके उद्देश्यसे जाते देखकर उनके पिता व्यासजी विरहसे कातर होकर पुकारने लगे—'बेटा ! बेटा !' उस समय तन्मय होनेके कारण श्रीशुकदेवजीकी ओरसे वृक्षोंने उत्तर दिया। ऐसे सबके हृदयमें विराजमान श्रीशुकदेवमुनिको मैं नमस्कार करता हूँ।'

स्वसुखनिभृतचेतास्तदव्युदस्तान्यभावो-
ऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम्।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं
तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ॥

'श्रीशुकदेवजी महाराज अपने आत्मानन्दमें ही निमग्न थे। इस अखण्ड अद्वैत स्थितिसे उनकी भेद-दृष्टि सर्वथा निवृत्त हो चुकी थी। फिर भी मुरलीमनोहर श्यामसुन्दरकी मधुमयी, मङ्गलमयी, मनोहारिणी लीलाओंने उनकी वृत्तियोंको अपनी ओर आकर्षित कर लिया और उन्होंने जगत्‌के प्राणियोंपर कृपा करके भगवत्तत्त्वको प्रकाशित करनेवाले इस महापुराणका विस्तार किया। मैं उन्हीं सर्वपापहारी व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजीके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ।'

योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे।
संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत् ॥

(श्रीमद्भागवत १२।१३।२१)

'हम उन योगिराज ब्रह्मस्वरूप श्रीशुकदेवजीको नमस्कार करते हैं, जिन्होंने श्रीमद्भागवत महापुराण सुनाकर संसार-सर्पसे डसे हुए राजर्षि परीक्षितको मुक्त किया।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराण-महिमा

ये पठन्ति पुराणानि शृण्वन्ति च समाहिताः ।
प्रत्यक्षरं लभन्त्येते कपिलादानजं फलम् ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥
ये शृण्वन्ति पुराणानि कोटिजन्मार्जितं खलु ।
पापजालं तु ते हित्वा गच्छन्ति हरिमन्दिरम् ॥

(पद्म०, ब्रह्मखण्ड २५ । २९-३१)

जो मानव समाहितचित्त होकर पुराणोंका पठन और श्रवण करते हैं, उन्हें प्रत्येक अक्षरपर कपिला गायके दानका फल प्राप्त होता है। पुत्रहीनको पुत्र, धनार्थीको धन, विद्यार्थीको विद्या तथा मोक्षार्थीको मोक्ष प्राप्त होता है तथा पुराण-श्रोताके कोटि-जन्मकृत पाप-जाल नष्ट हो जाते हैं और वे भगवद्धामको प्राप्त करते हैं।

यथा पापानि पूयन्ते गङ्गावारिविगाहनात् ।
तथा पुराणश्रवणाद् दुरितानां विनाशनम् ॥

(वामनपु० ६९ । २)

जिस प्रकार गङ्गाजलमें स्नान करनेसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार पुराणका श्रवण करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

यज्ञकर्मक्रियावेदः स्मृतिर्वेदो गृहाश्रमे ॥
स्मृतिर्वेदः क्रियावेदः पुराणेषु प्रतिष्ठितः ।
पुराणपुरुषाज्जातं यथेदं जगदद्भुतम् ॥
तथेदं वाङ्मयं जातं पुराणेभ्यो न संशयः ।
न वेदे ग्रहसंचारो न शुद्धिः कालबोधिनी ।
तिथिवृद्धिक्षयो वापि पर्वग्रहविनिर्णयः ॥
इतिहासपुराणैस्तु निश्चयोऽयं कृतः पुरा ।
यन्न दृष्टं हि वेदेषु तत्सर्वं लक्ष्यते स्मृतौ ॥
उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत्पुराणैः प्रगीयते ।

(नार० पु०, उ०, अ० २४)

यज्ञ एवं कर्मकाण्डके लिये वेद प्रमाण हैं। गृहस्थोंके लिये स्मृतियाँ ही प्रमाण हैं। किंतु वेद और स्मृतिशास्त्र (धर्मशास्त्र) दोनों ही सम्यक् रूपसे पुराणोंमें प्रतिष्ठित हैं। जैसे परम पुरुष परमात्मासे यह अद्भुत जगत् उत्पन्न हुआ है, वैसे ही सम्पूर्ण संसारका वाङ्मय—साहित्य पुराणोंसे ही उत्पन्न है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। वेदोंमें तिथि, नक्षत्र आदि काल-निर्णायक और ग्रह-संचारकी कोई युक्ति नहीं बतायी गयी है। तिथियोंकी वृद्धि, क्षय, पर्व, ग्रहण आदिका निर्णय भी उनमें नहीं है। यह निर्णय सर्वप्रथम इतिहास-पुराणोंके द्वारा ही निश्चित किया गया है। जो बातें वेदोंमें नहीं हैं, वे सब स्मृतियोंमें हैं और जो बातें इन दोनोंमें नहीं मिलतीं, वे पुराणोंके द्वारा ज्ञात होती हैं।

श्रुतिस्मृती तु नेत्रे द्वे पुराणं हृदयं स्मृतम् ।
श्रुतिस्मृतिभ्यां हीनोऽन्धः काणः स्यादेकया विना ॥
पुराणहीनाद्धृच्छून्यात् काणान्धावपि तौ वरौ ।
श्रुतिस्मृत्युदितो धर्मः पुराणे परिगीयते ॥
यस्य धर्मेऽस्ति जिज्ञासा यस्य पापाद्भयं महत् ।
श्रोतव्यानि पुराणानि धर्ममूलानि तेन वै ॥
चतुर्दशसु विद्यासु पुराणं दीप उत्तमः ।
अन्धोऽपि न तदालोकात् संसाराब्धौ क्वचित् पतेत् ॥

(स्क० का० २ । ९६-९७, ९९-१००)

विद्वानोंके श्रुति-स्मृति—ये दो नेत्र हैं और पुराण हृदय हैं। इनमेंसे जिसे श्रुति-स्मृतिमेंसे किसी एकका ज्ञान नहीं है वह काना, दोनोंके ज्ञानसे हीन अन्धा है, किंतु जो पुराणरूपी विद्यासे हीन है वह तो हृदयहीन या शून्य होनेके कारण इन दोनोंसे भी निकृष्ट है। श्रुति तथा स्मृतियोंमें कहा गया धर्म पुराणमें प्रतिपादित है। जिसकी धर्ममें जिज्ञासा या रुचि हो, जो पापोंसे डरता हो, उसे पुराणोंका श्रवण करना चाहिये, क्योंकि वे ही धर्मके मूल हैं। चौदहों विद्याओंमें पुराण विद्या ही उत्तम दीपक है। इसके आलोक-प्रकाशमें स्थित अन्धा भी संसार-सागरमें कभी नहीं गिरता।

ब्राह्मणं च पुरस्कृत्य ब्राह्मणेन च कीर्तितम् ।
पुराणं शृणुयान्नित्यं महापापदवानलम् ॥
पुराणं सर्वतीर्थेषु तीर्थं चाधिकमुच्यते ।
यस्यैकपादश्रवणाद्धरिरेव प्रसीदति ॥
यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः ।
सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथैवान्तःप्रकाशाय पुराणावयवो हरिः ।
विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम् ॥
तस्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः ।
श्रोतव्यमनिशं पुंभिः पुराणं कृष्णरूपिणः ॥
विष्णुभक्तेन शान्तेन श्रोतव्यमतिदुर्लभम् ।
पुराणाख्यानममलममलीकरणं परम् ॥
यस्मिन् वेदार्थमाहृत्य हरिणा व्यासरूपिणा ।
पुराणं निर्मितं विप्र तस्मात् तत्परमो भवेत् ॥
पुराणे निश्चितो धर्मो धर्मश्च केशवः स्वयम् ।
तस्मात् कृती पुराणे हि श्रुते विष्णुर्भवेदिति ॥
साक्षात् स्वयं हरिर्विप्रः पुराणं च तथाविधम् ।
एतयोः सङ्गमासाद्य हरिरेव भवेन्नरः ॥

(पद्मपु०, स्वर्गख० ६२ । ५८—६६)

ब्राह्मणके साक्ष्यमें ब्राह्मणके मुखसे कहे हुए पुराणका प्रतिदिन श्रवण करना चाहिये। पुराण महापापोंके वनको जलानेके लिये दावानलके समान है। अतः पुराणोंको समस्त तीर्थोंमें श्रेष्ठ तीर्थ बतलाया गया है। पुराण-ग्रन्थोंके एक पाद (चतुर्थांश) के श्रवणसे ही श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं। जैसे भगवान् विष्णु सम्पूर्ण जगत्को प्रकाश तथा देखनेकी शक्ति प्रदान करनेके लिये सूर्यका शरीर धारण करके आकाशमें विचरते हैं, उसी प्रकार पुराणस्वरूप श्रीहरि सम्पूर्ण भूतोंके अन्तःकरणमें ज्ञानका प्रकाश करनेके लिये इस जगत्में विचरते हैं। पुराण सबसे बढ़कर पवित्रताका साधन है, अतः यदि भगवान्को प्रसन्न करनेका मनमें संकल्प हो तो प्रत्येक पुरुषको निरन्तर श्रीविष्णुके अङ्गभूत पुराणका श्रवण करना चाहिये। पुराणकी कथा अत्यन्त दुर्लभ और स्वरूपसे ही निर्मल है तथा अन्तःकरणको निर्मल बनानेका सबसे उत्कृष्ट साधन है। अतः विष्णुभक्त पुरुषको शान्तभावसे इसका श्रवण करना चाहिये। ब्रह्मन्! व्यासरूपी भगवान् श्रीहरिने वेदार्थका संग्रह करके पुराणकी रचना की है, इसलिये उसके श्रवण और अध्ययनमें तत्पर रहना चाहिये। पुराणमें धर्मके स्वरूपका निश्चय किया गया है और धर्म साक्षात् श्रीविष्णुका विग्रह है। अतः विद्वान् पुरुष पुराण-श्रवण करके विष्णुरूप ही हो जाता है। ब्राह्मण स्वयं श्रीहरिका स्वरूप है और पुराण भी ऐसा ही माना गया है। इन दोनोंका सङ्ग पाकर मनुष्य नरसे नारायण हो जाता है।

जगद्यथा निरालोकं जायतेऽशशिभास्करम् ।
विना तथा पुराणं ह्यध्येयमस्मान्मुने सदा ॥
अश्वमेधसहस्रस्य यत्फलं समुदाहृतं ।
तत्फलं समवाप्नोति देवाग्रे यो जपं चरेत् ॥
विशेषतः कलौ व्यास पुराणश्रवणादृते ।
परो धर्मो न पुंसां हि मुक्तिध्यानपरः स्मृतः ॥
या गतिः पुण्यशीलानां यज्वनां च तपस्विनाम् ।
सा गतिः सहसा तात पुराणश्रवणात् खलु ॥
ज्ञानावाप्तिर्यदा न स्याद्योगशास्त्राणि यत्नतः ।
अध्येतव्यानि पौराणं शास्त्रं श्रोतव्यमेव च ॥
पापं संक्षीयते नित्यं धर्मश्चैव विवर्धते ।
पुराणश्रवणाज्ज्ञानी न संसारं प्रपद्यते ॥
अतएव पुराणानि श्रोतव्यानि प्रयत्नतः ।
धर्मार्थकामलाभाय मोक्षमार्गाप्तये तथा ॥
यज्ञैर्दानैस्तपोभिस्तु यत्फलं तीर्थसेवया ।
तत्फलं समवाप्नोति पुराणश्रवणान्नरः ॥

अन्यो न दृष्टः सुखदो हि मार्गः
पुराणमार्गो हि सदा वरिष्ठः।
शास्त्रं विना सर्वमिदं न भाति
सूर्येण हीना इव जीवलोकाः ॥

(शिवपु०, उमासंहिता, अ० १३)

(सनत्कुमारने भगवान् व्यासदेवसे कहा कि मुने!) जिस प्रकार चन्द्रमा और सूर्यके बिना सारा संसार अन्धकारमय हो जाता है अर्थात् अन्धेके समान कुछ भी नहीं देख पाता, उसी प्रकार मनुष्य पुराणके बिना अज्ञानान्धकारमें पड़ा रहता है, अतः हे व्यासदेव! सर्वदा इनका स्वाध्याय करना चाहिये। जो मनुष्य पुराणोंका भगवान्के सामने पाठ करता है, वह हजार अश्वमेध-यज्ञोंका जो फल कहा गया है उसे प्राप्त कर लेता है। विशेषतः कलियुगमें पुराणश्रवणको छोड़कर पुरुषके लिये सिद्धि और मोक्ष प्रदान करनेवाला कोई और धर्म—उपाय नहीं है। जो पुण्यशीलों, यज्ञकर्ताओं और तपस्वियोंकी गति कही गयी है वही गति पुराण-श्रोताओंको बड़ी सरलतासे अनायास ही प्राप्त हो जाती है। मनुष्यको यदि योगादि शास्त्रों, अन्य मार्गों या साधनोंसे ज्ञानकी प्राप्ति न हो तो पुराणोंका प्रयत्नपूर्वक श्रवण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा अध्ययन करना चाहिये। पुराणोंके श्रवणसे सारे पापोंका क्षय होता है, धर्मकी अभिवृद्धि होती है और मनुष्य ज्ञानी होकर संसारमें पुनर्जन्म नहीं लेता। इसलिये अत्यन्त प्रयत्नसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिये पुराणोंका श्रद्धासे श्रवण करना चाहिये। यज्ञ, दान, तपस्या और तीर्थोंकी सेवासे जो फल प्राप्त होता है, वही फल पुराणोंके श्रवणसे अनायास प्राप्त हो जाता है। पुराण-मार्ग सर्वदा सर्वश्रेष्ठ रहा है। दूसरा कोई भी मार्ग सुखद नहीं देखा गया। जैसे सूर्यके बिना समस्त जीवलोक प्रकाशित नहीं होता, वैसे ही पुराणशास्त्रके बिना यह सब कुछ अज्ञानान्धकारमें डूबा-सा रहता है।

कीर्तनीयः सदा हरिः

यस्मिन् न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः।
मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां पुंसां ददात्यव्ययः
किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्तिते॥
यज्ञैर्यज्ञविदो यजन्ति सततं यज्ञेश्वरं कर्मिणो
यं वै ब्रह्ममयं परावरमयं ध्यायन्ति च ज्ञानिनः।
यं संचिन्त्य न जायते न म्रियते नो वर्धते हीयते
नैवासन्न च सद्भवत्यति ततः किं वा हरेः श्रूयताम्॥
कव्यं यः पितृरूपधृग्विधिहुतं हव्यं च भुङ्क्ते विभु-
र्देवत्वे भगवाननादिनिधनः स्वाहास्वधासंज्ञिते।
यस्मिन् ब्रह्मणि सर्वशक्तिनिलये मानानि नो मानिनां
निष्ठायै प्रभवन्ति हन्ति कलुषं श्रोत्रं स यातो हरिः॥
नान्तोऽस्ति यस्य न च यस्य समुद्भवोऽस्ति वृद्धिर्न यस्य परिणामविवर्जितस्य।
नापक्षयं च समुपैत्यविकारि वस्तु यस्तं नतोऽस्मि पुरुषोत्तममीशमीड्यम्॥

(विष्णुपु०, अंश ६, अ० ८)

जिनमें चित्त लगानेवाला (व्यक्ति) कभी नरकमें नहीं जा सकता, जिनके स्मरणमें स्वर्ग भी विघ्नरूप है, जिनमें चित्त लग जानेपर ब्रह्मलोक भी अति तुच्छ प्रतीत होता है तथा जो अव्यय प्रभु निर्मलचित्त पुरुषोंके हृदयमें स्थित होकर उन्हें मोक्ष देते हैं, उन अच्युतकी कथाओंका कीर्तन करनेसे यदि पाप विलीन हो जाते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? यज्ञवेत्ता कर्मनिष्ठ लोग यज्ञोंद्वारा जिनका यज्ञेश्वररूपसे यजन करते हैं, ज्ञानीजन जिनका परावरमय ब्रह्मस्वरूपसे ध्यान करते हैं, जिनका स्मरण करनेसे पुरुष न जन्मता है, न मरता है, न बढ़ता है और न क्षीण ही होता है तथा जो न सत् (कारण) हैं और न असत् (कार्य) ही हैं, उन श्रीहरिके (यशके), अतिरिक्त और क्या सुना जाय? जो अनादिनिधन भगवान् विभु पितृरूप धारणकर विधिपूर्वक श्राद्धमें विनियुक्त कव्यको स्वधा शब्दसे उच्चरित होकर ब्राह्मणरूपमें तथा अग्निमें विधिपूर्वक हवन किये हुए हव्यको देवता होकर स्वाहा शब्दोच्चारणद्वारा ग्रहण करते हैं और जिन समस्त शक्तियोंके आश्रयभूत स्वयंप्रकाश भगवान्के विषयमें बड़े-बड़े प्रमाणकुशल पुरुषोंके प्रमाण भी इयत्ता करनेमें समर्थ नहीं होते, वे श्रीहरि श्रवण-पथमें जाते ही समस्त पापोंको नष्ट कर देते हैं। जिन ह्रास-विकासरहित प्रभुका न आदि है, न अन्त, न वृद्धि और न अपक्षय ही होता है, जो नित्य निर्विकार पदार्थ हैं, उन स्तवनीय प्रभु पुरुषोत्तमको मैं नमस्कार करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसाद-आशीर्वाद

पुराण

(अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीमद्ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराजके उपदेशामृत)

पुराण भारतका सच्चा इतिहास है। पुराणोंसे ही भारतीय जीवनका आदर्श, भारतकी सभ्यता, संस्कृति तथा भारतके विद्या-वैभवके उत्कर्षका वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। प्राचीन भारतीयताकी झाँकी और प्राचीन समयमें भारतके सर्वविध उत्कर्षकी झलक यदि कहीं प्राप्त होती है तो पुराणोंमें। पुराण इस अकाट्य सत्यके द्योतक हैं कि भारत आदि-जगद्गुरु था और भारतीय ही प्राचीन कालमें आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नतिकी पराकाष्ठाको पहुँचे थे। पुराण न केवल इतिहास हैं, अपितु उनमें विश्व-कल्याणकारी त्रिविध उन्नतिका मार्ग भी प्रदर्शित किया गया है।

वेदोंकी महिमा अपार है, पर उनकी शब्दावलि दुर्बोध और प्रतिपादन-प्रक्रिया पर्याप्त जटिल है। उन्हें निरुक्त, ब्राह्मणग्रन्थ, श्रौतसूत्र तथा व्याकरण आदि अङ्गों, ऋषि, छन्द, देवता आदि अनुक्रमणी और भाष्योंके आधारपर बड़ी कठिनतासे ठीक-ठीक समझा जा सकता है। पर पुराण अकेले ही उनके समस्त अर्थोंको सरल शब्दोंमें और कथानकशैलीके सहारे सामान्य बुद्धिवाले पाठकोंको भी हृदयंगम करा देते हैं। इसीलिये सभी स्थानोंपर वेदोंको इतिहास, पुराणके द्वारा समझनेकी सम्मति दी गयी है। जो विद्वान् इतिहास-पुराणसे अनभिज्ञ हैं, उन्हें अल्पश्रुत, अल्पज्ञ कहकर वेदार्थ-प्रतिपादन-का अधिकार नहीं दिया गया है। वेद उनसे डरते हैं कि ये मेरा निश्चय रूपसे अनर्थ कर जनसमुदायमें उद्भ्रान्ति उत्पन्न करेंगे। इतिहास शब्दसे महाभारत तथा वाल्मीकि आदि रामायण एवं योगवासिष्ठादि ग्रन्थ भी अभिव्यक्त होते हैं। पुराण शब्दसे पद्म, स्कन्द आदि अठारह महापुराण, विष्णुधर्मोत्तरादि उपपुराण तथा नीलमत, एकाम्रादि स्थलपुराण भी गृहीत होते हैं। इन पुराणोंमें सभी विद्याओंका संग्रह हुआ है।

ज्ञानके भण्डार और धर्मके मूलस्रोत वेद हैं अवश्य, पर उनमें ग्रहोंका संचार, समयंकी शुद्धि, खर्वा, त्रिस्पृशा आदि विशिष्ट लक्षणोंसहित प्रतिपदासे पूर्णिमातककी कालबोधिनी तिथियोंका सुस्पष्ट निर्देश नहीं हुआ है, इसीलिये एकादशी, शिवरात्रि आदि व्रतोंका माहात्म्य, ग्रहण आदि विशिष्ट पर्वोंके कृत्य और दर्शन-शास्त्रोंके सूक्ष्मज्ञान तथा पाञ्चरात्र आदि विविध वैष्णव, शैव, शाक्तादि आगमोंके प्रतिपाद्य विषय स्पष्टरूपसे उपदिष्ट नहीं हैं, किंतु पुराणोंमें समस्त वेदार्थसहित ये सभी उपर्युक्त विषय, सभी वेदाङ्ग एवं धर्मशास्त्रोंके धर्म-कृत्य, देवोपासना-विधि, सदाचारके विस्तृत उपदेश और कथा उदाहरणसहित वेदान्त, सांख्य आदि प्रक्रियाओंको भी सबको हृदयंगम करानेका प्रयत्न किया गया है। इसलिये भारतीय संस्कृतिसे सम्बद्ध सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान और कल्याणकारी क्रियाओंकी जानकारीके लिये ये ही चिरकालसे आश्रयणीय रहे हैं। इन पुराणोंसे ही पूर्वके विद्वानोंने अनेक सुन्दर निबन्ध एवं प्रबन्ध ग्रन्थोंकी रचना की है, जो दैनंदिन सभी कृत्योंसे लेकर यावज्जीवन होनेवाले विशेष प्रयोजन-युक्त कर्म, संस्कार तथा यज्ञादि अनुष्ठान, पर्व-महोत्सव आदिके भी निर्देशक हैं। कृष्णद्वैपायन भगवान् वेदव्यासने बड़े परिश्रमसे वेदोंको शाखा-प्रशाखा, ब्राह्मण, कल्पसूत्र, निरुक्त आदिकी प्रक्रियाओंमें विभाजन करके भी जब पूर्णलोकोपकारमें सफलता नहीं देखी, तब उन्होंने विशेष ध्यानस्थ होकर भागवतादि पुराणों, महाभारतादि इतिहासोंकी रचना कर वेदोंके गूढतम संदेशको जन-जनतक पहुँचानेका संकल्प किया। उन्हींकी भास्वती कृपासे समुद्भूत समग्र पुराण-राशि हमारे सामने उपस्थित होकर विश्वकल्याणमें निरन्तर प्रवृत्त है। यह पुराण-वाङ्मय सूक्ष्म विचार करनेपर वर्तमान समस्त विश्वसाहित्यकी अपेक्षा सभी प्रकार शुद्ध, सभ्यभाषायुक्त, सुबोध कथाओंसे समन्वित और मधुरतम पदविन्यासोंसे समलङ्कृत है। इस प्रकार यह पुराणसाहित्य सभीके हृदयको आकृष्ट कर कल्याण करनेके लिये नित्य-निरन्तर तत्पर हैं। विश्व-कल्याणके लिये श्रीभगवान् भारतीयोंको कल्याण-पथ-प्रदर्शक पुराणोंके प्रति आदर, श्रद्धा और भक्ति प्रदान करें, यही उनसे प्रार्थना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराणोंमें धर्म और सदाचार

(पूज्यपाद अनन्तश्री ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

व्यक्ति, समाज, राष्ट्र—किं बहुना अखिल विश्वके धारण, पोषण, संघटन, सामञ्जस्य एवं ऐकमत्यका सम्पादन करनेवाला एकमात्र पदार्थ है—धर्म। धर्मका सम्यग् ज्ञान अधिकारी व्यक्तिको अपौरुषेय वेद-वाक्यों एवं तदनुसारी पुराणादि आर्षधर्मग्रन्थोंद्वारा ही सम्पन्न होता है। सभी परिस्थितियोंमें सभी प्राणी धर्मका शुद्ध ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते। राजर्षि मनुका कहना है कि सज्जन विद्वानोंद्वारा ही धर्मका सम्यग् ज्ञान एवं आचरण हो सकता है। जिन सज्जनोंका अन्तःकरण राग-द्वेषसे कलुषित है, वे परिस्थिति-वशात् धर्मके यथार्थ स्वरूपका अतिक्रमण कर सकते हैं, अतः ऐसे सज्जन— जिनके अन्तःकरणमें कभी राग-द्वेषादिका प्रभाव नहीं पड़ता, वे ही सही मानेमें धर्मका तत्त्व समझ सकते हैं। किंतु उनका आचरण (कर्म) भी कभी-कभी किसी कारणसे धर्मका उल्लङ्घन कर सकता है, इसलिये ऐसे सज्जन विद्वान् जिनका हृदय राग-द्वेषसे कभी कलुषित नहीं होता, वे हृदयसे वेद-पुराणादिसम्मत जिस कर्मको धर्म मानते हैं, वे ही असली धर्म हैं। मनुका वचन इस प्रकार है—

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत॥

(मनु० २।१)

इसके अनुसार उपर्युक्त सज्जनोंके आचरणको ही सदाचार कहा जाता है—'**आचारप्रभवो धर्मः**' (महाभारत अनु० पर्व १४९।३७)। यहाँ उसी सदाचार धर्मका कुछ सामान्यतः दिग्दर्शन कराया जा रहा है। मीमांसक कुमारिलभट्टके अनुसार वे धर्म या आचार भी वेद-पुराणानुमोदित ही प्रशस्त होते हैं। सर्वत्र सभी देशोंकी परम्परा भी प्रशस्त नहीं होती, किंतु जहाँ अनादिकालसे वर्णाश्रम, गुणधर्म आदि सभीका पालन होता आ रहा है, उसी देशकी सदाचारकी परम्परा प्रशस्त मानी गयी है। इसीलिये भगवान् मनु कहते हैं—

तस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥

सरस्वती और दृषद्वती—इन देवनदियोंका अन्तराल (मध्यभाग) विशिष्ट देवताओंसे अधिष्ठित रहा, अतः यह देवनिर्मित देश 'ब्रह्मावर्त' कहा जाता है। यहाँ तथा आर्यावर्तमें उत्पन्न होनेवाले जनोंका अन्तःकरण पवित्र नदियोंके विशिष्ट जल पीनेके कारण अपने प्राचीन पितृ-पितामह, प्रपितामहादि-द्वारा अनुष्ठित आचारोंकी ओर ही उन्मुख होता है, अतः वर्णाश्रमधर्म तथा संकर जातियोंका धर्म यहाँके सभी निवासियोंमें यथावत् था। यहाँ उत्पन्न होनेपर भी जिन लोगोंका अन्तःकरण प्राचीन परम्पराप्राप्त धर्मकी ओर उन्मुख नहीं हुआ और वे लोग मनमानी नयी-नयी व्यवस्था करने लगें तो उनका भी आचार धर्ममें प्रमाण नहीं हो सकता, अतः परम्परा भी वही मान्य होगी, जो अनादि-अपौरुषेय वेद एवं तदनुसारी आर्ष-धर्मग्रन्थोंसे अनुमोदित, अनुप्राणित हो।

मनुष्योंको सदा ही सदाचारका पालन और दुराचारका परित्याग करना चाहिये। आचारहीन दुराचारी प्राणीका न इस लोकमें कल्याण होता है, न परलोकमें। असदाचारी प्राणियों-द्वारा अनुष्ठित यज्ञ, दान, तप—सभी व्यर्थ जाते हैं, कल्याणकारी नहीं होते। सदाचारके पालनसे अपने शरीरादिमें भी वर्तमान अलक्षण दूर होते हैं, अपना फल नहीं देते। सदाचाररूप वृक्ष चारों पुरुषार्थोंका देनेवाला है। धर्म ही उसकी जड़, अर्थ उसकी शाखा, काम(भोग) उसका पुष्प और मोक्ष उसका फल है—

धर्मोऽस्य मूलं धनमस्य शाखा
पुष्पं च कामः फलमस्य मोक्षः।

(वामनपुराण १४।१९)

यहाँ इस सदाचारके स्वरूपका कुछ वर्णन किया जाता है—सर्वप्रथम ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर भगवान् शंकरद्वारा उपदिष्ट प्रभात-मङ्गलका स्मरण करना चाहिये। इसके द्वारा-देवग्रहादि-स्मरणसे दिन मङ्गलमय बीतता है और दुःस्वप्नका फल शान्त हो जाता है। वह सुप्रभातस्तोत्र इस प्रकार है—

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुश्च शुक्रः सह भानुजेन
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः
सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च।
सप्त स्वराः सप्त रसातलाश्च
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
सप्तार्णवाः सप्तकुलाचलाश्च
सप्तर्षयो द्वीपवराश्च सप्त।
भूरादिकृत्वा भुवनानि सप्त
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

इस प्रकार इस परम पवित्र सुप्रभातके प्रातःकाल भक्तिपूर्वक उच्चारण करनेसे, स्मरण करनेसे दुःस्वप्नका अनिष्ट फल नष्ट होकर सुस्वप्नके फलरूपमें प्राप्त होता है। सुप्रभातका स्मरण कर पृथ्वीका स्पर्शपूर्वक प्रणाम करके शय्या त्याग करना चाहिये। मन्त्र इस प्रकार है—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

फिर शौचादि कर्म करना चाहिये। शौच जानेके बाद मिट्टी और जलसे इन्द्रियोंकी शुद्धि कर दन्तधावन करना चाहिये। तदनन्तर जिह्वा आदिकी मलिनता दूरकर स्नान करके संध्योपासन करना और सूर्यार्घ्य देना चाहिये। केवल जननाशौच और मरणाशौचमें ही बाह्यसंध्याका परित्याग निर्दिष्ट है। उसमें भी मानसिक गायत्री-जप और सूर्यार्घ्य विहित है। किंतु अन्यत्र इन कार्योंका परित्याग कभी नहीं होता। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास—ये चार आश्रम ब्राह्मणोंके लिये ही विहित हैं। क्षत्रियके लिये संन्यास छोड़कर तीन आश्रमोंका विधान है। वैश्यके लिये ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्य दो ही आश्रम विहित हैं तथा शूद्रके कल्याणके लिये केवल एक ही आश्रम गार्हस्थ्य ही कहा गया है—

गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यं च वानप्रस्थं त्रयो मताः।
क्षत्रियस्यापि गदिता य आचारो द्विजस्य हि॥
ब्रह्मचर्यं च गार्हस्थ्यमाश्रमद्वितयं विशः।
गार्हस्थ्यमाश्रमं त्वेकं शूद्रस्य क्षणदाचर॥

(वामनपुराण १४। ११९-१२०)

प्रायः ये ही बातें वैखानस आदि धर्म-सूत्रों एवं स्मार्त-सूत्रोंमें निर्दिष्ट हैं। सदाचारी व्यक्तिको अपने वर्णानुसार और आश्रमानुसार धर्मका परित्याग कभी नहीं करना चाहिये। जो धर्मका परित्याग कर देता है, उसके ऊपर भगवान् भास्कर (सूर्य) कुपित हो जाते हैं। उनके कोपसे प्राणीके देहमें रोग बढ़ता है, कुलका विनाश प्रारम्भ हो जाता है और उस पुरुषका शरीर ढीला पड़ने लगता है—

स्वानि वर्णाश्रमोक्तानि धर्माणीह न हापयेत्।
यो हापयति तस्यासौ परिकुप्यति भास्करः॥
कुपितः कुलनाशाय देहरोगविवृद्धये।
भानुर्वै यतते तस्य नरस्य क्षणदाचर॥

(वामनपुराण १४। १२१-१२२)

महाभारत (आश्वमेधिकपर्व) के अनुसार 'अन्तमें धर्मकी ही जय होती है, अधर्मकी नहीं, सत्यकी विजय होती है, असत्यकी नहीं। क्षमाकी जय होती है, क्रोध की नहीं', अतः सभीको—विशेषतया ब्राह्मणको सदा क्षमाशील रहना चाहिये—

धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम्।
क्षमा जयति न क्रोधः क्षमावान् ब्राह्मणो भवेत्॥

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशोमुरारेः।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद् विपदां न तेषाम्॥

(भाग० १०। १४। ५८)

'जिन्होंने पुण्यकीर्ति मुकुन्द मुरारीके पदपल्लवकी नौकाका आश्रय लिया है, जो कि सत्पुरुषोंका सर्वस्व है, उनके लिये यह भव-सागर बछड़ेके खुरके गढ़ेके समान है। उन्हें परमपदकी प्राप्ति हो जाती है और उनके लिये विपत्तियोंका निवासस्थान—यह संसार नहीं रहता।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराणोंमें भगवन्नाम-महिमा

(अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

भगवान् अचिन्त्यपौरुष, अनन्त-गुण-गणार्णव, अच्छेद्यापरिमित-विग्रह, अपरिमेय शक्तिसम्पन्न हैं। उनके नाम-स्मरण-जप तथा रूप-माधुर्यकी सुधा-छटाके पान-रूप महावातसे आहत मेघराशिकी भाँति प्राणीके अनन्तानन्त-जन्मार्जित पापपुञ्ज नष्ट हो जाते हैं। नाममें ऐसी शक्ति है कि उसका एक बारका उच्चारण संसारके सभी पातक-पुञ्जको अग्निसात् कर देता है। पुराण कहते हैं कि सभी पातकी जीव यावज्जीवन अपनी सामर्थ्यसे अधिक शक्ति लगाकर भी उतनी पापराशि अर्जन नहीं कर सकते, जितना एक भगवन्नाम सभी पातकोंको दूर करनेकी शक्ति रखता है।

नाम्न्यस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

(बृहद्धर्मपुराण)

जो मनुष्य गिरते, पैर फिसलते, अङ्ग-भङ्ग होते, साँपके डँसते, आगमें जलते तथा चोट लगते समय भी विवशतासे 'हरि-हरि' कहकर भगवान्‌के नामका उच्चारण कर लेता है, वह यमयातनाका पात्र नहीं रह जाता। उसका सर्वविध कल्याण होता है।

पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम्॥

(श्रीमद्भा० ६।२।१५)

संज्ञा-संज्ञीका अभेद

अब विचारणीय यह है कि यह शक्ति भगवान्‌की है या भगवान्‌के नामकी। शब्द-शक्तिवादी कहते हैं कि नाम और नामीमें अभेद है। इसी अभेद-सम्बन्धको तादात्म्य-सम्बन्ध भी कहते हैं। अनन्त-शक्तिसम्पन्न करुणावरुणालय भगवान् सच्चिदानन्दघनका जिस प्रकार चित्-अचित् विश्व-विवर्त है, ठीक उसी प्रकार उनके चित्-अंशका विवर्त समस्त शब्द-वाङ्मय है, क्योंकि जैसे चित् प्रकाशक है, उसी प्रकार शब्द भी प्रकाशक है। ब्रह्मके सदंशका विवर्त—सभी अभिधेय अर्थजन्यमात्र है, क्योंकि सत्तारूपसे ही सभी पदार्थ विद्यमान रहते हैं। सभी शब्द और अर्थ चैतन्य-तत्त्वके विवर्त हैं। महाकवि कालिदास रघुवंशके आरम्भमें पार्वती और परमेश्वरकी स्तुति करते हुए उन्हें वागर्थकी तरह सम्पृक्त कहते हैं। सभी शब्दोंकी शक्ति जातिमें है और जाति सत्तारूप है। सत्ता ही सत्-तत्त्व है, इसीलिये सभी शब्दोंका अभिधेय यानी अर्थ सत्तारूप ही होता है।

लोकमें जिस प्रकार घट शब्द चिदंशका विवर्त है, उसी प्रकार कम्बु-ग्रीवादिमद् व्यक्ति सत्‌का विवर्त है। यह विवर्तवाद सच्चित्‌की एकताकी भाँति घट शब्द और घट-अर्थकी एकताका पोषक है। इसी प्रकार भगवान्‌के अनन्त नाम उनके वाचक होते हुए भी वाच्य भगवदर्थके साथ एकता-सम्पन्न हैं। लौकिक भेद औपाधिक है। भगवान्‌के अनन्त नाम उनके अनन्त स्वरूपके परिचायक हैं।

शब्दमें विलक्षण शक्ति है। किसी व्यक्तिका नाम लेनेपर वही आता है। वैयाकरणोंके अनुसार कोई भी व्यवहार शब्दानुगमनसे व्यभिचरित नहीं है। जिस प्रकार शब्दानुविद्ध लौकिक व्यवहार अबाधितरूपसे चलते हैं और लोक उनके प्रति कभी भ्रान्त नहीं होता, ठीक उसी प्रकार प्रत्यग्भिन्न चैतन्यमें भी शब्दका चमत्कार दीखता है। भगवन्नाम उच्चारण करनेसे तीक्ष्ण तीरके लक्ष्यभेदकी भाँति वह भगवान्‌के हृदयपर प्रभाव करता है। जिससे जीवके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। फलस्वरूप प्राणी भगवत्कृपाका भाजन बनता है—

तस्मात् संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम्।

(श्रीमद्भा० ६।३।३१)

साथ ही संस्कृत-साहित्यमें प्रयुक्त होनेवाली जितनी शब्दराशि है, वह अपने वास्तविक अर्थसे ओतप्रोत है। जैसे जल्दी बढ़नेसे वृक्ष, पैरसे जल पीनेसे पादप, पक्षियोंके उड़कर बैठनेसे तरु आदि शब्दोंकी सार्थकता है, उसी प्रकार प्रत्येक भगवन्नाम भी अपने अर्थकी शक्तिसे युक्त है। स्वयं भगवन्नाम शब्द जो 'भग-वत्-नाम'—इन तीन पदोंसे मिलकर बना है, विशिष्ट व्युत्पत्तियुक्त है। पुराण कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

(विष्णुपु० ६।५।७४)

इस प्रकार भगवान् शब्द समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्यमयताका संकेत करता है। यह गौरव भगवान्‌को ही प्राप्त है। उनमें अनन्त ब्रह्माण्डोंके अनन्त जीवोंका ज्ञान, उनके अनन्तानन्त कर्मोंका ज्ञान, अनन्तानन्त कर्मोंके फलोंका ज्ञान और उन कर्मफलोंको देनेकी सामर्थ्य है।

अस्तु! भगवन्नामका किसी भी प्रकार उच्चारण किया जाय, वह प्राणीके सर्वविध अघ-वृत्तिका समुच्छेदन करता है। फिर भी—**'जगत्पवित्रं हरिनामधेयं**

क्रियाविहीनं न पुनाति जन्तुम्।'

—परमपिताके नाम यद्यपि जगत्‌को पावन करनेवाले हैं, परंतु धर्म—सत्-क्रिया-विरुद्ध प्राणीको वे पवित्र नहीं करते। जिस प्रकार महौषधसेवन रोग-निवृत्तिके प्रति कारण अवश्य है, परंतु उसके साथ सुपथ्य-सेवन और कुपथ्य-परिवर्जन भी आवश्यक है। सुपथ्य-सेवन तथा कुपथ्य-परिवर्जनके साथ यदि ओषधिका प्रयोग नहीं किया गया तो वह सर्वविध गुणगणयुक्त होते हुए भी हितावह नहीं होती। इसी प्रकार अधर्मी व्यक्तिका भगवन्नाम-रूपी औषध परम कल्याण नहीं करता।

भगवन्नामके साथ वर्णाश्रम-धर्म

भगवन्नामोच्चारण यदि वर्णाश्रम-मर्यादाका अनुसरण करते हुए किया जाय तो उसमें सद्‌गुण आता है। यह ठीक है कि अजामिल-जैसोंने पुत्रके नाम 'नारायण'से ही कल्याण प्राप्त किया, परंतु वह पहले अपने स्वधर्मका पालन अवश्य करता था। जिसका जो धर्म हो उसके अनुसार उसे व्यवहार करते हुए अधिकारानुसार ही भगवन्नाम-संकीर्तन करनेसे कल्याण होता है। इसीलिये—

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरे-
र्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं
को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः॥

(श्रीमद्भा० १।५।१७)

जो स्वधर्मका पालन न करते हुए यदि हरिका नामोच्चारण करता है और कदाचित् वह गिर जाय तब क्या उसका कल्याण हो सकेगा? साथ ही धर्मपालनपूर्वक हरिको न भजनेवालेको क्या कोई लाभ हो सकेगा? अर्थात् स्वधर्मानुष्ठानपूर्वक हरिनाम-कीर्तन कल्याणप्रद होता है। यही मुख्य कारण है कि आज रामायण और गीताका अधिकाधिक प्रचार-प्रसार होते हुए भी नास्तिकता, उच्छृङ्खलता तथा शास्त्रोंमें अविश्वासकी वृद्धि हो रही है। ऐसी स्थितिमें जहाँ एक ओर भगवन्नाम-महिमाकी चर्चा होती है, वहाँ स्वधर्म-पालनकी चर्चा भी होनी चाहिये। **'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।'** स्वधर्मका थोड़ा भी अनुष्ठान महाभयसे मुक्त करता है। **'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।'** अर्थात् मानव अपने वर्ण और आश्रमधर्मका पालन करते हुए भगवद्‌गुणानुवादवर्णन, उनके दिव्य मङ्गल-विग्रहका दर्शन, उनके पवित्र नामोंका उच्चारण करता हुआ कल्याणका भागी बन सकता है। श्रुति, स्मृति, पुराण और रामायण-महाभारत आदि सभी स्वधर्मानुष्ठानपूर्वक भगवन्नाम-संकीर्तनसे कल्याण-का निर्देश करते हैं।

इन सभी बातोंको तात्त्विक रूपसे जाननेके लिये संस्कृत भाषाका ज्ञान अत्यावश्यक है। आज देशके नव-शिशु धर्मसे और धार्मिक वातावरणसे दूर हटते चले जा रहे हैं। एक ओर राम-नामकी महिमा गायी जाती है तो दूसरी ओर शिखा-सूत्रको जलाञ्जलि दे दी जाती है। शिखा-सूत्रविहीन जो भी कर्म किये जाते हैं, सब निष्फल हो जाते हैं।

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥

(कात्यायनस्मृति १।४)

अतएव स्वधर्मपालनपूर्वक ही हरिनामस्मरण पूर्ण कल्याणप्रद हो सकता है, यही निर्विवाद सिद्धान्त है।

राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए॥
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराणोंका परम प्रयोजन—भगवत्प्राप्ति

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज)

संस्कृत वाङ्मयमें पुराणोंका एक विशिष्ट स्थान है। इनमें वेदार्थका स्पष्टीकरण तो है ही, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्डके सरलतम विस्तारके साथ-साथ कथा-वैचित्र्यके द्वारा साधारण जनताको भी गूढ़-से-गूढ़तम तत्त्वको हृदयङ्गम करा देनेकी अपनी अपूर्व विशेषता भी है। इस युगमें धर्मकी रक्षा और भक्तिके मनोरम विकासका जो यत्किंचित् दर्शन हो रहा है, उसका समस्त श्रेय पुराण-साहित्यको ही है।

साधारण मनुष्यको जब यह मालूम होता है कि भगवान् देश, काल और वस्तु-भेदोंके परे, हमारी बुद्धि एवं इन्द्रियोंसे अतीत, अपने स्वतः-सिद्ध स्वरूपमें स्थित हैं, तब वह यह सोचकर भयभीत हो जाता है कि जो हमारी वृत्तियोंके आकलनसे सर्वथा अतीत है, उसकी हम उपासना कैसे करें, स्मृति कैसे करें, उसे हम अपने हृदय-मन्दिरमें लाकर कैसे बैठायें ? मनुष्यकी इस विवशताको पुराणों और संतोंने भली-भाँति अनुभव किया और उन्होंने भगवान्की कृपालुताका आश्रय लेकर उनकी सर्वव्यापकता एवं सर्वात्मकताके यथार्थ आधारपर देश, काल और वस्तुओंके भीतर ही भगवान्के सांनिध्य, उपासना और स्मृतिका ऐसा प्रशस्त द्वार उद्घाटित किया, जिसे देखकर उनके सामने कृतज्ञताके भारसे सिर स्वयं ही अवनत हो जाता है। प्रायः सभी पुराणोंमें अनेक तीर्थों, व्रतों और पवित्र वस्तुओंके रूपमें जो भगवान्का रहस्यमय वर्णन आता है, उसका यही रहस्य है। सभी तीर्थ अलौकिक हैं, भगवन्मय हैं और भगवान्की विचित्र लीलाओंके स्मृतिचिह्न होनेके कारण दर्शन, सेवन, स्मरण और अभिगमनमात्रसे चित्त-शुद्धि करनेवाले हैं। तीर्थोंकी महिमाका पर्यवसान भी भगवान्की स्मृतिमें ही है, पद्मपुराणमें कहा गया है—

तीर्थानां च परं तीर्थं कृष्णनाम महर्षयः ॥
तीर्थीकुर्वन्ति जगतीं गृहीतं कृष्णनाम यैः ।

(स्वर्गखण्ड ५० । १६,१७)

'समस्त तीर्थोंमें सबसे बड़ा तीर्थ क्या है ? भगवान् श्रीकृष्णका नाम। जो लोग श्रीकृष्ण-नामका उच्चारण करते हैं, वे सम्पूर्ण जगत्को तीर्थ बना देते हैं। इसके पूर्व—'**प्रतिमां च हरेर्दृष्ट्वा सर्वतीर्थफलं लभेत्**' इत्यादि वचनोंसे स्पष्ट मालूम होता है कि तीर्थोंकी महिमा भगवत्स्मृतिके लिये है। उनका तात्पर्य, उनका पर्यवसान निरन्तर भगवत्स्मरणमें ही है।

यह सम्पूर्ण नाम-रूप-क्रियात्मक जगत् भगवत्स्वरूप ही है। यह घट है, यह पट है, यह मठ है आदि जितनी भी विकल्पनाएँ हैं, वे भगवत्स्वरूपसे पृथक् नहीं हैं। सृष्टि और सृष्टि-कर्ता, पाल्य और पालक, संहरणीय और संहर्ता—सब कुछ एकमात्र प्रभु ही हैं। मनसे जो कुछ संकल्प-विकल्प होता है, चक्षुरादि इन्द्रियोंसे जिन-जिन विषयोंका ग्रहण होता है और बुद्धिके द्वारा जिन-जिन वस्तुओंका आकलन होता है, वे चाहे देशके रूपमें हों, कालके रूपमें हों अथवा वस्तुके रूपमें हों सब भगवान्के ही स्वरूप हैं।

यद्रूपं मनसा ग्राह्यं यद् ग्राह्यं चक्षुरादिभिः ।
बुद्ध्या च यत्परिच्छेद्यं तद्रूपमखिलं तव ॥

जिस प्रकार मन्त्रसंहिताओंमें '**पुरुष एवेदं सर्वम्**' तथा उपनिषदोंमें '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' इत्यादि श्रुतियाँ 'परमात्मा सर्वस्वरूप है' इस बातका प्रतिपादन करती हैं, ठीक वैसे ही पुराण भी भगवान्को सर्वात्मक स्वीकार करता है। इसीसे किसी भी तीर्थके रूपमें, व्रतके रूपमें, भागवतादि ग्रन्थके रूपमें तुलसी आदि वस्तुके रूपमें कहीं भी यदि भगवद्भाव हो जाय तो धीरे-धीरे उस वस्तुकी जड़ता और पृथक्ता नष्ट होने लगती है और चैतन्यस्वरूपका आविर्भाव हो जाता है।

उपर्युक्त वर्णन पढ़कर यह प्रश्न स्वाभाविक ही उठता है कि यदि परमात्मा सर्वस्वरूप है तो क्या वह परिणामको प्राप्त होकर जगत्के रूपमें हुआ है अथवा उसने प्रकृति, परमाणु आदिके रूपमें स्थित जगत्को ही आत्मप्राधान्यसे उज्जीवित किया है अथवा वह स्वाभाविक ही जगद्रूप है ? परमात्माको परिणामी माननेसे उसकी निर्विकारता नहीं बनती। प्रकृति-परमाणु आदिका अस्तित्व स्वीकार करनेपर अद्वितीयताका व्याकोप होता है। स्वाभाविक ही जगद्रूप माननेपर जन्म-मृत्यु आदिकी प्राप्ति दुर्निवार है। ऐसी अवस्थामें परमात्मा सर्वरूप है—इस वाक्यका क्या अर्थ है ? सर्व भी है और परमात्मा भी है अथवा केवल परमात्मा ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ? इस सम्बन्धमें उपनिषदादि समस्त शास्त्रोंके साथ पुराणकी एकवाक्यता है। जैसे श्रुतियाँ ज्ञाननिर्वर्त्य होनेके कारण प्रपञ्चको मिथ्या स्वीकार करती हैं, पुरुषका बोध करके जैसे स्थाणुका बोध होता है, ठीक वैसे ही पुराण भी प्रपञ्चकी भ्रान्तिजन्यता और परमात्माके अतिरिक्त अन्य वस्तुकी असत्ता प्रतिपादन करता है।

परमात्मा त्वमेवैको नान्योऽस्ति जगतः पते।
ज्ञानस्वरूपमखिलं जगदेतदबुद्धयः।
अर्थस्वरूपं पश्यन्तो भ्राम्यन्ते तमसः प्लवे॥

'हे जगत्पते! एकमात्र तुम्हीं परमात्मा हो, आपके अतिरिक्त और कोई नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् ज्ञानस्वरूप ही है। इस बातको जाननेवाले अज्ञानीजन जगत्को विषयरूप देखते हैं और अज्ञानमय संसार-सागरमें भटकते रहते हैं, उन्हें पार जानेका मार्ग ही नहीं मिलता।'

परमात्माके निर्विशेष स्वरूपका स्पष्ट प्रतिपादन है—

परः पराणां परमः परमात्मा पितामहः।
रूपवर्णादिरहितो विशेषेण विवर्जितः॥
अपि बृद्धिविनाशाभ्यां परिणामविजन्मभिः।
गुणैर्विवर्जितः सर्वैः स भातीति हि केवलम्॥

'परमात्मा समस्त कार्य-कारणसे परे, अरूप, अवर्ण, निर्विशेष, ह्रासोल्लाससे रहित, निर्विकार, अज एवं निर्गुण हैं। वह केवल ज्ञानस्वरूप, स्फुरणस्वरूप हैं।' वेदान्त-प्रतिपाद्य परमात्माका इस प्रकार वर्णन करके पुराणोंमें आत्माके साथ इसके एकत्वका भी स्पष्टरूपसे निर्देश किया गया है।

नान्यं देवं महादेवाद् व्यतिरिक्तं प्रपश्यति।
तमेवात्मानमन्वेति यः स याति परं पदम्॥
मन्यन्ते ये स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात्।
न ते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्रमः॥

'जो अधिकारी पुरुष सर्वप्रकाशक परमात्मासे अतिरिक्त अन्य किसी प्रकाशकको नहीं देखता और उस परमात्माको ही अपनी आत्मा जानता है, उसे परमपदकी प्राप्ति होती है। जो अज्ञानीजन अपने-आपको परमात्मासे पृथक् मानते हैं, उन्हें परमात्माके दर्शन नहीं होते, उनका सारा परिश्रम व्यर्थ है।'

—इन दोनों श्लोकोंमें अन्वय-व्यतिरेकसे स्पष्टरूपसे यह बात कही गयी है कि जो परमात्मा और आत्माके एकत्व-ज्ञानसे सम्पन्न हैं, उन्हें परमपदकी प्राप्ति होती है और जो एकत्व-ज्ञानको स्वीकार नहीं करते, उनका परिश्रम व्यर्थ है। अब हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि समस्त वेदान्तोंका परम तात्पर्य जिस प्रकार प्रपञ्चके मिथ्यात्व और ब्रह्मात्मैकत्वके प्रतिपादनमें है, ठीक उसी प्रकार पुराण भी उसी सिद्धान्तका प्रतिपादन करता है, क्योंकि मीसांसा-पद्धतिके अनुसार समस्त शास्त्रोंकी एकवाक्यता अनिवार्य है और बिना उसके कोई भी वचन शास्त्रकी श्रेणीमें नहीं आ सकता।

व्यतिरेक-मुखसे यह बात कही जाती है कि भगवान् सबसे परे हैं और अन्वय-मुखसे यह बात कही जाती है कि सब कुछ भगवान् ही हैं। केवल भगवान् ही ऐसे हैं जिनमें इच्छाकी एकता, स्मृतिकी एकता, दृष्टिकी एकता सम्पादन की जा सकती है। पुराणोंमें स्पष्टरूपसे कहा गया है—

ऊर्ध्वबाहुरहं वच्मि शृणु मे परमं वचः।
गोविन्दे धेहि हृदयं .....॥

'मैं बाँह उठाकर श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ बात कहता हूँ, सावधान होकर सुनो, जैसे हो वैसे अपना हृदय भगवान्को समर्पित करो। उनकी स्मृतिमें डूब जाओ, वही सर्वमङ्गलकी जननी है।'

परमात्मतत्त्वके साक्षात्कारके लिये जीवको ज्ञान और ध्यानकी शरण लेनी चाहिये। श्रवण-मननसे सुनिष्पन्न अर्थमें चित्तकी स्थापना अथवा भगवत्स्मृतिकी परिपक्व परिणत अवस्थाका नाम ही ध्यान है। यह ध्यान सब अधिकारियोंके लिये सुलभ न होनेके कारण ही तीर्थ, व्रत, भागवत-गीता-माहात्म्य, साधुसङ्ग, ब्राह्मण-पूजा आदिके द्वारा अन्तःकरण-शुद्धिपूर्वक भगवत्स्मृतिको जगानेकी चेष्टा की गयी है। जैसे श्रुतियाँ **'स्मृतिपरिशुद्धौ सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः'** वर्णन करती हैं और **'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'** आदि शत-शत वचनोंसे ज्ञानके द्वारा ही तत्त्व-साक्षात्कारका निरूपण करती हैं, ठीक वैसे ही पुराण भी—

साधुसङ्गाद् भवेद् विप्र शास्त्राणां श्रवणं प्रभोः।
हरिभक्तिर्भवेत् तस्मात् ततो ज्ञानं ततो गतिः॥

'साधु-सङ्गसे शास्त्रोंके तात्पर्यका निर्णय करानेवाला श्रवण होता है। एकमात्र भगवत्तत्त्वकी श्रेष्ठता और सत्यताका निर्णय होनेपर इतर वस्तुकी प्राप्तिकी इच्छा निवृत्ति हो जाती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और एकमात्र भगवत्प्राप्तिकी इच्छारूपा भगवद्भक्तिका उदय होता है, भगवद्भक्तिसे भगवत्तत्त्व-विज्ञान और तदनन्तर परमगतिकी प्राप्ति होती है।'

परमगतिको प्राप्त करानेवाले तत्त्वज्ञानका अव्यवहित साधन भगवद्भक्ति है। इसी तत्त्वके प्रतिपादनमें समस्त पुराणोंकी अपूर्वता है। श्रीमद्भागवतमें '**भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः**' का भी यही अर्थ है। बिना भगवद्भक्तिके अन्तःकरण-शुद्धिकी पूर्णता और भगवत्तत्त्व-विज्ञान नहीं हो सकता। इसीलिये कहीं-कहीं तो तत्त्वज्ञानसे बढ़कर भी भक्तिकी महिमाका उल्लेख मिलता है। सत्य ही है, साधनमें बिना अनन्यनिष्ठा हुए साध्यकी प्राप्ति त्रिकालमें भी नहीं हो सकती। समस्त पुराण इस सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हैं—भक्ति ही श्रेष्ठ है, भक्ति ही श्रेष्ठ है।

मन्त्र-जप, पूजा, ध्यान, रहस्य आदिका भी पुराणोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ शैलीसे निरूपण किया गया है। नाम, धाम, रूप, लीला—ये सब चिन्मय भगवत्स्वरूप हैं, इन सबका अथवा इनमेंसे किसी एकका भी आश्रय ग्रहण कर लेनेपर जीवके लिये कुछ कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। ज्ञान, मुक्ति आदि तो इनमेंसे एक-एकके सेवक हैं। अवश्य ही ऐसे वर्णनोंसे अपनी निष्ठामें साधकोंकी अनन्यता होती है और यह सर्वथा यथार्थ भी है, क्योंकि ब्रह्मतत्त्वके सिवा जब और कोई वस्तु ही नहीं है, तब किसी भी वस्तुको ब्रह्मरूपसे निरूपण करनेमें आपत्ति ही कहाँ रह जाती है। पुराणका अभिप्राय किसी भी प्रकार हो—भगवत्स्मृति, भगवद्भक्ति, भगवत्तत्त्वज्ञान एवं भगवत्तत्त्व-साक्षात्कारमें है, इसीसे इसीमें जीवकी कृतकृत्यता है।

सुहृत्-सम्मित पुराण

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराज)

जिन उत्तम उपदेशोंसे हमारा जीवन पवित्र बनता है, वे उपदेश तीन प्रकारके होते हैं—प्रभु-सम्मित, सुहृत्-सम्मित और कान्ता-सम्मित। किसी कारणको बिना बताये दिये जानेवाले आदेश प्रभु-सम्मित कहे जाते हैं, जैसे राजाज्ञा। वेदोंके उपदेश प्रभु-सम्मित हैं। कथा-कहानीके द्वारा दिये जानेवाले उपदेश सुहृत्-सम्मित हैं। मित्रपर प्रभुत्वसे नहीं, किंतु स्नेहके कारण मित्रकी भलाईके लिये दिये जानेवाले सुझाव भी उपदेश ही हैं, वे सुहृत्-सम्मित माने गये हैं। अपने मधुर व्यवहारसे अपनी ओर आकृष्ट करनेवाली बातें कान्ता-सम्मित उपदेश हैं। इस कोटिमें रघुवंशादि काव्य आते हैं। पुराणोंके विषयमें कहते हैं कि—

निस्ताराय तु लोकानां स्वयं नारायणः प्रभुः।
व्यासरूपेण कृतवान् पुराणानि महीतले॥
पठनाच्छ्रवणाद्येषां नृणां पापक्षयो भवेत्।
धर्माधर्मपरिज्ञानं सदाचारप्रवर्तनम्।
गतिश्च परमा तद्वद् भक्तिर्भगवति प्रभो॥

'भगवान् नारायणने भूमण्डलपर व्यासरूपसे अवतरित होकर लोगोंको पार पहुँचानेके लिये पुराणोंकी रचना की। इन पुराणोंके पठन और श्रवणसे लोगोंका पाप नष्ट होता है, धर्म और अधर्मका ज्ञान होता है, सदाचारमें प्रवृत्ति होती है और भगवान्में भक्ति बढ़ती है। जिसके द्वारा मोक्षकी प्राप्ति सम्भव है।'

भगवान् व्यासने मानव-समाजको भवसागरसे पार होनेके लिये पुराणोंद्वारा भगवदवतारकी लीलाएँ, आदर्श पुरुषोंका सच्चरित्र, भक्तिमय जीवन और धर्माचरण प्रस्तुत करके मानवसमाजका कल्याण किया। पुराणोंमें सच्चे मार्गपर चलनेवालोंका श्रेय और बुरे आचरणवालोंकी दुर्गति भलीभाँति दिखायी गयी है। इन कथारूप उपदेशोंको सुनते-सुनते सामान्य मानव भी अपना मन निर्मल बनाकर धर्ममार्गपर ही चलनेमें श्रद्धावान् बनेगा। व्यासजीके सारे पुराण सुहृत्-सम्मित उपदेश हैं। इन उपदेशोंके प्रभावके ही कारण आजतक हम भारतवासियोंके मानसपटलपर अपनी पुरानी संस्कृति अङ्कित है। गाँव-गाँव और मन्दिर-मन्दिरमें पुराणोंके प्रवचन होते रहें तो साधारणजन भी अपनी संस्कृति समझकर सन्मार्गपर चल सकेगा। पुराणोंमें प्रतिपादित कुछ कथाओंका मूल वेदोंमें मिलता है। वेदोंमें संक्षिप्त रूपसे प्रतिपादित कथाएँ रोचकताके साथ विस्तारपूर्वक पुराणोंमें कही गयी हैं। कृष्ण-यजुर्वेदसंहिता ६।३।२।१, वाजसनेयि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३०।९ आदिमें प्रतिपादित उपसद्धोम नामक विषय पुराणोंमें वर्णित शिवकृत त्रिपुर-संहार-कथासे मिलता-जुलता है। पुराणप्रतिपादित प्रह्लाद, विरोचन, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदिकोंका परिचय भी वेदमें मिलता है। वेद और पुराणोंका घना सम्बन्ध है। शास्त्रोंमें कहा गया है कि—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदः मामयं प्रतरेदिति॥

'वेद अल्पज्ञसे भय खाता है कि यह मुझे ठगेगा। अतः इतिहास-पुराणोंसे वेदका उपबृंहण करना चाहिये।' पुराण सुहृत्-सम्मित होनेसे सबको प्रिय हैं। उनमें प्रतिपादित कथाओंसे सबको अच्छी शिक्षाएँ मिलती हैं। पुराण-कथा-श्रवणसे जीवन सुधरता है तथा इहलोक और परलोक—दोनोंमें श्रेय और जीवनमें शान्ति मिलती है।

पुराणोंकी वेदवत् प्रतिष्ठा

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशी-(सुमेरु) पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीशंकरानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भारतवर्षमें पुरातनकालसे भारतीय संस्कृति एवं धर्मके विषयमें पुराणोंका महत्त्व था, है तथा रहेगा। कारण, पुराण सनातनधर्मके कल्याण-मार्गों (कर्म, उपासना, ज्ञान) का विविध ढंगसे उपस्थापन करते हैं। पुराण वेदोंके गम्भीर एवं समाधिगम्य विषयोंका विभिन्न भाव, भाषा, अलङ्कार तथा गाथाओंके द्वारा स्फुटीकरण करते हैं। वास्तवमें पुराण वेदोंके व्याख्यान-ग्रन्थ हैं। अतः पुराण सर्वथा वेदानुकूल हैं। पुराणोंमें एक भी विषय वेद-विरुद्ध नहीं है। पुराणोंमें यदि किसीको वेदविरोध या प्रतिकूलता प्रतीत होती हो तो वह उसकी बुद्धि या समझका दोष है, पुराणका नहीं। अतएव कहा गया है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्॥
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।

(महा० आदि० १।२६७, २६८)

पुराणोंकी प्रामाणिकता

वेदोंकी भाँति पुराण भी ईश्वरके निःश्वास हैं। **'अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणम्।'** (वाजसनेयि ब्राह्मणोपनिषद् २।४।१०)।

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः॥

(अथर्ववेद ११।७।२४)

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्

(अथर्ववेद १५।६।११)

इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥

(अथर्व० १५।६।१२)

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

(मत्स्यपुराण ५३।३)

इतिहासं पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्

(न्यायदर्शन ४।१।६२)

स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च॥

(मनु० ३।२३२)

उपर्युक्त वेदपुराण-स्मृति-न्यायदर्शन आदि ग्रन्थोंके अध्ययन करनेपर स्फीतालोकवर्ती घटके समान पुराणोंकी परम प्राचीनता स्फुटतम हो जाती है। **'ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह'**—अथर्ववेदके इस मन्त्रमें 'पुराण' शब्द प्रथमा विभक्त्यन्त और 'यजुषा' तृतीयान्त होनेके कारण पुराणोंकी वेदापेक्षया प्रधानता स्पष्टरूपसे प्रमित होती है।

सूतजी 'शिवमहापुराण वायवीयसंहिता पूर्वभागके प्रथम अध्यायके श्लोक २७ से ३२में अष्टादश विद्याओंका वर्णन करते हुए कहते हैं—

अष्टादशानां विद्यानामेतासां भिन्नवर्त्मनाम्।
आदिकर्ता कविः साक्षाच्छूलपाणिरिति श्रुतिः॥
स हि सर्वजगन्नाथः सिसृक्षुरखिलं जगत्।
ब्रह्माणं विदधे साक्षात् पुत्रमग्रे सनातनम्॥
तस्मै प्रथमपुत्राय ब्रह्मणे विश्वयोनये।
विद्याश्चेमा ददौ पूर्वं विश्वसृष्ट्यर्थमीश्वरः॥
पालनाय हरिं देवं रक्षाशक्तिं ददौ ततः।
मध्यमं तनयं विष्णुं पातारं ब्रह्मणोऽपि हि॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लब्धविद्येन विधिना प्रजासृष्टिं वितन्वता।
प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्॥
अनन्तरं तु वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां तन्मुखादभवत् ततः॥

भाव यह है कि—विभिन्न विषयोंका प्रतिपादन करनेवाली अष्टादश विद्याओंके मूल प्रणेता भगवान् शिव हैं, यह श्रुति-सिद्धान्त है, विश्वसृष्टिकी इच्छासे भगवान् शिवने सर्वप्रथम ब्रह्माजीका सर्जन कर विश्वनिर्माणार्थ समस्त अष्टादश विद्याओंको उन्हें दिया। समस्त विश्वके पालनार्थ भगवान् विष्णुको रक्षाशक्ति दिया। ब्रह्माजीने सृष्टिके पूर्व विश्व-विस्तारार्थ समस्त शास्त्रोंके पूर्व ही पुराणोंका स्मरण किया। पश्चात् ब्रह्माजीके मुखारविन्दसे अन्य शास्त्रोंका आविर्भाव हुआ।

इस प्रकार शिवपुराणके आधारपर वेदाद्यपेक्षया पुराणोंके प्राकट्यमें प्राथम्य सुस्पष्ट ज्ञात होता है। **'अस्य महतो भूतस्य'** इत्यादि मन्त्रके अनुसार मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद, इतिहास, पुराण महान् पुरुष परमेश्वरके निःश्वासरूप हैं। यहाँपर 'निःश्वास' शब्दसे दो अर्थ परिलक्षित होते हैं। प्रथम जिस प्रकार प्राणियोंमें निःश्वास स्वाभाविक रूपसे स्वतः निकलता रहता है, उसी प्रकार परमेश्वरसे वेद-पुराणादि भी अनायास स्वाभाविक रूपसे निकलते हैं। द्वितीय निःश्वास शब्दसे वेद एवं पुराणोंकी नित्यता या सनातनता अभिव्यक्त होती है।

जीवित शरीरके यन्त्र दो प्रकारसे समुपलब्ध होते हैं—प्रथम स्वेच्छा-सेवक, द्वितीय परेच्छा-सेवक। हाथ-पाँव आदि स्वेच्छासेवक हैं। कारण, हाथ-पाँव आदिके कार्य जीवेच्छाके अधीन हैं। हाथ जीवेच्छाके बिना नहीं हिल सकता, पैर जीवकी इच्छाके बिना नहीं चल सकते। जीव स्वेच्छासे हाथ-पाँव आदिसे कार्य कराता है, अतः हाथ-पाँव आदि स्वेच्छा-सेवक हैं।

श्वासयन्त्र, पाक-यन्त्र आदि परेच्छा-सेवक है; क्योंकि जब जीव निद्राकी गोदमें रहता है, तब भी श्वास-प्रश्वास चलते रहते हैं। पाक-यन्त्र अपना कार्य करता रहता है, अतः श्वास आदि परेच्छा-सेवक हैं।

श्वास आदि परेच्छा-सेवकोंके साथ जीवका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनके बिगड़नेपर प्राणीका जीवन सङ्कटमय स्थितिमें पहुँच जाता है। किं बहुना, श्वास-क्रिया समाप्त होना ही जीवनका अन्त है। परंतु हाथ या पाँव आदिके नष्ट हो जानेपर भी प्राणी जीवित रहकर अपना कार्य विविध ढंगसे संचालित करता रहता है।

इसी प्रकार परमेश्वरका वेद एवं पुराणोंके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध या नित्य-सम्बन्ध है; क्योंकि वेद-पुराण भगवान्के निःश्वासरूप हैं। भगवान् अनादि-अनन्त हैं, अतः उनके निःश्वासरूप वेद एवं पुराण भी अनादि-अनन्त हैं। यही बात **'अस्य महतो भूतस्य निश्वसितम्'** इत्यादि मन्त्रके निःश्वास-शब्दसे ध्वनित होता है।

संक्षेपमें वेदरूपी सागरमें पुराण प्रफुल्लित पङ्कज हैं। पुराणपङ्कजमें रसब्रह्म मधु या पराग है—इस मधु-रसका पान पुण्यशाली विद्वज्जन करते हैं।

भगवान्को प्रसन्न करनेवाले आठ भाव-पुष्प

अहिंसा प्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः। सर्वपुष्पं दया भूते पुष्पं शान्तिर्विशिष्यते॥
शमः पुष्पं तपः पुष्पं ध्यानं पुष्पं च सप्तमम्। सत्यं चैवाष्टमं पुष्पमेतैस्तुष्यति केशवः॥

(अग्निपुराण २०२। १७-१८)

'अहिंसा' (किसी भी प्राणीका तन-मन-वचनसे न बुरा चाहना, न करना, न समर्थन करना) प्रथम पुष्प है। **'इन्द्रिय-निग्रह'** (इन्द्रियोंको मनमाने विषयोंमें न जाने देना) दूसरा पुष्प है। **'प्राणिमात्रपर दया'** (दूसरेके दुःखको अपना दुःख समझकर उसे दूर करनेके लिये चेष्टा) तीसरा सर्वोपयोगी पुष्प है। **'शान्ति'** (किसी भी अवस्थामें चित्तका क्षुब्ध न होना) चतुर्थ पुष्प सबसे बढ़कर है। **'शम'** (मनका वशमें रहना) पाँचवाँ पुष्प है। **'तप'** (स्वधर्मके पालनार्थ कष्ट सहना) छठा पुष्प है। **'ध्यान'** (इष्टदेवके स्वरूपमें चित्तकी तदाकार-वृत्ति) सातवाँ पुष्प है और आठवाँ पुष्प **'सत्य'** है। इन पुष्पोंसे भगवान् केशव संतुष्ट होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110323

पुराणोंकी महिमा

(अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य वरिष्ठ स्वामी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीजी महाराज)

विधिप्रधान हैं चारों वेद। वेदोक्त विषयोंको ही मित्रोंके जैसे भाव प्रधानतया बताते हैं पुराण। ये अतीव प्राचीनतम इस देशके इतिहासके सारगर्भित भी हैं। अतएव प्राचीनतम भारतीय सनातनधर्मका, उसकी उत्कृष्टतम संस्कृतिका भी अतिरुचिर स्वभावोक्ति वर्णन पाये जाते हैं इनमें। इनमें क्रुद्ध हुए ऋषि-मुनियोंके शाप-प्रतिशापके लेन-देनका भी वर्णन है ही। इन विषयोंको स्वरूपमात्रसे विचार करनेकी प्रवृत्ति छोड़कर फलसे ही इनका विचार करना उचित होगा। फल तो व्यक्ति तथा समुदाय दोनोंके ही भलाईके होते हैं।

उदाहरणार्थ महाराज परीक्षित् एक दिन शिकार खेलने निकल पड़े। घने जंगलमें घूम-फिरकर थके-माँदे उन्हें अपनी प्यास बुझानेका कोई उपाय दीख न पड़ा। वहाँ ध्यानमें मग्न थे एक मुनिवर। उनसे बहुत प्रकारसे पूछताछ की। सब व्यर्थ निकले। विषण्ण होकर लौटते उन्हें एक मरा साँप दीख पड़ा। उसे उस ऋषिवरके गलेमें माला पहनानेके लिये उनके मनमें तीव्र उत्कण्ठा उठी। सत्कुल-प्रसूत होनेपर भी वे उसे दबा न सके। अतः अपनी इच्छा पूरी करके लौट पड़े। थोड़ी देरके बाद ऋषिका पुत्र वहाँ आया और उस दृश्यको देखकर क्रुद्ध हो उठा तथा शाप दिया कि 'जिस अधमका यह कुकृत्य है, उसकी मृत्यु आजसे सातवें दिन सर्प-दंशसे ही हो जाय।'

महाराज परीक्षित्को शापकी बातका पता चला। अपने कुकृत्यका दण्ड भोगनेके लिये वे तैयार हो गये। अपनी मृत्युका निश्चित समय समझकर संतुष्ट हुए। उन्होंने मुनिवर श्रीशुककी वाणीसे श्रीमद्भागवत सुनते-सुनते प्राणत्याग किया और मुक्ति पायी। उन्हें मिली मुक्ति और समुदायको मिला पुराणरत्न श्रीमद्भागवत, जिससे आज भी श्रीकृष्ण-भक्तिका समृद्ध स्रोत बढ़ा रहता है।

और एक हैं ये चक्रवर्ती महाराज दशरथ। एक दिन ये शिकार करने निकल पड़े। थके-माँदे एक तालाबके किनारे एक पेड़के नीचे आराम कर रहे थे। गड़-गड़की ध्वनि सुनकर पानी पीते हाथीपर शब्दवेधी बाण चलाये। फिर क्या ? 'हाय मरा' की मानव-वाणी सुन पड़ी। चकित होकर वे दौड़ पड़े और जान लिये कि अंधे तथा बूढ़े अपने माता-पिताकी प्यास बुझानेवाला युवक है मरता। मृत युवकको लेकर बूढ़ोंके पास पहुँचे और शाप पाया कि 'हमारे-जैसे तुम्हें भी अपने पुत्रके वियोगसे मृत्यु हो जाय।' फलस्वरूप चक्रवर्तीको संतान-लाभ हुआ एवं समुदायको इतिहास-रत्न श्रीमद्वाल्मीकिरामायण मिला।

अतः पुराणोंका तत्त्वार्थ समझनेकी प्रवृत्ति अपनायें, हमारी संस्कृतिका सच्चा स्वरूप पहचान लें एवं उन्नत जीवन बिताने लगें।

पुराणेष्वर्थवादत्वं ये वदन्ति नराधमाः ॥
तैरर्जितानि पुण्यानि क्षयं यान्ति द्विजोत्तमाः ।
अन्यानि साधयन्त्येव कार्याणि विधिना नराः ॥
पुराणानि द्विजश्रेष्ठाः साधयन्ति न मोहिताः ।
अनायासेन यः पुण्यानीच्छतीह द्विजोत्तमाः ॥
श्रोतव्यानि पुराणानि तेन वै भक्तिभावतः ।

(नारद० १।१।५७-६१)

(सूतजीने ऋषियोंसे कहा—) 'द्विजवरो ! जो नराधम पुराणोंमें अर्थवाद (अतिरञ्जित कथन) की शङ्का करते हैं, उनके किये हुए समस्त पुण्य नष्ट हो जाते हैं। मोहग्रस्त मानव दूसरे-दूसरे कार्योंके साधनमें लगे रहते हैं, परंतु पुराण श्रवणरूप पुण्यकर्मका अनुष्ठान नहीं करते हैं। जो मनुष्य बिना किसी परिश्रमके यहाँ अनन्त पुण्य प्राप्त करना चाहता हो, उसको भक्तिभावसे निश्चय ही पुराणोंका श्रवण करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी कथाओंका तात्पर्य—भगवत्प्राप्ति

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीमद्विष्णुस्वामिमतानुयायी श्रीगोपालवैष्णवपीठाचार्यवर्य श्री १०८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

भगवान्‌की आज्ञारूप वेदोंमें जन-कल्याणार्थ सभी साधनोंका विधान विहित है तथा श्रीहरिकी महिमाका गुणगान है। उन वेदोंके दुरूह एवं परोक्षवादी होनेके कारण सभीको उनका ज्ञान होना असम्भव है। इसलिये दयालु भगवान्‌ने वेद-व्यास-रूपसे अवतीर्ण होकर अठारह पुराणोंद्वारा वेदोंका उपबृंहण किया है। सभी शास्त्रोंमें पुराणोंकी प्राथमिकता मानी गयी है—'**पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।**' चौदह विद्याओंकी गणनामें पुराणका प्रथम स्थान है, जिसमें सभी मानवोंके आचरणीय धर्मोंका प्रतिपादन किया गया है—

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रितः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥

पुराण पाँचवाँ वेद है। यह छान्दोग्योपनिषद् एवं श्रीमद्भागवतमें स्पष्टतया वर्णित है—

'इतिहासपुराणं च पञ्चमं वेदानां वेदम्। (छान्दो०)।
'इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते ॥'
(श्रीमद्भा० १।४।२०)

धर्माचरणमें पुराणोंको भी प्रामाणिक मानना चाहिये। यद्यपि पुराणोंमें मनु आदि स्मृतियोंकी तरह आनुपूर्वक धर्मोंका निरूपण नहीं किया गया है तथापि उनमें सर्वत्र प्रसङ्गोंमें जहाँ-तहाँ वर्णाश्रम-धर्मोंका भलीप्रकारसे निरूपण हुआ है। जो धर्म स्मृतियोंमें संक्षेपसे कथित हैं, उन्हींका पुराणोंमें दृष्टान्तरूप अनेक कथाओंद्वारा विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। अतः स्मृतियोंके समान पुराणोंको भी उपयोगी होनेसे धर्म-विषयमें प्रमाण मानना योग्य है।

साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि पुराण-विद्या सनातनी है, क्योंकि कल्पादिमें ब्रह्माजीने पुराणका मनसे स्मरण किया था—'**पुराणं मनसाऽस्मरत्।**' जैसे वेद कर्म-ज्ञान-उपासना—इन भेदोंसे त्रिकाण्ड-विषयक होकर भी ब्रह्मात्म-विषयक हैं, वैसे सभी पौराणिकी कथाओंका तात्पर्य भगवत्प्राप्ति ही है। जैसे सभी नदियाँ बहती हुई अन्तमें समुद्रमें लीन हो जाती हैं, वैसे ही सभी वचनोंका पर्यवसान परमात्मामें ही होता है। इसलिये वेदोंके उपबृंहक पौराणिक वर्णन परमात्मपरक होनेसे प्रामाणिक माने गये हैं। पुराणोंमें सर्ग-विसर्गादि पाँच लक्षण, व्रतोपवास, तीर्थ, उपासना, योग-यज्ञादिका समास-व्यास-रूपसे वर्णन किया गया है। ये सभी साधन अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा भगवत्प्राप्तिमें सहायक सिद्ध होते हैं। जहाँ-जहाँ भूगोल-खगोल चौदह लोकोंका वर्णन है वह सब भगवान्‌के स्थूल स्वरूपका ही वर्णन है। बिना स्थूल स्वरूपके जाने सूक्ष्मस्वरूपका ज्ञान असम्भव है। यही विषय पुराणोंमें यत्र-तत्र-सर्वत्र वर्णित है। ब्रह्माण्ड-वर्णनमें सभी कथाओंका—कहीं दृष्टान्त-रूपमें तो कहीं उदाहरण-रूपमें समावेश है। अतः भगवन्महिमाका वर्णन-श्रवण करनेसे भगवत्कृपाद्वारा भगवत्प्राप्ति अवश्य होती है। भगवान् परम दयालु हैं, जिन्होंने जीवोंके कल्याणार्थ श्रवण-कीर्तन-स्मरण करनेयोग्य बहुत-सी अद्भुत लीलाएँ की हैं। जिनके सेवन करनेसे सांसारिक दुःख, शोक-अज्ञानका नाश होता है; क्योंकि सर्वत्र पुराणोंमें भक्तार्तिहारक श्रीहरिका ही वर्णन मिलता है। कहीं आवेशावतार, कहीं अंशावतार, कहीं कलावतार, कहीं पूर्णावतारका वर्णन है। ये सभी अवतार दुष्ट-निग्रह और शिष्ट-अनुग्रहके लिये हैं। बिना असाधुके दमन किये साधुका कल्याण होना असम्भव है। एतदर्थ भगवान् देव, ऋषि, मनुष्य, जलचर आदिमें प्रकट होकर जगत्‌का पालन-निर्वाहादि करते हैं। उन्हींके गुण, विभूति, नाम, रूपोंके प्रतिपादक पुराण हैं। अतः उनमें वर्णित सभी कथाओंका तात्पर्य भगवत्प्राप्ति ही है।

अहं हरिः सर्वमिदं जनार्दनो नान्यत्ततः कारणकार्यजातम्।
ईदृङ्मनो यस्य न तस्य भूयो भवोद्भवा द्वन्द्वगदा भवन्ति ॥
(विष्णु० १।२२।८७)

'मैं तथा यह सम्पूर्ण जगत् जनार्दन श्रीहरि ही हैं; उनसे भिन्न और कुछ भी कार्य-कारणादि नहीं हैं'—जिसके चित्तमें ऐसी भावना है उसे फिर देहजन्य राग-द्वेषादि द्वन्द्वरूप रोगकी प्राप्ति नहीं होती।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रप्रतिपादित पुराण-माहात्म्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

हमारे शास्त्रोंमें पुराणोंकी बड़ी महिमा है। उन्हें साक्षात् श्रीहरिका रूप बताया गया है। जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत्को आलोकित करनेके लिये भगवान् सूर्यरूपमें प्रकट होकर हमारे बाहरी अन्धकारको नष्ट करते हैं, उसी प्रकार हमारे हृदयान्धकार—भीतरी अन्धकारको दूर करनेके लिये श्रीहरि ही पुराण-विग्रह धारण करते हैं।[1] जिस प्रकार त्रैवर्णिकोंके लिये वेदोंका स्वाध्याय नित्य करनेकी विधि है, उसी प्रकार पुराणोंका श्रवण भी सबको नित्य करना चाहिये—**'पुराणं शृणुयान्नित्यम्'** पुराणोंमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारोंका बहुत ही सुन्दर निरूपण हुआ है और चारोंका एक-दूसरेके साथ क्या सम्बन्ध है, इसे भी भलीभाँति समझाया गया है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥

(१।२।९-१०)

'धर्मका फल है संसारके बन्धनोंसे मुक्ति अथवा श्रीभगवान्की प्राप्ति। धर्मसे यदि किसीने कुछ सांसारिक सम्पत्ति उपार्जन कर ली तो इसमें उस धर्मकी कोई सफलता नहीं है। इसी प्रकार धनका एकमात्र फल है धर्मका अनुष्ठान, वह न करके यदि किसीने धर्मसे कुछ भोगकी सामग्रियाँ एकत्र कर लीं तो यह कोई सच्चे लाभकी बात नहीं हुई। शास्त्रोंने कामको भी पुरुषार्थ माना है। पर उस पुरुषार्थका अर्थ इन्द्रियोंको तृप्त करना नहीं है। जितने सोने-खाने आदिसे हमारा जीवन-निर्वाह हो जाय, उतना आराम ही यहाँ 'काम' पुरुषार्थसे अभिप्रेत है तथा जीवननिर्वाहका—जीवित रहनेका भी फल यह नहीं है कि अनेक प्रकारके कर्मोंके पचड़ेमें पड़कर इस लोक या परलोकका सांसारिक सुख प्राप्त किया जाय। उसका परम लाभ तो यह है कि वास्तविक तत्त्वकी—भगवत्तत्त्वको जाननेकी शुद्ध इच्छा हो।' वस्तुतः सारे साधनोंका फल है भगवान्की प्रसन्नताको प्राप्त करना। और वह भगवत्प्रीति भी पुराणोंके श्रवणसे सहजमें ही प्राप्त की जा सकती है। 'पद्मपुराण'में कहा गया है—

तस्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः।
श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्णरूपिणः॥

(पद्म०, स्वर्ग० ६१।६३)

'इसलिये यदि भगवान्को प्रसन्न करनेका मनमें संकल्प हो तो सभी मनुष्योंको निरन्तर श्रीकृष्णके अङ्गभूत पुराणोंका श्रवण करना चाहिये।' इसीलिये पुराणोंका हमारे यहाँ बहुत आदर है।

वेदोंकी भाँति पुराण भी हमारे यहाँ अनादि माने गये हैं और उनका रचयिता कोई नहीं है। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी भी उनका स्मरण ही करते हैं। इसी दृष्टिसे कहा गया है—**'पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।'** इनका विस्तार सौ करोड़ (एक अरब) श्लोकोंका माना गया है—**'शतकोटिप्रविस्तरम्।'** उसी प्रसङ्गमें यह भी कहा गया है कि समयके परिवर्तनसे जब मनुष्यकी आयु कम हो जाती है और इतने बड़े पुराणोंका श्रवण और पठन एक जीवनमें मनुष्योंके लिये असम्भव हो जाता है, तब उनका संक्षेप करनेके लिये स्वयं भगवान् प्रत्येक द्वापरयुगमें व्यासरूपमें अवतीर्ण होते हैं और उन्हें अठारह भागोंमें बाँटकर चार लाख श्लोकोंमें सीमित कर देते हैं। पुराणोंका यह संक्षिप्त संस्करण ही भूलोकमें प्रकाशित होता है। कहते हैं स्वर्गादि लोकोंमें आज भी एक अरब श्लोकोंका विस्तृत पुराण विद्यमान है[2]। इस प्रकार भगवान् वेदव्यास भी पुराणोंके रचयिता नहीं, अपितु वे उसके

---

१. यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः। सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे॥
तथैवान्तःप्रकाशाय पुराणावयवो हरिः। विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम्॥ (पद्म०, स्वर्ग० ६१।६१-६२)

२. कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः॥
व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे। चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ॥
तदाष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम्। अद्यापि देवलोकेषु शतकोटिप्रविस्तरम्॥ (पद्म०, सृष्टि० १।५०-५२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षेपक अथवा संग्राहक ही सिद्ध होते हैं। इसीलिये पुराणोंको 'पञ्चम वेद' कहा गया है।

'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्।'

(छान्दोग्य-उपनिषद् ७।१।२)

उपर्युक्त उपनिषद्वाक्यके अनुसार यद्यपि इतिहास-पुराण दोनोंको ही 'पञ्चम वेद' की गौरवपूर्ण उपाधि दी गयी है, फिर भी वाल्मीकीय रामायण और महाभारत जिनकी इतिहास संज्ञा है, क्रमशः महर्षि वाल्मीकि तथा वेदव्यासद्वारा प्रणीत होनेके कारण पुराणोंकी अपेक्षा अर्वाचीन ही हैं। इस प्रकार पुराणोंकी पुराणता सर्वापेक्षया प्राचीनता सुतरां सिद्ध हो जाती है। इसीलिये वेदोंके बाद पुराणोंका ही हमारे यहाँ सबसे अधिक सम्मान है। बल्कि कहीं-कहीं तो उन्हें वेदोंसे भी अधिक गौरव दिया गया है। पद्मपुराणमें लिखा है।

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
पुराणं च विजानाति यः स तस्माद्विचक्षणः॥

(सृष्टि० २।५१)

'जो ब्राह्मण अङ्गों एवं उपनिषदोंसहित चारों वेदोंका ज्ञान रखता है, उससे भी बड़ा विद्वान् वह है, जो पुराणोंका विशेष ज्ञाता है।' यहाँ श्रद्धालुओंके मनमें स्वाभाविक ही यह शङ्का हो सकती है कि उपर्युक्त श्लोकमें वेदोंकी अपेक्षा भी पुराणोंके ज्ञानको श्रेष्ठ क्यों बतलाया है। इस शङ्काका दो प्रकारसे समाधान किया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि उपर्युक्त श्लोकके **'विद्यात्'** और **'विजानाति'**—इन दो क्रिया-पदोंपर विचार करनेसे यह शङ्का निर्मूल हो जाती है। बात यह है कि ऊपरके वचनमें वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका वैशिष्ट्य बताया गया है, न कि वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके सामान्य ज्ञानका अथवा वेदोंके विशिष्ट ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका। पुराणोंमें जो कुछ है, वह वेदोंका ही तो विस्तार—विशदीकरण है। ऐसी दशामें पुराणोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंका ही विशिष्ट ज्ञान है और वेदोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंके सामान्य ज्ञानसे ऊँचा होना ही चाहिये। दूसरी बात यह है कि जो बात वेदोंमें सूत्ररूपसे कही गयी है, वही पुराणोंमें विस्तारसे वर्णित है। उदाहरणके लिये परम तत्त्वके निर्गुण-निराकार रूपका तो वेदों (उपनिषदों) में विशद वर्णन मिलता है, परंतु सगुण-साकार तत्त्वका बहुत ही संक्षेपमें कहीं-कहीं वर्णन मिलता है। ऐसी दशामें जहाँ पुराणोंके विशेष ज्ञाताको सगुण-निर्गुण दोनों तत्त्वोंका विशिष्ट ज्ञान होगा, वेदोंके सामान्य ज्ञाताको केवल निर्गुण-निराकारका ही सामान्य ज्ञान होगा। इस प्रकार उपर्युक्त श्लोकोंकी संगति भलीभाँति बैठ जाती है और पुराणोंकी जो महिमा शास्त्रोंमें वर्णित है, वह अच्छी तरह समझमें आ जाती है।

पुराणोंका क्रम और सृष्टिविद्याका निरूपण

(महामहोपाध्याय स्व० पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी)

पुराण-विद्या महर्षियोंका सर्वस्व है। यह वह अटूट खजाना है, जिसके प्रभावसे अनेक प्रकारकी दरिद्रताओंका शिकार बनकर भी भारत आज धनी है, आज भी संसारकी सभ्य जातियोंके समक्ष यह अपना मस्तक ऊँचा रख सकता है। बीसवीं शताब्दी विज्ञानका मध्याह्न कही जाती है, किंतु जितने विज्ञान आजतक उच्च भूमिकापर पहुँच चुके हैं, जितने अभी अधूरे हैं तथा जो अभी गर्भमें ही हैं, उनमेंसे एक भी ऐसा नहीं है, जिसके सम्बन्धमें पुराणोंमें कोई भी उल्लेख न मिलता हो। जितने भी सामाजिक और राजनीतिक वाद इस समय भूमण्डलमें प्रसिद्ध हैं, उनमेंसे भी किसीका संक्षेपसे, किसीका विस्तारसे, किसीका पूर्वपक्षरूपसे और किसीका निन्दारूपसे—इस तरह किसी-न-किसी प्रकारसे पुराणोंमें अवश्य उल्लेख मिलेगा। आजसे हजारों वर्ष पूर्व इन सब बातोंका हमारे पूर्वजोंको ज्ञान था, वे इन सबकी आलोचना कर सकते थे, प्रत्यक्षदर्शीकी तरह सब बातोंपर अपनी राय दे सकते थे। पुराण-विद्याके समान कौन-सी विद्या संसारकी किसी जातिके पास है? इस प्रकारकी विद्याको अपने 'कोष'में रखकर हिंदू-जाति गौरवान्वित है।

पुराण अठारह हैं—यह प्रसिद्ध बात है। वस्तुतः ये अठारह स्वतन्त्र पुराण नहीं, किंतु एक ही पुराणके अठारह प्रकरण हैं। जैसे एक ग्रन्थमें कई अध्याय होते हैं, वैसे ही एक पुराणके ये अठारह अध्याय हैं। यही कारण है कि उनका क्रम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियत है। स्वतन्त्र ग्रन्थोंमें कोई नियत क्रम नहीं रहता, वक्ताकी इच्छा है कि उन्हें अपने व्याख्यान या लेखमें किसी भी क्रमसे आगे-पीछे रख दे, किंतु पुराणोंमें ऐसा नहीं हो सकता, उनका एक नियत क्रम है। सप्तम पुराण कहनेसे 'मार्कण्डेयपुराण'का ही बोध होगा, त्रयोदश पुराण कहनेसे 'स्कन्दपुराण' ही समझा जायगा। 'गरुडपुराण' सत्रहवाँ पुराण ही कहलायेगा—इत्यादि। इस संख्यामें कभी फेर-बदल नहीं हो सकता। एक ग्रन्थके अध्यायोंमें उलट-फेर कौन कर सकता है। उलट-फेर कर दिया जाय तो सब ग्रन्थका स्वारस्य ही बिगड़ जाय। इसलिये पुराण सर्वदा निम्नलिखित क्रमसे ही समझे जाते हैं—१-ब्राह्म, २-पाद्म, ३-वैष्णव, ४-वायव्य (शैव), ५-भागवत, ६-नारद, ७-मार्कण्डेय, ८-आग्नेय, ९-भविष्य, १०-ब्रह्मवैवर्त, ११-लैङ्ग, १२-वाराह, १३-स्कान्द, १४-वामन, १५-कौर्म, १६-मात्स्य, १७-गारुड और १८-ब्रह्माण्ड। स्थूल दृष्टिसे भी देखते ही प्रत्येक भावुकको यह चमत्कार प्रतीत होगा कि इस विद्याका आरम्भ ब्रह्मसे और समाप्ति ब्रह्माण्डपर है तथा मध्यमें भी 'ब्रह्मवैवर्त' में ब्रह्मकी स्मृति करा दी जाती है। इसीसे स्पष्ट हो गया कि यह 'सृष्टिविद्या' है, जो ब्रह्मसे आरम्भकर 'ब्रह्माण्ड'तक हमारे ज्ञानको पहुँचा देती है और आदि, मध्य एवं अन्तमें ब्रह्मका कीर्तन करती हुई ब्रह्मपरसे ज्ञानीको विचलित नहीं होने देती। यद्यपि—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

—इस लक्षणके अनुसार पुराणमें पाँच विषयोंका निरूपण प्रधान है, किंतु विचारदृष्टिसे प्रतीत होगा कि 'सृष्टिविद्या' ही पुराणका मुख्य विषय है, शेष चार उसके 'उपोद्घात' हैं। सृष्टिका निरूपण उन चारोंके बिना साङ्गोपाङ्ग नहीं बनता, इसलिये उन चारोंको साथ लेना पड़ता है, किंतु पुराणका मुख्य प्रतिपाद्य सृष्टिविद्या ही है। सृष्टिका क्रम पुराणोंमें संक्षेपतः इस प्रकार बताया गया है—'क्षीरसमुद्रमें शेषशय्यापर भगवान् नारायण सो रहे हैं, जगज्जननी लक्ष्मी उनके पैर दबा रही हैं, भगवान् नारद पास खड़े स्तुति कर रहे हैं। उन्हें जब सृष्टि रचनेकी इच्छा होती है, तब उनकी नाभिसे एक 'पद्म' (कमल) निकलता है, उस कमलमेंसे चतुर्मुख ब्रह्मा प्रादुर्भूत होते हैं, वे ब्रह्मा स्थावर-जङ्गमात्मक सब विश्वको बनाते हैं।' इस चित्र (नक्शे)को ध्यानमें रखिये और अब पूर्वोक्त पुराणोंके क्रमपर चलिये। कार्यसे कारणकी ओर जाना है, स्थूलसे सूक्ष्ममें प्रवेश करना है। स्थावर-जङ्गमात्मक दृश्य-जगत्के निर्माता ब्रह्माके तत्त्वको पहला 'ब्राह्मपुराण' समझाता है। ब्रह्मा जहाँसे प्रकट हुए, उस पद्म (कमल) का निरूपण दूसरे 'पाद्मपुराण'में हुआ है। पद्मके उद्भवस्थान भगवान् विष्णुको तीसरे वैष्णवपुराणने समझाया है और उनके आधार (शयनस्थान) 'शेष' का वायुपुराणमें निरूपण किया गया है। इसी वायुपुराणको कहीं 'शिवपुराण' नामसे भी लिखा है, तात्त्विक दृष्टिसे इन नामोंमें कोई भेद नहीं है—यह तत्त्व-निरूपणसे स्पष्ट हो सकता है। इस शेषके भी आधार 'सरस्वान्' (क्षीरसागर) को पाँचवाँ 'भागवत' समझाता है, अतएव उसे 'सारस्वतकल्प' कहते हैं—'**सरस्वत इदं सारस्वतम्।**' अब रह गये 'नारद भगवान्', उनका निरूपण छठा नारदपुराण कर देता है। यों पूर्वषट्क (पहले छः पुराणों) में यह सृष्टिका पुराणोक्त चित्र—एक-एक करके विशदरूपसे समझा दिया जाता है।

श्रद्धावान् उत्तमाधिकारियोंके लिये यह वर्णन संतोषप्रद हो जाता है। वे इन सबको भगवद्विभूति समझकर तर्क-वितर्कसे परे रहते हुए सर्वाधिष्ठाता भगवान्के भजनमें समय-यापन करते रहते हैं, किंतु जो मध्यमाधिकारी तर्कके बिना संतुष्ट नहीं होते, जिनके चित्तमें शङ्काओंका आन्दोलन चलता रहता है कि 'एक छोटे-से कमलके पुष्पपर बैठकर ब्रह्मा इतने विस्तृत ब्रह्माण्डको कैसे बनाता है, कमलके पुष्पमेंसे चार मुखका मनुष्याकारधारी ब्रह्मा कैसे निकल पड़ा?' आदि, उनके संतोषार्थ पद्मपुराणने विशेष प्रयत्न किया है। इस पुराणमें यह स्पष्ट अक्षरोंमें बताया गया है कि इस पृथ्वीको ही पद्म कहते हैं। देखिये पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ४०—

तच्च पद्मं पुरा भूतं पृथिवीरूपमुत्तमम्।
यत्पद्मं सा रसा देवी पृथिवी परिचक्ष्यते॥

'विष्णुभगवान्की नाभिसे जो कमल पहले उत्पन्न हुआ, वह पृथ्वीरूप था। उस पद्मको ही रसा अथवा पृथ्वी देवी कहा जाता है' आदि। इतना ही नहीं, इसके पत्र-केसरादिरूपसे भिन्न-भिन्न वर्षादिका भी वहाँ निरूपण किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब यह निश्चय हो गया कि यह पृथ्वी पद्म है, तब अब समझनेमें देर न लगेगी कि इस पृथ्वीपर अभिव्याप्त आग्नेय प्राण ही ब्रह्मा है, जो 'चतुर्मुख' (चारों ओर फैलता हुआ) अन्तरिक्षके चन्द्रमण्डलस्थ सौम्यप्राणसे मिलकर सब प्रकारकी सृष्टि करता रहता है—'**अग्नीषोमात्मकं जगत्।**' और यह भी शीघ्र ही समझमें आ जायगा कि जिनकी नाभिसे यह पृथ्वीरूप कमल निकला है, वे विष्णुभगवान् प्रत्यक्ष देव 'सूर्यनारायण' ही हैं। वैज्ञानिक भाषामें 'नाभि' केन्द्रको कहते हैं, 'सूर्यमण्डलके केन्द्रसे ही यह पृथ्वी प्रादुर्भूत होकर उस मण्डलसे पृथक् हो गयी है'—यह विज्ञान इस वर्णनसे प्रस्फुट हो जाता है। पुराणका रहस्य यहाँ पूरा नहीं हो जाता, इससे भी गम्भीरतम विज्ञान इस वर्णनमें निगूढ है कि जितने भी (सूर्य, चन्द्र, तारा, पृथ्वी आदि) मण्डल बनते हैं, वे पद्मरूप (गोलाकार) हैं और वे सब विष्णुकी नाभिसे ही निकलते हैं। '**यज्ञो वै विष्णुः**'—विष्णुभगवान् यज्ञरूप हैं और आदान-प्रदानरूप यज्ञके बिना किसी भी मण्डलकी उत्पत्ति हो नहीं सकती। द्वादश आदित्योंमें अन्तिम आदित्यका नाम विष्णु है—यह वेद, पुराण आदिमें सर्वत्र ही स्फुट है, अतः विष्णुनामसे सूर्यके ग्रहणमें कोई शङ्का नहीं होनी चाहिये। यहाँतक यह हमारी 'त्रिलोकी' हुई—पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यु (सूर्यमण्डल) अथवा दूसरे शब्दोंमें भूः, भुवः, स्वः। अब सूर्यमण्डलके आगेका जो अन्तरिक्ष—'महः' है, वह वायुप्रधान होनेके कारण विष्णुका शयनस्थान 'शेषशय्या' है। हमारे अन्तरिक्षकी (सूर्यमण्डलसे नीचेकी) वायु उपद्रावक भी है, किंतु यह दूसरे अन्तरिक्ष 'महः' लोककी वायु विशुद्ध कल्याणप्रद है, इसलिये इसे 'शिव' कहते हैं। अतएव इसके निरूपक पुराणके 'वायुपुराण' या 'शिवपुराण' दोनों नाम प्रसिद्ध हैं और इन्हें वायुभक्षी सर्पोंके ईश्वर शेषके रूपमें पौराणिक नक्शेमें बताया गया है। वह भी जिसके आधारपर प्रतिष्ठित है, वह सोमप्रधान 'आपोमण्डल' क्षीरसमुद्र, परमेष्ठिमण्डल या 'जनः' है और उसके समीप प्रतिष्ठित स्वयम्भूमण्डल 'तपः' और नारद 'सत्यम्' हैं। जनलोक या परमेष्ठिमण्डल 'आपोमय' है, इसी कारण वह क्षीरसमुद्र कहलाया है, ये 'अप्' नरके पुत्र होनेके कारण 'नार' कहे गये हैं, 'नार' को देनेवाला 'नारद' है—'**नारं ददातीति नारदः**'। इसलिये अप्तत्त्वके उत्पादक स्वयम्भू भूमण्डलको नारद कहना युक्तियुक्त है। यह सब सृष्टिका वर्णन मनुस्मृति प्रथमाध्यायके आरम्भमें इसी रूपमें मिलता है—

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥

× × ×

सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

× × ×

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्॥

संक्षेपमें इस सबका तात्पर्य यही है कि सृष्टिके आरम्भमें सबसे पूर्व 'स्वयम्भू' प्रादुर्भूत हुआ, उसने प्रजासृष्टिकी इच्छासे सबसे पहले अपने शरीरसे अप् (आपोमय परमेष्ठिमण्डल) को उत्पन्न किया (इसे ही पौराणिक चित्रमें क्षीरसमुद्र कहा गया है।) और उसमें भावी सृष्टिका बीज रखा। वह बीज सुवर्णका अण्डा बना, उसके हजार किरणें थीं और सब किरणोंमें समान कान्ति थी। (इसे ब्रह्माण्डगोलक या त्रिलोकमण्डल समझना चाहिये।) उसके मध्यमें सर्वलोक-पितामह ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। (स्मरण रहे कि पद्मज ब्रह्मा सब लोकोंके पिता हैं, किंतु ये ब्रह्मा उनके भी उत्पादक हैं, इसलिये इन्हें (सूर्यरूप ब्रह्माको) पितामह कहा गया है।) आगे इन ब्रह्माका ही नाम—'नारायण' बताया गया है और 'नारायण' शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है कि नर (स्वयम्भू) के पुत्र अप् 'नार' हैं, उस नार (आपोमयमण्डल) में रहनेके कारण ये पितामह ब्रह्मा नारायण हैं। (इस सब वर्णनपर सूक्ष्म दृष्टिपात कर लेनेके अनन्तर इस विषयमें कोई संदेह नहीं रह सकता कि पूर्वोक्त पौराणिक चित्रमें जिन्हें क्षीर-समुद्रशायी विष्णु कहा गया है, वे ही मनुस्मृतिमें 'पितामह' ब्रह्मा कहलाये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं।) 'नारायण' नाम दोनों जगह समान हैं। मनुभगवान्‌ने स्वयम्भूसे आरम्भ किया है, स्वयम्भूका 'ब्रह्मा' नाम लोकप्रसिद्ध है और आगे-आगेके मण्डलोंमें जितनी शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, वे आदिके मण्डलकी शक्तिसे भिन्न नहीं हैं। अथवा यों कहिये कि आदित्यमण्डलका जो अभिमानी देव है, वही भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंसे आगे उत्पन्न होनेवाले मण्डलोंका भी अभिमानी है। वह उनमें भेददृष्टि सर्वथा नहीं करता। इसी अद्वैततत्त्वके निर्वाहके लिये भगवान् मनुने 'ब्रह्मा' नाम ही सर्वत्र रख दिया है, किंतु व्यवहार-सांकर्य मिटानेके लिये पुराणोंमें 'विष्णु' और 'ब्रह्मा' पृथक्-पृथक् नाम कर दिये गये हैं, अद्वैत सबको इष्ट है। इसलिये—

एकमूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।

—यह सिद्धान्त सर्वत्र ही उद्घोषित है। पितामह ब्रह्माने वर्षभर उस अण्डेमें निवास कर अपने ध्यानसे उस अण्डेके दो विभाग कर दिये। उन्हीं दोनों टुकड़ोंसे द्यु (स्वर्लोक) और पृथ्वी (भूलोक)को बनाया। (यही भूलोक पुराणोंमें पद्म-रूपसे निरूपित हुआ है और इसपर एक दूसरे ब्रह्मा प्रादुर्भूत होते हैं, जिनका वर्णन मनुस्मृतिमें आगे चलकर श्लोक ३२में 'विराट्' नामसे आता है।) तैत्तिरीय उपनिषद्‌में जो '**तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी**' आदि कहा गया है, वहाँ इतनी विशेषता है कि 'अप्' शब्दसे हमारी त्रिलोकीके अन्तरिक्षको लिया है, जिसे पूर्वोक्त मनुस्मृतिके श्लोकोंमें भी '**अपां स्थानम्**' नामसे बताया गया है। यह सूर्यमण्डलसे उत्पन्न है तथा पृथ्वी और सूर्यके मध्यमें स्थित है।

सृष्टिका मूल तत्त्व क्या है—इस विषयमें प्राचीन आचार्योंके तीन प्रकारके भिन्न मत हैं। कोई प्रकृतिको मूलतत्त्व कहते हैं, उनका वह 'प्राकृतवाद' सप्तम मार्कण्डेयपुराणमें प्रदर्शित हुआ है। कोई आग्नेय प्राणको मूलतत्त्व मानते हैं, वह मत अष्टम अग्निपुराणमें बताया गया है तथा कोई अन्य आचार्य सौर प्राणको मूलतत्त्व बताते हैं, उनका सिद्धान्त नवम 'भविष्य-पुराण' ने बताया है। यों तीन मत दिखाकर दशम पुराण ब्रह्मवैवर्तद्वारा भगवान् व्यासने अपना सिद्धान्त बता दिया कि यह सब ब्रह्मका विवर्त है। अर्थात् मूलतत्त्व 'ब्रह्म' है, उसका जो अतात्त्विक अन्यथाभाव समझा जाता है, वही सृष्टि है। यों विवर्तवादको उत्तरपक्ष रखते हुए इस मूलतत्त्व-विषयक मतभेदको दूर किया है। वह ब्रह्म मन और वाक्‌से परे हैं, जो सृष्टि हमें प्रतीत होती है, उसमें उस परब्रह्मका 'अवतार' होता है। उसी अवतारके द्वारा वह परब्रह्म उपास्य भी होता है, इसलिये एकादशसे आरम्भ कर षोडश-पर्यन्त छः पुराण अवतारप्रतिपादक हैं। इनमें लिङ्ग और स्कन्द—ये दो भगवान् शंकरके अवतार कहे जाते हैं और वराह, वामन, कूर्म और मत्स्य—ये चार अवतार भगवान् विष्णुके। सृष्टि-प्रक्रियामें जिन अवतारोंका उपयोग है, उन्हींके नामसे यहाँ पुराणोंके नाम रखे गये हैं और जिस क्रमसे इन अवतारोंका सृष्टि-प्रक्रियामें उपयोग है, वही क्रम उन पुराणोंका माना गया है। इस सृष्टिचक्रमें घूमनेवाले जीवकी किस-किस कर्मके अनुसार क्या-क्या गति होती है— यह 'आयति' प्रकरण सत्रहवें 'गरुडपुराण'में दिखाया गया है, जिससे कि सृष्टिका 'परिणाम' (जीवका कर्मफलभोगरूप प्रयोजन) प्रतीत होता है और इस सब गतिका 'आयतन' क्या है तथा सृज्यमान वस्तुकी सीमा कितनी है—यह निरूपण अठारहवें 'ब्रह्माण्डपुराण'में कर दिया गया है। इस प्रकार क्रमसे अठारह पुराणों या एक ही पुराणके अठारह प्रकरणोंद्वारा सृष्टिविधानकी पूर्णता हो जाती है और इसी विद्यामें सब विद्याओंका अन्तर्भाव है।

साधु कौन ? असाधु कौन ?

सत्कथासु प्रवर्तन्ते सज्जना ये जगद्धिताः।। निन्दायां कलहे वापि ह्यसन्तः पापतत्पराः।

(नारद० १।१।५६-५७)

'जो संसारका हित करनेवाले साधु पुरुष हैं, वे ही उत्तम कथाओंके कहने-सुननेमें प्रवृत्त होते हैं। पापपरायण दुष्ट पुरुष तो सदा दूसरोंकी निन्दा और दूसरोंके साथ कलह करनेमें ही लगे रहते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदू-संस्कृतिके पुराणोंपर एक दृष्टि

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भारतीय संस्कृत-साहित्य-सागर अनन्त रत्नराशिसे पूर्ण है। उन रत्नोंमें पुराणका स्थान अत्यन्त महत्त्वका है। पुराण-साहित्य वेदकी भाँति भगवान्‌का निःश्वास रूप ही है। श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप है। इसीसे भक्त-भागवतगण इसकी भगवद्भावनासे श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक पूजा किया करते हैं। भगवान् व्यासदेव-सरीखे महापुरुषको जिसकी रचनासे ही परम शान्ति मिली, जिसमें ज्ञान-भक्तिका परम रहस्य बड़ी ही मधुरताके साथ अभिव्यक्त हुआ है, उस श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें क्या कहा जाय? इसके प्रत्येक अङ्गसे भगवद्भावपूर्ण पारमहंस्य ज्ञान-सुधासरिताकी बाढ़ आ रही है—**'यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते।'**—भगवान्‌के मधुर प्रेमका छलकता हुआ सागर है श्रीमद्भागवत। इसीसे भावुक भक्तगण इसमें सदा अवगाहन करते रहते हैं। परम मधुर भगवद्-रससे भरा हुआ—**'स्वादु स्वादु पदे पदे'**—ऐसा ग्रन्थ बस यही है। इसकी कहीं तुलना नहीं है। विद्याका तो यह भंडार ही है। **'विद्या भागवतावधिः'** प्रसिद्ध है। इस परमहंस-संहिताका पर्याप्त आनन्द तो उन्हीं सौभाग्यशाली भक्तोंको किसी अंशमें मिल सकता है, जो हृदयकी सच्ची श्रद्धाके साथ केवल भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये ही भक्तिपूर्वक इसका पारायण करते हैं और अपनी विद्या-बुद्धिसे नहीं, वरं केवल भगवत्कृपाके बलसे ही इसका मर्म हृदयङ्गम करना चाहते हैं।

स्कन्दपुराण समस्त पुराणोंमें सबसे बड़ा है। यह सात खण्डोंमें विभक्त है। इसमें ८११०० श्लोक हैं। सात खण्डोंके नाम हैं—माहेश्वरखण्ड, वैष्णवखण्ड, ब्रह्मखण्ड, काशीखण्ड, अवन्ती, नागर और प्रभास-खण्ड। इनमें भी अनेक अवान्तर खण्ड हैं। इसके अतिरिक्त एक संहितात्मक स्कन्दपुराण पृथक् है। उसके सम्बन्धमें शंकरसंहिताके 'हालास्य-माहात्म्य'में लिखा है कि 'श्रुतिसार स्कन्दपुराण' ६ संहिताओं और ५० खण्डोंमें विभक्त है। इसकी संहिताओंके नाम हैं—१-सनत्कुमार-संहिता, २-सूतसंहिता, ३-शंकरसंहिता, ४-वैष्णवसंहिता ५-ब्रह्मसंहिता और ६-सौरसंहिता। इन संहिताओंकी श्लोक-संख्या क्रमशः ३६,०००; ६,०००; ३०,०००; ५,०००; ३,००० और १,००० है। इस प्रकार कुल मिलाकर इस स्कन्दपुराणकी श्लोक-संख्या भी ८१,००० होती है। इन संहिताओंमेंसे पहली तीन उपलब्ध हैं। कहते हैं कि नेपालमें छहों संहिताएँ हैं। सूतसंहितापर तो आचार्योंके भाष्य भी हैं। इस संहितात्मक स्कन्दपुराणको कोई उपपुराण कहते हैं, कोई पुराण और कोई इसे महापुराणका ही अङ्ग मानते हैं। जो कुछ भी हो, इसकी संहिताएँ हैं बड़े महत्त्वकी।

इस महापुराणमें माहात्म्यकथाओंके प्रसंगमें जो विभिन्न इतिहास तथा जीवनचरित्र आये हैं, वे बड़े महत्त्वके हैं। उनमें लौकिक, पारलौकिक, पारमार्थिक, कल्याणकारी अनन्त उपदेश भरे हैं। विभिन्न प्रसंगोंमें धर्म, सदाचार, योग, ज्ञान, भक्ति आदिका बड़ा ही सुन्दर निरूपण किया गया है। तीर्थोंके वर्णनमें जो भूवृत्तान्त आया है, वह तो अत्यन्त आश्चर्यकारक और भूगोलके विद्वानोंके लिये अत्यन्त आदरणीय और विचारणीय विषय है।

यह स्कन्दपुराण पता नहीं, कितने अतीत युगोंकी अनन्त अमूल्य गाथाओंको अपने वक्षःस्थलपर धारण किये, कितने निर्मल नद-नदी-सरित्-सागर-शैलादिका विशद वर्णन प्रस्तुत किये, कितने पुण्यतीर्थ, पुण्याश्रम, पुण्यायतन और कितने शत-शत कृतार्थ-जीवन ऋषि-महर्षि, साधु-महात्मा, संत-भक्तोंकी पुण्यमयी चारु चरित्रमालाओंसे समलंकृत होकर आज भी भारतीयोंका भक्ति-भाजन हो रहा है। आज भी भारतीय जीवनमें, घर-घरमें इसमें वर्णित आचारों, पद्धतियों, व्रतों तथा सिद्धान्तोंका कितना प्रचार है—यह देखकर आश्चर्यचकित-हृदयसे इसके प्रति जीवन श्रद्धासे झुक जाता है।

मार्कण्डेय और ब्रह्मपुराणमें ऐसे अनेकों महान् साधन,उपदेश और आदर्श चरित्र भरे हैं, जिनसे मनुष्य सहज ही अपने अभ्युदय तथा निःश्रेयसका पथ प्राप्त कर सकता है। सत्यके पालनमें महाराज हरिश्चन्द्रका इतिहास महान् आदर्श-स्वरूप है। विपद्ग्रस्तोंको सुख पहुँचानेके लिये महाराज विपश्चित्‌का त्याग अपूर्व प्रभावोत्पादक है। ब्राह्मणकुमारकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राण-रक्षा करनेमें महादेवी पार्वतीजीके तपःसमर्पणका इतिहास बड़ा ही पवित्र शिक्षाप्रद है। धर्मके पक्षमें दृढ़ता और मैत्रीधर्मके पालनमें वैश्ययुवक मणिकुण्डलका चरित्र अपनी जोड़ी नहीं रखता। महाशक्तिकी उपासनासे और समस्त पृथक्-पृथक् शक्तियोंकी पुञ्जीभूत एक महान् शक्तिकी सहायतासे विश्वदुःखदायी असुरोंका सम्पूर्ण समाज कैसे सहज ही नष्ट हो सकता है—इसका बड़ा मनोहर और ज्ञानगर्भ उपदेश देवीमाहात्म्य—(दुर्गासप्तशती) में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त पतिव्रता-माहात्म्य, तीर्थमाहात्म्य, भगवद्-भक्ति, ज्ञान, योग, सदाचार और लीलामय भगवान्के पवित्र चरित्रोंका बड़ा ही रोचक, मनोहर, गम्भीर और मार्मिक वर्णन इन पवित्र पुराणोंमें आया है। पाठकोंको विशेष मन लगाकर इनसे लाभ उठाना चाहिये।

इन पुराणोंमें नारदमहापुराण और विष्णुपुराण बड़े महत्त्वके सात्त्विक पुराण माने जाते हैं। नारदपुराणमें इतने महत्त्वके विषय हैं कि उन्हें पढ़-सुनकर चमत्कृत होना पड़ता है। पूर्ण विष्णुपुराण भी तेईस हजार श्लोकोंका बताया गया है। वर्तमान उपलब्ध विष्णुपुराण मूल महापुराणका पूर्वभाग है, जो वर्णनके अनुसार ही प्राप्त है। 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण'को विष्णुपुराणका उत्तरभाग बताया गया है और हमारे विश्वासके अनुसार है भी यही बात।

नारदपुराणमें पुराणोचित महत्त्वके प्रसंग तो हैं ही, उसमें वेदके छः अङ्ग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष (सिद्धान्त, होरा और संहिता) और छन्दका भी बड़ा विशद महत्त्वपूर्ण और मौलिक वर्णन है। इससे पता लगता है कि इसमें कितने महत्त्वके विषय हैं। इस एक नारदपुराणके अध्ययनसे ही सैकड़ों ज्ञातव्य विषयोंका सहज ही ज्ञान हो सकता है। इनमें आध्यात्मिक प्रसंग भी बहुत महत्त्वके हैं, जिनके श्रद्धापूर्वक अध्ययन, मनन और आचरणसे मनुष्यको मानव-जीवनकी चरम सफलता सहज ही प्राप्त हो सकती है।

इसके अतिरिक्त नारदपुराणके तीसरे पादमें सकाम उपासनाका भी बड़ा विशद वर्णन है, जो सकाम उपासकोंके लिये बड़े महत्त्वका है। यद्यपि मानवजीवनका प्रधान उद्देश्य 'भगवत्प्राप्ति' ही है, इसलिये उपासनामें सकाम-भाव रखना कल्याणकारी पुरुषोंके लिये कदापि वाञ्छनीय नहीं है। यह एक प्रकारकी अज्ञता ही है। अपनी-अपनी रुचि, अधिकार तथा परिस्थितिके अनुसार उपासना अवश्य करनी चाहिये, परंतु करनी चाहिये निष्कामभावसे भगवत्प्रीत्यर्थ ही। तथापि सकाम-उपासना पाप नहीं है, प्रत्युत आधिभौतिक साधनोंकी अपेक्षा लौकिक सिद्धि प्राप्त करनेका सुगम तथा श्रेष्ठ साधन है, क्योंकि इससे प्रतिबन्धका नाश होकर नवीन प्रारब्धका निर्माण सम्भव है। अवश्य ही यह साधन होना चाहिये सात्त्विक देवताओंका तथा सात्त्विक विधि-विधानके अनुसार ही। तामस देवासुरोंकी स्थापना तो अधोगतिमें ले जानेवाली होती है। सकाम-उपासना करनी हो तो श्रीभगवान्के किसी एक नाम-रूपकी करनी चाहिये। भगवान्की सकाम आराधनासे सकाम उद्देश्यकी सिद्धि होने या भगवान्की मङ्गलमयी इच्छासे सिद्धि न होनेपर भी अन्तःकरणकी शुद्धि, भक्तिकी प्राप्ति और अन्तमें भगवत्प्राप्ति हो सकती है। भगवान्ने स्वयं कहा है—**'मद्भक्ता यान्ति मामपि।'** (गीता ७। २३)

ब्रह्मवैवर्तपुराण ग्रन्थ वैष्णवप्रिय होनेके साथ ही कई दृष्टियोंसे सबके लिये ही उपयोगी तथा मङ्गलप्रद है। इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी और उनकी अभिन्नस्वरूपा प्रकृति—ईश्वरी श्रीराधाकी सर्वप्रधानताके साथ ही समस्त शक्तिमानोंकी तथा शक्तियोंकी एकताका, महिमाका, स्वरूपादिका तथा उनकी साधना-उपासनाका बड़ा ही विशद तथा सुन्दर प्रतिपादन है। साथ ही इसके सभी खण्डोंमें इस प्रकारके बहुत-से सिद्ध मन्त्रों, कवचों और स्तोत्रोंका वर्णन उनके इतिहासके साथ है, जिससे पता लगता है कि संकट-निवृत्ति, मनोरथ-प्राप्ति, विपत्ति-विनाश, लक्ष्मी-प्राप्ति, भक्ति-प्राप्ति तथा भगवत्प्राप्तिके लिये इन मन्त्रादिके श्रद्धा-विधिपूर्वक प्रयोगसे महान् लाभ हो सकता है। जैसे—ब्रह्मखण्ड, अध्याय ३८-'ब्रह्माण्डपावन कृष्ण-कवच।' इससे रोग-भयका नाश तथा सर्वार्थसिद्धि होती है। प्रकृतिखण्ड, अध्याय ४-**'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा'**-इस मन्त्र तथा 'सरस्वती-कवच'के प्रयोगसे मनुष्य शिक्षाके क्षेत्रमें परम सफल विद्वान्, कवि-सम्राट् तथा विश्वविजयी होता है।

प्रकृतिखण्ड अध्याय ३९-**'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा'**— इस मन्त्र तथा 'महालक्ष्मीस्तोत्र' के प्रयोगसे स्थिर लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृतिखण्ड, अध्याय ५६-श्रीराधिकाके 'जगन्मङ्गल-कवच'से सर्वसंकटोंका नाश तथा राधाकृष्णके द्वारा श्रीराधामाधव-प्रेमकी प्राप्ति होती है।

गणपतिखण्ड, अध्याय ३१-'**ॐ श्रीं नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय स्वाहा**'—इस मन्त्र एवं 'त्रैलोक्यविजयकवच' के प्रयोगसे घोर संग्राममें पूर्ण विजय तथा मोहपर विजय प्राप्त होती है और श्रीकृष्णप्रेमकी प्राप्ति होती है।

गणपतिखण्ड, अध्याय ३६-'**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा**'—इस मन्त्र तथा 'कालीकवच'के प्रयोगसे शत्रुनाश, विजय और राज्यकी प्राप्ति होती है।

गणपतिखण्ड, अध्याय ३८-'महालक्ष्मीकवच'के प्रयोगसे सम्पूर्ण सम्पत्ति मिलती है।

गणपतिखण्ड, अध्याय ३९-'ब्रह्माण्डविजयकवच'के प्रयोगसे महान् शत्रुपर विजय प्राप्ति होती है। भगवान् श्रीशंकरने इस कवचके प्रयोगसे त्रिपुरासुरपर विजय पायी थी।

श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड, अध्याय १२-'कृष्णकवच'के प्रयोगसे बच्चोंकी अग्नि, विष, कुदृष्टि (नजर) सर्प तथा अपदेवताओंके भयसे रक्षा होती है।

श्रीकृष्णजन्मखण्ड अध्याय १९-'श्रीकृष्णस्तोत्र'के प्रयोगसे शत्रु-सेनाका क्षय होता है तथा प्रयोगकर्ताकी युद्धमें सर्वत्र विजय होती है और सहज ही रक्षा होती है।

यह ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रद्धा-सम्पन्न पुरुषोंके लिये दैवी साधनोंके द्वारा देशको वर्तमान महान् संकटसे मुक्त कराने, तन-धन-जनकी रक्षा कराने, खोयी हुई शक्ति-सम्पत्तिको पुनः प्राप्त कराने, संग्राममें आसुरी शक्तिका शीघ्र क्षय कराने एवं रणमें पूर्ण विजय प्राप्त करानेके महान् कार्यमें बड़ा ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

जो साधक भक्त भगवती श्रीराधा, दुर्गा, महालक्ष्मी, सरस्वती, काली आदि महान् शक्तियों तथा भगवान् श्रीकृष्ण, शंकर, गणेश आदि महान् भगवत्स्वरूपोंकी कृपा प्राप्त करने, श्रीराधामाधवकी परमभक्ति तथा प्रेमकी प्राप्ति करनेकी पारमार्थिक दृष्टिसे, विषयासक्ति तथा विषय-कामनासे रहित होकर इसमें उल्लिखित साधनोंके अनुसार प्रयत्न करेंगे, उन्हें उनकी श्रद्धामयी साधनाके अनुसार परम पारमार्थिक लाभ होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

शिवपुराण एक प्रधान पुराण है। इसमें परात्पर परब्रह्म प्रभुके कल्याणमय शिवस्वरूपके महत्त्व, रहस्य, लीलाविहार, अवतार तथा उनकी पूजा-पद्धतिका बड़ा ही विशद वर्णन है और भगवान् शिवकी परात्परता, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, त्रिदेवोंकी एकता, शक्तिकी प्रधानता एवं शक्ति-शक्तिमान्‌की अभिन्नता, सत्संग, सदाचार, भक्तियोग, ज्ञान आदिका बड़ा ही सुन्दर निरूपण हुआ है।

श्रीदेवीभागवत-पुराणके विविध विचित्र कथा-प्रसंगोंमें देवी-माहात्म्य, देवी-आराधनाकी विधि तथा देवी-आराधनासे प्राप्त आश्चर्यमय शुभ परिणामोंके मधुरातिमधुर विषय भरे पड़े हैं। पुत्र कुपुत्र हो जाता है, पर माता कभी कुमाता नहीं होती। वह तो सदा अपनी वात्सल्य-स्नेह-सुधा-रस-धारासे संतानके जीवनको अभिषिक्त करती ही रहती है। यहाँ भी यही बात है। यह भारतीय आर्यधर्मकी विशेषता है कि इसमें सच्चिदानन्दपरात्पर ब्रह्मकी मातृरूपमें आराधना की गयी है और यह आराधना कल्पित आराधना—पद्धतिमात्र नहीं है। वस्तुतः ही अनन्त विचित्र मातृरूपोंमें सच्चिदानन्दमय परात्पर तत्त्व प्रकट है। भक्तोंने उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति की है, अब भी करते हैं। समस्त क्लेशोंका नाश, समस्त विघ्नोंकी निवृत्ति, सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति, सिद्धि-सफलताकी प्राप्ति, परम वैराग्य और तत्त्व-ज्ञानका उदय, भक्ति-प्रेमकी सुधा-धारामें अवगाहन—सभी अत्यन्त दुर्लभ-से-दुर्लभ पदार्थोंकी उपलब्धि माताकी आराधना-उपासनासे सहज ही हो जाती है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। अतः पुराणोंका परिशीलन सभी प्रकार कल्याणदायक है।

सत्सङ्गदेवार्चनसत्कथासु हितोपदेशे निरतो मनुष्यः।
प्रयाति विष्णोः परमं पदं यद्देहावसानेऽच्युततुल्यतेजाः॥

(नारद० १।१।६३)

'जो मानव सत्सङ्ग, देवपूजा, पुराणकथा और हितकारी उपदेशमें तत्पर रहता है, वह इस देहका नाश होनेपर भगवान् विष्णुके समान तेजस्वी स्वरूप धारण करके उन्हींके परम धाममें चला जाता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तिका उपाय

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

पुराण भारतीय संस्कृतिकी अमूल्य निधि है। पुराणोंमें मानव-जीवनको ऊँचा उठानेवाली अनेक सरल, सरस, सुन्दर और विचित्र-विचित्र कथाएँ भरी पड़ी हैं। उन कथाओंका तात्पर्य राग-द्वेषरहित होकर अपने कर्तव्यका पालन करने और भगवान्‌को प्राप्त करनेमें ही है। पद्मपुराणके भूमिखण्डमें ऐसी ही एक कथा आती है।

अमरकण्टक तीर्थमें सोमशर्मा नामके एक ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नीका नाम था सुमना। वह बड़ी साध्वी और पतिव्रता थी। उनके कोई पुत्र नहीं था और धनका भी उनके पास अभाव था। पुत्र और धनका अभाव होनेके कारण सोमशर्मा बहुत दुःखी रहने लगे। एक दिन अपने पतिको अत्यन्त चिन्तित देखकर सुमनाने कहा कि 'प्राणनाथ! आप चिन्ताको छोड़ दीजिये; क्योंकि चिन्ताके समान दूसरा कोई दुःख नहीं है। स्त्री, पुत्र और धनकी चिन्ता तो कभी करनी ही नहीं चाहिये। इस संसारमें ऋणानुबन्धसे अर्थात् किसीका ऋण चुकानेके लिये और किसीसे ऋण वसूल करनेके लिये ही जीवका जन्म होता है। माता, पिता, स्त्री, पुत्र, भाई, मित्र, सेवक आदि सब लोग अपने-अपने ऋणानुबन्धसे ही इस पृथ्वीपर जन्म लेकर हमें प्राप्त होते हैं। केवल मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी ऋणानुबन्धसे ही प्राप्त होते हैं।'

'संसारमें शत्रु, मित्र और उदासीन—ऐसे तीन प्रकारके पुत्र होते हैं। शत्रु-स्वभाववाले पुत्रके दो भेद हैं। पहला, किसीने पूर्वजन्ममें दूसरेसे ऋण लिया, पर उसको चुकाया नहीं तो दूसरे जन्ममें ऋण देनेवाला उस ऋणीका पुत्र बनता है। दूसरा, किसीने पूर्वजन्ममें दूसरेके पास अपनी धरोहर रखी, पर जब धरोहर देनेका समय आया, तब उसने धरोहर लौटायी नहीं, हड़प ली, तो दूसरे जन्ममें धरोहरका स्वामी उस धरोहर हड़पनेवालेका पुत्र बनता है। ये दोनों ही प्रकारके पुत्र बचपनसे माता-पिताके साथ वैर रखते हैं और उनके साथ शत्रुकी तरह बर्ताव करते हैं। बड़े होनेपर वे माता-पिताकी सम्पत्तिको व्यर्थ ही नष्ट कर देते हैं। जब उनका विवाह हो जाता है, तब वे माता-पितासे कहते हैं कि यह घर, खेत आदि सब मेरा है, तुमलोग मुझे मना करनेवाले कौन हो? इस तरह वे कई प्रकारसे माता-पिताको कष्ट देते हैं। माता-पिताकी मृत्युके बाद वे उनके लिये श्राद्ध-तर्पण आदि भी नहीं करते। मित्र-स्वभाववाला पुत्र बचपनसे ही माता-पिताका हितैषी होता है। वह माता-पिताको सदा संतुष्ट रखता है और स्नेहसे, मीठी वाणीसे उनको सदा प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करता है। माता-पिताकी मृत्युके बाद वह उनके लिये श्राद्ध-तर्पण, तीर्थयात्रा, दान आदि भी करता है। उदासीन-स्वभाववाला पुत्र सदा उदासीनभावसे रहता है। वह न कुछ देता है और न कुछ लेता है। वह न रुष्ट होता है, न संतुष्ट; न सुख देता है, न दुःख*। इस प्रकार जैसे पुत्र तीन प्रकारके होते हैं, ऐसे ही माता, पिता, पत्नी, पुत्र, भाई आदि और नौकर, पड़ोसी, मित्र तथा गाय, भैंस, घोड़े आदि भी तीन प्रकारके (शत्रु, मित्र और उदासीन) होते हैं। इन सबके साथ हमारा सम्बन्ध ऋणानुबन्धसे ही होता है।'

'प्रियतम! जिस मनुष्यको जितना धन मिलना है, उसको बिना परिश्रम किये ही उतना धन मिल जाता है और जब धन जानेका समय आता है, तब कितनी ही रक्षा करनेपर भी वह चला जाता है—ऐसा समझकर आपको धनकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। वास्तवमें धर्मके पालनसे ही पुत्र और धनकी प्राप्ति होती है। धर्मका आचरण करनेवाले मनुष्य ही संसारमें सुख पाते हैं। इसलिये आप धर्मका अनुष्ठान करें। जो मनुष्य मन, वाणी और शरीरसे धर्मका आचरण करता है, उसके लिये संसारमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती।'

ऐसा कहनेके बाद सुमनाने विस्तारसे धर्मका स्वरूप तथा उसके अङ्गोंका वर्णन किया। उसको सुनकर सोमशर्माने

* कोई व्यक्ति किसी सन्तकी खूब लगनसे सेवा करता है। अन्तसमयमें किसी कारणसे सन्तको उस सेवककी याद आ जाय तो वह उस सेवकके घरमें पुत्ररूपसे जन्म लेता है और उदासीनभावसे रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न किया कि 'तुम्हें इन सब गहरी बातोंका ज्ञान कैसे हुआ ?' सुमनाने कहा—'आप जानते ही हैं कि मेरे पिताजी धर्मात्मा और शास्त्रोंके तत्त्वको जाननेवाले थे, जिससे साधुलोग भी उनका आदर किया करते थे। वे खुद भी अच्छे-अच्छे सन्तोंके पास जाया करते तथा सत्संग किया करते थे। मैं उनकी एक ही बेटी होनेके कारण वे मेरेपर बड़ा स्नेह रखा करते तथा अपने साथ मुझे भी सत्संगमें ले जाया करते थे। इस प्रकार सत्संगके प्रभावसे मुझे भी धर्मके तत्त्वका ज्ञान हो गया।'

यह सब सुनकर सोमशर्माने पुत्रकी प्राप्तिका उपाय पूछा। सुमनाने कहा कि 'आप महामुनि वसिष्ठजीके पास जायँ और उनसे प्रार्थना करें। उनकी कृपासे आपको गुणवान् पुत्रकी प्राप्ति हो सकती है।' पत्नीके ऐसा कहनेपर सोमशर्मा वसिष्ठजीके पास गये। उन्होंने वसिष्ठजीसे पूछा कि 'किस पापके कारण मुझे पुत्र और धनके अभावका कष्ट भोगना पड़ रहा है ?' वसिष्ठजीने कहा —'पूर्वजन्ममें तुम बड़े लोभी थे तथा दूसरोंके साथ सदा द्वेष रखते थे। तुमने कभी तीर्थयात्रा, देवपूजन, दान आदि शुभकर्म नहीं किये। श्राद्धका दिन आनेपर तुम घरसे बाहर चले जाते थे। धन ही तुम्हारा सब कुछ था। तुमने धर्मको छोड़कर धनका ही आश्रय ले रखा था। तुम रात-दिन धनकी ही चिन्तामें लगे रहते थे। तुम्हें अरबों-खरबों स्वर्णमुद्राएँ प्राप्त हो गयीं, फिर भी तुम्हारी तृष्णा कम नहीं हुई, प्रत्युत बढ़ती ही रही। तुमने जीवनमें जितना धन कमाया, वह सब जमीनमें गाड़ दिया। स्त्री और पुत्र पूछते ही रह गये; किंतु तुमने उनको न तो धन दिया और न धनका पता ही बताया। धनके लोभमें आकर तुमने पुत्रका स्नेह भी छोड़ दिया। इन्हीं कर्मोंके कारण तुम इस जन्ममें दरिद्र और पुत्रहीन हुए हो। हाँ, एक बार तुमने घरपर अतिथि-रूपसे आये एक विष्णुभक्त और धर्मात्मा ब्राह्मणकी प्रसन्नता-पूर्वक सेवा की। उनके साथ तुमने अपनी स्त्रीसहित एकादशी-व्रत रखा और भगवान् विष्णुका पूजन भी किया। इस कारण तुम्हें उत्तम ब्राह्मण-वंशमें जन्म मिला है। विप्रवर ! उत्तम स्त्री, पुत्र, कुल, राज्य, सुख, मोक्ष आदि दुर्लभ वस्तुओंकी प्राप्ति भगवान् विष्णुकी कृपासे ही होती है। अतः तुम भगवान् विष्णुकी ही शरणमें जाओ और उन्हींका भजन करो।'

वसिष्ठजीके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर सोमशर्मा अपनी स्त्री सुमनाके साथ बड़ी तत्परतासे भगवान्‌के भजनमें लग गये। उठते, बैठते, चलते, सोते आदि सब समयमें उनकी दृष्टि भगवान्‌की तरफ ही रहने लगी। बड़े-बड़े विघ्न आनेपर भी वे अपने साधनसे विचलित नहीं हुए। इस प्रकार उनकी लगनको देखकर भगवान् उनके सामने प्रकट हो गये। भगवान्‌के वरदानसे उनको मनुष्यलोकके उत्तम भोगोंकी और भगवद्भक्त तथा धर्मात्मा पुत्रकी प्राप्ति हो गयी।

सोमशर्माके पुत्रका नाम सुव्रत था। सुव्रत बचपनसे ही भगवान्‌का अनन्य भक्त था। खेल खेलते समय भी उसका मन भगवान् विष्णुके ध्यानमें लगा रहता था। जब माता सुमना उससे कहती कि 'बेटा ! तुझे भूख लगी होगी, कुछ खा ले', तब वह कहता कि 'माँ ! भगवान्‌का ध्यान महान् अमृतके समान है, मैं तो उसीसे तृप्त रहता हूँ !' जब उसके सामने मिठायी आती, तो वह उसको भगवान्‌के ही अर्पण कर देता और कहता कि 'इस अन्नसे भगवान् तृप्त हों।' जब वह सोने लगता, तब भगवान्‌का चिन्तन करते हुए कहता कि 'मैं योग-निद्रापरायण भगवान् कृष्णकी शरण लेता हूँ।' इस प्रकार भोजन करते, वस्त्र पहनते, बैठते और सोते समय भी वह भगवान्‌के चिन्तनमें लगा रहता और सब वस्तुओंको भगवान्‌के अर्पण करता रहता। युवावस्था आनेपर भी वह भोगोंमें आसक्त नहीं हुआ, प्रत्युत भोगोंका त्याग करके सर्वथा भगवान्‌के भजनमें ही लग गया। उसकी ऐसी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उसके सामने प्रकट हो गये। भगवान्‌ने उससे वर माँगनेके लिये कहा तो वह बोला—'श्रीकृष्ण ! अगर आप मेरेपर प्रसन्न हैं तो मेरे माता-पिताको सशरीर अपने परमधाममें पहुँचा दें और मेरे साथ मेरी पत्नीको भी अपने लोकमें ले चलें।' भगवान्‌ने सुव्रतकी भक्तिसे संतुष्ट होकर उसको उत्तम वरदान दे दिया। इस प्रकार पुत्रकी भक्तिके प्रभावसे सोमशर्मा और सुमना भी भगवद्धामको प्राप्त हो गये।

इस कथामें विशेष बात यह आयी है कि संसारमें किसीका ऋण चुकानेके लिये और किसीसे ऋण वसूल करनेके लिये ही जन्म होता है; क्योंकि जीवने अनेक लोगोंसे लिया है और अनेक लोगोंको दिया है। लेन-देनका यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार अनेक जन्मोंसे चला आ रहा है और इसको बंद किये बिना जन्म-मरणसे छुटकारा नहीं मिल सकता।

संसारमें जिनसे हमारा सम्बन्ध होता है, वे माता, पिता, स्त्री, पुत्र तथा पशु-पक्षी आदि सब लेन-देनके लिये ही आये हैं। अतः मनुष्यको चाहिये कि वह उनमें मोह-ममता न करके अपने कर्तव्यका पालन करे अर्थात् उनकी सेवा करे, उन्हें यथाशक्ति सुख पहुँचाये। यहाँ यह शंका हो सकती है कि अगर हम दूसरेके साथ शत्रुताका बर्ताव करते हैं तो इसका दोष हमें क्यों लगता है; क्योंकि हम तो ऐसा व्यवहार पूर्वजन्मके ऋणानुबन्धसे ही करते हैं ? इसका समाधान यह है कि मनुष्यशरीर विवेकप्रधान है। अतः अपने विवेकको महत्त्व देकर हमारे साथ बुरा व्यवहार करनेवालेको हम माफ कर सकते हैं और बदलेमें उससे अच्छा व्यवहार कर सकते हैं। मनुष्यशरीर बदला लेनेके लिये नहीं है, प्रत्युत जन्म-मरणसे सदाके लिये मुक्त होनेके लिये है। अगर हम पूर्वजन्मके ऋणानुबन्धसे लेन-देनका व्यवहार करते रहेंगे तो हम कभी जन्म-मरणसे मुक्त हो ही नहीं सकेंगे। लेन-देनके इस व्यवहारको बंद करनेका उपाय है—निःस्वार्थभावसे दूसरोंके हितके लिये कर्म करना। दूसरोंके हितके लिये कर्म करनेसे पुराना ऋण समाप्त हो जाता है और बदलेमें कुछ न चाहनेसे नया ऋण उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार ऋणसे मुक्त होनेपर मनुष्य जन्म-मरणसे छूट जाता है।

अगर मनुष्य भक्त सुव्रतकी तरह सब प्रकारसे भगवान्‌के ही भजनमें लग जाय तो उसके सभी ऋण समाप्त हो जाते हैं अर्थात् वह किसीका भी ऋणी नहीं रहता।* भगवद्भजन प्रभावसे वह सभी ऋणोंसे मुक्त होकर सदाके लिये जन्म-मरणके चक्रसे छूट जाता है और भगवान्‌के परमधामको प्राप्त हो जाता है।

पुराण-महिमा

[पूज्यपाद श्रीदेवराहा बाबाजी महाराजके अमृत-वचन]

भारतीय संस्कृतिके मूलाधारके रूपमें वेदोंके अनन्तर पुराणोंका ही सम्मानपूर्ण स्थान है। वेदोंमें वर्णित अगम रहस्योंतक जन-सामान्यकी पहुँच नहीं हो पाती, परंतु भक्तिरस-परिप्लुत पुराणोंकी मङ्गलमयी शोक-निवारिणी, ज्ञान-प्रदायिनी दिव्य कथाओंका श्रवण-मनन, पठन-पाठन कर जन-साधारण भी भक्ति-तत्त्वका अनुपम रहस्य सहज ही जान लेते हैं। वायुपुराणमें कहा है—

यस्मात् पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

(१।२०३)

'प्राचीन कालसे प्राणित होनेके कारण यह पुराण कहा जाता है। जो इसकी व्याख्या जानता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

महाभारतमें कहा है—

'पुराणसंहिताः पुण्याः कथा धर्मार्थसंश्रिताः।'

(आदिपर्व १।१६)

अर्थात् पुराणोंकी पवित्र कथाएँ धर्म और अर्थको देनेवाली हैं। अध्यात्मकी दिशामें अग्रसर होनेवाले कल्याणेच्छु साधकोंको पौराणिक कथाओंके अनुशीलनसे तात्त्विक बोधकी उपलब्धि होती है। साथ ही हृदयमें प्रभु-पाद-पद्मोंकी सच्ची प्रीति अथवा अनुरक्तिकी मन्दाकिनी प्रवाहित हो उठती है। परमात्म-दर्शनके लिये अथवा शारीरिक एवं मानसिक रोग-निवृत्तिके लिये श्रद्धापूर्वक अत्यन्त कल्याणकारी पुराणोंका पारायण करना चाहिये।

पञ्चम वेदके रूपमें दिव्य पौराणिक ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्माजीके द्वारा अभिव्यक्त हुआ—

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ॥

(श्रीमद्भा० ३।१२।३९)

'इतिहास और पुराण-रूप पाँचवें वेदको उन समर्थ, सर्वज्ञ ब्रह्माजीने अपने सभी मुखोंसे प्रकट किया।'

---

*देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किङ्करो नायमृणी च राजन्। सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥ (श्रीमद्भा० ११।५।४१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

(मत्स्यपुराण ५३।३)

'ब्रह्माजीने समस्त शास्त्रोंमें सर्वप्रथम पुराणोंका स्मरण-उपदेश किया। पीछे उनके मुखसे वेद प्रकट हुए।'

लोकभाषामें वर्णित होनेके कारण वेदोंकी अपेक्षा पुराण अधिक लोकप्रिय हैं। उनमें प्रतिपादित मधुरातिमधुर आख्यानों एवं कथाओंकी सश्रद्ध चर्चा राजमहलसे लेकर झोपड़ीतक होती है।

राजनीति, धर्मनीति, इतिहास, समाज-विज्ञान, ग्रह-नक्षत्र-विज्ञान, आयुर्वेद, अलङ्कार, व्याकरण, भूगोल, ज्योतिष आदि समस्त विद्याओंका प्रतिपादन पुराणोंमें हुआ है। भारतीय संस्कृतिका विशिष्ट ज्ञान हमें पुराणोंद्वारा प्राप्त होता है। इसके द्वारा भारतीय प्रतिभाका उत्कृष्ट फल प्रतिफलित होता है।

ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च।
ससंहारप्रदानां च पुराणे पञ्चवर्णके॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैवात्र कीर्त्यते।
सर्वेष्वपि पुराणेषु यद्विरुद्धं च यत्फलम्॥

(मत्स्यपु० ५३।६५-६६)

'पाँच लक्षणोंवाले सभी पुराणोंमें सृष्टि और संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्रके तथा भुवनके माहात्म्यका वर्णन किया गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका भी इनमें विस्तृत विवेचन किया गया है। इनके विरुद्ध आचरण करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसका भी निरूपण किया गया है।'

अतः पुरुषार्थ-चतुष्टय-प्रदाता दिव्य ज्ञान-कोष पुराणोंका सेवन हमारा परम अभीष्ट होना चाहिये।

आयुष्मतां कथां कीर्तयन्तो माङ्गल्यानीतिहासपुराणानि।

(आश्वलायन, गृह्यसूत्र ४।६)

चिरंजीवी मनुष्योंकी कथाएँ और माङ्गलिक इतिहास-पुराणोंका पाठ करते हुए समय-यापन करें।

प्रेषक—श्रीमदनजी शर्मा शास्त्री

पुराणोंका महत्त्व

(पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

तुलसीकाननं यत्र यत्र पद्मवनानि च।
पुराणपठनं यत्र तत्र संनिहितो हरिः[१]॥

पुराण शब्दका अर्थ है—जो वृत्तान्त पहले हो गया हो, उसका जिसमें वर्णन हो वही पुराण है। पुराणोंके अनेक भेद हैं—पुराण, महापुराण, उपपुराण आदि।

पहले हम समझते थे कि पुराणोंमें कथाएँ ही होंगी, परंतु जब हमने पुराणोंका श्रवण-अध्ययन किया तब तो हम चकित रह गये। संसारका ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं,जो पुराणोंमें न हो। हम व्याकरणका ग्रन्थ केवल अष्टाध्यायीको ही समझते थे, किंतु नारदपुराणमें व्याकरणका श्लोक-बद्ध ऐसा विवरण है कि उसे कण्ठस्थ करके मनुष्य पूर्ण वैयाकरण बन सकता है। जितने काव्य-ग्रन्थ लिखे गये हैं, वे सब पुराणोंकी कथाके ही आधारपर हैं। पुराण तो वेदोंसे भी पुराने हैं। हमने एक बार पुराण-सत्र किया था। यह ३०-४० वर्ष पुरानी बात है। तबसे अबतक हमारे यहाँ निरन्तर पुराणोंकी कथा क्रमशः नित्य-नियमसे होती रहती है।

साक्षात् भगवान्‌ने ही जीवोंके, संसारसे निस्तारके निमित्त व्यास-रूपसे अवतार ग्रहण करके पुराणोंका व्यास करके संग्रह किया। इन पुराणोंके पढ़ने तथा सुननेसे मनुष्योंके पापोंका क्षय होता है। पुराणोंके पठन-पाठनसे यह धर्म है, यह अधर्म है—इसका ज्ञान होता है, सदाचार क्या है, इसका भी प्रवर्तन होता है और मनुष्योंकी मति भगवान्‌की भक्तिमें लगती है।

नारदपुराणमें कहा गया है कि जो अठारह पुराणोंको सुनता है अथवा विधानपूर्वक कहता है, उसकी मुक्ति हो जाती है, वह फिर जन्म-मरणके चक्करसे सदा-सर्वदाके लिये छूट जाता है।[२]

१-जहाँ तुलसीका सघन वन हो, जहाँ कमलके कुण्ड हों और जहाँ पुराणोंका नित्य पाठ होता हो, वहाँ श्रीहरिकी संनिधि है।
२-अष्टादश पुराणानि यः शृणोति नरोत्तमः। कथयेद् वा विधानेन नेह भूयः स जायते॥ (नारदीय)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिये कहा है कि पात्र देखकर ही पुराणोंको सुनाना चाहिये। अपात्रोंको सुनानेसे वे लोग अर्थका अनर्थ करने लगते हैं। जो सुपात्र हो, श्रद्धावान् हो, वही पुराणोंके सुननेका अधिकारी होता है। इसलिये जो दम्भी हो, पापी हो, देवताओं और गुरुओंका निन्दक हो, साधुओंका द्वेषी हो, शठ हो ऐसे लोगोंको पुराणोंका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो शान्त-स्वभावके हों, जिनके चित्तमें भगवान् रामकी भक्ति हो, जो सेवा-शुश्रूषामें रत हों, निर्मत्सर हों, पवित्र हों तथा सद्वैष्णव हों, उन्हींको पुराणोंका उपदेश देना चाहिये।[१]

पुराणोंकी कथाएँ रोचक भी हैं, भयानक भी हैं और यथार्थ भी हैं। इनसे सदुपदेश मिलते हैं। पुराणोंकी सत्कथाओंका संग्रह करके प्रकाशित किया जाय तो लोगोंका बड़ा कल्याण हो। वास्तवमें पुराण और महाभारत—ये पञ्चम वेद ही हैं। जिन स्त्री, शूद्र तथा द्विज-बन्धुओंको वेदाध्ययनका अधिकार नहीं है, वे इन पञ्चम वेदसे ही वेदोंका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि ये वेदोंके भाष्य ही हैं।

पुराणोंकी प्रामाणिकता, दार्शनिकता और महत्ता

(स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज)

पुराणोंकी प्रामाणिकता

'पुराण' शब्दका अर्थ पुरातन या प्राचीन है। मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद अनादि, अपौरुषेय हैं। श्रीव्यासादिविरचित पुराण अर्थतः अनादि होते हुए भी पौरुषेय हैं। प्रजापति पितामहको सर्वप्रथम पुराणोंका स्मरण हुआ, पुनः वेदोंका। इस प्रकार वेदोंकी अभिव्यक्तिकी अपेक्षा पुराणोंकी अभिव्यक्ति पुरातन होनेके कारण पुराणको 'पुराण' कहा गया है। पौरुषेय-अपौरुषेय भेदसे पुराण दो प्रकारके हैं। पौरुषेय पुराण श्रीवेदव्यासादिविरचित हैं। अपौरुषेय पुराण अष्टविध ब्राह्मणान्तर्गत होनेसे वेदात्मक हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चार प्रकारके मन्त्र-समुदाय हैं। इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र (वस्तुसंग्रहवाक्य), अनुव्याख्यान (मन्त्र-विवरण) और व्याख्यान (अर्थवाद)—ये अष्टविध ब्राह्मण हैं। इनमें **'असद्वा इदमग्र आसीत्'** (तैत्तिरीय २।७।१) आदि जगत्कारणके ख्यापक ब्राह्मणवचन पुराण हैं। 'शतपथब्राह्मण ११।५।१ आदिके उर्वशी-पुरुरवा-संवाद और प्राणादि-संवाद इतिहास-लक्षणात्मक हैं। चारों प्रकारके मन्त्रसमुदायसहित अष्टविध ब्राह्मण परमात्माके बुद्धि-प्रयत्न-निरपेक्ष निःश्वास हैं। बृहदारण्यक (२।४।१०) में इनका वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है—

स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितात् पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि निश्वसितानि।

ऋषिप्रणीत रामायण-महाभारतरूप इतिहास और विष्णु, ब्रह्म आदि अष्टादश पुराण पञ्चम वेद हैं। इनका वर्णन ग्रन्थोंमें इस प्रकारसे उपलब्ध होता है—**'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं·····'** (छान्दोग्य० ७।१।२), **'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदः'** (न्यायदर्शन ४।१।६२ वात्स्यायनभाष्य), **'इतिहास-पुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते'** (श्रीमद्भा० १।४।२०)।

उक्त स्थलोंमें निर्दिष्ट इतिहास, पुराण ब्राह्मणप्रभेद नहीं माने जा सकते, क्योंकि पञ्चम वेदके रूपमें और व्याकरणादिके संदर्भमें उनका उल्लेख है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ॥
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति।

(महा० आदिपर्व० १।२६७-२६८)

'इतिहास और पुराणोंकी सहायतासे ही वेदोंके अर्थका विस्तार एवं समर्थन करना चाहिये। जो इतिहास और पुराणोंसे अनभिज्ञ हैं, उससे वेद डरते हैं कि यह मुझपर प्रहार कर देगा। **'इतिहासपुराणाख्यमुपाङ्गं च**

१- न दाम्भिकाय पापाय देवगुर्वत्यनुसूयवे। देयं कदापि साधूनां द्वेषिणे न शठाय च॥
शान्ताय शमचित्ताय शुश्रूषाभिरताय च। निर्मत्सराय शुचये देयं सद्वैष्णवाय च॥ (नारदीयपुराण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकीर्तितम्' (सीतोपनिषद्)। 'इतिहास और पुराण उपाङ्ग कहे गये हैं।' इन वचनोंके अनुसार मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदसे पृथक् इतिहास, पुराणका बोध प्राप्त होता है। **'इतिहास-पुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्'** (महा० आदि० १।६३), **'जयो नामेतिहासोऽयम्'** (महा० आदि० ६२।२०) **'पुराणपूर्णचन्द्रेण श्रुतिज्योत्स्नाः प्रकाशिताः'** (आदि० १।८६) आदि वचनोंके अनुसार महाभारत जहाँ इतिहास सिद्ध होता है, वहाँ पुराण लक्षणलक्षित होनेसे पुराण भी।

पुराणोंमें लोकवृत्तका प्रतिपादन—न्यायदर्शनके वात्स्यायन-भाष्यमें कहा गया है—वेद, धर्मशास्त्र तथा पुराण—इनके मुख्य विषय भिन्न-भिन्न होते हैं। जिस प्रकार रूपमें चक्षु, रसमें रसना, गन्धमें नासिका, स्पर्शमें त्वक् और शब्दमें श्रोत्रका ही प्रामाण्य है, उसी प्रकार अपने-अपने विषयमें श्रुति-स्मृति और पुराण तीनों ही प्रमाण हैं। केवल एकसे काम नहीं चलता। वेदका मुख्य प्रतिपाद्य विषय यज्ञ है। यज्ञमें देवपूजा, देवसम्बन्धी सङ्गतिकरण और देवविषयक दानादिका संनिवेश है। इतिहास-पुराणोंका मुख्य विषय है लोकवृत्त (चरित्र)-प्रतिपादन। लोकव्यवहारकी व्यवस्था बताना यह धर्मशास्त्रका प्रधान विषय है। लिखा है—

'विषयव्यवस्थानाच्च यथाविषयं प्रामाण्यम्। अन्यो मन्त्रब्राह्मणस्य विषयः, अन्यश्च इतिहासपुराणधर्मशास्त्राणाम् इति, यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य, लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य, लोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः, तत्रैकेन न सर्वं व्यवस्थाप्यत इति, यथा विषयं एतानि प्रमाणानि इन्द्रियादिवदिति' (४।१।५२ न्यायदर्शन वात्स्यायन-भाष्य)।

यही कारण है कि धर्मशास्त्रविरुद्ध पौराणिक और ऐतिह्य चरित्र अनुकरणीय नहीं होते। तभी तो कहा है—

अतिरक्ततया नार्यां त्यक्तान्यललनास्पृहः।
सीतायां रामवत्सोऽयमनुकूलः प्रकीर्तितः॥
राधायामेव कृष्णस्य सुप्रसिद्धानुकूलता।
तदालोके कदाप्यस्य नान्यासङ्गः स्मृतिं व्रजेत्॥

(उज्ज्वलनीलमणि, नायकभेद २२-२३)

वर्तितव्यं शमिच्छद्भिर्भक्तवन्न तु कृष्णवत्।
इत्येवं भक्तिशास्त्राणां तात्पर्यस्य विनिर्णयः॥
रामादिवद्वर्तितव्यं न क्वचिद्रावणादिवत्।
इत्येष मुक्तिधर्मादिपराणां नय इष्यते॥

(उज्ज्वलनीलमणि, हरिवल्लभा २३-२४)

'श्रीरामचन्द्रजी जिस प्रकार एकमात्र श्रीसीतादेवीमें अनुरक्त थे, ठीक उसी प्रकार जो अन्य-ललनाविषयक स्पृहाका परित्याग कर एक स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त होता है, वह (नायक) अनुकूल माना जाता है। श्रीराधामें श्रीकृष्णकी अनुकूलता प्रसिद्ध है। राधिकाके अवलोकन करनेपर उनका अन्य स्त्रीविषयक सङ्ग स्मृतिपथमें स्फुरित नहीं होता।'

कल्याणेप्सुओंको चाहिये कि वे भगवद्भक्तोंके सदृश आचरण करें, कभी भी श्रीकृष्ण-सदृश आचरण न करें। भक्ति-मुक्तिके पथिकोंको रामादिकी भाँति व्यवहार करना चाहिये, कभी भी रावणादिके समान आचरण नहीं करना चाहिये। भक्तिशास्त्रोंके तात्पर्यका यह निचोड़ है।

समस्त वेदों, पुराणों, स्मृतियों, इतिहासों, तर्कों और आगमोंका परम तात्पर्य जगत्कारण परमात्मतत्त्वके परिमार्गणकी योग्यता प्रदान कर उस स्वप्रकाश-परमात्मतत्त्वमें आत्मबुद्धि उदित करनेमें ही चरितार्थ है। सृष्टिश्रुति और सृष्टिप्रतिपादक वचनोंका तात्पर्य स्रष्टा परमात्माका आत्म और आत्मीयभावसे भजन करनेमें ही चरितार्थ है।

श्रीमद्भागवतादि पुराण भक्ति, ज्ञान, विरागलक्षण, पारमहंस्यधर्म—नैष्कर्म्यके प्रतिपादक हैं। इनमें आदि, मध्य, और अन्तमें वैराग्य उत्पन्न करनेवाली बहुत-सी अमृतस्वरूप कथाएँ हैं। उनसे सत्पुरुषों और सुरोंको सुरदुर्लभ अनुपम आनन्द मिलता है। सर्ववेदान्तसार अद्वितीय ब्रह्मात्मतत्त्व पुराणोंका प्रतिपाद्य विषय है। ये कैवल्यैक-प्रयोजन हैं। जैसे दिव्य अमृत पान करनेपर कुछ भी पान करना शेष नहीं रहता, वैसे ही सर्ववेदान्तसार पुराणोंको जान लेनेपर जिज्ञासुके लिये और कुछ भी जानना शेष नहीं रहता। जो दाम्भिक, नास्तिक, शठ, श्रवणके प्रति अश्रद्धालु, अभक्त और उद्धत न हो प्रत्युत ब्राह्मणभक्त, प्रिय, साधुस्वभाव, पवित्र हो, वह पुराण-श्रवणका अधिकारी है। यदि शूद्र और स्त्री भी भगवान्‌के प्रति भक्तिभावसम्पन्न हों तो वे भी पुराण-श्रवणके अधिकारी हैं।

आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यानसंयुतम्।
हरिलीलाकथाव्रातामृतानन्दितसत्सुरम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्ववेदान्तसारं यद् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम्।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम्॥

(श्रीमद्भा० १२।१३।११-१२)

श्रद्धापूर्वक दत्तचित्त होकर नित्य पुराण-श्रवण करनेका फल भगवत्स्वरूपमें परा भक्ति और उसके प्रभावसे कर्म-बन्धनकी निवृत्ति है—

य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः।
मयि भक्तिं परां कुर्वन् कर्मभिर्न स बध्यते॥

(श्रीमद्भा० ११।२९।२८)

—(क्रमशः)

पुराणकी महिमा एवं माहात्म्य

(अनन्तश्री स्वामी माधवाश्रमजी महाराज)

'पुराण' शब्द सुनते ही जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि पुराण क्या है? इसका अर्थ क्या है? अनेक ग्रन्थोंमें इसकी व्याख्याएँ की गयी हैं। उन्हींके आश्रयणसे हम यहाँ इसपर विचार कर रहे हैं।

'पुरा अपि नवं पुराणम्' से प्रतीत होता है कि पुराना होनेपर भी जो नवीन हो वह पुराण है। निरुक्तकार व्याख्या करते हैं—**'पुराणमाख्यानं पुराणम्'** अर्थात् जिसमें प्राचीन आख्यान हों, वह पुराण है। वायुपुराण **'यस्मात् पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्'**—(१।१।१८३)के अनुसार— जो पूर्वमें भी सजीव था, वह पुराण कहा गया है। देवीभागवत (१।२।१८)में पुराणोंके पाँच लक्षण इस प्रकार कहे गये हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

पुराण भी वेदार्थके ही बोधक हैं। पुराणोंमें वेदोंकी व्याख्या विविध कथा-दृष्टान्तोंद्वारा की गयी है। पुराणोंके ज्ञानके बिना वेदोंका भी ज्ञान पूर्णरूपेण नहीं हो सकता। इसके विषयमें नारदपुराणका वचन द्रष्टव्य है—

वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणेष्वेव सर्वदा।

(नारदं० उ० २४।१८)

'वेद पुराणोंमें ही प्रतिष्ठित हैं इसमें कोई संशय नहीं है।' वेदकी व्याख्या इतिहास और पुराणोंसे ही की जा सकती है। महाभारतमें कहा गया है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।

वायुपुराण (१।१।१८०) में भी यह वचन मिलता है—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो· द्विजः।
न चेत् पुराणं स विद्यात् नैव स स्याद् विचक्षणः॥

'जो द्विज अङ्गोंसहित चारों वेदोंको जानता है, किंतु पुराणोंको नहीं जानता, वह पण्डित कदापि नहीं हो सकता। श्रीमद्भागवतमें भी स्पष्ट कहा गया है—**'इतिहासं पुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते।'** इतिहास और पुराणोंको पाँचवाँ वेद कहा गया है।

पुराणोंमें तीर्थ-व्रत-अनुष्ठान

पुराणोंमें काम्यादि अनुष्ठानोंका वर्णन अनेक स्थलोंपर है और प्रत्येक आख्यानके अन्तमें उस आख्यायिकाकी फलश्रुति भी रहती है। प्रायः सभी पुराणोंमें यही शैली प्रशस्त है। यद्यपि पुराणोंका परम तात्पर्य अद्वैत ब्रह्ममें ही है तथापि अवान्तर तात्पर्य अनेक काम्यादि कर्मोंमें भी है। अतएव इसी संदर्भमें तीर्थोंका माहात्म्य एवं तीर्थस्नान, तीर्थमें दान-पुण्य तथा व्रत करनेकी विधि वर्णित है।

पुराणोंमें धर्म-निरूपण एवं निर्णय

पुराणोंमें विविध विद्याओंके साथ वर्णाश्रमधर्मका, विविध संस्कारोंका, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष तथा धर्म-शास्त्रादिका वर्णन प्रचुर मात्रामें है। पुराणोंके बिना वेदमें भी गति होनी सम्भव नहीं। यह निश्चय समझ लेना चाहिये कि पुराण भी वेदवत् ही प्रमाण माने जाते हैं।

रामकथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी॥
रामकथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय पुराणोंका महत्त्व

(श्री १०८ दण्डी स्वामी श्रीविपिनचन्द्रानन्द सरस्वतीजी 'जज स्वामी')

'पुराण' भारतवर्षकी बहुमूल्य निधि हैं, जिनका महत्त्वपूर्ण परिचय सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद्के सप्तम अध्याय (१।२) में इस प्रकार मिलता है—'शोकाकुल नारदजी सनत्कुमारजीके पास गये और उनसे आत्मज्ञानकी जिज्ञासा की। सनत्कुमारजीके यह पूछनेपर कि 'आप पहलेसे क्या-क्या जानते हैं?' नारद मुनिने उत्तर दिया कि 'मैं ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेदके अतिरिक्त पञ्चम वेद इतिहास, पुराणादि तथा अन्य अनेक शास्त्रों, विद्याओंसे परिचित हूँ।'. तब सनत्कुमारजीने परोवरीय (उत्तरोत्तर उत्कृष्ट)-क्रमसे शब्द-ब्रह्मका परब्रह्मरूप भूमसंज्ञक आत्मतत्त्वमें ही परम तात्पर्य बताकर, शोकापहारक भूमाविद्या-रूप आत्मज्ञान प्रदान कर देवर्षि नारदको कृतार्थ किया। आधुनिक समयमें भी भारतके प्राचीन इतिहासकी शृङ्खला बिठानेमें पाश्चात्त्य विद्वानोंने पौराणिक सहायता प्राप्त की है। भारतीय साहित्य और धर्मशास्त्रोंमें पुराणोंका अत्यन्त आदरसे स्मरण हुआ है और उन्हें प्रबल प्रमाण भी माना गया है।

वेदव्यासद्वारा विरचित पुराण आख्यायिकाओं, विद्याओं, कथाओं और इतिहासोंके संग्रहरूप ग्रन्थ हैं, जो प्रायः श्लोकबद्ध हैं और वैदिक सिद्धान्तोंकी व्याख्यारूप हैं। इनकी भाषा इतनी सरल है कि सर्वसाधारणजन भी क्लिष्ट दार्शनिक सिद्धान्तों एवं विद्याओंको हृदयङ्गम कर सकते हैं। भारतवर्षका इतिहास, सभ्यता और शिष्टाचार तथा अनेक विद्याओं एवं कलाओंका संग्रह पुराण-ग्रन्थोंमें निहित है। यदि पुराण न होते तो भारतका इतिहास तथा परम्परा-स्मृति लुप्त हो गये होते।

श्रीमद्भागवतके अनुसार मुनीश्वर व्यासने अपनी दिव्य-दृष्टिसे सभी वर्णों और आश्रमोंका हित कैसे हो, इसपर विचार किया। उन्होंने अग्निष्टोमादि कर्मोंको लोगोंका हृदय शुद्ध करनेवाला समझकर यज्ञोंका विस्तार करनेके लिये एक ही वेदके ऋक्, यजुः, साम और अथर्व—चार विभाग किये तथा महाभारत नामक इतिहास और सत्रह पुराणोंकी रचना की। फिर भी उन्हें संतोष नहीं हुआ। देवर्षि नारदकी प्रेरणासे उन्होंने श्रीमद्भागवतकी रचना की। परमहंस श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवतपुराणको व्यासजीसे प्राप्त किया। राजा परीक्षित्का कल्याण श्रीमद्भागवत महापुराणके श्रवण और मननसे हुआ। तबसे यह महापुराण सर्वसाधारणके लिये परम कल्याणका साधन बन गया।

सारांश यह है कि हमारे वेदोंमें शाश्वत सत्य परमतत्त्वका सर्वोत्तम प्रामाणिक वर्णन है। मन्वादि स्मृतियोंमें हमारे धर्माचार एवं शिष्टाचारका वर्णन है। कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान मन्वादि धर्मशास्त्रोंके द्वारा होता है। जो सज्जन बुद्धिमान्द्य, प्रमाद, करणापाटव, दुराग्रह, दुरित अथवा विधिवत् शिक्षाके अभाव आदि प्रतिबन्धों—दोषोंके कारण श्रुति-स्मृतियोंके रहस्योंसे अपने कल्याणका मार्ग प्रशस्त नहीं कर पाते, उन्हें सुगमता-पूर्वक श्रुति-स्मृतियोंके अभिप्रायको सरलतासे हृदयङ्गम करानेके लिये पुराणोंका निर्माण हुआ है, जिनके श्रवणसे प्रतिबन्ध कट जाते हैं और कल्याणकामी सज्जन शीघ्र और सुगमतापूर्वक श्रेयोमार्गपर आरूढ़ हो जाते हैं। पुराणोंके नित्य श्रवण और मननसे शिष्टाचार और सभ्यताकी उत्तम शिक्षा प्राप्त होती है, जिससे मनुष्य इस जगत्में पाप करनेसे निवृत्त हो जाता है और परलोकमें सद्गति प्राप्त करता है। इनके अतिरिक्त मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, ज्योतिष-विद्या, युद्ध-विद्या आदि भी पुराणोंके माध्यमसे सीख सकते हैं।

धर्मनीति, राजनीति, सदाचार, अर्थशास्त्र, तत्त्वज्ञान आदि विषयोंका जो वेदोंमें सूत्ररूपसे संनिवेश है, उसका सरस और विस्तृत विवेचन पुराणोंकी अपूर्वता है। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा उद्धवको तत्त्वज्ञान प्रदान करनेकी शैली इतनी सरस, सरल तथा साङ्गोपाङ्ग है कि उसके माध्यमसे वेदों तथा ब्रह्मसूत्रोंका तात्पर्य सामान्य व्यक्तिको भी हृदयङ्गम हो सकता है। वेदोंमें '**स्तेनानां पतये नमो नमः**' (रुद्रा० ५।२०) आदि मन्त्रों और गोपालतापिन्यु-पनिषद्, कृष्णोपनिषद्के माध्यमसे भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र अत्यन्त सूक्ष्मरूपसे कहा गया है, परंतु श्रीमद्भागवत, विष्णु-पुराण, पद्मपुराण एवं ब्रह्मवैवर्तपुराण आदिमें लीलाके वर्णनसे कृतकृत्यताका अनुभव होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब हम कुछ पौराणिक कथाओंकी सम्यक् विशेषता बतलाकर इस लेखको समाप्त करते हैं। जैसे वेदकी आज्ञा है—**'सत्यं वद, धर्मं चर'** (तैत्तिरीय १।११।१), इसका पूरा-पूरा पालन राजा हरिश्चन्द्र, भगवान् राम और बलिके द्वारा पुराणोंमें दर्शाया गया है। **'अतिथिदेवो भव'** (तैत्तिरीय १।११।२) के उदाहरण राजा शिवि और रन्तिदेव माने गये हैं। ब्रह्मचर्य-पालन करनेकी वैदिकी आज्ञाका अनुपम उदाहरण कपिल, भीष्म, हनुमान्, शंकराचार्य एवं अर्जुन आदि हैं। इन प्रसिद्ध कथाओंका विस्तृत वर्णन यहाँ करना उपयुक्त नहीं होगा।

अब पौराणिक राजाओंकी न्यायनिष्ठाके सम्बन्धमें एक विलक्षण कथाका वर्णन किया जाता है—केशिनी नामकी एक सुन्दर राजकुमारीको राजा प्रह्लादके पुत्र विरोचन और बृहस्पतिके पुत्र सुधन्वा—दोनों वरण करना चाहते थे। केशिनीने कहा—'तुम दोनोंमें जो श्रेष्ठ होगा, उसीसे मैं विवाह करूँगी?' दोनों लड़कोंने श्रेष्ठ होनेका दावा किया। गुरुपुत्रने ब्राह्मण होनेके कारण अपनेको श्रेष्ठ सिद्ध करना चाहा तथा विरोचनने राजपुत्र क्षत्रिय होनेके हेतु अपनेको श्रेष्ठ सिद्ध करना चाहा और शर्त यह ठहरायी गयी कि जो श्रेष्ठ सिद्ध होगा, उसके साथ कन्या केशिनीका विवाह होगा और वह असफल लड़केका प्राण ले लेगा। निर्णयके लिये प्रह्लादके पास दोनोंने जाकर अपना अभिप्राय सुनाया तथा प्राणोंकी बाजीकी शर्त भी बता दी। प्रह्लादके सामने आश्चर्यजनक समस्या उपस्थित हो गयी—एक ओर प्रिय पुत्र विरोचनके प्राणहरणकी सम्भावना तो दूसरी ओर उचित निर्णय देकर न्यायरक्षा कर कर्तव्य-निर्वाहका दायित्व। विचार कर प्रह्लादने निर्णय दिया कि 'मुझसे अङ्गिरा ऋषि श्रेष्ठ हैं और तुमसे सुधन्वा श्रेष्ठ है।' ऐसा निर्णय देकर प्रह्लादने अपने पुत्रको ब्राह्मणको अर्पित कर कहा—'ऋषिकुमार! इसका जीवन अब आपकी इच्छाके अधीन है।' यह सुनकर ऋषिकुमारने कहा कि 'ऐसे निष्पक्ष न्यायकारी राजाके पुत्रका विनाश कैसे हो सकता है? इसे हमने क्षमा किया।' न्यायकर्ता प्रह्लादके पुत्रकी रक्षा हुई। पुराणोंमें ऐसे और कई आख्यान हैं। पर क्या इस प्रकारका न्याय कोई कर सकता है? अपने और सम्बन्धियोंके लिये आज न्यायकी हत्या की जाती है। छल-कपटका आश्रय लेकर हितकर कानूनको भी बदलनेकी दुष्प्रवृत्ति देखी जाती है। ऐसी परिस्थितिमें पुराणोंके पठन-पाठन, मनन और आदर्श चरित्रों-का प्रचार एवं प्रसार परमावश्यक है। यदि पुराण न हों तो भारतीय सभ्यता एवं महत्ताका प्रमाण क्या रहेगा? तथा बिना सभ्यता एवं संस्कृतिके देशका क्या अस्तित्व होगा? यही भारतीय पुराणोंकी महत्ताका रहस्य है।

सिद्धोंकी पौराणिक प्रासंगिकता

(गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज)

तपःपुञ्ज परम कारुणिक महर्षि व्यासरचित अठारह पुराण तथा उपपुराणादि समग्र सार्वभौम आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा सामाजिक आदि जीवन-दर्शनके जीवन्त भाष्य अथवा विश्वकोष हैं। पुराणोंमें भारतीय सांस्कृतिक सम्पत्ति सुरक्षित है। योगदर्शन ही नहीं, विशेष परिप्रेक्ष्यमें महायोगी शिवगोरक्ष—गोरक्षनाथजीद्वारा संरक्षित शिवोपदिष्ट नाथयोगामृत और अनेक नाथसिद्धयोगियोंके साधनामय जीवनके यत्र-तत्र सहज यथावश्यक संदर्भसे यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारी रहनी-करनीमें कितने व्यापकरूपमें पौराणिक प्रासंगिकताएँ भरी पड़ी हैं। स्कन्दपुराणके काशीखण्ड, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, वायुपुराण, पद्मपुराण, श्रीमद्भागवतपुराण, ब्रह्माण्डपुराण आदिमें सिद्धयोगियों और उनकी साधना-पद्धति तथा योगकी सामान्य उपादेयताओंका निरूपण इस तथ्यका संकेत है कि उनमें योग और सिद्धोंके सम्बन्धमें कितना उदार दृष्टिकोण परिलक्षित है।

गोरक्षसिद्धान्तसंग्रहमें ब्रह्माण्डपुराणके ललिताखण्डमें ललितापुरवर्णनमें योगमहाज्ञान-चिन्तनमें तत्पर महायोगी गोरक्षनाथ और अनेक सिद्धसमूह, दिव्य ऋषिगण तथा प्राणायामपरायण योगियोंके प्रसंग मिलते हैं।

ललितापुरके उत्तरकोणमें अत्यन्त प्रकाशमय वायुलोक है। उस लोकमें वायुशरीरधारी, महान् दानी, सिद्धसमूह,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्य ऋषिगण, प्राणायामके अभ्यासी दूसरे योगी तथा योगपरायण, योगमहाज्ञानचिन्तनमें तत्पर श्रीगोरक्षनाथजी आदि अनेकानेक योगियोंके समुदाय निवास करते हैं।

श्रीमद्भागवतपुराणमें, वातरशना मुनियोंके संदर्भमें, नाथसिद्धोंके सम्बन्धमें यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। वातरशनाकी यह परम्परा ऋग्वेद (१०।१३६) में परिलक्षित है जो प्राणायामादि यौगिक क्रियाओंमें प्रवृत्त कायादण्डन तथा निवृत्तिप्रधान जीवन-यापनमें विश्वासी और आस्थावान् चित्रित किये गये हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः॥

(५।४।११)

श्रीमद्भागवतमें वर्णित नवयोगेश्वरोंकी, नवनाथोंकी मान्यतामें शिवगोरक्ष महायोगीकी गणना नहीं की गयी है। उन्हें तो साक्षात् शिवका अवतार शिवस्वरूप कहा गया है।

आदिनाथ भगवान् महेश्वरने क्षीरसागरमें मणि-प्रदीप्त सप्तशृंग पर्वतपर भगवती उमाके प्रति महायोगज्ञानका वर्णन आरम्भ किया। भगवतीके निद्राभिभूत होनेपर मत्स्यके उदरसे निकलकर मत्स्येन्द्रनाथजीने यह योगोपदेश सुना। उन्होंने महेश्वरको देवीसहित नमस्कारकर समस्त वृत्तान्तका वर्णन किया।

तं कल्पयामास सुतं शुभाङ्गे
सोत्सङ्ग आस्थाप्य चुचुम्ब वक्त्रम्।
सुतो ममायं किल मत्स्यनाथो
विज्ञाततत्त्वोऽखिलसिद्धनाथः॥

(नारदपुराण उत्तर० ६९।२३)

संतयोगी ज्ञानेश्वरने नारदपुराणके इसी प्रासंगिक उद्धरणके अनुरूप श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका ज्ञानेश्वरीके १८वें अध्यायमें वर्णन किया है कि क्षीरसमुद्रके तटपर श्रीशंकरने न जाने कब एक बार शक्ति-पार्वतीके कानमें जो उपदेश दिया था, वह क्षीरसमुद्रकी लहरोंमें किसी मत्स्यके पेटमें गुप्त मस्त्येन्द्रनाथके हाथ लगा—अचलसमाधिका उपभोग लेनेकी इच्छासे मत्स्येन्द्रनाथने गोरखनाथको उपदेश दिया।

क्षीरसिंधु परिसरीं। शक्तिच्या कर्णकुहरीं।
नैणाके श्रीत्रिपुरारी। सांगितलेजे।
ते क्षीरकल्लोला आंतु। मकरोदरीं गुप्तु।
होता तया चा हातु। पैहो जालें।

.....

मग समाधि अव्यत्ययां। भोगावीं वासना यया।
ते मुद्रा श्रीगोरक्षराया। दिधलीं मीनीं॥

(ज्ञानेश्वरी, अध्याय १८)

अवधूत दत्तात्रेयकी तपस्या, योग-साधना और जीवन-वृत्तान्तका पर्याप्त वर्णन मार्कण्डेयपुराणके अनेक अध्यायोंमें प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें दत्तात्रेयका वर्णन उनकी योग-साधनाका परिचायक है। वे श्रीमद्भागवतमें दिष्टभुक्-रूपमें वर्णित हैं। उनका कथन है कि दिन-रातमें जो कुछ मिल जाता है, उसे मैं ग्रहण करता हूँ तथा दिष्ट-जैसा भोग करता हूँ, उससे संतुष्ट रहता हूँ।

वसेऽन्यदपि सम्प्राप्तं दिष्टभुक् तुष्टधीरहम्॥

(७।१३।३९)

मार्कण्डेयपुराणके १७से १९वें अध्यायमें दत्तात्रेयके सम्बन्धमें कहा गया है कि वे सती अनसूया और महर्षि अत्रिके पुत्रके रूपमें प्रकट हुए थे। उन्होंने कावेरी नदीके तटपर तथा सह्याद्रिक्षेत्रमें तपस्या की थी। मार्कण्डेयपुराणके ३९वेंसे ४१वें अध्यायमें वर्णन है कि उन्होंने मदालसाके पुत्र अलर्कको योगोपदेशामृत प्रदान किया था। उनका कथन है—

समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी
शुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः।
समाप्नुयाद् योगमिमं महात्मा
विमुक्तिमाप्नोति ततः स्वयोगतः॥

मार्कण्डेय और श्रीमद्भागवतपुराणकी प्रासंगिकताके परिप्रेक्ष्यमें सिद्ध अवधूत-रूपमें वर्णित नाथसिद्ध दत्तात्रेयने शिवयोगी गोरखनाथको प्रणाम किया है।

निःसंदेह पौराणिक आख्यानों और प्रासंगिकताओंमें यथेष्ट रूपसे उदारता और सर्वमङ्गलमयताका स्वर अक्षर-अक्षरमें अनुप्राणित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

निम्नलिखित श्लोक अनेक पुराणोंमें प्राप्त होता है—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

यह श्लोक बहुत महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि इससे शास्त्रोंका स्वरूप और इनके आविर्भावके क्रमका ठीक-ठीक ज्ञान हो जाता है। इस श्लोकसे परिचित न होनेके कारण ही आज वेद और पुराणके स्वरूप और कालके सम्बन्धमें अनेक भ्रमपूर्ण मत प्रचलित हो गये हैं। अतः इस श्लोकके अर्थसे परिचित होना अपेक्षित हो गया है।

'कृत', 'स्मृत' और 'विनिर्गत' (श्रुत) ग्रन्थ

उपर्युक्त वचनमें पुराणके लिये 'स्मृत' और वेदके लिये 'विनिर्गत' शब्दका प्रयोग किया गया है। दोनों ग्रन्थोंमेंसे किसीके लिये भी 'कृत' शब्दका प्रयोग नहीं है। इन अनुगुण शब्दोंका प्रयोग जान-बूझकर किया गया है। अतः जिज्ञासा होती है कि वेदके लिये 'विनिर्गत' शब्दका ही प्रयोग क्यों होता है, 'कृत' और 'स्मृत' शब्दका प्रयोग क्यों नहीं होता ? इसी तरह पुराण आदि शास्त्रोंके लिये 'स्मृत' शब्दका ही प्रयोग क्यों होता है, 'विनिर्गत' या 'कृत' शब्दका प्रयोग क्यों नहीं होता ?

इसका समाधान तभी सम्भव है, जब हम 'कृत', 'स्मृत' और 'विनिर्गत' शब्दोंके अर्थोंको ठीक-ठीक जान जायँ। संस्कृत-वाङ्मयमें ही 'स्मृत' और 'विनिर्गत' ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, अन्य वाङ्मयोंमें नहीं। अतः अन्य भाषाविदोंके लिये इनकी जानकारी विशेषरूपसे अपेक्षित है।

(क) 'कृत' ग्रन्थ

'कृत' ग्रन्थ वह होता है, जिसके अर्थ और शब्द किसी पुरुषके द्वारा निर्मित होते हैं, जैसे—मालती-माधव, रघुवंश आदि। 'मालती-माधव' भवभूतिकी रचना है। इसके संवाद, सामाजिक चित्रण आदि सभी अर्थ कविकी कल्पनासे प्रसूत हैं। समूची कथावस्तु ही कल्पित है। इसी तरह 'मालती-माधव'के अर्थ और शब्द किसी पुरुषद्वारा कल्पित हैं। इसलिये इस ग्रन्थको हम 'कृत' कहते हैं। रघुवंशकी कथावस्तु यद्यपि रामायणसे और पुराणोंसे ली गयी है, फिर भी इसे जो कल्पित माना जाता है, इसका कारण यह है कि कविलोग सरस बनानेके लिये उसके अर्थ और भावोंको अपनी कल्पनासे गढ़ लेते हैं। ध्वन्यालोक आदि आकर-ग्रन्थोंने इन्हें ऐसा करनेके लिये आदेश भी दे रखा है। दूसरी बात यह है कि कालिदासने अपने काव्य-रचना-प्रसङ्गको रामायण सुन-पढ़कर ही जाना है, ऋतम्भरा प्रज्ञासे उसका स्मरण नहीं किया है। अतः रघुवंश वाल्मीकि-रामायणकी तरह 'स्मृत' ग्रन्थकी कोटिमें नहीं आता। इस तरह कवियों एवं विद्वानोंकी कृतियाँ 'कृत' ग्रन्थकी कोटिमें आती हैं।

(ख) 'स्मृत' ग्रन्थ

शास्त्र दो दलोंमें विभक्त हैं। एक दलका नाम है—'श्रुति' (वेद) और दूसरे दलका नाम है 'स्मृति'। वेदोंको छोड़कर पुराण, उपपुराण, धर्मशास्त्र आदि सब शास्त्र 'स्मृत' (स्मरणके द्वारा प्राप्त) होनेके कारण 'स्मृति' कहलाते हैं। यह पङ्कजकी तरह योगरूढ़ शब्द है। पङ्कज कमलका पर्यायवाची शब्द है। कीचड़से उत्पन्न (**पङ्काज्जात इति पङ्कजः**) होनेके कारण इसमें यह व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ घटित होता है। अतः 'योग' है। फिर जोंक आदि अर्थको व्यावृत करनेके लिये कमल-अर्थमें रूढ़ भी माना जाता है। इस तरह 'स्मृत' ग्रन्थ वह कहलाता है, जिसके नित्य-नूतन अर्थको तपःपूत ऋतम्भरा प्रज्ञाके द्वारा स्मरण किया जाता है और बादमें उसे अपने शब्दोंमें बाँध लिया जाता है। पुराण इस तरहसे 'स्मृत' ग्रन्थ है। इसका अर्थ नित्य-नूतन है। इसके शब्द कल ब्रह्माके थे और आज व्यासके हैं, किंतु पुराणका अर्थ न तो ब्रह्माकी बुद्धिकी उपज है और न व्यासकी ही।

'कृत' ग्रन्थ भी परिस्थिति-विशेषमें 'स्मृत' हो सकते हैं। मान लीजिये, बीस वर्ष पहले हमने मालती-माधवको खूब समझकर पढ़ा था। बादमें परिस्थितिवश उसकी चर्चा भी छूट गयी। आज हम उसे याद करना चाह रहे हैं। ऐसी परिस्थितिमें पहले तो उसका धुँधला अर्थ स्मृति-पटलपर उभरने लगता है। कहीं स्मरणशक्तिने ठीक-ठीक साथ दिया, तब उसका पूरा-का-पूरा अर्थ याद हो आता है। शब्दोंकी आनुपूर्वी पहले भी याद न थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः उसका स्मरण न हो पायेगा। यदि इस स्मृत (याद किये हुए) अर्थको हम अपने शब्दोंमें बाँध लेते हैं तो 'मालती-माधव' नामका ग्रन्थ तैयार हो गया। यह ग्रन्थ हमसे 'स्मृत' कहा जायगा, न कि 'कृत'; क्योंकि इस ग्रन्थके अर्थको हमने नहीं बनाया है, इसके बनानेवाले तो भवभूति हैं। हमने तो इसे स्मरणमात्र किया है। हाँ, इस अर्थको हमने अपने शब्दोंमें बाँधा है। इसलिये इस अंशमें हमारा कृतित्व अवश्य है, किंतु इतनेसे हम मालती-माधवके 'कर्ता' नहीं हो सकते, केवल 'अनुवादक' हो सकते हैं। यह हुआ 'कृत' मालती-माधव और 'स्मृत' मालती-माधवका भेद।

'स्मृत मालती-माधव'में जैसे स्मर्ताका कर्तृत्व नहीं होता, वैसे ब्रह्मा या व्यासद्वारा 'स्मृत' पुराण आदि शास्त्रोंमें भी इनका कर्तृत्व सम्भव नहीं है। ये केवल 'स्मर्ता' कहे जाते हैं।

(ग) 'विनिर्गत' ग्रन्थ

'विनिर्गत' ग्रन्थ वह होता है, जिसका अर्थ, शब्द और उच्चारण किसी पुरुषके द्वारा कृत नहीं होता। संस्कृत-वाङ्मयमें ऐसे ग्रन्थको 'श्रुति' कहा जाता है। यह भी योगरूढ शब्द है। **'श्रूयत एव, न केनचित् क्रियत इति श्रुतिः।'** अर्थात् जो वाक्यसमूह सुना ही जाता है, किसी पुरुषके द्वारा किया नहीं जाता, उसे 'श्रुति' कहते हैं। यह योग (व्युत्पत्ति) है और यह 'श्रुति' शब्द वेद-रूप ग्रन्थमें रूढ भी है।

उदाहरणके लिये 'रेडियोसे विनिर्गत मालती-माधव'को रखा जा सकता है। मान लीजिये, हम 'मालती-माधव'को रेडियोसे सुन रहे हैं और लिपिबद्ध भी करते जा रहे हैं। पुस्तक तैयार हो गयी। प्रश्न है कि इस पुस्तकके कर्ता हम कहे जा सकते हैं क्या? उत्तर है—नहीं; क्योंकि हमने न तो इस ग्रन्थके शब्दका निर्माण किया है, न अर्थकी कल्पना की है और न उच्चारण ही बनाया है। ये सब-के-सब रेडियोसे विनिर्गत (निकले हुए) हैं। हमने तो इन्हें सुनकर लिखा भर है। इस तरह इस रेडियोसे विनिर्गत 'मालती-माधव'के हम न तो 'कर्ता' हो सकते हैं, न 'स्मर्ता' तथा न 'अनुवादक' ही केवल 'लिपिक' हो सकते हैं।

ठीक इसी तरह ब्रह्मा या अन्य ऋषि श्रुतिके वाक्योंके न कर्ता हो सकते हैं न स्मर्ता और न अनुवादक ही।

'कृत' ग्रन्थ अनित्य होते हैं, किंतु ब्रह्माद्वारा 'स्मृत' अर्थ और 'विनिर्गत' वाक्य नित्य-नूतन होते हैं। इसी बातको व्यक्त करनेके लिये उपर्युक्त वचनमें पुराणके लिये **'स्मृतम्'** और वेदके लिये **'विनिर्गताः'** पद दिये गये हैं।

शङ्का—यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि ऊपर उद्धृत पुराण वचनमें जो **'स्मृतम्'** और **'विनिर्गताः'** पद आये हैं, इनसे पुराण और वेदकी नित्यता नहीं प्रमाणित की जा सकती; क्योंकि इन दोनों पदोंका प्रयोग अनित्य ग्रन्थोंमें भी होता है। जैसा कि अभी-अभी 'स्मृत मालती-माधव' और 'विनिर्गत मालती-माधव'में इनका प्रयोग दिखलाया जा चुका है। इस तरह जब दोनों पद व्यभिचरित हैं, तब इनके प्रयोगसे यह कैसे समझा जा सकता है कि ब्रह्माने 'अर्थतः' नित्य-पुराणको स्मरण किया और उनके मुखोंसे 'शब्दतः', 'अर्थतः' और 'उच्चारणतः' नित्य-वेद उच्चरित हुए? रह गयी बात इन दोनों पदोंके योगरूढ होनेकी, तो यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि इनके योगरूढ होनेमें कोई एकतर पक्षपातिनी युक्ति नहीं है। फिर क्यों न इन्हें 'पाचक'की तरह यौगिक ही मान लिया जाय?

समाधान—इस प्रश्नका उत्थान उद्धृत वचनके प्रसङ्गपर दृष्टि न डालनेसे होता है। देखना होगा कि 'ब्रह्माने किस काल और किस परिस्थितिमें पुराणको स्मरण किया। फिर वह कौन-सी परिस्थिति आयी कि वेद उनके मुखोंसे अपने-आप निकलते चले गये।'

इतिहाससे पता चलता है कि यह घटना उस समयकी है, जब भौतिक सृष्टिका आरम्भ भी न हुआ था। महाप्रलयमें ब्रह्मको छोड़कर और कुछ न था। जैसे शान्त सागरमें तरंग, फेन, बुदबुदका अस्तित्व नहीं रहता, वैसे ही जीव आदिका महाप्रलयमें पृथक् अस्तित्व नहीं हुआ करता। ब्रह्मने सृष्टिकी इच्छा की और भूत सृष्टिके बाद पहला प्राणी ब्रह्माको उत्पन्न किया। तुरंत उत्पन्न शिशुकी बुद्धि जैसे अत्यन्त अविकसित रहती है, वैसे नवजात ब्रह्माजीकी बुद्धि अविकसित थी। वे स्वयं समझ नहीं पाते थे कि वे कौन हैं, क्यों हैं और किसने इन्हें उत्पन्न किया है? इनकी उत्सुकता देखकर भगवान्‌ने आकाशवाणीके द्वारा इनसे तपस्या करायी। तपस्याके बलपर उनकी दो जिज्ञासाओंका समाधान हो गया। तपोबलसे उन्होंने प्रत्यक्ष देखा कि वे भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे उत्पन्न हैं। भगवान्‌ने उनकी शेष जिज्ञासाके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाधानमें कहा कि 'तुम सृष्टिका निर्माण करो।' ब्रह्माजीको अब यह समझमें नहीं आ रहा था कि सृष्टि क्या होती है और उसका निर्माण कैसे होता है? ब्रह्माजीने अपनी जिज्ञासा भगवान्‌के सामने रखी। भगवान्‌ने कहा—'तुम फिर तपस्या करो। इसीसे तुम जान सकोगे कि सृष्टि क्या है और उसका निर्माण कैसे होता है?' ब्रह्मा फिर तप करने लगे। तपस्या जब सीमापर पहुँचने लगी, तब उसके प्रभावसे उन्हें पुराण याद आने लगा। यही बात **'पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्'**—इस पंक्तिसे कही गयी है।

अभी तपस्यामें उस पूर्णताकी अपेक्षा थी, जिसके द्वारा उनका हृदय रेडियो बन जाय, जिससे वह ईश्वरके द्वारा प्रेषित वेदोंको प्रतिफलित कर उनके कण्ठोंसे विनिर्गत कर सके। जब तपस्या पूर्ण हुई, तब कहीं भगवान्‌के भेजे हुए वेद उनके हृदयमें प्रतिफलित हुए और कण्ठोंसे उच्चरित होने लगे—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।

(श्वेत० उ० ६।१८)

अर्थात् ब्रह्म पहले ब्रह्माको उत्पन्न करता है, फिर तपस्या पूर्ण होनेपर उनके पास वेदोंको भेजता है। **'प्रहिणोति'** शब्दसे यह स्वारसिक अर्थ निकलता है कि जैसे रेडियो-स्टेशन शब्दोंको भेजता है और रेडियो उसका प्रतिफलन करता है, वैसे ईश्वरके भेजे हुए वैदिक शब्द ब्रह्माके हृदयमें प्रतिफलित होकर कण्ठोंसे निकलने लगे।

विनिर्गमन—हाँ, तो रेडियोसे जिस तरह 'विनिर्गत मालती-माधव'का उच्चारण करनेवाला उसका कर्ता नहीं हो जाता, उसी तरह वेदके शब्दोंका, उनमें अनुविद्ध अर्थोंका और उदात्त आदि स्वरोंका कर्ता ब्रह्मा नहीं हो सकते। इस तरह इतिहाससे पता चलता है कि ब्रह्माने जिस पुराणका स्मरण किया, वह किसी मनुष्य-कृत मालती-माधवकी तरह 'कृत' ग्रन्थ नहीं था। वह तो अर्थरूप ब्रह्म ही था। इसी तरह उनके कण्ठोंसे जो वेद निकले उनका भी प्रेषण करनेवाला ब्रह्म ही था और वह प्रेषित शब्द भी ब्रह्म ही था।

दृष्टान्त और दार्ष्टान्तका विवेचन

इस तरह जो अनित्य अर्थ है, वह स्मृत और विनिर्गत होकर अनित्य रहता है, यह सही है, किंतु जो 'नित्य अर्थ' और 'नित्य शब्द' हैं, वे स्मृत और विनिर्गत होकर भी नित्य ही रहते हैं। जैसे ब्रह्म नित्य है। अतः वह अरबों लोगोंसे स्मृत होकर भी सदा नित्य ही रहता है, वैसे वेद और पुराणादि शास्त्र नित्य हैं। अतः ये 'विनिर्गत' और 'स्मृत' होकर भी नित्य ही रहते हैं।

नित्यतामें प्रमाण

स्थूणा-निखनन-न्यायसे वेद और पुराणकी नित्यताके प्रतिपादक कुछ वचन दिये जा रहे हैं—

(क) वेद—ब्रह्मरूप

वस्तुतः वेद और पुराण ब्रह्मके स्वरूप हैं। स्वयं वेदने अपनेको ब्रह्मस्वरूप बतलाया है—

ब्रह्म स्वयम्भू। (तै० आ०)

पुराणने इसी बातको दुहराया है—

वेदः नारायणः स्वयम्। (बृ० ना० पु० ४।१७)

ब्रह्मका स्वरूप सद्-रूप, चिद्-रूप और आनन्दरूप होता है—

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। (बृहदा० ३।९।२८)

'चित्'का अर्थ होता है ज्ञान। इस तरह ब्रह्म जैसे नित्य सत्-स्वरूप, नित्य आनन्द-रूप है, वैसे ही नित्य ज्ञान-रूप भी है। ज्ञानमें शब्दके अनुवेधका होना आवश्यक रहता है—

अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भाषते। (वाक्यपदीय)

नित्य-ज्ञानके लिये नित्य-शब्दका ही अनुवेध होना चाहिये। इस तरह नित्य-शब्द, नित्य-अर्थ, नित्य-सम्बन्धवाले वेद ब्रह्मरूप सिद्ध हो जाते हैं।

(ख) पुराण—ब्रह्मरूप

वेदने पुराणको अपने समान नित्य माना है। यह समता निम्नलिखित मन्त्रसे व्यक्त होती है—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।

(अथर्व० ११।७।२४)

स्वयं पुराणने अपनेको ब्रह्म-स्वरूप माना है। पुराण वस्तुतः एक ही है। इसके अठारह प्रकरण ही अठारह पुराण कहे जाते हैं। ये अठारहों प्रकरण अठारह अवयवके रूपमें हैं। अवयवीसे अवयव भिन्न नहीं होता। पद्मपुराणने ब्रह्मको पुराणरूप बतलाते हुए कहा है कि ब्रह्म अनेक रूपोंमें अवतरित होता है। उसका एक रूप पुराण भी है—

एकं पुराणं रूपं वै। (प० पु०, स्व० खं० ६२।२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह भी बताया है कि कौन पुराण ब्रह्मका कौन-सा अवयव है,— जैसे १-ब्रह्मपुराण—भगवान्‌का मस्तक, २-पद्मपुराण—हृदय, ३-विष्णुपुराण—दाहिनी भुजा, ४-शिवपुराण—बायीं भुजा, ५-भागवतपुराण—ऊरु-युगल, ६-नारदीयपुराण—नाभि, ७-मार्कण्डेयपुराण—दाहिना चरण, ८-अग्निपुराण—बायाँ चरण, ९-भविष्यपुराण—दाहिना घुटना, १०-ब्रह्मवैवर्तपुराण—बायाँ घुटना, ११-लिङ्गपुराण—दाहिनी घुट्ठी, १२-वराहपुराण—बाँयी घुट्ठी, १३-स्कन्दपुराण—रोएँ, १४-वामनपुराण—त्वचा, १५-कूर्मपुराण—पीठ, १६-मत्स्यपुराण—मेदा, १७-गरुड-पुराण—मज्जा और १८-ब्रह्माण्डपुराण— अस्थि।

एकं पुराणं रूपं वै तत्र पाद्मं परं महत्।
ब्राह्मं मूर्धा हरेरेव हृदयं पद्मसंज्ञितम्॥
वैष्णवं दक्षिणो बाहुः शैवं वामो महेशितुः।
ऊरू भागवतं प्रोक्तं नाभिः स्यान्नारदीयकम्॥
मार्कण्डेयं च दक्षाङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते।
भविष्यं दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मनः॥
ब्रह्मवैवर्तसंज्ञं तु वामजानुरुदाहृतः।
लैङ्गं तु गुल्फकं दक्षं वाराहं वामगुल्फकम्॥
स्कान्दं पुराणं लोमानि त्वगस्य वामनं स्मृतम्।
कौर्मं पृष्ठं समाख्यातं मात्स्यं मेदः प्रकीर्त्यते॥
मज्जा तु गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माण्डमस्थि गीयते।
एवमेवाभवद्विष्णुः पुराणावयवो हरिः॥

(पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड ६२। २—७)

इस तरह वेद और पुराण जब ब्रह्मरूप हैं, तब इन्हें अनित्य कहना स्वतः बाधित है। महाप्रलयमें जब ब्रह्मका सदंश और आनन्दांश विद्यमान रहते हैं, तब उसके चिदंशको भी विद्यमान रहना ही चाहिये। उनका वही चिदंश वेद और पुराण हैं। महाप्रलयके बाद भौतिक सृष्टिके निर्माणके लिये ब्रह्म ब्रह्माको प्रकट करता है और जैसे-जैसे ब्रह्माकी बुद्धिका विकास होता जाता है तथा तपस्याका सहयोग मिलता जाता है,वैसे-वैसे पहले ब्रह्मरूप पुराणका स्मरण होता है और पीछे वेदका प्राकट्य होता है।

वेदोंसे सृष्टि

जबतक ब्रह्माके पास वेद नहीं पहुँचे थे, तबतक वे सृष्टि और इसके निर्माणके विषयसे अनभिज्ञ थे। पुराण और वेदोंकी प्राप्तिके बाद उनकी सारी दुविधाएँ मिट गयीं। पश्चात् इन्हींकी सहायतासे वे भौतिक सृष्टिकी रचनामें समर्थ हुए। मनुने लिखा है—

वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे।

(मनु० १। २१)

ब्रह्माद्वारा सम्प्रदायका प्रवर्तन

सृष्टि-क्रमका विस्तार होनेपर ब्रह्माजीने सनक-सनन्दन, वसिष्ठ आदि मानसपुत्रोंको उत्पन्न किया। ब्रह्माने इन्हें पुराण और वेदोंको पढ़ाया। इसके बाद वसिष्ठ आदिने अपने शिष्योंको पढ़ाया। इस तरह शास्त्रोंके पठन-पाठनकी परम्परा चल पड़ी, जो आज भी चलती आ रही है—

वेदपुराणाध्ययनं गुर्वध्ययनपूर्वकम्, अधुनाध्ययनवत्।

व्यासद्वारा संक्षिप्त संस्करण

द्वापरके अन्तमें पुराणकी अध्ययन-परम्परामें विशृङ्खलता आ गयी थी। इसका एक कारण यह भी था कि ब्रह्माका स्मरण किया हुआ पुराण बहुत विशाल था। उसमें सौ करोड़ श्लोक थे—

तपश्चचार प्रथममरणां पितामहः।

× × ×

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥

(मत्स्यपुराण ३। २-३)

इन सौ करोड़ श्लोकोंका पढ़ पाना तब कठिन हो रहा था; क्योंकि आयु और बुद्धिका अधिक ह्रास हो चुका था। आज कलियुगमें ब्रह्मा-स्मृत उस विशालकाय पुराणका पढ़ पाना तो और असम्भव ही है। अतः भगवान्‌की ज्ञानशक्तिके अवतार वेदव्यासने चार लाख श्लोकोंमें इस ब्रह्माद्वारा स्मृत पुराणका संक्षेप कर दिया। आज जो पुराण हमारे पास है, इसके शब्द व्यासजीके बनाये हुए हैं। अबतक ब्रह्मा-स्मृत पुराणका कोई संस्करण उपलब्ध नहीं हुआ है।

'स्मृत वाक्य'से 'विनिर्गत वाक्य' प्रबल है

यहाँ यह भ्रम नहीं होना चाहिये कि 'ब्रह्माको सर्वप्रथम पुराण स्मृत हुआ, इसलिये यह परवर्ती वेदसे बढ़कर है।' क्योंकि इतिहासने स्पष्ट कर दिया है कि पुराण तपस्याकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्णताके पहले स्मृत हुआ, जबकि वेद उसकी पूर्णताके बाद ज्यों-के-त्यों श्रुत हुए। स्मरणमें बुद्धिकी कुण्ठासे गलती हो सकती है, किंतु श्रुत वाक्यमें कुण्ठाका प्रश्न नहीं उठता। इसलिये वेद स्वतः प्रमाण है और पुराण आदि स्मृति-वेदमूलक प्रमाण है। मीमांसाने स्पष्ट कर दिया है कि श्रुतिसे स्मृतिके विरोध होनेपर स्मृति अप्रमाण हो जाती है—

विरोधे त्वनपेक्षं स्यात्····· । (जै॰ सू॰ १ । ३ । ३)

पुराणमें उल्लिखित विषय यदि वेदकी प्राप्त शाखाओंमें न मिले तो शास्त्रकारोंने बतलाया है कि पुराणका वह विषय मान्य होता है। तब अनुमान करना चाहिये कि तन्मूलक कोई श्रुति रही होगी। जैमिनि मुनिने तो यहाँतक बतला दिया है कि यदि स्मृतिकी कोई बात श्रुतिमें न मिल सके तो उसे अप्रामाणिक न समझना चाहिये, अपितु यह अनुमान करना चाहिये कि इस स्मृतिका मूल कोई-न-कोई श्रुति अवश्य है, जो अब अप्राप्य है—

''····· **असति ह्यनुमानम्**'' (जै॰ सू॰१ । ३ । ३)

यह पुराण विश्वकी अद्भुत सम्पत्ति है। इसमें सामाजिक, राजनीतिक आदि जितने वाद हैं, सबका किसी-न-किसी रूपमें परिचय मिल जाता है। पुराणके समान तत्त्वोंका प्रतिपादन करनेवाला और कोई ग्रन्थ इस समय नहीं है। वेदकी शाखाओंमें अधिकांशका लोप हो गया है। इसके पठन-पाठनके लिये विशेष सचेष्ट रहनेकी आवश्यकता है।

श्रेष्ठ भगवद्भक्त कौन हैं ?

ये हिताः सर्वजन्तूनां गतासूया अमत्सराः । वशिनो निस्पृहाः शान्तास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥
कर्मणा मनसा वाचा परपीडां न कुर्वते । अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवताः स्मृताः ॥
सत्कथाश्रवणे येषां वर्तते सात्त्विकी मतिः । तद्भक्तविष्णुभक्ताश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥
मातापित्रोश्च शुश्रूषां कुर्वन्ति ये नरोत्तमाः । गङ्गाविश्वेश्वरधिया ते वै भागवतोत्तमाः ॥
व्रतिनां च यतीनां च परिचर्यापराश्च ये । वियुक्तपरनिन्दाश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥
सर्वेषां हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमाः । ये गुणग्राहिणो लोके ते वै भागवताः स्मृताः ॥
आत्मवत् सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमाः । तुल्याः शत्रुषु मित्रेषु ते वै भागवतोत्तमाः ॥
अन्येषामुदयं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः । हरिनामपरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥
शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि । समबुद्ध्या प्रवर्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः ॥

(नारदपुराण १ । ५)

जो सब जीवोंके हितैषी हैं, जो दूसरोंका दोष नहीं देखते, जो किसीसे डाह नहीं करते, मन-इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, निःस्पृह और शान्त हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं। जो कर्म, मन और वचनसे दूसरोंको पीड़ा नहीं पहुँचाते, जिनका संग्रह करनेका स्वभाव नहीं है, वे भगवद्भक्त हैं। जिनकी सात्त्विकी बुद्धि उत्तम भगवत्कथा सुननेमें लगी रहती है तथा जो भगवान् और उनके भक्तोंके भी भक्त हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ मनुष्य माता-पिताके प्रति गङ्गा और विश्वनाथका भाव रखकर उनकी सेवा करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो व्रतधारियों और यतियोंकी सेवामें लगे रहते हैं और परायी निन्दा कभी नहीं करते, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष सबके लिये हितभरे वचन बोलते हैं और केवल गुणोंको ही ग्रहण करते हैं, वे इस लोकमें भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष समस्त जीवोंको अपने ही समान देखते हैं तथा शत्रु-मित्रमें भी समान भाव रखते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो मनुष्य दूसरोंका अभ्युदय देखकर प्रसन्न होते हैं और सदा हरिनामपरायण रहते हैं,वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं और जो परमेश्वर शिव एवं परमात्मा विष्णुके प्रति समबुद्धिसे बर्ताव करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराणों के प्रतिपाद्य विषय

प्रधान वर्ण्य विषय

पञ्चलक्षणात्मक विषय

'इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्'—इतिहास एवं पुराणोंसे वेदार्थका उपबृंहण करना चाहिये, क्योंकि ये वेदके उपबृंहण हैं। वेदादि शास्त्रों, मन्वादि धर्मशास्त्रों, वेदान्तादि दर्शनशास्त्रों तथा पुराणेतिहास-ग्रन्थों—इन सभी शास्त्रोंका लक्ष्य है जीवका कल्याण करना। जीवका श्रेयः सम्पादन तथा उसे भगवत्प्राप्ति (मुक्ति) करा देनेमें ही इन सद्ग्रन्थोंका पर्यवसान है, यह आत्यन्तिक सत्य है। किंतु यहाँ एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि 'वेदादिके उपस्थित रहनेपर भी इन पुराणग्रन्थोंके आविर्भावकी क्या आवश्यकता पड़ी? जब सभी शास्त्रोंका प्रतिपाद्य एक ही है, सभीका लक्ष्य एक ही है, तब पुराणोंकी क्या उपयोगिता रह जाती है और पुराणों तथा अन्य शास्त्रोंमें क्या अन्तर रह जाता है? बात ठीक है, विचारणीय भी है, किंतु यह तथ्य सर्वदा अविस्मरणीय है कि महर्षि वेदव्यासजी त्रिकालदर्शी थे, जीवमात्रपर उनका यह परम अनुग्रह है कि उन्होंने भगवत्प्राप्तिके साधनोंका जैसा समावेश पुराणों तथा उपपुराणोंमें कर दिया है, वैसा वर्णन किसी भी शास्त्रमें नहीं मिलता। वेदादिके दुरूहतम रहस्योंको भी आख्यान-शैलीके माध्यमसे सरलतम बनाकर पुराणोंमें विस्तारसे समझाया गया है, जिसे एक साधारण बुद्धिका मानव भी अच्छी तरह ग्रहण कर सकता है। यह पुराणोंका अद्भुत वैशिष्ट्य है। विषयगत वैशद्यता भी उसका अपना ही वैशिष्ट्य है। उनमें लौकिक तथा पारलौकिक ज्ञानकी सभी बातोंको—जिनका बीज-रूपमें सूत्रपात वेदादि ग्रन्थोंमें हुआ है, विस्तारसे समझाया गया है। तथापि पुराणोंके अपने कुछ मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं, जिनकी उपस्थितिपर ही तत्तद्-ग्रन्थोंकी 'पुराण' संज्ञा होती है। पुराणोंकी परिभाषा बताते हुए सभीने यह स्वीकार किया है कि ज्ञात-सत्यार्थभूत-पञ्चलक्षणात्मक आख्यान-उपाख्यान, प्रबन्ध-कल्पनासे युक्त ग्रन्थोंका नाम पुराण है। इस सम्बन्धमें सभी पुराणोंमें प्रायः स्वल्पशब्दान्तरसे निम्नश्लोक प्राप्त होता है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

अर्थात् १-सर्ग, २-प्रतिसर्ग, ३-वंश, ४-मन्वन्तर तथा ५-वंशानुचरित—पुराणों तथा उपपुराणोंके ये पाँच लक्षण हैं। अर्थात् ये ही पाँच विषय पुराणोंके मुख्य प्रतिपाद्य हैं। विष्णुपुराणके आरम्भमें यह स्पष्ट किया गया है कि इन प्रधान विषयोंके अन्तर्गत किन-किन बातोंका समावेश होता है। जगत् तथा उसके नाना पदार्थोंकी उत्पत्ति अथवा सृष्टिको 'सर्ग' कहा जाता है। सृष्टिके विपरीत अर्थात् प्रलय तथा पुनः सृष्टि-करणको 'प्रतिसर्ग' कहा जाता है। देव, ऋषि तथा मनुष्योंकी संतान-परम्पराका उल्लेख करना 'वंश' कहलाता है तथा सृष्टिक्रमकी काल-गणना 'मन्वन्तर' में मानी जाती है और महर्षियों तथा राजाओंके चरित्रोंके वर्णनको 'वंशानुचरित' कहते हैं।

दशलक्षणात्मक विषय

सभी पुराणोंने उपर्युक्त पञ्चलक्षणोंको ही पुराण तथा उपपुराणोंका प्रमुख वर्ण्य विषय बताया है, किंतु श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणमें पुराणोंके दस विषयोंका परिगणन करते हुए पाँच लक्षणोंसे युक्त पुराणोंको उपपुराण तथा दस लक्षणोंवाले पुराणोंको महापुराण कहा है। इसका क्या रहस्य है, इससे पूर्व यह जानना आवश्यक है कि ये दस विषय कौन-कौनसे हैं?

श्रीमद्भागवत (२।१०।१-२) में पुराणोंके दस लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं—

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः॥
दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा॥

अर्थात् 'इस भागवतपुराणमें सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय—इन दस विषयोंका वर्णन है। इनमें जो दसवाँ आश्रय-तत्त्व है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसीका ठीक-ठीक निश्चय करनेके लिये कहीं श्रुतिसे, कहीं तात्पर्यसे और कहीं दोनोंके अनुकूल अनुभवसे महात्माओंने अन्य नौ विषयोंका बड़ी सुगम रीतिसे वर्णन किया है।'

ईश्वरकी प्रेरणासे गुणोंमें क्षोभ होकर रूपान्तर होनेसे जो आकाशादि पञ्चभूत, शब्दादि तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, अहंकार और महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती है उसे 'सर्ग' कहते हैं। उस विराट् पुरुषसे उत्पन्न ब्रह्माजीके द्वारा जो विभिन्न चराचर सृष्टियोंका निर्माण होता है, उसका नाम है 'विसर्ग'। प्रतिपल नाशकी ओर बढ़नेवाली सृष्टिको एक मर्यादामें स्थिर रखनेसे भगवान् विष्णुकी जो श्रेष्ठता सिद्ध होती है, उसका नाम है 'स्थान'। अपने द्वारा सुरक्षित सृष्टिमें भक्तोंके ऊपर उनकी जो कृपा होती है, उसका नाम है 'पोषण'। मन्वन्तरोंके अधिपति जो भगवद्भक्ति और प्रजापालनरूप शुद्ध धर्मका अनुष्ठान करते हैं, उसे 'मन्वन्तर' कहते हैं। जीवोंकी वे वासनाएँ जो कर्मके द्वारा उन्हें बन्धनमें डाल देती हैं, 'ऊति' नामसे कही जाती हैं। भगवान्के विभिन्न अवतारोंके और उनके प्रेमी भक्तोंकी विविध आख्यानोंसे युक्त गाथाएँ 'ईशकथा' हैं। जब भगवान् योगनिद्रा स्वीकार करके शयन करते हैं, तब इस जीवका अपनी उपाधियोंके साथ उनमें लीन हो जाना 'निरोध' कहलाता है। अज्ञानकल्पित कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अनात्मभावका परित्याग करके अपने वास्तविक स्वरूप परमात्मामें स्थित होना ही 'मुक्ति' है। इस चराचर जगत्की उत्पत्ति और प्रलय जिस तत्त्वसे प्रकाशित होते हैं, वह परम ब्रह्म ही 'आश्रय' हैं। इसीको परमात्मा कहा गया है। यही परमात्मा सबका अधिष्ठान—आश्रय-तत्त्व है। उसका आश्रय वह स्वयं ही है, दूसरा कोई नहीं।

इन्हीं दस लक्षणोंको कुछ शब्दान्तरके साथ श्रीमद्-भागवतके ही द्वादश स्कन्धके सातवें अध्यायके नवें श्लोकमें इस प्रकार बताया गया है—

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः॥

अर्थात् १-सर्ग, २-विसर्ग, ३-वृत्ति, ४-रक्षा, ५-मन्वन्तर, ६-वंश, ७-वंशानुचरित, ८-संस्था, ९-हेतु तथा १०-अपाश्रय-ये दस लक्षण पुराणोंके हैं।

जब मूलप्रकृतिमें लीन गुण क्षुब्ध होते हैं, तब महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती है। महत्तत्त्वसे तामस, राजस और वैकारिक (सात्त्विक) तीन प्रकारके अहंकार बनते हैं। त्रिविध अहंकारसे ही पञ्चतन्मात्रा, इन्द्रिय और विषयोंकी उत्पत्ति होती है। इसी उत्पत्ति-क्रमका नाम 'सर्ग' है। परमेश्वरके अनुग्रहसे सृष्टिकी सामर्थ्य प्राप्त करके महत्तत्त्व आदि पूर्वकर्मोंके अनुसार अच्छी और बुरी वासनाओंकी प्रधानतासे एक बीजसे दूसरे बीजके समान जो यह चराचर शरीरात्मक जीवकी उपाधिकी सृष्टि करते हैं, इसे 'विसर्ग' कहते हैं। चर प्राणियोंके लिये अचर-पदार्थ—जीवन-निर्वाहकी सामग्री 'वृत्ति' है।

भगवान् युग-युगमें पशु-पक्षी, मनुष्य, ऋषि, देवता आदिके रूपमें अवतार ग्रहण करके अनेक लीलाएँ करते हैं। इन्हीं अवतारोंमें वे वेदधर्मके विरोधियोंका संहार भी करते हैं। उनकी यह अवतार-लीला विश्वकी रक्षाके लिये होती है, इसीलिये उसका नाम 'रक्षा' है। मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान्के अंशावतार—इन्हीं छः बातोंकी विशेषतासे युक्त समयको 'मन्वन्तर' कहते हैं। ब्रह्माजीसे जितने राजाओंकी सृष्टि हुई है, उनकी भूत, भविष्य और वर्तमानकालीन संतान-परम्पराको 'वंश' कहते हैं। उन राजाओं तथा उनके वंशधरोंके चरित्रका नाम 'वंशानुचरित' है। इस विश्व-ब्रह्माण्डका स्वभावसे ही प्रलय हो जाता है। इस प्रलयके चार भेद हैं—नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक। तत्त्वज्ञ विद्वानोंने इन्हींको 'संस्था' कहा है। पुराणोंके लक्षणमें 'हेतु' नामसे जिसका व्यवहार होता है, वह 'जीव' ही है; क्योंकि वास्तवमें वही सर्ग-विसर्ग आदिका 'हेतु' है और अविद्यावश अनेक प्रकारके कर्मकलापमें उलझ गया है। जो लोग उसे चैतन्यप्रधानकी दृष्टिसे देखते हैं, वे उसे अनुशयी अर्थात् प्रकृतिमें शयन करनेवाला कहते हैं और जो उपाधिकी दृष्टिसे कहते हैं, वे उसे अव्याकृत अर्थात् प्रकृतिरूप मानते हैं। जीवकी वृत्तियोंके तीन विभाग हैं—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। जो इन अवस्थाओंमें इनके अभिमानी विश्व, तैजस और प्राज्ञके मायामय रूपोंमें प्रतीत होता है और इन अवस्थाओंसे परे तुरीयतत्त्वके रूपमें भी लक्षित होता है, वही ब्रह्म है, उसीको यहाँ 'अपाश्रय' शब्दसे कहा गया है।

श्रीमद्भागवतके दो स्थलोंपर निर्दिष्ट उपर्युक्त दस लक्षणोंमें सर्वथा साम्य है, यह बात दोनोंके अर्थावबोधसे स्पष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाती है। शब्दान्तर है, परंतु तात्पर्यमें अभेद है। निम्न तालिकासे यह स्पष्ट हो जायगा कि किस विषयका किसके साथ साम्य है—

क्रम	द्वितीय स्कन्धके विषय	द्वादश स्कन्धके विषय
१-	सर्ग	सर्ग
२-	विसर्ग	विसर्ग
३-	स्थान	वृत्ति
४-	पोषण	रक्षा
५-	ऊति	हेतु
६-	मन्वन्तर	अन्तर
७-	ईशानुकथा	वंश-वंशानुचरित
८-	निरोध	संस्था—नित्य-प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृतिक प्रलय
९-	मुक्ति	संस्था—आत्यन्तिक प्रलय
१०-	आश्रय	अपाश्रय

श्रीमद्भागवतके समान ही ब्रह्मवैवर्तपुराणने भी पुराणोंको दशलक्षणात्मक बताते हुए उनके दस विषयोंको इस प्रकार गिनाया है—

सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्च स्थितिः तेषां च पालनम्।
कर्मणां वासना वार्ता मनूनां च क्रमेण च॥
वर्णनं प्रलयानां च मोक्षस्य च निरूपणम्।
तत्कीर्तनं हरेरेव वेदानां च पृथक् पृथक्॥
दशाधिकं लक्षणं च महतां परिकीर्तितम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १३३। ८-१०)

अर्थात् 'सृष्टि, विसृष्टि, स्थिति, उनका पालन, कर्मोंकी वासना, मनुओंका वर्णन, प्रलयोंका वर्णन, मोक्षका निरूपण, श्रीहरिका गुणगान तथा देवताओंका पृथक्-पृथक् वर्णन—ये दस विषय पुराणोंके हैं।' ध्यानसे देखनेपर यह निश्चित होता है कि श्रीमद्भागवतके दस लक्षणोंको ही यहाँ शब्दान्तरके साथ कहा गया है। अर्थमें कोई भेद नहीं है।

पाँच लक्षणोंमें दस लक्षणोंका अन्तर्भाव

सूक्ष्म विवेचन करनेपर यही निष्कर्ष निकलता है कि अन्य पुराणोंमें सर्ग-प्रतिसर्ग आदि जो पाँच विषय गिनाये गये हैं, श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्तमें उन्हींको विस्तृत कर दस विषय कहा गया है। यह भी कहा जा सकता है कि दश-लक्षणात्मक विषय पूर्वोक्त पाँच विषयोंकी विस्तृत व्याख्या-स्वरूप ही हैं। दस लक्षणवाले पुराणको महापुराण मानना तथा पाँच लक्षणवाले पुराणको उपपुराण माननेकी जो बात श्रीमद्भागवतमें कही गयी है, उसका तात्पर्य मात्र यही है कि वह श्रीमद्भागवतका ही मुख्य रूपसे लक्षण है, पुराण-सामान्यका नहीं। क्योंकि ऐसा न माननेपर अर्थात् दश-लक्षणात्मक पुराणोंको ही महापुराण माननेपर तो केवल श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण—ये दो ही महापुराणकी कोटिमें आयेंगे, अन्य सभी उपपुराण कहे जायँगे। तब तो कहीं अतिव्याप्ति होगी, कहीं अव्याप्ति हो जायगी। जबकि लक्षण या परिभाषाको अतिव्याप्ति, अव्याप्ति तथा असम्भव—इन तीन दोषोंसे रहित होना चाहिये। पुराणोंमें विशेष आदरके योग्य विष्णु, पद्म, स्कन्द, मत्स्य तथा वायु आदिमें यद्यपि दस लक्षणोंकी बात स्पष्ट-रूपसे नहीं दीखती तथापि वे सभी विषय इनमें आ गये हैं। अतः इस दृष्टिसे भी ये उपपुराण नहीं कहे जा सकते।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत तथा विष्णुपुराणमें भी अद्भुत साम्य है। दोनोंके विषय प्रायः एक समान हैं। ऐसी स्थितिमें विष्णुको उपपुराण कथमपि नहीं कहा जा सकता। अतः महापुराणोंके लिये पाँच लक्षणोंका होना आवश्यक है न कि दस लक्षणोंका। वास्तवमें स्थिति यह है कि जो दस विषय बताये गये हैं, उनमेंसे सर्ग, विसर्ग, वंश, वंशानुचरित तथा मन्वन्तर—इन पाँच विषयोंको तो उसमें शब्दतः ग्रहण किया ही गया है, शेष पाँचका भी अन्तर्भाव इन्हीं पाँचोंमें हो जाता है, इसका विशेष विवेचन न करके यहाँ एक तालिका प्रस्तुत की जा रही है, जिससे यह बात स्पष्ट हो जायगी—

१-सर्ग—सर्ग, विसर्ग, हेतु, ऊति, आश्रय, अपाश्रय।
२-प्रतिसर्ग—संस्था, निरोध।
३-मन्वन्तर—अन्तर।
४-५-वंश-वंशानुचरित—वंश, वृत्ति, स्थान-रक्षा, पोषण-ईशानुकथा।

जिन विद्वानोंने बहुत अधिक परिश्रमसे ऊहापोहपूर्वक दस लक्षण और पाँच लक्षणोंकी तुलना की है, वे सभी अन्तमें इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि पञ्चलक्षणात्मकता ही वास्तविक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपसे पुराणोंकी मुख्य परिभाषा और स्वरूप है और सभी दस लक्षण इन पाँचोंमें ही अन्तर्निहित रहते हैं।

पुराणोंके पाँच लक्षणों अथवा पाँच विषयोंके स्थिर हो जानेपर एक महत्त्वपूर्ण बात यह हो जाती है कि पञ्च-लक्षणात्मक जो वर्णन पुराणोंमें है, उस वर्णनका लक्ष्य भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष-रूपसे ईश्वरतत्त्वका ही निरूपण करना है, क्योंकि सभी पुराणोंने उसे ही अन्तिम सत्य स्वीकार किया है। उसे कहीं विष्णु, कहीं कृष्ण, कहीं शिव तथा कहीं देवी कहा गया है और यही भक्तितत्त्वका बीजभूत भी है। विष्णुपुराणने (१।१।३१में) तो स्पष्ट ही कह दिया है कि—

विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत् तत्रैव च स्थितम्।
स्थितिसंयमकर्तासौ जगतोऽस्य जगच्च सः॥

अर्थात् 'यह जगत् विष्णुसे उत्पन्न हुआ है, उन्हींमें स्थित है, वे ही इसकी स्थिति और लयके कर्ता हैं तथा यह जगत् भी वे ही हैं।'

इसीलिये श्रीमद्भागवतमें दस लक्षणोंके विवेचन-प्रसंगमें कह दिया गया है कि दसवाँ जो आश्रय (ब्रह्म, भगवान्) नामक तत्त्व है, उसीके स्वरूप-परिज्ञानके लिये ही नौ तत्त्वोंको बताया गया है। स्कन्दपुराणका कथन है कि वेदादि शास्त्रों, रामायण, महाभारत और पुराणोंमें आदि-मध्य तथा अन्तमें अर्थात् सर्वत्र हरिका ही गुणगान रहता है[1]। इससे यह स्पष्ट होता है कि मुख्य तथा अवान्तररूपसे 'भगवच्चर्चा' ही पुराणोंका अन्यतम प्रतिपाद्य विषय है। आख्यानों, उपाख्यानों तथा गाथाओंके द्वारा पुराणोंमें उसी परम प्रभुकी महिमाका गान किया गया है।

पुराणोंमें सभी शास्त्रों, विद्याओं, कलाओं तथा ज्ञान-विज्ञानका समावेश

पुराण अनन्त ज्ञान-राशिके भण्डार हैं। इनका साहित्य अत्यन्त विशाल है। लौकिक तथा पारलौकिक ज्ञान-विज्ञानके सभी विषय इनमें भरे पड़े हैं। सृष्टिसे आजतकके तथा भविष्यके भी इतिहासको ये अपनेमें सँजोये हुए हैं। पुराणोंका आविर्भाव वेदार्थके उपबृंहणके लिये हुआ है। वर्तमानकालतक जितने ज्ञान-विज्ञान, कला तथा विद्याके क्षेत्रोंका और उनकी शाखा-प्रशाखाओंका आविष्कार हुआ है, त्रिकालदर्शी ऋषियोंने इन सभीका सारांश सूक्ष्मरूपसे इन पुराणोंमें संनिवेश किया है। इनका महर्षि वेदव्यासजीने सुचारुरूपसे सम्पादन और वर्गीकरण कर पुराण-ग्रन्थोंके रूपमें प्रस्तुत किया है। महर्षि वेदव्यासजीका यह अद्भुत वैशिष्ट्य है कि उन्होंने वेदादि शास्त्रोंमें प्रतिपादित जटिलतम विषयोंको भी आख्यान तथा उपाख्यानोंके माध्यमसे सर्वसाधारणके लिये भी बोधगम्य बना दिया है। यद्यपि पुराणों तथा उपपुराणोंमें कथाभाग अधिक है तथापि जिज्ञासुओंके लिये अनेक विद्या, कला, ज्ञान, विज्ञान तथा शास्त्रोंका भी इनमें सूक्ष्म किंतु पुराण-शैलीमें सुस्पष्ट-बोधगम्य विवेचन हुआ है। इस प्रकारके पुराणोंमें वायु, ब्रह्माण्ड, अग्नि, गरुड, नारद, शिवधर्मोत्तर तथा विष्णुधर्मोत्तर प्रमुख रूपसे गणनीय हैं। अग्निपुराणमें तो सभी विद्याओं (परा, अपरा) को बताया गया है—**'आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वविद्याः प्रदर्शिताः।'** (अग्नि० ३८३।५१)। विश्वकोशोंकी परम्परा इन्हींको देखकर आरम्भ हुई होगी। अतः प्राचीनतम विश्वकोश होनेपर भी पवित्रता, रचना-सौष्ठव और श्रेष्ठ पद्यबद्धताको देखते हुए ये आज भी सबसे श्रेष्ठ हैं। ये कण्ठस्थ करनेमें सुगम हैं। इन पुराणों तथा उपपुराणोंमें इतने अधिक विषयोंका समावेश है कि यदि उसकी एक सूचीमात्र भी बनायी जाय तो एक विशाल ग्रन्थ तैयार हो जायगा, क्योंकि विद्याएँ तथा कलाएँ अनन्त हैं, उनकी कोई इयत्ता नहीं है, उनका परिगणन असम्भव-सा है। तथापि पुराणोंमें एवं उपपुराणोंमें वेदादि शास्त्रों, मन्वादि धर्मशास्त्रों तथा अन्य कला-विज्ञान एवं उनके विषयोंका जिस रूपमें समावेश हुआ है, उसका संख्या-निर्देशपूर्वक

१-वेदे रामायणे चैव पुराणेषु च भारते। आदिमध्यावसानेषु हरिरेकोऽत्र नापरः॥ (स्कन्द० काशी० ९५।१२, हरिवंश २।४९ में भी कुछ शब्दान्तरसे यह श्लोक प्राप्त होता है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है, विशेष जानकारीके लिये पुराण-वाङ्मयका गम्भीर अध्ययन करना चाहिये।

चार वेद—पुराणोंमें वेदोंका ही विस्तार है। यह तथ्य निर्विवाद है। चारों संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा आरण्यकोंके विषय यहाँ पर्याप्त रूपसे विवेचित हैं। ऋग्वेद[१]की पूरी जानकारीके लिये विष्णुपुराणके तृतीय अंशके चतुर्थ अध्यायका अवलोकन किया जा सकता है। इसी प्रकार यजुर्वेद[२] शुक्ल तथा कृष्ण—दोनों शाखाओंका विशद वर्णन उसीके पाँचवें अध्यायमें है। फिर साम[३] तथा अथर्ववेदकी[४] शाखा-प्रशाखाओंका विवेचन छठे अध्यायमें हुआ है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धके छठे तथा सातवें अध्यायमें चारों वेदोंकी शाखा-प्रशाखाओंका सूक्ष्म वर्णन है। अग्निपुराणमें ऋग्विधान, यजुर्विधान आदि चारों वेदोंके विधान-ग्रन्थोंका सम्यक् रूपसे समावेश किया गया है। इसीके साथ वेदोंके मन्त्र और सूक्त भी विभिन्न कर्मकाण्डोंके प्रसङ्गमें उल्लिखित हैं। वैष्णवोंमें भागवत तथा विष्णु आदि पुराणोंकी एवं 'पुरुषसूक्त' की महिमा अपरिमेय है। भागवत तथा विष्णु आदि पुराणोंने समग्ररूपसे इसका अनेक बार उल्लेख किया है। पुराणोंमें वैदिक संहिताओंके मन्त्रोंकी व्याख्या भी विस्तारसे मिलती है। **'विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचम्'** (ऋक्० १।१५४।१) की व्याख्या भागवत (२।७।४०)में की गयी है। यहाँतक कि किंचित् शब्दान्तरके साथ पूरा मन्त्र यथावत् मिलता है। इसी प्रकार **'ईशावास्यमिदं सर्वम्०'** इस ईशोपनिषद्के मन्त्रकी व्याख्या भागवत (८।१।१०) में मिलती है। **'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया०'** (ऋग्वेद १।१६४।२०, अथर्व० ९।९।२०) नामक प्रसिद्ध वैदिक मन्त्रकी व्याख्या भागवतके एकादश स्कन्धके ग्यारहवें अध्यायके छठे श्लोकमें बड़ी विशदतासे की गयी है। इसी प्रकार **'चत्वारि शृंगा त्रयोऽस्य पादाः०'** इस ऋग्वेदके पूरे मन्त्रको भागवतने ८।१६।३१ में यथावत् लेते हुए इसका यज्ञपरक अर्थ किया है। वैदिक मन्त्रों तथा सूक्तोंके साथ ही वेदोंमें वर्णित आख्यानोंको पुराणोंमें विस्तारसे देखा जा सकता है, जैसे विष्णु आदिके अवतारकी कथाएँ, पुरूरवा-उर्वशी-आख्यान, शुनःशेप-आख्यान, नाचिकेतोपाख्यान, वृत्रासुर-आख्यान आदि। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि संहिताओंके विषय पुराणोंमें विशद-रूपसे विवेचित हैं।

चार उपवेद—आत्यन्तिक सूक्ष्म गवेषणापूर्वक विचार करनेपर ऋग्वेदका स्थापत्यवेद[५], यजुर्वेदका धनुर्वेद[६], सामवेदका गान्धर्ववेद[७] और अथर्ववेदका आयुर्वेद[८] उपवेद निश्चित होता है। विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें इन चारों उपवेदोंका साङ्गोपाङ्ग वर्णन हुआ है। स्थापत्यवेद और शिल्पशास्त्रका वर्णन इसमें सर्वाधिक विस्तारसे है। धनुर्वेदका ही वर्णन इसमें प्रायः सौ अध्यायोंमें प्राप्त होता है। गरुडपुराण अध्याय १४६से २०४ तक आयुर्वेदका सम्यक् वर्णन है।

आयुर्वेदके उपभेदोंका भी वर्णन पुराणोंमें प्राप्त होता है। अग्निपुराणके २८९वें अध्यायमें शालिहोत्रसार अश्वायुर्वेदका[९] वर्णन है और २९१वें अध्यायमें बुधके ग्रन्थ गजवैद्यकका सारांश वर्णित है, जिसे गजायुर्वेद[१०] कहा गया है। इसके साथ ही २९२वें अध्यायमें गवायुर्वेदका[११] तथा शान्त्यायुर्वेदका[१२] वर्णन है। इनमें घोड़े, हाथी तथा गाय आदिकी चिकित्साका वर्णन मिलता है। इसी अग्निपुराणके २८२वें अध्यायमें वृक्षायुर्वेदका[१३] भी वर्णन है। इसका अधिक वर्णन विष्णुधर्मोत्तरमें है। अन्य पशुओंकी चिकित्सा, उनके लक्षण तथा शान्तिके मन्त्र भी विष्णुधर्मोत्तर, अग्नि तथा गरुडपुराणमें विस्तारसे विवेचित हैं।

छः वेदाङ्ग—वेदाङ्गोंमें व्याकरण[१४] प्रमुख है। इसका नारदपुराणके पूर्वभागके द्वितीय पादके ५१वें अध्यायमें सूक्ष्म किंतु सुन्दर विवेचन हुआ है। नारदपुराणका व्याकरण 'कातन्त्र'-व्याकरणका सार है, जिसे माहेश्वर या कौमार-व्याकरण कहा जाता है। इसी प्रकार अग्निपुराणके ३४९वें अध्यायसे ३५९वें अध्यायतक लगभग १० अध्यायोंमें व्याकरणशास्त्रका वर्णन है। छन्दःशास्त्र[१५] या पिङ्गलशास्त्रका वर्णन गरुडपुराणके २०७ से २१२ अध्यायतक, नारदपुराणके पूर्व-भागके द्वितीय पादके ५७वें अध्यायमें वैदिक तथा लौकिक छन्दोंका वर्णन है। इसी प्रकार अग्निपुराणके ३२८वें अध्यायसे ३३५ अध्यायतक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छन्दःशास्त्रका विशद निरूपण मिलता है। ज्योतिषशास्त्रके[१६] लिये नारदपुराण तथा विष्णुधर्मोत्तरका विवेचन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। नारदपुराणके तीन अध्यायों (१।२।५४-५६) में त्रिस्कन्ध ज्योतिष (सिद्धान्त, संहिता तथा होरा) का सुन्दर निरूपण है जो नारदीय ज्योतिषके नामसे विख्यात है। निरुक्त[१७] सम्बन्धी सामग्री पुराणोंमें अत्यल्प है। नारदपुराणके पूर्वभागके द्वितीय पादके ५३वें अध्यायमें निरुक्तसे सम्बद्ध थोड़ेसे श्लोक प्राप्त होते हैं, जो मुख्यतया व्याकरणशास्त्रके स्वरवैदिक-प्रक्रिया एवं धातुप्रकरणसे अभिन्न-से प्रतीत होते हैं।

वेदादिके पाठका विधान, स्वरोंके उच्चारणकी विधि, सामवेदकी गान-प्रक्रिया और वर्णोंके स्पष्ट उच्चारणकी विधि जिस शास्त्रमें वर्णित हो उसे 'शिक्षा'[१८] शास्त्र कहा जाता है। इसका वर्णन नारदपुराणके पूर्वभागके द्वितीय पादके ५०वें अध्यायमें प्रायः तीन सौ श्लोकोंमें तथा अग्निपुराणके ३३६ वें अध्यायमें हुआ है। कल्पों[१९] का वर्णन प्रायः पुराणोंमें भरा पड़ा है। कल्पमें वैदिक एवं लौकिक कर्मकाण्डोंका समन्वय है, जिनमें श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, स्मार्तसूत्र और शुल्बसूत्र—ये चार गृहीत होते हैं। इनका वर्णन भविष्यपुराणमें सर्वाधिक है, जिसमें यज्ञ, इष्टापूर्त तथा संस्कारकी विधियाँ कही गयी हैं। वैसे कल्पोंके पाँच भेद होते हैं—(१) नक्षत्रकल्प, (२) वैतानकल्प, (३) संहिताविधानकल्प, (४) आङ्गिरसकल्प और (५) शान्तिकल्प। नक्षत्रकल्पमें यज्ञ और संस्कार आदि कर्मोंके मुहूर्तोंका निर्णय होता है। वैतानकल्पमें यज्ञों (हविर्यज्ञ, सोमयज्ञ और पाकयज्ञ—इन तीन संस्थाओं) की साङ्गोपाङ्ग विधि निरूपित होती है। संहिताकल्पमें विशेषकर वेदनिर्दिष्ट अश्वमेध, राजसूयादि यज्ञों और उससे भिन्न भी सभी विधियोंकी सम्पादन-प्रक्रिया प्राप्त होती है। आङ्गिरसकल्पमें शत्रु-राष्ट्रोंके लिये मारण, मोहन, वशीकरण तथा उच्चाटनादि अभिचारकर्मोंका निर्देश है। शान्तिकल्पमें विविध दैव, अन्तरिक्ष, अद्भुत आदि उत्पातों, ईति, भीति आदि भयोंके निवारणका तथा शत्रुराष्ट्रोंद्वारा किये गये मारण-मोहनादि प्रयोगोंकी शान्तिविधिका वर्णन है। ये सभी विषय पुराणोंमें विशेषकर भविष्य, अग्नि, गरुड तथा विष्णुधर्मोत्तरमें विस्तारसे प्राप्त होते हैं।

षड्दर्शन—पुराणोंमें सर्वदर्शनसंग्रहके सभी दर्शनोंके मूलभूत सिद्धान्तोंका समावेश हो गया है। इनमें सबसे प्राचीनतम दर्शन सांख्यदर्शन[२०] माना जाता है। सांख्यशास्त्रका साङ्गोपाङ्ग वर्णन ब्रह्मपुराणके २३५वें अध्यायसे लेकर २४४ तक प्रायः दस अध्यायोंमें हुआ है, जो करालजनक तथा महर्षि वसिष्ठके संवादके रूपमें वर्णित है। भागवतके तीसरे स्कन्धके दस अध्यायोंमें कपिल-देवहूति-संवादमें सेश्वर-सांख्यका वर्णन हुआ है, जिसमें २५ तत्त्वोंका विस्तारसे विवेचन है; किंतु एकादश स्कन्धके २२वें अध्यायमें २८ तत्त्वतक परिगणित हुए हैं। योग[२१] का विषय प्रायः प्रत्येक पुराणोंमें आया है; किंतु सबसे विशद वर्णन तथा योगदर्शनके साक्षात् पद्यबद्धानुवाद-जैसा ही वर्णन लिंगपुराणके पूर्वार्धके ८ से १० अध्यायों तथा ६६ से ८८ अध्यायोंमें हुआ है। प्राचीनतम योगशास्त्रका विशद वर्णन विष्णुपुराणके ६ठे अंशमें खाण्डिक्य और केशिध्वजके संवादमें तथा स्कन्दपुराणके काशीखण्डके ४१वें अध्यायमें लगभग १९० श्लोकोंमें हुआ है।

पूर्वमीमांसा[२२], प्राचीनन्याय[२३] नव्यन्याय और वैशेषिकदर्शनका[२४] पुराणोंमें यद्यपि स्वतन्त्र शीर्षकके रूपमें वर्णन परिलक्षित नहीं होता तथापि पुराणोंके विभिन्न प्रकरणोंमें इन दर्शनोंके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन हुआ है। विष्णुधर्मोत्तर-पुराणके तृतीय खण्डके चार, पाँच तथा छः अध्यायोंमें इनका कुछ संक्षेपसे किंतु अतिस्पष्ट विवेचन किया गया है। वहाँ न केवल विवेचन ही है, अपितु अत्यन्त प्रौढ़ पदावलीमें दर्शन-शास्त्रोंकी भाँति गद्ययुक्त लम्बे सूत्रोंद्वारा पारिभाषिक शब्दावलीमें उनके विषयोंको वर्गीकृत कर समझाया गया है। उदाहरणके लिये न्यायदर्शनके पदार्थोंकी परिगणना इस प्रकार की गयी है—'**अधिकरणं योगः पदार्थः हेत्वर्थ उद्देश्यो निदेशः प्रदेशोऽतिदेशः अपवर्गो वाक्यविशेषोऽर्थापत्तिः प्रसंग एकान्तो नैकान्तः पूर्वपक्षो निर्णयो विधानपर्यायोऽति-क्रान्तावेक्षणं संशयो व्याख्यानमनुमतिः स्वसंज्ञानिर्वचनं दृष्टान्तो वियोगो विकल्पः समुच्चयोऽर्थ इति।**' (विष्णुधर्मो० ३।६ गद्यभाग)।

आत्मतत्त्व, औपनिषदज्ञान, उत्तरमीमांसा, ब्रह्मसूत्र या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदान्तका[२५] निर्देश सभी पुराणोंमें विस्तारसे हुआ है। जिनमें भागवतका एकादश स्कन्ध, विष्णुपुराणका छठा अंश, गरुडपुराणके पूर्वभागके २३५ से २३९ तकके अध्याय मुख्य हैं। ब्रह्मसूत्रमें प्रायः आरम्भके सूत्र **'अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा'** (१।१।१) से लेकर द्वितीय अध्यायके **'अविरोधश्चन्दनवत्'** (२।३।२३) सूत्रतक इस आत्मतत्त्व (ब्रह्म)की सर्वव्यापकताका वर्णन किया गया है और अन्तमें अर्चि और धूममार्गका सभी श्रुतियोंसे समन्वय दिखाकर आत्माको सर्वव्यापक और मुक्त दिखाया गया है। **'अर्चिरादिना तत्प्रथितेः'** (४।३।१) से ब्रह्मप्राप्तिकी बात कही गयी है। ब्रह्मसूत्रके इन सूत्रोंका भाष्य विष्णुपुराणके द्वितीय अंशके १५ तथा १६ वें अध्यायमें कितने सुन्दर ढंगसे हुआ है, इसके लिये एक श्लोक उदाहरण-स्वरूप दिखलाया जा रहा है, जिसमें ऋभु तथा निदाघके संवादमें आत्मा (परमात्मा)की सर्वव्यापकता दिखलायी गयी है—

एकः समस्तं यदिहास्ति किञ्चित्
तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत्।
सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेत-
दात्मस्वरूपं त्यज भेदमोहम्॥

(विष्णु० २।१६।२३)

अर्थात् 'इस संसारमें जो कुछ है, वह सब एक आत्मा ही है और वह अविनाशी है, उससे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। मैं, तू और ये सब आत्म-स्वरूप ही हैं, अतः भेद-ज्ञानरूप मोहको छोड़।'

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके चौदहवें अध्याय तथा तीसरे स्कन्धके ३२वें अध्यायमें वेदान्तके सिद्धान्तोंका महत्त्वपूर्ण वर्णन है। ब्रह्मसूत्रके प्रथम अध्यायके प्रथमपादके द्वितीय सूत्र **'जन्माद्यस्य यतः'** में ब्रह्मका लक्षण किया गया है। श्रीमद्भागवतका प्रारम्भ ही इस सूत्रको लेकर हुआ है। यथा—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥

(१।१।१)

अर्थात् 'जिससे इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं—क्योंकि वह सभी सद्रूप पदार्थोंमें अनुगत है और असत्-पदार्थोंसे पृथक् है; जड नहीं चेतन है, परतन्त्र नहीं स्वयं प्रकाश है, जो ब्रह्मा अथवा हिरण्यगर्भ नहीं प्रत्युत उन्हें अपने संकल्पसे ही जिसने उस वेदज्ञानका दान किया है, जिसके सम्बन्धमें बड़े-बड़े विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं, जैसे तेजोमय सूर्यरश्मियोंमें जलका, जलमें स्थलका और स्थलमें जलका भ्रम होता है, वैसे ही जिसमें यह त्रिगुणमयी जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिरूपा सृष्टि मिथ्या होनेपर भी अधिष्ठान-सत्तासे सत्यवत् प्रतीत हो रही है, उस अपनी स्वयंप्रकाश ज्योतिसे सर्वदा और सर्वथा माया और मायाकार्यसे पूर्णतः मुक्त रहनेवाले परम सत्यरूप परमात्माका हम ध्यान करते हैं।'

श्रीमद्भागवतके अन्तमें भी स्पष्ट-रूपसे कहा गया है कि 'समस्त उपनिषदोंका सार है ब्रह्म और आत्माका एकत्वरूप अद्वितीय सद्वस्तु।' यही श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य विषय है। इसके निर्माणका प्रयोजन है एकमात्र कैवल्यमोक्ष। इस प्रकार अथ तथा इतिकी एकवाक्यतासे वेदान्तशास्त्रका ही परिपाक श्रीमद्भागवतपुराणमें हुआ है।

वैष्णवदर्शन और **पुराण**— वेदान्त-दर्शनके अन्तर्गत तीन ग्रन्थ हैं—'उपनिषद्', 'वेदान्तसूत्र' तथा 'श्रीमद्भगवद्-गीता।' इन तीनोंको 'प्रस्थानत्रयी' कहा जाता है। प्रथम प्रस्थान अर्थात् ईशादि बारह उपनिषदोंका नाम 'श्रुतिप्रस्थान' है। दूसरा प्रस्थान जिसे 'न्यायप्रस्थान' भी कहते हैं, 'ब्रह्मसूत्र' है। इन ब्रह्मसूत्रोंका नाम वेदान्तसूत्र, शारीरकमीमांसा, उत्तरमीमांसा भी है। ब्रह्मसूत्रोंके रचयिता भगवान् बादरायण अथवा श्रीवेदव्याजी हैं। तीसरा प्रस्थान 'स्मृतिप्रस्थान' या 'गीता-प्रस्थान' कहलाता है। यहाँ केवल प्रस्थानत्रयीके द्वितीय प्रस्थान ब्रह्मसूत्रके वैष्णव भाष्योंपर विचार किया जा रहा है।

ब्रह्मसूत्रके आधारपर अनेकों वैष्णवाचार्योंने अपने मतवाद स्थापित किये हैं और भाष्यकी रचना की है, जिनमें रामानुजभाष्य, वल्लभाचार्यभाष्य, मध्वाचार्यभाष्य, निम्बार्कभाष्य, भास्कराचार्यभाष्य, विज्ञानभिक्षुभाष्य, श्रीकण्ठाचार्यभाष्य प्रमुख हैं। ये सभी आचार्य शंकरसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परवर्ती हैं। इन सभी प्रधान आचार्योंने अपने मतवादकी पुष्टिमें उपनिषदोंके साथ-साथ विष्णु, भागवत आदि पुराणोंके अनेक वचनोंको उद्धृत किया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराणोंमें इन आचार्योंके सिद्धान्तोंका पूर्ण परिपाक उपलब्ध है। यहाँ इन्हीं प्रमुख आचार्योंके मतोंका पौराणिक परिप्रेक्ष्यमें संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

विशिष्टाद्वैतदर्शन[२६]—इसके संस्थापक श्रीरामानुजाचार्य हैं। ब्रह्मसूत्रपर इनकी व्याख्या 'श्रीभाष्य' के नामसे विख्यात है। इनका कहना है कि ब्रह्म एक है और उसमें तीन वस्तुएँ हैं—(१) जड प्रकृति, (२) चेतन आत्मा और (३) सर्वनियन्ता, सत्यज्ञान, आनन्दस्वरूप निखिल कल्याणगुणोंका भाजन परमेश्वर। ब्रह्मका अद्वैत ही इन तीनों पदार्थोंकी समष्टिका नाम है। इस प्रकारके विशिष्ट ब्रह्मको श्रीरामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैत कहते हैं। अपने श्रीभाष्यमें उन्होंने अपने मतकी पुष्टिमें विष्णुपुराणके अनेक वचन उद्धृत किये हैं। आचार्यने विष्णुपुराणके आधारपर पहले परमात्माको ज्ञानस्वरूप मानकर फिर जीव और मायासे विशिष्ट उसे अनेक रूपोंमें विवर्तित दिखाया है और फिर तत्त्वतः उसे परमात्मा माना है। इस सिद्धान्तके प्रतिपादनमें उन्होंने विष्णुपुराणके द्वितीय अंशके १२वें अध्यायके ३९ से ४५ तकके श्लोकोंको विशेष समारोहके साथ अपने श्रीभाष्य (श्रीवत्सप्रदीप, मद्राससे प्रकाशित, वर्ष १९६३)के पृष्ठ २७ में उद्धृत किया है। उनमेंसे एक-दो वचन इस प्रकार हैं। यथा—

ज्ञानस्वरूपो भगवान् यतोऽसावशेषमूर्तिर्न तु वस्तुभेदः।
ततो हि शैलाब्धिधरादिभेदाञ्जानीहि विज्ञानविजृम्भितानि॥

(२।१२।३९)

अर्थात् 'क्योंकि भगवान् विष्णु ज्ञानस्वरूप हैं, इसलिये वे सर्वमय हैं, परिच्छिन्न पदार्थाकार नहीं हैं। अतः इन पर्वत, समुद्र और पृथ्वी आदि भेदोंको तुम एकमात्र विलास जानो।' इसी प्रकार—

यदा तु शुद्धं निजरूपि सर्वं कर्मक्षये ज्ञानमपास्तदोषम्।
तदा हि संकल्पतरोः फलानि भवन्ति नो वस्तुषु वस्तुभेदाः॥

'जिस समय जीव आत्मज्ञानके द्वारा दोषरहित होकर सम्पूर्ण कर्मोंका क्षय हो जानेसे अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थित हो जाता है, उस समय आत्मवस्तुमें संकल्पवृक्षके फलरूप पदार्थ-भेदोंकी प्रतीति नहीं होती।' पुनः आगे कहा गया है कि विज्ञानसे अतिरिक्त कभी कहीं कोई पदार्थादि नहीं है। अपने-अपने कर्मोंके भेदसे भिन्न-भिन्न चित्तोंद्वारा एक ही विज्ञान नाना प्रकारसे मान लिया गया है। वह विज्ञान अति विशुद्ध, निर्मल, निःशोक और लोभादि समस्त दोषोंसे रहित है। वही एक सत्स्वरूप परम परमेश्वर वासुदेव है, जिससे पृथक् और कोई पदार्थ नहीं है। केवल एक ज्ञान ही सत्य है, उससे भिन्न और सब असत्य है।

आगे चलकर आचार्यजीने अपने श्रीभाष्यके पृ० ९६ से १०२ तकके पृष्ठोंमें विष्णुपुराणके ६ठे अंशके पाँचवें अध्यायके अनेक श्लोकोंको अपने मतकी पुष्टिमें उल्लिखित किया है। विशेष अध्ययनके लिये श्रीभाष्यका गम्भीर चिन्तन करना चाहिये, जिससे यह स्पष्ट हो जायगा कि पुराणोंमें इस दर्शनकी मूलभित्ति विद्यमान है।

द्वैताद्वैतदर्शन[२७]— इसके प्रवर्तक श्रीनिम्बार्काचार्य हैं। इनके मतमें यद्यपि ब्रह्म अद्वैत है, किंतु उसीमें जीवमय, स्त्री-पुरुषमय, चराचरजगत् विवर्तित है, अतः वह द्वैताद्वैत इस सार्थक नामसे अभिव्यञ्ज्य है। अपनी दशश्लोकीमें भी उन्होंने अपने मतका सार दिया है। उन्होंने अपने मतकी पुष्टिमें विष्णुपुराणके श्लोकोंको प्रमाणस्वरूप उद्धृत किया है। यथा ब्रह्मके निरूपणमें—

आश्रयश्चेतसो ब्रह्म द्विधा तच्च स्वभावतः।
भूप मूर्तममूर्तं च परं चापरमेव च॥
अमूर्तं ब्रह्मणो रूपं यत्सदित्युच्यते बुधैः॥
समस्ताः शक्तयश्चैता नृप यत्र प्रतिष्ठिताः।
तद्विश्वरूपवैरूप्यं रूपमन्यद्धरेर्महत्॥
समस्तशक्तिरूपाणि तत्करोति जनेश्वर।
एतत् सर्वमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम्।
परब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोः शक्तिसमन्वितम्॥
एतान्यशेषरूपाणि तस्य रूपाणि पार्थिव।
यतस्तच्छक्तियोगेन युक्तानि नभसा यथा॥
द्वितीयं विष्णुसंज्ञस्य योगिध्येयं महामते।

(विष्णुपुराण ६। अ० ७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् 'राजन्! (भक्तोंके) मन (ध्यान) का आश्रय ब्रह्म है। वह स्वभावसे दो प्रकारका है—मूर्त और अमूर्त अथवा पर और अपर। जो विद्वानोंद्वारा सत् कहा जाता है, वह ब्रह्मका तात्त्विक रूप अमूर्त है। जिसमें समस्त व्यक्त शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं, वह ब्रह्मका दूसरा परम विचित्र विश्वरूप है। संसारकी समस्त शक्तियाँ इसीसे उत्पन्न होती हैं। सारा विश्व, समस्त चराचर-सृष्टि परब्रह्म विष्णुकी शक्तिसे समन्वित है। हे राजन्! ये सब जीव सर्वव्यापक विष्णुके व्यक्त रूप हैं। जिस प्रकार सारा विश्व तेजोवह आकाशसे व्याप्त है, उसी प्रकार ये जीव विष्णुकी शक्तिसे ओतप्रोत हैं। यह ध्यान करनेयोग्य विष्णुका दूसरा रूप है।' इस प्रकार ब्रह्म अद्वैत और द्वैत (द्वैताद्वैत) दोनों है। जीव और ब्रह्मके बीच वही सम्बन्ध है, जो अंश और अंशीके बीच (अंशांशिभाव) होता है।

द्वैतदर्शन[२८]— इसके प्रवर्तक आचार्य मध्व हैं। इनका दूसरा नाम आनन्दतीर्थ है। इनके द्वारा ब्रह्मसूत्रपर किया गया भाष्य आनन्दतीर्थभाष्य तथा पूर्णप्रज्ञाभाष्य भी कहलाता है। इनका मुख्य सिद्धान्त यही है कि ईश्वर भी सत्य है और जगत् भी सत्य है, इसीलिये इनका सिद्धान्त द्वैतसिद्धान्त कहलाता है। जीव-जगत् ईश्वरके अधीन है और मोक्षका मुख्य साधन विष्णुकी निर्मल भक्ति है। इन्होंने भी विष्णुपुराणके आधारपर ही अपने मतवादकी पुष्टि की है। इनके मतवादकी समीक्षा सौरपुराणमें भी मिलती है। इन्होंने अपने गीताभाष्य तथा ब्रह्मसूत्रभाष्य आदिमें ब्रह्म, पद्म, विष्णु, नारदीय तथा कूर्मपुराणके वचनोंका उदाहरण दिया है। इन्होंने गीताभाष्यके ८।१७में जो वचन दिया है, वह इस प्रकार है—

अनेकयुगपर्यन्तं महाविष्णोस्तथा निशा।
रात्र्यादौ लीयते सर्वमहरादौ तु जायते॥

जैसे कूर्मपुराणमें विष्णुके दिनमें सृष्टि होने तथा रात्रिमें प्रलय होनेकी बात कही गयी है, उसी प्रकार पद्मपुराणमें **'ह्रीयते त्वया जगद्यस्माद्धृदित्येवं प्रभाषसे'** कहकर जगत्की, भगवान् विष्णुद्वारा उत्पन्न, विलीन तथा संहृत होनेकी बात कही गयी है। इसी प्रकार इन्होंने पुराणोंसे और भी अनेक वचन उद्धृत कर अपने मतको पुराणानुकूल सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है।

शुद्धाद्वैतदर्शन[२९]—श्रीवल्लभाचार्यजीका अद्वैतवेदान्त-दर्शन शुद्धाद्वैत तथा पुष्टिमार्गके नामसे प्रसिद्ध है। उन्होंने शांकरवेदान्तसे अपने मतकी भिन्नता प्रतिपादन करनेके विचारसे अद्वैतसे पूर्व शुद्ध शब्दका व्यवहार किया है तथा अपने सिद्धान्तको 'शुद्धाद्वैत' नामसे व्यवहृत किया है। भक्तिसम्प्रदायमें यही मत 'पुष्टिमार्ग'के नामसे प्रसिद्ध है। शुद्धाद्वैतका तात्पर्य है संशोधनसहित अद्वैत वेदान्तको स्वीकार करना।

शुद्धाद्वैतमें वेद-उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता—इस प्रस्थानत्रयीके साथ शब्दप्रमाणको परम प्रमाण मानते हुए श्रीमद्भागवतको वेदके समान प्रमाण माना गया है और प्रस्थानचतुष्टयकी स्थापना की गयी है। प्रमाणके बाद तीन प्रकारके प्रमेय जो इस सिद्धान्तको मान्य हैं, वे हैं—स्वरूपकोटि, तत्त्वकोटि और कार्यकोटि। श्रीवल्लभाचार्यजीके **'हरिरेव प्रमेयः सर्वभावापन्नः'**— (अणुभाष्य) इस भाष्यके अनुसार साक्षात् श्रीकृष्ण ही स्वरूप, तत्त्व तथा कार्यरूप निरूपित हैं। वेदान्तदर्शन (ब्रह्मसूत्र)के सूत्रोंमें जहाँ-जहाँ भी **'स्मर्यते च'** (४।२।१४), **'स्मरन्ति च'** (२।३।४७, ३।१।१४) तथा **'दर्शनाच्च'** (३।१।२०, ३।२।२१, ३।३।४८) आदि सूत्र आये हैं, उन सभी स्थलोंपर इन्होंने भागवतके ही अनेक प्रमाण दिये हैं, जिनमेंसे यहाँ कुछ उद्धृत किये जाते हैं। **'स्मर्यते च'** (४।२।१४) की व्याख्यामें श्रीमद्भागवतका उदाहरण दिया है, जैसे—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
मामेवं दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गताः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम्॥
(१०।४६।४)

श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं—'प्यारे उद्धव! गोपियोंका मन नित्य-निरन्तर मुझमें ही लगा रहता है। उनके प्राण, उनका जीवन, उनका सर्वस्व मैं ही हूँ। मेरे लिये उन्होंने अपने पति-पुत्र आदि सभी सगे-सम्बन्धियोंको छोड़ दिया है। उन्होंने बुद्धिसे भी मुझे ही अपना प्यारा, अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियतम—नहीं, नहीं, अपना आत्मा मान रखा है। मेरा यह व्रत है कि 'जो लोग मेरे लिये लौकिक और पारलौकिक धर्मोंको छोड़ देते हैं, उनका भरण-पोषण मैं स्वयं करता हूँ।' इसी प्रकार आगे कहा है—

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य॥

(१०।४७।५८)

'इस श्रेष्ठ पृथ्वीपर केवल इन गोपियोंका ही शरीर धारण करना श्रेष्ठ एवं सफल है, क्योंकि ये सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णके परम प्रेममय दिव्य महाभावमें स्थित हो गयी हैं। प्रेमकी यह ऊँची-से-ऊँची स्थिति संसारके भयसे भीत मुमुक्षुजनोंके लिये ही नहीं, अपितु बड़े-बड़े मुनियों, मुक्त पुरुषों तथा हम भक्तजनोंके लिये भी वाञ्छनीय ही है। हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी। सत्य है, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथाके रसका चसका लग गया है, उन्हें कुलीनताकी, द्विजातिसमुचित संस्कारकी और बड़े-बड़े यज्ञ-यागोंमें दीक्षित होनेकी क्या आवश्यकता है? अथवा यदि भगवान्‌की कथाका रस नहीं मिला, उसमें रुचि नहीं हुई तो अनेक महाकल्पोंतक बार-बार ब्रह्मा होनेसे ही क्या लाभ?'

अणुभाष्यमें श्रीमद्भागवतके ९।४।६३-६४, १०।८।४०, १०।६४।२२-२३ आदि अनेक प्रमाण यत्र-तत्र उल्लिखित हैं। सारांशमें यह समझना चाहिये कि श्रीवल्लभवेदान्तमें भागवतपुराण ही परम प्रमाण है। इसीलिये इस मार्गमें और इनके अनुयायिवर्गमें विद्वत्ताकी गवेषणाकी अपेक्षा श्रीकृष्णचन्द्रके पदानुरक्तिपर ही अधिक विशेष प्रेम रहता चला आ रहा है। श्रीबल्लभाचार्यजीने श्रीविष्णुस्वामिजीके मतका उपबृंहण किया है और यह शुद्धाद्वैत वेदान्त उसीकी एक शाखा है।

अचिन्त्यभेदाभेदवाद[३०]—वैष्णव मतोंमें श्रीमध्वाचार्यजीकी ही एक शाखा मध्वगौड़ीय चैतन्य महाप्रभुके द्वारा प्रवर्तित है। इस सिद्धान्तका नाम अचिन्त्य-भेदाभेदवाद है। यद्यपि इन्होंने वेदान्तसूत्र(ब्रह्मसूत्र) का भाष्य नहीं किया, किंतु इनकी शिष्य-परम्परामें श्रीबलदेवविद्याभूषणने इनके मतका प्रतिपादन अपने 'गोविन्दभाष्य'में किया है। श्रीचैतन्य-सम्प्रदायके मतानुसार श्रीमद्भागवत ही वेदान्तसूत्रका भाष्य है। इस मतके अनुसार ब्रह्मसूत्रके केवल **'स्मर्यते च'**, **'स्मरन्ति च'** इत्यादि सूत्र ही नहीं, अपितु सभी सूत्रोंके उदाहरण श्रीमद्भागवतसे ही प्रमाणित होते हैं। जैसे ब्रह्मसूत्रका द्वितीय सूत्र—**'जन्माद्यस्य यतः'** और श्रीमद्भागवतका प्रथम श्लोक **'जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादि०'** इत्यादि। इसी प्रकार ब्रह्मसूत्रके **'शास्त्रयोनित्वात्'** (१।१।३) इस सूत्रका भाष्य चैतन्य-मतानुसार श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके दसवें अध्यायमें स्पष्ट प्रतीत होता है[१]। यद्यपि श्रीमद्भागवत तथा गीता आदिके अनुसार जीव पराप्रकृति और माया (जड) अपरा प्रकृति है तथा श्रीकृष्ण स्वयं इन दोनोंके स्वामी सर्वशक्तिमान् हैं तथापि इन तीनोंमें परस्पर भेद है। यह जो युगपत् नित्य-भेदाभेद-सम्बन्ध है, वह मानवबुद्धिके परे अथवा अतीत है अथवा अचिन्त्य है। इसीलिये यह अचिन्त्य-भेदाभेदके नामसे प्रसिद्ध है।

भेदाभेददर्शन[३१]—इसके प्रवर्तक श्रीभट्ट भास्कराचार्य हैं। इन्होंने शंकराचार्यके मतसे भिन्न अपने मतकी स्थापना की है। ब्रह्मसूत्र (३।२।११) के **'न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र'** सूत्रके अनुसार इनका मतवाद भेदाभेदवाद बताया गया है। संसारको नित्य मानते हुए उसे ईश्वररूप भी मानना भेदाभेद है। इस मतके स्वाभाविक भेदाभेद, निरुपाधिक भेदाभेद, सोपाधिक भेदाभेद तथा

१-स एव भूयो निजवीर्यचोदितां स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम्। अनामरूपात्मनि रूपनामनी विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत्॥

(१।१०।२२)

अर्थात् 'उन्होंने (परमात्मा श्रीकृष्णने) ही फिर अपने नाम-रूपरहित स्वरूपमें नाम-रूपके निर्माणकी इच्छा की तथा अपनी काल-शक्तिसे प्रेरित प्रकृतिका, जो कि उनके अंशभूत जीवोंको मोहित कर लेती है और सृष्टिकी रचनामें प्रवृत्त रहती है, अनुसरण किया और व्यवहारके लिये वेदादि शास्त्रोंकी रचना की।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अचिन्त्यभेदाभेद आदि कई अवान्तर प्रभेद हैं।

आचार्य भट्ट भास्करने अपने भास्करभाष्यमें यत्र-तत्र पुराणोंके श्लोकोंको उद्धृत कर अपने मतको प्रमाणित किया है। **'शब्द इति चेन्नातः प्रभावात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्'** (ब्रह्मसूत्र १।३।२८) के भाष्यमें **'इति पौराणिकाः'**, **'तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत्'** (ब्रह्मसूत्र २।३।३९) के भाष्यमें **'तथा चाहुः पौराणिकाः'** तथा **'स्मृतेश्च'** (ब्रह्मसूत्र ४।३।१०) के भाष्यमें **'पुराणस्मृतेश्च'** इत्यादि कहकर पुराणोंको स्मरण करते हुए उनके श्लोकोंको उद्धृत किया है, जिससे यह प्रतीत होता है कि पुराणोंमें सभी विचारों—दर्शनोंका स्पष्ट संकेत विद्यमान है।

समन्वयवाद[३२]— आचार्य विज्ञानभिक्षुने ब्रह्मसूत्रके विज्ञानामृत नामक भाष्यमें सभी दर्शनोंके समन्वयकी चेष्टा की है। उनका सिद्धान्त समन्वयवादके नामसे प्रसिद्ध है। सभी दर्शनोंके समन्वय होनेसे इनका मत भी भेदाभेदवाद-नामसे ही जाना जाता है। ब्रह्मसूत्रके अपने भाष्यमें इन्होंने प्रायः कूर्म, स्कन्द, विष्णु, मत्स्य, विष्णुधर्म तथा नरसिंहादि पुराणोंके सहस्रों श्लोकोंको उद्धृत किया है। यथा **'ईक्षतेर्नाशब्दम्'** (१।१।५) की व्याख्यामें विष्णुपुराणका यह श्लोक दिया है—

नैवाहस्तस्य न निशा नित्यस्य परमात्मनः।
उपचारस्तथाप्येष तस्येशस्य द्विजोच्यते॥

(६।४।४९)

इसी प्रकार **'सर्वथापि त एवोभयलिंगात्'** (ब्र०सू० ३।४।३४)के विवेचनमें कूर्मपुराणके निम्न श्लोक उद्धृत किये हैं—

भगवन् देवतारिघ्न हिरण्याक्षनिषूदन॥
चत्वारो ह्याश्रमा प्रोक्ता योगिनामेक उच्यते।

(१।२।७४-७५)

विशेष जिज्ञासाके लिये ब्रह्मसूत्रके विज्ञानामृतभाष्यके ४।३।११, ४।१।१३, ४।१।३, ३।४।२० इत्यादि अनेक स्थलोंको देखना चाहिये। यहाँ तो प्रमाणस्वरूप किंचित् वचनोंको ही दिखाया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि पुराणके वचन ही इन आचार्योंके लिये प्रबल प्रमाण-स्वरूप रहे हैं।

शिवाद्वैतदर्शन[३३]—इसके प्रवर्तक श्रीकण्ठाचार्यजी हैं। ब्रह्मसूत्रपर इनका भाष्य 'शैवभाष्य' या 'शिवाद्वैतभाष्य' कहा जाता है। इन्होंने अपने मतकी पुष्टिमें मुख्यतः शैवपुराणों—शिवपुराण, लिङ्गपुराण तथा कूर्मपुराण आदिके साथ-साथ वाल्मीकि-रामायणके स्थलोंको भी स्थान दिया है। यथा **'अपि च स्मर्यते'** ब्रह्मसूत्र (२।३।४४) के शैवभाष्यमें इन्होंने शिवपुराण, शतरुद्रसंहिताका निम्न श्लोक प्रमाणस्वरूप लिया है—

आत्मा तस्याष्टमी मूर्तिः शिवस्य परमात्मनः।
व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्वं तस्माच्छिवात्मकम्॥

(२।१२)

इसी प्रकार **'पूर्ववद्वा'** (ब्र०सू० ३।२।२८) सूत्रके व्याख्यानमें पुराणोंके वचन देनेके अनन्तर **'इत्यादि पुराणवचनप्रमाणाच्च'** ऐसा लिखकर अन्य प्रमाणोंसे पुराणोंका ही प्रामाण्य अधिक प्रदर्शित किया है।

उपर्युक्त विवेचनमें श्रीवैष्णवाचार्योंके सिद्धान्तोंका सूक्ष्म परिचय देते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि उनके सिद्धान्तोंका स्रोत पुराणोंमें प्राप्त होता है। श्रीरेणुकाचार्य, श्रीकराचार्य (श्रीपतिपण्डित) के अतिरिक्त रुद्रभट्ट, विजयभट्ट, विष्णुक्रान्त आदि आचार्योंके भाष्य भी उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने यत्र-तत्र अपने भाष्योंमें प्रमाणस्वरूप पुराणोंके वचन उद्धृत किये हैं।

चार्वाकदर्शन[३४]—इस दर्शनके विषयमें पुराणोंमें विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। इस सम्बन्धमें एक कथा भी पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड अ० १३, ब्रह्माण्डपुराणके उपोद्घात-पादके ७२-७३वें अध्यायमें, मत्स्यपुराण अ० ४७, वायुपुराण एवं शिवपुराणादिमें प्राप्त होती है, जिसका सारांश इस प्रकार है—

देवासुरसंग्राममें देवताओंने अनेक प्रसिद्ध दैत्यों, राक्षसों एवं दानवोंका वध कर दिया और अमृत पीनेके कारण वे स्वयं अमर बने रहे। दैत्यगुरु शुक्राचार्य दैत्योंको पुनर्जीवित करनेवाली संजीवनी-विद्या प्राप्त करनेके लिये हिमालय पर्वतपर शंकरकी आराधना करने लगे। इन्द्रने तपस्यामें बाधा पहुँचानेके लिये अपनी पुत्री जयन्तीको शुक्राचार्यके पास उनकी सेवामें भेजा। शुक्राचार्य उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसक्त होकर अपने लक्ष्यसे दूर चले गये। उन्हीं दिनों जयन्तीसे देवयानीका जन्म हुआ। बादमें वे पुनः शिवकी आराधना करने लगे। इधर देवगुरु बृहस्पति अवसर देखकर शुक्राचार्यका रूप धारण कर संजीवनी-विद्याके नामसे दानवोंको चार्वाक-दर्शनका उपदेश करने लगे[1]। इसी बीच शुक्राचार्य भी संजीवनी-विद्या प्राप्त कर जब वहाँ लौटे तब उन्होंने अपने वेषमें वहाँ बृहस्पतिको देखा और दुःखी होते हुए उनसे कहा कि 'आप हमारे शिष्योंको लोकायत-मतका उपदेश देकर अनर्थ कर रहे हैं। मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ, आप देवाचार्य बृहस्पति हैं। आप मेरा रूप धारण कर इन्हें मोहमें डाल रहे हैं' और फिर अपने शिष्योंसे कहा—'ये बृहस्पति तुम्हें हमारा वेष धारण कर धोखा दे रहे हैं। मैं शिवजीसे संजीवनी-विद्या सीखकर आया हूँ। तुमलोग मेरी बात सुनो—इनका परित्याग करो। भगवान् शंकरने हमें तुमलोगोंके पास भेजा है।' इसपर बृहस्पतिने दानवोंसे कहा—'शिष्यो! यह ठीक हमारा रूप धारणकर तुमलोगोंको धोखा देना चाहता है। तुमलोगोंको इसकी वञ्चनामें नहीं पड़ना चाहिये।' इसपर सभी दानव 'साधु-साधु' कहकर शुक्राचार्यसे कहने लगे—'हमारे वास्तविक गुरु यही हैं, जो अपने कथनानुसार समयपर हमारे पास आ गये थे।' इसपर शुक्र अत्यन्त दुःखी हुए और इस तिरस्कारको न सहकर असुरोंको समृद्धिसे हीन होकर नष्ट हो जानेका शाप दे दिया तथा वहाँसे चले गये। जब पुनः एकान्त हुआ तो दानवोंने शुक्र-वेषधारी बृहस्पतिसे पुनः ज्ञान-तत्त्वकी बात पूछी। इसपर बृहस्पतिने उन्हें क्रम-क्रमसे चार्वाक, बौद्ध तथा जैनधर्मदर्शनका उपदेश दिया[2]। यही बृहस्पतिका उपदेश इन दर्शनोंका मूल है।

चार्वाकदर्शन नास्तिक-मत कहलाता है। इस सिद्धान्तके अनुसार केवल दृश्य जगत् ही सत्य है। केवल प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। लौकिक सुख प्राप्त करना ही परम पुरुषार्थ है। अदृष्ट कुछ नहीं है और न परलोककी कोई सत्ता है। परलोकके लिये दृष्ट लौकिक सुखोंका परित्याग करना उचित नहीं। न्याय-वैशेषिक या नव्यन्यायके कर्कश तर्कोंके सामने अनुमितिवाद आदि सबल प्रमाणोंके विरुद्ध होनेसे यह मत स्थिर नहीं हो सका। पुराणोंमें पूर्वपक्षके रूपमें इस मतका प्रतिपादन हुआ है।

जैन-दर्शन[35] **और पुराण**—पुराणोंमें जैनमतको 'अर्हत्'-मत कहा गया है और श्रीऋषभदेवजीको इस दर्शनका आद्य आचार्य बताया गया है। भगवान्‌के २४ अवतारोंमें इनकी गणना है। बौद्धोंके चार भेदोंकी भाँति जैनियोंके भी श्वेताम्बर और दिगम्बर (विवसन)—ये दो मुख्य भेद हैं। जैनियोंने बौद्धमत—क्षणिकवादको स्वीकार नहीं किया। **'प्रमेयकमलमार्तण्ड'** आदि जैन-न्याय-ग्रन्थोंमें प्रौढ़ तर्कोंके आधारपर चार्वाक, बौद्ध आदि मतोंका निरसन किया गया है। जैनदर्शन अनेकान्तपक्षीय सप्तभंगीन्याययुक्त स्यादवादके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें प्रत्यक्ष, अनुमान तथा उपमान—इन तीन ही प्रमाणोंको माना गया है। शास्त्रप्रमाण तथा अर्थापत्तिको ये प्रमाण स्वीकार नहीं करते। **'आप्तनिश्चयालंकार'** नामक जैन-ग्रन्थमें परमात्माको षडैश्वर्य-सम्पन्न न मानकर काम-क्रोधादिशून्य, जगत्पूज्य, सत्यवादी ज्ञानी पुरुषको ही परमेश्वर माना गया है। जैनदर्शनमें मोक्षको माना गया है, किंतु उसके साधनमें सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान एवं सम्यकचरित्र—इन तीनोंको सम्मिलितरूपसे कारण माना गया है, जो बहुत कुछ सनातन सिद्धान्तोंसे मिलता है। अहिंसापर जैन तथा बौद्धोंका विशेष आग्रह है। इसलिये पुराणोंने कहीं-कहीं इन दोनोंको एक ही मान लिया है। जैनियोंके लिये

१-यच्च यज्ञादिकं कर्म स्मार्तं श्राद्धादिकं तथा। तत्र नैवापवर्गोऽस्ति यत्रैषा श्रूयते श्रुतिः॥

(पद्म०, सृष्टि० १३। ३२२)

अर्थात् यज्ञ आदि वैदिक कार्य और श्राद्ध आदि स्मार्तकर्म मोक्षदायक या स्वर्गदायक नहीं हैं; क्योंकि इनके अनुष्ठानमें ऐसे दोष हैं, जिनके कारण यदि स्वर्ग मिलेगा तो फिर नरक किन कर्मोंसे प्राप्त होगा?

२-इन सभी विवरणोंसे यहाँ किसी धर्म या दर्शनकी आलोचना तथा निन्दा-स्तुतिसे कोई तात्पर्य नहीं है। पुराणोंमें इनका उल्लेख हुआ है और इनके सूत्र प्राप्त होते हैं। इसी दृष्टिसे यहाँ इनका संग्रह किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्त्वार्थसूत्र सर्वाधिक आदरणीय तथा प्रमाणभूत है।

बौद्धदर्शन[३६] तथा **पुराण**—प्रायः सभी पुराणोंमें बौद्धमतकी तथा बौद्धावतारकी चर्चा है। तथापि पद्म, स्कन्द, कल्कि तथा एकाम्रादि पुराणोंमें विशेष रूपसे वर्णन आया है। बौद्धमतावलम्बी माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक—इन चार सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं। बौद्धमत शून्यवाद कहा जाता है। ये सारे जगत्को क्षणिक मानते हैं। बौद्धमत क्षणभङ्गुरवाद तथा क्षणिकवाद भी कहलाता है। इन्होंने प्रत्यक्षके साथ अनुमानको भी प्रमाण माना है। इनकी मान्यता है कि सारा संसार दुःखात्मक है। बोध-विज्ञानके द्वारा संसारसे अलग होना ही परम पुरुषार्थ है। इनके यहाँ विज्ञानका दूसरा नाम आलय-विज्ञान है। वासनाके परित्यागसे आलय-विज्ञानका उदय होता है तथा फिर रूपस्कन्ध, विज्ञानस्कन्ध, वेदनास्कन्ध, संज्ञास्कन्ध तथा संस्कारस्कन्ध—इस पञ्चविध स्कन्धात्मक चित्त और चैत्तात्मक सम्बन्धके पूर्णज्ञानसे सब दुःखोंका अन्त या निर्वाण होता है। पुराणोंमें प्रायः पूर्वपक्षके रूपमें ही बौद्धमतकी चर्चा है और भगवान् कल्किद्वारा अवतार ग्रहण कर शस्त्र तथा शास्त्र दोनोंसे बौद्धमतावलम्बियोंके पराजित होनेका वृत्तान्त भी पुराणोंमें विस्तारसे मिलता है।

माहेश्वर-दर्शन तथा पुराण—माहेश्वर-सम्प्रदायमें दार्शनिक दृष्टिसे प्रमुख चार भेद हैं—(१) पाशुपतदर्शन, (२) शैवदर्शन, (३) प्रत्यभिज्ञादर्शन, (४) वीरशैवदर्शन। पुराणोंमें विशेषरूपसे शैवपुराणोंमें सर्वत्र माहेश्वरदर्शनका विस्तृत विवेचन मिलता है। यहाँपर केवल पाशुपतदर्शन तथा प्रत्यभिज्ञादर्शनका सूक्ष्म विवेचन दिया जा रहा है—

पाशुपतदर्शन[३७] या **नकुलीश पाशुपतदर्शन**—पुराणोंमें इस दर्शनका विस्तारसे वर्णन है। इस दर्शनके संस्थापक नकुलीश (या लकुलीश) थे। इसलिये यह नकुलीश पाशुपत-दर्शन भी कहलाता है। पुराणोंमें नकुलीश्वर-लकुली और लकुलीश नाम भी प्राप्त होता है। इस सम्बन्धमें कूर्मपुराणके पूर्वार्धके ५३वें अध्याय तथा उत्तरार्धके ४४वें अध्याय और लिङ्गपुराणके पूर्वार्धके २४वें अध्यायमें विस्तारसे चर्चा है। दोनों पुराणोंकी कथाओंके सम्मिलितरूपसे अवलोकन करनेपर ऐसा लगता है कि भगवान् शिवने द्वापर और कलियुगकी संधिमें किसी मृतकाय (मृतशरीर) में प्रवेशकर कायावतार धारण किया, जो नकुलीश कहलाये। वे कुछ दिन सुमेरुगिरिकी गुफामें निवासकर फिर कच्छ (गुजरात) के सिद्धक्षेत्र नामक स्थानमें स्थित हुए, जिसे नकुलीशके मृत-कायामें प्रवेश करनेसे कायावतार सिद्धक्षेत्र कहा जाता है। तभीसे यह क्षेत्र एक पुण्य शैव-तीर्थ हो गया। उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट होता है कि भगवान् शिव ही नकुलीश्वरके रूपमें आविर्भूत हुए।

नकुलीशदर्शनका मुख्य ग्रन्थ पाशुपत पञ्चार्थसूत्र (पञ्चाध्यायी) माना जाता है। इस दर्शनकी मूलभित्ति पाँच पदार्थों—कार्य, कारण, योग, विधि और दुःखान्तके विवेचनपर आधारित है। सभी जड तथा चेतन पदार्थ पशु (कार्य) कहे गये हैं। ये सभी अपने ईश्वर—पति (शिव-महेश्वर) के अधीन हैं जो कारण कहलाते हैं। जप-ध्यान आदि योगके तथा भस्मस्नान आदि व्रतके द्वारा दुःखका अन्त होता है। इन पञ्चार्थोंका यथार्थ ज्ञान ही मोक्षका मुख्य कारण है। संक्षेपमें यही नकुलीश-पाशुपतदर्शनका सारांश है। कूर्म, ब्रह्माण्ड, शिव (कारवण-माहात्म्य) तथा लिंगादि पुराणोंमें इसकी विस्तृत चर्चा आयी है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन[३८]—प्रत्यभिज्ञादर्शन बहुत कुछ अद्वैत-वेदान्तदर्शनसे मिलता है। इसे माहेश्वरदर्शनका ही एक भेद माना जाता है। इसके ९२ आगम-ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, जिनमें मालिनी, सिद्धा तथा कामिक आगम—ये तीन अति प्रसिद्ध हैं। प्रत्यभिज्ञादर्शनको त्रिकदर्शन तथा काश्मीर-शैवदर्शन भी कहा जाता है। प्रत्यभिज्ञाका शाब्दिक अर्थ है पहचानना। इस दर्शनके अनुसार स्वप्रकाशस्वरूप निरन्तर अवभासमान दृक्क्रियाशक्तिका आविष्कार अर्थात् यह आत्मा ही परमेश्वर है, इस तरह आत्मा और परमात्माको ठीक-ठीक पहचानना ही वास्तविक प्रत्यभिज्ञा है। 'शिवसूत्र' आदि इस दर्शनके प्रारम्भिक मौलिक ग्रन्थ हैं।

पुराणोंमें—लिङ्गपुराणमें संक्षेपमें किंतु शिवपुराणकी कैलास-संहिता (वेंकटेश्वर-संस्करण) के अध्याय १६ से १९ तकमें विस्तारसे इस दर्शनके मौलिक सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया गया है। यहाँ शिवसूत्रोंकी विस्तृत व्याख्या की गयी है। **'प्रज्ञानं ब्रह्म', 'अयमात्मा ब्रह्म'** आदि श्रुतिके २२ महावाक्योंके उल्लेखपूर्वक आत्मा-परमात्माकी प्रत्यभिज्ञापूर्वक एकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखलायी गयी है। उसी क्रममें कहा गया है—'**इत्यादि शिवसूत्राणां वार्तिकं कथितं मया**' अर्थात् इस प्रकार मैंने (सुब्रह्मण्य-स्कन्दकुमार) शिवसूत्रोंकी व्याख्या की है। शिवपुराणकी वायवीयसंहिताके उत्तरभागमें भी इस दर्शनके मूलभूत विषयोंका वर्णन है।

आगम[३९] और **पुराण**—इष्टदेवकी प्रसन्नता-प्राप्तिके लिये ज्ञानसहित उपासना-विधानका निरूपक शास्त्र ही आगम कहलाता है। आगमोंके विषयमें यह श्लोक अत्यन्त प्रशस्त है—

आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजाश्रुतौ ।
एतस्मादागमः प्रोक्तः विद्वद्भिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

— इसका तात्पर्य है कि 'तत्त्वदर्शी विद्वानोंने भगवान् शिवद्वारा कथित और पार्वतीद्वारा श्रुत विषयको आगम बतलाया है।' परंतु वैष्णवागमोंमें विष्णु तथा लक्ष्मीका, सौर तथा वैखानस आदि आगमोंमें सूर्य और ब्रह्माका वक्ता-श्रोताके रूपमें निर्देश किया गया है। इसलिये शक्ति और शक्तिमान्के संवादमें ही इस व्युत्पत्तिको चरितार्थ मानना होगा।

आगम-साहित्य अत्यन्त विशाल है तथापि मुख्यरूपसे ७ आगम प्रधान माने गये हैं—वैष्णवागम, शैवागम, शाक्तागम, वैखानस (ब्राह्म)-आगम, सौर-आगम, गाणपत्य-आगम तथा सुब्रह्मण्य (स्कान्द)-आगम। इनमेंसे एक-एकके अनेक भेद हैं। वैष्णवागमोंमें पाञ्चरात्र-आगम विशेष प्रसिद्ध हैं। अग्निपुराण अध्याय ३९में हयशीर्ष, त्रैलोक्य-मोहन, वैभव आदि २५ वैष्णव पाञ्चरात्रागमोंका नाम परिगणन किया गया है। इसी प्रकार शिव, कालिका आदि पुराणोंमें शैव, शाक्तादिके विभिन्न सम्प्रदायोंके उपासना-विधानका निर्देश है।

तन्त्र[४०] और **पुराण**—कुलार्णव-तन्त्र (अ० १७) में तन्त्रकी व्युत्पत्ति इस प्रकार बतलायी गयी है—

मुदं कुर्वन्ति देवानां मनांसि तारयन्ति च ।
तस्मात् तन्त्र इति ख्यातो दर्शितव्यः कुलेश्वरि ॥

—इसका भाव है—पूजा-उपासनासे देवताओंको प्रसन्न करानेवाले तथा साधकोंको संसार-समुद्रसे पार करनेवाले विधायक शास्त्र तन्त्रशास्त्र कहलाते हैं।

तन्त्रोंके मुख्य तीन भेद हैं—१-दक्षिण-मार्ग, २-वाम-मार्ग या कौलमार्ग तथा ३-मिश्रमार्ग। इनमें भी डामर, यामल आदि कई अवान्तर भेद हैं। तन्त्र-ग्रन्थोंमें सबसे प्रधान ग्रन्थ 'तन्त्रराज' है, जिसे प्रायः तीनों मार्गोंके अनुयायी प्रमाण मानते हैं।

पुराणोंमें तन्त्रोंका विशाल साहित्य उपलब्ध है। नारदपुराणके पूर्वभागके ६४ से ९१ तकके अध्यायोंमें प्रायः तन्त्रोंका ही विषय विवेचित है। इसके पूर्वभागके ८४ से ९१ तकके अध्यायोंमें तन्त्रराजके प्रायः सभी विषय आ गये हैं। इसी प्रकार गरुडपुराण तथा अग्निपुराण आदिमें अध्याय २३ से ३७, ७१ से ९१, १२३ से १४९ तक तथा पुनः २९३ से ३२६ तक विभिन्न तन्त्र-मन्त्रोंका निरूपण है।

वास्तुशास्त्र[४१]—वास-स्थान या निवास-स्थानको वास्तु कहा जाता है और इससे सम्बद्ध बातोंका जिस शास्त्रमें वर्णन रहता है, वह वास्तुशास्त्र है। मुख्यरूपसे वास्तुशास्त्रके अन्तर्गत भूमि-सम्बन्धी—नगर आदिकी रचना-सम्बन्धी तथा गृहके उपकरणभूत—वापी, कूप, तड़ाग, उद्यान-रचना, वृक्षारोपण, भैषज्य-दोहन आदि विषयोंका वर्णन रहता है। वास्तुके शुभाशुभ होनेपर ही भूमि-शोधनादिकी क्रिया सम्पन्न करनेपर निर्माणकार्य करना चाहिये। यदि वास्तु अशुभ हो तो गृहस्थको पद-पदपर कष्ट होता है, अनेक उपद्रव होते हैं और शुभ होनेपर सुख-शान्ति रहती है। इन दृष्टियोंसे वास्तुशास्त्रका ज्ञान आवश्यक कहा गया है।

मुख्यतः वास्तुशास्त्रका सम्बन्ध स्थापत्यकलासे है। ऋग्वेद तथा अथर्ववेदमें भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है। यद्यपि यह एक स्वतन्त्र शास्त्र है, इसके परवर्ती ग्रन्थोंमें 'वास्तुराजवल्लभ' तथा 'समराङ्गणसूत्रधार'—ये दो महत्त्वपूर्ण तथा उल्लेख्य ग्रन्थ हैं। किंतु पुराणोंमें विशेषरूपसे मत्स्यपुराण (अ० २५२-२५६), विष्णुधर्मोत्तरपुराण (द्वितीय खण्ड अ० २९, तृतीय खण्ड अ० ९४-९५), अग्निपुराण (अ० ९३, १०४-१०६) तथा गरुडपुराण आदिमें वास्तुशास्त्रके महत्त्वपूर्ण विषयोंका वर्णन हुआ है। मत्स्यपुराण (अ० २५२) में वास्तुशास्त्रके भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित्, भगवान् शंकर, इन्द्र, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश्वर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति—ये अठारह उपदेष्टा आचार्य बताये गये हैं, जिनमेंसे देवताओंके शिल्पीके रूपमें विश्वकर्माकी तथा दानवोंके शिल्पीके रूपमें मयकी अधिक प्रसिद्धि है। **'विश्वकर्मशिल्पम्'** तथा **'मयशिल्पम्'**— ये इनके ग्रन्थ कहे जाते हैं।

वास्तुके प्रादुर्भावके कथा-विषयमें मत्स्यपुराण (अ० २५१) में बताया गया है कि प्राचीन कालमें अन्धकासुरके वधके समय भगवान् शंकरके ललाटसे पृथ्वीपर जो स्वेदबिन्दु गिरे, उनसे एक भयंकर आकृतिवाला पुरुष प्रकट हुआ, जो विकराल मुख फैलाये था। उसने अन्धकगणोंका रक्त पान किया, किंतु तब भी उसे तृप्ति नहीं हुई और वह भूखसे व्याकुल होकर त्रिलोकीको भक्षण करनेके लिये उद्यत हो गया। बादमें शंकर आदि देवताओंने उसे पृथ्वीपर सुलाकर वास्तुदेवताके रूपमें प्रतिष्ठित किया और उसके शरीरमें सभी देवताओंने वास किया, इसलिये वह वास्तु (वास्तुपुरुष या वास्तुदेवता) के नामसे प्रसिद्ध हो गया। देवताओंने उसे गृहनिर्माणादिके, वैश्वदेव बलिके तथा पूजन-यज्ञ-यागादिके समय पूजित होनेका वर देकर प्रसन्न किया। इसीलिये आज भी वास्तुदेवताका पूजन होता है। वास्तुदेवताके शरीरमें ६४ तथा ८१ देवताओंके स्थित होनेकी बात पुराणोंमें वर्णित है। इसी आधारपर पूजन आदिमें जो वास्तुचक्र बनता है, उसमें शिखी, जयन्त, पर्जन्य, इन्द्र, सूर्य आदि वास्तुमण्डलस्थ देवताओंका पूजन किया जाता है। इसके पूजनसे कोई विघ्न नहीं होता तथा सुख-शान्ति रहती है। अग्नि आदि पुराणोंमें इसकी विस्तृत पूजा-विधि निर्दिष्ट है। वाराहीसंहिताकी महोत्पली व्याख्यामें इस विषयका साङ्गोपाङ्ग विवेचन हुआ है।

शिल्पशास्त्र[४२]—पुराणोंमें प्रभासनामक अष्टम वसुके पुत्र विश्वकर्माको समस्त शिल्पशास्त्रों तथा कलाओंका आचार्य कहा गया है[१]। इन्होंने अपने पुत्रों तथा शिष्योंके साथ शिल्पशास्त्रका प्रसार-प्रचार किया। विविध कलाएँ जो मुख्यरूपसे हाथसे सम्पादित होती हैं, शिल्प कही जाती हैं, इन्हींका परिज्ञान करानेवाला शास्त्र शिल्पशास्त्र कहा जाता है, इसे शिल्पविद्या भी कहते हैं। इसके अन्तर्गत प्रासाद-शिल्प, आभूषण-घट्टन-शिल्प, धातु एवं रंगोंके मिश्रण-सम्बन्धी शिल्प, काष्ठशिल्प, उद्यान-रचना-शिल्प, पात्र-शिल्प, शस्त्रनिर्माण-शिल्प, वायुयान-निर्माण-शिल्प, भित्ति-शिल्प आदि विविध कलाओंका समावेश होता है। विविध शिल्पोंके ज्ञाता वास्तुकार, रथकार, मालाकार, कांस्यकार, लौहकार, काष्ठकार, स्वर्णकार, मणिकार, कुम्भकार आदि नामोंसे जाने जाते हैं। मत्स्य तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें शिल्पशास्त्रका विस्तारसे वर्णन है।

चित्रशास्त्र[४३]—चित्रशास्त्र या चित्रकला अति प्राचीन विद्या है। पुराणोंमें भगवान् नारायणको इस कलाका आद्य आचार्य तथा प्रवर्तक कहा गया है। विश्वकर्माने उनसे यह कला सीखी और फिर सर्वत्र इसका प्रचार-प्रसार हुआ। आज विश्वमें जिस चित्रकलासे सम्बन्धित अनेकों ग्रन्थ निर्मित हो रहे हैं, उसके मूल सूत्र पुराणोंमें विद्यमान हैं। इस सम्बन्धमें पुराणोंमें कथाएँ प्राप्त होती हैं, जिनका सारांश इस प्रकार है—

भगवान् नर-नारायण बदरिकाश्रममें लोक-कल्याणकी कामनासे तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस्यासे देवराज इन्द्र सशंकित हो गये। उन्हें यह भय लगने लगा कि ये मेरा इन्द्रासन प्राप्त करनेके लिये ही ऐसी कठोर तपस्या कर रहे हैं। इन्द्रने नर-नारायणकी ऐसी तपस्यामें विघ्न डालनेके उद्देश्यसे कामदेव तथा कुछ अन्य देव-गन्धर्वोंको अनेक अप्सराओंके साथ वहाँ भेजा, किंतु वे उन्हें विचलित न कर सके और उनके शापसे भयभीत हो गये। उसी समय नारायणने आँखें खोलीं। वे तो सर्वान्तर्यामी हैं ही। इन्द्रकी चाल वे समझ ही रहे थे। उन्होंने अप्सरा तथा गन्धर्वादिको अभय प्रदान करते हुए कहा—'इन्द्रके कहनेपर तुम्हें भी यह विश्वास था कि

१-विश्वकर्मा प्रभासस्य पुत्रः शिल्पी प्रजापतिः।
प्रासादभवनोद्यानप्रतिमाभूषणादिषु । तडागारामकूपेषु स्मृतः सोऽमरवर्धकिः॥
(मत्स्य० ५। २७-२८, विष्णुपु० १। १५। ११८-२५, ब्रह्मपु० १। १५६-१५९, वायुपु० २। ५। २८-३० तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड अ० १४)
सभी स्थलोंपर ये श्लोक प्रायः एक समान ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तपस्यासे च्युत कर देंगे', तुम्हें अपने सौन्दर्यपर अति गर्व है। अब तुम सभी मेरी रचना भी देखो।' ऐसा कहते हुए उन्होंने आम्रवृक्षके रससे पृथ्वीपर एक सुन्दर नारीकी आकृति बनायी और वह आकृति उठ खड़ी हो गयी[1]। त्रैलोक्यसुन्दरी तथा अद्वितीय रूपलावण्यसम्पन्ना वह और कोई नहीं, उर्वशी अप्सरा थी। नारायणने और भी कई नारी-चित्रोंकी रचना कर उन्हें प्राणवान् बनाया। उनमेंसे जो सबसे सुन्दर हो, उसे देवलोक ले जानेके लिये उनसे कहा। वे उर्वशीको लेकर चले गये।

उक्त कथानकमें चित्रशास्त्रके उद्भवके सम्बन्धमें महत्त्वपूर्ण विवरण है। पुराणोंमें इस शास्त्रके विषयोंपर तथा चित्रोंकी रचनापर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। विष्णुधर्मोत्तरपुराणके तृतीय खण्डके प्रथम तथा द्वितीय अध्यायमें और पुनः ३५ से ४३ तकके अध्यायोंमें विस्तारसे देवता, ऋषि, मुनि, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा, दैत्य, दानव, पशु-पक्षी, सूर्य, चन्द्र, शंख, पद्मादि निधियों, समुद्र, सागर, शैलशिखर, प्राकृतिक दृश्यों, उद्यानों, प्रातःकाल, सायंकाल, रात्रि, दिन तथा सर्वतोभद्रमण्डलादिके सुन्दर चित्रोंके आकार-प्रकार, उन्हें बनानेकी विधि और विविध रंगोंके प्रयोग आदिकी भी विधि निर्दिष्ट है। चित्रकलाके माहात्म्यमें कहा गया है—

यथा सुमेरुः प्रवरो नगानां यथाण्डजानां गरुडः प्रधानः।
यथा नराणां प्रवरः क्षितीशस्तथा कलानामिह चित्रकल्पः॥

(३।४३।३९)

अर्थात् 'जैसे पर्वतोंमें सुमेरुगिरि, पक्षियोंमें गरुड, मनुष्योंमें राजा श्रेष्ठ है, वैसे ही कलाओंमें चित्रकला सर्वश्रेष्ठ है।'

प्रतिमाशास्त्र[४४]—इसे मूर्तिशास्त्र भी कहा जाता है। यद्यपि चित्रशास्त्रसे इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है तथापि प्रतिमाशास्त्रमें मुख्य रूपसे उपासनाके योग्य दैवी प्रतिमाओंके लक्षण, उनका परिमाण तथा रचनाविधि निर्दिष्ट रहती है। प्रतिमामण्डन, काश्यपशिल्पम्, शिल्परत्नम्, अंशुमतभेदागम, सुप्रभेदागम तथा पाञ्चरात्रागम आदि प्रतिमाशास्त्रके ग्रन्थोंमें बहुत विस्तारसे देवताओंकी विभिन्न प्रतिमाओं और शिवलिङ्गादिके साङ्गोपाङ्ग-रचनाकी विधि दी हुई है, किंतु पुराणोंमें भी इस विषयका संक्षेपमें परंतु स्पष्ट विवेचन मिलता है। मुख्यरूपसे विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।अ० ४४—८५ तथा ९३), अग्निपुराण (अ० ४४-५५) तथा मत्स्यपुराण (अ० २५८-२६३) आदिमें यह सामग्री विशेष रूपसे विवेचित है।

पुराणोंमें विभिन्न देवताओं यथा—सपरिकर विष्णु, वासुदेवादि चतुर्व्यूह, रामादि अवतार, सद्योजात-वामदेव आदि शिव तथा उनका परिवार, शिवलिंग, अश्विनीकुमार, शचीसहित इन्द्र, चित्रगुप्त, धर्मराज, वरुण, स्वाहा-स्वधा आदिके साथ अग्निदेव, सावित्रीसहित ब्रह्मा, सरस्वती, दुर्गा आदि देवियाँ, सूर्यादि नवग्रहों, चौसठ योगिनियों, अष्टदिक्पाल, उन्चास मरुद्गण, हयग्रीव, विश्वकर्मा, चौदह स्त्रियोंसहित धर्म, तुम्बुरु आदि गन्धर्वगण, कश्यपादि प्रजापति, आकाशादि पञ्चभूतों तथा वेदादिशास्त्रोंकी प्रतिमाओंके लक्षण, उनका परिमाण तथा प्रतिमाओंके निर्माणकी विधि प्राप्त होती है। साथ ही यह भी निर्दिष्ट है कि देवताओंका स्वरूप कैसा है? उनकी उपासना कैसे करनी चाहिये आदि विविध बातें भी विवेचित हैं। पुराणोंमें बताया गया है कि प्रतिमा सुवर्ण आदि अष्टधातु, पत्थर, काष्ठ, मृत्तिका, सिकता तथा रत्नादिकी बनानी चाहिये। मनोमयी प्रतिमाके स्वरूपपर भी विस्तारसे बताया गया है। विभिन्न धातुओं, काष्ठ तथा शिला आदिके परीक्षण आदिके विधान भी निर्दिष्ट हैं। प्रतिमाओंके सात्त्विक, राजस तथा तामस—ते तीन भेद बताये गये हैं, साथ ही यह भी विवेचित है कि घरमें पूजाके लिये बननेवाली देवप्रतिमा तथा मन्दिर आदिमें स्थापनाके लिये बननेवाली प्रतिमामें क्या अन्तर है, उनका परिमाण क्या है! इस प्रकार पुराणोंमें प्रतिमाशास्त्रके महत्त्वपूर्ण विषयोंपर विवेचन प्राप्त होता है।

—क्रमशः

१-श्रीमद्भागवत (११।४) तथा ब्रह्माण्डपुराण (उपो० अ० ७) आदिमें भगवान् नारायणके ऊरुसे उनके योगबलद्वारा उर्वशीके प्रकट होनेकी बात है, किंतु विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।३५) में यह स्पष्ट उल्लेख है कि केवल चित्रकलाके प्रभावमात्रसे वह रूपवती अप्सरा खड़ी हो गयी थी—'चित्रेण सा ततो जाता रूपयुक्ता वराप्सराः'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराणोंमें जीवन-चर्या

सामान्यतया मानवके लिये एक प्रश्न है कि जीवन कैसे बिताया जाय? वैसे तो जीवन-यापनके लिये प्रकृतिके कुछ नियम हैं, जिनके अनुसार स्वाभाविक रूपमें संसारके सम्पूर्ण प्राणी अपना निर्वाह करते हैं। मनुष्य विचारप्रधान प्राणी है। यह पशुत्वसे ऊपर उठकर दिव्यत्वकी ओर जा रहा है। पशुकी अपेक्षा मनुष्यकी यही विशेषता है कि पशु तो अपनी आँखोंके सामने कोई मोहक रूप देखकर उसे पानेके लिये दौड़ पड़ता है और उसके प्रलोभनमें फँसकर पीछे होनेवाली ताड़नापर दृष्टि नहीं रखता, उसे तो केवल वर्तमान सुख चाहिये। परंतु मनुष्य किसी आकर्षक वस्तुको देखकर उसे जानता है, विचार करता है और फिर यदि वह वस्तु अपने जीवनकी प्रगतिमें सहायक हुई तो उसे जहाँतक वह अपनी उन्नतिमें बाधक न हो, स्वीकार करता है और उसका उपयोग करता है। मनुष्यकी दृष्टि क्षणिक उपभोग-सुखपर, जो कि अत्यन्त तुच्छ और क्षुद्र है, कभी मुग्ध नहीं होती। यदि मुग्ध होती है तो अभी उसका पशुत्व निवृत्त नहीं हुआ है, जो कि अबसे बहुत पहले हो जाना चाहिये था। परंतु पूर्वसंस्कारों और वर्तमान जन्मके अभ्यास और कुसंगसे जब मनुष्यकी दृष्टि तमसाच्छन्न रहती है, तब उसका पशुत्व अपना काम करता रहता है और वह बुद्धिका प्रयोग न करके केवल मनको प्रिय लगनेवाले विषयोंके पीछे ही भटकता रहता है। यह पशुत्व है, जिसे नष्ट करके मनुष्यत्वको जाग्रत् करना पड़ेगा। यह मनुष्यत्वका जागरण सहसा भी सम्पन्न हो सकता है और क्रमविकाससे भी सम्भव है। जिनका मनुष्यत्व जाग्रत् है, उनके मनुष्यत्वकी रक्षा और दिव्यत्वकी जागृतिके लिये तथा जिनका सुषुप्त है, उनके पशुत्वकी निवृत्ति और मनुष्यत्वके जागरणके लिये एक ऐसे निर्दिष्ट पथकी आवश्यकता है जो केवल मनको प्रिय लगनेवाले विषयोंकी परिधिमें ही सीमित न हो, प्रत्युत ज्ञानके विश्वव्यापी आलोकसे देदीप्यमान हो और जिसमें पद-पदपर दिव्यभावकी झाँकी एवं उसकी ओर अग्रसर होनेके प्रत्यक्ष निदर्शन प्राप्त होते हों। यही पथ सदाचारका पथ है, जो पाशविक प्रवृत्तियों और उच्छृङ्खल वृत्तियोंको चूर-चूर करके एक ऐसी मर्यादामें स्थापित कर देता है, जो शान्ति और आनन्दका उदय है तथा जिसके मूलमें दिव्यताकी पूर्ण प्रतिष्ठा है।

शास्त्र कहते हैं कि जीवको मनुष्य-शरीर भगवान्‌की कृपासे प्राप्त होता है, उसे इस मानवयोनिमें ही यह अवसर प्राप्त है कि वह अपने भविष्यका निर्माण करे। यदि भोगासक्तिमें पड़कर वह अपना जीवन पशुवत् पापाचरणके द्वारा निर्वाह करता है तो स्वभावतः उसे इस भवाटवी—चौरासी लाख योनियोंमें भटकना पड़ेगा और पापाचरण करनेपर नरककी प्रचण्ड यातनाएँ भी भोगनी पड़ेंगी। और यदि शास्त्र-पुराणोक्त कथनोंके अनुसार सदाचार और धर्मसे युक्त अपनी जीवन-चर्या चलाता है तो अपना कल्याण करनेमें पूर्णतः समर्थ होता है। इसलिये भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

यदि हम अपना पतन नहीं होने देना चाहते तो हमें अपना उद्धार अपने-आप करना चाहिये। वस्तुतः हम ही अपने-आपके मित्र और शत्रु हैं। अतः जीवनमें क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये इसके लिये शास्त्र ही प्रमाण हैं—तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

जो मनुष्य शास्त्र-पुराणोक्त विधिको तिलाञ्जलि देकर मनमाना आचरण करता है, उसे प्रचण्ड नरक-यातनाएँ भोगते हुए जन्म-मरणके बन्धनमें बँधा रहना पड़ता है, उसे न सफलता मिलती है, न सुख प्राप्त होता है और न परम गति ही मिलती है।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

यथेच्छ आचरण मानवका महान् पतन है। क्षणिक विषय-सुखके लिये बहुत-बहुत जन्मोंतक दुःख और कष्टमें जलते रहना कहाँकी बुद्धिमानी है? हम ऐसे भयङ्कर परिणामको जानते हुए भी ऐसी भूल क्यों करें? धर्मका पालन और शास्त्रोक्त जीवन-यापन यही इस भूलका सुधार है।

पुराणोंमें जीवन-चर्याका विशद विवेचन प्राप्त होता है। जन्मसे मरणपर्यन्त मनुष्यको क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये—इन सबका सविस्तार निरूपण हुआ है। यहाँ स्थानाभावके कारण संक्षेपमें जीवन-चर्याका आवश्यक विवरण तथा इनसे सम्बन्धित कुछ पौराणिक आख्यान भी यत्र-तत्र प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जो सर्वोपयोगी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कार

वेद-पुराणों तथा धर्मशास्त्रोंमें संस्कारोंकी आवश्यकता बतलायी गयी है। जैसे खानसे सोना, हीरा आदि निकलनेपर उसमें चमक-प्रकाश तथा सौन्दर्यके लिये उसे तपाकर, तराशकर मल हटाना एवं चिकना करना आवश्यक होता है, उसी प्रकार मनुष्यमें मानवीय शक्तिका आधान होनेके लिये उसे सुसंस्कृत होना आवश्यक है, अर्थात् उसका पूर्णतः विधिपूर्वक संस्कार सम्पन्न करना चाहिये। वास्तवमें विधिपूर्वक संस्कार-साधनसे दिव्य ज्ञान उत्पन्न कर आत्माको परमात्माके रूपमें प्रतिष्ठित करना ही मुख्य संस्कार है और मानव-जीवन प्राप्त करनेकी सार्थकता भी इसीमें है।

संस्कारोंसे आत्मा—अन्तःकरण शुद्ध होता है। संस्कार मनुष्यको पाप और अज्ञानसे दूर रखकर आचार-विचार और ज्ञान-विज्ञानसे संयुक्त करते हैं। संस्कार मुख्यतः दो प्रकारके होते हैं—१-मलापनयन और २-अतिशयाधान। किसी दर्पण आदिपर पड़े हुए धूल आदि सामान्य मलको वस्त्र आदिसे पोंछना-हटाना या स्वच्छ करना मलापनयन कहलाता है और फिर किसी रंग या तेजोमय पदार्थद्वारा उसी दर्पणको विशेष चमत्कृत या प्रकाशमय बनाना अतिशयाधान कहलाता है। अन्य शब्दोंमें इसे ही भावना, प्रतियत्न या गुणाधान-संस्कार कहा जाता है।

संस्कारोंकी संख्यामें विद्वानोंमें प्रारम्भसे ही कुछ मतभेद रहा है। गौतमस्मृतिमें ४८ संस्कार बतलाये गये हैं। महर्षि अङ्गिराने २५ संस्कार निर्दिष्ट किये हैं। पुराणोंमें भी विविध संस्कारोंका उल्लेख है, परंतु उनमें मुख्य तथा आवश्यक षोडश संस्कार माने गये हैं। महर्षि व्यासद्वारा प्रतिपादित प्रमुख षोडश संस्कार इस प्रकार हैं[1]—१-गर्भाधान, २-पुंसवन, ३-सीमन्तोन्नयन, ४-जातकर्म, ५-नामकरण, ६-निष्क्रमण, ७-अन्नप्राशन, ८-वपन-क्रिया (चूडाकरण), ९-कर्णवेध, १०-व्रतादेश (उपनयन), ११-वेदारम्भ, १२-केशान्त (गोदान), १३-वेदस्नान (समावर्तन), १४-विवाह, १५-विवाहाग्निपरिग्रह, १६-त्रेताग्निसंग्रह।

आगे इन्हीं सोलह संस्कारोंका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। इनका आरम्भ जन्मसे पूर्व ही प्रारम्भ हो जाता है। विशेष जानकारीके लिये गृह्यसूत्रों, मनु आदि स्मृतियोंके साथ पुराणोंका भी गम्भीर अवलोकन करना चाहिये।

(१) गर्भाधान-संस्कार—विधिपूर्वक संस्कारसे युक्त गर्भाधानसे अच्छी और सुयोग्य संतान उत्पन्न होती है। इस संस्कारसे वीर्यसम्बन्धी तथा गर्भसम्बन्धी पापका नाश होता है, दोषका मार्जन तथा क्षेत्रका संस्कार होता है। यही गर्भाधान-संस्कारका फल है[2]। गर्भाधानके समय स्त्री-पुरुष जिस भावसे भावित होते हैं, उसका प्रभाव उनके रज-वीर्यमें भी पड़ता है। उस रज-वीर्यजन्य संतानमें भी वे भाव प्रकट होते हैं[3]। अतः शुभमुहूर्तमें शुभ मन्त्रसे प्रार्थना करके गर्भाधान करे। इस विधानसे कामुकताका दमन और शुभ-भावापन्न मनका सम्पादन हो जाता है। द्विजातिको गर्भाधानसे पूर्व पवित्र होकर इस मन्त्रसे प्रार्थना करनी चाहिये—

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि पृथुष्टुके।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ॥

(बृहदारण्यक ६।४।२१)

'हे सिनीवाली देवि! एवं हे विस्तृत जघनोंवाली पृथुष्टुका देवि! आप इस स्त्रीको गर्भ धारण करनेकी सामर्थ्य दें और उसे पुष्ट करें। कमलोंकी मालासे सुशोभित दोनों अश्विनीकुमार तेरे गर्भको पुष्ट करें।'

१-गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च। नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनं वपनक्रिया॥
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः। केशान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः॥
त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः। (व्यासस्मृति १।१३-१५)

२-निषेकाद् बैजिकं चैनो गार्भिकं चापमृज्यते। क्षेत्रसंस्कारसिद्धिश्च गर्भाधानफलं स्मृतम्॥ (स्मृतिसंग्रह)

३-आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ। स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः॥
(सुश्रुतसंहिता, शारीरस्थान, २।४६।५०)

अर्थात् स्त्री और पुरुष जैसे आहार, व्यवहार तथा चेष्टासे संयुक्त होकर परस्पर समागम करते हैं, उनका पुत्र भी वैसे ही स्वभावका होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) पुंसवन-संस्कार—पुत्रकी प्राप्तिके लिये शास्त्रोंमें पुंसवन-संस्कारका विधान है। **'गर्भाद् भवेच्च पुंसूते पुंस्त्वरूपप्रतिपादनम्'** (स्मृतिसंग्रह)। इस गर्भसे पुत्र उत्पन्न हो, इसलिये पुंसवन-संस्कार किया जाता है। **'पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते इति पुत्रः'** अर्थात् **'पुम्'** नामक नरकसे जो त्राण (रक्षा) करता है, उसे पुत्र कहा जाता है। इस वचनके आधारपर नरकसे बचनेके लिये मनुष्य पुत्र-प्राप्तिकी कामना करते हैं। मनुष्यकी इस अभिलाषाकी पूर्तिके लिये ही पुराणोंमें पुंसवन-संस्कारका विधान मिलता है। जब गर्भ दो-तीन मासका होता है अथवा गर्भिणीमें गर्भके चिह्न स्पष्ट हो जाते हैं, तभी पुंसवन-संस्कारका विधान बताया गया है।

शुभ मङ्गलमय मुहूर्तमें माङ्गलिक पाठ करके गणेश आदि देवताओंका पूजन कर वटवृक्षके नवीन अङ्कुरों तथा पल्लवों और कुशकी जड़को जलके साथ पीसकर उस रसरूप ओषधिको पति गर्भिणीके दाहिने नाकसे पिलाये और पुत्रकी भावनासे—

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजु० १३।४)

—इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करे। इन मन्त्रोंसे सुसंस्कृत तथा अभिमन्त्रित भाव-प्रधान नारीके मनमें पुत्रभावका प्रवाह प्रवाहित हो जाता है। जिसके प्रभावसे गर्भके मांस-पिण्डमें पुरुषके चिह्न उत्पन्न होते हैं।

पुंसवन-संस्कारका ही उपाङ्गभूत एक संस्कार होता है जो 'अवलोभन' कहलाता है। इस संस्कारका यह प्रयोजन है कि इससे गर्भस्थ शिशुकी रक्षा होती है और असमयमें गर्भ च्युत नहीं होने पाता। इसमें शिशुकी रक्षाके लिये सभी माङ्गलिक पूजन, हवनादि कार्योंके अनन्तर जल एवं ओषधियोंकी प्रार्थना की जाती है।

पुत्रकी प्राप्तिके लिये पुराणोंमें पुंसवन नामक एक व्रत-विशेषका विधान भी बतलाया गया है, जो एक वर्षतक चलता है। स्त्रियाँ पतिकी आज्ञासे ही इस व्रतका संकल्प लेती हैं। भागवतके छठे स्कन्ध, अध्याय १८-१९ में बताया गया है कि महर्षि कश्यपकी आज्ञासे दितिने इन्द्रके वधकी क्षमता रखनेवाले पुत्रकी कामनासे यह व्रत किया था।

(३) सीमन्तोन्नयन-संस्कार—गर्भके छठे या आठवें मासमें यह संस्कार किया जाता है। इस संस्कारका फल भी गर्भकी शुद्धि ही है। सामान्यतः गर्भमें ४ मासके बाद बालकके अङ्ग-प्रत्यङ्ग-हृदय आदि प्रकट हो जाते हैं। चेतनाका स्थान हृदय बन जानेके कारण गर्भमें चेतना आ जाती है। इसलिये उसमें इच्छाओंका उदय होने लगता है। वे इच्छाएँ माताके हृदयमें प्रतिबिम्बित होकर प्रकट होती हैं, जो 'दोहद' कहलाता है। गर्भमें जब मन तथा बुद्धिमें नूतन चेतनाशक्तिका उदय होने लगता है, तब इनमें जो संस्कार डाले जाते हैं, उनका बालकपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। इस समय गर्भ शिक्षण-योग्य होता है। महाभक्त प्रह्लादको देवर्षि नारदजीका उपदेश तथा अभिमन्युको चक्रव्यूह-प्रवेशका उपदेश इसी समयमें मिला था। अतः माता-पिताको चाहिये कि इन दिनों विशेष सावधानीके साथ शास्त्रसम्मत व्यवहार रखें।

इस संस्कारमें घृतयुक्त यज्ञ-अवशिष्ट सुपाच्य पौष्टिक चरु (खीर) गर्भवती स्त्रीको खिलाया जाता है। संस्कारके दिन सुपाच्य पौष्टिक भोजनका विधान करके यह संकेत कर दिया गया है कि प्रसवपर्यन्त ऐसा ही सुपाच्य पौष्टिक भोजन देना चाहिये।

इस संस्कारमें पति शास्त्रवर्णित गूलर आदि वनस्पतिद्वारा गर्भिणीके सीमन्त (माँग)का **'ॐ भूर्विनयामि, ॐ भुवर्विनयामि, ॐ स्वर्विनयामि'** इन्हें पढ़ते पृथक्करणादि क्रियाएँ करते हुए यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

येनादितेः सीमानं नयति प्रजापतिर्महते सौभगाय।
तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोमि॥

अर्थात् 'जिस प्रकार देवमाता अदितिका सीमन्तोन्नयन प्रजापतिने किया था, उसी प्रकार इस गर्भिणीका सीमन्तोन्नयन करके इसके पुत्रको जरावस्थापर्यन्त दीर्घजीवी करता हूँ।' इसके बाद वृद्धा ब्राह्मणियोंद्वारा आशीर्वाद दिलाया जाता है।

(४) जातकर्म-संस्कार—इस संस्कारसे गर्भस्रावजन्य सारा दोष नष्ट हो जाता है। बालकका जन्म होते ही यह संस्कार करनेका विधान है। नालछेदनसे पूर्व बालकको स्वर्णकी शलाकासे अथवा अनामिका अँगुलीसे मधु तथा घृत चटाया जाता है। इसमें स्वर्ण त्रिदोषनाशक है। घृत आयुवर्धक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा वात-पित्तनाशक है एवं मधु कफनाशक है। इन तीनोंका सम्मिश्रण आयु, लावण्य और मेधाशक्तिको बढ़ानेवाला तथा पवित्रकारक होता है।

बालकके पिता अथवा आचार्यको बालकके कानके पास उसके दीर्घायुके लिये इस मन्त्रका पाठ करना चाहिये—

अग्निरायुष्मान्त्स वनस्पतिभिरायुष्मान्। तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ (पारस्कर १।१६।६)

'जिस प्रकार अग्निदेव वनस्पतियोंद्वारा आयुष्मान् हैं, उसी प्रकार उनके अनुग्रहसे मैं तुम्हें दीर्घायुसे युक्त करता हूँ। ऐसे ८ आयुष्य-मन्त्रोंको बालकके कानके पास गम्भीरतापूर्वक जप कर उसके मनको उत्तम भावोंसे भावित करे। पुनः पिताद्वारा पुत्रके दीर्घायु होने तथा उसके कल्याणकी कामनासे '**ॐ दिवस्परि प्रथमं जज्ञे**०' (यजु० १२।१८-२८) इत्यादि ग्यारह मन्त्रोंका पाठ करते हुए बालकके हृदय आदि सभी अङ्गोंका स्पर्श करनेका विधान है। इस संस्कारमें माँके स्तनोंको धोकर दूध पिलानेका विधान इसलिये किया गया है कि माँके रक्त और मांससे उत्पन्न बालकके लिये माँका दूध ही सर्वाधिक पोषक पदार्थ है।

(५) नामकरण-संस्कार—इस संस्कारका फल आयु तथा तेजकी वृद्धि एवं लौकिक व्यवहारकी सिद्धि बताया गया है[४]। जन्मसे दस रात्रिके बाद ११ वें दिन या कुलक्रमानुसार सौवें दिन या एक वर्ष बीत जानेके बाद नामकरण-संस्कार करनेकी विधि है। पुरुष और स्त्रियोंका नाम किस प्रकारका रखा जाय, इन सारी विधियोंका वर्णन पुराणोंमें बताया गया है।

(६) निष्क्रमण-संस्कार—इस संस्कारका फल विद्वानोंने आयुकी वृद्धि बताया है—**(निष्क्रमणादायुषो वृद्धिरप्युद्दिष्टा मनीषिभिः)**। यह संस्कार बालकके चौथे या छठे मासमें होता है, सूर्य तथा चन्द्रादि देवताओंका पूजन कर बालकको उनके दर्शन कराना इस संस्कारकी मुख्य प्रक्रिया है। बालकका शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाशसे बनता है। बालकका पिता इस संस्कारके अन्तर्गत आकाश आदि पञ्चभूतोंके अधिष्ठाता देवताओंसे बालकके कल्याणकी कामना करता है। यथा—

शिवे तेऽस्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ, शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे। शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥ (अथर्ववे० सं० ८।२।१४)

अर्थात् 'हे बालक! तेरे निष्क्रमणके समय द्युलोक तथा पृथिवीलोक कल्याणकारी सुखद एवं शोभास्पद हों। सूर्य तेरे लिये कल्याणकारी प्रकाश करें। तेरे हृदयमें स्वच्छ कल्याणकारी वायुका संचरण हो। दिव्य जलवाली गङ्गा-यमुना आदि नदियाँ तेरे लिये निर्मल स्वादिष्ट जलका वहन करें।'

(७) अन्नप्राशन-संस्कार—इस संस्कारके द्वारा माताके गर्भमें मलिन-भक्षण-जन्य जो दोष बालकमें आ जाते हैं, उनका नाश हो जाता है **(अन्नाशनान्मातृगर्भे मलाशाद्यपि शुद्ध्यति)**। जब बालक ६-७ मासका होता है और दाँत निकलने लगते हैं, पाचनशक्ति प्रबल होने लगती है, तब यह संस्कार किया जाता है।

शुभ मुहूर्तमें देवताओंका पूजन करनेके पश्चात् माता-पिता आदि सोने या चाँदीकी शलाका या चम्मचसे निम्नलिखित मन्त्रसे बालकको हविष्यान्न (खीर) आदि पवित्र और पुष्टिकारक अन्न चटाते हैं—

शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥

(अथर्व० ८।२।१८)

अर्थात् हे 'बालक! जौ और चावल तुम्हारे लिये बलदायक तथा पुष्टिकारक हों। क्योंकि ये दोनों वस्तुएँ यक्ष्मा-नाशक हैं तथा देवान्न होनेसे पापनाशक हैं।'

इस संस्कारके अन्तर्गत देवोंको खाद्य-पदार्थ निवेदित कर अन्न खिलानेका विधान बताया गया है। अन्न ही मनुष्यका स्वाभाविक भोजन है, उसे भगवान्का कृपाप्रसाद समझकर ग्रहण करना चाहिये।

(८) वपनक्रिया (चूडाकरण-संस्कार)—इसका फल बल, आयु तथा तेजकी वृद्धि करना है। इसे प्रायः तीसरे वर्ष, पाँचवें या सातवें वर्ष अथवा कुलपरम्पराके अनुसार करनेका विधान है। मस्तकके भीतर ऊपरको जहाँपर बालोंका भँवर

४-आयुर्वर्चोऽभिवृद्धिश्च सिद्धिर्व्यवहृतेस्तथा। नामकर्मफलं त्वेतत् समुद्दिष्टं मनीषिभिः ॥ (स्मृतिसंग्रह)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है, वहाँ सम्पूर्ण नाड़ियों एवं संधियोंका मेल हुआ है। उसे 'अधिपति' नामका मर्मस्थान कहा गया है, इस मर्मस्थानकी सुरक्षाके लिये ऋषियोंने उस स्थानपर चोटी रखनेका विधान किया है। यथा—

नि वर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ (यजु० ३।६३)

'हे बालक! मैं तेरे दीर्घायुके लिये तथा तुम्हें अन्नके ग्रहण करनेमें समर्थ बनानेके लिये, उत्पादन-शक्ति-प्राप्तिके लिये, ऐश्वर्य-वृद्धिके लिये, सुन्दर संतानके लिये, बल तथा पराक्रम-प्राप्तिके योग्य होनेके लिये तेरा चूडाकरण (मुण्डन) संस्कार करता हूँ।' इस मन्त्रसे बालकको सम्बोधित करके शुभ मुहूर्तमें कुशल नाईसे बालकका मुण्डन करावे। बादमें सिरमें दही-मक्खन लगाकर बालकको स्नान कराकर माङ्गलिक क्रियाएँ करनी चाहिये।

(९) कर्णवेध—पूर्ण पुरुषत्व एवं स्त्रीत्वकी प्राप्तिके लिये यह संस्कार किया जाता है। शास्त्रोंमें कर्णवेधरहित पुरुषको श्राद्धका अधिकारी नहीं माना गया है। इस संस्कारको छः माससे लेकर सोलहवें मासतक अथवा तीन, पाँच आदि विषम वर्षमें या कुलक्रमागत आचारको मानते हुए सम्पन्न करना चाहिये। सूर्यकी किरणें कानोंके छिद्रसे प्रविष्ट होकर बालक-बालिकाको पवित्र करती हैं और तेज-सम्पन्न बनाती हैं। यद्यपि ब्राह्मण और वैश्यका रजतशलाका (सूई) से, क्षत्रियका स्वर्णशलाकासे तथा शूद्रका लौहशलाकाद्वारा कान छेदनेका विधान है तथापि वैभवशाली पुरुषोंको स्वर्णशलाकासे ही यह क्रिया सम्पन्न करानी चाहिये। पवित्र स्थानमें शुभ समयोंमें देवताओंका पूजनकर सूर्यके सम्मुख बालक अथवा बालिकाके कानोंका निम्नलिखित मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रण करना चाहिये—'

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

(यजु० २५।२१)

फिर बालकके प्रथम दाहिने कानमें तदनन्तर बायें कानमें सूईसे छेद करे। बालिकाके पहले बायें फिर दाहिने कानके वेधके साथ बायीं नासिकाके वेधका भी विधान मिलता है। इन वेधोंमें बालकोंको कुण्डल आदि तथा बालिकाको कर्णाभूषण आदि पहनाने चाहिये। कर्णवेधके नक्षत्रसे तीसरे नक्षत्रमें लगभग तीसरे दिन अच्छी तरहसे उष्ण-जलसे कानको धोना और स्नान कराना चाहिये। कर्णवेधके लिये जन्मनक्षत्र, रात्रि तथा दक्षिणायन निषिद्ध समय माना गया है।

(१०) उपनयन (व्रतादेश) संस्कार—इस संस्कारसे द्विजत्वकी प्राप्ति होती है। शास्त्रों तथा पुराणोंमें तो यहाँतक कहा गया है कि इस संस्कारके द्वारा ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्यका द्वितीय जन्म होता है। विधिवत् यज्ञोपवीत धारण करना इस संस्कारका मुख्य अङ्ग है। इस संस्कारके द्वारा अपने आत्यन्तिक कल्याणके लिये वेदाध्ययन तथा गायत्री-जप और श्रौत-स्मार्त आदि कर्म करनेका अधिकार प्राप्त होता है।

शास्त्रविधिसे उपनयन-संस्कार हो जानेपर गुरु बालकके कंधों तथा हृदयका स्पर्श करते हुए कहता है—

मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥

मैं वैदिक तथा लौकिक शास्त्रोंके ज्ञान करानेवाले वेदव्रत तथा विद्याव्रत—इन दो व्रतोंको तुम्हारे हृदयमें स्थापित कर रहा हूँ। तुम्हारा चित्त—मन या अन्तःकरण मेरे अन्तःकरणका ज्ञानमार्गमें अनुसरण करता रहे अर्थात् जिस प्रकार मैं तुम्हें उपदेश करता रहूँ, उसे तुम्हारा चित्त ग्रहण करता चले। मेरी बातोंको तुम एकाग्र-मनसे समाहित होकर सुनो और ग्रहण करो। प्रजापति ब्रह्मा एवं बुद्धि-विद्याके स्वामी बृहस्पति तुम्हें मेरी विद्याओंसे संयुक्त करें।'

इसी प्रकार वेदाध्ययनके साथ-साथ गुरुद्वारा बालक (वटु) को कई उपदेश प्रदान किये जाते हैं। प्राचीन कालमें केवल वाणीसे ही ये शिक्षाएँ नहीं दी जाती थीं, प्रत्युत गुरुजन तत्परतापूर्वक शिष्योंसे पालन भी करवाते थे।

(११) वेदारम्भ-संस्कार—उपनयन हो जानेपर बालकका वेदाध्ययनमें अधिकार प्राप्त हो जाता है। ज्ञानस्वरूप वेदोंके सम्यक् अध्ययनसे पूर्व मेधाजनन नामक एक उपाङ्ग-संस्कार करनेका विधान है। इस क्रियासे बालककी मेधा, प्रज्ञा, विद्या तथा श्रद्धाकी अभिवृद्धि होती है और वेदाध्ययन आदिमें विशेष अनुकूलता प्राप्त होती है तथा विद्याध्ययनमें कोई विघ्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होने पाता। ज्योतिर्निबन्धमें कहा गया है—

विद्यया लुप्यते पापं विद्ययाऽऽयुः प्रवर्धते।
विद्यया सर्वसिद्धिः स्याद्विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

'वेदविद्याके अध्ययनसे सारे पापोंका लोप होता है, आयुकी वृद्धि होती है, सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, यहाँतक कि उसके समक्ष साक्षात् अमृत रस अशन-पानके रूपमें उपलब्ध हो जाता है।'

गणेश और सरस्वतीकी पूजा करनेके पश्चात् वेदारम्भ—विद्यारम्भमें प्रविष्ट होनेका विधान है। शास्त्रोंमें कहे गये निषिद्ध तिथियोंमें वेदका स्वाध्याय नहीं करना चाहिये। अपने गुरुजनोंसे अङ्गोंसहित वेदों तथा उपनिषदोंका अध्ययन करना चाहिये। तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति कराना ही इस संस्कारका परम प्रयोजन है। 'वेदव्रत' नामके संस्कारमें महानाम्नी, महान्, उपनिषद् एवं उपाकर्म चार व्रत आते हैं। उपाकर्मको सभी जानते हैं। यह प्रतिवर्ष श्रावणमें होता है। शेष प्रथम महानाम्नीमें प्रतिवर्षान्त सामवेदके महानाम्नी आर्चिकके नौ ऋचाओंका पाठ होता है। प्रथम मुख्य ऋचा इस प्रकार है—

विदा मघवन् विदा गातुमनुशꣳ सिषो दिशः।
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो॥

(साम० ६४१)

इसका भाव है—'अत्यन्त वैभवशाली, उदार एवं पूज्य परमात्मन्! आप सम्पूर्ण वेद-विद्याओंके ज्ञानसे सम्पन्न हैं एवं आप सन्मार्ग और गम्य दिशाओंको भी ठीक-ठीक जानते हैं, हे आदिशक्तिके स्वामिन्! आप हमें शिक्षाका साङ्गोपाङ्ग रहस्य बतला दें।'

द्वितीय तथा तृतीय वर्षोंमें क्रमशः 'वैदिक महाव्रत' तथा 'उपनिषद्-व्रत' किया जाता है, जिसमें वेदोंकी ऋचाओं तथा उपनिषदोंका श्रद्धापूर्वक पाठ किया जाता है और अन्तमें सावित्री-स्नान होता है। इसके अनन्तर वेदाध्यायी स्नातक कहलाता है। इसमें सभी मन्त्र-संहिताओंका गुरुमुखसे श्रवण तथा मनन करना होता है। यह वेदारम्भ मुख्यतः ब्रह्मचर्याश्रम-संस्कार है।

(१२) केशान्त-संस्कार (गोदान)—वेदारम्भ-संस्कारमें ब्रह्मचारी गुरुकुलमें वेदोंका स्वाध्याय तथा अध्ययन करता है। उस समय वह ब्रह्मचर्यका पूर्ण पालन करता है तथा उसके लिये केश और श्मश्रु (दाढ़ी), मौञ्जी-मेखलादि धारण करनेका विधान है। जब विद्याध्ययन पूर्ण हो जाता है, तब गुरुकुलमें ही केशान्त-संस्कार सम्पन्न होता है। इस संस्कारमें भी आरम्भमें सभी संस्कारोंकी तरह गणेशादि देवोंका पूजन कर तथा यज्ञादिके सभी अङ्गभूत कर्मोंका सम्पादन करना पड़ता है। तदनन्तर श्मश्रु-वपन (दाढ़ी बनाने) की क्रिया सम्पन्न की जाती है, इसलिये यह श्मश्रु-संस्कार भी कहलाता है।

'केशानाम् अन्तः समीपस्थितः श्मश्रुभाग इति व्युत्पत्त्या केशान्तशब्देन श्मश्रूणामभिधानात् श्मश्रुसंस्कार एव केशान्तशब्देन प्रतिपाद्यते। अत एवाश्वलायनेनापि 'श्मश्रूणीहोन्दति' इति श्मश्रूणां संस्कार एवात्रोपदिष्टः।'

(संस्कारदीपक भाग २, पृ० ३४२)

पूर्वोक्त विवरणमें यह स्पष्ट किया गया है कि केशान्त शब्दसे श्मश्रु (दाढ़ी) का ही ग्रहण होता है, अतः मुख्यतः श्मश्रु-संस्कार ही केशान्त-संस्कार है। इसे गोदान-संस्कार भी कहा जाता है, क्योंकि गौ यह नाम केश (बालों) का भी है और केशोंका अन्तभाग अर्थात् समीपस्थित श्मश्रुभाग ही कहलाता है—

'गावो लोमानि केशा दीयन्ते खण्ड्यन्तेऽस्मिन्निति व्युत्पत्त्या 'गोदानं' नाम ब्राह्मणादीनां षोडशादिषु वर्षेषु कर्तव्यं केशान्ताख्यकर्मोच्यते।'

(रघु० ३। ३३ पद्यकी मल्लिनाथव्याख्या)

'गौ अर्थात् लोम-केश जिसमें काट दिये जाते हैं, इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'गोदान' पद यहाँ ब्राह्मण आदि वर्णोंके सोलहवें वर्षमें करने योग्य केशान्त नामक कर्मका वाचक है।'

यह संस्कार केवल उत्तरायणमें किया जाता है। तथा प्रायः षोडशवर्षमें होता है।

(१३) (वेदस्नान) समावर्तन—समावर्तन विद्याध्ययनका अन्तिम संस्कार है। विद्याध्ययन पूर्ण हो जानेके अनन्तर स्नातक ब्रह्मचारी अपने पूज्य गुरुकी आज्ञा पाकर अपने घरमें समावर्तित होता है—लौटता है। इसीलिये इसे समावर्तन-संस्कार कहा जाता है। गृहस्थ-जीवनमें प्रवेश पानेका अधिकारी हो जाना समावर्तन-संस्कारका फल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद-मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित जलसे भरे हुए ८ कलशोंसे विशेष विधिपूर्वक ब्रह्मचारीको स्नान कराया जाता है, इसलिये यह वेदस्नान-संस्कार भी कहलाता है।

समावर्तन-संस्कारकी वास्तविक विधिके सम्बन्धमें आश्वलायन-स्मृतिके १४वें अध्यायमें पाँच प्रामाणिक श्लोक मिलते हैं, जिनके अनुसार केशान्त-संस्कारके बाद विधिपूर्वक स्नानके अनन्तर वह ब्रह्मचारी वेदविद्याव्रत-स्नातक कहलाता है। उसे अग्निस्थापन, परिसमूहन तथा पर्युक्षण आदि अग्निसंस्कार कर ऋग्वेदके दसवें मण्डलके १२८वें सूक्तकी सभी ९ वों ऋचाओंसे समिधाका हवन करना चाहिये। फिर गुरुदक्षिणा देकर, गुरुके चरणोंका स्मरण कर, उनकी आज्ञा ले स्विष्टकृत् होमके अनन्तर निम्न मन्त्रद्वारा वरुणदेवसे मौञ्जी-मेखला आदिके त्यागकी कामना करते हुए प्रार्थना करनी चाहिये—

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत। अवाधमानि जीवसे॥ (ऋग्वेद १।२५।२१)

इसका भाव है—हे वरुणदेव! आप हमारे कटि एवं ऊर्ध्वभागके मौञ्जी उपवीत एवं मेखलाको हटाकर सूतकी मेखला तथा उपवीत पहननेकी आज्ञा दें और निर्विघ्न अग्रिम जीवनका विधान करें। इसके बाद गुरुजन घर आते समय उसे लोक-परलोक-हितकारी एवं जीवनोपयोगी शिक्षा देते हैं—'सत्य बोलना। धर्मका आचरण करना। स्वाध्यायमें प्रमाद न करना। आचार्यके लिये प्रिय धन लाकर देना। संतान-परम्पराका उच्छेद न करना। सत्यमें प्रमाद न करना। कुशल-कर्मोंमें प्रमाद न करना। ऐश्वर्य देनेवाले कर्मोंमें प्रमाद न करना। स्वाध्याय और प्रवचनमें प्रमाद न करना। देवकार्यों और पितृकार्योंमें प्रमाद नहीं करना। माता-पिता, आचार्य तथा अतिथिको देवता माननेवाले होओ। जो अनिन्द्य कर्म हैं, उन्हींकी ओर प्रवृत्ति होनी चाहिये, अन्य कर्मोंकी ओर नहीं। हमारे जो शुभ आचरण हैं, तुम्हें उन्हींका आचरण करना चाहिये, दूसरोंका नहीं।'

जो हमारी अपेक्षा भी श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, उनका आसनादिके द्वारा तुम्हें आश्वासन (आदर) करना चाहिये। श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये। अश्रद्धापूर्वक नहीं देना चाहये। अपने ऐश्वर्यके अनुसार देना चाहिये। लज्जापूर्वक देना चाहिये। भय मानते हुए देना चाहिये। मित्रतापूर्वक देना चाहिये। यदि तुम्हें कर्म या आचरणके विषयमें कोई संदेह उत्पन्न हो जाय, तो वहाँ जो विचारशील कर्ममें स्वेच्छासे भलीभाँति लगे रहनेवाले धर्ममति ब्राह्मण हों, उस विषयमें वे जैसा व्यवहार करते हों, वैसा तुम्हें भी करना चाहिये।

इसी प्रकार जिनपर संशययुक्त दोषारोपण किया गया हो, उनके विषयमें भी वहाँ जो विचारशील, स्वेच्छासे कर्मपरायण, सरल-हृदय, धर्माभिलाषी ब्राह्मण हों, वे जैसा व्यवहार करें, वैसा तुम्हें भी करना चाहिये। यह आदेश है। यह उपदेश है, यह वेदका रहस्य और ईश्वरकी आज्ञा है। इसी प्रकार तुम्हें उपासना करनी चाहिये। ऐसा ही आचरण करना चाहिये।'

इस उपदेश-प्राप्तिके अनन्तर स्नातकको पुनः गुरुको प्रणामकर मौञ्जी-मेखला आदिका परित्याग करके गुरुसे विवाहकी आज्ञा लेकर अपने माता-पिताके पास आना चाहिये और माता-पिता आदि अभिभावकोंको उस वेद-विद्याव्रत-स्नातकके घर आनेपर माङ्गलिक वस्त्राभूषणोंसे अलंकृतकर मधुपर्क आदिसे उसका स्वागत-सत्कारपूर्वक अर्चन करना चाहिये।

(१४) विवाह-संस्कार—पुराणोंके अनुसार ब्राह्म आदि उत्तम विवाहोंसे उत्पन्न पुत्र पितरोंको तारनेवाला होता है। विवाहका यही फल बताया गया है। यथा—

ब्राह्माद्युद्वाहसम्भूतः पितॄणां तारकः सुतः।
विवाहस्य फलं त्वेतत् व्याख्यातं परमर्षिभिः॥

(स्मृतिसंग्रह)

विवाह-संस्कारका भारतीय संस्कृतिमें अत्यधिक महत्त्व है। जिस दार्शनिक विज्ञान और सत्यपर वर्णाश्रमी आर्य-जातिके स्त्री-पुरुषोंका विवाह-संस्कार प्रतिष्ठित है, उसकी कल्पना दुर्विज्ञेय है। कन्या और वर दोनोंके स्वेच्छाचारी होकर विवाह करनेकी आज्ञा शास्त्रोंने नहीं प्रदान की है। इसके लिये कुछ नियम और विधान बने हैं, जिससे उनकी स्वेच्छाचारितापर नियन्त्रण होता है।

पाणिग्रहण-संस्कार देवता और अग्निके साक्षित्वमें करनेका विधान है। भारतीय संस्कृतिमें यह दाम्पत्य-सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तरतक माना गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१५) विवाहाग्निपरिग्रह—विवाह-संस्कारमें लाजा-होम आदि क्रियाएँ जिस अग्निमें सम्पन्न की जाती हैं, वह 'आवसथ्य' नामक अग्नि कहलाती है। इसीको विवाहाग्नि भी कहा जाता है। उस अग्निका आहरण तथा उसकी परिसमूहन आदि क्रियाएँ इस संस्कारमें सम्पन्न होती हैं। शास्त्रोंमें निर्देश है कि किसी बहुत पशुवाले वैश्यके घरसे अग्निको लाकर विवाह-स्थलकी उपलिप्त पवित्र भूमिमें परिसमूहन तथा पर्युक्षणपूर्वक उस अग्निकी मन्त्रोंसे स्थापना करनी चाहिये और उसी स्थापित अग्निमें विवाह-सम्बन्धी लाजा-होम तथा औपासन होम करना चाहिये। तदनन्तर अग्निकी प्रदक्षिणा कर स्विष्टकृत् होम तथा पूर्णाहुति करनेका विधान है। कुछ विद्वानोंका मत है कि अग्नि कहीं बाहरसे न लाकर अरणि-मन्थनद्वारा उत्पन्न करनी चाहिये।

विवाहके अनन्तर जब वर-वधू अपने घर आने लगते हैं तब उस स्थापित अग्निको घर लाकर किसी पवित्र स्थानमें प्रतिष्ठित कर उसमें प्रतिदिन अपनी कुलपरम्परानुसार सायं-प्रातः हवन करना चाहिये। यह नित्य-हवन-विधि द्विजातिके लिये आवश्यक बतायी गयी है और नित्य-कर्मोंमें परिगणित है। सभी वैश्वदेवादि स्मार्त-कर्म तथा पाक-यज्ञ इसी अग्निमें अनुष्ठित किये जाते हैं। जैसा कि याज्ञवल्क्यने भी लिखा है—

कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही।

(या०स्मृति, आचाराध्याय ५। ९७)

—इस अग्निको आनाय्याग्नि, गृह्याग्नि, आवसथ्याग्नि तथा विवाहाग्नि भी कहा जाता है। गृह्यसूत्रोंमें पठित सभी कर्म इसी स्थापित अग्निमें किये जाते हैं। सनातन संस्कृतिमें इस संस्कारका अत्यन्त महत्त्व है।

(१६) त्रेताग्निसंग्रह-संस्कार—

'स्मार्तं वैवाहिके वह्नौ श्रौतं वैतानिकाग्निषु'

(व्यासस्मृति २। १७)

स्मार्त या पाकयज्ञ-संस्थाके सभी कर्म वैवाहिक अग्निमें तथा हविर्यज्ञ एवं सोमयज्ञ-संस्थाके सभी श्रौत-कर्मानुष्ठानादि कर्म वैतानाग्नि (श्रौताग्नि-त्रेताग्नि) में सम्पादित होते हैं।

इससे पूर्व 'विवाहाग्निपरिग्रह-संस्कारके' परिचयमें यह स्पष्ट किया गया है कि विवाहमें घरमें लायी गयी आवसथ्य अग्नि प्रतिष्ठित की जाती है और उसीमें स्मार्त कर्म आदि अनुष्ठान किये जाते हैं। उस स्थापित अग्निसे अतिरिक्त तीन अग्नियों (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य तथा आहवनीय) की स्थापना तथा उनकी रक्षा आदिका विधान भी शास्त्रोंमें निर्दिष्ट है। ये तीन अग्नियाँ त्रेताग्नि कहलाती हैं, जिसमें श्रौतकर्म सम्पादित होते हैं। जैसे वेदाध्ययन आवश्यक बताया गया है और वेदाध्ययनका प्रयोजन यज्ञ-कर्मोंमें पर्यवसित है, जिससे पुण्य और सद्गति प्राप्त होती है, वैसे ही इस त्रेताग्नि-क्रियाको आवश्यक तथा महत्त्वका संस्कार बताया गया है। इसी दृष्टिसे इसे अन्तिम संस्कार भी माना जाता है। शास्त्रोंमें यह निर्देश है कि गृहस्थ एक स्वतन्त्र यज्ञशालामें जिसे त्रेताग्निशाला भी कहा गया है, पूर्वोक्त तीन अग्नियोंकी विधिवत् स्थापना करे और उसमें हवनादि कार्य करे। वेदोंमें कर्म एवं उपासनासे सम्बन्धित ८४,००० मन्त्र केवल त्रेताग्निशालामें सम्पादन करने योग्य यज्ञोंके अनुष्ठान-विधानमें ही विनियुक्त हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थों, ऋक्परिशिष्ट, अथर्वणपरिशिष्ट, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र तथा जैमिनि आदिके मीमांसा आदि दर्शनोंमें विस्तारसे इनकी प्रयोगविधि तथा विस्तृत विवेचना प्राप्त होती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह संस्कार कितने महत्त्वका है! गृहस्थके लिये नित्य हवनके साथ ही श्रौतकर्मोंका विधान शास्त्रोंमें स्पष्ट बताया गया है। इन कर्मोंसे कर्ता सुसंस्कृत होता है और उसे परम पुरुषार्थकी प्राप्ति होती है।

भगवान् श्रीराम जब लंका-विजय कर सीताके साथ पुष्पक विमानसे वापस लौट रहे थे, तब उन्होंने मलयाचलके ऊपरसे आते समय सीताको अगस्त्यजीके आश्रमका परिचय देते हुए बताया कि यह अगस्त्य मुनिका आश्रम है, जहाँके त्रेताग्निमें सम्पादित यज्ञोंके सुगन्धित पूर्ण धुएँको सूँघकर मैं अपनेको सभी पाप-तापोंसे मुक्त अनुभव कर रहा हूँ।

अन्त्येष्टिक्रिया— कुछ आचार्योंने मृत-शरीरकी अन्त्येष्टिक्रियाको भी एक संस्कार माना है, जिसे पितृमेध, अन्त्यकर्म, अन्त्येष्टि अथवा श्मशानकर्म आदि नामोंसे भी कहा गया है। पुराणोंमें इस क्रियासे सम्बद्ध सभी विषयोंका वर्णन है तथा यह क्रिया अत्यन्त महत्त्वकी है। यहाँ इसका संक्षेपमें विवरण दिया जा रहा है—

इस संस्कारमें मुख्यतः संस्कृत अग्निसे दाहक्रियासे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर द्वादशाहतकके कर्म सम्पन्न किये जाते हैं। मृत व्यक्तिके शरीरको स्नान कराकर, वस्त्रोंसे आच्छादित कर, तुलसी-स्वर्ण आदि पवित्र पदार्थोंको अर्पित कर, शिखासूत्र-सहित उत्तरकी ओर सिर करके चितामें स्थापित करना चाहिये और फिर औरस पुत्र या सपिण्डी या सगोत्री व्यक्ति सुसंस्कृत अग्निसे मन्त्रसहित चितामें अग्नि दे। अग्नि देनेवाले व्यक्तिको बारहवें दिनतक सपिण्डन-पर्यन्त सारे कर्म करने चाहिये। तीसरे दिन अस्थिसंचयन करके दसवें दिन दशाह कर तिलाञ्जलि देनी चाहिये। दस दिनतक आशौच रहता है, उसमें कोई नैमित्तिक कार्य नहीं करने चाहिये। बौधायनीयपितृमेधसूत्रोंमें इस क्रियाकी विशिष्ट विधि दी गयी है।

अन्त्येष्टि-क्रियाके रहस्यपर कुछ संक्षिप्त विचार इस प्रकार हैं—मृत्युके अनन्तर मृत शरीरको अग्नि प्रदान करके वैदिक मन्त्रोंद्वारा दाह-क्रिया सम्पन्न किया जाता है। वर्ण और आश्रमके अनुसार दशगात्र-विधान, षोडश-श्राद्ध, सपिण्डीकरण आदि क्रियाएँ भी इसी संस्कारके अन्तर्गत हैं। पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच प्राणवायु, मन और बुद्धि इन सत्रह वस्तुओंका सूक्ष्मशरीर लेकर जीव स्वकर्मानुसार षाट्कौशिक स्थूलशरीरमें प्रवेश करता है। वहीं प्रारब्धको समाप्तकर जब उपर्युक्त सत्रह वस्तुओंको लेकर स्थूल-शरीरसे वह निकलता है, उस समय जीवको सूक्ष्मशरीरके रक्षार्थ एक वायवीय शरीर मिलता है। इसीसे वह अपने कर्मानुसार कृष्ण या शुक्ल गतिको प्राप्त होता है। षाट्कौशिक स्थूलशरीरसे निकलते ही तत्काल वह वायवीय शरीरको ग्रहण करता है। इसी समय जीवकी प्रेत-संज्ञा पड़ती है अर्थात् वह अधिक चलनेवाला और हलका जीव बन जाता है। स्थूलशरीरमें अधिक समयतक निवास होनेके कारण शरीरके साथ उसका विशेष अभिनिवेश हो जाता है। अतएव जीव बारम्बार वायुप्रधान शरीरके द्वारा पूर्वशरीरके सूक्ष्मावयवों (परमाणुओं) की तरफ रहनेकी चेष्टा करता रहता है। इसलिये इसी प्रेतत्वसे मुक्तिके लिये दशगात्रादि श्राद्धक्रियाएँ शास्त्रोंमें बतलायी गयी हैं। मूर्ख, विद्वान् सभीके लिये **'प्रेतत्व-विमुक्तिकामः'** ऐसा श्राद्ध-प्रकरणमें पढ़ा जाता है। मृतककी वासना जमीनमें गड़े हुए तथा कहीं गन्धयुक्त पड़े हुए पूर्व शरीरपर न जाय और उससे जीवकी मुक्ति हो जाय, इसलिये हिंदुओंमें मृत शरीरको जलानेकी प्रथा प्रचलित हुई है। अग्निसंस्कारसे मृत शरीरका पार्थिवतत्त्व कण-कण जलकर रूपान्तर ग्रहण करता है। फिर भस्मरूप (फूल) पार्थिवतत्त्व भगवती भागीरथीकी पावन वारिधारामें प्रवाहित कर दिया जाता है। वह परम पवित्र जल उन भस्मकणोंको स्वस्वरूपमें परिवर्तित कर लेता है। फिर मृतका सम्बन्ध पूर्व-शरीरसे विच्छिन्न हो जाता है और शास्त्रविहित श्राद्धादिक क्रियाके द्वारा प्रदत्त जलादि सामग्रीसे तृप्त होकर वह प्रेत-शरीरको छोड़ देता है। संन्यासियोंके मृत शरीरके लिये अग्निसंस्कार शास्त्रमें नहीं बतलाया गया है। क्योंकि कामनानुबन्धी कर्मोंको तथा कृतकर्म-फलोंको त्यागनेसे और श्रीभगवच्चरणारविन्दोंमें गाढ़ अनुराग होनेसे शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवार, धनादिकी वासना जीवन-दशामें ही छूट जाती है। अतएव शरीरसे निकली हुई संन्यासियोंकी आत्मा शीघ्रातिशीघ्र शुक्ल गतिसे प्रयाण कर जाती है। मृत शरीरकी ओर आकर्षण करनेवाली सामग्री ही नहीं रह जाती, इसलिये संन्यासियोंके लिये श्राद्धादिकी कल्पनाएँ नहीं की गयी हैं। हिंदुओंमें छोटे बालकोंका शरीर भी नहीं जलाया जाता। उसे भूमिके अंदर गाड़ दिया जाता है। सूक्ष्मशरीरके साथ स्थूल शरीरमें प्रविष्ट आत्माका गाढ़ सम्बन्ध (अभिनिवेश) स्थूल शरीरमें अल्प दिनोंमें नहीं होता। अतएव बालकोंकी मृत आत्मा पूर्व-शरीरका सम्बन्ध शीघ्रातिशीघ्र त्यागकर संचित कर्मानुसार अपर शरीरको प्राप्त करती है। इसी कारण अल्पवयस्क बालकोंके लिये यह संस्कार नहीं बतलाया गया है। मृत आत्माओंका प्रगाढ़ अन्वय (वासना) पूर्व-शरीरके ऊपर अवश्य रहता है। इसी आधारपर मुसलमान और ईसाई जातियोंमें भी जहाँपर शरीर गाड़ा जाता हैं, वहींपर उनके धर्मग्रन्थोंमें कुछ क्रियाएँ बतलायी गयी हैं। उन्हीं जातियोंमें यह भी सिद्धान्त बतलाया गया है कि जबतक प्रलय नहीं होता, तबतक जीव मृत शरीरके पास ही सुख-दुःख भोगा करता है।

प्रेतयोनि—प्रसङ्गतः यहाँपर यह भी कह देना उचित है कि चौरासी लाख योनियोंमें एक प्रेतयोनि भी मानी गयी है। कुछ पापोंका परिणाम भोगनेके लिये प्रेतयोनि मिलती है। जलमें डूबकर, अग्निमें जलकर, वृक्षसे गिरकर, किसीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर अनशन करके मरनेवाले मनुष्य प्रेतयोनिमें जाते हैं। वहाँपर भी मृत आत्माओंके लिये वायु-प्रधान शरीर मिलता है। प्रेतोंके हृदयमें यह इच्छा सर्वदा बनी रहती है कि जहाँपर उनका धन है, उनके शरीरके पार्थिव परमाणु हैं, उनके शरीर-सम्बन्धी परिवार हैं, वहींपर रहें; अपने सम्बन्धियोंको अपनी तरह बनायें। सभी भौतिक पदार्थोंका संचय करनेकी सामर्थ्य वायुतत्त्वमें रहती है। यही कारण है कि प्रेत वायु-शरीरप्रधान होनेसे जिस योनिकी इच्छा करता है, वही साँप, बैल, भैंस आदि शरीरको ग्रहण कर लेता है, परंतु कुछ ही समयतक वह शरीर ठहर सकता है, पीछे सब पार्थिव परमाणु शीघ्र ही विखर जाते हैं। जिसका अन्त्येष्टि-संस्कार शास्त्रविहित क्रियाओंसे नहीं किया जाता, वह प्राणी कुछ दिनोंके लिये प्रेतयोनि प्राप्त करता है। शास्त्रोक्त विधिसे जब उसका प्रेतसंस्कार, दशगात्र-विधान, षोडश-श्राद्ध, सपिण्डन-विधान किया जाता है, तब वह प्रेत-शरीरसे छूट जाता है। मनुष्यसे इतर योनियोंमें जीवके ऊपर पञ्चकोशोंका विकास पूर्णरूपसे नहीं रहता है। इसलिये पशु-पक्षियोंकी आत्मा पूर्व-शरीरके साथ गाढ़ सम्बन्ध (अभिनिवेश) नहीं कर पाती, वहाँपर प्रकृति-माताके सहारेसे शीघ्रातिशीघ्र अन्य योनिको जीव प्राप्त कर लेता है। अतएव तिर्यग्-योनियोंके लिये दाहादि संस्कार नहीं बतलाये गये हैं।

आचार

वेद-पुराणादि शास्त्रोंमें आचार-विचारकी अत्यधिक महिमा है। वे कहते हैं जो मनुष्य आचारवान् हैं, उन्हें दीर्घ आयु, धन, संतति, सुख और धर्मकी प्राप्ति होती है। संसारमें वे विद्वानोंसे भी मान्यताको प्राप्त करते हैं और उन्हें नित्य अविनाशी भगवान् विष्णुके लोककी प्राप्ति होती है—

आचारवन्तो मनुजा लभन्ते
आयुश्च वित्तं च सुतांश्च सौख्यम्।
धर्मं तथा शाश्वतमीशलोक-
मत्रापि विद्वज्जनपूज्यतां च॥

सभी शास्त्रोंका यह निश्चित मत है कि आचार ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। आचारहीन पुरुष यदि पवित्रात्मा भी हो तो उसका परलोक और इहलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं—

आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः।
हीनाचारी पवित्रात्मा प्रेत्य चेह विनश्यति॥

यह भी कहा गया है कि **'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः'** (विष्णुधर्मो० ३।२५१।५) अर्थात् जो व्यक्ति आचारहीन है, उन्हें वेद भी पवित्र नहीं करते। अपवित्र व्यक्तिद्वारा अनुष्ठित धर्म निष्फल-सा होता है। इस सम्बन्धमें इतिहास-पुराणोंमें एक बड़ी रोचक कथा प्राप्त होती है। तदनुसार, वेदके एक शिष्य थे उत्तंक। उन्होंने कुछ खाकर खड़े-खड़े आचमन कर लिया, जिससे उन्हें राजा पौष्यकी पतिव्रता रानीका राजमहलमें दर्शनतक नहीं हुआ। जब पौष्यद्वारा उनकी उच्छिष्टता या अपवित्रताकी सम्भावना व्यक्त हुई और उत्तंकने भलीभाँति अपना हाथ, पैर, मुख धोकर पूर्वाभिमुख आसनपर बैठ, हृदयतक पहुँचने योग्य पवित्र जलसे तीन बार आचमन किया तथा अपने नेत्र, नासिका आदिका जलसिक्त अंगुलियोंद्वारा स्पर्शकर शुद्ध हो अन्तःपुरमें प्रवेश किया, तब उन्हें पतिव्रता रानीका दर्शन हुआ।

पुराणोंमें आचारपर बहुत सूक्ष्म विचार किये गये हैं, जिससे सामान्यजन परिचित न होनेके कारण पूर्ण लाभ नहीं उठा पाते। आचारके दो भेद माने गये हैं—एक सदाचार तथा दूसरा शौचाचार। मनुष्य-जीवनकी सफलताके लिये सदाचरणका होना अत्यन्त आवश्यक है। विष्णुपुराणमें और्व ऋषिने गृहस्थके सदाचारके विषयमें कहा है—

सदाचाररतः प्राज्ञो विद्याविनयशिक्षितः।
पापेऽप्यपापः परुषे ह्यभिधत्ते प्रियाणि यः।
मैत्रीद्रवान्तःकरणस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता॥

(३।१२।४१)

'बुद्धिमान् गृहस्थ पुरुष सदाचारके पालन करनेसे ही संसारके बन्धनसे मुक्त होता है। सदाचारी विद्या और विनयसे युक्त रहता है तथा पापी पुरुषके प्रति भी पापमय, कष्टप्रद व्यवहार नहीं करता। वह सभीके साथ हित, प्रिय और मधुर भाषण करता है। सदाचारी पुरुष मैत्रीभावसे द्रवित अन्तःकरणवाले होते हैं, उनके लिये मुक्ति हस्तगत रहती है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाचारके अन्तर्गत काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, राग-द्वेष, झूठ, कपट, छल-छद्म, दम्भ आदि असत्-आचरणोंका त्याग तथा सत्य, अहिंसा, दया, परोपकार, क्षमा, धृति, इन्द्रियनिग्रह, अक्रोध आदि सत्-आचरणोंका ग्रहण मुख्य है। देवीभागवतमें कहा गया है कि—

आचारवान् सदा पूतः सदैवाचारवान् सुखी।
आचारवान् सदा धन्यः सत्यं सत्यं च नारद॥

(११।२४।९८)

विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें कहा गया है कि 'सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त होनेपर भी पुरुष यदि आचारसे रहित है तो उसे न विद्याकी प्राप्ति होती है और न अभीष्ट मनोरथोंकी ही। ऐसा व्यक्ति नरकका भागी बनता है'—

सर्वलक्षणयुक्तोऽपि नरस्त्वाचारवर्जितः।
न प्राप्नोति तथा विद्यां न च किञ्चिदभीप्सितम्।
आचारहीनः पुरुषो नरकं प्रतिपद्यते॥

(३।२५०।४)

इसके विपरीत जो सत्-आचारका पालन करता है, वह पुरुष स्वर्ग, कीर्ति, आयु, सम्मान तथा सभी लौकिक सुखोंका भोग करता है। आचारवान्को ही स्वर्ग प्राप्त होता है, वह रोगसे रहित रहता है, उसकी आयु लम्बी होती है और सभी ऐश्वर्योंका वह भोग करता है—

आचारः स्वर्गजनन आचारः कीर्तिवर्धनः।
आचारश्च तथायुष्यो धन्यो लोकसुखावहः॥
आचारयुक्तस्त्रिदिवं प्रयाति
आचारवानेव भवत्यरोगः।
आचारवानेव चिरं तु जीवे-
दाचारवानेव भुनक्ति लक्ष्मीम्॥

(विष्णुधर्मो० २७१।१, ४)

अतः शास्त्रोंमें वर्णित सदाचरणोंका ही सर्वदा व्यवहार करना चाहिये। कल्याणका यह परम श्रेयस्कर मार्ग है।

शौचाचार—सदाचारकी भाँति शौचाचारका भी पुराणोंमें विशेष महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। शौचाचारसे प्रत्यक्षतः शरीरादिकी बाह्यशुद्धि होती है। प्रातःकाल उठनेसे लेकर शयनपर्यन्त शौचाचारकी विधि पुराणोंमें वर्णित है, यहाँ शौचाचारके कुछ सूत्र प्रस्तुत किये जाते हैं—

प्रातःकाल उठनेके बाद भगवत्स्मरणके अनन्तर शौचकी विधि इस प्रकार बतायी गयी है—शौचके समय मृत्तिकाका प्रयोग अवश्य करना चाहिये। एक बार मूत्रेन्द्रिय तथा तीन बार पायु (मलस्थान) को मृत्तिका एवं जलसे प्रक्षालित करे। तदनन्तर दस बार बायाँ हाथ मिट्टीसे धोये तथा सात बार दोनों हाथ मिट्टीसे धोने चाहिये। तीन बार पाँवोंको मिट्टीसे धोये। इसके बाद आठ बार कुल्ला करना चाहिये तथा लघुशंकाके अनन्तर चार बार कुल्ला करना चाहिये।[१] उपर्युक्त विधान गृहस्थोंके लिये है। ब्रह्मचारियोंको इसका दुगुना, वानप्रस्थियोंको तिगुना तथा संन्यासियोंको चार गुना करना चाहिये।

दन्तधावन-विधि—शौचादि कृत्यके बाद दन्तधावन-विधि बतायी गयी है। मौन होकर दातौन अथवा मंजनसे दाँत साफ करने चाहिये। दातौनके लिये खैर, करंज, कदम्ब, बड़, इमली, बाँस, आम, नीम, चिचड़ा, बेल, आक, गूलर, बदरी, तिन्दुक आदिकी दातूनें अच्छी मानी जाती हैं।[२] लिसोढ़ा, पलाश, कपास, नील, धव, कुश, काश आदि वृक्षकी दातौन वर्जित हैं।

निषिद्धकाल—प्रतिपदा, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति, जन्मदिन, विवाह, व्रत, उपवास, रविवार और श्राद्धके अवसरपर दातौन नहीं करना चाहिये। रजस्वला तथा प्रसूतावस्थामें भी दातौन वर्जित है।

जिन-जिन अवसरोंपर दातौनका निषेध है, उन-उन अवसरोंपर तत्तद् वृक्षोंके पत्तों या सुगन्धित दन्तमंजनोंसे दाँत

१- पवित्रताके लिये कम-से-कम लघुशंकाके समय जलका प्रयोग तो अवश्य करना चाहिये। शौचविधि रात्रिमें तथा स्त्री और शूद्रके लिये आधी हो जाती है, मार्गमें चौथाई बरती जाती है तथा रोगियोंके लिये उनकी शक्तिपर निर्भर करती है।

२- खदिरश्च करञ्जश्च कदम्बश्च वटस्तथा। तिन्तिडी वेणुपृष्ठं च आम्रनिम्बौ तथैव च॥
अपामार्गश्च बिल्वश्च अर्कश्चौदुम्बरस्तथा। बदरी तिन्दुकास्त्वेते प्रशस्ता दन्तधावने॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वच्छ कर लेना चाहिये।[३] निषिद्धकालमें जीभी करनेका निषेध नहीं है।

क्षौरकर्म—क्षौरकर्मके लिये बुधवार तथा शुक्रवारके दिन प्रशस्त हैं। शनि, मंगल तथा बृहस्पतिवार और प्रतिपदा, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी आदि तिथियाँ निषिद्ध कही गयी हैं। व्रत और श्राद्धके दिन भी क्षौरकर्ममें वर्जित हैं।

तैलाभ्यङ्गविधि—रविवारको तेल लगानेसे ताप, सोमवारको शोभा, भौमवारको मृत्यु (अर्थात् आयुकी क्षीणता), बुधवारको धन, गुरुवारको हानि, शुक्रवारको दुःख और शनिवारको सुख होता है। यदि निषिद्ध दिनोंमें तेल लगाना हो तो रविवारको पुष्प, गुरुवारको दूर्वा, भौमवारको मिट्टी और शुक्रवारको गोबर तेलमें डालकर लगानेसे दोष नहीं होता है—

तैलाभ्यङ्गे रवौ तापः सोमे शोभा कुजे मृतिः।
बुधे धनं गुरौ हानिः शुक्रे दुःखं शनौ सुखम्॥
रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वा भौमवारे च मृत्तिका।
गोमयं शुक्रवारे च तैलाभ्यङ्गे न दोषभाक्॥

स्नान—शरीरकी पवित्रताके लिये नित्य स्नानकी आवश्यकता है। शास्त्रोंमें स्नानके कई प्रकार बतलाये गये हैं। सामान्यतः शुद्ध जलसे सम्पूर्ण शरीरके मल-प्रक्षालनको स्नान कहा जाता है। मत्स्यपुराणमें कहा गया है कि स्नानके बिना शरीरकी निर्मलता और भावशुद्धि नहीं प्राप्त होती। अतः मनकी विशुद्धिके लिये सर्वप्रथम स्नानका विधान है। कुएँ आदिके निकाले हुए अथवा बिना निकाले हुए नदी-तालाब आदिके जलसे स्नान करना चाहिये। मन्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुषको 'ॐ नमो नारायणाय' इस मूल मन्त्रके द्वारा उस जलमें तीर्थ-भावनाकी कल्पना करनी चाहिये[४]। स्नानके लिये गङ्गाका जल तथा तीर्थोंका जल सर्वाधिक पवित्र माना जाता है। फिर अन्य नदियों, सरोवरों, तड़ागों, कूपों आदिके जल पवित्र माने गये हैं। गङ्गा, तीर्थों तथा नदियोंमें स्नानका विशेष महत्त्व बताया गया है। अन्य स्नानकी विशेष विधियाँ भी पुराणोंमें वर्णित हैं। यथा—प्रायश्चित्तस्नान, अभिषेकस्नान, भस्मस्नान तथा मृत्तिकास्नान आदि। अशक्तावस्थामें कटिभागसे नीचेके अङ्गोंका प्रक्षालन तथा गलेसे ऊपरके अङ्गोंके प्रक्षालनसे भी स्नानकी विधि पूरी हो जाती है। विशेष अशक्यावस्था तथा आपत्तिकालमें निम्न मन्त्रोंद्वारा मार्जन-स्नानकी विधि बतायी गयी है—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

—इस मन्त्रके द्वारा शरीरपर जलसे मार्जन करे तथा—

'आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः तस्मा अरं गमाम वो' —

इस मन्त्रके द्वारा भी शरीरपर जल छिड़कते हुए मार्जन-स्नान करना चाहिये। **'यस्य क्षयाय जिन्वथ'** कहकर नीचे जल छोड़े और **'आपो जनयथा च नः'** इससे पुनः मार्जन करे।

भोजनविधि—स्नानोपरान्त सन्ध्योपासन एवं पूजन आदिसे निवृत्त होनेके पश्चात् भोजनकी विधि है। भोजनके सम्बन्धमें दो बातें मुख्य हैं। एक तो उच्छिष्ट (जूठा) भोजन करना सर्वथा निषिद्ध है। भोजन प्रारम्भ करनेसे पूर्व हाथ-पैरोंको शुद्ध जलसे प्रक्षालित करना चाहिये तथा जलद्वारा आचमन कर मौन होकर भोजन करना चाहिये। भोजनके अन्तमें भी आचमन करनेकी विधि है।

भोजनकी दूसरी मुख्य बात है द्रव्य-शुद्धि। सदाचारपूर्वक अर्जित द्रव्यका ही भोजन मनुष्यके लिये लाभदायी होता है तथा उसके अन्तःकरण और बुद्धिको पवित्र रखता है। अतः स्थूल दृष्टिसे भोजनमें शुद्धता, पवित्रता और सात्त्विकता होनी ही चाहिये, पर साथ ही सूक्ष्मरूपसे सत्यतासे अर्जित धनसे बना भोजन परम पवित्र होता है। बिना परिश्रम किये किसी पराये व्यक्तिके अन्नका भोजन करनेकी प्रवृत्ति भी नहीं रखनी चाहिये।[५]

३- 'तत्तत्पत्रैः सुगन्धैर्वा कारयेद् दन्तधावनम्' (स्कन्दपु०, प्रभासखण्ड)

४- नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च बिना स्नानं न विद्यते। तस्मान्मनो विशुद्ध्यर्थं स्नानमादौ विधीयते॥
अनुद्धतैरुद्धतैर्वा जलैः स्नानं समाचरेत्। तीर्थं प्रकल्पयेद् विद्वान् मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्॥
(मत्स्य० १०२। १-२)

५- अपने मित्र या सगे-सम्बन्धियोंके यहाँ विशेष आग्रह होनेपर विवशतापूर्वक भोजन करनेमें दोष नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशौच—जीवनमें कुछ अवस्थाएँ ऐसी भी आती हैं जब व्यक्ति आशौचावस्थामें रहता है। उस समय वह देवार्चन आदि कोई शुभ कार्य करनेका अधिकारी नहीं रहता।

जननाशौच-मरणाशौच—अपने परिवारमें नव-शिशुके जन्म होनेपर प्रायः तीन दिन तथा सगोत्रमें किसी व्यक्तिकी मृत्यु हो जानेपर दस रात्रिका आशौच माना गया है। आशौचावस्थामें देवकार्य, पितृकार्य, वेदाध्ययन तथा गुरुजनोंका अभिवादन आदि शुभकार्योंका निषेध किया गया है। यहाँतक कि देवमन्दिरमें प्रवेश तथा पूजन आदि करना भी वर्जित है।

स्त्रियोंके लिये प्रायः मासमें एक बार विशेष अवस्था आती है, जिसमें वे रजस्वला हो जाती हैं। इसमें तीन रात्रितक उनकी आशौचावस्था रहती है। इस अवधिमें स्त्रीको घरका कोई काम-काज नहीं करना चाहिये। यहाँतक कि किसी वस्तु या किसी व्यक्तिको स्पर्श भी नहीं करना चाहिये। इस अवस्थाके समाप्त होनेपर स्त्रीके लिये सचैल स्नानकी विधि है। तदनुसार उसके कपड़े तथा बर्तन आदि धोनेके बाद ही शुद्धता होती है।

आचमन—जिस प्रकार शरीरकी शुद्धि तथा पवित्रताके लिये स्नानादि कृत्योंका महत्त्व है, उसी प्रकार आभ्यन्तर एवं बाह्य पवित्रताके लिये पुराणोंमें आचमनका भी विशेष महत्त्व वर्णित है। प्रायः दैनिक कार्योंमें सामान्य शुद्धिके लिये प्रत्येक कार्यमें आचमनका विधान है। लघुशंका, शौच तथा स्नान आदिके अनन्तर आचमन करना आवश्यक है। अतः आचमनसे हम केवल अपनी ही शुद्धि नहीं करते, अपितु ब्रह्मासे लेकर तृणतकको तृप्त करते हैं।[६] कोई भी देवादि शुभ कार्य करनेके अनन्तर आचमन करना चाहिये।

आचमन-विधि—पूर्व, उत्तर या ईशान दिशाकी ओर मुख करके आसनपर बैठ जाय, शिखा बाँधकर हाथ घुटनोंके भीतर रखते हुए निम्न मन्त्रोंसे तीन बार आचमन करे—

'ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः।' आचमनके बाद अँगूठेके मूलभागसे होंठोंको दो बार पोंछकर **'ॐ हृषीकेशाय नमः'** उच्चारणकर हाथ धोवे। फिर अँगूठेसे आँख, नाक तथा कानका स्पर्श करे। अशक्त होनेपर तीन बार आचमन कर हाथोंको धोकर दाहिना कान छू ले। दक्षिण और पश्चिमकी ओर मुखकर आचमन नहीं करना चाहिये। चलते-फिरते भी नहीं करना चाहिये।

मादक द्रव्योंका निषेध—संसारमें मदिरा, ताड़ी, चाय, काफी, कोको, भाँग, अफीम, चरस, गाँजा, तंबाकू, बीड़ी-सिगरेट तथा चुरुट आदि जितनी भी मादक वस्तुएँ हैं, वे सब मनुष्यमात्रके लिये अव्यवहार्य हैं। इनका उपयोग मनुष्यको भीषण गर्तमें डालनेवाला होता है। पद्मपुराणके अनुसार धूम्रपान करनेवाले ब्राह्मणको दानतक देनेवाला व्यक्ति नरकगामी होता है तथा धूम्रपान करनेवाला ब्राह्मण ग्राम-शूकर होता है—

धूम्रपानरते विप्रे दानं कुर्वन्ति ये नराः।
ते नरा नरकं यान्ति ब्राह्मणा ग्रामशूकराः॥

(पद्मपुराण)

पद्मपुराणमें यह बात आयी है कि मादक द्रव्योंके सेवनसे व्यक्तिका आत्मिक पतन और उसकी शारीरिक हानि होती है। इसलिये किसी भी स्थितिमें इन वस्तुओंका सेवन कदापि नहीं करना चाहिये।

भारतीय संस्कृति एवं सनातनधर्ममें आचार-विचारको सर्वोपरि महत्त्व प्रदान किया गया है। मनुष्य-जीवनकी सफलताके लिये, वास्तविक उन्नतिको प्राप्त करनेके निमित्त आचारका आश्रय आवश्यक है। इससे अन्तःकरणकी पवित्रताके साथ-साथ लौकिक और पारलौकिक लाभ भी प्राप्त होता है।

६- (क) एवं स ब्राह्मणो नित्यमुपस्पर्शनमाचरेत्। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगत् स परितर्पयेत्॥
(व्याघ्रपाद)

(ख) यःक्रियांकुरुतेमोहादनाचम्यैवनास्तिकः। भवन्ति हि वृथा तस्य क्रियाः सर्वा न संशयः॥
(पुराणसार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनिक चर्या

मनुष्य-जीवनमें प्रातःकाल जागरणसे लेकर रात्रिमें शयनपर्यन्त दैनिक कार्यक्रमोंका पर्याप्त महत्त्व है। पुराणोंमें यह प्रकरण दैनन्दिन सदाचारमें निर्दिष्ट है। प्रायः कई सज्जन घंटे-दो-घंटेका समय भगवदाराधन, पूजा-पाठ, समाजसेवा तथा परोपकारादिके कार्योंमें व्यतीत करते हैं, परंतु शेष समय व्यवहार-जगत्में स्वेच्छाचारपूर्वक काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य तथा छल-कपटसे युक्त असत्-कार्योंमें भी लगाते हैं। जिससे पाप-पुण्य और सुख-दुःख दोनों उन्हें भोगना पड़ता है।

सच्चा सुख नित्य, सनातन और एकरस शान्तिमें है। उसके आश्रय हैं मङ्गलमय भगवान्। प्रत्येक स्त्री-पुरुषका प्रयत्न उन्हीं परम-प्रभुको प्राप्त करनेके लिये होना चाहिये। अतः इस भव-बन्धनसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये यह आवश्यक है कि चौबीस घंटेके सम्पूर्ण समयका कार्यक्रम भगवदाराधनके रूपमें हो। चलना-फिरना, उठना-बैठना, खाना-पीना, सोना आदि सब कुछ भगवान्की प्रीतिके लिये पूजारूपमें हो। पापाचरणके लिये कहीं भी अवकाश न हो, तभी स्वतः कल्याणका मार्ग प्रशस्त हो सकेगा। अपनी दिनचर्या शास्त्र-पुराणोक्त वचनोंके अनुसार ही चलानी चाहिये, जिससे जीवन भगवत्पूजामय बन जाय। यहाँ संक्षेपमें इसका किञ्चित् दिग्दर्शन करानेका प्रयास किया जाता है—

प्रातःजागरण—प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें अर्थात् सूर्योदयसे प्रायः डेढ़ घंटा पूर्व उठ जाना चाहिये। आँख खुलते ही दोनों करतलोंको देखते हुए निम्न श्लोकका पाठ करना चाहिये—

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्॥

'हथेलियोंके अग्रभागमें लक्ष्मी निवास करती हैं, मध्यभागमें सरस्वती और मूलमें ब्रह्माजी निवास करते हैं। अतः प्रातः हथेलियोंका दर्शन करना आवश्यक है, इससे पुण्य लाभ होता है।'

भूमि-वन्दना—शय्यापर बैठकर पृथ्वीपर पैर रखनेसे पूर्व पृथ्वी माताका अभिवादन करना चाहिये और उनपर पैर रखनेकी विवशताके लिये उनसे क्षमा माँगते हुए निम्नलिखित श्लोकका पाठ करना चाहिये—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

(विश्वामित्र-स्मृति ४५)

मङ्गल-दर्शन—तदनन्तर दर्पण, सोना, गोरोचन, चन्दन, मणि, सूर्य और अग्नि आदि माङ्गलिक वस्तुओंका दर्शन और मूर्तिमान् भगवान् माता-पिता, गुरु एवं ईश्वरको नमस्कार करना चाहिये। फिर शौचादिसे निवृत्त होकर रातका कपड़ा बदलकर आचमन करना चाहिये। पुनः निम्नलिखित श्लोकोंको पढ़कर पुण्डरीकाक्ष भगवान्का स्मरण करते हुए अपने ऊपर जलसे मार्जन करना चाहिये। इससे मान्त्रिक स्नान हो जाता है—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥
अतिनीलघनश्यामं नलिनायतलोचनम्।
स्मरामि पुण्डरीकाक्षं तेन स्नातो भवाम्यहम्॥

पुनः उपासनामय कर्महेतु दैनन्दिन संसार-यात्राके लिये भगवत्प्रार्थना कर उनसे आज्ञा प्राप्त करनी चाहिये—

त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव
श्रीनाथ विष्णो भवदाज्ञयैव।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं
संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये॥

(मन्त्रमहोदधि २१।६)

अजपा-जप—इसके बाद अजपा-जपका संकल्प करना चाहिये, क्योंकि शास्त्रोक्त सभी साधनोंमें यह 'अजपा-जप' विशेष सुगम है। स्वाभाविक 'हंसो-हंसो'की जगह 'सोऽहं-सोऽहं' के जपका ध्यान करनेसे सोते-जागते सब स्थितियोंमें यह जप प्रचलित माना जाता है।

तदनन्तर भगवान्का ध्यान करते हुए नाम-कीर्तन करना चाहिये और प्रातःस्मरणीय श्लोकोंका पाठ करना चाहिये। तत्पश्चात् शौचादि कृत्योंसे निवृत्त होना चाहिये। शौचविधिमें शुद्धिके लिये जल और मृत्तिकाका प्रयोग बताया गया है[1], जो परम आवश्यक है।

१- शौचकी विधि 'आचार'-प्रकरणमें देखनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आभ्यन्तरशौच[२]—व्याघ्रपादके अनुसार मिट्टी और जलसे होनेवाला शौच बाह्यशौच कहा जाता है। इसकी अबाधित आवश्यकता है, किंतु आभ्यन्तरशौचके बिना यह प्रतिष्ठित नहीं हो पाता। शौचाचारविहीनकी की गयी सभी क्रियाएँ भी निष्फल ही होती हैं[३]। मनोभावको शुद्ध रखना आभ्यन्तरशौच माना गया है। किसीके प्रति ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह, घृणा आदिका न होना आभ्यन्तरशौच है। भगवान् सबमें विद्यमान हैं, इसलिये किसीसे द्वेष, क्रोधादि नहीं करना चाहिये। सबमें भगवान्का दर्शन करते हुए, सभी परिस्थितियोंको भगवान्का वरदान समझते हुए सबमें मैत्रीभाव रखना चाहिये, साथ ही प्रतिक्षण भगवान्का स्मरण करते हुए उनकी आज्ञा समझकर शास्त्रविहित कार्य करते रहना चाहिये।

स्नान—उषाकी लालीसे पूर्व ही स्नान करना उत्तम है। इससे प्राजापत्य-व्रतका फल प्राप्त होता है[४]। तेल लगाकर तथा देहको मल-मलकर गङ्गादिमें स्नान करना मना है। वहाँ बाहर तटपर ही देह-हाथ मलकर नहा लेना चाहिये। इसके बाद नदीमें गोता लगावे। शास्त्रोंने इसे 'मलापकर्षण' स्नान कहा है। यह अमन्त्रक होता है। स्वास्थ्य और शुचिता—दोनोंके लिये यह स्नान भी आवश्यक है। निवीती होकर गमछेसे जनेऊको भी स्वच्छ कर ले[५]। इसके बाद शिखा बाँधकर दोनों हाथोंमें पवित्री पहनकर आचमन और प्राणायाम कर दाहिने हाथमें जल लेकर संकल्पपूर्वक स्नान करना चाहिये।

स्नानसे पूर्व समस्त अङ्गोंमें निम्न मन्त्रसे मिट्टी लगानी चाहिये—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥

तत्पश्चात् गङ्गाजीके द्वादशनामोंका कीर्तन करे, जिसे उन्होंने स्नानकालमें वहाँ अपने उपस्थित होनेका निर्देश दिया है—मन्त्र इस प्रकार है—

नन्दिनी नलिनी सीता मालती च मलापहा।
विष्णुपादाब्जसम्भूता गङ्गा त्रिपथगामिनी॥
भागीरथी भोगवती जाह्नवी त्रिदशेश्वरी।
द्वादशैतानि नामानि यत्र यत्र जलाशये॥
स्नानोद्यतः पठेज्जातु तत्र तत्र वसाम्यहम्[६]।

इसके बाद नाभिपर्यन्त जलमें जाकर जलकी ऊपरी सतह हटाकर, कान और नाक बंदकर प्रवाह या सूर्यकी ओर मुख करके स्नान करे। शिखा खोलकर तीन, पाँच, सात या बारह गोते लगावे। गङ्गाके जलमें वस्त्रको नहीं निचोड़ना चाहिये। शौचकालका वस्त्र पहनकर तीर्थोंमें स्नान करना तथा थूकना निषिद्ध है। स्नानके अनन्तर जलसे प्रक्षालित शुद्ध वस्त्र धारण कर देवार्चन करना चाहिये। ऊनी तथा कौशेय वस्त्र बिना धोये भी शुद्ध मान्य हैं।

तिलक-धारण—कुशा अथवा ऊनके आसनपर बैठकर पूजा, दान, होम, तर्पण आदि कर्मोंके पहले तिलक अवश्य धारण करना चाहिये। बिना तिलक इन कर्मोंको निष्फल बताया गया है।

शिखा-बन्धन—जहाँ शिखा रखी जाती है, वहाँ मेरुदण्डके भीतर स्थित ज्ञान तथा क्रियाशक्तिका आधार सुषुम्ना नाडी समाप्त होती है। यह स्थान शरीरका सर्वाधिक मर्मस्थान है। इस स्थानपर चोटी रखनेसे मर्मस्थान, क्रिया-शक्ति तथा ज्ञान-शक्ति सुरक्षित रहती है, जिससे भजन-ध्यान, दानादि शुभ कर्म सुचारुरूपसे सम्पन्न होते हैं। इसीलिये कहा गया है—

ध्याने दाने जपे होमे संध्यायां देवतार्चने।
शिखाग्रन्थिं सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत्॥

जपादि करनेके पूर्व आसनपर बैठकर तिलक धारण तथा शिखा-बन्धन करनेके पश्चात् संकल्पपूर्वक संध्यावन्दन

२- शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा। मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिस्तथान्तरम्॥ (आह्निक०, व्याघ्रपाद)
३- शौचे यत्नः सदा कार्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः। शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः॥ (दक्ष)
४- उषस्युषसि यत् स्नानं नित्यमेवारुणोदये। प्राजापत्येन तत् तुल्यं महापातकनाशनम्॥ (दक्ष)
५- यज्ञोपवीतं कण्ठे कृत्वा त्रिःप्रक्षाल्य। (आचाररत्न)
६-साधारण कूप, बावली आदिके जलमें गङ्गाजीका यह आवाहन तो आवश्यक है ही, अन्य पवित्र नदियोंके जलमें भी यह आवश्यक माना गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहिये। संध्यामें प्राणायाम, **'सूर्यश्च०'** आदि मन्त्रसे अम्बुप्राशन, अघमर्षण, पापपुरुष-निरसन, सूर्योपस्थान कर आवाहनपूर्वक १०८ या उससे अधिक गायत्रीमन्त्रका जप करना चाहिये।

पञ्च महायज्ञ—संध्योपासनके अनन्तर पञ्च महायज्ञका विधान है। वे हैं—ब्रह्मयज्ञ (ऋषियज्ञ), पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ (बलिवैश्वदेव) और मनुष्ययज्ञ[७]। वेद-शास्त्रका पठन-पाठन एवं संध्योपासन, गायत्रीजप आदि ब्रह्मयज्ञ (ऋषियज्ञ) है, नित्य श्राद्ध-तर्पण पितृयज्ञ है, हवन देवयज्ञ है, बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ है और अतिथि-सत्कार मनुष्ययज्ञ है। गृहस्थके घर प्रतिदिन चूल्हा-चक्की, झाड़ू, ऊखल एवं घड़ेसे जलने-मरनेवाले प्राणियोंके पापकी निष्कृतिके लिये इनकी पर्याप्त महत्ता है, अतः ये अनुदिन अनुष्ठेय हैं। देवयज्ञसे देवताओंकी, ऋषियज्ञसे ऋषियोंकी, पितृयज्ञसे पितरोंकी, मनुष्ययज्ञसे मनुष्योंकी और भूतयज्ञसे भूतोंकी तृप्ति भी होती है।

पितृतर्पणमें भी देवता, ऋषि, मनुष्य, पितर सम्पूर्ण भूतप्राणियोंको जलदान करनेकी विधि है। यहाँतक कि पहाड़, वनस्पति और शत्रु आदिको भी जल देकर तृप्त किया जाता है। देवयज्ञमें अग्निमें आहुति दी जाती है। वह सूर्यको प्राप्त होती है और सूर्यसे वृष्टि तथा वृष्टिसे अन्न और प्रजाकी उत्पत्ति होती है[८]। भूतयज्ञको बलिवैश्वदेव भी कहते हैं, इसमें अग्नि, सोम, इन्द्र, वरुण, मरुत् तथा विश्वेदेवोंके निमित्त आहुतियाँ एवं अन्नग्रासकी बलि दी जाती है।

मनुष्य-यज्ञमें घर आये हुए अतिथिका सत्कार करके उसे विधिपूर्वक यथाशक्ति भोजन कराया जाता है[९]। यदि भोजन करानेकी सामर्थ्य न हो तो बैठनेके लिये स्थान, आसन, जल प्रदानकर मीठे वचनोंद्वारा उसका स्वागत तो अवश्य ही करना चाहिये[१०]।

स्वाध्यायसे ऋषियोंका, हवनसे देवताओंका, तर्पण और श्राद्धसे पितरोंका, अन्नसे मनुष्योंका और बलिकर्मसे सम्पूर्ण भूतप्राणियोंका यथायोग्य सत्कार करना चाहिये[११]। इस प्रकार जो मनुष्य नित्य सब प्राणियोंका सत्कार करता है, वह तेजोमय मूर्ति धारण कर सीधे अर्चिमार्गके द्वारा परमधामको प्राप्त होता है[१२]। सबको भोजन देनेके बाद शेष बचा हुआ अन्न यज्ञशिष्ट होनेके कारण अमृतके तुल्य है, इसलिये ऐसे अन्नको ही सज्जनोंके खाने योग्य कहा गया है[१३]। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें भी प्रायः ऐसी ही बात कही है[१४]।

उपर्युक्त सभी महायज्ञोंका तात्पर्य सम्पूर्ण भूतप्राणियोंकी अन्न और जलके द्वारा सेवा करना एवं अध्ययन-अध्यापन, जप, उपासना आदि स्वाध्यायद्वारा सबका हित चाहना है। इनमें स्वार्थ-त्यागकी बात तो पद-पदमें बतलायी गयी है।

आहार—प्राणीके नेत्र, श्रोत्र, मुख आदिद्वारा आहरणीय रूप, शब्द, रस आदि विषयरूप आहार-शुद्धिसे मनकी शुद्धि होती है। मन शुद्ध होनेपर परमतत्त्वकी निश्चल स्मृति होती है।

निश्चल स्मृतिसे ग्रन्थिमोक्ष होता है[१५]। बलिवैश्वदेवके अनन्तर गौ, श्वान, काक, अतिथि तथा कीट-पतंगके निमित्त पञ्चबलि निकालनेका विधान है, जो भोजनके पूर्व तत्तद् जीवोंको देना चाहिये। अपने इष्टदेवको नैवेद्य निवेदित कर अर्थात् भगवान्‌को भोग लगाकर ही प्रसादरूपमें भोजन करनेका विधान है। प्रारम्भमें **'ॐ भूपतये स्वाहा, ॐ भुवनपतये स्वाहा, ॐ भूतानां पतये स्वाहा'**—इन मन्त्रोंसे तीन ग्रास निकालनेकी विधि है। इसका तात्पर्य है कि सम्पूर्ण पृथ्वीके

७- अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥ (मनु० ३।७०)
८- अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥ (मनु० ३।७६)
९- सम्प्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके। अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्॥ (मनु० ३।९९)
१०- तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता। एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥ (मनु० ३।१०१)
११- स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि। पितॄञ्छ्राद्धैश्च नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा। (मनु० ३।८१)
१२- एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति। स गच्छति परं स्थानं तेजोमूर्तिः पथार्जुना॥ (मनु० ३।९३)
१३- अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात्। यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते॥ (मनु० ३।११८)
१४- यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः। भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ (गीता ३।१३)
१५- आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः। स्मृतिलब्धे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः॥ (छान्दोग्य० ७।२६।२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी एवं चतुर्दश भुवनोंके स्वामीको तथा चराचर जगत्के सम्पूर्ण प्राणियोंको मैं यह अन्न प्रदान करता हूँ। तदनन्तर **'ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा** और **ॐ समानाय स्वाहा'**—इन पाँच मन्त्रोंसे लवणरहित पाँच ग्रास आत्मारूप ब्रह्मके लिये पञ्च आहुतिके रूपमें लेना चाहिये। तत्पश्चात् **'अमृतोपस्तरणमसि'** इस मन्त्रसे आचमन करे। इसका अर्थ है 'मैं अमृतमय अन्नदेवको आसन प्रदान करता हूँ।' फिर मौन होकर भोजन करना चाहिये। भोजनके अन्तमें **'अमृतापिधानमसि'** इस मन्त्रसे पुनः आचमन करना चाहिये। इसका अर्थ है 'मैं अमृतरूप अन्नदेवताको आच्छादित करता हूँ।' आहारकी पवित्रताके लिये यह आवश्यक है कि आहार उच्छिष्ट न हो तथा सत्यतासे अर्जित धनसे ही निर्मित किया गया हो।[१६]

कर्मक्षेत्र (गृहस्थाश्रमका पालन)—गृहस्थमात्रको घरके कामोंमें मन लगाना चाहिये। गृहस्थ-आश्रम सभी आश्रमोंका आधार कहा गया है। यह बात सबको स्मरण रखना चाहिये कि हम जो कुछ भी करें वह सब प्रभु-प्रीत्यर्थ ही करें। कर्म करके उसका सम्पूर्ण फल भगवान्के चरणोंमें अर्पित कर देना चाहिये। ऐसा करनेपर मनुष्यको कर्म-बन्धनमें बँधना नहीं पड़ेगा और उसके समस्त कर्म भगवदाराधनमें परिणत हो जायँगे। पुराणोंमें कहा गया है कि 'शरीरका निर्वाह हो जाय' यही लक्ष्य रखकर शरीरको कोई क्लेश पहुँचाये बिना, वर्णविहित, निन्दारहित कार्यके द्वारा धनका संचय करना चाहिये—

यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः।
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम्॥

शयन-विधि—जैसे मनुष्य सोकर उठनेपर शान्त चित्तसे जिसका चिन्तन करता है, उसका प्रभाव गहरा पड़ता है, उसी प्रकार सोनेसे पूर्व जिसका चिन्तन करता हुआ सोता है, उसका भी गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः शयनसे पूर्व पुराणोंकी सात्त्विक कथा या भक्तगाथा आदि श्रवण करते हुए शयन करना चाहिये। भविष्यपुराणमें कहा गया है—जो हाथ, पैर धोकर पवित्र हुआ मनुष्य पुराणोंकी सात्त्विक कथा सुनता है, वह ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त हो जाता है।[१७] पर यह भोजनसे पूर्व नियमित कथा-श्रवणकी विधि प्रतीत होती है।

इसके अतिरिक्त शयनसे पूर्व दिनभरके कार्योंका सम्यक् अवलोकन करना चाहिये तथा इस सम्बन्धमें यह चिन्तन करना चाहिये कि कोई गलत कार्य तो नहीं किया। यदि कोई गलत कार्य हो गया हो तो उसके लिये पश्चात्तापपूर्वक भगवान्से क्षमा-याचना करनी चाहिये और भविष्यमें फिर इस प्रकारकी गलतीकी पुनरावृत्ति न हो ऐसी प्रतिज्ञा करते हुए शयन करना चाहिये। इससे जीवनको निर्दोष बनानेमें विशेष सहायता मिलती है। विष्णुपुराणमें कहा गया है कि हाथ-पैर धोकर मनुष्य सायंकालीन भोजन करनेके पश्चात् जो जीर्ण न हो, बहुत बड़ी न हो, संकुचित न हो, ऊँची न हो, मैली न हो, जन्तुयुक्त न हो एवं जिसपर कुछ बिछावन बिछाया हो, उस शय्यापर शयन करना चाहिये। पूर्व और दक्षिणकी ओर सिर करके शयन करना उत्तम बतलाया गया है। उत्तर एवं पश्चिमकी ओर सिर करके सोनेका निषेध है।

संतान-प्राप्ति—स्त्री-सहवासका मुख्य उद्देश्य है पुत्रोत्पादनद्वारा वंशकी रक्षा तथा पितृऋणसे मुक्त होना। शास्त्रमर्यादानुसार संतानोत्पत्तिकी प्रक्रियाको भगवान्ने अपनी विभूतियोंमें गिना है—

'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।'
'प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः।'

पुत्रार्थी अमावास्या, अष्टमी, पूर्णिमा और चतुर्दशी, व्रतोपवास तथा श्राद्ध आदि पर्वकालोंको छोड़कर ऋतुकालमें स्व-स्त्रीके पास जाय[१८]। रजोदर्शनकालमें अर्थात् स्त्रीके रजस्वला होनेपर भूलकर भी स्त्री-सहवास न करे, न उसके साथ एक शय्यापर सोये। रजस्वलागामी पुरुषकी प्रज्ञा, तेज, बल, चक्षु और आयु नष्ट हो जाती है।

१६-भोजनकी विशेष बातें 'आचार'-प्रकरणमें देखनी चाहिये।

१७- मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्महत्यादिभिर्विभो। पुराणं सात्त्विकं रात्रौ शुचिर्भूत्वा शृणोति यः॥

१८- ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतः सदा। पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

नवग्रह-उपासना

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोपगच्छेत् प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने।
समानशयने चैव न शयीत तया सह॥
रजसाभिप्लुप्तां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते॥

अतः गृहस्थ व्यक्तिको अपने कल्याणके लिये शास्त्र-मर्यादाका पालन करना चाहिये। वास्तवमें मनुष्यका शरीर खान-पान, भोग-विलासके लिये नहीं, प्रत्युत शास्त्र-मर्यादाका पालन करके भगवत्प्राप्ति करनेके लिये मिला है, जो प्रधान लक्ष्य है। इन्द्रियोंके विषयोंको राग-द्वेषरहित होकर इन्द्रियरूप अग्निमें हवन करनेसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। शब्द, रूप आदिका श्रवण और दर्शन आदि करते समय अनुकूल तथा प्रतिकूल पदार्थोंमें राग-द्वेषरहित होकर उनका न्यायोचित सेवन करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है और उसमें 'प्रसाद' होता है। उस 'प्रसाद' या 'प्रशम'से सारे दुःखोंका नाश होकर परमात्माके स्वरूपमें स्थिति हो जाती है। परंतु जबतक इन्द्रियाँ और मन वशमें नहीं होते तथा भोगोंमें वैराग्य नहीं होता, तबतक अनुकूल पदार्थके सेवनसे राग और हर्ष एवं प्रतिकूलके सेवनसे द्वेष और दुःख होता है। अतएव सम्पूर्ण पदार्थोंको नाशवान् और क्षणभङ्गुर समझकर न्यायसे प्राप्त हुए पदार्थोंका विवेक तथा वैराग्ययुक्त बुद्धिके द्वारा समभावसे ग्रहण करना चाहिये। दर्शन, श्रवण, भोजनादिकार्य रसबुद्धिका त्याग करके कर्तव्यबुद्धिसे भगवत्प्राप्तिके लिये करने चाहिये। पदार्थोंमें भोग-विलास-भावना, स्वाद-सुख या रमणीयता-बुद्धि ही मनुष्यके मनमें विकार उत्पन्न कर उसका पतन कराती है। अतः आसक्तिरहित होकर विवेक-वैराग्यपूर्वक धर्मयुक्त बुद्धिके द्वारा विहित विषय-सेवन करना उचित है। इससे हवनके लिये अग्निमें डाले हुए ईंधनकी तरह विषयवासना अपने-आप ही भस्म हो जाती है। फिर उनका कोई अस्तित्व या प्रभाव नहीं रह जाता। इस प्रकार साधनरत होनेसे परमात्माके स्वरूपमें स्थिर और अचल स्थिति हो जाती है तथा उनकी प्राप्ति हो जाती है।

देवोपासना

जीवनमें उपासनाका विशेष महत्त्व है। जब मनुष्य अपने जीवनका वास्तविक लक्ष्य निर्धारित कर लेता है, तब वह तन-मन-धनसे अपने उस लक्ष्यकी प्राप्तिमें संलग्न हो जाता है। मानवका वास्तविक लक्ष्य है भगवत्प्राप्ति। इस लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये उसे यथासाध्य संसारकी विषय-वासनाओं और भोगोंसे दूर रहकर भगवदाराधन एवं और अभीष्टदेवकी उपासनामें संलग्न होनेकी आवश्यकता पड़ती है। जिस प्रकार गङ्गाका अविच्छिन्न प्रवाह समुद्रोन्मुखी होता है, उसी प्रकार भगवद्-गुण-श्रवणके द्वारा द्रवीभूत निर्मल, निष्कलंक, परम पवित्र अन्तःकरणका भगवदुन्मुख हो जाना वास्तविक उपासना है।

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥

(श्रीमद्भा० ३।२९।११)

इसके लिये आवश्यक है कि चित्त संसार और तद्विषयक राग-द्वेषादिसे विमुक्त हो जाय। शास्त्रों और पुराणोंकी उक्ति है—**'देवो भूत्वा यजेद् देवान् नादेवो देवमर्चयेत्।'** देव-पूजाका अधिकारी वही है, जिसमें देवत्व हो। जिसमें देवत्व नहीं, वास्तवमें उसे देवार्चनसे पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होती। अतः उपासकको भगवदुपासनाके लिये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, अभिमान आदि दुर्गुणोंका त्यागकर अपनी आन्तरिक शुद्धि करनी चाहिये। साथ ही शास्त्रोक्त आचार-धर्मको स्वीकारकर बाह्य-शुद्धि कर लेनी चाहिये, जिससे उपासकके देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार तथा अन्तरात्माकी भौतिकता एवं लौकिकताका समूल उन्मूलन हो सके और उनमें रसात्मकता तथा पूर्ण-दिव्यताका आविर्भाव हो जाय। ऐसा जब हो सकेगा तभी वह उपासनाके द्वारा निखिल-रसामृतमूर्ति सच्चिदानन्दघन भगवत्स्वरूपकी अनुभूति प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकेगा।

मनुष्यकी प्रकृति, स्वभाव और रुचिमें वैभिन्न्य रहता है अर्थात् सबके स्वभाव, सबकी प्रकृति और सबकी रुचि एक-जैसी नहीं होती। इसलिये शास्त्र-पुराणोंमें देवोपासनाके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभिन्न प्रकार प्रस्तुत किये गये हैं, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि और प्रकृतिके अनुसार भगवत्प्राप्तिके लिये अपने इष्टकी उपासनामें संलग्न हो सके। यही कारण है कि शास्त्रकारोंने एक ही ब्रह्मका कई रूपोंमें वर्णन किया है। **'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।'** साथ ही अनेक रूपोंमें और अरूपमें भी उनकी उपासनाका विधान प्रस्तुत किया है। इस प्रकार साधक अपनी मनःस्थितिके अनुसार अपने इष्टका निश्चय कर सुविधापूर्वक उपासनामें संलग्न होकर सिद्धि प्राप्त कर सकता है। उपासनामें निर्गुण-निराकार, सगुण-साकार—कोई भी भगवत्स्वरूप लक्ष्य बनाया जा सकता है। उपासनामें भक्तिकी प्रमुखता मानी गयी है। जो व्यक्ति जितना मनोयोगपूर्वक अपने इष्टदेवकी सेवा-अर्चा-पूजा और आराधना करता है, उसकी उपासना उतनी ही प्रगाढ़ होती है। यह उपासना नित्य और नैमित्तिक दो प्रकारसे की जाती है। नित्योपासनामें अनुरागा-भक्तिका बहुत महत्त्व बतलाया गया है। जैसे एक अबोध बालकका आश्रय उसकी जननी ही है। माताके बिना वह रह नहीं सकता। जैसे खग-शावक अधीरतापूर्वक अपने मातृ-खगकी प्रतीक्षा करता है और बछड़ा चरनेके लिये गयी हुई अपनी माता गौके लिये अधीर होकर प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार किसी भक्तके लिये उसके इष्टदेवका क्षणभरका वियोग भी असह्य होता है। अतः नित्य-निरन्तर अपने इष्टके प्रति उसकी सेवा-पूजा-आराधना चलती रहती है। इसके बदलेमें उसे अपने आराध्यसे कुछ चाहिये नहीं। वह तो अपने आराध्यके सुखमें सुखी, प्रसन्नतामें प्रसन्न रहता है। वह मात्र अपने आराध्यकी प्रीति और प्रेमका आकाङ्क्षी होता है। इस प्रकारके साधक निष्काम होते हैं। वे भगवान्‌से कोई लौकिक वस्तु प्रायः नहीं माँगते।

परंतु सामान्यतः संसारमें अज्ञान-परवश मनुष्य स्वाभाविक रूपमें भौतिक सुखोंकी आकाङ्क्षा रखते हैं। लौकिक सुख-सुविधाओंके प्रति उनके मनमें आकर्षण रहता ही है। यह आकर्षण सत्संग, भगवद्भक्ति और उपासनासे ही समाप्त होता है। अतः पुराण और शास्त्र सम्पूर्ण उपासनाका सविस्तार वर्णन करते हैं। इसमें उनका तात्पर्य यही है कि सांसारिक सुखोंमें और भौतिक वस्तुओंमें प्रीति रखनेवाले लोग भी किसी प्रकार भगवदुन्मुख तो हो जायँ। भगवान्‌से उनका सम्बन्ध तो जुड़े। उन्हें भगवदाराधनसे लौकिक सुखोंकी प्राप्ति तो होगी ही, पर जब साथ ही सत्संग आदिके द्वारा भगवत्तत्त्वका ज्ञान हो जानेपर क्षणभरमें भगवत्प्राप्तिकी सम्भावना भी प्रबल हो जायगी, तब उनका आत्मकल्याण भी हो सकेगा।

यहाँ पुराणोंमें वर्णित देवोपासनाकी कुछ विधियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं—

नित्योपासनामें दो प्रकारकी पूजा बतायी गयी है—(१) मानसपूजा और (२) बाह्यपूजा। साधकको दोनों प्रकारकी पूजा करनी चाहिये, तभी पूजाकी पूर्णता है। अपनी सामर्थ्य और शक्तिके अनुसार बाह्यपूजाके उपकरण अपने आराध्यके प्रति श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निवेदन करना चाहिये। शास्त्रोंमें लिखा है कि **'वित्तशाठ्यं न समाचरेत्'** अर्थात् देव-पूजनादि कार्योंमें कंजूसी नहीं करनी चाहिये। सामान्यतः जो वस्तु हम अपने उपयोगमें लेते हैं, उससे हल्की वस्तु अपने आराध्यको अर्पण करना उचित नहीं है। वास्तवमें भगवान्‌को वस्तुकी आवश्यकता नहीं है, वे तो भावके भूखे हैं। वे उपचारोंको तभी स्वीकार करते हैं, जब निष्कपटभावसे व्यक्ति पूर्ण श्रद्धा और भक्तिसे निवेदन करता है।

बाह्यपूजाके विविध विधान हैं, यथा—राजोपचार, सहस्रोपचार, चतुःषष्ट्युपचार, षोडशोपचार और पञ्चोपचार-पूजन आदि। यद्यपि सम्प्रदाय-भेदसे पूजनादिमें किञ्चित् भेद भी हो जाते हैं, परंतु सामान्यतः सभी देवोंके पूजनकी विधि समान है। गृहस्थ प्रायः स्मार्त होते हैं, जो पञ्चदेवोंकी पूजा करते हैं। पञ्चदेवोंमें १. गणेश, २. दुर्गा, ३. शिव, ४. विष्णु और ५. सूर्य हैं। ये पाँचों देव स्वयंमें पूर्ण ब्रह्म-स्वरूप हैं। साधक इन पञ्चदेवोंमें एकको अपना इष्ट मान लेता है, जिन्हें वह सिंहासनपर मध्यमें स्थापित करता है। फिर यथालब्धोपचार-विधिसे उनका पूजन करता है। संक्षेप और विस्तार-भेदसे अनेक प्रकारके उपचार हैं, जैसे—चौंसठ, अठारह, सोलह, दस और पाँच।

चौंसठ उपचार—देवीकी पूजाके चौंसठ उपचार यहाँ लिखे जाते हैं। इष्टमन्त्रसे इनका समर्पण होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानस-पूजामें इनकी भावना होती है। वाग्बीज, मायाबीज और लक्ष्मीबीजके साथ भी इनका समर्पण होता है, जैसे पाद्यके समय—'**ॐ ऐं ह्रीं श्रीं पाद्यं कल्पयामि नमः।**' इसी प्रकार प्रत्येक उपचारका नाम जोड़कर यही मन्त्र बोलना चाहिये। उपचारोंके नाम ये हैं—**१.पाद्यम्, २.अर्घ्यम्, ३. आसनम्, ४.सुगन्धितैलाभ्यङ्गम्, ५.मज्जनशाला-प्रवेशनम्, ६. मज्जनमणिपीठोपवेशनम्, ७. दिव्यस्नानीयम्, ८. उद्वर्तनम्, ९.उष्णोदकस्नानम्, १०.कनककलशस्थित-सर्वतीर्थाभिषेकम्, ११.धौतवस्त्रपरिमार्जनम्, १२.अरुण-दुकूलपरिधानम्, १३.अरुणदुकूलोत्तरीयम्, १४.आलेप-मण्डपप्रवेशनम्, १५.आलेपमणिपीठोपवेशनम्, १६.चन्दनागरुकुङ्कुममृगमदकर्पूरकस्तूरीरोचनादिदिव्यगन्ध-सर्वाङ्गानुलेपनम्, १७.केशभारस्य कालागरुधूपमल्लिका-मालतीजातीचम्पकाशोकशतपत्रपूगकुहरीपुन्नागकह्लारयूथी-सर्वर्तुकुसुममालाभूषणम्, १८.भूषणमण्डपप्रवेशनम्, १९.भूषणमणिपीठोपवेशनम्, २०.नवरत्नमुकुटम्, २१.चन्द्रशकलम्, २२.सीमन्तसिन्दूरम्, २३.तिलकरत्नम्, २४.कालाञ्जनम्, २५.कर्णपालीयुगलम्, २६.नासाभरणम्, २७.अधरयावकम्, २८.ग्रथनभूषणम्, २९.कनकचित्रपदम्, ३०.महापदकम्, ३१.मुक्तावलीम्, ३२.एकावलीम्, ३३.देवच्छन्दकम्, ३४.केयूरयुगलचतुष्कम्, ३५.वलयावलीम्, ३६.ऊर्मिकावलीम्, ३७.काञ्चीदामकटिसूत्रम्, ३८.शोभाख्याभरणम्, ३९.पादकटकयुगलम्, ४०.रत्ननूपुरम्, ४१.पादाङ्गुलीयकम्, ४२.एककरे पाशम्, ४३.अन्यकरे अङ्कुशम्, ४४.इतरकरेषु पुण्ड्रेक्षुचापम्, ४५.अन्यकरे पुष्पबाणान्, ४६.श्रीमन्माणिक्यपादुकाम्, ४७.स्वसमानवेशास्त्रावरणदेवताभिः सह सिंहासनारोहणम्, ४८.कामेश्वरपर्यङ्कोपवेशनम्, ४९.अमृताशनम्, ५०.आचमनीयम्, ५१.कर्पूरवटिकाम्, ५२.आनन्दोल्लास-विलासहासम्, ५३.मङ्गलारात्रिकम्, ५४.श्वेतच्छत्रम्, ५५.चामरयुगलम्, ५६.दर्पणम्, ५७.तालवृन्तम्, ५८.गन्धम्, ५९.पुष्पम्, ६०.धूपम्, ६१.दीपम्, ६२.नैवेद्यम्, ६३.पानम्** और **६४.पुनराचमनीयम्**—इसके पश्चात् **ताम्बूलम्, नमस्कारम्**—इत्यादि। मानस-पूजामें तो ये उपचार ही ध्यान करा देते हैं। बाह्यपूजामें उपचारोंका अभाव होनेपर भी स्थिरभावसे इन मन्त्रोंका पाठ कर लेनेपर पूजाका ही फल मिलता है।

अठारह उपचार—१.आसन, २.स्वागत, ३.अर्घ्य, ४.पाद्य, ५.आचमन, ६.स्नान, ७.वस्त्र, ८.यज्ञोपवीत, ९.भूषण, १०.गन्ध, ११.पुष्प, १२.धूप, १३.दीप, १४.अन्न, १५.दर्पण, १६.माल्य, १७.अनुलेपन और १८.नमस्कार।

सोलह उपचार—१.अर्घ्य, २.पाद्य, ३.आचमन, ४.स्नान, ५.वस्त्र, ६.आभूषण, ७.गन्ध, ८.पुष्प, ९.धूप, १०.दीप, ११.नैवेद्य, १२.आचमन, १३.ताम्बूल, १४.स्तवपाठ, १५.तर्पण और १६.नमस्कार।

दस उपचार—१.अर्घ्य, २.पाद्य, ३.आचमन, ४.स्नान, ५.वस्त्रनिवेदन, ६.गन्ध, ७.पुष्प, ८.धूप, ९.दीप और १०.नैवेद्य।

पाँच उपचार—१.गन्ध, २.पुष्प, ३.धूप, ४.दीप और ५.नैवेद्य।

आसन-समर्पणमें आसनके ऊपर पाँच पुष्प रख लेने चाहिये। छः पुष्पोंसे स्वागत करना चाहिये। पाद्यमें चार पल जल और उसमें श्यामा घास, दूब, कमल और अपराजिता देनी चाहिये। अर्घ्यमें चार पल जल और गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, दूब, तिल, कुशाका अग्रभाग तथा सरसों देना चाहिये। आचमनमें छः पल जल और उसमें जायफल, लवंग और कङ्कोलका चूर्ण देना चाहिये। मधुपर्कमें कांस्यपात्रस्थित घृत, मधु और दधि देना चाहिये। मधुपर्कके पश्चात्वाले आचमनमें केवल एक पल विशुद्ध जल ही आवश्यक होता है। स्नानके लिये पचास पल जलका विधान है। वस्त्र बारह अंगुलसे ज्यादा, नवीन और जोड़ा होना चाहिये। आभरण स्वर्ण-निर्मित हों और उनमें मोती आदि जड़े हों। गन्धद्रव्यमें चन्दन, अगर, कपूर आदि एकमें मिला दिये गये हों। इनका परिमाण लगभग एक पलके कहा गया है। पुष्प पचाससे अधिक हों, अनेक रंगके हों। धूप गुग्गुलका हो और कांस्यपात्रमें निवेदन किया जाय। नैवेद्यमें एक पुरुषके भोजनयोग्य वस्तु होनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय—चारों प्रकारकी सामग्री हो। दीप कपासकी बत्तीमें कर्पूर आदि मिलाकर बनाया जाय। बत्तीकी लम्बाई लगभग चार अंगुलकी हो और दृढ़ हो। दीपकके साथ शिलापिष्टका भी उपयोग करना चाहिये। इसीको श्री अथवा आक कहते हैं, जो आरतीके समय सात बार घुमाया जाता है। दूर्वा और अक्षतकी संख्या सौसे अधिक समझनी चाहिये। जो वस्तु अपने पास न हो, उसके लिये चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं। अपनी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार संकीर्णता नहीं करनी चाहिये।

पूजाके मन्त्र

भगवान् विष्णु, कृष्ण आदिकी पूजामें जिन मन्त्रोंका उपयोग होता है, वे इस प्रकार हैं—

आसन

सर्वान्तर्यामिणे देव सर्वबीजमयं ततः।
आत्मस्थाय परं शुद्धमासनं कल्पयाम्यहम्॥

'हे देव! आप सबके अन्तर्यामी और आत्मरूपसे स्थित हैं, इसलिये मैं आपको सर्वबीजस्वरूप उत्तम और शुद्ध आसन समर्पित कर रहा हूँ।'

स्वागत

यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवा ब्रह्महरादयः।
कृपया देवदेवेश मदग्रे संनिधौ भव॥
तस्य ते परमेशान स्वागतं स्वागतं प्रभो।

'हे देवदेवेश! ब्रह्मा, शिव आदि जिन आपके दर्शनके लिये लालायित रहते हैं, वे ही सबके आराध्य आप दया करके मेरे सम्मुख आवें। हे परमेश्वर! हे प्रभो! आपका स्वागत है, स्वागत है।'

आवाहन

कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं तु मे।
यदागतोऽसि देवेश चिदानन्दमयाव्यय॥
अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात् साधनस्य च।
यदपूर्णं भवेत् कृत्यं तथाप्यभिमुखो भव॥

'हे विज्ञानानन्दघन, हे अविनाशी, हे देवेश! आपने जो पदार्पण किया, इससे मैं कृतार्थ हो गया, आपने मेरे ऊपर महान् अनुग्रह किया। मेरा जीवन सफल हो गया। अज्ञान-वश, प्रमादवश और साधनोंकी कमीके कारण मैं आपकी पूजा पूर्णतः नहीं कर सकता, तथापि आप कृपा करके मेरे समक्ष रहें।'

पाद्य

यद्भक्तिलेशसम्पर्कात् परमानन्दसम्भवः।
तस्मै ते परमेशान पाद्यं शुद्धाय कल्पये॥

'हे परमेश्वर! जिन आपकी बिन्दुमात्र भक्तिका संस्पर्श हो जानेसे हृदय परमानन्दधाराका उद्गम बन जाता है, आपके उसी विशुद्ध स्वरूपको मैं पाद्य समर्पित कर रहा हूँ।'

आचमन

देवानामपि देवाय देवानां देवतात्मने।
आचामं कल्पयामीश सुधायाः स्रुतिहेतवे॥

'हे ईश! आप समस्त देवताओंके भी देवता—आराध्य देव हैं। और तो क्या, स्वयं आप ही देवताओंमें देवत्वरूपसे प्रकट हैं। आप सुधाके मूलस्रोत हैं, आपसे सुधाक्षरणके लिये आचमनीय जल समर्पित कर रहा हूँ।'

अर्घ्य

तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम्।
तापत्रयविमोक्षाय तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम्॥

'हे प्रभो! आपका अर्घ्य तीनों तापोंको हरनेवाला, दिव्य एवं परमानन्दरूप है, इसलिये तीनों तापोंसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये मैं आपको अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

मधुपर्क

सर्वकल्मषहीनाय परिपूर्णसुधात्मकम्।
मधुपर्कमिमं देव कल्पयामि प्रसीद मे॥

'हे देव! आप समस्त कल्मषोंसे हीन हैं, आपके लिये मैं यह परिपूर्णसुधात्मक मधुपर्क समर्पित करता हूँ। आप अनुग्रह करके इसे स्वीकार करें।'

पुनराचमनीय

उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम्॥

'जिन आपके स्मरण करने मात्रसे उच्छिष्ट अथवा अपवित्र भी पवित्र हो जाता है, ऐसे हे प्रभो! आपके लिये मैं आचमन समर्पित करता हूँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नान

परमानन्दबोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्तये ।
साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते ॥

'अपने परमानन्दस्वरूप ज्ञान-समुद्रमें स्वयं निमग्न रहनेवाले हे ईश ! मैं आपके साङ्गोपाङ्गस्नानार्थ जल समर्पित करता हूँ।'

वस्त्र

मायाचित्रपटाच्छन्ननिजगुह्योरुतेजसे ।
निरावरणविज्ञान वासस्ते कल्पयाम्यहम् ॥

'आपने अपना परमज्योतिर्मय स्वरूप मायाके विचित्र वस्त्रमें ढँक रखा है, वास्तवमें आप आवरणरहित विज्ञान-स्वरूप हैं। ऐसे आपके लिये, हे देव ! मैं वस्त्र समर्पित कर रहा हूँ।'

उत्तरीय

यमाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहिनी सदा ।
तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥

'जिन आपका आश्रय करके महामाया जगत्को मोहित करती है, ऐसे हे परमेश्वर ! आपके लिये मैं उत्तरीय समर्पित करता हूँ।'

यज्ञोपवीत

यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रोतमखिलं जगत् ।
यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये ॥

'जिन प्रभुकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयरूप तीन शक्तियोंके द्वारा यह जगत् गुँथा हुआ है, जो स्वयं यज्ञसूत्र हैं, उन आप प्रभुके लिये मैं यज्ञोपवीत समर्पित कर रहा हूँ।'

आभूषण

स्वभावसुन्दराङ्गाय नानाशक्त्याश्रयाय ते ।
भूषणानि विचित्राणि कल्पयामि सुरार्चित ॥

'हे सुरपूजित ! आपका एक-एक अङ्ग स्वभावसे ही परम सुन्दर, परम मनोहर है, आप स्वयं समस्त शक्तियोंके आश्रय हैं। आपके लिये मैं विचित्र भूषण समर्पित करता हूँ।'

जल

समस्तदेवदेवेश सर्वतृप्तिकरं परम् ।
अखण्डानन्दसम्पूर्ण गृहाण जलमुत्तमम् ॥

'हे समस्तदेवदेवेश ! हे अखण्ड आनन्दसे परिपूर्ण ! आपके लिये मैं सबको तृप्त कर देनेवाला यह उत्तम जल समर्पित करता हूँ, कृपया इसे स्वीकार करें।'

गन्ध

परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिगन्तरम् ।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वर ॥

'हे परमेश्वर ! जिन आपकी परमानन्दमय सुरभिसे दिग्-दिगन्त परिपूर्ण हो रहे हैं—मैं वही परम गन्ध आपके लिये समर्पित करता हूँ। आप कृपा करके इसे स्वीकार करें।'

पुष्प

तुरीयं गुणसम्पन्नं नानागुणमनोहरम् ।
आनन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतामिदमुत्तमम् ॥

'हे प्रभो ! त्रिगुणातीत, गुणयुक्त, अनेक गुणोंसे मनोहर, आनन्दसौरभसे सम्पन्न, यह उत्तम पुष्प मैं आपको समर्पित करता हूँ, इसे आप स्वीकार करें।'

धूप

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

'हे नाथ ! वनस्पतियोंके रसोंसे संगृहीत, दिव्य, सुगन्धपूर्ण, निखिल देवताओंके आघ्राण करनेयोग्य यह सुमनोहर धूप मैं आपको समर्पित करता हूँ, कृपया इसे आप स्वीकार करें।'

दीप

सुप्रकाशो महादीपसर्वतस्तिमिरापहः ।
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

'हे देव ! परम तेजसे सम्पन्न, बाह्याभ्यन्तर ज्योतिर्मय, सब ओरसे अन्धकारको दूर करनेवाले उत्तम आलोकमय इस दीपक-को आप स्वीकार करें।'

नैवेद्य

सत्पात्रसिद्धं सुहविर्विविधानेकभक्षणम् ।
निवेदयामि देवेश सानुगाय गृहाण तत् ॥

'हे देवेश ! पवित्र पात्रमें बनाये हुए, अनेक प्रकारकी खाद्यसामग्रियोंसे युक्त यह उत्तम नैवेद्य अनुचरोंके सहित आपकी सेवामें समर्पित करता हूँ, आप कृपा करके इसे स्वीकार करें।'

उपर्युक्त सम्पूर्ण उपचार तत्तद् देवताओंके तत्तद् मन्त्रोंसे प्रदान किये जाते हैं। यदि किसी कारणवश मन्त्र उपलब्ध न हो तो भावनापूर्वक अपने अभीष्ट देवको नामोच्चारणद्वारा स्मरण कर पूजा करनेका भी विधान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त उपचार उपलब्ध न होनेपर श्रद्धा और भावनापूर्वक पञ्चोपचार-पूजनकी विधि भी शास्त्रोंमें बतायी गयी है। पञ्चोपचार-पूजनमें गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य प्रमुख हैं।

निष्कर्ष यह कि भगवत्पूजा अतीव सरल है, जिसमें उपचारोंका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। महत्त्व भावनाका है। समयपर जो भी उपचार उपलब्ध हो जाय, उन्हें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निश्छल दैन्यभावसे भगवदर्पण कर दिया जाय तो उस पूजाको भगवान् अवश्य स्वीकार करते हैं।

मानस-पूजा

इस बाह्यपूजाके साथ-साथ मानसपूजाका भी अत्यधिक महत्त्व है। पूजाकी पूर्णता मानसपूजनमें ही हो जाती है। भगवान्‌को किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, वे तो भावके भूखे हैं। संसारमें ऐसे दिव्य पदार्थ उपलब्ध नहीं हैं, जिनसे परमेश्वरकी पूजा की जा सके। इसलिये पुराणोंमें मानस-पूजाका विशेष महत्त्व माना गया है। मानस-पूजामें भक्त अपने इष्टदेवको मुक्तामणियोंसे मण्डितकर स्वर्णसिंहासनपर विराजमान करता है। स्वर्गलोककी मन्दाकिनी गङ्गाके जलसे अपने आराध्यको स्नान कराता है, कामधेनु गौके दुग्धसे पञ्चामृतका निर्माण करता है। वस्त्राभूषण भी दिव्य अलौकिक होते हैं। पृथ्वीरूपी गन्धका अनुलेपन करता है। अपने आराध्यके लिये कुबेरकी पुष्पवाटिकासे स्वर्णकमल-पुष्पोंका चयन करता है। भावनासे वायुरूपी धूप, अग्निरूपी दीपक तथा अमृतरूपी नैवेद्य भगवान्‌को अर्पण करनेकी विधि है। इसके साथ ही त्रिलोककी सम्पूर्ण वस्तु, सभी उपचार सच्चिदानन्दघन परमात्मप्रभुके चरणोंमें भावनासे भक्त अर्पण करता है। यह है मानस-पूजाका स्वरूप। इसकी एक संक्षिप्त विधि भी पुराणोंमें वर्णित है। जो नीचे लिखी जा रही है—

१-ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं परिकल्पयामि।

(प्रभो! मैं पृथिवीरूप गन्ध (चन्दन) आपको अर्पित करता हूँ।)

२-ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पं परिकल्पयामि।

(प्रभो! मैं आकाशरूप पुष्प आपको अर्पित करता हूँ।)

३-ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं परिकल्पयामि।

(प्रभो! मैं वायुदेवके रूपमें धूप आपको प्रदान करता हूँ।)

४-ॐ रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि।

(प्रभो! मैं अग्निदेवके रूपमें दीपक आपको प्रदान करता हूँ।)

५-ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि।

(प्रभो! मैं अमृतके समान नैवेद्य आपको निवेदन करता हूँ।)

६-ॐ सौं सर्वात्मकं सर्वोपचारं समर्पयामि।

(प्रभो! मैं सर्वात्माके रूपमें संसारके सभी उपचारोंको आपके चरणोंमें समर्पित करता हूँ।) इन मन्त्रोंसे भावनापूर्वक मानस-पूजा की जा सकती है।

पूजाके पाँच प्रकार

शास्त्रोंमें पूजाके पाँच प्रकार बताये गये हैं—अभिगमन, उपादान, योग, स्वाध्याय और इज्या। देवताके स्थानको साफ करना, लीपना, निर्माल्य हटाना—ये सब कर्म 'अभिगमन'के अन्तर्गत हैं। गन्ध, पुष्प आदि पूजा-सामग्रीका संग्रह 'उपादान' है। इष्टदेवकी आत्मरूपसे भावना करना 'योग' है। मन्त्रार्थका अनुसन्धान करते हुए जप करना, सूक्त, स्तोत्र आदिका पाठ करना, गुण, नाम, लीला आदिका कीर्तन करना तथा वेदान्त-शास्त्र आदिका अभ्यास करना—ये सब 'स्वाध्याय' हैं। उपचारोंके द्वारा अपने आराध्यदेवकी पूजा 'इज्या' है। ये पाँच प्रकारकी पूजाएँ क्रमशः सार्ष्टि, सामीप्य, सालोक्य, सायुज्य और सारूप्य मुक्तिको देनेवाली हैं।

विशिष्ट उपासना

विशेष अवसरोंपर जो देवाराधन किया जाता है, जैसे—नवरात्रके अवसरपर दुर्गापूजा, सप्तशतीका पाठ, रामायण आदिके नवाह-पाठ, लक्ष-पार्थिवार्चन, महारुद्राभिषेक, श्रीमद्भागवतसप्ताह आदि विशेष प्रकारके अनुष्ठान विशिष्ट उपासनाएँ हैं। आरोग्यता एवं दीर्घजीवन-प्राप्तिके निमित्त महामृत्युञ्जयका जप एवं धन, संतान तथा अन्य कामनाओंके निमित्त किये जानेवाले अनुष्ठान भी इन्हींमें आते हैं।

मन्त्रानुष्ठान

मन्त्र शब्दका अर्थ है 'संसारी जीवके त्राणकारक, मननीय, ज्ञानमय अक्षरोंका समूह।'—

मननं सर्ववेदित्वं त्राणं संसार्यनुग्रहः।
मननात् त्राणधर्मत्वान्मन्त्र इत्यभिधीयते॥

(नार० पु० १।६४।३)

वह श्रीगुरुदेवकी कृपासे प्राप्त होता है। मन्त्र प्राप्त होनेपर भी यदि उसका अनुष्ठान न किया जाय, सविधि पुरश्चरण करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे सिद्ध न कर लिया जाय, तो उससे उतना लाभ नहीं होता जितना होना चाहिये। श्रद्धा, भक्ति-भाव और विधिके संयोगसे मन्त्रोंके अक्षर अन्तर्हृदयमें प्रवेश कर अनुप्राणित करने लगते हैं। अनुष्ठानमें कुछ नियमोंकी आवश्यकता होती है। यहाँ संक्षेपमें उनका दिग्दर्शन कराया जाता है।

मन्त्रानुष्ठानके योग्य स्थान

मन्त्रानुष्ठान स्वयं करना अथवा सदाचारी विद्वान् ब्राह्मणके द्वारा कराना चाहिये। किसी पुण्यक्षेत्र, नदीतट, पवित्र वन-पर्वत, संगम, उद्यान, तुलसीकानन, गोशाला, देवालय, बिल्व, पीपल या आँवलेके वृक्षके नीचे अथवा अपने घरमें मन्त्रका अनुष्ठान शीघ्र फलप्रद होता है। सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्रमा, दीपक, जल, ब्राह्मण और गौओंके सामने बैठकर जप करना उत्तम माना गया है। मुख्य बात यह है कि जहाँ बैठकर जप करनेसे चित्तमें प्रसन्नता बढ़े, वही स्थान सर्वश्रेष्ठ है। घरसे दसगुना गोष्ठ, सौगुना जंगल, हजारगुना तालाब, लाखगुना नदीतट, करोड़गुना पर्वत, अरबों-गुना शिवालय और गुरुका संनिधान अनन्तगुना श्रेष्ठ है। जिस स्थानपर स्थिरतासे बैठनेमें किसी प्रकारकी आशंका न हो, म्लेच्छ, दुष्ट, बाघ, साँप आदि किसी प्रकारका विघ्न न डाल सकते हों, जहाँके लोग अनुष्ठानके विरोधी न हों, जिस देशमें सदाचारी और भक्त निवास करते हों, किसी प्रकारका उपद्रव अथवा दुर्भिक्ष न हो, गुरुजनोंकी संनिधि और चित्तकी एकाग्रता सहज-भावसे ही रहती हो, वही जपके लिये उत्तम स्थान है।

आहार-शुद्धि

भोजनके रससे ही शरीर, प्राण और मनका निर्माण होता है। म्लान चित्तमें देवता और मन्त्रके प्रसादका उदय नहीं होता। अशुद्ध भोजनसे रोग, क्षोभ और ग्लानि होती है। शुद्ध भोजनसे मन पवित्र होता है। अन्याय, बेईमानी, चोरी, डकैती आदिसे उपार्जित दूषित अन्नद्वारा शुद्ध चित्तका निर्माण होना असम्भवप्राय है। इसी प्रकार अशुद्ध स्थानमें रखा दूध, दही आदि या कुत्ते आदिसे स्पृष्ट पदार्थ भी त्याज्य हैं।

गौके दूध, दही, घी, श्वेत तिल, मूँग, कन्द, केला, आम, नारियल, नारंगी, आँवला, साठी चावल, जौ, जीरा आदि हविष्यान्न व्रतोंमें उपादेय हैं। मधु, खारा नमक, तेल, लहसुन, प्याज, गाजर, उड़द, मसूर, कोदो, चना, बासी तथा परान्न त्याज्य है। जिन्हें भिक्षा लेनेका अधिकार है, उन संन्यासी आदिकोंके लिये भिक्षा परान्न नहीं है, पर भिक्षा सदाचारी, पवित्र, द्विजाति गृहस्थोंसे ही लेनी चाहिये।

मन्त्रानुष्ठानमें ब्रह्मचर्य एवं पवित्रतापूर्वक भू-शयन आदि आवश्यक हैं। अनुष्ठानकालमें कुटिल व्यवहार, क्षौर-कर्म, तैला-भ्यङ्ग तथा बिना भोग लगाये भोजन नहीं करना चाहिये। साधकको यथासम्भव पवित्र नदियों, देवखातों, तीर्थ, सरोवर, पुष्करिणी आदिमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करना चाहिये। यथाशक्ति तीनों समय संध्या और इष्टदेवकी पूजा करनी चाहिये। शिखा खोलकर, निर्वस्त्र होकर, एक वस्त्र पहनकर, सिरपर पगड़ी बाँधकर, अपवित्र होकर या चलते-फिरते जप करना निषिद्ध है। जपके समय माला पूरी हुए बिना बातचीत नहीं करनी चाहिये। जप समाप्त करने और प्रारम्भ करनेके पूर्व आचमन कर लेना चाहिये।

मलिन वस्त्र पहनकर, केश बिखेरकर और उच्चस्वरसे जप करना शास्त्रविरुद्ध है। जप करते समय इतने कर्म निषिद्ध हैं—आलस्य, जँभाई, नींद, छींकना, थूकना, डरना, अपवित्र अङ्गोंका स्पर्श और क्रोध। जापकको स्त्री, शूद्र, पतित, व्रात्य, नास्तिक आदिके साथ सम्भाषण, उच्छिष्ट मुखसे वार्तालाप, असत्य और कुटिल भाषण छोड़ देना चाहिये। अपने आसन, शय्या, वस्त्र आदिको शुद्ध एवं स्वच्छ रखना चाहिये। उबटन, इत्र, फूलमालाका उपयोग और गरम जलसे स्नान नहीं करना चाहिये। सोकर, बिना आसनके, चलते और खाते समय तथा बिना माला ढँके जो जप किया जाता है, उसकी गणना अनुष्ठानके जपमें नहीं होती। जिसके चित्तमें व्याकुलता, क्षोभ, भ्रान्ति हो, भूख लगी हो, शरीरमें पीड़ा हो, उसे और जहाँ स्थान अशुद्ध एवं अन्धकाराच्छन्न हो, वहाँ जप नहीं करना चाहिये। जूता पहने हुए अथवा पैर फैलाकर जप करना निषिद्ध है। और भी बहुत-से नियम हैं, उन्हें जानकर यथाशक्ति उनका पालन करना चाहिये। ये सब नियम मानस-जपके लिये नहीं है। शास्त्रकारोंने कहा है—

अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन्नपि।
मन्त्रैकशरणो विद्वान् मनसैव सदाभ्यसेत्॥
न दोषो मानसे जाप्ये सर्वदेशेऽपि सर्वदा।

अर्थात् मन्त्रके रहस्यको जाननेवाला जो साधक एकमात्र मन्त्रकी ही शरण हो गया है, वह चाहे पवित्र हो या अपवित्र, सब समय—चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते मन्त्रका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यास कर सकता है। मानस-जपमें किसी भी समय और स्थानको दोषयुक्त नहीं समझा जाता। कुछ मन्त्रोंके सम्बन्धमें अवश्य ही विभिन्न विधान है।

शास्त्रोंमें जप-यज्ञको सब यज्ञोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ कहा गया है। पद्म एवं नारदपुराणमें कहा गया है कि समस्त यज्ञ वाचिक जपकी तुलनामें सोलहवें हिस्सेके बराबर भी नहीं हैं। उपांशु-जपका फल वाचिक जपसे सौ गुना और मानस जपका सहस्रगुना होता है। मानस जप वह है, जिसमें अर्थका चिन्तन करते हुए मनमें ही मन्त्रके वर्ण, स्वर और पदोंकी आवृत्ति की जाती है। उपांशु-जपमें कुछ-कुछ जीभ और होंठ चलते हैं, अपने कानोंतक ही उनकी ध्वनि सीमित रहती है, दूसरा कोई नहीं सुन सकता। वाचिक जपका वाणीके द्वारा उच्चारण किया जाता है। तीनों ही प्रकारके जपोंमें मनके द्वारा इष्टका चिन्तन होना चाहिये। मानसिक स्तोत्र-पाठ और उच्चस्वरसे उच्चारणपूर्वक मन्त्र-जप—ये दोनों निष्फल हैं। गौतमी-तन्त्रमें कहा गया है 'सुषुम्णाके द्वारा मन्त्रका उच्चारण होनेपर उसमें शक्ति-संचार होता है।' पहले ऐसी भावना करनी चाहिये कि मन्त्रका एक-एक अक्षर चिच्छक्तिसे ओतप्रोत है और परम अमृतस्वरूप चिदाकाशमें उसकी स्थिति है। ऐसी भावना करते हुए जप करनेसे पूजा, होम आदिके बिना ही मन्त्र अपनी शक्ति प्रकाशित कर देते हैं। जप करनेमें प्राण-बुद्धिसे सुषुम्णाके मूलदेशमें स्थित जीवरूपसे मन्त्रका चिन्तन करते हुए मन्त्रार्थ और मन्त्रचैतन्यके ज्ञानपूर्वक मन्त्र-जप करनेका विधान है।

जपमें मालाका प्रयोग—साधकोंके लिये माला भगवान्‌के स्मरण और नाम-जपकी संख्या-गणनार्थ बड़ी ही सहायक होती है। इससे उतनी संख्या पूर्ण करनेके लिये सब समय प्रेरणा प्राप्त होती रहती है एवं उत्साह तथा लगनमें किसी प्रकारकी कमी नहीं आती। जो लोग बिना संख्याके जप करते हैं, उन्हें इस बातका अनुभव होगा कि जब कभी जप करते-करते मन अन्यत्र चला जाता है, तब मालूम ही नहीं होता कि जप हो रहा था या नहीं या कितने समयतक जप बंद रहा। यह प्रमाद हाथमें माला रहनेपर या संख्यासे जप करनेपर नहीं होता। यदि मन कभी कहीं चला भी जाता है तो मालाका चलना बंद हो जाता है, संख्या आगे नहीं बढ़ती और यदि माला चलती रही तो जीभ भी अवश्य चलती ही रहेगी। कुछ ही समयमें ये दोनों मनको आकृष्ट करनेमें समर्थ हो सकेंगी।

माला प्रायः तीन प्रकारकी होती है। करमाला, वर्णमाला और मणिमाला। अँगुलियोंपर जो जप किया जाता है, वह करमाला-जप है। इसका नियम यह है कि अनामिकाके मध्य-भागसे नीचेकी ओर चलें फिर कनिष्ठाके मूलसे अग्रभागतक और फिर अनामिका तथा मध्यमाके क्रमसे अग्रभागपर होकर तर्जनीके मूलतक जायँ। इस क्रमसे अनामिकाके दो, कनिष्ठाके तीन, पुनः अनामिकाका एक, मध्यभागका एक और तर्जनीके तीन पर्व—कुल दस संख्या होती है। मध्यमाके दो पर्व सुमेरुके रूपमें छूट जाते हैं। साधारण करमालाका यही क्रम है, परंतु अनुष्ठान-भेदसे इसमें अन्तर भी पड़ता है, जैसे—शक्तिके अनुष्ठानमें अनामिकाके दो पर्व, कनिष्ठाके तीन, पुनः अनामिकाका अग्रभाग एक, मध्यमाके तीन पर्व और तर्जनीका एक मूलपर्व—इस प्रकार दस संख्या पूरी होती है। श्रीविद्यामें इससे भिन्न नियम है। मध्यमाका मूल एक, अनामिकाका मूल एक, कनिष्ठाके तीन, अनामिका और मध्यमाके अग्रभाग एक-एक और तर्जनीके तीन, इस प्रकार दस संख्या पूरी होती है। करमालासे जप करते समय अँगुलियाँ अलग-अलग नहीं होनी चाहिये। हथेली थोड़ी मुड़ी रहनी चाहिये। मेरुका उल्लङ्घन और पर्वोंकी सन्धि (गाँठ) का स्पर्श निषिद्ध है। हाथको हृदयके सामने लाकर अँगुलियोंको कुछ टेढ़ी करके वस्त्रसे उसे ढँककर दाहिने हाथसे ही जप करना चाहिये।

वर्णमालाका अर्थ है—अक्षरोंके द्वारा गणना करना। यह प्रायः अन्तर्जपमें काम आती है, परंतु बहिर्जपमें भी इसका निषेध नहीं है। वर्णमालाके द्वारा जप करनेका प्रकार यह है कि पहले वर्णमालाका एक अक्षर बिन्दु लगाकर उच्चारण कीजिये और फिर मन्त्रका इस क्रमसे अवर्गके सोलह, कवर्गसे पवर्गतकके पचीस और यवर्गके हकारतक आठ और पुनः एक लकार—इस प्रकार पचासतक गिनते जाइये, फिर लकारसे लौटकर अकारतक आ जाइये। सौकी संख्या पूरी हो जायगी। 'क्ष'को सुमेरु माना जाता है, उसका उल्लङ्घन नहीं होना चाहिये। संस्कृतमें 'त्र' और 'ज्ञ' स्वतन्त्र अक्षर नहीं, संयुक्ताक्षर माने जाते हैं। इसलिये उनकी गणना नहीं होती। वर्ग भी सात नहीं, आठ माने जाते हैं। आठवाँ शकारसे प्रारम्भ होता है। इसके द्वारा 'अं कं चं टं तं पं यं शं' यह गणना करके आठ बार और जपना चाहिये। ऐसा करनेसे जपकी संख्या एक सौ आठ हो जाती है। ये अक्षर तो मालाके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मणि हैं, इनका सूत्र है कुण्डलिनी-शक्ति। यह मूलाधारसे आज्ञाचक्रपर्यन्त सूत्ररूपसे विद्यमान है। उसीमें ये सब स्वर-वर्ण मणिरूपसे गुँथे हुए हैं। इन्हींके द्वारा आरोह और अवरोह-क्रमसे अर्थात् नीचेसे ऊपर और ऊपरसे नीचे जप करना चाहिये। इस प्रकार जो जप होता है, वह सद्यः सिद्धिप्रद होता है।

जिन्हें अधिक संख्यामें जप करना हो, उन्हें तो मणिमाला रखना अनिवार्य है। मणि (मनिया) पिरोये होनेके कारण इसे मणिमाला कहते हैं। यह माला अनेक वस्तुओंकी होती है, जैसे-रुद्राक्ष, तुलसी, शङ्ख, पद्मबीज, जीवपुत्रक (इंगुदी), मोती, स्फटिक, मणि-रत्न, मूँगा, सुवर्ण, चाँदी, चन्दन और कुशमूल। इन सभीके मणियोंसे माला तैयार की जा सकती है। इनमें वैष्णवोंके लिये तुलसी और स्मार्त, शैव, शाक्त आदिके लिये रुद्राक्ष सर्वोत्तम है। एक चीजकी मालामें दूसरी चीज न लगायी जाय। विभिन्न कामनाओंके अनुसार भी मालाओंमें भेद होता है और देवताओंके अनुसार भी। इनका विचार कर लेना चाहिये। मालाके मणि (दाने) छोटे-बड़े न हों। एक सौ आठ दानोंकी माला सब प्रकारके जपोंमें काम आती है। ब्राह्मण-कन्याओंके द्वारा निर्मित सूतसे माला बनायी जाय तो सर्वोत्तम है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके लिये क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण-वर्णके सूत्र श्रेष्ठ हैं। रक्तवर्णका प्रयोग सब वर्णोंके लोग सब प्रकारके अनुष्ठानोंमें कर सकते हैं। सूतको तिगुना कर पुनः उसे तिगुना कर देना चाहिये। प्रत्येक मणिको गूँथते समय प्रणवके साथ एक-एक अक्षरका उच्चारण करते जाना चाहिये—जैसे—'ॐ अं' कहकर प्रथम मणि तो 'ॐ आं' कहकर दूसरी मणि। बीचमें जो गाँठ देते हैं, उसके सम्बन्धमें विकल्प है। चाहे तो गाँठ दें चाहे तो न दें। दोनों ही बातें ठीक हैं। माला गूँथनेका मन्त्र अपना इष्टमन्त्र भी है। अन्तमें ब्रह्मग्रन्थि देकर सुमेरु गूँथे और पुनः ग्रन्थि लगाये। स्वर्ण आदिके सूत्रसे भी माला पिरोयी जा सकती है। रुद्राक्षके दानोंमें मुख और पुच्छका भेद भी होता है। मुख कुछ ऊँचा होता है और पुच्छ नीचा। पोहनेके समय यह ध्यान रखना चाहिये कि दानोंका मुख परस्परमें मिलता जाय अथवा पुच्छ। गाँठ देनी हो तो तीन फेरेकी अथवा ढाई फेरेकी लगानी चाहिये। ब्रह्मग्रन्थि भी लगा सकते हैं। इस प्रकार मालाका निर्माण करके उसका संस्कार करना चाहिये।

देवतातत्त्व—देवता मुख्यतया तैंतीस माने गये हैं। उनकी गणना इस प्रकार है—प्रजापति, इन्द्र, द्वादश आदित्य, आठ वसु और ग्यारह रुद्र। निरुक्तके दैवतकाण्डमें देवताओंके स्वरूपके सम्बन्धमें विचार किया गया है, वहाँके वर्णनसे यही तात्पर्य निकलता है कि वे कामरूप होते हैं। वेदान्त-दर्शनमें कहा गया है कि देवता एक ही समय अनेक स्थानोंमें भिन्न-भिन्न रूपसे प्रकट होकर अपनी पूजा स्वीकार कर सकते हैं। शास्त्रोंमें देवताओंके ध्यानकी सुस्पष्ट विधि निर्दिष्ट है। उसी रूपमें उनका ध्यान एवं उपासना की जानी चाहिये। वेदोंमें प्रायः सभी देवताओंका वर्णन आया है, जैसे इन्द्रके लिये **'वज्रहस्तः पुरन्दरः।'** उनके कर्मका भी वर्णन है कि वे वर्षाके अधिपति हैं और वृत्रवध आदि कर्म करते हैं। यहाँ कुछ देवताओंके ध्यान और मन्त्र लिखे जाते हैं।

इन्द्र

दिक्पतियोंके स्वामी इन्द्रका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये-इन्द्रका वर्ण पीला है, उनके शरीरपर मयूरपिच्छके सदृश सहस्र नेत्रोंके चिह्न हैं, उनके चार हाथ हैं, जिनमें वे क्रमशः अभय एवं वरमुद्रा तथा वज्र एवं अंकुश धारण किये हुए हैं। वे अनेक प्रकारके कौस्तुभ, माणिक्यादि आभूषण, स्वर्णकुण्डल एवं यज्ञोपवीत धारण किये ऐरावत हाथीपर इन्द्राणीके साथ विराजमान हैं। इन्द्रका मन्त्र है—**'ॐ इं इन्द्राय नमः।'**

अग्नि

अग्निका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—उनका वाहन छाग है। उनके सात हाथ हैं और सात जिह्वाओंसे सात ज्वालाएँ निकलती रहती हैं। शरीर स्थूल है, उनकी दायीं ओर स्वाहा और बायीं ओर स्वधा नामकी पत्नियाँ हैं। वे अपने हाथोंमें स्रुव, स्रुच्, तोमर एवं शक्ति आदि धारण किये हुए हैं। अग्निका मन्त्र है—**'ॐ रं वह्निचैतन्याय नमः।'**

कुबेर

कुबेरका ध्यान इस प्रकार है—धनाध्यक्ष कुबेर नवों निधियोंके स्वामी हैं। उनका वर्ण सुवर्णवत् पीत है। उनके दो हाथ हैं, जिनमें कुन्त एवं निधि लिये हैं और पीताम्बर धारण किये अति सुन्दर हैं। वे यक्ष-गुह्यकोंके स्वामी हैं तथा सपत्नीक नरवाहन—पालकीपर सवार या अश्वारूढ कहे गये हैं। कुबेरके मन्त्र छोटे-बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई हैं। छोटा प्रसिद्ध मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ वैश्रवणाय नमः**'।

वास्तुदेव

वास्तुपुरुषका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—वास्तुदेवताका शरीर नीले वर्णका है। वे शुभ स्थानपर सोये हुए हैं। उनके दो हाथ हैं, जिनमें मापदण्ड धारण किये हुए हैं; सब लोगोंके आश्रय एवं विश्वके बीज हैं। उन्हें जो प्रणाम करता है, उसके भयको वे नष्ट कर देते हैं। उनका मन्त्र है—'**ॐ वास्तोष्पतये नमः**।'

सभी साधना एवं उपासनाओंका अन्तिम फल भगवत्प्राप्ति या सायुज्य मुक्ति है। देवतालोग अपनी उपासनासे प्रसन्न होकर सांसारिक पुरुषार्थोंकी उपलब्धिके साथ भगवत्प्राप्तिमें भी सहायक होते हैं। ऊपर देवोपासनाकी संक्षिप्त विधि निर्दिष्ट है। विशेष जानकारीके लिये उनके उपासनापरक पुराण, आगमादि ग्रन्थ देखने चाहिये।

यज्ञ

भारतीय संस्कृति और वेद-पुराणोंमें यज्ञोंकी अपार महिमा निरूपित है। यज्ञोंके द्वारा विश्वात्मा प्रभुको संतृप्त करनेकी विधि बतलायी गयी है। अतः जो जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना चाहते हैं, उन्हें यज्ञ-यागादि शुभ कर्म अवश्य करने चाहिये। वेद, जो परमात्माके निःश्वासभूत हैं, उनकी मुख्य प्रवृत्ति यज्ञोंके अनुष्ठान-विधानमें है। यज्ञोंद्वारा समुद्भूत पर्जन्य—वृष्टि आदिसे संसारका पालन करते हैं। इस प्रकार परमात्मा यज्ञोंके सहारे ही विश्वका संरक्षण करते हैं। यज्ञकर्ताको अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है।

ऋग्वेदका आरम्भ ही यज्ञके समस्त उपकरणोंके स्मरणसे होता है—'**ॐ अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्**।' यजुर्वेद शब्द ही यज्ञप्रतिपादक ग्रन्थका वाचक है। इसके प्रथम मन्त्र '**इषे त्वोर्जे**०' का विनियोग दर्शपौर्णमास योगके पलाश-शाखा-छेदन विधिमें होता है। '**देवा यज्ञमतन्वत**' (यजु० १९। १२), '**यज्ञेन यज्ञमयजन्त**०' (यजु० १९। १६), इन वेदमन्त्रों और '**यज्ञोऽध्ययनं दानम्**' (छान्दोग्य०), '**अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यक्**०' (मनु० ३। ७६), '**इज्याध्ययनदानानि**०' (याज्ञवल्क्य० १। ५। ११८) आदि वचनोंसे यज्ञ धर्मका सर्वश्रेष्ठ प्रथम अङ्ग या स्कन्ध है।

श्रीमद्भगवद्गीताके तृतीय अध्यायके १० से १५ तकके श्लोकोंमें यज्ञपर ही संसारको आधृत कहा है और इसमें वेद और परमात्माकी प्रतिष्ठा कही है।

भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥ (३। १०)

प्रजापति ब्रह्माने कल्पके आदिमें यज्ञसहित प्रजाओंकी सृष्टिकर उनसे कहा—'तुमलोग इस यज्ञके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुमलोगोंको इच्छित भोग प्रदान करनेवाला हो।' गीतामें तो भगवान्‌ने यहाँतक कहा है कि यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और जो पापी लोग अपना शरीर-पोषण करनेके लिये अन्न पकाते हैं, वे पापको ही खाते हैं—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥
(३। १३)

इसलिये भगवान्‌ने कहा—'**तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्**' (गीता ३। १५)। सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सर्वदा यज्ञमें प्रतिष्ठित हैं। शरीर और अन्तःकरणकी शुद्धि तथा जीवनमें दिव्यताके आधानके लिये भी यज्ञकी आवश्यकता है—'**महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः**।' आचार्य जैमिनिका सम्पूर्ण मीमांसा-दर्शन, जो सभी दर्शनोंकी अपेक्षा बहुत बड़ा है, केवल यज्ञके अनुष्ठान-विधानका ही ज्ञापक है और अन्य सभी धर्म यज्ञके उपकारक या अङ्गमात्र हैं। उनकी दृष्टिमें केवल यज्ञ ही धर्म है और उनका प्रथम सूत्र '**अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः**' की प्रतिज्ञा कर केवल यज्ञ और उनकी विधियोंका ही प्रतिपादन करता है। कात्यायन आदि श्रौतसूत्रकारोंने भी अपने प्रथम सूत्र '**अथ यज्ञं व्याख्यास्यामः**' कहकर '**द्रव्यदेवतात्यागः**' इस परिभाषाके द्रव्यात्मक, देवतात्मक और त्यागक्रियात्मक—ये तीन यज्ञके लक्षण बताये हैं। द्रव्योंमें सोमरस, पुरोडाश, घृत, दधि, यवागू, हविष्, ओदन, तण्डुल, फल, जल—इन दस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थोंकी गणना की गयी है। इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि वेदमन्त्रोक्त अनेक देवता हैं। क्रियामें समूचे यज्ञके अनुष्ठानकी प्रक्रिया उद्दिष्ट है, जिसमें ऋत्विग्वरण, मण्डपाच्छादन, वेदीकरण, स्रुवा आदि यज्ञपात्रोंका सम्मार्जन, यज्ञदीक्षाग्रहण, अग्नि-स्थापना, प्रतिष्ठा और समिदाधान, आज्यभागाहुति, प्रधानयाग, स्विष्टकृद्-हवन, वर्हिहोम, प्रणीताविमोक, पूर्णाहुतिहोम तथा तर्पण-मार्जन आदि अनेक क्रियाएँ सम्मिलित हैं।

वस्तुतः जिस अन्तर्वेदीय सदनुष्ठानद्वारा इन्द्रादिदेवगण प्रसन्न हों, स्वर्गादिकी प्राप्ति सुलभ हो, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक विपत्तियाँ दूर हों और सम्पूर्ण संसारका कल्याण हो, वह अनुष्ठान 'यज्ञ' कहलाता है। मत्स्यपुराणमें यज्ञका लक्षण इस प्रकार बताया गया है—

देवानां द्रव्यहविषां ऋक्सामयजुषां तथा।
ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोगो यज्ञ उच्यते॥

'जिस कर्मविशेषमें देवता, हवनीयद्रव्य, वेदमन्त्र, ऋत्विक् एवं दक्षिणा—इन पाँच उपादानोंका संयोग हो उसे यज्ञ कहा जाता है।'

वेदों, ब्राह्मणग्रन्थों तथा आश्वलायन, आपस्तम्ब, सत्याषाढ़ और पारस्कर आदि सूत्र-ग्रन्थोंमें यज्ञके अनेकों भेद-प्रभेद बताये गये हैं, परंतु मुख्यरूपसे इनका समाहार तीन प्रकारकी संस्थाओं—हविर्यज्ञ-संस्था, सोमयज्ञ-संस्था और पाकयज्ञ-संस्थाके अन्तर्गत हो जाता है। फिर एक-एकमें सात-सात यज्ञ सम्मिलित हैं। संक्षेपमें इनका परिचय इस प्रकार है—

१- हविर्यज्ञ-संस्था—मुख्य हविर्यज्ञके रूपमें ७ यज्ञ प्रकारोंका उल्लेख मिलता है, इनमेंसे एक-एक यज्ञके कई-कई भेद बतलाये गये हैं। पहला यज्ञ 'अग्न्याधेय' है, जिसे ब्राह्मण वसन्त ऋतुमें, क्षत्रिय ग्रीष्म ऋतुमें, वैश्य वर्षा ऋतुमें तथा कृत्तिका, रोहिणी आदि नक्षत्रोंमें प्रारम्भ करते हैं। इस यज्ञमें कई इष्टियाँ होती हैं और यह १३ रात्रियोंतक चलता है। घृत तथा दुग्धके द्वारा प्रतिदिनके किये जानेवाले हवनको 'अग्निहोत्र' कहा जाता है। इसीका एक भेद पिण्ड-पितृ-यज्ञ भी है। जिसका सम्पूर्ण विधान श्राद्धके समान होता है। इस क्रममें तीसरे मुख्य हविर्यज्ञके रूपमें 'दर्शपौर्णमास'का उल्लेख मिलता है, जो अमावास्या एवं पूर्णिमाको सम्पन्न किया जाता है। इसमें अग्नि और विष्णुको आहुतियाँ दी जाती हैं। हविर्यज्ञका चौथा भेद 'आग्रायण' है, इसमें साँवा नामक धान्यविशेषसे चरु बनाकर चन्द्रमाको आहुतियाँ दी जाती हैं। इसीके आयुष्यकामेष्टि, पुत्रकामेष्टि और मित्रविन्दा आदि भेद हैं। इसमें मित्रविन्दाकी कथा इसी पुराण-कथा-अङ्कमें उत्तम मन्वन्तरके प्रकरणमें विस्तारके साथ आयी है। प्रायः इन सभी यज्ञोंपर विभिन्न पुराणोंमें अनेकों कथाएँ प्राप्त होती हैं।

इसी प्रकार वैश्वानरी, कारीरि, पवित्री, व्रात्यपती आदि अनेकों इष्टियाँ हैं, जिनके लिये पुराणोंमें कहा गया है कि उन्हें विधि-विधानपूर्वक सम्पन्न करनेसे कर्ताकी दस पीढ़ियोंका उद्धार हो जाता है। पाँचवाँ हविर्यज्ञ 'चातुर्मास्य' है, जो चार-चार मासोंमें अनुष्ठेय है। इसके चार भेदोंका उल्लेख मिलता है, जो वैश्वदेवीय, वरुण-प्रघास, साकमेध और शुनासीरीयके नामसे जाने जाते हैं। छठा हविर्यज्ञ 'निरूढपशुबन्ध' है। यह प्रतिवत्सर वर्षा ऋतुमें किया जाता है। इसमें इन्द्र और अग्निके नामसे हवन होता है। यह पशुयाग कहलाता है। हविर्यज्ञका सातवाँ अन्तिम प्रकार 'सौत्रामणि' है। यह भी पशुयागके अन्तर्गत ही है। इसके विषयमें भागवतमें कई निर्देश दिये गये हैं। विस्तार-भयके कारण यहाँ हविर्यज्ञोंको मात्र संक्षिप्त रूपोंमें संकेतित किया है। विस्तृत जानकारीके लिये धर्मसूत्रों एवं ब्राह्मण-ग्रन्थोंका अवलोकन समीचीन होगा।

२-सोमयज्ञ-संस्था—यह आर्योंका अत्यन्त प्रसिद्ध याग रहा है। इसे कालावधिके आधारपर एकाह, अहीन और सम—इन तीन रूपोंमें देखा गया है। अग्निमें सोमलताके रसकी आहुति देनेके कारण यह सोमयाग कहलाता है। सोमयज्ञ-संस्थाके अन्तर्गत १६ ऋत्विजोंका उल्लेख आश्व० श्रौतसूत्र ४-१६ में इस प्रकार मिलता है— होता, मैत्रावरुण, अच्छावाक्, ग्रावस्तुत्, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा, उन्नेता, ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंशी, आग्नीध्र, पोता, उद्गाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्ता और सुब्रह्मण्य एवं १७ वाँ यजमान व्यक्ति।

सोमयज्ञ-संस्थाके मुख्य सात प्रकारोंमें अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्यामकी गणना होती है। इनके अन्य बहुतसे उपभेद भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, जिनमेंसे एक मासकी अवधितक चलनेवाले यज्ञ उशनस्तोम, गोस्तोम, भूमिस्तोम, वनस्पतिसव, बृहस्पतिसव, गौतमस्तोम, उपहव्य, चान्द्रमसी इष्टि, सौरी इष्टि आदि हैं। सूर्यस्तुत यज्ञ और विश्वस्तुत यज्ञ यशकी कामनासे, गोसव और पञ्चशारदीय पशुओंकी कामनासे तथा वाजपेय यज्ञ आधिपत्यकी कामनासे किया जाता है। इनमें वाजपेय यज्ञ महत्त्वपूर्ण है। इस यज्ञकी १७ दीक्षाएँ होती हैं। यह उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा तिथिको आरम्भ होता है। इस यज्ञको सम्पादित करनेसे राजा सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है, ऐसा पुराणोंमें कहा गया है। पाण्डुके पुत्र धर्मात्मा युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया था, जिसका विस्तृत वर्णन भागवतपुराणके दशम स्कन्ध, अन्य पुराणों एवं महाभारतादि ग्रन्थोंमें भी प्राप्त होता है। पुराणोंमें विश्वजित् यज्ञको सारी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला बताया गया है। इसे सूर्यवंशी राजा रघुने किया था। पद्मपुराणमें विस्तारके साथ यह घटना आती है। इसी प्रकार ज्योति नामका एकाह यज्ञ ऋद्धिकी कामनासे किया जाता है। भ्रातृत्व-भावकी प्राप्तिके लिये विषुवत् सोम नामक यज्ञ, स्वर्गकामनासे आंगिरस यज्ञ, आयुकी कामनासे आयु-यज्ञ और पुष्टिकी इच्छासे जामदग्न्य-यज्ञका अनुष्ठान किया जाता है। यह यज्ञ ४ दिनोंतक चलता है।

शरद् ऋतुमें ५-५ दिनोंके सार्वसेन, दैव, पञ्चशारदीय, व्रतबन्ध और वावर नामक यज्ञ किये जाते हैं। जिनसे क्रमशः सेना तथा पशु, बन्धु-बान्धव, आयु एवं वाक्-शक्तिकी वृद्धि होती है। ६ दिनतक चलनेवाले यज्ञोंमें विशेष रूपसे पृष्ट्यावलम्ब और अभ्यासक्त आदि उत्तम हैं। अन्नादिकी कामनासे अनुष्ठेय सप्तरात्र यज्ञोंमें ऋषि-सप्तरात्र, प्राजापत्य, पवमानव्रत और जामदग्न्य आदि प्रधान हैं। जनकसप्तरात्र यज्ञ ऋद्धिकी कामनासे किया जाता है। अष्टरात्रोंमें महाव्रत ही मुख्य है। नवरात्रोंमें पृष्ठ्य और त्रिकटुककी गणना होती है। दशरात्रोंमें आठ यज्ञ करणीय माने गये हैं, जिनमें अध्यर्ध, चतुष्टोम, त्रिककुप्, कुसुरुबिन्दु आदि मुख्य हैं। ऋद्धिकी कामनासे किया जानेवाला पुण्डरीक यज्ञ दो प्रकारका होता है। यह नवरात्र एवं दशरात्र दोनों ही प्रकारका होता है। मत्स्यपुराणके अ० ५३ के २५ से २७ तकके श्लोकोंमें,कार्तिक पूर्णमाकी तिथिमें मार्कण्डेयपुराणको दान करनेसे इस यज्ञके फलको प्राप्त करनेकी बात कही गयी है।

द्वादशाह यज्ञोंमें भरत-द्वादशाह मुख्य है; वैसे सामान्य-रूपसे द्वादशाह यज्ञ ४ बताये गये हैं, जो पृथक्-पृथक् संस्थाओंमें प्रयुक्त होते हैं। जो सभी कामनाओंको प्राप्त करके विश्वजयी होना चाहता है, उसे अश्वमेध यज्ञ करना चाहिये, जो सभी यज्ञोंका राजा है। श्रौतसूत्रोंमें शताधिक पृष्ठोंमें इसके विधानका वर्णन है। एक वर्षतक चलनेवाले इस यज्ञमें एक यज्ञीय अश्व छोड़ा जाता है और उसके पीछे राजाकी सेना चलती है। वह जबतक लौटकर वापस नहीं आता, तबतक पारिप्लव आख्यान चलते हैं। इस क्रममें दस-दस दिनोंपर पहले दिन ऋग्वेद, वैवस्वत मनुका आख्यान, दूसरे दिन यजुर्वेद और पितरोंका आख्यान, तीसरे दिन अथर्ववेद और वरुणादित्यका पौराणिक आख्यान, चौथे दिन आंगिरस (अथर्वण) वेद, विष्णु और चन्द्रमाका आख्यान, पाँचवें दिन भिषज्वेद और कद्रू-विनताका आख्यान, छठे-सातवें दिन असुरोंका आख्यान और आठवें दिन मत्स्यपुराणका आख्यान तथा कई पुराणोंका पाठ होता है।

इसी प्रकार दस-दस दिनोंपर उसी क्रमसे पाठ चलते हुए ३६० दिनोंके बाद दीक्षा होती है। इस तरहसे उसके बाद भी कई मासतक यह यज्ञ चलता रहता है। पुराणोंके अनुसार महाराज दशरथने राम आदिके जन्मकी कामनासे प्रायः तीन वर्षोंतक यह यज्ञ किया था, जिसमें इस यज्ञके अतिरिक्त अन्य सम्पूर्ण यज्ञोंको भी क्रमशः सम्पादित किया गया था।

३-पाकयज्ञ-संस्था—पाकयज्ञके अन्तर्गत सप्त संस्थाओंका उल्लेख मिलता है। जो क्रमशः अष्टका, पार्वणश्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री एवं आश्वयुजी नामसे जानी जाती है। पाक-यज्ञ-संस्थाओंमें पहला अष्टकाश्राद्ध है। कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ—इन चार मासोंके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथियाँ अष्टका कही जाती हैं। अष्टकाश्राद्ध मार्गशीर्ष, पौष और माघ—इन तीन मासोंकी कृष्णाष्टमियोंपर ही सम्पन्न होता है। इनमें पितरोंका श्राद्ध करनेका बहुत बड़ा माहात्म्य है। इसमें स्थालीपाक,आज्याहुति पूर्वक पितरोंके श्राद्ध होते हैं।

पर्व-पर्वपर या पितरोंकी निधन-तिथिपर और महीने महीनेपर होनेवाले श्राद्ध पार्वण कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकोद्दिष्ट, आभ्युदयिक आदि श्राद्ध भी होते हैं, जिन्हें पाक-यज्ञोंमें गिना गया है। श्रावणी पूर्णिमाको होनेवाले सर्पबलि, गृह्यकर्म और वैदिक क्रियाओंको रक्षाबन्धनसहित श्रावणी कर्ममें गिना गया है, इन्हें चौथा पाक-यज्ञ कहा गया है। पारस्कर गृह्यसूत्रके तृतीय काण्डकी द्वितीय कण्डिकाके अनुसार आग्रहायणी कर्म पाँचवीं पाक-यज्ञ-संस्था है। उसमें सर्पबलि, स्थालीपाकपूर्वक श्रावणीके समान ही आज्याहुति और स्विष्टकृत्-हवन एवं भूशयनका कार्य होता है। चैत्रीमें शूलगव-कर्म (वृषोत्सर्ग) किया जाता है। पारस्कर गृह्य-सूत्रके तृतीय काण्डकी आठवीं कण्डिकाके अनुसार शूलगव-यज्ञ स्वर्ग, पुत्र, धन, पशु, यश एवं आयु प्रदान करनेवाला है। इसमें पशुपति रुद्रके लिये वृषभ (साँड़) छोड़े जानेका आदेश है। इसी दिन स्थालीपाकपूर्वक विधिवत् हवन भी किया जाता है।

सातवीं पाक-यज्ञ-संस्था आश्वयुजी कर्म है। इसका वर्णन पारस्कर गृह्यसूत्रके द्वितीय काण्डकी १६वीं कण्डिकामें विस्तारके साथ हुआ है। इसका पूरा नाम पृषातक यज्ञ है। इसमें ऐन्द्रिय हविष्यका दधि-मधुसे सम्मिश्रण कर इन्द्र, इन्द्राणी तथा अश्विनीकुमारोंके नामसे आश्विन-पूर्णिमाको हवन किया जाता है। उस दिन गायों और बछड़ोंको विशेष रूपसे एक साथ ही रखा जाता है। ब्राह्मणोंको भोजन करा देनेके उपरान्त इस कर्मकी समाप्ति होती है।

यद्यपि साधन-सम्पन्न व्यक्ति इन्हें अब भी करते हैं, परंतु वर्तमानमें इनमेंसे कुछ बड़े-बड़े यज्ञोंका सम्पादन सर्वसामान्यके लिये सम्भव नहीं है। साथ ही कलियुगमें अश्वमेधादि कुछ यज्ञोंका निषेध भी है। वर्तमानमें रुद्रयाग, महारुद्रयाग, अतिरुद्रयाग, विष्णुयाग, सूर्ययाग, गणेशयाग, लक्ष्मीयाग, शतचण्डीयाग, सहस्रचण्डीयाग, लक्षचण्डीयाग, महाशान्तियाग, कोटिहोम, भागवतसप्ताहयज्ञ आदि विशेष प्रचलित हैं।

ये यज्ञ सकाम भी किये जाते हैं और निष्काम भी। अग्नि, भविष्य, मत्स्य आदि पुराणोंमें जो यज्ञों तथा उनकी विधि आदिका विस्तृत तथा स्पष्ट विवरण मिलता है, वह वेद और कल्पसूत्रों (श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र आदि) पर आधृत है। अनेक राजाओं आदिके चरित्र-वर्णनमें विविध यज्ञानुष्ठानोंके सुन्दर आख्यान-उपाख्यान भी पुराणोंमें उपलब्ध होते हैं। इन यज्ञोंसे परमपुरुष नारायणकी ही आराधना होती है। श्रीमद्भागवत (४। १४। १८-१९) में स्पष्ट वर्णित है—

यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान् यज्ञपूरुषः।
इज्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितैः॥
तस्य राज्ञो महाभाग भगवान् भूतभावनः।
परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशासने॥

जिसके राज्य अथवा नगरमें वर्णाश्रम-धर्मोंका पालन करनेवाले पुरुष स्वधर्म-पालनके द्वारा भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना करते हैं, हे महाभाग! भगवान् अपनी वेद-शास्त्ररूपी आज्ञाका पालन करनेवाले उस राजासे प्रसन्न रहते हैं, क्योंकि वे ही सारे विश्वकी आत्मा तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके रक्षक हैं। पद्मपुराणके सृष्टिखण्ड (३। १२४) में स्पष्ट कहा गया है कि—यज्ञसे देवताओंका आप्यायन अथवा पोषण होता है। यज्ञद्वारा वृष्टि होनेसे मनुष्योंका पालन होता है, इस प्रकार संसारका पालन-पोषण करनेके कारण ही यज्ञ कल्याणके हेतु कहे गये हैं।

यज्ञेनाप्यायिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेण मानवाः।
आप्यायनं वै कुर्वन्ति यज्ञाः कल्याणहेतवः॥

सभी पुराणोंने यज्ञोंके यथासम्भव सम्पादनपर अत्यधिक बल दिया है। यज्ञोंका फल केवल इहलौकिक ही नहीं, अपितु पारलौकिक भी है। इनके अनुष्ठानसे देवों, ऋषियों, दैत्यों, नागों, किन्नरों, मनुष्यों तथा सभीको अपने अभीष्ट कामनाओंकी प्राप्ति ही नहीं हुई है, प्रत्युत उनका सर्वाङ्गीण अभ्युदय भी हुआ है। अतः इनका सम्पादन अवश्यकरणीय है।

निष्पाद्यन्ते नरैस्तैस्तु स्वधर्माभिरतैः सदा। विशुद्धाचरणोपेतैः सद्भिः सन्मार्गगामिभिः॥
स्वर्गापवर्गौ मानुष्यात् प्राप्नुवन्ति नरा मुने। यच्चाभिरुचितं स्थानं तद्यान्ति मनुजा द्विज॥

'जो मनुष्य सदा स्वधर्मपरायण, सदाचारी, सज्जन और सन्मार्गगामी होते हैं, उन्हींसे यज्ञका यथावत् अनुष्ठान हो सकता है। मुने! (यज्ञके द्वारा) मनुष्य इस मनुष्यशरीरसे ही स्वर्ग और अपवर्ग प्राप्त कर सकते हैं तथा और भी जिस स्थानकी उन्हें इच्छा हो, वहाँ भी जा सकते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णाश्रम-धर्म

वर्ण-व्यवस्था

भारतीय संस्कृतिमें तथा शास्त्रपुराणोंमें सनातनधर्मका आधार वर्णाश्रमकी व्यवस्था है। अनादिकालसे जीवोंके जो जन्म-जन्मान्तरोंमें किये हुए कर्म हैं, जिनका फलभोग नहीं हो चुका है, उन्हींके अनुसार उनमें यथायोग्य सत्त्व, रज और तमोगुणकी न्यूनाधिकता होती है। इन्हीं गुण-कर्मोंके अनुसार जीवको देव, पितर और तिर्यक् आदि विभिन्न योनियोंमें जाना पड़ता है।

भगवान् जगत्की सृष्टिके समय जीवके लिये जब मनुष्ययोनिका निर्माण करते हैं, तब उन जीवोंके गुण और कर्मोंके अनुसार उन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंमें उत्पन्न करते हैं, क्योंकि भगवान्का वचन है—

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।'

जिनमें सत्त्वगुण अधिक होता है उन्हें ब्राह्मण, जिनमें सत्त्वमिश्रित रजोगुणकी अधिकता होती है उन्हें क्षत्रिय, जिनमें तमोमिश्रित रजोगुण अधिक होता है उन्हें वैश्य और जो रजो-मिश्रित तमःप्रधान होते हैं उन्हें शूद्र बनाते हैं। विष्णुपुराणके प्रथम अंश, अध्याय ६ के अनुसार गुण-कर्म-विभागपूर्वक प्रजापति ब्रह्माके द्वारा चातुर्वर्ण्यकी सृष्टि हुई है। इत्थंभूत सृष्ट वर्णोंके लिये उनके स्वभावानुकूल पृथक्-पृथक् कर्मोंका विधान भी भगवान् ही कर देते हैं, जिससे ब्राह्मण शम-दमादि कर्मोंमें रत रहें, क्षत्रिय शौर्य-तेज आदिसे युक्त हों, वैश्य कृषि-गोरक्षामें लगे रहें और शूद्र सेवा-परायण हों।

ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म इस प्रकार कहे गये हैं—अन्तःकरणका निग्रह करना, इन्द्रियोंका दमन करना, धर्मपालनके लिये कष्ट सहना, बाहर-भीतरसे शुद्ध रहना, दूसरोंके अपराधोंको क्षमा करना, मन, इन्द्रिय और शरीरको सरल रखना, वेद-शास्त्र-ईश्वर तथा परलोक आदिमें श्रद्धा रखना, वेद-शास्त्रोंका अध्ययन-अध्यापन करना एवं परमात्माके तत्त्वका अनुभव करना[१]। इसके अतिरिक्त स्वयं अध्ययन करना और दूसरोंको अध्ययन कराना, स्वयं यज्ञ करना और दूसरोंका यज्ञ कराना, स्वयं दान देना तथा दूसरोंसे दान लेना ब्राह्मणके छः कर्म और बताये गये हैं[२]। ब्राह्मणोंके स्वाभाविक कर्मकी एक कथा इस प्रकार है—

वसिष्ठ और विश्वामित्र

एक बार गाधिपुत्र महाराज विश्वामित्र महर्षि वसिष्ठके आश्रममें जा पहुँचे। उनके साथ बहुत बड़ी सेना थी। नन्दिनी नामक कामधेनु गौके प्रसादसे वसिष्ठजीने सेनासमेत राजाको भाँति-भाँतिके भोजन कराये और रत्न तथा वस्त्राभूषण दिये। विश्वामित्रका मन गौके लिये ललचा गया और वसिष्ठजीसे गौको माँगा। वसिष्ठने कहा—इस गौको मैंने देवता, अतिथि, पितृगण और यज्ञके लिये रखा है। अतः इसे मैं नहीं दे सकता। विश्वामित्रको अपने जनबल और शस्त्रबलका गर्व था, उन्होंने जबरदस्ती नन्दिनीको ले जाना चाहा। नन्दिनीने रोते हुए वसिष्ठसे कहा—'भगवन्! विश्वामित्रके निर्दयी सिपाही मुझे बड़ी क्रूरताके साथ कोड़ों और डंडोंसे मार रहे हैं, आप इनके इस अत्याचारकी उपेक्षा कैसे कर रहे हैं?' वसिष्ठजीने कहा—

क्षत्रियाणां बलं तेजो ब्राह्मणानां क्षमा बलम्।
क्षमा मां भजते यस्माद् गम्यतां यदि रोचते॥

'क्षत्रियोंका बल तेज है और ब्राह्मणोंका बल क्षमा। मैं क्षमाको नहीं छोड़ सकता, तुम्हारी इच्छा हो तो चली जाओ।' नन्दिनी बोली—'यदि आप त्याग न करें तो बलपूर्वक मुझे कोई भी नहीं ले जा सकता।' वसिष्ठजीने कहा—'मैं त्याग नहीं करता, तुम रह सकती हो तो रह जाओ।'

इसपर नन्दिनीने रौद्ररूप धारण किया, उसकी पूँछसे आग बरसने लगी और अनेकों म्लेच्छ जातियाँ उत्पन्न हो गयीं। विश्वामित्रकी सेनाके छक्के छूट गये। नन्दिनीकी सेनाने विश्वामित्रके एक भी सिपाहीको नहीं मारा, वे सब डरके मारे भाग गये। विश्वामित्रको अपनी रक्षा करनेवाला कोई भी नहीं दीख पड़ा। तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा—

धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम्।

१-शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥
२-अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्षत्रिय-बलको धिक्कार है, वास्तवमें ब्रह्म-तेजका बल ही 'बल' है।' इसके पश्चात् विश्वामित्रकी प्रेरणासे राजा कल्माषपादने वसिष्ठके सभी पुत्रोंको मार डाला, तो भी वसिष्ठने उनसे बदला लेनेकी चेष्टा न की।

क्षत्रियके स्वाभाविक कर्म यों कहे गये हैं—शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्धमें न भागना, दान देना तथा स्वामिभाव। इसके अतिरिक्त प्रजाकी रक्षा करना, यज्ञ करना, वेदोंका अध्ययन करना, विषयोंमें आसक्त न होना—ये सभी क्षत्रियोंके कर्म बताये गये हैं[३]। बड़े-से-बड़े बलवान् शत्रुका न्याययुक्त सामना करनेमें भय न करना तथा न्याययुक्त युद्ध करनेके लिये सदा ही उत्साहित रहना और युद्धके समय साहसपूर्वक गम्भीरतासे लड़ते रहना 'शूरवीरता' है। भीष्म-पितामहका जीवन इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

पितामह भीष्म

बालब्रह्मचारी पितामह भीष्ममें क्षत्रियोचित सभी गुण थे। उन्होंने प्रसिद्ध क्षत्रियशत्रु भगवान् परशुरामजीसे शस्त्रविद्या सीखी थी। जिस समय परशुरामजीने काशिराजकी कन्या अम्बासे विवाह कर लेनेके लिये भीष्मपर बहुत दबाव डाला, उस समय उन्होंने बड़ी नम्रतासे अपने सत्यकी रक्षाके लिये ऐसा करनेसे बिलकुल इनकार कर दिया; जब परशुरामजी किसी तरह न माने और बहुत धमकाने लगे, तब उन्होंने स्पष्ट कह दिया—

न भयान्नाप्यनुक्रोशान्नार्थलोभान्न काम्यया।
क्षात्रं धर्ममहं जह्यामिति मे व्रतमाहितम्॥
यच्चापि कत्थसे राम बहुशः परिवत्सरे।
निर्जिताः क्षत्रिया लोके मयैकेनेति तच्छृणु॥
न तदा जातवान् भीष्मः क्षत्रियो वापि मद्विधः।
पश्चाज्जातानि तेजांसि तृणेषु ज्वलितं त्वया॥
व्यपनेष्यामि ते दर्पं युद्धे राम न संशयः।

'भय, कृपा, धनके लोभ और कामनासे मैं कभी क्षात्र-धर्मका परित्याग नहीं कर सकता—यह मेरा दृढ व्रत है। परशुरामजी! आप जो लोगोंके सामने बड़ी डींग हाँका करते हैं कि मैंने बहुत वर्षोंतक अकेले ही क्षत्रियोंका अनेकों बार (इक्कीस बार) संहार किया है, तो उसके लिये भी सुनिये—उस समय भीष्म या भीष्मके समान कोई क्षत्रिय पैदा नहीं हुआ था। आपने तिनकोंपर ही अपना प्रताप दिखाया है। क्षत्रियोंमें तेजस्वी तो पीछेसे प्रकट हुए हैं। परशुरामजी! इस समय युद्धमें मैं आपके घमंडको निःसंदेह चूर्ण कर दूँगा।'

परशुरामजी कुपित हो गये। युद्ध छिड़ गया और लगातार तेईस दिनोंतक भयानक युद्ध होता रहा, परंतु परशुरामजी भीष्मको परास्त न कर सके। अन्ततः नारद आदि देवर्षियोंके और भीष्मजननी श्रीगङ्गाजीके प्रकट होकर बीचमें पड़नेपर तथा परशुरामजीके धनुष छोड़ देनेपर ही युद्ध समाप्त हुआ। भीष्मने न तो रणसे पीठ दिखायी और न पहले शस्त्रको ही छोड़ा (महा० उद्योग० १८५)।

महाभारतके अठारह दिनोंके संग्राममें दस दिनोंतक अकेले भीष्मजीने कौरवपक्षके सेनापतिके पदको सुशोभित किया। शेष आठ दिनोंमें कई सेनापति बदले।

भगवान् श्रीकृष्णने महाभारत-युद्धमें शस्त्र-ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा की थी। कहते हैं 'भीष्मने किसी कारणवश प्रण कर लिया कि मैं भगवान्को शस्त्र-ग्रहण करवा दूँगा।'

युद्धारम्भके तीसरे दिन भीष्मपितामहने जब बड़ा ही प्रचण्ड संग्राम किया, तब भगवान् श्रीकृष्णने कुपित होकर घोड़ोंकी रास हाथसे छोड़ दी और सूर्यके समान प्रभायुक्त अपने चक्रको हाथमें लेकर उसे घुमाते हुए रथसे कूद पड़े। श्रीकृष्णको चक्र हाथमें लिये हुए देखकर सब लोग ऊँचे स्वरसे हाहाकार करने लगे। भगवान् प्रलयकालकी अग्निके समान भीष्मकी ओर बड़े वेगसे दौड़े। श्रीकृष्णको चक्र लिये अपनी ओर आते देखकर महात्मा भीष्म तनिक भी नहीं डरे और अविचलित-भावसे अपने धनुषको टंकारते हुए कहने लगे—'हे देवदेव! हे जगन्निवास! हे माधव! हे चक्रपाणि! पधारिये। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे सबको शरण देनेवाले! मुझे बलपूर्वक इस श्रेष्ठ रथसे नीचे गिरा दीजिये। हे श्रीकृष्ण! आज आपके हाथसे मारे जानेपर मेरा इस लोक और परलोकमें बड़ा कल्याण होगा। हे यदुनाथ! आप स्वयं मुझे मारने दौड़े, इससे मेरा गौरव तीनों लोकोंमें बढ़ गया।'

३-प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जुनने दौड़कर पीछेसे भगवान्‌के पैर पकड़ लिये और किसी प्रकार उन्हें लौटाया (महा० भीष्म० ५९)।

नवें दिनकी बात है, भगवान्‌ने देखा—भीष्मने पाण्डव-सेनामें प्रलय-सा मचा रखा है। भगवान् श्रीकृष्ण घोड़ोंकी रास छोड़कर कोड़ा हाथमें लिये फिर भीष्मकी ओर दौड़े। उनके तेजसे पग-पगपर मानो पृथ्वी फटने लगी। कौरवपक्षके वीर घबड़ा उठे और 'भीष्म मरे!', 'भीष्म मरे!!' कहकर चिल्लाने लगे। हाथीपर झपटते हुए सिंहकी भाँति भगवान्‌को अपनी ओर आते देखकर भीष्म तनिक भी विचलित न हुए और उन्होंने धनुष खींचकर कहा—

'हे पुण्डरीकाक्ष! हे देवदेव! आपको नमस्कार है। हे यादवश्रेष्ठ! आइये, आइये, आज इस महायुद्धमें मेरा वध करके मुझे वीरगति दीजिये। हे अनघ! हे देवदेव श्रीकृष्ण! आज आपके हाथसे मरनेपर मेरा लोकमें सर्वथा कल्याण हो जायगा। हे गोविन्द! युद्धमें आपके इस व्यवहारद्वारा आज मैं त्रिभुवनमें सम्मानित हो गया। हे निष्पाप! मैं आपका दास हूँ, आप मुझपर जी भरकर प्रहार कीजिये।'

अर्जुनने दौड़कर भगवान्‌के हाथ पकड़ लिये, पर भगवान् रुके नहीं और उन्हें घसीटते हुए आगे बढ़े। अन्तमें अर्जुनके प्रतिज्ञाकी याद दिलाने और सत्यकी शपथ खाकर भीष्मको मारनेकी प्रतिज्ञा करनेपर भगवान् लौटे।

दस दिन महायुद्ध करनेपर जब भीष्म मृत्युकी बात सोच रहे थे, तब आकाशमें स्थित ऋषियों और वसुओंने भीष्मसे कहा—'हे तात! तुम जो सोच रहे हो, वही हमें पसंद है।' इसके बाद शिखण्डीके सामने बाण न चलानेके कारण बालब्रह्मचारी भीष्म अर्जुनके बाणोंसे बिंधकर शरशय्यापर गिर पड़े। गिरते समय भीष्मने सूर्यको दक्षिणायनमें देखा, इसलिये उन्होंने प्राणत्याग नहीं किया।

५८ दिन शरशय्यापर रहनेके बाद सूर्यके उत्तरायण होने-पर भीष्मने प्राणत्यागका निश्चय किया और भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे सुरासुरोंके द्वारा वन्दित! हे त्रिविक्रम! हे शङ्ख-चक्र-गदाधारी! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे वासुदेव! हिरण्यात्मा, परमपुरुष, सविता, विराट्, जीवरूप, अणुरूप, परमात्मा और सनातन आप ही हैं। हे पुण्डरीकाक्ष! हे पुरुषोत्तम! आप मेरा उद्धार कीजिये। हे कृष्ण! हे वैकुण्ठ! हे पुरुषोत्तम! अब मुझे जानेके लिये आज्ञा दीजिये। मैंने मन्दबुद्धि दुर्योधनको बहुत समझाया था—

यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः।

'जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं धर्म है और जहाँ धर्म है, वहीं विजय है, परंतु उस मूर्खने मेरी बात नहीं मानी। मैं आपको पहचानता हूँ, आप ही पुराणपुरुष हैं। आप नारायण ही अवतीर्ण हुए हैं।

स मां त्वमनुजानीहि कृष्ण मोक्ष्ये कलेवरम्।
त्वयाहं समनुज्ञातो गच्छेयं परमां गतिम्॥

(महा० अनु० १६७।४५)

'हे श्रीकृष्ण! आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं शरीर-त्याग करूँ। आपकी आज्ञासे शरीर-त्यागकर मैं परमगतिको प्राप्त करूँगा।'

भगवान्‌ने आज्ञा दी, तब भीष्मने योगके द्वारा वायुको रोककर क्रमशः प्राणोंको ऊपर चढ़ाना आरम्भ किया। प्राणवायु जिस अङ्गको छोड़कर ऊपर चढ़ता था, उस अङ्गके बाण उसी क्षण निकल जाते और घाव भर जाते थे। क्षणभरमें भीष्मजीके शरीरसे सब बाण निकल गये, शरीरपर एक भी घाव न रहा और प्राण ब्रह्मरन्ध्रको भेदकर ऊपर चले गये। लोगोंने देखा, ब्रह्मरन्ध्रसे निकला हुआ तेज देखते-देखते आकाशमें विलीन हो गया।

वैश्यका स्वाभाविक कर्म खेती, गोपालन और क्रय-विक्रय-रूप सत्य व्यवहार करना है। इसके अतिरिक्त यज्ञ, अध्ययन और दान तथा व्याज लेना—ये चार कर्म वैश्यके लिये विशेष बताये गये हैं[४]।

मनुष्योंके और देवता, पशु, पक्षी आदि अन्य समस्त प्राणियोंके उपयोगमें आनेवाली समस्त पवित्र वस्तुओंको धर्मानुकूल खरीदना और बेचना तथा आवश्यकतानुसार उनको एक स्थानसे दूसरे स्थानमें पहुँचाकर लोगोंकी आवश्यकताओंको पूर्ण करना वाणिज्य—क्रय-विक्रय-रूप

४- (क) कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
(ख) पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार है। वाणिज्य करते समय, वस्तुओंके खरीदने-बेचनेमें तौल, नाप और गिनती आदिमें कम देना या अधिक ले लेना, वस्तुओंको बदलकर या एक वस्तुमें दूसरी वस्तु मिलाकर अच्छीके बदले खराब दे देना अथवा खराबके बदले अच्छी ले लेना, नफा, आढ़त और दलाली आदि ठहराकर उससे अधिक लेना या कम देना; इसी तरह किसी भी व्यापारमें झूठ, कपट, चोरी और जबरदस्तीका या अन्य किसी प्रकारके अन्यायका प्रयोग करके दूसरोंके सत्त्वको हड़प लेना—ये सब वाणिज्यके दोष हैं। इन सब दोषोंसे रहित जो सत्य और न्याय-युक्त पवित्र वस्तुओंका खरीदना और बेचना है, वही क्रय-विक्रयरूप सत्य व्यवहार है; तुलाधारने इसी व्यवहारसे सिद्धि प्राप्त की थी। इनकी कथा इस प्रकार है—

तुलाधार

काशीमें तुलाधार नामक एक वैश्य व्यापारी थे। वे महान् तपस्वी और धर्मात्मा थे। न्याय और सत्यका आश्रय लेकर क्रय-विक्रयरूप व्यापार करते थे। जाजलिनामक एक ब्राह्मण समुद्र-तटपर कठिन तपस्या करते थे। उनकी जटाओंमें चिड़ियोंने घोंसले बना लिये थे, इससे उन्हें अपनी तपस्यापर गर्व हो गया। तब आकाशवाणी हुई कि 'हे जाजलि ! तुम काशीके तुलाधारके समान धार्मिक नहीं हो, वे तुम्हारी भाँति गर्व नहीं करते।' जाजलि काशी आये और उन्होंने देखा—तुलाधार फल, मूल, मसाले, घी आदि बेच रहे हैं। तुलाधारने स्वागत-सत्कार और प्रणाम करके जाजलिसे कहा—'आपने समुद्रके किनारे बड़ी तपस्या की है। आपके सिरकी जटाओंमें चिड़ियोंने बच्चे पैदा कर दिये, इससे आपको गर्व हो गया और आप आकाशवाणी सुनकर यहाँ पधारे हैं; बताइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?' तुलाधारका ऐसा ज्ञान देखकर जाजलिको बड़ा आश्चर्य हुआ। जाजलिद्वारा तुलाधारसे धर्म-विषयक प्रश्न किये जानेपर उन्होंने धर्मका बहुत ही सुन्दर निरूपण किया और जाजलिने तुलाधारके मुखसे धर्मका रहस्य सुनकर बड़ी शान्ति प्राप्त की।

शूद्रका स्वाभाविक कर्म है[५]—सेवा करना, द्विजातिकी आज्ञाओंका पालन करना तथा जितने भी सेवाके कार्य हैं, उन सबको करके सबको संतुष्ट रखना अथवा सबके काममें आनेवाली वस्तुओंको कारीगरीसे तैयार करना और उन वस्तुओंसे उनकी सेवा करके अपनी जीविका चलाना—ये सभी परिचर्याएँ कर्मके अन्तर्गत हैं। शूद्रके स्वभावमें रजोमिश्रित तमोगुण प्रधान होता है, इस कारण उपर्युक्त कार्योंमें उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हो जाती है। इस तरह शूद्रके लिये सेवा-रूप कर्म स्वाभाविक है। अतएव उसके लिये इसका पालन करना बहुत ही सरल है[६] और इसका पालन करनेसे ही उसका कल्याण भी निश्चित है। **ब्रह्मपुराणकी कथा है**—'एक था ब्राह्मण और एक था चाण्डाल। दोनों ही चोरी करते थे, जिस कारण दोनोंमें मित्रता हो गयी थी। वृद्धावस्था होनेपर ब्राह्मणकी बुद्धिमें सुधार आया। उसकी सद्बुद्धि जाग्रत् हुई। वह चोरी आदि अनैतिक कार्योंसे विमुख हो गया। पर चाण्डालके मनमें पुनः चोरी करनेका भाव जाग्रत् होता था। इसने अपने मित्र ब्राह्मणको अपनी इच्छासे अवगत कराया, पर ब्राह्मणने स्पष्टरूपसे मना कर दिया तथा कहा कि अबतक मैंने जो चोरी आदि दुष्कृत किये हैं, उसका मुझे पश्चात्ताप है, उसके लिये मैं प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ। इस कार्यमें मैं तुम्हारा साथ नहीं दे सकता, मुझे अपना उद्धार करना है। ब्राह्मण देवताकी बात सुनकर चाण्डालकी बुद्धि भी सुधर गयी। उसने कहा—मैं इस कार्यमें भी तुम्हारा साथ दूँगा। काशीकी पञ्चकोशी परिक्रमामें स्थित एक मन्दिरके निकट वे दोनों व्यक्ति गये। अपने पाप-कर्मोंसे दोनोंका इतना पतन हो चुका था कि वे मन्दिरमें प्रवेश करनेके अधिकारी नहीं रह गये थे। अनन्तर ब्राह्मण प्रातःसे रात्रिपर्यन्त कठिन तपस्या, पूजा-अर्चा, व्रत तथा उपासनाके द्वारा अपना समय व्यतीत करने लगा और वह चाण्डाल भी नित्यकी पूजामें केवल देवालयके शिखरका दर्शन कर उसे प्रणाम करता तथा देवालयकी सेवा, झाड़ू-बुहारू कर देता था। इसके साथ ही एकादशीको निर्जल व्रत रहता था। मरनेके बाद उस ब्राह्मण तथा उस शूद्रकी समान गति हुई। इस कथासे यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—ये सभी समानरूपसे कल्याणके अधिकारी हैं। परंतु इन्हें कर्म करनेका अधिकार अपने वर्णाश्रमानुसार भिन्न-भिन्न है।

५-'परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।'

६-एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्। एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजमें धर्मकी स्थापना और रक्षाके लिये तथा समाज एवं जीवनको सुखी बनाये रखनेके लिये, जहाँ समाजकी जीवन-पद्धतिमें कोई बाधा उपस्थित हो, वहाँ प्रयत्नके द्वारा उस बाधाको दूर करनेके लिये, कर्मप्रवाहके भँवरको मिटानेके लिये, उलझनोंको सुलझानेके लिये और धर्मसंकट उपस्थित होनेपर समुचित व्यवस्था देनेके लिये परिष्कृत और निर्मल मस्तिष्ककी आवश्यकता है। धर्मकी और धर्ममें स्थित समाजकी भौतिक आक्रमणोंसे रक्षा करनेके लिये बाहुबलकी आवश्यकता है। मस्तिष्क और बाहुका यथायोग्य रीतिसे पोषण करनेके लिये धनकी तथा अन्नकी आवश्यकता है और उपर्युक्त कर्मोंको यथायोग्य सम्पन्न करानेके लिये शारीरिक परिश्रमकी आवश्यकता है।

इसलिये समाज-शरीरका मस्तिष्क ब्राह्मण है, बाहु क्षत्रिय है, ऊरु वैश्य है और चरण शूद्र है। चारों एक ही समाज-शरीरके चार आवश्यक अङ्ग हैं और एक दूसरेकी सहायतापर सुरक्षित और जीवित हैं। घृणा और अपमानकी तो बात ही क्या है, इनमेंसे किसीकी तनिक भी अवहेलना नहीं की जा सकती। न इनमें नीच-ऊँचकी कल्पना है। अपने-अपने स्थान और कार्यके अनुसार चारों ही बड़े हैं। ब्राह्मण ज्ञानबलसे, क्षत्रिय बाहुबलसे, वैश्य धनबलसे और शूद्र जनबल या श्रमबलसे बड़ा है तथा चारोंकी ही पूर्ण उपयोगिता है। इनकी उत्पत्ति भी एक ही भगवान्‌के शरीरसे हुई है—ब्राह्मणकी उत्पत्ति भगवान्‌के श्रीमुखसे, क्षत्रियकी बाहुसे, वैश्यकी ऊरुसे और शूद्रकी श्रीचरणोंसे हुई है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोअजायत॥

(ऋग्वेद १०।९०।१२)

परंतु इनका यह अपना-अपना बल न तो स्वार्थसिद्धिके लिये है और न किसी दूसरेको दबाकर स्वयं ऊँचा बननेके लिये ही है। समाज-शरीरके आवश्यक अङ्गोंके रूपमें इनका योग्यतानुसार कर्म-विभाग है। और यह केवल धर्म-पालनकी प्रेरणाके लिये। ऊँच-नीचका भाव न होकर यथायोग्य कर्मविभाग होनेके कारण ही चारों वर्णोंमें एक शक्ति-सामञ्जस्य रहता है। कोई भी किसीकी न अवहेलना कर सकता है, न किसीके न्याय्य अधिकारपर आघात कर सकता है। इस कर्म-विभाग और कर्माधिकारके सुदृढ़ आधारपर रचित यह वर्णधर्म ऐसा सुव्यवस्थित है कि इसमें शक्ति-सामञ्जस्य अपने-आप ही रहता है। स्वयं भगवान्‌ने और धर्मनिर्माता ऋषियोंने प्रत्येक वर्णके कर्मोंका अलग-अलग स्पष्ट निर्देश करके तो सबको अपने-अपने धर्मका निर्विघ्न पालन करनेके लिये और भी सुविधा कर दी है एवं स्वकर्मका पूरा पालन होनेसे शक्ति-सामञ्जस्यमें कभी बाधा आ ही नहीं सकती।

ऋषिसेवित वर्णधर्ममें ब्राह्मणका पद सबसे ऊँचा है, वह समाजके धर्मका निर्माता है, उसीकी बनायी हुई विधिको सर्व मानते हैं। वह सबका गुरु और पथप्रदर्शक है, परंतु वह धन-संग्रह नहीं करता, न दण्ड ही देता है, न भोग-विलासमें ही रुचि रखता है। दिन-रात तपस्या, धर्मपालन और ज्ञानार्जन-में लगा रहता है तथा अपने शम, दम, तितिक्षा, क्षमा आदिसे समन्वित महान् तपोबलके प्रभावसे दुर्लभ ज्ञाननेत्र प्राप्त करता है एवं उस ज्ञानकी दिव्य ज्योतिसे सत्यका दर्शन कर उस सत्यको बिना किसी स्वार्थके सदाचारपरायण, साधुस्वभाव पुरुषोंके द्वारा समाजमें वितरण कर देता है। बदलेमें कुछ भी चाहता नहीं। समाज अपनी इच्छासे जो दे देता या भिक्षासे जो कुछ मिल जाता है, उसीपर वह बड़ी सादगीसे अपनी जीवनयात्रा चलाता है। उसके जीवनका यही धर्ममय आदर्श है।

क्षत्रिय सबपर शासन करता है। अपराधीको दण्ड और सदाचारीको पुरस्कार देता है। दण्डबलसे दुष्टोंको सिर नहीं उठाने देता और धर्मकी तथा समाजकी दुराचारियों, चोरों डाकुओं एवं शत्रुओंसे रक्षा करता है। क्षत्रिय दण्ड देता है परंतु कानूनकी रचना स्वयं नहीं करता। ब्राह्मणके बनाये हुए कानूनके अनुसार ही वह आचरण करता है। ब्राह्मणरचित कानूनके अनुसार ही वह प्रजासे कर वसूल करता है और उसे कानूनके अनुसार प्रजाहितके लिये व्यवस्थापूर्वक उसे व्यय कर देता है। कानूनकी रचना ब्राह्मण करता है और धनका भंडार वैश्यके पास है। क्षत्रिय तो केवल विधिके अनुसार व्यवस्थापक और संरक्षकमात्र है।

धनका मूल वाणिज्य, पशु और अन्न सब वैश्यके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथमें है। वैश्य धन उपार्जन करता है और उसे बढ़ाता है, किंतु अपने लिये नहीं। वह ब्राह्मणके ज्ञान और क्षत्रियके बलसे संरक्षित होकर धनको सब वर्णोंके हितमें उसी विधानके अनुसार व्यय करता है। न शासनपर उसका कोई अधिकार है और न उसे उसकी आवश्यकता ही है, क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रिय उसके वाणिज्यमें कभी कोई हस्तक्षेप नहीं करते, स्वार्थवश उसका धन कभी नहीं लेते, वरं उसकी रक्षा करते है और ज्ञानबल तथा बाहुबलसे ऐसी सुव्यवस्था करते हैं कि जिससे वह अपना व्यापार सुचारुरूपसे निर्विघ्न चला सकता है। इससे उसके मनमें कोई असंतोष नहीं है, वह प्रसन्नताके साथ क्षत्रियका प्राधान्य मानकर चलता है एवं मानना आवश्यक भी समझता है; क्योंकि इसीमें उसका हित है। वह प्रसन्नतासे राजाको कर देता है, ब्राह्मणकी सेवा करता है और विधिवत् आदरपूर्वक शूद्रको भरपूर अन्न-वस्त्रादि देता है।

शूद्रमें शारीरिक शक्ति प्रबल है, परंतु मानसिक शक्ति सामान्य है। अतएव शारीरिक श्रम ही उसके हिस्सेमें रखा गया है और समाजके लिये शारीरिक शक्तिकी बड़ी आवश्यकता भी है। परंतु इसकी शारीरिक शक्तिका मूल्य किसीसे कम नहीं है। श्रमबलके ऊपर ही तीनों वर्णोंकी प्रतिष्ठा है। यही आधार है। पैरके बलपर ही शरीर चलता है। अतएव तीनों वर्ण शूद्रको अपना प्रिय अङ्ग मानते हैं। उसके श्रमके बदलेमें वैश्य प्रचुर धन देता है, क्षत्रिय उसके धन-जनकी रक्षा करता है और ब्राह्मण उसे धर्मका, भगवत्प्राप्तिका मार्ग दिखाता है। न तो स्वार्थ-सिद्धिके लिये कोई वर्ण शूद्रकी वृत्ति हरण करता है, न स्वार्थवश उसे कम पारिश्रमिक देता है और न उसे अपनेसे नीचा मानकर किसी प्रकारका दुर्व्यवहार ही करता है। सब यही समझते हैं कि सब अपना-अपना स्वत्व ही पाते हैं, कोई किसीपर उपकार नहीं करता। परंतु सभी एक-दूसरेकी सहायता करते हैं और सब अपनी उन्नतिके साथ उसकी उन्नति करते हैं। उसकी उन्नतिमें अपनी उन्नति और अवनतिमें अपनी अवनति मानते हैं। ऐसी अवस्थामें श्रमबलयुक्त शूद्र संतुष्ट रहता है, चारोंमें कोई किसीसे ठगा नहीं जाता, कोई किसीसे अपमानित नहीं होता।

इस प्रकार गुण और कर्मके विभागसे ही वर्ण-विभाग बनता है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि मनमाने कर्मसे वर्ण बदल जाता है। वर्णका मूल जन्म है और कर्म उसके स्वरूपकी रक्षामें प्रधान कारण है। इस प्रकार जन्म और कर्म—दोनों ही वर्णमें आवश्यक हैं। केवल कर्मसे वर्णको माननेवाले वस्तुतः वर्णको मानते ही नहीं। वर्ण यदि कर्मपर ही माना जाय तब तो एक दिनमें एक ही मनुष्यको न मालूम कितनी बार वर्ण बदलना पड़ेगा। फिर तो समाजमें कोई शृङ्खला या नियम ही न रहेगा। सर्वथा अव्यवस्था फैल जायगी। परंतु भारतीय वर्णधर्ममें ऐसी बात नहीं है। यदि केवल कर्मसे वर्ण माना जाता तो युद्धके समय ब्राह्मणोचित कर्म करनेको तैयार हुए अर्जुनको गीतामें भगवान् क्षत्रिय-धर्मका उपदेश न करते। मनुष्यके पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार ही उसका विभिन्न वर्णोंमें जन्म हुआ करता है। जिसका जिस वर्णमें जन्म होता है, उसे उसी वर्णके निर्दिष्ट कर्मोंका आचरण करना चाहिये; क्योंकि वही उसका 'स्वधर्म' है और 'स्वधर्म'का पालन करते-करते मर जाना भगवान् श्रीकृष्णने कल्याणकारक बतलाया है—**'स्वधर्मे निधनं श्रेयः।'** साथ ही परधर्मको 'भयावह' भी बतलाया है। यह ठीक ही है; क्योंकि सब वर्णोंके स्वधर्मपालनसे ही सामाजिक शक्ति-सामञ्जस्य रहता है और तभी समाज-धर्मकी रक्षा एवं उन्नति होती है। स्वधर्मका त्याग और परधर्मका ग्रहण व्यक्ति और समाज दोनोंके लिये ही हानिकर है। अतः व्यवस्थित वर्णव्यवस्थाको मर्यादित रहने देना, उसका संरक्षण करना, तदनुसार चलना सबके लिये सर्वथा कल्याणकारक सिद्ध होगा।

क्षमाशील पुरुषोंमें एक ही दोषका आरोप होता है, दूसरेकी तो सम्भावना ही नहीं है, वह दोष यह है कि क्षमाशील मनुष्यको लोग असमर्थ समझ लेते हैं। किंतु क्षमाशील पुरुषका वह दोष नहीं मानना चाहिये, क्योंकि क्षमा बहुत बड़ा बल है। क्षमा असमर्थ मनुष्योंका गुण तथा समर्थोंका भूषण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रम-व्यवस्था

वर्ण-व्यवस्थाकी भाँति आश्रम-व्यवस्था भी भारतीय संस्कृति एवं हिंदूधर्मका एक प्रमुख अङ्ग है। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास—इन चार आश्रमोंमें प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्यकर्म उसके वर्णके साथ-साथ आश्रमपर भी निर्भर करता है।

प्रारम्भके पचीस वर्ष ब्रह्मचर्य-आश्रमके अन्तर्गत माने गये हैं। प्राचीन कालमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बालक पाँचसे पचीस वर्षकी अवस्थातक गुरुगृहमें ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। उस समय भूमिशयन, एक समय भिक्षान्न-भोजन, गुरुकी निष्कपट सेवा, वेदपाठ और अपरा विद्याकी प्राप्तिके साथ-साथ ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिके लिये चेष्टा—ये आवश्यक कर्तव्य थे। शूद्र बालक भी अपने अधिकारानुसार इस उच्च आदर्शका अनुकरण करते थे। परनारी और परपुरुषका स्पर्श तो क्या उनके प्रति दृष्टिपात करना यहाँतक कि उनका चिन्तन भी अपराध था। पचीस वर्षकी अवस्था प्राप्त होनेपर समावर्तन-संस्कारके बाद पाणिग्रहण-संस्कारके द्वारा वे गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते थे।

आश्रम-व्यवस्थामें गृहस्थाश्रमको एक महत्त्वपूर्ण आश्रम माना गया है, जो सभी आश्रमोंका आधार है। सम्पूर्ण जीवनकी जिम्मेदारियोंका निर्वाह इस आश्रममें ही होता है। युवावस्था प्राप्त होनेपर व्यक्तिमें एक विशेष शक्तिका संचार होना स्वाभाविक है। काल व्यतीत होते-होते शरीर और मस्तिष्कमें प्रौढ़ता आती है। इस प्रकार पचास वर्षकी अवस्थातक शास्त्रोंने उसे अधिकार दिया कि वह पितृऋणसे मुक्त होनेके लिये वंशवृद्धिके निमित्त संतान उत्पन्न करे तथा जीविकोपार्जन करता हुआ अपने परिवारका पालन-पोषण करे, समाज, देश और राष्ट्रकी सेवा करे। गृहस्थाश्रमके अनेक कर्तव्योंका वर्णन पुराणोंमें प्राप्त होते हैं। वास्तवमें सभी आश्रमोंका आधार गृहस्थाश्रम ही है।

पचास वर्षकी अवस्थातक व्यक्तिका मस्तिष्क प्रायः परिपक्व हो जाता है। इसके बाद अवस्था प्रायः ढलने लगती है। शरीर शिथिल होने लगता है। उसकी संतान भी तबतक युवावस्थाको प्राप्त हो जाती है। पारलौकिक चिन्तन तथा भगवदाराधनकी ओर उसकी प्रवृत्तियाँ विशेष रूपसे उन्मुख होने लगती हैं। इसलिये उसमें गृहस्थ-जीवनकी जिम्मेदारियोंसे मुक्त होनेकी भावना जाग्रत् होना स्वाभाविक है। अतः शास्त्रकारोंने पचास वर्षकी अवस्थासे पचहत्तर वर्षकी अवस्थाको वानप्रस्थ आश्रमकी संज्ञा दी है। इस आश्रममें गृहस्थाश्रमके सुखोंका त्याग करता हुआ व्यक्ति निवृत्तिमार्गकी ओर अग्रसर होता है। वह मुख्यरूपसे वनमें, एकान्तमें तथा तीर्थस्थलोंमें निवास करता हुआ निष्काम कर्म—भगवच्चिन्तन, आराधन एवं तपोमय जीवन व्यतीत करता है। तीर्थयात्रा, व्रत, व्रतोद्यापन, परोपकार, समाजसेवा तथा अन्य सभी पारमार्थिक कार्य इस आश्रममें सम्पन्न किये जा सकते हैं।

जीवनका अन्तिम आश्रम है संन्यास-आश्रम। सभी प्रकारके दायित्वोंसे संन्यास लेनेका विधान इस आश्रममें है। जीवन-निर्वाहमात्रके लिये जो कर्म करना आवश्यक हो, उसके अतिरिक्त वह सभी कर्मोंसे संन्यास ले लेता है तथा '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' की भावनासे ब्रह्मचिन्तनमें ही अपना समय व्यतीत करता है।

वर्णाश्रमधर्म पुनर्जन्म और कर्मवादके सिद्धान्तपर अवलम्बित है। इसका मुख्य सिद्धान्त है कि यह जड देह पाञ्चभौतिक और नश्वर है। देह आत्मा नहीं है, आत्मा अविनाशी है। एक परमात्मा ही अनेक रूप धारण करके लीला कर रहे हैं। जीव ही शिव है। वर्णाश्रमधर्मका अन्तिम लक्ष्य है शिवत्वकी प्राप्ति।

जीवके इस जन्मका प्रारब्धभोग सञ्चितकर्म—अदृष्टसे होता है। परंतु इसी जन्ममें शास्त्रानुसार आचरण करके अपने-अपने अधिकारके अनुसार निष्काम कर्म करते रहनेपर पाप-पुण्य दोनोंसे मुक्ति मिल जाती है। सञ्चितकर्मकी राशि श्रीभगवान्‌की उपासनाके द्वारा क्षय हो जाती है। अतएव श्रीभगवान्‌के नाम-रूपका आश्रय लेना पड़ता है। मनुष्य पहले स्थूल-बहिरङ्ग देवमूर्तिकी पूजा करके क्रमशः अन्तरङ्ग मनसे सूक्ष्म पूजाका अधिकारी होता है, उसके द्वारा क्रमशः उसमें पराभक्तिका उदय होता है।

'तुम मेरे हो, मैं तुम्हारा हूँ' यह द्वैत सिद्धान्त है। 'तुम और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं एक हूँ' इसकी उपलब्धि अद्वैतवादमें अभ्यस्त होनेपर स्वतः होती है। द्वैत-अद्वैतके परे पहुँचनेपर मुक्ति मिलती है।

जन्म-जन्मान्तरके चक्रसे उद्धार पाना मनुष्य-जीवनका परम और चरम लक्ष्य है। वर्णाश्रम इसीकी साधनाका पथ दिखलाता है।

पुराणोंमें चार आश्रमोंके धर्म और पालनीय नियम

ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चार आश्रम शास्त्रोंमें बताये गये हैं। इनके पालनीय नियमोंका विवरण नीचे संक्षेपमें दिया जा रहा है।

ब्रह्मचर्य

यथाशक्ति अध्ययन करते हुए ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करनेवाले पुरुषको चाहिये कि वह अपने धर्ममें तत्पर रहे, विद्वान् बने, सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने अधीन रखे, मुनिव्रतका पालन करे, गुरुका प्रिय और हित करनेमें लगा रहे, सत्य बोले तथा धर्मपरायण एवं पवित्र रहे। नित्य संध्या-वन्दन करे। नित्य स्नान करके देवता-ऋषियोंका तर्पण, देवताओंका पूजन तथा अग्न्याधान करे। मधु, मांस, सुगन्धित द्रव्य, माला, रस, स्त्री, सभी प्रकारके आसव तथा प्राणियोंकी हिंसा सर्वथा त्याग दे। शरीरमें उबटन (साबुन-तेल) आदि न लगाये, आँखोंमें सुरमा न डाले, जूता तथा छाताका व्यवहार न करे। काम, क्रोध और लोभ न करे। नाच-गान तथा वाद्यसे दूर रहे। जूआ, कलह, निन्दा, झूठ आदिसे बचे। स्त्रियोंकी ओर सकाम दृष्टिसे न देखे, किसीकी निन्दा न करे। सदा अकेला सोये। कभी वीर्यपात न करे। अनिच्छासे स्वप्नमें कहीं वीर्यपात हो जाय तो स्नानकर सूर्यका पूजन करके तीन बार **'पुनर्मा'** इस ऋचाका पाठ करे। भोजनके समय अन्नकी निन्दा न करे। भिक्षाके अन्नको हविष्य मानकर ग्रहण करे। गुरुकी आज्ञा लेकर एक बार भोजन करे। एक स्थानपर रहे, एक आसनसे बैठे और नियत समयमें भ्रमण करे। पवित्र और एकाग्रचित्त होकर दोनों समय अग्निमें हवन करे। सदा बेल या पलाशका दण्ड लिये रहे। रेशमी अथवा सूती वस्त्र या मृगचर्म धारण करे। ब्रह्मचारी मूँजकी मेखला पहने, जटा धारण करे, प्रतिदिन स्नान करे, यज्ञोपवीत पहने, वेदके स्वाध्यायमें लगा रहे तथा लोभहीन होकर नियमपूर्वक व्रतका पालन करे।

गार्हस्थ्य

गृहस्थ-आश्रम ही चारों आश्रमोंका आश्रयभूत तथा मूल है। इस संसारमें जो कोई भी विधि-निषेधरूप शास्त्र कहा गया है, उसमें पारंगत विद्वान् होना गृहस्थ द्विजोंके लिये उत्तम बात है। गृहस्थ पुरुषके लिये केवल अपनी ही स्त्रीपर प्रेम रखना, सदा सत्पुरुषोंके आचारका पालन करना और जितेन्द्रिय होना परमावश्यक है। इस आश्रममें उसे श्रद्धापूर्वक पञ्चमहायज्ञोंके द्वारा देवता आदिका यजन करना चाहिये। गृहस्थको उचित है कि वह देवता और अतिथिको भोजन करानेके बाद बचे हुए अन्नका स्वयं आहार करे। वेदोक्त कर्मोंके अनुष्ठानमें संलग्न रहे। अपने वर्ण-धर्मके अनुसार निर्दोष अर्थका उपार्जन करके गृहस्थधर्मका पालन करे तथा अपनी शक्तिके अनुसार प्रसन्नतापूर्वक यज्ञ करे और दान दे। गृहस्थको चाहिये कि हाथ, पैर, नेत्र, वाणी तथा शरीरके द्वारा होनेवाली चपलताका परित्याग करे अर्थात् इनके द्वारा कोई अनुचित कार्य न होने दे। यही सत्पुरुषोंका बर्ताव (शिष्टाचार) है। स्वच्छ वस्त्र पहने, उत्तम व्रतका पालन करे, शौच-संतोष आदि नियमों और सत्य-अहिंसा आदि यमोंके पालनपूर्वक यथाशक्ति लोकसेवा करता रहे। शिष्टाचारका पालन करते हुए जिह्वा और उपस्थको वशमें रखे। सबके साथ मित्रताका बर्ताव करे। स्वयं सादगीसे रहकर सबका सदा हित-साधन करे। जन्मसे लेकर अन्त्येष्टिपर्यन्त यथायोग्य यथाविधि सब संस्कार करे। शास्त्रका अनुसरण करे। माता-पिता-कुटुम्ब आदिका आदरपूर्वक भरण-पोषण करे।

वानप्रस्थ

वानप्रस्थी मुनि सब प्रकारके संस्कारोंद्वारा शुद्ध होकर ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए घरकी ममता त्याग कर गाँवसे बाहर निकलकर जनकोलाहलरहित शान्त स्थानमें निवास करे। प्रातः और सायंकालके समय स्नान करे। सदा वनमें ही रहे। गाँवमें फिर कभी प्रवेश न करे। अतिथिको आश्रय दे और समयपर उनका सत्कार करे। जंगली फल, मूल, पत्ता अथवा सावाँ खाकर जीवन-निर्वाह करे। बहते हुए जल, वायु आदि सब वनकी वस्तुओंका ही सेवन करे। अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतके अनुसार सदा सावधान रहकर क्रमशः उपयुक्त वस्तुओंका आहार करे। कभी आलस्य न करे। जो कुछ भोजन अपने पास उपस्थित हो, उसीमेंसे अतिथिको भिक्षा दे। नित्यप्रति पहले देवता और अतिथियोंको भोजन दे। उसके बाद मौन होकर स्वयं अन्न ग्रहण करे। हलका भोजन करे। मनमें किसीके साथ स्पर्धा न रखे, देवताओंका सहारा ले। इन्द्रियोंका संयम करे, सबके साथ मित्रताका बर्ताव करे। क्षमाशील बने और दाढ़ी-मूँछ तथा सिरके बालोंको धारण किये रहे। समयपर अग्निहोत्र और वेदोंका स्वाध्याय करे तथा सत्य-धर्मका पालन करे। शरीरको सदा पवित्र रखे। धर्म-पालनमें कुशलता प्राप्त करे। सदा वनमें रहकर चित्तको एकाग्र किये रहे। इस प्रकार उत्तम धर्मोंका पालन करनेवाला जितेन्द्रिय वानप्रस्थी स्वर्गपर विजय पाता है।

संन्यास

श्रेष्ठ संन्यासी नाम, गोत्र आदि तथा देश, काल, शास्त्रज्ञान, कुल, अवस्था, आचार, व्रत और शीलका विज्ञापन न करे। किसी भी स्त्रीसे बातचीत न करे। पहलेकी देखी हुई किसी भी स्त्रीका स्मरणतक न करे। उनकी चर्चासे भी दूर रहे तथा स्त्रियोंका चित्र भी न देखे। सम्भाषण, स्मरण, चर्चा और चित्रावलोकन— स्त्री-सम्बन्धी इन चार बातोंका जो मोहवश आचरण करता है, उसके चित्तमें अवश्य ही विकार उत्पन्न होता है और उस विकारसे उसका धर्म निश्चय ही नष्ट हो जाता है। तृष्णा, क्रोध, असत्य, माया, लोभ, मोह, प्रिय, अप्रिय, शिल्पकला, व्याख्यानमें योग देना, कामना, राग, संग्रह, अहंकार, ममता, चिकित्साका व्यवसाय, धर्मके लिये साहसका कार्य, प्रायश्चित्त, दूसरेके घरपर रहना, मन्त्र-प्रयोग, औषध-वितरण, विषदान, आशीर्वाद देना—ये सब संन्यासीके लिये निषिद्ध हैं।

संन्यासी स्वप्नमें भी कभी किसीका दिया हुआ दान न ले, दूसरेको भी न दिलाये और न स्वयं किसीको देने-लेनेके लिये ही प्रेरित करे। स्त्री, भाई, पुत्र आदि तथा अन्य बन्धु-बान्धवोंके शुभ या अशुभ समाचारको सुनकर या देखकर भी संन्यासी कभी कम्पित (विचलित) न हो, वह शोक और मोहको सर्वथा त्याग दे। अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (किसी वस्तुका संग्रह न करना) उद्दण्डताका अभाव, किसीके सामने दीन न बनना, स्वाभाविक प्रसन्नता, स्थिरता, सरलता, स्नेह न करना, गुरुकी सेवा करना, श्रद्धा, क्षमा, इन्द्रियसंयम, मनोनिग्रह, सबके प्रति उदासीनताका भाव, धीरता, स्वभावकी मधुरता, सहनशीलता, करुणा, लज्जा, ज्ञान-विज्ञान-परायणता, स्वल्प आहार तथा धारणा— ये मनको वशमें रखनेवाले संन्यासियोंके विख्यात सुधर्म हैं,। द्वन्द्वोंसे रहित, सत्त्वगुणमें सर्वदा स्थित और सबको समान दृष्टि रखनेवाला, तुरीयाश्रममें स्थित परमहंस संन्यासी साक्षात् नारायणका स्वरूप है।

संन्यासी गाँवमें एक रात रहे और बड़े नगरमें पाँच रात, किंतु यह नियम वर्षाके अतिरिक्त समयके लिये ही है, वर्षाके चार महीनेतक वह किसी एक ही स्थानपर निवास करे। यदि गाँवमें दो रात कभी न रहे। यदि रहता है तो उसके अन्तःकरणमें राग आदिका प्रसङ्ग आ सकता है, इससे वह नरकगामी होता है। गाँवके एक किनारे किसी निर्जन प्रदेशमें मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए निवास करे। कहीं भी अपने लिये मठ या आश्रम न बनाये। जैसे कीड़े सदा घूमते रहते हैं, उसी प्रकार आठ महीनोंतक संन्यासी इस पृथ्वीपर विचरता रहे। केवल वर्षाके चार महीनोंमें वह किसी एक स्थानपर जो पवित्र जलसे घिरा हुआ और एकान्त-सा हो निवास करे। संन्यासी सम्पूर्ण भूतोंको अपने ही समान देखता हुआ अन्धे, जड, बहरे, गूँगे और पागलकी तरह चेष्टा रखता हुआ पृथ्वीपर विचरण करे।

अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सत्य, सरलता, क्रोधका अभाव, दोषदृष्टिका त्याग, इन्द्रियसंयम और चुगली न करना—इन आठ व्रतोंका सदा सावधानीके साथ पालन करे। इन्द्रियोंको वशमें रखे। पाप, शठता और कुटिलतासे सदा रहित होकर बर्ताव करे। खानेके लिये अन्न और शरीर ढँकनेके लिये वस्त्रके अतिरिक्त और किसी वस्तुका संग्रह न करे।

बुद्धिमान् संन्यासीको चाहिये कि न तो दूसरोंके लिये भिक्षा माँगे तथा न सब प्राणियोंके लिये दयाभाव संविभागपूर्वक कभी कुछ देनेकी इच्छा ही करे। दूसरेके अधिकारका अपहरण न करे। काम, क्रोध, घमंड, लोभ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोह आदि जितने भी दोष हैं, उन सबका परित्याग करके संन्यासी सब ओरसे ममताको हटा ले। अपने मनमें राग और द्वेषको स्थान न दे। मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझे। प्राणियोंकी हिंसासे सर्वथा दूर रहे तथा सब ओरसे निःस्पृह होकर मुनिवृत्तिसे रहे। सबके साथ अमृतके समान मधुर बर्ताव करे, पर कहीं भी आसक्त न हो और किसी भी प्राणीके साथ परिचय न बढ़ावे। जितने भी कामना और हिंसासे युक्त कर्म हैं, उन सबका एवं लौकिक कर्मोंका न स्वयं अनुष्ठान करे और न दूसरोंसे कराये। सब प्रकारके पदार्थोंकी आसक्तिका त्याग करके थोड़ेमें संतुष्ट हो सर्वत्र विचरता रहे। स्थावर और जङ्गम सभी प्राणियोंके प्रति समान भाव रखे। किसी दूसरे प्राणीको उद्वेगमें न डाले और स्वयं भी किसीसे उद्विग्न न हो। संन्यासीको उचित है कि भविष्यके लिये विचार न करे, बीती हुई घटनाका चिन्तन न करे और वर्तमानकी भी उपेक्षा कर दे।

नेत्रसे, मनसे और वाणीसे कहीं भी दोषदृष्टि न करे। सबके सामने और दूसरोंकी आँख बचाकर कोई बुरा काम न करे। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको सब ओरसे समेट लेता है, उसी प्रकार इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे हटा ले।

मान-अपमानमें समान-भावसे रहे। छहों ऊर्मियोंसे प्रभावित न हो। निन्दा, अहंकार, मत्सर (डाह) गर्व, दम्भ, ईर्ष्या, असूया (दोषदृष्टि), इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि छोड़कर अपने शरीरको मुर्देके समान मानकर आत्मासे अतिरिक्त दूसरी किसी भी वस्तुको बाहर-भीतर न स्वीकार करते हुए, न तो किसीके सामने मस्तक झुकाये न यज्ञ और श्राद्ध करे, न किसीकी निन्दा या स्तुति करे। अकेला ही स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करता रहे। दैवेच्छासे भोजन आदिके लिये जो कुछ भी मिल जाय, उसीपर संतुष्ट रहे। न किसीका आवाहन करे न विसर्जन। न मन्त्रका प्रयोग करे, न उसकी व्याख्या करे। कोई उसका अपना घर या आश्रम न हो। जनशून्य भवन, वृक्षकी जड़, देवालय, घास-फूसकी कुटिया, अग्निहोत्रशाला, नदीतट, पुलिन (कछार) भूगृह, (गुफा) पर्वतीय गुफा, झरनेके समीप, चबूतरे या वेदीपर अथवा वनमें रहे। जो संन्यासी निष्काम, निर्गुण, शान्त, अनासक्त, निराश्रय, आत्मपरायण और तत्त्वका ज्ञाता होता है, वह मुक्त हो जाता है—इसमें कोई संदेह नहीं है।

व्रतोपवास

पुराणोंमें मनुष्योंके कल्याणके लिये यज्ञ, तपस्या, तीर्थसेवन, दान आदि अनेक साधन बताये गये हैं। उनमेंसे एक साधन व्रतोपवास भी है। इसकी बड़ी महिमा है। अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये व्रतोपवास आवश्यक है। इससे बुद्धि, विचार और ज्ञान-तन्तु विकसित होते हैं। शरीरके अन्तस्तलमें परमात्माके प्रति भक्ति, श्रद्धा और तल्लीनताका संचार होता है। पारमार्थिक लाभके साथ-साथ व्रतोपवाससे लौकिक लाभ भी होते हैं। व्यापार, व्यवसाय, कला-कौशल, शास्त्रानुसंधान और उत्साहपूर्वक व्यवहार-कुशलताका सफल सम्पादन किये जानेमें मन निगृहीत रहता है, जिससे सुखमय दीर्घजीवनके आरोग्य-साधनोंका स्वतः संचय हो जाता है।

यद्यपि रोग भी पाप हैं और ऐसे पाप व्रतोंसे दूर होते ही हैं, तथापि कायिक, वाचिक, मानसिक और सांसर्गिक पाप, उपपाप, महापापादि भी व्रतोपवाससे दूर होते हैं। उनके समूल नाशका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि व्रतारम्भके पूर्व पापयुक्त प्राणियोंका मुख हतप्रभ रहता है और व्रतकी समाप्ति होते ही वह सूर्योदयके कमलकी भाँति खिल उठता है। पुण्य-प्राप्तिके लिये किसी पुण्यतिथिमें उपवास करने या किसी उपवासके कर्मानुष्ठानद्वारा पुण्य संचय करनेके सङ्कल्पको व्रत कहा जाता है। यम-नियम और शम-दम आदिका पालन, भोजन आदिका परित्याग अथवा जल-फल आदिपर रहना तथा समस्त भोगोंका त्याग करना—ये सब व्रतके अन्तर्गत समाहित होते हैं। शास्त्रोक्त नियम ही व्रत कहे जाते हैं। व्रतीको शारीरिक संताप सहन करना पड़ता है, इसीलिये इसे तप भी कहा जाता है। इन्द्रिय-निग्रहको दम और मनोनिग्रहको शम कहा गया है। व्रतमें इन्द्रियोंका नियमन (संयम) करना होता है, इसलिये इसे नियम भी कहते हैं। जो द्विजातिगण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधिपूर्वक अग्निहोत्र, सोमयज्ञ, हविर्यज्ञ तथा पाकयज्ञादिके अनुष्ठानमें असमर्थ हैं, उनके लिये व्रत, उपवास और नियमोंका पालन करना ही परम कल्याणकारी है। इनके पालनसे देवगण व्रतीपर प्रसन्न होकर उसे भोग तथा मोक्ष सब कुछ प्रदान कर देते हैं। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रिय-संयम, देवपूजा, हवन, संतोष और चोरीका अभाव—इन नियमोंका पालन सामान्यतः सभी व्रतोंमें आवश्यक माना गया है—

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
देवपूजाग्निहरणं संतोषोऽस्तेयमेव च॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः।

(अग्नि० १७५। १०-११)

सभी पापोंसे उपावृत (निवृत्त) होकर सब प्रकारके भोगोंका त्याग करते हुए सद्गुणोंके साथ वास करना ही उपवास कहलाता है। उपवास करनेवाले व्रतीको स्नान आदि क्रियासे शुद्ध होकर देव, गुरु, ब्राह्मण, साधु, गौकी पूजा, सत्सङ्ग-सेवन, भगवत्कथा-श्रवण तथा दान-पुण्य आदिके कार्य अवश्य करने चाहिये।

जल, फल, मूल, दधि, हवि, ब्राह्मणकी इच्छा, ओषधि और गुरु (पूज्यजनों)के वचन—इन आठसे व्रत नहीं बिगड़ते। होमावशिष्ट खीर, भिक्षान्न, सत्तू, कण (गोरैड़ या तृणपुष्प) यावक (जौ), शाक, गोदुग्ध, दही, घी, मूल, आम, अनार, नारंगी और कदलीफल आदि खानेयोग्य हविष्य हैं।

व्रतीको तामसी वस्तुओंके सेवन, स्त्री-सम्पर्क तथा अलङ्करण एवं शृंगारके साधनोंसे सर्वथा दूर रहना चाहिये। बार-बार जल पीने, दिनमें शयन करने तथा मैथुनादि-सहवाससे व्रत दूषित हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जैसे भी हो पवित्र रहते हुए अपने संकल्पित व्रतका अनुष्ठान करता रहे, इसीमें परम कल्याण है।

व्रतके अधिकारी

जो अपने वर्णाश्रमके आचार-विचारमें रत रहते हों, निष्कपट, निर्लोभी, सत्यवादी, सम्पूर्ण प्राणियोंका हित चाहनेवाले, वेदके अनुयायी, बुद्धिमान् तथा पहलेसे निश्चय करके यथावत् कर्म करनेवाले हों—ऐसे गुणोंसे सम्पन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, स्त्री-पुरुष सभी व्रताधिकारी है।[१] केवल सौभाग्यवती पतिव्रता स्त्रियोंके लिये यह कहा गया है कि वे पतिकी आज्ञासे व्रतकी दीक्षा लें।

व्रतोंके अनेक भेदोपभेद हैं, जिन्हें मुख्यतः नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य—इन श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है। प्रायः सभी व्रतोंके आरम्भ करनेसे पूर्व भगवान्‌की पूजापूर्वक व्रतमें संकल्पित होनेके लिये आज्ञा ली जाती है तथा मानस-पूजा-युक्त प्रार्थना की जाती है। जिसे यहाँपर संक्षेपमें दिया जा रहा है। स्नानादि तथा पञ्चगव्यादिके प्राशनसे पवित्र तथा शुद्ध होकर तत्तद्व्रतोंके यथेष्ट समयोंमें—शुभ मुहूर्तमें व्रतके स्वामी देवतासे इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

'हे व्रतपते! मैं कीर्ति, संतान, विद्या आदि सौभाग्य, आरोग्य, अभिवृद्धि, निर्मलता तथा भोग एवं मोक्षके लिये इस व्रतका अनुष्ठान करता हूँ। यह श्रेष्ठ व्रत मैंने आपके समक्ष ग्रहण किया है। जगत्पते! आपके प्रसादसे इसमें निर्विघ्न सिद्धि प्राप्त हो। संतोंके पालक! इस श्रेष्ठ व्रतको ग्रहण करनेके पश्चात् यदि इसकी पूर्तिके हुए बिना ही मेरी मृत्यु हो जाय तो भी आपके प्रसन्न होनेसे वह अवश्य ही पूर्ण हो जाय। केशव! आप व्रतस्वरूप हैं, संसारकी उत्पत्तिके स्थान एवं जगत्‌को कल्याण प्रदान करनेवाले हैं, मैं सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये इस स्थानमें आपका आवाहन करता हूँ, आप मेरे समीप उपस्थित हों। मनके द्वारा प्रस्तुत किये हुए पञ्चगव्य, पञ्चामृत तथा उत्तम जलके द्वारा मैं भक्तिपूर्वक आपको स्नान कराता हूँ। आप मेरे पापोंके नाशक हों। अर्घ्यपते! गन्ध, पुष्प और जलसे युक्त उत्तम अर्घ्य एवं पाद्य ग्रहण कीजिये। आचमन कीजिये तथा मुझे सदा सम्मानके योग्य बनाइये। व्रतोंके स्वामिन्! यह पवित्र वस्त्र ग्रहण कीजिये और मुझे सदा सुन्दर वस्त्र एवं आभूषणों आदिसे आच्छादित किये रहिये।

१- निजवर्णाश्रमाचारनिरतः शुद्धमानसः। अलुब्धः सत्यवादी च सर्वभूतहिते रतः॥
पूर्वं निश्चयमाश्रित्य यथावत्कर्मकारकः। अवेदनिन्दको धीमानधिकारी व्रतादिषु॥
(स्कन्दपुराण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गन्धस्वरूप परमात्मन्! यह परम निर्मल उत्तम सुगन्धसे युक्त चन्दन लीजिये तथा मुझे पापकी दुर्गन्धसे रहित और पुण्यकी सुगन्धसे युक्त कीजिये। भगवन्! यह पुष्प लीजिये और मुझे सदा फल-फूल आदिसे परिपूर्ण बनाइये। यह फूलकी निर्मल सुगन्ध आयु तथा आरोग्यकी वृद्धि करनेवाली हो। संतोंके स्वामिन्! गुग्गुल और घी मिलाये हुए इस दशाङ्ग-धूपको ग्रहण कीजिये। धूपद्वारा पूजित परमेश्वर! आप मुझे उत्तम धूपकी सुगन्धसे सम्पन्न कीजिये। दीपस्वरूप देव! सबको प्रकाशित करनेवाले इस प्रकाशपूर्ण दीपको जिसकी शिखा ऊपरकी ओर उठ रही है, ग्रहण कीजिये और मुझे भी प्रकाशयुक्त एवं ऊर्ध्वगति (उन्नतिशील एवं ऊपरके लोकोंमें जानेवाला) बनाइये। अन्नादि उत्तम वस्तुओंके अधीश्वर! इस अन्न आदि नैवेद्यको ग्रहण कीजिये और मुझे ऐसा बनाइये जिससे मैं अन्न आदि वैभवसे सम्पन्न, अन्नदाता एवं सर्वस्व-दान करनेवाला हो सकूँ। प्रभो! व्रतके द्वारा आराध्यदेव! मैंने मन्त्र, विधि तथा भक्तिके बिना ही जो आपका पूजन किया है, वह आपकी कृपासे परिपूर्ण सफल हो जाय। आप मुझे धर्म, धन, सौभाग्य, गुण, संतति, कीर्ति, विद्या, आयु एवं मोक्ष प्रदान करें। व्रतपते! प्रभो! आप इस समय मेरे द्वारा की हुई इस पूजाको स्वीकार करके पुनः यहाँ पधारने और वरदान देनेके लिये अपने स्थानको जायँ (अग्नि० ७५। ४४—५८)।

इस प्रकार भगवदाज्ञा प्राप्तकर व्रतमें संकल्पित होना चाहिये। सामान्यतः कोई विशेष व्रतोपवास प्रारम्भ करना हो तो उसे शुभ मुहूर्तमें, शुभ समयमें प्रारम्भ करना चाहिये। व्रतकी कुछ सामान्य विधियाँ भी हैं, जिनका उपयोग विशेष व्रतोंमें किया जाना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि व्रतके आरम्भमें क्षौरादिकृत्य एवं स्नानादिसे निवृत्त होकर श्रीगणपति, मातृका और पञ्चदेव (गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव, दुर्गा) आदिका पूजन करके व्रतदेवताकी सुवर्णमयी मूर्ति बनाकर उसे कलश आदिपर प्रतिष्ठित करे फिर पञ्चोपचार, दशोपचार या षोडशोपचारसे पूजन करे। जिस मास, पक्ष, तिथि, वार और नक्षत्र आदिमें व्रत हो, उसका अधिष्ठाता उस व्रतका उपास्य देवता होता है।

उपर्युक्त प्रकारसे (जितनी अवधिका व्रत हो उस अवधितक) यथाविधि व्रत करके उसके पूर्ण हो जानेपर उद्यापन करना चाहिये। व्रतीको इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि व्रतारम्भके बाद यदि क्रोध, लोभ, मोह या आलस्यवश उसे अधूरा छोड़ दे तो तीन दिन अन्नका त्याग कर पुनः व्रतारम्भ करे[२]।' व्रतमें तथा तीर्थयात्रा और श्राद्धमें दूसरेका अन्न लेनेसे जिसका अन्न होता है उसीको उसका पुण्य प्राप्त हो जाता है।

आपत्तिमें अथवा अशक्यताकी स्थितिमें व्रतादि धर्मकार्य स्वयं न कर सके तो पति, पत्नी, पुत्र, पुरोहित, भाई या मित्रसे प्रतिनिधिके रूपमें कराया जा सकता है। उपर्युक्त प्रतिनिधि प्राप्त न हों तो यह कार्य ब्राह्मणद्वारा भी सम्पन्न हो सकता है।

व्रतोंके अनेक भेद हैं, तथापि मुख्यरूपसे इन्हें कायिक, वाचिक, मानसिक, नित्य, नैमित्तिक, काम्य, एकभुक्त, अयाचित, मितभुक्, चान्द्रायण और प्राजापत्यके रूपमें समझा जा सकता है।

शस्त्राघात, मर्माघात और कार्यहानि आदिजनित हिंसाके त्यागसे कायिक, सत्य बोलने और प्राणिमात्रमें निर्वैर रहनेसे वाचिक तथा मनको शान्त रखनेकी दृढ़तासे मानसिक व्रत होता है।

पुण्य-संचयके एकादशी आदि नित्य-व्रत, पापक्षयके चान्द्रायणादि नैमित्तिक व्रत और सुख-सौभाग्यादिके 'वट-सावित्री' आदि काम्यव्रत कहे गये हैं। इनमें द्रव्यविशेषके भोजन और पूजनादिकी साधनाके द्वारा साध्यव्रत 'प्रवृत्तिरूप' होते हैं और केवल उपवासादि करनेके द्वारा साध्यव्रत 'निवृत्तिरूप' हैं।

एकभुक्तव्रतके स्वतन्त्र, अन्याङ्ग और प्रतिनिधि—ये तीन भेद हैं। दिनार्ध व्यतीत होनेपर स्वतन्त्र 'एकभुक्त' होता है। मध्याह्नमें 'अन्याङ्ग' किया जाता है और 'प्रतिनिधि' आगे-पीछे भी हो सकता है।

'नक्तव्रत' रातमें किया जाता है, उसमें यह विशेषता है कि गृहस्थ रात्रि होनेपर उस व्रतको करे और संन्यासी तथा विधवा सूर्य रहते हुए करे।

२-क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि। दिनत्रयं न भुञ्जीत शिरसो मुण्डनं भवेत्॥ (ग० पु० आ० १२८। १९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अयाचित' व्रतमें बिना माँगे जो कुछ मिले उसीको निषेधकाल बचाकर दिन या रातमें जब अवसर हो तभी (केवल एक बार) भोजन करे और 'मिभुक्'में प्रतिदिन दस ग्रास (या एक नियत प्रमाणका) भोजन करे। अयाचित और मितभुक् दोनों व्रत परमसिद्धि देनेवाले हैं।

चन्द्रकी प्रसन्नता, चन्द्रलोककी प्राप्ति अथवा पापादिकी निवृत्तिके लिये 'चान्द्रायण' व्रत किया जाता है। यह चन्द्रकलाके समान बढ़ता और घटता है। जैसे अमावास्याके पीछेकी शुक्ल प्रतिपदाको १, द्वितीयाको २, तृतीयाको ३, इस क्रमसे बढ़ाकर पूर्णिमाको १५ ग्रास भोजन करे। फिर पूर्णिमाके पीछेकी कृष्ण प्रतिपदाको १४, द्वितीयाको १३, तृतीयाको १२, उत्क्रमसे घटाकर चतुर्दशीको १ और अमावास्याको निराहार रहनेसे एक चान्द्रायण होता है। यह 'यवमध्य' कहा जाता है। इसका दूसरा प्रकार इस प्रकार है—अमावास्याके पीछेकी शुक्ल प्रतिपदाको १४, द्वितीयाको १३ और तृतीयाको १२ के उत्क्रमसे घटाकर पूर्णिमाको १ और पूर्णिमाके पीछेकी कृष्ण-प्रतिपदाको १, द्वितीयाको २ और तृतीयाको ३के क्रमसे बढ़ाकर अमाके पहलेकी चतुर्दशीको १४ ग्रास भोजन करे और अमाको निराहार रहे। यह चान्द्रायण है। इसको 'पिपीलिकातनु' कहते हैं।

प्राजापत्य-व्रत १२ दिनोंमें होता है। इसमें व्रतारम्भके पहले ३ दिनोंमें प्रतिदिन २२ ग्रास भोजन करे फिर ३ दिनतक प्रतिदिन २६ ग्रास भोजन करे। उसके बाद ३ दिन आपाचित (पूर्ण पकाया हुआ) अन्न २४ ग्रास भोजन करे और फिर ३ दिन सर्वथा निराहार रहे। इस प्रकार १२ दिनमें एक प्राजापत्य होता है। ग्रासका प्रमाण है जितना मुँहमें आ सके।

उपर्युक्त व्रत मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, समय और देवपूजासे सम्बन्ध रखते हैं। यथा-वैशाख, भाद्रपद, कार्तिक और माघ आदि मासोंके 'मास'-व्रत; शुक्ल और कृष्णपक्षके 'पक्ष'-व्रत; प्रतिपद्, एकादशी, अमा और पूर्णिमा आदिके 'तिथि'-व्रत; सूर्य, सोम और भौमादिके 'वार'-व्रत; रोहिणी, अनुराधा और श्रवण आदिके 'नक्षत्र'-व्रत व्यतीपातादिके 'योग'-व्रत; भद्रा आदिके 'करण'-व्रत; गणेश, विष्णु आदि देवताओंके व्रत- 'देव'-व्रत कहलाते हैं।

यहाँपर प्रत्येक मासमें किये जानेवाले प्रधान-प्रधान व्रतोंकी एक तालिका दी गयी है। व्रतोंकी पूर्ण विधिके ज्ञानादिके लिये व्रतग्रन्थों तथा पुराणों और पूजापद्धतियोंको देखना चाहिये।

१-चैत्र—संवत्सरप्रतिपदाव्रत, अरुन्धतीव्रत, सूर्यषष्ठी, रामनवमी, हनुमज्जयन्ती, अशून्यशयनव्रत, भर्तृद्वादशी।

२-वैशाख—अक्षयतृतीया, निम्बसप्तमी, गङ्गासप्तमी, परशुरामजयन्ती।

३-ज्येष्ठ—वटसावित्री, निर्जला एकादशी, गङ्गादशहरा।

४-आषाढ़—हरिशयनी एकादशी, स्कन्दषष्ठी, सूर्यसप्तमी, व्यासपूर्णिमा (गुरुपूर्णिमा)।

५-श्रावण—नागपञ्चमी, दूर्वाष्टमी, श्रावणी पूर्णिमा।

६-भाद्रपद—हरतालिका, गणेशचतुर्थी, ऋषिपञ्चमी, मुक्ताभरणसप्तमी, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, वामनद्वादशी, अनन्तचतुर्दशी, अगस्त्यव्रत।

७-आश्विन—उपाङ्गललिता, महालय, देवीनवरात्र, विजयादशमी, शरत्पूर्णिमा।

८-कार्तिक—करवाचौथ (कर्कचतुर्थी), धनत्रयोदशी, नरकचतुर्दशी, दीपावली, गोवर्द्धन (अन्नकूट), यमद्वितीया, वैकुण्ठचतुर्दशी, भीष्मपञ्चक-व्रत, हरिबोधिनी, कार्तिकी पूर्णिमा, मनोरथपूर्णिमा।

९-मार्गशीर्ष—कालभैरवाष्टमी, दत्तजयन्ती।

१०-पौष—भद्राष्टमी, मकरसंक्रान्ति।

११-माघ—वसन्तपञ्चमी, अचलासप्तमी, भीमाष्टमी।

१२-फाल्गुन—महाशिवरात्रि, होलिका आदि।

इन सभी व्रतोपवासोंमें व्यक्तिको सात्त्विकताका आश्रयण कर अपने त्रिविध तापोंको दूर करनेके लिये, अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये, विशेषतः भगवत्प्रीतिके लिये ही इनका अनुष्ठान करना चाहिये। इनके अनुष्ठानसे परम कल्याण होता है। बुद्धि निर्मल हो जाती है, विचारोंमें सत्त्वगुणका उद्रेक होता है, विवेकशक्ति प्राप्त होती है। सत्-असत्का निर्णय स्वतः होने लगता है और अन्तमें सन्मार्गमें प्रवृत्त होते हुए कर्ता या अनुष्ठाता लौकिक तथा पारलौकिक सुखोंको प्राप्त करता है। इसीलिये 'व्रतोपवासकी महिमा बताते हुए कहा गया है कि व्रतोपवासके अनुष्ठानसे पापोंका प्रशमन होता है, ईप्सित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलोंकी प्राप्ति होती है, देवताओंका आश्रयण प्राप्त होता है। व्रतीपर देवता अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और वे अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त करते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। जो व्यक्ति निर्दिष्ट विधिसे व्रतोपवासका अनुष्ठान करते हैं, वे संसारमें सभी दुःखोंसे रहित होते हैं और स्वर्गलोकमें ऐश्वर्यका भोग करते हुए देवताओंद्वारा सम्मान प्राप्त करते हैं।'

दान

मनुष्यके जीवनमें दानका अत्यधिक महत्त्व बतलाया गया है, यह एक प्रकारका नित्यकर्म है। मनुष्यको प्रतिदिन कुछ दान अवश्य करना चाहिये—

'श्रद्धया देयम्, ह्रिया देयम्, भिया देयम्'

दान चाहे श्रद्धासे दे अथवा लज्जासे दे या भयसे दे, परंतु दान किसी भी प्रकार अवश्य देना चाहिये। मानवजातिके लिये दान परम आवश्यक है। दानके बिना मानवकी उन्नति अवरुद्ध हो जाती है। इस प्रसङ्गमें एक कथा आती है—एक बार देवता, मनुष्य और असुर तीनोंकी उन्नति अवरुद्ध हो गयी। अतः वे सब पितामह प्रजापति ब्रह्माजीके पास गये और अपना दुःख दूर करनेके लिये उनकी प्रार्थना करने लगे। प्रजापति ब्रह्माने तीनोंको मात्र एक अक्षरका उपदेश दिया—'द'। स्वर्गमें भोगोंके बाहुल्यसे भोग ही देवलोकका सुख माना गया है, अतः देवगण कभी वृद्ध न होकर सदा इन्द्रिय-भोग भोगनेमें लगे रहते हैं। उनकी इस अवस्थापर विचारकर प्रजापतिने देवताओंको 'द' के द्वारा दमन—इन्द्रिय-दमनका उपदेश दिया। ब्रह्माके इस उपदेशसे देवगण अपनेको कृतकृत्य मानकर उन्हें प्रणाम कर वहाँसे चले गये।

असुर स्वभावसे ही हिंसा-वृत्तिवाले होते हैं, क्रोध और हिंसा उनका नित्यका व्यापार है, अतएव प्रजापतिने उन्हें इस दुष्कर्मसे छुड़ानेके लिये 'द' के द्वारा जीवमात्रपर 'दया' करनेका उपदेश दिया। असुरगण ब्रह्माकी इस आज्ञाको शिरोधार्यकर वहाँसे चले गये।

मनुष्य, कर्मयोनि होनेके कारण, सदा लोभवश कर्म करने और अर्थसंग्रहमें ही लगे रहते हैं। इसलिये प्रजापतिने लोभी मनुष्योंको 'द' के द्वारा उनके कल्याणके लिये 'दान' करनेका उपदेश किया। मनुष्यगण भी प्रजापतिकी आज्ञाको स्वीकारकर सफल-मनोरथ होकर उन्हें प्रणामकर वहाँसे चले गये। अतः मानवको अपने अभ्युदयके लिये दान अवश्य करना चाहिये।

विभवो दानशक्तिश्च महतां तपसां फलम्।

विभव और दान देनेकी सामर्थ्य अर्थात् मानसिक उदारता—ये दोनों महान् तपके ही फल हैं। विभव होना तो सामान्य बात है। यह तो कहीं भी हो सकता है, पर उस विभवको दूसरोंके लिये देना यह मनकी उदारतापर ही निर्भर करता है, जो जन्म-जन्मान्तरके पुण्य-पुञ्जसे प्राप्त होता है।

महाराज युधिष्ठिरके समयकी एक घटना है—किन्हीं ब्राह्मण देवताके पिताका देहान्त हो गया। उनके मनमें यह भाव आया कि मैं अपने पिताका दाह-संस्कार चन्दनकी चितापर करूँ। पर उनके पास चन्दनकी लकड़ीका सर्वथा अभाव था। वे राजा युधिष्ठिरके पास गये और उन्होंने उनसे सारा वृत्तान्त बताकर पिताके दाह-संस्कारके निमित्त चन्दन-काष्ठकी याचना की। महाराज युधिष्ठिरके पास चन्दन-काष्ठकी कोई कमी नहीं थी तथा ऐसे समय वे उन ब्राह्मणको देना भी चाहते थे, परंतु उस समय अनवरत वर्षा होनेके कारण सम्पूर्ण काष्ठ भीग चुके थे। गीली लकड़ीसे दाह-संस्कार नहीं हो सकता था अतः उन्हें वहाँसे निराश लौटना पड़ा। इसके अनन्तर वे इसी कार्यके निमित्त राजा कर्णके पास पहुँचे। राजा कर्णके सामने भी ठीक वही परिस्थिति थी। अनवरत वर्षाके कारण सम्पूर्ण काष्ठ गीले हो चुके थे। परंतु ब्राह्मणको पितृ-दाहके लिये चन्दनकी सूखी लकड़ीकी आवश्यकता थी। कर्णने यह निर्णय लिया कि उनका राज्यसिंहासन चन्दनकी लकड़ीसे बना हुआ है, जो एकदम सूखा है। अतः उन्होंने कारीगरोंको बुलाकर सिंहासनसे काष्ठ निकालनेका तत्काल आदेश दे दिया और इस प्रकार उन ब्राह्मणके पिताका दाह-संस्कार चन्दनकी चितापर सम्पन्न हो सका। चन्दनके काष्ठका सिंहासन महाराज युधिष्ठिरके पास भी था, पर यह सामयिक ज्ञान और मनकी उदारता उन्हें प्राप्त न थी, जिसके कारण वे इस दानसे वञ्चित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रह गये और यह श्रेय कर्णको ही प्राप्त हो सका। इसीलिये कर्णको दानवीरकी उपाधि भी प्राप्त हुई।

शास्त्रोंमें दानके लिये स्थान, काल और पात्रका विस्तृत विचार किया गया है। दान किसी शुभ स्थानपर अर्थात् तीर्थ आदिमें शुभकालमें, अच्छे मुहूर्तमें सत्पात्रको देना चाहिये। यद्यपि यह विचार सर्वथा उचित है, परंतु अनवसरमें भी यदि अवसर प्राप्त हो जाय तो भी दानका अपना एक वैशिष्ट्य है—जिस पात्रको आवश्यकता है, जिस स्थानपर आवश्यकता है और जिस कालमें आवश्यकता है, उसी क्षण दान देनेका एक अपना विशेष महत्त्व है। विशेष आपत्तिकालमें तत्क्षण पीड़ित समुदायको अन्न, आवास, भूमि आदिकी जो सहायता प्रदान की जाती है,वह इसी कोटिका दान है। यह दान व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों प्रकारसे होता है। शास्त्रों तथा पुराणोंमें दानके विभिन्न स्वरूप वर्णित हैं—

(१) दैनिक जीवनमें जिस प्रकार व्यक्तिके द्वारा और सत्कर्म सम्पन्न होते हैं उसी प्रकार दान भी नित्य-नियमपूर्वक करना चाहिये। इस प्रकारके दानमें अन्न-दानका विशेष महत्त्व बताया गया है।

(२) विभिन्न पर्वोंपर तथा विशेष अवसरोंपर जो दान दिये जाते हैं उन्हें नैमित्तिक दान कहते हैं, शास्त्र-पुराणोंमें इसकी विस्तारपूर्वक व्यवस्था बतायी गयी है। जैसे सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहणके समय ताम्र अथवा रजतपात्रमें काले तिल, स्वर्ण तथा द्रव्यादिका दान। एकादशी, अमावास्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति तथा व्यतीपात आदि पुण्यकालमें विशेष रूपसे दानका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। इनमें अन्नदान, द्रव्यदान, स्वर्णदान, भूमिदान तथा गोदान आदिका विशेष महत्त्व है।

(३) वेद-पुराणोंमें कुछ ऐसे दानोंका भी वर्णन है, जो मनुष्यकी कामनाओंकी पूर्तिके लिये किये जाते हैं, जिनमें तुलादान, गोदान, भूमिदान, स्वर्णदान, घटदान आदि अष्ट, दश तथा षोडश महादान परिगणित हैं।—ये सभी प्रकारके दान काम्य होते हुए भी यदि निःस्वार्थभावसे भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त करनेके निमित्त भगवदर्पण-बुद्धिसे किये जायँ तो वे ब्रह्मसमाधिमें परिणत होकर भगवत्प्राप्ति करानेमें विशेष सहायक सिद्ध हो सकेंगे।

(४) कुछ दान बहुजनहिताय, बहुजनसुखायकी भावनासे सर्वसाधारणके हितमें करनेकी परम्परा है। देवालय, विद्यालय, औषधालय, भोजनालय (अन्नक्षेत्र), अनाथालय, गोशाला, धर्मशाला, कुएँ, बावड़ी, तालाब आदि सर्वजनोपयोगी स्थानोंका निर्माण आदि कार्य यदि न्यायोपार्जित द्रव्यसे बिना यशकी कामनासे भगवत्प्रीत्यर्थ किये जायँ तो परमकल्याणकारी सिद्ध होंगे।

सामान्यतः न्यायपूर्वक अर्जित किये हुए धनका दशमांश बुद्धिमान् मनुष्यको दान-कार्यमें ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये लगाना चाहिये।

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमतः।
कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च॥

(स्कन्दपुराण)

अन्यायपूर्वक अर्जित धनका दान करनेसे कोई पुण्य नहीं होता। यह बात **'न्यायोपार्जितवित्तस्य'** इस वचनसे स्पष्ट होती है। दान देनेका अभिमान तथा लेनेवालेपर किसी प्रकारके उपकारका भाव न उत्पन्न हो, इसके लिये इस श्लोकमें कर्तव्य पदका प्रयोग हुआ है। अर्थात् 'धनका इतना हिस्सा दान करना' यह मनुष्यका कर्तव्य है। मानवका मुख्य लक्ष्य है—ईश्वरकी प्रसन्नता प्राप्त करना। अतः दानरूप कर्तव्यका पालन करते हुए भगवत्प्रीतिको बनाये रखना भी आवश्यक है। इसीलिये **'कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च'** इन शब्दोंका प्रयोग किया गया है। यदि किसी व्यक्तिके पास एक हजार रुपये हों, उसमेंसे यदि उसने एक सौ रुपये दान कर दिये तो बचे हुए ९०० रुपयोंमें ही इसका ममत्व और आसक्ति रहेगी। इस प्रकार दान ममता या आसक्तिको कम करके अन्तःकरणकी शुद्धिरूप प्रत्यक्ष (दृष्ट) फल प्रदान करता है और शास्त्र-प्रमाणानुसार वैकुण्ठलोककी प्राप्तिरूप अप्रत्यक्ष (अदृष्ट) फल भी प्रदान करता है।

देवीभागवतमें तो यह स्पष्ट कहा गया है कि अन्यायसे उपार्जित धनद्वारा किया गया शुभ कर्म व्यर्थ है। इससे न तो इहलोकमें कीर्ति ही होती है और न परलोकमें कोई पारमार्थिक फल ही मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येन सुकृतं कृतम्।
न कीर्तिरिह लोके च परलोके च तत्फलम्॥

(देवीभागवत ३।१२।८)

उपार्जित धनके दशमांशका दान करनेका यह विधान सामान्य कोटिके मानवोंके लिये किया गया है, पर जो व्यक्ति वैभवशाली, धनी और उदारचेता हैं, उन्हें तो अपने उपार्जित धनको पाँच भागोंमें विभक्त करना चाहिये।

धर्माय यशसे अर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते॥

(१) धर्म, (२) यश, (३) अर्थ (व्यापार आदि आजीविका), (४) काम (जीवनके उपयोगी भोग), (५) स्वजन (परिवार) के लिये। इस प्रकार पाँच प्रकारके धनका विभाग करनेवाला इस लोकमें और परलोकमें भी आनन्दको प्राप्त करता है।

यहाँ व्यापार आदि आजीविकाके लिये धनका विभाग इसलिये किया गया है कि जिससे जीविकाके साधनोंका विनाश न हो; क्योंकि भागवतमें यह स्पष्ट कहा गया है कि जिस सर्वस्व-दानसे जीविका भी नष्ट हो जाती हो, बुद्धिमान् पुरुष उस दानकी प्रशंसा नहीं करते, क्योंकि जीविकाका साधन बने रहनेपर ही मनुष्य दान, यज्ञ, तप आदि शुभकर्म करनेमें समर्थ होता है।

न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते।
दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः॥

जो मनुष्य अत्यन्त निर्धन हैं, अनावश्यक एक पैसा भी खर्च नहीं करते तथा अत्यन्त कठिनाईपूर्वक अपने परिवारका भरण-पोषण कर पाते हैं, ऐसे लोगोंके लिये दान करनेका विधान शास्त्र नहीं करते। इतना ही नहीं, यदि पुण्यके लोभसे अवश्य पालनीय वृद्ध माता-पिताका तथा साध्वी पत्नी और छोटे बच्चोंका पालन न करके उनका पेट काटकर जो दान करते हैं, उन्हें पुण्य नहीं प्रत्युत पापकी ही प्राप्ति होती है।

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि।
मध्वापातो विषास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः॥

जो धनी व्यक्ति अपने स्वजन—परिवारके लोगोंके दुःखपूर्वक जीवित रहनेपर उनका पालन करनेमें समर्थ होनेपर भी पालन न कर दूसरोंको दान देता है, वह दान मधुमिश्रित विष-सा स्वादप्रद है और धर्मके रूपमें अधर्म है।

पुराणोंमें दानके सम्बन्धमें तो यहाँतक कह दिया है कि जितनेमें पेट भर जाता है, उतनेमें ही मनुष्यका अधिकार है; उससे अधिकमें जो अधिकार मानता है, वह चोर है, दण्डका भागी है।

यावद्भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

दानकी महत्ता

ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न यच्छसि। इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति॥
गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य संचयात्। स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः॥
दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं विदुः॥
उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्। तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम्॥
दानोपभोगवन्ध्या या सुहृद्भिर्या न भुज्यते। पुंसां यदि हि सा लक्ष्मीरलक्ष्मीः कतमा भवेत्॥

'यदि अधिक न हो सके तो अपने भोजनके ग्रासोंमेंसे ही कुछ ग्रास याचकोंको क्यों न दिया जाय? क्योंकि इच्छानुरूप धन किसके पास कब हुआ है? कब हो सकता है? अपनी स्थितिके अनुसार ही दानकी महिमा कही गयी है और उसीमें गौरव है। धन बचाकर संचय करनेसे कोई लाभ नहीं है। जलद (बादल) गण जलदान करनेके कारण ही आकाशमें ऊँचे रहकर विहार करते हैं और जलोंका आकर समुद्र पृथ्वीपर नीचे पड़ा हुआ एक ही जगह स्थित रहता है। जो दान प्रत्युपकार न करनेवाले योग्य पात्रको उचित देश-कालमें कर्त्तव्य-बुद्धिसे दिया जाता है, उसे ही सात्त्विक दान कहा गया है। जैसे जलाशयकी रक्षाका उपाय जलाशयके अंदर स्थित गंदे जलको बहा देना ही कहा गया है, उसी प्रकार उपार्जित धनका दान ही उसकी रक्षा और वृद्धिका कारण बनता है। यदि दान-भोगसे रहित और मित्रोंके द्वारा उपयोगमें न आनेवाली सम्पत्ति भी व्यक्तिकी लक्ष्मी कही जाय तो अलक्ष्मी किसका नाम होगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीर्थ

[भगवान्‌के अवतारोंके प्राकट्य-स्थल, ब्रह्मा आदि विशिष्ट देवताओंकी यज्ञ-भूमियाँ और क्षेत्र, विशिष्ट नदियोंके संगम और पवित्र वन, पर्वत, देवखात, झील, झरने तथा प्रभावशाली संत, भक्त, ऋषि-मुनि महात्माओंकी तपःस्थलियाँ और साधनाके क्षेत्र आदि तीर्थ कहे जाते हैं। तीर्थोंमें जानेसे सत्संगके साथ-साथ वहाँके पूर्वोक्त सभी तत्त्वोंके सूक्ष्म तेजस्वी संस्कार उपलब्ध होते हैं। इससे पाप नष्ट होकर पुण्योंका संचय होता है—

प्रभावादद्भुताद् भूमेः सलिलस्य च तेजसा। परिग्रहान्मुनीनां च तीर्थानां पुण्यता स्मृता॥

'श्रद्धा-विश्वाससे तीर्थका फल बढ़ता है। तीर्थमें जाने तथा रहनेवालेको प्रतिग्रह, काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ, परनिन्दा और ईर्ष्या-द्वेषसे बचना चाहिये। तीर्थोंमें पाप करनेसे पापकी वृद्धि होती है। अतः पापसे सर्वथा दूर रहना चाहिये।

भारतके चारों धाम और सातों पुरियोंकी भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके जन्म एवं आवास-स्थल होनेसे तथा बदरिकाश्रम, रामेश्वरम् आदि धामोंकी नर-नारायणके तपस्या करने तथा भगवान् श्रीराम आदिद्वारा देव-स्थापन करनेसे अत्यन्त महत्ता है। गङ्गा आदि नदियाँ नाम लेनेसे ही साधकको तार देती हैं। इसी प्रकार पुष्कर, मानसरोवर आदि ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न हुए हैं और उनके द्वारा यज्ञ आदि करनेके कारण वे महान् तीर्थ हैं। जिसका शरीर और मन संयत होता है, उसे तीर्थोंका विशेष फल मिलता है। अग्नि, इन्द्र आदि देवताओंके द्वारा यज्ञ करने, कुरुके द्वारा तप करने तथा भगवान् श्रीकृष्णके गीतोपदेशसे कुरुक्षेत्रकी विशेषता हुई है।

गणपति आदि देवता एवं ऋषि-मुनि, पितर, संत, ब्राह्मणोंका स्मरण, पूजन करके तीर्थयात्राका शुभारम्भ करना चाहिये और यान आदिका आश्रय छोड़कर शुद्ध भावसे धर्माचरणको बढ़ाते हुए तीर्थोंमें निवास करना चाहिये। यहाँ पुराण-प्रसिद्ध भारतके कुछ विशिष्ट तीर्थोंका परिचय दिया जा रहा है। इनमें कुछ प्राचीन तीर्थ जिनके अब नाम बदल गये हैं, जहाँ जानेके मार्गका ठीक पता नहीं है, यथा-सम्भव उनके वर्तमान नाम और स्थल-परिचय तथा जानेके मार्गोंका भी निर्देश किया जा रहा है, जिससे पाठकोंको विशेष लाभ होगा—]

विविध तीर्थ—

नदी-रूप तीर्थ

१-देवनदी गङ्गा—तीर्थोंमें सर्वाधिक महिमा गङ्गा नदीकी है। यह हिमालयके उत्तरी भाग गङ्गोत्तरीसे निकलकर नारायणपर्वतके पार्श्वसे अनेक नामोंमें व्यक्त होती हुई ऋषिकेश, हरिद्वार, कान्यकुब्ज, कानपुर, प्रयाग, विन्ध्याचल, वाराणसी, बक्सर, पाटलिपुत्र, मुद्गगिरि, मंदरगिरि, अंगदेश (भागलपुर), बंगदेश आदिको पवित्र करती हुई गङ्गासागरमें मिल जाती है। इसकी महिमासे सभी पुराण, उपपुराण, वेदशास्त्र, निबन्ध, काव्य-ग्रन्थ भरे पड़े हैं। स्कन्दपुराणमें इनकी उत्पत्ति गङ्गा-दशहरा है। पुराणोंमें इन्हें विष्णुपादोद्भवा, शिवशीर्ष-निवासिनी, शन्तनुकी पत्नी, भीष्म एवं अन्य आठ वसुओंकी माता, जह्नुके द्वारा पान किये जानेके कारण जाह्नवीके नामसे प्रसिद्ध होना वर्णित है। तीनों लोकोंमें रहनेसे आकाश-गङ्गा, स्वर्ग-गङ्गा, त्रिपथगा, पातालगङ्गा, हेमवती आदि नामोंसे और भगीरथके द्वारा लाये जानेके कारण भागीरथी नामसे भी ये प्रसिद्ध हैं। पुराणोंमें इन एक-एक नामों और विषयोंसे सम्बद्ध अनेक कथाएँ प्राप्त होती हैं। सगरके साठ हजार पुत्र गङ्गा-जलके स्पर्श-मात्रसे ही तर गये थे। विस्तारसे जाननेके लिये पुराणोंमें इन प्रकरणोंको देखना चाहिये। उनमें गङ्गापर कवच, स्तोत्र, शतनाम, सहस्रनाम आदि अनेक स्तुतियाँ एवं पूजा-पद्धतियाँ भी मिलती हैं। गङ्गाजलमें कभी कीड़े नहीं पड़ते और यह कभी बासी या अपवित्र भी नहीं होता।

२-यमुना—गर्गसंहितामें, जो पुराणके लक्षणोंसे युक्त है, उसमें यमुना-कवच, स्तोत्र, पटल, पद्धति, सहस्रनाम आदि कई स्तोत्र हैं। यमुनाके मुख्य नामोंमें कालिन्दी, यमी, सूर्यपुत्री, कृष्णा, गम्भीरा, महानदी, गङ्गामिश्रा, नीलाम्बरा, वृन्दारण्यविभूषणा, माधवी आदि एक सहस्र नाम वर्णित हैं। यह हिमालयके कलिन्द पर्वतसे निकलकर यमुनोत्तरी और इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) मथुरा, आगरा आदि नगरोंको पवित्र करती हुई प्रयागमें गङ्गासे मिल जाती है। जैसे गङ्गा शन्तनुकी पत्नी अथवा शिवकी पत्नी कही गयी हैं, वैसे यमुना भगवान् श्रीकृष्णकी पत्नी कही गयी हैं। पुराणोंमें सृंजय-पुत्र सहदेवके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा राजा भरत और राजा युधिष्ठिरके द्वारा इनके तटपर अनेक यज्ञ करनेकी बात आती है। मान्धाता, सोमक, अम्बरीष एवं शन्तनु आदिने भी इनके किनारे अनेक यज्ञ किये थे। भरतने तो तीन सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। इन्हींके एक द्वीपमें पराशरसे सत्यवतीके पुत्र व्यास उत्पन्न हुए थे, जिन्होंने वेदोंका विस्तार किया। पद्मपुराणमें यमुनाकी महिमाका वर्णन है। इनके किनारे निगमोद्बोध, द्वारका, मधुवन, पुष्कर आदि अन्य तीर्थ तथा प्रयाग आदिके होनेकी बात कही गयी है। पद्मपुराणमें शिवशर्मा आदि अनेक ऐसे लोगोंकी कथाएँ आती हैं, जिन्हें यमुनामें स्नान करते ही अनेक जन्मोंकी बात याद हो गयी थी। ये सब सुन्दर कथाएँ वहीं देखनी चाहिये।

३-सरस्वती नदी—पुराणोंमें इस पवित्र नदीका अनेकधा उल्लेख हुआ है। ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण, शिवपुराण, भागवतपुराण आदिमें प्रायः तीस सरस्वती नदियोंके वर्णन प्राप्त होते हैं। उनकी कथाओंके भी उल्लेख मिलते हैं। जब ब्रह्माजी पुष्करमें अपना महान् यज्ञ कर रहे थे, तो ऋषियोंकी प्रार्थनापर ब्रह्मपत्नी सरस्वती नदीके रूपमें वहाँ प्रकट हुई थीं। अत्यन्त प्रभायुक्त शरीर होनेके कारण उस समय उनका नाम सुप्रभा हुआ था। इसी प्रकार नैमिषारण्यमें जब अठासी हजार ऋषि पुराणोंकी चित्र-विचित्र कथा-वार्ता और स्वाध्यायमें रत थे, तब उनकी सहायताके लिये उनके ध्यान करनेपर सरस्वती वहाँ प्रकट हुई थीं। वहाँ उनका नाम काञ्चनाक्षी है। वे कुछ दूर प्रवाहित होकर गोमती नदीमें मिल गयी हैं। वहीं उनके प्रभावसे चक्रतीर्थका उदय हुआ है। पुराणोंके गया-माहात्म्यमें बताया गया है कि महाराज गय जब गया नगरीमें अपने महान् यज्ञका अनुष्ठान कर रहे थे, तब वहाँ उनके ध्यान करनेपर सरस्वती नदी प्रकट हो गयीं। ये गयाके ब्रह्मयोनि पर्वतके पाससे एक कुण्ड बनाती हुई फल्गु नदीमें जा मिली हैं। गयासे तीन मील दूर पक्की सड़कसे दो किलोमीटरके अन्तरपर भी सरस्वती नदी है, जिसके तटपर सरस्वती देवीका मन्दिर है।

प्रयागकी सरस्वती तो बहुत प्रसिद्ध हैं। यहाँ ये गङ्गा-यमुनाके बीचसे होकर दुर्गके नीचेसे प्रवाहित होती हुई संगम-स्थलपर गङ्गामें मिलती हैं। पुराणोंमें आता है कि एक बार समृद्धिशाली उत्तर कौशलमें सम्पूर्ण भारतके मुनियोंकी मण्डली एकत्र हुई। उन दिनों वहाँ उद्दालक मुनि महान् यज्ञ कर रहे थे। उनका कार्य सिद्ध करनेके लिये सरस्वती देवी उस देशमें आयी थीं। वहाँकी सरस्वती मनोरमा नामसे विख्यात हुईं और वे सरयू नदीमें मिली हुई हैं। कुरुक्षेत्र-माहात्म्यके अनुसार जब महात्मा कुरु कुरुक्षेत्रमें यज्ञ कर रहे थे, उस समय सरस्वती देवी अपने-आप आ गयी थीं और नदीके रूपमें प्रवाहित हो गयी थीं। ये सरस्वती नदी सुरेणुके नामसे जानी जाती हैं। वहाँ ये बहती हुई दृषद्वती नदीमें मिल जाती हैं।

कुरुक्षेत्रके पास ही पृथूदक तीर्थ है, जहाँ महाराज पृथुने महान् तपस्या की थी और विश्वामित्रने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था, वहाँ सरस्वती नदी प्रवाहित होती है, जिसके तटपर ब्रह्मयोनि, अवकीर्ण-तीर्थ, बृहस्पति-तीर्थ और ययाति-तीर्थ हैं। यहाँके ययाति-तीर्थपर महाराज ययातिने एक सौ यज्ञ किये थे और राजाकी कामनाके अनुसार सरस्वती नदीने दुग्ध, घृत और मधुको प्रवाहित किया था। यहाँ सरस्वती नदीके दोनों तटोंपर पक्के घाट बने हुए हैं और परशुरामजी, विश्वामित्र तथा वसिष्ठजीके आश्रम हैं। यहाँ सूर्य-तीर्थ, शुक्र-तीर्थ, फल्गुतीर्थ और सोमतीर्थ भी अवस्थित हैं। पुराणोंके अनुसार यह सरस्वती ओघवती नामसे विख्यात हैं।

भागवत एवं अन्य पुराणोंके अनुसार जब ब्रह्माजीने पुण्यमय हिमालयपर महान् यज्ञ किया था तब सरस्वती देवी विमलोदका नामसे वहाँ प्रकट हुई थीं। भागवतमें उन्हें प्राची सरस्वती भी कहा गया है। फिर सातों सरस्वतियाँ[1] एकत्र होकर वहाँ पहुँचीं। इसलिये उसे सप्तसारस्वत-तीर्थकी उपाधि प्राप्त हुई। दूसरा सप्त-सारस्वततीर्थ कुरुक्षेत्रकी सीमाके भीतर भी है, जहाँ मंकणक मुनिको सिद्धि प्राप्त हुई थी। मंकणकका चरित्र पुराणोंमें बहुत विख्यात है। एक बार उनका हाथ कुशके अग्रभागसे छिद गया था। वहाँसे रक्त न बहकर शाकका रस प्रवाहित होने लगा, जिसे देखकर वे आनन्दमग्न होकर नृत्य करने लगे थे। उनका प्रभाव इतना अधिक था कि उनके तेजसे मोहित होकर समस्त स्थावर, जङ्गम प्राणी भी नृत्य करने लगे थे। इससे देवता लोग घबरा

१-सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, मनोरमा, ओघवती, सुरेणु और विमलोदका ये सरस्वती नदियोंके सात नाम हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये और व्याकुल होकर भगवान् शंकरसे प्रार्थना करने लगे कि इनके नृत्यसे पागल होकर तीनों लोक नष्ट हो सकते हैं। समस्त संसार नाचते-नाचते मरणासन्न हो रहा है, अतः आप कोई उपाय करें। तब भगवान् शंकरने ब्राह्मणका रूप धारण कर उनसे पूछा कि आप किस आनन्दातिरेकके कारण उन्मत्त होकर नृत्य कर रहे हैं। इसपर मंकणकने कहा कि 'देखते नहीं कि मेरे हाथसे शाकका रस चू रहा है?' इसपर शंकरजीने 'इधर देखिये!' ऐसा कहकर अपने अँगूठेको जोरसे पटका, जिससे बर्फके समान सफेद भस्म झरने लगा। यह देखकर मंकणक भगवान् शंकरको पहचान गये और उनके चरणोंपर गिरकर उनकी स्तुति करने लगे। फिर शंकरजीको सप्तसारस्वत तीर्थमें निवास करनेको कहा।

भगवान् शंकरके 'तथास्तु' कहनेपर यह तीर्थ महान् महिमामय हो गया। इसी प्रकार देवल, जैगीषव्य, दधीचि आदिके आश्रमोंपर सरस्वतीके आनेकी कथा पुराणोंमें प्राप्त होती है। सरस्वती नदीके एक पुत्रका भी वर्णन पुराणोंमें मिलता है, जो दधीचि ऋषिके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ था। उसका नाम भी सारस्वत था। उसने सभी मुनियोंको वेद-पुराण पढ़ाये। एक बार सारस्वतने बारह वर्षके अकालको दूरकर संसारको सस्य-सम्पन्न बनाया था। सारस्वत-वंशमें उत्पन्न पंजाबके ब्राह्मणोंकी एक शाखा आज भी सारस्वतब्राह्मण कहलाती है।

इस प्रकार अन्य भी अनेक सरस्वती नदियोंका वर्णन पुराणोंमें प्राप्त होता है, जिनका उल्लेख विस्तारभयसे नहीं किया जा रहा है। वस्तुतः सरस्वती ब्रह्म-प्रिया, ज्ञानदेवी हैं, जिन्हें नदीके रूपमें पुराणोंमें वर्णनका विषय बनाया गया है।

४-नर्मदा—जिस प्रकार गङ्गा-यमुना आदि नदियोंके कवच, पटल, पद्धति, शतनाम, सहस्रनाम आदि स्तोत्र प्रसिद्ध हैं, वैसे नर्मदा नदीके भी सभी प्रकारके स्तोत्र प्राप्त हैं। स्कन्दपुराणका सम्पूर्ण रेवाखण्ड इन्हींके प्रतिपादनमें पर्यवसित होता है। जैसे गङ्गाजीको शन्तनुकी पत्नी कहा गया है, वैसे ही ये राजा पुरुकुत्सकी पत्नी और त्रसद्दस्युकी माता थीं। ये भगवान् शंकरकी पत्नी भी कही गयी हैं। रेवाखण्डके अनुसार चन्द्रवंशीय राजा हिरण्यतेजाके तपसे इनका पृथ्वीपर अवतरण हुआ। ये विन्ध्यपर्वतके पुत्र पर्यङ्कगिरि अथवा अमरकंटकसे निकल कर पश्चिमकी ओर बहती हुई १२०० किलोमीटर चलकर अरब समुद्रमें गिरती हैं। जहाँ इनके मुहानेपर भरूच या भड़ौच नामका क्षेत्र स्थित है। इसे भृगुक्षेत्र भी कहते हैं। यहाँ राजा बलिने दस अश्वमेध यज्ञ किये थे। यहाँ नर्मदा-तटपर पचपन तीर्थ प्रसिद्ध हैं, जिनमें शंखोद्धार, दशाश्वमेध, धूतपाप, कोटीश्वर, ब्रह्मतीर्थ, भास्करतीर्थ, गौतमेश्वर आदि विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।

इसके कुछ पूर्व करनाली और नर्मदा नदीका संगम है, जहाँ चन्द्रमाने घोर तप किया था। इसे सोमेश्वर-तीर्थ भी कहा जाता है। नर्मदाके तटपर ओंकारेश्वर, केदारेश्वर, मंडला, ब्रह्माण्डघाट, होशंगाबाद, बागदासंगम आदि कई मुख्य तीर्थ हैं। कहा जाता है कि 'सरस्वतीमें तीन दिन और यमुनामें सात दिन तथा गङ्गामें एक दिन स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है, परंतु नर्मदाके तो दर्शनमात्रसे ही व्यक्ति पवित्र हो जाता है।'—

त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम्।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम्॥

(मत्स्यपु०, अध्याय १८६।११)

पुराणोंके अनुसार वृत्रासुर और इन्द्रका युद्ध इसी नर्मदाके तटपर हुआ था। भागवतके अनुसार श्रीकृष्ण और रुक्मिणीके भ्राता रुक्मकके युद्धका स्थान भी यही है। मत्स्यपुराणमें १८६ से १९४ तकके अध्याय नर्मदा-माहात्म्यसे ही सम्बद्ध हैं। रत्नोंकी खान वैदूर्य पर्वत नर्मदा नदीके आरम्भिक भागपर ही है। पुराणोंके अनुसार इसीके तटपर राजा शर्यातिका यज्ञ हुआ था। अग्निदेवकी उत्पत्ति भी नर्मदाभूमिमें ही है।

५-गोदावरी—गङ्गा, यमुना, नर्मदा एवं सरस्वतीकी भाँति गोदावरीपर भी पुराणोंमें पर्याप्त विवरण मिलता है। इसके अनेक स्तोत्र भी उपलब्ध हैं। ब्रह्मपुराणमें एकत्र १३० अध्यायोंमें इस नदीकी चर्चा हुई है। पुराणोंके अनुसार मध्य-प्रदेशके नासिक नगरसे तीस किलोमीटर पश्चिम ब्रह्मगिरि पर्वतसे निकलकर प्रायः १८०० किलोमीटरतक प्रवाहित होकर यह मछलीपत्तनम् नरसापुरके उत्तर और राजमहेन्द्रीसे सत्तर किलोमीटर पूर्व सात भागोंमें विभक्त होकर सप्त-गोदावरीके नामसे बंग-सागरमें प्रविष्ट हो जाती है। महर्षि गौतमने शंकरजीकी कृपासे इन्हें पृथ्वीपर अवतरित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया था। अतएव इन्हें गौतमी भी कहा जाता है। ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार एक ब्राह्मणी योगाभ्यास तथा तप करते-करते गोदावरी बनकर प्रवाहित हो गयी।

गोदावरी नदीके तटवर्ती तीर्थोंमें ब्रह्मपुराणके अनुसार वराहतीर्थ, नीलगङ्गा, कपोत-तीर्थ, दशाश्वमेधिक-तीर्थ, जनस्थान, अरुणा-वरुणा-संगम, गोवर्धनतीर्थ, श्वेततीर्थ, चक्रतीर्थ, श्रीरामतीर्थ, तपस्तीर्थ, लक्ष्मीतीर्थ एवं सारस्वततीर्थ मुख्य हैं। इनमें स्नानका महत्त्व अद्भुत है। यहाँ नियत आहार-विहारसे रहकर स्नान करनेवालेको महापुण्यकी प्राप्ति होती है तथा स्वर्गलोक प्राप्त होता है। पुराणोंके अनुसार गोदावरीकी वसिष्ठा, कौशिकी, वृद्धगौतमी, गौतमी, भारद्वाजी, आत्रेयी तथा तुल्या—ये सात धाराएँ प्रसिद्ध हैं।

गोदावरीके तटपर नासिक, देवगिरि, प्रतिष्ठानपुर (पैठण), परभणी, गङ्गाखेड़, निजामाबाद, वेंकटपुरम्, भद्राचलम्, राजमहेन्द्री आदि अनेक मुख्य नगर हैं। इसीके किनारे भगवान् रामने पञ्चवटी नामक स्थानमें जो नासिकके समीप है, बारह वर्षोंतक निवास किया था। यहाँ रामकुण्ड, लक्ष्मणकुण्ड, सीताकुण्ड, धनुषकुण्ड आदि कई तीर्थ हैं। साथ ही राम-मन्दिर, शारदाचन्द्रमौलीश्वर मन्दिर भी हैं। यहाँ गोदावरीमें अरुणा, वरुणा, सरस्वती, गायत्री, सावित्री एवं श्रद्धा आदि कई नदियाँ भी मिलती हैं।

६-सरयू—पुराणोंमें गङ्गा, यमुना आदिकी भाँति सरयूपर भी सैकड़ों स्तोत्र प्राप्त होते हैं। 'जानकीचरितामृतम्', 'आदिरामायण' आदिमें इनके कई स्तोत्र और सहस्र नाम भी हैं। मुख्य नामोंमें देविका, घाघरा, रामप्रिया आदि उल्लेखनीय हैं। यह हिमालयके स्वर्णशिखरपर मानसरोवर झीलसे निकलकर पिथौरागढ़, काठगोदाम, टनकपुर, पीलीभीत, मैलानी, फैजाबाद, अयोध्या, बड़हलगंज, छपरा आदि नगरोंको पवित्र करती हुई गङ्गामें मिल जाती है।

पुराणोंके अनुसार यह नदी अग्निकी उत्पत्तिका स्थान है। इसे पुराणोंमें प्रातःस्मरणीय नदी कहा गया है। गोस्वामी तुलसीदासजीने मानसमें लिखा भी है—

त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी॥

७-गोमती—भारतमें इस नामकी कई नदियाँ हैं। एक नदी द्वारकामें है। दूसरी नदी सिन्धमें डेरा इस्माईलखाँ और पहाड़पुरके पास सिन्ध नदीमें मिलती है। तीसरी शाहजहाँपुर, बालामऊ, नैमिषारण्य, लखनऊ, सुल्तानपुर, जौनपुर आदि स्थानोंसे होती हुई मार्कण्डेयेश्वरके पास वाराणसीसे पचास किलोमीटर पूर्व गङ्गामें मिल जाती है। पुराणोंके अनुसार यह गङ्गाकी सात धाराओंमेंसे एक है। इसके जलका पान करनेसे ही मनुष्य पवित्र हो जाता है। भगवान् श्रीरामने नैमिषारण्यमें एवं जारोथीमें इसी नदीके तटपर सैकड़ों अश्वमेध यज्ञ किये। कालान्तरमें जारोथी नगर अश्वमेध-यज्ञोंका ही सूचक हो गया था। वेदोंमें ऐसा ही उल्लेख है। वायुपुराण, अध्याय ९१। २६ के अनुसार काशिराज दिवोदासने क्षेमक राक्षससे पीड़ित होकर काशी छोड़कर यहीं निवास किया था। अन्य पुराणोंमें भी गोमतीका कई प्रसंगोंमें उल्लेख मिलता है।

८-वागमती—इसे वाङ्मती और गिरा भी कहते हैं। वराहपुराणके २१५ से १७ तकके अध्यायोंमें इसका माहात्म्य वर्णित हुआ है। यह हिमालय पर्वतसे निकलकर नेपालके अधिकांश भागको पवित्र करती हुई गङ्गामें मिलती है। नेपालका पवित्र तीर्थ और राजधानी काठमाण्डू नगर भी इसीके तटपर बसा हुआ है। यहाँ विष्णुमती और वागमतीका संगम भी है। भगवान् शिवका पशुपतिनाथ नामक प्रसिद्ध मन्दिर भी यहाँ है। वागमती नदीके तटपर नेपालराजके रक्षक मत्स्येन्द्रनाथका भव्य मन्दिर है। यह प्रायः वेगूसरायके आस-पास गङ्गामें मिलती है। वराहपुराणमें इसके जलको गङ्गासे भी सौ गुना पवित्र बताया गया है—

हिमाद्रेस्तुङ्गशिखरात् प्रोद्भूता वाङ्मती नदी॥
भागीरथ्याः शतगुणं पवित्रं तज्जलं स्मृतम्।

(वराहपु० २१५। ५०-५१)

९-शिप्रा—यह पारिजात पर्वतके केवड़ेश्वर नामक स्थलसे निकली हुई नदी है। इसका पाठान्तर क्षिप्रा भी पाया जाता है। शिप्रा-माहात्म्यमें इसके जलकी भी अत्यधिक महिमा कही गयी है। यह नदी अवन्ती या उज्जयनी नदीके ठीक बीचो-बीच बही हुई है। उज्जैन नगर भारतके सात पवित्र महापुरियोंमेंसे अत्यन्त पवित्र है और यह विक्रमादित्यकी राजधानी रहा था। स्कन्दपुराण अवन्तीखण्डके २६वें अध्यायमें शिप्रामें स्नान कर महाकालका दर्शन एवं नमस्कार करनेसे मृत्युकी चिन्तासे मुक्त होनेकी बात कही गयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कन्दपुराणके अनुसार शिप्राको भगवान्‌के स्वेदबिन्दुसे उत्पन्न माना गया है। बृहस्पतिके सिंहराशिमें आनेपर इसके तटपर कुम्भका मेला लगता है। यहाँ सोमतीर्थ, देवप्रयाग, योग-तीर्थ, कपिलाश्रम, दशाश्वमेध, स्वरगता नदीका संगम, पापमोचनतीर्थ, व्यासतीर्थ और नौ नद-तीर्थ आदि हैं। काफी दूरतक आगे बहकर यह नर्मदा नदीमें मिल जाती है।

१०-इक्षुमती—कपिलदेवजीका आश्रम इसी नदीके तटपर स्थित था। यह नदी हिमालय पर्वतसे निकलकर कुमायूँ, रुहेलखण्ड आदि जनपदोंसे प्रवाहित होती हुई कान्यकुब्ज या कन्नौज नगरके पास गङ्गामें मिल जाती है। इसे उर्दूमें इख्तन नदी कहा गया है। उत्तरप्रदेशके लोग इसे काली नदी कहते हैं। वाल्मीकिरामायण (२।६९।१७)में वर्णन आता है कि जब वसिष्ठजीके दूत भरतजीको बुलाने गये थे तो रास्तेमें यह नदी उन्हें मिली थी और उसे पारकर कैकय देशमें पहुँचे थे।

११-पयोष्णी—यह पैनगङ्गा नामकी वर्तमान नदी विन्ध्यपर्वतसे निकलकर दक्षिणकी ओर बहती हुई अनेक ग्रामों, नगरोंको पवित्र करती हुई गोदावरीमें मिलती है। इसमें स्नान करनेका बहुत महत्त्व है। इसीके तटपर मेघङ्कर तीर्थ है, जिसे भगवान् विनायकका साक्षात् स्वरूप बताया गया है।

तीर्थं मेघंकरं नाम स्वयमेव जनार्दनः ॥
यत्र शार्ङ्गधरो विष्णुर्मेखलायामवस्थितः ।

(म० पु० २२।४०-४१)

कहा जाता है कि सृष्टिके आरम्भमें जब ब्रह्माजी यज्ञ कर रहे थे तो उनके प्रणीतापात्रके गर्म जलसे इस नदीकी उत्पत्ति हुई थी, जिससे इसका नाम पयोष्णी हुआ। नदीका तट बहुत ऊँचा है और बँधे हुए पक्के घाटके ऊपर शार्ङ्गधर भगवान्‌का भव्य मन्दिर है। इसके तटपर पिंगलेश्वरी देवी नामकी मूर्ति भी प्राचीन कालसे प्रतिष्ठित है। पुराणोंमें इसकी बहुत महिमा है। राजा नल और दमयन्तीकी कथामें इसका निरन्तर उल्लेख मिलता है। इसके तटपर वराह-तीर्थ है, जहाँ राजा नृगने यज्ञ किया था। जहाँ सोम-पानकर इन्द्र और दक्षिणा पाकर ब्राह्मण लोग आनन्दमग्न हो गये थे। अमूर्तरयाके पुत्र राजा गयने भी इसके तटपर ७ अश्वमेध यज्ञ किये थे, जिससे इन्द्र परम प्रसन्न हो गये थे।

१२-गण्डकी—गङ्गा-यमुनाके समान ही इस नदीपर भी कई स्तोत्र हैं और इसके कई नाम भी हैं। यह नदी हिमालयके धौलगिरिके एकमात्र नारायण पर्वतसे सप्तगङ्गा या सप्तगण्डक नामक स्थानसे प्रकट होकर मुक्तिनाथ, भैरहवा आदिसे प्रवाहित होकर सोनपुर पटनाके पास गङ्गा नदीमें मिल जाती है। भगवान् विष्णुके गण्डस्थलके स्वेदसे प्रकट होनेके कारण इसका नाम गण्डकी हुआ—

गण्डस्वेदोद्भवा यत्र गण्डकी सरितां वरा ॥
भविष्यति न संदेहो यस्या गर्भे भविष्यति ।

(वराहपु० १४४।१२२-२३)

इसके ऊपरी भागमें सुवर्णमिश्रित शालग्राम मिलते हैं, इसलिये इसे हिरण्यवती भी कहते हैं। इसका अधिकांश भाग नेपालमें पड़ता है। भागवत एवं ब्रह्माण्डपुराणमें बलरामजीकी तीर्थयात्रा-प्रसंगमें यहाँ जानेका तथा इसकी विशेष महिमाका उल्लेख हुआ है। पुराणोंमें इसे गङ्गाकी सात धाराओंमेंसे एक माना गया है। जरासंध-वधके समय कृष्ण, अर्जुन, भीमसेन आदि इसमें सादर स्नान करके पार हुए थे। पुराणोंके अनुसार इसमें यात्रा तथा स्नान करनेवालेको अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है, अन्तमें वह सूर्यलोकको प्राप्त करता है। इसके जलमें भगवान्‌का निवास है।

१३-तमसा—इस नामकी भारतमें कई नदियाँ हैं। एक हिमालयसे निकलकर अयोध्याके दक्षिण ओरसे बहती है, जहाँ महाराज दशरथने सैकड़ों यज्ञ किये थे। दूसरी नदी ऋक्ष पर्वतसे निकलकर चित्रकूटके बगलसे बहती हुई वाराणसी और प्रयागके बीचमें गोपीगंजसे कुछ दूर भीटी नामक स्थानमें गङ्गामें मिल जाती है। महर्षि वाल्मीकिका आश्रम वहींपर था और उन्होंने वाल्मीकि-रामायणकी रचना यहीं की थी। पुराणोंमें इसका जल बहुत पवित्र माना गया है। तुलसीदासके अनुसार लव-कुशका जन्म यहींपर हुआ था और वनवासके समय सीता भी यहींपर रहीं और उन्होंने जो वट लगाया उसे सीतावट कहा जाता है। तीसरी तमसा हरिद्वारके नीचेसे बहकर कानपुरके पास गङ्गामें मिलती है।

१४-सिंधु नदी—इस नामकी भी भारतमें कई नदियाँ हैं, जो बड़ी सिंधु, छोटी सिंधु, काली सिंधु आदि नामोंसे विभाजित होती हैं। ऐतिहासिक लोग बड़ी सिंधुके नामसे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतका हिन्दुस्तान या इंडिया नाम मानते हैं, क्योंकि इसे पश्चिमके लोग हिंद और इण्डस कहते हैं। पुराणोंमें आता है कि यह नदी वरुण-सभामें रहकर उनकी उपासना करती है। भागवतके अनुसार मार्कण्डेयजीको यहींपर भगवान्‌के दर्शन हुए थे। इसे भी गङ्गाकी सात धाराओंमें एक तथा अग्निका उत्पत्ति-स्थान माना गया है। यह हिमालय पहाड़के पश्चिम भागसे निकलकर प्रायः दो हजार किलोमीटर लम्बी और अन्तमें छः किलोमीटरकी चौड़ाईके रूपमें अरब सागरमें मिल जाती है। दूसरी सिंधु काली सिंधु या काली नदी अथवा निर्विन्ध्याके नामसे कही जाती है। यह नदी शुक्तिमान् पर्वतसे निकलकर विन्ध्यके बगलसे बहकर यमुनामें मिलती है। रंतिदेवकी राजधानी दशपुर या मन्दसौर नगर इसीके तटपर स्थित है, जो उनकी कीर्तिको आज भी उज्ज्वलित कर रहा है। विन्ध्यके बगलसे बहनेके कारण इसका नाम निर्विन्ध्या है और यह बहुत पवित्र मानी गयी है।

१५-कावेरी—इस नामकी भी कई नदियाँ हैं। बड़ी कावेरी कूर्मपुराण अध्याय २ के अनुसार चन्द्र-तीर्थसे प्रकट होती है। पुराणोंके अनुसार अग्नि देवताकी १६ नदी-पत्नियोंमेंसे यह भी एक है। चन्द्रतीर्थ, जहाँसे कावेरी निकली है, कर्नाटक प्रान्तके कूर्गके पास ब्रह्मगिरि पर्वतपर है। इसके तटपर श्रीरंगपट्टम्, नरसीपुर, तिरुमकुल, शिवसमुद्रम् आदि कई तीर्थ एवं नगर हैं। तिरुचिरापल्ली नगर भी इसके पश्चिम तटपर है, जहाँ रावणका भाई त्रिशिरा रहता था। श्रीरंगम्‌की जगहपर कावेरीकी दो धाराएँ हो गयी हैं और उनके मध्यमें आदिरंगम्, मध्यरंगम् और अन्तरंगम्—ये तीन द्वीप बन गये हैं। इनमें अन्तरंगम्‌को ही श्रीरंगम् कहा गया है, यहाँ भगवान् नारायणकी शेषशायी विश्वप्रसिद्ध मूर्ति है और यह वैष्णवोंका सर्वाधिक आदरणीय क्षेत्र है। यह कोलिडमके पास बंग-सागरमें मिल जाती है।

दूसरी छोटी नदी कावेरी पारियात्र पर्वतके कवेश्वर नामक स्थानसे प्रकट होकर ओंकारेश्वर मान्धाताके पास नर्मदामें मिल जाती है। कुबेरने कावेरी-नर्मदा-संगमपर ही तपस्या कर यक्षों और राज-राजाओंका आधिपत्य प्राप्त किया था। ब्रह्माण्ड, वायुपुराणके अनुसार इसे युवनाश्वकी पुत्री, जह्नुकी पत्नी और सुहोत्रकी माता कहा गया है।

१६-कृतमाला नदी—यह मलयपर्वतसे निकली हुई दक्षिण भारतकी नदी है। इसका सम्बन्ध सम्पूर्ण मत्स्यपुराणसे है। भगवान् मत्स्य पहले इसी नदीसे निकलकर राजा सत्यव्रतके हाथमें आये थे, जो इसके तटपर संध्या कर रहे थे। भागवत ५।१९।१८, १०। ७९।१६, वामनपुराण १३।३२ और मत्स्यपुराणमें इसका बार-बार वर्णन आया है। दक्षिण भारतका मदुरई नगर इसी नदीके तटपर बसा हुआ है, जिसे दक्षिण भारतका मथुरा भी कहते हैं। इस नदीको आजकल बेगई या बेगा कहते हैं। यहाँका मीनाक्षी-मन्दिर विश्वमें प्रसिद्ध है। इसमें २७ गोपुर लगे हैं। कहा जाता है कि जब इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी थी तब यहीं स्नान कर वे मुक्त हुए थे। यहाँ कृतमालाके तटपर दूसरा दिव्य मन्दिर सुन्दरेश्वरका है, जिसपर नीलकण्ठने शिवलीलार्णव नामक ग्रन्थ लिखा है। यहाँ नटराजके सभा-मण्डपको सहस्र-स्तम्भ-मण्डप कहते हैं। बहुत पहले पाण्डुनरेशको यहीं तप करनेसे पार्वती पुत्रीके रूपमें प्राप्त हुई थीं। पिताकी मृत्युके बाद उसकी माता रानी कांचनमालाने अपनी पार्वतीरूपा पुत्री मीनाक्षीका विवाह सुन्दरेश्वरसे किया था।

१७-साबरमती—महात्मा गाँधीके साबरमती आश्रमके पास अहमदाबाद या गाँधीनगरमें बहनेवाली नदीका मूल नाम साभ्रमती है। इस नदीके भी कई नाम हैं, जैसे—चन्दना, वन्दना, नन्दना आदि। वाल्मीकि-रामायणके किष्किन्धाकाण्ड ४०।२०में भी इसका उल्लेख मिलता है। यह काश्यपी गङ्गा पद्मपुराणके अनुसार सभी रोग एवं दोषोंको हरनेवाली है। पुराणोंके अनुसार सत्ययुगमें कृतवती, त्रेतामें गिरिकर्णिका और द्वापरमें चन्दना कहलाती है। कश्यप ऋषिकी तपस्यासे प्रसन्न होकर देवाधिदेव महादेवने उन्हें यह गङ्गा प्रदान की थी।

इस नदीके किनारे जगन्नाथ-मन्दिर, भीमनाथ-मन्दिर, दधीचि-आश्रम, राधावल्लभ-मन्दिर, भद्रकाली-मन्दिर आदि स्थित हैं। यहाँ कार्तिक एवं वैशाखमें विशेष मेला लगता है। यहाँसे २० किलोमीटर दूर नैर्ऋत्य कोणमें कश्यपजीका आश्रम है, जो भद्रेश्वर नामक स्थानमें स्थित है। इस स्थानका भद्रेश्वर-मन्दिर अति प्राचीन है। अनेक नदियोंका संगम इस नदीमें हुआ है।

१८-चन्द्रभागा—कालिकापुराणमें चन्द्रभागा नदीका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माहात्म्य प्रायः ३० अध्यायोंमें प्राप्त होता है। महर्षि वसिष्ठ तथा देवी अरुन्धतीका प्रथम मिलन और परिणय इसी नदीके तटपर हुआ था। यह पंजाब प्रान्तकी मुख्य नदी है, जो वर्तमानमें चिनाव नदीके नामसे जानी जाती है। वैसे भारतवर्षमें चन्द्रप्रभा और चन्द्रभागा नामकी छोटी-बड़ी कई नदियाँ हैं। विष्णुपुराणके अनुसार यह स्थान व्रात्यों एवं म्लेच्छोंसे भरा है। कालिकापुराणके अनुसार इसके बगलमें शिप्रा नदी बहती है। चन्द्रमाका स्पर्श करनेके कारण इस नदीका जल अमृत-तुल्य माना जाता है। इस नदीका विवाह समुद्रसे हुआ था। चन्द्रमाके द्वारा अपनी गदासे पर्वतमें प्रहार करनेसे इस नदीकी उत्पत्ति हुई थी।

यहाँ ऊपर केवल १८ नदियोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है। वैसे भारतमें प्रसिद्ध नदियोंकी संख्या प्रायः पाँच हजारसे भी अधिक है,जिनका उल्लेख विभिन्न गजेटियरों और पुराण-ग्रन्थोंमें मिलता है। विस्तार-भयसे सबका उल्लेख न कर केवल कुछ नाम लिये जाते हैं। यथा—शतद्रु (सतलज), चन्द्रभागा, दृषद्वती, विपाशा (व्यासनदी), वितस्ता (झेलम), विपापा, बाहुदा, वेत्रवती, कृष्णावेणा, इरावती (रावी), देविका, स्थूलबालुका, वेदस्मृति, वेदवती, त्रिदिवा, ईक्षुला, करीषिणी, गन्धवती, चित्रवाहा, चित्रसेना, श्वेतगङ्गा, धूतपापा, विचिता, लोहितारिणी, वैतरणी, शतकुम्भा, वेणा, भीमरथी, शतवला, नीवारा, सुप्रयोगा, कुण्डली, उरमालिनी, भीमा, नीरा, ओघवती, पाटलावती, असिक्नी (चंद्रभागा), धृतवती, पुरावती, मेना, हेमा, अनुष्णा, सदावीरा, करतोया, कुशधारा, वीरमती, सुवस्त्रा, गौरी, पञ्चमी, ज्योतिरथा, विश्वामित्रा, रथचित्रा, रंजला, तुंगभद्रा, विदिशा, शोणभद्र, ब्रह्मपुत्र, फल्गु, ताम्रा, कपिला, वेदाश्वा, महापगा, भरद्वाजी, कौशिकी, कमला, चन्द्रमा, दुर्गावती, चित्रशीला, बृहद्वती, जाम्बुनदी, ब्राह्मणी, चित्रोत्पला, चित्ररथा, मन्दाकिनी, शुक्तिमती, कुमारी, रसकुल्या इत्यादि।

भारतके पवित्र कुल-पर्वत

पुराणोंके अनुसार नदियोंकी तरह पर्वतोंको भी पूज्य एवं आदरणीय बताया गया है। दक्षिण भारतके वेंकटगिरि और श्रीशैलको साक्षात् नारायणरूप माना गया है। स्कन्दपुराणमें नारायणगिरि, शालग्रामपर्वत, अरुणाचल, सिंहाचल, सुमेरु, मन्दर, हिमवान्, विन्ध्याचल, चित्रकूट, पारिजात, अञ्जनगिरि आदि सभीको भगवान्का रूप निरूपित किया गया है। विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें पर्वतोंकी पूजा-विषयक सम्पूर्ण सामग्री दी गयी है। स्कन्दपुराणमें अरुणाचल पर्वतको साक्षात् शिवका रूप कहा गया है—

तत्र देवः स्वयं शम्भुः पर्वताकारतां गतः।

(स्कन्द० अरु० मा० उत्त० ४। १२)

अरुणाचलके नीचे अरुणाचलेश्वरका मन्दिर है,जिसका गोपुर सम्पूर्ण विश्वके मन्दिरोंसे चौड़ा है और १० मंजिलसे भी अधिक ऊँचा है। परिक्रमामें चार गोपुर हैं जो १०-१० मंजिल ऊँचे हैं। इस मन्दिरके ऊपर पार्वतीजीका भी बहुत बड़ा मन्दिर है।

वेंकटगिरिपर वेंकटेश भगवान् या बालाजीका मन्दिर है। नीचे कपिल-सरोवर है, जिसमें स्नान कर प्रायः ७ किलोमीटर तक सीढ़ियों तथा पर्वतीय ऊँचाईपर सीधे चढ़ना पड़ता है। इस प्रकार १० किलोमीटरकी चढ़ाईमें सात पर्वतोंको पार करना पड़ता है। ऊपर जानेपर आकाशगङ्गा, वैकुण्ठ-तीर्थ, गोविन्दराज मन्दिरका दर्शन कर तीसरे दरवाजेमें वैकुण्ठ-प्रदक्षिणाके बाद स्वर्ण-मण्डप, सभामण्डप और जगमोहनसे चार द्वार आगे पूर्वमें खड़े बालाजीका दर्शन होता है।

व्रजमें गिरिराज पर्वतकी महत्ता भी सर्वविदित है, जिनकी पूजा स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने व्रजवासियोंके साथ की थी तथा स्वयं गिरिराजरूप धारण किया था। आज भी सहस्रों नर-नारी गिरिराज पर्वतको साक्षात् भगवद्रूप मानकर परिक्रमा और पूजन करते हैं।

इस प्रकार पर्वतोंका देवता-रूप या भगवान्का स्वरूप होना सिद्ध होता है। उनकी पूजाकी परम्परा भी सृष्टिके आरम्भसे ही चली आयी है। यहाँ कतिपय मुख्य पर्वतोंका विशेष-रूपसे परिचय दिया जा रहा है—

(१) हिमालय—यह सभी पर्वतोंका राजा है और भारतवर्षके उत्तरमें स्थित है। यह अनेक ऋषि-मुनियों एवं राजाओंकी तपःस्थली एवं गङ्गा, यमुना, सरयू, ब्रह्मपुत्र इत्यादि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदियोंका उद्गम-स्थल है। धर्मात्मा पाण्डवोंका प्रारम्भिक जीवन इसी क्षेत्रमें व्यतीत हुआ और अन्तिम दिनोंमें वे यहीं गलकर पञ्चत्वको प्राप्त हुए। भगवान् शंकरका निवास-स्थान कैलास भी इसी क्षेत्रमें है। पुराणोंमें इसे पार्वतीजीका पिता कहा गया है। पुराणोंके अनुसार गङ्गा और पार्वती इनकी दो पुत्रियाँ हैं और मैनाक, सप्तशृङ्ग आदि सौ पुत्र हैं। हिमालयके क्रोडमें बदरीनाथ, केदारनाथ, मान-सरोवर आदि अनेक तीर्थ तथा शिमला, मंसूरी, दार्जिलिंग आदि श्रेष्ठ नगर हैं। यह बहुमूल्य रत्नों एवं ओषधियोंका प्रदाता है। गौरीशंकर, कंचनजंगा, एवरेस्ट , धौलागिरि, नंगापर्वत, गोसाईं-स्थान, अन्नपूर्णा आदि विशिष्ट चोटियाँ विश्वकी सर्वश्रेष्ठ चोटियोंमेंसे एक हैं।

(२) विन्ध्याचल—यह भारतका दूसरा महत्त्वपूर्ण पर्वत है, जो इसे उत्तर और दक्षिणके दो भागोंमें विभक्त करता हुआ अरावलीसे लेकर राजशाहीतक फैला हुआ है। इसमेंसे तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, क्षिप्रा, वेणा, कुमुद्वती, गौरी, दुर्गावती आदि अनेक बड़ी नदियाँ निकली हुई हैं और इसके अन्तर्गत रोहतासगढ़, चुनारगढ़, कलिंजर आदि अनेक महान् दुर्ग हैं तथा चित्रकूट, विन्ध्याचल आदि अनेक पावन तीर्थोंकी स्थिति है। पुराणोंके अनुसार इस पर्वतने सुमेरुसे ईर्ष्या रखनेके कारण सूर्यदेवका मार्ग रोक दिया था और आकाशतक बढ़ गया था, जिसे अगस्त्य ऋषिने निवृत्त किया। यह शरभंग, अगस्त्य इत्यादि अनेक श्रेष्ठ ऋषियोंकी तपःस्थली रहा है। हिमालयके समान इसका भी धर्मग्रन्थों एवं पुराणोंमें विस्तृत उल्लेख मिलता है।

(३) पारिजात—यह पर्वत सात कुल-पर्वतोंमें विशेष पवित्र है और विन्ध्यके दक्षिण-पश्चिममें स्थित है। इस पर्वतसे वेदवती, कालीसिंधु, वेत्रवती, चर्मण्वती, साभ्रमती, अवन्ती एवं शिप्रा आदि नदियाँ निकलकर पश्चिम भारतको पवित्र करती हैं। ये सभी नदियाँ मध्यभारतके पश्चिमी भाग, पश्चिम भारत और गुजरातसे विशेषरूपेण सम्बद्ध हैं। मार्कण्डेयपुराण और विष्णुपुराणके अनुसार यह पर्वत भरुक और बालव क्षत्रियोंका निवास-स्थान था। मार्कण्डेयजीको इसी पर्वतपर बालमुकुन्दका दर्शन हुआ था।

मत्स्यपुराणके अनुसार तारकासुरने इसी पर्वतकी कन्दरामें कई सौ वर्षोंतक निराहार रहकर, पञ्चाग्नि तापकर, अङ्गोंको अग्निमें हवन कर ब्रह्माजीको प्रसन्न किया था और सात दिनके बालकको छोड़कर अन्य किसीसे भी न मरनेका वर प्राप्त किया था। भगवान् श्रीरामकी वानरी सेनामें इसी पर्वतके बंदर अधिक थे ऐसा ब्रह्माण्डपुराणमें उल्लेख है। इसकी उपत्यकामें इन्दौर, देवास, गोधरा, धार, केवड़ेश्वर, पावागिरि, जैनतीर्थ, गाँधीनगर, वीरमगाँव, सुरेन्द्रनगर आदि नगर बसे हुए हैं।

(४) मलयगिरि—यह ट्रावनकोर जिलेमें दक्षिण भारतके प्रायः दक्षिणी भागमें स्थित है। इसमेंसे कृतमाला या बेगई तथा उत्पलावती नामकी दो नदियाँ निकलकर प्रवाहित होती हैं। यह मलयगिरि चोल देशसे लेकर सुदूर दक्षिणतक फैला हुआ है। यहाँका मलयगिरि-चन्दन बहुत ही प्रसिद्ध है और भगवान् विष्णुको अत्यधिक प्रिय है। महर्षि अगस्त्य इसी पर्वतपर निवास करते थे। ऐसा श्रीमद्भागवतके छठे स्कन्ध और मत्स्यपुराणके सातवें अध्यायमें वर्णित है। इसका उत्तर भाग मैसूरको स्पर्श करता है। चन्द्रगिरि पर्वत इसके दूसरी ओर है।

(५) महेन्द्राचल—महेन्द्रगिरि भारतवर्षमें दो माने जाते हैं। एक पूर्वी घाटपर तथा एक पश्चिमी घाटपर। वाल्मीकि-रामायणका महेन्द्रगिरि पश्चिमी घाटपर है। जहाँसे हनुमान्जी कूदकर लंका गये थे। दूसरा महेन्द्रगिरि जो पुराणोंमें वर्णित है, पूर्वीघाटके उत्तरमें है और उड़ीसाके मध्य भागतक फैला हुआ है, पुराणोंके अनुसार यह परशुरामजीका निवास-स्थान बताया गया है। इस पर्वतपर स्थित परशुराम-तीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। इस पर्वतके पूर्वी ढालपर युधिष्ठिरका बनवाया हुआ मन्दिर बड़ा ही आकर्षक है। थोड़ी दूर पूर्वमें ही पाण्डवोंकी माता कुन्तीका मन्दिर है। यहींपर गोकर्णेश्वर मन्दिरकी स्थिति है। पुराणोंके अनुसार लागूलिनी, ऋषिकुल्या, ईक्षुधरा आदि नदियाँ निकली हुई हैं, जिससे यह लगता है कि यह पर्वत और पश्चिमतक फैला हुआ है। क्योंकि ऋषिकुल्या जिसे रासकोइल कहा गया है, वह नदी दक्षिण-पूर्वसे बहकर सोन नदीमें मिलती है। वायुपुराण, मत्स्यपुराण, भागवतपुराण, ब्रह्माण्डपुराण आदिमें इसका अनेकधा उल्लेख किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) शुक्तिमान्—इस पर्वतका नाम शक्ति पर्वत है जो मध्य-प्रदेशके रायगढ़ नामक नगरसे लेकर बिहारके मानभूमके डालमा पर्वततक फैला हुआ है। इसमें अब बहुतसे औद्योगिक नगर विकसित हो गये हैं। यह विन्ध्याचल पर्वतके दक्षिणसे लेकर बीचसे उसे काटता हुआ सुदूर पूर्वतक चला गया है। इसीकी उपत्यकामें हीराकुंड, सुन्दरगढ़, रावलकिला, चाईबासा आदि स्थान तथा औद्योगिक नगर बसे हुए हैं। इस पर्वतसे निकलनेवाली नदियोंमें काशिका, शुक्तिमती, मन्दगा, कुमारी आदि मुख्य हैं। पुराणोंमें इसका वर्णन भी यथास्थान प्राप्त होता है।

(७) चित्रकूट—पुराणों एवं भारतीय धर्मग्रन्थोंमें चित्रकूट पर्वतकी महिमा अनेक रूपोंमें वर्णित की गयी है। महर्षि वाल्मीकिने कहा है कि जबतक मनुष्य चित्रकूटके शिखरोंका अवलोकन करता रहता है, तबतक वह कल्याण-मार्गपर चलता रहता है तथा उसका मन पापकर्ममें नहीं फँसता—

यावता चित्रकूटस्य नरः शृङ्गाण्यवेक्षते।
कल्याणानि समाधत्ते न पापे कुरुते मनः॥

(वा० रा० २।५४।३०)

यद्यपि चित्रकूट स्वयं एक पर्वत है, परंतु इसपर कामदगिरि नामकी एक पहाड़ी है, जहाँ स्वयं भगवान् रामने वनवासकालमें निवास किया था तथा प्रस्थान करते समय इस लघु पर्वतको वरदान भी दिया था, जिसके कारण आज भी सहस्रों नर-नारी प्रतिदिन नियमपूर्वक कामदगिरिकी परिक्रमा और पूजन करते हैं।

श्रीमद्भागवत, चतुर्थस्कन्धके प्रथम अध्यायके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों त्रिदेवोंको यहीं क्रमशः चन्द्रमा, दत्तात्रेय और दुर्वासाके रूपमें जन्म ग्रहण करना पड़ा था। इसी प्रकार यहाँ प्रवेश करते ही राजा नल, धर्मराज युधिष्ठिर आदिके क्लेश नष्ट हो गये थे। भगवान् श्रीरामके वनवास, नल और युधिष्ठिरकी तपश्चर्या एवं पग-पगपर पवित्र तीर्थोंकी स्थितिके कारण चित्रकूटका माहात्म्य अत्यधिक है।

विभिन्न रामायणों, पद्मपुराण, स्कन्दपुराण आदि एवं महाभारतादि ग्रन्थोंमें चित्रकूटका अमित माहात्म्य तथा परम रम्य वर्णन उपलब्ध होता है। यहाँपर अत्रिका आश्रम, कामदगिरि, भरतकूप, सीता-रसोई, हनुमानधारा, राघव-प्रयाग, कोटितीर्थ, प्रमोदवन, जानकीकुण्ड, सिरसावन, स्फटिक-शिला, अनसूयाजी, गुप्त गोदावरी, यज्ञवेदी आदि तीर्थ एवं पवित्र स्थान विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।

(८) ऋक्षवान्—इसका वर्णन कई पुराणोंमें प्राप्त होता है। यह अत्रिमुनिका निवासस्थल एवं उनकी तपःस्थली कहा गया है। जब प्रसेन मृगयामें गया हुआ सिंहके द्वारा मारा गया था, तब भगवान् श्रीकृष्णने इसी पर्वतपर उसकी तलाश की थी। इस पर्वतसे बिहारमें बहनेवाली सोन, उड़ीसामें बहनेवाली महानदी, चित्रकूटमें बहनेवाली मन्दाकिनी, गोंडवानामें बहनेवाली नर्मदा, भोपालसे सागरकी ओर बहकर बेतवामें मिलनेवाली दशार्णा (धसान) नदी तथा तमसा, मंजुला आदि नदियाँ निकली हुई हैं। इससे सिद्ध होता है कि चित्रकूटके पासका पर्वत जो गोंडवानातक जाकर पारिजातको स्पर्श करता है, वही ऋक्ष है। यह विन्ध्याचलसे सटे हुए दक्षिणमें स्थित एक प्रकारसे उसका मध्य भाग है। क्योंकि आजकल अरावलीसे लेकर राजशाहीतक विन्ध्याचलको माना जाता है। उसमें कई पर्वत सम्मिलित हो जाते हैं। इस पर्वतकी उपत्यकामें भोपाल, सागर, जबलपुर आदि अनेक प्रसिद्ध नगर बसे हुए हैं। इनके अतिरिक्त अन्य बहुतसे तीर्थस्थान, मन्दिर, झील, झरने आदि भी इस पर्वतमें स्थित हैं।

(९) सह्यगिरि—इस पर्वतकी महिमापर स्कन्द-पुराणका 'सह्याद्रिखण्ड' एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। यह पर्वत पश्चिमी घाट-पर्वतके पास स्थित है, जो आज भी इसी नामसे जाना जाता है। यह भी महर्षि अगस्त्यका निवास-क्षेत्र था। दक्षिण शालग्राम, धर्मस्थल, सुब्रह्मण्य क्षेत्र, बंगलौर, यादवगिरि आदि अनेक तीर्थस्थल इसी पर्वतकी उपत्यकामें बसे हैं।

इस पर्वतका राजर्षि नहुषके जीवन-चरित्रसे विशेष सम्बन्ध रहा है। इनमें एक विशेष तीर्थ सह्यामलक तीर्थ है, जिसका विस्तृत वर्णन नरसिंहपुराणके कई अध्यायोंमें मिलता है। नरसिंहपुराणमें सप्तकुलाचल पर्वतोंके साथ इसका बार-बार उल्लेख प्राप्त होता है। प्रायः पश्चिमी घाटका पहाड़ या मलावारका उत्तरीभाग 'सह्याचल-खण्ड' में है। शिरौल तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरसिंह या नृसिंहवाड़ी क्षेत्र भी यहीं स्थित है। प्रायः सभी पुराणोंमें स्वल्प शब्दान्तरसे इस पर्वत-विशेषको और इससे जुड़े हुए अन्य क्षेत्रोंको सारी पृथ्वीमें मनोरम प्रदेश बतलाया गया है। यथा—

सह्यस्य चोत्तरे या तु यत्र गोदावरी नदी।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः॥

(ब्रह्मपुराण २७।४३, मार्कण्डेयपुराण ५७।३४, वायुपुराण पूर्वार्ध ४५।११२, मत्स्यपुराण ११४।३७ इत्यादि)

(१०) माल्यवान् एवं ऋष्यमूक पर्वत—वियजनगर, हम्पी एवं हास्पससे कुछ दूरीपर माल्यवान् एवं ऋष्यमूक पर्वत है, जहाँ भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणजीके साथ वनवासका वर्षाकालीन समय व्यतीत किया था। यहाँ विरूपाक्षमन्दिर, स्फटिक-शिला, विट्ठल-मन्दिर और तुंगभद्रा नदी भी है। इसी पर्वतपर हजाराराम-मन्दिर भी है। थोड़ी ही दूरपर अंजनीपर्वत एवं पम्पा-सरोवर है।

(११) श्रीशैल या मल्लिकार्जुन पर्वत— दक्षिण भारतमें सिकन्दराबादसे द्रोणाचल जानेवाली लाइनपर करमूल स्टेशन है। वहाँसे सौ किलोमीटर दूर बीहड़ जंगलमें श्रीशैल या मल्लिकार्जुन पर्वत है। यहाँ वृक्ष नहीं हैं; किंतु भगवान् शिवका दिव्य ज्योतिर्लिङ्ग इसी पर्वतपर है, जो मल्लिकार्जुनके नामसे प्रसिद्ध है। थोड़ी दूरपर शिखरेश्वर पर्वत है, जहाँ हाटकेश्वर महादेवका मन्दिर है। थोड़ी दूरपर बिल्व-वन है। मल्लिकार्जुनपर धर्माम्बा देवीका मन्दिर दर्शनीय है।

(१२) अरुणाचलपर्वत—गोडूरसे ४० किलोमीटरकी दूरीपर अरुणाचल पर्वत है। यद्यपि यह पर्वत बहुत ऊँचा नहीं है, परंतु रमण महर्षिका आश्रम होनेसे विशेष प्रसिद्ध है। पुराणोंमें इसका अनेक रूपोंमें उल्लेख मिलता है।

(१३) रैवतगिरि—इसका वर्णन पुराणोंमें बार-बार आया है। यह बलरामजीका क्रीडाक्षेत्र रहा है। वर्तमानमें यह गुजरातप्रान्तके जूनागढ़ नगरके समीपका गिरनार पर्वत है। पुराणोंके अनुसार अर्जुनने सुभद्राका हरण यहींसे किया था। इसका एक नाम उज्जयन्त पर्वत भी है। प्रभासक्षेत्र यहाँसे बहुत निकट ही स्थित है। यहाँ भगवान् दत्तात्रेयका विशेष रूपसे निवास-स्थान कहा जाता है। यह 'सिद्ध-क्षेत्र'के नामसे प्रख्यात है। पर्वतके नीचे दामोदरकुण्ड, है, जो स्वर्णरेखा नदीको बाँधकर बनाया गया है। पर्वतकी चढ़ाई प्रायः चार किलोमीटर है, जिसमें २५०० सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। पर्वतपर चढ़नेके बाद भर्तृहरिकी गुफा मिलती है, जिसमें गोपीचन्द एवं भर्तृहरिकी मूर्तियाँ हैं। इसके आगे सोरठ-मन्दिर है।

इस पर्वतके प्रान्तमें अम्बिकाशिखर, दत्तशिखर, नेमिनाथ-शिखर, पाण्डव-गुफा, भरतवन, हनुमानधारा, जटाशंकर आदि स्थान विशेष उल्लेखनीय हैं।

(१४) कामगिरि या कामाख्या—ब्रह्मपुत्र नदीके उत्तरकी ओर आसाममें गौहाटी नगरसे कुछ दूरपर कामगिरि पहाड़ी है। यहाँ नीचे उमानन्द नामक चट्टानी टापूपर शिव-मन्दिर है। यह मन्दिर ब्रह्मपुत्र नदीके ठीक बीचोबीचमें है। पहाड़के ऊपर देवीके आनन्दाख्य तथा कामाख्या—दो मन्दिर हैं। वैसे यहाँ श्रीपीठ, ब्रह्मपीठ आदि कई पीठ हैं। इससे थोड़ी दूर आगे पर्वतके पास ही परशुराम-कुण्ड है।

(१५) रामगिरि या रामटेक पर्वत—बंगाल-नागपुर रेलवे लाईनकी एक शाखा रामटेक नामक स्थानपर जाती है, जो नागपुरसे ४० किलोमीटरकी दूरीपर है। इसीके पास रामगिरि या रामटेक पर्वत है। पुराणोंमें इसे महातीर्थकी संज्ञा देकर इसकी महत्ता प्रतिपादित हुई है। गरुडपुराण (८१।८) में **'रामगिर्याश्रमं परम्'**—ऐसा कहा गया है। पर्वतके शिखरपर भगवान् श्रीरामका मन्दिर और एक पुराना किला भी है। इसके अतिरिक्त अन्य पवित्र स्थान भी इस पर्वत-प्रान्तकी पवित्रता एवं अलौकिकता सिद्ध करते हैं।

(१६) गोवर्धन-पर्वत—मथुरासे बीस किलोमीटर उत्तर तथा बरसानेसे १८ किलोमीटर पश्चिमोत्तर गोवर्धन पर्वत है, जो वर्तमानमें छोटी पहाड़ीके रूपमें है। यह ७ किलोमीटर लंबा और २ किलोमीटर चौड़ा है। इसकी ऊँचाई बिलकुल ही कम है। इसकी परिक्रमा मात्र २० किलोमीटरकी है, जिसे श्रद्धालु भक्तजन पूर्ण करते हैं। यह पर्वत मानसी गङ्गाका उद्गम-स्थान है। परिक्रमा-मार्गमें गोविन्दकुण्ड, राधाकुण्ड, कृष्णकुण्ड, कुसुम-सरोवर आदि अनेक पवित्र कुण्ड एवं सर मिलते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने इन्द्रके कोपसे व्रजको बचानेके लिये अपनी उँगलीपर इसी पर्वतको धारण किया था। यह सुप्रसिद्ध कथा है। उस समय इसका विस्तार अधिक था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवत, विष्णुपुराण आदिमें इसकी विशेष महत्ता है।

इन पर्वतोंके अतिरिक्त भारतमें अन्य भी मंगलप्रस्थ, ऋषभगिरि, कूटगिरि, कोलाचल, वारिधार, ककुब्गिरि, नीलगिरि आदि सहस्रों पर्वत हैं, जो पवित्र एवं स्मरणीय हैं परंतु विस्तारभय एवं स्थानाभावके कारण यहाँ उनकी चर्चा नहीं की जा रही है।

सात मोक्षदायिनी पुरियाँ

पुराणोंमें मुक्तिके पाँच मुख्य कारण बतलाये गये हैं। इनमें ब्रह्मज्ञान प्रथम हेतु है। द्वितीय है भक्तिद्वारा भगवत्कृपाकी प्राप्ति। तृतीय है अपने पुत्र-पौत्रादिकों, गोत्रजों, कुटुम्बियों तथा अन्य व्यक्तियोंद्वारा गया आदि तीर्थोंमें सम्पादित श्राद्ध-कर्म। चौथा है धर्मयुद्ध तथा गोरक्षा आदिमें हुई मृत्यु। पाँचवाँ है कुरुक्षेत्र आदि प्रधान तीर्थों और सात प्रधान मोक्षदायिनी पुरियोंमें निवासपूर्वक शरीर-त्याग। पुराणोंमें तीर्थोंके माहात्म्यको विस्तारसे बतलाया गया है। यद्यपि सभी तीर्थ उत्तम फलोंके देनेवाले एवं सेव्य हैं तथापि अपने वैशिष्ट्यके कारण ये पुरियाँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। अयोध्या, मथुरा, मायावती (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका, द्वारावती—ये सात पुरियाँ मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। इसीलिये गरुडपुराण (२।४९।११४)में कहा है—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

यहाँ इन सात पुरियोंका संक्षिप्त माहात्म्य दिया जा रहा है—

(१) अयोध्या—यह सात मोक्षदायिनी पुरियोंमें प्रथम है। 'स्कन्दपुराण'के वैष्णवखण्डके अयोध्यामाहात्म्यके अनुसार यह विष्णुके सुदर्शनचक्रपर बसी है। 'भूतिशुद्ध-तत्त्व'के अनुसार यह भगवान् श्रीरामचन्द्रके धनुषाग्रपर स्थित है। इसका आकार मछलीके समान लम्बा है और इसका मान सहस्रधारा-तीर्थसे एक योजन पूर्वतक, ब्रह्मकुण्डसे एक योजन पश्चिमतक, दक्षिणमें तमसा नदीतक एवं उत्तरमें सरयू नदीतक निर्दिष्ट है (स्कन्द वै० खं० अ० मा० १।६४।६५)। पहले ब्रह्माजीने अयोध्यामें ब्रह्मकुण्डकी स्थापना की थी। इसी प्रकार यहाँ भगवती सीताद्वारा निर्मित एक सीताकुण्ड भी है, जिसे भगवान् श्रीरामने वर देकर समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला बना दिया। इसमें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। इससे पूर्व सरयूमें ऋणमोचनतीर्थ है, जहाँ लोमशजीने विधिपूर्वक स्नान किया था। अयोध्यामें सहस्रधारासे पूर्व 'स्वर्गद्वार' है। यहाँ किया हुआ यज्ञ, हवन, दान, पुण्यादि अक्षय हो जाता है। पुराणोंके अनुसार सरयू नदीके तटपर अवस्थित यह नगर सूर्यवंशी राजाओंकी राजधानी रहा है। भगवान् श्रीरामकी जन्मभूमि होनेके कारण भी इसका महत्त्व लोकविश्रुत है।

(२) मथुरा-वृन्दावन—पुराणोंमें मथुराके मधुपुरी, मधुपुर आदि कई नाम आये हैं। वराहपुराणके तीस अध्यायोंमें इसका माहात्म्य है। नारदपुराणके उत्तरभागके ७५से ८० तकके अध्यायोंमें इसका विस्तृत वर्णन है। यह यमुना नदीके दोनों ओर बसा है। विशेष कर इसका विस्तृत भाग यमुनाके दक्षिण तटपर है। पुराणोंके अनुसार यह मुख्यतया भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मभूमिके रूपमें विख्यात है।

(३) मायापुरी—हरिद्वार—यह पवित्र सात पुरियोंमें तीसरे स्थानपर आती है। वराहपुराणके १४५-१४६ अध्यायोंमें इसकी विशेष महिमा वर्णित है। ब्रह्माण्डपुराणके अन्तिम खण्डके चालीसवें अध्यायमें भी इसकी महिमा है। सतीदेवीकी मूर्ति एवं शक्तिपीठ होनेके कारण यह विशेष प्रसिद्ध है। कनखलसे ऋषिकेशतकका प्रान्त मायापुरी कहा जाता है। गङ्गाजी पर्वतसे उतरकर सर्वप्रथम यहीं समतल भूमिपर प्रवेश करती हैं, इसलिये इसका दूसरा नाम गङ्गाद्वार भी है। इसके दोनों ओर पवित्र तीर्थोंकी स्थिति है।

(४) काशी या वाराणसी—काशी नगरी भगवान् शंकरके त्रिशूलपर बसी हुई है। यह प्रलयकालमें भी नष्ट नहीं होती—ऐसा कहा गया है। वरुणा और असीके बीचमें स्थित होनेके कारण इसे वाराणसी भी कहा गया है। यहाँ राजघाटसे लेकर दुर्गाघाट, सिन्धियाघाट, ललिताघाट, केदारघाट, मणिकर्णिका आदि सैकड़ों घाट हैं। विश्वेश्वर लिंगस्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वनाथ-मन्दिर, अन्नपूर्णा-मन्दिर, ज्ञानवापी, ढुण्ढिराज गणेश, दण्डपाणि, लांगुलीश्वर, दुर्गा-मन्दिर, हनुमान-मन्दिर, संकटमोचन, पिशाचमोचन तथा सहस्रों अन्य मन्दिर एवं पवित्र तीर्थ-स्थान हैं, जो अविमुक्त क्षेत्र काशीकी शोभा बढ़ाते हैं। काशीकी महिमापर 'काशीरहस्य' और 'काशीखण्ड' दो विशाल ग्रन्थ हैं।

(५) काञ्ची—पेलार नदीके तटपर स्थित शिवकाञ्ची एवं विष्णुकाञ्ची—इन दो नामोंसे दो भागोंमें विभक्त यह हरिहरात्मिका पुरी है। शिवकाञ्ची विष्णुकाञ्चीसे बड़ी है। यह मद्राससे ७५ किलोमीटर दक्षिण-पश्चिमकी ओर स्थित है। यहाँका मुख्य मन्दिर एकाम्रेश्वर-मन्दिर है। इसमें वामन-मन्दिर, कामाख्या-मन्दिर, सुब्रह्मण्यम्-मन्दिर आदि तीर्थ हैं एवं सर्वतीर्थ-सरोवर भी है। विष्णु और काञ्चीमें वरदराज स्वामी तथा देवराज स्वामीके मन्दिर हैं, इनके अतिरिक्त और अन्य कई मन्दिर हैं। ब्रह्माण्डपुराणमें काञ्चीपुरीकी महिमा विशेष रूपसे वर्णित है।

(६) अवन्तिका या उज्जैन—उज्जैनको पृथ्वीकी नाभि कहा गया है। यहाँ महाकालका ज्योतिर्लिङ्ग और हरसिद्धि देवीका शक्तिपीठ प्रसिद्ध है। पुराणोंके अनुसार यह हैहयवंशी राजा कार्तवीर्यकी भी राजधानी रही है। विक्रमादित्य आदिके समयमें यह कभी सम्पूर्ण भारतकी और कभी मालवाकी राजधानी रही है। स्कन्दपुराणके दो खण्ड अवन्तिक्षेत्र-माहात्म्य और अवन्तीखण्ड इसी पुरीकी महिमामें पर्यवसित हुए हैं। उज्जैन नगर मध्य-प्रदेशकी राजधानी भोपालसे प्रायः १२५ किलोमीटर पश्चिम है। शिप्रा नदी उज्जैनके ठीक बीचोबीचसे बहती है। यहाँ बड़े गणेश, सिद्ध-वट, कालभैरव-मन्दिर, यन्त्र-महल, माधव-क्षेत्र, अंकपाद आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। अंकपादमें ही भगवान् श्रीकृष्णने सान्दीपनि ऋषिसे ३२ विद्याओं एवं ६४ कलाओंका अध्ययन किया था। इसमें बिल्वकेश्वर महादेव, रुद्र-सरोवर, नीलगङ्गासंगम, दशाश्वमेध, व्यास-तीर्थ आदि भी प्रसिद्ध हैं।

(७) द्वारका—यह चार धामोंमें भी परिगणित है। स्कन्द-पुराणका प्रभास-खण्ड इसकी महिमा-रूपमें निबद्ध है। इसके भी पहले द्वारावती, कुशस्थली आदि कई नाम रहे हैं। यह वर्तमान गुजरात प्रदेशके काठियावाड़ जिलेमें पश्चिम समुद्र-तटपर स्थित है। पुराणोंके अनुसार भगवान् श्रीकृष्णके शरीर-त्यागके बाद द्वारका समुद्रमें डूब गयी थी, फिर भी उसके कुछ अवशेष अब भी स्थित हैं। भगवान् श्रीकृष्णने अपने जीवनका अधिकांश भाग यहीं व्यतीत किया था। इनके पहले यहाँ ककुद्मीका राज्य था, जिसकी कन्या रेवतीसे बलदेवजीने विवाह किया था। प्रभासखण्डके अनुसार द्वारकाके प्रभावसे कीट-पतंग, पशु-पक्षी आदि भी मुक्त हो जाते हैं। यहाँ निष्पाप-सरोवर, रणछोड़जीका मन्दिर, श्रीकृष्ण-महल, वल्लभाचार्यकी बैठक, वासुदेव-मन्दिर, शंखोद्धारतीर्थ, नागनाथ, पिण्डारक-तीर्थ, कामनाथ, माधवपुर, नारायण-सरोवर आदि कई महत्त्वपूर्ण तीर्थ हैं।

चार धाम

(१) बदरीनाथ—स्कन्दपुराणके वैष्णव-खण्डमें प्रायः १२ अध्यायोंमें बदरीनाथधामकी विस्तृत महिमा है। वैसे वराहपुराण, पद्मपुराण, श्रीमद्भागवत आदिमें भी इसकी पर्याप्त महिमा है। यह अनादि-सिद्ध क्षेत्र माना गया है। यह भारतवर्षके उत्तरदिशाका हिमालयपर स्थित पहला धाम माना जाता है। यहाँके मन्दिरमें अलकनन्दासे थोड़ी दूरपर शालग्राम-शिलामें बनी हुई बदरीनाथकी चतुर्भुज-मूर्ति है। इनके दाहिनी ओर कुबेरकी और बायीं ओर उद्धवजीकी मूर्ति है। बदरीनाथके पास ही नारदशिला, वरुणशिला, कपाल-तीर्थ, सोमतीर्थ, वसुधारा-तीर्थ, पञ्चतीर्थ, गङ्गा-संगम आदि तीर्थ हैं। यहाँ शंकराचार्यका मन्दिर है। यहाँका ब्रह्मकपाल-तीर्थ, कपाल-मोचन, अलकनन्दा नदी और तप्त-कुण्ड आदि भी प्रसिद्ध तीर्थ हैं। इन सभी तीर्थोंकी विस्तृत कथाएँ स्कन्दादि पुराणोंमें वर्णित हैं।

(२) जगन्नाथपुरी—पुराणोंमें जगन्नाथजीके पुरुषोत्तम-क्षेत्र, श्रीक्षेत्र, विरजाक्षेत्र आदि अनेक नामोंके विस्तृत माहात्म्य प्राप्त होते हैं। इनमें सबसे बड़ा है स्कन्दपुराणका पुरुषोत्तम-क्षेत्र-माहात्म्य, जिसमें प्रायः ५० अध्यायोंमें इसकी महिमा वर्णित है। उसके बाद दूसरा पुराण ब्रह्मपुराण है, जिसमें प्रायः ३० अध्यायोंमें प्रारम्भसे ही इस धामका माहात्म्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार नारदपुराणके उत्तरभागमें भी प्रायः १५ अध्यायोंमें इसका माहात्म्य वर्णित है। गरुडपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, अग्निपुराण और पद्मपुराणमें भी इसका माहात्म्य आया है। यह स्थान पूर्वसमुद्रके तटप्रान्तमें स्थित है और प्रसिद्ध विशाल श्रीजगन्नाथजीका मन्दिर चार महाद्वारों तथा दो परकोटोंके भीतर है। इसमें भगवान् कृष्ण, बलराम और सुभद्राकी मूर्तियाँ स्थापित हैं। कहा जाता है कि इन मूर्तियोंका निर्माण राजा इन्द्रद्युम्नके समयमें विश्वकर्माने ही किया था। यहाँ आषाढ़ शुक्ल द्वितीयाको प्रतिवर्ष महान् उत्सव होता है। चैतन्य महाप्रभुका अधिकांश, विशेषकर पिछला जीवन यहीं बीता था। पुराणोंके अनुसार यहाँ गुड़ीचा-मन्दिर, कपालमोचन, गभीरा-मठ, शंकराचार्यके गोवर्धन-मठ और भोगवर्धन-मठ, तोता गोपीनाथ और कबीरके मठ, चक्रनारायण, सुनार गौरांग-मठ, लोकनाथ महादेव-मन्दिर, बिल्वेश्वर महादेव, श्वेत माधव, नानकदेवका छोटा छत्ता, नरेन्द्र-सरोवर आदि अनेक मन्दिर और मठ हैं। यहाँसे थोड़ी दूरपर भार्गवी-मठ तथा थोड़ी दूरपर साक्षी गोपाल तीर्थ है। वहींसे थोड़ी दूरपर नीलमाधवका मन्दिर है।

(३) रामेश्वरम्—स्कन्दपुराणके सेतु-क्षेत्र-माहात्म्य इसकी प्रायः १०० अध्यायोंमें महिमा वर्णित है। भारतके सर्वथा दक्षिण समुद्री-तटपर रावणपर विजय प्राप्त करनेके लिये भगवान् श्रीरामके द्वारा स्थापित किया हुआ यह रामेश्वरधाम है जो एक समुद्रके द्वीपमें स्थित है। जब यहाँ भगवान् श्रीरामने पुल बाँधा था, तब वहाँ गन्धमादन-क्षेत्रमें भगवान् शंकरकी स्थापना की थी। रामेश्वर-माहात्म्यके अनुसार श्रीरामचन्द्रजीने यहाँ इनकी स्थापनाके पहले गणेशजीकी स्थापना की। यहाँ लक्ष्मणतीर्थ, सीतातीर्थ, गन्धमादन, साक्षी विनायक आदि अनेकों तीर्थ है, जिनका माहात्म्य पुराणोंमें वर्णित है। रामेश्वरम्की गणना द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें भी है। इसकी स्थापनाकी कथाएँ भी प्राप्त होती हैं, जिन्हें द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके कथा-संग्रहमें देखना चाहिये।

(४) द्वारका—यह भी चारों धामोंमेंसे एक है। इस पावन तीर्थका वर्णन इसी लेखमें 'सात मोक्षदायिनी पुरियों' के अन्तर्गत आ चुका है। उसका अवलोकन वहीं किया जा सकता है।

सप्त बदरी

भगवान् नारायण सम्पूर्ण संसारके कल्याणकी कामनासे युग-युगमें बदरीनाथके रूपमें पृथ्वीपर अवस्थित रहते हैं। पञ्च केदारके समान ही ये बदरीक्षेत्र भी परम पवित्र एवं आवागमनके बन्धनोंसे मुक्त करनेवाले हैं। ये सभी क्षेत्र उत्तराखण्डमें ही हैं। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(१) आदिबदरी—पुराण एवं भारतीय अन्यान्य धर्म-ग्रन्थोंमें कम-से-कम चार स्थानोंपर आदिबदरीका उल्लेख मिलता है। बदरीनाथकी मूर्ति पहले तिब्बती क्षेत्रके धुलिंग मठमें थी। इस स्थानपर जानेके लिये वर्तमान बदरीसे बहुत दूर कष्टपूर्ण मार्ग माताघाटीको पार करना पड़ता है। यह स्थान बहुत ही रमणीक है।

(२) ध्यानबदरी—यह स्थान उरगम ग्राममें कुम्हार-चट्टीसे ६ मील दूर है।

(३) वृद्धबदरी—यह उषीमठके कुम्हारचट्टीसे ढाई मीलकी दूरीपर है।

(४) भविष्यबदरी—यह स्थान जोशीमठसे ग्यारह मीलकी दूरीपर है। वस्तुतः जोशीमठसे जो स्थान नीतीघाटी होकर कैलास जाता है, उस मार्गपर जोशीमठसे ६ मील तपोवन है। यहाँ गरम जलका कुण्ड है। तपोवनसे तीन मील ऊपर जो विष्णुमन्दिर है, यही भविष्यबदरीका स्थान है। मन्दिरके पास वृक्षके नीचे एक शिला है, जिसमें ध्यानपूर्वक देखनेसे भगवान्की आधी आकृति स्पष्ट दिखलायी पड़ती है। कहा जाता है कि भविष्यमें भगवान्की वह आकृति पूरी हो जायगी। भविष्यबदरीके पास ही लाता देवीका मन्दिर और आकाशसे गिरी खड्ड है। यहाँ चौबीस वर्षोंके बाद बड़ा भारी मेला लगता है।

(५) योगबदरी—पाण्डुकेश्वरसे दो मीलकी दूरीपर योगबदरीका मन्दिर है, जिन्हें पाण्डुकेश्वर भी कहा जाता है। यह मूर्ति कुरुवंशी महाराज पाण्डुके द्वारा स्थापित है। किन्दममुनिके द्वारा शाप दे दिये जानेके बाद महाराज पाण्डु अपनी दोनों रानियों—कुन्ती एवं माद्रीके साथ इसी स्थानपर तपस्या की थी। युधिष्ठिरादि पाँचों पाण्डवोंका जन्मस्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही प्रदेश था, ऐसा पुराणोंमें वर्णित है। यह प्रदेश बड़ा ही पुनीत एवं रमणीक है।

(६) नृसिंहबदरी—श्रीनृसिंहबदरीका स्थान जोशीमठमें है। यहाँ नरसिंह भगवान्‌का मन्दिर है, जिसमें शालग्रामशिलापर अवस्थित भगवान् नरसिंहकी अद्भुत मूर्ति है। जब पुजारी नीराजनके समय दर्शन कराते हैं, तब भलीभाँति दर्शन होता है।

(७) प्रधानबदरी (बदरीनाथ)—पुराणोंमें श्रीबदरीक्षेत्रकी महिमा अनेक स्थानोंपर उपलब्ध होती है। महाभारतके अनुसार अन्य तीर्थोंमें स्वधर्मका विधिपूर्वक पालन करते हुए मृत्यु होनेसे मुक्ति होती है, परंतु बदरीक्षेत्रके तो दर्शनमात्रसे ही मुक्ति मनुष्यके हाथ आ जाती है—

अन्यत्र मरणान्मुक्तिः स्वधर्मविधिपूर्वकात्।
बदरीदर्शनादेव मुक्तिः पुंसां करे स्थिता॥

जहाँ सनातन परमात्मा भगवान् नारायण विराजमान हैं, वहाँ सम्पूर्ण जगत् है और समस्त तीर्थ तथा देवालय हैं। बदरी ही परमतीर्थ, तपोवन और साक्षात् परात्पर ब्रह्म है। वही जीवोंके स्वामी परमेश्वर हैं, जिन्हें जानकर शास्त्ररूपी दृष्टिवाले विद्वान् शोकसे रहित हो जाते हैं—(महाभारत, वन० तीर्थ० ९०। २८-३०)।

इसी प्रकार वराहपुराणके अनुसार मनुष्य कहींसे भी बदरी-आश्रमका स्मरण करता रहे तो वह पुनरावृत्तिवर्जित वैष्णवधामको प्राप्त होता है—

श्रीबदर्याश्रमं पुण्यं यत्र यत्र स्थितः स्मरेत्।
स याति वैष्णवं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितः॥

(वराहपुराण १४१। ६७)

बदरीक्षेत्रको भी वेदोंके तुल्य अनादिसिद्ध कहा गया है। (स्कन्द०, वै० बदरि० २। २)। श्रीबदरीनाथके माहात्म्यके लिये देवीभागवतपुराण, स्कन्दपुराणान्तर्गत वैष्णव-खण्ड, बदरीमाहात्म्य एवं वराहपुराणके १४१वें अध्याय आदिके देखना चाहिये।

पञ्च केदार

प्राचीन कालमें भगवान् शंकरने एक बार महिषका रूप धारण किया था। उनके उस महिष-रूपके पाँच विभिन्न अङ्ग कालान्तरमें पाँच स्थानोंपर प्रतिष्ठित हुए। वे ही स्थान जगत्‌में पञ्च केदारके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

(१) श्रीकेदारनाथ—प्रसिद्ध पाँचों केदार-क्षेत्र उत्तराखण्डमें ही हैं। उनमें श्रीकेदारनाथ मुख्य केदार-पीठ है। इसे प्रथम केदार भी कहा गया है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके वर्णनके प्रसङ्गमें इसका विस्तृत परिचय मिलता है। इस स्थानपर महिषरूपधारी शिवका पृष्ठभाग प्रतिष्ठित है। सत्ययुगमें उपमन्युने इसी स्थानपर भगवान् शंकरकी आराधना की थी। द्वापरयुगमें यह क्षेत्र पाण्डवोंकी तपःस्थली रहा है। वस्तुतः केदारक्षेत्र अनादि है। केदारनाथमें भगवान् शंकरका नित्य सांनिध्य बताया गया है। केदारनाथमें कोई निर्मित मूर्ति नहीं है। पाँच मुखोंसे युक्त त्रिकोण एक बड़ी शिला है। यात्री स्वयं जाकर भगवान् केदारनाथकी पूजा करते हैं और उन्हें अङ्कमाल देते हैं।

(२) श्रीमध्यमेश्वर—यह द्वितीय केदार-क्षेत्र है। इन्हें मनोमहेश्वर या मदमहेश्वरके नामसे भी जाना जाता है। इस स्थानपर महिषरूपधारी भगवान् शिवकी नाभि प्रतिष्ठित है। उषीमठसे मध्यमेश्वरकी दूरी १८ मीलके लगभग है। वहाँ जानेके लिये उषीमठसे ही मार्ग जाता है। यह तीर्थ परम पवित्र एवं मोक्षदाता है, ऐसा पुराणोंमें वर्णित है।

(३) श्रीतुङ्गनाथ—इस तीर्थको तृतीय केदार-क्षेत्र कहा जाता है। यहाँपर महिषरूपधारी भगवान् शिवकी बाहु प्रतिष्ठित है। केदारनाथसे बदरीनाथ जाते समय ही श्रीतुङ्गनाथ मिलते हैं। श्रीतुङ्गनाथके मन्दिरमें शिवलिङ्ग तथा अन्य कई मूर्तियाँ हैं। यहाँ पातालगङ्गा नामक एक अत्यन्त शीतल जलकी धारा है। तुङ्गनाथके शिखरपरसे पूर्वकी ओर नन्दादेवी, पञ्चचुली तथा द्रोणाचलशिखर आदि स्पष्टरूपसे दृष्टिगोचर होते हैं।

(४) श्रीरुद्रनाथ—यहाँ महिष-रूप शिवका मुख प्रतिष्ठित है। श्रीरुद्रनाथका उल्लेख चतुर्थ केदार-क्षेत्रके रूपमें किया जाता है। श्रीतुङ्गनाथसे रुद्रनाथ-शिखर स्पष्टरूपेण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टिगत होता है।

(५) श्रीकल्पेश्वर—यह पञ्चम केदार-क्षेत्र है। यहाँ भगवान् शिवकी जटाएँ प्रतिष्ठित हैं। हेलंग (कुम्हारचट्टी) में मुख्य मार्ग छोड़कर अलकनन्दाको पुलसे पार करके छः मील जानेपर श्रीकल्पेश्वरका मन्दिर मिलता है। इस स्थानका नाम उरगम है।

पञ्च सरोवर

भगवान् ब्रह्मा एवं विष्णुके द्वारा अधिवासित एवं प्रतिष्ठित होनेके कारण कुछ सरोवर अत्यन्त पवित्रतम तीर्थोंमें परिगणित हैं। वहाँ अभिगमन एवं स्नान आदिका विशेष महत्त्व है। सरोवर तथा कुण्ड-रूप तीर्थोंमें मार्जन तथा आचमनका भी स्नानके तुल्य ही फल प्राप्त होता है। पुराणोंमें पाँच सरोवरोंको मुख्य माना गया है। यथा—

(१) मानसरोवर—पुराणोंने इस सरोवरका अत्यधिक माहात्म्य बतलाया है। यह ब्रह्माजीकी संकल्प-शक्तिसे सृष्टिके आरम्भमें निर्मित हुआ था। इससे सरयू और ब्रह्मपुत्र—ये दो बड़ी नदियाँ निःसृत हैं। यहाँ कुमुदा नामसे सतीदेवीका शक्तिपीठ है। पितरोंके श्राद्धके लिये यह तीर्थ प्रायः सर्वोत्तम माना गया है। यहाँ जप करनेसे तत्काल सिद्धि होती है। हंस पक्षी केवल इसी सरोवरमें रहते हैं।

(२) विन्दुसरोवर—भागवतादि महापुराणोंमें यह उल्लेख है कि कर्दम प्रजापतिको वर देते समय भगवान् विष्णुके नेत्रोंसे जो करुणापूरित अश्रुविन्दु गिरे, उससे यह सरोवर निर्मित हुआ। यह महर्षि कर्दमकी तपःस्थली रही है। भगवान् कपिलदेवका अवतार यहींपर हुआ था। भगवान् कपिल और उनकी माता देवहूतिकी भी यह निवासस्थली रही है। इसीलिये यह सिद्धाश्रम या सिद्धपुरके नामसे भी प्रसिद्ध है। यह सरोवर गुजरात-प्रदेशमें स्थित है।

(३) नारायण-सरोवर—पुराणोंमें 'नारायणसर' नामसे कई सरोवरोंका उल्लेख आता है जो विभिन्न क्षेत्रोंमें स्थित है। इनमेंसे दो विशेष प्रसिद्ध हैं। प्रथम पश्चिमी समुद्र-तटवर्ती नारायणसर तथा द्वितीय हिमालयमें नारायण पर्वतके चरणमें स्थित नारायण-सरोवर। यह द्वितीय सरोवर अत्यन्त महत्त्वका है। इसका जल अधिकांश समय हिमाच्छादित रहता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि सिद्ध-महात्माओं तथा पुण्यात्माओंको ही यहाँके दर्शन सुलभ हो पाते हैं। यहाँका मार्ग दुर्गम है। गङ्गाका मूल उद्गम भी नारायण-सरोवर ही माना गया है।

(४) पम्पा-सरोवर—पुराणोंके साथ ही रामायणमें भी इसका उल्लेख हुआ है। यह मध्य भारतमें तुंगभद्रा नदीके उत्तर और किष्किन्धाके दक्षिणी भागमें है। इसका आलंकारिक वर्णन किष्किन्धाकाण्डके आरम्भमें हुआ है। इस सरोवरके तटपर पितरोंके लिये श्राद्ध करनेका मत्स्य आदि पुराणोंमें अत्यधिक महत्त्व प्रदर्शित हुआ है।

(५) पुष्कर-सरोवर—पुराणोंमें पुष्कर-सरोवरकी अत्यधिक महिमा गायी गयी है। पद्मपुराणके सम्पूर्ण सृष्टि-खण्डमें प्रायः इसी तीर्थका माहात्म्य प्रतिपादित है। यहाँ ब्रह्माजीने विशाल यज्ञ किया था। जिस प्रकार देवताओंमें मधुसूदन श्रेष्ठ हैं, वैसे ही सरोवरोंमें पुष्कर श्रेष्ठ है। यहाँ कार्तिक-पूर्णिमाके स्नानका महत्त्व कई सौ वर्षोंतक अग्निहोत्र करनेसे भी अधिक बतलाया गया है। यह सरोवर अजमेरमें है।

सप्तक्षेत्र

भगवान्के अवतारके स्थान, विशिष्ट संत-महात्माओं, ऋषियों, मुनियों तथा धर्मात्मा राजर्षियोंकी निवासस्थली या तपःस्थलीको क्षेत्र भी कहा जाता है, जो पवित्र तीर्थ माने जाते हैं। पुराणोंमें ऐसे अनेक क्षेत्रोंका माहात्म्य बताया गया है, जिनमेंसे सात प्रमुख हैं, जो सप्तक्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध हैं। आगे उन्हींका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

(१) कुरुक्षेत्र—प्रसिद्ध चन्द्रवंशी राजा कुरुने हल चलाकर भूमिको पवित्र कर कुरुक्षेत्रकी स्थापना की गयी थी। इसे कुरुजांगल भी कहा गया है। भागवत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे धर्मक्षेत्र कहा गया है। यह पुण्यप्रद क्षेत्र हरियाणा-प्रान्तमें है।

(२) **हरिहरक्षेत्र**—हरिहरक्षेत्रका माहात्म्य वराहपुराणमें विशेषरूपसे वर्णित है। कभी यहाँ महर्षि पुलस्त्यने तपस्या की थी। राजा आदिभरत (जडभरत) ने भी यहाँ रहकर तपस्या की थी। इसे पुलहाश्रम भी कहा जाता है। यहाँ गङ्गा-सरयू-सोन तथा गंडकी—इन चार नदियोंका संगम है।

(३) **प्रभासक्षेत्र**—यह द्वारकासे थोड़ी दूर उत्तर सौराष्ट्रमें स्थित है। स्कन्दपुराणके प्रभास-खण्डमें इस क्षेत्रका माहात्म्य बताया गया है। यह शैवों तथा वैष्णवों आदि सभीका महान् पवित्र तीर्थ है। दक्ष प्रजापतिके शापसे क्षय-रोगग्रस्त चन्द्रमाने यहाँ तपस्या कर रोगसे मुक्ति पायी थी। भगवान् श्रीकृष्णके चरणमें जरा नामक व्याधने यहीं बाण मारा था। यदुवंशियों तथा वृन्दावनकी गोपियोंका यही देहोत्सर्ग-तीर्थ माना जाता है। यहाँका गोपीचन्दन अति प्रसिद्ध है।

वायुपुराण (२।४२) में यह उल्लेख आता है कि जब सभी तत्त्वोंको प्राप्तकर भी वेदव्यासजीको आत्यन्तिकी शान्ति नहीं हो पायी थी, तब उन्हें सुमेरुगिरिकी उपत्यकामें कठिन तपस्याके बाद भगवान् वेदपुरुष नारायणके विराट् स्वरूपके दर्शन हुए। जिनके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, सभी तीर्थ-क्षेत्र, यज्ञ-यागादि, धर्म, वेद, पुराण आदि मूर्तिमान् होकर प्रतिष्ठित थे। जिनमें प्रभास-क्षेत्र भगवान्के हनुदेश और कण्ठके मध्य स्थित था।

(४) **भृगुक्षेत्र**—यह नर्मदा और समुद्रके संगमपर स्थित है तथा प्रभासक्षेत्रसे दक्षिण है। इसे आजकल भड़ोच कहते हैं। प्राचीन कालमें इसका नाम जम्बूमार्ग था। राजा बलिने यहाँ निवास कर दस अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किये थे। महर्षि भृगुद्वारा प्रतिष्ठित यहाँका भृग्वीश्वर नामक शिवलिङ्ग अति प्रसिद्ध है, जो नर्मदाके तटपर भास्कर-तीर्थ और द्वादशादित्य-तीर्थोंके पास है। इस क्षेत्रमें ५५ मुख्य तीर्थ हैं। महर्षि भृगुकी दीर्घकालीन निवासस्थली तथा तपःस्थलीके कारण यह भृगुक्षेत्र कहलाता है। इनकी पुत्र-परम्परामें महर्षि जमदग्नि तथा परशुरामजीकी भी यह तपःस्थली रही है। पुराणोंमें इस क्षेत्रकी अत्यन्त महिमा बतायी गयी है।

(५) **पुरुषोत्तमक्षेत्र**—पुराणोंमें पुरुषोत्तम-क्षेत्रको अति पवित्र तथा पुण्यप्रद बताया गया है। इसे जगन्नाथ-धाम भी कहा जाता है। चार धामोंके वर्णनमें इसका विस्तृत माहात्म्य वर्णित हुआ है, अतः वहीं अवलोकन करना चाहिये।

(६) **नैमिषक्षेत्र**—इसे आदितीर्थ कहा जाता है। यह उत्तर प्रदेशके सीतापुर जनपदसे लगभग ४० किलोमीटर पूर्वकी ओर है। यह स्वायम्भुव मनु-शतरूपाकी तपःस्थली है। आदिगङ्गा गोमती जिसे धेनुमती भी कहा जाता है, यहींपर प्रवाहित हैं। चक्रतीर्थ, ललितादेवी-शक्तिपीठ, हत्याहरण, मिश्रित-तीर्थ आदि अनेक पुण्यप्रद तीर्थ इस क्षेत्रके अन्तर्गत हैं। नैमिष-क्षेत्रकी परिक्रमा ८४ कोशकी है। इसकी गणना प्रधान द्वादश अरण्योंमें भी है।

(७) **गयाक्षेत्र**—गया-तीर्थकी अत्यधिक महिमा है। वायुपुराण, पद्मपुराण तथा अग्नि आदि पुराणोंमें गयाका विस्तृत माहात्म्य प्रतिपादित है। पितृतीर्थके रूपमें गयाकी अत्यधिक प्रसिद्धि है। पितर कामना करते हैं कि उनके वंशमें कोई ऐसा पुत्र उत्पन्न हो, जो गया जाकर वहाँ उनका श्राद्ध करे। गयामें पिण्डदानसे पितरोंको अक्षय तृप्ति होती है। गया-क्षेत्रके तीर्थोंमें फल्गु नदी, विष्णुपद, गयासिर, गदाधर-मन्दिर, प्रेतशिला, ब्रह्मकुण्ड, अक्षयवट आदि प्रमुख हैं। गयाका नाम गय नामक असुरके नामपर पड़ा है। इसके इतिहासके सम्बन्धमें तथा नारायण-शिला (धर्मशिला) के विषयमें रोचक आख्यान है, जो इस प्रकार है—

धर्मकी पुत्री धर्मवती अपने पति महर्षि मरीचिके चरण दबा रही थी। उसी समय वहाँ ब्रह्माजी पधारे। ये मेरे श्वशुर हैं, यह जानकर धर्मवतीने उठकर उनका स्वागत किया, किंतु महर्षि मरीचिने पतिसेवा-त्यागरूप इसे अपराध माना और पत्नीको शिला हो जानेका शाप दिया। इसके पश्चात् धर्मवतीने सहस्र वर्षतक कठोर तपस्या की। इससे प्रसन्न होकर भगवान् नारायण तथा सभी देवताओंने उसे वरदान दिया कि उसके शिला-रूपपर सभी देवताओंकी स्थिति रहेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गय नामक असुर केवल तपस्यामें ही प्रीति रखता था। वह दीर्घकालतक निष्कामभावसे तप करता रहा। भगवान् नारायणने उसे वरदान दिया कि उसकी देह समस्त तीर्थोंसे भी अधिक पवित्र हो जाय। इस वरदानके पश्चात् भी असुर गय तपस्या करता ही रहा। उसके तपसे त्रिलोकी संतप्त होने लगी। देवता संत्रस्त हो उठे। अन्तमें भगवान् विष्णुके आदेशसे ब्रह्माजीने गयके पास जाकर यज्ञ करनेके लिये उसकी देह माँगी। गय सो गया और उसके शरीरपर यज्ञ किया गया, किंतु यज्ञ पूरा होनेपर असुर फिर उठने लगा। उस समय धर्मवती शिला देवताओंने गयासुरके ऊपर रख दी। इतनेपर भी असुर उठने लगा तो सभी देवताओंके साथ स्वयं भगवान् विष्णु गदाधर-रूपमें उसके ऊपर स्थित हुए। गय नामक असुरकी यह पूरी देह, जो दस कोस विस्तृत है, परम पवित्र है। उसपर कहीं भी पिण्डदान करनेसे पितर प्रेतयोनि तथा नरकसे छूटकर अक्षय तृप्ति प्राप्त करते हैं। आश्विनके कृष्ण-पक्षमें यहाँ श्राद्ध करनेका अत्यधिक महत्त्व है।

द्वादश अरण्य

वेदोंमें वन, उपवन, अरण्य, नदियोंके संगम तथा पर्वतकी उपत्यकाओंमें विशुद्ध बुद्धि, भगवत्तत्त्वके दर्शन और भगवत्-साक्षात्कारके अनुकूल वातावरण होनेकी बात कही गयी है (ऋग्वेद ८।६।२८, वा० सं० २६।१५)। वहाँ योगसिद्धियाँ, समाधि और देवताओंका अनुग्रह शीघ्र प्राप्त होता है। इसलिये ऋषि-मुनि प्रायः ऐसे ही स्थानोंमें आश्रम बनाकर निवास करते थे। ऋषियोंके गुरुकुल भी वन और नदियोंके समीप ही होते थे। जहाँ अग्निहोत्रके योग्य समिधा, स्नान आदिके लिये जलाशय, संध्या, जप-तपके योग्य शान्त स्थान और भोजनके लिये कन्दमूल आदि फल सरलतासे उपलब्ध हो जाते थे। अपने इस अलौकिक वैशिष्ट्यसे तपःपूत ये अरण्य-प्रान्त अत्यधिक पवित्र हैं। पुराणोंमें भारतके वर्णन-प्रसंगमें अनेकों अरण्योंका माहात्म्य बताया गया है। यहाँ उनमेंसे अतिप्रसिद्ध और पुण्यप्रद, साक्षात्-तीर्थरूप मात्र बारह अरण्योंका परिचय दिया जा रहा है।

(१) दण्डकारण्य—पुराणोंके अनुसार महाराज इक्ष्वाकुके सौ पुत्र थे। उनमेंसे एकका नाम दण्डक भी था। वह शुक्राचार्यका शिष्य था। उसका समस्त राज्य उसीके नामसे दण्डक-क्षेत्र कहा जाता था। एक बार मृगयामें थककर वह शुक्राचार्यके आश्रमपर गया और वहाँ उनकी कुमारी कन्या अरजाके साथ अभद्र व्यवहार किया। शुक्राचार्यने रुष्ट होकर उसके राज्यको एक सप्ताहमें धूलि-वर्षासे नष्ट हो जानेका शाप दे दिया, जिससे वह अबतक प्रायः अरण्य-रूप ही धारण किये रह गया। ऋषियोंकी प्रार्थनापर भगवान् श्रीरामने उसे परम पवित्र कर दिया था। वैसे अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, शरभङ्ग आदि ऋषिगण पहलेसे ही वहाँ निवास कर रहे थे। इस क्षेत्र गोदावरी नदीसे लेकर चित्रकूटतक माना जाता है। ऋषियोंके निवास होनेके कारण एवं गोदावरी, नर्मदा, सोन तथा महानदी आदि नदियोंका पार्श्ववर्ती स्थान होनेसे यह क्षेत्र पवित्र माना जाता है। इसमें कोटिरुद्र, ब्रह्मगिरि, त्र्यम्बकेश्वर, मान्धाता आदि अनेक पवित्र तीर्थ-स्थान हैं। मल्लिकार्जुन, श्रीशैल आदि ज्योतिर्लिङ्ग भी इसी क्षेत्रमें हैं।

(२) विन्ध्यारण्य—पुराणोंके अनुसार यहाँ तप एवं साधना करनेसे अतिशीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। इस सम्बन्धमें पुराणोंमें अनेक कथाएँ आयी हैं। उनमें कुछ कथाएँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, जैसे—(१) देवीने शुम्भ-निशुम्भका वधकर यहाँ निवास किया था। (२) कृष्णकी बहन—नन्दकी कन्या योगमाया भी अष्टभुजाके रूपमें परिणत हुई थी, जिनका निवास-स्थान यहीं है। (३) एक बार यह विन्ध्यपर्वत सूर्यको रोकनेके लिये सुमेरुसे भी ऊँचा गगनमण्डलमें उठ गया था। फिर अगस्त्यजीने इसे पृथ्वीके बराबर किया।

इसपर कालिंजर, चरणाद्रि, लोहित आदि अनेक तीर्थ, गुप्तेश्वर महादेव आदि अनेक गुफाएँ और शैव क्षेत्र भी हैं। पुराणोंके अनुसार भगवान् श्रीरामने वनवासके समय दस वर्षतक यहाँ निवास किया था। इसकी सीमा सभी अरण्योंसे बड़ी है। विन्ध्यवासिनी इसीके उत्तरी भागमें स्थित हैं। यहाँ चैत्र तथा आश्विनमें विशेष मेला लगता है।

(३) पुष्करारण्य—पद्मपुराणका सृष्टिखण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारदपुराणका अधिकांश उत्तर भाग इसकी महिमासे ओतप्रोत है। ब्रह्माजीने कमलका फूल गिराकर वज्रनाभ नामक दैत्यका वध किया था, इससे इसका नाम पुष्कर पड़ा। यहाँ चारों ओर भीषण अरण्य है। यह ब्रह्माजीके यज्ञ-क्षेत्रके रूपमें विशेष प्रसिद्ध है। इस वनमें सरस्वती नदी भी प्रवाहित होती है। पुराणोंमें यहाँ निवास करने, साधना साधने, तप करने, स्नान-दान, श्राद्ध आदि करनेका अपार माहात्म्य बतलाया गया है। यह अरण्य अजमेरमें है।

(४) नैमिषारण्य—पुराणोंमें नैमिषारण्यको सबसे अधिक पवित्र कहा गया है। एक बार ऋषियोंके मनमें यह उत्कण्ठा हुई कि विश्वका कौन-सा भाग सर्वाधिक पवित्र है, जहाँ जाकर भगवान्‌का स्मरण-भजन किया जाय। उन्होंने यह बात ब्रह्माजीसे कही। तब ब्रह्माजीने एक मनोमय चक्र निर्मित कर चलाया और ऋषियोंसे चक्रके अनुगमनके लिये कहा तथा बताया कि जहाँ इसकी नेमि शीर्ण हो जाय, उसे ही सर्वाधिक पवित्र स्थान समझा जाय। जब ऋषि चक्रके पीछे-पीछे चले तो वह नैमिष वनके मध्यमें गिरा। यह स्थान चक्र-तीर्थ कहलाता है। नैमिषारण्यमें सूतजीने शौनक आदि अट्ठासी हजार शिष्योंको अठारह पुराणों तथा उपपुराणोंकी कथा सुनायी थी।

(५) कुरुजाङ्गल—कुरुक्षेत्र नामसे पहले यहाँ प्रायः जंगलमात्र था। सुन्द और उपसुन्द दानवोंकी मुख्य निवासभूमि यहीं थी। इसके दर्शनमात्रसे समस्त पापोंकी निवृत्ति हो जाती है। यहाँ मान्धाताने यज्ञ किया था और मुद्गल आदिने यहीं रहकर मुद्गलपुराणकी रचना की थी। ऐसा पुराणों तथा महाभारतमें उल्लेख है।

(६) उत्पलावर्तकारण्य—यह अरण्य गङ्गाके दक्षिणी तटपर कानपुरसे कुछ दूर पश्चिममें फैला हुआ है। कहा जाता है कि महर्षि वाल्मीकिका आश्रम यहीं था, जहाँ सीताजीने अन्तिम समयमें निवास कर लव-कुशको जन्म दिया और महर्षिने रामायणकी रचना कर उन्हें पढ़ाया। मत्स्यपुराणके अनुसार यहाँ लोलादेवीका मन्दिर है। मार्कण्डेयपुराणके अनुसार मन्वन्तराधिपति उत्तम मनुका इस अरण्यसे सम्बन्ध रहा है। इस वनमें गङ्गाके किनारे कमलोंकी विशेष उत्पत्तिके कारण इसका नाम उत्पलारण्य या उत्पलावर्तक पड़ा। अन्य पुराणोंके अनुसार ब्रह्मावर्त भी इसीका नाम है, क्योंकि ब्रह्माजी भी कमल (उत्पल) के आसनपर ही विराजमान रहते हैं।

(७) जम्बुकारण्य—यह देवताओं, पितरों तथा ऋषियोंको अत्यन्त प्रिय है। पुराणोंके अनुसार यहाँ जानेमात्रसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। यहाँ प्रवाहित होनेवाली नर्मदामें तथा जम्बू-सरोवरमें स्नान करनेसे तत्क्षण सिद्धि प्राप्त होती है। यह महर्षि भृगुकी तपःस्थली तथा अनेक ऋषि-मुनियोंका निवास-भूमि रहा है। पद्मपुराणके स्वर्गखण्डमें यहाँका महत्त्व वर्णित है।

(८) अर्बुदारण्य—पुराणोंके अनुसार हिमालयके सौ पुत्रोंमेंसे यह एक है। यहाँ एक रात निवास करनेसे हजार गोदानका पुण्य प्राप्त होता है। पद्मपुराणके अनुसार वसिष्ठ, भृगु, गौतम तथा दत्तात्रेयने यहाँ रहकर दीर्घकालतक तपस्या की थी, जिनके नामोंसे सम्बद्ध अनेक आश्रम, कुण्ड, मूर्तियाँ आज भी यहाँ विद्यमान हैं। यहाँ अर्बुदादेवीकी भी एक मूर्ति है। इसे आजकल आबूपर्वत कहते हैं, जो राजस्थानमें है। द्वारका जाते समय भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारे थे।

(९) हिमवदरण्य—यह सभी अरण्योंसे विशाल है। यह व्यास, पराशर, देवर्षि नारद, शुकदेव, अर्जुन, कर्ण, कृष्ण आदिकी तपःस्थली रहा है। भारतके सौ पर्वतोंको इसका पुत्र बताया गया है। बालखिल्यों तथा शेषनागने भी यहाँ रहकर तपस्या की थी। यह सर्वाधिक रमणीय है। गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, ब्रह्मपुत्र आदि पवित्र नदियोंका यह उद्गम-स्थान है तथा शंकर-पार्वतीकी यह क्रीडाभूमि है। इसका शेष वर्णन सप्त-कुलाचलोंमें हुआ है। अतः वहाँ अवलोकन करना चाहिये।

(१०) धर्मारण्य—इस नामसे पुराणोंमें चार अरण्योंका उल्लेख मिलता है—एक पश्चिम समुद्रके पास सिद्धपुर-क्षेत्रमें, दूसरा हिमालयमें कण्वाश्रमके समीप, तीसरा मध्यप्रदेशके वनमें तथा चौथा गयाके पास। इनमें दो अधिक प्रसिद्ध हैं— गयाका धर्मारण्य और सिद्धपुरका धर्मारण्य। स्कन्दपुराणके धर्मारण्यखण्डसे इन दोनोंकी संगति बैठ जाती है। इन दोनोंमें भी विशेषकर गया-क्षेत्र ही पुराणोंमें धर्मारण्य-नामसे व्याख्यात है। यहाँ धर्मने विशेष तपस्या की थी, इसीलिये इसका नाम धर्मारण्य पड़ा। यहाँ प्रवेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेमात्रसे सब पापोंसे मुक्ति हो जाती है और पितरोंकी अर्चा करनेसे सर्वमनोरथप्रद महायज्ञका फल प्राप्त होता है।

(११) वेदारण्य—स्कन्दपुराणकी सूतसंहिताका समग्र भाग वेदारण्यकी महिमा-कथनमें ही पर्यवसित होता दीखता है। यह वेदारण्य दक्षिण भारतमें स्थित है। यह शैव क्षेत्र है। यहाँ भगवान् शिवके कई मन्दिर हैं। मुख्य शिवलिंग वेदपुरीश्वर महादेवके नामसे विख्यात है। सूतसंहिताके अनुसार यह अरण्य समग्र ज्ञानका प्रकाशक और मोक्षप्रद है।

(१२) सैन्धवारण्य—यह अरण्य सौवीर और सिन्धुदेशोंकी सीमापर स्थित है। पुराणोंके अनुसार इसके आसपास केतुमाला और मेध्या नामकी नदियाँ प्रवाहित होती हैं। यह अरण्य सदा ही सिद्ध ऋषि-मुनियों एवं महात्माओंका आवास-स्थल रहा है—'**ख्यातं च सैन्धवारण्यं पुण्यं द्विजनिषेवितम्।**' यहाँ अनेक वैखानस और सिद्ध-मुनियोंके आश्रम थे। यह स्थान आजकल पाकिस्तानके पश्चिमी भागमें पड़ गया है।

चतुर्दश प्रयाग

नाम	सरिता-संगम	नाम	सरिता-संगम
१-प्रयागराज—	गङ्गा-यमुना-सरस्वती।	८-इन्द्रप्रयाग—	भागीरथी-व्यासगङ्गा।
२-देवप्रयाग—	अलकनन्दा-भागीरथी।	९-सोमप्रयाग—	सोमनदी-मन्दाकिनी।
३-रुद्रप्रयाग—	अलकनन्दा-मन्दाकिनी।	१०-भास्करप्रयाग—	भास्वती-भागीरथीगङ्गा।
४-कर्णप्रयाग—	पिण्डर गङ्गा-अलकनन्दा।	११-हरिप्रयाग—	हरिगङ्गा-भागीरथी।
५-नन्दप्रयाग—	अलकनन्दा-नन्दा।	१२-गुप्तप्रयाग—	नीलगङ्गा-भागीरथी।
६-विष्णुप्रयाग—	विष्णुगङ्गा-अलकनन्दा।	१३-श्यामप्रयाग—	श्यामगङ्गा-भागीरथी।
७-सूर्यप्रयाग—	अलसतरङ्गिणी-मन्दाकिनी।	१४-केशवप्रयाग—	अलकनन्दा-सरस्वती।

इनमें प्रथम ५ प्रयाग मुख्य हैं।

प्रधान द्वादश देवी-विग्रह एवं उनके स्थान

त्रिपुरारहस्य माहात्म्यखण्डमें भारतवर्षके बारह प्रधान देवी-विग्रह एवं उनके स्थानोंका स्पष्ट निर्देश हुआ है। इसके अनुसार जगज्जननी भगवती महाशक्ति कांचीपुरमें **कामाक्षी**-रूपसे, मलयगिरिमें '**भ्रामरी**' या '**भ्रमराम्बा**'-नामसे, केरल (मलाबार) में **कुमारी** (कन्याकुमारी), आनर्त (गुजरात) में **अम्बा**, करवीर (कोल्हापुर) में **महालक्ष्मी**, मालवा (उज्जैन) में **कालिका**, प्रयागमें **ललिता** (अलोपी) तथा विन्ध्यगिरिमें **विन्ध्यवासिनी** रूपसे प्रतिष्ठित हैं। वे वाराणसीमें **विशालाक्षी**, गयामें **मङ्गलावती**, बंगालमें **सुन्दरी** और नेपालमें **गुह्यकेश्वरी** कही जाती हैं। मङ्गलमयी पराम्बा पार्वती इन बारह रूपोंसे भारतमें स्थित हैं। इन विग्रहोंके दर्शनसे ही मनुष्य सभी पापोंसे छूट जाता है। दर्शनमें अशक्त प्राणी सावधान-चित्त होकर प्रतिदिन प्रातःकालमें इनका स्मरण करे। ऐसा करनेवाला उपासक सारे पापोंसे मुक्ति प्राप्त कर भगवतीके परमधामके अधिकारीके रूपमें मोक्षको प्राप्त करता है।

इक्यावन सिद्ध-क्षेत्र

पुराणोंके अन्तर्गत सिद्ध-क्षेत्रोंकी महिमाका विस्तारसे वर्णन हुआ है। सिद्ध क्षेत्रोंकी कुल संख्या ५१ मानी गयी है। जिनका विवरण इस प्रकार है—१-कुरु-क्षेत्र, २-बदरिकाश्रम-क्षेत्र ३-नारायण-क्षेत्र, ४-गया-क्षेत्र, ५-पुरुषोत्तम-क्षेत्र (जगन्नाथ-पुरी), ६-वाराणसी-क्षेत्र, ७-वाराह-क्षेत्र (अयोध्याके निकट), ८-पुष्कर-क्षेत्र, ९-नैमिषारण्य-क्षेत्र, १०-प्रभास-क्षेत्र, ११-प्रयाग-क्षेत्र, १२-शूकर-क्षेत्र (सोरों), १३-पुलहाश्रम (मुक्तिनाथ), १४-कुब्जाम्रक-क्षेत्र (ऋषिकेश), १५-द्वारका, १६-मथुरा, १७-केदार-क्षेत्र, १८-पम्पा-क्षेत्र, १९-बिन्दुसर (सिद्धपुर), २०-तृणबिन्दु-वन, २१-दशपुर (मन्दसौर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२-गङ्गासागर-संगम, २३-तेजोवन, २४-विशाखसूर्य (विशाखापत्तनम्), २५-उज्जयिनी, २६- दण्डक (नासिक), २७-मानस (मानसरोवर), २८-नन्दा- क्षेत्र, (नन्दादेवी पर्वत), २९-सीताश्रम (बिठूर), ३०-कोकामुख, ३१-मन्दार (भागलपुर), ३२-महेन्द्र-क्षेत्र (मंडासा), ३३-ऋषभ-क्षेत्र, ३४-शालग्राम-क्षेत्र, (दामोदर- कुण्ड), ३५-गोनिष्क्रमण-क्षेत्र, ३६-सह्य-क्षेत्र (सह्याद्रि), ३७-पाण्ड्य-क्षेत्र, ३८-चित्रकूट-क्षेत्र, ३९-गन्धमादन-क्षेत्र, (रामेश्वर), ४०-हरिद्वार-क्षेत्र, ४१-वृन्दावन-क्षेत्र, ४२-हस्तिनापुर, ४३-लोहाकुल (लोहार्गल), ४४-देवशाल, ४५-कुमारिका-क्षेत्र (कुमारस्वामी), ४६-देवदारुवन (आसाम), ४७-लिङ्ग-स्फोट-क्षेत्र, ४८-अयोध्या-क्षेत्र, ४९-कुण्डिन-क्षेत्र, ५०-त्रिकूट-क्षेत्र, ५१-माहिष्मती-क्षेत्र।

इन इक्यावन सिद्ध-क्षेत्रोंका विस्तृत माहात्म्य पुराणों एवं अन्यान्य धर्मग्रन्थोंमें उपलब्ध होता है। विस्तारभयके कारण मात्र उनके नामोंका ही निर्देश किया गया है।

तीर्थका फल किसे मिलता है और किसे नहीं मिलता ?

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥

जिसके हाथ, पैर और मन भलीभाँति संयमित हैं अर्थात् जिसके हाथ सेवामें लगे हैं, पैर तीर्थादि भगवत्-स्थानोंमें जाते हैं और मन भगवान्‌के चिन्तनमें संलग्न है, जिसे अध्यात्मविद्या प्राप्त है, जो धर्मपालनके लिये कष्ट सहता है, जिसकी भगवान्‌के कृपापात्रके रूपमें कीर्ति है, वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।

प्रतिग्रहादपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित्।
अहंकारविमुक्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥

जो प्रतिग्रह नहीं लेता, जो अनुकूल या प्रतिकूल—जो कुछ भी मिल जाय, उसीमें संतुष्ट रहता है तथा जिसमें अहंकारका सर्वथा अभाव है, वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।

अदम्भको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्वसङ्गैर्यः स तीर्थफलमश्नुते॥

जो पाखण्ड नहीं करता, नये-नये कामोंको आरम्भ नहीं करता, थोड़ा आहार करता है, इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर चुका है, सब प्रकारकी आसक्तियोंसे छूटा हुआ है, वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।

अक्रोधनोऽमलमतिः सत्यवादी दृढव्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥

जिसमें क्रोध नहीं है, जिसकी बुद्धि निर्मल है, जो सत्य बोलता है, व्रतपालनमें दृढ़ है और सब प्राणियोंको अपने आत्माके समान अनुभव करता है, वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।

तीर्थान्यनुसरन् धीरः श्रद्दधानः समाहितः।
कृतपापो विशुद्ध्येत् किं पुनः शुद्धकर्मकृत्॥

जो तीर्थोंका सेवन करनेवाला धैर्यवान्, श्रद्धायुक्त और एकाग्रचित्त है, वह पहलेका पापाचारी हो तो भी शुद्ध हो जाता है, फिर जो शुद्ध कर्म करनेवाला है, उसकी तो बात ही क्या है।

अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः॥

जो अश्रद्धालु है, पापात्मा (पापका पुतला—पापमें गौरवबुद्धि रखनेवाला), नास्तिक, संशयात्मा और केवल तर्कमें ही डूबा रहता है—ये पाँच प्रकारके मनुष्य तीर्थके फलको प्राप्त नहीं करते। (स्कन्दपुराण)

नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत्।
यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम्॥

पापी मनुष्योंके तीर्थमें जानेसे उनके पापकी शान्ति होती है। जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, ऐसे मनुष्योंके लिये तीर्थ यथोक्त फल देनेवाला है।

कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमाविशेत्।
न तेन किंचिदप्राप्तं तीर्थाभिगमनाद् भवेत्॥

जो काम, क्रोध और लोभको जीतकर तीर्थमें प्रवेश करता है, उसे तीर्थयात्रासे कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं रहती।

तीर्थानि च यथोक्तेन विधिना संचरन्ति ये।
सर्वद्वन्द्वसहा धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥

जो यथोक्त विधिसे तीर्थयात्रा करते हैं, सम्पूर्ण द्वन्द्वोंको सहन करनेवाले वे धीर पुरुष स्वर्गमें जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गङ्गादितीर्थेषु वसन्ति मत्स्या
देवालये पक्षिगणाश्च सन्ति।
भावोज्झितास्ते न फलं लभन्ते
तीर्थाच्च देवायतनाच्च मुख्यात्॥
भावं ततो हृत्कमले निधाय
तीर्थानि सेवेत समाहितात्मा।

गङ्गा आदि तीर्थोंमें मछलियाँ निवास करती हैं, देवमन्दिरोंमें पक्षिगण रहते हैं, किंतु उनके चित्त भक्तिभावसे रहित होनेके कारण उन्हें तीर्थसेवन और देवमन्दिरमें निवास करनेसे कोई फल नहीं मिलता। अतः हृदयकमलमें भावका संग्रह करके एकाग्रचित्त होकर तीर्थसेवन करना चाहिये।

(नारदपुराण)

मानस-तीर्थका महत्त्व

एक बार अगस्त्यजीने लोपामुद्रासे कहा—'निष्पापे! मैं उन मानस-तीर्थोंका वर्णन करता हूँ जिन तीर्थोंमें स्नान करके मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है, उसे सुनो। सत्य, क्षमा, इन्द्रिय-संयम, सब प्राणियोंके प्रति दया, सरलता, दान, मनका दमन, संतोष, ब्रह्मचर्य, प्रियभाषण, ज्ञान, धृति और तपस्या—ये प्रत्येक एक-एक तीर्थ हैं। इनमें ब्रह्मचर्य परमतीर्थ है। मनकी परमविशुद्धि तीर्थोंका भी तीर्थ है। जलमें डुबकी मारनेका नाम ही स्नान नहीं है, जिसने इन्द्रिय-संयमरूप स्नान किया है, वही स्नात है और जिसका चित्त शुद्ध हो गया है, वही पवित्र है।

जो लोभी, चुगलखोर, निर्दय, दम्भी और विषयोंमें आसक्त है, वह सारे तीर्थोंमें भलीभाँति स्नान कर लेनेपर भी पापी और मलिन ही है। शरीरका मैल उतारनेसे ही मनुष्य निर्मल नहीं होता, मनके मलको निकाल देनेपर ही भीतरसे सुनिर्मल होता है। जलजन्तु जलमें ही पैदा होते हैं और जलमें ही मरते हैं, परंतु वे स्वर्गमें नहीं जाते, क्योंकि उनके मनका मल नहीं धुलता। विषयोंमें अत्यन्त राग ही मनका मल है और विषयोंसे वैराग्य ही निर्मलता है। चित्त अन्तरकी वस्तु है, उसके दूषित रहनेपर केवल तीर्थ-स्नानसे शुद्धि नहीं होती। जैसे सुराभाण्डको चाहे सौ बार जलसे धोया जाय, वह अपवित्र ही है, वैसे ही जबतक मनका भाव शुद्ध नहीं है, तबतक उसके लिये दान, यज्ञ, शौच, तप, तीर्थसेवन और स्वाध्याय—सभी अतीर्थ हैं। जिसकी इन्द्रियाँ संयममें हैं, वह मनुष्य जहाँ रहता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्करादि तीर्थ विद्यमान हैं। ध्यानसे विशुद्ध हुए, राग-द्वेषरूपी मलका नाश करनेवाले ज्ञानजलमें जो स्नान करता है, वही परमगतिको प्राप्त करता है।

शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघे।
येषु सम्यङ्नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम्॥
सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं संतोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम्।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा॥
न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते।
स स्नातो यो दमस्नातः शुचिः शुद्धमनोमलः॥
यो लुब्धः पिशुनः क्रूरो दाम्भिको विषयात्मकः।
सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एव सः॥
न शरीरमलत्यागान्नरो भवति निर्मलः।
मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्तः सुनिर्मलः॥
जायन्ते च म्रियन्ते च जलेष्वेव जलौकसः।
न च गच्छन्ति ते स्वर्गमविशुद्धमनोमलाः॥
विषयेष्वतिसंरागो मानसो मल उच्यते।
तेष्वेव हि विरागोऽस्य नैर्मल्यं समुदाहृतम्॥
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानान्न शुध्यति।
शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि॥
दानमिज्या तपः शौचं तीर्थसेवाश्रुतं तथा।
सर्वाण्येतान्यतीर्थानि यदि भावो न निर्मलः॥
निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च॥
ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्॥

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ६।२९-४१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहस्थोंके लिये पुराणोक्त कुछ सामान्य नियम

१. प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व उठना चाहिये। उठते ही भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये।
२. शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर भगवान्‌की उपासना, संध्या, तर्पण आदि करने चाहिये।
३. बलिवैश्वदेव करके समयपर सात्त्विक भोजन करना चाहिये।
४. प्रतिदिन प्रातःकाल माता, पिता, गुरु आदि बड़ोंको प्रणाम करना चाहिये।
५. इन्द्रियोंके वश न होकर उनको वशमें करके उनसे यथायोग्य काम लेना चाहिये।
६. धन कमानेमें छल, कपट, चोरी, असत्य और बेईमानीका त्याग कर देना चाहिये। अपनी कमाईके धनमें यथायोग्य सभीका अधिकार समझना चाहिये।
७. माता-पिता, भाई-भौजाई, बहन-फूआ, स्त्री-पुत्र आदि परिवार सादर पालनीय हैं।
८. अतिथिका सच्चे मनसे सत्कार करना चाहिये।
९. अपनी शक्तिके अनुसार दान करना चाहिये। पड़ोसियों तथा ग्रामवासियोंकी सदा सत्कारपूर्ण सेवा करनी चाहिये।
१०. सभी कर्म बड़ी सुन्दरता, सफाई और नेकनीयतीसे करने चाहिये।
११. किसीका अपमान, तिरस्कार और अहित नहीं करना चाहिये।
१२. अपने किसी कर्मसे समाजमें विशृङ्खलता और प्रमाद नहीं पैदा करना चाहिये।
१३. मन, वचन और शरीरसे पवित्र, विनयशील और परोपकारी बनना चाहिये।
१४. सब कर्म नाटकके पात्रकी भाँति अपना नहीं मानना चाहिये, परंतु करना चाहिये ठीक सावधानीके साथ।
१५. विलासितासे बचकर रहना चाहिये—अपने लिये खर्च कम करना चाहिये। बचतके पैसे गरीबोंकी सेवामें लगाने चाहिये।
१६. स्वावलम्बी बनकर रहना चाहिये, अपने जीवनका भार दूसरेपर नहीं डालना चाहिये।
१७. अकर्मण्य कभी नहीं रहना चाहिये।
१८. अन्यायका पैसा, दूसरेके हकका पैसा घरमें न आने पावे, इस बातपर पूरा ध्यान देना चाहिये।
१९. सब कर्मोंको भगवान्‌की सेवाके भावसे—निष्कामभावसे करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।
२०. जीवनका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है, भोग नहीं—इस निश्चयसे कभी डिगना नहीं चाहिये और सारे काम इसी लक्ष्यकी साधनाके लिये करने चाहिये।
२१. किसीके घरमें जिधर स्त्रियाँ रहती हों (जनानेमें), नहीं जाना चाहिये। अपने घरमें भी स्त्रियोंको किसी प्रकारसे सूचना देकर जाना चाहिये।
२२. जिस स्थानपर स्त्रियाँ नहाती हों या जिस रास्तेसे स्त्रियाँ ही जाती हों, उधर नहीं जाना चाहिये।
२३. भूलसे तुम्हारा पैर या धक्का किसीको लग जाय तो उससे क्षमा माँगनी चाहिये।
२४. कोई आदमी रास्ता भूल जाय तो उसे ठीक रास्तेपर डाल देना चाहिये, चाहे ऐसा करनेमें स्वयंको कष्ट भी क्यों न हो।
२५. दूसरोंकी सेवा इस भावसे नहीं करनी चाहिये कि उसके बदलेमें कुछ इनाम मिलेगा, सेवा जब निष्काम भावसे की जायगी, तभी सेवाका सच्चा आनन्द प्राप्त हो सकेगा।
२६. भगवत्प्रार्थनाके समय आँखें बंद रखकर मनको स्थिर रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये और उस समय 'भगवान्‌के चरणोंमें बैठा हूँ' ऐसी भावना अवश्य होनी चाहिये।
२७. किसी स्थानमें जायँ, जहाँ हमारा आदर-सत्कार हो और हमारे साथ कोई मित्र या अतिथि हो तो हमें उसे भूल न जाना चाहिये, प्रत्युत उसे भी अपने आदर-सत्कारमें सम्मिलित कर लेना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[अष्टादश महापुराण संस्कृत वाङ्मयकी अमूल्य निधि हैं। ये अत्यन्त प्राचीन तथा वेदार्थको स्पष्ट करनेवाले हैं, अतः इन्हें 'पुराण' कहा गया है। पुराणोंकी अनादिता, प्रामाणिकता, मङ्गलमयता तथा यथार्थताका शास्त्रोंमें सर्वत्र उल्लेख है। कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा है कि पुराण बहुत प्राचीन नहीं हो सकते, क्योंकि पुराणोंमें बुद्धदेवकी कथा तथा उनके पीछेकी अर्वाचीन घटनाओंका भी उल्लेख मिलता है, परंतु यह बात उचित नहीं। ज्योतिषके ज्ञानकी सहायतासे जैसे परवर्ती सूर्य एवं चन्द्रग्रहणका समय पहले ही बता दिया जाता है, वैसे ही ऋषिगण योगप्रभावसे भविष्यकी सब घटनाओंको जान सकते थे, क्योंकि वे त्रिकालदर्शी होते हैं। भावी घटनाओंके विषयमें उन्हें ज्ञान होना कोई अस्वाभाविक नहीं था। वेदोंमें पुराणोंका उल्लेख मिलता है तथा पुराणोंको पञ्चमवेद कहा भी गया है, अतः वेदोंको माननेपर पुराणोंकी प्राचीनता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

वास्तवमें पुराण ही भारतीय संस्कृतिके सच्चे और आदर्श इतिहास हैं। किसी मानव-समाजका इतिहास तभी पूर्ण समझना चाहिये, जब उसका इतिवृत्त सृष्टिके आरम्भसे लेकर वर्तमानकालतक क्रमबद्ध-रूपसे दिया जाय। अन्यथा उसे अधूरा ही समझना चाहिये। इतिहासकी इस वास्तविक कल्पनाको पुराणोंमें ही हम साकाररूपमें होते देखते हैं। कुछ लोग पुराणोंमें लिखी बातको असम्भव कहकर कपोलकल्पित कहनेका भी साहस कर बैठते हैं, परंतु भारतीय वाङ्मयमें वस्तु-कथनके तीन प्रकार बताये गये हैं। प्रभुवाक्य, सुहृद्-वाक्य और कान्तावाक्य।

प्रभुवाक्य वह है, जिसमें सीधा आदेश हो और जिन वाक्योंके शब्द बदले भी नहीं जा सकें। वेदादिके वाक्य प्रभु-वाक्य हैं। सुहृद्-वाक्यका तात्पर्य है रोचक शब्दोंमें सुहृद्वत् अपनी बात बताना। तात्पर्यको सुरक्षित रखते हुए सुहृद्-वाक्यमें शब्द बदले जा सकते हैं। पुराणोंकी यही शैली है। पुराणोंमें, जहाँ कोई बात कही गयी है, उनका विस्तारसे तथा प्रायः कथाओंके रूपमें प्रस्तुतीकरण हुआ है। काव्य कान्ता-वाक्यका अनुसरण करते हैं।

पुराणोंमें अनेक अलौकिक घटनाओंका उल्लेख मिलता है, परंतु इससे उनमें अविश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि अलौकिक घटना लौकिक नहीं होती। सूर्योदय और सूर्यास्त जगत्की एक आश्चर्यजनक घटना है। बीजसे वृक्षकी उत्पत्ति भी एक आश्चर्यजनक घटना है; परंतु हमें इसे देखनेका अभ्यास पड़ जानेके कारण इनमें कोई आश्चर्य नहीं होता।

पुराणोंमें राजाओंकी वंशावलियोंका वर्णन भी है, किंतु वह वर्णन केवल कौतूहल-पूर्तिके लिये नहीं, प्रत्युत वेदका तात्पर्य समझाने, विषयभोगोंकी आकाङ्क्षाको छुड़ाने और चित्तको भगवदुन्मुख करनेके लिये हुआ है।

जिन लोगोंके लिये यह लोक ही सब कुछ है, उनकी ऐहलौकिक भोगाकाङ्क्षाको शिथिल किये बिना उनसे ब्रह्मज्ञानकी चर्चा करना निरर्थक ही होगा। इसीसे पुराणोंमें कर्मकाण्डके अन्तर्गत परलोकके प्रचुर सुखकी प्राप्तिके लिये यज्ञानुष्ठानके विविध उपाय बताये गये हैं, किंतु इन सबका वास्तविक तात्पर्य मनुष्यको भगवत्प्राप्तिके मार्गमें प्रवृत्त करना ही है। हमारे पूर्वकृत पापकर्मोंसे उत्पन्न हुए संस्कार हमारी ब्रह्मज्ञान-प्राप्तिमें प्रबल अन्तराय हैं। हमें यज्ञादि पुण्यकर्मोंके द्वारा इन पाप-संस्कारोंका नाश करना होगा, तभी हम ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पानेमें समर्थ हो सकेंगे।

अतः पुराणवर्णित प्रसंग काल्पनिक नहीं हैं, वे सर्वथा सत्य हैं। ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंमें वर्णित प्रसंग ऐसे चमत्कारपूर्ण हैं कि उनके आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों ही अर्थ होते हैं। इसलिये जो लोग इनका आध्यात्मिक अर्थ करते हैं, वे भी अपनी दृष्टिसे ठीक ही करते हैं। पुराणोंमें कुछ ऐसे भी प्रसंग मिलते हैं जो समीचीन प्रतीत नहीं होते, इसका कारण यह है कि उनमें कुछ प्रसंग तो ऐसे हैं जिनमें किसी निगूढ़ तत्त्वका विवेचन करनेके लिये आलंकारिक भाषाका प्रयोग किया गया है। इन्हें समझनेके लिये भगवत्कृपा, सात्त्विकी श्रद्धा और गुरुपरम्पराके अध्ययनकी आवश्यकता है। कुछ ऐसी बातें हैं जो सच्चे इतिहास हैं। उनके समीचीन प्रतीत न होनेपर भी सत्य प्रकाश करनेकी दृष्टिसे उन्हें ज्यों-का-त्यों लिख दिया गया है। इसका कारण यह है कि पुराणकार ऋषि, मुनि आजकलके इतिहास-लेखकोंकी भाँति किसी दुराग्रहके मोहसे मिथ्याको सत्य बनाकर लिखना पाप समझते थे। वे सत्यवादी, सत्याग्रही और सत्यके प्रकाशक थे।

एक बात और है, जो बुद्धिवादी लोगोंकी दृष्टिमें प्रायः खटकती है, वह है पुराणोंमें जहाँ जिस देवता, तीर्थ या व्रत आदिका महत्त्व बतलाया गया है, वहाँ उसे ही सर्वोपरि माना है और अन्य सबके द्वारा उसकी स्तुति करायी गयी है। यह बात यद्यपि कुछ विचित्र लगती है, परंतु इसका तात्पर्य यह है कि भगवान्का यह लीलाभिनय ऐसा आश्चर्यमय है कि इसमें एक ही परिपूर्ण विभिन्न-विचित्र लीलाव्यापारके लिये और विभिन्न रुचि, स्वभाव तथा अधिकार-सम्पन्न साधकोंके कल्याणके लिये अनन्त विविध रूपोंमें नित्य प्रकट है। भगवान्के ये सभी रूप नित्य पूर्णतम और सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। अपनी-अपनी रुचि और निष्ठाके अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो जिस रूप और नामको इष्ट बनाकर भजता है, वह उसी दिव्य नाम और रूपमेंसे समस्त रूपमय एकमात्र भगवान्‌को प्राप्त कर लेता है; क्योंकि भगवान्‌के सभी रूप पूर्णतम हैं और उन समस्त रूपोंमें एक ही भगवान् लीला कर रहे हैं। व्रतोंके सम्बन्धमें भी यही बात है। अतएव श्रद्धा एवं निष्ठाकी दृष्टिसे साधकके कल्याणार्थ जहाँ जिसका वर्णन है, वहाँ उसे सर्वोपरि बताना युक्तियुक्त ही है और परिपूर्णतम भगवत्-सत्ताकी दृष्टिसे सत्य तो है ही। तीर्थोंकी बात यह है कि भगवान्‌के विभिन्न नाम-रूपोंकी उपासना करनेवाले संतों-महात्माओं और भक्तोंने अपनी कल्याणमयी सत्-साधनाके प्रतापसे विभिन्न रूपमय भगवान्‌को अपनी-अपनी रुचिके अनुसार नाम-रूपमें अपने ही साधन-स्थानमें प्राप्त कर लिया और वहीं उनकी प्रतिष्ठा की। एक ही भगवान् अपनी पूर्णतम स्वरूप-शक्तिके साथ अनन्त स्थानोंमें अनन्त नाम-रूपोंके साथ प्रतिष्ठित हुए। भगवान्‌के प्रतिष्ठास्थान ही तीर्थ हैं, जो श्रद्धा, निष्ठा और रुचिके अनुसार सेवन करनेवालोंको यथायोग्य फल देते हैं। यही तीर्थ-रहस्य है। इस दृष्टिसे प्रत्येक तीर्थको सर्वोपरि बताना उचित ही है।

सब एक हैं इसकी पुष्टि तो इसीसे हो जाती है कि शैव कहे जानेवाले पुराणोंमें विष्णुकी और वैष्णव पुराणोंमें शिवकी महिमा गायी गयी है और दोनोंको एक बताया गया है।

यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथा शिवः। अन्तरं शिवविष्ण्वोश्च मनागपि न विद्यते॥ (स्कन्द०, काशीख० २३।४१)

'जैसे शिव हैं वैसे ही विष्णु हैं तथा जैसे विष्णु हैं वैसे ही शिव हैं। शिव और विष्णुमें किंचित् भी अन्तर नहीं है।'

यो विष्णुः स शिवो ज्ञेयो यः शिवो विष्णुरेव सः। (स्कन्द०, माहे० ८।२०)

'जो विष्णु हैं, उन्हींको शिव जानना चाहिये और जो शिव हैं, वे ही विष्णु हैं। भगवान् शिव कहते हैं 'विष्णो! जैसे मैं हूँ, वैसे तुम हो। 'यथाहं त्वं तथा विष्णो'' (स्कन्द०, काशी० २७।१८३)

वस्तुतः पुराण सर्वसाधारणकी सर्वाङ्गीण उन्नति और परम-कल्याणकी साधन-सम्पत्तिके अटूट भण्डार हैं। पुराण ही अध्यात्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, तन्त्र-मन्त्रशास्त्र और कलाशास्त्र हैं। पुराण इतिहास तथा जीवनकोष हैं। पुराण सनातन आर्य संस्कृतिका स्वरूप और वेदकी सरस तथा सरलतम व्याख्या हैं। पुराणोंमें ही तीर्थोंका इतिहास और उनकी विस्तृत सूची है। पुराणोंमें परलोक-विज्ञान, प्रेत-विज्ञान, जन्मान्तर और लोकान्तररहस्य, कर्मरहस्य तथा कर्मफल-निरूपण, नक्षत्रविज्ञान, रत्नविज्ञान, प्राणिविज्ञान, आयुर्वेद और शकुनशास्त्र आदि इतने महत्त्वपूर्ण और उपादेय विषय हैं कि जिनकी व्याख्या करना तो बहुत दूरकी बात है, पूरी सूची बना पाना भी प्रायः असम्भव है। इतने महत्त्वपूर्ण विषयोंपर इतनी गम्भीर गवेषणा करके इनका रहस्य सरल भाषामें स्पष्ट कर देना पुराणोंका ही काम है।

अपनी-अपनी श्रद्धा, रुचि, निष्ठा तथा अधिकारके अनुसार साधारण अपढ़ मनुष्यसे लेकर बड़े-से-बड़े विचारशील बुद्धिवादी पुरुषोंके लिये भी इनमें उपयोगी साधन-सामग्री भरी है। ज्ञान-विज्ञान, वैराग्य, भक्ति, प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, यज्ञ, दान, तप, संयम, नियम, सेवा, भूतदया, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, व्यक्तिधर्म, नारीधर्म, मानवधर्म, राजधर्म, सदाचार और व्यक्ति-व्यक्तिके विभिन्न कर्तव्योंके सम्बन्धमें बड़े ही विचारपूर्ण और कल्याणकारी अनुभूत उपदेश अतीव रोचक भाषामें भरे पड़े हैं। साथ ही पुरुष, प्रकृति, विकृति, प्राकृतिक दृश्य, ऋषि-मुनियों तथा राजाओंकी वंशावली एवं सृष्टिक्रम आदिका भी निगूढ़ वर्णन है। प्रस्तुत प्रकरणमें अष्टादश महापुराणोंके संक्षिप्त परिचय और प्रमुख रोचक कथाएँ प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है, जिससे पाठकोंको पुराणोंकी विषयवस्तुका परिज्ञान हो सके तथा वे इनमें वर्णित आदर्शोंको अपने जीवनमें उतार सकें।—सम्पादक]

यथाग्निः सुसमिद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात्। पापानि भगवद्भक्तिस्तथा दहति तत्क्षणात्॥
संचिन्तितः कीर्तित एव नित्यं महानुभावो भगवाननन्तः। समन्ततोऽघं विनिहन्ति मेघं वायुर्यथा भानुरिवान्धकारम्॥
न भूप देवार्चनयज्ञतीर्थस्नानव्रताचारतपःक्रियाभिः। तथा विशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते॥
कथा विशुद्धा नरनाथ तथ्यास्ता एव पथ्या हरिभक्तकथ्याः। संकीर्त्यते यासु पवित्रकीर्तिर्विशुद्धमूर्तिर्निजदत्तभक्तिः॥

(नारदजीने राजा अम्बरीषको उपदेश दिया है—) जैसे अत्यन्त प्रज्वलित अग्नि लकड़ियोंके ढेरको तुरंत जला डालती है, उसी प्रकार भगवान्‌की भक्ति समस्त पापराशिको तत्काल भस्म कर देती है। जैसे वायु बादलोंको और भगवान् सूर्य अन्धकारको नष्ट कर डालते हैं, ठीक उसी तरह शक्तिशाली भगवान् अनन्त प्रतिदिन अपना ध्यान और कीर्तन करनेपर सब ओरसे पापोंका नाश कर देते हैं। राजन्! देवपूजन, यज्ञ, तीर्थ-स्नान, व्रत-पालन तथा तपस्याके अनुष्ठानसे भी अन्तःकरण वैसा शुद्ध नहीं होता, जैसा हृदयमें भगवान् अनन्तके विराजमान होनेपर होता है। नरेश्वर! वे ही कथाएँ शुद्ध, सत्य, लाभदायक और हरिभक्तोंके कहनेयोग्य होती हैं, जिनमें अपने सेवकोंको उत्तम भक्ति प्रदान करनेवाले, पवित्रकीर्ति एवं विशुद्धस्वरूप भगवान् विष्णुका कीर्तन होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मपुराण

श्रीब्रह्माजीद्वारा कथित होने तथा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णको ब्रह्म मानकर इनका निरूपण करनेके कारण यह 'ब्रह्मपुराण' कहा गया है। महापुराणोंके गणना-क्रममें प्रायः सर्वत्र प्रथम संख्यापर परिपठित होनेके कारण यह 'आदिपुराण' भी कहलाता है। इसके प्रारम्भिक दो श्लोकोंमेंसे एकमें ब्रह्मका तटस्थ-लक्षण और दूसरेमें स्वरूप-लक्षण बताया गया है। उपनिषद्में ब्रह्मका तटस्थ-लक्षण इस प्रकार है—'**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति** (तै० उप० भृगुवल्ली प्र० अनु०) अर्थात् ये प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, जिसके सहारे जीवित रहते हैं और अन्तमें जिसमें प्रवेश कर जाते हैं, वह ब्रह्म है।

श्रुतिने ब्रह्मके स्वरूप-लक्षणमें बताया है कि ब्रह्म सत्स्वरूप, चित्स्वरूप और आनन्दस्वरूप होता है—'**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**'। ब्रह्मपुराणमें '**नित्यानन्दमयं प्रसन्नममलम्**' (ब्रह्म० पु० १।३) लिखकर उक्त श्रुतिका अनुवाद कर दिया गया है। इस तरह ब्रह्मपुराणने यह स्पष्ट कर दिया है कि ब्रह्मके निरूपणमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित आदिका निरूपण उसीका स्वरूपभूत है।

सम्पूर्ण ब्रह्मपुराणमें २४६ अध्याय हैं। इसमें किसी प्रकारका खण्डात्मक, स्कन्धात्मक या भागात्मक विभाजन नहीं है। इसकी श्लोक-संख्या लगभग चौदह हजार है। इसमें लोमहर्षण सूतका शौनकादि ऋषियोंके साथ संवाद है। उसमें पहले-पहल सृष्टिकी उत्पत्ति तथा महाराज पृथुका पावन चरित्र वर्णित है। गोरूपधारिणी पृथ्वीसे राजा पृथुने ही सर्वप्रथम समस्त अन्नादि पदार्थोंका दोहन किया और इन पदार्थोंसे प्रजाने जीवन धारण किया। इन्हीं महाराज पृथुके सम्बन्धसे ही इसका नाम पृथ्वी हुआ। इसके अनन्तर चौदह मन्वन्तरों तथा विवस्वान् (सूर्य) की संतति-परम्पराका वर्णन है और फिर क्रमशः सूर्यवंश एवं चन्द्रवंशके वर्णनमें श्रीकृष्णचरित्रका विस्तृत वर्णन है। इसी प्रसंगमें जम्बूद्वीप तथा उसके विभिन्न वर्षोंसहित भारतवर्षकी महिमा तथा भगवन्नामका अलौकिक माहात्म्य है। तदनन्तर सूर्य आदि ग्रहों और भुवर् आदि लोकोंकी स्थिति तथा श्रीविष्णुके प्रभावका माहात्म्य प्रदर्शित है। इसके बाद विविध तीर्थोंका वर्णन और व्यासजीका मुनियोंके साथ मोक्षके विषयमें संवाद है। उसीके अन्तर्गत ब्रह्माजीका भृगु आदि मुनीश्वरोंके साथ संवाद है। तदनन्तर भगवान् सूर्य (आदित्य) की महिमा, अदितिके गर्भसे उनके अवतार ग्रहण करनेसे आदित्य नाम होने तथा उनके वंशका वर्णन है। फिर विस्तारसे भगवती पार्वतीका पावन चरित्र है। एकाम्रकक्षेत्र, उत्कलक्षेत्र तथा पुरुषोत्तमक्षेत्रकी महिमामें राजा इन्द्रद्युम्नका वैष्णवभक्तिपरक आख्यान है। उसी क्रममें भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा एवं दर्शनका फल भी बताया गया है। तदनन्तर कल्पान्तजीवी महामुनि मार्कण्डेयका दिव्य चरित्र तथा उनके द्वारा कल्पक्षयके समय प्रलयपयोधिके मध्य वटवृक्षपर भगवान् बालमुकुन्दके दर्शनका अद्भुत वर्णन है।

इसके बाद एक सौ छः (अध्याय ७० से १७५ तकके) अध्यायोंमें विस्तारसे गौतमी-माहात्म्य वर्णित है, जो ब्रह्माजी तथा देवर्षि नारदके कथोपकथनमें है। वहाँ गङ्गाके दो भेद बतलाये गये हैं। एक तो गौतमी गङ्गा अर्थात् गोदावरी है और द्वितीय भागीरथी गङ्गा हैं। भगवान् शंकरकी जटामें आवर्तित भगवती गङ्गाको दो विभूतियाँ लोकोपकारकी दृष्टिसे पृथ्वीपर ले आयीं—एक महर्षि गौतम तथा द्वितीय राजा भगीरथ। इसीलिये गङ्गादेवी दो अंशोंमें विभक्त हो गयीं। विन्ध्यपर्वतके दक्षिणमें जो गङ्गा हैं, वे गौतमी गङ्गा, आदिगङ्गा या गोदावरी कहलाती हैं और विन्ध्यके उत्तरमें जो गङ्गा हैं, वे भागीरथी गङ्गाके नामसे प्रसिद्ध हैं।

गौतमी गङ्गाके इस आख्यानका अतीव रोचक वर्णन इसमें किया गया है। इसके साथ ही ब्रह्मगिरिसे पूर्वी समुद्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलनेतक गोदावरी नदीके तटवर्ती विभिन्न तीर्थोंका विशद तथा मनोहारी वर्णन है। इसके अन्तर्गत लगभग १०० अध्यायोंमें प्रायः प्रत्येक अध्यायमें गौतमीके तटवर्ती तीर्थोंके माहात्म्यमें अनेक रोचक तथा महत्त्वपूर्ण आख्यान हैं, यथा—परोपकारी कपोत तथा व्याधका आख्यान, अञ्जना-केसरी तथा हनुमान्‌का आख्यान, भार्गव-अङ्गिरा-आख्यान, कक्षीवान्-आख्यान, बालखिल्योत्पत्ति-आख्यान, अजीगर्त-शुनःशेप-आख्यान, दधीचि-लोपामुद्रा-पिप्पलाद-आख्यान, कपोत-उलूक-आख्यान, आपस्तम्बोपाख्यान, सरमा-पणि-आख्यान, मौद्गल्योपाख्यान, मधुच्छन्दस्-आख्यान, नागमाता कद्रू तथा गरुडमाता विनताका आख्यान, परशु-शाकल्य-वृत्तान्त, चिच्चिकपक्षी-आख्यान आदि। गौतमी-माहात्म्यके अन्तिम १०६वें अध्यायमें पुनः गोदावरीकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'गङ्गा' इस शब्दके नामोच्चारणमात्रसे पुण्य प्राप्त होता है, पापोंका समूल क्षय होता है और विष्णुपद प्राप्त होता है।

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

(ब्र० पु० १७५। ८२)

गौतमीमें बृहस्पतिके सिंह-राशिस्थ होनेपर वहाँ स्नान-दानका विशेष महत्त्व बतलाया गया है। गौतमी-माहात्म्यके विस्तृत वर्णनके अनन्तर वासुदेव-महिमा, पुरुषोत्तम-क्षेत्र-महिमा तथा महर्षि कण्डुका दिव्य चरित्र वर्णित है। फिर अध्याय १७९ से २१२ तक लगभग ३४ अध्यायोंमें श्रीकृष्णावतारकी विस्तृत कथा, उनके मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, व्रज तथा द्वारकाकी विभिन्न लीलाओंसे लेकर सपरिकर स्वधामगमन और परीक्षित्‌के राज्यारोहणका वृत्तान्त है, जो भागवत, विष्णु तथा पद्मादि पुराणोंके समान ही है।

तदनन्तर कर्म-विपाक, नरक, पातक-उपपातक, ब्रह्मलोक, पितृश्राद्ध, पितृकल्प, वर्णाश्रम-धर्म, सदाचारमहिमा, चतुर्युगोंका वृत्तान्त, चतुर्विध प्रलयोंके स्वरूपोंका विवेचन है। तदुपरान्त योग तथा सांख्य-दर्शनके मूल सिद्धान्तों तथा पचीस तत्त्वोंकी व्याख्या, वसिष्ठ तथा करालजनकके महत्त्वपूर्ण संवादमें क्षर-अक्षर, मोक्षधर्म, विद्या-अविद्या तथा अन्तमें ब्रह्मवादका निरूपण किया गया है।

फलश्रुतिमें इस ब्रह्मपुराणको चतुर्विध पुरुषार्थकी प्राप्ति करानेवाला और सभी वर्णोंके लिये प्रशस्त बतलाया गया है तथा जो व्यक्ति वेदतुल्य इस पुराणका नित्य श्रद्धासहित पाठ या श्रवण करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है।

इदं यः श्रद्धया नित्यं पुराणं वेदसम्मितम्।
सम्पठेच्छृणुयान्मर्त्यः स याति भवनं हरेः॥

(ब्र० पु० २४६। २७)

जो मनुष्य एकमात्र भगवान्‌की भक्तिमें चित्त लगाकर पवित्र हो, अभीष्ट वर देनेवाले लोकगुरु भगवान् विष्णुको प्रणाम करके स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले इस पुराणका निरन्तर श्रवण करता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। वह इस लोकमें उत्तम सुख भोगकर स्वर्गमें भी दिव्य सुखका अनुभव करता है। तत्पश्चात् प्राकृत गुणोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके निर्मल पदको प्राप्त होता है। इसलिये एकमात्र मुक्तिमार्गकी इच्छा रखनेवाले स्वधर्मपरायण श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले कल्याणकामी उत्तम क्षत्रियोंको, विशुद्ध कुलमें उत्पन्न वैश्योंको तथा धर्मनिष्ठ शूद्रोंको भी प्रतिदिन इस पुराणका श्रवण करना चाहिये। एकमात्र धर्म ही परलोकमें गये हुए प्राणीके लिये बन्धुकी भाँति सहायक है। मनुष्य धर्मसे ही राज्य प्राप्त करता है, धर्मसे ही वह स्वर्गमें जाता है तथा धर्मसे ही आयु, कीर्ति, तपस्या एवं धर्मका उपार्जन करता है और धर्मसे ही उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इस लोकमें तथा परलोकमें भी धर्म ही मनुष्यके लिये माता-पिता और सखा है। इस लोकमें धर्म ही रक्षक तथा मोक्षप्रदाता है। यह श्रेष्ठ पुराण धर्मकी वृद्धि करनेवाला तथा परम गोपनीय एवं वेदके तुल्य प्रामाणिक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-आख्यान—

परहितके लिये सर्वस्व-दान

पर्वतराज हिमालयकी पुत्री पार्वती भगवान् शंकरको पतिरूपमें पानेके लिये कठिन तपस्या कर रही थीं। तपस्याके अन्तमें ब्रह्माजीने उन्हें आश्वासन दिया कि भगवान् शिव तुम्हें पतिरूपमें प्राप्त होंगे। एक दिन वे भगवान् शंकरका चिन्तन कर रही थीं कि उन्हें पानीमें डूबनेवाले बालककी करुण-पुकार सुनायी दी, जिसे एक ग्राहने पकड़ रखा था। जब-जब ग्राह उसे खींचता, तब-तब उसका क्रन्दन और बढ़ जाता था। श्रीपार्वती दौड़कर वहाँ पहुँचीं। वह बालक ग्राहके मुखमें पड़ा थर-थर काँप रहा था। श्रीपार्वतीने ग्राहसे प्रार्थना की— 'ग्राहराज! मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ। तुम इस बालकको छोड़ दो।'

ग्राहने कहा—'विधाताने मेरे आहारका यह नियम बनाया है कि छठे दिन जो तुम्हारे पास आ जाय, उसे तुम खा लेना। आज विधाताने इसे ही मेरे पास भेजा है। मैं इसे किसी प्रकार छोड़ नहीं सकता।' उमा बोलीं—'ग्राहराज! इस बालकको तो छोड़ ही दो। इसके बदले मैं तुम्हें अपनी तपस्याका पुण्य देती हूँ।' यह सुनकर ग्राह कुछ शान्त हो गया। उसने कहा—'ठीक है, यदि तुम पूरी-की-पूरी तपस्या दे दो तो मैं इसे छोड़ दूँगा।' करुणामयी माँने तुरंत ही संकल्प कर अपनी पूरी तपस्या ग्राहको दे दी। तपस्याका फल पाते ही वह ग्राह मध्याह्नके सूर्यकी तरह प्रकाशित हो उठा। उसने कहा—'देवि! तुम अपनी तपस्या वापस ले लो। मैं तुम्हारे कहनेसे ही इसे छोड़ देता हूँ, किंतु पार्वतीने उसे स्वीकार नहीं किया।

ग्राहराजने देवीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और बच्चे छोड़ दिया। बालकने आँसूभरी आँखोंसे देवीकी ओ देखकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। देवीने दुला पुचकारकर उस बच्चेको सबल बना दिया। बालक बचाकर उमा बहुत संतुष्ट थीं। आश्रममें आकर वे पु तपस्याका उपक्रम करने लगीं, तब भगवान् शंकर प्रकट गये और बोले— 'कल्याणि! अब तुम्हें तपस्या करने आवश्यकता नहीं है। तुमने वह तपस्या मुझे ही अर्पित है। वह अनन्तगुना होकर तुम्हारे लिये अक्षय बन गयी है

(ला०बि०मि

जगन्नाथधाम

पुरुषोत्तमक्षेत्र (जगन्नाथधाम) का महत्त्व वर्णनातीत है। यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम नामसे विख्यात हैं। अतः इस क्षेत्रको पुरुषोत्तमक्षेत्र भी कहते हैं। इस क्षेत्रका नाम लेनेमात्रसे मनुष्य मुक्त हो जाता है। बहुत पहले स्वयं भगवान्ने इस क्षेत्रमें नीलमणिकी प्रतिमा बनाकर स्थापित की थी। उस मूर्तिका इतना प्रभाव था कि उसके दर्शनमात्रसे लोग मुक्त हो जाते थे। कारणविशेषसे उस प्रतिमाका दर्शन दुर्लभ हो गया

दूसरे सत्ययुगमें राजा इन्द्रद्युम्नने पुनः उस प्रतिमा स्थापित करनेका प्रयास किया। राजा इन्द्रद्युम्नकी राजध अवन्ती (उज्जैन) थी। वे परमधार्मिक, शूर-वीर और सम गुणोंके आकर थे। वे प्रयत्नपूर्वक गुरुजनोंकी सेवा सत्सङ्ग किया करते थे। इसीका परिणाम निकला कि उ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनमें इन्द्रियोंको रोककर मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा जाग्रत् हुई। इसके लिये उन्होंने तीर्थ-सेवन आवश्यक समझा। शीघ्र ही वे किसी तीर्थके लिये उज्जैनसे निकल पड़े। प्रजा उनसे पिताका प्यार पाती थी, अतः सारी प्रजा उनके साथ हो गयी। धीरे-धीरे वे दक्षिण समुद्र (बंगालकी खाड़ी)-तटपर आ गये।

एक ओर समुद्र लहरा रहा था, दूसरी ओर उसीके तटपर एक विशाल वट-वृक्ष भी शोभा पा रहा था। राजा इन्द्रद्युम्नने अनुमानसे समझ लिया कि मैं पुरुषोत्तमतीर्थमें आ पहुँचा हूँ। उन्होंने इन्द्रनील-प्रतिमाकी बहुत खोज की, पर वह न मिली। इससे उनके मनमें आया कि यह क्षेत्र भगवान्‌की प्रतिमाके बिना शून्य है, अतः मैं तपस्याके द्वारा भगवान्‌को प्रसन्न कर उनका दर्शन प्राप्त करूँ और उनकी आज्ञासे मूर्तिकी भी स्थापना करूँ। ऐसा सोचकर उन्होंने चारों दिशाओंके राजाओंको आमन्त्रित किया। उस राजसभामें सर्वसम्मतिसे यह प्रस्ताव पारित हुआ कि राजा इन्द्रद्युम्न एक साथ दो कार्य करें। एक ओर ये अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान करें और दूसरी ओर भगवान्‌के मन्दिरका निर्माण भी प्रारम्भ करें।

राजा इन्द्रद्युम्नकी तत्परतासे समयपर दोनों कार्य सम्पन्न हो गये। मन्दिर बहुत ही आकर्षक बना था, किंतु यह तय नहीं हो पाता था कि पत्थर, मिट्टी, लकड़ीमेंसे किसके द्वारा भगवान् जगन्नाथजीकी प्रतिमा बनायी जाय। इस समस्याके समाधानके लिये राजाने पुनः भगवान्‌की शरण ली। भक्तवत्सल भगवान्‌ने स्वप्नमें राजासे कहा—'राजन्! तुम्हारे यज्ञ और भक्तिसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, अब तुम चिन्ता छोड़ दो। इस तीर्थमें जो विश्वप्रसिद्ध प्रतिमा है, उसकी प्राप्तिका उपाय बता रहा हूँ। कल सूर्योदय होनेपर तुम प्रतिमा लानेके लिये अकेले ही समुद्रतटपर जाना। वहाँ एक विशाल वृक्ष दीख पड़ेगा, जिसका कुछ भाग जलमें और कुछ भाग स्थलपर है। कुल्हाड़ीसे उसे काटना। काटनेपर वहाँ एक अद्भुत घटना घटेगी और उसीसे प्रतिमाका निर्माण होगा।'

राजा इन्द्रद्युम्न स्वप्नके आदेशसे अकेले ही समुद्र-तटपर गये। वहाँ लहलहाता हुआ वह वृक्ष दीख पड़ा। उन्होंने स्वप्नादेशके अनुसार उसे काट गिराया। इसी समय भगवान् विष्णु और विश्वकर्मा ब्राह्मणके वेषमें वहाँ आ पहुँचे। भगवान् विष्णुने उनसे कहा—'आइये हम दोनों वृक्षकी छायामें बैठ जायँ। मेरे ये साथी चतुर शिल्पी हैं। मेरे निर्देशके अनुसार ये उत्तम प्रतिमा बना देंगे।'

विश्वकर्माने एक ही क्षणमें कृष्ण, बलराम और सुभद्राकी प्रतिमा बना दी। यह चमत्कार देखकर राजाको बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'भगवन्! आप दोनोंके व्यवहार मनुष्य-जैसे नहीं हैं। मैं आपका यथार्थ परिचय पाना चाहता हूँ।'

भगवान् बोले—'मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, वर माँगो।' भगवान्‌का दर्शन कर और उनके मधुर वचन सुनकर राजाको हर्षातिरेकसे रोमाञ्च हो आया। उन्होंने गद्‌गद वाणीसे उनकी स्तुति की और अन्तमें वे चरणोंमें लोटकर बोले—'मैं चाहता हूँ कि आपके दुर्लभ पदको प्राप्त करूँ।' भगवान्‌ने कहा—'मेरी आज्ञासे अभी तुम दस हजार नौ सौ वर्षोंतक राज्य करो। उसके बाद तुम्हें मेरे उस पदकी प्राप्ति होगी, जिसे प्राप्त करनेके बाद सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जबतक सूर्य और चन्द्र रहेंगे, तबतक तुम्हारी अक्षय कीर्ति फैली रहेगी। तुम्हारे यज्ञसे प्रकट होनेवाला तालाब इन्द्रद्युम्न नामसे प्रख्यात तीर्थ होगा। इस सरोवरमें एक बार भी स्नान कर मनुष्य इन्द्रलोकको प्राप्त करेगा। जो इसके तटपर पिण्डदान करेगा, वह इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार कर स्वयं इन्द्रलोक चला जायगा।'

राजाको वरदान देकर विश्वकर्माके साथ भगवान् अन्तर्हित हो गये। राजा बहुत देरतक आनन्दमें मग्न होकर वहीं ठहरे रहे। चेत आनेपर वे विमानाकार रथोंमें तीनों मूर्तियोंको बैठाकर बाजे-गाजेके साथ ले आये और शुभ मुहूर्तमें उन्होंने उनकी प्रतिष्ठा करवायी। इस प्रकार राजा इन्द्रद्युम्नके सत्प्रयाससे जगन्नाथजीका दर्शन सर्वसुलभ हो गया।

जो किसी दुर्बलका अपमान नहीं करता, सदा सावधान रहकर शत्रुके साथ बुद्धिपूर्वक व्यवहार करता है, बलवानोंके साथ युद्ध पसंद नहीं करता तथा समय आनेपर पराक्रम दिखाता है, वही धीर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha Foundation Chennai and eGangotri

अतिथि-सत्कार

एक दिन एक व्याध भयानक वनमें शिकार करते समय पत्थर-पानी-हवाकी चोटसे अत्यन्त दुर्गतिमें पड़ गया। कुछ दूर आगे बढ़नेपर उसे एक वृक्ष दीखा। उसकी छायामें जानेपर उसे कुछ आराम मिला। तब उसे स्त्री-बच्चोंकी चिन्ता सताने लगी। इधर सूर्यास्त भी हो गया था। ठंडके कारण उसके हाथ-पैरमें कम्पन हो रहा था और दाँत किटकिटा रहे थे।

उसी वृक्षपर एक कपोत अपनी पत्नीकी चिन्तामें घुल रहा था। उसकी स्त्री पतिव्रता थी और अभी चारा चुगकर आयी नहीं थी। वस्तुतः वह इसी व्याधके पिंजड़ेमें पड़ी थी। कपोत उसके न लौटनेपर विलाप कर रहा था। पतिका विलाप सुनकर कपोती बोली—'नाथ! मैं पिंजड़ेमें बँधी हुई हूँ। कृपया आप मेरी चिन्ता न कर अतिथि-धर्मका पालन करें। यह व्याध भूख और ठंडसे मरा जा रहा है। सायंकाल अपने आवासपर आ भी गया है। यह आर्त अतिथि है। यद्यपि यह शत्रु है, फिर भी अतिथि है। अतः इसका सत्कार करें। इसने जो मुझे पकड़ रखा है, वह मेरे किसी कर्मका फल है। इसके लिये व्याधको दोष देना व्यर्थ है। आप अपनी धर्ममयी बुद्धिको स्थिर करें। थके हुए अतिथिके रूपमें सारे देवता और पितर पधारते हैं। अतिथि-सत्कारसे सबका सत्कार हो जाता है। यदि अतिथि निराश होकर लौट जाता है तो सभी देवता और पितर भी लौट जाते हैं। आप इस बातपर ध्यान न दें कि इस व्याधने आपकी पत्नीको पकड़ रखा है; क्योंकि अपकार करनेवालेके साथ जो अच्छा बर्ताव करता है, वही पुण्यका भागी माना जाता है।'

कपोत अपनी पत्नीके धार्मिक प्रवचनसे बहुत प्रभावित हुआ। उसमें धर्ममयी बुद्धि जाग पड़ी। उसने व्याधके सामने उपस्थित होकर कहा—'तुम मेरे घरपर आये हुए अतिथि हो। मेरा कर्तव्य है कि मैं प्राण देकर भी तुम्हारी सेवा करूँ। इस समय तुम भूख और ठंडसे मृतप्राय हो रहे हो। थोड़ी देर प्रतीक्षा करो।' इतना कहकर वह उड़ा और कहींसे जलती हुई एक लकड़ी ले आया। उसे लकड़ीके ढेरपर रख दिया।

धीरे-धीरे आग जल उठी। उससे व्याधकी जकड़न दूर हो गयी। तब कपोतने व्याधकी परिक्रमा कर अपनेको अग्निमें झोंक दिया। व्याध उसे अग्निमें प्रवेश करते देख घबरा गया और अपनेको धिक्कारने लगा। फिर उसने कपोती तथा अन्य पक्षियोंको पिंजड़ेसे निकालकर छोड़ दिया। कपोतीने भी अपने पतिके पथका अनुसरण किया। तत्पश्चात् कपोत और कपोती देवताके समान दिव्य शरीर धारणकर विमानपर चढ़कर स्वर्गलोककी ओर प्रस्थित हुए। उन्हें जाते देखकर व्याधने उनकी शरण ली और अपने उद्धारके लिये उपाय पूछा। इसपर कपोतने उसे गोदावरीमें स्नान करनेकी बात बतायी। एक मासतक स्नान करके व्याध भी स्वर्गलोकको चला गया। गोदावरीका वह स्थान आज भी कपोत-तीर्थके नामसे विख्यात है।

जो अपना कर्तव्य छोड़कर दूसरेके कर्तव्यका पालन करता है तथा मित्रके साथ असत् आचरण करता है, वह मूर्ख कहलाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागीरथी गङ्गा

राजा सगरकी दो पत्नियाँ थीं, किंतु किसीसे भी संतान न हुई। महर्षि वसिष्ठने इसके लिये राजाको उपाय बतलाया कि वे पत्नीसहित ऋषियोंकी सेवा किया करें।

एक बार राजा सगरके यहाँ एक महर्षि पधारे। राजाकी सेवासे संतुष्ट होकर महर्षिने वरदान दिया कि तुम्हारी एक पत्नीसे एक ही पुत्र होगा, जो वंशधर होगा और दूसरी पत्नीसे साठ हजार पुत्र होंगे। समय पाकर महर्षिका वरदान फलीभूत हुआ। महाराजकी दुश्चिन्ताएँ मिट गयीं। उन्होंने बहुतसे अश्वमेध-यज्ञ किये। एक अश्वमेध-यज्ञमें उनके घोड़ेको इन्द्रने चुरा लिया। रक्षक राजकुमारोंने घोड़ेकी खोजमें आकाश-पाताल एक कर दिया, किंतु घोड़ा नहीं मिला। हारकर राजकुमारोंने भगवान्‌की शरण ली, तब आकाशवाणी हुई—'सगरपुत्रो! तुम्हारा घोड़ा रसातलमें बँधा है।' राजकुमार रसातल जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने घोड़ेको बँधा पाया। एक व्यक्ति वहीं सो रहा था, उन लोगोंने समझा कि यही चोर है और वे उसे जगानेके लिये मारने-पीटने लगे।

वस्तुतः वे कपिलमुनि थे। घोड़ेसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। वे सगर-पुत्रोंके कटु वाक्यों एवं अनुचित पाद-प्रहारसे क्षुब्ध हो गये। उन्होंने उन्हें रोषपूर्ण दृष्टिसे देखा। देखते ही वे सब जलकर राख हो गये। देवर्षि नारदने इस बातकी सूचना राजा सगरको दी। राजा बहुत चिन्तित हुए। अन्तमें उन्होंने धैर्य धारणकर अपने पौत्र अंशुमान्‌को घोड़ा लानेका भार सौंपा। राजकुमार अंशुमान्‌ने भगवान् कपिलकी आराधना की और उनकी आज्ञासे घोड़ा लाकर अपने पितामहको सौंप दिया। यज्ञ सम्पन्न हो गया।

सगरके साठ हजार पुत्रोंका अभी उद्धार नहीं हो पाया था। अंशुमान् और इनके पुत्र दिलीप दोनों इस उद्धार-कार्यमें सफल नहीं हुए। दिलीपके पुत्र भगीरथ परम तेजस्वी थे। उन्होंने राजा सगरसे पूछा कि इन सबका उद्धार कैसे होगा। राजाने बताया कि इसका उपाय भगवान् कपिल ही बता सकते हैं। भगीरथकी अभी बाल्यावस्था ही थी। वीर बालक भगीरथ रसातलमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने भगवान् कपिलसे अपनी अभिलाषा कह सुनायी। भगवान् कपिलने आज्ञा दी कि तुम भगवान् शंकरकी आराधना कर उनकी जटासे गङ्गाजीको लाकर अपने पितरोंकी राखको आप्लावित करवा दो। बालक भगीरथ कैलास जाकर भगवान् शंकरकी तपस्या करने लगे। भगवान् शंकरने संतुष्ट होकर अपनी जटामें विराजमान गङ्गा उन्हें दे दी और यह भी बताया कि अब तुम गङ्गाकी स्तुति

करो। उनकी कृपासे करुणामयी गङ्गा माता प्रसन्न हो गयीं। वे भगीरथके कथनानुसार हिमालयसे बहती हुई रसातल पहुँचीं और अपने जलसे आप्लावित कर उन्होंने साठ हजार सगर-पुत्रोंका उद्धार कर दिया।

इस तरह भगवान् शंकरकी जटामें स्थित गङ्गा दो भागोंमें बँटकर जीवोंपर अनुकम्पा कर रही हैं। विन्ध्यगिरिके उत्तर-भागमें ये भागीरथी गङ्गा कहलाती हैं और दक्षिण-भागमें गौतमी-गङ्गा (गोदावरी) नामसे जानी जाती हैं।

जो न चाहनेवालोंको चाहता है और चाहनेवालोंको त्याग देता है तथा जो अपनेसे बलवान्‌के साथ वैर बाँधता है, उसे मूढ़ विचारका मनुष्य कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौतकी भी मौत

जो ईश्वरका भक्त होता है, उसका स्वामी ईश्वर होता है। उसपर मौतका अधिकार नहीं होता। अनधिकार चेष्टा करनेसे मौतकी भी मौत हो जाती है।

गोदावरीके तटपर 'श्वेत'नामक एक ब्राह्मण रहते थे। उनका सब समय निरन्तर साम्ब सदाशिवकी पूजामें व्यतीत होता था। वे अतिथियोंको शिव समझकर उनका भलीभाँति आदर-सत्कार किया करते थे। उनका शेष समय भगवान्के ध्यानमें बीतता था। उनकी आयु पूरी हो चुकी थी, किंतु उन्हें इस बातका ज्ञान न था। उन्हें न रोग था न शोक, इसलिये आयु पूरी हो चुकी है, इसका आभास नहीं हुआ। उनका सारा ध्यान शिवमें केन्द्रित था। यमदूत समयसे उन्हें लेने आये, परंतु वे उनके घरमें प्रवेश नहीं कर पाते थे। इधर मृत्युका समय अतिक्रमण कर चुका था। चित्रगुप्तने मृत्युसे पूछा—'मृत्युदेव! श्वेत अबतक यहाँ क्यों नहीं आया? तुम्हारे दूत भी नहीं आये।' यह सुनकर मृत्युको श्वेतपर बहुत क्रोध आया। वे स्वयं उन्हें लेने दौड़े। गृहके द्वारपर यमदूत भयसे काँपते दिखायी पड़े। उन्होंने मृत्युसे कहा—'नाथ! हम क्या करें? श्वेत तो शिवके द्वारा सुरक्षित है। उसे तो हम देख भी नहीं पा रहे हैं, पास पहुँचना तो अत्यन्त कठिन है।'

दूतोंकी बात सुनकर मौतका क्रोध और भभक उठा। वे झट ब्राह्मणके घरमें प्रवेश कर गये। ब्राह्मण देवताको यह पता न था कि कहाँ क्या हो रहा है? मृत्युदेवको झपटते देखकर भैरव बाबाने कहा—'मृत्युदेव! आप लौट जाइये।' किंतु मृत्युदेवने उनकी बातको अनसुनी कर श्वेतपर फंदा डाल दिया। भक्तपर मृत्युका यह आक्रमण भैरव बाबाको सहन न हुआ। उन्होंने मृत्युपर डंडेसे प्रहार किया। मृत्युदेव वहीं ढेर हो गये। यमदूत भागकर यमराजके पास पहुँचे। वे डरके मारे थर-थर काँप रहे थे। मृत्युकी मृत्यु सुनकर यमराजको बड़ा क्रोध हो आया। उन्होंने हाथमें यमदण्ड ले लिया और अपनी सेनाके साथ श्वेतके पास पहुँच गये।

वहाँ भगवान् शंकरके पार्षद पहलेसे ही खड़े थे। सेनापति कार्तिकेयके शक्ति-अस्त्रसे सेनासहित यमराजकी भी मृत्यु हो गयी। यह अपूर्व समाचार सुनकर भगवान् सूर्य देवताओंके साथ ब्रह्माके पास पहुँचे और ब्रह्मा सबके साथ घटनास्थलपर आये। देवताओंने भगवान् शंकरकी स्तुति की और कहा—'भगवन्! यमराज सूर्यके पुत्र हैं। ये लोकपाल हैं। उन्होंने कोई अपराध या पाप नहीं किया है, अतः इनका वध नहीं होना चाहिये। इन्हें जीवित कर दें, नहीं तो अव्यवस्था हो जायगी। भगवन्! आपसे की हुई प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं होती।'

भगवान् आशुतोषने कहा—'मैं भी व्यवस्थाके पक्षमें हूँ। वेदकी एक व्यवस्था है कि जो मेरे अथवा भगवान् विष्णुके भक्त हैं, उनके स्वामी स्वयं हमलोग होते हैं। मृत्युका उनपर कोई अधिकार नहीं होता। यमराजके लिये यह व्यवस्था की गयी है कि वे भक्तोंको अनुचरोंके साथ प्रणाम करें।'

इसके बाद भगवान् आशुतोषने नन्दीके द्वारा गौतमी गङ्गा (गोदावरी) का जल मरे हुए लोगोंपर छिड़कवाया। तत्क्षण सब-के-सब स्वस्थ होकर उठ खड़े हुए।

प्रतिशोध ठीक नहीं होता

बालक पिप्पलादने जब होश सँभाला, तब ओषधियोंको अभिभावकके रूपमें देखा। वृक्ष फल देते थे, पक्षी दाने लाते थे और मृग हरी वस्तुएँ। ओषधियाँ अपने राजा सोमसे माँगकर अमृतकी घूँटें पिप्पलादको पिलाया करती थीं। यह दृश्य देखकर पिप्पलादने वृक्षोंसे पूछा—'देखा यह जाता है कि मनुष्य माता-पितासे मनुष्य तथा वनस्पतियोंसे वनस्पति पैदा होते हैं, किंतु मैं आप वनस्पतियोंका पुत्र होकर भी मनुष्य कैसे हो गया?' इसके उत्तरमें वनस्पतियोंने पिप्पलादको उसके जन्मकी कथा सुनाते हुए कहा—'महर्षि दधीचि तुम्हारे पिता और सती प्रातिथेयी माता हैं। इस तरह तुम मनुष्यके ही पुत्र हो। तुम्हारे माता-पिता हमें पुत्रकी तरह मानते थे, अतः हम भी तुम्हें पुत्र ही मानती आ रही हैं। तुम्हारी माँने अपना पेट चीरकर तुम्हें पैदा किया था और हमें सौंपकर स्वयं सती हो गयी थीं। तुम्हारे माता-पिताके मर जानेके बाद समूचा वन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत दिनोंतक रोता रहा। वे हमें प्यार करते थे और हम सब उन्हें।' इतना कहकर वनस्पतियाँ फूट-फूटकर रो पड़ीं।

यह सुनकर बालक पिप्पलादको बहुत विस्मय हुआ। उसने अपने माता-पिताकी कहानी जाननी चाही। वनस्पतियोंने उनके माता-पिताको श्रद्धासे नमनकर उनकी जीवन-गाथा प्रारम्भ की—'तुम्हारे पिताका नाम दधीचि था। उनमें सभी उत्तम गुण विद्यमान थे। तुम्हारी माता उत्तम कुलकी कन्या और पतिव्रता थीं। उनका नाम गभस्तिनी था। वे लोपामुद्राकी बहन थीं। तुम्हारे माता-पिताने तपस्या कर इतनी सामर्थ्य अर्जन कर ली थी कि उनके आश्रमपर दैत्य-दानवोंका आक्रमण नहीं हो पाता था। एक दिन विष्णु, इन्द्र आदि सभी देवता आश्रममें आये। दैत्योंपर विजय पानेसे वे प्रसन्न थे। तुम्हारे माता-पिताने उनका भावभीना सत्कार किया। देवताओंने कहा—'आप-जैसे महर्षि जब हम लोगोंपर इतनी कृपा रखते हैं, तब हमारे लिये क्या दुर्लभ है? हमने शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर ली है। अब चाहते हैं कि अपने अस्त्र-शस्त्र आपके आश्रममें रख दें, क्योंकि तीनों लोकोंमें आपका आश्रम ही निरापद स्थान है। यहाँ आपकी तपस्याके प्रभावसे दैत्य आदि प्रवेश नहीं कर पाते।'

उदारचेता मुनिने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तुम्हारी माताने उन्हें रोकते हुए कहा—'नाथ! यह कार्य विरोध उत्पन्न करनेवाला है। इस काममें आप न पड़ें। आप तो समदर्शी हैं। आपके लिये शत्रु-मित्र बराबर हैं। अस्त्र-शस्त्र रखनेसे दैत्य और दानव आपसे शत्रुता रखने लगेंगे। धरोहर-रूपमें किसीका धन रखना साधु पुरुषोंके लिये उचित नहीं कहा गया है।'

महर्षि दधीचिने कहा—'देवता सृष्टिके रक्षक हैं और मैंने 'हाँ' कर भी दिया है, इसलिये अब 'नहीं' कहना अनुचित है।' देवता अस्त्र-शस्त्र आश्रममें रखकर चले गये। इधर दैत्य महर्षिसे द्वेष करने लगे। महर्षिको चिन्ता हुई कि दैत्य बड़े वीर तो हैं ही, साथ ही तपस्वी भी हैं। जब वे आक्रमण करेंगे तब मैं शस्त्रोंकी रक्षा नहीं कर पाऊँगा, ऐसा विचारकर उन्होंने अस्त्र-शस्त्रोंकी रक्षाके लिये एक उपाय किया। उन्होंने पवित्र जलको अभिमन्त्रित कर उससे अस्त्र-शस्त्रोंको नहलाया और उस जलको स्वयं पी लिया। तेज निकल जानेसे वे सभी अस्त्र-शस्त्र शक्तिहीन हो गये। इसलिये वे धीरे-धीरे नष्ट हो गये।

बहुत दिनोंके बाद देवता महर्षिके आश्रममें पहुँचे, क्योंकि उनके शत्रुओंने फिर सिर उठाया था। महर्षिने उन्हें बतलाया कि उन अस्त्रोंकी सुरक्षाके लिये उनका तेज मैंने पी लिया है। वे अब मेरी हड्डियोंमें मिल गये हैं। आप हड्डियाँ ही ले जायँ। मेरे शरीरका यह सुन्दर उपयोग हो रहा है। महर्षिने योगके द्वारा शरीरका त्याग कर दिया। विश्वकर्मने उन हड्डियोंसे दिव्य अस्त्रोंका निर्माण किया। वे ही देवताओंकी विजयके कारण बने।

'इस अवसरपर माता गभस्तिनी नदी-तटपर गयी थीं। पार्वतीकी पूजामें लगे रहनेसे लौटनेमें देर हो गयी थी। उस समय वे गर्भवती थीं। आश्रममें आनेपर उन्होंने अपने पतिदेवको नहीं देखा। अग्निदेवताने सारी घटना उन्हें सुना दी। उन्होंने पतिके कार्यकी सराहना की, फिर तीनों अग्नियोंकी पूजा करके अपना पेट चीरकर तुम्हें हाथसे निकाल दिया। तुम्हें हमलोगोंको सौंपकर पतिके केश आदिके साथ वे अग्निमें प्रवेश कर गयीं। उस समय आश्रमका प्रत्येक प्राणी दुःखसे संतप्त होकर रो उठा। सब कह रहे थे कि दधीचि और प्रातिथेयी (गभस्तिनी) जितना हमें प्यार देते थे, उतना अपने माता-पिता भी प्यार नहीं कर पाते। हमें धिक्कार है कि हम उनके दर्शनोंसे वञ्चित हो गये। अब यह बालक ही हमलोगोंके लिये दधीचि और प्रातिथेयी है। वनस्पतियोंने कथाका उपसंहार करते हुए कहा कि यही कारण है कि हम वनवासी तुम्हें पुत्रसे अधिक मानते हैं।'

बालक पिप्पलादको अपनी कथा सुनकर बहुत दुःख हुआ। माताने पेट चीरकर जो उसे निकाला था, इस बातसे उसे अधिक पीड़ा हुई। वह रोता हुआ बोला—'मैं अभागा हूँ, जो माताके कष्टका कारण बना। मैं उनकी सेवा तो कुछ कर ही न सका।' उसके बाद देवताओंके कृत्यपर उसे क्रोध हो आया। उसने कहा—'मैं देवताओंसे प्रतिशोध लूँगा। उन्होंने मेरे पिताका वध किया है, अतः मैं उनका वध करूँगा।' वनस्पतियोंने समझाया कि प्रतिशोध ठीक नहीं होता। तुम्हारे माता-पिताने विश्वके हितके लिये आत्मदान किया है। तुम भी उन्हींके पथपर चलो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चेके अन्तःकरणमें प्रतिशोधकी भावना शान्त नहीं हुई। उसने भगवान् शंकरकी प्रार्थना की कि शत्रुओंके नाशके लिये आप मुझे शक्ति दीजिये। भगवान्ने उसे 'कृत्या' दी। पिप्पलादने उसे आज्ञा दी कि तू मेरे शत्रु देवताओंको खा जा। देवता भाग खड़े हुए और उन्होंने भगवान् शंकरकी शरण ली। भगवान् शंकरने पिप्पलादको समझाया कि तुम्हारे पिताने विश्वके हितके लिये अपना प्राण दे दिया है। उनके समान दयामय कौन होगा ? तुम्हारी माता भी उन्हींके साथ पतिलोक चली गयीं। उनकी समता किससे होगी ? तुम भी अपने माता-पिताके रास्तेपर ही चलो। तुम्हारे प्रतापसे देवता संकटमें पड़ गये हैं। उन्हें तुम बचाओ। यही तुम्हारा कर्तव्य है। प्रतिशोध अच्छा नहीं होता।

पिप्पलाद शान्त हो गया। उसने भगवान् शंकरका उपदेश मान लिया। भगवान्ने और देवताओंने भी पिप्पलादको वरदान माँगनेको कहा। पिप्पलादने वर माँगा कि मैं अपने माता-पिताको देखना चाहता हूँ। दिव्य लोकसे उसके माता-पिता दिव्य विमानसे उपस्थित हो गये। उन्होंने कहा—'पुत्र ! तुम धन्य हो। तुम्हारी कीर्ति स्वर्गलोकतक पहुँच चुकी है। तुमने भगवान् शंकरका प्रत्यक्ष दर्शन किया है।' वचन समाप्त होते ही आकाशसे पिप्पलादके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी। देवताओंने जय-जयकार किया।

(ला०बि०मि०)

व्रतमें जागरण और संगीतका महत्त्व

अवन्ती (उज्जैन) के छोरपर एक चाण्डाल रहता था। वह संगीतका मर्मज्ञ था। उसमें विष्णुकी भक्ति कूट-कूटकर भरी थी। वह सदाचारी था, व्रतका दृढ़तासे पालन करता था, प्रत्येक मासकी एकादशी तिथिको निराहार-निर्जल रहकर उपवास करता और रातमें जागरण करता था तथा प्रेमार्द्र-हृदयसे भगवान्के नाम, रूप, लीला और धामका गीत गाया करता था। यह उसका नियम था जो कभी भंग नहीं होता था। द्वादशी तिथिको वह दामाद, कन्याओं और भानजोंको भोजन कराकर स्वयं भोजन करता था।

एक बार एकादशीको वह भगवान्के लिये वनसे फूल लाने गया। अच्छे-अच्छे फूलोंके चयनमें वह मग्न था। इसी बीच एक ब्रह्मराक्षसने उसे पकड़ लिया और उसे खाना चाहा। चाण्डालने प्रार्थना की कि आज तुम मुझे छोड़ दो, कल खा लेना। आज रातको एकादशीका जागरण और कीर्तन करना है। भगवान्के कार्यमें तुम्हें विघ्न नहीं पहुँचाना चाहिये। कल सबेरे मैं घर न जाकर सीधे तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगा। मेरी बातपर विश्वास करो। विश्वासके लिये मैं शपथ भी खाता हूँ। चाण्डालके शपथपर उसे विश्वास हो गया। उसने उसे छोड़ दिया। चाण्डाल फूल लेकर भगवान् विष्णुके मन्दिरपर आया। पुजारीने उसके हाथोंसे फूल लेकर जलसे छींटा देकर भगवान्को अर्पण कर दिया। चाण्डाल मन्दिरके बाहर बैठकर भगवान्को संगीत-सुमन भेंट करने लगा।

प्रातःकाल होनेपर वह अपने वचनको सत्य करनेके लिये ब्रह्मराक्षसके पास पहुँचा। विस्मयसे राक्षसकी आँखें विकसित हो गयीं। चाण्डालने नम्रतासे कहा—'राक्षस ! अपने वचनके अनुसार मैं अपना शरीर तुम्हें अर्पण करने आया हूँ। इससे तुम अपनी क्षुधा मिटा लो।' राक्षसने उसके रातभरका कार्य-क्रम सुना और कहा—'तुम अपनी रात्रिचर्याका पुण्य हमें दे दो, मैं तुम्हें छोड़ दूँगा।' चाण्डाल राजी नहीं हुआ। तब राक्षसने एक पहर जागनेके ही पुण्यका फल माँगा। चाण्डाल फिर भी उसे न मानते हुए बोला—'तुम इधर-उधरकी बातें क्यों करते हो, तुमसे मुझे खानेकी बातचीत हुई थी, न कि पुण्य देनेकी। मैं उपवासके एक क्षणका पुण्य भी नहीं दे सकता। तुम मुझे खाकर अपना वादा पूरा करो।'

राक्षस गिड़गिड़ाकर बोला—'तुमने जो अन्तिम गीत गाया है, उसीका पुण्य मुझे दे दो।' इसपर चाण्डालने एक शर्त रखकर कहा कि 'यदि आजसे तुम किसी प्राणीको न खाओ, तब मैं अन्तिम गीतका पुण्य तुम्हें अर्पण कर दूँगा।' ब्रह्मराक्षसने उसकी शर्त स्वीकार कर ली। इससे प्रभावित होकर चाण्डालने उसे अन्तिम गीतके फलके साथ-साथ आधे मुहूर्तके जागरणका भी फल दे दिया। फल प्राप्त करते ही राक्षसमें शान्ति और उदात्त भावना भर गयी। इस घटनासे चाण्डालके मनमें वैराग्य हो गया। वह अपनी पत्नीका भार पुत्रोंपर रखकर पृथ्वी माताकी परिक्रमा करने लगा और अन्तमें परम गतिको प्राप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्मपुराण

सृष्टि-रचनाके लिये जब ब्रह्माजीने तप किया, तब सर्वप्रथम उन्हें पुराणका स्मरण हुआ। उस समय पिण्डीभूत एक ही पुराण था। उसमें सौ करोड़ श्लोक थे[१]। ब्रह्माके द्वारा स्मृत वही पुराण चौदहों भुवनोंमें प्रचलित हुआ। द्वापरके अन्तमें जब बुद्धिका ह्रास होने लगा, तब भगवान् व्यासदेवने सौ करोड़ श्लोकोंको चार लाखमें संक्षिप्त कर अठारह भागोंमें विभक्त कर दिया[२]। इन अठारह पुराणोंमें ब्रह्मपुराणको पहला और पद्मपुराणको दूसरा स्थान प्राप्त है। पद्मपुराण नाम पड़नेका कारण यह है कि इसमें उस समयके वृत्तान्तका वर्णन है, जिस समय यह जगत् स्वर्णमय कमलके रूपमें परिणत था। इस पद्मपुराणकी श्लोक-संख्या पचपन हजार है[३]।

पद्मपुराणमें सात खण्ड हैं। पहला-सृष्टिखण्ड, दूसरा-भूमिखण्ड, तीसरा-स्वर्गखण्ड, चौथा-ब्रह्मखण्ड, पाँचवाँ-पातालखण्ड, छठा-उत्तरखण्ड और सातवाँ-क्रियायोगसार। यह बात पद्मपुराणके स्वर्गखण्डके प्रथम अध्यायके तेईससे छब्बीस श्लोकोंमें वर्णित है। नारदपुराणमें इसके पाँच ही खण्ड बताये गये हैं। नारदपुराणकी विषयानुक्रमणिकामें उक्त विभागक्रममें निर्दिष्ट ब्रह्मखण्डका स्वर्गखण्डमें और क्रियायोगसारका उत्तरखण्डमें अन्तर्भाव मान लेना चाहिये। इस पुराणकी कुछ संक्षिप्त कथाएँ नीचे दी जा रही हैं—

कथा-आख्यान—

संत-समागमके लिये तप

एक बार भीष्मजीने हरिद्वारमें परम उग्र तप किया। इस तपका एकमात्र उद्देश्य यह था कि उन्हें किसी महापुरुषका सांनिध्य प्राप्त हो, जिनसे ज्ञानका अर्जन किया जा सके। भीष्मजी अपनी पितृ-भक्तिके कारण विश्वविश्रुत हो गये थे। वे जितने वीर थे, उतने ही धर्मनिष्ठ भी थे। वे उन दिनों संध्या, हवन, स्वाध्याय और तर्पणके द्वारा देवताओं एवं पितरोंको तृप्त करते हुए शेष समयमें भगवान्‌के ध्यानमें निमग्न रहते थे। कठोर नियमके पालनसे उनका शरीर सूख गया था। उनके इस नियमने भगवान् ब्रह्माको प्रसन्न कर लिया। ब्रह्माने अपने पुत्र पुलस्त्यजीको आज्ञा दी—'तुम भीष्मके पांस जाओ और उनके मनमें जो-जो कामनाएँ हों, उन्हें पूरी कर दो।'

पिताकी आज्ञा शिरोधार्य कर पुलस्त्यजी हरिद्वारमें भीष्मजीके पास आये। उस समय भीष्मजी ध्यानमग्न थे। उनका ध्यान भंग करते हुए पुलस्त्यजीने कहा—'वीर! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारी तपस्यासे मेरे पिता ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हैं। उन्होंने ही मुझे तुम्हारे पास भेजा है, अतः तुम स्वेच्छानुसार मुझसे वर माँगो।' यह सुनकर भीष्मजीने जब आँखें खोलीं, तब सामने पुलस्त्यजीको देखा। देखते ही वे उनके चरणोंपर गिर पड़े। फिर साष्टाङ्ग प्रणाम करके उन्होंने कहा—'आज मेरा जन्म सफल हो गया, जो आपके पवित्र एवं दुर्लभ चरणोंके दर्शन हुए। आप इस कुशकी चटाईपर विराजमान हों।'

तदनन्तर भीष्मजीने पाद्य और पलाशके दोनेमें दूब, चावल, फूल, कुश, सरसों, दही, शहद, जौ और दूधका अर्घ्य

---

१. पुराणमेकमेवासीत् तदा कल्पान्तरेऽनघ। त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥ (म० पु० ५३। ४)

२. कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप॥
व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे युगे।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा॥
तथाष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते। (म० पु० ५३। ८-१०)

३. तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत् पाद्मिमित्युच्यते बुधैः। पाद्मं तत्पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणीह कथ्यते॥ (म० पु० ५३। १४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाकर प्रस्तुत किया। भीष्मजीकी विनम्रतासे प्रसन्न होकर पुलस्त्यजीने कुशासनपर बैठकर उनके पाद्य और अर्घ्यको स्वीकार किया और उनके सद्गुणोंकी प्रशंसा करते हुए कहा—'तुम जो चाहो, पूछो। मैं तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दूँगा।' ये ही प्रश्न और इनके उत्तर पद्मपुराणमें विस्तारपूर्वक वर्णित हैं।

इस तरह भीष्मजीने अपने आचरणसे प्रत्येक मनुष्यके लिये यह कर्तव्य निर्देश किया है कि वह अपने नित्य-कर्मको निभाते हुए अपने जीवनको प्रशस्त बनानेके लिये सत्संगति अवश्य किया करे। यदि संतकी संगति सुलभ न हो तो उसके लिये तपस्या करे। (ला०बि०मि०)

सत्यकी महिमा

(नन्दा गायको दिव्य लोककी प्राप्ति)

एक बार ग्वालोंने गोचर-भूमि और जलकी सुविधा देखकर सरस्वती नदीके आस-पास डेरा डाल दिया। उनके पास गायोंका एक बहुत बड़ा झुंड था। उन्होंने गायोंके रहनेके लिये बाड़ लगा दी और अपने लिये घर बना लिये। ग्वाले चारों ओर गायोंकी रक्षा करते थे। गायें भी घास पाकर बहुत प्रसन्न थीं। उन गायोंके झुंडमें एक हृष्ट-पुष्ट गाय थी, जिसका नाम नन्दा था। वह सदा प्रसन्न रहती थी और सब गौओंके आगे निर्भय होकर चला करती थी। एक दिन वह झुंडसे बिछुड़ गयी और वहाँ पहुँच गयी, जहाँ एक भयंकर बाघ मुँह बाये बैठा था। बाघ गरजते हुए नन्दापर टूट पड़ा। बेचारी नन्दाकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। उसे अपना नन्हा बछड़ा याद आने लगा। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली।

बाघ बोला—'मालूम पड़ता है कि तुम्हारी आयु समाप्त हो गयी है। तभी तो तुम मेरे पास अपने-आप आयी हो। फिर शोक क्यों कर रही हो?'

नन्दाने बाघको प्रणाम किया और कहा—'मेरा अपराध क्षमा करो, मुझे अपने जीवनका शोक नहीं है। मैं अपने बच्चेके लिये शोक कर रही हूँ। वह अभी बहुत छोटा है। पहली ब्यानका बच्चा होनेके कारण वह मुझे प्राणोंसे बढ़कर प्यारा है। अभी वह घास भी नहीं सूँघता। मेरे न रहनेपर उसकी क्या दशा होगी? मैं उसे दूध पिलाना चाहती हूँ और उसका मस्तक चाटना चाहती हूँ। यदि तुम मुझे थोड़ी देरके लिये छोड़ दो तो मैं बछड़ेको प्यार कर और हिताहितका उपदेश देकर लौट आऊँगी। उसके बाद तुम मुझे खा जाना।'

बाघने नन्दाकी बातको अनसुनी कर दी। तब नन्दाने बहुत-बहुत शपथें खायीं। शपथोंका प्रभाव बाघपर पड़ा। उसने नन्दाको लौट जाने दिया। नन्दा उतावलीके साथ बछड़ेकी ओर बढ़ी। दूरसे ही उसने अपने बछड़ेकी पुकार सुनी। अब उसकी उतावली और बढ़ गयी। वह दौड़ती हुई बछड़ेके पास जा पहुँची। उसकी आँखोंके आँसू और जोरसे बहने लगे थे। बछड़ेने पूछा—'माँ! तुम तो सदा प्रसन्न रहती थी। आज इस तरह क्यों रो रही हो?' नन्दाने आप-बीती कह सुनायी और अन्तमें कहा—'वत्स! मुझे महान् दुःख इसलिये हो रहा है कि अब मैं तुम्हें देख न सकूँगी। मैं बाघको शपथ देकर आयी हूँ, अतः सत्यकी रक्षाके लिये मुझे उसके पास जाना ही होगा।'

बछड़ेने कहा—'माँ! तुम्हारे साथ मैं भी चलूँगा। यदि बाघ मुझे मार डालेगा तो मुझे वह उत्तम गति मिलेगी जो मातृ-भक्त पुत्रोंको मिला करती है।' नन्दाने बेटेको ऐसा करनेसे मना किया। उसके बाद नन्दाने पुत्रको संसारमें रहनेके बहुत-से ढंग बताये और धर्मपर अटल रहनेपर जोर दिया। पुत्रको प्यार देनेके बाद नन्दाने अपनी माता, सखियों और गोप-गोपियोंका अभिनन्दन किया तथा बाघके पास लौटनेका अपना निश्चय सुनाया। उन लोगोंको नन्दाका निश्चय पसंद नहीं आया। उन्होंने कहा कि अपनी रक्षाके लिये शपथ और सत्यकी दुहाई देना कर्तव्य होता है, अतः तुम मत जाओ, किंतु सत्यवादिनी नन्दाने कहा कि 'दूसरेके प्राणोंको बचानेके लिये झूठ बोलना पाप नहीं है, किंतु अपने बचावके लिये झूठ बोलना पाप है। मैं सत्यकी रक्षा चाहती हूँ; क्योंकि सत्य ही उत्तम तप है।'

सत्यवादिनी नन्दा सबको अनुनय-विनयसे मनाकर बाघके पास पहुँची। ठीक इसी अवसरपर मातृ-भक्त बछड़ा भी अपनी पूँछ उठाये दौड़ता हुआ बाघ और अपनी माँके बीचमें आकर खड़ा हो गया, मानो वह बाघसे प्रार्थना कर रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो कि 'तुम मुझे ही खा लो और मेरी माँको छोड़ दो।'

नन्दाने बाघसे कहा—'मैं सत्यधर्मका पालन करती हुई तुम्हारे पास आ गयी हूँ। अब तुम मेरे मांससे अपनी इच्छा पूरी कर लो।'

बाघ नन्दाकी सत्यनिष्ठाको देखकर आश्चर्यचकित हो गया। उसने कहा—'तुम्हारी शपथ सुनकर मैं इस कौतूहलमें पड़ गया था कि यह जाकर लौटेगी या नहीं! सत्यकी परीक्षाके लिये ही मैंने तुम्हें भेजा था। मैं तुम्हारे भीतर सत्यकी खोज कर रहा था, उसे पा लिया। आजसे तुम मेरी बहन हुई और यह बछड़ा हमारा भानजा। तुम्हारी सत्यनिष्ठासे मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ और तुम्हारा स्वागत करता हूँ। तुम्हारी धर्मनिष्ठाने मेरे भी जीवनको बदल दिया है। अब मैं भी हिंसावृत्ति छोड़कर धर्मको अपनाऊँगा। बहन! अब मुझे धर्मका उपदेश दो।' नन्दाने उससे सभी प्राणियोंको अभयदान देनेके लिये कहा; क्योंकि जो लोगोंको अभयदान देता है, वह सभी भयोंसे मुक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है।

नन्दाकी संगतिसे बाघको अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त स्मरण हो आया। उसने कहा—'बहन! पूर्वजन्ममें मैं राजा था। एक बार इसी वनमें शिकार खेलने आया, तब मुझसे एक अधर्म हो गया। मैंने दूध पिलाती हुई एक मृगीको मार दिया। उसीके शापसे मैं बाघ बन गया हूँ। बाघ बन जानेके पश्चात् मैं बिलकुल भूल गया था कि मैं राजा हूँ। यह तुम्हारी संगतिका प्रताप है कि मुझे अपने पूर्वजन्मकी बातें स्मरण हो आयीं। तुम धन्य हो और तुम्हारी संगति धन्य है। अच्छा, तुम अपना नाम सुनाकर मुझे कृतार्थ करो।'

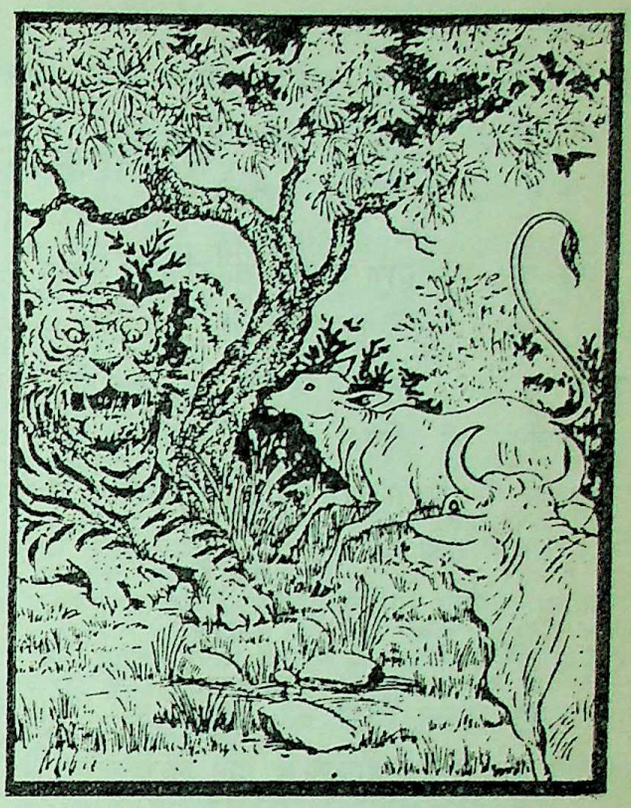

नन्दाने अपना नाम सुनाया। नाम सुनते ही बाघका शरीर छूट गया और राजा अपने तेजस्वी रूपमें आ गये। ठीक उसी समय नन्दाके सत्यसे आकृष्ट होकर धर्मराज वहाँ प्रकट हो गये। उन्होंने प्रसन्नताके साथ कहा—'तुम्हारी धर्मनिष्ठासे मैं संतुष्ट हूँ। तुम मुझसे वर माँग लो।'

नन्दाने तीन वर माँगे—(१) मैं पुत्रके साथ उत्तम पदको पाऊँ, (२) यह स्थान तीर्थ बन जाय और (३) यहाँ सरस्वती-नदीका नाम मेरे नामसे 'नन्दा' पड़ जाय।

इसके बाद नन्दा तत्काल पुत्रके साथ उत्तम लोकमें चली गयी। राजा प्रभञ्जनने भी अपने राज्यको पा लिया।

विश्वहितके लिये आत्मदान

सत्ययुगमें कालकेय नामसे प्रसिद्ध दानवोंका एक समूह था, उनका विचार बहुत ही कलुषित था। वे समस्त विश्वका नाश कर देना चाहते थे। अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उन लोगोंने वृत्रासुरका आश्रय लेकर देवताओंपर चढ़ाई कर दी। देवता बुद्धिमान् थे। वे ब्रह्माकी शरणमें गये। ब्रह्माने उनकी जीतका एक ही उपाय बतलाया कि दधीच ऋषि यदि अपनी हड्डी दे दें और उससे वज्र बने तो उसीसे वृत्रासुरका संहार सम्भव है। इसके अतिरिक्त और उपाय नहीं है। विवश होकर देवता दधीच ऋषिके पास गये। उन्होंने अपनी माँग उनके सामने रखी। दधीच ऋषिने जब समझ लिया कि मेरी हड्डीसे विश्वकी रक्षा हो सकेगी, तब बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्होंने अपने शरीरका त्याग कर हड्डी देवताओंको अर्पित कर दी। इस महान् त्यागको देखकर देवताओंको रोमाञ्च हो आया।

विश्वकर्माने महर्षि दधीचकी हड्डीसे वज्र तैयार किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी वज्रसे वृत्रासुरका संहार हुआ। कालकेय दानवोंका भी बहुत कुछ सफाया हो गया। बचे हुए दानवोंने समुद्रमें छिपकर अपनी जान बचायी। इस तरह महर्षि दधीचके आत्मदानने विश्वको विनाशसे बचा लिया।

परलोकको न बिगड़ने दें

(अलोभसे अक्षय-लोककी प्राप्ति)

एक बार सप्तर्षिगण सनातन ब्रह्मलोकपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे तीर्थोंमें विचर रहे थे। इसी बीच भयानक अकाल पड़ गया। जनताको अन्नके लिये कष्ट होने लगा। शिलोञ्छवृत्तिसे भी जीविका चलाना कठिन हो गया था। सप्तर्षियोंको भी उपवास करने पड़ रहे थे। घूमते हुए वे सौराष्ट्र पहुँचे। वहाँका राजा वृषादर्भि बहुत प्रजा-वत्सल था। वह निरन्तर घूम-घूमकर लोगोंके अभावकी पूर्ति करता रहता था। राजाने सप्तर्षियोंको अन्नकी खोजमें भटकते देखा, तब उसने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और प्रार्थना की—'मुनिवर! आपलोग ब्राह्मण हैं। ब्राह्मणोंका दान लेना कर्तव्य है। मैं आपको दूध देनेवाली गायें, अन्न, वस्त्र, रत्न, स्वर्ण आदि जो चाहें, देनेको तैयार हूँ। आप इस तरह कष्ट क्यों झेल रहे हैं?'

सप्तर्षियोंने कहा—'राजाका प्रतिग्रह (दान) अधिक निषिद्ध है, इसलिये आप इन वस्तुओंको और किसीको दे दें।' यह कहकर सप्तर्षि आगे बढ़ गये। राजाने उन्हें देनेका दूसरा मार्ग अपनाया। वह गूलर-फलोंमें स्वर्ण भरवाकर उन्हें उनके रास्तेमें बिखेरवा दिया। ऋषियोंकी दृष्टि जमीनमें लगी थी। सबसे पहले अत्रि ऋषिको एक गूलर-फल मिला, वह वजनदार था, अतः उन्होंने अन्य ऋषियोंको सावधान करते हुए कहा—'मैं इतना अल्पबुद्धि नहीं हूँ कि गूलर-फलमें छिपाये हुए द्रव्यको न परख सकूँ। ये गूलर-फल हमलोगोंके लिये त्याज्य हैं।' वसिष्ठ, कश्यप आदि ऋषियोंने भी धर्मके तत्त्व सुनाये और गूलर-फलको यों ही छोड़कर आगे बढ़ गये। कुछ दूर बढ़नेपर शुनःसख नामका एक व्यक्ति उनके साथ हो गया। आगे जानेपर एक बहुत बड़ा सरोवर मिला, जो कमलोंसे भरा हुआ था। ऋषियोंने कमलकी मृणालोंको इकट्ठा किया। तत्पश्चात् स्नानकर संध्या-तर्पण करनेके बाद जब वे भगवान्‌को भोग लगानेके लिये कमलनालके पास पहुँचे, तब वहाँ एक भी कमलनाल न थी। कमलनालोंको किसने चुराया, यह एक प्रश्न था। सभी ऋषियोंने अपनी-अपनी निष्कलङ्कताके लिये शपथें खायीं। ये सभी शपथें धर्मके गम्भीर रहस्योंको प्रकट करनेवाली थीं। जब शुनःसखकी बारी आयी, तब उसने शपथमें कहा—'जिसने कमलनालकी चोरी की हो वह दुर्बुद्धि ब्रह्मलोकको जाय।' ऋषियोंने ताड़ लिया कि इसीने चोरी की है। तब ऋषियोंने कहा—'तुमने चोरी की है।' शुनःसखने इसे स्वीकार कर लिया। उसने कहा कि 'आपके मुखसे धर्मके तत्त्वोंको सुननेके लिये ही मैंने मृणालोंकी चोरी की है। मैं इन्द्र हूँ और आपलोगोंको विमानपर बैठाकर ले चलनेके लिये आया हूँ। आपलोगोंने लोभपर विजय पानेके कारण अक्षय-लोकपर भी विजय पा ली है।' इन्द्रने बड़े सम्मानके साथ ऋषियोंको विमानपर बैठाया और अक्षयलोकमें पहुँचा दिया।

संतसे वार्तालापकी महिमा

(प्रेतत्वसे छुटकारा)

पृथु नामक एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। वे प्रतिदिन संध्या, होम, तर्पण, जप-यज्ञ आदि धार्मिक कार्योंमें लगे रहते थे। उन्होंने मन और इन्द्रियोंको वशमें कर लिया था। वे सभी प्राणियोंमें परमात्माके दर्शन करते और सबकी भलाई करते रहते थे। वे इसके लिये सदा सतर्क रहते थे कि उनका परलोक न बिगड़ जाय। वे सबसे मीठी वाणी बोलते थे और सबका आदर करते थे।

एक बार वे तीर्थयात्राके विचारसे घरसे निकल पड़े। कुछ दूर जानेपर मार्गमें एक ऐसा स्थान मिला, जहाँ न पानी था न कोई वृक्ष। वहाँकी सारी भूमि काँटोंसे भरी थी। इतनेमें उनकी दृष्टि पाँच भयानक आकृतियोंपर पड़ी। उन्हें देखकर उनके हृदयमें कुछ भयका संचार हो आया, किंतु वे सावधान हो गये और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने पूछा—'तुमलोग कौन हो ? तुम्हारे रूप इतने विकराल क्यों हैं ?' प्रेतोंने कहा—'हम बहुत दिनोंसे भूख-प्याससे पीड़ित हैं। हमारा ज्ञान और विवेक नष्ट हो गया है। हम इतना भी न समझ पाते कि कौन दिशा किधर है ? हमें न पृथ्वी दीखती है न आकाश। हमलोग बहुत कष्टमें हैं। हममेंसे एकका नाम पर्युषित, दूसरेका नाम सूचीमुख, तीसरेका नाम शीघ्रग, चौथेका नाम रोधक और पाँचवेंका नाम लेखक है।'

वे ब्राह्मण इन नामोंको सुनकर चौंक पड़े और पूछने लगे, 'तुमलोगोंको ये विचित्र नाम क्यों प्राप्त हुए हैं ?'

तब उनमेंसे एकने कहा—'जब मैं मनुष्य था, तब स्वयं तो स्वादिष्ट भोजन करता था और ब्राह्मणोंको बासी (पर्युषित) भोजन देता था। इसी पापसे मेरा नाम 'पर्युषित' पड़ा है। मेरे इस साथीका नाम 'सूचीमुख' इसलिये पड़ा है कि इसने अन्न चाहनेवाले ब्राह्मणोंकी हिंसा की थी। इसी पापसे इसे सुईकी तरह मुख प्राप्त हुआ है, जिससे अन्न-जल मिलनेपर भी यह भरपेट खा-पी नहीं सकता। तीसरे साथीका 'शीघ्रग' नाम इसलिये पड़ गया कि भूखे ब्राह्मणोंके अन्न माँगनेपर यह वहाँसे शीघ्रतापूर्वक भाग जाता था। चौथे साथीका 'रोधक' नाम इसलिये पड़ा है कि यह किवाड़ बंदकर स्वयं स्वादिष्ट भोजन किया करता था। पाँचवें साथीका 'लेखक' नाम इसलिये पड़ा है कि किसीके कुछ माँगनेपर यह पैरसे धरती कुरेदने लगता था।'

यह सुनकर ब्राह्मणने पूछा—'तुम सब खाते क्या हो ?' प्रेत लज्जित हो गया और बोला कि 'आप हमारे आहारके सम्बन्धमें न पूछते तो अच्छा होता; क्योंकि हमारा आहार बहुत घृणित है। बलगम, मल, मूत्र, स्त्रीके शरीरका रज यही हमारा भोजन है। हम सब घरोंमें जा भी नहीं सकते, केवल उन्हीं घरोंमें जाते हैं जहाँ अपवित्रता रहती है। जहाँ बलिवैश्वदेव, वेदमन्त्रोंका उच्चारण, होम, व्रत नहीं होते, वहाँ हम भोजन करते हैं।'

तत्पश्चात् प्रेतोंने ब्राह्मणसे पूछा—'हम इस प्रेत-योनिमें बहुत दुःखी हैं। आप तपस्याके धनी हैं। कृपया बताइये कि किस-किस कर्मसे जीव प्रेतयोनिमें नहीं पड़ता।' ब्राह्मणने उत्तर दिया—'जो व्रतोंका अनुष्ठान करता है, अग्निका सेवन करता है, देवता, अतिथि, गुरु तथा पितरोंकी पूजा करता है, वह प्रेतयोनिमें नहीं पड़ता। जिसके हृदयमें सभी प्राणियोंके प्रति दया भरी है, जो समता (समान-दृष्टि) रखता है और जो छहों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या) शत्रुओंको जीत लेता है, वह प्रेत-योनिमें नहीं पड़ता।'

प्रेतोंने पुनः पूछा—'हम बहुत दुःखी हैं। आपकी बातोंमें हमें सुख मिलता है। इसलिये यह भी बताइये कि जीव किस कर्मसे प्रेत-योनिमें जाता है ?'

ब्राह्मण देवताने बताया—'यदि कोई द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) शूद्रके अन्नको पेटमें लिये हुए मर जाता है, तो वह प्रेत होता है। जो शराब, मांस और परायी स्त्रीका सेवन करता है, वह प्रेत होता है। जो किसीकी धरोहर हड़प लेता है और विश्वासघात करता है, वह अवश्य प्रेत होता है। जो आचार्य अनेक ऋत्विजोंको मिली हुई दक्षिणाको स्वयं हड़प जाता है, वह प्रेत होता है।'

ब्राह्मण देवताकी बात पूरी होते ही नगाड़ोंकी आवाज सुनायी पड़ने लगी और फूलोंकी वर्षा होने लगी, साथ ही पाँच विमान भी उतर आये। इसके बाद आकाशवाणी सुनायी दी—'ब्राह्मणके साथ वार्तालाप करने एवं पुण्यकर्मोंके कीर्तनके प्रभावसे पाँचों प्रेतोंको दिव्यलोक मिले हैं।'

देखते-देखते पाँचों प्रेत दिव्य शरीर धारणकर विमानपर चढ़कर दिव्यलोकको चले गये।

प्रणाम करनेसे ब्रह्माकी आयुकी प्राप्ति

भृगुके पुत्र थे—मृकण्डु। उन्होंने अपनी पत्नीके साथ घोर तपस्या की। कुछ दिनोंके बाद उनके पुत्र हुआ। जब वह पाँच वर्षका हुआ, तब एक सिद्धकी दृष्टि उसपर पड़ी। बालकको देखकर वे विचारमग्न हो गये। वे सोच रहे थे कि यह बालक बहुत ही सुशील और सुन्दर है, किंतु बेचारेकी आयु छः मास ही शेष है। उसके पिताके पूछनेपर सिद्धने यह बात बता दी और कहा कि इससे कुछ अच्छे कार्य करा लो।

मृकण्डुजीने पुत्रका उपनयन कर दिया, उसे संध्या सिखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी और एक नियम बताया कि जो कोई मिल जाय, उसे प्रसन्नताके साथ प्रणाम किया करो। बालकने अपने पिताकी आज्ञाको शिरोधार्य किया। सबमें परमात्माकी स्थिति मानकर वह छोटा बालक सबको श्रद्धाके साथ प्रणाम करने लगा। इस तरह नियम-पालन करते हुए उसे पाँच महीने पचीस दिन बीत गये। अब उसकी आयुके केवल पाँच दिन ही शेष थे। इसी बीच उधर सप्तर्षि आ निकले। नियमानुसार बालकने बड़ी श्रद्धासे उन्हें भी प्रणाम किया। सप्तर्षियोंने **'आयुष्मान् भव वत्स'** कहकर आशीर्वाद दे दिया। पीछे विचार करनेपर उन्हें ज्ञात हुआ कि इसकी आयु तो केवल पाँच ही दिन शेष है। अपनी बात झूठी न हो जाय, इस भयसे वे लोग बच्चेको ब्रह्मलोक ले गये। नियमानुसार बालकने ब्रह्माजीको भी प्रणाम किया। भगवान् ब्रह्माजीने भी **'आयुष्मान् भव'** कहकर दीर्घायु होनेका आशीर्वाद दिया। ऋषियोंने बताया कि इसकी आयु तो पूरी हो रही है। आप ऐसा करें कि आप भी झूठे न हों और हम भी झूठे न बनें। ब्रह्माजीने कहा—'इसकी आयु मेरी आयुके बराबर होगी।'

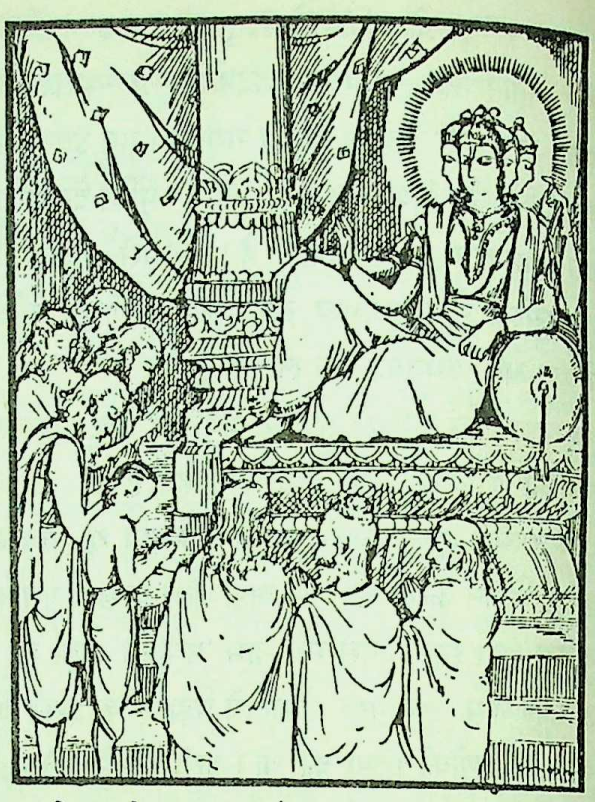

इस तरह सप्तर्षियोंने ब्रह्माजीसे वरदान दिलाकर बालकको उसके घरपर पहुँचा दिया। बालक बहुत प्रसन्न था। उसने अपने माता-पिताको प्रणाम कर सब बातें सुना दीं। माता-पिता आनन्दविभोर हो गये। इस तरह प्रणामके साधनसे मार्कण्डेयजीने ब्रह्माकी लम्बी आयु पायी।

प्रेमियोंके लिये भगवान् भी विह्वल

भगवान् श्रीरामके वियोगसे भरत, शत्रुघ्न, माताएँ और पुरवासी जितने विह्वल रहते थे, श्रीराम भी उनसे मिलनेके लिये उतने ही विह्वल रहते थे। वे चौदह वर्षोंके बीच उनसे मिलनेका उपाय ढूँढ़ते रहते थे। एक बार यही उपाय उन्होंने अत्रि ऋषिसे पूछा।

अत्रि ऋषिने बतलाया कि 'पुष्कर-क्षेत्र'में 'अवियोगा' नामकी एक वापी है, वहाँ सभी प्रेमियों, स्वजनोंके साथ संयोग हो जाता है। वे स्वजन चाहे इस लोकमें हों या परलोकमें।'

भगवान् श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ ऋक्षवान् पर्वत, विदिशा नगरी और चर्मण्वती आदिको पारकर पुष्करक्षेत्रमें अवियोगा बावलीपर जा पहुँचे। वहाँ वे सायंकालिक कृत्य समाप्तकर अपने पिता, भरत, शत्रुघ्न, माताओं और पुरवासियोंका स्मरण करते-करते सो गये। स्वप्नमें उनका सबसे प्रत्यक्षकी तरह मिलन हो गया। सीता और लक्ष्मणने भी ठीक ऐसा ही स्वप्न देखा।

प्रातःकाल इस स्वप्नको ऋषियोंने सत्य बतलाया। ऋषियोंने यह भी बतलाया कि 'मृत पुरुषका जब स्वप्नमें दर्शन हो,तब उनका श्राद्ध करना चाहिये। अतः आप चक्रवर्तीजीका श्राद्ध कर दें। हमलोग पूरा सहयोग करेंगे।' 'कुतपवेला'में श्राद्ध हुआ। मुनि समयपर आ गये थे, किंतु भोजनके समय सीताजी झाड़ीमें छिप गयीं। मुनियोंके जानेके बाद सीताजी झाड़ीसे बाहर निकल आयीं। भगवान् श्रीरामने इसका कारण पूछा। भगवती सीताने बतलाया—'स्वामिन्! आज मैंने बहुत ही आश्चर्य देखा। आपके नामोच्चारण करते ही स्वर्गीय महाराजश्री यहाँ आ उपस्थित हुए। उनके साथ उन्हींके समान रूपवाले दो पुरुष और आ गये। वे तीनों ब्राह्मणोंके अङ्गोंसे सटे हुए थे। मुझे तो इस क्षेत्रमें अपने जनोंके प्रत्यक्ष दर्शन हो गये। उन्हें प्रत्यक्ष देखकर मैं लजाकर आपके पाससे हट गयी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् श्रीराम सीताके वचनसे बहुत प्रसन्न हुए और आदरके साथ उन्हें हृदयसे लगा लिया। भगवान् तो प्रेमरूप ही हैं। कोई उनसे मिलनेके लिये एक पग बढ़ाता है तो वे सौ पग बढ़ाते हैं।

भगवान् आश्रितोंकी देखभाल करते हैं

बात उस समयकी है जब शत्रुघ्नको मथुरामें और लव-कुश आदि राजकुमारोंको भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भगवान् श्रीरामने नियुक्त कर रखा था। भगवान्ने उन्हें सन्मार्गपर अत्यधिक दृढ़ बनानेके लिये प्रत्येकसे अलग-अलग मिलना चाहा। विभीषणसे मिलना अधिक आवश्यक था; क्योंकि उनके अनुचर राक्षस थे। वे देवता और मनुष्यके प्रति कलुषित आचरण कर सकते थे। इसलिये लङ्कापुरीमें जाकर राक्षस-राजको फिरसे बोध कराना आवश्यक था।

भगवान् श्रीरामके साथ भरत भी चलनेको तैयार हो गये। लक्ष्मणपर नगर-रक्षाका भार सौंपकर भगवान् श्रीरामने पुष्पक-विमानका स्मरण किया। उस विमानपर दोनों भाई चढ़कर सबसे पहले गान्धार देश गये। वहाँ भगवान्ने भरतके दोनों पुत्रोंकी राजनीतिका निरीक्षण किया। उन्हें उचित शिक्षा देकर वे पूर्व दिशामें जाकर लक्ष्मणके पुत्रोंसे मिले। वहाँ छः रातें बितायीं। उसके बाद दोनों भाई दक्षिण दिशाकी ओर बढ़े। गङ्गा-यमुनाके संगममें स्नानकर महर्षि भरद्वाजको प्रणाम कर अत्रि मुनिके आश्रमपर गये। उनका आशीर्वाद लेकर जनस्थानकी ओर बढ़े। वहाँ उन्होंने भरतसे वहाँकी आपबीती घटनाएँ सुनायीं। किष्किन्धापुरीमें दोनों भाई उतर गये। कपिराज सुग्रीव दोनों भाइयोंको देखकर बहुत हर्षित हुए। उन्होंने उन्हें सादर प्रणाम कर अपने सिंहासनपर बैठाया और बड़ी प्रसन्नतासे निवेदन किया कि 'मैं, मेरा परिवार, सारा राज्य आपको न्यौछावर है।' ऐसा कहकर कपिराज सुग्रीव उनके चरणोंपर गिर पड़े। उसके बाद हनुमान्, अंगद, जाम्बवान्, नल-नील आदि छोटे-बड़े लोगोंसे वह सभाभवन ठसाठस भर गया। लोगोंके नेत्र अद्भुत रसपान कर रहे थे। प्रेमाश्रुओंसे सभाभवन गीला हो गया।

जब सुग्रीवको पता चला कि भगवान् श्रीराम विभीषणको भी कृतार्थ करने जा रहे हैं, तब उन्होंने भी साथ चलनेके लिये प्रार्थना की। भगवान्ने सुग्रीवको भी साथ ले लिया। विमान तुरंत ही समुद्र-तटपर जा पहुँचा। भगवान्ने भरतको वह स्थल दिखाया, जहाँ विभीषण शरणागत हुए थे और तीन ही दिनोंमें पुल बननेकी बात भी बतायी। इसके बाद विमान समुद्रके उस पार जा पहुँचा, जहाँ सीताकी अग्निपरीक्षा हुई थी। उस स्थानपर विमान तबतक रुका रहा, जबतक भगवान् वहाँका वृत्तान्त बताते रहे। विमान देखकर राक्षसोंने विभीषणको भगवान् श्रीरामके आनेकी सूचना दी। विभीषणजी दौड़ते हुए आये और पृथ्वीपर लेटकर उन्होंने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। विभीषणने कहा—'भगवन्! मेरा जन्म सफल हो गया और मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गये; क्योंकि आपके चरणोंका दर्शन हुआ। इसके बाद विभीषण भरतजी और सुग्रीवजीसे गले मिले। उन्हें रावणके जगमगाते भवनमें ठहराया गया। उन्हें आसनपर बैठाकर और उनकी पूजा कर विभीषण बोले—'मैं भगवान्को क्या भेंट करूँ; क्योंकि कुटुम्बके साथ मुझे इन्होंने प्राणदान दिया है। सारी लङ्का मुझे दी है। इस तरह सारी वस्तुएँ इन्हींकी दी हुई हैं तो इन्हें क्या भेंट दूँ? फिर भी हम सब आपको समर्पित हैं।' थोड़ी ही देरमें दर्शनार्थियोंसे वह सारा स्थान भर गया। सबने श्रीराम-भरत और सुग्रीवके दर्शन कर अपने जीवनको कृतार्थ किया। राजमाता कैकसी अपने बहुओंके साथ भगवान्के पास आना चाहती थीं, किंतु मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम स्वयं जाकर उनसे मिले। कैकसी बहुत प्रसन्न थीं। उन्होंने उन्हें बहुत आशीर्वाद दिये और यह भी बतलाया कि मेरे पतिदेवने, जितनी घटनाएँ घटी हैं, मुझे पहले ही बतला रखा था। इसलिये मैंने तुम्हें पहचान लिया कि तुम विष्णु हो, सीता लक्ष्मी हैं और वानर देवता हैं; तुम्हें अमर यश प्राप्त हो। विभीषणकी पत्नी सरमा सीतासे बहुत प्रेम करती थी। उन्हें देखनेके लिये व्यग्र रहा करती थी। इसलिये उसने प्रेमोपालम्भमें कहा—'भगवन्! सीताके बिना आप शोभा नहीं पाते, उन्हें भी साथ लाना चाहिये था।'

भगवान् श्रीरामने सरमासे कहा—'मुझे छोड़कर सीता चली गयी है। उसके बिना मुझे एक क्षण भी चैन नहीं मिलता, सारी दिशाएँ सूनी-सूनी दीखती हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबको विदा कर भगवान् श्रीरामने विभीषणको उचित मार्गका निर्देश दिया। यह भी बतलाया कि तुम्हें अपने बड़े भाई कुबेरके आज्ञानुसार चलना चाहिये, देवताओंका प्रियकर होना चाहिये, उनका कभी अपराध नहीं करना चाहिये तथा यदि कोई मनुष्य लङ्कामें आ जाय तो उसे कोई हानि न पहुँचाने पावे। विभीषणने भगवान्‌की आज्ञाको सिरपर चढ़ाया। विभीषणके कहनेसे भगवान्‌ने पुलको कई टुकड़ोंमें तोड़ दिया। उसी अवसरपर वायुदेवता वहाँ आये। उन्होंने श्रीरामसे निवेदन किया कि लङ्कामें वामन भगवान्‌की मूर्ति पड़ी हुई है। इसे आप कान्यकुब्जमें ले जाकर प्रतिष्ठित कर दें। तत्पश्चात् विभीषणने मूर्तिको बहुमूल्य रत्नोंसे विभूषित कर पुष्पक-विमानपर रख दिया। इसके बाद भगवान् भरत और सुग्रीवके साथ पुष्पक-विमानपर चढ़कर समुद्र-पार आये और भूतभावन रामेश्वरकी पूजा की। भगवान् शंकरने सुधासिक्त वाणीमें उन्हें आशीर्वाद दिया।

इसके बाद भगवान् पुष्करकी ओर बढ़े और वहाँ पितामह ब्रह्मासे मिलकर मथुरापुरीमें शत्रुघ्नके पास गये। शत्रुघ्नने अपने पुत्रोंके साथ भगवान् श्रीरामको प्रणाम किया। भगवान् श्रीरामने यहाँ पाँच दिन बिताये। इस तरह अपने आश्रितोंकी देखभाल कर गङ्गातटपर पहुँचकर उन्होंने भगवान् वामनकी स्थापना की, लङ्कासे प्राप्त धनको ब्राह्मणोंको दक्षिणाके रूपमें देकर संतुष्ट किया तथा यहींसे सुग्रीवको किष्किन्धा भेज दिया और स्वयं भरतके साथ पुष्पकपर सवार होकर अयोध्या लौट आये।

पातिव्रत-धर्मका महत्त्व

जिस तरह माता-पिता पुत्रके लिये परमात्माकी मूर्ति होते हैं, उसी तरह पत्नीके लिये पति परमात्माकी मूर्ति होता है। जिस तरह केवल माता-पिताकी सेवासे सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, उसी तरह केवल पतिकी सेवासे सभी सिद्धियाँ मिल जाती हैं। पूर्वकालकी बात है, मध्यदेशमें सैव्या नामकी एक पतिव्रता ब्राह्मणी थी। वह पतिको परमात्मा ही समझकर उसकी सेवामें निरन्तर लगी रहती थी। पूर्वजन्मके पापसे उसके पतिके शरीरमें कोढ़ हो गया था। उसके मनमें भी विकार भरे रहते थे। फलस्वरूप वह सैव्याको फटकारता भी रहता था, किंतु सैव्या प्रेमकी मूर्ति थी। वह पतिके मारको भी प्यार ही समझती थी।

एक दिन उसके पतिने एक वेश्याको जाते देखा। वेश्या बड़ी सुन्दरी थी। वह उसे पानेके लिये व्यग्र हो उठा और लम्बी-लम्बी साँसें खींचने लगा। उसकी साँसोंको सुनकर पतिव्रता दौड़कर उसके पास पहुँची और पूछने लगी—'आपको क्या कष्ट है? बताइये, मैं उसे दूर करूँगी। आप ही मेरे सब कुछ हैं। मैं आपके दुःखको सहन नहीं कर सकती।' पतिने बताया—'जिसे न पानेसे मुझे कष्ट है, उसे तुम दे नहीं सकती। अभी-अभी एक वेश्या इस मार्गसे गयी है। उसे देखकर उसे पानेकी इच्छा मुझे सता रही है। उसे पाये बिना मैं मर भी सकता हूँ।' पतिव्रताने पतिको धीरज बँधाया और कहा—'मैं आपका मनोरथ पूर्ण करूँगी।' दूसरे दिन प्रातःकाल पतिव्रता गोबर और झाड़ू लेकर वेश्याके घर जा पहुँची। उसके आँगन तथा गलीमें झाड़ू लगाकर गोबरसे लीप दिया। किसीकी दृष्टि पड़नेके पहले वह घर आ गयी। तीन-चार दिनोंतक यह क्रम चलता रहा। वेश्याको पता नहीं चल पाता था कि यह सफाई कौन कर जाता है। उसके नौकर-चाकर भी उद्विग्न थे। अन्तमें सभी लोगोंने मिलकर योजना बनायी कि आज रातको जागकर सफाई करनेवालेका पता लगाया जाय। अगले दिन ज्यों ही सैव्या झाड़ू लगाने लगी, त्यों ही वेश्याने उसे देख लिया। सैव्या अपने पातिव्रतधर्मके कारण विख्यात हो चुकी थी। उसे सब लोग जानते थे। वेश्या भी सैव्याको पहचान गयी। वह दौड़कर उसके पास पहुँची और कहने लगी—'आप मुझे नरकमें क्यों डालना चाहती हैं?' सैव्याने नम्रतासे कहा—'मैं आपकी सेवा अपनी इच्छाकी पूर्तिके लिये कर रही हूँ। जबतक आप प्रसन्न नहीं होंगी, मैं आपकी सेवा करती रहूँगी।' वेश्याने सैव्यासे कहा—'आप सोना, चाँदी, कपड़ा आदि जो चाहें उसे माँग लें। मैं सब कुछ देनेको तैयार हूँ। इसके लिये सेवाकी आवश्यकता न थी।' पतिव्रताने कहा—'मुझे धन आदिकी इच्छा नहीं है। मुझे तो आपसे ही काम है।' इसके बाद पतिव्रताने लजाते-लजाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पतिकी इच्छा सुना दी। दुर्गन्धयुक्त कोढ़ी मनुष्यके साथ संसर्गकी बात सोचकर वेश्याके मनमें बड़ी घृणा हुई। फिर भी सैव्यासे डरकर उसने केवल एक रातके लिये उसके पतिसे मिलना स्वीकार कर लिया।

पतिव्रताका पति कोढ़से लँगड़ा भी हो गया था। वह चलकर वेश्याके पास नहीं पहुँच सकता था, अतः सैव्या उसे कंधेपर चढ़ाकर वेश्याके घर ले चली। रात अँधेरी थी। आकाशमें घटाएँ घिरी थीं। अतः रास्तेमें उसके पतिका सड़ा-गला अङ्ग माण्डव्य मुनिके शरीरसे जा टकराया। मुनिकी समाधि भङ्ग हो गयी। समाधि भङ्ग होनेसे उन्हें शूलीका भयानक कष्ट होने लगा। चोर समझकर राजाके सिपाहियोंने उन्हें भूलसे शूलीपर चढ़ा दिया था। तीव्र वेदनासे पीड़ित होकर माण्डव्य ऋषिने शाप दे दिया—'जिसने मुझे असह्य वेदनाका अनुभव कराया है, वह सूर्योदय होते-होते भस्म हो जाय।' शाप देते ही कोढ़ी पृथ्वीपर गिरकर बेहोश हो गया।

पतिव्रतासे अपने पतिकी दुर्दशा देखी नहीं गयी। उसने कहा—'आजसे सूर्यका उदय ही न हो।' इतना कहकर पतिको घर ले आयी और सेवा करने लगी। इधर सूर्यके न उदय होनेसे संसारमें हाहाकार मच गया। लोग समझ नहीं पाते थे कि ऐसा क्यों हो रहा है। अन्तमें ब्रह्माजी देवताओंके साथ सैव्याके पास पहुँचे। उसे समझाया कि तुमने संसारके विनाशकी बात क्यों नहीं सोची ? जब सूर्य उदय नहीं होगा, तब संसार कैसे बचेगा ? पतिव्रताने कहा—'मेरे लिये पति ही सब कुछ हैं। मुनिके शापसे इनकी मृत्यु न हो इसलिये मैंने सूर्यको शाप दिया है।' ब्रह्माने कहा—'तुम सूर्योदय हो जाने दो, तुम्हारे पतिको मैं जिलाकर स्वस्थ कर दूँगा।' पतिव्रताके 'हाँ' करते ही सूर्योदय हो गया। सूर्योदय होते ही सैव्याका पति

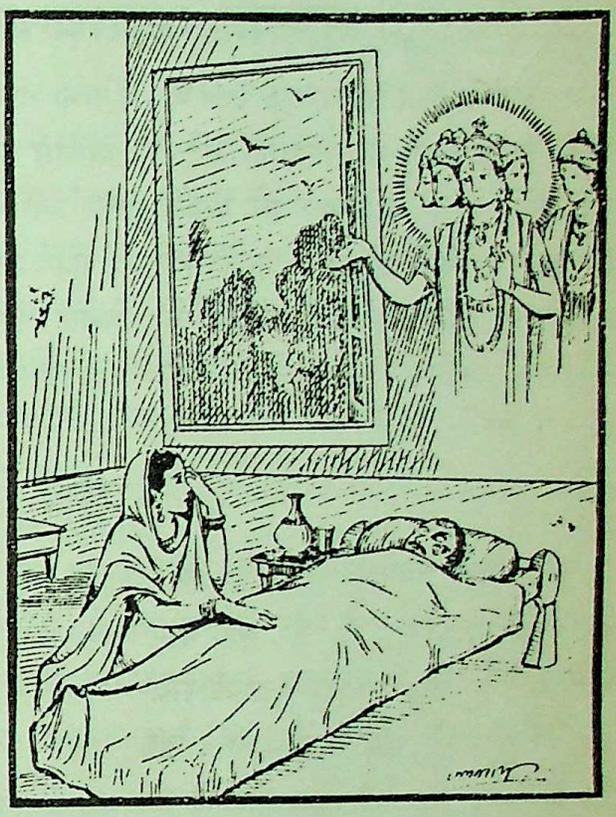

राखका ढेर हो गया और शीघ्र ही उस राखसे स्वस्थ एवं सुन्दर रूपमें वह ब्राह्मण प्रकट हुआ। उसी समय आकाशसे विमान उतरा, जिसपर वह पतिव्रता पतिके साथ बैठकर स्वर्गलोक चली गयी।

सबसे बढ़कर धर्म—माता-पिताकी पूजा

एक बार कार्तिकेय और गणेश छोटी अवस्थामें अपनी माताके पास खेल रहे थे। यह दृश्य देवताओंको बहुत प्यारा लगा। उन्होंने अमृतसे बना एक दिव्य लड्डू पार्वतीजीको दिया। कार्तिकेय और गणेश दोनोंने उसे लेना चाहा। माता पार्वतीने कहा—'बच्चो ! इस लड्डूके सम्बन्धमें तुम्हारे पिताकी और मेरी इच्छा यह है कि इसका विभाजन न किया जाय। तुम दोनोंमें जिसका धर्म सबसे बढ़कर सिद्ध हो, उसे ही यह दिया जाय।' यह सुनते ही कार्तिकेय प्रशस्त धर्म-अर्जनके लिये मोरपर बैठकर तीर्थयात्राके लिये निकल पड़े। वे समझते थे कि तीर्थयात्रासे मिलनेवाला धर्म ही सर्वोत्तम होता है।

गणेशजी जानते थे कि माता-पिताके परिक्रमा-मात्रसे तीर्थयात्रासे अधिक फल मिलता है। झट उन्होंने अपने माता और पिताकी प्रेमसे परिक्रमा की और उनके चरणोंमें प्रणाम कर उनके आगे जा विराजे। मोर चाहे जितने वेगसे उड़ता हो, सभी तीर्थोंकी यात्रासे लौटनेमें देर तो होगी ही। अतः कार्तिकेयजी इसके बाद आये। आते ही उन्होंने लड्डू माँगा। तब माता-पिताने दोनों कुमारोंको अपना निर्णय सुनाया—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सभी तीर्थोंमें स्नानसे, सभी देवोंकी पूजासे, सभी यज्ञों एवं व्रतोंसे बढ़कर माता-पिताकी पूजा होती है। इसकी सोलहवीं कलाकी भी समानता सभी मिलकर नहीं कर सकते। अतः यह मोदक गणेशको मिलेगा।'

माता-पिताकी इसी पूजाके प्रभावसे गणेशजी सभी देवताओंमें अग्रपूज्य हो गये।

सूर्यकी आराधनासे सफेद कोढ़का नाश

मद्रदेशमें भद्रेश्वर नामके एक राजा थे। वे सभी धार्मिक कृत्योंको किया करते थे। फिर भी अदृष्टकी प्रेरणासे उनके हाथमें सफेद कोढ़ हो गया। इस प्रत्यक्ष रोगसे उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। उन्होंने विचार किया कि किसी पवित्र क्षेत्रमें जाकर इस शरीरका परित्याग कर दें। उन्होंने यह विचार लोगोंके सामने रखा। ब्राह्मणोंने बतलाया कि आपकी अनुपस्थितिसे यह राष्ट्र ही नष्ट हो जायगा। अतः आप इसका त्याग न करें। रह गया रोग, उसका भी प्रतीकार है। आप सूर्यकी आराधना करें। हम सहयोग देंगे।

विधि-विधानसे पूजा प्रारम्भ हो गयी। ब्राह्मण, अमात्यगण और प्रजाका हार्दिक सहयोग मिला। सूर्य-भगवान्‌की कृपासे उनका वह रोग एक वर्षमें समाप्त हो गया।

पाँच पितृभक्त पुत्र

पुत्रके लिये माता-पिताकी भक्ति ही एकमात्र धर्म है। इसके अतिरिक्त पुत्रके लिये और कोई धर्म नहीं है। एक वर्ष, एक मास, एक पक्ष, एक सप्ताह अथवा एक दिन भी जो पुत्र माता-पिताकी भक्ति करता है, वह वैकुण्ठलोकको प्राप्त करता है।

(१) पितृभक्त यज्ञशर्मा

द्वारकामें शिवशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहते थे। वे योगशास्त्रके पारङ्गत विद्वान् थे। सभी सिद्धियाँ उन्हें प्राप्त थीं। उनके पाँच पुत्र थे—यज्ञशर्मा, वेदशर्मा, धर्मशर्मा, विष्णुशर्मा और सोमशर्मा। ये पाँचों ही पुत्र पिताके परम भक्त और तपस्वी थे।

एक बार शिवशर्माने अपने पुत्रोंके पितृप्रेमकी परीक्षा लेनी चाही। वे सर्वसमर्थ तो थे ही, उन्होंने मायाका प्रयोग किया। पाँचों पुत्रोंके सामने उनकी माता दारुण ज्वरसे पीड़ित हो गयीं। कोई उपचार काम न आया। देखते-देखते मर गयीं। विवश हो पुत्रोंने इसकी सूचना पिताको दी और अगले कर्तव्यका निर्देश चाहा।

पिता तो परीक्षणपर तुले ही थे। आज्ञा दी—'यज्ञशर्मा! तुम तीक्ष्ण शस्त्रसे अपनी माताको खण्ड-खण्ड काटकर इधर-उधर फेंक दो।' आज्ञाकारी पुत्रने पिताकी आज्ञाका अक्षरशः पालन किया।

(२) पितृभक्त वेदशर्मा

इसके पश्चात् पिताने वेदशर्मासे कहा—'पुत्र! मैंने एक स्त्रीको देखा है। उसके बिना मैं रह नहीं सकता। तुम मेरे लिये उसे प्रसन्न कर लो और बुला लाओ।' वेदशर्मा पिताकी आज्ञा शिरोधार्य कर उस नारीके पास पहुँचे और उसके बिना अपने पिताकी विह्वलता सुनायी।

स्त्रीने वेदशर्माकी प्रार्थनाको ठुकराते हुए कहा—'तुम्हारा पिता बूढ़ा और रोगी है। उसके मुखसे कफ निकलता रहता है। उससे मैं विवाह नहीं करना चाहती। मैं तो तुम्हें चाहती हूँ। तुम रूपवान् और नवयौवनसे सम्पन्न हो। उस बूढ़ेके पीछे तुम क्यों व्याकुल हो। तुम जो चाहोगे, मैं सदा दिया करूँगी।

वेदशर्मा ऐसी असंगत बात सुनकर आश्चर्यचकित होकर बोला—'देवि! तुम मेरी माताके सदृश हो। अपने पुत्रसे ऐसी अधार्मिक बात तुम्हें नहीं कहनी चाहिये। मैंने कोई अपराध भी तो नहीं किया है कि तुम ऐसी असंगत बात सुनाकर मुझे व्यथित कर रही हो। मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ, तुम मेरे पिताको वरण कर लो। तुम जो चाहोगी, मैं वही दूँगा।'

स्त्रीने कहा—'यदि तुम देना चाहते हो तो तीनों देवों और इन्द्रके साथ सभी देवोंको यहाँ बुला दो। मैं उनका दर्शन करना चाहती हूँ।'

वेदशर्माने अपनी तपस्याका उपयोग किया। सभी देव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ आ विराजे। सारा वातावरण पवित्र हो गया। देवताओंने वेदशर्माको आदर दिया और वरदान माँगनेको कहा। वेदशर्मने पिताके चरणोंमें निर्मल प्रेम माँगा। वरदान देकर देवता अन्तर्हित हो गये। इसके पश्चात् भी वह स्त्री वेदशर्माके पिताको वरण करनेके लिये तैयार नहीं हुई और बोली—'इस घटनासे तो केवल तुम्हारी तपस्याके बलका पता चला। उन देवताओंसे मेरा कोई लेना-देना नहीं है। यदि तुम अपने पिताके लिये मुझे कुछ देना चाहते हो तो अपना सिर स्वयं काटकर मुझे दे दो।'

वेदशर्माको प्रसन्नता हुई कि पिताकी आज्ञाके पालनमें वह सफल हुआ। झट उसने तलवारसे अपना सिर काटकर उसे दे दिया। स्त्री खूनसे लथपथ वेदशर्माके सिरको लेकर उसके पिताके पास पहुँची। उसके भाई वहीं थे। इस दृश्यको देखकर उन्हें रोमाञ्च हो आया। उनके मुखसे निकल पड़ा—'हम लोगोंमें वेदशर्मा ही धन्य है, जिसने पिताके लिये अपने शरीरका सदुपयोग किया।'

(३) धर्मशर्माकी पितृभक्ति

पिताने वेदशर्माके उस कटे सिरको धर्मशर्माको देते हुए कहा—'बेटा ! अपने भाईके इस सिरको लो और इसे जीवित कर दो।' धर्मशर्मने धर्मराजका आह्वान किया। धर्मराज प्रकट होकर बोले—'वत्स ! तुमने मुझे क्यों बुलाया है ? तुम्हें क्या चाहिये ?' धर्मशर्मने कहा—'यदि मेरी पितृभक्ति सही है, तो मेरा यह भाई जीवित हो जाय।' धर्मराजने तुरंत उसके भाईको जीवित कर दिया। फिर धर्मशर्माको पितृभक्तिका वरदान देकर वे अन्तर्हित हो गये। वेदशर्मने जब आँखें खोलीं, तब वहाँ न तो वह स्त्री थी और न उसके प्रिय पिता। उसने पूछकर सारी बातें जान लीं। फिर दोनों भाई पितासे आ मिले।

(४) विष्णुशर्माकी पितृभक्ति

इसके बाद भी उनके पिता चिन्तित ही दिखायी पड़े। उन्होंने विष्णुशर्माको सम्बोधित किया—'बेटा ! मैं रुग्ण हूँ। अमृतके बिना मैं स्वस्थ न हो सकूँगा। तुम देवलोकसे मेरे लिये अमृतसे भरा कलश ले आओ।'

विष्णुशर्मने योगकी शक्तिका आश्रय लिया। वे तीव्रगतिसे स्वर्गलोककी ओर बढ़े। अमृतका कलश देना देवता क्यों चाहेंगे ! इन्द्रने विष्णुशर्माको रास्तेमें ही प्रलोभित करनेके लिये मेनकाको भेजा। मेनकाने अपनी माया अच्छी तरह फैलायी। उसकी सुन्दरता और गीतकी मधुरतासे कण-कण आप्लावित हो उठा। वह झूलेमें झूल रही थी। झूलेने उसमें निखार ला दिया था। विष्णुशर्मने यह सब देखा और सुना, परंतु उनपर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे सबको छोड़ते हुए आगे बढ़ रहे थे। अब मेनकाको इनके पीछे लगना पड़ा। उसने दीनताभरे शब्दोंमें प्रणय-याचना की, किंतु विष्णुशर्मा-जैसे पितृभक्तपर उसकी कोई माया न चली। इसके पश्चात् इन्द्रने अनेक विघ्न प्रकट किये। इन्द्रकी इस चेष्टासे विष्णुशर्माको क्रोध हो आया। वे इन्द्रको पदच्युत कर दूसरे इन्द्रको उनके पदपर बैठानेकी बात सोचने लगे। तब इन्द्र हाथमें अमृत-कलश लेकर प्रकट हुए और उन्होंने सम्मानके साथ विष्णुशर्माको दे दिया।

अमृत-कलश लेकर विष्णुशर्मा घर लौटे और उसे पिताको दे दिया। पिता बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने पुत्रोंसे कहा—'बच्चो ! तुम्हारी सेवासे मैं प्रसन्न हूँ। तुम सब वरदान माँगो।' पुत्रोंने अपनी माताको जीवित देखना चाहा। पिताने यह वरदान उन्हें दे दिया। थोड़ी ही देर बाद ममता और स्नेह लुटाती हुई उनकी माता वहाँ आ पहुँची। उसने हर्षमें भरकर कहा—'तुम सभी पुत्रोंके कारण मेरा भाग्य चमक उठा है। न जाने मैंने कौन-से पुण्य किये थे कि मुझे तुम्हारे-जैसे पुत्र मिले।'

माताको हर्षित देख सभी पुत्र आनन्दसे विह्वल हो गये। उन्होंने कहा—'हमारा कोई बहुत बड़ा पुण्य है, जिससे हमलोगोंने तुम्हें माताके रूपमें पाया।'

पिता भी अपने प्रिय पुत्रोंपर अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—'पुत्रो ! तुमलोग और वरदान माँगो। मेरे संतुष्ट होनेपर तुम्हें अक्षयलोक भी प्राप्त हो सकता है।' पुत्रोंने वरदानमें अक्षय लोक ही माँगा। पिताके 'तथास्तु' कहते ही दीप्तिशाली विमान उतर आया। भगवान्‌ने माता-पितासहित सभी पुत्रोंको विष्णुलोक चलनेके लिये कहा, परंतु शिवशर्मने कहा—'मैं, मेरी स्त्री और मेरा छोटा पुत्र अभी उस लोकमें नहीं जाना चाहते, पीछे आयेंगे। आप चार पुत्रोंको ही वह दिव्य धाम दें।'

भगवान् विष्णुने उन चारों भाग्यवान् पुत्रोंको ही साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलनेके लिये कहा। उन चारोंका स्वरूप विष्णुका-सा हो गया। वे वैकुण्ठलोक पधार गये।

(५) पितृभक्त सोमशर्मा

चारों पुत्रोंको विष्णुलोक प्रदान कर शिवशर्मा संतुष्ट थे। अब उन्हें अपने छोटे पुत्र सोमशर्माके सत्त्वको परखना था। एक दिन उन्होंने सोमशर्मासे कहा—'बेटा ! तुम हममें स्नेह तो रखते ही हो, इस बार एक कठिन कार्य दे रहा हूँ। अमृतसे भरा हुआ यह घड़ा हम तुझे सौंपकर तीर्थयात्रा करने जा रहे हैं। इस घड़ेकी सावधानीसे रक्षा करना।'

सोमशर्माको पिताकी कोई आज्ञा मिलनेपर बहुत हर्ष होता था। इस बार भी उन्हें बहुत हर्ष हुआ। उन्होंने माता-पिताको इस ओरसे निश्चिन्त बनाकर तीर्थयात्राके लिये भेज दिया। इसके बाद वे बड़ी तत्परतासे अमृतकुम्भकी रखवाली करने लगे।

दस वर्षके पश्चात् माता-पिता लौटे। उन्होंने मायासे अपने शरीरोंमें कोढ़ पैदा कर लिया था। वे मांसके पिण्डकी तरह त्याज्य दीख रहे थे। यह देखकर सोमशर्माको बड़ी व्यथा हुई, साथ-साथ विस्मय भी हुआ। उन्होंने पूछा—'आप दोनों तो विष्णुतुल्य हैं। आपको यह अधम रोग कैसे हो गया ?' पिताने कहा—'पुत्र ! अदृष्टका भोग तो भोगना ही पड़ता है। किसी जन्मका कोई पाप उदित हुआ होगा।'

सोमशर्माको दोनोंका कष्ट देखकर बड़ा कष्ट होता। वे जी-जान देकर उनकी सेवामें जुट गये। मल-मूत्र साफ करते, मवाद धोते, मलहम-पट्टी करते, समयसे खिलाते, समयसे सुलाते, सब समय सेवामें लगे रहते, परंतु पिता अग्निशर्मा कठोर बने रहते। वे सदा डंडेसे फटकारा करते थे, परंतु प्रेमी सोमशर्माको उसमें पिताका प्यार ही झलकता था। पिताकी ओरसे डाँट-फटकार और मारकी झड़ी लगी रहती, परंतु सोमशर्माकी बोली सदा मधुर निकलती और व्यवहारमें आदर झलकता था।

समर्थ पिताने एक दिन सोचा—'मैंने तो बहुत ही कठोरता बरती है, किंतु सोमशर्मामें कभी प्रेमकी कमी नहीं आयी। पितृप्रेमकी परीक्षामें तो यह उत्तीर्ण है, अब कुछ इसकी तपस्याकी परीक्षा कर लूँ।'

समर्थ शिवशर्माने पुत्रपर मायाका प्रयोग किया। सुरक्षित अमृतके घड़ेसे अमृतका अपहरण कर लिया। इसके बाद सोमशर्मासे बोले—'बेटा ! अमृतसे भरा हुआ कुम्भ मैंने सुरक्षाके लिये तुम्हें सौंपा था, उसे लाकर दो। उसे पीकर हम स्वस्थ हो जायँगे।'

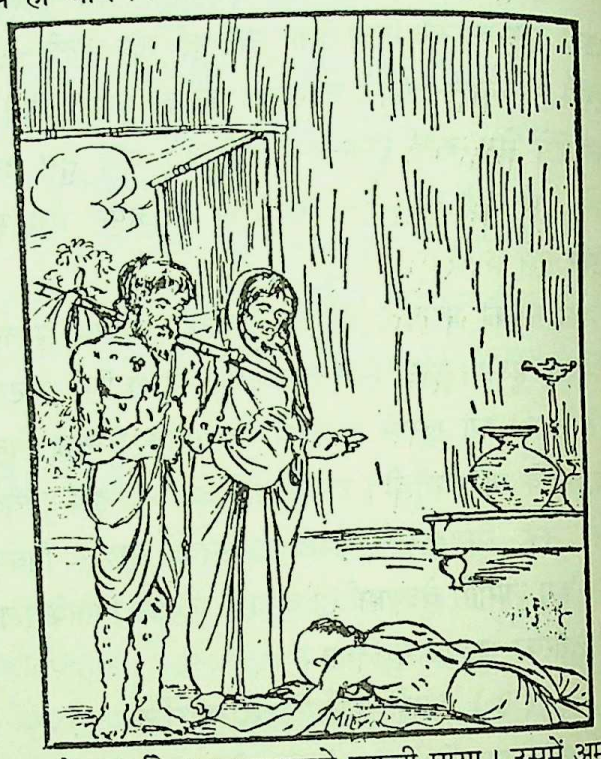

सोमशर्माने अमृतकुम्भको खाली पाया। उसमें अमृतकी एक बूँद भी न थी, उन्हें चिन्ता हुई कि इस सुरक्षित कुम्भसे अमृत कौन ले गया ! विवश होकर उन्होंने अपनी तपस्याकी शरण ली। वे आँखें बंद करके बोले—'यदि मैंने निश्छल तपस्या की है और अन्य धर्मोंका भी आदरसे पालन किया है तो अमृतका यह घड़ा पहलेकी तरह भर जाय।' जब आँखें खोलीं, तो घड़ा अमृतसे लबालब भरा हुआ था। उन्हें संतोष हुआ कि अब इससे पिता-माता स्वस्थ हो जायँगे। झट वह घड़ा पिताजीके सामने रखकर उनके चरणोंमें प्रणिपात किया।

बिना अमृत पीये ही माता-पिता भले-चंगे हो गये। दोनोंके शरीर पहले-जैसे दीप्तिमान् हो उठे। वे वस्तुतः रोगी तो थे नहीं। इधर सोमशर्मा माता-पिताको स्वस्थ देखकर प्रसन्नतासे भर गये, उधर पिता इनकी पितृ-भक्ति और तपस्या देख फूले न समाये। पिताने सोमशर्माको बहुत-बहुत आशीर्वाद दिया। इतनेमें उनकी इच्छासे विष्णुलोकसे एक विमान उतरा और उसपर सोमशर्मासहित माता-पिता बैठकर परम धामको चले गये।

यही सोमशर्मा अगले जन्ममें प्रह्लाद हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृष्णासे मानवता मर जाती है

सोमशर्मा नामका एक गृहस्थ व्यक्ति था। उसका परिवार भरा-पूरा था। पत्नी थी और उसके कई पुत्र थे। स्वयं वह बहुत बड़ा लोभी था। वह चाहता था कि उसके रुपयोंकी संख्या दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढ़ती जाय, कभी घटे नहीं। इसलिये वह भयानक कृपण बन गया था। न पत्नीको प्यार देता था, न पुत्रोंको। पैसे बचानेके लिये उनसे कतराया करता था। न कभी पूजन करता और न कभी श्राद्ध। पत्नी स्मरण दिलाती कि 'आज ससुरजीका श्राद्ध है, आज सासजीका श्राद्ध है' तो सुनते ही वह एक-दो दिनके लिये घर छोड़ देता था। दानके नामपर तो उसके प्राण ही निकलने लगते थे।

उसने खेतीके साथ-साथ अश्वशाला, गोशाला आदि व्यवसायके साधन भी जुटा रखे थे। वह पशुओंको खरीदता और बेचता था, अन्नका दाम अत्यधिक चढ़ाये रखता था। प्रतिदिन धन जोड़ता रहता था। इस तरह धन बढ़ानेकी तृष्णाने उससे कोई धर्म-कार्य नहीं होने दिया। उसकी मुहरें हजारसे लाख, लाखसे करोड़, करोड़से अरब और अरबसे बढ़कर दस खरबतक पहुँच चुकी थीं। जैसे-जैसे उसकी मुहरें बढ़तीं, वैसे-वैसे उसकी तृष्णा भी बढ़ती जाती और वैसे-वैसे उसकी मानवता भी मरती जाती थी। वह न किसी रोगीकी सहायता कर सकता था, न किसी नंगेका तन ढक सकता था और न किसी निराश्रयको आश्रय दे पाता था। धनको भिन्न-भिन्न स्थानोंमें गाड़कर रखता था। स्त्री-पुत्रोंको भी इसकी जानकारी नहीं होने देता था। इसी स्थितिमें मौतकी छाया उसपर मँडराने लगी। मरते समय घरवालोंने पूछा कि 'धन कहाँ-कहाँ गाड़ रखे हो?' इस विषयमें उसने उनसे कुछ नहीं कहा, क्योंकि घरवालोंसे बढ़कर उसकी ममता मुहरोंपर थी, मानवता मर चुकी थी, इसलिये वह बतानेमें हिचकिचाता रहा और अन्तमें मर गया।

सत्संगतिसे मानवता जी जाती है

जो मरते समय भी अपने लोगोंको गड़ा धन नहीं बता पाता, उससे भी सत्संगति अच्छा कार्य करा लेती है। संतकी संगतिका प्रभाव ही ऐसा होता है।

एक बार तीर्थयात्राके प्रसंगसे एक संत सोमशर्माके पास पधारे। उन्होंने इससे रातभर ठहरनेके लिये स्थान माँगा। संतके पवित्र दर्शनसे इसमें श्रद्धाका संचार हो आया। इस बार अतिथि इसे शत्रु न दीखकर हितैषी दीख पड़े। कुढ़न और व्यग्रताकी जगह आज प्रसन्नताने ले ली थी। उसने संतका आदर किया, ठहराया और उनकी थकान मिटानेके लिये अङ्गोंको दबाया। उनके चरण धोकर मस्तकपर चढ़ाया। दूध-दही देनेमें आज कृपणता न हुई। उसकी स्त्री तो साध्वी थी ही। उसने सेवामें पूरा सहयोग दिया।

दूसरे दिन हरिशयनी एकादशी थी। खाने-पीनेका प्रश्न ही नहीं था। उस व्यक्तिने संतको उस दिन वहीं ठहरा लिया। संतने एकादशी-व्रतकी कथा भी सुनायी। परिवारके सभी लोगोंने उस दिन एकादशी-व्रत किया। रातभर कीर्तन, नृत्य और गीत चलते रहे। उस दिन तृष्णासे आहत उस व्यक्तिने दक्षिणा भी दी। इसीके प्रभावसे सोमशर्मा अगले जन्ममें ब्राह्मण हुआ, उसे विदुषी पत्नी मिली और महर्षि वसिष्ठका उपदेश मिला, जिसके आचरणसे उसे 'सुव्रत' नामका महाभागवत पुत्र मिला। सुव्रतके कारण दम्पतिको वैकुण्ठ भी मिला।

सुनीथाकी कथा

अभिभावक उपेक्षा न करें

अभिभावकोंको चाहिये कि वे अपनी संतानकी सँभालमें तनिक भी उपेक्षा न आने दें। इनके द्वारा की गयी थोड़ी भी उपेक्षा संतानके लिये घातक बन जाती है।

सुनीथा मृत्यु देवताकी कन्या थी। बचपनसे ही वह देखती आ रही थी कि उसके पिता धार्मिकोंको सम्मान देते हैं और पापियोंको दण्ड। सहेलियोंके साथ खेलनेमें प्रायः वह इन्हीं बातोंका अनुकरण किया करती थी। एक बार वह सहेलियोंके साथ खेलती हुई दूर निकल गयी। वहाँ एक सुन्दर गन्धर्वकुमार सरस्वतीकी आराधनामें लीन था। उसपर दृष्टि पड़ते ही सुनीथा उसपर कोड़े बरसाने लगी। भोलेपनसे इसे वह खेल ही समझती रही। गन्धर्वकुमारको खलता कि 'वह किसीकी तपस्यामें विघ्न पहुँचा रही है, किसीका अपमान कर रही है।' किंतु सुनीथाकी बुद्धिमें कुछ नहीं आता। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिदिन आती और निरपराध गन्धर्वकुमारको सताती। एक दिन गन्धर्वकुमारको क्रोध हो गया, वह बोला—'भले लोग मारनेवालेको मारते नहीं और गाली देनेवालेको गाली नहीं देते।'

सुनीथामें सत्यवादिता आदि सभी गुण कूट-कूटकर भरे थे। उसने अपने पितासे सारी घटना ज्यों-की-त्यों सुना दी। भोली होनेसे वह गन्धर्वकुमारकी बातें समझ न पाती थी, उन्हें समझानेके लिये उसने पिताजीसे आग्रह किया। मृत्युने अपनी पुत्रीकी जिज्ञासापर चुप्पी साध ली, जो अच्छी न थी। पुराणने इसे 'दोष' माना है, क्योंकि मारनेवालेको मारना नहीं चाहिये और गाली देनेवालेको गाली नहीं देनी चाहिये'—इन वाक्योंका अर्थ जो बच्ची नहीं समझ पाती और अभिभावकसे समझना चाहती है, उसे न समझाना अवश्य अनर्थकारक हो सकता है। हुआ भी ऐसा ही। पिताके चुप्पी साध लेनेसे सुनीथाका वह पापाचार रुका नहीं। सखियोंके साथ गन्धर्व-कुमारके पास जाना और कोड़ोंसे उसे पीटना उसका प्रतिदिनका कार्य हो गया। कोई कबतक सहेगा! एक दिन

गन्धर्वकुमारने शाप देते हुए कहा—'विवाह हो जानेपर तुम्हारे गर्भसे ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा जो देवताओं एवं ब्राह्मणोंकी निन्दा किया करेगा और घोर पापाचारमें लग जायगा।'

इस बार भी सुनीथाने सच-सच बातें पिताको सुना दीं। शापकी बात सुनकर पिताको बहुत दुःख हुआ। उन्होंने इस बार समझाया—'निर्दोष तपस्वीको पीटना अच्छा काम नहीं है। ऐसा तुमने क्यों किया? तुमसे भारी पाप हो गया है। तुम्हें शाप भी लग गया है। अतः अब तुम पुण्य-कर्मोंका अनुष्ठान करो, सत्संगति करो और विष्णुके ध्यानमें लग जाओ।'

सखित्वका आदर्श

वयस्क होनेपर पिताको सुनीथाके विवाहकी चिन्ता हुई। वे अपनी कन्याको साथ लेकर देवताओं और मुनियोंके पास गये। सबका एक ही उत्तर था—'इससे जो संतान होगी, वह भयानक पापी होगी। अतः हम इसे स्वीकार न करेंगे।' इस तरह शापके कारण सुनीथाका विवाह ही रुक गया। अब तपस्याके अतिरिक्त सुनीथाके पास और कोई उपाय न था। वह पिताकी आज्ञासे वनमें जाकर तपस्या करने लगी, किन्तु चिन्ता उसका पिण्ड छोड़ना नहीं चाहती थी।

रम्भा आदि अप्सराएँ सुनीथाकी सखियाँ थीं। वे उसकी सहायताके लिये आ पहुँचीं। उन्होंने सुनीथाको ढाढ़स बँधाया। रम्भाने उसे पुरुषोंको मोहित करनेवाली विद्या दी। सुनीथाने उसका अच्छा अभ्यास कर लिया। जब वह विद्या सिद्ध हो गयी, तब सखियाँ सुनीथाको लेकर वरकी खोजमें निकल पड़ीं। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वे गङ्गाके तटपर पहुँचीं। वहाँ सुनीथाकी दृष्टि अङ्ग नामक रूपवान्, तेजस्वी अत्रिमुनिके पुत्रपर पड़ी, जो वहाँ तपस्या कर रहे थे, उन्हें देखते ही सुनीथा मोहित हो गयी। रम्भा तो यही चाहती थी। रम्भा उन तपस्वीके इतिहाससे सुपरिचित थी, जानती थी कि अत्रि-पुत्र अङ्ग इन्द्रके समान वैभवशाली और विष्णुके समान पुत्र पानेका वरदान पा चुका है। हो सकता था कि इस वरदानके प्रभावसे सुनीथाको मिला शाप प्रभावहीन हो जाय। अतः सुनीथाका उसपर मोहित होना उसे बहुत अच्छा लगा। अब रहा उस ब्राह्मण कुमारका सुनीथापर आसक्त होना, वह तो सुनीथाके लिये बायें हाथका खेल था, क्योंकि यह विद्या उसे सिद्ध थी।

रम्भाने मायाका भी प्रयोग किया। सुनीथा तो अत्यन्त रूपवती थी ही, रम्भाकी मायाने उसमें और चार चाँद लगा दिये। अब उसकी तुलना संसारमें नहीं रह गयी थी। उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौवन भी अद्वितीय हो गया। उसके गीतोंमें सौ-सौ आकर्षण भर उठे। सुनीथा झूलेपर बैठकर संगीत गाने लगी। सुनते ही अङ्गका ध्यान टूट गया। वे खिंचे हुए-से स्वरके उद्गमकी ओर बढ़ते चले गये। सुनीथापर जब उनकी दृष्टि पड़ी तो उनके हाथ-पैर शिथिल हो गये। वे तन-मनसे उसे चाहने लगे और अपनेको सँभालकर बोले—'सुन्दरि! तुम कौन हो?' सुनीथा चुप रही। रम्भा आगे आकर बोली—'महोदय! यह मृत्युकी कन्या है। इसमें सब शुभ लक्षण मिलते हैं। यह पतिकी खोजमें निकली है। हमलोग इसकी सखियाँ हैं।' रम्भाके अनुकूल वचन सुनकर अत्रिकुमार अङ्गको बहुत संतोष हुआ। उनकी अकुलाहट कुछ कम हो गयी। उन्होंने अपने पवित्र कुलकी प्रशंसा की और बतलाया कि मैंने विष्णु भगवान्से यह वरदान प्राप्त कर लिया है कि मुझे 'इन्द्र-सा ऐश्वर्यशाली और विष्णुके समान विश्वका पालन करनेवाला पुत्र प्राप्त हो, किंतु योग्य कन्या न मिलनेसे अबतक मैंने विवाह नहीं किया है। यह कुलीन कन्या यदि मुझे ही वरण कर ले तो इसे अदेय वस्तु भी दे सकता हूँ।'

रम्भा तो यही चाहती थी, अतः बोली—'हमलोग भी योग्य वरकी ही खोजमें हैं। यदि आप चाहते हैं तो सुनीथा आपकी धर्मभार्या बन रही है, किंतु याद रखें, आप इससे सदा प्यार करते रहें, इसके दोष-गुणोंपर कभी ध्यान न दें। आप इस बातका प्रत्यक्ष विश्वास दिलाइये। इस बातकी प्रतीतिके लिये अपना हाथ सुनीथाके हाथमें दीजिये।' अङ्गको रम्भाकी ये बातें भगवान्के वरदानकी तरह प्रिय लग रही थीं। उन्होंने अपना हाथ सुनीथाके स्वित्र हाथपर रख दिया।

इस तरह दोनोंको गान्धर्व-विवाहके द्वारा जोड़कर रम्भा बहुत संतुष्ट हुई और विदा माँगकर अपनी सखियोंके साथ घर वापस आ गयी।

वरदानके साथ शापका संघर्ष

वरदानके प्रभावसे सुनीथाका पुत्र सभी लक्षणोंसे सम्पन्न हुआ। पुत्रका नाम वेन रखा गया। अत्रिके वंशके अनुरूप इस बच्चेने वेद, दर्शन आदि सारी विद्याओंमें निपुणता प्राप्त कर ली। धनुर्वेदमें भी यह निष्णात हो गया। शील-सौजन्यने इसकी सुन्दरतामें निखार ला दिया था। वेनमें अद्भुत तेज था। आचार-विचारमें कोई उसकी समता नहीं कर पाता था।

उस समय वैवस्वत मन्वन्तर था जब कि राजाकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी। उस समय राजाके बिना प्रजाको कष्ट होने लगा था। विश्वभरमें वेनका प्रभाव उद्दीप्त था। वेनके समकक्ष और कोई तरुण न था। सबने मिलकर इसे प्रजापतिके पदपर प्रतिष्ठित कर दिया। वेनके राज्यमें चतुर्दिक् सुख-शान्ति प्रतिष्ठित हो गयी। सभी संतुष्ट और सुखी थे। धर्मकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही थी।

बहुत दिनोंसे गन्धर्वकुमारका शाप वेनपर अपना प्रभाव प्रकट करना चाह रहा था, किंतु अनुकूल परिस्थिति न पाकर दबा हुआ था। संयोगसे वेनकी एक घोर नास्तिकसे भेंट हो गयी। इस संसर्गसे शापको पनपनेका अवसर मिल गया। नास्तिकताका प्रभाव उसपर उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया। थोड़े ही दिनोंमें वेन घोर नास्तिक बन बैठा। वेद, पुराण, स्मृति आदि शास्त्र इसे जाल-ग्रन्थ दीखने लगे। संध्योपासन, तर्पण, यज्ञ, श्राद्ध आदि सत्कर्म उसे जाल दीखते और ब्राह्मण बहुत बड़े वञ्चक। माता-पिताके सामने सिर झुकाना भी उसे बुरा लगने लगा। वेन समर्थ तो था ही, उसने सम्पूर्ण वैदिक क्रिया-कलापोंपर रोक लगा दी। राज्यमें धर्मका लोप हो गया। पाप जोरोंसे बढ़ने लगा।

पिता अङ्ग अपने पुत्रका यह घोर अत्याचार देखकर बहुत दुःखी हो गये। उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि भगवान् विष्णुका वह वरदान विफल कैसे हो रहा है। वे शापकी बात नहीं जानते थे। सुनीथा सब बातें समझ तो रही थी, किंतु उसे खोलना नहीं चाहती थी। अत्रिकुमार अङ्गने पुत्रको समझा-बुझाकर रास्तेपर लाना चाहा, पर उन्हें सफलता नहीं मिली।

इसी बीच सप्तर्षि आये। अब वरदानको चेतनेका अवसर आ गया था। सप्तर्षियोंने बहुत प्यारसे वेनको समझाते हुए कहा—'वेन! दुःसाहस छोड़ दो। अपने पुराने रास्तेपर आ जाओ। सारी जनता तुमपर अवलम्बित है। धर्मके पथपर लौट आओ और प्रजापर अत्याचार करना बंद कर दो।'

किंतु अहंकारकी मूर्ति वेनने सप्तर्षियोंको फटकारते हुए कहा—'मैं ज्ञानियोंका ज्ञानी हूँ। विश्वका ज्ञान मेरा ही ज्ञान है। जो मेरी आज्ञाके विरुद्ध चलता है, उसे मैं कठोर दण्ड देता हूँ। आपलोग भी मेरा भजन करें।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषियोंने जब वेनके इस रोगको असाध्य समझा और उसके पापको बलपूर्वक निकालना चाहा, तब झट उन्होंने वेनको पकड़ लिया और उसके बायें हाथको भलीभाँति मथा। फलस्वरूप इस हाथसे एक काला-कलूटा और नाटा पुरुष उत्पन्न हुआ। इसीके रूपमें वेनका सब पाप निकल गया। यह देख ऋषि बहुत प्रसन्न हुए। अब उन्होंने वेनके दाहिने हाथको मथा। इससे अपने वरदानको फलीभूत करनेके लिये भगवान् विष्णु ही पृथुके रूपमें प्रकट हुए।

पापके निकलते ही वेनकी नास्तिकता भी पूरी तरह निकल गयी थी। सप्तर्षियोंकी कृपासे वेनने अपनी पहली अवस्था प्राप्त कर ली थी। वे नर्मदाके तटपर चले गये। तृणविन्दुके आश्रममें रहकर उन्होंने घोर तपस्या की। भगवान्ने उन्हें दर्शन दिया और लम्बी सत्संगति चलायी। भगवान्ने उन्हें आश्वस्त करनेके लिये कहा—'वत्स! तुम्हारी माँको जो शाप मिला था, उससे तुम्हारा उद्धार करनेके लिये ही मैंने तुम्हारे पिताको सुयोग्य पुत्र प्राप्त होनेका वरदान दिया था। अब तुम घर लौट जाओ। पृथुकी सहायतासे अश्वमेध आदि यज्ञ और विविध दान-उपदान कर मेरे लोकमें आना।'

(ला०बि०मि०)

सीता-शुकी-संवाद

एक दिन परम सुन्दरी सीताजी सखियोंके साथ उद्यानमें खेल रही थीं। वहाँ उन्हें शुक पक्षीका एक जोड़ा दिखायी दिया, जो बड़ा मनोरम था। वे दोनों पक्षी एक डालीपर बैठकर इस प्रकार बोल रहे थे—'पृथ्वीपर श्रीराम नामसे प्रसिद्ध एक

बड़े सुन्दर राजा होंगे। उनकी महारानी सीताके नामसे विख्यात होंगी। श्रीरामजी बड़े बुद्धिमान् और बलवान् होंगे। वे समस्त राजाओंको अपने वशमें रखते हुए सीताके साथ ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करेंगे। धन्य हैं वे जानकीदेवी और धन्य हैं श्रीराम, जो एक दूसरेको प्राप्त होकर इस पृथ्वीपर आनन्दपूर्वक विहार करेंगे।'

उनको ऐसी बातें करते देख सीताजीने सोचा—'ये दोनों मेरे ही जीवनकी मनोरम कथा कह रहे हैं। इन्हें पकड़कर सभी बातें पूछूँ।' ऐसा विचारकर उन्होंने अपनी सखियोंके द्वारा उन दोनोंको पकड़वाकर मँगवाया और उनसे कहा—'तुम दोनों बहुत सुन्दर हो, डरना नहीं। बताओ, तुम कौन हो और कहाँसे आये हो? राम कौन हैं? और सीता कौन हैं? तुम्हें उनकी जानकारी कैसे हुई? इन सारी बातोंको शीघ्रातिशीघ्र बताओ। मेरी ओरसे तुम्हें कोई भय नहीं होना चाहिये।'

सीताजीके इस प्रकार पूछनेपर उन पक्षियोंने कहा—'देवि! वाल्मीकि नामसे प्रसिद्ध एक बहुत बड़े महर्षि हैं, जो धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं। हम दोनों उन्हींके आश्रममें रहते हैं। महर्षिने रामायण नामक एक महाकाव्यकी रचना की है, जो सदा ही मनको प्रिय जान पड़ता है। उन्होंने शिष्योंको उसका अध्ययन कराया है तथा प्रतिदिन वे सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें संलग्न रहकर उसके पद्योंका चिन्तन किया करते हैं। उसका कलेवर बहुत बड़ा है। हमलोगोंने उसे पूरा-पूरा सुना है। बारम्बार उसका गान तथा पाठ सुननेसे हमें भी उसका अभ्यास हो गया है। राम और सीता कौन हैं—यह हम बताते हैं तथा इसकी भी सूचना देते हैं कि श्रीरामके साथ क्रीडा करने वाली जानकीके विषयमें क्या-क्या बातें होनेवाली हैं, तुम ध्यान देकर सुनो। महर्षि ऋष्यशृंगके द्वारा कराये हुए पुत्रेष्टि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञके प्रभावसे भगवान् विष्णु राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—ये चार शरीर धारण करके प्रकट होंगे। देवाङ्गनाएँ भी उनकी उत्तम कथाका गान करेंगी। श्रीराम महर्षि विश्वामित्रके साथ भाई लक्ष्मणसहित हाथमें धनुष लिये मिथिला पधारेंगे। वहाँ वे एक ऐसे धनुषको, जिसे दूसरा कोई उठा भी नहीं सकेगा, तोड़ डालेंगे और अत्यन्त मनोहर रूपवाली जनककिशोरी सीताको अपनी धर्मपत्नीके रूपमें ग्रहण करेंगे। फिर उन्हींके साथ श्रीरामजी अपने विशाल साम्राज्यका पालन करेंगे। ये तथा और भी बहुत-सी बातें जो वहाँ रहते समय हमारे सुननेमें आयी हैं, संक्षेपमें मैंने तुम्हें बता दीं। अब हम जाना चाहते हैं, हमें छोड़ दो।'

कानोंको अत्यन्त मधुर प्रतीत होनेवाली पक्षियोंकी ये बातें सुनकर सीताजीने उन्हें मनमें धारण कर लिया और पुनः उनसे इस प्रकार पूछा—'राम कहाँ होंगे ? किसके पुत्र हैं और कैसे वे दूल्हा-वेशमें आकर जानकीको ग्रहण करेंगे तथा मनुष्यावतारमें उनका श्रीविग्रह कैसा होगा ? उनके प्रश्नको सुनकर शुकी मन-ही-मन जान गयी कि ये ही सीता हैं। उन्हें पहचानकर वह सामने आकर उनके चरणोंमें गिरकर बोली—'श्रीरामका मुख कमलकी कलीके समान सुन्दर होगा। नेत्र बड़े-बड़े और खिले हुए पङ्कजकी शोभाको धारण करनेवाले होंगे। नासिका ऊँची, पतली तथा मनोहारिणी होगी। दोनों भौंहें सुन्दर ढंगसे मिली होनेके कारण मनोहर प्रतीत होंगी। गला शङ्खके समान सुशोभित और छोटा होगा। वक्षःस्थल उत्तम, चौड़ा और शोभासम्पन्न होगा, उसमें श्रीवत्सका चिह्न होगा। सुन्दर जाँघों और कटिभागकी शोभासे युक्त दोनों घुटने अत्यन्त निर्मल होंगे, जिनकी भक्तजन आराधना करेंगे। श्रीरामजीके चरणारविन्द भी परम शोभायुक्त होंगे और सभी भक्तजन उनकी सेवामें सदा संलग्न रहेंगे। श्रीरामजी ऐसा ही मनोहर रूप धारण करनेवाले हैं। जिसके सौ मुख हैं, वह भी उनके गुणोंका बखान नहीं कर सकता, फिर हमारे-जैसे पक्षीकी क्या बिसात है। परम सुन्दर रूप धारण करनेवाली लावण्यमयी लक्ष्मी भी जिनकी झाँकी करके मोहित हो गयीं, उन्हें देखकर पृथ्वीपर दूसरी कौन स्त्री है, जो मोहित न होगी। उनका बल और पराक्रम महान् है। वे अत्यन्त मोहक रूप धारण करनेवाले हैं। मैं श्रीरामका कहाँतक वर्णन करूँ, वे सब प्रकारके ऐश्वर्यमय गुणोंसे युक्त हैं। परम मनोहर रूप धारण करनेवाली वे जानकीदेवी धन्य हैं, जो श्रीरामजीके साथ हजारों वर्षोंतक प्रसन्नतापूर्वक विहार करेंगी, परंतु सुन्दरि ! तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है, जो इतनी चतुरता और आदरके साथ श्रीरामके गुणोंका कीर्तन सुननेके लिये प्रश्न कर रही हो ?'

शुकीकी ये बातें सुनकर जनककुमारी सीता अपने जन्मकी ललित एवं मनोहर चर्चा करती हुई बोलीं—'जिसे तुमलोग जानकी कह रहे हो, वह जनककी पुत्री मैं ही हूँ। मेरे मनको लुभानेवाले श्रीराम जब यहाँ आकर मुझे स्वीकार करेंगे, तभी मैं तुम्हें छोड़ूँगी, अन्यथा नहीं; क्योंकि तुमने अपने वचनोंसे मेरे मनमें लोभ उत्पन्न कर दिया है। अब तुम इच्छानुसार खेल करते हुए मेरे घरमें सुखसे रहो और मीठे-मीठे पदार्थ भोजन करो।' यह सुनकर शुकीने जानकीजीसे कहा— 'साध्वि ! हम वनके पक्षी हैं, पेड़ोंपर रहते हैं और सर्वत्र विचरा करते हैं। हमें तुम्हारे घरमें सुख नहीं मिलेगा। मैं गर्भिणी हूँ, अपने स्थानपर जाकर बच्चे पैदा करूँगी। उसके बाद फिर तुम्हारे यहाँ आ जाऊँगी।' उसके ऐसा कहनेपर भी सीताजीने उसे नहीं छोड़ा। तब उसके पति शुकने विनीत वाणीमें उत्कण्ठित होकर कहा—'सीता ! मेरी सुन्दरी भार्याको छोड़ दो। इसे क्यों रख रही हो ? शोभने ! यह गर्भिणी है। सदा मेरे मनमें बसी रहती है। जब यह बच्चोंको जन्म दे लेगी, तब मैं इसे लेकर तुम्हारे पास आ जाऊँगा।' शुकके ऐसा कहनेपर जानकीजीने कहा—'महामते ! तुम आरामसे जा सकते हो, किंतु तुम्हारी यह भार्या मेरा प्रिय करनेवाली है। मैं इसे अपने पास बड़े सुखसे रखूँगी। इसे अपनी सखी बनाकर रखूँगी।'

यह सुनकर पक्षी दुःखी हो गया। उसने करुणायुक्त वाणीमें कहा—'योगीलोग जो बातें कहते हैं, वह सत्य ही है—किसीसे कुछ न कहे, मौन होकर रहे, नहीं तो उन्मत्त प्राणी अपने वचनरूपी दोषके कारण ही बन्धनमें पड़ता है। यदि हम इस पेड़पर बैठकर वार्तालाप न करते होते तो हमारे लिये यह बन्धन कैसे प्राप्त होता ? इसलिये मौन ही रहना चाहिये था।' इतना कहकर पक्षी पुनः बोला—'सुन्दरि ! मैं अपनी इस भार्याके बिना जीवित नहीं रह सकता, इसलिये इसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ दो। सीता ! तुम बड़ी अच्छी हो। मेरी प्रार्थना मान लो।' इस तरह नाना प्रकारकी बातें कहकर उसने समझाया, परंतु सीताजीने शुकीको नहीं छोड़ा। तब शुकीने पुनः कहा—'सीते ! मुझे छोड़ दो। अन्यथा शाप दे दूँगी।' सीताजीने कहा—'तुम मुझे डराती-धमकाती हो ! मैं इससे तुम्हें नहीं छोड़ूँगी।' तब शुकी क्रोध और दुःखमें आकुल होकर जानकीजीको शाप दिया—'अरी ! जिस प्रकार तू मुझे इस समय अपने पतिसे विलग कर रही है, वैसे ही तुझे स्वयं भी गर्भिणी-अवस्थामें श्रीरामसे अलग होना पड़ेगा।' यों कहकर पतिवियोगके शोकमें उसके प्राण निकल गये। उसने श्रीरामका स्मरण तथा पुनः-पुनः राम-नामका उच्चारण करते हुए प्राण-त्याग किया था, इसलिये उसे ले जानेके लिये सुन्दर विमान आया और वह शुकी उसपर बैठकर भगवान्‌के धामको चली गयी।

भार्याकी मृत्यु हो जानेपर शुक शोकसे आतुर होकर बोला—'मैं मनुष्योंसे भरी हुई श्रीरामकी नगरी अयोध्यामें जन्म लूँगा और इसका बदला चुकाऊँगा। मेरे ही वाक्यसे उद्वेगमें पड़कर इसे पतिवियोगका भारी दुःख उठाना पड़ेगा।' यह कहकर उसने भी अपना प्राण छोड़ दिया। (पद्म०, पाताल०)

(मो०ला०अ०)

सत्कर्ममें श्रमदानका अद्भुत फल

बृहत्कल्पकी बात है। उस समय धर्ममूर्ति नामक एक प्रभावशाली राजा थे। उनमें कुछ अलौकिक शक्तियाँ थीं। वे इच्छाके अनुसार रूप बदल सकते थे। उनकी देहसे तेज निकलता रहता था। दिनमें चलते तो सूर्यकी प्रभा मलिन हो जाती थी और रातमें चलते तो चाँदनी फीकी पड़ जाती थी। उन्होंने कभी पराजयका मुख नहीं देखा था। इन्द्रने उनसे मित्रता कर ली थी। इन्होंने कई बार दैत्यों और दानवोंको हराया था। इनकी पत्नी भानुमती भी इतनी सुन्दरी थी कि उस समय तीनों लोकोंमें कोई नारी उसकी बराबरी नहीं कर सकती थी। वह जितनी रूपवती थी, उतनी ही गुणवती भी थी।

राजाका सबसे बड़ा सौभाग्य यह था कि उनके कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ थे। एक दिन उन्होंने बड़ी विनम्रतासे गुरुजीसे पूछा—'गुरुदेव ! मेरे पास इस समय जो सब तरहकी समृद्धियाँ एकत्रित हैं, इसका कारण बहुत बड़ा पुण्य होगा। उस पुण्यकर्मको मैं जानना चाहता हूँ। जिससे उस तरहका कोई पुण्य मैं पुनः कर सकूँ, जिसके फलस्वरूप अगले जन्ममें मुझे इसी तरहकी सुख-सुविधा प्राप्त हो।'

महर्षि वसिष्ठने बतलाया—'पूर्वकालमें लीलावती नामकी एक वेश्या थी। वह शिव-भक्तिमें लीन रहती थी। एक बार उसने पुष्कर-क्षेत्रमें चतुर्दशी तिथिको लवणाचल (नमकका पहाड़) का दान किया था। उसने सोनेका एक वृक्ष भी तैयार करवाया था, जिसमें सोनेके फूल और सोनेकी ही देवताओंकी प्रतिमाएँ लगी थीं। इस स्वर्णवृक्षके निर्माणमें तुमने निष्कामभावसे उसकी सहायता की थी। उस समय तुम उस वेश्याके नौकर थे। सोनेके वृक्ष और फूल बनानेमें तुम्हें अतिरिक्त मूल्य मिल रहा था, किंतु तुमने उस वेतनको यह समझकर नहीं लिया कि यह धर्मका कार्य है। तुम्हारी पत्नीने उन फूलों और मूर्तियोंको तपा-तपाकर भलीभाँति चमकाया था। तुम दोनों आज जो कुछ हो वह केवल उसी श्रमदानका फल है। उस जन्ममें तुम्हारे पास पैसे नहीं थे, इसलिये लीलावतीकी तरह तुमने कोई दान-पुण्य नहीं किया था। इस जन्ममें तुम राजा हो, अतः अन्नके पहाड़का विधि-विधानके साथ दान करो। जब केवल 'श्रमदान' से तुम सातों द्वीपोंके अधिपति हो गये हो और तुम्हारी पत्नी तीनों लोकोंमें अप्रतिम रूपवती और गुणवती बन गयी है, तब इस अन्नके पहाड़के दानका क्या फल होगा, इसे तुम स्वयं समझ सकते हो। देखो, इस लवणाचलके दानसे वेश्या भी शिवलोकको चली गयी और उसके सब पाप जलकर खाक हो गये थे।' धर्ममूर्तिने बड़े उत्साहके साथ अपने गुरुकी आज्ञाका पालन किया।

(ला० बि० मि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्णुपुराण

अष्टादश महापुराणोंकी शृङ्खलामें विष्णुपुराणका स्थान सर्वातिशायी है। यह वैष्णवदर्शन तथा वैष्णव भक्ति-उपासनाका मूलाधार है। विष्णुपरक होनेपर भी यह पुराण साम्प्रदायिकतासे सर्वथा दूर है। भगवान् विष्णुकी महिमाका गान तथा भगवद्भक्तिकी उद्भावना करना ही इसका प्रमुख उद्देश्य है। इन्हींके नामसे यह 'विष्णुपुराण' कहा जाता है। अन्य पुराणोंसे परिमाणमें न्यून होनेपर भी इसका महत्त्व अत्यधिक है। इसे 'पुराणसंहिता' कहा गया है (विष्णु० १।१।२६, ३०)। यह पुराणसंहिता ही समस्त पुराणोंका मूल बीज है। विशेषकर श्रीमद्भागवतपुराण सर्वथा इसीका उपबृंहण है और ध्रुव, प्रह्लाद, रहूगण, जडभरत आदिके चरित्र एवं उपाख्यान, सृष्टिवर्णन, ज्योतिश्चक्रोंका वर्णन, सातों द्वीपोंका भूगोल, मन्वन्तरों तथा वेद आदि शाखाओंका वर्णन, वर्णाश्रमोंके आचार, कलि-धर्म-निरूपण तथा सूर्य-चन्द्रवंशका वर्णन भागवतमें इसी विष्णुपुराणके आधारपर हुआ है। जैसे विष्णुपुराणके पञ्चम अंशमें श्रीकृष्ण-चरित्र विस्तारसे वर्णित है, वैसे ही इसे भागवतके दशम स्कन्धमें और अधिक विस्तृतरूपसे वर्णित किया गया है। किंतु शुकदेवजीकी वर्णन-शैलीमें उसके छन्द और कथानक अधिक रोचक हो गये हैं, इसीलिये भागवतका प्रचलन अधिक हो गया। शंकर मध्व, निम्बार्क, रामानुज, भास्कर, वल्लभ एवं बलदेव-विद्याभूषण आदि आचार्योंने विष्णुपुराणके श्लोकोंको अपने पक्षके समर्थनके लिये वेदान्तभाष्य, उपनिषद्भाष्य, गीताभाष्य और विशेषकर विष्णुसहस्रनामके भाष्योंमें उद्धृत किया है। इससे भी इस पुराणकी प्राचीनताका बोध होता है, वैसे ये दोनों ही पुराण वैष्णवोंके उपजीव्य हैं।

महापुराणोंके गणना-क्रममें प्रायः सर्वत्र विष्णुपुराण तृतीय स्थानपर परिगणित है (नारद० ९२।१-३, श्रीमद्भा० १२।८।२३-२४, विष्णु० ३।६।२१-२४) परंतु संख्याकी दृष्टिसे तृतीय होनेपर भी ऐतिहासिक घटना-चक्रकी दृष्टिसे विष्णुपुराण ही सर्वप्रथम पुराण मान्य होना चाहिये; क्योंकि इसके रचयिता व्यासजीके पिता श्रीपराशरजी हैं। विष्णुपुराणके प्रथम अध्यायमें ही इस बातका निर्देश है कि जब पराशरके पिता शक्तिको राक्षसोंने मार डाला तब क्रोधाविष्ट पराशरने अपने पिताके प्रतिशोधमें राक्षसोंके विनाशार्थ 'रक्षोघ्न-सत्र' प्रारम्भ किया। उसमें हजारों राक्षस गिर-गिर कर स्वाहा होने लगे। इसपर राक्षसोंके पिता पुलस्त्यजीने तथा वसिष्ठ (पराशरके पितामह) ने आकर पराशरके क्रोधको अनुचित बताया। वसिष्ठके समझानेपर वे शान्त हुए। पराशरके यज्ञसे निवृत्त हो जानेपर तथा वसिष्ठके द्वारा अर्घ्य-पाद्य और सान्त्वनापूर्ण शब्दोंसे सम्मानित होनेपर महर्षि पुलस्त्य अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने पराशरको विष्णुपुराणके रचयिता होनेका आशीर्वाद दिया—**'पुराण संहिताकर्ता भवान् वत्स भविष्यति'** (विष्णु० १।१।२६)। तत्पश्चात् मैत्रेयजी-द्वारा सृष्टि आदिके विषयमें प्रश्न करनेपर पराशरजीको सम्पूर्ण पुराणसंहिता (विष्णुपुराण) का स्मरण हो आया और उन्होंने मैत्रेयजीको—**'पुराणसंहितां सम्यक् तां निबोध यथातथम्'** (विष्णु० १।१।३०) कहकर यह पुराण सुनाया। पराशरजी तथा मैत्रेयका यही संवाद विष्णुपुराण है। व्यासके पिता पराशरजीकी रचना होनेसे इसकी प्राचीनता असंदिग्ध समझी जा सकती है।

उपलब्ध विष्णुपुराण ६ अंशों (खण्डों) में विभक्त है और उसमें अवान्तर प्रकरणोंका विभाग अध्याय-नामसे है। प्रथम अंशमें २२ तथा द्वितीयमें १६ अध्याय हैं। इसी प्रकार तीसरे, चौथे, पाँचवें तथा छठे अंशमें क्रमशः १८, २४, ३८ तथा ८ अध्याय हैं। संकलन करनेसे कुल १२६ अध्याय हैं। इसका चतुर्थ अंश गद्यमय है। मत्स्यपुराण (५३।१६-१७) तथा नारदपुराण (९४।१-२) में इसकी श्लोक-संख्या तेईस हजार बतायी गयी है। किंतु उपलब्ध विष्णुपुराणमें लगभग ६ हजार श्लोक ही प्राप्त होते हैं। वास्तवमें तथ्य यह है कि विष्णुधर्मोत्तरपुराण, जो कि एक उपपुराणके रूपमें मान्य है, इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्णुपुराणका उत्तरार्ध है। इन दोनोंके श्लोक मिलानेपर नारदादि पुराणोंमें वर्णित विष्णुपुराणकी श्लोक-संख्या पूर्ण हो जाती है।

इस पुराणमें पुराणोंके पञ्चलक्षण—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, वंशानुचरित तथा मन्वन्तरका सम्यक् रूपसे परिपाक हुआ है। इसके प्रथम अंशमें विस्तारसे सृष्टिका वर्णन हुआ है। सृष्टिका कारण वहाँ ब्रह्म (विष्णु) को कहा गया है तथा उसकी शक्तिका भी विवरण दिया गया है। द्वितीय अंशमें मुख्य-रूपसे भूगोल तथा खगोलका वर्णन है। तृतीय अंशमें मन्वन्तर, वेदकी शाखाओंका विस्तार, वर्णाश्रमधर्म तथा श्राद्धोंका निरूपण किया गया है। चतुर्थ अंशमें मुख्यरूपसे सूर्य तथा चन्द्रवंशी राजाओंके दिव्य आख्यान बताये गये हैं, जिनमें इक्ष्वाकु, मान्धाता, सगर तथा ययाति और उसके पाँचों पुत्रोंका विस्तारसे वर्णन है तथा फिर कलियुगके राजवंशोंका निदर्शन है और कलियुगकी श्रेष्ठता प्रदर्शित की गयी है। पञ्चम अंशमें विस्तारसे श्रीकृष्ण-चरित्र है। षष्ठ अंशमें कलिधर्म-निरूपण, प्रलय-वर्णन करते हुए अन्तमें भगवान् वासुदेवके माहात्म्य तथा उनके पारमार्थिक स्वरूप-प्रसंगमें केशिध्वज तथा खाण्डिक्यका महत्त्वपूर्ण आख्यान वर्णित है। सार-रूपमें कहा जाय तो यह पुराण भक्ति, ज्ञान तथा उपासनाका विलक्षण ग्रन्थ है। इस पुराणपर संस्कृतमें रत्नगर्भ, श्रीधर तथा विष्णुचित्त आदि आचार्योंकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्राचीन टीकाएँ हैं तथा हिन्दी, अंग्रेजी, जर्मन आदि भाषाओंमें इसके कई अनुवाद हो चुके हैं। इस पुराणके श्रवण तथा पाठ करनेसे श्रीहरिके चरणारविन्दोंमें अखण्ड भक्ति प्राप्त होती है।

कथा-आख्यान—

स्त्री, शूद्र और कलियुगकी महत्ता

एक बार कुछ मुनि मिलकर विचार करने लगे कि किस समयमें थोड़ा-सा पुण्य भी महान् फल देता है और कौन उसका सुखपूर्वक अनुष्ठान कर सकते हैं? वे जब कोई निर्णय नहीं कर सके, तब निर्णयके लिये व्यासजीके पास पहुँचे। व्यासजी उस समय गङ्गाजीमें स्नान कर रहे थे। मुनिमण्डली उनकी प्रतीक्षामें गङ्गाजीके तटपर स्थित एक वृक्षके पास बैठ गयी। उस वृक्षके पासके लोग गङ्गाजीमें स्नान कर रहे व्यासजीकी बोली अच्छी तरह सुन सकते थे। वृक्षके पास बैठे मुनियोंने देखा कि व्यासजी गङ्गाजीमें डुबकी लगाकर जलसे ऊपर उठे और '**शूद्रः साधुः**', '**कलिः साधुः**' पढ़कर उन्होंने पुनः डुबकी लगायी। जलसे ऊपर उठकर '**योषितः साधु धन्यास्तास्ताभ्यो धन्यतरोऽस्ति कः**' पढ़कर पुनः डुबकी लगायी, मुनिगण इसे सुनकर संदेहमें पड़ गये। व्यासजीद्वारा पढ़े गये मन्त्र नदी-स्नान-कालमें पढ़े जानेवाले मन्त्रोंमेंसे नहीं थे। वे जो पढ़ रहे थे, उनका अर्थ है—'कलियुग प्रशंसनीय है, शूद्र साधु है, स्त्रियाँ श्रेष्ठ हैं, वे ही धन्य हैं, उनसे अधिक धन्य और कौन है? मुनिगण संदेहका समाधान प्राप्त करने आये थे, परंतु यह सुनकर वे पहलेसे भी विकट संदेहमें पड़ गये और जिज्ञासासे एक दूसरेको देखने लगे।

कुछ देर बाद स्नान कर लेनेपर नित्यकर्मसे निवृत्त होकर व्यासजी जब आश्रममें आये, तब मुनिगण भी उनके

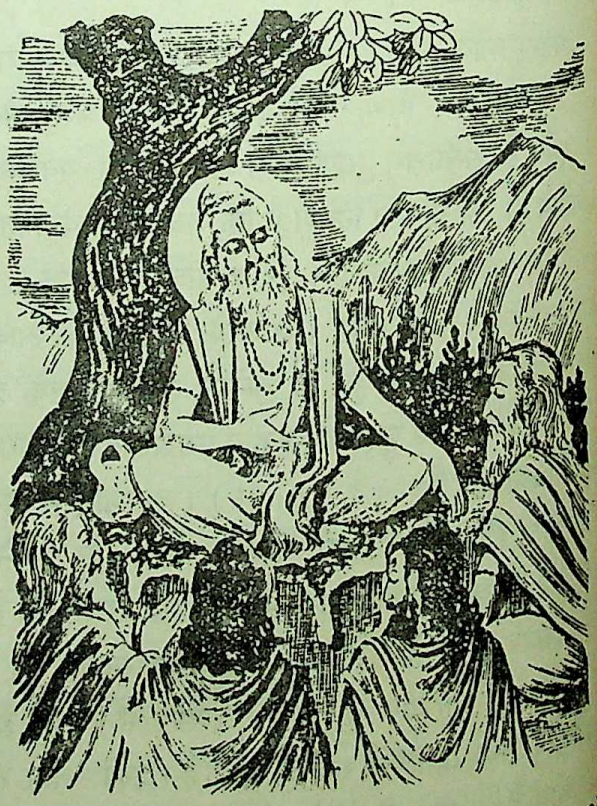

समीप पहुँचे। वे सब जब यथायोग्य अभिवादनादि अनन्तर आसनोंपर बैठ गये तब व्यासजीने उ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगमनका उद्देश्य पूछा। मुनियोंने कहा कि हमलोग आपसे एक संदेहका समाधान कराने आये थे, किंतु इस समय उसे रहने दिया जाय, अभी हमें यह बतलाया जाय कि आपने स्नान करते समय कई बार कहा था कि 'कलियुग प्रशंसनीय है, शूद्र साधु है, स्त्रियाँ श्रेष्ठ और सर्वाधिक धन्य हैं, सो क्या बात है ? यह बात यदि गोपनीय न हो तो हमें कृपा करके बतायें। यह जान लेनेके बाद हम जिस आन्तरिक संदेहके समाधानके लिये आये थे, उसे कहेंगे।

व्यासजी उनकी बातें सुनकर बोले कि मैंने कलियुग, शूद्र और स्त्रियोंको जो बार-बार साधु-साधु कहा, उसका कारण आपलोग सुनें। जो फल सत्ययुगमें दस वर्ष जप-तप और ब्रह्मचर्यादि करनेसे मिलता है, उसे मनुष्य त्रेतामें एक वर्ष, द्वापरमें एक मास और कलियुगमें केवल एक दिनमें प्राप्त कर लेता है। जो फल सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञ और द्वापरमें देवार्चन करनेसे प्राप्त होता है, वही कलियुगमें भगवान् श्रीकृष्णका नाम-कीर्तन करनेसे मिल जाता है। कलियुगमें थोड़े-से परिश्रमसे ही लोगोंको महान् धर्मकी प्राप्ति हो जाती है। इन कारणोंसे मैंने कलियुगको श्रेष्ठ कहा।

शूद्रको श्रेष्ठ कहनेका कारण बतलाते हुए व्यासजीने कहा कि द्विजको पहले ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए वेदाध्ययन करना पड़ता है और तब गार्हस्थ्य-आश्रममें प्रवेश करनेपर स्वधर्माचरणसे उपार्जित धनके द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ-दानादि करने पड़ते हैं। इसमें भी व्यर्थ वार्तालाप, व्यर्थ भोजन और व्यर्थ यज्ञ उनके पतनके कारण होते हैं, इसलिये उन्हें सदा संयमी रहना आवश्यक होता है। सभी कार्योंमें विधिका ध्यान रखना पड़ता है। विधि-विपरीत करनेसे दोष लगता है। द्विज भोजन और पानादि भी अपने इच्छानुसार नहीं कर सकते। उन्हें सम्पूर्ण कार्योंमें परतन्त्रता ही रहती है। वे अत्यन्त क्लेशसे पुण्यलोकोंको प्राप्त करते हैं, किंतु जिसे केवल मन्त्रहीन पाकयज्ञका ही अधिकार है, वह शूद्र द्विज-सेवासे ही सद्गति प्राप्त कर लेता है, इसलिये वह द्विजकी अपेक्षा धन्यतर है। शूद्रके लिये भक्ष्याभक्ष्य अथवा पेयापेयका नियम द्विज-जैसा कड़ा नहीं है। इन कारणोंसे मैंने उसे श्रेष्ठ कहा।

स्त्रियोंको श्रेष्ठ कहनेका कारण बतलाते हुए व्यासजीने कहा कि पुरुष जब धर्मानुकूल उपायोंद्वारा प्राप्त धनसे दान और यज्ञ करते हैं एवं अन्य कष्टसाध्य व्रतोपवासादि करते हैं, तब पुण्यलोक पाते हैं, किंतु स्त्रियाँ तो तन-मन-वचनसे पतिकी सेवा करनेसे ही उनकी हितकारिणी होकर पतिके समान शुभलोकोंको अनायास ही प्राप्त कर लेती हैं जो कि पुरुषको अत्यन्त परिश्रमसे मिलते हैं, इसलिये मैंने उन्हें श्रेष्ठ कहा।

कलियुग, शूद्र एवं स्त्रियोंको साधुवाद देनेका रहस्य बतलाकर व्यासजीने मुनियोंसे कहा कि अब आपलोग जिस लिये आये थे, वह कहिये। मैं आपसे सब बातें स्पष्टतासे कहूँगा। मुनियोंको अपनी समस्याओंका समाधान मिल चुका था, इसलिये उन्होंने व्यासजीसे कहा कि हम लोग आपसे पूछने आये थे कि किस समयमें थोड़ा-सा पुण्य भी महान् फल देता है और कौन उसका सुखपूर्वक अनुष्ठान कर सकते हैं ? इनका उचित उत्तर आपने इसी प्रश्नके उत्तरमें दे दिया, इसलिये अब हमें कुछ पूछना नहीं है। बिना पूछे ही अपने प्रश्नोंके उचित उत्तर पानेके कारण आश्चर्यसे उत्फुल्ल नेत्रोंवाले समागत तपस्वियोंसे व्यासजीने कहा कि आपलोगोंका अभिप्राय दिव्य दृष्टिसे जानकर मैंने बिना पूछे ही सब कुछ कह दिया। जिन लोगोंने गुण-रूप जलसे अपने समस्त दोष धो डाले हैं, उनके थोड़े-से प्रयत्नसे ही कलियुगमें धर्म सिद्ध हो जाता है। शूद्रोंको द्विज-सेवा-परायण होनेसे और स्त्रियोंको पतिकी सेवा मात्र करनेसे ही अनायास धर्मकी सिद्धि हो जाती है, इसीलिये ये तीनों धन्यतर हैं। सत्ययुगादि तीन युगोंमें भी द्विजको ही धर्म-सम्पादन करनेमें महान् कष्ट उठाना पड़ता है। कलियुगमें एक महान् गुण है कि इस युगमें केवल श्रीकृष्णनामका कीर्तन करनेसे ही कोई भी परमपद प्राप्त कर लेता है।

व्यासजीके वचनोंमें अपनी शङ्काओंका समाधान प्राप्तकर महाभाग ऋषिगण व्यासजीका पूजन कर और उनके कथनानुसार निश्चय कर अपने-अपने स्थानको लौट गये। (रा० प० सिं०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्य कौन ?

एक बार भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुरसे दुर्योधनके यज्ञसे निवृत्त होकर द्वारका लौटे थे। यदुकुलकी लक्ष्मी उस समय ऐन्द्री लक्ष्मीको भी मात कर रही थी। सागरके मध्य स्थित श्रीद्वारकापुरीकी छटा अमरावतीकी शोभाको भी तिरस्कृत कर रही थी। इन्द्र इससे मन-ही-मन लज्जित तथा अपनी राज्य-लक्ष्मीसे द्वेष-सा करने लग गये थे। हृषीकेश नन्दनन्दनकी अद्भुत राज्यश्रीकी बात सुनकर उसे देखनेके लिये उसी समय बहुत-से राजा द्वारका पधारे। इनमें कौरव-पाण्डवोंके साथ पाण्ड्य, चोल, कलिङ्ग, बाह्लीक, द्रविड़, खश आदि अनेक देशोंके राजा-महाराजा भी सम्मिलित थे। इन सभी राजा-महाराजाओंके साथ भगवान् श्रीकृष्ण सुधर्मासभामें स्वर्णसिंहासनपर विराजमान थे। अन्य राजा-महाराजागण भी चित्र-विचित्र आसनोंपर यथास्थान चारों ओरसे उन्हें घेरे बैठे थे। उस समय वहाँकी शोभा बड़ी विलक्षण थी। ऐसा लगता था मानो देवताओं तथा असुरोंके बीच साक्षात् प्रजापति ब्रह्माजी विराज रहे हों।

इसी समय मेघनादके समान तीव्र वायुका नाद हुआ और बड़े जोरोंकी हवा चली। ऐसा लगता था कि अब भारी वर्षा होगी और दुर्दिन-सा दीखने लग गया। पर लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ जब कि इस तुमुल दुर्दिनका भेदन करके उसमेंसे साक्षात् देवर्षि नारद निकल पड़े। वे ठीक अग्निशिखाके सदृश नरेन्द्रोंके बीच सीधे उतर पड़े। नारदजीके पृथ्वीपर उतरते ही वह दुर्दिन (वायु-मेघादिका आडम्बर) समाप्त हो गया। समुद्र-सदृश नृपमण्डलीके बीच उतरकर देवर्षिने सिंहासनासीन श्रीकृष्णकी ओर मुख करके कहा—'पुरुषोत्तम ! देवताओंके बीच आप ही परम आश्चर्य तथा धन्य हैं।' इसे सुनकर प्रभुने कहा—'हाँ, मैं दक्षिणाओंके साथ आश्चर्य और धन्य हूँ।' इसपर देवर्षिने कहा—'प्रभो ! मेरी बातका उत्तर मिल गया, अब मैं जाता हूँ।' श्रीनारदको चलते देख राजाओंको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कुछ भी समझ न सके कि बात क्या है। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—'प्रभो ! हमलोग इस दिव्य तत्त्वको कुछ जान न पाये, यदि गोप्य न हो तो इसका रहस्य हमें समझानेकी कृपा करें। इसपर भगवान्‌ने कहा—'आपलोग धैर्य रखें, इसे स्वयं नारदजी ही सुना रहे हैं। यों कहकर उन्होंने देवर्षिको इसे राजाओंके सामने स्पष्ट करनेके लिये कहा।

नारदजी कहने लगे—'राजाओ ! सुनो, जिस प्रकार मैं इन श्रीकृष्णके माहात्म्यको जान सका हूँ, वह तुम्हें बतलाता हूँ। एक बार मैं सूर्योदयके समय एकान्तमें गङ्गा-किनारे घूम रहा था। इतनेमें ही वहाँ एक पर्वताकार कछुआ आया। मैं उसे देखकर चकित रह गया। मैंने उसे हाथसे स्पर्श करते हुए कहा—'कूर्म ! तुम्हारा शरीर परम आश्चर्यमय है। वस्तुतः तुम धन्य हो; क्योंकि तुम निःशङ्क और निश्चिन्त होकर इस गङ्गामें सर्वत्र विचरते हो, फिर तुमसे अधिक धन्य कौन होगा ?' मेरी बात पूरी भी न हो पायी थी कि बिना ही कुछ सोचे वह कछुआ बोल उठा—'मुने ! भला मुझमें आश्चर्य क्या है तथा प्रभो ! मैं धन्य भी कैसे हो सकता हूँ ? धन्य तो हैं ये देवनदी गङ्गा, जो मुझ-जैसे हजारों कछुए तथा मकर, नक्र, झषादिसंकुल जीवोंकी आश्रयभूता शरणदायिनी हैं। मेरे-जैसे असंख्य जीव इनमें भरे हैं— विचरते रहते हैं, भला इनसे अधिक आश्चर्य तथा धन्य और कौन हैं ?'

नारदजीने कहा—'राजाओ ! कछुएकी बात सुनकर मुझे बड़ा कुतूहल हुआ और मैं गङ्गादेवीके सामने जाकर बोला—'सरित्-श्रेष्ठे गङ्गे ! तुम धन्य हो; क्योंकि तुम तपस्वियोंके आश्रमोंकी रक्षा करती हो, समुद्रमें मिलती हो, विशालकाय श्वापदोंसे सुशोभित हो और सभी आश्चर्योंसे विभूषित हो।' इसपर गङ्गा तुरंत बोल उठीं—'नहीं, नहीं, देवगन्धर्वप्रिय देवर्षे ! कलहप्रिय नारद ! मैं क्या आश्चर्यविभूषित या धन्य हूँ, इस लोकमें सर्वाश्चर्यकर परमधन्य तो समुद्र ही है, जिसमें मुझ-जैसी सैकड़ों बड़ी-बड़ी नदियाँ मिलती हैं।' इसपर मैंने जाकर समुद्रके पास जाकर उसकी ऐसी प्रशंसा की तो वह जलतलको फाड़ता हुआ ऊपर उठा और बोला— 'मुने ! मैं कोई धन्य नहीं हूँ, धन्य तो है यह वसुन्धरा, जिसने मुझ-जैसे कई समुद्रोंको धारण कर रखा है और वस्तुतः सभी आश्चर्योंकी निवासभूमि यह भूमि ही है।'

समुद्रके वचनोंको सुनकर मैंने पृथ्वीसे कहा—'देहधारियोंकी योनि पृथ्वी ! तुम धन्य हो। शोभने ! तुम समस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्चर्योंकी निवासभूमि भी हो।' इसपर वसुन्धरा चमक उठी और बड़ी तेजीसे बोल गयी—'अरे! संग्राम-कलहप्रिय नारद! मैं धन्य-वन्य कुछ नहीं हूँ, धन्य तो हैं ये पर्वत जो मुझे भी धारण करनेके कारण 'भूधर' कहे जाते हैं और सभी प्रकारके आश्चर्योंके निवासस्थल भी ये ही हैं।' मैं पृथ्वीके वचनोंसे पर्वतोंके पास उपस्थित हुआ और कहा कि 'वास्तवमें आपलोग बड़े आश्चर्यमय दीख पड़ते हैं। सभी श्रेष्ठ रत्न तथा सुवर्ण आदि धातुओंके शाश्वत आकर भी आप ही हैं, अतएव आपलोग धन्य हैं।' पर पर्वतोंने भी कहा—'ब्रह्मर्षे! हमलोग धन्य नहीं हैं। धन्य हैं प्रजापति ब्रह्मा और वे सर्वाश्चर्यमय जगत्के निर्माता होनेके कारण आश्चर्यभूत भी हैं।'

अब मैं ब्रह्माजीके पास पहुँचा और उनकी स्तुति करने लगा—भगवन्! एकमात्र आप ही धन्य हैं, आप ही आश्चर्यमय हैं। सभी देव, दानव आपकी ही उपासना करते हैं। आपसे ही सृष्टि उत्पन्न होती है, अतएव आपके तुल्य धन्य अन्य कौन हो सकता है?' इसपर ब्रह्माजी बोले—'नारद! इन धन्य, आश्चर्य आदि शब्दोंसे तुम मेरी क्यों स्तुति कर रहे हो? धन्य और आश्चर्य तो ये वेद हैं, जिनसे यज्ञोंका अनुष्ठान तथा विश्वका संरक्षण होता है।' जब मैं वेदोंके पास जाकर उनकी प्रशंसा करने लगा तो उन्होंने यज्ञोंको धन्य कहा। तब मैं यज्ञोंकी स्तुति करने लगा। इसपर यज्ञोंने मुझे बतलाया कि—'हम धन्य नहीं, विष्णु धन्य हैं, वे ही हमलोगोंकी अन्तिम गति हैं। सभी यज्ञोंके द्वारा वे ही आराध्य हैं।'

तदनन्तर मैं विष्णुकी गतिकी खोजमें यहाँ आया और आप राजाओंके मध्य श्रीकृष्णके रूपमें इन्हें देखा। जब मैंने इन्हें धन्य कहा, तब इन्होंने अपनेको दक्षिणाओंके साथ धन्य बतलाया। दक्षिणाओंके साथ भगवान् विष्णु ही समस्त यज्ञोंकी गति हैं। यहीं मेरा प्रश्न समाहित हुआ और इतनेसे ही मेरा कुतूहल भी निवृत्त हो गया। अतएव मैं अब जा रहा हूँ।'

यों कहकर देवर्षि नारद चले गये। इस रहस्य तथा संवाद-को सुनकर राजालोग भी बड़े विस्मित हुए और सबने एकमात्र प्रभुको ही धन्यवाद, आश्चर्य एवं सर्वोत्तम प्रशंसाका पात्र माना।

प्रतिशोधका त्याग

'रक्षा करो भगवन्! बचाओ करुणासिन्धो! मेरे आचार्योंको क्षमा करो कृपानिधान!' बालक प्रह्लाद अपनी करुण आर्त-पुकारमें भगवान्से विनय करते रहे, पर उनके देखते-देखते ही अग्नि-शिखाके समान प्रज्वलित शरीरवाली 'कृत्या'ने 'शण्डामर्क' नामक दोनों कुल-पुरोहितोंको निर्जीव कर दिया।

हिरण्यकशिपुके हितैषी इन दोनों कुटिल आचार्योंने उसे प्रसन्न करनेके लिये अपनी विद्याका दुरुपयोगकर प्रह्लादको भस्म करने हेतु इस प्रचण्ड कृत्याको उत्पन्न किया था, परंतु परिणाम विपरीत हुआ।

शोक-मग्न दुःखित प्रह्लाद अत्यन्त विह्वल हो उठे। उनके सामने दोनों आचार्योंके शव पड़े हुए थे। उन्होंने भगवान्से प्रार्थना करते हुए कहा—'भगवन्! जिन लोगोंने मुझे विष देकर, अग्निमें जलाकर, हाथीके पैरोंके नीचे कुचलवाकर, सर्पोंसे डँसवाकर मारनेका प्रयत्न किया, उनके प्रति भी यदि मेरी समान-रूपसे मैत्री-भावना रही हो, यदि मेरे हृदयमें कभी प्रतिशोधकी भावना जाग्रत् न हुई हो और मुझसे शत्रुता रखनेवालोंमें भी मैं सर्वदा सर्वव्यापी भगवान्को देखता रहा होऊँ तो उस सत्यके प्रभावसे दोनों दैत्य-पुरोहित जीवित हो जायँ।'

यथा सर्वगतं विष्णुं मन्यमानोऽनपायिनम्।
चिन्तयाम्यरिपक्षेऽपि जीवन्त्वेते पुरोहिताः॥
ये हन्तुमागता दत्तं यैर्विषं यैर्हुताशनः।
यैर्दिग्गजैरहं क्षुण्णो दष्टः सर्पैश्च यैरपि॥
तेष्वहं मित्रभावेन समः पापोऽस्मि न क्वचित्।
यथा तेनाद्य सत्येन जीवन्त्वसुरयाजकाः॥

(विष्णुपुराण १।१८।४१-४३)

इतना कहकर प्रह्लादने ज्यों ही उनका स्पर्श किया, त्यों ही वे दोनों उठ बैठे और मुक्तकण्ठसे कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे प्रह्लादके आत्मभावकी प्रशंसा करने लगे। (स्वा० ओं० आ०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवपुराण

[अष्टादश महापुराणोंमें चौथे स्थानपर कहीं शिव और कहीं वायुपुराण परिगणित है। विषयवस्तुकी दृष्टिसे दोनों ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। अतः यहाँ दोनोंका संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।—सम्पादक]

अठारह महापुराणोंमें शिवपुराणका भी एक स्थान है। विष्णुपुराणमें तृतीय अंशके छठे अध्यायके बाईसवें श्लोकमें लिखा है कि **'ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा'**—इसी प्रकार भागवतके बारहवें स्कन्धमें तथा मार्कण्डेयपुराण और पद्मपुराणके विभिन्न खण्डोंमें शिवपुराणका महापुराणकी तालिकामें निर्देश मिलता है। बृहद्धर्मपुराणके पूर्वखण्डके २५वें अध्यायमें उपपुराण और महापुराणकी तालिका मिलती है। वहाँ भी शिवपुराण महापुराणके अन्तर्गत कहा गया है।

शिवपुराण बारह संहिताओंमें विभक्त है—१-विद्येश्वर, २-रौद्र, ३-वैनायक, ४-भौम, ५-मातृ, ६-रुद्रैकादश, ७-कैलास, ८-शतरुद्र, ९-कोटिरुद्र, १०-सहस्रकोटिरुद्र, ११-वायवीय, १२-धर्मसंहिता। इन संहिताओंके श्लोकोंकी संख्याओंका एकत्र योग करनेपर एक लाख संख्या होती है—

विद्येश्वरं तथा रौद्रं वैनायकमनुत्तमम्। भौमं मातृपुराणं च रुद्रैकादशकं तथा॥
कैलासं शतरुद्रं च कोटिरुद्राख्यमेव च। सहस्रकोटिरुद्राख्यं वायवीयं ततः परम्॥
धर्मसंज्ञं पुराणं चेत्येवं द्वादशसंहिताः। तदेवं लक्षमुद्दिष्टं शैवं शाखाविभेदतः॥

वङ्गवासी शास्त्रप्रकाशने विद्येश्वर, कैलास, वायवीय, धर्मसंहिता, सनत्कुमार और ज्ञानसंहिता—इन छः संहिताओंके साथ शिवपुराणका प्रकाशन किया है। कुछ गवेषकोंने ज्ञानसंहिता और सनत्कुमारसंहिताको स्कन्दपुराणके ब्रह्मोत्तरखण्डका अंश माना है, कुछ लोगोंने शिवपुराण नामक उपपुराणका अंश माना है, कुछ लोगोंने 'मानवीयसंहिता' नामकी एक संहिता भी शिवपुराणके अन्तर्गत मानी है। यह संहिता मनु और उनके पिता भास्करदेवके कथोपकथनके माध्यमसे विश्वसृष्टि और उसके नियन्ताके स्वरूप तथा मुक्ति-तत्त्व आदिका विवरण प्रस्तुत करती है। शिवपुराण एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना गया है।

शिवपुराणका कलेवर बृहत् है। इसमें अनेक ज्ञातव्य विषय हैं। सूतजीने कहा है कि इस विषयमें नारदजीने ब्रह्माजीके पास शिवतत्त्वको जाननेके लिये जो प्रश्न किया था, मैंने अपने पितृदेवसे जो सुना है, वही कह रहा हूँ। पितामहने नारदजीसे कहा—'नारद ! तीनों लोकोंके कल्याणकी कामनासे तुमने जो मुझसे जिज्ञासा की है, इस विषयको सुननेपर तीनों लोकोंके प्राणियोंका पाप विनष्ट हो जाता है।'

प्रथम ब्रह्म थे, उनकी जो कामना हुई, वही प्रकृति या माया थी। ब्रह्मसे पुरुष आविर्भूत हुआ। ये दोनों मिलकर किस प्रकार सृष्टि हो—यह विचार करने लगे। तदनन्तर आकाशवाणी हुई—'तुमलोग तपस्या करो।' दोनोंने कठोर तपस्या की। बहुत दिनोंतक तपस्यामें निरत रहनेपर वे ध्यान-मग्न हो गये। तब उनके शरीरसे जलधारा निकलने लगी, जिससे सभी कुछ जलमय हो गया और वे दोनों जलके बीच शयन करने लगे, इसीलिये उस पुरुषका नाम नारायण और प्रकृतिका नाम नारायणी हुआ। उस समय प्रकृति और पुरुषको छोड़कर और कुछ भी न था। तदनन्तर प्रकृतिसे महत्तत्त्व (बुद्धि), उससे अहंकारतत्त्व, अहंकारसे पञ्चतन्मात्र (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द), पञ्चतन्मात्रसे पञ्चभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश), पञ्चभूतसे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। मनीषियोंकी दृष्टिमें यह माना गया है कि शिवपुराणसे सांख्यशास्त्रकी उत्पत्ति होती है। ये सभी तत्त्व नारायणका आश्रयण कर जलमें सोये हुए थे। उनकी नाभिसे एक परम मनोहर अतिशय विशाल कमल प्रकट हुआ। उस कमलसे हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) उत्पन्न हुए। मायासे अभिभूत होनेके कारण ब्रह्मा अपनी उत्पत्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारणको नहीं जान सके। तब आकाशवाणी हुई—'तपस्या करो।' बारह वर्षोंतक तपस्या करनेपर उनके सम्मुख शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मको धारण किये हुए भगवान् विष्णु प्रकट हुए। भगवान् विष्णुने कहा—'मैंने तुम्हारा सत्त्वगुणसे निर्माण किया है। अव्यक्त चौबीस तत्त्वोंकी भी मैंने ही पूर्वमें सृष्टि की है। ब्रह्मा यह सुनकर विष्णुके स्वरूपको न जानकर क्षुब्ध हो उनसे युद्ध करने लगे। दोनोंके विवादकी शान्ति और ज्ञानके उदयके लिये एक अद्भुत विशाल ज्योतिर्लिङ्गका आविर्भाव हुआ। इसके प्रभावसे ब्रह्मा और विष्णु युद्धसे विरत हो गये। दोनों ही आश्चर्यचकित हो गये और इस लिङ्गके स्वरूपको जाननेके लिये ब्रह्मा हंसका स्वरूप धारण कर ऊपरकी ओर गये और विष्णु वराहरूप धारणकर नीचेकी ओर। दोनोंने इस रूपमें हजार वर्ष व्यतीत किये, परंतु वे विफल होकर लौट आये। ब्रह्माने विष्णुसे कहा—'हम दोनों ही इस लिङ्गके स्वरूपका निर्णय नहीं कर सकते और 'ज्योतिर्लिङ्ग क्या है'—यह न जानकर भी हमलोग इसे पुनः-पुनः प्रणाम करते रहे, इस प्रकार सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तदनन्तर ॐकारात्मक आनन्दमय शब्द प्रकट हुआ। वे पुनः आश्चर्यचकित हो गये; क्योंकि इस स्थानमें पाँच मुख और दस भुजावाली कर्पूरके समान गौरवर्ण एवं विविध आभूषणोंसे अलङ्कृत एक मूर्ति दृष्टिगोचर हुई। ये ही शिव थे, जिन्होंने ब्रह्मा और विष्णुको जगत्की सृष्टि और पालन करनेका निर्देश किया। तत्पश्चात् ब्रह्माण्डकी सृष्टि और पुनः ऋषि आदिकी सृष्टि हुई। शिवपुराणमें प्रकृतिस्वरूपा भगवतीकी अभिव्यक्ति, उनका शरीरत्याग और शिवपूजाका विधान कहा गया है। कुछ संहिताओंके विषयोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

ज्ञानसंहिता

इसमें तारकासुरकी कथा, शिवकी तपस्या, देवताओंका शिवके पास जाना, तारकासुरके वधार्थ पुत्रकी उत्पत्तिके लिये प्रार्थना, मदन-दाह, पार्वतीकी तपस्या, शिव-पार्वती-विवाह, कार्तिकेयका जन्म, तारकासुरका वध, तारकासुरके पुत्रोंका त्रिपुरमें निवास, शिवके द्वारा त्रिपुरका ध्वंस, देवोंको शिवसे वर-प्राप्ति, शिवपूजा-विधि, केतकीके पुष्पका शिवपूजनमें निषेध, व्याधकी कथा, शिवरात्रिकी प्रशंसा, भक्तिके द्वारा ही शिवतत्त्वके ज्ञानकी प्राप्तिका वर्णन है।

विद्येश्वरसंहिता

इसमें गङ्गा-यमुना-सङ्गम, प्रयागतीर्थमें शौनक आदि महामुनियोंके द्वारा यज्ञ आरम्भ करनेपर व्यासशिष्य सूतका आना, मुनियोंके द्वारा सूतसे वेदान्तसारकी किसी पुराणकथाको कहनेके लिये अनुरोध करना, सूतकी उक्ति—जगदीश्वर महादेव ही सभी तत्त्वोंसे श्रेष्ठ परात्परतत्त्व हैं। परम भक्ति ही उनके दर्शनकी प्राप्तिका साधन है। कानके द्वारा महादेवके गुणोंका श्रवण, वाणीसे गुणकीर्तन एवं मनसे सदा उनका मनन ही महासाधन है। श्रवण आदिमें असमर्थ व्यक्तिके लिये लिङ्गपूजा ही साधन है। ब्रह्मा और विष्णुका युद्ध देखनेपर शिवके पास देवोंका गमन, तेजोमय लिङ्गकी उत्पत्ति और उसके देखनेपर युद्धकी शान्ति, भैरवके द्वारा ब्रह्माके सिरका काटना, शिवकी कृपासे पुनः ब्रह्माको सिरकी प्राप्ति, प्रणवका स्वरूप-कथन, बन्धन और मुक्तिके स्वरूपका वर्णन है।

कैलाससंहिता

इसमें वाराणसी-धाममें सूतके द्वारा मुनियोंके प्रति प्रणवके अर्थका व्याख्यान, कैलासधाममें देवीद्वारा प्रणवके अर्थकी जिज्ञासा, प्रणवके अर्थको प्रकाश करनेवाले यन्त्रका स्वरूप, शिवपूजाविधि, कार्तिकेय और वामदेव मुनिका कथोपकथन, सनत्कुमारसंहिता, गुरुके उपदेशसे प्रणवकी उपासना, योगपट्ट आदिका निरूपण, नैमिषारण्यमें सनत्कुमारका आना, व्यास आदिसे भेंट और शिवकी पूजाके विषयमें प्रश्न, सनत्कुमारके द्वारा पृथिवी आदि संस्थानका क्रम-कथन, सात द्वीपोंका वर्णन, नरक आदिका तथा ऊपरके लोकों और योगके माहात्म्यका एवं रुद्रके माहात्म्यका वर्णन, रुद्रस्तुति, सनत्कुमारका चरित्रवर्णन, विष्णुलोक और शिवलोकका वर्णन, रुद्रके स्थानकी सभीकी अपेक्षा श्रेष्ठताका वर्णन, तीर्थ-वर्णन, शिवपूजाके पुष्पोंका विवरण, शिवकी प्रीतिके सम्पादक धर्मोंका संक्षिप्त वर्णन, शिवके श्मशानवासका कारण-निरूपण, प्रणवकी उपासना, दुर्वासाके प्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महादेवका ध्यानयोगवर्णन, हर-पार्वती-संवादमें काशी-माहात्म्य-वर्णन, शिवकी कृपासे गुहको दण्डपाणित्वकी प्राप्ति, मण्डुकीकी कथा, राजा प्रतापमुकुटसे ॐकारेश्वरका दर्शन, नन्दीकी तपस्या, शिवके द्वारा वरदान, नन्दीका विवाह, शिवके नीलकण्ठ होनेके कारणका वर्णन, त्रिपुरदाह, ब्राह्मणोंका माहात्म्य-वर्णन, शरीरमें स्थित नाडियोंका वर्णन है।

वायवीयसंहिता (पूर्वभाग)

इसमें महादेवकी कृपासे श्रीकृष्णको पुत्र-प्राप्ति, पुराणोंकी संख्याका वर्णन, ब्रह्माद्वारा ऋषियोंके प्रति शिवतत्त्वका वर्णन, ब्रह्माके आदेशसे यज्ञ करनेके लिये ऋषियोंका नैमिषारण्यमें जाना, शिवतत्त्व और मायाके स्वरूपका वर्णन, काल-परिणामकथन, प्राकृतसृष्टि-वर्णन, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरके आपसमें एकका दूसरेके अधीनस्थ होनेका एवं ब्रह्मासे महादेवकी उत्पत्तिका वर्णन, रुद्रसे शक्तिस्वरूपा स्त्रीकी सृष्टि, दक्ष-यज्ञ, देवीका शरीर-त्याग, वीरभद्र और कालीकी सृष्टि, दक्षको बकरेके सिरकी प्राप्ति, शुम्भ और निशुम्भके वधके लिये कौशिकीका आविर्भाव, त्रिविध शब्दके अर्थकी व्याख्या, पाशुपतव्रत और उसका माहात्म्य, दूधकी प्राप्तिके लिये बालक उपमन्युकी तपस्या और दुग्धके समुद्रकी प्राप्तिका वर्णन है।

वायवीयसंहिता (उत्तरभाग)

इसमें श्वेतकल्पमें प्रयागमें मुनियोंकी जिज्ञासाकी शान्तिके लिये वायुके द्वारा शिवके माहात्म्यका वर्णन, शिवके पशुपति नाम होनेके कारणका वर्णन, ब्रह्मा और विष्णुके प्रति शिवके स्वरूपका वर्णन, परब्रह्म और अपर ब्रह्मकी एकताका वर्णन, शिवके द्वारा देवीके प्रति शैवधर्मका कथन, शिवका पञ्चाक्षर-मन्त्र और उसका माहात्म्य-वर्णन, दीक्षा-प्रयोग और काम्य शिवकी पूजा, शिवस्तोत्र, योगका उपदेश, नन्दीके द्वारा शिवकथाका वर्णन है।

धर्मसंहिता

इसमें शिवमाहात्म्यवर्णन, श्रीकृष्णको उपमन्युके द्वारा शिवमन्त्रकी दीक्षा, शिवके उदरसे शुक्रका आविर्भाव, भक्तोंके प्रति देवीकी दया और सिद्धि-लाभ, रुद्रदैत्यका वध, बाण राजाके साथ युद्ध, कालीकी तपस्या, नित्य और नैमित्तिक शिवपूजाविधि, विविध पापों एवं उनके फलोंका वर्णन, धर्मवर्णन, अन्न आदि दानोंका विधान, एक दिनकी आराधनासे ही शिवकी कृपा, शिवके सहस्रनाम, धर्मका उपदेश और तुला-पुरुषका दान, पञ्चब्रह्म और उसका विधान, स्त्रीके स्वभाव आदिका वर्णन, मृत्यु-चिह्न और आयुका प्रमाण, राजा पृथुके पुत्र आदिकी कथा, पृथुका चरित्रवर्णन, सूर्यवंशका वर्णन, पितृकल्प और श्राद्ध आदिका वर्णन है।

रौद्रसंहिता

इसमें हिमालयके साथ मेनकाका विवाह, पार्वतीजन्म, पार्वतीके साथ शिवके विवाह आदि कथाओंका वर्णन, तीन असुरोंकी नगरीके नाशकी कथाका वर्णन है। रुद्रैकादशसंहिताको भी रुद्रसंहिताका ही भाग कतिपय गवेषकोंने स्वीकार किया है। इसमें १९ अध्याय हैं। इनमें जगत्की सृष्टि, तारकासुरकथा, शिव-पार्वती-विवाह, तीन असुरोंकी नगरीका ध्वंस, शैव-उपासना-पद्धति, गणेशके युद्धकी कथा और उनका विवाह-वर्णन, शिव-माहात्म्य, शिवका लिङ्गस्वरूप, रत्नमयलिङ्गस्वरूप, अर्जुनकी तपस्या, शिवरात्रिरहस्य, परमज्ञान, मुक्तितत्त्वका वर्णन है।

कोटिरुद्रसंहिता

इसमें विविध तीर्थोंमें शिवके लिङ्गोंका माहात्म्य-वर्णन, लिङ्गपूजा-पद्धति और शैवतत्त्वका वर्णन है।

भौमसंहिता

इसमें श्रीकृष्ण और उपमन्युके कथोपकथनका वर्णन, कैलासमें श्रीकृष्णकी तपस्या और शिवको प्रसन्नकर श्रीकृष्णको संतानकी प्राप्ति, नरक एवं विविध पाप तथा संसारचक्रसे मुक्तिका साधन-वर्णन और उसके लिये अन्नदान, तपस्या

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराण-श्रवणका विधान, पृथिवी और सात द्वीपोंका वर्णन है।

इस प्रकार शिवपुराणके परिमाणमें भेद होनेपर भी धर्मसंहितापर्यन्त शिवपुराणके रूपको सभीने स्वीकार किया है। वायवीयसंहिताका पूर्वार्ध और उत्तरार्ध इसके अन्तर्गत होनेसे इसे वायुपुराण भी कहा जाता है।

कथा-आख्यान—

नारदजीका कामविजय-विषयक अभिमान-भङ्ग

हिमालय पर्वतपर एक बड़ी पवित्र गुफा थी, जिसके समीप ही गङ्गाजी बह रही थीं। वहाँका दृश्य बड़ा मनोरम तथा पवित्र था। देवर्षि नारद एक बार घूमते-घामते वहाँ पहुँचे तो आश्रमकी पवित्रता देखकर उन्होंने वहीं तप करनेकी ठानी। फिर तो उन्होंने भगवान्‌का स्मरण किया, श्वास रोका। मन निर्मल तो था ही, सहज ही समाधि लग गयी। सौ सहस्र अयुत वर्ष बीत गये, पर नारदजीकी समाधि भङ्ग न हुई। उनकी गति देख इन्द्रको बड़ा भय हुआ। उन्होंने सोचा कि देवर्षि मेरा पद लेना चाहते हैं। अतएव उन्होंने कामदेवको आदरपूर्वक बुलाकर बड़ा सम्मान किया और पूरी सामग्रीके साथ नारदजीके पास तपोभङ्गके लिये तत्काल भेज दिया।

वहाँ जाकर कामदेवने अपनी सारी कलाओंका प्रयोग किया, पर मुनिपर उसकी एक न चली। कारण कि वह यही स्थान था, जहाँ भगवान् शंकरने कामको जलाया था। रतिके रोने-पीटनेपर उन्होंने कहा था कि कुछ समय बीतनेपर कामदेव जीवित तो हो जायगा और इसे पुनर्देह भी प्राप्त हो जायगी, पर इस स्थानपर यहाँसे जितनी दूरतककी पृथ्वी दिखलायी पड़ती है, वहाँतक कामके बाणोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगी[1]। विवश होकर कामदेव अपने सहायकोंके साथ अमरावती लौट गया और नारदजीकी सुशीलताका वर्णन करने लगा। उसने कहा—'न तो नारदजीको काम ही है और न क्रोध ही, क्योंकि उन्होंने मुझे पास बुलाकर सान्त्वना दी और मधुर वचनोंसे मेरा आतिथ्य किया।' यह सुनकर सभी आश्चर्यसे दंग रह गये।

इधर नारदजीकी तपस्या पूरी हो गयी। वे वहाँसे सीधे चलकर भगवान् शंकरके पास पहुँचे और अपनी कथा सुनायी। शंकरजीने उन्हें सिखाया—'नारदजी! इसे अब आप कहीं भी न कहियेगा।' विशेषकर विष्णु भगवान् पूछें भी तो आप इसे छिपा लीजियेगा।' पर नारदजीको यह सब अच्छा नहीं लगा, वे वीणा लेकर वैकुण्ठको चल दिये और वहाँ जाकर भी अपना काम-विजयका माहात्म्य गाने लगे। भगवान्‌ने सोचा—'इनके हृदयमें सकल शोकदायक अहंकारका मूल अंकुर उत्पन्न हो रहा है, सो इसे झट उखाड़ डालना चाहिये' और वे बोले—'महाराज! आप ज्ञान-वैराग्यके मूर्त-रूप ठहरे, भला आपको मोह कैसे सम्भव है।' नारदजीने अभिमानसे ही कहा—'प्रभो! यह आपकी कृपामात्र है।'

विष्णुलोकसे जब नारदजी भूलोकपर आये, तब देखते क्या हैं कि एक बहुत बड़ा विस्तृत नगर जगमगा रहा है। यह नगर वैकुण्ठसे भी अधिक रम्य तथा मनोहर है। भगवान्‌की मायाकी बात वे न समझ सके। उन्होंने सोचा—'यह नगर कहाँसे आ गया। मैं तो बराबर संसारका पर्यटन करता रहता हूँ। आजतक तो यह नगर दीखा नहीं था।' इधर-उधर लोगोंसे पूछनेपर पता चला कि इस नगरका राजा शीलनिधि अपनी लड़की 'श्रीमती'का स्वयंवर कर रहा है। इसीकी तैयारीमें नगर सजाया गया है। देश-विदेशके राजालोग पधार रहे हैं। नारदजी कौतुकी तो स्वभावसे ही ठहरे। तुरंत पहुँच गये राजाके यहाँ। राजाने भी अपनी लड़कीको बुलाकर नारदजीको प्रणाम कराया। तत्पश्चात् उनसे उस लड़कीका लक्षण पूछा। नारदजी तो उसके लक्षणोंको देखकर चकित रह गये। उसके लक्षण सभी विलक्षण थे—जो इसे विवाह ले, वह अजर-अमर हो जाय, संग्रामक्षेत्रमें वह सर्वथा अजेय हो। सम्पूर्ण चराचर विश्व उसकी सेवा करे। वह सर्वथा सर्वश्रेष्ठ हो

१-कश्चित्समयमासाद्य जीविष्यति सुराः स्मरः। परं त्विह स्मरोपायश्चरिष्यति न कश्चन॥
इह यावद् दृश्यते भूर्जनैः स्थित्वामराः सदा। कामबाणप्रभावोऽत्र न चलिष्यत्यसंशयम्॥
(शिवपुराण, रुद्रसंहिता १।२।२०-२१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय। नारदजीने ऊपरसे राजाको कुछ कहकर छुट्टी ली और चले इस यत्नमें कि कैसे इसे पाया जाय।

सोचते-विचारते उन्हें एक उपाय सूझा। वे झट भगवान् विष्णुकी प्रार्थना करने लगे। प्रभु प्रकट हुए। नारदजी बोले—'नाथ! मेरा हित करो। अपना रूप मुझे दे दो। आपकी कृपाके बिना कोई उपाय उसे प्राप्त करनेका नहीं है।' प्रभुने कहा—'वैद्य जिस प्रकार रोगीकी ओषधि करके उसका कल्याण करता है, उसी प्रकार मैं तुम्हारा हित अवश्य करूँगा।' यद्यपि भगवान्की ये बातें बड़ी स्पष्ट थीं, नारदजी इस समय मोह तथा कामसे अंधे-से हो रहे थे, इसलिये कुछ न समझकर,'भगवान्ने मुझे अपना रूप दे दिया'—यह सोचकर तत्काल स्वयंवर-सभामें जा विराजे। इधर भगवान्ने उनका मुँह तो बंदरका बना दिया, पर शेष अङ्ग अपने-से बना दिये थे।

अब राजकुमारी जयमाल लेकर स्वयंवर-सभामें आयी। जब नारदजीपर उसकी दृष्टि पड़ी, तब वह बंदरका मुँह देखकर जल-भुन-सी गयी। भगवान् विष्णु भी राजाके रूपमें वहाँ बैठे थे। श्रीमतीने उनके गलेमें जयमाल डाल दी। वे उसे लेकर चले गये। इधर नारदजी बड़े दुःखी और बेचैन हुए। उनकी दशाको दो हरगण अच्छी प्रकार जानते थे। उन्होंने कहा—'जरा अपना मुँह आइनेमें देख लीजिये।' नारदजीको दर्पण तो नहीं मिला, पानीमें अपना मुँह देखा तो निराला बंदर। अब दौड़े विष्णुलोकको । बीचमें ही श्रीमतीके साथ भगवान् मिल गये। नारदजीके क्रोधका अब क्या पूछना। झल्ला पड़े—'ओहो! मैं तो जानता था कि तुम भले व्यक्ति हो, पर वास्तवमें तुम इसके सर्वथा विपरीत निकले। समुद्र-मन्थनके अवसरपर असुरोंको तुमने मद्य पिलाकर अचेत कर दिया और स्वयं कौस्तुभादि चार रत्न और लक्ष्मीतकको ले लिया। शंकरजीको बहकाकर दे दिया विष। यदि उन कृपालुने [illegible] समय उस हलाहलको न पी लिया होता तो तुम्हारी सारी [illegible] नष्ट हो जाती और आज हमारे साथ यह कौतुक। अ[illegible] चलो, तुमने मेरी अभीष्ट कन्या छीनी, अतएव तुम भी [illegible] विरहमें मेरे-जैसे ही विकल होओगे।

भगवान्ने अपनी माया खींच ली। अब नारदजी देखते हैं तो न वहाँ राजकुमारी है और न लक्ष्मी ही। वे बड़ा पश्चात्ताप करने लगे और 'त्राहि-त्राहि' कहकर प्रभुके चरणोंपर गिर पड़े। भगवान्ने उन्हें सान्त्वना दी और सौ बार शिवनाम जपनेको कहकर आशीर्वाद दिया कि अब माया तुम्हारे पास न फटकेगी। (शिवपुराण-पार्वतीसंहिता)

नल-दमयन्तीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

पूर्वकालमें आबू पर्वतके समीप एक आहुक नामका भील रहता था। उसकी पत्नीका नाम आहुजा था। वह बड़ी पतिव्रता तथा धर्मशीला थी। वे दम्पति बड़े शिवभक्त एवं अतिथि-सेवक थे। एक बार भगवान् शंकरने इनकी परीक्षा लेनेका विचार किया। वे एक यतिका रूप धारण करके संध्या-समय आहुकके दरवाजेपर जाकर कहने लगे—'भील! तुम्हारा कल्याण हो, मैं आज रातभर यहीं रहना चाहता हूँ, तुम दया करके एक रात मुझे रहनेके लिये स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे दो।' इसपर भीलने कहा—'स्वामिन्! मेरे पास स्थान बहुत थोड़ा है, उसमें आप कैसे रह सकते हैं?' यह सुनकर यति चलनेको ही थे कि पत्नीने पतिसे कहा— 'स्वामिन्! यतिको लौटाइये नहीं, गृहस्थधर्मका विचार कीजिये, इसलिये आप दोनों तो घरके भीतर रहें, मैं अपनी रक्षाके लिये कुछ बड़े शस्त्रोंको लेकर दरवाजेपर बैठी रह जाऊँगी।' भीलने सोचा कि यह बात तो ठीक ही कहती है, परंतु इसे बाहर रखकर मेरा घरमें रहना ठीक नहीं; क्योंकि यह अबला है। अतएव उसने यति तथा अपनी पत्नीको घरके भीतर रखा और स्वयं शस्त्र धारणकर बाहर बैठा रहा। रात बीतनेपर हिंस्र पशुओंने उसपर आक्रमण किया और उसे मार डाला। प्रातः होनेपर जब यति और उसकी पत्नी बाहर आये तो उसे मरा देखा। यह देखकर यति बहुत दुःखी हुए। पर भीलनीने कहा—'महाराज! इसमें शोक तथा चिन्ताकी क्या बात है? ऐसी मृत्यु तो बड़े भाग्यसे ही प्राप्त होती है। अब मैं भी इनके साथ सती हो जाऊँगी। इसमें तो हम दोनोंका ही परम कल्याण हो गया।' यों कहकर चितापर अपने पतिको रखकर वह भी उसी अग्निमें प्रविष्ट हो गयी।

तब भगवान् शंकर डमरू-त्रिशूल आदि आयुधोंके साथ प्रकट हो गये। उन्होंने बार-बार उस भीलनीसे वर माँगनेको कहा, पर वह कुछ न बोलकर सर्वथा ध्यानमग्न हो गयी। तब भगवान्ने उसे वरदान दिया कि अगले जन्ममें तुम्हारा पति निषधदेशमें राजा वीरसेनका पुत्र नल होगा और तुम्हारा जन्म विदर्भदेशके राजा भीमसेनकी पुत्री दमयन्तीके रूपमें होगा। यह यति भी हंस होगा और यही तुम दोनोंका संयोग करायेगा। वहाँ तुमलोग अनन्त राजसुखोंका उपभोग करके अन्तमें दुर्लभ मोक्षपदको प्राप्त करोगे।'

यों कहकर वे प्रभु शंकर वहीं अचलेश्वर लिङ्गके रूपमें स्थित हो गये और कालान्तरमें ये ही दोनों भील-दम्पति नल-दमयन्तीके रूपमें अवतीर्ण हुए।

अभिमानी रावणकी शिव-भक्ति

एक बार राक्षसराज रावण कैलासपर्वतपर महादेवजीकी आराधना करने लगा। वहाँ महादेवजीको प्रसन्न होते न देख वह हिमालयके वृक्षखण्डक नामक दक्षिणभागमें जाकर तपस्यामें लीन हो गया। वहाँ भी जब उसने शिवजीको प्रसन्न होते नहीं देखा, तब वह अपना मस्तक काट-काटकर चढ़ाने लगा। नौ मस्तक काटकर चढ़ा देनेके बाद जब एक मस्तक बच रहा, तब शंकरजी प्रसन्न हो गये और बोले—'राक्षसराज! अभीष्ट वर माँगो।' रावणने कहा—'महाराज! मुझे अतुल बल दें और मेरे मस्तक पूर्ववत् हो जायँ।' भगवान् शंकरने उसकी अभिलाषा पूर्ण की। इस वरकी प्राप्तिसे देवगण और ऋषिगण बहुत दुःखी हुए। उन्होंने नारदजीसे पूछा—'देवर्षे! इस दुष्ट रावणसे हमलोगोंकी रक्षा किस प्रकार हो?' नारदजीने कहा—'आपलोग जायँ, मैं इसका उपाय करता हूँ।' तब जिस मार्गसे रावण जा रहा था, उसी मार्गपर वीणा बजाते हुए नारदजी उपस्थित हो गये और बोले—'राक्षसराज! तुम धन्य हो, तुम्हें देखकर मुझे असीम प्रसन्नता हो रही है। तुम कहाँसे आ रहे हो और बहुत प्रसन्न दीख रहे हो?' रावणने कहा—'ऋषिवर! मैंने आराधना करके शिवजीको प्रसन्न किया है।' रावणने सभी वृत्तान्त ऋषिके सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। उसे सुनकर नारदजीने कहा—'राक्षसराज! शिव तो उन्मत्त हैं, तुम मेरे प्रिय शिष्य हो इसलिये कह रहा हूँ, तुम उनपर विश्वास मत करो और लौटकर उनके दिये हुए वरदानको प्रमाणित करनेके लिये कैलासको उठाओ। यदि तुम उसे उठा लेते हो तो तुम्हारा अबतकका प्रयास सफल माना जायगा।' अभिमानी रावण लौटकर कैलासपर्वतको उठाने लगा। ऐसी स्थिति देखकर शिवजीने कहा—'यह क्या हो रहा है?' तब पार्वतीजीने हँसते हुए कहा—'आपका शिष्य आपको गुरु-दक्षिणा दे रहा है। जो हो रहा है, वह ठीक ही है।' यह बलदर्पित अभिमानी रावणका कार्य है,ऐसा जानकर शिवजीने उसे शाप देते हुए कहा—'अरे दुष्ट! शीघ्र ही तुम्हें मारनेवाला उत्पन्न होगा।' यह सुनकर नारदजी वीणा बजाते हुए चल दिये और रावण भी कैलासपर्वतको वहीं रखकर विश्वस्त होकर चला गया।

—(म० प्र० गो०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किरातवेषधारी शिवजीकी अर्जुनपर कृपा

जब पाँचों पाण्डव द्रौपदीसहित वनमें अज्ञात-वास कर रहे थे, तब उनके कष्टोंको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण तथा महर्षि व्यासजीने अर्जुनसे भगवान् शिवको प्रसन्न करके वर प्राप्त करनेके लिये कहा तथा उसके लिये उपाय बताया। वीर अर्जुन अपने तथा राज्यपर आये हुए संकटोंका नाश करनेके लिये व्यासजीके निर्देशानुसार इन्द्रकील पर्वतपर गये। वहाँ उन्होंने जाह्नवीके मनोहर तटपर मनोरम पार्थिव शिवलिङ्गका निर्माण किया और वे उसका विधिवत् पूजन करते हुए तप करने लगे। गुप्तचरोंद्वारा जब इन्द्रको अर्जुनके इस तपका पता लगा, तब वे अपने पुत्रका मनोरथ समझ गये और वृद्ध ब्रह्मचारीका वेष धारण कर उसकी परीक्षा लेनेके उद्देश्यसे वहाँ आये तथा अर्जुनका आतिथ्य ग्रहण करनेके बाद अनेक प्रकारसे उसे तपसे विमुख करनेका प्रयत्न करने लगे, परंतु अर्जुनका दृढ़ निश्चय देखकर वे अपने वास्तविक रूपमें प्रकट

हो गये। फिर तो वे उसे शंकरके दिव्य मन्त्रका उपदेश देकर तथा अपने अनुचरोंको अर्जुनकी रक्षाके लिये आदेश देकर अन्तर्धान हो गये।

तदुपरान्त महर्षि व्यासके कथनानुसार अर्जुन भगवान् शिवका ध्यान कर एक पैरपर खड़े हो गये तथा सूर्यकी ओर एकाग्र दृष्टि करके शिवजीके दिव्य पञ्चाक्षर-मन्त्र (ॐ नमः शिवाय)का जप करने लगे। उनके घोर तपको देखकर देवगण आश्चर्यचकित हो गये। वे भगवान् शिवके पास गये और अर्जुनको वर प्रदान करनेके लिये प्रार्थना करने लगे। देवताओंकी बात सुनकर भगवान् शिव हँस पड़े और उन्हें निश्चिन्त रहनेके लिये कहे। वे आश्वस्त होकर अपने-अपने स्थानको लौट गये।

इधर दुर्योधनद्वारा भेजा हुआ 'मूक' नामका एक मायावी राक्षस सूकरका रूप धारण कर अनेक प्रकारका भयंकर शब्द करता हुआ तथा वृक्ष-पर्वतादिको उखाड़ता हुआ वहाँ पहुँचा, जहाँ अर्जुन तप कर रहे थे। उसे देखते ही अर्जुन समझ गये कि यह निश्चय ही मेरा अनिष्ट करना चाहता है, अतः उसे मार देनेके उद्देश्यसे बाणका संधान करने लगे। उसी समय भक्तवत्सल सर्वज्ञ शिव अर्जुनकी रक्षा करने तथा उनकी परीक्षा लेनेके उद्देश्यसे अपने गणोंसहित भीलका वेष धारण कर वहाँ उपस्थित हुए। वह भीलसमूह मुँहसे विविध शब्दोंका घोष कर रहा था। इधर सूकरने भी भयंकर घोष किया। अर्जुन उस भीलराजके शब्दको सुनकर मन-ही-मन शङ्का करने लगे कि कहीं ये किरातवेषधारी भगवान् शिव तो ही नहीं हैं? इस प्रकार वे सोच-विचार कर ही रहे थे, तबतक वह सूकर वहाँ आ गया और भीलराज तथा अर्जुन—दोनोंने उसे मारनेके उद्देश्यसे एक साथ बाण छोड़े। भीलराजका बाण सूकरके पुच्छभागमें लगा और मुखसे निकलता हुआ पृथ्वीमें चला गया, जबकि अर्जुनका बाण मुखसे पुच्छभागकी ओर निकलकर पृथ्वीपर गिर गया और सूकर तुरंत मर गया।

तदुपरान्त अर्जुन अपना बाण उठानेके लिये झुके ही थे कि उसी समय भीलराजकी आज्ञासे उनका अनुचर भी उस बाणको उठानेके लिये झपटा और अर्जुनसे बाण माँगने लगा। अर्जुनने बहुत समझाया कि यह बाण मेरा है, इसमें मेरा नाम भी अङ्कित है, परंतु वह अपने हठपर अड़ा रहा। इस प्रकार दोनोंमें बहुत देरतक वाद-विवाद होता रहा। अन्तमें उसने अर्जुनको कृतघ्न तथा मिथ्याभाषी आदि शब्दोंद्वारा अपमानित करते हुए युद्धके लिये ललकारा। तब अर्जुन क्रुद्ध होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Siddhanta eGangotri Samiti and eGangotri

बोले—'मैं तुमसे नहीं, तुम्हारे राजासे युद्ध करूँगा।' गणके द्वारा अर्जुनकी बातको सुनकर किरातवेषधारी भगवान् शिव अपने गणोंसहित युद्धके लिये वहाँ उपस्थित हुए और दोनोंमें भयंकर युद्ध होने लगा। अर्जुनके बाणोंके आघातसे घबराकर शिवगण चारों दिशाओंमें भागने लगे। किरातराजने अर्जुनके कवच तथा सभी बाणोंको नष्ट कर दिया। तब अर्जुन भगवान् शिवका स्मरण कर उस किरातका पैर पकड़कर उसे घुमाने लगे। उसी समय भगवान् शंकरने अपना परमसुन्दर वास्तविक रूप प्रकट कर दिया, जिसे देखकर अर्जुन अवाक् रह गये तथा लज्जित होते हुए अनेक प्रकारसे पश्चात्ताप करने लगे। वे शिवजीको प्रणाम करके स्तुति करने लगे। तब शिवजी उन्हें अनेक प्रकारसे आश्वस्त करते हुए बोले—'मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, वर माँगो।' किंतु अर्जुन भक्तिभावसे पूर्ण हो अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करते हुए बारम्बार प्रणाम करने लगे। भगवान् शिव हँसकर पुनः बोले—'मैं तुमपर अत्यधिक प्रसन्न हूँ, जो तुम्हें अभीष्ट हो वह माँगो।' अर्जुनने कहा—'नाथ! मेरे ऊपर जो शत्रुओंके संकट थे, वे तो आपके दर्शनमात्रसे ही नष्ट हो गये, अतः जिससे मेरी इहलोककी परासिद्धि हो ऐसी कृपा करें। तब भगवान् शिवने अपना अजेय पाशुपत-अस्त्र अर्जुनको दिया और कहा—'वत्स! इस अस्त्रसे तुम सदा अजेय रहोगे, जाओ विजय प्राप्त करो। मैं श्रीकृष्णसे भी तुम्हारी सहायताके लिये कहूँगा।' इस प्रकार भगवान् शिव अर्जुनको आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गये और अर्जुन प्रसन्नचित्त हो अपने बन्धुओंके पास लौट आये।

गुणनिधिपर भगवान् शिवकी कृपा

पूर्वकालमें यज्ञदत्त नामक एक ब्राह्मण थे। समस्त वेद-शास्त्रादिका ज्ञाता होनेसे उन्होंने अतुल धन एवं कीर्ति अर्जित की थी। उनकी पत्नी सर्वगुणसम्पन्न थी। कुछ दिनोंके बाद उन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम गुणनिधि रखा गया। बाल्यावस्थामें इस बालकने कुछ दिन तो धर्मशास्त्रादि समस्त विद्याओंका अध्ययन किया, परंतु बादमें वह कुसंगतिमें पड़ गया। कुसंगतिके प्रभावसे वह धर्मविरुद्ध कार्य करने लगा। वह अपनी मातासे द्रव्य लेकर जूआ खेलने लगा और धीरे-धीरे अपने पिताद्वारा अर्जित धन तथा कीर्तिको नष्ट करने लगा। कुसंगतिके प्रभावसे उसने स्नान-संध्या आदि कार्य ही नहीं छोड़ा, अपितु शास्त्र-निन्दकोंके साथ रहकर वह चोरी, परस्त्रीगमन, मद्यपानादि कुकर्म भी करने लगा, परंतु उसकी माता पुत्र-स्नेहवश न तो उसे कुछ कहती थी और न उसके पिताको ही। इसीलिये यज्ञदत्तको कुछ भी पता नहीं चला। जब उनका पुत्र सोलह वर्षका हो गया तब उन्होंने बहुत धन खर्च करके एक शीलवती कन्यासे गुणनिधिका विवाह कर दिया, परंतु फिर भी उसने कुसंगतिको न छोड़ा। उसकी माता उसे बहुत समझाती थी कि तुम कुसंगतिको त्याग दो, नहीं तो यदि तुम्हारे पिताको पता लग गया तो अनिष्ट हो जायगा। तुम अच्छी संगति करो तथा अपनी पत्नीमें मन लगाओ। यदि तुम्हारे कुकर्मोंका राजाको पता लग गया तो वह हमें धन देना बंद कर देगा और हमारे कुलका यश भी नष्ट हो जायगा, परंतु बहुत समझानेपर भी वह नहीं सुधरा, अपितु उसके अपराध और बढ़ते ही गये। उसने वेश्यागमन तथा द्यूतक्रीडामें घरकी समस्त सम्पत्ति नष्ट कर दी। एक दिन वह अपनी सोती हुई माँके हाथसे अँगूठी निकाल ले गया और उसे जूएमें हार गया। अकस्मात् एक दिन गुणनिधिके पिता यज्ञदत्तने उस अँगूठीको एक जुआरीके हाथमें देखा, तब उन्होंने उससे डाँटकर पूछा—'तुमने यह अँगूठी कहाँसे ली?' जुआरी डर गया और उसने गुणनिधिके सम्बन्धमें सब कुछ सत्य-सत्य बता दिया। जुआरीसे अपने पुत्रके विषयमें सुनकर यज्ञदत्तको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे लज्जासे व्याकुल होते हुए घर आये और उन्होंने अँगूठीके सम्बन्धमें प्राप्त हुई गुणनिधिके विषयकी सारी बातें अपनी पत्नीसे कहीं। माताने गुणनिधिको बचानेका प्रयास किया, किंतु यज्ञदत्त क्रोधसे भर उठे और बोले कि 'मेरे साथ तुम भी अपने पुत्रसे नाता तोड़ लो तभी मैं भोजन करूँगा।' पतिकी बात सुनकर वह उनके चरणोंपर गिर पड़ी और गुणनिधिको एक बार क्षमा कर देनेकी प्रार्थना की, जिससे यज्ञदत्तका क्रोध कुछ कम हो गया।

जब गुणनिधिको इस घटनाका पता चला तब उसे बड़ी आत्मग्लानि हुई। वह अपनी माताके उपदेशोंका स्मरण कर शोक करने लगा तथा अपने कुकर्मोंके कारण अपनेको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धिक्कारने लगा और पिताके भयसे घर छोड़कर भाग गया, परंतु जीविकाका कोई भी साधन न होनेसे जंगलमें जाकर रुदन करने लगा। इसी समय एक शिवभक्त पुरुष विविध प्रकारकी पूजन-सामग्रियोंसे युक्त हो अपने साथ अनेक शिवभक्तोंको लेकर जा रहा था। उस दिन सभी व्रतोंमें उत्तम तथा सभी वेदों एवं शास्त्रोंद्वारा वर्णित शिवरात्रि-व्रतका दिन था। उसीके निमित्त वे भक्तगण शिवालयमें जा रहे थे। उनके साथ ले जाये गये विविध पक्वान्नोंकी सुगन्धसे गुणनिधिकी भूख बढ़ गयी। वह उनके पीछे-पीछे इस उद्देश्यसे शिवालयमें चला गया कि जब ये लोग भोजनको शिवजीके निमित्त अर्पण कर सो जायँगे तब मैं उसे ले लूँगा। उन भक्तोंने शिवजीका षोडशोपचार पूजन किया तथा नैवेद्य अर्पित करके वे शिवजीकी स्तुति करने लगे। कुछ देर बाद उन भक्तोंको नींद आ गयी, तब छिपकर बैठे हुए गुणनिधिने भोजन उठा लिया, परंतु लौटते समय उसका पैर लगनेसे एक शिवभक्त जाग गया और वह चोर-चोर कहकर चिल्लाने लगा। गुणनिधि जान बचाकर भागा, परंतु एक नगररक्षकने उसे अपने तीरसे मार गिराया। तदुपरान्त उसे लेनेके लिये बड़े भयंकर यमदूत आये और उसे ले जाने लगे। तभी भगवान् शिवने अपने गणोंसे कहा कि इसने मेरा परमप्रिय शिवरात्रिका व्रत तथा रात्रि-जागरण किया है, अतः इसे यमगणोंसे छुड़ा लाओ। यमगणोंके विरोध करनेपर शिवगणोंने उन्हें शिवजीका संदेश सुनाया और उसे छुड़ाकर शिवजीके पास ले गये। शिवजीके अनुग्रहसे वह

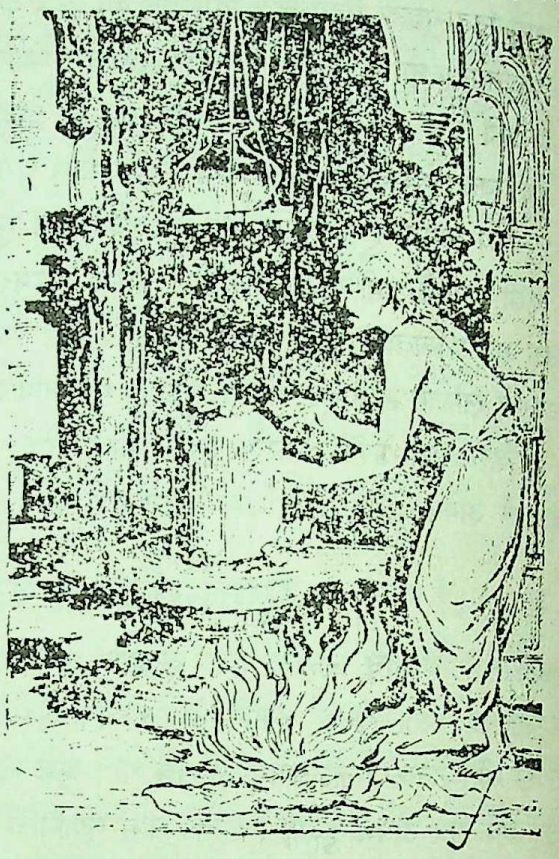

महान् शिवभक्त कलिङ्गदेशका राजा हुआ। वही अगले जन्ममें भगवान् शंकर तथा माँ पार्वतीके कृपाप्रसादसे यक्षोंका अधिपति कुबेर हुआ। (म० प्र० गो०)

महान् तीर्थ—माता-पिता

माँ! पहले विवाह मैं करूँगा। एकदन्तके सहसा ऐसे वचन सुनकर पहले तो शिवा हँसीं और अपने प्रिय पुत्र विनायकसे स्नेहयुक्त स्वरमें बोलीं—'हाँ, हाँ! विवाह तो तेरा भी होगा ही, पर स्कन्द तुझसे बड़ा है। पहले····।'

'नहीं माँ! बड़ा हुआ तो क्या····' माँकी बात बीचमें ही काटते हुए लम्बोदरने कहा।

'अरे! वह देख, स्कन्द भी आ रहा है।'—शिवा बोलीं।'

स्कन्दने जब यह सुना तब अपने हठी स्वभावके कारण उन्होंने कहा—'माँ! नियमानुसार पहले मेरा विवाह होगा।'

एकदन्तने कहा—'नहीं, पहले मेरा होगा।'

शशाङ्कशेखरने दूरसे ही देखा—दोनों बालक माँके पास खड़े हैं। वे भी बालकोंके पास आ गये। शिवाने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—'प्रभो! ये दोनों अपनी-अपनी बातपर अड़े हैं, अतः आप ही इन्हें समझाइये न!'

शिवने पूर्ण वृत्तान्त सुना और बड़ी देरतक हँसनेके पश्चात् वे गम्भीर होकर बोले—'गणेश और स्कन्द! पहले किसका विवाह हो, इसके लिये तुम दोनोंको परीक्षा देनी होगी, जो उसमें उत्तीर्ण होगा, उसीका विवाह पहले कर दिया जायगा।' दोनोंने सहमति प्रकट की।

आशुतोषने परीक्षाका अत्यन्त सूक्ष्म विवरण बताया—'देखो, जो पृथ्वीकी परिक्रमा कर पहले लौटेगा, उसीका विवाह पहले होगा।'

मयूरवाहन कार्तिकेय तत्क्षण मंदरगिरिसे द्रुतगतिसे चल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़े। मूषकवाहन मूक शान्त खड़े थे। बेचारा चूहा भी अपनी गोल-गोल आँखोंसे टुकुर-टुकुर निहार रहा था।

'अरे, खड़ा-खड़ा मुँह क्या ताक रहा है ! तेरा बड़ा भाई चला भी गया। तू भी जा न परिक्रमापर।'—भगवतीने गणेशसे कहा।

अचानक गणेशको न जाने क्या सूझा, उन्होंने माता-पितासे विनय करते हुए कहा—'मैं अभी आ रहा हूँ, तबतक आप दोनों यहीं बैठें'—कहते हुए गणेश भवनकी ओर दौड़ पड़े। शिवा-शिव एक-दूसरेको देखते रह गये।

'क्या करने गया है ?' अभी दोनों आश्चर्यचकित एक दूसरेको देख ही रहे थे कि गणेश हाथमें पूजाकी थाली लिये शीघ्रतापूर्वक आते दीख पड़े। निकट आकर उन्होंने पूजाकी थाली दोनोंके चरणोंमें रख दी और हाथ जोड़कर माता-पिताकी परिक्रमा करने लगे। शिव-पार्वती इस विचित्र दृश्यको देखकर अपनी हँसी रोक न सके और बोले—'अरे, यह क्या नवीन आयोजन हो रहा है ?' बिना प्रत्युत्तर दिये गणेशने सात परिक्रमाएँ पूर्ण कीं तथा पूजाकी थाली उठाकर माता-पिताकी आरती उतारी, उन्हें चन्दन लगाया, भोगकी कटोरी सामने रखी और दोनोंको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया ! फिर वे उठकर बोले—'करो मेरा विवाह।'

शिवा-शिव दोनों जी भरकर हँसे। शिवने पूछा—'अरे, क्या गिरि-काननोंसहित सप्तद्वीपमयी सम्पूर्ण वसुन्धराकी परिक्रमा हो गयी ?'

बुद्धिसिन्धु गणेशने स्वीकृतिमें सिर हिलाते हुए कहा—'अब और रह ही क्या गया है ?' वेद-शास्त्रोंके द्वारा उद्घोषित प्रमाणके अनुसार माता-पिताकी परिक्रमा करनेसे पृथ्वीकी परिक्रमा पूरी होती है। आशुतोष भगवान् शिव और माता पार्वतीने भी यह स्वीकार किया और इस प्रतियोगितामें सिद्धविनायक गणेशकी विजय हुई।

इससे सिद्ध हुआ कि माता-पिता ही महान् तीर्थ हैं। यदि कोई पुत्र सम्पूर्ण धराकी परिक्रमा करनेका फल प्राप्त करना चाहता है तो वह अपने माता-पिताकी प्रदक्षिणा करे। अपने माता-पिताको छोड़कर तीर्थयात्रा करनेवाला पुत्र माता-पिताकी हत्याके पापका भागी बनता है। अन्य तीर्थ तो दूर हैं, परंतु धर्मका साधनभूत तीर्थ तो निकट ही सुलभ हैं। पुत्रके लिये माता-पिता तथा स्त्रीके लिये पति-जैसे शुभ तीर्थ घरमें ही विद्यमान हैं—

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम्॥
अपहाय गृहे यो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत्।
तस्य पापं तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा॥
पुत्रस्य च महत्तीर्थं पित्रोश्चरणपङ्कजम्।
अन्यतीर्थं तु दूरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः॥
इदं संनिहितं तीर्थं सुलभं धर्मसाधनम्।
पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम्॥

(शिवपुराण, रु०सं०, कु०खं० १९। ३९-४२)

धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥
पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा॥
× × × ×
जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहिभवन समाना॥
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा॥
ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला॥
जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी॥
जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज बिमोहनसीला॥
रामकथा सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि।
सतसमाज सुरलोक सब को न सुनै अस जानि॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायुपुराण

स्कन्दपुराण, मत्स्यपुराण और नारदपुराणके अनुसार श्वेतकल्पके प्रसङ्गमें वायुद्वारा प्रोक्त, शिवके माहात्म्यसे संयुक्त पुराण वायवीय या वायुपुराणके नामसे विख्यात है। नारदपुराणके पूर्वभागके ९५वें अध्यायमें वायुपुराणकी बड़ी सुन्दर अनुक्रमणिका है। इसमें इसे २४००० श्लोकोंमें उपनिबद्ध कहा गया है। सर्गारम्भमें मन्वन्तरके पश्चात् इसमें अत्यन्त विस्तारके साथ माघ-माहात्म्य वर्णित है। तत्पश्चात् विस्तृत दानधर्म, राजधर्म, लोक-व्यवहार, व्रत-निर्णय, नर्मदा-माहात्म्य आदिसे युक्त शिव-संहितात्मक भाग वर्णित है। नर्मदामाहात्म्यमें ओंकारेश्वरकी विशेष महिमा है। इसके अनुसार जहाँ नर्मदा नदी पश्चिम सागरमें मिलती है, वहाँ तीस नदियोंका संगम कहा गया है तथा साठ करोड़ साठ हजार तीर्थ बतलाये गये हैं। किंतु यह विवरण वर्तमान वायुपुराणमें नहीं मिलता; अपितु इससे मिलता-जुलता विवरण मत्स्य एवं स्कन्दपुराणमें दृष्टिगत होता है। नारदपुराणके अनुसार इसमें विस्तृत माघ-माहात्म्य एवं नर्मदा-माहात्म्य आदि खण्ड भी सम्मिलित हैं, वायुपुराणका माघ-माहात्म्य आज भी लेथो अक्षर एवं हस्तलिखित प्रतियोंके रूपमें विभिन्न संग्रहालयोंमें सुरक्षित हैं।

वर्तमानमें उपलब्ध वायुपुराणमें प्रक्रिया, अनुषंग, उपोद्घात एवं उपसंहार—ये चार पाद, ११२ अध्याय और प्रायः १२००० के लगभग श्लोक प्राप्त होते हैं। इसके प्रारम्भमें पुराणोंकी महिमा, ऋषियोंद्वारा नैमिषारण्य-क्षेत्रमें द्वादश वार्षिक सत्रका समायोजन और तीनसे लेकर छःतकके अध्यायोंमें सृष्टि-प्रक्रियाका वर्णन हुआ है।

वायुपुराणका सर्ग या सृष्टि-निरूपण ७ से ९ पुनः ६४ से ७० तकके अध्यायोंमें काश्यपीय प्रजा-सर्गमें विस्तारसे वर्णित हुआ है। सूर्यवंश, चन्द्रवंश, पृथुवंश, ऋषिवंशके साथ इसके ८३वें अध्यायमें वरुण-वंशका भी वर्णन हुआ है। इस पुराणमें भुवनकोशका वर्णन और ज्योतिश्चक्र, ज्योतिष्-संनिवेशके साथ-साथ विभिन्न राजाओंद्वारा देश, प्रदेश, मण्डल, नगर एवं गया, उत्कल आदि तीर्थोंके निर्माणकी कथा भी अतीव मनोरम है। वायुपुराणके अध्याय ९६ में शम्भुस्तव और अध्याय ५४ का नीलकण्ठस्तव भाव और काव्य-रचनाकी दृष्टिसे मनोहर है। कथा-वर्णनके दृष्टिकोणसे ज्यामघ तथा पृथु एवं कार्तवीर्यकी कथाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

वायुपुराणके ११ से लेकर १५ अध्यायोंमें पाशुपतयोग और योगसे प्राप्त होनेवाली सिद्धियोंका निरूपण हुआ है। इसके बीसवें अध्यायमें प्रणवकल्प है तथा २१ और २२ अध्यायमें ३२ कल्पोंका नामोल्लेखपूर्वक विस्तृत परिचय दिया गया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न कल्पोंमें होनेवाले २८ व्यासोंका भी वर्णन है। वायुपुराणके २६वें अध्यायमें त्रिवर्ग, लक्ष्यालक्ष्य-प्रदृश्य, त्रिमात्रिक प्रणवकी उत्पत्तिके वार, सभी स्वर-व्यञ्जन-वर्णों तथा चारों वेदोंकी उत्पत्ति आदिका वर्णन है।

इसके ५७ वें अध्यायमें यज्ञोंकी उत्पत्ति तथा उनके सम्पादन-शैलीकी विधि है। ८५ से ८६ तकके अध्यायोंमें सम्पूर्ण संगीतशास्त्र, गन्धर्ववेदके अङ्ग-षड्ज, ऋषभ, गान्धार आदि सातों स्वर तथा सौवीरी, हरिणास्या, कलोपनता, शाङ्गी, उत्तर-मन्द्रा, शुद्ध षड्जा आदि मूर्च्छनाओंका विवरण है। इसी अध्यायमें स्वर, ग्राम एवं मूर्च्छनाओंके इन्द्रादि देवता भी निरूपित हैं। इसके ८७वें अध्यायमें संगीतके ३०० अलंकारोंका भी वर्णन हुआ है।

वायुपुराणके साध्य तथा कर्मकाण्डके भाग बड़े ही उपयोगी हैं। इसमें नीतिके श्लोक, भारतका प्राचीन इतिहास बड़े सुन्दर एवं सुव्यवस्थित ढंगसे यत्र-तत्र क्रमबद्ध-रूपमें दृष्टिगोचर होता है। इसे सभी सम्प्रदायके लोग बड़े आदरसे देखते हैं। लौकिक एवं पारमार्थिक दृष्टिकोणसे इसकी उपादेयता अक्षुण्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-आख्यान—

पुराण-वक्ता सूतजी

महाराज पृथुने यज्ञका आयोजन कर रखा था। उसमें सोम-रस निचोड़ा जा रहा था। देवराज इन्द्रको हविर्भाग देना था। ऋत्विजोंसे एक असावधानी यह हो गयी कि इन्द्रके हविर्भागमें बृहस्पतिका हविर्भाग गलतीसे मिल गया एवं इसे ही इन्द्रको अर्पण कर दिया गया। इसी हविसे तेजस्वी सूतकी उत्पत्ति हुई। उनका नाम रोमहर्षण (लोमहर्षण) रखा गया।

शास्त्रोंमें इन्द्रको क्षत्रिय और बृहस्पतिको ब्राह्मण माना गया है। क्षत्रियवर्ण इन्द्रके हविर्भागमें ब्राह्मणवर्ण बृहस्पतिके हविर्भागके सांकर्यसे उत्पन्न रोमहर्षणको लक्षणासे 'सूत' कहा गया है। अभिधासे सूत उसे कहते हैं, जो ब्राह्मण-कन्यामें क्षत्रिय-पुरुषसे उत्पन्न हुआ हो। रोमहर्षणकी उत्पत्तिमें यह वाच्यार्थ इसलिये बाधित है कि अग्निकुण्डमें न तो कोई साक्षात् ब्राह्मणजातीया कन्या थी और न क्षत्रियजातीय पुरुष ही था। इन दोनोंका न तो लौकिक सम्पर्क हुआ था और न रोमहर्षण योनिज ही थे। अग्निसे उत्पन्न होनेके कारण रोमहर्षण अयोनिज थे।

रोमहर्षणने व्याससे शिक्षा-दीक्षा पायी। महर्षि व्यासने रोमहर्षणको अठारहों पुराण पढ़ाये। तीक्ष्ण प्रतिभा होनेके कारण रोमहर्षणने सभी ग्रन्थोंको अविकल कण्ठस्थ कर लिया था। महर्षि व्यास रोमहर्षणपर पुराणोंका भार डालकर इनकी सुरक्षाकी चिन्तासे मुक्त हो गये थे।

'यथा नाम तथा गुणः'—यह लोकोक्ति आगे चलकर रोमहर्षणपर पूर्णतया चरितार्थ हुई। जब वे पुराण सुनाने लगते थे, तब श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। क्षण-क्षणमें उन्हें रोमाञ्च हो आया करता था।

एक बार नैमिषारण्यमें दृषद्वती नदीके तटपर मुनियोंने बारह वर्षोंमें पूर्ण होनेवाले सत्रका आयोजन किया था। इस सत्रमें साठ हजार ऋषि उपस्थित थे। शौनक ऋषि उनके मुखिया थे। ऋषियोंने इस सत्रमें रोमहर्षणजीको आमन्त्रित किया। जब रोमहर्षण वहाँ पधारे तो इन्हें अत्यधिक सम्मान दिया गया। मुनियोंने रोमहर्षणको श्रद्धापूर्वक व्यासके आसनपर बैठाया और वे इनसे श्रद्धाके साथ पुराण सुनने लगे।

रोमहर्षणने मुनियोंको ब्रह्मपुराण, वायुपुराण, ब्रह्माण्ड-पुराण, नारदपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, गरुडपुराण और भागवत-पुराण आदि सुनाये। जब वे ग्यारहवाँ पुराण सुना रहे थे, तब बलरामजीके द्वारा इनकी मृत्यु हो गयी। ऋषियोंको तो सभी पुराण सुनने थे, अतः उन्होंने अवशिष्ट पुराणोंको इनके पुत्र उग्रश्रवासे सुना। 'रौमहर्षणि, सौति' आदि शब्द उग्रश्रवाको रोमहर्षणका पुत्र बतलाते हैं।

(ला० बि० मि०)

परमात्मरूप शिव

ब्रह्माकी रात्रिका अवसान हो रहा था। भगवान् विष्णु शेष-शय्यापर पौढ़े हुए थे। उन्होंने खेल-खेलमें अपनी नाभिसे एक विशाल कमल उत्पन्न किया और उससे मनोविनोद करने लगे। इसी बीच वहाँ ब्रह्मा आ पहुँचे। ब्रह्माने उनसे मीठी वाणीमें पूछा—'आप कौन हैं, जो एकार्णवके बीच इस प्रकार सो रहे हैं?' ब्रह्माके प्रिय वचन सुनकर भगवान् विष्णु शय्यासे उठ बैठे और अपना परिचय देते हुए बोले— 'सृष्टिका निर्माण मेरे हाथोंमें है। अब आप भी अपना परिचय दीजिये और यह भी बतलाइये कि मैं आपका क्या हित करूँ?'

ब्रह्माने कहा—'जैसे सृष्टिके आदिकर्ता आप हैं, वैसे ही मैं भी सृष्टिका आदिकर्ता हूँ। मुझमें ही सब कुछ स्थित है। आप मेरे उदरमें प्रवेश कर सब कुछ देख सकते हैं।'

भगवान् विष्णु उनके मुखमें प्रवेश कर गये। वहाँ उन्होंने अठारह द्वीपों एवं सात सागरोंसे युक्त सातों लोकोंको देखा। इस ऐश्वर्यको देखकर भगवान् विष्णुके मुखसे निकल गया—'इस व्यक्तिकी तपस्याका प्रभाव अद्भुत है।'

ब्रह्माके उदरसे निकलकर भगवान् विष्णुने कहा—'ब्रह्मन्! आप भी मेरे पेटमें घुसकर देखें।' भगवान् विष्णुकी प्रियकर वाणी सुनकर ब्रह्मा उनके उदरमें प्रवेश कर गये। ब्रह्माने भी उन दृश्योंको देखा जिन्हें भगवान् विष्णुने ब्रह्माके उदरमें देखा था। ब्रह्माण्डका इतना विस्तार था कि ब्रह्मा उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर-छोर नहीं पा रहे थे। इधर भगवान् विष्णुने ब्रह्माके निकलनेके सभी द्वार बंद कर दिये। अन्तमें ब्रह्मा सूक्ष्म रूप धारण कर कमलकी नालके द्वारा बाहर आकर कमलपर बैठ गये। उस समय उनका वर्ण कमलके रंगका हो गया था।

इस प्रकार दोनोंने दोनोंके ऐश्वर्यको देखकर यह समझ लिया था कि दोनों ही सृष्टिके मूल कारण हैं। अब यह समझना शेष रह गया था कि दोनोंमें श्रेष्ठ कौन है ? दोनों ही अपनेको श्रेष्ठ ठहरा रहे थे, अतः तनाव बढ़ने लगा।

यहाँ दोनों देव जीवकोटिके हैं। जीव चाहे जितना ऐश्वर्य-सम्पन्न हो जाय, वह मायाके घेरेके भीतर ही रहता है। मायासे परे केवल परमात्मा ही होता है। सूर्यके सम्मुख जैसे छाया नहीं हो पाती, वैसे परमात्माके सम्मुख माया कभी नहीं हो पाती। हाँ, तो ब्रह्मा और विष्णुमें होड़ लग गयी। तब दयालु परब्रह्म परमात्मा उन्हें मायासे ऊपर उठानेके लिये शंकरके रूपमें तीव्र गतिसे उन दोनोंकी ओर बढ़े।

परमात्मामें दयाका सागर लहराता रहता है। जैसे माता अपने बच्चेको गिरते देखकर तुरंत सहारा देनेके लिये दौड़ पड़ती है, वैसे ही परमात्मरूप शंकर भी उन दोनों देवोंको सहारा देनेके लिये दौड़ पड़े थे। तेजीसे चलनेके कारण उनके पैरोंकी चोट खाकर जलकी बड़ी-बड़ी बूँदें आकाशमें उठने लगीं। हवामें भी क्षोभ उत्पन्न हो गया। कभी बहुत गर्म और कभी बहुत ठंडी हवाके झकोरे आने लगे। इस आश्चर्यको देखकर ब्रह्माने विष्णुसे पूछा—'सहसा हवाके ये झकोरे कैसे आने लगे हैं ? मोटी-मोटी बूँदें कहाँसे गिरने लगी हैं ? यह कमल तृण-सा कैसे हिलने लगा है ?'

भगवान् विष्णुने स्नेहसिक्त वाणीमें कहा—'भगवान् शंकर आ रहे हैं। उनके आगमनसे ही ये घटनाएँ घट रही हैं। ये परब्रह्म परमात्मा हैं। आइये, हम दोनों मिलकर इनकी स्तुति करें।' ब्रह्माने कहा—'ईश्वर तो मैं और आप दो ही हैं। यह तीसरा कहाँसे आ गया ?' इतना कहते-कहते ब्रह्माको क्रोध हो आया। भगवान् विष्णुने प्रेमसे समझाते हुए कहा—'ब्रह्मन् ! आप ऐसा न कहें, ये संसारके आदिकारण परमात्मा हैं। ये जीवोंके जीव हैं। ये बीजी हैं और हम-आप बीजयोनि हैं। अतः हमलोगोंको आदरके साथ इनकी स्तुति करनी चाहिये।' भगवान् विष्णुके सान्त्वनामय शब्दोंसे ब्रह्माको ब्रह्मका बोध हो गया। फिर दोनों देवोंने मिलकर शंकरकी स्तुति की, जो 'शार्वस्तव' नामसे प्रसिद्ध हुआ।

अमृत-तुल्य इस स्तुतिको सुनकर परमात्मा सदाशिव बहुत प्रसन्न हुए। जानते हुए भी उन्होंने स्नेह बढ़ानेके लिये पूछा—'आप दोनों कौन हैं ? आप दोनोंमें बहुत ही उत्कृष्ट प्रेम है। उससे मैं बहुत प्रभावित और प्रसन्न हूँ। आप दोनों वरदान माँग लीजिये।' विष्णुके सुझानेपर ब्रह्माने वरदान माँगा कि 'आप मेरे पुत्र हों।' भगवान् सदाशिवने कहा—'मैं आपकी इच्छा तब पूर्ण करूँगा, जब आपको सृष्टि-रचनामें सफलता न मिलेगी और आपको क्रोध हो जायगा, तब मैं उस क्रोधसे उत्पन्न होऊँगा। तब मैं प्राणरूप ग्यारहवाँ रुद्र कहलाऊँगा।

भगवान् विष्णुने अपने लिये वरदानमें केवल भक्ति माँगी। उससे भगवान् सदाशिवको बहुत संतोष हुआ। उन्होंने अपना आधा शरीर उन्हें माना। तभीसे वे 'हरिहर' रूपमें पूजे जाते हैं।

लोकहितके लिये विषपान

भगवान् शंकरकी गोराई श्वेत रंगकी है। उसमें कण्ठकी नीलिमा बहुत ही भली लगती है। इस नीलिमाका रहस्य महर्षि वसिष्ठको ज्ञात न था। उन्होंने भगवान् कार्तिकेयसे इसके सम्बन्धमें पूछा, तब भगवान् कार्तिकेयने उन्हें इस सम्बन्धका इतिहास सुनाया—

'मैं माँकी गोदमें बैठा था। उस समय पिताजीने मेरी माताजीको अपने कण्ठकी नीलिमाका रहस्य सुनाया था—समुद्रका मन्थन हो रहा था। अमृत निकलनेके पहले उल्वण-विष निकला। उसकी लपट न सह सकनेके कारण जितने दैत्य और देवता थे, वे सभी जिसे जिधर मार्ग मिला उधर भाग खड़े हुए। वे हाँफते हुए ब्रह्माके पास पहुँचे। ब्रह्माने उन्हें भयभीत देखकर पूछा—'आपलोग घबराये हुए क्यों हैं ? आप तो बलवान् हैं, वीर हैं, इस तरह घबरायें नहीं।' देवताओंने विषके निकलने और उसके मारक प्रभावकी बात बतायी। ब्रह्माने कहा कि 'उसकी तीक्ष्णताको मैं भी नहीं सह सकता हूँ। केवल सदाशिव ही इसका प्रतीकार कर सकते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बाद ब्रह्माने शंकरकी स्तुति की। भगवान् शंकर वहाँ प्रकट हो गये। उन्होंने ब्रह्मासे पूछा—'मैं तुम्हारा क्या हित करूँ? ब्रह्माने विषकी भयानकतासे लोकके संरक्षणकी माँग की। भगवान् शंकरने तत्क्षण विषको उठाकर पी लिया। तभीसे भगवान् शंकरका कण्ठ नीला पड़ गया, किंतु इससे भगवान् सदाशिवके गोरे रंगकी शोभा बढ़ गयी। उस शोभासे ब्रह्माने प्रभावित होकर कहा—

शोभसे त्वं महादेव कण्ठेनानेन सुव्रत ॥

(वायुपु०, पूर्वा० ५४। ९२)

(ला० बि० मि०)

कुवलाश्वके द्वारा जगत्की रक्षा

पूर्वकालमें धुन्धु नामका एक राक्षस हुआ था। वह ब्रह्मासे वरदान पाकर देवताओं, दानवों, दैत्यों, नागों, गन्धर्वों और राक्षसोंके द्वारा अवध्य हो गया था तथा तीनों लोकोंको जीतकर अपने अधीन कर लिया था। वह अहंकारका पुतला था, अतः सदा अमर्षमें भरा रहता और सदा सबको सताया करता था। अन्तमें उसके मनमें एक भयानक विचार उत्पन्न हुआ। वह सारे विश्वका विनाश करनेपर तत्पर हो गया। इसके लिये उसने उज्जालक नामक मरु-प्रदेशमें तपस्या प्रारम्भ कर दी।

उसने अनुयायियोंके साथ बालूके पहाड़को हटाकर और जमीनपर लेटकर अपने ऊपर सारा बालू लाद लिया। फिर प्राणायाम साधकर उसकी कठिन तपस्या प्रारम्भ हुई। इस घोर तपस्याका एकमात्र उद्देश्य था—विश्वका विनाश।

इस तपस्या-कालमें भी उसका सतानेवाला काम रुका नहीं था। वह वर्षके अन्तमें जब साँसें छोड़ता, तब चारों ओर आगके गोले गिरने लगते, भयानक भूचाल आते, सात दिनोंतक सारी पृथ्वी काँपती रहती, सारा आकाश धुएँ और धुंधसे ढक जाता था। इन प्रलयकारी क्रियाओंसे समस्त प्राणी भयभीत रहते थे। बहुतोंकी मृत्यु हो जाती थी।

उत्तङ्क मुनिका आश्रम मारवाड़में था, अतः वह अत्यधिक प्रभावित होता था। उन्होंने विश्वके त्राणके लिये कमर कस ली। वे राजा बृहदश्वके पास पहुँचे। उन्होंने कहा—'राजन्! आप धुन्धुको मार डालिये, नहीं तो वह सारे विश्वका विनाश कर डालेगा। उसे आप ही मार सकते हैं। एक तो आप स्वयं समर्थ हैं, दूसरे मेरी प्रार्थनासे भगवान् विष्णु अपना तेज आपमें आविष्ट कर देंगे।'

उस समय राजा बृहदश्व अपने पुत्र कुवलाश्वको राज्यपर अभिषिक्त कर वन जा रहे थे। उन्होंने उत्तङ्क मुनिसे कहा—'मुनिवर! आपका विचार बहुत उदात्त है। उसका कार्यरूपमें परिणत होना भी आवश्यक है, किंतु वह कार्य अब मेरा पुत्र कुवलाश्व करेगा; क्योंकि मैंने वानप्रस्थ-आश्रमके लिये अस्त्र-शस्त्रका त्याग कर दिया है।'

कुवलाश्वने पिताके इस आदेशको शिरोधार्य कर लिया। उसका मन विश्वके कल्याणकी भावनासे भर गया। उसने पुत्रों और सेनाके साथ युद्धके लिये प्रस्थान कर दिया। उत्तङ्क मुनि भी उसके साथ थे। इस अवसरपर भगवान् विष्णु अपने तेजः-स्वरूपसे कुवलाश्वमें प्रविष्ट हो गये। विश्वमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ पड़ी। बिना बजाये ही देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। आकाशसे फूलोंकी वृष्टि होने लगी। सारा वातावरण दिव्य गन्धसे सिक्त हो गया। वायु अनुकूल होकर बहने लगी।

कुवलाश्व दल-बलके साथ धुन्धुके स्थानपर जा पहुँचे। वहाँ बालूके समुद्रके अतिरिक्त और कुछ दीखता न था। परिश्रमके साथ बालूका वह समुद्र खोदा जाने लगा। सात दिनोंके प्रयासके बाद वह खुदाई पूरी हुई। तब अनुयायियोंके साथ धुन्धु दीख पड़ा। उसका स्वरूप बड़ा विकराल था। कुवलाश्वके पुत्रोंने उसे घेरकर उसपर आक्रमण कर दिया। धुन्धु क्रुद्ध होकर उनके सभी अस्त्र-शस्त्रोंको चबा डाला। तत्पश्चात् उनपर अपने मुखसे प्रलयकालीन अग्निके समान आगके गोले उगलने लगा। थोड़ी ही देरमें कुवलाश्वके इक्कीस हजार पुत्र जलकर खाक हो गये। केवल तीन पुत्र बच गये। यह देख राजा कुवलाश्व धुन्धुपर टूट पड़े। इस बार धुन्धुने अपार जलराशि प्रकट की। महाबली कुवलाश्वने योगबलसे सबका शोषण कर लिया। फिर आग्नेयास्त्रका प्रयोगकर धुन्धुको सदाके लिये सुला दिया। तभीसे कुवलाश्व धुन्धुमार नामसे विख्यात हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तका अद्भुत अवदान

(भक्त गयासुरकी कथा)

कीचसे जैसे कमल उत्पन्न होता है, वैसे ही असुर-जातिसे भी कुछ भक्त उत्पन्न हो जाते हैं। भक्तराज प्रह्लादका नाम प्रसिद्ध है। गयासुर भी इसी कोटिका भक्त था। बचपनसे ही गयका हृदय भगवान् विष्णुके प्रेममें ओतप्रोत रहता था। उसके मुखसे प्रतिक्षण भगवान्के नामका उच्चारण होता रहता था।

गयासुर बहुत विशाल था। उसने कोलाहल पर्वतपर घोर तप किया। हजारों वर्षतक उसने साँस रोक ली, जिससे सारा संसार क्षुब्ध हो गया। देवताओंने ब्रह्मासे प्रार्थना की कि 'आप गयासुरसे हमारी रक्षा करें।' ब्रह्मा देवताओंके साथ भगवान् शंकरके पास पहुँचे। पुनः सभी भगवान् शंकरके साथ विष्णुके पास पहुँचे। भगवान् विष्णुने कहा—'आप सब देवता गयासुरके पास चलें, मैं भी आ रहा हूँ।'

गयासुरके पास पहुँचकर भगवान् विष्णुने पूछा—'तुम किसलिये तप कर रहे हो ? हम सभी देवता तुमसे संतुष्ट हैं, इसलिये तुम्हारे पास आये हुए हैं। वर माँगो।'

गयासुरने कहा—'मेरी इच्छा है कि मैं सभी देव, द्विज यज्ञ, तीर्थ, ऋषि, मन्त्र और योगियोंसे बढ़कर पवित्र हो जाऊँ।' देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक गयासुरको वरदान दे दिया। फिर वे प्रेमसे उसे देखकर और उसका स्पर्श कर अपने-अपने लोकोंमें चले गये। इस तरह भक्तराज गयने अपने शरीरको पवित्र बनाकर प्रायः सभी पापियोंका उद्धार कर दिया। जो उसे देखता और जो उसका स्पर्श करता, उसका पाप-ताप नष्ट हो जाता। इस तरह नरकका दरवाजा ही बंद हो गया।

भगवान् विष्णुने अपने भक्तके पवित्र शरीरका उपयोग सदाके लिये करना चाहा। किसीका शरीर तो अमर रह नहीं सकता। गयके उस पवित्र शरीरके पातके बाद प्राणियोंको उसके शरीरसे वह लाभ नहीं मिलता, अतः भगवान्ने ब्रह्माको भेजकर उसके शरीरको मँगवा लिया। गयासुर अतिथिके रूपमें आये हुए ब्रह्माको पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपने जन्म और तपस्याको सफल माना। ब्रह्माने कहा—'मुझे यज्ञ करना है। इसके लिये मैंने सारे तीर्थोंको ढूँढ़ डाला, परंतु मुझे ऐसा कोई तीर्थ नहीं प्राप्त हुआ जो तुम्हारे शरीरसे बढ़कर पवित्र हो, अतः यज्ञके लिये तुम अपना शरीर दे दो।' यह सुनकर गयासुर बहुत प्रसन्न हुआ और वह कोलाहल पर्वतपर लेट गया।

ब्रह्मा यज्ञकी सामग्रीके साथ वहाँ पधारे। प्रायः सभी देवता और ऋषि भी वहाँ उपस्थित हुए। गयासुरके शरीरपर बहुत बड़ा यज्ञ हुआ। ब्रह्माने पूर्णाहुति देकर अवभृथ-स्नान किया। यज्ञका यूप (स्तम्भ) भी गाड़ा गया।

भक्तराज गयासुर चाहते थे कि उसके शरीरपर सभी देवताओंका वास हो। भगवान् विष्णुका निवास गयासुरको अधिक अभीष्ट था, इसलिये उसका शरीर हिलने लगा। जब सभी देवता उसपर बस गये और भगवान् विष्णु गदाधरके रूपमें वहाँ स्थित हो गये, तब भक्तराज गयासुरने हिलना बंद कर दिया। तबसे गयासुर सबका उद्धार करता आ रहा है। यह एक भक्तका विश्वके कल्याणके लिये अद्भुत अवदान है।

(ला० बि० मि०)

ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य

महर्षि याज्ञवल्क्यका शास्त्र-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान अपूर्व है। यज्ञवल्कके वंशज होनेके कारण इनका नाम याज्ञवल्क्य पड़ा। इनके पिताका नाम ब्रह्मा था।

एक बार राजा जनकने यज्ञका आयोजन किया। उस यज्ञमें हजारों ऋषि पधारे। राजा जनकने यह जानना चाहा कि उपस्थित ऋषियोंमें सर्वश्रेष्ठ प्रवचन करनेवाले कौन हैं ? इसके लिये राजाने एक उपाय किया। उन्होंने एक हजार गौओंको गोशालामें रोक लिया। प्रत्येक गायके सींगोंमें दस-दस पाद सुवर्ण बँधे हुए थे। राजाने हाथ जोड़कर ऋषियोंसे कहा—'मैं आपलोगोंकी शरणमें हूँ। आप सब-के-सब महान् हैं। मैं चाहता हूँ कि आपलोगोंमें जो सबसे बड़े ब्रह्मनिष्ठ हों, वे इन गौओंको ले जायँ।' सभी विद्वान् थे, सभी ज्ञानी थे। प्रत्येकने चाहा कि यह धन हमें मिले, किंतु किसी ब्राह्मणका साहस नहीं हुआ। तब महर्षि याज्ञवल्क्यने अपने ब्रह्मचारीको आदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया कि 'इन गौओंको हाँक ले चलो।'

यह सुनकर उपस्थित ब्राह्मणोंमें हलचल मच गयी। सब कह रहे थे कि यह हम सबमें अपनेको ब्रह्मनिष्ठ कैसे कह रहा है? विदेहराज जनकके होता अश्वलने पूछा—'याज्ञवल्क्य! हमलोगोंमें क्या तुम्हीं ब्रह्मनिष्ठ हो?' महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा—'ब्रह्मनिष्ठको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं तो गौओंकी ही इच्छा करता हूँ।' लोगोंमें क्रोधका संचार बढ़ता गया। याज्ञवल्क्यने प्रसन्नताके साथ कहा—'आपलोग क्रोध न करें। जो चाहें, मुझसे प्रश्न करें।'

फिर तो एक ओर सारे ऋषि हो गये और दूसरी ओर अकेले याज्ञवल्क्य। एक-एक कर ऋषियोंने याज्ञवल्क्यसे गहन-से-गहन प्रश्न पूछा। महर्षि याज्ञवल्क्यने सबका सटीक उत्तर दिया। उसके बाद याज्ञवल्क्यजीकी बारी आयी। इन्होंने पृथक्-पृथक् प्रश्न पूछे, किंतु उनमेंसे एकने भी कोई उत्तर नहीं दिया।

उनमें शाकल्य प्रधान थे। वे बहुत क्रुद्ध हुए और बोले—'तुम हमलोगोंको तुच्छ समझकर सब धन अकेले हड़प लेना चाहते हो। मेरे प्रश्नोंका तो उत्तर दो।' महर्षि याज्ञवल्क्यने उनके सभी प्रश्नोंका सटीक उत्तर दिया। याज्ञवल्क्यजी उत्तर देते जाते और शाकल्य भिन्न-भिन्न प्रश्न पूछते जाते। तब याज्ञवल्क्यजीने कहा—'तुमने तो हजारों प्रश्न कर लिये,पर तुम मेरे एक प्रश्नका तो उत्तर दो।' याज्ञवल्क्यजीके उस गहन प्रश्नका समाधान न हो सका, अतः शाकल्य वहीं ढेर हो गये। तब सब लोग डरकर चुप हो गये।

वाद संधाय सम्भाषामें ही होना चाहिये, विगृह्य सम्भाषामें नहीं। शाकल्यको उत्तर पाकर संतुष्ट होकर सत्य वस्तुको मान लेना चाहिये था; क्योंकि वाद सत्य अर्थके बोधके लिये ही होता है। इस कथासे शिक्षा मिलती है कि वादसे जब सत्यका पता लग जाय, तब झट उसे स्वीकार कर लेना चाहिये, भले ही उससे अपना पुराना मत खण्डित होता हो।

जहाँ मन, वहीं हम

सुशील नामके एक ब्राह्मण थे। उनके दो पुत्र थे। बड़ेका नाम था सुवृत्त और छोटेका वृत्त। दोनों युवा थे। दोनों गुणसम्पन्न तथा कई विद्याओंमें विशारद थे। घूमते-घामते दोनों एक दिन प्रयाग पहुँचे। उस दिन थी श्रीकृष्णजन्माष्टमी। इसलिये श्रीबेणीमाधवजीके मन्दिरमें महान् उत्सव था। महोत्सव देखनेके लिये वे दोनों भी निकले। वे लोग सड़कपर निकले ही थे कि बड़े जोरकी वर्षा आ गयी, इसलिये दोनों भाई मार्ग भूल गये। किसी निश्चित स्थानपर उनका पहुँचना कठिन था। अतएव एक तो वेश्याके घरमें चला गया, दूसरा भूलता-भटकता माधवजीके मन्दिरमें जा पहुँचा। सुवृत्त चाहता था कि वृत्त भी उसके साथ वेश्याके यहाँ ही रह जाय, पर वृत्तने इसे स्वीकार नहीं किया। वह माधवजीके मन्दिरमें पहुँचा भी, पर वहाँ पहुँचनेपर उसके संस्कार बदले और वह लगा पछताने। वह मन्दिरमें रहते हुए भी सुवृत्त और वेश्याके ध्यानमें डूब गया। वहाँ भगवान्‌की पूजा हो रही थी। वृत्त उसे सामनेसे ही खड़ा देख रहा था। पर वह वेश्याके ध्यानमें ऐसा तल्लीन हो गया था कि वहाँकी पूजा, कथा, नमस्कार, स्तुति, पुष्पाञ्जलि, गीत-नृत्यादिको देखते-सुनते हुए भी न देख रहा था और न सुन रहा था। वह तो बिलकुल चित्रके समान वहाँ निर्जीव-सा खड़ा था।

इधर वेश्यालयमें गये सुवृत्तकी दशा विचित्र थी। वह पश्चात्तापकी अग्निमें जल रहा था। वह सोचने लगा—'अरे! आज भैया वृत्तके हजारों जन्मोंके पुण्य उदय हुए जो वह जन्माष्टमीकी रात्रिमें प्रयागमें भगवान् माधवका दर्शन कर रहा है। ओह! इस समय वह प्रभुको अर्घ्य दे रहा होगा। अब वह पूजा-आरतीका दर्शन कर रहा होगा। अब वह नाम एवं कथा-कीर्तनादि सुन रहा होगा। अब तो नमस्कार कर रहा होगा। सचमुच आज उसके नेत्र, कान, सिर, जिह्वा तथा अन्य सभी अङ्ग सफल हो गये। मुझे तो बार-बार धिक्कार है,जो मैं इस पापमन्दिर-वेश्याके घरमें आ पड़ा। मेरे नेत्र मोरके पाँखके समान हैं, जो आज भगवद्दर्शन न कर पाये। मेरे हाथ, जो आज प्रभुके सामने नहीं जुड़े, कलठुलसे भी गये बीते हैं। हाय! आज संत-समागमके बिना मुझे यहाँ एक-एक क्षण युगसे बड़ा मालूम होने लगा है। अरे! देखो तो मुझ दुरात्माके आज कितने जन्मोंके पाप उदित हुए कि प्रयाग-जैसी मोक्षपुरीमें आकर भी मैं घोर दुष्ट-सङ्गमें फँस गया।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह दोनोंके सोचते रात बीत गयी। प्रातःकाल उठकर वे दोनों परस्पर मिलने चले। वे अभी सामने आये ही थे कि वज्रपात हुआ और दोनोंकी तत्क्षण मृत्यु हो गयी। तत्काल वहाँ तीन यमदूत और दो भगवान् विष्णुके दूत आ उपस्थित हुए। यमदूतोंने तो वृत्तको पकड़ा और विष्णुदूतोंने सुवृत्तको साथ लिया। ज्यों ही वे लोग चलनेके लिये तैयार हुए, त्यों ही सुवृत्त घबराया-सा बोल उठा—'अरे ! आपलोग यह कैसा अन्याय कर रहे हैं। कलके पूर्व तो हम दोनों समान थे। पर आजकी रात मैं वेश्यालयमें रहा हूँ और वह वृत्त, मेरा छोटा भाई माधवजीके मन्दिरमें रहकर परम पुण्य अर्जन कर चुका है। अतएव भगवान्के परमधाममें वही जानेका अधिकारी हो सकता है।'

अब भगवान्के दोनों पार्षद ठहाका मारकर हँस पड़े। वे बोले—'हमलोग भूल या अन्याय नहीं करते। देखो, धर्मका रहस्य बड़ा सूक्ष्म तथा विचित्र है। सभी धर्मकर्मोंमें मनःशुद्धि ही मूल कारण है। मनसे भी किया गया पाप दुःखद होता है और मनसे भी चिन्तित धर्म सुखद होता है। आज तुम रातभर शुभचिन्तनमें लगे रहे हो, अतएव तुम्हें भगवद्धामकी प्राप्ति हुई। इसके विपरीत वह आजकी सारी रात अशुभ-चिन्तन ही रहा है, अतएव वह नरक जा रहा है। इसलिये सदा धर्मके ही चिन्तन और मन लगाकर धर्मानुष्ठान करना चाहिये।'

वस्तुतः जहाँ मन है, वहीं मनुष्य है। मन वेश्यालयमें है तो मन्दिरमें रहकर भी मनुष्य वेश्यालयमें है और मन भगवान्में है तो वह चाहे कहीं भी हो, भगवान्में ही है।

सुवृत्तने कहा—'पर जो हो, इस भाईके बिना मेरी भगवद्धाममें जानेकी इच्छा नहीं होती। अन्यथा आपलोग कृपा करके इसे भी यमपाशसे मुक्त कर दें।'

विष्णुदूत बोले—'सुवृत्त ! यदि तुम्हें उसपर दया है तो तुम्हारे गतजन्मके मानसिक माघस्नानका संकल्पित जो पुण्य बच रहा है, उसे तुम वृत्तको दे दो तो यह भी तुम्हारे साथ ही विष्णुलोकको चल सकेगा। सुवृत्तने तत्काल वैसा ही किया और फलतः वृत्त भी हरिधामको अपने भाईके साथ ही चला गया। (वायुपुराण, माघमाहात्म्य, अध्याय २१)

चरणारविन्दोंकी महिमा

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥
त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद् वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

(श्रीमद्भा० ११।५।३३-३४)

प्रभो ! आप शरणागतरक्षक हैं। आपके चरणारविन्द सदा-सर्वदा ध्यान करनेयोग्य, माया-मोहके कारण होनेवाले सांसारिक पराजयोंका अन्त कर देनेवाले तथा भक्तोंकी समस्त अभीष्ट वस्तुओंका दान करनेवाले कामधेनुस्वरूप हैं। वे तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाले स्वयं परम तीर्थस्वरूप हैं, शिव, ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता उन्हें नमस्कार करते हैं और चाहे जो कोई उनकी शरणमें आ जाय, उसे स्वीकार कर लेते हैं। सेवकोंकी समस्त आर्ति और विपत्तिके नाशक तथा संसार-सागरसे पार जानेके लिये जहाज हैं। महापुरुष ! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ। भगवन् ! आपके चरणकमलोंकी महिमा कौन कहे ? रामावतारमें अपने पिता दशरथजीके वचनोंसे देवताओंके लिये भी वाञ्छनीय और दुस्त्यज राज्यलक्ष्मीको छोड़कर आपके चरणकमल वन-वन घूमते फिरे ! सचमुच आप धर्मनिष्ठताकी सीमा हैं। और महापुरुष ! अपनी प्रेयसी सीताजीके चाहनेपर जान-बूझकर आपके चरणकमल मायामृगके पीछे दौड़ते रहे। सचमुच आप प्रेमकी सीमा हैं। प्रभो ! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवत

[अष्टादश महापुराणोंमें पाँचवाँ पुराण भागवत कहा गया है। इस सम्बन्धमें यह प्रश्न उठता है कि इसे 'श्रीमद्भागवत' माना जाय अथवा 'देवीभागवत'। कुछ विद्वान् श्रीमद्भागवतको महापुराणके अन्तर्गत मानते हैं तथा कुछ देवीभागवतको। दोनों ही अपने पक्षके समर्थनमें तर्क और युक्तियाँ भी प्रस्तुत करते हैं, किंतु कुछ भी निर्णय न हो सका है।

तात्त्विक दृष्टिसे जैसे वामाङ्ग एवं दक्षिणाङ्ग मिलकर एक ही महाकायकी पूर्ति करते हैं, वैसे ही प्रमेयबलके आधारपर दोनों भागवत एक ही अद्वयतत्त्वके पूरक हैं। 'भगवतः' 'भगवत्याः' वा इदं भागवतम्'—इस निरुक्तिसे भागवत नाम भगवान् या भगवतीकी भगवत्तामें चरितार्थ होता है। इस कारण श्रीवेदव्यासजीने दोनोंकी महिमामें समान स्वरूप-परिमाणसे एक-एक स्वतन्त्र महापुराणकी रचना कर दी। ये दोनों ही महापुराण हैं, दोनों ही पूज्य हैं, वन्दनीय हैं। यहाँपर दोनोंको ही विवेचित किया जा रहा है। —सम्पादक]

श्रीमद्भागवतपुराण

श्रीमद्भागवत रसमय ग्रन्थ है। यह मानव-जीवनमें अमर रस भर देता है। स्वयं भगवान् व्यासदेवको श्रीमद्भागवतसे पूर्ण संतोष मिला था। इसके पहले महर्षिने महाभारत और सत्रह पुराणोंका निर्माण कर लिया था। फिर भी उनके अन्तरमें कोई कमी खटकती रही। उस कमीकी पूर्ति श्रीमद्भागवतने ही की है। श्रीमद्भागवतकी महिमा बताना सूर्यको दीपक दिखाना है। घर-घरमें भगवत्स्वरूप इस ग्रन्थकी पूजा होती है।

श्रीमद्भागवतका हृदय दशम स्कन्ध है। इसीके पोषणके लिये प्रारम्भके नौ स्कन्ध हैं। एकादश स्कन्धमें भगवान्ने महासंत उद्धवको उपदेश दिया है।

भगवान् विष्णुने सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माजीको पहले चार श्लोकोंमें श्रीमद्भागवतका उपदेश दिया था। इन श्लोकोंमें १. परमात्मतत्त्व, २. मायातत्त्व, ३. जगत्तत्त्व और ४. आत्मतत्त्वका निरूपण हुआ है। इसके बाद भगवान् विष्णुने सम्पूर्ण भागवतकी शिक्षा ब्रह्माजीको दी और इसके महत्त्व भी बतलाये। यदि मनुष्य प्रतिदिन श्रीमद्भागवतका पाठ करता है तो एक-एक अक्षरके उच्चारणसे उसे कपिला गौके दानका फल प्राप्त होता है और संयतचित्तसे यदि कोई एक श्लोकका भी पाठ करता है तो वह अठारह पुराणोंके पाठका फल पा जाता है।

कथा-आख्यान—

महर्षि सौभरिकी जीवन-गाथा

(पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

वासनाका राज्य अखण्ड है। वासनाका विराम नहीं। फल मिलनेपर यदि एक वासनाको हम समाप्त करनेमें समर्थ भी होते हैं तो न जाने कहाँसे दूसरी और उससे भी प्रबलतर वासनाएँ पनप जाती हैं। प्रबल कारणोंसे कतिपय वासनाएँ कुछ कालके लिये लुप्त हो जाती हैं, परंतु किसी उत्तेजक कारणके आते ही वे जाग पड़ती हैं। भला कोई स्वप्नमें भी सोच सकता था कि महर्षि सौभरि काण्वका दृढ़ वैराग्य मीनराजके सुखद गार्हस्थ्य-जीवनको देखकर वायुके एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हलके-से झकोरेसे जड़से उखड़कर भूतलशायी बन जायगा ?

महर्षि सौभरि कण्व-वंशके मुकुट थे,[1] उन्होंने वेद-वेदाङ्गका गुरु-मुखसे अध्ययन कर धर्मका रहस्य भलीभाँति जान लिया था। उनका शास्त्र-चिन्तन गहरा था, परंतु उससे भी अधिक गहरा था उनका जगत्के प्रपञ्चोंसे वैराग्य । जगत्के समग्र विषय-सुख क्षणिक हैं। जब चित्तको उनसे यथार्थ शान्ति नहीं मिल सकती, तब कोई विवेकी पुरुष अपने अनमोल जीवनको इन कौड़ीके तीन विषयोंकी ओर क्यों लगायेगा ? आजका विशाल सुख कल ही अतीतकी स्मृति बन जाता है। जब पलभरमें सुखकी सरिता सूखकर मरुभूमिके विशाल बालूके ढेरके रूपमें परिणत हो जाती है, तब कौन विज्ञ पुरुष इस सरिताके सहारे अपनी जीवन-वाटिकाको हरी-भरी रखनेका उद्योग करेगा ? सौभरिका चित्त इन भावनाओंकी रगड़से इतना चिकना बन गया था कि पिता-माताका विवाह करनेका प्रस्ताव चिकने घड़ेपर जल-बूँदके समान उसपर टिक न सका। उन्होंने बहुत समझाया—'अभी भरी जवानी है, अभिलाषाएँ उमड़ी हुई हैं, तुम्हारे जीवनका यह नया वसंत है, कामना-मञ्जरीके विकसित होनेका उपयुक्त समय है, रसलोलुप चित्त-भ्रमरको इधर-उधरसे हटाकर सरस माधवीके रसपानमें लगाना है। अभी वैराग्यका बाना धारण करनेका अवसर नहीं।' परंतु सौभरिने किसीके शब्दोंपर कान न दिया। उनका कान तो वैराग्यसे भरे, अध्यात्म-सुखसे सने, मंजुल गीतोंको सुननेमें न जाने कबसे लगा हुआ था।

पिता-माताका अपने पुत्रको गार्हस्थ्य-जीवनमें लानेका उद्योग सफल न हो सका। पुत्रके हृदयमें भी देरतक द्वन्द्व मचा रहा। एक बार चित्त कहता—माता-पिताके वचनोंका अनादर करना पुत्रके लिये अत्यन्त हानिकारक है, परंतु दूसरी बार एक विरोधी वृत्ति धक्का देकर सुझाती—'**आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।**' आत्म-कल्याण ही सबसे बड़ी वस्तु ठहरी। गुरुजनोंके वचनों और कल्याण-भावनामें विरोध होनेपर हमें आत्मकल्याणसे पराङ्मुख नहीं होना चाहिये। सौभरि इस अन्तर्युद्धको अपने हृदयके कोनेमें बहुत देरतक छिपा न सके और घरसे सदाके लिये नाता तोड़कर उन्होंने इस युद्धको विराम दिया। महर्षिके जवानीमें ही वैराग्यसे और अकस्मात् घर छोड़नेसे लोगोंके हृदय विस्मित हो उठे।

× × × ×

पवित्र नदीतट था। कल्लोलिनी कालिन्दी कल-कल करती हुई बह रही थी। किनारेपर उगे हुए तमाल-वृक्षोंकी सघन छायामें रंग-बिरंगी चिड़ियोंका चहकना कानोंमें अमृत उँड़ेल रहा था। घने जंगलके भीतर पशु स्वच्छन्द विचरण करते थे और नाना प्रकारके विघ्नोंसे अलग रहकर विशेष सुखका अनुभव करते थे। सायंकाल गोधूलिकी भव्य वेलामें गायें दूधसे भरे थनोंके भारसे झुकी हुई जब मन्द गतिसे दूरके गाँवोंकी ओर जाती थीं, तब यह दृश्य अनुपम आनन्द उत्पन्न करता था। यमुनाकी सतहपर शीतल पवनके हलके झकोरोंसे छोटी-छोटी लहरियाँ उठती थीं और भीतर मछलियोंके झुंड-के-झुंड इधर-से-उधर कूदते हुए स्वच्छन्दताके सुखका अनुभव कर रहे थे। यहाँ था शान्तिका अखण्ड राज्य। इसी एकान्त स्थानको सौभरिने अपनी तपस्याके लिये पसंद किया।

सौभरिके हृदयमें तपस्याके प्रति महान् अनुराग तो था ही, स्थानकी पवित्रता तथा एकान्तताने उनके चित्तको हठात् अपनी ओर खींच लिया। यमुनाके जलके भीतर वे तपस्या करने लगे। भादोंमें भयंकर बाढ़के कारण यमुना-जल बड़े ही वेगसे बढ़ने और बहने लगता, परंतु ऋषिके चित्तमें न तो किसी प्रकारका बढ़ाव था और न किसी प्रकारका बहाव। पूस-माघकी रातोंमें पानी इतना ठंडा हो जाता कि जल-जन्तु भी ठंडके कारण काँपते, परंतु मुनिके शरीरमें जल-शयन करनेपर भी किसी प्रकारकी जडता न आती। वर्षाके साथ-साथ ऐसी ठंडी हवा चलती कि प्राणिमात्रके शरीर सिकुड़ जाते, परंतु ऋषिके शरीरमें तनिक भी सिकुड़न न आती। ऐसी विकट तपस्याका क्रम बहुत वर्षोंतक चलता रहा। सौभरिको वह दिन याद था, जब उन्होंने तपस्याके निमित्त अपने पिताका आश्रम छोड़कर यमुनाका आश्रय लिया था।

१-इस कथाके मूलस्रोतके लिये भागवतपुराणका नवम स्कन्ध, अध्याय ६। ३८-५५ द्रष्टव्य है। महर्षि सौभरि काण्व ऋग्वेदमें भी निर्दिष्ट हैं। वे ऋग्वेदके अष्टम मण्डलके सूक्त १९ से २२—(९९ मन्त्र) के द्रष्टा हैं, इनका उल्लेख निरुक्त ४। १५, बृहद्देवता ६। ५१, कात्यायनसर्वानुक्रमणी ८। १९ तथा नीतिमञ्जरी (पृष्ठ २६०—२६४) में भी उपलब्ध होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय उनकी भरी जवानी थी, परंतु अब ? लम्बी दाढ़ी और मुलायम मूँछोंपर हाथ फेरते समय उन्हें प्रतीत होने लगता कि अब उनकी उम्र ढलने लगी है। जो उन्हें देखता, वही आश्चर्यसे चकित हो जाता। इतनी विकट तपस्या ! शरीरपर इतना नियन्त्रण ! सर्दी-गर्मी सह लेनेकी इतनी अधिक शक्ति ! दर्शकोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहता, परंतु महर्षिके चित्तकी विचित्र दशा थी। वे नित्य यमुनाके श्यामल जलमें मत्स्यराजकी अपनी प्रियतमाके साथ रतिक्रीडा देखते-देखते आनन्दसे विभोर हो जाते। कभी पति अपनी मानवती प्रेयसीके मानभञ्जनके लिये हजारों उपाय करते-करते थक जानेपर आत्मसमर्पणके मोहनमन्त्रके सहारे सफल होता और कभी वह मत्स्यसुन्दरी इठलाती, नाना प्रकारसे अपना प्रेम प्रदर्शन करती, अपने प्रियतमकी गोदका आश्रय लेकर अपनेको कृतकृत्य मानती। झुंड-के-झुंड बच्चे मत्स्य-दम्पतिके चारों ओर अपनी ललित लीलाएँ किया करते और उनके हृदयमें प्रमोद-सरिता बहाया करते।

ऋषिने देखा कि गार्हस्थ्य-जीवनमें बड़ा रस है। पति-पत्नीके विविध रसमय प्रेम-कल्लोल ! बाल-बच्चोंका स्वाभाविक सरल सुखद हास्य ! परंतु उनके जीवनमें रस कहाँ ? रस (जल) का आश्रय लेनेपर भी चित्तमें रसका नितान्त अभाव था। उनकी जीवन-लताको प्रफुल्लित करनेके लिये कभी वसन्त नहीं आया। उनके हृदयकी कलीको खिलानेके लिये मलयानिल कभी न बहा। भला, यह भी कोई जीवन है। दिन-रात शरीरको सुखानेका उद्योग, चित्तवृत्तियोंको दबानेका विफल प्रयास। उन्हें जान पड़ता मानो मछलियोंके छोटे-छोटे बच्चे उनके नीरस जीवनकी खिल्ली उड़ा रहे हैं।

संगतिने सोयी हुई वासनाको जोरोंसे झकझोर कर जगा दिया। वह अपनेको प्रकट करनेके लिये मार्ग खोजने लगी।

× × × ×

तपका उद्देश्य केवल शरीरको नाना प्रकारके साधनोंसे तप्त करना नहीं है, प्रत्युत मनको तप्त करना है। सच्चा तप मनमें जमे हुए कामके कूड़े-करकटको जलाकर राख बना देता है। आगमें तपाये हुए सोनेकी भाँति तपस्यासे तपाया गया चित्त खरा उतरता है। तप स्वयं अग्निरूप है। उसकी साधना करनेपर क्या कभी चित्तमें अज्ञानका अन्धकार अपना घर बना सकता है ? उसकी ज्वाला वासनाओंको भस्म कर देती है और उसका प्रकाश समग्र पदार्थोंको प्रकाशित कर देता है। शरीरको पीड़ा पहुँचाना तपस्याका स्वाँगमात्र है। नहीं तो, क्या इतने दिनोंकी घोर तपस्याके बाद भी सौभरिके चित्तमें प्रपञ्चसे विरति, संसारसे वैराग्य और भगवान्‌के चरणोंमें सच्ची रति न होती ?

वैराग्यसे वैराग्य ग्रहणकर तथा तपस्याको तिलाञ्जलि देकर महर्षि सौभरि प्रपञ्चकी ओर मुड़े और अपनी गृहस्थी जमानेमें जुट गये। विवाहकी चिन्ताने उन्हें कुछ बेचैन कर डाला। गृहिणी घरकी दीपिका है, धर्मकी सहचारिणी है। पत्नीकी खोजमें उन्हें दूर-दूर जाना पड़ा। रत्न खोज करनेपर ही प्राप्त होता है, घरके कोनेमें अथवा दरवाजेपर बिखरा हुआ थोड़े ही मिलता है—**'न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्।'** उस समय महाराज मान्धाताके प्रबल प्रतापके सामने संसारके समस्त नरेश नतमस्तक थे। वे सूर्यवंशके मुकुटमणि महाराज युवनाश्वके पुत्र थे। आर्योंकी सभ्यतासे सदा द्वेष रखनेवाले दस्युओंके हृदयमें इनके नाममात्रसे कम्प उत्पन्न हो जाता था। वे सरयूके तटपर बसी अयोध्या नगरीमें स्थित होकर विश्वके समस्त भू-भागपर शासन करते थे। महर्षिको यमुनातटसे सरयूके तीरपर अयोध्याकी राज्यसभामें सहसा उपस्थित देखकर उन्हें उतना आश्चर्य नहीं हुआ, जितना उनके राजकुमारीसे विवाह करनेके प्रस्तावपर। इस वृद्धावस्थामें इतनी कामुकता ! इनके तो अब दूसरे लोकमें जानेके दिन समीप आ रहे हैं, परंतु आज भी इस लोकमें गृहस्थी जमानेका यह आग्रह ! परंतु सौभरिकी इच्छाका विघात करनेसे भी उन्हें भय मालूम होता था। उनके हृदयमें एक विचित्र द्वन्द्व मच गया। एक ओर तो वे अभ्यागत तपस्वीकी कामना पूर्ण करना चाहते थे, परंतु दूसरी ओर उनका पितृत्व चित्तपर आघात देकर कह रहा था—इस वृद्ध जरद्गवके गलेमें अपनी सुमन-सुकुमार सुताको मत बाँधो। राजाने इन विरोधी वृत्तियोंको बड़ी कुशलतासे अपने चित्तके कोनेमें दबाकर सौभरिके सामने स्वयंवरका प्रस्ताव रखा। उन्होंने कहा—'क्षत्रिय-कुलकी कन्याएँ गुणवान् पतिको स्वयं वरण किया करती हैं। अतः आप मेरे अन्तःपुर-संरक्षकके साथ जाइये। जो कन्या आपको अपना पति बनाना स्वीकार करेगी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका मैं आपके साथ विधिवत् विवाह कर दूँगा।' कञ्चुकी वृद्धको अपने साथ लेकर अन्तःपुरमें चला, परंतु तब उसके कौतुककी सीमा न रही, जब वे वृद्ध अनुपम सर्वाङ्ग-शोभन युवकके रूपमें महलमें दीख पड़े। रास्तेमें ही सौभरिने तपस्याके बलसे अपने रूपको बदल लिया। जो देखता, वही मुग्ध हो जाता। स्निग्ध श्यामल शरीर, ब्रह्मतेजसे चमकता हुआ चेहरा, उन्नत ललाट, अङ्गोंमें यौवनसुलभ स्फूर्ति, नेत्रोंमें विचित्र दीप्ति, जान पड़ता था मानो स्वयं अनङ्ग अङ्ग धारण कर रतिकी खोजमें सजे हुए महलोंके भीतर प्रवेश कर रहा हो। सुकुमारी राजकन्याओंकी दृष्टि इस युवक तापसपर पड़ी। चार आँखें होते ही उनका चित्त-भ्रमर मुनिके रूप-कुसुमकी माधुरी चखनेके लिये विकल हो उठा। पिताका प्रस्ताव सुनना था कि सबने मिलकर मुनिको घेर लिया और एक स्वरसे मुनिको वरण कर लिया। राजाने भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

सरयूके सुन्दर तटपर विवाह-मण्डप रचा गया। महाराज मान्धाताने अपनी पचास पुत्रियोंका विवाह महर्षि सौभरि काण्वके साथ एक साथ पुलकितवदन होकर कर दिया और दहेजमें विपुल सम्पत्ति दी—सत्तर-सत्तर गायोंके तीन झुंड, श्यामवर्ण वृषभ, जो इन सबके आगे-आगे चलता था, अनेक घोड़े, नाना प्रकारके रंग-बिरंगे कपड़े, अनमोल रत्न। गृहस्थ-जीवनको रसमय बनानेवाली समस्त वस्तुओंको एक साथ एक ही जगह पाकर मुनिकी कामनावल्ली लहलहा उठी। इन वस्तुओंसे सज-धजकर रथपर सवार हो मुनि जब यमुना-तटकी ओर आ रहे थे, उस समय रास्तेमें वज्रपाणि भगवान् इन्द्रका देवदुर्लभ दर्शन उन्हें प्राप्त हुआ। ऋषि आनन्दसे गद्गद स्वरमें स्तुति करने लगे—

'भगवन्! आप अनाथोंके नाथ हैं और हमलोग बन्धुहीन ब्राह्मण हैं। आप प्राणियोंकी कामनाओंकी तुरंत पूर्ति करनेवाले हैं। आप सोमपानके लिये अपने तेजके साथ हमारे यहाँ पधारिये।'

स्तुति किसे प्रसन्न नहीं करती। इस स्तुतिको सुनकर देवराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और ऋषिसे आग्रह करने लगे कि 'वर माँगो।' सौभरिने अपने मस्तकको झुकाकर विनयभरे शब्दोंमें कहना आरम्भ किया—'प्रभो! मेरा यौवन सदा बना रहे, मुझमें इच्छानुसार नाना रूप धारण करनेकी शक्ति हो, अक्षय रति हो और इन पचास पत्नियोंके साथ एक ही समय रमण करनेकी सामर्थ्य मुझमें हो जाय। विश्वकर्मा मेरे लिये सोनेके ऐसे महल बना दें, जिनके चारों ओर कल्पवृक्षसे युक्त पुष्प-वाटिकाएँ हों। मेरी पत्नियोंमें किसी प्रकारकी स्पर्धा परस्पर कलह कभी न हो। आपकी दयासे मैं गृहस्थीका पूरा-पूरा सुख उठा सकूँ।'

इन्द्रने गम्भीर स्वरमें कहा—'तथास्तु।' देवताने भक्तकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। भक्तका हृदय आनन्दसे गद्गद हो उठा।

× × × ×

वस्तुके पानेकी आशामें जो आनन्द आता है, वह उसके मिलनेपर नहीं होता। मनुष्य उसे पानेके लिये बेचैन बना रहता है, लाखों चेष्टाएँ करता है, उसकी कल्पनासे ही उसके मुँहसे लार टपकने लगती है, परंतु वस्तुके मिलते ही उसमें विरसता आ जाती है, उसका स्वाद फीका पड़ जाता है, उसकी चमक-दमक जाती रहती है और प्रतिदिनकी गले पड़ी वस्तुओंके ढोनेके समान उसका भी ढोना दूभर हो जाता है। गृहस्थीमें दूरसे आनन्द अवश्य आता है, परंतु गले पड़नेपर उसका आनन्द उड़ जाता है, केवल तलछट शेष रह जाती है।

महर्षि सौभरिके लिये गृहस्थीकी लता हरी-भरी सिद्ध नहीं हुई। बड़ी-बड़ी कामनाओंको हृदयमें लेकर वे इस भवमें उतरे थे, परंतु यहाँ विपदाके जल-जन्तुओंके कोलाहल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखपूर्वक खड़ा होना भी असम्भव हो गया। विचारशील तो वे थे ही। विषय-सुखोंको भोगते-भोगते उन्हें वैराग्य—और अब सच्चा वैराग्य उत्पन्न हो गया। वे सोचने लगे—'क्या यही सुखद जीवन है, जिसके लिये मैंने वर्षोंकी साधनाका तिरस्कार किया है? मुझे धन-धान्यकी कमी नहीं है, गो-सम्पत्ति मेरी अतुलनीय है, भूखकी ज्वालाके अनुभव करनेका अशुभ अवसर मुझे कभी नहीं आया, परंतु मेरे चित्तमें चैन नहीं। कल-कण्ठ कामिनियोंके कोकिल-विनिन्दित स्वरोंने मेरी जीवन-वाटिकामें वसन्त लानेका उद्योग किया, वसन्त आया, पर उसकी सरसता टिक न सकी। बालक-बालिकाओंकी मधुर काकलीने मेरे जीवनोद्यानमें पावसको ले आनेका प्रयत्न किया, परंतु मेरा जीवन सदाके लिये हरा-भरा न हो सका। हृदय-वल्ली कुछ कालके लिये अवश्य लहलहा उठी, परंतु पतझड़के दिन शीघ्र आ धमके, पत्ते मुरझाकर झड़ गये। क्या यही सुखमय गार्हस्थ्य-जीवन है? बाहरी प्रपञ्चमें फँसकर मैंने आत्म-कल्याणको भुला दिया। मानव-जीवनकी सफलता इसीमें है कि योगके द्वारा आत्मदर्शन किया जाय— **'यद्योगेनात्मदर्शनम्'**, परंतु भोगके पीछे मैंने योगको भुला दिया, अनात्माके चक्करमें पड़कर आत्माको बिसार दिया और प्रेयोमार्गका अवलम्बन कर 'श्रेयः'—आत्यन्तिक सुखकी उपेक्षा कर दी। भोगमय जीवन वह भयावनी भूल-भुलैया है, जिसके चक्करमें पड़ते ही हम अपनी राह छोड़ बेराह चलने लगते हैं और अनेक जन्म चक्कर काटनेमें ही बिता देते हैं। कल्याणके मार्गमें जहाँ चलते हैं, घूम-फिरकर पुनः वहीं आ जाते हैं, एक डग भी आगे नहीं बढ़ पाते।

'कच्चा वैराग्य सदा धोखा देता है। मैं समझता था कि इस कच्ची उम्रमें भी मेरी लगन सच्ची है, परंतु मिथुनचारी मत्स्यराजकी संगतिने मुझे इस मार्गमें ला घसीटा। सच्चा वैराग्य हुए बिना भगवान्‌की ओर बढ़ना प्रायः असम्भव-सा ही है। इस विरतिको लानेके लिये साधु-संगति ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। बिना आत्मदर्शनके यह जीवन भार है। अब मैं अधिक दिनोंतक इस बोझको नहीं ढो सकता।'

दूसरे दिन लोगोंने सुना—महर्षि सौभरिकी गृहस्थी उजड़ गयी। महर्षि सच्चे निर्वेदसे यह प्रपञ्च छोड़ जंगलमें चले गये और सच्ची तपस्या करते हुए भगवान्‌में लीन हो गये। जिस प्रकार अग्निके शान्त होते ही उसकी ज्वालाएँ वहीं शान्त हो जाती हैं, उसी प्रकार पतिकी आध्यात्मिक गतिको देखकर पत्नियोंने भी उनकी संगतिसे सद्‌गति प्राप्त की। संगतिका फल बिना फले नहीं रहता। मनुष्यको चाहिये कि वह सज्जनोंकी संगतिका लाभ उठाकर अपने जीवनको धन्य बनावे। दुष्टोंका सङ्ग सदा हानिकारक होता है। विषयी पुरुषके सङ्गमें विषय उत्पन्न न होगा तो क्या वैराग्य उत्पन्न होगा? मनुष्यको आत्मकल्याणके लिये सदा जागरूक रहना चाहिये। जीवनका यही लक्ष्य है। पशु-पक्षीके समान जीना, अपने स्वार्थके पीछे सदा लगे रहना मानवता नहीं है।

द्रौपदीकी क्षमाशीलता

सम्पूर्ण कक्ष एक करुण-चीत्कारसे गूँज उठा। अभी-अभी तो महाभारतयुद्ध समाप्त हुआ है और विजयकी इस वेलामें यह करुण-क्रन्दन? सभी पाण्डवपक्षके वीर पाञ्चाली-के कक्षसे आती चीत्कारकी ओर दौड़ पड़े।

अत्यन्त हृदयविदारक दृश्य! द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंके कटे सिर, चारों ओर रक्त-ही-रक्त! 'द्रौपदी!' धर्मराज इससे अधिक कुछ न बोल सके। जैसे इन तीन अक्षरोंमें ही उनकी समग्र वेदना, आश्चर्य और प्रश्न एक साथ साकार हो उठे हों।

गाण्डीवधारीकी भुजाएँ फड़क उठीं। वे क्रोधावेशमें चीख उठे—'उस दुष्ट अश्वत्थामाके अतिरिक्त इस दुष्कर्मको करने-हेतु बचा ही कौन है? अपने आँसुओंको पोंछ लो देवि! मैं प्रण करता हूँ कि अभी उस दुष्टको तुम्हारे चरणोंमें लाकर पटक दूँगा और उसपर पैर रखकर उसके रक्तसे तुम स्नान करना।'

फिर तो अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णकी सलाहसे उन्हें सारथि बनाकर कवच धारणकर, गाण्डीव धनुषको लेकर रथपर सवार हो अश्वत्थामाके पीछे दौड़ पड़े। निरपराध पाण्डव-पुत्रोंके वधसे श्रीविहीन एवं भयातुर अश्वत्थामा अधिक समयतक अर्जुनके चंगुलसे बच नहीं पाये।

'मधुसूदन! इस दुष्टके साथ,.....'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जुन अभी अपना वाक्य भी पूरा नहीं कर पाये थे कि भगवान् श्रीकृष्णने कुपित होकर कहा—'इस ब्राह्मणाधमका वध ही उचित है। यही तुम्हारी प्रतिज्ञा भी है, इसमें सम्मतिकी क्या आवश्यकता ?'

अपने मृत पुत्रोंके शोकमें संतप्त द्रौपदीने गुरुपुत्र अश्वत्थामाको ज्यों ही कक्षमें रस्सियोंसे बँधे लाते देखा त्यों ही वह उठकर खड़ी हो गयी और अर्जुनके चरणोंमें गिरकर बोली —'प्राणनाथ ! इसे क्षमा-दान दीजिये।'

'बैठ द्रौपदी ! इस दुष्टके वक्षपर मैं तुझे इसके रक्तसे स्नान कराता हूँ।'—अर्जुनने कहा।

द्रौपदीने अपने रुँधे कण्ठसे विनय करना आरम्भ किया। वह अश्वत्थामाको हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए अर्जुनसे बोली—'आर्यपुत्र ! आपने जिनसे श्रेष्ठ युद्ध-कौशलकी शिक्षा प्राप्त की है, उन्हीं पूज्य गुरुदेवके ये पुत्र हैं। ब्राह्मण होनेके कारण भी ये हम क्षत्रियोंद्वारा अवध्य हैं। इनकी माता कृपी तो मात्र पुत्र-प्रेमके कारण ही अपने पतिके मार्गका अनुसरण न कर आजतक जीवित हैं। नाथ ! अश्वत्थामाकी मृत्युसे मेरे पुत्र जीवित तो नहीं होंगे ? आज जिस तरह मैं अपने पुत्रोंके वियोगमें तड़प रही हूँ, कल इनकी माता गौतमी भी पुत्र-वियोगमें न जाने क्या कर बैठें। यदि मैं किसीको सुख न दे सकूँ तो उनके दुःखका कारण तो न बनूँ।'

अर्जुनसहित सभी पाण्डव नारीके इस अद्भुत आदर्शके साश्चर्य देख रहे थे। एक ओर बाँकेविहारी अपनी नित्य शान्त मुद्रामें खड़े थे। वे आगे बढ़कर बोले—'क्या हुआ अर्जुन ! रुक क्यों गये ? उठाओ तलवार !'

अर्जुन श्रीकृष्णके चरणोंमें नत हो गये और बोले—'कन्हैया ! मुझे धर्मसंकटसे उबारिये।'

श्रीकृष्णने परीक्षा लेते हुए कहा—मैं अपनी शास्त्रसम्मत वाणीको पुनः दुहरा रहा हूँ पार्थ !—'पतित ब्राह्मणका वध न करना और आततायीको मौतके घाट उतारना यही धर्म है।'

अर्जुन-जैसे गीता-ज्ञान-ग्रहणकर्ताके लिये भगवान् श्रीकृष्णका यह संकेत पर्याप्त था। उन्होंने अश्वत्थामाके मस्तकपर लगी मणि निकाल ली और सिरके बाल मूँड़कर उसे छोड़ दिया। अपमानित ब्राह्मण मृतक ही होता है। अतः ब्राह्मणका बिना वध किये अश्वत्थामाको मृत्युके समान दण्ड देकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा।
एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः॥

(श्रीमद्भा० १।७।५५)

(स्वा० ओं० आ०

पिबत भागवतं रसम् (आलयम्)

एक दिन भगवान् व्यासदेव प्रातःकृत्य सम्पन्न कर सरस्वतीके तटपर बैठे हुए थे। आज उनके हृदयमें और दिनोंकी तरह प्रफुल्लता न थी। कोई कमी हृदयको कुरेद रही थी। वे सोचने लगे कि जनहितके लिये मैंने वेदोंको शाखाओंमें बाँट दिया है और अबतक सत्रह पुराणों और महाभारतकी रचना कर दी है। फिर भी मेरा मन असंतुष्ट क्यों है ? वह कौन-सी कमी रह गयी है, जिसकी पूर्तिके लिये अन्तःकरण अकुला रहा है ?

उन्हें भान हुआ कि मैंने परमहंसोंके प्रिय धर्मोंका प्रायः निरूपण नहीं किया, इसीसे यह बेचैनी है। ब्रह्म रसरूप है, अतः रसरूपमें उसका वर्णन भी अपेक्षित है। ठीक इसी अवसरपर महाभागवत श्रीनारदजी वहाँ आ पधारे। व्यासजी तुरंत उठ खड़े हुए। उन्होंने देवर्षिकी विधिवत् पूजा की। देवर्षिने पूछा—'आप अकृतार्थ पुरुषकी भाँति खिन्न क्यों हैं ?' व्यासजीने कहा—'देवर्षे ! सचमुच मेरा मन संतुष्ट नहीं है। मुझमें जो कमी रह गयी है, कृपया उसे आप बतायें।'

नारदजीने कहा—'आपने धर्म आदि पुरुषार्थोंका जैसा निरूपण किया है, वैसा निरूपण रसरूप ब्रह्मका नहीं किया है। रसके उल्लासके लिये ब्रह्म रसमय लीला करता है। अतः उसका रसमय ही निरूपण करें। इससे आपके हृदयको संतोष हो जायगा।'

इसके बाद भगवान् व्यासदेवने जिस ग्रन्थकी रचना की, उसीका नाम है—श्रीमद्भागवत। पुष्पिकामें भगवान् व्यासदेवने इसे 'पारमहंसी संहिता' कहा है। श्रीमद्भागवत भगवान्का स्वरूप ही है। भगवान् रस हैं, भागवत भी रस है।

(ला० बि० मि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌का अवतार महान् ज्ञानीमें रसोल्लासके लिये

(महाभागवत श्रीशुकदेवकी कथा)

महाभागवत श्रीशुकदेवजीने भगवान् शंकरकी अमर कथा सुनी थी। इसीलिये माताके गर्भमें ही ये पूर्ण ज्ञानसे सम्पन्न हो गये थे। इनका यह ज्ञान जन्मके समय तथा इसके बाद भी अखण्ड बना रहा, क्योंकि इसके लिये इन्होंने अपने पिता श्रीव्यासदेवसे वरदान और भगवान् श्रीकृष्णसे समर्थन प्राप्त कर लिया था। गर्भमें और जन्मसे ही पूर्ण ज्ञान-सम्पन्न होनेका उदाहरण इतिहासमें कम मिलता है। यही कारण है कि वायुपुराणमें इन्हें महातपा, महायोगी और योगशास्त्रका प्रणेता कहा है।

श्रीशुकदेवजी जब माताके गर्भसे पृथ्वीपर आये, तब वरदानके फलस्वरूप पूर्ण अद्वैत ज्ञाननिष्ठ थे। न तो उन्हें माता-पिताका ज्ञान था और न अपने-परायेका ही। पैरोंका काम चलना है। उत्पन्न होते ही इन्हें लेकर वे कहीं चल पड़े। पुत्रको इस प्रकार घरसे बाहर निकलते देख पिता उनके पीछे लग गये। उन्होंने पुत्रका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा और कानमें पुत्र-पुत्रकी जोरसे आवाजें भी लगायीं। किंतु अद्वैतनिष्ठके लिये यह सब व्यर्थ था। पुत्रके पैर आगे बढ़ते गये और पिता पीछे-पीछे चलते गये। थोड़ी दूरपर कुछ स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं। उन्होंने श्रीशुकदेवको नंगे देखकर अपने वस्त्र नहीं पहने, किंतु वस्त्र धारण किये हुए व्यासको देखकर झट कपड़े पहन लिये। इस विपरीत व्यवहारको देखकर व्यासजीने उन स्त्रियोंसे इसका कारण पूछा। स्त्रियोंने उत्तरमें कहा—'आपमें तो स्त्री-पुरुषका भेद विद्यमान है, इसलिये हम आपसे लज्जा करती हैं; किंतु आपके पुत्रमें संसारका कोई ज्ञान नहीं है। फिर स्त्री-पुरुषका ही ज्ञान कैसे होगा ? आपके पुत्रकी अनुपस्थितिमें जैसा हमारा भाव न लजानेका था वैसा इनकी उपस्थितिमें भी है।'

आगे चलकर पैरोंने श्रीशुकदेवजीको बैठा दिया। वे ठूँठकी तरह निश्चेष्ट बैठ गये। ये केवल आनन्दकी अमन्द धाराओंमें मग्न हो रहे थे। पिताने पुत्रको बहुत झकझोरा, तरह-तरहसे सम्बोधित किया, किंतु इनमें कोई चेष्टा न हुई। पिताका पुत्रपर मोह था, वे चाह रहे थे कि उनका पुत्र उन्हें वात्सल्य प्रदान करे, किंतु यह सम्भव नहीं हो रहा था।

पिता भी तो भगवान्‌की ज्ञानशक्तिके अवतार ठहरे। उन्होंने विचार किया कि ऐसे अद्वैतनिष्ठोंके ब्रह्मानन्दमें उल्लास लानेके लिये ही तो भगवान्‌का अवतार होता है। परमहंसीको श्रीपरमहंस बनानेके लिये ही तो भगवान् अवतार लेते हैं। यह विचार आते ही भगवान् व्यास घर लौट आये। उन्होंने अपने कोमल कण्ठवाले शिष्योंको आदेश दिया कि वे उनके पुत्रके पास जाकर 'बर्हापीडं०'[1] (श्रीमद्भा० १०।२१।५) श्लोकको सस्वर—लयके साथ गायें। शिष्योंने गुरुके आदेशका शीघ्र ही पालन किया। वे उनके पास जाकर इस श्लोकको स्वरके साथ गाने लगे। श्लोकका भाव यह है—'गोपाल कृष्ण वृन्दावनमें प्रवेश कर रहे हैं। उनके सिरपर मोरकी पाँख है। कानोंपर कनेरके पीले-पीले फूल, शरीरपर पीताम्बर और गलेमें सुगन्धित पाँच प्रकारके फूलोंकी बनी हुई वैजयन्तीमाला है। इस तरह उनका सुन्दर वेश अभिनयके लिये सजे हुए अभिनेताकी भाँति मालूम पड़ रहा है। सुन्दरताकी कोई सीमा नहीं है। वे चलते हैं तो मालूम पड़ता है कि मानो सुन्दरता ही बिखरती हुई चल रही है। उनके लाल-लाल ओठ अमृतसे लबालब भरे हुए हैं। वे इस अधरामृतसे मुरलीके छिद्रोंको भर रहे हैं। उनके पीछे-पीछे ग्वाल-बाल मस्तीमें भरे हुए भगवान्‌की लीलाओंको कह-सुन रहे हैं।'

इस श्लोकसे गोपाल कृष्णके असीम सौन्दर्यका मनोरम चित्रण हुआ है। यह श्लोक सुनते ही श्रीशुकदेवजीके शुद्ध हृदयमें गोपाल कृष्णकी सरस छवि मूर्त हो गयी। उसके बाद तो प्रेमानन्दकी इतनी हिलोरें उठने लगीं कि वे नाचने लगे। उन्होंने बच्चोंसे पूछा—'इतना सुन्दर श्लोक तुमने कहाँ सीखा है ? यह श्लोक सुनाकर तुमने मेरा बड़ा कल्याण किया

---

१. बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। मेरे अन्तरके कण-कणमें आनन्दका उल्लास-ही-उल्लास भर दिया है।' शिष्योंने कहा—'तुम एक ही श्लोकमें इतने गद्गद हो गये। हमारे गुरुजीके पास ऐसे-ऐसे अठारह हजार श्लोक हैं। चलकर सुनो।' शुकदेवजी इस रसोल्लाससे इतने आकृष्ट हुए कि उन्होंने समूचे श्रीमद्भागवतको पितासे पढ़कर कण्ठ कर लिया।

यदि भगवान्‌का अवतार न होता तो श्रीशुकदेव-जी 'परमहंस'को 'श्रीपरमहंस' कौन बनाता ?

श्रीमद्भागवतमें सापेक्षवादका उदाहरण

मनुके वंशमें रेवत नामके एक प्रतापी राजा हो गये हैं। उन्होंने समुद्रके भीतर एक नगरी बसायी थी, जिसका नाम कुशस्थली था। उनके बड़े पुत्रका नाम ककुद्मी था। ककुद्मीकी एक कन्या थी, जो रूप, सौन्दर्य और तेजमें अद्वितीय थी। वह अलौकिक देवाङ्गना-सी प्रतीत होती थी। उससे प्रभावित होकर राजा ककुद्मीने अपने प्रतापी पिताके नामपर कन्याका नाम रेवती रखा था। जब कन्या विवाहके योग्य हुई तो राजा ककुद्मीको ढूँढ़नेपर भी कन्याके अनुरूप कोई वर नहीं मिला। विवश होकर वे अपनी कन्याके साथ ब्रह्माजीके पास गये। उस समय ब्रह्माजीके यहाँ संगीतका कार्यक्रम चल रहा था। राजा अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे। उत्सवके अन्तमें उन्होंने ब्रह्माजीको नमस्कार कर अपना अभिप्राय निवेदन किया।

राजा ककुद्मीकी बात सुनकर ब्रह्माको हँसी आ गयी, बोले—'तुमने रेवतीके वरके लिये जिन लोगोंको चुन रखा था, वे सब-के-सब आज कालके गालमें समा गये हैं। उनके पुत्रों-पौत्रोंकी तो बात ही क्या है। अब उनके गोत्रोंके भी नाम नहीं सुनायी पड़ते। क्योंकि इसके बीच पृथ्वीपर (सत्ताईस) चतुर्युगीका समय बीत चुका है। अब ऐसा करो कि भगवान् बलरामके रूपमें पृथ्वीपर अवतीर्ण हैं, उनसे रेवतीका विवाह कर दो। वे इसके योग्य पति हैं।' राजा ककुद्मी ब्रह्माजीकी आज्ञाको शिरोधार्य कर पृथ्वीपर लौट आये। बलरामजीको कन्या सौंपकर ये कृतार्थ हो गये।

यदि आजका विश्व, विज्ञानके सापेक्षवादसे परिचित नहीं होता तो यह कथा इसकी बुद्धिमें नहीं उतरती। आईंस्टीनने लिखा है कि ५ वर्षका कोई बालक यदि किरणकी गतिवाले विमानपर सवार हो जाय और वह विमान पाँच सौ वर्षतक आकाशमें क्रियाशील रहे और बादमें पृथ्वीपर उतरे तो उस बच्चेकी आयु पाँच वर्षकी ही रहेगी। क्योंकि उस स्थितिमें काल उसपर प्रभाव नहीं-सा डाल पाता है। शांकर-वेदान्तमें बतलाया गया है कि 'ब्रह्म निरपेक्ष है, इसके अतिरिक्त विश्वकी सारी वस्तुएँ सापेक्ष हैं।'

कुसंग परमार्थका बाधक

(असमंजसकी कथा)

राजकुमार असमंजसके पिता महाराज सगर थे। सगर महान् धार्मिक थे, उन्होंने जीवनमें एक बार भी अधर्मका आचरण नहीं किया था। उन्होंने पुत्रकी प्राप्तिके लिये परमसमाधिके द्वारा भगवान्‌की आराधना की थी। इससे प्रसन्न होकर महर्षि और्वने उन्हें दो प्रकारके पुत्र होनेका वरदान दिया। उन्होंने महाराजकी दोनों पत्नियोंको यह वरदान दे दिया कि वे दोनों प्रकारके पुत्रोंमेंसे किसीको अपनी इच्छाके अनुसार चुन लें। पहले वरदानमें हजार पुत्रोंकी प्राप्ति होनी थी। दूसरे वरदानमें एक ही पुत्रकी प्राप्ति थी, किंतु इसीको वंशधर होना था। महारानी सुमतिने हजार पुत्रवाला वरदान माँगा। महाराजकी दूसरी पत्नी केशिनीने दूसरे वरदानको चुना था। केशिनीसे असमंजस हुए, जिनका पुत्र अंशुमान् हुआ, जिन्होंने सगरकी वंश-परम्पराको आगे बढ़ाया।

असमंजस पहले जन्ममें योगकी साधना कर रहे थे। ऊँची स्थिति प्राप्त भी हो गयी थी। सारी सिद्धियाँ उनके वशमें थीं। इस तरह वे परमार्थके पथपर बहुत दूर आगे निकल चुके थे। किंतु कुछ क्षणके कुसंगने उन्हें पथसे च्युत कर दिया था। फलतः भगवान् तो न मिले, दूसरा जन्म लेना पड़ा।

यह बात असमंजसको बचपनसे याद थी। अतः प्रारम्भसे ही ममतासे दूर रहते थे। इस प्रयासमें रहते थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस जन्ममें किसी तरहकी आसक्ति न हो जाय। परिवारका बन्धन कठिन बन्धन होता है। परिवारका कोई सदस्य इनसे स्नेह न करे, इसके लिये कभी-कभी वे पागलपनका भी अभिनय करते थे। कभी-कभी अनुचित कार्य भी कर बैठते थे। खेलते हुए बच्चोंको सरयूमें फेंक देते थे। यह कितना अशोभन कार्य था? परिवारवाले उन्हें त्याग दें, इसके लिये ऐसा कर्म भी असमंजसको करना पड़ा था। इसका परिणाम यह हुआ कि सारी प्रजा और सारा परिवार असमंजससे अप्रसन्न हो गया। पिताको भी पुत्र-स्नेहकी तिलाञ्जलि देनी पड़ी। सबने मिलकर उन्हें घरसे निकाल बाहर कर दिया।

राजकुमार असमंजस यही चाहते थे। वे प्रसन्नतासे धूनी रमाने चल दिये। योगी किसीकी हत्या नहीं करता। असमंजसने वन जानेके पहले सभी बच्चोंको जीवित कर अपने पिताके चरणोंमें डाल दिया। बच्चे प्रसन्न थे। वे राजाका आशीर्वाद लेकर अपने-अपने परिवारमें मिल गये। इस अद्भुत घटनाको देखकर चारों ओर विस्मयकी लहर फैल गयी। असमंजसपर लोगोंका जो आक्रोश था, वह श्रद्धामें बदल गया। पिताके पश्चात्तापकी कोई सीमा न थी, सब लोग असमंजसकी खोजमें जुट गये। लेकिन योगीको कौन पा सकता है? असमंजस भगवान्में युक्त हो गये थे। मानव-जीवनकी यही तो सार्थकता है?

(ला० बि० मि०)

दुःख-दर्दकी माँग

(महामानव रन्तिदेवकी कथा)

महाराज रन्तिदेव मनुके वंशमें उत्पन्न हुए थे, इनके पिताका नाम सुकृति था। महाराज रन्तिदेवमें मानवता कूट-कूट कर भरी हुई थी। ये प्राणिमात्रमें भगवान्को देखा करते थे। सभीके लिये इनके हृदयमें करुणाका सागर सदा लहराता रहता था। दैवयोगसे इनका परिवार भी इन्हींकी तरह उदार बन गया था। परिवारका प्रत्येक सदस्य स्वयं न खा-पीकर दूसरेके खिलानेका ही अभ्यस्त हो गया था। अपने दुःख-दर्दका उन्हें कभी ध्यान न होता था। दूसरेके दुःख-दर्द मिटानेसे ही उन्हें संतोष होता था।

एक बार पूरे परिवारको अड़तालीस दिनतक फाँके लगाने पड़े। किसीको जलतक नहीं मिला था। भूख और प्याससे परिवार काँप रहा था। उनचासवें दिन प्रातःकाल ही खीर-हलवा मिला। ज्यों ही उन लोगोंने भोजन करना चाहा, त्यों ही अतिथिके रूपमें एक ब्राह्मण आ गया। अतिथिको आया देख लोग संतुष्ट हो गये। मानो उनकी भूख-प्यास ही मिट गयी। बड़ी श्रद्धा और आदरसे भोजन कराया गया। ब्राह्मण देवताके चले जानेके बाद बचे हुए अन्नको रन्तिदेवने आपसमें बाँट लिया। ज्यों ही उन्होंने भोजन करना चाहा, त्यों ही एक शूद्र अतिथि आ गया। रन्तिदेवने इस अतिथिको भी पूर्ण संतुष्ट किया, उन्हें मालूम पड़ा कि भगवान्ने ही उनका भोजन कर लिया है। वे भगवान्के स्निग्ध स्मरणमें विभोर हो गये। शूद्र अतिथिके जाते ही वहाँ एक अतिथि और आ गया। उसके पास बहुत कुत्ते थे। उसने कहा—'मैं बहुत भूखा हूँ, मेरे कुत्ते भी बहुत भूखे हैं। कुछ खानेको दीजिये।' रन्तिदेवने जो कुछ बचा था, सब-का-सब उस भूखे अतिथिको दे दिया और भगवन्मय कुत्तों और अतिथिको प्रेमसे प्रणाम किया। अब केवल जल बच रहा था, वह भी केवल एक ही व्यक्तिके पीने भरके लिये था। वे आपसमें बाँट कर पीना ही चाह रहे थे कि एक चाण्डाल आ पहुँचा और कहा 'मैं प्यासा हूँ, मुझे जल दे दीजिये।' चाण्डालकी वाणी करुणासे भरी हुई थी। मारे प्यासके उसके मुखसे बोली नहीं निकल रही थी। उसकी दशा देखकर रन्तिदेवका हृदय दयासे आर्द्र हो गया। उन्होंने भगवान्से प्रार्थना की कि 'भगवन्! मुझे सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित कर दो, जिससे उनका सब दुःख-दर्द मैं ही झेल लूँ और वे सुखी बने रहें।'

जल पीनेसे बेचारेके जीवनकी रक्षा हो गयी। महाराजके भूख-प्यासकी पीड़ा, शिथिलता, दीनता, मोह आदि सब जाते रहे।

मानवताके इतिहासमें यह अनूठी घटना है। इस गाथाको लोक और परलोकमें आज भी लोग आदरसे गाते हैं। महाराज रन्तिदेवने मानवताके मस्तकको ऊँचा किया है। भारतको इससे गर्व है।

(ला० बि० मि०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवन्नाम समस्त पापोंको भस्म कर देता है

(यमदूतोंका नया अनुभव)

कन्नौजके आचारच्युत एवं जातिच्युत ब्राह्मण अजामिलने कुलटा दासीको पत्नी बना लिया था। न्याय-अन्यायसे जैसे भी धन मिले, वैसे प्राप्त करना और उस दासीको संतुष्ट करना ही उसका काम हो गया था। माता-पिताकी सेवा और अपनी विवाहिता साध्वी पत्नीका पालन भी कर्तव्य है, यह बात उसे सर्वथा भूल चुकी थी। उनकी तो उसने खोज-खबर ही नहीं ली। न रहा आचार, न रहा संयम, न रहा धर्म। खाद्य-अखाद्यका विचार गया और करणीय-अकरणीयका ध्यान भी जाता रहा। अजामिल ब्राह्मण नहीं रहा, म्लेच्छप्राय हो गया। पापरत पामर जीवन हो गया उसका और महीने-दो-महीने नहीं पूरा जीवन ही उसका ऐसे ही पापोंमें बीता।

उस कुलटा दासीसे अजामिलके कई संतानें हुईं। पहलेका किया पुण्य सहायक हुआ, किसी सत्पुरुषका उपदेश काम कर गया। अपने सबसे छोटे पुत्रका नाम अजामिलने 'नारायण' रखा। बुढ़ापेकी अन्तिम संतानपर पिताका अपार मोह होता है। अजामिलके प्राण जैसे उस छोटे बालकमें ही बसते थे। वह उसीके प्यार-दुलारमें लगा रहता था। बालक कुछ देरको भी दूर हो जाय तो अजामिल व्याकुल होने लगता था। इसी मोहग्रस्त-दशामें जीवनकाल समाप्त हो गया। मृत्युकी घड़ी आ गयी। यमराजके भयंकर दूत हाथोंमें पाश लिये आ धमके और अजामिलके सूक्ष्म शरीरको उन्होंने बाँध लिया। उन विकराल दूतोंको देखते ही भयसे व्याकुल अजामिलने पास खेलते अपने पुत्रको कातर स्वरमें पुकारा—'नारायण ! नारायण !'

'नारायण !' एक मरणासन्न प्राणीकी कातर पुकार सुनी सदा सर्वत्र अप्रमत्त, अपने स्वामीके जनोंकी रक्षामें तत्पर रहनेवाले भगवत्पार्षदोंने और वे दौड़ पड़े। यमदूतोंका पाश उन्होंने छिन्न-भिन्न कर दिया। बलपूर्वक दूर हटा दिया यमदूतोंको अजामिलके पाससे।

बेचारे यमदूत हक्के-बक्के देखते रह गये। उनका ऐसा अपमान कहीं नहीं हुआ था। उन्होंने इतने तेजस्वी देवता भी नहीं देखे थे। सब-के-सब इन्दीवर-सुन्दर, कमललोचन, रत्नाभरणभूषित, चतुर्भुज, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म लिये, अमित तेजस्वी इन अद्भुत देवताओंसे यमदूतोंका कुछ वश भी नहीं चल सकता था। साहस करके वे भगवत्पार्षदोंसे बोले—'आपलोग कौन हैं ? हम तो धर्मराजके सेवक हैं। उनकी आज्ञासे पापीको उनके समक्ष ले जाते हैं। जीवके पाप-पुण्यके फलका निर्णय तो हमारे स्वामी संयमनी-नाथ ही करते हैं। आप हमें अपने कर्तव्यपालनसे क्यों रोकते हैं ?'

भगवत्पार्षदोंने तनिक फटकार दिया—'तुम धर्मराजके सेवक सही हो, किंतु तुम्हें धर्मका ज्ञान ही नहीं है। जानकर या अनजानमें ही जिसने 'भगवान् नारायण' का नाम ले लिया वह पापी रहा कहाँ ? संकेतसे, हँसीमें, छलसे, गिरनेपर या और किसी भी बहाने लिया गया भगवन्नाम जीवके जन्म-जन्मान्तरके पापोंको वैसे ही भस्म कर देता है, जैसे अग्निकी छोटी चिनगारी सूखी लकड़ियोंकी महान् ढेरको भस्म कर देती है। इस पुरुषने पुत्रके बहाने सही, नाम तो नारायण प्रभुका लिया है, फिर इसके पाप रहे कहाँ ? तुम इस निष्पापको कष्ट देनेकी धृष्टता मत करो।'

यमदूत क्या करते, वे अजामिलको छोड़कर यमलोक आ गये और अपने स्वामीके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उन्होंने उन धर्मराजसे ही पूछा—'स्वामिन्! क्या विश्वका आपके अतिरिक्त भी कोई शासक है ? हम तो पापीको लेने गये थे। उसने अपने पुत्र नारायणको पुकारा, किंतु उसके 'नारायण' कहते ही वहाँ कई तेजोमय सिद्ध पुरुष आ धमके। उन सिद्धोंने आपके पाश तोड़ डाले और हमकी बड़ी दुर्गति की। वे अन्ततः हैं कौन, जो निर्भय आपकी अवज्ञा करते हैं ?'

दूतोंकी बात सुनकर यमराजने हाथ जोड़कर किसी अलक्ष्यको मस्तक झुकाया। वे बोले—'दयामय भगवान् नारायण मेरा अपराध क्षमा करें। मेरे अज्ञानी दूतोंने उनकी अवहेलना की है।' इसके पश्चात् वे दूतोंसे बोले—'सेवको ! समस्त जगत्के जो आदिकारण हैं, सृष्टि-स्थिति-संहार जिनके भ्रूभङ्गमात्रसे होता है, वे भगवान् नारायण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वेश्वर हैं। मैं तो उनका क्षुद्रतम सेवकमात्र हूँ। उन नारायण भगवान्‌के नित्य सावधान पार्षद सदा-सर्वत्र उनके जनोंकी रक्षाके लिये घूमते रहते हैं। मुझसे और दूसरे समस्त संकटोंसे वे प्रभुके जनोंकी रक्षा करते हैं।'

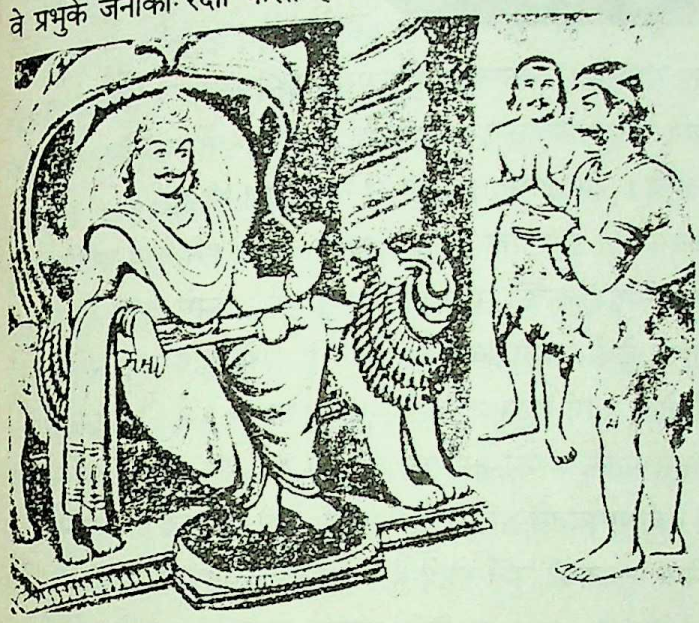

यमराजने बताया—'तुमलोग केवल उसी पापी जीवको लेने जाया करो, जिसकी जीभसे कभी किसी प्रकार भगवन्नाम न निकला हो, जिसने कभी भगवत्कथा न सुनी हो, जिसके पैर कभी भगवान्‌के पावन लीलास्थलोंमें न गये हों अथवा जिसके हाथोंने कभी भगवान्‌के श्रीविग्रहकी पूजा न की हो। यमदूतोंने अपने स्वामीकी यह आज्ञा उसी दिन भलीभाँति रटकर स्मरण कर ली, क्योंकि इसमें प्रमाद होनेका परिणाम वे भोग चुके थे।

यमदूतोंके अदृश्य होते ही अजामिलकी चेतना सजग हुई, किंतु वह कुछ पूछे या बोले, इससे पूर्व ही भगवत्पार्षद भी अदृश्य हो गये। भले भगवत्पार्षद अदृश्य हो जायँ, किंतु अजामिल उनका दर्शन कर चुका था। यदि एक क्षणके कुसङ्गने उसे पापके गड्ढेमें ढकेल दिया था तो एक क्षणके सत्सङ्गने उसे उठाकर ऊपर खड़ा कर दिया। उसका हृदय बदल चुका था। आसक्ति नष्ट हो चुकी थी। अपने अपकर्मोंके लिये घोर पश्चात्ताप उसके हृदयमें जाग्रत् हो गया।

तनिक सावधान होते ही अजामिल उठा। अब जैसे इस परिवार और इस संसारसे उसका कोई सम्बन्ध ही न था। बिना किसीसे कुछ कहे वह घरसे निकला और चल पड़ा। धीरे-धीरे वह हरिद्वार पहुँच गया। वहाँ भगवती पतितपावनी भागीरथीमें नित्य स्नान और उनके तटपर ही आसन लगाकर भगवान्‌का सतत भजन—यही उसका जीवन बन गया।

आयुको तो समाप्त होना ही ठहरा, किंतु जब अजामिलकी आयु समाप्त हुई, वह मरा नहीं। वह तो देह त्यागकर मृत्युके चंगुलसे सदाको छूट गया। भगवान्‌के वे ही पार्षद विमान लेकर पधारे और उस विमानमें बैठकर अजामिल भगवद्धाम चला गया।

कथा-श्रवणसे भगवत्प्राप्ति

य एवमेतां हरिमेधसो हरेः कथां सुभद्रां कथनीयमायिनः।
शृण्वीत भक्त्या श्रवयेत वोशतीं जनार्दनोऽस्याशु हृदि प्रसीदति॥
तस्मिन् प्रसन्ने सकलाशिषां प्रभो किं दुर्लभं ताभिरलं लवात्मभिः।
अनन्यदृष्ट्या भजतां गुहाशयः स्वयं विधत्ते स्वगतिं परः पराम्॥
को नाम लोके पुरुषार्थसारवित् पुराकथानां भगवत्कथासुधाम्।
आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहामहो विरज्येत विना नरेतरम्॥

(मैत्रेयजी कहते हैं)—'विदुरजी! भगवान्‌के लीलामय चरित्र अत्यन्त कीर्तनीय हैं और उनमें लगी हुई बुद्धि सब प्रकारके पाप-तापोंको दूर कर देती है। जो पुरुष उनकी इस मङ्गलमयी मञ्जुल कथाको भक्तिभावसे सुनता या सुनाता है, उसके प्रति भक्तवत्सल भगवान् अन्तस्तलसे बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् तो सभी कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ हैं, उनके प्रसन्न होनेपर संसारमें क्या दुर्लभ है। किंतु उन तुच्छ कामनाओंकी आवश्यकता ही क्या है? जो लोग अनन्यभावसे भजन करते हैं, उन्हें तो वे अन्तर्यामी परमात्मा स्वयं अपना परम पद ही दे देते हैं। अरे! संसारमें पशुओंको छोड़कर अपने पुरुषार्थका सार जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष होगा, जो आवागमनसे छुड़ा देनेवाली भगवान्‌की प्राचीन (पौराणिक) कथाओंमेंसे किसी भी अमृतमयी कथाका अपने कर्णपुटोंसे एक बार पान करके फिर उनकी ओरसे मन हटा लेगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवीभागवतपुराण

पुराणोंके गणना-क्रममें पाँचवाँ महापुराण श्रीमद्भागवत कहा गया है। विकल्पसे कुछ पुराण इसी संख्यापर देवीभागवतक भी ग्रहण करते हैं। इसकी प्रतिपाद्या देवी महामाया हैं। भगवान् वेदव्यासकृत इस महापुराणमें 'सारस्वत' कल्पका पौराणि प्रसङ्ग संगृहीत है। 'देवीभागवत' पुराणवाङ्मयका शिरोमणि-रत्न है। श्रीमद्भागवतके समान यह पुराण भी १८,००० श्लोक युक्त और द्वादश स्कन्धोंमें निबद्ध है। मोक्ष और भोग प्रदान करनेवाले इस महापुराणको महर्षि वेदव्यासने स्वयं परीक्षित्-पु महाराज जनमेजयको सुनाया था। प्रधानतया यह पुराण भगवती पराशक्तिकी महिमापर आधृत है। इसमें अन्य रोचक महत्त्वपूर्ण प्रसङ्गोंका समावेश भी यथावसर आया है। इस पुराणमें देवी भगवतीका जो वर्णन है, उसे हृदयङ्गम करनेके लि अन्य किसी दर्शनकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। भगवती देवी स्वयं परम तत्त्व हैं। (दे० भा० १।२।१९।२०)

शक्तिकी आराधना स्वतः सिद्ध है। जगत्में साधना ही आराधनाके रूपमें अभिव्यक्त होती है। ज्ञान, क्रिया आदि इस विविध रूप हैं। विभिन्न निदर्शनोंके द्वारा ये सारे साधनके रूपमें देवीभागवतमें वर्णित हैं। तत्त्वतः देवी भगवती सच्चिदानन्दम हैं। देवी भगवतीके माध्यमसे इस तत्त्वकी निष्ठाको ग्रहण करनेपर लक्ष्यकी पूर्ति होती है। देवीभागवतपुराणमें स्थान-स्थान देवीके विविध रूपों एवं उनकी आराधनाका विवरण उपलब्ध होता है। मूल प्रकृतिसे आरम्भ होकर यह वर्णन मणिद्वीप देवी भुवनेश्वरीतक पहुँचता है। नवम स्कन्धके प्रथम श्लोकमें देवीके विविध रूपोंमेंसे दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री—इन पाँच रूपोंको प्रधानता दी गयी है। इस पुराणके अन्तिम चार स्कन्धोंमें इनकी विस्तृत कथा है।

गङ्गा, तुलसी, षष्ठी, मङ्गलचण्डिका, काली, स्वाहा, स्वधा, पुष्टि, तुष्टि, सम्पत्ति आदि देवीके ही रूप हैं। इस प्रक देवीभागवतपुराणके अनुसार जगत्में परिदृश्यमान शक्तियोंके रूपमें देवी भगवतीका ही विस्तार है। अतएव इसी दृष्टिसे इस शक्तिके इन विविध रूपोंकी उपासनाका प्रतिपादन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस महापुराणमें अन्य बहुत-से रोचक प्रस एवं आख्यान संकलित हैं। देवीभागवतपुराणके श्रवणमें मास या दिवस आदिका कोई विशेष नियम नहीं है। मनुष्य सर्व इसका श्रवण कर सकते हैं। आश्विन, चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठके महीनों तथा नवरात्रोंमें सुननेसे यह पुराण विशेष फलदाय माना गया है। नवरात्रमें इसका अनुष्ठान करनेपर मनुष्य सभी पुण्य-कर्मोंका फल प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये इसे 'नवाह-य भी कहा गया है। महान् तप, व्रत, तीर्थ, दान, हवन और यज्ञ आदि करनेपर भी मनुष्योंको जो फल दुर्लभ है, वह भी इस सुलभ हो जाता है। महामारी, हैजा आदि भयंकर बीमारियाँ तथा अनेकों उत्पात भी देवीभागवतपुराणके श्रवणमात्रसे ही श हो जाते हैं। इस पुराणका भक्तिपूर्वक श्रवण-मनन करनेसे मनुष्यको अपने लक्ष्यकी प्राप्ति हो जाती है तथा यज्ञ-पूर्ति होने मानव जीवन्मुक्त हो जाता है।

कथा-आख्यान—

सत्यव्रत भक्त उतथ्य

प्राचीन कालमें कोसलदेशमें उतथ्यका जन्म एक विद्वान् ब्राह्मणके घर हुआ था। उसके पिताका नाम देवदत्त एवं माताका नाम रोहिणी था। उतथ्यके आठवें वर्षमें प्रवेश करते ही पिता देवदत्तने शुभ दिन एवं शुभ योग देखकर उसका यज्ञोपवीत-संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न करवाया। समयपर वेदाध्ययनके लिये उतथ्यको गुरुदेवके यहाँ भेजा गया, परंतु वह ऐसा मूर्ख था कि एक शब्द भी उच्चारण नहीं कर सक था। देवदत्तने अपने बालकको कई प्रकारसे पढ़ानेका प्र किया, परंतु सभी व्यर्थ सिद्ध हुए। उतथ्यकी बुद्धि किसी रीतिसे रास्तेपर नहीं आयी।

× × ×

देवदत्तको पूर्वजन्मकी बात स्मरण हो आयी। उस ज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे सभी प्रकारसे सम्पन्न थे, परंतु उनके कोई संतान न थी। इस कारण दम्पतिके मनमें बड़ा दुःख था। पुत्र-प्राप्तिके लिये देवदत्तने विधिपूर्वक पुत्रेष्टि-यागका आयोजन किया। सामवेदके गायक मुनिवर गोभिल यज्ञके उद्गाता थे। वे यज्ञमें स्वरित स्वरसे मन्त्रगान कर रहे थे। बार-बार साँस लेनेसे उनके मन्त्रोच्चारणमें कुछ स्वर-भङ्ग हो गया। स्वर-भङ्ग होते देखकर देवदत्तके मनमें आशङ्का हो गयी कि कहीं मेरी संतान-प्राप्तिकी मनोऽभिलाषामें बाधा न उत्पन्न हो जाय। इस आशङ्काने उनके विवेकको नष्ट कर दिया और वे मुनिवरपर कुपित होकर बोल उठे—'मुनिवर ! आप महान् मूर्ख हैं, मेरे इस सकाम यज्ञमें आपने स्वरहीन मन्त्र क्यों उच्चारण किया ?' यह सुनकर गोभिल मुनि क्रोधाविष्ट हो गये और बोले—'देवदत्त ! तुम्हें शब्दशून्य नितान्त मूर्ख पुत्र प्राप्त होगा। तुमने मुझे अकारण कटु शब्द कहा है। श्वास-प्रश्वास लेते एवं छोड़ते समय यदि स्वरभङ्ग हो जाय तो इसमें मेरा क्या दोष है ?' महात्माकी उपर्युक्त बातें सुनकर देवदत्तको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने सोचा कि वेदहीन मूर्ख पुत्रको लेकर मैं क्या करूँगा। वेदहीन ब्राह्मण शूद्रके समान होता है।

देवदत्त यह भी जानते थे कि वेदज्ञ ब्राह्मण जिसका अन्न खाकर वेदपाठ करते हैं, उसके पूर्वज स्वर्गमें रहकर अत्यन्त आनन्दके साथ क्रीडा करते हैं। मूर्ख ब्राह्मण सभी कर्मकाण्डोंके सम्पादनमें अनधिकारी होता है। यह सब सोच-सोचकर देवदत्त गोभिलजीके चरणोंमें पड़कर क्षमा-याचना करने लगे। देवदत्त बोले—'मुनिवर ! मुझे क्षमा करें, मुझपर प्रसन्न हों, मैं मूर्ख पुत्रको लेकर क्या करूँगा।'

महात्माओंका क्रोध क्षणभरमें शान्त हो जाता है। जलका स्वाभाविक गुण है शीतल रहना। जल आगके संयोगसे भले ही गरम हो जाय, परंतु आगका संयोग हटते ही वह तुरंत शीतल हो जाता है। उसी तरह गोभिल मुनि तुरंत शान्त हो गये एवं प्रसन्न होकर बोले—'देवदत्त ! तुम्हारा पुत्र एक बार मूर्ख भले ही हो, परंतु बादमें वह बहुत बड़ा विद्वान् होगा।'

× × ×

देवदत्तके अथक प्रयासके बाद भी उतथ्यकी मूर्खतामें कोई अन्तर नहीं आया। यहाँतक कि देवदत्त बारह वर्षोंतक उसे पढ़ानेका प्रयास करते रहे, उसके उपरान्त भी उसे संध्या-वन्दन करनेकी विधितक मालूम न हो सकी। धीरे-धीरे सभी लोगोंमें इस बातका प्रचार हो गया कि उतथ्य मूर्ख है। जहाँ कहीं भी वह जाता, लोग उसका उपहास करते। बन्धु-बान्धव, सारी जनता उसकी निन्दा करने लगी। अन्तमें निराश होकर उसके माता-पिता भी उसे कोसते हुए कहने लगे—'यदि उतथ्य अन्धा या पङ्गु रहता तो ठीक था, परंतु मूर्ख पुत्र तो बिलकुल व्यर्थ है।' बन्धु-बान्धवों एवं माता-पिता आदिकी इन सब कटूक्तियोंसे ऊबकर एक दिन उतथ्य वनमें चला गया। जाह्नवीके पावन तटपर एक पवित्र स्थानपर उसने एक कुटिया बना ली और वहीं रहने लगा। वह वनके फल-मूल खाकर अपना जीवन व्यतीत करता था। उसने अपने मन एवं इन्द्रियोंको वशमें करके 'कभी भी झूठ न बोलनेका' उत्तम नियम ले रखा था। इस प्रकार वह उस सुरम्य आश्रममें ब्रह्मचर्यपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगा।

उतथ्य न वेदाध्ययन जानता था, न किसी प्रकारका जप-तप ही। देवताओंके ध्यान एवं आराधनका भी उसे ज्ञान न था। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और भूत-शुद्धि करनेकी विधिसे भी वह बिलकुल अनभिज्ञ था तथा कीलक मन्त्र एवं गायत्री-जप करना भी नहीं सीख पाया था। भोजनके समय प्राणाग्निहोत्र, बलिवैश्वदेव एवं अतिथिबलि और हवन आदिके नियमोंका भी उसे ज्ञान न था। वह प्रातःकाल उठता, दातौन करता और उसके पश्चात् बिना किसी मन्त्रके बोले ही गङ्गाकी पवित्र धारामें स्नान करता था। मध्याह्नकालमें वह जंगलसे फल एकत्र करके ले आता और इच्छानुसार उदरकी पूर्ति कर लेता। अच्छे-बुरे फलोंका भी उसे ज्ञान नहीं था। वह कभी किसीका अहित नहीं करता था और न अनुचित कर्ममें ही उसकी प्रवृत्ति थी। उसमें एक अनुपम दिव्य गुण था कि वह कभी भी असत्य-भाषण नहीं करता था, एक भी मिथ्या शब्द उसके मुखसे नहीं निकलता था—यह उसका अटूट व्रत था, जिसका वह सावधानीसे पालन करता था।

सत्यमें महान् तेज होता है। सदैव सत्य बोलनेसे वाक्-सिद्धि स्वतः ही प्राप्त हो जाती है।

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद्विद्यते परम्।

'सत्य बोलना श्रेष्ठ है, सत्यसे उत्तम और कुछ भी नहीं है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविकारितमं सत्यं सर्ववर्णेषु भारत।
सत्यं सत्सु सदा धर्मः सत्यं धर्मः सनातनः॥
सत्यमेव नमस्येत सत्यं हि परमा गतिः।
सत्यं धर्मस्तपो योगः सत्यं ब्रह्म सनातनम्॥
सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।

'सत्य सभी वर्णोंमें सदा विकाररहित है। सत्पुरुषोंमें सदा सत्य रहता है। सत्य ही सनातन धर्म है। सत्य (रूप ईश्वर ही सबकी) परमगति है, अतएव सत्यको नमस्कार करना चाहिये। धर्म, तप, योग और सनातन ब्रह्म सत्य ही है। सत्य ही श्रेष्ठ यज्ञ कहा गया है। एकमात्र सत्यमें ही सब प्रतिष्ठित है।'

उतथ्यके सत्य बोलनेकी बात चारों ओर फैल गयी। इससे वहाँकी जनताने उसका नाम 'सत्यव्रत' रख दिया। सारी जनतामें उसकी कीर्ति फैल गयी कि यह सत्यव्रत है, कभी भी इसके मुखसे मिथ्या वाणी नहीं निकलती।

उतथ्यके हृदयमें अपने सत्यव्रतका तनिक भी अहंकार नहीं था, प्रत्युत उसके हृदयमें दैन्यताके भाव भरे थे। वह कई बार सोचता—'मुझे तपस्या करनेकी विधि तो मालूम ही नहीं है, फिर मैं कौन-सा श्रेष्ठ साधन करूँ? पूर्वजन्ममें मैंने निश्चय ही कोई अच्छा कार्य नहीं किया, तभी दैवने मुझे मूर्ख बना दिया है।'

एक दिन उतथ्य अपनी कुटियाके बाहर बैठा था। उस समय एक सूकर अत्यन्त भयभीत होकर बड़ी शीघ्रतासे भागता हुआ उसके पास पहुँचा। वह बाणसे बिंधा हुआ था। उसकी देह रुधिरसे लथपथ थी। वह भयसे थर-थर काँप रहा था, अतः दयाका महान् पात्र था। उस दीन हीन पशुपर उतथ्यकी दृष्टि पड़ी। दयाके उद्रेकसे वह काँप उठा। उसके मुखसे 'ऐ' का उच्चारण हो गया।

उतथ्यको यह ज्ञान नहीं था कि 'ऐ' सरस्वती देवीका बीज-मन्त्र है। किसी अदृष्टकी प्रेरणासे शोकमें पड़ जानेसे ही उसके मुखसे यह उच्चारण हुआ था, परंतु उसे सत्यके बलसे वाक्-सिद्धि प्राप्त हो गयी थी। यद्यपि भगवती देवी सरस्वतीके वाग्बीज मन्त्रका शुद्ध उच्चारण 'ऐं' है, परंतु कृपामयी भगवती उतथ्यके 'ऐ' शब्दमात्रके उच्चारणसे ही उसपर प्रसन्न हो गयीं और भगवतीकी कृपासे उसे सम्पूर्ण विद्याएँ स्फुरित हो गयीं।

वह सूकर भागकर एक झाड़ीमें छिप गया। थोड़ी देरमें उसके पीछे-पीछे एक मूर्ख जंगली व्याध दौड़ता हुआ उतथ्य मुनिके पास पहुँचा। उसकी सूरत बड़ी डरावनी थी, जिससे प्रतीत होता था कि वह हिंसा-वृत्तिमें बड़ा निपुण है। वह कानतक बाण खींचे हुए हाथमें धनुष लिये था। उस व्याधने उतथ्य मुनिसे पूछा—'द्विजवर! आप प्रसिद्ध सत्यव्रती हैं। कृपापूर्वक बतायें कि मेरे बाणसे बिंधा हुआ वह सूकर कहाँ गया? मेरा सारा परिवार भूखसे छटपटा रहा है। कुटुम्बका भरण-पोषण करनेका मेरे पास कोई दूसरा साधन नहीं है। यही मेरी वृत्ति है। आप शीघ्र उसे बता दें, अन्यथा भूखसे व्याकुल मेरे बच्चे प्राण त्याग देंगे।'

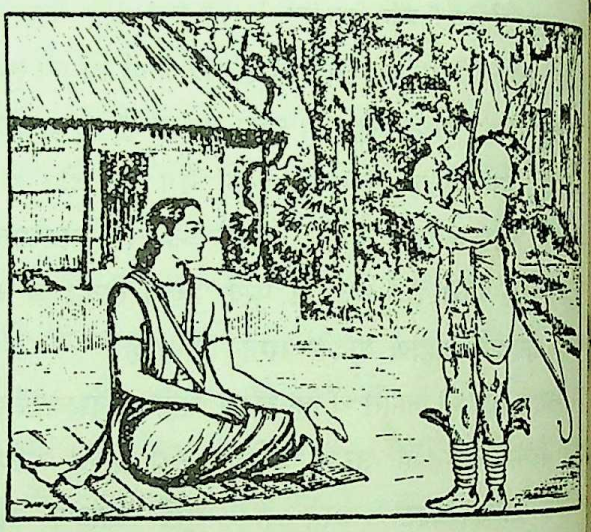

उतथ्य बड़े धर्म-संकटमें पड़ गये। वे जानते थे कि वह सत्य सत्य नहीं है, जिसमें हिंसा भरी हो। यदि दयायुक्त हो तो अनृत भी सत्य ही कहा जाता है। क्या निर्णय करें, वे कुछ समझ नहीं सके।

सत्यं न सत्यं खलु यत्र हिंसा
दयान्वितं चानृतमेव सत्यम्।
हितं नराणां भवतीह येन
तदेव सत्यं न तथान्यथैव॥

उतथ्यका हृदय दयासे ओतप्रोत था। भगवती सरस्वती देवीकी उनपर कृपा हो चुकी थी, तुरंत उनके मनमें स्फुरणा हुई और वे बोले—

या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति।
अहो व्याध स्वकार्यार्थी किं पृच्छसि पुनः पुनः॥

'व्याध! जो आँख देखनेवाली है, वह बोलती नहीं है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो वाणी बोलती है, उसने देखा नहीं, फिर अपना कार्य साधनेकी धुनमें लगे हुए तुम क्यों बार-बार पूछ रहे हो ?'

मुनिवर उतथ्यके यों कहनेपर उस पशुघाती व्याधको निराश होकर खाली हाथ लौटना पड़ा।

तदनन्तर उतथ्यने सारस्वत बीजमन्त्र 'ऐं' का विधिवत् जाप किया। उनका यशोगान एवं उनकी विद्याकी प्रभा चारों ओर फैल गयी। जिन पिताने उन्हें त्याग दिया था, वे ही उन्हें बड़े आदरके साथ घर ले गये। वाल्मीकिजीकी तरह ही उतथ्य मुनि एक महान् कवि बन गये। यह सब सत्यकी महिमा एवं भगवती सरस्वती देवीकी कृपाका फल था। (ह० कृ० दु०)

सुदर्शनपर जगदम्बाकी कृपा

अयोध्यामें भगवान् रामसे १५वीं पीढ़ी बाद ध्रुवसंधि नामके राजा हुए। उनके दो स्त्रियाँ थीं। पट्टमहिषी थी कलिङ्गराज वीरसेनकी पुत्री मनोरमा और छोटी रानी थी उज्जयिनीनरेश युधाजित्की पुत्री लीलावती। मनोरमाके पुत्र हुए सुदर्शन और लीलावतीके शत्रुजित्। महाराजकी दोनोंपर ही समान दृष्टि थी। दोनों राजपुत्रोंका समान रूपसे लालन-पालन होने लगा।

इधर महाराजको आखेटका व्यसन कुछ अधिक था। एक दिन वे शिकारमें एक सिंहके साथ भिड़ गये, जिसमें सिंहके साथ स्वयं भी स्वर्गगामी हो गये। मन्त्रियोंने उनकी पारलौकिक क्रिया करके सुदर्शनको राजा बनाना चाहा। इधर शत्रुजित्के नाना युधाजित्को इस बातकी खबर लगी तो वे एक बड़ी सेना लेकर इसका विरोध करनेके लिये अयोध्यामें आ डटे। उधर कलिङ्गनरेश वीरसेन भी सुदर्शनके पक्षमें आ गये। दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। कलिङ्गाधिपति मारे गये। अब रानी मनोरमा डर गयी। वह सुदर्शनको लेकर एक धाय तथा महामन्त्री विदल्लके साथ भागकर महर्षि भरद्वाजके आश्रममें प्रयाग पहुँच गयी। युधाजित्ने अयोध्याके सिंहासनपर शत्रुजित्को अभिषिक्त किया और सुदर्शनको मारनेके लिये वे भरद्वाजके आश्रमपर पहुँचे; पर मुनिके भयसे वहाँसे उन्हें भागना पड़ा।

एक दिन भरद्वाजके शिष्यगण महामन्त्रीके सम्बन्धमें कुछ बातें कर रहे थे। कुछने कहा कि विदल्ल क्लीब (नपुंसक) है। दूसरोंने भी कहा—'यह सर्वथा क्लीब है।' सुदर्शन अभी बालक ही था। उसने बार-बार जो उनके मुँहसे क्लीब-क्लीब सुना तो स्वयं भी 'क्ली-क्ली' करने लगा। पूर्वपुण्यके कारण वह कालीबीजके रूपमें अभ्यासमें परिणत हो गया। अब वह सोते, जागते, खाते, पीते, 'क्ली-क्ली' रटने लगा। इधर महर्षिने उसके क्षत्रियोचित संस्कारादि भी कर दिये और थोड़े ही दिनोंमें वह भगवती तथा ऋषिकी कृपासे शस्त्र-शास्त्रादि सभी विद्याओंमें अत्यन्त निपुण हो गया। एक दिन वनमें खेलनेके समय उसे देवीकी दयासे अक्षय तूणीर तथा दिव्य धनुष भी पड़ा मिल गया। अब सुदर्शन भगवतीकी कृपासे पूर्ण शक्ति-सम्पन्न हो गया।

इधर काशीमें उस समय राजा सुबाहु राज्य करते थे। उनकी कन्या शशिकला बड़ी विदुषी तथा देवीभक्ता थी। भगवतीने उसे स्वप्नमें आज्ञा दी कि 'तू सुदर्शनको अपने पतिरूपमें वरण कर ले। वह तेरी समस्त कामनाओंको पूर्ण करेगा।' शशिकलाने मनमें उसी समय सुदर्शनको पतिके रूपमें स्वीकार कर लिया। प्रातःकाल उसने अपना निश्चय माता-पिताको सुनाया। पिताने लड़कीको जोरोंसे डाँटा और एक असहाय वनवासीके साथ सम्बन्ध जोड़नेमें अपना अपमान समझा। उन्होंने अपनी कन्याके स्वयंवरकी तैयारी आरम्भ की। उन्होंने उस स्वयंवरमें सुदर्शनको आमन्त्रित भी नहीं किया; पर शशिकला भी अपने मार्गपर दृढ़ थी। उसने सुदर्शनको एक ब्राह्मणद्वारा देवीका संदेश भेज दिया। सभी राजाओंके साथ वह भी काशी आ गया।

इधर शत्रुजित्को साथ लेकर उसके नाना अवन्तिनरेश युधाजित् भी आ धमके थे। प्रयत्न करते रहनेपर भी शशिकलाद्वारा सुदर्शनके मन-ही-मन वरण किये जानेकी बात सर्वत्र फैल गयी थी। इसे भला, युधाजित् कैसे सहन कर सकते थे। उन्होंने सुबाहुको बुलाकर धमकाया। सुबाहुने इसमें अपनेको दोषरहित बतलाया। तथापि युधाजित्ने कहा—'मैं सुबाहुसहित सुदर्शनको मारकर बलात् कन्याका अपहरण करूँगा।' राजाओंको बालक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुदर्शनपर कुछ दया आ गयी। उन्होंने सुदर्शनको बुलाकर सारी स्थिति समझायी और भाग जानेकी सलाह दी।

सुदर्शनने कहा—'यद्यपि न मेरा कोई सहायक है और न मेरे कोई सेना ही है, तथापि मैं भगवतीके स्वप्नगत आदेशानुसार ही यहाँ स्वयंवर देखने आया हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है, वे मेरी रक्षा करेंगी। मेरी न तो किसीसे शत्रुता है और न मैं किसीका अकल्याण ही चाहता हूँ।'

अब प्रातःकाल स्वयंवर-प्राङ्गणमें राजा लोग सज-धजकर आ बैठे तो सुबाहुने शशिकलासे स्वयंवरमें जानेके लिये कहा, पर उसने राजाओंके सामने होना सर्वथा अस्वीकार कर दिया। सुबाहुने राजाओंके अपमान तथा उनके द्वारा उपस्थित होनेवाले भयकी बात कही। शशिकला बोली—'यदि तुम सर्वथा कायर ही हो तो मुझे सुदर्शनके हवाले करके नगरसे बाहर छोड़ आओ।' कोई दूसरा रास्ता भी नहीं था, इसलिये सुबाहुने राजाओंसे तो कह दिया कि 'आपलोग कल स्वयंवरमें आयेंगे, आज शशिकला नहीं आयेगी।' इधर रातमें ही उसने संक्षिप्त विधिसे गुप्तरीत्या सुदर्शनसे शशिकलाका विवाह कर दिया और सबेरा होते ही उन्हें पहुँचाने लगा।

युधाजित्को भी बात किसी प्रकार मालूम हो गयी। वह रास्तेमें अपनी सेना लेकर सुदर्शनको मार डालनेके विचारसे स्थित था। सुदर्शन भी भगवतीका स्मरण करता हुआ वहाँ पहुँचा। दोनोंमें युद्ध छिड़नेवाला ही था कि

भगवती साक्षात् प्रकट हो गयीं। युधाजित्की सेना भाग चली। युधाजित् अपने नाती शत्रुजित्के साथ खेत रहा। पराम्बा जगज्जननीने सुदर्शनको वर माँगनेके लिये प्रेरित किया। सुदर्शनने केवल देवीके चरणोंमें अविरल, निश्चल अनुरागकी याचना की। साथ ही काशीपुरीकी रक्षाकी भी प्रार्थना की।

सुदर्शनके वरदानस्वरूप ही दुर्गाकुण्डमें स्थित हुई पराम्बा दुर्गा वाराणसीपुरीकी अद्यावधि रक्षा कर रही हैं।

तुलसी

पद्म, शिव, स्कन्द आदि पुराणों एवं श्रीमद्देवीभागवतके अनुसार तुलसीका जन्म दक्षसावर्णि मनुके वंशज धर्मध्वजके यहाँ शुभ दिन, योग, करण, लग्न और ग्रहमें कार्तिक पूर्णिमाको हुआ था। वह अपूर्व सुन्दरी थी। अल्पावस्थामें ही तुलसी बदरीवनमें जाकर भगवान् नारायणको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये तपस्या करने लगी। दीर्घकालीन तपस्याके उपरान्त ब्रह्माजीने उसे दर्शन दिया तथा मनोऽभिलषित वर माँगनेको कहा। तुलसीने निवेदन किया कि 'पितामह! यद्यपि आप सर्वज्ञ हैं तथापि मैं अपने मनकी अभिलाषा आपसे कहती हूँ। पूर्वजन्ममें मैं गोपी थी, मुझे भगवान् श्रीकृष्णकी अनुचरी होनेका सौभाग्य प्राप्त था, किंतु एक दिन भगवती राधाने रासमण्डलमें क्रुद्ध हो मुझे मानव-योनिमें उत्पन्न होनेका शाप दे दिया, जिस कारण अब मैं इस भूमण्डलपर उत्पन्न हुई हूँ। सुन्दर विग्रहवाले भगवान् नारायण उस समय मेरे पति थे। उन्हींको मैं अब भी पतिरूपमें प्राप्त करना चाहती हूँ।'

ब्रह्माजीने बताया कि 'सुदामा नामक गोप नारायणका पार्षद श्रीराधिकाजीके शापसे भूमण्डलमें उत्पन्न हुआ है और शंखचूड़ नामसे प्रसिद्ध है। वह भगवान् श्रीकृष्णका ही अंश है, जो तुम्हारा प्रथम पति होगा। तत्पश्चात् भगवान् नारायण तुम्हें पत्नी-रूपमें अङ्गीकार करेंगे।'

तदनुसार वही सुदामा शापवश दनुकुलमें शंखचूड़ नामसे उत्पन्न हुआ। वह महान् योगी था। एक बार वह बदरीवनमें आया। उसे जैगीषव्य मुनिकी कृपासे भगवान् श्रीकृष्णका मनोहर मन्त्र प्राप्त था। ब्रह्माजीने भी उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिलषित वर देकर यहाँ आनेकी आज्ञा दी थी। संयोगवश तुलसीकी दृष्टि उसपर पड़ गयी। दोनों परस्पर वार्तालापमें

संलग्न हुए ही थे कि ब्रह्माजीने प्रकट होकर दोनोंको दाम्पत्य-सूत्रमें बँधनेका आदेश दिया। शंखचूड़ तुलसीसे गान्धर्व-विवाह कर उसे अपने भवनमें ले गया तथा आनन्दपूर्वक रहने लगा।

शंखचूड़ने अपनी धर्मपत्नी परम सुन्दरी तुलसीके साथ दीर्घकालतक राज्य किया। उसका शासन देवता, दानवादि सभी मानते थे, किंतु देवतागण अपना अधिकार छिन जानेसे भिक्षुककी-सी स्थितिमें थे। वे ब्रह्मा तथा शंकरको अग्रणीकर श्रीहरिके पावन धाम वैकुण्ठ गये तथा उनकी स्तुति कर, विनयशील होकर भगवान् श्रीहरिसे सारी परिस्थिति बतायी। सर्वज्ञ भगवान् श्रीहरिने देवताओंको शंखचूड़के जन्मका अद्भुत रहस्य बताया और कहा कि महान् तेजस्वी शंखचूड़ पूर्वजन्ममें मेरा ही अंश एक गोप था, जिसे राधिकाजीके शापके कारण यह योनि मिली है, परंतु अपने समयपर शंखचूड़ पुनः गोलोक चला जायगा।

उन्होंने भगवान् शंकरको शंखचूड़का संहार करनेके लिये एक त्रिशूल प्रदान किया और कहा कि 'शंखचूड़ मेरा मङ्गलमय कवच सदा धारण किये रहता है, जिससे कोई उसे मार नहीं सकता, अतः मैं स्वयं ही ब्राह्मणवेशमें उससे कवचके लिये याचना करूँगा। तब आपके द्वारा इस त्रिशूलके प्रहारसे उसी समय उसकी मृत्यु हो जायगी और तुलसी भी यह शरीर त्यागकर पुनः मेरी पत्नी बन जायगी।'

तदनन्तर देवताओंका अभ्युदय करनेके विचारसे भगवान् महादेवने चन्द्रभागातटपर एक मनोहर वट-वृक्षके नीचे अपना आसन जमाया और गन्धर्वराज चित्ररथको अपना दूत बनाकर शंखचूड़के पास यह संदेश भेजा कि 'या तो दानवराज देवताओंका राज्य और उनके अधिकारको लौटा दें अथवा युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत हों।'

यह संदेश सुनकर शंखचूड़ने दूतसे हँसते हुए कहा—'तुम जाओ, मैं कल प्रातःकाल भगवान् शंकरके पास स्वयं आऊँगा।' इधर भगवान् शंकरकी प्रेरणासे उनके पुत्र कार्तिकेय और भद्रकाली आदि देवियाँ अस्त्र-शस्त्र लिये रणाङ्गणमें पहुँच गयीं। उधर दूतके चले जानेपर शंखचूड़ने अन्तःपुरमें जाकर तुलसीसे युद्ध-सम्बन्धी बातें बतायीं, जिन्हें सुनते ही उसके होठ और तालू सूख गये। शंखचूड़ने उसे समझाया और कहा कि 'कर्मभोगका सारा निबन्ध कालसूत्रमें बँधा है, शुभ, हर्ष, सुख-दुःख, भय, शोक और मङ्गल सभी कालके अधीन हैं। तुम उन्हीं भगवान् श्रीहरिकी शरणमें जाओ, अब तुम्हें वे पति-रूपमें प्राप्त होंगे, जिन्हें पानेके लिये बदरी-आश्रममें तुमने तपस्या की है। मैं भी इस दानव-शरीरका परित्याग कर उसी दिव्यलोकमें चलूँगा। अतः शोक करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।'

तुलसी कुछ आश्वस्त हुई और शंखचूड़, ब्राह्ममुहूर्तमें शय्याको त्यागकर तथा नित्यकर्मको सम्पादित कर एक महारथीको सेनापति-पदपर नियुक्त कर मन-ही-मन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए उत्तम रत्नोंसे बने विमानपर सवार होकर चला और पुष्पभद्रा-नदीके तटपर सुन्दर अक्षयवटके नीचे उसने भगवान् शंकरको देखा। वे योगासन-मुद्रा लगाकर हाथमें त्रिशूल और पट्टिश धारण किये बैठे थे। दानवराज उन्हें देखकर विमानसे उतर पड़ा तथा सबके साथ भगवान् शंकरको उसने सिर झुकाकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। शंकरजीके वाम-भागमें भद्रकाली विराजित थीं और सामने स्वामी कार्तिकेय थे। तीनोंने शंखचूड़को आशीर्वाद दिया।

तब शंखचूड़ने भगवान् शंकरसे कहा कि 'आपको देवताओंका पक्ष लेना उचित नहीं है, आपके लिये हम दोनों समान हैं। हमारा-आपका युद्ध भी आपके लिये लज्जाकी बात होगी। हम विजयी होंगे तो हमारी कीर्ति अधिक फैल जायगी और पराजित होनेपर हमारी कीर्तिमें बहुत थोड़ा ही धब्बा लगेगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंखचूड़की बात सुनकर भगवान् त्रिलोचन हँसने लगे और उससे बोले कि 'या तो तुम देवताओंका राज्य लौटा दो अथवा मेरे साथ लड़नेको तैयार हो जाओ। इसमें लज्जाकी कोई बात नहीं है।' इसपर शंखचूड़ने भगवान् शंकरको प्रणाम किया और अपनी सेनाको युद्धके लिये आज्ञा दे दी। युद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्धमें दानवोंने शंकरदलके बहुतसे वीरोंको परास्त कर दिया। देवता डरकर भाग चले। उसी समय स्वामि-कार्तिकेयने गणोंको ललकारा और वे स्वयं भी दानवोंके साथ लड़ने लगे। दानव-सेना घबरा गयी। तभी शंखचूड़ने विमान-पर चढ़कर भीषण बाण-वर्षा प्रारम्भ कर दी। फिर तो बड़ा भीषण युद्ध हुआ। दानवराजने मायाका आश्रय लेकर बाणोंका जाल फैला दिया। इससे स्वामिकार्तिकेय ढक-से गये। तब अन्तमें भगवान् शंकर स्वयं अपने गणोंके साथ संग्राममें पहुँच गये, जिन्हें देखकर शंखचूड़ने विमानसे उतरकर परम भक्तिके साथ पृथ्वीपर मस्तक टेककर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। तदुपरान्त वह तुरंत रथपर सवार हो गया और भगवान् शंकरसे युद्ध करने लगा। लम्बी अवधितक दोनोंका युद्ध चला, पर कोई किसीसे न जीतता था न हारता था। तभी भगवान् श्रीहरि एक अत्यन्त आतुर बूढ़े ब्राह्मणका वेश धारणकर युद्धभूमिमें आये। उन्होंने शंखचूड़से उसके 'कृष्णकवच' के लिये याचना की, जिसे शंखचूड़ने परम प्रसन्नतापूर्वक उन्हें दे दिया। इसी बीच वे शंखचूड़का रूप धारणकर तुलसीसे भी मिल आये थे। इधर शंकरजीने भगवान् श्रीहरिका दिया हुआ त्रिशूल उठाकर हाथपर आजमाया और उसे शंखचूड़पर चला दिया। शंखचूड़ने भी सारा रहस्य जानकर अपना धनुष धरतीपर फेंक दिया और बुद्धिपूर्वक योगासन लगाकर भक्तिके साथ अनन्यचित्तसे भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलका ध्यान करने लगा। त्रिशूल कुछ समयतक तो चक्कर काटता रहा। तदनन्तर वह शंखचूड़के ऊपर जा गिरा। उसके गिरते ही तुरंत वह दानवेश्वर तथा उसका रथ सभी जलकर भस्म हो गये।

दानव-शरीरके भस्म होते ही उसने एक दिव्य गोपका शरीर धारण कर लिया। इतनेमें अकस्मात् सर्वोत्तम दिव्य मणियोंद्वारा निर्मित एक दिव्य विमान गोलोकसे उतर आया तथा शंखचूड़ उसीपर सवार होकर गोलोकके लिये प्रस्थित हो गया।

शंखचूड़की हड्डियोंसे शङ्खकी उत्पत्ति हुई। वही शङ्ख अनेक प्रकारके रूपोंमें देवताओंकी पूजामें निरन्तर पवित्र माना जाता है, उसके जलको श्रेष्ठ मानते हैं। जो शंखके जलसे स्नान कर लेता है, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका फल प्राप्त होता है। शंख साक्षात् भगवान् श्रीहरिका अधिष्ठान है। जहाँ शंख रहता है अथवा शंखध्वनि होती है, वहाँ भगवान् श्रीहरि भगवती लक्ष्मीसहित सदा निवास करते हैं और अमङ्गल दूरसे ही भाग जाता है।

भगवान् विष्णुने वैष्णवी माया फैलाकर शंखचूड़से कवच ले लिया। फिर शंखचूड़का ही रूप धारण कर वे साध्वी तुलसीके घर पहुँचे। तुलसीने जब जान लिया कि यह शंखचूड़-रूपमें कोई अन्य है, तब तुलसीने पूछा कि 'मायेश! बताओ तो तुम कौन हो? तुमने कपटपूर्वक मेरा सतीत्व नष्ट कर दिया, अतः मैं तुम्हें शाप दूँगी।'

तुलसीके वचन सुनकर शापके भयसे भगवान् श्रीहरिने लीलापूर्वक अपना सुन्दर मनोहर स्वरूप प्रकट कर दिया। देखा तुलसीने अपने सामने उन सनातन प्रभु देवेश्वर श्रीहरिको विराजमान देखा। भगवान् श्रीहरिने कहा—'भद्रे! तुम मेरे लिये बदरीवनमें रहकर बहुत तपस्या कर चुकी हो, अब तुम इस शरीरका त्याग कर दिव्य देह धारण कर मेरे साथ आनन्द करो। लक्ष्मीके समान तुम्हें सदा मेरे साथ रहना चाहिये। तुम्हारा यह शरीर गण्डकी नदीके रूपमें प्रसिद्ध होगा, जो मनुष्योंको उत्तम पुण्य देनेवाली बनेगी। तुम्हारा केशकलाप पवित्र वृक्ष होगा। तुलसीके नामसे ही उसकी प्रसिद्धि होगी। देव-पूजामें आनेवाले त्रिलोकीके जितने पत्र और पुष्प हैं, उन सबमें वह प्रधान मानी जायगी। तुलसी-वृक्षके नीचेके स्थान परम पवित्र होंगे। तुलसीके गिरे पत्ते प्राप्त करनेके लिये समस्त देवताओंके साथ मैं भी रहूँगा।' तुलसी-पत्रके जलसे जिसका अभिषेक हो गया, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नात तथा समस्त यज्ञोंमें दीक्षित समझना चाहिये। हजारों घड़े अमृतसे भगवान् श्रीहरिको जो तृप्ति होती है उतनी ही तृप्ति वे तुलसीके एक पत्तेके चढ़ानेसे प्राप्त करते हैं। दस हजार गोदानसे जो पुण्य होता है, वही फल कार्तिकमासमें तुलसी-पत्र-दानसे सुलभ है। मृत्युके अवसरपर जिसके मुखमें तुलसी-पत्र-जल प्राप्त हो जाता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो भगवान् श्रीविष्णुके लोकका अधिकारी बन जाता है। तुलसीकाष्ठकी मालाको गलेमें धारण करनेवाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद-पदपर अश्वमेध-यज्ञके फलका भागी होता है।

'तुलसी ! तुम्हारे शापको सत्य करनेके लिये मैं 'पाषाण'—शालग्राम बनूँगा। गण्डकी नदीके तटपर मेरा वास होगा।' इस प्रकार देवी तुलसीसे कहकर भगवान् श्रीहरि मौन हो गये। देवी तुलसी अपने शरीरको त्यागकर दिव्य रूपसे सम्पन्न हो भगवान् श्रीहरिके वक्षःस्थलपर लक्ष्मीकी भाँति शोभा पाने लगी। कमलापति भगवान् श्रीहरि उसे साथ लेकर वैकुण्ठ पधार गये। लक्ष्मी, गङ्गा, सरस्वती और तुलसी—ये चार देवियाँ भगवान् श्रीहरिकी पत्नियाँ हुईं। तुलसीकी देहसे गण्डकी नदीकी उत्पत्ति हुई और भगवान् श्रीहरि भी उसीके तटपर मनुष्योंके लिये पुण्यप्रद शालग्राम-पर्वत बन गये।

(का० ना० मे०)

मुनिवर गौतमद्वारा कृतघ्न ब्राह्मणोंको शाप

एक बार इन्द्रने लगातार पंद्रह वर्षोंतक पृथ्वीपर वर्षा नहीं की। इस अनावृष्टिके कारण घोर दुर्भिक्ष पड़ गया। सभी मानव क्षुधा-तृषासे पीड़ित हो एक-दूसरेको खानेके लिये उद्यत थे। ऐसी बुरी स्थितिमें कुछ ब्राह्मणोंने एकत्र होकर यह विचार किया कि 'गौतमजी तपस्याके बड़े धनी हैं। इस अवसरपर वे ही हम सबके दुःखोंको दूर करनेमें समर्थ हैं। वे मुनिवर इस समय अपने आश्रमपर गायत्रीकी उपासना कर रहे हैं। अतः हम सभीको उनके पास चलना चाहिये।'

ऐसा विचार कर वे सभी ब्राह्मण अपने अग्निहोत्रके सामान, कुटुम्ब, गोधन तथा दास-दासियोंको साथ लेकर गौतमजीके आश्रमपर गये। इसी विचारसे अनेक दिशाओंसे बहुतसे अन्य ब्राह्मण भी वहाँ पहुँच गये। ब्राह्मणोंके इस बड़े समाजको उपस्थित देखकर गौतमजीने उन्हें प्रणाम किया और आसन आदि उपचारोंसे उनकी पूजा की। कुशल-प्रश्नके अनन्तर उन्होंने उस सम्पूर्ण ब्राह्मणसमाजसे आगमनका कारण पूछा। तब सम्पूर्ण ब्राह्मणोंने अपना-अपना दुःख उनके सामने निवेदित किया। सारे समाचारको जानकर मुनिने उन सब लोगोंको अभय प्रदान करते हुए कहा—'विप्रो ! यह आश्रम आपलोगोंका ही है। मैं सर्वथा आपलोगोंका दास हूँ। मुझ दासके रहते आपलोगोंको चिन्ता नहीं करनी चाहिये। संध्या और जपमें परायण रहनेवाले आप सभी द्विजगण सुखपूर्वक मेरे यहाँ रहनेकी कृपा करें।' इस प्रकार ब्राह्मण-समाजको आश्वासन देकर मुनिवर गौतमजी भक्ति-विनम्र हो वेदमाता गायत्रीकी स्तुति करने लगे। गौतमजीके स्तुति करनेपर भगवती गायत्री उनके सामने प्रकट हो गयीं।

ऋषि गौतमपर प्रसन्न होकर भगवती गायत्रीने उन्हें एक ऐसा पूर्णपात्र दिया, जिससे सबके भरण-पोषणकी व्यवस्था हो सकती थी। साथ ही मुनिसे कहा—'मुने ! तुम्हें जिस-जिस वस्तुकी इच्छा होगी, मेरा दिया हुआ यह पात्र उसे पूर्ण कर देगा।' यों कहकर श्रेष्ठ कला धारण करनेवाली भगवती गायत्री अन्तर्धान हो गयीं। महात्मा गौतम जिस वस्तुकी इच्छा करते थे, वह देवी गायत्रीद्वारा दिये हुए पूर्णपात्रसे उन्हें प्राप्त हो जाती थी। उस समय मुनिवर गौतमजीने सम्पूर्ण मुनिसमाजको बुलाकर उन्हें प्रसन्नतापूर्वक धन-धान्य, वस्त्राभूषण आदि समर्पित किया। उनके द्वारा गवादि पशु तथा स्रुक्-स्रुवा आदि यज्ञकी सामग्रियाँ, जो सब-की-सब भगवती गायत्रीके पूर्णपात्रसे निकली थीं, आये हुए ब्राह्मणोंको प्राप्त हुईं। तत्पश्चात् सभी लोग एकत्र होकर गौतमजीकी आज्ञासे यज्ञ करने लगे। इस प्रकार भयंकर दुर्भिक्षके समयमें भी गौतमजीके आश्रमपर नित्य उत्सव मनाया जाता था। न किसीको रोगका किंचिन्मात्र भय था न असुरोंके उत्पातादिका ही। गौतमजीका वह आश्रम चारों ओरसे सौ-सौ योजनके विस्तारमें था। धीरे-धीरे अन्य बहुतसे लोग भी वहाँ आये और आत्मज्ञानी मुनिवर गौतमजीने सभीको अभय प्रदान करके उनके भरण-पोषणकी व्यवस्था कर दी। उन ऋषिश्रेष्ठके द्वारा अनेक यज्ञोंके सम्पादित किये जानेपर यज्ञ-भाग पाकर संतुष्ट हुए देवताओंने भी गौतमजीके यशकी पर्याप्त प्रशंसा की।

इस प्रकार मुनिवर गौतमजी बारह वर्षोंतक श्रेष्ठ मुनियोंके भरण-पोषणकी व्यवस्था करते रहे तथापि उनके मनमें कभी लेशमात्र भी अभिमान नहीं हुआ। उन्होंने अपने आश्रममें ही गायत्रीकी आराधनाके लिये एक श्रेष्ठ स्थानका निर्माण करवा दिया था, जहाँ सभी लोग जाकर भगवती जगदम्बा गायत्रीकी उपासना करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार गौतमजीके आश्रममें देवर्षि नारदजी पधारे। वे वीणा बजाकर भगवतीके उत्तम गुणोंका गान कर रहे थे। वहाँ आकर वे पुण्यात्मा मुनियोंकी सभामें बैठ गये। गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियोंने उनका विधिवत् स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् नारदजीने कहा—'मुने ! मैं देवसभामें गया था। वहाँ देवराज इन्द्रने आपकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि मुनिने सबका भरण-पोषण करके विशाल निर्मल यश प्राप्त किया है। भगवती गायत्रीके कृपा-प्रसादसे तुम धन्यवादके पात्र बन गये हो।' ऐसा कहकर देवीकी स्तुति करके नारदजी वहाँसे चले गये।

उस समय वहाँ जितने भी ब्राह्मण थे, मुनिके द्वारा ही उन सबके भरणपोषणकी व्यवस्था होती थी, परंतु उनमेंसे कुछ कृतघ्न ब्राह्मण गौतमजीके इस उत्कर्षको सुनकर ईर्ष्यासे जल उठे। तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद धरापर वृष्टि भी होने लगी और धीरे-धीरे सम्पूर्ण देशमें सुभिक्ष हो गया। तब अपनी जीविकाके प्रति आश्वस्तमना उन द्वेषी ब्राह्मणोंने गौतमजीकी निन्दा एवं उन्हें शाप देनेके विचारसे एक मायाकी गौ बनायी, जो बहुत ही कृशकाय एवं मरणासन्न थी। जिस समय मुनिवर गौतमजी यज्ञशालामें हवन कर रहे थे, उसी क्षण वह गौ वहाँ पहुँची। मुनिने 'हुँ हुँ'—शब्दोंसे उसे वारण किया। इतनेमें ही उस गौके प्राण निकल गये। फिर तो उन दुष्ट ब्राह्मणोंने यह हल्ला मचा दिया कि गौतमने गौकी हत्या कर दी।

मुनिवर गौतमजी भी हवन समाप्त करनेके पश्चात् इस घटित घटनापर अत्यन्त आश्चर्य करने लगे। वे आँखें मूँदकर समाधिमें स्थित हो इसके कारणपर विचार करने लगे। उन्हें तत्काल पता लग गया कि यह सब उन द्वेषी ब्राह्मणोंका ही कुचक्र है। उस समय क्रोधसे भरे हुए प्रलयकालीन रुद्रके समान अत्यन्त तेजस्वी ऋषिवर गौतमने उन द्वेषी ब्राह्मणोंको शाप देते हुए कहा—'अरे अधम ब्राह्मणो ! आजसे तुम सदाके लिय अधम बन जाओ। तुम्हारा वेदमाता गायत्रीके ध्यान और मन्त्र-जपमें कोई अधिकार न हो। आदि दान और पितरोंके श्राद्धसे तुम विमुख हो जाओ। कृच्छ्र, चान्द्रायण तथा प्रायश्चित्तव्रतमें तुम्हारा सदाके लिये अनधिकार हो जाय। तुमलोग पिता, माता, पुत्र, भाई, कन्या एवं भार्याका विक्रय करनेवाले व्यक्तिके समान नीचताको प्राप्त करो। अधम ब्राह्मणो ! वेदका विक्रय करनेवाले तथा तीर्थ एवं धर्म बेचनेमें लगे हुए नीच व्यक्तियोंको जो गति मिलती है, वही तुम्हें प्राप्त हो। तुम्हारे वंशमें उत्पन्न स्त्री एवं पुरुष मेरे दिये हुए शापसे दग्ध होकर तुम्हारे ही समान होंगे। गायत्री-नामसे प्रसिद्ध मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाका अवश्य ही तुमपर महान् कोप है। अतएव तुम अन्धकूपादि नरकोंमें अनन्त कालतक निवास करो।'

इस प्रकार द्वेषी ब्राह्मणोंको वाणीद्वारा दण्ड देनेके पश्चात् गौतमजीने जलसे आचमन किया। तदनन्तर शापसे दग्ध होनेके कारण उन ब्राह्मणोंने जितना वेदाध्ययन किया था, वह सब-का-सब विस्मृत हो गया। गायत्री-महामन्त्र भी उनके लिये अनभ्यस्त हो गया। तब इस भयानक स्थितिको प्राप्त करके वे सब अत्यन्त पश्चात्ताप करने लगे। फिर उन लोगोंने मुनिके सामने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर लेटकर उन्हें प्रणाम किया। लज्जाके कारण उनके सिर झुके हुए थे। वे बार-बार यही कह रहे थे—'मुनिवर ! प्रसन्न होइये।' जब मुनि गौतमको चारों ओरसे घेरकर वे प्रार्थना करने लगे, तब दयालु मुनिका हृदय करुणासे भर गया। उन्होंने उन नीच ब्राह्मणोंसे कहा—'ब्राह्मणो ! जबतक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार नहीं होगा, तबतक तो तुम्हें कुम्भीपाक नरकमें अवश्य रहना पड़ेगा, क्योंकि मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता। इसके बाद तुमलोगोंका भूमण्डलपर कलियुगमें जन्म होगा। हाँ, यदि तुम्हें शाप-मुक्त होनेकी इच्छा है तो तुम सबके लिये यह परम आवश्यक है कि भगवती गायत्रीके चरण-कमलकी सतत उपासना करो, उसीसे कल्याण होगा।

धनकी प्राप्ति या आगम, नित्य नीरोग रहना, स्त्रीका अनुकूल तथा प्रियवादिनी होना, पुत्रका आज्ञाके वशवर्ती होना तथा धन पैदा करनेवाली विद्याका ज्ञान—ये छः बातें इस मनुष्यलोकमें सुखदायिनी हैं।

नीरोग रहना, ऋणी न होना, परदेशमें न रहना, अच्छे लोगोंके साथ मेल होना, अपनी वृत्तिसे जीविका चलाना और निडर होकर रहना—ये छः मनुष्यलोकके सुख हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारदपुराण

भगवान् विष्णुकी भक्तिके माहात्म्यको प्रतिपादित करनेवाले इस पुराणका अठारह महापुराणोंमें एक विशिष्ट स्थान है। वैष्णवोंका यह अतिमान्य ग्रन्थ है। साथ ही इसमें विविध विषय प्रतिपादित हैं, अतः यह अग्निपुराण तथा गरुडपुराणकी तरह विश्वकोष कहलाता है। पुराणोंके पाँचों प्रमुख विषयोंका इसमें सम्यक् रूपसे पालन हुआ है। इस पुराणका ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्व है, क्योंकि इसमें अठारह महापुराणोंके विषयोंकी विस्तृत अनुक्रमणी अठारह अध्यायोंमें (९२ से १०९ अध्यायतक) विस्तारसे दी गयी है, जो सभी पुराणोंके विवेच्य विषयोंको जाननेके लिये अत्यन्त आवश्यक है। इन सूचियोंसे वर्तमानमें उपलब्ध पुराणोंके मूल रूपोंको सरलतासे समझा जा सकता है।

इस पुराणको अन्य पुराणोंकी भाँति नैमिषारण्यमें शौनकादि ऋषियोंके उत्तरमें सूतजीने नहीं कहा है, किंतु नैमिषारण्यमें स्थित शौनकादि ऋषि धर्म आदिके सम्बन्धमें उत्पन्न संदेहकी निवृत्तिके लिये सिद्धाश्रममें अग्निष्टोमयज्ञद्वारा विष्णुका यजन करते हुए सूतजीके पास गये और अपनी शङ्काएँ पूछीं, तब उनकी निवृत्तिके लिये सनत्कुमारादिकोंने देवर्षि नारदसे जिस पुराणका कथन किया था, उसीको सूतजीने कहा। अर्थात् इस पुराणका नाम अन्य पुराणोंके समान वक्ताके नामपर प्रचलित न होकर श्रोताके नामपर प्रचलित है (नार० पू० १।८—३६)।

इस पुराणका नाम नारदपुराण है **'तस्यादिदं नारदनामधेयं पुण्यं पुराणम्'** (नार० पू० १।६४)। यह पुराण पूर्व तथा उत्तर—दो भागोंमें विभक्त है। पूर्वभागमें चार पाद हैं। प्रथम पादमें ४१ अध्याय, द्वितीयमें २१, तृतीयमें २९ तथा चतुर्थ पादमें ३४—इस प्रकार कुल १२५ अध्याय हैं। उत्तरभागका नाम पञ्चम पाद है, जिसमें ८२ अध्याय हैं। दोनों मिलाकर इस पुराणमें २०७ अध्याय हैं। इसकी कुल श्लोक-संख्या पचीस हजार है, किंतु उपलब्ध नारदीय पुराणमें लगभग १८,००० श्लोक हैं, अतः इसका कुछ भाग लुप्त है। पुराणोंके गणनाक्रममें इसका छठा स्थान है, परंतु देवीभागवत (१।३।२) इसे तेरहवाँ पुराण मानता है। मत्स्यपुराण (५३।२३) के अनुसार देवर्षि नारदने बृहत्कल्पकथा-प्रसंगमें जिन धर्मकथाओंका उपदेश किया था, वह नारदीय पुराणका विषय है। स्वयं नारदीय पुराण (९७।१) में जो इस पुराणका लक्षण दिया गया है, उसमें कहा गया है कि बृहत्कल्पमें भगवान् वेदव्यासद्वारा जिस पुराणका उपदेश हुआ, वह नारदीय पुराण कहलाया। उपर्युक्त विवरणोंमें देवर्षि नारदजी कहीं वक्ता कहे गये हैं, कहीं श्रोता। इसमें विरोध प्रतीत होता है, किंतु कल्पभेदकी व्यवस्थासे इसका विरोध-परिहार समझना चाहिये।

वर्तमानमें जो नारदीय पुराण उपलब्ध है, उसमें देवर्षि नारदजी श्रोताके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। सनक, सनन्दन, सनत्कुमार तथा सनातन—ब्रह्माजीके ब्रह्मज्ञानी इन चार मानस पुत्रोंने प्रवृत्ति एवं निवृत्ति-मार्गका जो धर्मोपदेश दिया, वह नारदीय पुराण है। उत्तरभागके श्रोता मान्धाता हैं तथा वक्ता महर्षि वसिष्ठ हैं (नार० पू० ९७।११)। इस पुराण (९७।१—१८) में स्वयंके वर्ण्य-विषयोंकी जो अनुक्रमणी दी गयी है, वह इस प्रकार है—

पूर्वभागमें मुख्यरूपसे सदाचार-महिमा, वर्णाश्रमधर्म, भगवान्की मृकण्डुपुत्ररूपता, गङ्गाकी उत्पत्ति और माहात्म्य, इष्टापूर्तधर्म, शुक्लद्वादशीव्रत, लक्ष्मीनारायणव्रत, हरिपञ्चरात्रव्रत तथा एकादशी आदि व्रत, श्राद्धकृत्य, प्रायश्चित्त, पञ्चमहापातक, उपपातक, भक्ति तथा भक्तके लक्षण, भगवद्भक्ति और उपासनाके माहात्म्यमें यज्ञमालि, सुमालि, गुलिक, लुब्धक और जयध्वज आदिके आख्यान, व्याकरण, निरुक्त तथा छन्दःशास्त्रका विवेचन, ज्योतिषशास्त्रका विस्तृत वर्णन, शुकदेवजीकी उत्पत्ति, शुकदेवजीका राजा जनकके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करना, वेदाङ्गोंका कथन, निवृत्तिधर्म, पाशुपतदर्शन, विविध मन्त्र तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीक्षा-विधि, गायत्रीमन्त्र-जपविधि, संध्या-विधि, षोडशोपचार-देवपूजन, गणेश-मन्त्र, नवग्रहोंके मन्त्र तथा जप-विधि, नृसिंहमन्त्र तथा उपासना-पद्धति, हयग्रीवमन्त्र-पूजा-उपासना, श्रीराममन्त्र-जप-विधि, हनुमन्मन्त्र तथा दीपदान, कार्तवीर्यमन्त्र, दीपदान तथा कवच, हनुमत्कवच तथा हनुमच्चरित्र, कृष्ण-मन्त्र, आराधना, राधाकृष्णसहस्रनाम-स्तोत्र तथा राधा-माहात्म्य, दुर्गादेवी, यक्षिणी, बगलामुखी आदिके मन्त्र तथा कवच, ललितासहस्रनाम-स्तोत्र, कवच, पटल तथा माहात्म्यका विशद विवेचन, महेश्वरमन्त्र तथा मन्त्रोद्धार, गणेश, विष्णु, दुर्गा, शिव, सूर्य, राम, हनुमान् आदि देवोंके मन्त्र, मन्त्रोद्धार, दीक्षाविधि, पूजन-विधि, प्रयोग-विधि, कवच, स्तोत्र, पटल, हृदय तथा सहस्रनाम आदि पञ्चाङ्गोंका विस्तृत वर्णन, अठारह महापुराणोंकी अनुक्रमणिका, दानका माहात्म्य, विविध दानोंका वर्णन, चैत्रादि बारह महीनोंके प्रतिपदासे लेकर पौर्णमासीतकके तिथि-व्रतोंका पृथक्-पृथक् निरूपण तथा पुराणका माहात्म्य प्रतिपादित है।

उत्तरभागमें वैष्णवधर्म, अनुष्ठानपद्धति तथा साम्प्रदायिक दीक्षा-विधानका वर्णन, पाञ्चरात्रोपासना-पद्धति, राजा रुक्माङ्गदका चारु चरित्र और उनकी वैष्णवताका वर्णन है। उसने तो अपने राज्यमें यह घोषणा करवा दी थी कि ८ वर्षसे ८० वर्षतककी अवस्थावालेके लिये एकादशीव्रतका अनुष्ठान तथा वैष्णवाचारका पालन परम आवश्यक है और जो मेरी इस आज्ञाका पालन नहीं करेगा वह दण्डनीय होगा, वध्य होगा तथा राज्यसे निष्कासित कर दिया जायगा—

यो न कुर्याद्वचो मेऽद्य धर्म्यं विष्णुगतिप्रदम्।
स मे दण्ड्यश्च वध्यश्च निर्वास्यो विषयाद्ध्रुवम्॥ (नार० उ० २३।४१)

गङ्गाकी कथा, गया, काशी, पुरुषोत्तमक्षेत्र, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, कामोदा, बदरिकाश्रम, कामाख्या, प्रभास, पुष्कर, गौतम, गोकर्ण, रामेश्वर, अवन्ती, मथुरा तथा वृन्दावन आदि तीर्थोंकी माहात्म्यकथा तथा तीर्थ-यात्रा-विधानकी विस्तृत चर्चा और मोहिनीचरित, इति-कर्त्तव्यता तथा फलश्रुति विवेचित हैं। पुनः भक्तिके माहात्म्यको बताते हुए बतलाया गया है कि भक्ति भगवान्के स्वरूपको प्राप्त करानेवाली है, अतः पुरुषको नित्य भगवान्का भजन करना चाहिये। सत्सङ्गति तथा भगवन्नाम-चर्चासे ही इस संसारसे मुक्ति हो सकती है—

भक्तिर्भगवतः पुंसां भगवद्रूपकारिणी।
तां लब्ध्वा चापरं लाभं को वाञ्छति विना पशुम्॥
भगवद्विमुखा ये तु नराः संसारिणो द्विजाः।
तेषां मुक्तिर्भवाटव्या नास्ति सत्संगमन्तरा॥ (नार० उ० ८२।५८-५९)

इस पुराणमें विष्णु-भक्तिकी प्रधानता होते हुए भी सभी देवोंको समान महत्त्व एवं स्थान देते हुए सभीकी पूजा-उपासनाका निर्देश किया गया है। सभीकी श्रेष्ठता स्वीकार करते हुए सम्प्रदायवादसे सर्वथा दूर रहनेका उपदेश किया गया है। अतः इसे साम्प्रदायिक ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता। शैव, शाक्त, वैष्णव—सभी एक ही परम तत्त्वके उपासक हैं, यही तात्पर्यार्थ सर्वत्र घोषित है।

अतिथिके माहात्म्यको बतलाते हुए कहा गया है कि जिस घरसे अतिथि भग्न-आशावाला होकर लौट जाता है, वह अतिथि उस गृहस्वामीको अपना पाप दे देता है और उसका पुण्य हर लेता है—

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति॥ (नार०पू० २७।७२)

इस पुराणने वेदादि शास्त्रों तथा स्मृति आदि धर्मशास्त्रोंसे भी अधिक महत्त्व पुराणोंको दिया है और कहा है कि वेद तथा स्मृति आदिके सभी विषय तो पुराणोंमें प्रतिपादित हैं ही, साथ ही उनमें वह सब भी कहा गया है जो वेदोंमें, स्मृति-ग्रन्थोंमें भी नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-आख्यान—

देवर्षि नारद

महायोगी नारदजी ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। ये नित्य-निरन्तर, प्रत्येक युगमें भगवान्‌की भक्ति और उनके माहात्म्यका विस्तार करते हुए लोक-कल्याणके लिये सदा-सर्वदा-सर्वत्र विचरण किया करते हैं। भक्ति तथा संकीर्तनके ये आद्य-आचार्य हैं। इनकी वीणा 'भगवज्जपमहती' के नामसे विख्यात है, उससे 'नारायण'की ध्वनि निकलती रहती है। इनकी गति अव्याहत है। ये ब्राह्ममुहूर्तमें सभी जीवोंकी गति देखते हैं और आज भी अजर-अमर हैं। भगवद्भक्तिकी स्थापना तथा प्रचारके लिये ही इनका आविर्भाव हुआ है। अब भी भक्तिका प्रसार करते हुए ये अप्रत्यक्षरूपसे भक्तोंका सहयोग करते रहते हैं और अधिकारी पुरुषोंको साक्षात् दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं। संसारपर इनका अमित प्रभाव है। ये भगवान्‌के विशेष कृपापात्र और लीला-सहचर हैं। जब-जब भगवान्‌का आविर्भाव होता है, ये उनकी लीलाके लिये भूमिका तैयार करते हैं, लीलोपयोगी उपकरणोंका संग्रह करते हैं और अन्य प्रकारकी सहायता करते हैं। इनका मङ्गलमय जीवन मङ्गलके लिये ही है। ये स्वयं वैष्णव हैं और वैष्णवोंके परमाचार्य तथा मार्गदर्शक हैं।

ये व्यास, वाल्मीकि तथा महाज्ञानी शुकदेवादिके गुरु रहे हैं। श्रीमद्भागवत, जो भक्ति, ज्ञान एवं वैराग्यका परमोपदेशक ग्रन्थ-रत्न है तथा रामायण, जो मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके पावन, आदर्शमय चरित्रसे अनुस्यूत है—ये दोनों ग्रन्थ देवर्षि नारदजीकी कृपासे ही हमें प्राप्त हो सके हैं। इन्होंने ही प्रह्लाद, ध्रुव, राजा अम्बरीष आदि महान् भक्तोंको भक्तिमार्गमें प्रवृत्त किया। आपने कितनोंका उपकार किया, उसकी कोई गणना नहीं है। आप भागवत-धर्मके परम गूढ़ रहस्यको जाननेवाले—ब्रह्मा, शंकर, सनत्कुमार, महर्षि कपिल, स्वायम्भुव मनु आदि बारह आचार्योंमें अन्यतम हैं। (श्रीमद्भा० ६।३।२०-२१)। उनकी अवतार-चर्चाके विषयमें श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः॥

(१।३।८)

'ऋषियोंकी सृष्टिमें भगवान् नारायणने देवर्षि नारदके रूपमें तीसरा अवतार ग्रहण किया और सात्वत-तन्त्रका (जिसे नारद-पञ्चरात्र कहते हैं) उपदेश किया, उसमें कर्मोंके द्वारा किस प्रकार कर्मबन्धनसे मुक्ति मिलती है, इसका वर्णन है।'

देवर्षि नारदजी ब्रह्माजीके कण्ठसे उत्पन्न माने गये हैं। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने इन्हें मैथुनी सृष्टिके लिये आज्ञा दी, परंतु योगी नारदने विषय-भोगको ईश्वर-भजनमें सर्वाधिक बाधक बताते हुए कहा—

भगवान् पुरुषोत्तम ही सबके आदिकारण तथा निस्तारके बीज हैं। वे ही सब कुछ देनेवाले, भक्ति प्रदान करनेवाले, दास्य-सुख देनेवाले, सत्य तथा कृपामय हैं। वे ही भक्तोंको एकमात्र शरण देनेवाले, भक्तवत्सल और स्वच्छ हैं। भक्तोंके प्रिय, रक्षक और उनपर अनुग्रह करनेवाले भी वे ही हैं। भक्तोंके आराध्य तथा प्राप्य उन परमेश्वर श्रीकृष्णको छोड़कर कौन मूढ़ विनाशकारी विषयमें मन लगायेगा? अमृतसे भी अधिक प्रिय श्रीकृष्ण-सेवा छोड़कर कौन मूर्ख विषय नामक विषका भक्षण (आस्वादन) करेगा? विषय तो स्वप्नके समान नश्वर, तुच्छ, मिथ्या तथा विनाशकारी हैं। (ब्रह्मवैवर्त० ब्र० खण्ड ८।३३—३६)

पुत्रको सृष्टि-कार्यसे विरत जानकर ब्रह्माजीने अति रोषपूर्वक उन्हें शाप दे दिया—'नारद! तुमने मेरी अवहेलना की है, अतः मेरे शापसे तुम्हारा ज्ञान नष्ट हो जायगा और तुम गन्धर्वयोनिको प्राप्तकर शृङ्गार-विलासरत कामिनियोंके वशीभूत हो जाओगे।' तब नारदजीने दुःखी होकर कहा—'तात! आप जगद्गुरु हैं। ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, किंतु आपका यह क्रोध अकारण ही हुआ है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह कुमार्गगामी पुत्रको शाप दे अथवा उसका त्याग कर दे। आप पण्डित होकर अपने तपस्वी पुत्रको शाप देना कैसे उचित मानते हैं? फिर भी इतनी कृपा कीजिये कि जिन-जिन योनियोंमें मेरा जन्म हो, वहाँ-वहाँ भगवान्‌की भक्ति मुझे कदापि न छोड़े और मुझे अपने पूर्वजन्मोंकी भगवद्भक्तिका स्मरण बना रहे; क्योंकि भजनरूपी कर्मसे गोलोकधामकी प्राप्ति होती है। तात! आपने बिना किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपराधके मुझे शाप दे दिया है, अतः मैं भी आपको यह शाप देता हूँ कि तीन कल्पोंतक लोकमें आपकी पूजा नहीं होगी और आपके मन्त्र, स्तोत्र, कवच, आदिका लोप हो जायगा।'

पिताके इसी शापसे नारदजी गन्धर्वराज 'उपबर्हण' हुए। ये कामदेवके समान अद्वितीय सुन्दर थे। इन्हें अपने रूप-सौन्दर्यका अत्यधिक गर्व था। एक बार ब्रह्माजीके यहाँ सभी गन्धर्व-किन्नर आदि भगवान्‌का गुण-कीर्तन करते हुए एकत्र हुए। अपनी स्त्रियोंसे घिरे हुए उपबर्हण भी वहाँ गये, जहाँ भगवान्‌में चित्त लगाकर उन मङ्गलमयके गुणगानसे अपनेको और दूसरोंको पवित्र करना चाहिये, वहाँ कोई स्त्रियोंके साथ शृङ्गारका प्रसङ्ग उत्पन्न कर हाव-भाव-विलासकी चेष्टा करे—यह बहुत बड़ा अपराध है। ब्रह्माजीने उपबर्हणके इस प्रमादको देखकर उन्हें शूद्र-योनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया। उस शापके फलस्वरूप वे सदाचारी, संयमी, वेदवादी ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाली शूद्रा दासीके पुत्र हुए।

श्रीमद्भागवतमें महर्षि वेदव्यासजीको अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त बतलाते हुए नारदजीने कहा—मुने! मेरी माता ब्रह्मज्ञानी महात्माओंकी सेवा करती थी। एक बार वर्षा ऋतुमें चातुर्मास्यके अवसरपर वे महात्मा भगवत्-कथा-वार्तामें आनन्दित थे। मेरी अवस्था तब बहुत कम थी। मैं भी माताके साथ नित्य उनकी सेवामें जाने लगा। बालक होते हुए भी मुझमें चञ्चलता बिलकुल नहीं थी। मैं शान्तभावसे मुनिजनों-की आज्ञाका पालन करता था। मेरे इस शील-स्वभावको देखकर उनका कृपा-कटाक्ष मुझपर होने लगा। उनकी अनुमति प्राप्त करके बरतनोंमें लगा हुआ जूठन मैं एक बार खा लिया करता था। इससे मेरे सारे पाप धुल गये। उन लोगोंकी सेवा करते-करते मेरा हृदय शुद्ध होने लगा और उन लोगोंकी देखादेखी मैं भजन-पूजन भी करने लगा तथा उसमें मेरी रुचि हो गयी। मुझे नित्य उन महात्माओंसे भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंका श्रवण-लाभ मिलने लगा। कथा-श्रवणके प्रभावसे प्रभुमें मेरी निश्चल भक्ति हो गयी। उस बुद्धिसे मैं इस सम्पूर्ण सत् और असत्-रूप जगत्‌को अपने परब्रह्मस्वरूप आत्मामें मायासे कल्पित देखने लगा। मेरे हृदयमें भक्तिका प्रादुर्भाव हो गया। चातुर्मास्य-व्रतकी पूर्णताके बाद उन महात्माओंने मुझपर कृपाकर श्रीकृष्णभक्तिका परमोपदेश दिया और वे अन्यत्र चले गये।

मेरी माता मेरे साथ उसी ब्राह्मण-नगरीमें रहने लगी। माताके स्नेह-बन्धनके कारण मैं भी वहींपर रहने लगा। उस समय मेरी अवस्था केवल पाँच वर्षकी थी। मुझे देश-कालके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञान नहीं था। एक दिनकी बात है कि मेरी माँ गो-दोहनके लिये अँधेरी रात्रिमें घरसे बाहर निकली। दुर्दैवसे एक साँपने उन्हें डँस लिया और तत्काल ही उनकी मृत्यु हो गयी। मैंने उसे ईश्वरका विधान ही माना। तब मैं गृहको त्यागकर उत्तर दिशाकी ओर चला गया। चलते-चलते मेरा शरीर और मेरी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं। मुझे बड़े जोरकी प्यास लगी, भूखा तो था ही। वहाँ एक नदी मिली। मैंने उसमें स्नान, जलपान और आचमन किया। इससे मेरी थकावट मिट गयी। उस भयावह विजन वनमें एक पीपलके वृक्षके नीचे मैं एकाग्रचित्त हो आसन लगाकर बैठ गया। उन महात्माओंसे जैसा मैंने सुना था, हृदयमें रहनेवाले परमात्माके उसी स्वरूपका मैं मन-ही-मन ध्यान करने लगा। ध्यान करते-करते मेरे हृदयमें भगवान् प्रकट हो गये। भक्तिके उद्रेकसे मेरा सारा शरीर पुलकित हो उठा। उनके स्वरूपके दर्शनसे मैं भाव-विभोर हो गया, किंतु कुछ ही क्षणों बाद सहसा वह स्वरूप हृदय-पटलसे विलीन हो गया। मैंने हड़बड़ाकर आँखें खोलीं तो देखा कहीं कुछ भी न था, फिर कई बार उनके दर्शनोंकी चेष्टा की, परंतु असफल रहा। मैं अति व्याकुल हो उठा, अधीर हो अत्यन्त दुःखित हो गया। उसी समय मुझे धीर-गम्भीर मधुर वाणी सुनायी पड़ी।

'खेद है कि इस जन्ममें तुम मेरा दर्शन नहीं कर सकोगे। जिनकी वासनाएँ पूर्णतया शान्त नहीं हो गयी हैं, उन अधकचरे योगियोंको मेरा दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। निष्पाप बालक! तुम्हारे हृदयमें मुझे प्राप्त करनेकी लालसा जाग्रत् करनेके लिये ही मैंने एक बार तुम्हें अपने रूपकी झलक दिखायी है। मुझे प्राप्त करनेकी आकाङ्क्षासे युक्त साधक धीरे-धीरे हृदयकी सम्पूर्ण वासनाओंका भलीभाँति त्याग कर देता है। अल्प-कालीन संतसेवासे ही तुम्हारी चित्तवृत्ति मुझमें स्थिर हो गयी है। अब तुम इस मलिन शरीरको छोड़कर मेरे पार्षद हो जाओगे। मुझे प्राप्त करनेका तुम्हारा यह दृढ़ निश्चय कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी प्रकार नहीं टूटेगा। समस्त सृष्टिका प्रलय हो जानेपर भी मेरी कृपासे तुम्हें मेरी स्मृति बनी रहेगी।' (श्रीमद्भागवत १।६।२२-२५)

कल्पान्तमें प्रभु-कृपासे इस पाञ्चभौतिक शरीरको छोड़कर ब्रह्माजीके श्वासके साथ मैं उनके हृदयमें प्रवेश कर गया। पुनः पितामह ब्रह्माजीने जब सृष्टिकी इच्छा की, तब उनकी इन्द्रियोंसे मरीचि आदि ऋषियोंके साथ मैं भी प्रकट हो गया। किसी-किसी पुराणमें देवर्षि नारदजीको उनके पूर्वजन्ममें सारस्वत नामक एक ब्राह्मण बताया गया है, जिन्होंने नारायण-मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) के जपसे भगवान् नारायणका साक्षात्कार किया और कल्पान्तमें पुनः ब्रह्माजीके दस मानस पुत्रोंके रूपमें जन्म लिया (वराहपुराण अ० ३)। भगवान्की कृपासे तभीसे मैं वैकुण्ठादिमें तथा तीनों लोकोंमें बाहर-भीतर बिना रोक-टोक विचरण किया करता हूँ। मेरे जीवनका उद्देश्य अखण्डरूपसे भगवद्भजन करते हुए लोकमें भक्तिभावको जगाकर भक्तको प्रभुधामकी प्राप्ति करानी है। भगवान्की दी हुई इस 'वीणा'से मैं उनकी लीलाओंका गान करता हुआ संसारमें विचरण करता रहता हूँ। इतना कहकर नारद चुप हो गये और व्यासजी भी उनके जन्म-रहस्यका वृत्तान्त जानकर तथा आत्मकल्याणका उपाय समझकर अन्यत्र चले गये।

देवर्षि नारद परम तपस्वी तथा ब्रह्मतेजसे सम्पन्न हैं। उन्हें धर्म-बलसे परात्पर परमात्माका ज्ञान था। वे शुद्धात्मा, शान्त, मृदु तथा सरल स्वभावके हैं। वे देवता, दानव और मनुष्य सबको धर्मतः प्राप्त होते हैं। उनका शुक्ल वर्ण है। उनके सिरपर सुन्दर शिखा शोभित है। उनके शरीरसे एक दिव्य कान्ति, उज्ज्वल ज्योति निकलती रहती है। वे देवराज इन्द्रद्वारा प्राप्त श्वेत महीन तथा दिव्य दो वस्त्रोंको धारण किये रहते हैं। उनकी वीणा सदा उनके पास रहती है। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले सब लोगोंके हितके लिये नारदजी स्वयं ही प्रयत्नशील रहते हैं। कब किसका क्या कर्तव्य है, इसका उन्हें पूर्ण ज्ञान है (आदिपर्व अ० २०७)। सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता देवर्षि नारदजी जीवके कल्याणके लिये सतत चेष्टा किया करते हैं। उन्हें भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन होते रहते हैं, उन्हें भगवान्का मन कहा गया है, वे परम हितैषी हैं, उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है, केवल परार्थ ही है। परोपकार ही है। प्रभुकी प्रेरणासे ही वे कार्य किया करते हैं। उनका स्वयंका कहना है—'जब मैं भगवान्की लीलाओंका गान करने लगता हूँ, तब वे प्रभु, जिनके चरणकमल समस्त तीर्थोंके उद्गमस्थान हैं और जिनका यशोगान मुझे बहुत ही प्रिय लगता है, बुलाये हुएकी भाँति तत्काल मेरे हृदयमें आकर दर्शन दे देते हैं।'

उनके द्वारा प्रह्लादको लक्ष्य करके उनकी माता दैत्येश्वरी कयाधूको दिया हुआ भक्ति और ज्ञानका उपदेश, पिताके तिरस्कारसे क्षुब्ध ध्रुवकुमारके वनगमनके समय दिया गया वासुदेव-मन्त्र और दिव्योपदेश तथा महाज्ञानी शुकदेवजी एवं वेदव्यासजीको दिया गया भक्तिका उपदेश अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है।

दक्षप्रजापतिके हर्यश्व तथा शबलाश्व नामक सहस्रों पुत्रोंको नारदजीने अध्यात्मतत्त्वका पाठ पढ़ाया। उन्हें सृष्टिकर्ममें च्युत देखकर दक्ष प्रजापतिजीने नारदजीको शाप दे दिया कि 'तुम निरन्तर लोक-लोकान्तरोंमें विचरण करते रहोगे और एक स्थानपर अधिक देर नहीं टिक सकोगे।' संत-शिरोमणि देवर्षि नारदजीने 'बहुत अच्छा' कहकर दक्षका शाप स्वीकार कर लिया। संसारमें बस, साधुता इसीका नाम है कि बदला लेनेकी शक्ति रहनेपर भी दूसरेका अपकार सह लिया जाय (श्रीमद्भा० ६।५।४४)।

इस प्रकार सभीके लिये देवर्षि नारदजीने भगवद्भक्तिका द्वार खोल रखा था। उनका सदा यही लक्ष्य रहा है कि इस संसारमें प्राणी माया-मोहके बन्धनमें पड़कर अति कष्ट पा रहा है, अतः उसे कैसे इस भवबन्धनसे छुटकारा दिलाया जाय। ज्ञानमार्ग और उपासनामार्गकी अपेक्षा उन्होंने भक्तिमार्गकी श्रेष्ठता प्रदर्शित करते हुए इसी मार्गको सर्वसुलभ तथा सभी वर्णोंके लिये प्रशस्त मार्ग बतलाया है। भगवन्नाम-कीर्तनकी प्रेरणा देते हुए वे जीवमात्रके कल्याणके लिये सतत चेष्टित रहते हैं। यद्यपि इन्हें कलह-प्रिय तथा कलि-प्रिय भी कहा गया है, किंतु इनका उद्देश्य सर्वथा पवित्र और निःस्वार्थपरक रहा है। नारदमहापुराण, बृहन्नारदीय उपपुराण, नारदीय संहिता (स्मृति), नारदपरिव्राजकोपनिषद्, नारदीय भक्तिसूत्र, नारदीय शिक्षाके साथ ही अनेक स्तोत्र भी इनके द्वारा विरचित हैं। इनके सभी उपदेशोंका निचोड़ है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तैर्भगवानेव भजनीयः ।

(नारदभक्तिसूत्र ७९)

अर्थात् सर्वदा सर्वभावसे निश्चिन्त होकर केवल भगवान्‌का ही भजन करना चाहिये। इसीलिये कहा गया है—

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः ।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥

(श्रीमद्भा० १।६।३१)

'अहो ! ये देवर्षि नारद धन्य हैं, क्योंकि ये शार्ङ्गपाणि भगवान्‌की कीर्तिको अपनी वीणापर गा-गाकर स्वयं तो आनन्दमग्न होते ही हैं, साथ-साथ इस त्रिताप-तप्त जगत्‌को भी आनन्दित करते रहते हैं।'

भगवान् विष्णुकी आराधना एवं एकादशी-व्रतकी महिमा

प्राचीन कालमें रुक्माङ्गद नामक एक प्रसिद्ध सार्वभौम नरेश थे। भगवान् विष्णुकी आराधना ही उनका जीवन था। वे चराचर-जगत्‌में अपने आराध्य भगवान् हृषीकेशके दर्शन करते तथा पद्मनाभ भगवान्‌की सेवाकी भावनासे ही अपने राज्यका संचालन करते थे। वे सभी प्राणियोंमें क्षमाभाव रखते थे। भगवान् विष्णु सदैव भक्तिसे ही वशमें होते हैं। केवल पूजा करनेपर भी वे प्रसन्न हो जाते हैं।

राजा रुक्माङ्गदने अपने जीवनमें अपनी समस्त प्रजा एवं परिवारसहित एकादशी-व्रतके अनुष्ठानका नियम धारण कर रखा था। एकादशीके दिन राज्यकी ओरसे घोषणा होती थी कि 'आज एकादशीके दिन आठ वर्षसे अधिक और पचासी वर्षसे कम आयुवाला जो भी मनुष्य अन्न खायेगा, वह राजाकी ओरसे दण्डनीय होगा।' एकादशीके दिन सभी लोग गङ्गास्नान एवं दान-पुण्य करते थे। राजाके धर्मकी ध्वजा सर्वत्र फहराने लगी। धर्मके प्रभावसे प्रजा सर्वथा सुखी एवं समृद्ध थी।

राजा रुक्माङ्गदका गृहस्थ-जीवन पूर्णरूपसे सुखमय था। वे पीताम्बरधारी भगवान् श्रीहरिकी आराधना करते हुए मनुष्यलोकके उत्तम भोग भोग रहे थे। उनकी पतिव्रता पत्नी संध्यावली साक्षात् भगवती लक्ष्मीका दूसरा रूप थी। वह सभी दृष्टिसे पतिका सुख-सम्पादन करनेमें अद्वितीय थी। पतिका सुख ही रानी संध्यावलीका जीवन था। पतिकी सेवा वह अपने हाथोंसे करती रहती।

उनका पुत्र धर्माङ्गद गुणोंमें अपने पिताके अनुरूप ही था। उसकी भी बुद्धि भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें लग गयी थी। वह अपने माता-पिताका आज्ञाकारी था। उसमें राज्य-संचालनकी पूर्ण योग्यता थी तथा मदिरा एवं जुआ आदिका कोई दुर्व्यसन न था। वह भी प्रजापालन एवं प्रजाकी रक्षामें सदा तत्पर रहता था। राजा रुक्माङ्गदने अपने पुत्र धर्माङ्गदके गुणोंसे प्रसन्न होकर राज्य-संचालनका भार उसके कंधोंपर देना आरम्भ कर दिया।

धर्माङ्गद अपने सेवकोंसे हाथीके मस्तकपर नगाड़े बजाते हुए घोषित कराता कि 'समस्त प्रजा एकादशीका व्रत पालन करनेमें तत्पर रहे तथा ममतारहित होकर देवेश्वर भगवान् विष्णुका चिन्तन करे।'

भगवान् श्रीहरिके आराधन एवं एकादशी-व्रतके प्रभावसे राज्यमें समस्त प्रजा सुखी थी। मृत्युके पश्चात् सभी वैकुण्ठधाममें जाने लगे। नरकके द्वारतक कोई जाता ही नहीं था। सम्पूर्ण नरक सूना हो गया। सूर्यपुत्र यमराज एवं चित्रगुप्त—दोनोंके लिये कोई कार्य रहा ही नहीं। जब सभी प्रजाजन वैकुण्ठ जाने लगे, तब यमराज किन्हें दण्ड दें और चित्रगुप्त किनके कर्मोंका हिसाब रखें। अन्तमें वे ब्रह्माजीकी सभामें पहुँचे। उन्होंने ब्रह्माजीसे राजा रुक्माङ्गदके प्रभावका वर्णन करते हुए कहा—'पितामह ! भगवान् विष्णुके आराधन एवं एकादशी-व्रतके प्रभावसे समस्त प्राणी वैकुण्ठ-धामको प्राप्त हो रहे हैं । नरकमें कोई प्राणी नहीं आ रहा है। लम्बे समयसे हमलोग व्यर्थ बैठे हैं। यह सुनकर ब्रह्माजीको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वे मन-ही-मन भक्तराज रुक्माङ्गदको नमन करने लगे। ब्रह्माजी रुक्माङ्गदकी ऐसी अद्भुत महिमाको और बढ़ाना चाहते थे। उन्होंने अपने मनके संकल्पसे एक अत्यन्त सुन्दर एवं लावण्यवती नारीको प्रकट किया। उस नारीका नाम मोहिनी था। वह संसारकी समस्त सुन्दरियोंमें श्रेष्ठ एवं रूपके वैभवसे सम्पन्न थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन राजा रुक्माङ्गद वन-भ्रमणके लिये निकले हुए थे। उसी वनमें वह मोहिनी अत्यन्त मधुर वीणा बजा रही थी। उस रूपराशिको देखकर राजा रुक्माङ्गद मोहित हो गये। राजाने मोहिनीसे प्रणयकी याचना की। मोहिनीने मुसकराते हुए एक शर्त रखी कि 'समयपर मैं जो कहूँ आपको उसका पालन करना होगा।' राजाने मोहके वशीभूत वह शर्त स्वीकार कर ली और वे मोहिनीके साथ अपनी राजधानीको लौट आये। यहाँ वे मोहिनीके साथ सुखसे समय व्यतीत करने लगे।

युवराज धर्माङ्गदने शासनकी पूर्ण योग्यता प्राप्त कर ली थी। उसने भूमण्डलके सभी मण्डलोंको जीतकर उनपर अपना शासन जमा लिया तथा अनेक बहुमूल्य रत्न-मणियाँ लाकर अपने पिताको अर्पित किया। धर्माङ्गदके सुराज्यसे प्रसन्न होकर रुक्माङ्गदने अपनी सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था उसे सौंप दी। योग्य कन्यासे धर्माङ्गदका विधिपूर्वक विवाह हुआ।

ब्रह्माजीने मोहिनीको राजा रुक्माङ्गदकी परीक्षाके लिये ही भेजा था। सुखपूर्वक बहुत समय व्यतीत होनेपर एक दिन वह अवसर आ उपस्थित हुआ। रुक्माङ्गदका एकादशी-व्रत निर्विघ्न चल रहा था। वे एकादशीके दिन कभी अन्न ग्रहण नहीं करते थे। सदैवकी भाँति वे घोषणा करा देते—'मनुष्यो! तुम सब अपने वैभवके अनुसार एकादशीके दिन चक्र-सुदर्शनधारी भगवान् विष्णुकी पूजा करो। वस्त्र, उत्तम चन्दन, रोली, पुष्प, धूप, दीप तथा हृदयको अत्यन्त प्रिय लगनेवाले सुन्दर फल एवं उत्तम गन्धके द्वारा भगवान् श्रीहरिके चरणारविन्दोंकी अर्चना करो। जो भगवान् विष्णुका लोक प्रदान करनेवाले मेरे इस धर्मसम्मत वचनका पालन नहीं करेगा, निश्चय ही उसे कठोर दण्ड दिया जायगा।'

एक दिन मोहिनी अपने पति रुक्माङ्गदसे एकादशीके दिन अन्न खानेके लिये आग्रह करने लगी। उसने हठपूर्वक कहा कि 'गृहस्थ राजाको जो सदैव परिश्रम करता है, कभी भी अन्न नहीं छोड़ना चाहिये।' राजाने मोहिनीको बहुत समझाया। उन्होंने शास्त्रोंका प्रमाण देकर बताया कि एकादशीके दिन जो अन्न खाता है, वह पापका भागी और नरकगामी होता है, किंतु मोहिनी अपने हठपर अटल रही। राजाने उसे अनेक प्रलोभन भी दिये, परंतु मोहिनीपर उन बातोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मोहिनीने राजाको विवाहके समय की हुई अपनी शर्तकी स्मृति करायी कि 'जो मैं कहूँगी उसे आपको पालन करना होगा अन्यथा आप असत्यवादी हो जायँगे एवं सत्यका त्याग करनेसे आपको पापका भागी होना पड़ेगा।' मोहिनीने अन्तमें यह भी घोषणा की कि 'यदि आप एकादशीके दिन अन्न ग्रहण नहीं करेंगे तो मैं आपको त्यागकर चली जाऊँगी।'

रुक्माङ्गदने मोहिनीको पुनः समझाते हुए पुराणोंका प्रमाण दिया और कहा कि पुराणोंमें स्थान-स्थानपर यह घोषणा की गयी है कि 'एकादशी प्राप्त होनेपर भोजन नहीं करना चाहिये, नहीं करना चाहिये।' परंतु मोहिनी अपने निश्चयपर अटल रही। वह अपने पतिको असत्यवादी घोषित करती हुई उसे छोड़कर जानेको तत्पर थी। इधर राजा रुक्माङ्गद मोहिनीपर आसक्त होते हुए भी एकादशीके दिन अन्न न ग्रहण करनेके निश्चयपर दृढ़ थे।

पितृभक्त धर्माङ्गद एवं पतिव्रता रानी संध्यावलीने मोहिनीको राजाको छोड़कर न जानेके लिये बहुत समझाया। रानी संध्यावलीने अत्यन्त मधुर वाणीमें मोहिनीसे कहा—'जो नारी सदा अपने पतिकी आज्ञाका पालन करती है, उसे सावित्रीके समान अक्षय तथा निर्मल लोक प्राप्त होते हैं। देवि! तुम अपना यह आग्रह छोड़ दो। महाराजने कभी बचपनमें भी एकादशीके दिन अन्न ग्रहण नहीं किया है। अतः तुम इसके लिये उन्हें बाध्य मत करो। तुम उनसे कोई अन्य वर माँग लो।'

'देवि! जो वचनसे और शपथ-दोषसे पतिको विवश करके उनसे न करनेयोग्य कार्य करा लेती है, वह पापपरायणा नारी नरकमें निवास करती है। वह भयंकर नरकसे निकलनेके पश्चात् बारह जन्मोंतक शूकरीकी योनिमें जन्म लेती है। तत्पश्चात् चाण्डाली होती है। सुन्दरि! इस प्रकार पापका परिणाम जानकर मैंने तुम्हें सखी-भावसे मना किया है। धर्मकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको उचित है कि वह शत्रुको भी अच्छी बुद्धि, उचित परामर्श दे।

'सुन्दरि! जिस पत्नीके पति उसके व्यवहारसे दुःखी होते हैं, वह समृद्धिशालिनी हो तो भी उस पापिनीकी अधोगति ही कही गयी है। वह सत्तर युगोंतक 'पूय' नामक नरकमें पड़ी रहती है। तत्पश्चात् सात जन्मोंतक छछूंदर होती है। तदनन्तर काकयोनिमें जन्म लेती है, फिर क्रमशः शृगाली, गोधा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाय होकर शुद्ध होती है। स्त्रियोंके लिये एकमात्र पतिके सिवा संसारमें दूसरा कौन देवता है ?'

इतनी अच्छी बातें सुननेपर भी मोहिनीकी बुद्धि शुद्ध नहीं हुई। उसकी भावी उसके सिरपर नाच रही थी। जगत्को अच्छी शिक्षा मिलनेवाली थी। मोहिनीकी दुर्दशा होनी ही थी। रानी संध्यावलीकी बातें सुनकर दुष्टहृदया मोहिनीने अपनी एक नयी शर्त रखी—'राजा रुक्माङ्गद अपने हाथों अपने पुत्र धर्माङ्गदका सिर काटकर भेंट करें अथवा एकादशीके दिन अन्न ग्रहण करें तभी उनके सत्यकी रक्षा हो सकती है।'

परम गुणवान् आज्ञाकारी पुत्र धर्माङ्गदने अपने पिताके सत्यकी रक्षाके लिये अपना सिर देना सहर्ष स्वीकार कर लिया। पतिपरायणा रानी संध्यावलीने अपने हृदयको कठोर करके अपने पतिके सत्यकी रक्षाके लिये अपने लाड़ले होनहार पुत्रका बलिदान होना स्वीकार किया।

राजा रुक्माङ्गद मोहिनीकी नयी शर्त सुनकर अर्धमूर्छित-से होने लगे। मूर्ख मोहिनीको अपनी भावी दुर्दशाका किंचिन्मात्र भी विचार नहीं था। वह अपने पतिके बहुत समझाने एवं अनुनय-विनय करनेपर भी कुछ ध्यान न देकर अपने हठपर अड़ी रही। अन्तमें धर्माङ्गद एवं रानी संध्यावलीने महाराज रुक्माङ्गदसे प्रार्थना करके उन्हें सत्यकी रक्षाके लिये राजी किया। सत्यकी महिमा विलक्षण है। राजा रुक्माङ्गद हाथमें नंगी तलवार लेकर धर्माङ्गदका सिर काटनेके लिये उद्यत हुए। धर्माङ्गदने भक्तिपूर्वक माता-पिताके चरणोंमें सिर टेककर प्रणाम किया और भगवान् विष्णुके ध्यानमें मग्न हो तलवारकी धारके सामने अपना सिर धरणीपर रख दिया।

कृपालु भगवान् विष्णु राजा रुक्माङ्गद, रानी संध्यावली एवं धर्माङ्गदका धैर्य देख रहे थे। चमचमाती तलवार ज्यों ही धर्माङ्गदके सिरको छूनेवाली ही थी, त्यों ही भगवान् श्रीहरि प्रकट होकर राजाका हाथ पकड़ लिया। उस अद्भुत दृश्यको देवगण भी देख रहे थे। उनके देखते-देखते ही महात्मा नरेश अपनी रानी संध्यावली एवं पुत्र धर्माङ्गदके साथ भगवान् विष्णुमें सशरीर विलीन हो गये।

क्रूर-हृदया मोहिनी भी यह दृश्य देख रही थी। राजाके पुरोहित वसुसे यह सब देखा नहीं गया। उनके संकल्पसे दुष्टा मोहिनी वहीं भस्म होकर राखकी ढेर हो गयी।

(ह० कृ० दु०)

सत्संग एवं भगवान्के चरणोदककी महिमा

प्राचीन कालमें गुलिक नामका एक व्याध था। वह बड़ा क्रूर था। वह पराये धनको हड़पनेमें सदा तत्पर रहता था। धनके लिये प्राणियोंकी, मनुष्योंकी हत्या करनेमें भी उसके मनमें हिचक न थी। वह सदा इसी अवसरकी प्रतीक्षामें रहता था कि परायी स्त्रियोंका अपहरण कर लूँ, कपटपूर्वक धन हरण कर लूँ, पशु-प्राणियोंकी हत्या कर दूँ। धनके लिये ब्राह्मणोंको मारनेमें भी वह नहीं चूकता था। देवसम्पत्तिको हड़पनेमें भी उसे सुखका अनुभव होता था। किसी भी प्रकारके पाप-कर्म करनेमें उसे ग्लानि नहीं होती थी। इसी पापपूर्ण धनसे वह अपने परिवारका पालन-पोषण करता था।

एक दिन गुलिक व्याध धनकी खोजमें अपने आवास-स्थानसे बहुत दूर निकल गया। मार्गमें एक उपवनमें उसने एक भव्य विष्णु-मन्दिर देखा। वह मन्दिर कई स्वर्ण-कलशोंसे सुसज्जित था। भारी-भारी स्वर्ण-कलशोंको देखकर गुलिकका पापपूर्ण मन नाच उठा। वह उन्हें लूटनेकी योजना अपने मनमें बनाने लगा। इसी उद्देश्यसे उसने मन्दिरमें प्रवेश किया। वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे एक ब्राह्मण देवताके दर्शन हुए। तपस्याके तेजसे ब्राह्मणका मुखमण्डल प्रकाशयुक्त था, उसपर ज्ञान एवं प्रकाशकी आभा छिटक रही थी। भगवान् विष्णुकी सेवा ही उनके जीवनकी निधि थी। वे सदा सेवामें तत्पर थे। उनका हृदय दयासे भरा था। सेवा-कार्यसे निवृत्त होनेपर वे भगवान्‌के ध्यानमें तल्लीन रहते थे। उनका नाम उत्तङ्क था।

गुलिकने चोरीके दृढ़ निश्चयसे ही मन्दिरमें प्रवेश किया था। उसने सोचा कि ये उत्तङ्क ऋषि ही मेरे मार्गके बाधक हैं, अतः उन्हें मारनेके लिये उसने तत्काल अपनी तलवार निकाल ली और उनपर आक्रमण कर दिया। उसने उनकी जटा पकड़कर धरतीपर पटक दिया। उनकी छातीपर पैर रखकर वह उन्हें मारना चाहता था कि मुनिकी विनम्र निष्कपट वाणी उसके कानोंमें पड़ी—

यावदर्जयति द्रव्यं बान्धवास्तावदेव हि।
धर्माधर्मौ सहैवास्तामिहामुत्र न चापरः॥

(नारदपु०, पूर्वभाग ३७।४२)

'मनुष्य जबतक धन कमाता है, तभीतक भाई-बन्धु उससे सम्बन्ध रखते हैं, परंतु इहलोक और परलोकमें केवल धर्म और अधर्म ही सदा उसके साथ रहते हैं। वहाँ दूसरा कोई साथी नहीं है।'

मुनिकी विनम्र गूढ वाणी सुनकर गुलिक ठिठक गया, उसके हाथ रुक गये। सत्संगकी बड़ी महिमा है। भगवान्‌की महती कृपासे ही संतोंके दर्शन एवं उनका सत्संग प्राप्त होता है। दुष्टजनोंको सुधारनेका सत्संग ही महारसायन है। दुष्ट सत्संग पाकर सुधर जाते हैं। पारस लोहेको स्वर्ण बना देता है और सत्संग दुष्टको निर्मल कर देता है।

मुनि उत्तङ्कने निर्भयतासे गुलिकसे कहा—'भैया! मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है? मैं तो सर्वथा निरपराध हूँ और भगवान् विष्णुकी शरण हूँ। भगवान् तो सबके हितकारी हैं और सदा ही अत्यन्त प्रिय हैं। फिर क्यों न तुम सर्वभयहारी प्रभुकी शरणमें जाते हो? वे दीनवत्सल सदाके लिये तुम्हें अभय कर देंगे।'

'भैया गुलिक! शक्तिशाली पुरुष तो अपराधियोंको, पापियोंको भी नहीं मारते, फिर तुम मुझे व्यर्थ क्यों मार रहे हो? सज्जन पुरुष तो सताये जानेपर भी उसे मारते नहीं, क्षमा कर देते हैं। जिनकी बुद्धि सदा दूसरोंके हितमें लगी रहती है, वे पुरुष कभी किसीसे भी द्वेष नहीं करते—ऐसे पुरुष भगवान्‌को बड़े प्रिय होते हैं।'

'व्याध! तुम दूसरोंका धन लूटकर अपने परिवारका पालन-पोषण करते हो, परंतु मृत्युके समय तुम्हें अकेले ही परलोक-यात्रा करनी होगी। तुम्हारी पत्नी, तुम्हारे माता-पिता, तुम्हारी पुत्र-पुत्रियाँ, तुम्हारी ममताकी समस्त वस्तुएँ यहीं—इस पृथ्वीपर ही रह जायँगी। तुम्हारे साथ केवल तुम्हारे पाप-कर्म जायँगे। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् दैवके अधीन है, अतः दैव ही जन्म और मृत्युको जानता है, दूसरा नहीं। ममतासे व्याकुल चित्तवाले मनुष्य महान् दुःख सहते हैं। वे बड़े-बड़े पाप करके धन इकट्ठा करते हैं। उस धनको उसके बन्धु-बान्धव भोगते हैं, परंतु वह मनुष्य अपने पाप-कर्मोंके फलस्वरूप अकेला नरक-यन्त्रणा भोगता है। उस पाप-कर्ममें उसका कोई हिस्सा नहीं बँटा सकता। अतः तुम पाप-कर्म करना छोड़ दो।'

ऐसे वचन सुनते ही गुलिकने महर्षि उत्तङ्कको छोड़ दिया। सत्संग, भगवद्विग्रह एवं संत-दर्शनका उसकी बुद्धिपर प्रभाव पड़ा। उसका हृदय अपने कुकृत्योंका स्मरण करके जलने लगा। तब गुलिक महर्षिके चरणोंमें गिर पड़ा और अपराधोंके लिये क्षमा माँगने लगा। उसने कहा—'विप्रवर! मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े-बड़े भयंकर पाप किये हैं। अब मेरा उद्धार कैसे होगा ? मेरी अब क्या गति होगी ? मेरी आयु व्यर्थ चली गयी।'

आत्मग्लानि पीड़ित गुलिक व्याध अपने आन्तरिक संतापकी अग्निसे झुलसने लगा और उसने उत्तङ्क मुनिके चरणोंमें ही अपने प्राण त्याग दिये। मुनिका हृदय दयासे द्रवित हो गया। उन्होंने भगवान् विष्णुके चरणोदकसे व्याधका सम्पूर्ण शरीर सींच दिया। चरणोदकके प्रभावसे एवं संतके स्पर्शसे व्याधके समस्त पाप नष्ट हो गये। वह भगवान् विष्णुके चरणोंका अधिकारी हो गया। तब वह व्याध अपने दिव्य शरीरसे मुनि उत्तङ्कपर पुष्पकी वर्षा करते हुए, उनका गुण-कीर्तन करते हुए विष्णु-धाममें चला गया।

सङ्गात् स्नेहाद् भयाल्लोभादज्ञानाद्वापि यो नरः।
विष्णोरुपासनं कुर्यात् सोऽक्षयं सुखमश्नुते॥
अकालमृत्युशमनं सर्वव्याधिविनाशनम्।
सर्वदुःखोपशमनं हरिपादोदकं स्मृतम्॥

(नारदपुराण, पूर्वभाग ३७। १४,१६)

'जो मनुष्य किसीके सङ्गसे, स्नेहसे, भयसे, लोभसे अथवा अज्ञानसे भी भगवान् विष्णुकी उपासना करता है, वह अक्षय सुखका भागी होता है। भगवान् विष्णुका चरणोदक अकालमृत्युका निवारक, समस्त रोगोंका नाशक और सम्पूर्ण दुःखोंकी शान्ति करनेवाला माना गया है।'

(ह० कृ० दु०)

कुसङ्गका दुष्परिणाम एवं एकादशी-व्रतकी महिमा

सच है, कोई पुरुष अत्यन्त धैर्यवान्, दयालु, सद्गुणी, सदाचारी, नीतिज्ञ, कर्तव्यनिष्ठ और गुरुका भक्त अथवा विद्या-विवेक-सम्पन्न भी क्यों न हो, यदि वह निरन्तर अत्यन्त पापबुद्धि दुष्ट पुरुषोंका सङ्ग करेगा तो अवश्य ही क्रमशः उन्हींकी बुद्धिसे प्रभावित होकर उन्हींके समान हो जायगा। इसलिये सदा ही दुष्ट पुरुषोंका सङ्ग छोड़ देना चाहिये।

उपर्युक्त नीतियुक्त वचनका पालन न करनेसे राजा धर्मकीर्तिका भी पतन हो गया था। प्राचीनकालमें चन्द्रवंशमें धर्मकीर्ति नामक एक राजा हुए थे। वे बड़े ही बुद्धिमान् और पुण्यकर्मा थे। उनके प्रजापालनमें कोई त्रुटि नहीं थी। वैदिक मार्गका अनुसरण करना उनका सहज स्वभाव था। वे समय-समयपर यज्ञोंका आयोजन भी करते रहते थे। ऐसे गुणवान् राजाका ऐश्वर्य-सम्पन्न होना स्वाभाविक ही था। राजा धर्मकीर्तिके कोशमें धनकी कोई कमी न थी।

दुराचारी पाखंडियोंकी दृष्टि तो सदैव धनपर ही रहती है। उन्होंने राजा धर्मकीर्तिपर भी अपना चक्र चलाया। पाखंडी लोग बार-बार राजाको यह समझाते कि यज्ञ आदि सत्कर्म करनेसे क्या लाभ ? केवल मौजसे रहो, उस कुचक्रसे बचना तो केवल उनके सङ्ग-त्यागसे ही सम्भव था, परंतु राजा धर्मकीर्ति मोहवश उन पाखंडियोंका सङ्ग त्याग न कर सके और उनके कुचक्रके शिकार हो गये। कुसङ्गके कारण राजाको धर्मपथसे च्युत होते देर न लगी। उन्होंने धीरे-धीरे यज्ञ आदि सत्कर्म बंद कर दिये। पाखंडियोंके दुःसङ्गसे राजाकी पाप-कर्मोंके प्रति घृणा नष्ट हो गयी और अन्तमें वे पापकर्मोंमें रत रहने लगे। राजाकी देखादेखी प्रजामें भी अधर्मकी वृत्ति बढ़ने लगी। राजा धर्मकीर्ति कई प्रकारके दुर्व्यसनोंके शिकार हो गये, जिनमें एक मृगयाका दुर्व्यसन भी था। एक दिन आखेटके समय धर्मकीर्ति अपनी सेनासे बिछुड़कर अकेले ही जंगलमें भटक गये। भटकते-भटकते वे नर्मदाके तटपर पहुँचे और नदीके निर्मल जलमें प्रवेशकर उन्होंने अपनी थकान दूर की। संध्या हो गयी थी और अँधेरा होने लगा था, अतः राजा भयसे आगे नहीं बढ़े और वहीं नर्मदाके तटपर विश्राम करने लगे। संयोगवश उस दिन एकादशी तिथि थी। नर्मदा-तटवासी जन एकादशी-व्रती थे। वे लोग वहीं नर्मदाके किनारे रात्रि-जागरणके लिये एकत्र हुए। दिनभरके निराहारी राजाके नेत्रोंमें नींद कहाँ थी। वे भी तटवासियोंके साथ रात्रि-जागरणमें सम्मिलित हो गये और रात्रिभर भजन-कीर्तनमें लगे रहे।

राजा धर्मकीर्ति भूखकी व्यथा सहन न कर सके, जिससे प्रातःकाल होते-होते उनके प्राण प्रयाण कर गये। उनके प्रारब्धमें यही लिखा था। प्राणोंके प्रयाण करते ही धर्मकीर्तिको यमदूतोंने आ घेरा और वे उन्हें यमराजके पास ले गये। विधानकी लेखा रखनेवाले चित्रगुप्तने बताया—'देव ! यद्यपि राजा धर्मकीर्तिने बहुत-से पाप-कर्म किये हैं, परंतु अन्तिम दिन इन्होंने एकादशीके उत्तम व्रतका पालन करके रात्रिभर जागरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके भजन-कीर्तन करते हुए प्राणोंका त्याग किया है। अतः इनके सभी पापोंका क्षय हो गया है। पापोंके क्षयवाले व्यक्तिका यमलोकमें क्या काम ? वह तो उत्तम लोकका भागी होता है।' यमराजने धर्मकीर्तिको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और अपने दूतोंको सावधान करते हुए उन्हें आदेश दिया—

'जो भगवत्पूजामें तत्पर, धर्मपरायण, गुरुजनसेवक, वर्णाश्रमोचित आचारनिष्ठ, दीनरक्षक, एकादशी-व्रती, मृत्युकालमें भजन-कीर्तनमें तल्लीन, भगवत्कथामृतके सेवी, सम्पूर्ण कर्मोंको भगवान्‌को अर्पण करनेवाले, ब्राह्मणभक्त, सत्सङ्गी और अतिथिसत्कारके प्रेमी हों, ऐसे व्यक्ति सदैव उत्तम लोकके अधिकारी होते हैं, अतः इन्हें स्वर्गलोक भेज देना चाहिये।' इस निर्णयके अनुसार राजा धर्मकीर्ति स्वर्गलोकको भेज दिये गये। वहाँ बहुत कालतक स्वर्गके भोग भोगकर पुण्य क्षीण होनेपर उन्होंने पुनः इस पृथ्वीपर सत्यपरायण, धर्मात्मा मुनि गालवके यहाँ जन्म लिया। उनका नाम हुआ भद्रशील।

बालक भद्रशीलमें बड़े अद्भुत गुण थे। भगवान् विष्णुका ध्यान-भजन-चिन्तन यही उस बालकका स्वभाव था। बालकपनमें ही उसने अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें कर लिया था। खेल-ही-खेलमें वह मिट्टीसे भगवान् विष्णुकी प्रतिमा बनाकर उनका पूजन किया करता था। भद्रशीलने अपने साथी बालकोंको भी भगवान् विष्णुका पूजन-आराधन करना सिखा दिया था। साथी बालक भी खेलमें भगवान् विष्णुकी प्रतिमाएँ बनाया करते और उनका पूजन करते। भद्रशील स्वयं एकादशी-व्रतका पालन करता था, अतः उसकी देखादेखी उसके साथी बालक भी एकादशी-व्रत-पालन करना सीख गये थे।

भद्रशील शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंसे सदैव दूर रहता था। उसकी किसीमें ममता-आसक्ति थी नहीं, अतः वह सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे रहित था। भद्रशील अपने आचरणसे कभी किसीको भी दुःख नहीं देता था। वह सर्वदा दूसरोंके हित-सम्पादनका ही ध्यान रखता था। उसमें विलक्षण गुण थे। उसकी प्रार्थना ही ऐसी होती थी—'प्रभो ! आप विश्वके सभी प्राणियोंका कल्याण करें।' जैसा भद्रशीलका नाम था, वैसे ही उसमें गुण भी थे और उसकी भगवद्भजन-ध्यानकी तत्परता प्रेरणाप्रद थी।

भद्रशीलके शैशवकालके मङ्गलमय चरित्रने सभीको विस्मयमें डाल रखा था। यहाँतक कि उसके पिता मुनि गालव भी अपने बालकके चरित्रसे विस्मित थे। ऐसा पावन चरित्र महापुरुषोंकी सेवासे तो सुलभ हो सकता है, परंतु मुनि गालवने कभी भी भद्रशीलको महापुरुषकी सेवा करते नहीं देखा था। मुनि गालव अपने इस पहेलीको सुलझा नहीं सके और अन्तमें उन्होंने बालकसे ही बड़े प्यारसे पूछा—'वत्स ! तुम्हें यह योगि-दुर्लभ बुद्धि कहाँसे और कैसे प्राप्त हुई ?'

बालक भद्रशील अपने आदरणीय पितासे यह रहस्य छिपा नहीं सके। वे जातिस्मर तो थे ही। उन्होंने अपने पूर्वजन्मके राजा धर्मकीर्ति होनेका पूरा विवरण अपने पिताजीसे कह सुनाया कि किस तरह वे दुःसङ्गमें पड़कर भ्रष्ट हुए और पुनः एकादशी-व्रत एवं मृत्युके समय भजन-कीर्तन करनेसे पापोंसे मुक्त होकर इस योनिको प्राप्त हुए।

बालक भद्रशीलने अपने पितासे शास्त्रोचित पूजनके विधि-विधानका अध्ययन किया। मुनि गालव ऐसे योग्य बालकको पाकर अपने जीवनको सार्थक मानते थे। भगवद्भक्त भद्रशीलने अपने सम्पूर्ण कुलको पवित्र कर दिया।

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥

पुण्यसलिला भगवती गङ्गा

भगवती भागीरथी गङ्गाका इस पृथ्वीपर प्रादुर्भाव पापियोंकी सद्गति एवं पृथ्वीको पवित्र करनेके लिये हुआ है।

सूर्यवंशके राजा सगर बड़े बलवान्, धर्मात्मा, कृतज्ञ, गुणवान् तथा परम बुद्धिमान् थे। वे बड़े विनयी एवं सद्गुणोंके भण्डार थे। उन्होंने अपने बलसे अपने पिताके शत्रु सभी राजाओंको परास्त कर सम्पूर्ण पृथ्वीपर अपना राज्य स्थापित किया। दुर्भाग्यवश राजा सगरके साठ हजार एक पुत्र थे। वे सभी बुरे आचरणवाले एवं दुष्ट प्रकृतिके थे तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने-अपने शारीरिक सुख-सुविधा और ऐश-आराममें संलग्न रहते थे। वे धार्मिक अनुष्ठान करनेवाले लोगोंके कार्योंमें सदा विघ्न डाला करते थे। उन्होंने साधु पुरुषोंकी जीविका छीन ली और सदाचारका नाश कर डाला। पृथ्वीके लोग ही नहीं, देवता भी उनके दुराचारोंसे त्रस्त हो गये थे। एक बार धर्मात्मा राजा सगरने महर्षियोंके सहयोगसे अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया। सगरपुत्रोंसे त्रस्त देवताओंको उनके पुत्रोंके विनाशका उपाय हाथ लग गया। इन्द्रने अश्व-मेधयज्ञमें नियुक्त घोड़ेको चुराकर पातालमें तपस्यामें संलग्न महान् वीतराग महात्मा कपिलजीकी कुटियाके पास बाँध दिया। घोड़ेकी खोजमें सगरके पुत्रोंने समस्त पृथ्वी छान डाली, परंतु उन्हें कहीं भी यज्ञका घोड़ा न मिला। अन्तमें उन पुत्रोंने पातालमें जानेके लिये पृथ्वी खोदनी आरम्भ की और वे पातालमें पहुँच गये। पातालमें खोजते-खोजते वे लोग भगवान् कपिलदेवकी गुफापर पहुँचे। वहाँ उन्हें करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावशाली महात्मा कपिलजीका दर्शन हुआ। वे ध्यानमें निमग्न थे। वहाँ एक परम सात्त्विक प्रकाशकी छटा थी। सगरके सभी पुत्रोंका हृदय अत्यन्त मलिन था। वे सभी वहाँ घोड़ा बँधा देखकर क्रोधमें भर गये।

सगरपुत्र परस्पर चिल्लाने लगे—'इसे पकड़ लो, इसे मार डालो। इसीने घोड़ा चुराया है। यह साधु नहीं है, बगुला भगत है।' महात्मा कपिलजी पूर्ववत् ध्यानस्थ थे। उन लोगोंके चिल्लानेका उनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं था। उनकी वृत्ति पूर्णरूपसे ब्रह्मके ध्यानमें लीन थी। उन्हें बाह्य जगत्का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं था। जब उन्होंने नेत्र नहीं खोले, तब सगरपुत्र उनकी बाहें पकड़कर उन्हें लातोंसे मारने लगे। बहुत देर बाद कपिल मुनिको बाह्यज्ञान हुआ। वे विस्मित-से सगरपुत्रोंको देखने लगे।

साधु पुरुषोंका केवल अपमान अथवा उन्हें कटु वचन बोलना ही पूरे वंशके विनाशका कारण हो सकता है, वह अनेक दुःखोंका सृजन करनेवाला होता है। भगवान् संतोंका अपमान सहन नहीं कर सकते। संत, सती सदैव पृथ्वीका मङ्गल करते आये हैं।

सगरपुत्रोंके पापोंकी—दुष्कर्मोंकी इति हो गयी थी। जहाँ धन होता है, जवानी होती है और साथमें अविवेकता होती है, वहाँ पतन अवश्यम्भावी है। सगरपुत्रोंमें अविवेकता भरी थी। उन्होंने बिना कारण ही, बिना विचार किये ही महर्षि कपिलदेवको सताया था। देखते-ही-देखते भगवान् कपिलके नेत्रोंसे आग प्रकट हो गयी, जिससे सभी सगरपुत्र तत्काल भस्म हो गये। साधु-संतोंका कोप दुस्सह होता है।

देवदूतोंद्वारा महाराज सगरको अपने पुत्रोंके दुष्ट व्यवहारका समाचार विदित हुआ। अपने पुत्रोंके विनाशसे राजा सगरको दुःख नहीं हुआ, क्योंकि उनके दुश्चरितको वे भलीभाँति जानते थे। सगरने अपने पौत्र अंशुमान्को महर्षि कपिलदेवके पास उनका कोप शान्त करनेके लिये भेजा। अंशुमान् बुद्धिमान्, विद्वान् एवं भक्त पुरुष थे। वे पाताल ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मुनिवर कपिलकी गुफापर पहुँचे। अंशुमान्ने कपिलदेवजीको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वे विनयपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना करने लगे—'प्रभो! मेरे पितरोंके भाइयोंने आपके साथ दुष्टता की है, उन्हें क्षमा करें। वे अज्ञानी थे, आपकी महिमाका उन्हें ज्ञान नहीं था। आपका स्वभाव तो चन्दनकी तरह है। मेरे इन पितरोंका आप उद्धार करें। आप सदैव ही क्षमावान् हैं।'

अंशुमान्की प्रार्थनासे कपिलमुनि प्रसन्न हो गये। उन्होंने उसे आशीर्वाद दिया कि 'तुम्हारा पौत्र भगवान्की आराधनासे उन्हें प्रसन्नकर पुण्यसलिला गङ्गाको यहाँ लाकर सभी सगरपुत्रोंको निष्पाप बना देगा। उन सबको परम पदकी प्राप्ति होगी।' अंशुमान् कपिलदेवसे आशीर्वाद प्राप्त कर उनसे घोड़ा लेकर अपने पितामहके पास लौट आये। सगरने यज्ञको पूर्ण किया और भगवान् विष्णुकी आराधना करके वैकुण्ठकी प्राप्ति की।

अंशुमान्के दिलीप नामका पुत्र हुआ। भगीरथ इन राजा दिलीपके ही पुत्र थे। अपने पितरोंके उद्धार-हेतु भगीरथने दीर्घकालतक हिमालयपर कठोर तपस्या करके भगवान् विष्णु, ब्रह्मा तथा भगवान् शंकरकी आराधना की। उनके तपसे तीनों देव प्रसन्न हो गये। उन्हें प्रसन्न कर भगीरथ देवनदी गङ्गाको इस पृथ्वीपर ले आये। जगत्को एकमात्र पावन करनेवाली गङ्गा समस्त जगत्को पवित्र करती हुई राजा भगीरथके पीछे-पीछे आकर सगर-पुत्रोंके भस्मको प्लावित करती हुई बहने लगीं। उनके भस्मका गङ्गासे स्पर्श प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होनेसे वे सभी विष्णुधाममें पहुँच गये।

पुण्यसलिला गङ्गाजीकी अमित महिमा है। कलियुगमें विशेषरूपसे गङ्गा एक महान् तीर्थ है। महापातकी भी गङ्गाजीके जलमें स्नान करनेसे पवित्र हो जाते हैं, इस विषयमें अन्यथा-विचार नहीं करना चाहिये। गङ्गाजलका सेवन पापोंको हर लेता है। प्राणीके शरीरमें गङ्गाजीके जलका एक वर्षतक प्रभाव विद्यमान रहता है।

जो देहधारी मनुष्य कहीं अज्ञात स्थानमें मर गये और उनके लिये यदि शास्त्रीय विधिसे तर्पण नहीं किया गया, ऐसे लोगोंको गङ्गाजीके जलसे उनकी हड्डियोंका संयोग होनेपर परलोकमें उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। गङ्गाजीके दर्शनसे मनुष्यको ज्ञान, अनुपम ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, आयु, यश तथा शुभ आश्रमोंकी प्राप्ति होती है। गङ्गाजीके स्मरणमात्रसे संसार-समुद्रमें डूबा हुआ मनुष्य यदि अशुभ कर्मोंसे युक्त हो तब भी उसका उद्धार हो जाता है। गङ्गाजीके जलमें स्नान करनेसे मनुष्यको उसी क्षण अपूर्व पुण्यकी प्राप्ति होती है, उसके सारे पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। गङ्गाजलमें अनन्त गुण है, उसके गुणोंका परिमाण बतानेकी शक्ति किसीमें भी नहीं है। गङ्गाजल-सेवनसे अनेक रोगोंका नाश होता है। जो मोक्षकी कामनासे गङ्गातटपर रहता है, वह अवश्य ही मोक्षका भागी होता है। विशेषतः कलियुगमें गङ्गादेवी सब पाप हर लेती हैं। जो मनुष्य नित्य-निरन्तर गङ्गाजीमें स्नान करता है, वह यहीं जीवन्मुक्त हो जाता है और मरनेपर भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। (ह० कृ० दु०)

वेदमालिको भगवत्प्राप्ति

प्राचीन कालकी बात है। रैवत-मन्वन्तरमें वेदमालि नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहते थे, जो वेदों और वेदाङ्गोंके पारदर्शी विद्वान् थे। उनके मनमें सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दया भरी हुई थी। वे सदा भगवान्‌की पूजामें लगे रहते थे, किंतु आगे चलकर वे स्त्री, पुत्र और मित्रोंके लिये धनोपार्जन करनेमें संलग्न हो गये। जो वस्तु नहीं बेचनी चाहिये, उसे भी वे बेचने लगे। उन्होंने रसका भी विक्रय किया। वे चाण्डाल आदिसे भी दान ग्रहण करते थे। उन्होंने पैसे लेकर तपस्या और व्रतोंका विक्रय किया और तीर्थयात्रा भी वे दूसरोंके लिये ही करते थे। यह सब उन्होंने अपनी स्त्रीको संतुष्ट करनेके लिये ही किया। इसी तरह कुछ समय बीत जानेपर ब्राह्मणके दो जुड़वे पुत्र हुए, जिनका नाम था—यज्ञमाली और सुमाली। वे दोनों बड़े सुन्दर थे। तदनन्तर पिता उन दोनों बालकोंका बड़े स्नेह और वात्सल्यसे अनेक प्रकारके साधनोंद्वारा पालन-पोषण करने लगे। वेदमालिने अनेक उपायोंसे यत्नपूर्वक धन एकत्र किया।

एक दिन मेरे पास कितना धन है यह जाननेके लिये उन्होंने अपने धनको गिनना प्रारम्भ किया। उनका धन संख्यामें बहुत ही अधिक था। इस प्रकार धनकी स्वयं गणना करके वे हर्षसे फूल उठे। साथ ही उस अर्थकी चिन्तासे उन्हें बड़ा विस्मय भी हुआ। वे सोचने लगे—'मैंने नीच पुरुषोंसे दान लेकर, न बेचने योग्य वस्तुओंका विक्रय करके तथा तपस्या आदिको भी बेचकर यह प्रचुर धन पैदा किया है, किंतु मेरी अत्यन्त दुःसह तृष्णा अब भी शान्त नहीं हुई। अहो! मैं तो समझता हूँ, यह तृष्णा बहुत बड़ी कष्टप्रदा है, समस्त क्लेशोंका कारण भी यही है। इसके कारण मनुष्य यदि समस्त कामनाओंको प्राप्त कर ले तो भी पुनः दूसरी वस्तुओंकी अभिलाषा करने लगता है। जरावस्था (बुढ़ापे) में आनेपर मनुष्यके केश पक जाते हैं, दाँत गल जाते हैं, आँख और कान भी जीर्ण हो जाते हैं, किंतु एक तृष्णा ही तरुण-सी होती जाती है। मेरी सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो रही हैं, बुढ़ापेने मेरे बलको भी नष्ट कर दिया, किंतु तृष्णा तरुणी होकर और भी प्रबल हो उठी है। जिसके मनमें कष्टदायिनी तृष्णा मौजूद है, वह विद्वान् होनेपर भी मूर्ख, परम शान्त होनेपर भी अत्यन्त क्रोधी और बुद्धिमान् होनेपर भी अत्यन्त मूढ़बुद्धि हो जाता है। आशा मनुष्योंके लिये अजेय शत्रुकी भाँति भयंकर है, अतः विद्वान् पुरुष यदि शाश्वत सुख चाहे तो आशाको त्याग दे। बल हो, तेज हो, विद्या हो, यश हो, सम्मान हो, नित्य वृद्धि हो रही हो और उत्तम कुलमें जन्म हुआ हो तो भी यदि मनमें आशा एवं तृष्णा बनी हुई है तो वह बड़े वेगसे इन सबपर पानी फेर देती है। मैंने बड़े क्लेशसे यह धन कमाया है। अब मेरा शरीर भी गल गया। अतः अब मैं उत्साहपूर्वक परलोक सुधारनेका यत्न करूँगा।' ऐसा निश्चय करके वेदमालि धर्मके मार्गपर चलने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे। उन्होंने उसी क्षण सारे धनको चार भागोंमें बाँटा। अपने द्वारा पैदा किये उस धनमेंसे दो भाग तो ब्राह्मणने स्वयं रख लिये और शेष दो भाग दोनों पुत्रोंको दे दिये। तदनन्तर अपने किये हुए पापोंका नाश करनेकी इच्छासे उन्होंने जगह-जगह पौंसले, पोखरे, बगीचे और बहुत-से देवमन्दिर बनवाये तथा गङ्गाजीके तटपर अन्न आदिका दान भी किया।

इस प्रकार सम्पूर्ण धनका दान करके भगवान् विष्णुके प्रति भक्तिभावसे युक्त हो वे तपस्याके लिये नर-नारायणके आश्रम बदरीवनमें गये। वहाँ उन्होंने एक अत्यन्त रमणीय आश्रम देखा, जहाँ बहुत-से ऋषि-मुनि रहते थे। फल और फूलोंसे भरे हुए वृक्षसमूह उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे। शास्त्र-चिन्तनमें तत्पर, भगवत्सेवापरायण तथा परब्रह्म परमेश्वरकी स्तुतिमें संलग्न अनेक वृद्ध महर्षि उस आश्रमकी श्रीवृद्धि कर रहे थे। वेदमालिने वहाँ जाकर जानन्ति नामवाले एक मुनिका दर्शन किया, जो शिष्योंसे घिरे बैठे थे और उन्हें परब्रह्म-तत्त्वका उपदेश कर रहे थे। वे मुनि महान् तेजके पुञ्ज-से जान पड़ते थे। उनमें शम, दम आदि सभी गुण विराजमान थे और राग आदि दोषोंका सर्वथा अभाव था। वे सूखे पत्ते खाकर रहा करते थे। वेदमालिने मुनिको देखकर उन्हें प्रणाम किया। जानन्तिने कन्द, मूल और फल आदि सामग्रियोंद्वारा नारायण-बुद्धिसे अतिथि वेदमालिका पूजन किया। अतिथि-सत्कार हो जानेपर वेदमालिने हाथ जोड़ विनयसे मस्तक झुकाकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षिसे कहा—'भगवन्! मैं कृतकृत्य हो गया। आज मेरे सब पाप दूर हो गये। महाभाग! आप विद्वान् हैं, अतः ज्ञान देकर मेरा उद्धार कीजिये।'

ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ जानन्ति बोले—'ब्रह्मन्! तुम प्रतिदिन सर्वश्रेष्ठ भगवान् विष्णुका भजन करो। सर्वशक्तिमान् श्रीनारायणका चिन्तन करते रहो। दूसरोंकी निन्दा और चुगली कभी न करो। महामते! सदा परोपकारमें लगे रहो। भगवान् विष्णुकी पूजामें मन लगाओ और मूर्खोंसे मिलना-जुलना छोड़ दो। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य छोड़कर लोकको अपने आत्माके समान देखो, इससे तुम्हें शान्ति मिलेगी। ईर्ष्या, दोषदृष्टि तथा दूसरेकी निन्दा भूलकर भी न करो। पाखण्डपूर्ण आचार, अहङ्कार और क्रूरताका सर्वथा त्याग करो। सब प्राणियोंपर दया तथा साधु पुरुषोंकी सेवा करते रहो। अपने किये हुए धर्मोंको पूछनेपर भी दूसरोंसे प्रकट न करो। दूसरोंको अत्याचार करते देखो, यदि शक्ति हो तो उन्हें रोको, असावधानी न करो। अपने कुटुम्बका किंचित् न करते हुए सदा अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करो। फल, पुष्प, फल, दूर्वा और पल्लवोंद्वारा निष्कामभावसे जगदीश्वर भगवान् नारायणकी पूजा करो। देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करो। विप्रवर! विधिपूर्वक अग्निकी सेवा भी करते रहो। देवमन्दिरमें प्रतिदिन झाड़ू लगाया करो और एकाग्रचित्त होकर उसकी लिपाई-पुताई किया करो। देवमन्दिरकी दीवारमें जहाँ-कहीं कुछ टूट-फूट गया हो, उसकी मरम्मत कराते रहो। मन्दिरमें प्रवेशका जो मार्ग हो, उसे पताका और पुष्प आदिसे सुशोभित करो तथा भगवान् विष्णुके गृहमें दीपक जलाया करो। प्रतिदिन यथाशक्ति पुराणकी कथा सुनो। उसका पाठ करो और वेदान्तका स्वाध्याय करते रहो। ऐसा करनेपर तुम्हें परम उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा। ज्ञानसे समस्त पापोंका निश्चय ही निवृत्ति एवं मोक्ष हो जाता है।'

जानन्ति मुनिके इस प्रकार उपदेश देनेपर परम बुद्धिमान् वेदमालि उसी प्रकार ज्ञानके साधनमें लगे रहे। वे अपने आपमें ही परमात्मा भगवान् अच्युतका दर्शन करके बड़े प्रसन्न हुए। 'मैं ही उपाधिरहित स्वयंप्रकाश निर्मल ब्रह्म हूँ'—ऐसा निश्चय करनेपर उन्हें परम शान्ति प्राप्त हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्कण्डेयपुराण

महापुराणोंके अन्तर्गत मार्कण्डेय महापुराणका विशिष्ट स्थान है। इसमें चण्डीदेवीका माहात्म्य विस्तारपूर्वक वर्णित है। दुर्गासप्तशती मार्कण्डेयपुराणका ही एक अंश है। दुर्गासप्तशतीका भारतवर्षके वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य सभी सम्प्रदायके लोग बड़ी श्रद्धासे पाठ करते हैं। शारदीय तथा वासन्ती पूजाके समयमें इसका विशेष प्रयोग होता है। मार्कण्डेयपुराणके ८१वें अध्यायसे ९३वें अध्यायतक दुर्गासप्तशतीका प्रंसग आता है।

इस पुराणमें द्रौपदीके पाँच पतियोंके वास्तविक स्वरूपका गूढ़ रहस्य वर्णित है। एक ही इन्द्रके तेज, बल, वीर्य, रूप और द्युति—इन पाँच अंशोंसे पाँचों पाण्डवोंकी उत्पत्तिका वर्णन है। इन्द्रके तेजने प्रथम धर्मरूप धारण कर युधिष्ठिर, बलने पवनरूपसे भीमसेन, अर्धवीर्यने अर्जुन एवं इन्द्रदेवके ही रूप और द्युतिने मिलकर अश्विनीकुमार-द्वयरूपसे माद्रीके गर्भसे नकुल और सहदेवके रूपमें जन्म लिया। एक ही इन्द्र पाँच अंशमें प्रकाशित होकर पाँच पाण्डवोंके रूपमें आये, अतः द्रौपदीके पाँच पति वस्तुतः एक ही हैं—ऐसा वर्णन मिलता है।

मार्कण्डेयपुराणमें विभिन्न उपाख्यान, माहात्म्य, कर्तव्य, लक्षण एवं धर्मका स्वरूप वर्णित है। इसमें राजा हरिश्चन्द्रका उपाख्यान, विश्वामित्रके तपोबलकी महिमा, पातिव्रत्यका माहात्म्य, मदालसाका चरित्र विशेष रूपसे उल्लिखित है। अत्रि-पत्नी अनसूयाके तीन संतानें थीं।—चन्द्र, दत्तात्रेय और दुर्वासा। इनमें दत्तात्रेय विष्णुके अवतार थे। इस पुराणमें इनकी विस्तृत कथाओंके अतिरिक्त योगसाधनाका भी उपदेश है। मदालसाद्वारा बताये गये गृहस्थ-धर्मके उपदेशोंमें पशु-पक्षी एवं श्वपच आदिको नित्य आहार-दानकी भी चर्चा है। कहा गया है कि प्रजाका अनुरञ्जन ही राजाका कर्तव्य है। देह और मन आत्मा नहीं हैं। दत्तात्रेयके उपदेशके अनुसार विषयासक्ति ही दुःखका कारण है। ममतामें आसक्त व्यक्ति योगी नहीं हो सकता। ज्ञानसे मुक्ति और अज्ञानसे बन्धन एवं दुःख होता है। ३९वें अध्यायमें योग-तत्त्व, ४२वें अध्यायमें ॐकार, ४३वें अध्यायमें अरिष्ट, ४५वें अध्यायमें सृष्टि-तत्त्व, ४६वें अध्यायमें ब्रह्माकी आयुका परिमाण आदि वर्णित है। इस पुराणमें भारत-भूभागका कर्मक्षेत्रके रूपमें वर्णन किया गया है। इसी प्रकार विभिन्न राजाओंका भी चरित्र वर्णित है तथा मन्वन्तर एवं मनुका विशद वर्णन उपलब्ध है। दार्शनिक एवं कर्मक्षेत्रका विस्तृत विवरण पठनीय है। भगवान्‌की मङ्गलमयी कथाओं और लोक-परलोककी कल्याणकारी बातोंका अनुपम भण्डार हमारे पुराण-साहित्यमें प्राप्त है। मार्कण्डेयमहापुराण उसी शृङ्खलाका अनुपम रत्न है।

कथा-आख्यान—

राजा खनित्रका सद्भाव

पूर्वकालमें प्रांशु नामक एक चक्रवर्ती सम्राट् थे। इनके ज्येष्ठ पुत्रका नाम प्रजाति था। प्रजातिके खनित्र, शौरि, उदावसु, सुनय, महारथ नामक पाँच पुत्र हुए। उनमें खनित्र ही अपने पराक्रमसे विख्यात राजा हुए थे। वे शान्त, सत्यवादी, शूर, सब प्राणियोंके हितैषी, स्वधर्मपरायण, सर्वदा वृद्ध-सेवी, विजय-सम्पन्न और सर्वलोकप्रिय थे। वे सदा यही चाहते थे कि सब प्राणी आनन्दका उपभोग करें। उन्होंने प्रीतिपूर्वक भाइयोंको विभिन्न राज्योंमें प्रतिष्ठित कर स्वयं सागरस्वरूप वस्त्रसे मण्डित पृथ्वीका पालन करने लगे। उन्होंने शौरिको पूर्वप्रान्तके, उदावसुको दक्षिणदेशके, सुनयको पश्चिमदेशके एवं महारथको उत्तरदेशके राज्यपदपर प्रतिष्ठित किया। खनित्र और उनके भाइयोंके मन्त्रिवंशके क्रममें प्राप्त विभिन्न गोत्रवाले मुनिगण पौरोहित्य-कर्मके लिये नियुक्त थे।

अत्रिकुलमें उत्पन्न सुहोत्र नामक द्विज शौरिके, गौतम-वंशमें उत्पन्न कुशावर्त उदावसुके, कश्यप-गोत्रमें उत्पन्न प्रमति राजा सुनयके तथा वसिष्ठ-गोत्रमें उत्पन्न वसिष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा महारथके पुरोहित थे। ये चारों राजा अपने राज्योंका उपभोग करते थे और खनित्र उन सभी महीपतियोंके अधीश्वर थे।

किसी समय शौरिके मन्त्री विश्ववेदीने अपने स्वामीसे कहा—'इस समय एकान्त है, इसलिये मैं कुछ कहना चाहता हूँ। यह समस्त पृथ्वी जिसके अधीन है, वह राजा और उसके पुत्र-पौत्रादि वंशधर ही सदा राजा होंगे। दूसरे भ्राताओंके अधिकारमें छोटे-छोटे राज्य हैं, जो पुत्रोंमें बँटकर छोटे होते जायँगे और अन्तमें उनके वंशधरोंको कृषिसे जीविका निर्वाह करनी पड़ेगी। राजन्! भाई कभी भाईका उद्धार करना नहीं चाहता, फिर भाईके पुत्रोंपर स्नेह कहाँसे हो सकता है, अतः मेरी तो यही मन्त्रणा है कि आप ही पितृ-पितामहादिके राज्यका शासन कीजिये। मैं इसीके लिये प्रयत्नशील हूँ।'

यह सुनकर राजाने कहा—'मन्त्रिवर! वर्तमान महीपाल (खनित्र) हमारे बड़े भाई हैं और हम उनके अनुज हैं। इसीसे वे समस्त पृथ्वीका शासन करते हैं और हम छोटे-छोटे राज्योंका उपभोग करते हैं। महामते! हम पाँच भाई हैं और पृथ्वी तो एक ही है! फिर समग्र पृथ्वीके ऐश्वर्यका स्वतन्त्ररूपसे उपभोग करनेमें हम सभी कैसे समर्थ हो सकते हैं?'

मन्त्रीने कहा—'मेरा अभिप्राय यह है कि उस पृथ्वीको आप ही स्वीकार करें और सबके प्रधान बनकर पृथ्वीका शासन करें।'

अन्तमें राजा शौरिके प्रतिज्ञा कर लेनेपर मन्त्री विश्ववेदीने उनके अन्यान्य भाइयोंको वशीभूत कर लिया और उनके पुरोहितोंको अपने यहाँ शान्तिकर्ममें नियुक्त कर खनित्रके अनिष्टके लिये अत्यन्त उग्र आभिचारिक (मन्त्र-तन्त्रादि) कर्मका अनुष्ठान प्रारम्भ करा दिया। उसने खनित्रके अन्तरङ्ग विश्वासपात्र सेवकोंको अपनी ओर मिला लिया और ऐसी चालें चलीं, जिनसे शौरिका राजदण्ड अप्रबाधित हो जाय। चारों पुरोहितोंके आभिचारिक प्रयोगसे चार भयानक कृत्याएँ उत्पन्न हुईं, जिन्हें देखकर ही छाती दहल जाती थी। वे हाथमें बड़े-बड़े शूल लिये हुए थीं। वे शीघ्रतापूर्वक खनित्रके पास गयीं, किंतु निष्पाप राजाके पुण्य-बलसे शीघ्र ही हतप्रभ हो गयीं। तब वे लौटकर उन चारों राजपुरोहितों और विश्ववेदीके निकट आयीं। उन्होंने शौरिको दुष्ट मन्त्रणा देनेवाले मन्त्री विश्ववेदी और उन पुरोहितोंको जलाकर भस्म कर दिया।

उस समय सभी लोगोंको इस बातसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि भिन्न-भिन्न नगरोंमें निवास करनेवाले सब-के-सब एक साथ कैसे नष्ट हो गये। महाराज खनित्रने जब अपने भाइयोंके पुरोहितों और एक भाईके मन्त्री विश्ववेदीके एकाएक भस्म हो जानेका समाचार सुना, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने घरपर आये हुए महर्षि वसिष्ठसे भाइयोंके पुरोहितों और मन्त्रीके विनाशका कारण पूछा। तब महामुनि वसिष्ठने अन्तर्दृष्टिसे ज्ञात कर शौरि और उनके मन्त्रीमें जो बातचीत हुई थी तथा पुरोहितोंने जो कुछ किया था, वह सब वृत्तान्त कह सुनाया।

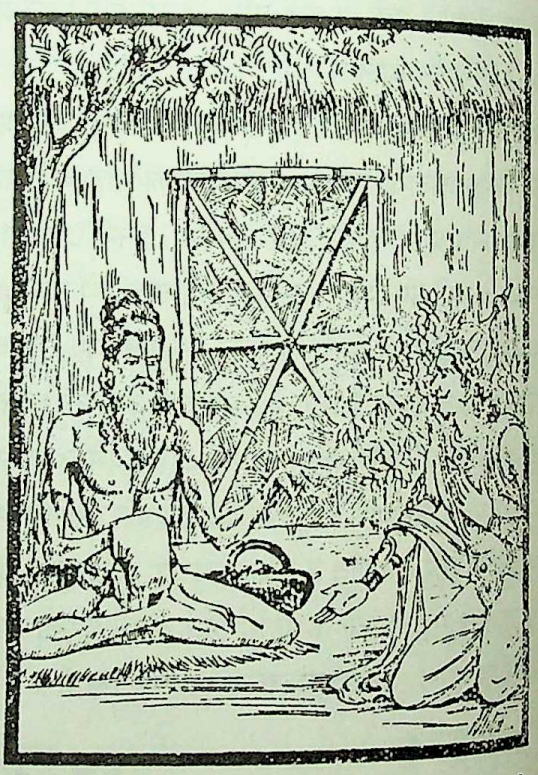

राजाने कहा—'मुने! मैं हतभागी और बड़ा अयोग्य हूँ। दैव मेरे प्रतिकूल है और मैं सब लोकोंमें निन्दित तथा पापी हूँ। मुझ अपुण्यात्माको धिक्कार है, क्योंकि मेरे कारण ही चार ब्राह्मणोंका विनाश हुआ है। अतः मुझसे बढ़कर भूमण्डलमें दूसरा पापी कौन हो सकता है?'

इस प्रकार पृथ्वीपति खनित्रने उद्विग्न होकर वनमें चले जानेकी इच्छासे अपने क्षुप नामक पुत्रका राज्याभिषेक कर दिया और पत्नियोंको साथ लेकर तपस्याके लिये वनमें गमन किया। उन नृपश्रेष्ठने वनमें जाकर वानप्रस्थ-विधानके अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साढ़े तीन सौ वर्षोंतक तपस्या की। अन्तमें उन वनवासी राजाने तपस्याद्वारा अपने शरीरको क्षीण कर सब इन्द्रियोंका निरोध करते हुए प्राणोंका विसर्जन कर दिया। अन्यान्य नृपति सैकड़ों अश्वमेध-यज्ञ करके भी जिस लोकको प्राप्त नहीं कर सकते, खनित्रने मृत्युके पश्चात् उस सर्वाभीष्टप्रद पुण्य लोकको प्राप्त कर लिया। (म० प्र० गो०)

राजा राज्यवर्धनको भास्करदेवका वरदान

पूर्वकालमें दम नामक एक राजा थे, उनके पुत्रका नाम राज्यवर्धन था। वे भलीभाँति पृथ्वीका पालन करते थे। उनके राष्ट्रमें धन-जन प्रतिदिन बढ़ रहा था। उनसे अन्य राजा और सम्पूर्ण राष्ट्र अत्यन्त प्रसन्न और संतुष्ट थे। उनका विवाह राजा विदूरथकी मानिनी नामकी कन्याके साथ हुआ था। किसी समय मानिनी राजसेवकोंके समक्ष ही राजाके सिरपर तेल लगा रही थी, उसी समय उसकी आँखोंसे आँसू गिर पड़े। वे अश्रुकण जब राजाके शरीरपर गिरे, तब उन्होंने मानिनीकी ओर देखा और पूछा—'मानिनि ! क्यों रो रही हो ?' पर उसने कुछ भी उत्तर न दिया। राज्यवर्धनने पुनः मानिनीसे जिज्ञासा की—'तुम क्यों रो रही हो ?'

तब उस सुमध्यमाने कहा—'राजन् ! मुझ मन्दभागिनी-के शोकका कारण आपके केशोंके मध्य एक श्वेत केश है।' यह सुनकर राजा सभी उपस्थित राजगण और पौरजनोंके सम्मुख हँसते-हँसते पत्नीसे कहने लगे—'तुम रोओ मत ! सभी प्राणियोंमें जन्म, वृद्धि और परिणाम आदि विकार लक्षित होते हैं, इसके लिये रोना व्यर्थ है।'

'हमने सभी वेदोंका अध्ययन, हजारों यज्ञोंका अनुष्ठान, पुत्रका उत्पादन, अतिशय दुर्लभ विषयोंका तुम्हारे साथ रहकर उपभोग, भलीभाँति पृथ्वीका पालन तथा बाल्यावस्था और युवावस्थाके योग्य सभी कार्योंका सम्पादन किया है। अब वृद्धावस्थामें हमारा वनमें निवास करना कर्तव्य है।' तब समीपस्थ राजा और पुरवासियोंने राजाको प्रणाम कर विनयपूर्वक कहा—'राजन् ! आपकी पत्नीका रोना तो निरर्थक है, किंतु हमलोगों अथवा सभी प्राणियोंके लिये यह रोनेका समय उपस्थित हो गया है। यदि आप वन जायँगे तो हमलोग भी साथमें ही प्रस्थान करेंगे। इसके फलस्वरूप पृथ्वीपर रहनेवालोंकी निश्चय ही श्रौत-स्मार्त सभी क्रियाएँ समाप्त हो जायँगी।' पर राजाने वनमें जानेका दृढ़ निश्चय कर दैवज्ञोंसे पुत्रके राज्याभिषेकके लिये शुभ मुहूर्तके विषयमें पूछा।

वे बोले—'राजन् ! आप प्रसन्न हों और कृपा करके पहले जैसे हमलोगोंका रक्षण करते थे, वैसे ही रक्षण करें। भूप ! आपके वन जानेसे सभी लोग दुःखी हो जायँगे। इसलिये राजन् ! आप वैसा ही कार्य करें जिससे सभी प्राणी कष्टका अनुभव न करें। हमलोग आपसे शून्य इस सिंहासनको देखना नहीं चाहते।' इस प्रकार उन लोगों तथा अन्यान्य ब्राह्मणों, पुरवासियों, राजाओं, मन्त्रियों, भृत्योंके द्वारा पुनः-पुनः निवेदन करनेपर भी राजाने वनवासकी इच्छाका परित्याग न कर—'यमराज कभी भी क्षमा न करेगा' यही उत्तर दिया। जब राजाने अपने वनवासके विचारका परित्याग नहीं किया तब ब्राह्मण, वृद्ध, पुरवासीगण, मन्त्री, सेवकवर्ग सब मिलकर विचार करने लगे कि अब क्या किया जाय। धार्मिकप्रवर राजाके प्रति प्रेमके कारण उन लोगोंने विचार कर यह निश्चय किया कि हमलोग भलीभाँति ध्यानरत होकर तपस्याके द्वारा भास्करकी आराधना करें और उनसे राजाके चिरजीवी होनेकी प्रार्थना करें। भास्करकी आराधनामें इन्हें इस प्रकार अतिशय प्रयत्नशील देखकर सुदाम नामक एक गन्धर्वने आकर कहा—'कामरूप नामक विशाल पर्वतपर सिद्धोंके द्वारा प्रतिष्ठित एक 'गुरु-विशाल' नामक वनमें शीघ्र जाकर बहाँ संयतचित्तसे सूर्यदेवकी आराधना करनेसे सभी कामनाओंकी प्राप्ति होगी।' गन्धर्वके इस वाक्यको सुनकर वे सभी अरण्यमें गये। वहाँ अतिशय भक्तिपूर्वक तीन मासतक उनके स्तव-पाठपूर्वक पूजा करनेपर भगवान् भास्कर संतुष्ट हुए। इसके बाद भास्कर स्वयं दुर्निरीक्ष्य होनेपर भी अपने दिव्यमण्डलसे निकलकर और उदयकालीन मण्डलसे समन्वित होकर उन आराधकोंको दर्शन दिया तथा वर माँगनेके लिये कहा। तब प्रजाओंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—'भास्करदेव ! यदि आप हमारी भक्तिसे प्रसन्न हैं, तो हमलोगोंके राजा राज्यवर्धन नीरोग, विजितशत्रु, पूर्णकोष और स्थिर-यौवन होकर दस सहस्र वर्षतक जीवित रहें।' 'तथास्तु' कहकर भगवान् भास्कर वहीं अन्तर्हित हो गये और प्रजाजन भी वर-लाभसे संतुष्ट होकर राजाके पास चले आये।

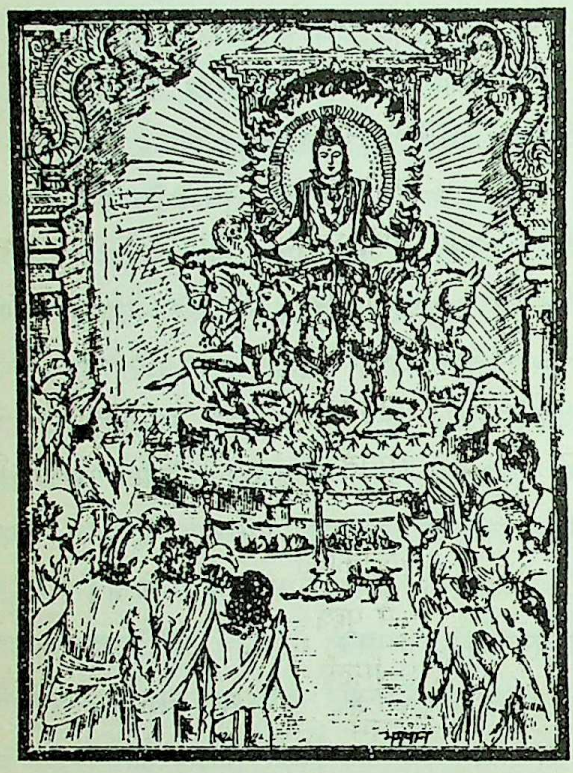

सहस्रांशुकी आराधना और उनसे वर-लाभकी जो कुछ घटना हुई थी, प्रजाओंने राजासे कह सुनायी। उसे सुनकर नरेन्द्र-पत्नी मानिनी बहुत ही प्रसन्न हुईं, परंतु राजाने इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा और वे बहुत देरतक विचार करते रहे। फिर मानिनीने हृष्ट अन्तःकरणसे पतिसे कहा—'महीपाल ! आप बढ़ी हुई आयुसे अब सब प्रकारकी वृद्धि प्राप्त करें। आप नीरोग और स्थिरयौवन होकर आजसे दस सहस्र वर्ष जीयेंगे, फिर भी आप प्रसन्न नहीं हो रहे हैं ?'

यह सुनकर राजाने कहा—'मैं अकेला दस सहस्र वर्षतक जीऊँगा, किंतु तुम नहीं जीओगी। तब क्या तुम वियोगसे मुझे दुःख नहीं होगा ? पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र अन्यान्य प्रिय बान्धवोंकी मृत्युको देखकर क्या मुझे दुःख होगा ? जिन्होंने मेरे लिये अपनी शिराओंको जलाकर तपस्या की, वे मर जायँगे और मैं जीवित रहकर सुख-भोग करूँगा, क्या यह मेरे लिये धिक्कारकी बात नहीं है ? मानिनि ! मुझे जो दस सहस्र वर्षोंकी आयु मिली है, यह मेरे लिये आपत्ति है। इससे कुछ भी अभ्युदय नहीं हुआ है। मैं आजसे उसी पर्वतपर जाकर संयत-चित्त निराहार रहकर भानुदेवको प्रसन्न करनेके लिये तपस्या करूँगा। वरानने ! जिस प्रकार मैं उनके प्रसादसे स्थिर यौवन और निरामय होकर दस सहस्र वर्ष जीऊँगा, उस प्रकार मेरी समस्त प्रजा, भृत्य, तुम, कन्या, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, सुहृद् आदि जीवित रहें। भगवान् भास्कर जबतक ऐसा अनुग्रह न करेंगे और जबतक मेरे प्राण निकल नहीं जायँगे, तबतक मैं उसी पर्वतपर निराहार रहकर तपश्चरण करूँगा।'

इसके बाद सपत्नीक नरपतिने पूर्वोक्त पर्वत-स्थित मन्दिरमें जाकर भास्करदेवकी आराधना करना प्रारम्भ कर दिया। निराहार रहनेसे दिन-दिन जिस प्रकार राजा कृश होने लगे, वैसे ही मानिनी भी कृश होने लगी। दोनोंको शीत, वायु और धूपके सहनेका अभ्यास हो गया तथा दोनों उग्र तपस्यामें निरत हो गये। इस प्रकार सूर्यदेवकी आराधना और तपस्या करते हुए एक वर्षसे भी अधिक काल व्यतीत हो गया। अन्तमें सूर्यदेव प्रसन्न हुए और दोनोंकी अभिलाषाके अनुसार समस्त भृत्य, पुत्र, पौत्र आदिके लिये दस सहस्र वर्षोंकी आयुका वर प्रदान किया। तदनन्तर राजा रानीके साथ राजधानीमें लौट आये और प्रसन्न-चित्तसे धर्मानुकूल प्रजापालन करते हुए दस हजार वर्षोंतक राज्य-शासन करते रहे। (म० प्र० ने)

विपुलस्वान् मुनि और उनके पुत्रोंकी कथा

द्वापर युगकी बात है, मन्दपाल नामका एक पक्षी था। उसके चार पुत्र थे, जो बड़े बुद्धिमान् थे। उनमें द्रोण सबसे छोटा था। वह बड़ा धर्मात्मा और वेद-वेदाङ्गमें पारङ्गत था। उसने कन्धरकी अनुमतिसे उसकी पुत्री तार्क्षीसे विवाह किया। कुछ समय बाद तार्क्षी गर्भवती हुई और साढ़े तीन मासके पश्चात् वह कुरुक्षेत्र चली गयी। वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवितव्यतावश कौरवों और पाण्डवोंके भयंकर युद्धके बीच घुस गयी। तब अर्जुनके बाणसे उसकी खाल उधड़ गयी, जिससे उसका पेट फट गया और उसके चार अंडे अपनी आयु शेष रहनेके कारण पृथ्वीपर ऐसे गिरे मानो रुईकी ढेरपर गिरे हों। उनके गिरते ही राजा भगदत्तके सुप्रतीक नामक गजराजका विशाल घंटा, जिसकी जंजीर अर्जुनके ही बाणसे कटी थी, नीचे गिर पड़ा। उसने भूतलको विदीर्ण कर दिया और मांसकी ढेरपर पड़े तार्क्षीके उन अंडोंको चारों ओरसे ढक दिया।

इसी समय शमीक ऋषि उस स्थानपर आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने उन पक्षि-शावकोंकी चीं-चींकी ध्वनि सुनी। तब उन्होंने शिष्योंके साथ उस घंटेको ऊपर उठाया और उन अनाथ एवं अजातपक्ष पक्षि-शावकोंको देखा। फिर तो उन्होंने शिष्योंसे कहा—'इन पक्षि-शावकोंको आश्रममें ले चलो और इन्हें ऐसे स्थानपर रखो, जहाँ बिलाव आदिका भय न हो।'

मुनिकुमार पक्षि-शावकोंको लेकर आश्रममें आये।

वहाँ मुनिवर शमीकने प्रतिदिन भोजन, जल और संरक्षणके द्वारा उनका पालन-पोषण किया। एक मासमें ही वे सूर्यदेवके रथमार्गपर उड़ने लगे, जिन्हें कौतुकवश आँखें फाड़कर मुनिकुमार देखा करते थे।

जब उन पक्षि-शावकोंने नगरोंसे भरी, समुद्रसे घिरी, नदियोंवाली और रथके पहियेके समान गोल पृथ्वीका परिभ्रमण कर लिया, तब वे आश्रममें लौट आये। उस समय ऋषि शमीक शिष्योंपर अनुकम्पा करके प्रवचनद्वारा धर्म-कर्मका निर्णय कर रहे थे। उन पक्षि-शावकोंने उनकी प्रदक्षिणा करके उनके चरणोंकी वन्दना की और कहा—'मुनिवर! आपने हमें भयंकर मृत्युसे मुक्त किया है, अतः आप हमारे पिता हैं और गुरु भी। जब हमलोग माँके पेटमें थे, तभी हमारी माँ मर गयी और पिताने भी हमारा पालन-पोषण नहीं किया। आपने हमें जीवनदान दिया है, जिससे हम बालक बचे हुए हैं। इस पृथ्वीपर आपका तेज अप्रतिहत है। आपने ही हाथीका घंटा उठाकर कीड़ोंकी भाँति सूखते हुए हमलोगोंके कष्टोंका निवारण किया है।'

उन पक्षि-शावकोंकी ऐसी स्पष्ट शुद्ध वाणी सुनकर शमीक मुनिने उनसे पूछा—'ठीक-ठीक बताओ, तुम्हें यह मानव-वाणी कैसे मिली? साथ ही यह भी बताओ कि किसके शापसे तुममें रूप और वाणीका ऐसा परिवर्तन हो गया?'

पक्षियोंने कहा—विपुलस्वान् नामके एक प्रसिद्ध महामुनि थे। उनके दो पुत्र हुए—सुकृष और तुम्बुरु। हम चारों यतिराज सुकृषके ही पुत्र हैं और सदा विनम्रतापूर्वक व्यवहार और भक्तिभावसे उन्हींकी सेवा-शुश्रूषामें लगे रहे हैं। तपश्चरणमें लीन अपने पिता सुकृष मुनिकी इच्छाके अनुसार हमने समिधा, पुष्प और भोज्य पदार्थ सब कुछ उन्हें समर्पित किया है। इस प्रकार जब हम वहाँ रहते रहे, तब एक बार हमारे आश्रममें विशाल देहधारी टूटे पंखवाले वृद्धावस्थाग्रस्त ताम्रवर्णके नेत्रोंसे युक्त, शिथिल-शरीर पक्षीके रूपमें देवराज इन्द्र पधारे। वे सुकृष ऋषिकी परीक्षा लेने आये थे। उनका आगमन ही हमलोगोंपर शापका कारण बन गया।

पक्षी-रूपी इन्द्रने कहा—'पूज्य विप्रवर! मैं बुभुक्षित हूँ, आप मेरी प्राण-रक्षा करें। मैं भोजनकी याचना करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ। आप ही हमारे एकमात्र उद्धारक हैं। मैं विन्ध्याचलके शिखरपर रहनेवाला हूँ, जहाँसे उड़ान भरनेवाले पक्षियोंके पंखोंकी वेगयुक्त वायुसे मैं नीचे गिर पड़ा। गिरनेके कारण मैं सप्ताहभर बेसुध पृथ्वीपर पड़ा रहा। आठवें दिन मेरी चेतना लौटी। तब क्षुधासे पीड़ित मैं आपकी शरणमें आया हूँ। मैं बड़ा दुःखी हूँ, मेरा मन बड़ा खिन्न है और मेरी प्रसन्नता नष्ट हो चुकी है। बस, मुझे भोजनकी अभिलाषा है। विप्रवर ! आप मुझे कुछ खानेको दें, जिससे मेरे प्राण बच जायँ।'

ऐसा कहे जानेपर सुकृष ऋषिने पक्षिरूपधारी इन्द्रसे कहा—'प्राणरक्षाके लिये तुम जो भी भोजन चाहो, मैं दूँगा।' ऐसा कहकर ऋषिने फिर उस पक्षीसे पूछा—'तुम्हारे लिये मैं किस प्रकारके भोजनकी व्यवस्था करूँ ?' यह सुनकर उसने कहा—'नर-मांस मिलनेपर मैं पूर्णरूपसे संतृप्त हो जाऊँगा।'

ऋषिने पक्षीसे कहा—तुम्हारी कुमारावस्था एवं युवावस्था समाप्त हो चुकी है, अब तुम बुढ़ापेकी अवस्थामें हो। इस अवस्थामें मनुष्यकी सभी इच्छाएँ दूर हो जाती हैं। फिर भी ऐसा क्यों है कि तुम इतने क्रूर-हृदय हो ? कहाँ तो मनुष्यका मांस और कहाँ तुम्हारी अन्तिम अवस्था, इससे तो यही सिद्ध होता है कि दुष्टात्मा लोगोंमें कभी भी प्रशमभावना नहीं हो पाती। अथवा मेरा यह सब कहना निष्प्रयोजन है, क्योंकि जब मैंने वचन दे दिया तब तो तुम्हें भोजन देना ही है।

उससे ऐसा कहकर और नर-मांस देनेका निश्चय करके विप्रवर सुकृषने अविलम्ब हमलोगोंको पुकारा और हमारे गुणोंकी प्रशंसा की। तत्पश्चात् उन्होंने हमलोगोंसे, जो विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़े बैठे थे, बड़ा कठोर वचन कहा—'अरे पुत्रो ! तुम सब आत्मज्ञानी होकर पूर्णमनोरथ हो चुके हो, किंतु जैसे मुझपर अतिथि-ऋण है, वैसे ही तुमपर भी है, क्योंकि तुम्हीं मेरे पुत्र हो। यदि तुम अपने गुरुको जो तुम्हारा एकमात्र पिता है, पूज्य मानते हो तो निष्कलुष हृदयसे मैं जैसा कहता हूँ, वैसा करो।' उनके ऐसा कहनेपर गुरुके प्रति श्रद्धालु हमलोगोंके मुँहसे निकल पड़ा कि 'आपका जो भी आदेश होगा, उसके विषयमें आप यही सोचें कि उसका पालन हो गया।'

ऋषिने कहा—'भूख और प्याससे व्याकुल हुआ यह पक्षी मेरी शरणमें आया है। तुमलोगोंके मांससे इसकी क्षणभरके लिये तृप्ति हो जाती तो अच्छा होता। तुमलोगोंके रक्तसे इसकी प्यास बुझ जाय, इसके लिये तुमलोग अविलम्ब तैयार हो जाओ।' यह सुनकर हमलोग बड़े दुःखी हुए और हमारा शरीर काँप उठा, जिससे हमारे भीतरका भय बाहर निकल पड़ा और हम कह उठे—'ओह ! यह काम हमसे नहीं हो सकता।'

हमलोगोंकी इस प्रकारकी बात सुनकर सुकृष मुनि क्रोधसे जल-भुन उठे और बोले—'तुमलोगोंने मुझे वचन देकर भी उसके अनुसार कार्य नहीं किया, इसलिये मेरी शापाग्निमें जलकर पक्षियोनिमें जन्म लोगे।'

हमलोगोंसे ऐसा कहकर उन्होंने उस पक्षीसे कहा—'पक्षिराज ! मुझे अपना अन्त्येष्टि-संस्कार और शास्त्रोक्त विधिसे श्राद्धादि कर लेने दो, इसके बाद तुम निश्चिन्त होकर यहीं मुझे खा लेना। मैंने अपना ही शरीर तुम्हारे लिये भक्ष्य कर दिया है।' 'आप अपने योगबलसे अपना यह शरीर छोड़ दें, क्योंकि मैं जीवित जन्तुको नहीं खाता।' पक्षीके इस वचनको सुनकर मुनि सुकृष योगयुक्त हो गये। उनके शरीर-त्यागके निश्चयको जानकर इन्द्रने अपना वास्तविक शरीर धारण कर लिया और कहा—'विप्रवर ! आप अपनी बुद्धिसे ज्ञातव्य वस्तुको जान लीजिये। आप महाबुद्धिमान् और परम पवित्र हैं। आपकी परीक्षा लेनेके लिये ही मैंने यह अपराध किया है। आजसे आपमें ऐन्द्र अथवा परमैश्वर्ययुक्त ज्ञान प्रादुर्भूत होगा और आपके तपश्चरण तथा धर्म-कर्ममें कोई भी विघ्न उपस्थित न होगा।'

ऐसा कहकर जब इन्द्र चले गये, तब हमलोगोंने अपने क्रुद्ध पिता महामुनि सुकृषसे सिर झुकाकर निवेदन किया—'पिताजी ! हम मृत्युसे भयभीत हो गये थे, हमें जीवनसे मोह हो गया था, आप हम दोनोंको क्षमा-दान दें।' तब उन्होंने कहा—'मेरे बच्चो ! मेरे मुँहसे जो बात निकल चुकी है, वह कभी मिथ्या न होगी। आजतक मेरी वाणीसे असत्य कभी भी नहीं निकला है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि दैव ही समर्थ है और पौरुष व्यर्थ है। भाग्यसे प्रेरित होनेसे ही मुझसे ऐसा अचिन्तित अकार्य हो गया है। अब तुमलोगोंने मेरे सामने नतमस्तक होकर मुझे प्रसन्न किया है, इसलिये पक्षीकी योनिमें पहुँच जानेपर भी तुमलोग परमज्ञानको प्राप्त कर लोगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवन्! इस प्रकार पहले दुर्दैववश पिता सुकृष ऋषिने हमें शाप दिया था, जिससे बहुत समयके बाद हमलोगोंने (मानव-योनि छोड़कर) दूसरी योनिमें जन्म लिया है।

उनकी ऐसी बात सुनकर परमैश्वर्यवान् शमीक मुनिने समस्त समीपवर्ती द्विजगणको सम्बोधित करके कहा—'मैंने आपलोगोंके समक्ष पहले ही कहा था कि ये पक्षी साधारण पक्षी नहीं हैं, ये परमज्ञानी हैं, जो अमानुषिक युद्धमें भी मरनेसे बच गये।' इसके बाद प्रसन्नहृदय महात्मा शमीक मुनिकी आज्ञा पाकर वे पक्षी पर्वतोंमें श्रेष्ठ, वृक्षों और लताओंसे भरे विन्ध्याचल पर्वतपर चले गये।

वे धर्मपक्षी आजतक उसी विन्ध्यपर्वतपर निवास कर रहे हैं और तपश्चरण तथा स्वाध्यायमें लगे हैं एवं समाधि-सिद्धिके लिये दृढ़ निश्चय कर चुके हैं।

(म० प्र० गो०)

राजा विदूरथकी कथा

विख्यातकीर्ति राजा विदूरथके सुनीति और सुमति नामक दो पुत्र थे। एक समय विदूरथ शिकारके लिये वनमें गये, वहाँ ऊपर निकले हुए पृथ्वीके मुखके समान एक विशाल गड्ढेको देखकर वे सोचने लगे कि यह भीषण गर्त क्या है? यह भूमि-विवर तो नहीं हो सकता? वे इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि उस निर्जन वनमें उन्होंने सुव्रत नामक एक तपस्वी ब्राह्मणको समीप आते हुए देखा। आश्चर्यचकित राजाने उस तपस्वीको भूमिके उस भयंकर गड्ढेको दिखाकर पूछा कि 'यह क्या है?'

ऋषिने कहा—'महीपाल! क्या आप इसे नहीं जानते? रसातलमें अतिशय बलशाली उग्र नामका दानव निवास करता है। वह पृथ्वीको विदीर्ण करता है, अतः उसे कुजृम्भ कहा जाता है। पूर्वकालमें विश्वकर्माने सुनन्द नामक जिस मूसलका निर्माण किया था, उसे इस दुष्टने चुरा लिया है। यह उसी मूसलसे रणमें शत्रुओंको मारता है। पातालमें निवास करता हुआ वह असुर उस मूसलसे पृथ्वीको विदीर्ण कर अन्य सभी असुरोंके लिये द्वारोंका निर्माण करता है। उसने ही उस सुन्दर मूसलरूपी शस्त्रसे पृथ्वीको इस स्थानपर विदीर्ण किया है। उसपर विजय पाये बिना आप कैसे पृथ्वीका भोग करेंगे? मूसलरूपी आयुधधारी महाबली उग्र यज्ञोंका विध्वंस, देवोंको पीड़ित और दैत्योंको संतुष्ट करता है। यदि आप पातालमें रहनेवाले उस शत्रुको मारेंगे तभी सम्राट् बन सकेंगे। उस मूसलको लोग सौनन्द कहते हैं। मनीषिगण उस मूसलके बल और अबलके प्रसंगमें कहते हैं कि उस मूसलको जिस दिन नारी छू लेती है, उसी क्षण वह शक्तिहीन हो जाता है और दूसरे दिन शक्तिशाली हो जाता है। आपके नगरके समीपमें ही उसने पृथ्वीमें छिद्र कर दिया है, फिर आप कैसे निश्चिन्त रहते हैं?' ऐसा कहकर ऋषिके प्रस्थान करनेपर राजा अपने नगरमें लौटकर उस विषयपर मन्त्रियोंके साथ विचार करने लगे। मूसलके प्रभाव एवं उसकी शक्तिहीनता आदिके विषयमें उन्होंने जो कुछ सुना था, वह सब मन्त्रियोंके सम्मुख व्यक्त किया। मन्त्रियोंसे परामर्श करते समय राजाके समीपमें बैठी हुई उनकी पुत्री मुदावतीने भी सभी बातें सुनीं।

इस घटनाके कुछ दिनोंके बाद अपनी सखियोंसे घिरी हुई मुदावती जब उपवनमें थी, तब कुजृम्भ दैत्यने उस वयस्क कन्याका अपहरण कर लिया। यह सुनकर राजाके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने अपने दोनों कुमारोंसे कहा कि 'तुमलोग शीघ्र जाओ और निर्विन्ध्या नदीके तट-प्रान्तमें जो गड्ढा है, उससे रसातलमें जाकर मुदावतीका अपहरण करनेवालेका विनाश करो।'

इसके बाद परम क्रुद्ध दोनों राजकुमारोंने उस गड्ढेको प्राप्त कर पैरके चिह्नोंका अनुसरण करते हुए सेनाओंके साथ वहाँ पहुँचकर कुजृम्भके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। मायाके बलसे बलशाली दैत्योंने सारी सेनाको मारकर उन दोनों राजकुमारोंको भी बंदी बना लिया। पुत्रोंके बंदी होनेका समाचार सुनकर राजाको अतिशय दुःख हुआ। उन्होंने सैनिकोंको बुलाकर कहा—'जो उस दैत्यको मारकर मेरी कन्या और पुत्रोंको मुक्त करायेगा, उसीको मैं अपनी विशालनयना कन्या मुदावतीको दे दूँगा।'

राजाने पुत्रों और कन्याके बन्धन-युक्त होनेसे निराश होकर अपने नगरमें भी उपर्युक्त घोषणा करा दी। उस घोषणाको शस्त्रविद्यामें निपुण भलन्दनके पुत्र बलवान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वत्सप्रीने भी सुना। उसने अपने पिताके श्रेष्ठ मित्र महाराजसे विनयावनत हो प्रणाम कर कहा—'आप मुझे आज्ञा दें, मैं आपके प्रतापसे उस दैत्यको मारकर आपके दोनों पुत्रों और कन्याको छुड़ा लाऊँगा।'

अपने प्रिय मित्रके पुत्रको आनन्दपूर्वक आलिङ्गन कर राजाने कहा—'कार्यकी सिद्धिके लिये तुम शीघ्र प्रस्थान करो।' वत्सप्री तलवार, धनुष, गोधा, अङ्गुलित्र आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो उस गर्तके द्वारा शीघ्र ही पातालमें चला गया। उस राजपुत्रने अपने धनुषकी डोरीका भयंकर शब्द किया, जिससे निखिल पाताल-विवर गूँज उठा। प्रत्यञ्चाके शब्दको सुनकर अतिशय क्रोधाविष्ट दानवपति कुजृम्भ अपनी सेनाके साथ आया। फिर तो दोनों सेनाओंमें युद्ध छिड़ गया। वह दानव तीन दिनोंतक उसके साथ युद्ध करनेके बाद कोपसे आविष्ट हो मूसल लानेके लिये दौड़ा। प्रजापतिके द्वारा निर्मित गन्ध, माल्य तथा धूपसे पूजित वह मूसल अन्तःपुरमें रखा रहता था। उधर मूसलके प्रभावसे अवगत मुदावतीने श्रद्धावनत होकर उस मूसलका पुनः-पुनः स्पर्श किया।

इसके बाद असुरपतिने रणभूमिमें उपस्थित होकर उस मूसलसे युद्ध आरम्भ किया, किंतु शत्रुओंके बीच उसका पात व्यर्थ होने लगा। परमास्त्र सौनन्द मूसलके निर्वीर्य होनेपर वह दैत्य अस्त्र-शस्त्रके द्वारा ही संग्राममें शत्रुके साथ युद्ध करने लगा। राजकुमारने उसे रथहीन कर दिया और कालाग्निके समान आग्नेयास्त्रसे उसे कालके गालमें भेज दिया। तत्क्षण पातालमें स्थित सर्पोंने महान् आनन्द मनाया। राजपुत्रपर पुष्पवृष्टि होने लगी। गन्धर्वोंने संगीत आरम्भ किया और देववाद्य बजने लगे। उस राजपुत्रने दैत्यका विनाश कर सुनीति और सुमति नामक दोनों राजपुत्रों एवं कृशाङ्गी मुदावतीको मुक्त किया।

कुजृम्भके मारे जानेपर शेष नामक नागराजने उस मूसलको ले लिया। तपोधन नागराज सानन्द उस मुदावतीके अभिप्रायको समझकर उससे संतुष्ट हुआ। 'स्त्रियोंके करतलके स्पर्शसे मूसल विगत-शक्ति हो जाता है।' यह बात मुदावतीको ज्ञात थी, इसीसे उस दिन उसने मूसलको बार-बार स्पर्श किया था। नागराजने अतिशय आनन्दके साथ सौनन्द मूसलका गुण जाननेवाली मुदावतीका नाम सौनन्दा रखा। राजपुत्र वत्सप्री भी दोनों राजकुमारों और राजकन्याको शीघ्र ही राजाके पास ले आया और प्रणाम कर निवेदन किया— 'तात ! आपकी आज्ञाके अनुसार

आपके दोनों कुमारों और मुदावतीको छुड़ा लाया हूँ, अब मेरे क्या कर्तव्य है, आज्ञा प्रदान करें।' राजाने कहा—'आज मैं तीन कारणोंसे देवोंके द्वारा भी प्रशंसित हुआ हूँ—प्रथम तुमको जामाताके रूपमें प्राप्त किया, द्वितीय शत्रु विनष्ट हुआ, तृतीय तुम्हारे दोनों पुत्र और कन्या वहाँसे अक्षत-शरीर पुनः लौट आये। राजपुत्र ! आज शुभ दिनमें मेरी आज्ञाके अनुसार तुम मेरी इस सुन्दरी मुदावतीका प्रीतिपूर्वक पाणिग्रहण करो और मुझे सत्यवादी बनाओ।'

वत्सप्रीने कहा—'तातकी आज्ञाका पालन मुझे अवश्य करना चाहिये, अतः आप जो कहेंगे मैं उसका पालन करूँगा। आप जानते ही हैं कि पूज्यजनोंकी आज्ञाके पालनसे मैं कभी भी पराङ्मुख नहीं होता।'

इसके बाद राजेन्द्र विदूरथने कन्या मुदावती और भलन्दनपुत्र वत्सप्रीका विवाह सम्पन्न किया। विवाह हो जानेपर दम्पति रमणीय स्थानों और महलके शिखरोंपर विहार करने लगे। कालक्रमसे वत्सप्रीके पिता भलन्दन वृद्ध होकर वनमें चले गये और वत्सप्री राजा होकर यज्ञोंका अनुष्ठान और धर्मानुसार प्रजाका पालन करने लगे। प्रजा भी उन महात्माको पुत्रके समान प्रतिपालित होकर उत्तरोत्तर समृद्धिशाली होने लगी। (म० प्र० गो०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीदुर्गासप्तशतीकी संक्षिप्त कथा

श्रीव्यास-रचित मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत दुर्गासप्तशती विविध पुरुषार्थ-साधिका, कर्मभक्तिज्ञानोत्तमसिद्धान्त-प्रतिपादिका, वेदवेदान्ततत्त्वप्रकाशिका, सकलभक्ताभीष्टवरप्रदा, अभयदा एवं अशरणशरणदा है। इसमें भगवती दुर्गाके तीन चरित्रोंका वर्णन है, जिनका संक्षिप्त विवरण क्रमशः नीचे दिया जा रहा है—

प्रथम चरित्र

दूसरे मनुके राज्याधिकारमें 'सुरथ' नामक चैत्रवंशोद्भव राजा क्षितिमण्डलका अधिपति हुआ। शत्रुओं तथा दुष्ट मन्त्रियोंके कारण उसका राज्य, कोषादि उसके हाथसे निकल गया। फिर वह मेधा नामक ऋषिके आश्रममें पहुँचा और वहाँ भी मोहवश प्रजा, पुर, शूरहस्ती, धन, कोष और दासोंकी अर्थात् नाशवान् पदार्थोंकी चिन्तामें लगकर दुःखी हुआ। केवल आत्मज्ञ पुरुष ही स्वराट् होता है। सुरथकी वही दशा हुई जो भगवद्भक्तिविहीन पुरुषोंकी होती है। इसी आश्रममें 'समाधि' नामके वैश्यसे राजा सुरथकी भेंट हुई। यद्यपि यह वैश्य अपने धन-लोलुप स्त्री-पुत्रोंद्वारा घरसे बहिष्कृत कर दिया गया था, तब भी उनके दुर्व्यवहारको विस्मृत कर उनके वियोगमें दुःखी था। इस प्रकार ये दोनों दुःखी होकर 'मेधा' ऋषिके समीप पहुँचे। वहाँ दोनों शास्त्रानुसार सम्भाषण करके बैठ गये। राजाने ऋषिसे कहा—भगवन्! जिस विषयमें हम दोनोंको दोष दीखता है, उसकी ओर भी ममतावश हमारा मन जाता है। मुनिवर! यह क्या बात है कि ज्ञानी (बुद्धिमान्) पुरुषोंको भी मोह होता है?'

महर्षि मेधा उन्हें मोहका कारण बतलाते हुए कहने लगे—'इसमें कुछ आश्चर्य नहीं करना चाहिये कि ज्ञानियोंको भी मोह होता है; क्योंकि महामाया भगवती अर्थात् भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा (तमोगुणप्रधान शक्ति) ज्ञानी (बुद्धिमान्) पुरुषोंके चित्तको भी बलपूर्वक खींचकर मोहयुक्त कर देती है, वे ही भक्तोंको वर प्रदान करती हैं और वे ही 'परमा' अर्थात् ब्रह्मज्ञानरूपा हैं।'

राजाने भगवतीकी ऐसी महिमा सुनकर ऋषिसे—'हे द्विज! हे ब्रह्मविदां वर! (ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ)' के सम्बोधनसे तीन प्रश्न किये—

(१) वे महामाया देवी कौन हैं? (२) वे कैसे उत्पन्न हुईं? और (३) उनका कर्म तथा प्रभाव क्या है?

मुनिने उत्तर दिया—

'नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।'

अर्थात् वे जगन्मूर्ति नित्या हैं और उन्हींसे यह सब व्याप्त है। तब भी उनकी उत्पत्ति देवताओंकी कार्यसिद्धिके अर्थ कही जाती है।

जब प्रलयके पश्चात् भगवान् विष्णु शेषशय्यापर योगनिद्रामें निमग्न हुए, तब उनके कर्ण-मलसे मधु और कैटभ नामक दो असुर उत्पन्न होकर हरि-नाभि-कमल-स्थित ब्रह्माजीको ग्रसने चले। तब ब्रह्माजी भगवान्की योग-निद्राकी षट्तुरीया शक्तिके रूपमें सुन्दर सरस स्तुति परम प्रेमपूर्वक करने लगे और उसमें उन्होंने ये तीन प्रार्थनाएँ कीं— (१) भगवान् विष्णुको जगा दीजिये, (२) उन्हें असुरद्वयके संहारार्थ उद्यत कीजिये और (३) असुरोंको विमोहित करके भगवान्द्वारा उनका नाश करवाइये। श्रीभगवतीने स्तुतिसे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीको दर्शन दिया। उससे (योगनिद्रासे) मुक्त होकर भगवान् उठे और असुरोंसे युद्ध करने लगे। तदुपरान्त असुरयुगल योगनिद्राके द्वारा मोहित हुए और उन्होंने भगवान्से वरदान माँगनेको कहा। अन्तमें उसी वरदानके अनुसार वे भगवान्के हाथों मारे गये।

इस कथासे तीन बातोंका निष्कर्ष निकलता है— (१) ब्रह्माको गुणत्रयसे परे परमभाव—परमा-शक्तिका ज्ञान। (२) प्रकृतिके गुणत्रयका कार्य, उसके कर्तृत्वका भान और (ब्रह्माका) अपने सृष्टिकर्तृत्वमें निरहंकारत्व तथा (३) मधु-कैटभ अर्थात् सुकृत-दुष्कृतमें निर्ममत्व एवं उसके निर्मूलनका प्रयत्न।

इस कथासे श्रीब्रह्माजीने यह उपदेश दिया कि 'जो भगवतीकी आराधना करते हैं एवं कर्तृत्वके अभिमान तथा सुकृत-दुष्कृतरूपी कर्मफलको त्यागकर अपने विहित कर्ममें प्रवृत्त रहते हैं, उनका जीवन शान्तिपूर्वक निर्विघ्नरूपसे व्यतीत होता है।' यही ब्राह्मी स्थिति है, जिसे पाकर मनुष्य मोहग्रस्त नहीं होता। महर्षि मेधा सुरथ तथा समाधि दोनों जिज्ञासुओंके मोहके निराकरणार्थ कर्मके उच्चतम सिद्धान्तका निरूपण करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासना तथा ज्ञानयोगके तत्त्वको भगवतीके अन्यान्य प्रभावों-द्वारा वर्णन करने लगे।

मध्यम चरित्र

इस कथामें ऋषिने सुरथ तथा समाधिके प्रति मोहजनित सकामोपासनाद्वारा अर्जित फलोपभोगके निराकरणके लिये निष्कामोपासनाका उपदेश किया है।

प्राचीन कालमें महिष नामक एक अति बलवान् असुरने जन्म लिया। वह अपनी शक्तिसे इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यम, वरुण, अग्नि, वायु तथा अन्य सुरोंको हराकर स्वयं इन्द्र बन गया और उसने समस्त देवताओंको स्वर्गसे निकाल दिया। अपने स्वर्ग-सुख—भोगैश्वर्यसे वञ्चित होकर दुःखी देवगण साधारण मनुष्योंकी भाँति मर्त्यलोकमें भटकने लगे। अन्तमें व्याकुल होकर वे लोग ब्रह्माजीके साथ भगवान् विष्णु और शिवजीके निकट गये तथा उनके शरणागत होकर उन्होंने अपनी कष्ट-कथा कह सुनायी।

देव-वर्गकी करुण-कहानी सुन लेनेपर हरि-हरके मुखसे महत्तेज प्रकट हुआ। इसके पश्चात् ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यमादि देवताओंके शरीरसे भी तेज निकला। वह सब एक होकर तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाली एक दिव्य देवीके रूपमें परिणत हो गया। तब विधि-हरि-हर—त्रिदेवों तथा अन्य प्रमुख सुरोंने अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रोंमेंसे दिव्य प्रकाशमयी उन तेजोमूर्तिको अमोघ अस्त्र-शस्त्र दिये। तब श्रीभगवती अट्टहास करने लगीं। उनके उस शब्दसे समस्त लोक कम्पायमान हो गये।

तब असुरराज महिष 'आः !' यह क्या है ?' ऐसा कहता हुआ सम्पूर्ण असुरोंको साथ लेकर उस शब्दकी ओर दौड़ा। वहाँ पहुँचकर उसने उन महाशक्ति देवीको देखा, जिनकी कान्ति त्रैलोक्यमें फैली है और जो अपनी सहस्र भुजाओंसे दिशाओंके चारों ओर फैलकर स्थित हैं। इसके बाद असुर देवीसे युद्ध करने लगे। श्रीभगवती और उनके वाहन सिंहने कई कोटि असुर-सैन्यका विनाश किया। तत्पश्चात् श्रीभगवतीके द्वारा चिक्षुर, चामर, उदग्र, कराल, वाष्कल, ताम्र, अन्धक, असिलोमा, उग्रास्य, उग्रवीर्य, महाहनु, बिडाल, महासुर दुर्धर और दुर्मुख—ये चौदह असुर-सेनानी मारे गये। अन्तमें महिषासुर महिष, हस्ती, मनुष्यादिके रूप धारण करके श्रीभगवतीसे युद्ध करने लगा और मारा गया।

अपने समग्र शत्रुओंके मारे जानेपर देवगणने आह्लादित होकर आद्या-शक्तिकी स्तुति की और वर माँगा—'जब-जब हमलोग विपद्ग्रस्त हों, तब-तब आप हमें आपदाओंसे विमुक्त करें और जो मनुष्य आपके इस पवित्र चरित्रको प्रेमपूर्वक पढ़े या सुनें वे सम्पूर्ण सुख और ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हों।'

श्रीभगवती देवताओंको ईप्सित वरदान देकर अन्तर्धान हो गयीं। इस चरित्रमें मेधा ऋषिने इन्द्रादि देवगणके राज्याधिकारका अपहरण, आत्मशक्ति-द्वारा उनके दुःखोंका निराकरण तथा पुनः स्वराज्य-प्राप्तिका वर्णन करके सुरथ राजाके शोक-मोहके निवारणके लिये उन्हीं आत्मशक्तिकी भक्तिका उपदेश किया है।

देवताओंकी प्रार्थनापर भगवतीने उन्हें वर दिया कि जब-जब विपद्ग्रस्त होकर वे उनका स्मरण करेंगे, तब-तब उनका संकट दूर करेंगी।

उत्तर चरित्र

मध्यम चरित्रमें मोहका कारण कर्मफलासक्त देवोंको दिखाया जाकर उत्तर चरित्रमें परानिष्ठा-ज्ञानके बाधक आत्ममोहन-अहंकारादिके निराकरणका वर्णन किया गया है।

पूर्वकालमें शुम्भ और निशुम्भ दो महापराक्रमी असुर हुए। उन्होंने इन्द्रके त्रैलोक्यका राज्य और यज्ञोंका भाग छीन लिया। वे दोनों ही सूर्य,चन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, पवन और अग्निके अधिकारोंके अधिपति बन बैठे तथा उन्होंने सुरसमाजको स्वर्गसे निकाल दिया। तब सशोक अमर्त्य मर्त्य लोकमें आये। बारम्बार दुःसह दुःखसे दयनीय दशाधिगत त्रिदशोंको दर्पादि-दुर्दान्त दानवोंके नितान्त दमनका कार्य अनिवार्य प्रतीत हुआ और वे हिमाद्रिपर जाकर दयार्द्रहृदया श्रीदुर्गादेवीके पादपद्मद्वयकी दिव्य ज्ञानमयी वन्दना करने लगे। श्रीभगवती पार्वती अपने वचनानुसार हिमालय-पर्वतपर गङ्गाजीके किनारे प्रकट हुईं और उन्होंने सुरोंसे पूछा—'तुम किसकी स्तुति कर रहे हो ?' उनके इतना कहते ही उनके शरीरसे शिवा निकलकर कहने लगीं—'ये शुम्भ-निशुम्भ-रणपरास्त निरस्तशासन पाकशासनादि मेरी स्तुति कर रहे हैं।'

पार्वतीके शरीरसे अम्बिका उत्पन्न हुईं, एतदर्थ वे कौशिकी नामसे प्रसिद्ध हैं और भगवती पार्वतीके शरीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवाके निकल जानेपर उनका वर्ण कृष्ण हो गया, अतएव ये कालिकाके नामसे विख्यात होकर हिमालयपर रहने लगीं। तत्पश्चात् परम सुन्दरी अम्बिकाको शुम्भ-निशुम्भके भृत्य चण्ड-मुण्डने देखा और उन दोनोंने शुम्भसे जाकर उनके अतुल सौन्दर्यकी प्रशंसा की। उसने अपने भृत्योंकी बात सुनकर सुग्रीव नामक असुरको अम्बिकाको ले आनेके लिये भेजा।

सुग्रीवने भगवतीके पास पहुँचकर शुम्भ-निशुम्भके बलैश्वर्यकी बड़ी प्रशंसा की और उनसे परिग्रहकी बात कही। भगवतीने उत्तर दिया—'जो मुझे संग्राममें पराभूत करके मेरे बल-दर्पको नष्ट करेगा, उसीको मैं पतिरूपमें स्वीकार करूँगी—यही मेरी अटल प्रतिज्ञा है।'

सुग्रीवने शुम्भ-निशुम्भके निकट जाकर भगवती अम्बिकाकी प्रतिज्ञा विस्तारपूर्वक कह सुनायी। असुरेन्द्रोंने कुपित होकर धूम्रलोचन नामक असुरको भेजा। भगवतीने धूम्रलोचनको हुंकारमात्रसे ही भस्म कर दिया और उन्होंने तथा उनके वाहन सिंहने असुर-सेनाका विनाश किया। तदुपरान्त असुरराज शुम्भने चण्ड-मुण्ड दोनोंको बहुत बड़ी सेनाके साथ भगवती कौशिकीको पकड़ लाने अथवा मार डालनेके लिये भेजा। वे सब हिमालयपर जाकर भगवतीको पकड़नेका प्रयत्न करने लगे। तब अम्बिकाने शत्रुओंपर अत्यन्त कोप किया और उनके ललाटसे एक भयानक कालीदेवी प्रकट हुईं। उन्होंने असुर-सेनाका विनाश किया और चण्ड-मुण्डका सिर काटकर वे अम्बिकाके पास ले गयीं, इसी कारण उनका नाम चामुण्डा पड़ा।

चण्ड-मुण्डके वधका समाचार सुनकर असुरेशोंने एक बड़ी सेना, जिसमें सात सेनानायकोंका विभाग था, भगवतीसे युद्ध करनेके लिये भेजी। उस समय ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, महावराह, नृसिंह और स्वामिकार्तिकेय—इन सात प्रमुख देवोंकी शक्तियाँ असुर-सेनासे युद्ध करनेके लिये आयीं। फिर अम्बिकाके शरीरसे अत्यन्त भयङ्कर शक्ति निकली और भगवतीने शुम्भ-निशुम्भके पास शिवजीको दूतरूपमें भेजकर उनसे कहलाया—'यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो देवताओंको उनके छीने हुए लोक एवं यज्ञाधिकार लौटा दो और पातालमें जाकर रहो।'

बलसे उन्मत्त शुम्भ-निशुम्भने देवीकी बात नहीं मानी और वे युद्धस्थलमें सेनासहित उपस्थित हुए। भगवतीने देव-शक्तियोंकी सहायतासे असुरसैन्यका संहार करना प्रारम्भ किया, तब असुर-युगलका रक्तबीज नामक एक सेनाध्यक्ष भगवती और देवशक्तियोंसे युद्ध करने लगा। उसके शरीरसे शोणितके जितने बिन्दु पृथ्वीपर गिरते थे, उतने ही रक्तबीज उत्पन्न हो जाते थे। अन्तमें देवीने चामुण्डाको आज्ञा दी कि वह अपने मुखका विस्तार करके रक्तबीजके शरीरके रक्तको अपने मुखमें ले और उससे उत्पन्न असुरोंको भक्षण करे। चामुण्डाने ऐसा ही किया और भगवतीने उस असुरका सिर काट डाला। तत्पश्चात् निशुम्भ भगवतीसे युद्ध करने लगा और मारा गया। तब शुम्भने क्रोधित होकर अम्बिकासे कहा—'तू दूसरोंके बलका सहारा लेकर अभिमान करती है?'

श्रीभगवतीने उत्तर दिया—'संसारमें मैं एक ही हूँ, ये समस्त विभूतियाँ मेरी रूपान्तरमात्र हैं। ये मुझसे ही प्रकट हुई हैं और मुझमें ही विलुप्त हो जायँगी।' इसके बाद सातों शक्तियाँ, जो देवीके शरीरसे निकली थीं, उन्हींमें प्रविष्ट हो गयीं और शुम्भ भी देवीके युद्ध-कौशलसे मारा गया। देवगणने हर्षित होकर अम्बिकाकी स्तुति की। अन्तमें देवी प्रसन्न होकर बोलीं—'संसारका उपकार करनेवाला वर माँगो।'

देवताओंने कहा—'जब-जब हमारे शत्रु उत्पन्न हों, तब-तब उनका नाश हो।' भगवती आद्याशक्तिने 'एवमस्तु' कहा और भविष्यमें सात बार भक्त-रक्षणार्थ अवतार लेनेकी कथा, दुर्गाचरित्रके पाठका माहात्म्य वर्णन करके वे अन्तर्धान हो गयीं।

यह चरित्र ज्ञानकाण्डका है और इसमें तीन विषय हैं—(१) देवताओंका सात्त्विक ज्ञानसे स्तुति करना, (२) ज्ञानके विरोधी अहंकारादिका नाश और (३) भगवतीका अद्वैत-भाव।

१- देवताओंको भगवतीकी उपासनाका ज्ञान था। इसी हेतु उन्हें अब श्रीब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तत्त्वज्ञ ईश्वरकोटिके देवताओंके निकट जानेकी आवश्यकता न थी और वे जगज्जननी भगवतीकी स्तुति ज्ञान-दृष्टिसे करनेके लिये प्रवृत्त हुए। सात्त्विक ज्ञानका लक्षण श्रीमद्भगवद्गीतामें इस प्रकार कहा है—'जिस ज्ञानद्वारा मनुष्य समस्त पृथक्-पृथक्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूतोंमें एक ही अभिन्न अविनाशी परमात्माके दर्शन करता है, वह सात्त्विक ज्ञान है।' अतएव देवगण **'या देवी सर्वभूतेषु'** इत्यादि स्तुतिसे सब भूतोंमें उन्हीं आद्याशक्तिका एक अव्यय, अविनाशी भाव जानकर तेईस मातृगणोंद्वारा उनकी वन्दना करने लगे।

२-परमार्थ-पथ-तत्पर प्रपन्न पुरन्दरादि देवोंने शुम्भ-निशुम्भादि विपक्षियोंके क्षयकी काङ्क्षा प्रकट करते हुए प्राञ्जलि हो पुष्कल पुनीत प्रार्थनाएँ करके परमा पार्वतीका प्रत्यक्ष दर्शन किया और श्रीभगवतीने शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज, धूम्रलोचन, चण्ड, मुण्ड तथा सुग्रीव—इन प्रमुख सात असुरोंको पराजित करके देवताओंकी रक्षा की।

३-श्रीजगदम्बिकाने शुम्भके प्रति कहा है—मैं इस संसारमें एक ही हूँ और मुझसे अतिरिक्त दूसरा कौन है ? मैं अपनी विभूतिद्वारा बहुत-से रूपोंसे यहाँ स्थित थी, अब उन सबको अपनेमें लय करके पुनः अकेली ही स्थित हूँ।

उपसंहार

भगवती चण्डिका अपनी स्तुतिका माहात्म्य और उसका फल तथा पूजाविधि कहकर अन्तर्धान हो गयीं और मेधा ऋषिने उन्हीं महाशक्तिको धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-फलप्रदा कहकर यह उपदेश किया—'महाराज ! आप उन्हीं परमेश्वरी-की शरणमें जाइये। वे अपनी आराधनासे प्रसन्न होकर मनुष्योंको भोग, स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करती हैं।'

राजा और वैश्य श्रीभगवतीके चरित्र तथा महर्षि मेधाके उपदेशको सुनकर उन महादेवी भगवतीको प्रसन्न करनेके लिये नदी-तटपर महती तपश्चर्या एवं उपासना करने लगे। जगद्धात्री चण्डिकाने प्रसन्न होकर उन दोनोंको दर्शन दिया और कहा—'मैं तुम दोनोंसे प्रसन्न हूँ, तुम जो कुछ माँगोगे वही मैं तुम्हें दूँगी।' आद्या देवीकी बात सुन राजाने यह विचार किया—'मेरे लिये अपना क्षात्रकर्म करना ही उचित है। अपने आश्रितजनोंको कष्टमें छोड़कर अकेले वनमें चले जाना क्षात्र-धर्मके विरुद्ध है। यदि मैं ब्रह्माजीके समान अपने कर्तृत्वके अहंकारको भुलाकर उन्हीं महामायाकी आराधना करता तो वे महाशक्ति, जैसे मधु-कैटभसे ब्रह्माकी रक्षा की थी, वैसे हमारी भी करतीं। राजधर्मका आदर्श कर्मयोगके उत्तम सिद्धान्तपर स्थित है, अतएव मुझे चाहिये कि जिस प्रकार इन्द्रादि देवताओंने अधिकारसे निकला हुआ स्वराज्य भगवतीकी कृपासे प्राप्त किया था, उसी प्रकार अपने गये हुए राज्यको पुनः प्राप्त करूँ और न्यायनीतिसे अपनी समस्त प्रजाको सुखी बनाऊँ।' इस विचारके पश्चात् राजाने आगामी जन्ममें अखण्ड राज्य और इस जन्ममें निजबलसे शत्रु-शक्ति-का नाश करके अपना गया हुआ राज्य प्राप्त करनेका वर माँगा।

महादेवी भगवतीने उसे कुछ ही दिनोंमें शत्रुओंपर विजयी होकर स्वराज्य प्राप्त करने तथा दूसरे जन्ममें भूमण्डलपर सूर्य-सुत सावर्णि नामक मनु होनेका वर प्रदान किया। जब भगवतीने वैश्यवर्यसे वर माँगनेको कहा तो उसने विचार किया कि यह संसार दुःखमय है। देवताओंका कई बार अधिकार-च्युत होना और सुरथ राजाका राज्यभ्रष्ट होना प्रमाणित करता है कि सांसारिक भोगैश्वर्य अनित्य है। जिस तुच्छ सांसारिक सुखमें मेरा मोह था, वह वास्तवमें दुःखरूप ही था। जब त्रैलोक्यपर्यन्तका सुख अनित्य है, तब मुझे इससे विरक्त होकर इन परमेश्वरीकी अनुकम्पासे ऐसा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, जिससे नित्य अक्षय सुखस्वरूपमें प्रविष्ट हो सकूँ। निवृत्ति-मार्ग-पथिक ज्ञाननिष्ठ समाधि वैश्यने अपने नाम और जातिको सार्थक करनेवाले उपर्युक्त विचारके अनन्तर श्रीदेवीसे मोहविनाशक ज्ञान माँगा। उसे मनोवाञ्छित वरकी संसिद्धिके लिये ज्ञान देकर श्रीदुर्गा शीघ्र अन्तर्धान हो गयीं।

सदाचारकी रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिये, धन तो आता और जाता रहता है। धन क्षीण हो जानेपर भी सदाचारी मनुष्य क्षीण नहीं माना जाता, किंतु जो सदाचारसे भ्रष्ट हो गया, उसे तो नष्ट ही समझना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

यज्ञमूर्ति भगवान् अग्निदेव

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निपुराण

विषयगत विविधता एवं लोकोपयोगिताकी दृष्टिसे अठारह पुराणोंमें आठवाँ यह अग्निपुराण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अनेकानेक विद्याओंका समावेश होनेके कारण पुराणकारका स्वयंका कथन है—'**आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वा विद्याः प्रदर्शिताः**' (अग्नि० ३८३ । ५१) । अर्थात् इस आग्नेय (अग्नि) पुराणमें सभी विद्याओंका वर्णन है। भगवान् अग्निदेवने महर्षि वसिष्ठको यह पुराण सुनाया था। इसीलिये अग्निदेवके नामसे यह अग्नि या आग्नेय पुराण कहलाता है। मत्स्यपुराणके अनुसार—जिसमें ईशानकल्पके वृत्तान्तका आश्रय लेकर अग्निने महर्षि वसिष्ठके प्रति उपदेश किया है, उसे अग्निपुराण कहते हैं। इसमें सोलह हजार श्लोक हैं। नारदपुराणमें इस पुराणकी जो विषय-सूची दी गयी है, उसमें भी इस पुराणको ईशानकल्पका बताया गया है तथा भगवान् अग्निद्वारा वसिष्ठको उपदिष्ट किया हुआ बतलाया गया है। जिसकी श्लोकसंख्या पंद्रह हजार है।

मत्स्यपुराण (५३ । २८-२९)में इसकी श्लोक-संख्या सोलह हजार, नारदपुराण (१ । ४ ।२५ । १-२)में पंद्रह हजार और श्रीमद्भागवत (१२ । १३ । ५)में पंद्रह हजार चार सौ बतलायी गयी है, किंतु वर्तमान उपलब्ध अग्निपुराणकी श्लोक-संख्या बारह हजार है। इससे प्रतीत होता है कि इस पुराणका कुछ भाग लुप्त है। पद्मपुराणमें पुराणोंको भगवान् विष्णुका ही विग्रह अथवा मूर्तरूप बतलाया गया है और उनके विभिन्न अङ्ग ही विभिन्न पुराण कहे गये हैं। इस दृष्टिसे अग्निपुराणको भगवान् श्रीहरिका बायाँ चरण कहा गया है—

'**अङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते**' (स्वर्गखण्ड ६२ । ४)।

अग्निपुराणमें ३८३ अध्याय हैं, जिनमें परा-अपरा विद्याओंका वर्णन, मत्स्य, कूर्म आदि अवतारोंकी कथाएँ, रामायणके सातों काण्डोंकी संक्षिप्त कथा, हरिवंशनामसे भगवान् श्रीकृष्णके वंशका वर्णन, महाभारतके सभी पर्वोंकी संक्षिप्त कथा, सृष्टि-वर्णन, स्नान-संध्या-पूजा-होम-विधि, मुद्राओंके लक्षण, दीक्षा-विधि, अभिषेक-विधि, विविध मण्डलोंकी रचना-विधि, निर्वाण-दीक्षाके ४८ संस्कार, पवित्रारोपण, अधिवास-विधि, देवालय-निर्माण-फल, भूपरिग्रह-विधान, शिलान्यास-विधान, प्रासाद-लक्षण, प्रासाद-देवता-स्थापन-विधि, विविध देव-प्रतिमाओंके लक्षण, पिण्डिका-लक्षण, लिंगका लक्षण तथा मान, प्राण-प्रतिष्ठाकी विधि, देव-पूजाविधि, कलाशोधन, विद्याशोधन, शान्तिशोधन, तत्त्व-दीक्षा, देवोंके विविध मन्त्र, वास्तु-पूजा-विधि और खगोलका वर्णन है। इसी प्रकार इनमें तीर्थ-माहात्म्य, गया-यात्रा-विधि और श्राद्धकल्प, ज्योतिःशास्त्र, त्रैलोक्य-विजय-विद्या, संग्राम-विजय-विद्या, महामारी-विद्या, वशीकरण आदि षट्कर्म, संवत्सरोंके नाम, मन्त्र, ओषधि, कुब्जिकापूजा, लक्षकोटि होम-विधि, मन्वन्तरोंका परिगणन, वर्णाश्रमधर्म, विविध पातक एवं उनके प्रायश्चित्त-विधान, प्रतिपदासे पूर्णिमातकके तिथि-व्रत, वार-व्रत, दिवस-व्रत, मास-व्रत, दीपदान-व्रत, भीष्म-पञ्चक-व्रत, षोडश महादान, नीराजन-विधि, वेदशाखा-वर्णन, दान-माहात्म्य, राजधर्म, विविध स्वप्न, शकुनापशकुन, पुरुष-स्त्रीके शुभाशुभ लक्षण, रत्न-परीक्षा, धनुर्वेद, व्यवहार, दायभाग, सीमाविवाद-निर्णय, उत्पात-शान्ति-विधि, बलिवैश्वदेव तथा भोजनकी विधि, दिक्पालादि-स्नान एवं विनायक-स्नानकी विधि, विष्णुपञ्जर-स्तोत्र, सूर्य एवं चन्द्रवंशका विस्तार, सिद्धौषधि एवं रसादिका वर्णन, वृक्षायुर्वेद, गजचिकित्सा, अश्वचिकित्सा, गजशान्ति, अश्वशान्ति, नागोंके लक्षण और सर्पदंशकी चिकित्सा, बालतन्त्र, ग्रहयन्त्र, नारसिंहमन्त्र, त्रैलोक्यमोहन-मन्त्र, लक्ष्मी एवं त्वरिता-पूजा तथा मन्त्र, वागीश्वरी-पूजा एवं सिद्धि आदिका प्रतिपादन किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। साथ ही इनमें अघोरास्त्र-मन्त्रोद्धार, पाशुपत-शान्ति, रुद्र-शान्ति, छन्दःशास्त्र, काव्य-लक्षण, नाट्यशास्त्र, शृंगारादि रस, अलंकार, व्याकरणशास्त्र, शब्दकोश, प्रलय-वर्णन, नरक-वर्णन, कर्मविपाक, योगाङ्ग, ब्रह्मज्ञान, भगवद्गीताका भाव, यमगीता तथा अन्तमें पुराणके पठन-पाठन, श्रवण और दानका माहात्म्य बतलाया गया है।

सारांश यह है कि इस पुराणमें लौकिक ज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान आदि सभी विषयोंका समावेश हुआ है। धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, राजनीति, अश्वायुर्वेद, गजशिक्षा, आयुर्वेद, शिल्पशास्त्र, वास्तुविद्या, कर्मकाण्ड, तन्त्रविद्या, अभिचारकर्म, मन्त्रशास्त्र, दर्शनशास्त्र, शस्त्रविद्या, धनुर्वेद, गान्धर्वशास्त्र, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, छन्दःशास्त्र, अलंकारशास्त्र, इतिहास, पुराणशास्त्र, वेदविद्या आदिके विषयोंको सूक्ष्म, किंतु सरल एवं बोधगम्य शैलीमें समझाया गया है। इस पुराणकी अत्यधिक उपादेयता है। यह अपनेमें अध्येताओं तथा गवेषकोंके लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामग्री सँजोये हुए है।

कथा-आख्यान—

जडभरत और सौवीर-नरेशका संवाद

प्राचीन कालकी बात है, राजा भरत शालग्रामक्षेत्रमें रहकर भगवान् वासुदेवकी पूजा आदि करते हुए तपस्या कर रहे थे। उनकी एक मृगके प्रति आसक्ति हो गयी थी, इसलिये अन्तकालमें उसीका स्मरण करते हुए प्राण त्यागनेके कारण उन्हें मृग होना पड़ा। मृगयोनिमें भी वे 'जातिस्मर' हुए—उन्हें पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण रहा। अतः उस मृगशरीरका परित्याग करके वे स्वयं ही योगबलसे एक ब्राह्मणके रूपमें प्रकट हुए। उन्हें अद्वैत ब्रह्मका पूर्ण बोध था। वे साक्षात् ब्रह्मस्वरूप थे, तो भी लोकमें जडवत् (ज्ञानशून्य मूककी भाँति) व्यवहार करते थे। उन्हें हृष्ट-पुष्ट देखकर सौवीर-नरेशके सेवकने बेगारमें लगानेके योग्य समझा (और राजाकी पालकी ढोनेमें नियुक्त कर दिया)। सेवकके कहनेसे वे सौवीर-राजकी पालकी ढोने लगे। यद्यपि वे ज्ञानी थे, तथापि बेगारमें पकड़े जानेपर अपने प्रारब्धभोगका क्षय करनेके लिये राजाका भार वहन करने लगे, परंतु उनकी गति मन्द थी। वे पालकीमें पीछेकी ओर लगे थे तथा उनके सिवा दूसरे जितने कहार थे, वे सब-के-सब तेज चल रहे थे। राजाने देखा कि अन्य कहार शीघ्रगामी हैं तथा तीव्रगतिसे चल रहे हैं, किंतु यह जो नया आया है, इसकी गति बहुत मन्द है। तब वे बोले—'अरे! क्या तू थक गया? अभी तो तूने थोड़ी ही दूरतक मेरी पालकी ढोयी है। क्या परिश्रम नहीं सहा जाता? क्या तू मोटा-ताजा नहीं है? देखनेमें तो अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट जान पड़ता है।'

ब्राह्मणने कहा—'राजन्! न मैं मोटा हूँ, न मैंने तुम्हारी पालकी ढोयी है, न मुझे थकावट आयी है, न परिश्रम करना पड़ा है और न मुझपर तुम्हारा कुछ भार ही है। पृथ्वीपर दो पैर हैं, पैरोंपर जङ्घाएँ हैं, जङ्घाओंके ऊपर ऊरु और ऊरुओंके ऊपर उदर (पेट) है। उदरके ऊपर वक्षःस्थल, भुजाएँ हैं

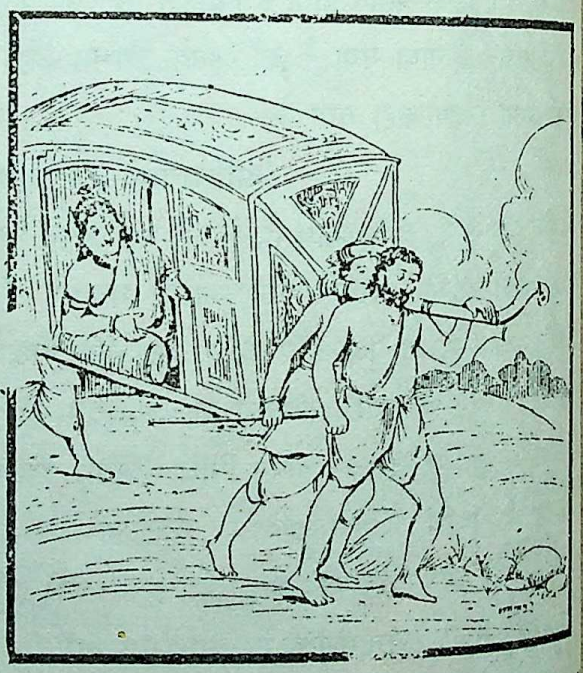

कंधे हैं तथा कंधोंके ऊपर यह पालकी रखी गयी है। फिर मेरे ऊपर यहाँ कौन-सा भार है? इस पालकीपर तुम्हारा कहा जानेवाला यह शरीर रखा हुआ है। वास्तवमें तुम तो (पालकीमें) हो और मैं यहाँ (पृथ्वी) पर हूँ—ऐसा जो कहा जाता है, वह सब मिथ्या है। सौवीरनरेश! मैं, तुम तथा अन्य जितने भी जीव हैं, सबका भार पञ्चभूतोंके द्वारा ही ढोया जा रहा है। ये पञ्चभूत भी गुणोंके प्रवाहमें पड़कर चल रहे हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वीनाथ ! सत्त्व आदि गुण कर्मोंके अधीन हैं तथा कर्म अविद्याके द्वारा संचित हैं, जो सम्पूर्ण जीवोंमें वर्तमान हैं। आत्मा तो शुद्ध, अक्षर (अविनाशी), शान्त, निर्गुण और प्रकृतिसे परे है। सम्पूर्ण प्राणियोंमें एक ही आत्मा है। उसकी न तो कभी वृद्धि होती है और न ह्रास ही होता है। राजन् ! जब उसकी वृद्धि नहीं होती और ह्रास भी नहीं होता, तब तुमने किस युक्तिसे व्यङ्ग्यपूर्वक यह प्रश्न किया है कि 'क्या तू मोटा-ताजा नहीं है ?' यदि पृथ्वी, पैर, जङ्घा, ऊरु, कटि और उदर आदि आधारों एवं कंधोंपर रखी हुई यह पालकी मेरे लिये भारस्वरूप हो सकती है तो यह आपत्ति तुम्हारे लिये भी समान ही है, अर्थात् तुम्हारे लिये भी यह भाररूप कही जा सकती है तथा इस युक्तिसे अन्य सभी जन्तुओंने भी केवल पालकी ही नहीं उठा रखी है, पर्वत, पेड़, घर और पृथ्वी आदिका भार भी अपने ऊपर ले रखा है। नरेश ! सोचो तो सही, जब प्रकृतिजन्य साधनोंसे पुरुष सर्वथा भिन्न है तो कौन-सा महान् भार मुझे सहन करना पड़ता है ? जिस द्रव्यसे यह पालकी बनी है, उसीसे मेरे, तुम्हारे तथा इन सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरोंका निर्माण हुआ है, इन सबकी समान द्रव्योंसे पुष्टि हुई है।'

यह सुनकर राजा पालकीसे उतर पड़े और ब्राह्मणके चरण पकड़कर क्षमा माँगते हुए बोले—'भगवन् ! अब पालकी छोड़कर मुझपर कृपा कीजिये। मैं आपके मुखसे कुछ सुनना चाहता हूँ, मुझे उपदेश दीजिये। साथ ही यह भी बताइये कि आप कौन हैं ? और किस निमित्त अथवा किस कारणसे यहाँ आपका आगमन हुआ है ?'

ब्राह्मणने कहा—'राजन् ! सुनो—'मैं अमुक हूँ'—यह बात नहीं कही जा सकती। तथा तुमने जो आनेका कारण पूछा है, उसके सम्बन्धमें मुझे इतना ही कहना है कि कहीं भी आने-जानेकी क्रिया कर्मफलका उपभोग करनेके लिये ही होती है। सुख-दुःखके उपभोग ही भिन्न-भिन्न देश (अथवा शरीर) आदिकी प्राप्ति करानेवाले हैं तथा धर्माधर्मजनित सुख-दुःखोंको भोगनेके लिये ही जीव नाना प्रकारके देश (अथवा शरीर) आदिको प्राप्त होता है।'

राजाने पूछा—'ब्रह्मन् ! 'जो है' (अर्थात् जो आत्मा सत्स्वरूपसे विराजमान है तथा कर्ता-भोक्तारूपमें प्रतीत हो रहा है) उसे 'मैं हूँ'—यों कहकर क्यों नहीं बताया जा सकता ? द्विजवर ! आत्माके लिये 'अहम्' शब्दका प्रयोग तो दोषावह नहीं जान पड़ता।'

ब्राह्मणने कहा—'राजन् ! आत्माके लिये 'अहम्' शब्दका प्रयोग दोषावह नहीं है, तुम्हारा यह कथन बिलकुल ठीक है, परंतु अनात्मामें आत्मत्वका बोध करानेवाला 'अहम्' शब्द तो दोषावह है ही। अथवा जहाँ कोई भी शब्द भ्रमपूर्ण अर्थको लक्षित कराता हो, वहाँ उसका प्रयोग दोषयुक्त ही है। जब सम्पूर्ण शरीरमें एक ही आत्माकी स्थिति है, तो 'कौन तुम और कौन मैं हूँ'—ये सब बातें व्यर्थ हैं। राजन् !'तुम राजा हो, यह पालकी है, हमलोग इसे ढोनेवाले कहार हैं, ये आगे चलनेवाले सिपाही हैं तथा यह लोक तुम्हारे अधिकारमें है'—यह जो कहा जाता है, यह सत्य नहीं है। वृक्षसे लकड़ी होती है और लकड़ीसे यह पालकी बनी है, जिसके ऊपर तुम बैठे हुए हो। सौवीरनरेश ! बोलो तो, इसका 'वृक्ष' और 'लकड़ी' नाम क्या हो गया ? कोई भी चेतन मनुष्य यह नहीं कहता कि 'महाराज वृक्ष अथवा लकड़ीपर चढ़े हुए हैं।' सब तुम्हें पालकीपर ही सवार बतलाते हैं। (किंतु पालकी क्या है ?) नृपश्रेष्ठ ! रचनाकलाके द्वारा एक विशेष आकारमें परिणत हुई लकड़ियोंका समूह ही तो पालकी है। यदि तुम इसे कोई भिन्न वस्तु मानते हो तो इसमेंसे लकड़ियोंको अलग करके 'पालकी' नामकी कोई वस्तु ढूँढ़ो तो सही। 'यह पुरुष, यह स्त्री, यह गौ, यह घोड़ा, यह हाथी, यह पक्षी और यह वृक्ष है'—इस प्रकार कर्मजनित भिन्न-भिन्न शरीरोंमें लोगोंने नाना प्रकारके नामोंका आरोप कर लिया है। इन संज्ञाओंको लोककल्पित ही समझना चाहिये। जिह्वा 'अहम्' (मैं) का उच्चारण करती है, दाँत, होठ, तालु और कण्ठ आदि भी उसका उच्चारण करते हैं, किंतु ये 'अहम्' (मैं) पदके वाच्यार्थ नहीं हैं; क्योंकि ये सब-के-सब शब्दोच्चारणके साधनमात्र हैं। किन कारणों या उक्तियोंसे जिह्वा कहती है कि 'वाणी ही 'अहम्' (मैं) हूँ।' यद्यपि जिह्वा यह कहती है, तथापि 'यदि मैं वाणी नहीं हूँ' ऐसा कहा जाय तो यह कदापि मिथ्या नहीं है। राजन् ! मस्तक और गुदा आदिके रूपमें जो शरीर है, वह पुरुष (आत्मा) से सर्वथा भिन्न है, ऐसी दशामें मैं किस अवयवके लिये 'अहम्' संज्ञाका प्रयोग करूँ ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूपालशिरोमणे ! यदि मुझ (आत्मा) से भिन्न कोई भी अपनी पृथक् सत्ता रखता हो तो 'यह मैं हूँ', 'यह दूसरा है'—ऐसी बात भी कही जा सकती है। वास्तवमें पर्वत, पशु तथा वृक्ष आदिका भेद सत्य नहीं है। शरीरदृष्टिसे ये जितने भी भेद प्रतीत हो रहे हैं, सब-के-सब कर्मजन्य हैं। संसारमें जिसे 'राजा' या 'राजसेवक' कहते हैं, वह तथा और भी इस तरहकी जितनी संज्ञाएँ हैं, वे कोई भी निर्विकार सत्य नहीं हैं। भूपाल ! तुम सम्पूर्ण लोकके राजा हो, अपने पिताके पुत्र हो, शत्रुके लिये शत्रु, धर्मपत्नीके पति और पुत्रके पिता—इतने नामोंके होते हुए मैं तुम्हें क्या कहकर पुकारूँ ? पृथ्वीनाथ ! क्या यह मस्तक तुम हो ? किंतु जैसे मस्तक तुम्हारा है, वैसे ही उदर भी तो है ? (फिर उदर क्यों नहीं हो ?) तो क्या इन पैर आदि अङ्गोंमेंसे तुम कोई हो ? नहीं, तो ये सब तुम्हारे क्या हैं ? महाराज ! इन समस्त अवयवोंसे तुम पृथक् हो, अतः इनसे अलग होकर ही अच्छी तरह विचार करो कि 'वास्तवमें मैं कौन हूँ ?'

यह सुनकर राजाने उन भगवत्स्वरूप अवधूत ब्राह्मणसे कहा—'ब्रह्मन् ! मैं आत्मकल्याणके लिये उद्यत होकर महर्षि कपिलके पास कुछ पूछनेके लिये जा रहा था। आप भी मेरे लिये इस पृथ्वीपर महर्षि कपिलके ही अंश हैं, अतः आप ही मुझे ज्ञान दें। जिससे ज्ञानरूपी महासागरकी प्राप्ति होकर परम कल्याणकी सिद्धि हो, वह उपाय मुझे बताइये।'

ब्राह्मणने कहा—'राजन् ! तुम फिर कल्याणका ही उपाय पूछने लगे। 'परमार्थ क्या है ?' यह नहीं पूछते। 'परमार्थ' ही सब प्रकारके कल्याणोंका स्वरूप है। मनुष्य देवताओंकी आराधना करके धन-सम्पत्तिकी इच्छा करता है, पुत्र और राज्य पाना चाहता है, किंतु सौवीरनरेश ! तुम्हीं बताओ, क्या यही उसका श्रेय है ? (इसीसे उसका कल्याण होगा ?) विवेकी पुरुषकी दृष्टिमें तो परमात्माकी प्राप्ति ही श्रेय है, यज्ञादिकी क्रिया तथा द्रव्यकी सिद्धिको वह श्रेय नहीं मानता। परमात्मा और आत्माका संयोग—उनके एकत्वका बोध ही 'परमार्थ' माना गया है। परमात्मा एक अर्थात् अद्वितीय है। वह सर्वत्र समान रूपसे व्यापक, शुद्ध, निर्गुण, प्रकृतिसे परे, जन्म-वृद्धि आदिसे रहित, सर्वगत, अविनाशी, उत्कृष्ट, ज्ञानस्वरूप, गुण-जाति आदिके संसर्गसे रहित एवं विभु है। अब मैं तुम्हें निदाघ और ऋतु (ऋभु) का संवाद सुनाता हूँ, ध्यान देकर सुनो—

'ऋतु ब्रह्माजीके पुत्र और ज्ञानी थे। पुलस्त्यनन्दन निदाघने उनकी शिष्यता ग्रहण की। ऋतुसे विद्या पढ़ लेनेके पश्चात् निदाघ देविका नदीके तटपर एक नगरमें जाकर रहने लगे। ऋतुने अपने शिष्यके निवासस्थानका पता लगा लिया था। हजार दिव्य वर्ष बीतनेके पश्चात् एक दिन ऋतु निदाघको देखनेके लिये गये। उस समय निदाघ बलिवैश्वदेवके अनन्तर अन्न-भोजन करके अपने शिष्यसे कह रहे थे—'भोजनके बाद मुझे तृप्ति हुई है; क्योंकि भोजन ही अक्षय तृप्ति प्रदान करनेवाला है।' यह कहकर वे तत्काल आये हुए अतिथिसे भी तृप्तिके विषयमें पूछने लगे।

तब ऋतुने कहा—'ब्राह्मण ! जिसे भूख लगी होती है उसे ही भोजनके पश्चात् तृप्ति होती है। मुझे तो कभी भूख ही नहीं लगी, फिर मेरी तृप्तिके विषयमें क्यों पूछते हो ? भूख और प्यास देहके धर्म हैं। मुझ आत्माका ये कभी स्पर्श नहीं करते। तुमने पूछा है, इसलिये कहता हूँ। मुझे सदा ही तृप्ति बनी रहती है। पुरुष (आत्मा) आकाशकी भाँति सर्वत्र व्याप्त है और मैं वह प्रत्यगात्मा ही हूँ, अतः तुमने जो मुझसे यह पूछा कि 'आप कहाँसे आते हैं ?' यह प्रश्न कैसे सार्थक हो सकता है ? मैं न कहीं जाता हूँ, न आता हूँ और न किसी एक स्थानमें रहता हूँ। न तुम मुझसे भिन्न हो, न मैं तुमसे अलग हूँ। जैसे मिट्टीका घर मिट्टीसे लीपनेपर सुदृढ़ होता है, उसी प्रकार यह पार्थिव देह ही पार्थिव अन्नके परमाणुओंसे पुष्ट होती है। ब्रह्मन् ! मैं तुम्हारा आचार्य ऋतु हूँ और तुम्हें ज्ञान देनेके लिये यहाँ आया हूँ, अब जाऊँगा। तुम्हें परमार्थतत्त्वका उपदेश कर दिया। इस प्रकार तुम इस सम्पूर्ण जगत्को एकमात्र वासुदेव-संज्ञक परमात्माका ही स्वरूप समझो, इसमें भेदका सर्वथा अभाव है।'

तत्पश्चात् एक हजार वर्ष व्यतीत होनेपर ऋतु पुनः उस नगरमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा— निदाघ नगरके पास एकान्त-स्थानमें खड़े हैं। तब वे उनसे बोले—'भैया ! इस एकान्त-स्थानमें क्यों खड़े हो ?' निदाघने कहा—'ब्रह्मन् ! मार्गमें मनुष्योंकी बहुत बड़ी भीड़ खड़ी है; क्योंकि ये नरेश इस समय इस रमणीय नगरमें प्रवेश करना चाहते हैं, इसीलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha Foundation. Chennai and eGangotri

यहाँ ठहर गया हूँ।' ऋतुने पूछा—'द्विजश्रेष्ठ ! तुम यहाँकी सब बातें जानते हो, अतः बताओ कि इनमें कौन नरेश हैं और कौन दूसरे लोग हैं ?' निदाघने कहा—'ब्रह्मन् ! जो इस पर्वत-शिखरके समान खड़े हुए मतवाले गजराजपर चढ़े हैं, वे ही ये नरेश हैं तथा जो उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हैं, वे ही दूसरे लोग हैं। यह नीचेवाला जीव हाथी है और ऊपर बैठे हुए सज्जन महाराज हैं।'

ऋतुने कहा—'मुझे समझाकर बताओ, इनमें कौन राजा है और कौन हाथी ?' निदाघ बोले—'अच्छा बतलाता हूँ।' यह कहकर निदाघ ऋतुके ऊपर चढ़ गये और बोले—'अब दृष्टान्त देखकर तुम वाहनको समझ लो। मैं तुम्हारे ऊपर राजाके समान बैठा हूँ और तुम मेरे नीचे हाथीके समान खड़े हो।' तब ऋतुने निदाघसे कहा—'मैं कौन हूँ और तुम्हें क्या कहूँ ?' इतना सुनते ही निदाघ उतरकर उनके चरणोंमें पड़ गये और बोले—'निश्चय ही आप मेरे गुरुजी महाराज हैं; क्योंकि दूसरें किसीका हृदय ऐसा नहीं है, जो निरन्तर अद्वैत-संस्कारसे सुसंस्कृत रहता हो।' ऋतुने निदाघसे कहा—'मैं तुम्हें ब्रह्मका बोध करानेके लिये आया था और परमार्थ-सारभूत अद्वैत-तत्त्वका दर्शन तुम्हें करा दिया।'

ब्राह्मण (जडभरत) कहते हैं—'राजन् ! निदाघ उस उपदेशके प्रभावसे अद्वैतपरायण हो गये। अब वे सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनेसे अभिन्न देखने लगे। उन्होंने ज्ञानसे मोक्ष प्राप्त किया था, उसी प्रकार तुम भी प्राप्त करोगे। तुम, मैं तथा यह सम्पूर्ण जगत्—सब एकमात्र व्यापक विष्णुका ही स्वरूप है। जैसे एक ही आकाश नीले-पीले आदि भेदोंसे अनेक-सा दिखायी देता है, उसी प्रकार भ्रान्तदृष्टिवाले पुरुषोंको एक ही आत्मा भिन्न-भिन्न रूपोंमें दिखायी देता है।' इस सारभूत ज्ञानके प्रभावसे सौवीरनरेश भव-बन्धनसे मुक्त हो गये। ज्ञानस्वरूप ब्रह्म ही इस अज्ञानमय संसारवृक्षका शत्रु है, इसका निरन्तर चिन्तन करते रहना चाहिये।

भगवान् विष्णुका स्वरूप और उनकी प्राप्तिके उपाय

यत्तद्ब्रह्म यतः सर्वं यत्सर्वं तस्य संस्थितम् ॥

अग्राह्यकमनिर्देश्यं सुप्रतिष्ठं च यत्परम्। परापरस्वरूपेण विष्णुः सर्वहृदिस्थितः ॥
यज्ञेशं यज्ञपुरुषं केचिदिच्छन्ति तत्परम्। केचिद्विष्णुं हरं केचित् केचिद्ब्रह्माणमीश्वरम् ॥
इन्द्रादिनामभिः केचित्सूर्यं सोमं च कालकम्। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगद्विष्णुं वदन्ति च ॥
स विष्णुः परमं ब्रह्म यतो नावर्तते पुनः। सुवर्णादिमहादानपुण्यतीर्थावगाहनैः ॥
ध्यानैर्व्रतैः पूजया च धर्मश्रुत्या तदाप्नुयात्।

(अग्निपुराण ३८२)

वह जो सर्वत्र व्यापक ब्रह्म है, जिससे सबकी उत्पत्ति हुई है, जो सर्वस्वरूप है तथा यह सब कुछ जिसका संस्थान (आकार-विशेष) है, जो इन्द्रियोंसे ग्राह्य नहीं है, जिसका किसी नाम आदिके द्वारा निर्देश नहीं किया जा सकता, जो सुप्रतिष्ठित एवं सबके परे है, उस परापर ब्रह्मके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही सबके हृदयमें विराजमान हैं। वे यज्ञके स्वामी तथा यज्ञस्वरूप हैं। उन्हें कोई तो परब्रह्मरूपसे प्राप्त करना चाहते हैं, कोई विष्णुरूपसे, कोई शिवरूपसे, कोई ब्रह्मारूपसे और कोई ईश्वररूपसे, कोई इन्द्रादि नामोंसे तथा कोई सूर्य, चन्द्रमा और कालरूपसे उन्हें पाना चाहते हैं। मनीषीलोग ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त समस्त जगत्को विष्णुका ही स्वरूप कहते हैं। वे भगवान् विष्णु परब्रह्म परमात्मा हैं, जिनके पास पहुँच जानेपर (जिन्हें जान लेने या पा लेनेपर) फिर वहाँसे इस संसारमें लौटना नहीं पड़ता। सुवर्ण-दान आदि बड़े-बड़े दान तथा पुण्य-तीर्थोंमें स्नान करनेसे, ध्यान लगानेसे, व्रत करनेसे, पूजासे और धर्मकी बातें सुनने (एवं उनका पालन करने) से उनकी प्राप्ति होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्यपुराण

सम्प्रति जो भविष्यपुराण उपलब्ध है, वह ब्राह्म, मध्यम, प्रतिसर्ग तथा उत्तर—इन चार मुख्यपर्वोंमें विभक्त है। पुनः मध्यमपर्व तीन तथा प्रतिसर्गपर्व चार—इन अवान्तरखण्डोंमें विभक्त है। पर्वोंके अन्तर्गत अध्याय हैं, जिनकी कुल संख्या ५८ है और श्लोकसंख्या लगभग २८ हजार है। विषय-वस्तु, वर्णनशैली तथा काव्य-रचनाकी दृष्टिसे यह पुराण अत्यन्त भव्य, आकर्षक तथा उच्चकोटिका ग्रन्थरत्न है। इसमें धर्म, सदाचार, नीति, उपदेश, आख्यान-साहित्य, व्रत, तीर्थ, दान तथा ज्योतिष एवं आयुर्वेदादि शास्त्रोंके विषयोंका अद्भुत संग्रह हुआ है। इसकी कथाएँ इतनी रोचक एवं प्रभावोत्पादक हैं कि एक बार प्रारम्भ करनेपर उन्हें पूरा पढ़े बिना बीचमें छोड़ना कठिन लगता है। उदाहरणार्थ प्रतिसर्गपर्वके द्वितीय खण्डके २३ अध्यायोंमें वेतालविक्रम-संवादके रूपमें जो कथा-प्रबन्ध संगृहीत है, वह अत्यन्त रमणीय तथा मोहक है। अत्यन्त रोचकताके कारण ही यह कथाप्रबन्ध गुणाढ्यकी बृहत्कथा, क्षेमेन्द्रकी बृहत्कथामञ्जरी, सोमदेवके कथासरित्सागर आदिमें 'वेतालपञ्चविंशति'के रूपमें संगृहीत हुआ है। भविष्यपुराणकी इन्हीं २५ कथाओंका नाम वेतालपञ्चविंशति या वेतालपञ्चविंशतिका है। हिंदी-अंग्रेजी आदि अनेक देशी तथा विदेशी भाषाओंमें इसके कई अनुवाद हैं। इसी प्रकार प्रतिसर्गपर्वके ही द्वितीय खण्डके २४से २९ तकके ६ अध्यायों (२४० श्लोकों) में उपनिबद्ध, 'श्रीसत्यनारायणव्रतकथा' सर्वोत्तम कथा-साहित्य है। उत्तरपर्वमें वर्णित व्रतोत्सव तथा दान-माहात्म्यसे सम्बद्ध कथाएँ भी एक-से-एक बढ़कर हैं। साथ ही ब्राह्मपर्व तथा मध्यमपर्वकी सूर्यसम्बन्धी कथाएँ भी कम रोचक नहीं हैं, जो श्रीकृष्णपुत्र साम्बके चरित्रसे सम्बद्ध हैं और साम्बनामक पुराणमें भी अनुलोम-विलोम-क्रमसे प्राप्त हो जाती हैं। आल्हा-ऊदलके इतिहासका प्रसिद्ध आख्यान भी इसी पुराणके आधारपर प्रचलित है।

भविष्यपुराणकी दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह पुराण भारतवर्षके वर्तमान समस्त आधुनिक इतिहासके ग्रन्थोंका आधार है। इसके प्रतिसर्गपर्वके तृतीय तथा चतुर्थखण्डमें इतिहासकी महत्त्वपूर्ण सामग्री विद्यमान है। इतिहासलेखकोंने प्रायः इसीका आधार लिया है। इसमें मध्यकालीन हर्षवर्धन आदि हिंदू राजाओं और अलाउद्दीन, मुहम्मदतुगलक, तैमूरलंग, बाबर, अकबर आदि पठान, तुगलक, खिलजी तथा मुगल राजवंशोंका विस्तृत प्रामाणिक इतिहास निरूपित है।

इस पुराणकी तृतीय विशेषता है कि इसमें विशेषरूपसे मध्यमपर्वमें समस्त कर्मकाण्डका श्रेष्ठ संग्रह हुआ है। यदि इसका ठीकसे सम्पादन हो तो यह किसी भी प्रामाणिक कर्मकाण्ड-ग्रन्थसे न्यून सिद्ध न होकर विशेष उपयोगी प्रतीत होगा। इसमें इष्टापूर्त और सभी प्रकारके यज्ञों तथा संस्कारों आदिके सम्यक् विधान निरूपित हैं।

इसकी अन्य विशेषता यह है कि इसमें वर्णित व्रत तथा दानसे सम्बद्ध विषय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ब्राह्मपर्वके १६वें अध्यायसे लेकर १११वें अध्यायतक प्रायः प्रतिपत्कल्पसे लेकर सप्तमीकल्पतक विभिन्न प्रकारके तिथि-वार व्रतोंका वर्णन है। सप्तमीकल्पमें सोलह प्रकारके सप्तमीव्रतोंका तथा दानोंका सम्यक् प्रतिपादन हुआ है। इतने विस्तारसे व्रतोंका वर्णन न किसी पुराण, धर्मशास्त्रमें है और न किसी स्वतन्त्र व्रत-संग्रहके ग्रन्थमें। हेमाद्रि, व्रतकल्पद्रुम, व्रतरत्नाकर, व्रतराज आदि परवर्ती व्रत-साहित्यमें मुख्यरूपसे भविष्यपुराणका ही आश्रय लिया गया है।

यहाँतक तो समस्त पुराणका संक्षिप्त विहंगावलोकन हुआ। अब पर्वक्रमकी दृष्टिसे उनके प्रमुख विषयोंका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार विवेचित है—

(१) ब्राह्मपर्व—इसमें २१५ अध्याय हैं। इस पर्वमें मुख्यरूपसे नित्यकर्म, संस्कार, सामुद्रिक लक्षण, सृष्टि-प्रक्रिया, वर्णाश्रमधर्म, सर्पोंका सम्पूर्ण विवरण, सूर्य-वृत्तान्त, साम्बोपाख्यान, देवमन्दिर, प्रतिमा-प्रतिष्ठा, पूजा-उपासना-विधान, शान्तिक-पौष्टिक मन्त्र तथा आराधना और व्रतोंका वर्णन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) **मध्यमपर्व**—इसमें ६२ अध्याय हैं, जिनमें वेद-वेदाङ्ग, इतिहास-पुराणका साहित्य, इष्टापूर्तकर्म, साङ्गोपाङ्ग कुण्ड-मण्डप-पात्र-निर्माण-सहित यज्ञ, गोत्र-प्रवर-विवरण, श्राद्धविधि तथा विस्तारसे वृक्षारोपण-माहात्म्य निरूपित है।

(३) **प्रतिसर्गपर्व**—इस पर्वमें १०० अध्याय हैं, जिनमें चारों युगोंका इतिहास, दशविध ब्राह्मण, दशनामधारी संन्यासी, क्षत्रिय, वैश्यादिके सभी शाखाओंका वर्णन, सभी प्रकीर्ण जातियोंका इतिहास, विभिन्न धर्म-सम्प्रदायोंका वर्णन, भोज, जयचन्द, पृथ्वीराज, आल्हा-ऊदल, शिवाजी, पठान, मुगल तथा अंग्रेज-शासकोंके इतिहास और शंकर, मध्व, चैतन्य आदि आचार्योंका जीवनवृत्त वर्णित है। साथ ही विभिन्न भाषाओंका परिचय तथा नगरोंकी स्थापनाका महत्त्वपूर्ण इतिहास भी वर्णित है।

(४) **उत्तरपर्व**—इसमें २०८ अध्यायोंमें मुख्य रूपसे व्रत-विधान, होली-दीपावली आदि उत्सव, देवपूजा, विविध प्रकारकी शान्तिविधि तथा दानोंका निरूपण है। अन्तमें सदाचारका वर्णन है।

कथा-आख्यान—

पुराण सुनने-सुनानेका फल

पुराणके सुनने और सुनानेवालेको महान् फल प्राप्त होता है—यह तथ्य निम्नलिखित कथाके द्वारा प्रकट किया गया है—

'एक बार कुमार कार्तिकेय भगवान् सूर्यके दर्शनके लिये गये। उन्होंने बड़ी श्रद्धासे उनकी पूजा की। इसके बाद भगवान् सूर्यकी आज्ञासे वे वहीं बैठ गये। थोड़ी देर बाद उन्होंने वहाँ दो ऐसे दृश्य देखे जिनसे उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने देखा कि एक दिव्य विमानसे कोई पुरुष आया। उसे देखते ही भगवान् भास्कर उठकर खड़े हो गये। फिर उसके अङ्गको स्पर्श करके और उसका सिर सूँघकर उन्होंने अपनी भक्त-वत्सलता प्रकट की और मीठी-मीठी बातें कर उसे अपने पास ही बैठा लिया। ठीक इसी अवसरपर दूसरा विमान आया। उससे उतरकर जो व्यक्ति भगवान् सूर्यके पास आया, उसका भी उन्होंने वैसा ही सम्मान किया और उसे भी अपने पास ही बैठा लिया।

जिनकी वन्दना ब्रह्मा, विष्णु, महेश किया करते हैं, उन भगवान् सूर्यने दो साधारण व्यक्तियोंका इतना सत्कार कैसे किया—यही कुमारके आश्चर्यका विषय था। कुमारने अपना आश्चर्य भगवान् सूर्यके सामने रखते हुए पूछा—'भगवन्! इन दोनों सज्जनोंने ऐसे कौन-से कर्म किये हैं जो आपके इतने स्नेह-भाजन बन गये हैं?'

भगवान् सूर्यने कहा—'ये सज्जन, जो पहले आये हैं, अयोध्यामें इतिहास-पुराणकी कथा कहा करते थे। कथा सुनानेवाले मुझे बहुत प्रिय लगते हैं। यम, यमी, शनि, मनु, तपती भी मुझे इतने प्रिय नहीं लगते जितने कि कथावाचक। मुझे धूप-दीप आदि उपचारोंसे भी उतनी प्रसन्नता नहीं होती, जितनी कथाके सुनानेसे होती है। इन सज्जनके कथावाचनसे ही मैं इनपर इतना प्रसन्न हुआ हूँ।

भगवान् सूर्यने आगे कहा—'ये सज्जन, जो बादमें मेरे पास आये हैं, बहुत ही श्रद्धासे इतिहास-पुराणको सुना करते थे। एक दिन कथा समाप्त होनेपर इन्होंने कथावाचककी प्रदक्षिणा की और उन्हें सोना प्रदान किया। इनके द्वारा कथावाचकका जो सम्मान किया गया, उससे मेरी प्रीति इनपर और बढ़ गयी।'

इस तरह इतिहास-पुराणका सुनना, इन ग्रन्थों तथा वाचककी पूजा और इतिहास-पुराणका सुनाना भगवान्को सबसे अधिक प्रिय है।

भगवान् सूर्यका परिवार

भगवान् सूर्य उत्पत्तिके समय एक प्रकाशमय विशाल गोलाकार वृत्तके रूपमें थे, उनका एक नाम मार्तण्ड है। देवशिल्पी विश्वकर्माने अपनी पुत्री संज्ञाका विवाह उनके साथ कर दिया था। संज्ञाके सुरेणु, राज्ञी, द्यौ, त्वाष्ट्री एवं प्रभा आदि अनेक नाम हैं। सूर्यका प्रचण्ड तेज संज्ञाके लिये सर्वथा दुःसह था। तेजसे उसकी आँखें मुँद जाती थीं, फिर भी वह सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकारसे अपने पतिको संतुष्ट रखती थी। उसी स्थितिमें संज्ञासे वैवस्वत मनु, यम और यमुना नामकी तीन संतानें उत्पन्न हुईं।

संज्ञाके मनमें अपने पतिके सुन्दर रूपको स्पष्ट न देखनेका दुःख बना रहता था। उसने सोचा कि 'तपस्या करनेसे मुझमें वह शक्ति आ सकती है, जिससे मैं उनके सुन्दर रूपको अच्छी तरह देख सकूँ और उनके अङ्गस्पर्शको सह सकूँगी।' ऐसा विचार कर उसने अपने शरीरसे एक छाया प्रकट की और उसे उसने पतिकी सेवामें नियुक्त कर स्वयं कुछ दिन पिताके घर रहकर, बादमें उत्तरकुरुमें तपस्या करने चली गयी। अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये उसने अपना स्वरूप अश्विनीका बना लिया था।

छायाका दूसरा नाम विक्षुभा है। उसके प्रत्येक अङ्ग, आकृति, बोल-चाल आदि संज्ञाके सदृश ही थे, इसलिये भगवान् सूर्यने इस रहस्यकी ओर ध्यान नहीं दिया। वे छायाको संज्ञा ही मानते रहे। उससे सावर्ण्य मनु, शनि और तपती तथा विष्टि (भद्रा) नामकी चार संतानें हुईं। छाया अपनी संतानोंको बहुत प्यार करती थी और वैवस्वत यम तथा यमुनासे द्वेष करती थी। यह विषमता अन्तमें इतनी बढ़ी कि उसने विवादका रूप धारण कर लिया।

छायाद्वारा निरन्तर उत्पीड़ित होनेपर यमको एक दिन क्रोध हो आया। माताको धमकानेके लिये उन्होंने अपना पैर उठा लिया। यह देखकर छाया कुपित हो उठी, उसने शाप दे दिया कि पितृ-भार्यापर उठाया यह पैर पृथ्वीपर गिर पड़ेगा।

इसी कलहके बीच भगवान् सूर्य आ गये। बालक यमने पितासे कहा—'पिताजी! माता प्रतिदिन हम तीन भाई-बहनोंको तो तंग किया करती हैं और शनि, तपती आदि-की तरह नहीं मानतीं और पृथ्वीपर पैर गिरनेका शाप भी दे डाला है।' यह सुनकर भगवान् सूर्यने छायासे पूछा—'तुम्हारे लिये सभी संतानें बराबर हैं, फिर यह विषमता क्यों करती हो।' भगवान् सूर्यने छायाके शापका परिहार करते हुए कहा कि 'यमका पैर नहीं गिरेगा। तपती संवरणकी पत्नी होगी। विन्ध्याचलके दक्षिण 'तपती' और उत्तरकी ओर 'यमुना' बहेंगी। ये दोनों नदियाँ जनताके पाप-तापका नाश करती रहेंगी।' पुनः उन्होंने पुत्रको वरदान दिया कि 'तुम लोकपाल बन जाओ।'

इसके बाद भगवान् सूर्य अपने ससुर त्वष्टाके पास गये। वे जानना चाहते थे कि मेरी प्रियतमा उन्हें छोड़कर तप क्यों कर रही है? त्वष्टाने ध्यान लगाकर सब बातें जान लीं। उन्होंने बताया कि संज्ञाको आपका तेज असह्य था। आपमें इतना अधिक प्रकाश है कि आपका रूप उससे ढक जाता है। यदि आप चाहें तो प्रकाशको तराशकर कम कर दिया जाय। भगवान् सूर्य अपनी पत्नीकी प्रसन्नताके लिये कष्ट सहनेको तैयार हो गये, तब त्वष्टा (विश्वकर्मा) ने भ्रमि (खराद) पर चढ़ाकर उनके तेजको छाँट दिया।

भगवान् सूर्यको अपनी पत्नीके अनुरूप रूप पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपनी पत्नीके पास उत्तरकुरु चले गये। वहाँ उन्होंने अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये अश्विनी-रूपमें स्थित अपनी पत्नीको पहचान लिया और स्वयं अश्वका रूप धारणकर उससे मिले। बेचारी अश्विनी घबरा गयी। वह डर गयी कि किसी दूसरे पुरुषने मेरा स्पर्श न कर लिया हो। तब उसने दोनों नाकोंसे सूर्यके तेजको फेंक दिया। उसीसे अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति हुई। तेजके अन्तिम अंशसे रेवन्तकी उत्पत्ति हुई। बड़े होनेपर दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हुए और रेवन्तको गुह्यकों एवं अश्वोंका आधिपत्य प्राप्त हुआ।

इस तरह भगवान् सूर्यकी संज्ञासे वैवस्वत मनु, यम यमुना, अश्विनीकुमार और रेवन्त तथा छायासे शनि, तपती, विष्टि और सावर्णिमनु ये दस संताने हुईं। विषमता अच्छी नहीं होती। भगवान् छोटे-बड़े सबमें समानरूपसे विद्यमान हैं। अतः सदा सम व्यवहार ही करना चाहिये। यही साम्ययोग है। इस कथासे व्यक्त होता है कि विषमताके व्यवहारसे कोई लाभ नहीं है।

भगवान् भास्करकी आराधनाका अद्भुत फल

महाराज सत्राजित्का भगवान् भास्करमें स्वाभाविक अनुराग था। कमल तो केवल दिनमें भगवान् सूर्यपर टकटकी लगाये रहते हैं, किंतु सत्राजित्की मनरूपी आँखें उन्हें दिन-रात निहारा करती थीं। भगवान् सूर्यने भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराजको निहाल कर रखा था। उन्होंने ऐसा राज्य दिया था, जिसे वे अपनी प्यारभरी आँखोंसे दिन-रात निहारा करते थे। इतना वैभव दे दिया था, जिसे देखकर सबको विस्मय होता था, स्वयं महाराज भी विस्मित रहते थे।

इसी विस्मयने उनमें यह जिज्ञासा जगा दी थी कि 'वह कौन-सा पुण्य है, जिसके कारण यह वैभव उन्हें मिला है। यदि उस पुण्यकर्मका पता लग जाय तो उसका फिरसे अनुष्ठान कर अगले जन्ममें इस वैभवको स्थिर बना लिया जाय।'

उन्होंने ऋषि-मुनियोंकी एक सभा एकत्र की। महारानी विमलवतीने भी इस अवसरसे लाभ उठाना चाहा। उन्होंने महाराजसे कहा—'नाथ! मैं भी जानना चाहती हूँ कि मैंने ऐसा कौन-सा शुभ कर्म किया है जिससे मैं आपकी पत्नी बन सकी हूँ।'

महाराजने सभाको सम्बोधित करते हुए कहा—'पूज्य महर्षियो! मैं और मेरी पत्नी—दोनों यह जानना चाहते हैं कि पूर्वजन्ममें हम दोनों कौन थे? और किस कर्मके अनुष्ठानसे यह वैभव प्राप्त हुआ है? यह रूप और यह कान्ति भी कैसे प्राप्त हुई है?'

महर्षि परावर्तनने ध्यानसे देखकर कहा—'राजन्! पहले जन्ममें आप शूद्र थे। उस समय आपका स्वभाव और कर्म दोनों आजसे विपरीत थे। प्रत्येकको पीड़ित करना आपका काम था। किसी प्राणीसे आप स्नेह नहीं कर पाते थे। उत्कट पापसे आपको कोढ़ भी हो गया था। आपके अङ्ग कट-कटकर गिरने लगे थे। उस समय आपकी पत्नी मलयवतीने आपकी बहुत सेवा की। आपके प्रेममें मग्न रहनेके कारण वह भूखी-प्यासी रहकर भी आपकी सेवा किया करती थी। आपके बन्धु-बान्धवोंने आपको पहलेसे ही छोड़ रखा था; क्योंकि आपका स्वभाव बहुत ही क्रूर था। आपने क्रूरतावश अपनी पत्नीका भी परित्याग कर दिया था, किंतु उस साध्वीने आपका त्याग कभी नहीं किया। वह छायाकी तरह आपके साथ लगी रही। अन्तमें इसी पत्नीके साथ आपने सूर्यमन्दिरकी सफाई आदिका कार्य आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे आप दोनोंने अपनेको सूर्य भगवान्‌को अर्पित कर दिया।

आप दोनोंके सेवा-कार्य उत्तरोत्तर बढ़ते गये। झाड़ू-बुहारू, लीपना-पोतना आदि कार्य करके शेष समय दोनों इतिहास-पुराणके श्रवणमें बिताने लगे। एक दिन आपकी पत्नीने अपने पिताकी दी हुई अँगूठी वस्त्रके साथ कथा-वाचकको दे दी। इस तरह सूर्यकी सेवासे आप दोनोंके पाप जल गये। सेवामें दोनोंको रस मिलने लगा था, अतः दिन-रातका भान नहीं होता था।

एक दिन महाराज कुवलाश्व उस मन्दिरमें आये। उनके साथ बहुत बड़ी सेना भी थी। राजाके उस ऐश्वर्यको देखकर आपमें राजा बननेकी इच्छा जाग उठी। यह जानकर भगवान् सूर्यने उससे भी बड़ा वैभव देकर आपकी इच्छाकी पूर्ति कर दी है। यह तो आपके वैभव प्राप्त करनेका कारण हुआ। अब आपमें जो इतना तेज है और आपकी पत्नीमें जो इतनी कान्ति आ गयी है, इनका रहस्य सुनो। एक बार सूर्य-मन्दिरका दीपक तैल न रहनेसे बुझ गया। तब आपने अपने भोजनके लिये रखे हुए तैलमेंसे दीपकमें तैल डाला और आपकी पत्नीने अपनी चादर फाड़कर बत्ती लगा दी थी। इसीसे आपमें इतना तेज और आपकी पत्नीमें इतनी कान्ति आ गयी है।

आपने उस जन्ममें जीवनकी संध्यावेलामें तन्मयताके साथ सूर्यकी आराधना की थी। उसका फल जब इतना महान् है तब जो मनुष्य दिन-रात भक्ति-भावसे दत्तचित्त होकर जीवनपर्यन्त सूर्यकी उपासना करता है, उसके विशाल फलको कौन आँक सकता है?

महाराज सत्राजित्‌ने पूछा—'भगवान् सूर्यको क्या-क्या प्रिय है? मैं चाहता हूँ कि उनके प्रिय फूलों और पदार्थोंका उपयोग करूँ।' परावसुने कहा—'भगवान्‌को घृतका दीप बहुत पसंद है। इतिहास-पुराणोंके वाचककी जो पूजा की जाती है, उसे भगवान् सूर्यकी ही पूजा समझो। वेद और वीणाकी ध्वनि भगवान्‌को उतना पसंद नहीं है, जितनी 'कथा'। फूलोंमें करवीर (कनेर) का फूल और चन्दनोंमें रक्त चन्दन भगवान् सूर्यको बहुत प्रिय है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्तव्यपरायणताका अद्भुत आदर्श

प्राचीन कालमें सर्वसमृद्धिपूर्ण वर्धमान नगरमें रूपसेन नामका एक धर्मात्मा राजा था। एक दिन उसके दरबारमें वीरवर नामका एक गुणी व्यक्ति अपनी पत्नी, कन्या एवं पुत्रके साथ वृत्तिके लिये उपस्थित हुआ। राजाने उसकी विनयपूर्ण बातोंको सुनकर प्रतिदिन एक सहस्र स्वर्णमुद्राका वेतन नियत कर सिंहद्वारके रक्षकके रूपमें उसकी नियुक्ति कर ली। दूसरे दिन राजाने अपने गुप्तचरोंसे जब पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि वह अपना अधिकांश द्रव्य यज्ञ, तीर्थ, शिव, विष्णुके मन्दिरोंमें आराधनादि-कार्यों तथा साधु, ब्राह्मण एवं अनाथोंमें वितरित कर अत्यल्प शेषसे अपने परिजनोंका पालन करता है। इससे राजाने प्रसन्न होकर उसकी नियुक्तिको पूर्णरूपसे स्थायी कर दिया।

एक दिन आधी रातमें जब धारासार वृष्टि, बादलोंकी गरज, विद्युत् एवं झंझावातसे रात्रिकी विभीषिका सीमा स्पर्श कर रही थी, श्मशानसे किसी नारीकी करुण-क्रन्दन-ध्वनि राजाके कानोंमें पड़ी। राजाने सिंहद्वारपर उपस्थित वीरवरसे इस रुदन-ध्वनिका पता लगानेके लिये कहा। जब वीरवर तलवार लेकर चला, तब राजा भी उसके भयकी आशङ्का तथा सहयोगार्थ एक तलवार लेकर गुप्तरूपसे उसके पीछे लग गया। वीरवरने श्मशान पहुँचकर एक स्त्रीको वहाँ रोते देखा और उससे जब इसका कारण पूछा, तब उसने कहा कि 'मुझे इस राज्यकी लक्ष्मी अथवा राष्ट्रलक्ष्मी समझो। इसी मासके अन्तमें राजा रूपसेनकी मृत्यु हो जानेपर मैं अनाथ होकर कहाँ जाऊँगी, इसीलिये रो रही हूँ।' वीरवरने राजाके दीर्घायुके लिये जब उससे उपाय पूछा, तब उसने वीरवरके पुत्रकी चण्डिकाके सामने बलि देनेसे राजाके शतायु होनेकी बात कही। फिर क्या था? वीरवर उलटे पाँव घर लौटकर पत्नी, पुत्र आदिको जगाकर, उनकी सम्मति लेकर उनके साथ चण्डिका-मन्दिरमें पहुँचा। राजा भी गुप्तरूपसे पीछे-पीछे सर्वत्र जाता रहा। वीरवरने देवीकी प्रार्थना कर राजाकी आयु बढ़ानेके लिये अपने पुत्रकी बलि चढ़ा दी। इसे देखते ही उसकी बहनका दुःखसे हृदयस्फोट हो गया। फिर उसकी माता भी चल बसी। वीरवर इन तीनोंको दाहकर स्वयं भी राजाकी आयुकी वृद्धिके लिये बलि चढ़ गया।

राजा छिपकर यह सब देख रहा था। उसने देवीकी प्रार्थना कर अपने जीवनको व्यर्थ बताते हुए सिर काटनेके लिये ज्यों-ही तलवार खींची त्यों-ही देवीने प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लिया और वर माँगनेको कहा। राजाने परिजनोंसहित वीरवरको जिलानेकी बात कही। फलतः देवीने सबको जिला दिया और राजा चुपकेसे वहाँसे चलकर अपनी अट्टालिकामें जाकर लेट गया। इधर वीरवर भी अपने कुछ चकित, कुछ देवीकी कृपा मानता हुआ अपने पुनर्जीवित परिवारको घरपर छोड़कर राजप्रासादके सिंहद्वारपर खड़ा हो गया। जब राजाने उसके वहाँ उपस्थितिके लक्षणोंसे परिचित होकर उसे बुलाकर अज्ञात नारीके रुदनका कारण पूछा, तब वीरवरने कहा 'राजन्! वह कोई चुड़ैल थी और मुझे देखते ही वह अदृश्य हो गयी, चिन्ताकी कोई बात नहीं।'

इसपर राजाने मन-ही-मन उसकी धीरता तथा स्वामिभक्तिकी प्रशंसा की और प्रातःकाल सारी बातको अपने सभासदोंसे बतलाकर वीरवरको पुत्रसहित कर्नाट एवं लाटदेश (महाराष्ट्र-गुजरात) का अधिपति बना दिया और उन्हें सर्वथा अपने तुल्य ही समृद्धिशाली बनाकर अपनी मैत्रीकी दृढ़ताका निश्चय किया। यह कथा परोपकार, कर्तव्यपरायणता, दीन एवं अनाथकी सेवा, स्वामिभक्ति एवं परस्पर प्राणरक्षार्थ आत्मोत्सर्गकी भावनाकी तीव्र प्रेरणा प्रदान करती है। भविष्यपुराण ऐसी कथाओंसे ओतप्रोत है।

जिनका सदाचार शिथिल नहीं होता, जो अपने दोषोंसे माता-पिताको कष्ट नहीं पहुँचाते, प्रसन्न-चित्तसे धर्मका आचरण करते हैं तथा असत्यका परित्याग कर अपने कुलकी विशेष कीर्ति चाहते हैं, वे ही महान् कुल हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मवैवर्तपुराण

अष्टादश महापुराणोंके क्रम-वर्णनमें ब्रह्मवैवर्तपुराण दसवें स्थानपर परिगणित है। यह वैष्णव पुराण है। सम्पूर्ण ब्रह्मवैवर्तपुराण (१) ब्रह्मखण्ड, (२) प्रकृतिखण्ड, (३) गणपतिखण्ड तथा (४) श्रीकृष्णजन्मखण्ड—इन चार खण्डोंमें विभक्त है। अन्तिम खण्डमें दो खण्ड हैं—पूर्वखण्ड तथा उत्तरखण्ड। इसकी श्लोक-संख्या अठारह हजार है तथा अध्याय-संख्या २६६ है[१]।

इस पुराणके प्रमुख प्रतिपाद्य देवता विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण तथा उनकी प्राणाधिका शक्ति श्रीराधा हैं। सम्पूर्ण पुराणके दो तिहाई भागमें श्रीकृष्ण तथा श्रीराधाका वर्णन है तथा शेष तिहाई भागमें अन्य विषयोंका विवेचन है। इसमें श्रीकृष्णके रूपमें एकमात्र परम सत्यतत्त्व भगवान्‌का तथा श्रीराधाके रूपमें एकमात्र परम सत्यतत्त्वमयी भगवतीका प्रतिपादन किया गया है। शक्ति और शक्तिमान् वस्तुतः एक ही हैं। इनमें तात्त्विक दृष्टिसे सर्वथा अभेद है।

प्रकृतिके भिन्न-भिन्न परिणामोंका जिसमें प्रतिपादन हो वह पुराण ब्रह्मवैवर्त है। एक दूसरी व्याख्याके अनुसार इस पुराणमें श्रीकृष्णने अपनी पूर्ण ब्रह्मरूपताको विवृत (प्रकट) कर दिया है, इसीलिये पुराणवेत्ता इसे ब्रह्मवैवर्त कहते हैं—

विवृतं ब्रह्मकार्त्स्न्यं च कृष्णेन यत्र शौनक॥ ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः।

(ब्र० खण्ड १। ५८-५९)

यह सारा जगत् ब्रह्म (परमात्मा श्रीकृष्ण) का विवर्त है अर्थात् श्रीकृष्णमें ही भ्रमसे इसका आरोप हुआ है। इस बातको बतानेवाला पुराण ब्रह्मवैवर्त है।

परब्रह्म परमात्मा नामसे श्रीकृष्णका ही इस पुराणमें प्रतिपादन हुआ है। **'वन्दे कृष्णं गुणातीतं परं ब्रह्माच्युतं यतः'** (ब्र० खण्ड १।४)। प्रकृति, ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवोंका आविर्भाव श्रीकृष्णसे ही हुआ है—**'आविर्बभूवुः प्रकृतिब्रह्मविष्णुशिवादयः॥'** (ब्रह्मखण्ड १।४)।

ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् एक ही अद्वय परमसत्ताके लीलानुरूप तीन नाम हैं। ये ही परमात्मा अथवा ब्रह्म ही ब्रह्मवैवर्तपुराणमें श्रीकृष्ण बतलाये गये हैं। वे ही श्रीकृष्ण—महाविष्णु, विष्णु, नारायण, शिव तथा गणेश आदि रूपोंमें प्रकट हैं और प्रेम तथा प्राणोंकी अधिदेवी श्रीराधा ही दुर्गा, महालक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, काली आदि रूपोंमें प्रकट हैं। कभी श्रीकृष्ण महादेवका स्तवन करते हैं, उन्हें परमतत्त्व तथा अपनेसे अभिन्न बताते हैं तो कहीं महादेव श्रीकृष्णका स्तवन करते हुए उन्हें परम आदितत्त्व और अपनेसे अभिन्न बताते हैं। कहीं श्रीराधाजी दुर्गा एवं पार्वतीका स्तवन करती हैं और उन्हें सर्वदेवीस्वरूपा बतलाती हैं तो कहीं श्रीदुर्गा श्रीराधाजीको सर्वदेवीस्वरूपा तथा सबको आदेश देनेवाली आदिस्वरूपा महादेवी बतलाती हैं। तात्पर्य यह है कि एक ही परमतत्त्व तथा उनकी शक्ति अनेक रूपोंमें आविर्भूत है।

सृष्टिके अवसरपर परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं दो रूपोंमें प्रकट होते हैं—प्रकृति तथा पुरुष। उनका दाहिना अङ्ग पुरुष और बायाँ अङ्ग प्रकृति है। वही मूलप्रकृति राधा हैं। ये ब्रह्मस्वरूपा नित्या और सनातनी हैं, फिर इनके पाँच रूप हो गये—(१) शिवस्वरूपा नारायणी और पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी भगवती दुर्गा। (२) शुद्धसत्त्वस्वरूपा, परमप्रभु श्रीहरिकी शक्ति, समस्त सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवी श्रीमहालक्ष्मी। (३) वाणी, विद्या, बुद्धि और ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवी श्रीसरस्वती।

१-नारदीयपुराणमें ब्रह्मवैवर्तपुराणकी जो श्लोक-संख्या तथा विवेच्य विषय दिये गये हैं, वे वर्तमान उपलब्ध ब्रह्मवैवर्तपुराणमें न्यूनाधिकरूपमें ही प्राप्त होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) ब्रह्मतेजसम्पन्ना शुद्ध सत्त्वमयी ब्रह्माजीकी परम प्रियशक्ति श्रीसावित्री। (५) प्रेम तथा प्राणोंकी अधिदेवी, परमात्मा श्रीकृष्णकी प्राणाधिका प्रिया, अनुपमेय-अतुलनीय सौन्दर्य-माधुर्य-सद्गुण-समूह एवं गौरवसे सम्पन्ना श्रीराधा। ये नित्य-निकुञ्जेश्वरी, रासेश्वरी, सुरसिका नामसे प्रसिद्ध हैं, निर्लिप्ता हैं और आत्मस्वरूपिणी हैं। ये ही मूलप्रकृति हैं। इन्हींके अंश-कला-कलांशसे गङ्गा, तुलसी, मनसा, काली, पृथ्वीदेवी आदिका आविर्भाव हुआ है। समस्त 'स्त्रीतत्त्व' इन्हीं श्रीराधाजीके भेद-भेदांश अथवा प्रभेदांश है। ये प्राणशक्ति राधा और प्राणेश्वर श्रीकृष्ण परस्पर अनुस्यूत हैं। यही मुख्यतः अथवा तात्पर्यार्थसे ब्रह्मवैवर्तपुराणका प्रतिपाद्य विषय है।

खण्डचतुष्टयात्मक इस पुराणके प्रथम ब्रह्मखण्डमें विष्णु— श्रीकृष्णको ही परब्रह्म बतलाया गया है और सबके बीज-स्वरूप परब्रह्म परमात्मा (श्रीकृष्ण)के तत्त्वका निरूपण है—**'ब्रह्मखण्डं सर्वबीजं परब्रह्मनिरूपणम्।'** (ब्र० ख० १।४५), द्वितीय प्रकृतिखण्डमें मूलप्रकृति श्रीराधादेवीके शुभ चरित्रोंका वर्णन है—**'ततः प्रकृतिखण्डे च देवीनां चरितं शुभम्॥'** (ब्र० ख० १।४८)। श्रीमद्देवीभागवतके नवम स्कन्ध तथा इस प्रकृतिखण्डके विषयोंमें अद्भुत साम्य है। यहाँतक कि अध्यायोंके अध्याय ज्यों-के-त्यों मिलते हैं। तृतीय गणपतिखण्डमें गणेशजीके जन्मादिका वृत्तान्त है—**'ततो गणेशखण्डे च तज्जन्म परिकीर्तितम्'** (ब्र० ख० १।५२)। चतुर्थ श्रीकृष्णजन्मखण्डमें जो तीनों खण्डोंसे बहुत बड़ा है, श्रीकृष्णके अवतार तथा उनकी लीलाओंका मनोहारी वर्णन है। श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें वर्णित श्रीकृष्णचरित और ब्रह्मवैवर्तके श्रीकृष्णजन्मखण्डकी लीलाकथाएँ प्रायः समान ही हैं।

इस पुराणमें भगवद्भक्ति, योग, सदाचार, वैष्णव तथा भक्तमहिमा, मनुष्यके धर्म, नारीधर्म, पतिव्रता तथा अतिथिसेवा, गुरुमहिमा, माता-पिताकी महिमा, रोग-विज्ञान, सुन्दर स्वास्थ्यके लिये आवश्यक बातें, लाभदायक ओषधि, बुढ़ापा न आनेके साधन, आयुर्वेदके सोलह आचार्य तथा उनके ग्रन्थोंका अध्ययन, भक्ष्याभक्ष्यका विचार, शकुन-अपशकुन तथा पाप-पुण्यका सुन्दर प्रतिपादन है। श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड अ० ७७ से ७९ तक तीन अध्यायोंमें सु-स्वप्नफल तथा दुःस्वप्नफलका चामत्कारिक वर्णन है। ये अध्याय स्वप्नाध्याय कहलाते हैं। इसमें त्याग, तपस्या, वैराग्य, धर्म और सदाचारके उपदेशोंको अनेक सुन्दर आख्यानोंके माध्यमसे समझाया गया है। इनके सिवा इसमें बहुतसे चमत्कारपूर्ण सिद्धमन्त्रों, उनके अनुष्ठानोंका, भगवान् तथा भगवतीके मनोहर एवं दिव्य ध्यान-स्वरूपोंका, उनके सिद्ध स्तोत्रों और कवचोंका वर्णन है, जो अन्य पुराणोंमें आये स्तोत्र-कवचादिसे अपना वैशिष्ट्य रखते हैं। वे अद्भुत लाभकारी हैं, उनका जप-पाठ करनेसे अभीष्टकी सिद्धि तथा परम पुरुषार्थकी उपलब्धि होती है।

ब्रह्माण्डकवच (ब्र० ख० अ० ३८)के प्रयोगसे रोग-भय-नाश तथा सर्वार्थसिद्धि होती है। विद्या-बुद्धि, यश तथा विश्व-विजयप्राप्तिके लिये बीज-मन्त्र **'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा'**—यह मन्त्र तथा सरस्वती-कवच (प्र० ख० ४) निर्दिष्ट है। स्थिर लक्ष्मी-प्राप्तिके लिये **'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा'**—यह मन्त्र तथा महालक्ष्मी-स्तोत्र (प्र० ख० अ० ३९) का पाठ फलदायक बतलाया गया है। इसी प्रकार जगन्मङ्गलकवच (प्र० ख० अ० ५६), त्रैलोक्य-विजयकवच (गण० ख० अ० ३१), काली-कवच (ग० ख० अ० ३७), महालक्ष्मी-कवच (ग० ख० अ० ३८), ब्रह्माण्ड-विजय-कवच (ग० ख० अ० ३९), श्रीकृष्ण-कवच (श्रीकृष्णजन्मखण्ड अ० १२) तथा श्रीकृष्ण-स्तोत्र (कृ० ख० अ० १९) आदि अनेक उपादेय स्तोत्र-कवच-मन्त्रादि इस पुराणमें वर्णित हैं। गणेशखण्ड तथा प्रकृतिखण्डमें तान्त्रिक उपासनाके भी अनेक प्रकरण उपलब्ध हैं। ब्रह्मादि देवताओंद्वारा श्रीकृष्णजन्मखण्डके पूर्वखण्ड (६।२१-२३)में जो श्रीराधा-माधवका स्तवन किया गया है, वह अत्यन्त मनोरम, लालित्यपूर्ण तथा अत्यन्त सुन्दर है—

तव चरणसरोजे मन्मनश्चञ्चरीको भ्रमतु सततमीश प्रेमभक्त्या सरोजे।
जननमरणरोगात् पाहि शान्त्यौषधेन सुदृढपरिपक्वां देहि भक्तिं च दास्यम्॥

(ब्रह्माजी बोले—) 'परमेश्वर! मेरा चित्तरूपी चञ्चरीक (भ्रमर) आपके चरणारविन्दोंमें निरन्तर प्रेमभक्तिपूर्वक भ्रमण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता रहे। शान्तिरूपी औषध देकर मेरी जन्म-मरणके रोगसे रक्षा कीजिये तथा मुझे सुदृढ़ एवं अत्यन्त परिपक्व भक्ति और दास्यभाव दीजिये।'

भवजलनिधिमग्नश्चित्तमीनो मदीयो भ्रमति सततमस्मिन् घोरसंसारकूपे।
विषयमतिविनिन्द्यं सृष्टिसंहाररूपमपनय तव भक्तिं देहि पादारविन्दे॥

(भगवान् शंकरने कहा—प्रभो!) 'भवसागरमें डूबा हुआ मेरा चित्तरूपी मत्स्य सदा ही इस घोर संसाररूपी कूपमें चक्कर लगाता रहता है। सृष्टि और संहार—यही इसका अत्यन्त निन्दनीय विषय है। आप इस विषयको दूर कीजिये और अपने चरणारविन्दोंकी भक्ति दीजिये।'

तव निजजनसार्धं संगमो मे सदैव भवतु विषयबन्धच्छेदने तीक्ष्णखड्गः।
तव चरणसरोजे स्थानदानैकहेतुर्जनुषि जनुषि भक्तिं देहि पादारविन्दे॥

(धर्म बोले—मेरे ईश्वर!) 'आपके आत्मीय जनों (भक्तों) के साथ मेरा सदा समागम होता रहे, जो विषयरूपी बन्धनको काटनेके लिये तीखी तलवारका काम देता है तथा आपके चरणारविन्दोंमें स्थान दिलानेका एकमात्र हेतु है। आप जन्म-जन्ममें मुझे अपने चरणारविन्दोंकी भक्ति प्रदान कीजिये।'

इस वैष्णवपुराणके वक्ता सूतपुत्र सौति (उग्रश्रवा) और श्रोता महामुनि शौनकजी हैं। पुण्य-पवित्र तीर्थ नैमिषारण्यमें आदिगङ्गा गोमतीके पावन तटपर ऋषियोंके द्वादशवर्षीय सत्रमें महामुनि शौनकजीने सौतिजीसे कहा—'कृपानिधान! जिसके श्रवण और पठनसे भगवान् श्रीकृष्णमें अविचल भक्ति प्राप्त हो तथा जो तत्त्वज्ञानको बढ़ानेवाला हो, उस पुराणकी कथा कहिये', क्योंकि हरिभक्ति तो मोक्षसे भी बढ़कर है। वह कर्मका मूलोच्छेद करनेवाली, संसाररूपी कारागारमें बँधे हुए जीवोंकी बेड़ी काटनेवाली, जगत्‌रूपी दावानलसे दग्ध हुए जीवोंपर अमृतरसकी वर्षा करनेवाली और जीवधारियोंके हृदयमें नित्य-निरन्तर परम सुख एवं परमानन्द प्रदान करनेवाली है (ब्र० ख० १। १२-१४)।

सम्पूर्ण पुराण सुनानेके बाद अन्तमें इसके श्रवण-माहात्म्यको बतलाते हुए तत्त्वज्ञानी सौतिजी कहते हैं—यह पुराण शुभद, पुण्यप्रद, विघ्नविनाशक, ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाला, शोक-संतापका नाशक तथा श्रीहरिके श्रीचरणोंमें भक्ति और प्रेम बढ़ानेवाला है।

कथा-आख्यान—

श्रीनारदजीका अभिमान-भङ्ग

एक बार श्रीनारदजीके मनमें यह दर्प हुआ कि मेरे समान इस त्रिलोकीमें कोई संगीतज्ञ नहीं है। इसी बीच एक दिन उन्होंने रास्तेमें कुछ दिव्य स्त्री-पुरुषोंको देखा, जो घायल पड़े थे और उनके विविध अङ्ग कटे हुए थे। नारदजीके द्वारा इस स्थितिका कारण पूछनेपर उन दिव्य देव-देवियोंने आर्त स्वरमें निवेदन किया—'हम सभी राग-रागिनियाँ हैं। पहले हम अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे पूर्ण थे, पर आजकल नारद नामका एक संगीतानभिज्ञ व्यक्ति दिन-रात राग-रागिनियोंका अलाप करता चलता है, जिससे हमलोगोंके अङ्ग-भङ्ग हो गये हैं। आप यदि विष्णुलोक जा रहे हों तो कृपया हमारी दुरवस्थाका भगवान् विष्णुसे निवेदन करेंगे और उनसे प्रार्थना करेंगे कि वे हम-लोगोंको इस कष्टसे शीघ्र मुक्त कर दें।'

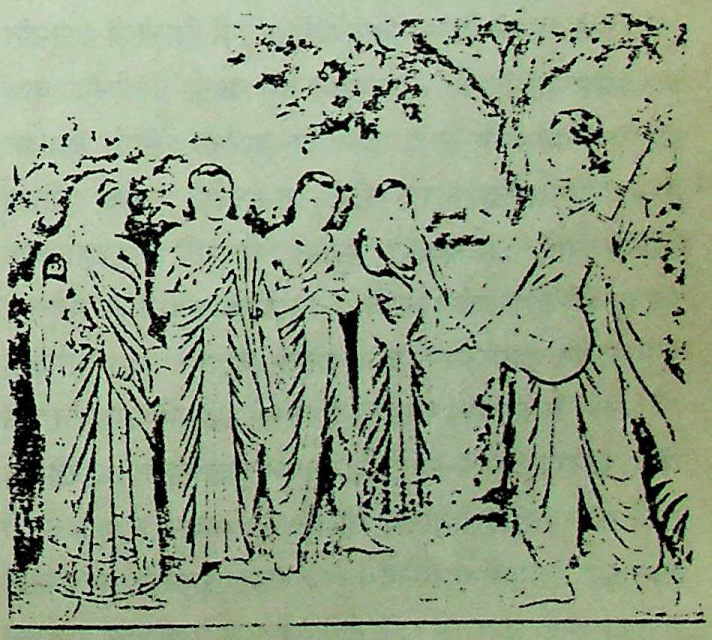

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारदजीने जब अपनी संगीतानभिज्ञताकी बात सुनी, तब वे बड़े दुःखी हुए। जब वे भगवद्धाममें पहुँचे, तब प्रभुने उनका उदास मुखमण्डल देखकर उनकी खिन्नता और उदासी-का कारण पूछा। नारदजीने सारी बातें बता दीं। भगवान् बोले—'मैं भी इस कलाका मर्मज्ञ कहाँ हूँ ? यह तो भगवान् शंकरके वशकी बात है। अतएव उनके कष्ट दूर करनेके लिये शंकरजीसे प्रार्थना करनी चाहिये।'

जब नारदजीने महादेवजीसे सारी बातें कहीं, तब भगवान् भोलेनाथने उत्तर दिया—'मैं ठीक ढंगसे राग-रागिनियोंका अलाप करूँ तो निस्संदेह वे सभी अङ्गोंसे पूर्ण हो जायँगी, पर मेरे संगीतका श्रोता कोई उत्तम अधिकारी मिलना चाहिये। अब नारदजीको और भी क्लेश हुआ कि 'मैं संगीत सुनने अधिकारी भी नहीं हूँ।' जो हो, उन्होंने भगवान् शंकरसे उत्तम संगीत-श्रोता चुननेकी प्रार्थना की। उन्होंने भगवान् नारायणका नाम-निर्देश किया। प्रभुने भी यह प्रस्ताव मान लिया। संगीत-समारोह आरम्भ हुआ। सभी देव, गन्धर्व तथा राग-रागिनियाँ वहाँ उपस्थित हुईं। महादेवजीके राग अलापते ही उनके अङ्ग पूरे हो गये। नारदजी साधु-हृदय, परम महान् तो हैं ही। अहंकार दूर हो ही चुका था, अब राग-रागिनियोंके पूर्णाङ्ग देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए।

गरुड, सुदर्शनचक्र और श्रीकृष्णकी रानियोंका गर्व-भङ्ग

एक बार भगवान् श्रीकृष्णने गरुडको यक्षराज कुबेरके सरोवरसे सौगन्धिक कमल लानेका आदेश दिया। गरुडको यह अहंकार तो था ही कि मेरे समान बलवान् तथा तीव्रगामी प्राणी इस त्रिलोकीमें दूसरा नहीं है। वे अपने पंखोंसे हवाको चीरते तथा दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए गन्धमादन पहुँचे और पुष्पचयन करने लगे। महावीर हनुमान्‌जीका वहीं आवास था। वे गरुडके इस अनाचारको देखकर उनसे बोले—'तुम किसके लिये यह फूल ले जा रहे हो और कुबेरकी आज्ञाके बिना ही इन पुष्पोंका क्यों विध्वंस कर रहे हो ?'

गरुडने उत्तर दिया—'हम भगवान् श्रीकृष्णके लिये इन पुष्पोंको ले जा रहे हैं। भगवान्‌के लिये हमें किसीकी अनुमति आवश्यक नहीं दीखती।' गरुडकी इस बातसे हनुमान्‌जी कुछ क्रुद्ध हो गये और उन्हें पकड़कर अपनी काँखमें दबाकर आकाशमार्गसे द्वारकाकी ओर उड़ चले। उनकी भीषण ध्वनिसे सारे द्वारकावासी संत्रस्त हो गये। सुदर्शनचक्र हनुमान्‌जीकी गतिको रोकनेके लिये उनके सामने जा पहुँचा। हनुमान्‌जीने झट उसे दूसरी काँखमें दाब लिया। भगवान् श्रीकृष्णने तो यह सब लीला रची ही थी। उन्होंने अपने पार्श्वमें स्थित रानियोंसे कहा—'देखो, हनुमान् क्रुद्ध होकर आ रहे हैं। यहाँ यदि उन्हें इस समय सीता-रामके दर्शन न हुए तो वे द्वारकाको समुद्रमें डुबो देंगे। अतएव तुममेंसे तुरंत कोई सीताका रूप बना लो, मैं तो देखो यह राम बना।' इतना कहकर वे श्रीरामके स्वरूपमें परिणत होकर बैठ गये। अब जानकीजीका रूप बननेको हुआ, तब कोई भी न बना सकी। अन्तमें उन्होंने श्रीराधाजीका स्मरण किया। वे आयीं और श्रीजानकीजीका स्वरूप बन गयीं।

इसी बीच हनुमान्‌जी वहाँ उपस्थित हुए। वहाँ वे अपने इष्टदेव श्रीसीतारामजीको देखकर उनके चरणोंपर गिर गये। इस समय भी वे गरुड और सुदर्शनचक्रको बड़ी सावधानीसे

अपने दोनों बगलोंमें दबाये हुए थे। भगवान् श्रीकृष्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(राम-वेशमें) उन्हें आशीर्वाद दिया और कहा—'वत्स ! तुम्हारी काँखोंमें यह क्या दिखलायी पड़ रहा है ?' हनुमान्‌जीने उत्तर दिया—'कुछ नहीं सरकार ! यह तो एक दुबला-सा क्षुद्र पक्षी निर्जन स्थानमें मेरे श्रीरामभजनमें बाधा डाल रहा था, इसी कारण मैंने इसे पकड़ लिया। दूसरा यह चक्र-सा एक खिलौना है, यह मेरे साथ टकरा रहा था, अतएव इसे भी दाब लिया है। आपको यदि पुष्पोंकी ही आवश्यकता थी तो मुझे क्यों नहीं स्मरण किया गया ? यह बेचारा पखेरू महाबली शिवभक्त यक्षोंके सरोवरसे बलपूर्वक पुष्प लानेमें कैसे समर्थ हो सकता है ?'

भगवान्‌ने कहा—'अस्तु ! इन बेचारोंको छोड़ दो। मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, अब तुम जाओ, अपने स्थानपर स्वच्छन्दतापूर्वक भजन करो।'

भगवान्‌की आज्ञा पाते ही हनुमान्‌जीने सुदर्शनचक्र और गरुडको छोड़ दिया तथा उन्हें पुनः प्रणाम करके 'जय राम' कहते हुए गन्धमादनकी ओर चल दिये। गरुडको गतिका, सुदर्शनको शक्तिका और पट्टमहिषियोंको सौन्दर्यका जो बड़ा गर्व था, वह एकदम चूर्ण हो गया।

इन्द्रका गर्व-भङ्ग

शचीपति देवराज इन्द्र कोई साधारण व्यक्ति नहीं, एक मन्वन्तरपर्यन्त रहनेवाले स्वर्गके अधिपति हैं। घड़ी-घंटोंके लिये जो किसी देशका प्रधान मन्त्री बन जाता है, उसके नामसे लोग घबराते हैं, फिर जिसे एकहत्तर दिव्य युगोंतक अप्रतिहत दिव्य भोगोंका साम्राज्य प्राप्त है, उसे गर्व होना तो स्वाभाविक है ही। इसीलिये इनके गर्वभङ्गकी कथाएँ भी बहुत हैं। दुर्वासाने इन्हें शाप देकर स्वर्गको श्रीविहीन किया । वृत्रासुर, विश्वरूप, नमुचि आदि दैत्योंके मारनेपर इन्हें बार-बार ब्रह्महत्या लगी। बृहस्पतिके अपमानपर पश्चात्ताप, बलिद्वारा राज्यापहरणपर दुर्दशा तथा गोवर्धनधारण एवं पारिजातहरण आदिमें भी कई बार इनका मानभङ्ग हुआ ही है। मेघनाद, रावण, हिरण्यकशिपु आदिने भी इन्हें बहुत नीचा दिखलाया और बार-बार इन्हें दुष्यन्त, खट्वाङ्ग, अर्जुनादिसे सहायता लेनी पड़ी। इस प्रकार इनके गर्वभञ्जनकी अनेकानेक कथाएँ हैं, तथापि ब्रह्मवैवर्त-पुराणमें इनके गर्वापहरणकी एक विचित्र कथा है, जो इस प्रकार है—

एक बार इन्द्रने एक बड़ा विशाल प्रासाद बनवाना आरम्भ किया। इसमें पूरे सौ वर्षतक इन्होंने विश्वकर्माको छुट्टी नहीं दी। विश्वकर्मा बहुत घबराये। वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीने भगवान्‌से प्रार्थना की। भगवान् एक ब्राह्मण-बालकका रूप धारणकर इन्द्रके पास पहुँचे और पूछने लगे—'देवेन्द्र ! मैं आपके अद्भुत भवननिर्माणकी बात सुनकर यहाँ आया हूँ। मैं जानना चाहता हूँ कि इस भवनको कितने विश्वकर्मा मिलकर बना रहे हैं और यह कबतक तैयार हो जायगा ?'

इन्द्र बोले—'बड़े आश्चर्यकी बात है ! क्या विश्वकर्मा भी अनेक होते हैं, जो तुम ऐसी बातें कर रहे हो ?' बहुरूपी प्रभु बोले—'देवेन्द्र ! तुम बस इतनेमें ही घबरा गये ? सृष्टि कितने ढंगकी है, ब्रह्माण्ड कितने हैं, ब्रह्मा-विष्णु-शिव कितने हैं, उन-उन ब्रह्माण्डोंमें कितने इन्द्र और विश्वकर्मा पड़े हैं—यह कौन जान सकता है ? यदि कदाचित् कोई पृथ्वीके धूलिकणोंको गिन भी सके, तो भी विश्वकर्मा अथवा इन्द्रोंकी संख्या तो नहीं ही गिनी जा सकती। जिस तरह जलमें नौकाएँ दीखती हैं, उसी प्रकार महाविष्णुके लोमकूपरूपी सुनिर्मल जलमें असंख्य ब्रह्माण्ड तैरते दीख पड़ते हैं।'

इस तरह इन्द्र और वटुमें संवाद चल ही रहा था कि वहाँ दो सौ गज लम्बा-चौड़ा एक चींटोंका विशाल समुदाय दीख पड़ा। उन्हें देखते ही वटुको सहसा हँसी आ गयी। इन्द्रने उनकी हँसीका कारण पूछा। वटुने कहा—'हँसता इसलिये हूँ कि यहाँ जो ये चींटे दिखलायी पड़ रहे हैं, वे सब कभी पहले इन्द्र हो चुके हैं, किंतु कर्मानुसार इन्हें अब चींटेकी योनि प्राप्त हुई है। इसमें तनिक भी आश्चर्य नहीं करना चाहिये; क्योंकि कर्मोंकी गति ही ऐसी गहन है। जो आज देवलोकमें है, वह दूसरे ही क्षण कभी कीट, वृक्ष या अन्य स्थावर योनियोंको प्राप्त हो सकता है।' भगवान् ऐसा कह ही रहे थे कि उसी समय कृष्णाजिनधारी, उज्ज्वल तिलक लगाये, चटाई ओढ़े एक ज्ञानवृद्ध तथा वयोवृद्ध महात्मा वहाँ पहुँच गये। इन्द्रने उनकी यथालब्ध उपचारोंसे पूजा की। अब वटुने महात्मासे पूछा—'महात्मन् ! आपका नाम क्या है, आप कहाँसे आ रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, आपका निवासस्थल कहाँ है और आप कहाँ जा रहे हैं ? आपके मस्तकपर यह चटाई क्यों है तथा आपके वक्षःस्थलपर यह लोमचक्र कैसा है ?'

आगन्तुक मुनिने कहा— थोड़ी-सी आयु होनेके कारण मैंने कहीं घर नहीं बनाया, न विवाह ही किया और न कोई जीविका ही खोजी। वक्षःस्थलके लोमचक्रोंके कारण लोग मुझे लोमश कहा करते हैं और वर्षा तथा गर्मीसे रक्षाके लिये मैंने अपने सिरपर यह चटाई रख छोड़ी है। मेरे वक्षःस्थलके लोम मेरी आयु-संख्याके प्रमाण हैं। एक इन्द्रका पतन होनेपर मेरा एक रोम गिर पड़ता है। यही मेरे उखड़े हुए कुछ रोमोंका रहस्य भी है। ब्रह्माके द्विपरार्धावसानपर मेरी मृत्यु कही जाती है। असंख्य ब्रह्मा मर गये और मरेंगे। ऐसी दशामें मैं पुत्र, कलत्र या गृह लेकर ही क्या करूँगा ? भगवान्‌की भक्ति ही सर्वोपरि, सर्वसुखद तथा दुर्लभ है। वह मोक्षसे भी बढ़कर है। ऐश्वर्य तो भक्तिके व्यवधानस्वरूप तथा स्वप्नवत् मिथ्या है जानकार लोग तो उस भक्तिको छोड़कर सालोक्यादि मुक्ति चतुष्टयको भी नहीं ग्रहण करते।

दुर्लभं श्रीहरेर्दास्यं भक्तिर्मुक्तेर्गरीयसी।
स्वप्नवत् सर्वमैश्वर्यं सद्भक्तिव्यवधायकम्॥

—यों कहकर लोमशजी अन्यत्र चले गये। बालक वहीं अन्तर्धान हो गया। बेचारे इन्द्रका तो अब होश ही हो गया । उन्होंने देखा कि जिसकी इतनी दीर्घ आयु है, तो एक घासकी झोपड़ी भी नहीं बनाता, केवल चटाईसे काम चला लेता है, फिर मुझे कितने दिन रहना है, जो घरके चक्करमें पड़ा हूँ। बस, झट उन्होंने विश्वकर्माको लम्बी रकमके साथ छुट्टी दे दी और आप अत्यन्त वि होकर किसी वनस्थलीकी ओर चल पड़े। पीछे बृहस्पति उन्हें समझा-बुझाकार पुनः राज्यकार्यमें नियुक्त किया।

ब्रह्माजीका दर्पभङ्ग

ब्रह्माजीके मोह तथा गर्वभञ्जनकी बहुत-सी कथाएँ भागवत, ब्रह्मवैवर्त, शिव, स्कन्द आदि पुराणोंमें आती हैं। अकेले ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कृष्णजन्मखण्डके १४८वें अध्यायमें उनके गर्वभञ्जनकी कई कथाएँ हैं। उनमेंसे एक तो अत्यन्त विचित्र है। वह यह है कि एक बार स्वर्गकी अप्सरा मोहिनी ब्रह्माजीपर अत्यन्त आसक्त हो गयी। वह एकान्तमें उनके पास गयी और उनके आसनपर ही बैठकर उनसे प्रेमदानकी प्रार्थना करने लगी। ब्रह्माजीको उस समय भगवान्‌की स्मृति हुई। भगवत्कृपासे उनका मन निर्विकार रहा। वे मोहिनीको ज्ञानकी बातें समझाने लगे; पर वह उसे न सुनकर अवाञ्छनीय चेष्टा करने लगी। ब्रह्माजी भगवान्‌का स्मरण करने लगे। तबतक सप्तर्षिगण सनकादिके साथ वहाँ पहुँच गये। पर दुर्दैववश अब ब्रह्माजीको अपनी क्रिया, भक्ति तथा शक्तिका गर्व हो गया। ऋषियोंने जब मोहिनीके साथ एकासनपर बैठनेका कारण पूछा, तब ब्रह्माजीने गर्वपूर्वक हँसकर कहा—'यह नाचते-नाचते थककर पुत्रीके भावसे मेरे पास बैठ गयी है।' ऋषिलोग समझ गये और थोड़ी देर बाद हँसते हुए चले गये। अब मोहिनीका क्रोध जाग्रत् हुआ। उसने शाप दिया—'तुम्हें अपनी निष्कामताका गर्व है और मुझ शरणागतका तुमने उपहास किया है, इसलिये संसारमें न तो तुम्हारी कहीं पूजा होगी और तुम्हारा यह गर्व ही रहेगा।' वह तुरंत वहाँसे चलती बनी।

अब ब्रह्माजीको अपनी भूलका पता चला। वे दौड़े भगवान् जनार्दनकी शरणमें वैकुण्ठ पहुँचे। वे अभी अ गाथा तथा शापादिकी बात सुना ही रहे थे, तबतक द्वारप प्रभुसे निवेदन किया—'प्रभो ! बाहर दरवाजेपर अ ब्रह्माण्डके स्वामी अष्टमुख ब्रह्मा आये हैं और श्रीचर दर्शन करना चाहते हैं।' प्रभुकी अनुमति हुई। अष्टमुख ब्र आकर बड़ी श्रद्धासे अत्यन्त दिव्य स्तुति सुनायी। ब्रह्मा इन ब्रह्माके सामने अपनी विद्या, बुद्धि, शक्ति, भक्ति नगण्य दीख पड़ी। तदनन्तर ये अष्टमुख ब्रह्मा चले इनके जाते ही दूसरे ही क्षण द्वारपालने कहा—'प्रभो ! अ दरवाजेपर अमुक ब्रह्माण्डके अधिनायक षोडशमुख उपस्थित हैं तथा श्रीचरणोंका दर्शन करना चाहते भगवदाज्ञासे वे भी आये और उन्होंने पूर्वोक्त ब्रह्मासे भी श्रेणीकी स्तुति सुनायी। इसी प्रकार एक-एक षोडशमुखसे लेकर सहस्रमुख ब्रह्मातक आते गये उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर शब्दावलियोंमें अपना स्तोत्र सुनाते उनकी योग्यता और निरभिमानता देखकर अपनेको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुल्य ही माननेवाले ब्रह्माजीका गर्व गलकर पानी हो गया। फिर भगवान्‌ने गङ्गास्नान कराकर उनके गर्वजनित पापकी शान्ति करायी। (ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्णजन्मखण्ड ऐसी ही एक कथा जैमिनीयाश्वमेध ६०-६१ में भी है।)

गणेशजीपर शनिकी दृष्टि

एक बार कैलास पर्वतपर, महायोगी सूर्यपुत्र शनैश्चर शंकरनन्दन गणेशको देखनेके लिये आये। उनका मुख अत्यन्त नम्र था, आँखें कुछ मुँदी हुई थीं और मन एकमात्र श्रीकृष्णमें लगा हुआ था, अतः वे बाहर-भीतर श्रीकृष्णका स्मरण कर रहे थे। वे तपःफलको खानेवाले, तेजस्वी, धधकती हुई अग्निकी शिखाके समान प्रकाशमान, अत्यन्त सुन्दर, श्यामवर्ण और पीताम्बर धारण किये हुए थे। उन्होंने वहाँ पहले विष्णु, ब्रह्मा, शिव, धर्म, सूर्य, देवगणों और मुनिवरोंको प्रणाम किया। फिर उनकी आज्ञासे वे उस बालकको देखनेके लिये गये। भीतर जाकर शनैश्चरने सिर झुकाकर पार्वतीदेवीको नमस्कार किया। उस समय वे पुत्रको छातीसे चिपटाये रत्नसिंहासनपर विराजमान हो आनन्दपूर्वक मुस्करा रही थीं। पाँच सखियाँ निरन्तर उनपर श्वेत चँवर डुलाती जाती थीं। वे सखीद्वारा दिये गये सुवासित ताम्बूलको चबा रही थीं। उनके शरीरपर वह्नि-शुद्ध स्वर्णिम साड़ी शोभायमान थी। रत्नोंके आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। सहसा सूर्यनन्दन शनैश्चरको सिर झुकाये देखकर दुर्गाने उन्हें शीघ्र ही शुभाशीर्वाद दिया और उनका कुशल-मङ्गल पूछा—ग्रहेश्वर! इस समय तुम्हारा मुख नीचेकी ओर क्यों झुका हुआ है तथा तुम मुझे अथवा इस बालककी ओर देख क्यों नहीं रहे हो?

शनैश्चरने कहा—शंकरवल्लभे! मैं एक परम गोपनीय इतिहास, यद्यपि वह लज्जाजनक तथा माताके समक्ष कहने योग्य नहीं है, कहता हूँ, सुनिये। मैं बचपनसे ही श्रीकृष्णका भक्त था। मेरा मन सदा एकमात्र श्रीकृष्णके ध्यानमें ही लगा रहता था। मैं विषयोंसे विरक्त होकर निरन्तर तपस्यामें रत रहता था। पिताजीने चित्ररथकी कन्यासे मेरा विवाह कर दिया। वह सती-साध्वी नारी अत्यन्त तेजस्विनी तथा सतत तपस्यामें रत रहनेवाली थी। एक दिन ऋतुस्नान करके वह मेरे पास आयी। उस समय मैं भगवच्चरणोंका ध्यान कर रहा था। मुझे बाह्य-ज्ञान बिलकुल नहीं था। अतः मैंने उसकी ओर देखा भी नहीं। पत्नीने अपना ऋतुकाल निष्फल जानकर मुझे शाप दे दिया कि 'तुम अब जिसकी ओर दृष्टि करोगे, वही नष्ट हो जायगा।' तदनन्तर जब मैं ध्यानसे विरत हुआ, तब मैंने उस सतीको संतुष्ट किया, परंतु अब तो वह शापसे मुक्त करानेमें असमर्थ थी, अतः पश्चात्ताप करने लगी। माता! इसी कारण मैं किसी वस्तुको अपने नेत्रोंसे नहीं देखता और तभीसे मैं जीवहिंसाके भयसे स्वाभाविक ही अपने मुखको नीचे किये रहता हूँ। शनैश्चरकी बात सुनकर पार्वती हँसने लगीं और नर्तकियों तथा किंनरियोंका सारा समुदाय ठहाका मारकर हँस पड़ा।

शनैश्चरका वचन सुनकर दुर्गाने परमेश्वर श्रीहरिका स्मरण किया और इस प्रकार कहा—'सारा जगत् ईश्वरकी इच्छाके वशीभूत ही है।' फिर दैववशीभूता पार्वतीदेवीने कौतूहलवश शनैश्चरसे कहा—'तुम मेरी तथा मेरे बालककी ओर देखो। भला, इस निषेक (कर्मफलभोग) को कौन हटा सकता है?' तब पार्वतीका वचन सुनकर शनैश्चर स्वयं मन-ही-मन यों विचार करने लगे—'अहो! क्या मैं इस पार्वतीनन्दनपर दृष्टिपात करूँ अथवा न करूँ? क्योंकि यदि मैं बालकको देख लूँगा तो निश्चय ही उसका अनिष्ट हो जायगा।' इस प्रकार

कहकर धर्मात्मा शनैश्चरने धर्मको साक्षी बनाकर बालकको तो देखनेका विचार किया, परंतु बालककी माताको नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शनैश्चरका मन तो पहलेसे ही खिन्न था। उनके कण्ठ, ओष्ठ और तालु भी सूख गये थे, फिर भी उन्होंने अपने बायें नेत्रके कोनेसे शिशुके मुखकी ओर निहारा। शनिकी दृष्टि पड़ते ही शिशुका मस्तक धड़से अलग हो गया। तब शनैश्चरने अपनी आँख फेर ली और फिर वे नीचे मुख करके खड़े हो गये। इसके पश्चात् उस बालकका खूनसे लथपथ हुआ सारा शरीर तो पार्वतीकी गोदमें पड़ा रह गया। परंतु मस्तक अपने अभीष्ट गोलोकमें जाकर श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हो गया। यह देखकर पार्वतीदेवी बालकको छातीसे चिपटाकर फूट-फूटकर विलाप करने लगीं और उन्मत्तकी भाँति भूमिपर गिरकर मूर्छित हो गयीं। तब वहाँ उपस्थित सभी देवता, देवियाँ, पर्वत, गन्धर्व, शिव तथा कैलासवासी जन यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उस समय उनकी दशा चित्रलिखित पुत्तलिकाके समान जड हो गयी।

इस प्रकार उन सबको मूर्छित देखकर श्रीहरि गरुडपर सवार हुए और उत्तरदिशामें स्थित पुष्पभद्राके निकट गये। वहाँ पुष्पभद्रा नदीके तटपर वनमें स्थित एक गजेन्द्रको देखा, जो निद्राके वशीभूत हो बच्चोंसे घिरकर हथिनीके साथ सो रहा था। उसका सिर उत्तर दिशाकी ओर था, मन परमानन्दसे पूर्ण था और वह सुरतके परिश्रमसे थका हुआ था। फिर तो श्रीहरिने शीघ्र ही सुदर्शनचक्रसे उसका सिर काट लिया और रक्तसे भीगे हुए उस मनोहर मस्तकको बड़े हर्षके साथ गरुडपर रख लिया। गजके कटे हुए अङ्गके गिरनेसे हथिनीकी नींद टूट गयी। तो अमङ्गल शब्द करती हुई उसने अपने शावकोंको भी जगाया फिर वह शोकसे विह्वल हो शावकोंके साथ विलख-विलखकर चीत्कार करने लगी। तत्पश्चात् उसने भगवान् विष्णुका स्तवन किया। उसकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान्ने उसे वर दिया और दूसरे गजका मस्तक काटकर इसके धड़से जोड़ दिया फिर उन ब्रह्मवेत्ताने ब्रह्मज्ञानसे उसे जीवित कर दिया और उस गजेन्द्रके सर्वाङ्गमें अपने चरणकमलका स्पर्श कराते हुए कहा—'गज! तू अपने कुटुम्बके साथ एक कल्पपर्यन्त जीवित रह।' इस प्रकार कहकर मनके समान वेगशाली भगवान् कैलासपर जा पहुँचे। वहाँ पार्वतीके वासस्थानमें आकर उन्होंने उस बालकको अपनी छातीसे चिपटा लिया और उस हाथीके मस्तकको सुन्दर बनाकर बालकके धड़से जोड़ दिया। फिर ब्रह्मस्वरूप भगवान्ने ब्रह्मज्ञानसे हुंकारोच्चारण किया और खेल-खेलमें ही उसे जीवित कर दिया। पुनः श्रीकृष्णने पार्वतीको सचेत करके उस शिशुको उनकी गोदमें रख दिया और आध्यात्मिक ज्ञानद्वारा पार्वतीको समझाना आरम्भ किया। श्रीविष्णुका कथन सुनकर पार्वतीका मन संतुष्ट हो गया। तब वे उन गदाधर भगवान्को प्रणाम करके शिशुको दूध पिलाने लगीं। तदनन्तर प्रसन्न हुई पार्वतीने शंकरजीकी प्रेरणासे अञ्जलि बाँधकर भक्तिपूर्वक उन कमलापति भगवान् विष्णुकी स्तुति की। (गणपतिखण्ड, अध्याय १२)

पृथ्वी किनके भारसे पीड़ित रहती है?

पृथ्वीदेवी ब्रह्माजीसे कहती हैं—जो श्रीकृष्णभक्तिसे हीन हैं और जो श्रीकृष्णभक्तकी निन्दा करते हैं, उन महापातकी मनुष्योंका भार वहन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। जो अपने धर्म तथा आचारसे रहित हैं तथा नित्यकर्मसे हीन हैं, जिनकी वेदोंमें श्रद्धा नहीं है; उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो माता, पिता, गुरु, पत्नी, पुत्र तथा आश्रितवर्गका पालन-पोषण नहीं करते हैं, उनका भार वहन करनेमें मैं असमर्थ हूँ। पिताजी! जो झूठ बोलते हैं, जिनमें दया तथा सत्य-आचरणका अभाव है तथा जो गुरुजनों और देवताओंकी निन्दा करते हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो मित्रद्रोही, कृतघ्न, झूठी गवाही देनेवाले, विश्वासघाती और धरोहर हड़प लेनेवाले हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो कल्याणमय सूक्तों, साम-मन्त्रों तथा एकमात्र मङ्गलकारी हरि-नामोंको बेचते हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो जीवोंकी हिंसा करनेवाले, गुरुद्रोही, ग्रामयाजी, लोभी, मुर्दा फूँकनेवाले तथा शूद्रान्नभोजी हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो मूढ़ मनुष्य पूजा, यज्ञ, उपवास-व्रत तथा नियमोंका भंग करनेवाले हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो पापीलोग सदा गौ, ब्राह्मण, देवता, वैष्णव, श्रीहरि, श्रीहरिकथा और श्रीहरिकी भक्तिसे द्वेष करते हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ।

(ब्रह्मवै० कृष्ण० ४। २०—२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिङ्गपुराण

पुराणोंमें लिङ्गपुराणका स्थान ग्यारहवाँ है[1]। श्रीविष्णुके पुराणमय विग्रहमें लिङ्गपुराण गुल्फ माना जाता है[2]। लिङ्गपुराण दो भागोंमें विभक्त है। पहले भागमें एक सौ आठ अध्याय और दूसरे भागमें पचपन अध्याय हैं। पहले भागमें शिव-माहात्म्यके प्रसङ्गमें लिङ्गोद्भव, शिवकी पूजाकी पद्धति, शिवपूजाका माहात्म्य, शैव सिद्धान्त, शिवके अवतार, शिवके पीठ, शिवसहस्रनाम और शिवाद्वैतके स्वरूप आदिका वर्णन है। दूसरे भागमें पाशुपतव्रत, शिवतत्त्व, दानविधि, योग, ज्ञान आदि विषय हैं। इस प्रकार दोनों भागोंमें शैव दर्शनका प्रतिपादन हुआ है।

इस पुराणका यह नाम इसलिये दिया गया है कि इसमें परमात्माको लिङ्गी—निर्गुण-निराकार अलिङ्ग कहा गया है, यह परमात्मा अव्यक्त प्रकृतिका मूल है। इस पुराणमें शिवका विस्तारसे वर्णन है, अतः इसे शैव होनेसे लिङ्ग या लैङ्ग पुराण भी कहा जाता है।

अलिंगो लिंगमूलं तु अव्यक्तं लिंगमुच्यते। अलिंगः शिव इत्युक्तो लिंगं शैवमिति स्मृतम्॥

(लिंगपु॰ १।३।१)

अर्थात् परमात्मा अलिङ्ग है (परमात्मामें कोई प्राकृतिक गुण नहीं है)। वह परमात्मा लिङ्ग अर्थात् प्रकृतिका मूल है। लिङ्गका अर्थ होता है अव्यक्त अर्थात् प्रकृति।

लिङ्ग शब्दका व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ है—सबको अपनेमें लीन करनेवाला या विश्वके सभी प्राणी-पदार्थोंका उद्भावक, परिचायक चिह्न अथवा सम्पूर्ण विश्वमय परमात्मा—**'लयनाल्लिङ्गमित्युक्तं तत्रैव निखिलं सुराः'** (१।१९।१६)। इस प्रकार प्रकृति-पुरुषात्मक समग्र विश्वरूपी वेदी या वेर तो महादेवी पार्वती हैं और लिङ्ग साक्षात् भगवान् शिवका स्वरूप है—**'लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः।'** ज्योतिर्मय लिङ्गके दाहिने ब्रह्मा, बायें विष्णु और अन्तरालमें सभी देवता स्थित हैं। लिङ्गपुराण अध्याय १७-१८में लिङ्गोद्भवके स्वरूप, माहात्म्य आदिके साथ सम्यक् व्युत्पत्ति प्रदिष्ट है। पाणिनीय धातुपाठ १।१५२ एवं १०।२०४ के अनुसार यह धातु गत्यर्थक एवं चित्रीकरणार्थक है। तदनुसार जो चित्र-विचित्र ब्रह्माण्डका निर्माण कर स्वयं उसे चेतित—चैतन्य एवं गतिशील करता हुआ सर्वत्र व्याप्त एवं अनुस्यूत है, वह परब्रह्म-स्वरूप परमात्मा ही शुद्धरूपसे लिङ्ग-पदवाच्य है।

ब्रह्माण्डमें प्रारम्भमें ग्रह, नक्षत्र आदि छिपे रहते हैं। उन छिपे पदार्थोंको ब्रह्माण्ड समयानुकूल प्रकट करता है। अतः ब्रह्माण्ड भी लिंग है। प्रत्येक बीजको भी हम लिंग कह सकते हैं। जैसे वट-बीज हमारे सामने है। इस बीजको फोड़कर देखनेपर इसके तने, पत्ते, फल-फूल, रंग आदि दिखायी नहीं देते, किंतु वे सब इस बीजमें अव्यक्त-रूपसे विद्यमान हैं। बीज इन छिपे पदार्थोंको प्रकट करता है, इसलिये बीज भी लिंग है।

जैसे हम ग्रह, नक्षत्र आदि विशाल पदार्थोंमें गणितको देखते हैं, वैसे सूक्ष्म परमाणुओंमें भी गणित पाते हैं। यह हिसाब किसी चेतनका ही कार्य हो सकता है। वह चेतन है ब्रह्माण्ड। इस तरह ब्रह्माण्ड छिपे हुए ब्रह्मतत्त्वका भी बोध करा देता है। लिंगसे इस लिंगीका ख्यापन ही लिंगपुराणका विषय है। अनुमान-प्रमाणसे सामान्य लिंगीका ही ज्ञान होता है, किंतु यह पुराण शब्दप्रमाण होनेके कारण लिंगी—शिवके विशेष अवस्थाओंका बोध कराता है।

१-लिंगमेकादशं प्रोक्तम्। (लिङ्ग॰ १।२।३)
२-लैंगं तु गुल्फकम्। (पद्मपु॰, स्वर्गखण्ड ६२।५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-आख्यान—

भक्तिके वश भगवान्

भगवती अन्नपूर्णा काशीपुरीमें आ चुकी थीं। यहींपर उन्होंने भगवान् शंकरसे पूछा—'भगवन्! आप अपने भक्तोंको किस उपायसे दर्शन देते हैं और उनके वशमें हो जाते हैं?' भगवान्ने बताया कि 'इसके लिये भक्तिसे बढ़कर और कोई उपाय नहीं है। ब्रह्मा मेरे अनुपम भक्त हैं। उनकी भक्तिके कारण मैं उन्हें प्रत्येक कल्पमें दर्शन देकर उनकी समस्याका समाधान किया करता हूँ।'

श्वेतलोहित नामका कल्प था। ब्रह्मा जागकर सृष्टि-रचनाके ज्ञानके लिये ध्यान कर रहे थे। तब भगवान् शंकरने 'सद्योजात-रूप' में उन्हें दर्शन दिया। सद्योजात भगवान्ने ब्रह्माको 'सद्योजात' आदि मन्त्र देकर उन्हें सृष्टि-रचनाके योग्य बनाया।

तीसवें कल्पमें ब्रह्माके जीव-सुलभ अज्ञानको हटानेके लिये भगवान् शंकर 'वामदेव'के रूपमें आये। इस बार विरजा, विबाहु, विशोक और विश्वभावन—ये चार कुमार थे। सभी कुमारोंके वस्त्र, चन्दन, भस्म और माला रक्तवर्णके थे। वे लोग संसारके ऊपर अनुग्रह करते रहते थे।

एकतीसवें कल्पका नाम पीतवासा है। इसमें ब्रह्मा पीले वस्त्र, पीला चन्दन और पीली माला धारण किये थे। इस बार भी ब्रह्मा सृष्टि-रचनाके लिये जब व्यग्र होने लगे, तब भक्तवत्सल भगवान्ने 'तत्पुरुष' के रूपमें दर्शन दिया और **'तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्'**—इस गायत्री-मन्त्रका उपदेश किया। इस मन्त्रके अद्भुत अर्थसे ब्रह्मा सृष्टिकी रचनामें समर्थ हुए। तत्पुरुषदेवके पार्श्वभागसे जो चार कुमार प्रकट हुए थे, वे भी पीले वस्त्र, पीले चन्दन और पीली माला पहने हुए थे। उनके मुख और केश भी पीले थे।

बत्तीसवें कल्पमें, जिसका नाम असित था, ब्रह्मा सृष्टिके लिये जब चिन्तित हुए, तब भगवान्ने उन्हें 'अघोर'रूपमें दर्शन दिया। उनके वस्त्र, यज्ञोपवीत और माला काले (नीले वर्णके) थे। भगवान् अघोरके पार्श्वभागसे चार कुमार—कृष्ण, कृष्णशिख, कृष्णास्य और कृष्णवस्त्रधृत् प्रकट हुए। वे भी काले थे और काले ही वस्त्र आदि धारण किये थे। भगवान्ने अघोर-मन्त्र देकर सृष्टिकी प्रक्रियाका उद्घाटन किया।

विश्वरूप नामक कल्पमें भगवान्ने 'ईशान'रूपमें दर्शन देकर ब्रह्माको कृतार्थ किया। इस बार शक्तिके दर्शन प्राप्त हुए। इस तरह भगवान् श्रद्धा और भक्तिके वशमें होकर भक्तकी सहायता किया करते हैं।

(ला० बि० मि

ज्योतिर्लिङ्गका प्राकट्य

प्रलयके समुद्रमें भगवान् विष्णु सो रहे थे, उन्हें देखकर ब्रह्माने कहा—'तुम कौन हो, जो इस तरह निश्चिन्त होकर सो रहे हो?' ब्रह्मा मायासे मोहित थे। जब भगवान् नहीं उठे, तब ब्रह्माने हाथका धक्का देकर उन्हें जगाया। भगवान् हँसते हुए मीठे शब्दोंमें ब्रह्मासे बोले—'वत्स! बैठो।' यह सम्बोधन सुनकर ब्रह्माको अमर्ष हो आया। उन्होंने कहा—'तुम हो कौन, जो मुझे 'वत्स-वत्स' कह रहे हो? तुम नहीं जानते कि मैं सृष्टिका कर्ता ब्रह्मा हूँ।'

भगवान् विष्णु बोले—'जगत्का कर्ता, भर्ता, हर्ता मैं हूँ। तुम तो मेरे अंशसे उत्पन्न हो, तुम मुझे ही भूल गये? परंतु इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। यह तो मेरी मायाका खेल है।' ब्रह्माको ये बातें अच्छी नहीं लगीं। दोनोंमें विवाद होने लगा।

दयालु परमात्मा इस विवादकी शान्ति और उन दोनोंके बोधके लिये ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें प्रकट हुए। इस लिङ्गका ओर दीखता था न छोर। वह लिङ्ग ज्वालामय प्रतीत हो रहा था। उस लिङ्गको देखकर विष्णु और ब्रह्मा मोहित हो गये। वे सोचने लगे कि हम दोनोंके बीचमें यह कौन-सी वस्तु आ गयी है? दोनों उस वस्तुको जाननेके लिये उतावले हो रहे थे। विष्णु भगवान् सूकरका रूप धारण कर नीचेकी ओर उतरे और ब्रह्मा हंसका रूप धारण कर ऊपरकी ओर उड़े। दोनों ही चले गये, किंतु दोनोंको ही उस ज्योतिर्लिङ्गके ओर-छोरका पता न लगा। दोनों ही थककर अपने-अपने स्थानपर आ गये। अन्तमें दोनोंने उस ज्योतिर्लिङ्गको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। इसके बाद ही दोनोंने उच्च स्वरमें 'ॐ'की ध्वनि सुनी। आश्चर्यचकित होकर दोनोंने देखा कि ज्योतिर्लिङ्गकी दाहिनी ओर अ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha and eGangotri

बायीं ओर उकार और बीचमें मकार है। अकार सूर्यमण्डलकी तरह, उकार अग्निकी तरह और मकार चन्द्रमाकी तरह चमक रहे थे। उन तीनों वर्णोंके ऊपर उन्होंने शुद्ध स्फटिककी तरह भगवान् शंकरको देखा। इस भव्य दर्शनको पाकर विष्णु भगवान्ने लम्बी स्तुति की। ब्रह्मा भी उस स्तुतिमें सम्मिलित थे। स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने कहा—'तुम दोनोंको मैंने ही उत्पन्न किया है। तुम दोनोंपर मैं प्रसन्न हूँ। वर माँगो।' ऐसा कहकर परमेश्वरने दोनों हाथोंसे उन्हें स्पर्श किया। उन दोनोंने वरदानमें माँगा कि हमें आपकी अचल भक्ति प्राप्त हो। भगवान् शंकरने उन्हें अभिलषित वरदान देकर कहा—ये ब्रह्मा पाद्मकल्पमें तुम्हारे पुत्र होंगे। तुम दोनों दिव्य ज्योतिर्लिङ्गकी उपासना कर सृष्टिका कार्य बढ़ाओ।'

भक्तिसे सर्वातिशायी सामर्थ्य

भगवान् शंकरकी भक्तिसे मनुष्यमें इतनी सामर्थ्य आ जाती है कि वह देवोंको भी अभिभूत कर सकता है। विप्र दधीच भगवान् शंकरके उत्तम भक्त थे। वे भस्म धारण करते थे और सदा भगवान् शंकरका स्मरण किया करते थे। राजा क्षुप इनके मित्र थे। ये क्षुप कोई साधारण राजा नहीं थे। असुरोंके युद्धमें इनसे इन्द्र सहायता लेते रहते थे। क्षुपने असुरोंपर इतना पराक्रम दिखलाया कि इन्द्रने प्रसन्न होकर इन्हें वज्र दे दिया था। इस पुरस्कारको पाकर राजा क्षुपका अहंकार बढ़ गया। वे अपने मित्र दधीचसे बार-बार कहा करते थे कि मैं आठ लोकपालोंके अंशोंसे बना हूँ, अतः मैं ईश्वर हूँ। आप भी मेरी पूजा किया करें।

दधीचको यह बात अच्छी न लगी। धीरे-धीरे दोनों मित्रोंमें मनोमालिन्य बढ़ने लगा। एक दिन दधीचने जब क्षुपके मस्तकपर मुष्टिक प्रहार किया, तब मदोन्मत्त क्षुपने उनपर वज्र चला दिया।

वज्रसे आहत होनेपर दधीचने महर्षि शुक्रका स्मरण किया। महर्षि शुक्र संजीवनी विद्याके विशेषज्ञ थे। योगबलसे वहाँ पहुँचकर उन्होंने दधीचके क्षत-विक्षत शरीरको जोड़कर पूर्ववत् बना दिया। फिर उन्होंने दधीचको परामर्श दिया कि 'तुम भगवान् शिवकी आराधना कर अवध्य बन जाओ। वे परब्रह्म हैं, आशुतोष हैं। उन्हींकी शरण लो। मैंने उन्हींसे मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त की है।'

तत्पश्चात् दधीचने आराधना कर भगवान् शंकरसे अवध्यता प्राप्त कर ली। भगवान् शंकरने दधीचकी हड्डीको वज्र बना दिया और उन्हें कभी दीन-हीन न होनेका वरदान दे दिया। दधीच समर्थ होकर राजा क्षुपके पास पुनः पहुँच गये। दोनोंमें अहंकारकी मात्रा बढ़ी हुई थी। राजा क्षुपने उनपर पुनः वज्रका प्रहार किया, किंतु इस बार दधीचका बाल भी बाँका न हुआ। उनमें दीन-भाव भी न आया।

इस पराभवसे राजा क्षुपने विष्णुदेवकी आराधना की। विष्णुदेवने प्रसन्न होकर राजाको समझाया कि 'शिवके भक्तको किसीसे भय नहीं होता। दधीचकी तो बात ही निराली है।' किंतु राजा क्षुपका आग्रह देख विष्णुदेव ब्राह्मणका रूप धारण कर दधीचके पास पहुँचे। शिव-भक्तिके प्रभावसे दधीचने विष्णुदेवको पहचान लिया और कहा कि 'मैं आपकी भक्त-वत्सलताको जानता हूँ, किंतु भगवान् शंकरके प्रभावसे मुझे किसीका भय नहीं हैं।' श्रीविष्णुने कहा—'दधीच ! भगवान् शंकरकी कृपासे तुम्हें सचमुच भय नहीं है और तुम सर्वज्ञ हो गये हो, किंतु झगड़ा मिटानेके लिये एक बार तुम कह दो कि मैं डरता हूँ।' दधीच इसके लिये तैयार नहीं हुए, तब विवश होकर श्रीविष्णुको चक्र उठाना पड़ा। राजा क्षुप वहीं विद्यमान थे। चक्रको निस्तेज देखकर श्रीविष्णुदेवने अपना सब अस्त्र-शस्त्र छोड़कर दधीचको अपना विश्वरूप दिखलाया। तब दधीचने भी भगवान् शंकरकी कृपासे अपने शरीरमें हजारों ब्रह्मा, विष्णु, महेश दिखलाये।

राजा क्षुप दधीचका यह अद्भुत सामर्थ्य देखकर चकित हो गये। तब उन्होंने भगवान् शंकरकी भक्तिके महत्त्वको समझकर दधीचकी पूजा की। इस तरह दधीचने सिद्ध कर दिया कि भक्ति सबसे बढ़कर है—भक्ति नियन्तासे भी श्रेष्ठ है।

(ला० बि० मि०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुद्रावतार नन्दीश्वर

शिलाद नामके एक महामनस्वी ब्राह्मण थे। उन्होंने सत्पुत्रकी प्राप्तिके लिये इन्द्रकी उपासना की। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर इन्द्रने शिलादसे वर माँगनेको कहा। शिलादने वरदानमें माँगा—'देव ! मैं ऐसा पुत्र चाहता हूँ, जो अयोनिज (गर्भसे न पैदा हुआ) हो और मृत्युसे रहित हो।' इन्द्रने कहा—'मैं ऐसा पुत्र दे सकता हूँ जो योनिज हो और मृत्युसे युक्त हो; क्योंकि मृत्युसे हीन कोई नहीं है। स्वयं ब्रह्मा भी मृत्युसे रहित नहीं हैं।' जब शिलादने अपनी उसी इच्छाको दोहराया, तब इन्द्रने कहा— 'यदि परमात्मस्वरूप शंकर प्रसन्न हो जायँ तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो सकती है। वे ही तुम्हें अयोनिज और मृत्युहीन पुत्र दे सकते हैं। मुझमें या अन्य देवोंमें भी यह सामर्थ्य नहीं है।'

इन्द्रसे उपदेश पाकर शिलाद शंकरकी तपस्यामें लग गये। हजार दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये, किंतु अध्यवसायी शिलाद मुनिके लिये यह क्षण-सा प्रतीत हुआ। इस बीचमें शिलादके शरीरमें हड्डीमात्र ही शेष रह गयी थी। अन्तमें भगवान् शंकर पार्वतीके साथ प्रकट हो गये। भगवान्के स्पर्शसे उनका शरीर भला-चंगा हो गया। उन्होंने शिलादकी इच्छाके अनुरूप इन्हें अयोनिज और मृत्युरहित पुत्र होनेका वरदान दिया।

शिलाद वरदान पाकर अपने आश्रममें आ गये। जब वे यज्ञमण्डपमें पहुँचे तो उन्होंने एक दिव्य शिशुको प्रकट होते देखा। उस अवसरपर सारी दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं और आकाशसे फूलोंकी वृष्टि होने लगी, गन्धर्व गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं, ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि और मुनि वेदोंका पाठ करने लगे। शिलाद मुनि पुत्ररूपमें परमात्माको पाकर गद्गद होकर बोले—'पुत्र ! तुमने मुझे आनन्दमग्न कर दिया है, इसलिये तुम्हारा नाम 'नन्दी' होगा। तुम्हें पा लेनेसे मेरे पितरोंका उद्धार हो गया।'

पुत्रको लेकर शिलाद अपनी कुटियामें आ गये। वहाँ पहुँचकर नन्दी अपने दैवी स्वरूपको छिपाकर मनुष्यरूपमें आ गये। शिलाद मुनिने नन्दीके जातकर्म आदि संस्कार किये।

एक दिन शिलाद मुनिके आश्रमपर तप एवं योगबलसे समन्वित मित्र और वरुण नामके दो देवता आये। उन्होंने बच्चेको देखकर शिलाद मुनिसे कहा—'मुने ! यह बच्चा तो सब शास्त्रोंका जानकार होगा, किंतु इसकी आयु केवल एक वर्ष और शेष है।' यह सुनकर शिलाद मुनिके शोकका कोई आर-पार न रहा। वे बच्चेको गलेसे लगाकर जोर-जोरसे रोने लगे। रोना-पीटना सुनकर शिलादके पिता शालंकायन भी वहाँ आ गये। वे भी रोने लगे। इस तरह अपने पिता और पितामहको दुःखी देखकर बालकने उन्हें सान्त्वना दी कि 'मैं मृत्युको जीतनेके लिये भगवान् शंकरकी आराधना करने जा रहा हूँ। आपलोग निश्चिन्त हो जायँ।' इतना कहकर नन्दी एकान्त स्थानपर जाकर भगवान् शंकरकी आराधना करने लगे।

आशुतोष भगवान् शंकर शीघ्र ही प्रकट हो गये और बोले—'वत्स ! तुम्हारा देह देखनेके लिये मनुष्यका है, वस्तुतः यह तो सत्, चित्, आनन्दरूप है। मृत्यु तुम्हारे पास कैसे आयेगी ?' ऐसा कहकर भगवान् शंकरने नन्दीका स्पर्श किया। उस स्पर्शसे नन्दी आनन्दके समुद्रमें मग्न हो गये। भगवान् शंकरने आगे कहा—'तुम मेरे अत्यन्त प्रिय, मेरे पास रहनेवाले और मेरे ही तुल्य पराक्रमी होओगे।' इतना कहकर भगवान्ने नन्दीको कमलकी माला पहनायी। वरदानरूपमें भगवान् शंकरने अपनी जटासे जल निकालकर उसे नदीका रूप दे दिया, जो जटोदका नामसे विख्यात हुई। इसके बाद भगवान् शंकरने नन्दीको शिलादकी गोदमें डाल दिया। फिर प्रेमसे विभोर होकर भगवान्ने तीन धाराओंसे नन्दीका अभिषेक किया। वे तीन धाराएँ तीन नदियोंमें बदल गयीं। यह देखकर भगवान्के वृषभने निनाद किया। उस नादसे एक दूसरी नदी प्रकट हुई, जिसका नाम 'वृषभध्वनि' हुआ। इसके बाद भगवान् शंकरनें नन्दीके सिरपर मुकुट और कानोंमें कुण्डल पहनाये। नन्दीको पूजित देखकर मेघोंने भी अभिषेक किया। इससे भी एक नदी प्रकट हो गयी, जिसे जाम्बुनदी कहते हैं। ये पाँचों पवित्र नदियाँ जप्येश्वर महादेवके पास हैं। इसके बाद भगवान् शंकरने नन्दीको सब गणोंके आधिपत्यपदपर अभिषिक्त किया। उस अवसरपर सभी देवताओंने वहाँ उपस्थित होकर नन्दीको भिन्न-भिन्न उपहार दिये।

(ला० बि० मि०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि वसिष्ठकी क्षमाशीलता

राजा त्रिशङ्कुके यज्ञमें आमन्त्रणके अवसरपर वसिष्ठ-पुत्र शक्ति और विश्वामित्रमें विवाद हो गया। विश्वामित्रने शक्तिको शाप दे दिया और उनकी प्रेरणासे 'रुधिर' नामक राक्षसने शक्ति ऋषिको खा लिया। महर्षि वसिष्ठके दूसरे निन्यानबे पुत्रोंको भी उसने खा डाला। महर्षि वसिष्ठका एक पुत्र भी नहीं बचा।

महर्षि वसिष्ठ क्षमाकी मूर्ति थे। उनका सिद्धान्त था कि अपने किये हुए कर्मका ही फल भोगना पड़ता है। कोई किसीको मार नहीं सकता। यदि कोई मारता है तो वह अपने किये हुए किसी कुकर्मका परिणाम है—

हन्यते तात कः केन यतः स्वकृतभुक् पुमान् ।

(लिङ्गपु० ६४। ११०)

इसलिये महर्षि वसिष्ठने विश्वामित्र आदिसे बदला न लिया, क्षमा कर दिया, किंतु धर्मप्राण लोग वंशके क्षयको नहीं सह पाते; क्योंकि इससे पितरोंका कल्याण नहीं होता। इसलिये महर्षि वसिष्ठ बहुत उद्विग्न हो गये। माता अरुन्धतीके शोककी सीमा न थी। पुत्रवधू अदृश्यन्तीके दुःखका तो कोई आर-पार ही न था। उसका तो सर्वस्व ही लुट गया था। इस घोर कष्टमें भी कष्ट पहुँचानेवालेके प्रति क्षमाका भाव रखना बहुत बड़ी मानवता है।

महर्षि वसिष्ठ और अरुन्धतीने तो प्राणोंको ही त्याग देना चाहा। उनके विचारमें आया कि वंशक्षयके बाद उनका जीना उचित नहीं है। उनकी इस स्थितिको देखकर पुत्रवधू अपना दुःख भूल गयी और अपने सास-ससुरकी सँभालमें लग गयी। उस स्थितिको देखकर पृथ्वी माता भी रो पड़ी थीं। अदृश्यन्तीने चरण पकड़कर सास-ससुरको मनाते हुए कहा—'आपके वंशका अभी क्षय नहीं हुआ है; क्योंकि आपका पौत्र मेरे गर्भमें सुरक्षित है। महर्षि वसिष्ठ और माता अरुन्धती आश्वस्त हो गये; किंतु शोक और भयसे व्यथित पुत्रवधूके कष्टसे वे दोनों फिर रो पड़े।

इसी बीचमें महर्षि वसिष्ठके कानोंमें वेदकी ऋचाओंकी ध्वनि आने लगी। वह स्वर बहुत स्पष्ट और मधुर था। तब वे सोचने लगे कि वेदोंकी इन ऋचाओंका शक्तिकी तरह कौन उच्चारण कर रहा है? इसी बीच भगवान् विष्णु प्रकट हो गये। उन्होंने महर्षि वसिष्ठको आश्वासन देते हुए कहा—'वत्स! तुम्हारे पौत्रके मुखसे ये मधुर ऋचाएँ निकल रही हैं। तुम्हारा वंश डूबा नहीं है। शोक छोड़ो। तुम्हारा यह पौत्र सदा शिवका भक्त होगा और समस्त कुलको तार देगा।' इतना कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये।

महर्षि वसिष्ठके इसी पौत्रका नाम पराशर रखा गया। बालक पराशरने गर्भमें ही अपने पिता शक्तिद्वारा शिक्षा पायी थी। पृथ्वीपर आनेके बाद बच्चेके दृष्टिसे अपनी माताकी हीनता छिपी न रही। उसने पूछा—'माँ! तुमने सौभाग्यसूचक आभूषण अपने शरीरसे क्यों हटा रखे हैं?' माता अपना दुःख सुनाकर पुत्रके कोमल हृदयको दुखाना नहीं चाहती थी। वह चुप रह गयी। तब बच्चेने फिर पूछा—'माँ! मेरे पिताजी कहाँ हैं?' इतना सुनते ही अदृश्यन्तीके धीरजका बाँध टूट गया। वह फूट-फूटकर रोने लगी। 'तुम्हारे पिताको राक्षस खा गया।'—इतना कहकर वह मूर्छित हो गयी। इस दुःस्थितिसे महर्षि वसिष्ठ भी बेहोश होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। यह करुण दृश्य तेजस्वी बच्चेसे सहा न गया। जिस कारणसे उसके बूढ़े दादा एवं दादी तथा माता मूर्छित हो जायँ, उस कारणपर बच्चेका क्रोधित होना स्वाभाविक था। वह आश्रमवासियोंसे सब समाचार सुनकर सारे विश्वको ही जला देनेके लिये उद्यत हो गया।

पराशरने भगवान् शंकरकी अर्चना कर शक्ति प्राप्त कर ली और जब पराशर विश्व-संहारकी योजना बनाने लगे तब महर्षि वसिष्ठने समझाया—'वत्स! तुम्हारा यह क्रोध अयुक्त नहीं है, किंतु विश्वके विनाशकी योजना सही नहीं है। इसे छोड़ दो।' यह बात बालककी समझमें आ गयी, किंतु राक्षसोंसे उसका क्रोध नहीं हटा। उसने 'राक्षस-सत्र' प्रारम्भ कर दिया। मन्त्रकी शक्तिसे राक्षस अग्निमें गिर-गिरकर भस्म होने लगे। तब महर्षि वसिष्ठने पराशरको पुनः समझाया—'बेटा! अधिक क्रोध मत करो, इसे छोड़ दो। कोई किसीको हानि नहीं पहुँचा सकता। अपने कियेके अनुसार ही हानि प्राप्त होती है। अतः किसीपर क्रोध करना अच्छा नहीं है। निर्दोष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राक्षसोंका जलाना बंद करो। आजसे यह अपना सत्र ही समाप्त कर दो। सज्जनोंका काम क्षमा करना होता है।'

पराशरने अपने पितामहका आदर कर उस सत्रको समाप्त कर दिया। इस घटनासे राक्षसोंके आदि कुलपुरुष महर्षि पुलस्त्य बहुत प्रभावित हुए और उस स्थलपर प्रकट हुए। उन्होंने पराशरसे कहा—'बेटा ! क्षमा ग्रहण कर तुमने वैरको जो भुला दिया है, यह तुम्हारे कुलके अनुरूप ही है। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम समस्त शास्त्रोंको जान जाओगे और वरदान देता हूँ कि पुराण-संहिताके कर्ता होगे। मेरी प्रसन्नतासे तुम्हारी बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्तिमें निर्मल बनी रहेगी।' महर्षि वसिष्ठने पुलस्त्यके इन वचनोंका अनुमोदन करते हुए बालकको साधुवाद दिया।

आँख खोलनेवाली गाथा

राजा नहुषकी छः संतानोंमेंसे महाराज ययाति दूसरी संतान थे। इनके बड़े भाईका नाम यति था। वे बचपनसे निवृत्तिमार्गमें अग्रसर होकर 'ब्रह्म'-स्वरूप हो गये, अतः कोसलदेशका शासन ययातिके हाथोंमें आया। ये बहुत शूर-वीर थे। अपने पराक्रमसे आगे चलकर ये सम्राट् हो गये थे। ये युद्धमें देवताओं, दानवों और मनुष्योंके लिये दुर्धर्ष थे। ये परमात्माके भक्त, पुण्यात्मा और धर्मनिष्ठ थे। ये अपने पास क्रोधको फटकने नहीं देते थे। सभी प्राणियोंपर इनकी अनुकम्पा बरसती रहती थी। इन्होंने अगणित यज्ञ-याग किये थे।

महर्षि शुक्राचार्यकी कन्या देवयानी इनकी पत्नी थी। दैत्यराज वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा अपनी दासियोंके साथ देवयानीकी दासी बनकर साथ आयी थी। आगे चलकर राजा ययातिने चुपकेसे शर्मिष्ठाको भी अपनी पत्नी बना लिया था। देवयानीको इस रहस्यका तब पता चला, जब इसने शर्मिष्ठाके तीनों लड़कोंको देखा। इससे क्रुद्ध होकर देवयानी अपने पिता महर्षि शुक्राचार्यके पास चली गयी। पीछे-पीछे ययाति भी वहाँ जा पहुँचे। अपनी लाडिली पुत्रीको दुःखी देखकर शुक्राचार्यको क्रोध हो आया। उन्होंने ययातिको बूढ़ा होनेका शाप दे दिया। शाप देते ही महाराज ययाति बूढ़े हो गये। उन्होंने महर्षिकी बहुत अनुनय-विनय की। तब शुक्राचार्यने परिहार बतलाया—'यदि तुम्हारे पुत्रोंमेंसे कोई तुम्हारा बुढ़ापा लेकर अपनी जवानी दे दे, तब तुम फिर जवान हो सकते हो।'

महाराज ययाति घर लौट आये। सबसे पहले ये देवयानीके पुत्रोंके पास पहुँचे। देवयानीसे इनके दो पुत्र थे—यदु और तुर्वसु। महाराजने उनसे अलग-अलग जवानीकी माँग की, परंतु दोनोंने इसे अस्वीकार कर दिया। तब महाराज शर्मिष्ठाके ज्येष्ठ पुत्र अनुके पास गये। अनुने भी महाराजकी माँग अस्वीकार कर दी। शर्मिष्ठाके दूसरे पुत्र द्रुह्युने भी यह माँग ठुकरा दी। अन्तमें महाराज शर्मिष्ठाके तीसरे पुत्र पुरुके पास गये। पुरुने अपनी जवानी देकर पिताका बुढ़ापा अपने ऊपर ले लिया। पिताने प्रसन्न होकर पुत्रको आशीर्वाद दिया—'मेरे साम्राज्यपर तुम्हारा और तुम्हारे वंशजोंका ही आधिपत्य होगा।'

युवावस्था प्राप्तकर महाराज ययाति विषय-भोगमें लिप्त हो गये। काम चार पुरुषार्थोंमें एक है। यह त्याज्य नहीं है, किंतु इसका अतियोग अनुचित है। फलतः महाराज वासनाओंकी गहराईमें उतरते चले गये। बहुत दिनोंके बाद उन्हें अपनी भूलका भान हुआ। भगवान्‌की कृपासे उनकी आँखें खुल गयीं। अब विषय-वासनाएँ विष प्रतीत होने लगीं। उन्होंने संसारको अपनी जो अनुभूति दी है, वह इस प्रकार है—'कामकी तृष्णा उपभोगसे कभी कम नहीं होती, प्रत्युत और बढ़ती ही चली जाती है। अग्निमें जैसे-जैसे घी डाला जाता है, वैसे-वैसे उसकी लपटें बढ़ती जाती हैं, ठीक यही दशा विषय-भोगकी है। पृथ्वीमें जितने धन-धान्य, पशु-पक्षी और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक पुरुषके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं। इसलिये मनुष्यको भोगकी ओर न बढ़कर इन्द्रियोंका नियन्त्रण करना चाहिये। मनको परमात्मामें लगाना चाहिये। विषय-भोग मनको परमात्माकी ओरसे हटा देता है। सच्चा सुख ब्रह्मकी प्राप्तिमें ही सम्भव है। तृष्णा ऐसा भयानक रोग है, जो उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जाता है। केश, दाँत, नख—ये सब जीर्ण हो जाते हैं, किंतु मरते दमतक तृष्णा जीर्ण नहीं होती। इस तृष्णाके त्यागसे इतना सुख प्राप्त होता है कि इसके एक अंशकी भी बराबरी कामसुख या स्वर्गसुख नहीं कर सकता।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगीतसे भगवत्प्राप्ति

त्रेतायुगमें कौशिक नामके एक ब्राह्मण थे। भगवान्‌में उनका अत्यधिक अनुराग था। खाते-पीते, सोते-जागते प्रतिक्षण उनका मन भगवान्‌में लगा रहता था। उनकी साधनाका मार्ग था संगीत। वे भगवान्‌के गुणों और चरित्रोंको निरन्तर गाया करते थे। ये सभी गान प्रेमार्द्र-हृदयसे उपजे होते थे। वे भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह कर लेते थे और शेष समय भगवान्‌में ही लगाते थे। उनके बहुतसे शिष्य हो गये थे, जिनमें सात शिष्य प्रमुख थे। प्रेमी शिष्योंका योग मिलनेसे कौशिकका गान और हृदयाकर्षक हो गया था। भक्त पद्माक्षने उनके और उनके शिष्योंके भोजनका भार अपने ऊपर ले लिया था।

कौशिकके शिष्योंमें एक दम्पति भी थे। उनमें पतिका नाम था मालव और पत्नीका मालवी। मालव भगवान्‌को दीपकोंकी मालासे सजाता रहता था और उसकी पत्नी मालवी मन्दिरको झाड़-पोंछकर सदा चमकाये रहती थी। दोनों पति-पत्नी कौशिकके गानको सुनते और आनन्दमें निरन्तर विभोर रहते थे।

कौशिकके दिव्यगानकी चर्चा चारों ओर हो रही थी। कुशस्थलीसे आकर पचास ब्राह्मण इनकी संगीत-साधनामें सम्मिलित हो गये थे। राजा कलिङ्गने भी यह चर्चा सुनी तो वह भी कौशिकके पास पहुँचा। वह अहंकारी था। उसने कौशिकसे कहा—'तुम बहुत अच्छा गाते हो। आज मेरी कीर्तिका गान करो, जिससे ये कुशस्थलीके वासी उसे मनोयोगसे सुनें।' कौशिकने विनम्रतासे कहा—'महाराज! मेरी जीभ और वाणी केवल भगवान्‌के ही गुणोंको गाती हैं, अन्य प्राकृतिक वस्तुओंको नहीं। अतः आप मुझे क्षमा करें।' इसी बातको उनके गायक शिष्योंने भी दुहराया। श्रोताओंने भी नम्रतासे कहा कि 'हमारा भी यही नियम है। हम अपने कानोंसे केवल भगवान्‌के गुणों और यशको सुनें। अतः आप हमें भी क्षमा करें।' यह सुनते ही राजा क्रोधसे जल उठा। उसने लोहेकी कीलसे उनकी जीभ और कानोंको छेदना चाहा। राजाकी यह चेष्टा जानकर सबने अपने-अपने जीभों और कानोंमें स्वयं कीलें धँसा लीं। राजाका क्रोध और बढ़ गया। उसने कौशिक और उनके साथियोंको अपमानितकर अपने राज्यसे बाहर करवा दिया। उनकी सारी सम्पत्ति छिनवा ली। संत कौशिक अपने दल-बलके साथ उत्तराखण्डकी ओर चले गये।

बहुत दिनोंके बाद जब कौशिक आदिकी मृत्यु हुई, तब ब्रह्माने बड़े आदरके साथ लोकपालोंके द्वारा उन्हें और उनके साथियोंको अपने लोकमें बुला लिया। वे आधे मुहूर्तमें ब्रह्माके सम्मुख पहुँच गये। ब्रह्माने उनका अत्यधिक सम्मान किया। इस लोकके निवासियोंने इतना अधिक सम्मान पाते किसी औरको नहीं देखा था। इसलिये वहाँ हलचल मच गयी।

इसी बीच विष्णुके दूत वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने सम्मानके साथ कौशिक और इनके साथियोंको विष्णुलोक पहुँचाया। कौशिकके सम्मानमें ब्रह्मा और वहाँके निवासी भी उनके साथ गये। इस तरह विष्णुलोकमें बहुत बड़ी भीड़ एकत्र हो गयी। भगवान् विष्णुने कौशिक और उनके साथियोंको स्नेह-सिक्त नेत्रोंसे देखा। उस समय जयघोषसे सारा वातावरण गूँज उठा। भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीको आदेश दिया कि वे कौशिक और उनके शिष्योंको मेरे समीपमें ही स्थान दें। फिर भगवान्‌ने कौशिककी ओर उन्मुख होकर प्रेमार्द्र-वचनोंसे कहा—'वत्स! तुम अपने शिष्योंके साथ मेरे समीप ही रहो। मैंने तुम्हें अपने गणोंका आधिपत्य भी प्रदान किया है।' इसके बाद भगवान्‌ने मालव और मालवीको कृतार्थ करते हुए कहा—'तुम दोनों मेरे लोकमें आनन्दसे रहो और सुन्दर गान सुनकर आह्लाद प्राप्त करते रहो।' इसके बाद भगवान् पद्माक्षसे बोले—'वत्स! तुम कुबेर हो जाओ। धनोंका स्वामी बनकर सुखसे इस लोकमें विहार करो।' तत्पश्चात् भगवान्‌ने प्रेमसिक्त सम्मान देते हुए सबको अपने समीप स्थान दिया। सभीको अपने हस्तकमलोंसे प्रेमपूर्वक स्पर्श भी किया।

इतना सम्मान देनेके बाद भी भगवान्‌को संतोष नहीं हो रहा था। उन्होंने उनके स्वागतमें संगीतका विशाल आयोजन किया। विश्वके सर्वश्रेष्ठ गायक तुम्बुरु गन्धर्व बुलाये गये। भगवान् दिव्य सिंहासनपर विराजमान थे। संगीत गाती हुई माता लक्ष्मी भी आ विराजीं। साथ ही वीणाके गुणके तत्त्वको जाननेवाली करोड़ों अप्सराएँ वाद्यविशारदोंके साथ वहाँ आ पहुँचीं। पहलेसे ही वह स्थल ब्रह्मलोकवासियोंसे पूरी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरा था। इस रसिक संगीत-मण्डलीको वहाँ घुस पाना कठिन हो रहा था। भगवती लक्ष्मीकी आज्ञासे उनसे देवता और मुनियोंको दूर ही बैठाया। देवर्षि नारद भगवान्‌के बिलकुल समीपमें ही रहनेवाले हैं, पर संगीत न जाननेके कारण उन्हें भी दूर हटा दिया गया था। संगीतज्ञ तुम्बुरुको लक्ष्मी और भगवान् विष्णुके समीपमें बैठाया गया। गायकराजकी मजी अँगुलियाँ वीणाके तारोंपर थिरकनें लगीं। उनके सधे कण्ठकी फूटती स्वर-लहरियाँ कण-कणको आह्लादित करने लगीं। रसकी धाराएँ बह निकलीं। इस तरह कौशिक और उनके साथियोंका बहुत ही भावपूर्ण स्वागत किया गया।

देवर्षि नारदकी संगीत-साधना

कौशिकके स्वागत-समारोहमें नारदजीको जो लक्ष्मी-नारायणके समीपसे दूर हटाया गया था और उनकी जगह तुम्बुरुको बैठाया गया था, वह नारदजीको बहुत ही खला। वे समझ गये कि मेरा इतना बड़ा अध्ययन, इतनी बड़ी तपस्या आदि सब कुछ संगीतके सामने तुच्छ-सा हो गया। इसपर वे भी संगीतके ज्ञानके लिये उत्सुक हो गये और घोर तप करने लगे।

हजारों वर्ष बीतनेपर आकाशवाणी हुई—'नारद ! यदि तुम गान जानना चाहते हो तो मानसरोवरके उत्तरी शैलपर चले जाओ, वहाँ गानबन्धु नामक उलूक रहते हैं, उनसे सीखकर संगीतके जानकार हो जाओगे।'

देवर्षि नारद अविलम्ब मानसरोवरके उत्तर शैलपर जा पहुँचे। वहाँ देवर्षिने देखा कि गानबन्धु बीचमें बैठे हैं और उन्हें चारों ओरसे घेरकर गन्धर्व, किन्नर, अप्सराएँ और यक्ष बैठे हुए हैं। ये सब-के-सब गानबन्धुसे सीखकर गानविद्यामें पारंगत हो चुके थे और आनन्दकी लहरोंमें डूब-उतरा रहे थे।

देवर्षि नारदको अपने पास आया देखकर गानबन्धु उठकर नमस्कार किया। जब गानबन्धुने जाना कि देवर्षि नारद मुझसे संगीत सीखना चाहते हैं, तब उन्हें बहुत ही प्रसन्नता हुई। देवर्षि नारदने एक हजार दिव्य वर्षतक संगीतकी साधना की। सीख लेनेपर देवर्षि नारदने गानबन्धुको गुरुदक्षिणा देनी चाही। गानबन्धुने कहा—'मैं चाहता हूँ कि संगीतद्वारा लम्बे अवधितक भगवान्‌की सेवा करता रहूँ। इसलिये आवश्यक है कि मेरी आयु लम्बी और स्वास्थ्य सुदृढ़ हो।' देवर्षिने उनकी आयु एक कल्पकी दी और स्वास्थ्य भी सुदृढ़ कर दिया। साथ ही यह भी वरदान दिया कि 'अगले कल्पमें आप गरुड होंगे।'

देवर्षि नारद संगीत सीखकर भगवान्‌के पास पहुँचे। भगवान्‌ने उनका गान सुनकर कहा—'अभी तुम तुम्बुरुके समकक्ष नहीं हुए हो। कृष्णावतारमें मैं तुम्हें सर्वोच्च ज्ञानसे सम्पन्न कर दूँगा।'

देवर्षि नारद वीणापर भगवान्‌का गुणानुवाद गाते हुए तीनों लोकोंमें विचरने लगे। उनके आनन्दकी सीमा नहीं रही। कृष्णावतार होनेपर ये भगवान्‌के पास पहुँचे। भगवान्‌ने उन्हें संगीत सीखनेके लिये जाम्बवतीके पास भेज दिया। रानी जाम्बवतीने एक वर्षतक देवर्षिको संगीतकी शिक्षा दी। दूसरी बार भगवान्‌ने देवर्षिको सत्यभामाके पास भेजा। एक वर्ष बीतनेके बाद देवर्षिको महारानी रुक्मिणीके अनुशासनमें रखा। महारानी रुक्मिणीने उन्हें तीन वर्षोंतक सिखाया। तत्पश्चात् भगवान्‌ने स्वयं देवर्षिको संगीत सिखलाया। इसके बाद भगवान्‌ने देवर्षिसे कहा कि 'अब आप तुम्बुरुसे आगे बढ़ गये हैं।' इस तरह बहुत दिनोंके बाद देवर्षि नारदकी संगीत-साधना पूरी हुई।

भगवद्गानमें रोड़ा न अटकावे

[गानबन्धुके पूर्वजन्मकी कथा]

प्राचीन कालमें भुवनेश नामका एक धार्मिक राजा हुआ था। उसने हजार अश्वमेध और दस सहस्र वाजपेय यज्ञ किये थे तथा लाखों गायोंका दान किया था। उसके सोनेके दानकी भी कोई सीमा न थी। इस तरह राजाके धर्मकार्य महान् थे, किंतु मोहवश राजासे एक बहुत बड़ा अधर्म हो गया। उसने नियम बना दिया था कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य केवल वेदोंसे ईश्वरकी आराधना करें। ये तीनों संगीतसे ईश्वरकी आराधना कभी न करें। यदि इनमेंसे कोई गानके द्वारा भगवान्‌की अर्चना करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ पाया जायगा तो वह दण्डनीय होगा। संगीतसे भगवान्‌की सेवाका अधिकार केवल शूद्र और महिलाओंको है।

संगीतकी महिमा न जाननेके कारण ही राजाके द्वारा ऐसे नियम बनाये गये थे। इस अज्ञानसे राजाके किये-कराये यागादि सब-के-सब व्यर्थ हो गये। उसीके राज्यमें हरिमित्र नामक एक ब्राह्मण रहते थे। वे भगवान्‌के प्रेमी भक्त थे। प्रेममें छके रहनेके कारण उनके कण्ठसे कोई-न-कोई गीत निकलता रहता था। नदीके तटपर भगवान्‌की एक सुन्दर प्रतिमा थी। हरिमित्र उस प्रतिमाको देखकर बावले हो जाते और गा-गाकर उस मूर्तिकी षोडशोपचार पूजा करते थे। उनके प्रेमसिक्त गीतसे वहाँका कण-कण आन्दोलित होता रहता था।

यह दृश्य राजाके कर्मचारियोंने देखा। उन्होंने राजाको यह समाचार सुनाया। अपने नियमका उल्लङ्घन होते देखकर राजा क्रोधसे जल उठा। उसने उनकी पूजाको तहस-नहस करवा दिया और उनका सारा धन अपहृत कर लिया। साथ ही देशसे निष्कासित कर दिया।

मरनेके बाद जब राजा ऊपरके लोकोंमें पहुँचा, तब उसे सम्मान तो मिला, किंतु भूखसे उसकी अँतड़ी जलने लगी। उसे कुछ अच्छा नहीं लगता था। उसने यमराजसे पूछा—'महाराज ! स्वर्गमें भी मुझे भूख-प्यास क्यों सता रही है, 'मैंने तो कोई पाप नहीं किया है, पुण्य-ही-पुण्य किये हैं ?' यमराजने कहा—'मोहवश तुमसे एक बहुत बड़ा पाप हो गया है। तुमने एक भगवत्प्रेमी संतका तिरस्कार किया था। उसकी संगीत-साधनाको भ्रष्ट किया था, इससे तुम्हारे किये दान-यज्ञादि सब नष्ट हो गये। अब तुम्हारे सभी लोक भी नष्ट हो गये हैं। अब तो तुम्हें उल्लू बनकर पर्वतकी कन्दरामें जाना होगा। वहाँ अपने मरे हुए शरीरको नोच-नोच कर खाना पड़ेगा। मन्वन्तरपर्यन्त तुम्हें घोर नरकमें भी रहना पड़ेगा। उसके बाद कुत्तेकी योनिमें जन्म होगा' ऐसा कहकर यमराज अन्तर्हित हो गये।

यमराजके अन्तर्धान होनेके बाद राजा उल्लू बनकर पर्वतकी कन्दरामें जा गिरा। वह भूखसे अंधा हो रहा था। इसी अवसरपर उसका मृतक शरीर उसके पास उपस्थित हो गया। ज्यों ही वह उसे खानेके लिये आगे बढ़ा, त्यों ही संयोगसे हरिमित्रका चमकता हुआ विमान उधरसे निकला। अप्सराएँ उनकी स्तुति कर रही थीं और विष्णुके दूत सम्मानके साथ उन्हें उस विमानसे वैकुण्ठ ले जा रहे थे। संत हरिमित्रकी दृष्टि राजा भुवनेशके शवपर पड़ी। पासमें ही वह उल्लू भी दीख पड़ा। संत सबपर दया करते हैं। अपने मारनेवालेपर भी वे दया ही करते हैं। राजाके उस शरीरको बुरी दशामें देखकर उन्हें दया आयी। उन्होंने उल्लूसे पूछा—'पक्षी ! यह राजा भुवनेशका शरीर है, इसे तू कैसे खा रहा है?'

उल्लूने रो-रोकर अपनी सारी घटना सुना दी। उपसंहारमें उसने कहा कि 'मैंने तुम्हारी और संगीतकी जो दुर्गति की है, उसीके फलस्वरूप मैं उल्लू बना हूँ और भूखसे पीड़ित होकर अपना ही शरीर खानेके लिये विवश हूँ। मेरे सारे धर्मके कार्य नष्ट हो गये हैं।'

दयालु संतने कहा—'राजन् ! मैंने तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर दिये। अब तुम्हें कुत्ते आदिकी योनियाँ नहीं मिलेंगी। यह मुर्दा भी अब तुम्हें नहीं खाना पड़ेगा, प्रत्युत योग्य भोजन मिलेगा। मेरे प्रसादसे तुम्हें गान-योगकी प्राप्ति होगी। उससे विष्णुकी स्तुति कर तुम कृतार्थ होगे। अन्तमें तुम गानके आचार्य भी होगे।'

संत हरिमित्रका कथन समाप्त होते ही सब नारकीय कष्ट लुप्त हो गये। उल्लू गानबन्धु बनकर ब्रह्मास्वादमें रत होकर रसविशेषको उल्लसित करने लगा। (ला० बि० मि०)

दरिद्रा कहाँ-कहाँ रहती है ?

समुद्र-मन्थनके समय हलाहलके निकलनेके पश्चात् दरिद्राकी, तत्पश्चात् लक्ष्मीजीकी उत्पत्ति हुई। इसलिये दरिद्राको ज्येष्ठा भी कहते हैं। ज्येष्ठाका विवाह दुःसह ब्राह्मणके साथ हुआ। विवाहके बाद दुःसह मुनि अपनी पत्नीके साथ विचरण करने लगे। जिस देशमें भगवान्‌का उद्घोष होता, होम होता, वेदपाठ होता, भस्म लगाये लोग होते, वहाँसे ज्येष्ठा दोनों कान बंद कर दूर भाग जाती । यह देखकर दुःसह मुनि उद्विग्न हो गये। उन दिनों सब जगह धर्मकी चर्चा और पुण्य कृत्य हुआ ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते थे। अतः दरिद्रा भागते-भागते थक गयी, तब उसे दुःसह मुनि निर्जन वनमें ले गये। ज्येष्ठा डर रही थी कि मेरे पति मुझे छोड़कर किसी अन्य कन्यासे विवाह न कर लें। दुःसह मुनिने यह प्रतिज्ञा कर कि 'मैं किसी अन्य कन्यासे विवाह नहीं करूँगा' पत्नीको आश्वस्त कर दिया।

आगे बढ़नेपर दुःसह मुनिने महर्षि मार्कण्डेयको आते हुए देखा। उन्होंने महर्षिको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और पूछा कि 'इस भार्याके साथ मैं कहाँ रहूँ और कहाँ न रहूँ ?' मार्कण्डेय मुनिने पहले उन स्थानोंको बताना आरम्भ किया, जहाँ दरिद्राको प्रवेश नहीं करना चाहिये—

'जहाँ रुद्रके भक्त हों और भस्म लगानेवाले लोग हों, वहाँ तुमलोग प्रवेश न करना। जहाँ नारायण, गोविन्द, शंकर, महादेव आदि भगवान्‌के नामका कीर्तन होता हो, वहाँ तुम दोनोंको नहीं जाना चाहिये; क्योंकि आग उगलता हुआ विष्णु-का चक्र उन लोगोंके अशुभको नाश करता रहता है। जिस घरमें स्वाहा, वषट्कार और वेदका घोष होता हो, जहाँके लोग नित्यकर्ममें लगे हुए भगवान्‌की पूजामें लगे हुए हों, उस घरको दूरसे ही त्याग देना। जिस घरमें भगवान्‌की मूर्ति हो, गायें हों, भक्त हों, उस घरमें भी तुम दोनों मत घुसना।'

तब दुःसह मुनिने पूछा—'महर्षे ! अब आप हमें यह बतायें कि हमारे प्रवेशके स्थान कौन-कौनसे हैं ?' महर्षि मार्कण्डेयजीने कहा—'जहाँ पति-पत्नी परस्पर झगड़ा करते हों, उस घरमें तुम दोनों निर्भय होकर घुस जाओ। जहाँ भगवान्‌की निन्दा होती हो, जप, होम आदि न होते हों, भगवान्‌के नाम नहीं लिये जाते हों, उस घरमें घुस जाओ। जो लोग बच्चोंको न देकर स्वयं खा लेते हों, उस घरमें तुम दोनों घुस जाओ। जिस घरमें काँटेदार, दूधवाले, पलाशके वृक्ष और निम्बके वृक्ष हों, जिस घरमें दोपहरिया, तगर, अपराजिताके फूलका पेड़ हो, घर तुम दोनोंके रहने योग्य हैं, वहाँ अवश्य जाओ। जिस घर केला, ताड़, तमाल, भल्लातक (भिलाव), इमली, कदम्ब, खैरके पेड़ हों, वहाँ तुम दरिद्राके साथ घुस जाया करो। जो स्नान आदि मङ्गल कृत्य न करते हों, दाँत-मुख साफ नहीं करते, गंदे कपड़े पहनते, संध्याकालमें सोते या खाते हों, जुआ खेलते हों, ब्राह्मणके धनका हरण करते हों, दूसरीकी स्त्रीसे सम्बन्ध रखते हों, हाथ-पैर न धोते हों, उन घरोंमें दरिद्राके साथ तुम रहो।'

मार्कण्डेय ऋषिके चले जानेके बाद दुःसहने अपनी पत्नी दरिद्रासे कहा—'ज्येष्ठे ! तुम इस पीपलके वृक्षके नीचे बैठी जाओ। मैं रसातल जाकर रहनेके स्थानका पता लगाता हूँ।' दरिद्राने पूछा—'नाथ ! तब मैं खाऊँगी क्या ? मुझे कौन भोजन देगा ?' दुःसहने कहा—'प्रवेशके स्थान तो तुझे मालूम ही हो गये हैं, वहाँ घुसकर खा-पी लेना। हाँ, यह याद रखना कि जो स्त्री पुष्प, धूप आदिसे तुम्हारी पूजा करती हो, उसके घरमें मत घुसना।' इतना कहकर दुःसह रसातलमें चले गये।

ज्येष्ठा वहीं बैठी हुई थी कि लक्ष्मीके साथ भगवान् विष्णु वहाँ आ गये। ज्येष्ठाने भगवान् विष्णुसे कहा—'मेरे पति रसातल चले गये हैं, मैं अब अनाथ हो गयी हूँ, मेरी जीविकाका प्रबन्ध कर दीजिये।' 'ज्येष्ठे ! जो माता पार्वती, शंकर और मेरे भक्तोंकी निन्दा करते हैं, उनके सारे धनपर तुम्हारा ही अधिकार है। उनका तुम अच्छी तरह उपभोग करो। जो लोग भगवान् शंकरकी निन्दा कर मेरी पूजा करते हैं, ऐसे मेरे भक्त अभागे होते हैं, उनके धनपर भी तुम्हारा ही अधिकार है।' इस प्रकार ज्येष्ठाको आश्वासन देकर भगवान् विष्णु लक्ष्मीसहित अपने निवासस्थान वैकुण्ठको चले गये।

द्वादशाक्षर-मन्त्रकी महिमा

एक बार ऋषियोंने सूतजीसे पूछा—'भगवन् ! आप ऐसा उपाय बतायें, जिससे सभी पापोंसे छुटकारा मिल जाय, अलक्ष्मी (दरिद्रा) छोड़कर चली जायँ और निरन्तर लक्ष्मीका निवास हो।' सूतजीने कहा—'ऋषियो ! इसके लिये मनुष्यको निरन्तर विहित कर्म करते हुए भगवान्‌के नामका भी जप करना चाहिये जो चलते, खाते, सोते, जागते, आँख मींचते और खोलते हुए भगवान्‌का जप करता है, वह सभी पापोंसे छूट जाता है और उत्तम गति प्राप्त करता है। दुःसहकी पत्नी दरिद्रा भगवान्‌का नाम सुनकर तुरंत भाग खड़ी होती है।'

सूतजीने आगे कहा—'ऋषियो ! सब शास्त्रोंका मन्थन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर और बारंबार विचार कर मैं इस निश्चयपर पहुँचा हूँ कि भगवान्‌का निरन्तर ध्यान करना चाहिये और निरन्तर भगवान्‌के नामका उच्चारण करना चाहिये। द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप बहुत प्रभावशाली है। उसका स्वरूप यह है—'**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।**' यज्ञोपवीत धारण करनेवाले इस मन्त्रके पहले 'ॐ' लगावें और अन्य लोग 'श्री' लगावें। इस तरह यह मन्त्र बारह अक्षरवाला हो जाता है। इस सम्बन्धमें एक कथा है।

एक ब्राह्मणको कठिन तपस्याके बाद एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम ऐतरेय था। उसका उपनयन किया गया। इसके बाद पिता उसे पढ़ाने बैठे, किंतु बच्चेकी जीभ ही नहीं हिलती, वह कुछ बोल नहीं पाता। उसकी जीभ केवल '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'—इस मन्त्रको ही बोल पाती थी। इसके अतिरिक्त उसकी जीभसे और किसी शब्दका उच्चारण नहीं होता। पिता पढ़ाकर थक गये। अन्तमें निराश होकर उसके पिताने दूसरा विवाह किया। नयी पत्नीसे जो पुत्र हुए, वे चारों वेदोंके विद्वान् हुए और उन्होंने कमाकर धन-धान्यसे घरको भर दिया। उनकी माता बहुत प्रसन्न रहती थी, किंतु ऐतरेयकी माता शोकसे सदा ग्रस्त रहती थी। एक दिन उसने ऐतरेयसे कहा—'बेटा! तुम्हारे और भाई वेद-वेदाङ्गके उद्भट विद्वान् हो गये हैं। वे कमाकर अपनी माताको आनन्दित करते रहते हैं। मैं अभागिन हूँ, इसलिये तुम मेरे पुत्र हुए। तुमसे मुझे कोई सुख न मिला। मेरा तो मर जाना ही अच्छा है।'

माताको व्यथित जानकर ढाढस बँधाते हुए ऐतरेयने कहा—'आज मैं तुम्हारे लिये बहुत-सा धन-धान्य ले आऊँगा।' इतना कहकर वह एक यज्ञ-मण्डपमें चला गया। इसके पहुँचते ही वैदिकोंके मन्त्र भूल गये। उन्हें एक मन्त्र भी स्मरण नहीं हो रहा था। वे बहुत असमञ्जसमें पड़ गये थे। ऐतरेयने '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' मन्त्रका स्पष्ट उच्चारण किया। इस मन्त्रको सुनते ही वैदिकोंके मुखसे ठीक-ठीक उच्चारण होने लगा। वैदिकोंके मनमें ऐतरेयके प्रति श्रद्धा हो गयी। उन लोगोंने ऐतरेयको प्रणाम किया और विधानके साथ इनकी पूजा की। उसके बाद होता, उद्गाता आदि सभी ऋत्विज् इनकी स्तुति करने लगे। यज्ञकी पूर्णाहुतिके बाद स्वर्ण-रत्न आदिसे ऐतरेयका स्वागत किया गया। ऐतरेयने सब धन माताको समर्पित कर दिया। उस समय पुष्पवृष्टिसे सारा वातावरण सुगन्धित हो उठा, द्वादशाक्षरमन्त्रका जप असाध्यको भी साध्य बना देता है।

(ला० बि० मि०)

विश्वासकी विजय

[श्वेतमुनिपर शंकरकी कृपा]

'मृत्यु क्या कर सकती है? मैंने मृत्युंजय शिवकी शरण ली है।' श्वेतमुनिने पर्वतकी निर्जन कन्दरामें आत्मविश्वासका प्रकाश फैलाया। चारों ओर सात्त्विक पवित्रताका ही राज्य था, आश्रममें निराली शान्ति थी। मुनिकी तपस्यासे वातावरणकी दिव्यता बढ़ गयी।

श्वेतमुनिकी आयु समाप्तिके अन्तिम श्वासपर थी। वे अभय होकर रुद्राध्यायका पाठ कर रहे थे, भगवान् त्र्यम्बकके स्तवनसे उनका रोम-रोम प्रतिध्वनित था।

वे सहसा चौंक पड़े। उन्होंने अपने सामने एक विकराल आकृति देखी, उसका समस्त शरीर काला था और उसने अति भयंकर काला वस्त्र धारण कर रखा था।

'**ॐ नमः शिवाय**'—इस पवित्र मन्त्रका उच्चारण करते हुए श्वेतमुनिने अत्यन्त करुणभावसे शिवलिङ्गकी ओर देखा। उन्होंने उसका स्पर्श करके बड़े विश्वासके साथ अपरिचित आकृतिसे कहा—'तुमने हमारे आश्रमको अपवित्र करनेका दुःसाहस किस प्रकार किया? यह तो भगवान् शिवके अनुग्रहसे अभय है।' मुनिने पुनः शिवलिङ्गका स्पर्श किया।

'अब आप धरतीपर नहीं रह सकते। आपकी अवधि पूरी हो गयी। आपको यमलोक चलना है।' भयंकर आकृतिवाले कालने अपना परिचय दिया।

'अधम, नीच! तुमने शिवकी भक्तिको चुनौती दी है! जानते नहीं, भगवान् शंकर कालके भी काल—महाकाल हैं।' श्वेतमुनिने शिवलिङ्गको अङ्कमें भरकर निर्भयताकी साँस ली।

'शिवलिङ्ग निश्चेतन है, शक्तिशून्य है, पाषाणमें सर्वेश्वर महादेवकी कल्पना करना महान् भूल है ब्राह्मण!' कालने श्वेतमुनिको पाशमें बाँध लिया।

'धिक्कार है तुम्हें, परम चिन्मय माहेश्वर लिङ्गकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिमत्ताकी निन्दा करनेवाले काल! भगवान् उमापति कण-कणमें व्याप्त हैं। विश्वासपूर्वक आवाहन करनेपर वे भक्तकी रक्षा करते हैं।' श्वेतमुनिने मृत्युकी भर्त्सना की।

× × × ×

'ठहरो, श्वेतमुनिकी बात सत्य है, हमारा प्राकट्य विश्वासके ही अधीन है।' यह कहते हुए उमासहित भगवान् चन्द्रशेखर प्रकट हो गये। उनकी जटामें पतितपावनी गङ्गाका मनोरम रमण था, भुजाओंमें सर्पवलय और वक्षदेशमें साँपोंकी माला थी। भगवान्के गौर शरीरपर भस्मका शृङ्गार ऐसा लगता था मानो हिमालयके धवल शिखरपर श्याम बादल आन्दोलन हो। काल उनके प्रकट होते ही निष्प्राण हो गया, उसकी शक्ति निष्क्रिय हो गयी। श्वेतमुनिने भगवान्के चरणोंमें प्रणाम किया। वे भोलानाथकी स्तुति करने लगे।

'आपकी लिङ्गोपासना धन्य है, भक्तराज! विश्वासकी विजय तो होती ही है।' शिवजीने मुनिकी पीठपर वरद हस्त रख दिया।

नन्दीके आग्रहपर कालको प्राण-दान देकर भगवान् मृत्युंजय अन्तर्हित हो गये। (लिङ्गपुराण, अ० ३०)

परा एवं अपरा विद्याके ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति

द्वे विद्ये वेदितव्ये हि परा चैवापरा तथा। अपरा तत्र ऋग्वेद यजुर्वेदो द्विजोत्तमाः॥
सामवेदस्तथाऽथर्वो वेदः सर्वार्थसाधकः। शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च॥
ज्योतिषं चापरा विद्या पराक्षरमिति स्थितम्। तददृश्यं तदग्राह्यमगोत्रं तदवर्णकम्॥
तदचक्षुस्तदश्रोत्रं तदपाणि अपादकम्। तदजातमभूतं च तदशब्दं द्विजोत्तमाः॥
अस्पर्शं तदरूपं च रसगन्धविवर्जितम्। अव्ययं चाप्रतिष्ठं च तन्नित्यं सर्वगं विभुम्॥
महान्तं तद्बृहन्तं च तदजं चिन्मयं द्विजाः। अप्राणममनस्कं च तदस्निग्धमलोहितम्॥
अप्रमेयं तदस्थूलमदीर्घं तदनुल्बणम्। अह्रस्वं तदपारं च तदानन्दं तदच्युतम्॥
अनपावृतमद्वैतं तदनन्तमगोचरम्। असंवृतं तदात्मैकं परा विद्या न चान्यथा॥
परापरेति कथिते नैवेह परमार्थतः। अहमेव जगत्सर्वं मय्येव सकलं जगत्॥
मत्त उत्पद्यते तिष्ठन्मयि मय्येव लीयते। मत्तो नान्यदितीक्षेत मनोवाक्पाणिभिस्तथा॥

(लिङ्गपु० १।८६।५१-६०)

परा तथा अपरा—इन दो विद्याओंको अवश्य जानना चाहिये। इनमें अपरा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये सभी अर्थोंके साधक हैं। इनके साथ शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिषशास्त्रका भी अध्ययन करना चाहिये। ये सभी अपरा विद्या हैं। परा विद्या अक्षर है, इसे शिव-तत्त्वका ज्ञान कहते हैं, वह सर्वथा अव्यपदेश्य—अदृश्य, अग्राह्य, अगोत्र और वर्ण-मात्रा आदिसे रहित एवं निर्गुण-निराकार है। वह नेत्र, श्रोत्र और पाणि-पादसे भी संयुक्त नहीं है। वह अजन्मा—अभूत, अशब्द, अस्पर्श, अरूप और रस-गन्ध आदिसे भी रहित हैं। वह सर्वथा अव्यय, अप्रतिष्ठित फिर भी नित्य, सर्वगामी और सर्वसमर्थ है। वह महान्से भी महान्, विशालसे भी विशाल, अजन्मा तथा चिदानन्दस्वरूप है। वह मन-प्राणसे रहित, रक्त-मांससे शून्य, स्निग्ध धातुओंसे रहित अप्रमेय, अस्थूल, अदीर्घ, अह्रस्व, अनुल्बण (गर्भ-दोष, जरायु आदिसे मुक्त), असीम और आनन्दस्वरूप अच्युत-रूपमें स्थित है। वह शिवतत्त्व अनपावृत, अद्वैत, अनन्तरूप और अगोचर है। वह असंवृत, सदा एकस्वरूप है। उसे इस प्रकार जानना ही परा विद्या है। इससे भिन्न परा विद्या कोई नहीं है। इस प्रकार परा और अपरा दोनों ही विद्याओंका भेद बताया गया है। परमार्थतः इस संसारमें मैं ही सब कुछ हूँ, समस्त संसार मेरेमें ही स्थित है, मुझसे ही उत्पन्न होता है और मुझमें ही लीन होता है, मेरेमें ही रहता है, अतः मुमुक्षु साधक संसारमें मुझसे भिन्न किसी पदार्थको न देखे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वराहपुराण

वराहपुराणका नाम भगवान् नारायणके वराह-अवतारपर पड़ा है। वराहावतारी श्रीविष्णुने पृथ्वीका उद्धार किया। पृथ्वीदेवीने नारायणकी स्तुति की और उनसे जीवोंके कल्याणके साधनोंके विषयमें अनेक प्रश्न किये। भगवान् वराहके धर्मोपदेशकी वे ही कथाएँ वराहपुराणके नामसे विख्यात हुईं। इस पुराणमें २१७ अध्याय तथा लगभग दस हजार श्लोक हैं[1]। अठारह महापुराणोंके गणनाक्रममें यह बारहवें स्थानपर परिगणित है। अनेक दृष्टियोंसे इस पुराणका अत्यन्त महत्त्व है। इसके अधिकांश भागमें विष्णुचरित है, अतः यह वैष्णवपुराण है। यद्यपि इस पुराणके ११५ से १२५ तकके अध्यायोंमें विष्णु-पूजाकी सात्त्विक विधि विस्तारसे निरूपित है तथापि इसके २१ – २२ एवं ९०—९६ के अध्यायोंमें त्रिशक्ति-माहात्म्य एवं शक्ति-महिमा, २३वें अध्यायमें गणपतिचरित्र, २५वें और ७१वें अध्यायमें कार्तिकेय-चरित्र तथा २१३ से २१६ अध्यायतक अनेक रुद्रक्षेत्रोंका वर्णन है और बीच-बीचमें सूर्य, शिव एवं ब्रह्माजीके चरित्र तथा पूजा-उपासनाका निरूपण हुआ है। इसके २० से ५० तकके अध्यायोंमें विविध व्रतोंका उल्लेख है[2]। व्रत-माहात्म्यमें अनेक सुन्दर कथाएँ आयी हैं। तिथिव्रतोंमें प्रतिपदासे पूर्णिमा-अमावास्यातक तिथियोंके अधिष्ठातृ-देवोंकी उत्पत्ति-कथा तथा चरित्र वर्णित हैं। यथा—प्रतिपदा तिथिमें अग्निदेव, द्वितीयामें अश्विनीकुमार, तृतीयामें गौरी, चतुर्थीमें गणेश, पञ्चमीमें नाग (सर्प), षष्ठीमें कार्तिकेय, सप्तमीमें आदित्य (सूर्य), अष्टमीमें मातृका, नवमीमें दुर्गा, दशमीमें दिशा, एकादशीमें कुबेर, द्वादशीमें श्रीविष्णु, त्रयोदशीमें धर्म, चतुर्दशीमें रुद्र, अमावास्यामें पितृगण तथा पूर्णिमातिथिके माहात्म्यमें चन्द्रमाकी उत्पत्ति-कथा है। द्वादशीव्रतोंमें भगवान्के अवतारोंकी—द्वादशीव्रतकी कथाएँ हैं, यथा—मत्स्यद्वादशी, कूर्मद्वादशी आदि। इन व्रतोंका माहात्म्य तथा पूजाविधान भी दिया गया है। साथ ही अनेक नैमित्तिक और काम्यव्रतों यथा—शुभव्रत, धन्यव्रत, सौभाग्यव्रत, आरोग्यव्रत, पुत्र-प्राप्तिव्रत आदिकी कथाओंका पृथक्-पृथक् अध्यायोंमें मनोरम शैलीमें विवरण है। ९९ से ११२ वें अध्यायमें विविध दानोंका वर्णन है। गोदान या धेनुदानके प्रसंगमें अनेक प्रकारकी धेनुओं—तिलधेनु, जलधेनु, रसधेनु, शर्कराधेनु इत्यादिकी दानविधि और उनके फलोंका उल्लेख है। ७३ से ९१ अध्यायोंमें भुवनकोषका विस्तारसे वर्णन हुआ है। इस पुराणका भौगोलिक वर्णन अन्य पुराणोंके भूगोल-वर्णनसे अधिक प्रामाणिक एवं सुस्पष्ट माना जाता है। इसमें अनेक तीर्थ-स्थलों—कोकामुख, हरिद्वार, ऋषिकेश, वराह-क्षेत्र, मुक्तिनाथ, लोहार्गल, द्वारका और बदरीनाथ तथा मथुरा आदिकी महिमाका गान है। मथुरा-मण्डलके विविध तीर्थोंका जितना विस्तृत और सुस्पष्ट विवेचन १५२—१८८ अध्यायोंमें हुआ है, उतना किसी अन्य पुराणमें नहीं मिलता। मथुराके भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक वर्णनके लिये यह विवरण बड़े महत्त्वका है। इस वराहपुराणमें मार्गशीर्ष, माघ, वैशाख आदि मासोंका माहात्म्य भी बताया गया है। वेदोक्त देवशुनी-शरमा तथा कठोपनिषद्के नचिकेतोपाख्यानका भी इसमें विस्तारसे वर्णन हुआ है। अगस्त्य-गीता (अ० ५१-५२)में नासदीय सूक्तकी व्याख्या है और पशुपाल नामक राजाका प्रतीकात्मक

१-मत्स्यपुराण (अ० ५३), नारदीयपुराण (१।१०३) तथा भागवत (१२।१३।७)के अनुसार वराहपुराणका परिमाण २४ हजार श्लोकोंका है। किंतु उपलब्ध वराहपुराणमें दस हजार ही श्लोक हैं।अतः यह पुराण अपूर्ण है। यह बात नारदीयपुराणमें दी गयी विषय-सूचीसे स्पष्ट है। वहाँ पूर्व तथा उत्तर—ये दो विभाग बताये गये हैं। उपलब्ध वराहपुराणमें केवल पूर्वभागमें वर्णित विषय ही मिलते हैं। उत्तरभागमें जो विषय गिनाये गये हैं वे नहीं प्राप्त होते।

२-ये व्रताध्याय व्रतराज, जयसिंहकल्पद्रुम तथा व्रतरत्नाकर आदि व्रतग्रन्थोंमें उद्धृत हैं। इस पुराणके धर्मशास्त्रीय विषय तथा उनके निर्णय—कालविवेक, अपरादित्यकृत याज्ञवल्क्यस्मृति टीका, कृत्यकल्पतरु, दानसागर, स्मृतिचन्द्रिका, चतुर्वर्गचिन्तामणि, कृत्यरत्नाकर, दानक्रियाकौमुदी तथा मयूखादि निबन्धग्रन्थोंमें प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किये गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आख्यान है। अध्याय १६-१७ तथा १८०-१८१ में वर्णित श्राद्ध-तर्पणकी विधि अत्यन्त रोचक है। इस पुराणमें विभि देवताओंकी विभिन्न धातुओं (पदार्थों) से बननेवाली प्रतिमाओंकी निर्माणविधि तथा उनकी प्रतिष्ठा-विधियोंपर भी विवर मिलता है। इसके साथ ही इसमें कर्मविपाक, पतिव्रता-माहात्म्य, गोकर्णेश्वर तथा शुकेश्वर-महिमा, पञ्चरात्र-चर्या, वर्णाश्रम-धर्म भगवद्भक्ति और आत्मज्ञानकी प्रशंसा आदि अनेक विषय प्रतिपादित हैं। तीर्थ, श्राद्ध, दान, व्रत, क्षमा, दया, सदाचार आदिकी सर्वत्र प्रशंसा की गयी है। २०७ वें अध्यायमें कहा गया है कि तपस्याद्वारा स्वर्ग, यश, आयु, भोग, ज्ञान, विज्ञान, रूप, सौभाग्य सब कुछ मिलता है। अहिंसासे सौन्दर्य एवं दीक्षासे श्रेष्ठ कुलमें जन्म, गुरुसेवासे विद्या और श्राद्धसे संततिकी प्राप्ति होती है—

अहिंसया परं रूपं दीक्षया कुलजन्म च। गुरुशुश्रूषया विद्या श्राद्धदानेन संततिः॥

(२०७।४०-४१)

इस पुराणके उपदेश अन्य पुराणोंकी अपेक्षा कहीं-कहीं मार्मिक, हृदयस्पर्शी एवं विशेष महत्त्वके हैं। यह पुराण धर्मज्ञान श्रद्धाभक्तिवर्धक, त्रिवर्गदायक तथा मोक्ष-प्राप्तिमें परम महायक है।

कथा-आख्यान—

श्रीवराहावतार-कथा[1]

पुराणोंमें इन्हें यज्ञरूप माना गया है और उनके सारे अङ्गोंमें यज्ञके उपकरणोंकी कल्पना की गयी है। हरिवंश, भागवत और विष्णुपुराण—इन तीनोंमें मुख्यरूपसे यज्ञवाराहकी कल्पना की गयी है। वैसे समुद्रमें लीन पृथ्वीका उद्धारकर सम्पूर्ण सृष्टिका विस्तार करना ही इनके अवतार-धारणका मुख्य प्रयोजन है। इनके अवतारकी कथा विभिन्न पुराणोंके आधारपर इस प्रकार है—

एक बारकी बात है—प्रजापति ब्रह्माजीके मानसपुत्र सनकादि आकाशमार्गसे विचरण करते हुए श्रीहरिके दर्शनकी लालसासे वैकुण्ठधाममें पहुँचे। उसकी छः ड्योढ़ियोंको पार कर चुकनेके पश्चात् उन्हें दिव्य आभूषणोंसे अलङ्कृत दो श्रेष्ठ पुरुष दिखलायी पड़े, जिनका नाम जय-विजय था। ये दोनों दिव्य पुरुष भगवान्‌के पार्षद थे तथा उनके द्वारपालके रूपमें द्वारपर सदा नियुक्त रहते थे। सनकादि ब्रह्मचारियोंके दिगम्बर रूपको देखकर उन्हें हँसी आ गयी और उन्होंने उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया। क्रुद्ध सनकादिने उन्हें तीन जन्मोंतक दैत्ययोनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया। उसी समय अन्तर्यामी भक्तवत्सल भगवान् वहाँ आ गये। सनकादिने गद्गद होकर उनकी स्तुति की। शापसे संत्रस्त जय-विजयके प्रार्थना करनेपर भगवान् बोले—'तुमलोग चिन्ता न करो। असुरयोनि प्राप्त करनेपर भी तुमलोगोंको मेरा स्मरण बना रहेगा और तुमलोग अपनी वैर-भक्तिके द्वारा अन्तमें मुझे ही प्राप्त करोगे।' तत्पश्चात् वे चारों ब्रह्मज्ञानी सनकादि वैकुण्ठधामके दिव्य दर्शनसे कृतार्थ होकर पुनः आकाशमार्गसे विचरण करने लगे।

शापके अनुसार जय-विजयको प्रथम असुरयोनि प्राप्त होनी थी। जगत्पिता ब्रह्मा विचार करने लगे कि ये कहाँ और किसके यहाँ जन्म लेंगे। कुछ देर विचार करनेके पश्चात् उन्हें अवगत हो गया कि भगवान्‌को अवतार धारणकर और असुरोंका वध करके पृथ्वीका उद्धार करना है। इसी समय प्रभु नारायणने महर्षि कश्यपकी पत्नी—दक्षपुत्री दितिके मनमें संतानप्राप्तिकी उत्कट अभिलाषाकी प्रेरणा कर दी।

सायंकालीन संध्या-वन्दनका समय समीप था। महर्षि कश्यप नित्यकर्म सम्पन्न करनेके लिये समुद्यत थे। उसी समय दिति सर्वश्रेष्ठ पुत्र-प्राप्तिकी कामना लेकर महर्षिके पास पहुँची। तपोनिष्ठ कश्यपने असमय जानकर दितिको अनेक बार समझाया, किंतु उसके दुराग्रहसे वे विवश हो गये।

कश्यपजीने प्रभुको प्रणामकर उन्हींकी इच्छा समझकर दितिको संतुष्ट किया। तदनन्तर दिति अपने अपराध और कुकृत्यका ध्यानकर महर्षिसे क्षमा-याचना करने लगी, तब

१-ऋग्वेद १०।९९।६; तैत्ति० ७।१।५; कौथुमीसंहिता १।५२४; तैत्ति० ब्राह्मण १।१।१३; तै० आरण्यक १०; मैत्रा० १।६।३; पद्म० उ० २।५०; मत्स्य० ४७।४७; वायु० ६।१-३७, महाभारत तथा मार्कण्डेयपुराणमें इनका रमणीय चरित्र प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने कहा—'देवि ! तुम्हारा अपराध अक्षम्य है; क्योंकि एक तो कामासक्त होनेके कारण तुम्हारा चित्त मलिन था, दूसरे वह असमय था, तीसरे तुमने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया और चौथे रुद्र आदि देवताओंका तिरस्कार किया है, इस कारण तुम्हारे गर्भसे दो अत्यन्त पराक्रमी और क्रूरकर्मा पुत्र उत्पन्न होंगे। उनका वध करनेके लिये स्वयं नारायण पृथक्-पृथक् अवतार ग्रहण करेंगे।'

दिति यद्यपि अत्यन्त दुःखी हुई, परंतु 'भगवान्‌के हाथों उनका उद्धार होगा'—यह जानकर उसने अपनेको धन्य ही माना। उसने पति-तेजको सौ वर्षोंतक धारण किया। उस गर्भस्थ तेजसे सूर्यादिका तेज क्षीण होने लगा। इन्द्रादि लोकपाल भी निस्तेज हो गये। वे सभी ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीने बताया कि 'दितिके गर्भमें भगवान्‌के दो पार्षद जय-विजयका तेज दैत्य-तेजमें परिवर्तित हो गया है और भगवान् शीघ्र ही इस कष्टसे छुटकारा दिलायेंगे, अतः आप सभी समयकी प्रतीक्षा करें।' इन्द्रादि देव भगवान्‌का स्मरण करते हुए चले गये।

सौ वर्ष पूरा होनेपर दितिके दो यमल पुत्र उत्पन्न हुए। उनके पृथिवीपर पाँव रखते ही पृथिवी, आकाश और स्वर्गमें अनेक उपद्रव होने लगे। सर्वत्र अमङ्गलसूचक दृश्य दिखायी देने लगे। जन्म लेते ही दोनों दैत्य पर्वताकार-रूपमें हो गये। गर्भमें जो दैत्य-बालक पहले स्थापित हुआ, वह हिरण्यकशिपु तथा गर्भसे जो प्रथम बाहर आया, वह हिरण्याक्षके नामसे विख्यात हुआ। दोनों परम पराक्रमी एवं उद्धत थे। उन्होंने सर्वत्र उपद्रव मचाना प्रारम्भ कर दिया। आसुरी-राज्यकी स्थापनाके लिये वे कृतसंकल्प थे। हिरण्याक्षने इन्द्रलोकपर आक्रमण कर देवोंको भयभीत कर दिया। फिर उसके मनमें विचार आया कि 'ये देवगण पृथ्वीपर होनेवाले यज्ञके भागोंका भोग करते हैं, इसीलिये त्रिलोकीमें इनका एकच्छत्र राज्य है और हव्यके भोगसे ही ये इतने शक्ति-सम्पन्न हुए हैं, अतः मैं इस पृथ्वीको ही पातालमें पहुँचा देता हूँ'—यह निश्चय कर वह विशालकाय दैत्य पृथ्वीको लेकर रसातलमें चला गया, वहाँ वरुण आदि देवोंको महान् कष्ट देने लगा। वरुणसे भगवान्‌के अतुल पराक्रमको सुनकर वह उनसे युद्ध करनेके लिये उन्हें सर्वत्र ढूँढ़ने लगा।

हिरण्याक्षके कुकृत्योंसे सभी देवता, ऋषि-महर्षिगण अत्यन्त दुःखी थे। चतुर्दिक् हाहाकार मचा था। प्रजापति ब्रह्माके मनमें सृष्टिका संकल्प था। अतः उनके शरीरसे स्त्री-पुरुषका एक जोड़ा उत्पन्न हुआ, जो मनु-शतरूपाके नामसे विख्यात हुआ। ब्रह्माजीने उन्हें मैथुनी-सृष्टिकी आज्ञा प्रदान की और पृथ्वीका पालन करनेके लिये कहा। उन्होंने कहा—'प्रभो ! आप मेरी भावी मानवी प्रजाके रहनेयोग्य स्थान बतलाइये; क्योंकि पृथ्वी तो जलमें डूबी हुई है। उसके उद्धारका उपाय कीजिये।' पृथ्वीके उद्धार तथा दैत्य हिरण्याक्षके वधके लिये ब्रह्मादि देवगणों तथा ऋषि-महर्षियोंने भगवान्‌का चिन्तन किया। प्रभुकी स्मृति होते ही अकस्मात् ब्रह्माजीकी नासिकासे अँगूठेके बराबर एक श्वेत वराह-शिशु प्रकट हुआ। प्रकट होते ही वह विशाल आकारवाला हो गया। उसे देखकर ब्रह्मादिको पहले तो आश्चर्य हुआ, किंतु वराहरूपमें हरिका अवतार जानकर सभी उनकी वन्दना करने लगे। उनका स्वरूप अत्यन्त मनोरम तथा दिव्य था।

इस प्रकारके यज्ञवराह-विग्रहवाले भगवान् समुद्रमें कूद पड़े और जलको चीरते हुए रसातलमें जा पहुँचे, वहाँ दैत्य हिरण्याक्षने पृथ्वीदेवीको छिपा रखा था। भगवान्‌को उद्धारके लिये आया जान पृथ्वीदेवीने उनकी अनेक प्रकारसे स्तुति की (विष्णुपुराण१।४।१२—२४)। धरित्रीदेवीकी प्रार्थना सुनकर वराह भगवान्‌ने घर्घर शब्दद्वारा बड़ी भयंकर गर्जना की और अपने दाढ़ोंपर पृथ्वीको रखकर वे ज्यों ही समुद्रसे बाहर निकलने लगे, त्यों ही गर्जना सुनकर दैत्य हिरण्याक्ष उनसे युद्ध करनेके लिये आ धमका। इतनेमें प्रभुने पृथ्वीको जलसे ऊपर लाकर स्थापित कर दिया। उस समय आकाशसे पुष्प-वृष्टि होने लगी। तदनन्तर श्रीहरि और हिरण्याक्षका घमासान युद्ध हुआ। अन्तमें वह भगवान्‌के हाथों मारा गया।

श्रीभगवान् पृथ्वीको लेकर समुद्रसे बाहर जहाँ प्रकट हुए वह स्थान वराहक्षेत्र—सूकरक्षेत्र (कोकामुख-तीर्थ) के नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसी कोकामुख-तीर्थमें उन्होंने वराहरूपका परित्याग किया था (वराहपु०, अ० १३७—१४०)। भगवान्‌का यह चरित्र अत्यन्त पुण्यप्रद, परम पवित्र, धन और यशकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्ति करानेवाला, आयुवर्धक और कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला तथा युद्धमें प्राण और इन्द्रियोंकी शक्ति बढ़ानेवाला है। इस दिव्य लीलाके श्रवणसे श्रीभगवान्‌का आश्रय प्राप्त होता है (श्रीमद्भा० ३।१९।३८)।

भगवान् नारायणकी सर्वव्यापकता

प्राचीन कालमें अश्वशिरा नामक एक परम धार्मिक राजा थे। उन्होंने अश्वमेध-यज्ञके द्वारा भगवान् नारायणका यजन किया था, जिसमें बहुत बड़ी दक्षिणा बाँटी थी। यज्ञकी समाप्तिपर राजाने अवभृथ-स्नान किया। इसके पश्चात् वे ब्राह्मणोंसे घिरे हुए बैठे थे, उसी समय भगवान् कपिलदेव वहाँ पधारे। उनके साथ योगिराज जैगीषव्य भी थे। उन्हें देखकर महाराज अश्वशिरा बड़ी शीघ्रतासे उठे, अत्यन्त हर्षके साथ उनका सत्कार किया और तत्काल दोनों मुनियोंके विधिवत् स्वागतकी व्यवस्था की। जब दोनों मुनिश्रेष्ठ भलीभाँति पूजित होकर आसनपर विराजमान हो गये, तब महापराक्रमी राजा अश्वशिराने उनकी ओर देखकर पूछा—'आप दोनों अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिवाले और योगके आचार्य हैं। आपने कृपापूर्वक स्वयं अपनी इच्छासे यहाँ आकर मुझे दर्शन दिया है। आप मनुष्योंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणदेवता हैं। आप दोनों मेरे इस संशयका समाधान करें कि मैं भगवान् नारायणकी आराधना कैसे करूँ?'

दोनों ऋषियोंने कहा—'राजन्! तुम नारायण किसे कहते हो? महाराज! हम दो नारायण तो तुम्हारे सामने प्रत्यक्षरूपसे उपस्थित हैं।'

राजा अश्वशिरा बोले—'आप दोनों महानुभाव ब्राह्मण हैं। आपको सिद्धि सुलभ हो चुकी है। तपस्यासे आपके पाप भी नष्ट हो गये हैं—यह मैं मानता हूँ, किंतु 'हम दोनों नारायण हैं', ऐसा आपलोग कैसे कह रहे हैं? भगवान् नारायण तो देवताओंके भी देवता हैं। उनकी भुजाएँ शङ्ख, चक्र और गदासे अलङ्कृत रहती हैं। वे पीताम्बर धारण करते हैं। गरुड उनका वाहन है। भला, संसारमें उनकी समानता कौन कर सकता है?'

कपिल और जैगीषव्य—ये दोनों ऋषि कठोर व्रतका पालन करनेवाले थे। वे राजा अश्वशिराकी बात सुनकर हँस पड़े और बोले—'राजन्! तुम विष्णुका दर्शन करो।' इस प्रकार कहकर कपिलजी उसी क्षण स्वयं विष्णु बन गये और जैगीषव्यने गरुडका रूप धारण कर लिया। अब तो राजाओंके समूहमें हाहाकार मच गया। गरुडवाहन सनातन भगवान् नारायणको देखकर महान् यशस्वी राजा अश्वशिरा हाथ जोड़कर कहने लगे—'विप्रवरो! आप दोनों शान्त हों। भगवान् विष्णु ऐसे नहीं हैं। जिनकी नाभिसे उत्पन्न कमलपर प्रकट होकर ब्रह्मा अपने रूपसे विराजते हैं, वह रूप परम प्रभु भगवान् विष्णुका है।'

कपिल एवं जैगीषव्य—ये दोनों मुनियोंमें श्रेष्ठ थे। राजा अश्वशिराकी उक्त बात सुनकर उन्होंने योगमायाका विस्तार कर दिया। फिर तो कपिलदेव पद्मनाभ विष्णुके तथा जैगीषव्य प्रजापति ब्रह्माके रूपमें परिणत हो गये। कमलके ऊपर ब्रह्माजी सुशोभित होने लगे और उनके श्रीविग्रहसे कालाग्निके तुल्य लाल नेत्रोंवाले परम तेजस्वी रुद्रका प्राकट्य हो गया। राजाने सोचा—'हो-न-हो, यह इन योगीश्वरोंकी ही माया है, क्योंकि जगदीश्वर इस प्रकार सहज ही दृष्टिगोचर नहीं हो सकते। वे सर्वशक्तिसम्पन्न श्रीहरि तो सदा सर्वत्र विराजते हैं।' राजा अश्वशिरा अपनी सभामें इस प्रकार कह ही रहे थे कि उनकी बात समाप्त होते-न-होते खटमल, मच्छर, जूँ, भौंरे, पक्षी, सर्प, घोड़े, गाय, हाथी, बाघ, सिंह, शृगाल, हरिण एवं इनके अतिरिक्त अन्य भी करोड़ों ग्राम्य एवं वन्य पशु राजभवनमें चारों ओर दिखायी पड़ने लगे। उस समय झुंड-के-झुंड प्राणिसमूहको देखकर राजाके आश्चर्यकी सीमा न रही। वे यह विचार करने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिये। इतनेमें ही सारी बात उनकी समझमें आ गयी। अहो! यह तो परम बुद्धिमान् कपिल और जैगीषव्य मुनिका ही माहात्म्य है। फिर तो राजा अश्वशिराने हाथ जोड़कर उन ऋषियोंसे भक्तिपूर्वक पूछा—'विप्रवरो! यह क्या प्रपञ्च है?'

कपिल और जैगीषव्यने कहा—'राजन्! हम दोनोंसे तुम्हारा प्रश्न था कि भगवान् श्रीहरिकी आराधना एवं उन्हें प्राप्त करनेका क्या विधान है?' महाराज! इसीलिये हमलोगोंने तुम्हें यह दृश्य दिखलाया है। राजन्! सर्वज्ञ भगवान् श्रीहरिकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिगुणात्मिका सृष्टि है, जो तुम्हें दृष्टिगोचर हुई है। भगवान् नारायण एक ही हैं। वे अपनी इच्छाके अनुसार अनेक रूप धारण करते रहते हैं। किसी कालमें जब वे अपनी अनन्त तेजोराशिको आत्मसात् करके सौम्यरूपमें सुशोभित होते हैं, तभी मनुष्योंको उनकी झाँकी प्राप्त होती है। अतएव उन नारायणकी अव्यक्त रूपमें आराधना सद्यः फलवती नहीं हो पाती * । वे जगत्प्रभु परमात्मा ही सबके शरीरमें विराजमान हैं। भक्तिका उदय होनेपर अपने शरीरमें ही परमात्माका साक्षात्कार हो सकता है। परमात्मा किसी स्थानविशेषमें ही रहते हों, ऐसी बात नहीं है, वे तो सर्वव्यापक हैं। महाराज ! इसी निमित्त हम दोनोंके प्रभावसे तुम्हारे सामने यह दृश्य उपस्थित हुआ है। इसका प्रयोजन यह है कि 'भगवान्की सर्वव्यापकतापर तुम्हारी आस्था दृढ़ हो जाय। राजन् ! इसी प्रकार तुम्हारे इन मन्त्रियों एवं सेवकोंके—सभीके शरीरमें भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं। राजन् ! हमने जो देवता एवं कीट-पशुओंके समूह तुम्हें अभी दिखलाये हैं, वे सब-के-सब विष्णुके ही रूप हैं। केवल अपनी भावनाको दृढ़ करनेकी आवश्यकता है; क्योंकि भगवान् श्रीहरि तो सबमें व्याप्त हैं ही। उनके समान दूसरा कोई भी नहीं है, ऐसी भावनासे उन श्रीहरिकी सेवा करनी चाहिये। राजन् ! इस प्रकार मैंने सच्चे ज्ञानका तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया। अब तुम अपनी परिपूर्ण भावनासे भगवान् नारायणका, जो सबके परम गुरु हैं, स्मरण करो। धूप-दीप आदि पूजाकी सामग्रियोंसे ब्राह्मणोंको तथा तर्पणद्वारा पितरोंको तृप्त करो। इस प्रकार ध्यानमें चित्तको समाहित करनेसे भगवान् नारायण शीघ्र ही सुलभ हो जाते हैं।' (अध्याय ४)

नारायण-मन्त्रकी महिमा

पूर्वकल्पमें आरुणि नामसे विख्यात एक महान् तपस्वी ब्राह्मण थे। वे किसी उद्देश्यसे तप करनेके लिये वनमें गये और वहाँ उपवासपूर्वक तपस्या करने लगे। उन्होंने देविका नदीके सुन्दर तटपर अपना आश्रम बनाया था। एक दिन वे स्नान-पूजा करनेके विचारसे नदीके तटपर गये। वहाँ स्नान करके जब जप कर रहे थे, उसी समय उन्होंने सामनेसे आते हुए एक भयंकर व्याधको देखा, जो हाथमें बड़ा-सा धनुष लिये हुए था। उसकी आँखें बड़ी क्रूर थीं। वह उन ब्राह्मणके वल्कल-वस्त्र छीनने और उन्हें मारनेके विचारसे आया था। उस ब्रह्मघातीको देखकर आरुणिके मनमें घबराहट उत्पन्न हो गयी और वे भयसे थरथर काँपने लगे, किंतु ब्राह्मणके अन्तः शरीरमें भगवान् नारायणको देखकर वह व्याध डर-सा गया। उसने उसी क्षण धनुष और बाण हाथसे गिरा दिये और कहा—'ब्रह्मन् ! मैं आपको मारनेके विचारसे ही यहाँ आया था, किंतु आपको देखते ही पता नहीं मेरी वह क्रूर-बुद्धि अब कहाँ चली गयी। विप्रवर ! मेरा जीवन सदा पाप करनेमें ही बीता है। अबतक मेरे द्वारा हजारों ब्राह्मण मृत्युके मुखमें प्रविष्ट हो चुके हैं। प्रायः दस हजार साध्वी स्त्रियोंका भी मैंने अन्त कर डाला है। अहो ! ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला मैं पापी पता नहीं किस गतिको प्राप्त होऊँगा ? महाभाग ! अब आपके पास रहकर मैं भी तप करना चाहता हूँ। आप कृपया उपदेश देकर मेरा उद्धार करें।'

व्याधके इस प्रकार कहनेपर उसे ब्रह्मघाती एवं महान् पापी समझकर द्विजश्रेष्ठ आरुणिने उसे कोई उत्तर नहीं दिया, परंतु हृदयमें धर्मकी अभिलाषा जग जानेके कारण ब्राह्मणके कुछ न कहनेपर भी वह व्याध वहीं ठहर गया। आरुणि भी नदीमें स्नानकर वृक्षके नीचे बैठे हुए तप करते रहे। इस प्रकार अब उन दोनोंका नियमित धार्मिक कार्यक्रम चलने लगा। इसी

---

* श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥ (१२। ५)

'उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममें आसक्त चित्तवाले पुरुषोंके साधनमें क्लेश विशेष है; क्योंकि देहाभिमानियोंके द्वारा अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार कुछ दिन बीत गये। एक दिनकी बात है—आरुणि स्नान करनेके लिये नदीके जलमें घुसे थे, तबतक कोई भूखसे व्याकुल बाघ उन शान्तस्वरूप मुनिको मारनेके लिये आ पहुँचा। पर इसी बीच व्याधने बाघको मार डाला। उस बाघके शरीरसे एक पुरुष निकला। बात ऐसी थी—जिस समय आरुणि जलमें थे और बाघ उनपर झपटा, उस समय घबराहटके कारण मुनिके मुँहसे सहसा '**ॐ नमो नारायणाय**' यह मन्त्र निकल पड़ा। तबतक बाघके प्राण कण्ठगत ही थे, अतः उसने यह मन्त्र सुन लिया। प्राण निकलते समय केवल इस मन्त्रको सुन लेनेसे वह एक दिव्य पुरुषके रूपमें परिणत हो गया। तब उसने कहा—'द्विजवर! जहाँ भगवान् विष्णु विराजमान हैं, मैं वहीं जा रहा हूँ। आपकी कृपासे मेरे सारे पाप धुल गये। अब मैं शुद्ध एवं कृतार्थ हो गया।'

इस प्रकार उस पुरुषके कहनेपर विप्रवर आरुणिने उससे पूछा—'नरश्रेष्ठ! तुम कौन हो?' तब वह पूर्वजन्मकी आप-बीती बात कहने लगा—'मुने! मैं पूर्वजन्ममें 'दीर्घबाहु' नामसे प्रसिद्ध एक राजा था। समस्त वेद और सम्पूर्ण धर्मशास्त्र मुझे सम्यक् प्रकारसे अभ्यस्त थे। अन्य शास्त्र भी मुझसे अपरिचित नहीं थे। पर अन्य ब्राह्मणोंसे मेरा कोई प्रयोजन न था। मैं प्रायः ब्राह्मणोंका अपमान भी कर देता था। मेरे इस व्यवहारसे सभी ब्राह्मण क्रुद्ध हो गये और उन्होंने मुझे शाप दे दिया—'तू अत्यन्त निर्दयी बाघ होगा, क्योंकि तेरे द्वारा ब्राह्मणोंका महान् अनादर हो रहा है। तुझे किसी बातका स्मरण भी न रहेगा।'

विप्रवर! वे सभी ब्राह्मण वेदके पारगामी विद्वान् थे। उनका घोर शाप मुझे लग गया। मुने! जब ब्राह्मणोंने शाप दिया तो मैं उनके पैरोंपर गिर पड़ा तथा उनसे कृपापूर्वक क्षमा-की भीख माँगी। मुझपर उनकी कृपादृष्टि हो गयी। अतएव उन्होंने मेरे उद्धारकी भी बात बताते हुए कहा—'प्रत्येक छठे दिन मध्याह्नकालमें तुझे जो कोई मिले, उसे तू खा जाना—वह तेरा आहार होगा। जब तुझे बाण लगेगा और उसके आघातसे तेरे प्राण कण्ठमें आ जायँ, उस समय किसी ब्राह्मणके मुखसे जब '**ॐ नमो नारायणाय**' यह मन्त्र तेरे कानोंमें पड़ेगा, तब तुझे स्वर्गकी प्राप्ति हो जायगी—इसमें कोई संशय नहीं, मुने! मैंने दूसरेके मुखसे भगवान् विष्णुका यह नाम सुना है। जिसके परिणाम-स्वरूप मुझ ब्रह्मद्वेषीको भी भगवान् नारायणका दर्शन सुलभ हो गया। फिर जो अपने मुँहसे '**ॐ हरये नमः**' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्राणोंका त्याग करता है, वह परम पवित्र पुरुष जीते-जी ही मुक्त है। मैं भुजा उठाकर बार-बार कहता हूँ—यह सत्य है, सत्य है और निश्चय ही सत्य है। ब्राह्मण चलते-फिरते देवता हैं। भगवान् पुरुषोत्तम कूटस्थ पुरुष हैं।'

ऐसा कहकर शुद्ध अन्तःकरणवाला वह बाघ (दिव्य पुरुष) स्वर्ग चला गया और आरुणि भी बाघके पंजेसे छूटकर व्याधसे कहने लगे—'आज बाघ मुझे खानेके लिये उद्यत हो गया था। ऐसे अवसरपर तुमने मेरी रक्षा की है। अतएव उत्तम व्रतका पालन करनेवाले वत्स! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे वर माँगो।'

व्याधने कहा—'ब्राह्मणदेव! मेरे लिये यही वर पर्याप्त है, जो आप प्रेमपूर्वक मुझसे बातें कर रहे हैं। भला, आप ही बताइये, इससे अधिक वर लेकर मुझे करना ही क्या है?'

आरुणिने कहा—'व्याध! तुम्हारी तपस्या करनेकी इच्छा थी, अतएव तुमने मुझसे प्रार्थना की थी, किंतु अनघ! उस समय तुममें अनेक प्रकारके पाप थे। तुम्हारा रूप बड़ा भयंकर था, परंतु अब तुम्हारा अन्तःकरण परम पवित्र हो गया है, क्योंकि देविका नदीमें स्नान करने, मेरा दर्शन करने तथा चिरकालतक भगवान् विष्णुका नाम सुननेसे तुम्हारे पाप नष्ट हो गये हैं, इसमें कोई संशय नहीं। साधो! अब मेरा यह एक वर स्वीकार कर लो कि तुम अब यहीं रहकर तपस्या करो, क्योंकि तुम इसके लिये बहुत पहलेसे इच्छुक भी थे।'

इस प्रकार नारायण-मन्त्रके प्रभावसे पापरहित हुआ व्याध आरुणि मुनिकी आज्ञासे वहीं रहकर तप करने लगा।

जिनमें तप, इन्द्रियसंयम, वेदोंका स्वाध्याय, यज्ञ, पवित्र विवाह, सदा अन्नदान और सदाचार—ये सात गुण वर्तमान हैं, उन्हें महान् (उत्तम) कुल कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म-रहस्य

[संयमन-निष्ठुरक-संवाद]

अत्रि-वंशमें उत्पन्न एक मुनि थे, जो संयमन नामसे विख्यात थे। उनकी वेदाभ्यासमें बड़ी रुचि थी। वे प्रातः मध्याह्न तथा सायं—त्रिकाल स्नान-संध्या करते हुए तपस्या करते थे। एक दिन धर्मारण्यक्षेत्रमें परम पुण्यमयी गङ्गानदीके तटपर स्नान करनेके उद्देश्यसे गये। वहाँ मुनिने निष्ठुरक नामक व्याधको देखकर उसे मना करते हुए कहा—'भद्र! तुम निन्द्य कर्म मत करो।' तब मुनिकी ओर देखकर वह व्याध मुस्कराते हुए बोला—'द्विजवर! सभी जीवधारियोंमें आत्मारूपसे स्थित होकर स्वयं भगवान् ही इन जीवोंके वेशमें क्रीडा कर रहे हैं। जैसे माया जाननेवाला व्यक्ति मन्त्रोंका प्रयोग करके माया फैला देता है, ठीक वैसे ही यह प्रभुकी माया है, इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिये। विप्रवर! मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको चाहिये कि वे कभी भी अपने मनमें अहंभावको न टिकने दें। यह सारा संसार अपनी जीवनयात्राके प्रयत्नमें संलग्न रहता है। हाँ, इस कार्यके विषयमें 'अहम्' अर्थात् 'मैं कर्ता हूँ'—इस भावका होना उचित नहीं है।' निष्ठुरक व्याधकी बात सुनकर विप्रवर संयमनने अत्यन्त आश्चर्ययुक्त होकर उससे इस प्रकार कहा—'भद्र! तुम ऐसी युक्तिसंगत बात कैसे कह रहे हो?'

ब्राह्मणकी बात सुनकर धर्म-मर्मज्ञ व्याधने पुनः अपनी बात प्रारम्भ की। उसने सर्वप्रथम लोहेका एक जाल बनाया। उसे फैलाकर उसके नीचे सूखी लकड़ियाँ डाल दीं। तदनन्तर ब्राह्मणके हाथमें अग्नि देकर उसने कहा—'आर्य! इस लकड़ीके ढेरमें आग लगा दीजिये।'

तत्पश्चात् ब्राह्मणने मुखसे फूँककर अग्नि प्रज्वलित कर दी और वे शान्त होकर बैठ गये। जब आग धधकने लगी, तब वह लोहेका जाल भी गरम हो उठा। साथ ही उसमें जो गायकी आँखके समान छिद्र थे, उनमेंसे निकलती हुई ज्वाला इस प्रकार शोभा पाने लगी, मानो हंसके बच्चे श्रेणीबद्ध होकर निकल रहे हों। उस जलती हुई अग्निसे हजारों ज्वालाएँ अलग-अलग फूट पड़ीं। आगके एक जगह रहनेपर भी उस लौहमय जालके छिद्रोंसे ऐसा दृश्य प्रतीत होने लगा। तब व्याधने उन ब्राह्मणसे कहा—'मुनिवर! आप इनमेंसे कोई भी एक ज्वाला उठा लें, जिससे मैं शेष ज्वालाओंको बुझाकर शान्त कर दूँ।'

इस प्रकार कहकर उस व्याधने जलती हुई आगपर जलसे भरा एक घड़ा तुरंत फेंका। फिर तो वह आग सहसा शान्त हो गयी। सारा दृश्य पूर्ववत् हो गया। अब व्याधने तपस्वी संयमनसे कहा—'भगवन्! आपने जो जलती आग ले रखी है, वह उसी अग्निपुञ्जसे प्राप्त हुई है। उसे मुझे दे दें, जिसके सहारे मैं अपनी जीवनयात्रा सम्पन्न कर सकूँ।' व्याधके इस प्रकार कहनेपर जब ब्राह्मणने लोहेके जालकी ओर दृष्टि डाली तो वहाँ अग्नि थी ही नहीं। वह तो पुञ्जीभूत अग्निके समाप्त होते ही शान्त हो गयी थी। तब कठोर व्रतका पालन करनेवाले संयमनकी आँखें मुँद गयीं और वे मौन होकर बैठ गये। ऐसी स्थितिमें व्याधने उनसे कहा—'विप्रवर! अभी थोड़ी देर पहले आग धधक रही थी, ज्वालाओंका ओर-छोर नहीं था, किंतु मूलके शान्त होते ही सब-की-सब ज्वालाएँ शान्त हो गयीं। ठीक यही बात इस संसारकी भी है।

'परमात्मा ही प्रकृतिका संयोग प्राप्त करके समस्त भूत-प्राणियोंके आश्रयरूपमें विराजमान होते हैं। यह जगत् तो प्रकृतिमें विक्षोभ—विकार उत्पन्न होनेसे प्रादुर्भूत होता है, अतएव संसारकी यही स्थिति है।'

'यदि जीवात्मा शरीर धारण करनेपर अपने स्वाभाविक धर्मका अनुष्ठान करता हुआ हृदयमें सदा परमात्मासे संयुक्त रहता है तो वह किसी प्रकारका कर्म करता हुआ भी विषादको प्राप्त नहीं होता।'

इस प्रकार निष्ठुरक व्याध और संयमन ब्राह्मणकी उपर्युक्त बातके समाप्त होते ही उस व्याधके ऊपर आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। साथ ही द्विजश्रेष्ठ संयमनने देखा कि कामचारी अनेक दिव्य विमान वहाँ पहुँच गये हैं। वे सभी विमान बड़े विशाल एवं भाँति-भाँतिके रत्नोंसे सुसज्जित थे, जो निष्ठुरकको लेने आये थे। तत्पश्चात् विप्रवर संयमनने उन सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमानोंमें निष्ठुरक व्याधको मनोऽनुकूल उत्तम रूप धारण-करके बैठे हुए देखा; क्योंकि निष्ठुरक व्याध अद्वैत ब्रह्मका उपासक था, उसे योगकी सिद्धि सुलभ थी, अतएव उसने अपने अनेक शरीर बना लिये। यह दृश्य देखकर संयमनके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे अपने स्थानको चले गये। इससे सिद्ध होता है कि अपने वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार आचरण करनेवाला कोई भी व्यक्ति निश्चय ही ज्ञान प्राप्त करके मुक्तिका अधिकारी हो सकता है।

दशावतारोंकी उद्भव-तिथियाँ

परात्पर परब्रह्म भगवान् विश्व-व्यवस्थाकी लोक-मङ्गल-भावनासे समय-समयपर इस भूमण्डलपर स्वयं अवतरित होते हैं। उन निखिलनियन्ताके अवतरणकी सभी तिथियाँ हमारे लिये पावन पर्व हैं। हम उन तिथियोंपर व्रत-उपवास करते और महोत्सव मनाते हैं। चैत्रशुक्ला नवमीको 'श्रीरामनवमी' और भाद्रपदकी कृष्णाष्टमीको 'श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी'के रूपमें हम भगवान् राम-कृष्णकी जयन्तियाँ सोत्साह प्रतिवर्ष विशेषरूपसे मनाते हैं। इसी प्रकार और भी जयन्तियाँ हैं, जो यथास्थान मनायी जाती हैं। भगवान्की ये जयन्तियाँ अनेक हैं। उनमेंसे भगवान्के दशावतारकी दस जयन्तियाँ प्रमुख हैं, जिनसे परिचित होना और उन्हें आत्म-कल्याणार्थ यथाशक्य पूजन-यजन, व्रत-उपवास, भगवदाराधन आदिद्वारा मनाना सबका आवश्यक कर्तव्य है। जयन्ती-तिथियाँ ये हैं—

नाम	तिथि	समय	अवतरण-स्थल
१-श्रीमत्स्यजयन्ती	चैत्रशुक्ला तृतीया	मध्याह्नोत्तर	कृतमालातट
२-श्रीकूर्मजयन्ती	वैशाखशुक्ला पूर्णिमा (मतान्तरसे वैशाख-अमावास्या)	सायंकाल	समुद्र
३-श्रीवराहजयन्ती[1]	भाद्रपदशुक्ला पञ्चमी	मध्याह्नोत्तर	हरिद्वार या वराहक्षेत्र
४-श्रीनृसिंहजयन्ती	वैशाखशुक्ला चतुर्दशी	सायंकाल	मूलस्थान या मुल्तान
५-श्रीवामनजयन्ती	भाद्रपदशुक्ला द्वादशी	मध्याह्न	प्रयाग
६-श्रीपरशुरामजयन्ती	वैशाखशुक्ला तृतीया	मध्याह्न (मतान्तरसे सायंकाल)	जमनियाँ गाँव
७-श्रीरामजयन्ती	चैत्रशुक्ला नवमी	मध्याह्न	अयोध्या
८-श्रीकृष्णजयन्ती	भाद्रपदकृष्णा अष्टमी	मध्यरात्रि	मथुरा
९-श्रीबुद्धजयन्ती	पौषशुक्ला सप्तमी	सायंकाल	गया
१०-श्रीकल्किजयन्ती	भाद्रपदशुक्ला तृतीया	सायंकाल	सम्भलगाँव

१-निर्णयसिन्धुप्रोक्त वराहपुराणानुसार—'नभस्यशुक्लपञ्चम्यां वराहस्य जयन्तिका' यही वराहजयन्ती है। धर्मसिन्धु और निर्णयसिन्धुके अनुसार क्रमशः भाद्रपदशुक्ला तृतीया (अपराह्ण) एवं श्रावणशुक्ला षष्ठी तथा चैत्रकृष्णा नवमी भी वराहजयन्ती मान्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणेशजीकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग और चतुर्थी-तिथिका माहात्म्य

पूर्व समयकी बात है, सम्पूर्ण देवता और तपोधन ऋषिगण जब कार्य आरम्भ करते तो उसमें उन्हें निश्चय ही सिद्धि प्राप्त हो जाती थी। कालान्तरमें ऐसी स्थिति आ गयी कि अच्छे मार्गपर चलनेवाले लोग विघ्नका सामना करते हुए किसी प्रकार कार्यमें सफलता पाने लगे और निकृष्ट कार्यशील व्यक्तिकी कार्य-सिद्धिमें कोई विघ्न नहीं आता था। तब पितरोंसहित सम्पूर्ण देवताओंके मनमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि 'विघ्न तो असत्-कार्योंमें होना चाहिये, सत्कार्योंमें नहीं, ऐसा क्यों हो रहा है'—इस विषयपर वे परस्पर विचार करने लगे। इस प्रकार मन्त्रणा करते-करते उन देवताओंके मनमें भगवान् शंकरके पास जाकर इस समस्याको सुलझानेकी इच्छा हुई। तब वे कैलास पहुँचे और परम गुरु शंकरको प्रणामकर विनयपूर्वक इस प्रकार प्रार्थना करने लगे—'देवाधिदेव महादेव! असुरोंके कार्योंमें ही विघ्न उपस्थित करना आपके लिये उचित है, हमारे कार्योंमें नहीं।'

देवताओंके इस प्रकार कहनेपर भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और निर्निमेष दृष्टिसे भगवती उमाको देखने लगे। देवता भी वहीं थे। पार्वतीकी ओर देखते हुए वे मन-ही-मन सोचने लगे—'अरे! इस आकाशका कोई स्वरूप क्यों नहीं दीखता? पृथ्वी, जल, तेज और वायुकी मूर्ति तो चक्षुगोचर होती है, किंतु आकाशकी मूर्ति क्यों नहीं दीखती।' ऐसा सोचकर ज्ञानशक्तिके भण्डार परमपुरुष भगवान् रुद्र हँस पड़े। अभी हँसी बंद भी नहीं हुई थी कि उनके मुखसे एक परम तेजस्वी कुमार प्रकट हो गया, वही गणेशके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसका मुख प्रचण्ड तेजसे चमक रहा था। उस तेजसे दिशाएँ चमकने लगीं। भगवान् शिवके सभी गुण उसमें संनिहित थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो साक्षात् दूसरे रुद्र ही हों। वह महात्मा कुमार प्रकट होकर अपनी सस्मित दृष्टि, अद्भुत कान्ति, दीप्त मूर्ति तथा रूपके कारण देवताओंके मनको मोहित कर रहा था। उसका रूप बड़ा ही आकर्षक था। भगवती उमा उसे निर्निमेष दृष्टिसे देखने लगीं। उन्हें उसकी ओर टकटकी लगाये देखकर भगवान् रुद्रके मनमें क्रोधका आविर्भाव हो गया। अतः उन परम प्रभुने उस कुमारको शाप देते हुए कहा—'कुमार! तुम्हारा मुख हाथीके मुख-जैसा और पेट लम्बा होगा। सर्प ही तुम्हारे यज्ञोपवीतका काम देंगे—यह नितान्त सत्य है।'

इस प्रकार कुमारको शाप देनेपर भी भगवान् शंकरका रोष शान्त नहीं हुआ। उनका शरीर क्रोधसे काँप रहा था। वे उठकर खड़े हो गये। त्रिशूलधारी रुद्रका शरीर जैसे-जैसे हिलता था, वैसे-वैसे उनके श्रीविग्रहके रोमकूपोंसे तेजोमय जल निकलकर बाहर गिरने लगा। उससे दूसरे अनेक विनायक उत्पन्न हो गये। उन सभीके मुख हाथीके मुख-जैसे थे तथा उनके शरीरकी आभा काले खैर-वृक्ष या अञ्जनके समान थी। वे हाथोंमें अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये हुए थे।

उस समय उन विनायकोंको देखकर देवताओंकी चिन्ता अत्यधिक बढ़ गयी। पृथ्वीमें क्षोभ उत्पन्न हो गया। तब चतुर्मुख ब्रह्माजी हंसपर विराजमान होकर आकाशमें आये और यों कहा—'देवताओ! तुमलोग धन्य हो। तुम सभी त्रिलोचन एवं अद्भुत रूपधारी भगवान् रुद्रके कृपापात्र हो। साथ ही तुमने असुरोंके कार्यमें विघ्न उत्पन्न करनेवाले गणेशको प्रणाम करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है।' उनसे इस प्रकार कहनेके पश्चात् ब्रह्माजीने भगवान् रुद्रसे कहा—'विभो! अपने मुखसे प्रकट हुए इस बालकको ही आप इन विनायकोंका स्वामी बना दें। ये विनायक इनके अनुगामी—अनुचर बनकर रहें। प्रभो! साथ ही मेरी प्रार्थना है कि आपके वर-प्रभावसे आकाशको भी शरीरधारी बनकर पृथ्वी आदि चारों महाभूतोंमें रहनेका सुअवसर मिल जाय। इससे एक ही आकाश अनेक प्रकारसे व्यवस्थित हो सकता है।'

इस प्रकार भगवान् रुद्र और ब्रह्माजी बातें कर ही रहे थे कि विनायक वहाँसे चले गये। फिर पितामहने शम्भुसे कहा—'देव! आपके हाथमें अनेक समुचित अस्त्र हैं। अब आप ये अस्त्र तथा वर इस बालकको प्रदान करें, यह मेरी प्रार्थना है।' ऐसा कहकर ब्रह्माजी वहाँसे चले गये। तब भगवान् शंकरने अपने सुपुत्र गणेशसे कहा—'पुत्र! विनायक, विघ्नहर, गजास्य और भवपुत्र—इन नामोंसे तुम प्रसिद्ध होगे। क्रूर-दृष्टिवाले ये विनायक बड़े उग्र स्वभावके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Siddhanta eGangotri Foundation Chennai and eGangotri

हैं। पर ये सब तुम्हारी सेवा करेंगे। प्रकृष्ट यज्ञ, दान आदि शुभ कर्मके प्रभावसे शक्तिशाली बनकर ये कार्योंमें सिद्धि प्रदान करेंगे। तुम्हें देवताओं, यज्ञों तथा अन्य कार्योंमें भी सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त होगा। सर्वप्रथम पूजा पानेका अधिकार तुम्हारा होगा। यदि ऐसा न हुआ तो तुम्हारे द्वारा उस कार्यकी सफलता बाधित होगी।'

जब ये बातें समाप्त हो गयीं, तब भगवान् शंकरने देवताओंके साथ विभिन्न तीर्थोंके जलसे पूर्ण सुवर्णकलशोंके जलद्वारा गणेशका अभिषेक किया। इस प्रकार जलसे अभिषिक्त होकर विनायकोंके स्वामी भगवान् गणेशकी अद्भुत शोभा होने लगी। उन्हें अभिषिक्त देखकर सभी देवता भगवान् शंकरके सामने ही उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—

'गजानन! आपको नमस्कार है। गणनायक! आपको प्रणाम है। विनायक! आपको नमस्कार है। चण्डविक्रम! आपको अभिवादन है। आप विघ्नोंका विनाश करनेवाले हैं, आपको प्रणाम है। सर्पकी करधनीसे सुशोभित भगवन्! आपको अभिवादन है। आप रुद्रके मुखसे उत्पन्न हुए हैं तथा लम्बे उदरसे सुशोभित हैं, आपको नमस्कार है। हम सभी देवता आपको प्रणाम करते हैं, अतः आप सर्वदा विघ्नोंको शान्त करें[1]।'

जब इस प्रकार भगवान् रुद्रने महापुरुष श्रीगणेशजीका अभिषेक कर दिया और देवताओंद्वारा उनकी स्तुति सम्पन्न हो गयी, तब वे भगवती पार्वतीके पुत्र-रूपमें शोभा पाने लगे। गणाध्यक्ष गणेशजीकी (जन्म एवं अभिषेक आदि) सारी क्रियाएँ चतुर्थी तिथिके दिन ही सम्पन्न हुई थीं। अतएव तभीसे यह तिथि समस्त तिथियोंमें परम श्रेष्ठ स्थानको प्राप्त हुई। जो भाग्यशाली मानव इस तिथिको तिलोंका आहार कर भक्तिपूर्वक गणपतिकी आराधना करता है, उसपर वे अत्यन्त शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं—इसमें कोई संशय नहीं है। जो व्यक्ति इस कथाका पठन-पाठन अथवा श्रवण करता है, उसके पास विघ्न कभी नहीं फटकते और न उसके पास लेशमात्र पाप ही शेष रह जाता है। (वराहपुराण अ० २३)

कीर्तन-फल

कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीका चन्द्र अपनी ज्योत्स्नासे धरतीको शीतलता प्रदान कर रहा था। वह वीणा लेकर भक्तिगीत गाते हुए एकान्त अरण्यमें स्थित मन्दिरकी ओर चल पड़ा। चाण्डाल होते हुए भी उसका नित्य नियम था, मन्दिरमें बैठकर रात्रिके स्तब्ध प्रहरमें भगवान्‌को भक्ति-संगीत सुनाना। यह नियम अनेक वर्षोंसे अबाधगतिसे चल रहा था, उसीकी पूर्तिमें तल्लीन होकर वह चला जा रहा था।

अचानक वह चौंक उठा, पर भयभीत नहीं हुआ। उसे किन्हीं बलिष्ठ भुजाओंने जकड़ लिया था। उसने देखा—एक भयंकर ब्रह्मराक्षस उसे जकड़े हुए है। 'अरे, तुम मुझ निर्बलको पकड़कर अपना कौन-सा अभीष्ट पूरा करना चाहते हो?' उसने प्रश्न किया।

वीभत्स अट्टहाससे वन-क्षेत्रको प्रकम्पित करते हुए उस राक्षसने कहा—'पूरी दस रातें बीत गयी हैं भोजन बिना। आज क्षुधा-तृप्ति करने-हेतु ब्रह्माने तुम्हें भेज दिया है।'

चाण्डाल तो भगवान्‌के गुणानुवादके लिये लालायित था। उसने ब्रह्मराक्षससे विनयके स्वरमें कहा—'मैं जगदीश्वरके पद्यगानके लिये समुत्सुक हूँ। अपने आराध्यको संगीत सुनाकर लौट आऊँ, तब तुम अपनी आकाङ्क्षाकी पूर्ति कर लेना। मैंने जो व्रत ले रखा है, उसे पूर्ण हो जाने दो।'

क्षुधातुर राक्षसने कठोर शब्दोंमें कहा—'अरे मूर्ख! क्या मृत्युके मुखसे भी कोई बचकर गया है?'

कीर्तनप्रेमी चाण्डालने कहा—'अपने निन्दित कर्मोंके कारण निःसंदेह मैं चाण्डाल-योनिमें उत्पन्न हूँ, परंतु आपने

---

१. नमस्ते गजवक्त्राय नमस्ते गणनायक। विनायक नमस्तेऽस्तु नमस्ते चण्डविक्रम॥
नमोऽस्तु ते विघ्नहर्त्रे नमस्ते सर्पमेखल। नमस्ते रुद्रवक्त्रोत्थ प्रलम्बजठराश्रित।
सर्वदेवनमस्कारादविघ्नं कुरु सर्वदा॥

(वराहपुराण २३। ३३-३४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जागरण-व्रतको पूर्ण करने-हेतु मैं तुम्हारे सामने सत्य-प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अवश्य लौटकर आऊँगा। मैं सत्यकी दुहाई देता हूँ कि यदि अपने वचनका पालन न करूँ तो मुझे अधोगति प्राप्त हो।'

ब्रह्मराक्षसने कुछ सोचकर उसे मुक्त कर दिया। चाण्डाल रात्रिपर्यन्त भक्तिभावमें निमग्न अपने आराध्यके समक्ष नृत्य-गानमें तल्लीन रहा और प्रातः अपने प्रतिज्ञानुसार ब्रह्मराक्षसके पास जाने-हेतु चल पड़ा।

मार्गमें एक पुरुषने उसे रोककर परामर्श भी दिया कि 'तुम्हें उस राक्षसके पास कदापि नहीं जाना चाहिये। वह तो शवतकको खा जानेवाला अत्यन्त क्रूर और निर्दयी है।'

चाण्डालने कहा—'मैं सत्यका परित्याग नहीं कर सकता। मेरा निश्चय अटल है। मैं उसे वचन दे चुका हूँ।'

इस प्रकार कहकर वह चाण्डाल राक्षसके समक्ष उपस्थित होकर निर्भीकतापूर्वक बोला—'महाभाग! मैं आ गया हूँ। अब आप मुझे भक्षण करनेमें किंचित् भी विलम्ब न करें। आपके अनुग्रहके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।'

ब्रह्मराक्षस आश्चर्यचकित हो उस दृढ़व्रतीको देखता रहा और मधुर स्वरमें बोला—'साधु वत्स! साधु! मैं तुम्हारी सत्य-प्रतिज्ञाके समक्ष नत हूँ। भद्र! यदि जीनेकी आकाङ्क्षा है तो मैं तुम्हें अभयदान देता हूँ, परंतु तुमने जो रात्रिमें विष्णु-मन्दिरमें जाकर गायन किया है उसका फल मुझे दे दो।'

चाण्डालने आश्चर्यचकित होकर पूछा—'मैं कुछ समझ नहीं पाया, तुम्हारे वाक्यका क्या अभिप्राय है? पहले तो तुम मुझे खानेको लालायित थे और अब भगवद्गुणानुवादका पुण्य क्यों चाहते हो?'

ब्रह्मराक्षसने अनुनय-विनय कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—'श्रेष्ठ पुरुष! बस, तुम मुझे एक प्रहरके गीतका ही पुण्य दे दो। यदि इतना न दे सको तो एक गीतका ही फल दे दो।'

'पर ब्रह्मराक्षस! यह तो बताओ, यह सब तुम किसलिये चाहते हो?' चाण्डालने पूछा।

ब्रह्मराक्षसने अपना परिचय देते हुए कहा—'मैं पूर्वजन्ममें चरक गोत्रिय सोमशर्मा यायावर ब्राह्मण था। वेदसूत्र और मन्त्रोंसे पूर्णतः अनभिज्ञ होते हुए भी मैं लोभ-मोहसे आकृष्ट मूर्खोंका पौरोहित्य करने लगा। एक दिन मैं 'पाञ्चरात्र'-संज्ञक यज्ञ करवा रहा था। इतनेमें ही मुझे उदरशूल उत्पन्न हुआ। मन्त्रहीन, स्वरहीन, अविधिपूर्वक कराये गये यज्ञकी पूर्णाहुतिके पूर्व ही मेरा प्राणान्त हो गया, जिस कारण मुझे इस दशामें उत्पन्न होना पड़ा। आपके गीतका पुण्य मुझे इस अधम शरीरसे मुक्त कर सकता है।'

चाण्डाल तो उत्तम व्रती था ही, उसने कहा—'राक्षस! यदि मेरे गीतसे तुम शुद्धमना और क्लेशमुक्त हो सकते हो तो मैं सहर्ष अपने सर्वोत्कृष्ट गायनका फल तुम्हें प्रदान करता हूँ।'

इतना कहते ही वह ब्रह्मराक्षस तत्काल एक दिव्य पुरुषके रूपमें परिवर्तित हो गया। (स्वा० ओं० आ०)

मङ्गल-कामना एवं शान्तिपाठ

शरणं त्वां गतो नाथ संसारार्णवतारक।

दिशः पश्य अधः पश्य व्याधिभ्यो रक्ष नित्यशः। प्रसीद स्वस्य राष्ट्रस्य राज्ञः सर्वबलस्य च॥
अन्नं कुरु सुवृष्टिं च सुभिक्षमभयं तथा। राष्ट्रं प्रवर्द्धतु विभो शान्तिर्भवतु नित्यशः॥
देवानां ब्राह्मणानां च भक्तानां कन्यकासु च। पशूनां सर्वभूतानां शान्तिर्भवतु नित्यशः॥ (व० पु०)

संसार-सागरसे उद्धार करनेवाले प्रभो! हम आपकी शरण आये हैं, (आप सर्वथा प्रसन्न हों)। आपकी दिव्य रक्षा-दृष्टि चतुर्दिक् बनी रहे, आधि-व्याधियोंसे हमारी सदैव रक्षा करते हैं। हमारे राष्ट्र, शासन और सब प्रकारके (त्रिविध) सैन्य-बलोंपर आपकी विजयिनी वरद-दृष्टि सतत बनी रहे। हमारे देशके धन-धान्य (सम्पदा) की श्रीवृद्धि करते रहें। आप सर्वत्र सुवृष्टि (समयोपयोगी वर्षा) करें। पर्याप्त अन्न तथा और सुभिक्ष प्रदान करें। हमारे अन्नके भण्डार भरते रहें। सर्वतः अभय-दान दें। हे विभो! आप हमारे राष्ट्रका संवर्द्धन करें एवं सर्वत्र ही (विश्वभरमें) शुभ-शान्ति, व्याप्त रहे, पुनः—देव, ब्राह्मण, भक्त, संत-महात्मा, कन्याओं, पशु-पक्षियों अर्थात् समस्त जीव-जगत्पर सदैव शान्ति बरसती रहे। (सभी सर्वत्र सुख-चैनसे रहें!)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कन्दपुराण

पुराणोंमें स्कन्दपुराण सबसे बड़ा है। भगवान् स्कन्दद्वारा कथित होनेसे इसका नाम स्कन्दपुराण है। यह खण्डात्मक एवं संहितात्मक दो स्वरूपोंमें उपलब्ध होता है और दोनोंमें ८१-८१ हजार श्लोक हैं। खण्डात्मक स्कन्दपुराणमें क्रमशः माहेश्वर, वैष्णव, ब्राह्म, काशी, अवन्ती (ताप्ती और रेवाखण्ड), नागर तथा प्रभास—ये सात खण्ड हैं[1]। संहितात्मक स्कन्दपुराणमें सनत्कुमार, शंकर, ब्राह्म, सौर, वैष्णव और सूत—ये छः संहिताएँ हैं[2]। यहाँ संक्षिप्त रूपमें खण्डात्मक स्कन्दपुराणका परिचय दिया जा रहा है।

यह पुराण परिमाणमें अत्यन्त विशाल होनेपर भी अत्यन्त रमणीय कथानकोंसे युक्त तथा चमत्कृत विद्वत्तापूर्ण शैलीमें उपनिबद्ध होनेके कारण अत्यन्त भव्य एवं आकर्षक है। इसकी शैली अत्यन्त परिमार्जित और कथाएँ बड़ी उच्च भावनायुक्त वैदुष्यपूर्ण प्रसङ्गोंसे परिपूर्ण हैं। उदाहरणके लिये माहेश्वर-खण्डके अन्तर्गत स्तम्भतीर्थकी महिमामें कलाप-ग्राम-निवासी बालक सुतनु तथा नारदजीके प्रश्नोत्तरोंका आख्यान (जो इसी संग्रहमें दिया गया है ,) अत्यन्त महत्त्वका है। इस पुराणके काशी, प्रभास, अवन्ती तथा नागर आदि खण्डोंमें तत्तत् क्षेत्रोंके अनेकों तीर्थोंका माहात्म्य बड़े प्रौढ़ तर्क, युक्ति एवं हेतुओंसे प्रतिपादित किया गया है और इसी आधारपर इन खण्डोंका नाम भी पड़ा है। मुख्यरूपसे स्कन्दपुराणमें बदरिकाश्रम, अयोध्या, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, कन्याकुमारी, महीसागर-संगम, स्तम्भतीर्थ, प्रभास, द्वारका, कुरुक्षेत्र, उज्जैन, काशी, कांची, मथुरा और हाटकेश्वर आदि तीर्थोंकी महिमा तथा गङ्गा, नर्मदा आदि पुण्यसलिला नदियोंका वर्णन अत्यन्त मोहक पदावलीमें उपनिबद्ध है। इसी प्रकार रामायण, भागवत आदि ग्रन्थोंके माहात्म्य, वैशाखादि मासोंके माहात्म्य, शिवरात्रि, सत्यनारायण आदि व्रतोंके माहात्म्य, पीपल, वट, धात्री आदि वृक्षों एवं गो, द्विज, देव-प्रतिमा- भक्ति तथा भक्तादिकी महिमा भी रोचक कथाओंके माध्यमसे वर्णित है। भौगोलिक ज्ञान, राष्ट्रियता, देशभक्ति तथा अखण्ड भारतके एकसूत्रताकी महिमाका गान भी इसमें यत्र-तत्र प्रतिपादित है। बीच-बीचमें नीति, धर्म, सदाचार, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, यज्ञ, दान, तप, पूजा-उपासना आदिके सुन्दर सदुपदेश तथा अमृतमयी सुभाषित सूक्तियाँ भी भरी हैं। इसका उपदेश-भाग अत्यन्त उपादेय है। इस पुराणकी यह एक विशेष बात है कि इसमें कथाओंके माध्यमसे भारतके भौगोलिक ज्ञानके साथ-साथ प्राचीनतम सम्पूर्ण इतिहासको भी सुरक्षित रखा गया है। महाभारतके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है—**'यन्न भारते तन्न भारते'** अर्थात् विश्वकी कोई भी कथा या ज्ञानकी वस्तु ऐसी नहीं है, जो महाभारतमें न हो। यह पंक्ति महाभारतसे भी अधिक प्रस्तुत पुराणमें चरितार्थ है। इसके एक लाख सत्तर हजार श्लोकोंमें कहीं भी शिथिलता नहीं दीखती और पद-पदपर नवीनता, रमणीयता और ज्ञान-वैशद्यका प्रकाश ही दिखायी पड़ता है। जैसे स्वच्छ दर्पणके समक्ष वर्तमान पदार्थका प्रतिबिम्ब स्पष्ट प्रतिभासित होता है, वैसे ही इस पुराणके अवलोकनसे समस्त ज्ञान-विज्ञान एवं परमात्म-तत्त्वकी उपलब्धिके साथ-साथ समस्त पुरुषार्थ भी रहस्य-ज्ञानसहित प्राप्त हो जाते हैं।

१- इसके अतिरिक्त 'मानसखण्ड', जिसमें कूर्माचल (कुमाऊँ) के तीर्थोंका माहात्म्य तथा मानसरोवर आदिका वर्णन भी है, वह अब प्रकाशित रूपमें उपलब्ध हो रहा है।

२- इनमेंसे केवल सूतसंहिता प्रकाशित है, जिसमें वेदान्त-प्रक्रियाको सरल और सुन्दर कथाओंके द्वारा हृदयङ्गम कराया गया है और शैव क्षेत्रोंकी विशेष महिमा है। शेष संहिताओंमें तत्तत्सम्प्रदायोंके देवोंकी महिमा तथा आराधनाकी विधि वर्णित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कथा-आख्यान—

दीर्घायुष्य एवं मोक्षके हेतुभूत भगवान् शङ्करकी आराधना

प्राचीनकालमें एक राजा थे, जिनका नाम था इन्द्रद्युम्न। वे बड़े दानी, धर्मज्ञ और सामर्थ्यशाली थे। धनार्थियोंको वे सहस्र स्वर्णमुद्राओंसे कम दान नहीं देते थे। उनके राज्यमें सभी एकादशीके दिन उपवास करते थे। गङ्गाकी बालुका, वर्षाकी धारा और आकाशके तारे कदाचित् गिने जा सकते हैं, पर इन्द्रद्युम्नके पुण्योंकी गणना नहीं हो सकती। इन पुण्योंके प्रतापसे वे सशरीर ब्रह्मलोक चले गये। सौ कल्प बीत जानेपर ब्रह्माजीने उनसे कहा—'राजन्! स्वर्गसाधनमें केवल पुण्य ही कारण नहीं है, अपितु त्रैलोक्यविस्तृत निष्कलङ्क यश भी अपेक्षित होता है। इधर चिरकालसे तुम्हारा यश क्षीण हो रहा है, उसे पुनः उज्ज्वल करनेके लिये तुम वसुधातलपर जाओ।' ब्रह्माजीके ये शब्द समाप्त भी न हो पाये थे कि राजा इन्द्रद्युम्नने अपनेको पृथ्वीपर पाया। वे अपने निवासस्थान काम्पिल्य नगरमें गये और वहाँके निवासियोंसे अपने सम्बन्धमें पूछ-ताछ करने लगे। उन्होंने कहा—'हमलोग तो उनके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते। आप किसी वृद्ध चिरायुसे पूछ सकते हैं। सुनते हैं नैमिषारण्यमें सप्तकल्पान्तजीवी मार्कण्डेयमुनि रहते हैं, कृपया आप उन्हींसे इस प्राचीन बातका पता लगाइये।'

जब राजाने मार्कण्डेयजीसे प्रणाम करके पूछा कि 'मुने! क्या आप राजा इन्द्रद्युम्नको जानते हैं?' तब उन्होंने कहा—'नहीं, मैं तो नहीं जानता, पर मेरा मित्र नाड़ीजङ्घबक शायद इसे जानता हो, इसलिये चलो, उससे पूछा जाय।' नाड़ीजङ्घने अपनी बड़ी विस्तृत कथा सुनायी और साथ ही अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए अपनेसे भी अति दीर्घायु प्राकारकर्म उलूकके पास चलनेकी सम्मति दी। पर इसी प्रकार सभी अपनेको असमर्थ बतलाते हुए चिरायु गृध्रराज और मानसरोवरमें रहनेवाले कच्छप मन्थरके पास पहुँचे। मन्थरने इन्द्रद्युम्नको देखते ही पहचान लिया और कहा कि 'आपलोगोंमें जो यह पाँचवाँ राजा इन्द्रद्युम्न है, इसे देखकर मुझे बड़ा भय लगता है; क्योंकि इसीके यज्ञमें मेरी पीठ पृथ्वीकी उष्णतासे जल गयी थी।' अब राजाकी कीर्ति तो प्रतिष्ठित हो गयी, पर उसने क्षयिष्णु स्वर्गमें जाना ठीक न समझा और मोक्ष-साधनको जिज्ञासा की। एतदर्थ मन्थरने लोमशजीके पास चलना श्रेयस्कर बतलाया। लोमशजीके पास पहुँचकर यथाविधि प्रणामादि करनेके पश्चात् मन्थरने निवेदन किया कि इन्द्रद्युम्न कुछ प्रश्न करना चाहते हैं।

महर्षि लोमशकी आज्ञा लेनेके पश्चात् इन्द्रद्युम्नने कहा—'महाराज! मेरा प्रथम प्रश्न तो यह है कि आप कभी कुटिया न बनाकर शीत, आतप तथा वृष्टिसे बचनेके लिये केवल एक मुट्ठी तृण ही क्यों लिये रहते हैं?' मुनिने कहा—'राजन्! एक दिन मरना अवश्य है, फिर शरीरका निश्चित नाश जानते हुए भी हम घर किसके लिये बनायें? यौवन, धन तथा जीवन—ये सभी चले जानेवाले हैं। ऐसी दशामें 'दान' ही सर्वोत्तम भवन है।'

इन्द्रद्युम्नने पूछा—'मुने! यह आयु आपको दानके परिणाममें मिली है अथवा तपस्याके प्रभावसे? मैं यह जानना चाहता हूँ।' लोमशजीने कहा—'राजन्! मैं पूर्वकालमें एक दरिद्र शूद्र था। एक दिन दोपहरके समय जलके भीतर मैंने एक बहुत बड़ा शिवलिङ्ग देखा। भूखसे मेरे प्राण सूखे जा रहे थे। उस जलाशयमें स्नान करके मैंने कमलके सुन्दर फूलोंसे उस शिवलिङ्गका पूजन किया और पुनः मैं आगे चल दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षुधातुर होनेके कारण मार्गमें ही मेरी मृत्यु हो गयी। दूसरे जन्ममें मैं ब्राह्मणके घरमें उत्पन्न हुआ। शिव-पूजाके फलस्वरूप मुझे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण रहने लगा। मैंने जान-बूझकर मूकता धारण कर ली। पितादिकी मृत्यु हो जानेपर सम्बन्धियोंने मुझे निरा गूँगा जानकर सर्वथा त्याग दिया। अब मैं रात-दिन भगवान् शङ्करकी आराधना करने लगा। इस प्रकार सौ वर्ष बीत गये। प्रभु चन्द्रशेखरने मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और मुझे इतनी दीर्घ आयु दी।'

यह जानकर इन्द्रद्युम्न, बक, कच्छप, गीध और उलूकने लोमशजीसे शिवदीक्षा ली और तप करके मोक्ष प्राप्त किया।

शबर-दम्पतिकी दृढ़ निष्ठा

प्राचीन कालकी बात है। सिंहकेतु नामक एक पञ्चालदेशीय राजकुमार एक दिन अपने सेवकोंको साथ लेकर वनमें शिकार खेलने गया। उसके सेवकोंमेंसे एक शबरको शिकारकी खोजमें इधर-उधर घूमते समय एक टूटा-फूटा शिवालय दीख पड़ा। उसके चबूतरेपर एक शिवलिङ्ग पड़ा था, जो टूटकर जलहरीसे सर्वथा अलग हो गया था। शबरने उसे मूर्तिमान् सौभाग्यकी तरह उठा लिया। वह राजकुमारके पास पहुँचा और उसे शिवलिङ्ग दिखलाकर विनयपूर्वक कहने लगा—'प्रभो ! देखिये, यह कैसा सुन्दर शिवलिङ्ग है। आप यदि कृपापूर्वक मुझे पूजाकी विधि बता दें तो मैं नित्य इसकी पूजा किया करूँ।'

निषादके इस प्रकार पूछनेपर राजकुमारने प्रेमपूर्वक पूजाकी विधि बतला दी। षोडशोपचार-पूजनके अतिरिक्त उसनें चिताभस्म चढ़ानेकी बात भी बतलायी। अब वह शबर प्रतिदिन स्नान कराकर चन्दन, अक्षत, वनके नये-नये पत्र, पुष्प, फल, धूप, दीप, नृत्य, वाद्यके द्वारा भगवान् महेश्वरका पूजन करने लगा। वह प्रतिदिन चिताभस्म भी अवश्य भेंट करता। तत्पश्चात् वह स्वयं प्रसाद ग्रहण करता। इस प्रकार वह श्रद्धालु शबर पत्नीके साथ भक्तिपूर्वक भगवान् शंकरकी आराधनामें तल्लीन हो गया।

एक दिन वह पूजाके लिये बैठा तो देखता है कि पात्रमें चिताभस्म तनिक भी शेष नहीं है। उसने बड़े प्रयत्नसे इधर-उधर ढूँढ़ा, पर उसे कहीं भी चिताभस्म नहीं मिला। अन्तमें उसने यह स्थिति पत्नीसे व्यक्त की। साथ ही उसने यह भी कहा कि 'यदि चिताभस्म नहीं मिलता तो पूजाके बिना मैं अब क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता।'

स्त्रीने उसे चिन्तित देखकर कहा—'नाथ ! डरिये मत, एक उपाय है। यह घर तो पुराना हो ही गया है। मैं इसमें आग लगाकर उसीमें प्रवेश कर जाती हूँ। इससे आपकी पूजाके निमित्त पर्याप्त चिताभस्म तैयार हो जायगी।' बहुत वाद-विवादके बाद शबर भी उसके प्रस्तावसे सहमत हो गया। शबरीने स्वामीकी आज्ञा पाकर स्नान किया और उस घरमें आग लगाकर अग्निकी तीन बार परिक्रमा की, पतिको नमस्कार किया, फिर सदाशिव भगवान्का हृदयमें ध्यान करती हुई वह अग्निमें घुस गयी। वह क्षणभरमें जलकर भस्म हो गयी, फिर शबरने उस भस्मसे भगवान् भूतनाथकी पूजा की।

शबरको कोई विषाद तो था नहीं। स्वभाववश पूजाके पश्चात् वह प्रसाद देनेके लिये अपनी स्त्रीको पुकारने लगा। स्मरण करते ही वह स्त्री तुरंत आकर खड़ी हो गयी। अब शबरको उसके जलनेकी बात याद आयी। उसने आश्चर्य-चकित होकर पूछा कि 'तुम और यह मकान तो सब जल गये थे, फिर यह सब कैसे हुआ ?'

शबरीने कहा—'जब मैं आगमें घुसी तो मुझे लगा कि जैसे मैं जलमें घुसी हूँ। आधे क्षणतक तो प्रगाढ़ निद्रा-सी विदित हुई और अब जगी हूँ। जागनेपर देखती हूँ तो यह घर भी पूर्ववत् खड़ा है। अब प्रसादके लिये यहाँ आयी हूँ।'

निषाद-दम्पति इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि उनके सामने एक दिव्य विमान आ गया। उसपर भगवान्के चार गण थे। उन्होंने ज्यों ही उन्हें स्पर्श किया और विमानपर बैठाया त्यों ही उनके शरीर दिव्य हो गये। वास्तवमें श्रद्धायुक्त भगवदाराधनाका ऐसा ही माहात्म्य है।

जो पितरोंका श्राद्ध और देवताओंका पूजन नहीं करता तथा जिसे सुहृद् मित्र नहीं मिलता, उसे मूढ़ चित्तवाला कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाचारसे कल्याण

दशार्ण देशमें एक राजा रहता था वज्रबाहु। वज्रबाहुकी पत्नी सुमति अपने नवजात शिशुके साथ किसी असाध्य रोगसे ग्रस्त हो गयी। यह देख दुष्ट-बुद्धि राजाने उसे वनमें त्याग दिया। अनेक प्रकारके कष्ट भोगती हुई वह आगे बढ़ी। बहुत दूर जानेपर उसे एक नगर मिला। उस नगरका रक्षक पद्माकर नामका एक महाजन था। उसकी दासीने रानीपर दया की और उसे अपने स्वामीके यहाँ आश्रय दिलाया। पद्माकर रानीको माताके समान आदरकी दृष्टिसे देखता था। उसने उन दोनों माँ-बेटेकी चिकित्साके लिये बड़े-बड़े वैद्य नियुक्त किये, तथापि रानीका पुत्र नहीं बच सका, मर ही गया। पुत्रके मरनेपर रानी मूर्छित हो गयी और बेहोश होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। इसी समय ऋषभ नामके प्रसिद्ध शिवयोगी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने उसे विलाप करते देखकर कहा—'बेटी ! तुम इतना क्यों रो रही हो ? फेनके समान इस शरीरकी मृत्यु होनेपर विद्वान् पुरुष शोक नहीं करते। कल्पान्तजीवी देवताओंकी भी आयुमें उलट-फेर होता है। कोई कालको इस शरीरकी उत्पत्तिमें कारण बताते हैं, कोई कर्मको और कोई गुणोंको। वस्तुतः काल, कर्म और गुण—इन तीनोंसे ही शरीरका आधान हुआ है। जीव अव्यक्तसे उत्पन्न होता है और अव्यक्तमें ही लीन होता है। केवल मध्यमें बुलबुलेकी भाँति व्यक्त-सा प्रतीत होता है। पूर्वकर्मानुसार ही जीवको शरीरकी प्राप्ति होती है। कर्मोंके अनुरूप ही उसे सुख-दुःखकी भी प्राप्ति होती है। कर्मोंका उल्लङ्घन करना असम्भव है। कालका भी अतिक्रमण करना किसीके लिये सम्भव नहीं। जगत्के समस्त पदार्थ मायामय तथा अनित्य हैं। इसलिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। जैसे स्वप्नके पदार्थ, इन्द्रजाल, गन्धर्व-नगर, शरद् ऋतुके बादल अत्यन्त क्षणिक होते हैं, उसी प्रकार यह मनुष्यशरीर भी है। अबतक तुम्हारे अरबों जन्म बीत चुके हैं। अब तुम्हीं बताओ, तुम किसकी-किसकी पुत्री, किसकी-किसकी माता और किसकी-किसकी पत्नी हो ? मृत्यु सर्वथा अनिवार्य है। कोई भी व्यक्ति अपनी तपस्या, विद्या, बुद्धि, मन्त्र, ओषधि तथा रसायनसे इसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। आज एक जीवकी मृत्यु होती है तो कल दूसरेकी। इस जन्म-मरणके चक्करसे बचनेके लिये उमापति भगवान् महादेव ही एकमात्र शरण हैं। जब मन सब प्रकारकी आसक्तियोंसे अलग होकर भगवान् शंकरके ध्यानमें मग्न हो जाता है, तब फिर इस संसारमें जन्म नहीं होता। भद्रे ! यह मन शिवके ध्यानके लिये है, इसे शोक-मोहमें मत डुबाओ।'

शिवयोगीके तत्त्वभरे करुणापूर्ण उपदेशोंको सुनकर रानीने कहा—'भगवन् ! जिसका एकमात्र पुत्र मर गया हो, जिसे प्रिय बन्धुओंने त्याग दिया हो और जो महान् रोगसे अत्यन्त पीड़ित हो, ऐसी मुझ अभागिनके लिये मृत्युके अतिरिक्त और कौन गति है ? इसलिये मैं इस शिशुके साथ ही प्राण त्याग देना चाहती हूँ। मृत्युके समय जो आपका दर्शन हो गया, मैं इतनेसे ही कृतार्थ हो गयी।'

रानीकी बात सुनकर दयानिधान शिवयोगी शिवमन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्म लेकर बालकके पास गये और उसे उन्होंने उसके मुँहमें डाल दिया। विभूतिके पड़ते ही वह मरा हुआ बालक उठ बैठा। उन्होंने भस्मके प्रभावसे माँ-बेटेके घावोंको भी दूर कर दिया। अब उन दोनोंके शरीर दिव्य हो गये। ऋषभने रानीसे कहा—'बेटी ! जबतक तुम इस संसारमें जीवित रहोगी, वृद्धावस्था तुम्हारा स्पर्श नहीं करेगी। तुम दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीर्घकालतक जीवित रहो। तुम्हारा यह पुत्र भद्रायु नामसे विख्यात होगा और अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लेगा।'

यों कहकर ऋषभ चले गये। भद्रायु उसी वैश्यराजके घरमें बढ़ने लगा। वैश्यका भी एक पुत्र 'सुनय' था। दोनों कुमारोंमें बड़ा स्नेह हो गया। जब राजकुमारका सोलहवाँ वर्ष पूरा हुआ, तब वे ऋषभ योगी पुनः वहाँ आये। तबतक राजकुमार पर्याप्त पढ़-लिख चुका था। माताके साथ वह योगीके चरणोंपर गिर पड़ा। माताने अपने पुत्रके लिये कुछ उचित शिक्षाकी प्रार्थना की। इसपर ऋषभ बोले—'वेद, स्मृति और पुराणोंमें जिसका उपदेश किया गया है, वही 'सनातनधर्म' है। सभीको चाहिये कि अपने-अपने वर्ण तथा आश्रमके शास्त्रोक्त धर्मोंका पालन करें। तुम भी उत्तम आचारका ही पालन करो। देवताओंकी आज्ञाका कभी उल्लङ्घन न करो। गौ-ब्राह्मण-देवता-गुरुके प्रति सदा भक्तिभाव रखो। स्नान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, गोपूजा, देवपूजा और अतिथिपूजामें कभी भी आलस्यको समीप न आने दो। क्रोध, द्वेष, भय, शठता, चुगली, कुटिलता आदिका यत्नपूर्वक त्याग करो। अधिक भोजन, अधिक बातचीत, अधिक खेलकूद तथा क्रीडाविलासको सदाके लिये छोड़ दो। अधिक विद्या, अधिक श्रद्धा, अधिक पुण्य, अधिक स्मरण, अधिक उत्साह, अधिक प्रसिद्धि और अधिक धैर्य जैसे भी प्राप्त हो, इसके लिये सदा प्रयत्न करो। साधुओंमें अनुराग करो। धूर्त, क्रोधी, क्रूर, छली, पतित, नास्तिक और कुटिल मनुष्यको दूरसे ही त्याग दो। अपनी प्रशंसा न करो। पापरहित मनुष्योंपर संदेह न करो। माता, पिता और गुरुके कोपसे बचो। आयु, यश, बल, पुण्य, शान्ति जिस उपायसे मिले, उसीका अनुष्ठान करो। देश, काल, शक्ति, कर्तव्य, अकर्तव्य आदिका भलीभाँति विचार करके यत्नपूर्वक कर्म करो। स्नान, जप, पूजा, हवन, श्राद्धादिमें उतावली न करो। वेदवेत्ता ब्राह्मण, शान्त संन्यासी, पुण्य वृक्ष, नदी, तीर्थ, सरोवर, धेनु, वृषभ, पतिव्रता स्त्री और अपने घरके देवताओंके पास जाते ही नमस्कार करो।'

यों कहकर शिवयोगीने भद्रायुको शिवकवच, एक शङ्ख और खड्ग दिया। फिर भस्मको अभिमन्त्रित कर उसके शरीरमें लगाया, जिससे भद्रायुमें बारह हजार हाथियोंका बल हो गया। तदनन्तर योगीने कहा—'ये खड्ग और शङ्ख—दोनों ही दिव्य हैं, इन्हें देख-सुनकर ही तुम्हारे शत्रु नष्ट हो जायँगे।'

इधर वज्रबाहुको शत्रुओंने परास्त करके बाँध लिया, उसकी रानियोंका अपहरण कर लिया और दशार्ण देशका राज्य नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इसे सुनते ही भद्रायु सिंहकी भाँति गर्जना करने लगा। उसने जाकर शत्रुओंपर आक्रमण किया और उन्हें नष्टकर अपने पिताको मुक्त कर लिया। निषधराजकी कन्या कीर्तिमालिनीसे उसका विवाह हुआ। वज्रबाहुको अपने योग्य पत्नीसे मिलकर बड़ी लज्जा हुई। उन्होंने राज्य अपने पुत्रको सौंप दिया। तदनन्तर भद्रायु समस्त पृथ्वीके सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् हो गये।

कीड़ेसे महर्षि मैत्रेय

भगवान् व्यास सभी जीवोंकी गति तथा भाषाको समझते थे। एक बार जब वे कहीं जा रहे थे, तब रास्तेमें उन्होंने एक कीड़ेको बड़े वेगसे भागते हुए देखा। उन्होंने कृपा करके कीड़ेकी बोलीमें ही उससे इस प्रकार भागनेका कारण पूछा। कीड़ेने कहा—'विश्ववन्द्य मुनीश्वर! कोई बहुत बड़ी बैलगाड़ी इधर ही आ रही है। कहीं यह आकर मुझे कुचल न डाले, इसलिये मैं तेजीसे भागा जा रहा हूँ।' इसपर व्यासदेवने कहा—'तुम तो तिर्यग्-योनिमें पड़े हुए हो, अतः तुम्हारे लिये तो मर जाना ही सौभाग्य है। मनुष्य यदि मृत्युसे डरे तो उचित है, पर तुम कीटको इस शरीरके छूटनेका इतना भय क्यों है?' इसपर कीड़ेने कहा—'महर्षे! मुझे मृत्युसे किसी प्रकारका भय नहीं है। भय इस बातका है कि इस कुत्सित कीटयोनिसे भी अधम दूसरी लाखों योनियाँ हैं, मैं कहीं मरकर उन योनियोंमें न चला जाऊँ। उनमें गर्भ आदि धारण करनेके क्लेशसे मुझे डर लगता है। दूसरे किसी कारणसे मैं भयभीत नहीं हूँ।'

व्यासजीने कहा—'कीट! तुम भय मत करो। मैं जबतक तुम्हें ब्राह्मण-शरीरमें न पहुँचा दूँगा, तबतक सभी योनियोंसे शीघ्र ही छुटकारा दिलाता रहूँगा।' व्यासजीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यों कहनेपर वह कीड़ा पुनः मार्गमें लौट आया और रथके पहियेसे दबकर उसने प्राण त्याग दिये। तत्पश्चात् वह कौए और सियार आदि योनियोंमें जब-जब उत्पन्न हुआ, तब-तब व्यासजीने जाकर उसके पूर्वजन्मका स्मरण करा दिया। इस तरह वह क्रमशः साही, गोधा, मृग, पक्षी, चाण्डाल, शूद्र और वैश्यकी योनियोंमें जन्म लेता हुआ क्षत्रिय-जातिमें उत्पन्न हुआ। उसमें भी भगवान् व्यासने उसे दर्शन दिया। वहाँ वह प्रजापालनरूप धर्मका आचरण करते हुए थोड़े ही दिनोंमें रणभूमिमें शरीर त्यागकर ब्राह्मणयोनिमें उत्पन्न हुआ। जब वह पाँच वर्षका हुआ, तभी व्यासदेवने जाकर उसके कानमें सारस्वत-मन्त्रका उपदेश कर दिया। उसके प्रभावसे बिना पढ़े ही उसे सम्पूर्ण वेद, शास्त्र और धर्मका स्मरण हो आया। पुनः भगवान् व्यासदेवने उसे आज्ञा दी कि वह कार्तिकेयके क्षेत्रमें जाकर नन्दभद्रको आश्वासन दे। नन्दभद्रको यह शङ्का थी कि पापी मनुष्य भी सुखी क्यों देखे जाते हैं। इसी क्लेशसे घबराकर वे बहूदक तीर्थमें तप कर रहे थे। नन्दभद्रकी शङ्काका समाधान करते हुए इस सिद्ध सारस्वत बालकने कहा था—'पापी मनुष्य सुखी क्यों रहते हैं, यह तो बड़ा स्पष्ट है। जिन्होंने पूर्वजन्ममें तामस-भावसे दान किया है, उन्होंने इस जन्ममें उसी दानका फल प्राप्त किया है, परंतु तामस-भावसे जो धर्म किया जाता है, उसके फलस्वरूप लोगोंका धर्ममें अनुराग नहीं होता और फलतः वे ही पापी सुखी देखे जाते हैं। ऐसे मनुष्य पुण्य-फलको भोगकर अपने तामसिक भावके कारण नरकमें ही जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है। इस विषयमें मार्कण्डेयजीकी कही ये बातें सर्वदा ध्यानमें रखी जानी चाहिये— एक मनुष्य ऐसा है, जिसके लिये इस लोकमें तो सुखका भोग सुलभ है, परंतु परलोकमें नहीं। दूसरा ऐसा है, जिसके लिये परलोकमें सुखका भोग सुलभ है, किंतु इस लोकमें नहीं। तीसरा ऐसा है, जो इस लोक और परलोकमें दोनों ही जगह सुख प्राप्त करता है और चौथा ऐसा है, जिसे न यहीं सुख है और न परलोकमें ही। जिसका पूर्वजन्मका किया हुआ पुण्य शेष है, उसे भोगते हुए परम सुखमें भूला हुआ जो व्यक्ति नूतन पुण्यका उपार्जन नहीं करता, उस मन्दबुद्धि एवं भाग्यहीन मानवको प्राप्त हुआ वह सुख केवल इसी लोकतक रहेगा। जिसका पूर्वजन्मोपार्जित पुण्य तो नहीं है, किंतु वह तपस्या करके नूतन पुण्यका उपार्जन कर रहा है, उस बुद्धिमान्‌को परलोकमें अवश्य ही विशाल सुखका भोग उपस्थित होगा—इसमें रंचमात्र भी संदेह नहीं। जिसका पहलेका किया हुआ पुण्य वर्तमानमें सुखद हो रहा है और जो तपद्वारा नूतन पुण्यका उपार्जन कर रहा है, ऐसा बुद्धिमान् तो कोई-कोई ही होता है, जिसे इहलोक-परलोक दोनोंमें सुख मिलता है। जिसका पहलेका भी पुण्य नहीं है और जो यहाँ भी पुण्यका उपार्जन नहीं करता, ऐसे मनुष्यको न इस लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें ही। ऐसे नराधमको धिक्कार है।'*

इस प्रकार नन्दभद्रको समाहित कर बालकने अपना वृत्तान्त भी बतलाया। तत्पश्चात् वह सात दिनोंतक निराहार रहकर सूर्यमन्त्रका जप करता रहा और वहीं बहूदक तीर्थमें उसने उस शरीरको भी छोड़ दिया। नन्दभद्रने विधिपूर्वक उसके शवका दाह-संस्कार कराया। उसकी अस्थियाँ वहीं सागरमें डाल दी गयीं और दूसरे जन्ममें वही मैत्रेय नामक श्रेष्ठ मुनि हुआ। इनके पिताका नाम कुषारु तथा माताका नाम मित्रा था (भागवत, स्कन्ध ३)। इन्होंने व्यासजीके पिता पराशरजीसे 'विष्णुपुराण' तथा 'बृहत्-पाराशर होरा-शास्त्र' नामक विशाल ज्यौतिष-ग्रन्थका अध्ययन किया था।

---

*अस्मिंश्च संशये प्रोक्तं मार्कण्डेयेन श्रूयते॥

इहैवैकस्य नामुत्र अमुत्रैकस्य नो इह। इह चामुत्र चैकस्य नामुत्रैकस्य नो इह॥
पूर्वोपात्तं भवेत् पुण्यं भुक्तिर्नैवार्जयत्यपि। इह भोगः स वै प्रोक्तो दुर्भगस्याल्पमेधसः॥
पूर्वोपात्तं यस्य नास्ति तपोभिश्चार्जयत्यपि। परलोके तस्य भोगो धीमतः स क्रियात् स्फुटम्॥
पूर्वोपात्तं यस्य नास्ति पुण्यं चेहापि नार्जयेत्। ततश्चेहामुत्र वापि भो धिक् तं च नराधमम्॥
(स्क० पु०, माहे० कौमारिका० ४६। ९६-१००)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नन्दभद्र

प्राचीन कालकी बात है, बहूदक नामक तीर्थमें नन्दभद्र नामके एक वैश्य रहते थे। वे वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेवाले सदाचारी पुरुष थे। उनकी धर्मपत्नीका नाम कनका था। वह भी पातिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली साध्वी स्त्री थी। उसमें अन्य अनेक सद्गुण भी विद्यमान थे, जिससे उनकी गृहस्थी बड़े आनन्द एवं धर्मपूर्वक व्यतीत हो रही थी।

वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार नन्दभद्र वाणिज्यको ही अपना श्रेष्ठ धर्म मानते थे और उसे ही अपनाये हुए थे। नन्दभद्रके हृदयमें परोपकार तो मानो साक्षात् मूर्तिमान् होकर विराजमान था। वे भगवान्‌की पूजाकी भावनासे अपना समस्त व्यवसाय करते और दूसरोंकी आवश्यकताका ध्यान रखते हुए थोड़ा लाभ लेकर वस्तुओंकी बिक्री करते थे। ग्राहकोंके साथ किसी प्रकारका भेद-भाव न रखते हुए वस्तुओंके क्रय-विक्रयमें वे पूर्णरूपसे समताका बर्ताव करते थे। उनके यहाँ ग्राहकोंको अच्छा माल दिखाकर कभी भी घटिया माल नहीं दिया जाता था। वे घृणित—वर्जित वस्तु—मदिरा आदिका व्यापार कभी नहीं करते थे।

सौम्य-स्वभाववाले नन्दभद्रका रहन-सहन भी बहुत सीधा-सादा था। वे लकड़ी एवं घास-फूससे निर्मित एक छोटे-से मकानमें निवास करते थे। उनका खान-पान बहुत साधारण—कम खर्चीला था।

जिसे भगवान्‌से प्रेम हो जाता है, उसे संसारके कार्य फीके-से लगने लगते हैं। यही दशा नन्दभद्रकी थी। वे चन्द्रमौलि भगवान् शंकरके अनन्य-भक्त थे। बहूदकमें एक बहुत सुन्दर शिवलिङ्ग स्थापित था, जो कपिलेश्वर महादेवके नामसे प्रसिद्ध था। नन्दभद्र तीनों समय बड़े प्रेमसे कपिलेश्वर शिवलिङ्गकी पूजा किया करते थे। वे सभीके हित-साधनमें सदैव संलग्न रहते एवं मन, वाणी और क्रियाद्वारा परोपकार-धर्मका पालन करते थे। किसीके साथ न उनका द्वेष था न राग, वे न किसीसे अनुरोध करते थे न विरोध। वे निन्दा-स्तुतिमें सदा ही सम तथा जो कुछ मिल जाता, उसीमें संतुष्ट रहते थे।

नन्दभद्रका जीवन संन्यासियों-जैसा ही था, वे गृहस्थाश्रमको संन्यासाश्रमसे कम न मानते थे। वे कहा करते थे कि जो विषयोंको बाहरसे त्यागकर मनके द्वारा उसे ग्रहण करता रहता है, वह इहलोक और परलोक—दोनों ओरसे भ्रष्ट होकर फटे हुए बादलकी भाँति नष्ट हो जाता है। संन्यासका सारभूत तत्त्व है—विषयोंका त्याग, सभीको उसका पालन करना चाहिये। गृहस्थमें रहकर यथाशक्ति देवता, पितर, अतिथि, ब्राह्मण, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि समस्त भूतोंके लिये सदा अन्न देना चाहिये। इनसे बचा हुआ अन्न ही स्वयं भोजन करना चाहिये।

नन्दभद्रका सदाचार सम्पन्न सुखमय जीवन सभीके लिये स्पृहणीय था। सज्जन लोग सदैव संतोंके जीवनसे लाभ उठाते हैं, उन्हें देख-देखकर प्रसन्न होते तथा उनका अनुसरण कर अपने जीवनको सदाचारमय बनाते हैं। दूसरी ओर दुष्टजन किसी संतको देखकर जलते हैं। ऐसा ही एक व्यक्ति नन्दभद्रके पड़ोसमें रहता था, उसका नाम था सत्यव्रत। नाम तो उसका सत्यव्रत था, परंतु था वह बड़ा ही नास्तिक एवं दुराचारी। धर्मपरायण नन्दभद्रको सुखी देखकर वह जलता था। बारम्बार नन्दभद्रपर मिथ्या दोषारोपण करना और सदा उनके दोष ही ढूँढ़ते रहना मानो उसका काम ही बन गया था। उसके जीवनकी सबसे बड़ी चाह यही थी कि किसी प्रकार कोई नन्दभद्रका दोष दिख जाय तो उसे धर्मसे गिरा दूँ।

प्रारब्धके भोगसे कौन छूट पाता है? देवता या मनुष्य कोई भी क्यों न हो, प्रारब्धका विधान तो सभीको स्वीकार करना पड़ता है। अचानक नन्दभद्रका इकलौता पुत्र चल बसा। महामति नन्दभद्रने विधिका विधान मानकर शोक नहीं किया। थोड़े ही दिनोंके पश्चात् सहसा उनकी पतिव्रता पत्नी कनका भी चल बसी।

लम्बे अवसरकी प्रतीक्षाके पश्चात् नन्दभद्रपर विपत्ति आयी देखकर उनके पड़ोसी सत्यव्रतको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने सोचा कि अब तो मैं नन्दभद्रको धर्मभ्रष्ट कर ही दूँगा। वह दौड़कर उनके पास पहुँचा और बनावटी दुःख प्रकट करते हुए बोला—'हा नन्दभद्र! बहुत बुरा हुआ। तुम्हारे-जैसे धर्मात्माको भी कैसा दुःख उठाना पड़ रहा है। इससे यही समझमें आता है कि यह धर्म-कर्म सब ढकोसला है। मेरे मनमें तो कई बार तुम्हें चेतावनी देनेकी बात आयी थी कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनमें तीन बार पूजा करना, स्तुति-प्रार्थना करना—सब व्यर्थ है, परंतु संकोचवश मैं चुप रहा। आज कहे बिना नहीं रहा गया, अतः कह रहा हूँ।'

उसने पुनः कहा—'भैया नन्दभद्र ! धर्मके नामपर क्यों इतना कष्ट उठाते हो ? मिथ्यावाद अच्छा नहीं होता। जबसे तुम इस पत्थर-पूजनमें लगे हो, तबसे तुम्हें कोई अच्छा फल मिला हो, ऐसा मैंने नहीं देखा। तुम्हारा इकलौता पुत्र और साध्वी पत्नी दोनों संसारसे चल बसे। यदि भगवान् होते तो क्या तुम्हें ऐसा फल देते ? भैया ! भगवान् तो स्वार्थी लोगोंकी कल्पनामात्र हैं। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, मेघ आदि सब स्वभावसे ही विचरण करते हैं, स्वभावसे ही समस्त जीव-जन्तु, पेड़-पौधे एवं मनुष्य पैदा होते हैं। मनुष्ययोनि ही सबसे दुःखद योनि है, अन्य सभी योनियाँ सुखद हैं, क्योंकि उनमें सभी स्वच्छन्द विचरण किया करते हैं। पुण्य और पाप सब कुछ कल्पना है। नन्दभद्र ! मैं तुम्हें सही सलाह देता हूँ कि मिथ्या धर्मका परित्याग करके आनन्दपूर्वक खाओ, पीओ और भोगो, क्योंकि यही सत्य है।'

सत्यव्रतकी मूर्खतापूर्ण बातें नन्दभद्रपर कोई प्रभाव न डाल सकीं। उनके विचार तो पर्वतकी भाँति अचल एवं समुद्रकी भाँति गम्भीर थे। वे तनिक भी विचलित न हुए और हँसते हुए बोले—'सत्यव्रतजी ! आप अपने-आपको ही धोखा दे रहे हैं। क्या पापियोंपर दुःख नहीं आते ? क्या उनके पुत्र, स्त्री आदिकी मृत्यु नहीं होती ? जब किसी सज्जन पुरुषपर दुःख आता है, तब सभी लोग सहानुभूति प्रकट करते हैं, परंतु विपत्तिकालमें दुराचारीके प्रति सहानुभूति प्रकट करनेवाला कोई नहीं होता। अतः धर्मपालन करनेवाला ही श्रेष्ठ है।'

सत्यव्रत तो अपने हठपर था, उसे ये बातें कैसे अच्छी लगतीं। नन्दभद्रने पुनः कहा—'महाशय ! अन्धा व्यक्ति सूर्यके स्वरूपको नहीं जानता, परंतु उसके न जाननेसे क्या सूर्यका अस्तित्व समाप्त हो जाता है ? जिस प्रकार राजाके बिना प्रजा नहीं रह सकती, उसी प्रकार ईश्वरके बिना संसारका संचालन नहीं हो सकता, यह आप सत्य समझ लें। जिस शिवलिङ्गको आप पत्थर कहते हैं, स्वयं भगवान् श्रीरामने समुद्रतटपर उसकी स्थापना की थी।'

सत्यव्रतका पुनः वही प्रश्न था—'देवता हैं तो दिखायी क्यों नहीं देते ?' नन्दभद्रने कहा—'क्या देवतालोग आपके पास आकर याचना करें कि हमें आप मानिये।' नन्दभद्र सत्यव्रतसे अधिक विवाद नहीं करना चाहते थे, अतः वे उस स्थानको छोड़कर चले गये।

एक बार नन्दभद्रके मनमें विचार आया कि भगवान् सदाशिवका साक्षात् दर्शन करके उनसे पूछूँ—'प्रभो ! आप तो निर्दोष, निर्वैर और समदर्शी हैं, फिर आपका बनाया यह संसार दोषरहित क्यों नहीं है ? इसमें इतने सुख-दुःख, जन्म-मरण आदि क्लेश और वैमनस्य क्यों भरे हुए हैं ?' यह सोचकर वे शिव-मन्दिरमें आये। कपिलेश्वर लिङ्गकी पूजा की, फिर प्रणाम करके भगवान् चन्द्रमौलिके आगमनकी प्रतीक्षामें खड़े हो गये। उन्होंने मनमें यह निश्चय किया कि जबतक भोलेनाथ दर्शन नहीं देंगे, तबतक मैं ऐसे ही खड़ा रहूँगा। लगातार तीन दिन और तीन राततक नन्दभद्र वैसे ही खड़े रहे। चौथे दिन एक सात वर्षका बालक उस शिवमन्दिरमें आया। गलितकुष्ठका रोगी होनेके कारण वह पीड़ासे कराह रहा था। उसने बड़े विस्मयके साथ नन्दभद्रसे पूछा—'आप इतने सुन्दर एवं स्वस्थ दिखायी दे रहे हैं, फिर भी आपके चेहरेपर क्लेशके चिह्न क्यों हैं ?' नन्दभद्रने अपने मनका संकल्प उस बालकसे कह सुनाया।

सब कुछ सुनकर उस बालकने कहा—'अप्रियका संयोग एवं प्रियका वियोग—ये मानसिक कष्टके कारण हैं तथा रोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं परिश्रम शारीरिक कष्टके, मानसिक कष्टसे शारीरिक एवं शारीरिक कष्टसे मानसिक कष्ट होता है। औषध एवं उपचारोंसे शारीरिक कष्ट दूर होता है एवं ज्ञानसे मानसिक कष्ट। मनके दुःखकी जड़ राग है। इस रागसे ही प्राणी सांसारिक प्राणी-पदार्थोंमें आसक्त होकर दुःख पाता है। दुःख-सुख एवं आयासका मूल राग ही है। रागके वशीभूत होकर मनुष्य भोगकी इच्छा करता है। भोग तृष्णा एवं लोभका जन्मदाता है। तृष्णाका आदि और अन्त नहीं है, यह सदैव त्याज्य है।'

इतना सुननेपर भी नन्दभद्रकी जिज्ञासाका पूर्णरूपसे शमन नहीं हुआ। उन्होंने पूछा—'बालक ! पापी मनुष्य धन-धान्य-सम्पन्न क्यों देखे जाते हैं?' बालकने कहा—'महाभाग ! संसारमें चार प्रकारके मनुष्य होते हैं। पहले प्रकारका मनुष्य वह है जिसके लिये इस लोकमें तो सुखभोग सुलभ है, परंतु परलोकमें नहीं, क्योंकि उसका पूर्व-जन्ममें किया हुआ पुण्य शेष है, उसे वह भोगता है और नूतन पुण्यका उपार्जन नहीं करता, उस मन्दबुद्धि एवं भाग्यहीन मानवको प्राप्त हुआ सुखभोग केवल इसी लोकके लिये बताया गया है।

'दूसरा वह है जिसके लिये परलोकमें सुखका भोग सुलभ है, परंतु इस लोकमें नहीं, क्योंकि उसका पूर्वजन्मोपार्जित पुण्य नहीं है। यह जानकर वह तपस्या करके नूतन पुण्यका उपार्जन करता है। उस बुद्धिमान्‌को परलोकमें सदा ही सुखका भोग प्राप्त होता है।

'तीसरा वह है, जिसके लिये इहलोक और परलोकमें भी सुखभोग प्राप्त होता है, क्योंकि उसका पहलेका किया हुआ पुण्य भी विद्यमान है और तपस्यासे नूतन पुण्यका भी उपार्जन हो रहा है, ऐसा बुद्धिमान् कोई विरला ही होता है।

'चौथा वह है, जिसके लिये न तो इहलोकमें सुख है और न परलोकमें ही; क्योंकि उसका पहलेका पुण्य तो है नहीं और इस लोकमें भी वह पुण्यका उपार्जन नहीं करता। ऐसे मनुष्यको इहलोक और परलोक—दोनोंमें ही सुख नहीं मिलता। ऐसे नराधमको धिक्कार है।

'महात्मन् ! इस प्रकार कर्म एवं भोगके रहस्यको जानकर अब आपको भगवान् सदाशिवके भजन एवं वर्णधर्मके पालनमें निष्कामभावसे लग जाना चाहिये। इससे आप दुःख जन्मके बन्धनमें नहीं पड़ेंगे।'

एक बालकके मुखसे ऐसी रहस्यपूर्ण बातें सुनकर नन्दभद्र आश्चर्यचकित हो गये। वे उससे पूछने लगे—'बालक आप कौन हैं और यहाँ कैसे पधारे हैं? आपने तो मेरे सब संदेहोंको नष्ट कर दिया।'

बालकने बताया—'पूर्वजन्ममें मैं बड़ा दम्भी एवं पाखण्डी था। मुझमें और भी बहुत-से दुर्गुण थे, जिसके फलस्वरूप मैं वर्षोंसे नीच योनियोंमें भटक रहा हूँ। भगवान् व्यासदेव कृपापूर्वक मुझे प्रत्येक योनिमें सचेत कर देते हैं। उन्होंने ही मुझे आपके पास भेजा है। अब मैं सात दिनके बाद इसी तीर्थमें प्राण त्याग दूँगा और पुण्यफलको प्राप्त करूँगा। कृपया मृत्युके बाद आप मेरा अन्तिम संस्कार कर दीजियेगा।'

सूर्यमन्त्रका जप करते हुए सातवें दिन उस बालकने अपने प्राण त्याग दिये। नन्दभद्रने विधिपूर्वक उसका अन्तिम संस्कार किया और शेष जीवन उन्होंने भगवान् शिव एवं सूर्यकी उपासनामें लगा दिया तथा अन्तमें भगवान् शंकरका सारूप्य प्राप्त किया। (ह० कृ० दु०)

भारतके कुमारिकाखण्डकी कथा

ऋषभके पुत्र भरत थे, जिनके नामपर इस देशका नाम भारतवर्ष पड़ा। भरतके पुत्र शतशृंग हुए, उनके आठ पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्रोंके नाम इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रद्वीप, गभस्तिमान्, नाग, सौम्य, गन्धर्व और वरुण थे। राजर्षि शतशृंगकी कन्याका मुख बकरीके मुख-सदृश था। ऐसा होनेका कारण उसका पूर्वजन्ममें बकरी-शरीरका होना था। बकरी-शरीरमें वह स्तम्भतीर्थके पास उलझकर मर गयी थी। उसका नीचेका भाग स्तम्भतीर्थ या खम्भार्ककी खाड़ीमें गिर गया था, इस कारण वह दिव्य देहवाली कुमारी बन गयी, किंतु मुखका आधा भाग लताओंमें उलझा हुआ था, अतः उसका मुख बकरीका ही रह गया।

एक दिन उस कुमारीने दर्पणमें अपना मुख देखा। अपना बकरीका-सा मुख देखते ही उसे अपने पूर्वजन्मकी स्मृति हो आयी। उसने अपने माता-पिताको अपने पूर्वजन्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का वृत्तान्त बताकर खम्भार्क-क्षेत्रमें जानेकी आज्ञा ली। वहाँ पहुँचकर उसने अपने पूर्व-जन्मके सिरको लताओंमेंसे ढूँढ़ निकाला और उसका खम्भार्कतीर्थमें दाहकर हड्डियोंको पवित्र जलमें डाल दिया। फिर तो उसका मुख चन्द्रमाकी कान्तिके

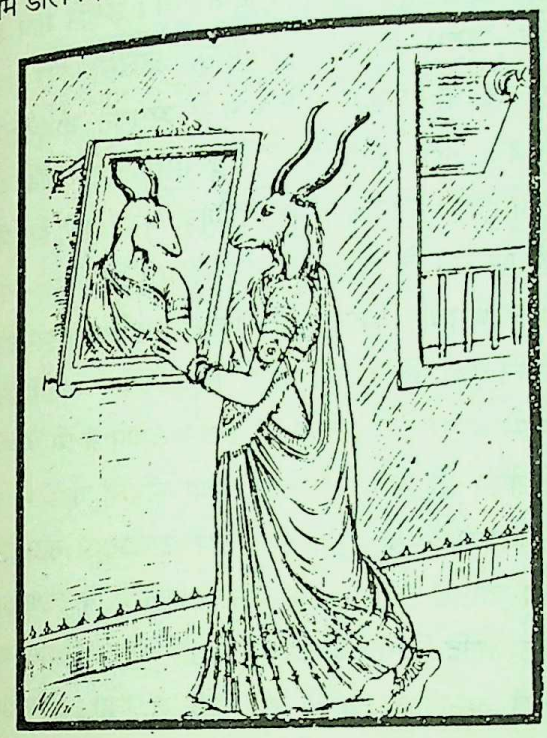

समान दीप्तिमान् हो उठा। इस बातका तीनों लोकोंमें प्रचार हो गया। ऐसा सुनकर देवता, गन्धर्व और राजालोग विवाहके लिये उसके पितासे याचना करनेके हेतु आने लगे, किंतु उस कुमारीने किसीको अपना पति बनाना स्वीकार नहीं किया और वह दुष्कर तपस्यामें लग गयी। जब तपस्या करते हुए एक वर्ष पूरा हो गया, तब आशुतोष भगवान् शंकरने प्रकट होकर उसे अभीष्ट वर देनेको कहा। राजकुमारी उनका पूजन करके बोली कि 'यदि आप प्रसन्न हैं तो इस तीर्थमें सदा विराजें।' भगवान् शंकर 'एवमस्तु' कहकर उसकी प्रार्थनाको स्वीकार करके चले गये। वहाँके शिव 'बर्करेश्वर' नामसे प्रसिद्ध हुए। जब यह समाचार चारों ओर फैल गया, तब पाताललोकके नागोंका राजा स्वस्तिक उस कुमारीको देखनेके लिये स्तम्भतीर्थमें आया। वह जिस मार्गसे पृथ्वीको विदीर्णकर बाहर निकला था, वहाँ स्वस्तिक नामक कूप प्रसिद्ध हो गया। वह कूप भगवान् शंकरके ईशानकोणपर स्थित है। उसमें गङ्गाजीका जल भरा रहता है।

इधर वह कुमारी भगवान् शंकरसे वर प्राप्तकर अपने माता-पिताके पास सिंघलद्वीपमें लौट आयी। राजा शतशृंग अपनी कन्याकी बातोंको सुनकर बहुत विस्मित हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने देशको नौ भागोंमें विभक्त करके आठ भागको क्रमशः आठों पुत्रोंमें बाँट दिया। नवाँ भाग उस लड़कीको दिया। उन नवों खण्डोंके नाम हैं—इन्द्रद्वीपखण्ड, कसेरुखण्ड, ताम्रद्वीपखण्ड, गभस्तिमान्खण्ड, नागखण्ड, सौम्यखण्ड, गन्धर्वखण्ड, वरुणखण्ड और कुमारिकाखण्ड। उनमें सात कुलपर्वत भी हैं, उनके नाम हैं—महेन्द्र, मलय सह्य, शुक्तिमान्, ऋच्छ, विन्ध्य और पारियात्र। पारियात्रका दक्षिण भाग कुमारिकाखण्डके नामसे जाना जाता है, जिसकी स्वामिनी वह कुमारी थी। कुमारीका स्वभाव अत्यन्त उदार था। वह अपनी सारी आयको दानमें लगाती हुई तपस्या करने लगी। कुछ समयके बाद कुमारीके आठों भाइयोंके नौ-नौ पुत्र हुए, जो सभी बल, पराक्रम एवं उत्साहसे सम्पन्न थे। एक दिन वे सभी मिलकर उसके पास आये और बोले कि 'तुम हमारी कुलदेवी हो। इस समय हमलोग ७२ (बहत्तर) भाई हो गये हैं। पर हमारे पास कुल आठ ही खण्ड हैं, अतः तुम कृपा करके आठों खण्डोंको ७२ भागोंमें बाँट दो।' तब कुमारीने उनके बहत्तर भाग किये। इन सभी देशोंके गाँवोंकी संख्या ९६ करोड़, ७२ लाख, ३६ हजार है। इस प्रकार उस कुमारीने समुद्रतकके सभी देशका विभाग करके उन सभी गाँवोंको अपने भतीजोंको दे दिया तथा अपने भागको भी उन्हीं लोगोंको सौंप दिया। यह कुमारिकाखण्ड चारों पुरुषार्थोंको प्रदान करनेवाला है।

बादमें कुमारी गुप्तक्षेत्रमें कुमारेश्वरका पूजन करती हुई भारी तपस्या करने लगी। उसने वहाँ कुमारेश्वरके एक विशाल स्वर्णमय मन्दिरका निर्माण कराया। वहाँ भगवान् शंकर प्रकट हुए। उनकी आज्ञासे उसने महाकालको अपने पतिरूपमें वरण किया और उनके साथ वह रुद्रलोकमें चली गयी। वहाँ पार्वतीजीने उसे हृदयसे लगाया और चित्रलेखा नामसे अपनी सखी बना लिया। उसीने उषाको चित्रद्वारा अनिरुद्धका परिचय दिया था। कहते हैं कि रुद्रका विवाह उसीने कराया था। इस प्रकार यहाँपर मरे हुए मनुष्योंका दाह करना और हड्डियोंको संगमके जलमें डालना प्रयागसे भी अधिक उत्तम बताया गया है।

(जा० ना० श०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोला भक्त विष्णुदास और चक्रवर्ती सम्राट् चोल

पहले काञ्चीपुरीमें चोल नामके एक चक्रवर्ती राजा हो गये हैं। राजा चोलके राज्यमें कोई भी मनुष्य दरिद्र, दुःखी, पापी तथा रोगी नहीं था। एक समयकी बात है—राजा चोल अनन्तशयन नामक तीर्थमें गये, वहाँ जगदीश्वर भगवान् विष्णुके दिव्य विग्रहकी विधिपूर्वक पूजा की। दिव्य मणि, मुक्ताफल तथा स्वर्णके बने हुए सुन्दर पुष्पोंसे पूजन करके राजाने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। प्रणाम करके वे ज्यों ही बैठे, त्यों ही उनकी दृष्टि भगवान्के पास आते हुए एक ब्राह्मणपर पड़ी, जो उन्हींकी काञ्ची नगरीके निवासी थे। उनका नाम था विष्णुदास। उन्होंने भगवान्की पूजाके लिये अपने हाथमें तुलसीदल एवं जल ले रखा था। निकट आनेपर उन ब्रह्मर्षिने विष्णुसूक्तका पाठ करते हुए देवाधिदेव भगवान्को स्नान कराया और तुलसीकी मञ्जरी तथा पत्तोंसे उनकी विधिवत् पूजा की। राजा चोलने, जो पहले रत्नोंसे भगवान्की पूजा की थी, वह सब तुलसी-पूजासे ढक गयी। यह देखकर राजा कुपित होकर बोले—'विष्णुदास! मैंने मणियों तथा स्वर्णसे भगवान्की पूजा की थी, वह कितनी शोभा पा रही थी। तुमने तुलसीदल चढ़ाकर उसे ढक दिया। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि तुम दरिद्र और गँवार हो। भगवान् विष्णुकी भक्ति बिलकुल नहीं जानते।' राजाकी यह बात सुनकर द्विजश्रेष्ठ विष्णुदासने कहा—'राजन्! आपको भक्तिका कुछ भी पता नहीं है, केवल राजलक्ष्मीके कारण आप घमंड कर रहे हैं।' तब नृपश्रेष्ठ चोलने हँसकर कहा—'तुम तो दरिद्र एवं निर्धन हो। तुम्हारी भगवान् विष्णुमें भक्ति ही कितनी है? तुमने भगवान् विष्णुको संतुष्ट करनेवाला कोई भी यज्ञ, दान आदि नहीं किया और न पहले कभी कोई देवमन्दिर ही बनवाया है। इतनेपर भी तुम्हें अपनी भक्तिका इतना गर्व है। अच्छा, तो ये सभी ब्राह्मण मेरी बात सुन लें। भगवान् विष्णुका दर्शन पहले मैं करता हूँ या यह ब्राह्मण। इस बातको आप सब देखें, फिर हम दोनोंमें किसकी भक्ति कैसी है, यह सब लोग स्वतः जान लेंगे।'

ऐसा कहकर राजा अपने राजभवनको चले गये। वहाँ उन्होंने महर्षि मुद्गलको आचार्य बनाकर वैष्णवयज्ञ प्रारम्भ किया। उधर सदैव भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेके शास्त्रोक्त नियमोंमें तत्पर विष्णुदास भी व्रतका पालन करते वहीं भगवान् विष्णुके मन्दिरमें टिक गये। उन्होंने माघ कार्तिकके उत्तम व्रतका अनुष्ठान, तुलसीवनकी एकादशीव्रत, द्वादशाक्षर (**ॐ नमो भगवते वासुदेवा** मन्त्रका जप, नृत्य, गीत आदि मङ्गलमय आयोजनोंके प्रतिदिन षोडशोपचारसे भगवान् विष्णुकी पूजा आदि नियमोंका आचरण किया। वे प्रतिदिन चलते-फिरते और सोते-जा सब समय भगवान् विष्णुको ही स्थित देखते थे। इस प्र राजा चोल एवं विष्णुदास दोनों ही भगवान् लक्ष्मीपति आराधनामें संलग्न थे। दोनों ही अपने-अपने व्रतमें स्थि और दोनोंकी ही सम्पूर्ण इन्द्रियाँ तथा समस्त कर्म भग विष्णुको समर्पित हो चुके थे। इस अवस्थामें उन दो दीर्घकाल व्यतीत किया। एक दिनकी बात है कि विष्णुदा पूजा-पाठ आदि नित्यकर्म करनेके पश्चात् भोजन तैयार कि किंतु कोई अलक्षित रहकर उसे चुरा ले गया। विष्णुद देखा—भोजन नहीं है, परंतु उन्होंने दुबारा भोजन नहीं बना क्योंकि ऐसा करनेपर सायंकालकी पूजाके लिये उन्हें अवक नहीं मिलता और प्रतिदिनके नियमका भंग हो जानेका था। दूसरे दिन पुनः उसी समयपर भोजन बनाकर वे ज्यों भगवान् विष्णुको भोग अर्पण करनेके लिये गये, त्यों किसीने आकर फिर सारा भोजन हड़प लिया। इस प्रकार दिनोंतक कोई आ-आकर उनके भोजनका अपहरण क रहा। इससे विष्णुदासको बड़ा विस्मय हुआ। वे इस प्र मन-ही-मन विचारने लगे—'अहो! कौन प्रतिदिन अ मेरी रसोई चुरा ले जाता है। यदि दुबारा रसोई बनाकर भो करता हूँ तो सायंकालकी पूजा छूट जाती है। यदि र बनाकर तुरंत ही भोजन कर लेना उचित हो तो भी मुझसे न होगा, क्योंकि भगवान् विष्णुको सब कुछ अर्पण किये कोई भी वैष्णव भोजन नहीं करता। आज उपवास करते सात दिन हो गये। इस प्रकार मैं व्रतमें कबतक स्थि सकता हूँ।' ऐसा निश्चय करके भोजन बनानेके पश्चात् वे छिपकर खड़े हो गये। इतनेमें ही उन्हें एक चाण्डाल दि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया, जो रसोईका अन्न चुराकर ले जानेके लिये तैयार खड़ा था, भूखके मारे उसका सारा शरीर दुर्बल हो गया था। मुखपर दीनता छा रही थी। शरीरमें अस्थि और चर्मके सिवा और कुछ शेष नहीं बचा था। उसे देखकर श्रेष्ठ ब्राह्मण विष्णुदासका

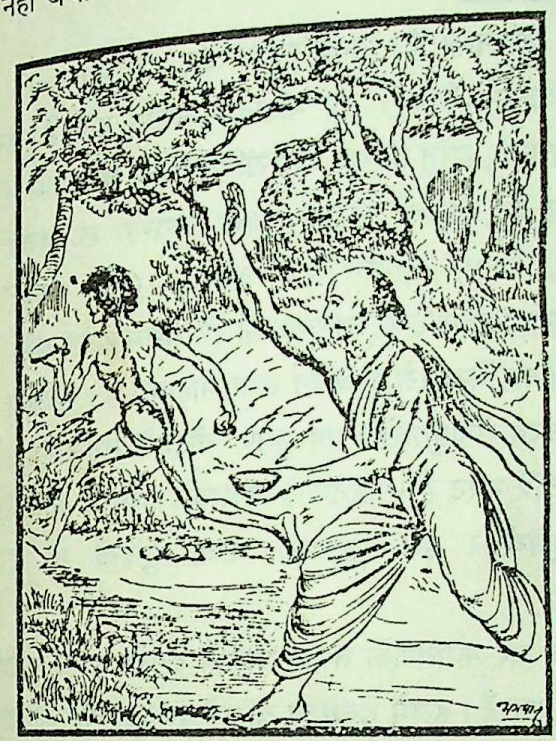

हृदय करुणासे भर आया। उन्होंने भोजन चुरानेवाले चाण्डालकी ओर देखकर कहा—'भैया ! जरा ठहरो, ठहरो, क्यों रूखा-सूखा खाते हो, यह घी तो ले लो।' यों कहते हुए विप्रवर विष्णुदासको आते देख वह चाण्डाल भयके मारे बड़े वेगसे भागा और कुछ ही दूरपर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। चाण्डालको भयभीत एवं मूर्च्छित देखकर विष्णुदास बड़े वेगसे उसके पास आये तथा दयावश अपने वस्त्रके छोरसे उसे हवा करने लगे। तदनन्तर जब वह उठकर खड़ा हुआ, तब विष्णुदासने देखा कि वहाँ चाण्डाल नहीं है। साक्षात् भगवान् नारायण ही शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये सामने उपस्थित हैं। विष्णुदास अपने प्रभुको उपस्थित देखकर सात्त्विक भावोंके वशीभूत हो गये। वे स्तुति और नमस्कार करनेमें भी समर्थ न हो सके। तब भगवान् विष्णुने सात्त्विक व्रतका पालन करनेवाले अपने भक्त विष्णुदासको छातीसे लगा लिया और उन्हें अपने-ही-जैसा रूप देकर वैकुण्ठधामको ले चले। उस समय यज्ञमें दीक्षित हुए राजा चोलने देखा— विष्णुदास एक श्रेष्ठ विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके समीप जा रहे हैं।

विष्णुदासको वैकुण्ठधाममें जाते देख राजाने शीघ्र ही अपने गुरु महर्षि मुद्गलको बुलाया और इस प्रकार कहा—'जिसके साथ स्पर्धा करके मैंने इस यज्ञ, दान आदि कर्मका अनुष्ठान किया है, वह ब्राह्मण आज भगवान् विष्णुका रूप धारण करके मुझसे पहले वैकुण्ठ धामको जा रहा है। मैंने इस वैष्णवयागमें भलीभाँति दीक्षित होकर अग्निमें हवन किया और दान आदिके द्वारा ब्राह्मणोंका मनोरथ पूर्ण किया तथापि अभीतक भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न नहीं हुए और विष्णुदासको केवल भक्तिके ही कारण श्रीहरिने प्रत्यक्ष दर्शन दिया है। अतः जान पड़ता है कि भगवान् विष्णु केवल दान एवं यज्ञोंसे ही प्रसन्न नहीं होते। उन प्रभुका दर्शन करानेमें भक्ति ही प्रधान कारण है।' यों कहकर राजा अपने भानजेको राज्य दे यज्ञशालामें गये और यज्ञकुण्डके सामने खड़े होकर भगवान् विष्णुको सम्बोधित करते हुए तीन बार उच्चस्वरसे बोले—'भगवन् ! आप मुझे मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा होनेवाली अविचल भक्ति प्रदान कीजिये।' इस प्रकार कहकर वे सबके देखते-देखते अग्निकुण्डमें कूद पड़े। बस, उसी समय भक्तवत्सल भगवान् विष्णु उस अग्निकुण्डसे प्रकट हो गये। उन्होंने राजाको छातीसे लगाकर एक श्रेष्ठ विमानपर बैठाकर उन्हें साथ ले वैकुण्ठधामको प्रस्थान किया।

इन दोनोंकी भक्तिपर ही भगवान् परम प्रसन्न हुए थे। भगवत्कृपासे ब्राह्मण विष्णुदास पुण्यशील और राजा चोल सुशील नामसे भगवान्के प्रसिद्ध पार्षद हुए। इन दोनोंको अपने ही समान रूप देकर भगवान् लक्ष्मीपतिने अपना द्वारपाल बना लिया। (ब० दा० वि०)

पापाचारी दुष्टोंका त्याग न करके उनके साथ मिले रहनेसे निरपराध सज्जनोंको भी उनके समान ही दण्ड प्राप्त होता है, जैसे सूखी लकड़ीमें मिल जानेसे गीली भी जल जाती है, इसलिये दुष्ट पुरुषोंके साथ कभी मेल न करे।

मनुष्य दुष्ट पुरुषोंके बलसे, निरन्तरके उद्योगसे, बुद्धिसे तथा पुरुषार्थसे धन भले ही प्राप्त कर ले, परंतु इससे उत्तम कुलीन पुरुषोंके सम्मान और सदाचारको वह पूर्णरूपसे कदापि नहीं प्राप्त कर सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वामनपुराण

भगवान् विष्णुके वामनावतारके आधारपर यह पुराण वामनपुराण कहलाता है। नारदीयपुराण (१।१०५।१-२) तथा मत्स्यपुराण (५३।४४-४५)के अनुसार इस पुराणमें मुख्यरूपसे त्रिविक्रम (विष्णु) का माहात्म्य बताया गया है। इसकी श्लोक-संख्या दस हजार है और यह पूर्व तथा उत्तर—दो भागोंमें विभक्त है, परंतु इसका चार संहिताओंका बृहद्वामनसंज्ञक उत्तर भाग अप्राप्य है। वर्तमानमें इस पुराणका पूर्वभाग ही उपलब्ध है, जिसकी श्लोक-संख्या लगभग छः हजार है। बीच-बीचमें कुछ गद्यात्मक अंश भी हैं। इसमें ९७ अध्याय हैं, जिनमें लगभग २८ अध्याय (अ० २३के बाद काशीराज-संस्करणमें) सरोमाहात्म्यके नामसे कहे गये हैं। कुरुक्षेत्रमें स्थित ब्रह्मसरोवर माहात्म्यको ही सरोमाहात्म्य कहा गया है। इसमें कुरुक्षेत्र तथा उसके अन्तर्गत कुरुजाङ्गल, पृथूदक आदि तीर्थोंका विस्तारसे विवेचन तथा माहात्म्य है। बलिका यज्ञ कुरुक्षेत्रमें ही होनेकी बात कही गयी है। (वामन० ६२।५२)[१]। अठारह महापुराणोंमें यह पुराण चौदहवें स्थानपर है। इस पुराणके आदिवक्ता महर्षि पुलस्त्य हैं और आदि प्रश्नकर्ता तथा श्रोता देवर्षि नारद हैं। नारदजीने व्यासको, व्यासने अपने शिष्य लोमहर्षण सूतको तथा सूतजीने नैमिषारण्यमें शौनक आदि मुनियोंको इस पुराणकी कथा सुनायी थी (नार० १।१०५।१७-१८)।

यह पुराण अतिपुण्यमय तथा पवित्र है। इसमें भगवान् वामन एवं नर-नारायणके तथा भगवती दुर्गाके उत्तम चरित्र तो हैं ही, साथ ही प्रह्लाद तथा श्रीदामा आदि भक्तोंके भी बड़े रम्य आख्यान हैं। इसमें दैत्यराज बलिसे सम्बद्ध वामनावतारकी प्रसिद्ध तथा प्रशस्त कथाके अतिरिक्त वामनावतारकी एक अन्य कथा भी आयी है, जो दैत्यराज धुन्धुके आख्यानमें वर्णित है। गजेन्द्रमोक्षकी कथा और मूल स्तोत्र भी इसमें हैं। मुख्यतः वैष्णवपुराण होते हुए भी इसमें शैव तथा शाक्तादि धर्मोंकी श्रेष्ठताका प्रदर्शन करते हुए सर्वत्र ऐक्यभावकी प्रतिष्ठा स्थापित है। इस पुराणमें अनेक महत्त्वपूर्ण पौराणिक विषयोंका वर्णन है।

इस पुराणके मुख्य वर्ण्य विषय संक्षेपमें इस प्रकार हैं— पुराणके उपक्रममें देवर्षि नारदद्वारा पुलस्त्यजीसे वामनावतारकी कथाका कथन, शिवजीका लीलाचरित्र एवं जीमूतवाहन-आख्यान, ब्रह्माका मस्तक-छेदन, कपालमोचन-आख्यान, दक्षयज्ञ-विध्वंस, हरिका कालरूप, कामदेव-दहन, प्रह्लाद-नारायण-युद्ध, भुवनकोष, दुर्गाचरित एवं कुरुक्षेत्रका वर्णन, सत्या-माहात्म्य, पार्वती-जन्म, गौरी-आख्यान, स्कन्दचरित, अन्धक-वध, जाबालिकथा, मरुद्गणोंकी उत्पत्ति, बलिका आख्यान, लक्ष्मीचरित, त्रिविक्रम-चरित, प्रेतोपाख्यान, नक्षत्र-पुरुषाख्यान आदि वर्णित हैं। साथ ही इसमें कुछ ऐसे विषय भी आये हैं जो अन्य पुराणोंमें नहीं मिलते अथवा स्वल्प मात्रामें मिलते हैं। जैसे शिवके विभिन्न अङ्गोंके भूषणोंके रूपमें सर्पोंके नामोंका उल्लेख, प्रह्लादका बदरिकाश्रममें नर-नारायणके साथ युद्ध, देवों और असुरोंके पृथक्-पृथक् वाहनोंका वर्णन, कर्कचतुर्थी-व्रतकथा, कायज्जली-व्रत-कथा, गङ्गामानसिक-स्नान, गङ्गा-माहात्म्य, दधिवामनस्तोत्र, वराह-माहात्म्य, वेङ्कटेशगिरि-माहात्म्य, सुकेशिचरित, त्रिविक्रम (विष्णु) द्वारा धुन्धु-वध, प्रह्लादकी तीर्थयात्रा तथा वामनके विविध स्वरूपों तथा निवास-स्थानोंका वर्णन। अन्तमें भक्त प्रह्लादद्वारा अपने पौत्र बलिको विष्णुभक्तिका माहात्म्योपदेश, विष्णुकी पूजा-विधि और विष्णुके मन्दिर बनवाने तथा उसे वैष्णवी दीक्षामें दीक्षित करनेके वृत्तान्तसे पुराणका उपसंहार है। फलश्रुतिमें इस पुराणके पाठसे अथवा श्रवणसे समस्त पापोंका समूल क्षय होता है और विष्णुपदकी प्राप्ति होती है —यह बताते हुए

१-पद्मपुराण (सृष्टि० २५।१५-१६), अग्निपुराण (४।७), स्कन्दपुराण, प्रभास० (१४।७८)। एवं भागवत (८।११।२१)में क्रमशः बलिका यज्ञ पुष्कर, हरिद्वार, प्रभासक्षेत्र एवं नर्मदाके तटपर (भृगुकच्छमें) किये जानेका उल्लेख है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

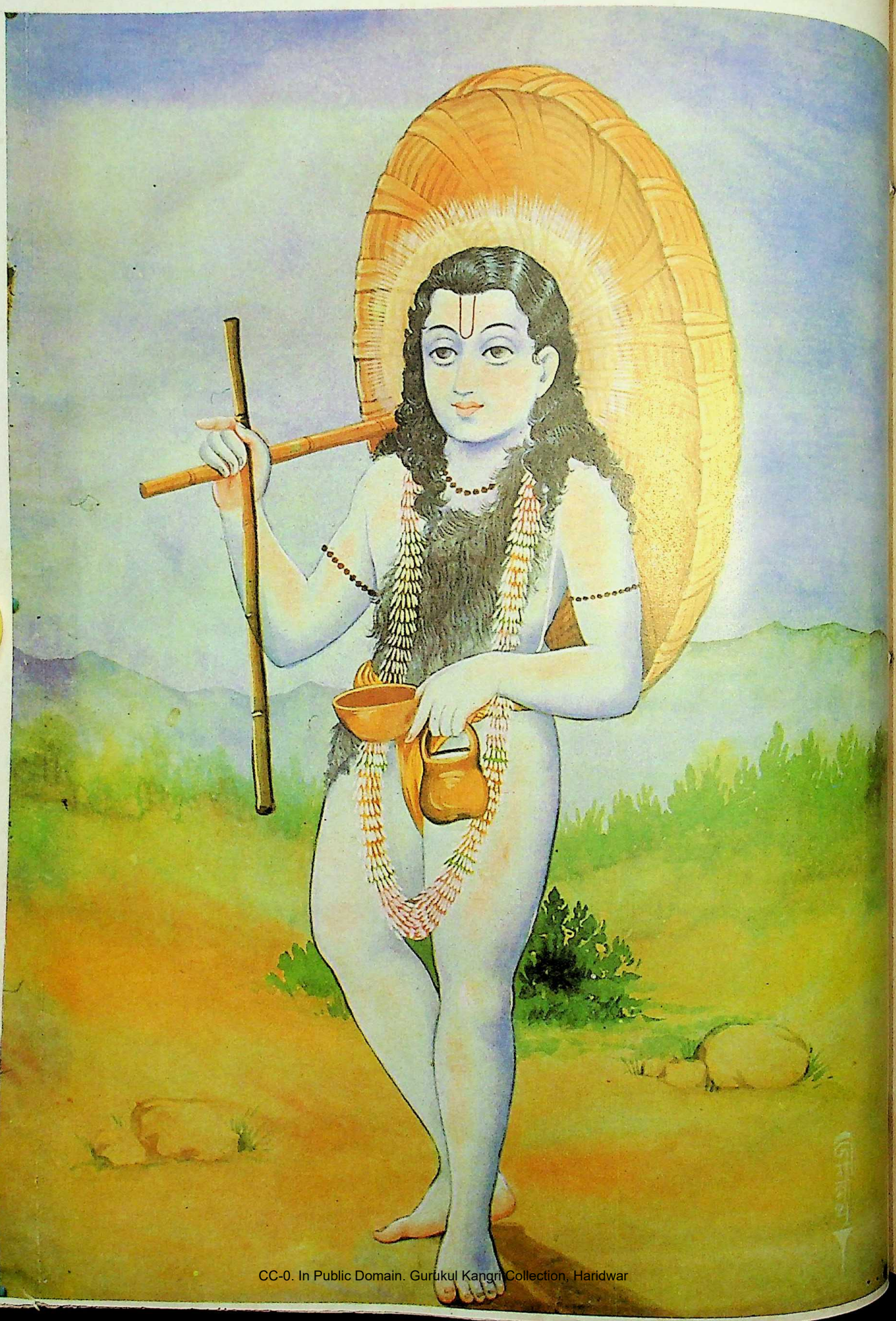

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् वामनके **'नमो नमः कारणवामनाय'**—इस एकादशाक्षर मन्त्रको मोक्ष प्रदान करनेवाला बतलाया गया है। यद्यपि यह पुराण अन्य पुराणोंसे छोटा है तथापि इसके उपदेश अत्यन्त उपादेय हैं।

कथा-आख्यान—

श्रीवामनावतार-कथा

प्राचीन कालकी बात है, दैत्यमाता दितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु आदि पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए। अपने अधर्माचरणसे वे भगवान् विष्णुद्वारा मारे गये। हिरण्यकशिपुका पुत्र प्रह्लाद हुआ, जिसकी गणना परमभागवतोंमें होती है। प्रह्लादका पुत्र विरोचन और विरोचनका पुत्र दैत्यराज बलि हुआ। दैत्योंका देवताओंके साथ जन्मजात द्वेष है। स्वर्ग तथा ऐश्वर्यकी कामनासे दैत्य बार-बार देवताओंसे युद्ध करते रहते थे। कभी दैत्य विजित होते तो कभी देवता।

दैत्योंके गुरु थे शुक्राचार्य। उनके द्वारा कराये गये यज्ञानुष्ठानसे बली होकर मदोन्मत्त दैत्यराज बलिने अपनी विशाल दैत्यसेनाको लेकर इन्द्रकी नगरी अमरावतीको चारों ओरसे घेर लिया। तब भयभीत इन्द्र देवगणोंके साथ अपने गुरु बृहस्पतिजीके पास गये और उनसे अपने भयका कारण निवेदन किये। बृहस्पतिजीने कहा—'देवराज! ब्रह्मवादी भृगुवंशी ब्राह्मणोंने अपने तेजसे बलिको अजेय बना दिया है। इस समय युद्धसे उसे जीतना कथमपि सम्भव नहीं है, अतः नीतिसे काम लेना चाहिये। तुम सभी स्वर्ग छोड़कर कहीं छिप जाओ। जब बलि अपने गुरुकी आज्ञाका उल्लङ्घन करेगा, तब वह स्वतः अपने परिवारके साथ पाताल चला जायगा, अतः उस समयकी प्रतीक्षा करो।' गुरु बृहस्पतिजीके सत्परामर्शसे देवगण स्वर्ग छोड़कर अन्यत्र चले गये। स्वर्गपर बलिका अधिकार हो गया। वे त्रैलोक्यविजयी हो गये।

देवगण निराश तथा दुःखी हो अपनी माता अदितिकी शरणमें आये। अदिति दक्ष प्रजापतिकी पुत्री तथा महर्षि कश्यपकी धर्मपत्नी थीं। उन्होंने पुत्रोंसे कहा—'तुमलोग भय न करो, मैं कुछ उपाय करूँगी।' उन्हें आश्वस्त कर वे महर्षि कश्यपका स्मरण करने लगीं। महर्षि कश्यप सृष्टि-कार्यसे विरक्त हो चुके थे। वे प्रतिपल नारायणके ध्यानमें समाधिस्थ रहते थे। एक दिन उनकी समाधि टूटी तो उन्हें अदितिका ध्यान आया। फिर तो वे अदितिके आश्रमकी ओर चल पड़े। पतिको देखकर अदितिके हृदयमें हर्षका संचार हुआ। जिस किसी तरह उन्होंने पतिदेवका आतिथ्य किया और उनके पूछनेपर बताया—'दैत्योंने स्वर्गलोकका समस्त ऐश्वर्य छीनकर हमें असहाय बना दिया है। अमरावतीमें ही नहीं, अपितु त्रिलोकीमें उनका राज्य हो गया है। उनके अत्याचारोंसे सर्वत्र भय छाया हुआ है। देवगण भयभीत हो स्वर्ग छोड़कर अन्यत्र भटक रहे हैं। देव! आप कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे दैत्य पराजित हों और मेरे पुत्र पुनः स्वर्गपर अभिषिक्त हो जायँ।'

कुछ देर विचार करनेके पश्चात् कश्यपजीने कहा—'देवि! तुम नारायणकी उपासना करो। वे बड़े दयालु हैं। उनकी भक्ति कभी व्यर्थ नहीं होती। इस विपत्तिको नारायणके अतिरिक्त और कोई दूर नहीं कर सकता। वे सत्यसंकल्प प्रभु तुम्हारे मनोरथको पूर्ण करेंगे। तुम 'पयोव्रत' (सर्वव्रत, सर्वयज्ञ) के अनुष्ठानसे श्रीहरिको प्रसन्न करो।' तब प्रसन्न होकर देवमाता अदितिने भक्तिपूर्वक पयोव्रतका संकल्प लिया।

इन्द्रादि देवगण भी अपने कष्ट-निवारणके लिये उपाय सोचने लगे। पिता कश्यपजीसे निर्दिष्ट होकर वे पितामह ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीके द्वारा बताये गये उपायके अनुसार वे क्षीरसागरके उत्तरी तटपर तपस्यासे श्रीनारायणको प्रसन्न करने लगे। तदनन्तर महर्षि कश्यप स्वयं भी भगवान्‌का ध्यान करने लगे। उन्होंने 'परम-स्तव' नामक स्तोत्रद्वारा उनका स्तवन किया।

इस प्रकार देवमाता अदिति, महर्षि कश्यप तथा इन्द्रादि देवगणोंद्वारा उपासित भगवान् नारायण प्रसन्न हुए और उन्होंने दर्शन दिया। स्तुति-प्रणाम निवेदन करनेके अनन्तर कश्यपजीने कहा—'देवाधिदेव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं आपसे याचना करता हूँ कि आप स्वयं अदितिके गर्भसे इन्द्रके छोटे भाईके रूपमें प्रकट हों।' पुत्राभिलाषिणी अदितिने भी भगवान्‌की स्तुति की।

तब भगवान्‌ने प्रसन्न होकर कहा—'देवि! तुमने अपनी भक्तिसे मुझे प्रसन्न किया है। मैं तुम्हारे अभीष्टको पूर्ण करूँगा। मैं अंशरूपसे कश्यपके वीर्यस्वरूप तुम्हारे गर्भमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रविष्ट होऊँगा और तुम्हारे गर्भसे प्रकट होकर देवताओंके शत्रु असुरोंका विनाश करूँगा। नन्दिनि ! तुम आश्वस्त होओ।'

देवगणोंसे भगवान्‌ने कहा—'देवगण ! आपलोगोंके जितने भी शत्रु होंगे, वे सभी मिलकर मेरे सामने क्षणमात्र भी नहीं ठहर सकते। मैं यज्ञ-भागके अग्रभोजी सारे असुरोंका संहार करके सभी देवताओंको 'हव्याशी' तथा पितृगणोंको 'कव्याशी' बनाऊँगा। सुरश्रेष्ठगण ! आपलोग जिस मार्गसे आये हैं, उसीसे लौट जायँ।(वामन० २७।७-९)।'

इतना कहकर भगवान् नारायण अन्तर्हित हो गये। प्रसन्न तथा आश्वस्त हुए देवगण अपने-अपने स्थानोंकी ओर लौट गये। महर्षि कश्यप एवं माता अदिति अपने आश्रममें आकर नारायणकी आराधना करने लगे। अदितिका पयोव्रत पूर्ण हो चुका था। वे भक्तिपूर्वक महर्षि कश्यपकी सेवामें तत्पर थीं। कश्यपजीमें श्रीहरिकी इच्छासे उनका तेज प्रकट हुआ, वही नारायण तेज माता अदितिमें प्रविष्ट हुआ। ज्यों ही भगवान्‌ने अदितिके गर्भमें प्रवेश किया, त्यों ही दैत्य श्रीहीन होने लगे, महान् उपद्रव होने लगा और अनेक अपशकुन दिखायी देने लगे; क्योंकि भगवान्‌की संहार-लीलाका उपक्रम प्रारम्भ हो चुका था।

इधर अभिमानी बलिने प्रह्लादके समक्ष भगवान्‌की निन्दा कर दी, तब उन्होंने बलिको शाप दे दिया। तब दुःखी होकर बलिने उनसे शापसे बचनेका उपाय पूछा। तत्पश्चात् प्रह्लादके समझानेपर वह यज्ञ-कार्यमें लग गया।

श्रीनारायणके अवतरणका समय संनिकट था। भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि, श्रवण नक्षत्र, अभिजित् मुहूर्तकी पावन मङ्गलमय वेलामें माता अदितिके समक्ष भगवान् विष्णु प्रकट हुए। उस समय उनका स्वरूप अलौकिक था। उनके चार भुजाएँ थीं, जिनमें वे शङ्ख, गदा, कमल और चक्र धारण किये थे। उनके नेत्र कमलके समान कोमल और बड़े-बड़े थे। उनके शरीरपर पीताम्बर शोभायमान हो रहा था। विशुद्ध श्यामवर्णका शरीर था। मकराकृति कुण्डलोंकी कान्तिसे उनके मुख-कमलकी शोभा और भी उल्लसित हो रही थी। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न, हाथोंमें कंगन, भुजाओंमें बाजूबंद, सिरपर किरीट, कमरमें करधनीकी लड़ियाँ और चरणोंमें सुन्दर नूपुर जगमगा रहे थे। वे गलेमें वनमाला धारण किये थे, जिसके चारों ओर झुंड-के-झुंड भौंरे गुंजार कर रहे थे। उनके कण्ठमें कौस्तुभमणि सुशोभित थी। उनके अङ्गोंसे अद्भुत कान्ति उद्दीप्त हो रही थी। उनकी चितवनसे प्रेमकी वर्षा हो रही थी। वे मधुर-मधुर मन्दस्मित हाससे सबको आनन्दित कर रहे थे।

उन्हें देखकर माता अदिति हाथ जोड़े हुए मन-ही-मन उन्हें प्रणाम कर परम आनन्दके सागरमें डूब रही थीं। उसी समय एक अलौकिक घटना घटी, वही चतुर्भुज श्रीप्रभु वामन-रूपधारी हो गये। यह देख माता अदितिके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उसी समय देवलोकसे ब्रह्मादि देवता, ऋषि-महर्षि तथा मुनिगण अदितिके आश्रममें आये। प्रजापति कश्यपजीने बालकका जातकर्म-संस्कार किया। महर्षियोंने उपनयन-संस्कार सम्पन्न कराया। भगवान् वामन ब्रह्मचारी वटु बने। तत्पश्चात् ब्रह्मचारीके वेशमें छत्र-दण्ड-कमण्डलु लिये भगवान् महर्षियोंके साथ दैत्यराज बलिके यज्ञ-स्थलकी ओर प्रस्थित हुए। उस समय उनकी शोभा अत्यन्त ही मनोहर थी।

दैत्यगुरु शुक्राचार्य सभी भृगुवंशीय ब्राह्मणोंके साथ यज्ञ-कार्यमें संलग्न थे। दैत्यराज बलि यज्ञमें दीक्षित हो चुके थे। अश्वमेध-यज्ञकी पूर्ण तैयारियाँ हो चुकी थीं, किंतु यज्ञके प्रारम्भ होते ही अनेक उत्पात होने लगे। पृथ्वी काँपने लगी, दिशाओंमें अन्धकार छा गया। हवा अत्यन्त तीव्रगतिसे प्रवाहित होने लगी, यज्ञ-मण्डपमें अनेक विघ्न होने लगे। अग्निदेवने हव्यभाग, आहुतियाँ लेनी छोड़ दीं। राजा बलि अत्यन्त चिन्तित हो उठे कि एकाएक यह विघ्न कैसे होने लगा। उन्होंने घबराकर शुक्राचार्यजीसे पूछा—'गुरुदेव ! यह सब क्या हो रहा है ? मुझसे कौन-सा अपराध हुआ है जो यज्ञमें विघ्न हो गया है, आप तो तीनों कालोंकी बात जानते हैं, बताइये, इसका क्या कारण है ? देव ! शीघ्र ही आप इस संकटको दूर करें।' उन्होंने कहा—'दैत्यराज ! नारायण श्रीविष्णु वामन-रूपसे देवमाता अदितिके यहाँ प्रकट हुए हैं, वे तुम्हारे यज्ञमें आ रहे हैं। उन्हींकी इच्छा तथा अमित प्रभावसे ये सब उपद्रव दिखायी दे रहे हैं।'

यज्ञमें भगवान्‌के आगमनकी बात सुनकर बलि बड़े प्रसन्न हुआ। उसने शुक्राचार्यजीसे कहा—'गुरुदेव ! मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये तो यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है। जिनका दर्शन बड़े-बड़े योगियोंको नहीं मिल पाता, वे ही चलकर मेरे यहाँ आ रहे हैं, आज मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। अब मुझे यज्ञकी पूर्णता अथवा अपूर्णताकी कोई चिन्ता नहीं है, किंतु गुरुदेव ! अब आप मेरा मार्ग-दर्शन कीजिये कि उनके यहाँ पधारनेपर मुझे क्या करना होगा।'

उन्होंने कहा—'दैत्यराज ! तुमने देवताओंको स्वर्ग-लोकसे खदेड़कर वहाँ अपना अधिकार जमा लिया है। उन्हें यज्ञके भागसे च्युत करके दैत्योंको ही यज्ञभागी बनाकर वेदादि शास्त्रोंकी मर्यादाको नष्ट किया है, जिससे देवगण, ऋषि, महर्षि आदि अत्यन्त कष्टमें हैं। देवकार्यकी सिद्धिके लिये ही नारायणने वामन-रूप धारण किया है। वे यहाँ आकर तुमसे कुछ याचना करेंगे। यदि तुम अपना पराभव नहीं चाहते हो तो दान देनेसे मुकर जाना। इसीमें तुम्हारी भलाई है।'

यह सुनकर बलिने कहा—'आचार्यप्रवर ! मैंने आजतक कभी किसीसे 'नहीं दूँगा'—ऐसा नहीं कहा, चाहे वह याचक निम्नकोटिका ही क्यों न रहा हो, फिर आज सर्वात्मा, लोकपति साक्षात् जनार्दन ही ब्रह्मचारी-याचकरूपमें यहाँ पधार रहे हैं तो मैं 'नहीं' कैसे कह सकता हूँ। मेरे लिये इससे बढ़कर श्रेयस्कर और क्या हो सकता है ? गुरो ! आपका मुझे इस प्रकारके पुण्यकार्य—श्रेष्ठ कर्मसे विरत करना सर्वथा अनुचित है।' शुक्राचार्यने समझ लिया कि प्रभुकी लीलासे यह सब होनेवाला है, अतः वे शान्त हो गये। यज्ञानुष्ठान पुनः प्रारम्भ हो गया।

उसी समय भगवान् वहाँ आ पहुँचे और यज्ञ-मण्डपकी ओर आते हुए दिखायी दिये। उनके दर्शनसे बलिको अति आनन्द हुआ। बलि तथा भृगुवंशीय सभी ब्राह्मण, ऋत्विज् आदि भगवान्के आतिथ्यके लिये उठ खड़े हुए। प्रसन्न होकर बलिने वामन भगवान्को एक श्रेष्ठ आसन प्रदान किया और स्वागतवाणीसे प्रभुका अभिनन्दन किया। उन्होंने उनके पाँव पखारे और पवित्र धोवनको मस्तकपर रखा तथा अर्घ्यादिसे उनकी पूजा की।

फिर हाथ जोड़े हुए राजा बलिने कहा—'ब्राह्मणश्रेष्ठ ! आज मैं कृतार्थ हो गया। आज मेरा वंश-कुल-पितर आदि सभी पवित्र हो गये। मैं धन्य हूँ जो आप मेरे घर पधारे। मेरा यज्ञ पूर्ण हो गया। देवाधिदेव ! आप मेरा प्रणाम स्वीकार करें। भगवन् ! मुझ दासको आज्ञा प्रदान करें कि मुझे क्या करना है। गोविन्द ! मेरा सम्पूर्ण राज्य, सुवर्ण, हाथी, घोड़े, वस्त्र, अलङ्कार, रत्नादि सभी आपके हैं। आप यज्ञके अवसरपर मुझे उपकृत करने यहाँ पधारे हैं। यज्ञमें ब्राह्मणको दान दिया जाता है, तभी यज्ञकी पूर्णता होती है। प्रभो ! मुझे अनुगृहीत करें।'

दैत्यश्रेष्ठ बलिकी उस प्रीतियुक्त वाणीसे प्रसन्न हो वामन भगवान्ने कहा—'राजन् ! सुवर्ण, ग्राम, रत्न आदि पदार्थ उनकी याचना करनेवालोंको दीजिये। मुझे तो अग्निहोत्रके लिये केवल तीन पग भूमि प्रदान कीजिये।'

उनकी बात सुनकर बलि हँसने लगे। उन्होंने कहा—'त्रैलोक्यविजयी बलिसे आप तीन पग धरती माँग रहे हैं। मेरे पास जो भी याचक बनकर आया, मैंने सदा उसे मुँहमाँगा दुर्लभ पदार्थ भी दानमें दिया है। आपको भूमि ही माँगनी हो तो जितनी चाहिये, मैं द्वीप-के-द्वीप दे सकता हूँ, आप माँगकर तो देखिये।'

वामन भगवान्ने मन-ही-मन मुसकराते हुए कहा—'दैत्यप्रवर ! मुझे तो केवल तीन पग ही भूमि चाहिये। यदि आपको देना हो तो 'हाँ' कहें अन्यथा मैं अन्यत्र जाऊँ। शीघ्रता करें, विलम्ब न करें।'

बलिने हँसते हुए कहा—'अच्छी बात है, जितनी आपकी इच्छा हो उतनी ले लें, मैं आपको निराश नहीं करूँगा।' यह कहकर दैत्यराज बलि भूमि-दानके लिये उद्यत हुए। गुरु शुक्राचार्य भगवान्की लीला समझ रहे थे, उन्होंने बलिको पुनः सावधान किया और कहा—'अरे मूर्ख ! तुम क्या करने जा रहे हो। ये साक्षात् नारायण हैं। वामनके रूपमें तुम्हें छलने आये हैं। ये दोनों पगोंसे पृथ्वी तथा आकाशको नाप लेंगे और तीसरे पगसे तुम्हें पातालमें भेज देंगे। कुछ तो विचार करो, क्यों दैत्य-जातिके सर्वनाशके लिये उद्यत हो ? मेरी बात मानो। अभी भी समय है, बुद्धिका आश्रय लो।' बलिने कहा—'गुरुदेव ! आपकी बात सत्य है, परंतु मैं भक्तप्रवर प्रह्लादजीका पौत्र हूँ। मैंने एक बार देनेकी प्रतिज्ञा कर ली है, अब चाहे मेरा सर्वस्व नष्ट हो जाय, स्वयं मेरा शरीर भी न रहे, परंतु अब मैं अपनी प्रतिज्ञा वापस नहीं ले सकता। असत्यसे बढ़कर अन्य कोई अधर्म नहीं है।' शुक्राचार्यने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी आज्ञाका उल्लङ्घन देखकर बलिको शाप दे दिया—'मूर्ख ! तू है तो अज्ञानी, परंतु अपनेको बड़ा पण्डित मानता है। तू मेरी उपेक्षा करके गर्व कर रहा है। तूने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है। इसलिये तू शीघ्र ही अपनी राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो जायगा।'

गुरुदेवके शाप देनेपर भी महात्मा बलि अपनी प्रतिज्ञासे डिगे नहीं। उन्होंने वामन भगवान्‌की विधिपूर्वक पूजा की। महारानी विन्ध्यावली जलसे पूर्ण कलश ले आयीं। बलि भगवान्‌के पाँव पखारने लगे और महारानी विन्ध्यावली कलशकी धार राजाके हाथमें देने लगीं। तीन पग दानके संकल्पका वचन पूरा होनेवाला ही था कि दैत्यगुरु शुक्राचार्यने सूक्ष्मरूपमें कलशके अंदर प्रविष्ट होकर जलकी धाराको अवरुद्ध कर दिया, जिससे संकल्प पूरा न हो सके।

वामन भगवान् तो अन्तर्यामी हैं, वे घट-घटकी बात जाननेवाले हैं, उन्होंने कुशाकी नोक कलशके मुँहमें वेगसे डाल दी, जिससे शुक्राचार्यकी बायीं आँख नष्ट हो गयी। वे सूक्ष्मरूपसे बाहर आकर यथावत् बैठ गये। कलशसे जलकी धारा फिर गिरने लगी। संकल्प पूर्ण हुआ और राजा बलि तीन पग भूमि-दानके लिये वचनबद्ध हो गये।

उसी समय अनन्त भगवान्‌का वह त्रिगुणात्मक वामनरूप विराट्-स्वरूपवाला हो गया। पृथ्वी, आकाश, दिशाएँ, स्वर्ग, पाताल, समुद्र, पशु-पक्षी, मनुष्य, देवता और ऋषि—सब उस विराट्स्वरूपमें दिखायी देने लगे। उसे देखकर दैत्यगण भयभीत हो उठे। उस समय भगवान्‌ने एक पगसे सम्पूर्ण पृथ्वी नाप ली, दूसरे पगसे उन्होंने स्वर्गको भी नाप लिया। उनका वह पग ऊपरकी ओर जाता हुआ महर्लोक, जनलोक, तपोलोकसे भी ऊपर सत्यलोकमें पहुँच गया। अब तृतीय पगके लिये कोई स्थान बचा नहीं था। तब विराट्रूपधारी श्रीहरिने बलिसे कहा—'दैत्येन्द्र ! अब तो तुम ऋणी हो गये, जिसके परिणामस्वरूप घोर बन्धनकी प्राप्ति होती है। इसलिये या तो तुम मेरा तीसरा पग पूरा करो अन्यथा मेरे बन्धनमें आ जाओ।' विवश हो बलि वारुण पाशसे बँध गये।

ब्रह्माजीने प्रभुसे बलिको वारुण पाशसे मुक्त करनेके लिये निवेदन किया, तब प्रभुने कहा—'ब्रह्मन् ! मैं जिसपर कृपा करता हूँ, उसका धन छीन लिया करता हूँ। जब मनुष्य धनके मदसे मतवाला हो जाता है, तब वह मेरा तथा अन्य लोगोंका तिरस्कार करने लगता है। यह जीव अनेक जन्मोंमें भटकता हुआ मेरी कृपासे मनुष्य-जन्म प्राप्त करता है और यदि वह कुलीनता, कर्म, अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य और धन आदिके कारण अभिमानी न हो तो समझना चाहिये कि प्रभुकी कृपा हो रही है। यह दैत्यराज बलि दानव और दैत्य दोनों ही वंशोंमें अग्रगण्य और उनकी कीर्ति बढ़ानेवाला है। मैंने इसका धन छीन लिया, राजपदसे च्युत कर दिया, बन्धनमें डाल दिया, गुरु शुक्राचार्यद्वारा भी यह शापग्रस्त हुआ, परंतु इस दृढ़व्रतीने अपना सत्य-संकल्प नहीं छोड़ा। अतः मैंने इसे वह स्थान दिया है, जो बड़े-बड़े देवताओंको भी बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होता है। यह सावर्णि-मन्वन्तरमें इन्द्र होगा। तबतक यह सुतललोकमें रहे।' भगवान्‌ने बलिसे कहा—'दैत्यप्रवर ! मैं हाथमें गदा लिये तुम्हारे प्रासादके चारों द्वारोंपर स्थित रहूँगा। जिस द्वारसे भी तुम निकलोगे, हर समय तुम्हें मेरा दर्शन होता रहेगा।' बलिके बन्धन खुल गये। वह दण्डवत् प्रभुके चरणोंमें लोट गया। प्रभुके श्रीचरणोंने उसके मस्तकका स्पर्श किया। बलि निर्निमेष-दृष्टिसे भगवान्‌के मुखकमलको देखता जा रहा था। उसकी आँखोंसे अश्रु-धारा प्रवाहित हो उठी, शरीरमें रोमाञ्च हो आया। भगवान्‌की आज्ञा शिरोधार्यकर बलि सपरिवार तथा पितामह प्रह्लादजीके साथ सुतललोकके अखण्ड साम्राज्यका अधिपति बना। शुक्राचार्यने प्रभुकी आज्ञासे यज्ञ-कार्य पूर्ण किया। भगवान्‌ने इन्द्रको इन्द्रासन प्रदान किया। देवगणोंको यज्ञभागी बनाया। सभी देवगण विमानमें बैठकर भगवान्‌की स्तुति करते हुए स्वर्गकी ओर प्रस्थित हुए। भगवान् श्रीहरिकी लीला पूर्ण हो चुकी थी। वे अन्तर्हित हो गये। वे एक रूपसे देवराज इन्द्रके यहाँ रहने लगे और एक रूपसे दैत्यराज बलिके यहाँ[१]।

१-पद्मपुराणमें वामन भगवान्‌के दो बार अवतार लेनेकी चर्चा आयी है। उत्तरखण्ड अध्याय २५१में पूर्वोक्त कथा ही कही गयी है, जो वैवस्वत मन्वन्तरकी है, किंतु सृष्टिखण्ड अध्याय २२ वेंमें जो वामनावतारकी कथा आयी है वह सत्ययुगकी है। वहाँ बलिके स्थानपर दैत्यराज वाष्कलिसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ति बड़ी है या शक्ति ?

'मुनिप्रवर ! आप तो पृथ्वीपर निवास करनेवाले श्रेष्ठ ऋषि प्रतीत होते हैं। रसातलमें आपके पधारनेका क्या कोई विशेष प्रयोजन है ?'—महातेजस्वी प्रह्लादने अमिततेजा च्यवन ऋषिका यथायोग्य पूजनकर विनम्रता-पूर्वक प्रश्न किया।

तब नर्मदा-तटपर 'नकुलीश्वर-तीर्थ'में स्नानार्थ आये ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ महातपस्वी च्यवनने एक भूरे रंगके विषधरद्वारा उन्हें पकड़कर यहाँ लानेतकका सम्पूर्ण वृत्तान्त उन्हें सुना दिया।

'महामुने ! कष्टके लिये मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ, पर इस रूपमें मेरा कल्याण ही हुआ कि मुझे आपके दर्शन और आतिथ्यका सुअवसर अनायास प्राप्त हो गया। भगवन् ! बहुत दिनोंसे पृथ्वीके किसी महान् तीर्थपर भ्रमणकी आकाङ्क्षा मेरे मनमें उठ रही है। इस विषयमें आप मेरा मार्गदर्शन करें।'

ऋषि च्यवनसे नैमिषारण्यका वर्णन सुनकर दैत्यराज प्रह्लाद महाबलवान् दिति-पुत्रों एवं दानवोंसहित यहाँ आये। तीर्थ-स्नानके पश्चात् प्रह्लादने वनमें घूमते हुए एक अद्भुत दृश्य देखा—कृष्ण-मृगचर्म धारण किये दो जटाजूटधारी मुनि तपस्यामें निरत हैं। पर यह कैसी तपस्या ? जिस विशाल शालवृक्षके नीचे बैठे वे तपस्या कर रहे हैं, वह तो बाणोंसे पूर्णतया आच्छादित है। यही नहीं, इन मुनियोंके पार्श्वमें दिव्य 'शार्ङ्ग' तथा 'आजगव' नामक दो दिव्य धनुष और अक्षय तूणीर भी रखे हैं। दैत्यराज इस विरोधाभासको देखकर मुनियोंको दम्भी मान बैठे और उनके निकट जाकर बोले—'आप दोनों यह दम्भपूर्ण धर्मविनाशक कार्य क्यों कर रहे हैं ? एक ओर जटाजूटका भार तो दूसरी ओर श्रेष्ठ अस्त्र भी ?'

'दैत्येश्वर ! तुम इससे चिन्तित क्यों हो गये ? सामर्थ्यवान् जो भी कार्य करता है, उसे वही शोभा देनेवाला बन जाता है।' तपस्वियोंने समझाया।

'नहीं, धर्मसेतुके स्थापित करनेवाले मुझ दैत्येन्द्रके रहते आपका यह अंहभाव मात्र प्रवञ्चना है।'—प्रह्लादने आवेशमें कहा।

नर-नारायण नामक दोनों मुनियोंने प्रह्लादको समझाया, पर अहंभाववश प्रह्लादने क्रुद्ध होकर प्रतिज्ञा कर ली कि 'मैं युद्धमें आप दोनोंको परास्त करूँगा।'

ब्रह्मास्त्र एवं माहेश्वरास्त्र-जैसे अस्त्रोंका परस्पर प्रयोग भी हुआ, पर प्रह्लाद निरन्तर पीछे हटते चले गये। उन्होंने मुद्गर, प्रास, परिघ, शक्ति आदि अनेक अस्त्रोंका प्रयोग किया, पर फिर भी वे उनमेंसे पुरातन ऋषि महापराक्रमी लोकपति नारायणको पराजित न कर सके।

निराश प्रह्लादजीने वैकुण्ठ-धाममें जाकर भगवान् विष्णुकी शरण ली और उनसे अपनी पराजयका कारण जानना चाहा।

'प्रह्लाद ! महाबाहु धर्मपुत्र नारायण तुम्हारे द्वारा अजेय हैं। वे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ परमज्ञानी ऋषि हैं। वे सभी देवता एवं असुरोंसे भी अजेय हैं।'

'पर भगवन् ! मैंने तो उनके वेषको देखकर आवेशमें जो प्रतिज्ञा कर ली है, उसका क्या होगा ?' प्रह्लादने विनयपूर्वक पूछा।

'दानवश्रेष्ठ ! जहाँ शक्ति पराजित हो जाती है, वहाँ भक्ति विजयी होती है। नारायणपर विजय चाहते हो तो भक्तिसे उनकी आराधना करो। इसीसे वे सुसाध्य हैं। नारायण-रूपमें मैं ही तो वहाँ विश्व-मङ्गलकी कामनासे तपस्या-रत हूँ'—

सोऽहं दानवशार्दूल लोकानां हितकाम्यया।
धर्मं प्रवर्तापयितुं तपश्चर्यां समास्थितः॥
तस्माद्यदीच्छसि जयं तमाराधय दानव।
तं पराजेष्यसे भक्त्या तस्माच्छुश्रूष धर्मजम्॥

(वामन० ८।४१-४२)

भगवान् विष्णुके कथनानुसार प्रह्लादजीने बदरिकाश्रममें जाकर भगवान् नर-नारायणको अपनी श्रद्धा-भक्तिसे वशमें

सम्बन्धित कथा है। इन्द्र तथा भगवान् वामन वाष्कलिके यहाँ जाते हैं। इन्द्रके कहनेपर वाष्कलि तीन पग भूमि दान करता है और अन्तमें भगवान्ने उसे भक्ति प्रदान कर रसातल भेज दिया और कहा कि वराह-अवतार धारण कर मैं पातालमें प्रवेश करूँगा तब तुम्हारा उद्धार करूँगा। शेष कथा पूर्ववत् ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया और उनसे वरदानके रूपमें यह माँगा—'अधोक्षज ! मैं महापराक्रमीके रूपमें नहीं, अपितु आपके भक्तके रूपमें संसारमें चर्चित होऊँ।'—

'त्वत्पादपङ्कजाभ्यां हि ख्यातिरस्तु सदा मम।'

वामनपुराणमें वाराणसी

एक बार प्रजापतियोंमें श्रेष्ठ दक्ष प्रजापतिने एक विशाल यज्ञका आयोजन किया। उस यज्ञमें उन्होंने इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओंको तो निमन्त्रित किया ही था, साथ ही ऋषियों और ऋषिपत्नियोंके साथ धर्मको भी उनकी पत्नी अहिंसाके साथ निमन्त्रित किया था। इस यज्ञमें उन्होंने शिवसहित सतीको छोड़कर अपने सभी सम्बन्धियोंको भी आवाहित किया था।

नारदजीने पुलस्त्य ऋषिसे जो वामनपुराणकी कथा कह रहे थे, पूछा—'दक्ष प्रजापतिने महेश्वरको ही आमन्त्रित क्यों नहीं किया ?' तब पुलस्त्यजीने बताया कि 'शंकर कपाली हैं, इसलिये उन्हें यज्ञमें आमन्त्रित नहीं किया गया था।' नारदजीने फिर पूछा कि 'कृपया यह बतायें कि भगवान् शिव किस कारण 'कपाली' हो गये ?' महर्षि पुलस्त्यने कहा कि इसके सम्बन्धमें एक बहुत पुरानी कथा है, जो आदिपुराणमें ब्रह्माजीके द्वारा कही गयी है, आप ध्यान देकर सुनें, मैं उसे कहता हूँ—

महर्षि पुलस्त्यने कहा कि प्रलयकालमें जब यह सम्पूर्ण संसार जलमें निमग्न था, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, वायु और अग्नि किसीका भी अस्तित्व नहीं था तथा सम्पूर्ण जगत् भाव एवं अभाव—दोनोंसे रहित था और तब अवस्थाका भी ज्ञान नहीं था, ऐसे समयमें भगवान् विष्णुका राजस-रूप पञ्चमुख-स्वरूपमें—वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञाताके रूपमें प्रकट हुआ। उसी समय एक अन्य स्वरूप उत्पन्न हुआ, जो त्रिलोचन, शूलपाणि तथा रुद्राक्षधारी था। इन्हीं दोनोंके साथ-साथ भगवान्ने अहंकारको भी प्रकट किया, जिससे वे दोनों आक्रान्त हो गये। त्रिलोचन शिवने पञ्चमुख ब्रह्मासे पूछा—'तुम कौन हो, यहाँ कैसे आये और तुम्हारी सृष्टि किसने की है ?' ब्रह्मा भी अहंकारसे ग्रस्त थे, अतः उन्होंने उत्तर दिया—'आप बतायें कि आप कौन हैं और आपके माता-पिता कौन हैं ?' शिवजी इसका उत्तर न दे सके और लज्जित-से खड़े रहे। फिर ब्रह्माके पाँचवें मुखने कहा—'त्रिलोचन ! मैं आपको जानता हूँ, आप दिगम्बर और वृषारोही तथा प्रलय करनेवाले हैं।' तब शिवजी अपने तीसरे नेत्रसे ब्रह्माके उस पाँचवें मुखको देखने लगे, जिससे कि वह भस्म हो जाय, किंतु वह भस्म नहीं हुआ और उपहास करता हुआ बोला—'जलमें आघात करनेसे बुद्बुद तो उत्पन्न होते हैं, पर क्या उन बुलबुलोंमें कोई शक्ति होती है ?' यह सुनते ही भगवान् शंकरने ब्रह्माके उस मुखको अपने नखके अग्रभागसे काट डाला।

शिवजीके इस कृत्यसे ब्रह्माका पाँचवाँ मुख कट तो गया, किंतु उनपर दो विपत्तियाँ एक ही साथ टूट पड़ीं। एक तो वह कटा हुआ सिर उनकी हथेलीमें इस प्रकार चिपक गया कि उसे छुड़ाना सम्भव नहीं हो रहा था और दूसरे उसी समय एक भयानक काली स्त्री ब्रह्महत्या भी प्रकट होकर शिवजीके शरीरमें समा गयी, जिससे महेश्वर व्यग्र हो उठे। अपनी इसी व्यग्रतामें वे अपने त्राणके लिये भटक रहे थे कि कुरुक्षेत्रमें उन्हें गरुडध्वजके दर्शन हुए। भगवान् गरुडध्वजने उनसे कहा कि 'यहाँसे पूर्व प्रयागमें मेरे अंशसे उत्पन्न 'योगशायी' नामसे विख्यात देवता नित्य निवास करते हैं। वहाँसे दक्षिण वरुणा नामकी एक नदी है, उसीके वामपादमें 'असि' नामसे प्रसिद्ध एक दूसरी नदी भी है। उन दोनोंके मध्यका प्रदेश 'योगशायी-क्षेत्र' है। वह तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ तथा सभी पापोंसे छुड़ा देनेवाला तीर्थ है। वहीं वाराणसी नगरी भी है। सुरेश! वाराणसीके महान् आश्रममें सभी पापोंको दूर करनेवाले लोल नामक सूर्य निवास करते हैं। वहीं दशाश्वमेध नामका स्थान भी है, जहाँ मेरे अंशस्वरूप केशव भी स्थित हैं। वहाँ जाकर आप पापसे छुटकारा पा जायँगे।'

भगवान् शिवने वाराणसीमें आकर लोलार्क भगवान्का दर्शन किया और वहाँके तीर्थोंमें स्नान करके ब्रह्महत्याके पाप-तापसे मुक्त होकर वे पुनः केशवके दर्शनार्थ गये। उन्होंने केशवसे कहा कि 'मेरा ब्रह्महत्याका पाप तो छूटा, किंतु वह कटा सिर अभी भी हथेलीसे लगा ही है।' केशवने उन्हें एक कमलोंसे भरे दिव्य सरोवरमें स्नान करनेको कहा। शिवजीके वहाँ स्नान करनेमात्रसे वह सिर उनकी हथेलीसे छूट गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी स्थानका नाम 'कपालमोचन' पड़ा और उसी घटनाके कारण भगवान् शिव 'कपाली' नामसे विख्यात हुए।

महर्षि पुलस्त्यने दक्षयज्ञके प्रसंगको आगे बढ़ाते हुए बताया कि जयाने, जो सतीकी माताकी बहन थी, सतीको जब इसकी सूचना दी तो सतीको आन्तरिक दुःख हुआ और उससे उत्पन्न ज्वालामें वे जलकर मर गयीं। तब शिवजीके क्रोधसे वीरभद्र आदि रुद्रगणोंकी उत्पत्ति हुई, जिन्होंने प्रथमतः धर्मराज—यमको भी हराकर फिर दक्षके यज्ञको भी विध्वंस कर दिया, किंतु भगवान् विष्णुसे उन्हें भी मुँहकी खानी पड़ी।

इस कथानकमें पुराणकर्तने सृष्टिके आदिमें तीनों देवताओंको प्रतीकात्मक रूपमें चित्रित करके बताया है कि सात्त्विक, राजस और तामस शक्तियोंके माध्यमसे सृष्टिका जो उद्भव हुआ, उसमें 'अहंतत्त्व' एक प्रधान तत्त्व बना, जो सृष्टिके आदिसे उसके अन्ततक प्रेरणाका आधार हुआ, किंतु यह अहंतत्त्व अन्ततः शुद्ध चेतनाके सात्त्विक प्रतीक महाविष्णुसे पराभूत होकर ही मुक्तिलाभ पाता है। साधक अपने साधनाक्रममें तामस शक्तिको राजसमें और राजसको सात्त्विकमें परिवर्तित करता चलता है, तब वह अन्ततः अपने छोटे-से अहंतत्त्वको विराट् स्रष्टा विष्णुके अहंतत्त्वमें समर्पित करके मोक्ष-पद प्राप्त करता है। साधना-जगत्में मूलाधारचक्र युक्तत्रिवेणी तथा आज्ञाचक्र मुक्तत्रिवेणीके नामसे जाना जाता है। साधनाका प्रारम्भ—मुक्ति और मोक्षके प्रयासका प्रारम्भ होता है युक्तत्रिवेणी प्रयागसे और उसका समापन होता है मुक्तत्रिवेणी काशीमें। शिवजीका ब्रह्महत्यासे मुक्त होनेका तात्त्विक संकेत साधनाके उसी सूत्रमें पिरोया हुआ है।

(आ० प्र०)

सुदर्शनचक्रकी कथा

सुदर्शनचक्र, जो भगवान् विष्णुका अमोघ अस्त्र है और जिसने देवताओंकी रक्षा तथा राक्षसोंके संहारमें अतुलनीय भूमिकाका निर्वाह किया है और करता है, क्या है और कैसे भगवान् विष्णुको प्राप्त हुआ—इसकी कथा वामनपुराणमें सुन्दर और प्रतीकात्मक ढंगसे दी गयी है।

प्राचीन कालमें वेद-वेदाङ्गमें पारङ्गत एक गृहस्थ ब्राह्मण थे, जिनका नाम था 'वीतमन्यु'। उनकी पतिव्रता एवं गुण-शील-सदाचार-युक्ता पत्नी थीं आत्रेयी, जो धर्मशीलाके नामसे प्रसिद्ध थीं। उन दम्पतिके पुत्रका नाम था उपमन्यु। यह ब्राह्मण-परिवार दरिद्रतासे इस प्रकार जर्जरित था कि धर्मशीला अपने पुत्रको दूध भी नहीं दे सकती थीं। वह बालक दूधके स्वादसे पूर्णतया अनभिज्ञ था। धर्मशीला उसे चावलका धोवन ही दूध कहकर पिलाया करती थीं। एक दिन ऋषि वीतमन्यु अपने पुत्रके साथ कहीं प्रीतिभोजमें गये। वहाँ उस तपस्वी बालक उपमन्युने दूधसे बनी हुई खीरका भोजन किया, तब उसे दूधके स्वादका पता लग गया। घर आकर उसने चावलके धोवनको पीनेसे इनकार कर दिया। दूध पानेके लिये हठपर अड़े बालकसे उसकी माँ धर्मशीलाने आँसुओंसे भरी आँखोंसे उसे देखते हुए कहा—'पुत्र! यदि तुम दूधको क्या, उससे भी अधिक पुष्टिकारक तथा स्वादयुक्त पेय पीना चाहते हो तो विरूपाक्ष महादेवकी सेवा करो। उनकी कृपासे दूधको कौन कहे, अमृत भी प्राप्त हो सकता है।' उपमन्युने अपनी माँसे पूछा—'माता! आप जिन विरूपाक्ष भगवान्की सेवा-पूजा करनेको कह रही हैं, वे कौन हैं?' धर्मशीलाने विरूपाक्ष भगवान्की कथा कहते हुए अपने पुत्रको बताया कि 'प्राचीन कालमें श्रीदामा नामसे विख्यात एक महान् असुरराज था। उसने सारे संसारको अपने अधीन करके लक्ष्मीको भी अपने वशमें कर लिया। उसके यश और प्रतापसे तीनों लोक श्रीहीन हो गये। उसका मन इतना बढ़ गया कि वह भगवान् विष्णुके श्रीवत्सको ही छीन लेनेकी योजना बनाने लगा। उस महाबलशाली असुरकी इस दूषित मनोभावनाको जानकर उसे मारनेकी इच्छासे भगवान् विष्णु महेश्वरके पास गये। उस समय योगमूर्ति महेश्वर हिमालयकी ऊँची चोटीपर योगमग्न थे। तब भगवान् विष्णुने जगन्नाथके पास जाकर एक हजार वर्षतक पैरके अँगूठेपर खड़े रहकर परमब्रह्मकी उपासना करते रहे।

भगवान् विष्णुकी इस कठोर साधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने उन्हें सुदर्शनचक्र प्रदान किया। उन्होंने सुदर्शनचक्रको देते हुए भगवान् विष्णुसे कहा—'देवेश!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सुदर्शन नामका श्रेष्ठ आयुध बारह अरों, छः नाभियों एवं दो युगोंसे युक्त, तीव्र गतिशील और समस्त आयुधोंका नाश करनेवाला है। सज्जनोंकी रक्षा करनेके लिये इसके अरोंमें देवता, राशियाँ, ऋतुएँ, अग्नि, सोम, मित्र, वरुण, शचीपति इन्द्र, विश्वेदेव, प्रजापति, हनुमान्, धन्वन्तरि, तप—ये तथा चैत्रसे लेकर फाल्गुनतकके बारह महीने प्रतिष्ठित हैं। विभो! आप इसे लेकर निर्भीक होकर शत्रुओंका संहार करें।'

शिवजीकी यह बात सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—'शम्भो! मुझे यह कैसे मालूम होगा कि यह अस्त्र अमोघ है? विभो! यदि यह अस्त्र आपको प्रभावित कर सके तभी मैं इसे अमोघ और निरन्तर गतिशील मानूँगा। यदि आप आज्ञा दें तो इसकी परीक्षा करनेके लिये मैं इसका प्रयोग आपपर ही करूँ।'

शिवजीने कहा—'यदि आप ऐसा सोचते हैं तो आप निश्चिन्त होकर इसे मेरे ऊपर चलाइये और इसकी परीक्षा कर लीजिये।'

भगवान् विष्णुने जब सुदर्शनचक्रका प्रयोग शिवजीपर किया तो अजर-अमर शिवजी भी तीन खण्डोंमें कट गये। इन तीन खण्डोंके नाम पड़े—विश्वेश, यज्ञेश तथा यज्ञयाजक। शिवजीको तीन खण्डोंमें कटा देखकर भगवान् विष्णु लज्जित हो गये और वे बार-बार सदाशिवको प्रणाम करने लगे। भगवान् विष्णुकी यह दशा देखकर सदाशिव बोले—'महाबाहो! चक्रकी नेमिद्वारा मेरा यह प्राकृत विकार ही काटा गया है। मैं और मेरा स्वभाव तो क्षत नहीं हुआ। यह तो सर्वथा अच्छेद्य तथा अदाह्य है ही। केशव! आजसे मेरा एक अंश हिरण्याक्ष, दूसरा सुवर्णाक्ष और तीसरा विरूपाक्षके नामसे जाना जायगा। ये मेरे तीनों अंश आराधनासे महान् पुण्य प्रदान करनेवाले होंगे। विभो! आप उठें और उस असुरका वध कर डालें।' तब भगवान् विष्णुने उस सुदर्शनचक्रसे असुर श्रीदामाको युद्धमें परास्त करके मार डाला।'

यह सुनकर वीतमन्युके बलवान् और तेजस्वी पुत्र उपमन्युने भी भगवान् शिवके एक रूप विरूपाक्षकी उपासना करके अपना अभीष्ट प्राप्त किया।

कालातीत सत्तासे उत्पन्न और प्राप्त सुदर्शन महाकालका एक प्रसाद—एक प्रतीक है, जो अत्यन्त गतिशील और अमोघ है। देवता, दानव और मनुष्य, चर और अचर सभीसे अधिक शक्तिमान् वह चक्र आपातदृष्टिसे देखनेपर सुन्दर है और वही भगवान् हरिका परम आयुध है। (आ० प्र०)

बलिद्वारा भगवान् वामनका संस्तवन

राजा बलिने भगवान्से प्रार्थना की—प्रभो! मेरे पितामह प्रह्लादजीकी कीर्ति सारे जगत्में प्रसिद्ध है। वे आपके भक्तोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं। उनके पिता हिरण्यकशिपुने आपसे वैर-विरोध रखनेके कारण उन्हें अनेकों प्रकारके दुःख दिये। परंतु वे आपके ही परायण रहे, उन्होंने अपना जीवन आपपर ही निछावर कर दिया। उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि शरीरको लेकर क्या करना है, जब यह एक-न-एक दिन साथ छोड़ ही देता है। जो धन-सम्पत्ति लेनेके लिये स्वजन बने हुए हैं, उन डाकुओंसे अपना स्वार्थ ही क्या है? पत्नीसे भी क्या लाभ है, जब वह जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रमें डालनेवाली ही है। जब मर ही जाना है, तब घरसे मोह करनेमें भी क्या स्वार्थ है? इन सब वस्तुओंमें उलझ जाना तो केवल अपनी आयु खो देना है। ऐसा निश्चय करके मेरे पितामह प्रह्लादजीने, यह जानते हुए भी कि आप लौकिक दृष्टिसे उनके भाई-बन्धुओंके नाश करनेवाले शत्रु हैं, आपके ही भयरहित एवं अविनाशी चरणकमलोंकी शरण ग्रहण की थी। क्यों न हो—वे संसारसे परम विरक्त, अगाध बोधसम्पन्न, उदारहृदय एवं संतशिरोमणि जो हैं।

(श्रीमद्भा० ८।२२।८-१०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूर्मपुराण

भगवान् विष्णुने कूर्म-अवतार धारणकर परम विष्णुभक्त राजा इन्द्रद्युम्नको जो भक्ति,ज्ञान एवं मोक्षका उपदेश किया था,उसी उपदेशको पुनः भगवान् कूर्मने समुद्रमन्थनके समय इन्द्रादि देवताओं तथा नारदादि ऋषिगणोंसे कहा, वही कथा कूर्म-पुराणके नामसे विख्यात है। उसी उपदेश-कथाको नैमिषारण्यके द्वादशवर्षीय महासत्रमें रोमहर्षण सूतजीने शौनकादि अट्ठासी हजार ऋषियोंसे कहा था। विष्णुपुराण (३।६।२१-२४)में प्राप्त महापुराणोंकी सूचीमें इसे पंद्रहवाँ पुराण कहा गया है। स्वयं कूर्मपुराणने भी अपनेको पंद्रहवाँ पुराण कहा है (१।१।२१)।

नारदीयपुराणके पूर्वभाग अध्याय १०६में कूर्मपुराणका जो वर्णन मिलता है उसके अनुसार—(क) कूर्मपुराणके पूर्व तथा उपरि—ये दो विभाग हैं तथा (ख) मूल कूर्मपुराण—(१) ब्राह्मी, (२) भागवती, (३) सौरी और (४) वैष्णवी—इन चार संहिताओंमें विभक्त था। इसी बातको कूर्मपुराणने स्वयं कहा है—

ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्तिताः। चतस्रः संहिताः पुण्या धर्मकामार्थमोक्षदाः॥
इयं तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैश्च सम्मता। भवन्ति षट् सहस्राणि श्लोकानामत्र संख्यया॥

(१।१।२२-२३)

उपर्युक्त चार संहिताओंमेंसे वर्तमानमें केवल ब्राह्मीसंहिता ही उपलब्ध है, इसमें परब्रह्मका स्वरूप यथार्थरूपसे बतलाया गया है, इसी कारण यह ब्राह्मीसंहिता कहलाती है[1]। यही कूर्मपुराण (ब्राह्मीसंहिता) पूर्व तथा उपरि—दो भागोंमें विभक्त है। पूर्वभागमें ५३ और उपरिभागमें ४६ कुल ९९ अध्याय हैं। इसकी श्लोक-संख्या छः हजार है। शेष तीन संहिताएँ अप्राप्य हैं। **मत्स्यपुराण** (५३।४७)के अनुसार मूल कूर्मपुराणमें १८,००० श्लोक थे—'**अष्टादशसहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुगं शिवम्।**' मूल ग्रन्थका केवल तृतीयांश ही उपलब्ध है।

ऐसा प्रतीत होता है कि जिस समय रोमहर्षण सूतजीने नैमिषारण्यमें ऋषियोंसे कूर्मपुराणका कथन किया, उस समय चार संहिताओंमेंसे कूर्मपुराण केवल ब्राह्मीसंहितामात्र ही था, क्योंकि वहाँ कहा गया है—

एतद्वः कथितं विप्रा भोगमोक्षप्रदायकम्। कौर्मं पुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः॥(कूर्म० २।४४।६७)

वर्ण्य विषय

नारदीयमहापुराण (१।१०६)में कूर्मपुराणके चारों संहिताओंके विषयोंको क्रमशः बतलाया गया है, किंतु वर्तमानमें जो कूर्मपुराण उपलब्ध है, उसमें नारदीयपुराणमें वर्णित ब्राह्मीसंहिताके ही विषय मिलते हैं। शेष तीन संहिताओंका प्रतिपाद्य विषय वर्तमान कूर्मपुराणमें नहीं मिलता है।

इस पुराणका आरम्भ रोमहर्षण सूतजी तथा शौनकादि ऋषियोंके संवादसे होता है। सूतजीने पुराण-लक्षण, अठारह महापुराण तथा अठारह उपपुराणोंके नामोंका परिगणन करते हुए कूर्मावतारकी संक्षिप्त कथा बतलायी। तदनन्तर कूर्मावतारके प्रसंगमें लक्ष्मीकी उत्पत्ति तथा उनका माहात्म्य वर्णित है। फिर भगवान् कूर्म तथा ऋषियोंके संवादमें लक्ष्मी तथा इन्द्रद्युम्नका वृत्तान्त है। फिर इन्द्रद्युम्नद्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति , वर्णों एवं आश्रमोंका एवं उनके कर्तव्योंका वर्णन, परब्रह्मके रूपमें शिवतत्त्व तथा महेश्वरका माहात्म्य वर्णित है। कूर्मरूप विष्णुने शिवको ही परम तत्त्व तथा मुख्य देव कहा है। उसके बाद सृष्टि-वर्णन, कल्प, मन्वन्तर तथा युगोंकी कालगणना, पृथ्वीके उद्धार-प्रसंगमें वराहावतारकी कथा और जगत्की उत्पत्तिका संक्षेपमें वर्णन है। फिर शंकर-पार्वती-

१ – ब्राह्मी पौराणिकी चेयं संहिता पापनाशिनी। अत्र तत् परमं ब्रह्म कीर्त्यते हि यथार्थतः॥ (कूर्म० २।४४।१३२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरित, पार्वतीके सहस्रनाम, योगशास्त्र, भृगुवंश, स्वायम्भुव मनु-वंश, पृथुवंश, देव, असुर, नाग, गन्धर्व, किन्नर, विश्वेदेव, वसु तथा मरुद्गणोंकी उत्पत्तिके आख्यान, सतीदेह-त्याग, दक्षयज्ञ-विध्वंस, दक्षकी कन्याओंका वंश, वामनावतारकी कथा, कश्यप और अदितिसे उत्पन्न सूर्य तथा चन्द्रवंश और अनसूयाकी संततिका वर्णन है। २४वें अध्यायमें यदुवंशके वर्णनमें भगवान् श्रीकृष्णका मङ्गलमय चरित्र वर्णित है। श्रीकृष्णद्वारा शिवकी तपस्या तथा शिवस्तुति और श्रीकृष्णको शिवस्वरूपके दर्शन तथा उनकी कृपासे श्रीकृष्णको जाम्बवतीसे शाम्बनामक पुत्रकी प्राप्ति तथा महर्षि मार्कण्डेयसे लिङ्गमाहात्म्यका आख्यान कहा गया है और फिर श्रीकृष्णका स्वधामगमन वर्णित है (अ० २५—२७)। अ० २८—३०में वेदव्यासजीद्वारा अर्जुनको चारों युगोंके स्वभाव तथा युगधर्मोंके विषयमें बतलाया गया है। अनन्तर वेदव्यास तथा उनके शिष्य जैमिनि, पैल तथा सुमन्तु आदिके संवादमें मोक्ष-प्राप्तिके साधनोंके वर्णन-प्रसंगमें लगभग चार अध्यायोंमें वाराणसी-तीर्थ तथा गङ्गा एवं शिवलिङ्गोंका माहात्म्य विस्तारसे वर्णित है। महर्षि मार्कण्डेयद्वारा युधिष्ठिरके प्रति प्रयागका माहात्म्य-वर्णन तथा भुवनकोषमें सप्त द्वीपों, सप्त महासागरों, वर्षों, जम्बूद्वीप, पर्वतों, नदियों, चौदह लोकों, देवादिकोंकी विविध पुरियों आदिके वर्णनके साथ ज्योतिःसंनिवेश अर्थात् सूर्य तथा अन्य आकाशीय पिण्डोंकी स्थिति तथा संचार एवं ध्रुवसे उनका सम्बन्ध विस्तारसे प्रतिपादित है। मन्वन्तर-कीर्तनमें विष्णुमाहात्म्य तथा वैवस्वत मन्वन्तरके २८ द्वापरयुगोंके २८ व्यासोंका उल्लेख है, जिन्होंने अपने-अपने द्वापरोंमें वेदोंका शाखा-विभाग किया। २८वें या अन्तिम द्वापरमें कृष्ण-द्वैपायन व्यास हुए, जिन्होंने वेदको चार संहिताओंमें विभक्त किया और प्रत्येक संहिताको एक-एक शिष्यको पढ़ाया। ऋग्वेद पैलको, यजुर्वेद वैशम्पायनको, सामवेद जैमिनिको और अथर्ववेद सुमन्तुको पढ़ाया। अन्तमें वैवस्वत-मन्वन्तरमें शिवके अनेक अवतारोंके वर्णनके साथ सात भावी मन्वन्तरोंका नाम परिगणित है। यहाँ कूर्मपुराणका पूर्वभाग पूर्ण हो जाता है।

उत्तरभागमें मुख्य रूपसे ईश्वरगीता, व्यासगीता, तीर्थमाहात्म्य, प्रायश्चित्त-वर्णन, चतुर्विध प्रलय, पुराणकी अनुक्रमणिका तथा फलश्रुति वर्णित है।

पुराणवाङ्मयमें इस कूर्मपुराणका महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इसमें (१) महापुराणोंके सर्ग-प्रतिसर्ग इत्यादि पाँच मुख्य विषयोंका पूर्ण विवेचन है। (२) हिन्दू-धर्मके तीन मुख्य सम्प्रदायों—वैष्णव-शैव-शाक्तका अद्भुत समन्वय किया गया है। यह त्रिदेवोंकी एकताका प्रतिपादन करता है। शक्ति-शक्तिमान्में अभेद मानता है तथा शिव एवं विष्णुका परमैक्य स्वीकार करता है।

कथा-आख्यान—

श्रीकूर्मावतार-कथा

भगवान् विष्णुके कूर्मावतारके विषयमें कूर्मपुराणके अतिरिक्त विष्णु, श्रीमद्भागवत, ब्रह्म, पद्म, वराहपुराण और महाभारत आदिमें कथाएँ प्राप्त होती हैं[1]। भगवान्के प्रसिद्ध दस अवतारोंमें यह द्वितीय अवतार है।

एक समयकी बात है कि महर्षि दुर्वासा देवराज इन्द्रसे मिलनेके लिये स्वर्गलोकमें गये। उस समय देवताओंसे पूजित इन्द्र ऐरावत हाथीपर आरूढ़ हो कहीं जानेके लिये उद्यत थे। उन्हें देख महर्षि दुर्वासाका मन प्रसन्न हो गया। उन्होंने विनीतभावसे देवराजको एक पारिजात-पुष्पोंकी माला भेंट की। यह माला उन्हें एक परमसुन्दरी विद्याधरीसे प्राप्त हुई थी। देवराजने माला ग्रहण तो कर ली, किंतु उसे स्वयं न पहनकर उपेक्षितभावसे ऐरावतके मस्तकपर डाल दी और स्वयं चलनेको उद्यत हुए। हाथी मदसे उन्मत्त हो रहा था। उसने सुगन्धित तथा कभी म्लान न होनेवाली उस मालाको सूँड़से मस्तकपरसे खींचकर मसलते हुए जमीनपर फेंक दिया। यह देखकर ऋषि दुर्वासा अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने शाप देते हुए कहा—'रे मूढ़! तुमने मेरी दी हुई मालाका कुछ भी आदर नहीं किया। तुम त्रिभुवनकी राजलक्ष्मीसे सम्पन्न होनेके कारण मेरा अपमान करते हो, इसलिये जाओ आजसे तीनों लोकोंकी लक्ष्मी नष्ट हो जायगी और यह तुम्हारा त्रिभुवन भी श्रीहीन हो जायगा। इसमें कोई संदेह नहीं है।' इतना कहकर दुर्वासा शीघ्र ही वहाँसे चल दिये।

१- शतपथब्रा० ७।५।१।५; तैत्तिरीय आर० १।२३।३; अग्नि० अ० ४ तथा गरुड० १।१४२ में भी कूर्मावतारका वर्णन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शापके प्रभावसे इन्द्रादि सभी देवगण एवं तीनों लोक श्रीहीन हो गये। यह दशा देखकर इन्द्रादि देवता अत्यन्त दुःखी हुए। महर्षिका शाप अमोघ था। उन्हें प्रसन्न करनेकी सभी प्रार्थनाएँ भी विफल हो गयीं। तब असहाय, निरुपाय तथा दुःखी देवगण, ऋषि-मुनि आदि सभी प्रजापति ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजी उन्हें साथ लेकर वैकुण्ठमें श्रीनारायणके पास पहुँचे और सभीने अनेक प्रकारसे नारायणकी स्तुति की और बताया कि 'प्रभो ! एक तो हम दैत्योंके द्वारा अत्यन्त कष्टमें हैं और इधर महर्षिके शापसे श्रीहीन भी हो गये हैं। आप शरणागतोंके रक्षक हैं, अतः इस महान् कष्टसे हमारी रक्षा कीजिये।' स्तुतिसे प्रसन्न होकर श्रीहरिने गम्भीर वाणीमें कहा—'तुमलोग समुद्रका मन्थन करो, जिससे लक्ष्मी तथा अमृतकी प्राप्ति होगी, उसे पीकर तुम अमर हो जाओगे। तब दैत्य तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट न कर सकेंगे, किंतु यह अत्यन्त दुष्कर कार्य है, इसके लिये तुम असुरोंको अमृतका प्रलोभन देकर उनके साथ संधि कर लो और दोनों पक्ष मिलकर समुद्रका मन्थन करो'—यह कहकर प्रभु अन्तर्हित हो गये। प्रसन्नचित्त इन्द्रादि देवोंने असुरराज बलि तथा उनके प्रधान नायकोंको अमृतका प्रलोभन देकर सहमत कर लिया।

श्रीहरिके निर्देशपर ब्रह्मा आदि सभीने पृथ्वीपरकी समस्त ओषधियों तथा वनस्पतियोंको समुद्रमें डाला। मथानीके लिये मन्दराचलका सहारा लिया और वासुकिनागकी रस्सी बनाकर सिरकी ओर दैत्योंने तथा पूँछकी ओर देवताओंने पकड़कर समुद्रका मन्थन आरम्भ कर दिया, किंतु अथाह सागरमें मन्दरगिरि डूबता हुआ पातालमें चला गया। यह देखकर अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न लीलावतारी भगवान् श्रीहरि कूर्मरूप धारणकर उसे नीचेसे ऊपर उठाकर और थोड़ा अंश समुद्रसे ऊपर रखकर स्वयं भी देवता और असुरोंके साथ रस्सी बने वासुकिनागको पकड़कर मथने लगे। श्रीभगवान्के इस लीलामय रूपको देखकर ब्रह्मादि देवगण पुष्पवृष्टि करते हुए स्तुति करने लगे। भगवान्का यह कच्छप-रूप विग्रह एक लाख योजन फैला हुआ जम्बूद्वीपके समान विस्तृत था (श्रीमद्भा० ८।७, कूर्म० १।१।२७-२८)।

समुद्र-मन्थनके परिणामस्वरूप कूर्मरूपी नारायणके अनुग्रहसे पारिजात, हरिचन्दन, मन्दार आदि पञ्च कल्पवृक्ष, विष्णुका कौस्तुभमणि, धन्वन्तरि वैद्यके साथ अमृतपूर्ण कलश, चन्द्रमा, कामधेनु, इन्द्रका वाहन ऐरावत हाथी, सूर्यका वाहन सप्तानन उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, विष्णुका शार्ङ्गधनुष, लक्ष्मी, रम्भादि अप्सराएँ, शङ्ख, वारुणी तथा कालकूट—ये सभी निकले थे।

नारदादि ऋषियों तथा इन्द्रद्युम्न आदिको भगवान् कूर्मने समस्त 'कूर्मपुराण' सुनाया। जिसकी आज तीन संहिताएँ अप्राप्त हैं। मात्र ब्राह्मीसंहिता उपलब्ध है। इसमें सभी वेद और धर्मशास्त्रोंका सार वर्णित है।

कूर्म भगवान्का लक्षण वाराहीसंहिताके ६४वें अध्यायमें इस प्रकार वर्णित है—'जिसका स्फटिक तथा चाँदीके तुल्य शुक्ल वर्ण हो, नीलमकी नीलिम रेखाओंसे चित्रित आकार कलशके समान हो तथा वंश (पीठकी हड्डी) सुन्दर और लाल रंगका हो और सरसोंके समान पीले विन्दुओंसे चित्रित हो, ऐसे कूर्मरूप भगवान् यदि घरमें स्थित हों तो राजा-सदृश सम्मान प्राप्त होता है।'

देव-मन्दिरकी प्रतिष्ठा, सरोवर-प्रतिष्ठा, भूमिपूजन तथा प्रासाद-प्रतिष्ठा आदिमें कूर्म-मूर्तिकी स्थापना की जाती है। मार्कण्डेयपुराण तथा वाराहीसंहिता (अ० १४) आदिमें कूर्म-विभाग तथा कूर्म-चक्रका वर्णन है, जिसमें सम्पूर्ण विश्वके देशोंको कूर्मके अङ्गोंमें व्याप्त दिखाकर ग्रहचारके अनुसार फल-निर्देश किया गया है।

मानव-जीवनकी चरितार्थता मोक्ष-प्राप्तिमें

विप्रवर इन्द्रद्युम्न पूर्व-जन्ममें राजा थे। उन्हें भगवान्का कूर्मरूप बहुत अच्छा लगता था। वे दिन-रात इस रूपके ध्यानमें निमग्न रहते थे। उन्होंने कूर्म भगवान्की ही शरण ग्रहण की। भगवान् तो शरणागतवत्सल हैं ही। जो एक बार भी भगवान्की शरणमें आता है, उसे वे सदाके लिये अपना लेते हैं। भगवान्ने राजाको गुह्य ज्ञान प्रदान किया, जिससे मरनेके बाद राजा श्वेतद्वीपमें उन दुर्लभ भोगोंको भोगते रहे, जो योगियोंके लिये दुर्लभ हैं। इसके पश्चात् भगवान्की आज्ञासे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने विप्रवर इन्द्रद्युम्नके रूपमें जन्म ग्रहण किया। पूर्व-जन्मकी स्मृति बनी हुई थी।

विप्रवर इन्द्रद्युम्नका बचपनसे ही कूर्म भगवान्‌की ओर लगाव था। व्रत, उपवास, नियम और गो-ब्राह्मणकी सेवामें उनका सब समय बीतता था। उनकी अनवरत आराधनासे माता लक्ष्मी प्रसन्न हो गयीं और उनके सामने प्रकट हो गयीं। इन्द्रद्युम्न तो भगवान्‌के कूर्म-रूपमें ही मग्न रहते थे। वे भगवान्‌की इस शक्तिरूपको पहचान न सके, बोले—'देवि ! अपना परिचय दीजिये। आपने विष्णुका चिह्न क्यों धारण कर रखा है ?'

माता लक्ष्मी भक्तकी एकतानतासे प्रसन्न हो गयीं, बोलीं—'वत्स ! मैं तुम्हारे उपास्य देवकी ही शक्ति हूँ। उनमें और मुझमें कोई अन्तर नहीं है। ममतावश मैं तुम्हारे पास आयी हूँ। ज्ञानका उपदेश तो स्वयं भगवान् तुमको करेंगे।' ऐसा कहकर ममतामयी माँने अपने स्नेहोर्मिल हाथोंसे इन्द्रद्युम्नका स्पर्श किया। इसके बाद माँ अदृश्य हो गयीं। माताकी इस कृपासे इन्द्रद्युम्नको भगवान्‌के दर्शन हुए। भगवान्‌ने ज्ञान और भक्तिका उन्हें उपदेश दिया। इसके बाद भगवान् अन्तर्हित हो गये।

विप्रश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नके अन्तरमें प्रकाश-ही-प्रकाश भर गया था। सारी दुनियासे उनकी आसक्ति हट गयी थी। सब कर्मोंका संन्यासकर वे वैराग्यकी ऊँची स्थितिमें पहुँच गये थे। उनकी अद्वैत निष्ठा पूर्ण हो गयी थी। वे सर्वत्र परमात्मा-ही-परमात्मा देखा करते थे।

एक दिन भगवान् सूर्यकी आज्ञा पाकर वे ब्रह्मके दर्शनके लिये ब्रह्मलोककी ओर बढ़े। शीघ्र ही एक दिव्य विमान उनके पास पहुँचा। जब विमानपर बैठकर चलने लगे, तब उनके पीछे देवताओं और गन्धर्वोंकी लम्बी कतार चलने लगी। रास्तेमें जो योगेन्द्र, सिद्ध और ब्रह्मर्षि मिले, वे सब उनके पीछे हो लिये। जब वे परम स्थानमें पहुँचे तो वहाँ हजारों सूर्योंका प्रकाश छाया हुआ था। जब पितामह ब्रह्माके पास पहुँचे, तब पहले उन्हें केवल अद्भुत प्रकाशपुञ्ज दिखायी दिया। बादमें उन्होंने पूर्व-पुरुष ब्रह्माका दर्शन पाया। इन्द्रद्युम्न आनन्दमग्न होकर पितामहके चरणोंपर लोट गये। पितामहने बड़े प्रेमसे इन्द्रद्युम्नको उठाकर गले लगा लिया। ठीक उसी समय इन्द्रद्युम्नके शरीरसे एक ज्योत्स्ना निकली, जो आदित्य मण्डलमें प्रवेश कर गयी। इस तरह विप्रवर इन्द्रद्युम्नने अद्भुत मोक्षको प्राप्त किया। (ला० बि० मि०)

आसक्तिसे विजेता भी पराजित

(राजा दुर्जयकी कथा)

राजा दुर्जय सभी शास्त्रोंमें निष्णात हो चुके थे और शत्रुओंको भी जीत लिये थे। किंतु अपनी इन्द्रियोंपर वे विजय नहीं प्राप्त कर सके थे। जो मनसे हार जाय उस पराक्रमीको पराक्रमी कैसे कहा जा सकता है ?

राजा दुर्जय तो मनको नहीं जीत सके थे, किंतु इनकी पतिव्रता पत्नी आध्यात्मिक तेजसे सम्पन्न थीं। वे पतिके प्रेममें इतनी तन्मय रहती थीं कि संसारके सुख-दुःखका कोई प्रभाव उनपर नहीं पड़ता था। सारी इन्द्रियाँ उनकी दासी थीं।

राजा दुर्जय जयध्वजके पवित्र वंशमें उत्पन्न हुए थे। एक दिन दुर्जय यमुनाके तटपर घूम रहे थे। वहाँ उर्वशी संगीतसे अपना मनोरञ्जन कर रही थी। उसके कलकण्ठसे निकली हुई स्वर-लहरियाँ कण-कणको आप्लावित कर रही थीं। राजा दुर्जयका अपने मनपर कोई अधिकार तो था नहीं। वे उर्वशीके दिव्य सौन्दर्य और दिव्य स्वर-लहरियोंसे आकृष्ट हो गये। अपनी पतिप्राणा पत्नीके प्रति उनका क्या कर्तव्य है, इसका ध्यान भी न रहा। उन्होंने उर्वशीसे प्रणय-याचना की। उर्वशी तो अप्सरा थी। वासना ही उसका जीवन था। कामदेवके समान सुन्दर युवक राजा दुर्जय उसे जँच गये। फिर तो दिन-रात आते-जाते रहे। राजाको इसका भान ही नहीं होता था। बहुत दिनोंके बाद राजाका मोह-भंग हुआ। उसे अपनी नगरी याद आयी। उसने उर्वशीसे कहा—'मुझे अपने नगरकी व्यवस्था देखनी है। व्यवस्था सँभालकर शीघ्र लौट आऊँगा। मैं कुछ अवकाश चाहता हूँ।' उर्वशीने कहा—'यदि एक वर्ष और ठहर जाते तो अच्छा होता।' राजाने कहा, 'मैं तुम्हारे बिना स्वयं नहीं रह सकता। इसलिये शीघ्र ही आऊँगा। थोड़ी प्रतीक्षा करो।' उर्वशीने स्वीकृति दे दी। राजा जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजमहलमें पहुँचे तब उसे प्रतीक्षा करती हुई अपनी धर्मभार्या मिली। राजा उसे देखते ही अपराधीकी तरह भयसे काँप उठे। लज्जासे आँखें झुक गयी थीं। पत्नी तो पतिप्राणा थी। पतिके इस झेंपको सहन नहीं कर सकी। बोली—'स्वामिन्! आप तो किसीसे नहीं डरते थे। आज भयसे काँप क्यों रहे हैं? अपनी यह दुर्बलता और किसीके सामने व्यक्त न कीजियेगा।' किंतु दुर्जयके मुखपर ताला लग गया था; वे कुछ बोल न सके। पतिव्रतानें अपनी आध्यात्मिक शक्तिसे उर्वशीवाली घटना जान ली। बोली—'स्वामिन्! मैं सब कुछ जान चुकी हूँ। मेरा सुख आपके सुखमें ही निहित है। मैं आपसे अप्रसन्न नहीं हूँ, किंतु आपसे पाप तो हो ही गया है। उसका प्रायश्चित्त होना आवश्यक है, नहीं तो पाप अगले दुःखका कारण बन सकता है।'

अपनी पत्नीका उदात्त आश्वासन पाकर राजा दुर्जयका मन हलका हो गया। वे महर्षि कण्वके आश्रममें गये। उन्होंने महर्षि कण्वसे अपने इस पापका प्रायश्चित्त पूछा। महर्षिने प्रायश्चित्तके विधान बता दिये। प्रायश्चित्त जानकर वे हिमालयपर पहुँचे। वहाँ उनकी दृष्टि एक गन्धर्वपर पड़ी, जिसने एक दिव्य माला पहन रखी थी। उस मालासे उसका सारा शरीर शोभासे जगमगा रहा था। राजाके मनमें आया कि यह माला उर्वशीके अनुरूप है। इस मालासे वह खिल उठेगी। यह विचार आते ही वे माला लेनेके लिये उतावले हो गये। राजा मनके दास तो थे ही। बस लुटेरेकी तरह गन्धर्वपर टूट पड़े। उसे मार-पीटकर माला ले लिये। अब न तो धर्मभार्याकी बातें याद थीं और न प्रायश्चित्तकी ही।

दुर्जय माला लेकर यमुना-तटपर पहुँच गये। किंतु वहाँ उर्वशी नहीं थी। उन्होंने विह्वल होकर पृथ्वीका चप्पा-चप्पा छान डाला, किंतु उर्वशीका कहीं पता न था। विह्वलताने इनकी दशा दयनीय बना दी थी। फिर वे हेमकूटपर पहुँचे, वहाँ भी उर्वशीका पता नहीं था। तब वे देवलोक पहुँचे। वहाँ मेरु पर्वतके मान-सरोवरके दिव्य तटपर उर्वशीको देखा। राजाको बहुत शान्ति मिली। उन्होंने मालासे अपने प्रेयसीका शृङ्गार किया और अपनेको कृतार्थ माना।

यह राजा दुर्जयके पतनकी पराकाष्ठा थी। कहाँ तो अपनी पत्नीके निर्देशसे सत्पथकी ओर अग्रसर हुए थे और कहाँ फिर आ गिरे। उन्हें न तो अपनी पत्नीका ध्यान था, न कण्व ऋषिसे पाप-निवारण-हेतु प्रायश्चित्त पूछनेका ही।

उर्वशीका जीवन वासनामय तो अवश्य था, किंतु वह आगे-पीछे सोच सकती थी। उसने आँक लिया कि उसकी पतिव्रता स्त्री एक-न-एक दिन मुझे अवश्य शाप देगी; क्योंकि मैं उस पतिव्रताकी लगातार अवहेलना कर रही हूँ। यह सोचकर उर्वशीने अपना रूप उत्कट बना लिया। उसका प्रत्येक अङ्ग रोषसे भर गया। आँखें पीली-पीली हो गयीं। दुर्जयका मन उर्वशीकी ओरसे फिर गया। वासनाका भूत उनके सिरसे उतर चुका था। अब वे आत्म-निरीक्षण कर सकते थे। उन्होंने अपनेको बहुत धिक्कारा और कण्व ऋषिके बताये पथपर आ गये। घोर तपस्या कर फिर महर्षि कण्वके आश्रमपर पहुँचे और विनम्रतासे अपनी पतन-कहानी कह सुनायी। महर्षि कण्वने राजाको काशी जानेका आदेश दिया, कहा—'गङ्गामें स्नान और तर्पण कर बाबा विश्वनाथका दर्शन करो।' राजा दुर्जयने काशीमें गङ्गा-स्नान तथा तर्पण कर विधि-विधानसे बाबा विश्वनाथका दर्शन किया तथा पापोंसे मुक्ति पा ली।

(ला० बि० मि०)

जयध्वजकी विष्णुभक्ति

माहिष्मतीके राजा कार्तवीर्यके सौ पुत्र थे। उनमें शूर, शूरसेन, कृष्ण, धृष्ण और जयध्वज नामके पाँच पुत्र महारथी और मनस्वी थे। इनमें प्रथम चार रुद्रके भक्त एवं पाँचवाँ जयध्वज नारायणका भक्त था। इसके अन्य भाइयोंने अपनी कुल-परम्पराके अनुसार शंकरकी ही आराधनाके लिये इनसे अनुरोध किया। जयध्वजने कहा—'नहीं, विष्णुकी ही उपासना मेरा परमधर्म है। पृथ्वीके राजा विष्णुके अंशसे उत्पन्न होते हैं तथा विष्णु ही जगत्पालक हैं और स्वयं उन्हींकी शक्तियाँ ब्रह्मादि-भेदसे सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाली हैं। अतः राजाओंको विष्णुकी ही आराधना करनी चाहिये।' इसपर अन्य भाइयोंने कहा—'मोक्षार्थीको रुद्रकी उपासना करनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये।' तब जयध्वजने कहा कि प्राणी सत्त्वगुणद्वारा ही मुक्त होता है और श्रीहरि ही सत्त्वस्वरूप हैं। इस प्रकार विवादका अन्त न होनेपर वे निर्णय करानेके लिये सप्तर्षियोंके पास पहुँचे। वसिष्ठादि मुनियोंने कहा—'जिसे जो देवता अभिमत होता है, वही उसका इष्टदेव है। प्रयोजन-विशेषके लिये पूजित होनेपर विभिन्न देवता मनुष्योंको अभीष्ट प्रदान करते हैं। राजाओंके देवता विष्णु, शिव तथा इन्द्र हैं। ब्राह्मणोंके अग्नि, सूर्य, ब्रह्मा और शंकर हैं। देवताओंके देवता विष्णु तथा दानवोंके शंकर, गन्धर्वों और यक्षोंके सोम, विद्याधरोंकी सरस्वती, साध्योंके सूर्य, किन्नरोंकी पार्वती, ऋषियोंके ब्रह्मा और शंकर, मनुओंके विष्णु, सूर्य और उमा, ब्रह्मचारियोंके ब्रह्म, वानप्रस्थियोंके सूर्य, यतियोंके महेश्वर, भूतोंके रुद्र तथा कूष्माण्डोंके देवता विनायक हैं और गृहस्थोंके लिये सभी देवता उपास्य हैं। यह ब्रह्माजीने स्वयं कहा है। अतः जयध्वजकी विष्णु-आराधना वैध है।' तत्पश्चात् सभी राजकुमार ऋषियोंको प्रणामकर अपनी पुरीमें चले गये।

एक बार विदेह नामक एक भयंकर दानव माहिष्मती पुरीमें आया और शूल लेकर गर्जना करने लगा। जिसके श्रवणमात्रसे कुछने तो प्राण त्याग दिये, कुछ भयभीत होकर भागने लगे। यह देख शूरसेनादि सभी भाई उसपर रौद्रास्त्र, वारुणास्त्र, प्राजापत्यास्त्र, वायव्यास्त्र एवं अन्यान्य अस्त्रोंसे प्रहार करने लगे, पर वह विचलित न हुआ। अन्तमें बुद्धिमान् जयध्वजने सभीको त्रस्त देख भगवान् विष्णुका स्मरण कर वासुदेवप्रेषित हजारों सूर्यके समान प्रकाशमान सुदर्शनचक्रके द्वारा दानवका सिर काट डाला। उस देवशत्रुके मारे जानेपर सभीने जयध्वजकी पूजा की तथा उसका पराक्रम सुनकर महामुनि विश्वामित्र उसे देखनेके लिये आये। महर्षिको आते देख जयध्वजने उन्हें सुन्दर आसनपर बिठाकर उनकी पूजा की और कहा कि आपके अनुग्रहसे ही मैंने इस दानवको मारा है। इसके लिये मैं भगवान् विष्णुकी शरणमें गया और उनकी कृपासे यह दानव-वधकी सफलता मिली। अब मैं भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहता हूँ, अतः प्रार्थना है कि इस कार्यमें आप मेरे उपदेष्टा बनें और मेरा यज्ञकार्य सम्पन्न करायें। विश्वामित्रजीने जयध्वजसे विष्णुकी महिमाकी महत्ता बताकर यज्ञ सम्पन्न करवाया। उसके यज्ञमें साक्षात् भगवान् हरि प्रकट होकर सबको कृतार्थ किया। (म० प्र० गो०)

शङ्कुकर्णसे शङ्कुकर्णेश्वर

प्राचीन कालमें वाराणसीके पिशाचमोचन-क्षेत्रमें शङ्कुकर्ण नामक एक तपस्वी भगवान् रुद्रका ध्यान करते हुए प्रणवका जप किया करते थे। एक समय वहाँ एक अस्थिमात्र शरीरवाला प्रेत आया। उसे देखकर शङ्कुकर्णने पूछा—'तुम कौन हो और कहाँसे आये हो ?' भूखसे पीड़ित उस पिशाचने कहा—'मैं पूर्वजन्ममें धन-धान्यसम्पन्न ब्राह्मण था। परंतु मैंने देवों, अतिथियों तथा गौओंका कभी पूजन नहीं किया, न ही कोई पुण्य किया। एक बार विश्वनाथका दर्शन कर स्पर्शपूर्वक उन्हें नमस्कार किया और तत्क्षण ही मैं मृत्युको प्राप्त हो गया। इस कारणसे मुझे यमलोक नहीं जाना पड़ा, किंतु पुण्यके अभावमें पिशाचयोनि प्राप्त हो गयी। अब मैं बहुत दुःखी हूँ। यदि कोई उपाय हो तो मुझ शरणागतका आप उद्धार करें।' शङ्कुकर्णने पिशाचसे कहा कि भगवान् विश्वनाथका पूजन कर तुम कृतार्थ हो चुके हो, तभी इस स्थानपर आ सके हो, अब एकाग्रचित्त होकर इस पिशाच-मोचन-कुण्डमें स्नान करो, तुम्हारी पिशाचयोनि छूट जायगी। तदनन्तर उसने उस कुण्डमें स्नान किया और स्नान करते ही वह सुन्दर दिव्य शरीर धारण कर विमानपर आरूढ़ हो देवताओंसे पूजित होता हुआ रुद्र लोक चला गया। पिशाचको मुक्त हुआ देखकर मुनि शङ्कुकर्ण प्रसन्न होकर भगवान् महेश्वरका ध्यान करते हुए स्तुति करने लगे। तदनन्तर प्रणवका उच्चारण कर भूमिपर दण्डवत् प्राणिपात किये। उसी समय वहाँ प्रलयकालीन अग्निके समान श्रेष्ठ लिङ्ग प्रकट हुआ और मुनि उसी लिङ्गमें विलीन हो गये—शङ्कुकर्णेश्वर बन गये। स्वल्पान्तरसे कुछ विस्तारपूर्वक यह कथा काशी-खण्डके उत्तरार्ध अध्याय ५४में भी प्राप्त होती है। (म० प्र० गो०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत्स्यपुराण

मत्स्यपुराण अठारह पुराणोंमें एक है। भगवान् विष्णुके मत्स्य-अवतारसे सम्बद्ध होनेके कारण यह मत्स्यपुराण कहलाता है। मत्स्यावतारी महामत्स्यके द्वारा राजा वैवस्वत मनु तथा सप्तर्षियोंको जो अत्यन्त दिव्य एवं लोक-कल्याणकारी उपदेश दिये गये हैं, वे ही मत्स्यपुराणमें संगृहीत हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें जब हयग्रीव नामक असुर वेदादि समस्त शास्त्रोंको चुराकर पातालमें चला गया, तब भगवान्ने मत्स्यावतार धारण कर वेदोंका उद्धार किया और एक विशाल नौकाको अपने सींगसे खींचते हुए महाराज मनुको मत्स्यपुराणकी कथा सुनायी थी। दस अवतारोंमें भगवान्का मत्स्य-अवतार सर्वप्रथम कहा गया है।

वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, स्कान्द तथा गाणपत्यादि सभी सम्प्रदायोंके लिये यह मत्स्यपुराण समानरूपसे मान्य, पूज्य एवं आदरणीय है। इस पुराणकी श्लोक-संख्या चौदह हजार है, जो २९१ अध्यायोंमें उपनिबद्ध है। इसके प्रथम अध्यायमें मत्स्यावतारकी कथा है। इसके बाद मनु महाराजका मत्स्य भगवान्के साथ संवाद है। तदनन्तर सृष्टि, तत्त्व-मीमांसा, मन्वन्तर तथा पितृवंशका विस्तृत वर्णन किया गया है। १३वें अध्यायमें वैराज-पितृवंश, १४वेंमें अग्निष्वात्त-पितृवंश तथा १५वेंमें बर्हिषद्-पितृवंशोंका वर्णन है। फिर सात अध्यायोंमें विविध श्राद्धोंका साङ्गोपाङ्ग विवेचन है। तदनन्तर २२ अध्यायोंमें चन्द्रवंशी राजाओंका चरित्र विस्तारसे प्रतिपादित किया गया है। ययाति-चरित्रका वर्णन अत्यन्त रोचक एवं शिक्षाप्रद है, जो प्रवृत्ति एवं भोगमार्गको सर्वथा अनुचित बताकर निवृत्ति एवं त्यागमार्गका आश्रय लेनेके लिये प्रेरित करता है। राजा ययाति अपने पुत्र पुरुको उसकी युवावस्था लौटाते हुए कहते हैं—'वत्स ! मैंने तुम्हारे यौवनके द्वारा अपनी रुचि, उत्साह और समयके अनुसार विविध विषयोंका सेवन किया। विषयोंकी कामना उन विषयोंके उपभोगसे कभी शान्त नहीं होती, अपितु घीकी आहुति पड़नेसे अग्निकी भाँति अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है। इस पृथ्वीपर जितने भी धान्य, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक मनुष्यके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं—ऐसा मानकर शान्त रहना चाहिये' (मत्स्यपु० ३४। १०-११)।

विविध व्रतोंका वर्णन इस पुराणकी महती विशेषता है। ५५वें अध्यायसे १०२ अध्यायतक (४८ अध्यायोंमें) अनेक व्रतानुष्ठानोंकी विधि, विविध दानोंकी महिमा, शान्तिक एवं पौष्टिक कर्म, नवग्रहोंका स्वरूप-वर्णन, विविध स्नान तथा तर्पण-विधिका प्रतिपादन सुन्दर कथाओंके माध्यमसे किया गया है। तदनन्तर प्रयाग-महिमा (१०३—११२ अध्याय), भूगोल-खगोल, ज्योतिश्चक्र, त्रिपुरासुरसंग्राम (१२९ से १४० अध्याय), तारकासुर-आख्यान, नृसिंह-चरित्र, काशी (१८०—१८५ अध्याय) तथा नर्मदामाहात्म्य (१८७—१९४ अध्याय) आदि विस्तारसे वर्णित हैं।

फिर ऋषियोंके नाम-गोत्र तथा वंशका वर्णन है। उसके बाद विविध दानोंका माहात्म्य तथा दानविधि प्रतिपादित है। सात अध्यायोंमें सती सावित्रीकी कथा है और १३ अध्यायोंमें राजधर्मोंका सुन्दर चित्रण है।

इस पुराणके कुछ महत्त्वपूर्ण विषय हैं—पुराणोंकी विषयानुक्रमणिका (अ० ५३), भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, विश्वामित्र, वसिष्ठादि गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषियोंके वंश-वर्णन (अ० १९५—२०२), राजधर्मवर्णन (अ० २१५—२४३), विविध शान्ति, यात्राकाल, स्वप्नशास्त्र, शकुनशास्त्र, अङ्ग-स्फुरण, ज्योतिषशास्त्र तथा रत्नविज्ञान आदिका वर्णन (अ० २२८—२३८), विभिन्न देवताओंकी प्रतिमाओंका स्वरूप-लक्षण, प्रतिमा-मान तथा निर्माणविधि, प्रतिमाशास्त्र, देव-प्रतिष्ठा-पीठ-निर्माण-विधि, प्रासाद-गृह-निर्माण-सम्बन्धी वास्तुविद्या तथा शिलाशास्त्र आदि (अ० २५७—२७०)।

सदाचार, दान-धर्म, तीर्थ-व्रत, पूजा-प्रतिष्ठाके विषयमें मत्स्यपुराणमें दुर्लभ विषयोंका संग्रह हुआ है। परवर्ती साहित्यकारों—कालिदासादिका यह प्रतिपाद्य विषय एवं काव्य-शैलीकी दृष्टिसे उपजीव्य तथा आदर्शभूत रहा है। इसमें सूर्यसिद्धान्त तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्तशिरोमणिसे भी अधिक सूक्ष्मरूपसे ज्योतिषविषयोंका प्रतिपादन किया गया है। इसके दान-प्रकरण तथा व्रत-प्रक परवर्ती ग्रन्थों—दानसागर, अपरार्क, हेमाद्रि, दानकल्पतरु तथा दान-चन्द्रिका एवं व्रत-निबन्ध-ग्रन्थों— व्रतराज, व्रतर कल्पद्रुम आदिमें यथावत् निर्दिष्ट हैं। प्रयागादि मुख्य तीर्थों तथा उनके माहात्म्यके आख्यान—तीर्थ-प्रकाश, तीर्थ-कल्पत आदिमें, गोत्रप्रवराध्यायी—गोत्रप्रवर-निबन्ध-कदम्बमें तथा राजनीतिप्रकरण—राजनीतिरत्नाकर तथा राजनीतिप्रकाश आदि संगृहीत हैं। इसी प्रकार इसके नीति-सदाचार-सम्बन्धी श्लोक पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, नीतिवाक्यामृत, शार्ङ्गधरपद्धति आदिमें लि गये हैं। कच, देवयानी, ययाति-आख्यान, सावित्री-आख्यान, त्रिपुरवध, पार्वती-परिणय, पुरूरवावृत्त तथा विभूति-द्वादशी-व्र आदिकी कथाएँ अत्यन्त सुन्दर एवं उपयोगी हैं। इस पुराणके श्रवण-पठन तथा माहात्म्यके विषयमें स्वयं मत्स्य भगवान्ने क है—'यह पु ; परम पवित्र, आयुकी वृद्धि करनेवाला, कीर्तिवर्धक, महापापोंका नाशक तथा शुभकारक है। इस पुराण एक श्लोकके एक पादको भी जो कोई पढ़ता है, वह भी पापोंसे विमुक्त होकर श्रीमन्नारायणके पदको प्राप्त कर लेता है त दिव्य सुखोंका भोग करता है।' (मत्स्यपु० २९०। २९-३०)

कथा-आख्यान—

श्रीमत्स्यावतारकी कथा

कृतयुगके आदिमें सत्यव्रत नामसे विख्यात एक राजर्षि थे। ये ही वर्तमान महाकल्पमें श्राद्धदेव नामसे प्रसिद्ध विवस्वान्के पुत्र हुए, जिन्हें भगवान्ने वैवस्वत मनु बना दिया था। सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलपर उनका शासन था। वे प्रजापर पुत्रवत् स्नेह करते हुए धर्मपूर्वक राज्य करते थे। इस प्रकार जब बहुत समय बीत गया, तब राजा अपने पुत्र इक्ष्वाकुको राज्यका भार सौंपकर स्वयं तपस्याके लिये वनमें चले गये और मलयपर्वतके एक शिखरपर उत्तम योगका आश्रय लेकर घोर तपमें संलग्न हो गये। दस हजार वर्ष बीतनेके पश्चात् भगवान् ब्रह्मा राजाके समक्ष प्रकट हुए और बोले—**'वरं वृणीष्व'**—वर माँगो। तब राजाने पितामहके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'देव ! मैं आपसे केवल एक ही उत्तम वर प्राप्त करना चाहता हूँ, वह यह है कि प्रलयकाल उपस्थित होनेपर मैं चराचर समस्त भूतसमुदायकी रक्षा करनेमें समर्थ हो सकूँ।' यह सुनकर विश्वात्मा ब्रह्मा 'एवमस्तु'—कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये और देवताओंने राजापर महान् पुष्पवृष्टि की।

एक दिनकी बात है, राजा सत्यव्रत नित्यकी भाँति कृतमाला नदीमें स्नान-संध्या-तर्पण आदि नित्यक्रियाओंको सम्पन्न कर रहे थे। स्नानके अनन्तर जब वे सूर्यार्घ्य दे रहे थे, तब एक छोटी-सी मछली उनके हाथमें आकर गिरी * । राजाने उसे ज्यों ही जलमें छोड़ना चाहा, त्यों ही वह मानवी भाषामें करुणाके साथ बोली—'राजन् ! आप बड़े दयालु हैं मैं आपकी शरणमें हूँ, मुझे आप जलमें न छोड़ें; क्योंकि वहाँ बड़े-बड़े जल-जन्तु रहते हैं, वे मुझे खा जायँगे, अतः मेरी रक्षा करें।' मछलीकी ऐसी कातरवाणी सुनकर राजाने उ अपने जलभरे कमण्डलुमें रख लिया और आश्रमपर चले आये। एक ही रातमें वह मछली इतनी बढ़ गयी कि कमण्डलुमें रहनेके लिये स्थान ही नहीं रह गया। तब वह राजासे कहने लगी—'राजन् ! इसमें मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है, अतः मुझे किसी बड़े स्थानपर रखिये।' उसकी प्रार्थना सुनकर राजाने उसे एक बावली (तालाब) में छोड़ दिया। उसमें भी रातभरमें बढ़ते-बढ़ते वह दो योजनकी हो गयी। तब राजाने उसे किसी प्रकार गङ्गाजीमें छोड़ा। अन्तमें गङ्गाजीसे वह अगाध समुद्रमें चली गयी। समुद्रमें भी वह निरन्तर बढ़ती चली गयी और पुनः रक्षाके निमित्त प्रार्थना करने लगी।

उन मत्स्यरूपी भगवान्की मधुर वाणी सुनकर और इस प्रकारकी विचित्र लीला देखकर राजा सत्यव्रतकी बुद्धि मोहाच्छन्न हो गयी। तब उन्होंने पूछा—'हमें मत्स्यरूपसे मोहित करनेवाले आप कौन हैं ? आपने एक ही दिनमें सौ योजन विस्तृत तालाबको आच्छादित कर लिया। ऐसा

* शतपथब्राह्मणके आरम्भमें राजा सत्यव्रतके हाथमें कृतमाला नदीके जलसे उछलकर एक मछलीके आनेकी कथा है। मत्स्य, भागवत, ब्रह्म, कूर्म, वराह तथा पद्मादि प्रायः सभी पुराणोंमें इसी मत्स्यावतारकी कथाका विस्तारसे वर्णन हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराक्रमशाली जल-जन्तु तो हमने न कभी देखा था और न सुना ही था। अवश्य ही आप सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, अविनाशी साक्षात् श्रीहरि हैं। जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही आपने जलचरका रूप धारण किया है। आपको बारम्बार प्रणाम है। अब यह बतानेकी कृपा करें कि आपने यह मत्स्यरूप किस उद्देश्यसे धारण किया है।'

राजाके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर उन्होंने कहा—'राजन्! शीघ्र ही यह चराचर पार्थिव जगत् जलमें मग्न होनेवाला है, तब सम्पूर्ण विश्वका प्रलय हो जायगा। आप सचेत होकर एक विशाल सुदृढ़ नौका बनवाकर उसमें एक अत्यन्त सुदृढ़ रस्सी बाँधकर सवार हो जाइये और उसपर सप्तर्षियोंके साथ बीजभूत ओषधियों एवं जीवोंके सूक्ष्म प्राणतत्त्वोंको लेकर मेरी प्रतीक्षा कीजिये। मैं मत्स्यरूपमें अपने मस्तकपर एक बृहत् शृङ्ग धारण किये हुए आऊँगा, तब आप मुझे पहचान लेंगे। उस समय मेरी सहायतासे ही आप जीवित रह सकेंगे।' राजासे इस प्रकार कहकर वे वहीं अन्तर्हित हो गये।

राजर्षि सत्यव्रत मत्स्य भगवान्के बताये हुए उस कालकी प्रतीक्षा करने लगे। उन्होंने एक विशाल नौका तैयार कराकर उसमें सभी बीजों तथा ओषधियोंके प्राणतत्त्वको स्थापित कर सप्तर्षियोंकी सहायतासे उसे महासागरमें ले गये। सृष्टिका विलय प्रारम्भ हो चुका था। धीरे-धीरे सर्वत्र केवल जल-ही-जल हो गया। राजा भगवान्के मत्स्यरूपका चिन्तन करने लगे। कुछ समय पश्चात् श्रीहरि मत्स्यरूप धारण करके प्रकट हुए। उनका शरीर स्वर्ण-सा देदीप्यमान तथा अत्यन्त विस्तृत था। वे मस्तकपर सींग धारण किये हुए थे। राजाने उस सींगमें रस्सीके द्वारा नावको बाँध दिया। फिर तो महासमुद्रके मध्य विक्षुब्ध उत्ताल तरंगोंके बीच वह नौका विचित्ररूपसे झूलने लगी। उस समय कहीं भी पृथ्वी और दिशाओंका पता नहीं था।

मत्स्यरूपधारी भगवान् श्रीहरि प्रलय-पयोधिमें विहार करते हुए राजा सत्यव्रत तथा सप्तर्षिगणोंको स्वेच्छानुसार जो धर्मकथा सुनाते थे, वही 'मत्स्यपुराण'के नामसे संगृहीत हुआ।

प्रलयान्तमें भगवान्ने हयग्रीव असुरको मारकर उससे वेद छीन लिये और ब्रह्माजीको दे दिये। शनैः-शनैः जल घटने लगा। पृथ्वी प्रकट हुई। भगवान्ने ब्रह्माको नयी सृष्टिकी रचना करनेकी आज्ञा दी। राजा सत्यव्रतद्वारा संगृहीत उन ओषधियोंके बीज तथा पशु-पक्षियोंके सहारे पुनः सारा संसार भर गया। यही राजा सत्यव्रत इस प्रकार सातवें वैवस्वत मनु हुए, जिनका समय आज भी चल रहा है।

जयसिंह-कल्पद्रुमके अनुसार चैत्रशुक्ला तृतीया तथा मतान्तरसे पञ्चमीको श्रीमत्स्य-जयन्ती मानी गयी है। भगवान् नारायणने उसी दिन मत्स्यावतार ग्रहण कर प्रलयकालीन जलमें हयग्रीव दैत्यद्वारा अपहृत सम्पूर्ण धर्म-कर्मके विधायक वेदोंका उद्धार किया था, धर्मका तथा ज्ञानका उपदेश दिया था और अपनी भक्तवत्सलता प्रकट की थी। मार्गशीर्षशुक्ल-पक्षकी द्वादशी तिथि 'मत्स्य-द्वादशी'के नामसे प्रसिद्ध है। इस दिन मत्स्य भगवान्की विशेषरूपसे पूजा करनेका विधान वराहपुराण (अ० ३६) में वर्णित है।

श्राद्धकर्मकी महिमा

प्राचीन कालकी बात है। कुरुक्षेत्रमें कौशिक नामक एक धर्मात्मा ऋषि रहते थे। उनके सात पुत्र थे, जिनके नाम थे—स्वसृप, क्रोधन, हिंस्र, विश्रुत, कवि, वाग्दुष्ट और पितृवर्ती। पिताकी मृत्युके पश्चात् वे महर्षि गर्गके शिष्य हो गये। दैववशात् निरन्तर अनावृष्टिके कारण भीषण अकालका समय उपस्थित हुआ। अकालके कारण जब सातों भाई क्षुधा-शान्तिकी कोई व्यवस्था नहीं कर पाये, तब उनमेंसे एक पितृवर्तीने श्राद्धकर्म करनेकी सम्मति प्रकट की। भाइयोंकी सहमति पाकर उसने समाहित-चित्तसे श्राद्धका उपक्रम किया। उसने छोटे-बड़ेके क्रमसे दो भाइयोंको देवकार्यमें, तीनको पितृकार्यमें, एकको अतिथिकार्यमें नियुक्त किया तथा स्वयं श्राद्धकर्ता बना। कालक्रमानुसार मृत्युके उपरान्त श्राद्धवैगुण्यरूप कर्मदोषसे वे सभी दाशपुर (मन्दसौर) नामक नगरमें बहेलिया होकर उत्पन्न हुए, किंतु श्राद्ध-कृत्यके प्रभावसे उन्हें पूर्वजन्मके वृत्तान्तोंका स्मरण बना रहा तथा उनके बहेलिया होनेपर भी उनकी वृत्तियाँ उत्तम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहीं। पूर्वजन्मके पुण्यफलसे उनके भीतर वैराग्य उद्दीप्त हुआ और उन्होंने अनशन करके अपने अधम शरीरोंको त्याग दिया। अगले जन्ममें वे कालञ्जर पर्वतपर भगवान् नीलकण्ठके सम्मुख मृगयोनिमें उत्पन्न हुए। इस योनिमें भी उनके भीतर पूर्वकृत श्राद्धकर्म-पुण्यसे पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रही। उस योनिमें भी ज्ञान और वैराग्यके प्रबल अनुरोधसे उन लोगोंने तीर्थस्थानमें अनशन करते हुए धर्मपूर्वक प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया। तत्पश्चात् उक्त सातों वेदाभ्यासी जनोंने मानसरोवरमें चक्रवाककी योनिमें जन्म धारण किया। सुमना, कुमुद, शुद्ध, छिद्रदर्शी, सुनेत्रक, सुनेत्र और अंशुमान् नामोंसे ये सातों योगके पारदर्शी जलचर पक्षी हुए। इनमेंसे अल्पबुद्धिवाले तीन तो योगसे भ्रष्ट होकर इधर-उधर भ्रमण करने लगे और शेष चार उसी मानसरोवरमें शान्तभावसे निवास करते रहे। उसी समय इन पक्षियोंने एक महान् वैभवशाली पाञ्चालनरेशको अपने क्रीडोद्यानमें स्त्रियोंके साथ विहार करते हुए देखा। उस शोभाशाली राजाको देखकर उन जलपक्षियोंमेंसे एकको, जो पितृभक्त, श्राद्धकर्ता पितृवर्ती नामक ब्राह्मण था, राज्य-प्राप्तिकी आकाङ्क्षा उत्पन्न हो गयी। दूसरे दो योगभ्रष्ट पक्षियोंको राजाके दो वैभवसम्पन्न मन्त्रियोंको देखकर मृत्युलोकमें मन्त्रिपद पानेकी इच्छा हो गयी। शेष चारों भाई निष्काम थे, अतः वे सभी आगे चलकर श्रेष्ठ ब्राह्मण-कुलमें पैदा हुए, किंतु प्रथम तीन योगभ्रष्ट पक्षियोंमेंसे एक राजा विभ्राजके पुत्ररूपमें ब्रह्मदत्त नामसे उत्पन्न हुआ तथा अन्य दो कंडरीक और सुबालक नामसे मन्त्रीके पुत्र हुए। राजा विभ्राजकी मृत्युके बाद ब्रह्मदत्त महान् गुणवान् राजा हुआ और उसका विवाह संनति नामकी सुन्दरीसे हुआ। पाञ्चालनरेश ब्रह्मदत्त प्रबल पराक्रमी, सभी शास्त्रोंमें प्रवीण, योगज्ञ और सभी जन्तुओंकी बोलीका ज्ञाता था। उसकी पत्नी संनति महान् पतिपरायणा और ब्रह्मवादिनी थी। पवित्र और रमणीय पत्नीके साथ ब्रह्मदत्त सुखपूर्वक राज्य करने लगा।

एक समयकी बात है, राजा ब्रह्मदत्त अपनी पत्नी संनतिके साथ भ्रमण करनेके लिये उद्यानमें गया। वहाँ उसने काम-कलहसे व्याकुल एक कीट-दम्पति (चींटा-चींटी) को देखा। वह चींटा, जिसका शरीर कामदेवके बाणोंसे संतप्त हो रहा था, चींटीसे प्रणयकातर होकर कह रहा था—'प्रिये! इस जगत्में तुम्हारे समान सुन्दरी स्त्री कहीं कोई भी नहीं है। तुम्हारे कटि, वक्ष, उरकी यौवन-शोभा अवर्णनीय है। तुम्हारी वाणी मधुर, मुस्कान वेधक और तुम्हारी रुचियाँ गुड़ और शक्करके प्रति अतिशय स्पृहणीय हैं। तुम्हारा पातिव्रत्य भी महिमामय है। तुम सदा मेरे भोजन कर लेनेके पश्चात् भोजन करती हो और मेरे स्नान कर लेनेके बाद ही स्नान करती हो। मेरा कुछ ही समयके लिये परदेश चला जाना तुम्हें दीन बना देता है और मेरा किंचित् क्रुद्ध होना भी तुम्हें अतिशय कातर कर देता है। कल्याणि! बतलाओ तो सही किस कारणसे तुमने मान कर रखा है? मुझसे दूर-दूर रहनेका कारण क्या है?' चींटेके इन उद्गारोंसे और अधिक आग-बबूला होती हुई चींटी कह रही थी—'रे शठ! तुम क्यों मुझसे व्यर्थ बकवाद कर रहे हो? धूर्त! अभी कल ही तुमने मेरा परित्याग करके लड्डूका चूर्ण ले जाकर दूसरी चींटीको नहीं दिया है?' चींटा कह रहा था—'श्रेष्ठ और मनको भानेवाली मेरी प्रिय भामिनि! तुम मेरे इस एक अपराधको क्षमा कर दो। मैं इसकी पुनरावृत्ति कभी नहीं करूँगा। मैंने तुम्हारे रंग-रूपके सादृश्यके कारण भूलसे दूसरी चींटीको मोदक-चूर्ण दे दिया था। मैं सत्यकी दुहाई देता हूँ। तुम्हारे चरण छूता हूँ। मुझपर प्रसन्न हो जाओ।'

राजा ब्रह्मदत्त चींटे-चींटीके संवादको सुनकर हँसने लगे। वस्तुतः ब्रह्मदत्तको विभिन्न पशु-पक्षियों एवं प्राणियोंकी बोली समझ जानेका जन्मजात गुण प्राप्त था; क्योंकि उनके पिताने पुत्र-प्राप्तिके लिये महान् तप किया था और भगवान् विष्णुने ब्रह्मदत्तके रूपमें स्वयं उनके पिताको ब्रह्मदत्त-नामक पुत्र-प्राप्ति होनेका वरदान दिया था; जो धार्मिक, श्रेष्ठ योगी होनेके साथ-साथ सम्पूर्ण प्राणियोंकी बोलीका ज्ञाता भी हो सकता था। ब्रह्मदत्तको कीट-दम्पतिके बीचमें चलनेवाली प्रणय-लीलाको देखकर जब हँसी आ गयी तो महारानी संनतिने यह समझा कि राजा उनका परिहास कर रहे हैं और उक्त हँसीका रहस्य जाननेके लिये वे हठ करने लगीं। राजाने उन्हें इसका वास्तविक कारण तो बता दिया, पर रानीको इसका विश्वास नहीं हुआ। राजा रानीको सहमत न कर पानेकी स्थितिमें अत्यन्त दुःखी हो गये और स्वयं श्रीहरिके समक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सात राततक आराधना करते हुए बैठे रह गये। भगवान् विष्णुने उन्हें स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—'राजन् ! प्रातःकाल तुम्हारे नगरमें घूमता हुआ एक वृद्ध ब्राह्मण जो कुछ कहेगा, उसके वचनोंसे तुम्हें सारा रहस्य ज्ञात हो जायगा।' यों कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये।

वास्तविकता यह थी कि सात चक्रवाक जो किसी जन्ममें सात भाई थे, उनमेंसे तीन तो योगभ्रष्ट होकर अपनी इच्छाओंके अनुरूप क्रमशः राजा ब्रह्मदत्त तथा मन्त्री कंडरीक और सुबालक हुए, पर शेष चारों चक्रवाक उसी ब्रह्मदत्तके नगरमें एक वृद्ध ब्राह्मणके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए थे। वे जातिस्मर बने रहे और धृतिमान्, तत्त्वदर्शी, विद्याचण्ड एवं तपोत्सुक—इन चार नामोंसे लोकमें प्रसिद्ध हो गये थे। बचपनसे ही वैराग्य एवं तपस्याकी प्रवृत्तिके कारण इन चारों भाइयोंने अपने पिता सुदरिद्रसे एक दिन कहा—'पिताजी ! हमलोग तपस्या करके परम सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं।' उनके इस कथनको सुनकर महातपस्वी सुदरिद्र दीन वाणीमें बोले—'पुत्रो ! यह कैसी बात कर रहे हो ? मुझ दरिद्र पिताको छोड़कर तुमलोग वनवासी होना चाहते हो ? मेरा परित्याग करनेसे तुम्हें कौन-सा धर्म प्राप्त होगा और तुम्हारी क्या गति होगी ? यह तो महान् अधर्म है।' ऐसा कहकर पिताने उन्हें मना कर दिया। यह सुनकर उन बच्चोंने कहा—'तात ! हमलोगोंने आपके जीविकोपार्जनका प्रबन्ध कर दिया है। यदि आप प्रातःकाल राजा ब्रह्मदत्तके समक्ष जाकर इस श्लोकका पाठ कीजिये तो राजा आपको प्रचुर धन-सम्पत्ति एवं सहस्रों ग्राम प्रदान करेंगे। श्लोक यह है—

ये विप्रमुख्याः कुरुजाङ्गलेषु दाशास्तथा दाशपुरे मृगाश्च।
कालञ्जरे सप्त च चक्रवाका ये मानसे तेऽत्र वसन्ति सिद्धाः॥

'जो (पहले) कुरुक्षेत्रमें श्रेष्ठ ब्राह्मणके रूपमें, दाशपुर (मंदसौर) में व्याधके रूपमें, कालञ्जर-पर्वतपर मृग-योनिमें और मानसरोवरमें सात चक्रवाकके रूपमें उत्पन्न हुए थे, वे ही सिद्ध (होकर) यहाँ निवास कर रहे हैं।'

तदनन्तर सुदरिद्र वृद्ध ब्राह्मणने वैसा ही किया। ब्राह्मणकी वाणी सुनकर राजा ब्रह्मदत्त अपने दोनों मन्त्रियोंके साथ शोकाकुल होकर भूतलपर गिर पड़े। उन्हें जाति-स्मरत्व हो गया। तीनों भाई जो कर्म-बन्धनमें फँसकर योगसे भ्रष्ट हो गये थे, पुनः योगारूढ हो गये और उन्हें तत्क्षण वैराग्य हो गया। राजाने अपने पुत्रको राज्यका भार सौंप दिया और योगका आश्रय ग्रहण कर परमपदकी प्राप्ति कर ली। रानी संनतिका अमर्ष भी इस घटना-चक्रका भेद पाकर समाप्त हो गया और इस प्रकार योगभ्रष्ट हुए ब्रह्मदत्त और उनके मन्त्रियोंको पुनः श्रेष्ठ गति प्राप्त हो गयी। अहो ! श्राद्धकर्मनिष्ठा और पितृभक्तिकी कितनी महिमा है कि कई-कई जन्मोंतक मनुष्यके योग-क्षेमका वहन करनेमें वह आत्यन्तिक रूपसे समर्थ है।

अविमुक्त-क्षेत्रमें शिवार्चन एवं तपः कर्मसे यक्षको गणेशत्व-प्राप्ति

प्राचीन कालमें हरिकेश नामसे विख्यात एक सौन्दर्यशाली यक्ष हुआ था, जो पूर्णभद्रका पुत्र था। हरिकेश महाप्रतापी, ब्राह्मणभक्त एवं धर्मात्मा था। जन्मसे ही उसकी शंकरजीमें प्रगाढ़ भक्ति थी। वह तन्मय होकर उन्हींको नमस्कार करने, उन्हींकी भक्ति करने और उन्हींके ध्यानमें तत्पर रहता था। वह बैठते, सोते, चलते, खड़े होते, घूमते तथा खाते-पीते—सब समय सदा भगवान् शंकरके ध्यानमें ही मग्न रहता था। इस प्रकार पुत्रको शिवमें लीन देखकर उसके पिता पूर्णभद्रने कहा—'पुत्र ! मैं तुम्हें अपना पुत्र नहीं मानता, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अन्यथा ही उत्पन्न हुए हो; क्योंकि यक्षकुलमें उत्पन्न होनेवालोंका आचरण ऐसा नहीं होता। तुम गुह्यक हो। राक्षस स्वभावसे ही क्रूर चित्तवाले मांसभक्षी, सर्वभक्षी और हिंसापरायण होते हैं। हे पुत्र ! तुम ऐसा कर्म मत करो, क्योंकि तुम्हारे लिये ऐसी वृत्ति नहीं बतलायी गयी है। गृहस्थ भी अन्य आश्रमोंका कर्म नहीं करते। अतः तुम मानव-सुलभ आचरणको त्याग करके यक्षोंके अनुकूल विविध कर्मोंको सम्पन्न करो। यदि तुम इस प्रकार विमार्गपर ही स्थित रहोगे तो मनुष्यसे उत्पन्न हुआ ही समझे जाओगे। अतः यक्ष-जातिके अनुकूल विविध कर्मोंका ठीक-ठीक आचरण करो। देखो, मैं भी निःसंदेह वैसा ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचरण कर रहा हूँ।' प्रतापी पूर्णभद्रने अपने पुत्रको इस प्रकार समझानेकी चेष्टा की, परंतु हरिकेशका मन शिवमय हो जानेके कारण पिताके समझानेका उसपर कोई प्रभाव न पड़ा। तब पिता पूर्णभद्र कुपित होकर बोला—'पुत्र ! तुम शीघ्र ही मेरे घरसे निकल जाओ और जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ चले जाओ।' पिताके शब्दोंको सुनकर उनकी आज्ञाका पालन करते हुए वह हरिकेश यक्ष अपने गृह तथा सम्बन्धियोंका त्याग कर निकल पड़ा और अविमुक्त-क्षेत्र (वाराणसी) में जाकर अत्यन्त दुष्कर तपस्यामें संलग्न हो गया।

वहाँ वह इन्द्रिय-समुदायको संयमित कर शुष्क काष्ठ और पत्थरकी भाँति निश्चल हो एकटक स्थाणुकी भाँति स्थित हो गया। इस प्रकार निरन्तर तपस्यामें लगे रहनेवाले हरिकेशके एक सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये। उसके शरीरपर विमौट जम गया। वज्रके समान कठोर एवं तीखे मुखवाली चींटियाँ उसमें छिद्र कर उसके मांस, रुधिर और चमड़े खा डालीं, जिससे उसका अस्थिमात्र ही अवशेष रह गया। वह कुन्द, शङ्ख और चन्द्रमाके समान चमक रहा था। इतनेपर भी वह भगवान् शंकरके ध्यानमें ही लीन था। इसी समय कैलास पर्वतपर पार्वतीदेवीने भगवान् शंकरसे निवेदन किया—'प्रभो ! मैं अविमुक्त-क्षेत्रका दर्शन करना चाहती हूँ; क्योंकि वाराणसी आपको परम प्रिय है।' इस प्रकार भवानीद्वारा निवेदन किये जानेपर भगवान् शंकर पार्वतीके साथ वहाँसे चल पड़े और अविमुक्त-क्षेत्रका उन्हें दर्शन कराते हुए उसकी महिमाका वर्णन करने लगे। तदनन्तर भगवान् शिव और पार्वती चलते-चलते उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ हरिकेश यक्ष घोर तपस्यामें निरत था। तब महादेवजीने गिरिराजकुमारी पार्वतीसे भक्तराज यक्षको कृपापूर्वक वर प्रदान करनेके लिये इस प्रकार कहा—'भामिनि ! यह मेरा भक्त है। तपस्यासे इसके पाप नष्ट हो चुके हैं। अतः यह हमलोगोंसे वर प्राप्त करनेका अधिकारी हो गया है।' तदनन्तर भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर पार्वतीदेवी उस गुह्यककी ओर देखने लगीं जिसका शरीर श्वेत रंगका हो गया था, चमड़ा गल गया था और मात्र अस्थिपञ्जर नसोंसे आबद्ध था। यक्षको इस रूपमें देखकर भगवती पार्वतीने महादेवजीसे कहा—'महादेव ! इस तपस्वीको आप वरदान दीजिये, बड़ी कठिन तपस्या कर रहा है।'

भगवान् शंकर और भगवती पार्वतीके आनेकी आहट पाकर वह यक्ष उनके चरणोंपर गिर पड़ा। इस प्रकार उस हरिकेशको भक्तिपूर्वक चरणोंमें पड़ा हुआ देखकर शिवजीने उसे दिव्य चक्षु प्रदान किया, जिससे उसने गणसहित वृषभध्वज महादेवजीको सामने उपस्थित देखा। तब भगवान् शिवने प्रसन्न होकर यक्षसे कहा—'यक्ष ! मैं तुम्हें पहले वह वर देता हूँ, जिससे तुम्हारे शरीरका वर्ण सुन्दर हो जाय तथा तुम त्रिलोकीमें देखने योग्य हो जाओ।' वरदान पाकर वह यक्ष अक्षत-शरीरसे युक्त होकर भगवान्के चरणोंपर प्रणिपात करता हुआ बोला—'भगवन् ! मुझे ऐसा वरदान दीजिये कि आपमें मेरी अनन्य एवं अटल भक्ति हो जाय। मैं अक्षय अन्नका दाता तथा लोकोंके गणोंका अधीश्वर हो जाऊँ, जिससे आपके अविमुक्त स्थानका सदा दर्शन करता रहूँ। देवेश ! मैं आपसे यही उत्तम वर प्राप्त करना चाहता हूँ।' भगवान् शिवने पुनः वर देते हुए कहा—'यक्ष ! तुम जरा-मरणसे विमुक्त, समस्त रोगोंसे रहित, सबके द्वारा सम्मानित, धनदाता, गणाध्यक्ष होओगे। तुम सभीके लिये अजेय योगैश्वर्यसे युक्त, लोकोंके लिये अन्नदाता, क्षेत्रपाल, महाबली, महान् पराक्रमी, ब्राह्मणभक्त, मेरे प्रिय, त्रिनेत्रधारी, दण्डपाणि तथा महायोगी होओगे।' उद्भ्रम तथा सम्भ्रम—ये दोनों गण तुम्हारे सेवक होकर तुम्हारी आज्ञासे लोकका कार्य करेंगे।

इस प्रकार उस यक्षको गणेश्वर बनाकर भगवान् शंकर उसके साथ कैलास लौट गये। अविमुक्त-क्षेत्र वाराणसीमें शिवार्चन एवं तपःकर्मकी महिमा कितनी अविस्मरणीय एवं फलप्रदायी है। (मत्स्यपुराण, अ० १८०

केवल धर्म ही परम कल्याणकारक है, एकमात्र क्षमा ही शान्तिका सर्वश्रेष्ठ उपाय है। एक विद्या ही परम संतोष देनेवाली है और एकमात्र अहिंसा ही सुख देनेवाली है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लवणाचल-दानकी महिमा

बृहत्कल्पमें धर्ममूर्ति नामक एक राजा हुए थे, जिनके तेजके समक्ष सूर्य एवं चन्द्रमा भी कान्तिहीन हो जाते थे। इन्द्रके परम मित्र उन नरपुङ्गवने हजारों दैत्योंका वध किया। वे अपराजेय, शत्रुहन्ता और अपने इच्छानुसार रूप धारण कर लेनेमें समर्थ थे। उनकी रानी भानुमती त्रिलोकीमें सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी। उसने अपने लक्ष्मीके समान दिव्य रूपसे देवाङ्गनाओंको भी पराजित कर दिया था। दस हजार नारियोंके मध्यमें लक्ष्मीकी भाँति सुशोभित होनेवाली राजा धर्ममूर्तिकी वह पटरानी उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी।

एक बार राजा धर्ममूर्तिने सभामण्डपमें आये हुए अपने पुरोहित महर्षि वसिष्ठसे विस्मयविमुग्ध होकर प्रश्न किया—'भगवन्! किस धर्मके प्रभावसे मुझे सर्वश्रेष्ठ लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई है? तथा किस धर्मके फलस्वरूप मेरे शरीरमें सदा प्रचुरमात्रामें उत्तम तेज विराजमान रहता है?'

वसिष्ठजीने उत्तर दिया—'राजन्! पूर्वकालमें लीलावती नामकी किसी शिवभक्ता गणिकाने चतुर्दशी तिथिके दिन विधिपूर्वक अपने गुरुको स्वर्णमय वृक्ष आदि उपकरणोंसहित लवणाचलका दान दिया था। उन दिनों लीलावतीके घर एक शूद्रजातीय शौण्ड नामक सुनार नौकर था। उसने ही उस गणिकाके लिये श्रद्धापूर्वक सुवर्णद्वारा वृक्षों और प्रधान देवताओंकी मूर्तियोंका निर्माण अत्यन्त कलात्मक एवं उत्कृष्ट-रूपमें किया था और यह धर्मका कार्य है—ऐसा जानकर किसी भी प्रकारका कुछ वेतन भी नहीं लिया था। पृथ्वीपते! उस स्वर्णकारकी पत्नीने भी उन सुवर्ण-निर्मित देवों एवं वृक्षोंकी मूर्तियोंको रगड़कर चमकीला बनाया था और लीलावतीके पर्वत-दानमें बड़ी परिचर्या की थी। उन दोनों शूद्रजातीय स्वर्णकार दम्पतिकी सहायतासे लीलावतीने दान आदि कार्योंको सम्पन्न किया था। कुछ काल बीत जानेपर जब वह गणिका कालधर्म (मृत्यु)को प्राप्त हुई, तब समस्त पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकको चली गयी। वही सुनार, जो दरिद्र होते हुए भी अत्यन्त सामर्थ्यशाली था और जिसने गणिकासे कुछ भी मूल्य नहीं लिया था, इस जन्ममें तुम हो, जो दस हजार सूर्योंके समान कान्तिमान् और सातों द्वीपोंके अधीश्वररूपसे उत्पन्न हुए हो। सुनारकी जिस पत्नीने स्वर्णनिर्मित वृक्षों एवं देवमूर्तियोंको अत्यन्त चमकीला बनाया था, वही यह तुम्हारी पटरानी भानुमती है। मूर्तियोंको उज्ज्वल करनेके कारण इसे इस जन्ममें सुन्दर गौरवर्णका शरीर और भुवनेश्वरीका पद प्राप्त हुआ है। चूँकि तुम दोनोंने ही दत्तचित्त होकर रात्रिमें लवणाचलके दान-प्रसंगमें सहायकरूपसे कर्म किया था, इसीलिये तुम्हें लोकमें अजेयता, नीरोगता और सौभाग्य-सम्पन्न लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई है।'

आश्चर्य है कि जब इस लोकमें मनुष्यद्वारा लवणाचल-दानमें यत्किंचित् सहयोगमात्र करनेसे ही इतने दुर्लभ पदकी प्राप्ति हो सकती है, मनोवाञ्छित कामना पूर्ण हो सकती है, तब जो स्वयं शुद्धान्तःकरण एवं शान्तचित्तसे विधिपूर्वक इस दानको सम्पादित करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है?

मदनद्वादशीव्रतका अद्भुत प्रभाव

एक बार देवताओंद्वारा सम्पूर्ण दैत्यकुलका संहार हो जानेपर दैत्यमाता दितिको अपार कष्ट हुआ। तब वह पृथ्वी-लोकमें स्यमन्तपञ्चक क्षेत्रमें आकर सरस्वती नदीके तटपर अपने पति महर्षि कश्यपकी आराधना करते हुए भीषण तपमें निरत हो गयी। उसने ऋषियोंकी भाँति फलाहार, कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन एवं अनुष्ठान करते हुए वृद्धावस्थाके कष्टों एवं संततिहीनताके शोकको एक साथ सहन करते हुए सौ वर्षोंतक कठोर तप किया, परंतु उसे अभीष्टकी सिद्धि नहीं हो सकी। तत्पश्चात् विफलमनोरथा दितिने वसिष्ठ आदि ऋषियोंसे प्रश्न किया—'ऋषियो! आपलोग मुझे ऐसा व्रत बतलाइये, जो पुत्रशोकका विनाशक तथा इहलोक एवं परलोकमें सौभाग्यरूपी फलका प्रदाता हो।'

तब वसिष्ठ आदि ऋषियोंने दितिको मदनद्वादशी-व्रतके विधानका उपदेश किया। उसे सुनकर दितिने उसका अनुष्ठान किया। उसने नियमानुसार चैत्र शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको श्वेत चावल, श्वेत पुष्प, श्वेत चन्दन और दो श्वेत वस्त्रोंसे अलंकृत एक छिद्ररहित घटकी स्थापना की। वह घट विविध खाद्य-सामग्री एवं यथाशक्ति सुवर्ण-खण्डसे सुशोभित था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके निकट विभिन्न प्रकारके ऋतुफल रखे हुए थे। दितिने घटके ऊपर गुड़से भरा हुआ ताँबेका पात्र रखा और उसके ऊपर कदली-पत्रपर काम और रतिकी रचना करके गन्ध, धूप आदि उपचारोंसे उनकी पूजा की। उसने मात्र एक फलका भोजन किया और भूतलपर शयन करते हुए रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल उसने उस घटको ब्राह्मणको दान करके ब्राह्मणोंको भोजन कराया और स्वयं भी नमकरहित भोजन किया। तदनन्तर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर इस मन्त्रका पाठ किया—

प्रीयतामत्र भगवान् कामरूपी जनार्दनः।
हृदये सर्वभूतानां य आनन्दोऽभिधीयते ॥

इसी प्रकार दितिने प्रत्येक मासमें शुक्लद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान किया। बारह मास बीत जानेके बाद तेरहवें मासमें घृत, धेनु एवं समस्त सामग्रियोंसे युक्त शय्या, रति-कामदेवकी स्वर्ण-प्रतिमा और श्वेत रंगकी दुधार गौका दान किया तथा हवि, खीर और श्वेत तिलोंसे कामदेवके नामोंका उच्चारण करते हुए हवन किया। इस तरह दितिका अनुष्ठान पूर्ण हो जानेपर उसके पति महर्षि कश्यप उसके सम्मुख उपस्थित हो गये। उन्होंने दितिको पुनः रूप-यौवनसम्पन्ना युवती बना दिया और उससे मनोवाञ्छित वर माँगनेको कहा। दितिने कहा—'पतिदेव! मैं एक ऐसा पुत्र चाहती हूँ जो इन्द्र एवं समस्त देवताओंका विनाशक हो।'

यह सुनकर महर्षि कश्यपने कहा—'शुभे! मैं तुम्हें अत्यन्त ऊर्जस्वी और इन्द्रका वध करनेवाला पुत्र प्रदान करूँगा, परंतु तुम आज ही आपस्तम्ब ऋषिके द्वारा पुत्रेष्टि-यज्ञका अनुष्ठान कराओ। तत्पश्चात् मेरे द्वारा तुम्हें इन्द्रके विनाशक पुत्रकी प्राप्ति होगी।' पतिके कथनानुसार दितिने पुत्रेष्टि-यज्ञको सम्पादित किया। यज्ञकी समाप्तिके बाद महर्षि कश्यपने दितिके उदरमें गर्भाधान किया और कहा—'वरानने! एक सौ वर्षोंतक तुम इसी तपोवनमें रहती हुई, गर्भिणी स्त्रीके लिये उचित सम्पूर्ण नियमोंका पालन करो और गर्भस्थ शिशुकी रक्षा करो।' ऐसा कहकर महर्षि कश्यप अन्तर्धान हो गये। दिति पतिके कथनानुसार नियमोंका पालन करती हुई उसी तपोवनमें समय व्यतीत करने लगी। इस वृत्तान्तको जानकर इन्द्र देवलोकसे दितिके पास आ गये और दितिकी सेवा करनेकी इच्छा करते हुए उसके पास ही रहने लगे। बाह्यरूपसे विनम्र एवं प्रशान्त प्रतीत होनेवाले इन्द्रकी एकमात्र इच्छा थी कि किसी भी प्रकारसे सौ वर्षके पूर्ण होनेके पूर्व ही यह गर्भ नष्ट हो जाय। इसलिये वे सदैव दितिके छिद्रान्वेषणमें तत्पर रहते थे।

जब सौ वर्षकी अवधिके पूर्ण होनेमें केवल तीन दिन शेष रह गये तो दिति अपने-आपको सफलमनोरथ समझते हुए निद्राके प्रभावसे दिनमें ही पैतानेकी ओर सिरकर सो गयी। ऐसा अवसर पाकर इन्द्रने दितिके उदरमें प्रवेश किया और वज्रके प्रहारसे गर्भके सात टुकड़े कर दिये। उन सातों टुकड़ोंसे सूर्यके समान तेजस्वी सात शिशु उत्पन्न हो गये और रोने लगे। इन्द्रके मना करनेपर भी जब शिशुओंने रोना बंद नहीं किया, तब उन्होंने पुनः वज्रके प्रहारसे एक-एक शिशुके सात-सात टुकड़े कर दिये। इस प्रकार वे टुकड़े उनचास शिशुओंके रूपमें परिणत होकर जोर-जोरसे रोने लगे। इन्द्रके बार-बार **'मा रुदत'** मत रोओ कहनेपर भी उनका रुदन बंद नहीं हुआ। इन्द्रको महान् आश्चर्य हुआ कि वज्रप्रहारके बाद भी शिशुओंके जीवित रहनेका क्या कारण है? अन्तमें ध्यानके द्वारा उन्हें यह ज्ञात हुआ कि दितिके द्वारा किये गये मदनद्वादशी-व्रतके प्रभावसे ही ये बालक अमर हो चुके हैं और उदरमें रहते हुए ही उनकी संख्या उनचास हो गयी है। यह सोचकर इन्द्र दितिके उदरसे बाहर निकल आये। उन्होंने अपने कृत्यके लिये दितिसे क्षमा माँगी और दितिके गर्भमें स्थित उनचास शिशुओंको मरुद्गणकी संज्ञा देते हुए उन्हें देवताओंके समान बताया तथा यज्ञोंमें उनके लिये भाग-व्यवस्था की।

फिर ये दितिके पुत्रोंको विमानमें बैठाकर अपने साथ स्वर्ग ले गये। इस व्रतके अनुष्ठानसे कर्ताके सम्पूर्ण मनोरथ सफलीभूत हो जाते हैं और असम्भव भी सम्भव हो जाता है।

ऐश्वर्य, उन्नति एवं अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषोंको नींद, तन्द्रा (ऊँघना), डर, क्रोध, आलस्य तथा दीर्घसूत्रता (शीघ्र हो जानेवाले काममें अधिक देर लगानेकी आदत)—इन छः दुर्गुणोंको त्याग देना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरुडपुराण

गरुडपुराण प्रधानतया वैष्णवपुराण है और इसमें विशेषकर पूर्वखण्डमें विष्णु-भक्ति एवं उपासनासे सम्बन्धित साङ्गोपाङ्ग दसों अवयवोंका संनिवेश है। सभी पुराणोंमें इसकी श्लोक-संख्या १९,००० बतलायी गयी है, किंतु वर्तमान समयमें इसमें ७,००० श्लोक ही उपलब्ध होते हैं। गरुडपुराणके सभी संस्करणोंमें परस्पर थोड़ा ही अन्तर है, किंतु वेंकटेश्वर प्रेसकी प्रतिमें ब्रह्मखण्ड सर्वथा अधिक है। आजकल विशेषरूपसे प्रचलित 'गरुडपुराण-सारोद्धार' नामका एक ग्रन्थ उपलब्ध होता है, जो वास्तवमें मूल गरुडपुराणसे सर्वथा असम्बद्ध है और वह कुछ समय पूर्वके राजस्थानके विद्वान् पं० नवनिधिरामजी शर्माकी रचना है। उसमें शंकराचार्यके विवेकचूड़ामणि, श्रीमद्भगवद्गीता, नीतिशतक, वैराग्यशतक एवं गरुडपुराणके श्लोकोंका संग्रह है।

अस्तु! वर्तमानमें प्राप्त गरुडपुराणका विवरण इस प्रकार समझना चाहिये। तीसरे अध्यायमें **'पक्षि ॐ स्वाहा'** इस मन्त्रको तथा गरुडपुराणको मुख्य गारुडी विद्या कहा गया है। पुराणोंमें एक कथा आती है कि जब परीक्षित्को तक्षकके द्वारा डँसनेकी बातका प्रचार हुआ तो सभी बड़े-बड़े मन्त्रवेत्ता झाड़-फूँकके लिये भी चले थे। इन्हींमें एक काश्यप 'भी थे। नागराज तक्षकने रास्तेमें उन्हें देखा। वह उनके प्रभावको जानता था। उसने एक वृद्ध ब्राह्मणका वेष बनाकर उनसे पूछा कि 'आप इतनी उतावलीके साथ कहाँ जा रहे हैं?' तब काश्यपने कहा—'आज तक्षक परीक्षित्को डँसनेवाला है, अतः मैं भी उसके विषको दूरकर उन्हें जीवित करनेके लिये जल्दी-जल्दी जा रहा हूँ।' यह सुनकर ब्राह्मणवेषधारी नागराजने कहा—'तक्षक तो मैं ही हूँ, आप लौट जाइये। मेरे दंशकी चिकित्सा किसीके वशकी बात नहीं है।' तब काश्यपने कहा—'मैं तुम्हारे विषको अवश्य दूर करूँगा। यह विद्याबलसे सम्बद्ध मेरी बुद्धिका पूर्ण निश्चय है।' इसपर तक्षकने कहा—'यदि ऐसी बात है तो मैं इस वृक्षको डँसता हूँ, आपके पास जितनी मन्त्र-शक्ति हो, दिखाइये।' यह सुनकर काश्यपने कहा—'तुम अपना अहंकार प्रकट करो। मैं अभी इस वृक्षको हरा-भरा कर देता हूँ।' काश्यपके ऐसा कहनेपर तक्षकने वृक्षको काटा और वृक्ष आग-जैसा जल उठा। यह देख उसने काश्यपसे कहा—'इस वृक्षको बचा सकते हों तो बचाइये।' इसके बाद काश्यपने उस वृक्षकी भस्मराशिको एकत्र कर ज्यों ही मन्त्र पढ़कर फूँका, त्यों ही उसमेंसे अङ्कुर निकला, फिर तो पल्लव, शाखा, प्रशाखा, पुष्प आदिसे युक्त वह वृक्ष पूर्ववत् ज्यों-का-त्यों खड़ा हो गया।

यह देखकर तक्षकने कहा—'ब्रह्मन्! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। अब आप यह बतायें कि 'परीक्षित्को जिलानेसे आपका कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा?' तब काश्यपने कहा—'मुझे राजासे अपार धन मिलेगा।' यह सुनकर तक्षकने उनकी इच्छासे दूना धन देकर काश्यपको वापस कर दिया। यह काश्यपका प्रभाव गरुडपुराणके सुननेसे हुआ था, ऐसा गरुडपुराण और महाभारत दोनोंमें दो बार उल्लेख है।

गरुडपुराणके प्रथम अध्यायमें भगवान्के चौबीस अवतारोंका ठीक वही वर्णन प्राप्त होता है, जो श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके तीसरे अध्यायमें है। इसे ब्रह्माजीने व्यासको और व्यासजीने सूत आदि ऋषियोंको बदरीनारायणमें सुनाया था। आगेके अध्यायोंमें नीतिसार, आयुर्वेद, गया-माहात्म्य, श्राद्धविधि, दशावतारचरित्र, सूर्य-सोम-वंश-वर्णन आदि बहुत विस्तारसे वर्णित हैं। बीच-बीचमें इन वंशोंमें उत्पन्न जरासन्ध आदि राजाओंका चरित्र भी निरूपित है। गया-माहात्म्यमें बताया गया है कि पहले गयासुर नामका एक बहुत बलवान् दैत्य था। उसने तपस्यासे सभी देवताओंकी शक्ति नष्ट कर दी थी और उनका सारा अधिकार अपहरण कर लिया था। देवतालोग दुःखी होकर भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। तब उन्होंने कहा—इसका शरीर किसी प्रकार पृथ्वीपर लेटे तो फिर इसका अन्त समझना चाहिये। एक बार वह शिवजीकी पूजाके लिये क्षीरसमुद्रसे कमलोंको लेकर कीकट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशमें सो रहा था। यह विष्णुमायाका प्रभाव था। उसी समय भगवान् विष्णुने उसे गदासे मार डाला। इसीलिये गयामें वि नाम गदाधर है और पुरीका नाम गयापुरी है। वहाँ उन्होंने ब्रह्माजीको बुलाकर कहा कि 'यहाँ दैत्यदेहके दोषको दूरकर आदि कार्य पितरोंके लिये तारक होंगे।' वहाँ उन्होंने रुद्रपद, कनकार्क एवं ब्रह्मा, गायत्री आदिके स्थानोंकी रचना कर नामकी एक नदी भी प्रवाहित की। इस गयापुरीका विस्तार पाँच कोसमें है। यहाँ ब्रह्मज्ञानके समान मुक्ति मिलती है। ग आस-पासमें पुनपुना नदी, च्यवनाश्रम और राजगृह आदि बड़े ही पुण्यदायक माने गये हैं।

गरुडपुराणके आरम्भमें मनुसे सृष्टिकी उत्पत्ति, ध्रुव-चरित्र एवं द्वादश आदित्योंकी कथा है। बादमें सूर्य-चन्द्र आदि मन्त्र, शिव-पार्वतीके मन्त्र, इन्द्रादि दिक्पालोंके मन्त्र, सरस्वतीके मन्त्र और उनकी नौ शक्तियोंका वर्णन है। फिर विष्णु-दी विधि और उसके बाद नव व्यूहोंके अर्चनका विधान निरूपित है। तेरहवें अध्यायमें विष्णु-पञ्जर-स्तोत्र, पंद्रहवें अ विष्णुसहस्रनाम-स्तोत्र और चौबीसवें अध्यायमें त्रिपुराका मन्त्र निरूपित है। इसके आगेके अध्यायोंमें 'रत्नसार' ग्रन्थ सं वर्णित है, उसमें कहा गया है कि देवताओंने विश्वविजेता बल नामक दैत्यकी प्रार्थना की, जिसने पहले इन्द्र आदि देवताओंको जीत लिया था। देवताओंने उससे कहा कि 'आप महान् यज्ञके रूपमें अपना शरीर परिणत कीजिये।' देवताओंकी प्रार्थना मानी, तब उसकी विशुद्ध शक्तिसे रत्नोंका भण्डार प्रकट हुआ, जो समुद्र, पर्वत, वन आदिकी खानोंमें होता है। हीरा, मोती, पद्मराग, मरकत, कर्केतन, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुलक, पुष्पराग, रुधिरमणि, स्फटिक, विद्रुम आदि रत्नों तथा मणियोंके लक्षण दस-बारह अध्यायोंमें यहाँ विस्तारसे बतलाये गये हैं। तदनन्तर सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र, बृहस्पति नीतिशास्त्र और सामुद्रिक शास्त्रका भी वर्णन है। इसमें साँपोंके लक्षण, स्वरोदय-शास्त्र, धर्मशास्त्र, विनायक वर्णाश्रम-धर्म, विविध व्रत, सम्पूर्ण अष्टाङ्ग आयुर्वेद, पतिव्रता-माहात्म्य, सूर्य-चन्द्र-वंश-वर्णन और भगवान्की कथा सु कीर्तन करना, उनकी पूजा करना आदि विष्णुभक्तिकी महत्त्वपूर्ण बातें विस्तारसे निरूपित हैं। तदनुसार यज्ञ करनेवाले तथा वे पारगामी विद्वान् भी उस गतिको नहीं पाते, जहाँ भक्त पहुँचते हैं। दुराचारी व्यक्ति भी भगवान्की भक्तिसे श्रेष्ठ गतिको होता है। भावसहित दण्डवत् प्रणाम करनेसे चाण्डाल भी पवित्र हो जाता है। 'हरि' शब्दका उच्चारण करनेवाला मोक्षके परिकर बाँधकर चल देता है। कमलनाभ, पुण्डरीकाक्ष नाम परम पाथेय हैं। जो इन्हें पुरुष-सूक्तसे एक फूल तथा एक जल चढ़ा देता है, वह तीनों लोकोंकी पूजा कर लेता है। सभी शास्त्रोंका अवलोकन करनेसे एक ही बात निकलती है भगवान् नारायण ही ध्येय हैं। जो मुहूर्तमात्र नारायणका ध्यान करता है वह भी स्वर्गको जाता है। इसलिये प्रतिपल भगवा स्मरण करना चाहिये। भगवान्का ध्यान करनेसे शिशुपाल भी मुक्त हो गया आदिका भी निरूपण है।

इसके आयुर्वेद-विभागमें अर्श, अतिसार, प्रमेह, पाण्डु, शोथ, कुष्ठ, विसर्प, नाडी-व्रण तथा स्त्री-रोगोंकी चिकित्सा आगे द्रव्यगुण-विकास भी है। ब्राह्मी घीके सेवनसे मेधाकी वृद्धि होती है। नारायण-तेलसे गठियाकी और अजमोदाके गण्डमालाकी शान्ति होती है। इसका आयुर्वेदीय भाग धन्वन्तरीय सुश्रुत, अग्निवेश, हारीत, आत्रेय एवं वाग्भटसम्मत है। आगे कई यन्त्र, मन्त्र आदि प्रयोगों एवं व्याकरण तथा छन्दः-शास्त्रका भी वर्णन है।

इसके अन्तमें ज्ञानामृतसार है, जिसमें कहा गया है कि निर्विकल्प, निराभास, निष्प्रपञ्च विष्णुका ध्यान करनेवाला हो जाता है। इसके २३३ वें अध्यायमें ९ श्लोकोंमें मार्कण्डेयकी वह स्तुति है, जिसे पढ़कर मार्कण्डेय मृत्युभयसे मुक्त हो थे। उसमें कहा गया है कि मैं शङ्ख-चक्रधारी विष्णुकी शरणमें हूँ, अतः मृत्यु हमारा क्या कर लेगी? इसके बाद चक्रधर-स्तोत्र है, इसके पढ़नेसे मुक्ति मिलती है। उसके आगे सांख्य एवं वेदान्तका सार निरूपित है। २३७ वें अध्या गीतासार है, किंतु उसमें गीताके श्लोक नहीं हैं। उसमें कहा गया है कि आत्मा असङ्ग है। जैसे दीपक प्रज्वलित होकर और पटको प्रकाशित करता है, वैसे ही ब्रह्मज्ञान आत्माके प्रकाशित करनेमें भी सहायता करता है। इससे वह शीघ्र ही स ब्रह्मरूप होकर पूर्ण मुक्त हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-आख्यान—

गया-श्राद्धसे प्रेतत्व-मुक्ति

(१)

एक व्यक्ति कहीं जा रहा था, वह था वैश्यवर्णका। रास्तेमें उसकी एक प्रेतसे भेंट हो गयी। दुःख झेलते-झेलते प्रेत बहुत उद्विग्न हो गया था। उसने उससे प्रार्थना की—'महोदय! यदि आप मुझपर दया करके गयामें मेरा श्राद्ध कर दें, तो मेरा इस योनिसे छुटकारा हो जाय और आपको भी स्वर्ग मिल जाय।'

वैश्यका हृदय करुणासे भर गया। उसने बन्धुओंसे परामर्श लेकर गयामें उस प्रेतके उद्देश्यसे श्राद्ध कर दिया। उसके बाद उसने अपने पितरोंका भी श्राद्ध किया। उस श्राद्धसे वह प्रेत और उसके माता-पिता सब-के-सब मुक्त हो गये। इस श्राद्धके फलस्वरूप श्राद्धकर्ता वैश्यको भी स्वर्ग मिला।

(२)

विशालानगरीके राजकुमारका नाम भी विशाल था। विवाह हुए उसके बहुत दिन बीत चुके थे, किंतु उसे कोई संतान न हुई, इससे वह चिन्तित रहता था। एक दिन उसने ब्राह्मणों और संतोंको बुलाया और उनसे पुत्र होनेका उपाय पूछा। ब्राह्मणोंने गयामें श्राद्ध करनेको कहा।

राजाने बहुत श्रद्धा और भक्तिसे गया जाकर श्राद्ध-कर्मको सम्पन्न किया। इसके फलस्वरूप उसे संतानकी प्राप्ति हुई।

एक दिन उसने आकाशमें तीन पुरुषोंको देखा—एकका रंग श्वेत था, दूसरेका लाल और तीसरेका आबनूस काला। यह दृश्य विशालको अद्भुत-सा लगा। उसने उनसे उनका परिचय जानना चाहा। श्वेतरंगवाले पुरुषने कहा—'पुत्र! तुम धन्य हो! तुमने पिण्डदान कर हम तीनोंका उद्धार कर दिया है। मैं तुम्हारा पिता हूँ। मुझे इन्द्रलोक प्राप्त हुआ है। यह तो मेरा परिचय हुआ। लाल रंगके जिस व्यक्तिको देख रहे हो, ये मेरे पिताश्री हैं। इनसे बहुत-से पाप हो गये थे। ब्रह्महत्या-जैसा महापातक भी इनसे बन गया था। काले रंगके जो पुरुष हैं, ये मेरे पितामहश्री हैं। इन्होंने क्रोधमें आकर ऋषियोंकी हत्या कर दी थी। इसलिये ये दोनों अवीचिनामक नरकमें घोर यातना सह रहे थे, किंतु गयामें तुम्हारे पिण्डदानसे ये नरकसे मुक्त हो गये हैं। अब हम तीनों-के-तीनों उत्तम लोकोंमें जा रहे हैं। यह सब तुम्हारे श्राद्ध करनेसे ही सम्भव हो सका है। तुम धन्य हो! तुमने 'पुत्र' नामको सार्थक किया है।

इस तरह विशाल धर्म-कार्य कर कृतार्थ हो चुका था। फलस्वरूप वह जीवनभर सुख भोगता रहा और मरनेपर उत्तम लोक प्राप्त किया। (ला० बि० मि०)

सोमपुत्री जाम्बवती

इस सृष्टिसे पूर्व-सृष्टिकी बात है। जाम्बवती श्रीसोमकी पुत्री थी। श्रीसोम श्रीविष्णुकी सेवामें लगे रहते थे। उनकी पुत्री जाम्बवती भी पिताका अनुसरण करती थी। वह नित्य पुराण सुनती, प्रतिक्षण भगवान्‌का स्मरण करती, उनके चरणोंकी वन्दना करती और उनकी सेवामें लगी रहती। धीरे-धीरे जाम्बवतीके अन्तःकरणमें संसारकी नश्वरता घर करती चली गयी। वह समझ गयी कि सुख-दुःख मायाके खेल हैं। इनसे ऊपर उठकर वह भगवत्प्रेममें आनन्द-विभोर रहने लगी। उसकी वाणीसे भगवान्‌के नाम और गुणका कथन होता रहता। आँखें प्रभुकी प्रतीक्षामें रत रहतीं, कान उनकी मीठी बातें सुननेके लिये उत्सुक रहते, हाथ अर्चनाके सम्भारमें लगे रहते और पैर उनकी प्रदक्षिणामें व्यस्त रहते। हृदयमें एक ही कामना रह गयी थी कि मैं भगवान्‌के चरणोंकी दासी कैसे बन जाऊँ। वह सारा कार्य भगवान्‌के लिये करती थी और सम्पन्न होनेपर उन्हें भगवान्‌को ही समर्पित कर देती थी। ब्राह्मणों और संतोंकी पूजामें उसे रस मिलता था।

एक दिन श्रीसोमने तीर्थयात्राका विचार किया। इस समाचारसे जाम्बवती फूली न समायी। वह पहलेसे ही उन स्थलोंको देखना चाहती थी, जहाँ भगवान्‌ने अपनी लीलाएँ की हैं और जहाँ वे अदृश्य-रूपसे आज भी विराजते हैं। भगवान् श्रीनिवासमें जाम्बवतीका मधुर भाव था। शेषाचलपर अब प्रियतमके दर्शन हो जायँगे, इस आशासे उसका रोम-रोम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिल उठा। पिताका भी भगवान्‌में पूरा लगाव था। दोनोंकी उत्सुकता अनिर्वचनीय थी। यात्रा प्रारम्भ हो गयी। पिता-पुत्रीके पग बिना बढ़ाये बढ़ रहे थे। धीरे-धीरे कपिल नामक तीर्थ आ गया। सद्‌गुरु जैगीषव्यकी आज्ञासे पिताने मुण्डन कराया, स्नान किया और तीर्थ-श्राद्ध किया। फिर विविध प्रकारके दान दिये। इसके बाद सद्‌गुरुने वेंकटाद्रिका महत्त्व सुनाया। इससे उन यात्रियोंके मनमें श्रद्धाका अतिरेक हो गया। वे लोग बहुत प्रेमसे इस पवित्र पर्वतपर चढ़ने लगे।

सद्‌गुरु जैगीषव्य, नारद, प्रह्लाद, पराशर, पुण्डरीक आदि महाभागवतोंकी कथा सुनाते रहे। नामके रसका आस्वादन करते हुए लोग चल रहे थे। सच पूछा जाय तो वे चल नहीं रहे थे, अपितु आनन्द-वापीमें डूब-उतरा रहे थे और तरंगें स्वयं उन्हें आगे पहुँचाती जाती थीं। जाम्बवती तो मानो आनन्द-वारिधिमें उतराती चली जा रही थी।

चढ़ते-चढ़ते एक मनोरम तीर्थ आया। जाम्बवतीने पूछा—'गुरुदेव ! यह कौन-सा तीर्थ है ? वह कौन भाग्य-शाली है, जिसपर भगवान्‌ने यहाँ अनुग्रह किया है।' इस प्रश्नसे जैगीषव्य बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'बेटी ! इस तीर्थका नाम नारसिंह तीर्थ है। भक्तराज प्रह्लाद प्रेमवश भगवान् श्रीनिवासके दर्शनोंके लिये यहाँ पधारे थे। उनके साथ दैत्योंके कुमार भी थे। वे यहाँ भगवान्‌के दर्शनोंके लिये उत्कण्ठित हो गये थे। उन्होंने प्रह्लादसे कहा था—'मित्र ! जब नृसिंह-रूप भगवान् श्रीनिवास कण-कणमें व्याप्त हैं, तब इस जलमें क्यों नहीं दिखायी देते ? कृपाकर उनके दर्शन करा दीजिये !'

भक्तराज प्रह्लादने अपने भगवत्प्रेमी मित्रोंको बहुत आदर दिया। इसके बाद उन्होंने भगवान्‌से प्रार्थना की कि 'वे सबको दर्शन दे दें।' भगवान्‌ने संतराजकी प्रार्थना स्वीकार की। दैत्यकुमार दर्शन पाकर कृतकृत्य हो गये और भग 'इस जलमें स्नान करनेसे ज्ञानकी प्राप्ति होगी'— वरदान देकर प्रह्लाद तथा दैत्यकुमारोंके साथ सदाके लिये तीर्थमें बस गये। उनका यह वास आज भी वैसे ही है आगे भी वैसा ही रहेगा। मध्याह्नके बाद आज भी चारों जय-जयके शब्द सुनायी पड़ते हैं।

इस इतिहासको सुनकर सबको रोमाञ्च हो आ सभीको भगवान् श्रीनिवासने दर्शन दिया। जाम्बव मधुरभावके अनुरूप भगवान्‌ने हजारों कामदेवके अपना कमनीय रूप दिखाया। देखते ही जाम्बवतीका अङ्ग शिथिल हो गया, रोमाञ्च हो आया और आँखोंसे अश्रु ढलने लगे। किसी प्रकार टूटे-फूटे शब्दोंमें जाम्बव कहा—'नाथ ! श्रीचरणोंमें रख लो।'

अबतक भगवान्‌ने अपने सौन्दर्य-सुधाका ही पा कराया था, अब उन्होंने अपने वचन-सुधाका पान कराते कहा—'जाम्बवति ! मैं तुम्हें वेंकटेश मन्त्र बताता हूँ। यहीं रहकर इसका जप करो।' जाम्बवतीको लगा कि उ कानोंमें अमृत उड़ेल दिया गया हो। वह आनन्दसे बेसुध लगी। उसे न अपना पता था, न परायेका। जन्मकी सा लाज कहाँ चली गयी, इसका भी उसे पता न आनन्दावेशमें वह नाचने लगी। जाम्बवतीके उस नृत्यसे ब्रह्माण्ड रस-विभोर हो उठा। स्वर्गसे अप्सराएँ उतर और जाम्बवतीके अगल-बगलमें नाचने लगीं। देवता दुंदुभी बजायी और आकाशसे पुष्पकी वृष्टि की।

श्रीसोम महाभाग्यशाली थे। उनकी छत्र-छायामें रह जाम्बवतीने भगवान्‌को अपना पति बना लिया। वि नाथने विधिके साथ जाम्बवतीसे विवाह किया। इस जाम्बवतीने मनुष्य-जातिका सिर ऊँचा किया। (ला० वि० वि

और्ध्वदेहिक दानका महत्त्व

मृतात्माकी सद्‌गति-हेतु पिण्डदानादि श्राद्धकर्म अत्यन्त आवश्यक हैं। पुन्नामक नरकसे पिताको बचानेके कारण ही आत्मज पुत्र कहा जाता है। पुत्रका मुख देखकर पिता पैतृक ऋणसे छूट जाता है और पौत्रके स्पर्शमात्रसे यमलोक उल्लङ्घन कर जाता है। ब्राह्म-विवाहद्वारा परिणीता उत्पन्न पुत्र ऊर्ध्व—स्वर्गलोकादिमें पहुँचाता है। यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निःसंतान व्यक्तिके मरणोपरान्त प्रेत होनेकी कथा प्रस्तुत है, जो राजाद्वारा दिये गये पिण्ड-दानको प्राप्त कर स्वर्गको प्राप्त हुआ था।

पहले त्रेतायुगमें महोदयपुर (कन्नौज)का निवासी बभ्रुवाहन नामका एक राजा था। वह यज्ञ, दान, व्रत और तीर्थपरायण था। ब्राह्मणों तथा साधुओंका भक्त वह राजा शील-सदाचारसे युक्त होकर प्रजाका तन-मन-धनसे पालन करता था। एक दिन वह अपनी सेनाके सहित शिकार खेलने गया। उसने नाना प्रकारके वृक्षोंसे युक्त एक सघन वनमें प्रवेश किया। वहाँ उसने एक सुन्दर एवं स्वस्थ मृगको देखकर अपना अमोघ बाण चलाया। बाणसे बिंधा वह मृग उस राजाके बाणको लेकर अदृश्य हो गया। राजा रुधिरसे गीली घास देखता हुआ हिरणके पीछे-पीछे चला और दूसरे निर्जन प्रदेशमें प्रवेश कर गया। भूख-प्याससे व्याकुल राजाने वहाँ एक तालाबके पास पहुँचकर अश्वसहित स्नान किया तथा पानी पीया। वहाँ स्थित वटवृक्षको देखकर छायामें वह विश्राम करने लगा। तभी उसने एक भयंकर प्रेत देखा, जिसका मैला, कुबड़ा, मांसरहित शरीर था, बाल ऊपरको उठे थे, इन्द्रियाँ व्याकुल थीं। घोर विकृत राक्षसको सामने देखकर राजा डर गया और विस्मित हो गया। प्रेत भी निर्जन वनमें राजाको देखकर विस्मित होकर उससे कहने लगा—'पुण्यात्मा राजन्! तुम्हारे शुभ दर्शनोंसे आज मैं धन्य हो गया हूँ और प्रेतभाव छोड़ रहा हूँ।' राजाने कहा—'भाई! तुमने यह भयानक अमङ्गलरूप प्रेतत्व किस कर्मके परिणाम-स्वरूप प्राप्त किया है? मुझे अपनी सब व्यथा बताओ तथा किस दान-धर्मके करनेसे तुम्हारा उद्धार होगा, उसे कहो, मैं अवश्य करूँगा।'

प्रेतने कहा—'राजन्! मैं पूर्वमें विदिशा (भेलसा) नामक नगरमें रहता था। जातिका मैं वैश्य था और मेरा नाम था—सुदेव। मैंने हव्यसे देवताओं और कव्यसे पितरोंको सदा संतुष्ट किया। विविध दान देकर ब्राह्मण-दीन-दुर्बलोंकी सेवा की। वह सब दैवयोगसे निष्फल हो गया। मेरे कोई पुत्र, मित्र अथवा बान्धव नहीं था। अतएव और्ध्वदेहिक क्रियासे वञ्चित होकर मैं प्रेत हो गया। जिनके षोडश मासिक श्राद्ध नहीं होते, वे प्रेत अवश्य बनते हैं, चाहे धर्मात्मा पुत्रवान् ही क्यों न हों? राजन्! सब वर्णोंका बन्धु राजा ही होता है। तुम मेरी और्ध्वदेहिक क्रिया करके मेरा उद्धार करो। मैं तुम्हें मणिरत्न दूँगा। यद्यपि वनमें निर्मल जल और सरस फलोंका अभाव नहीं है, तथापि मैं इनसे वञ्चित रहता हूँ। मैं प्रेतत्वसे अत्यन्त दुःखी हूँ। तुम मेरे लिये वेदमन्त्रोंसे विष्णुकी पूजा एवं नारायणबलि-कर्म करो। ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी प्रतिमा बनवाकर उनका अर्चन, अग्निमें देवताओंको तृप्त करके घी, दही और दूधसे विश्वेदेवोंका पूजन करो। क्रोध-लोभसे रहित होकर वृषोत्सर्ग करनेका विधान है। पश्चात् ब्राह्मणोंके लिये तेरह पदोंका दान, शय्यादान एवं प्रेतघटका दान करो। प्रेतत्व-निवारण-हेतु यह आवश्यक है।' प्रेतके साथ राजाका इस प्रकार वार्तालाप चल ही रहा था कि उसी समय हाथी-घोड़ोंसे युक्त राजाकी सेना पीछेसे आ गयी। सेनाके आनेपर प्रेतने राजाको महामणि देकर प्रार्थना की और वहाँसे विदाई ली। वनसे निकलकर राजाने अपने नगरमें जाते ही प्रेतद्वारा बतायी विधिसे उसका अन्त्येष्टि-कर्म किया, जिसके प्रभावसे वह प्रेतत्व छोड़कर स्वर्गमें चला गया। राजाके द्वारा किये गये श्राद्धसे प्रेतको उत्तम गति प्राप्त हुई। यदि पुत्रद्वारा किये श्राद्धसे पिताको सद्गति प्राप्त हो तो इसमें क्या आश्चर्य है?

(र० दे० मि०)

प्रेतकल्पकी कथा

दुर्गम यममार्ग

जो लोग दया एवं धर्मसे रहित होकर सर्वदा पापमें ही आसक्त, उत्तम वेद-शास्त्र तथा सत्संगतिसे विमुख होकर कुसंगतियोंमें रचे-पचे, धनके गर्वसे युक्त होकर अभिमानमें मत्त रहते हैं तथा दैवी-शक्तिरूपी सम्पत्तिसे हीन होकर राक्षसी प्रवृत्तिसे प्रभावित एवं विषयोंमें लीन रहते हैं और जिनका मन मायाजालमें फँसा हुआ है, ऐसे लोग तथा अन्य पापी जन भी यम-यातना सहते हुए दुःखपूर्वक यमलोक जाते हैं तथा भयंकर नरकोंमें गिरते हैं। इसके विपरीत जो मनुष्य दान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देनेवाले तथा परोपकारी हैं, वे मोक्षको प्राप्त करते हैं।

मनुष्य संसारमें जन्म लेकर अपने पूर्वजन्मकृत पुण्य और पापके प्रभावसे अच्छे तथा बुरे फलोंको भोगता है—

सुकृतं दुष्कृतं वापि भुक्त्वा लोके यथार्जितम्।

(गरुडपुराण, धर्म० प्रे० १५।४)

शरीरमें कोई भी व्याधि पूर्वजन्मकृत अशुभ कर्मके संयोगसे उत्पन्न होती है। विपत्ति और व्याधिसे प्रभावित प्राणी अपने जीवनसे अधीर हो जाता है। युवावस्थामें ही वृद्धावस्था-को प्राप्त होकर गृह-स्वामीद्वारा निरादरपूर्वक प्रदत्त आहारको श्वान-सदृश भोजन करता है। मन्दाग्नि एवं व्याधिके कारण उसका आहार अत्यल्प हो जाता है, उठने-बैठनेकी शक्ति क्षीण हो जाती है तथा वह चेष्टाहीन हो जाता है। जब बलवान्, विषैले तथा भयंकर सर्पके समान काल अचानक प्राणीके सिरपर आ धमकता है, तब कफसे स्वर-नलियाँ बंद हो जाती हैं, श्वास लेनेमें कष्ट होता है, उसके कण्ठमें घुर-घुराहट होती है। ऐसी स्थितिमें विस्तरपर पड़ा, स्वजनोंसे घिरा आसन्न प्राणी बुलानेपर भी नहीं बोलता। पापी प्राणीको प्राण वायु निकलते समय भयंकर क्रोधसे रक्त-नेत्रवाले, भयानक मुख, दण्ड तथा पाश लिये, नग्न-तन एवं दाँतोंको पीसते हुए टेढ़े मुखवाले, विशाल नखरूपी शस्त्रवाले, अत्यन्त काले शरीरवाले, ऊपरको उठे हुए केशोंवाले भयंकर यमदूत दृष्टिगत होते हैं। उनके डरसे उसके प्राण अपने स्थानसे चलायमान हो जाते हैं। वह मल-मूत्रका त्याग करने लगता है। उस समय मरते हुए पापीको एक पल भी कल्पके समान व्यतीत होने लगता है। सैकड़ों बिच्छुओंके डंक मारनेसे जो वेदना होती है, वैसी ही पीड़ा उसे उसके श्वासोंके निकलते समय होती है। उस प्राणीके मुखसे फेन तथा लार गिरने लगता है। पापियोंकी प्राणवायु गुदामार्गसे बहिर्भूत होती है। वह पापी हाय-हाय ! करता हुआ स्थूल शरीरको छोड़कर अङ्गुष्ठमात्रका शरीर धारण करके मोहके वशीभूत होकर अपने घरको देखता रहता है तथा उसी समय यमदूतोंद्वारा पकड़ लिया जाता है। यमदूत उस अङ्गुष्ठमात्र शरीरको यातनारूपी शरीरसे ढककर गलेमें रस्सी बाँधकर इस प्रकार ले जाते हैं, जैसे अपराधी पुरुषको राजाके सिपाही पकड़कर ले जाते हैं। इस प्रकार मार्गमें ले जाते हुए वे यमदूत उसे धमकाते हैं तथा बार-बार नरकोंके भयानक दुःखोंका वर्णन करते हुए कहते हैं—

शीघ्रं प्रचल दुष्टात्मन् गतोऽसि त्वं यमालयम्।
कुम्भीपाकादिनरकांस्त्वां नेष्यामश्च मा चिरम्।

(गरुडपुराण, धर्म० प्रे० १५।२७-२८)

'अरे दुष्टात्मन् ! तू शीघ्र चल, तुझे यमलोक जाना है और कुम्भीपाक आदि नरकोंको भोगना है। अतः तू देर न कर।' यमदूतोंकी ऐसी भयंकर वाणी एवं अपने बन्धु-बान्धवोंके विलापको सुनता हुआ पापी जीव हाय-हाय करने लगता है। यमदूत उसे प्रताड़ित करते रहते हैं। उसका हृदय उन यमदूतोंकी प्रताड़नासे विदीर्ण हो जाता है। उनके द्वारा किये गये पापकर्मोंके स्मरणमात्रसे काँपते हुए पापीको यममार्गमें कुत्तोंसे कटाया जाता है। पापी जब मार्गमें प्यास और क्षुधासे पीड़ित हो जाता है, सूर्यके तेजसे तप्त बालूमें उसे चलना पड़ता है, छायारहित मार्गमें चलनेसे वह असमर्थ हो जाता है, तब यमदूत उसे कोड़ोंसे मार-मार कर बाँधकर घसीटते ले जाते हैं। ऐसे कठिन मार्गमें चलनेसे वह थककर गिर-गिर पड़ता है, फिर उठता है और पुनः मूर्च्छित हो जाता है। इस प्रकार अनेक यातनाएँ सहता हुआ वह पापी जब अंधकारमय यमलोकमें पहुँचता है, तब यमदूत उसे घोर तथा भयंकर नरककी यातनाएँ दिखाते हैं। इसके बाद पापी यमलोकमें यमराजके दर्शन कर एवं घोर नरककी यातनाएँ देखकर एक मुहूर्तमें उनकी आज्ञासे फिर मनुष्य-लोकमें आता है और अपने पूर्व-शरीरमें पुनः प्रवेश करनेकी इच्छा करता है, परंतु यमदूत उसे पाशमें बाँधे रहते हैं, इस कारण वह प्रवेश नहीं कर पाता। वह भूख-प्याससे अधिक व्याकुल एवं विकल होकर दुःसह दुःख सहन करता हुआ रोता है। उस समय मृत्युकालमें दिये हुए दान तथा स्वजनोंद्वारा मृत्युके स्थानमें दिये गये पिण्डको वह खाता है, तब भी उसे तृप्ति नहीं होती है। पापी प्राणियोंको पुत्रोंद्वारा दिये हुए दान, श्राद्ध और जलाञ्जलिसे तृप्ति नहीं होती। इसीसे पिण्डदान देनेपर भी वे भूख तथा प्याससे व्याकुल रहते हैं। जिनका उचित रूपसे पिण्डदान नहीं होता, वे निर्जन वनमें प्रेतयोनिमें कल्पभर रहकर दुःखपूर्वक भ्रमण करते हैं। इसलिये दस दिनतक पुत्रद्वारा पिण्डदान किया जाना नितान्त अपेक्षित है। प्रेतका शरीर दस दिनके पिण्डदानसे निर्मित होता है, तब उसमें चलनेकी सामर्थ्य होती है। पूर्व-शरीरके दग्ध हो जानेपर भी पुत्रद्वारा दिये हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिण्डोंसे उस जीवको देह मिलती है। हाथभरका शरीर प्राप्त कर वह जीव यमलोक-मार्गमें शुभाशुभ कर्मोंके फलोंको भोगता रहता है।

शरीर-निर्माण—अब जिस प्रकार दस दिनतक दिये गये पिण्डोंसे शरीर बनता है, उसका संक्षेपमें उल्लेख किया जाता है। पहले दिनके पिण्डसे सिर तथा गर्दन, दूसरेसे कंधा, तीसरेसे हृदय, चौथेसे पीठ, पाँचवेंसे नाभि, छठेसे कमर, गुदा, जननेन्द्रिय, सातवेंसे मांस एवं हड्डी, आठवें एवं नवेंसे जंघा तथा पैर दसवेंसे उस शरीरमें क्षुधा तथा तृष्णाकी उत्पत्ति होती है।

भूख और प्याससे प्रभावित होकर वह प्रेत पिण्डसे उत्पन्न शरीरका आश्रय लेकर ग्यारहवें तथा बारहवें दिनके श्राद्धका भोजन करता है तथा तेरहवें दिन यमदूतोंसे बंदरके समान बँधा हुआ यमलोक जाता है। यहाँसे यमलोककी दूरी छियासी हजार योजन है। यथा—

षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः।
यमलोकस्य चोर्ध्वं वै अन्तरा मानुषस्य च॥

(गरुडपुराण, धर्म० प्रे० १५। ३)

इस जीवको यमदूतोंके साथ प्रतिदिन २४ घंटेमें क्रमशः २४७ योजन निरन्तर चलना पड़ता है। इस मार्गसे चलनेवालेको अन्तमें (सोलह) गाँव मिलते हैं। उन्हें पार करनेके बाद जीव धर्मराजके नगरमें पहुँचता है। उन गावोंके नाम हैं—(१) सौम्यपुर, (२) सौरिपुर, (३) नगेन्द्रभवन, (४) गन्धर्व, (५) शैलागम, (६) क्रौञ्च, (७) क्रूरपुर, (८) विचित्रभवन, (९) बह्वापद, (१०) दुःखद, (११) नानाक्रन्दनपुर, (१२) संतप्तभवन, (१३) रौद्रनगर, (१४) पयोवर्षण, (१५) शीताढ्य और (१६) बहुभीति। इनके आगे यमपुर है। यमदूतोंके पाशमें बँधा हुआ वह पापी जीव मार्गमें विलाप करता हुआ अपने गृहको त्यागकर यमलोक जाता है।

यमलोकका मार्ग अत्यन्त कष्टकारक है। 'वृक्षोंकी छाया उसमें बिलकुल नहीं है, जिसके नीचे जीव क्षणमात्रके लिये भी विश्राम कर सके। वहाँ अन्न आदि कुछ भी नहीं है, जिसे खाकर जीव अपने प्राणकी रक्षा कर सके।'

वृक्षच्छाया न तत्रास्ति यत्र विश्रमते नरः।
तस्मिन् मार्गे न चान्नाद्यं येन प्राणान् प्रपोषयेत्॥

(गरुडपु०, धर्म० प्रे० ३३। ६-७)

वहाँ कहीं जल भी दिखायी नहीं देता, जिससे प्याससे व्याकुल जीव अपनी प्यास बुझा सके। बारहों सूर्य उस लोकमें प्रलयकालके समान तपते रहते हैं। वहाँ जीवको वायु और शीतसे अधिक कष्ट होता है। कहीं बड़े-बड़े भयानक और विषैले साँपोंसे उसे कटाया जाता है तो कहीं काँटोंसे बिंधा जाता है। कहीं-कहीं चिग्घाड़ते सिंह, व्याघ्र एवं खूँखार कुत्तोंसे खिलाया जाता है। कहीं विषैले बिच्छुओंसे डंक दिलवाया जाता है और प्रज्वलित अग्निसे जलाया जाता है। तत्पश्चात् उस जीवको एक असिपत्र-वनमें, जो दो हजार योजन विस्तारका है, उसमें प्रवेश कराया जाता है। उस वनमें कौआ, उल्लू, गीध तथा भयानक मक्खियाँ रहती हैं एवं उस जंगलके चारों ओर प्रचण्ड दावाग्नि लगी रहती है। डंकयुक्त मक्खियोंके काटने तथा आगकी तापसे जब वह जीव वृक्षके तले जाता है, तब उसका शरीर तलवारके सदृश तेज उन वृक्षोंके पत्रोंसे छिन्न-भिन्न हो जाता है। उसे कहीं पहाड़परसे नीचे और कहीं अँधेरे कुएँमें गिराया जाता है, कहीं छुरोंकी तेज धारके समान तीक्ष्ण मार्गसे पैदल चलाया जाता है तो कहीं नुकीले कीलोंके ऊपरसे चलाया जाता है। कहीं जलमें, कहीं जोंकसे भरे हुए कीचड़में गिराकर उनसे कटाया जाता है तो कहीं अन्धकारयुक्त भयंकर गुफाओंमें गिराया जाता है। कहीं जलते हुए कीचमें गिराया जाता है। कहीं तवेके समान जलती हुई पृथ्वीपर एवं कहीं जलते हुए बालूपर चलाया जाता है, तो कहीं अंगारके समूहमें झोंका जाता है, कहीं जहरीले धुएँसे व्याप्त मार्गमें चलाया जाता है। मार्गमें कहीं-कहीं रक्त और गरम जलकी वर्षा होती है तो कहीं पत्थर और आगके टुकड़ोंकी वर्षा होती है। कहीं विष्ठासे, कहीं रक्तसे तथा कहीं पीबसे भरे हुए कुण्ड हैं, जिनमें जीवको रहना पड़ता है।

वैतरणी नदी—मध्यमार्गमें एक वैतरणी नामकी भयंकर नदी है, जिसे देखनेमात्रसे ही जीव भयभीत हो जाता है। वह नदी एक सौ योजन चौड़ी है, जिसके किनारे हड्डियोंसे बने हुए हैं और जिसमें पीब-रक्त भरा हुआ है, उसमें मांस, पीब तथा लहूके कीचड़ भरे हैं, वह बहुत ही गहरी एवं दुस्तरणीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें केश ही सेवार तथा घासके समान हैं तथा वह घड़ियालोंसे पूर्ण है। वज्रके समान मजबूत चोंचोंवाले कौए तथा गिद्धों एवं मांस भक्षण करनेवाले सैकड़ों तरहके पक्षियोंका उसमें निवास है। अग्निकी ज्वालासे तप्त घी जैसे कड़ाहेमें खौलता है, उसी प्रकार उस वैतरणी नदीका जल भी पापीको आते हुए देखकर खौलने लगता है। वह नदी सुईके समान मुँहवाले कीड़ोंसे भरी हुई है। सूँस, मगर, घड़ियाल, जोंक, मछली तथा अन्य मांसाहारी जल-जन्तुओंसे वह नदी भरी हुई है। उस नदीमें भयंकर रूपसे विलाप करता हुआ जीव छोड़ दिया जाता है—और जीव 'हे पुत्र ! हे भाई ! हे पिता !' आदि कह-कहकर बार-बार पुकारता रहता है। वह पापी जीव जब भूख-प्याससे तड़पने लगता है तब खाने-पीनेको वही मांस और खून उसे मिलता है। उसमें गिरे हुए जीवकी रक्षा करनेवाला कोई भी प्राणी वहाँ नहीं रहता। नदीके हजारों भँवरोंमें पड़कर वह पापी जीव पातालके नीचे जाता है, पलभरमें फिर वही जीव ऊपरको आता है। वह नदी पापी जीवोंके लिये ही बनायी गयी है। असह्य दुःखको देनेवाली ऐसी नदीका न आर है न पार। यममार्गमें यमदूत, इस तरह विविध प्रकारके कठिन दुःखोंको भोगते, रोते, चिल्लाते उस प्राणीको—किसीको पाशमें बाँधकर, किसीको शस्त्रोंसे भेदकर एवं किसीको अंकुशोंसे खींचकर, किसीके कान-नाकमें डोरी डालकर, किसीको कालपाशमें बाँधकर एवं किसीको कौओंके समान खींचते हुए, किसीके पैर, भुजा तथा गर्दनमें साँकल बाँधकर तथा लोहेका भारी बोझ उनपर लादकर रास्तेमें उनसे चलनेके लिये कहते हैं और यमलोक ले जाते हैं। भयानक यमदूत जब उसे मुद्गरसे मारते हैं, तब पापी जीव मुँहसे रुधिर गिराता और फिर उसे ही खाता है। वहाँ वह अपने द्वारा किये गये कर्मोंके लिये ग्लानि करता हुआ—'हा पुत्र ! हा पौत्र ! हा बन्धु !' ऐसा कहकर विलाप करता हुआ अत्यन्त दुःखी होता है और 'मनुष्यका जन्म प्राप्त कर मैंने कुछ भी धर्म नहीं किया' ऐसा सोचता है।

आतुर-कालका दान तथा भगवन्नाम-स्मरण

बुद्धिजीवियोंको चाहिये कि वृद्धावस्थामें जब अपनी शरीर रोगोंसे ग्रस्त हो जाय, ग्रह-स्थिति विपरीत दीखने लगे, प्राणके शब्द (कान बंद करनेपर जो शब्द सुनायी देता है वह) न सुनायी देने लगे तब जान ले कि अब इस शरीरका अन्तिम समय अवश्य है। उस स्थितिमें उन्हें निर्भय होकर ज्ञात अथवा अज्ञातमें किये हुए पापोंका प्रायश्चित्त कर डालना चाहिये। जब मृत्युका आतुर-काल आये, तो स्नान करके शालग्राम-रूपी भगवान् विष्णुका सविधि पूजन करना चाहिये। भगवान्के प्रसादका वितरण तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। इसके पश्चात् अष्टाक्षर अथवा द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये एवं विष्णु तथा शिवजीके नामको जपना तथा उनके नामोंके कीर्तनका श्रवण करना चाहिये, कारण भगवन्नामके श्रवण तथा कीर्तनसे समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं।

भाई-बन्धुओंको मृत्युकालमें प्राणीके पास जाकर सोच-विचार करके भगवान्के पवित्र नामको बार-बार स्मरण करना-कराना चाहिये। बुद्धिजीवियोंको, भगवान्के इन नामों (मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्किका) स्मरण करना तथा कराना चाहिये। उन्हें ही कहना चाहिये। जो रोगीके पास जाकर इन नामोंका उच्चारण करते-कराते हैं, जिनकी वाणीमें कृष्णका मङ्गलमय नाम रहता है, उनके करोड़ों महापाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

आतुर-काल (मरणकाल) में आठ महादान अवश्य करने चाहिये। आठ प्रकारके दान ये हैं—तिल, लौह, सुवर्ण, रूई, नमक, सप्तधान्य (धान, जौ, गेहूँ, मूँग, उड़द, कांगुनी, चना), गौ एवं भूमि। प्रेतकी मुक्तिके लिये सुवर्णका दान देना चाहिये। सुवर्ण-दानसे यमलोकमें न जाकर प्राणी स्वर्गलोकमें जाता है और बहुत दिनोंतक सत्यलोकमें रहकर फिर इस लोकमें राजा तथा रूपवान्, धर्मात्मा, बोलनेमें प्रवीण, लक्ष्मीवान् और बड़ा ही पराक्रमी होता है। स्वस्थचित्तसे एक गोदान देनेसे जो फल होता है, वही आतुर-समयमें सौ गौ देनेसे तथा मरते समय अचेतनावस्थामें हजार गौ देनेसे होता है। अपना कल्याण चाहनेवालेको चाहिये कि वह कुपात्रको दान न दे। भूमिपर मनुष्य जो-जो दान करता है, यमलोक-मार्गमें वह आगे-आगे प्राप्त होता है। जो पुत्र आतुर-समयमें भूमिपर पिताके हाथसे दान दिलाता है, उस धर्मात्मा पुत्रकी देवता भी पूजा करते हैं। पूर्वजन्मके किये हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दानसे यहाँ बहुत धन मिला है। इसलिये ऐसा विचार कर धर्मार्थ दान देना चाहिये। धर्मसे कामना पूर्ण होती है और धर्मसे ही मोक्ष मिलता है। इसलिये धर्म-कार्य करने चाहिये।

यमराज

विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञासे भगवान् सूर्यके श्राद्धदेव मनु, यमराज एवं यमुना तीन संतानें उत्पन्न हुईं। द्वादश भागवताचार्योंमें परम भागवत यमराज जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंके निर्णायक हैं। दक्षिण दिशाके इन लोकपालकी संयमनीपुरी पापियोंके लिये अत्यन्त भयंकर है। इन महिषवाहन दण्डधरकी यम, मृत्यु, धर्मराज, वैवस्वत, अन्तक, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, वृकोदर, परमेष्ठी, चित्र तथा चित्रगुप्त—इन चतुर्दश नामोंसे आराधना होती है। इनका तर्पण भी इन्हीं नामोंसे किया जाता है।

चार द्वारों, सात तोरणों तथा पुष्पोदक, वैवस्वती आदि सुरम्य नदियोंसे पूर्ण अपनी पुरीमें पूर्व, पश्चिम एवं उत्तरके द्वारोंसे प्रविष्ट होनेवाले पुण्यात्मा प्राणियोंको यमराज शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी, चतुर्भुज-नीलाभ भगवान् विष्णुके रूपमें अपने महाप्रासादमें रत्नासनपर दर्शन देते हैं। दक्षिण-द्वारसे प्रवेश करनेवाले पापियोंको वे तप्त-लौह-द्वार तथा पूय, शोणित एवं क्रूर पशुओंसे पूर्ण वैतरणी नदी पार करनेपर प्राप्त होते हैं। उन्हें द्वारके भीतर आनेपर वे अत्यन्त विस्तीर्ण सरोवरोंके सदृश नेत्रवाले, धूम्रवर्ण, प्रलयमेघके समान गर्जना करनेवाले, ज्वालामय रोमधारी, तीक्ष्ण प्रज्वलित दन्तयुक्त, सँड़सी-जैसे नखोंवाले, चर्मवस्त्रधारी, कुटिलभृकुटि, भयानक वेशमें दीखते हैं। वहाँपर मूर्तिमान् व्याधियाँ, घोरतर पशु और यमदूत उपस्थित मिलते हैं।

दीपावलीसे पहले दिन यम-दीप देकर तथा दूसरे पर्वोंपर यमराजकी आराधना करके मनुष्य उनकी कृपाका भाजन बनता है। ये निर्णेता प्राणियोंसे सदैव शुभकर्मकी आशा करते हैं। दण्डके द्वारा जीवको शुद्ध करना ही इनका प्रमुख कार्य है। (शि० दु०)

सर्वोपरि साधना—वाक्-संयम

महर्षि वेदव्यासके सारगर्भित चिन्तनको विश्व-कल्याणकी कामनासे लिपिबद्ध करनेके कार्यमें सर्वविघ्न-विनाशक श्रीविनायक तन्मयतापूर्वक लगे हुए थे। महाभारत-ग्रन्थके लेखनका कार्य आज पूर्ण हो रहा था। विघ्नेश्वरने अपनी लेखनीसे 'इति' लिखते हुए अन्तिम भूर्जपत्र रख दिया। दोनोंके मुखमण्डल इस सारस्वत-साधनाके समापनसे दीप्तिमान् हो उठे थे।

सहसा महर्षि वेदव्यासने कहा—'लम्बोदर ! प्रणम्य है आपका परिश्रम, जिसके बलपर मैं अपने चिन्तनको मूर्तरूप दे पाया, परंतु इससे भी वन्दनीय है आपका मौन। सुदीर्घकालतक हमारा आपसे सम्पर्क रहा। इस अवधिमें मैं निरन्तर बोलता भी रहा, परंतु आपके मुखसे मैंने कभी एक भी शब्द नहीं सुना और अब भी आप मौन हैं ?'

भगवान् गणेशने मधुर वाणीमें प्रत्युत्तर देते हुए कहा—'महर्षि बादरायण ! दीपककी लौका आधार तैल होता है। तैलके अनुपातसे ही दीपककी लौ प्रखर और क्षीण होती रहती है। तैलका अक्षय भण्डार किसी दीपकमें नहीं होता। देव, मानव या दानव सभी तनुधारियोंकी प्राणशक्तिका एक मापदण्ड होता है, जिसके अनुसार वह किसीमें कम और किसीमें अधिक होती है, परंतु असीमकी गणनामें कोई नहीं आता। प्राणशक्तिका उपयोग भी अपने विवेकपर आधारित है—कौन कितना व्यय करता है और कौन कितना संग्रह। जो संयमपूर्वक इस शक्तिको दुरुपयोगसे बचा लेते हैं, वे वाञ्छित सिद्धिको प्राप्त कर लेते हैं। इसका मूलाधार है वाणीका संयम। जो अपनी वाणीको वशमें नहीं कर पाते, उनकी जिह्वा अनावश्यक बोलती रहती है। अर्थहीन शब्द विग्रह और द्वेषकी जड़ें हैं, जो हमारी प्राणशक्तिके मधुर रसको सोखती रहती हैं। वाणीका संयम इस समस्त अनर्थपरम्पराको दग्ध करनेमें समर्थ है, अतः मैं मौनकी उपासनाको सर्वोपरि साधना मानता हूँ।'

(स्वा० ओं० आ०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्माण्डपुराण

ब्रह्माण्डपुराण अठारहवाँ महापुराण है। इसमें ब्रह्माण्डका विशद भौगोलिक वर्णन है, इसी कारण इसे ब्रह्माण्डपुराण कहा जाता है—**'ब्रह्माण्डचरितोक्तत्वाद् ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम्'** (शिव० उमासं० ४४। १३५)। यह पुराण पूर्व, मध्यम तथा उत्तर—इन तीन[1] भागोंमें विभक्त है। पूर्वभागमें प्रक्रिया तथा अनुषङ्ग नामक दो पाद हैं। मध्यमभागमें उपोद्घातपाद और उत्तरभागमें उपसंहारपाद है। इसकी अध्याय-संख्या १५६ और श्लोक-संख्या लगभग बारह हजार है।

इसके पूर्वभागमें मुख्यरूपसे नैमिषीयोपाख्यान, हिरण्यगर्भप्रादुर्भाव, देव-ऋषिकी सृष्टि, कल्प, मन्वन्तर तथा कृतयुगादिके परिमाण, रुद्रसर्ग, ऋषिसर्ग, अग्निसर्ग, दक्ष तथा शंकरका परस्पर शाप, प्रियव्रतवंश, भुवनकोश, गङ्गावतरण, खगोलवर्णन, सूर्यादि ग्रहों, नक्षत्रों, ताराओं तथा अन्य आकाशीय पिण्डोंका विशद विवेचन (ज्योतिःसंनिवेश), समुद्र-मन्थन, विष्णुद्वारा लिङ्गोत्पत्ति-कथन, वर्णाश्रमधर्म, मन्त्रोंके विविध भेद, वेदशाखाविभाग तथा मन्वन्तरोपाख्यान विवेचित हैं।

मध्यमभागमें श्राद्धसम्बन्धी विषयोंका साङ्गोपाङ्ग विवेचन, परशुराम-चरित्रकी विस्तृत कथा, राजा सगरकी वंश-परम्परा तथा भगीरथद्वारा गङ्गानयनका विस्तृत वृत्तान्त और सूर्य तथा चन्द्रवंशी राजाओंके उत्तम चरित्रके आख्यान हैं।

उत्तरभागमें भावी मन्वन्तरोंका विवेचन, कालमान और प्रतिसर्गका वर्णन तथा राजराजेश्वरी भगवती श्रीत्रिपुरसुन्दरीका महत्त्वपूर्ण आख्यान है, जो 'ललितोपाख्यान'के नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ यह हयग्रीव (विष्णु) तथा अगस्त्यके संवादके रूपमें वर्णित है। भण्ड आदि असुरोंके विनाशके लिये तथा देवताओंको अभय प्रदान करनेके लिये देवी ललिताने सपरिकर विग्रह धारण किया—

इत्थं भण्डमहादैत्यवधाय ललिताम्बिका। प्रादुर्भूता चिदनलाद्दग्धनिःशेषदानवा॥ (ब्र० पु० उपसं० ३७। ९७)

भण्डासुरवधायैषा प्रादुर्भूता चिदग्निनः॥ (ब्र० पु० उपसं० ३८। ८०)

मुख्यरूपसे इस आख्यानमें श्रीविद्याकी उपासना, माहात्म्य तथा श्रीचक्रपूजन-विधिका ही वर्णन है।[2]

इस प्रकार ब्रह्माण्डपुराणमें पञ्चविध लक्षणोंके अतिरिक्त अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंका वर्णन हुआ है। वायुप्रोक्त होनेके कारण इस पुराणको वायवीय ब्रह्माण्ड संहिता भी कहा जाता है। वायुपुराण तथा ब्रह्माण्डपुराणमें अद्भुत साम्य है। परशुरामसर्ग-वृत्तान्त तथा ललितोपाख्यानको छोड़कर प्रायः सभी विषय मिल जाते हैं। इसके आदि उपदेष्टा प्रजापति ब्रह्मा हैं। यह पुराण पापनाशक, पुण्यप्रद तथा पवित्रकारक है, आयु एवं कीर्तिको बढ़ानेवाला है। इसमें धर्म, सदाचार, नीति, पूजा, उपासना, ज्ञान-विज्ञानकी अनेक बातें हैं। इसके उपदेश अत्यन्त उपादेय हैं।

१-अध्यात्मरामायणकी नागेशभट्ट, गोपालचन्द्र चक्रवर्ती आदिकी व्याख्याओंमें इसे ब्रह्माण्डपुराणका ही एक भाग-विशेष होनेकी बात कही-सुनी जाती है, किंतु मूल पुराणमें इसके सुस्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

२-तन्त्रशास्त्रमें ललिताकी उपासना मुख्य मानी गयी है। दशमहाविद्याओंमें ये अन्यतम हैं। ललिता ही श्रीविद्या, राजराजेश्वरी, कामेश्वरी, त्रिपुरसुन्दरी बाला, पञ्चदशी तथा षोडशी आदि नामोंसे विख्यात हैं। श्रीविद्यार्णव, त्रिपुरारहस्य, वरिवस्यारहस्य, सौन्दर्यलहरी, मन्त्रमहोदधि, ब्रह्माण्डपुराणके ललितोपाख्यान, कालिकापुराण, देवीभागवत, मार्कण्डेयपुराण तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण आदिमें इसी विषयको कहा गया है। इन श्रीविद्याके मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, मन्मथ (कामदेव), अगस्ति, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, स्कन्द (कुमार कार्तिकेय), शिव और क्रोधभट्टारक (दुर्वासा मुनि)—ये बारह उपासक अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। ललितादेवीका एक प्रमुख श्रीविग्रह नैमिषारण्यमें है। वहाँ वे लिङ्गधारिणी ललिताके नामसे कही गयी हैं—'नैमिषे लिङ्गधारिणी' (मत्स्य० १३। २६, देवीभा० ७। ३०। ५५)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-आख्यान—

चोरीकी चोरी

कांचीपुरीमें वज्र नामका एक चोर था। उस चोरका यह नाम विशेष सार्थक था। किसीकी सम्पत्ति चुरानेपर उसके स्वामीको जो कष्ट होता है, उसे सहृदय व्यक्ति ही आँक सकता है। चोरका हृदय वस्तुतः वज्रका बना होता है। इसीलिये वह चोरी कर पाता है। यदि चोरको परदुःखकातरता हो तो वह चोरी करना ही छोड़ दे। वज्र ऐसा ही कठोर हृदयवाला चोर था। वह प्रतिदिन थोड़ा-बहुत जो मिलता, सब कुछ चुरा लेता था। चुराये हुए धनको वह राज-रक्षकों द्वारा पकड़े जानेके भयसे आधी रातके समय जंगलमें जाकर मिट्टी खोदकर गाड़ देता था।

एक रात वीरदत्त नामक एक किरात लकड़हारेने चोरकी यह चेष्टा देख ली। चोरके चले जानेके बाद वह प्रतिदिन मिट्टी हटाकर सम्पत्तिमेंसे दसवाँ हिस्सा निकाल लेता और गड्ढेको पहलेकी तरह पत्थर-मिट्टीसे ढँक देता था। लकड़हारा चालाक चोर था। वह इस ढंगसे चुराता था कि वज्र इसकी चोरीको भाँप न सके।

एक दिन लकड़हारा अपनी पत्नीको धन देता हुआ बोला—'तुम प्रतिदिन धन माँगा करती थी, लो, आज मुझे पर्याप्त धन प्राप्त हो गया है।' पत्नीने कहा—'जो धन अपने परिश्रमसे उपार्जित किया जाता है, वही स्थायी होता है, दूसरा धन नष्ट हो जाता है। इसलिये इस धनसे जनताके भलेके लिये बावली, कुआँ आदि बनवाना चाहिये।' उसके पतिको भी यह बात जँच गयी। आस-पास अच्छे-अच्छे कुएँ और तालाब थे। इसलिये उसने दूरदेशमें एक बहुत बड़ा तालाब खुदवाया। गर्मीमें भी उसका जल नहीं सूखता था। तालाबमें अभी सीढ़ियाँ लगानी थीं और उसके सब पैसे समाप्त हो गये। वह छिपकर फिर वज्रका अनुसरण करने लगा। देखा करता था कि वज्र कहाँ-कहाँ धन गाड़ा करता है। इस प्रकार दशांश चुराकर उसने तालाबका काम पूरा कर दिया। इसके बाद उसने भगवान् विष्णु और शंकरके भव्य मन्दिर भी तैयार कराये। जंगल कटवाकर खेत तैयार कराये और उन्हें ब्राह्मणोंमें वितरण कर दिया। एक बार बहुतसे ब्राह्मणोंको बुलाकर वस्त्राभूषणोंसे उनकी अच्छी पूजा की। कुछ ब्राह्मणोंके लिये घरकी व्यवस्था भी कर दी थी। ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर उसका नाम द्विजवर्मा रख दिया।

कालवश जब द्विजवर्माकी मृत्यु हुई, तब उसे लेनेके लिये एक ओर यमके दूत और दूसरी ओर भगवान् शंकर और विष्णुके दूत आये। परस्परमें विवाद होने लगा। इसी बीच नारदजी वहाँ पधारे। उन्होंने सबको समझाया कि 'आपलोग कलह न करें, मेरी बात सुनें। इस किरातने चोरीके धनसे मन्दिर आदि तैयार किये हैं। अतः जबतक कुमार्गसे उपार्जित द्रव्यरूप पापका प्रायश्चित्त नहीं हो जाता, तबतक यह वायुके रूपमें अन्तरिक्षमें विचरण करता रहे।' नारदजीकी बात सुनकर सभी दूत लौट गये। वह किरात बारह वर्षतक प्रेत बनकर घूमता रहा।

देवर्षि नारदने किरातकी पत्नीसे कहा—'तुमने अपने पतिको उत्तम मार्ग दिखाया है, इसलिये तुम ब्रह्मलोक जाओ। किंतु किरातकी पत्नी अपने पतिके दुःखसे दुःखी थी। वह ब्रह्मलोकका सुख तुच्छ मानते हुए रोकर देवर्षिसे बोली—'मेरे पतिको जबतक देह नहीं मिलती, तबतक मैं यहीं रहूँगी। जो गति मेरे पतिकी होगी, वही गति मैं भी चाहती हूँ।' किरातीके धर्मयुक्त वचन सुनकर देवर्षि नारद बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे अपने प्रभावसे इस योग्य बना दिया कि वह शंकरकी अच्छी आराधना कर सके। उन्होंने बताया कि तीर्थमें स्नानकर कन्दमूल-फल खाकर अपने पतिकी सद्गतिके लिये भगवान् शंकरकी पूजा और जप करे।

किरातीने अपने पतिके लिये शिवकी आराधना लगनसे की। इस कृत्यसे उसके पतिके चोरीका सारा पाप धुल गया। फिर अपने पुण्यके बलसे दोनों पति-पत्नीको उत्तम लोक मिला। द्विजवर्मा गाणपत्य-पदपर प्रतिष्ठित हुआ। वज्र चोर तथा कांचीके सभी धनी, जिनका इस कार्यमें द्रव्य लगा था, सपरिवार स्वर्ग चले गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिशक्ति ललिताम्बा

भण्डासुरकी उत्पत्ति

जब विश्वपर घोर संकट आता है और उसके प्रतिकारका कोई उपाय नहीं रहता, तब आदिशक्तिका आविर्भाव होता है। इसी प्रकार एक बार जब भण्डासुरसे सारा विश्व त्रस्त हो गया था, तब उन्होंने ललिताके रूपमें लोकोद्धारका कार्य किया।

भगवान् शंकरने जब कामदेवको जलाया था, तब उसका भस्म वहीं पड़ा रह गया था। एक दिन गणेश्वरने कौतूहलवश उस भस्मसे पुरुषकी आकृति बनायी। थोड़ी ही देरमें वह सजीव होकर कामदेवकी तरह सुन्दर बालक बन गया। उसे देख गणेशजीने गले लगा लिया और कहा कि 'तुम भगवान् शंकरकी स्तुति करो।' उस बालकको शतरुद्रीयका भी उपदेश किया। उसका नाम आगे चलकर भण्डासुर हुआ।

भण्डासुरको वर-प्राप्ति

भण्डने श्रीगणेशजीकी आज्ञाका अक्षरशः पालन किया। घोर तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उससे वर माँगनेको कहा। उसने यह माँगा कि 'मैं देवता आदि किसी प्राणीसे न मारा जाऊँ।' औढरदानीने उसे मुँहमाँगा वरदान दे दिया। साथ ही दिव्य अस्त्र-शस्त्र भी दिये। साठ हजार वर्षका राज्य भी दे दिया। यह सब देखकर ब्रह्माजीने ही पहले उसे 'भण्ड-भण्ड' कहा था। तभीसे उसका नाम 'भण्ड' पड़ गया। **'भडि कल्याणे'** (१०।५४), **'भडि परिहासे'** (१।२७०) धातुपाठके अनुसार इस शब्दके दो अर्थ होते हैं। एक यह कि इस व्यक्तिका कल्याण हो गया। दूसरा यह कि इसे लोग निन्दा एवं उपहासके साथ स्मरण करेंगे।

जबतक भण्डासुर भगवान् शंकरके अनुशासनमें रहा, तबतक उसका कल्याण होता रहा। जब वह मायाके मोहजालमें पड़ गया, तब उपहासास्पद बन गया।

भण्डका अनुशासित जीवन

भण्डासुरके वरदान मिलनेकी बात थोड़ी ही देरमें सम्पूर्ण भुवनोंमें फैल गयी। दैत्योंके पुरोहित शुक्राचार्य यह समाचार पाकर भण्डासुरके पास आये। उनके साथ दैत्योंका समुदाय भी था। शुक्राचार्यने मयके द्वारा शोणितपुरको फिरसे सुसज्जित कराकर वहाँ भण्डासुरका अभिषेक कर दिया।

प्रारम्भमें भण्डासुर शिवकी अर्चना करता और उनके आदेशपर चलता था। उसके अनुयायी दैत्य भी धर्मका अनुसरण करते थे। प्रत्येक घर वेदोंकी ध्वनिसे गुञ्जित रहता था। घर-घरमें यज्ञ होता था। इस तरह सौभाग्यशाली भण्डके सुख-समृद्धिके साठ हजार वर्ष देखते-देखते बीत गये।

मायाकी चपेटमें

भण्डासुर बादमें मायाकी चपेटमें पड़ गया—अब न पत्नियोंसे उसे संतोष न था, एक दिव्य वाराङ्गनाके मोहमें पड़ गया। देखा-देखी इसके मन्त्री आदि अनुयायी भी विलासी बनते चले गये। अब न किसीको भगवान् शंकर याद आते न पूजा-पाठ ही। यज्ञ और वेदके उच्चारण भी अब बंद हो गये थे।

देवताओंकी साँस-में-साँस आयी

इस तरह दैत्योंके विषयासक्त हो जानेपर देवताओंकी साँस-में-साँस आयी। उनके भयका दबाव कम हो गया। अब वे पाताल, समुद्र और खोहोंसे निकल-निकलकर अपने-अपने घरोंको लौट रहे थे। अपने बिछुड़े परिवारसे मिलनेका अवसर अब उन्हें मिल गया था। इन्द्र अब सिंहासनपर बैठ पाते थे। देवतालोग उन्हें घेरकर आमोद-प्रमोद मनाने लगे।

इसी बीच देवर्षि नारद देवताओंके पास आये। उन्होंने उन्हें समझाया कि 'इस क्षणिक आमोद-प्रमोदको छोड़कर वे अपने भविष्यको सुनहला बनायें।' उन्होंने पराशक्तिकी उपासनाका परामर्श दिया। विधि भी बतला दी। देवताओंने शीघ्र ही उनके आदेशका पालन किया। सब-के-सब पराशक्तिकी उपासनामें लग गये।

इधर दैत्योंके पुरोहित शुक्राचार्य भण्डासुरके पास आये और उसे सावधान करते हुए उन्होंने कहा—'देवता अपनी विजयके लिये हिमालयमें पराशक्तिकी उपासना कर रहे हैं। यदि पराशक्तिने उनकी सुन ली तो तुम कहींके न रह जाओगे। अतः तुम शीघ्र ही देवताओंकी पूजामें विघ्न डालो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भण्डासुरकी निष्फल चढ़ाई

भण्डासुर दल-बलके साथ देवताओंपर चढ़ आया। पराम्बाने अपनी शरणमें आये हुए देवताओंकी रक्षाके लिये ज्योतिकी एक अलङ्घ्य दीवार खड़ी कर दी। भण्डासुर यह देखकर क्रोधसे जल उठा। उसने दानवास्त्र चलाकर उसे तोड़ डाला। परंतु तत्क्षण ही वहाँ पुनः अलङ्घ्य दीवार खड़ी हो गयी। इस बार भण्डासुरने वायव्यास्त्रसे इसे तोड़ा। किंतु तत्क्षण भण्डासुरने उसी दीवारको खड़ी देखा। तोड़नेमें समय लगता था, किंतु दीवार खड़ी होनेमें समय नहीं लगता था। हारकर भण्डासुर शोणितपुर लौट आया।

ललिताम्बाका आविर्भाव

भण्डासुर लौट तो आया था, किंतु उसके भयसे देवताओंकी दशा दयनीय हो गयी थी। वे सोचते थे कि जिस दिन दीवार नहीं रहेगी, उस दिन हमलोगोंका बच सकना कठिन हो जायगा। अब कहीं छिपकर नहीं रहा जा सकता। अन्तमें देवताओंने निर्णय लिया कि या तो पराम्बाका दर्शन करें या यहीं भण्डासुरके हाथों मारे जायँ। उन्होंने अपनी आराधना और बढ़ा दी। हृदयकी पुकार थी। पराम्बा प्रकट हो गयीं। उनके अद्भुत दर्शन पाकर देवता कृतकृत्य हो गये। गद्गद होकर देवताओंने माँ पराम्बाकी स्तुति की। ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी आ गये थे। पराम्बाका स्वरूप-शृङ्गार देवीके रूपमें था। ब्रह्माने यह देखकर सोचा कि इनका विवाह-सम्बन्ध परमात्मा शंकरसे ही सम्भव है। इतना संकल्प करते ही सौन्दर्य-सारके स्वरूपमें भगवान् शंकर कुमार बनकर वहाँ प्रकट हो गये। यह देखकर सब-के-सब आनन्दमें विभोर हो गये। ब्रह्माने उनका नाम कामेश्वर रख दिया। जब कामेश्वर पराशक्तिके सामने लाये गये, तब दोनों एक दूसरेको देखकर मुग्ध हो गये। देवताओंने उनका आपसमें विवाह करा दिया और पराम्बाको उस पुरकी अधीश्वरी बना दिया। शक्ति और शक्तिमान्के मेल हो जानेसे वहाँ अखण्ड आनन्दकी वृष्टि होने लगी। बहुत दिनोंतक उत्साहके साथ विवाहोत्सव मनाया गया।

भण्डासुरका उद्धार

भण्डासुरने सारे विश्वको त्रस्त कर रखा था। अहंकारमें आकर अपने जनक श्रीगणेशजी और शंकरजीकी भी घोर अवहेलना की थी। परिणाम-स्वरूप भण्डासुरके विरुद्ध युद्धमें गणेशजीने भी पराम्बाका सहयोग दिया। विश्वकी रक्षाके लिये ललिताम्बाने भण्डासुरके साथ युद्ध किया। युद्धमें भण्डासुरने 'पाषण्ड'का प्रयोग किया, तब पराम्बाने 'गायत्री'के द्वारा उसका निवारण किया। जब भण्डासुरने 'स्मृतिनाश'-अस्त्रका प्रयोग किया, तब माँने 'धारणा'के द्वारा उसे नष्ट किया। जब भण्डासुरने 'यक्ष्मा' आदि रोग-रूप अस्त्रोंका प्रयोग किया, तब पराम्बाने 'अच्युत, आनन्द, गोविन्द' **(अच्युतानन्दगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्)** नाम-रूप मन्त्रोंसे उसका निवारण किया। इसके बाद भण्डासुरने हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण, कंस और महिषासुरको उत्पन्न किया, तब ललिताम्बाने अपनी दसों अंगुलियोंके नखसे वराह, नृसिंह, राम, कृष्ण, दुर्गा आदिको उत्पन्न किया। युद्धके अन्तिम भागमें पराम्बाने भण्डासुरका उद्धार 'कामेश्वर'-अस्त्रसे किया। माता ललिताम्बाके अस्त्र-शस्त्र इक्षुदण्ड और पुष्प थे। कामेश्वरका अस्त्र भी काम-बीज-रूप प्रेमतत्त्व ही था।

भगवान् श्रीरामको कथाएँ अति प्रिय थीं

तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्हि बिप्रन्ह पर दाया॥
भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना॥

* * * *

कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥

* * * *

करि भोजनु मुनिबर बिग्यानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी॥

* * * *

बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध पौराणिक कथाएँ

चौबीस अवतारोंकी कथाएँ[1]

[भगवान् अनन्त हैं। वे सर्वशक्तिमान् करुणामय परमात्मा अपना कोई प्रयोजन न रहनेपर भी साधु-परित्राण, धर्म-संरक्षण एवं जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये शरीर-धारण कर लिया करते हैं। उनके अवतरण और उनके अवतारचरित्र भी अनन्त हैं। श्रीमद्भागवतमें सूतजीने कहा है—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः । यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ (१।३।२६)

'जिस प्रकार किसी एक अक्षय जलाशयसे असंख्य छोटे-छोटे जल-प्रवाह निकलकर चारों ओर धावित होते हैं, उसी प्रकार सत्त्वनिधि परमेश्वरसे विविध अवतारोंकी उत्पत्ति होती है।' पुरुषावतार, गुणावतार, कल्पावतार, युगावतार, पूर्णावतार, अंशावतार, कलावतार, आवेशावतार आदि उनके अवान्तर भेद हैं। कल्प-भेदसे प्रभु-चरित्रोंमें भी भिन्नता आती है। श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराण-ग्रन्थोंमें सर्वसमर्थ, कल्याण-विग्रह प्रभुके मुख्यतया चौबीस अवतारोंका सविशेष वर्णन है, पर उनमें कुछ क्रम-भेद है। यहाँ हम दयाधामके उन अद्भुत एवं मङ्गलकारी चौबीस अवतारोंका चरित्र यद्यपि स्थानाभावके कारण अत्यन्त संक्षेपमें दे रहे हैं, तथापि इस संक्षिप्त कथाके भी मनोयोगपूर्वक पठन-पाठनसे हमारे पाठक लाभान्वित होंगे, हमारा पूरा विश्वास है।—सम्पादक]

श्रीसनकादि

सृष्टिके प्रारम्भमें लोकपितामह ब्रह्माने विविध लोकोंको रचनेकी इच्छासे तपस्या की। स्रष्टाके उस अखण्ड तपसे प्रसन्न होकर विश्वाधार प्रभुने 'तप' अर्थवाले 'सन' नामसे युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—इन चार निवृत्ति-परायण ऊर्ध्वरेता मुनियोंके रूपमें अवतार ग्रहण किया। ये प्राकट्य-कालसे ही मोक्षमार्ग-परायण, ध्यानमें तल्लीन रहनेवाले, नित्यसिद्ध एवं नित्य-विरक्त थे। इन नित्य-ब्रह्मचारियोंसे ब्रह्माजीके सृष्टिविस्तारकी आशा पूरी नहीं हो सकी।

देवताओंके पूर्वज और लोकस्रष्टाके आद्य मानसपुत्र सनकादिके मनमें कहीं किंचित् आसक्ति नहीं थी। वे प्रायः आकाशमार्गसे विचरण किया करते थे। एक बार वे श्रीभगवान्के वैकुण्ठधाममें पहुँचे। वहाँ सभी शुद्ध-सत्त्वमय चतुर्भुज-रूपमें रहते हैं। सनकादि भगवद्दर्शनकी लालसासे वैकुण्ठकी दुर्लभ दिव्य दर्शनीय वस्तुओंकी उपेक्षा करते हुए छठी ड्योढ़ीसे आगे बढ़ ही रहे थे कि भगवान्के पार्षद जय और विजयने उन पञ्चवर्षीय-से दीखनेवाले दिगम्बर तेजस्वी कुमारोंकी हँसी उड़ाते हुए उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया। भगवद्दर्शनमें व्यवधान उत्पन्न होनेके कारण सनकादिने उन्हें दैत्यकुलमें जन्म लेनेका शाप दे दिया।

अपने प्राणप्रिय एवं अभिन्न सनकादि कुमारोंके अनादरका संवाद मिलते ही वैकुण्ठनाथ श्रीहरि तत्काल वहाँ पहुँच गये। भगवान्की अद्भुत, अलौकिक एवं दिव्य सौन्दर्यराशिके दर्शन कर सर्वथा-विरक्त सनकादि कुमार चकित हो गये। वे अपलक नेत्रोंसे प्रभुकी ओर देखने लगे। उनके हृदयमें आनन्द-सिन्धु उच्छलित हो रहा था। उन्होंने वनमालाधारी लक्ष्मीपति भगवान् श्रीविष्णुकी स्तुति करते हुए कहा—

१- भगवान्के चौबीस अवतारोंमें वराह, नारद, कपिल, दत्तात्रेय, मत्स्य, कूर्म, नरसिंह, वामन (बलि-आख्यान) तथा कल्कि-अवतारोंकी कथाएँ तत्तद् महापुराणों तथा उपपुराणोंके क्रममें दी गयी हैं। अतः उनका अवलोकन उन्हीं स्थानोंपर करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विपुलकीर्ति प्रभो ! आपने हमारे सामने जो यह मनोहर रूप प्रकट किया है, उससे हमारे नेत्रोंको बड़ा ही सुख मिला है, विषयासक्त अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये इसका दृष्टिगोचर होना अत्यन्त कठिन है। आप साक्षात् भगवान् हैं और इस प्रकार स्पष्टतया हमारे नेत्रोंके सामने प्रकट हुए हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं।'

'ब्राह्मणोंकी पवित्र चरण-रजको मैं अपने मुकुटपर धारण करता हूँ।' श्रीभगवान्ने अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा। 'जय-विजयने मेरा अभिप्राय न समझकर आपलोगोंका अपमान किया है। इस कारण आपने इन्हें दण्ड देकर सर्वथा उचित ही किया है।'

लोकोद्धारार्थ लोक-पर्यटन करनेवाले, सरलता एवं करुणाकी मूर्ति सनकादि कुमारोंने श्रीभगवान्की सारगर्भित मधुरवाणीको सुनकर उनसे अत्यन्त विनीत स्वरमें कहा—

'सर्वेश्वर ! इन द्वारपालोंको आप जैसा उचित समझें, वैसा दण्ड दें अथवा पुरस्काररूपमें इनकी वृत्ति बढ़ा दें—हम निष्कपटभावसे सब प्रकार आपसे सहमत हैं। अथवा हमने आपके इन निरपराध अनुचरोंको शाप दिया है, इसके लिये हमें ही उचित दण्ड दें। हमें वह भी सहर्ष स्वीकार है।'

'यह मेरी प्रेरणासे ही हुआ है।' ऐसा कहकर श्रीभगवान्ने उन्हें संतुष्ट किया। इसके अनन्तर सनकादिने सर्वाङ्ग-सुन्दर भगवान् विष्णु और उनके धामका दर्शन किया और प्रभुकी परिक्रमा कर उनका गुणगान करते हुए वे चारों कुमार लौट गये। जय-विजय इनके शापसे तीन जन्मोंतक क्रमशः हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष, रावण-कुम्भकर्ण और शिशुपाल-दन्तवक्र हुए।

उस समय जब भगवान् सूर्यकी भाँति परम तेजस्वी सनकादि आकाशमार्गसे भगवान्के अंशावतार महाराज पृथुके समीप पहुँचे, तब उन्होंने अपना अहोभाग्य समझते हुए उनकी सविधि पूजा की, उनका पवित्र चरणोदक माथेपर छिड़का और उन्हें सुवर्णके सिंहासनपर बैठाकर बद्धाञ्जलि हो विनयपूर्वक निवेदन किया—'मङ्गलमूर्ति मुनीश्वरो ! आपके दर्शन तो योगियोंको भी दुर्लभ हैं। मुझसे ऐसा क्या पुण्य बना है, जिसके फलस्वरूप मुझे स्वतः आपका दर्शन प्राप्त हुआ। इस दृश्य-प्रपञ्चके कारण महत्तत्त्वादि यद्यपि सर्वगत हैं, तो भी वे सर्वसाक्षी आत्माको नहीं देख सकते, इसी प्रकार यद्यपि आप समस्त लोकोंमें विचरते रहते हैं, तो भी अनधिकारी लोग आपको नहीं देख पाते।'

फिर अपने सौभाग्यकी सराहना करते हुए उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक कहा—

'आप संसारानलसे संतप्त जीवोंके परम सुहृद् हैं,' इसलिये आपपर विश्वास करके मैं यह पूछना चाहता हूँ कि 'इस संसारमें मनुष्यका किस प्रकार सुगमतासे कल्याण हो सकता है ?'

भगवान् सनकादिने आदिराज पृथुका ऐसा प्रश्न सुनकर उनकी बुद्धिकी प्रशंसा की और उन्हें विस्तारपूर्वक कल्याणका उपदेश देते हुए कहा—'धन और इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करना मनुष्यके सभी पुरुषार्थोंका नाश करनेवाला है; क्योंकि इनकी चिन्तासे वह ज्ञान और विज्ञानसे भ्रष्ट होकर वृक्षादि स्थावर योनियोंमें जन्म पाता है। इसलिये जिसे अज्ञानान्धकारसे पार होनेकी इच्छा हो, उस पुरुषको विषयोंमें आसक्ति कभी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिमें अतीव बाधक है। जो लोग मन और इन्द्रियरूप मगरोंसे संकुल इस संसार-सागरको योगादि दुष्कर साधनोंसे पार करना चाहते हैं, उनका उस पार पहुँचना कठिन ही है; क्योंकि उन्हें कर्णधाररूप श्रीहरिका आश्रय नहीं है। अतः तुम तो भगवान्के आराधनीय चरण-कमलोंको नौका बनाकर अनायास ही इस दुस्तर दुःख-समुद्रको पार कर लो।' भगवान् सनकादिके इस अमृतमय उपदेशसे आप्यायित होकर आदिराज पृथुने उनकी स्तुति करते हुए पुनः उनकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सविधि पूजा की।

ऋषिगण प्रलयके कारण पहले कल्पका आत्मज्ञान भूल गये थे। श्रीभगवान्ने अपने इस अवतारमें उन्हें यथोचित उपदेश दिया, जिससे उन लोगोंने शीघ्र ही अपने हृदयमें उस तत्त्वका साक्षात्कार कर लिया। सनकादि अपने योगबलसे अथवा **'हरिः शरणम्'** मन्त्रके जप-प्रभावसे सदा पाँच वर्षके ही कुमार बने रहते हैं। ये प्रमुख योगवेत्ता, सांख्यज्ञान-विशारद, धर्मशास्त्रोंके आचार्य तथा मोक्षधर्मके प्रवर्तक हैं। श्रीनारदजीको इन्होंने श्रीमद्भागवतका उपदेश किया था।

भगवान् सनत्कुमारने ऋषियोंके तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी प्रश्नके उत्तरमें सुविस्तृत उपदेश देते हुए बताया था—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विद्याके समान कोई नेत्र नहीं है। सत्यके समान कोई तप नहीं है। रागके समान कोई दुःख नहीं है और त्यागके समान कोई सुख नहीं है। पापकर्मोंसे दूर रहना, सदा पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करना, श्रेष्ठ पुरुषोंसे बर्ताव और सदाचारका पालन करना—यही सर्वोत्तम श्रेय (कल्याण) का साधन है।'

प्राणिमात्रके सच्चे शुभाकाङ्क्षी कुमार-चतुष्टयके पावन पद-पद्मोंमें अनन्त प्रणाम !

भगवान् नर-नारायण

स्वयं भगवान् वासुदेवने सृष्टिके आरम्भमें धर्मकी सहधर्मिणी मूर्तिसे दो रूपोंमें अवतार धारण किया। वे अपने मस्तकपर जटामण्डल धारण किये हुए थे। उनके हाथोंमें हंस, चरणोंमें चक्र एवं वक्षःस्थलमें श्रीवत्सके चिह्न सुशोभित थे। उनकी बड़ी-बड़ी भुजाएँ, मेघके समान गम्भीर स्वर, सुन्दर मुख, चौड़ा ललाट, बाँकी भौंहें, सुन्दर ठोढ़ी और मनोहर नासिका थी। उनका सम्पूर्ण वेष तपस्वियोंका था। वे अत्यन्त तेजस्वी, रूप-रंग और स्वभावमें एक-से थे। उन वरदाता तपस्वियोंके नाम थे—'नर और नारायण'।

अवतार ग्रहण करते ही अविनाशी नर-नारायण बदरिकाश्रममें चले गये। वहाँ वे गन्धमादन पर्वतपर एक विशाल वट-वृक्षके नीचे तपस्या करने लगे। वहाँ उन्होंने एक सहस्र वर्षतक कठोर तपस्या की। उनके प्रचण्ड तपसे देवराज इन्द्र सशङ्क हो तुरंत गन्धमादन पर्वतपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने परम पवित्र आश्रममें तपोभूमि भारतके आराध्य परम तेजस्वी भगवान् नर-नारायणको तप-निरत देखा।

'धर्मनन्दन ! तुम दोनों अवश्य ही अत्यन्त भाग्यवान् हो।' सूर्यकी भाँति प्रकाश विकीर्ण करते हुए तपोधन नर-नारायणके समीप पहुँचकर शचीपतिने कहा। 'तुम दोनोंकी तपश्चर्यासे संतुष्ट होकर मैं तुम्हें वर देनेके लिये ही यहाँ आया हूँ। तुम अपना अभीष्ट बताओ। मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।' इस प्रकार सम्मुख खड़े होकर देवाधिप इन्द्रके बार-बार आग्रह करनेपर भी नर-नारायणने कोई उत्तर नहीं दिया। उनका चित्त सर्वथा शान्त एवं अविचलित रहा।

तब इन्द्रने उन्हें भयभीत करनेके लिये मायाका प्रयोग किया। भयानक झंझावात, प्रलयंकारी वृष्टि एवं अग्निवर्षा प्रारम्भ हो गयी। भेड़िये और सिंह गरजने लगे, किंतु नर-नारायण सर्वथा शान्त थे। उनका चित्त किसी प्रकार भी विचलित नहीं हुआ। अनेक प्रकारकी मायाका प्रयोग किये जानेपर भी जब तपस्वियोंके सिरमौर नर-नारायण तपसे विचलित नहीं हुए, तब इन्द्र निराश होकर लौट गये। फिर तो उन्होंने रम्भा, तिलोत्तमा, पुष्पगन्धा, सुकेशी और काञ्चनमालिनी आदि अप्सराओं और वसन्तके साथ कामदेवको नर-नारायणको वशीभूत करनेके लिये भेजा। उस श्रेष्ठ पर्वत गन्धमादनपर वसन्तके पहुँचते ही आम, बकुल, तिलक, पलाश, साखू, ताड़, तमाल और महुआ आदि सभी वृक्ष पुष्पोंसे सुशोभित हो गये। कोयलें कूकने लगीं। सुगन्धित पवन मन्द गतिसे बहने लगा। इसके साथ ही रतिसहित पुष्पधन्वा भी वहाँ जा पहुँचे। रम्भा और तिलोत्तमा आदि संगीत-कलामें प्रवीण अप्सराओंने स्वर और तालमें गायन प्रारम्भ किया। मधुर संगीत, कोयलोंका कलरव और भ्रमरोंकी गुंजारसे नर-नारायणकी समाधि टूट गयी। उन्होंने इसे इन्द्रकी कुटिलता समझकर कहा—'कामदेव, मलय पवन और देवाङ्गनाओ ! तुमलोग आनन्दपूर्वक ठहरो। तुम सभी स्वर्गसे यहाँ आये हो, इसलिये हमारे अतिथि हो। हम तुम्हारा अद्भुत प्रकारसे आतिथ्य-सत्कार करनेके लिये तैयार हैं।'

भगवान्‌के शान्त वचन सुनकर काँपते हुए कामदेवके मनमें निर्भयता आयी। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—'प्रभो ! आप मायासे परे, निर्विकार हैं। बड़े-बड़े आत्माराम और धीर पुरुष सदा आपके चरण-कमलोंमें प्रणाम करते रहते हैं। भगवन् ! क्रोध आत्मनाशक है, पर बड़े-बड़े तपस्वी उसके वश हो अपनी कठिन तपस्या खो बैठते हैं, किंतु आपके चरणोंका आश्रय लेनेवाला सदा निरापद जीवन व्यतीत करता है।'

कामदेव और वसन्त आदिकी इस प्रकारकी स्तुति सुनकर सर्वसमर्थ भगवान्‌ने वस्त्रालङ्कारोंसे अलङ्कृत एवं अद्भुत रूप-लावण्यसे सम्पन्न सहस्रों स्त्रियाँ प्रकट करके दिखलायीं, जो प्रभुकी सेवा कर रही थीं। जब इन्द्रने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुचरोंने समुद्रतनया लक्ष्मीके समान अनुपम रूप-लावण्यकी राशि सहस्रों देवियोंको अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रभुकी सेवा-पूजा करते देखा तो लज्जासे उनका सिर झुक गया। वे श्रीहत होकर उनके शरीरसे निकलनेवाली दिव्य सुगन्धसे मोहित हो गये।

'तुमलोग इनमेंसे किसी एक स्त्रीको, जो तुम्हारे अनुरूप हो, ग्रहण कर लो।' भक्तप्राण नारायणने मुस्कराते हुए कहा। 'वह तुम्हारे स्वर्गकी शोभा बढ़ायेगी।' 'जैसी आज्ञा!' कहकर उन सबने प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया और उनके द्वारा प्रकट की हुई स्त्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी उर्वशीको लेकर वे स्वर्गलोक चले गये। वहाँ उन्होंने देवराज इन्द्रको प्रणाम कर देवदेवेश नर-नारायणकी महिमाका गान किया तो सुराधिप चकित, विस्मित और भयभीत हो गये।

पुराणपुरुष नर-नारायण स्वयं सर्वसमर्थ होकर भी सृष्टिमें तपश्चर्याका आदर्श स्थापित करनेके लिये निरन्तर कठोर तप करते रहते हैं। काम, क्रोध और मोहादि शत्रु तपके महान् विघ्न हैं। अहंकार और क्रोधके दोषसे तपका क्षय होता है—यह नर-नारायण प्रभुने अपने जीवनसे सिखाया है।

× × × ×

एक बार आदिदेव नर-नारायणके दर्शनार्थ देवर्षि नारद गन्धमादन पर्वतपर पहुँचे। देवता और पितरोंका पूजन करनेके अनन्तर जब भगवान् नर-नारायणने देवर्षि नारदको देखा तो शास्त्रोक्त-विधिसे उनकी पूजा की।

शास्त्रधर्मके विस्तार और इस आश्चर्यपूर्ण व्यवहारसे अत्यन्त प्रसन्न होकर नारदजीने भगवान् नर-नारायणके चरणोंमें प्रणाम किया और पूछा—'प्रभो! सम्पूर्ण वेद,शास्त्र और पुराण आपकी ही महिमाका गान करते हैं।' नारायण-भक्त श्रीनारदजीने श्रद्धापूर्वक निवेदन किया। 'आप अजन्मा, सनातन और निखिल प्राणि-जगत्के माता-पिता हैं। आप ही जगद्गुरु हैं। सम्पूर्ण देवता तथा मनुष्य आपकी ही उपासना करते हैं। फिर आप किसकी पूजा करते हैं, समझमें नहीं आता। बतलानेकी कृपा कीजिये।'

'ब्रह्मन्! यह अत्यन्त गोपनीय विषय है।' श्रीभगवान् बोले—'यह सनातन रहस्य किसीसे कहने योग्य नहीं, किंतु तुम्हारे-जैसे अत्यन्त प्रेमी भक्तसे छिपाना भी उचित नहीं। अतएव मैं तुम्हें बता रहा हूँ। सुनो, 'वे सदसत्स्वरूप परमात्मा ही हम दोनोंकी उत्पत्तिके कारण हैं—इस बातको जान लो। हम दोनों उन्हींकी पूजा करते तथा उन्हींको देवता और पितर मानते हैं। ब्रह्मन्! उनसे बढ़कर दूसरा कोई देवता या पितर नहीं है। वे ही हम लोगोंकी आत्मा हैं, यह जानना चाहिये, अतः हम उन्हींकी पूजा करते हैं। श्रेष्ठ द्विज उन्हींके उद्देश्यसे किये जानेवाले देवता तथा पितृसम्बन्धी कार्योंको ठीक-ठीक जानकर अपनी अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेते हैं।'

'आपने कृपापूर्वक गोपनीय विषय भी मुझपर प्रकट कर दिया, इसके लिये मैं आपका चिरकृतज्ञ रहूँगा।' नारदजीने कहा—'मुझे आपकी कृपाका ही सहारा है। अब मैं श्वेतद्वीपस्थित आपके आदिविग्रहका दर्शन करना चाहता हूँ। आप आज्ञा प्रदान करें।' भगवान् नारायणने श्रीनारदजीकी पूजा की और फिर उन्हें वहाँ जानेकी आज्ञा दे दी।

कुछ दिनोंके अनन्तर ब्रह्मपुत्र नारदजी जब अत्यन्त अद्भुत श्वेतद्वीपका तथा प्रभुका दुर्लभ दर्शन कर लौटे, तब पुनः गन्धमादन पर्वतपर भगवान् नर-नारायणके समीप पहुँचे। वे भगवान् नर-नारायणके परम तेजस्वी अद्भुत रूपका दर्शन कर कृतार्थताका अनुभव करते हुए सोचने लगे—'अरे, मैंने श्वेतद्वीपमें भगवान्के, सभीके भीतर जिन सर्वभूतवन्दित सदस्योंका दर्शन किया था, वे दोनों श्रेष्ठ ऋषि भी तो वैसे ही हैं।'

भगवान् नर-नारायणने नारदजीका स्वागत कर उनका कुशल-समाचार पूछा। नारदजीने अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिसे भगवान् नर-नारायणकी परिक्रमा की और उनके सम्मुख वे एक कुशासनपर बैठे। भगवान् नर-नारायण भी पाद्यार्घ्यादिसे नारदजीका पूजन कर उनके सामने अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये। तब नर-नारायणने अत्यन्त मधुर वाणीमें नारदजीसे पूछा—'देवर्षे! तुमने श्वेतद्वीपमें जाकर हम दोनोंके कारणरूप परब्रह्म परमेश्वरका दर्शन कर लिया?'

'भगवन्! अत्यन्त दया कर विश्वरूपधारी, अविनाशी परम पुरुषने मुझे अपना परम दुर्लभ दर्शन दिया। निखिल ब्रह्माण्ड उन अचिन्त्य, अनन्त, अपरिसीम, महामहिम परमात्मामें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही स्थित है।' श्रीनारदजीने कहा—'श्रीभगवान्ने मुझे सम्पूर्ण धर्म, क्षेत्रज्ञ एवं भावी अवतारोंके सम्बन्धमें भी बताया था। प्रभो ! मैं इस समय भी आप दोनों सनातन पुरुषोंको देखकर यहाँ श्वेतद्वीप-निवासी भगवान्की झाँकी कर रहा हूँ। वहाँ मैंने अव्यक्तरूपधारी श्रीहरिको जिन लक्षणोंसे सम्पन्न देखा था, आप दोनों व्यक्तरूपधारी पुरुष भी उन्हीं लक्षणोंसे सुशोभित हैं।' नारदजीने आगे कहा—'इतना ही नहीं, उन परमात्माके समीप मैंने आप दोनों महापुरुषोंको भी देखा था और उन परम प्रभुके आदेशसे ही मैं यहाँ पुनः आपके समीप आया हूँ। त्रैलोक्यमें उन महाप्रभुके सदृश आपके सिवा अन्य कोई नहीं दीखता।'

'तुमपर श्रीभगवान्का बड़ा अनुग्रह है, जो उन्होंने तुम्हें अपना दर्शन दे दिया।' नर-नारायण बोले—'परमात्माके उक्त स्थलमें हम दोनोंके अतिरिक्त तुम्हारे पिता कमलयोनि ब्रह्माके भी प्रवेशका अधिकार,नहीं है। उन प्रभुको भक्तके समान और कोई प्रिय नहीं। अपने मनको एकाग्र कर लेनेवाले शौच-संतोष आदि नियमोंसे सम्पन्न, जितेन्द्रिय भक्त ही अनन्यभावसे उनके चरण-कमलोंकी शरण ग्रहण कर उन वासुदेवमें प्रवेश करते हैं। हम दोनों यहाँ धर्मका अवतार ग्रहण कर इस बदरिकाश्रममें कठोर तपश्चर्यामें लगे हैं। ब्रह्मन् ! उन्हीं भगवान् परमदेव परमात्माके तीनों लोकोंमें जो देवप्रिय अवतार होनेवाले हैं, उनका सदा ही परम मङ्गल हो—यह हमारी इस तपस्याका उद्देश्य है।' भगवान् नर-नारायणने आगे कहा—'ब्रह्मन् ! तुमने श्वेतद्वीपमें भगवान्के दर्शन और उनसे वार्तालाप किया, यह सब हमें विदित है।'

नर और नारायणकी यह बात सुनकर नारदजी उनके चरणोंमें गिर पड़े और फिर वहीं रहकर भगवान् वासुदेवकी एवं नर-नारायणकी आराधनामें लग गये। उन्होंने नारायण-सम्बन्धी अनेक मन्त्रोंका जप करते हुए भगवान् नर-नारायणके पवित्रतम आश्रममें एक हजार दिव्य वर्षोंतक निवास किया।

× × × ×

द्वापरमें भू-भार-हरण करनेके लिये अवतरित होनेवाले कमलनयन श्रीकृष्ण और उनके प्राणप्रिय सखा पाण्डुनन्दन अर्जुनके रूपमें भगवान् नर-नारायणने ही अवतार ग्रहण किया था। द्वारकामें ब्राह्मणके मृतपुत्रोंको लानेके लिये जब मधुसूदन कुन्तीपुत्र अर्जुनके साथ शेषशायी अनन्त भगवान्के पास पहुँचे, तब ब्राह्मणके मृतपुत्रोंको लौटाते हुए उन्होंने स्वयं उन दोनोंसे कहा था—'श्रीकृष्ण और अर्जुन ! मैंने तुम दोनोंको देखनेके लिये ही ब्राह्मणके बालक अपने पास मँगा लिये थे। तुम दोनोंने धर्मकी रक्षाके लिये मेरी कलाओंके साथ पृथ्वीपर अवतार ग्रहण किया है, पृथ्वीके भाररूप दैत्योंका संहार करके शीघ्र-से-शीघ्र तुमलोग फिर मेरे पास लौट आओ। तुम दोनों ऋषिवर नर और नारायण हो। यद्यपि तुम पूर्णकाम और सर्वश्रेष्ठ हो, फिर भी जगत्की स्थिति और लोक-संग्रहके लिये धर्मका आचरण करो।'

भगवान् नर-नारायणका अवतार कल्पपर्यन्त तपश्चर्याके लिये हुआ है। वे प्रभु आज भी बदरिकाश्रममें तप कर रहे हैं। अधिकारी पुरुष उनके दर्शन भी प्राप्त कर सकते हैं।

भगवान् यज्ञ

बात है स्वायम्भुव मन्वन्तरकी। स्वायम्भुव मनुकी निष्पापा पत्नी शतरूपाके गर्भसे महाभागा आकूतिका जन्म हुआ। वे रुचि प्रजापतिकी पत्नी हुईं। इन्हीं आकूतिकी कुक्षिसे धरणीपर धर्मका प्रचार करनेके लिये आदिपुरुष श्रीभगवान् अवतरित हुए। उनकी 'यज्ञ' नामसे ख्याति हुई। इन्हीं परमप्रभुने यज्ञका प्रवर्तन किया और इन्हींके नामसे यह प्रचलित हुआ। उनसे देवताओंकी शक्ति बढ़ी और उस शक्तिसे सारी सृष्टि शक्तिशालिनी हुई।

परम धर्मात्मा स्वायम्भुव मनुकी धीरे-धीरे सांसारिक विषय-भोगोंसे अरुचि हो गयी। संसारसे विरक्ति हो जानेके कारण उन्होंने राज्य त्याग दिया और अपनी महिमामयी पत्नी शतरूपाके साथ तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। वे पवित्र सुनन्दा नदीके तटपर एक पैरपर खड़े होकर आगे दिये हुए मन्त्रमय उपनिषत्स्वरूप श्रुति * का निरन्तर जप करने लगे।

* पूरी श्रुति श्रीमद्भागवतके आठवें स्कन्धके प्रथम अध्यायमें श्लोक-संख्या ९से १६ तक देखनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपस्या करते हुए प्रतिदिन श्रीभगवान्‌की स्तुति करते थे—

येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम्।
यो जागर्ति शयानेऽस्मिन् नायं तं वेद वेद सः॥
यं न पश्यति पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति।
तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत॥

(श्रीमद्भा० ८।१।९, ११)

'जिनकी चेतनाके स्पर्शमात्रसे यह विश्व चेतन हो जाता है, किंतु यह विश्व जिन्हें चेतनाका दान नहीं कर सकता, जो इसके सो जानेपर प्रलयमें भी जागते रहते हैं, जिन्हें यह विश्व नहीं जान सकता, परंतु जो इसे जानते हैं, वे ही परमात्मा हैं। भगवान् सबके साक्षी हैं। उन्हें बुद्धि-वृत्तियाँ या नेत्र आदि इन्द्रियाँ नहीं देख सकतीं, परंतु उनकी ज्ञान-शक्ति अखण्ड है। समस्त प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाले उन्हीं 'स्वयंप्रकाश' असङ्ग परमात्माकी शरण ग्रहण करो।'

इस प्रकार स्तुति एवं जप करते हुए उन्होंने सौ वर्षतक अत्यन्त कठोर तपश्चरण किया। एकाग्र-चित्तसे इस मन्त्रमय उपनिषत्स्वरूप श्रुतिका पाठ करते-करते उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि नहीं रही। उसी समय वहाँ अत्यन्त क्षुधार्त असुरों एवं राक्षसोंका समुदाय एकत्र हो गया। वे ध्यानमग्न परम तपस्वी मनु और शतरूपाको खानेके लिये दौड़े।

सर्वान्तर्यामी आकूतिनन्दन भगवान् यज्ञ अपने यामनामक पुत्रोंके साथ तुरंत वहाँ पहुँच गये। राक्षसोंसे भयानक संग्राम हुआ। अन्तः राक्षस पराजित हुए। कालके गालमें जानेसे बचे असुर और राक्षस अपने प्राण बचाकर भागे।

भगवान् यज्ञके पौरुष एवं प्रभावको देखकर देवताओंकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उन्होंने भगवान्‌से देवेन्द्र-पद स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। देव-समुदायकी तुष्टिके लिये भगवान् इन्द्रासनपर विराजित हुए। इस प्रकार श्रीभगवान्‌ने इन्द्र-पद-पालनका आदर्श उपस्थित किया।

भगवान् यज्ञके उनकी धर्मपत्नी दक्षिणासे अत्यन्त तेजस्वी बारह पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे ही स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें 'याम' नामक बारह देवता कहलाये।

ऋषभदेवके अवतारकी कथा

स्वायम्भुवमनुके वंशमें नाभि नामक एक राजा थे। उन्होंने भगवान् नारायणको पुत्ररूपमें प्राप्त करनेके लिये कठोर तपस्या की और अनेक यज्ञ-यागादि किये। उनकी हरिभक्ति और तपस्यासे प्रसन्न हो नारायणने प्रकट होकर उन्हें पुत्ररूपमें प्राप्त करनेका वर प्रदान किया। कालान्तरमें नाभिकी सौभाग्य-शालिनी पत्नी मेरुदेवीसे भगवान्‌का आविर्भाव हुआ, जो ऋषभदेवके नामसे विख्यात हुए। उन्हें युवराजपदपर अभिषिक्त कर राजा नाभि अपनी सहधर्मिणी मेरुदेवीके साथ तप करने बदरिकाश्रम चले गये। वहाँ वे नर-नारायणकी उपासना एवं उनका चिन्तन करते हुए अन्तमें उन्हींमें विलीन हो गये।

ऋषभदेव धर्मपूर्वक अपनी प्रजाका पालन करने लगे। प्रजा उन्हें भगवान् मानकर उनकी पूजा करती थी। शचीपति इन्द्रको यह उत्कर्ष सह्य न हो सका, उन्होंने इनके तेज तथा योगबलकी परीक्षा करनेके लिये वर्षा बंद कर दी, किंतु उन्होंने अपने प्रभावसे सजल मेघोंकी सृष्टि कर जल-वर्षण कर लिया। समस्त भूमि पुनः सस्यश्यामला बन गयी। इन्द्रका अभिमान गल गया। उन्होंने अपनी पुत्री जयन्तीका विवाह इनसे कर दिया। योगी ऋषभदेवजीने लोक-मर्यादाकी रक्षाके लिये गृहस्थ-धर्मका पालन किया। इनके सौ पुत्रोंमें नौ पुत्र बड़े गुणवान् एवं महायोगी हुए। जिनमें राजर्षि भरत सबसे बड़े थे। वे इतने प्रतापी नरेश हुए कि उन्हींके नामपर इस अजनाभखण्डका नाम भारतवर्ष प्रख्यात हुआ।

एक बारकी बात है। महायोगी ऋषभदेव भ्रमण करते हुए गङ्गा-यमुनाके मध्यकी भूमि ब्रह्मावर्तमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने प्रख्यात महर्षियोंके साथ अपने पुत्रोंको भी बैठे हुए देखा, तब उन्हें कल्याणकारी योग-साधनाका तत्त्वोपदेश दिया। वे कभी सर्वत्र घूम-घूमकर लोक-कल्याणके लिये उपदेश करते रहते थे और कभी मौन रहते थे। उनकी योगचर्या विलक्षण थी। उनका वेष उन्मत्तोंके समान था। वे दिगम्बर होकर विचरण किया करते थे। उनका आचरण अवधूतोंके समान था। शौचाशौच, ग्राह्याग्राह्य, भेदाभेद तथा खाद्याखाद्यमें उनकी सर्वथा अभेद-बुद्धि थी। उन्हें सभी प्राणियोंमें ब्रह्मके दर्शन होते थे। उन्होंने त्याग और वैराग्यका उपदेश देते हुए स्त्रीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति आसक्तिको ही मोह (अज्ञान) का मुख्य कारण बताया। अतः इससे निवृत्त होकर परमपदको प्राप्त करना चाहिये। ज्ञान-मार्गियों तथा योगियोंके लिये तो उनकी अवधूतावस्था परम श्रेयस्कर थी, परंतु सर्वसाधारणके लिये यह मार्ग अत्यन्त दुष्कर था। वे उनकी अवधूतचर्या तथा उनके उन्मत्तवेषको न समझकर उनका परिहास करने लगे, किंतु सबमें समता तथा सर्वत्र ब्रह्ममय देखनेवाले ऋषभदेवजीको इसका कुछ भी भान नहीं रहता था। वे नदियोंमें खड़े-खड़े मुँह लगाकर पानी पी लेते थे, शौचादिकी शुद्धि नहीं करते थे, पशुओंके समान भूमिपर विचरण करते थे, मल-मूत्रादि तथा भोजनमें कोई भेद नहीं रखते थे। उनका स्त्री-पुरुषमें अथवा अन्य कूकर-शूकरादिमें समभाव था। परम ज्ञानी होनेपर भी उनका आचरण मूर्खों-जैसा था। वे किसीके प्रश्नका उत्तर न देकर मौन ही रहते थे, धूलि-धूसरित शरीरसे जिधर जीमें आता दौड़ने लगते। बच्चें उनके पीछे-पीछे तालियाँ बजाते, किंतु उन्हें कोई चिन्ता नहीं। उनकी नग्नावस्था देख कोई गाली देता, कोई डंडेसे मारता, कोई कंकड़-पत्थर फेंकता, परंतु शरीरके प्रति अनासक्ति और मैं-पनका अभाव होनेके कारण वे कुछ नहीं बोलते थे। कहीं कोई कुछ दे देता तो वे खा लेते, माँगते नहीं थे। वे लेटे-लेटे ही मल-मूत्रका त्याग कर उसे अपने शरीरमें पोत लेते। इस प्रकारकी अद्भुत योगचर्याओंका आचरण करते हुए वे निरन्तर आनन्दमग्न रहते थे। उनका यह जीवन अनुकरणीय नहीं है। यह तो एक अवस्थाविशेष है। जहाँतक पहुँचना सामान्यके लिये असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। इसी विचित्र आचरणको देखते हुए सनातनधर्मावलम्बियोंने इस अवधूतचर्याके मार्गको सर्व-साधारणके लिये अग्राह्य समझकर यथावत् रूपमें स्वीकार नहीं किया।

इनकी परमहंसावस्थामें किये गये स्वच्छन्दाचरणको जैनियोंने परमधर्म माना। जैनियोंके ये आदितीर्थङ्कर हैं। जैनाचार्योंने इन्हींके आचारको आदर्श माना। इनके बहुत-से शिष्य भी हुए, जो धर्मोपदेश करते थे। जैन-हरिवंशादिपुराणोंमें ऋषभदेवजीका विस्तृत जीवन-चरित वर्णित है।

आदिराज पृथुकी अवतार-कथा

स्वायम्भुव मनुके वंशमें अङ्गनामक प्रजापतिका विवाह मृत्युकी मानसिक पुत्री सुनीथाके साथ हुआ। उनके वेन नामक एक पुत्र हुआ। वह अपने मातामह (नाना) के स्वभावका हुआ। इस कारण वह अत्यन्त उग्र, अधार्मिक, परपीडक तथा अत्याचारी था। उसके अत्याचारोंसे प्रजा अत्यन्त कष्टमें थी। राजपदपर अभिषिक्त होते ही उसने घोषणा कर दी—'भगवान् यज्ञपुरुष मैं ही हूँ, मेरे अतिरिक्त यज्ञका भोक्ता कोई दूसरा नहीं हो सकता। इसलिये कभी कोई यज्ञ, दान और जप, हवन, पूजा-पाठ आदि न करे।' सर्वेश्वर हरिकी निन्दा तथा उसके अधर्माचरणसे क्रुद्ध महर्षियोंने मन्त्रपूत कुशोंद्वारा उसे मार डाला।

माता सुनीथाने अपने पुत्र वेनके शरीरको सुरक्षित रखा। राजाके अभावमें राज्यमें सर्वत्र अराजकता व्याप्त हो गयी। ऐसा देखकर ऋषियों तथा ब्राह्मणोंने वेनके शरीरका मन्थन किया, उससे एक स्त्री-पुरुषका जोड़ा प्रकट हुआ। ऋषियोंने बताया कि ये पुरुष भगवान् विष्णुकी विश्वपालिनी कलासे प्रकट हुए हैं और स्त्री उन परम पुरुषकी शक्ति लक्ष्मीजीके अवतार हैं। ये ही दोनों महाराज पृथु तथा महारानी अर्चि नामसे विख्यात हुए। देवताओं तथा ऋषियोंद्वारा महाराज पृथुका राज्याभिषेक किया गया।

उस समय वेनद्वारा किये गये अत्याचारसे पृथ्वीका अन्न नष्ट हो गया था। सर्वत्र भीषण दुर्भिक्ष फैला हुआ था। धर्मकी मर्यादाएँ टूट चुकी थीं। प्राणप्रिय प्रजाके आर्तनादसे व्याकुल हो महाराज पृथुने सोचा कि पृथ्वीने ही अन्न एवं ओषधियोंको अपने भीतर छिपा लिया है। यह विचार मनमें आते ही वे अपना 'आजगव' नामक दिव्य धनुष और बाण लेकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक पृथ्वीके पीछे दौड़े। उन्हें शस्त्र उठाये देखकर पृथ्वी काँप उठी और भयभीत मृगीकी भाँति गौका रूप धारणकर प्राण लेकर भागी। दिशा-विदिशा, धरती, आकाश और स्वर्गतक वह भागती गयी, किंतु सर्वत्र उसे धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ाये, अपना तीक्ष्ण बाण चढ़ाये, लाल आँखें किये अत्यन्त क्रुद्ध सम्राट् पृथु दीखते ही रहे। तब अपनी प्राणरक्षाके लिये विवश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर पृथ्वीने कहा—'राजन्! मुझे मारनेपर आपको स्त्री-वधका पाप लगेगा।' यह सुनकर महाराज पृथु बोले—'जहाँ एकके वधसे बहुतोंकी विपत्ति टल जाती हो और सब सुखी होते हों वहाँ उसका वध पाप नहीं, अपितु पुण्यप्रद ही होता है।' तब उन्होंने गोरूपधारिणी पृथ्वीको दुहकर अन्न, दूध, दही और ओषधियोंको प्राप्त किया तथा पर्वत, नदी, समुद्र आदिकी मर्यादा स्थापित की। सारे संसारका स्वामी होनेसे इन्हींके नामपर भूमिका नाम पृथ्वी पड़ा।

महाराज पृथुके राज्यमें सर्वत्र सुख-शान्ति थी। प्रजा सर्वथा निश्चिन्त रहकर अपने-अपने धर्मका पालन करती थी। उस समय किसीको बुढ़ापा, दुर्भिक्ष तथा आधि-व्याधिका कष्ट नहीं था। इतना ही नहीं, इनके शासनमें इच्छित वस्तुएँ स्वयं प्राप्त हो जाती थीं। राज्यमें सर्वत्र पुण्य-ही-पुण्य होता था। महाराज पृथुके चरणोंमें सारा जगत् देवताके समान मस्तक झुकाता था। वे सागरकी ओर जाते तो उसका जल स्थिर हो जाता। पर्वत उन्हें मार्ग दे देते थे। त्रिभुवनमें सर्वत्र उनके रथकी पताका सदा फहराती रही। चक्रवर्ती सम्राट् पृथु अत्यन्त धर्मात्मा तथा परम भगवद्भक्त थे। उन्होंने ब्रह्मावर्त-क्षेत्रमें सौ अश्वमेध यज्ञोंकी दीक्षा ली और उनके अनुष्ठानमें संलग्न हो गये। देवराज इन्द्रको यह अच्छा नहीं लगा। उन्हें अपना इन्द्रासन छिन जानेका भय था, क्योंकि सौ अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कर लेनेवाला इन्द्रपदका अधिकारी बन जाता है। निन्यानबे अश्वमेध-यज्ञ पूर्ण हो चुके थे, सौवाँ यज्ञ चल रहा था। उसी समय इन्द्रने उनका यज्ञीय अश्व चुरा लिया। पृथुके महारथी पुत्र विजिताश्वने इन्द्रको पराजित कर घोड़ा वापस ले लिया। देवराज इन्द्रका यह कुकृत्य देखकर महाराज पृथु अत्यन्त क्रुद्ध हो गये, किंतु याजकोंने उन्हें शान्त कर दिया। ब्रह्माजीने प्रकट होकर यज्ञका अवशिष्ट भाग पूर्ण करवाया। तब इन्द्रने क्षमा माँगी और वे उनके अभिन्न मित्र बन गये। पृथुकी सहिष्णुता, निष्कामभाव और अनन्य-भक्तिको देखकर साक्षात् श्रीनारायणने उन्हें दर्शन दिया और अनेक वर प्रदान किये। पृथुने कहा—'प्रभो! मुझे कुछ नहीं चाहिये। मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप मुझे दस हजार कान दे दीजिये, जिनसे मैं आपके लीला-गुणोंको सुनता ही रहूँ।' यह सुनकर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें हरिभक्तिका उपदेश देकर अपने लीलाधामको चले गये।

आदिराज पृथुने गङ्गा-यमुनाके मध्यवर्ती क्षेत्र प्रयागको अपना निवास-स्थान बनाया। वे सर्वथा अनासक्तभावसे तत्परतापूर्वक प्रजाका पालन करते थे। इनके यज्ञ-यागादि अनुष्ठानोंमें देवगण, ऋषि, महर्षि उपस्थित रहते थे। इनके अन्तिम यज्ञमें प्रयागमें सनकादि प्रकट हुए थे। उन्होंने इन्हें भक्ति एवं ज्ञानका उपदेश दिया। महाराज पृथुने अपनी प्रजाको धर्माचरणका उपदेश किया था। सभी ऋषियोंने इनकी सराहना की। इन्होंने ऋषियोंकी पूजा की और अन्तमें ये अपना राज्य पुत्रोंको सौंपकर महारानी अर्चिके साथ तपस्याके लिये वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने अत्यन्त कठोर तपस्या करते हुए अन्तमें श्रीनारायणमें चित्त स्थिर कर लिया और योगमार्गका आश्रय लेते हुए इस शरीरका परित्याग कर दिया। इनकी पत्नी अर्चि भी इनके साथ चितामें जलकर सती हो गयीं।

पृथ्वीपर महाराज पृथु जैसे आदि राजा थे, उसी प्रकार महारानी अर्चि भी प्रथम सती थीं। राजा पृथुके आगेके वंशधर भी उन्हींके समान पुण्यात्मा और धर्मात्मा हुए थे। इन्द्रसे घोड़ा छीन लेनेके कारण इनके बड़े पुत्रका नाम विजिताश्व पड़ा था। इनके तीन पुत्र और थे। ये चारों चारों दिशाओंके स्वामी हुए।

धन्वन्तरिके अवतारकी कथा

एक बार देवताओं और असुरोंने अमृत-प्राप्तिकी इच्छासे समुद्र-मन्थन किया। उस समय उसमेंसे दिव्य कान्तिसे सुशोभित, अनेक अलंकरणोंसे सुसज्जित, सर्वाङ्ग-सुन्दर, अद्भुत पराक्रम एवं तेजसे सम्पन्न, अपने हाथमें अमृत-पूर्ण कलश लिये, विष्णुके नामोंका जप करते हुए पीताम्बरधारी एक अलौकिक पुरुष प्रकट हुए। भगवान् विष्णुके अंशावतार वे ही धन्वन्तरिके नामसे प्रसिद्ध हुए और आयुर्वेदके प्रवर्तक कहलाये (भागवत ८।८।३१-३५)। उनका आविर्भाव कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी (धनतेरस) को हुआ था। आज भी प्रतिवर्ष इसी तिथिको आरोग्य-देवताके रूपमें उनकी जयन्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनायी जाती है। उनके नामका स्मरण करनेमात्रसे समस्त रोग दूर हो जाते हैं, इसीलिये वे श्रीमद्भागवत (९। १७। ५) में **'स्मृतिमात्रार्तिनाशनः'** कहे गये हैं।

हरिवंशपुराण (अ० २८) के अनुसार उन्होंने प्रकट होनेपर जब भगवान् नारायणका साक्षात् दर्शन किया, तब वे स्तब्ध रह गये। भगवान्ने उनसे कहा—'तुम अप् अर्थात् जलसे उत्पन्न हो इसलिये तुम्हारा नाम होगा 'अब्ज'।' इसपर अब्ज (धन्वन्तरि) ने कहा—'प्रभो ! मैं आपका पुत्र हूँ। आप मेरे लिये यज्ञभागकी व्यवस्था कीजिये और लोकमें कोई स्थान दीजिये।' भगवान् बोले—'वत्स ! महर्षियोंने हवनीय पदार्थोंका विनियोग मात्र देवताओंके लिये ही किया है। तुम देवताओंके पश्चात् उत्पन्न हुए हो, अतः यज्ञ-भागके अधिकारी नहीं हो, किंतु दूसरे जन्ममें तुम अत्यन्त प्रसिद्धिको प्राप्त करोगे। वहाँ गर्भावस्थामें ही तुम्हें अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँगी, इन्द्रियोंसहित तुम्हारा शरीर जरा और विकारोंसे रहित रहेगा। तुम उसी शरीरसे देवत्व प्राप्त करोगे तथा ब्राह्मणलोग चरु, मन्त्र, व्रत एवं जपनीय मन्त्रोंद्वारा तुम्हारा यजन करेंगे। द्वापरयुगमें तुम काशिराजके वंशमें उत्पन्न होकर पृथ्वीपर आयुर्वेदशास्त्रका प्रचार करोगे और इसके प्रवर्तकरूपमें समस्त आयुर्वेदशास्त्रको आठ भागोंमें विभक्त कर आठ अङ्गोंसे[1] युक्त बनाओगे।' यह कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये तदनन्तर इन्द्रके अनुरोधपर धन्वन्तरि भी देव-वैद्य होना स्वीकार कर अमरावतीमें निवास करने लगे।

द्वापरयुगकी बात है। चन्द्रवंशी राजा धन्व पुत्रके अभावमें अत्यन्त दुःखी थे। उन्होंने पुत्र-प्राप्तिके लिये अब्जपति भगवान् नारायणका ध्यान किया; उनकी आराधनासे वे प्रकट हुए और धन्वन्तरिके रूपमें उत्पन्न होनेका उन्हें वर प्रदान किया। वरदानके फलस्वरूप भगवान् धन्वन्त काशिराजके वंशमें धन्वके पुत्र-रूपमें अवतार धारण कि उन्होंने भरद्वाजसे आयुर्वेद तथा चिकित्सा-कर्मका ज्ञान प्र कर आयुर्वेद-शास्त्रको आठ भागोंमें विभक्त किया लोककल्याणार्थ इसका प्रचार किया। उनके एक पुत्र हुआ केतुमान् नामसे विख्यात था।

आयुर्वेदके प्रसिद्ध ग्रन्थ भावप्रकाश (१। १। ६६—८ में धन्वन्तरिके अवतारकी यह कथा इस प्रकार उपल होती है। एक समय देवराज इन्द्रने देखा कि पृथ्वीके प्रा रोगोंसे अत्यन्त पीड़ित हैं, तब प्राणियोंकी पीड़ा न करनेके लिये दयार्द्र होकर उन्होंने धन्वन्तरिको पृथ्वी काशीपुरीका राजा होनेको कहा और आयुर्वेदका प्रचार करने लिये उन्हें आयुर्वेदका उपदेश दिया। तत्पश्चात् धन्वन्त काशीमें क्षत्रिय राजाके घर जन्म लिया और वे 'दिवोदास' नाम भूमण्डलमें विख्यात हुए। वे बालपनसे ही परम वैरागी हो दुष्कर तपमें प्रवृत्त हो गये थे, किंतु ब्रह्माकी आज्ञासे उन्हों राजा बनना स्वीकार किया। काशिराज दिवोदास (धन्वन्त आयुर्वेदके साथ ही सभी शास्त्रोंके ज्ञाता थे। उन्हों जीवमात्रके कल्याण-कामनासे अपने नामसे 'धन्वन्तरिसंहि नामक एक ग्रन्थ-रत्नका प्रणयन किया[2]। विश्वामित्र आ ऋषियोंने अपनी ज्ञान-दृष्टिसे जान लिया था कि काशिरा दिवोदास साक्षात् धन्वन्तरि ही हैं। विश्वामित्रने अपने पु सुश्रुतको उनसे आयुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण करनेके लिये कह सुश्रुत एक सौ मुनिपुत्रोंके साथ उनके पास गये। काशिरा धन्वन्तरिने उन सभीको अष्टाङ्ग आयुर्वेदका उपदेश किया उनमेंसे सुश्रुत अन्यतम शिष्य थे। उनके द्वारा रचित ग्र सुश्रुत-संहिताके नामसे प्रसिद्ध है। भगवान् धन्वन्त लोककल्याणार्थ अवतार ग्रहण किया।

इस जगत्में क्षमा वशीकरणरूप है। भला क्षमासे क्या नहीं सिद्ध होता ? जिसके हाथमें शान्तिरूपी तलवार है उसका दुष्ट पुरुष क्या कर लेंगे ?

१- अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता। कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान्॥ (अष्टांगह०, सूत्र० १। ५-६)
आयुर्वेदशास्त्रके आठ अङ्ग ये हैं — १-कायचिकित्सा, २-बालचिकित्सा, ३-ग्रहचिकित्सा, ४-ऊर्ध्वाङ्गचिकित्सा, ५-शल्यचिकित्सा, ६-दंष्ट्रचिकित्सा, ७-जराचिकित्सा तथा ८-वृष-चिकित्सा।

२-वर्तमानमें इस नामका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमोहिनी

जरा-मृत्यु-निवारिणी सुधाकी प्राप्तिके लिये देवता और दैत्योंने मिलकर क्षीरसागरका मन्थन किया। अनेक अलौकिक वस्तुओंके अनन्तर जब श्वेत वस्त्रधारी भगवान् धन्वन्तरि अमृत-कलश लिये प्रकट हुए, तब सुधापानके लिये आतुर असुर उनके हाथसे अमृत-घट छीनकर भाग खड़े हुए। प्रत्येक असुर अद्भुत शक्ति एवं अमरता प्रदान करनेवाला अमृत सर्वप्रथम पी लेना चाहता था। किसीको धैर्य नहीं था। किसीका विश्वास नहीं था।

'पूरा अमृत कहीं एक ही पी गया तो ?' सभी सशङ्क थे। सभी चिन्तित थे। अमृत-घट प्राप्त करनेके लिये सब परस्पर छीना-झपटी और तू-तू, मैं-मैं करने लगे। 'इस छीना-झपटीमें कहीं अमृत-कलश उलट गया और अमृत गिर गया तब ?'—यह प्रश्न सबके सम्मुख था, किंतु स्वार्थके सम्मुख वस्तुस्थितिका विचार कौन करता ? दैत्योंसे न्याय और धर्मकी आशा व्यर्थ थी। दुर्बल देवता दूर उदास और निराश खड़े थे। कोई समाधान नहीं था।

सहसा कोलाहल शान्त हुआ। देवता और दानवोंकी दृष्टि एक स्थानपर टिक गयी। अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्न लोकोत्तर रमणी सामने खड़ी थी। नखसे शिखतक उसके अङ्ग-अङ्गपर कोटि-कोटि रतियोंका अनूप रूप न्योछावर था— सर्वथा फीका था। उन मोहिनी-रूपधारी श्रीभगवान्को देखकर सब-के-सब मोहित और मुग्ध हो गये।

'सुन्दरि ! तुम उचित निर्णय कर दो।' असुरोंने अद्भुत छटा बिखेरती त्रैलोक्यमोहिनीसे कहा। 'हम सभी कश्यपके पुत्र हैं और अमृत-प्राप्तिके लिये हमने समानरूपसे श्रम किया है। तुम इसे हम दैत्य और देवताओंमें निष्पक्ष-भावसे वितरित कर दो, जिससे हमारा यह विवाद समाप्त हो जाय।'

'आपलोग परम पुनीत महर्षि कश्यपकी संतान हैं।'— मोहिनीने मन्द-स्मितसे जैसे सुधा-वृष्टि कर दी। 'और मेरी जाति और कुल-शीलसे आप सर्वथा अपरिचित हैं। फिर आपलोग मेरा विश्वास कर यह दायित्व मुझे क्यों सौंप रहे हैं ?'

'हमें आपपर विश्वास है।' मोहिनीरूपधारी जगत्पति श्रीभगवान्के अलौकिक सौन्दर्यसे मोहित असुरोंने अमृत-घट उनके हाथमें दे दिया।

'मेरी वितरण-पद्धतिमें यदि आपलोगोंको तनिक भी आपत्ति न हो तो मैं यह कार्य कर सकती हूँ।' अत्यन्त मोहग्रस्त करनेवाली मोहिनीने आश्वासन चाहा। 'अन्यथा यह काम आपलोग स्वयं कर लें।'

'हमें कोई आपत्ति नहीं।' मोहिनीकी मधुर वाणी सुनकर दैत्योंने कहा। 'आप निष्पक्षभावसे सुधा-वितरण करनेमें स्वतन्त्र हैं।'

देवता और दैत्य—दोनोंने एक दिन उपवास कर स्नान किया, नूतन वस्त्र धारणकर अग्निमें आहुतियाँ दीं, ब्राह्मणोंसे स्वस्तिपाठ कराया और वे सब पूर्वाग्र कुशोंके आसनोंपर पृथक्-पृथक् पङ्क्तिमें बैठ गये। तब अमित सौन्दर्यराशि मोहिनीने अपने सुकोमल कर-कमलोंमें अमृत-कलश उठाया। स्वर्णमय नूपुर झंकृत हो उठे। देवता और असुरोंकी दृष्टि भुवनमोहिनी मोहिनीकी ओर थी। मोहिनीने मुस्कुराते हुए दैत्योंकी ओर दृष्टिपात किया। वे आनन्दोन्मत्त हो गये। तब उन्होंने दूरकी पङ्क्तिमें बैठे अमरोंको अमृत-पान कराना प्रारम्भ किया। अपने वचन एवं त्रैलोक्य-दुर्लभ मोहिनीकी रूपराशिसे मर्माहत असुरगण चुपचाप अपनी पारीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें लावण्यमयी मोहिनीकी प्रेम-प्राप्तिकी आशा थी, विश्वास था।

धैर्य धारण न कर सकनेके कारण छाया-पुत्र राहु देवताओंके वेषमें सूर्य-चन्द्रके समीप बैठ गया। अमृत उसके कण्ठके नीचे उतर भी न पाया था कि दोनों देवताओंने इङ्गित कर दिया और दूसरे ही क्षण क्षीराब्धिशायी प्रभुके तीक्ष्णतम चक्रसे उसका मस्तक कटकर पृथ्वीपर जा गिरा। चौंककर दानवोंने देखा तो मोहिनी शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी सजल मेघश्याम श्रीविष्णु बन गयी। असुरोंका मोह-भङ्ग हुआ। उन्होंने कुपित होकर शस्त्र उठाया और भयानक देवासुर-संग्राम छिड़ गया।

सम्पूर्ण सृष्टि भगवान् मायापतिकी माया है। कामके वशीभूत सभी प्रभुके उस मायारूपपर लुब्ध हैं, आकृष्ट हैं। आसुरभावसे अमरता प्रदान करनेवाला अमृत प्राप्त होना सम्भव नहीं। वह तो करुणामय प्रभुकी चरण-शरणसे ही सम्भव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् हयग्रीव

एकार्णवके जलमें पृथ्वीके विलीन हो जानेपर विद्याशक्तिसे सम्पन्न भगवान् विष्णु योगनिद्राका आश्रय लेकर शेषनागपर शयन कर रहे थे। प्रभुकी नाभिसे सहस्रदल पद्म प्रकट हुआ। उस कमलपर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह, लोकस्रष्टा, सिन्दूरारुण भगवान् हिरण्यगर्भ व्यक्त हुए। परम तेजस्वी ब्रह्माने दृष्टिपात किया तो चतुर्दिक् जल-ही-जल था। जिस पद्मपत्रपर लोकस्रष्टा बैठे थे, उसपर क्षीरोदधिशायी श्रीनारायणकी प्रेरणासे पहलेसे ही रजोगुण और तमोगुणकी प्रतीक जलकी दो बूँदें पड़ी थीं। उनमेंसे एक बूँदपर आद्यन्तहीन श्रीभगवान्की दृष्टि पड़ी तो वह तमोमय मधु-नामक दैत्यके रूपमें परिणत हो गयी। वह दैत्य मधुके रंगका अत्यन्त सुन्दर था। जलकी दूसरी बूँद भगवान्के इच्छानुसार दूसरे अत्यन्त शक्तिशाली एवं पराक्रमी दैत्यके रूपमें व्यक्त हुई। उसका नाम 'कैटभ' पड़ा। दोनों ही दैत्य अत्यन्त वीर एवं बलवान् थे।

कमलनालके सहारे वे दैत्यद्वय वहाँ पहुँच गये, जहाँ अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्मा बैठे हुए थे। लोक-पितामह सृष्टि-रचनामें प्रवृत्त थे और उनके समीप ही अत्यन्त सुन्दर स्वरूप धारण किये हुए चारों वेद थे। उन महाबली एवं महाकाय दैत्योंकी दृष्टि ज्यों ही वेदोंपर पड़ी त्यों ही उन्होंने वेदोंका हरण कर लिया। श्रुतियोंको लेकर वे पूर्वोत्तर महासागरमें प्रविष्ट होकर रसातलमें पहुँच गये।

'वेद ही मेरे नेत्र, वेद ही मेरी अद्भुत शक्ति, वेद ही मेरे परम आश्रय एवं वेद ही मेरे उपास्य देव हैं।' श्रुतियोंको अपने समीप न देखकर विधाता अत्यन्त दुःखी होकर मन-ही-मन विलाप करने लगे। 'वेदोंके नष्ट हो जानेसे आज मुझपर भयानक विपत्ति आ पड़ी है। इस समय कौन मेरा दुःख दूर करेगा? वेदोंका उद्धार कौन करेगा?' फिर उन्होंने सर्वान्तर्यामी और सर्वसमर्थ श्रीनारायणसे प्रार्थना करते हुए कहा—'कमलनयन! आपका पुत्र मैं शुद्ध सत्त्वमय शरीरसे उत्पन्न हुआ हूँ। आप ईश्वर, स्वभाव, स्वयम्भू एवं पुरुषोत्तम हैं। आपने मुझे वेदरूपी नेत्रोंसे युक्त बनाया है। आपकी ही कृपासे मैं कालातीत हूँ—मुझपर कालका वश नहीं चलता। मेरे नेत्ररूप वे वेद दानवोंद्वारा हर लिये गये हैं, अतः मैं अंधा-सा हो गया हूँ। प्रभो! निद्राको त्यागकर जागिये और मुझे मेरे नेत्र वापस दीजिये; क्योंकि मैं आपका प्रिय भक्त हूँ और आप मेरे प्रियतम स्वामी हैं।'

हिरण्यगर्भकी यह श्रद्धा-भक्तिपूर्ण करुण स्तुति सुनकर देवदेवेश श्रीनारायण तत्क्षण अपनी निद्राको त्यागकर जाग गये। श्रुतियोंका उद्धार करनेके लिये वे सर्वात्मा परम प्रभु अत्यन्त सुन्दर एवं कान्तिमान् हयग्रीवके रूपमें प्रकट हुए। प्रभुकी गर्दन और मुखाकृति घोड़ेकी-सी थी। उनका वह परमपवित्र मुखारविन्द वेदोंका आश्रय था। तारकखचित स्वर्ग उनका मस्तक था और अंशुमालीकी रश्मियोंके तुल्य उनके बाल चमक रहे थे। आकाश-पाताल उनके कान, पृथ्वी ललाट, गङ्गा और सरस्वती उनके नितम्ब तथा दो सागर उनके भ्रू थे। सूर्य और चन्द्र उनके नेत्र, संध्या नासिका, ओंकार संस्कार (आभूषण) और विद्युत् जिह्वा थी। पितर उनके दशन, ब्रह्मलोक ओष्ठ तथा कालरात्रि उनकी ग्रीवा थी।

इस प्रकार अत्यन्त अद्भुत, परम तेजस्वी, अनन्त शक्तिशाली, अतुल पराक्रमी एवं अनुपम बुद्धि-वैभव-सम्पन्न, आदि-अन्तसे रहित भगवान्ने श्रीहयग्रीवका रूप धारणकर महासमुद्रमें प्रवेश किया और वे रसातलमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने सामगानका सस्वर गान आरम्भ किया। भगवान्की लोकोपकारिणी मधुर ध्वनि रसातलमें सर्वत्र फैल गयी। मधु और कैटभ दोनों दैत्योंने भी जब सामगानका वह चित्ताकर्षक स्वर सुना तो वेदोंको कालपाशमें बाँधकर रसातलमें फेंक दिया और वे उस मङ्गलकारिणी मधुर ध्वनिकी ओर दौड़ पड़े। भगवान् हयग्रीवने अच्छा अवसर देखा। उन्होंने तुरंत वेदोंको रसातलसे निकालकर ब्रह्माको दे दिया और पुनः महासागरके पूर्वोत्तर भागमें वेदोंके आश्रय अपने हयग्रीवरूपकी स्थापना कर पुनः पूर्वरूप धारण कर लिया। भगवान् हयग्रीव वहीं रहने लगे।

जब मधु और कैटभने देखा कि जहाँसे मधुर ध्वनि आ रही थी, वहाँ तो कुछ भी नहीं है, तब वे पुनः बड़े वेगसे रसातलमें पहुँचे। वहाँ वेदोंको न पाकर वे अत्यन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्चर्यचकित एवं क्रुद्ध हुए। शत्रुको ढूँढ़नेके लिये वे दोनों दैत्य तत्काल अत्यन्त शीघ्रतासे रसातलके ऊपर पहुँचे तो वहाँ उन्होंने देखा कि महासागरकी विशाल लहरोंपर चन्द्रमाके तुल्य गौर-वर्णके सुन्दरतम भगवान् श्रीनारायण शेषनागकी शय्यापर अनिरुद्ध-विग्रहमें शयन कर रहे हैं।

'निश्चय ही इसीने रसातलसे वेदोंको चुराया है।' दैत्योंने अट्टहास करते हुए कहा। 'पर यह है कौन ? किसका पुत्र है ? यहाँ कैसे आया ? और यहाँ सर्पशय्यापर क्यों शयन कर रहा है ?' मधु-कैटभने अत्यन्त कुपित होकर भगवान् श्रीनारायणको जगाया। त्रैलोक्यसुन्दर विष्णुने नेत्र खोलकर चारों ओर देखा तो उन्होंने समझ लिया कि ये दैत्य युद्ध करनेके लिये कटिबद्ध हैं।

भगवान् उठे और उनका मधु और कैटभ दोनों महान् दैत्योंसे भयानक संग्राम छिड़ गया। श्रीविष्णुका उन अत्यन्त पराक्रमी दैत्योंसे पाँच सहस्र वर्षोंतक केवल बाहुयुद्ध चलता रहा। वे अपनी महान् शक्तिके मदसे उन्मत्त तथा श्रीभगवान्की महामायासे मोहमें पड़े हुए थे। उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी। तब हँसते हुए श्रीहरिने कहा—'अबतक मैं कितने ही दैत्योंसे युद्ध कर चुका हूँ, किंतु तुम्हारी तरह शूर-वीर मुझे कोई नहीं मिला। मैं तुमलोगोंके युद्ध-कौशलसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुमलोग कोई इच्छित वर माँग लो।'

श्रीभगवान्की वाणी सुनकर अहंकारके साथ दैत्योंने कहा—'विष्णो ! हम तुमसे याचना क्या करें ? तुम हमें क्या दोगे ? हम तुम्हारी वीरतासे अत्यन्त संतुष्ट हैं। तुम हमलोगोंसे कोई वर माँग लो।' श्रीभगवान्ने कहा—'यदि तुम दोनों मुझपर प्रसन्न हो तो अब मेरे हाथसे मारे जाओ। बस, इतना-सा ही मैंने वर माँगा है। इस समय दूसरे किसी वरसे क्या लेना है ?'

'हम तो ठगे गये।' भगवान् विष्णुकी वाणी सुन चकित होकर दैत्योंने देखा, सर्वत्र जल-ही-जल है। तब उन्होंने श्रीभगवान्से कहा—'जनार्दन ! तुम देवताओंके स्वामी हो। तुम मिथ्याभाषण नहीं करते। पहले तुमने ही हमें वर देनेके लिये कहा था। इसलिये तुम भी हमारा अभिलषित वर दे दो। जहाँ पृथ्वी जलमें डूबी हुई न हो—जहाँ सूखा स्थान हो, वहीं हमारा वध करो।'

'महाभाग ! जलशून्य स्थानपर ही मैं तुम्हें मार रहा हूँ।' श्रीभगवान् विष्णुने सुदर्शनचक्रको स्मरण किया और अपनी विशाल जाँघोंको जलपर फैलाकर मधु-कैटभको जलपर ही स्थल दिखला दिया और हँसते हुए उन्होंने दैत्योंसे कहा—'इस स्थानपर जल नहीं है, तुमलोग अपना मस्तक रख दो। आजसे मैं भी सत्यवादी रहूँगा और तुम भी।'

कुछ देरतक मधु और कैटभ दोनों महादैत्य भगवान्की वाणीकी सत्यतापर विचार करते रहे। फिर उन्होंने भगवान्की दोनों सटी हुई विशाल एवं विचित्र जाँघोंपर चकित होकर अपना मस्तक रख दिया और श्रीभगवान्ने तत्काल अपने तीक्ष्ण चक्रसे उन्हें काट डाला। दैत्योंका प्राणान्त हो गया और उनके चार हजार कोसवाले विशाल शरीरके रक्तसे सागरका सारा जल लाल हो गया।

इस प्रकार वेदोंसे सम्मानित और श्रीभगवान् नारायणसे सुरक्षित होकर लोकस्रष्टा ब्रह्मा सृष्टि-कार्यमें जुट गये।

दूसरे कल्पमें

प्रख्यात दितिपुत्र हयग्रीव सुन्दर, बलवान् एवं महापराक्रमी था। उसकी भुजाएँ विशाल थीं। वह पुण्यतोया सरस्वती नदीके पावन तटपर उपवास करता हुआ करुणामयी जगदीश्वरीके मायाबीजके एकाक्षर मन्त्रका जप करने लगा। उसने इन्द्रियोंको वशमें करके सम्पूर्ण भोगोंको त्याग दिया था। वह महान् दैत्य एक हजार वर्षतक श्रीजगदम्बाकी तामसी शक्तिकी आराधना करता हुआ उग्र तप करता रहा।

'सुव्रत ! वर माँगो।' करुणामयी सिंहवाहिनीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर हयग्रीवसे कहा। 'तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो मैं उसे देनेके लिये तैयार हूँ।'

'सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी कल्याणमयी देवि !' प्रेमसे पुलकित नेत्रोंमें अश्रुभरे हयग्रीवने भगवती जगदम्बाकी स्तुति की—'आपके चरणोंमें प्रणाम है। पृथ्वीपर, आकाशमें और जहाँ-कहीं जो कुछ है, वह सब आपसे ही उत्पन्न हुआ है। आप दयामयी हैं। आपकी महिमाका पार पाना सम्भव नहीं।'

'तुम इच्छित वर माँग लो।' त्रैलोक्येश्वरी भगवतीने हयग्रीवसे पुनः कहा। 'तुमने अद्भुत तप किया है। मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ। तुम अभिलषित वर माँग लो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'माँ! मुझे मृत्युका मुख न देखना पड़े।' हयग्रीवने कृपामयी आराध्यासे निवेदन किया। 'मेरी कामना है कि मैं अमर योगी बन जाऊँ।'

'दैत्यपते! जन्मके अनन्तर मृत्यु सुनिश्चित है।' देवीने कहा। 'ऐसी सिद्ध मर्यादा जगत्में कैसे व्यर्थ की जा सकती है। मृत्युके सम्बन्धमें इस नियमको स्पष्ट समझकर इच्छित वर माँग लो।'

'अच्छा, मैं हयग्रीवके द्वारा ही मारा जाऊँ।' हयग्रीवने अपनी समझसे बुद्धिमानी की। वह स्वयं अपनेको क्यों मारेगा? उसने दयामयी माँसे निवेदन किया—'कोई दूसरा मुझे न मार सके।' 'तथास्तु'—देवीने कहा। 'हयग्रीवके अतिरिक्त तुम्हें और कोई नहीं मार सकेगा। अब तुम घर लौटकर सानन्द राज्य करो।'

जगदम्बा वहीं अन्तर्हित हो गयीं और दैत्यराज हयग्रीव भी आनन्दमग्न अपने घर लौट गया। फिर तो उसने अनेक उपद्रव करने प्रारम्भ किये। वह ऋषियों-मुनियोंको पीड़ित करने लगा। अनेक प्रकारसे वह देवोंको सता रहा था। अपनी बुद्धिसे अमरताके लिये आश्वस्त अत्यन्त शूर-वीर ह अपनी असुरता अक्षरशः चरितार्थ कर रहा था। सत्पुरुष देवता उससे त्रस्त एवं व्याकुल थे, पर उसे पराजित करना उसे मार डालना किसीके वशकी बात नहीं थी। हय सर्वथा निश्चिन्त, निस्संकोच धर्मध्वंस कर रहा था। पृ व्याकुल हो गयी।

अन्ततः भगवान् श्रीहरि वेदों, भक्तों एवं धर्मके त्राण अधर्मका नाश करनेके लिये हयग्रीवके रूपमें प्रकट हु श्रीहरिका वह हयग्रीव-रूप अत्यन्त तेजस्वी एवं मनोहर उनकी शक्ति और सामर्थ्यका पार नहीं था। वे अ बलशाली एवं परम पराक्रमी थे। उनके अङ्ग-अङ्गसे छिटक रहा था। अत्यन्त अभिमानी एवं देवताओंके शत्रु हयग्रीवका परमप्रभु श्रीहयग्रीवसे युद्ध छिड़ गया। बड़ा भयानक संग्राम था वह। दीर्घकालतक युद्ध करता हुआ असुर हयग्रीव परम मङ्गलमय भगवान् श्रीहयग्रीवके द्वारा मा डाला गया। ब्रह्मादि देव-समुदाय प्रभु श्रीहरिकी जय-जयका करने लगा।

वामनावतारकी कथा

[कल्पभेदसे यह कथा वामनपुराणमें बलिके नामसे कही गयी है, किंतु धुन्धुके नामसे यह कथा प्रतीकात्म विशेषताओंके कारण अपनी विशिष्टता रखती है, अतः इसे भी दिया जा रहा है। —सं०]

चौथे कलिके आदिमें जो सत्ययुग था, उसमें एक धुन्धु नामक दानव हुआ था। जब धुन्धुने समस्त देवताओंपर विजय प्राप्त कर ली, तब वे डरकर ब्रह्मदेवके शरणागत हुए। धुन्धुको जब यह ज्ञात हुआ तो उसने अपने समस्त दैत्य वीरोंको ब्रह्मलोकपर आक्रमण करनेका आदेश दे दिया। तब दैत्योंने उसे बताया कि दैत्यवंशके लिये ब्रह्मलोकमें जाना सम्भव नहीं है। यह सुनकर धुन्धुको बड़ा आश्चर्य हुआ; क्योंकि वह अपनी तथा अपने वीरोंकी शक्तिको अजेय और असीम मानता था। इसलिये उसने पूछा कि 'दैत्योंका ब्रह्मलोकमें पहुँचना सम्भव क्यों नहीं है?' चतुर दैत्योंने बताया कि ब्रह्मलोकमें पहुँचनेसे पहले महर्लोक, जनलोक और तपोलोक पड़ते हैं। ब्रह्मदेव तपोलोकसे भी ऊपर सत्यलोकमें निवास करते हैं। दैत्यलोग तो महर्लोकमें भी नहीं पहुँच सकते, क्योंकि वहाँ अत्यन्त तेजस्वी ऋषिगण रहते हैं, जिनकी दृष्टि पड़नेमात्रसे दैत्यगण भस्म हो जायँगे। जनलोकमें शिवके परमभक्त नन्दी अपनी माता कामधेनुके साथ रहते हैं। उ कामधेनु अपने ही समान अनेक गौओंके द्वारा प्रवाहित दूध क्षीरसागरको पूर्ण करती रहती है। उन पूज्य शिव-भक्तगणोंके हुंकारमात्रसे सम्पूर्ण असुरकुल भस्म हो सकता है। उसके ऊपर तपोलोकमें हजारों सूर्योंके समान प्रभावाले सिद्धजन रहते हैं। उससे भी ऊपर सत्यलोक है, जो ब्रह्मलोकके नामसे जाना जाता है।

तत्पश्चात् दैत्यराज धुन्धुने शुक्राचार्यसे परामर्श करके अनेकानेक जप-तप-यज्ञ आदि करना इसलिये प्रारम्भ किया कि वह ब्रह्मलोक पहुँच सके और वहाँ छिपे देवताओंसे युद्ध करके उनपर विजय प्राप्त कर सके। धुन्धुकी इस तपस्याका समाचार जब देवताओंको मिला तो वे नारायणकी शरणमें गये और उनसे उन्होंने इस आसन्न संकटसे रक्षाकी गुहार की। तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् नारायणने वामनका रूप ग्रहण किया और वे धुन्धुके पास पहुँचनेके लिये देविका नदीमें उतरकर बह चले। जब वे दैत्यराज धुन्धुकी नगरीके पास पहुँचे तो धुन्धु और उनके नगरके अन्य लोगोंने यह समझकर कि वे नदीमें डूब रहे हैं, उन्हें नदीसे बाहर निकाला। जब उनसे नदीमें इस प्रकार बहते आनेका कारण पूछा गया तो उन्होंने कहा कि 'मेरा एक ज्येष्ठ भाई है, जिसने मुझे वामन समझकर पिताके धन आदिसे वञ्चित करके नदीमें फेंक दिया है।' यह सुनकर धुन्धुने उनसे जीवन-निर्वाहके लिये दास-दासी, धन-दौलत आदि कुछ भी माँगनेको कहा। तब उन्होंने तीन पग भूमिकी माँग की। जब धुन्धु उनसे स्वयं भूमि नाप लेनेको कहा तो भगवान्ने अपना विराट् रूप धारण कर लिया तथा एक पगसे सम्पूर्ण पृथ्वी और दूसरेसे स्वर्गको भी नाप लिया। उसी विराट्रूपमें उन्होंने धुन्धुके शरीरको भी तीसरे पगमें नापकर उसे स्वयं अपनेमें लीन कर लिया और उसके साथ कालिन्दी-रूपमें अन्तर्हित हो गये।

वामनपुराण (अ० ५२)में वामनावतारकी यह कथा प्रतीकात्मकरूपमें योगके अमूल्य सिद्धान्तोंका वर्णन करती है। वेद कहते हैं कि वह परम तत्त्व 'अणु'से भी छोटा और किसी भी बड़ी-से-बड़ी सत्तासे बड़ा है। वामन भगवान्के रूप-ग्रहणकी यह कथा प्रथमतः इस सिद्धान्तका प्रतिपादन करती है।

अनन्त चेतन सत्ताको ही ब्रह्म नामसे वेदान्तदर्शनमें अभिव्यक्त किया गया है और इस सृष्टिको उनकी मानसिक कल्पना अथवा मानसदेह कहा गया है। इस मानसदेहमें ही भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक—इन सात लोकोंकी स्थिति है। इस कथामें यही तत्त्व बताया गया है कि भूर्लोक यह भौतिक जगत् है, जहाँ पञ्चमहाभूतोंका खेल हो रहा है। भुवर्लोकमें क्षुधा, तृष्णा, निद्रा आदिकी स्थिति रहती है। स्वर्लोकमें सुख-दुःखके प्रतीक स्वर्ग-नरककी स्थिति है। मनुष्य ही अधोगामी वृत्तियोंकी ओर प्रवृत्त होनेसे दानव और ऊर्ध्वगामी वृत्तियोंकी ओर प्रवृत्त होनेपर देवता हो जाता है और अपने संस्कारानुसार इसी स्थानपर स्वर्गका सुख अथवा नरकका दुःख भोगता है, किंतु दैवी विद्याके द्वारा ऊर्ध्वगामी होकर जब वह ब्रह्मलोक अर्थात् सत्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है, तब सभी प्रकारके बन्धनस्वरूप सुख-दुःखसे ऊपर उठ जाता है। महर्लोक और उससे ऊपरकी अवस्थामें पहुँचनेपर साधक दानवरूपी दुर्वृत्तियोंका शिकार नहीं हो सकता, क्योंकि वहाँ नारायणका अमूर्तरूप उसकी रक्षा करता है। किसी भी संकटके आसन्न होनेपर अर्थात् दुर्वृत्तियोंके उदय होनेपर ऐसे साधकोंकी दुर्वृत्तियोंको महर्लोकमें ही भगवान् नारायण नष्ट कर देते हैं। देविका नदी और कालिन्दी—दोनों आध्यात्मिक धाराकी प्रतीक नाड़ियोंकी ओर संकेत करती हैं, जिसमेंसे होकर जीवात्मा परमात्मासे मिलता है और जिसके किनारे-किनारे ये सुन्दर लोक बसे हुए हैं। (आ० प्र०)

गजेन्द्रोद्धारक भगवान् श्रीहरि

प्राचीन कालकी बात है। द्रविड़ देशमें एक पाण्ड्यवंशी राजा राज्य करते थे। उनका नाम था—इन्द्रद्युम्न। वे भगवान्की आराधनामें ही अपना अधिक समय व्यतीत करते थे। यद्यपि उनके राज्यमें सर्वत्र सुख-शान्ति थी, प्रजा प्रत्येक रीतिसे संतुष्ट थी तथापि राजा इन्द्रद्युम्न अपना समय राजकार्यमें कम ही दे पाते थे। वे तो बस, अपने इष्ट परम प्रभुकी उपासनामें ही दत्तचित्त रहते थे।

राजा इन्द्रद्युम्नके मनमें आराध्य-आराधनाकी लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी, इस कारण वे राज्यका त्याग कर मलयपर्वतपर रहने लगे। उनका वेष तपस्वियोंका-सा था। उनके सिरके बाल बढ़कर जटाके रूपमें हो गये। उन्होंने मौन-व्रत धारण कर लिया था और वे स्नानादिसे निवृत्त होकर निरन्तर परब्रह्म परमात्माकी आराधनामें तल्लीन रहते थे। उनके मन और प्राण भी श्रीहरिके चरण-कमलोंके मधुकर बने रहते। इसके अतिरिक्त उन्हें जगत्की कोई वस्तु न सुहाती और न उन्हें राज्य, कोष, प्रजा, पत्नी आदि किसी प्राणि-पदार्थकी स्मृति ही होती।

एक बारकी बात है, राजा इन्द्रद्युम्न प्रतिदिनकी भाँति अपने नियमानुसार स्नानादिसे निवृत्त होकर सर्वसमर्थ प्रभुकी उपासनामें तल्लीन थे। उन्हें बाह्य जगत्का तनिक भी ध्यान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न था। संयोगवश उसी समय महर्षि अगस्त्य अपने शिष्य-समुदायके साथ वहाँ आ पहुँचे। न पाद्य, न अर्घ्य, न स्वागत! मौनव्रती राजा इन्द्रद्युम्न तो परम प्रभुके ध्यानमें निमग्न थे।

महर्षि अगस्त्य कुपित हो गये। उन्होंने इन्द्रद्युम्नको शाप दे दिया—'इस राजाने गुरुजनोंसे शिक्षा नहीं ग्रहण की है, अभिमानवश परोपकारसे निवृत्त होकर मनमानी कर रहा है। ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाला यह हाथीके समान जडबुद्धि है, इसलिये इसे वही घोर अज्ञानमयी हाथीकी योनि प्राप्त हो।' क्रुद्ध महर्षि अगस्त्य भगवद्भक्त इन्द्रद्युम्नको शाप देकर चले गये। नरेशने इसे श्रीभगवान्‌का मङ्गलमय विधान समझकर प्रभुके चरणोंमें सिर रख दिया।

× × × ×

क्षीराब्धिमें दस सहस्र योजन लम्बा-चौड़ा और ऊँचा एक त्रिकूट नामक पर्वत था। वह अत्यन्त सुन्दर एवं श्रेष्ठ था। उसकी तराईमें भगवान् वरुणका ऋतुमान् नामक एक क्रीडा-कानन था। उसमें चारों ओर दिव्य वृक्ष सुशोभित थे, जो सदा पुष्पों और फलोंसे लदे रहते थे। उसी काननमें एक अत्यन्त सुन्दर एवं विशाल सरोवर था, जिसमें खिले कमलोंकी अद्भुत शोभा हो रही थी। उन कमलोंपर भ्रमर गुंजार करते रहते थे। उसके तटपर चारों ओर अत्यन्त सुगन्धित पुष्पोंवाले वृक्ष शोभा दे रहे थे, जो प्रत्येक ऋतुमें हरे-भरे और पुष्पित रहते थे। देवाङ्गनाएँ वहाँ क्रीडा करने आया करती थीं। वहीं गहन वनमें हथिनियोंके साथ अत्यन्त शक्तिशाली और अमित पराक्रमी एक गजेन्द्र रहता था। वह श्रेष्ठ गजोंमें अग्रगण्य और यूथपति था। वह अपनी हथिनियों, कलभों और दूसरे हाथियोंके साथ वनमें विचरण किया करता था। उसकी महान् शक्तिसे हिंसक जंगली पशु सदा सशङ्कित रहते थे। उसके गण्डसे चूनेवाली मदधाराकी गन्धसे व्याघ्र, गैंडे, नाग और चमरी गाय आदि जंगली पशु दूर भाग जाते थे।

एक बारकी बात है, गर्मीके दिन थे। मध्याह्नकाल था और प्रचण्ड धूप थी। गजेन्द्र अपने साथियोंसहित तृषाधिक्यसे व्याकुल हो गया। वह कमलके गन्धसे सुगन्धित वायुको सूँघकर उस अत्यन्त सुन्दर और चित्ताकर्षक विशाल सरोवरके तटपर जा पहुँचा। उसने सरोवरके अत्यन्त निर्मल, शीतल और मीठे जलमें प्रवेश किया। पहले तो उसने जल पीकर अपनी तृषा बुझायी और फिर उसमें स्नानकर अपना श्रम दूर किया। तत्पश्चात् उसने जल-क्रीडा आरम्भ की। वह अपनी सूँड़में जल भरकर उसकी फुहारोंसे हथिनियोंको स्नान कराने लगा तथा कलभोंके मुँहमें सूँड़ डालकर उन्हें जल पिलाने लगा। दूसरी हथिनियाँ और गज अपनी सूँड़ोंकी फुहारोंसे गजेन्द्रका सत्कार करते हुए उसे स्नान करा रहे थे। अचानक गजेन्द्रने सूँड़ उठाकर चीत्कार की। पता नहीं, किधरसे एक मगरने आकर उसका पैर पकड़ लिया। उसने अपना पैर छुड़ानेके लिये पूरी शक्ति लगायी, पर उसका वश नहीं चला, पैर नहीं छूटा। अपने स्वामी गजेन्द्रको ग्राहग्रस्त देखकर हथिनियाँ, कलभ और अन्य गज अत्यन्त व्याकुल हो गये। वे सूँड़ उठाकर चिग्घाड़ने और उसे बचानेके लिये सरोवरके भीतर-बाहर दौड़ने लगे। उन्होंने पूरी चेष्टा की, पर वे सफल नहीं हुए।

महर्षि अगस्त्यके शापसे शप्त महाराज इन्द्रद्युम्न गजेन्द्र हो गये थे और गन्धर्वश्रेष्ठ हूहू महर्षि देवलके शापसे ग्राह हो गये थे। वे भी अत्यन्त पराक्रमी थे। दोनोंमें संघर्ष चल रहा था। गजेन्द्र ग्राहको बाहर खींचता और ग्राह गजेन्द्रको भीतर। सरोवरका निर्मल जल गँदला हो गया। कमलदल क्षत-विक्षत हो गये। जल-जन्तु व्याकुल हो उठे। गजेन्द्र और ग्राहका संघर्ष एक सहस्र वर्षतक चलता रहा। दोनों जीवित रहे। यह दृश्य देखकर देवगण चकित हो गये।

अन्ततः गजेन्द्रका शरीर शिथिल हो गया। उसके शरीरमें शक्ति और मनमें उत्साह नहीं रहा, परंतु जलचर होनेके कारण ग्राहकी शक्तिमें कोई कमी नहीं आयी, प्रत्युत वह और बढ़ गयी। तब वह उत्साहपूर्वक अधिक शक्ति लगाकर गजेन्द्रको खींचने लगा। सर्वथा असमर्थ गजेन्द्रके प्राण संकटमें पड़ गये। उसकी शक्ति और पराक्रमका अहंकार पूर्ण हो गया। वह पूर्णतया निराश हो गया, किंतु पूर्वजन्मकी निरन्तर भगवदाराधनाके फलस्वरूप उसे भगवत्स्मृति हो आयी। उसने मन-ही-मन निश्चय किया—'मैं कराल कालके भयसे चराचर प्राणियोंके शरण्य सर्वसमर्थ प्रभुकी शरण ग्रहण करता हूँ।'

गजेन्द्र इस निश्चयके साथ मनको एकाग्रकर पूर्वजन्मके सीखे हुए श्रेष्ठ स्तोत्रके द्वारा परम प्रभुकी स्तुति करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा—'जो जगत्‌के मूल कारण हैं और सबके हृदयमें पुरुष-रूपसे विराजमान हैं एवं समस्त जगत्‌के एकमात्र स्वामी हैं, जिनके कारण इस संसारमें चेतना जाग्रत् होती है, उन भगवान्‌के चरणोंमें मैं प्रणाम करता हूँ तथा प्रेमपूर्वक उन्हीं प्रभुका ध्यान करता हूँ। प्रलयकालमें सब कुछ नष्ट हो जानेपर भी जो महामहिम परमात्मा बने रहते हैं, वे प्रभु मेरी रक्षा करें। नटकी भाँति अनेक वेष धारण करनेवाले प्रभुका वास्तविक स्वरूप एवं रहस्य देवता भी नहीं जानते, फिर अन्य कोई उसका वर्णन कैसे कर सकता है ? वे प्रभु मेरी रक्षा करें। जिन कल्याणमय प्रभुके दर्शनके लिये संत-महात्मागण सर्वस्वका त्याग कर जितेन्द्रिय हो वनमें अखण्ड तपश्चरण करते हैं, वे परमात्मा मेरी रक्षा करें। मैं सर्वशक्तिमान्, सर्वैश्वर्यमय, सर्वसमर्थ प्रभुके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। मैं जीवित रहना नहीं चाहता। इस अज्ञानमय योनिमें रहकर करूँगा ही क्या ? मैं तो आत्मप्रकाशको आच्छादित करनेवाले अज्ञानके आवरणसे मुक्त होना चाहता हूँ, जो कालक्रमसे अपने आप नहीं छूट सकता, किंतु केवल भगवत्कृपा और तत्त्वज्ञान-द्वारा ही नष्ट होता है। अतएव मैं उन श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपासे जीवन और मृत्युके कठोर पाशसे जीव सहज ही छूट जाता है। प्रभो ! आपकी मायाके वश होकर जीव अपने स्वरूपको नहीं जान पाता। आपकी महिमाका पार नहीं है। आप अनादि, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी एवं सौन्दर्य-माधुर्य-निधि हैं। मैं आपकी शरण हूँ। आप मेरी रक्षा करें।'

गजेन्द्रद्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर सर्वात्मा सर्वदेवरूप श्रीहरि वेदमय गरुडपर आरूढ़ होकर अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक उस सरोवरके तटपर गजेन्द्रके पास आ पहुँचे। जीवनसे निराश और पीड़ासे छटपटाते गजेन्द्रने हाथमें चक्र लिये गरुडारूढ़ श्रीहरिको तीव्रतासे अपनी ओर आते देखा तो उसने कमलका एक सुन्दर पुष्प अपनी सूँड़में लेकर ऊपर उठाया और बड़े कष्टसे कहा—'नारायण ! जगद्गुरो ! भगवन् ! आपको नमस्कार है।'

गजेन्द्रको अत्यन्त पीड़ित देखकर सर्वशक्तिमान् श्रीहरि गरुडकी पीठसे कूद पड़े और गजेन्द्रके साथ ही ग्राहको भी सरोवरसे बाहर खींच लाये। तदुपरान्त उन्होंने तुरंत अपने तीक्ष्ण चक्रसे ग्राहका मुँह फाड़कर गजेन्द्रको मुक्त कर दिया। तब ब्रह्मादि देवगण श्रीहरिकी प्रशंसा करते हुए उनके ऊपर स्वर्गीय सुमनोंकी वृष्टि करने लगे। देव-दुन्दुभियाँ बज उठीं तथा गन्धर्व नृत्य और गान करने लगे। साथ ही सिद्ध, ऋषि-महर्षि परब्रह्म श्रीहरिका गुणानुवाद गाने लगे।

ग्राह दिव्यशरीरधारी हो गया। उसने श्रीभगवान्‌के चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और फिर वह भगवान्‌के गुणोंकी प्रशंसा करने लगा। भगवान् श्रीहरिके मङ्गलमय वरदहस्तके स्पर्शसे शापमुक्त होकर हूहू गन्धर्वने प्रभुकी परिक्रमा की और उनके त्रैलोक्यवन्दित चरण-कमलोंमें प्रणाम कर वह अपने लोकको चला गया।

भगवान् श्रीहरिने गजेन्द्रका उद्धार कर उसे अपना पार्षद बना लिया। गन्धर्व, सिद्ध और देवगण उनकी इस लीलाका गान करने लगे। तत्पश्चात् श्रीहरिने पार्षद-रूप गजेन्द्रको साथ लिया और गरुडारूढ़ हो वे अपने दिव्यधामके लिये प्रस्थित हो गये।

परशुरामावतारकी कथा[1]

भगवान् परशुराम ऋचीकके पौत्र और जमदग्निके पुत्र हैं। इनकी माताका नाम रेणुका था। इनके चार भाई—वसुमान्, वसुषेण, वसु तथा विश्वावसु थे। ये सबसे छोटे हैं। हविष्यके प्रभावसे ये ब्राह्मणके पुत्र होते हुए भी क्षात्रकर्मा हो गये। ये श्रीविष्णुके आवेशावतार माने गये हैं। ये शंकरके परम भक्त हैं। इन्होंने उत्पन्न होते ही भगवान्

१-अग्निपुराण ४।४९, गरुड० १।१४२, देवीभा० ४।१६, पद्मपु० ५।७३, ६।२१७, २६८, ब्रह्म० १८०, २१३, ब्रह्माण्ड० २।७३, श्रीमद्भा० १।३, २।७, ९।१५, ११।४, मत्स्य० ४७, वायु० २।३५, ३६, हरिवंश० १।४१, महाभारत १२।३३९-३४० तथा ३४८ आदिमें भगवान् परशुरामके अवतारकी कथा आयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकरकी उपासनाके लिये कैलासकी ओर प्रस्थान कर दिया। भगवान् शंकरकी इनपर असीम कृपा थी। इन्होंने शंकरजीसे एक अमोघ अस्त्र प्राप्त किया था, जो 'परशु' नामसे विख्यात है। अत्यन्त तीक्ष्ण-धारवाले इस 'परशु'को ये सदा धारण किये रहते हैं। इनका वास्तविक नाम राम था, किंतु परशु धारण करनेसे ये 'परशुराम'के नामसे विख्यात हुए।

ये पितृभक्तके रूपमें सदा स्मरण किये जाते रहेंगे। एक बारकी बात है कि इनकी मातासे एक अपराध बन गया, जिसे जानकर महर्षि जमदग्नि अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उन्होंने अपने पुत्रोंको आज्ञा दी कि 'इसका सिर काट डालो'। मातृ-स्नेहवश चारों पुत्र ऐसा न कर सके। उन्होंने अपने छोटे पुत्र परशुरामकी ओर देखा। ये पिताका संकेत समझ गये और इन्होंने अपने परशुसे माता तथा चारों भाइयोंका सिर काट डाला। जमदग्नि इनकी पितृभक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने वर माँगनेको कहा। तब इन्होंने कहा—'तात! यदि आप प्रसन्न हैं तो कृपया मुझे यह वर प्रदान करें कि मेरी माता तथा भाई पुनः जीवित हो जायँ, उन्हें मेरे द्वारा मारे जानेकी स्मृति न रहे तथा मैं निष्पाप हो जाऊँ, युद्धमें मेरा सामना कोई न कर सके और मैं दीर्घायु होऊँ।' पिताने 'तथास्तु' कह दिया। फिर तो तत्क्षण ही माता रेणुका और उनके चारों भाई जीवित हो उठे, उन्हें यह भान हुआ कि हम प्रगाढ़ निद्रासे जागे हैं।

उस समय कृतवीर्यका पुत्र सहस्रार्जुन कार्तवीर्य भगवान् दत्तात्रेयकी कृपासे हजार भुजाएँ प्राप्तकर समस्त भूमण्डलपर एकच्छत्र राज्य कर रहा था। एक दिनकी बात है, वह अपनी सेनासहित जंगलमें शिकार खेलने गया। मुनि जमदग्निने उसे सेनासहित अपने आश्रममें विश्राम करनेको कहा। इतनी विशाल सेनाका आतिथ्य ये कैसे सम्पन्न कर सकेंगे—ऐसा सोचकर राजा आश्चर्य कर रहा था, किंतु उसे क्या पता था कि आश्रममें कामधेनु गौ है। वह इच्छित फलोंको प्रदान करनेवाली थी। मुनि जमदग्निने कामधेनुके प्रभावसे राजा तथा उसकी सेनाका देवोचित सम्मान किया। कामधेनुका वह अलौकिक ऐश्वर्य-बल देखकर राजा कार्तवीर्यके मनमें लोभ उत्पन्न हो गया। उसने जमदग्निसे गायकी माँग की, किंतु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। तब उसने शक्तिका प्रयोग कर बलपूर्वक कामधेनुको छीन लिया और अपनी राजधानी माहिष्मती चला गया। परशुरामजीको जब यह ज्ञात हुआ तो वे क्रोधसे काँप उठे। उग्रताके प्रचण्ड विग्रहरूप परशुराम अपना धनुष-बाण तथा परशु लेकर शीघ्रतासे दौड़ पड़े। माहिष्मतीमें दोनोंका घमासान युद्ध हुआ। इन्होंने उसके सहस्रों भुजाएँ काट डालीं और अन्तमें उसका सिर धड़से अलग कर दिया। सहस्रार्जुनके दस हजार पुत्र सेनासहित भयभीत होकर भाग गये। कुछ ही दूरपर इन्हें कामधेनु दिखायी दी, जो कातर नेत्रोंसे इन्हें देख रही थी। ये गायके पास गये और आदरपूर्वक उसे आश्रमपर ले आये। परशुरामजीने सोचा कि पिताजी मेरा यह वीरोचित कार्य देखकर प्रसन्न होंगे, परंतु उन्होंने कहा—'वत्स! चक्रवर्ती सम्राट्का वध ब्रह्महत्याके समान महापातक है, ब्राह्मणोंका सर्वोपरि धर्म क्षमा है, तुमने धर्मनीतिका परित्याग किया है, अतः तुम्हें प्रायश्चित्त करना होगा।' पिताकी आज्ञासे वे एक वर्षतक विभिन्न तीर्थोंका सेवन करके वापस आये। तब माता-पिताने प्रसन्नतापूर्वक इन्हें आशीर्वाद दिया।

सहस्रार्जुनकी तो मृत्यु हो चुकी थी, किंतु उसके पुत्रोंके मनमें पितृ-प्रतिशोधकी आग धधक रही थी। एक दिनकी बात है, जब परशुरामजी अपने भाइयोंके साथ वनमें दूर गये हुए थे, तब अच्छा अवसर देखकर उन्होंने छद्मवेषमें आश्रममें प्रविष्ट होकर महर्षि जमदग्निका मस्तक काट डाला और शीघ्रतापूर्वक मस्तक लेकर भाग खड़े हुए।

जब परशुरामजी वापस आये तब देखा कि आश्रम श्रीहीन हो गया है। प्रवेश करते ही इन्होंने अपने पिताके निस्तेज कटे धड़को देखा। इन्हें समझते देर न लगी कि यह किसका कुकृत्य है। उसी समय इन्होंने यह प्रतिज्ञा कर ली कि 'मैं समस्त पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित कर दूँगा।' फिर तो ये क्रोधाविष्ट हो अपना अक्षय तूणीर, धनुष तथा परशु लेकर उन्मत्त-वेषमें माहिष्मती पहुँचे और इन्होंने सहस्रार्जुनके दस हजार पुत्रों तथा अन्य क्षत्रियोंका संहार कर डाला। इन्होंने समस्त पृथ्वीमें घूम-घूमकर इक्कीस बार क्षत्रियोंका संहार किया। इस प्रकार पृथ्वी क्षत्रियोंसे शून्य हो गयी। तब इन्होंने अपने पिताके मस्तकको धड़से जोड़ा और उनका अन्त्येष्टि-संस्कार सम्पन्न किया तथा कुरुक्षेत्रमें पाँच कुण्ड बनाकर अपने पितरोंका तर्पण किया। ये पाँचों सरोवर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'समन्तपञ्चक-तीर्थ'के नामसे विख्यात हुए। पितृगणोंने इन्हें क्षत्रिय-कुल-नाशके पापसे मुक्त होनेका वर प्रदान किया (महा० आदि० २।८-९) और उन्हींकी आज्ञासे परशुरामजीने सम्पूर्ण पृथ्वी प्रजापति कश्यपको दानमें दे दी। वीतराग होकर अन्तमें ये महेन्द्राचलपर तपस्या करने चले गये (अग्नि० अ० ५)। वहाँ शिष्यत्व स्वीकार कर आये हुए द्रोणाचार्यको इन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र तथा धनुर्विद्या प्रदान की और पुनः ये शान्त भावसे तपस्या करने लगे।

सीता-स्वयंवरमें श्रीरामद्वारा शिव-धनुष-भङ्ग किये जानेपर ये महेन्द्राचलसे शीघ्रतापूर्वक जनकपुर पहुँचे, किंतु इनका तेज श्रीराममें प्रविष्ट हो गया और ये उन्हें अपना वैष्णव धनुष देकर पुनः तपस्याके लिये महेन्द्रगिरिपर चले गये। अन्तमें इन्होंने तपस्याद्वारा परमसिद्धि प्राप्त की। ये चिरजीवी हैं और यावज्जीवन ब्रह्मचारी रहे। इनकी संतति-परम्पराका कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

इनके द्वारा निर्मित एक कल्पसूत्र है, जो 'परशुरामकल्प-सूत्र' के नामसे विख्यात है। उसमें त्रिपुरादेवीकी महिमा और पूजाविधि प्रतिपादित है। इसी प्रकार त्रिपुरारहस्य-माहात्म्य-खण्डमें इन्होंने श्रीदत्तात्रेयजीसे देवी त्रिपुराका चरित्र तथा आराधना-विधि प्राप्त की है, जो प्रायः सौ अध्यायोंमें उपनिबद्ध है। इसी त्रिपुरा-माहात्म्यको संक्षिप्तरूपमें 'श्रीललितोपाख्यान' नामसे 'ब्रह्माण्डपुराण'में चालीस अध्यायोंमें वर्णित किया गया है, जो हयग्रीव तथा अगस्त्यके संवादके रूपमें वर्णित है। महेन्द्राचलसे लेकर सूर्पारक अर्थात् बम्बईतकका क्षेत्र परशु-क्षेत्रके नामसे पुराणोंमें प्रसिद्ध है।

इनका आविर्भाव वैशाखकी शुक्ला तृतीयाको हुआ था। यह पवित्र तिथि परशुराम-जयन्तीके नामसे तथा वैशाखकी शुक्ला द्वादशी परशुराम-द्वादशीके नामसे प्रसिद्ध है। इन दोनों तिथियोंमें भगवान् परशुरामकी प्रतिमाका पूजन करनेसे व्रतीको विशेष फलोंकी प्राप्ति होती है।

भगवान् व्यास

लोकोत्तर-शक्ति-सम्पन्न भगवान् व्यास भगवान् नारायणके कलावतार थे। वे महाज्ञानी महर्षि पराशरके पुत्ररूपमें प्रकट हुए थे। उनका जन्म कैवर्तराजकी पोष्यपुत्री महाभागा सत्यवतीके गर्भसे यमुनाजीके द्वीपमें हुआ था। इस कारण उन्हें 'पाराशर्य' और 'द्वैपायन' भी कहते हैं। उनका वर्ण घननील था, अतएव वे 'कृष्णद्वैपायन' नामसे प्रख्यात हैं। बदरीवनमें रहनेके कारण वे 'बादरायण' भी कहे जाते हैं। उन्हें अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेद, इतिहास और परमात्मतत्त्वका ज्ञान स्वतः प्राप्त हो गया था, जिसे दूसरे व्रतोपवासनिरतजन यज्ञ, तप और वेदाध्ययनसे भी प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होते।

धरतीपर पदार्पण करते ही अचिन्त्य-शक्तिशाली व्यासने अपनी जननीसे कहा—'आवश्यकता पड़नेपर तुम जब भी मुझे स्मरण करोगी, मैं अवश्य तुम्हारा दर्शन करूँगा।' ऐसा कहकर वे माताकी आज्ञासे तपश्चरणमें लग गये।

प्रारम्भमें वेद एक ही था। ऋषिवर अङ्गिराने उसमेंसे सरल तथा भौतिक उपयोगके छन्दोंको पीछे संगृहीत किया। वह संग्रह 'अथर्वाङ्गिरस' या 'अथर्ववेद' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। परम पुण्यमय सत्यवतीनन्दनने मनुष्योंकी आयु और शक्तिको अत्यन्त क्षीण होते देखकर वेदोंका व्यास (विस्तार) किया। इसीलिये वे 'वेदव्यास' नामसे प्रसिद्ध हुए।

फिर वेदार्थ-दर्शनकी शक्तिके साथ अनादि पुराणको लुप्त होते देखकर भगवान् कृष्णद्वैपायनने पुराणोंका प्रणयन किया। उन पुराणोंमें निष्ठाके अनुरूप आराध्यकी प्रतिष्ठा कर उन्होंने वेदार्थको चारों वर्णोंके लिये सहज-सुलभ कर दिया। अष्टादश पुराणोंके अतिरिक्त बहुत-से उपपुराण तथा अन्य ग्रन्थ भी भगवान् व्यासद्वारा निर्मित हैं।

अत्यन्त विस्तृत पुराणोंमें कल्पभेदसे चरित्रभेद पाये जाते हैं। समस्त चरित्र इस कल्पके अनुरूप हों तथा समस्त धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-सम्बन्धी सिद्धान्त भी उनमें एकत्र हो जायँ—इस निश्चयसे वेदव्यासजीने महान् ग्रन्थ महाभारतकी रचना की। महाभारतको 'पञ्चम वेद' और 'कार्ष्णवेद' भी कहते हैं।

भगवान् द्वैपायनने ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेदका अध्ययन क्रमशः अपने शिष्यों पैल, जैमिनि, वैशम्पायन और सुमन्तुको तथा महाभारतका अध्ययन रोम-हर्षण सूतको कराया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वश्रेष्ठ वरदायक, महान् पुण्यमय, यशस्वी वेदव्यासजी राजा जनमेजयके सर्पयज्ञकी दीक्षा लेनेका संवाद पाकर वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् शिष्योंके साथ उनके यज्ञ-मण्डपमें पहुँचे। यह देखकर राजा जनमेजय अत्यन्त हर्षित हुए। उन्होंने अतीव श्रद्धापूर्वक पराशरनन्दन व्यासको सुवर्णका पीठ देकर आसनकी व्यवस्था की। फिर उन्होंने पाद्यार्घ्यादिके द्वारा उनकी सविधि पूजा की।

तब राजा जनमेजयके अनुरोधसे महर्षि व्यासने अपने शिष्य वैशम्पायनको वहाँ महाभारत सुनानेकी आज्ञा दी। विप्रवर वैशम्पायनने वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, त्रिकालदर्शी, परमपवित्र गुरुदेव व्यासजीके चरणोंमें प्रणाम किया और उन्होंने राजा जनमेजय, सभासद्गण तथा अन्य उपस्थित नरेशोंके सम्मुख विस्तारपूर्वक व्यास-विरचित कौरव-पाण्डवों-का सुविस्तृत इतिहास 'महाभारत' सुनाया।

धृतराष्ट्रके पुत्रोंद्वारा अधर्मपूर्वक पाण्डवोंको राज्यसे बहिष्कृत कर दिये जानेपर सर्वज्ञ व्यासजी वनमें उनके पास पहुँचे। वहाँ उन्होंने कुन्तीसहित पाण्डवोंको धैर्य बँधाया और उनकी एकचक्रा नगरीके समीप एक ब्राह्मणके घरमें रहनेकी व्यवस्था कर दी। फिर उनसे एक मासतक वहीं अपनी प्रतीक्षा करनेका आदेश देकर वे लौट गये।

सत्यव्रतपरायण व्यासजी एक मासके बाद पुनः पाण्डवोंके समीप पहुँचे। उनसे उनका कुशल-संवाद पूछकर धर्मसम्बन्धी और अर्थविषयक चर्चा की। फिर उन्होंने महाराज पृषतकी पौत्री सती-साध्वी कृष्णाके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाकर पाण्डवोंको उसके स्वयंवरमें पाञ्चालनगर जानेकी प्रेरणा दी। व्यासजीने पाण्डवोंसे कहा कि 'सती द्रौपदी तुम्हीं लोगोंकी पत्नी नियत की गयी है।'

पाण्डव पाञ्चालनगर पहुँचे और स्वयंवरमें अर्जुनने लक्ष्यवेध कर सती द्रौपदीकी जयमाला प्राप्त की, किंतु जब माता कुन्तीके आदेशानुसार युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयोंने एक साथ द्रौपदीके साथ विवाह करना चाहा, तब महाराज द्रुपदने इसे सर्वथा अनुचित और अधर्म समझकर आपत्ति की। उसी समय निग्रहानुग्रहसमर्थ व्यासजी वहाँ पहुँच गये। वहाँ उन्होंने महाराज द्रुपदको पाण्डवों एवं द्रौपदीके इस जीवनके पूर्वका विवरण ही नहीं दिया, अपितु उन्हें दिव्य दृष्टि देकर उनके परम तेजस्वी स्वरूपका दर्शन भी करा दिया। फिर तो महा द्रुपदने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक द्रौपदीका विवाह युधिष्ठिर आ पाँचों भाइयोंके साथ कर दिया।

फिर जब महाराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्ण सत्परामर्शसे राजसूययज्ञकी दीक्षा ली, तब परब्रह्म अपरब्रह्मके ज्ञाता कृष्णद्वैपायन व्यासजी परम वेदज्ञ ऋत्विजों साथ वहाँ पहुँचे। उस यज्ञमें स्वयं उन्होंने ब्रह्माका काम सँभाला और यज्ञ सम्पन्न होनेपर देवर्षि नारद, देवल और असित मुनि आगे करके महाराज युधिष्ठिरका अभिषेक किया।

अपने पौत्र युधिष्ठिरसे विदा होते समय व्यासजीने अ बातोंके अतिरिक्त उनसे कहा—'राजन्! आजसे तेरह बाद दुर्योधनके पातक तथा भीमसेन और अर्जुनके पराक्र क्षत्रिय-कुलका महासंहार होगा और उसके निमित्त तुम बनो किंतु इसके लिये तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि क सबके लिये अजेय है।' इतनी बात कहकर ज्ञानमूर्ति व्यासजी अपने वेदज्ञ शिष्योंसहित कैलासपर्वतके लिये प्रस्थान किया।

शुद्धात्मा व्यासजी विपत्तिग्रस्त सरल एवं निरप पाण्डवोंकी समय-समयपर पूरी सहायता करते रहे। ज दुरात्मा दुर्योधनने छलपूर्वक पाण्डवोंका सर्वस्वापहरण कर उ बारह वर्षोंके लिये वनमें भेज दिया, तब उसे प्रसन्नता हु किंतु उसे इतनेसे ही संतोष नहीं हुआ, उसने कर्ण, दुश्शा और शकुनिके परामर्शसे अरण्यवासी पाण्डवोंको म डालनेका निश्चय कर लिया तथा शस्त्रसज्ज हो वे रथपर बै ही थे कि दिव्यदृष्टिसम्पन्न व्यासजी तत्काल वहाँ पहुँच और दुर्योधनको समझाकर उसे इस भयानक अपकर्मसे नि किया। इसके अनन्तर वे तुरंत महाराज धृतराष्ट्रके पास पहुँ और उनसे कहा—'वत्स! जैसे पाण्डु मेरे पुत्र हैं, वैसे ही तु भी हो, उसी प्रकार ज्ञानसम्पन्न विदुरजी भी हैं। मैं स्नेहवश तुम्हारे और सम्पूर्ण कौरवोंके हितकी बात कहता हूँ। तुम्ह दुष्ट पुत्र दुर्योधन क्रूर ही नहीं, अत्यन्त मूढ़ भी है। तनिक सोचो, छलपूर्वक राज्यलक्ष्मीसे वञ्चित पाण्डवोंके मनमें तेर वर्षोंतक अरण्यवासकी यातना सहते-सहते तुम्हारे पुत्रोंके प्रति कितना भयानक विष भर जायगा! वे तुम्हारे दुष्ट पुत्रोंको कैसे जीवित रहने देंगे! इतनेपर भी दुर्योधन उनका नृशंसतापूर्व वध कर डालना चाहता है। यदि दुर्योधनके इस कुप्रवृत्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपेक्षा हुई, उसे रोका नहीं गया, तो तुम्हारे सहित इस निर्मल वंशको कलङ्कित ही नहीं होना पड़ेगा, अपितु इसका सर्वनाश भी हो जायगा। उचित तो यह है कि तुम्हारा पुत्र दुर्योधन एकाकी ही पाण्डवोंके पास वनमें जाय। उनके संसर्गसे उसकी बुद्धि शुद्ध होकर उसके वैर-भावका शमन हो सकता है।

'राजन्! महर्षि मैत्रेय वनमें पाण्डवोंसे मिलकर आ रहे हैं। वे निश्चय ही सत्सम्मति प्रदान करेंगे। उनकी आज्ञा मान लेनेमें ही कौरव-कुलका हित है।' इतनी बात कहकर व्यासजी चले गये।

दुर्योधनने महर्षि मैत्रेयकी उपेक्षा की, इस कारण उन्होंने उसे अत्यन्त अनिष्टकर शाप दे दिया।

अरण्यवासके समय एक बार जब युधिष्ठिर अत्यन्त चिन्तित थे, तब त्रिकालदर्शी व्यासजी उनके पास पहुँचे और उन्होंने युधिष्ठिरको समझाया—'भरतश्रेष्ठ! अब तुम्हारे कल्याणका सर्वश्रेष्ठ अवसर उपस्थित हो गया है। तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारे शत्रु शीघ्र ही पराजित हो जायँगे।' इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिरको आश्वस्त करते हुए सर्वसमर्थ व्यासजीने अर्जुनके लिये युधिष्ठिरको मूर्तिमती सिद्धितुल्य 'प्रतिस्मृति' नामक विद्या प्रदान कर दी, जिसके द्वारा उन्हें देवताओंके दर्शनकी क्षमता प्राप्त हो गयी। इतना ही नहीं, व्यासजीने पाण्डवोंके हितके लिये और भी अनेक शुभ-सम्मतियाँ प्रदान कीं।

भगवान् व्यासने संजयको भी दिव्यदृष्टि प्रदान की थी, जिससे उन्होंने महाभारत-युद्ध ही नहीं देखा, अपितु भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे निःसृत श्रीमद्भगवद्गीताका भी श्रवण कर लिया, जिसे महाभाग पार्थके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं सुन पाया था। इतना ही नहीं, उक्त दिव्य दृष्टिके प्रभावसे संजयने श्रीभगवान्के विश्वरूपका भी अत्यन्त दुर्लभ दर्शन प्राप्त कर लिया।

पराशरनन्दन व्यास कृपाकी मूर्ति ही थे। एक बार उन्होंने मार्गमें आते हुए रथके कर्कश स्वरको सुनकर प्राणभयसे भागते एक क्षुद्र कीटको देखा। कीटसे उन्होंने वार्तालाप किया तथा अपने तपोबलसे उसे अनेक योनियोंसे निकालकर शीघ्र ही मनुष्य-योनि प्राप्त करा दी। फिर क्रमशः क्षत्रिय-कुल एवं ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होकर उस भूतपूर्व कीटने दयामय व्यासजीके अनुग्रहसे अत्यन्त दुर्लभ सनातन ब्रह्मपद प्राप्त कर लिया।

महर्षि व्यासकी शक्ति अलौकिक थी। एक बार जब वे वनमें धृतराष्ट्र और गान्धारीसे मिलने गये, तब सपरिवार युधिष्ठिर भी वहीं उपस्थित थे। धृतराष्ट्र और गान्धारी पुत्रशोकसे दुःखी थे। धृतराष्ट्रने अपने कुटुम्बियों और स्वजनोंको देखनेकी इच्छा व्यक्त की। रात्रिमें महर्षि व्यासके आदेशानुसार धृतराष्ट्र आदि गङ्गा-तटपर पहुँचे। व्यासजीने गङ्गाजलमें प्रवेश किया और दिवङ्गत योद्धाओंको पुकारा। फिर तो जलमें युद्ध-कालका-सा कोलाहल सुनायी देने लगा। साथ ही पाण्डव और कौरव—दोनों पक्षोंके योद्धा और राजकुमार भीष्म एवं द्रोणके पीछे निकल आये। सबकी वेष-भूषा, शस्त्रसज्जा, वाहन और ध्वजाएँ पूर्ववत् थीं। सभी ईर्ष्या-द्वेषशून्य दिव्य देहधारी दीख रहे थे। वे रात्रिमें अपने स्नेही सम्बन्धियोंसे मिले और सूर्योदयके पूर्व भगवती भागीरथीमें प्रवेशकर अपने-अपने लोकोंके लिये चले गये।

'जो स्त्रियाँ पतिलोक जाना चाहें, इस समय गङ्गाजीमें डुबकी लगा लें।' व्यासजीके इस वचनको सुनकर जिन वीरगतिप्राप्त योद्धाओंकी पत्नियोंने गङ्गाजीमें प्रवेश किया, वे दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर विमानमें बैठीं और सबके देखते अभीष्ट लोकके लिये प्रयाण कर गयीं।

नागयज्ञकी समाप्तिपर जब यह कथा परीक्षित्के पुत्र जनमेजयने महर्षि वैशम्पायनसे सुनी, तब उन्हें इस अद्भुत घटनापर सहसा विश्वास न हुआ और उन्होंने इसपर शङ्का की। वैशम्पायनने उसका बड़ा ही युक्तिपूर्ण आध्यात्मिक समाधान किया (महा०, आश्रमवासिक० २४)। पर वे इसपर भी न माने और बोले कि 'भगवान् व्यास यदि मेरे पिताजीको भी उसी वय-रूपमें ला दें तो मैं विश्वास कर सकता हूँ।' भगवान् व्यास वहीं उपस्थित थे और उन्होंने जनमेजयपर पूर्ण कृपा की। फलतः शृङ्गी, शमीक एवं मन्त्री आदिके साथ राजा परीक्षित् वहाँ उसी रूप-वयमें प्रकट हो गये। अवभृथ (यज्ञान्त)-स्नानमें वे सब सम्मिलित भी हुए और फिर वहीं अन्तर्हित हो गये। महर्षि व्यास मूर्तिमान् धर्म थे। दया-धर्म-ज्ञान एवं तपकी परमोज्ज्वल मूर्ति उन महामहिम व्यासजीके चरण-कमलोंमें बार-बार प्रणाम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् श्रीहंस

भगवान् विष्णुके चौबीस अवतारोंमें 'हंस' एक अवतार-विशेष है। भगवान् विष्णुने 'हंस'-रूप धारण कर सनत्कुमारादि मुनियोंको ज्ञानमार्ग तथा आत्मतत्त्वका जो रहस्यमय सूक्ष्म उपदेश दिया है, वह श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके तेरहवें अध्यायमें सूक्ष्मरूपसे तथा विष्णुधर्मोत्तर-पुराणके तृतीय खण्डमें ११६ अध्यायों (अ० २२७ से ३४२) में विस्तृत-रूपसे वर्णित है, जो 'हंसगीता'के नामसे प्रसिद्ध है।

श्रीमद्भागवतके अनुसार पितामह ब्रह्माजीके मानसपुत्र—सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार—अध्यात्म-तत्त्वके जिज्ञासुके रूपमें अपने पिता ब्रह्माजीके पास पहुँचे। ये चारों कुमार सर्वदा पाँच वर्षकी अवस्थावाले थे। पिताको प्रणाम करनेके अनन्तर इन्होंने पूछा—

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो ।
कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः ॥

(श्रीमद्भा० ११।१३।१७)

'पिताजी ! चित्त गुणों अर्थात् विषयोंमें घुसा ही रहता है और गुण भी चित्तकी एक-एक वृत्तिमें प्रविष्ट रहते ही हैं। अर्थात् चित्त और गुण भी आपसमें मिले-जुले ही रहते हैं। ऐसी स्थितिमें जो पुरुष इस संसार-सागरसे पार होकर मुक्ति-पद प्राप्त करना चाहता है, वह इन दोनोंको एक-दूसरेसे अलग कैसे कर सकता है ?'

स्वयम्भू एवं प्राणियोंके जन्मदाता होनेपर भी सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी प्रश्नके गूढ़ रहस्योंको न समझ सके, तब उन्होंने परमेश्वर परम प्रभु श्रीहरिका ध्यान किया। उनके ध्यान करते ही उन सभीके समक्ष अमित तेजस्वी, परमोज्ज्वल, तत्त्वोपदेष्टा हंसके रूपमें भगवान् विष्णु प्रकट हुए **'तस्याहं हंसरूपेण सकाशमगमं तदा'**। (श्रीमद्भा० ११।१३।१९)।

तब उन सभीने प्रभुको सादर प्रणाम किया और पूछा—'आप कौन हैं ?' इसपर उन्होंने कहा—'यदि परमार्थरूप वस्तु नानात्वसे सर्वथा रहित है, तो आत्माके सम्बन्धमें आपलोगोंका यह प्रश्न युक्तिसंगत नहीं लगता। अथवा यदि पाञ्चभौतिक शरीरको आपलोग 'आप' कहकर सम्बोधन करते हैं तो शरीरकी दृष्टिसे पृथ्वी, जल, तेज आदि तथा मज्जा, रक्त आदिसे निर्मित सभी शरीरोंमें साम्य है अर्थात् एकत्व है। इस दृष्टिसे देवता-मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी शरीरके तत्त्वोंकी दृष्टिसे तथा आत्मदृष्टिसे एक ही हैं। सर्वत्र व्याप्त रहनेवाला आत्मतत्त्व मैं ही हूँ। आपमें तथा हममें कोई अन्तर नहीं है। मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे भी जो कुछ ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ, मुझसे भिन्न और कुछ नहीं है। यह सिद्धान्त आपलोग तत्त्वविचारके द्वारा समझ लीजिये। यह चित्त चिन्तन करते करते विषयाकार हो जाता है और विषय चित्तमें प्रविष्ट हो जाते हैं, यह बात सत्य है, तथापि विषय और चित्त—ये दोनों मेरे स्वरूपभूत जीवकी देह हैं—उपाधि हैं। अर्थात् आत्मा चित्त और विषयके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

इसलिये बार-बार विषयोंका सेवन करते रहनेसे जो चित्त विषयोंमें आसक्त हो गया है और विषय भी चित्तमें प्रविष्ट हो गये हैं, इन दोनोंको अपने वास्तविकसे अभिन्न मुझ परमात्माका साक्षात्कार करके त्याग देना चाहिये। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—ये तीन अवस्थाएँ सत्त्वादि गुणोंके अनुसार होती हैं और बुद्धिकी वृत्तियाँ हैं, सच्चिदानन्दका स्वभाव नहीं है। इन वृत्तियोंका साक्षी होनेके कारण जीव उनसे विलक्षण है। यह सिद्धान्त श्रुति, युक्ति और अनुभूतिसे युक्त है। ये तीनों अवस्थाएँ गुणोंके (सत्त्व-रज-तम) द्वारा मेरी मायासे मेरे अंशरूप जीवमें कल्पित की गयी हैं और नितान्त असत्य हैं। ऐसा निश्चय कर अनुमान, सत्पुरुषोंद्वारा किये गये उपनिषदोंके श्रवण और तीक्ष्ण ज्ञान-खड्गके द्वारा सकल संशयोंके अज्ञान अहंकारका छेदन करके हृदयमें स्थित मुझ परमात्माका निरन्तर भजन करना चाहिये।'

इस प्रकार भगवान् हंसने सनकादि मुनियोंके संदेहको दूर किया। तब आनन्दित हो उन्होंने प्रभुकी स्तुति और पूजा की। तदनन्तर हंसरूपी श्रीविष्णु अन्तर्हित हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामावतारकी कथा

स्वायम्भुव मनु एवं महारानी शतरूपाने तपोभूमि नैमिषारण्यमें गोमतीके पावन तटपर सहस्रों वर्षोंतक तप किया। भगवान् नारायणने उन्हें दर्शन दिया। उनके दिव्य एवं अलौकिक रूप-माधुर्यको देखकर वे मुग्ध हो गये, जिससे उनके मनमें तीन जन्मोंतक उन्हें पुत्ररूपमें प्राप्त करनेकी लालसा जाग उठी। भगवदनुकम्पासे मनु-शतरूपाका मनोरथ पूर्ण हुआ। यही स्वायम्भुव मनु तथा महारानी शतरूपा अपने प्रथम जन्ममें अयोध्यामें राजा दशरथ एवं कौसल्याके रूपमें प्रकट हुए। तब इनके यहाँ साक्षात् नारायणने मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके रूपमें अवतार धारण किया।

श्रीराम साक्षात् परब्रह्मपरमात्माके रूपमें जीवमात्रका कल्याण करनेके लिये अवतरित हुए थे। श्रीरामके विषयमें जितने ग्रन्थ लिखे गये हैं, उतने सम्भवतः किसी अन्य अवतारपर नहीं उपलब्ध होते। सकलगुणनिधान होनेसे सभीने इन्हें ही अपनी वाणीका विषय बनाया। विविध रामायणों, अठारह महापुराणों, रघुवंशादि काव्यों, हनुमदादि नाटकों, अनेक चम्पू-काव्यों तथा महाभारतादिमें इनके विविध रूप विस्तारसे प्रतिपादित किये गये हैं। पुराणोंमें सूर्य तथा चन्द्रवंश—इन दो मूल वंशधरोंमें श्रीराम सूर्यवंशी चक्रवर्ती सम्राट्के रूपमें सूर्यवंशका प्रतिनिधित्व करते हैं। पद्मपुराणका आधेसे अधिक भाग श्रीरामके चरित्र तथा उपासनासे सम्बद्ध है। इसी प्रकार ब्रह्मपुराणमें गोदावरीमाहात्म्य तथा उसके अन्तमें इनका अद्भुत चरित्र चित्रित है। अग्नि, गरुड, देवी-भागवत, ब्रह्माण्ड, भागवत, मत्स्य, विष्णु आदि पुराणोंमें भी भगवान् श्रीरामकी विशद चर्चा हुई है।

इनका चरित्र विश्वामित्रकी यज्ञ-रक्षासे लेकर जनकपुरमें शिव-धनुष-भङ्ग, सीता-विवाह, परशुराम-गर्व-भङ्ग आदिके रूपमें विख्यात है। यज्ञ-रक्षाके लिये जाते समय मार्गमें इन्होंने गौतम-पत्नी अहल्याका उद्धार किया और महर्षि विश्वामित्रके आश्रमपर पहुँचकर ताड़का-सुबाहु आदि दैत्योंका संहार किया। बादमें कैकेयीके वरदानस्वरूप चौदह वर्षके लिये ये वनमें गये। ये भरतके लौटानेपर भी लौटे नहीं, अपितु चित्रकूटादि अनेक स्थानोंमें इन्होंने बारह वर्षोंतक निवास किया। उस समय इन्होंने ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर उन्हें कृतार्थ किया और सुतीक्ष्ण, शरभंग, शबरी आदिको सद्गति प्रदान की। फिर पञ्चवटीमें शूर्पणखाकी नासिकाका छेदन कर, खर-दूषण तथा त्रिशिराका वधकर उन्होंने रावणको क्रुद्ध किया। रावणने मारीचकी सहायतासे सीताजीका अपहरण किया। सीताजीकी खोज करते समय मार्गमें इन्होंने कबन्धादि दैत्योंका उद्धार किया तथा ऋष्यमूकपर्वतपर पहुँचकर सुग्रीवसे मैत्री कर वानरराज बालीका वध किया। हनुमान्‌जीने सीताका पता लगाया। फिर समुद्रमें पुल बाँधकर वानरी सेनाकी सहायतासे इन्होंने सेनासहित रावण-कुम्भकर्णादिका वध किया और विभीषणको राज्य देकर सीताका उद्धार किया। इन्होंने लगभग ग्यारह हजार वर्षतक पृथ्वीपर राज्यकर त्रेतामें ही सत्ययुगकी स्थापना की। अपने राज्यकालमें इन्होंने कई अश्वमेध-यज्ञ किये। अन्तमें पुराणपुरुष श्रीराम सपरिकर अपने तेजोमय दिव्य स्वरूपमें प्रविष्ट हुए। भगवान्‌का चरित्र अनन्त है, उनकी कथा भी अनन्त है। उसका वर्णन करनेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं है। भक्त अपनी भावनाके अनुसार नित्य उनका भजन करते रहते हैं।

उपासकोंने, भक्तोंने श्रीरामको ही सर्वाधिक उपास्य और जप्य माना है। साधक भक्तोंने रामपूर्वतापिनी, उत्तरतापिनी तथा रामरहस्य आदि उपनिषदोंसे भी पर्याप्त सामग्री लेकर उनके दर्शनका मार्ग ढूँढ़ा है। वे नित्य सर्वव्यापक हैं एवं अयोध्या, चित्रकूटादिमें सतत वर्तमान रहते हैं। भारतमें उनके अनेक मन्दिर हैं और श्रीरामानुजी, श्रीरामानन्दी तथा श्रीरामस्नेही आदि अनेक वैष्णवसम्प्रदाय श्रीरामकी उपासनापर ही आधारित हैं। वैसे श्रीशंकराचार्यके सम्प्रदायमें भी राम एवं हनुमान्‌की उपासनाका विधान है। अनेक यज्ञोंमें रामार्चा आदिके द्वारा श्रीरामका पूजन एवं यजन होता है। अपने आदर्श चरित्रके कारण ये मर्यादापुरुषोत्तमके रूपमें प्रत्येक घर-घरमें पूजित एवं प्रतिष्ठित हैं। 'राजा रामचन्द्रकी जय' के रूपमें सदा ही इनके राम-राज्यकी कल्पना मूर्त हुई है।

ज्योतिष और पुराणोंके अनुसार श्रीरामका समय आजसे प्रायः दो करोड़ वर्षपूर्व माना जाता है। इनका अवतार चैत्रशुक्ला नवमीको मध्याह्नमें अयोध्यामें हुआ था। इनके मुख्य व्रतोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामनवमी तथा रामद्वादशी हैं। इनके विषयमें हजारों स्तोत्र, उपासनाके पटल, पद्धति, कवच, शतनाम तथा सहस्रनाम आदि हैं। सैकड़ों पाञ्चरात्र आगम-ग्रन्थोंमें भी इनकी उपासना-विधि प्रतिपादित है। रामायणोंमें वाल्मीकिरामायण, महारामायण, आदिरामायण (भुशुण्डि), अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण आदि प्रसिद्ध हैं, जिनमें अध्यात्मरामायण ब्रह्माण्डपुराणका ही एक भाग है। अन्य भाषाओंमें रामचरितमानस, कृत्तिवास रामायण, कम्बरामायण, भानुभक्तकोरामायण, असामिया रामायण तथा उड़िया रामायण आदि अनेक हैं, जिनमें श्रीहरिके दिव्य कथाओंकी महिमाका गुणगान किया गया है। भक्तोंको भगवान्‌के दर्शन होते रहते हैं। उन परमेश्वर श्रीराघवेन्द्रके चरणारविन्दोंमें हम सभीका बारंबार प्रणाम।

श्रीकृष्णावतारकी कथा

जैसे श्रीराम पूर्णतम मर्यादापुरुषोत्तम कहे गये हैं, वैसे ही श्रीकृष्ण पूर्णतम लीलापुरुषोत्तम-रूपसे विख्यात हैं। पुराणोंमें श्रीमद्भागवत, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, विष्णु, पद्म, भविष्य तथा गर्गसंहिता आदिमें श्रीकृष्णके अद्भुत चरित्र तथा दिव्यतम उपदेश विस्तारसे प्रतिपादित हैं। गणना करनेवालोंने कहीं श्रीकृष्ण तथा कहीं बलरामजीकी दशावतारोंमें चर्चा की है। इनका आविर्भाव भाद्रपदमासकी कृष्णाष्टमीको अर्धरात्रिके समय मथुरामें कंसके कारागारमें हुआ था।

द्वापरयुगकी बात है। पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें जो-जो कालनेमि आदि दैत्य-दानव राक्षस मारे गये थे, वे पुनः कंस, अरिष्ट, धेनुक, केशी, प्रलम्ब, नरक, सुन्द तथा वाणासुर आदिके रूपमें उत्पन्न होकर पृथ्वीपर महान् अत्याचार करने लगे। सर्वत्र पापाचार बढ़ गया। उनके अत्याचारोंके भारको जब पृथ्वी सहन करनेमें असमर्थ हो गयी, तब उसने गौका रूप धारणकर अपना दुःख ब्रह्मादि देवोंसे निवेदन किया। तदनन्तर ब्रह्मादि देवता क्षीरशायी श्रीविष्णुके पास गये। वहाँ उन्होंने उनकी स्तुति की और उन दुष्टोंसे छुटकारा दिलानेकी प्रार्थना की। दयालु प्रभुने अपने श्याम और श्वेत दो केश उखाड़े और कहा—'मेरे ये दोनों केश पृथ्वीपर अवतार लेकर दुष्टोंका संहारकर धर्मकी स्थापना करेंगे। (विष्णुपु० ५।१।५९-६०), आप सभी आश्वस्त होकर अपने-अपने स्थानोंपर लौट जायँ। श्रीहरिकी गौर और कृष्ण वर्णकी यही दो शक्तियाँ श्रीबलराम एवं श्रीकृष्णके रूपमें अवतरित हुईं (श्रीमद्भा० २।७।२६)।

देवर्षि नारदने मथुरा आकर कंसको बताया कि देवकीके गर्भसे उत्पन्न आठवाँ पुत्र तुम्हारे विनाशका कारण होगा। फिर क्या था, आततायी कंसने देवकी-वसुदेव—दोनोंको कारागारमें बंद कर दिया। वे अत्यन्त भयभीत तथा सावधान होकर रहने लगे। देवकीके प्रथम छः पुत्रों[1] को जन्म लेते ही कंसने मार डाला। भगवान्‌की प्रेरणासे सप्तम गर्भ अनन्तके अंशरूपसे देवकीके गर्भमें प्रविष्ट हुआ। श्रीहरिने उसे योगमायाके द्वारा देवकीके गर्भसे खींचकर रोहिणीके उदरमें स्थापित करा दिया। गर्भके खींचनेसे वह संकर्षण कहलाया। देवकीके आठवें गर्भमें प्रभु स्वयं पधारे और उनकी योगमाया यशोदाके गर्भमें प्रविष्ट हुई।

भाद्रपदमासकी कृष्णाष्टमीकी अर्धरात्रिका समय था। ऐसी पवित्र वेलामें जगत्पति, जगदाधार चतुर्भुज श्रीविष्णुने कंसके कारागारमें अवतरित होकर श्रीदेवकी और वसुदेवजी-को दर्शन दिया। उन्होंने प्रभुकी स्तुति करनेके उपरान्त प्रार्थना की कि 'भगवन्! आप अपने इस रूपको समेट लीजिये, नहीं तो यदि कंसको ज्ञात हो जायगा तो वह आपको मार डालेगा।' प्रभुकी योगमायाका प्रभाव था कि उस समय सभी द्वारपाल प्रगाढ़ निद्रामें सो गये और वसुदेव-देवकीकी बेड़ियाँ खुल गयीं। कारागारका फाटक खुल गया। वसुदेवजी बालरूपको प्राप्त श्रीकृष्णको सूपमें रखकर श्रीप्रभुके प्रभावसे यमुनाको पारकर यशोदाके पास छोड़ आये तथा यशोदाके घर आविर्भूत कन्याको लेकर मथुरा चले आये और बंदीगृहमें बेड़ी धारणकर पूर्ववत् बंदी हो गये। नवजात कन्या रुदन करने

१-ये बालक पूर्वजन्ममें हिरण्यकशिपुके भाई कालनेमिके पुत्र थे। इन राक्षस कुमारोंने हिरण्यकशिपुका अनादर कर भगवान्‌की भक्ति की थी, अतः उसने कुपित होकर इन्हें शाप दिया था कि 'तुमलोग अपने पिताके हाथसे ही मारे जाओगे।' कंस कालनेमिका अवतार था, अतः पूर्वशापवश कंसके हाथों इन पुत्रोंकी मृत्यु हुई। यह प्रसंग हरिवंशपुराणमें आया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी। रुदन सुनकर द्वाररक्षक दौड़कर कंसके पास पहुँचे। घबराहटमें दौड़ता हुआ कंस देवकीके पास पहुँचा और उसने उस कन्याको देवकीके हाथसे छीन लिया[२]। वह ज्यों ही उसे शिलापर पटकनेको उद्यत हुआ, त्यों ही वह उसके हाथसे छूटकर आकाशमें स्थित होकर कहने लगी—'अरे दुष्ट कंस! तुम समझ रहे हो कि देवर्षि नारदकी बात मिथ्या हो गयी? आठवाँ गर्भ पुत्रके रूपमें उत्पन्न होना चाहिये था, पुत्री कैसे हुई? किंतु सावधान हो जाओ, तुम्हारा काल मुझसे पहले प्रकट हो चुका है।' ऐसा कहकर वह देवी अन्तर्हित हो गयी। यही देवी अष्टभुजा—दुर्गा शक्तिके रूपमें पृथ्वीपर प्रकट हुई।

देवीके मुँहसे ऐसी वाणी सुनकर कंसको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। वह अपने मनमें ग्लानि तथा पश्चात्ताप करने लगा कि मैंने व्यर्थ ही अपनी बहन देवकीके छः निर्दोष पुत्रोंको मार डाला। फिर तो वह देवकी और वसुदेवको बन्धनमुक्त करके अपने महलमें चला आया। दूसरे दिन कंसने अपने मन्त्रियोंको पूर्ण वृत्तान्तसे अवगत कराया। दुष्ट मन्त्रियोंने कहा—'राजन्! उस देवीकी बात मिथ्या नहीं हो सकती, कहीं-न-कहीं इस मथुरा, गोकुल तथा वृन्दावन-मण्डलमें आपका शत्रु उत्पन्न हो चुका होगा, उसे ढूँढ़ना चाहिये।' मन्त्रियोंकी सलाहसे कंसने राजाज्ञा दी कि 'जो भी नवजात शिशु मिलें, उन्हें तुरंत ही मार दिया जाय।' कंसके भेजे दैत्य मथुरा, गोकुल आदिमें शिशुओंका संहार करने लगे।

उधर व्रज-गोकुलमें नन्दबाबाके यहाँ महान् उत्सव हो रहा था। सर्वत्र उल्लास एवं आनन्द-ही-आनन्द बरस रहा था। गोप-गोपी सभी मुग्ध हो रहे थे। स्वयं श्रीहरि बालकरूपमें विचित्र लीलाएँ करने लगे।

इनकी बाललीलामें बालघातिनी पूतना, शकटासुर और तृणावर्तका उद्धार, माखनचोरी, गो-चारण, यशोदाको विराट्-रूपका दर्शन, यमलार्जुन-उद्धार, वत्सासुर, बकासुर, अघासुरका वध, ब्रह्माजीका मोह-भंग, कालियमर्दन, प्रलम्बासुरवध, दावानल-पान, इन्द्रका मान-भंग, नन्दबाबाको वरुणके पाससे वापस लाना, महारास-क्रीडा,[३] केशी-वध, यमुनाजलमें अक्रूरको दर्शन देना, मथुरा जाकर नगरभ्रमण, रजक-उद्धार, सुदामा मालीपर कृपा, कुब्जाको रूप-दान, रंगशालामें धनुष-भंग, रंगशालाके द्वारपर स्थित कुबलयापीड गजराजका वध, रंगशालामें चाणूर, मुष्टिक, शल और तोशलका वध, रंगमंचपर स्थित कंसका वध, कंसके भाइयोंका संहार, माता-पिताकी बन्धन-मुक्ति, उग्रसेनका मथुराके सिंहासनपर अभिषेक, नन्दबाबा आदि ग्वालोंको व्रज लौटाना, गर्गाचार्यद्वारा यज्ञोपवीत-संस्कार तथा महर्षि सांदीपनिके यहाँ विद्याध्ययन भी सम्मिलित हैं।

तत्पश्चात् तेईस अक्षौहिणी सेनाके साथ मथुरापर चढ़ाई करनेवाले जरासंधको सत्रह बार पराजित करना, कालयवनके भयसे समुद्रमें द्वारकापुरीका निर्माण और वहाँ यदुवंशियोंको सुरक्षित पहुँचाना, मुचुकुन्दकी दृष्टिसे कालयवनको भस्म कराना, मुचुकुन्द-उद्धार, प्रवर्षणपर्वतपर जरासंधद्वारा लगायी गयी आगसे बचकर द्वारका लौटना, रुक्मिणी-हरण, स्यमन्तक-मणिकी चोरीका कलंक, जाम्बवान्के साथ युद्ध और जाम्बवतीकी प्राप्ति, स्यमन्तक-मणिसहित सत्यभामाकी प्राप्ति, शतधन्वाका वध, कालिन्दी-विवाह, मित्रविन्दा-हरण, सात बैलोंको नाथकर सत्याका पाणि-ग्रहण, भद्रा-विवाह, लक्ष्मणा-हरण, भौमासुरका वध, भगदत्तको अभय-दान, सोलह हजार कन्याओंका उद्धार, स्वर्गलोकमें माता अदितिको कुण्डल-दान, पारिजात-हरण, चित्रलेखाद्वारा अनिरुद्धका हरण, वाणासुरकी भुजाओंका छेदन, उषा-अनिरुद्ध-विवाह, पौण्ड्रक तथा काशिराजका वध, युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें अग्रपूजन, भीमसेनद्वारा जरासंधका वध कराना, शिशुपाल-वध, शाल्व, दन्तवक्र और विदूरथका संहार, सुदामापर कृपा, युधिष्ठिरके कहनेसे दूतका काम करना, कौरव-सभामें विराट्-रूप-प्रदर्शन, विदुरके घर भोजन, द्रौपदीकी लज्जा-रक्षा, महाभारत-युद्धमें अर्जुनका सारथ्य करना, संग्रामारम्भमें

२-ब्रह्मवैवर्तपुराण (कृ० ज० ७) के अनुसार वसुदेव-देवकीके माँगने पर कंस उस कन्या को उन्हें दे देता है। वे दोनों अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक उसका पालन करने लगे। पार्वतीके अंशसे उत्पन्न 'एकानंशा' नामकी वह कन्या श्रीकृष्णकी बड़ी बहन हुई।द्वारकामें रुक्मिणीके विवाहके अवसरपर वसुदेवजीने उस कन्या को शंकरके अंशावतार महर्षि दुर्वासाको समर्पित किया।

३-इसके बाद कंसने नारदजीके द्वारा कृष्णको देवकीका आठवाँ पुत्र बतलाने पर वसुदेव-देवकीको पुनः बन्धनमें डाल दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतोपदेश, यदुवंशका संहार और अन्तमें व्याधके बाणाघातसे सशरीर स्वधाम-गमन—ये प्रमुख लीलाएँ हैं।

भगवान्‌का मनुष्योंके समान जन्म लेना, लीला करना और फिर संवरण कर लेना उनकी मायाका विलासमात्र है—अभिनयमात्र है। वे स्वयं ही इस जगत्‌की सृष्टि करके इसमें प्रवेश कर विहार करते हैं और, अन्तमें संहारलीला करके अपने अनन्त महिमामय स्वरूपमें अवस्थित हो जाते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रों और लीलाओंमें आध्यात्मिकता कूट-कूटकर भरी है। इनके उपदेशोंका थोड़ा भी मनन-अनुसरण मोक्षप्रद है। इनकी उपासनापर बीसों कवच हैं, जिनमें त्रैलोक्यमङ्गल-कवच सर्वोत्तम है। लोकमें श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, श्रीकृष्णद्वादशी, महारासपूर्णिमा, गोपाष्टमी तथा राधाष्टमी आदि तिथियोंपर इनका विशेष पूजन-अर्चन किया जाता है। इनकी विशेष उपासना गोपालपूर्वोत्तरतापिनी उपनिषद्‌में निर्दिष्ट है। ऐसे करुणावरुणालय, शरणागतवत्सल, भक्तजन-सुखदायक श्रीहरिके चरणारविन्दोंमें हमारी अचल भक्ति बनी रहे—यही कामना प्रत्येक मनुष्यकी होनी चाहिये।

भगवान् बुद्ध

इनकी जन्मतिथि वैशाखी पूर्णिमा कही गयी है। पुराणोंमें कल्किपुराणमें इनका विस्तृत वर्णन आया है। उसमें कल्कि तथा बुद्धको युद्धरत दिखाकर बुद्धको कल्किद्वारा पराजित दिखाया गया है। बुद्धने बौद्धधर्मका प्रचार किया। पुराणोंमें इनके पिताका नाम जिन या अजिन बताया गया है। ये तथागत-के नामसे भी प्रसिद्ध थे। इनका जन्म कपिलवस्तुमें मायादेवीके गर्भसे हुआ था। बौद्धग्रन्थोंमें इनके पिताका नाम शुद्धोदन बताया गया है। इनका धर्म अहिंसाको लेकर था। वैसे तो कपिल, आसुरि, पञ्चशिख तथा पतञ्जलि आदिने भी अहिंसाको ही प्रधान धर्म माना था, किंतु इन्होंने उसे व्यापक रूप दिया। इनके शिष्योंमें सारीपुत्र, गुद्गलायन आदि मुख्य हैं।

गयामें इन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था। ये जेतवन, विहार कौशाम्बीमें अधिक रहते थे, किंतु परिभ्रमण करते रहते थे। भ्रमण तथा विहरणके कारण ही इनके क्षेत्रका नाम विहार पड़ा। सारनाथ या सारङ्गनाथमें इन्होंने अपना प्रथम उपदेश दिया था तथा अशोकके बुद्धचक्रको धर्मचक्र मानकर प्रचार किया था। इन्होंने जब परमेश्वरके अस्तित्वपर सहमति नहीं की तो लोगोंने इन्हें ही ईश्वर मान लिया था और बौद्धोंने राम-कृष्ण तथा शिव आदि देवोंकी तरह इनकी उपासना की। इनका पञ्चशील प्रसिद्ध है। इनकी सर्वाधिक विस्तृत जीवनी ललितविस्तरपुराणमें उपलब्ध है, परंतु यह बौद्ध पुराण है। हिंदुओंके अठारह महापुराणों तथा उपपुराणोंमें इसकी गणना नहीं है। अग्निपुराण (४९।८-९) में बुद्ध-प्रतिमाका लक्षण इस प्रकार दिया है—

'भगवान् बुद्ध ऊँचे पद्ममय आसनपर बैठे हैं। उनके एक हाथमें वरद तथा दूसरेमें अभयकी मुद्रा है। वे शान्तस्वरूप हैं। उनके शरीरका रंग गोरा और कान लम्बे हैं। वे सुन्दर पीतवस्त्रसे आवृत हैं।'

वे धर्मोपदेश करते हुए कुशीनगर पहुँचे और वहीं उनका देहान्त हो गया। वर्तमानमें वहाँ भव्य मन्दिर और भगवान् बुद्धकी सोयी हुई विशाल प्रतिमा विद्यमान है। बौद्ध-धर्मावलम्बी सहस्रों श्रद्धालु वहाँ जाकर उनका दर्शन कर कृतार्थ होते हैं।

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते। स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥
अवज्ञानमहंकारो दम्भश्चैव गृहे सतः। परितापोपघातौ च पारुष्यं च न शस्यते॥

(विष्णुपु० ३।९।१५-१६)

'अतिथि जिसके घरसे निराश होकर लौट जाता है, उसे अपने समस्त दुष्कर्म देकर वह (अतिथि) उसके पुण्यकर्मोंको स्वयं ले जाता है। गृहस्थके लिये अतिथिके प्रति अपमान, अहङ्कार और दम्भका आचरण करना, उसे देकर पछताना, उसपर प्रहार करना अथवा उससे कटु भाषण करना उचित नहीं है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्वन्तरके आख्यान

महापुराणोंके पाँच मुख्य लक्षण हैं—१-सृष्टि, २-प्रलय, ३-वंश, ४-वंशानुचरित तथा ५-मन्वन्तर। इनमेंसे मन्वन्तरका सम्बन्ध कालकी गणनासे है। मनु तथा मनुपुत्रगण जितने समयतक सप्तद्वीपा वसुमतीका राज्य भोगते हुए धर्मपूर्वक अपनी प्रजाका पालन करते हैं, वह समय मन्वन्तर कहलाता है। मन्वन्तरको समझनेके लिये इस काल-गणनाका ज्ञान आवश्यक है, जो संक्षेपमें इस प्रकार है—

मनुष्यका १ मास =	पितरका १ दिन-रात
मनुष्यका १ वर्ष =	देवताका १ दिन-रात
मनुष्यके ३० वर्ष =	देवताका १ मास
मनुष्यके ३६० वर्ष =	देवताका १ वर्ष (दिव्य वर्ष)
४,३२,००० मानव-वर्ष =	१२०० दिव्य वर्ष=१ कलियुग
८,६४,००० मानव-वर्ष =	२४०० दिव्य वर्ष=१ द्वापरयुग
१२,९६,००० मानव-वर्ष =	३६०० दिव्य वर्ष=१ त्रेतायुग
१७,२८,००० मानव-वर्ष =	४८०० दिव्य वर्ष=१ सत्ययुग
योग-४३,२०,००० मानव-वर्ष =	१२,००० दिव्य वर्ष=एक महायुग या चतुर्युगी

इस प्रकार एक चतुर्युगीमें १२,००० दिव्य वर्ष या ४३,२०,००० मानव-वर्ष होते हैं। इसीको महायुग कहते हैं। ऐसे एकहत्तर युगोंका एक मन्वन्तर होता है, जिसका मान ३०,६७,२०,००० मानव-वर्ष होता है। प्रत्येक मन्वन्तरके अन्तमें सत्ययुगके वर्षोंके बराबर अर्थात् १७,२८,००० वर्षोंकी संध्या होती है। एक मन्वन्तरके मान= ३०,६७,२०,००० वर्षमें संध्याके मान= १७,२८,००० वर्षके योग करनेपर ३०,८४,४८,००० वर्ष होता है, जो संधिसहित एक मन्वन्तरके मानव-वर्ष हैं। अर्थात् संधियुक्त एक मन्वन्तरमें ३०,८४,४८,००० वर्ष होते हैं। ऐसे ही जब १४ मन्वन्तर व्यतीत होते हैं, तब एक कल्प होता है। यही एक कल्प ब्रह्माजीके एक दिनके बराबर होता है। चौदह मन्वन्तर अपनी-अपनी संध्याओंके मानके सहित होते हैं। इसके अतिरिक्त कल्पके आरम्भकालमें भी एक सत्ययुगके मानके बराबरकी संध्या होती है। इस प्रकार एक कल्पके चौदह मनुओंमें ७१ चतुर्युगीके अतिरिक्त सत्ययुगके मानकी १५ संध्याएँ होती हैं। ७१ महायुगोंके मानसे १४ मनुओंमें ९९४ महायुग होते हैं और सत्ययुगके मानकी १५ संध्याओंका काल पूरा ६ महायुगोंके समान हो जाता है। दोनोंका योग मिलानेपर पूरे एक हजार महायुग या दिव्य युग बीत जाते हैं। इसे निम्नरूपमें समझा जा सकता है—

	सौरमान (मानव-वर्ष)	देवमान या दिव्यवर्ष
एक चतुर्युगी (महायुग)	४३,२०,०००	१२,०००
एकहत्तर चतुर्युगी	३०,६७,२०,०००	८,५२,०००
कल्पकी संधि	१७,२८,०००	४८,००
मन्वन्तरकी चौदह संध्याएँ	२,४१,९२,०००	६७,२००
संधिसहित एक मन्वन्तर	३०,८४,४८,०००	८,५६,८००
चौदह संध्यासहित चौदह मन्वन्तर	४,३१,८२,७२,०००	१,१९,९५,२००
कल्पकी संधिसहित चौदह मन्वन्तर या एक कल्प	४,३२,००,००,०००	१,२०,००,०००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्माजीका दिन ही कल्प है, इतनी ही बड़ी उनकी रात्रि है। ब्रह्माके दिनके उदयके साथ ही त्रैलोक्यकी सृष्टि होती है उनके दिनकी समाप्ति होनेपर उतनी ही रात्रि होती है—

ब्रह्माका दिन	=	४,३२,००,००,०००	मानुषी वर्ष
ब्रह्माकी रात्रि	=	४,३२,००,००,०००	
दिन-रात्रिका योग	=	८,६४,००,००,०००	

इसे ३०से गुणा करनेपर ब्रह्माका एक मास होता है और गुणनफलमें पुनः १२से गुणा करनेपर ब्रह्माजीका एक वर्ष होता है—

ब्रह्माका एक दिन-रात---	८,६४,००,००,०००
	× ३०
एक ब्राह्म मास------	२,५९,२०,००,००,०००
	× १२
एक ब्राह्म वर्ष------	३१,१०,४०,००,००,०००

ब्रह्माकी परमायु इस ब्राह्म वर्षके मानसे एक सौ वर्ष है। इसे 'पर' कहते हैं। इस समय ब्रह्माजी अपनी आयुका आधा भाग अर्थात् एक परार्ध (५० वर्ष) बिताकर दूसरे परार्धमें चल रहे हैं। यह उनके ५१वें वर्षका प्रथम दिन या कल्प है। दोनों परार्धोंके आदि और अन्तमें क्रमशः ब्राह्म तथा पाद्म नामक दो विशेष कल्प होते हैं। इस प्रकार ब्रह्माजीके एक मास ३० दिनके ३० कल्प + २ कल्प = ३२ कल्प होते हैं।[१] ब्रह्माके प्रथम परार्धमें कल्पोंकी गणना रथन्तर-कल्पसे होती है। परंतु ब्रह्माके द्वितीय परार्धके आदिका कल्प श्वेतवाराहकल्प होता है। अतः वर्तमान कल्पको श्वेतवाराहकल्प कहा जाता है। यह द्वितीय परार्धका प्रथम कल्प है। इस कल्पके चौदह मन्वन्तरों (चौदह मनुओं) में ६ मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं। वर्तमानमें सप्तम वैवस्वत मन्वन्तरके २७ चतुर्युग (महायुग) बीत चुके हैं और २८वें महायुगके सत्य, त्रेता, द्वापर बीतकर २८वाँ कलियुग चल रहा है।

सृष्टि तथा मन्वन्तरादिकी यह काल-गणना पुराणोंका महत्त्वपूर्ण प्रतिपाद्य विषय है। प्रत्येक धर्म-कर्मादिके अनुष्ठान-कार्योंके आरम्भमें जो संकल्प किया जाता है, उसमें देश और कालका ही स्मरण किया जाता है। संकल्पमें इस ब्रह्माण्डके चतुर्दश भुवनों, सप्तद्वीपों, खण्ड, वर्ष आदि देशके परिमाणके साथ ही सृष्टिकर्ता ब्रह्माके परार्ध, कल्प, मन्वन्तर, युगादिसे लेकर संवत्, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार, लग्नादिका उच्चारण किया जाता है।

इस प्रकार प्रतिकल्प (ब्रह्माके एक दिन) में चौदह मनु होते हैं। चौदहों मनु तथा मनुपुत्र एक-एक कर समस्त पृथ्वीके राजा होकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हैं और अपने-अपने भोग्यकालतक राज्य करते हैं। मनुओंके नामानुसार ही चौदह मन्वन्तरोंके चौदह भिन्न-भिन्न नाम पड़े हैं।

भगवान् विष्णुके नाभिपद्मसे चतुर्मुख ब्रह्माने आविर्भूत होकर मैथुनी सृष्टिके संकल्पको लेकर अपने ही शरीरसे स्वायम्भुव मनु तथा महारानी शतरूपाको प्रकट किया। ये आदिमनु ही स्वयम्भू या स्वायम्भुव प्रथम मनु हैं, जिनके नामसे स्वायम्भुव

१-प्रतिवर्ष सौर गणनासे श्रावण मास (कर्कसे सिंह-संक्रान्तितक) ३२ दिनका होता है और आषाढ़ मास (मिथुनसे कर्क-संक्रान्तितक) भी प्रायः ३२ दिनका होता है। इसलिये ३२ कल्पोंकी गणना की गयी है। शेष ब्राह्म मास ३० दिनों (=३० कल्पों) के ही होंगे। इसलिये मुख्य कल्प ३० ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्वन्तर नाम पड़ा। द्वितीय मनुका नाम स्वारोचिष है। इसी प्रकार क्रमशः औत्तम, तामस, रैवत तथा चाक्षुष—ये छः मनु हुए। इन मनुओं या मन्वन्तरोंका समय व्यतीत हो चुका है। वर्तमानमें वैवस्वत मनु नामके सप्तम मनुका समय चल रहा है। वैवस्वत मन्वन्तरके बाद सात मनु और होंगे, जिनके नाम इस प्रकार हैं—८-सूर्यसावर्णि, ९-दक्षसावर्णि, १०-ब्रह्मसावर्णि, ११-धर्मसावर्णि, १२-रुद्रसावर्णि, १३-रौच्य और १४-भौत्य[1]।

इन मन्वन्तरोंका समय बीत जानेपर सृष्टिमें प्रलय होता है, जो अवान्तर या पार्थिव प्रलय कहलाता है। चौदहों मन्वन्तरोंका पूर्ण समय एक कल्प (ब्रह्माका एक दिन)के बराबर होता है। इस कल्पके अन्तमें होनेवाला प्रलय नैमित्तिक, दैनंदिन या कल्प-प्रलय कहलाता है। ब्रह्माकी आयुके दोनों परार्धोंकी समाप्तिपर प्राकृतिक महाप्रलय होता है, जिसमें सृष्टिकर्ता ब्रह्माका लय होता है। तदनन्तर समस्त ब्रह्माण्डका पूर्ण ब्रह्म परमात्मामें लय होता है, जो आत्यन्तिक प्रलय कहलाता है। पुनः काल, कर्म और स्वभावसे उस निराकारसे साकार सृष्टिकी उत्पत्ति होती है। यही सृष्टि और प्रलयका क्रम अनादिकालसे चला आ रहा है।

पूर्वमें जिन चौदह मनुओंके नामका परिगणन किया गया है, ये ही भूत, वर्तमान और भविष्यत् मनु नामसे कीर्तित होते हैं। प्रत्येक मन्वन्तरमें देवता, देवगण, इन्द्र, सप्तर्षि तथा मनुपुत्र भिन्न-भिन्न होते हैं। प्रति चार युग बीतनेपर वेदविप्लव होता है। इसीलिये सप्तर्षिगण भूतलपर अवतीर्ण होकर वेदका उद्धार करते हैं। मनु प्रत्येक सत्ययुगमें धर्मशास्त्रके प्रणेता होते हैं। मनु तथा मनुपुत्रोंके अधिकारकालतक देवता यज्ञभुक् होते हैं। मनुपुत्र और उनके वंशधर एक मन्वन्तरतक पृथ्वीका पालन करते हैं। मन्वन्तर-भेदसे भगवान् विभिन्न रूपोंमें अवतार ग्रहण करते हैं। आगे इन चौदह मन्वन्तराधिपतियोंका वृत्तान्त दिया जा रहा है, जिनके कथा-माहात्म्य-श्रवणसे मनुष्य पुण्यार्जनमें समर्थ होता है और उसका वंश कभी भी क्षीण नहीं होता। स्वायम्भुव मन्वन्तरके श्रवणसे मनुष्य धर्म-लाभ करता है। स्वारोचिष मन्वन्तरके श्रवणसे मनुष्यकी सभी कामनाएँ सिद्ध होती हैं। औत्तम मन्वन्तरके श्रवणसे धनकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार तामससे ज्ञान, रैवतसे बुद्धि और सुन्दर स्त्री, चाक्षुषसे आरोग्य, वैवस्वतसे बल, सूर्यसावर्णिसे गुणवान् पौत्र, दक्षसावर्णिसे श्रेष्ठ जाति और सद्गुरु, ब्रह्मसावर्णिसे माहात्म्य, धर्मसावर्णिसे शुभ-मति, रुद्रसावर्णिसे जय, रौच्यसे शत्रुनाशक्षमता और भौत्यसे देवप्रसाद, अग्निहोत्रका फल एवं गुणवान् पुत्रकी प्राप्ति होती है।

इन चौदह मन्वन्तरोंके देवगण, ऋषिगण, इन्द्रों, मनुओं, राजाओं और उनके वंशजोंके वृत्तान्तको सुननेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। ये सभी प्रसन्न होकर अच्छी बुद्धि प्रदान करते हैं। देवता, मनु, सप्तर्षि तथा मनुपुत्र और देवताओंके अधिपति इन्द्रगण—ये सभी भगवान् श्रीविष्णुकी ही विभूतियाँ हैं, यथा—

सर्वे च देवा मनवः समस्ताः सप्तर्षयो ये मनुसूनवश्च।
इन्द्रश्च योऽयं त्रिदशेशभूतो विष्णोरशेषास्तु विभूतयस्ताः॥

स्वायम्भुव मनुकी कथा

स्वायम्भुव मनु आदिमनु हैं। भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे आविर्भूत चतुर्मुख प्रजापति ब्रह्मा सृष्टिके अधिष्ठाता हैं। सृष्टि-रचनामें जब उन्होंने देखा कि उनकी मानसी सृष्टिसे उद्भूत सप्तर्षिगण सृष्टि-विस्तारसे विरत हो गये, तब वे विस्मित हुए और चिन्ता करने लगे—'क्या आश्चर्य है! मैं सर्वत्र व्याप्त हूँ, इसपर भी मेरी प्रजाकी नित्य वृद्धि नहीं हो रही है। इससे मालूम होता है कि प्रतिकूल दैव ही इसका एकमात्र कारण है।' इस प्रकार उनके चिन्ता करते ही उनके शरीरसे एक स्त्री-पुरुषका जोड़ा प्रकट हुआ जो सभी दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न था। आत्मसम्भूत यही पुरुष तथा स्त्री—स्वायम्भुव मनु तथा महारानी शतरूपाके नामसे प्रसिद्ध हुए। स्वायम्भुव मनुने उस शतरूपाको ब्रह्माकी आज्ञासे अपनी

१-ये नाम मार्कण्डेयपुराण अ० ५३ से लिये गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मपत्नीके रूपमें ग्रहण किया।

ब्रह्माने स्वायम्भुव मनुको सृष्टि करनेकी आज्ञा दी। उनके आज्ञानुसार स्वायम्भुव मनु तथा महारानी शतरूपा मैथुनी सृष्टि-कर्ममें प्रवृत्त हुए। तभीसे मैथुनी सृष्टिका प्रारम्भ हुआ और मिथुन-धर्मद्वारा प्रजाकी वृद्धि हुई। इन्हीं मनुसे मानव, मनुज तथा मनुष्य आदि शब्द बने। हम सभी महाराज स्वायम्भुव मनुकी संतान हैं, इसलिये मनुष्य तथा मानव कहलाते हैं।

यथासमय उनके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामके दो पुत्र तथा आकूति, देवहूति और प्रसूति नामकी तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। मनुने आकूतिका रुचिके साथ, देवहूतिका कर्दम प्रजापतिके साथ तथा प्रसूतिका दक्षके साथ विवाह कर दिया। रुचिके आकूतिसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम यज्ञ रखा गया। इनकी पत्नीका नाम दक्षिणा था। प्रसूतिके चौबीस कन्याएँ उत्पन्न हुईं, जिन्हें धर्म, भृगु, मरीचि, वसिष्ठादि मुनियों, अग्नि तथा पितरोंने ग्रहण किया। कर्दम प्रजापतिको देवहूतिसे कपिलदेवका जन्म हुआ, जो सांख्यशास्त्रके प्रवर्तक हुए।

स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक जो दो पुत्र थे, उनमेंसे उत्तानपादके ध्रुव तथा उत्तम नामक दो पुत्र हुए। महाराज प्रियव्रतको विश्वकर्माकी पुत्री बर्हिष्मतीसे आग्नीध्र, यज्ञबाहु, मेधातिथि आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए। वे सभी उन्हींके समान शीलवान्, गुणी, कर्मनिष्ठ, रूपवान् और पराक्रमी थे। प्रियव्रतकी दूसरी स्त्रीसे उत्तम, तामस और रैवत—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जो अपने नामवाले मन्वन्तरोंके अधिपति हुए।

एक दिन प्रियव्रतने देखा कि सूर्यके पृथ्वीके एक भागपर प्रकाशित होनेसे दूसरा भाग अन्धकारयुक्त रहता है। तब वे भारी चिन्तामें पड़ गये और कहने लगे—'मेरे शासनकालमें ऐसा व्यतिक्रम नहीं होना चाहिये। योग-प्रभावसे मैं इसका निवारण करूँगा।' इस प्रकार निश्चय करके वे जगत्को आलोकमय करनेके लिये एक सूर्य-सदृश प्रकाशमान रथपर सवार होकर प्रतिदिन सात बार पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करने लगे। उनके पर्यटनसे चक्रनेमिद्वारा जो भूभाग धँस गया था, उसीसे सप्त सागरकी उत्पत्ति हुई और उनके मध्य जो भूभाग थे, वे जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर—इन नामोंवाले सप्तद्वीप कहलाये तथा सात सागर इन सप्तद्वीपोंके परिखास्वरूप हुए। जम्बूद्वीपमें नौ वर्ष हैं, जिनमें भारतवर्ष अन्यतम है।

महाराज प्रियव्रतके दस पुत्रोंमें कवि, महावीर तथा सवन—ये तीन नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे, उन्होंने संन्यास-धर्मका आश्रय ग्रहण किया। शेष सात पुत्र इन सप्तद्वीपोंके अधिपति हुए।

अन्तमें महाराज स्वायम्भुव मनुने समस्त कामनाओं और भोगोंसे विरक्त होकर राज्य छोड़ दिया। वे अपनी पत्नी शतरूपाके साथ तपस्या करने वनमें चले गये। उन्होंने सुनन्दा नदीके किनारे पृथ्वीपर एक पैरसे खड़े रहकर सौ वर्षतक घोर तपस्या की। परमप्रभुकी कृपासे वे इन्द्रके पदपर प्रतिष्ठित होकर स्वर्गका शासन करने लगे। महाराज मनु और महारानी शतरूपाने नैमिषारण्य नामक पवित्र तीर्थमें गोमतीके किनारे भी बहुत समयतक तपस्या की थी। उस स्थानपर इन दोनोंकी समाधियाँ बनी हुई हैं। मनुस्मृति इन्हीं भगवान् मनुकी रचना है। सभी धर्म-कर्म मनुस्मृतिके अनुसार ही होते हैं।

स्वारोचिष मनुकी कथा

पूर्वकालमें 'अरुणास्पद' नगरमें 'वरणा' नदीके तटपर एक सदाचारी ब्राह्मण रहते थे। एक बार उनके मनमें यह बात आयी कि मैं समस्त वसुन्धराका दर्शन करूँ। एक दिन उनके आवास-स्थानपर एक अतिथि आया, जो नाना प्रकारके ओषधियों और उनके प्रभावोंका पूर्ण ज्ञाता था और मन्त्र-विद्यामें भी निपुण था। उसने विश्ववैचित्र्य-दर्शन और अपने मन्त्र एवं ओषधिके प्रभावकी बात कही। उसकी ऐसी बात सुनकर ब्राह्मणने बड़े आदरपूर्वक उससे कहा—'भगवन्! आप अपने मन्त्र और ओषधिके दानसे मुझपर भी ऐसी कृपा करें, क्योंकि इस विस्तृत पृथ्वीके दर्शनके लिये मेरे हृदयमें बड़ी अभिलाषा उत्पन्न हो गयी है।'

यह सुनकर उस उदारहृदय अतिथिने अपने आतिथेय उन ब्राह्मण देवताको पादलेपकी ओषधि दी और उन्होंने जिस दिशामें भ्रमणके लिये कहा, उस दिशाको बड़े प्रयत्नपूर्वक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिमन्त्रित भी कर दिया। वह पादलेप लगाकर वे ब्राह्मण देवता अनेक निर्झर-स्रोतोंसे सुशोभित हिमालयके दर्शनके लिये चल पड़े। उन्होंने सोचा कि जब मैं आधे दिनमें सहस्र योजन चला जाऊँगा, तब आधे दिनमें लौट भी आऊँगा।

बिना आयास-प्रयासके वे हिमालयके ऊपर पहुँच गये और उसके धरातलपर विचरण करने लगे। उनके पैरोंके दबावसे बर्फ पिघलने लगी, जिससे दिव्य ओषधिसे बनाया गया उनका पादलेप धुल गया। उसके बाद उनकी चाल ढीली पड़ गयी और वे इधर-उधर घूमने-फिरने लगे। अपने परिभ्रमणमें उन्होंने हिमवान् पर्वतके शिखरोंका दर्शन किया, जो अत्यन्त मनोरम थे। हिमवान्का दर्शन कर लेनेके बाद वे ब्राह्मण देवता यह सोचकर कि अगले दिन फिर आकर देखूँगा, अपने आवास-स्थलपर लौटनेकी चिन्ता करने लगे, किंतु उनका पादलेप नष्ट हो गया था और वे घरसे बहुत दूर निकल आये थे। वे सोचने लगे कि यहाँ रुकनेपर मेरे धर्म-कर्मानुष्ठानकी हानि हो जायगी, क्योंकि यहाँ अग्निहोत्र प्रभृति कार्य कैसे किये जा सकेंगे।

इस प्रकार सोच-विचारमें पड़े वे ब्राह्मण-देवता हिमालयपर चक्कर लगाते रहे और अपने पादलेपकी ओषधिकी शक्तिके नष्ट हो जानेके कारण बड़े विह्वल थे। उसी समय एक दिव्य अप्सराने, जिसका नाम 'वरूथिनी' था, इधर-उधर भ्रमण करते हुए उन ब्राह्मण मुनिको देखा। उन द्विजवरको देखते ही उसका हृदय उनके प्रति काम-भावनासे आकृष्ट हो गया और तत्काल वह उनपर अनुरक्त हो गयी। वह सोचने लगी कि अत्यन्त रमणीय रूपवाला यह कौन पुरुष है? यदि इसने मेरी उपेक्षा नहीं की तो मेरा जन्म सफल हो जायगा। उधर जब उस ब्राह्मण देवताने उस सुन्दरी वरूथिनीको देखा, तब आवश्यक औपचारिकताके साथ उसके समीप आकर उससे कहा—'तू कौन है और यहाँ क्या कर रही है? मुझे तू यह उपाय बता दे, जिसके सहारे मैं अपने घर पहुँच जाऊँ, जिससे मेरे समस्त धर्म-कर्मानुष्ठानमें कोई क्षति न पहुँचे, क्योंकि यदि द्विजगण अपने नित्य तथा नैमित्तिक धर्मोंका अनुष्ठान न करें तो उन्हें इहलोक और परलोकसम्बन्धी बहुत क्षति पहुँचती है। इसलिये किसी प्रकार इस हिमालयसे मेरा उद्धार कर।'

वरूथिनी बोली—'भगवन्! मैं मौलिकुमारी हूँ, मेरा नाम वरूथिनी है। मैं इस रमणीय महापर्वतपर निरन्तर विहार किया करती हूँ। मैं तो आपके दर्शनमात्रसे कामातुर हो चुकी हूँ और आपकी वशवर्तिनी हूँ। यहाँ जब आप मेरे साथ रहेंगे तो मैं आपके लिये माल्य, परिधान, अलंकार, सुखभोग, भोज्यपदार्थ और अङ्गराग—सबकी व्यवस्था करूँगी। यहाँ किन्नरोंकी वीणा और वेणुकी मधुर ध्वनि सुननेको मिलेगी, उनका मनोरम संगीत आनन्द देगा और यहाँकी वायुका संस्पर्श अङ्ग-प्रत्यङ्गको आह्लादित करेगा। यहाँ आप कभी भी जरावस्थामें नहीं पहुँचेंगे। यह भूमि देवभूमि है, यहाँ निवास करनेसे यौवनकालकी अवधि बहुत बढ़ जाती है।' ऐसा कहकर प्रेमातुर कमलनयनी वरूथिनीने 'कृपा कीजिये, कृपा कीजिये' की मधुर ध्वनिके साथ सहसा बड़ी उत्कण्ठासे उस ब्राह्मणका आलिङ्गन कर लिया।

ब्राह्मणने कहा—'वरूथिनी! यदि तू सचमुच मुझसे प्रेम करती है तो मुझे वह उपाय बता दे जिसके सहारे मैं अपने आवास-स्थलपर चला जाऊँ।' वरूथिनी बोली—'ब्राह्मणदेव! आप विश्वास रखें, आप यहाँसे अपने घर अवश्य चले जायँगे, किंतु कुछ समयके लिये मेरे साथ सुदुर्लभ विषयभोगोंका आनन्द ले लें।' ब्राह्मणने समझाया—'अरी वरूथिनी! शास्त्र विषयभोगका विधान नहीं करते। विषयभोग इस लोकमें तो क्लेशकारक हैं ही, परलोकमें भी उनसे कोई सुफल नहीं मिलता।'

तब वरूथिनीने प्रार्थना की—'ब्राह्मण देवता! आपके बिना मैं मर रही हूँ, आप मुझे अपनाकर मेरे जीवनदाता बनें। ऐसा करनेसे आपको परलोकमें तो पुण्यफल मिलेगा ही, इस लोकमें भी भोग-ही-भोग मिलेंगे।' इसपर ब्राह्मणने कहा—'मेरे गुरुजनोंका आदेश है कि परस्त्रीकी कामना नहीं करनी चाहिये। इसलिये मैं तुझसे प्रेम नहीं कर सकता।'

ऐसा कहकर वे संयतचित्त हुए और शुद्ध होकर उन्होंने जलसे आचमन किया। तदनन्तर उन्होंने मन-ही-मन गार्हपत्य-अग्निको प्रणाम किया। तब गार्हपत्याग्नि देव उनके शरीरमें अनुप्रविष्ट हो गये। गार्हपत्य-अग्निके प्रवेश करते ही वे मूर्तिमान् अग्निदेवके समान प्रभापुञ्जसे परिव्याप्त हो गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उस स्थानको प्रकाशमय करने लगे। उस देवाङ्गनाने जब उन ब्राह्मणकुमारके उस रूपको देखा, तब उनके प्रति उसके हृदयमें अनुरागका भाव भर उठा।

वे ब्राह्मणकुमार, जिनका शरीर गार्हपत्य-अग्निसे तत्काल अधिष्ठित हो चुका था, पूर्ववत् अपने घर जानेके लिये उद्यत हो गये। वरूथिनी उन्हें देखती ही रह गयी; किंतु वे शीघ्रगतिसे वहाँसे चल पड़े और घर पहुँच गये। उधर देवाङ्गना वरूथिनीका उन ब्राह्मणकुमारमें अनुराग प्रतिक्षण बढ़ता ही गया।

एक गन्धर्व था, जिसका नाम कलि था। वह उस देवाङ्गनामें बड़ा अनुरक्त रहता था, किंतु उसने उसे पहले ही तिरस्कृत कर दिया था। गन्धर्वने वरूथिनीको उस अवस्थामें देखा। वह सोचने लगा कि क्या बात है जो इस पर्वतपर यह गजगामिनी देवाङ्गना वरूथिनी निःश्वास-वायुके झोकोंसे म्लानमुखी लग रही है ? पता नहीं, किसी मुनिके शापसे यह दीन-हीन हो गयी है अथवा किसीसे अपमानित हुई है; क्योंकि इसका मुख नेत्रोंसे अश्रुजलके गिरते रहनेसे गीला हो गया है। इस प्रकार कलि गन्धर्व उत्सुकतावश बहुत देरतक अप्सरा वरूथिनीकी दुर्दशापर सोच-विचार करता रहा। अन्ततः उसकी समाहितचित्तताके प्रभावसे उसे सब बातें ज्ञात हो गयीं कि यह सब काम ब्राह्मण मुनिका है। तब उसे प्रतीत हुआ कि मानो उसके पूर्वार्जित पुण्यके फलस्वरूप उसके भाग्यने ही उसके लिये यह सब बात बना दी है। उसने सोचा—'मैं अनुरक्त होकर वरूथिनीसे अनेक बार प्रेम-याचना कर चुका हूँ, जिसे उसने विफल कर दिया है, किंतु अब वह मेरे लिये सुलभ हो जायगी, क्योंकि जब मैं उस ब्राह्मणका रूप धारण कर लूँगा, तब इसमें कोई संदेह नहीं कि वह मुझसे प्रेम करने लगेगी।'

ऐसा निश्चय करते ही उस 'कलि' गन्धर्वने अपने माया-प्रभावसे ब्राह्मणका रूप धारण कर लिया और वहाँ जाकर घूमने लगा जहाँ वरूथिनी बैठी हुई थी। उसे देखकर उस सुन्दरी तन्वङ्गी वरूथिनीके नेत्रकमल कुछ खिल उठे और वह उसके समीप जाकर बार-बार 'कृपा करो, कृपा करो' की रट लगाने लगी और कहने लगी कि तुमसे परित्यक्त हुई मैं अपने प्राण छोड़ दूँगी—इसमें संदेह न करो।

गन्धर्वने कहा—'क्या करूँ! यहाँ रहनेपर मेरे धर्म-कर्मके अनुष्ठानमें हानि होती है और तू ऐसी बात कह रही है। मैं बड़े संकटमें पड़ गया हूँ। अब मैं जैसा कहूँ वैसा तुम करो तो तेरे साथ मेरा प्रेम-मिलन हो जायगा अन्यथा नहीं हो सकता।' वरूथिनीने कहा—'तुम मुझपर कृपा करो। तुम जो कहोगे मैं वही करूँगी। मैं झूठ नहीं बोल रही हूँ। मैं निःशङ्क होकर यह सब कह रही हूँ। यह समझ लो कि मुझे सब प्रकारसे तुम्हारे वशमें ही रहना है।'

समय बीतनेपर वह गर्भवती हो गयी। वरूथिनीके गर्भसे एक पुत्रने जन्म लिया जो अग्निदेवके समान देदीप्यमान था और सूर्यकी भाँति अपने तेजकी किरणोंसे सभी दिग्भागोंको आभासित कर रहा था। इसीलिये वह 'स्वरोचिष्' नामसे प्रसिद्ध हुआ।

स्वरोचिष्ने विद्याधर इन्दीवरकी कन्या मनोरमाके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। उसके बाद वह अपनी धर्मपत्नी मनोरमाके साथ उस उद्यानमें गया, जहाँ उसकी दोनों सखियाँ कलावती और विभावरी—जो पहले दो सुन्दर कन्याएँ थीं, मुनिशापसे कुष्ठ और क्षयके रोगसे पीड़ित पड़ी थीं। आयुर्वेदके मर्मज्ञ एवं अपराजेय उस स्वरोचिष्ने रोगनाशक ओषधि और रसायनोंके प्रयोगसे उन दोनों कन्याओंके शरीरोंको नीरोग बना दिया। अपनी-अपनी व्याधियोंसे छुटकारा पा जानेके बाद वे दोनों कन्याएँ परमसुन्दरी तथा परमकल्याणी हो गयीं। उन दोनोंने अपनेको प्रसन्नतापूर्वक स्वरोचिष्को समर्पित कर दिया और उन्हें क्रमशः पद्मिनी विद्या तथा सभी भूतप्राणियोंकी बोली बोलने तथा समझनेकी शक्ति प्रदान की। स्वरोचिष्ने दोनों कन्याओंका पाणिग्रहण किया। तत्पश्चात् वे अपनी प्रिय पत्नियोंके साथ रमणीय काननों तथा निर्झरोंसे विभूषित उस पर्वतपर विहार करने लगे। कालान्तरमें उन्हें तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

कुछ समय बाद धनुर्धर स्वरोचिष् वनमें विहार करने गये। वहाँ एक मृगीने उनसे आलिङ्गनके लिये अनुनय किया। स्वरोचिष्के आलिङ्गनमात्रसे वह मृगी देवाङ्गना-रूपमें परिणत हो गयी और कहने लगी, 'मैं इस वनकी देवी हूँ। देवताओंने आपकी स्त्रीरूपमें मुझे नियुक्त किया है। आप मुझसे एक ऐसा पुत्र उत्पन्न करें, जो भूर्लोकका परिपालक हो।' तदनन्तर उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवाङ्गनाके गर्भसे एक दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। स्वरोचिष्का पुत्र होनेसे वह स्वारोचिष मनुके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इनका समय ही स्वारोचिष मन्वन्तर कहलाता है, जो द्वितीय मन्वन्तर है।

औत्तम मनुकी कथा

उत्तमका जन्म महाराज उत्तानपादकी पत्नी सुरुचिके गर्भसे हुआ था। वे सर्वत्र महाबली एवं महापराक्रमीके रूपमें प्रसिद्ध थे। धर्मज्ञ उत्तमने वभ्रु-कुमारी बहुलासे विवाह किया था। उनका मन निरन्तर अपनी धर्मपत्नीके प्रति प्रेममय बना रहता था, वे कभी भी किसी दूसरी वस्तु या कार्यमें आसक्त नहीं होते थे, किंतु उन राजाके प्रिय वचन भी रानी बहुलाको बड़े कर्णकटु प्रतीत होते थे और उनके द्वारा किया गया सम्मान भी उसे अपमान-सा लगता था। राजा तो उससे प्रेम करते थे, किंतु वह उन महापुरुष राजासे विरक्त रहती थी।

एक बारकी बात है कि राजाने आसव-पान करते समय उस मनस्विनी रानीसे आसव-पात्र पकड़नेके लिये कहा। राजपुरुषोंके समक्ष ही उसने राजाकी ओरसे मुँह मोड़ लिया। धर्मपत्नीसे इस प्रकार तिरस्कृत होकर राजाने सर्पकी भाँति फुफकार छोड़ते हुए द्वारपालको आज्ञा दी—'इस दुष्टहृदया रानीको ले जाकर किसी निर्जन वनमें छोड़ आओ।'

द्वारपाल राजाज्ञानुसार रानीको निर्जन वनमें छोड़ आया। रानीने इस कार्यको राजाका अनुग्रह ही समझा। राजाने भी किसी दूसरी स्त्रीको अपनी धर्मपत्नीके रूपमें स्वीकार नहीं किया। वे रात-दिन अत्यन्त निर्विण्णहृदय होकर उसी रानीकी स्मृतिमें लीन रहते और धर्मपूर्वक प्रजा-पालन करते हुए राज्यसंचालनमें लगे रहते। इस प्रकार जब राजा अपने आत्मजोंकी भाँति प्रजाजनके पालनमें लगे हुए थे, तब एक दुःखी ब्राह्मण उनके पास आया और कहने लगा—'मैं बड़ा दुःखी हूँ। मेरी बात सुन लें, क्योंकि राजाको छोड़कर और कोई भी दुःखमें पड़े प्रजाजनका रक्षक नहीं होता। बात यह है कि रातमें जब मैं सोया हुआ था, कोई आया और घरका दरवाजा खोले बिना ही मेरी पत्नीका अपहरण कर लिया। आप मेरी पत्नीको ला दें।' राजाने कहा—'जब तुम यह नहीं जानते कि तुम्हारी पत्नीको कौन ले गया और कहाँ ले गया, तब तुम्हीं बताओ कि ऐसी स्थितिमें मैं किसे दण्ड दूँ और कहाँसे तुम्हारी पत्नीको लाकर तुम्हें दूँ?' ब्राह्मणके आग्रह करनेपर राजाने उसकी पत्नीकी आयु, रूप-रंग और शीलस्वभावकी पहचान पूछी।

ब्राह्मणने कहा—'मेरी पत्नी कठोर दृष्टिकी स्त्री है, बड़ी लम्बी है, बहुत छोटे हाथोंवाली है, बड़े पतले मुँहकी है और संक्षेपमें बड़ी कुरूपा है। मैं उसकी निन्दा नहीं कर रहा हूँ, अपितु वह जैसी है वैसी बता रहा हूँ। उसकी बोली बड़ी कर्कश है और उसका स्वभाव भी सौम्य नहीं है। उसके यौवनकी अवस्था कुछ बीत चुकी है।' राजाने कहा—'ऐसी पत्नीसे तुम्हें क्या लेना-देना है? मैं तुम्हें दूसरी पत्नी दूँगा। कल्याणी पत्नीसे ही सुख मिलता है। जो नारी ऐसे रूप और शीलसे युक्त हो, उसका परित्याग ही श्रेयस्कर है।' यह सुनकर ब्राह्मणने कहा—'महाराज! पतिका धर्म पत्नीकी रक्षा करना है, क्योंकि पत्नीकी रक्षा होनेपर ही संतानकी रक्षा हो सकती है। जीव पत्नीमें स्वयं जन्म लेता है, इसलिये पत्नीकी रक्षा करनी चाहिये। संतानकी सुरक्षा करना आत्मरक्षा करना है। यदि पत्नीकी रक्षा न की जाय तो जो संतति होती है, वह वर्णसंकर होती है और वर्णसंकर संतान पूर्वज—पिता-पितामहोंको भी स्वर्गसे गिरानेके लिये पर्याप्त है। उस धर्मपत्नीसे मेरी संततिका जन्म होना है और वह संतति आपके लिये अपनी सम्पत्तिके षष्ठांशको कररूपमें देनेवाली होगी। इस प्रकार वह धर्मका कारण बन जायगी। आप उसे लाकर मुझे दें; क्योंकि प्रजाजनकी रक्षामें आप ही अधिकृत हैं।'

राजाने उस ब्राह्मणकी बातें सुनीं और उनपर सोच-विचार करके वे एक विशाल रथपर बैठ गये। उस रथसे इधर-उधर चलते-फिरते उन्होंने पूरी पृथ्वीका परिभ्रमण कर लिया। अन्ततः एक महारण्यमें एक बड़ा सुन्दर तापसाश्रम देखकर वे उसमें प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने तपस्तेजसे देदीप्यमान एक मुनिको देखा।

राजाको देखकर मुनि उठे और शिष्यसे अर्घ्य लानेको कहा। शिष्यने कहा—'यह राजा अर्घ्यके योग्य नहीं है।' राजाने पूछा—'भगवन्! जानते हुए या अनजानमें मैंने ऐसा कौन-सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य किया है, जिसके कारण आपका अभ्यागत होनेपर भी मैं आपके द्वारा अर्घ्यके योग्य नहीं माना गया।'

ऋषिने कहा—'आपने अपनी पत्नीको वनवासिनी बनाकर अपने समस्त धर्म-कर्मका परित्याग कर दिया है। राजन्! उचित तो यह है कि पत्नी यदि दुष्ट स्वभावकी हो जाय तथापि पतिका कर्तव्य उसकी रक्षा करना है। उस ब्राह्मणकी पत्नी, जिसका अपहरण हुआ है, उसके अनुरूप नहीं थी, किंतु उसने धर्म-कर्मके अनुष्ठानकी अभिलाषासे उसे ढूँढ़ लानेके लिये आपको उद्यत किया है।' यह सुनते ही राजा लज्जित हो गये और उन्होंने उस ब्राह्मणकी अपहृत पत्नीके सम्बन्धमें पूछा—

ऋषिने बताया कि बलाक नामके राक्षसने उस ब्राह्मणकी पत्नीका अपहरण कर उत्पलावर्तक वनमें छोड़ दिया है। आप उसे लाकर शीघ्र उस ब्राह्मणको उसकी पत्नीसे मिला दें। जिससे वह प्रतिदिन पापका पात्र न बनता जाय।

राजा उत्तम अपने रथपर बैठकर उस वनकी ओर चल पड़े। वहाँ उन्होंने उस ब्राह्मण-पत्नीको, जिसका स्वरूप-स्वभाव उसके पतिके द्वारा उन्हें बताया गया था, बेलका फल खाते हुए देखा। राजाने पूछा—'सौभाग्यवती! तुम तो विशालके पुत्र विप्र सुशर्माकी धर्मपत्नी हो। ठीक-ठीक बताओ कि तुम इस वनमें कैसे पहुँची?'

उसने कहा—'महाराज! मैं अपने घरके अन्तिम छोरपर सो रही थी, वहाँसे 'बलाक' नामक दुष्ट राक्षसने मेरा अपहरण कर लिया और मेरे स्वजनोंसे वियुक्त कर दिया है। इस गहन वनमें लाकर उस राक्षसने मुझे छोड़ दिया है। मुझे पता नहीं कि उसने ऐसा क्यों किया, क्योंकि न तो वह मेरा उपभोग करता है और न मुझे खा ही लेता है। वह राक्षस इसी वनके अन्तिम छोरपर रहता है। यदि आप उससे भयभीत नहीं हैं तो उसे वहाँ देख लीजिये।' इसके बाद राजा ब्राह्मणीद्वारा निर्दिष्ट मार्गसे उस वनमें गये और उस राक्षसको सपरिवार देखा। राजाको देखते ही वह शीघ्रतापूर्वक दूरसे ही राजाका अभिनन्दन करनेके लिये अपने मस्तकसे धरतीका स्पर्श करते हुए उनके चरणोंके समीप पहुँच गया और बोला—'महाराज! मेरे आवासस्थलपर आकर आपने मुझपर बड़ी कृपा की है। आप इस अर्घ्यको ग्रहण करें और इस आसनपर विराजें। मैं तो आपके राज्यमें रह रहा हूँ, अतः आप आज्ञा दें कि मुझे क्या करना है?' राजाने कहा—'अरे राक्षस! तूने विधिवत् मेरा आतिथ्य-सत्कार किया है, इससे तो तूने सब कुछ कर दिया, किंतु एक बात यह बता कि तूने ब्राह्मणकी पत्नीका अपहरण क्यों किया?'

राक्षसने उत्तर दिया—'महाराज! हम राक्षस हैं, किंतु मनुष्यमांस-भोजी नहीं। वे राक्षस दूसरे प्रकारके होते हैं जो मनुष्यका मांस भक्षण करते हैं। हम तो लोगोंके पुण्यके फलके भोजी हैं। चाहे आप हमें अपमानित करें या हमारा सम्मान करें, हम तो स्त्रियों और पुरुषोंके स्वभावका भक्षण करते हैं, जीव-जन्तुओंका भक्षण नहीं करते। जब हम मनुष्योंकी क्षमाशीलताका भक्षण कर लेते हैं तब वे हमपर क्रुद्ध हो जाते हैं, किंतु जब हम उनके दुष्ट स्वभावका भक्षण कर लेते हैं, तब वे सुशील हो जाया करते हैं। राजन्! इसका पति बड़ा मन्त्रवेत्ता है, अतः जब मैं किसी यज्ञमें बलि-भक्षणके लिये जाता हूँ, तब वह 'रक्षोघ्न' मन्त्रोंके पाठसे मुझे भगा देता है। इसीलिये मैंने उसकी पत्नीके अपहरणसे उसे अयोग्य बना देनेका उपद्रव किया है, क्योंकि बिना पत्नीके कोई पति यज्ञ-यागके अनुष्ठानके योग्य नहीं रह सकता।'

राजाने कहा—'अरे राक्षस! तूने मुझसे कहा है कि हम मनुष्योंके स्वभावके भक्षक हैं। अब तू मुझे अपना याचक समझ और मैं जो कहता हूँ उसे सुन। आज तू इस ब्राह्मणीके दुष्ट स्वभावका भक्षण कर ले, क्योंकि तेरे द्वारा उसकी दुःशीलताके भक्षण कर लिये जानेपर वह एक सुशील गृहिणी बन जायगी और इसे उसके घर पहुँचा दे।'

राजाज्ञा पाकर वह राक्षस अपनी मायासे उस ब्राह्मणीमें अन्तःप्रविष्ट हो गया और अपनी शक्तिसे उसने उसकी दुःशीलताको भक्षण कर लिया। तब उसने, जिसे भयंकर दुःशीलता छोड़ चुकी थी, राजासे कहा—'राजन्! मेरे पूर्वजन्मके कर्मका ही यह विपाक था, जिसके कारण मैं अपने महात्मा पतिसे वियुक्त कर दी गयी थी। यह राक्षस उसमें हेतुमात्र था। न तो इस राक्षसका कोई दोष है और न मेरे उन महात्मा पतिदेवका। पिछले किसी जन्ममें मेरे द्वारा किसीका विप्रयोग किया गया होगा, अतः मेरे उसी दुष्कर्मके परिणाम-स्वरूप इस जन्ममें मैं अपने पतिसे विप्रयुक्त की गयी हूँ। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा राक्षसका कोई दोष नहीं है।'

तदनन्तर राजाने उस राक्षससे कहा—'अरे राक्षस भाई! यह कार्य कर देनेपर तूने मेरा सब कार्य कर दिया, किंतु भविष्यमें कार्य पड़नेपर जब कभी मैं तेरा स्मरण करूँ, तब तू अवश्य मेरे समक्ष उपस्थित हो जाना।' उस राक्षसने 'जैसी आज्ञा महाराज!' कहकर उस ब्राह्मण-पत्नीको, जो दुःशीलताके दूर हो जानेसे शुद्ध हो गयी थी, अपने साथ लेकर उसके पतिके घर पहुँचा दिया।

अब राजा सोचने लगे कि मैं क्या करूँ, क्योंकि मैंने भी अपनी धर्मपत्नीका परित्याग किया है। इसके लिये उन ज्ञानदृष्टि मुनिवरसे ही पूछना है। अतः उन्होंने अपने रथपर आरूढ़ होकर त्रिकालदर्शी मुनिके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया तथा सब कुछ उन्हें अवगत कराया। मुनिने कहा—'राजन्! आपने जो कुछ किया है वह सब मुझे पहले ही ज्ञात हो गया था। धर्म, अर्थ और कामरूप पुरुषार्थके लिये धर्मपत्नी मुख्य कारण है। आपने अपनी पत्नीका परित्याग करके धर्मका परित्याग किया है।'

राजाने कहा—'मैं क्या करूँ! यह सब मेरे कर्मोंका विपाक है। मैं अपनी पत्नीको प्राण-समान समझता था, किंतु वह मुझसे विमुख रहा करती थी। वस्तुतः यही बात थी, जिसके कारण मैंने उसका परित्याग किया। मैं कुछ नहीं जानता कि वह कहाँ चली गयी अथवा वनमें ही सिंह-व्याघ्र या निशाचरोंने उसे मारकर खा लिया।' तब ऋषिने कहा—'महाराज! उसे सिंह, व्याघ्र अथवा निशाचरोंने नहीं खाया है। वह इस समय पातालमें है।'

राजाने पूछा कि 'उसे पातालमें कौन ले गया? और अबतक उसका चरित्र निर्दुष्ट कैसे है? यह कृपा करके मुझे बता दें।'

ऋषिने कहा—'राजन्! पातालमें कपोतक नामका एक प्रसिद्ध नागराज है। उसने तुम्हारे द्वारा परित्यक्त होनेपर महावनमें इधर-उधर घूमती हुई रानीको देखा। उसके प्रति अनुरक्त होने तथा उससे सम्बद्ध समस्त वृत्तान्तके ज्ञानके कारण वह उसे पाताललोकमें ले गया। महाराज! उस बुद्धिमान् नागराजकी मनोरमा नामकी रूपवती धर्मपत्नी और नन्दा नामकी एक सुन्दरी पुत्री है। नन्दाने यह सोचकर कि रानी सुन्दर है और भविष्यमें उसकी माताकी सौत बनेगी, उसे देखते ही अपने भवनमें ले जाकर अन्तःपुरमें छिपाकर रखा है। नागराजके द्वारा रानीकी याचना करनेपर जब नन्दाने कोई उत्तर नहीं दिया, तब उसके पिता नागराजने अपनी उस पुत्रीको शाप दे दिया—'जा, गूँगी हो जा।' राजन्! नागराजकी वह पुत्री शापके कारण गूँगी बनी पाताललोकमें ही रहती है और तुम्हारी रानीकी सुरक्षा करती है।'

राजाने कहा—'भगवन्! क्या कारण है कि मेरे प्रति और सब लोग तो बहुत अधिक प्रेमभाव रखते हैं, किंतु मेरी अपनी पत्नी मुझसे प्रेम नहीं करती?'

ब्राह्मण बोले—'राजन्! बात ऐसी है कि जब आपसे उसका पाणिग्रहण हो रहा था, तब दोनोंकी कुण्डलियोंमें अत्यन्त विरोधी ग्रह पड़े थे। अब आप जायँ और राजधर्मके अनुसार पृथ्वीका पालन करें तथा अपनी पत्नीके साथ समस्त धर्म-कर्मके अनुष्ठानमें लग जायँ।'

ऋषिके द्वारा ऐसा कहे जानेपर राजा उत्तमने उन्हें प्रणाम किया और अपने रथपर आरूढ़ होकर अपनी राजधानीके लिये प्रस्थान किया। उन्होंने उन ऋषिवरको देखा, जो अपनी शीलवती धर्मपत्नीके साथ होनेसे बड़े प्रसन्नचित्त थे। राजाने कहा—'द्विजराज! अपने धर्मके अनुपालनसे आप तो कृतकृत्य हो गये, किंतु मैं बड़े संकटमें पड़ा हूँ, क्योंकि मेरी पत्नी पातालमें है।' ब्राह्मणने कहा—'यदि आपकी पत्नी जीवित हैं और चरित्रसे निर्दुष्ट भी हैं तो आप उन्हें लायें। मैं मित्रविन्दा-यज्ञद्वारा आपके प्रति उनके हृदयमें प्रेम-भाव उत्पन्न करा दूँगा।'

इसके बाद राजाने पातालसे उसी राक्षसद्वारा अपनी पत्नीको मँगवाया और उन द्विजवरने सात बार मित्रविन्दा-यज्ञका सम्पादन किया।

राजाकी पत्नीने उन्हें बतलाया—'नागराजने मेरी सखी—अपनी पुत्रीको मेरे कारण शाप दिया है कि 'तू गूँगी हो जा' तबसे मेरी सखी गूँगी हो गयी है। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरी सखीके गूँगेपनका प्रतिकार करें।' राजाने उन ब्राह्मण देवतासे उसके गूँगेपनके निराकरणके लिये कहा। ब्राह्मण देवताने सारस्वती इष्टिका अनुष्ठान कर उसके बोलनेकी शक्तिको लौटा दिया। नागलोकमें ऋषिराज गर्गने उस नाग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारीसे कहा—'तुम्हारी सखीके पतिने तुम्हारे लिये अत्यन्त दुष्कर उपकार-कार्य किया है।' नागकुमारी नन्दाको जब ये सब बातें ज्ञात हुईं तो वह द्रुतगतिसे राजाके अन्तःपुरमें पहुँचकर अपनी सखी राजरानीके गले लग गयी। साथ ही बड़े माङ्गलिक वचनोंसे बारंबार राजाकी स्तुति करती हुई आसनपर बैठकर बड़ी मीठी बोलीमें उनसे बोली—'राजन्! आपने मेरा अभी-अभी जो उपकार किया है, उससे मेरा हृदय आपके प्रति कृतज्ञताके भावोंसे आकृष्ट हो गया है। मैं आपसे कुछ निवेदन करूँगी, उसे आप सुन लें। आपको जो पुत्र होगा वह महा-पराक्रमी होगा। उसका राजचक्र इस पृथ्वीमें सर्वत्र अप्रतिहत वेगसे चलता रहेगा। वह अर्थशास्त्रके समस्त तत्त्वोंका मर्मज्ञ होगा, धर्म-कर्मके अनुष्ठानमें तत्पर रहेगा, बड़ा बुद्धिमान् होगा और मन्वन्तरका स्वामी 'मनु' हो जायगा।'

नन्दा राजाको इस प्रकारका वर देकर अपनी सखी राजरानीका आलिङ्गन करके पाताललोकके लिये प्रस्थान कर गयी। इधर राजाको अपनी पत्नीके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो चक्रवर्ती सम्राट् हुआ और वही औत्तम नामसे प्रसिद्ध मनु हुआ।

(म० प्र० गो०)

तामस मनुकी कथा

स्वराष्ट्र नामक एक महापराक्रमी राजा थे, उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने उन्हें लम्बी आयु दी थी। उन राजाके सौ पत्नियाँ थीं। स्वयं तो वे दीर्घायु थे, किंतु उनकी पत्नियाँ अल्पायु थीं। कालके कोपसे वे सब मरती जाती थीं और उनके भृत्यगण तथा मन्त्रिगण भी कालके गालमें चले जा रहे थे। अपनी पत्नियों और अपने सहजन्मा सेवकोंसे वियुक्त हो जानेपर राजाका हृदय बड़ा उद्विग्न रहा करता था। इस प्रकार उन्हें अत्यन्त दुःखी देखकर उनके राष्ट्रके समीपवर्ती विमर्द नामक राजाने उनका राज्य छीन लिया। राज्यच्युत हो जानेपर वे अत्यन्त दुःखी होकर वनमें चले गये और वितस्ता नदीके तटपर तपश्चरणमें लग गये।

एक बार वितस्ताकी बाढ़से वे जलाप्लावमें डूबते-उतराते एक हिरनीके पूँछके सहारे किसी प्रकार एक रमणीय वनमें जा पहुँचे। अन्धकारमें दौड़ते हुए राजा उस मृगीके स्पर्शसे सम्भूत परम आनन्दमें मग्न होकर कामातुर हो गये। हिरनीने पूछा—'महाराज! आप काँपते हाथोंसे मेरी पीठ क्यों छू रहे हैं। आपका यह आचरण मुझे कुछ दूसरे प्रकारका प्रतीत हो रहा है। आपका मन कहीं अनुचित स्थानपर तो नहीं चला गया है? राजन्! मैं आपके रतिक्रीडनके अयोग्य तो नहीं हूँ, किंतु मेरे पेटमें जो गर्भ बैठा है, वही मुझसे आपकी क्रीडामें विघ्न कर रहा है।'

राजा उस मृगीकी ऐसी बात सुनकर बड़े कुतूहलमें पड़ गये। तब उन्होंने उससे पूछा—'तू कौन है? मृगी भला मनुष्यवाणीमें कैसे बोल सकती है? और यह गर्भ कौन है? जो तेरे साथ मेरे सहवासमें विघ्न डाल रहा है?'

मृगीने कहा—'मैं पहले दृढधन्वाकी पुत्री उत्पलावती थी, आपकी प्रियपत्नी थी और आपकी सैकड़ों पत्नियोंमें सर्वप्रथम राजमहिषी थी। पहले किसी समय जब मैं पितृगृहमें किशोरी थी, तब अपनी सखियोंके साथ विहार करनेके लिये एक वनमें गयी। वहाँ मैंने एक मृगके साथ एक मृगीको देखा। वह मृगी मेरे समीप थी और मैंने उसे मारा। मुझसे भयभीत होकर वह वहाँसे अन्यत्र भाग गयी, जिससे मृग क्रुद्ध हो गया और मुझसे बोला—'अरी मूढ़ किशोरी! तू इस प्रकार मतवाली हो रही है, तेरी ऐसी दुःशीलताको धिक्कार है। मेरा यह क्षण तूने निष्फल कर दिया।' मनुष्यकी भाँति उस मृगकी वाणी सुनकर मैं डर गयी। तब मैंने उससे पूछा—'तू कौन है? तेरा इस मृगयोनिमें जन्म क्यों हुआ?' तब उसने बताया—'मैं निर्वृतिचक्षु नामक ऋषिका पुत्र हूँ, मेरा नाम सुतपस् (सुतपा) है। एक मृगीपर कामातुर हो जानेके कारण मैं मृग हो गया हूँ। तू बड़ी दुष्टा है। तूने मुझे उससे वियुक्त कर दिया, इसलिये मैं तुझे शाप देता हूँ।' मैंने उनसे कहा—'मुनिवर! अज्ञानवश मुझसे यह अपराध हो गया है। आप मुझपर कृपा करके मुझे शाप न दें।' तब उन्होंने कहा—'यदि तू आत्मसमर्पण कर दे तो मैं तुझे शाप नहीं दूँगा।'

मैंने उस मृगसे कहा—'मैं मृगी नहीं हूँ, इस वनमें तुझे कोई दूसरी मृगी मिल जायगी। तू मेरे प्रति अपना यह कामभाव हटा ले।' मेरे ऐसा कहनेपर उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और ओठ फड़कने लगे। तब उसने कहा—'अरी मूढ़! तूने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा कि मैं मृगी नहीं हूँ तो जा, तू मृगी हो जा।' ऐसी बात सुनकर मैं अत्यन्त दुःखी हो गयी और उस मृगरूपधारी मुनिसे जब वे मनुष्यरूपमें परिवर्तित होकर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये, तब इस प्रकार बोली—'मुनिवर ! आप मुझपर कृपा करें। मैं एक अबोध बाला हूँ। मैं क्या बोलना चाहिये—यह भी नहीं जानती। इसीलिये मेरे मुँहसे ऐसी बात निकल गयी है। मुनिवर ! मेरे तो पिता जीवित हैं, ऐसी दशामें मैं अपने मनसे कैसे पतिका वरण कर लूँ। आप मुझपर कृपा करें।'

यह सुनकर मुनिवरने कहा—'मेरे मुखसे जो बात निकल गयी, वह कदापि अन्यथा नहीं हो सकती। इस जन्ममें जब तू मरेगी, तब इसी वनमें मृगीके रूपमें जन्म लेगी। तब सिद्धवीर्य नामक मुनिका 'लोल' नामक पुत्र तेरे गर्भमें आयेगा। उसके गर्भमें आनेपर तुझे अपने पूर्वजन्मकी स्मृति हो जायगी और तब तू मनुष्यकी वाणीमें बोलने लगेगी। जब उसका जन्म हो जायगा, तब तेरा इस मृगीरूपसे छुटकारा हो जायगा तथा तेरा पति तुझे मानने लगेगा और तू उन लोकोंको प्राप्त कर लेगी, जिन्हें दुष्कर्म करनेवाले नहीं प्राप्त कर सकते। तेरा पुत्र लोल महावीर्यशाली होगा और अपने पिताके शत्रुओंको परास्त कर समस्त भूलोकपर विजय पायेगा। इसके बाद वह 'मनु' हो जायगा।'

ऐसा शाप पाकर जब मैं मरी तो तिर्यग्योनि (मृगयोनि)-में पहुँच गयी और अब आपके स्पर्शमात्रसे मैं गर्भवती हो गयी हूँ। इसीलिये मैंने कहा था कि 'मुझमें जो आपका मन लग गया है वह अनुचित स्थानमें नहीं लगा है। मैं आपके सहवासके अयोग्य भी नहीं हूँ। केवल मेरे गर्भमें अवस्थित जो लोल है, वही आपके साथ मेरी रति-लीलामें बाधक बन रहा है।'

ऐसा कहे जानेपर वे राजा यह जानकर कि उनका पुत्र शत्रुञ्जय होगा और भूलोकमें 'मनु'के रूपमें अवतीर्ण होगा, अत्यधिक आनन्दित हुए। कुछ समय बाद उस मृगीने महापुरुषके लक्षणोंसे लक्षित पुत्रको जन्म दिया। उसके जन्म लेते ही समस्त जीव-जन्तु प्रसन्न हो गये। राजा तो विशेष रूपसे आनन्दित हुए। साथ ही वह मृगी भी शापविमुक्त हो गयी और श्रेष्ठ लोकमें चली गयी।

सभी ऋषि-महर्षि उस पुत्रके समीप एकत्र हुए और उसकी होनेवाली ऐश्वर्यसमृद्धिको जानकर उन्होंने उसका नामकरण करते हुए कहा—'इस पुत्रने तामसी योनिमें जन्म पानेवाली जननीके गर्भसे जन्म लिया है और उस समय जन्म लिया जब सारा संसार तमसावृत था, इसलिये इसका नाम 'तामस' होगा। वह 'तामस' अपने पिताके द्वारा उस वनमें ही पालित-पोषित हुआ। जब उसमें बुद्धि विकसित होने लगी, तब उसने अपने पितासे पूछा—'पिताजी ! आप कौन हैं ? मैं कैसे आपका पुत्र हूँ ? मेरी माता कौन है ? आप यहाँ किस लिये आये हैं ?'

अपने पुत्रकी ये बातें सुनकर पिताने, जो महापराक्रमी पृथ्वी-पालक राजा थे, अपने राज्यसे परिच्युत होने आदिसे सम्बद्ध सारी घटनाएँ, जैसे वे घटी थीं, अपने पुत्रको बता दीं। उसे सुनकर उसने भगवान् सूर्यकी आराधनासे दिव्य अस्त्रोंको प्राप्त किया तथा उनके साथ ही उन अस्त्रोंके निवर्तनके मन्त्र भी जान लिये। दिव्यास्त्रोंके प्रयोगमें प्रवीण होकर उसने अपने पिताके शत्रुओंको पराजित करके उन्हें पिताके शरणागत कर दिया। तत्पश्चात् अपने धर्मपालनपर कटिबद्ध होते हुए उसने उन सब शत्रुओंको छोड़ दिया, जिनके विषयमें उसके पिताने आज्ञा दी। उसके पिताने भी, जो प्रसन्नतापूर्वक अपने पुत्रका मुख देख चुके थे, शरीर-त्यागके बाद तपश्चरण तथा क्रतु-सम्पादनसे अर्जित दिव्य लोकोंको प्राप्त कर लिया। तामस नामका वह राजकुमार जब राजा हुआ, तब उसने समस्त भूमण्डलपर विजय पायी और वही 'तामस' नामक मनु हुआ।

रैवत मनुकी कथा

ऋतवाक् नामक एक ऋषि थे, उनके रेवती नक्षत्रके अन्तिम चरणमें एक पुत्र हुआ, जो शीलहीन निकला। उसके जन्म लेते ही मुनि भी लम्बी बीमारीसे ग्रस्त हो गये और उनकी पत्नी कुष्ठरोगसे पीड़ित हो गयी। बड़े दुःखी हृदयसे ऋतवाक्ने कहा कि 'मनुष्यके लिये अपुत्रता कुपुत्रतासे अधिक श्रेयस्कर है।'

उन्होंने इस विषयमें गर्ग ऋषिसे पूछा। तब ऋषिराज गर्गने कहा—'मुनिवर ! इस पुत्रने रेवती नक्षत्रके अन्तिम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणमें जन्म लिया है। यह काल बड़ा दुष्ट होता है, इसी कारण आप दुःखी हैं। इसमें न तो आपका कोई अपराध है, न आपके पुत्रका, न उसकी माताका और न आपके कुलका। आपके पुत्रके दुश्चारित्र्यका कारण यही काल है।'

यह सुनकर ऋतवाक् बोले—'मुनिवर! यदि रेवती नक्षत्रके अन्तिम चरणमें जन्म लेनेके कारण मेरे एकमात्र पुत्रका स्वभाव इतना दुष्ट हो गया है तो मैं शाप देता हूँ कि रेवती नक्षत्र आकाशसे गिर पड़े।'

ऋतवाक् मुनिके ऐसे शापोच्चारके कारण रेवती तारा त्रिलोकीके प्राणियोंकी आँखोंके सामने आकाशसे नीचे गिर पड़ी। गिरते समय वह कुमुदाद्रिपर गिरी। उसके आलोकसे कुमुद पर्वतके वन, कन्दर और निर्झर प्रकाशित हो उठे। रेवती नक्षत्रके पतनके कारण कुमुदाद्रि 'रैवतक' पर्वतके नामसे प्रसिद्ध हो गया। यह रैवतक पर्वत समस्त भूलोकमें अत्यन्त रमणीय पर्वत है। रेवती नक्षत्रकी जो कान्ति थी, वह पङ्कजिनी नामक सरोवरके रूपमें परिणत हो गयी, जिससे एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। उस कन्याको देखकर प्रमुच नामक मुनिने उसका नाम रेवती रख दिया। अपने आश्रमके समीप जन्म लेनेके कारण प्रमुच मुनिने उसका उसी महापर्वत (रैवतक) पर पालन-पोषण किया। उस रूपवती कन्याको यौवनावस्थामें पहुँची हुई देखकर उनके मनमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि इसका पति कौन होगा? इसी चिन्तामें प्रमुचका बहुत समय व्यतीत हो गया; किंतु उन्हें उसके योग्य कोई वर नहीं मिल पाया। तब वे कन्याके वरके विषयमें जाननेके लिये अग्निशालामें गये और अग्निदेवसे पूछे। अग्निदेवने उनसे कहा—'इस कन्याका पति दुर्गम नामका एक राजा होगा, जो महाबली, महावीर्यशाली, प्रियभाषी तथा धर्मपालक होगा।'

तदनन्तर संयोगवश राजा विक्रमशीलका पुत्र दुर्गम आखेटके प्रसंगसे प्रमुच मुनिके आश्रममें आया। वह राजा प्रियव्रतके वंशका था और बड़ा बली था। जब वह प्रमुच मुनिके आश्रममें पहुँचा, तब उसने उस रूपवती कन्याको देखा और वहाँ प्रमुच मुनिको न देखकर उसे 'प्रिये' सम्बोधित कर पूछा—'सुन्दरि! भगवान् मुनिराज इस आश्रमसे कहाँ गये हैं? मैं उन्हें प्रणाम करनेका इच्छुक हूँ।' अग्निशालामें गये हुए द्विजवर प्रमुच मुनिने उस राजाकी बोली सुनी और 'प्रिये' का आमन्त्रण सुनते ही वे शीघ्रतासे बाहर निकल पड़े। उन्होंने राजा दुर्गमको देखा, जो समस्त राजलक्षणोंसे सुशोभित था और उनके सामने विनयावनत पड़ा था। उसे देखते ही उन्होंने अपने शिष्य गौतमसे कहा—'गौतम! शीघ्रातिशीघ्र महाराजके लिये अर्घ्य ले आओ। एक तो ये राजा हैं, जो बहुत समयके बाद मेरे आश्रमपर पधारे हैं, दूसरे विशेषरूपसे मेरे जामाता (दामाद) हैं, जिसके कारण मेरी दृष्टिमें अर्घ्य-ग्रहणके सर्वथा योग्य हैं।'

राजा इस सोचमें पड़ गया कि वह प्रमुच मुनिका जामाता कैसे हो सकता है? किंतु मौन रहकर उसने अर्घ्य ग्रहण कर लिया। उन महामुनिने राजाका स्वागत-सत्कार किया और उससे उसके राजभवन, राजकोष, सैन्यबल, मित्र-राजगण, सेवकवृन्द और अमात्यमण्डलके कुशल-मङ्गलके विषयमें पूछा। अन्तमें उसका कुशलक्षेम जानना चाहा; क्योंकि समस्त प्रकृतिवर्ग तो राजामें ही अन्ततः प्रतिष्ठित रहता है। पुनः ऋषि-आश्रममें रहनेवाली उसकी पत्नीके कुशल-मङ्गलकी भी जिज्ञासा की।

राजाने आश्चर्यपूर्वक कहा—'मुनिवर! आपकी कृपासे मेरी किसी भी वस्तुमें कोई अकुशल-वार्ता नहीं है, किंतु मुनिराज! यहाँ मेरी कौन पत्नी है? इस विषयमें मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।' ऋषिने कहा—'राजन्! सौभाग्यशालिनी, त्रैलोक्यसुन्दरी तथा रमणीरत्न 'रेवती' नामकी अपनी पत्नीको क्या तुम नहीं जानते?'

राजाने कहा—'द्विजवर! मेरे घरपर 'रेवती' नामकी मेरी कोई पत्नी नहीं है।' ऋषि बोले—'जिस सुन्दरीको अभी-अभी तुमने 'प्रिये' सम्बोधनसे सम्बोधित किया, वही रेवती तुम्हारी श्लाघनीया गृहिणी है।' तब राजाने कहा—'मुनिवर! यहाँ आश्रममें रहनेवाली एक कन्याको मैंने 'प्रिये' अवश्य कहा है, किंतु उसके प्रति मेरे मनमें कोई दुर्भाव न था। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि ऐसे सम्बोधनके लिये आप मुझपर क्रोध न करें।' ऋषिने कहा—'राजन्! तुम सच कह रहे हो। 'प्रिये' सम्बोधनमें तुम्हारे मनमें कोई दुर्भाव नहीं था। यह सम्बोधन तुमने अग्निदेवकी प्रेरणासे ही किया था। राजन्! अग्निशालामें मैं अग्निदेवसे यही पूछ रहा था कि 'मेरी कुमारी कन्याका कौन पति होगा?' अग्निदेवने तुम्हींको इसका पति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताया, जो आज वररूपमें यहाँ आये हो।' ऋषिके ऐसा कहनेपर राजा चुप हो गया और ऋषिने कन्याकी वैवाहिक विधि सम्पन्न करनेका उद्यम किया। तब उस कन्याने अपने पितास्वरूप ऋषिसे विनीतभावसे सिर झुकाये हुए कहा—'पिताजी! यदि आप मुझसे स्नेह करते हैं तो मेरा विवाह रेवती नक्षत्रमें कर दीजिये।'

उन महामुनिने अपने तपोबलसे रेवती नक्षत्रको पहलेकी भाँति आकाशमें स्थित कर चन्द्रमासे संयुक्त कर दिया। उन्होंने अपनी कन्याका उस राजाके साथ विवाह भी कर दिया और प्रसन्न होकर अपने जामातासे कहा—'राजन्! कहिये, विवाहके उपलक्ष्यमें मैं आपको क्या दूँ?' राजा बोला—'मैं स्वायम्भुव मनुके वंशमें उत्पन्न हुआ हूँ। आपकी यदि कृपा हो तो आपसे मैं अपने लिये ऐसे पुत्रको माँगता हूँ, जो मन्वन्तरका अधीश्वर हो।' ऋषि बोले—'आपकी यह कामना पूरी होगी। आपका पुत्र ऐसा 'मनु' होगा जो सम्पूर्ण भूमण्डलका भोग करेगा और धर्मवेत्ता होगा।' उनकी पत्नी रेवतीसे जो पुत्र हुआ वही 'रैवत' नामका मनु हुआ। वे रैवत मनु समस्त ज्ञान एवं धर्मोंसे समन्वित तथा शौर्यमें अपराजेय थे।

(म० प्र० गो०)

चाक्षुष मनुकी कथा

अवनीन्द्र और गिरिभद्रा नामक एक क्षत्रिय दम्पति थे। उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम चाक्षुष था। जब चाक्षुषने जन्म लिया, तब उसकी माता उसे अपनी गोदमें बैठाकर उससे बोल-बोलकर उसकी वाणी खुलवानेके लिये बार-बार प्रयत्न करती और बड़े प्रेमसे उसे गले लगाती। 'वह कुछ बोले'—इसके लिये उससे कुछ-न-कुछ बोला करती थी। अपनी माताकी गोदमें बैठे हुए उस बालकको पूर्वजन्मका स्मरण हो आया और वह हँस पड़ा। उसे हँसते देखकर उसकी माता बोली—'बेटा! यह तुम्हारे मुखपर हँसी कैसी है?'

बालकने कहा—'माँ! सामने बैठी बिल्लीको तो देखो, यह मुझे खा लेना चाहती है। और दूसरी जो बच्चोंको चुरानेवाली डाइन थी और अभी-अभी कहीं अन्तर्हित हो गयी है, उसे भी तुमने नहीं देखा।' अब इस हँसीका जो कारण है, वह सुनो—'बिल्ली स्वार्थलिप्त होनेके कारण मुझे बार-बार देख रही है। जातहारिणी (बच्चोंको चुरानेवाली) भी अपने स्वार्थवश मुझपर बहुत स्निग्धहृदय हो रही थी। तुम भी अपने स्वार्थकी दृष्टिसे ही मुझपर अपनी स्निग्ध दृष्टि डाल रही हो। उन दोनों और तुममें भेद यही है कि वे दोनों तो अविलम्ब मेरा उपभोग करना चाह रही थीं और तुम क्रमशः मुझसे मिलनेवाले फलके उपभोगकी इच्छुक हो। तुम तो यह जानती नहीं कि मैं कौन हूँ और न मेरे द्वारा तुम्हारा कोई उपकार ही हुआ है। तुम्हारी और मेरी संगति भी अधिक-से-अधिक पाँच या सात दिनतक ही चल पायेगी।'

यह सुनकर माता बोली—'तुझसे मेरा कोई उपकार होगा—इसलिये मैं तुझे गले नहीं लगा रही थी। यदि मेरी यह चेष्टा तुझे अच्छी नहीं लगती, तब तो मैं यही समझूँगी कि तूने मुझसे मुँह मोड़ लिया है।' फिर वह बालकको छोड़कर सूतिकागृहसे बाहर चली गयी।

माताके बाहर जाते ही जातहारिणी डाइन माताके द्वारा परित्यक्त उस बालकको चुरा ले गयी। उसे तो महाराज विक्रान्तकी पत्नीके पर्यङ्कपर रख दिया और वहाँसे उसके बच्चेको उठाकर वह किसी दूसरेके घरमें रख आयी और उसके बच्चेकी देह क्रमशः खा गयी। वह जातहारिणी एकके बाद एक इस प्रकार तीन बच्चोंको चुराती थी और जो तीसरा होता उसे बड़ी क्रूरताके साथ खा जाती थी और जिन दो बच्चोंको नहीं खाती थी, उनकी अदला-बदली कर देती थी। यही उसका प्रतिदिनका काम था।

राजा विक्रान्तने उस बालकके भी वे सभी संस्कार सम्पन्न करवाये, जो क्षत्रिय-बालकके होते हैं। राजाने नामकरण-संस्कारकी विधिके अनुसार उस बालकका नाम 'आनन्द' रखा और वे प्रसन्नतासे गद्गद हो गये। उपनयन-संस्कार हो जानेपर गुरुने कुमारावस्थामें पहुँचे हुए उस बालकसे कहा—'तुम पहले अपनी माताके सम्मुख जाओ और उनका अभिवादन करो।' गुरुकी इस बातको सुनकर बालक हँस पड़ा और गुरुसे कहने लगा—'मैं किस माताका अभिवादन करूँ? उसका, जो मेरी जन्मदायिनी है अथवा उसका, जो मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालनकारिणी है, क्योंकि जिसने मेरा पालन किया है वह चैत्र नामक बालककी जननी है, जो 'विशाल' नामक ग्रामके निवासी 'अग्र्यबोध' नामक ब्राह्मणका पुत्र है। इस जननीसे चैत्रका जन्म हुआ। मेरा जन्म एक दूसरी जननीसे हुआ है।' गुरुके पुनः जिज्ञासा करनेपर उसने कहा—'द्विजवर ! मैं तो 'अवनीन्द्र' नामक एक क्षत्रिय पिताका पुत्र हूँ, मेरा जन्म उनकी धर्मपत्नी 'गिरिभद्रा' से हुआ है। जन्म लेते ही मुझे एक जातहारिणी उठा ले आयी और यहाँ रख गयी। उसने हैमिनीके नवजात बालकको ले जाकर बोध नामक एक ब्राह्मणवर्यके घरमें रख दिया। उसने 'बोध' नामक ब्राह्मण-पुत्रको तो खा लिया और हैमिनीका जो पुत्र था, उसके वे सब संस्कार हो चुके जो ब्राह्मण-पुत्रके लिये विहित हैं। महाभाग ! आप मेरे गुरु हैं, क्योंकि आपने मेरा उपनयन-संस्कार किया है। आपकी आज्ञाका पालन करना मेरा धर्म है। आप ही बतायें कि मैं किस माताके सामने जाऊँ और उसे प्रणाम करूँ ?'

गुरुने कहा—'वत्स ! यह तो बहुत बड़ा संकट आ पहुँचा। मुझे तो कुछ समझमें नहीं आ रहा है। मेरी बुद्धि तो चकरा रही है।' तब आनन्दने कहा—'जब संसारकी यही दशा है तो इसमें मोहका कैसा अवसर ! इस संसारमें कौन किसका पुत्र है ? और कौन किसका बन्धु-बान्धव है ? जन्म होनेके बाद ही कोई किन्हीं लोगोंके साथ किसी-न-किसी नातेसे जुड़ जाता है और उसके जो दूसरे सम्बन्धी हैं, वे मृत्युके द्वारा दूर कर दिये जाते हैं। साथ-ही-साथ जो जन्म लेता है और जीवित रहता है, उसका उसके बान्धवोंसे जो सम्बन्ध है वह भी उसके शरीर-नाश होनेपर समाप्त हो जाता है। यही इस संसारकी गति है। इसीलिये मैं कह रहा हूँ कि इस संसारमें रहनेवाला कोई भी बन्धु-बान्धव हो सकता है। अथवा कौन ऐसा है जो किसीका सदा बन्धु-बान्धव रहा करता है। इसलिये गुरुजी ! मैं तो तपस्या करूँगा। आप इस राजाका जो पुत्र है, जिसका नाम चैत्र है, उसे विशालग्रामके विप्रगृहसे ले आइये।'

यह सुनकर राजा बड़े विस्मित हुए और रानी तथा अन्य सगे-सम्बन्धी भी विस्मयमें पड़ गये। राजाने उस बालकको अपना पितृप्रेम हटाया और उसे तपश्चरणके लिये वनमें जानेकी अनुमति दे दी। वे चैत्रको, जो उनका अपना पुत्र था, ले आये और उसे राजा बननेके योग्य बना दिया। उन्होंने उस ब्राह्मणका बड़ा सम्मान-सत्कार किया, जिसने चैत्रको अपना पुत्र मानकर पाला-पोसा था। आनन्द भी बाल्यावस्थामें ही महावनमें चला गया और मोक्ष-प्राप्तिके लिये उसने अपने-आपको तपस्यामें लगा दिया। उसे तपश्चरणमें लीन देखकर ब्रह्माजी उपस्थित हुए और उससे कहे—'वत्स ! इतनी घोर तपस्या क्यों कर रहे हो ? बोलो, क्या बात है ?' आनन्द बोला—'भगवन् ! आत्मशुद्धिकी कामनासे मैं यह तप कर रहा हूँ। मेरे जो कर्म संसार-बन्धनके कारण हैं उनके नाशके लिये मैं उद्यत हो गया हूँ।' ब्रह्माजी बोले—'मोक्ष पानेके योग्य तो वह होता है, जिसके कर्म तथा कर्मफल-स्वामित्वका क्षय हो जाता है। कर्मवान् मनुष्य मोक्षके योग्य नहीं होता। तुम्हारा तो समस्त प्राणिवर्गपर स्वामित्व होगा और उसकी समाप्तिपर तुम्हें मोक्ष मिलेगा। तुम्हें छठा मनु बनना है। इसलिये यहाँसे जाओ और मनु हो जाओ। बादमें तुम्हारी मुक्ति हो जायगी।'

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर वह बुद्धिमान् बालक भी 'आपकी आज्ञाका पालन करूँगा' यह कहकर तपस्यासे विरत हो गया और मनु बननेके उपयुक्त धर्म-कर्मानुष्ठानमें लग गया। तपस्यासे विरत करते हुए ब्रह्माजीने उसे 'चाक्षुष' कहा था। ब्रह्माद्वारा प्रदत्त अपने पहले नाम अर्थात् 'चाक्षुष' नामसे ही वह प्रसिद्ध चाक्षुष मनु हुआ। (म० प्र० गो०)

वैवस्वत मनुकी कथा

विश्वकर्माकी पुत्री 'संज्ञा' भगवान् सूर्यकी पत्नी थी। सूर्य भगवान्ने उससे महायशस्वी तथा विविध ज्ञानपारङ्गत 'मनु'-को जन्म दिया। विवस्वान्के पुत्र होनेके कारण उनका नाम वैवस्वत पड़ा। भगवान् सूर्यके दूसरे पुत्रका नाम यम और पुत्रीका नाम यमुना था।

सूर्यके असह्य तेजको न सह सकनेके कारण 'संज्ञा' अपने पिताके घर चली गयी। इसके पूर्व उसने अपनी देहको दूसरी छायाके रूपमें परिवर्तित कर उससे कहा—'मेरे पति सूर्य भगवान्के भवनमें जैसे मैं अपनी संतानोंसे सौम्य व्यवहार किया करती थी, वैसे तू भी करना और मेरे पति सूर्यदेवके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति भी सौम्य व्यवहार करना तथा पतिके पूछनेपर भी मेरे पिताके घर चले जानेकी बात न बताना।'

छायाने संज्ञासे कहा—'देवि! जबतक सूर्यदेव मेरे केशपाश पकड़कर न खींचें अथवा शाप न दें तबतक वैसा ही करती रहूँगी।' छायाके इस प्रकार आश्वस्त करनेपर संज्ञा देवी अपने पिता विश्वकर्माके घर चली गयी।

कुछ दिन बाद फिर वहाँसे चलकर वह सूर्यके तेजसे भय खाती हुई उत्तरकुरुदेशमें वडवा (घोड़ी) का रूप धारण करके तपस्या करने लगी। छायाको ही वास्तविक संज्ञा मानकर सूर्य भगवान्ने उससे दो पुत्र और एक सुन्दर कन्याको प्राप्त किया। छायाका अपनी संतानोंके प्रति जैसा मातृवात्सल्य था, वैसा संज्ञाके पुत्रों और पुत्रीके प्रति नहीं था। माँके लाड़-प्यार आदि सुखके भोगोंमें प्रतिदिनका यह भेद-भाव मनुने तो सहन कर लिया, किंतु यमके लिये यह सब असह्य हो गया। यमने छायाके ताडनके लिये क्रोधवश अपना पैर तो उठा लिया, किंतु क्षमा-प्रदानके भावसे उसे उसके शरीरपर नहीं गिरने दिया। छाया क्रोधाकुल हो उठी और उसने यमको शाप दे दिया—'तू अपनी माँको इस प्रकार उद्दण्डतापूर्वक पैर उठाकर धमका रहा है। जा, तेरा पैर आज ही तेरे शरीरसे अलग होकर धरतीपर गिर जायगा।' यम माताके द्वारा दिये गये शाप-वचनको सुनकर भयभीत हो पिताके पास गया और उन्हें प्रणाम करनेके बाद उसने उनसे कहा—'पिताजी! एक बहुत बड़ा आश्चर्य है, जिसे आजतक किसीने नहीं देखा है। क्या माता वात्सल्यभावको तिलाञ्जलि देकर पुत्रको शाप दे सकती है? मेरे भाई मनुका कहना है कि यह मेरी माता नहीं है, वैसे ही मैं भी यह कहना चाहता हूँ कि यह मेरी माता नहीं हो सकती, क्योंकि पुत्र भले ही दुष्ट हो जाय, माता कभी दुष्ट नहीं हुआ करती।'

यमकी यह बात सुनकर तमोहारी भगवान् सूर्यने छायाको बुलवाया और उससे पूछा कि 'संज्ञा कहाँ गयी है?' छायाने कहा—'भगवन्! मैं ही त्वष्टाकी पुत्री संज्ञा हूँ और आपकी पत्नी हूँ, जिसके गर्भसे आपने इन बच्चोंको जन्म दिया है।'

जब भगवान् सूर्यने बारंबार उससे संज्ञाके विषयमें पूछा और उसने ठीक उत्तर नहीं दिया, तब वे क्रुद्ध हो गये और शाप देनेके लिये उद्यत हो गये। यह देखकर छायाने जो घटना घटी थी, उससे उन्हें अवगत करा दिया। भगवान् सूर्य अन्ततः त्वष्टा (विश्वकर्मा)के घर पहुँचे। त्वष्टाने त्रैलोक्यद्वारा पूजित तथा अपने आवासपर आये साक्षात् भगवान् सूर्यकी बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे अर्चा-पूजा की। उन्होंने संज्ञाके सम्बन्धमें पूछा, तब विश्वकर्मने उनसे कहा कि 'वह मेरे घर आयी थी, किंतु मैंने उसे आपके घर भेज दिया है।' भगवान् सूर्य समाधिस्थ हुए और उन्होंने वडवारूपमें विचरण करती संज्ञाको उत्तरकुरु-वर्षमें तपश्चरणमें लगी देख लिया। संज्ञाकी तपस्याके पीछे सूर्यको उसकी मनोवृत्तिका पता चल गया कि वह इसलिये तपस्या कर रही है, जिससे उसके पति (भगवान् सूर्य) सौम्य मूर्ति तथा मनोरम शरीरधारी हो जायँ। भगवान् सूर्यने संज्ञाके पिता अपने श्वशुर विश्वकर्मासे कहा कि वे आज ही उनके तेजको काट-छाँटकर कम कर दें। विश्वकर्मने वर्षपर्यन्त ब्रह्माण्डका भ्रमण करनेवाले भगवान् भास्करके तेजको काट-छाँटकर घटा दिया और उनके इस कार्यके लिये देववृन्द उनकी स्तुति करने लगे।

इस प्रकार सूर्य भगवान्का जो ऋङ्मय तेज था वह पृथ्वीलोकके रूपमें, जो यजुर्मय तेज था वह अन्तरिक्षलोकके रूपमें और जो साममय तेज था वह स्वर्गलोकके रूपमें परिणत हो गया। महात्मा विश्वकर्मने उनके तेजसे जो पंद्रह भाग काट-छाँट दिये थे, उनसे उन्होंने भगवान् शंकरके त्रिशूल, विष्णु भगवान्के सुदर्शनचक्र, वसुगणके दारुण शङ्कु-शस्त्र, अग्निदेवकी दाहकशक्ति, कुबेरकी शिविका (पालकी) तथा अन्य समस्त देवों, यक्षों और विद्याधरोंके भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंकी सृष्टि की।

तदनन्तर भगवान् सूर्य अश्वका रूप धारण कर उत्तरकुरुवर्षमें गये और वहाँ उन्होंने वडवा (घोड़ी) रूप धारण करनेवाली अपनी पत्नी संज्ञाको देखा। उन्हें आता हुआ देखकर और यह सोचकर कि उसके पतिके अतिरिक्त कोई दूसरा आ रहा है, वह उनके सामने जा खड़ी हुई, जिससे उसका पृष्ठभाग सुरक्षित रहे।

आमने-सामने खड़े उन दोनोंकी नाक एक दूसरेसे सट गयी और वडवारूपिणी संज्ञासे नासत्य या दस्र नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए। इसी प्रसंगके अन्तमें रेवन्त नामके एक और पुत्रने जन्म लिया जो जन्म लेते ही खड्ग, ढाल और कवच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारण करनेवाला, अश्वारूढ़ तथा बाण एवं तूणीरधारी था।

उसके बाद भगवान् सूर्यने अपने अनुपम रमणीय स्वरूपका प्रदर्शन किया। संज्ञाने जब उनके उस रूपको देखा तो वह प्रसन्नतासे खिल उठी। जलके अपहारक भगवान् भास्कर अपना वास्तविक रूप धारण करनेवाली संज्ञाको अपने आवासपर ले आये। उसके बाद उनका जो पहला पुत्र था वह 'वैवस्वत मनु' हो गया और 'यम' नामक जो दूसरा पुत्र था वह छायाके शापके कारण धर्मदृष्टि (न्यायकर्ता) हो गया। यमके पिता सूर्यने ही शापका अन्त यह कहकर कर दिया कि इसके पैरसे मांसके टुकड़े लेकर कीड़े पृथ्वीपर गिर पड़ेंगे। यमके धर्मदृष्टि होनेके कारण उसके लिये मित्र और शत्रु एक समान थे। इसीलिये भगवान् सूर्यने यमको प्रजा-नियन्त्रणके कार्यमें नियुक्त कर दिया। महात्मा सूर्यदेवने ही पिता होनेके कारण अपनी पुत्री यमुनाको कलिन्द देशके मध्यमें प्रवाहित होनेवाली नदी बना दिया और दोनों अश्विनीकुमारोंको देववैद्य बनाया। रेवन्तको उन्होंने गुह्यकोंके अधिपति-पदपर नियुक्त कर दिया। छायाके पुत्रोंके लिये उन्होंने जो अधिकार दिये, वे इस प्रकार हैं—छायाका जो ज्येष्ठ पुत्र था, जो अपनेसे बड़े संज्ञापुत्र मनुके समान था, वह 'सावर्णि' मनु हुआ।

(म० प्र० गो०)

सावर्णि मनुकी कथा

स्वारोचिष मन्वन्तरके युगमें बहुत पहले चैत्रवंशमें उत्पन्न सुरथ नामके एक राजा थे, जो समस्त भूमण्डलपर राज्य करते थे। जब ये पुत्रोंकी भाँति अपने प्रजाजनके पालन-पोषणमें लगे थे, तब कोलाविध्वंसक राजागण इनके शत्रु बन गये। उन शत्रुओंके साथ इनका युद्ध हुआ। वैसे तो इनके पास अत्यन्त शक्तिशाली चतुरङ्गिणी सेना थी और इनके शत्रु इनकी अपेक्षा बहुत कम सैन्यशक्तिवाले थे, किंतु दुर्भाग्यवश ये अपने शत्रुओंद्वारा पराजित हो गये और अपनी राजधानीमें लौट आये। फिर ये केवल अपने जनपदके राजा ही रह गये। महाभाग्यशाली राजाकी ऐसी दशा देखकर इनके प्रबल शत्रुओंने इनपर पुनः आक्रमण कर दिया। इनकी शक्तिको क्षीण देखकर इन्हींके दुष्ट, दुरात्मा अमात्योंने, जो अधिक शक्तिशाली बन गये थे, इनकी राजधानीमें ही इनके कोश और सैन्य—दोनोंको हथिया लिया। राज्यके आधिपत्यसे परिच्युत किये गये वे राजा शिकारके बहाने घोड़ेपर सवार होकर एक घने जंगलमें चले गये।

उस वनमें राजाने महामुनि सुमेधाका आश्रम देखा, जिसमें हिंसक वन्य जीव भी शान्त बन गये थे। वह आश्रम शिष्यरूपसे एकत्र हुए मुनिजनोंसे सर्वतः सुशोभित था। राजाने उस आश्रममें प्रवेश किया। महामुनि सुमेधाने उनका सत्कार-सम्मान किया और वे उस आश्रममें इधर-उधर विचरण करते हुए कुछ समयतक रहे। वहाँ भी वे अपने राजपाटके मोह-ममत्वके वशीभूत होनेके कारण चिन्तन करने लगे कि उनके पूर्वजों और उनके द्वारा राजधर्मानुसार जिस राज्यका पालन होता था, उसका उनके बिना उनके दुराचारी सेवक, अमात्य राजधर्मानुसार पालन करते होंगे या नहीं? उनकी चिन्ता तब और बढ़ गयी जब उन्होंने यह सोचा कि जो राजसेवक पहले उनसे मिले दान-सम्मान और वेतनभोगके कारण उनके अनुजीवी थे, वे अब दूसरे राजाओंकी सेवामें लगे होंगे। यह सोचकर भी उन्हें बड़ा दुःख हुआ कि बड़े परिश्रमसे संचित उनका राजकोष उनके अमात्योंद्वारा, जिनके स्वभावमें धनके अपव्ययका दुर्व्यसन था, निरन्तर व्यय किये जानेके कारण अवश्य ही नष्ट हो जायगा।

इस प्रकार वे अनेक चिन्ताओंसे अत्यन्त दुःखी हो गये। एक दिन उन्होंने उसी आश्रमके समीप उस तपोवनमें एक समाधि नामक वैश्यको अन्यमनस्क इधर-उधर भ्रमण करते हुए देखा। राजाके पूछनेपर वैश्यने बताया कि एक धनी-मानी वैश्य-कुलमें मेरा जन्म हुआ है, किंतु धनके लोभसे मेरे दुष्ट पुत्र, कलत्र आदिने मुझे घरसे निकाल दिया है। उनके द्वारा परित्यक्त होकर यहाँ आनेपर भी मुझे उनकी तथा इष्ट-मित्रोंकी चिन्ता लगी रहती है। उन स्नेहरहित स्त्री-पुत्रोंके प्रति मेरा मन स्नेहसे भरा है, यह तो मैं जानता हूँ, किंतु यह नहीं जानता कि ऐसा क्यों है। उन्हींके प्रति मेरा मन शोकाकुल हो रहा है और मेरा हृदय बड़ा दुःखी है। मुझे समझमें नहीं आता कि मैं क्या करूँ?

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए महाराज सुरथ और वैश्यवर समाधि—दोनों सुमेधा मुनिके पास पहुँचे और उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रणामादि निवेदनके बाद राजाने बताया कि 'महामुने ! यह वैश्यवर समाधि और मैं—दोनों बहुत दुःखी हैं। सांसारिक विषयभोग क्षणिक होते हैं, यह जानते हुए भी हम दोनोंके मन उन्हीं पुत्र-कलत्र-ऐश्वर्यादि सांसारिक भोग-विलासके प्रति खिंचे-से जा रहे हैं। मुनिवर ! यह सब क्या है कि हम दोनों ज्ञानवान् होनेपर भी मोहमें पड़े हैं और विवेक-शून्य बने मूढ़तासे घिरे हैं।'

तब ज्ञानैश्वर्यसम्पन्न महामुनि सुमेधाने उन्हें अनेक प्रकारसे समझानेके बाद कहा—'ज्ञानवान् होनेपर भी मनुष्य संसारकी स्थिति अथवा प्रवाहनित्यताके एकमात्र निदान महामायाके प्रभावसे ममताके भँवरवाले मोहसागरके गर्तमें गिराये जाते रहते हैं, इसलिये इसमें आश्चर्यचकित होनेकी कोई बात नहीं कि संसारके सभी प्राणी अपने पुत्र-कलत्रके प्रति ममतासे भरे रहते हैं, क्योंकि यह महामाया जो जगत्पति भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा है, समस्त संसारको मोहपरायण बनाये रहती है। यह वैष्णवी माया परमैश्वर्यशालिनी है। यह वह देवी है, जो ब्रह्मज्ञानियोंके भी चित्तको बलपूर्वक अपनी ओर खींच लेती है और उन्हें मोह-ममताके वशमें कर देती है। इसी देवीके द्वारा यह समस्त चराचर जगत् रचा जाता है और यही देवी जब प्रसन्न होती है तब मनुष्यको अभ्युदय और निःश्रेयसका वर देती है।'

राजा सुरथके द्वारा 'महामाया कौन है तथा क्यों आविर्भूत होती हैं ?'— इस प्रकारकी जिज्ञासा करनेपर ऋषि सुमेधाने उन्हें आदिशक्ति महादेवी दुर्गाका माहात्म्य सुनाया (यही दुर्गामाहात्म्य दुर्गासप्तशती-नामसे विख्यात है) और अन्तमें कहा—'राजन् ! मैंने देवी-माहात्म्यके विषयमें आपको सब कुछ बता दिया। वह सर्वार्थसाधक है। इन देवीकी सामर्थ्य अद्भुत है, क्योंकि ये ही देवी जगज्जननी होकर विश्वकी सृष्टि करती हैं, जगद्धात्री होकर विश्वका पोषण करती हैं और जगत्संहारिणी होकर विश्वका संहार भी करती हैं। ये ही श्रीविष्णु भगवान्‌की माया चण्डिकादेवी ब्रह्मज्ञानका साधन हैं और इन्हींके द्वारा आप, आपके मित्र ये वैश्यवर समाधि और आप-जैसे अन्य समस्त विवेकयुक्त मानव भी मोह-ममताके वशीभूत बनाये जाते हैं और पहले भी बनाये जा चुके हैं तथा आगे भी बनाये जायँगे। इसीलिये महाराज ! आप उन्हीं परमेश्वरीकी शरण लें। आराधनासे प्रसन्न होनेपर वे ही देवी समस्त सांसारिक सुख, स्वर्गसुख किंवा मोक्ष-लक्ष्मीतक प्रदान करती हैं।'

तदनन्तर दोनोंने प्रसन्न होकर मुनिको प्रणाम किया तथा उनसे तपश्चरणकी दीक्षा लेकर वे नदीके किनारे श्रद्धा-भक्तिके साथ देवीकी मिट्टीकी मूर्ति बनाकर पुष्प, धूप-दीप, होमादि पूजा-विधानोंद्वारा उनकी आराधना करने लगे। इस प्रकार समाहितचित्त होकर उन दोनोंने तीन वर्षतक आराधना की। जगद्धात्री देवीने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया और उन्हींके वरदानसे समाधि वैश्यका अहंता-ममताका भाव ज्ञानाग्निमें भस्मीभूत हो गया तथा क्षत्रिय राजा सुरथका अपहृत राज्य उन्हें प्राप्त हो गया।

आगे चलकर देवी दुर्गाके वरदानसे यही क्षत्रियावतंस महाराज सुरथ सूर्यदेवसे उनकी धर्मपत्नी सवर्णाके गर्भसे जन्म लेकर सावर्णि नामक मनुके रूपमें धर्मरक्षक एवं प्रजापालक प्रतापी सम्राट् होंगे। इन्हींके नामसे आठवाँ मन्वन्तर सूर्यसावर्णि या सावर्णि मन्वन्तरके नामसे प्रसिद्ध होगा।

[नवेंसे बारहवें मनुओंके विषयमें किसी भी पुराणमें विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है, अतः इनका विषय संक्षेपमें दिया जा रहा है—सं०]

दक्षसावर्णि मनुकी कथा

नवें मनु दक्षसावर्णि होंगे। श्रीमद्भागवतके अनुसार ये वरुणके पुत्र होंगे। उनके समयमें पार, मरीचिगर्भ और सुधर्मा नामक तीन देववर्ग होंगे, जिनमेंसे प्रत्येक वर्गमें बारह-बारह देवता होंगे। उनका नायक महापराक्रमी अद्भुत नामक इन्द्र होगा। सवन, द्युतिमान्, भव्य, वसु, मेधातिथि, ज्योतिष्मान् और सातवें सत्य—ये उस समयके सप्तर्षि होंगे तथा भूतकेतु, दीप्तिकेतु, पञ्चहस्त, निरामय और पृथुश्रवा आदि इन मनुके पुत्र होंगे। इसी मन्वन्तरमें आयुष्मान्‌की पत्नी अम्बुधाराके गर्भसे ऋषभके रूपमें भगवान्‌का कलावतार होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मसावर्णि मनुकी कथा

दसवें मनु होंगे उपश्लोकके पुत्र ब्रह्मसावर्णि। इनके समयमें सुधामा और विशुद्ध नामक सौ-सौ देवताओंके दो गण होंगे। महाबलवान् शम्भु उनका इन्द्र होगा तथा उस समय जो सप्तर्षिगण होंगे, उनके नाम हविष्यमान्, सुकृति, सत्य, तपोमूर्ति, नाभाग, अप्रतिमौजा और सत्यकेतु हैं। उस समय इन मनुके सुक्षेत्र, उत्तमौजा और भूरिषेण आदि दस पुत्र पृथ्वीकी रक्षा करेंगे। श्रीमद्भागवतके अनुसार विश्वसृज्की पत्नी विषूचिके गर्भसे भगवान् विष्वक्सेनके रूपमें अंशावतार ग्रहण करके शम्भु नामक इन्द्रसे मित्रता करेंगे।

धर्मसावर्णि मनुकी कथा

ग्यारहवें मनु अत्यन्त संयमी धर्मसावर्णि होंगे। इनके समयमें होनेवाले देवताओंके विहंगम, कामगम और निर्वाणरति नामक मुख्य गण होंगे। इनमेंसे प्रत्येकमें तीस-तीस देवता रहेंगे। उस समय निःस्वर, अग्नितेजा, वपुष्मान्, घृणि, आरुणि, हविष्मान् और अनघ सप्तर्षि होंगे और वैधृत नामके इन्द्र होंगे। इन मनुके सर्वत्रग, सुधर्मा और देवानीक आदि पुत्र उस समयके राज्याधिकारी पृथ्वीपति होंगे। श्रीमद्भागवतके अनुसार आर्यककी पत्नी वैधृताके गर्भसे धर्मसेतुके रूपमें भगवान्का अंशावतार होगा और वे उसी रूपमें त्रिलोकीकी रक्षा करेंगे।

रुद्रसावर्णि मनुकी कथा

बारहवें मनु रुद्रसावर्णि होंगे। इनके समयमें ऋतुधामा नामक इन्द्र होगा तथा इस समयके दस-दस देवताओंके हरित, रोहित, सुमना, सुकर्मा और सुराप नामक पाँच गण होंगे। तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोरति, तपोधृति, तपोद्युति तथा तपोधन—ये सप्तर्षि होंगे। इन मनुके देवदान, उपदेव और देवश्रेष्ठ आदि पुत्र चक्रवर्ती सम्राट् होंगे। श्रीमद्भागवतके अनुसार इस मन्वन्तरमें सत्यसहाकी पत्नी सुनृताके गर्भसे स्वधामाके रूपमें भगवान्का अंशावतार होगा और इसी रूपमें भगवान् उस मन्वन्तरका पालन करेंगे।

रौच्य मनुकी कथा

पूर्वकालमें प्रजापति रुचि पृथ्वीपर भ्रमण कर रहे थे। उनके पितरोंने उन्हें आश्रमरहित और एक बार ही भोजन करते हुए देखकर कहा—'तुमने विवाह क्यों नहीं किया ? विवाह न करनेपर सदा बन्धनमें रहना पड़ता है। गृहस्थ पुरुष सभी देवताओं, पितरों, अतिथियों और ऋषियोंकी पूजा करता हुआ स्वर्गादिका भोग करता है एवं मोक्षपद प्राप्त करता है।

तब रुचिने कहा—'विवाहसे अतिशय दुःख एवं पाप होता है और इसके फलस्वरूप नरककी प्राप्ति होती है। आत्मसंयम ही मुक्तिका साधन है।' यह सुनकर पितरोंने कहा—'इन्द्रियोंका संयम कर आत्माको स्वच्छ करना युक्त-युक्त है, किंतु तुम जिस पथके पथिक हो, यह मोक्षका मार्ग नहीं है।

पितरोंका कथन सुनकर रुचिका मन अतिशय उद्विग्न हो गया। तब वे कन्या-प्राप्तिकी अभिलाषासे पृथ्वीके परिभ्रमणमें प्रवृत्त हुए। वे सोचने लगे कि क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किस प्रकार पितरोंके अभ्युदयसाधनस्वरूप मेरा विवाह हो ? इस प्रकारकी चिन्ता करते हुए उन महात्माने निश्चय किया कि मैं तपस्याद्वारा कमलोद्भव ब्रह्माकी आराधना करूँगा।

तदनन्तर उन्होंने विशिष्ट नियमोंके साथ ब्रह्माकी आराधनाके लिये सौ वर्षोंतक उग्र तपस्या की। लोकपितामह ब्रह्माने उन्हें दर्शन दिया और कहा कि 'मैं प्रसन्न हूँ, तुम क्या चाहते हो ?' तब उन्होंने जगत्के प्राणियोंके आश्रयस्वरूप ब्रह्माको प्रणाम कर पितरोंके वचनोंके अनुसार अपनी अभिलाषा व्यक्त की। ब्राह्मण रुचिके अभीष्टको सुनकर ब्रह्माने कहा—'विप्र ! तुम प्रजापति होगे, तुम्हारे द्वारा प्रजाओंकी सृष्टि होगी, तुम प्रजा और संतानकी उत्पत्तिके द्वारा सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रियाओंका सम्पादन कर अपने अधिकारोंको पुत्रको समर्पण करनेके बाद सिद्धि प्राप्त करोगे, अतः तुम विवाह कर लो।'

ब्रह्माके वचनको सुनकर रुचिने नदीके एकान्त तटपर पितरोंका तर्पण किया। इस प्रकार रुचिके स्तवन करते ही सहसा चारों ओर देदीप्यमान आकाशमें परिव्याप्त एक तेजःपुञ्ज प्रादुर्भूत हुआ। पितृगण अपने तेजसे दसों दिशाओंको देदीप्यमान करते हुए अभिव्यक्त हो गये। रुचिने भक्तिपूर्वक उन्हें हाथ जोड़कर सादर नमस्कार किया। तदनन्तर प्रसन्न पितृगणोंने कहा—'वर माँगो।' रुचिने मस्तकको झुकाकर अपना अभीष्ट निवेदन किया। पितरोंने कहा—'इसी मुहूर्तमें, इसी स्थानमें तुमको मनोरम पत्नी मिलेगी और उससे जो पुत्र होगा वह उत्तम मनु होगा। वह बुद्धिमान् मन्वन्तरका अधिपति होकर तुम्हारे ही नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होगा, अर्थात् रौच्यके नामसे सर्वत्र विख्यात होगा।'

इसके बाद उस नदीके मध्यसे प्रम्लोचा नामकी मनको प्रिय लगनेवाली कृशाङ्गी सुन्दरी अप्सरा रुचिके समीप आयी। उस सुन्दर भौंहोंवाली सुन्दरी अप्सराने विनयावनत होकर प्रिय एवं मधुर वाणीमें महात्मा रुचिसे कहा—'तपस्विश्रेष्ठ! वरुणके पुत्र महात्मा पुष्करसे उत्पन्न एक अतिशय सुन्दरी मेरी पुत्री है। मैं सुन्दर स्वरूपवाली उस कन्याको भार्याके रूपमें आपको प्रदान करती हूँ, आप उसे वरण करें। उस कन्यासे अतिशय बुद्धिमान् मनु नामक आपका पुत्र उत्पन्न होगा।'

'ऐसा ही होगा,' इस प्रकार रुचिकी सम्मति प्राप्त करनेपर उस नदीके मध्य जलसे मालिनी नामकी कन्या प्रकट हुई। तब मुनिश्रेष्ठ रुचिने अनेक महामुनियोंको बुलाकर विधिपूर्वक उस कन्याका पाणिग्रहण किया। कालान्तरमें उस कन्यासे अतिशय पराक्रमी और बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ, जो तेरहवें रौच्य मनुके रूपमें पृथ्वीमें प्रसिद्ध हुआ। (म० प्र० गो०)

भौत्य मनुकी कथा

मुनिश्रेष्ठ अङ्गिराका एक भूति नामक पुत्र था। वह अमित तेजस्वी तथा अतिशय क्रोधी था। संतान-प्राप्तिकी इच्छासे उसने दारुण तप किया, किंतु अभीष्टकी प्राप्ति न होनेपर वह तपस्यासे विरत हो गया। सुवर्चा नामक उनका एक भाई था, उसने भूतिको यज्ञमें आमन्त्रित किया। यज्ञमें सम्मिलित होनेकी इच्छासे भूतिने शान्ति नामक मुनिश्रेष्ठको बुलाकर कहा—'शान्ते! तुम मेरे आश्रममें अग्निको सदा प्रदीप्त रखना, यह अग्नि किसी भी तरह शान्त न हो, इसके लिये सावधान रहना।' गुरुके आदेशको सुनकर शान्तिने कहा—'गुरुदेव! ऐसा ही करूँगा।' शान्ति जब महात्मा गुरुकी अग्निके संवर्धन एवं रक्षणके लिये वनसे लकड़ी, पुष्प, फल आदिको लानेके लिये चला गया एवं गुरुकी भक्तिके अधीन अन्य कार्योंका भी सम्पादन करने लगा, उसी मध्य मुनिश्रेष्ठ भूतिसे परिगृहीत अग्नि शान्त हो गयी। यह देखकर शान्ति सोचने लगा कि यदि मेरे गुरुदेव इस अग्निको कुण्डमें निर्वापित—बुझी हुई देखेंगे तो निश्चय ही मुझे विषम—भयंकर संकटमें डाल देंगे और यदि मैं इस अग्निकुण्डमें अन्य अग्निदेवको प्रतिष्ठित करता हूँ तो प्रत्यक्षद्रष्टा मेरे गुरुदेव अवश्य ही मुझे भस्म कर देंगे। इस प्रकार भयभीत हुआ शान्ति एकाग्र-चित्त एवं विनयावनत हो सात शिखाओंसे समन्वित अग्नि-देवका स्तवन करने लगा।

शान्तिके द्वारा स्तवन किये जानेपर प्रसन्न हुए भगवान् हव्यवाहन ज्वालामालाओंसे परिव्याप्त हो उसके समक्ष प्रकट हो गये और मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहने लगे—'विप्र! भक्तिपूर्वक तुम्हारे द्वारा की गयी स्तुतिसे मैं अतिशय संतुष्ट हूँ। मैं तुम्हें वर प्रदान करना चाहता हूँ, जो अभीष्ट हो उसे माँग लो।'

शान्तिने कहा—'विभावसो! मेरे अपराधके कारण आपने जो अग्निकुण्डका परित्याग कर दिया था, उसे मेरे गुरुदेव आज आपके द्वारा पूर्ववत् अधिष्ठित रूपमें देखें। देव! यदि आपकी मुझपर कृपा है तो मेरा दूसरा निवेदन यह है कि मेरे पुत्रहीन गुरुको विशिष्ट अर्थात् गुणसम्पन्न पुत्र हो जाय। साथ ही गुरुदेवका जैसा वात्सल्य अपने पुत्रके प्रति हो वैसा ही मधुर स्नेह सभी प्राणियोंके प्रति भी हो।'

अग्निदेवने कहा—'तुमने गुरुके लिये जो प्रार्थनाएँ की हैं, वे सभी पूर्ण होंगी, सभी प्राणियोंके प्रति मैत्रीभाव एवं पुत्रकी उत्पत्ति भी होगी।' भगवान् अग्निदेव यह कहकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके सम्मुख ही सहसा अन्तर्हित हो गये।

अग्निदेवके अन्तर्हित हो जानेपर शान्तिने आनन्दसे पुलकित होकर गुरुके आश्रममें प्रवेश किया। इसके बाद वह गुरुके अग्निकुण्डमें पूर्ववत् जाज्वल्यमान अग्निदेवको देखकर अतिशय प्रसन्न हुआ। इसी समय महात्मा शान्तिके गुरु भी अपने छोटे भाईके यज्ञसे अपने आश्रममें लौट आये। उस शिष्यने आगे आकर अपने गुरुके चरणोंकी वन्दना की। तदनन्तर गुरुने आसन और पूजा स्वीकार कर उससे पूछा—'वत्स! तुम्हारे प्रति एवं अन्य जन्तुओंके प्रति भी अतिशय मैत्रीभाव सम्पन्न हो गया है, यह कैसे हुआ? मैं नहीं जानता, यदि तुम जानते हो तो कहो?' तब शान्तिने अग्निनाशादिसे लेकर उन सभी घटनाओंको आचार्यसे यथार्थ-रूपमें कह सुनाया। तब प्रसन्न हुए भूतिने अपने शिष्य शान्तिका आलिङ्गन किया और उसे साङ्गोपाङ्ग वेदविद्या प्रदान की। कालान्तरमें उस भूतिको एक भौत्य नामक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जो चौदहवें मनुके रूपमें विख्यात हुआ।

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके आख्यान

एक बार मुनियोंने सूतजीसे द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके माहात्म्यको जानना चाहा, तब सूतजीने कहा—

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्। उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम्॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्। वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने। सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्। सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत्॥

(शिवपुराण, कोटिरुद्र० १।२१-२४)

'मुनिगण! सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, उज्जैनमें महाकाल, ओंकार[1]में परमेश्वर, हिमाचलपर केदार, डाकिनीमें भीमशंकर, काशीमें विश्वेश्वर, गौतमी-तटपर त्र्यम्बक, चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकावनमें नागेश, सेतु-बन्धमें रामेश्वर और शिवालयमें स्थित घुश्मेश—इन बारह नामोंका जो प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और समस्त सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है।'

शिवपुराणके अतिरिक्त स्कन्द, लिङ्ग, मत्स्यादि कई पुराणोंमें इन बारह ज्योतिर्लिङ्गोंके माहात्म्योपाख्यानका विशदरूपसे वर्णन आया है। आगे इन्हींका वर्णन क्रमशः संक्षेपमें दिया जा रहा है—

सोमनाथ

श्रीसोमनाथेश्वर महादेव काठियावाड़-प्रदेशान्तर्गत श्रीप्रभासक्षेत्रमें विराजमान हैं। इनकी कथा इस प्रकार है—महात्मा दक्षने अपनी अश्विनी आदि सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको दी थीं। वे चन्द्रमाको स्वामीरूपमें पाकर अत्यधिक सुशोभित होने लगीं, किंतु इन सभी पत्नियोंमें रोहिणी नामकी पत्नी जितनी प्रसन्न रहती थी, उतनी अन्य नहीं; क्योंकि चन्द्रमाकी आसक्ति रोहिणीमें अधिक थी। तब अन्य पत्नियाँ दुःखी होकर पिताजीकी शरणमें गयीं। सभीने अपना कष्ट पिताजीके समक्ष निवेदन किया। महात्मा दक्ष अपनी कन्याओंके इस कष्टको सुनकर अत्यन्त दुःखी हुए और चन्द्रमाके पास आकर इस प्रकार कहने लगे—'कलानिधे! तुम निर्मल कुलमें उत्पन्न हो, अतः तुम्हारा आश्रितोंके साथ न्यूनाधिक भाव रखना ठीक नहीं है। इस विषमताके व्यवहारसे नरककी प्राप्ति होती है। अबतक जो कुछ किया, वह कर लिया; अब इसके बाद ऐसा मत करना।' दक्ष अपने जामाता चन्द्रमासे इस प्रकार कहकर निश्चिन्त होकर अपने धामको लौट गये; किंतु भवितव्यता कुछ और ही थी। चन्द्रमाने दक्षके वचनको नहीं माना। वे अन्य पत्नियोंका आदर नहीं करते थे।

१-इस शिवलिङ्गको ओंकारेश्वर भी कहते हैं। ओंकारेश्वरका स्थान मालवा प्रान्तमें नर्मदा नदीके तटपर है। उज्जैनसे खण्डवा जानेवाली रेलवेकी छोटी लाइनपर मोरटक्का नामक स्टेशन है। वहाँसे यह स्थान ७ मील दूर है। यहाँ ओंकारेश्वर और अमलेश्वर नामक दो पृथक्-पृथक् लिङ्ग हैं। परंतु दोनों एक ही ज्योतिर्लिङ्गके दो स्वरूप माने गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रमाकी आसक्ति केवल रोहिणीमें ही लगी रही। जब दक्षने यह बात सुनी, तब वे पुनः चन्द्रमाके पास आकर बोले—'चन्द्र! मैंने तुमसे पहले ही प्रार्थना की थी, किंतु तुमने मेरी बात नहीं मानी। अतः तुम्हें क्षय-रोग हो जाय।' दक्षके ऐसा कहनेपर चन्द्रमाका क्षय होने लगा।

उस समय चन्द्रमाके क्षीण होनेसे हाहाकार मच गया। तब सभी देवता वसिष्ठादि ऋषियोंके साथ ब्रह्माजीके पास गये और उन्हें अपने दुःखभरे वृत्तान्त सुनाये। ब्रह्माजीने कहा—'अहो! दक्षने चन्द्रमाको शाप दे दिया है। इसी कारण तुम सभी महान् कष्टमें पड़ गये हो। अतः तुमलोग शुभ क्षेत्र प्रभासतीर्थमें जाओ और यदि चन्द्रमा वहीं मृत्युञ्जय-विधानसे शिवजीकी आराधना करें तथा शिवलिङ्गकी स्थापना करके नित्य तप करें तो शिवजी प्रसन्न होकर चन्द्रमाको क्षय-रोगसे मुक्त कर देंगे।' तदनन्तर चन्द्रमाने उस शुभ क्षेत्र प्रभासतीर्थमें शिवलिङ्गकी स्थापना कर छः मासतक कठोर तप किया और मृत्युञ्जय-मन्त्रका दस करोड़ जप किया, इससे प्रसन्न होकर भक्तवत्सल भगवान् शंकर वहाँ प्रकट हो गये और चन्द्रमाके अपराधोंको क्षमा कर उन्हें क्षय-रोगसे मुक्त करते हुए बोले—'चन्द्रमा! एक पक्षमें तुम्हारी कला दिन-दिन क्षीण होती रहेगी और दूसरे पक्षमें निरन्तर बढ़ते-बढ़ते पूर्णिमाके दिन तुम पूर्ण होकर स्वस्थ और नीरोग हो जाओगे।' इस घटनासे सभी देवता एवं ऋषि प्रसन्न हो गये। तत्पश्चात् देवताओंपर प्रसन्न होकर भगवान् शंकर प्रभास क्षेत्रको महत्त्व एवं चन्द्रमाको यश देनेके लिये चन्द्रमाके नामसे ही वहाँ प्रतिष्ठित हो गये। वे त्रिलोकीमें 'सोमेश्वर' नामसे प्रसिद्ध हुए। यहीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने यदुवंशका नाश कर तथा जरा नामक व्याधके बाणसे अपना पादपद्म-बेधन कराकर अपनी लीलाका संवरण किया था। वहाँ ज्योतिर्लिङ्गका पूजन करनेसे क्षयरोग और कुष्ठरोगोंका नाश हो जाता है। वहाँ चन्द्रकुण्डमें जो स्नान करता है, उसके समस्त पाप धुल जाते हैं। जो व्यक्ति सोमेश्वर-लिङ्गका दर्शन करता है, वह मनोवाञ्छित फल पाता है, पापोंसे मुक्त हो जाता है एवं अन्तमें उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

(जा० ना० श०)

मल्लिकार्जुन

मसुलीपत्तनम्—हुबली लाइनपर द्रोणाचलम्से ४८ मील पहले (गुंटूरसे २१७ मीलपर) नन्दयाल स्टेशन है। इस स्टेशनसे श्रीशैल ७१ मील दूर है। मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिङ्गके आविर्भावकी कथा इस प्रकार है—जब तारक असुरके शत्रु, पार्वतीपुत्र कुमार कार्तिकेय पृथ्वीकी परिक्रमा कर कैलासपर्वतपर लौटे, तब देवर्षि नारद भी वहाँ पहुँचे। उन्होंने कुमारको भ्रममें डालनेके लिये गणेशके विवाह आदिका प्रसंग उन्हें सुनाया। कार्तिकेय इस बातको सुनकर दुःखी हो गये और देवर्षि नारदके मना करनेपर भी क्रौञ्चपर्वतपर चले गये। इधर माता पार्वती अत्यन्त दुःखी हो गयीं। उन्होंने भगवान् शंकरसे पुत्रको लानेके लिये आग्रह किया। भगवान् शंकरने अन्य देवों, ऋषियों एवं गणोंको कार्तिकेयको लानेके लिये भेजा। वे सभी कुमारके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके अनेक प्रकारसे समझाकर आदरपूर्वक प्रार्थना करने लगे। साथ ही उन्होंने भगवान् शंकरकी आज्ञाको भी निवेदित किया, किंतु कुमारने उनकी प्रार्थनाको अस्वीकार कर दिया। तदनन्तर देवगण भगवान् शंकरके पास लौट आये और कुमारके इस वृत्तान्तको बताकर शिवजीकी आज्ञा पाकर अपने-अपने भवनको चले गये।

माता पार्वती और शिवजी पुत्र-वियोगके कारण दुःखका अनुभव करने लगे। तत्पश्चात् वे दुःखी होकर कुमारके निवास-स्थानपर जानेके लिये प्रस्थित हुए, किंतु स्नेहहीन होनेके कारण कुमार अपने माता-पिताके आगमनको जानकर भी पर्वतपर बारह कोस दूर चले गये। पुत्रके क्रौञ्चपर्वतपर दूर चले जानेपर वे ज्योतिःस्वरूप धारणकर वहीं अधिष्ठित हो गये। पुत्रके स्नेहसे आतुर हो प्रत्येक अमावस्याके दिन स्वयं शिवजी वहाँ जाते हैं और पूर्णिमाके दिन पार्वती जाती हैं। उसी समयसे शिवका मल्लिकार्जुन नाम त्रिलोकीमें विख्यात हो गया। जो मनुष्य उस ज्योतिर्लिङ्गका दर्शन करता है, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं और वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकालेश्वर

श्रीमहाकालेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग मालव-प्रदेशान्तर्गत शिप्रा-नदीके तटपर उज्जयिनी (उज्जैन) नगरीमें है। इनकी कथा इस प्रकार है—रत्नमालपर्वतपर एक महान् असुर रहता था। उसका नाम दूषण था। वह दैत्य महान् बलवान् और परम धर्म-द्वेषी था। वह ब्रह्माजीसे वरदान पाकर सम्पूर्ण जगत्को तुच्छ समझता था। उसने देवताओंको परास्त कर उन्हें स्थान-च्युत कर दिया। उस समय अवन्ती नगरी अत्यन्त रमणीय दीखती थी। उस नगरीमें वैदिकधर्ममें परायण रहनेवाले उत्तम ब्राह्मण रहते थे। वे शैव और वैदिक धर्मके अनुयायी थे। दैत्येन्द्र दूषण विप्रद्रोही था। उसकी दृष्टि उस नगरीपर पड़ी। अतः उसने चार प्रधान दैत्योंको बुलाया और उन ब्राह्मणोंका नाश करनेके लिये उन्हें आज्ञा दी। उन महान् दैत्योंने अवन्ती नगरीको चारों ओरसे घेर लिया। तब समस्त नगरनिवासी अपनी रक्षाके लिये ब्राह्मणोंकी शरणमें आये। वे ब्राह्मण इस आपत्तिकालकी स्थितिमें वहीं पार्थिव शिवलिङ्गकी स्थापना करके पूजा-स्तुतिमें तल्लीन हो गये। यह देखकर दैत्य उन्हें मारनेके लिये उनपर टूट पड़े। सहसा उस शिवलिङ्गके स्थानपर भयानक शब्दके साथ एक गड्ढा हो गया और उस गड्ढेसे शिवजी विकट रूप धारण कर प्रकट हो गये।

उन्होंने दैत्योंसे कहा—'तुम दुष्टोंको नष्ट करनेके लिये ही मैं महाकाल-रूपमें प्रकट हुआ हूँ। रे दुष्टो! तुमलोग ब्राह्मणोंके समीपसे दूर भाग जाओ।'—यह कहकर महाकालरूपधारी शिवजीने दूषण दैत्यसहित उसकी समस्त सेनाको भस्म कर दिया। द्विजोंने महाकालरूपधारी भगवान् शंकरकी स्तुति की और वहीं प्रतिष्ठित होनेके लिये उनसे प्रार्थना की तथा अपने लिये मुक्तिकी याचना की। उनकी याचनापर भगवान् शंकरने उन्हें मुक्ति दे दी और स्वयं उस सुन्दर गर्तमें विराजमान हो गये। वे सभी द्विज चारों दिशाओंमें प्रतिष्ठित होकर कोस-कोसकी दूरीतक शिवलिङ्ग-रूपमें परिणत हो गये। उसी समयसे भगवान् शंकर उस सुन्दर गर्तमें महाकाल-रूपसे प्रसिद्ध हो गये। इनका दर्शन करनेसे स्वप्नमें भी दुःख नहीं होता, सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और मुक्ति मिलती है।

(जा० ना० श०)

परमेश्वर (ओंकारेश्वर)

मध्यप्रदेशमें मान्धातापर्वतपर नर्मदा नदीके बीचोबीच ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग है, जिसकी कथा इस प्रकार है—एक बार देवर्षि नारदने गोकर्ण पर्वतपर जाकर अत्यन्त भक्तिके साथ भगवान् शिवकी आराधना की। तत्पश्चात् वे मुनिराज पर्वतराज विन्ध्यके पास पहुँचे। विन्ध्यने मनमें अभिमान रखते हुए मुनिराजसे पूछा—'मुनिराज! आप यह बतायें कि हमारेमें किसी प्रकारकी कमी तो नहीं है?' विन्ध्यके इस प्रकारके भावको सुनते हुए नारदजीने कहा—'विन्ध्य! यद्यपि तुझमें सभी बातें तो हैं, किंतु मेरु तुमसे भी श्रेष्ठ है; क्योंकि भगवान् सूर्य प्रतिदिन उसीकी परिक्रमा करते हैं। उसकी प्रतिष्ठा देताओंमें भी है।' यह कहकर देवर्षि नारद वहाँसे चल दिये। तब विन्ध्य अपनेको धिक्कारता हुआ कष्टका अनुभव करने लगा। उसने 'ओंकार' नामक स्थानपर विश्वेश्वर शम्भुकी आराधना करते हुए कठोर तप किया। तत्पश्चात् उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर शिवजीने उसे दर्शन दिया। विन्ध्यके इस संकुचित विचारको भगवान् शंकर समझ गये। उन्होंने विन्ध्याचलको उत्तम वर दे दिया।

इसी समय देवता और ऋषियोंने भगवान् शंकरकी पूजा की और उनसे प्रार्थना की कि 'परमेश्वर! आप यहीं प्रतिष्ठित हों।' उनकी बात सुनकर भगवान् शंकर प्रसन्न होकर वहीं प्रतिष्ठित हो गये। वह एक ही ओंकारलिङ्ग दो भागोंमें विभक्त हो गया है। प्रणवमें वे सदाशिव ओंकार नामसे प्रतिष्ठित हुए और पार्थिवमें उनका नाम परमेश्वर हुआ। ये दोनों शिवलिङ्ग भक्तोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। जो इन शिवलिङ्गोंकी पूजा-अर्चना करता है, वह माताके गर्भमें नहीं पड़ता और उसे अभीष्टकी प्राप्ति होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केदारेश्वर

केदारनाथ पर्वतराज हिमालयके केदार नामक शृंगपर अवस्थित हैं। शिखरके पूर्व अलकनन्दाके सुरम्य तटपर बदरीनारायण अवस्थित हैं और पश्चिममें मन्दाकिनीके किनारे श्रीकेदारनाथ विराजमान हैं। यह स्थान हरिद्वारसे लगभग १५० मील और ऋषिकेशसे १३२ मील उत्तर है। भगवान् विष्णुके अवतार नर-नारायणने भरतखण्डके बदरिकाश्रममें तप किया था। वे पार्थिव शिवलिङ्गकी पूजा नित्य किया करते थे। भगवान् शिव नित्य ही उस अर्चालिङ्गमें आते थे। कालान्तरमें आशुतोष भगवान् शिव प्रसन्न होकर प्रकट हो गये। उन्होंने नर-नारायणसे कहा—'मैं आपकी आराधनासे प्रसन्न हूँ, आप अपना वाञ्छित वर माँग लें।' नर-नारायणने कहा—'देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो आप अपने स्वरूपसे यहीं प्रतिष्ठित हो जायँ, पूजा-अर्चाको प्राप्त करते रहें एवं भक्तोंके दुःखोंको दूर करते रहें।' उनके इस प्रकार कहने-पर ज्योतिर्लिङ्गरूपसे भगवान् शंकर केदारमें स्वयं प्रतिष्ठित हो गये। तदनन्तर नर-नारायणने उनकी अर्चना की। उसी समयसे वे वहाँ 'केदारेश्वर' नामसे विख्यात हो गये। 'केदारेश्वर'के दर्शन-पूजनसे भक्तोंको मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है।

भीमशंकर

एक मतसे भीमशंकर-ज्योतिर्लिङ्ग बम्बईसे पूर्वकी ओर लगभग ७० मीलके अन्तरपर और पूनासे उत्तरकी ओर लगभग ४३ मीलकी दूरीपर भीमा नदीके तटपर अवस्थित है, किंतु शिवपुराणके आधारपर भीमशंकरका ज्योतिर्लिङ्ग आसाम प्रान्तके कामरूप जिलेमें पूर्वोत्तर रेलवेपर गोहाटीके पास ब्रह्मपुर पहाड़ीपर अवस्थित बतलाया जाता है। लोक-कल्याण, भक्तोंकी रक्षा एवं राक्षसोंका नाश करनेके लिये भगवान् शंकरने भीमशंकर-रूपमें अवतार लिया था। इनकी उत्पत्तिकी कथा इस प्रकार है— प्राचीन कालमें भीम नामका एक महान् वीर्यवान् राक्षस हुआ था। भीमका पिता कुम्भकर्ण और माता कर्कटी थी। जब भगवान् रामने कुम्भकर्णको मार डाला तब कर्कटी अपने पुत्र भीमको लेकर सह्यपर्वतपर चली गयी। एक दिन भीमने अपनी मातासे पूछा—'मातः ! मेरे पिता कौन हैं ? कहाँ हैं ? और तुम यहाँ अकेली कैसे रहती हो ? इन सब बातोंको मैं यथार्थरूपसे जानना चाहता हूँ।' पुत्रके ऐसा पूछनेपर कर्कटीने कहा—'तुम्हारे पिताका नाम कुम्भकर्ण था। वे रावणके छोटे भाई थे। उन महाबलीको एवं उनके भाईको श्रीरामने मार डाला था। मेरे पिताका नाम कर्कट और माताका नाम पुष्करी था। मेरे पति विराधको श्रीरामने पहले ही मार डाला था। मेरे माता-पिता जब ऋषि सुतीक्ष्णको भक्षण करने गये, तब ऋषिने क्रोधाविष्ट हो उन्हें भस्म कर दिया।' इस प्रकार कर्कटीने महाबली कुम्भकर्णके साथ अपना अनैतिक सम्बन्ध एवं उससे उत्पन्न भीमकी समस्त बातें बता दीं।

भयंकर पराक्रमवाले भीमने जब माताके इस प्रकारके वचन सुने, तब वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और उसने विष्णुको प्रताड़ित करनेका निश्चय किया। तदनन्तर उसने ब्रह्माजीका ध्यानकर एक हजार वर्षतक घोर तप किया। उसकी तपस्यासे उद्विग्न होकर इन्द्रसहित समस्त देवगण ब्रह्माजीकी शरणमें गये और उस राक्षसको तपस्यासे विरत करनेके लिये उनसे निवेदन किये। ब्रह्माजीने उन्हें सान्त्वना दी और उस राक्षसराजके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम अपना अभीष्ट वर माँग लो।' राक्षसने ब्रह्माजीसे अतुलित बल माँगा। कमलासन ब्रह्माजी उसे अभीष्ट वर देकर अपने भवनको चले गये। इधर उस राक्षसने वर पाकर अहंकारमें अंधा होकर देवताओंको पराजित कर दिया और उन्हें उनके स्थानसे निकाल दिया। तब देवगण भगवान् शंकरकी शरणमें गये। भगवान् शिवने उन्हें सान्त्वना दी और कहा कि 'जब यह राक्षस मेरे परमभक्त कामरूपेश्वर तथा राजा सुदक्षिणका तिरस्कार करेगा, तब मैं वहाँ प्रकट होकर इसका और इसकी सम्पूर्ण जातिका संहार कर दूँगा।' पराक्रमी भीमने कामरूपके राजाको जीतकर बंदी बना लिया। साथ ही उसने शिवजीके दास सुदक्षिणका भी सामग्रीसहित राज्य छीन लिया और उन्हें बंदी बना लिया। राजा सुदक्षिणने उस स्थितिमें भी अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नीके साथ विधि-विधानपूर्वक शिवजीके पार्थिव-लिङ्गकी अर्चना प्रारम्भ कर दी। दुष्ट भीमने जब उन्हें ऐसा करते देखा तब उनपर आक्रमण कर दिया और राजासे कहा—'अब मैं तुम्हें और तुम्हारे स्वामी शिवको समाप्त कर दूँगा, तुम तो उसी शिवको भजते हो, जिसे मेरे भाईने नौकर बनाकर छोड़ दिया था।'

यह सुनकर भी राजा ध्यानावस्थित रहे और पूजामें तल्लीन रहे। दुष्ट भीमने एक तीक्ष्ण तलवार पार्थिव लिङ्गपर फेंकी। लिङ्गका स्पर्श होनेके पूर्व ही उस तलवारके हजारों टुकड़े हो गये। भगवान् शंकर उस पार्थिव लिङ्गसे प्रकट हो गये और दुष्ट भीम एवं उसकी सेनाको नष्ट करने लगे। भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। भगवान् शंकरने क्षणमात्रमें दुष्ट भीमको एवं उसकी समूल सेनाको भस्म कर दिया। महेश्वरकी क्रोधज्वाला एक वनसे दूसरे वनमें फैल गयी। इस प्रकार राक्षसोंकी भस्म सारे वनमें व्याप्त हो गयी। उन भस्मोंसे अनेक ओषधियाँ उत्पन्न हो गयीं। तदनन्तर सभी देवगण एवं मुनियोंने भगवान् शिवकी स्तुति-प्रार्थना करते हुए कहा—'स्वामिन्! आप प्राणियोंको सुख देनेके लिये यहाँ प्रतिष्ठित हों। आप अपने प्रकाश-पुञ्जसे इस कुत्सित देशको पवित्र करें। आप 'भीमशंकर' नामसे सभी कार्योंको सिद्ध करें।' तभीसे शिवजी वहाँ 'भीमशंकर' नामसे प्रतिष्ठित हैं। उनके दर्शन-पूजनसे सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। (जा० ना० श०)

विश्वेश्वर

श्रीविश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग वाराणसी (बनारस) या काशीमें विराजमान हैं। एक बार पार्वतीजीने काशी और वहाँके विश्वेश्वरके विषयमें भगवान् शंकरसे पूछा—'प्रभो! आप मेरे ऊपर कृपा करके काशी एवं विश्वेश्वरके माहात्म्यका वर्णन कीजिये।' परमेश्वरने कहा—'भद्रे! तुम्हारा यह प्रश्न बहुत ही कल्याणकारी है। यह अविमुक्त-क्षेत्र काशी मेरा गुप्त क्षेत्र है। यह सभी प्राणियोंकी मुक्तिका कारण है। मेरे भक्त यहाँ रहते हुए पाशुपत योगका अनुष्ठान करते हैं। यहाँ जो कोई भी मरता है, वह अवश्य ही मुक्त हो जाता है। यहाँ किसी भी साधनकी आवश्यकता नहीं है। पवित्र हो या अपवित्र, पापी हो या धर्मात्मा, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज एवं जरायुज—सभीको यहाँ मरणोपरान्त मुक्ति मिलती है। इस अविमुक्त क्षेत्र काशीका विस्तार चारों दिशाओंमें पाँच कोसतकका है। यदि निष्पाप पुरुष काशीमें शरीर छोड़ता है तो वह शीघ्र ही मोक्ष पाता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता। जो व्यक्ति काशीमें आकर गङ्गामें स्नान करता है, उसके क्रियमाण और संचित सभी कर्मोंका क्षय हो जाता है। देवर्षिसहित समस्त देवगण यहाँ आकर मेरी आराधना करते हैं। काशीमें भगवान् शंकर 'विश्वेश्वर' या 'विश्वनाथ' के रूपमें अधिष्ठित रहकर प्राणियोंको भोग और मोक्ष प्रदान करते हैं। विश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्गकी पूजा-अर्चासे सभी कामनाओंकी सिद्धि होती है और अन्तमें परमपुरुषार्थ मोक्षकी भी प्राप्ति हो जाती है।' (जा० ना० श०)

त्र्यम्बकेश्वर

यह ज्योतिर्लिङ्ग बम्बईसे २०० किलोमीटर पूर्व तथा नासिक-रोड रेलवे स्टेशनसे २५ किलोमीटर दक्षिण त्र्यम्बकेश्वर नामक कस्बेमें स्थित है। इस लिङ्गकी कथा सम्पूर्ण पापोंका शमन करनेवाली है। प्राचीन कालमें गौतम नामके एक प्रसिद्ध ऋषि थे। परमधार्मिक अहल्या उनकी पत्नी थी। एक समय अवर्षणसे भयंकर अकाल पड़ा। इससे सभी प्राणी दुःखी हो गये। गौतम ऋषि परम परोपकारी थे। उन्होंने दक्षिणदिशामें ब्रह्मगिरि नामक पर्वतपर दस हजार वर्षतक तप किया था। प्राणियोंके इस दारुण कष्टको देखकर मुनिने प्राणायाम चढ़ाकर वरुणके निमित्त छः मासतक उग्र तप किया। तब वरुण देवता प्रकट होकर बोले—'मुनिवर! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगिये।' तब ऋषिने वृष्टिके लिये प्रार्थना की। वरुणने कहा कि 'मैं देवताओंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके वृष्टि कैसे कर सकता हूँ?' परोपकारी गौतमने विशेष आग्रह किया और यह कहा कि 'यदि आप प्रसन्न हैं तो हमें अक्षय दिव्य नित्यफलप्रद जल दीजिये।' वरुणने एक गर्त बनानेके लिये कहा। गौतमने एक हाथ गहरा गड्ढा खोदा। तब वरुणने उसे दिव्य जलसे भर दिया। वरुणने कहा कि 'तुम्हारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह अक्षय जल तीर्थस्वरूप होगा और पृथ्वीपर तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा। यहाँ जो भी धार्मिक कृत्य होंगे, वे सभी अक्षय फलदायक होंगे।' उस अक्षय जलसे सभी धन-धान्य उत्पन्न हो गये। सभी प्राणी, ऋषि, पशु-पक्षी वहाँ आने लगे। पृथ्वीतलसे अनावृष्टि समाप्त हो गयी और मङ्गलमय वातावरण छा गया।

एक बार ऋषिने अपने शिष्योंको हाथमें कमण्डलु देकर वहाँसे जल लानेके लिये कहा। वहाँ अनेक ऋषि-पत्नियाँ जल लेनेके लिये आयी थीं। उन्होंने जलके समीप शिष्योंको देखते हुए जल लेनेसे मना किया और यह कहा कि जल पहले हमलोग ले लें, फिर आपलोग जल लेंगे। ऐसा कहकर वे धमकाने लगीं। शिष्योंने लौटकर सारी बातें ऋषि-पत्नीसे कहीं। ऋषि-पत्नीने उन्हें सान्त्वना दी और स्वयं उनके साथ वहाँ गयी और जल लाकर गौतम को दिया। तदनन्तर ऋषिने अपना नित्यकर्म पूरा किया। इधर क्रोधाविष्ट हो ऋषि-पत्नियोंने अहल्याको धमकाया और वे दुष्ट आशय लेकर लौट गयीं। उन्होंने अपने स्वामियोंसे उलटी बातें सुनायीं। इन्हें सुनकर उन्होंने गौतमपर आपत्ति डालनेके लिये गणेशजीकी पूजा की। गणेशजीने प्रसन्न होकर उनसे वर माँगनेके लिये कहा। ऋषियोंने कहा—'यदि आप हमपर प्रसन्न हैं तो हमें ऐसा बल दें कि हम गौतमका तिरस्कार करके आश्रमसे निकाल सकें।' गणेशजीने इस कार्यको अनुचित बताया, किंतु उन ऋषियोंके दुराग्रहपर उन्हें वरदान देकर आश्वस्त करना पड़ा।

इस कार्यकी पूर्तिके निमित्त गणेशजी एक दुर्बल गौका रूप धारण कर गौतम ऋषिके उस क्षेत्रमें पहुँच गये, जहाँ जौ और धान उगे थे। वह गौ काँप रही थी। वह जौ और धान खाने लगी। दैववश गौतम वहाँ पहुँचे और तिनकोंकी मुट्ठीसे उसे हटाने लगे। तृणोंके स्पर्शसे गौ पृथ्वीपर गिर पड़ी और ऋषिके सामने ही मर गयी। उस समय छिपे हुए गौतमके विरोधी अन्य ऋषियोंने एवं उनकी पत्नियोंने कहा कि 'गौतमने अशुभ कर्म कर दिया है। इसके द्वारा गौकी हत्या हो गयी है। इसका मुँह देखना पाप है। अतः इसे इस स्थानसे बहिष्कृत कर दिया जाय।' यह कहकर उन्होंने उन्हें वहाँसे बहिष्कृत कर दिया। गौतमको अत्यन्त अपमानित होना पड़ा। गौतम ऋषिने उन्हीं लोगोंसे इसका प्रायश्चित्त पूछा—'आपलोगोंको मुझपर कृपा करनी चाहिये। आप इस पापको दूर करनेका उपाय बतायें। मैं उसे करूँगा।' उन्होंने बताया कि 'आप पूरी पृथ्वीकी तीन बार परिक्रमा करें, मासव्रत करें, इस ब्रह्मगिरिपर सौ बार घूमें, तब आपकी शुद्धि होगी अथवा आप गङ्गाजल लाकर स्नान करें, एक करोड़ पार्थिव शिवलिङ्ग बनाकर शंकरकी पूजा करें, पुनः गङ्गा-स्नान करें और सौ घड़ोंसे पार्थिव शिवलिङ्गको स्नान करायें तो उद्धार होगा।'

गौतम ऋषिने इस प्रकारका कठोर प्रायश्चित्त किया। भगवान् शिव प्रकट हो गये। उन्होंने गौतमसे कहा—'महामुने! मैं आपकी भक्तिसे प्रसन्न हूँ। आप वर माँगिये।' गौतमने भगवान् शिवकी स्तुति की और हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए कहा—'देव! आप मुझे निष्पाप कीजिये!' शिवजीने कहा—'मुने! तुम धन्य हो। तुम सदा निष्पाप हो। तुम्हारे साथ तो दुष्टोंने छल किया था। जिन दुरात्माओंने तुम्हारे साथ उपद्रव किया था, वे स्वयं दुराचारी, पापी एवं हत्यारे हैं।' शिवजीकी बात सुनकर गौतम आश्चर्य-चकित हो गये। उन्होंने कहा कि 'वे लोग मेरा बड़ा ही उपकार किये हैं। यदि ऐसा वे न करते तो कदाचित् आपका यह दुर्लभ दर्शन न हुआ होता।' तदनन्तर गौतम ऋषिने शिवजीसे गङ्गा माँगी। शिवजीने गङ्गासे कहा—'गङ्गे! तुम गौतम ऋषिको पवित्र करो।' गङ्गाने कहा कि 'मैं गौतम एवं उनके परिवारको पवित्र करके अपने स्थानपर चली जाऊँगी', किंतु भगवान् शिवने गङ्गाको लोकोपकारार्थ वैवस्वत मनुके अट्ठाईसवें कलियुगतक रहनेके लिये आदेश दिया। गङ्गाने उनकी आज्ञाको स्वीकार किया और भगवान् शिवको भी अपने सभी परिवारके साथ रहनेके लिये प्रार्थना की। इसके बाद सभी ऋषिगण एवं देवगण गङ्गा, गौतम और शिवकी जय-जयकार करने लगे। देवोंके प्रार्थना करनेपर भगवान् शिव वहीं गौतमी-तटपर 'त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग' के रूपमें प्रतिष्ठित हो गये। यह त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिङ्ग सभी कामनाओंको पूर्ण करता है। यह महापातकोंका नाशक और मुक्तिप्रदायक है। जब सिंह-राशिपर बृहस्पति आते हैं, तब इस गौतमी-तटपर सकल तीर्थ, देवगण और नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाजी पधारती हैं तथा महाकुम्भ पर्व होता है। (जा० ना० श०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैद्यनाथेश्वर

पटना-कलकत्ता रेलमार्गपर किउल स्टेशनसे दक्षिण-पूर्व १०० किलोमीटरपर देवघर है, इसे ही वैद्यनाथधाम कहते हैं। यहींपर वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग है। इसकी कथा इस प्रकार है—रावणने अतुलबलसामर्थ्यकी प्राप्तिकी इच्छासे भगवान् शिवकी आराधना प्रारम्भ की। वह ग्रीष्मकालमें पञ्चाग्नि-सेवन करता था, जाड़ेमें पानीमें रहता था एवं वर्षा-ऋतुमें खुले मैदानमें रहकर तप करता था। बहुत कालतक इस उग्र तपसे भी जब शिवजीने प्रत्यक्ष दर्शन नहीं दिया, तब उसने पार्थिव लिङ्गकी स्थापना की और उसीके पास गड्ढा खोदकर अग्नि प्रज्वलित की। वैदिक विधानसे उस अग्निके सामने उसने शिवजीकी विधिवत् पूजा की। रावण अपने सिरको काट-काटकर चढ़ाने लगा। शिवजीकी कृपासे उसका कटा हुआ सिर पुनः जुड़ जाता था। इस प्रकार उसने नौ बार सिर काटकर चढ़ाया। जब दसवीं बार वह सिर चढ़ानेको उद्यत हुआ, तब भगवान् शिव प्रकट हो गये। भगवान् शिवने रावणसे कहा—मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ, तुम अपना अभीष्ट वर माँग लो।' रावणने उनसे अतुलबलसामर्थ्यके लिये प्रार्थना की। भगवान् शिवने उसे वह वर दे दिया। रावणने उनसे लङ्का चलनेके लिये निवेदन किया। तब भगवान् शिवने उसके हाथमें एक शिवलिङ्ग देते हुए कहा—'रावण! यदि तुम इसे मार्गमें कहीं भी पृथ्वीपर रख दोगे तो यह वहीं अचल होकर स्थिर हो जायगा। अतः इसे सावधानीसे ले जाना।' रावण शिवलिङ्गको लेकर चलने लगा। शिवजीकी मायासे मार्गमें उसे लघुशङ्काकी इच्छा हुई, जिसे वह रोक न सका। उसने पासमें खड़े हुए एक गोपकुमारको देखा और निवेदन करके वह शिवलिङ्ग उसीके हाथमें दे दिया। वह गोप उस शिवलिङ्गके भारको सहन न कर सका और वहीं पृथ्वीपर रख दिया। धरतीपर पड़ते ही वह शिवलिङ्ग अचल हो गया। तत्पश्चात् रावण जब उसे उठाने लगा, तब वह शिवलिङ्ग न उठ सका। हताश होकर रावण घर लौटा। यही शिवलिङ्ग 'वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग'के नामसे जगत्में प्रसिद्ध हो गया। इस घटनाको जानकर ब्रह्मा, इन्द्रादि समस्त देवगण वहाँ उपस्थित हो गये। देवगणने भगवान् शंकरका प्रत्यक्ष दर्शन किया। देवताओंने उनकी प्रतिष्ठा की। अन्तमें देवगण उन 'वैद्यनाथ महादेव' की स्तुति करके अपने-अपने भवनको चले गये। वैद्यनाथ महादेवकी पूजा-अर्चासे समस्त दुःखोंका शमन होता है और सुखोंकी प्राप्ति होती है। यह दिव्य शिवलिङ्ग मुक्तिप्रदायक है। (जा० ना० श०)

नागेश

नागेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग द्वारकाके पास दारुकावनमें गोमती नदीके तटपर स्थित है, जिसकी कथा इस प्रकार है—प्राचीन कालमें दारुका नामकी एक राक्षसी थी। वह पार्वतीजीके वरदानसे अत्यन्त बलवती हो गयी थी। पश्चिमी समुद्रीतटपर एक विशाल वन था। उसका विस्तार चौंसठ कोसतक था। पार्वतीजीने उसे उसी वनके संरक्षणके लिये नियुक्त कर दिया था। राक्षसराज दारुक दारुकाका पति था। वह अपनी पत्नीके साथ रहते हुए सभी प्राणियोंको कष्ट देने लगा। सब लोग राक्षसोंसे पीड़ित होकर और्व मुनिकी शरणमें गये। उन्होंने मुनिसे कहा—'महर्षे! हम सभी आपकी शरणमें आये हैं। राक्षस हमलोगोंको मार डालेंगे। अतः आप हमारी रक्षा करें। आप परम तेजस्वी हैं। आपको छोड़कर दूसरा कौन हमलोगोंकी इस विपत्तिसे रक्षा कर सकता है।' यह सुनकर और्व मुनिने कहा—'यदि ये राक्षस प्राणियोंको मारेंगे और यज्ञोंको नष्ट करेंगे तो अपने-आप प्राणहीन हो जायँगे। मेरा यह सत्य वचन है।' ऐसा कहकर और्व मुनि अपनी तपस्यामें लीन हो गये।

देवगण मुनिकी इस वाणीसे आश्वस्त होकर राक्षसोंके साथ युद्ध करने लगे। राक्षसगण मुनिके इस शापको सुनकर और अपनी पराजयकी स्थितिका अनुभव करते हुए चिन्तित हो गये। वे लोग दारुकाकी शरणमें गये और उसे प्रणाम करके अपने दुःखोंको सुनाने लगे। इसी बीच देवताओंने राक्षसोंपर आक्रमण कर दिया। राक्षसगण भयभीत होकर दारुकासे अपनी सेनासहित समुद्रमें जानेके लिये प्रार्थना करने लगे। दारुकामें अपार शक्ति थी। वह सेनासहित समुद्रमें प्रवेश कर गयी। अब राक्षसगण समुद्रमें सकुशल रहने लगे। वे उधरसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने-जानेवाले लोगोंकी हिंसा करके समुद्रमें छिप जाते थे। इस प्रकार नावमें जो कोई बैठता था, उसे वे राक्षस मारकर समुद्रमें प्रवेश कर जाते थे। एक बार नावमें बैठकर कुछ लोग आ रहे थे। उनके बीच भगवान् शंकरके एक परम भक्त बैठे थे। उनका नाम 'सुप्रिय' था। वे भगवान् शंकरकी पूजामें तल्लीन थे। ठीक इसी समय राक्षसराज दारुक आया और पूछा—'वैश्य ! तू किसका ध्यान कर रहा है ?' इस बातको सुनकर सुप्रिय वैश्यने कहा कि 'मैं जो कुछ करता हूँ, उसे तू भी जानता है।' इसे सुनकर राक्षसोंने आयुध लेकर सुप्रियपर आक्रमण कर दिया। यह देखकर सुप्रियने भगवान् शंकरका स्मरण किया और अपनी रक्षाके लिये उनकी स्तुति की। उस स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् शिव विवरसे प्रकट हो गये और सम्पूर्ण राक्षस-जातिका नाश करने लगे। शिवजीका यह प्राकट्य 'नागेश्वर-ज्योतिर्लिङ्ग'के रूपमें प्रसिद्ध हुआ।

राक्षसोंके भयंकर विनाशको देखते हुए दारुका राक्षसीने भी पार्वतीजीका स्मरण किया। पार्वतीजी भी अपनी उपासिका दारुकाके निमित्त 'नागेश्वरी'के रूपमें वहीं प्रकट हो गयीं। 'नागेश्वरी' रूपधारिणी पार्वतीजीने 'नागेश्वर शिव'से कहा—'नाथ ! मैं आपकी हूँ। आपके आश्रित हूँ। आप राक्षस-जातिकी तामसी सृष्टिका अभी नाश न करें। यदि आप ऐसा करेंगे तो प्रलय आनेके पूर्व ही प्रलय हो जायगा।' शिवजीने पार्वतीजीकी बातको स्वीकार करते हुए अपने क्रोधका संवरण कर लिया और कहा—'मैं अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये इस वनमें नागेश्वररूपमें प्रतिष्ठित रहूँगा। जो व्यक्ति वर्णाश्रम-धर्ममें स्थित रहकर निष्ठापूर्वक मेरा पूजन करेगा, वह चक्रवर्ती होगा। कलियुग बीतनेपर जब सत्ययुग आयेगा, तो 'वीरसेन' नामसे एक नृपेश्वर होगा। वह मेरा पराक्रमी भक्त जब मेरा दर्शन करेगा तो चक्रवर्ती हो जायगा।' परस्पर हास्य करते हुए परम रक्षक शिवजी और पार्वतीजी 'नागेश्वर' और 'नागेश्वरी' रूपसे वहीं प्रतिष्ठित हो गये। उनके दर्शनसे सभी कामनाओं-की पूर्ति होती है और महापातकोंका नाश हो जाता है।

(जा० ना० श०)

श्रीरामेश्वर

मद्राससे धनुष्कोटितक जानेवाली रेलवे लाइनपर पाम्बनके समीप 'रामेश्वर-ज्योतिर्लिङ्ग' है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने इसे लङ्का-विजयके समय स्थापित किया था। सीता-हरणके पश्चात् जब श्रीरामचन्द्रजी वानरोंकी सेना लेकर समुद्र-तटपर पहुँचे, तब उन्हें रावणके पराक्रम और समुद्रकी चौड़ाईको देखकर बड़ी चिन्ता हुई। इतनेमें उन्हें तेज प्यास लगी। उन्होंने जल माँगा और बंदर लोग जल ले आये। वे हाथमें जल लेकर उसे पीना ही चाहते थे कि उन्हें ध्यान आया कि 'मैंने भगवान् शंकरका दर्शन अभीतक किया नहीं, फिर जल कैसे पीऊँ।' अतः उन्होंने जलको किनारे रख दिया और सोलह उपचारोंसे शिवजीकी पूजाकर भक्ति-भावसे उनकी प्रार्थना की। उनके भक्ति-भावसे प्रभावित होकर भगवान् शंकर और पार्वतीने पार्षदोंके साथ प्रकट होकर वर माँगनेको कहा। श्रीरामचन्द्रजीने पुनः उनकी पूजा की और लङ्का-विजयकी प्रार्थना की तथा यह भी कहा कि 'आप संसारके कल्याणके लिये इस शिवलिङ्गमें विराजें।' तबसे रामेश्वरके नामसे इनकी प्रसिद्धि हुई। फिर श्रीरामचन्द्रजीने समुद्र पारकर रावणका वध किया और सीताजीको पुनः प्राप्त किया। जो दिव्य गङ्गा-जलसे इन्हें स्नान कराता है, वह भोग-मोक्षको प्राप्त करता है और जीवन्मुक्त हो जाता है। इनके माहात्म्यको सुननेवालेका पाप नष्ट हो जाता है।

(जा० ना० श०)

घुश्मेश्वर

यह ज्योतिर्लिङ्ग मध्य रेलवेकी मनमाड पूर्णा लाइनपर मनमाडसे १०० किलोमीटर दूर दौलताबाद स्टेशनसे २० किलोमीटर दूर वेरुल गाँवके पास स्थित है। कुछ लोग इसे राजस्थानके शिवाड़ नामक नगरमें भी बताते हैं। इनकी कथा इस प्रकार है—पहले यहाँ कोई सुधर्मा नामके ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नीका नाम सुदेहा था। वह शिवभक्त थी और पतिव्रता भी थी, पर इन लोगोंको कोई पुत्र नहीं था, जिससे इनकी पत्नी दुःखी रहती थी। वह पतिसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार-बार पुत्रके लिये प्रार्थना करती थी। पति उसे ज्ञानोपदेश देकर समझाते थे, परंतु उसका मन नहीं मानता था। ब्राह्मणने कई उपाय किये, परंतु वे सफल नहीं हुए। अन्तमें सुदेहाने अपनी बहन घुश्मासे ब्राह्मणका विवाह करा दिया। घुश्मा प्रतिदिन शिवकी पूजा करने लगी। इससे उसे एक सुन्दर पुत्र प्राप्त हुआ। पुत्र होनेसे उसकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी, इससे सुदेहा जलने लगी। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। बड़ा होनेपर जब उस बालकका विवाह हुआ तब सुदेहाके क्रोधकी सीमा न रही। उसने एक रात घुश्माके पुत्रको सोते समय काट-काटकर तालाबमें डाल दिया। प्रातःकाल जब पुत्रवधूने सारी बात घुश्मासे बतायी, तब सुदेहा भी रोनेका नाटक करने लगी, परंतु घुश्मा उस समय शिवजीकी पूजा कर रही थी, अतः उसका भी विचलित नहीं हुई और पार्थिव-पूजन कर शिवलिङ्गको छोड़ने उसी तालाबपर गयी। जब वह वहाँसे लौटने लगी, तब उसने पुत्रको खड़ा देखा। वहीं भगवान् शंकर भी प्रकट हुए और उससे वर माँगनेको कहा। घुश्माने उनसे अपनी बहन सुदेहाकी बुद्धि शुद्ध होने, गति-मुक्ति मिलने और विश्वकी रक्षा करनेके लिये उस शिवलिङ्गमें निवास करनेका वर माँगा। भगवान् शंकर उस शिवलिङ्गमें स्थित हो घुश्मेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए। वह स्थान आज भी 'शिवालय' नामसे प्रसिद्ध है। घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिङ्गका दर्शन करनेसे सदा सुखकी वृद्धि होती है। (जा० ना० श०)

छब्बीस एकादशियोंकी कथाएँ

अगहन मासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'उत्पन्ना' एकादशी—सत्य-युगमें एक मुर नामक दानव था। वह देवताओंके लिये काल ही था। उस महादानवने इन्द्र आदि देवताओंको पराजितकर स्वर्गसे निकाल दिया था। देवतालोग छिपकर अपने प्राण बचा रहे थे। इन्द्र, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य आदिके पदोंपर मुरने दूसरे-दूसरे दानवोंको बैठा रखा था। इस तरह देवता प्रत्येक स्थानसे वञ्चित थे।

अपनी दुर्गतिसे घबराकर देवताओंने महादेवजीकी शरण ली। भगवान् शंकरने उन्हें भगवान् विष्णुके पास भेज दिया। भगवान् विष्णुको देवताओंकी दुर्दशा देखकर मुरपर क्रोध हो आया। वे देवताओंके साथ मुरकी नगरी चन्द्रावतीपुरीमें गये। मुरने देखते ही देवताओंपर धावा बोल दिया। उसके प्रचण्ड आक्रमणके सामने देवता ठहर न सके। वे सब-के-सब भाग खड़े हुए। तब उस दानवने भगवान् विष्णुको ललकारा। भगवान् विष्णुने अपने दिव्य बाणोंसे दानवोंका संहार प्रारम्भ कर दिया। फिर चक्रद्वारा प्रहार किया। थोड़ी ही देरमें दानवोंकी सेना नष्ट हो गयी। बचे हुए दानव भाग खड़े हुए।

वहाँसे भगवान् बदरिकाश्रम चले गये। वहाँ वे सिंहावती नामक गुफामें सो गये। मुर दानव छिप-छिपकर इनका पीछा कर रहा था। भगवान्‌को सोते देखकर वह फूला न समाया। उसने सोचा कि 'मैं सोते समय ही इन्हें मार डालूँगा।' तत्क्षण भगवान्‌के शरीरसे एक कन्या उत्पन्न हुई। वह अस्त्र-शस्त्रसे सजी हुई थी। उसने दानवराजसे युद्धकी इच्छा प्रकट की। दानवराज पूरी शक्तिके साथ कन्यापर टूट पड़ा, किंतु उसके हुंकार-मात्रसे वह जलकर राख हो गया।

इसी बीच भगवान् जाग पड़े। उन्होंने पूछा—'इस दानवराजका वध किसने किया?' कन्याने विनम्रतासे कहा— 'आपके ही प्रसादसे मैंने इसका वध किया है।' भगवान्‌ने प्रसन्न होकर उससे वर माँगनेको कहा। वह कन्या साक्षात् एकादशी ही थी। उसने वरदानमें माँगा कि 'मैं सब तीर्थोंमें प्रधान मानी जाऊँ तथा सब प्रकारके विघ्नोंको नाश करनेवाली और सब सिद्धियोंको देनेवाली बन जाऊँ। जो लोग आपकी भक्ति करते हुए मेरी तिथिके दिन उपवास करें, उन्हें सब सिद्धियाँ प्राप्त हों।'

भगवान्‌ने प्रसन्नताके साथ कन्याकी सब माँगें पूरी कर दीं। यह घटना अगहन मासके कृष्णपक्षकी एकादशी तिथिको हुई थी। इसलिये इसे 'उत्पन्ना' एकादशी कहते हैं।

(ख) शुक्लपक्षकी 'मोक्षा' एकादशी—चम्पक-नगरमें एक राजा थे। उनका नाम था—वैखानस। एक दिन राजाने स्वप्नमें देखा कि उनके पितर नीच योनिमें पड़े हुए हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कह रहे हैं कि तुम मुझे इस नरककुण्डसे निकालो।

राजाकी नींद टूट गयी। इस स्वप्नसे उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। सबेरे उन्होंने ब्राह्मणोंको बुलाकर पितरोंके उद्धारका उपाय पूछा। ब्राह्मणोंने कहा—'आपके स्वप्नका ठीक रहस्य पर्वतमुनि ही बता सकते हैं। आप उन्हींके पास जाइये।' राजा पर्वतमुनिके पास पहुँचे। उन्होंने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम कर अपनी जिज्ञासा उनके सामने रखी। पर्वतमुनिने ध्यानसे देखकर बताया—'अगहन मासके शुक्लपक्षमें 'मोक्षा' नामकी एकादशी आती है। आप उस व्रतको करें और उसका पुण्य अपने पितरोंको दे दें। इससे आपके पितरोंका उद्धार हो जायगा।'

राजा 'मोक्षा' एकादशीकी प्रतीक्षा करते रहे। अवसर आनेपर सपरिवार उन्होंने एकादशीका व्रत रखा और उसका पुण्य पितरोंको दे दिया। राजाके द्वारा संकल्प-जलके छोड़ते ही आकाशसे फूलोंकी वृष्टि होने लगी। ऊपरसे आवाज आयी— 'बेटा! तुम्हारा कल्याण हो। अब हम स्वर्ग जा रहे हैं।' इस घटनासे राज्यभरमें प्रसन्नता छा गयी।

इस तरह जो व्यक्ति 'मोक्षा' एकादशीव्रत करता है, उसे पापोंसे छुटकारा मिल जाता है और मरनेपर मोक्षकी प्राप्ति होती है। (ला० बि० मि०)

पौषमासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'सफला' एकादशी—भगवान्‌ने कहा है कि 'बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे मुझे उतना संतोष नहीं होता, जितना एकादशी-व्रतके अनुष्ठानसे होता है। इसके अनुष्ठानसे बड़े-बड़े पापियोंका भी उद्धार हो जाता है।'

राजा माहिष्मतकी राजधानी चम्पावती थी। वे सुयोग्य एवं धार्मिक शासक थे, किंतु उनका बड़ा लड़का बहुत ही उच्छृङ्खल था। शेष चार लड़के उन्हींकी तरह सुशील थे। लोगोंने ज्येष्ठ लड़केका नाम 'लुम्भक' रख दिया था। वह परस्त्रीगामी और दुराचारी था। वैष्णवों और देवताओंका तो शत्रु ही था। बहुत दिनोंतक उसे सुधारनेकी चेष्टा की गयी, किंतु उसका दुराचार बढ़ता ही गया। उद्विग्न होकर उसे नगरसे बाहर निकाल दिया गया।

लुम्भककी आदत वनमें भी वही रही। वह लूट-खसोट कर अपनी जीविका चलाता था। उस समयका वातावरण अच्छा था, इसलिये उसके दुष्कर्ममें उसे और कोई सहयोगी नहीं मिला। अकेला ही वह एक पीपलके पेड़के नीचे रहता था। एक दिन चोरी करते समय सिपाहियोंने उसे पकड़ लिया, किंतु राजाका पुत्र समझकर छोड़ दिया। तबसे लुम्भकने चोरी करनी छोड़ ही दी। वह पशुओंके मांस और फल-फूलपर जीवन-निर्वाह करने लगा।

किसी जन्मके पुण्यके प्रभावसे पौषमासमें कृष्णपक्षकी दशमीको उसे मांस न मिला। वह फल-फूल खाकर ही रह गया और कपड़ेके अभावसे रातभर जाड़ेसे ठिठुरते हुए निर्जीव-सा पड़ा रहा। दूसरे दिन दोपहरतक उसे उठनेकी इच्छा नहीं हुई। वह कभी होशमें आता और फिर बेहोश हो जाता। दोपहरके बाद उसकी चेतना लौटी, किंतु सारी संधियाँ टूट रही थीं। वह भूखसे निष्प्राण हो रहा था। किसी प्रकार गिरता-पड़ता वनके भीतर गया और शामको फल-फूल लेकर लौटा। इस कष्टमें उसे भगवान्‌का स्मरण हो आया। उसने भगवान्‌के नामपर उन फलोंको वृक्षकी जड़में रख दिया और कहा—'इन फलोंसे लक्ष्मीपति भगवान् प्रसन्न हों।' अस्वस्थताके कारण उसे रातभर नींद नहीं आयी। उसने 'राम-राम' कहकर रात बितायी। इतनेमें आकाशवाणी हुई—'राजकुमार! अनजानमें तुमसे 'सफला' एकादशीका अनुष्ठान हो गया है, इसलिये तुम राज्य और पुत्रको प्राप्त करोगे।'

द्वादशीके दिन उसका शरीर ही नहीं स्वस्थ हुआ, प्रत्युत मन भी स्वस्थ हो गया। उसके शरीरमें राजोचित कान्ति आ गयी। उसकी बुद्धि निरन्तर भगवान् विष्णुके स्मरणमें और जीभ भगवान्‌के नामके उच्चारणमें लग गयी। कुछ ही दिनोंमें उसे राज्य मिल गया और वह सुयोग्य शासक बन गया। पुत्रके बड़ा होनेपर लुम्भकने उसे राज्य सौंप दिया और स्वयं भगवान्‌के भजनमें लीन हो गया। अन्तमें उसे विष्णुलोककी प्राप्ति हुई। यह सब 'सफला' एकादशीके अनुष्ठानका फल था।

(ख) शुक्लपक्षकी 'पुत्रदा' एकादशी—भद्रावती नगरीमें राजा सुकेतुमान् राज्य करते थे। उनकी पत्नीका नाम चम्पा था। दोनों पति-पत्नी धार्मिक थे, किंतु उन्हें एक भी पुत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न था। इसलिये दोनों ही सदा चिन्तित रहा करते थे।

एक दिन राजा चिन्तातुर होकर चुपकेसे गहन वनमें चले गये। दोपहरको उन्हें जोरसे प्यास लगी। जलकी खोजमें वे इधर-उधर भटकने लगे। इतनेमें उन्हें एक निर्मल सरोवर दीख पड़ा। उसके तटपर मुनियोंके आश्रम थे। राजाका दाहिना नेत्र फड़कने लगा। उन्होंने मुनियोंकी वन्दना की। उनकी विनम्रतापर प्रसन्न होकर मुनियोंने उन्हें आशीर्वाद दिया और अपना पचिय देते हुए बतलाया कि 'हमलोग विश्वदेव हैं। आज 'पुत्रदा' नामकी एकादशी है। इस पर्वपर हम यहाँ नहाने आये हैं।' राजाने उनसे पुत्रके लिये प्रार्थना की।

विश्वदेवोंने कहा—'आज 'पुत्रदा' नामकी एकादशी है, अतः तुम भी आज इस व्रतका अनुष्ठान कर लो। तुम्हें पुत्र अवश्य होगा।' राजाने विधि-विधानके साथ इस व्रतका पालन किया तथा वह रात उन्हीं लोगोंके बीचमें जागरणपूर्वक बितायी। द्वादशीके दिन उन्होंने पारण किया। फिर वे मुनियोंको संतुष्ट कर घर लौट आये।

व्रतके प्रभावसे रानीने गर्भ धारण किया। समय आनेपर एक सुशील पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने प्रजाओं और पितरोंको तृप्त कर दिया।

(ला० बि० मि०)

माघमासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'षट्तिला' एकादशी—एक ब्राह्मणी थी। वह दिन-रात व्रतोंके अनुष्ठान और पूजामें ही लगी रहती थी। वह विष्णुकी भक्त थी, अतः महीनों उपवास करती रहती थी। इस तरह उपवासोंसे उसने अपना शरीर सुखा दिया था। उस सतीमें ये सब उदात्त गुण तो थे, किंतु उसने 'देना' नहीं सीखा था। वह न तो किसी भिक्षुकको भिक्षा देती और न ब्राह्मणोंको खिलाती ही थी। दयालु भगवान्ने सोचा कि 'इस ब्राह्मणीने अपने शरीरको तो शुद्ध करके विष्णुलोकको अपने अधिकारमें कर लिया है, किंतु दान न देनेसे यहाँ इसकी तृप्ति न हो सकेगी। अतः इससे कुछ दिलवाना चाहिये।'

ऐसा सोचकर भक्तवत्सल भगवान्ने कापालिकका वेष बनाया और भिक्षापात्र लेकर वे ब्राह्मणीके पास जा पहुँचे। उन्होंने ब्राह्मणीसे भिक्षा माँगी। देनेकी आदत न होनेसे ब्राह्मणी कापालिकपर उबल पड़ी। अन्तमें उसने इनके भिक्षापात्रमें मिट्टीका एक ढेला डालकर अपना पिण्ड छुड़ाया।

उग्र तपस्याके प्रभावसे वह सदेह वैकुण्ठ पधारी। मिट्टीके दानके कारण वहाँ उसे घर तो मिल गया, पर खाने-पीनेके लिये कुछ न था। इधर-उधर बहुत ढूँढ़नेपर भी उसे कुछ न मिला। वह भगवान्के पास उलाहना देने पहुँची। भगवान्ने उपाय बताया—'तुम घर लौट जाओ और कसकर किवाड़ लगा लो। देवपत्नियाँ कुतूहलवश तुम्हें देखने आयेंगी। उनके लिये तुम किवाड़ तबतक मत खोलना, जब-तक वे 'षट्तिला' एकादशीके पुण्यको देनेकी बात न कहें।'

ब्राह्मणीने ऐसा ही किया। एकने उसे 'षट्तिला' एकादशीका पुण्य दिया। इसके बाद देवियोंके कहनेसे ब्राह्मणीने 'षट्तिला' एकादशीका व्रत किया। फिर तो उसमें अलौकिक रूप-लावण्य आ गया तथा धन-धान्य और मणि-माणिक्योंसे उसका सारा घर भर गया।

(ख) शुक्लपक्षकी 'जया' एकादशी—एक बार देवराज इन्द्रने वनविहारके समय नृत्यका आयोजन किया। उसमें सभी गन्धर्व और अप्सराएँ आयीं; उनमें चित्रसेनकी एक कन्या थी, जिसका नाम पुष्पदन्ती था। वह पुष्पदन्तके पुत्र माल्यवान्को बहुत चाहती थी। माल्यवान् भी पुष्पदन्तीपर अनुरक्त था। दोनों एक-दूसरेपर आसक्त थे। ये दोनों भी नृत्य-गीतमें भाग ले रहे थे, किंतु इनकी परस्पर इतनी आसक्ति थी कि ये दोनों न तो शुद्ध गा पाते थे और न नाच ही सकते थे। यह देखकर इन्द्रको क्रोध आ गया। उन्होंने शाप दे दिया— 'तुम दोनोंने मेरी अवहेलना की है, इसलिये तुम दोनों पिशाच हो जाओ।'

दोनों हिमालयपर पिशाच हो गये। इस योनिमें उन्हें नरकसे भी बढ़कर यातना सहनी पड़ रही थी। दैवयोगसे उन्हें माघमासके शुक्लपक्षकी एकादशी प्राप्त हो गयी। उन दोनोंने निराहार और निर्जल रहकर इस व्रतका अनुष्ठान किया तथा रातको जागरण भी किया। इस व्रतके प्रभावसे उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिशाचता छूट गयी। वे अपने-अपने पहले रूपमें आ गये। उनके हृदयमें फिर वही पुराना स्नेह उमड़ने लगा। वे इन्द्रके पास पहुँचे और नम्रतासे उन्हें प्रणाम किये। इन्द्रको विस्मय हो रहा था कि उनके शापसे ये मुक्त कैसे हो गये? दोनोंने बतलाया कि 'जया' नामक एकादशीकी महिमासे हम दोनोंकी पिशाचता दूर हुई है।

यह सुनकर इन्द्रने उन दोनोंको बहुत सम्मान दिया और कहा—'जो भगवान्‌के शरणागत रहते हैं और एकादशी-व्रत करते हैं, उनका हम बहुत आदर करते हैं।' इतना कहकर इन्द्रने उन दोनोंका और सम्मान किया तथा अमृत भी पिलाया।

फाल्गुनमासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'विजया' एकादशी—भगवान् श्रीराम रावणपर चढ़ाई करनेके लिये वानर-सेनाके साथ समुद्र-तटपर पहुँच गये थे। समुद्रकी विशालता और अगाधता देखकर उन्होंने लक्ष्मणसे पूछा—'सुमित्रानन्दन! मुझे कोई ऐसा सरल उपाय नहीं दीखता जिससे यह वानरी सेना समुद्रको लाँघकर उस पार पहुँच जाय।' लक्ष्मणने कहा—'भैया! इस द्वीपके भीतर बकदाल्भ्य नामक मुनि रहते हैं। आधे योजनपर उनका आश्रम है। वे कोई सुगम उपाय बता सकते हैं।'

दोनों भाई बकदाल्भ्यके आश्रममें पहुँचे। मुनि देखते ही भगवान्‌को पहचान गये। वे आनन्दसे गद्‌गद हो गये। कुशल-क्षेमके बाद महात्मा बकदाल्भ्यने समुद्र तरनेके लिये उपाय बतलाते हुए कहा—'फाल्गुनके कृष्णपक्षमें 'विजया' नामकी एकादशी होती है। उस व्रतको करनेसे आपकी विजय होगी और समुद्र पार होनेका साधन भी हाथ लग जायगा।'

भगवान् श्रीरामने विधानके साथ 'विजया' एकादशीका व्रत किया। इसके फलस्वरूप उन्होंने समुद्र पार किया, लङ्कापर विजय पायी और सीताको प्राप्त किया।

जो मनुष्य 'विजया' एकादशीका व्रत करता है वह विजयी होता है और अक्षय स्वर्गको प्राप्त करता है।

(ख) शुक्लपक्षकी 'आमलकी' एकादशी—अभी सृष्टिकी रचना नहीं हुई थी। भगवान् विष्णुने सृष्टिकी इच्छा की। उनके मुखसे एक कण निकला, जिससे आँवलेका वृक्ष उत्पन्न हुआ। उसके बाद भगवान्‌ने अपने नाभिकमलसे ब्रह्माको प्रकट कर उन्हें भौतिक सृष्टिको उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी। ब्रह्माजीने देवता, दानव, राक्षस आदिकी सृष्टि की। देवताओंकी दृष्टि जब आँवलेके वृक्षपर पड़ी तब वे बहुत विस्मित हुए। विस्मयका कारण यह था कि पूर्वकल्पके सभी वृक्षोंको वे पहचान गये थे, किंतु आँवलेको नहीं पहचान पा रहे थे। उनके लिये यह नयी वस्तु थी। इसी बीच आकाशवाणी हुई—'देवताओ! यह विष्णुप्रिया आमलकी है। इसके स्मरणसे गोदानका फल, स्पर्शसे इससे दूना और इसके फल-भक्षणसे तिगुना फल प्राप्त होता है। इस वृक्षमें सभी देवता निवास करते हैं। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें इस वृक्षके नामपर 'आमलकी' एकादशीका व्रत किया जाता है। इस व्रतके करनेवाले रातको आँवलेके वृक्षके नीचे जागरण करते हैं और परशुरामजीकी प्रतिमा बनाकर पूजन करते हैं। इस 'आमलकी' व्रतके अनुष्ठानसे सभी पापोंसे छुटकारा मिलता है।'

चैत्रमासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'पापमोचनी' एकादशी—एक बार महर्षि च्यवनके पुत्र मुनिवर मेधावीको मोहित करनेके लिये मञ्जुघोषा नामक अप्सरा चैत्ररथ वनमें गयी। वह मुनिके आश्रमसे एक कोस दूर ही ठहर गयी। वहाँ उसने मोहक तान छेड़ दी। संयोगवश मेधावी मुनि अपने आश्रमसे उधर ही जा निकले। उनके कानमें जब मञ्जुघोषाका मोहक स्वर सुनायी पड़ा, तब वे बरबस उधर ही बढ़ते चले गये। जब उन्होंने उसके सुन्दर रूपको देखा तब वे परवश हो गये। मञ्जुघोषाने उचित अवसर देखकर उन्हें मोहक-पाशमें बाँध लिया। मुनिको रात-दिनका कोई भान न रहा। इस प्रकार बहुत वर्ष बीत गये। एक दिन मञ्जुघोषाने जानेके लिये उनसे आज्ञा माँगी, परन्तु मुनिको तो प्रतीत हो रहा था कि अभी एक ही रात बीती है। उन्होंने कहा—'सबेरा हो जाने दो, मैं संध्या कर लूँ, तब चली जाना।' अप्सराने मुस्कराते हुए कहा—'अबतक सैकड़ों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संध्याएँ बीत चुकी हैं।' मुनि बहुत चकित हुए। हिसाब लगाने-पर पता चला कि अबतक सत्तावन वर्ष बीत चुके हैं। इस हिसाबसे मुनिका माथा चकरा गया। वे समझ गये कि मञ्जुघोषाका यह प्रयास विघ्न डालनेके लिये था। उन्होंने शाप दे दिया—'तूने मेरा तप नष्ट किया है, अतः तू पिशाची हो जा ' उसके बहुत अनुनय-विनय करनेपर मुनिने शापोद्धारका उपाय बतलाते हुए कहा—'चैत्रके कृष्णपक्षकी एकादशीका नाम 'पापमोचनी' है। इसके अनुष्ठानसे तुम्हारी पिशाचता दूर हो जायगी। मैं भी इसी व्रतके अनुष्ठानसे अपने पापोंको दूर करूँगा।'

दोनोंने 'पापमोचनी' एकादशी-व्रतका अनुष्ठान किया और दोनों ही अपने पापोंसे मुक्त हो गये। मञ्जुघोषा पिशाचीसे पुनः अप्सरा बन गयी और मेधावी फिर पहलेकी तरह चमकने लगे।

(ख) शुक्लपक्षकी 'कामदा' एकादशी—नागपुरमें पुण्डरीक नामक एक विषधर नाग देवता रहते थे। वहाँ वीरधन्वा नामक गन्धर्वकी पुत्री ललिता नामकी एक अप्सरा भी रहती थी। उसके पतिका नाम ललित था। दोनों एक-दूसरेपर अनुरक्त थे। वे एक क्षण भी एक-दूसरेके बिना नहीं रह पाते थे।

एक बार नागराजने मनोरञ्जनके लिये नृत्य और गायनका आयोजन किया। ललितका भी उसमें कार्यक्रम था। ललित सावधानीसे गा रहा था। फिर भी उसे ललिताका स्मरण हो ही गया। वियोगके कारण उसके पैरोंमें और जीभमें लड़खड़ाहट आ गयी। नागराजको क्रोध हो आया। उसने शाप दिया कि 'तू राक्षस हो जा।' तत्क्षण बेचारा ललित राक्षस बन गया। उसका डीलडौल, चेहरा और मन विकराल हो गया। वह ललिताका अनुराग भी भूल गया। ललिताके शोकका कोई आर-पार न था। वह रोती हुई पतिके पीछे-पीछे घूमती रहती थी। उसका पति किसी जंगलमें चला गया था। उसके पीछे ललिता लगी हुई थी। वहाँ ललिताको एक आश्रम दीख पड़ा। उस आश्रममें पहुँचनेपर उसे शान्ति मिली। ललिता मुनिके पास गयी और प्रणाम करके रोने लगी। उसने धीरे-धीरे अपना दुखड़ा कह सुनाया।

मुनिने बतलाया—'बेटी! आज चैत्रमासके शुक्लपक्षकी 'कामदा' नामक एकादशी तिथि है। आज तुम व्रत रह जाओ और इसका पुण्य अपने स्वामीको दे दो। उससे तुम्हारे पतिका शापसे उद्धार हो जायगा। तुम घबराओ नहीं।' ललिताने विधानसे 'कामदा' एकादशीका अनुष्ठान किया। द्वादशीके दिन मुनिके सामने ही उसने अपने पतिके उद्धारके लिये भगवान्‌से कहा—'भगवन्! मैंने जो 'कामदा'-व्रतका अनुष्ठान किया है उसके पुण्यसे मेरे पतिका राक्षसभाव दूर हो जाय।' ललिताके इस पुण्य-संकल्पके बाद तुरंत उसके पतिका राक्षस-भाव छूट गया। उसके बाद व्रतके प्रभावसे दोनोंका स्वरूप और सुन्दर हो गया।

इस तरह 'कामदा' एकादशी-व्रतके अनुष्ठानसे ब्रह्महत्या आदि पापोंका नाश होता है एवं पिशाचत्व आदि दोषोंकी निवृत्ति होती है। (क्रमशः)

(ला० बि० मि०)

अद्भुत याचना

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो। भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥
जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान्। नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम्॥

(श्रीमद्भा० १।८।२५-२६)

जगद्गुरो! हमारे जीवनमें सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें, क्योंकि विपत्तियोंमें निश्चितरूपसे आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन हो जानेपर फिर जन्म-मृत्युके चक्करमें नहीं आना पड़ता। ऊँचे कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और सम्पत्तिके कारण जिसका घमंड बढ़ रहा है, वह मनुष्य तो आपका नाम भी नहीं ले सकता, क्योंकि आप तो उन लोगोंको दर्शन देते हैं, जो अकिञ्चन हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना दान दिये परलोकमें भोजन नहीं मिलता

विदर्भ देशमें श्वेत नामक राजा राज्य करते थे। वे सतर्क होकर राज्यका संचालन करते थे। उनके राज्यमें प्रजा सुखी थी। कुछ दिनोंके बाद राजाके मनमें वैराग्य हो आया। तब वे अपने भाईको राज्य सौंपकर वनमें तपस्या करने चले गये। उन्होंने जिस लगनसे राज्यका संचालन किया था, उससे भी अधिक लगनसे हजारों वर्षतक तपस्या की। उत्तम तपस्याके प्रभावसे उन्हें ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई। वहाँ उन्हें सब तरहकी सुख-सुविधा मिली, किंतु भोजनका कोई प्रबन्ध न था। भूखके मारे उनकी इन्द्रियाँ विकल हो गयीं। उन्होंने ब्रह्माजीसे पूछा कि 'यह लोक भूख-प्याससे रहित माना जाता है; फिर किस कर्मके विपाकसे मैं भूखसे सतत पीड़ित रह रहा हूँ।' ब्रह्माजीने कहा—'वत्स! मृत्युलोकमें तुमने कुछ दान नहीं किया, किसीको कुछ खिलाया नहीं। वहाँ बिना कुछ दान दिये परलोकमें खानेको नहीं मिलता। भोजनसे तुमने केवल अपने शरीरको पाला है, इसलिये उसी मुर्दे शरीरको वहाँ जाकर खाना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त तुम्हारे भोजनका और कोई मार्ग नहीं है। तुम्हारा वह शव अक्षय बना रहेगा। सौ वर्ष बाद महर्षि अगस्त्य तुम्हारा उद्धार करेंगे।'

ठीक सौ वर्ष बाद दैवयोगसे महर्षि अगस्त्य सौ योजन-वाले उस विशाल वनमें जा पहुँचे। वह जंगल बिलकुल सूनसान था। वहाँ न कोई पशु था न पक्षी। उस वनके मध्यमें चार कोस लम्बी एक झील थी। अगस्त्यजीको उसमें एक मुर्दा दीख पड़ा। उसे देखकर महर्षि सोचने लगे कि यह किसका शव है? यह कैसे मर गया। इसी बीच आकाशसे एक अद्भुत विमान उतरा। उस विमानसे एक दिव्य पुरुष निकला। वह झीलमें स्नान कर उस शवका मांस खाने लगा। भरपेट मांस खाकर वह सरोवरमें उतरा और उसकी छटा निहारकर फिर स्वर्गकी ओर जाने लगा। महर्षि अगस्त्यने उससे पूछा—'देखनेमें तो तुम देवता मालूम पड़ते हो, किंतु तुम्हारा यह आहार बहुत ही घृणित है।' तब उस स्वर्गवासी पुरुषने अपना पूरा वृत्तान्त कह सुनाया और यह भी बताया कि 'हमारे सौ वर्ष पूरे हो गये हैं। पता नहीं महर्षि अगस्त्य मुझे कहाँ कब दर्शन देंगे कि हमारा उद्धार होगा?'

अगस्त्यजीने कहा—'महाभाग! मैं ही अगस्त्य हूँ, बताओ तुम्हारा क्या उपकार करूँ?' तब उसने कहा—'मैं अपने उद्धारके लिये एक अलौकिक आभूषण भेंट करता हूँ। इसे आप स्वीकार कर मेरा उद्धार करें।' निर्लोभ महर्षिने उसके उद्धारके लिये उस आभूषणको स्वीकार कर लिया। आभूषण-के स्वीकार करते ही वह शव अदृश्य हो गया और उस पुरुषको अक्षयलोककी प्राप्ति हुई।

दानका स्वरूप

एक दिन भक्तशिरोमणि देवर्षि नारद वीणापर हरिका यशोगान करते हुए एक ऐसे स्थानपर पहुँचे जहाँ कुछ ब्राह्मण अत्यन्त खिन्न और उदास-अवस्थामें बैठे थे। उन्हें दुःखी देखकर नारदजीने पूछा—'पूज्य ब्राह्मणदेवो! आप सब इस प्रकार क्यों उदास हो रहे हैं? कृपया मुझे अपने दुःखका कारण बताइये, सम्भवतः मैं आपकी कुछ सहायता कर सकूँ।'

ब्राह्मणोंने उत्तर दिया—'मुनिवर! एक दिन सौराष्ट्रके राजा धर्मवर्मने आकाशवाणी सुनी—

द्विहेतुः षडधिष्ठानं षडङ्गं च द्विपाकयुक्।
चतुष्प्रकारं त्रिविधं त्रिनाशं दानमुच्यते॥

—राजाको दानविषयक इस श्लोकका अर्थ कुछ भी समझमें नहीं आया। उन्होंने दैवी वाणीसे इसका अर्थ समझानेकी प्रार्थना की, किंतु उसने कृपा नहीं की। तब राजाने अपने राज्यमें घोषणा करायी कि 'जो विद्वान् मुझे इस श्लोकका यथार्थ अभिप्राय समझा देगा, उसे मैं सात लाख गौएँ, इतनी ही स्वर्ण-मुद्राएँ तथा सात गाँव पुरस्काररूपमें दूँगा।'

देवर्षे! इस श्लोकके अत्यन्त गूढ़ होनेके कारण कोई भी विद्वान् राजाको इसका अर्थ नहीं समझा पाता। हम भी इसकी व्याख्या करनेके लिये राजप्रासादमें गये थे, किंतु राजाका समाधान न कर पानेके कारण अपना-सा मुँह लेकर वापस आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये। हमारी खिन्नताका कारण यही है।'

यह सुनकर देवर्षि नारद वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर राजा धर्मवर्माके यहाँ गये और प्रणाम करके बोले—'राजन्! मैं आपके श्लोककी व्याख्या करनेके लिये आपके समक्ष उपस्थित हुआ हूँ।'

धर्मवर्मा बोले—'ब्राह्मणदेव! ऐसा आश्वासन तो मुझे अनेक विद्वानोंने दिया, किंतु कोई भी संतुष्ट नहीं कर सका। यदि आप मेरा पूर्ण समाधान कर सकें तो मैं आपका अत्यन्त आभार मानूँगा।'

नारदजीने निवेदन किया—'राजन्! इस श्लोकका तात्पर्य यह है कि 'दानके दो हेतु या प्रेरक भाव होते हैं, श्रद्धा और शक्ति। दानकी श्रेष्ठता उसकी अधिकतापर निर्भर नहीं करती, अपितु यदि न्यायसे उपार्जित धन श्रद्धापूर्वक यथाशक्ति दानके रूपमें दिया जाय तो वह थोड़ा होनेपर भी भगवान्‌की पूर्ण प्रसन्नता और अनुग्रहका कारण होता है। दानके छः अधिष्ठान होते हैं जिनके आधारपर वह स्थित रहता है। वे हैं—धर्म, अर्थ, काम, लज्जा, हर्ष और भय। दानके छः अङ्ग होते हैं—दाता, प्रतिग्रहीता (दान लेने या स्वीकार करनेवाला), शुद्धि, धर्मयुक्त देय वस्तु, देश और काल। दानके दो फल होते हैं—यह लोक और परलोक, इस लोकमें अभ्युदय या उन्नति और परलोकमें सुख और कल्याण। दानके चार प्रकार होते हैं—ध्रुव, त्रिक, काम्य और नैमित्तिक। प्याऊ, बाग-बगीचे, तालाब-बावड़ी, विद्यालय, चिकित्सालय, पुस्तकालय, अनाथालयके निर्माण आदि सार्वजनिक कार्योंके लिये किया गया दान चिरस्थायी या नित्य होनेके कारण ध्रुव कहलाता है तथा वह दाताकी सब कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला होता है। जो दान संतान, विजय (सफलता) और ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये प्रतिदिन दिया जाय उसे त्रिक कहते हैं। यह पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा—इन तीन एषणाओंकी पूर्तिके लिये किया जानेके कारण त्रिक कहलाता है। जो दान काम्य पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये किया जाय उसे काम्य कहते हैं। जो दान विशेष अवसरके उपलक्ष्यमें, विशेष कर्म और गुणोंको देखते हुए अग्निहोत्रके बिना किया जाय वह नैमित्तिक कहलाता है। दानके तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ। उत्तम कोटिके पदार्थोंका दान उत्तम, मध्यम कोटिके पदार्थोंका दान मध्यम, कनिष्ठ कोटिके पदार्थोंका दान कनिष्ठ कहलाता है। दान देकर पछताना, कुपात्रको दान देना और श्रद्धाके बिना दान देना—ये तीन कार्य दानके नाशक हैं; क्योंकि इनके कारण किया-कराया दान भी निष्फल होता है।'

धर्मवर्मा इस अद्भुत व्याख्याको सुनकर गद्गद हो उठे। वे बोले—'मुनिवर! मुझे लगता है कि आप साधारण मनुष्य नहीं हैं। मैं आपके चरणोंमें मस्तक नवाकर प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे अपना यथार्थ परिचय दीजिये।'

नारदजीने कहा—'राजन्! मैं देवर्षि नारद हूँ। इस श्लोककी व्याख्याके पुरस्कारके रूपमें आप मुझे जो भूमि आदि सम्पत्ति देना चाहते हैं, उसे मैं आपके पास ही धरोहरके रूपमें रख देता हूँ। आवश्यकता पड़नेपर मैं आपसे ले लूँगा।' यह कहकर वे वहाँसे चल दिये और रैवतक पर्वतपर आकर विचार करने लगे—'यदि कोई योग्य ब्राह्मण मिल जाय तो मैं यह भूमि आदि सम्पत्ति उसे दे दूँ।' तब उन्होंने बारह प्रश्न तैयार किये और उन्हें गाते हुए पृथ्वीपर विचरण करने लगे। उनके प्रश्न ये थे—

१-मातृकाएँ क्या हैं और कितनी हैं? २-पचीस तत्त्वोंसे बना विचित्र घर कौन-सा है? ३-अनेक रूपोंवाली स्त्रीको एक रूपवाली बनानेकी कला कौन जानता है? ४-संसारमें विचित्र कथाओंकी रचना करना कौन जानता है? ५-समुद्रमें सबसे बड़ा ग्राह कौन-सा है? ६-आठ प्रकारके ब्राह्मण कौन-से हैं? ७-चारों युगोंके आरम्भके दिन कौन-से हैं? ८-चौदह मन्वन्तरोंका प्रारम्भ किस दिन हुआ था? ९-सूर्यदेवता रथमें पहले-पहल किस दिन बैठे थे? १०-प्राणियोंको कृष्णसर्पकी तरह पीड़ित करनेवाला कौन है? ११-इस महान् विश्वमें सबसे अधिक बुद्धिमान् कौन है? १२-दो मार्ग कौन-से हैं?

उपर्युक्त प्रश्नोंको पूछते हुए देवर्षि नारदने सर्वत्र भ्रमण किया, किंतु कहीं भी उन्हें इनका उचित समाधान नहीं प्राप्त हुआ। अन्तमें वे 'कलाप' नामक गाँवमें पहुँचे, जहाँ चौरासी हजार ब्राह्मण नित्यप्रति विद्याध्ययन, अग्निहोत्र और तपस्या आदिमें रत रहते थे। वहाँ भी उन्होंने अपने प्रश्नोंको दुहराया। देवर्षिके प्रश्न सुनकर ब्राह्मणोंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—'मुने ! आपके प्रश्न तो बालकोचित हैं, हममेंसे जिसे आप छोटा और मूर्ख समझते हों उसीसे ये पूछ लीजिये। वह अवश्य इनके उत्तर दे देगा।' यह सुनकर देवर्षि नारदने एक बालककी ओर संकेत किया। उसका नाम था सुतनु। उसने उठकर देवर्षिके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'महर्षे ! इन प्रश्नोंका उत्तर देना मैं अपने लिये विशेष गौरवका विषय नहीं समझता, किंतु आपको मेरे गुरुजनोंके प्रति संशय न हो जाय इस दृष्टिसे इनका उत्तर देना आवश्यक ही है।' अच्छा सुनिये—

१-ॐ और अ, आ आदि ५२ अक्षर ही मातृकाएँ हैं।

२-पचीस तत्त्वों (पाँच महाभूत, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच विषय, मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति तथा पुरुष)से बना घर यह शरीर ही है।

३-बुद्धि ही अनेकरूपा स्त्री है, किंतु जब इसका सम्बन्ध धर्मसे जुड़ जाता है तब यह एकरूपा हो जाती है।

४-पण्डित ही विचित्र कथाओंके रचयिता हैं।

५-इस संसारसमुद्रमें लोभ ही महाग्राह है।

६-आठ प्रकारके ब्राह्मण ये हैं—मात्र, ब्राह्मण, श्रोत्रिय, अनूचान, भ्रूण, ऋषिकल्प, ऋषि और मुनि। इनके लक्षण इस प्रकार हैं—

जो ब्राह्मणोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हो, किंतु उनके गुणोंसे युक्त न हो, आचार और क्रियासे रहित हो, वह 'मात्र' कहलाता है। जो वेदोंमें पारङ्गत हो, आचारवान्, सरल-स्वभाव, शान्तप्रकृति, एकान्तसेवी, सत्यभाषी और दयालु हो, वह 'ब्राह्मण' कहा जाता है। जो वेदोंकी एक शाखाका छः अङ्गों और श्रौत विधियोंके सहित अध्ययन करके अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन, दान और प्रतिग्रह—इन छः कर्मोंमें रत रहता हो, उस धर्मविद् ब्राह्मणको 'श्रोत्रिय' कहते हैं। जो ब्राह्मण वेदों और वेदाङ्गोंके तत्त्वको जाननेवाला, शुद्धात्मा, पापरहित, श्रोत्रियके गुणोंसे सम्पन्न, श्रेष्ठ और प्राज्ञ हो, उसे 'अनूचान' कहा गया है। जो अनूचानके गुणोंसे युक्त हो, नियमित रूपसे यज्ञ और स्वाध्याय करनेवाला, यज्ञशेषका ही भोग करनेवाला और जितेन्द्रिय हो, उसे शिष्टजनोंने 'भ्रूण' की संज्ञा दी है। जो समस्त वैदिक और लौकिक ज्ञान प्राप्त करके आश्रमव्यवस्थाका पालन करे, नित्य आत्मवशी रहे, उसे ज्ञानियोंने 'ऋषिकल्प' नामसे स्मरण किया है। जो ब्राह्मण ऊर्ध्वरेता, अग्रासनका अधिकारी, नियत आहार करनेवाला, संशयरहित, शाप देने और अनुग्रह करनेमें समर्थ और सत्य-प्रतिज्ञ हो, उसे 'ऋषि'की पदवी दी गयी है। जो कर्मोंसे निवृत्त, सम्पूर्ण तत्त्वका ज्ञाता, काम-क्रोधसे रहित, ध्यानस्थ, निष्क्रिय और दान्त हो, मिट्टी और सोनेमें समभाव रखता हो, उसे 'मुनि'के नामसे सम्मानित किया गया है।

७-सत्ययुगका प्रारम्भ कार्तिक-शुक्ल-नवमीको, त्रेता-युगका वैशाख-शुक्ल-तृतीयाको, द्वापरका माघ-कृष्ण-अमावस्याको और कलियुगका भाद्र-कृष्ण-त्रयोदशीको हुआ था। अतः ये तिथियाँ ही युगोंकी आदि तिथियाँ हैं।

८-स्वायम्भुव आदि चौदह मन्वन्तरोंकी आदि तिथियाँ क्रमसे आश्विन-शुक्ल-नवमी, कार्तिक-शुक्ल-द्वादशी, चैत्र-शुक्ल-तृतीया, भाद्रपद-शुक्ल-तृतीया, फाल्गुन-कृष्ण-अमावस्या, पौष-शुक्ल-एकादशी, आषाढ़-शुक्ल-दशमी, माघ-शुक्ल-सप्तमी, श्रावण-कृष्ण-अष्टमी, आषाढ़ी पूर्णिमा, कार्तिकी पूर्णिमा, फाल्गुनी पूर्णिमा, चैत्री पूर्णिमा, ज्येष्ठी पूर्णिमा हैं।

९-भगवान् सूर्य पहले-पहल माघ-शुक्ल-सप्तमीको रथपर आरूढ़ हुए।

१०-जो सदा माँगता रहता है वही प्राणियोंका उद्वेजक है।

११-सबसे अधिक बुद्धिमान् और दक्ष मनुष्य वही है जो मनुष्ययोनिका मूल्य समझकर उसके द्वारा पूर्ण मोक्षको सिद्ध कर ले।

१२-दो मार्ग हैं—अर्चिमार्ग और धूममार्ग—देवयान और पितृयान।

विद्वान् बालक सुतनुके इन उत्तरोंसे पूर्णतया संतुष्ट होकर देवर्षि नारद धर्मवर्मासे प्राप्त भूमि और सम्पत्ति बालकको भेंट करके सानन्द ब्रह्मलोकको चले गये। (स्कन्द० मा० कु०)

(स्वा० ओं० आ०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच महातीर्थ

(१) पितृतीर्थ—नरोत्तम नामका एक तपस्वी ब्राह्मण था। वह माता-पिताकी सेवा छोड़कर तीर्थयात्राके लिये निकल पड़ा। तीर्थ-सेवनकी महिमासे उसके गीले कपड़े आकाशमें सूखते थे। इस चमत्कारसे उसके मनमें अभिमान उत्पन्न हो गया। वह आकाशकी ओर देखकर कहने लगा—'मेरे समान दूसरा तपस्वी कौन है, जिसके वस्त्र आकाशमें सूखते हैं?'—इस वाक्यके पूरा होते-होते उसके मुँहपर बगुलेने बीट कर दी। ब्राह्मण क्रोधसे आग-बबूला हो गया। उसने बगुलाको शाप दे दिया, जिससे वह जलकर भस्म हो गया।

इस शापसे ब्राह्मणकी तपस्या नष्ट हो गयी, जिससे उसके वस्त्रोंका आकाशमें सूखना बंद हो गया। इस घटनासे ब्राह्मणको मर्मान्तक वेदना हुई। तब आकाशवाणी हुई—'ब्राह्मण! तुम मूक चाण्डालके पास जाओ, वहाँ तुम्हें धर्मका ज्ञान प्राप्त होगा।' ब्राह्मण मूक चाण्डालके पास पहुँचा। उस समय मूक चाण्डाल अपने पिता-माताकी सेवामें तन्मय था। इस सेवासे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उसके घरमें निवास करते थे। माता-पिताकी सेवाकी महिमासे उसका घर बिना खम्भोंके आकाशमें टिका था। यह देखकर ब्राह्मणको महान् आश्चर्य हुआ। उसने मूक चाण्डालसे आकाशवाणीकी बात सुनायी और प्रार्थना की कि आप मुझे ज्ञानका उपदेश दें। मूकने नम्रताके साथ कहा—'देवता! आप थोड़ी देर प्रतीक्षा कीजिये। मेरी सेवासे माता-पिताको संतोष हो जायगा, तब मैं आपकी सेवा करूँगा।' इतना सुनते ही ब्राह्मण क्रुद्ध होकर उसकी भर्त्सना करने लगा। अन्तमें मूकको कहना पड़ा कि 'मैं बगुला नहीं हूँ कि आपके जलाये जल जाऊँगा। आपको जल्दी हो तो पतिव्रताके पास जाइये। उससे आपका काम सिद्ध हो जायगा।' ब्राह्मण जब पतिव्रताके घरकी ओर बढ़ा, तब विष्णु भगवान् जो ब्राह्मणके रूपमें मूकके घरमें बैठे थे, उसके साथ हो लिये।

(२) पतितीर्थ—नरोत्तमने ब्राह्मणसे पूछा—'तुम ब्राह्मण होते हुए भी चाण्डालके घरमें क्यों रहते हो?' भगवान्ने कहा—'अभी तुम्हारा अन्तःकरण पवित्र नहीं है। पीछे तुम पहचान जाओगे।' भगवान्ने पतिव्रताके सम्बन्धमें नरोत्तमको बतलाते हुए उसकी असीम शक्तियोंकी प्रशंसा की। जब पतिव्रताका घर पास आया, तब भगवान् अदृश्य हो गये। नरोत्तमने पतिव्रताके घरमें भी उस ब्राह्मणको बैठे देखा। नरोत्तमने पतिव्रतासे प्रार्थना की कि तुम मुझे धर्मका उपदेश करो। पतिव्रताने निवेदन किया कि 'मेरी पति-सेवा अधूरी है। उसे पूरी कर आपकी सेवा करूँगी, तबतक आप जलपान कर विश्राम कर लें।' सुनते ही नरोत्तम क्रुद्ध हो गया और शाप देनेको तैयार हो गया। तब पतिव्रताने कहा—'महाराज! पुत्रके लिये जिस तरह माता-पिताकी सेवासे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है, उसी तरह पत्नीके लिये पति-सेवासे बढ़कर अतिथि आदि सेवा नहीं है। इसलिये पतिको अपनी सेवासे संतुष्ट कर लूँगी, तभी आपकी सेवा कर पाऊँगी। यदि आपको जल्दी है तो तुलाधार वैश्यके पास जाइये।' नरोत्तम तुलाधार वैश्यके घरकी ओर बढ़ा।

(३) समतातीर्थ—ब्राह्मणरूपधारी भगवान् नरोत्तमके पास फिर आये और बोले—'ब्रह्मन्! चलिये, मैं तुलाधारके पास ले चलता हूँ।' जब वे दोनों तुलाधारके पास पहुँचे तो वहाँ बहुत बड़ी भीड़ एकत्र थी। बहुत-से पुरुष और स्त्रियाँ उसे चारों ओरसे घेरकर खड़े थे। ब्राह्मणको आया देखकर तुलाधारने मीठी वाणीमें पूछा—'द्विजश्रेष्ठ! आपका यहाँ कैसे पधारना हुआ है?' ब्राह्मणने कहा—'आप मुझे धर्मका उपदेश दीजिये।' तुलाधारने कहा—'महाराज! मैं वैश्य हूँ, व्यापार मेरा मुख्य धर्म है। व्यापारसम्बन्धी बातोंमें पहरभर रात बीत जायगी। आपका आतिथ्य करना मेरा धर्म है, किंतु व्यापार मेरा परम धर्म है। उस परम धर्मके पूरा होनेपर ही मैं आपकी सेवा कर सकूँगा। अतः आप धर्मकिरके पास जायँ। मैं व्यापारियोंकी गुत्थियाँ सुलझा रहा हूँ। इस तरह व्यापारियोंमें समरूपसे व्याप्त परमेश्वरकी ही सेवा कर रहा हूँ।'

नरोत्तम वहाँसे आगे बढ़ा और भगवान् उसके साथ हो लिये। नरोत्तमने ब्राह्मणरूपधारी भगवान्से पूछा—'तुलाधारमें क्या विशेषता है?' भगवान्ने बताया कि वह तुलाधार अपने वैश्य-धर्ममें स्थिर रहकर सब प्राणियोंमें भगवान्को देखता हुआ वैश्यधर्मका व्यावहारिक उपदेश देता रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह प्रातःसे राततक सबका भला करता रहता है।'

(४) **अद्रोहतीर्थ**—नरोत्तमने ब्राह्मणसे धर्माकरका परिचय पूछा। भगवान्‌ने बतलाया—'एक बार एक राजकुमार-को कहीं बाहर जाना था। उसे अपनी पत्नीकी सुरक्षाकी चिन्ता थी। धर्माकरके पास अपनी स्त्रीको रखनेमें उसे संतोष था। वह अपनी नवयुवती स्त्रीको धर्माकरके पास ले गया और उससे प्रार्थना की कि 'आप छः महीनेतक मेरी पत्नीकी रक्षाका भार वहन करें।' धर्माकरने कहा—'राजन्! मैं आपका सगा-सम्बन्धी नहीं हूँ तो फिर अपनी पत्नीको मेरे पास छोड़कर आप निश्चिन्त कैसे रह सकेंगे?' राजकुमारने दृढ़ताके साथ कहा—'मैं आपके चरित्रसे अवगत हूँ और निश्चिन्त होकर ही आया हूँ। आप मेरी बात न ठुकरायें।' धर्माकरको राजकुमारकी बात माननी पड़ी। धर्माकरने बहुत ही सावधानीके साथ राजकुमारकी पत्नीकी देखभाल की। छः महीनेतक उसने अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन किया। उसकी साध्वी पत्नी भी पतिके कार्यमें प्रसन्नता-पूर्वक हाथ बँटा रही थी।

छः महीने बाद जब राजकुमार परदेशसे लौटा, तब सीधे धर्माकरके पास आया। रास्तेमें लोग कई तरहकी बातें कर रहे थे। किसीने राजकुमारसे कहा—'भाई! तुमने अपनी स्त्री धर्माकरको सौंप दी है। वह अपने-आपको कैसे सँभाल सकता है?' यही बात बहुत-से लोग दोहरा रहे थे। धर्माकर तो सब कुछ जान ही लेता था। राजकुमारसे कही जानेवाली ये बातें भी उसे ज्ञात हो गयीं। उसने लोकापवाद हटानेके लिये एक योजना बनायी। अपने दरवाजेपर लकड़ियोंका एक ढेर लगवाया और उसमें आग लगा दी। ठीक इसी समय राज-कुमार उसके पास पहुँचा। राजकुमारने धर्माकर और अपनी पत्नीको देखा। दोनों बैठे हुए थे। पत्नी तो पतिको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो रही थी, किंतु धर्माकर चिन्तित था। राजकुमारने धर्माकरसे पूछा—'मित्र! मैं बहुत दिनोंके बाद आपके पास लौटा हूँ, आप मुझसे बात क्यों नहीं करते? चिन्तित क्यों हैं?'

धर्माकरने कहा—'मित्र! लोकनिन्दाके कारण मेरा किया-कराया सब चौपट हो गया, अतः मैं अग्निमें प्रवेश करूँगा। देवता और मनुष्य मेरे इस कार्यको देखें। इतना कहकर धर्माकर धधकती हुई आगमें प्रवेश कर गया, किंतु धर्माकरका बाल भी बाँका नहीं हुआ। आकाशसे देवतालोग साधुवाद देते हुए फूलोंकी वृष्टि करने लगे। जिन लोगोंने धर्माकरके सम्बन्धमें झूठी किंवदन्तियाँ उड़ायी थीं, उनके मुखपर कोढ़ हो गया। देवताओंने प्रकट होकर धर्माकरको आगसे निकाला और मालाएँ पहनायीं। तबसे धर्माकरका नाम सज्जनाद्रोहक हो गया; क्योंकि धर्माकर किसीसे द्रोह नहीं करते थे। शत्रुसे भी प्रेमका व्यवहार रखते थे।

देवताओंने राजकुमारसे कहा—'तुम अपनी इस पत्नीको स्वीकार करो। इस समय इस सज्जनाद्रोहकके समान पृथ्वीपर कोई अन्य पुरुष नहीं है, जिसने काम और लोभपर इस तरह विजय पायी हो।' देवताओंने सबके सामने सज्जनाद्रोहककी भूरि-भूरि प्रशंसा की और वे अपने-अपने विमानोंपर बैठकर देवलोक पधार गये। राजकुमारने अद्रोहकसे अपनी कृतज्ञता प्रकट की और वह पत्नीके साथ राजमहलमें लौट आया।'

भगवान्‌ने जब यह कथा समाप्त की, तब अद्रोहकका घर समीप आ गया था। भगवान् नरोत्तमको अद्रोहकके पास भेजकर स्वयं अन्तर्हित हो गये। नरोत्तमने अद्रोहकके सामने अपनी धर्मसम्बन्धी जिज्ञासा रखी। अद्रोहकने नरोत्तमका आतिथ्य किया और समझाया कि आप वैष्णव सज्जनके पास जाइये। उनसे आपकी सब कामनाएँ पूरी हो जायँगी।

(५) **भक्तितीर्थ**—नरोत्तम वैष्णवके घरकी ओर जब बढ़ा, तब ब्राह्मणरूपधारी भगवान् पुनः मिल गये। नरोत्तमने भगवान्‌से पूछा कि जिस वैष्णव सज्जनके पास हम चल रहे हैं, उनकी क्या विशेषता है? भगवान्‌ने समझाया कि वैष्णव भगवान्‌में अनन्य प्रेम करता है। इसलिये भगवान् उसके मन्दिरमें प्रत्यक्ष रूपसे विद्यमान रहते हैं। जब वैष्णव सज्जनका घर समीप आया, तब भगवान् पुनः अन्तर्हित हो गये। नरोत्तमने वैष्णव सज्जनके सामने अपनी जिज्ञासाएँ रखीं। वैष्णवने कहा—'विप्रवर! तुम्हें देखकर मेरा हृदय उल्लसित हो रहा है। तुमपर भगवान् विष्णु प्रसन्न हैं। अतः आज तुम्हारी सभी कामनाएँ पूरी हो जायँगी। मेरे घरके मन्दिरमें भगवान् विष्णु साक्षात् विराजमान हैं। आप जाकर उनके दर्शन कीजिये।'

जब ब्राह्मण मन्दिरमें गया तो देखता है कि जो ब्राह्मण उसके साथ लगे थे, वही ब्राह्मण कमलके आसनपर विराजमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। नरोत्तमने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो अपने स्वरूपका दर्शन दें।' भगवान्ने नरोत्तमकी प्रार्थना स्वीकार की। नरोत्तम उनके दिव्यरूपको देखकर तृप्त हो गये। भगवान् बोले—'भक्तोंपर मेरा प्रेम सदा बना रहता है। प्रेमके कारण ही तुम्हें पुण्यात्मा पुरुषोंके दर्शन कराये हैं। तुमसे एक भूल हो गयी है। तुम्हारे माता-पिता तुमसे आदर नहीं पा रहे हैं, अतः तुम जाकर उनकी पूजा करो। उनके दुःख और क्रोधसे तुम्हारी तपस्या नष्ट होती जाती है। जिस पुत्रपर माता-पिताका कोप होता है, वह सीधे नरकमें जाता है। [illegible] भी उसे नरकमें जानेसे बचा नहीं सकते। इसलिये तुम घर [illegible] जाओ और माता-पिताको मेरी मूर्ति समझकर पूजा करो। उनकी कृपासे तुम मुझे प्राप्त करोगे।'

नरोत्तमको अपनी भूल मालूम पड़ी। वह माता-पिताको भगवान् समझकर बहुत सम्मान करने लगा और [illegible] चाण्डालकी तरह उनकी सेवामें संलग्न रहने लगा। अन्तमें वह परमगतिको प्राप्त हुआ।

(पद्मपु० सृष्टि०)

पञ्चगङ्गा-माहात्म्य

काशीमें किरणा, धूतपापा, पुण्य-सलिला सरस्वती, गङ्गा और यमुना—ये पाँच नदियाँ एकत्र बतायी गयी हैं। इनसे त्रिभुवनविख्यात पञ्चनद (पञ्चगङ्गा) तीर्थ प्रकट हुआ है। उसमें डुबकी लगानेवाला मानव फिर पाञ्चभौतिक शरीर नहीं धारण करता। यह पाँच नदियोंका संगम समस्त पापराशियोंका नाश करनेवाला है। उसमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य ब्रह्माण्डमण्डपका भेदन करके परमपदको प्राप्त होता है। प्रयागमें माघमासमें विधिपूर्वक स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह काशीके पञ्चगङ्गा-तीर्थमें एक ही दिनके स्नानसे मिल जाता है। पञ्चगङ्गामें स्नान और पितरोंका तर्पण करके माधव नामसे प्रसिद्ध भगवान् विष्णुकी पूजा करनेवाला पुरुष फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। जिन्होंने पञ्चगङ्गामें श्रद्धापूर्वक श्राद्ध किया है, उनके पितर अनेक योनियोंमें पड़े होनेपर भी मुक्त हो जाते हैं। पञ्चनदतीर्थमें श्राद्धकर्मकी महिमाका प्रत्यक्ष दर्शन करके यमलोकमें पितरलोग यह गाथा गाया करते हैं कि 'क्या हमारे वंशमें भी कोई ऐसा होगा, जो काशीके पञ्चनदतीर्थमें आकर श्राद्ध करेगा ? जिससे हमलोग मुक्त हो जायँगे।' पञ्चनदतीर्थमें जो कुछ धन दान किया जाता है, उसके पुण्यका क्षय कल्पके अन्ततक नहीं होता। वन्ध्या स्त्री भी एक वर्षतक पञ्चगङ्गा-तीर्थमें स्नान करके यदि मङ्गलागौरीका पूजन करे तो वह अवश्य ही पुत्रको जन्म देती है। वस्त्रसे छाने हुए पञ्चगङ्गाके पवित्र जलसे यहाँ दिक्श्रुता देवीको स्नान कराकर मनुष्य महान् फलका भागी होता है। पञ्चामृतके एक सौ आठ कलशोंके साथ तुलना करनेपर पञ्चगङ्गाका एक बूँद जल भी उनसे श्रेष्ठ सिद्ध होता है। इस लोकमें पञ्चकूर्च (पञ्चगव्य) पीनेसे जो शुद्धि कही गयी है, वही शुद्धि श्रद्धापूर्वक पञ्चगङ्गाके जलकी एक बूँद पीनेसे प्राप्त होती है और उसके कुण्डमें स्नान करनेसे राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञका जो फल कहा गया है, उससे सौगुना उत्तम फल उपलब्ध होता है। राजसूय और अश्वमेध यज्ञ केवल स्वर्गके साधक हैं, किंतु पञ्चगङ्गाके जलसे ब्रह्मलोकतकके सम्पूर्ण द्वन्द्वोंसे मुक्ति मिल जाती है। सत्ययुगमें वह 'धर्मनद'-के नामसे प्रसिद्ध हुआ, त्रेतामें उसीका नाम 'धूतपापा' हुआ। द्वापरमें उसे 'विन्दुतीर्थ' कहा जाने लगा और कलियुगमें 'पञ्चनद' के नामसे उसकी ख्याति होती है। पञ्चनद-तीर्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका शुभ आश्रय है, उसकी अनन्त महिमाका कोई भी वर्णन नहीं कर सकता। वह मनुष्योंके लिये सुखद, मोक्षप्रद तथा बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। महापातकी एवं उपपातकी मानव भी अविमुक्त-क्षेत्रके इस माहात्म्यको सुनकर शुद्ध हो जाता है। ब्राह्मण इसे सुनने और पढ़नेसे वेदोंका विद्वान् हो जाता है, क्षत्रिय युद्धमें विजय पाता है, वैश्य धन-सम्पत्तिसे भरपूर होता है और शूद्रको वैष्णव भक्तोंका सङ्ग प्राप्त होता है। सम्पूर्ण यज्ञोंमें जो फल मिलता है, समस्त तीर्थोंमें जो फल प्राप्त होता है, वह सब इसके पाठ और श्रवणसे भी मनुष्य प्राप्त कर लेता है। विद्यार्थी इससे विद्या पाता है, धनार्थी धन पाता है, पत्नी चाहनेवाला पत्नी और पुत्रकी इच्छावाला पुरुष पुत्र पाता है।

(नारदपुराण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्कलदेशके पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी महिमा

भारतवर्षमें दक्षिण समुद्रके तटतक फैला हुआ एक उत्कल नामका प्रदेश है, जो स्वर्ग और मोक्षको देनेवाला है। समुद्रसे उत्तर विरजामण्डलतकका जो प्रदेश है, वह पुण्यात्माओंका देश है। वह भूभाग सम्पूर्ण गुणोंसे अलंकृत है। समुद्रके उत्तर तटवर्ती उस सर्वोत्तम उत्कल प्रदेशमें सभी पुण्य तीर्थ और पवित्र मन्दिर आदि हैं, जिनका परिचय जाननेयोग्य है। मुक्ति देनेवाला परम उत्तम एवं पापनाशक पुरुषोत्तम-क्षेत्र परम गोपनीय है। सर्वत्र बालुका-आच्छादित भू-भागमें वह पवित्र एवं धर्म और कामकी पूर्ति करनेवाला परम दुर्लभ क्षेत्र दस योजनतक फैला हुआ है। जैसे नक्षत्रोंमें चन्द्रमा और सरोवरोंमें सागर श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त तीर्थोंमें पुरुषोत्तम-क्षेत्र सर्वश्रेष्ठ है। श्रेष्ठ मनुष्यको उचित है कि ज्येष्ठ मासमें शुक्लपक्षकी द्वादशीको विधिपूर्वक पञ्चतीर्थोंका सेवन करके श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करे। भगवान् पुरुषोत्तमका एक बार दर्शन करके सागरके भीतर एक बार स्नान करनेसे तथा ब्रह्मविद्याको एक बार जान लेनेसे मनुष्यको गर्भमें नहीं आना पड़ता। देवेश्वर पुरुषोत्तम समस्त जगत्में व्यापक और सम्पूर्ण विश्वके आत्मा हैं। वे जगत्की उत्पत्तिके कारण तथा जगदीश्वर हैं। सब कुछ उन्हींमें प्रतिष्ठित है। जो देवताओं, ऋषियों और पितरोंद्वारा सेवित तथा सर्वभोगसम्पन्न है, ऐसे पुण्यात्मा प्रदेशमें निवास करना अच्छा किसे नहीं लगेगा। जहाँ सबको मुक्ति देनेवाले जगदीश्वर भगवान् पुरुषोत्तम निवास करते हैं, उस उत्कल देशमें जो मनुष्य निवास करते हैं, वे देवताओंके समान तथा धन्य हैं। जो तीर्थराज समुद्रके जलमें स्नान करके भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें निवास करते हैं। जो उत्कलमें परम पवित्र श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्रके भीतर निवास करते हैं, उन उत्तम बुद्धिवाले उत्कलवासियोंका ही जीवन सफल है; क्योंकि वे भगवान् श्रीकृष्णके उस मुखारविन्दका दर्शन करते हैं, जो तीनों लोकोंको आनन्द देनेवाला है।

पहले सत्ययुगमें इन्द्रके तुल्य पराक्रमी इन्द्रद्युम्न नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे। वे भगवान् विष्णुके भक्त, सत्यपरायण, क्रोधको जीतनेवाले, जितेन्द्रिय, अध्यात्मविद्यातत्पर, न्यायप्राप्त युद्धके लिये उत्सुक तथा धर्मपरायण थे। इस प्रकार सम्पूर्ण गुणोंकी खानरूप राजा इन्द्रद्युम्न सारी पृथ्वीका पालन करते थे। एक बार उनके मनमें भगवान् विष्णुकी आराधनाका विचार उठा। वे सोचने लगे—'मैं देवदेव भगवान् जनार्दनकी किस प्रकार आराधना करूँ? किस क्षेत्रमें, किस नदीके तटपर, किस तीर्थमें अथवा किस आश्रममें मुझे भगवान्की आराधना करनी चाहिये?' इस प्रकार विचार करते हुए वे मन-ही-मन समूची पृथ्वीपर दृष्टिपात करने लगे। जो-जो पापहारी तीर्थ हैं, उन सबका मानसिक अवलोकन और चिन्तन करके वे सेना और वाहनोंके साथ परम विख्यात मुक्तिदायक पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें गये। राजाने वहाँ जाकर विधिपूर्वक अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किया और उसमें पर्याप्त दक्षिणाएँ दीं। तदनन्तर बहुत ऊँचा मन्दिर बनवाकर अधिक दक्षिणाके साथ श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राको स्थापित किया और विधिपूर्वक वहाँ प्रतिदिन स्नान, दान, जप, होम, देवदर्शन तथा भक्तिभावसे भगवान् पुरुषोत्तमकी सविधि आराधना करते हुए देव-देव जगन्नाथके प्रसादसे मोक्ष प्राप्त कर लिया।

गौओंको घास खिलानेसे श्राद्ध-फल

विराट देशमें एक बहुत ही गरीब व्यक्ति रहता था। पिताकी श्राद्ध-तिथि आनेपर उसके पास एक पैसा भी न था, फिर श्राद्ध हो कैसे? उसे रुलाई आने लगी। तदनन्तर उसने एक विद्वान्से पूछा—'ब्रह्मन्! आज मेरे पिताजीकी श्राद्ध-तिथि है और मेरे पास एक पैसा भी नहीं है, ऐसी दशामें मैं अपने पिताका हित कैसे करूँ?'

विद्वान् ब्राह्मणने बताया कि 'घबराओ नहीं, पितरोंके उद्देश्यसे घास काटकर लाओ और गौओंको खिला दो। इससे तुम्हें पिण्डदानसे भी अधिक फल प्राप्त होगा।'

उस गरीब व्यक्तिकी जान-में-जान आ गयी। उसने बड़ी श्रद्धाके साथ गौओंको चारा खिलाया। इस पुण्यके प्रभावसे उसके पितर तो तृप्त हुए ही, मरनेके बाद उसे भी देवलोक प्राप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्तिकमासका माहात्म्य

हरिद्वारमें देवशर्मा नामके एक परिनिष्ठित पण्डित थे। वे अतिथिसेवी और पञ्चदेवोंके उपासक थे। भगवान् सूर्यमें उनका विशेष अनुराग था। भगवान् श्रीकृष्णने बतलाया है कि जैसे वर्षाका जल सब ओरसे आकर समुद्रमें मिल जाता है वैसे सूर्य, शिव, गणेश, विष्णु और शक्तिके पूजक मेरे ही पास आते हैं। मैं एक हूँ और उपासकोंके हितार्थ भिन्न-भिन्न रूपोंमें अपनेको प्रकट करता हूँ। जैसे देवदत्त नामका कोई व्यक्ति है। वह माता-पिताके लिये पुत्र, गुरुओंके लिये शिष्य, पत्नीके लिये पति, पुत्रके लिये पिता, शिष्यके लिये गुरु है, उसी तरह मैं ही अनेक नामोंसे पुकारा जाता हूँ।

देवशर्मा सूर्यकी आराधना करनेसे सूर्यकी तरह तेजस्वी हो गये थे। भगवान् विष्णु उनपर प्रसन्न रहते थे। दैवयोगसे उन्हें कोई पुत्र नहीं हुआ। एक पुत्री थी जिसका नाम गुणवती था। चन्द्र नामक शिष्यसे उन्होंने गुणवतीका विवाह कर दिया था। चन्द्र पुत्रकी भाँति देवशर्माका आदर किया करता था।

एक दिन देवशर्मा और चन्द्र कुश और समिधा लानेके लिये पर्वतपर गये। वहाँ एक क्रूर राक्षस उनपर टूट पड़ा। वे दोनों भाग न सके और उसके ग्रास बन गये। सूर्यकी उपासना और तीर्थमें मृत्यु होनेके कारण भगवान्ने उन्हें अपने धाममें बुला लिया। इस तरह दोनोंकी सद्गति हो गयी।

गुणवतीने जब यह समाचार सुना, तब वह रोते-रोते बेहोश हो गयी। किसी तरह अपने-आपको सँभालकर उसने घरका सभी सामान बेचकर पिता और पतिका पारलौकिक कर्म किया। वह भगवान्को अपना नाथ मानकर दो व्रतोंका विधिपूर्वक पालन करने लगी—एक था एकादशीका उपवास और दूसरा कार्तिकमासके स्नान आदि नियमोंका पालन। कार्तिक महीनेमें सूर्य जब तुला-राशिपर रहते हैं तब वह प्रातःकाल स्नान करती थी, दीपदान और तुलसी-वनकी सेवा करती थी तथा विष्णुके मन्दिरमें झाड़ू दिया करती थी। गुणवतीने प्रतिवर्ष कार्तिक-व्रतका पालन किया। धीरे-धीरे उसकी अवस्था ढलती गयी। एक दिन वह ज्वरसे आक्रान्त हो गयी, फिर भी किसी तरह स्नानके लिये गङ्गा-तटतक पहुँची। ज्यों ही उसने गङ्गामें पैर रखा त्यों ही वह जाड़ेसे काँपती हुई गिर पड़ी। देह भले ही अस्वस्थ था, किंतु उसका मन निरन्तर अपने प्रभुके स्मरणमें लीन था। गिरते ही उसने देखा कि उसके लिये एक विमान आ रहा है। विष्णु-रूपधारी पार्षदोंने उसे सम्मानके साथ विमानपर बैठाया। कुछ पार्षद उसपर चँवर भी डुलाने लगे। इस तरह पूरे सम्मानके साथ उसे वैकुण्ठ ले गये। यह कार्तिक-व्रतके अनुष्ठानका मधुर फल था।

पृथ्वीका भार उतारनेके लिये जब भगवान् श्रीकृष्णने अवतार लिया, तब उनके पार्षद यादवोंके रूपमें अवतीर्ण हुए थे। गुणवतीके पिता देवशर्मा सत्राजित् हुए। गुणवती उनकी लड़की सत्यभामा हुई। पूर्वजन्ममें गुणवतीने भगवान्के मन्दिरके द्वारपर तुलसीका वन लगा रखा था। इसके फलस्वरूप सत्यभामाके आँगनमें कल्पवृक्ष लगा हुआ था। गुणवतीने कार्तिकमें दीपदान दिया था, उसके फलस्वरूप उसके घरमें लक्ष्मी स्थिररूपसे रह रही थीं। गुणवतीने सभी कर्मोंको परमपतिस्वरूप विष्णुको समर्पित किया था, इसलिये सत्यभामा बनकर भगवान्को पतिके रूपमें प्राप्त किया।

कार्तिकमें भगवान् और वेदका जलमें निवास

समुद्रका एक पुत्र था, उसका नाम शङ्खासुर था। उसने देवताओंको पराजित कर स्वर्गसे निकाल दिया था। शङ्खासुर जानता था कि देवता वेदमन्त्रोंके द्वारा प्रबल बने रहते हैं। अतः उसने वेदोंका अपहरण कर लिया। देवता सचमुच निर्बल हो गये, तब वे विष्णुकी शरणमें गये। उन्होंने गीतों, वाद्यों और मङ्गलमय कार्योंसे उन्हें संतुष्ट किया। भगवान्ने कहा—'कार्तिकके शुक्लपक्षकी प्रबोधिनी एकादशीके दिन जो व्यक्ति तुम्हारी तरह गीत, वाद्य और मङ्गल-कार्योंसे मेरी आराधना करेंगे, वे मेरे समीप आ जायँगे। शङ्खासुरके द्वारा जो वेद हरे गये हैं, वे जलमें स्थित हैं। मैं उन्हें ले आता हूँ। आजसे प्रतिवर्ष कार्तिकमासमें मन्त्र, बीज और यज्ञोंसे युक्त वेद जलमें निवास करेंगे और मैं भी जलमें निवास करूँगा। इसलिये कार्तिकमासमें जो प्रातःस्नान करते हैं, वे सचमुच अवभृथ-स्नान करते हैं। सभी तिथियोंमें एकादशी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मासोंमें कार्तिक मुझे बहुत प्रिय है।'

यह कहकर भगवान् विष्णु मत्स्यरूप धारणकर अर्घ्य देते हुए कश्यप मुनि (सत्यव्रत) की अञ्जलिमें जा गिरे। ऋषिने कृपाकर मत्स्यको अपने कमण्डलुमें रख लिया। शीघ्र ही मत्स्य बड़ा हो गया। तब उसे कुएँमें डाल दिया गया। जब वह कुएँमें न अँट सका, तब उसे तालाबमें छोड़ दिया गया और अन्तमें समुद्रमें पहुँचाना पड़ा। मत्स्यरूपधारी भगवान्ने शङ्खासुरका वध किया और शङ्खको बदरिकाश्रम ले गये। वहाँ उन्होंने ऋषियोंको आदेश दिया कि आपलोग जलसे वेदोंको ढूँढ़ निकालें। तबतक मैं देवताओंके साथ प्रयागमें ठहरा रहूँगा। ऋषियोंने भगवान्की आज्ञाका पालन किया। उन्होंने वेद-मन्त्रोंका उद्धार किया। जिस ऋषिने जिन मन्त्रोंको पाया, वही उनके ऋषि माने गये। ऋषियोंने सम्पूर्ण वेद प्रयागमें भगवान्को अर्पण कर दिया, इससे ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए। वहाँ सबने मिलकर अश्वमेध यज्ञ किया। तबसे प्रयागको तीर्थराज होनेका वर प्राप्त हुआ।

कार्तिक-व्रतके पुण्यदानसे एक राक्षसीका उद्धार

करवीरपुरमें धर्मदत्त नामके एक ब्राह्मण थे। वे अपना सब समय धर्मके आचरणमें ही लगाते थे। एक दिन वे कार्तिकमासमें भगवान्के पास जागरण करनेके लिये मन्दिरकी ओर जा रहे थे। रास्तेमें उन्हें एक राक्षसी मिल गयी। जैसी उसकी आकृति भयानक थी, वैसी ही उसकी आवाज भी भयानक थी। उसे देखकर ब्राह्मण थर्रा उठे। उनके हाथमें पूजाकी सामग्री और जल था। उन्होंने उसे राक्षसीपर छोड़ दिया। भगवान्के स्मरणसहित तुलसीदल-मिश्रित जलके स्पर्शसे राक्षसीके पाप-ताप नष्ट हो गये। उसका स्वभाव बदल गया। वह ब्राह्मणको प्रणाम करके अपने पूर्वजन्मकी बात सुनाते हुए कहने लगी—मेरा नाम कलहा था। मेरा स्वभाव बड़ा उग्र था। मेरे स्वभावसे पति सदा पीड़ित रहते थे। मैंने अपने पतिका कभी भला नहीं किया था। दिन-रात चिल्ला-चिल्लाकर कलह किया करती थी। अन्तमें खिन्न होकर मेरे पतिने दूसरी शादी कर ली, तब मैंने विष खाकर आत्महत्या कर ली। मैं यमराजके सामने उपस्थित की गयी। धर्मराजके पूछने-पर चित्रगुप्तने बतलाया—'यह बहुत दुष्ट स्वभावकी थी। यह स्वयं मिठाई खा जाती थी, किंतु पतिको एक कण भी नहीं देती थी। इस पापसे यह चमगादड़ बनकर अपनी ही विष्ठाको खाया करे। यह अपने पतिसे द्वेष करती और सर्वदा कलह ही किया करती थी, अतः सूकरी बनकर विष्ठा खाय और पकाये हुए बर्तनमें ही भोजन करनेवाली यह बिल्ली हो जाय। इसने अपने पतिको दुःखी करनेके लिये आत्महत्या की है, अतः कुछ कालतक प्रेतनी बने। पहले यह मरुप्रदेशमें प्रेतनी बने, फिर बहुत दिनोंके बाद उपर्युक्त तीनों योनियोंका कष्ट झेले।'

प्रेतनीने कहा—'मैं वही कलहा हूँ। मुझे इस प्रेत-शरीरमें आये पाँच सौ वर्ष बीत गये। मैं सदा भूख-प्याससे पीड़ित रहती हूँ। आपके हाथसे तुलसीमिश्रित जलके सम्पर्कसे मुझे शान्ति मिली है। अब आप ऐसा उपाय बताइये, जिससे मैं इस प्रेत-शरीरसे और आगे मिलनेवाली योनियोंसे बच सकूँ।'

प्रेतनीके वचन सुनकर धर्मदत्तको बहुत दुःख हुआ। उनका हृदय दयासे द्रवित हो गया। उन्होंने कहा—'तीर्थ और व्रतके सेवनसे पाप नष्ट होते हैं, किंतु उसमें तुम्हारा अधिकार नहीं है। अतः मैंने आजतक कार्तिकमासका जो अनुष्ठान किया है, उसका आधा पुण्य तुम्हें दे देता हूँ।' ऐसा कहकर धर्मदत्तने **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'**—मन्त्रको सुनाकर तुलसीयुक्त जलसे उसका अभिषेक किया। अभिषेकसे वह प्रेतनीसे देवी बन गयी। उसने हाथ जोड़कर ब्राह्मणसे अपनी कृतज्ञता प्रकट की। इसी बीच आकाशसे एक विमान उतरा। पुण्यशील और सुशील नामक भगवान्के पार्षदोंने उस देवीको सम्मानके साथ विमानपर चढ़ाया। धर्मदत्तने पार्षदोंके दर्शनसे अपनेको कृतार्थ माना। उन्होंने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। पार्षदोंने धर्मदत्तकी प्रशंसा करते हुए कहा कि 'आपने कार्तिकके महान् व्रत किये हैं। आधेका दान कर अब आपने दूना फल प्राप्त कर लिया है। समय पाकर आप भी विष्णुके धाममें आयेंगे।'

जो अपने बलको न समझकर बिना काम किये ही धर्म और अर्थसे विरुद्ध तथा न पाने योग्य वस्तुकी इच्छा करता है, वह पुरुष इस संसारमें मूढ़बुद्धि कहलाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माघमासका माहात्म्य

एक बार बारह वर्षोंतक वृष्टि नहीं हुई। उस समय हिमालयकी तलहटी और विन्ध्यप्रदेशके स्थान खाली हो गये थे। प्रजा इधर-उधर भाग गयी थी। महर्षि भृगु भी नर्मदा-तटको छोड़कर अपने शिष्योंके साथ हिमालयपर चले गये। भृगुजीने वहीं तपस्या प्रारम्भ कर दी।

एक दिन एक विद्याधर अपनी पत्नीके साथ महर्षि भृगुके पास आया। दोनों महर्षिको प्रणामकर खड़े हो गये। वे दुःखी दीखते थे। महर्षिने विद्याधरसे पूछा—'विद्याधर! अपने दुःखका कारण बताओ।' विद्याधरने कहा—'महर्षे! मुझे पुण्यके फलस्वरूप देवताका शरीर, दिव्य भोग और दिव्य नारी भी मिली, किंतु मेरा मुख बाघ-सा हो गया है। इससे मेरी सब सुख-शान्ति नष्ट हो गयी है। मेरी यह पत्नी सब गुणों और शीलसे सम्पन्न है। कहाँ तो यह सुन्दरी नारी और कहाँ मैं व्याघ्र-मुखवाला पुरुष। मुझे बहुत ग्लानि होती है। आप मुझे उपाय बतायें।'

महर्षि भृगुने कहा—'पूर्वजन्ममें तुमने माघके महीनेमें एकादशी-व्रत करके द्वादशीको शरीरमें तैल लगा लिया था। इसी कारण तुम्हारा मुख व्याघ्रका हो गया है। राजा पुरूरवासे भी यही भूल हुई थी। वे भी कुरूप हो गये थे। तुम चिन्ता न करो। तुम माघ-स्नान किया करो। उससे पाप नष्ट हो जाते हैं। सौभाग्यसे माघ बिलकुल निकट है। तुम पौषमासके शुक्ल-पक्षकी एकादशीसे ही माघ-स्नानका व्रत ले लो और उसे प्रारम्भ कर दो। तुम भोगोंका त्याग कर भूमिपर सोया करो और एक महीने निराहार रहकर तीनों समय स्नान करो। माघकी शुक्ला एकादशीको तुम्हारे सारे पाप धुल जायँगे। तब द्वादशीको मेरे पास आना। मैं मन्त्रसे अभिषेक कर तुम्हारे मुखको कामदेवके समान सुन्दर बना दूँगा।' भृगुके आदेशसे विद्याधर उन्हींके आश्रममें ठहर गया और पत्नीके साथ माघ-स्नान करने लगा। द्वादशीके दिन महर्षि भृगुके अभिषेकसे वह सुन्दर हो गया।

माघमासके पुण्यदानसे चार प्राणियोंका उद्धार

रथन्तर-कल्पके सत्ययुगकी कथा है। ब्रह्माके पुत्र कुत्स मुनिका एक प्रिय पुत्र था, जिसका नाम था वत्स। पिताने पाँच वर्षकी अवस्थामें उसका उपनयन कर उसे गायत्री-मन्त्रका उपदेश किया और विद्याध्ययनके लिये महर्षि भृगुके पास भेज दिया। गुरुकी देखादेखी वत्स मुनि भी कावेरी नदीमें माघका स्नान किया करते थे। वहाँ कावेरी नदी पश्चिमवाहिनी हो गयी है। समुद्रमें मिलनेवाली जितनी नदियाँ हैं, उनका प्रवाह जहाँ पश्चिम या उत्तरकी ओर हो जाता है, उस स्थानका महत्त्व प्रयागसे बढ़ जाता है। वत्स मुनि इस बातको जानते थे। इसलिये वहाँ स्नानकर अपनेको कृतार्थ समझते थे। वे बड़ी श्रद्धासे तीनों काल स्नान किया करते थे। उसके पुण्यसे उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया था। वे मोह और ममतासे ऊपर उठ चुके थे।

पीछे माता-पिता और गुरुके आदेशसे वे कल्याणतीर्थमें आ गये। वहाँ भी उन्होंने नियमपूर्वक एक मासतक माघ-स्नान किया। उसके बाद वे तपस्या करने लगे। प्रायः वे भगवान्‌के ध्यानमें ही बैठे रहते थे। वहाँके मृग निर्भीक होकर उनके शरीरमें अपना सींग रगड़ा करते थे। वत्समुनिको इसका भान नहीं होता था। इस दृश्यको देखकर वहाँके लोग श्रद्धाके साथ उन्हें मृगशृंग कहकर पुकारने लगे थे। उनकी तपस्यासे आकर्षित होकर भगवान् विष्णु प्रकट हो गये। मृगशृंग ध्यानमें इतने लीन थे कि उन्हें इसका भान नहीं हुआ। तब भगवान्‌ने उनके ब्रह्मरन्ध्रका स्पर्श किया और कहा—'मृगशृंग! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, वर माँगो!' भगवान्‌का आह्लादक दर्शन पाकर मृगशृंगके सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उनके नेत्रोंसे आनन्दका जल झरने लगा। उन्होंने भगवान्‌की स्तुति की। भगवान्‌ने कहा—'मृगशृंग! मुझे यज्ञ, दान एवं अन्यान्य नियमोंके पालनसे उतना संतोष नहीं होता, जितना माघके स्नानसे होता है। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने उत्तम ब्रह्मचर्यका पालन किया है। मेरी आज्ञा है कि अब तुम गृहस्थ-धर्मका पालनकर पितरोंको भी संतुष्ट करो।' मृगशृंगने भगवान्‌का पूजन किया और उनकी आज्ञासे वे घर लौट आये। जब माता-पिताने सुना कि मेरे लड़केको भगवान्‌का साक्षात्कार हुआ है तो उनके नेत्र आनन्दके आँसुओंसे भर गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब उन्हें पुत्रके विवाहकी चिन्ता सताने लगी। उन्होंने भोजपुरमें 'उचथ्य' नामक मुनिकी कन्याका पता लगाया। कन्याका नाम सुवृत्ता था। जैसा उसका नाम था वैसा ही उसमें गुण था। वह बाहर-भीतरसे शुद्ध थी। माघ-स्नानमें उसका भी अनुराग था। वह माघमासमें प्रतिदिन अपनी तीन सखियोंके साथ पश्चिमवाहिनी कावेरीमें स्नान किया करती थी। भक्तिके सुन्दर भाव उसके अङ्ग-अङ्गसे झलकते थे। जब कुछ-कुछ सूर्यका उदय होने लगता, उसी समय सुवृत्ता कावेरीमें गोता लगाती थी। उसने तीन वर्षोंतक माघ-स्नान किया। उसके पिता उचथ्यका हृदय अपनी कन्याके सदाचरणको देखकर प्रसन्नतासे भरा रहता था। वे सोचा करते थे कि उसके अनुरूप वर कहाँ प्राप्त हो? इसी बीच कुत्समुनिने अपने पुत्र वत्सके साथ सुवृत्ताके विवाहका प्रस्ताव रखा। इस प्रस्तावसे उचथ्यके हृदयको बहुत शान्ति मिली।

एक दिन सुवृत्ता तीनों सखियोंके साथ माघ-स्नानके लिये कावेरीके तटपर आयी। उसी समय एक जंगली हाथी पानीसे निकला और कन्याओंपर झपटा। वे भाग खड़ी हुईं। भागते-भागते चारों तिनकोंसे ढके कुएँमें गिर पड़ीं। कुआँ जलरहित था, इसलिये गिरते ही चारों मर गयीं। उनके माता-पिता खोजते-खोजते वहाँ आ पहुँचे। निकालनेपर उन्हें निर्जीव देख लोग रोने-कलपने लगे। ठीक उसी समय मृगशृंग मुनि वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने आश्वासन दिया कि 'इन कन्याओंको मैं जीवित कर दूँगा। आपलोग निश्चिन्त होकर कन्याओंके शरीरकी रक्षा करें।'

इसके बाद मृगशृंग मुनि कावेरीके कण्ठभर जलमें खड़े हो गये। वे मुख और भुजाओंको ऊपर उठाकर सूर्यकी ओर देखते हुए मृत्यु देवताकी स्तुति करने लगे। ठीक उसी समय वह भयानक हाथी फिर पानीसे निकला और मृगशृंगपर टूट पड़ा। मुनि शान्तभावसे स्तुति करते रहे। मुनिके पास आनेपर हाथी बिलकुल शान्त हो गया और इनसे अनुनय-विनय करने लगा। उसने सूँड़से पकड़कर मृगशृंगको अपनी पीठपर बैठा लिया। मुनि उसके भावको समझ गये थे। उन्होंने हाथमें जल लेकर संकल्प किया—'मैंने माघ-स्नानके आठ दिनोंका पुण्य तुझे दे दिया।' इस संकल्प-जलको छोड़ते ही हाथी प्रसन्नतासे चिग्घाड़ उठा। इसके बाद मुनिने कृपापूर्वक उसके मस्तकपर हाथ फेरा। तत्क्षण वह जीव हाथीके शरीरको त्यागकर देवताके स्वरूपमें आ गया तथा मुनिकी प्रार्थना कर स्वर्ग चला गया। इसके बाद मृगशृंगने मृत्युकी स्तुति प्रारम्भ की। उससे प्रसन्न होकर यमराज प्रकट हो गये। उन्होंने मुनिसे वर माँगनेके लिये कहा। मुनिने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि 'आप इन चारों कन्याओंको जिला दें।' यमराज 'तथास्तु' कहकर अन्तर्हित हो गये।

कन्याएँ जीवित हो गयीं, उन्हें ऐसा मालूम पड़ा कि वे सोकर उठी हैं। उन्होंने अपनी माताओंसे यमलोककी आँखोंदेखी घटनाएँ सुनायीं। अभ्यासके अनुसार वे पुनः माघ-स्नान, उपवास और व्रत करने लगीं। उनकी रुचि अब और बढ़ गयी थी। समय आनेपर मृगशृंगका उन चारों कन्याओंसे विवाह हो गया।

माघ-स्नानके प्रभावसे मुनिने पशुके साथ-साथ चार मानव-कन्याओंका भी उद्धार किया।

माघ-स्नानसे दिव्यलोककी प्राप्ति

नर्मदाके तटपर अकलंक नामका एक गाँव था। सुव्रत इसी गाँवमें रहते थे। वे अच्छे विद्वान् थे। वे अनेक देशोंकी भाषाएँ भी जानते थे, किंतु इनकी सारी विद्याएँ अर्थोपार्जनके लिये थीं। वे लोभी थे। अन्यायसे भी धन कमाया करते थे। इस तरह पैसे तो इनके पास बहुत हो गये थे, किंतु ये न खाते थे न किसीको खिलाते थे। केवल नित्य धन जोड़ा करते थे। धीरे-धीरे वे वृद्ध हो गये।

बुढ़ापेकी अशक्तताने उनकी आँखें खोलीं। अब उन्हें मृत्यु दृष्टिगोचर हो रही थी। उन्हें अपनी करनीपर पश्चात्ताप हो रहा था। उन्होंने निश्चित कर लिया कि अब मैं परलोकके सुधारमें लगूँगा। ठीक उसी रातको उनके घरमें चोर घुसे। चोरोंने ब्राह्मणके मुखमें कपड़ा ठूँसकर उन्हें कसकर बाँध दिया—फिर वे सब धन लेकर भाग गये। जीवनभरकी कमाई नष्ट होनेसे बूढ़ा ब्राह्मण बहुत रोया, किंतु पीछे संतोष कर गया। उन्हें याद आने लगा कि जब मैं धन कमानेके लिये कश्मीर जा रहा था तो रास्तेमें माघ-स्नान करनेवाले ब्राह्मण मिले थे। वे आपसमें कह रहे थे कि माघमें नहानेवाले लोग पापसे मुक्त होकर स्वर्ग जाते हैं। ब्राह्मणने भी तय कर लिया कि जबतक शरीर है, तबतक मैं माघस्नान नहीं छोड़ूँगा। बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धा-भक्तिसे उन्होंने माघ-स्नान प्रारम्भ किया। नौ दिनतक वे शीत आदिकी उपेक्षा कर स्नान करते रहे, किंतु दसवें दिन शरीर अशक्त हो गया, उन्हें तटपर जाना भी कठिन हो रहा था, किंतु साहस करके वे तटपर गये और स्नान किये। शीत-बाधासे उनके प्राण निकल गये।

माघ-स्नानके दस दिन भी कम महत्त्व नहीं रखते। दस दिनोंके स्नानके प्रभावसे उनके लिये आकाशसे चमकता हुआ एक विमान उतरा। उसपर बैठाकर देवदूत उन्हें स्वर्ग ले गये। एक मन्वन्तरतक उन्हें स्वर्गमें निवास मिला। उसके बाद वे फिर पृथ्वीपर ब्राह्मण हुए और प्रयागमें माघ-स्नान कर मुक्त हो गये। (पद्मपु० उत्तरखण्ड)

(ला० वि० मि०)

ब्रह्मचर्यके आदर्श

श्रीहनुमान्‌जी

'आज मेरा व्रत खण्डित हुआ। बड़ा पश्चात्ताप, महान् दुःख।' इस अन्तर्वेदनाकी कल्पना करना सर्वसामान्यके लिये सम्भव नहीं है। जिसने कोई व्रत, कोई नियम दीर्घकालतक पालन किया हो, उससे किसी प्रमादवश अनजानमें वह नियम टूट जाय, तब उसे कुछ थोड़ा अनुभव होता है कि व्रत-भङ्गकी वेदना कैसी होती है।

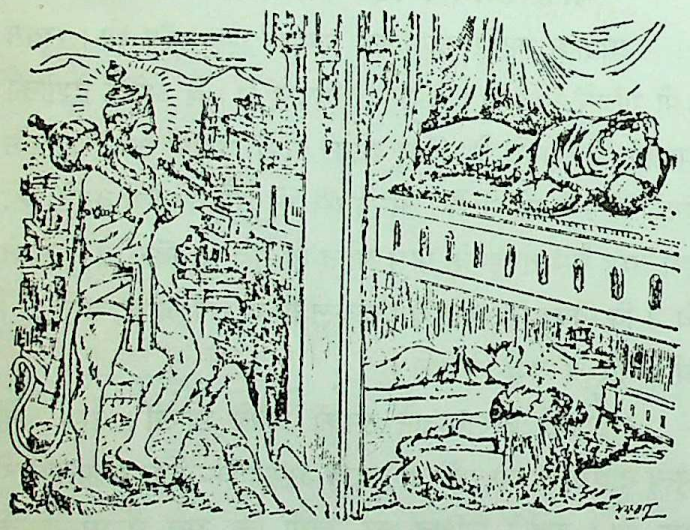

'मैं मरणान्त प्रायश्चित्त करूँगा।' हनुमान्‌जीने लंकामें प्रवेश किया था रात्रिमें और उन्हें पता तो था नहीं कि रावणने श्रीजनकनन्दिनीको कहाँ रखा है। अतः वे राक्षसोंके घरोंमें घूमते फिरे। रावणका अन्तःपुर छान मारा उन्होंने। श्रीजानकीको ढूँढ़ना है तो स्त्रियाँ जहाँ रह सकती हैं वहीं तो ढूँढ़ना पड़ता। वे राक्षसोंके अन्तःपुर थे, संयमियोंके नहीं। सुरापान एवं उन्मत्त विलास ही राक्षसोंका व्यसन था। वे अपनी उन्मद-क्रीडाके अनन्तर निद्रामग्न हो चुके थे। लगभग प्रत्येक गृहमें अस्त-व्यस्त वस्त्राभरण, नग्न, अर्धनग्न निद्रामें पड़ी युवतियाँ ही देखनेको मिलीं। उस अवस्थामें परस्त्रीको देखना सद्‌गृहस्थके लिये भी बहुत बड़ा दोष है। हनुमान्‌जी तो ब्रह्मचारी थे।

कोई अनर्थ हो, कुछ कर बैठे, इससे पूर्व जैसे हृदयमें प्रकाश हो गया। अन्तःस्थित रघुवंशविभूषण अपने आश्रितोंकी रक्षा सदा ही करते हैं। हनुमान्‌जीके मनमें बात स्पष्ट हुई—'किसी नारीके सौन्दर्यपर तो मेरी दृष्टि नहीं गयी। मैं तो माता जानकीको ढूँढ़ रहा था। मेरे मनमें तो कहीं कोई विकार आया नहीं। ये जो स्त्रियोंके देह मुझे देखने पड़े, ये सब शव-जैसे ही तो हैं मेरी दृष्टिमें! तब मेरा व्रत-भङ्ग कैसे हुआ?'

व्रतका मूल मन है, देह नहीं। हनुमान्‌जीके व्रतमें कोई त्रुटि नहीं आयी थी। उनके मनमें जो पश्चात्ताप जगा था, वह ब्रह्मचर्य-व्रतके प्रति उनकी जो प्रबल निष्ठा और सतत जागरूकता है, उसीका सूचक है।

उत्तङ्क

महर्षि आयोदधौम्यके एक शिष्य थे वेद और उनके शिष्य थे उत्तङ्क। वेदमुनिको राजा जनमेजय तथा पौष्यने अपना राजगुरु बनाया था। एक बार मुनिको कहीं बाहर जाना था। सदाकी भाँति उन्होंने उत्तङ्कसे कहा—'मेरी अनुपस्थितिमें तुम मेरे घरकी देखभाल करो और तुम्हारी गुरुपत्नीको जिस वस्तुकी आवश्यकता पड़े, उसका प्रबन्ध भी करना।'

उत्तङ्कको आदेश देकर गुरु चले गये। गुरुपत्नीके मनमें इस युवा ब्रह्मचारीकी परीक्षा लेनेकी इच्छा हुई। उन्होंने उत्तङ्कसे कहा—'मैं ऋतुस्नाता हूँ। तुम्हारे गुरुदेव हैं नहीं। उन्होंने अपनी अनुपस्थितिमें तुम्हें मेरी आवश्यकताएँ पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेकी आज्ञा दी है। मेरा ऋतुकाल व्यर्थ न जाय ऐसा तुम्हें करना चाहिये।'

उत्तङ्क बोले—'माता! जैसे पुत्र माताके भरण-पोषण तथा सेवाका यथाशक्ति प्रयत्न करता है, वैसे ही आपकी सेवामें तत्पर रहना मेरा धर्म है। परंतु कोई अनुचित बात आपको मुझसे नहीं करनी चाहिये। मैं अनुचित कर्म नहीं करूँगा। आप मुझे पुत्रके समान समझकर कृपा करें।'

लौटनेपर गुरु अपने शिष्यके संयम-सदाचारकी बात जानकर बहुत प्रसन्न हुए।

उत्तङ्क जब अध्ययन समाप्त करके जाने लगे, तब उन्होंने गुरुदक्षिणा देनेका हठ किया। गुरुपत्नीने उनसे राजा पौष्यकी रानीके कुण्डल माँगे। गुरुभक्त, तपस्वी, संयमीके लिये सृष्टिमें असाध्य क्या है। राजा पौष्यकी रानीने उन्हें अपने कुण्डल दे दिये। उन कुण्डलोंके लोलुप तक्षकसे सावधान भी कर दिया।

तक्षकने मार्गमें कुण्डल हरण कर लिये, किंतु पातालतक उसका पीछा किया उत्तङ्कने। देवराज इन्द्रकी स्तुति करके

उनकी सहायता उपलब्ध की उन्होंने और नागोंको पराजित करके कुण्डल लाकर गुरुपत्नीको दिये।

दान-धर्मके आदर्श

दैत्यराज विरोचन

दैत्यराज भक्तश्रेष्ठ प्रह्लादके पुत्र थे विरोचन और प्रह्लादके पश्चात् ये ही दैत्योंके अधिपति बने थे। प्रजापति ब्रह्माके समीप दैत्योंके अग्रणीरूपमें धर्मकी शिक्षा ग्रहण करने विरोचन ही गये थे। धर्ममें इनकी श्रद्धा थी। आचार्य शुक्रके ये बड़े निष्ठावान् भक्त थे और शुक्राचार्य भी इनसे बहुत स्नेह करते थे।

अपने पिता प्रह्लादजीका विरोचनपर बहुत प्रभाव पड़ा था। इसलिये ये देवताओंसे कोई द्वेष नहीं रखते थे। संतुष्टचित्त विरोचनके मनमें पृथ्वीपर भी अधिकार करनेकी इच्छा नहीं हुई, स्वर्गपर अधिकार करना, भला, वे क्यों चाहते। वे तो सुतलके दैत्यराजसे ही संतुष्ट थे।

शत्रुकी ओरसे सावधान रहना चाहिये, यह नीति है और सम्पन्न लोगोंका स्वभाव है अकारण शङ्कित रहना। अर्थका यह दोष है कि वह व्यक्तिको निश्चिन्त और निर्भय नहीं रहने देता। असुरों एवं देवताओंकी शत्रुता पुरानी है और सहज है; क्योंकि असुर रजोगुण-तमोगुणप्रधान हैं और देवता सत्त्वगुणप्रधान। अतः देवराज इन्द्रको सदा यह भय व्याकुल रखता था कि यदि कहीं असुरोंने अमरावतीपर आक्रमण कर दिया तो परम धर्मात्मा विरोचनका युद्धमें सामना करना देवताओंकी शक्तिसे बाहर है, उस समय पराजय ही हाथ लगेगी।

शत्रु प्रबल हो, युद्धमें उसका सामना सम्भव न हो, तो उसे नष्ट करनेका प्रबन्ध पहले करना चाहिये। इन्द्र आक्रमण करके अथवा धोखेसे विरोचनको मार दें तो शुक्राचार्य अपनी संजीवनी-विद्याके प्रभावसे उन्हें जीवित कर देंगे और आजके प्रशान्त विरोचन क्रुद्ध होनेपर देवताओंके लिये विपत्ति बन जायँगे। अतएव देवगुरु बृहस्पतिकी मन्त्रणासे इन्द्रने ब्राह्मणका वेश बनाया और सुतल पहुँचे।

विरोचनने अभ्यागत ब्राह्मणका स्वागत किया। उनके चरण धोये, पूजा की। इसके पश्चात् हाथ जोड़कर बोले—'मेरा आज सौभाग्य उदय हुआ कि मुझ असुरके सदनमें आपके पावन चरण पड़े। मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

इन्द्रने विरोचनकी दान-शीलताकी प्रशंसा की और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोचनके आग्रहपर बोले—'मुझे आपकी आयु चाहिये।'

दैत्यराजका सिर माँगना व्यर्थ था, क्योंकि गुरु शुक्राचार्यकी संजीवनी कहीं गयी नहीं थी। किंतु विरोचन किंचित् भी हतप्रभ नहीं हुए। उन्होंने प्रसन्नतासे कहा—'मैं धन्य हूँ। मेरा जन्म लेना सफल हो गया। मेरा जीवन स्वीकार करके आपने मुझे कृतकृत्य कर दिया।'

विरोचनने अपने हाथमें खड्ग उठाया और मस्तक काटकर दूसरे हाथसे ब्राह्मणकी ओर बढ़ा दिया। इन्द्र भयके

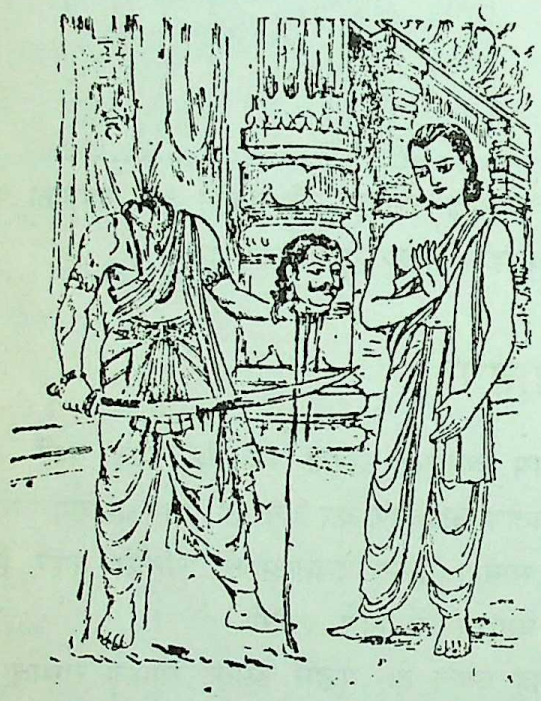

कारण वह मस्तक लेकर शीघ्र स्वर्ग चले आये। विरोचनको तो भगवान्ने अपना पार्षद बना लिया।

महादानी कर्ण

एक बार इन्द्रप्रस्थमें पाण्डवोंकी सभामें श्रीकृष्णचन्द्र कर्णकी दानशीलताकी प्रशंसा करने लगे। अर्जुनको यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा—'हृषीकेश! धर्मराजकी दानशीलतामें कहाँ त्रुटि है जो उनकी उपस्थितिमें आप कर्णकी प्रशंसा कर रहे हैं?'

इस तथ्यको तुम स्वयं समयपर समझ लोगे। यह कहकर उस समय श्रीकृष्णने बातको टाल दिया।

कुछ समय पश्चात् अर्जुनको साथ लेकर श्यामसुन्दर ब्राह्मणके वेशमें पाण्डवोंके राजसदनमें आये और बोले—'राजन्! मैं अपने हाथसे बना भोजन करता हूँ। भोजन मैं केवल चन्दनकी लकड़ीसे बनाता हूँ और वह कच्चा तनिक भी भीगा नहीं होना चाहिये।'

उस समय खूब वर्षा हो रही थी। युधिष्ठिरने राजभवनमें पता लगा लिया, किंतु सूखा चन्दन-काष्ठ कहीं मिला नहीं। सेवक नगरमें गये किंतु संयोग ऐसा कि जिसके पास भी चन्दन मिला, सब भीगा हुआ मिला। धर्मराजको बड़ा दुःख हुआ, किंतु उपाय कुछ भी न था।

उसी वेशमें वहाँसे सीधे श्रीकृष्ण और अर्जुन कर्णकी राजधानी पहुँचे और वही बात कर्णसे कही। कर्णके राजसदनमें भी सूखा चन्दन नहीं था और नगरमें भी नहीं मिला। लेकिन कर्णने सेवकोंसे नगरमें चन्दन न मिलनेकी बात सुनते ही धनुष चढ़ाया। राजसदनके मूल्यवान् कलाङ्कित द्वार चन्दनके थे। अनेक पलंग चन्दनके पायेके थे। कई दूसरे उपकरण चन्दनके बने थे। क्षणभरमें बाणोंसे कर्णने उन सबको चीरकर एकत्र करवा दिया और बोला—'भगवन्! आप भोजन बनायें।'

वह आतिथ्य प्रेमके भूखे गोपाल कैसे छोड़ देते। वहाँसे तृप्त होकर जब बाहर आ गये, तब अर्जुनसे बोले—'पार्थ! तुम्हारे राजसदनमें भी द्वारादि चन्दनके ही हैं। उन्हें देनेमें पाण्डव कृपण भी नहीं हैं। किंतु दानधर्ममें जिसके प्राण बसते हैं, उसीको समयपर स्मरण आता है कि पदार्थ कहाँसे कैसे लेकर दे दिया जाय।'

× × × ×

'आज दानशीलताका सूर्य अस्त हो रहा है। जिस दिन कर्ण युद्धभूमिमें गिरे, सायंकाल शिविरमें लौटकर श्रीकृष्ण खिन्नमुख बैठ गये।'

'अच्युत! आप उदास हों, इतनी महानता क्या कर्णमें है?' अर्जुनने पूछा।

'चलो! उस महाप्राणके अन्तिम दर्शन कर आयें। तुम दूरसे ही देखते रहना।' श्रीकृष्ण उठे, उन्होंने वृद्ध ब्राह्मणका रूप बनाया। रक्तसे कीचड़ बनी, शवोंसे पटी, छिन्न-भिन्न अस्त्र-शस्त्रोंसे पूर्ण युद्धभूमिमें रात्रिकालमें शृगालादि घूम रहे थे। ऐसी भूमिमें मरणासन्न कर्ण पड़े थे।

'महादानी कर्ण!' पुकारा वृद्ध ब्राह्मणने।

'मैं यहाँ हूँ, प्रभु!' किसी प्रकार पीड़ासे कराहते कर्णने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा।

'तुम्हारा सुयश सुनकर बहुत अल्प द्रव्यकी आशासे आया था।' ब्राह्मणने कहा।

'आप मेरे घर पधारें।' कर्ण और क्या कहते ?

'मुझे जाने दो ! इधर-उधर भटकनेकी शक्ति मुझमें नहीं।' ब्राह्मण रुष्ट हुए।

'मेरे दाँतोंमें स्वर्ण लगा है। आप इन्हें तोड़कर ले लें।' कर्णने सोचकर कहा।

'छिः! ब्राह्मण अब यह क्रूर कर्म करेगा।' ब्राह्मण और रुष्ट हुए।

किसी प्रकार कर्ण खिसके। उन्होंने पास पड़े एक शस्त्रपर मुख पटक दिया। शस्त्रसे टूटे दाँतोंका स्वर्ण निकला, किंतु रक्तसना स्वर्ण ब्राह्मण कैसे ले। धनुष भी चढ़ानेकी शक्ति विप्रमें नहीं थी। मरणासन्न, अत्यन्त आहत कर्णने हाथ तथा घायल मुखसे धनुष चढ़ाकर वारुण-अस्त्रके द्वारा जल प्रकट कर स्वर्ण धोया और दान किया। श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। अन्तिम समय कर्णको दर्शन देकर कृतार्थ करने ही तो पधारे थे लीलामय श्यामसुन्दर ! उनके देवदुर्लभ चरणोंपर सिर रखकर कर्णने देहत्याग किया।'

दानधर्मकी महिमा

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम पञ्चवटीमें निवाससे पूर्व जब प्रथम बार महर्षि अगस्त्यके आश्रमपर पहुँचे तो उनका सत्कार करके महर्षिने विश्वकर्माका बनाया एक दिव्य आभूषण उन्हें देते हुए कहा—'यह धारण करनेवालेको निर्भय रखता है, उसे अनेक आपत्तियोंसे बचाता है।'

क्षत्रियके लिये दान लेना उचित नहीं है। श्रीरामने तो वनमें तपस्वी-वेषमें रहनेका व्रत लिया था, किंतु महर्षिके आग्रहपर उनका प्रसाद मानकर वह आभूषण लेकर उन्होंने श्रीजानकीको दे दिया। आभूषण स्वीकार करते हुए श्रीरामने पूछा—'यह आपको कैसे प्राप्त हुआ ?'

अगस्त्यजीने बतलाया—'मैं एक बार वनमें यात्रा कर रहा था। एक विशाल वनमें पहुँचनेपर मुझे एक योजन लम्बी झील मिली। सुन्दर स्वच्छ जल था उसका और उसके किनारे एक आश्रम भी था, किंतु आश्रममें कोई नहीं था। उस वनमें मुझे कोई पशु-पक्षी नहीं दीखा। ग्रीष्म ऋतु थी। मैं यात्रासे थका था। अतः मैं उस आश्रममें एक रात्रि रहा। प्रातःकाल मैं स्नानके लिये उस झीलकी ओर चला तो मार्गमें एक शव मिला। हृष्ट-पुष्ट देह देखकर मैंने समझा कि यह तपस्वीका शव नहीं है। इतना सुन्दर, सुपुष्ट व्यक्ति उस वनमें कहाँसे आया, यह मैं सोचने लगा। इतनेमें एक विमान आकाशसे उतरा। उससे निकलकर एक देवोपम मनुष्यने झीलमें स्नान किया और फिर उस शवका मांस मुखसे ही काटकर उसने भरपेट खाया। मुझे यह देखकर बड़ी ग्लानि हुई।'

'तुम कौन हो ? यह घृणित आहार क्यों करते हो ?' जब वह व्यक्ति विमानमें बैठने लगा, तब मैंने उससे पूछा।

उस व्यक्तिने कहा—'कभी मैं विदर्भ देशका राजा श्वेत था। राज्यसे वैराग्य होनेपर तप करके मैंने देहत्याग किया। तपके प्रभावसे मुझे ब्रह्मलोक मिला, किंतु वहाँ भी मुझे क्षुधा पीड़ित करने लगी।'

भगवान् ब्रह्माने कहा था—'श्वेत ! पृथ्वीपर दान किये बिना इस लोकमें कोई वस्तु मिलती नहीं। तुमने किसी भिक्षुकको भिक्षातक नहीं दी। केवल अपने देहको नाना प्रकारके भोगोंसे पुष्ट किया। देहको ही सुखाकर तुमने तप किया। तपका फल तो तुम्हारा इस लोकमें आना है। तुम्हारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देह पृथ्वीपर पड़ा है। वह पुष्ट और अक्षय कर दिया गया है। तुम उसीका मांस खाकर क्षुधा मिटाओ। अगस्त्य ऋषिके मिलनेपर तुम इस घृणित भोजनसे परित्राण पाओगे।'

'तबसे यह देह मेरा आहार है। मेरे प्रतिदिन भक्षणसे भी यह घटता नहीं।' श्वेतने बतलाया।

'मैं ही अगस्त्य हूँ। मैंने उसे बतलाया, तब वह प्रसन्न हुआ। उसने बड़े आग्रहसे यह आभूषण मुझे दिया। मुझे इसका क्या करना था, किंतु उसके उद्धारके लिये मैंने उसका यह दान स्वीकार कर लिया।'

महर्षि अगस्त्यने आभूषणकी यह कथा श्रीरामको सुनाई।

देवी षष्ठीकी कथा

प्रियव्रत नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो चुके हैं। उनके पिताका नाम था स्वायम्भुव मनु। प्रियव्रत योगिराज होनेके कारण विवाह करना नहीं चाहते थे। तपस्यामें उनकी विशेष रुचि थी, परंतु ब्रह्माजीकी आज्ञा तथा सत्प्रयत्नके प्रभावसे उन्होंने विवाह कर लिया। विवाहके पश्चात् सुदीर्घकालतक उन्हें कोई भी संतान नहीं हुई। तब कश्यपजीने उनसे पुत्रेष्टियज्ञ कराया। राजाकी प्रेयसी भार्याका नाम मालिनी था। मुनिने उन्हें चरु (खीर) प्रदान किया। चरु-भक्षण करनेके पश्चात् रानी मालिनी गर्भवती हो गयीं। तत्पश्चात् सुवर्णके समान प्रभावाले एक कुमारकी उत्पत्ति हुई, परंतु सम्पूर्ण अङ्गोंसे सम्पन्न वह कुमार मरा हुआ था। उसकी आँखें उलट चुकी थीं। उसे देखकर समस्त नारियाँ तथा बान्धवोंकी स्त्रियाँ भी रो पड़ीं। पुत्रके असह्य शोकके कारण माताको मूर्छा आ गयी।

राजा प्रियव्रत उस मृत बालकको लेकर श्मशानमें गये और उस एकान्त भूमिमें पुत्रको छातीसे चिपकाकर आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहाने लगे। इतनेमें उन्हें वहाँ एक दिव्य विमान दिखायी पड़ा। शुद्ध स्फटिकमणिके समान चमकनेवाला वह विमान अमूल्य रत्नोंसे बना था। तेजसे जगमगाते हुए उस विमानकी रेशमी वस्त्रोंसे अनुपम शोभा हो रही थी। वह अनेक प्रकारके अद्भुत चित्रोंसे विभूषित तथा पुष्पोंकी मालासे सुसज्जित था। उसीपर बैठी हुई मनको मुग्ध करनेवाली एक परम सुन्दरी देवीको राजा प्रियव्रतने देखा। श्वेत चम्पाके फूलके समान उनका उज्ज्वल वर्ण था। सदा सुस्थिर तारुण्यसे शोभा पानेवाली वे देवी मुस्करा रही थीं। उनके मुखपर प्रसन्नता छायी थी। रत्नमय भूषण उनकी छवि बढ़ा रहे थे। योगशास्त्रमें पारंगत वे देवी भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आतुर थीं। ऐसा जान पड़ता था मानो वे मूर्तिमती कृपा ही हों। उन्हें सामने विराजमान देखकर राजाने बालकको भूमिपर रख दिया और बड़े आदरके साथ उनकी पूजा और स्तुति की। उस समय वे स्कन्दकी प्रिया देवी षष्ठी अपने तेजसे देदीप्यमान थीं। उनका शान्त विग्रह ग्रीष्मकालीन सूर्यके समान चमचमा रहा था। उन्हें प्रसन्न देखकर राजाने पूछा—'सुशोभने! कान्ते! सुव्रते! वरारोहे! तुम कौन हो, तुम्हारे पतिदेव कौन हैं और तुम किसकी कन्या हो? तुम स्त्रियोंमें धन्यवाद एवं आदरके पात्र हो।'

जगत्को मङ्गल प्रदान करनेमें प्रवीण तथा देवताओंको रणमें सहायता पहुँचानेवाली वे भगवती 'देवसेना' थीं। पूर्वसमयमें देवता दैत्योंसे ग्रस्त हो चुके थे। इन देवीने स्वयं सेना बनकर देवताओंका पक्ष ले युद्ध किया था। इनकी कृपासे देवता विजयी हो गये थे। अतएव इनका नाम 'देवसेना' पड़ गया। महाराज प्रियव्रतकी बात सुनकर वे उनसे कहने लगीं—'राजन्! मैं ब्रह्माकी मानसी कन्या हूँ। जगत्पर शासन करनेवाली मुझ देवीका नाम 'देवसेना' है। विधाताने मुझे उत्पन्न करके स्वामी कार्तिकेयको सौंप दिया है। मैं सम्पूर्ण मातृकाओंमें प्रसिद्ध हूँ। स्कन्दकी पतिव्रता भार्या होनेका गौरव मुझे प्राप्त है। भगवती मूलप्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेके कारण विश्वमें देवी 'षष्ठी' नामसे मेरी प्रसिद्धि है। मेरे प्रसादसे पुत्रहीन व्यक्ति सुयोग्य पुत्र, प्रियाहीनजन प्रिया, दरिद्री धन तथा कर्मशील पुरुष कर्मके उत्तम फल प्राप्त कर लेते हैं। राजन्! सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मङ्गल, सम्पत्ति और विपत्ति—ये सब कर्मके अनुसार होते हैं। अपने ही कर्मके प्रभावसे पुरुष अनेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्रोंका पिता होता है और कुछ लोग पुत्रहीन भी होते हैं। किसीको मरा हुआ पुत्र होता है और किसीको दीर्घजीवी—यह कर्मका ही फल है। गुणी, अङ्गहीन, अनेक पत्नियोंका स्वामी, भार्यारहित, रूपवान्, रोगी और धर्मी होनेमें मुख्य कारण अपना कर्म ही है। कर्मके अनुसार ही व्याधि होती है और पुरुष आरोग्यवान् भी हो जाता है। अतएव राजन्! कर्म सबसे बलवान् है—यह बात श्रुतिमें कही गयी है।'

इस प्रकार कहकर देवी षष्ठीने उस बालकको उठा लिया और अपने महान् ज्ञानके प्रभावसे खेल-खेलमें ही उसे पुनः जीवित कर दिया। अब राजाने देखा तो सुवर्णके समान प्रभावाला वह बालक हँस रहा था। अभी महाराज प्रियव्रत उस बालककी ओर देख ही रहे थे कि देवी देवसेना उस बालकको लेकर आकाशमें जानेको तैयार हो गयीं। यह देख राजाके कण्ठ, ओष्ठ और तालु सूख गये, उन्होंने पुनः देवीकी स्तुति की। तब संतुष्ट हुई देवीने राजासे वेदोक्त वचन कहा—'तुम स्वायम्भुव मनुके पुत्र हो। त्रिलोकीमें तुम्हारा शासन चलता है। तुम सर्वत्र मेरी पूजा कराओ और स्वयं भी करो। तब मैं तुम्हें कमलके समान मुखवाला यह मनोहर पुत्र प्रदान करूँगी। इसका नाम सुव्रत होगा। इसमें सभी गुण और विवेकशक्ति विद्यमान रहेंगे। यह भगवान् नारायणका कलावतार तथा प्रधान योगी होगा। इसे पूर्वजन्मकी बातें स्मरण रहेंगी। क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ यह बालक सौ अश्वमेध यज्ञ करेगा। सभी इसका सम्मान करेंगे। उत्तम बलसे सम्पन्न होनेके कारण यह ऐसी शोभा पायेगा, जैसे लाखों हाथियोंमें सिंह। यह धनी, गुणी, शुद्ध, विद्वानोंका प्रेमभाजन तथा योगियों, ज्ञानियों एवं तपस्वियोंका सिद्धरूप होगा। त्रिलोकीमें इसकी कीर्ति फैल जायगी। यह सबको सब सम्पत्ति प्रदान कर सकेगा।'

इस प्रकार कहनेके पश्चात् भगवती देवसेनाने उन्हें वह पुत्र दे दिया। राजा प्रियव्रतने पूजाकी सभी बातें स्वीकार कर लीं। यों भगवती देवसेनाने उन्हें उत्तम वर देकर स्वर्गके लिये प्रस्थान किया। राजा भी प्रसन्न-मन होकर मन्त्रियोंके साथ अपने घर लौट आये और पुत्रविषयक वृत्तान्त सबसे कह सुनाये। यह प्रिय वचन सुनकर स्त्री और पुरुष सब-के-सब परम संतुष्ट हो गये। राजाने सर्वत्र पुत्र-प्राप्तिके उपलक्ष्यमें माङ्गलिक कार्य आरम्भ करा दिया, भगवतीकी पूजा की, ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दान दिया। तबसे प्रत्येक मासमें शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिके अवसरपर भगवती षष्ठीका महोत्सव यत्नपूर्वक मनाया जाने लगा। बालकोंके प्रसवगृहमें छठे दिन, इक्कीसवें दिन तथा अन्नप्राशनके शुभ समयपर यत्नपूर्वक देवीकी पूजा होने लगी। सर्वत्र इसका पूरा प्रचार हो गया। स्वयं राजा प्रियव्रत भी पूजा करते थे।

भगवती देवसेनाका ध्यान, पूजन और स्तोत्र इस प्रकार है—जो प्रसङ्ग सामवेदकी कौथुमी शाखामें वर्णित है। शालग्रामकी प्रतिमा, कलश अथवा वटके मूलभागमें या दीवालपर पुत्तलिका बनाकर प्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेवाली शुद्धस्वरूपिणी इन भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। विद्वान् पुरुष इनका इस प्रकार ध्यान करे—'सुन्दर पुत्र, कल्याण तथा दया प्रदान करनेवाली ये देवी जगत्की माता हैं। श्वेत चम्पकके समान इनका वर्ण है। ये रत्नमय भूषणोंसे अलंकृत हैं। इन परम पवित्र-स्वरूपिणी भगवती देवसेनाकी मैं उपासना करता हूँ।' विद्वान् पुरुष इस प्रकार ध्यान करनेके पश्चात् भगवतीको पुष्पाञ्जलि समर्पण करे। पुनः ध्यान करके मूलमन्त्रसे इन साध्वी देवीकी पूजा करनेका विधान है। पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, विविध प्रकारके नैवेद्य तथा सुन्दर फलद्वारा भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। उपचार अर्पण करनेके पूर्व **'ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा'**—इस मन्त्रका उच्चारण करना विहित है। पूजक पुरुषको चाहिये कि यथाशक्ति इस अष्टाक्षर महामन्त्रका जप भी करे।

तदनन्तर मनको शान्त करके भक्तिपूर्वक स्तुति करनेके पश्चात् देवीको प्रणाम करे। जो पुरुष देवीके उपर्युक्त अष्टाक्षर महामन्त्रका एक लाख जप करता है, उसे अवश्य ही उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है, ऐसा ब्रह्माजीने कहा है। सम्पूर्ण शुभ कामनाओंको प्रदान करनेवाला, सबका मनोरथ पूर्ण करनेवाला निम्न स्तोत्र वेदोंमें गोप्य है—

'देवीको नमस्कार है। महादेवीको नमस्कार है। भगवती सिद्धि एवं शान्तिको नमस्कार है। शुभा, देवसेना एवं भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। वरदा, पुत्रदा, धनदा, सुखदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं मोक्षप्रदा भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मूल-प्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेवाली भगवती सिद्धाको नमस्कार है। माया, सिद्धयोगिनी, सारा, शारदा और परादेवी नामसे शोभा पानेवाली भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। बालकोंकी अधिष्ठात्री, कल्याण प्रदान करनेवाली, कल्याणस्वरूपिणी एवं कर्मोंके फल प्रदान करनेवाली देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। अपने भक्तोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाली तथा सबके लिये सम्पूर्ण कार्योंमें पूजा प्राप्त करनेकी अधिकारिणी स्वामी कार्तिकेयकी प्राणप्रिया देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मनुष्य जिनकी सदा वन्दना करते हैं तथा देवताओंकी रक्षामें जो तत्पर रहती हैं, उन शुद्ध सत्त्वस्वरूपा देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। हिंसा और क्रोधसे रहित भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। सुरेश्वरि ! तुम मुझे धन दो, प्रिया पत्नी दो और पुत्र देनेकी कृपा करो। महेश्वरि ! तुम मुझे सम्मान दो, विजय दो और मेरे शत्रुओंका संहार कर डालो। धन और यश प्रदान करनेवाली भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। सुपूजिते ! तुम भूमि दो, प्रजा दो, विद्या दो तथा कल्याण एवं जय प्रदान करो। तुम षष्ठीदेवीको मेरा बार-बार नमस्कार है।

इस प्रकार स्तुति करनेके पश्चात् महाराज प्रियव्रतने षष्ठीदेवीके प्रभावसे यशस्वी पुत्र प्राप्त कर लिया। जो पुरुष भगवती षष्ठीके इस स्तोत्रको एक वर्षतक श्रवण करता है, वह यदि अपुत्री हो तो दीर्घजीवी सुन्दर पुत्र प्राप्त कर लेती है। जो एक वर्षतक भक्तिपूर्वक देवीकी पूजा करके इसका यह स्तोत्र सुनता है, उसके सम्पूर्ण पाप विलीन हो जाते हैं। महान् वन्ध्या भी इसके प्रसादसे संतान प्रसव करनेकी योग्यता प्राप्त कर लेती है। वह भगवती देवसेनाकी कृपासे गुणी, विद्वान्, यशस्वी, दीर्घायु एवं श्रेष्ठ पुत्रकी जननी होती है। काकवन्ध्या अथवा मृतवत्सा नारी एक वर्षतक इसका श्रवण करनेके फलस्वरूप भगवती षष्ठीके प्रभावसे पुत्रवती हो जाती है। यदि बालकको रोग हो जाय तो उसके माता-पिता एक मासतक इस स्तोत्रका श्रवण करें तो षष्ठीदेवीकी कृपासे उस बालककी व्याधि शान्त हो जाती है।*

(ब्रह्मवै० प्रकृतिखण्ड, अध्याय ४३)

नागपञ्चमी-व्रत-माहात्म्य

एक बार महाराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे नागपञ्चमी-व्रतके विषयमें जिज्ञासा व्यक्त की, तब भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'युधिष्ठिर ! दयिता-पञ्चमी नागोंके आनन्दको बढ़ानेवाली होती है। श्रावणशुक्ला पञ्चमीमें नागोंका महान् उत्सव होता है। उस दिन वासुकि, तक्षक, कालिक, मणिभद्रक, धृतराष्ट्र, रैवत, कर्कोटक और धनञ्जय—ये सभी नाग प्राणियोंको अभय (दान) देते हैं। जो मनुष्य नागपञ्चमीके दिन नागोंको दूधसे स्नान कराते हैं, दूध पिलाते हैं, उनके कुलमें प्राणियोंको ये सदा अभयदान देते रहते हैं। जब नागमाता कद्रूने नागोंको शाप दे दिया, तब वे रात-दिन संतप्त हो रहे थे। जब उन्हें गायके दूधसे तृप्त किया गया तबसे वे प्रसन्न होकर प्रिय हो गये।'

युधिष्ठिरने पूछा—'जनार्दन ! माता कद्रूने नागोंको क्यों शाप दिया ? उस शापका निराकरण कैसे हुआ ?' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'अश्वोंका राजा उच्चैःश्रवा अमृतसे उत्पन्न हुआ था, वह श्वेत वर्णका था।' उसे देखकर नागमाता कद्रूने अपनी बहन विनतासे कहा—'देखो, देखो अमृतसे उत्पन्न यह अश्वरत्न श्वेत है, पर आज इसके सभी श्वेत बाल काले दिखायी पड़ते हैं। तुम देखती हो या नहीं ?' विनता बोली—'इस श्रेष्ठ घोड़ेका सर्वाङ्ग श्वेत है, न काला है न लाल। कैसे तुम्हें काला दिखायी पड़ता है ?'

कद्रू बोली—'विनता ! मैं एक आँखवाली इसे काले बालोंवाला देखती हूँ, परंतु तू दो आँखोंवाली होकर भी नहीं देखती ? कुछ शर्त रखो।' विनताने कहा—'कद्रू ! यदि तुम इसके काले केश दिखा दोगी तो मैं तुम्हारी दासी हो जाऊँगी। यदि तुम काले केश नहीं दिखा पाओगी तो तुम मेरी दासी होगी'। इस प्रकार शर्त (प्रण) कर वे दोनों क्रुद्ध होकर चली गयीं। रात्रिमें सबके सो जानेपर कद्रूने कुटिलता सोची। उसने

* यह कथा देवीभागवतके नवें स्कन्धमें भी प्रायः इसी रूपमें प्राप्त होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पुत्रों—काले नागोंको बुलाकर कहा कि 'तुमलोग उच्चैःश्रवाके बाल बनकर उससे चिपक जाओ, जिससे मैं बाजी जीत जाऊँ—विनताको दासी बना लूँ।' तब उन नागोंने माताकी कुटिलतापर उसे फटकारा कि यह महान् पाप है। हम तुम्हारा कहा नहीं करेंगे। तब कद्रूने क्रुद्ध हो उन्हें शाप दे दिया—'जाओ, तुम्हें अग्नि जला देगी। बहुत दिनोंके बाद पाण्डववंशी राजा जनमेजय विकराल सर्पयज्ञ करेंगे। उस यज्ञमें प्रचण्ड पावक तुम्हें जला देगा।' ऐसा शाप देकर कद्रू चुप हो गयी।

माताके द्वारा शप्त सर्पोंको कुछ सूझा ही नहीं। वासुकि नाग दुःखसे संतप्त हो मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ा। उसे दुःखी देख ब्रह्माजी सहसा वहाँ आ पहुँचे और सान्त्वना देते हुए बोले—'वासुकि ! शोक मत करो। मेरी बात सुनो। यायावर-वंशमें जरत्कारु नामक द्विज उत्पन्न हुए हैं। आगे चलकर वे बड़े तेजस्वी तपोनिधि होंगे। उन्हें तुम अपनी बहन विवाह दो। उससे आस्तीक नामक विख्यात पुत्र होगा। वह नागोंके विनाशकारी उस नागयज्ञको राजाको समझा-बुझाकर रोक देगा।'

ब्रह्माजीकी बात सुनकर प्रसन्न वासुकिने वैसा ही किया। नागोंको इससे अभयदान मिला। वे इससे परम प्रसन्न हुए कि उनका वंशधर आस्तीक हम नागोंका विनाश रोक देगा। ब्रह्माजीने उनसे कहा—'आस्तीकद्वारा तुमलोगोंका यह भय-निवारण (श्रावण-शुक्ला) पञ्चमीको होगा।' इसलिये युधिष्ठिर ! यह पञ्चमी शुभादयिता कही जाती है तथा नागोंको आनन्द देनेवाली है। इस तिथिको ब्राह्मणोंको भोजन कराकर नागोंकी इस प्रकार पूजा-प्रार्थना करनी चाहिये—'भूतलपर जो नाग हैं, वे प्रसन्न हों। जो नाग हिमालयपर रहते हैं, जो आकाशमें हैं, जो देवलोकमें हैं, जो नदियों-सरोवरोंमें हैं और जो बावली-तालाबोंमें हैं, उन सबको नमस्कार है।' ऐसा कहकर नागों और विप्रोंकी यथायोग्य पूजा कर उनका विसर्जन करे। तत्पश्चात् सेवकों और परिजनोंसहित स्वयं भोजन करे। पहले मधुर पदार्थ खायँ, पीछे अन्य भोज्य पदार्थ स्वेच्छया ग्रहण करे। इस प्रकार व्रत-नियम करनेवाला मरनेके बाद नागलोकको जाता है, वहाँ अप्सराएँ उसकी पूजा करती हैं और वह श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो अभीष्ट कालतक विहार करता है। वहाँसे पुनः इस भूतलपर जन्म लेनेपर वह राजाधिराज होता है। उसके पास सभी रत्नोंका भण्डार होता है, सवारियाँ होती हैं, सम्पत्ति होती है। वह पाँच जन्मोंतक निरन्तर राजा होता है। उस अवधिमें वह आधि-व्याधिसे मुक्त रहता है। पत्नी और पुत्र, उसके सहायक—अनुकूल होते हैं। इसलिये नागोंकी घी-दूध आदिसे सदा पूजा करनी चाहिये।

युधिष्ठिरने पुनः पूछा—'भगवन् ! क्रुद्ध नाग जिस व्यक्तिको डँस लेते हैं, उसका क्या होता है ?' भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'राजन् ! नागके डँसनेसे मृत्युको प्राप्त व्यक्ति अधोलोकमें गिरता है। वहाँ वह विषहीन सर्प होता है।' युधिष्ठिरने पुनः पूछा—'साँपके काटनेसे जिसके पिता-माता, भाई-मित्र, पुत्र, बहन, कन्या या स्त्री—कोई भी सम्बन्धीजन मर जाते हैं, उनके उद्धारके लिये उसे क्या दान-व्रत-उपवास करना चाहिये, जिससे वे स्वर्गको प्राप्त हों।' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'राजन् ! उन्हें नागोंको प्रसन्न करनेवाली पञ्चमीका व्रत एक वर्षतक करना चाहिये। उसका विधान सुनिये—भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी अधिक पुण्य-कारक है। सद्गतिकी कामनासे उसे ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्षमें बारह पञ्चमियाँ होती हैं। व्रतके पूर्व दिन चतुर्थीको रात्रिमें एक अन्न ग्रहण करना चाहिये। दूसरे दिन पञ्चमीको नागकी पूजा करनी चाहिये। सोने या चाँदी या लकड़ी अथवा मिट्टीका पाँच फनोंका नाग बनवाकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करे। उन्हें करवीरके फूल, कमलके फूल, सुन्दर जाती-पुष्प, चन्दन, नैवेद्य आदि समर्पित कर पूजा करे। पूजाके पश्चात् ब्राह्मणको भोजन कराये। ब्राह्मण-भोजनमें घी-खीर-मोदककी प्रधानता होनी चाहिये। सर्पके काटनेसे मरे हुए प्राणीके लिये नारायण-बलि करे। दान और पिण्ड-दानमें ब्राह्मणोंको तृप्त करना चाहिये। एक वर्ष पूर्ण होनेपर वृषोत्सर्ग करना चाहिये। स्नानकर जलदान करे—'यहाँ श्रीकृष्ण प्रसन्न हों'—यह प्रार्थना करे। प्रत्येक मासमें अनन्त, वासुकि, शेष, पद्म, कम्बल, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिय, तक्षक तथा पिङ्गल नामक महानागोंका नामोच्चारण करना चाहिये। वर्षकी समाप्तिपर पारणके समय ब्राह्मणोंको भोजन कराये। इतिहास-वेत्ता (विद्वान्) विप्रको स्वर्णका नाग तथा सवत्सा सीधी गौ, कांसेकी दोहनी (दुग्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूहनेका पात्र) सहित देनी चाहिये।

विद्वानोंने यह पारणविधि बतायी है। इस श्रेष्ठ व्रतके करनेसे बान्धवोंको सद्गतिकी प्राप्ति होती है। सर्पादिके काटनेसे जिनकी अधोगति हो जाती है, उनके निमित्त यदि एक वर्षतक यह उत्तम व्रत भक्तिपूर्वक किया जाय तो वे जीव उस यातनासे मुक्त होकर शुभगतिको प्राप्त होते हैं। जो भक्तिपूर्वक नित्य इस आख्यानको पढ़ता या सुनता है, उसके कुटुम्बमें नागोंसे कोई भय नहीं होता। इसी प्रकार जो भाद्रपदशुक्ला पञ्चमीको काले रंगोंसे नागोंका चित्र बनाकर गन्ध-पुष्प-घी-गुग्गुल-खीर आदिसे भक्तिपूर्वक पूजा करता है, उसपर तक्षक आदि नाग प्रसन्न होते हैं। उसके सात कुल (पीढ़ी) तक नागोंसे भय नहीं रहता। इसी प्रकार आश्विनमासकी शुक्ला पञ्चमीको कुशके नाग बनाकर इन्द्राणीके साथ उनकी पूजा करे। घी-दूध और जलसे स्नान कराकर दूधमें पके गेहूँ तथा अन्य भोज्य पदार्थ उन्हें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक समर्पित करे तो शेष आदि नाग उसपर प्रसन्न होते हैं, उसे सुख-शान्ति प्राप्त होती है। मृत्युके बाद वह प्राणी उत्तम लोकको प्राप्त करता है, जहाँ चिरकालतक आनन्द भोगता है। यह पञ्चमीव्रतका विधान है। सर्पोंका सर्वदोष-निवारक मन्त्र यह है—**'ॐ कुरुकुल्ले हुं फट् स्वाहा।'** इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक सौ पञ्चमियोंको जो सर्पोंकी पूजा पुष्पोंसे करते हैं, उनके घरमें साँपोंका कभी भय नहीं होता। (भविष्यपु०) (शि०पू०पा०)

उत्तम पति प्राप्त करनेका साधनस्वरूप व्रत

एक बार स्वर्गकी अप्सराओंने देवर्षि नारदजीसे पूछा—'देवर्षे ! आप ब्रह्माजीके पुत्र हैं। हमें उत्तम पति पानेकी अभिलाषा है। भगवान् नारायण हमारे प्राणपति हो सकें, इसके लिये आप हमलोगोंको कोई व्रत बतानेकी कृपा करें।'

नारदजीने कहा—प्रायः सबके लिये कल्याणदायक नियम यह है कि प्रश्न करनेके पूर्व प्रश्नकर्ता विनयपूर्वक प्रणाम करे, पर तुमलोगोंने इस नियमका पालन नहीं किया, क्योंकि तुम्हें युवावस्थाका गर्व है। फिर भी तुमलोग देवाधिदेव भगवान् विष्णुके नामका कीर्तन करो और उनसे वर माँगो—'प्रभो ! आप हमारे स्वामी होनेकी कृपा करें।' इससे तुम्हारा सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होगा—इसमें कोई संशय नहीं है। साथ ही मैं एक व्रत भी बताता हूँ, जिसे करनेसे भगवान् श्रीहरि स्वयं वर देनेके लिये उद्यत हो जाते हैं। चैत्र और वैशाख मासके शुक्लपक्षमें जो द्वादशी तिथि है, उस दिन यह व्रत करना चाहिये। रातमें विधिवत् भगवान् श्रीहरिकी पूजा करे। बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि भगवान्की प्रतिमाके ऊपर लाल फूलोंसे एक मण्डल बनवाये; नृत्य, गीत एवं वाद्यके साथ रातमें जागरण करे तथा **'ॐ भवाय नमः', 'ॐ अनङ्गाय नमः', 'ॐ कामाय नमः', 'ॐ सुशास्त्राय नमः', 'ॐ मन्मथाय नमः' तथा 'ॐ हरये नमः'** कहकर क्रमशः भगवान्के सिर, कटि, भुजा, उदर एवं चरण आदिकी पूजा करे। फिर भगवान्को प्रणामकर रात्रि-जागरणकी विधि सम्पन्न करके प्रातःकाल भगवान्की वह प्रतिमा वेद-वेदाङ्गके जानकार ब्राह्मणको दान कर दे।

अप्सराओ ! इस प्रकार व्रत करनेपर इच्छानुकूल भगवान् विष्णु अवश्य पतिरूपमें तुम्हें प्राप्त होंगे। इसके पश्चात् ईखके पवित्र रस तथा मल्लिका आदिके फूलोंसे उन देवेश्वरकी पूजा करना।'

इस प्रकार कहकर देवर्षि नारदजी उसी क्षण वहाँसे चले गये। उन अप्सराओंने व्रतकी विधि सम्पन्न की। फलस्वरूप स्वयं भगवान् श्रीहरि उनपर संतुष्ट होकर कृष्णावतारमें उनके पति हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपपुराण और उनके रोचक आख्यान

[अष्टादश महापुराणोंकी भाँति उपपुराण भी भारतकी अमूल्य निधि हैं। सामान्यतः कुछ लोगोंको उपपुराण शब्दमें लघुता या हीनताका बोध होने लगता है, परंतु वास्तवमें उपकार, उपासना, उपदेश, उपहार, उपनयन, उपक्रम, उपस्थान आदिके समान उपपुराणमें भी 'उप' श्रेष्ठताका ही बोधक है। पुराणोंकी तरह उपपुराण भी भारतीय संस्कृतिके मान्य ग्रन्थ हैं। ये भी प्रायः पञ्चलक्षणोंसे समन्वित हैं तथा विशिष्ट देवता या तीर्थ-माहात्म्यसे सम्बन्धित होते हुए ज्ञान-विज्ञान, नीति, सदाचार तथा धर्म आदिकी श्रेष्ठ कथाओंसे परिपूर्ण हैं। इनमें सर्वत्र कर्म, ज्ञान और भगवद्भक्तिकी त्रिवेणी प्रवाहित होती है, जिसके स्वाध्यायसे मनुष्यका जीवन कृतार्थ हो जाता है। इनके रचयिता भी श्रीव्यासजी हैं। विभिन्न पुराणोंमें उपपुराणोंकी भी चर्चा प्राप्त होती है। उपपुराणोंकी संख्या तो प्रायः सभी पुराण अठारह मानते हैं, किंतु उनके मतानुसार उनके नामोंमें वैभिन्न्य होनेके कारण महापुराणोंके अतिरिक्त उपपुराणोंकी संख्या बहुत अधिक हो जाती है, जिसमें कुछके नाम यहाँ परिगणित किये जाते हैं—

१-अङ्गिरापुराण, २-आखेटकपुराण, ३-आत्मपुराण, ४-आदिपुराण, ५-आदित्यपुराण, ६-उशनःपुराण, ७-एकपादपुराण, ८-एकाम्रपुराण, ९-कपिलपुराण, १०-कल्किपुराण, ११-कालिकापुराण, १२-क्रियायोगसारपुराण, १३-गणेशपुराण, १४-गरुडपुराण, १५-जालंधरपुराण, १६-तत्त्वसारपुराण, १७-ताप्तीपुराण, १८-दत्त या दत्तात्रेय-पुराण १९-देवीपुराण, २०-दौर्वाससपुराण, २१-धर्मपुराण, २२-नन्दि या नन्दीश्वरपुराण, २३-नरसिंहपुराण, २४-नारदपुराण, २५-नीलमतपुराण, २६-परानन्दपुराण, २७-पराशरपुराण, २८-पाशुपतपुराण, २९-प्रभासपुराण, ३०-बृहद्धर्मपुराण, ३१-बृहद्धर्मोत्तरपुराण, ३२-बृहन्नन्दीश्वरपुराण, ३३-बृहन्नरसिंहपुराण, ३४-बृहन्नारदीयपुराण, ३५-भविष्योत्तरपुराण, ३६-(देवी) भागवतपुराण, ३७-भार्गवपुराण, ३८-मरीचिपुराण, ३९-महाभागवतपुराण, ४०-मानवपुराण, ४१-माहेश्वरपुराण, ४२-मुद्गलपुराण, ४३-रेणुकापुराण, ४४-लघुनारदपुराण, ४५-लीलावतीपुराण, ४६-वसिष्ठपुराण, ४७-वह्निपुराण, ४८-वायु या वायवीयपुराण, ४९-वारुणपुराण, ५०-वासुकिपुराण, ५१-विष्णुधर्म-पुराण, ५२-(श्री) विष्णुधर्मोत्तरपुराण, ५३-विष्णुरहस्यपुराण, ५४-शिवपुराण, ५५-शिवधर्मोत्तरपुराण, ५६-सनत्कुमारपुराण, ५७-साम्बपुराण, ५८-सौरपुराण, ५९-स्कन्दपुराण, ६०-हंसपुराण और ६१-हरिवंशपुराण। स्थानाभावके कारण इनमेंसे कुछ ही उपपुराणोंके आख्यान यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।—सम्पादक]

गणेशपुराण

वेदादि शास्त्रोंमें जिन सर्वात्मा, अनादि, अनन्त, अखण्ड ज्ञानसम्पन्न, पूर्णतम परमात्मा और उनके पञ्चदेवात्मक स्वरूपका वर्णन किया गया है, उसके अनुसार परब्रह्म परमेश्वर गणेश भगवान्‌का विशद विवेचन गणेशपुराणमें उपलब्ध होता है। पुराणवाङ्मयमें इस पुराणका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे उपपुराणोंकी कोटिमें परिगणित किया गया है। गणेशपुराणके अनुसार गणेश प्रणव-रूपमें अवस्थित हैं। समस्त देवता, मुनिगण आदि उन्हींका स्मरण करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव उन्हींकी पूजा करते हैं। वे सर्वकारण-कारण प्रभु ही समस्त जगत्‌के हेतु हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव उन्हींके आज्ञानुसार सृष्टि, पालन तथा संहारके कार्यमें प्रवृत्त होते हैं। उन्हींके आदेशसे सूर्यदेव चलते हैं, वायु बहती है, पृथ्वीपर वृष्टि होती है और अग्नि प्रज्वलित होती है। अमित महिमामय प्रभु मङ्गलमय हैं, करुणामय हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणेशपुराण दो खण्डोंमें विभक्त है। प्रथम पूर्वार्ध (उपासना-खण्ड) और द्वितीय उत्तरार्ध (क्रीडाखण्ड)। प्रथममें ९२ अध्याय और ४०९३ श्लोक हैं, द्वितीयमें १५५ अध्याय और ६९८६ श्लोक हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण गणेशपुराण २४७ अध्यायों तथा ११०७९ श्लोकोंमें वर्णित है। भगवान् गणेशका स्वरूप, गणेश-तत्त्व, गणेश-महिमा, गणेश-मन्त्रमाहात्म्य और उनकी माधुरी लीलाकी कथा ही मुख्य रूपसे इस पुराणमें वर्णित है। इसमें आद्यन्त सत्त्वकी प्रतिष्ठा तथा तमका विरोध प्रतिपादित किया गया है। आसुरी प्रवृत्तियोंके विनाश एवं दैवी सम्पदाओंकी स्थापना एवं वृद्धिके लिये ही गजमुख गणेश भगवान्की अवतारणा होती है।

सूतजीने नैमिषारण्यमें अठारह महापुराणोंको शौनकादि ऋषियोंको सुनाया, किंतु जब वे तृप्त नहीं हुए, तब उन्हें गणेशपुराण सुनाकर तृप्त किया। महर्षि मुद्गलजीने दुःखी दक्ष प्रजापतिको इस पुराणको सुनाकर उनका उद्धार किया और पुनः महामुनि भृगुजीने देवनगर-नरेश सोमकान्तको उनके लौकिक एवं पारलौकिक अभ्युदय एवं कल्याणके लिये यह पुराण-श्रवण कराया, जिसके श्रवण-प्रभावसे वे रोगमुक्त एवं परम पवित्र हो गये और अन्तमें सपरिकर गणेशधामको प्राप्त हुए।

गणेशपुराणके पूर्वार्धमें मुख्यरूपसे गणेशजीको परात्पर परमेश्वर सच्चिदानन्दघन परब्रह्मके रूपमें चित्रित किया गया है। उनका मङ्गलमय विग्रह समस्त विघ्नोंका विनाश करनेवाला है। सृष्टि-रचनामें पितामह ब्रह्माके सहयोगका वर्णन, गृत्समद, रुक्माङ्गद एवं त्रिपुरासुरकी कथा, गणेशसहस्रनाम, गणेश-पार्थिव-पूजन, पुत्र-प्राप्त्यर्थ संकष्टहर-चतुर्थी आदि गणेशव्रत, चन्द्रमाको शाप-प्रदान, दूर्वा-माहात्म्य, तारकासुर-वध, काम-दहन, परशुरामको दर्शन, स्कन्दोत्पत्ति, गजवक्त्रमाहात्म्य आदि इस खण्डके प्रमुख विषय हैं।

द्वितीय क्रीडाखण्डमें देवाधिदेव गजमुखी गणेशजीके अवतारकी विस्तारपूर्वक चर्चा है। वे चारों युगोंमें विभिन्न रूपोंमें अवतरित होकर भक्तोंका उद्धार कर विचित्र लीला दिखाते हैं। सत्ययुगमें गणेशजीका प्रथम अवतार महोत्कट विनायकके रूपमें देवमाता अदितिके यहाँ हुआ और उन्होंने देवान्तक तथा नरान्तकादि असुरोंका संहार किया। महोत्कट विनायकका स्वरूप दशभुज तथा सिंहवाहनके रूपमें बताया गया है। त्रेतामें ये शिव-पार्वतीके पुत्रके रूपमें अवतरित हुए। द्वापरमें ये सिन्दूर नामक दैत्यके क्रूर पाशविक कर्मोंके विनाशके लिये देवी गौरीके यहाँ प्रकट हुए, इनका वाहन मूषक था तथा ये गजानन नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए। महर्षि पराशर तथा उनकी सती धर्मपत्नी वत्सलाने इनका पालन किया। दुष्ट असुर सिन्दूरका वध कर इन्होंने त्रैलोक्यकी भयानक विपत्ति दूर की। इस जन्ममें ये वरेण्य तथा उनकी धर्मपत्नी पुष्पिकाके पुत्रके रूपमें जाने गये। इन्होंने अपने पिता वरेण्यजीको जो उपदेश दिया, वह गणेशगीताके नामसे प्रसिद्ध है।

कलियुगके अन्तमें ये श्यामवर्णके होकर धूम्रकेतुके रूपमें अवतरित होंगे। द्विभुज धूम्रकेतुका वाहन घोड़ा होगा। वे कलिका विनाश कर पुनः सत्ययुगकी स्थापना करेंगे।

संक्षिप्त रूपसे यही गणेशपुराणका प्रतिपाद्य विषय है। बीच-बीचमें धर्म, सदाचार आदिकी भी अनेक बातें आयी हैं। गणेश-उपासनाके लिये यह सर्वोत्तम ग्रन्थ-रत्न है।

कथा-आख्यान—

सच्ची निष्ठाका फल

प्राचीन कालकी बात है। सिन्धु देशकी पल्लीनगरीमें कल्याण नामका एक धनी सेठ रहता था। उसकी पत्नीका नाम इन्दुमती था। विवाह होनेके बहुत दिनोंके पश्चात् उनके पुत्र हुआ। उसके जन्मोत्सवमें उन लोगोंने अनेक दान-पुण्य किये, राग-रंग और आमोद-प्रमोदमें पर्याप्त धन व्यय किया। उस पुत्रका नाम रखा गया 'बल्लाल', वह उन दोनोंके नयनोंका तारा था।

× × ×

'कितना मनोरम वन है।' सरोवरमें अपने समवयस्क बालकोंके साथ स्नान करते हुए बल्लालने अपने कथनका समर्थन कराना चाहा। वह उन्हें नित्य अपने साथ लेकर पल्लीसे थोड़ी दूर स्थित वनमें आकर सैर-सपाटा किया करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। बालकोंने उसकी हाँ-में-हाँ मिलायी।

'चलो, हमलोग भगवान् विघ्नेश्वर श्रीगणेश देवताकी पूजा करें, उनकी कृपासे समस्त संकट मिट जाते हैं।' बल्लालने सरोवरके किनारे एक छोटे-से पत्थरको श्रीगणेशका श्रीविग्रह मानकर बालकोंको पूजा करनेकी प्रेरणा दी। उसने श्रीगणेश-महिमाके सम्बन्धमें अनेक बातें घरपर सुनी थीं।

लता-पत्र एकत्र कर बालकोंने एक मण्डप बना लिया, उसमें तथाकथित श्रीगणेश-विग्रहकी स्थापना करके मानसिक पूजा—फूल, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूल, दक्षिणा आदिसे आरम्भ की। उनमेंसे कई एक पण्डितोंका स्वाँग बनाकर पुराणों और शास्त्रोंकी चर्चा करने लगे। इस प्रकार श्रीगणेशकी उपासनामें उनका मन लग गया। वे दोपहरको भोजन करने घर नहीं आते थे, इसलिये दुबले हो गये। उनके पिताओंने कल्याण सेठसे कहा कि यदि बल्लालका वनमें जाना नहीं रोक दिया जायगा तो हमलोग राजासे शिकायत करके आपको पल्लीनगरीसे बाहर निकलवा देंगे। कल्याणका मन चिन्तित हो उठा।

× × ×

'ये तो नकली गणेश हैं, बच्चो ! असली गणेश तो हृदयमें रहते हैं।' कल्याणने डंडेसे बल्लालको सावधान किया।

'पिताजी ! आप जो कुछ भी कह रहे हैं, वह आपकी दृष्टिमें नितान्त सत्य है, पर मेरी निष्ठा तो श्रीगणेशके इसी श्रीविग्रहमें है। मैं पूजा नहीं छोड़ सकता।' बल्लालका इतना कहना था कि सेठने उसे मारना आरम्भ किया; अन्य बालक भाग निकले। सेठने मण्डप तोड़ डाला और बल्लालको एक मोटे रस्सेसे पेड़के तनेमें बाँध दिया।

'यदि इस विग्रहमें श्रीगणेश होंगे तो तुम्हारा बन्धन खुल जायगा। इस निर्जन वनमें वे ही तुम्हारी रक्षा करेंगे।' ऐसा कहकर कल्याणने घरका रास्ता लिया।

'निस्संदेह श्रीगणेश ही मेरे माता-पिता हैं। वे दयामय ही मेरी रक्षा करेंगे। वे विघ्न-विदारक, सिद्धि-दायक, सर्वसमर्थ हैं। मैं उनकी शरणमें अभय हूँ।' बल्लालकी निष्ठा बोल उठी। वह हृदयमें करुणाका वेग समेटकर निर्निमेष नेत्रोंसे श्रीगणेशके विग्रहको देखने लगा।

'मेरा तन भले ही बाँधा जाय, पर मेरा मन स्वतन्त्र है। मैं अपना प्राण श्रीगणेशके चरणोंमें अर्पित करूँगा।' बल्लालके इस निश्चयसे भगवान् श्रीगणेश उस पाषाणसे प्रकट हो गये।

'तुम्हारी निष्ठा धन्य है वत्स !' श्रीगणेशने उसका आलिङ्गन किया। वह बन्धनमुक्त हो गया। उसने अपने आराध्यकी खुलकर स्तुति की। श्रीगणेशने उसे अभय दान दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये। (गणेशपुराण, अ० २२)

नृपश्रेष्ठ वरेण्यपर भगवान् गजाननकी कृपा

प्राचीन कालमें माहिष्मती नामकी एक श्रेष्ठ नगरी थी, जो नृपश्रेष्ठ वरेण्यकी राजधानी थी। महाराजा वरेण्य परम धर्मपरायण थे। ऐसा लगता था मानो मूर्तिमान् धर्मने ही उनके रूपमें अवतार ग्रहण किया हो। वे बड़ी तत्परतासे प्रजाका पालन करते थे। उन्हींकी भाँति उनकी पत्नी महारानी पुष्पिका भी परम गुणवती, पतिव्रता एवं सदाचारिणी थी। पूर्वजन्ममें ये दम्पति भगवान् गणेशके परम भक्त थे। दोनोंने बारह वर्षतक गणपतिकी आराधना करके उनका परम अनुग्रह प्राप्त किया था। भगवान् गणेशने उन्हें अनुग्रहपूर्वक वरदान दिया था कि 'तुमलोगोंके भावी जन्ममें मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा।'

× × ×

इन्द्रप्रभृति देवगण दैत्य सिन्दूरासुरके अत्याचारसे भयाक्रान्त थे, अतः वे सुरगुरु बृहस्पतिकी आज्ञासे भगवान् गणेशसे कृपा-याचना करने लगे—

सिन्दूरो निर्मितः केन विश्वसंहारकारकः।
तेनार्तिप्रापितं विश्वं त्वयि स्वामिनि जाग्रति॥
अन्यं कं शरणं यामः कोऽनुपास्यति नोऽखिलान्।
जह्येनं दुष्टबुद्धिं त्वमवतीर्य शिवालये॥

(गणेशपुराण २।१२९।१८-१९)

'जगत्का संहार करनेवाले इस सिन्दूरासुरका निर्माण किसने किया है ? आप-जैसे स्वामीके जागरूक रहते हुए उस असुरने सम्पूर्ण विश्वको संकटमें डाल दिया है। इस दशामें हम आपको छोड़कर और किसकी शरणमें जायँ ? कौन हम सबका पालन करेगा ? अतः आप ही भगवान् शिवके घरमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवतीर्ण होकर इस दुष्टबुद्धि असुरका संहार कीजिये।'

देवताओं एवं ऋषियोंके इस प्रकार स्तुति एवं आराधना करनेसे कृपालु भगवान् गणेश प्रसन्न हो गये और उन्होंने सबको अभय करनेका आश्वासन दिया।

भगवती जगदम्बा पार्वतीके गर्भसे भगवान् गणेशने चतुर्बाहु-रक्तवर्ण-गजाननके रूपमें इस पृथ्वीपर अवतार लिया। करुणानिधान गजानन नृपश्रेष्ठ वरेण्यको दिये हुए वचन भूले न थे। उनकी योगमाया-शक्तिने सब योजना पूर्ववत् बना रखी थी। भगवान् गजाननके प्राकट्यके समय ही महारानी पुष्पिकाने एक बालकको जन्म दिया था। प्रसवके समय वह मूर्च्छित हो गयी और उस बालकको एक क्रूर राक्षसी उठा ले गयी। ठीक उसी समय शिवगण नन्दीने भगवान् बाल गजाननको मूर्च्छिता रानी पुष्पिकाके पास पहुँचा दिया। भगवान् गजाननके माता-पिता गौरी-शंकरको अपने पुत्रके वरदान देनेकी जानकारी थी ही, अतः अपने बालकको सुरक्षितरूपसे रानी पुष्पिकाके पास पहुँचना उनके लिये आनन्दका विषय ही था।

रानी पुष्पिकाकी मूर्च्छा टूटनेपर उसने अपने अद्भुत बालकको देखा। उस गजमुख-चतुर्बाहु-रक्तवर्ण बालकके सभी चिह्नोंने माताको चकित ही नहीं, अपितु भयभीत भी कर दिया। भयवश रानी रोने लगी। रानीका रुदन सुनते ही परिचारिकाएँ आदि एकत्र हो गयीं। भगवान्की मायाशक्तिने वहाँ एकत्रित सभी लोगोंपर मायाका पर्दा डाल दिया, जिससे परात्पर परब्रह्म भगवान् गजाननको कोई पहचान न सका। सभीने कहा—'ऐसा बालक होना बड़ा अशुभ है।' राजा वरेण्यके पास भी तुरंत यह सूचना गयी और वरेण्यपर भी मायाका पर्दा पड़ गया। राजाने अशुभकी आशङ्कासे उस बालकको निर्जन वनमें फेंकवा दिया। वहाँ भगवान् गजाननकी कृपाशक्तिने महर्षि पराशरपर कृपा की, जिसके प्रभावसे उन्होंने निर्जन वनमें पड़े परात्पर परब्रह्म बालक गजाननको उनके शुभ चिह्नोंसे पहचान लिया। अपने ऊपर विलक्षण भगवत्कृपाका अनुभव करते हुए महर्षि उस बालक-को अपने आश्रममें ले आये और उसे अपनी पत्नी वत्सलाको सौंप दिया। महर्षिपत्नी वत्सलाके आनन्दका पार न था। वह मातृ-स्नेहसे शिशुके पालनमें लग गयी। साक्षात् भगवानके निवाससे महर्षिके आश्रमकी शोभा निराली हो गयी। सभी वृक्ष नवपल्लव, फल, पुष्पादिसे सुशोभित हो गये।

बालरूप भगवान् गणेशने अनेक प्रकारकी बाल-लीलाएँ करते हुए नवें वर्षमें प्रवेश किया। परम अनुग्रहमूर्ति भगवान् गजानन देवताओंकी प्रार्थनाको भूले न थे। उन्हें दैत्यराज सिन्दूरासुरका उद्धार करके देवताओं एवं ऋषि-मुनियोंको भय-मुक्त करना था। अतः उन्होंने अपना शौर्यरूप प्रकट करके सिन्दूरवाड़में जाकर दैत्यराज सिन्दूरका वध किया, जिससे इन्द्रादि देवताओंके हर्षकी सीमा न रही। भगवान् गजाननकी इस अद्भुत कृपाका स्मरण कर स्वाभाविक ही उनके मुखसे ये वचन निकल पड़े—

नानावतारैः कुरुषे पालनं त्वं विशेषतः।
दुष्टानां नाशनं सद्यो भक्तानां कामपूरकः॥

(गणेशपु० २।१३७।३५)

'भगवन्! आप नाना प्रकारके अवतार लेकर विशेषरूपसे जगत्का पालन करते हैं एवं दुष्टोंका विनाश करके भक्तोंकी कामनाओंको तत्काल पूर्ण करते हैं।'

राजा वरेण्यसे भी अपने बालक गजाननकी लीलाएँ छिपी न रहीं। अपने बालकका महर्षि पराशरद्वारा पालन-पोषण एवं सिन्दूर-उद्धार आदि सभी कृपामयी लीलाएँ सुनकर राजा वरेण्य हर्ष एवं पश्चात्तापके सागरमें गोते लगा रहे थे। अन्तमें भगवान् गजाननकी कृपासे मायाका परदा हटते ही उन्होंने बालकको पहचान लिया। फिर तो वे शीघ्रतापूर्वक भगवान् गजाननके पास पहुँचकर अत्यन्त दीन-भावसे प्रार्थना करने लगे—'प्रभो! मैं अज्ञानी आपकी कृपाको समझ न सका। भला, मेरे-जैसा अज्ञानी पुरुष आपके स्वरूपको कैसे पहचान पाता। कृपानिधान! आप मुझे क्षमा करें। मायासे मोहित होकर मैंने महान् अनर्थ कर डाला।'

करुणामूर्ति गजानन पिता वरेण्यकी प्रार्थना सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने राजाको कृपापूर्वक अपने पूर्वजन्मके वरदानका स्मरण कराया।

× × ×

भगवान् गजाननने पिता वरेण्यसे अपने स्वधाम-यात्राकी आज्ञा माँगी। स्वधाम-गमनकी बात सुनकर राजा वरेण्य व्याकुल हो उठे और अश्रुपूर्ण नेत्र एवं अत्यन्त दीनतासे प्रार्थना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हुए बोले—'कृपामय ! मेरा अज्ञान दूरकर मुझे मुक्तिका मार्ग प्रदान करें।'

राजा वरेण्यकी दीनतासे प्रसन्न होकर भगवान् गजाननने कृपावश उन्हें सुविस्तृत ज्ञानोपदेश प्रदान किया। यही अमृतोपदेश 'गणेश-गीता'के नामसे विश्वमें प्रसिद्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण-प्रदत्त 'श्रीमद्भगवद्गीता' और 'गणेशगीता'के उपदेशोंमें पर्याप्त समानता मिलती है। 'गणेशगीता' कुछ संक्षिप्त है।

(ह०कृ०दु०)

नरसिंहपुराण

भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासदेवद्वारा रचित नृसिंहोपासनापरक नरसिंहपुराण ग्रन्थ बड़ा ही मनोरम है। श्रीरामचरितमानसकी ही भाँति माघ-मासमें सूर्यके मकरस्थ होनेपर तीर्थराज प्रयागमें ही श्रीभरद्वाजमुनिने इसे सूतजीसे सुननेकी इच्छा व्यक्त की और सूतजीने मार्कण्डेय-सहस्रानीक-संवादके रूपमें उन्हें इसे श्रवण कराया। यह आकारमें बहुत छोटा है। छाछठ तथा किन्हीं-किन्हीं प्रतियोंमें सड़सठ या अड़सठ अध्याय तथा कुल ३५३० श्लोकमात्र हैं। साथ ही इसकी गणना भी उपपुराणोंमें है, फिर भी यह सभी प्रकारसे अत्यन्त आकर्षक, सुन्दर, धार्मिक, सदाचारपूर्ण सदुपदेशोंसे सुसज्जित तथा भगवद्भक्ति एवं ज्ञान-विज्ञानादिसे ओत-प्रोत है।

इसमें भगवान् विष्णुके दशावतारकी कथाएँ विस्तारसे कही गयी हैं। उनमें भी भगवान् रामकी या रामायणके सातों काण्डोंकी कथा अलग-अलग सात बहुत बड़े-बड़े अध्यायोंमें कही गयी है। इसके अतिरिक्त इसमें सदाचार—सज्जनोंके आचार-व्यवहारपर भी, जिसपर यह सारा विश्व टिका रहता है और जिसके नष्ट होते ही यह नष्ट होने लगता है, पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। साथ ही वर्णधर्म, आश्रमधर्म, तीर्थाटन, योगसाधना आदिपर स्थान-स्थानपर आवश्यक निर्देश हैं। भक्तिवर्धक मनोरम हृदयहारी श्लोकोंकी छटा तो देखते ही बनती है। फिर ८वें अध्यायकी यमगीता, ९वें अध्यायका यमाष्टक, ११ (अशुद्ध प्रतिमें १२) वें अध्यायकी मार्कण्डेयकृत विष्णुस्तुति, १९वें अध्यायका सूर्याष्टोत्तरशतनाम[1], २५वें अध्यायका गणपतिस्तोत्र, ४०वें अध्यायका विष्णु-अष्टोत्तरशतनाम तथा अन्य भी कई स्तुतियाँ बड़ी सुन्दर हैं। इसी प्रकार १२वें अध्यायका यम-यमी-संवाद, ६०वें अध्यायका पुरन्दरोपाख्यान और ६४वें अध्यायका पुण्डरीकोपाख्यान आदिकी कथाएँ बड़ी ही मनोरम और शिक्षाप्रद हैं। पुण्डरीकोपाख्यान तो प्रत्येक कल्याणेप्सुके लिये निरन्तर मननकी वस्तु है तथा इसमें ज्ञान-विज्ञान-भक्ति-सहित कर्तव्यतानिर्णयपर बड़ा ही सुन्दर प्रकाश डाला गया है। अन्यान्य पुराणोंकी तरह इसमें भौगोलिक वर्णन, काश्यपीय प्रजासर्ग तथा सूर्य-चन्द्रादिसे उत्पन्न राजवंशोंका वर्णन भी सुन्दर है। इसके अतिरिक्त सामान्यनीति, व्यावहारिकनीति, राजनीति, धर्मनीति आदिपर भी इसमें न्यूनाधिक सामग्री प्राप्त है।

भारतके द्वादशारण्य परम प्रसिद्ध हैं। नरसिंहपुराणके प्रारम्भमें ही १।३-७ श्लोकोंमें इन द्वादश अरण्योंकी गणना इस प्रकार की गयी है—१-नैमिषारण्य, २-अर्बुदारण्य (आबूपर्वत), ३-विन्ध्यारण्य, ४-दण्डकारण्य, ५-महेन्द्रारण्य, ६-श्रीशैल (तिरुमलै), ७-कुरुजाङ्गल (पूर्वी पंजाबके अन्तर्गत कुरुक्षेत्र-करनाल), ८-हिमारण्य (हिमालय), ९-पम्पारण्य (हाम्पी), १०-धर्मारण्य (सिद्धपुर-गुजरात), ११-कौमारारण्य और १२-पुष्करारण्य (राजस्थान)। द्वादशारण्यके ही समान इस ग्रन्थमें पञ्चसरोवर तथा अनेकानेक ऋषि-आश्रमोंका भी वर्णन हुआ है। ग्रन्थके अन्तमें ६५वें अध्यायमें अयोध्या, ऋषभ, कुब्जाश्रम, कुरुक्षेत्र तथा गन्धमादन आदि ६८ मुख्य तीर्थोंका भी परिगणन किया गया है।

१-सूर्याष्टोत्तरशतनाम—महाभारत, वनपर्व ३।१५-२७, ब्रह्मपुराण ३३।३३।४५, स्कन्दपुराण, काशी० ४४।१-१३, कुमारिका खं० अ० ३५ तथा हरिवंशादि अनेक अन्य स्थलोंमें भी प्राप्त है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाचारकी महत्ता—नरसिंहपुराणके कश्यपाख्यान तथा अन्य सभी पुराणोंके तीर्थोपोद्घातसे सुस्पष्ट प्रतीत होता है कि विनय, शील तथा सदाचारके बिना तप-तीर्थादि व्यर्थ हैं। कारण, अर्थ-कामपरायण व्यक्ति स्वार्थके लिये पाप तथा हत्या करनेके लिये उतारू हो जाता है, जो जघन्य कृत्य है। इसलिये कश्यपाख्यानमें माता-पिता, गुरु, ईश्वरकी सेवा तथा सदाचारको तप-तीर्थसे भी श्रेष्ठ बतलाया है। अतः सदाचारपर नरसिंहपुराणके ५७से ६२ तकके अध्याय, जो बड़े महत्त्वके हैं, बार-बार मनन करने योग्य हैं।

नृसिंहोपाख्यानकी विशेषता—वास्तवमें सभी श्रेष्ठ आचारोंका भी हेतु तथा परम श्रेष्ठाचार भगवान् श्रीहरिकी उपासना है। इस पुराणमें श्रीहरिकी उपासनापर पूरा प्रकाश डाला गया है। इस पुराणके श्रवणसे भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होते हैं। यद्यपि नृसिंहोपासनापर वेदोंके अतिरिक्त नृसिंहतापिनी उपनिषद् (पूर्व एवं उत्तर), वायुपुराणके माघमाहात्म्यका कुछ अंश, भागवतका सातवाँ स्कन्ध तथा नरसिंहचर्या, नरसिंहकल्प, नरसिंहपारिजात, नृसिंहकवच, नृसिंहभुजङ्गप्रयात, नृसिंहपञ्चरस्तोत्र, नृसिंहपञ्चरत्नमाला, नृसिंहपटल, पद्धति, कवच, खिलभागका लक्ष्मी-नृसिंहसहस्रनामस्तोत्र आदि पञ्चाङ्ग तथा नृसिंहचिन्तामणि, बीजाक्षर मन्त्रादि अनेक स्तोत्र-यन्त्र-तन्त्र प्रसिद्ध हैं तथापि चरित्रात्मक स्वतन्त्र ग्रन्थ होनेसे यह सम्प्रदाय-मन्दिरोंमें विशेष आदरणीय है।

कथा-आख्यान—

नृसिंहावतार-कथा[१]

सत्ययुगकी कथा है—महर्षि कश्यपकी पत्नी दितिके दो पुत्र उत्पन्न हुए—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। जब वराह भगवान्ने हिरण्याक्षका वध कर डाला, तब भाईके वधसे संतप्त हो हिरण्यकशिपु क्रोधसे आगबबूला हो गया। श्रीविष्णुके प्रति द्वेषकी भावनासे उसका चित्त अत्यन्त उद्विग्न रहने लगा। वह प्रतिक्षण यही सोचा करता था कि 'किस प्रकार मैं अपने भाईके वधका बदला चुकाऊँ।' वह श्रीहरिके पराक्रमको समझता था, इसलिये उसने तपस्याद्वारा अमरत्व प्राप्त करनेका विचार किया। फिर तो वह दैत्यों और दानवोंको पृथ्वीपर अत्याचार करनेकी आज्ञा देकर तपस्या करनेके लिये महेन्द्राचलपर चला गया।

इन्द्रादि देवताओंको जब ज्ञात हुआ कि हिरण्यकशिपु तपस्याके लिये चला गया है, तब उन्होंने अच्छा अवसर देखकर दैत्योंपर चढ़ाई कर दी। दैत्यगण अनाथ होनेके कारण भागकर रसातलमें चले गये। देवराज इन्द्रने हिरण्यकशिपुके राजमहलमें प्रवेश किया। उसकी पत्नी कयाधू उस समय गर्भवती थी। इन्द्रके मनमें यह विचार जाग्रत् हुआ कि दैत्योंको निर्बीज कर दिया जाय। अतः वे कयाधूको लेकर अमरावतीकी ओर चल पड़े। कयाधूके हरणकी बात देवर्षि नारदको ज्ञात हो गयी। वे तुरंत वहाँ आ पहुँचे और इन्द्रादि देवोंसे बोले—'इन्द्र! तुम यह क्या कर रहे हो ? क्या तुम्हें नहीं ज्ञात है कि इसके गर्भमें भगवान्का एक महान् भक्त पल रहा है, उसका नाम है परम भागवत भक्तरत्न प्रह्लाद।' नारदजीकी बात सुनकर देवता बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि आज बड़े अनर्थसे बच गये।

तब इन्द्रने कयाधूको छोड़ दिया और वे श्रीहरिका स्मरण करते हुए स्वर्गमें चले गये। देवर्षि नारद कयाधूको अपने आश्रममें ले आये और उसे अभयदान देकर वहीं तबतक रहनेके लिये कहा जबतक हिरण्यकशिपु तपस्यासे न लौटे। नारदजी समय-समयपर गर्भस्थ बालकको लक्ष्य करके कयाधूको तत्त्वज्ञानका उपदेश देते थे। भागवती कथा तथा भगवान्की लीलाओंको सोचती हुई कयाधू प्रसन्न और भाव-विभोर रहने लगी।

महेन्द्राचलपर हिरण्यकशिपुकी उग्र तपस्या चल रही थी। उसके तपोबलके तेजसे क्षीणतेज हुए सभी देवगण ब्रह्माजीके पास पहुँचे और उनसे अपना कष्ट निवेदन किये। ब्रह्माजी उन्हें आश्वस्त कर हंसपर आरूढ़ हो हिरण्यकशिपुके पास आये। उन्होंने मधुर स्वरमें उसे पुकारा—'बेटा हिरण्यकशिपु ! तुम्हारी

१- नृसिंहपूर्वोत्तरतापिनी उपनिषद्, ब्रह्म, विष्णु, श्रीमद्भागवत, अग्नि, कूर्म, गरुड, देवीभागवत, पद्म, ब्रह्माण्ड, मत्स्य, मार्कण्डेय, वायु, हरिवंश तथा नरसिंह आदि पुराणोंमें स्वल्पमतान्तरके साथ भगवानके नृसिंहावतारका वर्णन हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपस्या पूर्ण हो गयी है। ऐसी तपस्या आजतक न किसीने की है और न कोई कर सकेगा। अब तुम वर माँगो।' ऐसा कहकर उन्होंने उसपर कमण्डलुका जल छिड़का। जलके प्रभावसे तत्क्षण ही वह दिव्य रूपसे सम्पन्न हो गया और ब्रह्माजीसे प्रार्थनापूर्वक कहने लगा—'प्रभो ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे अमरताका वर प्रदान करें।' ब्रह्माजीने समझाया कि ऐसा सम्भव नहीं है। इस सृष्टिका यह नियम है कि जो जन्म लेता है, उसे मरना पड़ता है, अतः तुम कोई दूसरा वर माँगो। उसने कहा—'अच्छा, यदि आप अमर होनेका वर नहीं देते हैं तो मैं आपकी बनायी हुई सृष्टिके किसी भी प्राणीसे न मरूँ। बाहर-भीतर, जल-स्थल, अस्त्र-शस्त्र, दिन-रात, पृथ्वी-आकाश तथा देवता, ऋषि-मुनि, सिद्ध-साध्य, गन्धर्व, किन्नर, मनुष्य और दैत्य, राक्षस कोई भी मेरा वध न कर सके।' यह सुनकर ब्रह्माजी कुछ विचार करने लगे, फिर श्रीहरिका स्मरण आते ही 'तथास्तु' कहकर अन्तर्हित हो गये।

अवध्यत्वका वर पाकर प्रसन्न तथा मदोन्मत्त हिरण्यकशिपु अपनी राजधानी हिरण्यपुरीमें लौट आया। उसने देखा कि मेरे तपस्याकालमें देवताओंने मेरी राजधानीको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है और दैत्यगण पातालमें छिपे हुए हैं। उसने पुनः उद्योग करके सबको बुलाया और पूर्ववत् अपने साम्राज्यका विस्तार किया। देवताओंका वह अत्याचार देखकर उसकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। तपोबल तथा वर तो उसे प्राप्त हो ही गया था। फिर क्या था, उसने तीनों लोकोंमें त्राहि-त्राहि मचा दी। उसने इन्द्रादि देवोंको पराजित कर वहाँ अपनी राजधानी बनायी। तब देवर्षि नारदके आश्रममें दिव्य उपदेशसे उपदिष्टा कयाधू उनके साथ राजमहलमें आयी। एक ओर तो हिरण्यकशिपुके अत्याचारोंसे सभी पीड़ित थे और दूसरी ओर उसीकी पत्नी कयाधूके गर्भसे एक परमभागवत दिव्य शिशुने जन्म लिया, जो प्रह्लादके नामसे विख्यात हुआ।

प्रह्लाद भाइयोंमें सबसे छोटे थे। हिरण्यकशिपु उनसे अधिक स्नेह करता था। उसने गुरु शुक्राचार्यके दो पुत्रों—शण्ड तथा अमर्क नामक आचार्योंको बुलाकर प्रह्लादको शिक्षा देनेके लिये उन्हें सौंपा। एक दिन हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको प्रेमपूर्वक गोदमें बैठाकर पूछा—'बेटा ! तुमने गुरुगृहमें क्या शिक्षा पायी है, बताओ तो ?' तब प्रह्लादने भगवान्‌की महिमाका वर्णन करते हुए उनके सर्वशक्तिमान् तथा सर्वत्र व्यापक होनेकी बात कही, जिसे सुनकर हिरण्यकशिपु आगबबूला हो गया। उसने प्रह्लादको गोदसे जमीनपर पटक दिया और सचेत करते हुए कहा कि 'फिर कभी उस वैरीका नाम न लेना, नहीं तो मैं तुम्हें मार डालूँगा।' किंतु हरिभक्तको किस बातका भय। प्रह्लाद न केवल स्वयं नारायण-नाम जपते रहते, अपितु अन्य असुरबालकोंको भी हरिनामका उपदेश देने लगे। हिरण्यकशिपुने प्रह्लादका वैसा चरित्र देखकर उन्हें बहुत फटकारा फिर भी न माननेपर उनके वधके लिये सभी उपाय किये। असुरोंको उन्हें मारनेका आदेश दिया, हाथियोंसे कुचलवाया, विषधर सर्पोंसे डँसवाया, पहाड़की चोटीसे गिराया, विष पिलाया, समुद्रमें डुबवाया आदि-आदि, क्या-क्या न किया, परंतु सब व्यर्थ ही रहा।

यह देखकर हिरण्यकशिपु अत्यन्त व्याकुल हो गया, उसके सभी उपाय निष्फल हो गये। एक दिन उसने प्रह्लादसे कहा—'रे दुष्ट ! बता तो सही, तू किसके बलपर मुझे ज्ञानकी बातें सिखाता है, तेरा वह ईश्वर कहाँ है ? आज देखता हूँ कि वह तेरी रक्षा कैसे करता है ?' ऐसा कहकर उसने राजदरबारके एक खम्भेसे प्रह्लादको कसकर बँधवा दिया और अन्तमें तलवार हाथमें लेकर कहने लगा—'बहुत सुन चुका तेरी बातें कि भगवान् सर्वत्र हैं, सर्वव्यापक हैं, सर्वसमर्थ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं; आज तुझ अधमको मैं मौतके घाट उतारता हूँ। देखूँ तेरा हरि क्या करता है, जिसकी तू प्रतिक्षण रट लगाये रहता है।' इतना कहकर हिरण्यकशिपुने पुनः कहा—'क्या तेरा भगवान् इस खम्भेमें भी है ?' प्रह्लादने निश्चिन्त भावसे कहा—'पिताजी ! वे तो सभी जगह हैं, फिर इस खम्भेमें क्यों नहीं होंगे।' कालके रूपमें हिरण्यकशिपु खड्ग उठाये मारनेके लिये उद्यत है, किंतु भक्त सर्वथा निर्भय है, उसका विश्वास एवं भक्तिका बल ही उसकी रक्षा कर रहा है।

क्रुद्ध हिरण्यकशिपु ज्यों ही तलवार लेकर मारनेको दौड़ा, त्यों ही खम्भेको फाड़कर भयंकर गर्जनाके साथ विकराल रूप धारण किये नृसिंह भगवान् प्रकट हो गये। उस समय ऐसा भयंकर शब्द हुआ, जिससे जान पड़ता था मानो ब्रह्माण्ड फट गया हो। घबराये हुए हिरण्यकशिपुको कुछ भी न दिखायी पड़ा।

कुछ क्षणोंके बाद हिरण्यकशिपुने उस भयंकर रौद्ररूपको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा, तब वह गदा लेकर उनपर प्रहार करनेके लिये दौड़ा। भगवान्‌ने कुछ देर उसके साथ युद्ध-लीला की, फिर बड़े वेगसे उसे पकड़कर अपनी जाँघोंपर सुलाया और अपने सुतीक्ष्ण नखोंसे उसका उदर विदीर्ण कर दिया। श्रीनृसिंहके हाथों हिरण्यकशिपुका उद्धार हुआ। प्रह्लाद तथा अन्य सभी देवताओंने भगवान्‌की स्तुति की। प्रह्लादको वैष्णव-भक्तिका उपदेश देकर तथा असुरराज्यका विध्वंस कर दैवी साम्राज्यकी स्थापना करके सभीके देखते-देखते भगवान् नृसिंह अन्तर्हित हो गये।

एकमात्र कर्तव्य क्या है ?

पुण्डरीक नामके एक बड़े भगवद्भक्त गृहस्थ ब्राह्मण थे। साथ ही वे बड़े धर्मात्मा, सदाचारी, तपस्वी तथा कर्मकाण्डनिपुण थे। वे माता-पिताके सेवक, विषय-भोगोंसे सर्वथा निःस्पृह और बड़े कृपालु थे। एक बार अधिक विरक्तिके कारण वे पवित्र रम्य वन्य तीर्थोंकी यात्राकी अभिलाषासे निकल पड़े। वे केवल कन्द-मूल-शाकादि खाकर गङ्गा, यमुना, गोमती, गण्डक, सरयू, शोण, सरस्वती, प्रयाग, नर्मदा, गया तथा विन्ध्य एवं हिमाचलके पवित्र तीर्थोंमें घूमते हुए शालग्राम-क्षेत्र (आजके हरिहर-क्षेत्र) पहुँचे और वहाँ पहुँचकर प्रभुकी आराधनामें तल्लीन हो गये। वे विरक्त तो थे ही, अतएव इस तुच्छ क्षणभङ्गुर यौवन, रूप, आयुष्य आदिसे सर्वथा उपरत होकर सहज ही भगवद्ध्यानमें लीन हो गये और संसारको सर्वथा भूल गये।

देवर्षि नारदको जब यह समाचार ज्ञात हुआ, तब उन्हें देखनेकी इच्छासे वे भी वहाँ पधारे। पुण्डरीकने बिना पहचाने ही उनकी षोडशोपचारसे पूजा की और फिर उनसे परिचय पूछा। जब नारदजीने उन्हें अपना परिचय तथा वहाँ आनेका कारण बतलाया, तब पुण्डरीक हर्षसे गद्‌गद हो गये। वे बोले—'महामुने ! आज मैं धन्य हो गया। मेरा जन्म सफल हो गया तथा मेरे पितर कृतार्थ हो गये। पर देवर्षे ! मैं एक संदेहमें पड़ा हूँ, उसे आप ही निवृत्त कर सकेंगे। कुछ लोग सत्यकी प्रशंसा करते हैं तो कुछ सदाचारकी। इसी प्रकार कोई सांख्यकी, कोई योगकी तो कोई ज्ञानकी महिमा गाते हैं। कोई क्षमा, दया, ऋजुता आदि गुणोंकी प्रशंसा करता दीख पड़ता है। यों ही कोई दान, कोई वैराग्य, कोई यज्ञ, कोई ध्यान और कोई अन्यान्य कर्मकाण्डके अङ्गोंकी प्रशंसा करता है। ऐसी दशामें मेरा चित्त इस कर्तव्याकर्तव्यके निर्णयमें अत्यन्त विमोहको प्राप्त हो रहा है कि वस्तुतः अनुष्ठेय क्या है ?'

इसपर नारदजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—पुण्डरीक ! वस्तुतः शास्त्रों तथा कर्म-धर्मके बाहुल्यके कारण ही विश्वका वैचित्र्य और वैलक्षण्य है। देश, काल, रुचि, वर्ण, आश्रम तथा प्राणिविशेषके भेदसे ऋषियोंने विभिन्न धर्मोंका विधान किया है। साधारण मनुष्यकी दृष्टि अनागत,

अतीत, विप्रकृष्ट, व्यवहित तथा अलक्षित वस्तुओंतक नहीं पहुँचती। अतः मोह दुर्वार है। इस प्रकारका संशय, जैसा तुम कह रहे हो, एक बार मुझे भी हुआ था। जब मैंने उसे ब्रह्माजीसे कहा, तब उन्होंने उसका बड़ा सुन्दर निर्णय दिया था। मैं उसे तुम्हें ज्यों-का-त्यों सुना देता हूँ। ब्रह्माजीने मुझसे कहा था—'नारायण ही परब्रह्म हैं, नारायण ही परम तत्त्व हैं, नारायण ही परमज्योति और नारायण ही परम आत्मा हैं। मुने ! वे भगवान् नारायण परसे भी पर हैं। उनसे बढ़कर या उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारायणः परं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परम्।
नारायणः परं ज्योतिरात्मा नारायणः परः॥
परादपि परश्चासौ तस्मान्नातिपरं मुने।

(नरसिंहपुराण ६४। ६३-६४)

'इस संसारमें जो कुछ भी देखा-सुना जाता है, उसके बाहर-भीतर सर्वत्र, नारायण ही व्याप्त हैं। जो नित्य-निरन्तर, सदा-सर्वदा, भगवान्‌का अनन्य भावसे ध्यान करता है, उसे यज्ञ, तप अथवा तीर्थयात्राकी क्या आवश्यकता है। बस, नारायण ही सर्वोत्तम ज्ञान, योग, सांख्य तथा धर्म हैं। जिस प्रकार कई बड़ी-बड़ी सड़कें किसी एक विशाल नगरमें प्रविष्ट होती हैं, अथवा कई बड़ी-बड़ी नदियाँ समुद्रमें प्रवेश कर जाती हैं, उसी प्रकार सभी मार्गोंका पर्यवसान उन परमेश्वरमें होता है। मुनियोंने यथारुचि, यथामति उनके भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंकी व्याख्या की है। कुछ शास्त्र तथा ऋषिगण उन्हें विज्ञानमात्र बतलाते हैं, कुछ परब्रह्म परमात्मा कहते हैं, कोई उन्हें महाबली अनन्त कालके नामसे पुकारता है, कोई सनातन जीव कहता है, कोई क्षेत्रज्ञ कहता है तो कोई षड्विंशक तत्त्वरूप बतलाता है, कोई अङ्गुष्ठमात्र कहता है तो कोई पद्मरजकी उपमा देता है। नारद ! यदि शास्त्र एक ही होता तो ज्ञान भी निःसंशय तथा अनाविद्ध होता, किंतु शास्त्र बहुतसे हैं, अतएव विशुद्ध संशयरहित ज्ञान तो सर्वथा दुर्घट ही है। फिर भी जिन मेधावी महानुभावोंने दीर्घ अध्यवसायपूर्वक सभी शास्त्रोंका पठन, मनन तथा समन्वयात्मक ढंगसे विचार किया है, वे सदा इसी निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि सदा-सर्वत्र, नित्य-निरन्तर, सर्वात्मना एकमात्र नारायणका ही ध्यान करना सर्वोपरि परमोत्तम कर्तव्य है।

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः॥
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा।

(६४। ७८, ७९)

वेद, रामायण, महाभारत तथा सभी पुराणोंके आदि, मध्य एवं अन्तमें एकमात्र उन्हीं प्रभुका यशोगान है—

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदौ मध्ये तथा चान्ते हरिः सर्वत्र गीयते॥

'अतएव शीघ्र कल्याणकी इच्छा रखनेवालेको व्यामोहक जगज्जालसे सर्वथा बचकर सर्वदा निरालस्य होकर प्रयत्नपूर्वक अनन्यभावसे उन परमात्मा नारायणका ही ध्यान करना चाहिये।'

पुण्डरीक ! इस प्रकार ब्रह्माजीने जब मेरा संशय दूर कर दिया, तब मैं सर्वथा नारायणपरायण हो गया। वास्तवमें भगवान् वासुदेवका माहात्म्य अनन्त है। कोई नृशंस, दुरात्मा, पापी ही क्यों न हो, भगवान् नारायणका आश्रय लेनेसे वह भी मुक्त हो जाता है। यदि हजारों जन्मोंके साधनसे भी 'मैं देवाधिदेव वासुदेवका दास हूँ'—ऐसी निश्चित बुद्धि उत्पन्न हो गयी तो उसका काम बन गया और उसे विष्णुसालोक्यकी प्राप्ति हो जाती है—

जन्मान्तरसहस्रेषु यस्य स्याद् बुद्धिरीदृशी।
दासोऽहं वासुदेवस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः॥
प्रयाति विष्णुसालोक्यं पुरुषो नात्र संशयः।

(६४। ९५, ९६)

'भगवान् विष्णुकी आराधनासे अम्बरीष, प्रह्लाद ,राजर्षि भरत, ध्रुव, मित्रासन तथा अन्य अगणित ब्रह्मर्षि, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी तथा वैष्णव-गण परम सिद्धिको

प्राप्त हुए हैं। अतः तुम भी निःसंशय होकर उनकी ही आराधना करो।'

इतना कहकर देवर्षि अन्तर्धान हो गये और भक्त पुण्डरीक हृत्पुण्डरीकके मध्यमें गोविन्दको प्रतिष्ठित कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवद्ध्यानमें परायण हो गये। उनके सारे कल्मष समाप्त हो गये और उन्हें तत्काल ही वैष्णवी सिद्धि प्राप्त हो गयी। उनके सामने सिंह-व्याघ्रादि हिंस्र जन्तुओंकी भी क्रूरता नष्ट हो गयी। पुण्डरीककी दृढ़ भक्ति-निष्ठाको देखकर पुण्डरीकनेत्र श्रीनिवास भगवान् शीघ्र ही द्रवीभूत हुए और उनके सामने प्रकट हो गये। उन्होंने पुण्डरीकसे वर माँगनेका दृढ़ आग्रह किया।

पुण्डरीकने प्रभुसे गद्गद स्वरसे यही माँगा कि 'नाथ! जिससे मेरा कल्याण हो, आप मुझे वही दें। मुझ बुद्धिहीनमें इतनी योग्यता कहाँ जो आत्महितका निर्णय कर सकूँ।'

भगवान् उनके इस उत्तरसे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने पुण्डरीकको अपना पार्षद बना लिया। (नरसिंहपुराण, अध्याय ६४)

कल्किपुराण

यह एक उपपुराण है। इसमें कुल पैंतीस अध्याय हैं, जो तीन अंशोंमें विभक्त हैं। प्रथम तथा द्वितीय अंशमें सात-सात अध्याय हैं और तृतीय अंशमें इक्कीस अध्याय हैं। इस पुराणमें मुख्यतः भगवान् विष्णुके 'कल्कि' नामसे दशम अवतारकी कथा है, जो भूतकालमें वर्णित है। भगवान् कल्किके नामसे ही इस पुराणका नाम 'कल्किपुराण' हुआ। 'सम्भल' (मुरादाबादके निकट) ग्राममें विष्णुयशा तथा देवी सुमति ब्राह्मण-दम्पतिके घरमें वैशाख मासकी शुक्ला द्वादशीको सायंकाल भगवान् कल्किका आविर्भाव हुआ। इन्होंने दिग्विजयकर बौद्धों तथा म्लेच्छोंको पराजित किया, कलि—अधर्मका विनाश किया, सद्धर्म और सत्ययुगकी स्थापना की तथा मरु और देवापि नामक सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी राजाओंको प्रतिष्ठित कर स्वयं पृथ्वीका परित्याग कर सपरिकर वैकुण्ठधामको प्रस्थान किया। इसी मुख्य कथाका कल्किपुराणमें विस्तारपूर्वक वर्णन है। यद्यपि यह कथा अन्य पुराणोंमें भी सूक्ष्मरूपसे स्वल्प मतान्तरसे प्राप्त होती है, किंतु कल्किपुराणका वर्णन सर्वथा सुस्पष्ट तथा अत्यन्त विचित्र है। इस पुराणकी शैली मनोरम तथा हृदयाकर्षक है। तीसरे अंशके चौंतीसवें अध्यायमें ऋषियोंद्वारा किया गया गङ्गास्तव अत्यन्त सुन्दर है। पद्मा (लक्ष्मी) तथा कल्कि (विष्णु) का जो परस्पर अनुराग-वर्णन तोतेद्वारा किया गया है वह अत्यन्त रमणीय है (अध्याय ४-९)।

इसमें कलिके विषयमें बताया गया है कि 'भगवान् श्रीकृष्णके स्वधामगमन तथा पाण्डवोंके हिमालयारोहणके साथ ही कलिका आविर्भाव हुआ तथा पृथ्वीपर कलि (युग) की प्रवृत्ति हो गयी। द्वापरके अन्त-समयमें जब राजा परीक्षित् प्रथम राजा थे, उसी समयसे कलिने अपना प्रभाव दिखाना प्रारम्भ कर दिया। कलि प्रजापति ब्रह्माके पृष्ठदेश (पीठ)से उत्पन्न हुआ। इसीका नाम अधर्म पड़ा। अधर्मकी प्रियाका नाम मिथ्या था, जिसका दम्भ नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। दम्भका विवाह उसकी बहन मायासे हुआ। उनसे लोभ नामक पुत्र तथा निकृति नामकी पुत्री हुई। लोभने भी अपनी बहनसे विवाह किया और क्रोध नामक पुत्र तथा हिंसा नामक पुत्री उत्पन्न की। जिनसे कलि नामक पुत्र तथा दुरुक्ति नामक पुत्रीका जन्म हुआ। कलिने भी परम्परानुसार अपनी बहनसे विवाह कर भय नामक पुत्र और मृत्यु नामकी पुत्री उत्पन्न की। इन दोनोंसे यातना नामकी कन्या तथा निरय (नरक-पाप) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यातना और निरयके अनेक संततियाँ हुईं। इस प्रकार कलिकी यह धर्मनिन्दक अधर्म-परम्परा है, जिनसे लोगोंमें पापाचरणकी प्रवृत्ति हुई।' इसी पाप, अधर्म तथा कलिके विनाशके लिये भगवान् कल्किने अवतार धारण किया। राजा कल्किके राज्यकालका समय ही कलियुग है[१]। कल्किपुराणमें इस विषयको अच्छी तरह समझाया गया है।

१-पुराणोंमें सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि—ये चार युग बताये गये हैं। जो क्रमशः आते-जाते रहते हैं। ७१ बार जब ये चारों युग आवर्तित हो जाते हैं, तब एक मनुका समय या मन्वन्तर होता है। ऐसे ही जब १४ मन्वन्तर व्यतीत हो जाते हैं, तब एक कल्पका मान होता है, जो ब्रह्माजीके एक दिनके बराबर होता है। ब्रह्माजीकी परमायु सौ वर्ष है, जिसके अबतक ५० वर्ष व्यतीत हो गये हैं। ५१ वाँ वर्ष चल रहा है। वर्तमानमें श्वेतवाराहकल्पके सप्तम वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है, जिसमें ७१ चतुर्युगीमें अट्ठाईसवाँ चतुर्युग है। जिसके सत्य, त्रेता तथा द्वापर बीत चुके हैं और अट्ठाईसवाँ कलियुग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य पुराणोंकी तरह इसमें विवेचित विषय स्वल्प हैं। पुराणके पञ्चलक्षणोंका स्वल्प ही संकेत मिलता है। मरु तथा देवापि राजाओंने भगवान् कल्किको अपने परिचयके प्रसंगमें सूर्यवंश तथा चन्द्रवंशका संक्षिप्त वर्णन किया है। इसमें उपदेशात्मक भाग थोड़ा है। केवल पद्माके स्वयंवरके समय कल्किद्वारा सभी राजाओंको उपदेश तथा नारदजीद्वारा कल्किको उपदेश—ये दो स्थल मुख्य हैं। तथापि बीच-बीचमें वैष्णव-भक्ति तथा रीति-नीतिकी कुछ बातें कही गयी हैं। यह पुराण वैष्णवपुराणकी कोटिमें आता है। कल्कि स्वयं विष्णुके अवतार हैं और इन्हींकी कथा इसमें बतलायी गयी है। इसमें कल्किद्वारा सम्भलमें अड़सठ तीर्थ बनाने तथा मथुरा-अयोध्या आदि तीर्थोंका भी स्वल्प वर्णन है।

यद्यपि यह पुराण लघुकाय है तथापि भविष्यकालीन घटनाओंका (भूतकालमें) वर्णन होनेके कारण ऐतिहासिक दृष्टिसे इस पुराणका अत्यधिक महत्त्व है। इसमें वर्णित कल्किकी दिग्विजय-यात्रा, विशाखयूप, मरु तथा देवापि राजाओंके नाम, सम्भल तथा कलापग्राम और महेन्द्रगिरि, भल्लाट एवं कीकट देश आदि विषय विद्वानोंके लिये सर्वथा शोधकी अपेक्षा रखते हैं।

कथा-आख्यान—

कल्कि-अवतारकी कथा

भगवान् विष्णुके दस तथा चौबीस अवतारोंमें भगवान् कल्किके अवतारकी गणना दसवें तथा बाईसवें स्थानपर है। कल्कि-उपपुराणमें भगवान् कल्किका चरित्र अत्यन्त विस्तारके साथ दिया गया है, जो अन्य पुराणोंके वर्णनोंसे अधिक वैशिष्ट्य रखता है। उसका संक्षिप्त सारांश इस प्रकार है[1]—

कलिकालके अन्तमें जब घोर पापाचार एवं अनाचार फैल गया तथा वर्णाश्रम-धर्म नष्ट हो गया, सर्वत्र अधर्मका प्रभाव व्याप्त हो गया, धर्मकी मर्यादा सर्वथा विलुप्त हो गयी, यज्ञ-दान-तप-स्वाध्याय आदि सत्कर्मोंका लोप हो गया, तब देवता दुःखी होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजी इनके साथ भगवान् नारायणके पास पहुँचे और उन्हें भूमण्डलकी दुर्दशा बतलायी। तब भगवान् विष्णुने सम्भलग्राममें अवतार ग्रहण कर कलि—अधर्मका विनाश तथा सत्ययुगकी स्थापनाका वचन देकर उन्हें आश्वस्त किया। ब्रह्मादि देवगण अपने-अपने स्थानको चले गये।

कालान्तरमें भगवान् विष्णुने विष्णुयशा ब्राह्मणकी धर्मपत्नी सुमतिके गर्भसे वैशाख मासकी शुक्ला द्वादशीके दिन सम्भलग्राममें अवतार धारण किया (कल्किपु० १।२।५)। प्रकट होते समय ये चतुर्भुज-रूपमें थे, किंतु ब्रह्माकी प्रार्थनासे इन्होंने मानुषी द्विभुज-रूप धारण किया। उस समय सर्वत्र शुभ शकुन हो रहे थे और चराचरमें प्रसन्नता छा गयी थी। कल्क (पापपुञ्ज)के विनाशके लिये अवतीर्ण होनेके कारण ऋषियोंने बालकका 'कल्कि' नाम रखा—

कल्किं कल्कविनाशार्थमाविर्भूतं विदुर्बुधाः ॥
नामाकुर्वंस्ततस्तस्य कल्किरित्यभिविश्रुतम्।

(कल्किपु० १।२।२८-२९)

समयानुकूल कल्कि यज्ञोपवीत, वेदपूजन, यज्ञसूत्र-धारण आदि दशविध संस्कारसम्पन्न होकर गुरुकुलमें अध्ययनके लिये महेन्द्राचलपर परशुरामजीके पास गये। वहाँ उन्होंने उनसे साङ्ग वेद, समस्त धनुर्वेद, अठारह विद्याओं और चौंसठ कलाओंका अध्ययन किया। वहीं परशुरामजीने उन्हें यह भी बता दिया था कि 'तुम विष्णुके

चल रहा है। कलियुगका समय ४ लाख ३२ हजार वर्षका है, जिसके अभीतक ५०८९ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। कलियुगके चार चरण हैं, जिनमें अभी प्रथम चरण है, तीन चरणोंका समय शेष है। भगवान् कल्कि कलियुगके अन्तमें, जब अधार्मिक राजा कलिका चरमोत्कर्ष रहता है, तब अवतार लेते हैं। वे पुनः सत्ययुगकी स्थापना करते हैं।

१. यहाँ यह ध्यान देनेयोग्य बात है कि अन्य पुराणोंमें जहाँ भी कल्कि-अवतारकी चर्चा हुई है, वहाँ प्रायः सर्वत्र भविष्यत्कालीन क्रियाका प्रयोग है। परंतु कल्किपुराणके वर्णनोंमें सर्वत्र भूतकालकी क्रियाका प्रयोग हुआ है, जिससे यह भी सम्भावना होती है कि यह वर्णन किसी विगतकल्पके कलियुगका है; क्योंकि वर्तमान सप्तम वैवस्वत मन्वन्तरके २८ सत्ययुग, २८ त्रेता, २८ द्वापर तथा २७ कलियुग व्यतीत हो चुके हैं तथा इस समय २८वाँ कलियुग चल रहा है। इससे यह स्पष्ट है कि इस कलियुगके अन्तमें भी भगवान् कल्कि-अवतार धारण करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंशसे अवतीर्ण हुए हो और तुम्हें बौद्धों तथा म्लेच्छोंके साथ-साथ कलियुगका निग्रह करना है, इसलिये मैंने तुम्हें विशेषरूपसे धनुर्वेदकी शिक्षा दी है।'

शिक्षा प्राप्त कर कल्किने बिल्वोदकेश्वर भगवान् शंकरकी आराधना की। भगवान् शिवने पार्वतीके साथ प्रकट होकर इन्हें एक अश्वरत्न, एक रत्नखचित तलवार तथा एक शुक प्रदान किया तथा दिग्विजय कर धर्मकी स्थापना करनेका आशीर्वाद और अनेक वर प्रदान किये (कल्किपु० १।३।२५-२७)। (बादमें इसी कामगामी अश्वपर आरूढ़ होकर तलवारद्वारा म्लेच्छों तथा कलिका संहार किया था।) विद्या एवं इन सभी उपकरणोंको प्राप्त कर वे गुरुगृहसे सम्भलमें माता-पिताके पास लौट आये और सम्पूर्ण वृत्तान्त उन्हें बतलाया। उसी समय माहिष्मती-नरेश परमवैष्णव विशाखयूप स्वजनोंसहित उनके दर्शनोंके लिये वहाँ आये। कल्किने कलियुगका माहात्म्य, सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति तथा विस्तार और ब्राह्मणोंके महत्त्वको बतलाया। तदनन्तर राजा विशाखयूप लौट गये।

सिंहल द्वीपके राजा बृहद्रथके यहाँ अद्वितीय रूप-गुणोंसे सम्पन्न पद्मा (जो लक्ष्मीकी अवतार थीं) के स्वयंवरका आयोजन हो रहा था। शंकरद्वारा कल्किको प्राप्त शिवदत्त नामक शुकने कल्किके पौरुष तथा पराक्रमको पद्मासे और पद्माकी रूप-कान्तिको कल्किसे कहा एवं दोनोंके परस्पर अनुरागको भी बतलाया। दोनोंने एक-दूसरे-को प्राप्त करनेका मानसिक संकल्प कर लिया।

पद्मा कल्किके गुणोंको सुनकर मुग्ध हो गयी और रात-दिन उन्हींका चिन्तन करने लगी। उसके पिता बृहद्रथ तथा माता कौमुदी उसकी स्थिति देखकर चिन्तित हो गये। उन्होंने पद्माके विवाहके लिये स्वयंवर रचाया। तदनन्तर कल्कि उस स्वयंवर-महोत्सवमें गये। कल्किके साथ पद्माका विवाह सम्पन्न हुआ। पद्मावतीको लेकर कल्कि वापस सम्भल आ गये। कुछ समय बाद इनके जय-विजय नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए (कल्किपु० २।६।३५)।

कल्किके पिता विष्णुयशा अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्तिके थे। उन्होंने अनेक यज्ञ-यागादि किये। एक बार जब विष्णुयशाने अश्वमेध-यज्ञके अनुष्ठानकी बात सोची तब उन्होंने यज्ञीय अश्वको भगवान् कल्किके संरक्षणमें समस्त भूमण्डलमें भ्रमण करने और दिग्विजयके लिये भेजा। इसी यात्रा-प्रसङ्गमें कल्किने बौद्धों, जैनों तथा म्लेच्छोंका पराभव किया, कलियुगी सेनाका संहार किया तथा कुथोदरी राक्षसी (कुम्भकर्णकी बहन) एवं उसके पुत्र विकुञ्जका उद्धार किया। परिभ्रमण करते हुए भगवान् कल्कि हरिद्वार पहुँचे। वहाँ वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ तथा गालवादि ऋषियोंने भगवान्‌के दर्शन किये और कल्किने भी उन पुण्यात्माओंके दर्शनसे अपनेको धन्य माना। वहीं सूर्यवंशी राजा मरु तथा चन्द्रवंशी देवापिने भी अपने-अपने वंशोंका परिचय देकर भगवान्‌की स्तुति की। भगवान्‌ने भी सत्ययुगकी स्थापना होनेपर उन्हें राजा होनेका वर प्रदान किया। तदनन्तर उन्होंने खस, काम्बोज, पुलिन्द, निषाद तथा शबर प्रभृति देशोंपर आधिपत्य स्थापित कर कलिको परास्त किया। उस समय अश्वारूढ़ तथा हाथमें तलवार लिये भगवान् कल्किके साथ विशाखयूप, मरु तथा देवापि आदि राजाओंकी सेना भी थी।

तदनन्तर वे भल्लाट नगरमें आये, जहाँका राजा शशिध्वज परम वैष्णव तथा योगियोंमें अग्रगण्य था। उसकी पत्नी सुशान्ता भी पतिका अनुगमन करनेवाली थी। पत्नीके द्वारा युद्धसे मना किये जानेपर भी शशिध्वजने भगवान्‌के साथ युद्ध करना मोक्षप्रद बताया। वह हरिस्मरण करते हुए युद्ध करने लगा। युद्धमें शशिध्वज मूर्च्छित हो गया। भगवान् उसे लेकर सुशान्ताके पास उसकी भक्ति देखने पहुँचे। सुशान्ताने प्रभुको प्रणाम किया और उनका यथोचित स्वागत किया। प्रभु-कृपासे राजा शशिध्वजकी चेतना लौट आयी। उन दोनोंने प्रसन्न होकर अपनी परम सुन्दरी रमा नामकी कन्या प्रभुको समर्पित कर दी। अन्तमें उन्हें सद्गति प्राप्त हुई। इस प्रकार सर्वत्र कलिधर्मका विनाश कर भगवान् कल्कि रमाको साथ लेकर सम्भल लौट आये।

कल्किके दिग्विजयसे लौटनेपर पिता-माता अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अश्वमेध-यज्ञ सम्पन्न किया। सर्वत्र हर्षोल्लास मनाया गया। पिता विष्णुयशाकी आज्ञा पाकर कल्किने भी वाजपेय, अश्वमेध तथा राजसूयादि अनेक यागोंका अनुष्ठान किया, जिनमें कृपाचार्य, परशुराम, वसिष्ठ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धौम्य तथा व्यासादि महर्षि उपस्थित थे (कल्किपु० ३।१६।५—८)। उसी प्रसङ्गमें देवर्षि नारदने जो भक्तिज्ञानका उपदेश किया, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। नारदजीने विष्णुयशाको नारायण-मन्त्रकी दीक्षा दी, जिसे प्राप्त-कर वे बदरिकाश्रममें तपस्याके लिये चले गये और वहीं उन्हें परमपद प्राप्त हुआ। परमसाध्वी महारानी सुमति भी उनके साथ सती हो गयीं (कल्किपु० ३।१६।४२-४४)।

मुनियोंसे पिता-माताका समाचार प्राप्त कर कल्किने उनका अन्त्येष्टि-संस्कार किया। पुनः वे पद्मा तथा रमाके साथ धर्मपूर्वक राज्य-कार्य करने लगे। तीर्थाटन करते हुए परशुरामजी सम्भलमें आये। भगवान्‌ने उनका आतिथ्य किया। उन्होंने रमाको पुत्र-प्राप्ति करानेवाला 'रुक्मिणी-व्रत' बतलाया, जिसके अनुष्ठानसे उन्हें भी मेघवाह तथा बलाहक नामक दो पुत्र प्राप्त हुए। भगवान्‌के लीला-विलास तथा कान्ति-शोभाके दर्शनकी इच्छासे देवलोकसे ब्रह्मादि देवगण, ऋषि-महर्षि, गन्धर्वादि सम्भलमें आये और उन्होंने स्तुति करते हुए कहा—'देव ! आपके अवतरणका कार्य पूर्ण हो चुका है, कलिका विनाश हो गया है, सद्धर्मकी स्थापना हो गयी है, अतः अब आप वैकुण्ठको प्रस्थान करें।' भगवान् कल्किने अपने धर्मिष्ठ चारों पुत्रोंको राज्यसंचालनमें अभिषिक्त कर मरु तथा देवापिको भी उनके क्षेत्रमें भावी सत्ययुगके लिये राजपदपर नियुक्त कर स्वयं पृथ्वीका परित्याग कर दिया। पद्मा तथा रमाने भी पतिलोक प्राप्त किया। पृथ्वीपर पुनः सत्ययुग प्रवर्तित हुआ।

एकाम्रपुराण

यह एक उपपुराण या स्थलपुराण माना जाता है। इसमें एकाम्रक-क्षेत्र अर्थात् कलिङ्ग या उड़ीसाकी वर्तमान राजधानी भुवनेश्वरका विशेषरूपसे वर्णन हुआ है। एकाम्रपुराणके अनुसार इसका नाम त्रिभुवनेश्वर है, जो शिवका पर्याय है। इसमें सम्पूर्ण भारतके तीर्थों—विशेषतया उड़ीसाके पवित्र स्थलोंका सुन्दर उल्लेख हुआ है। समूचे ग्रन्थके ५ अंशोंमें ७० अध्याय एवं ६,०००के लगभग श्लोक हैं। इस पुराणमें मुख्य संवाद व्यासदेव एवं ब्रह्माजीका है। वैसे बीच-बीचमें सनत्कुमार, भृगु, शुक्र, असित आदिका भी संवाद प्राप्त होता है। इसके प्रारम्भमें १८ महापुराणों और १८ उपपुराणोंके क्रम दिये हुए हैं।

महापुराणोंके नाम-क्रम इसमें भिन्न हैं। इसमें क्रमसे १-ब्रह्म, २-वैष्णव, ३-पद्म, ४-भागवत, ५-कूर्म, ६-मत्स्य, ७-वराह, ८-नरसिंह, ९-वामन, १०-मार्कण्डेय, ११-अग्नि, १२-वायु, १३-लिङ्ग, १४-शिव, १५-भविष्य, १६-ब्रह्माण्ड, १७-ब्रह्मवैवर्त तथा १८-स्कन्दपुराणका उल्लेख मिलता है। उपपुराणोंमें क्रमशः बृहद् नरसिंह, विष्णुधर्म, गारुड, नारद, बृहन्नारदीय, प्रभास, लीलावती, देवी, कालिका, आखेटक, नन्दी एवं बृहन्नन्दी, एकाम्र, एकपाद, लघुभागवत, मृत्युञ्जय, आंगिरस और साम्बपुराण परिगणित हैं। (एकाम्रपु० अ० १।१७—२४)

एकाम्रपुराण बहुत कुछ अंशोंमें कपिलपुराण, कपिलसंहिता, स्वर्णाद्रिमहोदय तथा एकाम्रचन्द्रिकासे मिलता-जुलता है। यह स्वयंको उपपुराण न मानकर महापुराण-रूपमें ही अपना परिचय देता है। सम्पूर्ण पुराणके अवलोकनसे यह शैव-पुराण सिद्ध होता है। इस पुराणमें भुवनेश्वरके प्रधान शिव-मन्दिर, लिङ्गराजका विशेष वर्णन है। इस प्रतिमाको 'हरि-हरात्मिका' भी कहा गया है

इस पुराणके प्रारम्भमें धर्मध्वज-व्यासका संवाद और फिर मुनियों तथा सनत्कुमारके संवादमें इस क्षेत्रका माहात्म्य निरूपित हुआ है। एकाम्रपुराणके प्रथम अंशके प्रथम अध्यायके श्लोक ५५के अनुसार सनत्कुमारको साक्षात् भगवान्‌का अवतार माना गया है। प्रथम अंशके द्वितीय अध्यायमें क्षेत्रराज भुवनेश्वरमें करोड़ों लिङ्गके समान तेजोमय लिङ्गराजके प्रादुर्भावकी कथा है, जिनके प्रकट होनेपर ब्रह्मा, आदित्य आदि देवताओं, वसु, मरुद्गण, साध्य, पितृगण, विद्याधर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गन्धर्व तथा अप्सराओंने स्तुति की है। तीसरे-चौथे अध्यायमें ब्रह्मगीता है। इसके पञ्चम अध्यायमें पार्वतीजीके द्वारा प्रश्न किये जानेपर ब्रह्माजीके द्वारा प्रारम्भिक सृष्टि तथा देवाधिदेव भगवान् शिवके श्रीमुखसे चारों वर्णोंके प्राकट्यका विवरण मिलता है। इस पुराणके बादके अध्यायोंमें क्रमशः युगधर्म और भुवनकोषके वर्णनमें सातों द्वीप, सात समुद्र, नौ वर्ष और जम्बूद्वीपके मेरुसहित आठ पर्वतोंका वर्णन है। इसके आठवें अध्यायमें भारतवर्षकी सभी नदियों, वनों, आश्रमों, पुरियों एवं पर्वतादिका वर्णन है। इसमें भारतवर्षका वर्णन अन्य पुराणोंकी अपेक्षा रम्यतर है। इसके नवम अध्यायमें सात पातालोंका वर्णन तथा दशममें तप, मह, जन आदि सात ऊर्ध्वलोकोंका विस्तृत वर्णन है। साथ ही विष्णुलोक, शिवपुर आदिका भी उल्लेख हुआ है।

एकाम्रपुराणके द्वितीय अंशके प्रथम अध्यायमें एकाम्र वन या एकाम्रक्षेत्र (भुवनेश्वर) का वर्णन हुआ है। यह वन पहले देव-दुर्लभ, पुष्प, वृक्ष, लता आदिसे संकीर्ण था। इसके बीचमें एक ऐसा आम्रका वृक्ष था, जिसके मूलमें स्फटिक, मध्यमें वैदूर्य, ऊपरी भागमें पद्मरागमणि और वृक्षके ऊपरी चोटीवाले भागमें अग्निके समान प्रज्वलित अत्यन्त तेजोमय शिवलिङ्ग उद्भासित हो रहा था। उसके चारों ओर एक करोड़ शिवलिङ्ग पृथ्वीपर सुशोभित हो रहे थे, जिनमें आठों दिशाओंमें आठ दिव्य लिङ्ग विशेषरूपसे प्रकाशित थे। वहीं सब देवता भी आकर प्रकट हुए। कुछ देरके बाद भगवान्‌का वह विग्रह अपने परिकरोंके साथ अन्तर्धान हो गया और कालान्तरमें वही लिङ्गराजके नामसे उद्भूत हुआ। अतः इस एकाम्र वनके दर्शनका फल राजसूय एवं अश्वमेध आदि यज्ञोंसे भी अधिक कहा गया है। इस एकाम्र वनके पास पुण्यरेखा, सुगन्धा और गन्धवती नदियाँ बहती हैं

यहाँ सोलह दिनतक भीषण तपस्या करके ब्रह्माजीने भगवान् शंकरका दर्शन प्राप्त किया था। उस समय भगवान् शंकरका विग्रह कुन्द, इन्दु, शङ्ख और क्षीर-वर्णसे शुद्ध स्फटिकके समान उद्भासित हो रहा था। वे पिनाक धनुष, त्रिशूल, डमरु, परशु धारण किये हुए अभय एवं वरमुद्रासे सुशोभित थे। उनके ललाटपर बाल (द्वितीयाके) चन्द्रमा, मस्तकपर त्रिपथगा गङ्गा तथा पैरोंके पास स्वस्तिक और जयन्त नामक नाग और यज्ञोपवीतके स्थानपर वासुकि नाग स्थित थे। ब्रह्माजीने प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शंकरकी दिव्य स्तुति की। तब भगवान् शंकरने उन्हें सृष्टि-कर्तृत्वका वरदान दिया।

इसके पश्चात् उनके दर्शनके लिये सप्तर्षिगण, दक्ष, नारद, इन्द्र आदि देवता, सनत्कुमार, सभी ग्रह एवं विद्याधर आदि उपस्थित हुए और भगवान् शंकरने मधुर वाणीसे सबको उपदेश देते हुए एकाम्रक्षेत्र और लिङ्गराज-विग्रहकी महिमा बतलायी। भगवान् सूर्यने भी आकर शिवसे वहाँ रहनेकी प्रार्थना की और उनके आज्ञानुसार स्वयं भास्करेश्वरके रूपमें वहीं संनिकट ही स्थित हुए। बादमें धर्मराज भी आकर एकाम्रमें स्थित हुए। ब्रह्माका स्थान ब्रह्मकुण्ड भी यहीं है। इन स्थानोंपर अनेक उत्सवोंका आयोजन निर्दिष्ट तिथियोंको सम्पादित किया जाता है।

एकाम्रपुराणका १८वाँ अध्याय अपेक्षाकृत बड़ा है। इसमें १५२ श्लोक हैं। इस अध्यायमें भगवान् कृष्णके द्वारा साठसे लेकर चौरासीतकके श्लोकोंमें कई प्रकारके सुन्दर छन्दोंमें विशेषरूपसे वसन्ततिलका-छन्दमें भगवान् सदाशिवकी स्तुति की गयी है और उन्होंने भी सदाशिवकी आज्ञासे वहाँ निवास किया। इसीसे इसे हरि-हरात्मक-क्षेत्र भी कहा गया है। विन्दुसरोवरके ऊपरी भागमें मणिकर्णिका-घाटपर यह मन्दिर है।

एकाम्रपुराणके बीसवें अध्यायमें विन्दुसरोवरकी उत्पत्तिकी कथा है। एकाम्रपुराण और कपिलपुराणके अनुसार एक बार भगवान् सदाशिवके नेत्रोंसे एकाम्रवनमें आनन्दाश्रु-जल प्रवाहित हुआ, जिसमें स्वतः सभी नदियों तथा पुष्करादि सभी सरोवरोंके जल आ गये। वह जल सूर्यके समान उद्भासित—प्रकाशित होने लगा। उसमें स्नान करनेका फल अनन्त है। काशी, हरिद्वार, गङ्गासागरमें युगों-युगोंतक तपस्या करनेका फल विन्दुसरोवरमें स्नान तथा दर्शनमात्रसे ही प्राप्त हो जाता है। यह विन्दुसरोवर भुवनेश्वरके मुख्य बाजारके पास राजमार्गके बगलमें स्थित है। इस सरोवरके बीचमें भी एक मन्दिर है। जहाँ वैशाखमासमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वन्दन-यात्राका उत्सव होता है। इस सरोवरकी महिमा एकाम्रपुराणमें अध्याय २०से लेकर अध्याय २५तक विशेषरूपसे वर्णित है।

बादके पाँच अध्यायोंमें देवासुर-संग्रामका वर्णन है, जिसमें इन्द्रने असुरोंसे पराजित होकर शिवकी शरण ग्रहण की और एकाम्रक्षेत्रमें उनकी स्तुति की। शिवके प्रसादसे असुर हिरण्याक्ष विष्णुके द्वारा मारा गया और फिर भगवान् विष्णुने नरसिंह रूप धारण करके हिरण्यकशिपुका भी वध किया। एकाम्रक्षेत्रमें पूर्वकथित भास्करेश्वर-मन्दिरके पास ही मेघेश्वर-मन्दिर है। यह मन्दिर अत्यन्त कलापूर्ण है। इसकी कथा एकाम्रपुराणके ३८वें अध्यायमें बड़े विस्तारके साथ आयी है। संक्षेपमें यह इस प्रकार है—

एक बार अंजन,[1] संवर्तक आदि आठों मेघ इन्द्रके पास जाकर हाथ जोड़कर कहने लगे कि 'हमलोगोंकी एकाम्रक्षेत्रमें जाकर सदाशिवकी पूजा करनेकी इच्छा है। वहाँ हम विन्दुसरोवरमें स्नान करेंगे, जिससे अक्षय फलकी प्राप्ति होगी। वहाँ हम एक विशाल शिवालयका भी निर्माण करेंगे।' इन्द्रने उन्हें आज्ञा दे दी और उन्होंने विश्वकर्मासहित वहाँ पहुँचकर पूजा-स्तुतिसे शिवको अत्यन्त प्रसन्न कर लिया। शिवने मेघोंसे वर माँगनेके लिये कहा। मेघोंने उनसे अपने द्वारा बनवाये गये विशाल मन्दिरमें निवास करनेका वरदान माँगा। शिवने कहा—'मैं अब मेघेश्वर नामसे इस मन्दिरमें निवास करूँगा।' इसकी महिमा इस पुराणमें कई स्थानोंपर मिलती है। यह अत्यन्त सुन्दर प्राचीन कलापूर्ण मन्दिर ब्रह्मकुण्डके पास भास्करेश्वर मन्दिरके पार्श्वमें स्थित है।

इसके बाद इसमें कई अध्यायोंमें पापनाशन तीर्थका माहात्म्य है। यहाँ पापहरादेवीका स्थान है। यह लिङ्गराज-मन्दिरके सामनेके प्राङ्गणमें है, जिसकी महिमा अनन्त है। इसी क्रममें आगेके अध्यायोंमें सुपर्ण-आख्यान है, जिसमें गरुडकी उत्पत्ति-कथा है। इसी पुराणके ४७वें अध्यायमें बालखिल्य ऋषियोंके द्वारा एकाम्रमें आकर शिवकी उपासना किये जानेका उल्लेख मिलता है।

एकाम्रपुराणके ५०वें अध्यायमें रामायणकी विस्तृत कथा है। तदनुसार रामने लंका-विजयके बाद अनेक अश्वमेध आदि यज्ञ और पूरे विश्वमें अनेक पुण्य क्षेत्रोंका निर्माण किया था। तीर्थयात्रा करते हुए वे वसिष्ठ आदि ऋषियोंके साथ एकाम्रक्षेत्र पहुँचे और उन्होंने पञ्चामृत-स्नापनपूर्वक गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य अर्पित करके लिङ्गराजकी उपासना की। भगवान् श्रीराम एकाम्रक्षेत्रमें एक वर्षतक शिवपूजा करते रहे। उन्होंने इस स्थानपर एक दिव्य मन्दिरका निर्माण कराया। एकाम्रपुराणमें इसके बाद कई छोटे अध्याय हैं, जिनमें अष्टमूर्ति-अर्चाविधि, एकाम्रेश्वर-माहात्म्य तथा जटेश्वरकी महिमाके साथ चातुर्मास्य-व्रत-विधान एवं रथयात्रा आदि कई यात्राओंका निरूपण है।

कथा-आख्यान—

भगवान् श्रीरामका एकाम्रक्षेत्रीय अश्वमेध-यज्ञ

एक बार भगवान् श्रीरामने अयोध्याकी राजसभामें उपस्थित वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप आदि श्रेष्ठ ऋषियोंसे प्रश्न किया कि 'इस विश्वमें सर्वश्रेष्ठ एवं मोक्षदायक पवित्र तीर्थ कौन है, जिसका दर्शन करनेसे पाप-राशिका क्षय और धर्म प्राप्त होता है।' इसपर वसिष्ठजीने कहा—'एकाम्रक्षेत्र (भुवनेश्वर) सभी स्थानोंमें श्रेष्ठ है, जहाँ भगवान् शिव स्वयं ही लिङ्गरूपमें निवास करते हैं।' यह सुनकर भगवान् राम अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने भाइयों, ऋषियों तथा सीताके साथ चतुरङ्गिणी सेना लेकर एकाम्रक्षेत्रमें गये। वहाँ उन्होंने सीताजीके साथ कृत्तिवासेश्वर लिङ्गराजका विधिवत् दर्शन-पूजन किया। याचकों तथा द्विजोंको दान देकर संतुष्ट किया और एक वर्षतक निवास कर एक दिव्य मन्दिरका निर्माण कराया। इस बीच वे प्रतिदिन पवित्र विन्दुसरमें स्नान करके वेद-वर्णित विधिके द्वारा गौ, द्विज और ऋषियोंका सम्मान करते हुए धर्मपूर्ण-जीवन व्यतीत करते रहे।

एक बार जब भगवान् श्रीराम ऋषियोंके साथ धर्म-

१. एकाम्र तथा अन्य पुराणोंमें आठ मेघ इस प्रकार बतलाये गये हैं— अंजन, दामन, आप्लावन, अभिवर्षण, द्रोण, पर्जन्य, संवर्त और जीमूत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्चामें लीन थे, तभी आकाशवाणी हुई—'हे राजन्! इस पवित्र शिव-स्थानमें तुम अश्वमेध यज्ञ करो, इससे तुम्हारी कीर्ति सदैव संसारमें स्थिर रहेगी।' वसिष्ठ आदि ऋषियोंके अनुमोदनपर श्रीरामने शुभ मुहूर्तमें विद्वान् ऋत्विजोंकी अनुमतिसे एकाम्रक्षेत्रमें अश्वमेध यज्ञका शुभारम्भ किया। मन्त्रद्वारा समस्त लक्षणयुक्त यज्ञीय अश्व दिग्विजयके लिये छोड़ा गया। चतुरङ्गिणी सेनाके साथ श्रीशत्रुघ्नजी उस यज्ञीय अश्वके रक्षक बने। यज्ञ-कार्यमें दीक्षित श्रीरामजीने देवताओं तथा ऋषियोंका आशीर्वाद ग्रहण करते हुए समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त उस अश्वको मन्त्रपाठ करते हुए जानेकी अनुमति प्रदान की।

उस घोड़ेके साथ चलते हुए ससैन्य श्रीशत्रुघ्नजी अनेकों नदी-नद-सरोवर, वन एवं प्रदेशोंको पार करते हुए श्रीशैल नामक स्थानपर जा पहुँचे। जहाँ कज्जलगिरि-सा काला, रामका नित्यद्वेषी दुरात्मा कमठाङ्ग असुर निवास करता था। उसने श्रीरामके यज्ञीय अश्वका हरण करके उसे लताओंसे आच्छादित एक पर्वतकी कन्दरामें छिपा दिया। जब श्रीशत्रुघ्न आदि वीरोंने यज्ञके घोड़ेको नहीं देखा, तब वे बड़े चिन्तित हुए और चारों दिशाओंमें घोड़ेकी खोज करने लगे। रात्रिभर किसी प्रकार चित्रावली नदीके किनारे चिन्तामग्न उन वीरोंको प्रत्येक क्षण कल्पके समान बीता। अश्वकी रक्षा कर पानेमें असमर्थ श्रीशत्रुघ्न आदि वीरोंने अपने मरणको ही उचित समझा। इसी बीच देवर्षि नारद वीणा बजाते हुए वहाँ आ पहुँचे। सारी स्थिति जानकर उन्होंने श्रीशत्रुघ्नसे कहा—'आपके अश्वका अपहरण विकट राक्षसके भ्राता कमठने किया है। उसने उसे श्रीशैलके पास प्लक्ष वनमें छिपा दिया है। उस पापीका वधकर आप अपने अश्वको प्राप्त कर सकेंगे।'

देवर्षि नारदकी बातसे श्रीशत्रुघ्न प्रसन्न होकर कमठ राक्षसका वध करनेके लिये अपनी सेनाके साथ प्राची वेत्रवती नदीके किनारे जा पहुँचे। इधर देवर्षि नारद श्रीशैलपर स्थित असुरराज कमठाङ्गके महलमें पहुँच गये और उसे यह सूचना दी कि यज्ञीय अश्वको मुक्त करानेके लिये रामानुज शत्रुघ्न अपनी विशाल सेनाके साथ आ रहे हैं और उनके द्वारा तुम्हारा वध होगा। तब कमठने कहा—'मुने! राम हों या रामका भाई हो या कोई अन्य हो, मैं युद्धमें सम्मुख इन्द्रसे भी नहीं डरता, सामान्य मनुष्योंकी क्या स्थिति है। मैं अश्वमेधका घोड़ा कभी न दूँगा।' यह कहकर वह भी अपनी सेना सजाकर युद्धके लिये चल पड़ा। दोनों ओरसे भयानक युद्ध छिड़ गया। अनेकों हाथी, घोड़े, रथी, सारथि आदि देवासुर-संग्रामकी तरह उस युद्धमें कट-कटकर गिरने लगे। रक्तकी नदी बह चली। वीरवर श्रीशत्रुघ्नकी बाण-वर्षासे पीड़ित होकर कमठकी सेना भाग चली। कमठके कहनेपर उसके सारथिने रथको शत्रुघ्नके सामने खड़ा किया। उन दोनों योद्धाओंका द्वन्द्व युद्ध देखनेके लिये सम्पूर्ण देवता, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नाग आदि आकाशमें स्थित हो गये। कमठके द्वारा छोड़े गये पिशाचास्त्रको श्रीशत्रुघ्नने गन्धर्वास्त्रसे काट गिराया। इससे सभी दानव भयभीत होकर भाग चले। कमठने अपनी भागती हुई सेनाको लौटाया और तिमिरास्त्रका प्रयोग किया। इससे दसों दिशाओंमें इतना अन्धकार छा गया कि किसीको अपना हाथतक नहीं दिखायी पड़ता था। तत्पश्चात् शत्रुघ्नने सूर्यास्त्र चलाकर उस अन्धकारको दूर करते हुए अष्टशूलमय तीक्ष्ण बाणसे उसके रथके चारों घोड़ों और सारथिको मार डाला। इसपर वह क्रूरकर्मा राक्षस वृक्ष लेकर शत्रुघ्नपर झपट पड़ा। तब श्रीशत्रुघ्नजीने अर्धचन्द्रास्त्रसे उसका मस्तक काट गिराया। कमठकी मृत्युसे प्रसन्न होकर देवोंने शत्रुघ्नजीकी स्तुति करते हुए उनपर पुष्प-वृष्टि की। इसके पश्चात् शत्रुघ्नजी यज्ञका घोड़ा लेकर भुवनेश्वर लौट आये।

यज्ञीय अश्व प्राप्त कर भगवान् श्रीरामने विधिवत् अपना अश्वमेध-यज्ञ पूर्ण किया। इस यज्ञके किये जानेसे भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और वे भगवान् श्रीरामकी प्रार्थनापर एकाम्रक्षेत्रमें रामेश्वर-रूपसे प्रतिष्ठित हुए। इस रामेश्वर-तीर्थमें शिवोपासना करनेसे ऋद्धि, सिद्धि, स्वर्गसुख, क्षेम, आरोग्य एवं समस्त ऐश्वर्य व्यक्तिको उपलब्ध होते हैं। भगवान् शिवने स्वयं कहा है—

ददामि विपुलामृद्धिं सिद्धिं चापि महोत्तमाम्।
क्षेममारोग्यमैश्वर्यं सम्यक् स्वर्गमनुत्तमम्॥

(एकाम्रपुराण ४।५३।५४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपिलपुराण

कपिलपुराण बहुत अंशोंमें एकाम्रपुराणसे ही मिलता है। इन दोनोंमें उत्कल (उड़ीसा) प्रदेशकी विशेषकर यहाँके पुरुषोत्तम-क्षेत्र जगन्नाथपुरी एवं भुवनेश्वरकी महिमा है। अतः कपिलपुराण एक उपपुराण एवं स्थलपुराण है। इसमें २१ अध्याय एवं एक हजारके लगभग श्लोक हैं। पहले दो अध्यायोंमें उत्कलदेशकी प्रशंसा है। तीसरे-चौथे अध्यायोंमें राजा इन्द्रद्युम्नद्वारा विष्णुकी प्रार्थना करते हुए सो जाने तथा राजाको स्वप्नमें विष्णुके द्वारा पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें जानेका निर्देश होता है। वहाँ जानेपर उन्हें नारदजीके द्वारा समुद्रमें काष्ठके बहनेकी सूचना मिलती है और विश्वकर्माके द्वारा श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राकी मूर्तिका निर्माण तथा उनकी प्रतिष्ठाका ब्रह्माके द्वारा आदेशका वर्णन है। इस पुराणमें चातुर्मासव्रतके विधानका विस्तृत उल्लेख है। बारह मासोंकी यात्राकी विस्तृत विधि एवं वर्णन-फल भी निरूपित है। इसमें अनेक तीर्थों और आश्रमोंके वर्णनके पश्चात् भार्गवी नदीके स्नानसे इक्कीस कुलोंके उद्धारका वर्णन प्राप्त होता है।

कथा-आख्यान—

जगन्नाथ-क्षेत्र

भगवान् विष्णुने इन्द्रद्युम्नको स्वप्नमें दर्शन देकर कहा कि लवणसागरके तटपर मेरा नीलाचलक्षेत्र है। यह क्षेत्र प्रलयकालमें भी नष्ट नहीं होता। यहाँ मैं मनुष्योंको मुक्ति प्रदान करता हूँ तथा वटपत्रके पुटमें वर्तमान रहता हूँ। वहाँ तुम जाओ, इन्द्रनील-शरीरके रूपमें तुम्हें मेरा दर्शन होगा।

जगन्नाथजीके दर्शनके लिये जाते हुए राजाने नीलपर्वतका दर्शन कर उसे नमस्कार किया। स्वर्णकूटसे आगे नीलपर्वतपर जगन्नाथजीके समीप जाते हुए राजाको देवर्षि नारद मिले, उन्होंने नारदजीसे पूछा—'आप त्रिकालज्ञ हैं, मेरा दक्षिण नेत्र और वामं अङ्ग स्फुरित हो रहा है, इसका कारण बतानेकी कृपा करें।' नारदजीने कहा—'आज भगवान् 'रोहिण-तीर्थ' चले गये हैं।' यह सुनकर इन्द्रद्युम्न पृथ्वीपर गिर पड़े। नारदजीने उन्हें आश्वस्त कर बतलाया कि ब्रह्माजीने आपके पास मुझे भेजा है। अभी जगन्नाथजी पुनः यहाँ आ जायँगे। इसी समय लोगोंमें कोलाहल मच गया कि शङ्ख-चक्रसे अङ्कित दारु जलमें तैर रहा है। कोलाहल सुनकर राजाने अतिशय प्रसन्न होकर नारदको अनेकशः प्रणाम किया। राजाने सबके साथ उस दारुको देखा और विश्वकर्माको बुलाकर श्रीकृष्ण, बलभद्र तथा सुभद्राकी तीन प्रतिमाएँ एवं सुदर्शन-स्तम्भ बनवाया।

राजा इन तीन प्रतिमाओंको मण्डपमें रखकर उनकी प्रतिष्ठाके लिये ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीके पास गये और प्रार्थना की कि इनकी प्रतिष्ठा कर आप मेरा मनोरथ पूर्ण करें। ब्रह्माने आकर देवताओंकी प्रतिष्ठा की और देवताओंने स्तुति की। तदनन्तर शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान्ने प्रसन्न होकर कहा—'मैं अन्य क्षेत्रोंका परित्याग कर परार्धतक यहीं रहूँगा।' इन्द्रद्युम्न इनकी पूजा कर मुक्त हो गया। भगवान् पूर्वमें इन्द्रनील-स्वरूप थे। अब वे दारुके रूपमें वर्तमान हैं। इस क्षेत्रका निवासी शरीरान्त होनेपर विष्णुलोकको प्राप्त होता है। मानव सागरमें स्नान करके श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करनेपर ब्रह्महत्या आदि सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। यही मार्कण्डेय-तीर्थ है, यहाँ श्रीकृष्णने मार्कण्डेय-वटका निर्माण किया था। जहाँ स्नानकर देवताओंने अपने पदोंकी प्राप्ति की थी, वहाँ स्नानोपरान्त भगवान् शंकरका दर्शन करनेपर सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। नीलाचलसे दक्षिण यमेश्वरका दर्शन करनेपर मानव यमदण्डरहित हो शिवलोकमें जाता है तथा उसके पश्चिम अलावुनाथ हैं, उनका दर्शन करके वह सफल मनोरथ हो जाता है। इसीके समीप कपालमोचन-लिङ्ग है, जिसके दर्शनसे ब्रह्महत्या-दोषसे मुक्त हो जाता है। जगन्नाथजीमें अपूप आदिके भक्षणसे मुक्ति मिल जाती है। वटेश्वरके दर्शनसे सभी पाप दूर हो जाते हैं। यह सभी क्षेत्रोंका राजा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके पुनीत वर्णनमें एक प्रसंग आया है—जाम्बवतीके पुत्र साम्बके शरीरमें कुष्ठ-रोग हो गया था और उन्होंने इसी क्षेत्रमें आकर मैत्रेयवनमें भगवान् सूर्यकी आराधना की, जिससे उन्हें कुष्ठ-रोगसे मुक्ति मिली। इसी पुरुषोत्तम-विरजा-क्षेत्रमें कपिलतीर्थ है। उसमें स्नान तथा विरजादेवीका दर्शन करनेसे सभी भोगों एवं मोक्षकी प्राप्ति होती है। एक पतिव्रता सर्पिणीके शापसे शप्त शृगालयोनिको प्राप्त राजा मान्धाताको वसिष्ठके आदेशसे विरजा-क्षेत्रमें जानेपर मुक्ति प्राप्त हुई।

यहींपर प्रसिद्ध मृत्युञ्जय तीर्थ एवं अनेक दूसरे गुप्त तीर्थ हैं। इसी स्थानमें मार्कण्डेयमुनिने मृत्युको जीता था। इसी विरजाक्षेत्रमें गन्धवती नदी बहती है, जिसके तटपर एकाम्रक (भुवनेश्वरनगर) है, जहाँ हरिहर-नामसे भगवान् शिव एवं विष्णु दोनों विराजित हैं। भगवान् विश्वनाथ वाराणसीको छोड़कर भुवनेश्वरमें निवास करते हैं। सभी तीर्थोंमें विशिष्ट विन्दुसरोवर भी यहीं है। यहाँ देवीके चरणतलोंमें शिव लेटे दीखते हैं। अतः उन्हें पादहरा कहते हैं। उनके दर्शनसे मनुष्य वैष्णव-पदको प्राप्त करता है। एकाम्रक या भुवनेश्वरके वासस्थ निर्मल-हृदय पुरुषके कानमें विश्वनाथ तारक-मन्त्रका उपदेश करते हैं। यहाँ तथा पुरीमें भगवान्को निवेदित नैवेद्यका भक्षण परम आवश्यक है। उससे सभी भोगैश्वर्योंकी प्राप्ति होती है।

एकाम्रक-क्षेत्र या भुवनेश्वरकी महिमामें कहा गया है कि इसका प्रलयकालमें भी विनाश नहीं होता। अतः मधुसूदन भी वैकुण्ठको छोड़कर वहीं निवास करते हैं। यहाँ भगवान् श्रीरामके द्वारा श्रीरामेश्वर-मन्दिर एवं शिवलिङ्गकी स्थापना हुई थी। उसके दर्शनसे सभी मनोरथोंकी सिद्धि होती है। यहींपर केदारनाथ-लिङ्गके दर्शनसे नहुषको राज्यकी प्राप्ति हुई थी। यहाँ एक सिद्धेश्वर-लिङ्ग है, जिसकी आराधनासे सभी कामनाओंकी प्राप्ति होती है।

कपिलावतारकी कथा

सृष्टिके प्रारम्भिक पाद्मकल्पके स्वायम्भुव-मन्वन्तरकी बात है। पितामह ब्रह्माजीने अपने मानसपुत्र प्रजापति कर्दमजीको मैथुनी-सृष्टिके लिये आज्ञा दी। पिताके आदेशसे कर्दमजीने सृष्टिके उद्देश्यसे तपोबल प्राप्त करनेके लिये सरस्वती नदीके पावन तटपर बिन्दुसर-तीर्थमें कठिन तपस्या प्रारम्भ की। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्ने उन्हें दर्शन दिया। शङ्ख-चक्र-गदाधारी वे प्रभु गरुडपर आसीन थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीलक्ष्मीजी और कण्ठमें कौस्तुभमणि सुशोभित थी। प्रभु मधुर मुस्कान बिखेर रहे थे। उनकी ऐसी मनोरम झाँकी देखकर कर्दमजीको परम विस्मय हुआ कि जिस स्वरूपका वे अभीतक ध्यान कर रहे थे, उसी श्रीविग्रहने साक्षात् प्रकट होकर सामने दर्शन दिया। उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रुकी धारा प्रवाहित होने लगी तथा कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वे दण्डवत् प्रणिपात कर प्रभुके चरणोंमें नतमस्तक हो गये और बोले—'नाथ! आपने दर्शन देकर मुझपर अत्यन्त कृपा की है। पितामहने मुझे सृष्टिकार्यकी आज्ञा दी है, किंतु बिना आपके अनुग्रहके ऐसा कैसे हो सकेगा? स्वामिन्! इसी निमित्त मैंने तप किया है कि मैं मैथुनी सृष्टिमें प्रवृत्त हो सकूँ। ऐसा मुझे वर प्रदान कीजिये।'

श्रीहरिने कहा—'प्रजापते! मेरी आराधना तो कभी भी निष्फल नहीं होती, फिर जिनका चित्त निरन्तर एकान्तरूपसे मुझमें ही लगा रहता है, उन तुम-जैसे महात्माओंके द्वारा की हुई उपासनाका तो और भी अधिक फल होता है। तुम्हारी मनःकामना अवश्य पूर्ण होगी। सप्तद्वीपा वसुमतीके चक्रवर्ती सम्राट् महाराज स्वायम्भुव मनु और महारानी शतरूपा दिव्य रूप, यौवन, शील आदि उदात्त गुणों तथा सभी सुलक्षणोंसे युक्त अपनी कन्या देवहूतिके साथ शीघ्र ही तुम्हारे पास आयेंगे। वह राजकन्या सर्वथा तुम्हारे योग्य है। महाराज मनु यथाविधि अपनी कन्या तुम्हें समर्पित करेंगे। उस देवीसे तुम्हें नौ कन्याएँ प्राप्त होंगी, जो मरीचि तथा वसिष्ठादि ऋषियोंसे विवाहित होकर स्रष्टाके सृष्टि-संवर्धनमें सहायक होंगी। महामुने! तदनन्तर मैं भी अपने अंश-कला-रूपसे तुम्हारे वीर्यद्वारा देवहूतिके गर्भसे अवतीर्ण होकर सांख्यशास्त्रकी रचना करूँगा (श्रीमद्भा० ३।२१।३२)।'

इतना कहकर भगवान् विष्णु अपने धामको पधारे। महर्षि कर्दम उसी बिन्दुसर-तीर्थमें अपने आश्रममें भगवान्के कथनानुसार महाराज मनुके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। निश्चित समयपर आदिराज महाराज मनु और साध्वी शतरूपा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी कन्या देवहूतिके साथ उस परम मनोरम दिव्य आश्रममें पहुँचे। महाराज मनुने उस तेजस्वी मूर्तिको प्रणाम कर यों निवेदन किया—'मुनिश्रेष्ठ ! यह मेरी प्राणप्रिया पुत्री देवहूति है। इसने देवर्षि नारदके मुँहसे आपके अद्वितीय व्यक्तित्वकी प्रशंसा जबसे सुनी है, तबसे यह आपको पतिरूपमें वरण कर आपके दर्शनके लिये उत्कण्ठित है। मैं इसे आपको समर्पित करने आया हूँ। आप इसे स्वीकार कर हम सभीको अनुगृहीत करें।'

महर्षिने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'राजन् ! मुझे यह स्वीकार है, किंतु मैं गृहस्थ-धर्मका तभीतक पालन करूँगा, जबतक कि संतान न उत्पन्न हो जाय। तदनन्तर मैं संन्यास धारण करूँगा।' महाराज मनुने रानी शतरूपा और देवहूतिकी ओर देखा तथा उनकी प्रसन्नमुद्रा देखकर वे देवहूतिको कर्दमजीको समर्पित कर अपनी राजधानी बर्हिष्मती नगरीमें लौट आये।

इधर साध्वी देवहूति कर्दमजीकी अनन्यभावसे सेवा करने लगीं। उन्होंने काम-वासना, दम्भ, द्वेष, लोभ, पाप और मदका त्याग कर बड़ी सावधानी और लगनके साथ पवित्रता, संयम और शुश्रूषा आदिसे उन्हें संतुष्ट कर लिया। वे पतिको दैवसे भी बढ़कर समझती थीं। यद्यपि देवहूति राजकुलमें पली थीं, तथापि उन्होंने अरण्यमें आश्रमोचित सभी मर्यादाओंका पालन किया। वे महर्षिकी तपश्चर्यामें सहभागिनी बनकर व्रतोपवासादि तथा देवपूजा आदिमें निरत रहने लगीं। वे समिधाएँ, कुश, पुष्प, जल आदि वनमें दूर-दूरतक जाकर ढूँढ़ लातीं, आश्रमको झाड़-पोंछकर गोमयसे लीपतीं तथा सभी प्रकारसे पवित्र रखतीं। स्वयं भी वे वल्कलधारिणी हो गयीं। कहाँ राजकुलोचित सौकुमार्यता और कहाँ अरण्यकी दारुण तपश्चर्या ? राजकन्या देवहूति दुर्बल हो गयीं। एक दिन महर्षि कर्दमका ध्यान उनकी ओर गया। उन्होंने कहा—'देवि ! तुमने मेरी सेवाके लिये अपना सर्वस्व मुझे अर्पण कर दिया है। मैं तुम्हारी अनन्यसेवासे अत्यन्त संतुष्ट हूँ, अतः तपस्या तथा धर्माचरणसे मुझे जो दिव्य शक्तियाँ और भगवत्प्रसाद-स्वरूप विभूतियाँ प्राप्त हुई हैं, उन दिव्य ऐश्वर्योंका तुम भोग करो।' देवहूतिने कहा—'प्राणनाथ ! आपने गृहस्थ-धर्मके पालनकी प्रतिज्ञा की थी, अतः यदि आप मेरी सेवासे संतुष्ट हैं तो आपका इस समय गृहस्थ-धर्मका पालन करना ही मेरे लिये सर्वाधिक प्रीतिकर एवं श्रेयस्कर होगा।'

उसी समय महर्षिके योग-प्रभावसे अत्यन्त अद्भुत दिव्य विमान प्रकट हुआ। देवी देवहूति अपने प्रियतम परम तपस्वी कर्दमजीके साथ विमानपर आरूढ़ हुईं। उसमें सभी लोकोत्तर ऐश्वर्य विद्यमान थे। देवहूतिने अपने पतिके साथ दीर्घकालतक पृथ्वी, आकाश तथा अन्यान्य लोकोंमें भ्रमण किया और अनेक देवोद्यानों तथा रमणीय सरोवरोंमें विहार किया। अन्तमें वे अपने आश्रमपर लौट आये।

कालान्तरमें यथासमय देवहूतिको नौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। वे सभी सर्वाङ्गसुन्दरी थीं तथा उनके शरीरसे दिव्य सुगन्ध निकल रही थी। महर्षि कर्दमजीका गृहस्थ-धर्म पूर्ण हो चुका था और वे प्रतिज्ञानुसार तपश्चर्याके लिये आश्रम छोड़कर ज्यों ही जानेको उद्यत हुए, त्यों ही देवी देवहूतिने रोते हुए उनके चरण पकड़ लिये और कहा—'प्रभो ! यद्यपि आपकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी है, मैं उसमें बाधक नहीं बनूँगी, किंतु नाथ ! आपके चले जानेपर मेरा कौन आश्रय होगा, आपके बिना मेरा जीवन भी व्यर्थ ही है। आप-जैसे तपोधनको पाकर भी मैंने अपना समय भोगोंमें ही व्यतीत कर दिया। मैं मुक्तिलाभके लिये कुछ भी न कर सकी। अतः मुझे आप शरण दें। मैं आपकी शरणागत हूँ। मेरी रक्षा करें।' उनकी इस कातर-वाणीको सुनकर महर्षि विचारमग्न हो गये और कुछ देर बाद बोले—'निर्दोष राजकुमारी ! तुम अपने विषयमें इस प्रकार खेद न करो, तुम्हारे गर्भमें अविनाशी भगवान् विष्णु शीघ्र ही पधारेंगे।' पतिदेवके इन मङ्गलमय वचनोंको सुनकर देवहूति अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं और नारायणके ध्यानमें निमग्न हो गयीं। कुछ समय बाद माता देवहूतिके गर्भसे साक्षात् नारायण प्रकट हुए। उस समय चारों दिशाओंमें प्रसन्नता छा गयी। पृथ्वी और आकाशमें सर्वत्र अलौकिक आनन्द छा गया। भगवान् नारायणका दर्शन करने ब्रह्मादि देवगण मरीचि आदि मुनिगणोंके साथ महर्षि कर्दमके आश्रममें आये। ब्रह्माजीने कर्दम एवं देवहूतिसे कहा—

'मुने ! मैं जानता हूँ, जो सम्पूर्ण प्राणियोंकी निधि हैं—उनके अभीष्ट मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं, वे आदिपुरुष श्रीनारायण ही अपनी योगमायासे कपिलके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं।' फिर देवहूतिसे बोले—'राजकुमारी ! सुनहरे बाल,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमल-जैसे विशाल नेत्र और कमलाङ्कित चरणकमलोंवाले शिशुके रूपमें कैटभासुरको मारनेवाले साक्षात् श्रीहरिने ही ज्ञान-विज्ञानद्वारा कर्मोंकी वासनाओंका मूलोच्छेद करनेके लिये तेरे गर्भमें प्रवेश किया है। वे अविद्याजनित मोहकी ग्रन्थियोंको काटकर पृथ्वीमें स्वच्छन्द विचरण करेंगे। ये सिद्धगणोंके स्वामी और सांख्याचार्योंके लिये भी मान्य होंगे, लोकमें तेरी कीर्तिका विस्तार करेंगे और 'कपिल' नामसे विख्यात होंगे (श्रीमद्भा० ३।२४।१६-१९)।' यह कहकर ब्रह्माजी सनकादि तथा नारदके साथ ब्रह्मलोकको चले गये।

महर्षि कर्दमने ब्रह्माजीके आज्ञानुसार अपनी पवित्र नौ कन्याओं—कला नामकी कन्या महर्षि मरीचिको, अनसूया अत्रिको, श्रद्धा अङ्गिराको, हविर्भू पुलस्त्यको, गति पुलहको, क्रिया क्रतुको, ख्याति भृगुको, अरुन्धती वसिष्ठको और शान्ति अथर्वा ऋषिको सविधि समर्पित कर दी। इस प्रकार विवाह हो जानेपर वे सब आनन्दपूर्वक अपने-अपने पतियोंके साथ चली गयीं।

महर्षि कर्दम एक दिन पुत्र-रूपमें अवतरित भगवान् कपिलके पास गये और प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे—'प्रभो! आप साक्षात् नारायण हैं, आपने सांख्ययोगके उपदेश-द्वारा जीवोंका कल्याण करनेके लिये मेरे घरमें अवतार ग्रहण किया है। आपको पाकर मेरा जन्म सफल हो गया, मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गये। अब मुझे इस संसार तथा शरीरसे कोई प्रयोजन नहीं है। मैं आपकी शरण हूँ। मेरी इच्छा है कि अब मैं संन्यास-मार्गका आश्रय ग्रहण कर आपका चिन्तन करता रहूँ। अतः भगवन्! आप मुझपर कृपा करें।' भक्तवत्सल नारायण कपिलसे तत्त्वज्ञानका उपदेश प्राप्त कर शुद्ध सात्त्विक बुद्धि-सम्पन्न होकर महर्षि कर्दम तपस्याके लिये वनमें चले गये और अन्तमें उन्होंने नारायणका परमपद प्राप्त किया।

अब उस आश्रममें केवल देवहूति अकेली रह गयी थीं। केवल पुत्र-रूपमें नारायण कपिल थे, वे सदा जीवोंके कल्याणमें ही निरत रहते थे। यह देखकर माता देवहूति भी वैराग्यकी साक्षात् प्रतिमूर्ति हो गयी थीं, उन्हें उपलब्ध ऐश्वर्योंमें अनुराग नहीं रह गया था। सबको त्यागकर एक दिन वे भगवान् कपिलके पास पहुँचीं। उन्होंने देखा कि वे एक सघन लतामण्डपके बीचमें समाधि लगाये बैठे हैं। देवीने उनके चरणोंमें प्रणाम किया, भगवान् कपिलकी समाधि टूटी, उन्होंने कहा—'माँ! यह आप क्या कर रही हैं? मैं तो आपका पुत्र हूँ। मुझे आप आज्ञा प्रदान करें।'

देवहूतिने कहा—'पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मुझे आपके विषयमें सब कुछ बता रखा है। मुझे मालूम है कि आप साक्षात् नारायण हैं। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आपने इस पृथ्वीपर अवतार धारण किया है। मैं बड़ी भाग्यशालिनी हूँ जो मुझे नारायणकी माता कहलानेका गौरव प्राप्त हुआ, किन्तु प्रभो! यह देह-गेहका माया-मोह बड़ा प्रबल है। संसारी जीव इस आसक्तिके व्यामोहमें भटक रहे हैं। आप सभीका उद्धार करें। मैं भी आपकी शरणागत हूँ, मुझे भी आप तत्त्वज्ञानके उपदेशसे अनुगृहीत करें।'

भगवान् कपिल माताकी तत्त्वमयी, सार्थक एवं कल्याण-मयी वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने माताको बताया—'इस जीवके बन्धन और मोक्षका कारण मन ही माना गया है। विषयोंमें आसक्त होनेपर वह बन्धनका हेतु होता है और परमात्मामें अनुरक्त होनेपर वही मोक्षका कारण बन जाता है (श्रीमद्भा० ३।२५।१५)। श्रीहरिके प्रति की हुई भक्ति ही सर्वोत्तम मङ्गलमय साधन है। यही भक्तिमार्ग सबके लिये सुलभ और सरल है। जो मेरे परायण रहकर मेरी पवित्र कथाओंका श्रवण-कीर्तन करते हैं तथा मुझमें ही चित्त लगाये रहते हैं, उन भक्तोंका कल्याण हो जाता है। सत्पुरुषोंके समागमसे भगवत्कथाओंमें रुचि उत्पन्न होती है, उससे श्रद्धा, प्रेम और भक्तिका विकास होता है। भक्तिके विकाससे लौकिक तथा पारलौकिक सुखोंमें विराग उत्पन्न होता है और तब भक्त मुझे प्राप्त करता है।' पुनः माता देवहूतिके पूछनेपर भगवान् कपिलने उन्हें महदादि तत्त्वोंकी उत्पत्तिका क्रम समझाकर प्रकृति और पुरुषका विवेक प्राप्त हो जानेपर मोक्ष-की प्राप्ति होती है—यह बताया। फिर उन्होंने पुरुषोंकी देह-गेहमें आसक्तिका कुपरिणाम, जीवकी गति एवं अष्टाङ्गयोगकी विधि बतलाते हुए विस्तारपूर्वक भक्तिके गूढ़ तत्त्वोंको समझाया।

भगवान् कपिलके इन दिव्योपदेशोंसे माता देवहूतिका अज्ञानान्धकार दूर हो गया। भगवान् कपिलद्वारा माता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवहूतिको जो दिव्योपदेश श्रीमद्भागवतमें दिया गया है, वह 'कपिलगीता'के नामसे विख्यात है। देवहूतिने आनन्दित होते हुए उन्हें प्रणाम किया और स्तुति की।

परमपुरुष भगवान् कपिल अपनी माता देवहूतिसे 'आप भक्ति एवं योगमार्गका आश्रय ग्रहण कर अन्तमें परमधामको प्राप्त करेंगी'—ऐसा कहकर उन्हें उसी सिद्धाश्रममें छोड़ स्वयं उनकी आज्ञा लेकर वहाँसे ईशान कोणकी ओर चल दिये। माता देवहूति अपने पुत्रद्वारा निर्दिष्ट योगसाधनके द्वारा योगाभ्यास करती हुई समाधिमें स्थित हो गयीं और अन्तमें उन्होंने नित्यमुक्त परमात्मस्वरूप श्रीभगवान्‌को प्राप्त किया।

भगवान् कपिल वहाँसे चलकर उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ भागीरथी गङ्गा समुद्रमें मिली हैं। वहाँ स्वयं समुद्रने उनका पूजन कर उन्हें स्थान दिया। वे तीनों लोकोंको शान्ति प्रदान करनेके लिये योगमार्गका अवलम्बन कर समाधिमें स्थित हो गये। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, मुनि, अप्सराएँ तथा सांख्याचार्यगण उनका स्तवन करते रहते हैं(श्रीमद्भा० ३।३३।३४-३५)।

सांख्यदर्शनके प्रणेता भगवान् कपिल आज भी अजर-अमर हैं। इनका स्थान गङ्गासागरमें सिद्धोंके बीचमें है। प्रतिवर्ष मकरसंक्रान्तिके दिन दर्शनार्थी इनके आश्रम तथा श्रीविग्रहका दर्शन करते हैं। इनके द्वारा विरचित 'तत्त्व-समास' नामक ग्रन्थमें सांख्यके पचीस तत्त्वोंका (प्रकृति+पुरुष+महत्+अहंकार+पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ+पाँच कर्मेन्द्रियाँ+उभयेन्द्रिय मन+पाँच तन्मात्राएँ और पाँच महाभूत) परिगणन है। तत्त्वोंके संख्या-परिगणनसे ही यह शास्त्र सांख्यदर्शन कहलाता है। श्रीमद्भागवतमें इन्होंने भक्तितत्त्वको भी सांख्यमें सम्मिलित कर लिया है, अतः कपिलका भागवतीय सांख्य 'सेश्वर-सांख्य' कहलाता है। शेषको 'निरीश्वर-सांख्य' कहते हैं। गीताका सांख्य एक प्रकारसे वेदान्तदर्शनसे मिलता है।

दत्तपुराण

दत्तात्रेयके सम्बन्धमें सभी जाननेयोग्य विषयोंका उल्लेख दत्तपुराण या दत्तात्रेयपुराणमें प्राप्त होता है। दत्तात्रेयकी कथा अनेक महापुराणों एवं आगमशास्त्रोंमें वर्णित है, किंतु इस पुराणमें उनकी जीवनीके साथ आराधनाविधि भी विस्तारसे निरूपित है। इस पुराणमें वैष्णव-धर्म, योगसिद्धियाँ एवं उनके साधन, सप्तद्वीपोंका परिचय, सूर्यवंश, चन्द्रवंश तथा मन्वन्तर आदिके परिचयके द्वारा पुराणोंके लक्षणका समन्वय सुन्दर कथाओंके उदाहरणके द्वारा हुआ है। वर्णाश्रमधर्म, ब्रह्मचारियोंके कर्तव्य, गृहस्थोंके कर्तव्य, श्राद्धपद्धति, कर्मविपाक, तिथियोंका निर्णय, दुष्कर्मोंका परिणाम, संस्कारोंका ज्ञान, वानप्रस्थ एवं संन्यास-धर्म आदि विषय इसमें मुख्यरूपसे विवेचित हैं। साथ ही दशावतारोंकी कथा, प्रह्लाद-चरित्र, कार्तवीर्य-चरित्र, परशुराम-चरित्र तथा मदालसा आदिके उपदेशपरक अनेक श्रेष्ठ आख्यान भी वर्णित हैं। यह पुराण अत्यन्त रोचक तथा मनोरम शैलीमें उपनिबद्ध है। इसकी एक विशिष्ट बात यह है कि इसके आरम्भ तथा अन्तमें ऋग्वेदके प्रारम्भिक तथा अन्तिम ऋचाओंको प्रायः यथावत्-रूपमें ग्रहण किया गया है। इस पुराणपर ऋग्वेद, श्रीमद्भागवत तथा मार्कण्डेयपुराणका विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। ऋग्वेदकी भाँति ही यह पुराण अष्टक तथा काण्डोंमें विभक्त है। इसमें तीन काण्ड तथा आठ अष्टक हैं। प्रथम ज्ञानकाण्डमें प्रथम तथा द्वितीय अष्टक, द्वितीय उपासनाकाण्डमें तृतीयसे षष्ठपर्यन्त चार अष्टक एवं अन्तिम कर्मकाण्डमें सप्तम तथा अष्टम—ये दो अष्टक हैं। अष्टकोंके अन्तर्गत अध्याय हैं। प्रत्येक अष्टकमें आठ-आठ अध्याय हैं। इस प्रकार इस पुराणकी अध्याय-संख्या चौंसठ और श्लोक-संख्या लगभग चार हजार है। इस पुराणकी योग-चर्या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-आख्यान—

भगवान् दत्तात्रेयकी अवतार-कथा

अत्रि मुनिके तप करनेपर **'दत्तो मयाहमिति यद् भगवान् स दत्तः'** (श्रीमद्भा० २।७।४) 'मैंने अपने-आपको तुम्हें दे दिया'—श्रीविष्णुके ऐसा कहनेसे विष्णु भगवान् ही अत्रिके पुत्र-रूपमें अवतरित हुए और दत्त कहलाये। अत्रिका पुत्र होनेके कारण वे आत्रेय भी कहे जाते हैं। दत्त तथा आत्रेयके संयोगसे वे 'दत्तात्रेय'के रूपमें प्रसिद्धिको प्राप्त हुए। मार्कण्डेयपुराण (अ० १६—१९, ३८—४३), ब्रह्मपुराण (अ० ११७ तथा २१३), श्रीमद्भागवत (७।५।११), स्कन्दपुराण (१।११), मत्स्य तथा भविष्य आदि पुराणोंमें इनके दिव्य चरित्रका आख्यान विस्तारसे वर्णित है। पुराणोंके साथ ही महाभारत (सभापर्व ३९, अश्वमेधपर्व, अनुशासनपर्व १३८, १५२-१५३)में भी भगवान् दत्तात्रेयजीके विषयमें महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध होती है। अवधूतोपनिषद्, अवधूतगीता, वज्रकवच, शाण्डिल्योपनिषद्, दत्तोपनिषद्, त्रिपुरोपनिषद् आदिके ये ही आचार्य एवं वक्ता हैं। त्रिपुरारहस्यमें महामुनि दत्तात्रेयजीको भगवान् विष्णुका अंशावतार और योगीश्वर माना गया है, साथ ही वाममार्गका महावीर पथिक भी कहा गया है—

श्रीविष्णोरंशयोगीशो दत्तात्रेयो महामुनिः।
गूढचर्यां चरँल्लोके भक्तवत्सल एधते॥

(त्रिपुरारहस्य मा० ख० ३)

योगेश्वर दत्तात्रेयकी माताका नाम अनसूया था, जो सदाचारपरायणा तथा परम साध्वी थीं। उनका पातिव्रत्य जगत्-प्रसिद्ध है। एक बारकी बात है, भगवती श्रीलक्ष्मीजी, श्रीसतीजी और श्रीसरस्वतीदेवीको अपने पातिव्रत्यपर अत्यन्त गर्व हो गया था। तीनोंका यह सोचना था कि इस त्रिलोकीमें और कोई भी स्त्री हमसे बढ़कर पतिव्रता नहीं हो सकती। भगवान्‌को भक्तका अभिमान कदापि सहन नहीं होता। उन्होंने अद्भुत लीला करनेकी सोची। भक्तवत्सल भगवान्‌ने देवर्षि नारदके मनमें प्रेरणा उत्पन्न की। नारदजी घूमते हुए देवलोक पहुँचे और बारी-बारीसे तीनों देवियोंके पास गये तथा उन्होंने अत्रिपत्नी अनसूयाके पातिव्रत्यके सामने उनके सतीत्वको नगण्य बताया। तब तीनोंने क्रमशः अपने-अपने स्वामी—विष्णु, महेश, ब्रह्मासे देवर्षि नारदकी कही हुई बात बतलायी और यह हठ किया कि 'जिस-किसी भी उपायसे अनसूयाका पातिव्रत्य भङ्ग होना चाहिये।' देवोंने बहुत समझाया, किंतु उनकी एक भी न चली। स्त्री-हठको पूरा करनेके लिये वे तीनों साधुवेश धारणकर भगवती मन्दाकिनीके पावन तटपर स्थित महामुनि अत्रिके आश्रममें पहुँचे। महर्षि अत्रि उस समय नदीमें स्नानादि नित्य-क्रियाके लिये गये हुए थे। अतिथि-रूपमें आये हुए उन तीनों ब्राह्मण-वेषधारियोंका सती अनसूया पाद्य-अर्घ्य-कन्द-मूलादिसे आतिथ्य करनेको उद्यत हुईं, किंतु उन्होंने कहा—'देवि ! हम आपका आतिथ्य तबतक स्वीकार नहीं करेंगे, जबतक कि आप निर्वस्त्र होकर हमारे सामने नहीं आती हैं।'

ऐसी बात सुनकर प्रथम तो अनसूया अवाक् रह गयीं, किंतु फिर उन्होंने सोचा—'अतिथि देव-तुल्य होते हैं, वे सर्वदा पूज्य हैं। जैसे भी हो, मुझे इनका सत्कार करना ही है।' उन्होंने श्रीहरिका स्मरण किया और उन्हींकी लीला समझकर अपने स्वामी भगवान् अत्रिका ध्यान किया तथा यह संकल्प किया कि 'यदि मेरा पातिव्रत्य-धर्म सत्य है तो ये तीनों छः-छः मासके शिशु हो जायँ।' संकल्प-वाक्य पूर्ण ही हुआ था कि छद्मवेषधारी ब्रह्मा, विष्णु, महेश नन्हे-से शिशु होकर रोने लगे। तब माताने उन्हें गोदमें लेकर स्तनपान कराया। स्तनपानसे वे तीनों अनसूयाके पुत्र-रूप ही हो गये और वे उनका पालन-पोषण करने लगीं।

इधर देवलोकमें अपने-अपने स्थानोंपर तीनों देवियाँ अत्यन्त चिन्तित हो उठीं कि समय तो लौटनेका हो गया, किंतु अभीतक वे नहीं आये। नारदजीने उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया, जिसे सुनकर वे आश्चर्यचकित हो उठीं। फिर तो वे तीनों अनसूयाके पास आयीं, उनसे क्षमा माँगीं तथा अपने-अपने पतिदेवोंकी याचना कीं। देवी अनसूयाने पुनः अपने पातिव्रत्य-बलसे उन्हें यथावत् पूर्वरूपमें कर दिया। तीनों देवोंने सती अनसूयाके पातिव्रत्यसे प्रसन्न हो वर माँगनेके लिये कहा। सतीने कहा—'देवगण ! यदि आप सब मुझपर प्रसन्न हैं तो पुत्र-रूपमें मुझे प्राप्त हों।' 'तथास्तु' कहकर तीनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देव अपनी-अपनी देवियोंके साथ अनसूयाका ध्यान करते हुए अपने-अपने लोकोंको प्रस्थान किये।

कालान्तरमें ये ही तीनों देव अनसूयाके गर्भसे प्रकट हुए। ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा, शंकरके अंशसे दुर्वासा तथा विष्णुके अंशसे दत्तात्रेयजीका जन्म हुआ। विष्णुके अंशावतारी यही दत्तात्रेय महायोगीश्वर कहलाये (मार्क० १७।११, भाग० ४।१।१५)।

विष्णुके रूपमें अवतरित होकर भगवान् दत्तने जगत्का बड़ा ही उपकार किया है। इनकी प्रकृति शान्त थी। इन्होंने चौबीस[1] गुरुओंसे दिव्य भावपूर्ण शिक्षा ग्रहणकर अन्तमें विरक्ति ली थी और कार्तिकेय, श्रीगणेश, प्रह्लाद, यदु, अलर्क, राजा पुरूरवा, आयु, परशुराम तथा हैहयाधिपति कार्तवीर्य आदिको योगविद्या एवं अध्यात्मविद्याका उपदेश दिया था। ये जीवन्मुक्त होकर यावज्जीवन सद्गुरुके रूपमें अपने भक्तोंको अनुगृहीत करते हुए विचरण करते रहे (भाग० २।७)। भगवान् शंकराचार्य, गोरक्षनाथ तथा सिद्धनागार्जुनादि इन्हींकी कृपापात्रताको प्राप्त हुए। ये परम भक्तवत्सल कहे गये हैं। भक्तके स्मरण करते ही ये तत्क्षण उसके पास पहुँच जाते हैं, इसीलिये इन्हें—'स्मृतिगामी' तथा 'स्मृतिमात्रानुगन्ता' कहा गया है।

पुराणोंमें इनका जो स्वरूप प्राप्त होता है, उससे यह निश्चित होता है कि ये अवधूत-विद्याके आद्य आचार्य थे। इनके अवधूत होनेका इससे प्रबल प्रमाण और क्या हो सकता है कि ये प्रातःकाल वाराणसीमें स्नान करते हैं, कोल्हापुरके देवी-मन्दिरमें जप-ध्यान करते हैं, माहुरीपुर (मातापुर) में भिक्षा ग्रहण करते हैं तथा सह्याद्रिमें विश्राम करते हैं—

वाराणसीपुरस्नायी कोल्हापुरजपादरः।
माहुरीपुरभिक्षाशी सह्यशायी दिगम्बरः॥

(दत्तात्रेय-वज्रकवच ३)

पद्मपुराण-भूमिखण्डके वर्णनसे ज्ञात होता है कि भगवान् धर्मका साक्षात्कार केवल दत्तात्रेयजीको हुआ था। इसीलिये ये 'धर्मविग्रही' भी कहलाते हैं। ये श्रीविद्याके परम आचार्य हैं। परशुरामजीको इन्होंने अधिकारी जानकर श्रीविद्याका उपदेश किया था। उनकी परा-विद्याका उपदेश त्रिपुरारहस्य-माहात्म्य-खण्डके नामसे प्रसिद्ध है। ये सिद्धोंके परम आचार्य कहे गये हैं। दासोपन्त, महानुभाव, गोसाईं तथा गुरुचरित्र इनके नामपर अनेक सम्प्रदाय हैं। इनका दत्त-सम्प्रदाय दक्षिण भारतमें विशेष प्रसिद्ध है। 'गिरनार' श्रीदत्तात्रेयजीका सिद्ध पीठ है। त्रिपुरारहस्यके अनुसार इनका एक आश्रम गन्धमादन पर्वतपर भी है। इनकी गुरुचरण-पादुकाएँ वाराणसी तथा आबूपर्वत आदि कई स्थानोंमें हैं। इनका बीज-मन्त्र 'द्रां' है। इनके दर्शन अब भी होते हैं।

श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराण

पुराणवाङ्मयमें श्रीविष्णुधर्मोत्तरका विशिष्ट स्थान है। मुख्यतः यह वैष्णवपुराण है। यद्यपि इसकी गणना उपपुराणोंमें की जाती है, किंतु नारदपुराणने इसे विष्णुपुराणका ही उत्तरभाग माना है जैसा कि इसके नामार्थसे भी स्पष्ट है। नारदपुराणके ९४वें अध्यायमें श्लोक एकसे सोलहतक विष्णुपुराणके छहों अंशोंके विषयोंकी सूची बतानेके अनन्तर कहा गया है कि इसके आगे 'विष्णुधर्मोत्तर' है, जिसमें नानाप्रकारकी धर्म-कथाओं, पवित्र व्रतों, यम-नियमों, सर्वलोकोपकारी विविध विद्याओंका निर्देश किया गया है—

१-इनके चौबीस गुरुओंके नाम भागवतमें इस प्रकार आये हैं—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग, भौंरा या मधुमक्खी, हाथी, शहद निकालनेवाला, हरिन, मछली, पिङ्गला वेश्या, कुररीपक्षी, बालक, कुँआरी कन्या, बाण बनानेवाला, सर्प, मकड़ी और भृङ्गी कीट (११।७।३३-३४)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः परं तु सूतेन शौनकादिभिरादरात् ॥
पृष्टेन चोदिताः शश्वद्विष्णुधर्मोत्तराह्वयाः । नानाधर्मकथाःपुण्या व्रतानि नियमा यमाः ॥
धर्मशास्त्रं चार्थशास्त्रं वेदान्तं ज्यौतिषं तथा । नानाविद्यास्तथा प्रोक्ताः सर्वलोकोपकारिकाः ॥

(ना० पु० ९४।१७-२०)

लिङ्गपुराणके अतिरिक्त सभी पुराण विष्णुपुराणको २३ या २४ हजार श्लोकोंका ग्रन्थ बतलाते हैं, पर वर्तमानमें विष्णुपुराणकी उपलब्ध मुद्रित प्रतियोंमें लगभग छः हजारके आस-पास ही श्लोक मिलते हैं, अतः अवशिष्ट लगभग २० हजार श्लोकोंवाले विष्णुधर्मोत्तरको विष्णुपुराणका ही उत्तर भाग समझना चाहिये।

वर्ण्य विषय

यद्यपि अग्निपुराण, गरुडपुराण तथा नारदपुराणको उत्कृष्टतम विश्वकोषोंमें गिना जाता है, किंतु श्रीविष्णुधर्मोत्तर इन तीनोंसे विशाल है और अपेक्षाकृत अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भी है। यह न केवल कोष ही है प्रत्युत महाकोष है। इसके तृतीय खण्डमें हंसगीताके प्रायः ३०० अध्यायोंमें एक-एक अध्यायमें एक-एक विषयका विस्तारसे विवेचन है। इस पुराणमें सभी विद्याओं तथा ज्ञान-विज्ञानका समावेश है। इसके वचन हेमाद्रि, स्मृतिचन्द्रिका, निर्णयसिन्धु, स्मृतिरत्नाकर, कृत्यकल्पतरु, मदनपारिजात आदि निबन्ध-ग्रन्थोंमें तथा प्राचीन टीकाओंमें प्राप्त होते हैं। यह पुराण तीन खण्डोंमें विभक्त है।

प्रथमखण्ड—इसमें २६९ अध्याय हैं। आरम्भमें नारायणसे सृष्टिका उद्भव तथा उसके विस्तारका वर्णन है। तदनन्तर वराहावतार, पृथ्वी आदि सात लोकों, जम्बूद्वीप, नवविधवर्षोंमें भारतवर्ष, सात कुलाचल पर्वतों, मधु-कैटभ-आख्यान, सगरोपाख्यान, भगीरथचरित्र, गङ्गावतरण, दत्तात्रेय-चरित्र, कार्तवीर्य-चरित्र, जमदग्नि, गाधि, विश्वामित्र, माता रेणुका तथा मुनिवर परशुराम आदिके आख्यान विस्तारसे वर्णित हैं।

५१ से ६५ तकके अध्याय शंकरगीताके नामसे कहे गये हैं। इसमें भगवान् विष्णु एवं उनकी उपासनापद्धतिपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। इसके ५२ वें अध्यायमें एकमात्र, अनिर्देश्य, अक्षरस्वरूप, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी आदिदेव जगन्नाथ विष्णुको ही सर्वोपरि ध्येय, स्मरणीय तत्त्व बतलाया गया है। (इस अध्यायमें श्रीमद्भगवद्गीताके १३ वें अध्यायके कितने ही श्लोक हैं)। ५६ वें अध्यायमें भगवान्‌की दिव्य विभूतियोंका वर्णन है।(इस प्रकारके वर्णन गीता अध्याय १०, भागवत स्कन्ध ११। २० आदिमें भी प्राप्त होते हैं)। इसके ५८ वें अध्यायमें भगवान् केशवके तुष्टिकारी साधनों, क्रियाकलापोंका कथन है। इस अध्यायके अधिकांश श्लोकोंके चतुर्थ चरणमें '**तस्य तुष्यति केशवः**' आता है। वे श्लोक बड़े हृदयग्राही हैं। यथा—

शृणुते सर्वधर्मांश्च सर्वान् देवान् नमस्यति । अनसूयुर्जितक्रोधस्तस्य तुष्यति केशवः ॥ (१।५८।८)

'जो सभी सद्धर्मोंकी बातोंको आदरसे सुनता है, सभी देवताओंको प्रणाम करता है, किसीसे ईर्ष्या, द्वेष नहीं करता, क्रुद्ध नहीं होता, उसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं।'

अप्रणम्य क्रियां कांचिद्यस्तु नारभते हरिम् । असम्भिन्नार्थमर्यादस्तस्य तुष्यति केशवः ॥ (१।५८।२४)

'जो भगवान् विष्णुको नमस्कार किये बिना किसी भी कार्यका आरम्भ नहीं करता, जो शील, विनय तथा मर्यादासे सम्पन्न है, उसपर भगवान् केशव—विष्णु प्रसन्न रहते हैं।'

इसके आगे ६१ से ६५ तकके अध्यायोंमें वैष्णवव्रतों तथा अभिगमन-उपादान-इज्या-स्वाध्यायादि पञ्चवैष्णव-कलाओंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। ७४ वें अध्यायमें भगवान् विष्णुके प्रमति, भीमरथ आदि कुछ ऐसे अवतारोंकी भी कथाका वर्णन है, जिनका उल्लेख प्रायः अन्यत्र नहीं मिलता। फिर कल्प-मन्वन्तरादिका वर्णन तथा विष्णुमाहात्म्यके प्रसङ्गमें मार्कण्डेयजीकी तथा भचक्रादिवर्णनमें ध्रुवादिकी कथा वर्णित है। १२२-१३९ तकके अध्यायोंमें कृष्णावतार तथा पुरूरवा-उर्वशीकी कथा है। आगे १४९ से २०० अध्यायोंतक श्राद्ध, व्रत, देवालयनिर्माण एवं विष्णुपूजा-पद्धति-स्तुति आदि प्रसंग हैं। २०० से २१७ तकके अध्यायोंमें श्रीरामकी कथाएँ हैं, जो अन्यत्र नहीं मिलतीं। भरतके उदात्त चरित्रपर विस्तृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवरण प्राप्त होता है। भरत तथा गन्धर्वोंके युद्धका सुन्दर चित्रण हुआ है। इसके आगे शिवचरित्र, विश्वसर्ग तथा विष्णुशयनोत्सव आदिकी कथाएँ हैं।

द्वितीय खण्ड—इस खण्डमें १८३ अध्याय हैं, जिनमें विस्तारसे राजधर्मका निरूपण है। इतना विस्तृत राजनीतिका वर्णन और कहीं नहीं हुआ है। साथ ही राजोपयोगी धनुर्विद्या, ज्योतिर्विद्या, शकुनशास्त्र, रत्नशास्त्र, शान्तिविधान, अश्व, गज, वृक्ष-लक्षण, चिकित्सा आदिपर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। वर्णाश्रमधर्म, सदाचार, दान-व्रत, प्रायश्चित्त आदिका भी विस्तारसे वर्णन है। इसमें ३५ से ४१ अध्यायोंमें 'पातिव्रत' के प्रसङ्गमें 'सावित्री' का मनोरम आख्यान वर्णित है।

तृतीय खण्ड—यह दोनों खण्डोंसे बड़ा है। इसमें ३५५ अध्याय हैं। इसमें अनेक शास्त्रों तथा विद्याओंका समावेश दीखता है। चित्रसूत्र, प्रतिमाशास्त्र, साहित्यशास्त्र, संगीतशास्त्र, कामशास्त्र, नृत्यशास्त्र, छन्दःशास्त्र, न्यायशास्त्र, कोशविद्या, काव्यशास्त्र, राजशास्त्र, वास्तुशास्त्र, ज्योतिष-शास्त्र, शकुनशास्त्र, धनुर्वेद तथा शस्त्र-विद्याओंका वर्णन आरम्भसे २२६ अध्यायोंतक है। बीच-बीचमें यज्ञ, हवन, दान, पूजा तथा प्रतिष्ठा आदिकी विस्तृत विधियाँ भी वर्णित हैं।

अध्याय २२७ से ३४२ तक विविध धर्मोंका वर्णन है, जो हंसगीताके नामसे विख्यात है। इसमें मुख्य-रूपसे वर्णधर्म, आश्रमधर्म, भक्ष्याभक्ष्यनिरूपण, द्रव्यशुद्धि, शौच-स्नाननिरूपण, जपविधि, प्रायश्चित्त, धर्ममहिमा, दान-तप-गुरु-वृद्ध-सेवादिका फल, लोभ-मोहादि-दोषदर्शन, ज्ञान, सत्य, तप, शौर्य, अहिंसा, क्षमा, सदाचार, तीर्थ, श्रद्धा आदिकी महिमा, अष्टाङ्गयोग, यज्ञ-यागादि, गोसेवा, इष्टापूर्तमहिमा, विविध दान, राजधर्म, वैष्णवधर्म तथा वैष्णवभक्तिका वर्णन है। हंसगीता अत्यन्त उपादेय है, बीच-बीचमें आये हुए उपदेश अत्यन्त ही मार्मिक हैं।

अध्याय ३४३ से ३५५ तक पुनः वैष्णवभक्तिका माहात्म्य, अपराजिता विद्याका वर्णन, विष्णुस्तुति तथा भगवान्‌के विराट् स्वरूपका वर्णन और उनके अष्टाक्षर तथा द्वादशाक्षर-मन्त्रकी महिमाका कथन तथा नृसिंह-स्तुति वर्णित है और बीच-बीचमें अनेक तीर्थ, पर्वत, नदियों, देवस्थानों एवं ऋषि-आश्रमोंका भी वर्णन हुआ है।

महामुनि मार्कण्डेय तथा धर्मात्मा राजा वज्रके संवाद-रूपमें वर्णित यह विष्णुधर्मोत्तरपुराण सर्वथा अभीष्टप्रदायक, पापविनाशक, पुण्यप्रद, चतुर्विध पुरुषार्थप्रदाता और भगवद्भक्तिसे ओतप्रोत है।

कथा-आख्यान—

भरतद्वारा शैलूषवंशी गन्धर्वोंका उत्सादन

प्राचीन कालमें महानद सिन्धुका उभय-तटवर्ती प्रदेश गान्धार या काम्बोजके नामसे प्रसिद्ध था। वहाँके निवासी शैलूष-पुत्र और उनके वंशज गन्धर्व नामसे विख्यात थे। ये गन्धर्व स्वर्गीय गन्धर्वोंसे भिन्न आचारयुक्त स्वच्छन्दाचारी मायावी क्रूरकर्मा तथा हिंसा-विहाररत रहते थे। इनसे पश्चिम भारतके दूसरे सभी राजा अत्यन्त पीड़ित और उद्विग्न हो गये थे। यहाँतक कि स्वर्गीय गन्धर्वोंके राजा चित्ररथने भी उनके दुराचारसे बार-बार खिन्न होकर उन्हें मनुष्यद्वारा नष्ट होनेका शाप दे दिया था।

गान्धार देशके समीपस्थ केकय देशके अधिपति भरतके मामा, महाराज युधाजित् भी शैलूषके अत्याचारोंसे अत्यन्त उद्विग्न थे। उन्होंने गन्धर्वोंको दण्डित करानेके लिये सभी राजाओंकी सम्मतिसे श्रीरामके पास दूतद्वारा संदेश अयोध्या भेजा। उसकी बात सुनकर बहुत सोच-विचारकर भगवान् श्रीरामने इसके लिये भरतको ही उपयुक्त व्यक्ति समझा और उन्हें मङ्गलद्रव्योंसे अभिषिक्तकर आशीर्वादपूर्वक चतुरङ्गिणी सेनाके साथ भेज दिया।

भरतने मत्स्य, शूरसेन, कुरुक्षेत्र, शाल्व, शिवि-देशों तथा गौरी, सतलज और इरावती आदि नदियोंको पारकर कुणिदेशमें ससैन्य निवेश किया। दूसरे दिन गन्धर्वोंको ललकारनेवाली दुन्दुभि (नगाड़े) की भयंकर ध्वनि सुनकर सभी गन्धर्वगण अत्यन्त क्रुद्ध होकर गर्जना करने लगे और संग्रामके लिये उद्यत हो गये। यह देखकर गन्धर्वोंके पुरोहित नाडायनने गन्धर्वराज शैलूषको भरतका अतुल माहात्म्य बताते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए युद्ध न करनेकी सलाह दी और अनेक प्रकारसे राजधर्म और युद्धनीतिकी बातें बताते हुए कहा—

एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशीकुरु ।
पञ्च जित्वा विजित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भव ॥

(विष्णुधर्मो० १।२१२।१)

'राजन्! तुम एक व्यवसायात्मिका बुद्धिसे कार्य और अकार्य—इन दो पदार्थोंका निर्णयकर शत्रु, मित्र और मध्यस्थ-इन तीनोंको साम, दान, दण्ड और भेद—इन चार उपायोंसे वश कर, पाँचों इन्द्रियोंको जीतकर राजनीतिके छः गुणों (यान, आसन, सन्धि, विग्रह, द्वैधीभाव और समाश्रय) का आश्रय लेकर तथा सात राजदोषों—व्यसनों (द्यूत, मद्यपान, मृगया, वेश्यासक्ति, दण्डपारुष्य, वाक्पारुष्य, अर्थदूषण तथा लोभकी अतिशयता) का परित्याग कर सुखी होओ।' क्योंकि जो इनका विचार करता है, वह राजा विजय प्राप्त करता है और उसके पास सिद्धि हाथ जोड़े खड़ी रहती है। ये सभी बातें रघुवंशियोंमें तो हैं; किंतु तुम्हारी स्थिति इसके विपरीत है। भरत साक्षात् विष्णुके अंश प्रद्युम्न-रूप हैं, इन्होंने ही पहले रावणके नाना सुमालीका सेनासहित वध किया था। इसलिये हमलोगोंको सामनीतिका ही व्यवहार करना चाहिये, इसीमें कुशल है। युद्ध करना ठीक नहीं। कदाचित् किसी प्रकार भरत जीत भी लिये जायँ तो श्रीराम तथा उनकी सेनाके रोषका देवताओंके साथ मिलकर भी प्रतिकार करनेमें हम समर्थ न हो सकेंगे।

यह सब सुनकर भी शैलूष तथा उनके पुत्रोंने उनकी बात नहीं मानी और युद्धका ही निर्णय किया। इसपर नाडायन उन्हें मरा हुआ-सा समझकर रुष्ट होकर चले गये। रात्रिमें शैलूष-को छद्मयुद्धकी बात सूझी। उसने अयोध्यासे योद्धाओंकी स्त्रियोंको चुराकर उन्हें सामने रखकर युद्ध करनेकी तथा भरतके योद्धाओंको सोये हुए ही मारनेकी बात सोची। दूसरे दिन उसने इसके लिये अलग-अलग सैनिकोंको भेजा। अयोध्या जानेपर सैनिकोंको सर्वत्र ही शङ्ख, चक्र, गदाधारी विष्णु उन स्त्रियोंकी रक्षा करते हुए दिखायी पड़े। तब वे निराश तथा शक्तिहीन होकर वापस लौट आये। जो मायावी गन्धर्व छद्मवेषसे भरतकी सेनामें प्रविष्ट होकर सुषुप्तावस्थामें उन्हें मारना चाहते थे, वे भी भरतके प्रभावसे भयभीत होकर तथा सैनिकोंको जगा देखकर वापस लौट आये। सभीने गन्धर्वराज शैलूषको अपनी विफलताकी बात बतलायी।

तब शैलूषने अपनी गन्धर्वी सेनाको यथोचित अस्त्र-शस्त्र एवं वाहनोंसे सुसज्जित होकर युद्धके लिये आज्ञा दी। इधर भरत भी वज्रव्यूह बनाकर आगे बढ़े। दोनों पक्षोंमें तुमुल लोमहर्षण युद्ध प्रारम्भ हो गया। देखते-देखते शङ्ख, भेरीके निनाद और धनुषोंकी टंकार तथा हाथी-घोड़ोंके चिग्घाड़ने एवं हिनहिनानेकी आवाजसे आकाश व्याप्त हो गया। क्षणभरमें उस भयंकर युद्धमें अश्व, हाथी, पदाति-सेना तथा रथी और सारथियोंके कटे शरीर और रुधिरके संयोगसे वह रणाङ्गण रुधिरकी नदीके रूपमें परिवर्तित हो गया। रणाङ्गणमें कबन्धोंका नृत्य प्रारम्भ हो गया। घोर-रूप पिशाच तथा क्रव्याद रुधिर-मांसके लोभमें वहाँ दौड़ पड़े। शैलूषकी शेष सेना भयभीत होकर भागने लगी।

इस प्रकार अपनी सेनाको भग्नप्राय देखकर गन्धर्वराज शैलूषने अत्यन्त क्रुद्ध होकर भरतकी सेनापर आक्रमण कर दिया। उसने मायासे अनेक अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा भरतकी सेनाके हाथी-घोड़े तथा वीरोंको काट डाला। उस समय उसकी मायाके प्रभावसे केवल तालफलके पतनकी तरह योद्धाओंके कटते हुए शरीरके गिरनेका शब्दमात्र ही सुनायी पड़ता था, कुछ दीखता नहीं था। इस तरह उनकी सेनाको विदीर्ण कर वह भरतके सामने उपस्थित हुआ और दोनोंमें तुमुल द्वन्द्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया। भरतके मामा युधाजित् जो उनके सारथिका काम कर रहे थे, शैलूषके बाणोंसे आच्छन्न हो गये, फिर भी वे अधीर नहीं हुए। भरतने दिव्य बाणोंसे शैलूषके महान् धनुषको काट डाला और क्रमशः दोनोंमें पूर्व-पूर्वके शामक—आग्नेय, वारुण, वायव्य, पर्वत, वज्र और ब्रह्मास्त्रके प्रयोग चलते रहे। कुछ समय बाद शैलूषको तो अनेक अपशकुन दिखायी पड़ने लगे और भरतकी दाहिनी भुजा फड़कने लगी। उस भीषण युद्धमें भरतने ऐसा शस्त्र-लाघव दिखाया, जिससे उनके धनुष-बाणोंका अवधान-संधान, प्रमोचन कुछ भी नहीं दीख रहा था। केवल गन्धर्वोंके प्रलयकालीन अग्निसे जलते हुए घोड़े-हाथी, रथ, सारथि और वीर-समूह दीख रहे थे।

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरहसे भरतने कई दिनोंके युद्धके बाद गन्धर्वोंकी मायावी सेनाका तहस-नहस कर रौद्रास्त्रके द्वारा शैलूषका मस्तक काट डाला। इसके बाद शैलूषके शेष बचे सभी पुत्र भरतपर आक्रमणके लिये सहसा दौड़ पड़े, किंतु उन्होंने उन्हें भी समाप्त कर डाला। इन्द्रादि देवताओंने प्रसन्न होते हुए भरतपर पुष्पोंकी वृष्टि की और कहा—'ब्रह्माके वरसे दसों देवयोनियोंसे अवध्य, देवता, धर्म, गौ तथा ब्राह्मणोंके कंटक गन्धर्वोंका आपने संहार कर विश्व तथा विशेषकर देवताओंका महान् उपकार किया है। आप हमसे कोई वर माँग लें।' भरतने सिन्धु नदीके दोनों तटोंपर दो नवीन नगरोंकी स्थापना तथा वहाँ अपने दोनों पुत्रोंके राजा होनेका वरदान माँगा। 'एवमस्तु' कहकर इन्द्रादि देवगण वापस स्वर्ग चले गये।

विजयके उपरान्त भरतने अपनी कुछ सेना वापस अयोध्या भेज दी और फिर सिन्धुके दोनों तटवर्ती प्रदेशोंमें अपने दोनों पुत्रोंके नामपर पुष्करावती (पुष्कलावती) तथा तक्षशिला—इन दो नगरोंकी स्थापना की और पुष्कर तथा तक्षको वहाँ अभिषिक्त कर दिया। कुछ समय वहाँ निवास कर शेष बची सेनाके साथ मार्गके ग्राम-नगरों तथा अरण्योंकी शोभाको देखते हुए भरत अयोध्या लौट आये। भगवान् श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मण तथा अयोध्यावासियोंने उनका भव्य स्वागत किया। श्रीरामने भी आशीषपूर्वक उनका आलिङ्गन किया। भरतने युद्धका सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया और गन्धर्वोंसे प्राप्त मुख्य रत्नादि पदार्थोंको उन्हें निवेदित कर दिया।

मुद्गलपुराण

महर्षि वेदव्यासप्रणीत मुद्गलपुराणकी उपपुराणोंमें गणना होनेपर भी यह पौराणिक वाङ्मयमें अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसमें महर्षि मुद्गल और प्रजापति दक्षका संवाद वर्णित है। इसमें मुख्यरूपसे आदिदेव भगवान् श्रीगणेशजीके अद्भुत चरित्रोंका समावेश है।

इस पुराणके आरम्भमें दक्ष प्रजापतिका आख्यान मिलता है। कनखलमें दक्ष प्रजापतिने यज्ञ किया, किंतु शिवजीसे वैर होनेके कारण उन्हें यज्ञभागी नहीं बनाया। क्रुद्ध रुद्रगणों तथा वीरभद्रने जब यज्ञ-विध्वंस कर डाला तब दक्ष अत्यन्त चिन्तित हो उठे। उसी समय महर्षि मुद्गल उपस्थित हुए, जो गणेशजीके अनन्य भक्त और उपासक थे। उन्होंने दक्षको आश्वस्त किया और कहा कि 'विघ्नराज गणेशजीके स्मरणसे समस्त कामनाओंकी पूर्ति होती है। उनकी कृपा होनेपर कुछ भी दुर्लभ नहीं है। अतः राजन्! तुम भगवान् गणेशकी आराधना करो।' दक्षने तपोनिधि मुद्गलजीसे उपदेश देनेके लिये प्रार्थना की। तब उन्होंने दक्षको मुद्गल-पुराण सुनाया। महायोगी मुद्गलद्वारा प्रोक्त होनेसे यह पुराण मुद्गलपुराण कहलाता है।

यह पुराण ४२८ अध्याय तथा नौ खण्डोंमें विभक्त है। प्रथम आठ खण्डोंमें भगवान् गणेशजीके आठ अवतारों—वक्रतुण्ड, एकदन्त, महोदर, गजानन, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज तथा धूम्रवर्णका वर्णन है। ये अष्टविनायक कहलाते हैं। नवाँ खण्ड गणेश-तत्त्वका प्रतिपादक है। गणेश भगवान्ने मत्सरासुर, दम्भ, गजासुर, मदासुर आदि दुष्ट दैत्योंका संहार कर देवताओंको सुख पहुँचाया। गणेशकी कृपासे वामनने बलिपर विजय पायी। इनकी कृपासे विश्वामित्रने ब्रह्मर्षिपद प्राप्त किया। सृष्टिके आरम्भमें ब्रह्माजीने इनकी आराधनासे ही सृष्टिका प्रारम्भ किया। इन्होंने जडभरतको उपदेश दिया तथा शिव-पार्वतीकी तपस्यासे पुत्ररूपमें प्रकट होकर दुर्मति दैत्यका वध किया। कपिलकी तपस्यासे प्रसन्न हो इन्होंने गणासुरका वधकर ऋषियोंको अभयदान दिया। ब्रह्माके निर्देश करनेपर सूर्यने इनकी मूर्तिकी स्थापना कर पूजन किया, गणेशजीने उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया। इन्हींके वरदानसे श्रीरामने रावणका वध किया। भार्गव परशुरामने गणेशजीको प्रसन्नकर परशु प्राप्त किया, जिससे वे कार्तवीर्यका वध कर सके। लक्ष्मीपुत्र पूर्णानन्दके रूपमें इन्होंने ज्ञानारि दैत्यका नाश किया। इन्होंने महिषासुरके वधके लिये जगदम्बाको वर प्रदान किया। जब इन्होंने कामासुर, क्रोधासुर तथा सिन्धु असुरका वध किया, तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वतीने भगवान् गणेशकी वन्दना कीं। इन्हींकी कृपासे शंकरजीने त्रिपुर राक्षसको मारा। गणेशजीने शिवजीकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उन्हें 'वज्रपञ्जर-स्तोत्र' प्रदान किया। मुद्गलपुराणके अन्तिम—नवें खण्डमें एकतालीस अध्याय हैं, जिनमें आठों विनायकोंके योगस्वरूपपर पर्याप्त विवेचन कर गणेश ही देवोंके देव तथा उनकी कृपादृष्टि होनेपर कुछ भी असम्भव नहीं है—यह विषय प्रतिपादित करते हुए फलश्रुतिमें यह दिखाया गया है कि गणेशकी भक्तिपूर्वक आराधनासे तथा मुद्गलपुराणके श्रद्धापूर्वक श्रवण तथा पाठ करनेसे परमधाम प्राप्त होता है और जीवकी सद्गति होती है। अतः भक्तिपूर्वक इसका श्रवण तथा पाठ करना चाहिये। गणेशजी ही अनादि सनातन ब्रह्म हैं। देवता, ऋषि-मुनि तथा भक्तगण इनकी पूजा तथा ध्यानमें तत्पर रहते हैं। असुरों तथा दुष्टोंके संहारके लिये ये सदा अवतार ग्रहण करते हैं। इस पुराणके श्रवणसे दक्ष प्रजापतिका यज्ञ पूर्ण हुआ तथा इस पुराणके श्रवण-पाठसे गणेश-भक्तिका उदय होता है, विचारोंमें शुद्धता आती है, चित्त उपास्यमें स्थिर होता है और मुक्ति प्राप्त होती है।

विश्वं चराचरं सर्वं जानीयात् तत्स्वरूपकम्।
सर्वेषां हितभावेन भजेत् तं द्विरदाननम्॥

(मुद्गलपु० ९।९।२८)

'समस्त चराचर विश्वको गणेशमय जानना चाहिये, अतः सबकी हित-कामनासे उन गजाननका भजन करना चाहिये। यही परम श्रेयस्कर है।'

कथा-आख्यान—

सक्तुप्रस्थीय मौद्गल्योपाख्यान

महर्षि मुद्गल प्राचीन वैदिक ऋषि थे। वे ऋग्वेदके दशम मण्डलके १०२वें सूक्तके द्रष्टा ऋषि थे। गौतमपत्नी अहल्या और शतानन्द इन्हींके वंशमें उत्पन्न हुए थे। महर्षि मुद्गल ऋग्वेदकी मुख्य शाखा—शाकल्यसंहिताके द्रष्टा महर्षि शाकल्यके पाँच शिष्योंमेंसे सर्वप्रथम थे (विष्णुपु० ३।४।२०-२२)। इनकी पत्नी इन्द्रसेना या मुद्गलानी कही गयी हैं। इनका दिव्य, आदर्शमय एवं कल्याणकारी जीवनवृत्त बृहद्देवता आदि वैदिक ग्रन्थोंके अतिरिक्त प्रायः सभी इतिहास-पुराणोंमें आया है। ये पाँच भाई थे और इन्हींके कारण पाञ्चालप्रदेश विख्यात हुआ। गणेश-उपासनापरक मुद्गलपुराणके यही वक्ता हैं। इसी कारण इसे मुद्गलपुराण कहा जाता है।

महर्षि मुद्गल पाञ्चालदेशके प्रसिद्ध तीर्थ कुरुक्षेत्रमें रहते थे। ये महान् दानी, धर्मात्मा, तपस्वी, जितेन्द्रिय, भगवद्भक्त एवं सत्यवक्ता थे और देवता, अतिथि, गौ, ब्राह्मण तथा संत-महात्माओंके परमभक्त थे। ये शिलोञ्छवृत्ति[1]से सपरिवार अपना जीवन-निर्वाह करते थे। प्रत्येक पंद्रह दिनोंमें एक द्रोण धान्य, जो लगभग ३४ सेरके बराबर होता है, इकट्ठा कर लेते थे। उसीसे पार्वायणान्तीय इष्टियोंका सम्पादन करते अर्थात् प्रत्येक पंद्रहवें दिन अमावास्या एवं पूर्णिमाको दर्श-पौर्णमास याग एवं अयनोंमें आग्रायण-यज्ञ किया करते थे। उन्होंने सपरिवार तीन-तीन दिनके बाद भोजन करनेका कठिन व्रत लिया था। यदि किसी दिन उस समय भोजन न मिला तो तीन दिनतक सपरिवार भूखे रहकर तप करते थे, किंतु कोई भी दुःखी नहीं होता था। यज्ञोंमें देवता और अतिथियोंको देनेसे जो अन्न बचता, उसीसे ये अपने परिवारका निर्वाह करते थे। जैसे धर्मात्मा ब्राह्मण स्वयं थे, वैसे ही उनकी धर्मपत्नी और संतान भी थी। मुनिवृत्तिसे रहना और प्रसन्नचित्तसे अतिथियोंको अन्नादिका दान देना, यही उनके जीवनका व्रत था।

एक समयकी बात है, कुरुक्षेत्रमें बड़ा भीषण अकाल पड़ा। कई दिन बीत गये, पर इस ब्राह्मण-परिवारको अन्नके दर्शन तक न हुए। खेतोंका अन्न भी सूख गया था। अत्यन्त कष्टपूर्वक इनके दिन बीतने लगे। एक दिन ज्येष्ठ मासके

१. फसल कटनेके बाद खेतोंमें गिरे हुए अन्नके दानोंको बीनकर उसीसे जीवन-निर्वाह करना शिलोञ्छवृत्ति कहलाती है। (मनु० ४।५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्याह्नकालमें अपने परिवारके साथ इन्होंने किसी प्रकार एक प्रस्थ (लगभग सेरभर) जौ प्राप्त कर उससे सक्तु—सत्तू (जौका आटा) तैयार किया और जप तथा नैत्यिक नियम पूर्ण करके यथोचित अग्निमें देवाहुति देकर स्त्री-पुत्र तथा पुत्रवधू-सहित उस सत्तूको चार भागोंमें बाँटकर भोजनके लिये बैठे ही थे कि एक अतिथि ब्राह्मण वहाँ आ पहुँचे। स्वागत कर महर्षिने उनसे भोजन करनेके लिये प्रार्थना की और अपना सत्तू-भाग उन्हें प्रदान किया। वे ब्राह्मण महर्षिका भाग खा गये, पर तृप्त नहीं हुए। मुद्गल चिन्तामें पड़ गये। तब उनकी धर्मभार्याने कहा—'स्वामिन्! मेरा भाग इन्हें दे दें।' पतिव्रता पत्नीकी बात सुनकर उन्होंने उसे भूखी जानकर और 'स्त्रीकी रक्षा करना अपना कर्तव्य है' यह स्मरणकर स्त्रीके भागका सत्तू लेनेकी इच्छा नहीं की, किंतु उसके बार-बार आग्रह करनेपर मुद्गलने अपनी स्त्रीके भागका सत्तू भी अतिथि ब्राह्मणको प्रार्थनापूर्वक निवेदित कर दिया, परंतु तब भी तृप्ति नहीं हुई। महर्षि पुनः चिन्तामें पड़ गये। पिताकी स्थिति समझकर पुत्रने भी अपना भाग ब्राह्मणको देनेके लिये कहा,

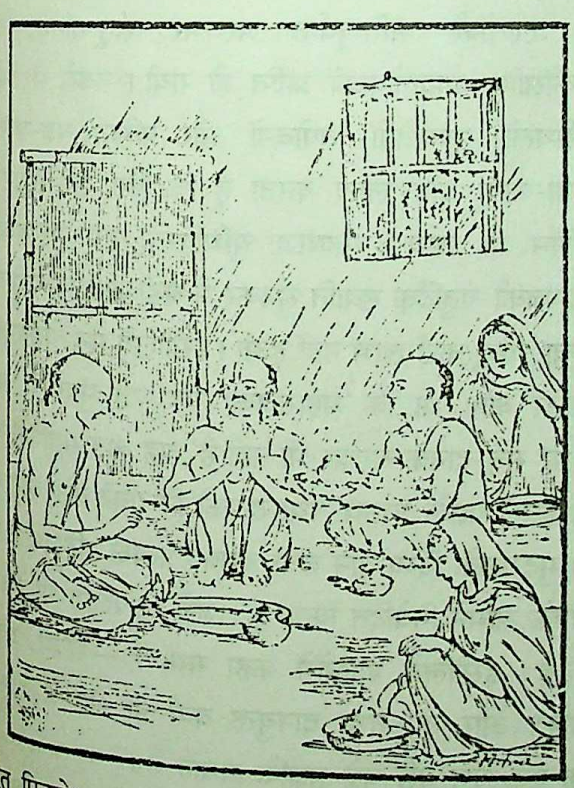

परंतु पिताके द्वारा अनेक प्रकारसे समझानेपर भी पुत्र नहीं माना। विवश होकर पिताने पुत्रके भागका सत्तू भी अतिथि ब्राह्मणको समर्पित कर दिया। इतनेपर भी वे संतृप्त न हो सके। इसपर महर्षि मुद्गल बड़े असमंजसमें पड़ गये। अतिथि भूखे रह जायँ, यह तो बड़ा पाप होगा, तब क्या करना चाहिये, क्योंकि सेरभर सत्तू भी तो इस अकालके समय उन्हें बहुत दिनोंके बाद बड़ी कठिनतासे प्राप्त हुआ था। जो अपर्याप्त सिद्ध हुआ। तदनन्तर पुत्रवधूने भी अपने भागका सत्तू देना चाहा, परंतु मुद्गल पुत्रवधूका भाग लेना नहीं चाहते थे, क्योंकि कई दिनोंके भूख-प्याससे पुत्रवधूका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो चुका था, वह क्षीण-प्राणा हो गयी थी तथापि पुत्रवधूने बार-बार आग्रह करते हुए कहा—'तात! मेरा शरीर, प्राण, धर्म और परलोक—सब आपलोगोंकी सेवाके लिये है, अतः मुझ दृढभक्ताको अपना अङ्ग समझकर मेरा यह सत्तूभाग अतिथिको देनेके लिये स्वीकार कर लीजिये' तब विवश होकर मुद्गलने पुत्रवधूका भी भाग ब्राह्मण देवताको अर्पित कर दिया।

इसपर वे अतिथि ब्राह्मण अत्यन्त संतुष्ट हो गये और मानव-विग्रह त्यागकर साक्षात् धर्मके रूपमें प्रकट होकर महर्षि मुद्गलके दानकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'महर्षे! मैं साक्षात् धर्म हूँ, तुम्हारे धर्मकी परीक्षा लेने आया था। तुम धन्य हो, तुम्हारा कुटुम्ब धन्य है। तुमने जो न्यायोपार्जित शुद्ध, पवित्र अन्नका इस प्रकार श्रद्धा तथा प्रसन्नतासे दान किया, उससे सभी स्वर्गस्थ देवता विस्मित होकर इसकी घोषणा कर रहे हैं और तुम्हारे ऊपर यह पुष्पवृष्टि भी उन्हींके द्वारा हो रही है। ब्रह्मलोकके महर्षिगण तुम्हारे दर्शनकी इच्छा रखते हैं। तुम्हारे सभी पितृगण मुक्त हो गये और भविष्यमें होनेवाली तुम्हारी संतानें भी तुम्हारे इस सक्तुप्रस्थीय दानके पुण्य-प्रतापसे श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त होंगी। अब तुम सामने उपस्थित इस दिव्य विमानपर आरूढ़ होकर सपरिवार स्वर्ग चलो। तुम्हारे इस सेरभर सत्तू-दानके सामने प्रचुर दक्षिणायुक्त, बहुसंख्यक राजसूय एवं अश्वमेधादि यज्ञोंकी कोई गणना नहीं। तुमने अक्षय लोक प्राप्त कर लिया। लोक-लोकान्तरोंमें तुम्हारी अनन्तकालतक अविचल कीर्ति बनी रहेगी।'

भगवान् धर्मके ऐसा कहनेपर महर्षि मुद्गल अपनी पत्नी-पुत्रादिसहित विमानपर आरूढ़ होकर ब्रह्मलोकको चले गये और भगवान् अन्तर्धान हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके थोड़ी ही देर पश्चात् सत्तूकी गन्ध पाकर एक नेवला अपने बिलसे बाहर निकला। वहाँ गिरे हुए जलसिक्त रजकणोंके स्पर्श, स्वर्गसे गिरे हुए दिव्य पुष्पोंके संस्पर्श तथा मुद्गलद्वारा उस धर्मरूपी ब्राह्मणको दान देते समय गिरे हुए सत्तुकणोंकी गन्ध लेने एवं उनके तपके प्रभावसे उस नेवलेका मस्तक और आधा शरीर सुवर्णमय हो गया। ऐसी आश्चर्यजनक घटना देखकर नेवला अत्यन्त विस्मित हो गया। अब वह इस चिन्तामें पड़ा कि उसके शरीरका शेष भाग कैसे सुवर्णमय हो।

बहुत दिनोंके पश्चात् जब महाराज युधिष्ठिरके महायज्ञका वृत्तान्त समूचे देशमें फैला, तब बड़ी आशा लगाकर वह नेवला उनके यज्ञीय क्षेत्रमें पहुँचा और इस अभिलाषासे वहाँ लोटने-पोटने लगा कि मेरा यह शेष शरीर अब अवश्य ही स्वर्णिम हो जायगा, किंतु बहुत प्रयत्न करनेपर और वेदी, कुण्ड, उत्कर, चत्वाल तथा सभ्य स्थलोंपर भी लोटनेसे जब उसका एक रोम भी स्वर्णिम न हो सका, तब वह उस यज्ञके सभासदों एवं विशिष्ट ब्राह्मणोंके सामने गया और उसने सहसा व्यङ्ग्यपूर्वक वज्र-निर्घोषके समान अट्टहास किया। इससे

मृग-पक्षी तो भयभीत हो ही गये, वहाँके सभासद् भी कम आश्चर्यचकित न हुए। फिर उस नेवलेने मनुष्यवाणीमें कहा—'राजाओ और सभासदो! तुम्हारा यह यज्ञ उञ्छवृत्तिधारी, कुरुक्षेत्र-निवासी मुद्गल ब्राह्मणके प्रस्थमात्र सत्तूदान करनेके तुल्य भी नहीं है।' इसपर घबड़ाकर सभी सभासद् अपने आसनोंसे उठ खड़े हुए और उसे चारों ओरसे घेरकर कहने लगे—'भाई! धर्मराज युधिष्ठिरके इस महायज्ञमें सत्पुरुषोंके बीच तुम कहाँसे आ पहुँचे? अहो! तुम्हारी शक्ति, शास्त्रज्ञान और तुम्हारा यह अर्धस्वर्णिम शरीर—सब कुछ अद्भुत ही है। तुम कौन हो, जो इस यज्ञकी निन्दा कर रहे हो। हमलोगोंने शास्त्रीय विधिसे मन्त्रोच्चारण कर आहुतियाँ दी हैं और श्रद्धापूर्वक उचित दृष्टिसे सबको यथोचित दान-सम्मान दिया है। सच बताओ, दिव्य रूप धारण किये हुए तुम हो कौन?'

इसपर उस नेवलेने हँसकर कहा—'विप्रवृन्द! मैंने गर्वातिरेकमें आकर आपलोगोंसे कोई मिथ्या बात नहीं कही है। आपलोग मेरे शरीरको देख ही रहे हैं। यह महर्षि मुद्गलके पत्नी, पुत्र और पुत्रवधूसहित दिये दानके लवांशके स्पर्शका प्रभाव है, जो मेरा आधा शरीर सोनेका हो गया और उन लोगोंको भक्तिपूर्वक प्रस्थभर सत्तू-दानसे दिव्य लोकोंसहित ब्रह्मलोककी प्राप्ति हो गयी। तबसे मैं अनेक धर्मस्थलों, पुण्यक्षेत्रों, तपोवनों और प्रसिद्ध यज्ञ-स्थलोंमें आया-जाया और लोटा करता हूँ कि मेरा शेष शरीर भी स्वर्णिम हो जाय। महाराज युधिष्ठिरके इस प्रभावशाली महायज्ञकी चतुर्दिक् ख्याति सुनकर मैं बड़ी आशा लगाये यहाँ पहुँचा, किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। इसीलिये मैंने व्यङ्ग्यपूर्वक हँसकर कहा था कि 'महाराजका यह यज्ञ मुद्गल विप्रके सेरभर सत्तू-दानके बराबर भी नहीं है', यह बात सर्वांशमें सही है। इसमें यज्ञके प्रभाव तथा उसकी निन्दाकी कोई बात नहीं है। मुद्गलके दिव्य दान तथा धर्मका प्रत्यक्ष परिणाम ही मैंने आपके सामने निवेदित किया है, जिसे आपलोग भी देख ही रहे हैं। इसीलिये शास्त्रोंमें कहा गया है—संयम, शील, आर्जव और तप तथा दानयुक्त कर्म ही श्रेष्ठ हैं और ये एक-एक गुण बड़े-बड़े यज्ञोंके समान हैं।'

ऐसा कहकर वह नेवला चला गया और वे ब्राह्मण तथा राजा भी इस आश्चर्यको देख-सुनकर सविस्मय अपने-अपने स्थानोंको चले गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

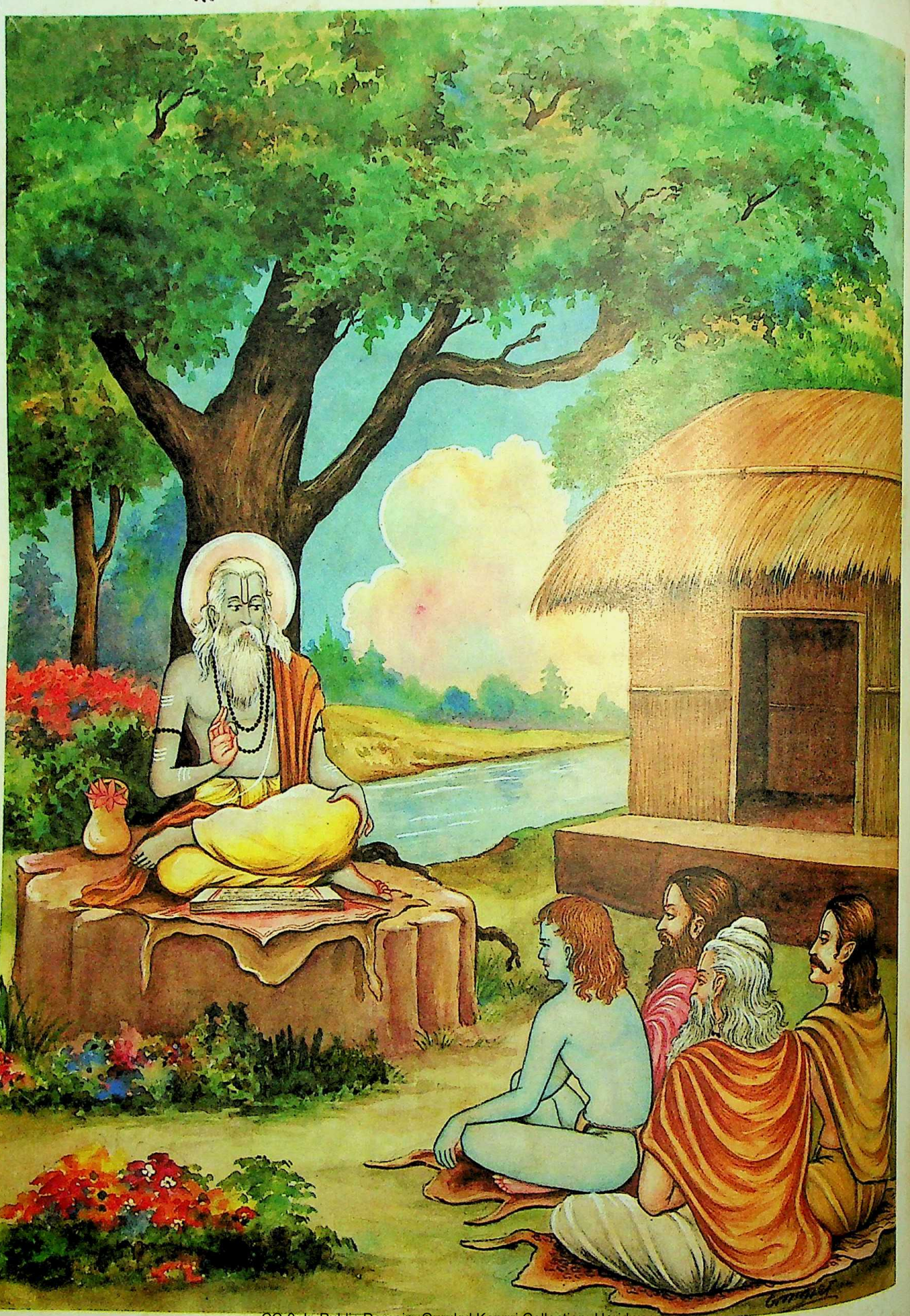

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भगवान् व्यासका पुराण-प्रवचन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराणोंके प्रासङ्गिक चरित्र

अगस्त्य

महर्षि अगस्त्य वेदोंके एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। उनकी स्त्रीका नाम लोपामुद्रा है। बहुत स्तुति-प्रार्थना करनेपर मित्र और वरुण देवताने अपना तेज एक घड़ेमें स्थापित किया था, उसीसे अगस्त्यकी उत्पत्ति हुई थी। ये दोनों ही भगवान् शंकरके बड़े भक्त थे। काशीमें रहकर वे सर्वदा प्रेमपूर्वक श्रीविश्वनाथकी उपासना किया करते थे। एक बार विन्ध्याचलको इस बातकी बड़ी ईर्ष्या हुई कि सब देवता सूर्य, चन्द्र आदि सुमेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं, मेरी क्यों नहीं करते ? यदि वे मेरी प्रदक्षिणा नहीं करेंगे तो मैं उनका मार्ग बंद कर दूँगा, देखें वे कैसे मेरा अनादर करते हैं। पाषाण ही जो ठहरा, उसमें नम्रताके भाव कहाँसे आते, वह बढ़ने लगा। सूर्यका मार्ग बंद हो गया। सब देवताओंने और सूर्यने सोचा कि विन्ध्याचलने हमलोगोंका मार्ग रोक दिया, अब संसारमें प्रकाश कैसे फैले ? यह विपत्ति कैसे दूर हो ? सब-के-सब महर्षि अगस्त्यकी शरणमें गये। अगस्त्य जानते थे कि लोक-कल्याणके लिये मेरे इष्टदेव शंकरने समुद्रसे निकले हुए हलाहल विषका पान कर लिया था। यदि मैं संसारके हितके लिये भारतका उत्तरीय प्रान्त छोड़ दूँ और दक्षिणमें ही चलकर रहूँ तो क्या हानि है ? भगवान् शंकरकी पूजा तो वहाँ भी हो सकती है। महर्षि अगस्त्य अपनी धर्मपत्नी लोपामुद्राके साथ विन्ध्याचलके पास गये। विन्ध्याचल शापके भयसे उनके चरणोंमें गिर गया और उसने कहा कि 'मेरे योग्य सेवा बताइये।' अगस्त्यने कहा—'जबतक मैं न आऊँ तबतक तुम यों ही पड़े रहना।' महर्षि अगस्त्य उज्जैनकी ओर चले गये और वहीं रहकर भगवान् शंकरकी आराधना करने लगे। तबसे अबतक विन्ध्याचल ज्यों-का-त्यों पड़ा हुआ है। वे फिर नहीं लौटे।

महर्षि अगस्त्यने समय-समयपर लोगोंका बड़ा कल्याण किया है। वृत्रासुरके मरनेके पश्चात् बचे हुए दैत्य समुद्रमें रहने लगे थे, वे रातको बाहर निकलते और ऋषियोंको खा जाते। देवताओंकी प्रार्थनासे अगस्त्यने समुद्रका जल पी लिया और देवताओंने दैत्योंको मारनेका अवसर प्राप्त कर लिया। आतापी, वातापी नामके दो बड़े भयंकर राक्षस थे। वे ऋषियोंके पेटमें घुसकर उन्हें मार डालते थे। महर्षि अगस्त्यने ही इस विपत्तिसे लोगोंकी रक्षा की।

अजामिल

अजामिल कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उन्होंने समस्त वेद-वेदाङ्गोंका अध्ययन किया था। वे माता-पिताकी सेवा किया करते थे और भगवान्पर उनकी आस्था भी थी। एक दिन वे समिधा लेनेके लिये जंगलमें गये हुए थे, एक वेश्यापर उनकी दृष्टि पड़ी। वह शराब पीकर दुराचारमें लगी हुई थी। अजामिल अभी युवक थे। ऐसे दृश्य उनके सामने कभी आये नहीं थे। क्षणभरके दुःसंगसे ही वे प्रभावित हो गये और उसे अपने घर ले आये। उनके अंदर दैवी सम्पत्तिके जितने गुण थे, सब धीरे-धीरे नष्ट हो गये और वे चोरी, जुवाखोरी, शराब आदि पीनेमें धर्म-कर्म, जाति-जनेऊ सब भूल गये। दिन बीतते देर नहीं लगती। उनकी जवानी चली गयी, बुढ़ापा आ गया, मौत उनके सिरपर आ पहुँची।

जन्मभर उन्होंने पाप किया था, मृत्युके समय बड़ी पीड़ा हुई। किसीके किये-धरे कुछ नहीं हुआ। यमराजके दूत आये, उनकी भयंकर आकृति और तर्जन-गर्जन देखकर अजामिल बहुत डरे। प्राण निकलनेके समय वे अपने छोटे बच्चेको, जिसे बहुत प्यार करते थे, पुकारने लगे। भगवान्की कुछ ऐसी कृपा थी कि एक दिन एक साधुके शुभागमनके फलस्वरूप उनके बच्चेका नाम 'नारायण' रख गया था। वे ठीक प्राण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकलनेके समय बोल उठे 'नारायण-नारायण।' भगवान्‌के नाममें अचिन्त्य-शक्ति है, नामका उच्चारण होते ही भगवान् उपस्थित हो जाते हैं। अजामिलने देखा कि उसी समय नीलवर्णके पीताम्बर पहने हुए एवं अपने हाथोंमें दिव्य आयुध लिये हुए भगवान्‌के दूत आ पहुँचे। यमराजके दूतोंको हटाकर उन्होंने अजामिलको छोड़ देनेके लिये कहा। थोड़ी देरतक यमदूतों और भगवान्‌के पार्षदोंमें विवाद चलता रहा। यमदूतोंने कहा कि 'यह घोर पापी है, इसे तुमलोग क्यों छुड़ानेकी चेष्टा कर रहे हो?' भगवान्‌के पार्षदोंने कहा—'भाई! तुम्हें पापी और पुण्यात्माका भेद मालूम नहीं है। कोई चाहे जितना बड़ा पापी हो, यदि उसके मुखसे भगवान्‌का नाम निकलता हो और खास करके मृत्युके समयमें, तब तो उससे बढ़कर कोई धर्मात्मा है ही नहीं। सब धर्मों, पुण्यों, व्रतों और ज्ञानका सार है भगवान्‌का नाम; चाहे पुत्रबुद्धिसे ही क्यों न लिया हो इसने लिया तो सही।' यमराजके दूत चले गये। भगवान्‌के पार्षद भी चले गये। अजामिल जीवित हो गये। अपने जीवनके पापोंका स्मरण कर उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। हरिद्वारमें जाकर उन्होंने भजन किया और मुक्ति प्राप्त की। श्रीमद्भागवतमें भगवन्नाममहिमाका यह बड़ा सुन्दर प्रसङ्ग है। साधकोंको उसका स्वाध्याय करना चाहिये।

अदिति

ये दक्ष प्रजापतिकी पुत्री और प्रजापति कश्यपकी धर्मपत्नी थीं। दोनोंने जंगलमें जाकर बड़ी घोर तपस्या की। ब्रह्मा, विष्णु और शंकर इनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर कई बार इनके पास आये। परंतु इन्होंने तपस्या नहीं छोड़ी। अन्तमें पुरुषोत्तम भगवान् राम आये और उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—'तुम्हारी जो इच्छा हो माँग लो।' इन दोनोंने भगवान्‌से कहा कि 'आप हमारे पुत्र हों।' भगवान्‌ने कहा—'एवमस्तु'। त्रेतामें तुम दोनों अयोध्याके राजा-रानी होओगे तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा। एक कल्पमें त्रेतामें वही अदिति कौसल्या हुईं और कश्यप दशरथ हुए। इसके पूर्व वामनावतार भी इन्हींके गर्भसे हुआ था। भागवतमें लिखा है कि देवकीके रूपमें भी यही अवतीर्ण हुईं थीं। जिसने भगवान्‌को पुत्ररूपमें प्राप्त कर लिया, उसकी महिमा और सौभाग्यकी भला क्या सीमा हो सकती है?

अन्धतापस

एक दिन अयोध्याधिपति महाराज दशरथ सरयूके तटपर विचर रहे थे। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि कोई हिंस्र जन्तु सरयूके आसपास है। अनुमानसे ही उन्होंने शब्दभेदी बाण चला दिया। जब मनुष्यके कराहनेकी आवाज आयी, तब वे उसके पास गये। वास्तवमें जिस आवाजको सुनकर उन्होंने बाण चलाया था, वह कोई दूसरी आवाज नहीं, घड़ा डुबोनेकी आवाज थी; दशरथ उसके पास जाकर सहानुभूति प्रकट करने लगे, क्षमा माँगी। जो मनुष्य घायल हुआ था, उसका नाम था श्रवणकुमार। उसने कहा—'महाराज! आपने अनजानेमें बाण चलाया है, इसमें आपका कोई दोष नहीं। मेरे अन्धे माता-पिता प्यासे हैं, उन्हें जाकर जल पिलाइये और उनसे क्षमा माँगिये, नहीं तो वे शाप दे देंगे' श्रवणकुमारकी मृत्यु हो गयी। राजा उस अन्धतपस्वीके पास गये।

पैरोंकी आहट पाकर अन्धे तापसने कहा—'बेटा! तुमने इतनी देर क्यों कर दी, तुम्हारी माँ पानीके बिना छटपटा रही है। तुम बोलते क्यों नहीं हो?' दशरथने उनके पास जाकर सारी बात कही और क्षमा माँगी। तापसने कहा कि 'आप हमलोगोंको हमारे हृदयके टुकड़े श्रवणके पास ले चलिये। हमलोग एक बार उससे मिल तो लें।' महाराज दशरथ उन्हें वहाँ ले गये। वे विलाप करने लगे। अन्धे तापसने कहा कि 'राजन्! तुमने अनजानमें यह काम किया है, इसलिये हत्या तो नहीं लगेगी, परंतु जैसे हम पुत्रवियोगमें मर रहे हैं वैसे ही तुम भी अपने पुत्रके लिये छटपटाते हुए प्राण त्याग करोगे।' इतना कहकर वे स्वर्गवासी हो गये और उन्हींकी भाँति दशरथने भी पुत्र-वियोगमें प्राण त्याग किया।

अम्बरीष

सूर्यवंशी राजा नाभागके पुत्र भक्त अम्बरीष बहुत ही प्रसिद्ध हैं। वे हरिभक्तिपरायण और बड़े धार्मिक थे। एक बार द्वादशीके दिन वे पारण करने जा ही रहे थे कि अपनी शिष्यमण्डलीके साथ दुर्वासा ऋषि आ पहुँचे। राजाने भोजनके लिये उन्हें निमन्त्रण दिया। उन्होंने कहा—'हम अब नदीसे सन्ध्या-वन्दन करके आते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं।' वे चले गये। उनके आनेमें इतना विलम्ब हुआ कि द्वादशी एक पल बाकी रह गयी। द्वादशीमें ही पारण न करनेसे दोष लगता है और ब्राह्मणको भोजन कराये बिना खाना चाहिये नहीं, यह सोचकर अम्बरीष बड़े असमंजसमें पड़ गये। विद्वान् ब्राह्मणोंने सलाह दी कि 'तुम भगवान्‌का चरणामृत पी लो, इससे व्रत पूरा हो जाता है और ब्राह्मणोंकी अवज्ञा नहीं होती।' अम्बरीषने वैसा ही किया। थोड़ी देर बाद दुर्वासा आये और अम्बरीषपर बहुत बिगड़े। उन्होंने अपनी जटासे एक बाल तोड़कर पृथ्वीपर पटक दिया, उससे कृत्या नामकी राक्षसी पैदा हो गयी और वह अम्बरीषका विनाश करनेके लिये उनकी ओर दौड़ी। राजा ज्यों-के-त्यों खड़े रहे। भगवान् अपने भक्तोंकी सर्वदा रक्षा किया करते हैं। उसी समय सुदर्शनचक्र प्रकट हुआ और कृत्याको नष्ट करके वह दुर्वासाकी ओर लपका। दुर्वासा भगे। ब्रह्मा और शिवके पास गये। परंतु उन्होंने भगवान्‌के भक्तसे द्रोह करनेवालेकी रक्षा नहीं की। वे विष्णुके पास गये। विष्णुने कहा—'भाई ! भक्त तो मेरे हृदय हैं, उनका कुछ अनिष्ट हो जाय तो मैं जीवित रहना नहीं चाहता। मैं उनका क्रीतभृत्य हूँ। तुम अम्बरीषके पास जाओ, वही तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं।' दुर्वासा अम्बरीषके पास आये, अम्बरीष अबतक खड़े-खड़े उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने सुदर्शनचक्रको शान्त किया और कहा कि 'आप चलकर भिक्षा करें, अबतक किसीने कुछ खाया-पीया नहीं है।' दुर्वासाने जाकर प्रसाद पाया और अम्बरीष एवं भगवान्‌के भक्तोंकी प्रशंसा करते हुए वे अपने आश्रमपर चले गये। भागवतमें इनकी बड़ी सुन्दर कथा है।

अश्विनीकुमार

सूर्यकी पत्नी संज्ञा, सूर्यका तेज सहन न कर सकनेके कारण अश्विनी होकर उत्तरकुरुमें चली आयी थीं। जब सूर्यको यह बात मालूम हुई तब वे भी उत्तरकुरु गये और वहीं अश्विनीरूपधारिणी संज्ञासे दोनों अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ। अश्विनीकुमार देवताओंके चिकित्सक हैं, उनकी चिकित्साकी महिमा वेदोंमें भी कही गयी है। शर्यातिकी कन्या सुकन्याके पातिव्रतसे प्रसन्न होकर इन्होंने च्यवन ऋषिको दृष्टिशक्ति, नवयौवन एवं सुन्दरताका दान किया था। उन दिनों दध्यङ् नामके एक ऋषि थे। उन्होंने इन्द्रसे ब्रह्मविद्या प्राप्त की थी, परंतु इन्द्रने उनसे कह दिया था कि तुम यह विद्या किसी औरको सिखाओगे तो तुम्हारा सिर धड़से अलग हो जायगा। यह बात जब अश्विनीकुमारोंको मालूम हुई तब वे ब्रह्मविद्याकी जिज्ञासासे दध्यङ् ऋषिके पास पहुँचे। उन्होंने कहा 'हम आपका सिर धड़से अलग करके रख देते हैं और आपके धड़पर घोड़ेका सिर जोड़ देते हैं। ब्रह्मविद्याका उपदेश करनेपर जब आपका सिर कट जायगा तब हम फिर आपका पहला सिर जोड़ देंगे।' ऐसा ही हुआ। दध्यङ्‌ने घोड़ेके मुँहसे ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया और उनका वह सिर कट जानेपर अश्विनीकुमारोंने पहला सिर जोड़ दिया। अश्विनीकुमारोंकी बड़ी महिमा है, उन्हींकी कृपासे माद्रीने नकुल और सहदेव इन दो पुत्रोंको प्राप्त किया था।

अहल्या-गौतम

पहले सृष्टिके सब लोगोंमें जिसका जो अङ्ग सुन्दर था उसकी सुन्दरता लेकर ब्रह्माने सर्वाङ्गसुन्दरी अहल्याकी रचना की थी। उन्होंने कुमारी अहल्याको महर्षि गौतमके पास धरोहर रख दिया। एक वर्षके बाद गौतमने अहल्याको ब्रह्माके पास पहुँचा दिया, उनके मनमें कभी किसी प्रकारका कोई विकार नहीं आया था। गौतमके इस अलौकिक धैर्य, तपःसिद्धि और कामविजयको देखकर ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अहल्याका विवाह गौतमके साथ कर दिया। वे दोनों सुखसे रहने लगे।

एक दिन इन्द्रने चन्द्रमाकी सहायतासे गौतमको धोखा देकर आश्रमसे बाहर कर दिया और अहल्याके साथ अशिष्ट व्यवहार किया। गौतमने आश्रममें आकर इन्द्रको सहस्रभग हो जानेका और अहल्याको पत्थर हो जानेका शाप दिया। अहल्याके बहुत अनुनय-विनय करनेपर उन्होंने इतना अनुग्रह किया कि त्रेतायुगमें जब भगवान् राम अवतीर्ण होंगे और तुम्हें उनके चरणोंका स्पर्श प्राप्त होगा, तब तुम्हारा उद्धार हो जायगा। तभीसे वह पत्थर हो गयी थी। भगवान्‌के चरणोंके स्पर्शसे वह मुक्त होकर पतिलोकको चली गयी।

कद्रू

महर्षि कश्यप भी एक दूसरे ब्रह्मा ही माने जाते हैं, क्योंकि उनके द्वारा अनेकानेक योनियोंकी सृष्टि हुई है। उनकी जिस पत्नीसे सर्पोंकी उत्पत्ति हुई थी उसका नाम था कद्रू और जिससे पक्षियोंकी उत्पत्ति हुई थी उसका नाम था विनता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन कद्रू और विनतामें इस बातपर बहस हो गयी कि सूर्यके घोड़े सफेद हैं या काले। कद्रू कहती थी काले हैं, विनता कहती थी सफेद। शर्त यह ठहरी कि जिसकी बात गलत निकले वह दूसरेकी दासी हो जाय। वास्तवमें सूर्यके घोड़े सफेद हैं जब कद्रूको यह बात मालूम हुई तब उसने अपने काले-काले पुत्रों—सर्पोंको भेज दिया। वे जाकर सूर्यके घोड़ोंसे लिपट गये, वे काले दीखने लगे। विनता हार गयी और वह कद्रूकी दासी बनी। पीछेसे विनताके पुत्र गरुडने अपनी माताको दासीपनेसे छुड़ाया था। ब्रह्माण्ड, मत्स्य, भागवत आदि पुराणों तथा महाभारतमें यह कथा बड़े विस्तारसे आती है।

गङ्गा और भगीरथ

महाराज सगर अयोध्याके बड़े नामी नरपति हो गये हैं। उन्होंने अपनी दो रानियोंके साथ बड़ी तपस्या करके पहली रानी केशिनीसे एक पुत्र असमंजस और दूसरी रानी सुमतिसे साठ हजार पुत्र प्राप्त किये थे। वे साठ हजार पुत्र एक तुम्बेमें पैदा हुए थे और घृतके कुण्डमें रखकर पाले-पोसे गये थे। असमंजस बड़े क्रूर स्वभावका था, वह नन्हें-नन्हें बच्चोंको पकड़कर पानीमें डुबो देता था। न्यायपरायण सगरने उसे अपने देशसे निर्वासित कर दिया। असमंजसका एक पुत्र था अंशुमान्, वह बड़ा सुशील और आज्ञाकारी था। अंशुमान् ही सगरके महायज्ञमें यज्ञीय अश्वका रक्षक था। इन्द्रने स्वर्गराज्य छिन जानेके भयसे वह घोड़ा चुरा लिया और तपस्या करते हुए कपिल मुनिके पीछे ले जाकर उसे बाँध दिया।

सगरके साठ हजार पुत्र उनकी आज्ञासे घोड़ेको ढूँढ़ते हुए और जमीनको खोदते हुए योगेश्वर कपिलके पास पहुँचे। उन्होंने बिना समझे-बूझे कपिलको ही चोर मान लिया और उनकी प्रताड़ना करने लगे। अन्ततः कपिलकी हुंकारसे वे भस्म हो गये। बहुत दिन बीतनेपर उन्हें लौटते न देखकर सगरने अंशुमान्को भेजा और उन्होंने जाकर पता लगाया। पिताके भाइयोंकी राख देखकर उनके मनमें जलाञ्जलि देनेकी बात आयी, परंतु वहाँ पवित्र जल प्राप्त नहीं हुआ। कपिलने बताया कि गङ्गाजलसे इनका उद्धार होगा, अंशुमान् लौट आये। क्रमशः तपस्याके द्वारा सगर, अंशुमान् और दिलीपने चेष्टा की कि गङ्गाजी पृथ्वीपर आवें, परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली। दिलीपके पुत्र भगीरथने गङ्गाको लानेके लिये भगीरथ-प्रयत्न किया। राज-काज छोड़कर वे तपस्यामें लग गये। ब्रह्माने प्रसन्न होकर गङ्गाको आनेका वरदान दिया, शिवजीने प्रसन्न होकर सिरपर धारण करनेका वरदान दिया और गङ्गाजी मर्त्यलोकमें आयीं। एक बार वे शिवजीकी जटामें उलझ गयी थीं, परंतु भगीरथने शंकरजीको प्रसन्न करके वहाँसे निकाल लिया। गङ्गाजी भगीरथके पीछे-पीछे कपिल मुनिके आश्रमपर गयीं और सगरके पुत्रोंका उद्धार हुआ। भगीरथके अथक परिश्रमसे न केवल उनके पितरोंका ही उद्धार हुआ बल्कि जबतक गङ्गाजी रहेंगी, गङ्गाजीका नाम रहेगा तबतक असंख्य प्राणियोंका उद्धार होता रहेगा। सच्चे परिश्रमसे सब कुछ किया जा सकता है।

गज

राजा इन्द्रद्युम्न किसी अपराधके कारण ऋषिके शापवश गज हो गया था। एक दिन वह क्षीरसागरके तटपर त्रिकूट पर्वतके सरोवरमें हथिनियोंके साथ विहार कर रहा था। उसी सरोवरमें हूहू नामका गन्धर्व ऋषिके शापवश मगर होकर रहता था। उसने गजको पकड़ लिया। दोनोंमें गहरी लड़ाई हुई। सैकड़ों वर्षतक लड़ते रहे, अन्तमें गजेन्द्र थक गया। उसके भाई-बन्धु उसे नहीं बचा सके। ग्राह उसे पकड़कर अगाध जलमें ले गया, केवल उसकी सूँड ही ऊपर रही। उसने एक कमल तोड़कर आर्तस्वरसे भगवान्की प्रार्थना की। कहते हैं कि उसके मुँहसे पूरा गोविन्द शब्द निकल भी नहीं पाया था कि भगवान् गरुडको पीछे छोड़कर स्वयं दौड़ आये और गजेन्द्र तथा ग्राह दोनोंका उद्धार किया। गन्धर्व अपने लोकमें गया और गजेन्द्र भगवान्का पार्षद हो गया। कोई भी सच्चे हृदयसे—आर्तस्वरसे भगवान्को चाहे जब पुकारे वे अवश्य आते हैं, यह उनकी प्रतिज्ञा है और वे इसका सर्वदा पालन करते हैं।

गणिका

प्राचीन कालमें जीवन्ती नामकी एक वेश्या हो गयी है, उसने एक तोता पाल रखा था। वह उसे बहुत प्यार करती थी। एक दिन उस रास्तेसे एक महात्मा निकले, उन्हें मालूम नहीं था कि यह वेश्याका घर है, वे वहाँ भिक्षाके लिये चले गये। जब उन्हें मालूम हुआ कि यह वेश्याका घर है और यह तोतेसे बड़ा प्रेम करती है, तब कृपा करके उन्होंने उस वेश्यासे

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा कि तुम इस तोतेको 'राम-राम' पढ़ाया करो। उनकी वाणीमें कुछ ऐसी शक्ति थी कि यह बात वेश्याके मनमें बैठ गयी। घरके आवश्यक कामकाजसे फुरसत मिलते ही वह तोतेके पास बैठ जाती और 'राम-राम' पढ़ाने लगती। यद्यपि उसे मालूम नहीं था कि यह रामनामका प्रभाव है, परंतु उसकी जीभ रामनामके उच्चारणमें इतनी अभ्यस्त हो गयी थी कि बिना राम-राम किये उससे रहा ही नहीं जाता था। अनजानमें ही सही, वह भगवान्‌का नाम तो लेती थी; इसका यह फल हुआ कि मृत्युके समय भी उसके मुँहसे 'राम-राम' निकलता रहा और वह भवसागरसे पार हो गयी। यह अनजानमें 'राम-राम' करनेका फल है।

गरुड

गरुड महर्षि कश्यपकी धर्मपत्नी विनताके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। इनके पराक्रमसे संतुष्ट होकर भगवान् विष्णुने इन्हें वाहन बनाया था। इन्हें अपने बल, पौरुष, गति आदिका कभी-कभी बड़ा अभिमान हो आता था। इन्होंने बड़े-बड़े दैत्योंको, नागोंको परास्त किया था। देवता भी इनके सामने युद्धमें नहीं ठहरते थे। एक बार काकभुशुण्डिने चपलतावश भगवान् रामके हाथसे रोटी छीन ली थी। रामकी आज्ञासे गरुडने उनका पीछा किया। दोनोंका बड़ा घोर युद्ध हुआ। काकभुशुण्डि पराजित हुए और गरुड विजयी। पराजय होनेपर तो लोग दुखी होते ही हैं, विजयी होनेपर भी लोग दुखी होते हैं; क्योंकि विजय प्राप्त होनेपर अभिमान हो जाता है जो कि दुःखका मूल है। गरुडको भी अभिमान हो गया, परंतु भक्त-भयहारी भगवान् अपने भक्तके हृदयमें अंशमात्र भी अभिमान नहीं देखना चाहते। उन्होंने गरुडका गर्व नष्ट किया और सम्भवतः इसीलिये उन्हें काकभुशुण्डिके पास ज्ञान प्राप्त करनेके लिये भी भेजा। यद्यपि अनेकों बार भगवान्‌ने स्वयं ही गरुडको उपदेश किया है। गरुडके प्रति उपदेश किये हुए उपदेशोंका संग्रह ही गरुडपुराणके नामसे प्रसिद्ध है।

गालव

पुराणोंमें गालव नामके कई व्यक्तियोंका उल्लेख मिलता है। विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम भी गालव था, परंतु यहाँ पुत्रकी चर्चा नहीं है, उनके गालव नामक शिष्यकी चर्चा है। गालवने अपने गुरु विश्वामित्रकी बड़ी सेवा की थी। एक दिन स्वयं धर्मराज महर्षि विश्वामित्रकी परीक्षा लेनेके लिये उनके शत्रु वसिष्ठका रूप धारण करके आये। उन्होंने विश्वामित्रसे भोजनकी इच्छा प्रकट की। उस समय विश्वामित्रजीके यहाँ भोजन तैयार नहीं था, वे किसी दूसरे ऋषिके आश्रमपर चले गये और वहाँ जाकर अपनी भूख मिटायी। विश्वामित्रके यहाँ जब रसोई तैयार हुई, तब वे गरम-गरम भोजन लेकर वसिष्ठ-वेशधारी धर्मके पास आये। धर्मने कहा—'मैंने तो अब भोजन कर लिया है, आप यहाँ खड़े रहिये।' विश्वामित्रने अतिथिके रूपमें आये हुए अपने शत्रुकी बात मान ली; क्योंकि उनकी दृष्टिमें उनके शत्रु वसिष्ठ ही थे। एक सौ वर्ष बीत गये। विश्वामित्रने वायुके अतिरिक्त और कुछ भोजन नहीं किया, धर्मराज फिर वसिष्ठका वेश धारण कर आये और बोले 'विश्वामित्र ! मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम आजसे ब्रह्मर्षि हुए।' विश्वामित्रको बड़ी प्रसन्नता हुई। अतिथिसत्कारका यह आदर्श सर्वथा प्रशंसनीय है।

जब विश्वामित्र सिरपर भोजन लिये खड़े थे, तब उनके शिष्य गालवने उनकी बड़ी सेवा की थी। ब्रह्मर्षि होनेपर विश्वामित्रने कहा—'बेटा ! अब तुम्हारी गुरु-भक्ति पूरी हुई, तुम्हारी परीक्षा भी पूरी हुई, अब तुम चाहे जहाँ भी जा सकते हो।' गालवने गुरुदक्षिणाके लिये बड़ा आग्रह किया। विश्वामित्रने पहले तो अस्वीकार कर दिया, परंतु उनके बहुत हठ करनेपर कुछ झुँझलाकर आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े माँगे। इसके लिये गालवको बड़ी परेशानी उठानी पड़ी। वे अपने मित्र गरुडको लेकर राजा ययातिके पास गये और उनकी तथा उनकी लड़की माधवीकी सहायतासे बड़ी कठिनाईसे उन्होंने गुरुदक्षिणा दी। उनका हठ प्रसिद्ध है।

चन्द्रमा

पुराणोंमें कहीं-कहीं चन्द्रमाको समुद्रका पुत्र कहा गया है और कहीं-कहीं अत्रिका। दक्षकी २७ कन्याओंसे इनका विवाह हुआ था। एक बार इन्होंने तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त की, राजसूय यज्ञ किया। धन, सम्पत्ति, मान, प्रतिष्ठा, बल, पौरुष और युवावस्था सब-के-सब इकट्ठे हो गये। अब भला घमण्ड क्यों नहीं होता ? गर्वसे चन्द्रमाकी आँखें अन्धी हो गयीं और उन्होंने न्याय एवं धर्मको तिलाञ्जलि दे दी। उन्होंने गुरुपत्नीसे अशिष्ट व्यवहार किया और देवताके स्थानपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे असुर हो गये। देवता बृहस्पतिके पक्षमें हुए और दैत्य चन्द्रमाके पक्षमें। घमासान लड़ाई हुई, अन्तमें ब्रह्माने बीच-बचाव किया। चन्द्रमाको उनके पुत्र बुध मिल गये। दक्ष प्रजापतिकी कृपासे चन्द्रमाकी गर्मी भी शान्त हो गयी। वे शीतल हो गये।

चित्रकेतु

श्रीमद्भागवतमें चित्रकेतुकी कथा बड़ी विचित्र है। उसकी स्त्रियाँ तो बहुत थीं, परंतु संतान किसीसे नहीं थी। राजा चित्रकेतु संतानके लिये बहुत दुखी रहा करते थे। एक दिन उनके यहाँ देवर्षि नारद और महर्षि अंगिराने आनेकी कृपा की। राजाने स्वागत-सत्कारके पश्चात् अपनी अभिलाषा कहं सुनायी। उन्होंने बहुत समझाया कि यह तुम्हारा मोह है। पुत्र होनेसे ही कोई सुखी नहीं होता, बहुत-से लोगोंको तो बहुत दुखी होना पड़ता है, परंतु चित्रकेतुके मनमें यह बात नहीं बैठी। अन्तमें ऋषियोंने अनुग्रह करके एक पुत्र दिया और कह दिया कि इससे तुम्हें हर्ष और शोक दोनों ही होंगे। हुआ भी ऐसा ही; क्योंकि जिस रानीसे पुत्र हुआ था, उससे राजा अधिक प्रेम करने लगा। दूसरी स्त्रियोंको डाह हुआ और उन्होंने राजकुमारको विष दे दिया। वह मर गया, चित्रकेतुके दुःखका पारावार न रहा। अंगिरा और नारदजी आये, उन्होंने राजाको बहुत समझाया और अन्तमें बच्चेकी जीवात्माको बुलाकर पूर्वजन्मकी कथा कहलायी। उसने बताया कि 'ये मेरे शत्रु हैं, इन्हें दुःख देनेके लिये ही मैं पैदा हुआ था। किसका कौन पिता है, किसका कौन पुत्र है! सब स्वार्थके मीत हैं।' चित्रकेतुका दुःख मिट गया, रानियोंने प्रायश्चित्त किया और नारदकी सम्मतिसे दीक्षा लेकर चित्रकेतु शेष भगवान्‌की आराधना करने लगे। उन्होंने प्रसन्न होकर वर दिया। चित्रकेतु विद्याधर हो गया और पार्वतीके शापसे वही वृत्रासुर हुआ। सत्संग मिल जानेपर एक-न-एक दिन उसका उद्धार तो होना ही था, परंतु दयामूर्ति नारदने कैसा चकमेमें डालकर उसका उद्धार किया, यह देखने योग्य है।

तपस्विनी

विश्वकर्माकी पुत्री हेमाने अपने भावपूर्ण नृत्य एवं नामसंकीर्तनसे भगवान् शंकरको प्रसन्न किया। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा कि तुम्हें दिव्यलोककी प्राप्ति होगी। उसे ब्रह्मलोकमें जानेका अधिकार प्राप्त हो गया। उसकी एक सखी थी जिसका नाम था स्वयंप्रभा, वह दिव्य नामक गन्धर्वकी पुत्री थी। हेमाने ब्रह्मलोक जाते समय अपनी सखी स्वयंप्रभासे कहा—'बहिन! तुम इस गुफामें रहकर निरन्तर भगवान् रामका चिन्तन किया करना। एक दिन रामके दूत माता जानकीको ढूँढ़ते हुए यहाँ आयेंगे, तब तुम प्रेमसे उन्हें खिलाना-पिलाना, स्वागत-सत्कार करना। उनसे अनुमति लेकर भगवान् रामके पास जाना और अपने जीवनको, आँखोंको सफल करना। तुम्हें उनकी कृपासे परमपदकी प्राप्ति होगी।' जब हनुमान्, अंगद आदि जानकीको ढूँढ़नेके लिये किष्किन्धासे चले थे तब मार्गमें इसी तपस्विनीसे भेंट हुई थी।

त्रिशंकु

इक्ष्वाकुवंशी नरपति त्रय्यारुणिके पुत्र सत्यव्रतका दूसरा नाम त्रिशंकु था। वे यज्ञ करके सदेह स्वर्गमें जाना चाहते थे। वसिष्ठने, जो कि उनके पुरोहित थे, ऐसा यज्ञ करानेसे अस्वीकार कर दिया। उनके पुत्रोंने भी अस्वीकार कर दिया। यह काम ही मर्यादाविरुद्ध और असम्भव था, परंतु त्रिशंकुने उनकी बात नहीं सुनी। उपेक्षापूर्वक कहा—'आपलोगोंका भला हो। मैं किसी दूसरेके पास जाता हूँ।' वसिष्ठजीके पुत्रोंने त्रिशंकुकी उपेक्षा देखकर शाप दे दिया कि तुम चाण्डाल हो जाओ। सचमुच वे चाण्डाल हो गये, उनके भाई-बन्धु, मन्त्री और प्रजाने उनका परित्याग कर दिया। वे अत्यन्त दुःखी होकर विश्वामित्रकी शरणमें गये। विश्वामित्रने उन्हें आश्वासन दिया और अपने पुत्रोंसे ऋषियोंको निमन्त्रण दिलाकर यज्ञ प्रारम्भ किया। वसिष्ठके पुत्र और एक ब्राह्मणने कह दिया कि जिस यज्ञमें चाण्डाल यजमान और पुरोहित अब्राह्मण हों, उसमें देवता नहीं आ सकते। ऐसा ही हुआ, कोई देवता नहीं आया। विश्वामित्रने अपनी तपस्याके बलसे त्रिशंकुको स्वर्गमें भेजा, परंतु इन्द्रादि देवताओंने उन्हें वहाँ स्थान नहीं दिया। इसपर विश्वामित्र रोषमें आ गये, उन्होंने कहा मैं दूसरे स्वर्गकी सृष्टि करूँगा। और आकाशमें दूसरे ग्रह-नक्षत्र आदिकी सृष्टि प्रारम्भ की। देवता लोग डर गये। वे विश्वामित्रके पास आये। उनका विचार-विनिमय हुआ। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वामित्र नयी सृष्टि न करें और त्रिशंकु इसी प्रकार शून्यमें स्थित रहें। मर्यादाके विरुद्ध, सृष्टिके नियमोंके विरुद्ध, असम्भवको सम्भव करनेकी चेष्टाका तथा अत्यन्त लोभका यही परिणाम होता है कि वह वस्तु तो मिलती ही नहीं, अपने हाथकी भी चली जाती है।

दक्ष प्रजापति

सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माके दाहिने अँगूठेसे दक्ष प्रजापतिका जन्म हुआ। ब्रह्माकी आज्ञासे इन्होंने पहले मानस सृष्टि की, पीछे मैथुनी सृष्टि भी की। इनके बहुत-से लड़के नारदके उपदेशसे घर-बार त्यागकर संन्यासी बन गये और फिर नहीं लौटे। जब सब लड़कोंकी यही दशा हुई, तब दक्षने खीझकर नारदको शाप दे दिया कि तुम ढाई घड़ीसे अधिक कहीं नहीं ठहर सकोगे। दक्षकी कन्याओंका बहुत बड़ा विस्तार है। कश्यप, चन्द्रमा, धर्मराज आदिसे इन्हींकी कन्याओंका विवाह हुआ है। दक्षकी ही कन्या सती थीं, जिनका विवाह भगवान् शंकरसे हुआ था।

दक्ष भगवान् शंकरसे बहुत चिढ़ते थे। दक्ष प्रवृत्तिमार्गी थे, सृष्टि बढ़ानेके पक्षमें थे और शंकर निवृत्तिमार्गी हैं, संहारके पक्षमें हैं। दक्ष उन्हें मर्यादाविरोधी कहा करते थे। एक दिन शंकर ध्यानमग्न थे, सब देवता उन्हें घेरकर बैठे हुए थे। दक्ष प्रजापतिके आनेपर सब लोगोंने उठकर उनका स्वागत किया, परंतु शंकर ज्यों-के-त्यों बैठे रहे। दक्षने इसे अपना अपमान समझा। वे बिगड़ उठे और भगवान् शंकरको शाप दे दिया कि ये अबसे यज्ञमें भाग न पायें। वहाँसे जाकर ऐसे यज्ञका श्रीगणेश करनेके लिये उन्होंने एक प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। भगवान् शंकर इन बातोंसे उदासीन थे मानो कुछ हुआ ही न हो।

सतीको दक्षके शापका पता नहीं था, एक दिन देवताओंको दक्ष प्रजापतिके घरकी ओर जाते देखकर उन्हें बड़ी उत्सुकता हुई। पता लगानेपर मालूम हुआ कि दक्ष प्रजापतिके यहाँ कोई यज्ञ हो रहा है। इन्होंने भी जानेकी इच्छा प्रकट की और शंकरकी अनुमति न प्राप्त होनेपर भी चली गयीं। वहाँ आदर-सत्कार न पाकर और यज्ञमें शंकरका भाग न देखकर वे योगाग्निसे जल गयीं। शंकरके गणोंने यज्ञमें विघ्न डालनेकी चेष्टा की, परंतु उन्हें सफलता न हुई। अन्तमें वीरभद्रने आकर यज्ञ-ध्वंस किया। दक्षका सिर काटकर यज्ञकुण्डमें डाल दिया, फिर ब्रह्माकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर शंकरजीने दक्षको जीवित किया। सती पार्वतीके रूपमें हिमालयके घर पैदा हुईं। दक्षने ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर भगवान् शंकरकी महत्ता स्वीकार की।

दधीचि

एक बार देवराज इन्द्रको गर्व हो गया कि मैं त्रिलोकीका स्वामी हूँ। गर्वके कारण उनकी बुद्धि मारी गयी और उन्होंने अपने कुलगुरु बृहस्पतिका अपमान कर दिया। वे रूठकर अन्यत्र चले गये। गुरुका रूठना सुनकर दैत्योंने इन्द्रपर चढ़ाई कर दी। वे डरकर ब्रह्माके पास गये। उन्होंने त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपको पुरोहित बनाकर काम चलानेकी सलाह दी, उन्होंने वैसा ही किया। विश्वरूपके बतलाये हुए नारायण-कवचके प्रभावसे इन्द्रकी जीत हुई। उन्होंने अपनी विजयके उपलक्षमें विश्वरूपके पौरोहित्यमें एक यज्ञ किया। विश्वरूप यज्ञमें धीरेसे दैत्योंको भी आहुति दे दिया करते थे। जब इन्द्रको यह बात मालूम हुई तब उन्होंने विश्वरूपके तीनों सिर धड़से अलग कर दिये। इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी। ब्रह्माने उस हत्याको किसी प्रकार बाँट-बूँटकर छुड़ाया। विश्वरूपके मरनेसे त्वष्टाको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने यज्ञ करके वृत्रासुरको पैदा किया। वह त्वष्टाकी आज्ञासे स्वर्गमें गया और उसने युद्ध करनेके लिये इन्द्रको ललकारा। इन्द्र ब्रह्माके पास गये। उन्होंने कहा—'भाई! इसकी मृत्यु तो दधीचिकी हड्डियोंसे बने हुए वज्रके द्वारा होगी।' वेदोंमें भी दधीचिका वर्णन आता है। विभिन्न स्थानोंमें उनके पिताका नाम भी भिन्न-भिन्न मिलता है। हाँ, वे एक सर्वज्ञ और भगवद्भजनमें लगे हुए सर्वभूतहितेरत ऋषि थे। जब इन्द्रने जाकर उनसे प्रार्थना की कि आपकी हड्डीसे ही जगत्का कल्याण और आसुरी शक्तिका विनाश होगा, तो उन्होंने प्रसन्नतासे स्वीकार कर लिया। महात्माओंका जीवन जगत्के लिये होता है—भगवान्की प्रसन्नताके लिये होता है। उनकी हड्डीसे वज्र बना और उससे वृत्रासुर तथा अनेक असुरोंका वध किया गया। दधीचिकी कीर्ति आजतक बड़े आदरके साथ गायी जाती है। भगवान्ने कृपा करके उनकी आत्मा अपनी आत्मामें मिला ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नल-नील

ये विश्वकर्माके वानरपुत्र हैं। ये बचपनमें स्वभाववश बड़े ही नटखट थे। ऋषियोंमें रहते। वे लोग जब इन्द्रियोंको समेटकर परमात्माके ध्यानमें मग्न हो जाते, तब ये दोनों भाई चुपके-से दबे पाँव आते और उनके ठाकुरजीकी मूर्ति उठाकर जलमें फेंक देते। वात्सल्यस्नेह होनेके कारण और तपमें विघ्न पड़ जानेके कारण ऋषिलोग इनका अनिष्ट तो कर नहीं सकते थे, इसलिये वे चुप रह जाते। जब इनका उपद्रव बहुत बढ़ गया, तब एक दिन ऋषियोंने सलाह करके शापके रूपमें उन्हें ऐसा आशीर्वाद दे दिया कि इनके हाथसे जिसका स्पर्श हो जाय, वह वस्तु चाहे जितनी भारी हो जलमें न डूबे। तबसे ये किसीकी मूर्ति उठाकर जलमें फेंक देते तो वह ऊपर-ही-ऊपर उतराती रहती और ऋषिलोग उठा लाते। ऋषियोंके इस आशीर्वादके प्रभावसे ही सेतुबन्धनके समय नल-नीलने भगवान् रामकी सेवा की। उनके हाथसे समुद्रमें रखे हुए पत्थर डूबते नहीं थे।

नहुष

राजा अम्बरीषके पुत्रका नाम था नहुष। वह बड़ा प्रतापी राजा था। एक बार जब वृत्रासुरको मारनेके कारण इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी और वे स्वर्गसे भगकर मानस-सरोवरमें छिप गये, तब लोगोंने सर्व गुणसम्पन्न देखकर नहुषको इन्द्रासनपर बैठाया। नहुष ही स्वर्गका शासन करने लगे। इन्द्रका राज्य प्राप्त होनेपर नहुषके मनमें बड़ा अभिमान हुआ और उन्होंने इन्द्राणीपर अपना हक बताकर उनसे अनुचित प्रस्ताव किया। इन्द्राणी बहुत दिनोंतक टालती रहीं। जब नहुषके अत्याचारकी हद हो गयी, तब उन्होंने देवगुरु बृहस्पतिसे सलाह ली और उनकी सम्मतिसे कहला भेजा कि तुम सप्तर्षिकी सवारीपर चढ़कर आओ तो मैं वरण कर लूँगी। ऐश्वर्य एवं कामके मदसे मत्त होनेके कारण नहुषने सप्तर्षियोंको बुलाकर उन्हें पालकीमें लगा दिया। ऋषियोंने कभी पालकी ढोयी नहीं थी, चलनेमें किसी जीव-जन्तुकी हत्या न हो जाय इसलिये वे धीरे-धीरे चल रहे थे। नहुष उन्हें बार-बार डाँट रहा था—सर्प-सर्प अर्थात् चल-चल। कई बार कहनेपर अगस्त्यने कहा—'तू बार-बार सर्प-सर्प कहता है, जा तू सर्प हो जा।' नहुष उसी क्षण सर्प होकर पृथ्वीपर गिर गया। ब्राह्मणोंने इन्द्रसे प्रायश्चित्त करवाकर उनकी ब्रह्महत्या छुड़ा दी और उनके पदपर बैठा दिया। शापके पश्चात् नहुष अगस्त्यके शरणागत हुए। उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दे सकेगा, उसीके द्वारा तुम्हारी मुक्ति होगी। वनवासके समय सर्परूपी नहुषने भीमको पकड़ लिया, युधिष्ठिरने नहुषके प्रश्नोंके उत्तर देकर भीम और नहुष दोनोंको मुक्त किया।

मकरी और कालनेमि

इन्द्रकी सभामें नाच-गाकर सभासदोंको रिझानेवाले ये दोनों पहले अप्सरा और गन्धर्व थे। एक दिन इनके नृत्य और गानकी बड़ी प्रशंसा हुई, सब सभासद् वाह-वाह कहने लगे। वहीं दुर्वासा ऋषि भी थे। उन्होंने इनके नृत्य और संगीतकी कुछ प्रशंसा नहीं की। उस अप्सरा और गन्धर्वने सोचा कि ये नृत्य और गायनके सम्बन्धमें कुछ नहीं जानते, इससे उन्हें हँसी आ गयी। इसपर दुर्वासाने शाप दिया कि यह अप्सरा मकरी हो जाय और गन्धर्व राक्षस। जब उन दोनोंने ऋषिके पैरोंपर गिरकर बड़ी प्रार्थना की, बहुत गिड़गिड़ाये, तब उन्होंने बता दिया कि 'त्रेतायुगमें रामदूत हनुमान्‌के चरणोंका स्पर्श होनेसे मकरीका और उनके मारनेसे राक्षस कालनेमिका उद्धार होगा।'

मार्कण्डेय

महर्षि मृकण्डुके पुत्र मार्कण्डेय बड़े ही तपस्वी एवं गुरुभक्त थे। उनकी तपस्या और गुरुभक्तिके प्रभावसे अल्पायुमें ही होनेवाली उनकी मृत्यु टल गयी और वे दीर्घजीवी हो गये। उनकी भयङ्कर तपस्यासे घबड़ाकर इन्द्रने बहुत-सी अप्सराएँ एवं कामदेवको भेजा, परंतु वे मार्कण्डेयके तेजसे जलने लगे और वहाँसे लौट आये। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् नारायणने उन्हें दर्शन दिया और बार-बार वर माँगनेका आग्रह किया। मार्कण्डेयने कहा—'आपके दर्शनसे बढ़कर और कौन-सी वस्तु है, जिसे मैं माँगूँ। फिर भी आप प्रसन्न ही हुए हैं तो कुछ अपनी लीला दिखाइये।' भगवान्‌ने उन्हें प्रलयकी लीला दिखायी। सारी सृष्टिके जलमग्न होनेपर उन्हें वटके पत्तेपर सोये हुए भगवान्‌के दर्शन हुए। उस मनोहर बालककी मूर्तिको देखकर वे मुग्ध हो गये और जब खिसककर उनके पास गये तो श्वासके साथ खिंचकर उनके पेटमें चले गये। वहाँ उन्हें पूर्ववत् सब सृष्टिके दर्शन हुए, फिर श्वासद्वारा वे बाहर आये। वे उस मधुरमूर्तिसे आकृष्ट होकर पुनः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलिङ्गन करने जा ही रहे थे कि भगवान् अन्तर्धान हो गये। उन्होंने मन-ही-मन भगवान्‌को प्रणाम किया और उनके शरणागत होकर सदाके लिये उनकी मूर्ति अपने हृदयमें बैठा ली।

एक बार पार्वतीजी और भगवान् शंकर विचरते हुए मार्कण्डेयके आश्रमकी ओर निकले। पार्वतीकी प्रेरणासे भगवान् शंकरने उनके पास जाकर उनसे वर माँगनेको कहा। मार्कण्डेय मुनिने उनकी पूजा करके कहा—'मुझे और किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, आप कृपा करके ऐसा वर दीजिये कि भगवान्‌के श्रीचरणोंमें मेरी भक्ति बनी रहे। शिवने कहा—'तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो, तुम्हें अमर यश और कल्पभरका जीवन प्राप्त हो, तुम्हें त्रिकालविषयक ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य और पुराणोंका आचार्यत्व प्राप्त हो।' मार्कण्डेय मुनि चिरजीवी हैं। अब भी कहीं एकान्तमें तपस्या करते हुए जगत्‌के कल्याणार्थ अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

ययाति

ययाति राजा नहुषके पुत्र थे। इनकी दो स्त्रियाँ थीं, एकका नाम था देवयानी और दूसरीका शर्मिष्ठा। देवयानी दैत्यगुरु शुक्राचार्यकी कन्या थी और शर्मिष्ठा दैत्यराज वृषपर्वाकी। कुमारी अवस्थामें इन दोनोंमें कहा-सुनी और विवाद हो जानेके फलस्वरूप शुक्राचार्य वृषपर्वापर अप्रसन्न होकर उनकी राजधानीसे जा रहे थे। तब वृषपर्वाने अपनी पुत्री शर्मिष्ठाको देवयानीकी दासीके रूपमें देकर उन्हें प्रसन्न किया। जब ययातिका देवयानीसे विवाह हुआ, तब उनसे यह प्रतिज्ञा करा ली गयी थी कि वे शर्मिष्ठाको दासीके रूपमें ही रखें, कभी अर्धाङ्गिनी न बनावें; परंतु ययातिने इस प्रतिज्ञाका पालन न किया। देवयानीके गर्भसे दो पुत्र हुए—यदु और तुर्वसु। शर्मिष्ठाके गर्भसे तीन पुत्र हुए—द्रुह्यु, अनु और पुरु। जब देवयानीको यह बात मालूम हुई तब वह क्रोधित होकर अपने पिताके पास चली गयी। राजा भी उसे मनानेके लिये गये। शुक्राचार्यने सब समाचार सुनकर ययातिको शाप दिया कि तुम बुड्ढे हो जाओ, वे उसी क्षण बुड्ढे हो गये।

बहुत अनुनय-विनय करनेपर शुक्राचार्यने इतनी छूट दी कि यदि तुम्हारा कोई पुत्र तुम्हें अपनी जवानी देकर तुम्हारा बुढ़ापा ले ले तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो सकती है। ययातिने अपने सब पुत्रोंको बुलाकर अवस्थापरिवर्तनका प्रस्ताव किया। परंतु बड़े पुत्रोंने इसे अधर्म कहकर अस्वीकार कर दिया। केवल छोटे पुत्र पुरुने 'पिताकी जो आज्ञा' कहकर अपनी जवानी दे दी और उनका बुढ़ापा ले लिया। पुत्रकी जवानी लेकर ययाति बहुत दिनोंतक भोग-विलास करते रहे, परंतु उनकी तृप्ति न हुई। अन्तमें उन्हें विषयोंसे बड़ी विरक्ति हुई और उन्होंने कहा कि विषयोंके भोगसे तो किसीको शान्ति मिल ही नहीं सकती, इनके त्याग और कामनाओंके नाशसे ही शान्ति मिल सकती है। उन्होंने पुरुको उसकी जवानी लौटा दी और अपना बुढ़ापा ले लिया। आज्ञापालन करनेके कारण पुरुको राजगद्दीपर बैठाकर वे स्वयं तपस्या करने चले गये और अन्तमें सद्गतिको प्राप्त हुए।

रन्तिदेव

रन्तिदेव महाराज संकृतिके पुत्र थे। इनके जैसा उदार दाता नरपति शायद ही कोई हुआ हो। इन्होंने अपना सर्वस्व दान कर दिया। जो कुछ मिल जाता सकुटुम्ब वही खाकर रह जाते। एक बार ऐसा अवसर आया कि अड़तालीस दिनोंतक इन्हें अन्न-जल नहीं मिला; उनचासवें दिन इन्हें घी, खीर, हलुआ और पानी मिला। ये भोजन करने जा ही रहे थे कि वहाँ एक ब्राह्मण अतिथि आ पहुँचा, रन्तिदेवने उस अतिथिको अपना भाग खिला दिया। उसे विदा करके वे भोजन करनेके लिये बैठनेवाले ही थे कि एक शूद्र आ पहुँचा। उस समय उनकी स्त्री और बच्चे भूख-प्याससे व्याकुल हो रहे थे; परंतु वे सब आगन्तुक अतिथिमें भगवान्‌का दर्शन कर रहे थे, इसलिये बड़ी प्रसन्नतासे अवशिष्ट भोजनमेंसे उसे भरपेट खिला दिया। अब थोड़ा-सा अन्न बच रहा था। वे उसे पानेवाले ही थे कि कुत्तोंसे घिरा हुआ एक चाण्डाल आ पहुँचा और उसने कहा—'हम सब भूखे हैं, अन्न देकर हमारी प्राणरक्षा कीजिये।' राजा रन्तिदेवने वेदोंमें वर्णित **'श्वपतये नमः'** कहकर कुत्तोंके स्वामीको नमस्कार किया और जो कुछ उनके पास था, सब उसे खिला दिया। अब उनके पास केवल पानी बच रहा था। उन्होंने पीनेके लिये ज्यों ही उसे उठाया त्यों ही एक कसाई पुकारता हुआ आया—पानी बिना मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। राजाके मनमें उस समय यह भाव आया कि 'मैं भगवान्‌से ब्रह्मलोक नहीं चाहता, योगसिद्धियोंकी मुझे आवश्यकता नहीं; और तो क्या, यदि साक्षात् मोक्ष मुझे प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो तो मैं वह भी नहीं चाहता। भगवन्! कृपा करके मुझे यह वरदान दीजिये कि मैं सब दुखियोंके हृदयमें स्थित होकर उनके दुःखोंका अनुभव करता रहूँ और वे सुखी हो जायँ।' रन्तिदेवने बड़े प्रेमसे वह जल उस कसाईको पिला दिया। उसी समय रन्तिदेवकी परीक्षाके लिये छद्मरूप धारण किये हुए ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश उनके सामने प्रकट हुए और रन्तिदेवको उन्होंने वाञ्छित वरदान देना चाहा, परंतु रन्तिदेवने भगवान्के भजनके अतिरिक्त और कुछ नहीं माँगा। उनके सामनेसे जगे हुए मनुष्यके स्वप्नकी भाँति यह माया नष्ट हो गयी और वे विशुद्ध आत्मस्वरूपमें स्थित हो गये।

राहु-केतु

भगवान्की कृपा, शक्ति एवं सहायतासे देवता और दैत्योंने समुद्र-मन्थन किया। जब धन्वन्तरि अमृतका कलश लिये हुए समुद्रसे बाहर निकले, तब दैत्योंने उनसे वह कलश छीन लिया और फिर आपसमें लड़ने-झगड़ने लगे कि पहले मैं पीऊँगा, पहले मैं पीऊँगा। उस समय देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान्ने मोहिनी-अवतार धारण किया और अपनी मायाभरी चितवनसे दैत्योंको मोहित करके उन्होंने अपनेको पंच स्वीकार करा लिया। दैत्य और देवताओंको अलग-अलग पंक्तिमें बैठाकर मोहिनीने अपनी दृष्टिसे दैत्योंको मोहित कर रखा और वे देवताओंको अमृत पिलाने लगीं। सिंहिकापुत्र राहुने यह बात ताड़ ली और वह देवताओंका-सा वेष बनाकर सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें जा बैठा। मोहिनी पंक्तिमें बैठनेके कारण राहुको अमृत पिलाने ही जा रही थीं कि सूर्य और चन्द्रमाने उन्हें बतला दिया। उसका कपट खुलते ही विष्णुभगवान्का चक्र चला और राहुका सिर धड़से अलग हो गया। परंतु उसके मुँहमें अमृत पहुँच चुका था, इसलिये वह मरा नहीं। बतला देनेके कारण चन्द्रमा और सूर्यसे वह द्वेष करने लगा। क्रमशः पूर्णिमा और अमावस्याको उनपर आक्रमण करता है, जिससे कि ग्रहण लगता है। उस कटे हुए सिरका नाम राहु और धड़का नाम केतु है।

विराध

पुराणोंमें विराधकी उत्पत्ति भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्राप्त होती है। एक स्थानपर ऐसी कथा आती है कि तुम्बुरु गन्धर्व रम्भा अप्सरापर मोहित हो जानेके कारण यक्षराज कुबेरकी सेवा समयपर न कर सके। कुबेरने शाप दे दिया कि 'तुम राक्षस हो जाओ।' वही तुम्बुरु जब राक्षसकी पत्नी शतह्रदाके गर्भसे पैदा हुआ, तब उसका नाम विराध पड़ा। अनुनय-विनय करनेपर कुबेरने ही यह छूट कर दी थी कि भगवान् श्रीरामके बाणोंसे विराध राक्षस-योनिसे छूट जायगा। सीताको उठाकर ले भागनेकी चेष्टा करनेपर श्रीरामने उसका उद्धार किया।

वसिष्ठ

महर्षि वसिष्ठ ब्रह्माके मानसपुत्र हैं। इनका चरित्र बड़ा लम्बा है। इनकी धर्मपत्नी श्रीअरुन्धतीजी हैं। जब इन्हें पृथ्वीपर आकर रघुवंशियोंके पुरोहित बननेकी आज्ञा हुई, तब इन्होंने उसे नीच कर्म बतलाकर स्पष्ट अस्वीकार कर दिया, परंतु जब ब्रह्माने बतलाया कि इस वंशमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम अवतीर्ण होनेवाले हैं तब इन्होंने भगवान्के दर्शनके लोभसे वह काम स्वीकार कर लिया। इनके तपोबलसे अनेकों दुखियोंका दुःख दूर हुआ है, जगत्का महान् कल्याण हुआ है। काम-क्रोधादि शत्रु पराजित होकर महर्षि वसिष्ठकी चरणसेवा किया करते थे। विश्वामित्रके द्वेष करनेपर भी ये उनसे प्रेम ही करते थे। एक बार जब विश्वामित्र रातको चुपकेसे वसिष्ठका अनिष्ट करने आये हुए थे, तब उन्होंने अपने कानों सुना कि वसिष्ठ अरुन्धतीसे एकान्तमें उनकी प्रशंसा कर रहे हैं। योगवासिष्ठके उपदेशकके रूपमें महर्षि वसिष्ठ भगवान् रामके भी गुरु हैं। इससे अधिक उनकी महिमाके सम्बन्धमें और क्या कहा जा सकता है। उनके जीवनमें आदर्श त्याग है, तपस्या है, ज्ञान है, वैराग्य है और सबसे बढ़कर है भगवत्प्रेम। आज भी वे भगवान्की आज्ञासे सप्तर्षिमण्डलमें रहकर सारे संसारमें शान्तिका विस्तार करते हैं।

विश्वामित्र

पुराणोंमें विश्वामित्रके सम्बन्धकी बहुत-सी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। उनमेंसे एक इस प्रकार है—ये राजा गाधिके पुत्र थे। वसिष्ठकी कामधेनु गौको देखकर इन्होंने उसे लेना चाहा, परंतु वसिष्ठने उसे ब्राह्मणोंकी सम्पत्ति बतलाकर देनेसे अस्वीकार कर दिया। इसपर विश्वामित्रने क्रोधित होकर उनसे लड़ाई छेड़ दी। परंतु ब्रह्मबलके सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका क्षत्रियबल कुछ काम न कर सका, ये हार गये। अब विश्वामित्रके मनमें यह इच्छा हुई कि मैं भी ब्रह्मबल अर्थात् ब्राह्मणत्व प्राप्त करूँ। उन्होंने बहुत दिनोंतक घोर तपस्या की और अन्तमें ब्रह्माने उन्हें ब्राह्मण होनेका वरदान दे दिया। यों तो विश्वामित्र जन्मसे भी आधे ब्राह्मण ही थे।

वसिष्ठ विश्वामित्रको ब्राह्मण नहीं स्वीकार करते थे। बीच-बीचमें दोनोंमें कुछ विवाद भी हो जाया करता था। एक बार दोनोंमें यह विवाद हुआ कि तपस्या बड़ी है या सत्संग। विश्वामित्र तपस्याके पक्षमें थे और वसिष्ठ सत्संगके। अपने विवादका निर्णय करानेके लिये दोनों शेष भगवान्‌के पास पहुँचे। उन्होंने सब बातें सुनकर कहा कि 'भाई! मेरे सिरपर इतनी बड़ी पृथ्वीका भार है, तुममेंसे कोई एक क्षणके लिये इसे ले ले तो मैं निर्णय कर दूँ।' विश्वामित्रने अपनी हजारों वर्षकी तपस्याके फलका संकल्प करके एक क्षणतक पृथ्वीको धारण करना चाहा, पर न कर सके। वसिष्ठने एक क्षणके सत्संगका फल लगाकर समस्त पृथ्वी धारण कर लिया। बिना कुछ कहे ही निर्णय हो गया और दोनों वहाँसे लौट आये।

विश्वामित्रके मनमें वसिष्ठके प्रति कुछ दुर्भावना शेष थी। एक दिन पूर्वसंस्कारवश वह उभड़ आयी और वे वसिष्ठका अनिष्ट करनेके लिये जा पहुँचे। उस समय अरुन्धती और वसिष्ठ आपसमें विश्वामित्रकी ही चर्चा कर रहे थे। अरुन्धतीने कहा—'आजकल विश्वामित्रके तपकी बड़ी प्रशंसा हो रही है, सुना है कि वे अपने तपोबलसे क्षत्रियसे ब्राह्मण हो गये।' वसिष्ठने कहा—'सच्ची बात है, वर्तमान समयमें विश्वामित्र बहुत ही ऊँचे तपस्वी हैं, उनके ब्राह्मण होनेमें भला किसे संदेह है।' वसिष्ठको एकान्तमें इस प्रकार बातें करते देख-सुनकर विश्वामित्रका मन निर्मल हो गया, वे जाकर वसिष्ठके गले लगे और फिर तबसे दोनोंमें मित्रता हो गयी।

शृङ्गी

शृङ्गी ऋषिका दूसरा नाम ऋष्यशृङ्ग था। इनके पिता कश्यपतनय महात्मा विभाण्डक थे। उन दिनों अङ्गदेशके राजा रोमपादसे अयोध्याधिपति दशरथकी बड़ी मित्रता थी। रोमपादको कोई संतान न होनेके कारण बड़ा दुःख था, इससे दशरथने अपनी कन्या शान्ता उन्हें दे दी थी। एक बार अङ्गदेशमें अवर्षणके कारण दुर्भिक्ष पड़ गया। जब प्रजा बहुत दुखी हुई, तब राजा रोमपादने ऋष्यशृङ्गको बुलाकर एक यज्ञ करवाया और अपनी पुत्री शान्ताका विवाह उनसे कर दिया। वर्षा हुई, सब लोग सुखी हो गये। जब यह समाचार दशरथको मालूम हुआ, तब महर्षि वसिष्ठकी अनुमतिसे उन्हें अयोध्यामें बुलाया और उनकी उपस्थितिमें पुत्रेष्टि यज्ञ किया, जिस यज्ञके चरुभक्षणसे रानियोंको गर्भ रहा और श्रीराम-लक्ष्मण आदि पुत्र उत्पन्न हुए।

शिबि

राजा शिबि काशीनरेश उशीनरके पुत्र थे। वे अपने समयके बड़े ही धर्मात्मा और दानी हो गये हैं। एक बार उन्होंने सौ यज्ञोंका संकल्प किया। कुछ ही दिनोंमें सौ यज्ञ पूरे हो जानेवाले थे, परंतु अपना राजसिंहासन छिन जानेके भयसे इन्द्रने बाधा डाल दी। उन्होंने अग्निको बनाया कबूतर और स्वयं बने बाज। कबूतर आगे-आगे भगा जा रहा था और बाज उसका पीछा कर रहा था। भागते-भागते वह कबूतर शिबिकी गोदमें जा गिरा। बाजरूपधारी इन्द्रने जाकर कहा—'राजन्! यह मेरा आहार है, इसे मुझे दे दीजिये।' शिबिने कहा—'शरणागतका परित्याग ब्रह्महत्या और गोहत्यासे भी बढ़कर है। इसकी रक्षा करना ही मेरा धर्म है। इसके अतिरिक्त जो चाहो तुम ले सकते हो।' अन्तमें कबूतरके बदले राजाका उतना ही मांस लेना बाजने स्वीकार किया। राजा शिबि तराजूके एक पलड़ेपर कबूतरको बैठाकर दूसरे पलड़ेपर अपना मांस काट-काटकर रखने लगे। जब उससे कबूतरके बराबर मांस न हुआ तब वे स्वयं तराजूपर बैठ गये। उनकी धर्मनिष्ठा देखकर चारों ओर जय-जयकी ध्वनि होने लगी और स्वयं भगवान् विष्णुने प्रकट होकर उन्हें अपना परम धाम दिया।

जो शत्रुको मित्र बनाता और मित्रसे द्वेष करते हुए उसे कष्ट पहुँचाता है तथा सदा बुरे कर्मोंका आरम्भ किया करता है, उसे मूढ़ चित्तवाला कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौराणिक कथाओंका तात्पर्य — भगवत्प्राप्ति

(डॉ॰ श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰)

पुराण-साहित्य भारतीय संस्कृतिकी अमूल्य निधि है। इसमें विविध रस, अनुभव, मानव-जीवनके लक्ष्य, भगवत्प्राप्ति तथा जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होनेका उपाय तथा अन्य उपयोगी तत्त्व रोचक-शैलीमें दिये गये हैं। पौराणिक, नैतिक और धार्मिक कथाओंमें जीवनमें काममें आनेवाली अनेक उपयोगी बातोंका वर्णन और विवेचन मिलता है। इसमें सत्य, न्याय, प्रेम, भक्ति, वैराग्य, दान, सहयोग, कर्तव्यनिष्ठा, भ्रातृभाव, आदर्श मित्रता, मधुर सम्बन्ध, ईमानदारी आदि दैवी तत्त्वोंको प्रतिष्ठित किया गया है।

राष्ट्रिय चरित्रको समुन्नत और दृढ़ बनाने, नैतिक मूल्योंकी स्थापना, उच्च आदर्शोंकी प्रतिष्ठा कथाओंके माध्यमसे ही हो सकती है। कथाओंके माध्यमसे सुधारवादी दर्शनके उज्ज्वल पक्षकी चर्चा की जा सकती है। हमारा पौराणिक कथासाहित्य धर्म, दर्शन, नीति, संस्कृतिके उच्च आदर्शोंकी प्रतिष्ठा करता है। प्राचीन कथासाहित्यमें हर जीवनमें काममें आनेवाली घटनाएँ, चरित्र, परिस्थितियाँ मिलती हैं। भक्त प्रह्लाद, श्रवणकुमार, भगवान् राम, लव-कुश, कृष्ण, सुदामा, युधिष्ठिर, ऋषि-मुनियों तथा देवी-देवताओंकी भव्य कथाएँ, सूर्य तथा चन्द्रवंशी-प्रधान चरित-नायकोंके आख्यान एवं तीर्थ-माहात्म्य अन्ततः भगवत्प्राप्तिके आदर्श प्रस्तुत करती हैं। ये कथाएँ सत्य, न्याय, दया, सहयोग, एकता, संगठन आदि उपयोगी तत्त्वोंके प्रति संवेदनशील बनाती हैं। मानव-जीवनके सही विकासके लिये साहस, हिम्मत-बहादुरी, लगन और उच्च आदर्शोंकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न दिखानेवाली कथाएँ जीवनसे जुड़कर लाभ पहुँचाती हैं। पौराणिक कथाओंका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति, पाठकोंके मनपर दृढ़तासे अङ्कित हो जाता है। कम पढ़ी-लिखी महिलाएँ, गाँववाले तथा मजदूरवर्ग भी गूढ़ रहस्योंको समझ लेते हैं। प्राचीन चरित-नायकों और घटनाओंके माध्यमसे नयी समस्याओंका हल और प्रश्नोंका उत्तर दिया जा सकता है।

हमारी पौराणिक धर्म-कथाएँ नाना रूपोंमें भगवत्प्राप्तिके उद्देश्यको पूर्ण करती हैं। उपदेशपूर्ण इतिवृत्त रोचक कथानकोंके साथ भारतीय पुराण साहित्य भी उपलब्ध हैं। महाभारत तो अद्भुत कथा-साहित्यका ग्रन्थ है। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत तथा भागवत आदि पुराण धर्मका गूढ़ मर्म स्पष्ट करनेवाली सैकड़ों शिक्षाप्रद एवं रोचक कथाओंके भण्डार हैं। पुराणोंमें धार्मिक कथाओंको सुन्दर प्रतीकोंकी शैलीमें सँजोया गया है। उन प्रतीकोंका सही अर्थ न मालूम होनेसे वे रूढ़ कथाएँ बनती जा रही हैं। आज आवश्यकता यह है कि उनका मानवीय दृष्टिसे इतिहासके परिप्रेक्ष्यमें मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाय। पुराण कथा-साहित्यके श्रवण-पठनसे स्वाभाविक ही पुण्य-लाभ, अन्तःकरणकी शुद्धि, उत्तम कार्योंमें रुचि और क्षुद्र विषयवासनाओंसे विरक्ति होती है। मनुष्यको ऐहिक और पारलौकिक हानि-लाभका भी यथार्थ ज्ञान हो जाता है। सभी धर्म-कथाएँ सदाचारका महत्त्व स्पष्ट करती हैं। विभिन्न तीर्थोंके माहात्म्यकी पवित्र कथाएँ युग-युगसे हमारे यहाँ लोकप्रिय रही हैं। संसार बदल गया, वैज्ञानिक युग आ गया, मनोविज्ञानका जमाना है, फिर भी ये कभी न भूलनेवाली धर्मकथाएँ आज भी जनतामें लोकप्रिय हैं और पढ़ने-सुननेको निमन्त्रण देती हुई प्रतीत होती हैं। आवश्यकता है कि माता-पिता, संरक्षक, अध्यापक, समाजसेवक, मठ-मन्दिरोंके पुजारी रोचक-शैलीमें इन्हें प्रस्तुत करते रहें।

मुक्तिका सहज उपाय

यत्र विष्णुकथा पुण्या शुभा लोकमलापहा।
तत्र सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि विविधानि च। यत्र प्रवहते पुण्या शुभा विष्णुकथापरा॥
तद्देशवासिनां मुक्तिः करसंस्था न संशयः॥ (स्कन्द॰, वैष्णव॰, वैशाख॰ १४। ४८-५०)

'जहाँ लोगोंके पापोंका नाश करनेवाली भगवान् विष्णुकी पवित्र कथा होती है, वहाँ सब तीर्थ और अनेक प्रकारके क्षेत्र स्थित रहते हैं। जहाँ विष्णुकथारूपी पुण्यमयी नदी बहती है, उस देशमें निवास करनेवालोंकी मुक्ति उनके हाथमें ही है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराणोंका परम प्रयोजन—श्रेय और प्रेयकी प्राप्ति

(आचार्य डॉ॰ श्रीजयमन्तजी मिश्र)

भारतीय धार्मिक तथा सांस्कृतिक परम्परामें पुराणोंका अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। पुराण एक ऐसा विश्वकोश है, जिसमें धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक आदि सभी विषय अति सरल एवं सुगम भाषामें वर्णित हैं। वैदिक वाङ्मयमें वर्णित विषय सर्व-साधारणगम्य नहीं हैं। उन सबका रहस्य पुराणोंमें उपाख्यानों-द्वारा सुस्पष्ट किया गया है। अतः वेदनिहित तत्त्वोंकी जानकारीके लिये पौराणिक साहित्यका श्रवण-मनन अत्यावश्यक है। इसीलिये इतिहास-पुराणोंके द्वारा वेदोपबृंहणका विधान किया गया है। पुराणोंके परिज्ञानके बिना वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद्का ज्ञाता भी ज्ञानवान् नहीं माना गया है[1]। इससे पुराण-सम्बन्धी ज्ञानकी आवश्यकता और महत्ता परिलक्षित होती है।

वर्तमानकालीन नवीन घटना जैसे असंदिग्ध मानी जाती है, वैसे ही पौराणिक घटना भी असंदिग्ध है। महर्षि यास्कने इसी ओर संकेत करते हुए 'पुराण' की व्युत्पत्ति बतलायी है, **'पुरा नवं भवति'** (निरुक्त ३।४।१९)। इसकी दूसरी व्युत्पत्ति है, **'पुरा अणति इति पुराणम्।'** अर्थात् जो प्राचीन कालमें भी श्वास लेता हो या जीवित रहा हो उसे 'पुराण' कहते हैं। **'प्राग्द्युतिमत् आसीदिति प्रदिवः'** अर्थात् पुराकालमें जो प्रकाशमय था, एतदर्थक पुराणका पर्यायवाची 'प्रदिव' शब्द भी यही बतलाता है। अतः पुराण प्राचीन भारतीय इतिहासके सच्चे धरोहर हैं।

पुराणोंकी विलक्षणता

पुराणोंमें व्यावहारिक जगत्की सारी बातें समाजके लिये अतिसुगम भाषामें कही गयी हैं। यह इसकी सर्वाधिक विशेषता है। सामाजिक कल्याणके लिये धर्म-नियन्त्रित अर्थ और काम उपयोगी होते हैं, यह सभी पुराणोंमें स्पष्ट बतलाया गया है। धर्म-ग्लानि और अधर्माभ्युत्थानका परिणाम हितकर नहीं होता—यह विभिन्न उपाख्यानोंद्वारा सिद्ध किया गया है। पुराणोंमें ऐहलौकिक सुख-समृद्धिका अनङ्गीकार नहीं है, अपितु केवल आधिभौतिकवादपर अध्यात्मवादका नियन्त्रण, दोनोंमें सामञ्जस्य और संतुलनकी आवश्यकता दिखलायी गयी है। भगवान् योगेश्वर श्रीकृष्ण और धनुर्धर अर्जुनमें सामञ्जस्य ऐकमत्य होनेपर ही सुख-समृद्धि और विजयका साम्राज्य होता है[2]। यही पुराणोंका भी सिद्धान्त है। परमार्थतः भगवत्प्राप्तिको परम प्रयोजन मानते हुए भी व्यावहारिक जगत्में अपेक्षित सभी विषयोंका वर्णन पुराण करते हैं। वैदिक धर्म 'इष्ट' (यज्ञ) पर बल देता है और पौराणिक धर्म 'पूर्त' (वापी, तडाग, धर्मशाला, समाजोपयोगी वस्तु-निर्माण) पर अधिक आग्रह करता है। दोनों (इष्टापूर्त) ही सनातनधर्मके लक्ष्य हैं। वैदिक सिद्धान्त एक 'सत्'को इन्द्र, वरुण आदि अनेक नामोंसे अभिहित मानता है और पौराणिक सिद्धान्त एक 'सत्'का राम, कृष्ण आदि अनेक रूपोंमें अवतार स्वीकार करता है। इस प्रकार पुराणोंमें वेदार्थका उपबृंहण और जागतिक व्यवस्थाको सुदृढ़ करनेके लिये समाज-कल्याणोपयोगी विषयोंका प्रतिपादन हुआ है। इसीलिये महर्षि व्यासने वेदार्थसे अधिक पुराणार्थको महत्त्व देते हुए कहा है—

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः॥

(नारदीयपुराण २।२४।१७)

भारतीय धर्म और संस्कृतिके परिज्ञान तथा उनके परिरक्षणके लिये पौराणिक साहित्यका परिशीलन परमावश्यक है।

१-यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः। पुराणं नैव जानाति न च स स्याद् विचक्षणः॥ (ब्रह्माण्ड-प्रक्रिया १।१७०, वायुपु॰, पूर्वार्द्ध १।४५)
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। उत्तमं सर्वलोकानां सर्वज्ञानोपपादकम्॥ (पद्मपु॰ १।४५)
२-यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥ (गीता १८।७८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्र निवेदन और क्षमा-प्रार्थना

भगवत्कृपासे इस वर्ष 'कल्याण'का विशेषाङ्क 'पुराणकथाङ्क' पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है। 'कल्याण'की परम्परामें पिछले वर्षोंमें यदा-कदा कुछ पुराणोंका संक्षिप्त अनुवाद अथवा किसी पुराणका सानुवाद-प्रकाशन विशेषाङ्कके रूपमें होता रहा है। इस वर्ष भी कुछ पाठक महानुभावोंका यह आग्रह था कि 'गरुडपुराण'का संक्षिप्त अनुवाद 'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित किया जाय। यद्यपि इसके प्रकाशनपर विचार किया जा रहा था, परंतु कुछ कारणोंसे यह सम्भव नहीं हो सका, अतः तत्काल यह निर्णय लिया गया कि सम्पूर्ण पुराणोंकी कथाओंका एक संक्षिप्त संकलन 'पुराणकथाङ्क'के रूपमें प्रकाशित किया जाय। यह कार्य अत्यन्त दुरूह था, कारण पुराणोंमें इतने अधिक विषयोंका समावेश हुआ है तथा उसका ऐतिहासिक अंश भी इतना विस्तृत है कि सारे पुराणोंका मनोयोगपूर्वक अध्ययन करनेके लिये पूरा-का-पूरा जीवन लगाया जाय, तब भी कदाचित् वह अपर्याप्त ही सिद्ध होगा। वास्तवमें पुराणोंका जो रूप इस समय उपलब्ध है, उनमें सौ करोड़ श्लोकोंका विषय चार लाख श्लोकोंमें ग्रथित है।

शास्त्रोंने इन्हें पञ्चम वेद माना है। वेदोंकी ही सार बातें इनमें अत्यन्त रोचक ढंगसे कथाओंके रूपमें वर्णित हैं। शास्त्रानुसार वेदोंके अध्ययनमें सबका अधिकार नहीं है, केवल त्रैवर्णिकोंके लिये ही यज्ञोपवीत संस्कारके पश्चात् गुरुमुखसे इनके श्रवण तथा अध्ययन करनेका विधान है, स्त्रियों, शूद्रों एवं अन्य जातिके लोगोंको वेदोंके पठन-पाठनका अधिकार नहीं है, ऐसे लोगोंको भी वैदिक सिद्धान्तोंसे परिचित कराने तथा उन्हें त्रिवर्गकी प्राप्तिके साथ-साथ मोक्षप्राप्तिका भी सुलभ मार्ग दिखलानेके लिये इतिहास एवं पुराणोंकी रचना हुई है।

पुराणोंमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार एवं निष्काम कर्मकी महिमाके साथ-साथ यज्ञ, दान, तप, तीर्थ-सेवन, देवपूजन, श्राद्ध-तर्पण आदि शास्त्रविहित शुभकर्मोंमें जनसाधारणको प्रवृत्त करनेके लिये उनके लौकिक एवं पारलौकिक फलोंका भी वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त पुराणोंमें अन्यान्य कई उपयोगी विषयोंका समावेश हुआ है। उदाहरणके लिये पुराणोंमें प्रायः सभी आस्तिक तथा नास्तिक दर्शनोंके सिद्धान्तोंका सूत्ररूपसे वर्णन मिलता है, विशेषकर सांख्य, योग एवं वेदान्त-दर्शनोंका तो श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंमें विशेष रूपसे विवेचन किया गया है, इसके अतिरिक्त वेदके छहों अङ्ग—व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा एवं कल्प तथा आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद आदि उपवेदों, राजनीति, समाजनीति आदि नीतियों, धर्मके विविध अङ्गों—यहाँतक कि शिल्प, निघण्टु, युद्धविद्या एवं साहित्य-जैसे विषयोंपर भी पुराणोंमें पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार पुराणोंको यदि हम भारतीय सभ्यता एवं संस्कृतिका विश्वकोष कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

ऐतिहासिक दृष्टिसे भी पुराणोंका कम महत्त्व नहीं है। आधुनिक इतिहासों और पुराणोंमें इतना ही अन्तर है कि पुराणोंकी दृष्टि बहुत अधिक व्यापक है, उनमें केवल इस भूमण्डलका ही इतिहास नहीं है, अपितु इस भूमण्डलकी कब और कैसे उत्पत्ति हुई, अन्य लोकोंकी कब-कब और किस प्रकार सृष्टि हुई, इन सभी बातोंका भी विस्तृत वर्णन है। इतना ही नहीं, सृष्टि कब और किस प्रकार होती है तथा भविष्यमें क्या होगा—इसपर भी पुराणोंमें पूर्णरूपसे प्रकाश डाला गया है।

पुराणोंमें जीवनकी गुत्थियोंको बहुत ही रोचक और हृदयग्राही ढंगसे समझाया गया है। भगवान्‌के निर्गुण-निराकार, सगुण-साकार आदि विविध रूपोंमेंसे किसी भी एक रूपको लक्ष्य बनाकर उसकी ओर अग्रसर होनेका सुगम मार्ग दिखलाया गया है। पुराणोंकी महत्ताका प्रधान कारण यही है। पुराणोंका पाठ करके, उनमें प्रतिपादित तत्त्वोंका अनुशीलन करके तथा उनके उपदेशोंको जीवनमें उतारनेका अथक प्रयत्न करके न जाने कितने मनुष्योंने अपने जीवनको सार्थक बनाया है और आगे भी बनाते रहेंगे।

वास्तवमें पुराणोंकी समस्त कथाओं और उपदेशोंका सार यही है कि हमें आसक्तिका त्यागकर वैराग्यकी ओर प्रवृत्त होना चाहिये तथा सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये एकमात्र परमात्माकी शरणमें जाना चाहिये। यह लक्ष्यप्राप्ति योगकर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा भक्तिद्वारा किस प्रकार हो सकती है—इसकी विशद व्याख्या अनेक पुराणोंमें हुई है। पुराण भगवत्प्राप्तिके लक्ष्यको सामने रखते हुए विभिन्न रुचि और अधिकारके अनुसार विभिन्न व्यक्तियोंके लिये उनके ग्रहण करनेयोग्य विभिन्न अनुभूत सत्यमार्गोंका, मार्गोंके विघ्नोंका तथा विघ्नोंसे छूटनेके उपायोंका बड़ा ही सुन्दर निरूपण करते हैं। मनुष्य अपने ऐहिक जीवनको किस प्रकार सुख-समृद्धि और शान्तिसे सम्पन्न कर सकता है और उसी जीवनके द्वारा जीवमात्रका कल्याण करनेमें सहायक होता हुआ कैसे अपने परम ध्येय भगवत्प्राप्तिके मार्गपर आसानीसे बढ़ सकता है—इसके विविध साधन बड़ी ही रोचक भाषामें सच्चे तथा उपदेशपूर्ण इतिवृत्त-कथानकोंके साथ पुराणोंमें बताये गये हैं। पुराणोंके श्रवण और पठनसे स्वाभाविक ही पुण्य-लाभ तथा अन्तःकरणकी परिशुद्धि, भगवान्‌में रति और विषयोंमें विरति तो होती ही है, साथ ही मनुष्यको ऐहिक और पारलौकिक हानि-लाभका यथार्थ ज्ञान भी हो जाता है। तदनुसार जीवनमें कर्तव्यनिश्चय करनेकी अनुभूत शिक्षा मिलती है, साथ ही सभीको यथाधिकार समानरूपसे कल्याणकारी ज्ञान, साधन और सुन्दर तथा पवित्र जीवन-यापनकी शिक्षा मिलती है। ये पुराण विभिन्न दृष्टिकोणवाले पाठकोंके लिये अत्यधिक उपादेय, ज्ञानवर्धक, सरस तथा उनके यथार्थ अभ्युदयमें सहायक हैं।

भारतीय धर्म तथा सभ्यता-संस्कृतिमें भौतिकता या भोगोंका निषेध नहीं है, वरं मानवजीवनके एक क्षेत्रमें उनकी आवश्यकता बतलायी गयी है, पर वे होने चाहिये धर्मके द्वारा नियन्त्रित तथा मोक्ष एवं भगवत्प्राप्तिके साधनरूप। केवल 'भोग' तो आसुरी सम्पदाकी वस्तुएँ हैं और वे मनुष्यका अधः-पतन करनेवाली हैं। आधिभौतिक उन्नति हो, पर वह हो अध्यात्मकी भूमिकापर—आध्यात्मिक लक्ष्यकी पूर्तिके लिये। ऐसा न होनेपर केवल 'कामोपभोगपरायणता' तो मनुष्यको असुर-राक्षस बनाकर उसके अपने तथा जगत्‌के अन्यान्य प्राणियोंके लिये घोर संताप, अशान्ति, चिन्ता, पाप तथा दुर्गतिकी प्राप्ति करानेवाली होती है। आजके भौतिकवादी भोगपरायण मानव-जगत्‌में यही हो रहा है और इसी कारण नये-नये उपद्रव, अशान्ति, पाप तथा दुःख बढ़ रहे हैं। भारतमें भी इस अनर्थका उत्पादन करनेवाली भोग-परायणता-का विस्तार बड़े जोरोंसे हो रहा है, अतएव इस समय इसकी बड़ी आवश्यकता है कि मानव पतनके प्रवाहसे निकलकर, पाप-पथसे लौटकर, फिर वास्तविक उत्थान, प्रगति तथा पुण्यके पथपर आरूढ़ हो। इस दिशामें यदि उचितरूपसे पौराणिक कथानकोंका स्वाध्याय तथा तदनुसार कार्य किये जायँ तो जीवनमें महान् परिवर्तन हो सकता है।

पुराणोंका जितना अधिक प्रचार-प्रसार होगा, उतना ही देश और मानवजातिका मङ्गल होगा। इसी दृष्टिसे पौराणिक कथाओंका संक्षिप्त संकलन—यह 'पुराणकथाङ्क' आपकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें पुराणोंके तात्त्विक विवेचनके साथ-साथ उसके प्रतिपाद्य विषयों, सर्ग-प्रतिसर्ग, वंश, वंशानुचरित तथा शास्त्र, विद्या-कलाओं एवं ज्ञान-विज्ञानकी बातोंका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है। इसके साथ ही जीवनचर्याके षोडश संस्कार, आचार, दैनिक चर्या, देवोपासना, यज्ञ, वर्णाश्रमधर्म, व्रतोपवास, दान तथा तीर्थ आदि अङ्गोंका अष्टादश महापुराणोंके एवं उपपुराणोंके संक्षिप्त परिचयके साथ ही उनकी कुछ मुख्य कथाओंका संक्षिप्त संकलन यथासाध्य प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है। इसके साथ ही जीवनोपयोगी कुछ महत्त्वपूर्ण पौराणिक कथाओं तथा पौराणिक चरित्रोंका संकलन भी संक्षेपमें प्रस्तुत किया गया है।

इस वर्ष विशेषाङ्कके लिये कथाओंसे अतिरिक्त अन्य लेख न भेजनेका अनुरोध हमने अपने सम्मान्य लेखक महोदयोंसे किया था। इसके बाद भी कुछ महानुभावोंने कृपापूर्वक कथाओंसे अतिरिक्त कुछ लेख भेज दिये, पर हमें खेद है कि स्थानाभावके कारण कई लेखोंको प्रकाशित नहीं किया जा सका। आशा है विद्वान् लेखक इसके लिये हमें अवश्य क्षमा करेंगे? विशेषाङ्कके प्रकाशनके समय प्रतिवर्ष कुछ कठिनाइयाँ और समस्याएँ भी आ जाती हैं, पर उनका समाधान भी परमात्मप्रभुकी कृपासे ही होता है, पर इस वर्ष भी एक विशेष कठिनाई आयी और वह थी कागजके मूल्यमें अनवरत अप्रत्याशित वृद्धि। जिन दिनों इस वर्षके लिये 'कल्याण'का मूल्य निर्धारित किया गया था, उसके बाद लगभग दो हजार रुपये प्रतिटन कागजके मूल्यमें और वृद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गयी, जिसके कारण 'कल्याण'का सामान्य घाटा भी अप्रत्याशितरूपसे बढ़ गया। इसलिये हमें अन्य कोई विकल्प न होनेके कारण विवश होकर न चाहनेपर भी विशेषाङ्कके कुछ पृष्ठ (चार फर्मे) तत्काल घटाने पड़ गये।

पिछले कई वर्षोंसे 'कल्याण'का वर्षारम्भ अंग्रेजी वर्षके हिसाबसे जनवरीसे प्रारम्भ होता रहा है जो दिसम्बरतक चलता था, पर 'कल्याण'के कुछ शुभचिन्तकोंद्वारा यह सुझाव प्राप्त हुआ कि 'कल्याण'का वर्षारम्भ अंग्रेजी महीनेकी अपेक्षा विक्रम-संवत् हिन्दी माससे किया जाना चाहिये। यह परामर्श उचित प्रतीत होनेके कारण इस वर्षसे कल्याणका वर्षारम्भ विक्रम-संवत् सौर चैत्रसे प्रारम्भ किया जा रहा है, जो सौर फाल्गुनमासतक चलेगा। अब आपकी सेवामें विशेषाङ्क प्रतिवर्ष सौर चैत्रमासमें पहुँच सकेगा।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यों, परम सम्मान्य पवित्र-हृदय संत-महात्माओं, आदरणीय शिक्षाविद् लेखक विद्वान् महानुभावोंके श्रीचरणोंमें प्रणाम करते हैं, जिन्होंने विशेषाङ्ककी पूर्णतामें किञ्चित् भी योगदान किया है। सद्विचारोंके प्रचार-प्रसारमें वे ही निमित्त हैं, क्योंकि उन्हींके सद्भावपूर्ण तथा उच्च विचारयुक्त भावनाओंसे कल्याणको सदा शक्तिस्रोत प्राप्त होता रहता है। हम अपने विभागके तथा प्रेसके अपने उन सभी सम्मान्य साथी-सहयोगियोंको भी प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेह-भरे सहयोगसे यह पवित्र कार्य सम्पन्न हो सका है। हम अपनी त्रुटियों और व्यवहार-दोषके लिये उन सबसे क्षमा-प्रार्थी हैं।

'पुराणकथाङ्क'के सम्पादनमें जिन संतों और विद्वान् लेखकोंसे सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है उन्हें हम अपने मानसपटलसे विस्मृत नहीं कर सकते। सर्वप्रथम मैं समादरणीय पं० श्रीलालबिहारीजी शास्त्री तथा पं० श्रीमहाप्रभु-लालजी गोस्वामीके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने विभिन्न पुराणोंकी कथाओंके संकलनमें अपना योगदान प्रदान किया। इस अङ्कके सम्पादनमें अपने सम्पादकीय विभागके पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल शास्त्री, पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा एवं अन्य महानुभावोंने अत्यधिक हार्दिक सहयोग प्रदान किया है। इसके सम्पादन, प्रूफ-संशोधन, चित्र-निर्माण आदि कार्योंमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहृदयता मिली है, वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते।

पिछले दिनों गीताप्रेसके परम शुभचिन्तक श्रीईश्वरी-प्रसादजी गोयन्दकाका कलकत्तेमें देहान्त हो गया। वे बहुत पहलेसे गोविन्द-भवन ट्रस्टके एक वरिष्ठ सदस्य थे। परम पूज्य सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका तथा पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके बाद बहुत दिनोंतक उन्होंने ट्रस्टका अध्यक्ष-पद भी सँभाला था। पुराने लोग जो संसारसे चले जाते हैं, उनके अभावकी पूर्ति तो आजकलके समयमें हो नहीं पाती; भगवत्कृपाका ही सम्बल है।

इस बार 'पुराणकथाङ्क'के सम्पादन-कार्यके क्रममें परमात्मप्रभु और उनकी ललित लीला-कथाओंका चिन्तन, मनन और स्वाध्यायका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा, यह हमारे लिये विशेष महत्त्वकी बात थी। हमें आशा है इस 'विशेषाङ्क'के पठन-पाठनसे हमारे सहृदय पाठकोंको भी यह सौभाग्यलाभ अवश्य प्राप्त होगा।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये आप सबसे पुनः क्षमा-प्रार्थना करते हुए भगवान् श्रीवेदव्यासजीके चरणोंमें नमन करते हैं, जिनके कृपा-प्रसादसे आज हम सभी जीवनका मार्गदर्शन प्राप्त कर लाभान्वित हैं।

—राधेश्याम खेमका
सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

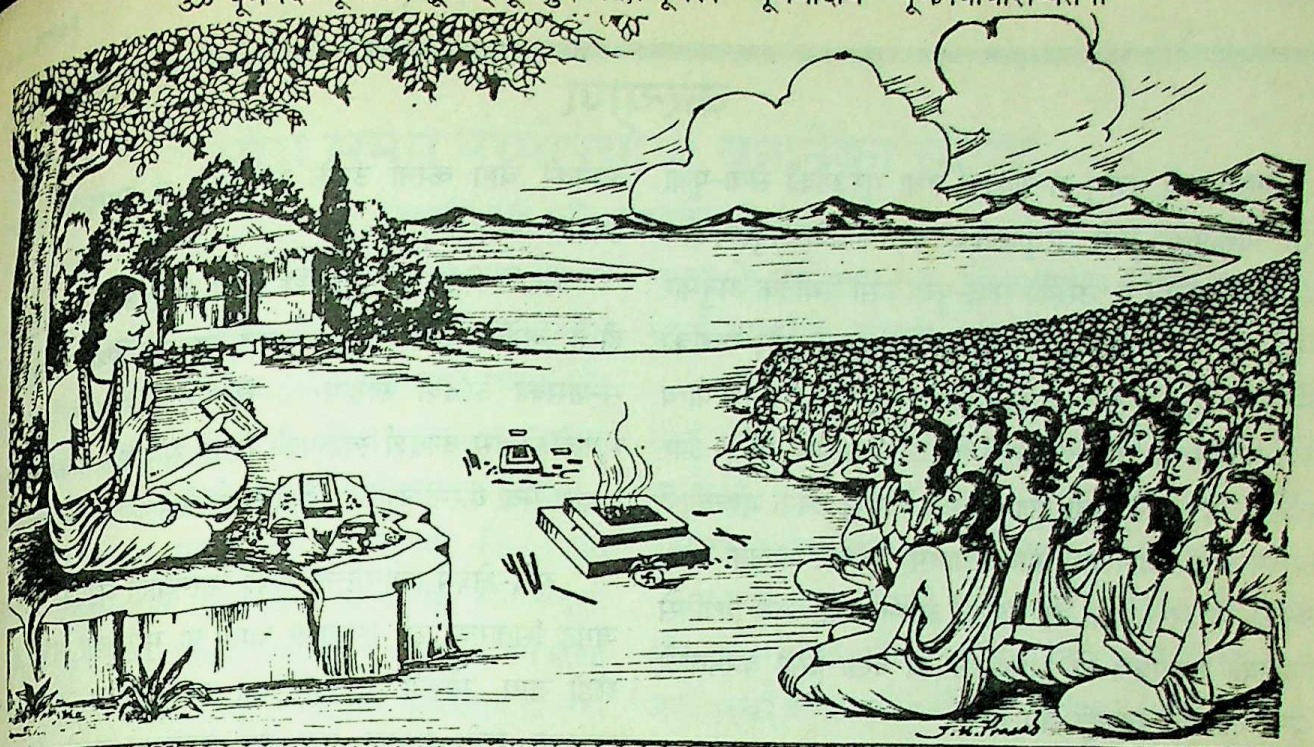

कल्याण

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत्।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥

वर्ष ६३ } गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-सं० ५२१५, जून १९८९ ई० { संख्या ३ / पूर्ण संख्या ७४८

रामराज्याभिषेकके बाद सनकादिका आगमन

भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमारा ॥
सुंदर उपबन देखन गए। सब तरु कुसुमित पल्लव नए ॥
जानि समय सनकादिक आए। तेज पुंज गुन सील सुहाए ॥
ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना ॥
रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा ॥

× × ×

देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह।
स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह ॥
कीन्ह दंडवत तीनिउँ भाई। सहित पवनसुत सुख अधिकाई ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

महात्माओं, साधु-संन्यासियों तथा गुरुओंकी सेवा-पूजा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक करो, परंतु करो उनके स्वरूपके अनुरूप ही। जो जिस स्थितिमें है, उसकी सेवा-पूजा उसी स्थितिके अनुसार करनी पड़ती है। संन्यासीके सिरपर राजमुकुट और राजाकी कमरमें कौपीन अस्थानीय और अशोभनीय होते हैं। यथायोग्य सेवा-पूजासे ही मर्यादा रहती है और उसीसे दोनों ओर कल्याण है। ऐसी सेवा-पूजा न करो जिससे उनके महत्त्वपूर्ण स्वरूपका अपमान हो, उनके त्यागमय वेषपर कलंक लगे, उनकी साधन-सम्पत्ति नष्ट होनेकी आशंका हो, उच्च स्थितिसे गिरनेकी सम्भावना हो अथवा उनकी देखा-देखी करनेवाले दूसरे लोगोंके पतनका भय हो।

पितामह भीष्म शरशय्यापर पड़े थे। तमाम शरीरमें बाण बिंधे थे, परंतु उनके मस्तकमें बाण न लगनेसे सिर नीचे लटक रहा था। भीष्मने तकिया माँगा। लोग दौड़े और नरम-नरम रुईसे भरे कोमल तकिये ला-लाकर उनके सिरके नीचे रखने लगे। भीष्मने उन सबको लौटा दिया, कहा—अर्जुनको बुलाओ। अर्जुन आये, भीष्मने कहा—'बेटा! सिर नीचे लटक रहा है, कष्ट हो रहा है, तकिया दो।' चतुर अर्जुनने तत्क्षण तीन बाण मस्तकमें मारकर वीरवर भीष्मकी स्थितिके अनुकूल तकिया दे दिया। पितामहने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया! क्योंकि अर्जुनने जैसी शय्या थी, वैसा ही तकिया दिया। उस समय महावीर भीष्मको आराम पहुँचानेकी इच्छासे उन्हें रुईका तकिया देना उन्हें कष्ट पहुँचाना था, उनके स्वरूपका अपमान था, उनके शूरत्वका उपहास था और था उनकी महिमाके प्रति अपना मोह-अज्ञान।

इसी प्रकार साधु-महात्मा और विरक्त संन्यासियोंको उनके स्वरूप, धर्म, निष्ठा और साधनाके प्रतिकूल उन्हें आराम पहुँचानेके मोहसे, भोग-पदार्थोंको अर्पण करनेमें उनकी सेवा समझना उनका तिरस्कार करना है, उन्हें कष्ट पहुँचाना है। तितिक्षा, तप, त्याग, वैराग्य और ज्ञानमें ही उन आत्माराम महात्माओंके लिये सर्वोपरि सुख है। उनके लिये आत्मसंतुष्टि ही परमसुख और आत्मतृप्ति ही परमतृप्ति है। ऐसे लोगोंके सामने भोग-सामग्री रखकर उसकी ओर उनका मन आकृष्ट करनेकी चेष्टा करना उनके स्वरूपको न समझकर उनका उपहास करना है।

यद्यपि सिद्ध महात्माओंके लिये भोग और त्याग समान ही है, क्योंकि वे तो नित्य अखण्ड समतामें स्थित हैं, तथापि संन्यासका आदर्श स्वरूप तो वैराग्य और त्याग ही है। सेवकोंको इस आदर्श स्वरूपकी रक्षामें सहायक होकर उनकी यथार्थ सेवा करनी चाहिये। ऐसा न करनेसे आदर्श नष्ट होगा।

युद्ध-क्षेत्रमें रणोन्मत्तता उत्पन्न करनेवाले जुझाऊ बाजोंकी जगह सितारका सुर निकाला जाय या मुरलीकी मधुर तान छेड़ी जाय, सोहनी या बिहागका राग अलापा जाय, नाना प्रकारके शरीर-सुखके पदार्थोंको उपस्थित करके चित्तको विचलित किया जाय अथवा घरवालोंकी दुर्दशाका चित्र खींचकर उनमें ममता जाग्रत् की जाय तो इससे जैसे रणबाँकुरे वीरका भी युद्धसे विमुख होना सम्भव है, वैसे ही त्यागके मार्गपर चलनेवाले त्यागी साधकोंके सामने उन्हें आराम पहुँचानेकी दृष्टिसे बार-बार भोगमय प्रपञ्चकी चर्चा करना और भोग-आरामकी वस्तुएँ दे-देकर उनके चित्तको लुभाना, उन्हें त्यागके पवित्र पथसे गिरानेमें सहायक होता है।

इस प्रकार तुम्हारा कोई भी सम्बन्धी, भाई, पुत्र, मित्र यदि संयमका आदर्श ग्रहण करे तो मोहवश उसे आराम पहुँचानेकी चेष्टासे संयमके पवित्र पथसे लौटाकर भोगके नरकप्रद पथपर मत लाओ। भोगमें आरम्भमें सुख दीखता है, परंतु उसका परिणाम बहुत ही भयानक है और त्याग यद्यपि पहले भीषण लगता है, परंतु उसका फल बहुत ही मीठा है। वास्तविक भोग, सच्चे सुखका भोग, दिव्य जीवनका भोग तो इस त्यागसे ही मिलता है। इन्द्रियोंके तुच्छ विषय-भोगोंके त्यागसे वह दुर्लभ भोग मिलता है, वह परमानन्द मिलता है, जिसमें कहीं कोई विकार, अभाव, अपूर्णता या विनाश नहीं है। जो नित्य है, सत्य है, सनातन है, ध्रुव है, अपरिणामी है, अनन्त है, असीम है, अकल है, अनिर्देश्य है, अनिर्वचनीय है। यह भोग प्राप्त होनेपर फिर भोग और भगवान्‌में भेद नहीं रहता। वस्तुतः ये एक ही वस्तुके दो नाम हैं। **'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारा समय परमोपयोगी बनानेका साधन

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्यके समयके तीन विभाग माने जा सकते हैं—१-साधनकाल, २-व्यवहारकाल, ३-शयनकाल। इनमेंसे साधनकालको लोग सात्त्विक, व्यवहारकालको राजस और शयनकालको तामस मानते हैं, किंतु कल्याणके इच्छुक मनुष्योंको तो तीनों कालोंको ही परम सात्त्विक बनाना चाहिये। हमलोगोंको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि हमारा सारा-का-सारा समय उत्तम-से-उत्तम कार्यमें लगे। दूसरे लोगोंकी दृष्टिमें चाहे हमारे ये तीनों काल अलग-अलग प्रतीत हों, किंतु वास्तवमें हमारा सारा समय एक परमात्मामें ही लगा रहना चाहिये।

यह मनुष्य-शरीर अपने उद्धारके लिये मिला है या यों कहें कि परमात्माकी प्राप्तिके लिये मिला है। अतः जिससे परमात्माकी प्राप्ति शीघ्रातिशीघ्र हो, उसी काममें हमारा सारा समय बीतना चाहिये। प्रत्येक समय हमारा परम साधन ही होता रहे। दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन, निद्रा, आलस्य और प्रमादमें एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाना चाहिये; क्योंकि ये सभी तामस हैं। ऐश-आराम, स्वाद-शौक, शृंगार, भोग-विलास, मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा, कञ्चन, कामिनी, सम्पत्ति—इन सबमें जो ममता, आसक्ति, कामना आदि हैं, ये सभी राजस हैं। अतः इनके संसर्गमें भी अपना समय व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये। प्रत्युत ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, सदाचार और सद्गुणोंके सेवनमें ही समय जाना चाहिये। एकान्तमें साधनकाल, व्यवहारकाल और शयनकाल सभी कालोंका सुधार विशेषरूपसे करना चाहिये।

१-एकान्तमें बैठकर अपने अधिकारके अनुसार पूजा-पाठ, जप-ध्यान, स्तुति-प्रार्थना, संध्या-गायत्री, स्वाध्याय आदि जो कुछ भी साधन किया जाय उसके अर्थ और भावको समझते हुए मन लगाकर श्रद्धा, विश्वास और प्रेमपूर्वक गुप्त और निष्कामभावसे नित्य-निरन्तर करना चाहिये।

२-चलते-उठते-बैठते, खाते-पीते, न्यायोचित व्यवहार करते समय मनसे भगवान्‌के चरित्रोंको स्मरण करते हुए और उनका अनुकरण करते हुए एवं श्रद्धा-प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे भगवान्‌के नाम, रूप तथा गुण-प्रभावका चिन्तन करते हुए उनकी प्रसन्नताके अनुकूल ही सब व्यवहार करना चाहिये।

३-रात्रिमें शयनके समय सांसारिक संकल्पोंके प्रवाहसे रहित होकर मनमें भगवान्‌के तत्त्व-रहस्यको समझते हुए, भगवान्‌के गुण, प्रभाव, नाम, रूपके निष्कामभावपूर्वक चिन्तनका प्रवाह बहाते हुए ही शयन करना चाहिये।

मनकी आदत बिगड़ी हुई है। यह स्वाभाविक ही राजस और तामस भावों और पदार्थोंका चिन्तन करने लगता है। अतः इसकी प्रत्येक समय चौकसी (सँभाल) रखनी चाहिये। जैसे कोई सालभरका छोटा बच्चा चाकू, कैंची आदि कोई भी पदार्थ हाथमें आ जाता है तो उसे पकड़ लेता है; क्योंकि वह उसके परिणामको समझता नहीं है, किंतु माता उसे भय दिखलाकर, लोभ देकर या प्रेमसे समझाकर उससे कैंची, चाकू आदि छीन लेती है। इसी प्रकार साधक अपने मनको इस लोक और परलोकके दुःखोंका भय दिखलाकर, 'भक्ति, ज्ञान, वैराग्य रसमय—अमृतमय है'—ऐसा लोभ देकर या विवेकपूर्वक समझाकर राजस और तामस क्रियाओं, पदार्थों और भावोंसे हटा ले एवं परम कल्याणदायक, परम सात्त्विक उत्तम गुण, क्रिया, पदार्थ और भाव आदिमें लगावे।

कोई भी घटना, पदार्थ और परिस्थिति अपने मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरके अनुकूल या प्रतिकूल प्राप्त हो तो उसमें हर्ष-शोक, राग-द्वेष आदि विकारोंसे रहित रहना चाहिये। किसी भी घटना, पदार्थ या परिस्थितिके प्राप्त होनेपर ज्ञानयोगकी दृष्टिसे तो उसे स्वप्नवत् माने, भक्तिकी दृष्टिसे उसे भगवान्‌का विधान या लीला माने और कर्मयोगकी दृष्टिसे उसे अपने पूर्वकृत कर्मोंका फलरूप प्रारब्ध माने एवं ऐसा मानकर सदा निर्विकार रहे। किंतु यदि अपने साधनके विरुद्ध कोई पदार्थ या परिस्थिति प्राप्त हो जाय तो उसका त्यागपूर्वक सदुपयोग करना चाहिये। जैसे अर्जुनने इन्द्रकी भेजी हुई उर्वशी अप्सराके काम-प्रस्तावका त्याग कर दिया था।

जिस समय अर्जुन इन्द्रपुरीमें रहकर अस्त्र-विद्या और गान्धर्व-विद्या सीख रहे थे, एक दिन इन्द्रने सभामें अर्जुनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशीकी ओर निर्निमेष नेत्रोंसे देखते हुए पाया था, अतः अर्जुनको उर्वशीके प्रति आसक्त जानकर उन्होंने रात्रिके समय उनकी सेवाके लिये वहाँकी उस सर्वोच्च अप्सरा उर्वशीको उनके पास भेजा। उर्वशी अर्जुनके रूप और गुणोंपर पहलेसे ही मुग्ध थी। वह इन्द्रकी आज्ञासे खूब सज-धजकर रात्रिमें अर्जुनके पास गयी। अर्जुन उर्वशीको रात्रिमें अकेले इस प्रकार निःसंकोचभावसे अपने पास आयी देख सहम गये। उन्होंने शीलवश अपने नेत्र बंद कर लिये और उर्वशीको माताकी भाँति प्रणाम किया। उर्वशी यह देखकर दंग रह गयी। उसे अर्जुनसे इस प्रकारके व्यवहारकी आशा नहीं थी। उसने अर्जुनके प्रति अपना मनोभाव स्पष्ट प्रकट किया। तब अर्जुन अत्यन्त लज्जित हो गये और हाथोंसे दोनों कान मूँदकर बोले—'देवि ! तुम जैसी बात कह रही हो, उसे सुनना भी मेरे लिये बड़े दुःखका विषय है। मैंने जो देवसभामें तुम्हारी ओर एकटक दृष्टिसे देखा था, उसका एक विशेष कारण था। वह यह कि 'तुम्हीं हमारे पूरुवंशकी जननी हो'—इस पूज्यभावको लेकर ही मैंने वहाँ तुम्हें देखा था। अनघे ! मेरी दृष्टिमें कुन्ती, माद्री और शचीका जो स्थान है, वही तुम्हारा भी है। तुम पूरुवंशकी जननी होनेके कारण आज मेरे लिये परम गुरुस्वरूप हो। वरवर्णिनि ! मैं तुम्हारे चरणोंमें मस्तक रखकर तुम्हारी शरण हूँ। तुम लौट जाओ। मेरी दृष्टिमें तुम माताके समान पूजनीया हो और तुम्हें पुत्रके समान मानकर मेरी रक्षा करनी चाहिये* ।'

यह सुनकर उर्वशी क्रोधित हो गयी और अर्जुनको शाप देते हुए बोली—'अर्जुन ! देवराज इन्द्रके कहनेसे मैं तुम्हारे घरपर आयी और कामबाणसे घायल हो रही हूँ, फिर भी तुम मेरा आदर नहीं करते। अतः तुम्हें स्त्रियोंके बीचमें सम्मानरहित होकर नर्तकी बनकर रहना पड़ेगा। तुम नपुंसक कहलाओगे और क्लीबवत् विचरण करोगे।'

जब इन्द्रको यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने अर्जुनकी प्रशंसा की और कहा—'यह शाप तुम्हें वरदानका काम देगा। अज्ञातवासके समय तुम्हारे छिपनेमें सहायक होगा। उसके बाद तुम्हें पुनः पुरुषत्व प्राप्त हो जायगा।'

ध्यान देना चाहिये कि अर्जुनने उर्वशीका शाप तो स्वीकार कर लिया, किंतु उसके प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया। अर्जुनका यह ब्रह्मचर्यपालन और त्यागका व्यवहार बहुत ही उच्च आदर्श है।

हमलोगोंको इस प्रकारकी घटना प्राप्त होनेपर उसे भगवान्‌की भेजी हुई समझकर अर्जुनकी भाँति उसका त्यागपूर्वक सदुपयोग करना चाहिये। यद्यपि भगवान् अनुकूल या प्रतिकूल पदार्थ भेजकर जो कुछ करते हैं, हमारे हितके लिये ही करते हैं, किंतु वे हमारी परीक्षा भी लेते रहते हैं। जैसे अध्यापक विद्यार्थीकी योग्यताको जानता हुआ भी उसकी उन्नतिके लिये उसकी परीक्षा लेता रहता है, वैसे ही सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् भगवान् साधकके हितके उद्देश्यसे उसे साधनमें दृढ़ बनानेके लिये अनुकूल-प्रतिकूल घटना और पदार्थ भेजकर परीक्षा लेते रहते हैं। उन सबमें साधकको विकाररहित रहना चाहिये।

परेच्छा या अनिच्छासे मनके अनुकूल या प्रतिकूल कोई भी घटना या पदार्थ प्राप्त हो तो उसे भगवान्‌का विधान या प्रारब्ध मानकर संतुष्ट होना चाहिये, विचलित नहीं होना चाहिये और यदि वह शास्त्रविपरीत हो तो उसका नीतिके अनुसार तिरस्कार कर सकते हैं; क्योंकि वे जो पदार्थ हमें प्राप्त हो रहे हैं, उनमें जब भगवान्‌का विधान है तो हमारे हृदयमें जो शास्त्रविरुद्ध अनुचित पदार्थके लिये विरोध करनेका भाव आता है, वह भी तो भगवान्‌की ही प्रेरणा है। जैसे अर्जुनको भगवान् जगह-जगह युद्ध करनेकी आज्ञा देते हैं, किंतु उस आज्ञाके साथ ही समभाव रखनेके लिये भी प्रेरणा करते हैं—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

(गीता २।३८)

'जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःख समान

---

* यथा कुन्ती च माद्री च शची चैव ममानघे। तथा च वंशजननी त्वं हि मेऽद्य गरीयसी॥
गच्छ मूर्ध्ना प्रपन्नोऽस्मि पादौ ते वरवर्णिनि। त्वं हि मे मातृवत् पूज्या रक्ष्योऽहं पुत्रवत् त्वया॥

(महा० वन० ४६।४६-४७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझकर उसके बाद युद्धके लिये तैयार हो जा, इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको नहीं प्राप्त होगा।'

अनुकूल पदार्थ या घटनाके प्राप्त होनेपर हर्षित होना, उसमें प्रीति करना भी विकार है और प्रतिकूल घटनामें तो द्वेष, वैर, भय, ईर्ष्या, शोक आदि अनेक प्रकारके विकार होते ही रहते हैं, किंतु जो इन सबमें विकाररहित रहे, वही सर्वोत्तम है। जैसे भक्त प्रह्लादको मारनेके लिये उनके पिता हिरण्यकशिपुने उनपर अनेक अत्याचार किये—बड़े-बड़े मतवाले हाथियोंसे कुचलवाया, विषधर सर्पोंसे डँसवाया, पुरोहितोंसे कृत्याका प्रयोग करवाया, पहाड़की चोटीसे नीचे डलवाया, शम्बरासुरसे अनेक प्रकारकी मायाका प्रयोग करवाया, अँधेरी कोठरियोंमें बंद करवाया, विष पिलाया, खाना बंद करवा दिया, बर्फीली जगह, दहकती हुई आग और समुद्रमें बारी-बारीसे डलवाया, परंतु किसी भी उपायसे वह प्रह्लादको मार न सका। उसके सारे प्रहार निष्फल हो गये। भक्त प्रह्लादके चित्तमें भी उन सबका कोई असर नहीं हुआ। वे तो उन सबमें निर्विकार ही रहे; क्योंकि उनका सबमें भगवद्भाव था। प्रत्युत जब पुरोहितोंने उन्हें मारनेके लिये कृत्या उत्पन्न करके उनपर प्रयोग किया और वह कृत्या उन्हें मारनेमें समर्थ न हो सकी, तब उसने उन पुरोहितोंको ही मार डाला। यह देखकर दयापरवश हो प्रह्लादजी भगवान्‌से प्रार्थना करने लगे—

यथा सर्वगतं विष्णुं मन्यमानोऽनपायिनम्।
चिन्तयाम्यरिपक्षेऽपि जीवन्त्वेते पुरोहिताः॥
ये हन्तुमागता दत्तं यैर्विषं यैर्हुताशनः।
यैर्दिग्गजैरहं क्षुण्णो दष्टः सर्पैश्च यैरपि॥
तेष्वहं मित्रभावेन समः पापोऽस्मि न क्वचित्।
यथा तेनाद्य सत्येन जीवन्त्वसुरयाजकाः॥

(श्रीविष्णुपुराण १।१८।४१—४३)

'प्रभो! यदि मैं सर्वव्यापी और अक्षय श्रीविष्णु-भगवान्‌को अपने विपक्षियोंमें भी देखता हूँ तो ये पुरोहितगण जीवित हो जायँ। जो लोग मुझे मारनेके लिये आये, जिन्होंने मुझे विष दिया, जिन्होंने आगमें जलाया, जिन्होंने दिग्गजोंसे पीड़ित कराया और जिन्होंने सर्पोंसे डँसवाया—उन सबके प्रति यदि मैं समान मित्रभावसे रहा हूँ और मेरी कभी पापबुद्धि नहीं हुई है तो उस सत्यके प्रभावसे ये दैत्यपुरोहित जी उठें।'

ऐसा कहकर उनके स्पर्श करते ही वे ब्राह्मण स्वस्थ होकर उठ बैठे और उन्होंने प्रह्लादजीको आशीर्वाद दिया।

इसपर हिरण्यकशिपुने प्रह्लादजीसे उनके इस प्रभावका कारण पूछा, तब उन्होंने बतलाया—

न मन्त्रादिकृतं तात न च नैसर्गिको मम।
प्रभाव एष सामान्यो यस्य यस्याच्युतो हृदि॥
अन्येषां यो न पापानि चिन्तयत्यात्मनो यथा।
तस्य पापागमस्तात हेत्वभावान्न विद्यते॥

(श्रीविष्णुपुराण १।१९।४-५)

'पिताजी! मेरा यह प्रभाव न तो मन्त्रादिजनित है और न स्वाभाविक ही है, प्रत्युत जिस-जिसके हृदयमें श्रीअच्युत भगवान्‌का निवास होता है, उसके लिये यह सामान्य बात है। जो मनुष्य अपने समान दूसरोंका बुरा नहीं सोचता, तात! कोई कारण न रहनेसे उसका भी कभी बुरा नहीं होता।'

प्रह्लादजीकी भक्तिके कारण जब भगवान् प्रकट हुए, तब उन्होंने प्रह्लादजीसे वर माँगनेके लिये बार-बार कहा, फिर भी उन्होंने भगवान्‌से किसी बातके लिये भी प्रार्थना नहीं की, किंतु पिताके लिये प्रार्थना की कि 'पिताने आपके प्रभावको न जानकर आपकी बड़ी निन्दा की है और आपकी भक्ति करनेके कारण मुझसे भी द्रोह किया है। यद्यपि वे आपकी दृष्टि पड़नेसे ही पवित्र हो गये, फिर भी मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि उस महान् दोषसे मेरे पिता पवित्र हो जायँ।' इसपर भगवान्‌ने कहा—'तुम्हारे पिता पवित्र हो गये, इसमें तो बात ही क्या है, वे अपनी इक्कीस पीढ़ियोंके पितरोंके साथ तर गये; क्योंकि तुम्हारे-जैसा कुलको पवित्र करनेवाला पुत्र उन्हें प्राप्त हुआ है।'

भक्त प्रह्लाद भगवान्‌के किये हुए विधानमें आनन्द मान रहे हैं— केवल यही नहीं, प्रत्युत उनमें यह विशेष बात है कि जिन्होंने उनके विपरीत आचरण किया, उनका भी उन्होंने हित ही किया। अतः मनुष्यको चाहिये कि वह किसीसे भी न द्वेष करे, न किसीका बुरा करे, न किसीका बुरा चाहे, प्रत्युत उसका हित ही करे। अपनेपर अत्याचार करनेवाले मनुष्यकी बुद्धिके सुधारके लिये या उसके कल्याणके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌से याचना की जाय तो वह याचना भी सकामकी गणनामें नहीं है।

इसी प्रकार दूसरा कोई हमपर अत्याचार करने आ रहा हो और हमारा कोई हितैषी हमारे हितके लिये अत्याचारीको रोकता हो, तब भी हमें तो उस अत्याचारीका हित ही करना चाहिये। जैसे—

जब पाण्डव द्वैतवनमें थे, घोषयात्राके बहाने राजा दुर्योधन अपने मन्त्रियों, भाइयों, रनिवासकी स्त्रियों तथा बहुत बड़ी सेनाको साथ लेकर पाण्डवोंको अपना वैभव दिखलाकर दुःखी करनेके उद्देश्यसे उस वनमें गया। वह उस सरोवरके तटपर पहुँचा। सरोवरको पहलेसे ही गन्धर्वोंने घेर रखा था। अतः उनके साथ दुर्योधनका युद्ध हुआ। उसमें गन्धर्वोंकी विजय हो गयी और उन्होंने रानियोंसहित दुर्योधनको कैद कर लिया। तब उसके मन्त्रिगण पाण्डवोंकी शरणमें गये। जब महाराज युधिष्ठिरको यह समाचार मिला तो उन्होंने अपने भाइयोंसे कहा—'कौरव इस समय भारी संकटमें पड़े हुए हैं। भाई-बन्धुओंमें मतभेद, लड़ाई-झगड़े तो होते ही रहते हैं, कभी-कभी परस्पर वैर भी बँध जाता है, पर इससे अपनापन नष्ट नहीं होता। शरणागतोंकी रक्षा करने और कुलकी लाज बचानेके लिये तुमलोग शीघ्र गन्धर्वोंके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार हो जाओ एवं उनके द्वारा पकड़े हुए राजा दुर्योधनको छुड़ा लाओ।' महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञा होनेपर अर्जुनने प्रतिज्ञा की कि 'यदि गन्धर्वलोग समझाने-बुझानेसे कौरवोंको नहीं छोड़ेंगे तो यह पृथ्वी आज गन्धर्वराजका रक्त पीयेगी।'

फिर भीमसेन आदि सभी गन्धर्वोंसे युद्ध करने गये। अर्जुनने अपने प्रिय मित्र चित्रसेन गन्धर्वको युद्धमें परास्त कर दिया। उस समय अर्जुनने चित्रसेनसे दुर्योधनको कैद करनेका कारण पूछा और उसे छोड़ देनेके लिये कहा। तब चित्रसेन बोला—'पाण्डवोंको दुःख देनेका दुर्योधनका भाव जानकर देवराज इन्द्रने ही मुझे यहाँ भेजा है। इस दुर्योधनने धर्मराज युधिष्ठिरको और द्रौपदीको बड़ा धोखा दिया है, इसे छोड़ना उचित नहीं है।' पर अर्जुनने कहा—'यदि तुम हमारा प्रिय करना चाहते हो तो धर्मराजकी आज्ञाके अनुसार इसे छोड़ दो।' तब चित्रसेनने रानियोंसहित दुर्योधनको छोड़ दिया।

इस प्रसङ्गमें महाराज युधिष्ठिरका बुराई करनेवालेके साथ भी भलाई करना—यह बहुत ही उत्तम व्यवहार है। उनके इस चरित्रसे हमें यह शिक्षा लेनी चाहिये कि अपने साथ कोई असद्-व्यवहार करे तो हम उसका भी हित ही करें।

मनुष्यको अपना यह उद्देश्य बना लेना चाहिये कि सबके हितके लिये अपने तन, मन, धनके द्वारा निष्कामभावसे सबकी सेवा करना। पर किसीसे सेवा करवाना नहीं, किंतु कहीं न्यायसे प्राप्त हो जाय और सेवा न करानेसे किसीको दुःख होता हो तथा वह कार्य धर्मानुकूल हो तो उसके हितके लिये ही वह सेवा स्वीकार कर लेना दोष नहीं है। कोई भी व्यक्ति हमसे मिलने आ गया या कोई न्याययुक्त कार्य आकर प्राप्त हो गया तो उस कार्यको भी निष्कामभावसे भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये तत्परताके साथ अहंकार और स्वार्थसे रहित होकर करना चाहिये। ऐसा करनेपर सभी कार्य साधनके रूपमें परिणत हो सकते हैं। जैसे एकान्तमें रहकर भजन-ध्यान, स्वाध्याय, मनन आदि करना साधन है, इसी प्रकार कोई मनुष्य चोरी, डकैती, बीमारी आदि आपत्तिसे ग्रस्त हो गया हो, या कहीं आग लग गयी हो, अतिवृष्टिके कारण बाढ़ आ गयी हो अथवा भूकम्प, महामारी, अकाल हो गया हो और उसमें पशु, पक्षी, मनुष्य आदि सभी आपत्तिमें पड़ गये हों तो वहाँ अपनी शक्तिके अनुसार तन, मन, धन लगाकर निरभिमान तथा निष्कामभावसे उनकी सेवा करना भजन-ध्यानसे कम साधन नहीं है।

साधनमें भाव ही प्रधान है, क्रिया प्रधान नहीं है। अच्छी-से-अच्छी क्रिया भी यदि भाव बुरा है तो वह नरकमें ले जा सकती है। जैसे, जप-ध्यान, पूजा-पाठ, स्तुति-प्रार्थना, अनुष्ठान आदि अच्छी क्रियाएँ भी यदि किसीके अनिष्ट या मारण-उच्चाटनके लिये की जायँ तो वे भाव दूषित होनेके कारण नरकदायिनी हो जाती हैं। इसी प्रकार नाली साफ करना, झाड़ू लगाना, पाखाना-पेशाबघर साफ करना—जैसी क्रिया देखनेमें तो बहुत नीची श्रेणीकी है, किंतु करनेवाला व्यक्ति संसारके हितके उद्देश्यसे दुःखी मनुष्योंको सुख पहुँचानेके लिये, लोगोंका स्वास्थ्य ठीक रहे इस दृष्टिसे अथवा जिसके कोई करनेवाला नहीं है, ऐसे अपरिचित अनाथकी सेवाकी दृष्टिसे अभिमान और स्वार्थको त्यागकर भगवत्प्रीत्यर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धैर्य और उत्साहसे करे तो उसके लिये वह छोटे-से-छोटा कार्य भी कल्याण करनेवाला हो जाता है। इसी तरह न्यायसे कोई-सा भी कार्य आकर प्राप्त हो जाय और उस कार्यको अभिमान तथा स्वार्थसे रहित होकर केवल भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये किया जाय तो वह छोटे-से-छोटा कार्य भी कल्याण देनेवाला हो जाता है।

इसलिये साधकको अपने मनके सम्मुख भगवान्‌को रखकर उनकी प्रसन्नताके लिये उनके रुख, मन और सिद्धान्तके अनुसार धैर्य और उत्साहसे युक्त हो तत्परतापूर्वक बड़े चावसे कार्य करना चाहिये। इस प्रकार कार्य करनेवाले साधकको कार्यकी असिद्धिमें या झंझटसे भरे कार्योंमें भी कभी मनमें उकताहट, घबराहट या थकावट आदि कुछ भी नहीं होती। प्रत्युत प्रत्येक समय प्रसन्नता और शान्ति रहती है। तत्त्वज्ञ महापुरुषोंके तो यह स्वभावसिद्ध है और साधकके लिये वही आदर्श साधन है। साधकके चित्तमें भी जो प्रसन्नता और शान्ति है, वह भगवान्‌की कृपा एवं प्रसन्नतासे ही है तथा दूसरे प्राणियोंकी प्रसन्नतासे जो प्रसन्नता है, वह भी एक बहुत ही उत्तम भाव है। अतः वह भी प्रकारान्तरसे भगवान्‌की प्रसन्नताके ही समान है; क्योंकि भगवान् ही सारे प्राणियोंकी आत्मा हैं। इसलिये सबकी प्रसन्नता भगवान्‌की ही प्रसन्नता है, किंतु इसमें अपने उत्तम कार्यके कारण जो मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा होती है, उसे लेकर यदि चित्तमें प्रसन्नता होती है तो वह राजसी है और निष्कामभावसे हमारा अन्तःकरण शुद्ध होगा—इस भावको लेकर जो प्रसन्नता है, वह सात्त्विकी है तथा सबका परम हित ही मेरा परम हित है—इस भावमें भी मुक्तिकी इच्छा है, अतः यह भी अन्तःकरण-शुद्धिकी इच्छाकी भाँति सात्त्विक भाव ही है, किंतु मुक्तिकी इच्छा भी न रहकर, किसी भी हेतुको न लेकर जो भगवान्‌की प्रसन्नतासे ही प्रसन्नता है, वह परम सात्त्विकी है अर्थात् सात्त्विकसे भी परेकी वस्तु है।

इस प्रकार साधन करनेवाले मनुष्यसे यदि कोई कहे कि आपके चित्तमें जो प्रसन्नता-शान्ति रहती है, धैर्य-उत्साह रहता है तथा थकावट, उकताहट या और कोई भी हर्ष-शोक, राग-द्वेषादि विकार नहीं होते, इसमें क्या कारण है, तो उसमें साधकको यही मानना और यही उत्तर देना चाहिये कि यह भगवान्‌की कृपा है। अतएव अपने ऊपर भगवान्‌की कृपा समझते हुए भगवान्‌को प्रत्येक समय अपने मनके सामने रखकर भगवान्‌के रुख, मन और सिद्धान्तका ध्यान करता रहे। यदि कहें कि भगवान्‌के रुखका हमें कैसे पता लगे तो इसका उत्तर यह है कि सेवा-भावके प्रतापसे साधकको उसी प्रकार भगवान्‌के रुखका पता लगता रहता है, जैसे पतिव्रता स्त्रीको सेवाभावके कारण पतिके रुखका पता लगता रहता है। इसलिये जिसमें भगवान् प्रसन्न हों, जो भगवान्‌के मन और सिद्धान्तके अनुकूल हो वही कार्य करना चाहिये, फिर अप्रसन्नता, अशान्ति, दुःख, उकताहट, थकावट आदि तथा अन्य किसी प्रकारके विकार नहीं हो सकते। इस प्रकार साधन करनेसे परमात्माकी प्राप्ति सहज और शीघ्र हो सकती है।

माता कौसल्याका श्रीरामको संदेश

राघौ ! एक बार फिरि आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने, बहुरौ बनहि सिधावौ॥
जे पय प्याइ, पोखि कर-पंकज, बार-बार चुचुकारे।
क्यों जीवहिं, मेरे राम लाड़िले ! ते अब निपट बिसारे॥
भरत सौगुनी सार करत हैं, अति प्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे मनहु कमल हिम-मारे॥
सुनहु पथिक ! जो राम मिलहिं बन, कहियो मात-सँदेसो।
तुलसी मोहि और सबहिनतें इन्हको बड़ो अँदेसो॥

(गीतावली २।८७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोना

(पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति॥

श्रीमहाप्रभु चैतन्यदेवने नामानुरागी भक्तोंकी दशाओंका चित्र खींचते हुए तीन बातोंपर विशेष बल दिया है। भगवान् और भगवन्नामके सच्चे अनुरागी संतोंके मुखसे नाम-उच्चारण होते ही उनकी आँखोंसे निरन्तर अश्रुधारा बहने लगती है, उनके मुखमण्डलपर प्रेमकी एक अद्भुत आभा आ जाती है, कण्ठ रुक जाता है और गला भर आता है तथा सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो आता है। ऐसी जिनकी दशा हो वे भगवन्नामके यथार्थ अनुरागी हैं।

भगवदनुराग होना यह प्रभुके हाथमें है, प्रभु जिसके हृदयको अनुरागका पात्र समझें, उसमें अनुराग उत्पन्न कर दें। अनुराग कुछ साधन-साध्य तो है नहीं, वह तो कृपासाध्य है। उनकी कृपा कब होती है, किनपर होती है, इसे वे ही जानें। अपने पास एक ही साधन है रोना। इसलिये रोनेका अभ्यास करना चाहिये। वह यदि दर्शन देता भी है तो रोनेसे ही देता है।

बिन रोये क्यों पाइये प्रेम पियारा मीत।

जो स्वाभाविक प्रतीत हो, वही असली रोना है। बात तो ठीक है, किंतु अभ्यासमें सब बातें पहले बनावटी ही होती हैं। यदि उस बनावटमें सीखना लक्ष्य न होकर दिखावा या स्वार्थसिद्धिकी भावना हो तब तो उससे असली लक्ष्यकी प्राप्ति नहीं होती और यदि भावना शुद्ध है, तो बनावट ही एक दिन यथार्थ बन जाती है, क्योंकि 'नकलसे असल बनी'। फौजवालोंको नकली निशाना दिखाकर उसपर अभ्यास कराया जाता है, अभ्यास होनेपर वे असली निशाना भी लगाते हैं। आँखोंको बनानेवाले डॉक्टर पहले नींबूको पानीमें डालकर उसपर नस्तर चलाना सीखते हैं और हाथ सध जानेपर आँखोंका भी इलाज करने लगते हैं। अतः जिस चीजका अभ्यास करना होगा, उसमें पहले-पहल तो नकल ही होगी।

भक्तिके दो भेद हैं, एक तो स्वभावजा, दूसरी अभ्यासजा। बहुतसे माताके पेटसे ही भक्त पैदा होते हैं, उन्हें अनुरागके लिये अभ्यास नहीं करना होता। अनेक जन्मोंके अभ्याससे वे शुक-सनकादिकी तरह उत्पन्न होते ही असली अनुरागी हो जाते हैं। उन्हें नकलकी जरूरत नहीं, वे तो बने-बनाये हैं। दूसरी भक्ति अभ्याससे होती है। शास्त्रों तथा गुरुओंके द्वारा भक्तिमाहात्म्य सुनकर उसकी ओर बढ़नेका प्रयत्न करना, इसे अभ्यासजा भक्ति कहते हैं और इसके लिये अभ्यास, साधन सभी कुछ करना होता है। अतः हमें तो अभ्यास आदि सभी करने होंगे, क्योंकि हममें प्रायः सभी उसी भक्तिके अधिकारी होंगे। स्वभावसे भक्त तो विरले ही होते हैं।

भक्तिके लिये अभ्यास क्या हो? भक्तिका लक्षण शास्त्रकारोंने बताया है कि भगवान्के प्रति अनुराग होनेका नाम ही भक्ति है। उसका लक्षण बताते हुए देवर्षि नारदजीने कहा है, जो अपने सम्पूर्ण कर्मोंको भगवान्के अर्पण कर दे और तनिक-से भी भगवद्विस्मरणसे व्याकुल होकर छटपटाने लगे, वही भक्त है। इसमें अन्तका लक्षण ही प्रधान और महत्त्वपूर्ण है, हृदयमें भगवान्को छोड़कर जहाँ भी विषयोंकी स्मृति आयी, श्यामसुन्दर जहाँ भी आँखोंसे ओझल हुए, वहीं हृदय फटने लगा। यही भक्तिका लक्षण है। श्यामसुन्दरको छोड़कर और किसीकी याद ही न आये। इसके उदाहरणमें नारदजीने व्रजकी गोपिकाओंको रखा है; वे दूध दुहते, धान कूटते, रोटी बनाते और समस्त घरके काम करती हुई भी निरन्तर भगवान्का चिन्तन करती रहती थीं। उनके हृदयसे वह साँवरी सूरत कभी दूर ही नहीं होती थी। उन्होंने श्रीकृष्णदर्शनके लिये जो साधन किये, वे ही साधन अनुराग उत्पन्न करनेके असली साधन माने जा सकते हैं।

भगवान् गोपियोंके पास सदा ही रहते थे। किंतु प्रेमका लक्षण है प्रतिक्षण बढ़ते रहना। संसारी चीजें उत्पन्न होती हैं, बढ़ती हैं, नष्ट हो जाती हैं। किंतु प्रेममें यह विशेषता है कि प्रेम उत्पन्न होता है, बढ़ता है, किंतु नष्ट नहीं होता; वह बढ़ता ही जाता है। कहाँतक बढ़ता है? इसका पता नहीं। क्योंकि इसके बढ़नेका कोई अन्त नहीं, इससे परे कोई दूसरी वस्तु नहीं, अतः अनन्त—अपार होनेसे यह निरन्तर बढ़ता ही रहता है अनादि-अनन्त कालतक।

गोपियोंकी जो भी लीलाएँ थीं, वे सब उस अनुरागको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ानेकी ही थीं। भगवान्‌की भुवनमोहिनी तानको सुनकर वे उससे मिलनेकी लालसासे दौड़ीं। प्रभु मिले। मिलनेके बाद फिर लालसा मिट जानी चाहिये। प्यासेको पानी मिल गया, बस, समाप्ति। किंतु यहाँ यह बात नहीं। यहाँ तो मिलनेके बाद भी प्रेम-रसको बढ़ाना है। मिलकर प्रभु अन्तर्धान हो गये। अब तो बड़ी आफत। पहले मिलनेकी इच्छामें मुरलीकी मधुर तानका सहारा था, वह सुरीली तान पथ-प्रदर्शिका थी। जहाँ इस तानका उद्‌गम स्थान होगा, वहीं हमारे प्राणधन जीवनसर्वस्व प्रभु होंगे, इस लालसासे वे पगली बिना कुछ देखे उस तानको लक्ष्य बनाकर दौड़ी चली आयी थीं, किंतु यहाँ आकर तो नाव मझधारमें लाकर डुबो दी। न तो वह पथ-प्रदर्शिका तान ही रही और न उस मनमोहिनी तानके उद्‌गमस्थान हमारे प्राणधन प्रभु ही रहे। अब वह उत्कण्ठा दुगुनी हुई। उत्कण्ठा जितनी ही बढ़ेगी, प्रेममें उतना ही अधिक आनन्द भी आयेगा। भूख जितनी ही जोरकी लगी होगी, प्रसादमें उतनी ही अधिक रुचि होगी। पदार्थोंमें स्वाद थोड़े ही है, स्वाद तो भूखमें है। प्रेममें मादकता थोड़े ही है, वह तो उत्कण्ठा, अनुरागका आनन्द है। गोपियोंके सामनेसे श्यामसुन्दर अन्तर्धान हुए तो उन्हें पानेके लिये क्या उपाय किया गया ? इसपर रसिकशिरोमणि भगवान् शुकदेव अत्यन्त ही अनुरागके साथ महाराज परीक्षित्‌से कहते हैं—

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः॥

वे गोपियाँ बहुत ही सुन्दर तरहसे गाती हुई नाना प्रकारके प्रलाप करती हुई, तालस्वरके साथ रोने लगीं। क्यों रोने लगीं—उनकी एकमात्र इच्छा थी श्रीकृष्ण भगवान्‌के दर्शनोंकी।

इससे यही सिद्ध हुआ कि जिन्हें श्रीकृष्ण-दर्शनकी लालसा हो, उन्हें सुन्दर स्वरके सहित रोना चाहिये। 'सुस्वर रुदन' क्यों कहा ? वह इसलिये कि रोते तो हम संसारी कामोंके लिये भी हैं। भाई, भतीजा, पुत्र, सगा-सम्बन्धी मर जाय, धन चला जाय, भारी विपत्ति आ जाय तो हम रोने लगते हैं, किंतु यह रुदन बेसुरा है, इस रुदनमें विषयोंकी लालसा है। जिसमें केवल श्रीकृष्ण-दर्शनलालसा ही हो, वही रुदन सुस्वर है। उस रुदनके लिये स्वर बनाना नहीं पड़ता। उस रुदनमें स्वर अपने आप ही स्वर बन जाता है। ऐसा रुदन करनेवाला संसारी ग्राम्य गीत नहीं गाता, किंतु वह तो **'प्रगायन्त्यः'** अर्थात् उन प्रभुके ही परमप्रिय पदोंका निरन्तर गान करता रहता है। उसे बनावटी बातें अच्छी नहीं लगतीं, लोगोंको रिझानेके लिये वह शब्दाडम्बरोंकी भरमार नहीं करता। संगति, अनुक्रमणिका, भूमिकाकी उसे परवा नहीं। वह तो **'प्रलपन्त्यः'** प्रलाप करता है, जो मनमें आता है, उस प्रेमके नशेमें बक-झक जाता है और उनके दर्शनोंकी लालसामें निरन्तर रोता रहता है। इसका परिणाम क्या होता है ?

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।

रुदनकी चरम सीमापर उनके बीचमें श्रीकृष्ण हँसते हुए प्रकट हो जाते हैं। श्यामसुन्दर स्वभावसे ही टेढ़े हैं, उलटे भी हैं। जहाँ लोग हँसते हैं, वहाँ वे सुस्त पड़ जाते हैं और जहाँ कोई सुस्वरमें रोता है, वहाँ वे हँसते हुए प्रकट हो जाते हैं। इसलिये उन्हें पानेका असली उपाय तो रोना ही है, दूसरा कोई मार्ग नहीं। कृष्णदर्शन-'लालसा' वालोंके लिये, जो केवल

'पीताम्बरधरस्त्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः'

—के दर्शन चाहते हैं, उनके लिये रोना ही एकमात्र उपाय है। उसी सुस्वर रुदनका ही दूसरा नाम संकीर्तन है।

नेत्रोंमें अश्रु भर आनेका ही नाम रोना नहीं है। नेत्रोंमें आँसू तो धूएँसे भी आ जाते हैं। रोना तो हृदयका हो। हृदय रुदन कर उठे वही असली रोना है। हृदयके रुदन करनेपर आँसू रुक नहीं सकते, इससे आँखें भी टपकती रहती हैं, किंतु बहुतसे गम्भीर शान्त रसवाले महात्मा ऐसे भी देखे गये कि उनका हृदय तो रोता है, किंतु आँखोंके आँसुओंको बाहरी छिद्रसे नहीं निकलने देते। उसे भीतरके ही छिद्रसे खींचकर विरहाग्निमें सुखा देते हैं। हमारी आँख, कान और नाक आदि इन्द्रियोंमें जैसे बाहरकी ओर छिद्र है वैसे भीतर भी हैं। हम मूढ़ लोग बाहरी छिद्रोंसे ही काम लेते हैं, इससे हमें यह बाहरी संसार ही दीखता है। कुछ धीर-विवेकी पुरुष बाहरकी दृष्टिको बंद करके भीतरके दरवाजोंको खोल लेते हैं, किंतु यह प्रेमानुराग-मार्गसे थोड़ा भिन्न शान्त ज्ञानमार्ग है। फल दोनोंका ही परा भक्ति है। किंतु शान्त ज्ञानमार्गके अधिकारी बहुत कम होते हैं। अपने लोगोंमें इतनी योग्यता कहाँ कि अनुराग उत्पन्न करें, फिर अश्रुओंको रोककर उन्हें भीतर ही करनेका प्रयत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करें। हमारी इन फूटी आँखोंसे तो वैसे ही आँसू नहीं निकलते, यदि इनमेंसे दो-चार बूँदें टपक ही पड़ें तो यही हमारे लिये बहुत है। हमें तो रोना ही आ जाय यही हमारे लिये परम सौभाग्यकी बात है। श्यामसुन्दरके लिये जिन आँखोंमें आँसू आ गये वे आँखें तो धुल गयीं, प्यारेके ठहरने योग्य बन गयीं। घर सूखा पड़ा रहता है, उसमें मकड़ी जाला बना लेती है, सूखी धूलिसे भरा रहता है, उसमें आर्द्रताका नाम नहीं है। जहाँ वह सुन्दर पानीसे धोया गया, ऊपर-नीचे तर करके उसकी धूलि-मिट्टी बहायी गयी, समझ लो इसमें कोई बड़ा आदमी ठहरनेवाला है, तभी तो यह खूब धोया जा रहा है। इन आँखोंमें जहाँ श्यामसुन्दरकी आभायुक्त जल छा गया और वह कपोलोंपरसे लुढ़कता-लुढ़कता टप-टप करके पृथ्वीमें विलीन हो गया, वहाँ समझो इन आँखोंका भाग्य खुलनेवाला है। इनकी यह शुष्कता मिटनेवाली है। श्यामसुन्दरकी अनुपम बाँकी-झाँकी होनेवाली है। ये आँखें जहाँ धुलते-धुलते एकदम मलरहित निर्मल बन गयीं, चम-चम करके चमकने लगीं, तहाँ मधुर-मधुर मुरली बजाती हुई उस मोहिनी मूर्तिकी झाँई इन चमकती हुई आँखोंमें पड़ेगी,तभी चिल्लाकर कह उठोगे—

जिन आँखिनमें यह रूप बस्यो
उन आँखिनसों अब देखिये क्या ?

फिर सचमुच ये संसारी पदार्थ अच्छे ही न लगेंगे। फिर मिश्री खाकर सीराको चाटनेकी इच्छा कौन करेगा ? फिर तो इन आँखोंका एकमात्र काम ही यह हो जायगा कि उस तिरछी चितवनवाले जादूगरको निहारती रहें।

अच्छा, श्यामसुन्दरके देखनेके बाद तो रोना बंद हो जायगा ? नहीं, सो बात नहीं। वह तो कभी-कभी बढ़ जाता है। सो क्यों ? वह इसलिये कि इन आँसुओंके ही सहारे तो वे प्राणप्यारे मिले। ये भी उमड़कर उनका दर्शन करना चाहते हैं। ये जहाँ नेत्रोंमें आये, तहाँ श्यामसुन्दरके दर्शन नहीं होने पाते, वे ओझल-से दीखते हैं। बस, उनके न दीखनेपर एक प्रकारकी तड़पन हुई। घबराहट होने लगी। नेत्रोंमें आँसू भर आये। अब दर्शन करना चाहते हैं, किंतु आँसू बीचमें पड़ जाते हैं, वे दर्शन होने नहीं देते और बिना दर्शनके चैन नहीं। छटपटाहट होती है, अतः अश्रु बहते रहते हैं, अनुराग बढ़ता जाता है। इसीलिये उद्धवजीने जाकर कहा था—

श्यामसुन्दर ! तुम्हारे वियोगमें ग्वाल-बाल, गौ-बछड़े सब दुबले हो गये हैं, सबका शरीर सूख गया है; हाँ, एक यमुना अवश्य बढ़ गयी है। यमुनाके बढ़नेका एक कारण है, वे गोपिकाएँ निरन्तर रोती रहती हैं, सो उनके आँसुओंके मिलनेसे यमुनाजीमें बाढ़ आ गयी है। वह बाढ़ मथुराको भी न छोड़ेगी। श्यामसुन्दर ! मथुरामें भी उसका प्रभाव पड़ेगा, उसे भी डुबावेगी। श्यामसुन्दर यह सुनकर फूट-फूटकर रोने लगे। उद्धवने उनका यह रुदनरूप पहले-ही-पहल देखा था। देखते भी कैसे ? पहले कभी उद्धवजी रोये ही नहीं, उद्धवजी नहीं रोये तो मनमोहन क्यों रोते। इनकी तो प्रतिज्ञा है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

अब जब उद्धवजी आँसू बहाने लगे तो श्यामसुन्दरका भी बाँध टूट गया, वे भी हिचकी भर-भरकर 'हा राधे ! हा राधे ! हा वृषभानुनन्दिनि !' कहकर रोने लगे।

उनका रोना नित्य-संयोगका था। ग्वालबाल और व्रजाङ्गनाओंका श्रीकृष्णसे अनादिकालका संयोग है। वियोगकी तो यहाँ गन्ध भी नहीं, किंतु यह रुदन नित्य अनुरागवर्धक था। उद्धवको अपना असली रूप दिखाकर भगवान्‌ने यह रहस्य समझा दिया।

पूर्णतया मनके पवित्र हो जानेपर जीवनसर्वस्व प्रियतम आप-से-आप पधार जाते हैं। क्योंकि वे बड़े रिझवार हैं—

नन्दको लाल बड़ो रिझवार है जो कहूँ नेसुक रीझि ढरेगो।
वह रसखानि अहीरको छोहरा पीर हमारे हियेकी हरेगो॥

अतः भाइयो ! भगवान्‌को पानेका, उनके दर्शनोंका एकमात्र साधन रोना है। एकान्तमें बैठिये, पद गाइये, प्रेमियोंके मुखसे सुनिये, इसीसे प्रेम बढ़ेगा।

श्रीभगवान्‌के चरणोंमें हम सब यही भीख माँगते हैं—हमारे हृदयमें अनुराग हो, हमें रोनेका वरदान मिले। हम रोते रहें और ऐसे रोवें कि—

स्मयमानमुखाम्बुजः साक्षान्मन्मथमन्मथः।

—हमारे सामने प्रकट होकर हमें छातीसे चिपटा लें और अपना बना लें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Siddhanta eGangotri Yogam Trust Foundation, Chennai and eGangotri

साधक निरन्तर अपनेको देखे

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका प्रवचन)

साधकको निरन्तर आत्म-निरीक्षण करना है, अपने-आपको देखना है। कौन क्या कर रहा है, कहाँ जा रहा है, इसे देखना साधकका काम नहीं है। यह आचार्यका काम है, उपदेशकका काम है अथवा व्यवसायीका भी काम है या जो संत-महात्मा जगत्पर स्वाभाविक अमृत-वर्षा करते रहते हैं, उनका काम है। वे लोग जगत्के दुःखोंसे दुःखी होकर, कहाँ-कहाँ दुःखके क्या-क्या कारण हैं, उन्हें जानकर मिटानेका उपाय बताया करते हैं। पर साधकको तो अपने-आपको निरन्तर देखना है, वह कहाँ है, कहाँ जा रहा है, उसके मार्गका लक्ष्य क्या है ? कहीं वह गिर तो नहीं रहा है ? रुक तो नहीं रहा है ? विपरीत दिशामें तो नहीं जा रहा है। यह उसके देखनेका काम है। परंतु यदि हम बाहरसे पुण्यात्माका वेष तथा नाम रखकर बाहरसे पुण्यदेशमें भी रहते हैं और अन्तरको भगवान्के साथ जोड़ना नहीं चाहते, तो यह मानना चाहिये कि हम ठीक रास्तेपर नहीं हैं, हम साधक नहीं हैं।

साधकके देखनेकी पहली बात यह है कि हमारा मन विषयोंकी ओर जा रहा है या भगवान्की ओर। यहींसे साधककी परीक्षा आरम्भ होती है। जिसका मन विषयोंसे हट-हटकर बार-बार भगवान्की ओर जाय, समझना चाहिये कि वह उन्नतिकी ओर जा रहा है। विषयोंमें जानेका न मालूम कितने जन्मोंका अभ्यास है। पर उसकी नियत बुरी नहीं है, वह बार-बार भगवान्की ओर लगता है तो वह ठीक रास्तेपर है। वह जा रहा है। वह मार्गकी ओर मुड़ गया है। वास्तवमें सबसे पहले साधकको जीवनकी गतिको मोड़ना है। विषया-भिमुख जीवनको मोड़कर भगवान्के सामने करना है। चाहे हम त्याग भी करें, पर त्यागमें यदि कीर्तिकी इच्छा हो गयी तो वह त्याग भोग है। यदि भोगकी ओर हमारे जीवनकी सम्मुखता है तो हम ठीक रास्तेपर नहीं हैं। पर यदि जीवन भगवान्के सम्मुख हो गया तो चाहे देर लगे तो भी वह मार्गपर है। देर लगेगी नहीं, भगवान्का विरद है। **'जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं'**, **'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा'**। पर चाहे देर लगे तो भी वह मार्गपर है, वह विपरीत मार्गपर नहीं है, वह ठीक रास्ते चल रहा है। भोगोंमें विरक्ति बढ़नी प्रारम्भ हो जाय और भगवान्में तथा भगवद्विषयमें अनुरक्ति बढ़नी आरम्भ हो जाय, यह सीधी कसौटी है। साधक अपने-आप अपने मनमें देख लें कि यदि हमारी चित्तकी वृत्ति विषयोंकी ओर अधिक बढ़ रही है तो समझना चाहिये कि हम विषय-जगत्में ही रह रहे हैं, चाहे हमारे रहनेके स्थानका नाम मन्दिर है, सत्संगभवन या गीता-भवन कुछ भी है। वास्तवमें तो हमारे अंदरका भवन हमें देखना है।

तेरे भावें जो करो भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठ के अपनो भवन बुहार॥

इसी भवनमें झाड़ू लगाओ। इसे साफ करो। इसकी मलिनताको दूर करो। इसके कूड़े-करकटको बाहर फेंको। इस अंदरके कूड़ेको लेकर कहीं झाड़ने जाओगे तो कूड़ा बिखेरोगे। तुम्हारे पास जो होगा वही तो दोगे। राग-द्वेष-युक्त पुरुष यदि कहीं उपदेशके क्षेत्रमें जा पहुँचे तो राग-द्वेष ही देगा। वह शिव-विष्णुकी लड़ाई करा देगा। साधक अपने मनको इस कसौटीपर कसता रहे कि भगवान्की ओर अनुराग बढ़ रहा है या नहीं। यदि भोगोंकी ओरसे मुख नहीं मोड़ेंगे और चलना प्रारम्भ करेंगे तो उलटे ही जायँगे। बद्रीनारायण जानेके लिये लक्ष्मणझूलेकी ओर मुख नहीं किया और ऋषिकेशकी ओर मुख कर लिया तथा चलना शुरू कर दिया। जहाँ तुम जानेकी बात कहते हो उस ओर तो तुम्हारा मुख ही नहीं है, तुम जाओगे कैसे ? इसलिये अपने जीवनको भगवान्के सम्मुख कर लेना, यह साधकका पहला काम है। एक दृष्टान्त है कि एक बार मणिकर्णिका-घाटपर काशीके कुछ लोगोंने एक नाव भाड़ेपर की। गर्मीका मौसम था, रातका समय था, काशीमें जरा भाँग छाना करते हैं। मल्लाहोंने और यात्रियोंने भी भाँग पी रखी थी। अपना ढोलक लेकर रातको गाते-बजाते हुए बैठ गये, चाँदनी रातमें प्रयाग जायँगे यह तय किया और नाव चल पड़ी। पूरी रात बीत गयी, सबेरा हुआ, नशा उतरा तो देखा कि यह तो मणिकर्णिका-घाट ही है, कहीं आगे नहीं बढ़े। मल्लाहोंसे पूछा कि 'क्या तुम सो गये थे ? खेया नहीं ? नाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो वहीं खड़ी है।' तबतक मल्लाहोंका भी नशा उतर चुका था। उन्होंने उत्तर दिया कि 'खेते-खेते तो हमारे हाथ दुखने लगे। रातभर डाँड़ चलाया है।' देखनेपर पता चला कि रस्सा ही नहीं खोला था, डाँड़ चलाते रहे, पर किनारेपर नाव बँधी रही। डाँड़ खेनेमें हाथोंमें दर्दके अतिरिक्त कुछ मिला नहीं। नाव एक कदम भी आगे नहीं बढ़ी। इसी प्रकार भगवान्‌के सम्मुख न होकर हम जो साधन करते हैं वह साधन नहीं होता, डाँड़ ही खेना रहता है। साधकको सबसे पहले अपने जीवनकी दिशा बदलनी है। अपनेको भगवान्‌के सम्मुख करना है। इसका अर्थ पहले लक्ष्यको ठीक करना है। हमें यहाँसे बम्बई जाना है, यह पहले तय करें। स्टेशनपर जाकर पता लगायें कि कौन-सा रास्ता ठीक है, किसमें भाड़ा कम लगता है, कौन शीघ्र पहुँचता है, किसमें सुविधा है, हमारे उपयुक्त कौन-सा मार्ग है, हम उसमें जा सकते हैं कि नहीं ? अपना अधिकार, अपनी रुचि सब देखकर हमें तय करना है। चाहे योगमार्ग हो अथवा भक्तिमार्ग हो या ज्ञानमार्ग, किसीसे जायँ। रास्ते अनेक हैं, पर पानेकी वस्तु एक है। परंतु जबतक जाना कहाँ है यह ही तय नहीं, बुकिंग क्लर्कके सामने जाकर खड़े होकर टिकट माँगे, वह कहाँका टिकट दे,। हमें सबसे पहले तय करना है कि भगवान्‌के मार्गमें जाना है, हमें भगवान्‌को पाना है, यह तय करके अपने जीवनको उधर मोड़ लें। हमलोग कहते हैं कि हमें लगे ३० वर्ष या ५० वर्ष हो गये, पर सच्ची बात यह है कि रस्सी तो वहीं बँधी है। भगवान्‌का नाम लेंगे, मन दुकानमें ही है। अपने-आपको पहले जीवनके उद्देश्यमें स्थिर करना है।

आरम्भमें दो बात देखनी होगी कि कहीं हम प्रमाद न कर बैठें और कहीं उलटे रास्ते न पड़ जायँ। रास्तेकी किसी चीजको देखकर उसमें फँस जाना प्रमाद है। करने योग्य कार्य न करना, न करने योग्यको करना, इसे शास्त्रमें प्रमाद कहते हैं। प्रमाद न करें। कहीं वह रास्ता न छोड़ दें। दूसरी बात है कि कहीं बुरे संगमें आकर लौट न चलें। यद्यपि भगवान्‌की ओर आगे बढ़नेवाला लौटता नहीं, यह बात ठीक है। जो भगवदाश्रयी होता है वह नहीं लौटता। परंतु जो अपने साधनके भरोसे है, वह लौट जाता है। वेदान्तके आचार्योंने भी अकृतोपासक तथा कृतोपासकका भेद बतलाया है। जो भगवान्‌की उपासना करते हुए चलते हैं, उनके विघ्नोंका नाश होता है और जो उपासनारहित चलते हैं, उनका कोई सहायक नहीं रहता। शास्त्रोंने ऐसा माना है कि यदि गुरु या परमात्माका आश्रय लेकर उनकी उपासना करते हुए चले, तो मार्ग निर्विघ्न कटेगा। जो भगवान्‌की उपासनाको साथ लिये हुए चलते हैं, वे साधनसे प्रायः नहीं गिरते और जो केवल अपने बलपर चलते हैं, उनमें एक अभिमान उत्पन्न हो जाता है। भगवान्‌ने रामचरितमानसमें कहा है—

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥

यह ज्ञानाभिमानियोंके लिये कहा है। ज्ञान हुआ नहीं और ज्ञानका अभिमान हो गया। अच्छे कर्मोंके कारण देवदुर्लभ पद मिल गया, अधिकार मिल गया, पर वहाँसे फिर गिरना पड़ेगा। दूसरी ओर कहा है—

बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे॥

वेद-स्तुति है—'हे नाथ ! जो लोग विश्वास करके अन्य समस्त आशाओंका परित्याग कर तुम्हारे दास हो जाते हैं, वे केवल तुम्हारे नाम लेकर ही अनायास भवसागरसे तर जाते हैं।' साधनसे भी गिरना हो जाता है, यदि भगवान्‌का आश्रय न हो। साधकोंके लिये बहुत-सी बातें हैं। साधकको अपने-आपको देखना है। बाहरको नहीं देखना है। अपने भीतरको देखना है। दोष यदि हमारे अंदर बढ़ रहे हैं, घट नहीं रहे हैं तो समझना चाहिये कि हम ठीक मार्गपर नहीं हैं। दोष घट रहे हैं, दैवी सम्पत्तिके गुण बढ़ रहे हैं, भोगोंसे विरक्ति बढ़ रही है और भगवान्‌में अनुरक्ति बढ़ रही है, भोगोंकी स्मृति कम हो रही है, भगवान्‌की स्मृति बढ़ रही है, भोगोंकी स्मृतिमें आनन्द कम आ रहा है, भगवान्‌की स्मृतिमें आनन्द बढ़ रहा है, भोग अशान्ति देनेवाले प्रतीत होने लगे हैं या अशान्तिकर मालूम होते हैं, भगवान्‌की ओर जानेमें शान्तिकी अनुभूति होने लगी है, तो समझना चाहिये कि हम ठीक हैं। साधक निरन्तर अपने अन्तरको देखता रहे। जहाँ भूल हुई, वहाँ अपनी भूलको सहन न करे। नारदजीके सूत्रोंमें आया है कि विषय पहले मनमें लहरकी भाँति आते हैं। यदि इन्हें आश्रय दे दिया तो समुद्र बन जाते हैं। डूब जाना पड़ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—'**समुद्रायन्ति**'। जरा-सा भी स्खलन हो जाय, जरा-सी भी कहीं बुराई अपने जीवनमें आने लगी, तो उसे सहे नहीं। वह बड़ी बुरी मालूम हो, इस प्रकारका पश्चात्ताप मनमें उत्पन्न हो और भगवान्‌के सामने रोये, तो भगवान् बल देंगे, शक्ति देंगे, अपनी कृपासे उस कमजोरीको दूर कर देंगे।

'**मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि**'

भगवान्‌ने कहा कि 'मुझपर निर्भर हो जाओ तो मेरी कृपासे तुम सारी कठिनाइयोंको लाँघ जाओगे।' अतः भगवान्‌की अमोघ कृपाके बलपर भरोसा करके निरन्तर बुराईसे बचता रहे, बुराईसे दबे नहीं। जो मनुष्य पापसे दबता है, उसे ही पाप दबाते हैं। भगवान्‌के सामने तो दीन रहे, वहाँ अभिमान कर न बैठे। भोगोंके सामने तलवार लिये डटा रहे, तुलसीदासजी महाराज जब भगवान्‌के सामने जाते हैं तो कहते हैं—'***कीजे मोको जमजातनामई।***' मैं आपको भूल गया। मुझे आप ऐसा बनाइये कि निरन्तर नरकमें यमकी यातना ही मिलती रहे। मैं इसी लायक हूँ। यह उनका कितना विनम्र भाव है, पर जब संसार सामने आता है तो कहते हैं—'***मैं तोहि अब जान्यो संसार। बाँधि न सकहिं मोहि हरिके बल, प्रगट कपट-आगार।***' चला जा यहाँसे, कपटका घर! मुझे बाँधने आया है? नहीं बाँध सकेगा। सावधान! वहाँ जा जिनके हृदयमें राम न बसते हों, यहाँ आया तो सपरिवार मारा जायगा। भोग समीप आनेपर भगवान्‌के बलपर ललकारते हैं। साधक भगवान्‌के सामने विनम्र रहे, भोगोंके पास आनेमें उन्हें फटकार दे। वास्तवमें ये भोग बड़े मीठे जहर हैं। भगवान्‌ने कहा—'ये जितने भी विषय-रस हैं, भोगोंके सुख हैं, आरम्भमें बड़े मीठे मालूम होते हैं—'**अमृतोपमम्**।' परंतु इनका जब परिणाम सामने आता है तो जहरीले—जहरके समान मार देनेवाला होता है—'**परिणामे विषमिव**।' भोगरूपी मीठे जहरसे बुद्धिमान्‌को बचना चाहिये, भोगोंसे सावधान रहना चाहिये। साधक कहीं भोग-जगत्‌का आश्रय ले न ले। ये दो बातें अपने जीवनमें देखते रहनेकी हैं कि 'जीवन भगवत्परायण है या भोग-परायण।' यही साधक और विषयीका भेद है। विषयीका जीवन भोगपरायण है और साधक भक्तका जीवन भगवत्परायण। साधकके प्रत्येक कर्मकी प्रेरणा साध्यकी ओरसे होती है, और प्रत्येक कर्मका फल साध्यकी प्राप्ति चाहता है तथा विषयीका प्रत्येक कर्मका प्रेरक भोग होता है, और प्रत्येक कर्मका फल चाहता है, भोगकी प्राप्ति। विषयी विषयोंमें आसक्त होकर राग-द्वेषके वशमें यहाँ दुःख भोगता है और नरकोंमें जाता है। '**नरकेऽनियतं वासो भवति**.....'। और भगवत्परायण साधक जीवनको शान्तिपूर्वक बिताता हुआ भगवान्‌के पदको प्राप्त होता है, यह उनके परिणामका अन्तर है। अतः हमलोग साधक बनें।

साधक बननेका यह अर्थ नहीं है कि साधकपनका अभिमान कर लें कि हम साधक हैं और सारे बाधक हैं। यह भी बड़ी भारी रुकावट होती है। साधनका जहाँ अभिमान आया, वहाँ दूसरेमें तुच्छबुद्धि हो जाती है। दूसरोंमें यह भाव रखे कि सब भगवान् हैं। भंगी भी भगवान् है, जब भंगी झाड़ू लिये सामने आवे तो भगवान्‌का रूप समझकर प्रणाम कर ले। मन-ही-मन कहे—'आप इस समय इस वेषमें हैं, मैं दूसरे वेषमें हूँ। इस समय आप दूसरी लीला करेंगे तो उस लीलाके होते समय भी मैं भूलूँ नहीं कि आप मेरे सरकार हैं, मेरे नाथ हैं।' साधक किसीको नीचा न समझे। साधकके लिये विद्या, धन, वर्ण, वर्ग, जाति, साधन, भक्ति एवं ज्ञानका अभिमान बाधक है, ये साधनाके विघ्न हैं। इन अभिमानोंसे दूर रहें। अपने-अपने स्वाँगका बरतना ही वर्णाश्रमका पालन है। अपने स्वाँगसे हटे नहीं, दूसरेको नीचा माने नहीं, सबमें भगवान् देखे, कुत्तेमें तथा नरकके कीटमें भी भगवान् हैं। अतः किसीसे भी घृणा न करे। किसीको भी नीचा न माने। दूसरेके पापकी ओर न देखे। अपने दोषको देखे। अपनी भूलें देखे, और अपने-आपको ठीक करनेमें निरन्तर रात-दिन लगा रहे। यह नहीं होना चाहिये कि घड़ी, आधी घड़ी बैठे, फिर छोड़ दे।

प्रायः यही होता है कि सत्संग भी करते हैं, पाठ भी करने बैठते हैं। पूरा कर लेते हैं, पुनः उसी विषय-सेवनमें लग जाते हैं। जितना विषय-सेवन होगा, उतने उसीके संस्कार बनते रहेंगे। भगवान्‌के संस्कार नहीं आयेंगे। भगवान्‌को तो रात-दिन पकड़े रहना चाहिये, सदा भगवान्‌की ही पूजा करें। प्रातःकाल सोकर उठनेपर भगवान्‌से इस प्रकार प्रार्थना करे—'भगवन्! आज प्रातःसे सायंतक तथा सायंसे फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रातःतक जो कुछ मैं करूँ, केवल आपकी पूजा ही करूँ।' यह साधकका जीवन है। साधक दिन-रात अपनेको सावधानीके साथ भगवान्‌के प्रति जोड़े रखे, यही धर्म है। उलटे मार्गपर आ जाय तो फिर सावधान होकर दृढ़ताके साथ ठीक रास्तेपर आवे। भगवान्‌की कृपा-भिक्षा चाहे। फिर चल पड़े, चलता जाय, तो पहुँच जायगा। मनचाहे भोग नहीं मिलेंगे, क्योंकि वे कर्मके फल हैं। भगवान् मनचाहे आपको मिलेंगे, क्योंकि वे हैं और आपके स्वरूप हैं। भगवान् हैं, आपके अधिकारकी चीज हैं, निरन्तर आपके साथ रहते हैं। आपको छोड़ नहीं सकते। भगवान्‌का मिलना निश्चित है और सहज है, भोगका मिलना अनिश्चित और बड़ा कठिन है। अतः साधक भोगोंकी ओर न देखकर निरन्तर भगवान्‌की ओर विश्वासपूर्वक देखे कि भगवान् (मिलेंगे) मिले हुए हैं, इस प्रकार रात-दिन भगवान्‌का चिन्तन करे। यह साधनाका स्वरूप है।

प्रेषिका—कविता डालमिया

शरणागति

(ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास)

जगत्‌में तीन वस्तुएँ हैं—जीव, जगत् और परमात्मा। जगत् विकारी और विनाशी है। जीव परमात्माका अंश है। वह चेतनस्वरूप है। जब वह परमात्मासे विमुख होकर जगत्‌के भोगोंकी ओर झुकता है, तब अपनेको जन्म-मरण और दुःखके चक्करमें पड़ा हुआ अनुभव करता है। जबतक भोगोंके सुखकी लालसाको छोड़कर परमात्माकी ओर उन्मुख नहीं होता, तबतक उसे सच्ची शान्ति, सच्चा सुख और सच्चा आनन्द मिल नहीं सकता। इस जगत्‌को परमात्माने अपनी माया-शक्तिसे बनाया है, उसकी व्यवस्था, उसका पोषण भी वही करता है और उसका लय भी। यह बात बिलकुल सत्य और शास्त्रसम्मत है। उसी परमात्माकी माया आत्माको विमूढ बनाकर, मोहमें डालकर, जगत्‌के भोगोंमें रुचि उत्पन्न कर जन्म-मरणके चक्करमें डालती है। गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(७।१४)

'गुणमयी दैवी मेरी मायाको तरना (मुक्त होना) बहुत ही कठिन है। जो मेरी शरण आते हैं, वे इस मायाको तर जाते हैं अर्थात् मुक्त हो जाते हैं।' और भी कहा है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(१८।६१-६२)

'हे अर्जुन! (संसाररूपी) यन्त्रपर आरूढ़ समस्त प्राणियोंको मायाके द्वारा गतियुक्त करनेवाला ईश्वर सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदय-प्रदेशमें रहता है। इससे हे भारत (अर्जुन)! तू सम्पूर्ण भावोंसे उसकी शरणमें जा। उस ईश्वरकी कृपासे तू परम शान्ति और सनातन मोक्ष-पद प्राप्त करेगा।' तथा—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(१८।६५-६६)

'तू मेरेमें मन लगानेवाला, मुझे पूजनेवाला, मेरा भक्त बन और मुझे नमस्कार कर। (ऐसा करनेसे) तू मुझे प्राप्त करेगा। मैं तेरे समक्ष प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तू मुझे प्रिय है। तू समस्त धर्मोंको छोड़कर मात्र मेरे एककी ही शरण आ (दूसरोंके पास जानेकी आवश्यकता नहीं)। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक न कर।'

जीवात्मा परमात्माका अंश है। वह परमात्माका आश्रय लिये बिना मायाके बन्धनोंसे मुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि माया उस परमात्माकी है। भगवान्‌की शरण लेनेकी इच्छा करनेवाले भक्तको निम्नलिखित पंक्तिका अभ्यास निरन्तर करना चाहिये—

तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी॥

(१५।४)

'जिससे यह अत्यन्त पुरानी प्रवृत्ति (संसार) विस्तृत हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, उस आदिपुरुष परमात्माकी शरणमें मैं जा रहा हूँ।'

आत्मा जबतक भोगेच्छा धारण करती है, तबतक वह जीवात्मा है। वही जीवात्मा संसारके बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये परमात्माकी शरणमें जाकर यदि अनन्यभावसे समस्त इच्छाओंका त्यागकर उस परमात्माको भजे तो अवश्य परमात्माको प्राप्त कर सकती है। अतएव भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥

(१०।८)

'मैं सबकी उत्पत्तिका कारण हूँ और मुझसे सभी गतिशील हैं, ऐसा समझकर बुद्धिमान् व्यक्ति भावसहित मुझे भजते हैं।'

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

(१०।९)

'उनका चित्त निरन्तर मुझमें लगा रहता है, उनके प्राण मुझमें रहते हैं, वे परस्पर (ज्ञानद्वारा) मेरा बोध करते हैं और संतोष तथा आनन्दको प्राप्त करते हैं।'

जब भक्तगण इतना करते हैं, तब भगवान् उनके लिये क्या करते हैं? उन्हींके शब्दोंमें—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(१०।१०)

'इस प्रकार सदा मुझसे जुड़ा हुआ और प्रीतिपूर्वक मुझे भजनेवाला भक्त मेरे द्वारा दिये गये बुद्धियोगसे मुझे प्राप्त करता है।'

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

(१०।११)

'उनपर कृपा करनेके लिये उनके अन्तःकरणमें रहकर तेजस्वी ज्ञान-दीपकके द्वारा उनके अन्तःकरणके अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश करता हूँ।'

भगवान्का भजन करनेवाला भक्तिमार्गका आश्रय लेकर निर्भय बनता है। कुछ लोग कहते हैं कि भगवान्का भजन करते समय मन सभी दिशाओंमें घूमता है, मन शान्त नहीं होता। इन लोगोंको इस बातकी श्रद्धा रखनी चाहिये कि भगवान्के भजनमें ऐसा प्रताप है कि निष्कामभावसे भजन करनेवाले भक्तोंका मन थोड़े ही समयमें शान्त और स्थिर हो जाता है।

इसके लिये श्रीभगवान्ने जो तीन श्लोक कहे हैं, वे जीवात्माके लिये परम आश्रयदाता हैं। वे इस प्रकार हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(९।३०)

'यदि कोई अतिशय दुराचारी हो, फिर भी वह मुझे निष्ठापूर्वक भजता है और मेरे अतिरिक्त अन्य सारी इच्छाओंका त्याग करता है तो उसे साधु ही मानना चाहिये, क्योंकि वह सुपथगामी है और अच्छे कार्योंमें लगा हुआ है।'

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(९।३१)

'अनन्यभावयुक्त भजनके प्रभावसे वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और शान्ति पाता है। हे कुन्तीपुत्र! तू यह निश्चित समझ ले कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता।' क्योंकि—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(९।३२)

'हे पार्थ! जो पापयोनिवाले हों, स्त्रियाँ हों, वैश्य अथवा शूद्र हों, वे भी मेरा आश्रय लेकर परम गति प्राप्त करते हैं।'

कुछ जन्मसे ही पापयोनिवाले होते हैं, कुछ पाप-कर्म करनेवाले होते हैं। भगवान् कहते हैं—कोई भी हो, कैसा भी भयंकर पापी क्यों न हो, स्त्री, वैश्य, शूद्र भी क्यों न हो, परंतु मेरी शरणमें आकर अनन्यभावसे यदि मुझे भजे तो मैं उसे तार देता हूँ अर्थात् उसका उद्धार कर देता हूँ। इससे अधिक सुखदायी आश्वासन और आधार दूसरा कौन हो सकता है?

परमात्माको समझनेके लिये इस संसारमें उनके-जैसा, उनसे ठीक मिलता-जुलता दूसरा और कोई उदाहरण नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा-जैसा अन्य कोई नहीं है। दो अधूरे दृष्टान्त हैं—एक आकाशका और दूसरा सागर और लहरोंका। आकाश जिस प्रकार प्राणिमात्रमें सर्वत्र अंदर और बाहर व्याप्त है, उसी प्रकार परमेश्वर सर्वव्यापक है। जिस प्रकार आकाश एक है और अखण्ड है, फिर भी अलग-अलग सबमें व्याप्त है, ऐसा भासित होता है, उसी प्रकार ईश्वर एक है, अखण्ड है, परंतु प्राणिमात्रमें अलग-अलग आत्मस्वरूप है, ऐसा भासित होता है। परमात्मा चेतन-स्वरूप है, जड प्रकृतिके द्वारा वह विभाजित नहीं हो सकता। आत्मा या परमात्मा चेतन-स्वरूप एक ही वस्तु है और अखण्ड है तथा अन्तःकरणकी उपाधि ग्रहण कर अलग-अलग आत्मस्वरूप है, ऐसा प्रतीत होता है। साधकको निम्नलिखित श्लोकमें व्यक्त निष्ठा ग्रहण करनी चाहिये।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

(६।२९)

'योगयुक्त अन्तःकरणवाला और सर्वत्र समान दृष्टिवाला (साधक) सर्वभूतोंमें आत्माको देखता है और आत्मामें सर्वप्राणियोंको देखता है।'

योगाभ्यास भी चित्तको संकल्परहित करता है और वासनाओं तथा भोगेच्छारहित होनेसे शुद्ध होता है। इससे सत्यको यह शुद्ध-चित्त शीघ्र समझ लेता है और ग्रहण करता है। जबतक ऐसी स्थितिका अनुभव साधक नहीं कर पाता, तबतक उसे उसमें लगे रहना चाहिये।

उपर्युक्त श्लोकको समझनेके लिये निम्नलिखित श्लोक विचारणीय हैं।

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ॥

(१३।२६)

'जो भी स्थावर-जङ्गम प्राणी जन्म लेते हैं, वे सब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे जन्म लेते हैं, ऐसा तू जान ले। संसारमें स्थावर-जङ्गम जितने भी प्राणी हैं, इनमें शरीर क्षेत्र कहलाता है और उसमें रहनेवाली आत्मा क्षेत्रज्ञ कहलाती है। प्राणिमात्रमें आत्मस्वरूप परमात्मा अंदर और बाहर व्यापक है, इसे निष्ठापूर्वक ग्रहण करते हुए साधकको प्राणिमात्रकी सेवा करनी चाहिये। इस प्रकारकी उपासनासे परमात्माकी प्राप्ति होती है।'

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(६।३०)

'जो मुझे सर्वत्र देखता है और सबको मुझमें देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं हूँ और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं है।'

आकाश सर्वत्र व्यापक है, आकाशमें यह सारा जगत् समाया हुआ है। यह तो हम जानते हैं, अनुभव करते हैं। तब आकाशसे भी महान् और आकाशसे भी अधिक सूक्ष्म ईश्वर सर्वत्र व्यापक हो और आकाशसहित सारा संसार उसमें समाया हो, इसमें (इस सत्यमें) कौन-सा आश्चर्य? साधक सदा इस निष्ठाको दृढ़ बनाये कि परमात्मा सर्वत्र है, शरीरके अंदर और बाहर अनेक रूपोंमें व्यापक है और उसी परमात्मामें यह सब कुछ समाया हुआ है। इस प्रकार निष्ठापूर्वक अभ्यास करनेवाले साधकको ईश्वरका साक्षात्कार होता है।

इन सब बातोंको पढ़नेसे अथवा सुननेसे ये सारी बातें समझमें आने लगती हैं, परंतु यदि उनके अनुसार आचरण न किया जाय तो दृढ़ता भी नहीं आती और योग्य फल भी नहीं मिलता।

निम्नलिखित श्लोक बहुत गम्भीर हैं। इनमें परमात्माकी वस्तुस्थितिका यथार्थ चित्रण है। जितना भी परमात्माके विषयमें कहा जा सकता है, वह इसमें व्यक्त है। इससे अधिक नहीं कहा जा सकता।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥

(९।४-५)

'मेरे द्वारा यह सारा जगत् अव्यक्त-स्वरूपसे व्याप्त है। सर्वभूत मेरेमें हैं, परंतु मैं उनमें नहीं हूँ। फिर भूत मेरेमें नहीं हैं। मेरा वास्तविक ऐश्वर्य तो तू देख। भूतोंको उत्पन्न करनेवाला और भूतोंको धारण करनेवाला मेरा आत्मा भूतोंमें नहीं रहता।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार चौथे श्लोकमें कहते हैं कि भूत मेरेमें हैं और पाँचवें श्लोकमें कहते हैं कि भूत मेरेमें नहीं हैं। इन दोनों श्लोकोंको समझनेके लिये और परमात्माके वास्तविक स्वरूपको समझनेके लिये सिनेमाके पर्देका उदाहरण लिया जा सकता है। सिनेमाके पर्देपर फिल्मोंकी छाया घूमनेसे अनेक सृष्टियाँ दिखायी देती हैं। नगर, पहाड़, समुद्र, जलते हुए मकान आदि। ऐसा भी कहा जा सकता है कि यह सारी सृष्टि पर्देपर दीखनेके कारण पर्देमें समायी हुई है और पर्दा बोलता है— ऐसा भी कहा जा सकता है कि यह सारी सृष्टि भासित होती है, परंतु पर्देमें कुछ भी नहीं है। पर्देपर हाथ फेरनेसे पर्देके सिवा हाथमें कुछ भी न आयेगा। इसी प्रकार परमात्मा-रूपी पर्देपर यह समग्र ब्रह्माण्ड सिनेमाकी फिल्मके समान भासित होता है, परंतु वास्तवमें परमात्मा-रूपी पर्देके सिवा कुछ भी नहीं है, क्योंकि सत्स्वरूप परमात्मा सृष्टिके आदिमें थे। उनपर यह विकारी और विनाशी सृष्टि भासित हो रही है। सिनेमाके पर्देपर आग दिखायी जाती है, परंतु यह आगजनी पर्देको नहीं जलाती। उसी प्रकार सृष्टिकी आग दिखायी देती है, परंतु आत्मा परमात्मारूपी पर्देको जला नहीं सकती। सच्ची वस्तु, सच्ची वस्तुको प्रभावित कर सकती है। परंतु जो मिथ्या है, वह सत्स्वरूप आत्माको किस प्रकार प्रभावित कर सकती है। इन दोनों श्लोकोंमें परमात्मा और जगत्के रहस्यमय स्वरूपका वर्णन है। इनका मनन अधिक-से-अधिक किया जाय, जिससे संसार और परमात्माके स्वरूपका बोध हो सके, परमात्माके दर्शन हो सकें।

अन्यत्र एक और कौतूहलपूर्ण दृष्टान्त श्रीभगवान् देते हैं—

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय॥

(९।६)

'जिस प्रकार सर्वत्र गति करनेवाला महान् वायु सदा आकाशमें ही स्थित है, उसी प्रकार समस्त भूत मुझमें रहते हैं।'

इन सबका सार यही है कि जो कुछ भी दिखायी देता है, वह प्रकृतिका कार्य—पञ्चमहाभूतोंका कार्य विकारी और विनाशी है और उसके अंदर परमात्मा प्राणिमात्रके हृदयमें आत्म-स्वरूप होकर विराजित हैं। जो शरीर हमारी दृष्टिमें आते हैं, वे सब परमात्माकी मूर्ति हैं और उनमें परमात्मा विराज रहे हैं, ऐसा मानकर विश्वव्याप्त परमात्माकी शरणमें जाना हम सबका प्रथम कार्य है, जैसा आरम्भमें कहा गया है। भगवद्रूप मानकर ही प्राणिमात्रकी यथाशक्ति सेवा करनी चाहिये, यही सच्ची शरणागति है, जो भक्तिका सर्वप्रथम एवं मुख्य अङ्ग है।

(अनु०—प्राध्यापक भूदेवप्रसाद हरिलाल पंड्या)

जग ले

(श्रीबालकृष्णजी गर्ग)

रे मानव ! जगमें ही जग ले !
जब चला जायगा छोड़ जगत्, तब जुगत लगेगी क्या पगले ?
ताड़ित है तू तृष्णाद्वारा, फिर काम-क्रोधसे कुम्हलाया,
बस, लोभ-मोह-मद-मत्सरने तुझको मायामें भरमाया।
मृगतृष्णावत् सब विषय-सुखोंने तुझको यों ही बहलाया,
पापोंसे कभी न घबराया, अपना हित नहीं समझ पाया।
अब भी प्रपंचको त्याग तुरत, प्रभुके पदपद्मोंमें लग ले !
रे मानव ! जगमें ही जग ले !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[सभी परमात्मप्राप्ति कर सकते हैं]

एक ऐसी बात है, जिसकी महिमा मैं कह नहीं सकता। अगर आप ध्यान दें तो सदाके लिये निहाल हो जायँ। वह यह है—ऐसा कोई पारमार्थिक साधन है ही नहीं, जिसके लिये हम कह सकें कि इसको तो हम नहीं कर सकते, और ऐसा कोई सांसारिक कार्य नहीं है, जिसको सब कर सकते हों। कारण कि परमात्मप्राप्तिकी योग्यता, सामर्थ्य तो सभी मनुष्योंमें नहीं है। जैसे कामनाकी पूर्ति करना और कामनाका त्याग करना—ये दो बातें हैं। कामनाकी पूर्ति कभी कोई कर ही नहीं सकता। हम इन्द्र बन जायँ, महाराजा बन जायँ, बड़े धनी बन जायँ, कितनी ही सम्पत्ति इकट्ठी कर लें, तो भी कामनाकी पूर्ति कभी हो ही नहीं सकती। परंतु कामनाका त्याग हो सकता है। सांसारिक पूर्ति कोई कभी कर ही नहीं सकता और परमात्माकी प्राप्ति सभी कर सकते हैं। इसमें कोई अयोग्य है ही नहीं, क्योंकि परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मनुष्य-शरीर मिला है। जिस कामके लिये शरीर मिला है, वही काम यदि नहीं कर सकता तो फिर क्या कर सकेगा वह ? सांसारिक पूर्तिके लिये शरीर मिला ही नहीं है तो फिर उसकी पूर्ति कैसे कर सकता है ? कर ही नहीं सकता।

परमात्माकी प्राप्ति करनेमें, सांसारिक कामनाका त्याग करनेमें सब-के-सब स्वाधीन हैं और सांसारिक कामनाकी पूर्ति करनेमें सब-के-सब पराधीन हैं। सांसारिक कामना पूरी करनेमें कभी कोई समर्थ है ही नहीं, परंतु कामनाका त्याग करनेमें, परमात्माकी प्राप्ति करनेमें सब-के-सब समर्थ हैं, कोई असमर्थ नहीं है। सब-के-सब पात्र हैं, कोई अपात्र नहीं हैं; सब-के-सब योग्य हैं, कोई अयोग्य नहीं है। सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्ति दो मनुष्योंको भी कभी एक समान नहीं होती, पर परमात्माकी प्राप्ति सबको एक समान होती है। पहले नारद, व्यास, शुकदेव आदि महात्माओंको जिस तत्त्वकी प्राप्ति हुई है, उसी तत्त्वकी प्राप्ति आज भी कोई करना चाहे तो कर सकता है। ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो अथवा शूद्र हो; ब्रह्मचारी हो, गृहस्थ हो, वानप्रस्थ हो अथवा संन्यासी हो; बीमार हो अथवा स्वस्थ हो; अनपढ़ हो अथवा पढ़ा-लिखा हो; निर्धन हो अथवा धनवान् हो—सब-के-सब परमात्माकी प्राप्तिके अधिकारी हैं। इसमें आप खूब शङ्का करें; शङ्का टिकेगी नहीं ! सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्तिमें कोई भी स्वतन्त्र नहीं है, क्योंकि उनकी प्राप्ति दूसरोंके अधीन है। दूसरेकी अधीनता स्वीकार किये बिना, दूसरेकी सहायता लिये बिना अकेला कोई सांसारिक भोगोंको भोग ही नहीं सकता। परंतु परमात्माकी प्राप्ति अकेला ही कर सकता है, क्योंकि परमात्माकी प्राप्तिमें किसीकी सहायताकी किंचिन्मात्र भी आवश्यकता नहीं है। परमात्माकी प्राप्तिमें सब-के-सब स्वतन्त्र हैं।

पारमार्थिक बात बतानेवाले भी हर समय तैयार हैं। दत्तात्रेयजी महाराजने चौबीस गुरु बनाये तो पारमार्थिक बात बतानेवालोंको ही गुरु बनाया, नहीं बतानेवालोंको वे गुरु कैसे बनाते ? गुरुका कभी अभाव होता ही नहीं।

बालकपनमें खिलौनोंकी कामना होती है, पर आज खिलौनोंकी कामना होती है क्या ? इससे सिद्ध हुआ कि कामना छूटती है। यह आपके अनुभवकी बात है। सांसारिक कामना टिक नहीं सकती। एक कामना छूटती है तो आप दूसरी कामना पकड़ लेते हैं। इस तरह आप नयी-नयी कामना पकड़ते रहते हैं। अगर पकड़ना छोड़ दें तो निहाल हो जायँ। परमात्मप्राप्तिकी कामना तो कभी किसीकी नहीं मिटती, केवल दब जाती है। जो कामना टिकती नहीं, उसको तो पकड़ते रहते हैं और जो कामना मिटती नहीं, उसकी तरफ ध्यान ही नहीं देते—यह हमारी वस्तुस्थिति है। परमात्मप्राप्तिकी कामना पूरी करनेमें आप सब सबल हैं, निर्बल नहीं हैं, परंतु सांसारिक कामना पूरी करनेमें आप सब निर्बल हैं, कोई सबल नहीं।

श्रोता— संसारकी इच्छा और परमात्माकी इच्छा—दोनों बिलकुल विपरीत होते हुए भी एक ही जगह रहती हैं क्या ?

स्वामीजी— दोनों इच्छाएँ एक ही जगह होती हैं। जहाँ भोगकी इच्छा है, वहीं मोक्षकी भी इच्छा है। भोगकी इच्छा निवृत्त होगी और परमात्माकी इच्छा जाग्रत् हो जायगी। संसारकी इच्छाको मिटा दो तो परमात्माकी इच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप-से-आप पूरी हो जायगी। संसारकी इच्छा कभी पूरी नहीं होगी। लाखों, करोड़ों, अरबों जन्म हो जायँगे तो भी पूरी नहीं होगी, प्रत्युत नयी-नयी पैदा होती रहेगी—***'जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।'***

श्रोता—दोनों विपरीत इच्छाएँ एक ही जगह कैसे रहती हैं?

स्वामीजी—एक इच्छाको तो आपने पकड़ा और एक इच्छा आपमें स्वतः है। संसारकी इच्छाको तो आपने पकड़ा है और परमात्माकी इच्छा आपमें खुदमें है। मैं सदा जीता रहूँ, मेरेमें और कोई अज्ञान न रहे, मैं सदा सुखी रहूँ—यह आपकी खुदकी इच्छा है। भोगोंकी इच्छा आपकी खुदकी नहीं है।

इच्छाके प्रेरक आप खुद ही हैं। अगर आप खुद सांसारिक इच्छाको छोड़ दें तो वह टिक सकती ही नहीं। जिसकी पूर्ति होनी असम्भव है, उसको तो छोड़ ही देना चाहिये। सांसारिक इच्छा इसलिये पूरी नहीं होती कि संसार 'नहीं' है और परमात्मप्राप्तिकी इच्छा इसलिये पूरी होती है कि परमात्मा 'है'। सांसारिक वस्तुएँ कभी सदा नहीं रहतीं, मिट जाती हैं, पर परमात्मा सदा ही रहते हैं।

श्रोता—संसारमें रहकर संसारकी इच्छासे अलग कैसे रह सकते हैं?

स्वामीजी—संसारमें रहकर भी सब तरहकी इच्छा होती है क्या? नहीं हो सकती। बनावटी इच्छा सब तरहकी कैसे हो सकती है? भोजनमें भी दो आदमियोंकी एक इच्छा नहीं होती। किसीको मीठा अच्छा लगता है, किसीको मिर्च अच्छी लगती है। किसीको थोड़ी मिर्च अच्छी लगती है, किसीको ज्यादा मिर्च अच्छी लगती है। इस तरह संसारकी सब इच्छाएँ सबको नहीं होतीं। अतः संसारकी इच्छा छूटनेवाली है। जैसे संसारकी दूसरी इच्छाओंसे आप अलग रहते हैं, ऐसे ही जिन इच्छाओंको आपने पकड़ रखा है, उन इच्छाओंसे भी आप अलग रह सकते हैं।

वास्तवमें आप स्वयं संसारमें रहते ही नहीं, प्रत्युत परमात्मामें ही रहते हैं—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५।७)। संसारमें तो शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि रहते हैं—**'मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि'** (गीता १५।७)। जो आपके नहीं हैं, उन शरीरादिको तो आप अपना मान लेते हैं और जो आपके अपने हैं, उन परमात्माको आप अपना नहीं मानते—यह खास भूल है।

श्रोता—परमात्माको देखे बिना अपना कैसे मानें?

स्वामीजी—आप स्वयं दीखते हो क्या? आप कहते हैं कि शरीर मेरा है, इन्द्रियाँ मेरी हैं, मन मेरा है, बुद्धि मेरी है, तो इससे सिद्ध होता है कि आप शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिसे अलग हैं। अतः आप कैसे हैं? आपका रंग-रूप कैसा है? बताओ। आप स्वयं नहीं दीखते, फिर भी अपनेको मानते हो कि नहीं? अभी तो बात चल रही है, उसकी तरफ आप ध्यान तो दो जिस इच्छाकी पूर्ति नहीं हो सकती, उसको तो छोड़ दो और जिस इच्छाकी पूर्ति हो सकती है, उसको पकड़ लो—इतनी ही तो बात है। सिद्धान्तकी एकदम पक्की बात है।

'यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः' (गीता ६।२२)

—जिसकी प्राप्तिसे बढ़कर दूसरा कोई लाभ है ही नहीं और दुःख जिसके नजदीक ही नहीं पहुँचता, उसकी प्राप्ति आप सबको हो सकती है; परंतु यह तब होगी, जब आप दूसरी (सांसारिक) इच्छा नहीं रखोगे। अगर परमात्माकी इच्छा भी रहेगी और संसारकी इच्छा भी रहेगी, तो काम नहीं बनेगा—***'दुबिधामें दोनों गये, माया मिली न राम।'***

श्रोता—भगवान् सांसारिक कामना पैदा कर देते हैं!

स्वामीजी—भगवान् कभी किसीकी कामना पैदा नहीं करते, नहीं करते, नहीं करते! कामना तो आपकी अपनी बनायी हुई है। आप सच्चे हृदयसे प्रार्थना करो तो भगवान् मिटा देंगे। जिससे आपपर आफत आये, ऐसा काम भगवान् नहीं करते; क्योंकि आप भगवान्‌के अंश हैं। अंशी अपने अंशका बिगाड़ कैसे कर सकता है?

काम, क्रोध और लोभको दूर करना आवश्यक है, पर जबतक ये दूर नहीं हों, तबतक परमात्माकी भक्ति ही न करे—ऐसी बात नहीं है। वे इस प्रकार दूर हटानेसे नहीं हटते, परमात्माकी निष्काम भक्तिसे ही उन्हें निकाला जा सकता है। अतएव साधकको निष्काम भक्ति करते रहना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्धव-संदेश—२७

(डॉ॰ श्रीमहानामव्रतजी ब्रह्मचारी, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰, डी॰ लिट्॰)

अब श्रीमद्भागवतके **'व्यभिचारदुष्टाः'** पदको लीजिये। इस सम्बन्धमें शङ्का वे ही लोग करते हैं, जो प्रायः बहिर्मुख और स्थूलबुद्धिसे युक्त हैं। व्यभिचारदुष्टका तात्पर्य है विपरीत या विशेषरूपसे अभिमुख विचरण करना। जिस दिशामें उपास्यतम प्रियतम श्रीकृष्ण विद्यमान हों, उसकी विपरीत दिशामें जो विचरण किया करते हैं, वे ही व्यभिचारी हैं। और इन व्रजाङ्गनाओंको देखिये, इन्होंने तो श्रीकृष्णसे भिन्न अन्य सभी विषयोंका सर्वतोभावसे परित्याग कर दिया है तथा प्रगाढ़ अनुरागपूर्वक श्रीकृष्णका ही भजन कर रही हैं। तब ये व्यभिचारदुष्टा किस प्रकार हो सकती हैं? समस्त धर्मशास्त्रोंका उपदेश है—जडवस्तुके प्रति कामनापरित्याग-पूर्वक अद्वयज्ञानतत्त्व श्यामसुन्दरका भजनानुष्ठान। सभी साधक भक्त जो शास्त्रपथका अनुसरण करते हैं, वे निरन्तर इस उपदेशके पालन करनेकी चेष्टा करते हैं, जिससे श्रीकृष्ण-भिन्न तृष्णाका त्याग करके श्रीकृष्णमें निष्ठा प्राप्त की जा सके। किंतु अपना सर्वस्व त्याग करके श्रीकृष्णमें इस प्रकारका प्रगाढ़ आवेश प्राप्त करनेमें व्रजदेवियोंके अतिरिक्त कौन सक्षम हुआ है? और वह परमाराध्य अद्वयज्ञानतत्त्व नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ही तो हैं।

अतएव ये गोपीजन किसी भी प्रकारसे व्यभिचारदुष्टा नहीं हो सकतीं। फिर भी यदि लोग कहें तो कहते रहें। उन्हें तो एकमात्र बात यही देखनी चाहिये कि जिन्हें हम वनचरी, व्यभिचारदुष्टा कह रहे हैं, उन्हें परमात्मा-स्वरूप श्रीकृष्णके प्रति यह उच्चतम स्तरका अधिरूढ महाभाव कैसे प्राप्त हो सकता है? इन दोनों अवस्थाओंका एक ही व्यक्तिमें एक साथ अस्तित्व सम्भव है क्या?

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः।

(श्रीमद्भा॰ १०।४७।५९)

गोपीजनोंके ऊपर जो व्यभिचारदोष (अर्थात् श्रीकृष्ण उनके उपपति थे, इसलिये उनकी सेवा करना अपराध है, यह दुष्टभाव) का आरोपण करते हैं, वे सभी दोषारोपणकारी व्यक्ति अक्षय नरक-भोगके उपयुक्त पात्र हैं—

'तत्रासु व्यभिचारदोषोपोद्बलका ये हन्त ते नारकाः।'

गोपियोंको जिस अद्भुत एवं विस्मयजनक प्रेमकी प्राप्ति हो चुकी थी, उसका ज्ञान हुए बिना ब्रह्माके रूपमें जन्म ग्रहण करना भी व्यर्थ ही है। **(वार्तां यस्य विना वृथा भवति तद् ब्रह्मादीनां जन्म च)।**

श्रीकृष्ण तो परमात्मा हैं, उन्हें पहचाननेमें ही ब्रह्माका ब्रह्मत्व है। समस्त जीवोंके सभी इन्द्रियोंके अधिष्ठाता श्रीकृष्ण ही हैं। सभीके आत्माकी आत्मा भी श्रीकृष्ण ही हैं। गोपीजनोंके पतिम्मन्यगणोंकी इन्द्रियोंके अधिष्ठातारूपसे श्रीकृष्ण ही उनके पति सिद्ध होते हैं तथा उनकी आत्माओंके आत्मारूपसे भी श्रीकृष्ण ही पति सिद्ध होते हैं।

गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषां चैव देहिनाम्।
योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक्॥

(श्रीमद्भा॰ १०।३३।३६)

गोपियोंके, उनके पतियोंके एवं समस्त देहधारी प्राणियोंके बाहर इन्द्रियोंके अधिष्ठातारूपसे और अन्तरमें अन्तरात्मारूपसे जो नित्य विचरण करते हैं, वे परमात्मा ही लीलाविहार-हेतु श्रीकृष्णरूपसे विद्यमान हैं। अतएव व्यभिचार-दोषकी सम्भावना ही कहाँ रही? जो अपना सर्वस्व त्याग करके श्रीकृष्णका भजन नहीं करते, वस्तुतः वे ही प्रकृत व्यभिचारी हैं।

पूर्वपक्ष शङ्का उपस्थित करता है। आपने जो कहा, वह समझमें आ गया—तत्त्वदृष्टिसे गोपीजन व्यभिचारदुष्टा नहीं हैं, प्रत्युत व्रजजनोंके अतिरिक्त जो लोग कृष्ण-भजन नहीं करते, वे ही प्रकृत व्यभिचारी हैं; किंतु इतना समझ लेनेपर भी संशय नहीं मिट रहा है। कारण, तत्त्वदृष्टि और व्यवहारदृष्टिका एकत्व बुद्धि ग्रहण नहीं कर पा रही है। जब ऐसा भी सुननेमें आता है कि गोपियोंके अन्य पति भी थे तो बाह्यदृष्टिसे वे व्यभिचारदुष्टा बोलकर विशेषित होंगी ही। तात्त्विक व्याख्यासे इसका निराकरण नहीं किया जा सकता। इसके उत्तरमें हम कहेंगे कि नहीं, व्यवहार-दृष्टिसे भी किसी प्रकारका दोषारोपण नहीं किया जा सकता। उनके दूसरे पति भी थे, यह बात जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनी जाती है, वह केवल योगमायाकल्पित है। कारण, ऐसा नहीं होनेपर व्रजाङ्गनाओंके रूढ महाभावका प्रकाश पूर्णाङ्ग नहीं होता। प्रबलतम दुःख भी यदि श्रीकृष्णप्राप्ति-सम्भावनाद्वारा परम सुखकर प्रतिभात हो तो उस प्रणयका नाम ही रूढ महाभाव कहा जाता है। अनुराग परिपूर्णरूपसे प्रकटित न हो तो रूढ महाभाव व्यक्त नहीं हो सकता। मर्यादाशालिनी कुलवधुओंद्वारा लज्जा-त्याग एवं पातिव्रत्य-त्याग, उनके द्वारा प्रज्वलित अग्निमें भस्मीभूत होने या विषधर सर्पकी विषज्वालासे प्राण-त्याग करनेकी अपेक्षा भी अधिकतर वेदनाका हेतु होता है। गोपीजनोंने श्रीकृष्णप्रेमके वशीभूत होकर उस लज्जा एवं पातिव्रत्यका भी त्याग कर दिया, इसीलिये उनका अनुराग रूढ महाभावकी उच्च भूमिकापर आरोहण कर सका। अतएव योगमायाने इस प्रकारके एक कल्पित पतिभावकी सृष्टि करके रूढ महाभावके आसनकी रचनामात्र की है।

अब यदि कहें कि व्रजाङ्गनाएँ तो श्रीकृष्णको परमात्मा नहीं जानती थीं, व्रजराजनन्दन ही जानती थीं, तो ऐसी स्थितिमें उनके जारत्वदोषका निरसन किस प्रकार होगा ? इसके उत्तरमें उद्धवजी कह रहे हैं—

नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षा-
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥

(श्रीमद्भा० १०।४७।५९)

प्रकृत अगदराज (ओषधियोंका राजा—अमृत) अनजानमें भी अर्थात् अमृतके गुण न जानते हुए भी यदि पी लिया जाय तो सर्वव्याधि-दोष दूर करके दिव्यदेहकी प्राप्ति करा देता है। इसी प्रकार पुरुषोत्तमको पुरुषोत्तमबोधसे न जानकर भी यदि कोई भजन करता है तो भी धर्मविरुद्धता और रसविरुद्धताके सब दोष स्वतः ही दूर हो जायँगे और सर्वविध मङ्गलकी प्राप्ति हो जायगी। इसमें विन्दुमात्र भी संशय करनेका अवकाश नहीं है। अतएव हम इस सिद्धान्तपर उपनीत होते हैं कि श्रीकृष्णमाधुर्यके परमोत्कर्षका एकमात्र व्रजाङ्गनाओंने ही अनुभव किया है और उसके आस्वादनद्वारा वे ही परमतम अभिनिवेशको प्राप्त कर पायी हैं।

यह परम सौभाग्य विश्वमें अन्य किसीको प्राप्त नहीं हुआ—अधिक तो क्या नारायणवक्षोविलासिनी श्रीलक्ष्मीदेवीको भी प्राप्त नहीं हुआ। श्रीलक्ष्मीदेवी वैकुण्ठेश्वरी हैं, नारायणकी प्रियतमा हैं, किंतु श्रीनन्दनन्दनका जो अनन्यसाधारण माधुर्य है, उसका अनुभव करनेमें वह भी समर्थ नहीं हो सकीं। श्रीलक्ष्मीदेवी स्वर्णकमल-जैसी कान्तिमती हैं, समस्त श्रेष्ठ धामोंके शिरोमणि श्रीवैकुण्ठधामकी सम्राज्ञी हैं। भू-लीला-प्रभृति शक्ति-वर्गमें वे सर्वश्रेष्ठ हैं, किंतु व्रजाङ्गनाओंके सदृश श्रीकृष्णमाधुर्यके आस्वादनका अधिकार उन्हें भी नहीं मिला। जब यह अधिकार श्रीलक्ष्मीदेवीको ही नहीं मिला तो स्वर्गकी अन्य किसी देवीको प्राप्त होनेका प्रश्न ही नहीं उठता। इसीलिये श्रीउद्धवजी कह रहे हैं—

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।

(श्रीमद्भा० १०।४७।६०)

श्रीनारायण और श्रीकृष्ण स्वरूपतः अभिन्न हैं, किंतु रसतः उन दोनोंमें विशेष भिन्नता विद्यमान है। मक्खन और छेना दोनों ही दुग्धके सार हैं, स्वरूपतः वे एक ही हैं, किंतु उनके स्वादमें भिन्नता तो है ही। आकृतिमें नारायण चतुर्भुज हैं, भगवान् श्रीकृष्ण द्विभुज हैं। श्रीनारायणमें निरन्तर ईश्वरावेश विद्यमान है, जबकि भगवान् श्रीकृष्णमें निरन्तर गोपावेश विद्यमान है। '***कृष्णेर जतेक खेला, सर्वोत्तम नरलीला।***' मनुष्यवेश-लीलामें श्रीकृष्णकी ही लीला सर्वोत्तम लीला है। नारायणके ईश्वर-भावकी अपेक्षा भगवान् श्रीकृष्णके मनुष्यभावमें माधुर्य अधिकतर है। रसके विषयमें रसगत पार्थक्य होनेके कारण, रसके आश्रयमें भी उसी प्रकारका पार्थक्य विद्यमान है। अर्थात् व्रजदेवियों और लक्ष्मीदेवियोंमें तत्त्वतः पार्थक्य न होते हुए भी रसगत भेद विद्यमान है ही, इसीलिये कह रहे हैं—

रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम् ॥

(श्रीमद्भा० १०।४७।६०)

रासोत्सवमें निखिल माधुर्य-प्रवर्षणकारी श्रीकृष्णचन्द्रके भुजदण्डोंद्वारा आलिङ्गित होकर व्रजाङ्गनाओंने जैसे आनन्दकी प्राप्ति की, श्रीलक्ष्मीदेवी भी वैसा आनन्द या प्रसाद प्राप्त नहीं कर सकीं। यद्यपि श्रीलक्ष्मीदेवी श्रीनारायणकी सतत अङ्कविलासिनी हैं, किंतु उनमें व्रजदेवियों-जैसी प्रेममयी तीव्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिपासाका अभाव होनेके कारण उनमें गोपियों-सरीखी आस्वादनकी चमत्कारिता एवं गम्भीरताका प्रकाश नहीं है। श्रीनारायणके प्रति श्रीलक्ष्मीदेवीकी ईश्वरबुद्धि होनेके कारण वहाँ प्रीतिरस किञ्चित् संकोचपूर्ण दृष्ट होता है। किंतु श्रीकृष्णके प्रति व्रजाङ्गनाओंमें ईश्वर-बोधके अभाव-हेतु उनकी प्रीति संकोचहीन है। इसीलिये वह उज्ज्वलतर है।

श्रीनारायणमें श्रीलक्ष्मीदेवीकी तदीयता-बुद्धि है। मैं श्रीनारायणकी सेविका एवं दासी हूँ—यह बोध उनके हृदयमें सुदृढरूपसे विद्यमान है। अधीनतामें तो किञ्चित् दुर्बलता रहती ही है। इसीलिये दुर्बलता-हेतु प्रीति अपनी चरम गाढ़ताको प्राप्त करनेमें बाधा पाती है। लक्ष्मीदेवीकी ही प्रकटमूर्ति श्रीरुक्मिणीजी श्रीकृष्णके उपहास-वाक्यसे मूर्छित हो गयी थीं। प्रीतिरसके पूर्ण गाढत्वके अभाव-हेतु ही इस प्रकारकी मूर्छा सम्भव हो सकी थी।

'कृष्ण यदि रुक्मिणी के कैल परिहास।
कृष्ण छाड़िवेन जानि रुक्मिणीर हैल त्रास॥'

एतद्विपरीत श्रीव्रजदेवियोंका श्रीकृष्णमें मदीयतामय प्रेम है—'श्रीकृष्ण तो हमारे ही हैं' इस अनुभवसे अन्तर पूर्ण है।

'तो काहा जाइब, आपनि आइब पुनहि लुटाइब चरणे।'

यह गम्भीर विश्वास प्राणोंमें कूट-कूटकर भरा हुआ है। तभी तो वे मानवती हो सकती हैं। वे श्रीकृष्णकी अपेक्षा नहीं करतीं, श्रीकृष्ण ही उनकी अपेक्षा करते हैं। तभी तो कहा गया है, रासोत्सवमें सबके साथ हाथ पकड़-पकड़कर नाचे हैं। प्रेमके आवेशमें श्रीकृष्णचन्द्रने स्वतः प्रवृत्त होकर हठात् गोपिकाओंके गलेमें अपने बाहु डालकर उन्हें कण्ठलग्न कर लिया (**अस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ०**)। ऐसा क्यों किया? सम्भवतः उन्हें आशङ्का हो गयी कि अपने प्रेमावेगकी अपेक्षा गोपियोंके तीव्रतर प्रेमावेगमें बह न जायँ, इसीलिये उनका आश्रय ले लिया। गोपियोंकी प्रीतिके श्रेष्ठत्वको श्रीकृष्णने—'**न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां०**' (१०।३२।२२) में स्पष्ट स्वीकार किया है। श्रीमद्भगवद्गीताकी—'**ये यथा मां प्रपद्यन्ते**' (४।११) में की गयी आश्वासन-वाणीके अनुसार भगवान् सर्वत्र भक्तके अनुरूप ही भजन किया करते हैं। किंतु '***एई नियम भङ्ग होइलो गोपीर भजने।***' अर्थात् भक्तके प्रति भगवान्‌का और भगवान्‌के प्रति भक्तका अनुराग समान ही होगा। सर्वत्र होता भी ऐसा ही है। किंतु मात्र एक दिन इसमें व्यतिक्रम हो गया। रासोत्सवमें श्रीकृष्णके प्रति गोपियोंके प्रेमकी प्रबलता गोपियोंके प्रति श्रीकृष्णके प्रेमकी प्रबलताकी अपेक्षा तीव्रतर होनेके कारण श्रीकृष्ण ऋणी हो गये। ऋणकी स्वीकृति अथवा रसिक महाजनोंकी भाषामें 'रवत' उपर्युक्त '**न पारयेऽहं**' श्लोकमें विद्यमान है। गोपीप्रेमके प्रबल प्रवाहमें बहकर कहीं खो न जायँ, इस भयसे श्रीकृष्णचन्द्रने अपने भुजदण्डोंद्वारा गोपियोंका कण्ठप्रदेश कसकर भींच लिया। यह अपूर्व सौभाग्य सम्पूर्ण विश्वमें कभी अन्य किसीको भी नहीं मिला था। तभी भक्तजनोंने गाया है—

रासलीला जयत्येषा जगदेकमनोहरा।
यस्यां श्रीव्रजदेवीनां श्रीतोऽपि महिमा स्फुटः॥

'जय हो रासलीलाकी, जिसमें सुस्पष्ट रूपसे यह सिद्ध हो गया कि श्रीलक्ष्मीदेवीकी अपेक्षा भी व्रजदेवियोंकी महिमा अधिकतर है।'

एतादृश महामहिमान्वित व्रजदेवियोंके श्रीचरणोंमें प्रणत होकर धूलिस्नात होनेकी लालसा किसके मनमें नहीं होगी? मैं उद्धव, श्रीकृष्णका सखा हूँ बोलकर सम्भवतः गोपीजन मुझे अपनी पदरज प्रदान न करें। इसीलिये मैंने मन-ही-मन एक सङ्कल्प किया है। सुना है कि मनुष्य जिस सङ्कल्पको लेकर देहत्याग करता है, परजन्ममें उसे वही प्राप्त होता है। मैं यह सङ्कल्प कर रहा हूँ और मृत्युपर्यन्त इस सङ्कल्पको अपने हृदयमें सावधानीपूर्वक जाग्रत् रखूँगा कि मेरे इस उद्धव-जन्मकी समाप्तिपर मेरा भावी जन्म श्रीवृन्दावनके पथपार्श्वमें किसी गुल्मलताके रूपमें ही हो। उस अवस्थामें श्रीकृष्णकी वंशीकी मधुर-ध्वनिसे आकृष्ट होकर व्रजगोपियाँ जब दिग्विदिग्शून्य होकर वेगसे दौड़ती हुई उधरसे निकलेंगी, तब अनजानमें ही उनके श्रीचरण मुझ गुल्मलता बने हुए उद्धवपर पड़ जायँगे। उस दुर्लभ चरणरजका स्पर्श पाकर मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।

(श्रीमद्भा० १०।४७।६१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रसंगमें श्रीश्रीप्रभु जगद्बन्धु सुन्दरके एक अपूर्व प्रार्थना-पदका स्मरण हो रहा है—

'विधि यदि गुल्मलता करितो रे कुञ्जवने,
साजिताम व्रजगोपीर पदरजः आमरणे।
नित्य निकुञ्ज माझारे, सखीसने अभिसारे,
एसे किशोरी आमारे दलितेन श्रीचरणे।
हाते वांशी कालशंशी, निकुञ्ज कानने पशि,
सुखे रहितेन बसि ममोपरे प्यारी सने।
क्रीडाश्रमे राधाश्याम, घामितेन अविराम,
अमनि पदेर धाम लइताम सजतने।
बन्धुबलिछे कातरे, कबे राधादामोदरे,
साजाबो हृदय भरे हेरिबो प्रेमनयने॥'

यदि विधाता मुझे कुञ्जवनकी गुल्मलता बना देते तो मैं व्रजगोपियोंके पदरजसे अपना शृंगार किया करता। श्रीकिशोरीजी नित्य सखियोंसहित निकुञ्जमें अभिसार-हेतु पधारतीं और मुझे उनके श्रीचरणोंका मादक स्पर्श मिलता, इतनेमें ही श्यामचन्द्र वंशी हाथमें लिये हुए निकुञ्जमें प्रवेश करके अपनी प्रियतमाके साथ आनन्दसे मेरे ऊपर विराज जाते। श्रीराधा और श्रीश्यामकी देहपर जब क्रीडाविहारके श्रमसे स्वेद-बिन्दु झलकने लगते तो मैं अत्यन्त यत्नके साथ उनके चरणोंका पसीना सोख लेता। बन्धु कातरस्वरसे पुकार रहे हैं, कि वह समय कब आयेगा जब मैं श्रीराधादामोदरको अपने हृदयमें सजाकर प्रेमपूर्ण नेत्रोंसे निहार सकूँगा। (क्रमशः)

(अनु०—श्रीचतुर्भुजजी तोषणीवाल)

'जीभ मिलावै राम'

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

बैताल और विक्रमके संवादमें बैतालने कहा—

जीभ जोग अरु भोग, जीभ बहु रोग बढ़ावे।
जीभ करै उद्योग, जीभ लै कैद करावे॥
जीभ स्वर्ग लै जाय, जीभ सब नरक दिखावे।
जीभ मिलावे राम, जीभ सब देह धरावे॥
निज जीभ ओठ एकाग्र करि, बाँट सहारे तोलिये।
बैताल कहै विक्रम सुनो, जीभ सँभारे बोलिये॥

कैसा अनुपम उपदेश !

× × ×

जीभ दुधारी तलवार है।

रात-दिन हम जीभका इच्छानुसार उपयोग करते हैं। अहर्निश हमारी जीभ कतरनीकी तरह चलती रहती है। कभी मधुर बोलती है, कभी कटु। कभी सच बोलती है, कभी झूठ। कभी उसमें दूसरोंको उठानेकी बातें रहती हैं, कभी उन्हें गिरानेकी। कभी उसमें काम, क्रोध रहता है, कभी राग, द्वेष और कभी योगकी भी बातें रहती हैं। कभी उसमें चापलूसीकी बातें रहती हैं, कभी खरी बातें। मतलब, कभी वह दूसरोंको हँसाती है, कभी रुलाती है। कभी उससे अमृत टपकता है, कभी विष।

इसलिये बैताल कहते हैं—*'जीभ सँभारे बोलिये।'* तौल-तौलकर बोलिये, वह तुम्हें रामसे मिला सकती है या नरकमें डाल सकती है।

× × ×

रामसे वह कैसे मिलायेगी ?

तो सुनिये—गोस्वामी तुलसीदासजीके कुछ पद—

राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।
रामनाम-नव-नेह-मेह कहँ मन हठि होहि पपीहा॥

(विनयपत्रिका ६५)

राम राम राम जीह जौलों तू न जपिहै।
तौलों तू कहूँ जाय, तिहूँ ताप तपिहै॥

(विनयपत्रिका ६८)

राम राम, राम राम, राम राम जपत।
मंगल-मुद उदित होत, कलि-मल-छल छपत॥

(विनयपत्रिका १३०)

रुचिर रसना तू राम राम राम क्यों न रटत।
सुमिरत सुख सुकृत बढ़त, अघ-अमंगल घटत॥
बिनु श्रम कलि-कलुष जाल कटु कराल कटत।
दिनकरके उदय जैसे तिमिर-तोम फटत॥

(विनयपत्रिका १२९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार एक अन्य पद है—

काहे न रसना रामहि गावहि ?
निसि-दिन पर-अपबाद बृथा कत रटि-रटि राग बढ़ावहि ॥
नर मुख सुन्दर मन्दिर पावन बसि जनि ताहि लजावहि।
ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत रबिकर-जल कहँ धावहि ॥
काम-कथा कलि-कैरव-चन्दिनि, सुनत श्रवन दै भावहि।
तिनहि हटकि कहि हरि-कल-कीरति, करन कलंक नसावहि ॥
जातरूप मति जुगुति रुचिर मनि रचि-रचि हार बनावहि।
सरन सुखद रबिकुल सरोज-रबि राम नृपहि पहिरावहि ॥

हे जीभ ! तू मति और क्रियाको एकमें क्यों नहीं मिलाती ? विशुद्ध बुद्धि और उत्तम युक्तियोंके द्वारा निश्चय करके भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन क्यों नहीं करती ? युक्तियोंको क्रियाका सहयोगी क्यों नहीं बनाती ? विचारके सुवर्णमय डोरेको कर्मोंके रत्नोंके बीच बेधकर क्यों नहीं सुन्दर हार गूँथती, रामको पहिनानेको ?

इस भजनकी अन्तिम कड़ी है—

बाद-बिबाद, स्वाद तजि भजि हरि, सरस चरित चित लावहि।
'तुलसिदास' भव तरहि, तिहूँ पुर तू पुनीत जस पावहि ॥

(विनयपत्रिका २३७)

कन्नड़में एक संत हो गये हैं—निरुपाधिसिद्ध। उनका एक अत्यन्त सुन्दर पद है—'सुम्मानीरु नालिगै'।

कन्नड़में 'नालिगै' कहते हैं जीभको।

ऐ मेरी जीभ ! तू शान्त क्यों नहीं हो जाती ? मौन क्यों नहीं हो जाती ?

क्या हो जायगा यदि तू चुप रहे ? मौन रहे ?

बड़े अनर्थ करते हैं हम जीभसे।

तो निरुपाधिसिद्ध कहते हैं जीभसे—तू शान्त हो जा। चुप हो जा। मौन हो जा।

पर इतना ध्यान रखना कि मौन रहते हुए तुझे मौनका अहंकार न हो जाय ?

स्वामी रामदासने कहा था—

'मी मौनी म्हणतोच भांगके मौन जैसे ?'

मैं मौनी हूँ—इतना कहा कि मौन टूटा।

× × ×

हाँ, तो निरहंकारी मौन क्या करेगा ?

वह तुझे ब्रह्म बना देगा।

× × ×

जीभके दो भयंकर दोष हैं—

एक है परायी निन्दा और दूसरा है—क्रोधमें भर उठना।

इसके लिये तुझे दुर्जनोंकी, क्रोधी लोगोंकी संगति छोड़नी होगी। शान्त पुरुषोंकी, संतोंकी संगति करनी होगी और प्रभुका नाम सतत लेते रहना होगा।

इससे क्या होगा ?

इस सोपानसे, इस सीढ़ीसे तू ब्रह्मरन्ध्रमें जा पहुँचेगी और तुझे परतरानन्दकी प्राप्ति हो जायगी। निरुपाधिमें लीन होकर तू स्वयं ब्रह्म बन जायगी।

× × ×

कैसा सुन्दर साम्य है दोनों पदोंमें, तुलसीदासके पदमें और निरुपाधिसिद्धके पदमें। संक्षेपमें दोनोंका सार है—***'सब तजि, हरि भजु।'*** निन्दा, पर-अपवाद, वाद-विवाद, कामकथा, व्यर्थकी गपशप—सब कुछ तुझे छोड़ देनी है।

दुष्टोंका, क्रोधियोंका साथ छोड़ देना है।

सतत हरिभजन करना है।

शान्त रहना है। मौन धारण करना है।

मौनका भी अहंकार छोड़ देना है।

फिर तुझे ब्रह्मका, प्रभुका, रामका दर्शन हुए बिना न रहेगा।

जीवनकी सार्थकता इसीमें है।

'रुचिर रसना ! तू राम राम क्यों न रटति ?'

आत्मज्ञान होनेके बाद भी आत्मस्मरण, परमात्मस्मरण चालू रखना चाहिये। साधकके लिये दो ही काम करनेके हैं—एक तो शरीरकी सामर्थ्यके अनुसार कर्तव्य जानकर आसक्ति और फलकी इच्छासे रहित होकर स्वधर्मरूपी कर्म करना और दूसरा हरिस्मरण करना। मनको क्षणभर भी बेकार न रखे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रीय दान-विधि

(स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)

शङ्का—शास्त्रोंमें छोटे-छोटे दानोंका भी महान् फल बताया गया है, परंतु हमने बड़े-बड़े दान किये, उनका छोटा-सा भी फल देखनेमें नहीं आया, इतना ही नहीं, हम और अधिक संकटग्रस्त हो गये। इसका क्या कारण है ? बतानेकी कृपा कीजिये।

समाधान—जिन शुद्ध द्रव्योंका दान शास्त्रकथित विधिसे सुपात्र, सुदेश और सुकालमें सात्त्विक भावसे श्रद्धाके साथ दिया जाता है, उस दानका फल प्रायः जन्मान्तरमें ही मिलता है। इस जन्ममें तो किसी अति उत्कृष्ट दानका ही फल प्राप्त होता है। दान करते हुए भी अधिक संकटग्रस्त होनेका कारण जन्मान्तरका पाप ही होता है। शास्त्रकथित दानका फल प्राप्त करनेके लिये निम्नलिखित विधिका पूर्णतया पालन करना चाहिये।

शुद्ध द्रव्य—स्कन्दपुराणमें कहा गया है कि बुद्धिमान् व्यक्ति न्यायोपार्जित अपने धनका दसवाँ अंश ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये दानादि कार्योंमें लगाये। देवीभागवतपुराणमें कहा गया है कि अन्यायोपार्जित द्रव्यसे जो शुभकर्म—दानादि किया जाता है, उससे न तो इस लोकमें कीर्ति होती है और न परलोकमें ही उसका फल होता है। इसलिये न्यायोपार्जित धनसे ही दानादि शुभकर्म करने चाहिये।

न्यायोपार्जितवित्तेन दशमांशेन धीमता।
कर्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थहेतवे॥

(स्कन्दपु०, माहे० १२।३२)

अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्।
न कीर्तिरिह लोके च परलोके न तत्फलम्॥

(देवीभाग० ३।१२।८)

सुपात्र—दानका मुख्य पात्र ब्राह्मण ही होते हैं। ब्राह्मणसे अतिरिक्त अन्यको दिये दानको दान न कहकर सहायता या सेवा कहना उचित होगा, क्योंकि मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रोंमें दान लेनेका अधिकार ब्राह्मणको ही बताया गया है, इसलिये ब्राह्मण ही दानका मुख्य पात्र है। महाभारतमें जैसे ब्राह्मणोंको सभी उपायोंसे निमन्त्रण देनेका निर्देश किया गया, उसका भाव यह है—'ब्राह्मणमें भी जो वेदका विद्वान्, वैदिक धर्मका आचरण करनेवाला, अभावग्रस्त, अयाचक, असंग्रही, तपस्वी आदि होता है, उसे दिया हुआ दान अधिक फलप्रद है।'

कृशाय कृतविद्याय वृत्तिक्षीणाय सीदते।
अपहन्यात् क्षुधां यस्तु न तेन पुरुषः समः॥
क्रियानियमितान् साधून् पुत्रदारैश्च कर्शितान्।
अयाचमानान् कौन्तेय सर्वोपायैर्निमन्त्रयेत्॥

(महा०, अनु०० पर्व ५९।११-१२)

सुदेश—कूर्मपुराणमें कहा गया है कि 'सामान्य स्थानोंकी अपेक्षा प्रयाग आदि तीर्थोंमें, मन्दिर आदि पुण्यस्थानोंमें, गङ्गादि पुण्य नदीतटपर तथा वृन्दावन आदि पुण्य वनोंमें दान देनेसे अनेकों गुणा फल प्राप्त होता है'—

प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च।
दत्त्वा चाक्षयमाप्नोति नदीषु च वनेषु च॥

(कूर्म० २।२६।५४)

इसके अतिरिक्त जिस देशमें जिस वस्तुका अभाव हो, तीर्थादिरूप न होनेपर भी उस देशमें उस वस्तुका दान देना भी सुदेशमें ही दान करना माना जाता है।

सुकाल—वैशाख शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया), कार्तिक शुक्ल नवमी (अक्षय नवमी) आदि युगोंकी प्रारम्भ तिथियाँ, पूर्णिमा, अमावास्या, एकादशी, कुम्भ, दक्षिणायन-उत्तरायणकी संधि, मासकी संक्रान्ति, विषुवयोग, चन्द्र-सूर्य-ग्रहण आदि शुभ कालमें दिये हुए दानका फल अक्षय हो जाता है।—

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
सङ्क्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम्॥

(कूर्म० २।२६।५३)

इसके अतिरिक्त जिस कालमें जिसे जिस वस्तुका अभाव हो, उसे उस वस्तुका उस कालमें देना भी शुभकालमें देना माना जाता है। भले ही वह काल ऊपर लिखे कालोंसे भिन्न हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्यपुराणमें तत्त्वदर्शियोंने कहा है कि 'जिस कालमें धन हो, श्रद्धाका उदय हो, दान-कार्यमें सहायक हों, सुपात्रकी प्राप्ति हो, वह काल दानके लिये शुभ काल है। कारण कि जीवन अनित्य है, मृत्यु कब हो जाय, इसका कुछ पता नहीं है।'—

यदा वा जायते वित्तं चित्तं श्रद्धासमन्वितम्।
तदेव दानकालः स्यात् यतोऽनित्यं हि जीवितम्॥
वित्तं श्रद्धा सहायश्च पात्रप्राप्तिस्तथैव च।
दानकालस्तदैवेह कथितस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(४।१६३।६, ४।१९३।४)

पद्मपुराणमें स्पष्ट कहा गया है कि 'जो व्यक्ति उपर्युक्त बातोंपर ध्यान रखकर विधिपूर्वक सङ्कल्प करके दानादि शुभकर्म करता है, उसका छोटा-सा शुभकर्म मेरुके समान महान् फल प्रदान करता है। परंतु जो व्यक्ति विधिका त्याग कर मेरुके समान महान् शुभकर्म करता है, उसे अणुमात्र फल मिलता है।'

यथोक्तं कुरुते यस्तु विधिवत् सुकृतं नरः।
स्वल्पं मुनिवरश्रेष्ठ मेरुतुल्यं भवेत् फलम्॥
विधिहीनं तु यः कुर्यात् सुकृतं मेरुमात्रकम्।
अणुमात्रं तदाप्नोति फलं धर्मस्य नारद॥

(६।६२।१३-१४)

अन्नदानकी विशेषता—अन्न-दानके विषयमें विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें कहा गया है कि 'अन्नदान करनेके लिये पात्र, काल, नियम, देश आदिकी परीक्षा करना आवश्यक नहीं, सदा सबको अन्नदान करना चाहिये।'

नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमस्तथा।
न च देशः परीक्ष्योऽत्र देयमन्नं सदैव तत्॥

(३।३१५।२)

अन्नदानमें भी यह ध्यान रखना चाहिये कि जो डाकू आदि पापाचारी व्यक्ति भूखे होनेके कारण मरे-जैसे पड़े रहते हैं, भोजन करके समर्थ होकर डाका डालनेकी तैयारी करना चाहते हैं, उन्हें अन्नका कभी दान नहीं करना चाहिये। क्योंकि अन्न खाकर वे पापकर्म करेंगे, इससे उन्हें नरक जाना पड़ेगा और अन्नदाता भी दोषभागी होगा। इसीलिये विष्णुधर्मोत्तर-पुराणमें कहा है कि 'पापशीलको कभी कुछ नहीं देना चाहिये। पापशीलको देनेवाला दोषका भागी बनता है।'

पापशीले न दातव्यं कदाचिदपि किञ्चन।
पापशीले तु यद्दत्तं तद्दातुर्दोषमावहेत्॥

(३।३१६।३)

दानका सामान्य नियम—विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें कहा गया है कि 'जो दानका अक्षय फल चाहता है, उसे जिस व्यक्तिके लिये, जिस देशमें, जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, उस व्यक्तिको, उसी देशमें, उसी कालमें, उसी वस्तुका दान देना चाहिये तथा जो वस्तु लोकमें श्रेष्ठ हो, घरमें प्रिय हो, उसे गुणवान्‌को देना चाहिये।'

यस्योपयोगि यद्द्रव्यं देयं तस्यैव तद्भवेत्॥

(३।३१६।१३)

यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे।
तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता॥

(३।३१५।१४)

उपर्युक्त दानविषयक सभी बातोंको भगवान्‌ने संक्षेपमें गीतामें एक ही श्लोकमें कह दिया है—'दान देना मेरा कर्तव्य है'— इस भावसे उपकारकी भावनासे रहित व्यक्तिके लिये देश, काल, पात्रका विचार करके जो दान दिया जाता है, वह दान सात्त्विक है—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

(१७।२०)

हम शरीर बनकर कर्म करते हैं, ऐसा न मानकर आत्मा रहकर शरीरके द्वारा शरीरकी प्रकृतिके अनुसार अभिनय करना है और वह भी असङ्ग-बुद्धिसे। लाभ-हानि, हर्ष-शोक, सुख-दुःख—सबमें समानचित्त रहकर प्रकृतिके अनुसार कर्म करते जाना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवतीय प्रवचन—२७

दुर्योधनको मेवा त्यागो साग बिदुर घर पाई

(संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)

आत्माको यह शरीर बन्धनमें रखता है। शरीर जड है, आत्मा चेतन है। किंतु जड-चेतनकी यह ग्रन्थि असत्य है, गलत है। क्योंकि चेतनको जड वस्तु किस प्रकार बाँध सकती है। यह ग्रन्थि असत्य होनेपर भी, जैसे स्वप्न हमें रुलाते हैं, वैसे ही यह भी हमें रुलाती है। तात्त्विक दृष्टिसे देखें तो हम यह नहीं कह सकते कि जड शरीर चेतन आत्माको बाँधकर रख सकता है। चेतन आत्माको जड शरीर बन्धनमें नहीं रख सकता। आत्मा शरीरसे भिन्न है, यह बात सभी जानते हैं, किंतु इसका अनुभव बहुत कम लोग कर पाते हैं।

शुकदेवजी कहते हैं—हे राजन्! तुम जो प्रश्न करते हो, वैसे ही प्रश्न विदुरजीने मैत्रेयजीसे किये थे। यें विदुरजी ऐसे हैं कि आमन्त्रणके बिना भी भगवान् उनके घर गये थे।

परीक्षित्ने पूछा—प्रभो! विदुरजी और मैत्रेयजीका मिलन कब हुआ, वह मुझे बताइये।

शुकदेवजी कहते हैं कि आमन्त्रण पाये बिना ही भगवान् विदुरजीके घर गये थे, उस प्रसंगकी बात पहले बता रहा हूँ। सुनो—

कौरवोंने पाण्डवोंको लाक्षागृहमें जला देनेका प्रयत्न किया था। विदुरजीने कौरवोंको उपदेश दिया, किंतु उनपर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। विदुरजीने सोचा कि धृतराष्ट्र दुष्ट है। उसके कुसंगमें मेरी बुद्धि भी भ्रष्ट हो जायगी। फिर भी उन्होंने उसे कई बार उपदेश दिया, किंतु धृतराष्ट्रने एक भी न सुनी, तो विदुरजीने उसके घरको ही त्याग दिया।

विदुरजी अपनी पत्नी सुलभाके साथ समृद्ध घरका त्याग करके वनमें चले गये। वनवासके बिना जीवनमें सुवास नहीं आ सकता। इसीलिये तो पाण्डवोंने और भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भी वनवास किया था।

विदुरजी तो पहलेसे ही तपस्वी-सा जीवन बिताते थे और भगवान्का कीर्तन करते थे। इसलिये दुर्योधनके छप्पन भोगोंको छोड़कर श्रीकृष्णने विदुरजीके घर भाजीका प्राशन किया।

विदुर और सुलभा वनमें नदीके किनारे कुटिया बनाकर रहने लगे और तपश्चर्या करने लगे। वे प्रतिदिन तीन घंटे कृष्ण-कथा, तीन घंटे प्रभुका ध्यान, तीन घंटे प्रभुका कीर्तन और तीन घंटे प्रभुकी सेवा करने लगे। बारह वर्षतक वे इस प्रकार भगवान्की आराधना करते रहे।

मनको सतत सत्कर्ममें लगाये रखो। मन निठल्ला होकर पाप करेगा। भगवान्का वे कीर्तन करते थे और भूख लगनेपर भाजी खाते थे।

भोजन करना पाप नहीं है। भोजनमें खो जाना और भोजन करते समय भगवान्को भूल जाना ही पाप है। कई लोग कढ़ी खाते-खाते उसीमें खो जाते हैं और अगले दिन माला फेरते हुए भी कढ़ीकी याद करते हैं। मनसे सोचते हैं कि कलकी कढ़ी कितनी स्वादिष्ट थी।

विदुरजीने सुना कि द्वारकानाथ संधि करानेके लिये हस्तिनापुर आ रहे हैं। धृतराष्ट्रने सेवकोंको आज्ञा दी कि कृष्णके स्वागतकी तैयारी करो। छप्पन भोग लगाओ।

धृतराष्ट्र यह सेवा कुभावसे करते हैं। सेवा सदा सद्भावसे करनी चाहिये। कुभावसे सेवा करनेवालेपर भगवान् प्रसन्न नहीं होते। जो सद्भावसे सेवा करते हैं, उसकी सेवासे वे प्रसन्न होते हैं।

विदुरजी गङ्गास्नान करने गये थे। वहाँ उन्होंने सुना कि कल तो रथयात्रा निकलेगी। पूछनेपर लोगोंने बताया कि कल द्वारकासे भगवान् श्रीकृष्ण आ रहे हैं।

विदुरजी घर लौटे। वे बड़े ही आनन्दमें मग्न दीख रहे थे। उनकी पत्नीने पूछा—क्या बात है कि आज आप बड़े प्रसन्न दिखायी दे रहे हैं।

विदुरजीने कहा—सत्संगमें सारी बात कहूँगा। मैंने कथामें सुना था कि जो बारह वर्षोंतक सतत सत्कर्म करे, उसपर भगवान् कृपा करते हैं। बारह वर्ष एक ही स्थानमें रहकर ध्यान करनेवालेको प्रभु दर्शन देते हैं। मुझे लगता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि द्वारकानाथ दुर्योधनके लिये नहीं, किंतु मेरे ही लिये आ रहे हैं।

सुलभाने कहा कि मुझे स्वप्नमें रथयात्राके दर्शन हुए थे। वह स्वप्न सच होगा। बारह वर्षोंमें मैंने कभी अन्न नहीं खाया।

विदुरजी कहते हैं कि 'देवि ! तुम्हारी तपश्चर्याका फल कल मिलेगा। कल परमात्माके दर्शन होंगे।'

सुलभादेवीने विदुरजीसे पूछा कि 'आपका प्रभुके साथ कोई परिचय भी है ?'

विदुरजीने कहा कि 'जब मैं कृष्णको वन्दन करता हूँ तो वे मुझे 'चाचा' कहकर पुकारते हैं। मैं तो उनसे कहता हूँ कि मैं अधम हूँ, आपका दासानुदास हूँ। मुझे 'चाचा' मत कहिये।'

जीव जब नम्र होकर प्रभुकी शरणमें जाता है तो ईश्वर उसका सम्मान करते हैं।

सुलभाके मनमें एक ही भावना है कि ठाकुरजी मेरे घरपर भोजन करें और मैं उन्हें प्रत्यक्ष निहारूँ।

सुलभा कहती हैं कि वे आपके परिचित हैं, तो उन्हें हमारे घर पधारनेका निमन्त्रण दीजिये। मैं भावनासे तो प्रतिदिन भगवान्‌को भोग लगाती हूँ। अब मेरी यही इच्छा है कि मेरी दृष्टिके समक्ष वे प्रत्यक्षरूपसे भोजन करें।

विदुरजी कहते हैं कि मेरे आमन्त्रणको अस्वीकार तो वे नहीं करेंगे, किंतु इस छोटी-सी झोपड़ीमें हम उनका आदर-सत्कार कैसे करेंगे ! उनके आगमनसे हमें तो आनन्द होगा, किंतु उन्हें तो कष्ट ही होगा। मेरे भगवान् छप्पन भोगोंका प्राशन करते हैं। धृतराष्ट्रके घर उनका भलीभाँति स्वागत होगा। मेरे पास तो भाजीके सिवा कुछ नहीं है। मैं उन्हें क्या अर्पण करूँगा ! हमारे यहाँ आनेसे ठाकुरजीको परिश्रम होगा। अपने सुखके लिये मैं भगवान्‌को रंचमात्र भी कष्ट नहीं देना चाहता। यही पुष्टिभक्ति है।

सुलभाने कहा कि मेरे घरमें चाहे दूसरी कुछ भी वस्तु भले ही न हो, किंतु मेरे हृदयमें प्रभुके लिये अपार प्रेम तो है ही। वह प्रेम ही मैं भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दूँगी। हम जो भाजी खाते हैं, वही मैं ठाकुरजीको प्रेमसे खिलाऊँगी।

जीभके सुधरनेपर जीवन भी सुधरता है और जीभके बिगड़नेपर जीवन भी बिगड़ जाता है। सीधा-सादा भोजन करनेसे जीवन शुद्ध होता है।

यदि आहार सात्त्विक और शुद्ध होगा, तो शरीरमें सात्त्विक गुणकी वृद्धि होगी। सत्त्वगुणके बढ़नेसे सहनशक्ति भी बढ़ती है और अन्तमें बुद्धि स्थिर होती है। **'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।'**

अतः विदुरजीकी भाँति अतिशय सात्त्विकतापूर्ण जीवन जीओ। जिसका जीवन सीधा-सादा है, वह अवश्य साधु बनेगा।

सुलभाने कहा कि मैं दीन हूँ तो क्या हुआ ! दीन होना कोई अपराध है क्या ! आपने कथामें कई बार कहा है कि 'प्रभु प्यारके भूखे हैं। भगवान् दीनोंसे अधिक प्यार रखते हैं।'

विदुरजीने कहा—भगवान् राजप्रासादमें जायँगे तो वहाँ सुखसे रहेंगे। मेरे घरमें उन्हें कष्ट होगा। इसलिये मैं भगवान्‌को यहाँ लाना नहीं चाहता। देवि ! हमारे अंदर कुछ पाप अभी शेष हैं। मैं तुम्हें कल कृष्णके दर्शन करानेके लिये ले जाऊँगा। किंतु ठाकुरजी अपने घर आयें, ऐसी आशा अभी मत कर। वे बादमें कभी हमारे यहाँ आयेंगे अवश्य, पर कल नहीं।

वैष्णव इस आशाके सहारे ही जीता है कि 'मेरे प्रभु आज नहीं तो पाँच-दस वर्षोंके बाद कभी तो आयेंगे ही। और नहीं तो कम-से-कम मेरे जीवनके अन्तकालमें तो आयेंगे ही।'

सुलभा सोचती हैं कि पति संकोचवश आमन्त्रण नहीं दे रहे हैं। किंतु मैं तो मनसे आमन्त्रित करूँगी ही।

अगले दिन विदुर और सुलभा बालकृष्णकी सेवा करते हैं। बालकृष्ण स्मित हास कर रहे हैं। विदुर और सुलभा भगवान्‌की प्रार्थना करते हैं—

रथारूढो गच्छन् पथि मिलितभूदेवपटलैः
स्तुतिप्रादुर्भावं प्रतिपदमुपाकर्ण्य सदयः।
दयासिन्धुर्बन्धुः सकलजगतां सिन्धुसुतया
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥

(जगन्नाथाष्टक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रथयात्राके समय मार्गमें इकट्ठे हुए ब्राह्मणवृन्दोंके द्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर पद-पदमें जो द्रवित हो रहे हैं, वे दयाके सागर, अखिल ब्रह्माण्डके बन्धु और समुद्रपर कृपा करनेके हेतु, उसके तटपर निवास करनेवाले श्रीजगन्नाथ स्वामी सदा मेरे नेत्रोंके सम्मुख रहें।'

निरन्तर रथारूढ़ द्वारकानाथके दर्शन करो। भगवान् रथमें बैठकर जा रहे हैं।

जबतक जीव शुद्ध नहीं होता, तबतक परमात्मा उससे आँख नहीं मिलाते और जबतक चार आँखें एक न हों, तबतक दर्शनमें आनन्द नहीं मिलता।

विदुर और सुलभा भी रथ देख रहे हैं। विदुरजी सोचते हैं कि मेरी ऐसी तो पात्रता नहीं है कि भगवान् मेरे घर आयें। परंतु क्या एक नजर मुझे देखेंगे भी नहीं! मैं पापी हूँ, परंतु मेरे भगवान् तो पापीके उद्धारक हैं, पतितपावन हैं। उनके लिये मैंने सभी विषयोंका त्याग कर दिया है। नाथ! आपके लिये मैंने क्या-क्या नहीं सहा! बारह वर्षोंसे मैंने अन्न नहीं खाया। क्या भगवान् मेरी ओर एक दृष्टि भी नहीं करेंगे! कृपा कीजिये। हजारों जन्मोंसे मैं आपसे अलग रहा हूँ, पर आज आपकी शरणमें आया हूँ।

लोगोंकी भीड़मेंसे रथ आगे बढ़ रहा था। प्रभुकी आँखें तो नीचेकी ओर देख रही थीं। विदुर-सुलभाने दर्शन किया। श्रीकृष्णने भी विदुर चाचाको देखा। विदुर कृतार्थ हो गये कि चलो मेरी ओर भी भगवान्ने दृष्टि की। भगवान्का हृदय भी भर आया। दृष्टि प्रेमसे आर्द्र हो गयी। भगवान्ने सोचा कि मेरे विदुर न जाने कबसे मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सुलभाको लगा कि मेरे प्रभु मेरी ओर देखकर ही हँस रहे थे। मेरे प्रभुने मेरी ओर देखा। भगवान् जानते हैं कि मैं विदुरकी पत्नी हूँ और इसीलिये उन्होंने मुझपर दृष्टिपात किया।

प्रभुने दृष्टिसे ही विदुरजीको कहा कि 'मैं आपके घर आऊँगा।' परंतु अति आनन्दमें डूबे हुए सुलभा-विदुरजी भगवान्का संकेत समझ न पाये। भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गये। वहाँ धृतराष्ट्र और दुर्योधन प्रभुके स्वागतके लिये एक महीनेसे तैयारी कर रहे थे। प्रभुका आगमन हुआ। प्रभुने धृतराष्ट्र-दुर्योधनको बताया कि मैं द्वारकाके राजाकी हैसियतसे नहीं, अपितु पाण्डवोंका दूत बनकर आया हूँ। पाण्डवोंका नाम सुनते ही दुर्योधनने भगवान्का अपमान कर दिया। दुष्ट दुर्योधनने भगवान्का अपमान करते हुए कहा कि 'भीख माँगनेसे राज्य नहीं मिलता। सुईकी नोकपर रखी जा सके, उतनी भूमि भी मैं पाण्डवोंको नहीं दूँगा। मैं युद्धके लिये तैयार हूँ।' उसने श्रीकृष्णकी एक न मानी। संधि करानेके प्रयत्नमें श्रीकृष्ण सफल न हो सके।

धृतराष्ट्रने भगवान्से कहा कि 'आप इन भाइयोंके झगड़ेसे दूर ही रहें। आपके लिये छप्पन भोग प्रस्तुत हैं, आरामसे भोजन कीजिये।'

श्रीकृष्णने कहा कि 'तुम्हारे घरका अन्न खानेसे तो मेरी भी बुद्धि भ्रष्ट हो जायगी।'

पापीके घरका अन्न खानेसे किसी भी व्यक्तिकी बुद्धि भ्रष्ट हो सकती है।

छप्पन प्रकारकी खाद्य वस्तुएँ भगवान्के लिये प्रस्तुत की गयी थीं, फिर भी उन्होंने खानेसे अस्वीकार कर दिया। अन्य राजाओंने आशा की कि कृष्ण उनके घर भोजन करेंगे। परंतु कृष्णने तो उन्हें और सभी ब्राह्मणोंको भी निराश कर दिया।

द्रोणाचार्यने तब पूछा कि 'आप सभीके आमन्त्रणको अस्वीकार कर रहे हैं तो फिर कहाँ जायँगे? भोजनका समय हो गया है। कहीं-न-कहीं भोजन करना ही पड़ेगा। यदि दुर्योधनके यहाँ भोजन करनेमें आपको कोई आपत्ति है तो आप मेरे घर चलिये।'

भगवान्ने उनसे भी 'ना' कर दिया और कहा कि 'मैं तो, मेरा एक भक्त जो गङ्गा-किनारेपर रहता है, उसीके घर जाऊँगा।'

द्रोणाचार्य समझ गये कि आज हम वेदशास्त्रसम्पन्न ब्राह्मण हार गये। धन्य हैं विदुरजी!

भगवान्ने सोचा कि विदुरजी दीर्घकालसे मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, तो मैं आज उनके पास ही चला जाऊँ। इधर विदुरजी सोच रहे हैं कि मैं अभीतक अपात्र ही हूँ, अतः भगवान् मेरे घर नहीं आते।

आज सुलभाका हृदय भी बड़ी कातरता और आर्द्रतासे सेवा कर रहा है। वह भगवान्से प्रार्थना कर रही है कि मैंने आपके लिये सर्वस्वका त्याग कर दिया है, फिर भी आप नहीं आ रहे हैं। गोपियाँ सच कहती हैं कि 'कन्हैयाके पीछे जो लग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है, उसीको वह रुलाता है। आपके लिये मैंने संसारसुखको त्याग दिया, सर्वस्व आपके चरणोंमें रख दिया, फिर भी मेरे घर आपका आगमन क्यों नहीं हो रहा है ?

कीर्तनभक्ति श्रीकृष्णको अति प्रिय है। जब सूरदासजी भजन करते हैं, तब श्रीकृष्ण आकर उनके हाथमें तंबूरा देते हैं। सूरदास कीर्तन करते हैं और कन्हैया सुनता है।

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ९२।२२)

भगवान् नारदसे कहते हैं कि 'मेरा वास न तो वैकुण्ठमें है और न तो योगियोंके हृदयमें। मैं तो वहीं रहता हूँ, जहाँ मेरा भक्त प्रेमसे आर्द्र होकर मेरा कीर्तन करता है।'

कुटियामें विदुर-सुलभा भगवान्के नामका कीर्तन कर रहे हैं। परंतु वे नहीं जानते कि जिसका वे कीर्तन कर रहे हैं, वह आज साक्षात् उनके द्वारपर खड़ा है।

मनुष्यका जीवन पवित्र होगा तो भगवान् बिना आमन्त्रण पाये भी उसके घर आयेंगे। जो परमात्माके लिये जीता है, उसके घर परमात्मा स्वयं आते हैं।

बिना बुलाये ही भगवान् आज विदुरजीके द्वारपर आ खड़े हुए हैं। बाहर प्रतीक्षा करते हुए दो घंटे निकल गये। बड़ी भूख लग रही थी। भगवान् सोच रहे थे कि इनका कीर्तन कब समाप्त होगा ? विदुर-सुलभाका जीवन तो प्रभुके लिये ही था।

अन्तमें व्याकुल होकर श्रीकृष्णने कुटियाका द्वार खटखटाया और कहा—'चाचाजी ! मैं आ गया हूँ।'

कीर्तन करो तो ऐसा करो कि भगवान् स्वयं आकर तुम्हारे घरका द्वार खटखटायें।

विदुरजीने कहा—देवि ! द्वारकानाथ आये हैं, ऐसा लगता है।

द्वार खोलनेपर चतुर्भुज नारायणके दर्शन हुए। अति हर्षके आवेशमें विदुर-सुलभा आसनतक न दे सके, तो प्रभुने स्वयं अपने हाथोंसे दर्भासन बिछा लिया और विदुरजीको भी हाथ पकड़कर पासमें बिठा लिया।

भगवान्ने कहा कि 'मैं भूखा हूँ। मुझे कुछ भोजन करनेके लिये दीजिये।'

भक्ति इतनी सशक्त है कि वह निष्काम भगवान्को भी सकाम बना देती है। वैसे तो भगवान्को भूख नहीं लगती, परंतु भक्तके कारण ही उन्हें खानेकी इच्छा होती है।

विदुरजीने पूछा कि 'आपने दुर्योधनके घर भोजन नहीं किया क्या ?'

श्रीकृष्णने कहा—'चाचाजी ! आप जिसके घर नहीं खाते, वहाँ मैं भी नहीं खा सकता।'

ईश्वर भूखे नहीं होते, ऐसा उपनिषद्का सिद्धान्त है। जीवरूपी पक्षी विषयरूपी फल खाता है अतः दुःखी होता है। उपनिषद्का यह सिद्धान्त गलत नहीं है। ईश्वर नित्य आनन्दस्वरूप है। भागवतका सिद्धान्त भी सच्चा है।

ईश्वर तृप्त हैं, परंतु जब किसी भक्तका हृदय प्रेमसे भर जाता है, तब वे निष्काम होनेपर भी सकाम बनते हैं। सगुण और निर्गुण एक है। निराकार साकार बनता है। ईश्वर प्रेमके भूखे हैं, अतः ज्ञानसे प्रेम श्रेष्ठ है। प्रेममें ऐसी शक्ति है कि वह जडको भी चेतन बना देता है, निष्कामको सकाम बना देता है।

पति-पत्नी सोचने लगे कि भगवान्का स्वागत कैसे करें ? वे दोनों तो तपस्वी थे, और केवल भाजी ही खाते थे। उन्हें संकोच हो रहा था कि कृष्णको भाजी कैसे खिलायें ! दोनोंको कुछ सूझ नहीं रहा था। इतनेमें तो द्वारकानाथने चूल्हेसे भाजीका बर्तन उतार लिया और उसे खाने भी लगे।

स्वाद और माधुर्य वस्तुमें नहीं, प्रेममें है। शत्रुका मधुर व्यञ्जन भी विष-जैसा ही लगता है। भगवान्को दुर्योधनके घरके मिष्टान्न अच्छे नहीं लगे ; किंतु विदुरजीकी भाजी खायी। अतः लोग आज भी गाते हैं—

सबसे ऊँची प्रेमसगाई।
दुर्योधनको मेवा त्यागो साग बिदुर घर पाई॥
जूठे फल शबरीके खाये बहु बिधि प्रेम लगाई।
प्रेमके बस नृप-सेवा कीन्हीं आप बने हरि नाई॥
राजसुयज्ञ युधिष्ठिर कीन्हों तामें जूठ उठाई।
प्रेमके बस अर्जुन-रथ हाँक्यो भूल गये ठकुराई॥
ऐसी प्रीति बढ़ी वृन्दावन गोपिन नाच नचाई।
सूर क्रूर इस लायक नाहीं कहँ लगि करौं बड़ाई॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपपुराण एवं उनके रोचक आख्यान—

श्रीमहाभागवतपुराण (देवीपुराण)

(डॉ॰ श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट)

भगवती दुर्गादेवीके चरित्रोंको लक्ष्यकर तथा देवी-उपासनासे सम्बद्ध एक पुराण, जो अपनेको महापुराण ही कहता है, आजसे प्रायः ७५ वर्ष पूर्व गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बईसे प्रकाशित हुआ है। इस पुराणमें कुल ८१ अध्याय और प्रायः ४,५०० श्लोक हैं। इसमें मुख्यरूपसे सती, पार्वती, गङ्गा, काली, सरस्वती, तुलसी, शिव, राम तथा कृष्णके विस्तृत आख्यान हैं और अन्तमें कामाख्या-योनिमण्डलका विस्तृत वर्णन है। प्रत्येक अध्यायकी पुष्पिकामें यद्यपि इस पुराणको **'इति श्रीमहाभागवते महापुराणे'**— इस प्रकार कहकर 'महाभागवत' नामसे अभिहित किया गया है तथापि देवीके माहात्म्य एवं चरित्रोंकी प्रधानतासे यह 'देवीपुराण'के नामसे भी विख्यात है[1]। इस पुराणका देवीवर्णन प्रायः कालिकापुराण, देवीभागवत, ब्रह्मवैवर्तपुराण, बृहद्धर्मपुराण तथा कूर्मपुराण आदिसे अनेक अंशोंमें मिलता-जुलता है। यद्यपि प्रत्येक पुष्पिकामें और प्रथम अध्यायके प्रारम्भिक प्रायः दस श्लोकोंमें इसे महापुराण बतलाकर सर्वश्रेष्ठ एवं माहात्म्ययुक्त कहा गया है तथापि महापुराणोंकी जहाँ-जहाँ भी गणना है, कहीं भी इसका परिगणन प्राप्त नहीं होता, जिससे यह पुराण एक उपपुराण प्रतीत होता है।

इस पुराणके आदिवक्ता भगवान् व्यास तथा श्रोता जैमिनि हैं। तदुपरान्त इस पुराणकी कथाको श्रीसूतजीने नैमिषारण्यमें शौनकादि ऋषियोंको सुनाया था। इस पुराणके उद्भवके विषयमें एक रोचक आख्यान प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है—

नैमिषारण्यमें शौनकादि ऋषियोंने जब श्रीसूतजीसे बड़े आग्रहपूर्वक इस पुराणकी कथाको सुनानेकी प्रार्थना की, तब उन्होंने कहा कि 'जब भगवान् वेदव्यासजीने अष्टादश महापुराणोंकी रचना कर ली, यहाँतक कि श्रीमद्भागवतकी भी रचना हो गयी और उनके हृदयमें पूर्ण शान्ति नहीं प्राप्त हो सकी, तब वे देवी-मन्त्रका जप करते हुए हिमालयपर जाकर घोर तपस्यामें प्रवृत्त हो गये। दीर्घकालके तपोऽनुष्ठानके पश्चात् देवीने बिना प्रकट हुए ही आकाशवाणी की—'महर्षे! आप ब्रह्मलोक जायँ, वहीं आपको मेरा दर्शन होगा और सारे रहस्योंका भी पता चल जायगा।' इसपर व्यासजी ब्रह्मलोक गये, वहाँ उन्होंने मूर्तिमान् चारों वेदोंको प्रणाम कर उनसे अव्यय ब्रह्मपदकी जिज्ञासा की। तब चारों वेदोंने क्रम-क्रमसे देवी भगवतीको ही साक्षात् परम तत्त्व बतलाते हुए कहा कि 'आप अभी हमारे प्रयत्नसे इस तत्त्वका प्रत्यक्ष-रूपसे दर्शन कर सकेंगे।' चारों वेदोंने देवीकी दिव्य स्तुति की[2]। परिणामस्वरूप ज्योतीरूपा, सनातनी जगदम्बा प्रकट हो गयीं। उनमें सहस्र सूर्योंकी आभा, करोड़ों चन्द्रोंकी शीतल चन्द्रिका व्याप्त थीं और वे सहस्रों भुजाओंमें विविध आयुधोंको धारण किये हुए दिव्य अलङ्करणोंसे अलङ्कृत थीं।

देवीका प्रत्यक्ष दर्शन कर और उनका रहस्य जानकर व्यासजी तत्क्षण जीवन्मुक्त हो गये। तत्पश्चात् देवीने उनकी मानसिक अभिलाषा जानकर उन्हें अपने पद-तलमें संलग्न सहस्रदलकमलका दर्शन कराया, जिसके सहस्रों पत्रोंपर महाभागवतपुराण (देवीपुराण) दिव्याक्षरोंमें अङ्कित था। देवीकी कृपासे वही पुराण व्यासजीके हृदयमें प्रकाशित हो गया और उन्होंने फिर इस महाभागवतकी रचना की।' इसके श्लोक अत्यन्त सुन्दर एवं कण्ठाग्र करने योग्य हैं। इस पुराणका प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः। विघ्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः॥

'भगवान् श्रीगणेशके चरणकमलकी धूलियाँ, जो देवशिरोमणियोंके शिरोमुकुटमें ग्रथित मन्दारपुष्पके मकरन्दोंसे घृष्ट होकर अरुणिम वर्णकी हो गयी हैं, वे सभीके विघ्नोंका हरण करें।'

१-इससे भिन्न प्रायः २५० अध्यायोंवाला एक दूसरा देवीपुराण पहले बंगाल आदिमें विशेष प्रचलित रहा है। उसके अनेक वचन रघुनन्दनके स्मृतितत्त्व, कविकङ्कणाचार्यके संस्कारक्रियाकौमुदी, वल्लालसेनके दानसागर तथा राधाकान्तदेवके शब्दकल्पद्रुम आदि निबन्ध-ग्रन्थोंमें प्राप्त होते हैं।

२-देवीपुराण १।३०—३७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मङ्गलाचरणका द्वितीय तथा तृतीय श्लोक भी अत्यन्त सुन्दर है—

यामाराध्य विरिञ्चिरस्य जगतः स्रष्टा हरिः पालकः संहर्ता गिरिशः स्वयं समभवद्ध्येया च या योगिभिः।
यामाद्यां प्रकृतिं वदन्ति मुनयस्तत्त्वार्थविज्ञाः परां तां देवीं प्रणमामि विश्वजननीं स्वर्गापवर्गप्रदाम्॥
या स्वेच्छयास्य जगतः प्रविधाय सृष्टिं सम्प्राप्य जन्म च तथा पतिमाप शम्भुम्।
उग्रैस्तपोभिरपि यां समवाप्य पत्नीं शम्भुः पदं हृदि दधे परिपातु सा वः॥

(महाभागवत १।३-४)

भाव यह है कि 'देवीकी ही कृपासे ब्रह्माको सृष्टिशक्ति, विष्णुको पालिनीशक्ति तथा शिवको संहारशक्ति प्राप्त हुई है। वे देवी आदिप्रकृति, विश्वजननी, स्वर्गापवर्गदायिनी तथा सभी योगियोंद्वारा ध्येय तत्त्व हैं, उन्हें प्रणाम है। उन्होंने स्वेच्छासे इस संसारकी रचना कर उग्र तपके द्वारा शिवकी पत्नी होनेका पद प्राप्त किया है। शम्भुके हृदय-प्रदेशमें पद धारण करनेवाली वे भगवती समस्त संसारकी रक्षा करें।' इन माङ्गलिक वचनोंसे पुराणका प्रारम्भ किया गया है।

सारांशमें इस पुराणका मुख्य प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है—

एक बार देवर्षि नारद कैलासपर गये, वहाँ उन्हें शिव और विष्णुके दर्शन हुए और उनके तथा अन्य सभीके उपास्य-तत्त्वके विषयमें नारदद्वारा जिज्ञासा प्रकट करनेपर उन्होंने देवीको ही मूल प्रकृति-रूपमें परम उपास्य-तत्त्व बतलाया[1]—

या मूलप्रकृतिः शुद्धा जगदम्बा सनातनी। सैव साक्षात् परं ब्रह्म सास्माकं देवतापि च॥

(महाभागवत ३।१)

इसके बाद मूलप्रकृतिके गङ्गा, दुर्गा, सावित्री, लक्ष्मी तथा सरस्वती—इन पाँच रूपोंमें विवर्तित होनेकी घटनाका वर्णन है। तदनन्तर ब्रह्म-सृष्टिका विस्तृत वर्णन है, जिसमें ब्रह्माके दस मानस पुत्रोंके उत्पन्न होने और कश्यप तथा दक्षप्रजापतिकी संततियोंका वर्णन है। दक्षप्रजापतिकी प्रसूतिके गर्भसे उत्पन्न पंद्रह कन्याओंमें अन्तिम देवी सतीको मूलप्रकृतिका अवतार बताया गया है। दक्षने सतीके वि ाहार्थ शंकरको छोड़कर अन्य सभी देवताओंको आमन्त्रित कर स्वयंवरका आयोजन किया। पिताके आदेशपर सती जयमाला लेकर मण्डपमें उपस्थित हुईं, शिवको ही परमपति मानकर सतीने उस मालाको **'नमः शिवाय'** इस पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करते हुए शंकरके निमित्त भूमिपर छोड़ दिया। उसी समय वृषभारूढ भगवान् शिवने प्रकट होकर माला ग्रहण कर ली तथा ब्रह्माद्वारा प्रेरित होनेपर सतीका भगवान् शिवसे विवाह सम्पन्न हुआ और वे सतीको लेकर हिमालयपर आ गये। अध्याय ४ से अध्याय ११ तक सती-विवाह, दक्षप्रजापति-विषाद, नन्दिकेश्वरका प्रमथाधिपत्व, दक्षप्रजापति-यज्ञ-वर्णन, छाया सतीका यज्ञाग्निप्रवेश तथा सतीके अङ्गोंसे शक्तिपीठोंके उद्भव एवं कामाख्यायोनिपीठका विस्तारसे वर्णन है। भगवान् शंकरने देवीको पुनः प्राप्त करनेके लिये कामरूपपर भगवती महादेवी सतीका निरन्तर ध्यान एवं कठोर तप प्रारम्भ किया, जिससे वे प्रसन्न हुईं और उन्होंने अपने ही रूपको दो अंशोंमें विभक्त कर प्रथम रूपसे गङ्गा तथा द्वितीय रूपसे पर्वतराज हिमालयकी पुत्री-रूपमें मेनाके गर्भसे पार्वती होने एवं दोनों ही रूपोंसे उन्हें प्राप्त करनेका वर प्रदान किया।

अध्याय १३-१४ में गङ्गाका भगवान् शंकरके साथ विवाहका सुरम्य वर्णन है। तदनन्तर पार्वती-चरित्रका विशद विवेचन है। मेनाके प्रथम गर्भसे गङ्गा तथा द्वितीय गर्भसे पार्वतीका जन्म हुआ। जन्मके समय वे आठ भुजाओंसे युक्त एवं ललाटपर चन्द्रमा धारण किये थीं। उनके जन्मके समय आकाशसे पुष्प-वृष्टि हुई। दसों दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं और हिमालय अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ उन्हें देखने गये। उनके दिव्य स्वरूपको देखकर हिमालयने उनसे पूछा—विशाल नेत्रोंवाली दिव्य लक्षणोंसे युक्त माता! तुम कौन हो? इसके उत्तरमें देवी पार्वतीने अपने स्वरूपका परिचय देते हुए हिमालयको ब्रह्मविद्याका उपदेश किया। वह उपदेश 'देवीगीता'के नामसे विख्यात है, जो १५ से १९ तक पाँच अध्यायोंमें वर्णित है। इसमें क्रमशः

१-यह वर्णन ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त (१०।१२९।१—७) तथा मनुस्मृतिके प्रारम्भिक श्लोकोंसे बहुत अंशोंमें साम्य रखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञानयोग, ब्रह्मविद्योपदेश, ब्रह्मयोगोपदेश, मोक्षयोग तथा भगवती गीताका माहात्म्य वर्णित है। श्रीमद्भगवद्गीतासे इसका अद्भुत साम्य है। पाँचों अध्यायोंकी पुष्पिकाओंमें '**इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीभगवतीगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीपार्वतीहिमालयसंवादे**·····।' इस प्रकारसे उल्लेख मिलता है[1]।

देवी पार्वतीद्वारा ब्रह्मविद्याके उपदेशको सुनकर हिमालय जीवन्मुक्त हो गये। देवी पार्वतीने पुनः बालिकाका विग्रह धारणकर लौकिक क्रीडा प्रारम्भ की।

इसके आगे अध्याय २१ से २९ तक शिव-पार्वतीका विवाह विस्तारसे वर्णित है, जो प्रायः स्कन्दपुराण माहेश्वरखण्डके कौमारिकाखण्ड तथा शिवपुराणके पार्वतीखण्डसे मिलता-जुलता है। इसी प्रसंगमें इसके २३ वें अध्यायमें ललितासहस्रनामका कीर्तन हुआ है, जो ब्रह्माण्डपुराणके ललितासहस्रनामसे भिन्न है। बल्कि कुछ अंशोंमें कूर्मपुराण (अ० १२) के देवीसहस्रनाम या गौरीसहस्रनामसे मिलता है। महाभागवतका सहस्रनाम स्वयं शिवके द्वारा प्रोक्त है, जिसे उन्होंने कामदेवके भस्म करनेके पश्चात् पार्वतीके द्वारा—'मैं ही आपके पूर्वजन्मकी पत्नी सती हूँ और आप मेरे लिये तप कर रहे थे, किंतु आपने कामको भस्मकर योगियोंके आचरणके विरुद्ध क्रोधको प्रश्रय दिया और गृहस्थ-धर्मका सर्वथा विरोध किया।'—ऐसा कहनेपर सुनाया था। इसपर भगवान् शिव पार्वतीको सतीरूपमें पहचान गये, तत्क्षण वे अपने एक रूपसे पृथ्वीपर लेट गये और उन्हें अपने हृदयपर धारण किया। उस समय वे मुण्डमाला पहने, चतुर्भुजी, जिह्वा फैलाये हुए काली-रूपमें क्रुद्ध-सी थीं[2]। भगवान् शंकरने अपने दूसरे पञ्चवक्त्ररूपमें प्रकट होकर ललितासहस्रनामके रूपमें उनकी स्तुति की, उस प्रसङ्गके ये श्लोक विशेष ध्येय हैं—

त्वमन्तर्यामिनी शक्तिर्हृदयस्था महेश्वरी। आराध्य त्वत्पदाम्भोजं धृत्वा हृदयपङ्कजे॥
त्वद्विच्छेदसमुत्तप्तं हृत्करोमि सुशीतलम्॥
इत्युक्त्वा स महादेवो योगं परममास्थितः। शयितस्तत्पदाम्भोजं दधार हृदये तदा॥
ध्यानानन्देन निष्पन्दशवरूपहरः स्थितः। (महाभागवत २३। २४—२७)

तत्पश्चात् कालीने जब पुनः पार्वतीरूप धारण कर लिया, तब पार्वती तथा शंकरने एक दूसरेको प्राप्त करनेके लिये कुछ दिनोंतक कठोर तप किया। शिव-पार्वतीके अनुरोधपर संदेश पाकर हिमवान्ने दोनोंके विवाहकी योजना बनायी। इसी बीच भगवान् शंकरने कामदेवको पुनर्जीवन प्रदान किया। शुभ लग्नमें ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, वरुण, कुबेर और सभी ऋषि-महर्षियोंके सांनिध्यमें शिव-पार्वतीका विवाह सम्पन्न हुआ। विवाहके पश्चात् दोनों हिमालयके एक भागके सुरम्य नगरमें निवास करने लगे।

कुछ समयके पश्चात् कार्तिकेयका जन्म हुआ। उनके जन्मके समय देवताओंके उद्बीजक तारकासुरके किरीट-कुण्डल आदि आभूषण पृथ्वीपर गिर पड़े और उसका शरीर काँपने लगा। इधर देवताओंका मन प्रसन्न हो गया। कार्तिकेयके जन्म तथा उनके द्वारा तारकासुर-वधकी विस्तृत कथा ३० से ३४ तक पाँच अध्यायोंमें वर्णित है। अध्याय ३५में गणेशजीके जन्मका वृत्तान्त है—एक बार जब पार्वती स्नान करनेके लिये जा रही थीं, तब उन्होंने अपने हरिद्रा-उद्वर्तनसे एक बालकको प्रकट कर उसे द्वाररक्षार्थ नियुक्त कर दिया। कुछ क्षणके पश्चात् भगवान् शंकरके वहाँ आनेपर तथा बालकद्वारा प्रवेशमें प्रतिरोध उत्पन्न करनेपर दोनोंमें भीषण संघर्ष हुआ। परिणामस्वरूप शिवके शूलसे बालकका सिर कट गया। उसी समय पार्वती स्नानसे लौट आयीं। उन्होंने गणेशको जीवित, किंतु शिरोविहीन देखकर महादेवसे पूछा कि 'द्वाररक्षक मेरे पुत्रकी यह दशा किसने की?' इसपर भगवान् शंकरने कहा कि 'मुझे ज्ञात नहीं था कि यह तुम्हारा पुत्र था' और फिर उन्होंने पूरा वृत्तान्त बता दिया। अनन्तर सिरका पता लगानेके लिये भगवान् शंकर जंगलमें गये और वहाँ उत्तरकी ओर सिर करके सोये हुए एक हाथीका मस्तक काटकर बालककी ग्रीवापर स्थापित कर दिया। तबसे बालकका नाम गजानन हो गया। इस प्रकार दो पुत्रोंके संनिधानसे शिव-पार्वती स्वेच्छासे कैलास तथा काशीपुरीमें विहार करने लगे।

१- यह भगवतीगीता, पार्वतीगीता या देवीगीता कूर्मपुराण पूर्वार्ध अ० ११-१२ से प्रायः यथावत् मिल जाती है।
२-इसी भावका चित्र प्रायः सभी काली-मन्दिरोंमें प्रतिमारूपसे पूजित होता है। यह कथा प्रायः अन्यत्र कहीं नहीं मिलती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गत्वा कदाचित् कैलासं कदा वाराणसीं पुरीम् ॥'

(महाभा० ३५। ३४)

इसके बाद अध्याय ३६ से लेकर अध्याय ४९ तक विस्तारसे श्रीरामोपाख्यान या रामायणकी कथाका सार निरूपित है, जिसके सार-अंशमें देवीकी आराधनाके द्वारा श्रीरामके सर्वत्र विजयी होने तथा भगवान् श्रीरामकी सहायताके लिये भगवान् शंकरके द्वारा पवनपुत्र हनुमान्‌के रूपमें प्रकट होकर निरन्तर सहयोग करनेका वर्णन है। आगेके अध्यायोंमें ५० से ५२ तक भगवान् श्रीकृष्णका बाल-चरित्र, ५३वेंमें रासलीला, ५४वेंमें अक्रूरका व्रज जाकर भगवान् श्रीकृष्णको मथुरा लाने तथा उनके द्वारा सपरिकर कंसका वधकर वसुदेव-देवकीको बंदीगृहसे मुक्त कर उनके दर्शन-प्राप्तिका वर्णन है। ५५वेंमें युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञकी कथा, शिशुपाल-वध, श्रीकृष्ण-विवाह, पाण्डवोंकी द्यूतमें पराजयके पश्चात् वनवास एवं अज्ञातवासकी कथा है। अध्याय ५६ से ५८ में विराटनगरमें अर्जुनद्वारा कौरवोंका पराभव एवं रहस्य प्रकट हो जानेपर महाभारतयुद्धका विस्तृत वर्णन और सपरिकर श्रीकृष्णसहित पाण्डवोंका भी द्वारकाके पश्चिम समुद्र-तटपर एकत्र होकर समुद्रके जलस्पर्शपूर्वक परधामगमनकी बात विवेचित है।

आगे ५९वें अध्यायमें शारदीय पूजाके उपयुक्त देवीके ध्यानका विस्तारसे वर्णन है और फिर चार अध्यायों (६०—६३) में देवराज इन्द्रके ब्रह्म-हत्या-मोक्षणके लिये देवी-उपासनाका वर्णन है। ६४वेंमें देवी भगवती गङ्गाके नदीरूपमें परिवर्तित होनेकी कथा है तथा फिर वामनावतार-कथाके प्रसङ्गमें गङ्गाके ब्रह्माके कमण्डलुमें जाने, बलिके पाताल जाने, भगीरथद्वारा शिवसहस्रनामस्तोत्रके[१] द्वारा शिवको प्रसन्न कर गङ्गा-धारण करने और फिर मेरुके दक्षिण शृंगका भेदन कर हिमालय, हरिद्वार तथा प्रयाग आदि होते हुए समुद्रमार्गसे पाताल जाकर सगरके पुत्रोंको मुक्त करने और ६५ से ७५ तकके ग्यारह अध्यायोंमें गङ्गा-माहात्म्य आदिका वर्णन विस्तारसे हुआ है। गङ्गाकी महिमाका इतना विस्तृत वर्णन प्रायः बृहद्धर्म उपपुराणके गङ्गाधर्मप्रकरणके अतिरिक्त अन्यत्र नहीं प्राप्त होता।

इसके बाद ७६ से ७८ तक तीन अध्यायोंमें कामाख्यायोनि महापीठका माहात्म्य निरूपित है। अगले दो अध्यायोंमें तुलसी, आमलक, बिल्व तथा रुद्राक्षकी महिमाका वर्णन है, जो प्रायः रुद्राक्ष-जाबालोपनिषद्, शिवपुराण, देवीभागवत, पद्म तथा स्कन्दपुराणोंके वर्णनोंसे मिलता है। अन्तिम ८१वें अध्यायमें शिव-शक्त्यात्मक पार्थिव तथा अन्य लिङ्गोंकी पूजा-विधि, उपासना, आराधना एवं महिमा उपवर्णित है।

सारांशमें यह महाभागवत या देवीपुराण अत्यन्त महत्त्वका है। इसकी कथाएँ अत्यन्त रोचक हैं। इसका एक-एक अक्षर सुन्दर, धर्मसारयुक्त, भक्तिभाव तथा सभी काव्यगुणोंसे समलङ्कृत है। इसके उपदेश भी हृदयग्राही तथा नीतिपूर्ण होनेसे स्मरणीय एवं आचरणीय हैं।

कथा-आख्यान—

पाण्डवोंपर देवी कामाख्याकी कृपा

द्यूतमें पराजित होकर[२] राज्यच्युत युधिष्ठिरादि पाण्डव पर्याप्त समयतक इधर-उधर भ्रमण करते हुए प्रायः १२वें वर्षमें देवी कामाख्याके दर्शनके लिये गये हुए थे। प्रत्यक्ष फलदात्री भगवती कामाख्या महासिद्धपीठमें स्थित हैं, जहाँ पहले भगवान् शंकरने अनेक देवताओंके साथ दीर्घकालतक तप किया था। वहाँ पाण्डवोंने उनकी विधिपूर्वक पूजा करके उनसे राज्य-प्राप्तिकी याचना की, साथ ही दारुण युद्धमें अपने शत्रुओंके सपरिकर पराजित होनेकी प्रार्थना की। पाण्डवोंकी स्तुति सुनकर देवी भगवती प्रकट होकर बोलीं—'महाराज! आप अपने वनवासकालकी समाप्तिके पश्चात् धृतराष्ट्रके दुष्ट

१- शिवसहस्रनाम महाभारत, शिवपुराण, लिङ्गपुराण तथा सौरपुराणोंमें भी कहीं-कहीं दो बार, कहीं एक बार प्राप्त होता है। इनमेंसे महाभारतमें प्राप्त शिवसहस्रनाम सर्वाधिक प्रचलित तथा अनेक भाषा एवं टीकाओंसे संवलित है। महाभागवतमें भगीरथद्वारा पठित यह स्तोत्र भी बहुत सुन्दर है, जो 'शिवदः शिवकर्ता च०' इस प्रकारसे प्रारम्भ होता है।

२- जुएमें यह शर्त थी कि जो दल पराजित होगा, वह १२ वर्षतक वनमें निवास करते हुए एक वर्ष पूर्णतया गुप्त रहेगा। यदि उसमें उसका पता लग गया तो पुनः उसे तेरह वर्षतक वनवास करना पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha and eGangotri

पुत्रोंको पराजित कर अपना राज्य निश्चय ही प्राप्त कर लेंगे। आपके ये चारों भाई संग्राममें ससैन्य कौरवों तथा उनके सहयोगियोंका संहार करेंगे और आप सबकी सहायताके लिये मैं स्वयं वसुदेवके घरमें देवकीके गर्भसे पुरुषरूप (कृष्ण-रूप) से पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये प्रकट हुई हूँ। ये अर्जुन साक्षात् विष्णु ही आपके भाईके रूपमें उत्पन्न हुए हैं। ये भीष्म-द्रोण आदि अनेक वीरों और कुरुजांगल आदि अनेक देशोंके योद्धाओंका संहार करेंगे। इस प्रकार महाभारत-युद्धमें इन सभीका संहार हो जानेपर निश्चय ही आप अपना राज्य प्राप्त करेंगे।'

इस प्रकार देवी कामेश्वरीसे वर प्राप्त कर युधिष्ठिरने उनकी पुनः स्तुति की, जो 'कामेश्वरी-अष्टक'के नामसे विख्यात है। इसपर देवीने उनसे पुनः वर माँगनेको कहा। तब युधिष्ठिरने कहा कि 'हे देवि ! बारह वर्ष तो व्यतीत हो चुके हैं, किंतु १३वें वर्षका गुप्तवास बहुत कठिन है। इसमें हम किस प्रकार सफल हो सकेंगे, इस समस्याका आप समाधान करनेकी कृपा करें।' देवीने कहा—'युधिष्ठिर ! कोई चिन्ताकी बात नहीं है। द्रौपदीसहित आप चारों भाई मत्स्यनरेश विराटकी राजधानीमें अज्ञातरूपमें रहकर प्रतिज्ञा पूरी कर अपने राज्यको प्राप्त करेंगे।' ऐसा कहकर भगवती देखते-देखते आकाशस्थ विद्युत्की तरह अन्तर्धान हो गयीं और फिर सभी भाइयोंसे मन्त्रणाकर युधिष्ठिर गुप्तवासके लिये विराट नगर गये। उन लोगोंने अपने सभी अस्त्र-शस्त्रोंको श्मशानस्थ शमीवृक्षपर रख दिया और स्वयं वेश बदलकर दरबारमें पहुँचे। धर्मराज युधिष्ठिर सुवर्णचित्रित द्यूत-पासोंको लेकर ब्राह्मण-वेशमें राजा विराटके यहाँ गये। राजाने उन्हें देखकर पूछा—'महाराज ! आप कहाँसे पधारे हैं ? आप तो निश्चय ही सम्पूर्ण पृथ्वीके स्वामी प्रतीत हो रहे हैं।' युधिष्ठिरने कहा—'मैं ब्राह्मण हूँ, किंतु द्यूत-विद्यामें प्रवीण हूँ, दुर्दैवके कारण इस समय सब कुछ खोकर आपकी शरणमें आया हूँ। मेरा नाम कंक है।' इसपर मत्स्यनरेश विराटने उन्हें अपनी सभामें ही रखनेका प्रस्ताव किया और उन्हें वहाँ कोई किसी प्रकार भी पहचान न सका, यह देवीकी ही कृपा थी। इसी प्रकार क्रम-क्रमसे स्वल्प समयके अनन्तर भीम पाकशालाके अध्यक्ष-रूपमें बल्लव नामसे, अर्जुन कन्याओंके नृत्यशालाके अध्यक्ष बनकर स्त्री-वेशमें बृहन्नला नामसे, द्रौपदी मालिनी नामसे विराटकी महारानी सुदेष्णाकी सैरन्ध्री (केश-कलाप आदिका शृंगार करनेमें निपुण) बनकर तथा दोनों माद्रीके पुत्र नकुल और सहदेव क्रमशः ग्रन्थिक और अरिष्टनेमि नामसे अश्वशाला तथा गोशालाके अध्यक्षरूपमें नियुक्त होकर वहाँ निवास करने लगे।

इस प्रकार प्रायः ग्यारह महीने व्यतीत हो गये, पर देवीकी कृपासे उन्हें कोई पहचान न सका। ग्यारहवें महीनेके अन्तमें महारानी सुदेष्णाके भाई और महाराजा विराटके सेनापति एवं साले कीचकने दिव्य लक्षणयुक्त तथा सर्वाङ्गसुन्दरी द्रौपदीको देखा। वह तुरंत विकृत-चित्त हो बहन सुदेष्णासे पूछने लगा कि 'तुम्हारे पास यह सुन्दरी स्त्री कौन है ? इन्द्रकी शची अथवा विष्णुकी लक्ष्मीके समान रमणीया ऐसी सुन्दरी मैंने आजतक कहीं नहीं देखी।' इसपर सुदेष्णाने कहा—'भैया ! सुनो, यह महारानी द्रौपदीकी सैरन्ध्री थी, किंतु सर्वराजराजेश्वर धर्मराज युधिष्ठिरकी विपन्नावस्थाके कारण यह अब मेरी सेवा कर रही है।' इसपर कीचकने कहा तो ठीक है, तुम कुछ ऐसी व्यवस्था करो जिससे यह मुझे प्राप्त हो जाय, अन्यथा मेरे प्राण निकल जायँगे।

इसपर सुदेष्णाने कहा—'जब यह यहाँ आयी थी, तब मैंने कहा था कि तुम मेरी सेविकाके योग्य नहीं हो, राजा तुम्हें देखकर तुमपर अनुरक्त हो जायँगे, इसलिये तुम कहीं अन्यत्र चली जाओ। इसपर इसने कहा था, मेरे पति पाँच दिव्य गन्धर्व हैं, वे मेरी अहर्निश रक्षा करते हैं, इसलिये कोई भी पुरुष मुझपर कुत्सित दृष्टि नहीं डाल सकता। अतः आप मुझे अपने पास रख लें और तभी मैंने इसे सैरन्ध्री-रूपमें अपने पास रख लिया है। यदि तुम ऐसी चेष्टा करोगे तो इसके गन्धर्व पति तुम्हें मार डालेंगे।' इसपर कीचकने कहा—'मुझे गन्धर्वोंसे कोई भय नहीं है। मैं उन्हें मार डालूँगा। तुम इसे शीघ्र ही मेरे पास भेजो।' इसपर सुदेष्णाने द्रौपदीको बुलाकर कीचकके पास जानेके लिये कहा, उसने कहा कि 'वह अत्यन्त पापी और नीच व्यक्ति है, मैं अपने पाँच पतियोंके अतिरिक्त अन्य किसी पुरुषसे बात भी नहीं करती, केवल आपकी आज्ञासे मैं वहाँ जाऊँगी, किंतु यदि वह मेरे साथ दुर्व्यवहार करना चाहेगा तो निश्चय ही मृत्युको प्राप्त होगा।' सुदेष्णाने यह बात कीचकसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह दी। किंतु कामान्ध कीचकने उससे बलात् धर्षणाकी योजना बनायी। इधर द्रौपदी देवीकी शरणमें गयी और आठ श्लोकोंमें दुर्गतिनाशिनी देवीकी आराधना की और देवीने भी अन्तरिक्षसे कहा—'डरो मत, जो तुम्हारे साथ अभद्र व्यवहार करना चाहता है, वह निश्चय मृत्युको प्राप्त होगा।'

एक दिन रातमें वह सुन्दरी सुदेष्णाके किसी विशेष कार्यके लिये कीचकके घर गयी। उसे देखते ही तत्क्षण कीचकने उसका हाथ पकड़ लिया, परंतु द्रौपदी उसका हाथ झटक कर उसके घरसे बाहर निकल आयी। वह पीछे-पीछे दौड़ने लगा। द्रौपदी भागती हुई राजा विराटके सभामें पहुँची, जहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिर, भीम आदि राजाके साथ द्यूत-क्रीडामें रत थे। वहाँ पहुँचते-पहुँचते कीचकने द्रौपदीके बाल पकड़ लिये और पैरसे आघात भी किया। इससे द्रौपदी गिर पड़ी और दुःखित होकर रोने लगी तथा लाल नेत्रोंसे भीम एवं युधिष्ठिरको देखकर आँखें पोंछकर अपने निवासस्थानपर चली गयी। इसी बीचमें भीमने द्रौपदीसे कीचकको आधीरातमें रंगशालामें मिलनेके बहाने भेजनेको कहा। द्रौपदीने भी वैसा ही किया। कीचक द्रौपदीसे मिलनेकी इच्छासे बड़ी प्रसन्नतासे रात्रिमें रंगशालामें पहुँचा। किंतु वहाँ पहलेसे ही प्रतीक्षारत भीमने उस पापीको मार डाला। द्रौपदीने यह प्रचार कर दिया कि मेरे गन्धर्व पतियोंने छद्म-वेशमें आकर इस दुष्टात्माको मार डाला। यह सुनकर उसके सौ अन्य उपकीचक भाई अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और वे द्रौपदीको भी बाँधकर श्मशान-घाटपर जलानेके लिये ले गये। द्रौपदी चिल्लाकर रोने लगी, जिसे सुनकर भीम नगरके प्राचीरको लाँघकर गुप्त मार्गसे श्मशानपर पहुँचे और उन्होंने द्रौपदीको छुड़ाकर सभी उपकीचकोंको मार डाला। इसपर वहाँ यह प्रचार हो गया कि गन्धर्वोंने ही सभीको मार डाला है। विराटनरेश बहुत डर गये और द्रौपदीसे कहने लगे—'ये कीचक-बन्धु ही मेरे राज्यके मुख्य रक्षक थे, जो तुम्हारे कारण मारे गये, अतः अब तुम कहीं अन्यत्र निवासके लिये चली जाओ।' तब सैरन्ध्रीरूपिणी द्रौपदीने कहा—'महाराज! अत्यल्प कालतक आप प्रतीक्षा करें, मैं स्वयं ही अतिशीघ्र यहाँसे चली जाऊँगी।'

इधर पाण्डवोंके वनवासके तेरह वर्ष पूरे हो गये और गुप्तचरोंद्वारा बहुत प्रयत्न करनेपर भी पाण्डवोंका कोई पता दुर्योधनको नहीं लग पाया। किंतु अजेय कीचकोंके वधके समाचारसे उसने भीष्म, द्रोण आदिसे परामर्श कर पाण्डवोंके वहीं होनेका निश्चय किया और फिर उसने सारी सेनाको लेकर मत्स्यदेशको घेर लिया। वहाँसे गायोंका अपहरण कर ले चलनेपर गोग्रह-युद्धमें अकेले धनुर्धारी अर्जुनने भीष्म-द्रोणसहित सभी कौरव-सेनाको पराजित कर डाला और फिर राजा विराटको भी पाण्डवोंके गुप्तवासकी बात ज्ञात हो गयी। उन्होंने वहीं अर्जुनके पुत्र अभिमन्युको बुलाकर अपनी पुत्री उत्तराके विवाहका मङ्गलोत्सव किया। इसके पश्चात् कौरवोंने तत्काल महाभारतयुद्धकी तैयारी कर ली और विराट नरेश, महाराज द्रुपद, काशिराज और भगवान् श्रीकृष्णकी सहायता तथा देवीकी कृपासे पाण्डवोंने कुरुक्षेत्रके युद्धमें विजय प्राप्त की।

पुराणकथाङ्ककी शुभाशंसा

धर्मभक्तिसदाचारज्ञानवैराग्यवर्धकः। सत्पुराणकथाङ्कोऽयं कल्याणं वितनोतु नः॥
कल्याणपत्रिकाऽऽयातु प्रकाशं भारते चिरम्। सर्वे संस्कृतिसम्पन्नाः सुखिनः सन्तु मानवाः॥

—रवीन्द्रनाथ गुरु

'धर्म, भक्ति, सदाचार, ज्ञान और वैराग्यको बढ़ानेवाला ('कल्याण'का) यह 'पुराणकथाङ्क' हम सबके कल्याणका निरन्तर विस्तार करे। धार्मिक 'कल्याण'-पत्रिका भारतवर्षमें चिरकालतक प्रकाशित होती रहे एवं समस्त मानव संस्कृतिनिष्ठ होकर सुखी रहें।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

जो मोह-रहित होता है, वही बालकका भला कर सकता है। मोहवाला भला नहीं कर सकता। वैद्य और डॉक्टर दुनियाका इलाज करते हैं, पर अपनी स्त्री या बालक बीमार हो जाय तो दूसरे वैद्यको बुलाते हैं। आप विचार करें कि ऐसा क्यों होता है? खुद अच्छे डॉक्टर होनेपर भी मोह होनेके कारण अपनी स्त्री या बालकका इलाज नहीं कर सकते। उनका इलाज वही कर सकेगा, जिसमें मोह नहीं है। अतः मोहरहित, पक्षपातरहित संतोंके द्वारा जितनी अच्छी शिक्षा मिलती है, उतनी औरोंके द्वारा नहीं मिलती। परंतु बड़े दुःखकी बात है कि आजकलके गुरु कहते हैं कि तुम मेरे चेले बन जाओ तो तुमको बढ़िया बात बतायेंगे! चेला बननेपर मोह हो जायगा, ममता हो जायगी। मोह होनेसे दोनोंका पतन होगा—

गुरु लोभी शिष्य लालची, दोनों खेले दाँव।
दोनों डूबा 'परसराम', बैठ पथरकी नाँव॥

—चेला सोचता है कि गुरुजीको एक रुपया भेंट कर देंगे तो हमारा पुण्य हो जायगा, बाबाजी हमारे सब पाप ले लेंगे। उधर बाबाजी सोचते हैं कि एक रुपया मुफ्तमें मिलता है, चेलेको एक कण्ठी दे दो। एक रुपयामें पाँच-सात कण्ठी आती है, अपना तो फायदा ही है। अब वह कण्ठी बाँध लेनेसे क्या कल्याण हो जायगा? लोग कहते हैं कि गुरु बनानेसे कल्याण होता है। गुरु नहीं है तो गुरु बना लो, भाई नहीं है तो धर्मभाई बना लो, बहन नहीं है तो धर्मबहन बना लो। किसी तरह पतन हो जाय—यह उद्योग हो रहा है। गुरु बनानेसे क्या होता है? वे कहते हैं कि हमारे गुरुजी बड़े हैं और वे कहते हैं कि हमारे गुरुजी बड़े हैं, अब गोधा (साँड़) लड़ाओ! बीकानेरमें अपने-अपने मोहल्लेमें एक गोधा तैयार करते हैं, फिर दोनोंको लड़ाते हैं और तमाशा देखते हैं कि दोनोंमें तेज कौन है? अब कल्याण कैसे हो जायगा? विचार ही नहीं करते। कहते हैं कि गुरुके बिना कल्याण नहीं होता, तो जिन्होंने गुरु बना लिया, उनका कल्याण हो गया क्या? वे निहाल हो गये क्या? उनका नहीं हुआ तो हमारा कैसे हो जायगा? कुछ तो अक्ल होनी चाहिये, कुछ तो विचार करना चाहिये। यह नहीं सोचते कि जो गुरु बने हुए हैं, उनकी दुर्दशा क्या है! गुरु बनानेके एजेंट होते हैं। वे दूसरोंको कहते हैं कि तुम हमारे गुरुजीको अपना गुरु बनाओ। कैसी उलटी रीति है। क्या पतिव्रता स्त्री दूसरी स्त्रियोंसे कहती है कि 'मैं पतिको ईश्वर मानती हूँ, तुम भी मेरे पतिको ईश्वर मानो, उनकी सेवा करो, तुम भी मेरे गुरुजीके चेले बन जाओ, हमारी टोलीमें आ जाओ' तो क्या दूसरोंके कल्याणका ठेका ले रखा है?

एक कहानी याद आ गयी। एक संत थे, वे भिक्षाके लिये गये तो उन्होंने देखा कि एक जगह कई वेश्याएँ इकट्ठी हो रही हैं। बाबाजीने पूछा कि क्या बात है? तो बताया कि एक वेश्याने सभी वेश्याओंको भोज दिया है। हलवा, चना, चावल—ये चीजें बनायी हैं। जो चावल बनाये थे, उसका माँड़ एक जगहसे बह रहा था। बाबाजी उससे हाथ धोने लगे। वेश्या ऊपर बैठी थी। उसने देखा तो बोली कि 'बाबाजी! यह क्या कर रहे हो?' बाबाजी बोले कि 'करना क्या है, हाथ धोता हूँ।' वेश्या बोली—'महाराज! अन्नके पानीसे हाथ धोओगे तो हाथ चिपकेंगे, पानीसे हाथ धोओ।' बाबाजी बोले—'यह पानी नहीं है तो क्या है, बता? तेरेको दीखता नहीं है?' वेश्याने कहा कि 'बाबाजी! यह पानी शुद्ध नहीं है। शुद्ध पानीसे हाथ धुलते हैं।' वेश्या पासमें आ गयी थी। बाबाजी बोले—'तो फिर तू वेश्याओंको भोजन करा रही है, वे क्या ज्यादा शुद्ध हैं? क्या वेश्या-भोज करनेसे कल्याण हो जायगा?' वेश्या बोली—'महाराज! मैंने सुना कि दान-पुण्य करनेसे, भोजन करानेसे बड़ा पुण्य होता है, तो मैं साधुओंके पास गयी और उनसे पूछा कि महाराज! कल्याण कैसे होगा?' तो उन्होंने कहा कि 'साधु-संतोंकी सेवा करो, तब कल्याण होगा।' फिर मैं ब्राह्मणोंके पास गयी और उनसे पूछा कि 'कल्याण कैसे होगा?' तो उन्होंने कहा कि 'जो जन्मसे ब्राह्मण हैं, उनकी सेवा करो, तब कल्याण होगा।' अब मैं वैष्णवोंके पास गयी तो उन्होंने कहा कि 'वैष्णवोंकी सेवा करो।' शैवोंके पास गयी तो वे बोले कि 'शैवोंकी सेवा करो।' इस प्रकार जहाँ-जहाँ गयी, वहाँ-वहाँ सबने अपनी ही महिमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गायी, तो यह देखकर हमें युक्ति मिल गयी, विद्या मिल गयी कि हम 'वेश्याओंको ही भोजन करायें तो इसीसे कल्याण हो जायगा।' ऐसे ही बतानेवाले और ऐसे ही शिक्षा लेनेवाले। हल्ला मचा दिया कि गुरु बनाओ, तब कल्याण होगा। विचार करो कि जिन्होंने गुरु बनाया, उनमें क्या फर्क पड़ा ? जैसे पहले थे, वैसे अब भी हैं। बनावटी गुरुसे काम नहीं चलेगा। आप गुरु बनायेंगे तो बनाया हुआ गुरु क्या कल्याण करेगा ?

वास्तवमें गुरु बनाया नहीं जाता। गुरु तो हो जाता है। जिससे हमें किसी विषयका ज्ञान हुआ तो उस विषयमें वह हमारा गुरु हो गया, चाहे हम उसे गुरु मानें या न मानें, जानें या न जानें। एक संतसे किसीने पूछा कि 'आपका गुरु कौन है ?' तो उन्होंने कहा कि 'जो मेरेसे ज्यादा जानता है' और 'चेला कौन है ?' 'जो मेरेसे कम जानता है।' कितनी बढ़िया बात बतायी। जो मेरेसे ज्यादा जानता है, वह मेरा गुरु है, चाहे मैं मानूँ या न मानूँ। जो मेरेसे कम जानता है, वह मेरा चेला है, चाहे वह चेला बने या न बने। मैं आपसे एक प्रश्न करता हूँ—पहले बेटा पैदा होता है कि बाप ?

श्रोता—बाप !

स्वामीजी—नहीं, पहले बेटा पैदा होता है, पीछे बाप पैदा होता है। बेटा पैदा हुए बिना उसका 'बाप' नाम होता ही नहीं। जिससे बेटा पैदा हो जाय, वह बाप हो गया और जिससे आपको ज्ञान हो जाय, वह गुरु हो गया, भले ही आप उसको गुरु मत बनाओ। जिससे आपको गुर मिल गया, सिद्धान्त मिल गया और जिसकी शिक्षासे आपकी उन्नति हो गयी, वह आपका गुरु हो गया, चाहे उसको पता हो या न हो। वह बनावटी गुरु नहीं है, असली गुरु है। बनावटी गुरुसे कभी कल्याण नहीं होता। कालनेमिने हनुमान्‌जीसे कहा कि 'मैं गुरु हूँ, स्नान करके आओ, मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा।' हनुमान्‌जी स्नान करनेके लिये गये। वहाँ मकरीने कहा कि 'महाराज ! इसको संत मत मानना, यह तो राक्षस है !' हनुमान्‌जीने आकर कहा कि 'पहले गुरु-दक्षिणा (भेंट) ले लो, पीछे मेरेको मन्त्र देना' और उसको पूँछमें लपेटकर ऐसा पछाड़ा कि वह प्राणमुक्त हो गया ! कपटी , बनावटी गुरुकी ऐसी पूजा होती है ! जैसा देव, वैसी पूजा !

थोड़ा विचार करें, जिसके मनमें चेला बनानेकी इच्छा है, वह गुरु कैसे हुआ ! वह तो चेलादास है। जिसको चेलेकी गरज है, वह चेलेका गुलाम हुआ। जिसको रुपयोंकी गरज है, वह रुपयोंका गुलाम हुआ। अगर रुपये देनेसे कोई गुरु बनता है, तो वह हुआ रुपयोंका दास और वे रुपये हमारे पास हैं, तो हम हुए उसके दादागुरु ! अब वह हमारा कल्याण कैसे करेगा ? परंतु लोग सोचते ही नहीं और कह देते हैं कि अरे ! रुपये इनके भेंट कर दो और इनके चेले बन जाओ, ये हमारा कल्याण कर देंगे। माताओंसे कहते हैं कि 'तुम ऐसे-ऐसे कर दो, नहीं तो चिड़िया बनाकर उड़ा देंगे तुम्हारेको !' जय महाराज ! चिड़िया बनाकर उड़ा दोगे, तभी हम आपको मानेंगे, नहीं तो आपको कुछ न देंगे। हमारा तो फायदा ही है, चलना-फिरना नहीं पड़ेगा, उड़कर चले जायँगे ! वे आशीर्वाद देते हैं—'तेरे दूध-पूतकी खैर—तेरा दूध (जाति) भी ठीक रहे, तेरा पूत भी जीता रहे, तो महाराज ! आशीर्वाद आप अपने पास ही रखो। वे कहते हैं कि इतनी भेंट लाओ, इतना रुपया लाओ तो तुम्हारा कल्याण कर देंगे, ऐसी विद्या बता देंगे, जिससे लोहेका सोना बन जाय। बाबाजी ! ऐसी विद्या यदि तुम्हारे पास है तो हमारेसे रुपया क्यों माँगते हो ? रुपयेकी चाहना क्यों रखते हो ? वे कहते हैं कि हमारे पास रुपये कम हैं, इसलिये माँगते हैं। महाराज ! अगर हमारे पास रुपये ज्यादा हैं तो हम तुम्हारेसे बड़े हुए, फिर तुम्हारे गुलाम हम क्यों बनेंगे ? जो रुपयोंसे खरीदे जायँ, वे गुरु नहीं होते।

वास्तवमें गुरुको चेलेकी गरज नहीं होती, चेलेको ही गुरुकी गरज होती है। भाइयोंको वहम पड़ा हुआ है कि गुरु बनानेसे कल्याण हो जायगा। बनावटी गुरु कल्याण नहीं करता। मेरेसे कोई पूछता है तो मैं कहता हूँ कि भगवान् श्रीकृष्णको गुरु मान लो—'**कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्**।' भगवान् जगत्‌के गुरु हैं और जगत्‌में आप हो ही। उनका मन्त्र है—'भगवद्गीता'। भगवद्गीताका मनन करो, कल्याण हो जायगा। संदेह हो तो करके देख लो कि कल्याण होता है या नहीं होता। भगवान्‌के रहते हुए आप गुरुके लिये क्यों भटकते हो ?

माताएँ डरती हैं कि हम किन-किनका उपदेश मानें ! हम हनुमान्‌जीकी पूजा करें तो कृष्ण नाराज हो जायँगे, कृष्णकी पूजा करें तो रामजी नाराज हो जायँगे, रामजी आदिको मानें तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी नाराज हो जायँगी, देवीकी पूजा करें तो हनुमान्‌जी नाराज हो जायँगे ! अब हम क्या करें ? ऐसे प्रश्न मेरे पास आते हैं। कितनी भोली-भाली, सीधी-सादी माताएँ हैं ! कोई ठग मिल जाय तो इन बेचारियोंको डुबा दे। मैंने कहा कि तुम यह डर बिलकुल निकाल दो। अब पतिव्रता कहे कि मैं पतिकी सेवा करूँगी तो दूसरे पुरुष नाराज हो जायँगे, तो बड़ी मुश्किल हो जायगी। सबकी सेवा कहाँतक होगी ! तुम किसी एकके भक्त बन जाओ तो सब राजी हो जायँगे। तुम कृष्ण भगवान्‌के भक्त बन जाओ तो देवी, सूर्य, गणेश, शिव आदि सब राजी हो जायँगे। पतिव्रतासे कौन नाराज होता है ? तुम पतिकी सेवा करती हो, हमारी सेवा तो करती ही नहीं, हम नाराज हो जायँगे—ऐसा होता है क्या ? पतिव्रतासे कोई नाराज नहीं होता। अगर नाराज हो भी जाय तो हमारी तरफसे भले ही सब नाराज हो जायँ ! एक बार मेरेको एक भाईने कहा कि महाराज ! आप मेरेसे नाराज हो गये क्या ? मैंने कहा कि अगर नाराज होनेसे भगवान् मिल जायँ, तो तेरेसे नाराज हो जायँ ! भगवान् तो मिलते नहीं नाराज होनेसे, तो फिर हम नाराज क्यों होंगे ! नाराज होनेसे मेरेको क्या लाभ होगा ? बेचारे भाई डर जाते हैं कि एक देवताकी पूजा करनेसे दूसरे देवता नाराज हो जायँगे। बिलकुल नाराज नहीं होंगे। आप अनन्यभावसे किसी एक देवताकी उपासनामें तत्परतासे लग जाओ तो दूसरे सब देवता राजी हो जायँगे।

श्रोता—आजकल दुनियामें ढूँढ़नेपर भी गुरु नहीं मिलता। मिलता है तो ठग मिलता है। हम गुरु ढूँढ़नेके लिये कई तीर्थोंमें गये, पर कोई मिला ही नहीं। आप कहते हैं कि जगद्गुरु कृष्णको अपना गुरु मान लो। अगर आप यह घोषणा कर दें कि भाई ! आपलोग कृष्णको ही गुरु मानो तो यह वहम ही मिट जाय···· !

स्वामीजी—वास्तवमें गुरुको ढूँढ़ना नहीं पड़ता। फल पककर तैयार होता है तो तोता खुद उसको ढूँढ़ लेता है। ऐसे ही अच्छे गुरु खुद चेलेको ढूँढ़ते हैं, चेलेको ढूँढ़ना नहीं पड़ता। जैसे ही आप कल्याणके लिये तैयार हुए, गुरु फट आ टपकेगा ! फल पककर तैयार होता है तो तोता अपने-आप उसके पास आता है, फल तोतेको नहीं बुलाता। ऐसे ही आप तैयार हो जाओ कि अब मुझे अपना कल्याण करना है तो गुरु अपने-आप आयेगा। बालकका पालन माँ ही कर सकती है, पर माँको बालककी ज्यादा गरज होती है, बालकको माँकी गरज नहीं होती। इतनी देर हो गयी, बालकने दूध नहीं पिया, क्या बात है ?—यह चिन्ता माँको रहती है। ऐसे ही जब मनुष्य असली शिष्य बन जाता है, उसमें अपने उद्धारकी लालसा लग जाती है, तब गुरु अपने-आप उसे ढूँढ़ लेता है।

जो असली गुरु होते हैं, वे दूसरेको चेला नहीं बनाते, प्रत्युत गुरु ही बनाते हैं[1]। जिसको वे चेला बनाते हैं, वह दुनियाका गुरु हो जाता है। वहाँ ऐसी टकसाल है, जहाँसे गुरु-ही-गुरु निकलते हैं। दूसरेको अपना चेला बनाना तो पशुका काम है। कुत्ता दूसरे कुत्तेको काटता है और जब वह कुत्ता नीचे गिर जाता है तो यह ऊपर हो जाता है और राजी हो जाता है। दूसरेको चेला बनाकर, अपना मातहत बनाकर राजी होना क्या गुरुका लक्षण है ? भगवान्‌के दरबारमें अंधेर नहीं है। अगर आप तैयार हो जाओ तो अच्छे-अच्छे गुरु आपकी गरज करेंगे। बच्चेके बिना माँ वर्षोंतक रह सकती है और रहती आयी है, पर बच्चा माँके बिना नहीं रह सकता। फिर भी बच्चेमें माँकी जितनी गरज होती है, उससे ज्यादा माँमें बच्चेकी गरज होती है। परंतु बच्चा माँके हृदयको समझ ही नहीं सकता। ऐसे ही गुरु चेलेके बिना रह सकता है, पर चेला गुरुके बिना नहीं रह सकता। चेलेके भीतर अपने उद्धारकी जितनी लगन होती है, उससे ज्यादा गुरुमें चेलेके उद्धारकी लगन होती है। परंतु चेला गुरुके हृदयको समझ ही नहीं सकता।

बछड़ेको देखकर गायका हृदय उमड़ता है। बछड़ेका तो एक मुँह होता है, पर गायका दूध चार थनोंसे टपकता है। ऐसे ही आपमें अपना कल्याण करनेकी लगन लगेगी तो गुरुका हृदय उमड़ पड़ेगा। संत-महात्माओंके मनमें जीवका उद्धार करनेकी जितनी लगन होती है, उतनी खुद जीवमें अपना उद्धार करनेकी नहीं होती।

आपको गुरुको ढूँढ़नेकी क्या जरूरत है ? आप असली चेला बन जाओ, आपके भीतर अपने उद्धारकी लालसा लग जाय, तो गुरु खोजते हुए आ जायँगे आपके पासमें।

१-पारसमें अरु संतमें बहुत अंतरौ जान। वह लोहा कंचन करै वह करै आपु समान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी-कभी स्वप्नमें भी गुरु मिल जाते हैं और मन्त्र दे देते हैं। चरणदासजी महाराजको शुकदेवजीने स्वप्नमें आकर दीक्षा दी। शुकदेवजी महाराज हजारों वर्ष पहले हुए और चरणदासजी महाराज अभी हुए, पर शुकदेवजी महाराज गुरु हो गये और चरणदासजी महाराज चेला हो गये। गुरुजनोंके हृदयमें तो मात्र दुनियाके उद्धारकी लालसा होती है। अतः आपको उन्हें ढूँढ़नेकी जरूरत नहीं है।

भाई कहते हैं कि तुम घोषणा कर दो, सबको कह दो, तो माताओ! भाइयो! आप सभीसे मेरा कहना है कि अगर गुरु बनाना हो तो कृष्णको गुरु मान लो। वे सम्पूर्ण जगत्के गुरु हैं—**'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्'**। आप जगत्से बाहर नहीं हो। गुरुजीका मन्त्र है—'गीता'। गीताजीका पाठ करो, मनन करो। गीताजीको याद करो। उसके अनुसार अपना जीवन बनाओ। उद्धार हो जायगा! जितनी अधिक लगन होगी, उतनी जल्दी उद्धार होगा। जितनी ढिलाई होगी, उतनी देरी लगेगी। उद्धार होगा ही। लाभ ही होगा, नुकसान नहीं होगा। अगर किसी 'ऐरे गैरे नत्थू खैरे' को गुरु बनाओगे तो वह क्या निहाल करेगा! इसलिये आप निःसंकोच होकर भगवान्के चरणोंके आश्रित हो जाओ। डरो मत, निधड़क रहो। जो बनावटी गुरु होते हैं, उनके एजेंट ही कहा करते हैं कि 'तुम इनके चेले बन जाओ।' रावण भिक्षा लेने गया तो उसने सीताजीसे कहा कि जो कार (लकीर) है, उसके भीतर हम नहीं आते—***'नहीं आते कारके भीतर, निराकार जपते हरिहर हर।'*** हम निराकारको जपते हैं, आकारके भीतर नहीं आते, लकीरसे बाहर आकर भिक्षा दो। सीताजी बाहर आयीं तो उनको उठाकर चल दिया! ये हैं गुरुजी महाराज! इनसे सावधान रहना। आजसे ही याद कर लो कि **'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्!'**

छब्बीस एकादशियोंकी कथाएँ

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

[गताङ्क पृ० ४४३ से आगे]

भाद्रपदमासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'अजा' एकादशी—सत्ययुगमें हरिश्चन्द्र नामके एक सत्यवादी राजा थे। सत्यकी रक्षाके लिये उन्होंने अपना राज्य दूसरेको दे दिया, दक्षिणा देनेके लिये पत्नी और पुत्रको भी बेच दिया। इसके बाद उन्होंने अपने-आपको भी बेच दिया। फलतः उन्हें चाण्डालकी नौकरी करनी पड़ी। दिन-रात उन्हें श्मशानमें रहना और मुर्दोंका कफन लेना पड़ता था। यह काम उनके स्वभावके अनुकूल नहीं था। केवल सत्यकी रक्षाके लिये वे इस कष्टको झेल रहे थे, किंतु मन-ही-मन इस कष्टसे उबरनेके लिये भगवान्से प्रार्थना किया करते थे। भगवान्ने महर्षि गौतमको उनके पास भेज दिया। महर्षिने उनसे भाद्रपदमासके कृष्णपक्षकी 'अजा' एकादशीका व्रत करनेके लिये कहा। सौभाग्यवश सातवें दिन वह एकादशी आ रही थी। हरिश्चन्द्रने एकादशीके दिन श्रद्धा-भक्तिके साथ उपवास किया और रातमें जागरण किया। इस व्रतके प्रभावसे राजाके सारे दुःख मिट गये। उन्हें उनकी पत्नी मिल गयी और पुत्र भी जीवित हो गया। देवताओंने उनके ऊपर फूल बरसाये। अन्तमें सारे नगर-निवासियोंके साथ उन्हें स्वर्गलोक प्राप्त हुआ।

(ख) शुक्लपक्षकी 'पद्मा' एकादशी—मान्धाता नामके एक विश्वप्रसिद्ध राजा थे। एक बार उनके राज्यमें तीन वर्षोंतक वृष्टि नहीं हुई। राजा इस परिस्थितिसे त्राण पानेके लिये अंगिरा ऋषिकी शरणमें गये। ऋषिने कहा—'राजन्! तुम अपनी प्रजा और कुटुम्बके साथ भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी 'पद्मा' एकादशीका व्रत करो। इस व्रतके प्रभावसे निश्चय ही वृष्टि होगी।' सब लोगोंने व्रतका अनुष्ठान किया। फलस्वरूप खूब वृष्टि हुई। सब लोग सुखी हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्विनमासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'इन्दिरा' एकादशी—माहिष्मतीमें इन्द्रसेन नामके एक राजा राज्य करते थे। वे सुयोग्य शासक थे। एक बार देवर्षि नारद आकाशमार्गसे उनकी सभामें उपस्थित हुए। राजाने श्रद्धा-भक्तिके साथ देवर्षि नारदकी पूजा की। देवर्षि नारदने राजासे कहा—'मैं घूमते-घामते यमराजकी सभामें जा पहुँचा था। वहाँ तुम्हारे पिताजी मिले थे। व्रतभंगके दोषसे उन्हें वहाँ जाना पड़ा है। तुम्हारे पिताने तुम्हें एक संदेश दिया है कि तुम मुझे 'इन्दिरा' एकादशी-व्रतका पुण्य प्रदान कर स्वर्गमें भेज दो।'

राजाने नारदजीसे 'इन्दिरा' व्रतकी पूरी जानकारी प्राप्त की और उसके बाद उन्होंने विधि-विधानके साथ 'इन्दिरा' एकादशीका अनुष्ठान किया। रानियों, पुत्रों और भृत्योंने भी इस व्रतका पालन किया। व्रतके पूर्ण होते ही आकाशसे फूलोंकी वृष्टि होने लगी। राजा इन्द्रसेनके पिता गरुड़पर सवार होकर विष्णुधाम चले गये।

(ख) शुक्लपक्षकी 'पापाङ्कुशा' एकादशी—महाराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा कि 'आश्विनमासके शुक्लपक्षकी एकादशीका क्या नाम है?' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'आश्विनमासके शुक्लपक्षकी एकादशीका नाम 'पापाङ्कुशा' है।' इस एक एकादशीका भी उपवास-व्रत कर लिया जाय तो मनुष्यको नरकमें नहीं जाना पड़ता। 'पापाङ्कुशा' एकादशी तो पापपर सचमुच अङ्कुश ही लगा देती है। इस व्रतमें दिनमें उपवास और रात्रिमें जागरण आवश्यक होता है। इससे अनायास वैकुण्ठधाम मिल जाता है।

कार्तिकमासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'रम्भा' एकादशी—मुचुकुन्द नामके एक राजा थे। उनके घरमें चन्द्रभागा नामकी नदी उनकी कन्याके रूपमें उत्पन्न हुई। राजाने उसका विवाह 'शोभन'से कर दिया था।

एक बार शोभन अपने श्वशुरके घर आये हुए थे। दशमी तिथि आनेपर वहाँ ढिंढोरा पीटा गया कि एकादशीके दिन कोई भी भोजन न करे। शोभनने अपनी पत्नीसे पूछा कि 'मैं क्या करूँ? मैंने कभी उपवास नहीं किया है?' चन्द्रभागाने कहा—'स्वामिन्! मेरे पिताके राज्यमें एकादशीके दिन पशुओंको भी जलतक नहीं दिया जाता। ऐसी स्थितिमें आप भोजन करेंगे तो आपकी बड़ी निन्दा होगी। आप तो वीर हैं। आपके लिये भूख-प्यासके इस कष्टको झेलना कोई कठिन बात नहीं है।'

शोभनने कभी उपवास नहीं किया था। उसने प्रसन्नताके साथ एकादशीव्रतका अनुष्ठान किया। अभ्यास न होनेके कारण शोभनको भूख और प्यास सताने लगी। धीरताके साथ उसने उनकी उपेक्षा कर दी, किंतु सूर्योदय होते-होते शोभनका प्राणान्त हो गया।

शोभनने प्राण देकर भी 'रम्भा' नामक एकादशी-व्रतको निभाया था, इसलिये देवलोकमें उसे सम्मानित पद प्राप्त हुआ। वहाँ उसे बहुत आदरकी दृष्टिसे देखा जाता था। एक बार तीर्थयात्राके प्रसंगसे सोमशर्मा नामक एक ब्राह्मण किसी तरह मन्दराचलपर चले गये। वहाँ उन्हें शोभन दिखायी दिये। वे उनके पास चले गये। शोभनने भी आसनसे उठकर पण्डित सोमशर्माका स्वागत किया और प्रणाम किया। शोभनने अपने श्वशुर और प्रिय पत्नीका कुशल-समाचार पूछा। ब्राह्मणने वहाँका सुख-समाचार सुनाकर अपना आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'इतना सुन्दर और विचित्र नगर किसीने नहीं देखा होगा। यह नगर आपको कैसे मिल गया?' शोभनने कहा—'महाराज! यह 'रम्भा' नामक एकादशीके अनुष्ठानका प्रसाद है, किंतु उस व्रतको मैंने श्रद्धापूर्वक नहीं किया था। इससे अनुमान है कि यह नगर सदा स्थिर रहनेवाला नहीं है। यह बात मेरी पत्नीसे कह दीजियेगा।'

सोमशर्मा वहाँसे लौटकर चन्द्रभागाके पास पहुँचे। उन्होंने उससे इस आश्चर्यजनक घटनाको कह सुनाया। चन्द्रभागाने कहा—'आप ब्रह्मर्षि हैं, अतः मुझे पतिके पास ले चलिये। मैं अपने व्रतके प्रभावसे अपने पतिदेवके नगरको स्थिर बना दूँगी।' सोमशर्मा चन्द्रभागाको साथ लेकर वामदेव ऋषिके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रमपर गये। बिना दिव्य शरीर पाये चन्द्रभागा मन्दराचलपर नहीं जा सकती थी। चन्द्रभागाके पास एकादशीके व्रतके पुण्य तो थे ही। अतः ऋषिने अपनी मन्त्रशक्तिके सहयोगसे चन्द्रभागाके शरीरको दिव्य बना दिया था। इसके बाद वह अपने पतिके पास पहुँची। पति और पत्नी एक-दूसरेको देखकर अद्भुत आह्लादमें मग्न हो गये। शोभनने अपनी पत्नीको बायीं ओर अपने आसनपर बैठाया। तब चन्द्रभागाने अपने पतिदेवसे कहा—'नाथ! मैं आठ वर्षकी अवस्थासे आजतक एकादशी-व्रत करती आ रही हूँ। उस पुण्यके प्रभावसे यह नगर कल्पके अन्ततक स्थिर रहेगा और यहाँ सभी इच्छित वस्तुएँ सदा प्राप्त होती रहेंगी।' एकादशी-व्रतके प्रभावसे चन्द्रभागा अपने पतिके साथ दिव्य भोग भोगने लगी।

(ख) शुक्लपक्षकी 'प्रबोधिनी' एकादशी—महाराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा कि 'भगवन्! कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी 'प्रबोधिनी' एकादशीकी महिमा बताइये।' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'राजन्! यही प्रश्न नारदजीने ब्रह्माजीसे किया था। ब्रह्माजीने जो बतलाया था, वही मैं तुम्हें सुनाता हूँ। 'प्रबोधिनी' एकादशीका एक ही उपवास कर लेनेसे हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञका फल मिल जाता है। मेरुके समान पातक भी इस व्रतसे नष्ट हो जाते हैं। अश्वमेध आदि यज्ञोंके अनुष्ठानसे जो फल प्राप्त होते हैं, वे फल इस व्रतमें जागरण करनेसे मिल जाते हैं।

पुरुषोत्तममासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'कमला' एकादशी—अवन्तिपुरीमें शिवशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहते थे। उनके पाँच पुत्र थे। पाँचवाँ पुत्र अपने कुलके अनुरूप नहीं निकला। इसीलिये पिता तथा उसके स्वजनोंने उसे त्याग दिया। घरसे निकाले जानेके बाद वह प्रयागमें पहुँचा। उसे न भर पेट अन्न मिलता था न पानी। वहाँ उसने त्रिवेणीमें स्नान और जलपान किया। प्यास तो मिट गयी थी, किंतु भूखकी ज्वालासे वह पीड़ित हो रहा था। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह हरिमित्र मुनिके आश्रममें पहुँचा। वहाँ कथा चल रही थी। सुननेवालोंकी बड़ी भीड़ लगी थी। इसने भी वह कथा सुनी। संयोगवश उस दिन 'कमला' नामकी एकादशी थी। उसने श्रद्धापूर्वक विधि-विधानसे इस व्रतका अनुष्ठान किया। वह लगनसे भगवती 'कमला'को पुकारता रहा। करुणामयी लक्ष्मी माता आधीरातको प्रकट हुईं और उससे बोलीं—'पुत्र! मैं तुम्हारे इस व्रतसे प्रसन्न हूँ। वर माँगो!' उसने कहा—'माता! मैं इस व्रतको जानना चाहता हूँ, जिसकी चर्चा सज्जन किया करते हैं।'

माता लक्ष्मीने कहा—'वत्स! एकादशी-व्रतकी महिमा सबके सुननेयोग्य है। इसकी चर्चा साधुमण्डलीमें अधिक हुआ करती है। इस कथाका यदि श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पाठ किया जाय तो करोड़ों महापातकोंका नाश हो जाता है और वैकुण्ठधामकी प्राप्ति होती है।'

(ख) शुक्लपक्षकी 'कामदा' एकादशी—युधिष्ठिरके पूछनेपर भगवान् श्रीकृष्णने पुरुषोत्तम-मासके शुक्लपक्षकी एकादशीका नाम 'कामदा' बतलाया। साथ ही यह भी बतलाया कि शुक्लपक्ष या कृष्णपक्षमें जो भी एकादशी प्राप्त हो उसका त्याग न करे। आग्रहपूर्वक व्रतका पालन करे। कलियुगमें एकमात्र एकादशी भव-बन्धनको काटनेवाली, इच्छित कामनाओंको प्रदान करनेवाली और पापोंका नाश करनेवाली है। इस व्रतको करनेवाले जीवन्मुक्त भी हो जाते हैं।

(समाप्त)

परमात्मा सर्वत्र हैं और परमात्मामें यह सारा जगत् मायासे भासित हो रहा है तथा यह भासमान जगत् मिथ्या है और एक परमात्मा ही सत्य हैं। यह बात एकदम सत्य है तथा जो सत्य-परमतत्त्व है, वही हम हैं—इसका बारंबार चिन्तन करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुन्देलखण्डका गोचारण-लोकोत्सव

(आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

उत्तरप्रदेशका बुन्देलखण्ड वीरताके लिये प्रसिद्ध रहा है। 'हरबोले बुन्देली' जितने वीर होते रहे, उतने ही अपने धर्ममें भी अडिग रहे। आज भी यहाँके लोग गौको माता मानकर कार्तिक मासकी देवोत्थानी एकादशीके दिन गोभक्तिका अपूर्व परिचय देते हैं।

यहाँके हिन्दू युवक अपने जीवनमें बारह वर्षोंका एक व्रत करते हैं। यह व्रत कार्तिकमासकी शुक्ला एकादशीके दिन निर्जल रहकर और मौन धारण कर हरे खेतोंमें गौको चराकर पूरा किया जाता है। यह पवित्र व्रत उन सभी गाँवोंमें होता है, जिनमें हिन्दू निवास करते हैं। पहले ये किसी किसानका सस्यसम्पन्न खेत खरीद लेते हैं, फिर सभी व्रती स्नान करके नूतन वस्त्र धारण करते हैं। एक हाथमें वंशी और दूसरे हाथमें मयूर-पिच्छ लेकर खेतमें अपनी-अपनी गायोंको चराने ले जाते हैं। वे गायोंको छड़ी या डंडेसे न छूकर केवल मयूर-पिच्छसे ही संकेत करते हैं। यदि गाय किसी किसानके खेतमें भी जाकर चरने लगती है तो वह किसान उस गायको हाँक नहीं सकता और न उस गोचारकको कुछ कह ही सकता है।

गोचारणका व्रत

बुन्देलखण्डकी प्रथाके अनुसार व्रत रहकर, मौन धारण कर गौको चरानेवाला गोभक्त इस प्रकार लगातार बारह वर्षोंतक प्रत्येक देवोत्थानी एकादशीके दिन अपना व्रत पूरा करता है। यदि गोचारकको कड़ी धूपके कारण प्यास लगती है तो वह गौकी भाँति ही किसी तालाब या नदीमें मुँह लगाकर पानी पीता है, किसी बर्तन या हाथसे नहीं। यदि किसी गोचारकने भूलसे अपना मौन-व्रत तोड़ दिया तो उसके लिये उसे प्रायश्चित्तमें गाँव लौटते समय समस्त गोचारकोंका मयूर-पिच्छ अपने सिरपर रखकर गाँवमें आना पड़ता है। उसके इस कार्यसे गायोंका स्वागत करनेवाले गाँववाले पहले ही समझ जाते हैं कि इससे मौन-व्रत टूट गया है। उसे गाँवमें पहुँचनेपर सबको प्रसाद बाँटना पड़ता है।

जब सायंकाल ये व्रती गाँवमें वापस आते हैं, तब गाँववाले उनके स्वागतमें बाहर खड़े रहते हैं और गायोंके पहुँचते ही गोमाताकी जयकार बोलने लगते हैं। गौओंको मिष्टान्न खिलाया जाता है और गोचारकोंको माला पहनायी जाती है। गोचारक अपने घरमें जाकर कुछ खाकर अपना दिनभरका व्रत समाप्त करता है और मौनव्रत तोड़ता है। गोचारक पूरे परिवार और आस-पासके लोगोंको प्रसाद बाँटता है।

गोचारक गोदुग्धनिर्मित खीरका प्रसाद बाँटते हैं। खीर घरके बड़े-बूढ़ोंको भी खिलायी जाती है। बुन्देलखण्डमें जो यह गोचारण-लोकोत्सव मनाया जाता है, इसमें भगवान् श्रीकृष्णके गोचारणकी स्पष्ट छाप झलकती है। श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें भगवान् श्रीकृष्णके गोचारणकी चर्चा है।

भगवान् श्रीकृष्ण जब गौ चराने जाते थे तो गायें आगे-आगे चलती थीं, बीचमें भगवान् श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई बलरामजीके साथ हो जाते थे और बादमें होता था ग्वालबालोंका दल। भगवान् श्रीकृष्णने अपनी गायोंका नामकरण किया था, जिससे आवश्यकता पड़नेपर नाम लेकर पुकारते ही वे गायें रँभाती हुई उनके पास दौड़ जाती थीं—

ता आहूता भगवता मेघगम्भीरया गिरा।
स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः॥

(श्रीमद्भा० १०।१९।६)

बुन्देलखण्डके इस गोचारण-लोकोत्सवको देखकर मैंने अनुभव किया कि आज भी बुन्देलखण्डके निवासी गौ-माताके प्रति अपार श्रद्धा और भक्ति रखते हैं। सम्भव है, इस प्रकारका गोचारण-उत्सव भारतके और किसी भागमें होता हो। बुन्देलखण्डमें दीपावली और देवोत्थानी एकादशीके अवसरपर 'लोक-नृत्य और दीपावली खोलना' सामूहिक रूपमें होता है। उन उत्सवोंपर भी भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंकी स्पष्ट छाप है।

चलो सखी तहँ जाइये जहाँ बसत बृजराज।
गोरस बेचत हरि मिलें एक पंथ दो काज॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गीताके तीसरे अध्यायका चमत्कार

पटना जिलाके अन्तर्गत एक छोटा-सा ग्राम है बिसरपुर। मैं उस ग्रामका निवासी हूँ। मेरे परिवारमें कुल दो पुत्र, दो कन्याएँ, एक पुत्रवधू और उसके तीन छोटे बच्चे हैं। मेरी एक कन्या १९८६ में प्रेतबाधासे ग्रस्त हो गयी थी। उसपर जब प्रेतात्माका आक्रमण होता था, तो वह काफी बेचैन हो जाती थी, जोर-जोरसे दर्दके साथ चिल्लाना तथा अनाप-शनाप बोलना जारी रखती थी और कुछ समयके लिये बेहोश भी हो जाती थी। उस समय बहुत ही करुणामय दृश्य उपस्थित हो जाता था। उसके स्वास्थ्य-लाभके लिये मैंने कई संतों और गुणियोंकी शरण ली तथा झाड़-फूँक भी करायी। इससे उसे क्षणिक शान्ति तो मिल जाती थी, पर पुनः उसकी वही स्थिति हो जाती। मेरा पूरा परिवार इससे उद्विग्न था। अन्ततः एक दिन मैं पटनानिवासी अपने मित्र श्रीओमप्रकाशजीसे मिला और उनसे अपनी पुत्रीके सम्बन्धमें सारी बात कही। उस समय मेरे प्रिय मित्रके पिता श्रीपुरुषोत्तमदासजी जो निकटमें बैठे मेरी सारी क्लेश-गाथा सुन रहे थे, उन्होंने मुझे अपने निवास-स्थानपर किसी पण्डितद्वारा गीताके तृतीय अध्यायके पाठ करानेकी सलाह दी तथा कहा कि प्रतिदिन गीताके तीसरे अध्यायका पाठ उस कन्याको सुनाना चाहिये। इससे अवश्य लाभ होगा। साथ ही गीताकी एक प्रति भी मुझे दी। तदनुसार मैंने उसी दिन गीताकी चन्दन-पुष्प आदिसे पूजाकर उसके तीसरे अध्यायका पाठ किया तथा प्रतिदिन अपनी कन्याको सुनाने लगा। फलतः बहुत शीघ्र ही मेरी पुत्रीका शारीरिक एवं मानसिक कष्ट शान्त हो गया और अब वह पूर्ण स्वस्थ हो गयी है। मेरे परिवारको भी शान्ति मिली। जिस कष्टसे हम सब लोग कितने दिनोंसे उद्विग्न थे तथा निराश भी होते जा रहे थे, वह इतनी सरलतासे दूर हो गया, यह श्रीमद्भगवद्गीताके पाठका ही चमत्कार था। तबसे मैं श्रीमद्भगवद्गीताके तृतीय अध्याय-का सदा मनन एवं चिन्तन करता हूँ। मेरा विश्वास है कि इसका पाठ प्रेतात्मा या भूत-प्रेत-बाधासे मुक्ति दिलानेका सर्वोत्तम उपाय है।

मैं अपने प्रिय मित्रके आदरणीय पिताजीका चिर ऋणी हूँ, जिनके गीता-पाठरूपी सदुपदेशसे मेरी पुत्री पूर्णतया प्रेत-बाधासे मुक्त हो गयी और मेरा परिवार सुख-शान्तिके मार्गपर अग्रसर हो सका। प्रेषक—कपिलदेव सिंह

(२)

निःसहायको सहायता

यह बात लगभग पचास वर्ष पहलेकी है। सड़कके किनारे पड़ी एक असहाय एवं दुर्बल स्त्री अपने नन्हे बच्चेको लेकर दर्दसे कराह रही थी। उसके शरीरसे रक्त बह रहा था। वह बार-बार मक्खियाँ उड़ानेका असफल प्रयास कर रही थी और उसका नन्हा-सा बालक रो रहा था।

उस सड़कसे हजारों लोग आ-जा रहे थे, परंतु किसीने भी उस महिलाकी ओर ध्यान नहीं दिया। किसीके मनमें उसकी सहायताका विचार तक नहीं आया। सभी अपनी धुनमें बढ़ते चले जा रहे थे।

तभी उस सड़कसे दो घोड़ोंवाली एक बग्घी गुजरी। उसपर बैठे सज्जनने उस स्त्रीके कराहनेकी आवाज सुनकर बग्घी रुकवायी और उसके पास गये। उस स्त्रीकी दयनीय स्थिति देखकर वे दुःखसे द्रवित हो गये। उन्हें वहाँ रुका देखकर कुछ लोग और भी खड़े हो गये। लेकिन किसीने कुछ नहीं कहा। सज्जनने शीघ्र ही स्वयं उस महिलाको तथा उसके शिशुको बग्घीमें बिठाया।

उन सज्जनको किसी आवश्यक कार्यसे कहीं अन्यत्र जाना था, फिर भी उन्होंने बग्घीवालेको आदेश दिया कि पहले वह समीपके किसी चिकित्सालयमें चले ताकि वहाँ-पर इस स्त्रीकी चिकित्सा करायी जा सके। उन्होंने अपने आवश्यक कार्यकी अपेक्षा एक दुःखी और असहाय स्त्रीकी सहायता करना अपना प्रथम और सर्वोपरि कर्तव्य समझा।

उनकी बग्घी जैसे ही चिकित्सालय पहुँची, वैसे ही उन्होंने उसे बग्घीसे स्वयं उतारा और चिकित्सकोंके समीप ले गये तथा उनसे अनुरोध किया कि उसका उपचार वे ठीक ढंगसे करें। ऐसा कहकर तथा उस स्त्रीको कुछ आर्थिक सहायता देकर वे चले गये। पुनः सन्ध्याको देखने भी आये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकित्सकोंकी समुचित चिकित्सासे वह दो ही दिनमें स्वस्थ होकर अपने घर चली गयी।

उन सज्जनका नाम था महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय, जो थे काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयके मूल संस्थापक एवं प्रथम संचालक। —गोपालदास नागर

(३)

'मंद करत जो करइ भलाई'

ईश्वरदास, रतनलाल और रामनारायण—तीनों भाई थे। पिताकी जीवित अवस्थामें ईश्वरदास और रतनलाल व्यापारका काम देखते थे तथा रामनारायण पढ़ता था। ईश्वरदास ईमानदार, दृढ़ परिश्रमी, उदार तथा सरल हृदयका व्यक्ति था। रतनलाल चतुर, चालाक, स्वार्थी तथा कार्यनिपुण था और उसके मनमें अपनी बुद्धिमत्ताका मद भी था। रामनारायण था तो बड़ा बुद्धिमान्, सूक्ष्मदर्शी, पर उसका मन अभी पढ़ाईमें लगा था। पिताकी जीवित अवस्थामें ही चतुर रतनलालने अपना प्रभुत्व जमा लिया। घरभरमें उसका आतंक था। ईश्वरदास उसकी आज्ञानुसार कार्य करता था। ईश्वरदासके मनमें भाई रतनलालके प्रति अपार विश्वास था, पर रतनलालके मनमें कुसङ्गवश नीच स्वार्थ आ गया। पिताके मरते ही रतनलालने दोनों भाइयोंको कुछ भी न देकर अलग कर देना चाहा, सारा कारोबार तथा पूँजी उसीके हाथमें थी। रतनलालकी स्त्री लक्ष्मीदेवी बड़ी साध्वी थी। उसे पतिकी इस नीयतको देखकर बड़ा दुःख हुआ। उसने उसे समझानेकी भी बड़ी चेष्टा की, पर जहाँ मनुष्य नीच स्वार्थमें फँस जाता है, वहाँ उसकी बुद्धि उलटा ही सोचती है। रतनलालने दोनों भाइयोंको कुछ भी न देकर अलग कर दिया। सारी पूँजी पहलेसे ही उसके हाथमें थी। बड़ा भाई ईश्वरदास अपनी पत्नी सरस्वती, एक लड़की तथा भाई रामनारायणको साथ लेकर खाली हाथ घरसे निकल गया। रतनलालने संतोषकी साँस ली, उसे अपनी नीच करनीपर सफलताका बड़ा गर्व था।

भगवान्‌की व्यवस्थाका किसीको पता नहीं लगता। ईश्वरदास और रामनारायण सेठ हरजीमलके यहाँ नौकरी करने लगे। उधर रतनलालका कारोबार बड़े वेगसे चलने लगा। उसने मकान खरीद लिया। बड़ी शानसे रहने लगा। उसकी साध्वी पत्नी लक्ष्मीको इससे बड़ा मनःकष्ट था, पर वह बेचारी निरुपाय थी। ईश्वरदास और रामनारायणके काम, परिश्रम, सचाई, ईमानदारी तथा स्वामिभक्तिसे हरजीमल विमुग्ध हो गये। कई अवसर आये। हरजीमलजीने परीक्षाके लिये भी जान-बूझकर ऐसे अवसर उपस्थित किये, पर ईश्वरदास और रामनारायणको सदा खरा सोना पाया। एक बार दोनों भाइयोंने सेठ हरजीमलको बड़ी भारी विपत्तिसे बचाया; हरजीमलका हृदय कृतज्ञतासे भर गया। उनके कोई संतान नहीं थी। बहुत पूँजी पास थी। उन्होंने दोनोंको दत्तक पुत्र मानकर सारी पूँजी तथा कारोबार दोनोंके नाम कर दिया। दोनों करोड़पति हो गये। उधर रतनलाल अपने व्यापारमें झूठे लेन-देनके कारण पकड़ा गया और जेलमें बंद हो गया। उसपर फौजदारीका अभियोग चला। इसमें रतनलालका मकान ही नहीं, सारी पूँजी समाप्त हो गयी। वह ऋणी हो गया। यह सब तीन-चार महीनेके अंदर ही हो गया। उस समय ईश्वरदास और रामनारायण दोनों देश गये थे। रामनारायणका विवाह था। उन्हें देशमें भाई रतनलालकी विपत्तिका पता लगा। विवाह होते ही दोनों भाई तुरंत देशसे लौट आये। जेलमें रतनलालसे मिले। उनके प्रयत्नसे रतनलाल छूट गया, पर उसे लोगोंके रुपये देने थे। दोनों भाइयोंने मिलकर उसका सारा ऋण चुकाया और उसे अपने साथ रखकर तीसरे भाईके नाते तीसरे हिस्सेका हिस्सेदार बना लिया। रतनलालका हृदय पलटा और उसे मानसिक पश्चात्ताप हुआ। वह पागल हो गया। उसके तीन संतानें थीं। तीनोंका विवाह ताऊ तथा चाचाने भलीभाँति किया। दोनों लड़कियाँ ससुराल चली गयीं। लड़का श्रीधर अपने ताऊ-चाचाके साथ घरका मालिक बनकर काम करने लगा।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई । मंद करत जो करइ भलाई ॥

कुछ दिनों बाद पागलखानेमें ही रतनलालकी हृदयगति अवरुद्ध हो जानेसे मृत्यु हो गयी। भाइयोंको बड़ा दुःख हुआ, पर वे निरुपाय थे। उन्होंने रतनलालकी साध्वी स्त्रीको बड़े ही आदरसे घरकी मालकिन बनाकर रखा। उसकी जेठानी सरस्वती और नवविवाहिता देवरानी दुर्गा उसके आदेशानुसार घरका सारा काम करतीं। घर धन-धान्यसे, प्रेम-स्नेहसे सम्पन्न शान्तिमय स्वर्ग बन गया। —बृजमोहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

आत्मदर्शनका मार्ग

शहर-कोतवालको पता चला कि नगरमें एक महात्मा पधारे हैं और लोग उनके दर्शन करने जा रहे हैं। उन्हें लगा, मैं प्रतिदिन अपराधियोंको ढूँढ़ता फिरता हूँ, चलो, एक दिन महात्माका सत्संग भी कर लूँ। लोग तो दूर-दूरतक पैदल चलकर, कष्ट उठाकर जाते हैं, जबकि मेरे पास तो घोड़ा है। साधन होते हुए भी क्यों न जाऊँ, एक बार स्वयं जाकर देखे बिना विश्वास नहीं होगा।

पिछली रातकी चौकी (ड्यूटी) पूरी कर उन्होंने अपना घोड़ा नगरसे बाहरकी ओर बढ़ाया। पाँच किलोमीटर गये होंगे कि हलका-हलका उजाला होना आरम्भ हो गया। रास्तेमें कोई मिलता तो डपटकर पूछते—'कौन हो तुम ? कहाँ जा रहे हो ?' कोतवाल होनेके नाते उनका स्वभाव शङ्काशील बन गया था। जरा-जरामें चाबुक फटकारकर रोब दिखाते।

रास्तेमें एक आदमी पगडंडीके अगल-बगल झाड़-झंखाड़ तथा कंकड़-पत्थर साफ कर रहा था। कोतवालने उसे भी धमकाया—'क्यों जी, तुम कौन हो ? इस समय यहाँ क्या कर रहे हो ? चलो हटो यहाँसे।'

परंतु वह आदमी उसकी बात सुने बिना अपना काम करता रहा। कुछ जवाब नहीं दिया और न उसकी ओर देखा ही।

कोतवालने फिर अपना प्रश्न दुहराया—तब वह हँस पड़ा। कोतवालको गुस्सा आ गया। जोरसे डाँटते हुए पूछा—'महात्माजीका स्थान किधर है ? जानते हो ? चलो, आगे बढ़कर बताओ।'

लेकिन इस बार भी वह आदमी कुछ नहीं बोला। अपना काम करता रहा।

कोतवालने इस बार अपनी बेंत फटकारी, उसे लगा कि इस आदमीने शायद उन्हें पहचाना नहीं कि वह कोतवाल है। अतः फिर बोला—'मैं कोतवाल हूँ। तुम इतना भी नहीं समझ पा रहे हो। मेरी बात क्या तुम्हें सुनायी नहीं देती ?' दो-चार बेंत और लगा दी।

इतनेपर भी वह आदमी रास्तेके काँटे-कंकड़ साफ करता रहा। कोतवालको लगा कि 'वह हँस रहा है, उनका मजाक उड़ा रहा है' इसलिये उसे धक्का देकर गिरा दिया। वह पत्थरपर जा गिरा। कोतवालका घोड़ा आगे बढ़ गया।

आगे जानेपर दूसरे लोग मिले। उनसे भी कोतवालने रोबसे पूछा—'महात्माजीका स्थान किस ओर है ?'

उनमेंसे एकने कहा—'आप आगे निकल आये हैं। पीछे जायँ।' शायद आपको वे मिल जायँगे। सड़कके कंकड़-पत्थर साफ करते होंगे।'

कोतवालको आश्चर्य हुआ। पूछा—'क्या वही महात्मा हैं ?' और कोतवालने तुरंत घोड़ा वापस घुमाया। दूरसे देखा तो कपड़ा फाड़कर वह सिरपर पट्टी बाँध रहे थे। वास्तवमें चोट लगनेका उन्हें दुःख नहीं था, काम बाकी रह गया था, इस बातका दुःख था।

कोतवाल उनके चरणोंपर गिर पड़ा। क्षमा माँगते हुए कहा—'आप इतने बड़े महात्मा होकर सड़कके कंकड़-पत्थर क्यों साफ कर रहे हैं ?'

उन्होंने कहा—'आत्मदर्शनका मार्ग साफ रखना चाहिये। इसमें क्रोध, अभिमान, लोभ आदि काँटे-कंकड़ हैं। इन्हें हटाते रहना चाहिये। सड़कके काँटे-कंकड़ हटानेसे हमारे अंदरके काँटे-कंकड़ भी साफ हो जायँगे। ऐसा काम प्रत्येक व्यक्तिको करना चाहिये, नहीं तो उसका मार्ग ही लुप्त हो जायगा।'

कोतवाल आश्चर्यचकित होकर सुनता रहा, बार-बार क्षमा माँगी। अपने कियेपर उसे पश्चात्ताप हो रहा था। बोला—'आपने कुछ कहा नहीं। मुझसे तो बहुत बड़ा पाप हो गया।'

जीवनमें पहली बार कोतवालको अपने भीतर कमीका अनुभव हुआ।

महात्माने कहा—आपने कुछ गलत नहीं किया है। हम कुम्हारके यहाँ माटीका घड़ा भी लेने जाते हैं, तब उसे ठोंक-बजाकर देखते हैं। और आप तो गुरुको ढूँढ़ने निकले थे, जीवनमें जिसका भरोसा करना होता है, उसे आपने ठोंक-पीटकर देख लिया, इसमें आश्चर्य क्या ?' यह कहकर महात्मा हँस पड़े। वह महात्मा थे दादु।—(अखण्ड आनन्द)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण'के आगामी ६४वें वर्ष वि० सं० २०४७ (सन् १९९० ई०) का विशेषाङ्क

'देवताङ्क'

आधिभौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकारकी उन्नतिके लिये जीवनमें देवोपासनाकी विशेष आवश्यकता है। प्रारम्भसे ही ऋषि-महर्षि, संत-महात्मा और अन्य महापुरुषोंने देवताओंका यजन-पूजन किया, जिसके फलस्वरूप उन्हें इस लोक और परलोकमें परम शान्ति प्राप्त हुई। श्रीमद्भगवद्गीतामें सात्त्विक पुरुषोंका वर्णन करते हुए कहा गया है कि सात्त्विक पुरुष देवताओंकी पूजा करते हैं—'यजन्ते सात्त्विका देवान्।' शारीरिक तपोंमें सर्वप्रथम स्थान देवपूजाको ही प्राप्त है। यह भी कहा गया है कि मनुष्य यज्ञके द्वारा देवताओंको प्रसन्न करें और देवता मनुष्यको उन्नत करें। इस प्रकार एक दूसरेके सहकारी बनकर परम कल्याणको प्राप्त करें। इसके साथ ही यह भी कहा गया कि संसारकी सम्पूर्ण सुख-सम्पत्ति देवताओंसे ही प्राप्त होती है। इसलिये उनकी वस्तु उनको दिये बिना जो भोगते हैं, वे एक प्रकारके चोर हैं—'स्तेन एव सः।' परमार्थ-दृष्टिसे परमात्माके अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं। मूलतः इस सृष्टिके कर्ता, धर्ता और हर्ता एकमात्र ईश्वर ही हैं और ये ही परम देव हैं। शास्त्रोंमें तैंतीस कोटि देवताओंका वर्णन मिलता है अर्थात् देवता अनेक हैं, असंख्य हैं, पर इस अनेकतामें एकता संरक्षित है। यही भारतीय संस्कृतिकी विशेषता है।

प्रसन्नताकी बात है कि आगामी वर्ष संवत् २०४७ (सन् १९९० ई०) में 'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें 'देवताङ्क' प्रकाशित करनेका निर्णय लिया गया है। इस अङ्कमें मुख्यरूपसे देवस्वरूपके उद्भव एवं विकास, देव-चरित्रसे सम्बद्ध उपयोगी रोचक कथाएँ, इन्द्रादि वैदिक देवताओंके साथ त्रिदेवों एवं त्रिशक्तियोंका रहस्य, पञ्चदेवोपासना, अवतार-तत्त्व तथा विभिन्न देवोंके विभिन्न अवतार, उनके आयुधों, वाहनों तथा परिकरों एवं परिच्छदोंका विवरण, विभिन्न ग्राम्यशक्तियों एवं लोकशक्तियोंका विस्तृत परिचय तथा देवोपासनाकी विभिन्न पद्धतियोंकी भी आकर्षक एवं रोचक सामग्री प्रस्तुत करनेका विचार किया गया है।

हम भारतके गण्यमान्य आचार्य, आदरणीय संत-महात्माओं तथा मान्य अधिकारी मनीषी लेखकों एवं देवोपासक-साधकोंसे सादर सहयोगकी प्रार्थना करते हैं। हमारा विचार है कि देवतत्त्व और देवोपासनाके प्रत्येक पक्षपर पठनीय, विचारप्रेरक एवं अनुष्ठेय सामग्रीका संकलन इस विशेषाङ्कमें किया जाय।

अतएव विद्वान् लेखकों एवं साधकोंकी सेवामें विशेषाङ्ककी एक संक्षिप्त वाञ्छनीय सूची दिशा-निर्देशके रूपमें साथ ही प्रेषित की जा रही है। हमारी आपसे विशेष प्रार्थना है कि प्रस्तुत सूचीमें संलग्न विषयोंपर अपने चिर-स्वाध्याय, साधना एवं अनुभवके अनुसार अपनी सामग्री भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमा, संवत् २०४६ (१५ सितम्बर, सन् १९८९ ई०) तक अवश्य भेज देनेकी कृपा करें।

(सरल एवं रोचक भाषामें, विषयसे सम्बद्ध संक्षिप्त विशिष्ट सामग्रीको प्रकाशनमें प्राथमिकता दी जा सकेगी।)

विनीत—

राधेश्याम खेमका

(सम्पादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'देवताङ्क' की प्रस्तावित विषय-सूची

१-देवता-तत्त्व-मीमांसा।
२-'देवता' शब्दकी व्युत्पत्ति, पर्याय एवं अर्थ-विस्तार।
३-देवत्वका लक्षण एवं उसके निश्चित स्वरूपकी पहचान और प्रमाण।
४-वेदोंमें देव-स्वरूपका उद्भव।
५-देवताओंके मुख्य भेद।
६-देवताका स्थूल एवं सूक्ष्म रूप।
७-साकार, निराकार, सगुण, निर्गुण देवतत्त्व।
८-तैंतीस और तैंतीस कोटि देवताओंका रहस्य।
९-प्रतिमापूजनका उद्भव और विकास।
१०-त्रिदेवोंका रहस्य और उनका अभेदत्व।
११-वैदिक अवतारवादका सिद्धान्त एवं विविध देवताओंके विविध अवतार।
१२-भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण आदिके अवतार एवं उनकी उपासना।
१३-विभिन्न देवताओंके वाहन, आयुध, परिकर, पार्षदादि, आभूषण तथा शक्तियोंका विवेचन एवं उनकी कथाएँ।
१४-देवता-सम्बन्धी दार्शनिक अवधारणा।
१५-देवतत्त्वकी पौराणिक अवधारणा।
१६-निरुक्तके 'दैवतकाण्ड'में वर्णित देव-स्वरूप।
१७-ब्रह्मसूत्रका देवताधिकरण।
१८-वैदिक संहिताओंमें वर्णित वरुण, कुबेर, इन्द्र, अग्नि, रुद्र, पूषा, भग आदि देवताओंका स्वरूप।
१९-पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसाके देवताधिकरणोंमें निरूपित देवस्वरूप, देवशक्तियों एवं देवताओंके अधिकार-क्षेत्र।
२०-वेद और उपनिषदोंमें आजानदेव एवं कर्मदेवोंका विस्तृत परिचय एवं स्वरूपनिरूपण।
२१-अन्तरिक्षस्थानीय, द्युस्थानीय एवं पृथ्वीस्थानीय देवताओंकी संख्या, उनके स्वरूप और उनकी विशेषताएँ।
२२-देवता, ब्रह्म और ब्रह्मा।
२३-देवताओंसे ब्रह्माण्डका संचालन।
२४-देवाधीनं जगत्सर्वम्।
२५-पञ्चदेवोंकी उपासना।
२६-देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ महादेव (एकादश रुद्र और उनका परिवार)।
२७-देवताओंमें सर्वोत्तम पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु।
२८-गाणपत्य सम्प्रदायके परम उपास्य भगवान् गणपति एवं उनके विविध रूप।
२९-सौर सम्प्रदायके परम उपास्य भगवान् आदित्य।
३०-शाक्त सम्प्रदाय एवं त्रिशक्ति-रहस्य।
३१-वेदमाता गायत्री और उनका स्वरूप।
३२-गौका आधिदैविक स्वरूप (गायमें तैंतीस कोटि देवताओंका निवास)।
३३-देवताओंके राजा इन्द्र या महेन्द्र।
३४-देवगुरु बृहस्पति और उनका उदात्त चरित्र।
३५-देवताओंके चिकित्सक धन्वन्तरि एवं अश्विनीकुमार।
३६-नवग्रहोंका देवत्व और उनकी फलदातृत्व-शक्ति।
३७-नवग्रहोंके अधिदेवता एवं प्रत्यधिदेवता।
३८-प्रजापति कश्यप तथा देवमाता अदिति।
३९-अष्ट वसुगण, त्रयोदश विश्वेदेवगण, साध्यगण एवं ४९ मरुद्गणोंकी स्थिति एवं उनके स्वरूपका निरूपण।
४०-दस देवयोनियोंका उद्भव एवं स्वरूप-परिचय तथा उनके विविध आख्यान (देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, नाग, विद्याधर, अप्सरा आदि)।
४१-विभिन्न ग्राम्यदेवता और लोकशक्तियाँ।
४२-विभिन्न प्रान्तोंके स्थानीय देवता।
४३-वास्तुदेवता एवं वास्तुचक्र।
४४-क्षेत्रपाल, दिक्पाल तथा पञ्चलोकपाल।
४५-योगिनी और मातृकाएँ।
४६-सर्वतोभद्रादिमण्डलस्थ देवसमूह।
४७-वरुणकलशका दैवत्व।
४८-भैरवके विविध रूप और उपासना।
४९-गङ्गादि पुण्यतोया नदियोंका देवत्व।
५०-पीपल आदि वृक्षों एवं अन्य वनस्पतियोंमें देवत्व।
५१-धनाध्यक्ष कुबेर और उनकी महत्ता।
५२-इन्द्राणी आदि मुख्य देवियाँ।
५३-प्रसिद्ध विद्याधरियों, गन्धर्वियों एवं अप्सराओंकी कथाएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

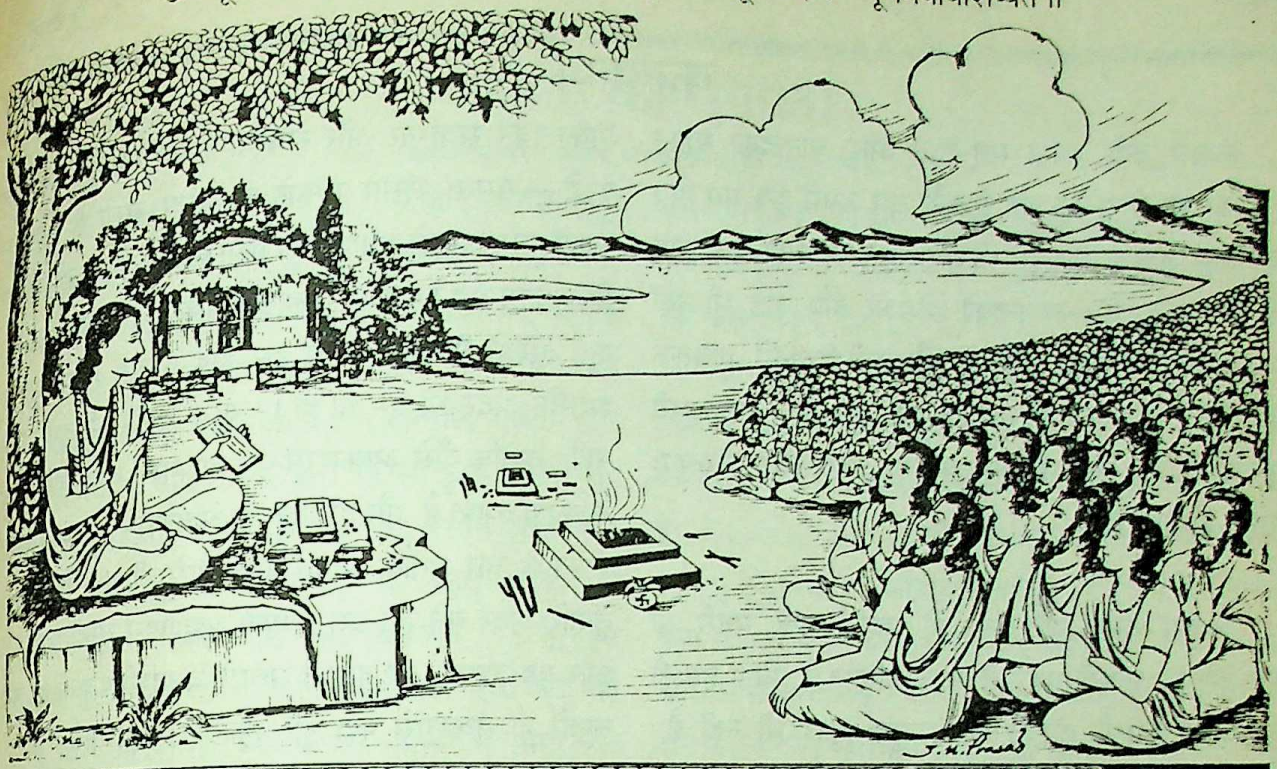

कल्याण

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत्।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया॥

वर्ष ६३ } गोरखपुर, सौर आषाढ़, वि०सं० २०४६, श्रीकृष्ण-सं० ५२१५, जुलाई १९८९ ई० { संख्या ४ पूर्ण संख्या ७४९

गुरुकृपासे बालक श्रीरामका स्वस्थ होकर माताके पास पहुँचना

माथे हाथ ऋषि जब दियो राम किलकन लागे।
महिमा समुझि, लीला बिलोकि गुरु सजल नयन,
तनु पुलक, रोम-रोम जागे॥
लिये गोद, धाए गोदतें, मोद मुनि मन अनुरागे।
निरखि मातु हरषी हिये आली-ओट कहति
मृदु बचन प्रेमके-से पागे॥
तुम सुरतरु रघुबंसके, देत अभिमत माँगे।
मेरे बिसेषि गति रावरी, तुलसी प्रसाद
जाके सकल अमंगल भागे॥

—गीतावली १३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

निश्चय करो, मानो सत्-चित् और आनन्दका महान् समुद्र उमड़ा चला आ रहा है और तुम उसमें डूब गये हो। इतने गहरे डूबे हो कि तुम भी सत्-चित्-आनन्दरूप ही बन गये हो। सत्-चित्-आनन्दको छोड़कर और कुछ भी नहीं रहा। अब कल्पनाको छोड़ दो और इसी स्थितिमें, जबतक कोई दूसरी स्फुरणा न हो तबतक मस्त बने रहो। जब दूसरी स्फुरणा हो, तब उसे महासमुद्रकी एक लहर समझकर पुनः उसीमें मिला दो।

× × ×

निश्चय करो, जो कुछ भी पदार्थ तुम्हें मनसे या इन्द्रियोंसे दिखलायी पड़ते हैं, सब कल्पित हैं, बिना हुए ही कल्पनाकी दृष्टिसे दीखते हैं। वस्तुतः कुछ भी नहीं है। इसके बाद निश्चय करो कि स्थूल शरीर नहीं है, फिर निश्चय करो कि इन्द्रियाँ नहीं हैं, तदनन्तर मन-बुद्धिका भी निश्चयके द्वारा अभाव कर दो। जब इतना हो जाय, तब इस निश्चय करनेवाली वृत्तिको भी छोड़ दो। जिस चित्तवृत्तिकी सहायतासे सबका अभाव किया, उस चित्तवृत्तिका भी अभाव कर दो। परंतु याद रखो, जबतक किसी भी वृत्तिका त्याग किया जाता है, तबतक कोई-न-कोई वृत्ति रहती ही है, यह शेष रही हुई वृत्ति भी जब अपने-आप शान्त हो जाय, तब वह वास्तविक सबके त्यागकी स्थिति होती है। यही परमात्माका स्वरूप है। सबके सर्वथा मिट जानेपर जो बच रहता है, जिसे मिटानेवाला कोई नहीं रहता, वही सत्-स्वरूप है।

× × ×

जैसे एक ही महान् विराट् आकाशमें असंख्य नगर, गाँव, घर, कोठरियाँ बने हुए हैं, और उन सबके अंदर भी वही आकाश अविच्छिन्नरूपसे व्याप्त है, इसी प्रकार एक ही परमात्मसत्तामें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड बसे हुए हैं और सब ब्रह्माण्डोंमें वही एक परमात्मसत्ता व्याप्त है। ऐसा समझकर यह निश्चय करो कि जैसे कोठरीके अंदरवाला आकाश महान् विराट् आकाशसे भिन्न नहीं है, वैसे ही तुम भी परमात्मासे भिन्न नहीं हो। जैसे परमात्माकी दृष्टिसे सब कुछ परमात्मामें ही है, इसी प्रकार तुम भी व्यष्टिमेंसे अपने अहंकारको निकालकर सर्वाधार और सर्वव्यापी परमात्मामें स्थिर करके देखो—समस्त संसार तुम्हारे ही अंदर बसा है और तुम सबमें समानरूपसे व्याप्त हो। ऐसा निश्चय हो जानेपर देखोगे कि तुम्हारा यह शरीर भी तुम्हारी ही विराट् सत्ताके किसी एक क्षुद्र अंशमें स्थित है, और इस क्षुद्र अंशमें स्थित क्षुद्रतम शरीरके अंदर भी तुम ही हो। वस्तुतः शरीर भी तुमसे भिन्न नहीं; क्योंकि जैसे आकाशमें बने हुए घरमें दीवालोंके अंदर आकाश व्याप्त है और दीवाल भी आकाशमें आकाशसे पैदा होनेवाले चार भूतोंके सहित आकाशसे ही बनी है, वैसे ही तुम्हारे अंदर बने हुए इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें तुम्हीं व्याप्त हो और यह ब्रह्माण्ड भी तुम्हारी सत्तासे क्रियाशील बनी हुई तथा तुम्हारे ही संकल्पसे पैदा हुई प्रकृतिके साथ तुम्हारी सत्तासे बना है—इस प्रकार निश्चय करो। सब कुछ आत्मा समझकर आत्ममय बन जाओ।

× × ×

जैसे स्वप्नमें स्वप्नके दृश्य, उनको देखनेवाला और देखना—तीनों तुमसे भिन्न और कुछ भी नहीं है, तुम्हीं देखनेवाले हो, तुम्हीं दीखनेवाली चीजें हो और तुम्हीं दर्शन हो। इसी प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड, ब्रह्माण्डके द्रष्टा और ब्रह्माण्डका दर्शन सब एक परमात्मा ही है, और उस परमात्मासे तुम सर्वथा अभिन्न हो। ऐसा निश्चय करके अपनेको परमात्ममय बना लो।

× × ×

निश्चय करो—तुम आनन्दमय हो, तुम्हारे आनन्दमें कभी कमी हो ही नहीं सकती। किसीकी ताकत नहीं जो तुम्हारे आनन्दमें बाधा दे सके और तुम्हारे आनन्दको मिटा सके। निश्चय करो, तुम्हारी अखण्ड सत्ता है, किसीकी शक्ति नहीं, जो तुम्हारी सत्ताको हिला सके। मौत तुम्हें मार नहीं सकती; क्योंकि मौत भी तुम्हारी ही सत्तासे सत्तावान् है। तुम्हारी सत्ता अखण्ड है, अनन्त है, अमर है, सनातन है। देहके नाशसे तुम्हारा कभी नाश नहीं होता। निश्चय करो, तुम चेतन हो, नित्य चेतन हो। तुम्हारी चेतनतामें कोई विघ्न उपस्थित नहीं कर सकता। तुम्हारी ही चेतनासे सबमें चेतना है। तुम्हारी यह चेतना अखण्ड और असीम है। 'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मयोगकी सुगमता

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

बहुतसे भाई कहते हैं कि 'गीतामें श्रीभगवान्‌ने कर्मयोगकी प्रशंसा की है और ज्ञानयोगकी अपेक्षा कर्मयोगको सुगम बतलाया है। इतना ही नहीं, बल्कि यहाँतक कहा है कि कर्मयोगके बिना ज्ञानयोगका सफल होना कठिन है। किंतु यह सुगमता समझमें नहीं आती। न वर्तमान कालमें ऐसे बहुतसे कर्मयोगी और उनके द्वारा किया हुआ कर्मयोगका आचरण ही देखनेमें आता है। क्योंकि कर्मोंमें फल और आसक्तिके त्यागका नाम कर्मयोग है, किंतु फल और आसक्तिका त्याग करके कर्म किस प्रकारसे होते हैं, इस बातको समझानेवाला या करके दिखलानेवाला ऐसा कोई नहीं दीखता, जिसे आदर्श मानकर हमलोग कर्मयोगके पथपर चल सकें। अतएव हम यह जानना चाहते हैं कि वास्तवमें क्या बात है। गीतामें जो कर्मयोग बतलाया है और जिसे सुगम कहा है, उसका सम्पादन तो बहुत ही कठिन प्रतीत होता है। यह कर्मयोग कथनमात्र है या सम्पादनयोग्य है ? यदि सम्पादनके योग्य वास्तविक साधन हो तो उसके जाननेवाले और करनेवाले होने चाहिये, और यदि कोई भी जाननेवाला और करनेवाला नहीं तो फिर यह सुगम साधन कैसे है ?'

ज्ञानयोगका प्रकरण अति गहन, दुर्विज्ञेय और अति सूक्ष्म है, इससे सबके लिये उसका करना तो दूर रहा, समझना भी कठिन है। इसलिये उसकी अपेक्षा कर्मयोगका साधन सुगम बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त ज्ञानयोगका सम्पादन स्वतन्त्ररूपसे तो बहुत ही कठिन है। क्योंकि जबतक अन्तःकरण मलिन है, तबतक देहाभिमान है और देहाभिमानीसे ज्ञानयोगका साधन बनना अत्यन्त दुष्कर है। इसलिये आसक्ति और स्वार्थत्यागरूप कर्मयोगका सम्पादन करनेसे जब अन्तःकरण पवित्र होता है और ज्ञानयोगका साधन बनता है तब उसमें ज्ञानयोगके सम्पादनकी योग्यता आती है, परंतु कर्मयोगमें ऐसी बात नहीं है। कर्मयोगके साधनका आरम्भ तो देहाभिमानके रहते हुए ही अन्तःकरणकी मलिन अवस्थामें भी हो सकता है और उसके द्वारा पवित्र हुई बुद्धिमें भगवत्कृपासे स्वाभाविक ही स्थिरता होकर और भगवद्भावका उदय होकर भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। यही इसकी ज्ञानयोगकी अपेक्षा सुगमता और विशेषता है। इसलिये भगवान्‌ने गीतामें अ० ५। २के श्लोकमें कर्मयोगको श्रेष्ठ बतलाया है।

श्रीभगवान्‌ने आसक्ति और फल दोनोंके त्यागको कर्मयोग बतलाया है (गीता २। ४८, १८। ९), कहीं सम्पूर्ण कर्मों और पदार्थोंमें केवल आसक्तिके त्यागको कर्मयोग कहा है (६। ४), और कहीं केवल सर्वकर्मफलके त्याग (१८। ११) या कर्मफल न चाहनेको (६। १) ही कर्मयोग कहा है। वास्तवमें इनमें सिद्धान्ततः कोई भेद नहीं है। फल और आसक्ति दोनोंके त्यागका नाम ही कर्मयोग है। इसलिये दोनोंके त्यागको कर्मयोग कहना तो ठीक है ही, जहाँ कर्मों और पदार्थोंमें केवल आसक्तिका त्याग कहा है, वहाँ भी ऐसी ही बात है। काञ्चन, कामिनी, देह, मान-बड़ाई आदि पदार्थोंमें आसक्तिका त्याग होनेसे उन पदार्थोंके प्राप्त करनेकी इच्छाका यानी फलका त्याग स्वतः ही हो जाता है; क्योंकि फलकी इच्छाके उत्पन्न होनेमें आसक्ति ही प्रधान कारण है। कारणके त्यागमें कार्यका त्याग स्वतः ही हो जाता है। इसलिये पदार्थोंमें आसक्तिके त्यागसे फलका त्याग स्वतः हो जानेके कारण पदार्थोंमें आसक्ति न होनेको कर्मयोग कहना युक्तिसंगत ही है। अब रही केवल सर्वकर्मफलके त्यागकी या फल न चाहनेकी बात, सो कर्मफलके त्यागसे आसक्तिका त्याग हो जाता है और आसक्तिके त्यागसे कर्मफलका त्याग हो जाता है। अर्थात् एकके त्यागसे दूसरेका त्याग स्वाभाविक ही हो जाता है। इस लोक और परलोकके सम्पूर्ण पदार्थोंकी प्राप्तिकी इच्छाका त्याग ही फलकी इच्छाका त्याग है, इसीको स्वार्थत्याग कह सकते हैं। इस स्वार्थत्यागरूप धर्मके सेवनसे समस्त अनर्थोंकी मूल-हेतु आसक्तिका शनैः-शनैः त्याग हो जाता है, इसलिये फलके त्यागसे स्वतः ही आसक्तिका त्याग हो जानेके कारण सर्वकर्मफलके त्याग या कर्मफल न चाहनेको कर्मयोग बतलाना युक्तिसंगत है।

यदि कोई कहे कि जब 'सर्वकर्मफलके त्याग या फलके न चाहनेको ही कर्मयोग कहते हैं, तब फिर श्रीभगवान्‌ने जगह-जगह कर्मफलके त्यागके साथ ही जो आसक्तिके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्यागकी बात कही है, उसकी क्या आवश्यकता है ?' इसका उत्तर यह है कि कर्मफलके त्यागसे आसक्तिका त्याग होकर ही कर्मयोगकी सिद्धि होती है और आसक्तिका त्याग हुए बिना सर्वथा स्वार्थत्यागपूर्वक कर्म हो नहीं सकते। अतएव स्वार्थके त्यागसे आसक्तिका त्याग उसके अन्तर्गत ही समझ लेना चाहिये। असलमें दोनोंका त्याग ही कर्मयोग है। इस बातको स्पष्ट करनेके लिये 'आसक्तिसहित कर्मफलका त्याग ही कर्मयोग है' भगवान्‌का यह कथन युक्तियुक्त ही है।

प्रायः संसारके सभी मनुष्य मोहरूपी मदिराको पीकर उन्मत्त-से हो रहे हैं। उनमें कोई-सा ही समझदार पुरुष आत्माके कल्याणके लिये कोशिश करता है, और कोशिश करनेवालोंमें भी कोई-सा ही पुरुष उस परमात्माको पाता है। ऐसी परमात्माकी प्राप्तिरूप अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषोंसे हमारी भेंट होनी भी दुर्लभ ही है। भेंट होनेपर भी श्रद्धाकी कमीसे हम उन्हें पहचान नहीं सकते, इसलिये वर्तमानकालमें ऐसे परमात्माको प्राप्त हुए योगी और ऐसे योगियोंद्वारा किये हुए आचरण यदि देखनेमें नहीं आते तो इसमें क्या आश्चर्य है ?

भगवान्‌ने स्वयं भी (गीता ४। २ में) कहा है कि यह कर्मयोग बहुत कालसे नाशको प्राप्त हो गया है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि उस कालमें भी इस योगको समझनेवाले बहुत लोग नहीं थे और इस समय भी बहुत नहीं हैं। क्योंकि सारे भूतप्राणी राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे संसारमें मोहित हो रहे हैं। इसलिये परमात्माके बतलाये हुए इस कल्याणमय कर्मयोगके रहस्यको नहीं जानते। जिन पुरुषोंका स्वार्थत्यागरूप कर्मद्वारा पाप नष्ट हो गया है, वही पुरुष इस कर्मयोगके रहस्यको जानते हैं।

वस्तुतः आजकल परमात्माको प्राप्त हुए महापुरुषोंका अभाव है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, परंतु हमें श्रद्धाकी कमीके कारण उनका दर्शन और परिचय नहीं प्राप्त होता। ऐसी अवस्थामें जब कर्मयोगका आचरण करके बतलानेवाला हमें कोई नहीं दीखता तो कल्याणकी इच्छावाले पुरुषको भगवान्‌के बतलाये हुए उपदेशोंको ही आदर्श मानकर तदनुसार आचरण करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

गीतामें बतलाया हुआ कर्मयोग कथनमात्र नहीं है, सम्पादन करनेयोग्य है। किंतु उसके सम्पादनका तत्त्व न जानने तथा शरीर और संसारके पदार्थोंमें आसक्ति होने एवं श्रद्धाकी कमी होनेके कारण ही कठिन प्रतीत होता है, वास्तवमें कठिन नहीं है। भगवान्‌के कहे हुए वचनोंमें विश्वास करके उसकी आज्ञानुसार स्वार्थका त्याग करके शास्त्रविहित कर्मोंका आचरण करते-करते आसक्तिका नाश और कर्मयोगके तत्त्वका ज्ञान होता चला जाता है। इस प्रकार करते हुए जब आसक्तिका नाश और कर्मयोगके तत्त्वका ज्ञान हो जाता है तब कर्मयोगका सम्पादन कठिन नहीं प्रतीत होता।

कर्मोंमें सब प्रकारके फलकी इच्छाके त्यागका नाम ही स्वार्थत्याग है। स्वार्थत्यागयुक्त कर्मोंसे राग-द्वेषादि दुर्गुणोंका एवं राग-द्वेषादिसे होनेवाले दुराचारोंका नाश हो जाता है। अतएव मनुष्यको उचित है कि भगवान्‌के शरण होकर स्वार्थत्यागयुक्त कर्मोंका सम्पादन करे। किंतु इस बातपर विशेष ध्यान देना चाहिये कि कर्मोंमें स्वार्थत्याग किसका नाम है। हम मन, वाणी, शरीरद्वारा किसी भी शास्त्रविहित कर्मका आरम्भ करते हैं और उसका फल स्त्री, धन, पुत्र और शरीरका आराम आदि नहीं चाहते, पर इतने मात्रसे ही स्वार्थका सर्वथा त्याग नहीं समझा जाता। इन सबका त्याग तो मनुष्य मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाके लिये भी कर सकता है। अतएव मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाका एवं स्वर्गादिके भोगकी इच्छाका भी त्याग करके उस त्यागके अभिमानका भी त्याग होनेसे सर्वथा स्वार्थत्याग समझा जाता है।

हमलोग छोटे-छोटे स्वार्थोंके लिये परमात्माकी प्राप्तिरूप सच्चे स्वार्थको जो खो बैठते हैं, इसमें हमारी बेसमझी या मूर्खता ही कारण है। हमें इससे जो बड़ा भारी नुकसान होता है, इस बातपर मूर्खताके कारण हमारा विश्वास नहीं है। यत्किंचित् विश्वास है भी तो वह शङ्कायुक्त है। क्योंकि परमानन्द और परमशान्तिकी प्राप्तिकी बातें हम ग्रन्थोंमें पढ़ते हैं, इनकी प्राप्ति तो कभी हुई नहीं। शास्त्र और महात्मा पुरुष कहते हैं, मान और बड़ाईकी इच्छाको विषके समान समझकर त्याग दो। ये मान और बड़ाई भगवत्प्राप्तिके मार्गमें बड़े भारी कण्टक हैं। साधकके लिये भगवान्‌के मार्गमें बाधा देनेवाले हैं एवं इनकी विशेष लालसा होनेसे तो ये दम्भ और पाखण्डको उत्पन्न करके साधकका पतन करनेवाले भी हो जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। बुद्धिद्वारा विचार करनेपर ऐसी प्रतीति भी होती है। परंतु मान और बड़ाईकी प्राप्ति होनेपर प्रत्यक्षमें सुख प्रतीत होता है और उसमें आसक्ति उत्पन्न होकर मान-बड़ाईकी इच्छा हो ही जाती है। इन सभी बातोंमें हेतु हमारी बेसमझी यानी मूर्खता ही है। जैसे कोई रोगी मनुष्य आसक्तिके कारण स्वादके वशीभूत हो कुपथ्य सेवन करके अपना दुःख बढ़ा लेता है, कोई-कोई तो मृत्युको प्राप्त हो जाता है। इस कुपथ्यके सेवनमें भी विचार करके देखा जाय तो जैसे रोगीकी मूर्खता ही हेतु है, इसी प्रकार स्त्री, पुत्र, धन, देह और मान-बड़ाई आदिमें जो हमारी आसक्ति है, उसमें भी मूर्खता ही हेतु है। जो रोगी वैद्य, औषध और पथ्यपर श्रद्धा करके कुपथ्यसे बचकर औषधका सेवन और पथ्यका पालन करता है, वह आरोग्य हो जाता है। ऐसे ही जो मनुष्य शास्त्र और महापुरुषोंद्वारा बतलाये हुए दुर्गुण और दुराचाररूप कुपथ्यको त्यागकर, ईश्वरभक्तिरूप औषधका सेवन और सदाचार-सद्गुणरूपी पथ्यका पालन करता है, वह जन्म-मरणरूप महान् भवरोगसे मुक्त हो जाता है। लौकिक औषधका सेवन करनेवाला तो अदृष्ट प्रतिकूल होनेसे शायद आरोग्य नहीं भी होता, परंतु इस औषध तथा पथ्यका सेवन करनेवाला तो निश्चय ही जन्म-मरणरूप दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। क्योंकि इसमें अदृष्ट बाधक नहीं हो सकता।

हमलोग जितने कर्म करते हैं, सबमें प्रथम यही भाव मनमें उत्पन्न होता है कि इससे हमको क्या लाभ होगा? स्वाभाविक ही हमारी बुद्धि स्वार्थकी ओर चली जाती है। अतएव क्रियाके आरम्भके समय जब स्वार्थबुद्धि उत्पन्न हो तभी उसका बाध कर देना चाहिये। हम जिसे लाभ समझते हैं, वह सांसारिक लाभ वास्तवमें लाभ ही नहीं है। लाभ वही है जो वास्तविक हो और जिसका कभी अभाव न हो। ऐसा वास्तविक लाभ सांसारिक लाभोंके त्यागसे प्राप्त होता है। अतएव क्रियाके आरम्भके समय व्यक्तिगत भौतिक स्वार्थकी जो इच्छा उत्पन्न हो उसे अनर्थका मूल समझकर तुरंत उसका त्याग कर देना चाहिये।

हमलोगोंमें भौतिक स्वार्थकी मात्रा इतनी बढ़ गयी है कि हम अपने असली स्वार्थको तो समझ ही नहीं पाते। इसके लिये हमें पद-पदपर परमेश्वरका स्मरण करके उनसे प्रार्थना करनी चाहिये, जिससे हम सदा सावधान रह सकें और अपना असली स्वार्थ वस्तुतः किस बातमें है—इसे समझकर अनर्थकारी भौतिक स्वार्थोंसे बच सकें।

जिन पुरुषोंने भगवान्‌के गुण, प्रभाव और तत्त्वको समझकर भगवान्‌की शरण ग्रहण कर ली है, उनके लिये तो यह कर्मयोगका तत्त्व और भी सुगम है, यद्यपि पुत्र, स्त्री, गृह, धन और देहादिमें प्रीति होनेके कारण इनकी प्राप्तिरूप स्वार्थका त्याग होना कठिन है तथा मान-बड़ाईका त्याग तो इनसे भी अत्यन्त ही कठिन है। शरीर और संसारमें आसक्ति होनेके कारण संसारके पदार्थोंकी आवश्यकता प्रतीत होती है और आवश्यकताके कारण कामना होती है एवं कामनाकी पूर्तिके लिये मनुष्य कर्मोंका सम्पादन करता है। उनसे कामनापूर्ति न होनेपर वह याचनातक करनेको प्रवृत्त हो जाता है। अतएव इन सब अनर्थोंका मूल आसक्ति ही है, जिसे हम 'राग' कह सकते हैं। यह राग अनुकूलतामें होता है और सुखके देनेवाले पदार्थ ही मनुष्यको अनुकूल प्रतीत होते हैं। इससे प्रतिकूल दुःखदायी पदार्थोंमें द्वेष होता है और उस द्वेषसे वैर, ईर्ष्या, क्रोध, भय और संताप आदि अनेकों दुर्भाव उत्पन्न होकर हिंसादि कर्मके द्वारा मनुष्यका पतन हो जाता है। अतएव सारे अनर्थोंके हेतु ये राग-द्वेष ही हैं। इन राग-द्वेषका कारण मोह (अज्ञान) है। जब इस बातका रहस्य मनुष्यकी समझमें आ जाता है, तब उसके राग-द्वेष क्षीण हो जाते हैं और क्षीण हुए राग-द्वेष श्रीपरमेश्वरके नाम, रूप, गुण और प्रभावके स्मरण और मननसे नाशको प्राप्त हो जाते हैं। फिर मन और इन्द्रियाँ स्वाभाविक ही उसके अधीन हो जाती हैं। ऐसी अवस्थामें उसके द्वारा आसक्ति और स्वार्थत्यागरूप कर्मयोगका सम्पादन बड़ी सुगमतासे होता है, जिससे वह परम आनन्द और परमशान्तिको प्राप्त हो जाता है।

सर्वत्र एक ही आत्मा है, एक मनुष्यका आत्मा समूचे आत्माका विभाग है। इस विभागको वह स्वयं ही अच्छा या बुरा बना सकता है। दूसरे आत्माओंके साथ भेदभावको घटानेसे और उन्हें अपने समान मानकर चाहनेसे मनुष्य स्वयं अच्छा बनता है, जब कि दूसरोंके जीवन-सुखोंको हानि पहुँचानेसे वह अपना नुकसान करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम-संकीर्तन और सत्संग

(श्रीरामानन्दनप्रसादजी चौरासिया 'श्रीसंतजी महाराज')

आजकल संकीर्तनकी तीन पद्धतियाँ लोकमें प्रचलित हैं—(१) कथा-कीर्तन, (२) गान-कीर्तन और (३) नाम-कीर्तन। तीनोंसे लोककल्याण होता है, किंतु नाम-कीर्तनसे सर्वाधिक कल्याण होता है। यदि नाम-कीर्तन प्रेमपूर्वक अन्तःकरणके योगदानसे किया जाय तो उसे 'नाम-संकीर्तन' कहा जाता है। कीर्तनमें अन्तःकरणका योगदान नहीं भी हो सकता है, परंतु संकीर्तनमें अन्तःकरणका योगदान रहना आवश्यक है।

नाम-संकीर्तनमें रुचि, विश्वास, प्रेम और श्रद्धा सत्संगसे ही उत्पन्न होती है। सत्संगसे ही मनुष्यमें जागृति आती है। विवेक उदय होनेपर भगवान्‌के मङ्गलमय नामके रहस्य तथा महत्त्वका बोध होता है। विवेकके प्रकाशमें यह अवश्य दीखता है कि भगवान् ही परम सत्य हैं, वे एक ही हैं। उनके विभिन्न नाम होनेसे वे विभिन्न नहीं कहे जा सकते। जैसे एक ही बालकके दो-तीन या तीनसे अधिक नाम भी हो सकते हैं, वैसे ही एक ही भगवान्‌को कोई श्रीराम कहता है, कोई श्रीकृष्ण। वही एक भगवान् निराकार भी हैं तथा साकार और सर्वाकार भी। भगवान् अपनी दयालुताके कारण जीवोंका अधिकाधिक कल्याण करनेके लिये भिन्न-भिन्न नाम और रूप धारण करते हैं। भगवान्‌के नामको सभी जीव पकड़ सकते हैं। नाम ही रूपको प्रकट करता है, इसलिये रूप परतन्त्र है और नाम स्वतन्त्र। भगवान्‌का रूप नामके अधीन होनेसे संतोंने भगवान्‌के नामको श्रेष्ठ कहा है। प्रत्येक युगोंमें नाम-साधनके श्रेष्ठ होनेपर भी कलियुगमें उसकी विशेष महिमा है। इसीलिये श्रीगौराङ्ग महाप्रभुने नाम-संकीर्तनका ही अधिक प्रचार किया। भगवान् तो सर्वसमर्थ हैं और सर्वदा सर्वप्रकार जीवोंका कल्याण चाहते हैं। अनादिकालसे जीव अज्ञानमें पड़ा हुआ है, जिससे उसका कल्याण नहीं हो पाता। अज्ञानके ही कारण वह असदाचरण करता है। इससे मुक्ति पानेके लिये विवेककी परम आवश्यकता है। अद्वैतमार्गमें विवेकको शुद्ध ज्ञान कहते हैं और इसमें सब कुछ भगवान् ही हैं, ऐसा विवेक जाग्रत् किया जाता है, किंतु द्वैधी भक्तिमें भगवान्‌को परम विभु और जीवको अणु बताया जाता है। जीवके लिये भगवान्‌की उपासना करना अत्यावश्यक है, ऐसा ज्ञान होना ही विवेक कहा जाता है। ऐसे विवेकके लिये ही पूज्य संत-शिरोमणि तुलसीदासजीने कहा है—

बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥

(रा०च०मा० १।३।७)

ऐसी विवेक-अवस्थामें भगवान्‌की शरणागतिका भाव आता है और नाम-संकीर्तन इस द्वैधी भक्तिमें किया जाता है। भगवान्‌के सगुण नाम-रूपमें प्रेम होना सच्चा विवेक है। अद्वैत ज्ञानमें प्रतिष्ठित होनेपर भी श्रीशंकराचार्यजीने भगवान् श्रीकृष्णकी सगुण-भक्तिमें ***'भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते'*** कहकर नाम-संकीर्तनका प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने अपनी माताजीको 'कृष्ण' नाम रटनेके लिये कहा। यह परम विवेकका रूप है।

नाम-संकीर्तन परम विवेकका विषय है। भक्ति-जगत्‌में नाम नामीसे भी बढ़कर माना जाता है। यही कारण है कि परम विवेकशील ज्ञानी भक्त नाम-संकीर्तन करते हुए देखे जाते हैं। नाम-संकीर्तन और सत्संगमें घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि सूक्ष्म विचारसे देखा जाय तो दोनों एक ही सत्यके दो रूप हैं। जैसे श्रीगौराङ्ग महाप्रभु जब पुरीसे वृन्दावनकी यात्रापर निकले, तब वे स्वभावसे ही प्रेम-विभोर होकर नाम-संकीर्तन करते चलते थे। उनके नाम-संकीर्तनकी ध्वनि सुनकर पशु, पक्षी, हरिण, हाथी, शेर, चीते भी नाचने लगते और अपनी भाषामें नाम-संकीर्तन करने लगते। उन पशु-पक्षियोंके भी शरीरोंमें रोमाञ्च होते और उनके नेत्रोंसे अश्रु झरने लगते। यह महाप्रभुके सत्संग तथा नाम-संकीर्तनका ही प्रभाव कहा जा सकता है।

सत्संग और नाम-संकीर्तन दोनोंकी महिमा शास्त्र-पुराणोंमें वर्णित है। दोनों जीवलोकके कल्याणके लिये अधिक महत्त्वपूर्ण साधन हैं। इष्ट स्थान या गन्तव्य स्थान एक भगवान् ही हैं। भगवान्‌तक पहुँचनेके लिये दोनों साधन अत्यन्त लाभप्रद हैं। ***'साधन धाम मोच्छ कर द्वारा'*** कहकर पूज्य संत श्रीतुलसीदासजीने साधन करनेपर ही बल दिया है। जो भगवत्प्राप्तिरूपी गन्तव्य स्थानतक पहुँचनेके लिये साधन नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता, वह कृतघ्न, मन्दबुद्धि और आत्महत्यारा है। तुलसीदासजी कहते हैं—

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

(रा०च०मा० ७।४४)

—तो यहाँ नाम-संकीर्तन और सत्संग—दोनों भक्तिमार्गके साधन हैं। भक्तिमार्गमें साधन ही सिद्ध होता है। जब साधक साधन करते-करते साध्यरूप भगवान्‌को प्राप्त कर लेता है, तब साधक और साधन—दोनों सिद्ध हो जाते हैं। साध्य और सिद्ध एक ही वस्तु है अर्थात् भगवत्प्राप्तिरूपी सिद्धिकी अवस्थामें साधक, साधन और साध्य—तीनों एक हो जाते हैं।

जैसे संसारमें कोई भी जीव किसी मार्गसे चलकर जब इष्ट स्थानतक पहुँच जाता है, तब उसके चलनेकी क्रिया समाप्त हो जाती है और उसे विश्राम मिल जाता है, इसी प्रकार साधक साधनकी क्रिया करते-करते जब साध्य वस्तु भगवान्‌को प्राप्त कर लेता है, तब उसे परम विश्रामकी अनुभूति होती है। पूज्य महात्मा श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—***'पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।'***

भक्तिके साधनकी यह विशेषता है कि इसके सिद्ध हो जानेपर भी साधनकी क्रिया स्वयं चलती ही रहती है अर्थात् नाम-संकीर्तन और सत्संगकी क्रिया कभी बंद नहीं होती, जैसे श्रीशुकदेवजी, नारदजी आदि सिद्ध महापुरुषोंका नाम-संकीर्तन और सत्संग कभी बंद नहीं होता।

मनुष्यके उत्थान और पतनके जितने कारण हैं, उनमें संग ही एक प्रधान कारण है। संगके अनुसार ही मनुष्यका मन बनता है। जिस संगमें भगवन्नाम, भगवत्कथा, भगवद्गुणगान होता है, उससे मन शुद्ध बनता है और हृदयमें भगवत्प्रेमका विकास होता है। जिसका मन जैसा होता है, उसीके अनुसार उसकी क्रियाएँ भी होती हैं। जिसका मन परमेश्वरमें रहता है, वही नाम-संकीर्तन और सत्संग करता है।

मनुष्य जन्मसे बिगड़ा हुआ नहीं होता। जीव जब शरीरमें आता है, तब वह शुद्ध ही रहता है। हाँ, उस समय माताके संस्कारका प्रभाव जीवपर अवश्य पड़ता है, इसलिये गर्भस्थ जीवके तथा अपने कल्याणके लिये भी वैसी अवस्थामें माताओंको भगवान्‌की कथाका श्रवण, नाम-संकीर्तन तथा सत्संग अवश्य करना चाहिये। जब प्रह्लादजी गर्भस्थ थे, तब इनकी माता कयाधूने संत नारदजीसे सत्संग किया था। उसी सत्संगके संस्कारने प्रह्लादजीको आदर्श भक्त बनाया और वे जगद्विख्यात भक्त हुए। वे बचपनसे ही नाम-संकीर्तन करते और अपने सहपाठियोंको भी इसके लिये प्रेरणा देते रहते थे।

जन्म लेनेके पश्चात् बच्चा जिसके संगमें रहता है, उसीका उसके मनपर विशेष प्रभाव पड़ता है। यदि जन्मसे ही उसे भगवत्कथा, भगवन्नाम-संकीर्तन, सत्संग आदिके वातावरणमें रखा जाय तो उसके बिगड़नेका प्रश्न ही नहीं उठता। अतः सत्संग और नाम-संकीर्तनका प्रभाव वास्तवमें जीवनपर अनूठा पड़ता है। जिसके विचार भगवान्‌से विपरीत होते हैं, उस प्राणीको ही मूढ़ या शठ कहा जाता है। सत्संगसे मूढ़ या शठ प्राणीका भी मन सुधर जाता है और वह भगवान्‌का नाम-संकीर्तन करने लगता है। इसी बातको तुलसीदासजीने कहा है— ***'सठ सुधरहिं सतसंगति पाई'*** (रा०च०मा० १।३।९)।

सत्संगकी महिमा भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवजीसे श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके एकादश तथा द्वादश अध्यायोंमें स्वयं बतायी है, जिसे मनोयोगपूर्वक बार-बार अवश्य पढ़ना चाहिये। उद्धवजीने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—'भगवन्! बड़े-बड़े संत आपका नाम, गुण निरन्तर गाते रहते हैं। आप कृपया बतलाइये कि आपके विचारसे संत पुरुषका क्या लक्षण है? आपके प्रति कैसी भक्ति करनी चाहिये?' (श्रीमद्भा० ११।११।२६)।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'प्यारे उद्धव! संत मेरे भक्त और कृपाकी मूर्ति होते हैं। वे किसी भी प्राणीसे वैरभाव नहीं रखते और घोर-से-घोर दुःख भी प्रसन्नतापूर्वक सह लेते हैं। नाम-संकीर्तन और सत्संग करना उनके जीवनका प्रधान लक्ष्य रहता है। उनके मनमें किसी प्रकारकी पापवासना नहीं रहती। वे संयमी, पवित्र और मधुर स्वभाववाले होते हैं। उन्हें केवल मेरा ही भरोसा रहता है। वे स्वयं किसीसे किसी प्रकारका सम्मान नहीं चाहते, परंतु दूसरोंका सम्मान अवश्य ही करते हैं। मेरे सम्बन्धकी बातें दूसरोंको समझानेमें बड़े निपुण होते हैं और सबसे मित्रताका व्यवहार करते हैं, मेरे तत्त्वका उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथार्थ ज्ञान रहता है।' (श्रीमद्भा० ११।११।२९-३१)।

भगवान्‌ने भक्तिके साधनमें सत्संगपर सबसे अधिक बल दिया है। सभी साधन-ग्रन्थोंमें सत्संगकी महिमा सर्वाधिक देखी जाती है। सत्संगकी फलश्रुति बताते हुए पूज्य गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

(रा० च० मा० ७।६१)

अर्थात् सत्संगके बिना भगवान्‌के नाम, गुण आदिके रहस्यका बोध नहीं होता और संसारका मोह बना रहता है। जबतक संसारमें आसक्ति बनी रहती है, तबतक भगवन्नाम-संकीर्तनमें विशेष रुचि नहीं होती, अतः सत्संग भक्तिका अनिवार्य रूप है। ***'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।'*** श्रीतुलसीदासजीके लिखनेका तात्पर्य यही है कि सत्संगके बिना नाम-संकीर्तन आदि साधनोंमें विशेष रुचि नहीं होती। जो संसारकी चर्चा करे तथा संसारकी ओर चित्तवृत्ति लगाये, वह संत नहीं है। संत सब कुछ भगवान्‌में ही देखते हैं, अतः उनकी वाणीमें भगवान्‌की ही शक्ति रहती है। यदि संत न मिलें तो सत्-शास्त्रोंका स्वाध्याय सत्संगकी ही भाँति लाभप्रद होता है। उद्धवजीको भगवान् श्रीकृष्णने सत्संग करनेका ही उपदेश दिया। उन्होंने स्वयं सत्संगकी महिमा उद्धवजीसे कही है—

'प्रिय उद्धव ! जगत्‌में जितनी आसक्तियाँ हैं, उन्हें सत्संग नष्ट कर देता है। सत्संग जिस प्रकार मुझे वशमें कर लेता है, वैसा साधन न योग है, न सांख्य, न स्वाध्याय। कहाँतक कहूँ—व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, यम-नियम भी सत्संगके समान मुझे वशमें करनेमें समर्थ नहीं हैं। यह एक युगकी ही नहीं, अपितु सभी युगोंकी एक-सी बात है। सत्संगके द्वारा ही दैत्य-राक्षस, पशु-पक्षी, गन्धर्व-अप्सरा आदिको मेरी प्राप्ति हुई है तथा मनुष्योंमें वैश्य, शूद्र, स्त्री और अन्त्यज आदि रजोगुणी-तमोगुणी प्रकृतिके बहुत-से जीवोंने मेरा परमपद प्राप्त किया है। वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मय दानव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार वैश्य, धर्मव्याध, कुब्जा, व्रजकी गोपियाँ और दूसरे लोग भी सत्संगके प्रभावसे ही मुझे प्राप्त कर सके हैं।' (श्रीमद्भा० ११।१२।१-६)

यह नितान्त सत्य है कि सत्संगसे भगवन्नाम-संकीर्तनमें अद्भुत प्रेम बढ़ जाता है। देवर्षि नारदजीका भक्तिसूत्रमें **'महत्सङ्गस्तु दुर्लभः'** (३९) कहनेका यही तात्पर्य है कि संत-महापुरुषोंका संग प्राप्त करना दुर्लभ है। 'दुर्लभ' कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि संत महापुरुष संसारमें नहीं पाये जाते। उन्हें पानेके लिये कहीं हिमालयके अगम्य स्थानोंमें अथवा दुर्गम पर्वतोंमें जाना भी आवश्यक नहीं है। संत-महापुरुष तो समाजमें हमारे और आपके बीच भी रहते हैं, परंतु उन्हें पहचानना और उनपर विश्वास करना कठिन है। संत ऐसे ढंगसे रहते हैं कि मनुष्य उन्हें पहचान नहीं पाता और भ्रममें पड़ जाता है। जैसे एक संतका उदाहरण यहाँ देना मैं उचित समझता हूँ—

एक संत अवधूत-वेशमें विष्णु-मन्दिर, विष्णुधाम, गयामें रहते थे। वहाँ वे श्रीमद्भागवतकी कथामें नित्य उपस्थित होते और कथा श्रवण करते। वे मैले-कुचैले फटे कपड़े पहने रहते और कुछ भी नहीं बोलते। लोग उन्हें 'पागल' कहते तो वे हँस देते। एक दिन उन्होंने श्रीमद्भागवतके एक श्लोककी अद्भुत व्याख्या सुना दी। अब तो गयावाले उनके पैर पूजने और प्रशंसा करने लगे। संत मान-सम्मान नहीं चाहते। उनकी दृष्टिमें मान-सम्मान शूकरी-विष्ठा है। मान-सम्मानके मिलते ही उन्होंने गया छोड़ दिया और अज्ञात स्थानमें चले गये। इसके कहनेका तात्पर्य यह है कि संत कहाँ, किस रूपमें, कैसे रहते हैं, यह जानना बहुत कठिन है। जान लेनेपर उनपर विश्वास होना भी अत्यन्त कठिन है।

अतः मानव-जीवनकी सफलता नाम-संकीर्तन और सत्संगसे ही है। विश्वमें शान्ति लानेके लिये भक्तिके इन दोनों साधनोंका अधिकाधिक प्रचार और प्रसार होना चाहिये। अन्तमें मङ्गलमय प्रभुसे प्रार्थना है कि वे सभी प्राणियोंमें ऐसी सद्बुद्धि प्रदान करें, जिससे सब-के-सब प्रभुके नाम-संकीर्तन और सत्संगमें अधिकाधिक रुचि लें और अपने जीवनको धन्य बनायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्यागका स्वरूप और साधन

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

शास्त्रोंकी ऐसी घोषणा है और सभी विचारशील पुरुष इस बातको स्वीकार करते हैं कि मनुष्य-जीवनका चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। संसारमें बहुतसे लोग इस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये यत्किञ्चित् चेष्टा भी करते हैं, परंतु ऐसे सौभाग्यशाली पुरुष बहुत थोड़े होते हैं, जो शीघ्र ही लक्ष्यको प्राप्त कर सकते हों। शास्त्रकारोंने और अनुभवी संतोंने भगवत्प्राप्तिके मार्गमें कई विघ्न ऐसे बतलाये हैं, जिनको पार किये बिना भगवान्‌की प्राप्तिके मार्गपर आगे बढ़ना बहुत ही कठिन है। उन विघ्नोंमें प्रधान विघ्न हैं—अहंकार, ममता, कामना और आसक्ति। अज्ञान या मोह तो इन सबका मूल कारण है ही। अज्ञानके नाशसे इन सबका नाश अपने-आप हो जाता है। अज्ञान कहते हैं न जाननेको। न जानना भगवान्‌के स्वरूपका। जिनको भगवान्‌के स्वरूपकी जानकारी हो जाती है, वे इन सारे विघ्नोंको सहज ही पार कर जाते हैं। बल्कि उनके लिये इन विघ्नोंका सर्वथा नाश ही होता है। परंतु जबतक अज्ञान-नाश न हो, जबतक भगवान्‌के तत्त्व-स्वरूपकी जानकारी न हो, तबतक क्या हाथ-पर-हाथ धरे यों ही बैठे रहना चाहिये? नहीं, आसक्ति, कामना, ममता और अहंकारका प्रयोग बुद्धिमानीपूर्वक भगवान्‌में करना चाहिये। आदर्श ऐसा होना चाहिये कि एकमात्र श्रीभगवान्‌में ही आसक्ति हो, एकमात्र श्रीभगवान्‌को पानेकी ही अनन्य कामना हो, एकमात्र श्रीभगवच्चरणोंमें ही अहैतुकी ममता हो और एकमात्र श्रीभगवान्‌के दासत्वका ही भक्तहृदयमें शान्ति-सुधा बरसानेवाला आदरणीय अहंकार हो। इस प्रकार इन चारोंके दिशापरिवर्तनका अभ्यास करनेसे क्रमशः इनका दूषित रूप नष्ट होता जायगा। तब ये मोहके पोषक न होकर उसका नाश करनेमें सहायता देंगे और ज्यों-ज्यों मोहका नाश होगा, त्यों-ही-त्यों भगवान्‌के स्वरूपकी जानकारी होगी और ज्यों-ज्यों भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान होगा, त्यों-ही-त्यों एकमात्र उन्हींके साथ इन चारोंका सम्बन्ध बढ़ जायगा। फिर तो इनका नाम भी बदल जायगा और इन्हें विशुद्ध अव्यभिचारिणी भक्तिके रूपमें पाकर भक्त कृतार्थ होगा। उस भक्तिके द्वारा भगवान्‌की यथार्थ जानकारी—भगवत्तत्त्वका सम्यक् ज्ञान होगा और उस ज्ञानका प्रादुर्भाव होते ही भक्त अपने भगवान्‌का साक्षात्कार प्राप्त करके कृतार्थ हो जायगा।

विषयोंके दुःख-दोषभरे भयंकर स्वरूपका और भगवान्‌के चिदानन्दमय अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यका—भगवान्‌के स्वरूपका, स्वभावका हमें ज्ञान नहीं है, इसीसे हमारी चित्तवृत्तियोंकी प्रवृत्ति भगवान्‌की ओर न होकर विषयोंकी ओर हो रही है। यदि श्रीभगवान्‌की परमानन्दरूपता और विषयोंकी भयानकतापर वस्तुतः विश्वास हो जाय तो मनुष्यका मन विषयोंकी ओर कभी नहीं जा सकता। आज यदि किसीसे कहा जाय कि तुम्हें सौ रुपये दिये जायँगे, तुम एक तोला अफीम या थोड़ा-सा संखिया खा लो, तो कोई भी खानेको तैयार नहीं होगा। क्योंकि अफीम और संखिया खानेसे मृत्यु हो जायगी, इस बातपर उसका शंकारहित निश्चित विश्वास है। भगवान्‌ने कहा है—'यह लोक अनित्य और असुख (सुख-रहित) है। अथवा यह जन्म अनित्य और दुःखालय है, इसे पाकर तुम मुझको ही भजो।' यदि भगवान्‌के इस कथनपर शंकारहित निश्चित विश्वास होता और यदि इन वचनोंके अनुसार जगत्‌के विषय हमें यथार्थमें दुःखरूप और अनित्य जान पड़ते तो हम उनमें क्यों रमते? और यदि भगवान्‌के अखिल आनन्द-सुधासिन्धु-स्वरूपपर जरा भी विश्वास होता तो हम क्यों उसकी उपेक्षा करते? परंतु ऐसा करते हैं, इसलिये यही सिद्ध होता है कि हम पढ़ते, सुनते और कहते तो हैं, परंतु यथार्थमें हमें इन बातोंपर पूरा विश्वास नहीं है। इसीसे हम इन बातोंकी परवा न करके विषयोंकी ओर दौड़ रहे हैं और जैसे दीपककी ज्योतिके रूप-मोहमें फँसकर उसकी ओर जानेवाला पतंग जलकर भस्म हो जाता है, उसी प्रकार हम भी भस्म हो जाते हैं।

हमारी वृत्तियाँ सदा ही बहिर्मुखी रहती हैं, विषयोंमें—कार्यजगत्‌में ही लगी रहती हैं। इसमें जहाँ-जहाँ हमें इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाले पदार्थ दीख-सुन पड़ते हैं, वहाँ-वहाँ ही हमारा चित्त जाता है। हम उन्हींमें सुख खोजते हैं, परंतु यह नहीं जानते कि दिनके साथ रातकी भाँति इस सुखका सहचर दुःख सदा इसके साथ रहता है। हम सुख चाहते हैं और दुःखसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचना चाहते हैं, इसीलिये हमें दुःख भोगना पड़ता है, यदि वास्तवमें हमें दुःखसे बचना है तो सुखकी स्पृहा भी छोड़ देनी पड़ेगी। हम उस परम सुखको तो चाहते नहीं जो सदा रहता है, जो कभी घटता-बढ़ता नहीं, जो असीम और अनन्त है। हम तो चाहते हैं क्षणिक इन्द्रियसुखको, जो वास्तवमें है नहीं, केवल भ्रमसे भासता है और बिजलीकी तरह एक बार चमककर तुरंत ही नष्ट हो जाता है। परंतु हम अबोध इस बातको जानते नहीं, इसीसे उसके पीछे पड़े रहते हैं और एक दुःखके गड़हेसे निकलकर तुरंत ही दूसरा गहरा गड़हा खोदने लगते हैं!

इस इन्द्रियसुखके प्रधान साधन माने गये हैं दो पदार्थ—एक 'स्त्री' और दूसरा 'धन'। इसीलिये शास्त्रोंने बड़े जोरोंसे इनकी बुराइयोंकी घोषणा करके कामिनी-काञ्चनके त्यागका बार-बार उपदेश किया है। बात यह है कि विषयासक्त मनुष्यकी बहिर्मुखी इन्द्रियाँ स्वाभाविक ही आपातरमणीय विषयोंकी ओर दौड़ती हैं। कामिनी-काञ्चनमें रमणीयता प्रसिद्ध है। इनकी ओर लगनेके लिये किसीको उपदेश नहीं करना पड़ता। अपने-आप ही इन्द्रियाँ मनको इनकी ओर खींच ले जाती हैं। जगत्के इतिहासको देखनेसे पता लगता है कि संसारके महायुद्धोंमें—भीषण नरसंहारमें 'कामिनी और काञ्चन' ही प्रधानतया कारण हुए हैं। यहाँ इतनी बात और याद रखनी चाहिये कि पुरुषके लिये जैसे स्त्री आकर्षक है, वैसे ही स्त्रीके लिये पुरुष है। 'कामिनी' शब्दसे यहाँ केवल स्त्री न समझकर यौनसुख प्रदान करनेवाला व्यक्ति समझना चाहिये। स्त्रीके लिये पुरुष—और पुरुषके लिये स्त्री। जैसे पुरुषका चित्त कामिनी-काञ्चनके लिये छटपटाया करता है, उसी प्रकार स्त्रीका चित्त भी पुरुष और धनके लिये ललचता रहता है।

परिणाम नहीं जानते, इसलिये पुरुष नारीके सौन्दर्यपर और नारी पुरुषके सौन्दर्यपर मोहित होती हैं। और इसीलिये विलासिताका सामान एकत्र करनेकी अभिलाषासे नर-नारी धनकी ओर आकर्षित होते हैं। जैसे स्त्री या पुरुषके अधिक भोगसे धन, धर्म और जीवनी-शक्तिका नाश होता है, वैसे ही धनके लोभमें भी स्वास्थ्य, धर्म-कर्म और जीवनकी बलि देनी पड़ती है। एक बार इनकी प्राप्ति या संयोगमें कुछ सुख-सा दिखायी देता है, परंतु परिणाममें भयानक दुःख और अशान्तिकी प्राप्ति अनिवार्य होती है। जबतक इनका वास्तविक त्याग नहीं हो जाता, तबतक कभी शान्ति नहीं मिलती। शान्तिकी प्राप्ति तो इनके सर्वतोभावेन त्यागसे ही होती है।

परंतु क्या मनुष्यके लिये इनका त्याग सम्भव है? है तो फिर उस त्यागका स्वरूप क्या है, और वह त्याग कैसे हो सकता है? संसारमें पुरुष या स्त्री कोई भी ऐसा नहीं है जो स्त्री-पुरुषके संसर्गसे शून्य हो। माता-पिताके रज-वीर्यसे ही शरीर बनता है। पालन-पोषण भी माता-पिता या बहन-भाई आदिके द्वारा ही होता है। इसी प्रकार सर्वत्यागी संन्यासीको भी कौपीन, फटे कंथे और भिक्षाकी तो आवश्यकता होती ही है, जो अर्थसाध्य है। ऐसी हालतमें कोई भी स्त्री या धनका सर्वथा त्याग कैसे कर सकता है? इन प्रश्नोंका उत्तर यह है कि पहले त्यागके अर्थको समझना चाहिये। किसी वस्तुका ग्रहण या व्यवहार न करना बाहरी त्याग है। और उस वस्तुमें आसक्तिहीन रहना भीतरी त्याग है। अब विचार कीजिये, हम एक चीजका त्याग कर देते हैं, परंतु मन-ही-मन उसकी आवश्यकता समझते हैं, उसका अभाव हमारे मनमें खटकता है और उसे प्राप्त करनेकी इच्छा होती है। ऐसी हालतमें उस वस्तुका बाह्य त्याग वास्तविक त्याग नहीं है। त्याग तो असली वही है जिससे उस वस्तुमें आसक्ति ही न रहे। जिस त्यागमें वस्तुका चिन्तन और आस्वाद मन-ही-मन होता है, वह त्याग वास्तविक नहीं है। अवश्य ही भोगमय जीवनकी अपेक्षा आन्तर त्यागके साधनरूपमें बाह्य त्याग सराहनीय है और आवश्यक भी है, उससे आन्तर त्यागमें सहायता मिलती है और त्यागकी वृत्ति स्वाभाविक होती है, परंतु असली त्याग तो आसक्तिका त्याग ही है। आसक्तिके त्यागसे द्वेष, भय, हर्ष, शोक आदिका भी स्वाभाविक ही त्याग हो जाता है। फिर आगे चलकर तो त्यागके अभिमान और त्यागकी स्मृतिका भी त्याग करना पड़ता है। यही त्यागका स्वरूप है, और इस त्यागकी प्राप्ति आसक्तिके दोष और भगवान्के यथार्थ स्वरूपको जाननेसे होती है। यह सत्य है कि स्वरूपसे स्त्री और धनका त्याग सभी अंशोंमें होना कठिन है। तथापि शास्त्र इसीलिये इनके त्यागपर इतना जोर देते हैं कि सर्वथा त्यागकी बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहनेसे ही मनुष्य कहीं उचित रूपमें इनका व्यवहाररूपमें ग्रहण करेंगे। मनसे तो त्याग होना ही चाहिये। बाह्य त्यागमें पुरुषको चाहिये कि स्त्री-जातिमें देवीकी भावना करे—**'स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु'** और भगवती जानकर उन्हें मातृ-भावसे नमस्कार करे। स्त्रियोंको चाहिये कि पुरुषोंको पिता, भाई या पुत्रके रूपमें देखें। जहाँतक हो सके, किसी भी रूपमें स्त्री-पुरुषका परस्पर ज्यादा मिलना-जुलना लाभदायक नहीं है, परंतु जहाँ आवश्यक हो, वहाँ उपर्युक्त भावसे मिले। इसी प्रकार न्यायमार्गसे उतना ही धन उपार्जन करनेकी चेष्टा करे जिससे गृहस्थका कार्य सीधे-सादेरूपमें चल जाय। इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिये और शरीरके आरामके लिये परमेश्वरको भूलकर, न्यायपथको त्यागकर, दूसरेको धोखा देकर, दूसरेका हक मारकर और असत्यका आश्रय लेकर धनोपार्जन करने-की चेष्टा कभी न करे।

अवश्य ही भगवान्‌की सृष्टिमें स्त्री और धनकी भी सार्थकता है, उसकी भी आवश्यकता है, परंतु वह होनी चाहिये परमार्थमें सहायकके रूपमें। यह भी नहीं समझना चाहिये कि परस्त्रीका त्याग करना चाहिये, पराये धनके त्यागकी उतनी आवश्यकता नहीं है। जैसे नीच कामवृत्तिका गुलाम होनेसे मनुष्य पशुसे भी अधम, नीच या असुर हो जाता है, वैसे ही अपनेको विलासिता और मौज-शौकके प्रवाहमें बहा देनेवाला अर्थलोभी मनुष्य भी राक्षस हो जाता है। वह अपने शरीरको आराम पहुँचानेके लिये क्या नहीं करता? गरीबोंके—दीन-दुखियोंके तप्त अश्रुओंसे अपने भोग-विलासकी प्यास बुझानेवाला और शरीरको आराममें रखने-वाला मनुष्य राक्षस नहीं तो और क्या है? अपने शरीरकी रक्षाके लिये जितना आवश्यक होता है, उतने ही अर्थपर वस्तुतः हमारा अधिकार है। अपने आराम या भोगके लिये उससे अधिक खर्च करना तो भगवान्‌की सम्पत्तिका बेईमानीसे दुरुपयोग करना है। उस धनसे तो गरीब-दुखियोंकी सेवा करनी चाहिये। परंतु इस सेवामें भी अहंकार नहीं आना चाहिये। यही मानना चाहिये कि भगवान्‌की प्रेरणासे प्रेरित होकर भगवान्‌की चीजसे भगवान्‌की सेवा की जाती है। याद रखना चाहिये कि त्याग करना है भोगोंका और आसक्तिका; निष्काम प्रेम और सेवाका नहीं। वास्तविक प्रेम और सेवा त्याग होनेपर ही होती है। और यही सेवा भगवत्सेवा कहलाती है। अस्तु,

वास्तवमें कामिनी-काञ्चनकी क्षणभंगुरता, निःसारता और दुःखरूपताका निश्चय हो जानेपर तो इनमें मन रहेगा ही नहीं। फिर तो इनके त्यागमें एक विलक्षण आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति होगी। और जिस त्यागमें आनन्द एवं शान्ति मिलती है, वही यथार्थ त्याग है।

इनसे भी बढ़कर त्याग करने योग्य एक चीज और है—वह है कीर्तिकी इच्छा। 'किसी प्रकारसे भी हमारी कीर्ति हो, लोग हमें उत्तम समझें, आज कोई चाहे न जाने, परंतु इतिहासोंमें हमारा नाम उज्ज्वल रहे। हमारा नाम न सही, हमारे वंशका, हमारी जाति या हमारे देशका नाम रहे (यद्यपि ऐसी इच्छा व्यक्तिगत कीर्तिकी इच्छासे उत्तम है, क्योंकि इसमें कुछ त्याग है) और इस सुकीर्तिके लिये स्त्री, पुत्र, धन, मान, प्राण आदि किसी भी वस्तुका त्याग क्यों न करना पड़े।' इस प्रकारकी कीर्ति-कामनाका त्याग होना बहुत ही कठिन है। और जबतक इसका त्याग नहीं होता, तबतक बड़े-से-बड़े अनुष्ठान, पुण्य-कर्म, साधन और तप इसके प्रवाहमें सहज ही बह जाते हैं। मनुष्य अपने जीवनभरका किया-कराया सब कुछ इस कीर्ति-पिशाचीके चक्रमें पड़कर नष्ट करता रहता है। वह प्रत्येक काम करनेके पहले ही यह सोचता है कि इसमें मेरी कीर्ति होगी या नहीं, इसलिये उसे अकीर्तिकर कल्याणमय कर्मसे वञ्चित रहना पड़ता है। और आगे चलकर ऐसा कीर्तिकामी पुरुष दम्भाचरण-का आश्रय लेकर साधनके पथसे पतित हो जाता है। भगवान्‌की स्मृति छूट जाती है। भगवान्‌के स्थानपर हृदयमें बाहरसे बहुत ही सुन्दर सजी हुई कीर्तिकी कराल मूर्ति आ विराजती है और येन-केन-प्रकारेण उसीकी सेवामें मनुष्यका बहुमूल्य जीवन व्यर्थ चला जाता है? इन सब प्रतिबन्धकोंका मूल है मोहरूप विघ्न, और उसके सहायक हैं उसीसे पैदा हुए पूर्वोक्त अहंकार, ममता, कामना और आसक्तिरूप दोष। इनका अपने पुरुषार्थसे सहसा त्याग होना बड़ा कठिन है। भगवत्कृपाके बलसे तो सब कुछ हो सकता है। भगवत्कृपा सबपर होते हुए भी उसका अनुभव विश्वासी और नामाश्रयी पुरुषोंको होता है। अतएव भगवान्‌का नाम लेते हुए भगवान्‌की कृपापर विश्वास करना चाहिये। भगवान्‌की कृपासे इन चारोंका मुँह विषयोंकी ओरसे घूमकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌की ओर हो जायगा। भगवान् अपनेमें ही सबका प्रयोग करा लेंगे। फिर तो गोपियोंकी भाँति हम भी कह सकेंगे—

स्याम सरबस तुम हमारे।

तुम्हींसे अभिमानिनी हम, नित सुहागिनि प्राणप्यारे॥
तुम्हींको चाहैं सदा हम, तुम्हींमें मन हैं हमारे।
तुम्हींमें रमतीं निरन्तर, तुम्हींसे सुख सब हमारे॥
तुम्हींसे जीवन हमारा, तुम्हीं रक्षक हो हमारे।
तुम्हीं तन-मनमें भरे हो, तुम्हीं हो जीवन हमारे॥
प्राण तुम, प्राणेश तुम, हो प्राणके आधार प्यारे।
ध्यान तुम, ध्याता तुम्हीं हो, ध्येय तुम ही हो हमारे॥
तुम्हीं माता पिता स्वामी बंधु सुत बित तुम हमारे।
तुम्हीं हम हैं, हमीं तुम हो, खेल हैं ये भेद सारे॥

परिवारमें रहकर भगवत्प्राप्ति—बालकोंका लालन-पालन

(ब्रह्मलीन परमपूज्य स्वामीजी श्रीशरणानन्दजी महाराजके विचार)

आज अधिकांश मानव-समाज पारिवारिक समस्याओंसे चिन्तित है। प्रायः अधिकांश परिवारोंमें थोड़ा-बहुत मनोमालिन्य अवश्य दिखायी पड़ता है। इस कारण अधिकांश लोग दुःखी तथा अशान्त रहते हैं। आश्चर्यकी बात तो यह है कि जो परिवार सुसम्पन्न, शिक्षित एवं सभ्य हैं, वहाँ भी कई जटिल समस्याएँ दीख पड़ती हैं।

पारिवारिक समस्याओंका मूल कारण धन, सम्पत्ति, वस्तुओं आदिकी कमी होना नहीं है। सुख-सामग्रीका अभाव होना भी पारिवारिक अशान्ति एवं संघर्षोंका कारण नहीं है। सुख-सामग्रीका अभाव यदि पारिवारिक दुःख और चिन्ताका कारण होता तो उन परिवारोंमें कोई संघर्ष नहीं होना चाहिये था, जिनमें भौतिक सुख-सुविधाओंकी बहुलता है। पर ऐसा तो देखनेमें नहीं आता। पारिवारिक समस्याओं एवं संघर्षोंका मूल कारण यह है कि हम परिवारमें रहनेकी कलासे अपरिचित हैं। हमने परिवार तो बना लिया, पर हम यह जानते ही नहीं हैं कि परिवारमें कैसे व्यवहार करना चाहिये। इसी भूलका भयंकर परिणाम यह हुआ है कि आज प्रत्येक परिवारमें संघर्ष है, बाप-बेटेमें विवाद है, भाई-भाईके खूनका प्यासा है, सास-बहूमें लड़ाई है, ननद-भाभीमें द्वेष है। और तो और पति-पत्नी-जैसे निकटतम एवं पवित्रतम सम्बन्धमें अविश्वास है, अशान्ति है। इनमें भी पवित्र प्रेमका सर्वथा अभाव दिखायी देता है। यदि हम परिवारमें रहनेकी कला सीख लें, परिवारमें ठीक तरहसे हमें रहना आ जाय तो परिवारमें रहते-रहते, परिवारका सारा कार्य करते-करते हम परम शान्ति, जीवन्मुक्ति एवं भगवद्भक्ति प्राप्त कर सकते हैं, जो इस देव-दुर्लभ अनमोल मानव-जीवनका मूलभूत लक्ष्य है।

परिवारकी परिभाषा

परिवारमें उन सब व्यक्तियों और वस्तुओंको सम्मिलित किया जा सकता है, जिन्हें मनुष्य सुख-भोगकी आशासे अपना मानता है, जिनमें उसकी ममता है। परिवारमें मुख्य रूपसे तीन चीजोंको सम्मिलित कर सकते हैं— (१) मिला हुआ शरीर। (२) शरीरके नाते कुछ सम्बन्धी, जैसे—माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी, संतान आदि। (३) धन-सम्पत्ति, वस्तुएँ, दुकान, मकान, जमीन आदि। साधु-संन्यासी, गृहस्थ, एकान्तवासी आदि सभीके पास परिवार होता है, क्योंकि मिला हुआ शरीर तो सभीके पास होता है। जो जिन्हें मोहवश 'मेरा' मानता है, वही उसका परिवार है। परिवारमें बालकोंका अपना विशिष्ट स्थान है, वे ही भावी कलके कर्णधार हैं, उनका समुचित पालन-पोषण करना, उन्हें सुशिक्षित तथा सुसंस्कृत करना प्रत्येक माता-पिताका परम कर्तव्य एवं दायित्व है। अतः इस दिशामें विशेष सावधानीकी अपेक्षा है। यह बात सत्य है कि कोई भी माता-पिता या अभिभावक अपने बालकोंको अयोग्य, अकुशल, अस्वस्थ, दुर्गुणी नहीं बनाना चाहते। दुर्गुणी बालक प्रायः सर्वत्र सभीके लिये घातक सिद्ध होते हैं, अतः माता-पिताकी यही इच्छा रहती है कि उनके बालक सुयोग्य बनें। यदि आप चाहते हैं कि आपके बालक स्वस्थ और सुयोग्य हों, उनमें दैविक गुणोंका विकास हो तो आप पहले स्वयं अपनेको वैसा बनायें।

बालक न ऐसे किसी कोरे उपदेशसे सुयोग्य बनेंगे, न भय, प्रलोभन एवं शासनसे, न किसी विशाल तथा व्यापक प्रचार-प्रसारसे। बालकको सुयोग्य बनाने एवं उसके विकासमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता-पिताकी भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होती है। उन्हें इसका भलीभाँति ज्ञान होना चाहिये कि बालकोंका लालन-पालन कैसे किया जाय। इस सम्बन्धमें निम्न बातें उल्लेखनीय हैं।

बालककी शिक्षा

शिक्षाका अर्थ है व्यक्तित्वका सर्वाङ्गीण विकास एवं कुछ विशेष योग्यताओंका अर्जन। उचित रीतिसे लालन-पालन एवं शिक्षाका गहरा सम्बन्ध होता है। यदि आपका बालक पढ़ने-लिखनेमें दुर्बल है और आप उसकी दुर्बलता दूर करना चाहते हैं, उसे चतुर बनाना चाहते हैं, तो निम्न बातोंका ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है।

बालकको दुर्बल एवं अयोग्य न कहें—बालकके साथ दैनिक व्यवहार एवं बातचीतके समय कभी उसे ऐसा न कहें कि 'तुम पढ़नेमें कमजोर हो, तुम्हें कुछ नहीं आता।' बालकको इस प्रकार उलाहना न दें, उसपर क्रोध न करें, उसे डाँटें-फटकारें नहीं। उसे घरपर पढ़ाते समय यदि बार-बार आप डाँटेंगे, फटकारेंगे तो बालकमें विद्यमान अनन्त प्राकृतिक शक्तियाँ दब जायँगी, उसका पूर्ण विकास नहीं होगा, बालक दब्बू और डरपोक-स्वभावका बन जायगा। उसकी वाणीकी शक्ति कुण्ठित हो जायगी।

बालकको प्रोत्साहन दें—बालकके छोटे-से-छोटे गुण एवं विशेषताके लिये भी उसकी प्रशंसा ही करें। यदि वह दस प्रश्नोंमेंसे एक प्रश्नका भी सही उत्तर दे तो भी उसकी प्रशंसा ही करें। बालकका हृदय पवित्रसे भी पवित्र और मक्खनसे भी कोमल होता है। डाँट-फटकारके दो शब्द उसके कोमल हृदयपर भयकी अमिट छाप अङ्कित करके उसके गुणोंपर पर्दा डाल सकते हैं। अतः किसी भी कीमतपर उसके साथ कटु व्यवहार न करें। कुछ न करनेपर भी उसके द्वारा दिये गये समय और शक्तिके लिये उसे यदि आप प्रोत्साहित करते रहेंगे तो कुछ ही समयके पश्चात् वह सब कुछ प्राप्त करनेके योग्य बन जायगा।

इलाहाबादकी एक घटना प्रस्तुत है—'एक भले परिवारका बालक पढ़ने-लिखनेसे कतराता और स्कूल नहीं जाना चाहता था। घर पढ़ानेके लिये अध्यापककी व्यवस्था की गयी, परंतु जैसे ही अध्यापकजीके आनेका समय होता, बालक रोकर भाग जाता। बालककी माँ इससे बहुत परेशान तथा चिन्तित रहने लगी। उसकी चिन्तासे बालकके नानाजी भी चिन्तित रहने लगे। संयोगसे बालकके नानाजीके आग्रह तथा प्रार्थनापर एक संत बालकके घर पधारे। संतका दर्शन करके उस बालककी माता बहुत प्रसन्न हुई। स्वामीजीने पूछा—'कोई कष्ट तो नहीं है तुम्हें?' वह बोली—'महात्माजी! क्या बताऊँ, मेरा यह बालक पढ़ता नहीं है।' स्वामीजीने कहा— 'कोई बात नहीं, तुम उससे सोते समय यह कहा करो कि 'तुम तो बड़े अच्छे लड़के हो, खूब पढ़ते हो।' माँने ऐसा ही किया। कुछ समयके पश्चात् स्वामीजीके पुनः कभी उधरसे गुजरनेपर उस बहनने बताया कि वह बच्चा अब खूब पढ़ता है।

बालककी भूल एवं उसका सुधार—भूल होना मानवीय स्वभाव है। भूल सबसे हो सकती है। बालक तो बालक ही है, उस समयतक उसकी शक्तियोंका विकास नहीं होता, अतः बालकसे भूल होना स्वाभाविक है। विचार यह करना है कि जब बालक भूल करता है, तब माता-पिता, भाई-बहन, अध्यापक आदिको उसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये और बालक उस भूलको न दोहराये, इसके लिये क्या व्यवस्था करनी चाहिये, इस सम्बन्धमें निम्न उदाहरणसे हम पर्याप्त मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

मान लीजिये कि बालकके माता-पिता या अध्यापक अथवा परिवारका कोई सदस्य बालकको पढ़ा रहा है। उसे एक पाठ भलीभाँति समझानेके पश्चात् बालकसे प्रश्न पूछा गया अथवा कोई प्रश्न हल करनेके लिये उसे दिया गया। बालकने उसका उत्तर गलत दिया। इसी प्रकार किसीके निर्देशपर बालकने दो गिलास जल ला दिया। टेबुलपर रखते समय अनायास उसके हाथसे गिलास गिर गया और उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। इस प्रकार बालकके द्वारा सही उत्तर न मिलने एवं उसके हाथसे कोई हानि हो जाने अथवा उसकी कोई भूल हो जानेपर प्रायः माता-पिता, शिक्षक तथा परिवारके सदस्य बालकपर क्रुद्ध हो जाते हैं, क्रोधके आवेशमें बालकको डाँटते-फटकारते हैं और कुछ लोग तो बालककी मार-पीट भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर देते हैं। चाहे आप मानें अथवा न मानें, बालकके साथ इस प्रकारका क्रोधपूर्ण व्यवहार यदि आप बार-बार करेंगे तो उसके परिणाम उलटे ही होंगे, ऐसा करनेसे बालकसे प्रायः वही भूल बार-बार होगी। आगे चलकर बालक क्रोधी स्वभावका भी हो सकता है और ऐसा भी सम्भव है कि उसे अपने माता-पिता, परिवारजनोंके प्रति पूरा सद्भाव न रहे। इतना ही नहीं, कभी-कभी ऐसे बालक अभिभावकोंके शत्रु भी बन जाते हैं। अतः ऐसी स्थितिमें निम्न प्रक्रिया अपनानी चाहिये।

(क) शान्त रहें—बालकसे भूल हो जानेपर हृदयमें किसी प्रकारकी हलचल उत्पन्न न होने दें। इस प्रकार सोचें कि भूल तो हो ही गयी है, उस भूलसे होनेवाली हानि भी हो चुकी है, बालकने जान-बूझकर भूल नहीं की है। बालक भूल महसूस भी कर चुका है। अब तो कोई ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि बालक उस भूलको दुबारा न करे।

(ख) दयालु हों, क्रुद्ध नहीं—बुराई और भूल किसीको प्रिय नहीं है। कोई भी व्यक्ति बुरा नहीं बनना चाहता। बालकसे भूल प्रायः अज्ञानसे होती है। इसलिये उसपर क्रोध नहीं करना चाहिये।

(ग) शान्त एवं प्रसन्नमुद्रासे बात करें—बालक स्वभावसे बुरा नहीं है, उसने जान-बूझकर बुराई नहीं की है, ऐसा सोचकर माता-पिता, गुरुजन आदि अपने हृदयमें एकदम शान्त रहें, परंतु वाणीसे कठोर बन जायँ। हृदयसे शान्त रहकर वाणीसे उसे हलकी उलाहना दें।

इससे बालक उस भूलको बार-बार नहीं करेगा। कुछ समयके पश्चात् वह भूल स्वतः मिट जायगी। बड़ा होकर वह स्वभावसे शान्त बनेगा। उसके व्यक्तित्वमें शान्ति, स्नेह, विनम्रता, प्रेम आदि गुण स्वतः विकसित हो जायँगे। वह बालक माता-पिता, परिवारजनों आदिका सच्चा सेवक और सहयोगी बनेगा।

बालकोंसे स्नेह करें, उन्हें प्रेम दें—प्रेमकी प्राप्तिमें ही मानव-जीवनकी पूर्णता है। अतः अभिभावकोंका यह दायित्व है कि वे बालकसे सच्चा स्नेह करें। बालकके साथ ऐसा व्यवहार करें जिससे उसका हित हो। स्मरण रहे, अनेक अभिभावक, विशेष रूपसे बालकके दादा-दादी एवं नाना-नानी, मोहयुक्त लाड़-प्यारके कारण जो वह माँगता है, वही उसे दे देते हैं, चाहे उससे बालककी हानि हो अथवा लाभ। बालक तो भोलाभाला होता है, उसे अपने हित-अहितका ध्यान नहीं रहता, उसकी दृष्टि केवल तात्कालिक सुखपर होती है। केवल उसकी क्षणिक संतुष्टिको प्रधानता देकर आहार-विहारमें संयम न रखनेवाले अभिभावक बालकोंको रोगी बनाते हैं। ऐसे बालक कुछ समयके पश्चात् बिगड़ जाते हैं। बालकको प्रेम देनेका केवल इतना-सा ही अर्थ है कि बालकके हितको प्रधानता दें, अपने और बालकके सुखको गौण रखें।

ममताका त्याग—अपने सुखकी आशा रखकर किसीको अपना मानना 'ममता' है। यदि अभिभावक इस आशासे बालकका लालन-पालन करते हैं कि बालक बड़ा होकर उनकी सेवा करेगा और उन्हें सम्मान देगा, तो उनकी यह सबसे बड़ी भूल है। यदि हम चाहते हैं कि बालकमें विशुद्ध सेवा और प्रेमका विकास हो तो हमें बालकका पालन-पोषण सेवा-भावसे करना चाहिये। लालन-पालनमें अपने स्वार्थकी गंध भी न रहे। ऐसा करनेपर ही बालकमें दिव्य गुणोंका विकास होगा। 'ममता' बालकके विकासमें बहुत बड़ी बाधा है। अतः बालकका लालन-पालन विशुद्ध कर्तव्य-दृष्टिसे भगवद्धेतु किया जाना चाहिये।

प्रलोभन तथा भय न दिखायें—बालकके साथ व्यवहार करते समय बालकको किसी प्रकारका प्रलोभन तथा भय दिखाना अत्यन्त हानिकारक है। इससे वह बालक लोभी एवं भीरु बन जायगा। वह कर्तव्यच्युत हो जायगा। अतः बालकको भलीभाँति समझाकर ही उससे कोई कार्य करवायें।

स्वतः विकसित होने दें—ममताके कारण बालकको घरसे बाहर न जाने देना, बार-बार उसे निर्देश देना, गोदसे चिपकाये रखना, समवयस्क बालकोंके साथ न खेलने देना, बालकका हित होनेपर भी उसे बहुत दूर अध्ययन एवं नौकरीके लिये न भेजना आदि भूलें बालकमें निहित शक्तियोंका समुचित विकास नहीं होने देतीं। अतः बालकको कुछ साधारण निर्देश देने ही हों तो बड़े प्रेमसे, अत्यन्त मधुर भाषामें इस प्रकार दिये जाने चाहिये कि उसके कोमल हृदय एवं सम्मानको धक्का न लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्याप्त समय दें—अभिभावक अपने काम-काजमें इतने व्यस्त रहते हैं कि उन्हें बालकसे बातचीत करनेका अवसर ही नहीं मिलता। वे बालकका सम्पूर्ण विकास अध्यापक, नौकर-चाकर आदिपर छोड़ देते हैं। इससे बालक अपने-आपको एकाकी अनुभव करता है, उसे माँका वात्सल्य एवं पिताका प्रेम नहीं मिल पाता। ऐसा बालक बड़ा होकर अभिभावकोंको भी नौकरोंके हवाले कर देता है, न उन्हें समय दे पाता है और न प्रेम।

बुराई न सिखायें—बाहरसे किसीका टेलीफोन आये, बालक टेलीफोन उठा ले, माता-पिता कह दें कि पूछनेवालेको कह दो कि 'ये घरपर नहीं हैं।' वह सोचता है कि यह कितने आश्चर्यकी बात है कि ये हैं तो घरपर ही और मुझे कह रहे हैं कि कह दो कि 'वे घरपर नहीं हैं।' इसी प्रकार बालकोंको बिना टिकट चलनेके लिये प्रेरित करना, हृदय एवं जिह्वामें अन्तर रखना, प्रतियोगीका सहयोग न करनेका निर्देश देना आदि ऐसी बुराइयाँ हैं, जिनकी प्रेरणा स्वयं माता-पिता ही बालकोंको दे देते हैं। इससे बालक स्वयं बुरा बनता है, जिससे समाजकी हानि होती है।

बालकको समवयस्क बालकोंके साथ खेलने और घूमनेका अवसर देना चाहिये। उसके मनकी निर्मलता, चित्तकी प्रसन्नता एवं हृदयकी निर्भयताको सुरक्षित रखा जाना चाहिये। बालकोंको उन बच्चोंके साथ भी खेलने-बोलनेका अवसर देना चाहिये, जिनके अभिभावकोंके साथ किसी कारणवश हमारे सम्बन्ध मधुर नहीं हैं। यदि दोनों परिवार बालकोंको खुला छोड़ दें तो बालक टूटे हुए प्रेमके तारको पुनः जोड़नेमें पर्याप्त सहयोग दे सकते हैं। बालककी सेवा करें, बालकको प्रेम दें, बालकमें गुणोंकी स्थापना करें, उनसे कुछ न चाहें—यही बालकोंके लालन-पालनका मूल मन्त्र है।

(संकलनकर्ता—डॉ॰ श्रीभीकमचन्द प्रजापति)

आर्य-संस्कृतिका झरना

(श्रीयुत आशुकुमारजी)

पृथ्वीरूपी तवेपर कालरूपी कलछुलके नीचे न जाने कितने देश और संस्कृतियाँ उलट-पुलट कर जल-भुन गयीं। किंतु अपने भीतर रहनेवाली स्वच्छता तथा निर्भयताके कारण हमारी आर्य-संस्कृतिका शुद्ध और सुन्दर विकास हुआ। हमारी संस्कृति सभी प्राचीन जातियों तथा संस्कृतियोंसे अधिक प्राचीन है। मिस्र, सीरिया, बैबीलन, रोम, स्याम और अरबकी संस्कृतियाँ तो हमारी प्राचीन और उन्नत संस्कृतिके सामने छोटी बच्चियाँ-सी थीं। वे सब संस्कृतियाँ नष्टप्राय हो गयीं, उनका नाममात्र अवशेष रह गया है, किंतु आज भी आर्यावर्त और वेदकालकी अपनी वही प्राचीन संस्कृति एक निर्भय और शक्तिमान् योद्धाकी भाँति कराल कालके सामने ज्वलन्त रूपसे खड़ी है।

युग-युगका अभिनन्दन और खण्ड-खण्डका अभिवन्दन प्राप्त करनेवाली हमारी प्राचीन—पर सदा नवीन—यह पुराणपुनीत संस्कृति अन्य संस्कृतियोंके लिये स्पर्शमणि बन चुकी है, अर्थात् इसके स्पर्शमात्रसे अनेकों संस्कृतियाँ उन्नत हुई हैं। ऐसी अमोघ संस्कृति कहाँ ठहरी है, इसे तनिक सोचिये। आर्य-संस्कृतिका गुरुत्व-मध्यविन्दु केन्द्र है प्रणव (प्र+नव); और यह विन्दु इडा-सरस्वती-महीरूप त्रिकोणकी तीन रेखाओंको समानरूपसे जोड़ता है। यही कारण है कि अनेक बार डावाँडोल होनेपर भी आर्यावर्तकी जड़ नहीं हिली।

आर्य-संस्कृतिकी नवनीतरूपा इडा-सरस्वती-महीकी अनुपम त्रिवेणी आर्यावर्तके किनारेपर आ उतरी है। इसीसे वह अजर और अमर रहा है। इडा-सरस्वती-महीरूप त्रिमूर्ति वरुणदेवकी मानो तीन जिह्वाएँ हैं और इन जिह्वाओंके साधी हुई होनेसे आर्यावर्त वरुणका करुण भोग न बनकर तरुण-सा खड़ा है। जिस प्रकार बिल्ली अपने बच्चोंको जीभसे चाट-चाटकर स्वच्छ बना देती है, उसी प्रकार वरुणदेवने अपनी इन जिह्वाओंसे चाट-चाटकर हमको स्वच्छ बना दिया है। ऐसी अनुपम, सौम्य और सुदृढ़ संस्कृतिके नीचे हम अपने पुनरुत्थानरूपी प्रासादकी नींव जितनी ही गहरी और पक्की रखेगें, उतना ही हमारा यह अभ्युदय-प्रासाद समुन्नत, सुदृढ़ और चिरस्थायी होगा। संस्कृतिके इस रहस्यको हमें समझ लेना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

दृढ़ विचारसे लाभ

श्रोता—जबतक हमारे सामने सांसारिक भोग नहीं आते, तबतक तो हमारा दृढ़ भाव रहता है कि हम भोगोंमें फँसेंगे नहीं, परंतु भोग सामने आनेपर हम कमजोर हो जाते हैं ! हम क्या करें ?

स्वामीजी—बहुत सुन्दर प्रश्न है ! भोगोंमें न फँसनेका जो यह भाव है, यह बहुत ही दुर्लभ चीज है, बड़ी भारी कीमती चीज है। संसारका सम्बन्ध तोड़ना और भगवान्‌का सम्बन्ध जाग्रत् करना—यह खास मनुष्यता है। वास्तवमें देखा जाय तो संसारके साथ हमारा सम्बन्ध जुड़ता नहीं और भगवान्‌के साथ हमारा सम्बन्ध टूटता नहीं। हम संसारके साथ एक हो जायँ और भगवान्‌से अलग हो जायँ—यह बिलकुल असम्भव बात है। हमारेमें यह शक्ति नहीं है कि हम भगवान्‌से अलग हो जायँ और सर्वसमर्थ होते हुए भी भगवान्‌में यह शक्ति नहीं है कि वे हमारेसे अलग हो जायँ। वास्तविक बात यह है कि हमारा संसारके साथ सम्बन्ध नहीं है और भगवान्‌के साथ सम्बन्ध है। जो नहीं है, उसको तोड़ दें और जो है, उसे जाग्रत् कर दें—यह हमारा खास काम है।

जबतक सामने पदार्थ नहीं आते, तबतक यह दृढ़ भाव रहता है कि हम भोगोंमें फँसेंगे नहीं—इतनी बात भी अगर आपकी हो गयी है तो यह बड़े भारी आनन्दकी बात है। भोगोंकी इच्छा न होना बहुत ऊँचे दर्जेकी बात है, मामूली बात नहीं है। संसारको छोड़नेकी और भगवान्‌को प्राप्त करनेकी थोड़ी भी इच्छा हुई है तो इसका फल नाशवान् नहीं होगा, प्रत्युत अविनाशी फल (कल्याण) ही होगा—**'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'** (गीता २।४०)। लाखों, करोड़ों, अरबों रुपये मिल जायँ तो वे भी इसके सामने कुछ नहीं हैं। त्रिलोकीका राज्य मिल जाय तो उसकी केश-जितनी भी इज्जत नहीं है, क्योंकि यह सब नाशवान् है।

सामने पदार्थ आनेपर हम विचलित हो जाते हैं—यह दशा हमारी क्यों है कि हम विचार कर-करके छोड़ देते हैं, ऐसी आदत खराब पड़ी हुई है। सत्संगमें सुनकर, पुस्तकोंमें पढ़कर विचार करते हैं कि अब ऐसा करेंगे, पर फिर उसको छोड़ देते हैं। मामूली बातोंको भी पकड़कर फिर छोड़ देते हैं। यह आदत ही आपको कमजोर करती है। अगर आपकी ऐसी आदत होती कि किसी बातको छोड़ दिया तो छोड़ ही दिया, पकड़ लिया तो पकड़ ही लिया, तो आपकी यह दुर्दशा नहीं होती। क्षमा करना, बुरा न लगे आपको; परंतु है यह दुर्दशा ही ! हरेक कामका विचार करते हैं तो उस विचारपर स्थायी नहीं रहते। पदार्थोंमें, संग्रहमें इतना अवगुण नहीं है, जितना अवगुण हमारी खराब आदतमें है। जबतक आपमें दृढ़ता नहीं है, तबतक आप किसी भी क्षेत्रमें जाओ, आप उन्नति नहीं कर सकते। आदत बिगड़नेसे बड़ा भारी नुकसान हो रहा है। अगर एक बातपर दृढ़ रहनेकी आदत बना लो तो निहाल हो जाओगे। भगवान् मेरे हैं तो चाहे कुछ भी हो जाय, भगवान् ही मेरे हैं। संसार मेरा नहीं है तो मेरा है ही नहीं।

सत्य बोलना है तो पक्का विचार कर लो कि आजसे सत्य ही बोलना है, झूठ बोलना ही नहीं है। इसमें भी 'हम झूठ नहीं बोलेंगे'—इस बातपर अटल रहो, 'हम सत्य बोलेंगे'—इस बातपर नहीं। त्यागकी बहुत बड़ी महिमा है। चाहे कुछ भी हो जाय, हम झूठ नहीं बोलेंगे। चाहे प्रतिष्ठा जाती हो, इज्जत जाती हो, पैसा जाता हो, हमारी कुछ भी हानि होती हो, पर हम झूठ नहीं बोलेंगे। सत्य बोलनेका अवसर आनेपर अगर आप कमजोर पड़ जाओ, सत्य बोलनेकी हिम्मत न रहे तो इतनी ढिलाई भले ही रख लो कि झूठ मत बोलो, चुप रह जाओ। सामनेवालेसे कह दो कि सभी बातें सबको बतानेकी नहीं होतीं, इसलिये हम नहीं बतायेंगे। हमारेमें सच्ची बात बतानेकी सामर्थ्य नहीं है; सच्ची बात कहनेका अभी विचार नहीं है; पूरी बात बतानेका हमारा मन नहीं है। वहाँसे उठकर चल दो कि 'हमें काम है।' काम यही है कि बताना नहीं है। ऐसा करनेसे 'हम झूठ नहीं बोलेंगे'—यह आपकी प्रतिज्ञा सत्य हो जायगी। यह आपको ऐसा उपाय बताया है, जिसको आप कर सकते हो।

आपने एक बार जो पक्का विचार कर लिया है, उस विचारकी फिर कभी हत्या मत करो। अपने विचारोंकी हत्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार-बार जन्म-मरण देनेवाली है। अतः अपना विचार पक्का रखो कि पदार्थ भले ही सामने आ जायँ, अब हम विचलित नहीं होंगे, अब हम थूककर नहीं चाटेंगे। अपने विचारपर दृढ़ रहनेसे आपमें एक शक्ति आयेगी, एक बल आयेगा। फिर आपकी यह दशा नहीं रहेगी। लोग भले ही आपको कायर कहें, आपकी निन्दा करें, उसकी परवाह मत करो। हमें तो अपने विचारोंको पक्का करना है।

आप जैसे हो, वैसा आपको सुगम साधन तो मैं बना दूँगा, पर धारण तो आपको ही करना पड़ेगा। आपको बहुत सुगम, बहुत सरल साधन मैं बता दूँगा और आपसे यह बात स्वीकार भी करा लूँगा, इस साधनको हम कर सकते हैं और इससे हमारा भला हो सकता है। आप केवल तैयार हो जाओ, इतनेमें काम बन जायगा। कारण कि मूलमें परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मनुष्यशरीर मिला है। अब परमात्मा नहीं मिलेंगे तो और क्या मिलेगा? संसार तो मिल ही नहीं सकता। वहम होता है कि रुपये मिल गये, कुटुम्ब मिल गया। सब खत्म हो जायगा, मिला कहाँ? संसार मिल नहीं सकता और भगवान्‌से अलग हो नहीं सकते, बिलकुल सच्ची बात है यह।

हम किसीका भी अहित नहीं करेंगे, किसीको भी दुःख नहीं देंगे—इसपर आप दृढ़ रहो। यह बात मामूली दीखती है, पर वास्तवमें इसका बहुत बड़ा माहात्म्य है। भजन, ध्यान, जप आदिसे इसका कम माहात्म्य नहीं है। यह बहुत कीमती बात है, पर लोग इसकी तरफ ध्यान नहीं देते, इसको ऐसे ही छोड़ देते हैं। जैसे रोग मिटनेपर भूख लगने लगती है और भोजन करनेपर शरीरमें ताकत आनी शुरू हो जाती है। पाचन ठीक होता है तो रूखा अन्न खानेपर भी शक्ति आने लगती है। इसी तरह आप अपने विचारपर दृढ़ रहो तो आपमें एक शक्ति आ जायगी। अतः अपने विचारपर पक्के रहो कि हम असत्य बोलेंगे ही नहीं, चाहे कुछ भी हो जाय। हम चतुराई नहीं करेंगे। इस बातसे आप मत डरो कि हमारी बेइज्जती हो जायगी। झूठ बोलकर छिपाव करोगे तो इससे बहुत बड़ी बेइज्जती होगी, कम नहीं होगी। बिना छिपावके आपकी बहुत इज्जत होगी। चालाकी करोगे तो अच्छे पुरुषोंके हृदयसे गिर जाओगे कि यह कोई कामका आदमी नहीं है। ठाकुरजीके हृदयसे गिर जाओगे। अतः चतुराई मत करो, सीधी-साफ बात कह दो। साफ बात कहनेसे कोई फाँसी थोड़े ही देता है? ऐसा करना कोई कठिन बात नहीं है। अपने कल्याणका विचार होनेसे यह बात बहुत सुगम हो जायगी। पहले थोड़ा-सा भय लगता है, फिर भय मिट जाता है।

अतः मेरेसे कोई बात पूछें तो मैं बता दूँगा, नहीं तो हजारों आदमियोंके सामने कह दूँगा कि मैं जानता नहीं। सीधी बात कहनेमें हमारेको क्या बाधा लगी? लोग हमारेको अज्ञ, मूर्ख मानेंगे, बेसमझ मानेंगे, और क्या होगा? समझदार मानकर कौन-सी भगवत्प्राप्ति करा देंगे और बेसमझ मानकर कौन-सी भगवत्प्राप्तिमें आड़ लगा देंगे? जो हम जानते हैं, वह बतायेंगे; जो नहीं जानते हैं, वह नहीं बतायेंगे और कई बातें ऐसी हैं, जो हम जानते हैं, पर नहीं बतायेंगे। मेरा ऐसा कहनेका काम पड़ा है कि तुम यह पूछते हो, पर इस बातको बतानेसे तुम्हें फायदा नहीं है, इसलिये नहीं बताऊँगा।

इस बातसे डरो मत कि हमारी पोल निकल जायगी। पोल निकल जायगी तो ठोस रह जायगी। पोल रखकर क्या करोगे? आश्चर्य आता है कि वेदव्यासजी महाराजने अपने जन्मकी बात श्लोकबद्धरूपसे कई बार लिख दी। क्या हृदय है उनका! इसके कारण वे पूजनीय हैं, आदरणीय हैं। सच्ची बात प्रकट करनेसे नुकसान नहीं होता। केवल वहम है कि नुकसान हो जायगा।

जो सेवाके कार्य हम स्वयं स्फूर्तिके कारण करते हैं, वही सच्ची सेवाके नमूने हैं। अपनी स्थिति और अपने आसपासके संयोगोंसे उत्पन्न होनेवाले कर्तव्यके अनुरूप सद्‌गुणोंका आचरण करना भी सेवा है। जैसे जो तुमसे अधिक बुद्धिमान् हैं, अनुभवी हैं, उनके प्रति पूज्यभाव रखना और अपनेसे कम जाननेवालोंकी रक्षा करना, यह भी उनके प्रति तुम्हारे प्रेमका सच्चा लक्षण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्धव-संदेश—२८

(डॉ॰ श्रीमहानामव्रतजी ब्रह्मचारी, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰, डी॰ लिट्॰)

व्रजाङ्गनाओंकी महामहिमाके विषयमें सोचते-सोचते श्रीउद्धवके मनमें महान् दैन्य उपस्थित हो गया। श्रीगोपीजनोंके पादपद्मोंमें अपने अशेष प्रणाम निवेदन करनेके लिये उनके मनमें उत्कट इच्छा जगी, किंतु वे गोपीजनोंके निकट जानेका साहस न कर सके, अतः कुछ दूर रहते हुए ही कहने लगे—

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥

(श्रीमद्भा॰ १०।४७।६३)

जिन व्रजाङ्गनाओंके हरिकथागानसे तीनों लोक पवित्र हो रहे हैं, उनके श्रीचरणोंके प्रत्येक धूलिकणकी मैं प्रतिक्षण वन्दना करता हूँ। अभी तो मैं दूरसे ही वन्दना करता हूँ, समीप जानेका सौभाग्य जब प्राप्त होगा तभी जाऊँगा। जिस दिन मैं श्रीवृन्दावनके किसी पथपार्श्वमें तृण-गुल्म-लता होकर जन्म ग्रहण करूँगा, उस दिन जब वे श्यामसुन्दरकी वंशीध्वनिसे दिग्विदिक्-ज्ञानशून्य होकर अभिसारहेतु वेगपूर्वक दौड़ी आयेंगी तभी तो मैं उनकी श्रीचरणधूलि अपने वक्षपर धारण कर सकूँगा।

उद्धवजीके अन्तरमें प्रबल वासना है कि वे वृन्दावनके पथपार्श्वमें तृण-गुल्म होकर जन्म ग्रहण कर सकें। श्रीकृष्णविरहसे कातर होकर गोपियाँ जब श्रीकृष्ण-कथा कहतीं, विरहव्यथित कण्ठसे जब श्रीकृष्णगुणगान गातीं, तब उद्धवजीके कर्णोंमें मानो मधुवर्षण होने लगता। उन्हें ऐसा लगता मानो गोपीजन-कण्ठोच्चारित हरिगुणगान त्रिभुवनको पवित्र कर रहा है **(पुनाति भुवनत्रयम्)**। केवल यही नहीं, उद्धवजीको लगता कि हरिविरहकातरा गोपीजनके महाभाव-सम्पद्के विषयमें जो भक्तजन कीर्तन करते हैं, वे भी त्रिभुवनको पवित्र करते हैं। गोपीजन धन्यातिधन्य हैं, उनके विषयमें जो चर्चा करते हैं अथवा जो उनकी चरणरज अपनी देहपर धारण करते हैं, उनका जीवन भी कृतकृत्य है।

श्रीकृष्ण-भक्तसमुदायमें उद्धवजी शीर्षस्थानीय हैं; यह बात श्रीभगवान्ने एकादश स्कन्धमें निजमुखसे ही कही हैं—**'त्वं तु भागवतेष्वहम्'**—अर्थात् उद्धव! निखिल विश्वके भागवतोंमें 'तुम्हीं' मैं हूँ।' इस श्रीमुखवाणीसे उद्धवका सर्वश्रेष्ठत्व सुस्थापित है। एतादृश श्रीउद्धवद्वारा व्रजगोपियोंके पदरेणु पानेकी स्पृहा सचमुच ही विशेषरूपसे चमत्कारी लगती है। उद्धवजीने तो अपने जीवनके अनेक वर्ष द्वारकाकी पट्टमहिषियोंके आस-पासमें व्यतीत किये हैं, किंतु उनके सम्बन्धमें भी उद्धवजीका एतादृश दैन्य कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। उद्धवजी जो भक्तश्रेष्ठ और श्रीकृष्णप्रेष्ठ हैं, उसके और जितने भी कारण क्यों न हों, किंतु उन सब कारणोंमें अन्यतम कारण यही है कि उद्धवजीने गोपियोंकी पदरेणु-प्राप्ति-हेतु गुल्म-लता होकर भी वृन्दावनमें जन्म-ग्रहणकी कामना की थी। इस सर्वोत्कृष्ट लालसाके लिये जगत्के भक्तसमाजने उद्धवजीको प्रणाम करते हुए कहा है—

श्रीमदुद्धवं वन्दे कृष्णप्रेष्ठवरोऽपि यः।
गोपीपदाब्जधूलिस्पृक् तृणजन्मोऽप्ययाचत॥

'हम श्रीकृष्ण-प्रियजनोंमें सर्ववरेण्य श्रीमान् उद्धवको प्रणाम करते हैं, क्योंकि गोपीपदधूलिकी कामना करके उन्होंने व्रजमें तृण-गुल्म होकर भी जन्म पानेकी इच्छा की।'

उद्धवजीको व्रजमें आये हुए दस मास हो गये, तब उन्होंने मथुरा लौटनेका विचार किया। प्रस्थानकी अनुमति लेनेके लिये वे सर्वप्रथम गोपीजनोंके पास, तत्पश्चात् माँ यशोदाजीके पास, तदनन्तर नन्दरायजीके पास उपस्थित हुए। इसके पश्चात् उन्होंने सभी गोपोंसे सम्भाषण किया। उद्धवजीके विदा-अनुमति लेनेके क्रमको देखकर भी ऐसा लगता है कि उन्होंने व्रजजनोंसे उनके श्रीकृष्णप्रेमोत्कर्षके तारतम्यानुसार ही विदा होनेकी आज्ञा माँगी—

अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नन्दमेव च।
गोपानामन्त्र्य दाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम्॥

(श्रीमद्भा॰ १०।४७।६४)

व्रजाङ्गनाओंमें श्रीराधिकाजीका प्रेम ही उच्चतम था। इसीलिये उद्धवजी सर्वप्रथम श्रीराधिकाजीसे विदा-अनुमतिकी प्रार्थना कर रहे हैं। श्रीउद्धव कह रहे हैं—'हे श्रीकृष्णप्रेयसी श्रीराधिकाजी! मैं आपके श्रीचरणोंकी संनिधिमें निवास करनेको सर्वश्रेष्ठ लाभ मानता हूँ, किंतु आपके प्रियतम आपका संवाद जाननेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठाके साथ प्रतीक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहे हैं। उनके उद्वेग-निवारण-हेतु एवं चित्त-विनोदन-हेतु अब मेरा अविलम्ब मथुरा जाना उचित है। इसीलिये मैं आपसे विदा होनेकी अनुमति-प्रार्थना कर रहा हूँ। श्रीकृष्णचरणोंमें यदि कुछ निवेदन करना हो तो इस दासके प्रति आदेश कीजिये।'

उद्धवजीकी वाणी अत्यन्त दीनता एवं विनयसे पूर्ण थी, कण्ठका स्वर भी विदाकी वेदनासे प्लावित था, तब अत्यन्त कातर कण्ठसे श्रीराधाजी बोलीं—'उद्धव ! मुझे तुमसे मात्र एक ही बात कहनी है। श्रीकृष्णकथा-वर्णन करते समय तुमने हमसे पुनः-पुनः यही कहा है कि श्रीकृष्ण हमारे विरहमें अत्यन्त कातर हैं। सम्भवतः तुमने ऐसा इसीलिये कहा है कि ऐसा सुनकर हमारे विरहदग्ध प्राणोंमें सान्त्वनाका संचार होगा। तुम्हारा ऐसा सोचना उचित भी है, कारण, प्राकृत जगत्में जो जिसके विरहसे कातर हो, उसे यदि सुनाया जाय कि उधरवाला भी तुम्हारे विरहमें व्याकुल है तो उसे किंचित् सुख एवं शान्ति प्राप्त होती है। जिनके वियोगमें मैं रो रही हूँ, वे भी मेरे वियोगमें उसी प्रकार अश्रुवर्षण कर रहे हैं, यह संवाद विरहिणीके लिये किंचित् सुख-शान्तिका कारण अवश्य बनता है, किंतु उद्धव ! तुम व्रजजनोंके श्रीकृष्णानुरागकी रीति कुछ भी नहीं जानते। श्रीकृष्णकी कातरताके संवादसे हमें सुख होना तो दूरकी बात है, एतद्विपरीत हमारे दुःखकी ज्वाला शतगुणा वर्धित ही होती है। 'श्रीकृष्ण सुखसे हैं' यह जान पानेपर हम अधिकतर सुखी होतीं। तुम व्रज-प्रेमके स्वरूपतत्त्वसे पूर्णतया अनभिज्ञ हो, इसीलिये तुमने पुनः-पुनः हमसे ऐसा कहा है। अब जानेके समय तुमसे हम जो कह रही हैं, उसे स्मरण रखना—

'श्रीकृष्ण हमारे विरहमें कातर हैं'—यह बात जिस प्रकार तुमने हमारे समक्ष कही है, उसी प्रकार 'हम भी श्रीकृष्णविरहमें कातर-हैं' ऐसा कभी भी उनसे मत कहना। कारण, हमारा हृदय तो वज्र-तुल्य है, इसलिये यह संवाद सुनकर भी यह विदीर्ण नहीं हुआ। यदि हमारा हृदय वज्र-सम कठोर न होता तो इस संवादके श्रवणमात्रसे यह खण्ड-खण्ड होकर फट जाता। श्रीकृष्णका हृदय तो हमारे-जैसा कठोर नहीं है, वह तो सतत नवनीत-सदृश कोमल है। हमारी दुर्दशाकी बात सुननेपर वे किसी भी प्रकारसे धैर्य धारण न कर पायेंगे और उनके लिये अपना प्राण रखना भी कठिन हो सकता है—

यथा मां सहसावादीस्तथा त्वं मा तमुद्धव।
अहं वज्रमयी शश्वन्नवनीतमयः स तु॥
किंतु स्नेहत्यागशिक्षां तं वद प्रान्तकक्षया।
क्रमेण हि बहिः कार्या जीर्णवस्त्रादार्द्रता बुध॥

(उत्तरगोपालचम्पू १२।८६-८७)

'यदि पूछो कि फिर उन्हें हमारी क्या बात सुनानी है, तो सुनो—हमारी दुर्दशाकी कहानी उन्हें एक बारमें ही एकदम मत सुना देना। शनैः-शनैः दस-पाँच दिनका अन्तराल दे-देकर एक-एक बात सुनाना और उसके बीच-बीचमें प्रत्येक दिन ऐसी सब बातें सुनाना, जिनसे हमारे प्रति उनका स्नेह कम होता-होता समाप्त हो जाय। जीर्ण वस्त्रको निचोड़कर जल निकालना हो तो ऐसा धीरे-धीरे ही किया जा सकता है। एकदम एक बारमें ही सब जल निकाल डालनेकी चेष्टा की जाय तो वस्त्र ही फट जायगा। ऐसा कहते समय एक अनिर्वचनीय शोकमय भावसे श्रीराधा अधीर एवं विह्वल हो गयीं। श्रीराधाने काँपते हुए हाथोंसे एक मुद्रित पत्र उद्धवजीके हस्तमें अर्पण किया। उस पत्रमें लिखा था—

व्रजशशधर ता व्रजगास्त्याज्या न कलङ्कशङ्कया भवता।
न शशी कलङ्कतनुमप्युज्झति शशकं स्वमाश्रितं जातु॥

(उत्तरगोपालचम्पू १२।८८)

'हे व्रजचन्द्र ! तुम वृन्दावनको अन्धकारमय करके वर्तमानमें मथुराके आकाशमें उदित हुए हो, तथापि कलङ्ककी आशङ्का-हेतु व्रजाङ्गनाओंका परित्याग मत कर देना। शशधर अपने अङ्काश्रित कलङ्कमूर्ति शशकका कभी भी परित्याग नहीं करता, सर्वदा उसे अपने वक्षपर धारण किये हुए ही गगनपथमें विचरण करता है। इसके लिये कोई उसपर लाञ्छन नहीं लगाता। हम भी तो तुम्हारी अङ्क-आश्रिता हैं, अतः हमें हृदयमें स्थान देनेसे तुम्हें कलङ्क नहीं लगेगा।'

तब उद्धवजीने पुनः पूछा—'आपके प्राणवल्लभको एक बार व्रज आनेके लिये अनुरोध करूँ क्या ?' श्रीराधाने अत्यन्त गम्भीर होकर उत्तर दिया—'नहीं ! जबतक वे निश्चिन्त होकर न आ सकें उतने दिन न आना ही श्रेयस्कर है। हम केवल उन्हें पाकर ही सुखी नहीं हुआ करतीं, उनके मुखमण्डलपर हास्य देखकर ही हम सुखी होती हैं। अनुरोधजन्य मिलन सुखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हुआ करता।' इसके पश्चात् उद्धवजीने सबसे विदा लेकर अपना रथ तैयार किया। रथपर सवार होनेके लिये वे धीर-धीरे अग्रसर होते हुए व्रजके बहिर्द्वारतक आ पहुँचे। सभी व्रजजनोंने रथके साथ उनका अनुगमन किया। व्रजराज नन्द, व्रजेश्वरी यशोदा एवं अन्यान्य सभी व्रजवासियोंने श्रीकृष्णके लिये प्रगाढ अनुरागके सहित नाना प्रकारके उपहार उद्धवजीको अर्पण किये। इन सब उपहारोंमें था नवनीत एवं छेनेकी बनी विविध सामग्री। माताओंने विशेषकर खाद्य द्रव्य ही दिये। सखाओंने वनफूल, मयूरपिच्छ, नानाविध फल-मूल दिये और व्रजदेवियोंने गुंजाहार एवं सूचिशिल्पयुक्त नाना वस्त्र दिये। इन सभी उपहारोंमेंसे प्रत्येकपर ऐसा कोई चिह्न अवश्य अङ्कित था, जिसके द्वारा श्रीकृष्ण उस उपहारके प्रेषकको पहचान जायँ। नन्दरायने वसुदेव, देवकी एवं उग्रसेन प्रभृतिके लिये दुग्ध एवं घृत आदि भेजे। किसी-किसीने उद्धवजीको भी नानाविध वस्त्रालङ्कार प्रदान किये।

नन्दबाबाको प्रबोध देते समय उद्धवजीने अनेक बार उन्हें यह समझानेकी चेष्टा की थी कि श्रीकृष्ण किसीके पुत्र नहीं हैं, वे तो स्वयं भगवान् हैं—**'न माता न पिता तस्य न भर्ता न सुतादयः।'** नन्दराय इस बातको कभी भी बोधगम्य नहीं कर सके थे। विदाके समय न जाने क्या सोचकर वे उद्धवजीसे कहने लगे—

मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः।
वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु॥
कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया।
मङ्गलाचरितैर्दानै रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे॥

(श्रीमद्भा० १०।४७।६६-६७)

वियोगमय पितृवात्सल्यजन्य तीव्र विषादसे अभिभूत होकर व्रजराज बोले—'हे उद्धव! तुम्हारे मतसे श्रीकृष्ण ईश्वर हैं, अच्छा, वैसा ही हो। उस कृष्णरूपी परमेश्वरमें मेरे मनकी समस्त वृत्तियाँ लगी रहें। वह मेरा पुत्र हो चाहे ईश्वर हो, उसके प्रति मेरा मन कभी उदासीन न हो। मेरी वाणी उसके नामका सतत कीर्तन करती रहे और मेरी देह उसकी सेवामें लगी रहे। अपने कर्मोंके फलस्वरूप भले ही मैं कहीं भी किसी भी योनिमें जाऊँ, किंतु वह मेरे द्वारा ऐसे शुभकर्मोंका अनुष्ठान कराता रहे, जिससे मेरी रति और मति सदा उसके श्रीचरणोंमें स्थिर रहे।'

ऐसा कहते समय नन्दराय वस्त्रद्वारा मुँह ढककर (**वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य**) नेत्रोंसे तीव्रवेगसे प्रवाहित अश्रुधारा संवरण करनेका प्रयत्न कर रहे थे। नन्दरायकी इस प्रबल कातरतासे स्पष्ट समझा जा सकता है कि उनकी यह उक्ति श्रीकृष्णके प्रति ऐश्वर्य-बुद्धिवशतः नहीं है। पुत्रवात्सल्यमें आप्राण डूबे हुए अत्यन्त दुःखसे व्याकुल होकर 'न जाने किस दोष-हेतु प्राण कृष्ण खो बैठा' इस असाध्य विचारकी व्यथासे ही इस प्रकारकी उक्ति उनके मुँहसे निकली है। श्रीशुकदेवजी भी कहते हैं—**'नन्दादयोऽनुरागेण प्रावोचन्'**—नन्दरायने अनुरागहेतु ही ऐसा कहा था, ऐश्वर्यबुद्धिसे नहीं, किंतु यदि अनुरागवश ही कहा था तो दास्यभावसे ईश्वरवाचक शब्दका प्रयोग क्यों किया? उसका कारण यह है—

कृष्ण प्रेमेर एक अद्भुत स्वभाव।
गुरु, सम, लघुके कराय दास्यभाव॥
आनेर का कथा व्रजे नंद महाशय।
सेइ कृष्णपदे रति मतिसे मागय॥

(चै० चरितामृत)

श्रीकृष्णप्रेमकी एक अपूर्व विचित्रता यह है कि वह परम गुरुजनोंके चित्तमें भी कभी-कभी लघुजनोचित दास्यभावका उदय करा देता है। दूसरेकी तो बात ही क्या है, नन्दराय भी श्रीकृष्णके श्रीचरणोंमें रति एवं मति माँग बैठे, किंतु ऐसा सब समय नहीं हुआ करता, प्रबल विरहकी अवस्थामें निजके प्रति श्रीकृष्णकी उदासीनता समझकर एक घनीभूत प्रबल दैन्य प्रकट होता है एवं क्षणभरके लिये गुरुजनोंमें भी दास्यभाव दिखायी पड़ जाता है।—**'विरहवैवश्येन विषयालम्बनस्य स्वस्मिन्नौदासीन्यज्ञानेन च जनिते महादैन्यस्वस्वभावविच्युतिर्दास्यभावग्रहणं च** (श्रीविश्वनाथ)।'

इस प्रकार नन्दरायने अपने गोष्ठीवर्गसहित उद्धवजीका अनुगमन किया था। रथके घोड़े भी धीरे-धीरे पदक्षेप करते हुए इस प्रकार चल रहे थे कि साथ चलनेवाले भी पैदल उनका साथ निभा सकें। बड़ी दूर चले जानेके पश्चात् उद्धवजी रथसे उतरे एवं प्रत्येकको गाढ आलिङ्गन तथा यथोचित अभिवादन करके उनसे निवृत्त होनेका अनुरोध किया। गमनसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवृत्त होकर सब वहीं तबतक कठपुतलीकी भाँति निश्चल खड़े रहे, जबतक कि रथकी ध्वजा दृष्टिगोचर होती रही।

उद्धवजी मथुरा चले जा रहे हैं। वृन्दावनमें तृण-लता होकर जन्म-ग्रहणकी कामना करके फिर व्रज छोड़कर मथुरा क्यों जा रहे हैं? यह प्रश्न प्रत्येकके मनमें अवश्य उठेगा। श्रीशुकदेवजीने इसका उत्तर एक शब्दमें मथुराका विशेषण देते हुए दे दिया है— '**कृष्णपालिताम्**।' मथुरा इस समय स्वयं श्रीकृष्णद्वारा प्रतिपालित है। श्रीकृष्ण इस समय स्वयं मथुरामें ही विराजमान हैं। ऐसी अवस्थामें उद्धव-सदृश प्रियजनके लिये तो मथुरा जाना ही एकान्त कर्तव्य हो जाता है। माधुर्य-गौरव-हेतु व्रजधाम सर्वशिरोमणि होते हुए भी प्रकटलीला-हेतु प्रभु जहाँ साक्षात् विराज रहे हों, भृत्यका कर्तव्य तो उनके पदपार्श्वमें अवस्थान ही होता है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीपादने '**कृष्णपालिताम्**'पदमें एक अन्य आशय भी खोज निकाला है। उद्धवजी जाते-जाते मन-ही-मन सोच रहे हैं—मथुरा जाकर प्रियसखा श्रीकृष्णसे कहूँगा कि मथुरावासियोंका तो वे इतने यत्नसे पालन कर रहे हैं, फिर व्रजवासियोंके प्रति औदासीन्य क्यों दिखा रहे हैं? क्या वे नहीं जानते कि मथुरावासी भक्तोंकी अपेक्षा व्रजवासी भक्तोंकी कृष्णप्रीति सहस्रगुणा अधिक गम्भीर है। मथुरावासी तो प्रतिपालित होंगे और व्रजवासी रोते-रोते प्राण त्याग देंगे, ऐसा अन्याय मैं अब और नहीं होने दूँगा। व्रज-प्रेमसे भावित मन-प्राण लिये उद्धवजी मथुराके राजमार्गपर चले जा रहे हैं। (क्रमशः) (अनु०—श्रीचतुर्भुजजी तोषणीवाल)

भगवत्प्रेम-चिन्तामणि

(डॉ० श्रीशुकरत्नजी उपाध्याय)

मानव-जीवन अथाह सागरकी भाँति रहस्यमय है और सदासे ही उसकी निरन्तर दुर्बोध पहेलीको सुलझाना मनुष्यके लिये सुलभ नहीं रहा है। जीवनकी समस्याका मौलिक और स्थायी समाधान जाननेके लिये समय-समयपर विश्वके महान् विद्वानों, संतों, महापुरुषों तथा जननायकोंने जीवन-सागरकी अतल गहराईमें उतरकर उसका मन्थन करके कुछ अनमोल रत्नोंको पाया है, फिर भी जीवनकी गूढ़ता अभीतक मिटी नहीं है। जीवन-यात्रासे श्रान्त मनुष्य ऐसी वीणा बनना चाहता है, जिसे सर्वशक्तिमान्का स्पर्श मिल सके, साथ ही ऐसी बाँसुरी भी, जिसमें उसकी साँस संचरित हो सके। जीवन है परम सत्ताकी करुणामयी कल्पलताका विकसित होता हुआ प्रसादात्मक सुरभित सुमन। अपने सम्पूर्ण अस्तित्वको प्रभुके साथ परम प्रेममय सम्बन्ध स्थापित करने और सृष्टिको भी भगवद्रूप समझकर अपने निर्दिष्ट कर्तव्यके प्रति जाग्रत् और समर्पित रखनेमें ही जीवनकी कृतकृत्यता है।

परम सत्ताके प्रति सर्वात्मना समर्पण ही 'प्रेम' या 'भक्ति' है। प्रेमका स्वरूप अनिर्वचनीय है—'**अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्**।' प्रेमका अर्थ है केवल भगवान्के सुखके लिये उनकी सेवाकी प्रबल वासना। भगवान्की प्रेम-सेवा चाहनेवाले भक्त अपने लिये कुछ नहीं चाहते। वे मोक्षकी भी कामना नहीं करते।

धर्मार्थकामैः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता।
समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा त्वयि॥

(विष्णुपुराण १।२०।२७)

(प्रह्लादने कहा है—हे प्रभो!) सम्पूर्ण जगत्के कारणरूप आपमें जिसकी निश्चल भक्ति है, मुक्ति भी उसकी मुट्ठीमें रहती है, फिर धर्म, अर्थ, कामसे उसे लेना ही क्या है?

प्रेमद्वारा भगवान्के माधुर्यका आस्वाद होता है, जिससे भव-बन्धन अपने-आप टूट जाता है। उसके न चाहनेपर भी उसका मायाजाल भी उसी प्रकार अपने-आप छिन्न-भिन्न हो जाता है, जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेपर अन्धकार दूर हो जाता है। प्रेम एक पारस्परिक व्यापार है। इसलिये प्रेमी भक्तमें भगवान्के प्रति जैसी ममता होती है, वैसी ही भगवान्में अपने भक्तके प्रति होती है। भगवान्ने स्वयं कहा है—

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

(श्रीमद्भा० ९।४।६८)

अर्थात् 'मेरे प्रेमी भक्त मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूँ। वे मुझे छोड़कर और कुछ नहीं जानते। मैं भी उन्हें छोड़कर और कुछ नहीं जानता। प्रेमी जिस प्रकार पूर्णतया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌के शरणागत और उनके अधीन होता है, भगवान् भी उसी प्रकार प्रेमी भक्तके पूर्णतया अधीन होते हैं'—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

(श्रीमद्भा० ९।४।६३)

'मैं सर्वथा भक्तोंके अधीन हूँ। मुझमें तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं है। मेरे सीधे-सादे सरल भक्तोंने मेरे हृदयको अपने हाथमें कर रखा है। भक्तजन मुझसे प्यार करते हैं और मैं उनसे प्रेम करता हूँ।'

साधकोंने जीवके परम लक्ष्य परमात्माकी प्राप्तिके लिये जीवमें कर्म, ज्ञान और भक्ति—तीनोंकी आवश्यकता बतायी है। भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये अथवा उनकी सतत सेवाके लिये कर्मकी आवश्यकता कौन स्वीकार नहीं करेगा और इस नश्वर शरीर तथा अविनाशी आत्माके भेदका ज्ञान प्राप्त करने एवं प्रभुके साथ अपना सम्बन्ध जाननेके लिये ज्ञान भी अपरिहार्य ही है। कर्म, ज्ञान और भक्ति—इन तीनोंके मेलसे एक अद्भुत त्रिवेणी—संगम बनता है। इस देशके अगणित लोगोंने सदासे इसी संगमपर परम सुख एवं शान्ति प्राप्त की है, किंतु उलझन वहाँ उपस्थित होती है, जहाँ प्रत्येक मार्गकी स्वतन्त्र सत्ताका डिंडिम घोष किया जाता है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

श्रेयःस्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥

(१०।१४।४)

इस श्लोककी श्रीधर स्वामिटीकाका भाव यह है—'जैसे धानको छोड़कर कणहीन भूसीके ढेरको पीटनेवालेको कुछ भी हाथ नहीं लगता, इसी प्रकार जो लोग तुच्छ समझकर भक्तिको छोड़कर केवल ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं, उन्हें केवल क्लेश ही हाथ लगता है।'

कर्ममार्ग और ज्ञान-मार्गके उपासकोंको भी भगवत्प्रेमकी आवश्यकता होती है। कर्ममार्गियोंको इसलिये कि कर्म जड होनेके कारण फल नहीं देते, फलदाता एकमात्र भगवान् ही हैं। ज्ञानमार्गियोंको इसलिये कि माया-बन्धनसे मुक्त हुए बिना मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती और उससे मुक्त होना भगवान्‌की कृपाके बिना सम्भव नहीं है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७।१४)

'मेरी दैवी गुणमयी मायाको अतिक्रमण करना जीवके लिये सम्भव नहीं है। जो मेरी शरण ग्रहण करते हैं, केवल वे ही इससे छुटकारा पाते हैं।'

यह प्रेम धर्म-जीवनसे पलायन नहीं, अपितु जीवनकी गहराइयोंमें उतरनेकी सीढ़ी है, जीवनके सम्पूर्ण रसको पीकर प्राणोंकी प्यास मिटानेका पथ है। प्रेम मनुष्यकी भाषामें सबसे मूल्यवान् शब्द है। प्रेमसे बड़ी और कोई क्रान्ति नहीं तथा न उससे बड़ी कोई पवित्रता और न कोई उपलब्धि ही है। जो उसे पा लेता है, वह सब कुछ पा जाता है। उसका अभाव ही सबसे बड़ी दरिद्रता है। मनुष्यका सम्पूर्ण दर्शन, सम्पूर्ण काव्य और समस्त धर्म प्रेमसे ही अनुप्रेरित है। भगवत्प्रेमकी गङ्गा जब अपने सम्पूर्ण प्रवेगके साथ बहने लगती है, तब परम मधुर श्रीकृष्णके सागरतक पहुँच जाना ही उसकी नियति है। वासनाओंकी आँधी और इच्छाके प्रचण्ड आक्रमण उसके वेगवान् अखण्ड प्रवाहमें बरबस ही बहे चले जाते हैं। श्रीअरविन्दके शब्दोंमें—'प्रेम समस्त सत्ताका किरीट है और परिपूर्णताका पथ है, वह कर्मोंका मुकुट और ज्ञानका प्रस्फुटन है। चेतनाका स्वरूप ही आनन्द है और आनन्दके शिखरकी कुंजी एवं रहस्य है—'प्रेम'। यह भगवत्प्रेम मनुष्यहृदयमें अन्तःसलिलाकी भाँति बहता हुआ वह निर्झर है जो उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्वको स्पन्दित, पुलकित और आप्लावित कर देता है। यद्यपि लोकमें जिसे प्रेम कहते हैं, वह अन्तःकरणकी वृत्तिविशेष है। किंतु श्रीकृष्णकी भक्ति मानव-मनकी वृत्ति नहीं है, वह तो अनाद्यनन्त आनन्दस्वरूप परब्रह्मकी स्वरूपशक्ति—ह्लादिनी- शक्तिकी वृत्तिविशेष है। जिस शक्तिद्वारा आनन्दस्वरूप परब्रह्म अपने आनन्दस्वरूपको भक्तोंकी अनुभूतिका विषय बनाकर स्वयं भी आत्मभूत परमानन्दका साक्षात्कार करते हैं, उस आनन्ददायिनी स्वरूपशक्तिका नाम ह्लादिनी है। प्रेम उसी ह्लादिनीका सार है। श्रीभगवान् जिस प्रकार नित्यसिद्ध वस्तु हैं, भगवत्प्रेम भी उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार नित्यसिद्ध है। प्रभु श्रीकृष्णकी स्वरूपशक्तिकी वृत्तिविशेष होनेके कारण यह भक्ति नित्य चिन्मय पदार्थ है। प्रभु श्रीकृष्ण अथवा उनके भक्तोंकी कृपासे भक्ति स्वयं स्फुरित होकर साधककी इन्द्रियोंको भी तादात्म्य प्रदान कर चिन्मयता प्राप्त करा देती है।

भक्तिका प्रत्येक अङ्ग साधन भी है और फल भी। भक्तिके सभी प्रमुख आचार्योंकी दृष्टिमें भक्ति स्वयं फलरूपा है। सब फलोंके फल हैं भगवान्। जहाँ वृत्ति उनसे एक हो जाती है, वहीं वह भक्ति बनकर कर्माशयग्रन्थिको सर्वथा उच्छिन्न कर देती है। भक्त्यानन्द भगवान्के स्वरूपानन्दसे भी कहीं श्रेष्ठ है, अर्थात् उस अनिर्वचनीय आनन्दसे भी श्रेष्ठ वह है जो भगवान्को स्वयं अपने स्वरूपसे प्राप्त होता है। इसीलिये उन्होंने दुर्वासासे कहा है—

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा॥

(श्रीमद्भा० ९।४।६४)

'हे ब्रह्मन्! मैं जिनकी परम गति हूँ, उन साधु-भक्तगणोंको छोड़कर मैं अपनी और अपनी आत्यन्तिकी श्रीकी भी अभिलाषा नहीं करता।'

भगवान्की भक्ति सर्वात्माकी सेवा भी है। विश्वात्माकी भक्ति करनेपर सम्पूर्ण विश्वको तृप्त करनेका फल मिल जाता है—

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन
तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां
तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥

(श्रीमद्भा० ४।३१।१४)

अर्थात् 'जिस प्रकार वृक्षकी जड़ सींचनेसे उसके तना, शाखा, प्रशाखा आदि सभीका पोषण हो जाता है और जैसे भोजनद्वारा प्राणोंको तृप्त करनेसे समस्त इन्द्रियाँ पुष्ट होती हैं, उसी प्रकार प्रभु श्रीकृष्णकी पूजा ही सभीकी पूजा है।'

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी कहा है—

उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम॥

प्रीति जितनी गाढ़ी होती है, आनन्द-रस भी उतना ही अधिक प्राप्त होता है। आनन्द-रस जितना गाढ़ा होता जाता है, प्रेम भी उतना ही मधुर होता जाता है। अनिर्वचनीय प्रेमकी वर्षा करनेवाली गोपियाँ जब विषय-सुख और धर्म-सुख—दोनोंमें आग लगाकर, अपने प्राणोंके अणु-अणुमें प्रभु श्रीकृष्णके मिलनकी प्यास जगाकर, काँटे-कंकड़ोंके ऊपर गिरती-पड़ती उन्मादिनी-सी बनकर कुंजों, बीहड़ वनों और पहाड़ी घाटियोंमें अपने प्रियतम श्यामसुन्दरको ढूँढ़नें निकल पड़ीं, तब क्या श्रीकृष्ण छिपे ही रह जाते? वे अपने सम्पूर्ण माधुर्य और परम सुखके साथ उनके बीचमें प्रकट हो गये।

प्रेमका यह दिव्य संगीत जब हृदयमें गूँजता है, तभी जीवनके इस सूखे उपवनमें सुख, शान्ति और आनन्दके पुष्प खिलते हैं। योगियोंके लिये भी अखिलात्मा भगवान्में अपनी प्रीति जोड़ देनेके समान अन्तःस्थ आत्माकी सनातन पूर्णताकी उपलब्धि अथवा आत्म-साक्षात्कारके लिये कोई दूसरा कल्याणकारी मार्ग नहीं है—

न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि।
सदृशोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्मसिद्धये॥

(श्रीमद्भा० ३।२५।१९)

अर्थात् 'योगियोंके लिये भगवत्प्राप्तिके निमित्त सर्वात्मा श्रीहरिके प्रति की हुई भक्तिके समान और कोई मङ्गलमय मार्ग नहीं है।'

ज्ञान-मार्गका उद्देश्य सर्वोच्च सत्तामें अपने-आपको मिला देना है और भक्ति-मार्गका उद्देश्य सर्वोच्च प्रेम और परमानन्दस्वरूप भगवान्के दिव्यतर, महत्तर और गहनतर मधुर सम्पर्कमें पहुँच जाना है, जहाँ अनिर्वचनीय परम सत्ताका महासागर अपने अनाद्यनन्त माधुर्यको उड़ेल रहा है। यह कृपा परमात्माका स्वभाव है और वह कहीं भी प्रकट हो सकता है। आश्चर्य तो यह है कि कर्म, ज्ञान, भक्ति, उपासना, वैराग्य, करुणा, सदाचार, यम, नियम आदि श्रेष्ठ साधनोंके मार्गपर अग्रसर होनेवाली जीवात्माओंको जैसे वह मिलता है, उसी तरह काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि दुर्गुणोंकी दिशाओंमें भटकनेवाली दुष्ट-साधन जीवात्माओंके सामने भी वह प्रेमाभक्तिके सुकुमार वनमें कभी कहीं अचानक प्रकट हो जाता है। वह किन-किन परिस्थितियोंमें और क्यों किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भटकती जीवात्माके समक्ष प्रकट हो जाता है, यह उसकी इच्छाका विषय है—

गोप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः ।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद् यूयं भक्त्या वयं विभो ॥

(श्रीमद्भा० ७।१।३०)

(श्रीनारदजीने महाराज युधिष्ठिरके प्रश्नोत्तरमें कहा कि—) 'गोपियोंने भगवान्‌से मिलनेके तीव्र काम अर्थात् प्रेमसे, कंसने भयसे, शिशुपाल, दन्तवक्त्र आदि राजाओंने द्वेषसे, यदुवंशियोंने परिवारके सम्बन्धसे, तुमलोगोंने स्नेहसे और हमलोगोंने भक्तिसे अपने मनको भगवान्‌में लगाया है।'

हम पृथ्वी, जल, तेज या वायुसे यह नहीं कह सकते कि वे कदम्ब या आमके वृक्षोंका तो पोषण कर सकते हैं, पर करील या बबूलके वृक्षोंका नहीं। सभी प्रकारके वृक्ष एवं वनस्पतियोंका पोषण पृथ्वी, जल, तेज एवं वायुसे होता है। सभी वृक्ष, सभी वनस्पतियाँ, सभी प्राणियोंकी देह इन्हीं पाँच तत्त्व—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशके असंख्य नाम और रूप हैं। कदम्बकी सुन्दरता अथवा करीलकी कुरूपताका सिद्धान्त प्रकृतिमें नहीं है, यह तो हमारे मनकी ही उपज है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशकी प्रकृतिमें सभी कुछ स्वाभाविक हैं। वसन्त-वर्षा-शरद् ऋतु जितनी सत्य हैं, उतनी ही ग्रीष्म-शिशिर-हेमन्त भी सत्य हैं। हमें कोई ऋतु सुहाती है और कोई नहीं, पर प्रकृतिमें सभी कुछ स्वाभाविक है। इसी प्रकार परम सत्ताकी कृपा भी अखण्डभावसे सबके ऊपर बरसती रहती है।

प्रेमाभक्तिके उपलब्ध हो जानेपर वे तुच्छ भाव अपने-आप झड़ जाते हैं, जिन खण्डित भावोंसे व्यक्ति टुकड़ों-टुकड़ोंमें टूट जाता है। कभी भीतर या जीवनमें ऐसे फूल खिल जाते हैं, जो धरतीपर कभी नहीं खिले। कभी ऐसा प्रकाश भर जाता है, जिसे बाहर सूर्य भी देनेमें असमर्थ है। कभी ऐसा अपूर्व आनन्द चारों ओरसे घेर लेता है, जो चाँद-तारोंसे, फूलोंसे, ओसकण तथा सूर्यकी ऊष्मासे एवं प्रातःकालकी ठंडी हवाओंके स्पर्शसे नहीं मिलता। जिसे जीवनमें हीरे मिल गये हों, उसे कंकड़ों-पत्थरोंके रखनेके लिये न सुविधा है, न शक्ति है, न कारण है। भक्तकी चित्तवृत्तियोंका बाहर फैलाव अपने-आप बंद हो जाता है। वह प्राणिक आवेगों और इन्द्रियोंकी पकड़से भी बाहर निकल जाता है। इन्द्रियाँ ही उसे प्रभु श्रीकृष्णतक पहुँचानेके लिये यन्त्र बन जाती हैं। श्रीहरिराम व्यास कहते हैं कि भक्तिके इस रस-सिन्धुकी माधुरी अगाध है, जिसके तन-मनमें यह रस प्रविष्ट हो जाता है, उसे फिर संसारमें कुछ और नहीं सुहाता। गीतामें भी इस भावको इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

(१०।९)

अर्थात् 'निरन्तर मेरेमें मन लगानेवाले (और) मेरेमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले (भक्तजन) सदा ही (मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा) आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा (गुण और प्रभावसहित) मेरा कथन करते हुए ही संतुष्ट होते हैं और (मुझ वासुदेवमें ही) निरन्तर रमण करते हैं।' (क्रमशः)

भगवान् श्रीरामसे भरतकी प्रार्थना

बिनती भरत करत कर जोरे।
दीनबन्धु ! दीनता दीनकी कबहुँ परै जनि भोरे॥
तुम्हसे तुम्हहि नाथ मोको, मोसे जन तुमको बहुतेरे।
इहै जानि, पहिचानि प्रीति, छमिए अघ-औगुन मेरे॥
यों कहि सीय-राम-पाँयनि परि लषन लाइ उर लीन्हें।
पुलक सरीर, नीर भरि लोचन, कहत प्रेम-पन कीन्हें॥
तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जो रघुबीर न ऐहौ।
तौ प्रभु-चरन-सरोज सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवतीय प्रवचन—२८

सत्संग ईश्वरकृपासे प्राप्त होता है

(संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)

शुकदेवजी कहने लगे—राजन्! संगका रंग मनको भी लगता है। मनुष्य जन्मसे ही भ्रष्ट नहीं होता। जन्मके समय तो वह शुद्ध होता है। बड़े होनेपर वह जिसके संग रहता है, उसीका रंग उसपर लगता है। जैसा संग होगा वैसा ही बनोगे। सत्संगसे जीवन उजागर होता है और कुसंगसे भ्रष्ट होता है।

सोचिये कि जब बालकका जन्म होता है, तो उस समय तो वह निर्व्यसनी ही होता है। उसमें न कोई बुरी आदत होती है और न तो कोई अभिमान। बड़े होनेपर जैसा संग मिलता है, वैसा ही उसका जीवन बनने-बिगड़ने लगता है।

आम्रवृक्षके चारों ओर बबूल लगाओगे तो आम नहीं मिलेंगे। विलासीका संग होगा तो मनुष्य विलासी हो जायगा और विरक्तका संग होगा तो विरक्त।चाहे सब कुछ बिगड़ जाय किंतु मन, बुद्धिको मत बिगड़ने दो। दिलपर लगा दाग तीन जन्मोंमें भी शायद नहीं मिटेगा।

संगका रंग मनको लगता ही है। ज्ञान, सदाचरण, भक्ति, वैराग्य आदिमें जो महापुरुष तुमसे बढ़कर हों, उन्हींका आदर्श अपने समक्ष रखो। प्रतिदिन इच्छा करो कि भगवान् शंकराचार्य-सा ज्ञान, महाप्रभुजी-जैसी भक्ति और शुकदेवजी-जैसा वैराग्य मुझे भी मिले। प्रातःकालमें ऋषियोंको स्मरण करनेसे उनके सद्गुण हमारे जीवनमें उतरते हैं। अपने-अपने गोत्रके ऋषिको भी स्मरण करना चाहिये। आज तो लोगोंको अपने गोत्रका भी नाम मालूम नहीं है।

प्रतिदिन गोत्रोच्चारण करो। प्रतिदिन पूर्वजोंका वन्दन करो। निरन्तर सोचते रहो कि मुझे ऋषि-जैसा जीवन जीना है, ऋषि होना है, विलासी नहीं होना है।

भगवान् श्रीराम भी प्रतिदिन वसिष्ठजीको वन्दन करते हैं, उनका सम्मान करते हैं।

सांसारिक व्यवहार निभाते हुए ब्रह्मज्ञान निभाना और भक्ति करना कठिन है। संगका प्रभाव भी प्रचुर होता है। चोरी और व्यभिचार महापाप माने गये हैं। ऐसा पाप करनेवाला यदि अपना भाई भी हो, तो उसे भी छोड़ दो। किसी जीवका तिरस्कार मत करो, पर उसके पापका तिरस्कार अवश्य करो।

धृतराष्ट्र-जैसे दुष्ट व्यक्तिके संगसे मेरा जीवन भी भ्रष्ट हो जायगा, यह सोचकर ही विदुरजीने गृहत्याग किया था और गङ्गातटपर रहकर भक्ति करते थे। भाजी खाकर ही वे संतुष्ट थे। इन्द्रिय-सुखमें फँसा मनुष्य भक्ति नहीं कर सकता। आहार ऐसा करो कि जो इन्द्रियोंको और जीवनको स्वस्थ रखे।

धृतराष्ट्रने विदुरजीके लिये वैसे तो बहुत कुछ भेजा था, किंतु उन्होंने कुछ भी ग्रहण नहीं किया था। पापीके घरका कुछ भी खाया नहीं जाता। अन्न-दोष प्रभुके भजन-कीर्तनमें बाधक है।

भगवान् जब कृपा करते हैं तब धन-सम्पत्ति नहीं देते, परंतु सच्चे साधुका सत्संग करवा देते हैं। सत्संग ईश्वरकृपासे ही प्राप्त होता है, किंतु कुसंगमें न रहना तो अपने हाथकी बात है, अपने बसकी ही बात है। कुसंगका अर्थ है नास्तिकका संग, कामीका संग। पापीका संग मत करो।

जीव (मनुष्य) जबतक लौकिक सुखोंका त्याग नहीं करता है, तबतक प्रभुको उसके प्रति दया नहीं आती। सर्वस्वका त्याग करके विदुर-सुलभा परमेश्वरकी आराधना कर रहे थे, तप कर रहे थे।

तपश्चर्या करनेसे पाप जलते हैं। जीव शुद्ध होता है। गृहस्थका यही धर्म है कि वह वर्षके ग्यारह मास घर-गृहस्थीमें बिताये और एक मास किसी पवित्र तीर्थस्थानमें एकान्तमें रहकर भगवान्की आराधना करे, तप करे। उस समय वह भक्ति-तपमें ही लगा रहे, अन्य प्रवृत्तियाँ छोड़ दे। जो भी काम करे, प्रभुके लिये ही करे। तप करनेसे परमात्मा प्रसन्न होते हैं।

तपका प्रथम चरण है जिह्वापर अंकुश। जिस व्यक्तिकी आवश्यकताएँ अधिक हैं, वह कभी तप नहीं कर सकता। आजकल लोग अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाते चले जा रहे हैं। परिणाम यह होता है कि सम्पत्ति और समयका व्यय इन्द्रियोंको बहलानेमें हो जाता है। मनुष्य साधना तो करता नहीं, ऊपरसे फरियाद करता है कि भगवान् ही दर्शन नहीं दे रहे हैं। भगवान् सुलभ नहीं दुर्लभ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदुरजीने परमात्माको प्रसन्न करनेके लिये बड़ी भारी तपश्चर्या की थी और तभी भगवान्‌को दया आयी कि मेरे इस भक्तने मेरे लिये कितने कठिन कष्ट उठाये हैं और वे बिना बुलाये ही विदुरजीके घर आ पहुँचे। विदुरजीका प्रेम ही ऐसा सच्चा था कि उनसे कुछ माँगनेकी स्वयं प्रभुकी इच्छा हुई।

जब भगवान्‌के हृदयमें हमसे कुछ माँगनेकी इच्छा जागे, तभी समझो कि तुम्हारी भक्ति सच्ची है। जहाँ प्रेम है, वहाँसे माँगकर भी खाया जाता है। प्रेम हो तो कन्हैया मक्खन माँगेगा। जहाँ प्रेम न हो, वहाँ बिना माँगे मिलनेपर भी खानेकी इच्छा नहीं होगी। परमात्मा प्रेमके अधीन हो जाते हैं। जो ईश्वरके साथ प्रेम करनेकी इच्छा रखता है, उसे चाहिये कि वह जगत्‌के साथ अधिक प्रेम न करे। जगत्‌के प्रति न तो तिरस्कार करो और न उससे अधिक प्रेम करो। प्रेम करनेके पात्र केवल ईश्वर हैं। उसीसे अधिक-से-अधिक प्रेम करे।

विदुरजीके घर परमात्माका आगमन हुआ। विदुरजी तथा सुलभाकी भावना और भक्ति सफल हो गयी। ठाकुरजीने उनके घरकी भाजीका भोजन किया।

सत्कार्य ऐसा करो कि बिना बुलाये भी भगवान् आनेकी इच्छा करें। मैत्री समान व्यक्तियोंमें होती है। यदि जीव ईश्वरके समान बने, तो उससे मिलनेके लिये भगवान् स्वयं आयेंगे।

प्रभुने धृतराष्ट्रके घरका पानीतक न पिया, सो कौरवोंका नाश हो गया।

दुर्योधनने पाण्डवोंका राज्य हड़प लिया। पाण्डवोंको वनवास मिला। वहाँसे लौटनेके बाद युधिष्ठिरने राज्यका अपना भाग माँगा। किंतु धृतराष्ट्र और कौरवोंने उसे देना अस्वीकृत कर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी ओरसे संधि करानेके लिये आये। किंतु कुरुराजने उनकी बात अनसुनी कर दी। फिर विदुरजीने भी धृतराष्ट्रको समझाया। विदुरजीने धृतराष्ट्रको जो न्याय और धर्मकी बातें समझायी थीं, वह 'विदुरनीति' कहलाती है।

जो औरोंके धनका हरण करता है, वही धृतराष्ट्र है। जिसकी आँखें केवल रुपया-पैसा ही देखती हैं, वह आँखें होते हुए भी अंधा ही है। पापी पुत्रपर प्रेम रखनेवाला पिता धृतराष्ट्र है। उस युगमें तो सम्भवतः एक ही धृतराष्ट्र था, आज तो हजारों-लाखों हैं।

विदुरजी धृतराष्ट्रसे कहने लगे—दुर्योधन पापी है। वह तेरा पुत्र नहीं है, किंतु तेरा पाप ही पुत्रका रूप लेकर आया है।

कई बार अपना पाप ही पुत्रका रूप लेकर आता है और सताता है। शास्त्रने कहा है कि दुराचारी पुत्र माता-पिताकी दुर्गति करता है। सदाचारी पुत्र माता-पिताकी सद्गति करता है। दुराचारी पुत्रका संग छोड़ दो। मान लो कि यह मेरा पुत्र नहीं है, परंतु मेरा पाप ही पुत्ररूपसे आया हुआ है। छोटे बच्चोंको पापका डर बताते रहनेसे वे मान जायँगे। आजकलका युवक पापका डर नहीं रखता है, अतः वह पाप भी खाता है।

विदुरजी कहते हैं—'हे धृतराष्ट्र ! दुर्योधन दुराचारी है। वह तेरे वंशका विनाश करनेके लिये आया है।' चोरी और व्यभिचार महापाप हैं। और सभी पाप क्षम्य हो सकते हैं, किंतु ये दोनों पाप क्षम्य नहीं हो सकते। कुछ चोर जेलकी हवा खाते हैं तो कई महलकी। चोर कौन है ? जो स्वयं परिश्रम नहीं करता और पराया धन हड़प कर जाता है, वही चोर है। जिसका है उसे दिये बिना ही जो खाता है, वह चोर है। किसीका कुछ भी मुफ्तमें मत खाओ। परिश्रम किये बिना जो खाता है वह चोर है। स्थिति ठीक होनेपर भी जो अतिथियोंका भलीभाँति सत्कार नहीं करता वह भी चोर है। जो अपने लिये ही पकाता है और खाता है, वह भी चोर है। अग्निको आहुति दिये बिना जो खाता है वह चोर है। मुनाफाखोर भी चोर है। सोचो कि इनमेंसे तुम भी किसी प्रकारके चोर तो नहीं हो ?

धृतराष्ट्र ! दुर्योधन चोर है। प्रभु तो पाण्डवोंको ही राजसिंहासनपर बिठायेंगे, क्योंकि प्रभुने उन्हें अपनाया है। धर्मराज तुम्हारे अपराधको क्षमा करनेको तैयार हैं।

धर्मराज अजातशत्रु हैं। भागवतने दो अजातशत्रु बताये हैं—एक तो धर्मराज युधिष्ठिर और दूसरे प्रह्लादजी।

धृतराष्ट्र ! तुम दुर्योधनका मोह छोड़ो। अन्यथा सारे कौरवकुलका विनाश होकर ही रहेगा।

दुर्योधन ऐसा दुष्ट था कि द्रौपदीके सौन्दर्यको देखकर जल रहा था।

धृतराष्ट्र कहता है—भाई ! बात तो तेरी सच है, किंतु दुर्योधनके मेरे पास आते ही मेरा ज्ञान लुप्त हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापका पिता है लोभ और माता है ममता। लोभ और ममता ही पापकी प्रेरणा देते हैं।

सेवकोंने दुर्योधनको समाचार सुनाया कि 'विदुर चाचा आपके विरुद्ध बोल रहे थे।' दुर्योधन आगबबूला हो गया और तत्काल उसने विदुर चाचाको राजसभामें बुलाकर उनका अपमान किया।

यक्षने युधिष्ठिरसे पूछा था कि सदाके लिये नरकमें किसे रहना पड़ता है? युधिष्ठिरने कहा—आमन्त्रित करके, इच्छापूर्वक, दुर्बुद्धिसे किसीका अपमान करनेवालेको सदाके लिये नरकमें रहना पड़ता है।

दुर्योधन विदुर चाचासे कहता है—तुम दासीपुत्र हो। मेरा अन्न खाकर मेरी ही निन्दा करते हो। मेरे घरमें रहकर मेरे ही विरुद्ध काम करते हो।

विदुरजी तो ऐसे धीर-गम्भीर थे कि निन्दाको सहन कर लेते थे।

सभामें निन्दासे विचलित न होकर जो उसे सह ले, वह संत है। समर्थ होते हुए भी जो सहे वह संत है। वह भगवान्‌का अवतार ही है।

वैसे तो विदुरजीमें इतनी तो शक्ति थी कि एक दृष्टिपातसे ही दुर्योधनको जलाकर भस्मीभूत कर दें। किंतु विदुरजीने अपनी इस शक्तिका उपयोग नहीं किया।

शक्तिका दुरुपयोग करनेवाला दैत्य है। शक्ति, सम्पत्ति और समयका विवेकपूर्वक सदुपयोग करनेवाला देव बन सकता है।

भगवान्‌की भगवत्ता

(श्रीजगन्नाथजी वेदालंकार)

'भगवान्' शब्द सुनते ही मनमें एक ऐसी सत्ताका चित्र उभर आता है, जो निखिल ब्रह्माण्डमें एकमात्र चरम और परम सत्ता है, जिसके बिना इस ब्रह्माण्डका कोई अस्तित्व ही नहीं, जो इसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका एकमात्र कारण है—**'जन्माद्यस्य यतः।'** (ब्रह्मसूत्र १।१।२)। वे भगवान् सर्वज्ञ और स्वयंप्रकाश हैं। उन्होंने ही अपने संकल्पमात्रसे ब्रह्माके हृदयमें वेदज्ञानका संचार कर उनके द्वारा मानव-जीवको वह ज्ञान प्रदान किया, जिससे वह अपने लौकिक अभ्युदय और मोक्षके लिये आवश्यक समस्त ज्ञान प्राप्त कर अपना परम कल्याण साधित कर सके। वे ही इस त्रिगुणात्मक सृष्टिके सत्यस्वरूप और सार हैं। उनकी ज्ञानज्योतिसे इस जगत्‌के सब प्रकारके छल-कपट और माया-जालका निरास होकर उनका परम सत्य पुनः-पुनः प्रतिष्ठित होता रहता है। उन्हें प्राप्त करनेके लिये हमें उनके परम सत्यका नित्य-निरन्तर हृदयमें ध्यान करना चाहिये। श्रीमद्भागवतके पहले श्लोक **'जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्'** आदिका गम्भीर आशय यही है, जो इन उपर्युक्त पङ्क्तियोंमें लिखा गया है।

विष्णुपुराणमें भगवान्‌की भगवत्ताका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव[1] षण्णां भग इतीरणा॥
ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥

(६।५।७४, ७९)

अर्थात् समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छःकी संज्ञा है भग। त्याग करने योग्य गुणों और उनके क्लेश आदिको छोड़कर अशेष ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज 'भगवत्' शब्दके वाच्य हैं।

ऐश्वर्य उस सर्वेश्वरत्व या सबको वशमें रखनेकी शक्तिको कहते हैं, जो सबपर अबाधगतिसे अपना प्रभुत्व स्थापित कर सकती है। धर्म उस तत्त्वका नाम है जिससे सबका धारण, सबका मङ्गल तथा सबका उद्धार होता है। यश अनन्त-ब्रह्माण्ड-व्यापिनी मङ्गलकीर्तिको कहते हैं। सब प्रकारकी सम्पत्तियोंकी जो एक मूल-सत्तारूपा महान् शक्ति है, उसे 'श्री' कहते हैं। समस्त सम्पत्तियों (साम्राज्य, यश, शक्ति, वैराग्य आदि) में जो स्वाभाविक अनासक्ति है, वही वैराग्य है। पूर्ण ज्ञान तो भगवान्‌का स्वरूप ही है। सर्वकालकी समस्त

१- पाठान्तर— वैराग्यस्याथ मोक्षस्य षण्णां भग इतीङ्गना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुओंके साक्षात्कारको 'ज्ञान' कहते हैं। असम्भव मानी जानेवाली घटनाको सम्पन्न करनेकी सामर्थ्य (कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं सामर्थ्यम्) ही शक्ति है। अनायास ही सबके धारण करनेकी शक्तिको बल कहते हैं। सबको नियन्त्रित एवं शासित करनेकी शक्ति ऐश्वर्य कहलाती है। वह शक्ति इस जगत्के समस्त चराचरपर ही नहीं, अपितु सकल देवों, यहाँतक कि सर्वसंहारक कालपर भी शासन कर सकती है। इसका उदाहरण भगवान् श्रीकृष्णने द्वापरयुगमें हमारे सामने उपस्थित किया। कालियनागके विषसे दूषित जलसे जो व्रजवासी मर गये थे, उन्हें भगवान्ने जीवित कर दिया, कालियका दमन करके अपने दृष्टिपातसे यमुनाके जलको विषरहित कर दिया। माता देवकी अपने छः मृत पुत्रोंको देखना चाहती थीं। उनकी इच्छासे प्रेरित होकर भगवान् पातालके मूलमें प्रवेश कर उनके पुत्रोंको ले आये। उन्होंने अपने गुरु सान्दीपनिके पुत्रको भी, जिसकी चिरकालपूर्व समुद्रमें जलसमाधिसे मृत्यु हो चुकी थी, जीवित कर दिया और उसे वे समुद्रतलसे ऊपर उठा लाये।

विश्व-ब्रह्माण्डके कारण होनेपर भी सहज विकारहीन रहना 'वीर्य' है। यह भगवान्की स्वाभाविक ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति है—**'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च'** (श्वेताश्वतर० ६।८)। अपनी ज्ञानशक्तिसे ही भगवान् श्रीकृष्णने सुभद्राहरणपर कुपित यादवोंको क्षत्रियश्रेष्ठ अर्जुनद्वारा उसके पाणिग्रहणपर राजी कराया और अपनी क्रियाशक्तिसे ही उन्हें उपहारसहित अर्जुनका सत्कार करनेके लिये भेजा।

सबको सहज ही अभिभूत-पराभूत करनेकी शक्तिका नाम है 'तेज'। उपर्युक्त उदाहरणके अतिरिक्त श्रीकृष्णकी लीलाओंमें इस तेजके अनेक उदाहरण मिलते हैं।

विष्णुपुराणके इस प्रकरणमें पराशरजीने षष्ठ अंशके पञ्चम अध्यायके ७३वें श्लोकसे लेकर ८६वें श्लोकतक 'भगवान्', 'वासुदेव' और 'परमेश्वर' शब्दोंकी हृदयग्राही व्युत्पत्ति एवं व्याख्या विस्तारसे की है। 'भगवान्' शब्दके प्रत्येक अक्षरकी नैरुक्त ढंगसे व्याख्या करते हुए वे मैत्रेयजीसे कहते हैं—

सम्भर्तेति तथा भर्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः।
नेता गमयिता स्रष्टा गकारार्थस्तथा मुने॥
वसन्ति तत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि।
स च भूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽव्ययः॥
एवमेष महाञ्छब्दो मैत्रेय भगवानिति।
परमब्रह्मभूतस्य वासुदेवस्य नान्यगः॥

(६।५।७३, ७५-७६)

'भगवत्' शब्दमें 'भ'कारके दो अर्थ हैं—सबका भरण-पोषण करनेवाला और सबका आधार। 'ग'कारका अर्थ है कर्मफलप्रदाता, लय करनेवाला और रचयिता। 'व'कारका अर्थ है अव्यय परमात्मा; क्योंकि वे स्वयं सब भूतोंमें वास कर रहे हैं और समस्त भूत उन अखिल-भूतात्मामें निवास करते हैं। हे मैत्रेय! इस प्रकार यह महान् 'भगवान्' शब्द परब्रह्मस्वरूप श्रीवासुदेवका ही वाचक है, किसी औरका नहीं।

अहल्या-उद्धार

रामपद पदुम-पराग परी।
ऋषितिय तुरत त्यागि पाहन-तनु छबिमय देह धरी॥
प्रबल पाप पति-साप दुसह दव दारुन जरनि जरी।
कृपासुधा सिँचि बिबुध-बेलि ज्यों फिरि सुख-फरनि फरी॥
निगम-अगम मूरति महेस-मति जुबति बराय बरी।
सोइ मूरति भइ जानि नयनपथ इकटकतें न टरी॥
बरनति हृदय सरूप, सील, गुन प्रेम-प्रमोद-भरी।
तुलसिदास अस केहि आरतकी आरति प्रभु न हरी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्का-समाधान—

भक्तोंपर संकट क्यों ?

(स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)

शङ्का—त्रितापनाशक त्रिशूलधारी श्रीशिवजी, सुदर्शन-चक्रधारी श्रीविष्णुजी तथा धनुर्धारी श्रीरामजीके रहते इनके भक्तोंपर भी संकट क्यों आते हैं ? इस शङ्काका समाधान शास्त्र, युक्ति तथा अनुभूतिके आधारपर बतानेकी कृपा करें।

समाधान—इस शङ्काका समाधान स्कन्दपुराणके नन्दभद्र-कमठ-संवादमें निम्न-रूपमें प्राप्त होता है—

स्वभक्तांस्तान्न दुःखेभ्यः कस्माद् रक्षन्ति मानवान्।
विशेषात् केऽपि दृश्यन्ते दुःखमग्नाः सुरान् रताः॥
शुचिर्वाभ्यर्चयेद् यश्च तस्य चेदशुभं भवेत्॥
तस्य पूर्वकृतं व्यक्तं कर्मणां फलमुच्यते।
तस्मादवश्यं च कृतं भोज्यमेव नरैः सदा॥
मुच्यते कोऽपि स्वकृतान्नैवेति श्रुतिनिर्णयः।
किंतु देवप्रसादेन लभ्यमेकं सुरव्रतैः॥
बहुभिर्जन्मभिर्भोज्यं भुज्येतैकेन जन्मना।
भोक्तव्यं स्वकृतं तस्मात् पूजनीयः सदा शिवः।

(स्कन्दपु०, माहे०, कुमा०, अ० ४६)

(नन्दभद्रने कमठसे पूछा—'भगवान्) अपने भक्त मनुष्योंकी दुःखोंसे रक्षा क्यों नहीं करते ? कुछ देवरत भक्त भी विशेष दुःखमग्न देखे जाते हैं ?

(इसका समाधान करते हुए कमठ कहते हैं—)जो पवित्र है, अर्चना करता है, उसका यदि अशुभ होता है तो उसके पूर्वकृत कर्मोंका फल प्रकट हुआ है, ऐसा कहा जाता है। मनुष्यको अपने (परिपक्व) कर्मोंको अवश्य ही भोगना पड़ता है। अपने किये कर्म-फलभोगसे कोई भी नहीं छूटता, ऐसा वेदका निर्णय है; किंतु देवकी कृपासे देवभक्तको एक लाभ होता है कि वह बहुत जन्मोंमें भोगने योग्य कर्मोंको एक जन्ममें ही भोग लेता है। इसलिये अपने किये कर्मोंको भोगना चाहिये और सदा शिवजीका पूजन करना चाहिये।

शङ्का—भगवान् तो सर्वसमर्थ हैं, इसलिये अपने भक्तके प्रारब्धको भी नष्ट कर सकते हैं। प्रारब्धको नष्ट करनेमें उन्हें क्या बाधा आती है ?

समाधान—'परिपक्व प्रबल प्रारब्धका भोग करना ही होगा', ऐसा नियम भगवान्ने स्वयं ही बनाया है। स्वयं बनाये हुए इस नियमके पालनमें बाधा होनेके कारण प्रबल प्रारब्धका नाश सर्वसमर्थ होते हुए भी भगवान् नहीं करते। इससे भगवान्में असमर्थता-दोषकी कल्पना नहीं करनी चाहिये। ***'भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी'*** आदि वचनोंद्वारा अप्रबल प्रारब्धके मेटनेकी ही बात शास्त्रोंमें कही गयी है। प्रबल प्रारब्धके लिये तो योगवासिष्ठके उपशम-प्रकरण (८९। २६) में कहा गया है कि सर्वज्ञ, बहुज्ञ, माधव हर कोई भी प्रारब्ध (नियति)को बदलनेमें समर्थ नहीं है—

सर्वज्ञोऽपि बहुज्ञोऽपि माधवोऽपि हरोऽपि च।
अन्यथा नियतिं कर्तुं न शक्तः कश्चिदेव हि॥

यदि मनुष्यद्वारा किये गये इस जन्मके शुभ-अशुभ अनुष्ठानोंसे प्रबल प्रारब्धका भी नाश हो जाय तो उसे 'प्रबल प्रारब्ध' कैसे कहा जा सकेगा। प्रबल प्रारब्धके नाश न होनेका नियम भगवान्ने प्राणियोंके हितके लिये ही बनाया है। इसी नियमके भयसे मनुष्य शुभ कर्म करता है और अशुभ कर्म नहीं करता।

एक पुत्रने अपने पिताकी बीमारीको दूर करनेके लिये प्रभुसे प्रार्थना की या मन्त्रका अनुष्ठान किया अथवा दान दिया। इन कार्योंसे पिताकी बीमारी दूर हो गयी। अपने इस प्रत्यक्ष अनुभवके आधारपर उसने दूसरी-तीसरी-चौथी बार भी प्रार्थना आदिसे पिताकी बीमारीको दूर कर दिया। यहाँ विचारणीय यह है कि जब-जब उसके पिता बीमार होंगे, तब-तब प्रार्थना आदिसे ठीक होते ही रहेंगे, कभी भी नहीं मरेंगे ? इस प्रश्नके उत्तरमें सभीको यही कहना पड़ेगा कि एक दिन तो अवश्य ही मरेंगे। इस विचारसे यह सिद्ध हुआ कि मृत्युदायक प्रबल प्रारब्धसे आनेवाली बीमारी प्रार्थना आदिसे भी नहीं नष्ट होती। जो बीमारियाँ प्रार्थना आदिसे नष्ट हुई हैं, वे अप्रबल प्रारब्धजन्य थीं। इस प्रकार युक्ति और अनुभूतिसे भी यही सिद्ध होता है कि प्रबल प्रारब्ध-भोगका नाश किसी साधनसे नहीं होता। शास्त्रोंमें भी कहा है कि कालमृत्युका नाश जप, होम, दान, मन्त्र, ओषधि आदि किसी साधनसे नहीं होता—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौषधानि न मन्त्राश्च न होमा न पुनर्जपाः।
त्रायन्ते मृत्युनोपेतं जरया वापि मानवम्॥
(विष्णुधर्मोत्तर० २।७८।२५)

जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्न शाम्यति।
(भविष्यपु० ४।४।८५)

इसी प्रकार कुछ लोग यह शङ्का किया करते हैं कि पुण्य कर्म करनेवालोंको भी दुःख क्यों भोगने पड़ते हैं? उसका समाधान करते हुए शास्त्रोंमें कहा गया है कि पुण्यका आचरण करनेवाले पुरुषोंको यदि दुःख प्राप्त हो तो संताप नहीं करना चाहिये, वह दुःख पूर्वदेहमें किये हुए कर्मका फल है। अपने (पूर्व) कर्मोंसे उत्पन्न अति-आपत्तिको प्राप्त करके मनुष्य जलते नहीं, धर्मकी निन्दा नहीं करते, इसे सहन करना ही तप है, ऐसा समझकर बुद्धिमान् उसे सहन करते हैं—

पुण्यमाचरतः पुंसो यदि दुःखं प्रजायते।
तदा तापो न कर्तव्यः तत्कर्म पूर्वदेहजम्॥
(पद्मपुराण० ६।१३१।११५)

दुर्गमामापदं प्राप्य निजकर्मसमुद्भवाम्॥
न संज्वरन्ति तैः सन्तो धर्मनिन्दां न कुर्वते।
इदमेव तपो मत्वा क्षिपन्ति सुविचेतसः॥
(स्कन्दपु० ५।३।१९८।३८-३९)

भक्तों तथा धर्मात्माओंपर भी संकट क्यों आते हैं? इस शङ्काका समाधान शास्त्र, युक्ति तथा अनुभूतिके आधारपर दिया गया कि 'अनिवार्य प्रबल प्रारब्धका भोग करानेके लिये संकट आते हैं।'

अन्य विद्वानोंके विचारानुसार भक्त तथा धर्मात्माकी परीक्षा संकटकालमें ही होती है, अतः जो जितना बड़ा भक्त या धर्मात्मा होता है, उसपर उतना ही बड़ा संकट डालकर उसकी परीक्षा ली जाती है। संकटरहित पूर्ण सुविधाकी अवस्थामें तो जनसाधारण भी प्रसन्न रहते हैं। भक्त तथा धर्मात्मा जब संकटमें भी भक्ति तथा धर्मसे विचलित नहीं होते, तब जनता उन्हें जानती है और यह मान लेती है कि अवश्य ही भक्ति तथा धर्ममें ऐसी शक्ति है, जिससे संकट भी उन्हें विचलित नहीं कर पाते। इस प्रकार भक्त-भक्ति तथा धर्म-धर्मात्मा व्यक्तिका संसारमें जैसा प्रचुर प्रचार होता है, वैसा प्रचार अन्य प्रकारसे नहीं होता। भक्त तथा धर्मात्मापर जब संकट आते हैं, तब वह संसारको दुःखदायी समझता है। इससे उसके हृदयमें संसारसे वैराग्य और भक्ति तथा धर्ममें अनुराग बढ़ता है।

रामकथा-मंदाकिनी

निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥
बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष बिभंजनि॥
रामकथा कलि पंनग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी॥
रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई॥
सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि॥
असुर सेन सम नरक निकंदिनि। साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि॥
संत समाज पयोधि रमा सी। बिस्व भार भर अचल छमा सी॥
जम गन मुँह मसि जग जमुना सी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी॥
सिवप्रिय मेकल सैल सुता सी। सकल सिद्धि सुख संपति रासी॥
सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। रघुबर भगति प्रेम परमिति सी॥
रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तगाथा—

भक्त राजा रत्नग्रीव

त्रेतायुगमें कांची नगरीमें रत्नग्रीव नामके एक धार्मिक तथा ईश्वरभक्त राजा राज्य करते थे। वे अपनेको प्रजाका सेवक मानते थे। राजाके समान ही कांची नगरीकी समस्त प्रजाएँ भी अपने वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार आचरण करती थीं। साथ ही सभी लोग भगवान्‌के भक्त और परस्त्री एवं पर-धनसे विमुख थे। सभीकी जिह्वापर सदा श्रीराम-नाम बसता था। राजा रत्नग्रीव लोभ छोड़कर प्रजासे केवल छठा हिस्सा कर वसूल करते थे। इसके अतिरिक्त प्रजापर कोई कर नहीं था। इस करमेंसे भी अधिकांश द्रव्य वे प्रजा-हितमें ही व्यय कर देते थे। उनके राज्यमें प्रजावर्ग सब प्रकारसे सुखी था। इस प्रकार धर्मपूर्वक प्रजापालन करनेमें उनकी आयुका बहुत अंश व्यतीत हो गया। यद्यपि उनका राज्यकार्य भी भगवत्सेवा-स्वरूप ही था तथापि उन्होंने अपना शेष जीवन तीर्थसेवन करते हुए श्रीभगवान्‌के भजनमें ही लगाना चाहा। इसी उद्देश्यसे उन्होंने एक दिन अपनी पतिव्रता पत्नी विशालाक्षीसे कहा—'प्रिये ! हमलोगोंकी वृद्धावस्था समीप आ चुकी है। अब हमें किसी महान् तीर्थमें जाकर अपना शेष जीवन केवल श्रीभगवान्‌के भजनमें ही बिताना चाहिये। भगवान्‌के अनुग्रहसे राज्यमें किसी प्रकारका अभाव नहीं है। प्रजाकी सेवा करनेके लिये पुत्र सुयोग्य हो गये हैं। अब मनुष्य-जीवनके परम लाभ—भगवत्प्राप्तिके लिये ही हमलोगोंको विशेष प्रयत्न करना चाहिये। जो मनुष्य जीवनभर केवल उदर-पोषणमें ही लगा रहता है, भगवान्‌की पूजा नहीं करता, उसे तो मनुष्य-रूपमें पशु या बैल ही समझना चाहिये।

यो नरो जन्मपर्यन्तं स्वोदरस्य प्रपूरकः।
न करोति हरेः पूजां स नरो गोवृषः स्मृतः॥

रानीने बड़े हर्षसे पतिके प्रस्तावका समर्थन किया। राजाने राज्यका समस्त भार पुत्रको सौंपकर तीर्थयात्राकी तैयारी की। भगवान्‌के ध्यानमें लगे हुए राजाको रातके समय नींद आ गयी। राजाने स्वप्नमें एक महान् तपस्वी ब्राह्मणको आये हुए देखा। दूसरे दिन राजाने राजसभामें स्वप्नमें दिखे ब्राह्मणके समान ही एक जटा-वल्कलधारी तपस्वी ब्राह्मणको आते हुए देखा। राजाने उन्हें प्रणामकर बड़े हर्षके साथ उनकी पूजा की। उनके भोजन और विश्राम कर लेनेपर राजाने कहा—'भगवन् ! आपके दर्शनसे मेरे सब पाप दूर हो गये। महापुरुष, दीन-पापी मनुष्योंके पाप नष्ट करके उन्हें पवित्र करनेके लिये ही कृपापूर्वक उन लोगोंके घर जाया करते हैं अन्यथा उन्हें और क्या प्रयोजन है ? आप महात्मा हैं, मेरी तीर्थसेवनकी इच्छा है, कृपा करके बतलाइये, मैं किस तीर्थमें जाकर निवास करूँ ? किस पुण्यक्षेत्रमें रहकर किनका भजन करनेसे मैं जन्म-मृत्युके चक्रसे छूट सकूँगा ?' ब्राह्मणने अयोध्या, हरिद्वार, अवन्ती, काशी, नीलाचल आदि तीर्थोंके माहात्म्यका वर्णन करके अन्तमें कहा—'राजन् ! आप नीलाचलमें पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जाकर भगवान् श्रीनारायणका भजन कीजिये। वहाँ जानेसे ही आपका कल्याण हो जायगा।' तदनुसार श्रद्धालु राजाने पुरुषोत्तमक्षेत्र जानेका निश्चय कर लिया। तीर्थयात्राकी विधि पूछनेपर ब्राह्मणने कहा—

राजन् ! तीर्थयात्राके लिये श्रद्धापूर्वक मनमें निश्चय करके पहले स्त्री-पुत्र-धन-गृह आदि पदार्थोंको अनित्य समझे और एकमात्र श्रीहरिको सत्य और नित्य समझकर उनका सदा स्मरण एवं राम-नामका उच्चारण करते हुए घरसे निकलकर किसी समीपके तीर्थमें क्षौरकर्मपूर्वक स्नान करे। तीर्थोंमें मनुष्यके पाप उसके केशोंका आश्रय करके रह जाते हैं, इसीसे मुण्डनकी विधि है। भगवन्नामका मनसे निरन्तर उच्चारण और श्रीहरिका स्मरण करते हुए यथासम्भव पैदल ही तीर्थ-यात्रा करनी चाहिये। किसी वाहनका आश्रय लेनेसे तीर्थका फल कम हो जाता है।

इस प्रकार राजाने ब्राह्मणद्वारा बतायी विधिसे तीर्थयात्रा करनेका मनमें निश्चय करके उनका चरण-वन्दन किया और मन्त्रियोंको बुलाकर उनसे कहा—'मन्त्रिगण ! आपलोग सारे राज्यमें इस बातकी घोषणा करवा दें कि राजा तीर्थयात्राको जा रहे हैं। जिनकी इच्छा हो और जो यमदण्डसे मुक्त होकर भगवान्‌को पाना चाहें, वे उनके साथ चल सकते हैं।' माताओंको भी श्रीहरिकी सेवा करनी चाहिये और अपनी संतानको भी इस ओर उन्मुख करना चाहिये। जिनके पुत्र-पौत्र श्रीहरिके शरणागत नहीं होते, उनकी वे संतानें (भी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूकरियोंके समूहके समान विष्ठा भक्षण करनेवाली होती हैं—

येषां पुत्राश्च पौत्रा वा हरिं न शरणं गताः।
शूकरीयूथवत् तेषां प्रसूतिर्विट्प्रभक्षिका॥

मन्त्रियोंने इस राजाज्ञाका प्रचार सारी प्रजामें कर दिया और तदनुसार प्रजामें बहुतसे नर-नारी आनन्दरसमें डूबे हुए-से अपने उद्धारका निश्चय करके प्रजावत्सल, पितृतुल्य नरपतिके साथ पुरुषोत्तमक्षेत्रकी ओर चलनेको तैयार हो गये। राजा अपनी प्रातःकालीन नित्यक्रिया करके ब्राह्मणदेवको साथ लेकर भगवान्‌को प्राप्त करनेकी तीव्र लालसा और उमगते हुए उत्साहके साथ तीर्थयात्राके लिये चल पड़े। प्रजाएँ भी पीछे-पीछे चलीं। काम, क्रोध और लोभकी वृत्तियोंसे शून्य राजा भगवान्‌का भजन-ध्यान करते हुए चलने लगे। एक कोस चलकर उन्होंने विधि-पूर्वक क्षौर-कर्म कराया तथा तीर्थयात्रीका वेश धारण किया और सब लोग गोविन्द-नामका कीर्तन करते हुए चलने लगे। रास्तेमें जहाँ विश्राम करते, वहीं भगवान्‌की कथा, भगवान्‌के लीला-गुणके सुन्दर पदोंका गायन हुआ करता। दीन-दुःखियोंको यथायोग्य दान दिया जाता। इस प्रकार यात्रा करते-करते राजा अपने आत्मीयजनों तथा प्रजाजनोंके साथ गण्डकी नदीके तीरपर पहुँचे। साथी ब्राह्मण देवताने गण्डकीका और शालग्रामका माहात्म्य सुनाते हुए कहा कि 'जिसके मस्तकपर तुलसी हो, हृदयपर सुन्दर शालग्राम-शिला हो और मुखसे राम नामका उच्चारण या कानसे श्रवण हो, वह व्यक्ति निश्चय ही संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। पूर्वकालमें प्रजापति ब्रह्माजीने सब प्रजाको विशेष पापमें लिप्त देखकर अपने गण्डस्थलके जलकी बूँदोंसे इस पापनाशिनी गण्डकी नदीको उत्पन्न किया था। यह अपने गर्भमें शालग्राम धारण करनेके कारण शालग्रामी या नारायणी भी कहलाती है।' ऐसा सुनकर राजा तथा अन्य सभीने गण्डकीतीर्थमें स्नान-तर्पणादि करके शालग्रामजीकी पूजा की।

तदनन्तर वहाँसे चलकर सभी गङ्गासागर-सङ्गमपर पहुँचे। तब राजाने ब्राह्मणसे पूछा—'भगवन्! अब नीलाचल कितनी दूर है?' ब्राह्मण बोले—'महाराज! हम नीलपर्वतके अंदर ही तो आ गये हैं। क्या आप यहाँ भगवान्‌की महिमा नहीं देख पाते हैं?' राजाने कहा—'भगवन्! मुझे आप यहाँ भगवान्‌के दर्शनका उपाय बताइये। आप जो कुछ कहेंगे, मैं वही करूँगा।' ब्राह्मण देवताने कहा—'जबतक भगवान्‌के दर्शन न हों, तबतक यहीं बैठकर सब लोगोंको भगवन्नामका कीर्तन करना चाहिये। कीर्तनसे प्रसन्न होकर भगवान् शीघ्र ही दया करेंगे। भक्तवत्सल भगवान् कभी भक्तकी उपेक्षा नहीं कर सकते। अतएव राजन्! भक्तिपूर्ण हृदयसे भगवान्‌का नाम-संकीर्तन करना चाहिये।'

ब्राह्मण देवताके परामर्शसे सब लोग भगवन्नामका कीर्तन करने लगे। तदनन्तर उपवासव्रती राजाने भगवान्‌से इस प्रकार प्रार्थना की—

'हे दीनोंके लिये दयानिधि प्रभो! आपकी जय हो। हे दुःखापहारक मङ्गलरूप! आपकी जय हो। भक्तोंके कष्टविनाशक, सद्गतिदायक! आपकी जय हो। दुष्टोंका वध करके उद्धार करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। भगवन्! ब्राह्मणके शापसे जिसके मङ्गल नष्ट हो रहे थे, उस अपने भक्त अम्बरीषको दुःखी देखकर सुदर्शन धारण करके आपने गर्भवास (पुनर्जन्म) से उसकी रक्षा की थी। दैत्यराज हिरण्यकशिपुने जब अपने पुत्र प्रह्लादको शूलसे मारकर, पाशमें बाँधकर, जलमें डुबाकर और आगमें डालकर मारना चाहा था, तब आप उसकी व्यथा मिटाकर श्रीनृसिंहावतार धारण करके दैत्यके सामने प्रकट हुए थे। ग्राहके मुखमें पड़े गजराजको महान् पीड़ित देखकर आप दयार्द्र होकर गरुड़का त्याग करके सुदर्शनचक्र लिये गजराजकी रक्षा-हेतु इतनी शीघ्रतासे दौड़ पड़े थे कि आपकी वनमाला और पीताम्बर हिलने लगे थे और आपने उसका उद्धार किया, आपकी इस उदारताको देखकर गजराजने आपका यशोगान किया था। हे मनोहर! हे पापनाशक भगवन्! जहाँ-जहाँ भक्तोंपर संकट आता है, वहाँ-वहाँ आप दिव्य विग्रह धारण करके भक्तोंकी रक्षा करते हैं। हे दीनानाथ! देवसमुदायोंके हिरण्यमय मुकुटोंसे आपके पाद-पद्मोंपर निरन्तर प्रणाम करनेसे आपके चरणकमल घिस गये हैं, फिर भी भक्तोंपर कृपा करनेवाले हे भक्तवल्लभ! हे कोटि-कोटि पापोंके दहन करनेवाले प्रभो! मुझे अपने चरणकमलोंका दर्शन कराइये। प्रभो! यद्यपि मैं पापी हूँ, फिर भी मेरे मनमें आपका निवास होनेके कारण आपका दर्शन करने आया हूँ, इसलिये आपको मुझे दर्शन देने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होंगे, क्योंकि हे सुरासुरपूजित, पापराशिविनाशक देव ! मैं आपका ही हूँ और मैंने आपके नामको नहीं भुलाया है। जो लोग आपके निर्मल नामोंका उच्चारण करते हैं, वे समस्त पापसागरसे तर जाते हैं, यदि संतोंके मुखसे सुनी हुई मेरी यह बात सत्य है तो मैं आपका सर्वदुःखहारी दर्शन पानेका अधिकारी हूँ ही।'

इस प्रकार निरन्तर स्तुति और कीर्तन करते हुए तथा 'हे कृपानाथ ! हे पुरुषोत्तम ! मुझे अपना स्वरूप दिखलाइये।' इस प्रकार आर्तभावसे पुकारते हुए उपवासव्रती राजाको पूरे पाँच दिन बीत गये। तब कृपालु भगवान्‌ने विचार किया कि 'मेरे नाम-गुण-गानसे राजा पापशून्य हो गया है, अब इसे दर्शन देना चाहिये।' तदनन्तर भगवान् संन्यासीके वेशमें राजाके सामने प्रकट हो गये। हरिचिन्तनपरायण राजाने '**ॐ नमो नारायणाय**' कहकर उन्हें नमस्कार करके अर्घ्य, पाद्य और आसनादिद्वारा उनकी पूजा करके कहा—'महात्मन् ! मैं बड़ा ही भाग्यशाली हूँ, जिससे मुझे आप-जैसे साधु पुरुषके दर्शन हुए। अब निश्चय ही मुझे श्रीगोविन्द भी दर्शन देंगे।'

संन्यासीने कहा—'राजन् ! मैं अपने ज्ञानबलसे तीनों कालकी बात जानता हूँ। उसी ज्ञानके बलपर मैं तुमसे कहता हूँ कि कल मध्याह्नके समय तुम्हें श्रीहरिके दुर्लभ दर्शन प्राप्त होंगे। दर्शन ही नहीं, तुम अपने चार आत्मीयजनों—अपने मन्त्री, अपनी रानी, तपस्वी ब्राह्मण और अपने नगरनिवासी करम्ब नामक साधुचरित जुलाहेके साथ परमपदको प्राप्त कर सकोगे।' इतना कहकर वे तेजः-पुञ्ज संन्यासी अदृश्य हो गये। राजा आश्चर्यचकित होकर देखते रह गये। उन्होंने इधर-उधर बहुत देखा, परंतु संन्यासीका कहीं पता न लगा। तब तापस ब्राह्मणने कहा—'राजन् ! आपके महान् प्रेमसे आकृष्ट होकर भगवान्‌ने ही संन्यासीके रूपमें आपको दर्शन देकर कृतार्थ किया है, अब कल मध्याह्नके समय हम सबको भगवान् अपने दिव्यस्वरूपमें दर्शन देंगे।' तापस ब्राह्मणके इन वचनोंसे उस समय राजाके हृदयमें ऐसा महान् आनन्द हुआ कि वे कभी तो श्रीहरिका नाम-गुण गाते हुए हँसने लगे, कभी नाचने लगे, कभी लीला सुनाने लगे, कभी नाम-संकीर्तन करने लगे। भगवान्‌के मिलनकी आशाके अमृतानन्दमें ही रात हो गयी। रातको भगवान्‌की लीलासे राजाको नींद-सी आ गयी। उन्होंने स्वप्नमें देखा—शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और शार्ङ्गधनुष धारण किये हुए भगवान् विष्णु अपने पार्षदों तथा श्रीमहादेवजी आदिके साथ नृत्य कर रहे हैं। प्रातःकाल जगकर राजाने अपने स्वप्नकी सारी बातें तापस ब्राह्मणसे कहीं। ब्राह्मणने हर्षित होकर कहा—'राजन् ! मालूम होता है भगवान् आपको अपना सारूप्य देना चाहते हैं।' राजाके आनन्दका पार न रहा। सब लोग भगवन्नामका गान करते हुए आगे चले। इतनेमें मध्याह्नकाल हो गया। स्वर्गमें देवता दुन्दुभि बजाने लगे और राजाके मस्तकपर स्वर्गीय पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी। इतनेमें ही राजाने देखा, करोड़ों सूर्योंके तेजको निष्प्रभ करनेवाला तेजोमय नीलाचल शोभित है, उसके चारों ओर चाँदी और सोनेके शिखर हैं। ब्राह्मणने कहा—'महाराज ! यही नीलगिरि है।' इसके अनन्तर नीलगिरिके शिखरपर राजाको भगवान्‌के दिव्य दर्शन हुए। राजाने पत्नी और सेवकोंसहित जगत्पतिको प्रणाम करके उनकी विधिपूर्वक पूजा की और फिर दिव्य शब्दोंमें उनकी स्तुति की। भगवान्‌ने प्रसन्न होकर राजाको अपना नैवेद्य दिया और कहा—

नैवेद्यभक्षणं त्वं हि शीघ्रं कुरु मनोहरम्।
चतुर्भुजत्वं प्राप्तः सन् गन्तासि परमं पदम्॥

'श्रेष्ठ राजन् ! इस नैवेद्यका भोग लगाओ, इससे शीघ्र ही तुम दुर्लभ मनोहर चतुर्भुज-विग्रहको प्राप्त करके परमपदको प्राप्त करोगे।' राजा अपने चारों स्वजनोंके साथ भगवान्‌के दिये हुए नैवेद्यको पाकर कृतार्थ हो गये। राजाने देखा आकाशमण्डलसे एक विचित्र विमान उतर रहा है। तदनन्तर भगवान्‌की आज्ञासे राजा अपनी पत्नी, सत्य नामक मन्त्री, तापस ब्राह्मण और करम्ब नामक जुलाहेके साथ विमानपर आरूढ़ हो गये। प्रभुकृपासे सभीको वैकुण्ठलोक एवं दिव्य चतुर्भुज-स्वरूप प्राप्त हुआ। देवताओंने दुन्दुभियाँ बजायीं। महात्माओंने स्तवन किया। प्रजावर्ग इस आश्चर्य-घटनाको देखकर भक्त राजा रत्नग्रीवकी प्रशंसा करते हुए तीर्थ-स्नान करके कांची नगरीमें लौट आये।

बोलो भक्त और भगवान्‌की जय !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े भाग मानुष तनु पावा

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

श्रोता—यह मनुष्य-शरीर बहुत दुर्लभ है, ऐसा संतोंने कहा है। ऐसा कोई उपाय बतायें, जिससे मनुष्य-शरीर पीछे मिल जाय!

स्वामीजी—गीताका रोजाना पाठ करो। जो गीताजीका रोजाना पाठ करता है, वह मरनेपर मनुष्य होता है और फिर उसको उत्तम मुक्ति प्राप्त हो जाती है—

गीताध्यायसमायुक्तो मृतो मानुषतां व्रजेत्।
गीताभ्यासं पुनः कृत्वा लभते मुक्तिमुत्तमाम्॥

लगभग सत्तर-पचहत्तर वर्ष पहले एक हेडमास्टरने मुझसे पूछा था कि मनुष्यको कम-से-कम, कम-से-कम कितना उद्योग करना चाहिये? मैंने उत्तर दिया कि कम-से-कम इतना उद्योग तो करना ही चाहिये, जिससे मनुष्य-शरीरसे नीचे शरीरमें न जाय। कम-से-कम जहाँ है, वहाँ ठहर तो जाय! उसने पूछा कि इसका उपाय क्या है? तो मैंने कहा—गीताका पाठ। वही बात आज भी है।

मनुष्य-शरीर बहुत दुर्लभ है—

'दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः।'

(श्रीमद्भा० ११।२।२९)

'लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह·····'

(श्रीमद्भा० ११।९।२९)

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः॥

(विवेक० ३)

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

(मानस, उत्तर० ४३।४)

कर्मोंके अनुसार चौरासी लाख योनियाँ भोगते-भोगते सब युग बीत जाते हैं— ***'लख चौरासी भोगते बीत जात जुग चार।'*** तब अन्तमें मनुष्य-शरीर मिलता है! यदि अधिक पाप होते हैं तो एक योनिमें भी कई बार जाना पड़ता है। ऐसे-ऐसे पाप भी होते हैं, जिनके कारण जीवको साठ हजार वर्षतक तो केवल विष्ठाका कीड़ा बनना पड़ता है—**'षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः।'** आसुरी योनियोंकी प्राप्ति जन्म-जन्मान्तरोंतक होती रहती है—**'आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि'** (गीता १६।२०)। इसलिये मनुष्य-शरीर बहुत ही दुर्लभ है। सज्जनो! जन्म-मरणके चक्करसे मुक्त होनेके लिये यह बहुत ही दुर्लभ मौका मिला हुआ है। जब मौका मिलता है, तब बहुत सुगमतासे काम हो जाता है। मौका चूक गये तो फिर जल्दी मौका मिलना मुश्किल है। हमने तो यह देखा है। हमारे पूजनीय, आदरणीय संत थे। उनके रहते हुए मनमें कोई बात आती थी तो चट उनसे पूछ लेते थे। परंतु उनका शरीर जानेके बाद मनकी बात मनमें ही रह जाती है। अब किससे पूछें? हिम्मत नहीं होती पूछनेकी, क्योंकि बढ़िया उत्तर देनेवाला, असली बात बतानेवाला मिलता नहीं। फिर ढूँढ़ते हैं तो किसी पुस्तकमें मिल जाती है अथवा उसका अपने-आप ही समाधान हो जाता है। परंतु जब मनमें आये, चट पूछ लें—वह सुलभता तो नहीं रही। इसलिये यह जो मौका मिला हुआ है, इसमें जल्दी-से-जल्दी अपना उद्धार कर लेना चाहिये।

श्रोता—स्वामीजी महाराज! यहाँका वायुमण्डल अच्छा न रहनेसे भगवान्‌में अच्छी तरहसे मन नहीं लगता!

स्वामीजी—मन न लगनेमें यह भी कुछ कारण हो सकता है, पर यह मुख्य कारण नहीं है। वायुमण्डल अच्छा रहनेसे परमात्मामें सुगमतापूर्वक मन लगानेमें सहायता मिलती है। परंतु वायुमण्डल कितना ही खराब क्यों न हो, मनुष्य अपना कल्याण सुगमतासे कर सकता है। भगवान्‌ने मनुष्यको यह स्वतन्त्रता दी है कि वह प्रत्येक परिस्थितिमें अपना कल्याण कर सकता है।

समय जितना नीचे जाता है, उतनी ही भजन-स्मरणकी कीमत बढ़ती है। जैसे, हमारे देखते-देखते वस्तुएँ कितनी महँगी हो गयीं! एक रुपयेकी जगह पाँच-दस, पंद्रह-बीस रुपये लगते हैं। पहले वस्तुएँ बहुत थीं। अब वस्तुएँ कम हो गयीं, तो उनकी कीमत बढ़ गयी। ऐसे ही आज समय गिर जानेपर भी भजन करनेकी कीमत बढ़ गयी है। थोड़ा भजन-स्मरण करनेवालेकी भी बड़ी भारी कीमत हो गयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले साधारण भजन-स्मरण, संयम आदिकी कीमत कम होती थी, क्योंकि पहले भजन-स्मरण करनेवाले, संयमी, सत्यवादी बहुत मिलते थे। पहले मारवाड़के वैश्य भाइयोंमें यह बात प्रसिद्ध थी कि अगर कोई कागजपर झूठी बात लिखता तो कहते—राम-राम ! 'धोले (सफेद) पर काला' ! 'धोलेपर काला' (सफेद कागजपर काला लिखना) का अर्थ होता है—गायके गलेपर छुरी चलाना। सफेद गाय, काली छुरी! परंतु अब ऐसा कहा जाता है क्या ? अब तो बही-की-बही झूठी लिखी जाती है ! अतः ऐसे समयमें कोई सच्चा काम करता है तो उसकी कीमत ज्यादा हुई कि नहीं ? इसलिये कहा गया है—

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

(मानस, उत्तर० १०३ (क))

कलियुगके समान दूसरा कोई युग नहीं है, जिसमें भगवान्‌के गुण गानेसे बिना प्रयास भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है।

कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥

(मानस, उत्तर० १०३। २)

बड़ी-बड़ी दुर्लभ चीजें भी भगवान्‌के नामका जप करनेसे सुलभ हो जाती हैं—'**कलौ केशवकीर्तनात्**।' अतः वायुमण्डल खराब होनेसे भगवान्‌में मन न लगे—यह नियम नहीं है। आजकल अनाज (गेहूँ, चावल, बाजरा आदि) बहुत महँगा हो जानेसे सबको बड़ी मुश्किल हो गयी है। हरेक कहता है कि बाजार खराब है। परंतु जिसके पासमें पहलेका बहुत सस्ता लिया हुआ हजारों मन अनाज पड़ा हुआ है, क्या वह भी कहता है कि बाजार खराब है ? वह तो कहता है कि मौज हो गयी ! ऐसे ही जो भजन नहीं करता, उसके लिये तो समय खराब है, पर जो भजनमें तत्परतासे लगा हुआ है, उसके लिये तो बहुत ही बढ़िया समय है।

कलियुग-जैसे समयमें भी यदि असली सत्संग मिल जाय तो अपने कल्याणके लिये खुद उद्योग नहीं करना पड़ता। अपने-आप ही काम ठीक हो जाता है।

बड़े भाग पाइब सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा॥

(मानस, उत्तर० ३३। ४)

एक आदमी खुद कमाकर धनी बनता है और एक आदमी धनीकी गोद चला जाता है। गोद जानेवालेको धनी बननेमें क्या जोर आया ? कल कँगला, आज लखपति ! ऐसे ही साधन करना खुद कमाकर धनी बनना है और सत्संग करना धनीकी गोद जाना है। सत्संगमें कमाया हुआ धन मिलता है। जिसका हम सत्संग करते हैं, उसने कितना अध्ययन किया होगा, कितनी पुस्तकें पढ़ी होंगी, कितनी साधना की होगी ! पर उसकी बात हमें चट मिल जाती है। क्या जोर पड़ता है ? इसलिये अगर ऐसा (सत्संगका) मौका मिल जाय तो विशेष लाभ ले लेना चाहिये, नहीं तो बड़ी मुश्किल हो जायगी !

का बरषा सब कृषी सुखानें। समय चुकें पुनि का पछितानें॥

कृषी सूख जाय, फिर वर्षा होनेसे क्या फायदा ? अतः समयपर चूकना नहीं चाहिये। अभी कलियुगका महान् पतनका समय है, और ऐसे समयमें कहीं सत्संग मिल जाय, सत्-शास्त्रोंकी बातें मिल जायँ, संत-महापुरुष मिल जायँ तो समझना चाहिये कि भगवान्‌की कोई विशेष कृपा हो गयी। अब कोई अपना उद्धार करना चाहे तो बड़ी सुगमतासे उद्धार हो जायगा।

गोस्वामीजी कहते हैं—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

(मानस, उत्तर० ४३)

समय खराब है, कलियुगका समय है, इसलिये भगवान्‌में मन नहीं लगता—यह समयको मिथ्या दोष लगाना है। हमारे भाग्यमें ही नहीं लिखा है, भजन कैसे करें ?—यह कर्मको मिथ्या दोष लगाना है। भगवान्‌ने ही ऐसा बना दिया, हम क्या करें ?—यह ईश्वरको मिथ्या दोष लगाना है।

पुराने कर्म भजन-ध्यान करनेमें बाधक नहीं होते। कर्मोंसे केवल परिस्थिति बनती है। फल देनेके लिये अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति बनाना—इतना ही कर्मोंका काम है। सुखी-दुःखी करना कर्मोंका काम नहीं है। जैसे नारदजी महाराजने कहा कि एक जन्ममें मैं दासीपुत्र था। संतोंकी सेवा करते समय एक बार माँ गाय दुहनेके लिये गयी तो उसको सर्पने काट लिया और वह मर गयी। बालकका पालन-पोषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेवाली माँ मर जाय तो बालकके लिये इससे बढ़कर और दुःख क्या होगा ? परंतु नारदजी दुःखी नहीं हुए, प्रत्युत खुश हो गये। कर्मोंका फल तो यही हुआ कि उनकी माँ मर गयी, परंतु नारदजी दुःखी नहीं हुए—यह कर्मोंका फल नहीं है। कारण कि सुखी-दुःखी होना मूर्खताका फल है, कर्मोंका फल नहीं है। जो मूर्ख (जड़) होता है, वह सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी होता है—

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं॥

(मानस, अयोध्या० १५०।४)

अतः समय, कर्म आदिको दोष देना वृथा है। जो स्वयं भजन नहीं करता, वही इनको दोष देता है। गोस्वामीजी कहते हैं—

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

(मानस, उत्तर० ४४)

ऐसा मौका पानेपर जो भजन नहीं करता, वह आत्मघाती, महापापी है। इसलिये समय आदिको दोष न देकर तत्परतापूर्वक भगवान्‌के भजन-स्मरणमें लग जाना चाहिये।

हम शाकाहारी ही क्यों रहें ?

(श्रीरामनिवासजी लखोटिया)

हमारे देशमें इधर कुछ वर्षोंसे परम्परागत शाकाहारी परिवारोंमें भी आधुनिक सभ्यताके नामपर या यों कहिये कि स्वादके नामपर या तथाकथित उत्तम स्वास्थ्यकी प्राप्तिके लिये अंडे और मांसके खान-पानका फैशन बढ़ रहा है। यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि शाकाहारी परिवारोंकी युवा पीढ़ीके लोग चोरी-छिपे विलासितापूर्ण जलपानगृहों या होटलोंमें मांस आदिका सेवन करते हैं। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। लेकिन केवल ऐसे व्यक्तियोंको बुरा-भला कहनेसे तो काम चलेगा नहीं। हमें धार्मिक एवं आध्यात्मिक पहलुओंके साथ-साथ वैज्ञानिक दृष्टिसे इस तथ्यकी यथार्थताको प्रतिपादित करना होगा कि शाकाहार ही प्रत्येक दृष्टिसे मांसाहारसे विशेष हितकर है। प्रस्तुत लेखमें इसीका प्रयत्न किया जा रहा है।

भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश है। वेदादि शास्त्रों तथा ऋषि-महर्षियोंने हमें यही उपदेश दिया है कि सभी जीव ईश्वरके अंश हैं। भारतीय संस्कृति प्रारम्भसे ही जीवमात्रकी रक्षाके पक्षमें रही है। हमारी जीवन-पद्धतिका आधार भी 'अहिंसा' ही रहा है। अपने सुख एवं स्वादके लिये निरीह पशु-पक्षियोंकी हत्याका निषेध ही भारतीय धर्मपरम्परा एवं सभ्यताका एक प्रमुख अङ्ग रहा है। इसी विचारधारासे प्रभावित होकर आज विश्वभरमें शाकाहारी व्यक्तियोंकी संख्या द्रुतगतिसे बढ़ रही है, किंतु खेद है कि भारतकी स्थिति इसके विपरीत हो रही है। हमारे ऋषि-मुनियों एवं संतोंने सदा मांसाहारसे विमुख रहनेका ही परामर्श दिया है। आयुर्वेदके प्रकाण्ड विद्वान् चरक एवं सुश्रुतने मांस तथा शराबकी गणना तामसिक भोजनके रूपमें की है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रिय भोजनमें केवल शाकाहारी भोजनका ही वर्णन किया है। इसलिये धर्म, आध्यात्मिकता एवं अहिंसाकी दृष्टिसे हम केवल जीभके स्वादके लिये पशु-पक्षियोंकी हत्यासे प्राप्त मांसयुक्त भोजनको कभी भी विहित नहीं मान सकते। एक प्राचीन कहावत है—'जैसा खाये अन्न, वैसा होवे मन।' इसलिये मांसाहार-जैसे तामसिक एवं अमेध्य भोजनसे तो हम तामसिक वृत्तिके ही बनेंगे। सभी जीवोंमें समानता एवं दिव्य भावनाकी दृष्टिसे भी मांसाहार कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता।

परंतु आजके वैज्ञानिक युगमें केवल धार्मिक विचार या भावनात्मक कारण ही शाकाहारके पक्षमें पर्याप्त नहीं समझे जाते। मांसाहारके बढ़ते हुए फैशनमें निरन्तर अग्रसर व्यक्तियोंसे पूछताछ करनेपर पता चलता है कि वे मांसाहारको स्वास्थ्यकी दृष्टिसे शाकाहारसे अधिक हितकर समझते हैं और इसका मुख्य पहलू है—प्रोटीन। जो व्यक्ति मांसाहारके समर्थनमें यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि मांससे ही अच्छी किस्मका प्रोटीन प्राप्त हो सकता है, उन्हें विचार करना चाहिये कि प्रोटीन वह आवश्यक तत्त्व है, जो हमारे शरीरमें नये तन्तुओंका निर्माण करके पुराने तन्तुओंका भी संरक्षण करता है। किंतु वह प्रोटीन मांसमें मात्र २५% पाया जाता है, जब कि सोयाबीनमें ३८%, मूँगफलीमें ३०% और सामान्य दालोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगभग २२ से २५% तक पाया जाता है। यदि गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का आदिके साथ पर्याप्त मात्रामें दाल एवं हरी सब्जियोंका सेवन किया जाय तो प्रोटीनकी आवश्यकता शाकाहारी बने रहनेपर भी पूरी हो जाती है। आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानोंसे यह सिद्ध हो गया है कि शाकाहारी व्यक्ति मांसाहारी व्यक्तिसे किसी भी स्थितिमें कम स्वस्थ नहीं रहता, प्रत्युत अधिक स्वस्थ ही रहता है। भारतमें गरीब बच्चोंकी दुर्बलताका कारण प्रोटीनकी कमी नहीं, अपितु पर्याप्त भोजनकी कमी है, जो उन्हें शाकाहारी भोजनद्वारा प्राप्त करायी जा सकती है।

आजकल प्रायः यह सुननेमें आ रहा है कि बच्चोंको अंडे आदिके सेवनसे अधिक स्वस्थ बनाया जा सकता है। यह एक भ्रान्ति है, जिसका निराकरण १९८५ के 'नोबेल' पुरस्कार-विजेता डॉ० माइकल एस० ब्राउन तथा डॉ० जोसेफ एल० गोल्डस्टीन नामक दो अमेरिकन डॉक्टरोंने किया। उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि हृदयरोगके कारण ही अधिकांश मौतें होती हैं। उनके अनुसार कोलस्टेरोल नामक तत्त्वको रक्तमें जमनेसे रोकना बहुत आवश्यक है, और यह तत्त्व अंडोंमें सबसे अधिक मात्रामें पाया जाता है। यह वनस्पतिमें नहींके बराबर होता है, परंतु मांस, अंडों और जानवरोंसे प्राप्त वसामें प्रचुर मात्रामें होता है। अब यह भी सिद्ध हो गया है कि अंडा सुपाच्य नहीं है, प्रत्युत अंडेके छिलकेपर लगभग १५ हजार सूक्ष्म छिद्रोंके द्वारा कई जीवाणु अंडेमें प्रवेश कर जाते हैं, जो उसे दूषित कर देते हैं। इस प्रकार वैज्ञानिकोंने अब यह सिद्ध कर दिया है कि जो व्यक्ति मांस या अंडे खाते हैं, उनके शरीरमें 'रिस्पटरो'की संख्यामें कमी हो जाती है, जिससे रक्तके अंदर कोलस्टेरोलकी मात्रा अधिक हो जाती है। इससे हृदयरोग शुरू हो जाता है। इससे गुर्देके रोग एवं पथरी-जैसी बीमारियोंको भी बढ़ावा मिलता है। यही कारण है कि 'इंटरनेशनल वेजिटेरियन यूनियन' एवं अन्य शाकाहारी संस्थाओंद्वारा शाकाहारको विदेशोंमें बहुत सम्मानकी दृष्टिसे देखा जा रहा है।

यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि प्रकृतिने सुस्पष्टरूपसे हिंस्र, मांसभोजी तथा अहिंसा-प्रधान शाकाहारी मानव-योनिको स्वभावतः पृथक्-पृथक् लक्षणोंसे विभक्त कर रखा है। प्रायः सभी मांसाहारी जीवोंकी सभी इन्द्रियाँ विशेषकर मुखकी स्थिति भिन्न है, वे प्रायः जन्मके बाद सप्ताहान्ततक दृष्टिशून्य होते हैं, उसके बाद रात-दिनमें समान दृष्टिसे देखते हैं तथा उनकी आँखें रात्रिमें चमकती रहती हैं। उनके दोनों ओरके जबड़े अत्यन्त सुदृढ़ होते हैं, उनकी घ्राणशक्ति अत्यन्त तीव्र होती है और पानी पीते समय केवल जीभको चलाते हुए थोड़ा-थोड़ा जल ग्रहण करते हैं। उनके शब्द भी कर्कश एवं भयंकर होते हैं। जैसे बिल्ली, कुत्ते, शृगाल, भेड़िया, व्याघ्र, सिंह आदि। इनमें श्येन, उलूक, गृध्र आदि पक्षी भी सम्मिलित हैं। इसी प्रकार उनकी श्रोत्र आदि इन्द्रियोंमें भी वैलक्षण्य दीखता है तथा हाथ-पैरोंके पंजे भी गद्दीदार तथा नाखून बाहर निकलते-बंद होते हैं।

दूसरी ओर मनुष्य, गौ, अश्व, गज, शुक पक्षी आदि जनमते ही देखते हैं, जल आदि सीधे पीते हैं, उनके दाँत सीधे और समान होते हैं, वाणी भी मधुर होती है, दृष्टि रात्रिमें नहीं देख सकती, प्रकाशकी आवश्यकता होती है। इसी प्रकार श्रोत्र-घ्राण आदि शक्तियाँ मांसभोजी प्राणियोंसे भिन्न होती हैं।

इसलिये यह प्रकृतिसिद्ध है कि मनुष्य किसी भी प्रकारसे मांसाहारी नहीं हो सकता, वह स्वभावसे शाकाहारी है।

अतः हम सब सामान्यतः शाकाहारी परिवारोंका धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिसे भी यह कर्तव्य होता है कि विलासिताके अनुकरण या प्रतिस्पर्धामें हम मांसाहारी न बनें। इसके अतिरिक्त जो मांसाहारी परिवारोंके सदस्य हैं, उन्हें उपर्युक्त कारणोंसे शाकाहारीके रूपमें अपने-आपको परिवर्तित करना चाहिये। इस दिशामें सरकारसे भी प्रार्थना है कि वह दूरदर्शन, रेडियो आदिके माध्यमसे अंडे एवं मांसाहारको प्रोत्साहन न दे, प्रत्युत शाकाहारको ही महत्त्व प्रदानकर उसका उचित स्थान उसे दिलाये, जिससे हम निरीह प्राणियोंकी जीवन-रक्षामें विशेष सफलता प्राप्त कर सकें।

जिस कमजोरी या त्रुटिके लिये तुमसे क्षमा माँगी जाती है, वह कमजोरी या त्रुटि भविष्यमें उस मनुष्यमें न दिखायी पड़े, ऐसे रास्ते उसे लगाकर स्नेहपूर्वक और आतुरताके साथ उसके लिये प्रयत्न करना ही सच्ची क्षमा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

[परमार्थ-पत्रावली]

(१)

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। आप भगवान्‌के लिये रोते हैं तब भी आपको दर्शन नहीं हुए, इसका कारण पूछा, सो इसका कारण मैं क्या बताऊँ ? सम्भव है, आपने अपने हृदयको शुद्ध अर्थात् सांसारिक पदार्थोंसे खाली नहीं किया होगा, उसमें दूसरी आवश्यकताएँ भी भरी होंगी। ऐसा न होता और एकमात्र प्रभुकी आवश्यकता बच रहती, तब तो भगवान् देर नहीं कर सकते। साधकका तो बस, इतना ही काम है कि वह भगवान्‌के मिलनकी चाहको एकान्त और अनिवार्य बना ले। जबतक भगवान् न मिलें, चैन न पड़े तथा उस परम सुहृद् अकारणकरुणा-वरुणालय भगवान्‌की कृपापर यह दृढ़ भरोसा, यह दृढ़ विश्वास रखे कि उस अहैतुकी कृपासे भगवान् मुझे अवश्य दर्शन देंगे।

एक संतने जो आपसे कहा कि 'हजारों वर्ष रोते जाओ तो भी कुछ न होगा' सो उन संतने यह बात किस भावसे कही, यह तो वे ही जानें, परंतु आपको उनकी बातपर ध्यान देकर कभी निराश नहीं होना चाहिये। मिलना-न-मिलना तो भगवान्‌के हाथकी बात है, परंतु साधकका काम पुकारते रहना और आशा लगाये रहना है। उसकी पुकार तो दिन-दूनी और रात-चौगुनी बढ़ती ही रहनी चाहिये। बादल यदि वर्षा न करे, पानीके बदले यदि पत्थरोंकी वर्षा करके पपीहेकी पाँखें तोड़ डाले, तब क्या पपीहा पुकार लगाना छोड़ दे ? क्या वह निराश हो जाय ?

संसार स्वप्नवत् दिखायी दे, यह तो बहुत ही अच्छी बात है।

दूकान और उसका काम अपना न समझकर उस प्रियतम (भगवान्) का समझें और उनकी प्रसन्नताके लिये ही इस भावसे करें कि इस कामको सुचारुरूपसे करनेपर मेरा प्रियतम उसी प्रकार मुझपर प्रसन्न होगा, जिस प्रकार किसी एक नाटक-कम्पनीका स्वामी अभिनेताके सर्वथा सफल अभिनयपर होता है।

रात्रिमें स्वप्नमें कभी-कभी इष्टदेवके दर्शन होते हैं, यह तो अधिक आशावर्धक बात है। स्त्री-भोगकी इच्छाका होना ही इस बातको प्रमाणित करता है कि भगवान्‌के अतिरिक्त अन्य विषयोंकी आसक्ति तथा चाह भी हृदयमें है। यही तो विलम्बका कारण है।

दूसरे महात्मा, जो साकारका खण्डन करते हैं, वे साकारके रहस्यको नहीं जानते। अतः उनसे हाथ जोड़कर क्षमा माँग लेनी चाहिये। आपका यह समझना कि मेरा प्रियतम कण-कणमें सर्वत्र है, बहुत ठीक है, परंतु वह जब सर्वत्र है तब क्या मूर्तिमें नहीं है ? अवश्य है। यह बिलकुल ठीक है कि वह इष्टदेव निर्गुण भी है और सगुण भी, निराकार भी है और साकार भी।

भगवान्‌के दर्शन तो एकमात्र उन्हींकी कृपासे होते हैं। प्रारब्धका इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। संसारसे जितना अधिक वैराग्य हो, अच्छा है।

अपने-आपको ईश्वरके प्रति सौंप देना, उन्हींपर निर्भर हो जाना, यह तो सर्वोपरि साधन है। गुरु करनेके लिये कहनेवाले संतोंको हाथ जोड़कर कह देना चाहिये कि मैंने तो एक परमात्माको गुरु बना लिया है। जो सबका गुरु है, वही मेरा गुरु है। यह मनमें दृढ़ रखना चाहिये कि फिर अन्य गुरुकी आवश्यकता नहीं रहेगी। आजकल गुरु बननेवालोंकी भरमार है, उनसे तो अलग रहना ही अच्छा है।

अपने साधनपर अटल विश्वास रखना चाहिये। साधनके विरोधी भावोंको मनमें स्थान नहीं देना चाहिये, भगवान्‌पर निर्भर हो जानेके बाद डर किस बातका ?

प्रेमकी कभी पूर्णता नहीं होती। यह तो नित्य नया रहता है। प्रेमका स्वरूप अनन्त है। अतः यह नहीं समझना चाहिये कि मेरा प्रेम पूर्ण है और यह भी अभिमान नहीं करना चाहिये कि साधनके बलसे भगवान् मिलेंगे। भगवान् तो अपनी कृपाके वश होकर ही मिला करते हैं, उनसे बिना मिले रहा नहीं जाता।

कमजोरीका लक्ष्य करानेवाले और मिटानेवाले तो एकमात्र वे प्रियतम ही हैं। उनके सिखानेके ढंग अनेक प्रकारके होते हैं। जिसने अपनेको उनपर छोड़ दिया, जिसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराश होकर एकमात्र उनपर ही विश्वास कर लिया, जो उन्हींपर निर्भर हो गया, उसका जीवन व्यर्थ कैसे जा सकता है? जीवन तो उसी दिन, उसी समय सार्थक हो गया, जब यह जीव अपने परम सुहृद् प्रभुपर सरल विश्वास करके उनपर निर्भर हो गया। निर्भर भक्तके पास काम-क्रोधादि दुर्गुण आनेमें स्वयं डरते हैं। जो प्रभुका हो गया, उसमें दुर्गुण कैसे रह सकते हैं? फिर दुर्गुणोंद्वारा कुचले जानेका तो सवाल ही नहीं उठ सकता।

अपनी पत्नीको माँ कहनेकी या मातृ-भावसे देखनेकी कोई भी आवश्यकता नहीं है। उसे तो अपनी सहचरी, सहयोगिनी समझनी चाहिये तथा धर्मानुकूल ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक उसका और अपना कर्तव्य-पालन करते-कराते रहना चाहिये। जो कुछ करें, भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये उन्हींकी प्रेरणाके अनुसार करना चाहिये।

वास्तवमें सब भगवान् हैं, सबमें भगवान् हैं—इस भावसे यदि सर्वत्र सम-भाव हो, प्रेमकी समानता और केवलमात्र व्यवहारका भेद रहे तो बहुत ही उत्तम बात है।

(२)

महोदय! सादर हरिस्मरण। आपने परम सुहृद् प्रभुकी शरणमें जानेका उपाय पूछा, सो यह उपाय प्रायः मनुष्योंको विदित है। जब मनुष्य किसी प्रकारके घोर दुःखसे दुःखी होता है और उसे निवारण करनेमें अपनेको सर्वथा असमर्थ समझता है, तब वह सर्वसमर्थकी शरणमें जाता है, यह सभीके अनुभवकी बात है। अतः इस नश्वर संसारके भोगोंको दुःखमय समझकर एवं अपने जन्म-जन्मान्तरके पापोंको और वर्तमानके भयंकर जीवनको देखकर साधकको अत्यन्त दुःखी होना चाहिये और संसारसे अपने बलसे सर्वथा निराश होकर अपनी निर्बलताका अनुभव करके, निर्बलोंके एकमात्र बल, परम सुहृद्, अकारण कृपा करनेवाले सर्वसमर्थ भगवान्‌के प्रति अपने-आपको समर्पण कर देना चाहिये। सब प्रकारसे भगवान्‌पर निर्भर हो जाना ही उनकी शरणमें जाना है। शरणमें जानेके लिये किसी प्रकारके गुण या बलकी आवश्यकता नहीं है। बलका अभिमान तो शरणमें रुकावट डालनेवाला है। जो अपनेको जितना ही निर्बल, असमर्थ और नीच मानता है, वह उतना ही अधिक शरणका अधिकारी है।

(३)

सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला, समाचार मालूम हुए। आपने तुलसीदासजीकी यह चौपाई लिखी कि—

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥

—सो यह चौपाई नवीन कर्म करनेके लिये नहीं है। यह तो केवल पूर्वकृत-कर्मोंके फल-भोगको लेकर है। भाव यह है कि मनुष्य फलभोगमें सर्वथा परतन्त्र है। उसे जो सुख या दुःख जिस प्रकार प्रारब्ध-कर्मफलके अनुसार होता है, वैसा ही होगा। पर नवीन कर्म करनेमें मनुष्य स्वतन्त्र भी है। इसीलिये भगवान्‌ने मनुष्यको बुराई और भलाईको समझनेके लिये विवेक दिया है। अतः मनुष्यको चाहिये कि जो कुछ करे, विवेकके प्रकाशमें करे और वही करे जो उसे करना चाहिये। पाप-कर्म भूलकर भी न करे, यदि करेगा तो उसकी सारी जिम्मेदारी करनेवालेकी है और उसका दण्ड उसे अवश्य भोगना पड़ेगा; क्योंकि भगवान्‌ने प्रत्येक मनुष्यके लिये कर्तव्यका विधान कर दिया है तथा उसे समझनेके लिये मानवको विवेकशक्ति भी दे दी है।

आपने जो उदाहरण दिये वे तो ऐसे प्रतीत होते हैं कि मानो किसी घबराये हुए कविने भगवान्‌से प्रणयकोपमें प्रार्थना की है। ये कोई शास्त्रीय प्रमाणरूप वाक्य नहीं हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय ३, श्लोक ३४ से ४३ तकका प्रकरण देखिये। उसमें अर्जुनके पूछनेपर भगवान्‌ने इस विषयको स्पष्ट किया है तथा अध्याय २, श्लोक ४७ में भी स्पष्ट कहा है कि तेरा कर्म करनेमें अधिकार है एवं फलमें अधिकार नहीं है। अतः यह समझना चाहिये कि तुलसीदासजीका कहना फलभोगके विषयमें है, नवीन कर्म करनेके विषयमें नहीं।

भलाई करते-करते यदि हमारे किसी समयके संकल्प पूरे न हों तो विश्वास रखना चाहिये कि वे संकल्प दयाघन प्रभुके लिये किये गये थे, और वह प्रभु त्रुटियोंको माफ करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी—

अतिथि-सेवासे पुनर्जीवनकी प्राप्ति

(डॉ॰ श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

प्राचीन कालमें द्रविड़देशमें विश्वकेतु नामक एक धर्मात्मा राजा राज्य करते थे। उनके एक पुत्र था, जिसका नाम था ब्रह्मकेतु। वह सर्वाङ्गसुन्दर, युवा, सभी राजोचित सद्गुणोंसे सम्पन्न तथा अतिशय विनयशील था। एक दिन महर्षि अङ्गिरा विश्वकेतुकी सभामें पधारे। राजाने अमात्य और पुरोहितके साथ महर्षिकी अगवानी की तथा वे उन्हें अपने भवनमें ले आये। उन्होंने पत्नीसहित षोडशोपचार-विधिसे महर्षिका पूजन कर उनसे एक रात अपने महलमें रुककर उसे पवित्र करनेकी प्रार्थना की। महर्षि वहाँ एक रातके लिये रुक गये।

राजाने महर्षिकी परिचर्यामें अपने पुत्र ब्रह्मकेतुको नियुक्त किया था। ब्रह्मकेतुने परम श्रद्धापूर्वक महर्षिको स्नान-सम्मार्जन करवाकर सुस्वादु भोजन करवाया। तत्पश्चात् एक सुवर्णमण्डित पर्यङ्कपर उन्हें विराजमान कर वह स्वयं उनके चरण दबाने लगा। राजपुत्रकी सेवासे मुनिवर अङ्गिरा बहुत प्रसन्न हुए, किंतु उन्होंने योगदृष्टिसे यह देख लिया कि सोलहवाँ वर्ष पूर्ण होते ही इस राजपुत्रकी आयु समाप्त हो जायगी। तब उन तपोधनने किंचित् खिन्न-से होकर ब्रह्मकेतुको आसन्नमृत्युका वृत्तान्त सूचित करके कृपापूर्वक उससे बचनेका एक उपाय भी बतलाते हुए कहा—'वत्स ! तुम यहाँसे शीघ्र भगवान् विश्वनाथकी पुरी वाराणसीमें चले जाओ। वहाँ वे भगवती उमाके साथ सदा निवास करते हैं। प्रतिदिन अनेक देवता, सिद्ध, गन्धर्व तथा तपोलोकवासी दिव्य महर्षि अनेक प्रकारके उपायन लेकर भगवान् सदाशिवके दर्शनार्थ आते रहते हैं। विवस्वान्के पुत्र मृत्युदेव यमराज भी वहाँ दर्शन करने आयेंगे, तुम उनके मार्गको रोककर लेट जाना। धर्मात्मा यमराज अपने मार्गसे तुम्हें हटानेका बहुत प्रयत्न करेंगे, पर तुम किसी प्रकार मत उठना।' विषण्ण राजपुत्रने पूछा—'भगवन् ! छद्मवेषधारी मृत्युदेवको अनेक दर्शनार्थियोंके समुदायमें मैं कैसे पहचान सकूँगा ?' महर्षि बोले—'वत्स ! यमराजके प्रत्यभिज्ञानके लिये मैं तुम्हें एक विशेष बात बतलाता हूँ, सुनो ! जब तुम भगवान् विश्वनाथके उस संकीर्ण मार्गमें अशक्त होकर लेट जाओगे तो अनेक दर्शनार्थी आयेंगे। कुछ तुम्हें लाँघकर आगे बढ़ जायँगे और कुछ अन्य लोग उस पवित्र मार्गको छोड़कर अपमार्गसे चले जायँगे। जो मनुष्य न तो अपमार्गसे जाय और न तुम्हारा लङ्घन ही करे, प्रत्युत तुम्हें वहाँसे हटानेका प्रयत्न करे, वही वैवस्वत यम हैं—यह समझना। राजपुत्र ! वे यमराज ही तुम्हें जीवन दे सकते हैं। अतएव शीघ्रता करो, अभी इसी समय काशीके लिये प्रस्थान कर दो; क्योंकि परसों ही तुम्हारा सोलहवाँ वर्ष पूर्ण हो रहा है।'

महर्षिके वचन सुनकर उनकी परिक्रमा कर ब्रह्मकेतु बिना किसीसे कुछ कहे उसी रात वाराणसीके लिये चल पड़ा। प्रभात होते-होते वह अपने नगरसे पाँच योजन दूर निकल आया। इसी समय केकयराज सुचन्द्र अपने कुबड़े पुत्रकी बारात लेकर काम्पिल्यदेश जा रहा था। काम्पिल्य-नरेशकी पुत्री परम सुन्दरी तथा गुणवती थी। राजा सुचन्द्रने अमात्यपुत्रको दिखाकर छद्मपूर्वक उसे अपने कुरूप तथा कुबड़े पुत्रके लिये वरण किया था, इसलिये वह कहीं भेद खुल न जाय—इस चिन्तामें डूबा हुआ था। दैवयोगसे उसे ब्रह्मकेतु मिल गया। ब्रह्मकेतुके अप्रतिम सौन्दर्यको देखकर उसने उसका परिचय पूछा और सारा वृत्तान्त जानकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने आग्रह किया—'राजकुमार ! तुम्हारी मृत्यु तो निश्चित ही है, मृत्युके पहले इस शरीरसे पुण्यार्जन करते जाओ। परोपकारके सदृश कोई पुण्य नहीं है, तुम मेरे कुबड़े पुत्रके प्रतिनिधि बनकर काम्पिल्यराजकुमारीका विवाह सम्पन्न करा दो अन्यथा दो राजाओंके बीच महान् युद्ध उपस्थित हो जायगा, जिससे व्यर्थ ही निरपराध बहुतसे मनुष्य मारे जायँगे।' इस तरह सुचन्द्रने परोपकारी ब्रह्मकेतुको समझा-बुझाकर अपने पुत्रका प्रतिनिधि बना लिया और काम्पिल्य-नरेशकी कन्याके साथ उसका पाणिग्रहण करा दिया। राजकुमार ब्रह्मकेतु सद्यःपरिणीता राजकुमारीके साथ कौतुकागारमें प्रविष्ट हुआ, तब उसे स्मरण आया कि कल ही मेरी मृत्यु हो जानेवाली है, अतः मैंने राजपुत्रीको परिणीतकर उचित नहीं किया। उसने पश्चात्ताप करते हुए सारा वृत्तान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम्पिल्यकुमारीको बतलाते हुए कहा—'देवि ! क्षमा करना, मैं तुम्हारा पति नहीं हूँ, तुम्हारा पति राजा सुचन्द्रका कुब्जपुत्र है। विवश होकर मुझे उसका प्रतिनिधि बनकर तुम्हारे साथ पाणिग्रहण कराना पड़ा। कल ही मेरी मृत्युका समय है, अतएव मुझे वाराणसी पहुँचने दो।'

बुद्धिमती राजकुमारी अनभ्रवज्रपातसे विचलित होकर भी निराश नहीं हुई। उसने कहा—'आर्यपुत्र ! आपने अग्निकी साक्षीमें मेरा हाथ पकड़ा है, अतएव आप चाहे दीर्घायु हों या अल्पायु, आप ही मेरे प्राणनाथ पति हैं। मैं किसी दूसरेकी ओर दृष्टिपात भी नहीं करूँगी। आप वाराणसी अवश्य जाइये, मैं स्वयं इसकी तत्काल व्यवस्था करती हूँ। यदि वहाँ भगवान् विश्वनाथकी कृपासे यमराजने आपको पुनर्जीवन दे दिया तो मैं आपकी सहधर्मचारिणी बनकर जीवनका सुख प्राप्त करूँगी अन्यथा आपके ही साथ सतीधर्मका पालन करूँगी।' यह कहकर राजपुत्रीने अपनी मातासे सारा वृत्तान्त प्रकट कर दिया। काम्पिल्य-नरेशने होनहारको बलवान् समझकर धैर्य धारण किया और ब्रह्मकेतुकी काशीयात्राकी शीघ्र व्यवस्था कर अपने विश्वस्त चरोंको भी साथमें भेज दिया। कपटी केकयराज अत्यन्त तिरस्कृत हो अपने कुबड़े पुत्र तथा बारातके साथ वापस लौट गया।

इधर प्रातःकाल होते-होते ब्रह्मकेतु विश्वनाथपुरी पहुँच गया। यहाँ वह महर्षिके बताये मार्गपर लेट गया। ब्रह्मकेतुकी मृत्युका समय धीरे-धीरे निकट आता जा रहा था। वह क्रमशः शिथिल और कण्ठगतप्राण हो भगवान् विश्वनाथका स्मरण कर रहा था। इस बीच अनेक दर्शनार्थी आये तथा महर्षि अङ्गिराके कथनानुसार कुछ अपमार्गसे और कुछ उसे लाँघकर चले गये। अन्तमें मनुष्यवेशधारी यमराज भी आये। भगवान् विश्वनाथके संकीर्ण मार्गमें पड़े हुए इस कुमारको देखकर उन्होंने उसे हट जानेके लिये कहा और न हटनेपर अनेक भय भी दिखाया। राजकुमारने कहा—'देव ! मैं मरणासन्न हूँ, मेरी इन्द्रियोंमें बिलकुल शक्ति नहीं है, अतएव या तो आप दूसरे मार्गसे चले जायँ या मुझे लाँघकर निकल जायँ।' यमराजने कहा—'तुम मरणासन्न हो, अतएव तुम्हारे मृतप्राय शरीरका स्पर्श कर मैं भगवान्के दर्शन योग्य नहीं रहूँगा। प्रत्येक प्राणीमें भगवान्का निवास होता है, अतएव तुम्हें लाँघना भी उचित नहीं, और मैं सत्पथका शास्ता हूँ, इसलिये कुपथसे चला जाना भी मेरे लिये शक्य नहीं, अतः मैं तुम्हें पुनर्जीवन देता हूँ। वत्स ! तुम शतायु हो जाओ और मेरा मार्ग छोड़ दो।' मृत्युके अधिष्ठाताका यह वरदान प्राप्त कर ब्रह्मकेतु पुनः चैतन्य हो उठा। उसने यमराजको प्रणाम किया और मृत्युभयहारी भगवान् विश्वेश्वरका दर्शन कर अपनी प्रियाके पास लौट आया। वहाँ वह श्वशुरके द्वारा बहुत दिनोंतक सत्कृत होकर पुनः अपने नगर लौटा। इस प्रकार महर्षि अङ्गिराके आतिथ्यने उसे पुनर्जीवन प्रदान किया।

युगल-छवि

जुगल छवि हियमें आय अड़ी।
जीवनकी जीवन सखि ! मेरी, भव-रुज-रुचिर जड़ी॥
जबसों सखि ! नयननि वह निरखी ऐसी बान पड़ी-
निरखत ही हौं रहों निरन्तर सम्मुख खड़ी-खड़ी॥
पल हूँ इत-उत होत न सजनी ! मानहुँ हिये जड़ी।
हियो गयो निजता हूँ भूली, केवल छवि उभड़ी॥
दोउके नयन लगे दोउनमें, रतिकी होड़ पड़ी।
दोउ दोउके रतिरसमें बूड़े, हियकी जुड़ी कड़ी॥
दोउके रसकी पाय प्रसादी हौं हूँ रहूँ खड़ी।
रह्यौ न दूजो काम-काज कोउ, लागी वही लड़ी॥

—स्वामी श्रीसनातनदेवजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रजमें

(कुँवर श्रीव्रजेन्द्रसिंहजी 'साहित्यालङ्कार')

'व्रज' कितना मधुर शब्द है! सुधाके अपार समुद्रसे माधुर्यकी निर्मल निर्झरिणीका कैसा अद्भुत सङ्गम है—जादूसे भरा बड़ा ही आकर्षक! मानो वंशीकी विमोहिनीमें मिलकर पिकवयनी गोपियोंकी तीखी स्वरलहरी बिखरी जा रही है। अगणित तरङ्गमालाओंके संघर्षसे चूड़ियोंकी खनक, किंकिणी और नूपुरोंकी झंकार फूटी पड़ती है। कल्लोलिनीकी कलकलमें मधुसूदनका मधुर जीवन खिलखिला उठता है। केवल दो ही अक्षरोंके गर्भमें सारे संसारका सार छिपा है—लालका शैशव, विहारीका विहार, लीलामयकी लीलाएँ, रसिक रँगीलेका रास-रंग!

'व्रज' शब्द यद्यपि वेदोंमें भी प्रयुक्त है तथापि यह यहाँ विशेषकर कृष्णकी जन्मभूमिकी संस्मृति कराता है। वंशीवटकी अपूर्व छटा, गोकुल, नन्दगाँव और बरसानेकी विचित्र बहार इसीमें केन्द्रीभूत समझिये। गह्वर वनके सघन कुञ्ज, विविध लतावितान, कदम्ब और तमालोंकी स्वच्छ छबि, वन-उपवनोंके मनोरम दृश्य, हरी-हरी झाड़ियोंमें मधुपोंकी गुंजार, कोकिलाओंकी कुहू-कुहू, मयूरोंका स्वच्छन्द विहरण, यमुनाका सुरम्य तट, सुन्दर पुलिन, कूल-कछारोंके चित्ताकर्षक दृश्य, प्रकृति-नटीकी अनूठी कारीगरी और जीवनका सच्चा आनन्द इसी नन्हे-से शब्दमें अन्तर्हित है।

'व्रज' भगवान् श्रीकृष्णकी क्रीडास्थली एवं पतितपावनी पुण्यभूमि है। यहाँ सर्वत्र शान्तिका अटल साम्राज्य दृष्टिगोचर होता है। पत्ते-पत्तेसे विमल प्रेमका स्रोत, भक्तिका रँगीला रस चुआ पड़ता है। कण-कणमें राधा-माधवकी गुणगरिमा परिव्याप्त है। केलि-कुटीरोंकी ओर पद-पदपर तीर्थराजका सारा माहात्म्य बिखरा फिरता है—

यहिं ब्रज केलि-निकुंज-मग, पग-पग होत प्रयाग।

(बिहारी)

तनिक-सी रज पड़नेसे अनेक जन्मोंके महापाप सहज ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। यह पवित्र रज मानो मुक्तिको भी मुक्त करनेवाली है—

ब्रजरज उड़ि मस्तक लगै, मुक्ति मुक्त ह्वै जाय।

(नागरीदास)

कितने ही भक्त दिन-रात इस रजत-रजमें लोटते रहते हैं। जब देखो, उनके अन्तरात्मासे यही हूक उठती है—

मिलिहैं अँग-अँग छार ह्वै, कब बनबीथिन धूरि।
परिहैं पदपंकज बिमल, मेरी जीवनमूरि॥

(ललितकिशोरी)

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी वास्तवमें यहाँ कुछ भी पूछ नहीं है। बने हुए बक्की-झक्की ब्रह्मज्ञानियोंकी भी पूरी दुर्गति समझिये। उनके रूखे-सूखे शब्द-ज्ञानकी जरा भी कद्र नहीं। बेचारोंको उलटी बेगारें ढोनी पड़ती हैं—

चारि पदारथ करत मजूरी, मुक्ति भरै जहँ पानी।
करम, धरम दोउ बटत जेंवरी, घर छावैं ब्रह्मज्ञानी॥

जो कोरा ज्ञान बघारनेकी नीयतसे आया, उसकी यही दुर्दशा हुई। उद्धवने भी योगसाधनके प्रति ज्ञानोपदेश देनेका प्रयत्न किया, पर मुँहकी खायी। सबक देने आये थे, सबक लेकर लौटे—

त्यागको जोग जहान कहै,
हम तौ तब ही चुकीं त्यागि जहानैं।
मौत कलेसकौ लेस नहीं,
कवि 'बोधा' गुपालमें चित्त समानैं॥
खैंचतीं पौनकौं मौन गहैं,
अरु नींद अहार नहीं उर आनैं।
ऊधौ जू! जोगकी रीति कहौ,
हम जोग ना दूजो बियोगतें जानैं॥

माधुर्य तो मानो यहाँ प्रत्यक्ष होकर विहार करता है। सर्वत्र इसीका आधिपत्य है, बोलबाला है। ईश्वरके अटपटे नाम भी इसकी चाशनीमें पगे बिना न रह सके—

ब्रजसम और न कोऊ धाम।
या ब्रजमें परमेसुरहूके सुधरे सुंदर नाम॥
कृष्ण नाम, यह सुनो गर्ग तें, कान्ह-कान्ह कहि बोलैं।
बाल-केलि-रसमगन भईं सब, आनँद-सिंधु-कलोलैं॥

(नागरीदास)

जिसकी खोजमें सारा ब्रह्माण्ड पागल हो रहा है, वही लाड़िला नन्दलाल यहाँ सघन वनकी प्राकृतिक पर्णशालाओंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधिकाके पैरों-तले पड़ा इसी अलौकिक रसकी भीख माँगता फिरता है—

ब्रह्म मैं ढूँढ्यौ, पुरानन-गायन,
बेद-रिचा पढ़ीं चौगुने चायन।
देख्यौ-सुन्यौ न कहूँ कबहूँ,
वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन॥
ढूँढ़त-ढूँढ़त ढूँढ़ि फिर्‌यौ
'रसखानि' बतायौ न लोग-लुगायन।
देख्यौ, दुर्‌यौ वह कुंज-कुटीरनि,
बैठ्यौ पलोटत राधिका-पायन॥

भला, इस विलक्षण रसके आगे ऋषि-मुनियोंकी तपश्चर्याका ख्याल किसे रह सकता है—

मनु मार्‌यौ केते मुनिन, मनु न मनायौ आय।
ता मोहनपै राधिका मान गहावति पाय॥

(बिहारी)

रसके इस लबालब सागरतक भला किसी भी विद्याकी पहुँच कहाँ? प्रेमकी सुनहरी चर्चामें विरस-वादकी क्या बूझ—कोरे दार्शनिक प्रलापकी जिक्र ही क्या! वहाँ तो इसी रसकी प्यास है। चाहे गोरसके बहाने मिले अथवा माखनके, पर चाहिये स्वातिकी वही बूँद—घूँट-पर-घूँट—

छीर जो चाहत चीर गहे,
अजु लेहु न केतिक छीर अचैहौ।
चाखनके हित माखन माँगत,
खाहु न केतिक माखन खैहौ॥
जानति हौं जियकी 'रसखानि',
सु काहेकों एतिक बात बढ़ैहौ।
गोरसके मिस जो रस चाहत,
सो रस कान्ह नैक नहिं पैहौ॥

वाह! इस इनकारमें भी क्या मजा है। भिखारीको जब भीख नहीं मिलती, तब धनीके दरवाजेपर धरना देकर मिन्नतें करता है, प्रेमकी मीठी हुकूमत सहता है—पैरोंमें महावर लगाओ, बालोंमें फूल गूँथो—

बेद भेद जानैं नहीं, नेति-नेति कहि बैन।
ता मोहनसों राधिका, कहै महाबरु दैन॥
जग्य न पायौ ब्रह्महूँ, जोग न पायौ ईस।
ता मोहनपै राधिका सुमन गुहावति सीस॥

(बिहारी)

कभी फटकार भी सुननी पड़ती है—

रहौ, गुही बेनी, लख्यौ गुहिबेको त्यौनार।
लागे नीर चुचान ये नीठि सुखाए बार॥

(बिहारी)

शेष, महेश, गणेश, सुरेश भी जिस परब्रह्मकी अपार महिमाका पार पानेके लिये दिन-रात तपस्या करते हैं, वही सलोना श्यामसुन्दर व्रजमण्डलके प्रेमसाम्राज्यमें छाछकी ओटसे इसी रसके पीछे अहीरकी छोकरियोंके इशारोंपर तरह-तरहके नाच नाचता फिरता है—

सेस, महेस, गनेस, दिनेस, सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि, अनंत, अखंड, अछेद, अभेद, सुबेद बतावैं॥
नारद लै, सुक-ब्यास रटैं, पचि हारे, तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीरकी छोहरियाँ छछिया भरि छाछपै नाच नचावैं॥

(रसखानि)

भला, इस मिठासका क्या पार? निर्गुण, निराकार, अनन्त, अगोचर, अव्यक्तकी टोहमें रहनेवालोंको यह आनन्द कहाँ? इस व्रजवासन्तीका रसास्वादन तो वे ही रसिक भ्रमर कर सकते हैं, जिनके हृदयमें अपने मुरलीवाले, कुञ्जविहारी, बनवारी, पीतपटधारी, रँगीले, छबीले बाँके व्रजलालके प्रति अटल प्रेम तथा दृढ़ भक्ति है—***'दरस परस मज्जन अरु पाना'*** की सच्ची लगन एवं अमर आशा है। व्रजवाटिकाकी वासन्ती छटामें सदा सौरभ पान करनेका तो उन्हें ही अधिकार है। नव-मुकुलित मल्लिकाओंका मकरन्द लूटते हुए फिर वे परमानन्दमें तन्मय हो सहज ही पुकार उठते हैं—

या लकुटी अरु कामरियापै
राज तिहू पुरकौ तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवो निधिकौ सुख
नंदकी गाय चराय बिसारौं॥
'रसखानि' सदा इन आँखिनसौं
ब्रजके बन, बाग, तड़ाग निहारौं।
कोटिक हूँ कलधौतके धाम
करीलकी कुंजनि ऊपर वारौं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाह ! वाह ! आशा हो तो ऐसी ही—

मानुस हौं तो वही 'रसखानि'
फिरौं मिलि गोकुल-गाँवके ग्वारन।
जौ पसु हौं तौ कहा बस मेरौ
चरौं नित नंदकी धेनु मझारन॥
पाहन हौं तौ वही गिरि कौ,
जो धर्‌यौ कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तौ बसेरौ करौं नित
कालिंदी-कूल-कदंबकी डारन॥

इससे अधिक मीठी और क्या मनोवाञ्छा होगी—

जमुना-पुलिन कुंज गहबरकी कोकिल ह्वै द्रुम कूक मचाऊँ।
पद-पंकज प्रिय लाल मधुप ह्वै, मधुरे-मधुरे गुंज सुनाऊँ॥
कूकर ह्वै बनबीथिनि डोलौं, बचे सीथ संतनके पाऊँ।
'ललितकिसोरी' आस यही मम, ब्रजरज तजि छिन अनत न जाऊँ॥

अन्तिम समय यदि ये आँखें खुलें भी, तो उसी प्यारेके मोरमुकुटपर, अन्यथा नहीं—

कदमकी छाँह हो, यमुनाका तट हो,
अधर मुरली हो, माथेपर मुकट हो।
खड़े हों आप, इक बाँकी अदासे,
मुकुट झोकेमें हो, मौजे हवासे।
गिरै गरदन ढुलक कर पीतपटपर,
खुली रह जायें आँखें ये मुकटपर॥

कितनी अनोखी अन्तराकाङ्क्षा है ! तन्मयताकी इस अन्तिम सीढ़ीपर पहुँचकर और कुछ देखनेकी गुंजाइश नहीं। वहाँ तो सारी दुनिया ही प्रियतममय हो सामने आती है। कान सदा उसीका प्रेमालाप सुनते हैं, आँखें उसीके प्रेमकी लीलाएँ देखती हैं। हृदयमें उसीकी मंजुल मूर्ति मुसकराती रहती है—

हौं ही ब्रज, बृंदाबन मोहीमें बसत सदा,
जमुना-तरंग स्याम रंग अवलीनकी।
चहुँ ओर सुंदर सघन बन देखियत,
कुंजनमें सुनियत गुंजन अलीनकी॥
बंसीबट नट-नागर नटतु मो में,
रासके बिलासकी मधुर धुनि बीनकी।
भरि रही भनक-बनक ताल-ताननिकी,
तनक तनक तामें झनक चूरीनकी॥

यही तन्मयताकी सुन्दर स्थिति है। तुलसीदासजी भी इसकी सम्पुष्टि करते हैं—

जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

कहाँ यह सरस प्रेम और कहाँ वह विरस विवाद ! कहाँ मणि और कहाँ काच—कितना अन्तर है ? स्वयं भगवान् ही उद्धवसे कहते हैं—

ऊधौ ! मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
बृंदाबन-गोकुल-सुधि आवति, सघन तृननिकी छाँहीं॥

पुनः वे अधीर हो उठते हैं—

सुन ऊधौ ! मोहि नैक न बिसरत वे ब्रजबासी लोग।
तुम उनकों कछु भली न कीनी, निस-दिन दियौ बियोग॥
जदपि यहाँ बसुदेव-देवकी, सकल राजसुख-भोग।
तद्यपि मनहिं बसत बंसीबट, ब्रज जमुना-संयोग॥
वे उत रहत प्रेम-अवलंबन, इतते पठयो जोग।
'सूर' उसाँस छाड़ि, भरि लोचन, बढ़ो बिरह-जुर-सोग॥

विस्मृतिकी राखमें दबी हुई स्मृतिकी चिनगारियाँ फिर भड़क उठती हैं—

ग्वालनके संग जैबौ, ऐबौ औ चरैबौ गाय,
हेरि तान गैबौ, सोचि नैन फरकत हैं!
ह्याँके गजमोति-माल, वारौं गुंजमालन पै,
कुंज-सुधि आवै, हाय ! प्रान धरकत हैं॥
गोबरकौ गारौ लगै सु तौ मोहि प्यारौ,
नाहिं भावैं महल, जे जटित मरकत हैं।
मंदर ते ऊँचे, कहा मंदिर हैं द्वारिकाके,
ब्रजके खरिक मेरे हिये खरकत हैं॥

इस महिमामयी व्रजकी अकथ कथा कहाँतक कही जाय। इसके आगे तो स्वर्गका सम्पूर्ण वैभव भी तुच्छातितुच्छ है—

ब्रजसुख छायौ, चलि 'नागर' लुभायौ मन,
हमकों न भायौ यहाँ बैकुंठकौ आइबौ।

औरकी क्या कहें, सुखस्निग्ध रसकी टटोलमें योगीन्द्र शिवको भी यहाँ गोपी बनना पड़ा—

'नारायण' ब्रजभूमिकौं को न नवावै माथ।
जहाँ आप गोपी भए श्रीगोपेस्वर नाथ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

रास्तेकी रुकावटको दूर करनेवाला दृढ़ निश्चयी बालक

गुजरातके खेड़ा जिलेमें एक गाँव है—'करमसद'। इस करमसद गाँवके कुछ विद्यार्थी मुँह-अँधेरे ही खेतोंकी मेड़पर बनी पगडंडीसे कतारबद्ध चले जा रहे थे। उनका लक्ष्य था पेटलाद गाँव—करमसदसे आठ-दस किलोमीटर दूर, जहाँ उनका अंग्रेजी स्कूल सुबह लगता था। विद्यार्थी तेज चालसे आगे बढ़ रहे थे और इधर-उधरकी बातें करते जा रहे थे।

चलते-चलते एक विद्यार्थीके पैरमें मेड़पर लगे पत्थरकी चोट लग गयी, वह तिलमिला उठा; लेकिन दूसरे ही क्षण दृढ़ निश्चयके साथ पत्थरको उखाड़नेकी कोशिशमें उसने अपनी सारी ताकत लगा दी।

दो-एक मिनट बाद दूसरे विद्यार्थीने पूछा—'अरे वल्लभ कहाँ रह गया ?'

दूसरा विद्यार्थी पीछेकी ओर देखकर बोला—'वह दूर बैठा मेड़पर कुछ करता-सा लगता है।'

वल्लभको चोट पहुँचानेवाला पत्थर अब हिलने लगा था। 'रास्तेकी इस रुकावटको तो एकबारगी मैं दूर हटा कर ही रहूँगा'—वल्लभने मन-ही-मन तय कर लिया था।

तीसरे विद्यार्थीने आवाज दी—'ओ वल्लभ ! वहाँ बैठे-बैठे क्या कर रहे हो ? स्कूल पहुँचनेमें देर हो जायगी, तब।'

पीछेसे वल्लभने जवाब दिया—'जरा ठहर जाओ, मैं अभी आता हूँ।' और वल्लभका प्रयास सफल हो गया। रास्तेके उस पत्थरको उखाड़कर उसने एक ओर फेंक दिया, फिर दौड़कर अपने साथियोंसे जा मिला।

'क्या करने लगे थे तुम वहाँ रुककर ?' साथके सभी विद्यार्थी एक साथ कुतूहलसे उससे पूछ बैठे।

'पगडंडीके बीचोबीच गड़ा वह पत्थर हर राहगीरको अँधेरेमें ठोकर मारता रहा होगा। आज मेरे अँगूठेमें भी ठोकर मारकर उसने मेरी भारी मरम्मत कर दी।' ऐसा कहकर वल्लभने अपना अँगूठा दिखलाया, जिससे खून निकल रहा था और जिसपर उसने मिट्टी डाल दी थी।

'तो तुमने उसे उखाड़कर फेंक दिया ?'—सबने पूछा।

'फेंककर ही दम लिया मैंने। रास्तेकी रुकावटको तो हर हालतमें दूर कर ही देना चाहिये। न जाने कितनोंके अँगूठे तोड़े होंगे उस पत्थरने ?' और वल्लभ मुस्करा पड़ा, पाँवमें दर्द होनेपर भी।

करमसद गाँवका यह दृढ़निश्चयी बालक ही आगे चलकर लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेलके नामसे सारे भारतमें विख्यात हुआ।

(२)

बहनसे प्रेम

कुछ समय पूर्वकी बात है, रामकुमार और रामविलास दोनों सगे भाई थे। आसामके एक मुकाममें उनकी दूकान थी। दोनों भाइयोंमें और उनकी पत्नियोंमें परस्पर अत्यन्त प्रेम था। दूकानका काम बहुत ठीक चलता था। वे सारा काम स्वयं अपने करते। मेहनत और ईमानदारीसे उन दोनोंने थोड़े ही समयमें अच्छी पूँजी इकट्ठी कर ली थी। वे विलासितासे सर्वथा दूर रहते थे, मितव्ययी थे। उन्होंने जमा-पूँजीमेंसे कुछ रुपयोंसे गहना बनवाकर सुरक्षित रखना चाहा। बड़े भाई रामकुमार तथा भाभीके बहुत अधिक आग्रहसे पहले रामविलास (छोटे भाई) की स्त्रीके लिये गहना बनवाया गया। विवाह-शादी आदि शुभ अवसरोंपर ही गहना पहना जाता था, शेष समयोंमें पेटीमें सुरक्षित रहता था।

इनके एक बड़ी बहन थी—मनभरीबाई ! माँ पहले मर गयी थी। इसलिये बहनने ही दोनोंको पाला-पोसा था। बहनके पतिका एक साल पहले देहान्त हो गया था। उसका लड़का गल्लेका व्यापार करता था। अनाज भरकर रखता, फिर धीरे-धीरे बेचता। पर उसके दुर्विपाकसे अनाजमें बड़ी मंदी आ गयी। उसके आठ-दस हजारका घाटा हो गया। जहाँतक बना, गहना आदि बेचकर महाजनका ऋण उतारनेकी चेष्टा की गयी, पर लगभग तीन हजार रुपये दो महाजनोंके बाकी रह गये। वे बहुत कड़े आदमी थे। नालिश करके उन्होंने डिग्री करवा ली। मनभरीबाई पतिके मर जानेके पश्चात् भाइयोंके पास आसाम आयी थी और वहीं ठहर गयी थी। दोनों भाई उसे माँकी तरह मानते थे, भाइयोंकी पत्नियाँ बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर-सम्मानसे उसकी सेवा करतीं और उसके आज्ञानुसार चलतीं। इसी बीचमें मनभरीबाईके लड़केका अपनी माँके नाम गुप्त पत्र आया।

पत्रमें सारी स्थिति लिखी थी और माँको बुलवाया था। डिग्रीवाले महाजन डिग्री जारी करवाकर मकान नीलाम करवाना चाहते थे। मनभरीबाई अत्यन्त चिन्ताग्रस्त हो गयी। उसकी बुद्धि भ्रमित हो गयी, सोचने लगी—किसी प्रकार पुरखोंकी प्रतिष्ठा और बच्चेकी जान बचानी है। पर भाइयोंसे कहनेकी उसे हिम्मत नहीं हुई। मनमें पाप-बुद्धि आयी। कामना ही पापकी जड़ होती है। उसने मनमें निश्चय किया—भाईकी पत्नीकी पेटीमेंसे गहना निकालकर ले चलना है। पीछे देखा जायगा। इससे एक बार तो काम चलेगा, लड़केके प्राण बच जायँगे। मेरे कमा लेनेपर भाइयोंकी रकम वापस कर दी जायगी।

भाइयों और उनकी पत्नियोंको समझा-बुझाकर जानेका दिन निश्चय कर लिया गया और उपर्युक्त पाप-निश्चयके अनुसार भाईकी पत्नीकी पेटी खोलकर गहने निकाल लिये गये। चाभी इसीके पास रहती थी। संयोगसे जिस समय यह भाईकी पत्नीकी पेटी खोलकर गहना निकाल रही थी, उस समय उसी कोठरीमें सोये हुए छोटे भाई रामविलासकी नींद टूट गयी। उसने सब देख लिया, पर जान-बूझकर आँखें बंद कर लीं। मनभरीबाई सफल-मनोरथ होकर कोठरीसे बाहर चली गयी। रामविलासने किसीसे कुछ नहीं कहा, मानो कुछ हुआ ही नहीं।

उन सबसे बिदा होकर दुःखित होती हुई मनभरीबाई अपने घर पहुँच गयी। किंतु उसके हृदयमें चौरकर्मके पश्चात्तापकी अन्तर्ज्वाला जल रही थी। तथापि उसने गहना बेचकर अपने पुत्रको ऋणमुक्त किया। उसने अपने भाइयोंको भी पत्रद्वारा पूर्ण स्थितिसे अवगत कराया। इधर अपने बहनके घरका दुःखद समाचार जानकर छोटे भाई रामविलासने अपने बड़े भाई रामकुमारसे एकान्तमें कहा—'भाईजी! हमारी माँ बचपनमें ही चल बसी, तब बहनने ही हमको पाला-पोसा, आदमी बनाया। हम चाहें तब भी उसके ऋणसे उऋण नहीं हो सकते, फिर हमसे बड़ी होनेके कारण हमपर उसका अधिकार भी तो है ही, इस समय वह बहुत संकटमें है। पतिका देहान्त हो गया। घरमें घाटा लग गया। हमारी बहनने संकोचमें पड़कर और न चाहते हुए भी यह काम किया है, किंतु कष्ट यह होता है कि बहनने यहाँ रहते हुए हमें कुछ नहीं बताया, हम अपना सर्वस्व खोकर भी उसका दुःख दूर करनेका प्रयत्न करते। ऐसी स्थितिमें अब उसे कुछ नहीं कहना है। आप कहें तो मैं भाभीजीको सब समझा दूँ।' छोटे भाईकी इस श्रेष्ठ भावनाको जान-सुनकर वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। दोनोंने सलाह करके दोनों स्त्रियोंको बुलाया और उन्हें सारी बात बता दी। वे स्त्रियाँ भी सचमुच साध्वी थीं। छोटे भाईकी स्त्री (जिसका गहना था) ने अपने जेठानीके माध्यमसे यह कहलाया कि—यह तो बहुत अच्छा हुआ कि इस संकटमें यह गहना बाईजीके काम आ गया। यहाँ तो व्यर्थ ही पड़ा था। उसका सदुपयोग हो गया, परंतु मुझे दुःख इस बातका है कि मेरे मनमें गहनेके प्रति अवश्य कोई स्वार्थ या ममताकी बात है, जिस कारण बाईजीको संकोचमें पड़कर यह काम करना पड़ा और उन्होंने मुझसे कुछ कहा नहीं। शायद उनको यह शङ्का होगी कि माँगनेपर यह नहीं देगी। आप तीनों लोग तो दे ही देते, मेरे ही पापी हृदयके डरसे बाईजीको इस प्रकार करना पड़ा।' बहूकी बात सुनकर जेठ-जेठानीका हृदय गद्गद हो गया। उनकी आँखोंसे प्रेमके आँसू बह चले। उसके पति रामविलासके तो आनन्दका पार ही नहीं था। वह तो इस प्रकारकी साध्वी तथा उदारहृदया पत्नीकी प्राप्तिसे आज अपनेको अत्यन्त गौरवान्वित समझ रहा था।

दो वर्ष बाद मनभरीबाईकी कन्याके विवाहमें सारा परिवार वहाँ गया। मनभरीबाईने पहलेसे व्याजसमेत गहनेके पूरे रुपये तैयार कर रखे थे। उसके लड़केको व्यापारमें अकस्मात् लाभ हो गया था। मनभरीबाईने अपने भाई और उनकी पत्नियोंके सामने रुपयोंकी थैली रख दी और वह सुबक-सुबककर रोने लगी। सभीके धीरजका बाँध टूट गया—पाँचों रोने लगे। सबके हृदयोंमें पवित्र भावोंकी रसधारा उमड़ रही थी और वही आँसुओंके रूपमें बाहर बहने लगी थी।

उन्होंने रुपये नहीं लिये। बड़े आदरसे पूरा संतोष करवाकर लौटा दिये। उन चारोंने बहनके इस कार्यमें उसे नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्युत अपनेको दोषी माना और कहा कि 'बाई ! हमारे स्नेहमें कमी थी, प्रेमका अभाव था। हम अपनी वस्तुओंपर अपना ही अधिकार मानते थे, बहनका नहीं; तभी हमारी संतहृदया बहनको संकटके समय उससे बचनेके लिये छिपकर गहना लेना पड़ा। यह हमारा ही कलुष और दुर्भाग्य है !' धन्य है परस्परका यह सौहार्दपूर्ण एवं अनुकरणीय घटनाचक्र।

—हरदेवदास

(३)

भगवान्‌का दूत

बात पुरानी है—दिल्लीमें मैं एक मकानकी पहली मंजिलपर दो कमरोंमें कुटुम्बके साथ रहता था। एक खिड़कीके पास मैंने मेज और कुर्सी लगा रखी थी और वहीं अध्ययन इत्यादि किया करता था। मेजके ठीक ऊपर एक रोशनदान था। इस रोशनदानमें कोई २०-२५ ईंटें डाटकर भरी हुई थीं, जिससे धूल और पानी अंदर न आये।

एक दिनकी बात है, रातके लगभग आठ बजेका समय था। जोरकी हवा चल रही थी, जाड़ेके दिन थे और थोड़ी वर्षा भी हो रही थी। मैं कुर्सीपर बैठा कुछ पढ़ रहा था। हवाके झोंकोंसे दरवाजे भड़भड़ा रहे थे। कमरेके अंदर बैठा हुआ मैं अपनी सुरक्षाका अनुभव कर रहा था। इतनेमें मेरे दरवाजेके किवाड़ किसीने बाहरसे भड़भड़ाये। मुझे आलस्य आ रहा था। एक बार तो सोचा, दरवाजा खोल दूँ। फिर विचार किया कि सम्भवतः यह शब्द हवाके तेज झोंकोंके कारण आया हो। इसलिये मैं बैठा ही रहा। किंतु फिर और जोरसे दरवाजा भड़भड़ाया। अन्ततः मैं उठा और मैंने दरवाजा खोला। देखता क्या हूँ कि हमारे एक पुराने कानपुर-निवासी मित्र वर्षामें भीगे, सर्दीके मारे ठिठुरे बाहर खड़े हैं। मैंने आश्चर्यमें भरकर अपना मुँह खोलना ही चाहा था कि पीछे कुर्सीपर बड़े जोरका धमाका हुआ। देखता क्या हूँ, ऊपर रोशनदानसे सारी ईंटें हवाके झोंकेके साथ कुर्सीपर गिर पड़ी थीं। केवल एक मिनट पहले ही यदि यह घटना हुई होती तो मेरे सिरकी लुगदी बन गयी होती। मैं अवाक् रह गया। मित्र भी देखते ही रह गये। मुझे ऐसा लगा कि जैसे भगवान्‌ने ही उस आँधी, पानी और ठंडमें रातके समय केवल मुझे उस कुर्सीपरसे हटानेके लिये ही उन्हें भेजा हो। जब कभी भाग्य या भगवान्‌की बात चलती है, तब यह घटना मेरी आँखोंके सामने नाचने लगती है।—वि०य० घोरपड़े

मनन करने योग्य

[लक्ष्मी वापस लौटी]

(श्रीताराशंकरजी वंद्योपाध्याय)

वह अत्यन्त परिश्रमी और पुण्यवान् ब्राह्मण थे। उनके माथेमें सौभाग्यलक्ष्मी वास करती थी। उनका सभी काम परोपकारी होता था। समस्त कार्योंमें उन्हें सफलता प्राप्त होती थी; क्योंकि उनकी कर्मशक्तिमें यशोलक्ष्मी निवास करती थी। उनका कुल गुण-सम्पन्न था। पत्नी, पुत्र, पुत्री और पुत्रवधूके गुणोंसे वह कुल श्रेष्ठतम हो गया था; इसलिये कि कुललक्ष्मी उनके यहाँ वास करती थी।

पापसे यह सब देखा नहीं जा रहा था। वह ईर्ष्याके कारण उनके घरका बराबर चक्कर लगाता। एक दिन पाप अलक्ष्मीको अपने साथ लेकर ब्राह्मणके घर आया। उसने ब्राह्मणको पुकारा—ब्राह्मण देवता !

'कहिये महाराज ! कैसे आना हुआ ?'—ब्राह्मणने नम्रतापूर्वक पूछा।

'मैं कितना अभागा हूँ कह नहीं सकता। मेरे कष्टोंकी कोई गिनती नहीं। आपसे यही प्रार्थना है कि मेरी संगिनीको कुछ दिनोंके लिये अपने यहाँ आप आश्रय दें।'—पापने कहा।

'मैं गृहस्थ हूँ। आश्रय माँगनेवालेको आश्रय देना मेरा धर्म और कर्तव्य है। मुझे कोई आपत्ति नहीं है। खुशी-खुशी रह सकती हैं ये मेरे यहाँ। बहू-बेटीकी तरह इनकी देखभाल करूँगा। आप भी मेरे यहाँ रह सकते हैं, जबतक कि आपके दुःख दूर नहीं हो जाते।'

परंतु पाप ब्राह्मणके यहाँ रहनेका साहस नहीं कर सका, क्योंकि ब्राह्मणके आश्रयमें धर्म था। किंतु अलक्ष्मीको शरण देते ही ब्राह्मणमें परिवर्तन होने लग गया। बाग-बगीचोंके फल गिर गये और फूल कुम्हला गये।

रातको ब्राह्मण देवता जप कर रहे थे, तभी उन्हें किसीका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुदन सुनायी पड़ा। जप पूरा करके जब वे उठे तो उन्होंने देखा कि उनके माथेसे एक ज्योति निकली। वह ज्योति तत्काल एक नारी-मूर्ति बन गयी। वही रुदन कर रही थी।

ब्राह्मणने पूछा—'माँ! आप कौन हैं?'

'मैं हूँ तुम्हारी सौभाग्यलक्ष्मी। अबतक तुम्हारे ललाटमें रही, परंतु अब तुम्हें त्यागकर जा रही हूँ। इसी कारण रो रही हूँ।'— उस नारी-मूर्तिने कहा।

माँ! मुझसे कौन-सा अपराध बन पड़ा है जो आप मुझे त्यागकर जा रही हैं।'—ब्राह्मणने पूछा।

'तुमने अलक्ष्मीको शरण दिया है। हम दोनों एक साथ कभी नहीं रह सकतीं।'—सौभाग्यलक्ष्मीने बताया।

ब्राह्मणने सौभाग्यलक्ष्मीको प्रणाम किया। वह चुपचाप चली गयी। प्रातःकाल सोकर उठनेपर ब्राह्मणने देखा—वृक्षोंके फल-फूल गिरकर सूख गये हैं। खेतोंकी फसल भी सूख गयी है। गायोंके थनोंसे दूध गायब है। घर-द्वार श्रीहीन हो गया है।

दूसरी रातको पुनः वैसा ही रुदन हुआ। ब्राह्मणके शरीरसे एक दिव्याङ्गना प्रकट होकर सामने आकर बोली—'मैं तुम्हारी यशोलक्ष्मी हूँ। तुमने अलक्ष्मीको आश्रय दिया, इस कारण भाग्यलक्ष्मी तुम्हें छोड़कर चली गयी। अब मैं भी तुम्हें छोड़कर जा रही हूँ।'

ब्राह्मणने उस वीराङ्गना यशोलक्ष्मीको प्रणाम किया। यशोलक्ष्मी भी चली गयी।

दूसरे दिनसे ही ब्राह्मणकी निन्दा होनी प्रारम्भ हो गयी—'वह ब्राह्मण दुष्ट और कपटी है। उसने जिस स्त्रीको अपने घरमें शरण दिया है, उसपर उसकी कुदृष्टि है।' ऐसी निन्दा सुनकर भी उसने कोई विरोध नहीं किया। निन्दा बढ़ती गयी।

उसी रात एक और नारी-मूर्ति ब्राह्मणके ललाटसे प्रकट हुई। यह थी कुललक्ष्मी। इसने कहा—'घरमें अलक्ष्मीको शरण देनेसे भाग्यलक्ष्मी और यशोलक्ष्मी दोनों ही तुम्हारे यहाँसे चली गयीं। लोग तुम्हारी घोर निन्दा कर रहे हैं। मैं कुललक्ष्मी हूँ। ऐसी दशामें तुम्हारे यहाँ मैं रह नहीं सकती।

कुल-लक्ष्मी भी ब्राह्मणको त्यागकर चली गयी। तत्पश्चात् दूसरी रातको ब्राह्मणके शरीरसे एक पुरुष-मूर्ति प्रकट हुई अद्वितीय तेजयुक्त-शरीर।

'आप कौन हैं महाराज?'—ब्राह्मणने हाथ जोड़कर पूछा।

'मैं धर्म हूँ।' उस दिव्य कान्ति-पुरुषने कहा।

'परंतु आप मुझे किस अपराधके कारण छोड़ रहे हैं?'—ब्राह्मणने विनयपूर्वक कहा।

'तुमने अलक्ष्मीको अपने यहाँ शरण दी है, जो।'—

'तो क्या किसीको शरण देनेसे ही मैंने अधर्म किया है?'

'नहीं'—धर्ममूर्तिने कहा।

'फिर!'—ब्राह्मणने जिज्ञासा प्रकट की। 'भाग्यलक्ष्मीने तुम्हें छोड़ दिया।' धर्ममूर्तिने समाधान किया।

'शरण माँगनेवालेको शरण देना जब अधर्म नहीं, तब निःसंदेह भाग्यलक्ष्मीने इस कारण मेरा त्याग नहीं किया, प्रत्युत उसने त्याग इस कारण किया कि उसे अलक्ष्मीका साथ रहना असह्य है।'—ब्राह्मणने कहा।

'हाँ, इसी कारण'—धर्मने कहा।

तब भाग्यलक्ष्मीका अनुसरण किया यशोलक्ष्मीने और उसके पीछे-पीछे कुललक्ष्मी भी चली गयी, क्योंकि यही रीति है। एकके पीछे दूसरी आती है और उसी तरह जाती भी है, परंतु आप किस अपराधके कारण मुझे त्याग रहे हैं?' ब्राह्मणके कथनपर धर्मदेवता निरुत्तर हो गये।

ब्राह्मणने नम्रभावसे कहा—'मैं आपको कदापि जाने न दूँगा। आपके कारण ही तो मैं अबतक जीवित हूँ। जबतक मैं जानेको नहीं कहता, तबतक आपको जानेका अधिकार नहीं है। मैं ही तो आपका अस्तित्व हूँ।' धर्म चुप थे। कुछ देर बाद वे बोले—'तथास्तु! तुम्हारी जय हो।' इतना कहकर धर्मने ब्राह्मणके शरीरमें प्रवेश किया।

उसी रातको पुनः किसी नारीके रोनेकी ध्वनि सुनायी पड़ी। ब्राह्मणने देखा, अलक्ष्मी बिलख रही है। उसने पास आकर ब्राह्मणसे कहा—'अब मैं जा रही हूँ।'

'तुम अपनी इच्छासे जा रही हो न?'—ब्राह्मणने पूछा।

'हाँ, मैं अपनी इच्छासे जा रही हूँ।' कहकर अलक्ष्मी चली गयी।

उसी रातको सौभाग्यलक्ष्मी ब्राह्मणके पास लौट आयी, उसके पीछे-पीछे आयी यशोलक्ष्मी और फिर कुललक्ष्मी भी।

(बंगला-कथासे अनूदित, अनु०—श्रीगुलाबचन्द्रजी विश्वकर्मा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

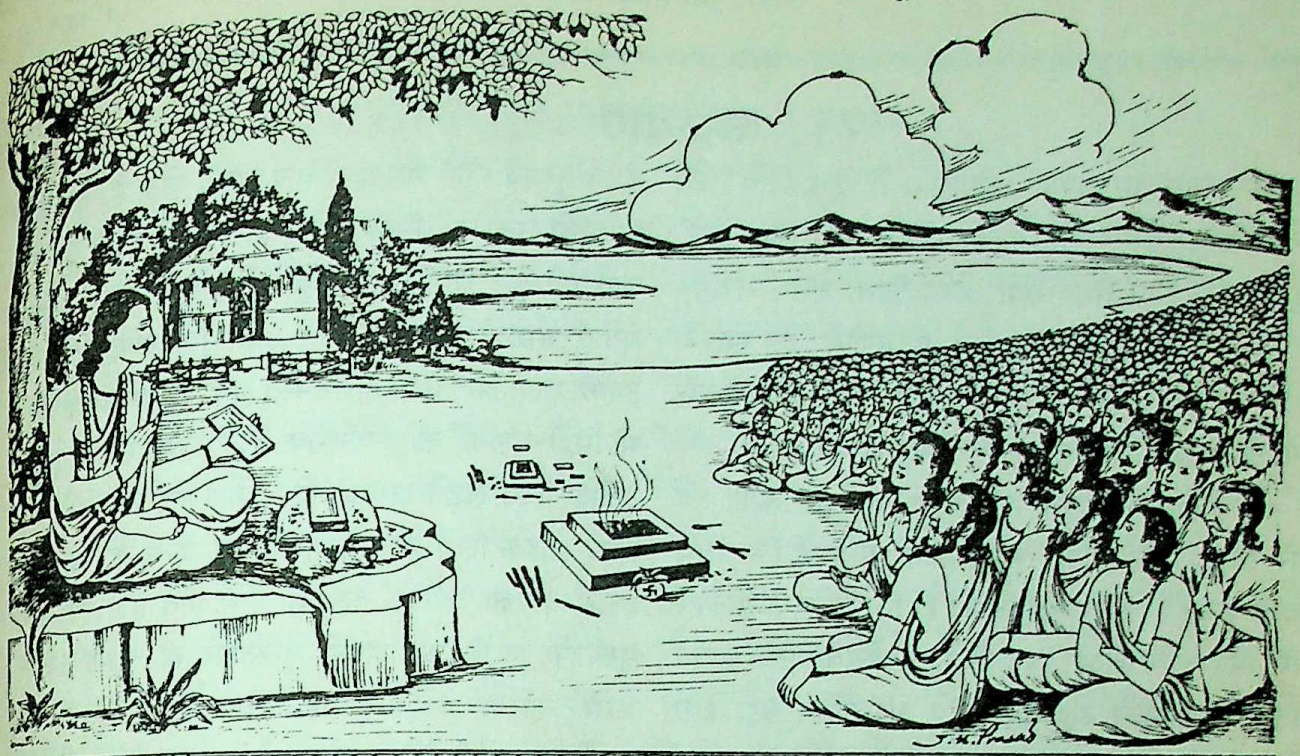

कल्याण

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत्।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया॥

वर्ष ६३ } गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-सं० ५२१५, अगस्त १९८९ ई० { संख्या ५ पूर्ण संख्या ७५०

संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष

हे चन्द्रचूड मदनान्तक शूलपाणे स्थाणो गिरीश गिरिजेश महेश शम्भो।
भूतेश भीतभयसूदन मामनाथं संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष॥
कैलासशैलविनिवास वृषाकपे हे मृत्युंजय त्रिनयन त्रिजगन्निवास।
नारायणप्रिय मदापह शक्तिनाथ संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष॥
विश्वेश विश्वभयनाशित विश्वरूप विश्वात्मक त्रिभुवनैकगुणाभिवेश।
हे विश्वबन्धुकरुणामय दीनबन्धो संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष॥

हे कामदेवको भस्म करनेवाले त्रिशूलपाणि! सिरपर चन्द्रमाको धारण करनेवाले सभीके ईश्वर (महेश)! कल्याणके उत्पत्तिस्थान, कूटस्थस्वरूप (स्थाणु)! प्रमथगणोंके स्वामी तथा भयभीत भक्तोंके भयको दूर करनेवाले हे गिरिजापति कैलासनाथ जगदीश्वर! आप संसारके गहन दुःखसे मुझ अनाथकी रक्षा कीजिये। हे कैलासपर्वतपर निवास करनेवाले शिव-विष्णुके संयुक्तरूप (वृषाकपि)! मृत्युको जीतनेवाले त्रिनेत्रधारी! तीनों लोकोंमें निवास करनेवाले एवं तीनों लोकोंके निवासभूत भगवान् विष्णुके अत्यन्त प्रिय सुहृद! गर्व-भञ्जन करनेवाले एवं पार्वतीके स्वामी हे जगदीश्वर! आप संसारके गहन दुःखसे मुझ अनाथकी रक्षा कीजिये। हे संसारके स्वामी! एवं संसारके भयको नष्ट करनेवाले, विश्वस्वरूप, विश्वात्मा, तीनों लोकोंके आश्रय और समस्त गुणोंके एकमात्र निवासस्थान, संसारके बन्धुस्वरूप, कृपाविग्रह एवं दीन-दुःखियोंके सदा सहायक जगदीश्वर! आप संसारके गहन दुःखसे मुझ अनाथकी रक्षा कीजिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

यह संसार भगवान्‌की क्रीडाभूमि है, इसे नित्य और स्थिर समझकर इसमें फँसो नहीं। खेलते रहो, खूब खेलो, परंतु चित्तको सदा स्थिर रखो अपने नित्य, सत्य, सनातन और कभी न बिछुड़नेवाले प्यारे प्रभुके चरणोंमें। इस खेलके साथी पति-पत्नी, पुत्र-कन्या, मित्र-बन्धु आदि सब खेलके लिये ही मिले हैं। इनका सम्बन्ध खेल-भरका ही है। जब यह खेल खतम हो जायगा और दूसरा खेल शुरू होगा, तब दूसरे साथी मिलेंगे। यही सदासे होता आया है। इसलिये खेलके आज मिले हुए साथियोंको ही नित्यके संगी मानकर इनमें आसक्त न होओ, नहीं तो खेल छोड़कर नये खेलमें जाते समय तुमको और इन तुम्हारे साथियोंको बड़ा क्लेश होगा। जहाँ और जब वह खेलका स्वामी भेजेगा, तब वहाँ जाना तो पड़ेगा ही, इस खेलमें और इस खेलके साथियोंमें मन फँसा रहेगा तो रोते हुए जाओगे।

तुम्हारा यह भ्रम ही है जो इस वर्तमान घर-द्वार, पुत्र-कन्या, भाई-बहन, माता-पिता, पति-पत्नीको अपने मानते हो। इस जन्मके पहले जन्ममें भी तुम कहीं थे। वहाँ भी तुम्हारे घर-द्वार, सगे-सम्बन्धी सब थे, कभी पशु, कभी पक्षी, कभी देवता, कभी राक्षस और कभी मनुष्य—न मालूम कितने रूपोंमें तुम संसारमें खेले हो, परंतु वे पुराने—पहले जन्मोंके घर-द्वार, साथी-संगी, स्वजन- आत्मीय अब कहाँ हैं, उन्हें जानते भी हो ? कभी उनके लिये चिन्ता भी करते हो ? तुम जिनके बहुत अपने थे, बड़े प्यारे थे, उनको धोखा देकर खेलके बीचमें ही उन्हें छोड़ आये, वे रोते ही रह गये और अब तुम उन्हें भूल ही गये हो ! उस समय तुम भी आजकी तरह ही उन्हें प्यार करते थे, उन्हें छोड़नेमें तुम्हें भी कष्ट हुआ था, परंतु जैसे आज तुम उन्हें भूल गये हो, वैसे ही वे भी नये खेलमें लगकर, नये घर-द्वार, संगी-साथी पाकर तुम्हें भूल गये होंगे, यही होता है। फिर तुम इस भ्रममें क्यों पड़े हो कि इस संसारके घर-द्वार, इसके सगे-सम्बन्धी, यह शरीर सब मेरे हैं ?

बच्चे खेलते हैं, मिट्टीके घर बनाते हैं, तेरा-मेरा करते हैं, जबतक खेलते हैं, तबतक तेरे-मेरेके लिये लड़ते झगड़ते भी हैं, परंतु जब खेल समाप्त होनेका समय होता है, तब अपने ही हाथों उन धूल-मिट्टीके घरोंको ढहाकर हँसते हुए चले जाते हैं। तुम सयाने लोग धूल-मिट्टीके—काँच- पत्थरके घरोंपर बच्चोंको लड़ते देखकर उन्हें मूर्ख समझते हो और उनकी मूर्खतापर हँसते हो—परंतु तुम भी वही करते हो, वे भी मिट्टी-धूलके, काँच-पत्थरोंके लिये लड़ते हैं और तुम भी उन्हींके लिये लड़ते-झगड़ते हो। उनके घर छोटे और थोड़ी देरके खेलके लिये होते हैं, तुम्हारे घर उनसे कुछ बड़े और उनकी अपेक्षा अधिक कालके लिये होते हैं। तुम्हें उनकी मूर्खतापर न हँसकर अपनी मूर्खतापर ही हँसना चाहिये। उनसे तुम्हारे अंदर एक मूर्खता अधिक है, वह यह कि वे तो खेलते समय ही तेरे-मेरेका आरोप करके लड़ते हैं, खेल खतम करनेके समय सबको ढहाकर हँसते हुए घर चले जाते हैं। परंतु तुम तो खेल खतम होनेपर भी रोते हुए ही जाते हो और इसीलिये अपने वास्तविक घर (परमात्मामें) तुम नहीं पहुँच सकते। यदि तुम भी इन बच्चोंकी तरह खेलके समय तेरे-मेरेका आरोप करके—(वस्तुतः अपना मानकर नहीं) मजेमें खेलो और खेल समाप्त होनेपर उसे खेल ही समझकर अपने मनसे सबको ढहाकर प्रसन्नतापूर्वक वास्तविक घरकी ओर चल दो तो सीधे घर पहुँच जाओ और फिर वहाँसे लौटनेका अवसर ही न आवे, परंतु खेद तो यही है कि तुमने इस खेल-घरको असली घर मान लिया है। मान लेनेमात्रसे यह घर और इसमें रहनेवाले तुम्हारे ही-जैसे खेलनेको आये हुए लोग, जिनसे तुमने नाना प्रकारके नाते जोड़ लिये हैं, तुम्हारे होते भी नहीं, इन्हें अपना समझकर इनसे चिपटे रहना चाहते हो, परंतु अलग किये जानेसे तुम्हें रोना-चिल्लाना पड़ता है। तुम्हारा स्वभाव ही हो गया है हरेक खेलके संगी-साथियोंसे इसी प्रकार चिपटे रहना, दो घड़ीके लिये जहाँ भी जाते हो, वहीं ममता फैलाकर बैठ जाते हो। इसीसे हरेक खेलमें तुम्हें रोना ही पड़ता है। न मालूम कितने लंबे समयसे तुम इसी प्रकार रो रहे हो। और न समझोगे तो न जाने कबतक रोते रहोगे। अच्छा हो, यदि समझ जाओ और इस रोने-चिल्लानेसे—इस सदाकी साँसतसे तुम्हारा पीछा छूट जाय। 'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसारका वास्तविक स्वरूप

(ब्रह्मलीन परम पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

सम्पूर्ण व्यावहारिक प्रपञ्च स्वप्नवत् है, फिर भी अबाधित चिरकालानुवृत्त होनेके कारण उसमें दृढ़ प्रत्यय होता है, अचित् बाधित होनेसे स्वप्नमें इतना दृढ़ प्रत्यय नहीं होता। कभी किसी दीर्घ स्वप्नमें अभिनिवेशाधिक्यसे जागनेपर भय-कम्पादि होता रहता है, सहसा उसकी सत्तामें अविश्वास नहीं होता। प्राणियों-के भोगारम्भक शुभाशुभ अदृष्ट भी कुछ प्रत्यय-दार्ढ्यमें हेतु हो जाते हैं। यह बात अलग है कि सब स्वप्न एक-से नहीं होते, उनकी विचित्रता स्पष्ट ही है। भ्रममें कोई भी बात असम्भव नहीं है। समुद्रमें बड़वानलके समान जलमें अग्नि, आकाशमें नगर, शिलामें पङ्कज, शिलाके भीतर सृष्टि, शिलाओंका उड़ना आदि भी सम्भव होते हैं। यन्त्रपुमान्के समान अचेतनका भी कर्म करना दृष्ट है। स्वप्ननिमग्नबुद्धि प्राणी स्वप्नकी स्थिरता और सत्यताका जैसे अनुभव करता है, वैसे ही सर्गनिमग्नबुद्धि प्राणी सर्गको सत्य और स्थिर देखता है। स्वप्नसे स्वप्नान्तरगमनके समान ही सर्गभ्रमण भी होता है।

इसी सम्बन्धमें 'योगवासिष्ठ'का भिक्षूपाख्यान है। समाधि-सम्पन्न भिक्षुके शुद्ध चित्तके सङ्कल्पसे लीलामात्रसे एक जीवट नामक सामान्य मनुष्य उत्पन्न हुआ। वही स्वप्नमें अपने-आपको वेदपाठी ब्राह्मण देखने लगा। ब्राह्मणने भी निद्रामें पड़कर स्वप्नमें अपनेको सामन्त देखा। सामन्तने स्वप्नमें अपनेको सम्राट् देखा। सम्राट् स्वप्नमें अप्सरा हो गये। अप्सरा भी स्वप्नमें मृगी बन गयी। मृगी स्वप्नमें लता बन गयी। लता कटकर भ्रमर बन गयी और पद्मिनीमें आसक्त होकर मदान्ध गजद्वारा कमलिनीके साथ ही वह भी नष्ट होकर मदान्ध गज बन गया। गज भी मरकर भ्रमरोंको देखता-देखता भ्रमर हो गया और फिर गजपादसे चूर्णित हो गया। हंसकी भावनासे वही हंस हो गया। हंस मरकर सारस हो गया, सारसने रुद्रको देखकर रुद्र होना चाहा और रुद्र हो गया (यहाँ रुद्रका अर्थ रुद्र-सा रूप-प्राप्त रुद्रगण है)। रुद्र होते ही जब सर्वज्ञता आ गयी, तब अपने अनेकानेक जन्मों और स्वप्नोंकी सब कथा उसकी स्मृतिमें आयी। अहो ! मिथ्याभूत ही जगन्मोहिनी माया मरुभूमिमें यद्यपि जलके समान ही है, तथापि इसमें कितनी विचित्रता है। जो मैं प्रथम केवल चिन्मात्र था, वह चित्त बना। गगनादि प्रपञ्चकी भावना करके जीव बना। फिर भिक्षु, फिर स्वप्नसे स्वप्नमें भटकते हुए कहाँसे कहाँ गया। यह सब भावना और संकल्पके अभ्यासका ही परिणाम है। देहादिप्राप्तिमें भी सङ्ग, संकल्प, भावना ही निमित्त होती है। यह भावना आदि विचार करनेपर कुछ भी नहीं ठहरते। इस सम्पूर्ण संसारभ्रमका एकमात्र असंवेदन ही मार्जन है। यह सब विचारकर रुद्रने शयान भिक्षुको जगाया। जागकर तत्त्वज्ञ भिक्षुने विचित्र स्वप्नपरम्पराका स्मरण किया। पुनः दोनों मिलकर जीवटके पास गये। उसे प्रबुद्ध किया। ये सब पृथक्-पृथक् सर्गके ही आकाशमें थे। फिर उन तीनोंने विप्रके संसारमें जाकर उसे जगाया। इस तरह सामन्त, राजा, सुराङ्गना आदि पूर्वोक्त सभी मिलकर अन्तमें रुद्रभावको प्राप्त हुए। सभी निरावरण चित्स्वरूप होकर अवेदनात्मक मोक्षको प्राप्त हुए।

संवेदन ही सर्ग और बन्ध है, अवेदन (संसारका भान न होना) ही मोक्ष है। सर्वसाधारणके संकल्पमें अभ्यासाभावसे शक्ति नहीं होती, तथापि एकाग्रतासे दृढ़ संकल्प करनेवाले योगीलोग एक क्षणमें ही अनेक देहोंका निर्माण कर लेते हैं। जैसे क्षीरसागरमें रहते हुए शेषशायी भगवान् अन्यत्र सहस्रों अवतारकार्य करते हैं, वैसे ही सिद्धसंकल्प योगियोंके संकल्पानुसार ही सृष्टिपरम्परा चल पड़ती है। दूसरे प्राणी प्राक्तन शुभाशुभ कर्मानुसारी दृढ़ संकल्पके अनुसार संसारको प्राप्त होते हैं। इस तरह कर्मानुसार सभी जीव एक स्वप्नसे दूसरे स्वप्नमें भटक रहे हैं। शान्त, निर्विकार ब्रह्मभावका बोध होनेपर प्राणरोध, इन्द्रियरोध एवं दृश्य-प्रपञ्चके अस्तंगमनके बिना भी सर्वदा सर्वत्र शान्त, शुद्ध, मौन ब्रह्म उपलब्ध होता है। प्रयत्नानपेक्ष इसी अवस्थाको सौषुप्त मौन कहा गया है। इसमें यथास्थित वस्तुके बोधमात्रसे यथास्थित अनाद्यनन्त उदयास्तवर्जित, आकाशसे भी परम सूक्ष्म, शिलासे भी अनन्त घन, निरवकाश, ठोस, शुद्ध, अमल ब्रह्म अपने-आपमें ही स्थित रहता है।

वासनामात्र ही चित्त है। चित्तके अभावमें ही परमपद है। रज्जु-सर्पभ्रमके समान इस संसृतिका विवेकमात्रसे बाध हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। एकार्थाभ्यास, प्राणरोध, मनोनाश—ये सब संसृति-समाप्तिमें कारण हैं। प्राणके शान्त होनेपर मन शान्त होता है, मनःस्पन्दके शान्त होनेपर प्राणस्पन्द भी शान्त होता है। ये दोनों आपसमें रथ-रथीके समान हैं। एकके अभावमें दोनोंका ही अभाव हो जाता है। अनन्तात्मतत्त्वका विचार करके उसीका दृढ़ाभ्यास करनेसे मनको ब्रह्माकार बनाना चाहिये। अज्ञान और ज्ञान दोनोंका ही बाध होनेसे अधिष्ठानतत्त्व ही रह जाता है। सम्पूर्ण द्वैत अविद्यामात्र है। अविद्या भी चित्तमात्र है। चित्त भी स्वभासक अधिष्ठानमात्र है। विचारसे क्षणमें जीव अजीव, चित्त अचित्त हो जाता है। मृगतृष्णा-जलके समान ही मन और अहन्तादि संसार उपलब्ध होता है। सब असत् ही है। किञ्चिन्मात्र विचारसे इसका बाध हो जाता है।

माँके प्रति—समर्पण

(श्रीराधाकृष्ण श्रोत्रिय, 'साँवरा')

हो दयार्द्र मंगलमयि माता, तेरा हृदय विराट ।
मैं तो बिन पंखोंका पंछी, देख रहा हूँ बाट ॥
ज्यों गो-वत्स क्षुधासे आतुर, कातर रहा पुकार ।
कृपा करो, दर्शन दो जननी, लो अविलम्ब उबार ॥
मम सर्वस परवशकी निधि माँ ! मैं मूरख अज्ञान ।
कर स्वीकार समर्पण मेरा, कीजै भक्ति प्रदान ॥
तुम हो निराश्रितोंकी आश्रय, मम एकमात्र अवलम्ब ।
मुझसे अधम अशक्त दीनको, अपना लो अब अम्ब ॥
सब जीवोंका दुख हरती हो, जो तेरे गुण गाता ॥
मेरा भी दुख-दारुण हर लो, हे जगदम्बे माता ॥
साधनहीन, दीन अति दुर्बल, जगसे हुआ निराश ।
आया हार द्वार पै तेरे, टिकी तुम्हींपर आश ॥
जगजननी ! जगमें जनिये नहिं, मुझ-सा पूत कुपूत ।
जन्मदात्रि माँको बिसराया ऐसा विषयी धूत ॥
मैं पामर मायामें तन्द्रित, तुम हो परम उदार ।
निज स्वभाववश करुण-दृष्टि हो, देखो नयन उघार ॥
मात कुमात सुनी नहिं जगमें, पूत कुपूत अनेकन ।
उनमें मैं अति अधम कुनामी, कैसे करूँ विवेचन ॥
स्नेहमयी, ममतामयि, माँ ! तू कृपामयी कल्यानी ।
आया शरण चरणमें तेरे, भवसे तार भवानी ॥
तेरी ममताकी क्या समता, अनुकम्पा अब करिये ।
करुणाकरि करुणामयि ! मेरे त्रिविध ताप सब हरिये ॥
शक्ति-भक्तिसे हीन दीन यह, जो चाहो सो कीजै ।
'साँवर' कुटिल कुपुत्र आपका, निज चरणन रख लीजै ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवतार और अधिकारी महापुरुषोंका अलौकिक प्रभाव

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

(गीता ४।७)

भगवान् कहते हैं—'हे भारत ! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् साकाररूपसे लोगोंके सम्मुख प्रकट होता हूँ।'

इसपर कितने ही भाई हमसे पूछा करते हैं कि 'जब-जब धर्मकी हानि और पापकी वृद्धि होती है, तब-तब भगवान् यदि अवतार लेते हैं तो इस समय तो धर्मकी हानि और पापकी वृद्धि विशेषरूपसे हो रही है, फिर भगवान् अवतार क्यों नहीं लेते ? क्योंकि इस समय धर्म-पालन करनेवाले लोग संसारमें बहुत ही कम हैं, यदि कहीं कोई धर्म-पालन करता है तो वह आंशिकरूपसे ही करता है एवं यज्ञ, तप, तीर्थ-व्रत, उपवास, दुखी प्राणियोंकी सेवा, बड़ोंका आदर-सत्कार, शौचाचार-सदाचारका पालन आदि तो बहुत ही कम देखनेमें आते हैं। और जो देखनेमें आते हैं, उनमें भी सूक्ष्मतासे विचार करके देखनेपर कहीं-कहीं तो शौचाचार-सदाचाररूप धर्मके नामपर दम्भ ही दृष्टिगोचर होता है। यह तो धर्म-हानिकी बात हुई। इसके सिवा, दूसरी ओर पापाचारकी विशेषरूपसे वृद्धि हो रही है। चोरी, झूठ, कपट, बेईमानी, घूसखोरी आदि दिन-पर-दिन बढ़ रहे हैं। चोरबाजारी करना, इनकम टैक्स और सेल्स टैक्सकी चोरी करना, झूठे बहीखाते बनाना तो मामूली-सी बात हो रही है, इन सबको तो बहुत-से लोग पाप ही नहीं समझते। अंडे और मांस खाने तथा मदिरा पीनेसे शास्त्रोंमें बड़ा भारी पाप माना गया है, किंतु इनको भी बहुत-से लोग व्यवहारमें लाने लगे हैं। कोई औषधके नामपर, कोई होटलमें जाकर और कोई भोग-कामनाकी पूर्तिके लिये इनको व्यवहारमें लाने लगे हैं और उसमें पाप भी नहीं समझते। कई एक पुरुष तो परस्त्री-गमनको भी पाप नहीं मानते। उनमें कितने ही तो छिपकर और कितने ही प्रकटरूपमें यह दुराचार करते हैं। बहुत-से लोग सट्टा-फाटका और जुआ खेलते हैं, जिनके सम्बन्धमें शास्त्रकी घोषणा है कि ये देश और राष्ट्रके लिये महान् हानिकारक हैं। मांस और चमड़ेके लिये गौओंकी हिंसा बहुत अधिक मात्रामें हो रही है, क्योंकि चमड़ा और सूखा मांस विदेशोंमें अत्यधिक परिमाणमें भेजा जाता है। मच्छर, खटमल और टिड्डी आदि क्षुद्र प्राणियोंकी हिंसाको तो बहुत-से लोग हिंसा ही नहीं समझते। ऐसी परिस्थितिमें भगवान् क्यों नहीं अवतार लेते ?'

इसके उत्तरमें हम यही कहते हैं कि भगवान् अवतार क्यों नहीं लेते—इसे तो भगवान् ही जानें, इसका निर्णय करनेकी सामर्थ्य हममें नहीं है। फिर भी विचार करनेसे यह अनुमान होता है कि जब युगधर्मके अनुसार अधिक मात्रामें पाप बढ़ जाता है, तभी भगवान् अवतार लिया करते हैं। सत्ययुगमें धर्मके चार चरण रहते हैं, त्रेतायुगमें तीन, द्वापरमें दो और कलियुगमें एक ही चरण रह जाता है (महा० वन० अ० १४९)। जब सत्ययुगमें धर्मका ह्रास होने लगा, तब भगवान्ने श्रीनृसिंह आदि रूपोंमें प्रकट हो हिरण्यकशिपु आदि दुष्टोंका संहार करके धर्मकी स्थापना की। त्रेतायुगके अन्तमें जब राक्षसोंने ऋषि-मुनियोंको मारकर उनकी हड्डियोंका ढेर लगा दिया, तब भगवान्ने श्रीरामरूपमें प्रकट हो खर-दूषण, त्रिशिरा, कुम्भकर्ण, मेघनाद, रावण आदि राक्षसोंमेंसे, किसीका स्वयं वध करके और किसीका दूसरेके द्वारा वध करवाकर धर्मकी स्थापना की, जिसके कारण आज भी संसारमें 'रामराज्य'की महिमा गायी जाती है। द्वापरयुगके अन्तमें जब दुष्टोंके द्वारा घोर अत्याचार होने लगा, तब भगवान्ने श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हो पूतना, वत्सासुर, बकासुर, अघासुर, धेनुकासुर, प्रलम्बासुर, अरिष्टासुर, कंस, जरासंध, कालयवन, शिशुपाल, दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि, जयद्रथ आदि दुष्टोंमेंसे किन्हींका स्वयं संहार करके और किन्हींका दूसरोंके द्वारा संहार करवाकर तथा महाराज युधिष्ठिरको राज्य दिलाकर धर्मकी स्थापना की।

उपर्युक्त विवेचनसे यह सिद्ध हुआ कि जब-जब युग-धर्मके लक्षणोंकी अपेक्षा पाप अधिक बढ़ जाता है, तब-तब भगवान् प्रायः युगके अन्तमें अवतार लेते हैं। जब सत्ययुगमें धर्म-पालनके चार चरणोंमें कमी आयी, त्रेतामें उसके तीन चरणोंमें कमी आ गयी और द्वापरयुगमें दो चरणोंमें भी कमी आ गयी, तब भगवान्को अवतार लेना पड़ा। अब कलियुगमें धर्मका एक ही चरण रह गया है, इसका भी जब बिलकुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ह्रास हो जायगा, तब कलियुगके अन्तमें भगवान् कल्किरूपमें अवतार लेंगे—ऐसी बात श्रीमद्भागवतमें कही गयी है (देखिये स्कन्ध १२, अध्याय २, श्लोक १८)।

घोर कलियुगका वर्णन करते हुए गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपने रामचरितमानसमें लिखा है—

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी॥
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई॥
सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलि जुग सोइ गुनवंत बखाना॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलि जुग सोइ ग्यानी सो बिरागी॥
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥
असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं॥

'कलियुगमें न वर्णधर्म रहता है, न चारों आश्रम रहते हैं। सभी स्त्री-पुरुष वेदके विरोधमें लगे रहते हैं। ब्राह्मण वेदोंको बेचनेवाले और राजा प्रजाका शोषण करनेवाले होते हैं। वेदकी आज्ञा कोई नहीं मानता। जिसको जो अच्छा लग जाय, वही मार्ग है। जो डींग मारता है, वही पण्डित है। जो मिथ्या आरम्भ करता (आडम्बर रचता) है और जो दम्भमें रत है, उसीको कलियुगमें सब कोई संत कहते हैं। जो जिस किसी प्रकारसे दूसरेका धन हरण कर ले, वही बुद्धिमान् है। जो दम्भ करता है, वही बड़ा आचारी है। जो झूठ बोलता है और हँसी-दिल्लगी करना जानता है, कलियुगमें वही गुणवान् कहा जाता है। जो आचारहीन है और वेदमार्गको छोड़े हुए है, कलियुगमें वही ज्ञानी और वही वैराग्यवान् है। जिसके बड़े-बड़े नख और लम्बी-लम्बी जटाएँ हैं, वही कलियुगमें प्रसिद्ध तपस्वी है। जो अमङ्गल वेष और अमङ्गल भूषण धारण करते हैं और भक्ष्य-अभक्ष्य (खाने योग्य और न खाने योग्य) सब कुछ खा लेते हैं, वे ही योगी हैं, वे ही सिद्ध हैं और वे ही मनुष्य कलियुगमें पूज्य हैं।'

इस समय भी इस प्रकारके अधर्मका सूत्रपात तो होने लगा है, किंतु अभी धर्मका सर्वथा ह्रास नहीं हुआ है।

आजकल दम्भ और पाखण्ड बढ़ता जा रहा है। दम्भी लोग धर्मके नामपर भोले-भाले नर-नारियोंको अपने चंगुलमें फँसा लेते हैं। कई स्त्रियाँ भी अपनेको ज्ञानी, महात्मा, योगी और ईश्वरकी शक्ति घोषित करती हैं तथा उनके अनुयायी लोग भी कहते हैं कि ये साक्षात् ईश्वरकी शक्ति हैं, ईश्वर इनमें प्रकट हुए हैं, ईश्वरने नारीके रूपमें अवतार लिया है। इस प्रकारका भ्रम फैलाकर वे स्त्रियाँ अपने मान, बड़ाई और प्रतिष्ठाके लिये अपनेको पुजवाती हैं तथा लोगोंकी धन-सम्पत्तिका अपहरण करती हैं। कहीं-कहीं गृहस्थ और संन्यास-आश्रममें स्थित पुरुष भी दम्भ-पाखण्ड करते हैं। कोई तो अपनेको योगिराज कहते हैं, कोई ज्ञानी-महात्मा नामसे अपनेको घोषित करते हैं, कोई-कोई अपनेको अधिकारी (कारक) महापुरुष कहते हैं एवं कोई-कोई तो अपनेको ईश्वरका अवतार कहते हैं। यों कहकर वे अपने फोटो और पैरोंको पुजवाते, अपना नाम जपवाते और अपने उच्छिष्टको महाप्रसादके नामपर वितीर्ण करते हैं। इस प्रकार भोले-भाले पुरुषों और स्त्रियोंको धोखा देकर उनके सतीत्व और धन-सम्पत्तिका अपहरण करते हैं। जब यह दम्भ-पाखण्ड अतिमात्रामें बढ़ जाता है, धर्मका अत्यन्त ह्रास होकर पापोंकी वृद्धि हो जाती है, तब भगवान् अवतार लेते हैं। हमारी समझमें तो अभी अवतार लेनेका समय नहीं आया है, इसलिये कोई दम्भी अपनेको अवतार या अधिकारी (कारक) महापुरुष घोषित करे तो उसके भुलावेमें आकर अपने धर्म और धन-सम्पत्तिका नाश नहीं करना चाहिये।

वास्तवमें ईश्वरके अवतारके स्वरूप, जन्म, उद्देश्य, प्रभाव, गुण, कर्म और स्वभाव दिव्य, अलौकिक और अत्यन्त विलक्षण होते हैं। उनके श्रीविग्रहकी धातु चेतन होती है। उनका शरीर दीखनेमें मनुष्य-जैसा होनेपर भी अतिशय विलक्षण होता है, वह रोग-शोक-मोह और दोषोंसे रहित, अलौकिक एवं दिव्य होता है। उनका जन्म मनुष्योंकी भाँति नहीं होता। गीतामें भगवान्ने बतलाया है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
(४।६)

'मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ।'

यहाँ **'अजोऽपि सन्'** कहकर भगवान्ने यह भाव दिखलाया है कि मैं जन्म लेता-सा प्रतीत होता हूँ, वास्तवमें जन्म नहीं लेता। श्रीमद्भागवतमें वर्णन है कि माता देवकीके सामने भगवान् चतुर्भुजरूपमें ही प्रकट हुए थे। उनके उस अलौकिक रूपको देखकर माता देवकीने, कंस उन्हें तंग न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करे, इसलिये उनसे यह प्रार्थना की—

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्।
शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम्॥

(१०।३।३०)

'विश्वात्मन्! आपका यह रूप अलौकिक है। आप शङ्ख, चक्र, गदा और कमलकी शोभासे युक्त अपने इस चतुर्भुज रूपको छिपा लीजिये।'

तब भगवान्—

पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः॥

(श्रीमद्भा० १०।३।४६)

'माता-पिताके देखते-देखते अपनी मायासे तत्काल एक साधारण बालक-से हो गये।'

भगवान्ने वहाँ वसुदेव-देवकीसे कहा कि 'मैंने आपको यह रूप इसलिये दिखलाया है कि आपको मेरे पूर्व अवतारोंका स्मरण हो जाय। यदि मैं ईश्वररूपमें प्रकट न होता तो केवल मनुष्यशरीरसे मेरे अवतारकी पहचान नहीं हो पाती।' एवं वहाँ भगवान्ने अपनेको यशोदाके यहाँ पहुँचानेके लिये वसुदेवजीको प्रेरणा भी की। इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान्का जन्म नहीं होता। दूसरी बात वहाँ यह भी दिखलायी गयी है कि भगवान्की योगशक्तिके प्रभावसे वसुदेवजीकी हथकड़ी-बेड़ियाँ खुल गयीं, दरवाजे और ताले खुल गये, पहरेदारोंको निद्रा आ गयी तथा वसुदेवजीके श्रीकृष्णको लेकर गोकुल जाते समय यमुनाका बढ़ा हुआ जल अत्यन्त कम हो गया, यमुनाने उनके लिये मार्ग दे दिया एवं यशोदाको निद्रा आ गयी। जब वसुदेवजी श्रीकृष्णको यशोदाकी शय्यापर सुलाकर उनके बदलेमें योगमायाको, जो वहाँ कन्याके रूपमें प्रकट हुई थीं, वहाँसे लेकर कारागारमें आ गये, तब कारागारके फाटक और ताले अपने-आप बंद हो गये (श्रीमद्भा० १०।३)। यह सब भगवान्का ही प्रभाव है। ऐसी शक्ति मनुष्योंमें नहीं होती।

'अव्ययात्मा अपि सन्' कहकर भगवान्ने यह भाव प्रकट किया है कि मेरा विनाश होता-सा प्रतीत होनेपर भी वास्तवमें मेरा विनाश नहीं होता; क्योंकि मेरा स्वरूप अक्षय है। भगवान् श्रीकृष्ण जब परम धाममें पधारे, तब उस शरीरसे ही परम धाममें गये। श्रीमद्भागवतमें आया है—

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलम्।
योगधारणयाऽऽग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत् स्वकम्॥

(११।३१।६)

'भगवान्का श्रीविग्रह उपासकोंके ध्यान और धारणाका मङ्गलमय आधार और समस्त लोकोंके लिये परम रमणीय आश्रय है। इसलिये उन्होंने (योगियोंके समान) अग्नि-देवता-सम्बन्धी योग-धारणाके द्वारा उसको जलाया नहीं, सशरीर अपने धाममें पधार गये।'

श्रीमद्भगवद्गीताके एकादश अध्यायमें देखा जाता है कि अर्जुनके प्रार्थना करनेपर भगवान्ने उनको अपने विश्वरूपका दर्शन कराया और पुनः प्रार्थना करनेपर उसे छिपा लिया। न तो विश्वरूपका जन्म हुआ और न विनाश हुआ, केवल आविर्भाव और तिरोभाव हुआ। अतः जब भगवान् अवतार लेते हैं, तब प्रकट होते हैं और फिर अन्तर्धान हो जाते हैं।

इसी प्रकार ध्रुवजीको भगवान्ने चतुर्भुजरूपमें प्रकट होकर दर्शन दिया और फिर अन्तर्हित हो गये (श्रीमद्भा० ४।९)।

ऐसे ही भगवान् श्रीरामावतारमें माता कौसल्याके सम्मुख चतुर्भुजरूपमें प्रकट हुए और फिर सशरीर परम धामको चले गये। श्रीवाल्मीकीय रामायणमें कहा गया है—

पितामहवचः श्रुत्वा विनिश्चित्य महामतिः।
विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः॥

(उत्तर० ११०।१२)

'ब्रह्माजीके वचन सुनकर परम बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीने कर्तव्य निश्चय करके भाइयोंके साथ शरीरसहित अपने विष्णु-सम्बन्धी तेजमें प्रवेश किया।'

इसलिये यह समझना चाहिये कि भगवान्का स्वरूप अविनाशी है, उसका कभी विनाश नहीं होता।

तथा **'भूतानामीश्वरोऽपि सन्'**कहनेका अभिप्राय यह है कि भगवान् सम्पूर्ण प्राणियोंके ईश्वर होते हुए भी मनुष्य-से दिखायी पड़ते हैं, किंतु वास्तवमें मनुष्य नहीं हैं। अवतार-कालमें भगवान्ने जगह-जगह अपनी ईश्वरता दिखलायी है। जब ब्रह्माजीको मोह हो गया कि श्रीकृष्ण मनुष्य हैं या ईश्वर, तब वे भगवान्की परीक्षाके लिये उनके बछड़ों और ग्वाल-बालोंको चुराकर ले गये। उस समय उन बछड़ों और गोप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालकोंके रूपमें स्वयं प्रकट होकर भगवान्‌ने अनेक रूप धारण कर लिये। फिर ब्रह्माजीका मोह दूर हो जानेपर उन सब रूपोंका उपसंहार भी कर लिया (श्रीमद्भा० १०।१३)।

जब अक्रूरजी भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामको मथुरा ले जा रहे थे, उस समय वे यमुनाके ह्रदमें स्नान करने गये तो वहाँ भगवान्‌ने उनको जलमें भी अपना स्वरूप दिखाया और रथपर भी वैसे ही स्वरूपका दर्शन कराया (श्रीमद्भा० १०। ३९।४१—४३)।

श्रीरामावतारमें भगवान् रामने भी अनेक रूप धारण किये थे—

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नर नारि बिसोकी॥
छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना॥

'उस समय कृपालु श्रीरामजी असंख्य रूपोंमें प्रकट हो गये और सबसे एक ही साथ यथायोग्य मिले। रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीने कृपापूर्ण दृष्टिसे देखकर सब नर-नारियोंको शोकसे रहित कर दिया। भगवान् क्षणमात्रमें सबसे मिल लिये। परंतु हे उमा! यह रहस्य किसीने नहीं जाना।'

ये सब कार्य मनुष्यकी शक्तिके बाहर हैं। इनको भगवान् ही कर सकते हैं, दूसरा कोई नहीं।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

—इस कथनका यह भाव है कि भगवान् प्रकृतिको अपने अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होते हैं। यह भगवान्‌के जन्मकी विलक्षणता है। हमलोग संसारमें अपने पुण्य-पापोंके अनुसार प्रकृतिके पराधीन होकर जन्म लेते हैं और भगवान् स्वयं प्रकृतिको अधीन करके प्रकट होते हैं। उनके जन्ममें स्वतन्त्रता है और हमलोगोंके जन्ममें परतन्त्रता है। प्रकृति उनके वशमें रहती है और हमलोग प्रकृतिके वशमें रहते हैं। उनका शरीर दिव्य, चिन्मय, अलौकिक, पापों और दुर्गुणोंसे रहित, चिन्ता-शोक-जरा-मृत्यु और रोगसे मुक्त होता है और हमलोगोंके शरीर जड तथा पूर्वोक्त दोषोंसे युक्त होते हैं। उनका प्राकट्य धर्म, ज्ञान, प्रेम, सदाचार, श्रद्धा, भक्तिके प्रचारके द्वारा संसारके उद्धारके उद्देश्यसे होता है, किंतु हमलोगोंका जन्म कर्मफल भोगनेके लिये होता है। अतः उनके और हमलोगोंके जन्ममें अत्यन्त अन्तर है। उनके जन्म, कर्म और उद्देश्य भी अलौकिक होते हैं।

कहा भी है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(गीता ४।९)

'हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता, किंतु मुझे ही प्राप्त होता है।' (—क्रमशः)

राम-नामका प्रभाव

अपत-उतार, अपकारको अगारु, जग जाकी छाँह छुएँ सहमत ब्याध-बाधको।
पातक-पुहुमि पालिबेको सहसाननु सो, काननु कपटको, पयोधि अपराधको॥
तुलसी-से बामको भो दाहिनो दयानिधानु, सुनत सिहात सब सिद्ध, साधु साधको।
रामनाम ललित-ललामु कियो लाखनिको, बड़ो कूर कायर कपूत कौड़ी आधको॥
सब अंग हीन, सब साधन बिहीन, मन-बचन मलीन, हीन कुल-करतूति हौं।
बुद्धि-बल-हीन, भाव-भगति-बिहीन, हीन गुन, ग्यानहीन, हीन भाग हूँ, बिभूति हौं॥
तुलसी गरीबकी गई-बहोर रामनामु, जाहि जपि जीहँ रामहूको बैठो धूति हौं।
प्रीति रामनामसों, प्रतीति रामनामकी, प्रसाद रामनामकें पसारि पाय सूतिहौं॥

—गो० तुलसीदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य शंकरका शक्तितत्त्व-विमर्श

(पद्मभूषण पण्डित श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

शंकराचार्यपादानां तन्त्रशास्त्रीयचिन्तनम्।
स्वीयग्रन्थेषु निर्दिष्टं स्पष्टमत्र विचार्यते॥

परिव्राजकाचार्य आचार्य शंकर अद्वैत वेदान्तके जितने महान् सूक्ष्म विवेचक तथा महनीय आलोचकशिरोमणि थे, तन्त्रशास्त्रके भी वे उतने ही मर्मज्ञ आचार्य, अन्तरालोडन-निष्णात विद्वान् तथा तान्त्रिक विज्ञानवेत्ता थे। अद्वैत वेदान्तके इतिहासमें उनके ग्रन्थ नितान्त प्रामाणिक एवं प्रख्यात हैं। शाक्त तन्त्रके अन्तर्गत श्रीविद्या-सम्प्रदायमें भी उनकी रचनाएँ गम्भीर तथा विश्रुत हैं। आगमको निगमसे एकान्ततः भिन्न माननेवाले आलोचकोंकी कमी नहीं है, परंतु यथार्थतः दोनोंका मञ्जुल सामरस्य ही निगमागममूलक भारतीय संस्कृतिका मूलाधार है। मूलतः अन्वेषण करनेपर वैदिक संहिताओंके मन्त्रोंमें तान्त्रिक तथ्योंकी उपलब्धि आश्चर्यप्रसू नहीं है। कतिपय तथ्योंका ही यहाँ संकेत किया जा रहा है, जिससे शाक्त तन्त्रकी वैदिक परम्पराकी एक दिव्य झाँकी हमारे नेत्रोंके सम्मुख उपस्थित हो जाती है।

श्रीविद्याका वैदिक स्रोत—श्रीविद्याका मूलतन्त्र-संकेत ऋग्वेदके इस मन्त्रमें सद्यः उपलब्ध होता है—

चत्वार ई बिभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भं चरसे धापयन्ते।
त्रिधातवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान्॥

(ऋग्वेद ५।४७।४)

सायणाचार्यने इस ऋचाका आधिदैविक अर्थ सूर्यपरक किया है, परंतु सौन्दर्य लहरीके व्याख्याता आचार्य लक्ष्मीधरके अनुसार इसके दोनों आदिम पद मूल विद्याकी ओर स्पष्ट संकेत करते हैं। वे कहते हैं—**'षोडशकलात्मकस्य श्रीबीजस्य गुरु-सम्प्रदायवशाद् विज्ञेयस्य स्थितत्वात् चतुर्णामीकाराणां सिद्धेः मूलविद्यायाः वेदस्थितत्वं सिद्धम्'** (सौन्दर्यलहरीके पञ्चम श्लोककी व्याख्या)।[१]

तैत्तिरीयसंहिता, ब्राह्मण एवं आरण्यकमें इस तथ्यके पोषक प्रमाणोंका बाहुल्य है। तैत्तिरीय आरण्यक (प्रश्न-मन्त्र १—२९) में उपलब्ध अरुणोपनिषद् अरुणा नाम्नी भगवतीके कार्यकलाप एवं माहात्म्यका स्पष्टतः वर्णन करती है। इस उपनिषद्के द्रष्टा अरुणकेतु नामके ऋषि हैं। अरुणा भगवती ही श्रीविद्या हैं। इनका वर्णन शंकराचार्यने सौन्दर्यलहरीमें इस रमणीय पद्यके द्वारा किया है।

अराला केशेषु प्रकृतिसरला मन्दहसिते
शिरीषाभा चित्ते दृषदुपलशोभा कुचतटे।
भृशं तन्वी मध्ये पृथुरुरसिजारोहविषये
जगत् त्रातुं शम्भोर्जयति करुणा काचिदरुणा॥ ९३॥

इसका भाव यह है—यद्यपि आपके केश घुँघराले हैं, किंतु आपकी प्रकृति (स्वभाव) अत्यन्त सरल एवं कोमल है। मुखपर मन्द मुसकान है। हृदय शिरीषपुष्पके तुल्य मृदुल है, किंतु वक्षःस्थल उपलकी शोभा धारण करते हैं। कटिभाग कृश है, परंतु उरःस्थल पर्याप्त पृथुल है। इस प्रकार भगवान् शंकरकी करुणा ही मानो कोई रक्तवर्णकी सौन्दर्यराशि विश्वके परित्राणके लिये अरुणादेवीके रूपमें विजयी हो रही है।

इन अरुणा भगवतीके चरण-युगलके अन्तरालसे अमृत-मयी धारा प्रवाहित होती है, जो समस्त विश्व-प्रपञ्चको अपने रससे संसिक्तकर उसे जीवन-शक्ति प्रदान करती रहती है—

सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसा।

(सौ० ल० १०)

इस सम्बन्धमें तैत्तिरीय ब्राह्मण (३।१२।३) के निम्नलिखित मन्त्रका समर्थन प्राप्त होता है—

लोकस्य द्वारमर्चिमत्पवित्रं ज्योतिष्मत् भ्राजमानं महस्वत्।
अमृतस्य धारा बहुधा दोहमानं चरणं नो लोके सुधितान् दधातु॥

इसका सारांश है—आपके दोनों चरण, जो अमृतधारा-को प्रवाहित करते हुए संसारके मार्गको ज्योतिष्मान् और अपनी प्रभासे विभ्राजित, प्रकाशित एवं पवित्र करते रहते हैं,

---

१- श्रीविद्या गुरुमुखके द्वारा ही ज्ञेय है। इस गुप्त रहस्यको जाननेवाले आचार्य सायणने इसका उल्लेख नहीं किया, किंतु मूल मन्त्रमें प्रथम दो पदोंमें जो चार ईकारोंका संकेत है, वे श्रीविद्याके चार खण्डोंमें विभक्त पदोंके अन्तमें आनेवाले ह्रींकारके अन्तिम मात्राके ही सूचक हैं, इससे स्पष्ट होता है, श्रीविद्या-सम्प्रदायका मूल बीज वेदोंमें भी निहित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे हमें इस लोकमें बुद्धि, मेधा एवं प्रतिभासे संयुक्त करें।

वैदिक युगके अनन्तर यह धारा आगे बढ़ती गयी। इस युगमें ऋषिप्रणीत शुभागम-पञ्चक नामक पाँच ग्रन्थोंकी उपलब्धि होती है। वसिष्ठसंहिता, सनकसंहिता, शुकसंहिता, सनन्दनसंहिता एवं सनत्कुमारसंहिता—ये पाँचों संहिताएँ शुभागम-पञ्चकके नामसे प्रसिद्ध हैं, जिनके प्रमाण प्राचीन तन्त्रग्रन्थोंमें बहुलतासे उपलब्ध होते हैं।

इसके अनन्तर शंकराचार्यके परम गुरु आचार्य श्रीगौड़पादकी श्रीविद्यासे सम्बन्धित दो विशिष्ट रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। इनमें एक है श्रीविद्यारत्नसूत्र[1], जो सूत्रात्मक है। इसके टीकाकार श्रीशंकराचार्य हैं। दूसरी रचना है सुभगोदय-स्तुति। यह स्तुति दो प्रकारकी है। श्लोकोंकी संख्या ५२ है। एक तो है लम्बे छन्दोंमें और दूसरी है केवल अनुष्टुप् छन्दमें। प्रथम प्रकारके छन्दका नमूना देखिये—

भवानि त्वां वन्दे भवमहिषि सच्चित्सुखवपुः
पराकारां देवीममृतलहरीमैन्दवकलाम्।
महाकालातीतां कलितसरणीकल्पिततनुं
सुधासिन्धोरन्तर्वसतिमनिशं वासरमयीम्॥

अनुष्टुप् छन्दोंवाले इनके द्वितीय ग्रन्थका निर्देश लक्ष्मीधरने अपनी पूर्वोक्त व्याख्यामें किया है, जिसपर आचार्य शंकरकी तथा लक्ष्मीधरकी भी व्याख्याएँ थीं। सौभाग्य-भास्करसे पता चलता है कि लल्लकी भी इसपर टीका थी।

आचार्य शंकरकी तान्त्रिक रचनाएँ—गौडपादाचार्यकी इन रचनाओंका प्रभाव आचार्य शंकरके ऊपर पर्याप्तरूपेण लक्षित होता है। एक तथ्य ध्यातव्य है कि जिस प्रकार गौडपादके ग्रन्थमें अद्वैत वेदान्तके साथ त्रिपुरातन्त्रका मञ्जुल सामरस्य है, उसी प्रकार शंकराचार्यने अद्वैत ग्रन्थोंकी रचनाके साथ-ही-साथ श्रीविद्याविषयक ग्रन्थोंका भी निर्माण किया, जिनमेंसे आचार्यके दो ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध हैं—(१) प्रपञ्चसार तथा (२) ललितात्रिशतीभाष्य। इनके अतिरिक्त शंकराचार्यके त्रिपुरसुन्दरीकी प्रार्थनासम्बन्धी सौन्दर्यलहरी, परापूजा, त्रिपुरसुन्दरीमानसपूजा, चतुःषष्ट्युपचारपूजा, ललितापञ्चरत्न,नवरत्नमालिका,षोडशीकल्याणवृष्टि आदि स्तोत्र विशेष उल्लेखनीय हैं। ललितात्रिशतीभाष्य तो अद्वैत वेदान्त एवं त्रिपुरासम्प्रदायके सिद्धान्तोंसे युगपत् मण्डित एवं अत्यधिक है। आचार्यके परमप्रिय शिष्य पद्मपादाचार्यद्वारा निर्मित 'विवरण' नामकी प्रपञ्चसारकी टीका इसे शंकराचार्यकी ही प्रामाणिक रचना सिद्ध करती है। छत्तीस पटलोंमें विभक्त इस तन्त्रग्रन्थमें ढाई हजारसे भी कुछ अधिक श्लोक हैं। इसके आरम्भके एकादश पटलोंमें तन्त्रशास्त्रके प्रसिद्ध तथ्योंका विवरण है तथा अन्य पटलोंमें नाना मन्त्रोंसे विविध देवताओंके मन्त्र, उनकी जप-विधि, ध्यान, होमद्रव्य, हवन-विधि आदि अनुष्ठानोंकी प्रक्रियाका व्यवस्थित वर्णन मिलता है। सूत-संहिताकी टीकामें गोवाके माधवमन्त्री और पराशरसंहिताकी टीकामें माधवाचार्यने प्रपञ्चसारको शंकराचार्यकृत माना है। शारदातिलककी टीकामें राघवभट्ट भी यही कहते हैं। सम्मोहन-तन्त्रमें शंकर और उनके चार शिष्योंका वर्णन है। सौन्दर्यलहरीके शंकराचार्यकी रचना होनेमें प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हैं। आचार्यने गौड़पादके सुभगोदयके अनुकरणमें इस स्तुतिका निर्माण किया था। इसपर तीसके आसपास संस्कृत-टीकाएँ हैं। इसकी सर्वप्राचीन टीका आचार्यके पट्टशिष्य सुरेश्वराचार्यकी है। शृंगेरीमठमें इस टीकाकी अतिप्राचीन प्रति आज भी उपलब्ध है। अवान्तर टीकाओंमें कामेश्वरसूरिकी अरुणामोदिनी, श्रीरामकविका डिण्डिमभाष्य, दामोदरकी गोपालसुन्दरी व्याख्या एवं कैवल्याश्रमकी सम्प्रदाय-व्याख्या परम श्रेष्ठ है, साथ ही आचार्य लक्ष्मीधरकी व्याख्या बड़ी ही प्राञ्जल, रहस्यप्रकाशिका तथा प्रामाणिक है। ये उत्कलके मध्ययुगीन विख्यात शासक राजा प्रतापरुद्रदेवके आश्रित थे, जो आन्ध्रके विद्याप्रेमी भूपाल राजा कृष्णदेवके समकालीन तथा जामाता भी थे।(समय १६वीं शती)। सौन्दर्यलहरीके आरम्भके ४१ पद्य आनन्दलहरीके नामसे भी विख्यात हैं, जो श्रीविद्याके गम्भीर रहस्योंके प्रतिपादक हैं तथा अन्तिम ५९ पृथक्कृत पद्य भगवती ललिताके ललित विग्रहके साहित्यिक वर्णन-परक हैं, इसलिये वे सौन्दर्य-लहरीके नामसे प्रसिद्ध हैं। इन दोनों ग्रन्थोंके स्वरूपमें भिन्नता नितान्त स्पष्ट है। प्रपञ्चसार एक समग्र तन्त्र-ग्रन्थ है, जिसमें तन्त्रोक्त नाना देव-देवियोंकी उपासनाका पूर्ण विधान दिया गया है। साथमें तन्त्रके सामान्य तथ्योंका विवरण भी उसकी

१-सरस्वती-भवन संस्कृत-ग्रन्थमाला (वाराणसी) में प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्णताके लिये दिया गया है। सौन्दर्यलहरी केवल श्रीविद्याका प्रतिपादक होनेसे त्रिपुरसुन्दरी-सम्प्रदायके तन्त्रसम्मत तथ्योंका ही विशिष्ट विवरण प्रस्तुत करती है। यह स्तोत्रमात्र है, परंतु प्रपञ्चसारका क्षेत्र विस्तृत है। ग्रन्थके आरम्भमें शारदाकी प्रार्थना है।

अकचटतपयाद्यैः सप्तभिर्वर्णवर्गै-
र्विरचितमुखबाहापादमध्याख्यहृत्का ।
सकलजगदधीशा शाश्वता विश्वयोनि-
र्वितरतु परिशुद्धिं चेतसः शारदा वः ॥

'अ, क, च, ट, त, प तथा य—इन सात वर्गात्मक स्वर एवं व्यञ्जन वर्णोंके द्वारा अपने मुख, बाहु, चरण, कटिप्रदेश तथा हृदयकी रचना करती हुई समस्त संसारकी स्वामिनी और इस विश्वको उत्पन्न करनेवाली नित्यसिद्धा भगवती शारदादेवी आपके चित्तको पूर्ण शुद्धि प्रदान करें।'

उपान्त्य-पद्यमें यह तन्त्रग्रन्थ सभी अपने अवर्णनीय विषयोंका भी संक्षिप्त संकेत एक ही पद्यमें इस प्रकार करता है—

इत्थं मूलप्रकृत्यक्षरविकृतिलिपिव्रातजातग्रहर्क्ष-
क्षेत्राद्याबद्धभूतेन्द्रियगुणरविचन्द्राग्निसम्प्रोतरूपैः ।
मन्त्रैस्तद्देवताभिर्मुनिभिरपि जपध्यानहोमार्चनाभि-
स्तन्त्रेऽस्मिन् पञ्चभेदैरपि कमलज ते दर्शितोऽयं प्रपञ्चः ॥

(प्रपञ्चसार ३६। ६२)

भगवान् विष्णु ब्रह्माजीसे कहते हैं—'ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने इस प्रपञ्चसार-ग्रन्थमें भुवनेश्वरी-बीजसे उत्पन्न पचास अक्षर और उनकी विकृति-युक्त लिपिसमूह, मातृकाओंसे उत्पन्न ग्रह, नक्षत्र, राशि, तिथि, करण आदिमें आबद्ध पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूत, समस्त प्राणिवर्ग, उनकी इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके सत्त्व, रज आदि गुण, सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवतागण, ऋषिगण, उनको वशमें करनेवाले मन्त्र और उन मन्त्रोंके जप, ध्यान, होम, पूजा, अर्चन, उपासना, पञ्चाङ्ग आदि विधानोंके साथ-साथ विश्वप्रपञ्चका भी वर्णन किया गया है।

सौन्दर्यलहरी सिद्ध ग्रन्थ है। इसके प्रत्येक श्लोक मन्त्र-रूप हैं। इसीलिये अभीष्टसिद्धिके लिये विशिष्ट यन्त्रोंके साथ इन श्लोकोंके जपनेकी विधि परम्परासे निर्धारित की गयी है।

शक्तिकी महिमा—आचार्य शंकरकी मान्यता है कि शक्तिसे संयुक्त होनेपर ही शिव विश्वकी रचना तथा संरक्षण-कार्यमें समर्थ होते हैं। यदि शक्तिके संयोगका अभाव हो तो वे स्पन्दन करनेमें भी समर्थ नहीं हैं, वे हिल-डुल भी नहीं सकते। शक्तिका तान्त्रिक बीज 'इकार' है। शिव शब्दसे यदि इकारको निकाल दिया जाय, तो शिव 'शव' बन जाता है, एकदम निर्जीव प्राणी, जो अपने अङ्ग भी हिला-डुला नहीं सकता, अन्य कर्मोंकी तो कथा ही नहीं। सौन्दर्यलहरीका आदि पद्य ही इस तथ्यकी अभिव्यक्ति करता है—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।

तन्त्रशास्त्रकी यह सर्वमान्य कल्पना है, जो तन्त्र-ग्रन्थोंमें बहुशः अभिव्यक्त है। गौडपादाचार्यने अपनी 'सुभगोदय-स्तुति' में इसे इस पद्यके द्वारा प्रकट किया है—

परोऽपि शक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किंचन ।
शक्तः स्यात् परमेशानि शक्त्या युक्तो भवेद् यदि ॥

(लक्ष्मीधरव्याख्यामें उद्धृत पृ० २९)

यह शक्ति शिवके साथ सहस्रारपद्ममें निवास करती है। मूलाधारमें भी दोनोंका नृत्य होता है, जिससे जगत्की सृष्टि होती है। शंकरने षट्चक्रोंके रूप तथा भेदन-प्रकारका (सौ० ल० ९-१०) तथा श्रीचक्रके स्वरूपका भी (सौ० ल० श्लोक ११) विशद वर्णन किया है। शक्तिवादका यह सिद्धान्त आचार्यद्वारा उनके अन्य ग्रन्थोंमें भी वर्णित है। ब्रह्मसूत्रके **'तदधीनत्वादर्थवत्'** इस सूत्रके भाष्यमें आचार्य शंकरने पूर्वपक्षीय उपस्थापनामें चर्चा की है—

न हि तया विना परमेश्वरस्य स्रष्टृत्वं सिध्यति ।
शक्तिरहितस्य तस्य प्रवृत्त्यनुपपत्तेः ॥

(ब्र० सू० १।४।३ का भाष्य)

ब्रह्मकी विविधरूपिणी शक्तिके कारण ही सृष्टिमें विभिन्नता दीखती है-**'एकस्यापि ब्रह्मणो विचित्रशक्तियोगात् क्षीरादिवत् विचित्रपरिणाम उपपद्यते।'** (ब्रह्मसूत्र-भाष्य २।२।२४)

शाक्तमतानुसार शिव ही अपनी शक्तिके द्वारा विश्वरूप हो जाते हैं। दूसरे शब्दमें शिव अपनी अपरिच्छिन्न सत्ताको त्यागकर परिच्छिन्न जीव बन जाते हैं और इस प्रकार संसारके सुख-दुःखोंका उपभोग करते हैं। वस्तुतः शिवको जीव-रूपमें भोगके लिये जिन उपकरणों—शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि तथा अहंकारकी आवश्यकता होती है, उन रूपोंमें भगवती शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं ही प्रकट हो जाती हैं। आचार्य शंकर इसका विवेचन इस पद्यमें करते हैं—

मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन बिभृषे॥

(सौन्दर्यलहरी ३५)

इसका भाव है—(हे देवि!) आप ही मन, आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा भूमिके रूपमें परिणत हुई हैं। आपके अतिरिक्त इस संसारमें कुछ नहीं है। आप स्वयं ही अपनी आत्माको योगबलसे विश्वरूपमें परिणत करती हैं और चिदानन्दस्वरूपा शिवपत्नी भगवती पार्वतीका रूप धारण कर स्थित रहती हैं।

तथ्य तो यह है कि आचार्य शंकरकी दृष्टिमें विश्वका कारणभूत 'ब्रह्म' निःसंदेह शक्तिसे अभिन्न है और शक्ति भी कारणभूत ब्रह्मसे भिन्न नहीं है, क्योंकि अन्ततोगत्वा कारण-शक्ति तथा कार्य एक ही है। शंकरका कथन है—**'कारणभूता शक्तिः। शक्तेश्च आत्मभूतं कार्यम्।'** श्वेताश्वतर उपनिषद् ईश्वरका कोई लिंग, जाति नहीं बतलाती। **'नैव स्त्री न पुमानेषः'** (५।१०), किंतु फिर भी वह पुरुष भी हो सकता है, स्त्री भी हो सकता है, कुमार तथा कुमारी भी—

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।

(श्वेताश्वतर० ४।३)

इसी विचारधाराको शंकराचार्यने अपने ललितात्रिशती-भाष्यमें भी विशद रीतिसे प्रतिपादित किया है—

चकारः निर्गुणब्रह्मणोऽपि सगुणब्रह्मविशेषणसद्भाव-समुच्चयपरः सर्वत्रापि द्रष्टव्यः। 'सच्चिन्मयः शिवः साक्षात् तस्यानन्दमयी शिवा' इति वचनेन 'स्त्रीरूपां चिन्तयेद् देवीं पुंरूपामथवेश्वरीम्' (ललितात्रिशतीस्तोत्र श्लोक ५ के चकारकी टीका)। अतएव **'सेयं देवतैक्षत'** (छान्दोग्य० ६।३।२) **इत्यादौ, उपाधिकृतनानारूपसम्भवोक्तेश्च। अतएव 'सेयं देवता ऐक्षत' इत्यादौ 'तत् सत्यं स आत्मा इत्यत्र च श्रुतौ स्त्रीलिङ्गान्तदेवतादिपदानां, तत् सत्यमिति' नपुंसकान्तस्य, 'स आत्मा' इति पुँल्लिङ्गात्मशब्दस्य एकार्थत्वम्। अविवक्षितोपाधिमत्तया तत्त्वंपदलक्ष्यार्थस्य एकत्वात्। तस्मात् तत्त्वंपदलक्ष्यार्थे सर्वेऽपि गुणा वर्णयितुं सम्भवन्तीति हयग्रीवेन अस्यां त्रिशत्यां बहवः चकारा उपात्ताः।**

शंकराचार्यके उपर्युक्त भाष्य-वचनसे स्पष्ट है कि वे परब्रह्मको 'देवता' शब्दद्वारा स्त्रीलिङ्ग, 'तत्' शब्दके द्वारा नपुंसक तथा 'पुं' आत्माके द्वारा पुँल्लिङ्ग माननेकी शास्त्रीय मान्यतासे पूर्ण परिचित थे और इसलिये उनकी दृष्टिमें परब्रह्मको शक्तिके द्वारा तन्त्रोंमें अभिव्यक्त किया जाना कथमपि अनुचित नहीं है। वे सौन्दर्यलहरीमें कहते हैं—

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिस्सीममहिमा
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषि॥

(सौ० ल० ९८)

इसका भाव इस प्रकार है—हे देवि! आगमवेत्ता तुम्हें परम्परया ब्रह्माकी पत्नी सरस्वती, श्रीहरिकी पत्नी लक्ष्मी तथा हरकी सहचरी पार्वती भले ही मानें, परंतु तुम इन तीनोंसे भिन्न एवं विलक्षण, श्रेष्ठ, अगम्य, निस्सीम, महिमामयी सम्पूर्ण विश्वका संचालन करनेवाली महामायारूपा चौथी कोई शक्ति परब्रह्मकी महिषी हो। (क्रमशः)

'सांसारिक पदार्थों और मनुष्योंसे मिलना-जुलना कम रखना चाहिये। संसार-सम्बन्धी बातें बहुत ही कम करनी चाहिये।'

'बिना पूछे न तो किसीके अवगुण बताने चाहिये और न उनकी तरफ ध्यान ही देना चाहिये।'

'सबके साथ निष्काम और समभावसे प्रेम करना चाहिये।'

'मनुष्यको समयकी कीमत जाननी चाहिये, समय प्रतिक्षण घट रहा है। मनुष्य-शरीरका समय अमूल्य है। इसे भजन, ध्यान, सत्संगरूप अमूल्य कामोंमें ही लगाना चाहिये।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराधाभावकी एक झाँकी

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥
अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

(श्रीमद्भागवत ६।११।२५-२६)

भक्तहृदय वृत्रासुरने मरते समय श्रीभगवान्‌से प्रार्थना की—'हे सर्वसौभाग्यनिधे! मैं आपको छोड़कर इन्द्रपद, ब्रह्माका पद, सार्वभौम—सारी पृथ्वीका एकच्छत्र राज्य, पातालका एकाधिपत्य, योगकी सिद्धियाँ और अपुनर्भव—मोक्ष भी नहीं चाहता। जैसे पक्षियोंके बिना पाँख उगे बच्चे अपनी माँ चिड़ियाकी बाट देखते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी माँ गैयाका दूध पीनेके लिये आतुर रहते हैं और जैसे वियोगिनी प्रियतमा पत्नी अपने प्रवासी प्रियतमसे मिलनेके लिये छटपटाती रहती है, वैसे ही कमलनयन! मेरा मन आपके दर्शनके लिये छटपटा रहा है।'

उपर्युक्त वाक्य भगवत्प्रेमीके हृदयकी त्यागमयी अभिलाषाके स्वरूपको व्यक्त करते हैं। भगवत्प्रेमी सर्वथा निष्काम होता है। प्रेममें किसी भी स्व-सुखकी कामनाके लिये कोई स्थान नहीं है। प्रेमी देना जानता है, लेना जानता ही नहीं। प्रेमास्पदके सुखके लिये ही उसका सहज जीवन, उसके जीवनके सभी कार्य, उसकी चेष्टाएँ, कल्पनाएँ और उसके सभी विचार होते हैं। प्रेमास्पद प्रभुको सुखी बनानेवाली सेवा ही उसके जीवनका स्वभाव है। उसको छोड़कर वह संसारका—इहलोक, परलोकके बड़े-से-बड़े भोगकी तो बात ही क्या, पाँच प्रकारकी मुक्तियाँ भी देनेपर स्वीकार नहीं करता—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

(श्रीमद्भागवत ३।२९।१३)

भगवान् (श्रीकपिलदेव) कहते हैं—'मेरे प्रेमी भक्त मेरी सेवाको छोड़कर सालोक्य (भगवान्‌के नित्यधाममें निवास), सार्ष्टि (भगवान्‌के समान ऐश्वर्य-भोग), सामीप्य (भगवान्‌के समीप रहना), सारूप्य (भगवान्‌के समान रूप प्राप्त करना) और एकत्व (भगवान्‌में मिल जाना—ब्रह्म-स्वरूपको प्राप्त हो जाना)—ये (पाँच प्रकारकी दुर्लभ मुक्तियाँ) दिये जानेपर भी नहीं लेते।'

भगवत्प्रेमियोंकी पवित्र प्रेमाग्निमें भोग-मोक्षकी सारी कामनाएँ, संसारकी सारी आसक्तियाँ और ममताएँ सर्वथा जलकर भस्म हो जाती हैं। उनके द्वारा सर्वस्वका त्याग सहज स्वाभाविक होता है। अपने प्राणप्रियतम प्रभुको समस्त आचार अर्पण करके वे केवल नित्य-निरन्तर उनके मधुर स्मरणको ही अपना जीवन बना लेते हैं। उनका वह पवित्र प्रेम सदा बढ़ता रहता है, क्योंकि वह न कामना-पूर्तिके लिये होता है, न गुणजनित होता है। उसका तार कभी टूटता ही नहीं, सूक्ष्मतररूपसे नित्य-निरन्तर उसकी अनुभूति होती रहती है और वह प्रतिक्षण नित्य-नूतन मधुर रूपसे बढ़ता ही रहता है। उसका न वाणीसे प्रकाश हो सकता है, न किसी चेष्टासे ही उसे दूसरेको बताया जा सकता है—

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्।

(नारदभक्तिसूत्र ५१)

इस पवित्र प्रेममें इन्द्रिय-तृप्ति, वासनासिद्धि, भोग-लालसा आदिको स्थान नहीं रहता। बुद्धि, मन, प्राण, इन्द्रियाँ—सभी नित्य-निरन्तर परम प्रियतम प्रभुके साथ सम्बन्धित रहते हैं। मिलन और वियोग—दोनों ही नित्य-नवीन रसवृद्धिमें हेतु होते हैं। ऐसा प्रेमी केवल प्रेमकी ही चर्चा करता है, प्रेमकी चर्चा सुनता है, प्रेमका ही मनन करता है, प्रेममें ही संतुष्ट रहता और प्रेमका ही नित्य स्मरण करता है। वह लवमात्रके लिये भी किसी भगवत्प्रेमीका सङ्ग प्राप्त कर लेता है तो उसके सामने मोक्षतकको तुच्छ समझता है। श्रीमद्भागवतमें आया है—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥

(१।१८।१३)

'भगवदासक्त प्रेमी भक्तके लवमात्रके सङ्गसे स्वर्ग और अपुनर्भव—मोक्षकी भी तुलना नहीं की जा सकती, फिर मनुष्योंके तुच्छ भोगोंकी तो बात ही क्या है?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस परम पवित्र, भुक्ति-मुक्ति-त्यागसे विभूषित उज्ज्वलतम प्रेमकी सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति व्रजगोपियोंमें हुई। उनमें श्रीकृष्ण-सुख-लालसाके अतिरिक्त और कुछ था ही नहीं। अपनी कोई चिन्ता उन्हें कभी नहीं हुई। ये सब गोपाङ्गनाएँ श्रीराधारानीकी कायव्यूहरूपा हैं और उन्हींके सुख-सम्पादनार्थ अपना जीवन अर्पण करके प्रेमका परम पवित्र आदर्श व्यक्त कर रही हैं। इनमें श्रीराधारानीकी सखियोंमें आठ प्रधान हैं—ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, सुदेवी, तुङ्गविद्या, इन्दुलेखा और रङ्गदेवी। इनमें प्रत्येककी अनुगता आठ-आठ किंकरियाँ हैं तथा अनेक मञ्जरीगण हैं। ये सभी श्रीराधा-माधवकी प्रीतिसाधनामें ही नित्य संलग्न रहती हैं। इन सबकी आधाररूपा हैं श्रीराधिकाजी। प्रेमभक्तिका चरम स्वरूप श्रीराधा-भाव है। इस भावका यथार्थ स्वरूप श्रीराधिकाके अतिरिक्त समस्त विश्वके दर्शनमें कहीं नहीं मिलता। श्रीराधा शङ्का, संकोच, संशय, सम्भ्रम आदिसे सर्वथा शून्य परम आत्मनिवेदनकी पराकाष्ठा हैं। रति, प्रेम, प्रणय, मान, स्नेह, राग, अनुराग और भाव—इस प्रकार उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ परम त्यागमय पवित्र प्रेम अन्तमें जिस स्वरूपको प्राप्त होता है, उसे 'महाभाव' कहा गया है। इस महाभावके उदय होनेपर क्षणभर भी प्रियतमका वियोग नहीं होता। श्रीराधा इसी महाभावकी प्रत्यक्ष मूर्ति हैं। वे महाभाव-स्वरूपा हैं। श्रीकृष्णकी समस्त प्रेयसीगणोंमें वे सर्वश्रेष्ठ हैं। नित्य-नव परम सौन्दर्य, नित्य-नव माधुर्य, नित्य-नव असमोर्ध्व लीलाचातुर्यकी विपुल नित्य वर्धनशील दिव्य सम्पत्तिसे समलङ्कृत प्रियतम श्रीश्यामसुन्दर श्रीराधाके प्रेमके आलम्बन हैं और श्रीराधा इस मधुर रसकी श्रेष्ठतम आश्रय हैं। ये श्रीराधा कभी प्रियतमके संयोग-सुखका अनुभव करती हैं और कभी वियोग-वेदनाका। इनका मिलन-सुख और वियोग-व्यथा—दोनों ही अतुलनीय तथा अनुपमेय है। श्रीरूपगोस्वामी महोदय वियोगकी एक झाँकीका दर्शन इस प्रकार कराते हैं—

अश्रूणामतिवृष्टिभिर्द्विगुणयन्त्यर्कात्मजानिर्झरं
ज्योत्स्नीस्यन्दिविधूपलप्रतिकृतिच्छायं वपुर्बिभ्रती।
कण्ठान्तस्त्रुटदक्षराद्यपुलकैर्लब्ध्वा कदम्बाकृतिं
राधा वेणुधर प्रवातकदलीतुल्या क्वचिद् वर्तते॥

श्रीराधिकाकी एक सखी श्यामसुन्दरसे कहती है—'वेणुधर! तुम्हारे अदर्शनसे राधाकी दशा आज कैसी हो रही है! उनके नेत्रोंसे जलकी इतनी अधिक वर्षा हो रही है कि उससे यमुनाजीका जल बढ़कर दूना हो गया है। उनके शरीरसे इस प्रकार पसीना झर रहा है, जैसे चाँदनी रात्रिमें चन्द्रकान्तमणि पसीजकर रस बहाने लगती है। उनका शरीर भी चन्द्रकान्तमणिकी भाँति ही स्तब्ध (निश्चेष्ट) हो गया और उनका वर्ण भी उसी मणिके सदृश पीला पड़ गया है। उनके कण्ठकी वाणी रुक-रुककर निकलती है तथा उनका स्वर-भङ्ग हो गया है। उनका सर्वाङ्ग कदम्बके केसरकी भाँति पुलकित हो रहा है। भयंकर आँधी-पानीमें जैसे केलेका वृक्ष काँपकर भूमिपर गिर जाता है, वैसे ही उनकी अङ्गलता भूमिपर गिर पड़ी है।'

ये सब महान् भाव-तरङ्गें श्रीराधाके महाभाव-सागरको प्रकट दिखला रही हैं।

वस्तुतः श्रीकृष्ण, श्रीराधा, श्रीगोपाङ्गनासमूह एवं उनकी मधुरतम लीलाओंमें कोई भेद नहीं है। रस-स्वरूप श्रीश्यामसुन्दर ही अनन्त-अनन्त रसोंके रूपमें प्रकट होकर स्वयं ही अनन्त-अनन्त रसोंका समास्वादन करते हैं। वे स्वयं ही आस्वाद्य, आस्वादक और आस्वाद बने हैं। तथापि श्रीराधा-माधवका मधुरातिमधुर लीला-रस-प्रवाह अनादि-अनन्तरूपसे चलता रहता है। श्रीकृष्ण और श्रीराधाका कभी बिछोह न होनेपर भी वियोगलीला होती है, पर उस वियोगलीलामें भी संयोगकी अनुभूति होती है और संयोगमें भी वियोगका भान होता है। ये सब रस-समुद्रकी तरङ्गें हैं। प्रेमका स्वभाव श्रीराधाके अंदर पूर्णरूपमें प्रकट है, इसलिये वे अपनेमें रूप-गुणका सर्वथा अभाव मानती हैं। श्रीकृष्णको नित्य अपने सांनिध्यमें ही देखकर सोचती हैं कि मेरे मोहमें प्राणनाथ यथार्थ सुखसे वञ्चित हो रहे हैं। अच्छा हो, मुझे छोड़कर ये अन्यत्र चले जायँ तथा सुख-सम्पादन करें। पर श्रीकृष्ण कभी इनसे पृथक् नहीं होते। इस प्रकार प्रेमका प्रवाह चलता रहता है। परम त्याग, परम प्रेम और परम आनन्द—प्रेमकी इस पावन त्रिवेणीका प्रवाह अनवरत बहता ही रहता है।

एक विचित्र बात तब होती है, जब श्रीकृष्ण मथुरा पधार जाते हैं, श्रीराधा तथा समस्त गोपीमण्डल एवं सारा व्रज उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वियोगसे अत्यन्त पीड़ित हो जाता है, यद्यपि श्रीश्यामसुन्दर माधुर्यरूपमें नित्य श्रीराधाके समीप ही रहते हैं, पर लोगोंकी दृष्टिमें वे चले जाते हैं। मथुरासे संदेश देकर वे श्रीउद्धवजीको व्रजमें भेजते हैं।

श्याम-सखा श्रीउद्धवजी व्रजमें आकर नन्दबाबा एवं यशोदा मैयाको सान्त्वना देते हैं, फिर गोपाङ्गना-समूहमें जाते हैं, वहाँ बड़ा ही सुन्दर प्रेमका प्रवाह बहता है और उसमें उद्धवका समस्त चित्तप्रदेश आप्लावित हो जाता है। तदनन्तर वे श्रीराधिकाजीसे एकान्तमें बात करते हैं। श्रीराधाकी बड़ी ही विचित्र स्थिति है। वे जब उद्धवजीसे श्रीश्यामसुन्दरका मथुरासे भेजा हुआ संदेश सुनती हैं, तब पहले तो चकित-सी होकर मानो संदेहमें पड़ी हुई-सी कुछ सोचती हैं। फिर कहने लगती हैं—

'उद्धव ! तुम मुझको यह किसका कैसा संदेश सुना रहे हो? तुम झूठमूठ मुझे क्यों भुलावेमें डाल रहे हो? मेरे प्रियतम श्रीश्यामसुन्दर तो यहीं हैं। वे कब परदेश गये? कब मथुरा गये? वे तो सदा मेरे पास ही रहते हैं। मुझे देखे बिना एक क्षण भी उनसे नहीं रहा जाता, मुझे न पाकर वे क्षणभरमें व्याकुल हो जाते हैं, वे मुझे छोड़कर कैसे चलें जाते? फिर मैं तो उन्हींके जिलाये जी रही हूँ, वे ही मेरे प्राणोंके प्राण हैं। वे मुझे छोड़कर चले गये होते तो मेरे शरीरमें ये प्राण कैसे रह सकते?'

उद्धव ! तुम मुझको किसका यह सुना रहे कैसा संदेश ?
भुला रहे क्यों मिथ्या कहकर प्रियतम कहाँ गये परदेश ?
देखे बिना मुझे पलभर भी कभी नहीं वे रह पाते !
क्षणभरमें व्याकुल हो जाते, कैसे छोड़ चले जाते ?
मैं भी उनसे ही जीवित हूँ, वे ही हैं प्राणोंके प्राण।
छोड़ चले जाते तो कैसे तनमें रह पाते ये प्राण ?

इतनेमें ही श्रीकृष्ण खड़े दिखलायी दिये। तब श्रीराधा बोलीं—'अरे देखो, उधर देखो, वे नन्दकिशोर कदम्बके मूलमें खड़े कैसी निर्निमेष-दृष्टिसे मेरी ओर देख रहे हैं और मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं! देखो तो, मेरे मुखको कमल समझकर प्राणप्रियतमके नेत्र-भ्रमर मतवाले होकर मधुर रस-पान कर रहे हैं।'

देखो—वह देखो, कैसे मृदु-मृदु मुसकाते नंदकिशोर।
खड़े कदम्ब-मूल, अपलक वे झाँक रहे हैं मेरी ओर॥
देखो, कैसे मत्त हो रहे, मेरे मुखको पङ्कज मान।
प्राणप्रियतमके दृग-मधुकर मधुर कर रहे हैं रसपान॥

'देखो, भौंहें चलाकर और आँखें मटकाकर वे मेरे प्राणधाम मुझसे इशारा कर रहे हैं तथा अत्यन्त आतुर होकर मुझको एकान्त कुञ्जमें बुला रहे हैं। उद्धव ! तुम भौंचक-से होकर कदम्बकी ओर कैसे देख रहे हो? क्या तुम्हें श्यामसुन्दर नहीं दिखायी देते, अथवा क्या तुम उन्हें देखकर प्रेममें डूब गये हो?'

भ्रकुटि चलाकर, दृग मटकाकर मुझे कर रहे वे संकेत।
अति आतुर एकान्त कुञ्जमें बुला रहे हैं प्राणनिकेत॥
कैसे तुम भौंचक-से होकर देख रहे कदम्बकी ओर?
क्या तुम नहीं देख पाते? या देख हो रहे प्रेम-विभोर॥

श्रीराधिकाजी यों कह ही रही थीं कि उन्हें श्यामसुन्दरके दर्शन होने बंद हो गये, तब वे अकुला उठीं और बोलीं—'हैं, यह सहसा क्या हो गया? श्यामसुन्दर कहाँ छिप गये? हाय ! वे आनन्दनिधान मनमोहन मुझे क्यों नहीं दिखायी दे रहे हैं? वे लीलामय क्या आज पुनः आँखमिचौनी खेलने लगे? अथवा मैंने उनको तुम्हें दिखा दिया, इससे क्या उन्हें लाज आ गयी और वे कहीं छिप गये?'

हैं, यह क्या? सहसा वे कैसे,कहाँ हो गये अन्तर्धान?
हाय, क्यों नहीं दीख रहे मुझको मनमोहन मोदनिधान?
आँखमिचौनी लगे खेलने क्या वे लीलामय फिर आज?
दिखा दिया मैंने तुमको, क्या इससे उन्हें आ गयी लाज?

'नहीं, नहीं ! तब क्या वे सचमुच ही मुझे छोड़कर चले गये? हाय ! क्या वे मुझसे मुख मोड़कर मुझे अपरिमित अभागिनी बनाकर चले गये? हाय उद्धव ! तुम सच कहते हो, तुम सत्य संदेश सुनाते हो ! वे चले गये ! हा ! वे मेरे लिये रोना शेष छोड़कर चले गये।'

नहीं, नहीं ! तब क्या वे चले गये सचमुच ही मुझको छोड़।
मुझे बनाकर अमित अभागिन हाय गये मुझसे मुख मोड़॥
सच कहते हो उद्धव ! तुम, हो सत्य सुनाते तुम संदेश।
चले गये, हा ! चले गये वे, छोड़ गये रोना अवशेष॥

'पर ऐसा कैसे होता? जो पल-पलमें मुझे अपलक नेत्रोंसे देखा करते, जो मुझे सुखमय देखनेके लिये बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखसे मान-अपमान, स्तुति- निन्दा, हानि-लाभ, सुख-दुःख—सब सहते,' मेरा दुःख जिनके लिये घोर दुःख और मेरा सुख ही जिनका आत्यन्तिक सुख था, वे मुझे दुःख देकर कैसे अपने जीवन-सुखको खो देते ? अतएव वे गये नहीं हैं। यहीं छिपे होंगे !'

प्रतिपल जो अपलक नयनोंसे मुझे देखते ही रहते।
सुखमय मुझे देखनेको जो सभी द्वन्द्व सुखसे सहते॥
मेरा दुःख दुःख अति उनका, मेरा सुख ही अतिशय सुख।
वे कैसे मुझको दुख देकर खो देते निज जीवन-सुख॥

इतना कहते-कहते ही राधाका भाव बदला। उनके मुखपर हँसी छा गयी और उल्लसित होकर वे कहने लगीं—'हाँ ठीक, वे चले गये। मुझे परम सुख देनेके लिये ही वे मथुरामें जाकर बसे हैं। मैं इसका रहस्य समझ गयी। मैं सुखी हो गयी, मुझे सुख देनेवाले प्रियतमके इस कार्यको देखकर , मुझे वे सब पुरानी बातें याद आ गयीं जो मुझमें-उनमें हुआ करती थीं। उनके जानेका कारण मैं जान गयी। वे मुझे सुखी बनानेके लिये ही गये हैं। इसीसे देखो, मैं कैसी प्रफुल्लित हो रही हूँ—मेरा अङ्ग-अङ्ग आनन्दसे किस प्रकार रोमाञ्चित हो रहा है।'

मुझे परम सुख देनेको ही गये मधुपुरीमें बस श्याम।
समझ गयी, मैं सुखी हो गयी, निरख सुखद प्रियतमका काम॥
याद आ गयी मुझको सारी मेरी-उनकी बीती बात।
जान गयी कारण, इससे हो रही प्रफुल्लित, पुलकित-गात॥

'बताऊँ, क्या बात है ? मुझमें न तो कोई सद्गुण था न कोई रूप-माधुरी ही। मैं दोषोंकी खान थी। पर मोहविवश होनेके कारण मनमोहन श्यामसुन्दरको मुझमें सौन्दर्य दिखलायी देता और वे मुझे अपना सर्वस्व—तन-मन-धन देकर मुझपर न्योछावर हुए रहते ! वे बुद्धिमान् होकर मोहवश मुझे 'मेरी प्राणेश्वरी'-'मेरी हृदयेश्वरी' कहते-कहते कभी थकते ही नहीं। मुझे इससे बड़ी लज्जा आती, बड़ा संकोच होता। मैं बार-बार उन्हें समझाया करती—'प्रियतम ! तुम इस भ्रमको छोड़ दो।' पर मेरी बात मानना तो दूर रहा, वे तुरंत मुझे हृदयसे लगा लेते, मेरे कण्ठहार बन जाते, मैं उन्हें अपने गलेसे लिपटा हुआ पाती। मैं गुणसे, सौन्दर्यसे रहित थी, प्रेमधनसे दरिद्र थी, कला-चतुरतासे हीन थी, मूर्खा, बहुत बोलनेवाली, झूठे ही मान-मदसे मतवाली, मन्दमति तथा मलिन स्वभावकी थी। मुझसे बहुत-बहुत अधिक सुन्दरी, सद्गुण-शीलवती, सुन्दर रूपकी भंडार अनेकों सुयोग्य सखियाँ थीं, जो प्रियतमको अत्यन्त सुख देनेमें समर्थ थीं। मैं उनके नाम बता-बताकर प्रियतमको उनसे स्नेह करनेके लिये कहती, परंतु वे कभी भूलकर भी उनकी ओर नहीं ताकते और सबसे अधिक—अधिक क्यों, वे प्रियतम सारा ही प्यार सब ओरसे, सब प्रकारसे, अनन्यरूपसे केवल मुझको ही देते। इस प्रकार प्रियतमका बढ़ा हुआ व्यामोह देखकर मुझे बड़ा संताप होता और मैं देवतासे मनाया करती कि 'हे प्रभो ! आप उनके इस मोहको शीघ्र हर लें।' मेरा बड़ा सौभाग्य है कि देवताने मेरी करुण पुकार सुन ली। मेरे प्राणनाथ मोहनका मोह आखिर मिट गया और अब वे मथुरामें अपार आनन्द प्राप्त कर रहे होंगे। मेरे प्राणाराम वे किसी नगरनिवासिनी चतुर सुन्दरीको प्राप्त करके अनुपम सुख भोग रहे होंगे। मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। आज मैं परम सुखवती हो गयी। आज मेरे भाग्य खुल गये, जो मुझको आनन्द-मङ्गलमय, जीवनको सजानेवाला, सुखकी खानरूप श्यामसुन्दरका यह संदेश सुननेको मिला।'

सद्गुणहीन, रूप-सुषमासे रहित, दोषकी मैं थी खान।
मोहविवश मोहनको होता मुझमें सुन्दरताका भान॥
न्यौछावर रहते मुझपर सर्वस्व स-मुद कर मुझको दान।
कहते थकते नहीं कभी 'प्राणेश्वरि !' 'हृदयेश्वरि ?' मतिमान॥
'प्रियतम ! छोड़ो इस भ्रमको तुम'—बार-बार मैं समझाती।
नहीं मानते, उर भरते, मैं कण्ठहार उनको पाती॥
गुण-सुन्दरता-रहित, प्रेमधन-दीन, कला-चतुराई-हीन।
मूर्खा, मुखरा, मान-मद-भरी मिथ्या, मैं मतिमन्द मलीन॥
मुझसे कहीं अधिकतर सुन्दर सद्गुण-शील-सुरूप-निधान।
सखी अनेक योग्य, प्रियतमको कर सकतीं अतिशय सुख-दान॥
प्रियतम कभी, भूलकर भी, पर नहीं ताकते उनकी ओर।
सर्वाधिक क्यों, प्यार मुझे देते अनन्य प्रियतम सब ओर॥
रहता अति संताप मुझे प्रियतमका देख बढ़ा व्यामोह।
देव मनाया करती मैं, 'प्रभु ! हर लें सत्वर उनका मोह'॥

× × × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा अति सौभाग्य, देवने सुन ली मेरी करुण पुकार।
मिटा मोह मोहनका, अब वे प्राप्त कर रहे मोद अपार॥
पाकर सुन्दर चतुरा किसी नागरीको वे प्राणाराम।
भोग रहे होंगे अनुपम सुख, पूर्ण हुआ मेरा मन-काम॥
परम सुखवती आज हुई मैं, खुले भाग्य मेरे हैं आज।
सुना श्याम-संदेश सुखाकर, मुद-मङ्गलमय, जीवन-साज॥

यह कहते-कहते ही पुनः भावमें परिवर्तन हो गया। वे दृढ़तापूर्वक बोलीं—'नहीं, नहीं, प्रियतमसे ऐसा काम कभी हो ही नहीं सकता। मुझसे कभी पृथक् होना उनके लिये सम्भव ही नहीं। मेरा और उनका ऐसा सुन्दर, प्रिय और अनन्य— अनोखा सम्बन्ध है, जो कभी मिट ही नहीं सकता। मुझे छोड़कर 'वे' और उनको छोड़कर 'मैं' कभी रह ही नहीं सकते। एकके बिना दूसरेका अस्तित्व ही नहीं है। वे मैं हूँ, मैं वे हैं। दोनों एक तत्त्व हैं। दोनों सब प्रकारसे एकरूप ही हैं।

नहीं, नहीं ! ऐसा हो सकता नहीं कभी प्रियतमसे काम।
मेरा-उनका अमिट अनोखा प्रिय अनन्य सम्बन्ध ललाम॥
मुझे छोड़ 'वे' उन्हें छोड़ 'मैं' रह सकते हैं नहीं कभी।
'वे मैं' 'मैं वे'—एक तत्त्व हैं—एकरूप हैं भाँति सभी॥

राधा यों कह ही रही थीं कि उन्हें श्यामसुन्दर सहसा दिखायी दिये। वे बोल उठीं—'अरे, अरे, उद्धव ! देखो, वे सुजान फिर प्रकट हो गये हैं। कैसा मनोहर रूप है, कैसी सुन्दर प्रेमपूर्ण दृष्टि है। अधरोंपर मृदु मुसकान खेल रही है। ललित त्रिभङ्ग-मूर्ति है। घुँघराले कुटिल केश हैं। सिरपर मोर-मुकुट तथा कानोंमें कमनीय कुण्डल झलमला रहे हैं। मुरलीधरने अधरोंपर मुरली धर रखी है और उससे मधुर तान छेड़ रहे हैं।

अरे-अरे उद्धव ! देखो, वे पुनः प्रकट हो गये सुजान।
प्रेमभरी चितवन सुन्दर, छायी अधरोंपर मृदु मुसुकान॥
ललित त्रिभङ्ग, कुटिल कुन्तल, सिर मोर-मुकुट, कल कुण्डल कान।
धर मुरली मुरलीधर अधरोंपर हैं छेड़ रहे मधु तान॥

यों कहकर राधा समाधिमग्न-सी एकटक देखती निस्तब्ध हो गयीं। इस प्रकार प्रेम-सुधा-समुद्र श्रीराधामें विविध विचित्र तरङ्गोंको उछलते देखकर उद्धव अत्यन्त विमुग्ध हो गये। उनके सारे अङ्ग सहसा विवश हो गये। उनको अपने शरीरकी सुधि नहीं रही। उनके हृदयमें नयी-नयी उत्पन्न हुई शुभ प्रेम-नदीमें अकस्मात् बाढ़ आ गयी। कहीं ओर-छोर न रहा। वे आनन्दमग्न होकर भूमिपर लोटने लगे और उनका सारा शरीर शुभ राधा-चरण-स्पर्श-प्राप्त व्रजधूलिसे धूसरित हो गया।

प्रेम-सुधा-सागर राधामें उठतीं विविध विचित्र तरङ्ग।
देख विमुग्ध हुए उद्धव अति, बरबस विवश हुए सब अङ्ग॥
उदित नवीन प्रेम-सरिता शुभ बढ़ी अचानक, ओर न छोर।
भू-लुण्ठित, तन धूलि धूसरित शुचि, उद्धव आनन्दविभोर॥

× × × ×

इस प्रकार अभिन्नस्वरूपा होनेपर भी श्रीराधारानी अपनेको प्रियतम श्यामसुन्दरके सुखसे वञ्चित करके उनका सुख चाहती हैं। उनका सारा श्रीकृष्णानुराग, श्रीकृष्णसेवन श्रीकृष्णसुखके लिये ही है। वे जब यह सोचती हैं कि श्रीकृष्णको मुझसे वह सुख नहीं मिलता, जो अन्यत्र मिल सकता है तो वे देवताको मनाती हैं कि श्रीकृष्ण मुझको छोड़कर अन्यत्र सुख प्राप्त करें।

उनकी सखी गोपियाँ भी श्रीराधा-श्यामसुन्दरके सुखसम्पादनमें ही नित्य लगी रहती हैं। वे कभी श्यामसुन्दरसे मिलती भी हैं तो उनके रसास्वादनकी वृद्धिके लिये ही, स्वसुखके लिये नहीं। इसी प्रकार जिनमें नवप्रीतिभावका प्रस्फुटन हुआ है, तुलसी-मञ्जरीकी भाँति अथवा नवोद्गत पल्लवके अग्रभागके सदृश जो नवीन रसभावयुक्त हैं, वे मञ्जरीगण भी नित्य-निरन्तर श्रीश्यामा-श्याम-युगलके सुखसम्पादन अथवा प्रीतिवहनमें ही अपनेको कृतार्थ मानती हैं। उनमें तनिक भी निज-सुख-भोगका न तो प्रलोभन है, न दूसरेका सुख-सौभाग्य देखकर ईर्ष्याजनित जलन है।

एक बार श्रीराधिकाजीने मणिमञ्जरीके प्रेम-भावका आदर्श देखनेके लिये एक सखीको उनके पास भेजकर उसीकी ओरसे यह कहलवाया—'सखी ! श्रीललिता, विशाखा आदि श्रीराधा-माधवकी सेवामें सखीभावसे तो रहती ही हैं। कभी-कभी वे नायिकाके रूपमें भी श्यामसुन्दरके समीप पधारती हैं। तुम भी इसी प्रकार श्रीकृष्णके समीप जाकर उन्हें सुख प्रदान करो और स्वयं उनसे सुख प्राप्त करो। श्रीकृष्ण-मिलनके समान सुखकी कहीं तुलना तो दूर रही, तीनों लोकों और तीनों कालोंमें उसकी कल्पना भी नहीं की जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती। तुम्हारा रूप-गुण, सौन्दर्य-माधुर्य, चातुर्य—सभी विलक्षण हैं, अतएव तुम इस परमानन्दसे वञ्चित क्यों रहती हो ? श्यामसुन्दरके समीप जाकर उनका प्रत्यक्ष सेवानन्द प्राप्त करो।' इस बातको सुनकर मणिमञ्जरीने उक्त सखीसे कहा—'बहन ! कल्याणमयी श्रीराधा श्रीश्यामसुन्दरके साथ मिलकर जो सुख प्राप्त करती हैं, वही मेरे लिये मेरे अपने मिलनसे अनन्तगुना अधिक सुख है। मैं अपने लिये दूसरे किसी सुखकी कभी कल्पना ही नहीं कर सकती। तुम मुझे क्यों भुलाती हो ? मुझे तो तुम भी यही वरदान दो कि मैं श्रीराधा-माधवके मिलन-सुखको ही नित्य-निरन्तर अपना परम सुख मानूँ और उसी पवित्र कार्यमें अपने जीवनका एक-एक क्षण लगाकर अनिर्वचनीय और अचिन्त्य सुख प्राप्त करती रहूँ ! यही प्रेमकी महिमा है।

इसीसे इस पवित्र सर्वत्यागमय प्रेमकी तुलनामें इन्द्रका पद, ब्रह्माका पद, सार्वभौम साम्राज्य, पातालका राज्य, योगसिद्धि एवं मोक्षपर्यन्त सभी नगण्य हैं, क्योंकि उन सबमें 'स्व-सुख-कामना'का किसी-न-किसी अंशमें अस्तित्व है, पूर्ण त्याग नहीं है। इस पूर्ण त्यागको ही परम आदर्श माननेवाला मानव त्यागके मार्गमें अग्रसर होकर परम प्रेम और परमानन्दको प्राप्त करके धन्य होता है।

घर, पड़ोस, गाँव, देश, विश्व, विश्वात्मा और सबके मूल-स्वरूप सर्वाधार, सर्वमय, सर्वातीत भगवान्‌के लिये जितना-जितना ही त्याग होता है, उतना-उतना ही भोगासक्ति, प्राणिपदार्थोंका ममता, विषयकामना, मिथ्या अहंकारका नाश होकर दिव्य प्रेम प्राप्त होता है और उतना-उतना ही दिव्य मधुर अनन्त आनन्द बढ़ता है। इसीसे भक्तोंने प्रेमको पुरुषार्थ-चतुष्टयके मोक्षसे भी उच्चतम पञ्चम पुरुषार्थ बताया है।

मानवके लिये इसीसे परम कर्तव्य है—सर्वत्याग। त्यागका अनिवार्य फल है—त्यागमय अनन्यप्रेम और त्यागमय प्रेमका ही परिणाम है—विशुद्धतम दिव्य आनन्द !

भक्तिकी महिमा

(डॉ॰ श्रीराजेश्वरप्रसादजी चतुर्वेदी, डी॰ लिट्॰)

इच्छारहित होनेकी इच्छा सर्वोत्कृष्ट तत्त्व है। इसीसे भक्तजन मोक्षप्राप्तिकी इच्छा न करके प्रभुमय जगत्‌का सेवक होनेके लिये निरन्तर साधना करते हैं, यथा—

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥

तथा—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

भक्तिमें आदिसे अन्ततक इष्टदेवके प्रति पूर्ण समर्पणका भाव रहता है। भक्तिकी अन्तिम स्थिति निष्कामता है और उसका प्राप्तव्य है प्रभुकी अहैतुकी कृपा, जिसका लक्षण है मनका अपने-आप सुशीलताकी ओर ढल जाना—

'हौं अपनायौ तव जानि हौं जब मन फिरि परिहै।'

पूर्ण समर्पणके बिना एवं अहंकारके सर्वतोभावेन तिरोभावके अभावमें न प्रेम किया जा सकता है और न भक्ति-मार्गका अवलम्बन ही। भक्तवर नागरीदासके शब्दोंमें—

शीश काटि मुँह पर धरै, तापर रक्खै पाँउ।
हाथ चमन के बीचमें ऐसा होइ तौ आउ॥

ज्ञान-मार्गका आधार विरति-विवेक है। अधिक तर्क और युक्तिके साम्राज्यमें विवेकके बाधित हो जानेकी आशङ्का सदैव विद्यमान रहती है। इसी कारण ज्ञान-मार्ग दुस्तर, दुष्कर एवं दुःसाध्य माना जाता है—

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक॥

इसीसे—

ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥

योग-साधनाका मार्ग भी इतना ही कठिन है। योगाभ्यासका आधार इन्द्रिय-निग्रह एवं बलपूर्वक आत्म-ज्योतिको जगाना है। कारण, शरीरमें प्रज्ञा प्रतिष्ठित होनेके फलस्वरूप तथा हृदय-चक्रमें प्राणके प्रविष्ट होनेपर योगमार्गमें बुद्धिके द्वारा आन्तरिक एकता अथवा पूर्ण संश्लेषणात्मक चेतनाकी उपलब्धि होती है। इस मार्गमें भी साधकके हतोत्साहित एवं विचलित हो जानेकी आशङ्का पग-पगपर विद्यमान रहती है, परंतु भक्तिके अन्तर्गत आत्मदैन्यका निवेदन एवं अदृश्य सत्ताके प्रति समर्पणका भाव रहता है। भक्तिकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसात्मक अनुभूतिके अन्तर्गत अखिल विश्वमें ब्रह्मकी व्यक्त प्रवृत्तिका सरस आभास प्राप्त होता है। भक्तको विश्वात्माकी झाँकीका निदर्शन विश्वके कण-कणमें प्राप्त होता है। संत कबीरदासने भक्तिको सामान्य ज्ञानका चरम फल और परम ज्ञानका हेतु बताया है—

संतो भाई ! आई ज्ञानकी आँधी।
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी, माया रहे न बाँधी॥
हित-चित की द्वै थून गिरानी, मोह-बलीड़ा तूटा।
तिसना छान परी धरि ऊपर, कुबुधिका भाँड़ा फूटा॥
आँधी पाछे जो जल ऊठा, प्रेम हरी-जन भीना।
कहै कबीर भान के प्रकटे, तुरत भया तम छीना॥

भक्तको न अपनी सत्ताका अनुभव होता है, न अपनी साधनशीलताका गर्व और न किसी प्रकारके फलकी कामना ही होती है। भक्ति स्वार्थवश या भयके कारण नहीं की जाती। भक्तको भक्तिके बदलेमें न भुक्ति चाहिये और न मुक्ति। उसे तो केवल भक्तिका वरदान चाहिये। भक्त भगवान्‌की भक्ति इसलिये करता है, क्योंकि उसे भगवान्‌का अनन्त सौन्दर्य एवं शील-समन्वित लोक-रञ्जनकारी रूप प्रिय लगता है। बन्धुत्व एवं भक्तिभावसे पूर्ण भरतजीकी एक ही चाह है—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

भगवान्‌का निवास-स्थान निष्काम-भक्तका प्रेमपूरित हृदय है। महर्षि वाल्मीकिका कथन प्रमाण है—

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥

श्रीमद्भागवतमें भ्रमरगीत-प्रसंगके अन्तर्गत 'उद्धव-गोपी-संवाद'के माध्यमसे प्रेम-तत्त्वका निरूपण प्रतीकात्मक शैलीमें किया गया है। गोपियाँ ज्ञान एवं योगको प्रेम-भक्तिके मार्गमें बाधक मानती हैं। वे श्रीकृष्णके प्रति सर्वस्व समर्पण करके उपराम हो जाती हैं। उनका प्रेम अपनी समस्त चञ्चल प्रवृत्तिका परित्याग करके शान्त आराधनामें परिणत हो जाता है और वे प्रियदर्शनका आग्रह भी छोड़ देती हैं—

जहाँ जहाँ रहौ राज करो सुख सों, लेउ कोटि सिर भार।
सूरस्याम हम देत असीस हैं, न्हात खसै जनि बार॥

ज्ञान-मार्तण्डसे झुलसे हुए उद्धव व्रजमें पहुँचकर गोपियोंकी श्रीकृष्ण-भक्तिकी सुधावृष्टिसे सरस तथा सुहृष्ट हो उठते हैं—

सुनि गोपिन को प्रेम नेम उद्धव को भूल्यौ।
गावत गुन गोपाल फिरत कुंजन में फूल्यौ॥

कविकी मान्यताके अनुसार यह ज्ञान-रूप उद्धवपर भक्तिरूपा व्रज-वल्लभियोंकी विजय है। उद्धव गये तो थे गोकुलकी गँवारी गोपियोंको ज्ञानका उपदेश देने, परंतु लौटकर आते हैं प्रेम-भक्तिके रंगमें सराबोर होकर। उनके मथुरा लौटकर आनेपर श्रीकृष्ण व्यङ्ग्य-भावसे उनकी इस विवशता-की ओर इङ्गित करते हैं—

प्रेम-विह्वल ऊधौ गिरे रहे नयन जल छाय।
पोंछि पीत पट सों कह्यौ आये जोग सिखाय॥

वास्तवमें उद्धव पराजित नहीं होते हैं, अपितु उनकी चेतनाका विकास होता है। वह विश्लेषणपरक ज्ञानकी केंचुलिका परित्याग करके संश्लिष्ट चेतनारूपी भक्तिकी भागीरथीमें अवगाहन करके कृतकृत्य हो जाते हैं।

भक्ति-मार्गका पथिक विश्वके कण-कणके साथ आत्मीयताका अनुभव करता है तथा जीवमात्रका कष्ट निवारण करनेके लिये सदैव तत्पर रहता है। भगवान्‌की भक्ति और सेवा-धर्म वस्तुतः पर्यायवाची हैं। स्वयं भगवान्‌का कथन है—

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम॥

भक्तिकी साधना एक अनवरत प्रवहमान प्रक्रिया है। भक्त अपने प्रभुकी इच्छा-शक्तिको प्रवाहित करनेका माध्यम बननेके लिये निरन्तर प्रयत्नशील बना रहता है। भक्तिकी विशेषता यह है कि वह भक्तको इच्छावान् बनाकर भी इच्छा-जन्य बन्धनोंसे मुक्त रखती है।

'धनकी प्राप्तिके उद्देश्यसे कार्य करनेपर मन संसारमें रम जाता है, इसलिये सांसारिक कार्य बड़ी सावधानीके साथ केवल भगवत्प्रीतिके लिये ही करना चाहिये। इस प्रकारसे भी अधिक कार्य न करे, क्योंकि कार्यकी अधिकतासे उद्देश्यमें परिवर्तन हो जाता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[सर्वभूतहिते रताः]

परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें मुख्य बाधा है—संयोगजन्य सुखकी आसक्ति, प्रियता। जितने भी संयोगजन्य सुख हैं, वे केवल दुःखोंके कारण हैं—**'ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते'** (गीता ५।२२)। संयोगजन्य सुखकी आसक्तिसे ही संसारके दुःख पैदा होते हैं। अगर संयोगजन्य सुखकी इच्छा न हो तो दुःख कभी हो ही नहीं सकता। किसी चीजके अभावसे दुःख नहीं होता, प्रत्युत सुखकी इच्छासे ही दुःख होता है। अगर संयोगजन्य सुखकी इच्छा मिट जाय तो 'योग' हो जायगा। संयोगजन्य सुखसे अतीत जो महान् सुख है, जिसमें दुःखोंके संयोगका सर्वथा वियोग है, उसको 'योग' कहते हैं—**'तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्'** (गीता ६।२३)। सम्बन्धजन्य सुखका भीतरसे ही त्याग हो जाय अर्थात् उसकी इच्छाका, वासनाका, आशाका, तृष्णाका त्याग हो जाय तो उस योगकी सिद्धि स्वतः हो जायगी।

पतञ्जलि महाराजने कहा है कि चित्तकी सम्पूर्ण वृत्तियोंके निरोधका नाम 'योग' है—**'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** (योगदर्शन १।२) वह योग सविकल्प भी होता है और निर्विकल्प भी होता है। चित्तकी एकाग्र-भूमिमें भी योग होता है और निरुद्ध-भूमिमें भी होता है। निर्विकल्प योग, निरुद्धभूमिका योग असली होता है। इससे पहले चित्तकी पाँच भूमिकाएँ हैं—मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। जब निरुद्ध-भूमिमें योग होता है, तब द्रष्टाकी स्वरूपमें स्थिति होती है—**'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'** (योगदर्शन १।३)। इस तरह पतञ्जलि महाराजने योगका जो फल बताया है, उसीको गीता योग कहती है। गीताने समताको 'योग' कहा है—**'समत्वं योग उच्यते'** (२।४८)। समता क्या है? **'निर्दोषं हि समं ब्रह्म'** (५।१९)। समता नाम ब्रह्मका है। जो निर्दोष और सम है, उसको ब्रह्म कहते हैं। उस ब्रह्ममें स्थितिको गीता 'योग' कहती है। ब्रह्ममें स्थिति कैसे हो? दुःखोंके संयोगका वियोग हो जाय (६।२३)। दुःखोंके संयोगका वियोग कैसे हो? संयोगजन्य सुखकी इच्छाका त्याग हो जाय।

गीताका योग नित्ययोग है; क्योंकि परमात्माके साथ नित्य सम्बन्ध है, अखण्ड सम्बन्ध है। चित्तकी वृत्तियोंके निरोधका जो योग है, वह नित्ययोग नहीं है। वह योग तो तबतक है, जबतक वृत्तियाँ निरुद्ध हैं। वृत्ति बाह्य हो जायगी तो उस योगसे व्युत्थान हो जायगा। समाधि और व्युत्थान—ये दो अवस्थाएँ होंगी। परंतु जब दुःखोंके संयोगका वियोग हो जायगा, तब दो अवस्थाएँ नहीं होंगी, प्रत्युत सदाके लिये अखण्ड योग हो जायगा।

विचार करें, चित्तवृत्तियोंका निरोध करनेसे परमात्मतत्त्वमें जो स्थिति होती है, वह क्या निरोध करनेसे पहले नहीं है? जबतक चित्तवृत्तियोंका निरोध नहीं होता, तबतक परमात्मा नहीं है क्या? परमात्मा तो चञ्चल-से-चञ्चल वृत्तिमें भी हैं। वे मूढ़-वृत्तिमें भी हैं और क्षिप्त-वृत्तिमें भी हैं। वे परमात्मा सब देशमें, सब कालमें, सम्पूर्ण वस्तुओंमें, सम्पूर्ण व्यक्तियोंमें, सम्पूर्ण घटनाओंमें, सम्पूर्ण परिस्थितियोंमें हैं। केवल संयोगजन्य सुखसे विमुख होते ही उनका अनुभव हो जाता है। जबतक संयोगजन्य सुखकी इच्छा रहेगी, वासना रहेगी, तबतक हमारी वृत्ति जड़ताकी तरफ रहेगी, हमारे भीतर जड़ताका महत्त्व रहेगा। जड़ताका महत्त्व रहनेसे चिन्मय-तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होगी, नित्य-प्राप्त परमात्माका अनुभव नहीं होगा। जब संयोगजन्य सुखसे बिलकुल उपरत हो जायँगे, तब वह योग सिद्ध हो जायगा अर्थात् परमात्मतत्त्वका अनुभव हो जायगा।

संयोगजन्य सुखसे उपरत कैसे हों? इसके लिये गीताने बताया कि सब काम दूसरोंके लिये करे, अपने लिये कुछ नहीं। और तो दूर रहा, जप-ध्यान भी अपने लिये नहीं, समाधि भी अपने लिये नहीं। कारण कि शरीरकी, इन्द्रियोंकी, मन-बुद्धिकी, अहंकी सजातीयता संसारके साथ है, अपने स्वरूपके साथ नहीं। अतः शरीर आदिके द्वारा अपना हित चाहना गलती है। ये तो संसारके हैं और इनको संसारकी ही सेवामें लगा देना है। हमारे पास जो कुछ है, वह सब संसारसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिला है और संसारसे मिला हुआ होनेपर भी संसारसे अभिन्न है। आप शरीरको अपना मानते हो, पर अपना माननेपर भी शरीर आपका हुआ नहीं है। वह तो संसारका ही है। शरीरकी संसारके साथ अभिन्नता है, अतः इसको संसारकी सेवामें लगा देना है। आपकी अभिन्नता परमात्माके साथ है, अतः अपने-आपको परमात्मामें लगा देना है। शरीरको संसारकी सेवामें लगाना 'कर्मयोग' हो गया, अपनेको शरीर—संसारसे अलग मानना 'ज्ञानयोग' हो गया और अपनेको परमात्मामें लगाना 'भक्तियोग' हो गया।

केवल संसारकी इच्छा छोड़ देनेसे संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। हम संसारसे कुछ नहीं चाहते तो उसके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं रहता; क्योंकि संसारके साथ हमारा सम्बन्ध है ही नहीं। सुखकी चाहनासे ही संसारसे सम्बन्ध जुड़ता है और सुखकी चाहना मिटनेसे स्वतः सम्बन्ध टूट जाता है। अतः सुख लेनेकी चीज नहीं है, प्रत्युत देनेकी चीज है। हम सुख लेनेके लिये संसारमें आये ही नहीं। केवल सुख देनेके लिये, सेवा करनेके लिये यहाँ आये हैं। इसलिये सबको सुख कैसे हो? सबका हित कैसे हो? सबकी सेवा कैसे बने?—ऐसी लगन लग जाय। जैसे लोभीको रुपयोंकी लगन लगती है, कामीको स्त्रीकी लगन लगती है, मोहीको परिवारकी लगन लगती है, विद्यार्थीको विद्याध्ययनकी लगन लगती है, ऐसे ही लगन लग जाय कि सब लोग सुखी कैसे हों? सबको आराम कैसे मिले? प्राणिमात्रके हितमें रति, प्रीति हो जाय—**'सर्वभूतहिते रताः'** (गीता ५।२५, १२।४)। सबके हितमें रति होनेसे अपने सुखभोगकी इच्छा नहीं रहेगी।

जबतक संयोगजन्य सुखकी इच्छा रहती है, तबतक मनुष्य परमात्मासे बिलकुल विमुख रहता है। कारण कि संयोगजन्य सुख प्रकृतिका है और उत्पत्ति-विनाशशील है। इससे उपराम होनेपर परमात्माका सुख मिलता है। इसलिये प्राणिमात्रके हितमें प्रीति होनी चाहिये। सबका हित एक आदमी कर सकता है क्या? सब मिलकर एक आदमीकी भी इच्छा-पूर्ति नहीं कर सकते, तो फिर एक आदमी सबकी इच्छापूर्ति कैसे करेगा? वास्तवमें इच्छापूर्तिसे मतलब नहीं है। समय, सामग्री, सामर्थ्य आदि जो कुछ हमारे पास है, उसको दूसरोंके हितमें लगानेके लिये निरन्तर प्रस्तुत रहे, हरदम तैयार रहे। इससे हमारे पास जितनी चीजें हैं, उनका प्रवाह संसारकी तरफ हो जायगा और हमारा प्रवाह जड़तासे हटकर चिन्मयताकी तरफ हो जायगा तो परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति हो जायगी।

दीनता

(पं० श्रीमूलनारायणजी मालवीय)

दीनता, दरिद्रता और निर्धनता इत्यादि ऐसे जितने शब्द हैं, उन सबका प्रायः एक ही अर्थ है। वास्तवमें दरिद्रता बुरी वस्तु है। देखा गया है गरीबका अपना भी पराया हो जाता है, कहीं उसका आदर नहीं होता। पग-पगपर उसे अपमानित होना पड़ता है। निर्धनका जीवन कष्टमय होता है। **'कष्टं निर्धनजीवनम्'**, **'सर्वशून्यं दरिद्रता'**, ***'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं'*** आदि कहावतें यहाँ पूर्णरूपसे चरितार्थ होती हैं। दूसरी ओर धनवान्‌का आदर सर्वत्र होता है और दूसरे भी उसके सगे हो जाते हैं। अगस्त्यजीने लक्ष्मीजीकी स्तुति करते हुए लक्ष्मीवान्‌का चित्र बड़े अच्छे ढंगसे चित्रित किया है—

लक्ष्मि त्वयालङ्कृतमानवा ये
पापैर्विमुक्ता नृपलोकमान्याः।
गुणैर्विहीना गुणिनो भवन्ति
दुःशीलिनः शीलवतां वरिष्ठाः॥

'लक्ष्मी! तुमसे अलङ्कृत मनुष्य पाप अर्थात् दुःखसे मुक्त होते हैं, राजदरबारमें और लोकमें आदर पाते हैं। गुणहीन होते हुए भी गुणवान् माने जाते हैं और बुरे स्वभावके होते हुए भी शीलवानोंमें श्रेष्ठ गिने जाते हैं।'

यह अक्षरशः सत्य है कि दीनजनोंकी बड़ी दुर्गति होती है, उन्हें अनेक प्रकारकी यातनाएँ सहनी पड़ती हैं, किंतु दीनजनोंका एक सहायक दीनबन्धु, दीनानाथ, दीनदयालु होता है। श्रीमद्भागवतमें देवर्षि नारदजीने दीनोंके सम्बन्धमें यह कहा है कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरिद्रो निरहंस्तम्भो मुक्तः सर्वमदैरिह।
कृच्छ्रं यदृच्छयाऽऽप्नोति तद्धि तस्य परं तपः॥
नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकाङ्क्षिणः।
इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति हिंसापि विनिवर्तते॥
दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः।
सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद् विशुद्ध्यति॥

(१०।१०।१५-१७)

'दरिद्र पुरुषके मनमें 'मैं हूँ', 'मेरा है', इस प्रकारका अहंभाव नहीं रहता, वह सब प्रकारके मदोंसे मुक्त रहता है। उसे अनायास जो कष्ट मिलता है, वही उसका परम तप है। अन्नहीन दरिद्र पुरुषका शरीर क्षुधा सहनेसे निर्बल और क्षीण हो जाता है, इन्द्रियोंकी भी प्रबलता जाती रहती है, जिससे हिंसाकी प्रवृत्ति भी निवृत्त हो जाती है। समदर्शी साधुगण दरिद्रोंसे ही मिलते हैं। उन साधुओंके संगसे सब प्रकारकी तृष्णा त्यागकर दरिद्र पुरुष शीघ्र ही शुद्ध हो जाते हैं।'

देवर्षि नारदजीके उपर्युक्त शब्दोंमें जितना तथ्य है, वह प्रत्यक्ष है, पर दरिद्रतासे सभी डरते हैं। हाँ, कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिनको दीनता प्रिय है। सहजोबाई गरीबीकी प्रशंसामें कहती हैं—

भली गरीबी नवनता, सके न कोई मार।
सहजो रुई कपासकी, काटे ना तरवार॥

यह ठीक है कि दीनतामें दुःख बहुत हैं, किंतु गरीब अपने सत्कर्तव्योंको करता हुआ सदाचार तथा संतोषके साथ जीवनयापन करता है, यही उसकी शोभा है। गरीबीके कारण धनवान् बननेकी लालसासे जो असत्-मार्गका अनुसरण करता है, वह पथभ्रष्ट होकर अधोगतिको प्राप्त होता है। दीनजनोंको चाहिये कि वे अपने प्रारब्धको बनायें। अच्छे-से-अच्छा भाग्य सत्कर्मोंसे बनता है और निष्काम सत्कर्मोंके द्वारा ही ईश्वरकी प्राप्ति होती है। दीनोंके लिये धैर्य ही उनके कष्टोंके काटनेका एकमात्र अस्त्र है। दुःख सहते हुए ईश्वरपर विश्वास रखना ही उनका परम तप है। प्रारब्ध बलवान् होता है, उसीके बन्धनमें बँधा जीव अपने किये हुए कर्मोंके फलस्वरूप सुख-दुःखोंको भोगा करता है। ऐसी दशामें ईश्वरको छोड़कर गरीब क्यों इधर-उधर भटके, क्यों दूसरोंका मुँह देखे। रैदासजी तो दीनोंसे जोर देकर यह कहते हैं कि—

हरि-सा हीरा छाँड़ि कै, करै और की आस।
सो नर जमपुर जायँगे, सत भाषै रैदास॥

रैदासजीसे भी जोरदार शब्दोंमें किसी कविने कहा है—

धीरज ना छोड़ो औ जाओ नहिं धाम धाम,
दीन वचन कहे नाहिं दीनता सरैगी।
चिंता ना करो चित्त, चातुरी न छाँड़ो मीत,
नीचनको नवाये सिर ना आपदा टरैगी॥
अधमनके आगे रहिये ना अधीन ह्वै कै,
सेखी के छाँड़े नाहिं संपदा जुरैगी।
जा दिन दीनानाथ हाथ छाया तरे छत्र धरै
ता दिन प्रारब्ध आय पाँयन परैगी॥

वास्तवमें यह बिलकुल ठीक है कि कोई किसीको कुछ दे नहीं सकता, भले ही गरीब इधर-उधर दर-दरकी ठोकरें खाय। प्रारब्धका अन्न खलिहानसे स्वयं उठकर आ जाता है। यह देखा गया है कि जबतक मनुष्य किसीसे याचना नहीं करता, तभीतक सब कुछ है। माँगते ही मर्यादा नष्ट हो जाती है। विद्वानोंका मत है कि दूसरेके घर जाकर माँगनेसे अपना रहस्य प्रकट हो जाता है और अपमानित भी होना पड़ता है। रहीमजी कहते हैं कि—

'रहिमन' पर घर जायके दुःख न कहियो रोय।
अपनो भरम गँवायके बात न पूछै कोय॥

यह स्वतःसिद्ध है कि ईश्वर ही जब विश्वका भरण-पोषण करता है और यह भी प्रत्यक्ष है कि उससे की गयी याचना कभी निष्फल नहीं होती, फिर एकको छोड़कर अनेकोंके पास क्यों ठोकर खायँ। अकबरने बड़ी खूबसूरतीसे यह फरमाया है कि—

जो कुछ माँगना हो खोदासे माँग ऐ 'अकबर'।
यही वह दर है कि जिल्लत नहीं सवाल के बाद॥

इन्हीं सब बातोंको पढ़-सुनकर दीनजनोंको ईश्वरपर निष्ठा और विश्वास रखना चाहिये। ईश्वर ही सबका सुखदाता है और दीन हुए बिना वह किसीसे मिलता भी नहीं। जीवन उसीका सफल है, जो भगवान्‌का भक्त बनता है तथा ईश्वर-प्राप्तिका उपाय किया करता है। बड़े-बड़े सम्राट्, धनवान् और बलवान् ईश्वरकी कृपाकोरके अभिलाषी रहते हैं, फिर गरीब क्यों न गरीबनिवाजका आश्रय ग्रहण करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुदामा दीन थे। घरमें न खानेको अन्न था, न तन ढाँकनेको वस्त्र ही। उनकी पत्नीने किसी धनवान्‌के पास धन माँगनेकी सलाह नहीं दी। उसने दीनबन्धु भगवान् श्रीकृष्णके पास यह कहकर पतिको भेजा कि—

हरिहैं दुख-दारिदके हर्ता, कर्ता सुखके सो कृपा करिहैं।
करिहैं यदुनाथ सनाथ जबै अघ ओघ सबै छनमें टरिहैं॥
टरिहैं मनके दुख औ दुबिधा जनके हिय तोष सुधा भरिहैं।
भरिहैं धन सों पिय भवन भँडार दरिद्र तुम्हार हरी हरिहैं॥

फिर जितना ही जिनके पास धन अधिक है, उतना ही उसका हृदय अधिक जलता रहता है। धनियोंके हृदयकी बात जाननेवालोंसे उनका अपार दुःख छिपा नहीं है। वास्तवमें संसारभरका ऐश्वर्य प्राप्त होनेपर भी प्राणी सुख-शान्ति प्राप्त नहीं करता। **'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः'** (कठ० १।२७) सुख-शान्तिकी प्राप्ति तो संतोषसे होती है। विषयोंके त्यागका नाम ही संतोष है। इसीको भगवान् श्रीकृष्णने महारानी रुक्मिणीका संदेश ले जानेवाले ब्राह्मणसे कहा था—

असंतुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः।
अकिंचनोऽपि संतुष्टः शेते सर्वाङ्गविज्वरः॥
विप्रान् स्वलाभसंतुष्टान् साधून् भूपसुहृत्तमान्।
निरहंकारिणः शान्तान् नमस्ये शिरसा सकृत्॥

(श्रीमद्भा० १०।५२।३२-३३)

'जो कोई बार-बार अभिलषित पदार्थ पाकर भी असंतुष्ट रहता है, वह इन्द्रकी पदवी पाकर भी सुख-शान्ति नहीं पा सकता, क्योंकि उसके मनमें संतोषरूपी वृक्षकी शीतल छाया नहीं है और जो दरिद्र होते हुए भी सुखसे अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वे साधु हैं, सब प्राणियोंके परम बन्धु हैं, अहंकार-शून्य हैं और शान्त हैं। उन ब्राह्मणोंको सिर झुकाकर मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ।' ये हैं भगवद्वाक्य, जो कभी मिथ्या नहीं हो सकते। इसी संतोषके सम्बन्धमें कहा गया है—

गोधन गजधन बाजिधन और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन सब धन धूरि समान॥

प्राणीकी एक ऐसी भी अवस्था होती है, जब उसका धन-बल, जन-बल और शरीर-बल भी काम नहीं देता। इसे भी दीनावस्था कहा जाता है। देखिये, जगदम्बा जानकीजीके हरणके समय रावणके हाथोंसे बूढ़ा जटायु आहत होकर पड़ा था, उस समय वह दीनकी तरह असहाय था। ऐसे अवसरोंपर दीनबन्धु ही कृपा किया करते हैं। किसीने बड़े अच्छे ढंगसे कहा है—

दीन मलीन अधीन है अंग बिहंग पर्‌यो छिति खिन्न दुखारी।
राघव दीनदयाल कृपालु कों देख दुखी करुणा भइ भारी॥
गीधको गोदमें राखि कृपानिधि नैन सरोजनमें भरि बारी।
बारहिं बार सुधारत पंख जटायुकी धूरि जटान सों झारी॥

द्रौपदीके पाँच बलवान् पति थे, किंतु जिस समय वह भरी सभामें दुर्योधनकी आज्ञासे वस्त्रविहीन की जा रही थी, उस समय उसने दीनकी तरह यह कहकर दीनबन्धु दीनानाथ-को पुकारा था—

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय॥
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव।
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन॥
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्॥

(महा० सभा० ६८।४१-४३)

'हे गोविन्द! हे द्वारकावासी! हे सच्चिदानन्दस्वरूप प्रेमघन! हे गोपीजनवल्लभ! हे सर्वशक्तिमान् प्रभो! कौरव मुझपर जो अत्याचार कर रहे हैं, इस बातको क्या आप जानते नहीं हैं? हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे आर्तिनाशन जनार्दन! मैं कौरवोंके समुद्रमें डूब रही हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये। श्रीकृष्ण! आप सच्चिदानन्दस्वरूप महायोगी हैं। आप सर्वस्वरूप और सबके जीवनदाता हैं। हे गोविन्द! मैं कौरवोंसे घिरकर बड़े संकटमें पड़ गयी हूँ। आपकी शरण हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये।'

द्रौपदीकी ही तरह गजराजकी भी दयनीय दशा थी और वह भी दीनोंकी तरह यह कहकर चिल्लाया था—

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्
प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम्।
भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भया-
न्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि॥

(श्रीमद्भा० ८।२।३३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जो कोई सर्वसमर्थ ईश्वर अधिक बलवान् एवं बड़ी तीव्र गतिसे दौड़ रहे कालरूप भयङ्कर सर्पके भयसे घबड़ाये हुए, आपत्तिमें पड़े हुए प्राणीकी रक्षा करते हैं और जिनके डरसे काल अपने कार्यमें लगा हुआ है, मैं उन्हीं ईश्वरकी शरणमें हूँ।'

कहते हैं कि द्रौपदीकी पुकारकी तरह गजकी टेर भी खाली नहीं गयी। भगवान्ने अपने वाहनको छोड़कर शीघ्र-से-शीघ्र गजके पास पहुँचकर ग्राहको मारकर गजकी रक्षा की। गजकी टेर सुनते ही परमधाममें हलचल मच गयी—

पर्यङ्कं विसृजन् गणानगणयन् भूषामणिं विस्मर-
न्नुत्तानोऽपि गदागदेति निगदन् पद्मामनालोकयन्।
निर्गच्छन्नपरिच्छदं खगपतिं चारोहमाणोऽवतु
ग्राहग्रस्तमतङ्गपुङ्गवसमुद्धाराय नारायणः॥

ग्राहके चंगुलमें फँसे हुए गजराजका उद्धार करनेके लिये भगवान् श्रीहरि इतने उतावले हो उठे कि लक्ष्मीजीकी बिछायी हुई सुखदायिनी शय्याको भी तत्काल त्यागकर चल पड़े। सामने सेवाके लिये आये हुए पार्षदोंको भी कुछ नहीं गिना। गलेमें कौस्तुभमणि पहननेकी भी सुध न रही, उत्तान सोये थे, उसी दशामें 'गदा ! गदा !' कहते हुए सहसा उठकर खड़े हो गये। प्रियतमा लक्ष्मीकी ओर दृष्टि नहीं डाली। पक्षिराज गरुड़की पीठपर बिना गद्दी कसे ही सवार हो गये और बड़े वेगसे गजराजके पास जा पहुँचे।

इसलिये दीन होना बुरा नहीं है, क्योंकि इसी स्थितिमें दीनबन्धुकी कृपाका प्रसाद मिलता है, जो मदान्ध धनिकोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है। यह सत्य है कि दरिद्रताके समान कोई बड़ा दुःख नहीं होता, किंतु 'निर्बलके बल राम' तो होते ही हैं। व्यासजीने तो सुस्पष्ट ही कहा है—

केचिद् वदन्ति धनहीनजनो जघन्यः
केचिद् वदन्ति गुणहीनजनो जघन्यः।
व्यासो वदत्यखिलवेदपुराणविज्ञो
नारायणस्मरणहीनजनो जघन्यः॥

श्रीमद्भागवतके वक्ता महाज्ञानी शुकदेव आदि संतों तथा तुलसीदास आदि भावुक भक्तोंका मूल सिद्धान्त यही है कि भगवान् दैन्य-ग्रहणकी साधनासे ही प्राप्त होते हैं। इसमें भावका दैन्य, स्वभावका विनय तथा सभी प्राणियोंके प्रति विनयकी भावना और ईश्वरदृष्टिके साथ-साथ भोग-त्याग भी आवश्यक है। जब राजा-महाराजाओंको राज्य-समृद्धिके मध्य रहते हुए भगवान्की प्राप्ति नहीं होती थी तो वे वानप्रस्थी बनकर भगवान्की शरण लेते थे—

मुनिबर जतनु करहिं जेहि लागी। भूप राजु तजि होहिं बिरागी॥

इसलिये जिन्हें संयोगवश दीनता प्राप्त हो गयी है, उन्हें अपनेको सौभाग्यशाली एवं भगवान्का विशेष कृपा-पात्र मानकर दैन्यभावसे स्मरण करते हुए साधनाको तीव्र करना चाहिये, इससे उन्हें भगवान्की प्राप्ति सहजमें ही सुलभ हो जायगी। उनकी दीनता दूषण न होकर तत्काल भूषण बन जायगी। केवल भगवान्को स्मरण न करना ही भगवत्प्राप्ति-में बाधक है। वास्तवमें जैसा कि उन्होंने स्वयं बलि, ब्रह्मा आदिसे कहा है कि 'मैं अपनेको ही प्राप्त करानेके लिये भक्तोंके ऐश्वर्यादिका हरण करता हूँ और जैसे-जैसे वे स्मरण करने लगते हैं, मैं उनके साथ सदा निवास करने लगता हूँ।' इसलिये देवर्षि नारद, योगीश्वर शुकदेव तथा सनकादि योगीजन अपने पास कुछ-न-कुछ रखकर स्मरण-ध्यानद्वारा भगवान्के नित्य सांनिध्यका ही सर्वोपरि आनन्द लेते हैं। अतः सभीको दैन्यभावसे नित्य-निरन्तर प्रसन्न-चित्तसे दीनबन्धु भगवान्का स्मरण करते रहना चाहिये।

'ऐसी चेष्टा करनी चाहिये, जिससे एकान्त स्थानमें अकेलेका ही मन प्रसन्नतापूर्वक स्थिर रहे। प्रफुल्लित चित्तसे एकान्तमें श्वासके द्वारा निरन्तर नाम-जप करनेसे ऐसा हो सकता है।'

'भगवत्प्रेम एवं भक्ति-ज्ञान-वैराग्य-सम्बन्धी शास्त्रोंको पढ़ना चाहिये।'

'एकान्त देशमें ध्यान करते समय चाहे किसी भी बातका स्मरण क्यों न हो, उसे तुरंत भुला देना चाहिये। इस संकल्प-त्यागसे बड़ा लाभ होता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवतीय प्रवचन—२९

सब कुछ भूलकर प्रभुमें तन्मय हो जाओ

(संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)

कष्ट सहते रहोगे तो संत बनोगे। विदुरजीकी भाँति बारह वर्ष तप करोगे तो सहनशक्ति आयेगी। सात्त्विक आहार करनेवाला ही सहनशक्ति प्राप्त कर सकता है। विदुरजीने बारह वर्ष भाजीका ही भोजन किया। तुम कम-से-कम बारह महीने भाजीपर रहोगे, तो सहनशक्ति पाओगे। सहनशक्ति तब आती है, जब आहार-विहार बहुत सात्त्विक हो। इस जीवका स्वभाव ही ऐसा है कि उसे जो कुछ मिला है, उतनेसे वह संतुष्ट नहीं होता। बुद्धि यदि ईश्वरमें स्थिर रखोगे, तो तुम सब कुछ सहन कर सकोगे और संतुष्ट भी रह सकोगे। विदुरजीने केवल भाजीमें ही संतोष माना और ईश्वरकी आराधना करते रहे।

अपमानसे विदुरजीको न तो दुःख हुआ और न ग्लानि। दुर्योधनने राजसभामें उनका अपमान किया। फिर भी वे क्रुद्ध नहीं हुए। विदुरजीने केवल भाजी ही तो खायी थी।

दुःख और क्रोधको पी जानेकी शक्ति सात्त्विक आहारसे ही प्राप्त होती है। सुखी होना है तो कम खाओ और गम खाओ। मनुष्य सब कुछ खा जाता है, किंतु गम नहीं खा सकता, क्रोध नहीं पचा सकता।

तुम्हारी कोई निन्दा करे तो उसे शान्तिसे सह लो। उस समय ऐसा मान लो कि वह निन्दक मुझे मेरे दोषोंका भान करा रहा है, मेरा पाप धो रहा है। कुछ लोगोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि निन्दारसमें डूबे बिना उनका खाना पचता ही नहीं है। इस जगत्ने किसीको नहीं छोड़ा, सभीकी निन्दा की। निन्दा करनेवालेपर क्रोध मत करो। ऐसा मानो कि इसमें भी प्रभुका ही कुछ संकेत है। भगवान् बड़े दुःखसे कहते हैं कि 'मानव-कल्याणके लिये मनुष्य-अवतार लेकर इस धरतीपर आया था, फिर भी लोगोंने मेरी निन्दा की।' विदुरजी भी अपमानमें प्रभुकी कृपाका ही अनुभव करते हैं।

विदुरजीने सोचा कि दुर्योधन मेरी निन्दा नहीं कर रहा है, अपितु उसके अंदर बसे हुए नारायण मुझे कौरवोंका कुसंग छोड़नेका आदेश दे रहे हैं। कौरवोंका कुसंग छोड़नेकी यह प्रभु-प्रेरणा है।

महापुरुष निन्दामें भी सारतत्त्व खोजते हैं। जो अच्छी वस्तुओंमें अच्छाई देखे वह साधारण वैष्णव है, परंतु जो बुरी वस्तुओंमें भी अच्छाई देखता है, वह उत्तम वैष्णव है। प्रतिकूल परिस्थितिमें भी वैष्णव प्रभुके अनुग्रहका ही अनुभव करता है। भगवान्ने सोचा कि यदि कौरवोंके साथ विदुरजी रहेंगे तो कौरवोंका विनाश न हो सकेगा। इसलिये विदुरजीको यह स्थान छोड़नेकी प्रभुने प्रेरणा दी।

रामायणमें रावणने विभीषणका और भागवतमें दुर्योधनने विदुरजीका अपमान किया था। इस प्रकार संतोंका अपमान करनेके कारण ही उनका विनाश हुआ। कुटुम्बमें कम-से-कम एक भी व्यक्ति पुण्यशाली हो तो उस कुटुम्बका नाश नहीं हो सकता, कोई उसका अहित नहीं कर सकता। विदुरजीके जानेसे कौरवोंका सर्वनाश हुआ और विभीषणके जानेसे लंकाके रावण और अन्य सभी राक्षसोंका संहार हुआ।

विदुरजी तीर्थयात्राके लिये चल पड़े। धृतराष्ट्रद्वारा भेजा गया धन उन्होंने लौटा दिया। आवश्यकताएँ कम करते जाओगे तो पाप भी घटते रहेंगे और उन्हें बढ़ाओगे तो पाप भी बढ़ते ही रहेंगे। प्राप्त स्थितिमें असंतोषका अनुभव ही मनुष्योंको पाप करनेकी प्रेरणा देता है। इसीलिये तो कहा है कि पापका पिता असंतोष—लोभ है। जो पाप नहीं करता है, वह पुण्य ही करता है।

विदुरजी यात्रा करने निकले, परंतु अपने साथ उन्होंने कुछ भी नहीं लिया। जब कि आजकलके लोग यात्रा करने निकलते हैं तो बहुत-सी वस्तुएँ साथ लेकर चलते हैं। अपनी आवश्यकताकी लम्बी-लम्बी सूची बनाते हैं और उसमेंसे कोई वस्तु शेष न रह जाय, इसकी पूरी-पूरी चेष्टा करते हैं।

यात्राका अर्थ है—(या+त्रन्=यात्रा, उणा० ४। १६८)। इन्द्रियोंको प्रतिकूल विषयोंसे हटाकर अनुकूल विषयोंमें लगा देना ही यात्रा है। तीर्थयात्रा उसीकी सफल होती है, जो तीर्थ-जैसा ही पवित्र होकर वहाँसे लौटता है।

केवल यात्रा करनेसे ही पुण्य नहीं हो जाता। कई बार तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य यात्रा करते-करते पापकी गठरी बाँधकर भी लाता है। यात्रा विधिपूर्वक करनी चाहिये। विधिपूर्वक यात्रा करनेसे ही पुण्य प्राप्त होता है। यात्रा करनेके लिये निकलनेसे पहले प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि 'मैं अब ब्रह्मचर्यका पालन करूँगा, कभी क्रोध न करूँगा, असत्य नहीं बोलूँगा, व्यर्थ भाषण नहीं करूँगा।' ऐसी प्रतिज्ञा करनेके पश्चात् ही यात्राका आरम्भ किया जाय।

तीर्थोंके सच्चे साधु-संतों-ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवालोंको तीर्थयात्राका पुण्य प्राप्त नहीं हो सकता। साधु-संतोंके प्रति सद्भाव न हो तो तीर्थयात्रा विफल रहती है। तीर्थ-स्थानमें विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये। वहाँ कुल्ले करना और साबुन लगाकर स्नान नहीं करना चाहिये।

महाप्रभुजी दुःखसे कहते हैं कि अतिशय विलासी और पापी लोग तीर्थ-स्थानोंकी ओर जाने लगे हैं और वहाँ रहने भी लगे हैं। यही कारण है कि तीर्थस्थानोंकी महिमा लुप्त होने लगी है।

जब विदुरजी यात्रा करने गये तो साथमें क्या ले गये थे? कुछ नहीं। केवल कौरवोंका पुण्य ही साथमें ले गये थे। **'स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो०।'**

कौरवोंका पुण्य साथ ले गये, क्योंकि उन्होंने विदुरजीका अपमान किया था, निन्दा की थी।

तुम्हारी कोई निन्दा करे, अपमान करे और तुम उसे सह लोगे, तो तुम्हारा पाप उस निन्दकके पास जायगा और उसका पुण्य तुम्हें मिलेगा।

तीर्थमें जाओ तो उस दिन उपवास करो। ब्राह्मणका अपमान मत करो। सच्चे साधु-संत-ब्राह्मणका अपमान करनेसे तीर्थयात्रा विफल रहती है। उपवास करनेसे शरीरकी शुद्धि होती है, पाप जल जाते हैं और सात्त्विकभाव जाग्रत् हो जाता है।

विदुरजी प्रत्येक तीर्थमें उपवास करते थे और विधिपूर्वक स्नान करते थे। यात्रा किस प्रकार की जाय, इस विषयमें विदुरजी कहते हैं—

गां पर्यटन् मेध्यविविक्तवृत्तिः
सदाप्लुतोऽधःशयनोऽवधूतः।
अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो
व्रतानि चेरे हरितोषणानि॥

(श्रीमद्भा० ३।१।१९)

'पृथ्वीपर वे अवधूत-वेषमें परिभ्रमण करते थे, जिससे स्नेही-सम्बन्धी उन्हें पहचान न सकें। शरीरका शृङ्गार नहीं करते थे। अल्पमात्रामें वे बिलकुल पवित्र भोजन करते थे। शुद्ध वृत्तिसे जीवन-निर्वाह करते, प्रत्येक तीर्थमें स्नान करते, भूमिपर ही शयन करते और भगवान् जिससे प्रसन्न हो सकें ऐसे व्रत करते थे।'

संत तीर्थको पावन करते हैं। भरद्वाज मुनि स्नान करनेके लिये आते थे, तो गङ्गाजी पचीस सीढ़ियाँ ऊपर आ जाती थीं। गङ्गाजीको ज्ञात था कि और लोग तो अपने पाप मुझे देनेके लिये आते हैं, जब कि भरद्वाज मुनि मुझे पावन करनेके लिये आते हैं।

अति सम्पत्ति अनर्थका मूल है। इसी कारण भगवान्ने सुवर्णकी द्वारका जलमें डुबा दी थी। द्वारकामें भगवान्की मूर्ति मनोहर है, उसका स्वरूप अद्भुत है। देखते रहनेपर भी मन तृप्त नहीं होता। लोगोंको द्वारकाधीशका दर्शन अवश्य करना चाहिये। काशीका माहात्म्य भी अधिक है। काशीके प्रमुख देव हैं विश्वनाथ।

विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम्।
वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम्॥

इस श्लोकका प्रतिदिन पाठ करनेसे काशीवासका फल मिलता है। काशीमें नौ मास रहनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता। काशीके मणिकर्णिका घाटपर यह श्लोक लिखा हुआ है—

मरणं मङ्गलं यत्र सफलं यत्र जीवितम्।

शिवजी ज्ञानके मुख्य देव हैं। काशीमें ज्ञान शीघ्र ही सिद्ध होता है। ज्ञान पाना चाहते हो तो तुम्हें श्मशानमें रहना पड़ेगा। श्मशान ज्ञान-भूमि है। श्मशानमें रहनेकी नहीं, उसे सदा स्मरण करते रहनेकी आवश्यकता है। दिनमें तीन-चार बार श्मशानका स्मरण करते रहोगे, तो बुद्धिमें परिवर्तन होगा। कल्पना करो कि तुम काशीमें ही रहते हो। यहाँ बैठकर मनसे ही गङ्गास्नान करो। कलियुगमें तो मनसे सत्कर्म करनेवालेको भी पुण्य मिलता है।

तीर्थक्षेत्रोंमें गयाजी (पितृगया) प्रसिद्ध तीर्थ है। वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक श्राद्ध करने होते हैं। प्रथम श्राद्ध फल्गु-किनारे किया जाता है और अन्तिम श्राद्ध अक्षयवट-तले करना होता है। जहाँ करारविन्द तथा पादारविन्दवाले बालकृष्ण निवास करते हैं। श्राद्धक्रिया करानेवाला पुरोहित किसी एक वस्तुका त्याग करवाता है और भगवान्‌से कुछ माँगनेको कहता है।

पहले कुछ त्याग किया जाय फिर उसके बाद ही कुछ माँगा जाय। जो भगवान्‌के लिये कुछ त्याग कर सकता है, उसे ही उनसे माँगनेका अधिकार मिलता है। अधिकतर लोग अपनी जिस वस्तुसे रुचि न हो उसे ही छोड़नेकी प्रतिज्ञा करते हैं। खाने-पीनेकी सामान्य वस्तु छोड़नेकी प्रतिज्ञा अधिकतर लोग करते हैं। किंतु इस तरह साग-सब्जी या फल आदिके त्यागसे कोई लाभ नहीं होगा। यदि पाप और विकारका त्याग करोगे तो लाभ होगा। ऐसा कहो कि काशी-विश्वनाथके दर्शन करके मैंने काम छोड़ दिया और गोकुल-मथुराकी यात्रामें क्रोधको त्याग दिया। एक-एक तीर्थमें एक-एक पाप छोड़ दो। एक-एक त्याग करो। प्रभुके लिये अति प्रिय वस्तुका त्याग करोगे तो वे प्रसन्न होंगे।

काशी ज्ञानभूमि है। अयोध्या वैराग्यभूमि है। व्रज प्रेम-भूमि है। व्रजरजमें कृष्णप्रेम भरा हुआ है। नर्मदाका किनारा तपोभूमि है। **'रेवातीरे तपः कुर्यात्।'** नर्मदाके किनारेपर ज्ञान, वैराग्य और भक्ति तीनों सिद्ध हो सकते हैं।

तीर्थमें क्रोध मत करो। तीर्थमें ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंका पालन करोगे तभी तीर्थयात्राका फल मिलेगा।

यात्रा करते हुए विदुरजी युमना-किनारे वृन्दावन आये। ठाकुरजीकी कृपासे तुम्हें समय मिल सके तो चार मास वृन्दावनमें रहकर प्रभुभजन करो।

कन्हैया व्रजमें नंगे पाँव घूम रहे थे, यशोदाने समझाया कि नंगे पाँव वनमें घूमनेसे काँटे-कंकड़ चुभ जायँगे, इसलिये पगरखा पहनकर जा। तो कन्हैयाने कहा कि 'गायोंकी सेवा करनेके लिये ही तो मैं आपके घर आया हूँ। गत जन्ममें मैं राजाके घरमें राम बनकर जन्मा था, तो मुझे किसीने गौसेवाका अवसर ही नहीं दिया। इसलिये मैंने सोचा कि अब भविष्यमें मैं किसी गोपालकके घर जन्म लूँगा और गौसेवा करूँगा।' जब वे पाँच वर्षके बालक थे, तभीसे गायोंको खिलानेके पश्चात् खानेका उनका नियम था। कन्हैयाने कहा कि 'मेरी गायोंके पैर भी तो खुले ही हैं तो फिर मैं ही कैसे पगरखे पहन सकता हूँ।'

लालाके यों तो कई नाम हैं, किंतु एक वैष्णवने कहा है कि 'मुझे तो 'गोपालकृष्ण' नाम ही बड़ा पसंद है। कृष्ण व्रजमें खुले पाँव फिरते रहते हैं, अतः व्रजरज अति पावन है। द्वारकामें तो राजा थे, अतः खुले पाँव घूम नहीं सकते थे।'

विदुरजी व्रजकी कृष्ण-रमणसे पवित्र रजमें लोटते हैं। रमण-रेतीमें गोपियोंकी भी चरण-रज है। विदुरजी कृष्णकी मङ्गलमय लीलाओंका चिन्तन करते हैं। यमुनाके किनारे लौकिक बातें करना पाप है। यह भूमि अतिशय पवित्र है। भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ गौएँ चराने आते थे। व्रजकी लीला नित्य है। भागवतके प्रमुख टीकाकार श्रीधर स्वामीने कहा है कि भगवान्‌का नाम, लीला, स्वरूप, धाम, परिकर नित्य हैं। आज भी भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें प्रतिदिन लीला करते हैं।

भगवान् कहते हैं कि जगत्‌के किसी भी स्त्री, पुरुष, जड या चेतन वस्तुमें आनन्द नहीं है। तुम मेरे पास आओ। मैं ही आनन्दरूप हूँ। श्रीकृष्ण आनन्दरूप हैं।

विदुरजीने अनुभव किया कि मेरे श्रीकृष्ण गायोंको लेकर यमुनाके किनारे आये हैं। यह कदम्बका वृक्ष है। वैष्णव इसे टेर कदम्ब कहते हैं। कदम्बपर झूलते हुए श्रीकृष्ण वंशी बजाते हैं और अपनी प्यारी गायोंको बुलाते हैं कि 'हे गंगी ! हे गोदावरी ! आओ।' विदुरजीकी ऐसी भावना थी कि वे लीलाको प्रत्यक्ष देखें। अतः उन्हें इन सबका अनुभव हुआ।

गायोंके बीचमें खड़े हुए गोपालकृष्णका ध्यान करो। ऐसे कृष्णका ध्यान करनेसे तन्मयता शीघ्र प्राप्त होती है।

इन्द्रियोंका विवाह परमात्माके साथ करो, विषयोंके साथ नहीं।

भगवान्‌का एक नाम है हृषीकेश। हृषीकका अर्थ है इन्द्रिय और ईशका अर्थ है स्वामी। इन्द्रियोंके स्वामी श्रीकृष्ण हैं। ये पाँच इन्द्रियाँ सच्चे पति नहीं हैं। इन्द्रियाँ पति होना चाहती हैं। संसारका कोई भी रूप जबतक आँखें देखती रहेंगी, तबतक नींद नहीं आयेगी। इसका अर्थ यह है कि रूप आँखका पति नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदुरजी सोचते हैं कि मेरी अपेक्षा ये पशु श्रेष्ठ हैं, जो परमात्मासे मिलनेके लिये आतुर होकर दौड़ते हैं। गायें भी कृष्णमिलनके लिये व्याकुल हैं। धिक्कार है मुझे कि अभीतक मुझमें कृष्णमिलनकी तीव्र इच्छा उत्पन्न नहीं हुई है। गायें दौड़ती हैं और मैं पत्थर-सा बैठा हुआ हूँ। उनकी आँखें प्रेमाश्रुओंसे गीली हो गयीं। ऐसा प्रसंग कब आयेगा कि 'मैं भी इन गायोंकी भाँति कृष्णमिलनके लिये दौड़ लगाऊँगा।' वे कृष्णलीलाका चिन्तन करते हुए कृष्णप्रेममें पागल हो गये हैं, अति तन्मय हो गये हैं।

किसी भी प्रकार जगत्को भूल जाओ और प्रभुप्रेममें तन्मय हो जाओ। सभी साधनोंका यही रहस्य है। विरह जब अतिशय तीव्र होता है तभी परमात्मासे मिलन होता है।

शङ्का-समाधान—

मानव-शरीरकी महत्ता

(स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)

शङ्का—रामचरितमानसमें मनुष्य-शरीरकी बहुत प्रशंसा की गयी है—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

× × ×

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥

× × ×

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

यहाँ यह शङ्का होती है कि मनुष्यके बालकको चलने-फिरने, उठने-बैठने, खाने-पीने तथा खाद्य-अखाद्यका ज्ञान एवं शत्रु-मित्रकी पहचान आदि, जीवनयापनके लिये अति आवश्यक कार्योंका भी ज्ञान बिना सिखाये नहीं होता। किंतु पशु-पक्षियोंमें प्रायः अधिकांश गुण प्रकृति-प्रदत्त ही होते हैं। इस दृष्टिसे देखा जाय तो मनुष्य-शरीरकी उपर्युक्त प्रशंसा ठीक प्रतीत नहीं होती। वस्तुतः शास्त्रोंमें मानव-शरीरकी विशेष प्रशंसा क्यों है ?

समाधान—लौकिक दृष्टिसे इस शङ्काका समाधान तो यह है कि अन्य शरीरोंकी अपेक्षा मनुष्य-शरीरमें जीवको ऐसी बुद्धिकी प्राप्ति होती है, जिससे यह लघुकाय होनेपर भी विशालकाय हाथी आदिको भी अपने वशमें कर लेता है। अपनी क्षुधा-पिपासा, सरदी-गरमी रोग आदिके निवारणहेतु अन्न-जल, गृह, ओषधि आदिका संचय कर लेता है। इस बुद्धिके ही ये सब चमत्कार हैं, जिससे मानवने जलयान, वायुयान, ट्रांजिस्टर, रेलगाड़ी, टेपरिकार्ड, विशालतम पुल, बाँध तथा कारखानों आदिका निर्माण किया है। इतना ही नहीं, अपितु चन्द्रलोकतक गमन करनेमें सफल हुआ है।

अलौकिक दृष्टिसे उक्त शङ्काका मुख्य समाधान यह है कि मानवशरीरमें ही ऐसी बुद्धि मिलती है, जिससे शास्त्रानुसार स्वयोग्यताके अनुरूप साधनका अनुष्ठान कर मानव मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इसीलिये कहा है—

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥

× × ×

नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥

भाव यह है कि ज्ञानप्रधान मानव ज्ञानयोगद्वारा, भाव-प्रधान मानव भक्तियोगद्वारा तथा क्रियाप्रधान मानव कर्मयोग-द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकता है। अन्य शरीरोंके द्वारा मोक्ष प्राप्त न हो सकनेके कारण ही मानव-शरीरकी महती प्रशंसा की गयी है।

शङ्का—कुछ मानव तो तन-धन-क्षीण, बुद्धिहीन, विक्षिप्त-मन, उन्माद, अपस्मार (मिर्गी) आदि असाध्य रोगोंसे ग्रस्त, अंधे, बहरे, लूले-लँगड़े होनेके कारण ज्ञान-ध्यान आदि अलौकिक साधनका अनुष्ठान कर ही नहीं सकते। इतना ही नहीं, प्रत्युत लौकिक दृष्टिसे सुखमय नहीं, अपितु अति दुःखमय नारकीय जीवनयापन कर रहे हैं। ऐसे लोगोंके लिये मानव-शरीरकी प्रशंसा सर्वथा व्यर्थ है।

समाधान—प्रशंसा, निन्दा, नियम आदि सब अधिकांश स्थलोंको लक्ष्य कर किये जाते हैं। अतः कुछ स्थलोंमें उनका अपवाद होनेपर भी व्यर्थ नहीं कहा जाता।

शङ्का—यदि जीवके बड़े भाग्यानुसार ही मानव-शरीर मिलता है तो—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—ऐसा क्यों कहा गया है ? यदि ईश्वर करुणा करके बिना हेतुके ही मानव-शरीर देते हैं तो सब जीवोंको मानव-शरीर एक ही समय उन्होंने क्यों नहीं दिया। जिन्हें दिया है, उनमें भी किसीको अधिक ज्ञान-ध्यानकी योग्यता, धन-धान्य-मकानकी सम्पन्नतासे युक्त क्यों किया ? क्या इससे ईश्वरमें विषमताका दोष नहीं आता ? इस विषमता-दोषसे बचनेके लिये यदि जीवोंके कर्मोंको विषमताका हेतु माना जाय तो 'ईश्वर बिना हेतुके करुणा करके मानव-शरीर देते हैं'—इस कथनके साथ विरोध होगा। इन शङ्काओंका क्या समाधान है ?

समाधान—सभी जीवोंको एक ही समय मानव-शरीर न देनेमें तथा ज्ञान-ध्यानकी योग्यताकी न्यूनता-अधिकता आदिमें भी जीवोंके कर्म ही हेतु हैं। अतः ईश्वरमें विषमतादोषका लेश भी नहीं है। पशु-पक्षी-शरीर-प्राप्तिके योग्य असंख्य कर्मोंके रहते हुए भी बीच-बीचमें उद्धारके लिये मानव-शरीर देनेका नियम बनाना ही ईश्वरकी अहैतुकी करुणा है। अतः ईश्वर 'मानव-शरीर बिना हेतुके करुणा करके देते हैं ?' यह कथन भी ठीक ही है।

शङ्का—बीच-बीचके जिस कालमें मानव-तन-प्रदानका विधान भगवान्ने करुणा करके बनाया है, वह काल कब आता है ?

समाधान—श्रीशंकराचार्यजीने बृहदारण्यकग्रन्थके प्रारम्भमें सम्बन्धभाष्यमें कहा है कि 'धर्म-अधर्म समान मात्रामें होनेपर मनुष्यत्वकी प्राप्ति होती है'—'**साम्ये च धर्माधर्मयोः मनुष्यत्वप्राप्तिः।**' स्कन्दपुराणमें भी ऐसा ही कहा गया है—

साम्ये पुण्यान्ययोश्चैव मानुषीं योनिमाप्तवान्।

(स्कन्दपु० ब्रह्म०, ब्रह्मोत्तर० १।६४)

शङ्का—यदि धर्माधर्म समानमात्रामें होनेपर मनुष्य-तनकी प्राप्ति होती है तो सभी मानवोंको समानमात्रामें ही सुख-दुःख प्राप्त होना चाहिये।

समाधान—धर्म-अधर्म समानमात्रामें होनेपर भी उनके परिमाणमें विषमता होनेके कारण सुख-दुःख समानमात्रामें नहीं प्राप्त होते। तात्पर्य यह है कि जिन जीवोंके अधिक शुभ कर्मोंके फलोद्गमका समय आ गया, उन्हें सुख होगा एवं जिन जीवोंके अधिक अशुभ कर्मोंके फलोद्गमका समय आ गया, उन्हें दुःख अधिक होगा।

शङ्का—किस जीवके किन कर्मोंका परिपाक किस कालमें शीघ्र या विलम्बसे होता है, इस विषयमें क्या नियम है?

समाधान—इस शङ्काका सम्यक् समाधान सर्वज्ञ भगवान्के अतिरिक्त और कोई भी नहीं कर सकता, क्योंकि कर्मोंकी गति अति गहन है—'**गहना कर्मणो गतिः**' (गीता ४।१७)। तथापि सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि अति उत्कृष्ट शुभ-अशुभ कर्मोंका शीघ्र परिपाक होता है तथा अन्य कर्मोंका उनकी तारतम्यतानुसार मन्द, मध्यम गतिसे विलम्बमें परिपाक होता है। जो शुभ-अशुभ कर्म प्रयागादि पवित्र तीर्थोंमें, पूर्णिमा आदि पुण्यकालोंमें, श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ भगवद्भक्त आदि दिव्य गुणोंसे युक्त ब्राह्मणके प्रति किये जाते हैं, वे कर्म उत्कृष्ट होते हैं। अतः लोक-परलोकमें अपने कल्याणकी कामना रखनेवालोंको सदा-सर्वदा सत्कर्मोंकी ओर प्रवृत्त होना चाहिये।

शीघ्र चेतो !

जल्दी दौड़ो ! इस मायाके धधकते हुए दावानलसे शीघ्र बाहर निकलो। देखो, अग्निकी प्रलयङ्करी लाल-लाल लपटें लपक-लपककर जगत्को धड़ाधड़ ग्रस रही हैं। प्रचण्ड धूएँ-से सभी दिशाएँ छा गयी हैं, वह गया,—दूसरा भी चला—अरे तीसरेको भी ले लिया ! परंतु हाय ! तुम मूर्खकी तरह 'किंकर्तव्यविमूढ' 'होकर पड़े हो, तुम्हारा भी क्रम शीघ्र आ रहा है ! यदि बचना चाहते हो तो तुरंत सबका मोह छोड़कर बाहर निकल पड़ो। देखो ! वह देखो ! उस छलकते हुए अमृतसमुद्रके किनारे विशाल जहाज ठहराये सबका हितैषी अकारण करुणामय वह परमपिता परमेश्वर जहाजचालकके रूपमें बार-बार सीटी बजा-बजाकर सबको बुला रहा है—पुकार रहा है। जिसने उसकी पुकार सुनकर उसकी ओर ध्यान दिया, वह विश्वव्यापी अग्निसे बचकर दुःखसागरसे तुरंत तर गया। इसी तरह तुम भी तर जाओगे ! अरे, निर्भय हो जाओगे—अमर हो जाओगे ! जाओ, जाओ ! शीघ्रता करो, अन्यथा जलते हो, बार-बार जलोगे। अतएव चेतो ! शीघ्र चेतो !!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवत्प्रेम-चिन्तामणि

(डॉ॰ श्रीशुकरत्नजी उपाध्याय)

[गताङ्क पृ॰-सं॰ ५५८ से आगे]

जगत्‌में जितने पथोंके निर्माण हुए हैं, वे सभी कामनाओंके पथ हैं और कामनाओंसे भरा हुआ चित्त जीवनकी अतुल गहराईके द्वार नहीं खोल सकता। परम रसको पानेके लिये हमें उसे प्रभु-भक्तिकी अनन्त लहरोंसे भरना होगा। उससे हृदयके लबालब भर जानेपर कामनाओंके कलुष अपने-आप धुल जाते हैं—

शुध्यति हि नान्तरात्मा कृष्णपदाम्भोजभक्तिमृते।
वसनमिव क्षारोदैर्भक्त्या प्रक्षाल्यते चेतः॥

(प्रबोधसुधाकर, १६७)

प्रेम और समर्पण ही जीवनके दो ऐसे तथ्य हैं, जिनके परस्पर मिलनसे आणविक विस्फोटसे कहीं अधिक शक्तिशाली विस्फोट होता है। इसके कारण मानव-मनका पूर्णरूपेण रूपान्तरण हो जाता है और प्रेम-ज्योतिका प्रकाश चारों ओर फैल जाता है तथा जीवन सच्चे अर्थसे ओत-प्रोत और सार्थक मालूम पड़ने लगता है। भगवत्प्रेम अमृतका ऐसा निर्मल निर्झर है, जिसकी एक बूँदसे ही मनुष्य-मनमें जन्म-जमान्तरसे संचित हलाहल घातक विष क्षणभरमें लुप्त हो जाता है। यह विष है घृणा तथा विद्वेष। इस विषके असंख्य रूप हैं। संसारके जितने भी द्वन्द्व हैं, विग्रह हैं, कलह हैं, वे इसी विषसे उद्भूत होते हैं। मनुष्यके निरन्तर जलते हुए जीवनकी परस्पर टकराती जटिल समस्याओंका समाधान अन्ततः प्रेममें है। जिसके प्रकट होते ही परस्परमें निश्चल सरल भाव, सहानुभूति एवं सहयोगकी दैवी सुगन्ध फूट पड़ती है। मनुष्यकी मनुष्यता इस निःस्वार्थ एवं अनन्तकी ओर उन्मुक्त निर्मल प्रेमके सहारे ही जीवित रह सकती है। इसीलिये राम-राज्यमें सब लोग इसी प्रेमके रेशमी सूत्रसे आपसमें जुड़े हुए थे—

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥

मनुष्यके मनमें ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिद्वन्द्विता और हिंसाके रूपमें प्रकट होनेवाले संघर्ष ही अनेक प्रकारके मनोवैज्ञानिक आघातोंके आधार हैं। जब मन संघर्षसे मुक्त होकर प्रेमसे भर जाता है, तब जीवनमें सम्पूर्णता प्रतिबिम्बित होने लगती है। ज्ञान और बोध-शक्तिकी सर्वोच्च श्रेणियाँ भी इसी प्रेमके समुद्रमें विलीन हो जाती हैं। प्रेमका शास्त्र अनोखा है, इसमें परम मधुर विवशता है।

प्रेम सृष्टिकी प्रकृतिको ही बदल देता है। जिसके कारण ईश्वर भी अपना ऐश्वर्य भूलकर पराधीन बन जाता है, किंतु जो 'मैं' की खूँटीसे बँधा है, उसकी यह गाँठ नहीं खुलती। 'मैं' की चट्टानके चूर-चूर होकर टूट जानेपर ही प्रेमके झरने बहते हैं, तभी हृदय-सम्पदाकी गठरी खुल पड़ती है, तभी हृदयमें चुभनेवाले गहरे काँटे फूल बनकर खिल उठते हैं, तभी जीवन-वीणाके मधुर संगीत बज उठते हैं और तभी प्रेम अनन्तगुना होकर साधकके ऊपर बरस पड़ता है। जो किन्हीं मानसिक आघातोंके कारण निराश हो चुके हैं, वासनाओंकी जंजीरोंने जिनके पैरोंको बाँध लिया है, अर्थ और कामकी धधकती ज्वालासे जिनके हृदय जल चुके हैं, वे भी इस प्रभु-भक्तिकी गङ्गामें नहाकर नया जीवन पा सकते हैं।

प्रेमाविष्ट भक्तकी उत्कण्ठा इतनी प्रबल होती है कि उसे उस दशामें बन्धु-बान्धवगण जलरहित अंधे कुएँकी तरह, घर काँटोंसे घिरे जंगलकी भाँति, आहार प्रहारके सदृश, प्रशंसा सर्प-दंशनके तुल्य, शरीर एक असहनीय बोझके समान और प्राण भुने हुए धानकी तरह निष्फल लगने लगते हैं। यहाँतक कि श्रीकृष्णविस्मरण उसे ऐसा लगने लगता है कि जैसे वह उसके प्राणोंको छेदकर उनके टुकड़े-टुकड़े कर देनेवाला शूल हो। ऐसी तीव्र उत्कण्ठाकी दशामें उसका प्रेम चुम्बकका रूप धारण कर लेता है, जो श्रीकृष्णका आकर्षण कर किसी भी समय उनका दर्शन करा देता है। इसीलिये प्रेमकी अद्भुत शक्तिको 'कृष्णाकर्षिणी' कहा गया है।

प्रेमके ढाई अक्षरोंमें भक्तिका सारा शास्त्र समा जाता है। अद्भुत है यह प्रेम, जब हो जाता है तब रोका नहीं जा सकता और जब नहीं होता, तब किया नहीं जा सकता। कोई आज्ञा दे कि प्रेम करो, तो क्या आज्ञा-पालनके लिये बलपूर्वक किसीसे प्रेम किया जा सकता है? प्रेम एक ऐसा अनूठा शब्द है, एक ऐसा द्वार है, जिसके एक ओर संसार है तो दूसरी ओर चिर आनन्द और जीवनकी चरम सार्थकता लिये हुए प्रेमास्पद प्राणेश्वर प्रभु हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम पानेका अर्थ है, उसकी स्मृति रोम-रोममें गूँजने लगे, उसका ही स्वाद प्राणोंके कोनों-कोनोंमें फैल जाय। प्रेमके विराट् आकाशमें हम उड़ने लग जायँ। उस शाश्वत, सनातनका स्पर्श पाते ही क्षणभङ्गुरता अपने-आप छूट जाती है। जिसने उस प्रभुको पा लिया, उसने सब कुछ पा लिया। उसपर आनन्दके मेघ बरस उठेंगे। उसका स्मरण भी हो जाय तो सब कुछ मिल गया। जो उसतक नहीं पहुँच सका, उसका कुछ भी पा जानेपर कोई भी अर्थ नहीं है। एक दिन उसकी आँखें आँसुओंसे भरी होंगी। प्रतिदिन मनपर संतापके काँटे फैलते चले जायँगे और पैरोंमें दुःख तथा पीड़ाके बड़े-बड़े पत्थर बँधे हुए प्रतीत होंगे।

प्रेम जीवन, जगत् और धर्मका सार है। जहाँ भी प्रेमका अभाव होने लगता है, वहीं सब कुछ निष्प्राण होता चला जाता है। हम जीवनके प्रत्येक कदमपर इसकी सत्यताको परख सकते हैं। मनुष्यके जीवनमें प्रेमकी माँग तो बहुत है, किंतु प्रेमकी वर्षा कभी होती प्रतीत नहीं होती। जब अहंकारकी कठोरता टुकड़े-टुकड़े होकर अपनेको बिखरा देती है, तभी भीतरसे एक महान् जीवनका पक्षी प्रेमके पंख फैलाकर उड़ने लगता है। जितना अहंकार होगा, उतना ही प्रेम कम होगा। जब अहंकार नहीं रह जाता, तब चारों ओरसे प्रेमका सागर उमड़ने लगता है। कहते हैं कि यह अहंकार भी उसी सागरमें पूरी तरह डूब जाता है। प्रेमका सार यह है, जब प्रेमास्पदकी प्रसन्नतामें ही हमारी प्रसन्नता समा जाय, जब उसके आनन्दमें ही हमारा कण-कण पुलकित हो उठे। प्रेमका एक हाथ संसारसे जुड़ा है और दूसरा हाथ परमात्मासे। वह दोनोंको जोड़नेवाला सुकुमार सेतु है। सांसारिक प्रेम भी एक आकर्षण और प्रीतिकर सौन्दर्यके आवरणसे अपनेको ढँके रहता है। जब प्रेम बीजके रूपमें है, तब कामना, संसार और जगत्के अनन्त बन्धन हैं। वही जब प्रभुसे जुड़कर और पूर्ण विकसित होकर फूल बनकर खिलने लगता है, तब भक्तिकी सुगन्ध चारों ओर जीवनकी कृतकृत्यताकी घोषणा करने लगती है। प्रेमके केवल सांसारिक अनुभवसे पीड़ा मिटती नहीं, अपितु और गहन होती चली जाती है।

जब दो शरीर मिलते हैं, तब उससे जो रस पैदा होता है, उसका नाम काम है। जब दो मन मिलकर रस-स्रोत बहाने लगते हैं, तब उसका नाम सांसारिक प्रेम है, जहाँ मन अनेक प्रकारसे मीठे जाल फैला देता है। जब दो आत्माएँ मिलती हैं तथा अमृत और आनन्दका अक्षय सागर उमड़ने लगता है, तब उसका नाम भक्ति है। ऐसा प्रभु-प्रेम ही भाव-पुष्पका परिपक्व फल है। इस फलके आते ही साधकमें आमूल परिवर्तन हो जाता है। इसकी शक्ति उसकी सारी चित्तवृत्तियोंको, जो हजारों भागोंमें विभक्त होकर ममता-रज्जुके द्वारा देह-गेहादिमें बँधी रहती हैं, चारों ओरसे समेटकर दिव्यता प्रदान करती हुई श्रीभगवान्के नाम-रूप-गुण-लीलादिसे बाँध देती है। यह फल उस महासूर्यके समान है, जिसके उदित होते ही समस्त वासनाएँ और निखिल पुरुषार्थरूपी नक्षत्रमण्डली लुप्तप्राय हो जाती है।

पका फल अपने-आप गिर जाता है और कच्चा फल तोड़ना पड़ता है। काम-वासनामें मिलन-सुखकी अपेक्षा दूर हट जानेकी पीड़ा अति गहन है, इसलिये उसमें सदा ही विषाद, अतृप्ति और पश्चात्ताप है। काम बाँधता है, प्रेम मुक्त करता है। यदि तुम्हारे प्रेमने तुम्हें बाँधा हो तो समझना कि वह काम होगा, प्रेम नहीं। काम केवल अपने सुखकी ही खोज करता है। वह 'मैं' को पकड़े हुए है और 'मैं' ही सारे दुःखोंका निचोड़ है, वही तो काँटोंकी तरह चुभता है और पीड़ाके हजारों जाल फैला देता है। भक्तकी तो पहली शर्त है कि 'तू' है, 'मैं' नहीं हूँ। जिस समय हम प्रेमास्पदके सुखकी खोज करने लगें, जब परमात्माका सुख ही हमारा सुख बन जाय, वह जिसमें सुखी हो, वही मेरा सुख हो जाय, उसी क्षण भक्तिसे आनन्दकी वर्षा होने लगती है। भक्तिका बस एक ही मुख्य सूत्र है—अपनेको समर्पित कर दो। प्रेमास्पदके चरणोंमें अपनेको पूरी तरह फेंक दो। प्रेम ही यहाँ मार्ग है और प्रेम ही यहाँ मंजिल है।

जब प्रेम-पक्षीके गलेमें वासना, कामना, अहंकार आदिके पत्थर बाँध दिये जाते हैं, तब वह कारागृह बन जाता है। कोई भी माँग पंखोंपर बोझ बन जाती है और वही जब निर्मल, निर्दोष, स्वच्छ दर्पण-जैसा हो, शुद्ध ज्योतिर्मय सूर्यकी किरणों-जैसा चमकता हुआ हो तो अनन्तकी यात्रापर निकल जाता है, प्रियतम प्रभुका प्रतिबिम्ब उसमें स्पष्ट दिखायी देने लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म-जन्मान्तरसे विषय-वासनाओंके अन्धकारमें भटकते हुए चित्तको प्रभुकृपाकी एक छोटी-सी किरण मिल जाय तो जीवन धन्य बन जाता है तथा दुःख, पीड़ाएँ, तृष्णा, आकाङ्क्षाएँ सब समाप्त हो जाती हैं, क्योंकि वे अनन्त इच्छाएँ इस एक ही महायाचनाके खण्ड हैं। यह एक ही माँग अनन्त खण्डोंमें बँटी हुई है। इसके पूरा हो जानेपर सब कुछ पूर हो जाता है। बाहरकी घटनाओंसे अनुत्तेजित और अनुद्विग्न होकर उसकी चेतनाकी ज्योति निरन्तर प्रकाश फैलाती रहती है।

वासनामें कभी किसीने विश्राम नहीं पाया, वहाँ कभी किसीको विराम नहीं मिला। श्याम या राम वहाँ नहीं हैं। जैसे वृक्ष जब फूलोंसे लद जाता है, तब झुक जाता है, ऐसे ही जब कोई प्रेमसे लदा हो और झुका हो, तभी उससे मधुर रस-स्रोत बहता है। भक्तके लिये तो यह सारा विश्व उसके प्रियके आकर्षणसे ही भरा हुआ है। यह कोयलकी कुहू-कुहू, ये वर्षाके बादल, यह रिमझिम, नाचते हुए मोर, बहते हुए झरने—अनेक रूपोंमें उस प्रियका ही आगमन है। चारों ओरकी घटनाएँ उसीकी पैरोंमें बँधे हुए घुँघुरुओंकी आवाज है। यह संसार उसीका प्रकट रूप है, यह उसी चित्रकारका चित्र है, ये सभी रंग उसीके हाथने फैलाये हैं। वेद कहते हैं कि यह अजर, अमर काव्य उसीका है—**'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति।'**

साधन, भाव और प्रेम—ये भक्ति-शास्त्रकी तीन मणियाँ हैं, जिनसे भक्तिके परम आनन्दकी, महाजीवनकी ज्योति अपना प्रकाश फैलाती है। भाव ही सघन होकर प्रेम बन जाता है। भाव-भक्ति जब चित्तको अतिशय स्निग्ध—आर्द्र या कोमल करती हुई अतिशय ममत्व-बुद्धि उत्पन्न करती है और प्रथमावस्थाकी अपेक्षा परमानन्दोत्कर्षको प्राप्त करती है, तब उसे भक्ति-तत्त्वज्ञ-जन 'प्रेमा-भक्ति' कहते हैं—

सम्यङ्मसृणितः स्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥

(हरि० भ० र० ४।१।१)

अनर्थकी निवृत्ति होनेपर विशुद्ध निर्मल चित्तमें निष्ठा, रुचि तथा आसक्तिके अनन्तर 'भाव' का उदय होता है। वही गाढ़ताको प्राप्त होनेपर प्रेम कहलाता है। उस समय हृदय नवनीतके समान अत्यन्त कोमल हो जाता है तथा 'ये मेरे, मेरे ही हैं।' इस प्रकारकी अत्यन्त ममता उत्पन्न हो जाती है। ध्वंसके लाख कारण उपस्थित होनेपर भी यह प्रीति अखण्डित रहती है। प्रेम-भक्ति कहीं भी, किसीके भी हृदयमें क्यों न उदय हो, प्रभु श्रीकृष्ण उसके सौरभसे आकृष्ट होकर वहाँ पहुँच जाते हैं।

रुचि, स्नेह, आसक्ति अथवा व्यसन—ये प्रेमकी विभिन्न अवस्थाएँ हैं। इसी प्रकार स्नेह, मान, प्रणय, राग-अनुराग, भाव-महाभाव—प्रेमके ये विभिन्न गहन विकास भगवान्‌के नित्य पार्षदोंमें देखे जाते हैं।

जीवकी स्वाभाविक गति विषयमुखी है। उसे भजनोन्मुखी करनेके लिये किसी प्रबल शक्तिकी उसी प्रकार आवश्यकता होती है, जैसे पटरीपर चलती हुई रेलगाड़ी एक ही दिशामें चलती चली जाती है, पर उसे दूसरी दिशामें मोड़नेके लिये उस स्टेशनतक ले जानेकी आवश्यकता होती है, जिसपर इंजनका मुख मोड़नेकी व्यवस्था रहती है। जीवकी विषयाभिमुखी गतिको भजनोन्मुखी करनेके लिये प्रभु-प्रेमसे अभिषिक्त सच्चे साधुओंके सङ्गकी आवश्यकता होती है। ऐसे साधुओंका सङ्ग ही वह प्रबल शक्ति है, जिसके प्रभावसे बहिर्मुख जीवकी गतिको प्रेम-शास्त्रनिर्दिष्ट साधन-पथकी ओर मोड़ा जा सकता है।

लोग पश्चिमी सभ्यताकी अव्यवस्थित प्रगतिसे घबरा रहे हैं; क्योंकि उसका अब कोई नैतिक आधार नहीं रहा। उसकी आविष्कार और खोजसम्बन्धी प्रतिभा अपने ही सर्वनाशकी दिशामें चल पड़ी है। आधुनिक सभ्यताके पाखण्ड और अपराध आश्चर्यजनक हैं। परम प्रभु श्रीकृष्णके प्रेमके प्रकाशसे ही इस क्रूर अँधेरेपर विजय पायी जा सकती है। मनुष्य-मनके लिये यह महान् सौभाग्यकी बात होगी कि वह दैवी प्रेमके सर्वोच्च शिखरपर पहुँच जाय। उस स्थितिमें सृष्टिके सारे वृक्ष, सारे पुष्प, सारे नक्षत्र और तारे भी अपूर्व सौन्दर्यसे भर उठेंगे। तब प्रेमकी यह अडिग, अकम्प, निर्धूम ज्योति-शिखा सम्पूर्ण जीवनको रूपान्तरित कर देगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्धव-संदेश—२९

(डॉ॰ श्रीमहानामव्रतजी ब्रह्मचारी, एम्॰ए॰, पी-एच्॰डी॰, डी॰लिट्॰)

श्रीमान् उद्धवको व्रज भेजनेके पश्चात् श्रीकृष्ण परम उत्कण्ठामें ही अपना कालयापन कर रहे हैं। दिन गिनते-गिनते पक्ष, पक्ष गिनते-गिनते मास, मास गिनते-गिनते पूरे दस मास व्यतीत हो गये—'**धृततृष्णतया वासरपक्षमासान् क्रमगणनया गणयन्।**' आज धैर्यका बाँध टूट गया। इसीलिये वे अत्युन्नत अट्टालिकाके ऊपरवाले शिखरकी छतपर जा खड़े हुए हैं। व्रजके पथपर जितनी दूर दृष्टि पहुँचती है, उसे देखनेकी अदम्य लालसा जो हृदयमें हिलोरें ले रही है—'**व्रजविलोकनया मनोरथपालिकामत्युन्नतचन्द्रशालिकां विन्दमानः।**'

अकस्मात् दीख पड़ा, उद्धवजी आ रहे हैं। उद्धवजीको देखकर श्रीकृष्णको लगा मानो गोकुल ही उद्धव-मूर्ति धारण करके चला आ रहा है—'**गोकुलं साक्षादयमिति।**' भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजीकी अगवानीके लिये द्रुतगतिसे अट्टालिकासे नीचे उतरकर दूरतक दौड़ते हुए अग्रसर हुए। उद्धवजीके पास पहुँचते ही उन्हें गाढ़ आलिङ्गनमें बाँध लिया। उसीसे मानो उन्हें गोकुलके दर्शन और स्पर्शका सुख मिल गया। एक बारके आलिङ्गनसे जब मनकी साध नहीं मिटी तो शत-शत प्रगाढ़ आलिङ्गनोंके द्वारा मानो उद्धवजीके शरीरको आच्छादित ही कर दिया—'**मुहुरालिङ्गनादिभिरादृत्य।**' फिर उनका हाथ पकड़कर एक निभृत कक्षमें ले गये—'**निभृतस्थानमानिनाय।**'

जन-समूहके समक्ष उद्धवजीसे व्रजका संवाद नहीं पूछा जा सकता। उद्धवजीके मथुरा पहुँचते ही वहाँके प्रायः सभी विशिष्ट व्यक्ति उनके दर्शन-हेतु आ पहुँचे थे। उनके साथ कथावार्ताका कोई सुयोग दिये बिना ही श्रीकृष्ण उद्धवजीको अपने कक्षमें खींच ले गये। सभी समझ गये कि एकान्त कक्षमें रहस्यालाप होगा।

श्रीकृष्णने उद्धवजीके वदनमण्डलपर उभरे स्वेदबिन्दुओंको अपने पीत वसनद्वारा पोंछा और अपने हाथोंमें पंखा लेकर उन्हें हवा करने लगे। इससे उद्धवजीका पथश्रम मिट गया। कोई भी बात जिज्ञासा करनेसे पूर्व श्रीकृष्ण उद्धवजीके मुखकी ओर एकटक ताकते रहे, मुखपर प्रसन्नताके चिह्न दिखायी पड़े। उस प्रसन्नताके दर्शनमात्रसे चित्तकी अधिकतर उत्कण्ठा एवं उद्वेग तो वैसे ही शमित हो गया—'**मुखप्रसादं दृष्ट्वा।**' अब कुशलवार्ताकी जिज्ञासा करने लगे।

प्रथम सामान्यतः सभीके कुशलकी जिज्ञासा की। फिर पिता नन्दरायकी, श्रीदामादि बन्धुगणोंकी, रक्त-पत्रकादि अनुगत जनोंकी एवं धेनुसमूहोंकी तो कुशलकी जिज्ञासा की, किंतु माँ यशोदाके विषयमें प्रश्न करनेमें समर्थ नहीं हो सके—'**प्रसूप्रश्ने नासीत् पटुः।**' ऐसा न कर पानेका हेतु था नेत्रसम्भूत जल—'**दृगम्भःसमुदयः।**' भले ही नयनोंमें जलधारा रहे, उससे बात पूछनेमें क्या बाधा थी? बाधा है। वह जलराशि गोविन्दके कण्ठविवरको कुण्ठित करती हुई उद्गत होने लगी—'**कण्ठविवरं मुहुः कुण्ठं कुर्वन्नुदयति।**' उद्धवजी और श्रीगोविन्द, दोनों ही निःशब्द होकर परस्पर मुँह निहारने लगे। दोनों ही व्रजप्रेममें विभोर हैं। एकके अन्तरमें दीर्घ विरहवेदना भरी पड़ी है, उसीसे भाषा पराहत है। जितनी बातें हैं, दृष्टि-विनिमयमें ही पर्याप्त हैं।

जब उच्छ्वास किंचित् उपशम हुआ तो उद्धवजी बोले—

अर्धं भवत्प्रभावेण मया तत्र समाहितम्।
भवत्प्रयाणपर्यन्तमर्धं पर्यवसीयते॥

(उत्तरगोपालचम्पूः १२।१११)

व्रजमें जाकर मैंने वहाँके विरहक्लिष्ट प्रियजनोंकी आधी वेदनाका तो समाधान कर दिया है, अब आपके गमनपर्यन्त अर्ध समाहित हो जायगा अर्थात् आपके व्रज जानेसे जैसा होता मैं उसका आधा ही कर पाया हूँ। अब इस विषयमें जो शीघ्र कर्तव्य हो, वह आप ही निश्चय करेंगे। ऐसा कहते-कहते उद्धवजी श्रीकृष्णके समक्ष व्रजसे लाये हुए उपायनसमूह—नवनीत, मोदक, अलंकार, वनफल, मुक्ताहार, गुंजामाला प्रभृति एक-एक करके रखने लगे। किसने क्या भेजा है, यह तो विशेष-विशेष चिह्नद्वारा ही वह समझ गये थे।

मातृप्रदत्त एक वस्तु जो कुछ दूर पड़ी थी, श्रीकृष्णने हस्तप्रस्तारणपूर्वक दिखायी, किंतु यह कहनेका साहस नहीं बटोर सके कि 'इसे सम्भवतः माँ यशोदाजीने भेजा है।' क्यों? अपने नेत्रोंमें जमा जलराशि कहीं बरस न पड़े, इस भयसे—'**वाष्पाम्बुपाताद्भीतस्तत्तद्विदूरार्पितनयनतया वस्तु**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्तद् ददर्श।' नेत्रजलक्षरणसे भीत होकर दूरसे ही टकटकी लगाकर मातृदत्त द्रव्यका दर्शन करने लगे। मुँहसे कोई शब्द नहीं निकला।

श्रीउद्धवने व्रजकी कहानी श्रीकृष्णके समक्ष एक ही दिनमें सब नहीं सुना दी, बहुत सारे दिनोंमें थोड़ी-थोड़ी करके कही थी—**'अहोभिर्बहुभिरेव व्याहरिष्यते।'** एक दिन बोले—'व्रजवासियोंमें जैसे प्रेम और प्रेमचेष्टाका दर्शन मिला, वैसा अन्यत्र कहीं किसी भक्तमें हो ऐसा मैं नहीं जानता, न किसीके मुखसे ऐसा सुना भी है।' बस, इतना सुनते ही श्रीकृष्णका मुखमण्डल अनुरागरञ्जित हो गया। अवस्था देखकर उद्धवजी वहीं मौन हो गये।

एक अन्य दिन सभामें किसी बातके प्रसंगमें उद्धवजी हठात् बोल पड़े—गोकुलके नन्दबाबाके अनुरागमय भावके आवर्तको आपके अतिरिक्त दूसरा कौन समझ सकता है? आते समय वे बोले थे—'तुम्हारे ईश्वर श्रीकृष्णमें मेरे मन, काय और वाणीकी समस्त वृत्तियाँ अक्षुण्ण लगी रहें।' आपकी माँ श्रीयशोदाजी वात्सल्यस्नेहसे गद्गदकण्ठ होकर रथके पार्श्वमें चित्रलिखित-सी खड़ी-खड़ी वर्षाऋतुकी झड़ीकी तरह अश्रुवर्षण करने लगीं और एक शब्द भी उनके मुखसे नहीं निकल सका। इस बातके श्रवणमात्रसे श्रीकृष्ण अधीर होकर सभाके मध्यमें ही उच्च स्वरसे क्रन्दन कर उठे।

और एक दिन श्रीउद्धवजीने निर्जन स्थान देखकर व्रजाङ्गनाओंके दिव्योन्माद एवं चित्रजल्पका किंचित् आभासमात्र प्रकाश किया—

भ्रमति भवनगर्भे निर्निमित्तं हसन्ती
प्रथयति तव वार्तां चेतनाचेतनेषु।
लुठति च भुवि राधा कम्पिताङ्गी मुरारे
विषमविरहखेदोद्गारिविभ्रान्तचित्ता॥

(उज्ज्वलनीलमणिः)

सुनो मुरारे! आपकी राधाकी अवस्था! आपके विषम विरह-हेतु उनकी ऐसी स्थिति हो गयी है कि वे घूर्णितचित्त हो गयी हैं। कभी गृहके भीतर ही इधर-उधर भटकने लगती हैं, कभी अन्धकारमें ही अकारण खिलखिलाकर हँसने लगती हैं; तो कभी चेतन-अचेतन-वस्तुभावसे आपके सम्बन्धमें जिज्ञासा करने लगती हैं और कभी-कभी तो भीषणरूपसे काँपते-काँपते धूलमें गडागडी देने लगती हैं—**'अट्टहासपटलं निर्माति।'** कभी-कभी चमककर स्वरभेदयुक्त घर्घर महाध्वनि करती हुई रोदन करने लगती हैं—**'घर्घरघनोद्घोषम्।'** कभी फिर स्वेदवारिसे पूर्णतः सिक्त हो जाती हैं—**'घर्माम्बुभाक्।'**

उपर्युक्त बातें श्रीकृष्णके कर्णगत होते ही वे 'हा राधे! हा चित्तभ्रमरकी चूतमञ्जरि!' कहते-कहते बाह्यज्ञानशून्य हो गये। फिर बहुत देरके पश्चात् अर्धबाह्यदशा-लाभ करके भी 'हा भानुनन्दिनि!' कहते हुए उन्होंने अनेक विनिद्र रजनियाँ अतिवाहित की थीं।

नन्दनन्दन अपने हृदयमें कितना अनुराग, कितना गम्भीर प्रेम, कितनी निविड विरहवेदना छिपाये हुए मथुरामें निवास कर रहे हैं, उसका किंचित् आभासमात्र पाकर उद्धवजी विस्मयाविष्ट हो गये। श्रीकृष्णके लिये व्रजकी तड़पन और व्रजके लिये श्रीकृष्णकी तड़पन—इन दोनोंका अनुभव प्राप्त कर उद्धवजी मिलन-विरहमय एक अनिर्वचनीय रसके समुद्रमें गोते खाने लगे। आइये, हम भी उस रस-समुद्रमें डुबकी लगा लें।

कैसा अपूर्व दृश्य है। सभी विरहकातर हैं, किंतु कोई किसीसे अदृश्य या पृथक् नहीं है। व्रजजन अपने मानस-नयनोंसे श्रीकृष्णका दर्शन कर रहे हैं और श्रीकृष्ण वैसे ही व्रजजनोंका दर्शन कर रहे हैं।

'तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।'

(गीता ६।३०)

मानो, ये सब गीताके उपर्युक्त मन्त्रके साकार विग्रह हैं। गीताकी वाणी श्रीमद्भागवतमें ही प्राणवान् हुई है। तभी श्रीश्रीबन्धुसुन्दरने लिखा है—

भक्तिशास्त्र भागवत सार करो अविरत रे।
अनासक्ति शुद्धा भक्ति भाव सुनिर्मल रे॥

(समाप्त)

(अनु०—श्रीचतुर्भुजजी तोषणीवाल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचरितमानसमें परमानन्द-दर्शन

(श्रीओमप्रकाशजी अग्रवाल, एम्० ए० (हिन्दी, अंग्रेजी), एल्० टी०, साहित्यरत्न)

यद्यपि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके दार्शनिक विचारोंका और उनकी काव्यकलाका भरपूर विवेचन हुआ है, काव्य-सौष्ठव, भाव-भेद, रस-अलंकार-छन्द, संगीत, माधुर्य, शब्द-चयन एवं भाव-भाषाके साथ ब्रह्म-जीव-माया, निर्गुण-सगुण, लोकहित तथा ज्ञान-भक्तिकी भी विशद व्याख्या हुई है तथापि इन सबमें व्याप्त इन सबसे श्रेष्ठ उनमें एक ऐसी कलाके दर्शन होते हैं, जिसने 'रामचरितमानस'में रामके रूप-शील-सौन्दर्यके माध्यमसे आनन्द-ही-आनन्दका संचार किया है। कलाकी चरम सीमामें आनन्द परमानन्दकी अभिव्यक्ति करता है। जीवनमें कलाओंका विशेषकर ललित कलाओंका समावेश सौन्दर्य-सृजन-हेतु हुआ है। सौन्दर्य आनन्दका स्रोत है। अतएव मानवने अनेक रूपोंमें कलाओंका विकास किया है। काव्य, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला आदि आनन्दके अपरिमित स्रोत हैं।

श्रीगोस्वामीजीने रामके रूप-शील-वर्णनद्वारा एक ऐसे विलक्षण सौन्दर्यकी सृष्टि की है, जो मूर्त होते हुए भी अमूर्त, दैहिक होते हुए भी आध्यात्मिक और लौकिक होते हुए भी पारलौकिक है। वह भौतिक रूपमें भी परम सुन्दर है और आध्यात्मिक रूपमें भी उन्होंने रामके व्यक्तित्व और कृतित्वमें कलात्मक चेतनाकी वह भाव-भूमि प्रस्तुत की है, जिसमें चराचर, जड-चेतन सभी आनन्दविभोर हो उठते हैं—

चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल॥

गोस्वामीजीने रामचरितमानसमें काव्य, संगीत आदि कलाओंके द्वारा भगवान् श्रीरामके रूप-लावण्यमें इसी परमानन्दका दर्शन कराया है। भगवान् राम 'दाशरथि' होते हुए भी अगुन, अखण्ड, अनन्त, अनादि, व्यापक, परमानन्द साक्षात् सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं—

राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर पुर बासी॥

ब्रह्म और राममें कोई अन्तर नहीं है। वे राम भी कौन? कौसल्याके पुत्र—

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥

वे ही राम मानव-देह धारण करके संसारका मङ्गल करनेके लिये संसारमें अवतरित हुए हैं—

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥

अतः ऐसे रूप-शील-गुण-धाम श्रीराम सहज ही सच्चे सौन्दर्यके प्रतीक हैं, जो वर्णनातीत हैं—

प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला॥

× × ×

रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा।

और जनकपुरकी नारियोंकी असमर्थताको श्रीतुलसीदासजी—विशेष उक्तिके साथ व्यक्त करते हैं—

स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

भगवान् श्रीरामके सौन्दर्य-दर्शनमें उनकी तन-मन-आत्मा-बुद्धि सब विभोर हैं। नेत्र जो उनके सौन्दर्यको देख रहे हैं, बोल नहीं सकते। जिह्वा, जो बोल सकती है, देख नहीं सकती। फिर 'कोटिकाम छबि' वाले श्यामल सौन्दर्यको किस प्रकार पूर्ण अभिव्यक्ति मिल सकती है। वह तो केवल अन्तरात्माकी अनुभूतिका विषय है।

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥

विकारोंसे रहित निर्मल आत्मा ही उनके परम सौन्दर्यकी अनुभूति कर दिव्य-रसका रसास्वादन कर सकता है। गोस्वामीजीके शब्दोंमें महर्षि वाल्मीकि स्वयं श्रीरामके लिये उपयुक्त निवास-स्थानके निदेशनमें भगवान् श्रीरामसे कहते हैं—

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया॥

विकार दूर हो जानेपर तो वह परमानन्द अनायास ही प्राप्त हो जाता है—

नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा॥

रामका जन्म एक अलौकिक घटना है। उनके आगमनके संकेतमात्रसे ही सम्पूर्ण लोक आनन्दमें निमग्न हो जाते हैं—

जा दिन तें हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख संपति छाए॥

और राम-जन्मपर तो मानो सुख-आनन्दका पारावार ही सर्वत्र प्रवाहित हो उठता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर बृंद ॥

देवोंके हर्षका अन्त नहीं। सब-के-सब अयोध्याकी ओर दौड़ पड़े। माताओंके हर्षकी सीमा नहीं। अद्भुत रूपके आनन्दका रस ही निराला होता है—

हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी ॥

और दशरथजी तो मानो ब्रह्मानन्दमें ही लीन हो गये—

दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना ॥

रामके मनोहर रूपसे दिग्-दिगन्तमें लोकोत्तर आनन्दका संचार हुआ है। पाठकोंका मन इसी दिव्य आनन्दका रसपान करते हुए मानसकी कथामें रमता चला जाता है। श्रीतुलसीदासजी पदे-पदे श्रीरामके व्यक्तित्वमें, लीलाओंमें, पराक्रममें और उनकी सौम्यतामें इसी अभिनव आनन्द-रसको परिपूर्ण करते चलते हैं और शनैः-शनैः उसे परमानन्दकी भाव-भूमिमें पहुँचा देते हैं। उनकी काव्य-कलाकी यही विशेषता है। श्रीरामका अनुपम सौन्दर्य देखिये—

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा ॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती ॥

जनकपुरमें भ्रमण करनेके लिये जब श्रीराम निकले तो वहाँका वातावरण ही बदल गया। आनन्द और उत्साहकी सीमा ही न रही। युवतियाँ आश्चर्यचकित होकर उनके मनोहर रूपको निहारती ही रह गयीं—

हियँ हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद।
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ तहँ तहँ परमानंद ॥

राजीवलोचन रामके दर्शन आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक तीनों प्रकारके कष्टोंका निवारण करनेवाला है। उनके रूपकी ज्योत्स्नामें सांसारिक संताप विनष्ट हो जाते हैं—

सुभग सोन सरसीरुह लोचन। बदन मयंक तापत्रय मोचन ॥

वन-गमनके समय गाँव-गाँव, नगर-नगर, सम्पूर्ण वातावरणमें राम-ही-राम समा गये हैं। राम-लक्ष्मण और जानकीजीका शील-सौन्दर्य ग्रामवासियोंके लिये, ऋषि-मुनियोंके लिये आकर्षणकी वस्तु बन गया है। ग्रामवधुएँ उनके परमानन्दी रूपका पीयूष अपने नयन-पुटोंसे पीकर तृप्त नहीं होतीं—

गाँव-गाँव अस होइ अनंदू। देखि भानुकुल कैरव चंदू ॥

× × ×

राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी ॥
पिअत नयन पुट रूपु पियूषा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा ॥

और इसकी चिरन्तनता इससे प्रकट होती है कि जो भी उनके दर्शन करते हैं, वे भवका अगम मार्ग अनायास ही आनन्दपूर्वक तय कर लेते हैं—

जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ।
भव मगु अगमु अनंदु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ ॥

उनके चरणोंके स्पर्शसे स्वयं भूमि भी अपने भाग्यकी सराहना करती है—

परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा ॥

चित्रकूटमें रामके वाससे एक नया आनन्द छा गया है। पशु-पक्षी क्या तृण-लता-द्रुमतक सब आनन्दविभोर हो गये हैं और अपनेको धन्य मानते हैं—

चित्रकूट के बिहग मृग बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्य पुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिन राति ॥

परशुराम, वाल्मीकि, अत्रि मुनि, सुतीक्ष्ण, जटायु आदि अपनी-अपनी स्तुतियोंमें श्रीरामके रूप-लावण्य, शील-सौन्दर्य, बल-पौरुष, मान-मर्यादाकी अमित प्रशंसा करते हैं और करते हैं आनन्दका प्रसार। राम '**कृपालु शील कोमलं**' होते हुए भी भक्तवत्सल, धर्मधुरन्धर और धीर-वीर हैं—

धरम धुरीन धीर नय नागर। सत्य सनेह सील सुख सागर ॥

ऐसे महान् शील-सौन्दर्यके प्रतीक राम अत्यन्त सरल-चित्त हैं। केवल सहज स्वाभाविक प्रेमसे ही द्रवित हो जाते हैं—

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा ॥

न केवल राम, उनके दर्शन और उनका नयनाभिराम रूप ही उस परमानन्दके अजस्र स्रोत हैं, वरन् उनका नाम, उनकी कथा, उनका चरित्र सब उस आनन्दके अनन्त सागर हैं—

बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। राम कथा कलि कलुष बिभंजनि ॥

× × ×

एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा ॥

× × ×

रामचरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता-तत्त्व-चिन्तन

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गीताका योग

योगशब्दस्य गीतायामर्थस्तु त्रिविधो मतः।
सामर्थ्ये चैव सम्बन्धे समाधौ हरिणा स्वयम्॥

'योग' नाम मिलनेका है। जो दो सजातीय तत्त्व मिल जाते हैं, तब उसका नाम 'योग' हो जाता है। आयुर्वेदमें दो ओषधियोंके परस्पर मिलनेको 'योग' कहा है। व्याकरणमें शब्दोंकी संधिको 'योग' (प्रयोग) कहा है। पातञ्जलयोग-दर्शनमें चित्तवृत्तियोंके निरोधको 'योग' कहा है। इस तरह 'योग' शब्दके अनेक अर्थ होते हैं, पर गीताका 'योग' विलक्षण है।

गीतामें 'योग' शब्दके बड़े विचित्र-विचित्र अर्थ हैं। उनके हम तीन विभाग कर सकते हैं—

(१) **'युजिर् योगे'** धातुसे बना 'योग' शब्द, जिसका अर्थ है—समरूप परमात्माके साथ नित्य सम्बन्ध; जैसे—**'समत्वं योग उच्यते'** (२।४८) आदि। यही अर्थ गीतामें मुख्यतासे आया है।

(२) **'युज् समाधौ'** धातुसे बना 'योग' शब्द, जिसका अर्थ है—चित्तकी स्थिरता अर्थात् समाधिमें स्थिति; जैसे—**'यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया'** (६।२०) आदि।

(३) **'युज् संयमने'** धातुसे बना 'योग' शब्द, जिसका अर्थ है—सामर्थ्य, प्रभाव; जैसे—**'पश्य मे योगमैश्वरम्'** (९।५) आदि।

पातञ्जलयोगदर्शनमें चित्तवृत्तियोंके निरोधको 'योग' नामसे कहा गया है—**'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** (१।१२) और उस योगका परिणाम बताया है—द्रष्टाकी स्वरूपमें स्थिति हो जाना—**'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् वृत्तिसारूप्यमितरत्र।'** (१।३-४)। इस प्रकार पातञ्जलयोगदर्शनमें योगका जो परिणाम बताया गया है, उसीको गीतामें 'योग'के नामसे कहा गया है (२।४८; ६।२३)। तात्पर्य है कि गीता चित्तवृत्तियोंसे सर्वथा सम्बन्धविच्छेदपूर्वक स्वतःसिद्ध सम-स्वरूपमें स्वाभाविक स्थितिको 'योग' कहती है। उस समतामें स्थित (नित्ययोग) होनेपर फिर कभी उससे वियोग नहीं होता, कभी वृत्तिरूपता नहीं होती, कभी व्युत्थान नहीं होता। वृत्तियोंका निरोध होनेपर तो 'निर्विकल्प अवस्था' होती है, पर समतामें स्थित होनेपर 'निर्विकल्प बोध' होता है। 'निर्विकल्प बोध' अवस्थातीत और सम्पूर्ण अवस्थाओंका प्रकाशक तथा सम्पूर्ण योगोंका फल है।

जीवका परमात्माके साथ सम्बन्ध (योग) नित्य है, जिसका कभी किसी भी अवस्थामें, किसी भी परिस्थितिमें वियोग नहीं होता। कारण कि परमात्माका ही अंश होनेसे इस जीवका परमात्माके साथ सम्बन्ध नित्य-निरन्तर ज्यों-का-त्यों ही रहता है। शरीर-संसारके साथ संयोग होनेसे अर्थात् सम्बन्ध मान लेनेसे उस सम्बन्ध-(नित्ययोग-)का अनुभव नहीं होता। शरीर-संसारके साथ माने हुए संयोगका वियोग (विमुखता, सम्बन्ध-विच्छेद) होते ही उस नित्ययोगका अनुभव हो जाता है—**'तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्'** (६।२३) अर्थात् दुःखोंके साथ संयोगका वियोग हो जानेका नाम 'योग' है *। तात्पर्य है कि भूलसे शरीर-संसारके साथ माने हुए संयोगका वियोग हो जाने और समरूप परमात्माके साथ सम्बन्धका उद्देश्य हो जाने, उसका अनुभव हो जानेका नाम 'योग' है। यह योग सब समयमें है, सब देशमें है, सब वस्तुओंमें है, सम्पूर्ण शरीरोंमें है, सम्पूर्ण घटनाओंमें है, सम्पूर्ण क्रियाओंमें है और तो क्या कहें, इस नित्ययोगका वियोग है ही नहीं, कभी हुआ नहीं, होगा नहीं और हो सकता ही नहीं। यही गीताका मुख्य योग है। इसी योगकी प्राप्तिके लिये गीताने कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, अष्टाङ्गयोग, प्राणायाम, हठयोग आदि साधनोंका वर्णन किया है। पर इन साधनोंको योग तभी कहा जायगा, जब असत्से सम्बन्ध-विच्छेद और परमात्माके साथ नित्य-सम्बन्धका अनुभव होगा।

इस नित्ययोगका अनुभव होनेमें असत्का सङ्ग ही बाधक है। कारण कि असत्के सङ्गसे ही राग-द्वेष,

* गीतामें 'योगः कर्मसु कौशलम्' (२।५०)—ऐसा वाक्य भी आया है, पर यह वाक्य योगकी परिभाषा नहीं है, प्रत्युत इसमें योगकी महिमा बतायी गयी है कि कर्मोंमें योग ही कुशलता है। कर्मोंमें योगके सिवाय और कोई महत्त्व नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुकूलता-प्रतिकूलता, अच्छा-मन्दा आदि द्वन्द्व पैदा होते हैं। असत्से असङ्ग होते ही, असत्का सम्बन्ध-विच्छेद होते ही योगकी प्राप्ति हो जाती है।

योगकी प्राप्तिके लिये भगवान्ने मुख्यरूपसे दो निष्ठाएँ बतायी हैं—कर्मयोग और सांख्ययोग (३।३)। असत्से सम्बन्ध-विच्छेद करना कर्मयोग है और सत्के साथ योग होना सांख्ययोग है; परंतु ये दोनों ही निष्ठाएँ साधकोंकी अपनी हैं। भक्तियोग साधककी अपनी निष्ठा नहीं है, प्रत्युत भगवन्निष्ठा है *। भक्त केवल भगवान्के सम्मुख हो जाता है तो उसपर सांसारिक सिद्धि-असिद्धिका कोई असर नहीं पड़ता। उसमें समता स्वतः आ जाती है।

तीनों योगोंसे कर्मों-(पापों-)का नाश

कर्मज्ञानभक्तियोगाः† सर्वेऽपि कर्मनाशकाः।
तस्मात् केनापि युक्तः स्यान्निष्कर्मा मनुजो भवेत्॥

गीतामें भगवान्ने कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनों ही योगोंसे सर्वथा कर्मों-(पापों-)का नाश होनेकी बात कही है; जैसे—

(१) कर्मयोग—जो साधक केवल यज्ञ- (कर्तव्य-कर्म-)की परम्परा सुरक्षित रखनेके लिये, लोक-संग्रहके लिये, सृष्टि-चक्रकी परम्परा चलानेके लिये ही कर्तव्य-कर्मका पालन करता है अर्थात् कर्मोंको केवल दूसरोंके लिये ही करता है, अपने लिये नहीं, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है (३।१३)।

(२) ज्ञानयोग—देखने, सुनने और समझनेमें जो कुछ दृश्य आता है, वह सब अदृश्यतामें परिवर्तित हो रहा है। इन्द्रियों और अन्तःकरणके जितने विषय हैं, वे सब-के-सब पहले नहीं थे और फिर आगे नहीं रहेंगे तथा अभी वर्तमानमें भी प्रतिक्षण 'नहीं' में भरती हो रहे हैं। परंतु विषय तथा उसके अभावको जाननेवाला तत्त्व सदा ज्यों-का-त्यों ही रहता है। उस तत्त्वका कभी अभाव हुआ नहीं, होता नहीं, होगा नहीं और हो सकता भी नहीं। उसी तत्त्वसे मैं-मेरा, तू-तेरा, यह-इसका और वह-उसका—ये चारों प्रकाशित होते हैं। वह तत्त्व (प्रकाश) इन सबमें ज्यों-का-त्यों परिपूर्ण है। जैसे प्रज्वलित अग्नि काठको भस्म कर देती है, ऐसे ही ज्ञानरूपी अग्नि सब कर्मोंको, पापोंको भस्म कर देती है (४।३७)। तात्पर्य है कि उस ज्ञानरूपी अग्निमें मैं-मेरा, तू-तेरा, यह-इसका और वह-उसका—ये सभी लीन हो जाते हैं।

(३) भक्तियोग—जो संसारसे विमुख होकर केवल भगवान्की ही शरण हो जाता है, उसको भगवान् सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर देते हैं। भगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि तू सम्पूर्ण धर्मोंका आश्रय छोड़कर एक मेरी शरण हो जा, मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू चिन्ता मत कर (१८।६६)।

तीनों योगोंसे निर्वाण-पदकी प्राप्ति

कर्मज्ञानभक्तियोगैर्निर्वाणब्रह्म गम्यते।
उक्तमेतल्लक्ष्यसाम्यं साधकानां तु गीतया॥

सब साधकोंका प्रापणीय तत्त्व एक ही है। केवल साधकोंकी श्रद्धा, विश्वास, योग्यता, स्वभाव, रुचि आदि भिन्न-भिन्न होनेसे उनकी उपासनाओंमें, साधन-पद्धतियोंमें भिन्नता होती है। जैसे मनुष्योंमें भाषाभेद, वेशभेद, सम्प्रदायभेद आदि कई तरहके भेद होते हैं, पर सुख-दुःखका अनुभव सबको समान ही होता है। अर्थात् अनुकूलताके आनेपर सुखी होनेमें और प्रतिकूलताके आनेपर दुःखी होनेमें सब समान ही होते हैं, ऐसे ही संसारसे विमुख होकर परमात्माके सम्मुख होनेके साधन अलग-अलग हैं, पर परमात्माकी प्राप्तिमें सब एक हो जाते हैं अर्थात् परमात्मा, सुख-शान्ति सबको एक समान ही प्राप्त होते हैं।

---

* गीतामें जहाँ कर्मयोग और सांख्ययोग—ये दो ही निष्ठाएँ मानी गयी हैं, वहाँ भक्तियोगको स्वतन्त्र न मानकर उपर्युक्त दोनों निष्ठाओंके अन्तर्गत ही माना गया है। अतः वहाँ सांख्ययोगके दो भेद हो जाते हैं—विचारप्रधान सांख्ययोग (१३।१९-३४) और भक्तिमिश्रित सांख्ययोग (१३।१-१८)। इसी तरह कर्मयोगके भी तीन भेद हो जाते हैं—कर्मप्रधान कर्मयोग (१८।४-१२), भक्तिमिश्रित कर्मयोग (१८।४१-४८) और भक्तिप्रधान कर्मयोग (१८।५६-६६)। परंतु जहाँ भक्तियोगको दो निष्ठाओंके अन्तर्गत न मानकर स्वतन्त्र माना जाता है, वहाँ सांख्ययोग और कर्मयोग—ये दोनों निष्ठाएँ साधकोंकी अपनी हैं और भक्तियोग भगवन्निष्ठा है। फिर तीनों योग स्वतन्त्र माने जाते हैं, उनमें किसीका मिश्रण नहीं रहता।

† (यहाँ इस श्लोकमें) 'र-विपुला' का प्रयोग हुआ है। इस प्रकारके प्रयोगको 'पिङ्गलच्छन्दःसूत्रम्' ग्रन्थके अनुसार 'पथ्यावक्त्र' नामक छन्दके अन्तर्गत ही माना गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌ने गीतामें कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—इन तीनों योगोंसे निर्वाण-पदकी प्राप्ति बतायी है; जैसे—

(१) **कर्मयोग**—जो मनुष्य कामना, स्पृहा, ममता, अहंतासे रहित होता है, उसको शान्तिकी प्राप्ति होती है, यह ब्राह्मी स्थिति कहलाती है। इस ब्राह्मी स्थितिमें यदि कोई अन्तकालमें भी स्थित हो जाय तो भी उसे निर्वाण ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है (२।७१-७२)।

(२) **ज्ञानयोग**—जिसका बाह्य पदार्थोंका सम्बन्धजन्य सुख मिट गया है, जिसको केवल परमात्मतत्त्वमें ही सुख मिलता है, जो परमात्मतत्त्वमें ही रमण करता है, ऐसा ब्रह्मभूत साधक निर्वाण ब्रह्मको प्राप्त होता है। जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं, जिनकी द्विविधा मिट गयी है और जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत हैं, वे निर्वाण ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। जो काम-क्रोधसे रहित हो चुके हैं, जिनका मन अपने अधीन है और जो तत्त्वको जान गये हैं—ऐसे साधकोंको जीते-जी और मरनेके बाद निर्वाण ब्रह्म प्राप्त है (५।२४-२६)।

(३) **भक्तियोग**—शान्त अन्तःकरणवाला, भयरहित और ब्रह्मचारिव्रतमें स्थित साधक मनका संयमन करके चित्तको मुझमें लगाकर मेरे परायण हो जाय तो उसको मेरेमें रहनेवाली निर्वाणपरमा शान्ति प्राप्त हो जाती है (६।१४-१५)।

तीनों योगोंकी एकता

वस्तुतस्तु त्रयो योगा अभिन्नास्ते परस्परम्।
साधकानां रुचेर्भेदात् त्रिविधा योगसंज्ञिताः॥

गीतामें तीनों योगोंमें तीनों योगोंकी बात आयी है; जैसे—

(१) **कर्मयोग**—इसमें **'युक्त आसीत मत्परः'** (२।६१), **'मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा'** (३।३०), **'ब्रह्मण्याधाय कर्माणि'** (५।१०)—यह भक्तियोगकी बात आयी है। **'सर्वभूतात्मभूतात्मा'** (५।७)—यह ज्ञानयोगकी बात आयी है; क्योंकि ज्ञानयोगमें परमात्मतत्त्वके साथ अभिन्नताकी बात मुख्य रहती है।

(२) **ज्ञानयोग**—इसमें **'सर्वभूतहिते रताः'** (५।२५; १२।४)—यह कर्मयोगकी बात आयी है; क्योंकि सब प्राणियोंके हितमें रति कर्मयोगकी मुख्य बात है। **'मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी'** (१३।१०), **'मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते'** (१४।२६)—यह भक्तियोगकी बात आयी है; क्योंकि भक्तियोगमें भगवान्‌की अनन्यता मुख्य है।

(३) **भक्तियोग**—इसमें **'सर्वकर्मफलत्यागम्'** (१२।११) और **'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य'** (१८।४६)—यह कर्मयोगकी बात आयी है, क्योंकि कर्मयोगमें कर्मफलका त्याग और अपने कर्मोंके द्वारा जनता-जनार्दनका पूजन (सेवा) करना मुख्य होता है। **'अध्यात्मनित्याः'** (१५।५)—यह ज्ञानयोगकी बात आयी है; क्योंकि ज्ञानयोगमें चिन्मय तत्त्वमें स्थित रहना मुख्य है। **'ते ब्रह्म तद्विदुः'** (७।२९)—यह भी ज्ञानयोगकी बात है; क्योंकि ज्ञानयोगमें जानना मुख्य रहता है।

इस प्रकार तीनों योगोंका तीनों योगोंमें आनेका तात्पर्य है कि कोई भी व्यक्ति इन तीनों योगोंको परस्पर सर्वथा भिन्न न समझे; क्योंकि ये तीनों योग वास्तवमें भिन्न नहीं हैं, प्रत्युत एक ही हैं। इनमें केवल प्रणालीका भेद है।

एक दृष्टिसे कर्मयोग और भक्तियोग पासमें पड़ते हैं; क्योंकि कर्मयोगी सब कुछ (पदार्थ और क्रिया) संसारको देना चाहता है और भक्तियोगी सब कुछ भगवान्‌को देना चाहता है (९।२६-२७)।

एक दृष्टिसे कर्मयोग और ज्ञानयोग पासमें पड़ते हैं; क्योंकि कर्मयोगी पदार्थ और क्रियाकी आसक्ति छोड़कर संसारसे अलग होता है (६।४) और ज्ञानयोगी पदार्थ और क्रियाको प्रकृतिमात्र समझकर और अपनेमें असङ्गताका अनुभव करके संसारसे अलग होता है। तात्पर्य है कि कर्मयोगी 'क्रिया'के द्वारा संसारसे अलग होता है और ज्ञानयोगी 'विचार'के द्वारा संसारसे अलग होता है।

एक दृष्टिसे भक्तियोग और ज्ञानयोग पासमें पड़ते हैं; क्योंकि भक्तियोगी सब कुछ भगवान्‌से पैदा हुआ मानता है (७।१२; १०।५, ६, ८, ३९) और सब कुछ भगवान्‌में मानता है (६।३०; ७।७; ८।२२) तथा ज्ञानयोगी सब कुछ प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ मानता है (१४।१९; १८।४०) और सब कुछ प्रकृतिमें मानता है (१३।३०)।

तीनों योगोंमें कर्मोंका हेतु बननेका निषेध

हेतोः कथनतात्पर्यं सम्बन्धः स्यान्न कुत्रचित्।
तस्मान्निमित्तमात्रं वै भवेयुः साधकाः सदा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतामें भगवान्‌ने कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—इन तीनों योगोंमें हेतुओंका वर्णन किया है। जैसे—

(१) कर्मयोग—जब मनुष्य कर्मफलके साथ, कर्म करनेके करणोंके साथ, कर्म करनेकी सामग्रीके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ता है, तब वह कर्मका हेतु बन जाता है। ऐसे तो संसारमें बहुत-से कर्म होते रहते हैं, पर उन कर्मोंके हम हेतु नहीं बनते और उन कर्मोंका फल हमें नहीं मिलता; क्योंकि उन कर्मोंके साथ हमने सम्बन्ध नहीं जोड़ा। कर्मोंका फल तो उन्हींको मिलता है, जो कर्मफलके साथ सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। अतः कर्मयोगके प्रकरणमें भगवान् अर्जुनको मनुष्यमात्रका प्रतिनिधि बनाकर कहते हैं कि 'तुम कर्मफलके हेतु मत बनो'—'**मा कर्मफलहेतुर्भूः**' (२।४७) अर्थात् अपने कर्तव्यका पालन तो तत्परतासे करो, पर कर्म, कर्मफल, करण आदिके साथ अपना सम्बन्ध मत जोड़ो। तात्पर्य है कि कर्मयोगी साधक कर्म, कर्मफल, शरीर आदि करणोंके साथ अपना सम्बन्ध नहीं मानता, इसलिये वह कर्मोंका हेतु नहीं बनता।

(२) ज्ञानयोग—प्रकृतिके राज्यमें, संसारमें, शरीरमें जितनी भी क्रियाएँ होती हैं, सांख्ययोगी उन सबको प्रकृतिमें, गुणोंमें और इन्द्रियोंमें होनेवाली ही मानता है, अपनेमें होनेवाली नहीं। भगवान् कहते हैं कि प्रकृतिके द्वारा ही सब कर्म किये जाते हैं—ऐसा जो देखता है, वह अपनेमें अकर्तृत्वका अनुभव करता है (१३।२९)। गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं अर्थात् क्रियामात्र गुणोंमें ही हो रही है—ऐसा मानकर तत्त्ववित् पुरुष उसमें आसक्त नहीं होता (३।२८)। देखना, सुनना, स्पर्श करना आदि सभी क्रियाएँ इन्द्रियोंमें ही हो रही हैं, स्वरूपभूत मैं कुछ नहीं करता हूँ—ऐसा वह मानता है (५।८-९)। अतः सांख्ययोगके प्रकरणमें भगवान्‌ने कार्य और करणके द्वारा होनेवाली क्रियाओंको उत्पन्न करनेमें प्रकृतिको हेतु बताया है—'**कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते**' (१३।२०)। सम्पूर्ण कर्मोंके होनेमें शरीर, कर्ता, करण, चेष्टा और संस्कार—ये पाँच हेतु बताये गये हैं (१८।१४)।

तेरहवें अध्यायमें बीसवें श्लोकके उत्तरार्धमें जो सुख-दुःखके भोक्तापनमें पुरुषको हेतु बताया है, वहाँ भी वास्तवमें सुखी-दुःखी होनेमात्रमें पुरुष हेतु है, भोक्तापनमें हेतु नहीं; क्योंकि भोग भी क्रियाजन्य ही होता है। अतः क्रियाजन्य भोगमें भी प्रकृति ही हेतु है। जो अपनेको प्रकृतिमें स्थित मानता है, वही पुरुष सुखी-दुःखी होता है (१३।२१); परंतु जो तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त होते हैं, वे सुखी-दुःखी नहीं होते। तात्पर्य है कि सांख्ययोगी साधक सम्पूर्ण क्रियाओंको प्रकृतिमें ही मानता है, अतः वह न कर्म करता है और न कर्म करवाता है (५।१३) अर्थात् वह किसी भी कर्म, कर्मफल आदिका हेतु नहीं बनता।

(३) भक्तियोग—जब भक्त भगवान्‌के सर्वथा समर्पित हो जाता है, अपने-आपको भगवान्‌को दे देता है, तो फिर करना-करवाना सब भगवान्‌के द्वारा ही होता है। भक्त तो केवल निमित्तमात्र बनता है। अतः भक्तियोगके प्रकरणमें भगवान्‌ने अपने प्रिय भक्त अर्जुनसे कहा कि यहाँ सेनामें जितने भी योद्धालोग खड़े हैं, वे सब मेरेद्वारा पहलेसे ही मारे हुए हैं। इनके मारनेमें तू निमित्तमात्र बन जा—'**निमित्तमात्रं भव**' (११।३३)।

—इस प्रकार तीनों योगोंमें तीन हेतु देनेका तात्पर्य है कि तीनों ही योगोंके साधक कर्मोंको करनेमें अपनेको हेतु नहीं बनाते, प्रत्युत निमित्तमात्र ही रहते हैं। हाँ, लोगोंको वे हेतु बनते हुए दीख सकते हैं, पर वास्तवमें वे हेतु नहीं बनते।

'बाहरी पवित्रताकी अपेक्षा हृदयकी पवित्रता मनुष्यके चरित्रको उज्ज्वल बनानेमें बहुत अधिक सहायक होती है। मनुष्यको काम, क्रोध, हिंसा, वैर, दम्भ आदिके दुर्गन्धभरे कूड़ेको बाहर फेंककर हृदयको सदा साफ रखना चाहिये।'

'बाहरसे निर्दोष कहलानेका प्रयत्न न कर मनसे निर्दोष बनना चाहिये। मनसे निर्दोष मनुष्यको दुनिया दोषी बतलावे तो भी कोई हानि नहीं, परंतु मनमें दोष रखकर बाहरसे निर्दोष कहलाना हानिकारक है।'

'निर्दोष सत्कार्यको किसी भय, संकोच या अल्पमतके कारण कभी छोड़ना नहीं चाहिये, कार्यकी निर्दोषता, उसकी उपकारिता और तुम्हारी श्रद्धा, नेकनीयत तथा टेकके प्रभावसे आज नहीं तो कुछ समय बाद लोग उस कार्यको अवश्य अच्छा समझेंगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

प्रिय भाई !

अध्यात्म-जगत्में पैर रखते ही—यह जो कुछ है—अर्थात् मन तथा इन्द्रियोंके द्वारा जो जाना जाता है, वह उसका है, यह आस्तिक पुरुषकी प्रथम अवस्था है। इस भावके दृढ़ होनेसे मन सच्चिदानन्दघन शुद्धबोधस्वरूप परम तत्त्वमें स्वाभाविक ही स्थिर हो जाता है और मनके स्थिर होते ही, यह जो कुछ है, उसका ही स्वरूप है, ऐसा भाव होता है; क्योंकि मनका यह स्वभाव है कि यह जिससे सम्बन्ध करता है, उसका ही स्वरूप हो जाता है; क्योंकि मन वास्तवमें स्वतः सत्तावाला तत्त्व नहीं है। यह तो अज्ञानके कारण आत्मामें अनात्म-वस्तुकी जो कल्पना है, बस यही मनका स्वरूप है। और यह नियम है कि कल्पित वस्तु अधिष्ठानसे भिन्न कुछ नहीं होती और कल्पित वस्तुमें जो सत्यता प्रतीत होती है, वह वास्तवमें अधिष्ठानकी होती है, वस्तुकी कुछ नहीं। यह सब उसका ही स्वरूप है, ऐसा दृढ़ बोध होना दूसरी अवस्था है। और जो अन्तिम अवस्था है, वह वाणीके द्वारा कही नहीं जा सकती, किंतु संकेतमात्र यह कह सकते हैं कि यह जो कुछ था, वह वास्तवमें किसी कालमें हुआ ही नहीं, ऐसा अनुभव ज्ञानी पुरुषोंका कथन है।

देखो भाई ! बन्धन तथा सुख-दुःख किसी वस्तुके सम्बन्धसे नहीं होता, किंतु कर्ताके अविवेक-दृष्टिके कारण प्रत्येक वस्तु दुःख और बन्धनका कारण बन जाती है और वही वस्तु विवेक-दृष्टिसे आनन्दका हेतु प्रतीत होती है। परंतु इस बातका अच्छी तरह ध्यान रहे कि वस्तुमें स्वयं सत्यता कुछ नहीं है, उसमें दृष्टि रखनेवाले द्रष्टाकी सत्यतासे सत्यता होती है। इसलिये द्रष्टाको अपनी दृष्टि अपनेमें लीन करनेसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है, अतः यह सब कुछ ही मुँह-दिखावेके लिये उसकी भेंट करना होगा। आनन्द।

प्रिय आत्मस्वरूप ! (२)

अपनेसे भिन्न किसी भी वस्तुको सुखका साधन समझना परम भूल है; क्योंकि इसी भूलके होनेपर किसी-न-किसी प्रकारकी वासना तथा मलिन अहंकार अर्थात् (मैं शरीर हूँ) इस भावकी उत्पत्ति होती है, जो सर्वदुःखोंका मूल है।

शरीर-भाव और संसार दोनों बीज और वृक्षके समान हैं। शरीर-भावरूपी बीजके होनेपर संसार-रूपी वृक्ष प्रतीतिमात्र उत्पन्न होता है और संसाररूपी वृक्षमें अनन्त शरीरभाव-रूपी बीज दिखायी देते हैं। यह दोनों स्वरूपसे अभेद और प्रतीतिमात्र भेदवाले मालूम होते हैं। वास्तवमें दोनों एक हैं।

देखिये, जो वस्तु उत्पन्न होती है, वही नष्ट होती है। जो वस्तु नष्ट होती है, वह अपनी निजी सत्ता कुछ नहीं रखती। प्रत्युत जिससे उत्पन्न होती है, उसकी ही सत्तासे सत्तावाली होती है। उत्पन्न होनेके कारण अन्त होनेपर उस वस्तुका जो उत्पन्न हुई है, सदाके लिये अन्त हो जाता है। ऐसा विचार-दृष्टिसे देखनेमें आता है।

संसाररूपी वृक्ष शरीरभावरूपी बीजसे प्रतीतिमात्र उत्पन्न होता है। स्वरूपसे नहीं; क्योंकि जो वस्तु स्वरूपसे होती है, उसका किसी कालमें अन्त नहीं होता। परंतु संसारका अन्त देखनेमें आता है। इसलिये सिद्ध हुआ कि संसार स्वरूपसे कोई वस्तु नहीं, केवल प्रतीतिमात्र है, जिस प्रकार दर्पणमें मुख न होते हुए भी प्रतीत होता है। शरीर-भावरूपी बीज तथा संसाररूपी वृक्ष उससे ही उत्पन्न होता है, जो तत्त्ववेत्ताओंका निज स्वरूप तथा भक्तोंका भगवान् है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। अतएव सारा विश्व आपका निज स्वरूप ही सिद्ध हुआ। इसलिये विश्वमें अपनेको और अपनेमें विश्वको अनुभव करो, ऐसा करनेपर जीवनमें किसी प्रकारकी कमी शेष नहीं रहती और ऐसा बिना अनुभव किये पूर्णता कभी प्राप्त नहीं हो सकती।

ऐसा अनुभव करनेके लिये अपनेमें स्थायीभावसे सर्वशक्तिमान् सच्चिदानन्दघन शुद्ध बोधस्वरूप भगवान्की स्थापना करो। अर्थात् 'वह मैं हूँ' ऐसा करनेपर विश्वसे एकता स्वयं अनुभव होगी और हृदय स्वाभाविक विश्वप्रेमसे भर जायगा। मन सदा निजानन्दकी लहरोंमें लहरायेगा। सब ओर अपना आप ही नजर आयेगा। आनन्द, आनन्द, आनन्द।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी—

भगवती सीता तथा द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

धर्मध्वज और कुशध्वज—इन दोनों नरेशोंने कठिन तपस्याद्वारा भगवती लक्ष्मीकी उपासना करके अपने प्रत्येक अभीष्ट मनोरथको प्राप्त कर लिया। महालक्ष्मीके वर-प्रसादसे उन्हें पुनः पृथ्वीपति होनेका सौभाग्य प्राप्त हो गया। वे दोनों धनवान् और पुत्रवान् हो गये। कुशध्वजकी भार्याका नाम मालावती था। समयानुसार उसके एक कन्या उत्पन्न हुई, जो लक्ष्मीका अंश थी। वह भूमिपर पैर रखते ही ज्ञानसे सम्पन्न हो गयी। उस कन्याने जन्म लेते ही सूतिकागृहमें स्पष्ट स्वरसे वेदके मन्त्रोंका उच्चारण किया और उठकर खड़ी हो गयी। इसलिये विद्वान् पुरुष उसे 'वेदवती' कहने लगे। उत्पन्न होते ही उस कन्याने स्नान किया और तपस्या करनेके विचारसे वह वनकी ओर चल दी। भगवान् नारायणके चिन्तनमें तत्पर रहनेवाली उस देवीको प्रायः सभीने रोका, परंतु उसने किसीकी भी न सुनी। वह तपस्विनी कन्या एक मन्वन्तरतक पुष्करक्षेत्रमें तपस्या करती रही। उसका तप अत्यन्त कठिन था, तो भी लीलापूर्वक चलता रहा। अत्यन्त तपोनिष्ठ रहनेपर भी उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट बना रहा। उसमें दुर्बलता नहीं आ सकी। वह नवयौवनसे सम्पन्न बनी रही। एक दिन सहसा उसे स्पष्ट आकाशवाणी सुनायी पड़ी—'सुन्दरि! अगले जन्ममें भगवान् श्रीहरि ही तुम्हारे पति होंगे। ब्रह्मा प्रभृति देवता भी जिनकी उपासना करते हैं, उन्हीं परम प्रभुको स्वामी बनानेका सौभाग्य तुम्हें प्राप्त होगा।'

यह आकाशवाणी सुननेके पश्चात् वह कन्या रुष्ट होकर गन्धमादन पर्वतपर चली गयी और वहाँ पहलेसे भी अधिक कठोर तप करने लगी। वहाँ चिरकालतक तप करके विश्वस्त हो वहीं रहने लगी। एक दिन वहाँ उसे अपने सामने दुर्निवार रावण दिखायी पड़ा। वेदवतीने अतिथि-धर्मके अनुसार पाद्य, परम स्वादिष्ट फल और शीतल जल देकर उसका सत्कार किया। रावण बड़ा पापिष्ठ था। वह वेदवतीके समीप जा बैठा और पूछने लगा—'कल्याणि! तुम कौन हो और क्यों यहाँ ठहरी हुई हो?' वह देवी परम सुन्दरी थी। उस साध्वी कन्याके मुखपर मन्द मुस्कानकी छटा छायी रहती थी। उसे देखकर दुराचारी रावणका हृदय विकारसे संतप्त हो गया। वह वेदवतीको हाथसे खींचकर उसका शृंगार करनेको उद्यत हुआ। रावणकी इस कुचेष्टाको देखकर उस साध्वीका मन क्रोधसे भर गया। उसने रावणको अपने तपोबलसे इस प्रकार स्तम्भित कर दिया कि वह जडवत् होकर हाथों एवं पैरोंसे निश्चेष्ट हो गया। कुछ भी कहने-करनेकी उसमें क्षमता नहीं रह गयी। ऐसी स्थितिमें उसने मन-ही-मन उस कमललोचना देवीका मानस स्तवन किया। देवी वेदवती रावणपर संतुष्ट हो गयी और परलोकमें उसकी स्तुतिका फल देना स्वीकार कर लिया। साथ ही उसे यह शाप दे दिया—'दुरात्मन्! तू मेरे लिये ही अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ कालका ग्रास बनेगा; क्योंकि तूने कामभावसे मुझे स्पर्श कर लिया है, अतः अब मैं इस शरीरको त्याग देती हूँ।'

देवी वेदवतीने इस प्रकार कहकर वहीं योगद्वारा अपने शरीरका त्याग कर दिया। तब रावणने उसका मृत शरीर गङ्गामें डाल दिया और मनमें इस प्रकार चिन्ता करते हुए घरकी ओर प्रयाण किया—'अहो! मैंने यह कैसी अद्भुत घटना देखी। यह मैंने क्या कर डाला?'—इस प्रकार विचार करके अपने कुकृत्य और उस देवीके देहत्यागको स्मरण करके रावण बहुत विषाद करने लगा। वही देवी साध्वी वेदवती दूसरे जन्ममें जनककी कन्या हुई और उसका नाम सीता पड़ा, जिसके कारण रावणको मृत्युका मुख देखना पड़ा था। वेदवती बड़ी तपस्विनी थी। पूर्वजन्मकी तपस्याके प्रभावसे स्वयं भगवान् श्रीराम उसके पति हुए। ये श्रीराम साक्षात् परिपूर्णतम श्रीहरि हैं। देवी वेदवतीने घोर तपस्याके द्वारा आराधना करके इन जगदीश्वरको पतिरूपमें प्राप्त किया था। वह साक्षात् रमा थी। श्रीराम परम गुणी, समस्त सुलक्षणोंसे सम्पन्न, शान्त-स्वभाव, अत्यन्त कमनीय एवं श्रेष्ठतम देवता थे। वेदवतीने ऐसे मनोऽभिलषित स्वामीको प्राप्त किया। कुछ कालके पश्चात् रघुकुलभूषण, सत्यसंध भगवान् श्रीराम पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिये वनमें पधारे। वे सीता और लक्ष्मणके साथ समुद्रके समीप ठहरे थे। वहाँ ब्राह्मणरूपधारी अग्निसे उनकी भेंट हुई। भगवान् श्रीरामको दुःखी देखकर विप्ररूपधारी अग्निका मन संतप्त हो उठा। तब सर्वथा सत्यवादी उन अग्निदेवने सत्यप्रेमी भगवान् श्रीरामसे ये सत्यमय वचन कहे—'भगवन्! मेरी कुछ प्रार्थना सुनिये। श्रीराम! यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीताके हरणका समय उपस्थित है। ये मेरी माँ हैं, इन्हें मेरे संरक्षणमें रखकर आप छायामयी सीताको अपने साथ रखिये, फिर अग्नि-परीक्षाके समय इन्हें मैं आपको लौटा दूँगा। परीक्षा-लीला भी हो जायगी। इसी कार्यके लिये मुझे देवताओंने यहाँ भेजा है। मैं ब्राह्मण नहीं साक्षात् अग्नि हूँ।'

भगवान् श्रीरामने अग्निकी बात सुनकर लक्ष्मणको बताये बिना ही व्यथित-हृदयसे अग्निके प्रस्तावको मान लिया। उन्होंने सीताको अग्निके हाथों सौंप दिया। तब अग्निने योगबलसे मायामयी सीता प्रकट की। उसके रूप और गुण साक्षात् सीताके समान ही थे। अग्निदेवने उसे श्रीरामको दे दिया। मायासीताको साथ ले वे आगे बढ़े। इस गुप्त रहस्यको प्रकट करनेके लिये भगवान् श्रीरामने उसे मना कर दिया। यहाँतक कि लक्ष्मण भी इस रहस्यको नहीं जान सके, फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है? इसी बीच भगवान् श्रीरामने एक सुवर्णमय मृग देखा। सीताने उस मृगको लानेके लिये भगवान् श्रीरामसे अनुरोध किया। भगवान् श्रीराम उस वनमें जानकीकी रक्षाके लिये लक्ष्मणको नियुक्त करके स्वयं मृगको मारनेके लिये चले। उन्होंने बाणसे उसे मार गिराया। मरते समय उस मायामृगके मुखसे 'हा लक्ष्मण!' यह शब्द निकला। फिर सामने श्रीरामको देख उनका स्मरण करते हुए उसने सहसा प्राण त्याग दिये। मृगका शरीर त्यागकर वह दिव्य देहसे सम्पन्न हो गया और रत्ननिर्मित दिव्य विमानपर सवार होकर वैकुण्ठधामको चला गया। यह मारीच पूर्वजन्ममें वैकुण्ठधामके द्वारपर वहाँके द्वारपाल जय और विजयका किंकर था तथा वहीं रहता था। वह बड़ा बलवान् था। उसका नाम था 'जित'। सनकादिकोंके शापसे जय-विजयके साथ वह भी राक्षस-योनिमें आ गया था। उस दिन उसका उद्धार हो गया और वह उन द्वारपालोंके पहले ही वैकुण्ठके द्वारपर पहुँच गया।

तदनन्तर 'हा लक्ष्मण' इस कष्टभरे शब्दको सुनकर सीताने लक्ष्मणको श्रीरामके पास जानेके लिये प्रेरित किया। लक्ष्मणके चले जानेपर रावण सीताका अपहरण कर खेल-ही-खेलमें लङ्काकी ओर चल दिया। उधर लक्ष्मणको वनमें देखकर श्रीराम विषादमें डूब गये। वे उसी क्षण अपने आश्रमपर गये और सीताको वहाँ न देख विलाप करने लगे। पुनः सीताको खोजते हुए वे बारंबार वनमें चक्कर लगाने लगे। कुछ समयके पश्चात् गोदावरी नदीके तटपर उन्हें जटायुद्वारा सीताका समाचार मिला। तब वानरोंको अपना सहायक बनाकर उन्होंने समुद्रमें पुल बाँधा। उसके द्वारा लङ्कामें पहुँचकर उन रघुश्रेष्ठने अपने बाणसे बन्धु-बान्धवोंसहित रावणका वध कर डाला। तत्पश्चात् उन्होंने सीताकी अग्नि-परीक्षा करायी। अग्निदेवने उसी क्षण वास्तविक सीताको भगवान् श्रीरामके सामने उपस्थित कर दिया, तब छायासीताने अत्यन्त नम्र होकर अग्निदेव और भगवान् श्रीराम—दोनोंसे कहा—'महानुभावो! अब मैं क्या करूँगी, सो बतानेकी कृपा कीजिये।'

तब भगवान् श्रीराम और अग्निदेव बोले—'देवि! तुम तप करनेके लिये अत्यन्त पुण्यप्रद पुष्करक्षेत्रमें चली जाओ। वहाँ रहकर तपस्या करना, इसके फलस्वरूप तुम्हें स्वर्गलक्ष्मी बननेका सुअवसर प्राप्त होगा।'

भगवान् श्रीराम और अग्निदेवके वचन सुनकर छाया-सीताने पुष्करक्षेत्रमें जाकर तप आरम्भ कर दिया। उसकी कठिन तपस्या बहुत लम्बे कालतक चलती रही। इसके पश्चात् उसे स्वर्गलक्ष्मी होनेका सौभाग्य प्राप्त हो गया। समयानुसार वही छाया-सीता राजा द्रुपदके यहाँ यज्ञकी वेदीसे प्रकट हुई। इसका नाम 'द्रौपदी' पड़ा और पाँचों पाण्डव उसके पतिदेव हुए। इस प्रकार सत्ययुगमें कुशध्वजकी कन्या वही कल्याणी वेदवती त्रेतायुगमें छायारूपसे सीता बनकर भगवान् श्रीरामकी सहचरी तथा द्वापरयुगमें द्रुपदकुमारी द्रौपदी हुई। अतएव इसे 'त्रिहायणी' कहा गया है।

जब लङ्कामें वास्तविक सीता भगवान् श्रीरामके पास विराजमान हो गयीं, तब रूप और यौवनसे शोभा पानेवाली छायासीताकी चिन्ताका पार न रहा। वह भगवान् श्रीराम और अग्निदेवके आज्ञानुसार भगवान् शंकरकी उपासनामें तत्पर हो गयी। पति प्राप्त करनेके लिये व्यग्र होकर वह बार-बार यही प्रार्थना कर रही थी—'भगवान् त्रिलोचन! मुझे पति प्रदान कीजिये।' यही शब्द उसके मुखसे पाँच बार निकले। भगवान् शंकर छायासीताकी यह प्रार्थना सुनकर बोले—'तुम्हें पाँच पति मिलेंगे।' इस प्रकार त्रेताकी जो छाया-सीता थी, वही द्वापरमें द्रौपदी बनी और पाँचों पाण्डव उसके पति हुए। (ब्रह्मवैवर्त०, प्रकृतिखण्ड अ० १४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजा करते समय आपके विचार क्या हों ?

(डॉ॰ श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰)

पूजाका अभिप्राय है—मानव और ईश्वरकी एकता। उच्च चरित्र और पवित्र जीवनके अभिलाषी भक्तका निम्न कोटिके पाशविक सुख, इन्द्रियजन्य हर्ष और साधारण आनन्दका परित्याग कर आध्यात्मिक स्थितिमें ऊँचा उठना ही उसके द्वारा ईश्वरकी पूजा करना है। वह यह मानकर चलता है कि संसारमें स्थायी सुख-शान्तिका मार्ग गीतामें निर्दिष्ट 'श्रीकृष्णार्पण'का भाव है। भक्तके सब कार्य अपने लिये न होकर भगवान्‌के लिये, समाज और विश्वके हितके लिये होते हैं। उसका दृष्टिकोण पारमार्थिक होता है। वह अपने आस-पासके पीड़ित, गिरे हुए, पिछड़े हुए, अज्ञानी, अशिक्षित, दीनहीन गरीबोंके लिये भी कुछ करना चाहता है। उसका जीवन सेवाभावी होता है। वह समाजके पिछड़े वर्गकी सेवामें ही भगवान्‌की सेवा मानता है। इसलिये पूजा करते समय ईश्वरीय तत्त्वसे मिलनके विचार प्रचुरतासे भक्तके मनमें आने चाहिये। ये शुभ विचार ही उसके जीवनमें पवित्रता और सांसारिक सुखके प्रति वैराग्य लानेवाले हैं। पूजा करते समय कौनसे विचार आप मनमें लायें ? यह सबके लिये अलग-अलग होगा। जिसकी जैसी भावना और शिक्षा होगी, वह वैसे ही विचार मनमें दृढ़ करेगा। बार-बार उन्हें आवृत्त करेगा, प्रत्येक शब्दपर गम्भीर चिन्तन करेगा, मनन करेगा और उन्हें अपने मानसका एक स्थायी अङ्ग बना लेगा। ये शुभ विचार ही उसके नैतिक जीवनका निर्माण करेंगे।

अपनी पूजाके समय अनुवृत्तिके लिये नीचे लिखे शुभ विचारोंको दृढ़तासे मनमें बसायें—उन्हें याद करें, वैसे ही उत्तम कार्य करें—

'मैं परमात्माका प्यारा पुत्र हूँ। मुझे परमपिता परमात्माका समस्त प्रेम, सुरक्षा, शान्ति और शुभ प्रेरणा प्राप्त है। परमात्मा मुझे सद्‌विवेक, सद्‌विचार, सत्-शक्ति प्रदान कर रहे हैं। मैं परमात्मामें स्थिर हूँ और मेरा हृदय-मन्दिर परमात्माका निवास है।

मेरे परमपिता मेरे रक्षक और पथ-प्रदर्शकके रूपमें सदा साथ रहते हैं। मैं उनसे अलग नहीं हूँ, फिर सांसारिक दुःख, चिन्ताएँ और घबराहट मुझे कैसे विचलित कर सकते हैं ? मेरा जीवन मेरी इच्छासे नहीं, वरन् परमात्माकी दिव्य योजनासे संचालित होता है। परमात्मा ही मुझमें दिव्य विचार, पवित्र इच्छा, सेवा-भावना स्फुरित करते हैं। मेरे कार्योंका मूल ईश्वर है। मुझमें स्फुरित भव्य भावनाएँ वास्तवमें परमात्माकी प्रेरणा हैं।

यह शरीर, ये हाथ, ये नेत्र, यह बुद्धि सब कुछ मेरी वस्तुएँ नहीं, वरन् परमात्माकी हैं। मैं आत्मा हूँ। ईश्वरका पवित्र अंश हूँ। मेरी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। मेरा कार्य परमात्माकी प्रेरणासे होता है। मैं स्वयं अपना कोई नहीं हूँ, वरन् परमात्माका हूँ। इसलिये मुझे किसीसे द्वेष, घृणा, ईर्ष्या, क्रोध, शङ्का, चिन्ता, भय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह परमात्माके पुत्रके लिये व्यर्थ है।

इस प्रकार परमात्मनिष्ठ होकर मुझे संतोष और सुख है। समाजकी, परिवारकी, घर-गृहस्थीकी, व्यापारकी अथवा और किसी प्रकारकी भी जिम्मेदारी अब मुझे स्वयंपर नहीं है, वरन् परमात्मापर है, जिनका यह संसार और संसारका प्रत्येक प्राणी है। मुझे जो भी उत्तम धर्म-कार्य करने होते हैं, वे सब परमात्माकी प्रेरणा और आदेशसे ही होते हैं। मैं तो परमात्माका साधन और निमित्तमात्र हूँ। मुझे यह संतोष है कि मेरा जीवन और विचार सब परमात्माके द्वारा प्रेरित हैं। मैं न तो अपने जन्मके साथ कुछ लेकर आया था और न ले जाऊँगा, फिर मुझे किसी संग्रहकी आवश्यकता नहीं है'—यह भावना प्रतिदिन प्रातः उठने और रात्रिमें सोनेसे पूर्व बार-बार मनमें रखें, इससे आपका जीवन ईश्वरमय हो जायगा। पूजा हमें शुभ संकल्प देती है। प्रतिदिन इच्छा बननेकी प्रेरणा देती है, जिससे जीवन उदात्त बनता है। श्रुति भी कहती है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥
(ईशोपनि॰ २)

अर्थात् ईश्वरपूजार्थ इस जगत्‌में मनुष्यको शास्त्र-नियमित कर्म करते हुए सौ वर्षोंतक जीवित रहनेकी इच्छा करनी चाहिये। इस प्रकार आचरित कर्म मनुष्यमें लिप्त नहीं होते। यही कर्माचरण या पूजाका सर्वोत्तम मार्ग है। कर्मबन्धन—संसारसे मुक्तिका दूसरा कोई उपाय नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

आधा सेर दूध

बहुत समय पहलेकी घटना है। कोल्हापुर राज्य और ब्रिटिश राज्यकी बीच सीमापर धुंदकी नामक एक छोटा-सा गाँव है। कुछ कसाई कोल्हापुर राज्यमें गौएँ खरीदकर अंग्रेजी राज्यमें ले जाते हुए इस गाँवके जंगलमें पहुँचे, उनके साथकी गौओंमें कुछ बछियाएँ भी थीं। इन्हें क्या पता, कि हमें जीवनके उस पार उतारा जा रहा है। पर इतना तो वे समझती थीं कि किन्हीं कठोर हाथोंने हमें बाँधा है। इस बन्धनको तुड़ाकर वे निकल भागना चाहती थीं। उनकी पीठपर कसाइयोंके डंडे पड़ रहे थे। फिर भी वे बन्धन तुड़ाकर भागनेका प्रयत्न कर ही रही थीं। उनमेंसे एक किसी तरह वहाँसे निकल भागी और सीधे गाँवके मुखियाके घरमें घुस गयी। कसाईके नौकर उसके पीछे लगे थे, पर वह उनके हाथ न आयी।

कसाइयों और गौओंका यह रंग-ढंग देखकर गाँवके चरवाहोंने बाकी गौओंको भी भगा दिया। तब कसाइयों और चरवाहोंमें बहुत कहा-सुनी हुई। शरणागतको भला हिंदू होकर वे कैसे छोड़ सकते थे? हिंदू-धर्मकी तो यह एक मुख्य बात है—

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥

एक तो शरणागत, दूसरे गोमाता, जिसके लिये पूर्वके लोगोंने अपने प्राणतक न्योछावर किये। ऐसे सुदृढ़ परम्परागत संस्कार जिनके हैं, वे ग्वाले-गड़रिये भला उस गौको कैसे छोड़ देते! बहुत विवाद हुआ, हाँ-नहीं करते-करते बात उस गौकी कीमतपर आयी। कसाई रुपया देनेको तैयार हुए, पर वे ग्वाले किसी भी कीमतपर उसे देनेके लिये तैयार नहीं हुए। आखिर झगड़ेकी नौबत आ गयी। एक तरफ ये तीन-चार कसाई और दूसरी तरफ गाँवके सब लोग! कसाइयोंके मिजाज ठंडे हुए, तब उन्होंने सरकार-दरबारका रास्ता लिया। उन्हें अंग्रेजी हुकूमतका बल था और जिस मुखियाके यहाँ वह गौ स्वयं आ गयी थी, उसे धर्मकी एकताका बल था। अन्तमें मुखिया और गाँवके सब लोग गौको साथ लेकर महाराजके पास गये और उसे महाराजके सामने करके सारा हाल कह सुनाया और बोले—'आप गौ-ब्राह्मण-प्रतिपालक हैं, इसे हमलोग आपके हवाले करते हैं, आप चाहे इसे कसाइयोंके हाथमें दें, अंग्रेज सरकारको दे डालें या गाँववालोंको दे दें। आप ही इसके विधाता हैं।' महाराजने गाँववालोंका कहना सुन-समझ लिया, गौ गाँववालोंको ही सौंप दी और यह आज्ञा की कि 'करवीर (कोल्हापुर) राज्यमें कसाई रोजगार न करें।'

इससे गाँववाले बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने वह गौ गाँवके शिवालयमें श्रीशंकरजीको अर्पण कर दी। तबसे मृत्यु होनेतक वह गौ उसी शिवालयमें थी, कभी किसीके खेतमें नहीं गयी, किसी पशुसे लड़ी नहीं, कभी ऋतुमती भी नहीं हुई, पर जिस दिन श्रीशिवार्पित हुई, उस दिनसे अपने जीवनके अन्तिम दिनतक शिवजीके पञ्चामृतके लिये प्रतिदिन आधा सेर दूध दिया करती थी। यह बड़ी विलक्षण बात थी।

(२)

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः

घटना गत वर्ष १९८८ई० की है। मैं बम्बई-स्थित एक पाठशालामें शिक्षक हूँ। एक बार मैं अपने गाँव गया। एक आवश्यक कामसे मुझे वहाँसे एक-दूसरे गाँव जाना पड़ा। काम हो जानेपर वापस आनेके लिये सड़कपर खड़ा होकर मैं बसकी प्रतीक्षा कर रहा था। तभी मैंने देखा नौ-दस वर्षके दो तीन उद्धत बालक एक निर्बल, अशक्त और हड्डियोंके ढाँचे-से कुत्तेको पत्थर मार-मार कर कष्ट पहुँचा रहे थे। शक्तिहीन कुत्ता कराहता-कराहता निकटकी एक गर्तमें गिर पड़ा।

जैसे इतना कम हो, वे लड़के बड़े-बड़े सशक्त कुत्तोंको ले आये और उस गर्तमें पड़े निःसहाय कुत्तेकी तरफ अँगुली दिखा-दिखाकर उन्हें उत्तेजित करने लगे। वे सशक्त कुत्ते उछल-उछल कर उस कुत्तेकी तरफ बढ़ने लगे। लड़के हँसते जाते थे और तालियाँ पीटते जाते थे।

अब मुझसे देखा नहीं गया। मैंने उन लड़कोंको आवाज देकर अपने पास बुलाया, लेकिन वे भाग गये। मैंने उनके साथके कुत्तोंको भी खदेड़ दिया। वह जख्मी कुत्ता एक वृक्षके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूखे पत्तोंके ढेरमें अपना शरीर छुपाकर पड़ा था। वहाँ जाकर मैंने देखा तो वह मेरी तरफ एकटक देख रहा था।

वह जैसे मानवोंके तिरस्कृत व्यवहारके लिये धिक्कारभरी नजरोंसे मुझे कुछ कह रहा था या फिर मैंने उसे करुणावश यातनासे छुड़ाया था, इस आभारवश वह मेरी तरफ देख रहा था। मैं उसके निकट पहुँचा, तब उसकी आँखमें मैंने भयका प्रतिबिम्ब देखा। अन्तिम····लगभग अन्तिम श्वास लेते हुए उसने अपनेमें शेष रही सारी शक्ति एकत्र की और अशक्त पैरोंसे खड़ा हो, वहाँसे कहीं चले जानेकी सोचने लगा, लेकिन वह उठ नहीं सका। उठनेके साथ ही गिर पड़ा। उसकी स्थिर दृष्टि मेरी तरफ ही लगी थी और वह सचमुच ही हृदयद्रावक थी।

वह जैसे मुझे कह रहा था—'मानव-जातिके प्रति वफादारीका बदला तो देखिये ! वह मुझे सुखसे मरने भी नहीं देते।'

मैं वहाँसे हट नहीं सका और न उसकी तरफसे नजर हटा सका। जैसे उसकी दृष्टि मुझे आपबीती कह रही थी—

'मैं मानवोंका मूक सेवक हूँ। मैंने जीवनभर उसकी सेवा की है। अरे, उसके सुख-दुःखका मैं साथी बना, उसका उच्छिष्ट खाकर मैंने संतोष माना। लेकिन जब मैं वृद्ध हुआ और रोगी बना, तब मुझे निकाल बाहर कर दिया गया। निर्दय लोगोंके हाथका खिलौना बननेके लिये छोड़ दिया गया। अरे, धिक्कार है तुम मानव लोगोंको !'

मैं कुछ भी नहीं बोल सका और कुत्ता—निष्प्राण कुत्ता मुझे बहुत कुछ कह गया हो ऐसा मुझे लगा। मन-ही-मन श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर बसकी प्रतीक्षा किये बिना भारी हृदयसे वहाँसे पैदल ही चल पड़ा। चलते-चलते मेरे मनमें कई विचार उठने लगे। मानवीय गुणोंकी रक्षाके लिये जीव-दयाका कितना महत्त्व है। इसीलिये ऋषि-महर्षियोंने कहा है कि पण्डित या विद्वान् वही है, जो सम्पूर्ण प्राणियोंमें अपनी ही तरह सुख-दुःखकी अनुभूति करता है।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।

(अखण्ड आनन्द)

(३)

मातृभाषाका प्रयोग

कुछ दिनों-पूर्वकी बात है—एक भारतीय शिक्षक यूरोपकी यात्रापर गये थे। वे बलगेरिया पहुँचे। वहाँकी राजधानी 'सोफिया' है। सोफिया नगरके एक विश्वविद्यालयके निमन्त्रणपर वे वहाँ प्रवचन करने गये थे। विश्वविद्यालयके कुलपति उस सभाके प्रमुख आयोजक थे। भारतीय शिक्षक उनसे जाकर मिले। उन्होंने भारतीय शिक्षकसे पूछा—'आप किस भाषामें बोलेंगे ?'

शिक्षकने कहा—'अंग्रेजीमें।'

कुलपतिने आश्चर्यके साथ पूछा—'क्या आपकी मातृभाषा अंग्रेजी है ?

शिक्षकने कहा—'जी नहीं, मेरी मातृभाषा हिन्दी है।'

कुलपतिने पूछा—'तो हिन्दीमें नहीं बोल सकेंगे ?'

शिक्षकने कहा—'बोल सकूँगा।'

कुलपतिका अगला प्रश्न था—'तो फिर अपनी मातृभाषाके बदले अंग्रेजीमें बोलना क्यों चाहते हैं ?'

'मेरी हिन्दी भाषा यहाँ कोई नहीं समझेगा। मेरा ख्याल है अंग्रेजी समझनेवाले यहाँ सभी होंगे। इसीलिये अंग्रेजीमें बोलनेका मैंने निर्णय किया है।' शिक्षकने कहा और फिर अपनी बात स्पष्ट करते हुए वे बोले—'हिन्दीमें बोलनेपर आपकी बलगेरियन भाषामें उसका अनुवाद समझानेवाला यहाँ शायद कोई हो भी नहीं।'

कुलपतिने कहा—'हमारे यहाँ अंग्रेजी जाननेवाले भी नहीं हैं और हिन्दी जाननेवाले भी नहीं हैं। हमारी मातृभाषा बलगेरियन है। हमारे स्कूल-कालेजोंमें यहाँकी मातृभाषामें ही शिक्षा दी जाती है। लेकिन हमें दूसरी भाषाओंके जाननेकी भी जरूरत पड़ती है, इसलिये हमारी सरकारने अन्य भाषाओंके सीखनेकी भी व्यवस्था की है। केवल हिन्दी जाननेवाले ही नहीं, अपितु किसी भी बड़े देशकी भाषा जाननेवाले हमारे विश्वविद्यालयमें हैं।'

यह बात सुनकर शिक्षकने मन-ही-मन लज्जाका अनुभव किया। उन्हें लगा कि जब यूरोपके किसी देशमें अंग्रेजी भाषा विशेष समादृत नहीं होती, तो अपने ही देश भारतवर्षमें इसे इतना महत्त्व क्यों दिया जाता है ? जैसे किसी दूसरेकी माता अपनी माता नहीं हो सकती, वैसे ही दूसरे राष्ट्रकी भाषा भी अपने देशकी मातृभाषा नहीं हो सकती।

(अखण्ड आनन्द)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

अपूर्व आत्मसमर्पण

दक्षिण भारतके एक छोटे-से गाँवकी एक छोटी-सी कोठरीमें रेड़ीके तेलका दीपक जल रहा है। कोठरीका कच्चा आँगन और मिट्टीकी दीवालें गोबरसे लिपी-पुती बड़ी स्वच्छ और सुन्दर दिखायी दे रही हैं। एक कोनेमें कुछ मिट्टी पड़ी है, एक ओर पानीका घड़ा रखा है, दूसरे कोनेमें एक चक्की, मिट्टीके कुछ बरतन और छोटी-सी एक चारपाई पड़ी है। दीपकके समीप कुशके आसनपर एक पण्डितजी बैठे हैं, पास ही मिट्टीकी दावात रखी है और हाथमें कलम लिये वे कुछ लिख रहे हैं। आसपास कुछ पुस्तकें पड़ी हैं, कुछ ही दूरपर पोथियाँ बाँधनेके बेठन पड़े हैं। पण्डितजी बड़ी एकाग्रतासे लिख रहे हैं। बीच-बीचमें पास रखी पोथियोंके पन्ने उलट-पलटकर पढ़ते हैं, फिर पन्ने रखकर आँखें मूँद लेते हैं। कुछ देर गहरा विचार करनेके पश्चात् पुनः आँखें खोलकर लिखने लगते हैं। इतनेमें दीपकका तेल बहुत कम हो जानेके कारण बत्तीपर गुल आ गया और प्रकाश मन्द पड़ गया। इसी बीच एक प्रौढा स्त्रीने आकर दीपकमें तेल भर दिया और वह बत्तीसे गुल झाड़ने लगी। ऐसा करते दीपक बुझ गया। पण्डितजीका हाथ अँधेरेमें रुक गया। स्त्री बत्ती जलाकर तुरंत वहाँसे लौट रही थी कि पण्डितजीकी दृष्टि उधर चली गयी। उन्होंने कौतूहलमें भरकर पूछा—'देवि ! आप कौन हैं ?' 'आप अपना काम कीजिये। दीपक बुझनेसे आपके काममें विघ्न हुआ, इसके लिये क्षमा कीजिये'—स्त्रीने जाते-जाते बड़ी ही नम्रतासे कहा। 'परंतु ठहरो, बताओ तो आप कौन हैं ? और यहाँ क्यों आयी हैं ?' पण्डितजीने बल देकर पूछा। स्त्रीने कहा—'महाराज ! आपके काममें विघ्न पड़ रहा है, इस विक्षेपके लिये मैं बड़ी अपराधिनी हूँ।'

अब तो पण्डितजीने पन्ने नीचे रख दिये, कलम भी रख दी, मानो उन्हें जीवनका कोई नया तत्त्व प्राप्त हुआ हो। वे बड़ी आतुरतासे बोले—'नहीं, नहीं, आप अपना परिचय दीजिये, जबतक परिचय नहीं देंगी, मैं पन्ना हाथमें नहीं लूँगा।' स्त्री सकुचायी, उसके नेत्र नीचे हो गये और बड़ी ही विनयके साथ उसने कहा—'प्राणनाथ ! मैं आपकी परिणीता पत्नी हूँ, मुझे 'आप' कहकर मुझपर पाप न चढ़ाइये।' पण्डितजी आश्चर्यचकित होकर बोले—'हैं, मेरी पत्नी ? विवाह कब हुआ था ?' स्त्रीने कहा—'लगभग पचास साल हुए होंगे, तबसे दासी आपके चरणोंमें ही है।'

पण्डितजी—तुम इतने वर्षोंसे मेरे साथ रहती हो, मुझे आजतक इसका पता कैसे नहीं लगा ?

स्त्री—प्राणनाथ ! आपने विवाहमण्डपमें दाहिने हाथसे मेरा दाहिना हाथ पकड़ा था और आपके बायें हाथमें ये पन्ने थे। विवाह हो गया, पर आप इन पन्नोंमें संलग्न रहे। तबसे आप और आपके ये पन्ने नित्य संगी बने हुए हैं।

पण्डितजी—पचास वर्षका लंबा समय तुमने कैसे बिताया—मैं तुम्हारा पति हूँ, यह बात तो तुमने इससे पहले मुझको क्यों नहीं बतलायी ?

स्त्री—प्राणेश्वर ! आप दिन-रात अपने काममें लगे रहते थे और मैं अपने काममें। मुझे बड़ा सुख मिलता था इसीमें कि आपका कार्य निर्विघ्न चल रहा है। आज दीपक बुझनेसे विघ्न हो गया ! इसीसे यह प्रसङ्ग आ गया।

पण्डितजी—तुम प्रतिदिन क्या करती रहती थी ?

स्त्री—नाथ ! और क्या करती, जहाँतक बनता, स्वामीके कार्यको निर्विघ्न रखनेका प्रयत्न करती। प्रातःकाल आपके जागनेसे पहले उठकर धीरे-धीरे चक्की चलाती। आप उठते तब आपके शौच-स्नानके लिये जल दे देती। तदनन्तर संध्या आदिकी व्यवस्था करती, फिर भोजनका प्रबन्ध होता। रातको पढ़ते-पढ़ते आप सो जाते, तब मैं पोथियाँ बाँधकर ठिकाने रखती और आपके सिरहाने एक तकिया लगा देती एवं आपके चरण दबाते-दबाते वहीं चरणप्रान्तमें सो जाती।

पण्डितजी—मैंने तो तुमको कभी नहीं देखा।

स्त्री—देखना अकेली आँखोंसे थोड़े ही होता है, उसके लिये तो मन चाहिये। दृष्टिके साथ मन न हो तो फिर ये चक्षुगोलक कैसे किसको देख सकते हैं। चीज सामने रहती है, पर दिखायी नहीं देती। आपका मन तो नित्य-निरन्तर तल्लीन रहता है अध्ययन, विचार और लेखनमें। फिर आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे कैसे देखते ?

पण्डितजी—अच्छा, तो हमलोगोंके खान-पानकी व्यवस्था कैसे होती है ?

स्त्री—दुपहरको अवकाशके समय अड़ोस-पड़ोसकी लड़कियोंको बेल-बूटे निकालना तथा गाना सिखा आती हूँ और वे सब अपने-अपने घरोंसे चावल, दाल, गेहूँ आदि ला देती हैं, उसीसे निर्वाह होता है।

यह सुनकर पण्डितजीका हृदय भर आया, वे उठकर खड़े हो गये और गद्गद कण्ठसे बोले—'तुम्हारा नाम क्या है देवी !' स्त्रीने कहा—'भामती।' 'भामती ! भामती ! मुझे क्षमा करो, पचास-पचास सालतक चुपचाप सेवा-ग्रहण करनेवाले और सेविकाकी ओर आँख उठाकर देखनेतककी शिष्टता न करनेवाले इस पापीपर क्षमा करो' यों कहते हुए पण्डितजी भामतीके चरणोंपर गिरने लगे।

भामतीने पीछे हटकर नम्रतासे कहा—'देव ! आप इस प्रकार बोलकर मुझे पापग्रस्त न कीजिये। आपने मेरी ओर दृष्टि डाली होती, तो आज मैं मनुष्य न रहकर विषयविमुग्ध पशु बन गयी होती। आपने मुझे पशु बननेसे बचाकर मनुष्य ही रहने दिया, यह तो आपका अनुग्रह है। नाथ ! आपका सारा जीवन शास्त्रके अध्ययन और लेखनमें बीता है। मुझे उसमें आपके अनुग्रहसे जो यत्किञ्चित् सेवा करनेका सुअवसर मिला है, यह तो मेरा महान् भाग्य है। किसी दूसरे घरमें विवाह हुआ होता तो मैं संसारके प्रपञ्चमें कितना फँस जाती। और पता नहीं शूकर-कूकरकी भाँति कितनी वंश-वृद्धि होती। आपकी तपश्चर्यासे मैं भी पवित्र बन गयी। यह सब आपका ही प्रताप और प्रसाद है। अब आप कृपापूर्वक अपने अध्ययन-लेखनमें लगिये। मुझे सदाके लिये भूल जाइये।' यों कहकर वह जाने लगी।

पण्डितजी—भामती ! भामती ! तनिक रुक जाओ, मेरी बात तो सुनो।

भामती—नाथ ! आप अपनी जीवनसंगिनी साधनाका विस्मरण करके क्यों मोहके गर्तमें गिरते हैं और मुझको भी क्यों इस पाप-पङ्कमें फँसाते हैं ?

पण्डितजी—भामती ! मैं तुझे पाप-पङ्कमें नहीं फँसाना चाहता। मैं तो अपने लिये सोच रहा हूँ कि मैं पाप-गर्तमें गिरा हूँ या किसी ऊँचाईपर स्थित हूँ।

भामती—नाथ ! आप तो देवता हैं, आप जो कुछ लिखेंगे, उससे जगत्का उद्धार होगा।

पण्डितजी—'भामती ! तुम सच मानो ! भगवान् व्यासने वर्षों तप करनेके बाद इस (ब्रह्मसूत्र) ग्रन्थकी रचना की और मैंने जीवनभर इसका पठन एवं मनन किया, परंतु तुम विश्वास करो कि मेरा यह समस्त पठन-मनन, मेरा समग्र विवेक, यह सारा वेदान्त तुम्हारे पवित्र सहज तपोमय जीवनकी तुलनामें सर्वथा नगण्य है। व्यास भगवान्ने ग्रन्थ लिखा, मैंने पठन-मनन किया, परंतु तुम तो मूर्तिमान् वेदान्त हो।' यों कहते-कहते पण्डितजी पुनः उसके चरणोंपर गिरने लगे। भामतीने उन्हें उठाकर विनम्रभावसे कहा—'पतिदेव ! यह क्या कर रहे हैं ? मैंने तो अपने जीवनमें आपकी सेवाके अतिरिक्त कभी कुछ चाहा नहीं। आपने मुझ- जैसीको ऐसी सेवाका सुअवसर दिया। यह आपका मुझपर महान् उपकार है। आजतक मैं प्रतिदिन आपके चरणोंमें सुखसे सोकर नींद लेती रही हूँ, यों इन चरणोंमें ही सोती-सोती महानिद्रामें पहुँच जाऊँ, तो मेरा महद्भाग्य हो।'

पण्डितजी—भामतीदेवी ! सुनो, मैंने अपना सारा जीवन इन पन्नोंके लिखनेमें ही बिता दिया। परंतु तुमने मेरे पीछे जैसा जीवन बिताया है, उसके सामने मुझे अपना जीवन अत्यन्त क्षुद्र और नगण्य प्रतीत हो रहा है। मुझे इस ग्रन्थके एक-एक पन्नेमें, एक-एक पंक्तिमें और अक्षर-अक्षरमें तुम्हारा जीवन दीख रहा है, अतः जगत्में यह ग्रन्थ अब तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगा। तुमने मेरे लिये जो अपूर्व त्याग किया, उसकी चिरस्मृतिके लिये मेरा यह अनुरोध स्वीकार करो। 'प्रभो ! आप ऐसा कीजिये, जिसमें इस अतुलनीय आत्मत्यागके सामने मुझ-जैसे क्षुद्र मनुष्यको जगत् भूल जाय। 'आप अपने काममें लगिये देव !' यों कहकर भामती जाने लगी। तब 'तुमको जहाँ जाना हो, जाओ। परंतु अब मैं जीवित मूर्तिमान् वेदान्तको छोड़कर वेदान्तके मृत शवका स्पर्श नहीं करना चाहता'—यों कहकर पण्डितजीने पोथी-पन्ने बाँध दिये।

पण्डितजीके द्वारा रचित महान् ग्रन्थ आज भी वेदान्तका एक अप्रतिम रत्न माना जाता है। इस ग्रन्थका नाम है—'भामती' और इसके लेखक हैं—पण्डित वाचस्पति मिश्र।

(श्रीयुत एस० एम० बोरा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

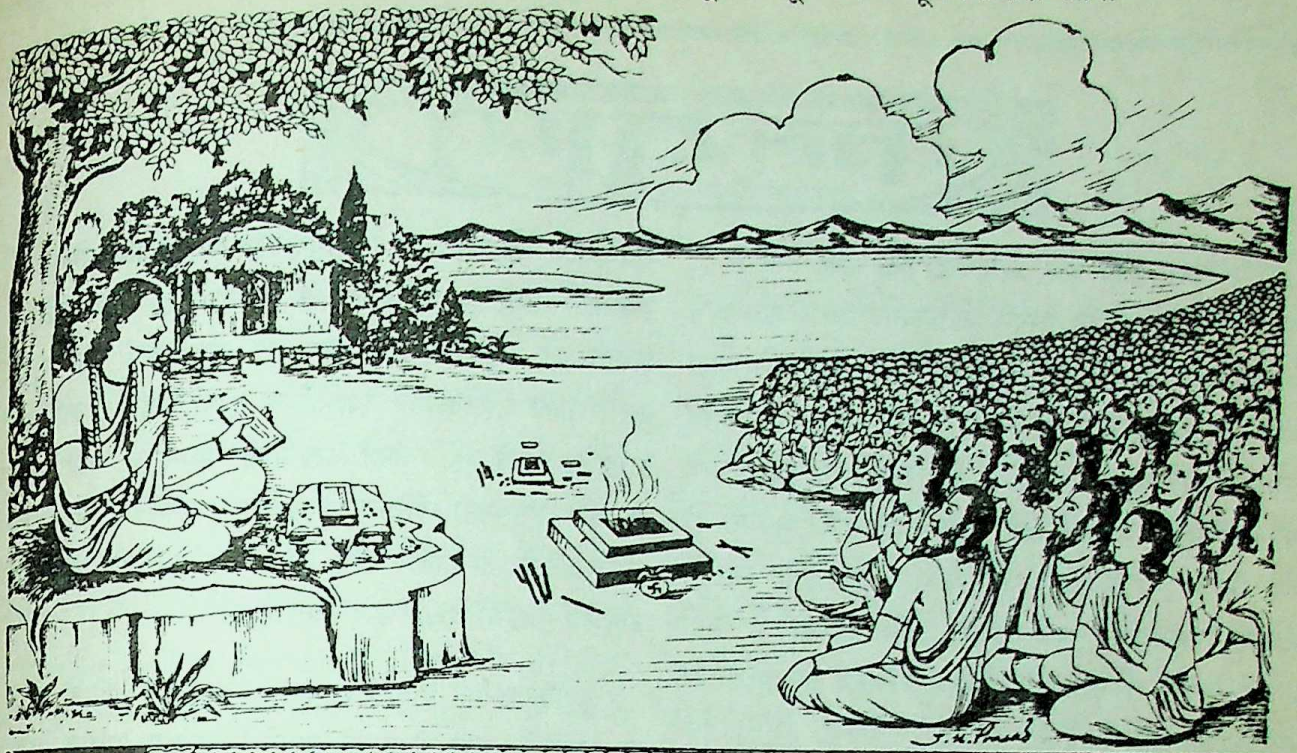

कल्याण

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत्।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥

वर्ष ६३ } गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-सं० ५२१५, सितम्बर १९८९ ई० { संख्या ६ / पूर्ण संख्या ७५१

माताद्वारा गोपालका बाँधा जाना

जसुमति रिस करि-करि रजु करषै।
सुत हित क्रोध देखि माता कैं, मनहीं मन हरि हरषै ॥
उफनत छीर जननि करि ब्याकुल, इहिं बिधि भुजा छुड़ायौ।
भाजन फोरि दही सब डार्‌यौ, माखन कीच मचायौ ॥
लै आई जेंवरि अब बाँधौं, गरब जानि न बँधायौ।
अंगुर द्वै घटि होति सबनि सौं, पुनि-पुनि और मँगायौ ॥
नारद-साप भए जमलार्जुन, तिनकौं अब जु उधारौं।
सूरदास प्रभु कहत भक्त-हित जनम-जनम तनु धारौं ॥

(सूरसागर, दशम स्कन्ध)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

सावधान ! कहीं धर्म, सदाचार, ईश्वरभक्ति और ज्ञान-वैराग्यके प्रचारके नामपर अपने व्यक्तित्वका प्रचार मत करने लगना। ऐसा होना बहुत ही सहज है। आरम्भमें शुद्ध भावनाके कारण प्रचारके विषयकी ही प्रधानता रहती है, परंतु आगे चलकर ज्यों-ज्यों प्रचारका क्षेत्र बढ़ता है, त्यों-ही-त्यों प्रचारके विषयकी गौणता और अपने व्यक्तित्वकी मुख्यता हो जाया करती है। भगवान्, धर्म और ज्ञान-वैराग्य आदिके स्थानपर प्रचारककी पूजा-प्रतिष्ठा होने लगती है और वह भी इसीमें रम जाता है। इसीसे नये-नये विचारोंकी या सम्प्रदायोंकी सृष्टि होती है।

अवश्य ही जिस पुरुषके द्वारा लोगोंको लाभ होता है, अथवा किसी हेतुसे भी होनेकी आशा या सम्भावना होती है, उसके व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठा होती है और उसका प्रचार भी होता है तथापि उसे तो सावधान रहना ही चाहिये। नहीं तो, परिणाम यह होगा कि जिस विषयका प्रचार करनेके लिये उसने कार्यक्षेत्रमें पैर रखा था, उस विषयके प्रचारमें वह स्वयं ही बाधक हो जायगा और अपने व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठाके लिये लोकरञ्जनका अभिलाषी होकर अपने मूल उद्देश्यसे गिर जायगा।

शुद्ध भाव दीखनेपर भी, प्रचारक अपने मनमें मोहवश लोकरञ्जनकी आवश्यकताका अनुभव किया करता है। वह सोचता है कि भगवद्भक्ति आदिका प्रचार तभी होगा, जब लोग मेरी ओर आकर्षित होकर मेरी बात सुनेंगे और लोगोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये मुझे अपने रहन-सहनमें, कहनी-करनीमें, बोल-चालमें, व्यवहारमें, भाषामें, स्वरमें और भावभङ्गिमा आदिमें कुछ विशेषता लानी चाहिये। इसमें कोई संदेह नहीं कि भगवद्भक्तोंके बाहर-भीतरके सभी आचरणोंमें साधारण लोगोंकी अपेक्षा ऐसी कुछ विलक्षणता अवश्य होनी चाहिये, जिससे उनके आदर्शके अनुसार अन्यान्य लोग अपना चरित्र-निर्माण कर सकें और भगवद्भक्तिका यथार्थ प्रचार हो। बुरे आचरणवाला भक्त, लोगोंके सामने बुरा आदर्श रखनेवाला होनेके कारण भगवद्भक्तिका प्रचार नहीं कर सकता। वस्तुतः वह भगवद्भक्त ही नहीं है; क्योंकि सच्चे भक्तमें बुरे आचरणोंका अभाव ही होता है। परंतु शुद्ध आचरणोंकी विलक्षणता स्वाभाविक होनी चाहिये, लोगोंको दिखानेके लिये नहीं। जहाँ दिखानेकी भावना है, वहीं मनमें मोहवश गुप्तरूपसे व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठाका मनोरथ छिपा है, जो भगवद्भक्तिके प्रचारके लिये लोकरञ्जनकी आवश्यकताका अनुभव करानेमें प्रधान हेतु होता है।

लोकरञ्जनकी इच्छावाला मनुष्य शुद्धाचारी ही हो, ऐसी बात नहीं है। उसे तो अपने बाहरी दिखावेपर अधिक ध्यान रखना पड़ता है, इसीसे वह सुन्दर स्वरमें गाना, मधुर भाषामें व्याख्यान देना, नाचना, लोगोंको हँसाने-रुलानेके उद्देश्यसे विभिन्न प्रकारके स्वरोंमें बोलना, भाव बताना, मुखाकृति करना, ध्यानस्थकी भाँति बैठना आदि न मालूम कितनी बातें करता है। उसका ध्यान रहता है कि मेरे गायनसे, मेरे भाषणसे, मेरे व्याख्यानसे, मेरे सत्सङ्गसे और मेरी ध्यानस्थ मूर्तिसे लोगोंका मेरी ओर खिंचाव हुआ या नहीं। गान, नृत्य, भावप्रदर्शन आदि चीजें कलाकी दृष्टिसे बहुत उपादेय हैं और किसी सीमातक प्रचारकी दृष्टिसे भी इनकी उपयोगिता है, परंतु जहाँ और जितने अंशमें इनका उपयोग केवल लोकरञ्जनके लिये होता है, वहाँ उतने अंशमें इस लोकरञ्जनके पीछे, किसी भी हेतुसे हो, अपने व्यक्तित्वके प्रचारकी वासना छिपी रहती है। तुम यदि साधक पुरुष हो अथवा अपना पारमार्थिक कल्याण चाहते हो तो ऐसी वासनाको मनमें कहीं किसी कोनेमें भी मत रहने दो। भगवान्‌की भक्ति और सदाचारका प्रचार भगवत्सेवाके लिये ही करो।

सच्ची बात तो यह है कि भगवद्भक्ति, ज्ञान और वैराग्य तो प्रचारकी चीज ही नहीं हैं। योग्य अधिकारीके द्वारा ही योग्य अधिकारीको इनका उपदेश होता है और तभी अच्छा फल भी होता है। —**'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर

(तत्त्वदर्शी महात्मा श्रीतैलङ्ग स्वामीजीका उपदेश)

'ईश्वर' नामसे सर्वव्यापी वस्तुका ही बोध होता है। जब यह कहा जाय कि ईश्वर सर्वव्यापी है, तब ईश्वरका जो स्थान-व्यापकता गुण है, इसमें किसीको संदेह करनेका कोई कारण नहीं रहता। एक पुस्तक अपनी स्थान-व्यापकताके कारण साकार कही जाती है, किंतु ईश्वरको स्थान-व्यापी होनेपर भी निराकार कहते हैं। इसका कारण क्या है ? कारण यह है कि जो द्रव्य किसी सीमाबद्ध स्थानको घेरे हुए हो, वह साकार समझा जाता है, किंतु विश्वव्यापी ईश्वर किसी सीमाबद्ध स्थानमें ही व्याप्त नहीं है—यह विश्व अनन्त और असीम है—ईश्वर भी, जिस स्थानमें व्याप्त है, उसकी सीमा नहीं—वह अनन्त और असीम है, इसलिये वह निराकार है।

यदि यह कहा जाय कि कल्पनासे विश्वकी एक सीमा निर्दिष्ट की जा सकती है, किंतु सीमा निर्धारित करनेके बाद देखें और बतायें कि उस सीमाके बाहर और स्थान रहता है या नहीं ?

यह कभी कोई नहीं बता सकता और न यह बात किसीकी बुद्धिमें आ सकती है। इसीलिये विश्व असीम और ईश्वर भी निस्सीम एवं निराकार है। इस विश्वमें वह सर्वत्र व्याप्त है, इसीलिये निराकार है। मनुष्यके ज्ञान अथवा बुद्धिमें ऐसी किसी वस्तुको स्थिर करनेकी क्षमता नहीं, कि जिसके द्वारा उसके आकारकी तुलना हो सके, अतएव आकारमें अतुलनीय होनेके कारण ही वह निराकार है।

ईश्वर निर्गुण क्यों है ?—जिसके इतने गुण हैं, जो बुद्धिके अगोचर है, वह निर्गुण किस प्रकार हो सकता है ? वस्तुतः ईश्वरके गुणोंकी सीमा नहीं है और गुण कितनी तरहके हैं, इसकी भी सीमा नहीं है। अतुलनीय गुणान्वित होनेके कारण ही वह निर्गुण है। यह बात बहुतेरे लोगोंको नयी मालूम हो सकती है; क्योंकि असीम शब्दसे साधारणतः यही अर्थ समझा जाता है कि जिसका परिमाण- अत्यन्त अधिक हो—जिसके परिमाणकी इयत्ता न हो, उसीको असीम कहा जाता है।

यह सारा संसार प्रकृतिद्वारा निर्मित होनेके कारण सत्त्व, रज आदि प्राकृतिक गुणोंसे ही युक्त है, किंतु परमात्मा प्रकृतिसे परे है, इसलिये उसका शुद्ध सत्त्व गुण अप्राकृतिक है, इसलिये वह निर्गुण कहा गया है।

ईश्वरका रूप किस प्रकारका है ?—इस संसारमें जितनी तरहके रूप हैं, वे सब एकमात्र उसीके रूपसे उत्पन्न होकर भिन्न-भिन्न भावसे प्रकाशित हुए हैं। पृथ्वीपर ऐसा कोई रूप नहीं कि जिसकी तुलना उसके रूपसे की जा सके[1]। वह ज्योतिर्मय आनन्द-स्वरूप है। उसको विश्वरूप कहा जाता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और देव-देवियाँ समस्त ही उसीके स्थूल-रूप हैं। पहले इन सब स्थूल रूपोंका ध्यान किये बिना सूक्ष्म-रूपदर्शनका अधिकार नहीं होता। अतएव मुमुक्षु व्यक्ति पहले स्थूल रूपका आश्रय लेगा। क्रमसे उसके अविनाशी परम सूक्ष्म रूपकी आलोचनामें प्रवृत्त होनेपर विश्वरूप किस प्रकारका है—इसका उसे अनुभव हो सकेगा। जिसने उस रूपकी माधुरी नहीं देखी है, उसकी तो बात ही नहीं और जिसने उसे देख लिया है, उसके लिये भी लिखकर प्रकाश करना साध्य नहीं है। कारण, उसके लिये भाषा नहीं एवं उसे देख लेनेपर देखनेवाला मोहित होकर वाक्यहीन और ज्ञानशून्य हो जाता है।

ईश्वर चेतन है कि अचेतन ?—ईश्वर चेतन भी नहीं है और अचेतन भी नहीं है। उसके निर्गुण अनवच्छिन्न गुणको चैतन्य गुण कहा जाता है। चेतन गुण किसे कहते हैं ? यह सब जानते हैं, किंतु अनवच्छिन्न चैतन्य गुण कैसा है, इसको अपने अन्तश्चित्तमें धारण करनेमें हम असमर्थ हैं। ईश्वर विश्वरूप है, निराकार और निर्गुण है। उसके आकार और गुणोंके सम्बन्धमें चिन्तन करना हमारे लिये असाध्य है। इसीलिये उसकी उपासना करना भी बड़ा कठिन है। वास्तविक निराकार ईश्वरको हम समझ नहीं सकते। ईश्वर मनके अगोचर है। यदि कोई यह कहे कि मैं मन-ही-मनमें निराकार ईश्वरका ध्यान कर सकता हूँ, तो यह निश्चय समझ लो कि उसने

१-'न तस्य प्रतिमा अस्ति।' (श्वेताश्वतरोपनिषद् ४। १९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराकार शब्दका अर्थ भी नहीं समझा है। निराकार और निर्गुण ईश्वरके सम्बन्धमें कुछ भी ध्यान न होनेके कारण ही सगुण ईश्वर-रूपसे उनका चिन्तन किया जाता है।

सगुण ईश्वरका चिन्तन करते-करते चित्त जितना ही निर्मल होगा, उतनी ही आत्माकी उज्ज्वलता अन्तस्तलमें उदित होगी। उस समय मनकी सहायताके बिना ईश्वरका अस्तित्व उपलब्ध किया जा सकेगा।

कोई-कोई यह जिज्ञासा कर सकते हैं कि सगुण ईश्वर किसको कहते हैं ? ईश्वरका स्वरूप उन्नतिकी चरम सीमा है। जो उन्नतिकी चरम सीमामें जा पहुँचा है, वह ईश्वरमें लीन हो गया है। फिर उसका परिवर्तन नहीं। वह उन्नत मनुष्य समस्त ब्रह्माण्डको अपनेमें देखता है और इस उन्नत मनुष्य-दशाका चरम आदर्श पुरुष ही सगुण ईश्वर है। एक मनुष्य-रूप आधारमें समग्र विश्व प्रतिविम्बित होता हो, वही सगुण ईश्वर है। जो कर्म करके भी निष्क्रिय है, जो मनुष्य-आकार धारण करके भी अन्तमें विश्व-रूप है, जिसका आत्मज्ञान ब्रह्माण्डका जन्मदाता है, जो 'मैं ही ब्रह्म हूँ'[१]—यह समझता है, वह आत्मज्ञानी पुरुष ही भगवान्‌का स्वरूप है और वही सगुण ईश्वर है।

यदि ईश्वरके तत्त्वज्ञानकी लालसा उत्पन्न हो तो ऐसे उन्नत पुरुषके सम्बन्धमें निरन्तर चिन्तन करो। अपने 'मैं' ज्ञानको ऐसे मुक्त आत्माके गुणमें मिलानेकी चेष्टा करो। क्रमसे देखोगे कि चित्त निर्मल हो रहा है और मानो कहींसे कोई तुम्हें पथ दिखाकर साथ ले जा रहा है। उसी स्थितिमें ईश्वर एक ही है, जो निर्गुण-निराकार विश्वव्यापी एवं सच्चिदानन्द है, यह अच्छी तरह समझ सकोगे।

हमारे चारों ओर भीतर और बाहर, जो नित्य निरवच्छिन्न-भावसे अधिष्ठान करता है, जिसके संकेतमात्रसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, वायु और वरुणादि अपने-अपने कर्तव्य कार्य करनेमें तत्पर हैं, जिसकी सत्ताके प्रभावसे हम जीवित हैं, जो चरणशून्य होनेपर भी सर्वत्र गमन करता है, कर्णहीन होते हुए भी मनकी बाततक सुन लेता है, नेत्रहीन किंतु सब कुछ प्रत्यक्ष देखनेवाला है, जो हमें देखता है, किंतु जिसे हम नहीं देख पाते[२]।

काम, क्रोध, लोभ, दुराशा, विषय-वासना इत्यादि प्रतारकगण जिसके समागमके भयसे भीत होकर दूर भागते हैं, ज्ञान जिसका स्वरूप-निर्णय करनेमें अक्षम है, मन और आत्मा जिसके पास पहुँचकर लौटते नहीं, माया जिसको आच्छादित नहीं कर सकती और वाणी जिसकी व्याख्या करनेमें असमर्थ है, जिसकी आरती करनेके लिये चन्द्र-सूर्य दीप प्रज्वलित करते हैं, पवन चँवर डुलाता है, तरु-लतादि पुष्पोंद्वारा सुगन्धि देते हैं, विहग कीर्तन करते हैं, भक्ति, श्रद्धा, शान्ति, करुणा, मुक्ति जिसकी पाद-सेवा करती हैं, वैराग्य, ज्ञान, योग, धर्म जिसके द्वारपर प्रहरी बनकर रहते हैं, जो जीवोंके कर्मानुसार फल-विधान करता है, मनुष्योंके भूल जानेपर भी जो उनको नहीं भूलता—उनका त्याग नहीं करता, जो माया-निद्रा-भंग कर जाग्रत् करनेके लिये सबका आह्वान करता है, जिसने स्वयं निर्गुण होकर त्रिगुणसे त्रिजगत्‌को बाँध रखा है, अरूप होते हुए भी आश्चर्य-रूपसे जिसने त्रिभुवनको मोहित कर छोड़ा है और निजमें जिसने चैतन्य-रूप होकर भी जीवको मोहिनी मायासे अचेतन बना रखा है—वही ईश्वर है।

ब्रह्म जगत्‌से अतिरिक्त है, किंतु ब्रह्मसे भिन्न कोई वस्तु नहीं। तो भी ब्रह्मसे भिन्न जो पदार्थ दिखायी देते हैं, वे सब मरुभूमिमें मरीचिकाकी भाँति मिथ्या ज्ञान मात्र हैं। जो कोई

१-'अहं ब्रह्मास्मि' (बृहदारण्यकोपनिषद् १।४।१०)

२-(क) अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥ (श्वेताश्वतरोपनिषद् ३।१९)

(ख) 'यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्' (मुण्डकोपनिषद् १।१।६)

(ग) बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥ (रा० च० मा०, बालकाण्ड ११८।५-८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तु दृश्य अथवा श्रुत हो, वह ब्रह्मसे भिन्न नहीं है[1]। कारण, ज्ञानोदय होनेपर वह समुदित वस्तु हीं अद्वितीय, सच्चिदानन्द ब्रह्मसे भिन्न अन्य कुछ भी नहीं जान पड़ती। ज्ञानी व्यक्ति सर्वव्यापी नित्य और ज्ञानरूप आत्माको ज्ञान-चक्षुद्वारा देखता है। ज्ञान-चक्षुविहीन व्यक्ति उसका दर्शन नहीं कर सकता, जिस प्रकार कि अंधा आदमी सूर्यको नहीं देख पाता। जो सूक्ष्म नहीं, स्थूल नहीं, ह्रस्व नहीं, दीर्घ नहीं , जन्म-नाश-विहीन एवं रूप, गुण, वर्ण और नामरहित नित्य है, जो एक ही तरह ऊपर, नीचे, आगे, पीछे और चारों ओर अवस्थान करता है, जो पूर्ण, सत्य, चैतन्य, आदि-अन्तरहित अद्वितीय आनन्दमय है[2]—वही ईश्वर है।

जिस लाभसे परे और लाभ नहीं, जिस सुखसे बढ़कर और सुख नहीं, जिसके ज्ञानसे बढ़कर और कोई ज्ञान नहीं, जिसके संदृष्ट हो जानेपर यह मायामय विश्व तिरोहित हो जाता है और कोई वस्तु नहीं दीखती,[3] जिसको पा लेनेपर फिर पुनर्जन्म नहीं होता और जिसको जान लेनेपर और कुछ भी जाननेका प्रयोजन नहीं रहता[4]—वही ब्रह्म अथवा ईश्वर है।

सूर्य, चन्द्रादि कोई प्रकाशमान वस्तु जिसको प्रकाशित न कर सके, जिसके प्रकाशसे सूर्य, चन्द्र आदि प्रकाशित होते हैं, जिसके द्वारा यह ब्रह्माण्ड प्रकाश पाता है, जिस प्रकार अग्नि लोह-पिण्डमें प्रविष्ट होकर उसे प्रदीप्त करता है, उसी प्रकार स्वयं ब्रह्म समस्त वस्तुओंके भीतर और बाहर व्याप्त रहकर समुदित जगत्को प्रकाशित करता है[5]—वही ब्रह्म किंवा ईश्वर है।

जो मनुष्य, देवता, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, गृही, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और राजा अथवा भिक्षुक नहीं, किंतु सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, ज्योतिर्मय, ज्ञान-स्वरूप है, इन्द्रिय आदि सब जड पदार्थ जिस नित्य ज्ञान-स्वरूप आत्माका आश्रय लेकर अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, वह नित्य ज्ञान-स्वरूप है और वही ब्रह्म अथवा ईश्वर है।

जिस प्रकार सूर्योदय सब लोगोंके लिये व्यवहारका कारण होता है, उसी प्रकार जो मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त—इन चार अन्तरिन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियोंकी अपने-अपने विषयोंमें प्रवृत्तिका कारण है और सब उपाधियोंसे रहित तथा आकाशकी भाँति सर्वव्यापी है एवं मनोहर सृष्टि-कार्यद्वारा सदा प्रत्यक्ष-भावसे विद्यमान है—वही ब्रह्म किंवा ईश्वर है।

जैसे दर्पण, जल, तैल आदि वस्तुओंमें मुखका प्रतिविम्ब दिखायी देता है, किंतु वह प्रतिविम्ब मुखसे भिन्न नहीं है, वैसे ही बुद्धिमें जो आत्माका प्रतिविम्ब है, वह जीवात्मासे पृथक् नहीं है—वही ब्रह्म अथवा ईश्वर है।

१-'मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥
× × ×
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥ (गीता ९।४-५)

२-(क) 'अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्' (बृहदारण्यक उपनिषद् ३।८।८)
(ख) 'न जायते म्रियते वा कदाचित्' (गीता २।२०)
(ग) 'ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण। अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥' (मुण्डकोप० २।२।११)

३-'यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।' (गीता ६।२२)
'सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।' (गीता ६।२१)

४-(क) 'निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते' (कठोपनिषद् १।३।१५)
(ख) 'यस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति', 'स सर्वज्ञः सर्वो भवति' (शाण्डिल्य० ४।१०)

५-(क) न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ (मुण्डकोपनिषद् २।२।१०, कठोपनिषद् २।२।१५)
(ख) जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥
(रा० च० मा०, बाल० ११७।७-८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो स्वरूपतः, मनश्चक्षु इन्द्रियोंसे भिन्न है और मनका भी मन, प्राणका प्राण, चक्षुका चक्षु, कर्णका कर्ण होकर भी मनश्चक्षु इत्यादि किसी इन्द्रियका ग्राह्य नहीं है[१]—वही ब्रह्म किंवा ईश्वर है।

जिस तरह भिन्न-भिन्न जलसे भरे हुए पात्रोंमें एक चन्द्रका प्रतिबिम्ब नाना प्रकारका दिखायी देता है[२], उसी तरह जो स्वयंप्रकाश विशुद्ध ज्ञानस्वरूप अद्वितीय होकर भी नाना तरहके जीवोंकी नाना प्रकारकी बुद्धिद्वारा नाना प्रकारसे कल्पित हो रहा है—वही ब्रह्म अथवा ईश्वर है।

जैसे साधारण प्रकाशक सूर्य एक होकर भी अनेक चक्षुओंके विषयको एक कालमें प्रकाशित करता है,[३] वैसे ही एक होकर अनेक बुद्धियोंके विषयको जो एक कालमें प्रकाशित करता है, वह नित्य ज्ञानस्वरूप है और वही ब्रह्म अथवा ईश्वर है।

जैसे चक्षु, सूर्य-किरणद्वारा प्रकाशित रूपको ग्रहण करता है एवं अप्रकाशित रूपको ग्रहण नहीं कर सकता, वैसे ही एक सूर्य जिस चैतन्य ज्योतिद्वारा प्रकाशित होकर रूपादिको प्रकाशित करता है, वह सर्वप्रकार नित्य ज्ञान-स्वरूप है और वही ब्रह्म अथवा ईश्वर है।

जैसे सूर्य एक होनेपर भी जलकी चञ्चलतासे अनेक रूपोंमें दृष्टिगत होता है, किंतु स्थिर जलमें एक रूप ही दिखायी देता है, वैसे ही स्वरूपतः एक होकर भी चञ्चल बुद्धिद्वारा नाना रूपोंमें प्रतीत होता है, वह नित्य ज्ञानस्वरूप है और वही ब्रह्म अथवा ईश्वर है।

जिस प्रकार अज्ञानी व्यक्ति बादलोंको देखकर यह असम्भावित बात कहता है कि सूर्य बादलोंसे आच्छादित होकर प्रकाश-शून्य हो रहा है,[४] उसी प्रकार अज्ञानियोंके निकट नित्य शुद्ध चैतन्य भी बद्ध-रूपमें प्रतीत होता है, वह नित्य ज्ञानस्वरूप है और वही ब्रह्म अथवा ईश्वर है।

जो गम्भीर नहीं है, धीर नहीं है, एकमात्र निर्वाणरूपी पुण्यमय है। जो जगत्का सार है, जो पाप एवं पुण्यविहीन है, जो व्यक्त-अव्यक्त-रूप शून्य एवं सर्वमय है—वही ब्रह्म अथवा ईश्वर है।

जो एक होकर भी समस्त वस्तुओंके भीतर अन्तर्यामी-रूपसे अवस्थान करता है, किंतु वे समस्त वस्तुएँ जिसको स्पर्श नहीं कर सकतीं और जो आकाशकी भाँति सर्वव्यापी है, वह नित्य चैतन्य-स्वरूप है[५] और वही ब्रह्म किंवा ईश्वर है।

आत्माको पृथ्वी नहीं कहा जाता,[६] कारण कि पृथ्वीमें गन्ध गुण है। आत्मामें वह गुण नहीं है। आत्मा उस गन्धका प्रकाशक है। आत्मा जल नहीं है, क्योंकि जलमें रस गुण है, आत्मामें वह नहीं है। आत्मा रसका विज्ञाता है। आत्माको तेज नहीं कहा जाता, कारण कि तेजमें रूप गुण है। आत्मामें वह नहीं है, आत्मा रूपका दर्शक है। आत्माको वायु नहीं कहा जा सकता, कारण कि वायुकी तरह आत्मामें स्पर्श-गुण नहीं है। आत्मा स्पर्श-गुणका विज्ञाता है। आकाशको भी आत्मा नहीं कहा जाता, कारण कि आकाशमें शब्द गुण है, आत्मामें वह नहीं है। आत्मा किसी तरह इन्द्रिय भी नहीं हो सकता, कारण कि इन्द्रियाँ अनेक हैं। आत्मा एक एवं सर्व-अवस्थाओंमें एक-भावापन्न है। जो भूमि प्रभृतिसे पृथक् केवल नित्य सर्वमङ्गलमय है, उसीको आत्मा समझो और वही ब्रह्म अथवा ईश्वर है।

जिस सच्चिदानन्दमय ब्रह्मका स्थान, परिमाण, रूप, वर्ण

१-'श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद् वाचो ह वाचꣳ स उ प्राणस्य प्राणः चक्षुषश्चक्षुः।' (केनोपनिषद् १।२)

२-एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्॥ (अमृतबिन्दु उपनिषद् १२)

३-यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः। क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत॥ (गीता १३।३३)

४-(क) निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी॥
जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी॥ (रा० च० मा०, बा० ११७।१-२)

(ख) घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नमर्कं यथा मन्यते निष्प्रभं चाति मूढः। तथा बद्धवद् भाति यो मूढदृष्टेः स नित्योपलब्धस्वरूपोऽहमात्मा॥ (हस्तामलकम् १०)

५-एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥ (श्वेताश्वतरोपनिषद् ६।११)

६-(क) न भूमिर्न चापो न वह्निर्न वायुर्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा। (श्रीशंकराचार्य वेदसारशिवस्तव ६)

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ भी नहीं, जो किसी प्रकार आकृति-विशिष्ट नहीं है, जिसका द्रष्टा, दृश्य, श्रवण, श्राव्य कुछ भी नहीं है, जो ब्रह्म वृक्ष-स्वरूप होकर भी जिसका मूलबीज, शाखा, पत्र, लता, पल्लव, पुष्प, गन्ध, फल और छाया कुछ भी नहीं है, वही नित्य ज्ञानमय ब्रह्म अथवा ईश्वर है।

क्या वेद, क्या शास्त्र, क्या शौच, क्या संध्या, क्या मन्त्र, क्या जप, क्या ध्यान, क्या ध्येय, क्या होम, क्या यज्ञ-हवन— इन सब कर्मोंमें जिसका कुछ भी नहीं, जो ऊर्ध्व नहीं, निम्न नहीं, शिव नहीं, शक्ति नहीं, पुरुष नहीं, नारी नहीं, ब्रह्मा नहीं, विष्णु नहीं, ग्रह, तारा, मेघमाला— इत्यादि कुछ भी नहीं, जो चन्द्र नहीं, सूर्य नहीं, जिसका उदय और अस्त नहीं, जो स्वर्गमें, नगरमें, क्षेत्रमें अवस्थिति नहीं करता, जातिगत अथवा अजातिगत जिसकी कोई भिन्नता नहीं, जो एकमात्र निर्वाणरूपी पुण्यमय है, जो पाप-पुण्यविहीन सर्वमय चैतन्यस्वरूप है, वही ब्रह्म अथवा ईश्वर है।

प्रकाशसे जैसे अन्धकार नष्ट हो जाता है, किंतु अन्धकारका तत्त्व परिज्ञात नहीं हो पाता, वैसे ही अज्ञानका नाश होनेपर ज्ञान स्वतः प्रकाश पाता है। ब्रह्म ही सर्वशक्तिमान् है। वही जीवात्मा है एवं सत्य-चैतन्य उसीका स्वरूप है। ब्रह्मको ही सर्वस्वरूप समझो, उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। आकाशस्थित बादलोंसे आकाशका स्वरूप अनुभव नहीं होता। बादलोंके हट जानेपर आकाश फिर पूर्ववत् स्वच्छ हो जाता है। इस आकाशका अस्तित्व भी आकाश-रूपमें ही प्रतीयमान होता है। इसी तरह दृश्य-प्रपञ्चका अवसान होनेपर चिच्छक्तिकी स्वाभाविक सत्ता उदित होती है। यह सत्ता अथवा अस्तित्व भी उससे भिन्न नहीं है। जो पदार्थ जिससे उत्पन्न है, वह अपने मूल पदार्थसे कदाचित् भी भिन्न नहीं है। चित्स्वरूप इक्षुरसकी मधुरता, अनलकी उष्णता, तुषारकी शीतलता, सर्षपमें तैल-स्वरूप चित्सत्ता ही जगत्की सत्ता है। जगत्सत्ता ही चित्सत्ताका आकार है। पल्लवके भीतर जैसे शिराएँ-रेखाएँ रहती हैं, वे पल्लवसे अभिन्न रहनेपर भी विभिन्न रूप और आकारकी जान पड़ती हैं। इसी प्रकार ब्रह्म जगत्से अभिन्न है[1]। ब्रह्म जगत्से एवं जगत् ब्रह्मसे अभिन्न होते हुए भी जगत्को ब्रह्म धारण कर रहा है।

राग, द्वेष, वायु, मन, बुद्धि, माया, आशा, वासना, चिन्ता प्रभृति विषयोंको कोई देख नहीं पाता। ये सब अप्रत्यक्ष होनेपर भी इनके कामोंको देखकर इनकी प्रत्यक्षता प्रतिपन्न होती है। इसी प्रकार ईश्वरको कोई देख नहीं सकता, किंतु उसके अलौकिक कार्योंको देखकर अप्रत्यक्ष होनेपर भी उसकी प्रत्यक्षता संमझी जाती है।

भक्तकी भावना

कौन कहता है तुम दूर मुझसे हो कभी,
चारों ओर जग ये तुम्हारा दिव्य डेरा है।
कौन बात 'जीवन' सुनाऊँ मनकी मैं तुम्हें,
जब उर बीच किया तुमने बसेरा है॥
प्राणधन! पाके तुम्हें आज अपने समक्ष,
टूट चुका भेद-भिन्नताका घोर घेरा है।
दूँ क्या तुम्हें? कौन वस्तु अपनी रही, हे नाथ!
माँगूँ तुमसे क्या? जो तुम्हारा वह मेरा है॥

(ख) अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्। अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते॥
(कठोपनिषद् १।३।१५)

(ग) 'येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान्। एतेनैव विजानाति' (कठोपनिषद् २।१।३)

१-हरिरेव जगज्जगदेव हरिर्हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवतार और अधिकारी महापुरुषोंका अलौकिक प्रभाव

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

[गताङ्क पृ० सं० ५९० से आगे]

भगवान्‌के जन्मकी दिव्यता तो पूर्वमें बतलायी जा चुकी, अब कर्मकी दिव्यता भी बतलायी जाती है। भगवान्‌के कर्मोंमें कर्तापनका अभिमान, स्वार्थ, कामना, आसक्ति, ममता आदिका लेश भी नहीं रहता, उनके कर्म सर्वथा शुद्ध और केवल लोगोंका कल्याण करनेके लिये ही होते हैं। इसलिये वे कर्म भी शुद्ध हैं। गीतामें भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥

(४।१३)

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंका समूह गुण और कर्मोंके विभागपूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है। इस प्रकार उस सृष्टि-रचनादि कर्मका कर्ता होनेपर भी मुझ अविनाशी परमेश्वरको तू वास्तवमें अकर्ता ही जान।'

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥

(४।१४)

'कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिये मुझे कर्म लिप्त नहीं करते—इस प्रकार जो मुझे तत्त्वसे जान लेता है, वह भी कर्मोंसे नहीं बँधता।'

भगवान्‌के भी कर्म अनुकरणीय तथा संसारको शिक्षा देनेके लिये ही होते हैं। उनका स्वभाव बहुत ही कोमल और सरल है। वे क्षमा, दया, शान्ति, समता, संतोष, सरलता, ज्ञान, वैराग्य, प्रेम आदि दिव्य गुणोंसे परिपूर्ण हैं। इतने उच्चकोटिके महापुरुष होकर भी वे अपने भक्तोंका अपने समान अधिकार ही मानते हैं। एक तुच्छ मनुष्य भी यदि अपने-आपको और अपने सर्वस्वको भगवान्‌के अर्पण कर देता है तो भगवान् अपने आपको और अपने सर्वस्वको उसके अर्पण कर देते हैं। एक तुच्छ प्राणी भगवान्‌को चाहता है और स्मरण करता है तो भगवान् भी उसे उसी प्रकार चाहते और स्मरण करते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

(गीता ४।११)

'हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ, क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं।'

यह है भगवान्‌के कर्मोंकी दिव्यता! जो भगवान्‌के जन्म और कर्मोंकी दिव्यताको तत्त्वसे जान जाता है, उसका भी कल्याण हो जाता है, फिर उनके आज्ञा-पालन और अनुकरणसे कल्याण हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है।

भला बतलाइये, संसारमें ऐसा कौन मनुष्य है, जो इस प्रकार भगवान्‌के समान बर्ताव कर सकता है। अपनेको भगवान् मनवानेवाले तो बहुत हैं, पर उनमें भगवान्‌के लक्षणोंमेंसे एक भी नहीं घटता। अतः सब लोगोंको सचेत हो जाना चाहिये कि जो अपनेको भगवान् मनवाते हैं, उनसे सदा दूर ही रहें।

इसी प्रकार जो अधिकारी (कारक) महापुरुष होते हैं, उनके जन्म-कर्म भी दिव्य-अलौकिक होते हैं। वे जन्मसे पूर्व ही मुक्त हुए रहते हैं। केवल संसारके कल्याणके लिये भगवान्‌से अधिकार पाकर उनके परम धामसे आते हैं। उनमें दुर्गुण और दुराचारका अंश भी नहीं रहता और उनका शरीर भी अनामय (रोगरहित) होता है। संसारमें जितने भी अवतार या अधिकारी (कारक) महापुरुष हुए हैं, उनमेंसे किसीके कोई बीमारी हुई हो, यह बात ग्रन्थोंमें कहीं नहीं मिलती, क्योंकि बीमारी तो पापोंसे होती है और भगवान् या अधिकारी (कारक) महापुरुष नित्य शुद्ध ज्ञानस्वरूप होते हैं। वे महापुरुष भगवान्‌से अधिकार प्राप्त करके संसारके कल्याणके लिये संसारमें आते हैं, इसीलिये उनको अधिकारी पुरुष कहते हैं। उनमें गीताके १२वें अध्यायके १३वेंसे १९वें श्लोकतक बतलाये हुए भक्तोंके लक्षण तो पहलेसे विद्यमान रहते ही हैं। उदाहरणके लिये श्रीवेदव्यासजी अधिकारी (कारक) महापुरुष हुए। उनका अद्भुत प्रभाव था। उन्होंने जन्म लेते ही अपनी इच्छासे शरीरको बढ़ा लिया और स्वतः ही अङ्गों और इतिहासोंके सहित वेदोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया (महा० आदि० ६०।३)। श्रीवेदव्यासजी जहाँ कहीं भी विशेष आवश्यकता समझते, वहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना बुलाये ही उपस्थित हो जाते थे। उन्होंने महाराज युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंको एकचक्रा नगरीमें जानेसे पूर्व भी दर्शन दिया और वहाँ निवास करते हुए जब पाण्डव वहाँसे जानेका विचार करने लगे, तब पुनः दर्शन दिया और द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाया (महा० आदि० १५४, १६८)। इसी प्रकार पाञ्चालनगरीमें राजा द्रुपदके यहाँ प्रकट होकर उनसे भी द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त कहा एवं उसे दिव्य दृष्टि देकर पाण्डवोंको उनके पूर्व शरीरोंसे सम्पन्न वास्तविक रूपमें दिखला दिया (महा० आदि० १९६)।

इतना ही नहीं, आश्रमवासिकपर्वमें तो ऐसा वर्णन मिलता है कि वहाँ राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्तीके सम्मुख श्रीवेदव्यासजी आये और जब गान्धारी और कुन्तीने अपने मृत पुत्रों तथा कुटुम्बियोंको देखनेकी इच्छा प्रकट की, तब श्रीवेदव्यासजीने उस अठारह अक्षौहिणी सेनाको संहारके सोलह वर्ष बाद भी आह्वान करके बुलाया और सबसे यथायोग्य मिलाकर एवं रातभर रखकर प्रातःकाल लौटा दिया। सोलह वर्ष-पूर्व मरे हुए उन सब प्राणियोंके रूप, आकृति, अवस्था, वेष, ध्वजा और वाहन—ये सब वैसे-के-वैसे ही थे (महा० आश्रम० ३२)। इसी प्रकार राजा जनमेजयके प्रार्थना करनेपर श्रीवेदव्यासजीने राजा परीक्षित्को उसी रूप और अवस्थामें यज्ञमें बुला दिया (महा० आश्रम० ३५)। यह कितने आश्चर्यकी बात है! क्या कोई मनुष्य इस प्रकार कर सकता है? अपनेको अधिकारी (कारक) महापुरुष मनवाना तो बहुत-से मनुष्य चाहते हैं, पर उनके लक्षणोंमेंसे एक भी लक्षण उनमें नहीं घटता। दम्भी लोग अपनेको पुजवानेके लिये अपनेको भगवान् या भगवान्का भेजा हुआ महापुरुष बतलाकर लोगोंको धोखा देते हैं, अतः जो अपनेको अवतार, अधिकारी महापुरुष या ज्ञानी महात्मा कहें, उनके चंगुलमें कभी नहीं फँसना चाहिये, उनसे सदा दूर ही रहना चाहिये, क्योंकि इस समय न तो कोई भगवान्का अवतार है और न कोई अधिकारी (कारक) महापुरुष ही भगवान्का अधिकार पाकर भगवान्के भेजे हुए यहाँ आये हैं। यदि ऐसा होता तो वर्तमानमें जो धर्मका ह्रास और अधर्मकी वृद्धि हो रही है, वह कभी हो नहीं सकती थी, क्योंकि भगवान् और उन अधिकारी (कारक) महापुरुषोंके तो श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक दर्शन, भाषण, वार्तालाप, चिन्तन और सत्सङ्गसे भी मनुष्यका कल्याण हो सकता है, फिर उनकी सेवा, आज्ञाका पालन और अनुकरण करनेसे कल्याण हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है।

इस समय तो महाराज युधिष्ठिर-जैसे महात्माओंका भी सम्पर्क दुर्लभ है, जिनके दर्शन और भाषणसे नहुष-जैसे महान् पापी भी पापसे मुक्त हो स्वर्गको चले गये (महा० वन० अ० १८१)। इतना ही नहीं, महाराज युधिष्ठिर बड़े ही प्रभावशाली पुरुष थे। उनमें सत्य, धैर्य, दान, परम शान्ति, अटल क्षमा, लज्जा, श्री, कीर्ति, उत्कृष्ट तेज, दयालुता और सरलता आदि गुण सदा रहते थे। वे जिस देशमें निवास करते थे, उस देशकी प्रजा धार्मिक बन जाती थी। उस देशमें धन, धान्य, गो-वंश, धर्म और सदाचारकी वृद्धि होती थी। महाराज युधिष्ठिरके प्रभावसे उस देशमें समयपर वर्षा होती, खेत हरे-भरे रहते और धर्मका प्रचार होता था। एवं उस देशके लोग दानशील, उदार, विनयी, लज्जाशील, मितभाषी, सत्यपरायण, शुभ कर्म करनेवाले, जितेन्द्रिय, निर्भय, संतुष्ट, पवित्र, हृष्ट-पुष्ट और कार्यकुशल तथा अभिमान, द्वेष और ईर्ष्या आदि विकारोंसे शून्य होते थे। वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने-अपने धर्मके अनुसार यज्ञ, तप, दान, वेदाध्ययन आदि करते थे। सब अपने धर्मका पालन करते थे (महा० विराट० अ० २८)।

अपनेको युधिष्ठिरके तुल्य बतलाना तो सहज है, पर उनके समान बनना साधारण बात नहीं है। युधिष्ठिर बहुत उच्च कोटिके धर्मात्मा पुरुष थे। उन्होंने बड़ी-बड़ी आपत्तियोंका सामना किया, किंतु अपने धर्मका त्याग नहीं किया। अतएव हमलोगोंको भी युधिष्ठिर-जैसे धर्मात्मा बननेके लिये उनका अनुकरण करना चाहिये।

जो पुरुष इस संसारमें अपने पुण्य-पापमय कर्मोंके फलस्वरूप मनुष्य-जन्म लेनेके पश्चात् साधनके द्वारा इसी जन्ममें मुक्ति-लाभ करते हैं, उनमें भी गीताके १२वें अध्यायके १३वेंसे १९वें श्लोकतक कहे हुए भगवत्प्राप्त भक्तके तथा १४वें अध्यायके २२वेंसे २५वें श्लोकतक कहे हुए गुणातीत ज्ञानीके लक्षण आ जाते हैं, किंतु उनके शरीर अनामय नहीं होते और न उनमें अवतार या अधिकारी (कारक) महापुरुषों-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भाँति जहाँ-कहीं प्रकट हो जाना, मृत व्यक्तियोंको बुलाकर प्रत्यक्ष मिला देना आदि अमानुषिक अलौकिक प्रभाव ही होता है। हाँ, मुक्त हो जानेके अनन्तर उनके कर्म, स्वभाव आदि शुद्ध हो जाते हैं, अतः उनके निष्कामभावसे सङ्ग, वार्तालाप, आज्ञापालन, सेवा और अनुकरणसे मनुष्योंका उद्धार हो सकता है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ (४।३४)

'अर्जुन! तू उस ज्ञानको तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत्-प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे परमात्मतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले वे ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे।'

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

(गीता १३।२५)

'दूसरे जो मन्दबुद्धिवाले पुरुष हैं, वे इस प्रकार ध्यानयोग, ज्ञानयोग और कर्मयोगको न जानते हुए भी दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वको जाननेवाले पुरुषोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसारसागरको निस्संदेह तर जाते हैं।'

भगवान्‌के उपर्युक्त वचनोंपर ध्यान देकर हमलोगोंको भगवत्प्राप्त भक्तों तथा ज्ञानी महात्माओंके श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सङ्ग, वार्तालाप, आज्ञापालन, सेवा और अनुकरण आदिसे विशेष लाभ उठाना चाहिये।

प्रार्थनाका महत्त्व और भगवन्नाम-महिमा

(प्राचार्य डॉ० श्रीजयनारायणजी मल्लिक)

भगवत्प्राप्तिमें प्रार्थनाका बहुत बड़ा महत्त्व है। अध्यात्म-पथपर भगवन्नाम ही आधार है। मानवताके पथ-प्रदर्शनके लिये संसारमें बहुतसे दीपक जले हैं, पर इनमें प्रार्थना और भगवन्नामका दीपक अद्भुत एवं दिव्य है। इसकी मधुमय स्वर्ण-रश्मियाँ सम्पूर्ण भारतवर्षको उद्भासित कर पाश्चात्त्य देशोंमें भी अपनी किरणें विकीर्ण कर रही हैं। आजका संसार भौतिक विज्ञानकी ओर दौड़ा जा रहा है, प्रकृतिके अन्तरालमें जो शक्तियाँ अन्तर्निहित और सुषुप्त हैं, आजका मानव उन्हें जगाकर अपने अधिकारमें करना चाहता है। फिर भी उसके अन्तस्तलमें विराट् पिपासा और विकराल ज्वाला वर्तमान है। इसी पिपासा एवं ज्वालाकी शान्तिके लिये भगवन्नाम तथा प्रार्थनाकी अतीव आवश्यकता है। आजके युगमें लोगोंका ध्यान राजनीति, अर्थशास्त्र तथा विज्ञानके अध्ययनकी ओर लगा हुआ है। लोग धर्म और नीतिसे उदासीन हो चले हैं। नवीन आविष्कारोंकी चकाचौंधमें हमारी आँखें झुक जाती हैं। परंतु यह चीत्कार तबतक शान्त नहीं हो सकता, जबतक मानवता भगवन्नाम और प्रार्थनाके मार्गपर चलना नहीं सीख लेती।

कभी-कभी प्रलोभनोंके बीचमें वासना-सर्पिणी मोहिनी रूप धारण कर हमें अपनी ओर आकृष्ट करनेकी चेष्टा करती है। तिमिरमयी रजनीमें मानवता पिच्छल-पथपर (फिसलन-युक्त रास्तेपर) जा रही है। दोनों ओर खाइयाँ हैं। फिर भी दूर अन्तरिक्षमें भगवन्नामका मार्ग-प्रदर्शक तारा चमक रहा है। हमारे प्राचीन ऋषि और आचार्य हाथ उठाकर इस मधुमय ज्योतिकी ओर संकेत करते हुए कह रहे हैं—'**नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।**'

वस्तुतः भगवन्नामको छोड़कर उस ज्योतितक पहुँचनेका दूसरा मार्ग नहीं है। विज्ञान तो केवल हमारे हाथमें एक शक्ति देता है, पर शक्तिके अभिमानमें हमें भगवान्‌को नहीं भूल जाना चाहिये। आजका मानव बाह्य प्रकृतिपर विजय प्राप्त कर गर्वसे इठलाता हुआ प्रकृतिके अन्तरालमें छिपी अनन्त शक्तियोंको दास बनाना चाहता है, पर वही मानव अपनी अन्तःप्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेकी चेष्टा नहीं कर रहा है। वह अपनी इन्द्रियों और वासनाका दास बन गया है। अपनी अन्तःप्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेका एकमात्र साधन भगवन्नाम-जप तथा प्रार्थना है। भगवान्‌का स्मरण और चिन्तन, भगवान्‌की प्राप्तिमें भगवान्‌को ही उपाय समझना तथा भगवान्‌के श्रीचरणोंपर आत्म-समर्पण कर देना अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासनापर विजय प्राप्त करनेका सर्वोत्तम साधन है। शरणागतकी रक्षा प्रभुका कर्तव्य है। हमारा आधार है भगवत्कृपा।

मानव-जीवनका लक्ष्य क्या है? दुःखकी निवृत्ति और सुखकी प्राप्ति। पर यह होगा कैसे? अन्धकारमें मानवता भटक रही है, उसे प्रकाश और बलकी आवश्यकता है। भयभीत, बद्ध, व्याकुल मानवताके पथ-प्रदर्शनके लिये भगवान्‌की शरणागति एक प्रकाश-स्तम्भ है और जीवनके कंटकाकीर्ण पथपर यही उसका सम्बल है। केवल एकमात्र दिव्यज्योतिः-स्वरूप भगवान् ही आश्रयणीय हैं। विभिन्न मार्गोंकी ओर उसे भटकना नहीं है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

मानव-जीवनमें दुःखकी समस्याका समाधान करनेके लिये असंख्य महामानव इस भूतलपर अवतीर्ण हुए और उन्होंने जीवनको सुखी, समुन्नत और परिष्कृत बनानेकी भरपूर चेष्टा की। सृष्टिके आरम्भमें ही लोगोंने देखा कि जीवनकी सबसे बड़ी यातना मृत्यु है, अतः जीवनको सुखी बनानेके लिये मृत्युपर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। विद्वान् लोग अमरत्वके अन्वेषणमें लग गये। त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका या भव-सागरका मन्थन हुआ। इस विराट् विश्वमें विषके रूपमें तम, मदिराके रूपमें रज और अमृतके रूपमें सत्त्व दृष्टिगोचर हुआ। भव-सागरके मन्थनसे असंख्य रत्न निकले। अमृतका घड़ा भी निकला। भौतिकवादी और अध्यात्मवादी असुर और सुर, दोनोंके सहयोगसे अमृतका पता लगा था। दोनोंके दो दृष्टिकोण थे। एक अपने इसी शरीरको (भौतिक शरीरको) अमर करना चाहते थे। दूसरेने देखा कि मानव जड और चेतन, दोनोंका समन्वय है। जड तो विकारी और परिणामवादी है। प्रत्येक क्षण वह बदलता रहता है। उसके रूपमें आमूल परिवर्तनका ही नाम तो मृत्यु है। चेतनको जडके सम्पर्कसे सर्वथा अलग कर देना ही अमरत्वकी प्राप्ति है।

भौतिकवादियोंने स्थूल शरीर और अन्नमयकोशको अमर रखनेकी भरपूर चेष्टा की। इन्होंने सोचा—मनुष्य मरता ही क्यों है? इन्होंने देखा— मानव-शरीरके भिन्न-भिन्न अवयवोंके जीर्ण होनेसे, मस्तिष्क, हृदय, फेफड़े, पक्वाशय आदिके घिस जानेसे, समुचित भोजन और व्यायाम न मिलनेसे, असंख्य जीवाणुओंके टूटनेसे, रोग-कीटाणुओंके आक्रमणसे, दुर्घटनाओंसे तथा शरीरमें जो कई ग्रन्थियाँ हैं, उनमें समुचित स्राव नहीं होनेसे शरीर-यन्त्र बिगड़ जाता है और मनुष्य मर जाता है। इन्होंने शरीरको नीरोग और दीर्घायु रखनेके बहुतसे उपाय सोचे। रसायनशास्त्रने कई प्रकारके रसोंका, आयुर्वेदने कई ओषधियोंका और हठयोगने कई व्यायामोंका आविष्कार किया, जिनसे मनुष्य दीर्घजीवी बनकर अपने सौन्दर्य और यौवनको अक्षुण्ण रख सकते थे। किंतु अध्यात्मवादियोंने देखा कि नीरोग शरीर ही सब कुछ नहीं है, जीवनकी सफलताके लिये मस्तिष्क और चरित्रका विकास भी आवश्यक है। ये असत्‌से सत्‌की ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर तथा मृत्युसे अमरत्वकी ओर जाना चाहते थे। इन्होंने देखा कि जीवनकी पूर्ण सफलता भगवत्कृपापर निर्भर है और भगवत्कृपा प्राप्त करनेके लिये भगवन्नाम-जप तथा प्रार्थना आवश्यक है।

पूर्वाचार्योंने वेद-शास्त्र-रूपी क्षीर-सागरका मन्थन कर भगवन्नाम तथा प्रार्थनाका अमृत निकाला है। समुद्रके गर्भमें तो विष भी था, मदिरा भी और अमृत भी। भव-सागरके अन्तस्तलमें तम है, रज है और सत्त्व भी है। चाहे कोई देश या धर्म रज और तमका भले ही अन्वेषण कर रहा हो, पर हमने तो केवल सत्त्वको अपनाया है। हम जानते हैं कि **'यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः।'** हमारा हिन्दूधर्म सत्यके आधारपर खड़ा है। भगवान् हमारे साथ हैं, अतः हमारी विजय निश्चित है, हमारा कभी नाश नहीं हो सकता। भगवान् कहते हैं—

कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।

आज संसार भोग-लालसाके शिखरपर चढ़नेके लिये तेजीसे दौड़ रहा है। विज्ञान नये-नये चमत्कार दिखा रहा है। राजनीति और अर्थशास्त्र भौतिक तथा सामाजिक जीवनका विश्लेषण कर रही है, किंतु उस दीपककी ओर किसका ध्यान है जो मानव-शरीरके अन्तर्गत जल रहा है? भोग-लालसाके शिखरपर जब वासना जोरोंसे चीत्कार करेगी—'मुझे नवीन भोजन दो, संसारके सारे भौतिक पदार्थोंका रस मैं चख चुकी, वे अब फीके पड़ गये, उस समय मानवता सोचेगी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ततः किम् ?' वह सँभलेगी और अनुभव करेगी कि वह अनुचित मार्गपर थी। जीवनमें त्याग और तपस्या, स्नेह और बलिदानकी जितनी बड़ी आवश्यकता है, उतनी भोग-वासनाकी नहीं। उस समय पददलित मानवताके पथ-प्रदर्शनके लिये भगवत्प्रार्थना प्रकाश और शक्तिको प्रदान करेगी। सावन-भादोंकी रातोंमें काले-काले बादल उमड़-घुमड़कर कुछ कालके लिये भले ही आकाशको आच्छन्न कर लें, पर इससे सूर्यका नाश नहीं हो सकता। शीघ्र ही प्राचीके प्राङ्गणमें उषा-देवी अरुण-राग-रञ्जित नवीन परिधान धारण कर हेम-कुम्भ ले इस शिथिल भूतलपर अमृत-धारा उड़ेल देती है।

भगवान्‌का नाम वह सुधाकी धारा है, जो मृतकोंमें भी नव-जीवनका संचार करती है। पर प्रश्न तो यह है कि इस अमृतसे जितने मानवोंका उपकार होना चाहिये, वह होता क्यों नहीं है ? हमें क्या अधिकार है कि इस अमृतकी एक आध बूँद अपने-आप पीकर फिर इसे बक्समें बंद कर दें और तृषित मानवता इस अमृतके अन्वेषणमें इधर-उधर भटकती फिरे तथा मदिरा और जहर पीकर ही संतुष्ट हो जाय ? भगवन्नाममें जो सुन्दरता है, जो माधुर्य है, जो आकर्षण है, संसार उससे वञ्चित नहीं रह जाय।

कर्म-संस्कार अविद्याको जन्म देता है। अनादिकालसे कर्म करता हुआ अविद्यासे ढँका जीवात्मा प्रकृतिमें लटपटाया रहता है। पुरुषके सांनिध्यसे प्रकृतिमें कम्पन होता है और प्राकृतिक तीनों गुण सत्त्व-रज-तमकी साम्यावस्था टूट जाती है और प्राकृतिक तत्त्वोंमें विकार उत्पन्न होने लगता है। परिणामवादके अनुसार प्रकृति सदैव बदलती रहती है। पुरुषके जीवनका प्रधान लक्ष्य है—प्रकृतिके विकारोंसे अपने-आपको मुक्त करना। जबतक वह प्राकृतिक विकारोंसे मुक्त नहीं होता, तबतक जन्म-मरणके चक्रसे या चंगुलसे छूट नहीं सकता। जबतक जीवात्मामें कर्म-संस्कार चिपका रहेगा, तबतक वह अविद्यासे या प्रकृतिसे छुटकारा नहीं पा सकता। भगवन्नामके स्मरणसे, प्रार्थनासे तथा भगवान्‌की शरणागतिसे कर्म-संस्कार छूट जाता है तथा अविद्याकी निवृत्ति हो जाती है।

मानवताकी सबसे बड़ी देन है प्रवृत्तिके ऊपर विवेककी विजय। मानवता जब अपना कर्तव्य-ज्ञान भूलकर भोग-वासनाकी ओर झुक जाती है, तब वह अपने स्वरूपसे च्युत हो जाती है। इससे मुक्त होनेका प्रधान साधन प्रार्थना, भगवन्नाम-संकीर्तन और भगवान्‌की शरणागति है। प्रार्थना और आत्म-समर्पणकी भावनासे द्रवित होकर भगवान् अपने शरणागतकी रक्षा स्वयं कर देते हैं।

इच्छा एवं वासनाका सर्वथा दमन सहज सम्भव नहीं है। प्रवृत्ति तो प्रकृतिका सूक्ष्म रूप है। उसकी कुचेष्टा प्रकृतिके साथ एक भीषण संग्राम है।

कर्मयोगसे केवल क्रियमाण कर्म क्षीण हो सकता है, प्रारब्ध और संचित कर्मोंपर कर्मयोगका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। फिर भी कर्मयोगके लिये अनासक्त और निर्लिप्त होना आवश्यक है, जो एक कठिन समस्या है। स्थूल शरीरसे कर्म करनेपर अन्तःकरणमें एक तरंग उठती है, मनमें एक विकार उत्पन्न होता है। यही तरंग—यही विकार सूक्ष्म शरीरका पोषक और वासनाका विकार करनेवाला है। कर्मका प्रतिबिम्ब सूक्ष्म शरीरपर अङ्कित हो जाता है और कर्म-संस्कारके रूपमें संचितके कोषमें चला जाता है। वासना अनेक जन्मोंके कर्मोंका रस पीकर बलवती हो जाती है। वासना संचित कर्मोंकी पुत्री और क्रियमाण कर्मोंकी जननी है। यही वासना आगामी कर्मोंका पथ-प्रदर्शन करती है। हमारे व्यतीत जीवनके कर्मोंके अनुसार वासना तथा प्रवृत्तिकी रूपरेखा निर्मित होती है। वासनाके हननमें ज्ञानयोग भी बहुत अधिक सहायता नहीं करता। ज्ञानयोगकी सफलताके लिये स्थितप्रज्ञ होना आवश्यक है और जबतक अन्तःकरणमें वासना जीवित है, तबतक बुद्धि सर्वथा स्थिर नहीं हो सकती। संसार-चक्रकी परिधिमें कर्मोंके पीछे वासना और वासनाके पीछे कर्म चलते रहते हैं। बाह्य इन्द्रियोंके दमनमात्रसे वासना नहीं मरती। इस प्रकार कर्मयोग या ज्ञानयोग बिना प्रार्थनाकी सहायतासे—बिना परमात्माकी दयासे, वासनाके दमनमें सहज ही सफल नहीं हो सकता।

यह सच है कि परब्रह्मकी झलक मिलते ही वासना अपने-आप मिट जाती है। यदि आसक्ति नहीं मिटी तो बरजोरी बाह्य इन्द्रियोंके दमनमें कोई विशेष लाभ नहीं। पर यह आसक्ति बिना परमात्माकी दयाके मिटेगी कैसे ? जबतक हम प्रार्थनाके रूपमें परमात्माको पुकारेंगे नहीं, तबतक परमात्माकी दया मिलेगी कैसे ? अन्तःकरणकी मलिनता तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब मिटती है, जब भगवन्नाम-जपसे हृदय पवित्र हो उठता है और प्रार्थना करते-करते ब्रह्म-साक्षात्कार होने लगता है।

मानव सृष्टिका शृंगार है। उसके अन्तरमें परमात्माकी एक दिव्य ज्योति जल रही है, जो उसे निम्नस्तरसे ऊपर उठाकर सत्कर्मोंकी ओर प्रेरित करती है और जीवन-यात्रामें उसका पथ-प्रदर्शन करती है। जब जीवनकी आँधी उठती है और तूफानी हवामें उत्ताल-तरंग-माला-संकुल विश्व-पयोधि लहराने लगता है, तब भव-सागरके ज्वारमें एवं धूलि-कणोंके वातावरणमें यह प्रकाश क्षीण और मटमैला हो जाता है। मानव-जीवनमें यह प्रकाश जितना ही जाज्वल्यमान रहेगा, मानवता उतनी ही प्रचुर मात्रामें उसके अन्तर्गत वर्तमान रहेगी। जब पशुता झाँकने लगती है, तब मनुष्य कर्तव्यनिष्ठा और ज्ञानको भूलकर अपनी इन्द्रियोंका दास बन जाता है और भोग-वासनाकी ओर पागलकी तरह दौड़ने लगता है। हमारे अन्तर्गत सदैव देवासुर-संग्राम हो रहा है। हमारे अंदर जो देवता है, वह हमें ऊपर उठानेकी चेष्टा करता है और एक अलौकिक दिव्य रश्मिसे हमें ओत-प्रोत करना चाहता है। पर हमारे जीवनमें जो दानव घुस गया है, वह देवताके साथ संघर्ष करके हमें नीचेकी ओर घसीट रहा है। ऐसे समयमें हमें भगवान्‌की उस मोहिनी मूर्तिकी आवश्यकता है, जो दानवोंको मदिरा पिलाकर सुला दे और देवताओंको अमृत पिलाकर अमर कर दे। भगवत्प्रार्थनासे देवताको बल मिलता है और दानवता मूर्छित हो जाती है।

जबतक कामना नष्ट नहीं होती, तबतक अन्तरात्मामें ज्ञान-रश्मि नहीं छिटक सकती। कामनाको नष्ट करनेका एकमात्र साधन है भगवत्कृपा, भगवत्प्रार्थना, आर्त, निःसहाय, दीन और अकिंचन होकर अपने-आपको भगवान्‌के श्रीचरणों-पर न्योछावर कर देना।

प्रार्थनासे मानव-मस्तिष्ककी सोयी हुई अनन्त शक्तियाँ जग जाती हैं—अविद्याकी राखसे ढकी प्रकाशकी चिनगारी (प्रकाश-कण या जीवात्मा) प्रकाशके समूह (परमात्मा) से साक्षात्कार करने लगती है। अन्यथा हमारे मनोमयकोशमें छिपा हुआ कामना-कीट लाखों प्रयत्न करनेपर भी नहीं मरता।

माधव ! मोह फाँस क्यों टूटै।
बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यन्तर ग्रन्थि न छूटै॥
घृतपूरन कराह अंतरगत ससि-प्रतिबिंब दिखावै।
ईंधन अनल लगाय कलपसत औटत नास न पावै॥
तरु-कोटर महँ बस बिहंग, तरु काटे मरै न जैसे।
साधन करिय बिचार-हीन मन सुद्ध होइ नहिं तैसे॥

(विनयपत्रिका ११५)

इच्छा या वासनारूपी नदी शुभ एवं अशुभ दोनों तटोंको स्पर्श करती हुई प्रवाहित होती है। इस प्रवृत्ति-प्रवाहका सर्वथा अवरोध शक्य नहीं है। किंतु इसका प्रवाह अशुभ वासनामयी प्रवृत्तिसे अर्थात् लोभ, क्रोध, राग, मोहादिसे हटाकर दूसरे तट अर्थात् स्वाध्याय, सत्संग, भक्ति, ज्ञान, योगकी ओर प्रवाहित कर उस वासनाको शुद्ध एवं शुभेच्छामयी बनाकर तीव्र नामजप, ध्यान, धारणा, समाधिद्वारा भगवत्प्राप्ति, पराशान्ति या ब्रह्मनिर्वाण अथवा कैवल्यको प्राप्त किया जा सकता है। इससे समस्त काम-वासना-जालरूपी हृदयग्रन्थियोंका तथा अज्ञानजनित संशयोंका सर्वथा उच्छेदन हो जाता है। इसके साथ ही अनादिकालसे हुए सभी जन्मोंमें एकत्र संचित कर्म भी नष्ट हो जाते हैं और परावर-परब्रह्म परमात्मा भी सदाके लिये विज्ञात एवं दृष्ट हो जाता है। यहीं प्राणीकी कृतकृत्यता हो जाती है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

(मुण्डको० २।२।८)

'अपने विरोधीको अनुकूल बनानेका सबसे अच्छा उपाय यही है कि उसके साथ सरल और सच्चा प्रेम करो। वह तुमसे द्वेष करे, तुम्हारा अनिष्ट करे तब भी तुम तो प्रेम ही करो। प्रतिहिंसाको स्थान दिया तो अवश्य गिर जाओगे।'

'अपने हृदयको सदा टटोलते रहना ही साधकका कर्तव्य है, उसमें घृणा, द्वेष, हिंसा, वैर, मान, अहंकार, कामना आदि अपना डेरा न जमा लें। बुरा कहलाना अच्छा है, परंतु अच्छा कहलाकर बुरा बने रहना बहुत ही बुरा है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्भरा भक्ति

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च॥

(रामचरितमानस)

भक्तिके अनेक प्रकार हैं, उनमेंसे एकका नाम है निर्भरा भक्ति। प्रपत्ति, शरणागति, आत्मनिवेदन, समर्पण आदिके साथ इसका प्रायः सादृश्य है। इस भक्तिमें भक्त स्वाभाविक ही केवल भगवच्चिन्तन-परायण रहता है, शेष सारा काम भगवान् करते हैं। इसकी कई श्रेणियाँ हैं और अधिकारी-भेदसे उनके पृथक्-पृथक् स्वरूप और उपयोग हैं।

निर्भरा अथवा आलम्बन भक्तिमें सबसे पहली आवश्यक चीज है 'विश्वास'। भगवान्में जिसका यह दृढ विश्वास होगा कि भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वेश्वर हैं, मेरे परम आत्मीय हैं, वही अपने किसी कामके लिये भगवान्पर निर्भर करेगा। संसारमें भी हम देखते हैं कि किसी भी क्षेत्रमें और किसी भी कामके लिये जिसमें विश्वास होता है, उसीपर मनुष्य भरोसा करता है। जिसके सम्बन्धमें मनुष्यकी यह धारणा होती है कि 'इससे मेरा काम नहीं सधेगा, अथवा सधेगा या नहीं इसमें संदेह है, या मेरा काम साधनेकी इसमें योग्यता तो है परंतु मेरा काम यह क्यों करेगा, अथवा यह मेरा हित तो करना चाहता है, परंतु इसमें योग्यता एवं शक्तिका अभाव है' उसपर मनुष्य कभी अपने कामके लिये निर्भर नहीं कर सकता, चाहे वह कितना ही शक्तिमान् हो अथवा कितना ही सुहृद् हो। जिसमें दोनों बातें होती हैं, उसीपर मनुष्य भरोसा करता है और यही भरोसा बढ़ते-बढ़ते निर्भरताके स्वरूपमें परिणत हो जाता है। इसीसे भगवान्ने गीतामें कहा है—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(५।२९)

'मुझको समस्त यज्ञ-तपोंका भोक्ता, सब लोकोंका महान् ईश्वर और सब प्राणियोंका अहैतुक मित्र जान लेनेपर मनुष्य शान्तिको प्राप्त हो जाता है।'

मनुष्यके मनमें नाना प्रकारके मनोरथ हैं। संसारमें वह सदा ही अपनेको किसी-न-किसी अभावसे ग्रस्त पाता है। किसी भी अवस्थामें वह यह अनुभव नहीं करता कि मुझको सब कुछ मिल गया, अब और कुछ भी नहीं चाहिये। बड़ी-से-बड़ी दुर्लभ वस्तुके पानेपर भी वह उसमें किसी कमीका अनुभव करता है और यह सोचता है कि जब मेरी यह कमी पूरी होगी, तब मुझे शान्ति मिलेगी। यह अभावका अनुभव कभी मनुष्यके चित्तको शान्त नहीं होने देता। शान्तिकी दो ही स्थितियाँ हैं, जिनमें एक तो वह स्थिति है, जिसमें पहुँचनेपर वह स्वयं शान्तिस्वरूप हो जाता है। फिर उसे किसी वस्तुकी कमीका कभी बोध होता ही नहीं। वह सभीमें सर्वत्र, सर्वथा और सर्वदा एकमात्र परमात्माको देखता है और अपनेको उनसे अभिन्न पाता है। उसकी यह पूर्णता उसकी स्वरूपभूता होती है, इसीका नाम मुक्ति है। दूसरी वह स्थिति है, जिसमें वह अपनेको सदा-सर्वदा भगवान्के संरक्षणमें पाता है, जहाँ भगवान् अनन्त हाथों और अनन्त शक्तियोंसे उसकी कमीको पूरा करनेके लिये सदा प्रस्तुत रहते हैं, परंतु उसे भगवान्को पाकर किसी कमीका अनुभव होता ही नहीं, वह कृतार्थ हो जाता है, यहाँतक कि मुक्तिकी ओर भी उसकी नजर भूलकर कभी नहीं जाती। वह इस बातको पहले ही जान लेता है कि जगत्में जितने भी यज्ञ-तप किये जाते हैं, विभिन्न देवताओंके रूपमें एकमात्र भगवान् ही उन सबके भोक्ता हैं। अतएव देवोपासनारूप कर्मसे जिनको जो कुछ भी फल मिलता है, सब भगवान्के अपरिमित भण्डारसे ही आता है। भगवान् ही सब लोकोंके विभिन्न ईश्वरोंके एकमात्र महान् ईश्वर हैं और वे भगवान् जीवमात्रके परम सुहृद् होनेके कारण मेरे भी परम सुहृद् हैं। यह जानते ही उसे शान्ति मिल जाती है। उसे निश्चय हो जाता है कि अब मैं सब प्रकारसे सुरक्षित और पूर्णकाम हो गया। क्योंकि जिनमें समस्त सत्कर्मोंका फल निहित है, वे सब ईश्वरोंके ईश्वर सर्वशक्तिमान् भगवान् जब मेरे परम सुहृद् हैं, तब मुझे किसका डर और किस बातका अभाव रह गया? ऐसी अवस्थामें वह सब प्रकारसे भगवान्पर निर्भर करके निश्चिन्त और शान्तचित्त हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकामी भक्तोंमें तीन तरहके भक्त माने गये हैं—अर्थार्थी, आर्त और जिज्ञासु **'आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी'**। इनमें एक तो वह है जो किसी भी अर्थकी सिद्धिके लिये—धन, जन, मान, यश, भोग, स्वर्ग आदिकी प्राप्तिके लिये भगवान्‌को भजता है, दूसरा वह है जो प्रारब्धवश किसी संकटमें पड़कर उससे त्राण पानेके लिये भगवान्‌की भक्ति करता है और तीसरा वह है जो भगवान्‌की प्राप्तिका सरल और सहज पथ जाननेके लिये भगवान्‌को याद करता है। इन तीनों सकामी भक्तोंकी सकाम भक्तिको भी तभी पूर्ण समझना चाहिये जब कि वे भगवान्‌को ही एकमात्र आश्रय मानकर उन्हींपर निर्भर करें। और तभी उन्हें अनायास फल भी मिलता है। ध्रुव अर्थार्थी भक्त थे, वे ज्यों ही भगवान्‌पर निर्भर हो गये त्यों ही उन्हें उनका इच्छित फल मिल गया, द्रौपदी और गजराज आर्त भक्त थे और जबतक वे दूसरोंसे त्राणकी जरा भी आशा करते रहे, तबतक उनके संकट दूर नहीं हुए, जब एकमात्र भगवान्‌पर निर्भर करके उनको पुकारा, तब उसी क्षण भगवान्‌ने स्वयं प्रकट होकर उनके दुःख दूर कर दिये। जिज्ञासु भक्त तो ऐसे बहुत हुए हैं जो भगवान्‌पर निर्भर करके भगवत्प्रेरणासे भगवान्‌के पथपर सहज ही आरूढ़ हो गये हैं। सकाम भावकी इस निर्भरताके लिये बंदरके बच्चेसे तुलना करके संतलोग बिल्लीके बच्चेका दृष्टान्त दिया करते हैं। जो भक्तिसम्प्रदायमें वानरीधृति और वैडालीधृतिके नामसे विख्यात हैं। बंदरका बच्चा स्वयं कूदकर माँको पकड़कर उसके स्तन पान करने लगता है। परंतु भूखा बिल्लीका बच्चा माँकी प्रतीक्षा करता हुआ अपने स्थानमें बैठा रहता है, स्वयं माँ उसकी चिन्ता करती है और उसके पास आकर जहाँ ले जाना होता है, अपने मुँहसे उठाकर उसे वहाँ ले जाती है और अपना दूध पिलाकर संतुष्ट करती है। इसी प्रकार जो मनुष्य किसी भी कामकी सिद्धिके लिये श्रद्धा-विश्वासपूर्वक भगवत्कृपाकी प्रतीक्षा करते हुए भगवान्‌पर निर्भर करते हैं, उनके कामको भगवान् स्वयं पधारकर पूरा कर देते हैं। नरसी मेहता आदि अनेक भक्तोंके उदाहरण इसमें प्रमाण हैं। परंतु जहाँतक ऐसा सकामभाव है, वहाँतक भगवान्‌में निर्भरता आंशिक ही है।

इसके बाद यह होता है कि मनुष्य कुछ चाहता तो है, उसे अभावका अनुभव तो होता है, परंतु उस अभावकी पूर्ति किस वस्तुसे होगी, इसको वह नहीं जानता, उसका विश्वास है कि जिस वस्तुसे मेरे अभावकी पूर्ति होगी, उसको भगवान् जानते हैं और इसलिये वह उस अज्ञात वस्तुके लिये भगवान्‌पर निर्भर करता है। जैसे छोटा शिशु बिस्तरपर पड़ा रोता है, उसे कोई कष्ट है, जाड़ा लग रहा है, मच्छर काट रहे हैं या और कोई पीड़ा है, वह यह नहीं जानता कि किस वस्तुकी प्राप्ति होनेपर मेरा संकट दूर होगा, वह केवल माँको जानता है और रोकर माँको बुलाता है। माँ आकर स्वयं पता लगाती है कि बच्चा क्यों रो रहा है और पता लगाकर स्वयं उसके कष्ट-निवारणका उपाय करती है। इसी प्रकार इस अवस्थामें भक्त अपने लिये उपयोगी अज्ञात फलके लिये भगवान्‌पर निर्भर करता है और उन्हींकी कृपासे कल्याणकारी फलको प्राप्त करके संतुष्ट होता है। इसमें फलरूप वस्तुका निर्णय भगवान् करते हैं, इसलिये निर्भरताका यह स्तर पहलेसे ऊँचा होनेपर भी सकामभाव होनेके कारण यह भी वस्तुतः आंशिक ही है।

इसके बाद उन भक्तोंकी बात है, जो केवल भगवान्‌को ही प्राप्त करना चाहते हैं, और उसके लिये भगवान्‌पर ही निर्भर करते हैं। इनके लिये भी बिल्लीके बच्चे और छोटे शिशुकी उपमा दी जा सकती है। ये केवल चिन्तन-परायण रहते हैं, उसका फल भगवान्‌की प्राप्ति कब होगी, क्योंकर होगी, इस बातको भगवान्‌पर ही छोड़ देते हैं, और वास्तवमें यों भगवान्‌पर छोड़नेवाले बड़े लाभमें ही रहते हैं। क्योंकि प्रथम तो कोई शर्त न होनेसे इनके भजनमें निष्काम और अनन्यभाव रहता है—दूसरे, जिसको पाना है, वही भगवान् जब स्वयं मिलना चाहें, तब उनके मिलनेमें विलम्ब भी नहीं होता। भक्तको कहीं चलकर नहीं जाना पड़ता, बिल्लीकी भाँति या छोटे शिशुकी स्नेहमयी जननीकी भाँति स्वयं भगवान् ही उसके समीप आ जाते हैं। ऐसे ही भक्तोंके लिये भगवान्‌की यह प्रतिज्ञा है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९।२२)

'केवल मुझपर ही निर्भर रहनेवाले जो भक्त नित्य मेरा चिन्तन करते हुए मुझे भलीभाँति भजते हैं, उन नित्य मुझमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे हुए भक्तोंका 'योग-क्षेम' मैं स्वयं वहन करता हूँ।'

अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिका नाम 'योग' है और प्राप्त वस्तुके संरक्षणका नाम 'क्षेम' है। इस 'योग' और 'क्षेम' के वहनका सारा भार स्वयं भगवान् अपने ऊपर ले लेते हैं। संसारमें हम देखते हैं कि अल्पज्ञ और अल्पशक्तिवाले होनेपर भी जिनपर हमारा विश्वास होता है वे वैद्य, डॉक्टर जब हमारी चिकित्साका भार ले लेते हैं तब हम निश्चिन्त होकर उनपर निर्भर होने लगते हैं। अपना जीवन उन्हें सौंप देते हैं, विश्वासपूर्वक उनकी दी हुई दवा लेते हैं, चाहे वह जहर ही क्यों न हो और उनकी आज्ञानुसार पथ्य भी ग्रहण करते हैं। हमारी असमर्थतामें कोई श्रेष्ठ पुरुष जिनकी शक्ति और सद्भावनापर हमारा विश्वास होता है हमारे जीवन-निर्वाहका भार ले लेते हैं, तब हम निश्चिन्त होकर उनपर अपनेको छोड़ देते हैं। केवटके विश्वासपर नौकामें बैठ जाते हैं, चलानेवालेपर निर्भर करके मोटर और हवाईजहाजमें बैठ जाते हैं और मनमें कोई चिन्ता नहीं करते। तब स्वयं अपने मुँहसे हमारे सुहृद् होनेकी घोषणा करनेवाले सर्वसमर्थ सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ सर्वलोकमहेश्वर भगवान्पर निर्भर करनेमें तो हमारा कल्याण-ही-कल्याण है। वे हमारे परम सुहृद् हैं, इसलिये कभी अकल्याण नहीं कर सकते, वे सर्वज्ञ हैं इसलिये हमारा कल्याण किस बातमें है, इसको अच्छी तरह जानते हैं, वे कभी भूल नहीं कर सकते। और सर्वशक्तिमान् हैं, इसलिये हमारा कल्याण अनायास ही कर सकते हैं। और वे यहाँतक जिम्मा लेनेको तैयार हैं कि तुम्हारे लिये जो आवश्यक अप्राप्त वस्तु है, उसकी प्राप्ति मैं करवा दूँगा और जो आवश्यक वस्तु प्राप्त है, उसकी रक्षा मैं करूँगा। इतनेपर भी हम यदि उनपर निर्भर करके उनके चिन्तनपरायण नहीं होते, तो फिर हमारे समान मन्दबुद्धि तथा मन्दभाग्य और कौन होगा? इसलिये अनन्यभक्तको अपने योगक्षेम आदिकी सभी चिन्ताएँ भगवान्पर छोड़कर सर्वथा उन्हींके आश्रित एवं उन्हींपर निर्भर रहना चाहिये। (क्रमशः)

संकोच

आज प्रभुका आगमन है !
उल्लसित उर हो रहा यह जानकर उत्फुल्ल मन है !
किंतु कह तो पास मेरे प्रेमपूरित कौन धन है ?
जो उन्हें उपहार दूँ मैं ?
नयनके मोती मनोरम आर्द्र-उरका प्यार दूँ मैं ?
क्यों नहीं सर्वस्व अपना आज उनपर वार दूँ मैं ?
जो दृगोंमें था समाया !
सच हुआ, सपना हुआ, अपना कभी था जो पराया !
यह अरे, कितने दिनोंके बाद स्वर्ण-सुयोग आया !
आज दोका एक होगा !
मरु-सदृश इस शुष्क 'जीवन'में सरस उद्रेक होगा !
चिर बिरहके मंत्रपर प्रभु-मिलनका अभिषेक होगा !
तिमिरपूरित हृदय मेरा !
झाँकने जिसको न आया भूल कर स्वर्णिम सबेरा !
कर सकेंगे आह इसमें प्राणपति कैसे बसेरा ?

—रामाधार त्रिपाठी 'जीवन'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य शंकरका शक्तितत्त्व-विमर्श

(पद्मभूषण पण्डित श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

[गताङ्क पृष्ठ-संख्या५९४ से आगे]

'समया'का अर्थ

आचार्य पराशक्तिके लिये 'समया' शब्दका तथा परमशिवके लिये 'समय' अभिधानका प्रयोग करते हैं। सौन्दर्यलहरीके ४१वें पद्यमें उनका कथन ध्यान देने योग्य है—

तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया
नवात्मानं मन्ये नवरसमहाताण्डवनटम्।
उभाभ्यामेताभ्यामुदयविधिमुद्दिश्य दयया
सनाथाभ्यां जज्ञे जनकजननीमज्जगदिदम्॥

मूलाधारमें समया अपना कमनीय लास्य दिखलाती है तो भगवान् शंकर नवरसोंसे सम्पन्न महाताण्डव नृत्यका प्रदर्शन करते हैं। इस नृत्यसे सृष्टि होती है, जिससे माता-पितावाले जगत्का सद्यः सर्जन होता है। इस भावार्थको ध्यानमें रखनेपर 'समया' नामकी व्युत्पत्ति सद्यः स्फुरित होती है। यह 'समय' शब्द कालवाचक नहीं है, प्रत्युत अपनी व्युत्पत्तिसे 'साम्यको 'प्रापणकर्त्री' का अर्थ विद्योतित करता है। **'शम्भुना साम्यं यातीति समया।'** शिवके साथ शक्तिका साम्य होता है और शक्तिके साथ शिवका साम्य होता है। फलतः दोनोंका समसाम्य है। यह साम्य पञ्चविध है—(१) अधिष्ठान-साम्य (एक ही आधारमें साम्य—दोनोंके मूल आधारमें स्थित होनेसे यह साम्य विद्यमान है), (२) अनुष्ठान-साम्य (उत्पादन-कार्यमें दोनोंके संलग्न होनेसे यह साम्य है), (३) अवस्थान-साम्य (दोनोंकी स्थिति एक प्रकार है, क्योंकि एक ही नृत्य-कार्य दोनोंद्वारा सम्पन्न होता है), (४) रूप-साम्य (दोनों जपाकुसुमके समान अरुण-वर्ण हैं)। (५) नाम-साम्य (नामकी समता है—एकका नाम है 'समय' तो दूसरेका नाम है 'समया'।)

इस पञ्चविध साम्यकी स्थिति शिव और शिवा शक्तिमें निरन्तर विद्यमान है। सोलह आना रूपमें दोनों आठ-आठ आना हैं, न कोई इससे अधिक है और न कम। इसीलिये वे 'समय' और 'समया' संज्ञाओंसे अभिहित किये जाते हैं।

समयाचार

शाक्ततन्त्रोंमें दो प्रकारका आचार होता है। एकका नाम है समयाचार तो दूसरेका कुलाचार। प्रथम उपासक 'समयी' कहलाते हैं तो दूसरे 'कौल'। दोनोंके आचारोंमें अन्तर है। कौलोंकी पूजा बहिःपूजा होती है तो समय-मार्गियोंकी अन्तः-पूजा। समयमार्गियोंकी षट्चक्रकी पूजा नियत नहीं है, वे सहस्रदलकमलमें ही पूजा करते हैं। सहस्रदलकमल-पूजा एक बहुत ही रहस्यमयी पूजा है। (द्रष्टव्य, सौन्दर्यलहरीके पद्य ९ तथा ४१ की लक्ष्मीधरा व्याख्या)। लक्ष्मीधरका कथन है कि हृदयकमलमें भगवतीकी आराधनासे समस्त ऐहिक फलोंकी प्राप्ति होती है। होम, तर्पण आदि समस्त पूजा हृदयकमलमें ही करनी चाहिये। फलतः समयमार्गमें अन्तः-पूजासे ही ऐहिक (लौकिक) एवं आमुष्मिक (पारलौकिक) फलोंकी प्राप्ति होती है। अतः वह सर्वदा अनुष्ठेय है। कौलमतमें बाह्यपूजाका विधान है, जिसमें षोडशोपचारके द्वारा बाहर विशेष रूपसे पूजा सम्पन्न की जाती है, परंतु समयी-मतमें बाह्य पूजाका सर्वथा अभाव होता है। कौलमत ६४ तन्त्रोंके द्वारा प्रतिपादित है और लक्ष्मीधरकी सम्मतिमें अवैदिक है, जिसमें शूद्रोंको भी अधिकार है (द्रष्टव्य, सौन्दर्यलहरीके श्लोक ३१की व्याख्या)

त्रिपुरा

शंकराचार्यके द्वारा आराध्य भगवतीका नाम 'त्रिपुरा' भी है, जो ललिता, त्रिपुरसुन्दरी, षोडशी नामोंसे भी प्रख्यात है। दश महाविद्याओंमें प्रथम तीनका अतिशय महत्त्व है और वे हैं—काली, तारा तथा षोडशी। 'त्रिपुरा' नामके तन्त्र-ग्रन्थोंमें अनेक तात्पर्य बतलाये गये हैं। कामराज-विद्याकी अधिष्ठात्री 'श्रीविद्या' का ही नामान्तर 'त्रिपुरा' है[१]। त्रिपुराका अर्थ है— (१)त्रि (तीन मूर्तियोंमें) पुरा (पुरातन) अर्थात्

१-शाक्तप्रमोद आदि शाक्तागम तन्त्र ग्रन्थोंके अनुसार दशमहाविद्याओंमें त्रिपुरभैरवी ही त्रिपुरा नामसे अभिहित हैं। षोडशीका नाम त्रिपुरसुन्दरी, ललिता तथा श्रीविद्या आदि है, जो ललितासहस्रनामके सौभाग्यभास्कर भाष्यमें विशेष रूपसे व्याख्यात है। श्रीविद्याके मुख्य ग्रन्थ श्रीविद्यार्णव, वरिवस्या-रहस्य एवं मन्त्रमहोदधि आदि हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणमयातीता त्रिगुणनियन्त्री शक्ति। त्रिपुरार्णवमें इस शब्दकी निरुक्ति है—मन, बुद्धि तथा चित्त-रूपी तीन पुरोंमें निवास करनेवाली शक्ति। त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश) की जननी होनेसे, त्रयीमयी (वेदत्रयी) होनेसे, महाप्रलयमें त्रिलोकोंको अपनेमें लीन करनेसे जगदम्बा त्रिपुरा नामसे पुकारी जाती हैं। वामकेश्वर तन्त्रमें त्रिपुराका स्वरूप इस प्रकार वर्णित है—ब्रह्मा, विष्णु तथा ईशरूपिणी श्रीविद्याके ही ज्ञान-शक्ति, क्रिया-शक्ति तथा इच्छा-शक्ति—ये तीन स्वरूप हैं। इच्छा-शक्ति उसका शिरोभाग है, ज्ञान-शक्ति मध्यभाग है और क्रिया-शक्ति अधोभाग है। इस प्रकार उसका शक्तित्रयात्मक रूप होनेसे ही वह जगदम्बा 'त्रिपुरा' कही जाती हैं। त्रिपुराम्बा आत्मशक्ति है। श्रीविद्या ही चिच्छक्ति है। यथार्थ रूपसे वेद तथा तन्त्र श्रीविद्याके वास्तविक स्वरूपका वर्णन नहीं कर सकते। यही आत्मशक्ति-रूपिणी श्रीविद्या जब लीलासे शरीर धारण करती है, तब वेद-शास्त्र उसका निरूपण करने लगते हैं। अखिल प्रमाणोंकी प्रमात्री वही शक्ति 'चिच्छक्ति' नामसे व्यवहृत की जाती है।

'त्रिपुरा' नामकरणके लिये ऊपर जो कारण बतलाये गये हैं, उन सबका एकत्र वर्णन शंकराचार्यके 'प्रपञ्चसार'के अष्टम पटलके द्वितीय पद्यमें किया गया है—

त्रिमूर्तिसर्गाच्च पुराभवत्वात्
त्रयीमयत्वाच्च पुरैव देव्याः।
लये त्रिलोक्या अपि पूरणत्वात्
प्रायोऽम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम॥

एक स्तुतिमय पद्यमें भी इस तत्त्वको दुहराया गया है—

त्रिमुखि त्रयीस्वरूपे त्रिपुरे त्रिदशाभिवन्दिताङ्घ्रियुगे।
त्रीक्षणविलसितवक्त्रे त्रिमूर्तिमूलात्मिके प्रसीद मम॥

त्रिपुरसुन्दरी विद्या (अथवा पञ्चदशाक्षरी विद्या)

त्रिपुरसुन्दरीकी इस पञ्चदशाक्षरी विद्याका उद्धार शंकराचार्यने सौन्दर्यलहरीके ३२वें पद्यके द्वारा किया है—

शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः
स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परामारहरयः।
अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिता
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम्॥

यह विद्या अत्यन्त रहस्यमयी मानी जाती है। सोम, सूर्य, अनिलात्मक त्रिखण्ड यह मातृकामन्त्र कहा जाता है। ये खण्ड अक्षर-रूपोंमें इस प्रकार हैं—

प्रथम खण्ड—क, ए, ई, ल, ह्रीं।
द्वितीय खण्ड—ह, स, क, ह, ल, ह्रीं।
तृतीय खण्ड—स, क, ल, ह्रीं।
चतुर्थ खण्ड—श्रीं।

इस श्लोककी व्याख्यामें लक्ष्मीधरका कथन है कि प्रथम वर्णचतुष्टय आग्नेय खण्ड है, द्वितीय वर्णपञ्चक सौर खण्ड है। दोनों खण्डोंके बीचमें रुद्र-ग्रन्थिस्थानीय हृल्लेखा बीज है। तृतीय खण्डका निरूपण वर्णत्रयीद्वारा किया गया है, यह सौम्य खण्ड है। सौर तथा सौम्य खण्डोंके बीचमें विष्णु-ग्रन्थि-स्थानीय भुवनेश्वरी बीज स्थापित है। चतुर्थ एकाक्षर चन्द्रकला खण्ड है। सौम्य खण्ड तथा चन्द्रकला खण्डके मध्यमें ब्रह्मग्रन्थिस्थानीय हृल्लेखा बीज है। श्रीं—यह षोडशी कला है। इसी बीजको श्रीविद्या कहते हैं। लक्ष्मीधरने इसे 'गुरूपदेशादवगन्तव्य' कहा है। आद्य तीनों खण्ड ज्ञान, इच्छा और क्रिया, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, विश्व, तैजस, प्राज्ञ, तम, रज और सत्त्व हैं। इन त्रिरूपोंमें भी खण्ड-विभाग समझना चाहिये। यह अवरोहक्रमसे जानना चाहिये। (द्रष्टव्य सौन्दर्यलहरीकी लक्ष्मीधरा व्याख्या)।

'त्रिपुरसुन्दरीमहिम्नःस्तव' नामसे क्रोधभट्टारक देशिकेन्द्र दुर्वासाके द्वारा विरचित तान्त्रिक प्रमेयबहुला स्तुति तन्त्रशास्त्रमें बहुत प्रसिद्ध है। यही त्रिपुरामहिम्नःस्तव तथा शक्तिमहिम्नःस्तव नामसे भी विख्यात है। श्रीविद्याके प्रवर्तक द्वादशशिष्योंमें दुर्वासा अन्यतम हैं। इन शिष्योंके नाम इस प्रकार हैं—

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः।
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा।
क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशामी उपासकाः[1]॥

१-श्रीविद्यार्णवतन्त्रके सप्तम श्वासके प्रारम्भमें आचार्योंके नामोंमें अग्नि तथा इन्द्रके स्थानपर नन्दी तथा विष्णु पाठ है। मूल वचन इस प्रकार है—

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च कामराट्। अगस्त्यनन्दिसूर्याश्च विष्णुस्कन्दशिवास्तथा॥
दुर्वासाश्च महादेव्या द्वादशोपासकाः स्मृताः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें प्रत्येकका पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय था। इस समय चतुर्थ (लोपामुद्रा) एवं पञ्चम (मन्मथ-कामदेव) के ही दो सम्प्रदाय प्रचलित हैं। कामराजविद्या ककारादि पञ्चदश-वर्णात्मक है। यही कामेश्वराङ्कित कामेश्वरीकी पूजा कादि, हादि दोनों विद्याओंसे युक्त नामकथा सत्-सम्प्रदायोंमें प्रचलित है अन्य दस विद्याएँ केवल आम्नाय-पाठमें ही उल्लिखित हैं। प्रचलित उपासनामें इनका उपयोग नहीं है।

कामदेवके त्रिपुराके प्रभावशाली शिष्य होनेका उल्लेख शंकराचार्यने सौन्दर्यलहरीमें दो सारभूत श्लोकों (५ तथा ६) में किया है। कामदेव अनङ्ग है—अङ्गोंसे विरहित है। अतः बाण मारनेमें नितान्त दुर्बल है। मानवों तथा देवोंसे युद्धमें उसके साधन नितान्त शक्तिहीन हैं, परंतु भगवतीके नयनकोणोंकी केवल एक झलक पाकर वह महामुनियोंको भी—समस्त जगत्को अपने वशीभूत करनेमें सद्यः समर्थ होता है—

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी पञ्चविशिखा
वसन्तः सामन्तो मलयमरुदायोधनरथः।
तथाप्येकः सर्वं हिमगिरिसुते कामपि कृपा-
मपाङ्गात्ते लब्ध्वा जगदिदमनङ्गो विजयते॥

(सौन्दर्यलहरी पद्य ६)

फलतः कामदेव त्रिपुरसुन्दरीका बड़ा ही भक्त तथा समर्थ उपासक है। इसलिये उसका तन्त्रसम्प्रदाय आदरकी दृष्टिसे देखा जाता है। लक्ष्मीधरने इसीलिये इस श्लोककी व्याख्याके आरम्भमें कहा है—**मन्मथस्य अनङ्गविद्यायां मन्मथप्रस्तारस्य ऋषित्वात् तदायत्तमतिप्रागल्भ्यं धनुःपौष्पमिति।**

देशिकेन्द्र दुर्वासाकी रचनाचातुरी उनके दोनों स्तोत्रोंमें नितान्त आकर्षक तथा मोहक है। शक्तिमहिम्नःस्तव[1] ५८ पद्योंमें एवं परशम्भुमहिम्नःस्तव १३ प्रकरणोंमें तथा १४१ पद्योंमें उपनिबद्ध है। उनके ये दो स्तव तान्त्रिक रहस्योद्घाटननैपुण्यके सद्यः उद्घाटक तथा प्रकाशक हैं। दोनोंके एक-एक पद्य यहाँ इस नैपुण्यके समर्थनमें उद्धृत किये जाते हैं—

त्रिपुरा-स्तुति

श्रीमातस्त्रिपुरे परात्परतरे देवीत्रिलोकीमहा-
सौन्दर्यार्णवमन्मथोद्भवसुधाप्राचुर्यवर्णोज्ज्वलम्।
उद्यद्भानुसहस्रनूतनजपापुष्पप्रभं ते वपुः
स्वान्ते मे स्फुरतां त्रिलोकनिलयं ज्योतिर्मयं वाङ्मयम्॥

(आदिम पद्य)

परशिव-स्तुति

शब्दार्थाधारभूतं त्रिभुवनजनकं सर्वतो दिक् सतत्त्वं
त्रैलोक्यस्थायि लिंगत्रयविदितपदं सर्वतत्त्वैकवेद्यम्।
सर्वानिर्वाच्यसत्तागतपरविभवज्योतिरुग्जृम्भमाणं
व्यक्तीकृत्यात्मवर्णः प्रकटयसि परं तत्त्वमात्मीयमग्रे॥

(दशम प्रकरण १५वाँ पद्य)

दुर्वासाका प्रथम स्तोत्र तो प्रसिद्ध है, परंतु शिवपरक स्तोत्र उतना प्रसिद्ध नहीं है। इसका नाम परशम्भुमहिम्नःस्तव है। इसके १३ प्रकरण हैं। उपोद्घात प्रकरण (पद्य १८), पराशक्तिस्कन्धरश्मि (पद्य ७), इच्छाशक्ति-स्कन्धरश्मि (६), मातृकाशक्ति-स्कन्धरश्मि (१०), षडन्वय-रश्मिविवेक-स्कन्ध (५), पावकध्यानयोग (११), महाविभूति (१७), अन्तर्यागोपचार-परामर्श (८), विशेषोपचार-परामर्श शान्ति-प्रकरण (१२) आदि प्रकरणोंके श्लोकोंकी सम्मिलित संख्या १४१ है। प्रकरणोंके उपरिनिर्दिष्ट नामोंसे वर्ण्य विषयोंका किंचित् परिचय मिल जाता है। अन्तमें दुर्वासाका नाम तथा स्तुति इस प्रकार है—

श्रीक्रोधभट्टारकदिव्यनाम्ना दुर्वाससा सूक्तमहामहिम्नः।
स्तोत्रं पठेद्यो भुवनाधिपत्यं नित्यं गुरुत्वं शिवतामुपैति॥ १६॥

× × ×

सदसदनुग्रहविग्रहगृहीतमुनिविग्रहो भगवान्।
सर्वासामुपनिषदां दुर्वासा जयति देशिकः प्रथमः॥ १८॥

दुर्वासाकी आदिविद्या त्रयोदशाक्षरी बतलायी जाती है। इनका सम्प्रदाय सर्वांशतः लुप्तप्राय है, परंतु लोपामुद्रा-सम्प्रदायकी दशा इससे भिन्न है। यह कियदंशमें आज भी प्रचलित है। लोपामुद्रा भी हादिविद्या है, परंतु वह पञ्चदशाक्षरी १५ वर्णोंकी बतलायी जाती है। त्रिपुरोपनिषद्, भावनोपनिषद् निश्चयेन कादिविद्याके ही ग्रन्थ हैं। सम्भवतः कौलोपनिषद् भी इसी विद्यासे सम्बद्ध है। त्रिपुरोपनिषद्के टीकाकार भास्करायके उपोद्घात पद्यके अनुसार यह ग्रन्थ शाङ्खायन आरण्यकके अन्तर्गत है। हादिविद्याका प्रतिपादन त्रिपुरतापिनी उपनिषद्में है।

१- द्रष्टव्य, डॉ० शिवशंकर अवस्थी, मन्त्र और मातृकाओंका रहस्य, पृष्ठ २११-२४० चौखम्बा, काशी, सन् १९६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोपामुद्राका सम्प्रदाय हादिविद्याका उपासक है। लोपामुद्रा राजकन्या थीं। इनके पिता महाराजा थे और त्रिपुरसुन्दरीके बड़े भक्त थे। लोपामुद्राने बालकपनमें उनकी बड़ी सेवा की और प्रसन्न पिताके प्रसादसे ये भगवतीकी कृपापात्र बन गयीं। इनका विवाह ऋषि अगस्त्यसे हुआ था। वे वैदिक ऋषि थे, परंतु वे पहले तान्त्रिक नहीं थे। इसलिये भगवतीके ध्यानमें पदार्पण करनेका भी उन्हें अधिकार प्राप्त नहीं हुआ था, परंतु उन्होंने अपनी पत्नीसे दीक्षा ली। तब भगवतीकी उपासनाके अधिकारी बने। उनका भी सम्प्रदाय है, जो उपलब्ध नहीं होता।

दश महाविद्याओंके नाम ये हैं—(१) काली, (२) तारा, (३) षोडशी (श्रीविद्या), (४) भुवनेश्वरी, (५) भैरवी, (६) छिन्नमस्ता, (७) धूमावती, (८) बगला, (९) मातंगी तथा (१०) कमला। इनमें षोडशीका माहात्म्य सर्वाधिक है। श्रीविद्या तान्त्रिक दृष्टिसे अभ्यर्हित है तथा वैदिक दृष्टिसे भी वह सर्वाधिक माननीय है। श्रीविद्या शक्तिचक्रकी सम्राज्ञी है तथा ब्रह्मविद्या-स्वरूप आत्मशक्ति है। यह उक्ति इनके भक्तोंके लिये नितान्त विश्रुत है—

यत्रास्ति भोगो न हि तत्र मोक्षो
यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

इस पद्यके दृष्टान्तके रूपमें दुर्गासप्तशतीमें वर्णित दो साधकोंका चरित्र प्रस्तुत किया जा सकता है। एक तो था चैत्रवंशमें उत्पन्न सुरथ नामक राजा और दूसरा था धनिकोंके कुलमें उत्पन्न समाधि नामक वैश्य। दोनोंने भगवती दुर्गाकी आराधना तीन वर्षोंतक की थी। प्रसन्न होकर भगवतीने दोनोंसे वर माँगनेकी प्रार्थना की, जिसपर राजाने तो अभ्रंशशील राज्यका वर माँगा तथा वैश्यने मम (मेरा) तथा अहम् (मैं) इस आसक्ति-ज्ञानकी विच्युति करानेवाले ज्ञान पानेकी प्रार्थना की—

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि।
अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात्॥
सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम्॥

(दुर्गासप्तशती १३। १७-१८, मार्कण्डेयपु० ९३। ११-१२)

अन्तिम पंक्तिकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है—

ममायं पुत्रोऽहं पिता, ममेदं कुलम् अहं भर्ता ममेदं धनमहं स्वामी, तस्येति अध्यासजनितः यः संगः तस्य विच्युतिः विलयः, तस्याः कारकं करणम्। ममता चाहंता च सङ्गः संसर्गेऽपेक्षाबुद्धिः द्वैतज्ञानं भेदनिबन्धनम्, तस्य विच्युतिकारकविच्छेदजनकं मोक्षोपयोगि ज्ञानम्।—

(शान्तनवी टीका)

फलतः भगवतीकी उपासनासे राजाको भोगकी तथा वैश्यको मोक्षकी प्राप्ति हुई थी। यही हुआ भोग तथा मोक्ष दोनोंका करस्थित होना। अर्थात् साधकोंके भाववैशिष्ट्यसे दोनों व्यक्तियोंको एक साथ ही दोनोंकी प्राप्तिका फल मिलता है।

हम अन्तमें आचार्य शंकरके शब्दोंमें भगवतीसे प्रार्थना करते हैं कि आपकी दृष्टिके पातमात्रसे भक्त एक विचित्र पुण्यमय संगममें स्नान कर अपनेको कृतकृत्य करता है। पराम्बा! आप अपने नेत्रोंको देखिये। नेत्रकी लालिमा शोणनद (शोणभद्र) है, श्वेत रंग गङ्गा है तथा कालापन यमुना है। सोन, गङ्गा तथा यमुनाका यह पवित्र संगम भूतलपर तो नहीं होता। अतएव इन पवित्र तीर्थोंके संगमपर नहानेका अवसर प्राप्त ही नहीं होता, परंतु आपकी कृपादृष्टि जिस भक्तके ऊपर पड़ती है, उसे इस अभूतपूर्व संगममें दिव्य स्नानका अवसर मिल जाता है और वह इस भवजालसे मुक्त होकर सफलमनोरथ हो जाता है—

पवित्रीकर्तुं नः पशुपतिपराधीनहृदये
दयामित्रैर्नेत्रैररुणधवलश्यामरुचिभिः।
नदः शोणो गङ्गा तपनतनयेति ध्रुवममुं
त्रयाणां तीर्थानामुपनयसि सम्भेदमनघम्॥

(सौन्दर्यलहरी ५४)

(समाप्त)

'याद रखना चाहिये कि संसारके सुखोंकी अपेक्षा परमात्म-सुख अत्यन्त विलक्षण है। अतः संसार-सुखके लिये परमात्म-सुखकी चेष्टामें कभी बाधा नहीं पहुँचानी चाहिये।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[भगवान्‌का भजन करनेमें ही कल्याण है]

सत्संग करनेसे मनुष्यको एक प्रकाश मिलता है। जैसे सब चीजोंके रहते हुए भी अँधेरेमें कुछ नहीं दीखता, पर प्रकाश होते ही सब चीजें दीखने लग जाती हैं, ऐसे ही सत्संग करनेसे सब बातें साफ दीखने लग जाती हैं। जैसे यह बात कि समय जा रहा है, हमारी उम्र बीत रही है। उम्र-रूपी जितनी पूँजी हमारे पास है, उतने ही दिन हम जी सकते हैं, उससे ज्यादा नहीं जी सकते। धन-सम्पत्ति, जमीन-जायदाद आदि हमारे जीवनका आधार नहीं है। उम्र खत्म हो जाय तो पासमें लाखों, करोड़ों, अरबों रुपये होनेपर भी मरना पड़ेगा और उम्र बाकी हो तो एक कौड़ी पासमें नहीं हो, कपड़ा नहीं हो, रहनेके लिये जगह नहीं हो, फिर भी कोई-न-कोई ढंग बैठ जायगा और हम जी जायँगे। अतः ये दो चीजें हैं—एक हमारी उम्र है और एक धन-सम्पत्ति है। ऐसे ही एक 'कामना' (इच्छा) होती है और एक 'आवश्यकता' (भूख) होती है। जैसे उम्र और धन-सम्पत्ति दोनों अलग-अलग हैं, ऐसे ही कामना और आवश्यकता दोनों अलग-अलग हैं। जैसे दृष्टान्तके रूपमें, शरीरको भूख लगती है तो यह कामना नहीं है, वासना नहीं है, त्याज्य नहीं है। परंतु भोजनमें अमुक चीज चाहिये, खटाई चाहिये, मिठाई चाहिये—यह कामना है, त्याज्य है। भूख तो भोजन करनेसे मिट जायगी, पर कामना नहीं मिटेगी। गाँधीजीने लिखा है कि 'मैंने ऐसे आदमी देखे हैं, जो खाते-खाते पेट भर जाता है तो उल्टी करके निकाल देते हैं और फिर खाते हैं।' पेट भर जाता है, पर जीभका चटोरापन नहीं मिटता, इच्छा नहीं मिटती। पेट भर जाय—यह आवश्यकता है। जैसे, सड़कपर गाड़ी चलाते समय कोई गड्ढा आ जाय तो चक्का उसमें फँस जाता है, इसलिये उस गड्ढेको पत्थरसे, सीमेंटसे, मिट्टीसे भर दिया जाय—यह सड़ककी आवश्यकता है, उसकी कमी है। ऐसे ही भूख लगती है तो यह आवश्यकता है, कमी है, जो खाद्य पदार्थ देनेसे पूरी हो जायगी। परंतु तरह-तरहके पदार्थ खानेकी जो इच्छा है, वह कभी पूरी नहीं होगी। भूख (आवश्यकता)की पूर्ति कर सकते हैं, पर उसे मिटा नहीं सकते; परंतु कामनाकी पूर्ति नहीं कर सकते, उसे मिटा सकते हैं। ऐसे ही हमारी जो संसारकी इच्छा है, वह कामना है और जो परमात्मप्राप्तिकी इच्छा है, वह स्वयंकी आवश्यकता है। यह आवश्यकता कभी मिटेगी नहीं, प्रत्युत पूरी होगी। परंतु संसारकी कामना कभी पूरी होगी ही नहीं। अनन्त ब्रह्माण्डोंका राज्य मिल जाय तो भी कामना कभी पूरी नहीं होगी। कामना दुःखदायी है, पर आवश्यकता आनन्द देनेवाली है। आवश्यकता जाग्रत् हो जाय तो सब कामनाएँ मिट जाती हैं और आवश्यकता पूरी हो जाती है।

परमात्माकी प्राप्तिकी इच्छाका नाम कामना नहीं है, यह तो आवश्यकता है। जैसे, भूख लगी हो तो चाहे दाल-भात ले लो, चाहे साग-रोटी ले लो, चाहे हलुआ-पूरी ले लो, चाहे कोरा साग खा लो। पेट भर जाय तो फिर शरीर काम देगा; क्योंकि यह शरीरकी आवश्यकता है। ऐसे ही स्वयं (आत्मा) की आवश्यकता (भूख) है—परमात्मप्राप्ति। परमात्माकी प्राप्ति होनेपर इस आवश्यकताकी सदाके लिये पूर्ति हो जायगी। परंतु सांसारिक धन-सम्पत्ति, वैभव, मान-बड़ाई, भोग आदि कितने ही क्यों न मिल जायँ, उनकी कामना कभी पूरी होगी ही नहीं। जो सत्संग किये हुए नहीं हैं, वे इन बातोंको नहीं समझ सकते। आवश्यकता और कामना—इन दोनोंको अलग-अलग हरेक आदमी नहीं बता सकता। यदि आप ध्यान दें तो आज ही इसको समझ सकते हैं।

एक भूख होती है और एक कामना होती है। भूख वस्तुकी आवश्यकता होती है, पर कामना आवश्यकता नहीं होती।

तनकी भूख इतनी बड़ी आध सेर वा सेर।
मन की भूख इतनी बड़ी गिट जात गिरि मेर॥

तनकी भूख 'आवश्यकता' है और मनकी भूख 'कामना' है। जब कभी हो, आवश्यकता पूरी होगी और जब कभी हो, कामना निवृत्त होगी। परमात्मतत्त्वकी इच्छा (आवश्यकता) पूरी होनेवाली है और संसारके भोगोंकी तथा संग्रहकी जो इच्छा है, वह कभी भी पूरी होनेवाली नहीं है। संसारमें तो जितना मिल जाय, उतनेमें संतोष कर लेना चाहिये, पर भूख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी हुई हो तो उसमें संतोष नहीं होता। भूख लगी हो, प्यास लगी हो तो उसमें संतोष कैसे करे? प्यास लगी हो, भीतर जलन हो रही हो तो वह जल पी लेनेसे शान्त हो जायगी। अतः संतोष कामनाके लिये किया जाता है, आवश्यकताके लिये नहीं।

आवश्यकता और कामना—दोनों अलग-अलग हैं। इसका कारण यह है कि जीव परमात्माका अंश है और शरीर संसारका अंश है। इसलिये जीवको परमात्माकी भूख है और शरीरको सांसारिक पदार्थोंकी भूख है। परमात्माकी प्राप्ति होनेपर जीवकी भूख तो मिट जायगी, पर सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्ति होनेपर शरीरकी भूख नहीं मिटेगी। मेरी ऐसी इच्छा है कि इस विषयको आप अच्छी तरह समझ लें। ये बड़ी विचित्र और गहरी बातें हैं। मैंने देखा है कि बड़े-बड़े विद्वान् भी आवश्यकता और इच्छा—इन दोनोंका विश्लेषण नहीं कर सकते।

आवश्यकताकी पूर्ति होती है और इच्छाकी निवृत्ति होती है। आवश्यकता विचारके द्वारा निवृत्त नहीं होती। चुप भले ही हो जाओ, पर अन्न-जल लिये बिना भूख-प्यास मिट नहीं सकती, जाड़ा लगता है तो कपड़ा ओढ़े बिना जाड़ा मिट नहीं सकता; क्योंकि यह शरीरकी आवश्यकता है। ऐसे ही परमात्माकी प्राप्ति स्वयंकी आवश्यकता है। परंतु इच्छाएँ कभी पूरी नहीं हो सकतीं। भोग भोगना और संग्रह करना—ये दो इच्छाएँ कभी किसीकी पूरी होनेवाली नहीं हैं। मनकी यह भूख पूरी होनेवाली नहीं है।

जो दस बीस पचास भये सत, होइ हजार तु लाख मगैगी।
कोटि अरब्ब खरब्ब असंख्य, पृथ्वीपति होनकी चाह जगैगी॥
स्वर्ग पताल को राज करै, तृस्ना अधिकी अति आग लगैगी।
'सुन्दर' एक सँतोष बिना सठ, तेरी तो भूख कभी न भगैगी॥

जब परमात्माकी तरफ चलोगे, तब संसारसे वैराग्य हो जायगा। भोग और संग्रहकी इच्छा नहीं रहेगी और परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। तात्पर्य है कि कामनाकी निवृत्ति हो जायगी और आवश्यकताकी पूर्ति हो जायगी। इसीके लिये यह मानव-शरीर मिला है।

अब एक दूसरी बात कहता हूँ। मानव-शरीरकी जो महिमा है, वह महिमा इस शरीरकी नहीं है। दो पैर हों, दो हाथ हों, मस्तक हो, ऐसी आकृतिवाला हो—इसकी महिमा नहीं है। इस शरीरको अधम बताया गया है—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥
(मानस, किष्किन्धा० ११।३)

—और इसे उत्तम भी बताया गया है—

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥
(मानस, उत्तर० १२१।५)

शरीरको अधम और उत्तम—दोनों बतानेका तात्पर्य क्या है, इसे भी आप समझ लें। जो पाञ्चभौतिक शरीर है, उसकी (ढाँचेकी) महिमा नहीं है, प्रत्युत उसमें जो विवेक-शक्ति है, उसकी महिमा है। सत्-असत्को, नित्य-अनित्यको, सार-असारको, वास्तविक हानि-लाभको, अपने हित-अहितको ठीक पहचाननेकी जो शक्ति (विवेक) है, उसका नाम मानव है। गाय इतनी पवित्र है कि उसका गोबर और गोमूत्र भी पवित्र है। गोबरमें लक्ष्मीका और गोमूत्रमें गङ्गाका निवास है। सूआ-सूतक दूर करना हो तो गोबरका चौका लगा दो, गोमूत्र लाकर छिड़क दो, शुद्धि हो जायगी। इस प्रकार जिसके गोबर-गोमूत्र भी शुद्ध हैं, उस गायको भी आप यह नहीं समझा सकते कि कल्याण कैसे हो, उद्धार कैसे हो। इसे समझनेकी शक्ति मनुष्यमें है। इस शक्ति (विवेक) के होनेपर भी अगर मनुष्य इसका उपयोग नहीं करता, इधर ध्यान नहीं देता तो वह मनुष्य नहीं है, पशु ही है। केवल भोग भोगना, संग्रह करना, रुपये कमाना और ऐश-आराम करना—यह पशुता है, मनुष्यता नहीं है। कई वर्ष पहलेकी बात है, हमारे एक मित्र काश्मीर गये थे। वहाँ एक जगहकी बात उन्होंने बतायी कि वहाँ एक कुत्ता पाला हुआ था। उस समयमें वह पचास पैसेकी मलाई रोजाना खाता था। वह गद्दोंपर बैठता था और ऊपर पंखे चलते थे। नौकर उसको बढ़िया साबुनसे नहलाते थे। जितना आराम उस कुत्तेको मिलता था, उतना आराम हरेक मनुष्यको नहीं मिलता। कलकत्तेमें एक कुत्ता था। उसके लिये तीन कमरे थे। तीनों कमरे पास-पासमें थे। तीनोंमें तख्ते थे और उनके ऊपर बढ़िया गद्दे बिछाये हुए थे। तीनों ही कमरोंमें पंखे चलते थे। कुत्तेकी जैसी मरजी हो, चाहे यहाँ बैठे, चाहे वहाँ बैठे। उस कुत्तेको बम्बई भेजा गया तो नयी फियेट गाड़ी ले करके उसमें भेजा गया। इतना आराम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितने मनुष्योंको मिलता है ? आप सुख-आरामके पीछे पड़े हो, संग्रहके पीछे पड़े हो—यह मनुष्यता नहीं है। भाग्यमें हो तो यह सुख कुत्तों और गधोंको भी मिल जाता है। परंतु क्या कुत्तों और गधोंको परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है ? इसलिये कहा है—

सूकर कूकर ऊँट खर, बड़ पशुअन में चार।
तुलसी हरिकी भगति बिनु, ऐसे ही नर नार॥

अब तीसरी बात कहता हूँ, आप ध्यान दे करके सुनें। मनुष्य प्राप्त कर सकता है तो केवल परमात्माको ही प्राप्त कर सकता है। परमात्माके सिवाय और कुछ प्राप्त कर ही नहीं सकता। मनुष्य ब्रह्मलोकमें जाकर भोग भोगे, स्वर्गलोकमें जाकर भोग भोगे अथवा इस संसारमें रहकर भोग भोगे, उससे मिला क्या ? केवल समय बरबाद हुआ और परमात्माकी प्राप्तिसे वञ्चित रह गये। अगर आप चेत करते तो परमात्माकी प्राप्ति कर लेते। आपने भोगोंको भोगनेमें और संग्रह करनेमें समय लगा दिया तो यह आपके साथ धोखा हो गया, विश्वासघात हो गया। आप कहते हो कि धन मिल गया, मान मिल गया, बड़ाई मिल गयी, पर वास्तवमें मिला कुछ नहीं है। आज मर जाओ तो फूँक निकलते ही कुछ नहीं है आपके पास। अतः मिला कहाँ ? मिली हुई चीज तो वह मानी जाय, जो जीते हुए भी साथमें रहे और मरनेके बाद भी साथमें रहे।

सपनेकी सौ मुहरसे, कौड़ी सेर न काम।

कोई कहे कि मैं स्वप्नकी सौ मुहरें देता हूँ, मेरेको बिना लगाया हुआ एक खाली पान दे दीजिये, तो कोई देगा ? कोई एक पान भी नहीं देगा। ऐसे ही संसारमें जो धन, सम्पत्ति, वैभव, मकान आदि दीखते हैं, वे सब आँख मिचते ही कुछ नहीं हैं। जैसे आँख खुलते ही स्वप्नकी सम्पत्ति कुछ भी नहीं है, ऐसे ही आँख बंद होते ही यहाँकी सम्पत्ति कुछ भी नहीं है। ऐसे धन, सम्पत्ति आदिके संग्रहमें आपने समय लगाया तो क्या फायदा हुआ ?

कबिरा सब जग निर्धना, धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सो जानिये, राम नाम धन होय॥

यदि आपने भगवान्‌का नाम-रूपी धन इकट्ठा किया है तो वह साथ चलेगा, वह यहाँ नहीं रहेगा। परंतु यहाँका धन इकट्ठा करोगे तो राजका टैक्स लग जायगा, चोर चोरी करके ले जायगा, ठग ठगाई करके ले जयगा। भाई-भाई अलग हो जायँगे तो धनका बँटवारा हो जायगा, पर भगवान्‌के भजनका बँटवारा नहीं होगा। एक भाईने भजन किया और एकने नहीं किया, तो जिसने भजन किया, वह उसीका है। धनका तो भार होता है, पर भगवान्‌के भजनका भार (बोझ) नहीं होता। मरनेके बाद भी भगवान्‌का भजन बड़ा भारी काम आता है। भजन करनेवाले शरीर छोड़कर यहाँसे ब्रह्मादिक लोकोंमें जाते हैं तो वहाँ सब उनका आदर करते हैं, उत्थान देते हैं कि ये भगवान्‌के भक्त हैं, भजन करके आये हैं।

मेरे कहनेका तात्पर्य उलटा मत ले लेना कि हम धन कमाना छोड़ दें। छोड़नेको मैं कहता ही नहीं। गृहस्थाश्रममें रहते हुए न्याययुक्त पैसा कमाओ और उसे अच्छे-से-अच्छे काममें लगाओ। इसके लिये मैं मना नहीं करता हूँ, परंतु पैसोंके भरोसे भगवान्‌का भजन छोड़ देते हो—यह गलती करते हो। इस गलतीका सुधार करो। आप पैसे मत कमाओ, मकान मत बनाओ, आरामसे मत रहो, स्त्री-बच्चोंका पालन मत करो—यह मैं नहीं कहता हूँ। परंतु इसके भरोसे भगवान्‌का भजन छोड़ देना, भगवान्‌को इस्तीफा दे देना मनुष्यता नहीं है। इसमें तो पशु-पक्षी भी लगे हैं। कुतिया भी अपने बच्चोंका पालन करती है और दूसरेके बच्चोंको मार देती है। सुअरनी एक साथ ग्यारह बच्चोंका पालन करती है। परंतु इसमें उसकी कोई बड़ाई नहीं होती।

आप एक-दो दिनके लिये भी कहीं जाते हो तो साथमें पैसे ले जाते हो और पूछते हो कि वहाँ कोई मकान मिलेगा कि नहीं ? वस्तुएँ मिलेंगी कि नहीं ? कोई सवारी मिलेगी कि नहीं ? ऐसे ही जब शरीर छोड़कर यहाँसे जाना पड़ेगा, इस दिनके लिये आपने क्या प्रबन्ध किया है ? साथमें आपने क्या लिया है ? अगर नहीं लिया है तो उसका दुःख आपको भोगना पड़ेगा कि दूसरेको ? फिर आप समझदार क्या हुए ? समझदारी यही है कि मरनेके बाद फिर रोना न पड़े।

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

(मानस, उत्तर० ४३)

जो अपना उद्धार नहीं करता, उसको सिर धुन-धुनकर पछताना-रोना पड़ता है। क्या करें, कलियुग आ गया, लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे हो गये, राजके कानून ऐसे हो गये, झूठ-कपटके बिना काम नहीं चलता—यह बिलकुल झूठा दोष है। कलियुग आया तो बहुत बढ़िया समय आया।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

(मानस, उत्तर० १०३ (क))

सत्ययुग, त्रेता या द्वापर—कोई भी युग कलियुगके समान नहीं है। कलियुगका ऐसा मौका है, जिसमें बिना प्रयास उद्धार हो जाय। वास्तवमें दोष अपना है, कलियुगका नहीं। वैश्य भाइयोंसे मैं पूछता हूँ कि वस्तुएँ बहुत सस्ती आयें और महँगी बिकें तो आप धनवान् बन जाते हो कि नहीं? वस्तुओंका भाव गिरता है तो लाखोंका घाटा हो जाता है और भाव तेज होता है तो आप मालामाल हो जाते हो। कल्पना करो, एक आदमी डेढ़-दो रुपये मनके भावसे अनाज लेकर रखे हुए है। अब अनाज तीस-चालीस रुपये मन हो गया तो लोग कहते हैं कि बाजार बड़ा खराब हो गया, रोजाना अनाज चाहिये, लायें कहाँसे। परंतु जिसके पास डेढ़-दो रुपये मनके भावसे खरीदा हुआ अनाज पड़ा है, वह क्या कहेगा कि बाजार खराब हो गया? वह तो कहेगा कि मौज हो गयी। ऐसे ही भगवान्‌का नाम लेनेमें जितना समय सत्ययुगमें लगता था, उतना ही समय कलियुगमें लगता है, पर कलियुगमें नामकी कीमत अधिक हो गयी। भगवान्‌का नाम मिलता तो बहुत सस्ता है, पर इसका दाम उठता है कलियुगके हिसाबसे। कितने नफेकी बात है। कैसा सुन्दर अवसर मिला है। ऐसे समयमें अगर कोई सच्चे हृदयसे भगवान्‌के भजनमें लग जाय, सचाईका पालन करे, तो बहुत जल्दी कल्याण हो जाय। बेसमझी है खुदकी और दोष देते हैं कलियुगको—

कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ।

मनुष्य-शरीर क्या नरकोंमें जानेके लिये मिला है? आपका भाग्य मामूली नहीं है। भगवान्‌ने विशेष कृपा करके यह मनुष्य-शरीर दिया है। कलियुगका बड़ा सुन्दर मौका, मनुष्यका शरीर, गीता और रामायण, भगवान्‌का नाम, सत्संग—ये सब हमें मिल गये तो हमारेपर भगवान्‌की कितनी कृपा है।

जब द्रवै दीनदयालु राघव, साधु-संगति पाइये।

(विनय० १३६)

अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता॥

(मानस, सुन्दर० ७।२)

अच्छी बातें भगवान्‌की कृपासे मिलती हैं। ऐसी बातें मिलनेपर भी हम अपना उद्धार न करें और दोष लगायें काल, कर्म तथा ईश्वरपर—यह गलती है। इसलिये सावधान होकर भगवान्‌के भजनमें लग जायँ। (क्रमशः)

स्वप्न

(पं० श्रीरामचन्द्रजी वैद्यशास्त्री 'राम')

रात सखी सुपनेमें देखे, जसुमतिसुत बृषभानु-लली री॥
वे दोउ आवत जमुनातटसों, मैं अपने घरसों निकली री।
देखि रूप मोहित भई आली, सुध-बुध तनकी नाँइ रही री॥
मोरमुकुट मृगमदको टीको, कौस्तुभमणि बनमाल सजी री।
दै गलबाँही बंसी बजावत, नूपुर-धुनि सुरताल भरी री॥
जे ब्रजगोप देव भये सगरे, ब्रज जुवती सब देवबधू री।
बेदबानिसों बिनय करत सब, उच्चारणकी रीति नई री॥
माया ब्रह्म जोग युत दीखे, मैं तनबिच इक जीव रही री।
'राम' कूँ आस एक जदुबरकी, इतनेमें खुल आँखि गई री॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवतीय प्रवचन—३०

संतमिलन

(संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)

प्रभु जिस समय प्रभासमें थे, उस समय उद्धवको ज्ञानका उपदेश दिया। भागवत-धर्मका उपदेश दिया। फिर उद्धवसे बदरिकाश्रम जानेको कहा तो उद्धवने कहा कि अकेले जानेमें मुझे डर लगता है, आप भी मेरे साथ चलिये।

जब ईश्वरको अपने पास ही रखे तो वह कभी भयभीत नहीं होगा।

उद्धवको भागवतधर्मका उपदेश मिला, फिर भी उनका मन शान्त न हो सका। वे भगवान्‌से कहते हैं कि मैं अकेला तो कैसे जा सकता हूँ। हम दोनों साथ ही जायँगे।

मात्र निर्गुण ब्रह्मका ज्ञान अधिक उपयोगी नहीं होता। सगुण ब्रह्मका आश्रय लेकर ही निर्गुण ब्रह्मको पहचानना है।

श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा कि मैं क्षेत्रज्ञरूपसे तेरे साथ ही हूँ। मैं तुझमें समाया हुआ हूँ। मेरा स्मरण करनेपर मैं उसी क्षण उपस्थित हो जाऊँगा। उद्धवजीने प्रार्थना की कि बिना किसी आधारके भावना नहीं कर सकूँगा। मुझे कुछ आधार दीजिये। श्रीकृष्णने अपनी चरणपादुका दी। उद्धवने मान लिया कि अब द्वारकानाथ मेरे साथ ही हैं। अब मैं अनाथ नहीं, सनाथ हूँ। ये पादुकाएँ नहीं, प्रत्यक्ष प्रभु ही मेरे साथ हैं। उद्धवजीका प्रेम प्रभुके प्रति इतना प्रगाढ़ था कि भगवान्‌की पादुकामें भी वे प्रभुका ही दर्शन करते हैं। उन्होंने अपने मस्तकपर पादुकाएँ रख लीं।

मस्तक बुद्धिप्रधान है। इसपर प्रभुको बिठलानेसे मनमें कोई विकार प्रविष्ट नहीं हो सकेगा।

शुकदेवजी कहते हैं—'राजन्! उद्धवजी बदरिकाश्रम जा रहे थे। उन्हें मार्गमें यमुनाजी और व्रजभूमिके दर्शन हुए। मेरे ठाकुरजीकी यही तो लीला है।

तीर्थस्थानमें मात्र स्नान करनेसे मन पूरा शुद्ध नहीं होता। वहाँ बसे हुए किसी भजनानन्दी संतका सत्संग करनेसे मन और अधिक शुद्ध होता है।

उद्धवजीने सोचा कि मैं यहाँ कुछ दिन रहूँगा और किसी संतका, किसी वैष्णवका सत्संग करूँगा। वे निश्चय करते हैं कि जब कोई प्रभुका प्रेमी वैष्णव मिलेगा तभी मैं बोलूँगा अन्यथा मौन रहूँगा।'

वृन्दावनमें आज भी अनेक साधु राधाकृष्णकी गुप्त-लीलाओंका दर्शन करते फिरते हैं। यमुना-किनारे रमणरेतीमें विदुरजी बैठे थे। दूरसे उद्धवजीने उन्हें देखकर सोचा कि लगता है, ये कोई वैष्णव बैठे हुए हैं, जिनका हृदय कृष्णप्रेमसे भरा हुआ है। समीप जानेपर उद्धवजीने पहचान लिया कि 'ये महान् भगवद्भक्त विदुरजी हैं' और उन्होंने विदुरजीकी वन्दना की। उसी समय विदुरजीने आँखें खोलीं और उद्धवजीसे कहा कि 'आप मेरी वन्दना करें, यह उचित नहीं है।' विदुरजीने उद्धवजीको प्रणाम किया।

संतोंका मिलन भी कैसा मधुर होता है।

चार मिले चौंसठ खिले, बीस रहे कर जोड़।
हरिजनसे हरिजन मिले, बिहँसे सात करोड़॥

चार—चार आँखें, चौंसठ—चौंसठ दाँत। बीस—हाथकी अँगुलियाँ, सात करोड़—सात कोटि रोम। शरीरमें सात करोड़ रोम (रोंगटे) होते हैं। हरिजनका अर्थ है हरिके लाडले।

विदुरजी और उद्धवजीका दिव्य सत्संग हुआ।

मनुष्य सत्संगमें जितना समय बिताता है, उतना ही वह सही अर्थमें जिया है। संतोंके मिलनमें केवल परमात्माकी ही चर्चा होती है। संतसे मिलन होनेपर तुम अपनी लौकिक बातें मत करो।

यमुनाजीको आनन्द हो रहा है कि ये भक्त आज मेरे प्रभुकी लीलाका वर्णन करेंगे। मेरे श्रीकृष्णकी बातें करेंगे। मेरे श्यामसुन्दरका गुणानुवाद करेंगे, लीलागान करेंगे, मैं अपने कृष्णकी लीलाओंका वर्णन सुनूँगी। यमुनाजी शान्त, गम्भीर हो गयीं। उन दो भक्तोंने प्रथम बाललीला, फिर पौगण्डलीला, प्रौढ़लीला आदि सारी लीलाओंका वर्णन संक्षेपमें किया।

उद्धवजी कहते हैं—प्रभुने मुझे प्रभासमें भागवतधर्मका उपदेश देकर बदरिकाश्रम जानेकी आज्ञा दी थी। आपके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शनसे मुझे बहुत आनन्द हुआ है।

विदुरजी कहते हैं—भगवान्‌ने जिस भागवत-धर्मका उपदेश आपको दिया था, वह मैं सुनना चाहता हूँ। मैं जातिहीन और कर्महीन हूँ, किंतु आप-जैसे वैष्णव तो दयाके सागर होते हैं। भगवान्‌ने थोड़ी-सी कृपा मुझपर की। आप मेरी इच्छा पूर्ण करें। मैं अधम हूँ, फिर भी प्रभुने जो उपदेश आपको दिया था, मैं आपसे श्रवण करनेकी इच्छा रखता हूँ। आप कृपया मुझे सुनाइये।

उद्धवजी कहते हैं—आप साधारण मानव नहीं हैं।

मनुष्य जबतक दीन और नम्र नहीं होता, तबतक वह भगवान्‌को नहीं भाता। जहाँ भी दृष्टि पहुँचे, वहाँ श्रीकृष्णके दर्शनकी भावना करोगे, तभी दैन्यभाव आयेगा।

विदुरजी ! आपसे और तो क्या कहूँ ! जब मुझे उपदेश दिया गया था, तब मैत्रेयजी भी वहीं बैठे थे। भगवान्‌ने जब स्वधामगमन किया, उस समय उन्होंने वसुदेव, देवकी, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि किसीको भी स्मरण नहीं किया, परंतु आपका तीन बार स्मरण किया था। वे मुझसे कहते थे कि मुझे अपने विदुरकी स्मृति हो रही है। वह मुझे नहीं मिला। एक बार जो भाजी मैंने उसके घर खायी थी, उसका स्वाद मैं अभीतक नहीं भूल पाया हूँ। वह भाजी मुझे आज भी याद आती है।

भगवान् जिसे अपना कहें और अपना मानें उसका बेड़ा पार ही है।

साधारण व्यवहारमें कोई किसीसे नहीं कहता कि तू मेरा है। जीव मन्दिरमें जाकर भगवान्‌से कहता है कि मैं तेरा हूँ और घर लौटकर अपनी पत्नीसे कहता है कि मैं तेरा हूँ। मन्दिरमें जो भगवान्‌का था, वह घर आनेपर किसी औरका हो गया। इसीलिये भगवान् न तो प्रसन्न होते हैं और न तो कहते हैं कि तू मेरा है। मन्दिरमें जो भगवान्‌का था, वह घर लौटनेपर यह भी भूल गया कि वह किसका है।

भगवान्‌को वैसे तो अनेक मनुष्य कहते हैं कि हम आपके हैं, परंतु ऐसा कोई नहीं कहता कि 'मैं केवल आपका ही हूँ और अन्य किसीका नहीं हूँ।'

कृष्ण तवास्मि न चास्मि परस्य।

जगत्‌में मनुष्य जबतक किसी अन्यका है, तबतक वह भगवान्‌का नहीं हो सकता। भगवान् जिसे अपना समझें, वह मायाके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। भगवान्‌से प्रतिदिन प्रार्थना करो कि आप एक बार कह दें कि 'तू मेरा है।' भगवान् जब कहें कि 'तू मेरा है' तभी सच्चा ब्रह्मसम्बन्ध होता है।

तुलसीदासजी कहते हैं कि मुझ-जैसे कामीको अपना कहनेमें श्रीरामजीको लज्जा होती है। राजाधिराजके आँगनमें पड़ा हुआ कुत्ता हूँ मैं, तो मुझे अपने आँगनमें पड़ा रहने दीजिये। मुझे अपनाइये—

तुलसी कुत्ता रामका मोतिया मेरा नाम।
कंठे डोरी प्रेमकी जित खींचो उत जान॥

मैंने आपकी पट्टी गलेमें बाँध ली है। मैं पापी हूँ फिर भी आपका हूँ। मैं कुत्ता हूँ, किंतु रामजीका। परमात्माने मुझे अपनाया है।

जब परमात्मा आपको अपना लें, तब उन्हें जो काम पसंद आये वही काम करें।

भोगमें संतोष मान लें, परंतु भगवान्‌के भजनमें कभी संतुष्ट नहीं होना चाहिये। भक्तिमें जो संतोष मान लेते हैं, वे प्रभुके मार्गमें कभी आगे नहीं बढ़ सकते। भक्ति ऐसी करें कि भगवान् आपका स्मरण करें, भगवान्‌को आपकी स्मृति सताये।

भगवान्‌ने विदुरजीको तीन बार स्मरण किया था।

विदुरजी उद्धवजीसे पूछते हैं कि क्या सचमुच मुझे भगवान्‌ने स्मरण किया था ?

उद्धवजी कहते हैं—आप बड़े भाग्यशाली हैं। भगवान्‌ने आपको एक बार नहीं, तीन-तीन बार स्मरण किया था। उन्होंने यह भी कहा कि सभीको मैंने कुछ-न-कुछ दिया है, किंतु विदुरजीको मैं कुछ न दे सका। इसलिये मैत्रेयजीको उन्होंने आज्ञा दी कि—'जब विदुरजी तुमसे मिलें तो उन्हें इस भागवत-धर्मका ज्ञान देना।' इस बातको सुनकर विदुरजीकी आँखोंसे अश्रुधारा बह निकली। प्रेमसे विह्वल होकर वे रो पड़े।

आत्मानं च कुरुश्रेष्ठ कृष्णेन मनसेक्षितम्।
ध्यायन् गते भागवते रुरोद प्रेमविह्वलः॥

(श्रीमद्भा० ३।४।३५)

परम भक्त उद्धवजीके मुखसे भगवान्‌के प्रशंसनीय कार्योंकी बात तथा प्रभुके अन्तर्धान होनेके समाचार सुनकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा परमधाम जाते समय भी प्रभुने मुझे स्मरण किया, ऐसा जानकर और उद्धवजीके चले जानेसे विदुरजी प्रेमविह्वल होकर रोने लगे।

उद्धवजी बदरिकाश्रम गये और विदुरजी मैत्रेय ऋषिके आश्रमको जानेके लिये निकले। यमुनाजीने कृपा करके विदुरजीको भक्तिका दान दिया तथा नवधा भक्ति दी। ज्ञान और वैराग्यके बिना भक्ति दृढ़ भी नहीं होती और सफल भी नहीं होती।

आध्यात्मिक भूख

(पं० श्रीराजबलीजी पाण्डेय, एम्० ए०)

शारीरिक भूखका अनुभव तो सभी प्राणी करते हैं। क्षुधा-शान्तिकी दिनमें कई बार आवश्यकता होती है। समयसे भोजन न मिलनेपर बेचैनी मालूम होने लगती है। एक-दो दिन अन्न न पानेपर मनुष्य व्याकुल हो उठता है और यदि स्वेच्छा या विवशतासे लगातार कई दिनोंतक अनशन करना पड़े तो मनुष्यका शरीर छूट जाता है। इसी प्रकार, केवल पेट ही नहीं, हमारी सब इन्द्रियाँ अपने-अपने भोग्य पदार्थोंके लिये विकल रहती हैं। वे सदा अपनी तृप्तिके लिये प्रयत्नशील दिखायी पड़ती हैं और कोई भी बाधा उनके लिये असह्य होती है।

इस तरह हमारा पाञ्चभौतिक शरीर प्रतिक्षण भूखसे आक्रान्त रहता है। अब प्रश्न उठता है कि भौतिक क्षुधा तो इतनी वेगवती है, परंतु इतनी ही तीव्रताके साथ आध्यात्मिक भूखका अनुभव क्यों नहीं होता? मनुष्यसे निम्नकोटिके असंख्य प्राणियोंमें अध्यात्मचिन्तनका अत्यन्त अभाव है, ऐसा सभी विचारक मानते हैं। मनुष्योंमें भी अधिकांशको शरीरपोषणके अतिरिक्त और किसी तत्त्वकी चिन्ता नहीं मालूम पड़ती। बहुतोंको परम्पराके संस्कारसे अध्यात्मका धुँधला आभासमात्र होता है, किंतु इसमें उनकी विशेष दिलचस्पी नहीं होती। कतिपय विद्वानोंको अध्यात्मविषयमें बौद्धिक जिज्ञासा होती है, परंतु इसके लिये वे व्याकुल नहीं दिखायी देते। संसारमें ऐसे विरले लोग हैं, जो अपनी भौतिक आवश्यकताओंको गौण रूप देकर या उनकी अवहेलना करके अध्यात्म-तत्त्वके अन्वेषणमें एकान्तनिष्ठासे संलग्न हैं और जो आध्यात्मिक भूखकी वेदनाको भौतिक क्षुधाकी पीडासे कहीं अधिक तीव्रताके साथ अनुभव करते हैं।

इस अवस्थाका कारण क्या है? जो भौतिकवादी हैं, वे झट कह उठेंगे कि अध्यात्म कोई वास्तविक तत्त्व नहीं, किंतु असाधारण मनकी कल्पनामात्र है, यही कारण है कि हमारे जीवनमें उसका व्यापक और वास्तविक अनुभव नहीं होता। परंतु किसी तत्त्वका इसलिये निषेध नहीं हो सकता कि सब लोग उसका अनुभव नहीं करते। जनसाधारण सूक्ष्म भौतिक तत्त्वोंको नहीं जानते। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक इस बातको स्पष्ट स्वीकार करते हैं कि बहुत-से ऐसे भौतिक तत्त्व हैं, जो उनकी ज्ञान-परिधिसे बाहर हैं। अतः आध्यात्मिक तत्त्वका अभाव केवल उसे न जाननेके कारण सिद्ध नहीं हो सकता। आध्यात्मिक भूखकी तीव्रताके अभावका दूसरा ही कारण है।

वास्तवमें शारीरिक भूख और आध्यात्मिक भूखमें मौलिक अन्तर है। शारीरिक क्षुधाकी निवृत्ति स्थूल पदार्थोंसे होती है, जिनको बाहरसे ग्रहण करना होता है, शरीर स्वतः अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति नहीं कर सकता। इसलिये शरीरको प्राप्त कराये गये अन्नके पच जानेपर तथा फिर अधिक समयतक भोजन न मिलनेपर मनुष्य अपनेमें क्षुधा एवं दुर्बलताका अनुभव करता है और खाद्य सामग्रीके लिये व्याकुल हो उठता है। इसके विपरीत आध्यात्मिक भूख शरीरकी भूख नहीं, आत्माकी भूख है। आत्मतत्त्व भौतिक अन्नकी भाँति स्थूल न होकर अत्यन्त सूक्ष्म है। वह सर्वव्यापी है, अतएव उसे बाहरसे लानेका प्रयत्न भी नहीं करना पड़ता। जीवात्मा (बद्ध आत्मा) स्थूल प्रकृतिके सहजात संस्कारोंसे अपनेको भूल जाता है। वह अपने सहजप्राप्त, स्वाभाविक रूपको ही विस्मृत कर बैठा है। अपनेको जाननेकी चेष्टा ही आध्यात्मिक भूख है। प्रकृतिमें जकड़े हुए जीवोंमें इस चेष्टाका उदय नहीं होता। यही कारण है कि सर्वसाधारण इस भूखका अनुभव नहीं करते। जिनको यह भूख मालूम भी होती है, उनमें आत्माके सहजप्राप्त और केवल अनुभवगम्य होनेके कारण, भौतिक धरातलपर उतना क्षोभ नहीं दिखायी पड़ता जितना कि शारीरिक भूखमें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब विचारणीय यह है कि आध्यात्मिक भूख किनको नहीं लगती। शारीरिक भूखके अभावका कारण तो प्रायः सभी जानते हैं। जिस व्यक्तिकी क्षुधा किसी शारीरिक रोगसे नष्ट हो गयी है, अथवा अन्न प्राप्त कर लेनेसे जिसकी क्षुधा शान्त हो गयी है, उसे भूख नहीं मालूम होती। इस प्रकार नितान्त मूढ और सिद्ध ज्ञानीको आध्यात्मिक भूखका अनुभव नहीं होता। जो बिलकुल मूढ़ है, जिसकी बुद्धि तमोगुणसे बिलकुल आच्छादित है, जो दिन-रात भौतिक विषय-भोगोंमें लिप्त रहता है और इस तरह जो अनात्मामें आत्मबुद्धि करके अपने वर्तमान जीवनमें संतुष्ट है, भवरोगके कारण उसकी आध्यात्मिक भूख मारी जाती है। उसे आत्माका आनन्द, आत्मरति आकृष्ट नहीं करती। फिर इसके लिये वह व्याकुल क्यों हो? ज्ञानीको भी आध्यात्मिक भूख नहीं सताती, किंतु इसकी तृप्ति तुष्टिमूलक है, अज्ञानमूलक नहीं। वह आत्मवान् होनेके कारण आत्मामें ही रत है। उसे आनन्द-सुधासागर मिल गया है। इसके बाहर कुछ नहीं है, जिसकी वह आकाङ्क्षा करे। वह अमृत पीकर मूक हो गया है। उसे किसी पदार्थके लिये बोलने और चेष्टा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं रह गयी है।

साधारण लोग तृप्त रहना चाहते हैं। वे तृप्तिको ज्ञान और आनन्दके पैमानेसे मापनेका प्रयत्न नहीं करते। तो क्या मूढको तमोगुणमें ही मस्त रहना चाहिये। क्या उसकी यह तृप्ति वाञ्छनीय है? जिनको आध्यात्मिक आनन्दका आभास नहीं मिला है और जो लोग रजोगुणमें पड़े हुए मनुष्योंके दुःखोंसे भयभीत हैं, वे कहेंगे—***'सबसे भले हैं मूढ, जिनहिं न ब्यापै जगत दुख।'*** परंतु क्या वास्तवमें मानव मूढतासे संतुष्ट रह सकता है? वनस्पति और पशुजगत्के असंख्य प्राणी क्या मूढतामें निमग्न रहनेके लिये पर्याप्त नहीं हैं? मनुष्य, जो मननशील, मनस्वी जीव है, जिसका मन विशुद्ध बुद्धिसे संचालित हो सकता है और जिसकी बुद्धि स्वभावसे आत्मोन्मुखी है, सदा अपनी तमोगुणी अवस्थासे संतुष्ट नहीं रह सकता। वास्तवमें मूढता जीवन भी नहीं है। वह है जीवनका अभाव, अपने स्वरूपके प्रति अनास्था और अपने अस्तित्वके विनाशका मार्ग।

तमोगुणके पङ्कसे निकलकर आत्मसुखकी प्राप्तिके लिये, अग्रसर होनेके लिये एक धक्केकी आवश्यकता है। संसारमें ऐसे धक्कोंकी कमी नहीं है। यहाँ तो प्रतिदिन भूकम्प, ज्वालामुखीके उद्गार, भयङ्कर रोगोंके प्रकोप, मृत्यु और विनाशका ताण्डव हो रहा है। मनुष्यमें इन विस्फोटोंसे क्षुब्ध होनेकी क्षमताका भी अभाव नहीं है। हाँ, उचित समय और साधनकी अपेक्षा है। आत्मस्फुरण, सत्सङ्ग तथा भगवत्कृपासे यह मङ्गलमय अवसर प्राप्त होता है। मनुष्य प्रतिदिन इन दृश्योंको देखता है, किंतु वह इनसे उदासीन रहता है, मानो उसपर इनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। किंतु एक दिन उसके जीवनमें ऐसा आता है जब उसके शरीरमें बिजली दौड़ जाती है, उसका सारा व्यक्तित्व हिल उठता है, उसकी आँखोंके सामनेसे अन्धकारका पर्दा हट जाता है और वह देखता है कि जिसे वह अपना वास्तविक स्वरूप मान बैठा था, वह उसका केवल भ्रम था और जिन पदार्थोंमें वह सुख तथा शान्तिकी खोज कर रहा था, उनमें विनाशका बीज छिपा था। इस अनुभवके बाद ही वास्तविक तत्त्वका अन्वेषण प्रारम्भ होता है। इसी अवस्थामें पहुँचकर आध्यात्मिक भूखका अनुभव होता है, अध्यात्मकी प्राप्तिके लिये मनुष्य सचेष्ट, तत्पर और व्याकुल भी होने लगता है।

तमोगुणकी प्रगाढ निद्राके भङ्ग होनेपर रजोगुणमें पदार्पण होता है। रजोगुणमें स्वास्थ्य (आत्मस्थकी अवस्था), ज्ञान और आनन्दकी सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं, यद्यपि इसमें हलचलकी प्रधानता होनेके कारण क्षोभ और दुःखकी आशङ्का अधिक हो जाती है। रजोगुणसे सबसे बड़ा लाभ तो यह होता है कि यह जडताको नष्ट करके मनुष्यको प्रगतिशील बना देता है। प्रगति स्वास्थ्यका लक्षण है। इससे हमारी आकाङ्क्षाएँ ऊँची उठने लगती हैं। रजोगुणमें राग है, किंतु इससे मानसिक क्षीणता दूर होकर सजीवता आने लगती है। इसमें जीवनकी भूख होती है, जो अन्ततोगत्वा संसारकी भूलभुलैयासे निकलकर समस्त जीवनके मूलस्रोत अध्यात्मकी ओर जानेकी चेष्टा करती रहती है। फिर भी विषयोंके अजीर्णके कारण अध्यात्मतत्त्वके ग्रहणके लिये अग्निमान्द्य बना रहता है।

परंतु जिसने कल्याणके मार्गपर चलना प्रारम्भ कर दिया है, चाहे उसकी चाल कितनी ही धीमी हो, अथवा बीच-बीचमें भ्रान्त क्यों न हो जाती हो, उसके गन्तव्य स्थानपर पहुँचनेकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा हो जाती है! जब रजोगुणके कामनायुक्त कर्मचक्रसे निकलकर मनुष्य एक चरण आगे चलता है, तब वह सत्त्वगुणके अनुकूल वातावरणमें पहुँच जाता है। यहाँ न तो तमोगुणका अन्धकार और जडता रहती है और न रजोगुणके क्षोभकारी राग। यहाँ मनुष्यका वास्तविक स्वरूप निखरने लगता है। उसमें चेतनता, प्रकाश और ज्ञानकी उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगती है। सतोगुणी व्यक्तिको अध्यात्मका केवल धुँधला आभास ही नहीं, उसका आंशिक ज्ञान भी सुलभ हो जाता है। इससे अध्यात्मतत्त्वकी जिज्ञासा और जाग्रत् हो उठती है, उसके लिये भूख अधिक तीव्र हो जाती है। इस भूखकी तीव्रता और आध्यात्मिक तत्त्वके लिये व्याकुलताकी यही अवस्था है। किंतु एक ऐसी भी अवस्था है जिसमें पहुँचनेपर सब प्रकारकी भूखोंके साथ आध्यात्मिक भूखसे भी छुटकारा मिल जाता है। वह अवस्था है गुणोंसे ऊपर उठनेकी, गुणातीत होनेकी । यहाँ सान्त और अपूर्ण जगत्, जिसे अपनेको पूर्ण बनानेकी सदा भूख बनी रहती है, पीछे छूट जाता है और अक्षय तथा अनन्त निधि पाकर मनुष्यको किसी प्रकारकी आकाङ्क्षा नहीं रह जाती।

भगवान् वेदव्यास

(डॉ॰ श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰, डी॰ लिट्॰)

महर्षि व्यास अलौकिक प्रतिभासम्पन्न महापुरुष थे। विद्वानोंकी परीक्षाभूमि श्रीमद्भागवतसहित अष्टादश महापुराण, समुज्ज्वल भाव-रत्नोंकी निधि महाभारत एवं ब्रह्मसूत्र आदि ग्रन्थ उनकी महत्ताके प्रबल समर्थक हैं।

जीवन-चरित्र

पुराणोंके अनुसार ब्रह्मासे लेकर कृष्णद्वैपायन व्यासतक अट्ठाईस व्यासोंकी परम्परा मिलती है। व्यासजीका नाम 'कृष्ण' था। महाभारतकालीन दो कृष्ण प्रसिद्ध हुए हैं—एक वासुदेव कृष्ण तथा दूसरे द्वैपायन कृष्ण। उनकी माताका नाम सत्यवती था, जिनका पालन यमुनातीरवासी दाशराजने किया था। यही सत्यवती कालान्तरमें पराशर मुनिके संयोगसे व्यासजीकी माता बनीं। व्यासजीका जन्म भी यमुनाके ही किसी द्वीपमें हुआ था, इसीलिये उन्हें द्वैपायन, कृष्णवर्णके शरीरके कारण कृष्ण या कृष्णद्वैपायन, बदरीवनमें निवासके कारण बादरायण तथा वेदका विस्तार करनेके कारण वेदव्यास कहते हैं। ये अतीव कर्मठ, तत्त्वज्ञ एवं प्रतिभाशाली थे।

व्यासजीकी माता सत्यवती ही कालान्तरमें राजा शन्तनुकी पत्नी और गङ्गा-पुत्र भीष्मकी सौतेली माँ बनीं। अतएव व्यास और पितामह भीष्मका सम्बन्ध अत्यन्त निकटका था। कौरव-पाण्डवोंके ये ही कुलधर थे। पाण्डवोंके वनवासके बारह वर्ष समाप्त होनेपर व्यासजीने पुनः एक बार उनके पास आकर धर्म और नीतिसे परिपूर्ण आत्मसंयमका उपदेश दिया, जिसके कारण वे अज्ञातवासका तेरहवाँ वर्ष विषम स्थितियोंमें रहकर भी सफलतापूर्वक बिता सके। तेरहवें वर्षके बाद जब युधिष्ठिरने कौरवोंसे अपना राज्य वापस माँगा, तब व्यासजीने फिर धृतराष्ट्रको समझाया, परंतु क्रूर कालके सामने मनीषी व्यास और वयोवृद्ध, प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्रकी एक न चली। त्रिकालज्ञ व्यास कालकी महिमासे सुपरिचित थे। कालकी सत्तामें विश्वास उनके दर्शनका अभिन्न अङ्ग था, जिसे उन्होंने अनेकशः महाभारतमें इस रूपमें प्रकट किया है—'काल सबकी जड़ है, काल संसारके उत्थानका बीज है। काल ही अपने वशमें करके उसे हड़प लेता है। वही काल समय आनेपर बलवान् बनकर पुनः दुर्बल बन जाता है।' 'समन्तपञ्चक' के क्षत्रिय-क्षयकारी युद्धको स्वयं देखकर वेदव्यासजीने कालकी अमित महिमाके ध्यानसे अपने चित्तको धैर्य बँधाया। जिस समय कुरुक्षेत्रमें दोनों ओरसे भारतीय सेनाएँ आ उपस्थित हुईं, तब भी उन्होंने धृतराष्ट्रको समझाकर युद्ध रोकनेका प्रयत्न किया, पर उनकी एक न चली। युद्ध-कालमें भी वे सदैव स्थितिको सँभालते रहे। युद्धके अन्तमें उन्होंने शोकमग्न धृतराष्ट्र तथा करुणाविगलित युधिष्ठिरको समझा-बुझाकर धैर्य बँधाया तथा शोकसंतप्त तपःकाम युधिष्ठिरको राज्यके लिये तैयार करके नीति, धर्म और अध्यात्मकी शिक्षाके लिये भीष्मके पास भेजा और 'अश्वमेध' यज्ञ करनेकी प्रेरणा दी। युद्धके सोलह वर्ष पश्चात् वे पुनः हिमालयपर जाकर धृतराष्ट्रसे मिले और उनके राग-द्वेषाभिभूत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनको उन्होंने अपनी सुधासिक्त वाणीसे सिंचितकर तपस्याभिमुखी बनाया।

वेदव्यासजी त्रिकालदर्शी, अप्रतिहतगति और अतीव सामर्थ्यवान् थे। जब-जब माता सत्यवतीने उन्हें स्मरण किया तब-तब वे तत्काल उपस्थित हो गये। इससे उनकी इच्छा-गतिका प्रमाण मिलता है। वनमें निवास करते हुए अर्जुनको 'प्रतिस्मृति'-विद्याका उपदेश देकर व्यासजीने ही उन्हें देवदर्शनमें सक्षम बनाया था तथा युद्धके समय धृतराष्ट्रकी प्रार्थनापर संजयको दिव्य दृष्टि भी प्रदान की थी, जिसके प्रभावसे न केवल युद्धका प्रत्यक्ष दर्शन अपितु स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे गीताका उपदेश और उनके विराट् रूपका दर्शन, जो अर्जुनके अतिरिक्त अन्यको न हुआ था, इन्हें हो सका। इसके अतिरिक्त युद्धोपरान्त धृतराष्ट्र, कुन्ती, गान्धारी एवं अन्यान्य कुरुकुल-भामिनियोंको उनके मृत स्वजनोंका दर्शन कराकर तथा इच्छुकोंको उनके स्वजनोंके लोकमें भेजकर व्यासजीने अपनी अलौकिक सामर्थ्यका परिचय दिया था। जनमेजयने वैशम्पायनद्वारा इस वृत्तान्तको जानकर जब अपने पिता परीक्षित्के दर्शनकी लालसा व्यक्त की, तब वहाँ उपस्थित व्यासजीने उनकी इच्छा पूरी कर पुनः एक बार अपनी अमित सामर्थ्यका परिचय दिया था।

श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें इस बातका प्रबल प्रमाण विद्यमान है कि व्यासजीने अपना विरक्त जीवन सरस्वतीके पावन तटपर ही बिताया था और वहीं देवर्षि नारदकी प्रेरणासे श्रीमद्भागवतकी रचना कर आत्मसंतोष प्राप्त किया था[१]। यह स्थान कहाँ है? किस रूपमें है? इसका यत्किंचित् परिचय देना यहाँ असंगत न होगा।

व्यासपुरमें सरस्वती-तटपर व्यासाश्रम

हरियाणाप्रान्तके अम्बाला मण्डलवर्ती जगाधरी (यमुनानगर) नामक स्थानसे दस मील उत्तरमें एक समृद्ध ग्राम है, जिसका प्राचीन नाम व्यासपुर है। राजकीय अभिलेखोंके अनुसार यह ग्राम प्रायः छः सौ वर्षसे निरन्तर बसा हुआ चला आ रहा है। इसी ग्रामके दक्षिणमें 'व्यास-सरोवर' है, जिसे यहाँकी जनता परम्परागत-रूपमें वेदव्यासजीका आश्रमस्थल मानती आ रही है। इस स्थान (व्यासाश्रम) से नातिदूर द्वादश मासप्रवाहिणी नदीके रूपमें ब्रह्मनदी सरस्वतीके दर्शन होते हैं। इसी व्यासाश्रमके उत्तरमें एक कोसकी दूरीपर तीर्थराज 'कपालमोचन' तथा 'ऋणमोचन'—दो सरोवर हैं, जहाँ प्रति-वर्ष कार्तिकी पूर्णिमाको हरियाणा-सरकारके सुप्रबन्धमें लक्षाधिक जनताका विशाल मेला लगता है। यहाँसे नौ कोस उत्तरमें 'आदिबदरी' नामक प्राचीनतम देवमन्दिर पर्वतशिखर-पर विद्यमान है। यहाँ नगाधिराज हिमालयकी यात्रा पूर्ण कर ब्रह्मनदी सरस्वती समतल (मैदानी) क्षेत्रमें उतर पूर्वोक्त व्यासाश्रमके पार्श्वमें प्रवाहित होती हुई कुरुक्षेत्रमें पहुँच जाती है। यहाँ सरस्वती नदीके तटपर ही अगस्त्याश्रम, मुद्गलाश्रम आदि ऋषियोंके स्थान हैं, जहाँ आज भी अनेकानेक साधक तपस्वी साधनारत दीख पड़ते हैं।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबादद्वारा प्रकाशित 'महाभारत-मीमांसा'के विवेचनात्मक भौगोलिक वर्णनमें इसी प्रदेशके द्वैतवन तथा सरस्वती नदीको इसी प्रदेशमें प्रवहमान मानकर लिखा है कि 'द्वैतवन उत्तरकी ओर हिमालयकी तराईमें होगा, उसमें सरस्वती नदी बहती थी। इसी वनसे बलराम एवं पाण्डव तीर्थयात्राको निकले थे।'

श्रीवेदव्यासजीने स्वयं महाभारतके शल्यपर्वमें दुर्योधनका अन्तिम कालमें प्राणरक्षार्थ कुरुक्षेत्रसे पूर्वकी ओर भागकर द्वैपायन-सरोवरमें छिपनेका उल्लेख किया है। इस प्रदेशकी जनता उक्त कथाको इसी सरोवरसे सम्बद्ध मानती है। विचार करनेपर कृष्णद्वैपायन व्याससे सम्बद्ध यही सरोवर द्वैपायन या व्यास-सरोवर प्रतीत होता है। व्यासपुरका यह द्वैपायन-सरोवर कुरुक्षेत्रसे बाहर पूर्व दिशामें ही है। इसकी पुष्टि बलराम-तीर्थयात्रा-प्रसंगसे भी होती है। श्रीबलराम तीर्थयात्राके समय सरस्वती नदीके उद्गमस्थल प्लक्ष-प्रस्रवणमें ही दुर्योधन-भीमके गदायुद्धका समाचार पाते हैं और तत्काल द्वैपायन-सरोवरपर पहुँचकर उन्हें कुरुक्षेत्रकी पवित्रता तथा महत्ता बताकर युद्धार्थ कुरुक्षेत्रकी पावन भूमिमें ले जाते हैं, जो वहाँसे पश्चिमाभिमुखी थी।

इस प्रकार व्यासाश्रम तथा व्यास-सरोवरका कुरुक्षेत्रसे बाहर पूर्वमें होना तथा इसके पश्चिममें सरस्वतीके दक्षिण तटपर कुरुक्षेत्रका होना सुनिश्चित हो जाता है। निष्कर्षरूपमें

१-स कदाचित् सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचि। विविक्तदेश आसीन उदिते रविमण्डले॥ (श्रीमद्भा० १।४।१५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं महाभारतके अन्तःसाक्ष्यके आधारपर हरियाणाप्रदेशके पावन कुरुक्षेत्रकी पार्श्वभूमिमें ब्रह्मनदी सरस्वतीके तटपर इस तपोभूमिमें व्यासाश्रमकी विद्यमानता सिद्ध हो जाती है। इसके अतिरिक्त अन्य जिन स्थानोंका पता चल सका है, वे इस प्रकार हैं—

१-व्यासाश्रम—भावुक जनोंका आस्थाकेन्द्र यह स्थान माना ग्राममें बदरीनारायणसे दो मील आगे भारतकी उत्तरी सीमाके अन्तिम ग्राममें विद्यमान है।

२-व्यासगुफा—भड़ौचके निकट विद्यमान इस गुफाको व्यासकी तपःस्थली मानकर दर्शनार्थी सदैव दर्शनार्थ जाया करते हैं।

३-व्यास-टीला—नैमिषारण्यमें विद्यमान यह एक टीला है। जो यात्रियोंका विशेष श्रद्धाभाजन है। प्रतिवर्ष गुरुपूर्णिमाको यहाँ उत्सव भी मनाया जाता है।

४-वासम—यह **'व्यासम्'**का अपभ्रंश रूप है। यह आन्ध्र-प्रान्तमें छोटी लाइनपर धर्मावादके निकट विद्यमान है। इस गाँवको व्यासजीकी तपोभूमि माना जाता है और वहाँ विद्यमान शिव-मन्दिरको वेदव्यासजीद्वारा स्थापित तथा चमत्कारयुक्त माना जाता है।

५-वेदव्यास—यह वाराणसेय रामनगरके बाहर मन्दिर है तथा सिद्धपीठके रूपमें पूजास्थल भी है।

६-बस्तली (व्यासस्थली)—यह स्थान हरियाणाके करनाल जिलेमें जिलामुख्यालयसे १८ मील दूरपर विद्यमान है और बिगड़कर 'बस्तली' बन चुका है। यहाँसे थोड़ी ही दूरपर सरस्वती नदी भी विद्यमान है। कहा जाता है कि कुछ समयपूर्व वहाँके कुण्डमें नीलकमल खिलते थे, परंतु आज ऐसा कुछ नहीं है।

७-गुजरातमें अहमदाबादके निकट भी एक ग्राममें व्यासाश्रम' बताया गया है।

८-मथुरा-आगराके मध्य रुणकतासे छः मील दूर वेदव्यासजीका एक आश्रम है, जहाँ उनका भव्य मन्दिर भी बना हुआ है।

इस प्रकार विभिन्न दिशाओं और प्रान्तोंमें प्राप्त स्थानोंके आधारपर कहा जा सकता है कि श्रीवेदव्यासजीका क्षेत्र सम्पूर्ण भारतवर्ष था। शोध करनेपर और भी अधिक जानकारी इस सम्बन्धमें प्राप्त हो सकेगी। हाँ, उनका भागवतादिका रचना-स्थान कुरुक्षेत्रका पश्चिमवर्ती 'व्यासाश्रम' ही था, इसमें संदेह नहीं। शेष उल्लिखित स्थानोंसे श्रीव्यासजीके व्यापक कार्यक्षेत्रका ही अनुमान लगाया जा सकता है। व्यासजीकी अलौकिक प्रतिभा, कार्यक्षमता तथा व्यापकताके कारण जहाँ पूर्ववर्ती विद्वानोंने इन्हें भगवत्कोटिमें स्थापित किया है, वहीं परवर्ती कवियोंने भी इन्हें भावप्रवण श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है।

भारतीय जनजीवनमें व्यास अजरामर माने गये हैं। आज भी वर्षगाँठके अवसरपर जिन सात चिरजीवियोंका स्मरण किया जाता है, उनमें व्यासजीका महत्त्वपूर्ण स्थान है। भले ही इसे कोई कपोलकल्पित ही कहे, इसमें कुछ-न-कुछ सत्यांश अवश्य है। व्यास और अश्वत्थामाके प्रत्यक्ष दर्शनके अधुनातम प्रमाण आज भी मिलते हैं।

वेदव्यासजीकी रचनाएँ—पाणिनि-शास्त्रमें उपलब्ध सामग्रीके आधारपर विदित होता है कि उपनिषदोंके अध्यात्म-ज्ञानका सार 'वेदान्तसूत्र' (भिक्षुसूत्र) वेदव्यासजीकी ही महत्त्वपूर्ण कृति है। इसके अतिरिक्त अष्टादश महापुराण—ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव (वायु), लिङ्ग, गरुड, नारद, भागवत, अग्नि, स्कन्द, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, वामन, वराह, मत्स्य, कूर्म और ब्रह्माण्ड तथा महाभारतके कर्ता भी वेदव्यासजी ही हैं। वेदव्यासजीने जहाँ वेदोंका विस्तार किया, वहीं पुराणोंकी सरणि भी स्थापित की। उन्हींके दिखाये मार्गपर चलकर उपपुराण तथा औपपुराणोंकी रचना हुई और ये दोनों भी अठारहकी संख्यामें ही रचे गये। अष्टादश पुराणोंमें श्रीमद्भागवत और देवीभागवतको लेकर मतभेद है कि किसे वहाँ स्थान दिया जाय। इस विवादमें न पड़ते हुए हम यहाँ इतना ही कह सकते हैं कि पुराण, उपपुराण तथा औपपुराणोंकी संख्या देवीभागवतको मिलाकर ५५ है और इस विपुल ज्ञानराशिके मूलोत्स हैं महर्षि वेदव्यास। व्यासजीके महत्त्वके प्रतिपादक कीर्तिके शुभ्र जयस्तम्भ हैं महाभारत और श्रीमद्भागवत। उन्होंने श्रीमद्भागवतमें भक्ति-तत्त्वका निरूपण कर उसे विद्वानोंकी परीक्षाभूमि बनाया है और महाभारतमें अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र और मोक्षशास्त्रको भारतीय कथाके साथ-साथ अपूर्व रुचिरतासे सजाकर सदैवके लिये आर्यजातिके विस्तृत ज्ञान और लौकिक जीवनका रूप खड़ा कर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कान्ताभावकी उपासिका व्रजगोपिकाएँ

(श्रीमदनगोपालजी शर्मा)

व्रजगोपियोंका विस्तारसे उल्लेख श्रीमद्भागवत तथा गर्गसंहिता आदिमें मिलता है। गोपीसे तात्पर्य उन कुमारियों एवं नवोढाओंसे है, जो श्रीकृष्णके प्रति प्रेमभाव रखती हैं तथा उनकी अनन्य भक्त हैं। लीलाविहारी श्रीकृष्णने व्रजमें अनेक लीलाएँ कीं, इन लीलाओंमें व्रजगोपियोंकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। श्रीकृष्ण और गोपियोंका सम्बन्ध चन्द्रमा और चाँदनीकी तरह अभिन्न है। गोपियाँ श्रीकृष्णकी कान्ताभावसे प्रेमाराधना करती हैं, सभी अवस्थाओंमें श्रीकृष्णकी लीलाओंमें सहभागिनी बनती हैं। यह प्रेमाराधनाका चरमोत्कर्ष है, वे सम्पूर्ण रूपसे कृष्णमय हो जाती हैं। श्रीकृष्ण आत्मा हैं और गोपियाँ आत्माकी वृत्तियाँ, श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं तो गोपियाँ उनकी शक्तियाँ। शक्ति कभी अपने आश्रयसे विलग हो ही नहीं सकती। इस अवस्थामें व्यक्तिका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है।

कान्ताभाव आराधना-पद्धतिका एक अङ्ग है। श्रीकृष्ण और गोपियोंके सम्बन्धोंको ऐन्द्रिक समझना बहुत बड़ी भूल है। सम्पूर्ण प्रसंग प्रेम, आत्मीयता और समर्पणकी भावनासे ओत-प्रोत है। जैसे पत्नी अपना सब कुछ अपने पतिको सौंप देती है, वैसे ही कान्ताभावकी उपासिका व्रजगोपियाँ अपना सब कुछ कृष्णार्पण कर कृष्णमय हो गयी हैं। सच्चे हृदयसे समर्पित गोपियोंके प्रेमकी थाह बड़े-बड़े ज्ञानी भी नहीं पा सकते। कोई लाख प्रयास करे फिर भी गोपियाँ अपने आराध्यसे भिन्न किसीका ध्यान नहीं कर सकतीं।

संयोग हो या वियोग, सच्चा प्रेमी किसी भी स्थितिमें अपने प्रियतमसे विलग नहीं रह सकता। गोपियाँ उपेक्षा, विश्वासघात एवं अनन्त वियोगसे उत्पन्न हालाहलको पीकर भी मुसकराती हैं। गोपियोंके विरहमें असंख्य भाव-लहरियोंकी टकराहट स्पष्ट सुनायी देती है, इतना सब कुछ होते हुए भी वे अपने आराध्यके विषयमें किसी अन्यसे कोई प्रतिकूल बात नहीं सुन सकतीं, उद्धवने जब निर्गुण उपासनाकी बात कही, तब गोपियोंने अपने सरल स्वभावके अनुरूप स्पष्ट रूपसे कहा—

ऊधो ! मन नाहीं दस बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम सँग को अवराधे ईस ॥

उद्धवके हाथों जब अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी पाती आयी, तब गोपियोंमें ऐसा प्रेम उमड़ा, मानो स्वयं श्रीकृष्ण आ गये हों। प्रेमरसमें आकण्ठ डूबी गोपियाँ भावविह्वल होकर बार-बार पूछती हैं—हमको क्या लिखा है ? हमको क्या लिखा है ?

गोपियोंका आत्मीय प्रेम, अपने आराध्यके प्रति तल्लीनता, भावप्रवणता, अन्तर्मनकी अभिव्यक्ति, हृदयकी पवित्रता और निष्कामतन्मयता कान्ताभावकी उपासनाका सारामृत है, विरह भी अपने-आपमें एक साधना है, आराध्यके साक्षात्कारके लिये विरहमें रात-दिन तड़पनेका अभ्यास भी करना पड़ता है। कान्ताभावकी उपासनामें 'राधा-प्रेम' की स्थिति सर्वोपरि है, क्योंकि राधा और कृष्ण अभिन्न हैं। गोपियोंका चरम लक्ष्य मञ्जरी-भावसे सर्वस्व अर्पण करते हुए राधा-कृष्णकी उपासना करना है। इस स्थितिको प्राप्त करनेके पश्चात् शेष कुछ नहीं रह जाता।

वैष्णवधर्ममें 'शरणागति'का सर्वोपरि महत्त्व है। एक बार प्रभुकी शरणमें जानेपर उसका प्रत्येक कार्य प्रभुमय हो जाता है, वह अपने-आपको प्रभुमें विलीन कर देता है, यह शिक्षा हमें गोपियोंकी आराधना-पद्धतिसे मिलती है। यही कारण है कि गोपियाँ आनन्दकन्द श्रीकृष्णकी शाश्वत प्रीतिका पात्र बनीं। एक बार द्वारकामें श्रीकृष्णने अपनी पट्टमहिषियोंके प्रेमकी परीक्षाके लिये उदर-व्यथाका अभिनय किया। उपचारके बाद भी लाभ न हुआ। लोगोंने श्रीकृष्णसे ही उपचार पूछा तो उन्होंने कहा—'मेरा कोई अनन्य भक्त मूल औषधके अनुपानके रूपमें यदि अपनी चरणरज दे तो यह व्यथा तत्काल शान्त हो जाय।' सभी असमंजसमें पड़ गये। नारदजी गोपियोंके पास पहुँचे और उनसे चरणरज माँगी। गोपियोंने यह कहते हुए चरणरज सहर्ष दे दी कि 'हमारे लिये प्रियतमसे बढ़कर कुछ भी नहीं है। हम श्रीकृष्णके लिये सब कुछ कर सकती हैं, भले ही हमें नरकमें पड़ना पड़े।' नारदजी व्रजाङ्गनाओंके चरणरजकी पोटली बाँधे द्वारका पहुँचे। उसे देखकर और सारे रहस्यको नारदजीके द्वारा जानकर अतिशय प्रेमका अभिमान करनेवाली रुक्मिणी आदि पट्टमहिषियोंका मान गल गया और वे गोपियोंके प्रेमकी पराकाष्ठा देखकर आश्चर्यसे स्तब्ध रह गयीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयोगी साधन

(एक संतका प्रसाद)

प्रश्न—चित्त-शुद्धिका साधन क्या है और यह कब समझना चाहिये कि चित्त शुद्ध हो गया ?

उत्तर—चित्त-शुद्धिके लिये दो बातोंकी आवश्यकता है—विवेक और ध्यान। केवल आत्मा-अनात्माका विवेक होनेपर भी यदि ध्यानके द्वारा उसकी पुष्टि नहीं की जायगी तो वह स्थिर नहीं रह सकेगा। इसके सिवा इस बातकी भी बहुत आवश्यकता है कि हम दूसरोंके दोष न देखकर निरन्तर अपने चित्तकी परीक्षा करते रहें।

जिस समय चित्तमें राग-द्वेषका अभाव हो जाय और चित्त किसी भी दृश्य पदार्थमें आसक्त न हो, उस समय समझना चाहिये कि चित्त शुद्ध हुआ। परंतु राग-द्वेषसे मुक्त होनेके लिये परमात्मा और महापुरुषोंके प्रति राग होना तो परम आवश्यक है।

प्रश्न—राग-द्वेष किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जिस समय मनुष्य नीतिको भूल जाय, उसे सदाचारके नियमोंका कोई ध्यान न रहे, तब समझना चाहिये कि वह राग-द्वेषके अधीन हुआ है। राग-द्वेषका मूल अहंकार है। अहंकारके आश्रित ही ममता और परत्वकी भावनाएँ रहती हैं। ममता ही राग है और परत्व ही द्वेष है।

प्रश्न—समयको किस प्रकार बिताना चाहिये ?

उत्तर—सबके लिये एक मत नहीं है। जो अपने माता-पिता और गुरुजनोंके पास रहनेवाले भक्त हैं, उन्हें गुरुजनोंकी सेवामें अधिक समय लगाकर भजनमें कम समय लगाना चाहिये। और जो गुरुजनके समीप नहीं रहते, उन्हें भजनमें अधिक समय लगाना चाहिये। यदि गुरुजन सेवा न कराते हों तो भजनमें ही अधिक समय लगाना चाहिये। गुरुजन गृहस्थ हों तो उनकी सेवा करनेकी आवश्यकता रहती है। यदि वे भी सेवा स्वीकार न करें तो भजनमें ही अधिक समय लगाये। सबको अधिक समय तो भजनमें ही लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

प्रश्न—भगवान् तो हमें दीखते नहीं, इसलिये उनकी शरण कैसे हों ?

उत्तर—विराट्स्वरूप भगवान् तो दीखते ही हैं। शक्ति, शान्ति और सौन्दर्य—ये भगवान्‌के ही स्वरूप हैं।

प्रश्न—महाराजजी ! भजनमें जो निद्रा आ जाती है, उसको हटानेके लिये क्या करना चाहिये ?

उत्तर—जोर-जोरसे कीर्तन करो, खड़े होकर जप करने लगो। भक्तोंके बनाये हुए पद जोर-जोरसे गाने लगो। इसका यह मतलब नहीं कि लोगोंको दिखानेके लिये भजन किया जाय। लोग देखें—इस निमित्तसे भजन करना तो बहुत नीचा भाव है।

प्रश्न—महाराजजी ! बुरे कामोंमें जो मन जाता है, उसे कैसे रोकें ?

उत्तर—उन कामोंसे घृणा करो, उनमें दोष-दृष्टि करो।

प्रश्न—सबका सर्वोच्च ध्येय क्या होना चाहिये ?

उत्तर—परमानन्दकी प्राप्ति और दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति ही सबका ध्येय होना चाहिये। उनके साधन ये हैं—

१-निष्कामभावसे परोपकार, प्राणिमात्रकी सेवा।

२-भगवद्विग्रह और भगवद्भक्तोंकी सेवा।

३-भगवन्नामजप और ध्यान।

प्रश्न—शरीर, वाणी, धन और अन्तःकरण किस प्रकार शुद्ध होते हैं ?

उत्तर—झूठ, हिंसा और व्यभिचारके त्यागसे शरीर शुद्ध होता है। भगवन्नामजपसे वाणी शुद्ध होती है। दानसे धन शुद्ध होता है। धारणा और ध्यानसे अन्तःकरण शुद्ध होता है।

प्रश्न—राग-द्वेष कैसे दूर किया जाय ?

उत्तर—पहले शुभ कर्मका आचरण और अशुभ कर्मका त्याग करे। त्यागद्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो जानेसे साधक ईश्वरोपासनाका अधिकारी होता है। फिर उपासना परिपक्व होनेपर भगवान्‌का मिलन होता है। भगवान्‌का मिलन होनेपर राग-द्वेषकी निवृत्ति होती है और ईश्वर, जीव तथा जगत्‌का पूर्ण एवं यथार्थ ज्ञान हो जाता है।

प्रश्न—राग-द्वेषका स्वरूप क्या है ? ये कैसे पैदा होते हैं ? इनकी निवृत्ति कैसे होती है ? इनके रहनेसे मनुष्यकी क्या गति होती है ?

उत्तर—यदि किसी चीजमें चित्त ऐसा फँस जाय कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसा ही अपमान, निरादर या दुःख होनेपर भी न हटे तो इसे राग कहते हैं, जैसा कि गोपियोंका श्रीकृष्णमें था। जब किसी चीजसे चित्त ऐसा हट जाय कि उसमें दोष-ही-दोष दिखायी दें, गुण कोई मालूम ही न हों तो यही द्वेष है, जैसे कंसका श्रीकृष्णके प्रति था। राग-द्वेषकी उत्पत्ति गुण-दोष या स्तुति-निन्दाके चिन्तनसे होती है। और राग-द्वेष ही संसारके कारण हैं, क्योंकि इनके विषयोंका निरन्तर चिन्तन रहता है, इसलिये वे हर समय सामने खड़े रहते हैं। जो पूर्ण ज्ञानी या पूर्ण भक्त होता है, उसमें संसारके प्रति राग-द्वेष नहीं रहते। अतः ऐसे महापुरुषका ध्यान करनेसे राग-द्वेष जाते रहते हैं। इसके सिवा किसीकी निन्दा-स्तुति न करनेकी प्रतिज्ञा करनेसे भी इन दोषोंकी निवृत्ति हो जाती है। राग-द्वेष न रहनेसे चित्त हलका हो जाता है और उसमें सत्त्वगुणकी प्रधानता हो जाती है।

× × ×

१-केवल चार बातोंसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है—

(१) कथा-पुराण सुननेसे।

(२) लोगोंका मरना देखकर अपनी मृत्युका विचार करनेसे।

(३) साधु-महात्मा और विरक्त पुरुषोंकी संगति करनेसे।

(४) संसारी व्यवहारको झूठा समझनेसे।

२-राजसिंहासनपर बैठते ही राजाके समीप मन्त्री और अन्य कर्मचारी स्वतः ही आ जाते हैं। इसी प्रकार अविवेकका उदय होते ही काम, क्रोध, मद और लोभ आदि आ जाते हैं। 'अहं'का उदय होते ही स्वस्थता नष्ट हो जाती है। स्वस्थताका अर्थ है—'स्व'में स्थित होना। 'स्व'में तुम तभी स्थिर रह सकोगे, जब तुम अपने 'अहं'को अलग कर दोगे। तुम अभ्यासी बनो, त्यागी बनो, किंतु बिना अभ्यासके आगे नहीं बढ़ सकते। ज्यों ही अभ्यासमें प्रमाद करोगे, त्यों ही चित्तमें नाना प्रकारकी स्फुरणाएँ होनी प्रारम्भ हो जायँगी।

३-अज्ञान और अविवेकको नष्ट करना ज्ञान और प्रेम-तत्त्वको आमन्त्रित करना है। सारे अज्ञान और अविवेककी सृष्टि 'अहं'ने की है। इसलिये 'अहं'को ही अपराधी समझकर गिरफ्तार करो। उसीको नष्ट करो। 'अहं'का नाश होते ही दिव्यताका अनुभव होने लगेगा। फिर तुम अपने अंदर एक बढ़ती हुई ज्योतिका अनुभव करने लगोगे।

४-छः घंटे ध्यान करो, परंतु यदि चित्त अपने लक्ष्यपर न रहकर विषय-चिन्तनमें भटकता रहता है तो सब मिट्टी हो जाता है, इसके विपरीत यदि सब प्रकारके कार्य करते हुए भी लौकिक चिन्तन न हो, निरन्तर भगवत्स्मृति बनी रहे तो यही सच्चा ध्यान है।

५-यदि तुम ज्ञानकी प्राप्ति करना चाहते हो तो आवश्यकता इस बातकी है कि देश, जाति और शरीरकी आसक्तिको अलग करो।

६-शरीरकी रक्षा करना चाहते हो, हृदयको सुरक्षित रखना नहीं चाहते। शरीरको पवित्र करना चाहते हो, हृदयको पवित्र करना नहीं चाहते। शुद्ध करना चाहिये शरीर, वाणी और हृदय तीनोंहीको। आचारसे शरीरकी शुद्धि होती है। चोरी, हिंसा, व्यभिचार, राग, द्वेष, ईर्ष्या एवं मद-मोहादिके त्यागसे हृदय शुद्ध होता है और अश्लील भाषणके त्यागसे वाणी शुद्ध होती है। मनकी शुद्धिके प्रधान साधन—सत्सङ्ग, विचार और सहनशीलता हैं, इनमें विचार मुख्य है।

७-जो चित्त दृश्य जगत्में आसक्त है, वह परमात्म-तत्त्वका चिन्तन नहीं कर सकता। जिस अवस्थामें पहुँचनेके लिये तुम तड़प रह हो, उसके समीप पहुँचनेके पूर्व तुम्हें बहुत-से कामोंको समाप्त करना होगा। अपनी सारी बुराइयोंको दूर करके सात्त्विक संसारमें उतरना होगा।

८-क्रोध पापका प्रधान करण है। पापियोंका चिह्न क्रोध है। जिसमें क्रोध है, चाहे वह कोई भी हो, उसे पापी ही समझना चाहिये। राग-द्वेष-मिश्रित क्रोध मनुष्यको उत्थानकी ओर जानेसे रोकता है। विशेषतया गुरुजनों और श्रेष्ठजनोंके प्रति तो क्रोध करना ही नहीं चाहिये।

९-जिस किसीने राग-द्वेषमय जीवन बिताया है, वही उन्नतिकी सुनहली पगडंडीपर चलनेसे वञ्चित रहा है। आवश्यकता है उद्दण्ड मनपर शासन करनेकी।

१०-निठल्ले आदमी ही दूसरोंके गुण-दोष देखते हैं। ज्ञानी आत्मदर्शी होता है, भक्त केवल भगवान्‌को देखता है और कामी केवल अपने इच्छित विषयको देखता है। इन सबको तो दूसरेकी ओर देखनेका अवकाश ही नहीं होता।

—(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्का-समाधान—

पूजा-ध्यान साकारका या निराकारका ?

(स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)

शङ्का—पूजन-ध्यान श्रीसीताराम, राधेश्याम, गौरी-शंकर, लक्ष्मीनारायण, सूर्यनारायण, गणेशजी आदि सभीका करना चाहिये या एकका ? कुछ लोग कहते हैं—अनन्य भक्तको केवल अपने इष्टदेवका ही पूजन तथा ध्यान करना चाहिये, सबका नहीं।

समाधान—श्रीसीतारामका अनन्य भक्त श्रीसीतारामके बाल्य, किशोर, वनवासी, युवा एवं सिंहासनस्थ आदि सभी रूपोंकी पूजा करता है। यद्यपि इन सबके स्वरूपमें पर्याप्त अन्तर होता है तथापि ये सभी मेरे इष्टदेव श्रीसीतारामजी ही हैं, ऐसी एकता-रूप अनन्य भावनाके कारण वह अपनेको अनन्य भक्त ही मानता है तथा शास्त्र और संत भी उसे अनन्य भक्त ही कहते हैं। इसी प्रकार गौरीशंकर, सूर्यनारायण, गणेशजी भी मेरे इष्टदेव श्रीसीतारामजीके ही रूप हैं, ऐसा शास्त्रप्रमाणके आधारपर मानकर जो श्रीसीतारामजीका भक्त गौरीशंकर आदि सभी रूपोंकी पूजा करता है, वह भी श्रीसीतारामजीका अनन्य भक्त ही है। तात्पर्य यह है कि रूपभेद-मात्रसे अनन्यता नष्ट नहीं होती, इष्टरूपमें भेद माननेसे ही अनन्यता नष्ट होती है। इसी आधारपर स्मार्त सम्प्रदायमें पञ्चदेवोंकी उपासना की जाती है, क्योंकि एक भगवान् ही सूर्य, शक्ति, गणेश, शिव, विष्णु—इन पाँच रूपोंमें क्रीडाके लिये नाटकके सूत्रधारकी तरह प्रकट होते हैं। ऐसा शास्त्रोंमें स्पष्ट कहा है—

अहं विष्णुश्च शर्वश्च देवी विघ्नेश्वरस्तथा।
एकोऽहं पञ्चधा जातो नाट्ये सूत्रधरो यथा॥

(स्कन्दपु० वैष्णव०, कार्तिक० ३। १६)

शैवाः सौराश्च गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
मामेव प्राप्नुवन्ति हि वर्षापः सागरं यथा॥
एकोऽहं पञ्चधा जातः क्रीडयन् नामभिः किल॥

(पद्मपु० ६। ८८। ४३-४४)

'मैं (सूर्य) ही विष्णु, शिव, देवी और विघ्नेश्वर गणेश—इन पाँच रूपोंमें नाटकमें सूत्रधारकी तरह प्रकट हुआ हूँ।' 'जैसे वर्षाका जल सागरको प्राप्त होता है, वैसे ही शिव-सूर्य-गणेश-विष्णु-शक्तिके पूजक मुझे ही प्राप्त होते हैं। एक मैं ही अनेक नामोंद्वारा क्रीडा करता हुआ पाँच प्रकारसे प्रकट हुआ हूँ।'

जो वैष्णव विद्वान् कहते हैं कि विष्णुके माहात्म्य-प्रतिपादक पुराणोंसे भिन्न शैव-शाक्त आदि राजस, तामस पुराणोंमें ही शिवादिसे विष्णुकी एकताका कथन किया गया है, सात्त्विक पद्मादि पुराणोंमें नहीं किया गया, उन वैष्णव विद्वानोंको उपर्युक्त पद्मपुराणके वचन ध्यानसे पढ़ने चाहिये। पुराणोंमें शिव-विष्णु आदिमें भेदका भी प्रतिपादन किया गया है। उसका तात्पर्य अपने-अपने इष्टदेवमें सुदृढ़ निष्ठामात्र करानेमें है। भेदप्रतिपादनमें तात्पर्य माननेपर पुराणोंमें विरोध होगा, जिससे उनकी प्रामाणिकता नष्ट हो जायगी।

उपर्युक्त शास्त्रवचनोंसे पञ्चदेवोंके एकरूप होनेसे एकका भक्त अन्योंकी पूजा तो कर सकता है, परंतु ध्यान तो एक अपने इष्टदेवका ही करना अधिक अच्छा होगा। इसका कारण यह है कि ध्यानमें वृत्तियोंको एकाकार होना चाहिये। योगसूत्र (३। २) में ध्यानका लक्षण इस प्रकार बताया गया है—

'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।'

यदि रामका भक्त विष्णु आदि रूपोंका भी ध्यान करेगा तो वृत्तियाँ एकाकार न होकर अनेकाकार हो जायँगी। इतना ही नहीं, यदि बालकरूप रामका भक्त रामजीके ही किशोर, वनवासी आदि रूपोंका भी ध्यान करेगा अथवा बालक-रूप रामके भी अनेक आकारवाले रूपोंका ध्यान करेगा तो भी वृत्तियाँ एकाकार न होकर अनेकाकार हो जायँगी। इसलिये अपने इष्टदेवके भी एक रूपका ही ध्यान करना चाहिये, तभी योगसूत्रमें ऊपर बताया ध्यान सम्पन्न होगा, अन्यथा नहीं। यहाँ यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि रामके भक्तको विष्णु आदिके ध्यानका या रामके ही नाना रूपोंके ध्यानका जो निषेध किया है, उसका तात्पर्य एकाकार-रूप जो ध्यानका लक्षण है, उसे सुगमतासे सम्पादन करानेके लिये ही किया है। अन्य रूपोंका ध्यान करनेसे पाप होता हो ऐसी कोई बात नहीं है। इसलिये जिन्हें अन्य रूपोंका भी ध्यान करना प्रिय है, वे अन्य रूपोंका भी ध्यान कर सकते हैं।

ध्यानकी सामान्य विधि

जिसे अपने इष्टदेवका जो रूप बहुत प्रिय लगता हो, उसे अपने सामने रख ले। कुशासन या कम्बल आदि पवित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसनपर शान्त होकर बैठ जाय, शरीरको भी हिलाये-डुलाये नहीं। आँखोंसे सामने रखे इष्टदेवके रूपको देखे, जब आँखें दुखने लगें, तब पलक बंद कर ले। आँखोंके बंद हो जानेपर भी जबतक मन इधर-उधर न जाय, तबतक आँखें बंद रखे, जब मन इधर-उधर जाय तो फिर आँखें खोलकर इष्टदेवके रूपको देखने लग जाय। इस प्रकार प्रतिदिन एक ही समय ध्यान करनेपर इष्टदेवकी छबि आँखोंमें बस जायगी, जिससे फिर इष्टदेवको सामने न रखनेपर भी ध्यान किया जा सकेगा। इष्टदेवकी छबिको आँखोंमें बसानेमें सहायता हो इसके लिये उसी चित्रकी अनेक प्रतियाँ मँगाकर उठने-बैठने, खाने-पीने, सोने-लेटनेके स्थानोंपर लगा दें, जिससे बार-बार उनपर दृष्टि पड़े। ऐसा करनेसे छबि आँखोंमें शीघ्र बस जायगी, जिससे ध्यानमें सहायता प्राप्त होगी[1]।

'हनुमानबाहुक'—मन्त्रात्मक काव्य

(डॉ॰ श्रीरंजनसूरिदेवजी विद्याविभूषण, साहित्यमार्तण्ड)

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी लोकप्रसिद्ध एवं बहुजन-हितसाधक कालजयी कृति 'हनुमानबाहुक' अन्य सभी काव्य-गुणोंसे अलङ्कृत होते हुए मन्त्रात्मक स्तोत्र भी है। मन्त्रात्मकसे तात्पर्य है—लघुरूप होनेपर भी, जिसके मनन करनेसे विपुल फल प्राप्त हो, अथवा जो आकारकी दृष्टिसे छोटा तो हो, किंतु गुणवत्ताकी दृष्टिसे महार्घ और महाकाय हो। मन्त्रात्मकताके कारण ही 'हनुमानबाहुक'का पाठ वातव्याधिकी पीडाकी शान्तिमें अमोघवीर्य औषधकी तरह काम करता है।

ऐसी लोकधारणा या प्रबल लोकविश्वास है कि औषध-सेवनसे जो वातकष्ट दूर नहीं हो पाता, उसे 'हनुमानबाहुक'का केवल तीन पाठ समूल दूर कर देता है। इतना ही नहीं, 'हनुमानबाहुक'का ११,१०८ (ग्यारह हजार एक सौ आठ) बार पाठ करनेसे असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाता है। गुग्गुलका धूप देकर और बेसनके पाँच लड्डू या पाँच फल या पञ्चमेवाका नैवेद्य निवेदनपूर्वक एकाग्रमनसे हनुमान्‌जीका ध्यान करते हुए 'हनुमानबाहुक' का नित्य पाठ करनेपर वायु-सम्बन्धी समस्त रोगोंका शमन हो जाता है।

कहते हैं, स्वयं श्रीतुलसीदासजीकी बाहुओंमें भयंकर वातपीड़ा हुई थी और फोड़े-फुंसियोंके कारण उनका सारा शरीर दारुण वेदनासे आक्रान्त हो उठा था। उन्होंने औषध, यन्त्र-मन्त्र, टोने-टोटके आदि अनेक उपाय किये, किंतु रोग घटनेके बदले दिनानुदिन बढ़ता ही गया। असहनीय कष्टोंसे हताश होकर अन्तमें उसकी निवृत्तिके लिये उन्होंने हनुमान्‌जीकी छन्दोबद्ध वन्दना आरम्भ की और 'दनुजवनकृशानु' श्रीरामदूत-की कृपासे उनकी सारी दैहिक और आत्मिक पीड़ा नष्ट हो गयी। कहना न होगा कि श्रीरामदूत हनुमान्‌जीके स्मरण-कीर्तनसे आधि (मनःक्लेश) और व्याधि (कायक्लेश) दोनों एक साथ दूर हो जाती हैं। गोस्वामीजीने हनुमान्‌जीकी स्तुतिमें कुल चौवालीस छन्द रचे, जिनका संग्रह 'हनुमानबाहुक' के नामसे प्रसिद्ध हुआ और लोकजीवनद्वारा निरन्तर मनन किये जानेके कारण यह मन्त्रात्मक काव्य बन गया।

हनुमान्‌जीके नखशिख-वर्णनके क्रममें तुलसीदासजीने लिखा है कि मारुतसुतकी विकट मूर्तिका जो ध्यान करता है, उसके पास संताप (आधि) और पाप (व्याधि) दोनों ही स्वप्नमें भी नहीं आते। मूल पद इस प्रकार है—

स्वर्न-सैल-संकास कोटि-रबि-तरुन-तेज-घन।
उर बिसाल, भुजदंड चंड नख बज्र बज्रतन॥
पिंग नयन, भृकुटी कराल रसना दसनानन।
कपिस केस, करकस लँगूर, खल-दल-बल-भानन॥

१.योग, वेदान्त और भक्तिशास्त्रोंका चरम तात्पर्य अनन्य उपासना एवं निर्विकल्प समाधिकी प्राप्तिमें ही है। तत्त्वतः ये दोनों एक ही हैं। गीताका तात्पर्य अनन्य उपासना अर्थात् सभी देवताओं तथा स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण जगत्‌में नित्य-निरन्तर एकरस अविनाशी परमात्मतत्त्वका ज्ञानदृष्टिसे निरीक्षण करनेमें है। वहाँ भगवान्‌ने ऐसे योगी ज्ञानीको अपना आत्मस्वरूप बतलाया है। अतः किसी भी उपासनामें एक शुद्ध परमात्मा ही परम उपास्य होता है, जहाँ इष्टदेवतामें भिन्नताकी कोई आशङ्का नहीं रह जाती और तत्त्वतः यही अनन्य वैष्णवता या इष्टदेवकी उपासना है। इसमें किसी धर्म, सम्प्रदाय या उपासना-साधनापद्धतिका विरोध नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह तुलसिदास बस जासु उर मारुतसुत मूरति बिकट।
संताप पाप तेहि पुरुष पहिं सपनेहुँ नहिं आवत निकट॥
(छप्पय पद-सं० २)

अपनी असह्य बाहु-पीड़ाकी बात तुलसीदासजीने तीसवें छन्दमें इस प्रकार लिखी है—

आपने ही पापतें त्रितापतें कि सापतें,
बढ़ी है बाँहबेदन कही न सहि जाति है।
औषध अनेक जंत्र-मंत्र-टोटकादि किये,
बादि भये देवता मनाये अधिकाति है॥

गोस्वामीजीने हनुमान्‌जीकी वन्दनामें प्रपत्तिपूर्ण भक्तिका परिचय दिया है, जिसमें उन्होंने मुख्यतः आत्मनिवेदन ही किया है, पर कहीं-कहीं हनुमान्‌जीको उद्‌बोधित भी किया है और कहीं उपालम्भ देते हुए उनके अलौकिक गुणोंका बखान किया है। अलौकिक गुणोंके संकीर्तनके संदर्भमें 'हनुमानबाहुक'के घनाक्षरी छन्दमें रचित चौथे और पाँचवें पदोंकी आलंकारिक छटा तथा हनुमान्‌जीके महावीरोचित व्यक्तित्वके वर्णनकी मोहक भङ्गिमा द्रष्टव्य है—

भानुसों पढ़न हनुमान गये भानु मन,
अनुमानि सिसुकेलि कियो फेर-फार सो।
पाछिले पगनि गम गगन मगन-मन,
क्रमको न भ्रम, कपि बालक-बिहार सो॥
कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर बिधि,
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खभार सो।
बल कैधौं बीररस, धीरज कै, साहस कै,
तुलसी सरीर धरे सबनिको सार सो॥
भारतमें पारथके रथकेतु कपिराज,
गाज्यो सुनि कुरुराज दल हलबल भो।
कह्यो द्रोन भीषम समीरसुत महाबीर,
बीर-रस-बारि-निधि जाको बल जल भो॥
बानर सुभाय बालकेलि भूमि भानु लागि,
फलँग फलाँगहूतें घाटि नभतल भो।
नाइ-नाइ माथ जोरि-जोरि हाथ जोधा जोहैं,
हनुमान देखे जगजीवनको फल भो॥

इस प्रकार हनुमान्‌जीके अनेकविध अलौकिक गुणोंका बखान 'हनुमानबाहुक'के प्रारम्भके दो छप्पयों, एक झूलना, बारह घनाक्षरियों और फिर चार सवैयोंमें उपलब्ध होता है। इसके बादकी पंद्रह घनाक्षरियाँ, एक सवैया और फिर नौ घनाक्षरियाँ प्रायः उद्‌बोधन, उपालम्भ एवं आत्मनिवेदन-परक हैं।

श्रीतुलसीदासजी हनुमान्‌जीसे सोपालम्भ कहते हैं—संसार जानता है कि आपका कृपापात्र सदा निर्विघ्न और प्रसन्न रहता है, इसलिये आप अपनी इस प्रतिज्ञाको भूलिये नहीं। आप अपनी साहिबी सँभालिये। यदि मैं अपराधी हूँ तो मेरी हजारों प्रकारकी दुर्दशा कीजिये। किंतु लड्डूसे ही मरनेवालेको जहर देकर मत मारिये। हे महाबली! मेरी बाहुपीड़ाको शीघ्र ही दूर कीजिये। (पद-सं० २०)

प्रसिद्ध है कि हनुमान्‌जीको जब उनके बलका स्मरण कराया जाता है, तभी वह अपने बल-प्रदर्शनके लिये तैयार होते हैं। 'हनुमानबाहुक'की बीसवींसे चौबीसवीं घनाक्षरीतक तुलसीदासजीने अतुलित-बलधाम हनुमान्‌जीको उनके विपुल बलका स्मरण कराया है। इस संदर्भमें बाईसवीं घनाक्षरी द्रष्टव्य है—

उथपे थपनथिर थपे उथपनहार,
केसरीकुमार बल आपनो सँभारिये।
रामके गुलामनिको कामतरु रामदूत,
मोसे दीन दूबरेको तकिया तिहारिये॥
साहेब समर्थ तोसों तुलसीके माथेपर,
सोऊ अपराध बिनु बीर, बाँधि मारिये।
पोखरी बिसाल बाँहु, बलि बारिचर पीर,
मकरी ज्यौं पकरिकै बदन बिदारिये॥

उपालम्भपरक घनाक्षरियोंमें अड़तीसवीं घनाक्षरी अधिक प्रभावक है। मूल छन्द इस प्रकार है—

पायँपीर पेटपीर बाँहपीर मुँहपीर,
जरजर सकल सरीर पीरमई है।
देव भूत पितर करम खल काल ग्रह,
मोहिपर दवरि दमानक सी दई है॥
हौं तो बिन मोलके बिकानो बलि बारेही तें,
ओट रामनामकी ललाट लिखि लई है।
कुंभजके किंकर बिकल बूड़े गोखुरनि,
हाय रामराय ऐसी हाल कहूँ भई है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें श्रीतुलसीदासजीने हनुमान्‌के परमाराध्य श्रीरामको ही उपालम्भ दिया है। श्रीरामसे वह कहते हैं—कहीं ऐसी भी दशा हुई है कि समुद्रको भी पी जानेवाले अगस्त्य मुनिका सेवक गायके खुर डूबने योग्य पानीमें डूब गया हो ?

श्रीतुलसीदासजीने उपालम्भके स्वरमें हनुमान्‌जीसे यहाँ-तक कह दिया है कि मुझे यह समझा दीजिये कि आपसे यदि मेरी पीड़ाका निवारण नहीं हो सकता, तो फिर मैं यही जानकर चुप रहूँगा कि मैंने जो बोया है, वही अब काट रहा हूँ। इतना ही नहीं, इसी क्रममें उन्होंने श्रीराम और शिवको भी ललकार दिया है—

कहों हनुमानसों सुजान रामरायसों,
कृपानिधान संकरसों सावधान सुनिये।
हरष बिषाद राग रोष गुन दोषमई,
बिरची बिरंचि सब देखियत दुनिये॥
माया जीव कालके करमके सुभायके,
करैया राम बेद कहैं साँची मन गुनिये।
तुम्हतें कहा न होय हाहा सो बुझैये मोहि,
हौं हूँ रहों मौन ही बयो सो जानि लुनिये॥

(घनाक्षरी—पद-सं० ४४)

भक्तके तादात्म्यभाव या उसकी अनन्यताकी स्थितिमें आराध्य और आराधकके बीच पूज्य-पूजक-भाव नहीं रहता, अपितु अभेदभावमूलक व्यवहार होता है, तभी आराधक आराध्यको अपना परम विश्वस्त मानकर उसे खरी-खोटी भी सुना देता है। पर, साथ ही वह अपनी हीनताको भी खुले तौरपर रखनेमें तनिक भी संकोच नहीं करता। चालीसवीं और इकतालीसवीं घनाक्षरीमें तुलसीदासजी अपनी व्यथा-कथाके क्रममें कहते हैं—

'मैं बाल्यावस्थासे ही सीधे मनसे श्रीरामके सम्मुख हुआ, मुखसे रामनाम लेता और टुकड़ा-टुकड़ी माँगकर खाता था। फिर युवावस्थामें लोकरीतिमें पड़कर अज्ञानतावश राजा रामके चरणोंकी पवित्र प्रीतिको चटपट संसारमें कूदकर तोड़ बैठा। उस समय खोटे-खोटे आचरणोंको करते हुए मुझे अंजनि-कुमारने अपनाया और श्रीरामके हाथों मेरा सुधार करवाया। किंतु तुलसी जब गोस्वामी बन गया, तब उसने अपने पिछले खराब दिनोंको भुला दिया। आज वह उसीका फल अच्छी तरह पा रहा है। (पद-सं० ४०)

जिसे अन्न-वस्त्रसे रहित भयंकर विषादमें डूबा हुआ और दीन-दुर्बल देखकर ऐसा कौन था, जो हाय-हाय नहीं करता था। ऐसे अनाथ श्रीतुलसीको दयासागर स्वामी श्रीरघुनाथजीने सनाथ करके अपने दयालु स्वभाववश उत्तम फल दिया। किंतु इसी बीच यह नीच जन (तुलसी) प्रतिष्ठा पाकर फूल उठा, अपनेको बड़ा समझने लगा और इसने तन-मन-वचनसे राम-का भजन भी छोड़ दिया। इसी कारण, बरतोर (कष्टदायक फोड़ा-फुंसी) के बहाने मेरे शरीरसे श्रीरामका नमक फूट-फूटकर निकलता दिखायी पड़ता है। (पद-सं० ४१)

कुल मिलाकर 'हनुमानबाहुक' काव्य 'विनयपत्रिका' के समकक्ष है। श्रीतुलसीदासजीने जिस प्रकार 'विनयपत्रिका' के रूपमें अपनी अरजी श्रीरामके दरबारमें लगायी है, उसी प्रकार भक्त्यात्मक स्तोत्र 'हनुमानबाहुक' के रूपमें उन्होंने सकल कष्ट-निवारणके लिये अपना प्रार्थना-पत्र अपने आराध्य हनुमान्‌जी तथा उनके भी आराध्य श्रीरामके प्रति अर्पित किया है। अतः सभी प्रकारके मनोरथोंकी सिद्धिका प्रदाता या अभिमत फलदाता होनेके कारण यह 'हनुमानबाहुक' मन्त्रात्मक मूल्यसे सम्पन्न नित्य पाठके योग्य है। इसके पाठसे करुणावरुणालय उन परमप्रभुके श्रीचरणोंकी अखण्ड भक्ति प्राप्त होती है[१]।

'चाहे जैसी प्रतिकूल, विकट और विपत्तिकी अवस्थामें भी जो न घबराकर अपने साधु-प्रयत्नको जारी रखता है और भगवान्‌से प्रार्थना करता है, उसकी प्रार्थना भगवान् अवश्य सुनते हैं।'

'कर्तव्यमें प्रमाद न करना ही सफलताकी कुंजी है और उसीपर परमात्माकी कृपा होती है, आलसी और कर्तव्यविमुख लोग उसके योग्य नहीं।'

१-महात्मा श्रीअञ्जनिनन्दनशरणजीके द्वारा सम्पादित संस्करणमें श्रीहनुमानबाहुकके प्रत्येक छन्दके अनेकों सकाम, निष्काम तथा तान्त्रिक प्रयोगोंकी विस्तृत अनुष्ठान-विधि परम्परासे प्राप्त संत-महात्माओंके निर्देशानुसार विस्तारसे दी गयी है। जिज्ञासुजन उससे लाभ उठा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी—

गंडेरियाँ

(श्रीदुर्गाशङ्करजी व्यास)

इस कहानीका सम्बन्ध मेरे जीवनके उन दिनोंसे है, जब मेरी आयु केवल ग्यारह वर्षकी थी। उन दिनों मैं सातवीं श्रेणीमें पढ़ा करता था। पितृहीन मैं उस माँका लड़का था, जो अमृतसर-जैसे शहरमें अपने बच्चोंकी पालना दिन-रात मेहनत-मजदूरीकी घोर तपस्या करते हुए कर रही थी।

उन्हीं दिनोंकी बात है, माँको एक भीषण फोड़ा हो गया था, जिसके साथ-साथ उन्हें ज्वर भी था। वे एक माससे रुग्ण-शय्यापर थीं। जो थोड़े-से रुपये उन्होंने बचा रखे थे, वे उनकी चिकित्सा तथा दवा आदिमें ही समाप्त हो चुके थे। शहरभरमें हमारा कोई नातेदार न था। मोहल्लेवाली दयालु बूढ़ी स्त्रियाँ हमारे खाने-पीनेकी व्यवस्था कर देती थीं और बारी-बारी एक स्त्री माँकी सेवामें भी रहती थी। स्कूलसे लौटनेपर मैं बर्तन माँजने और घरका काम करनेके बाद माँके पास बैठकर उनकी सेवा करता।

उस दिन दशहरेका मेला था। मैं शामको माँके पास बैठा हुआ था। एक स्त्रीने मुझसे कहा—'बेटा ! आज दशहरेका मेला है, रावणका पुतला जलाया जायगा। लोग मेला देखने गये हैं, तुम भी जाओ, देख आओ।'

मैंने कोई उत्तर देनेसे पहले माँके मुँहकी ओर ताका। उनकी आँखोंमें मर्मभरी अन्तर्वेदना निहित थी, जिसका रहस्य मैं उस बाल्यावस्थामें नहीं समझ सका था। हाँ, अब सब समझता हूँ कि माँने उस समय कातरतापूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर क्यों देखा था।

उन्होंने सहमी हुई वाणीमें कहा—'जाओ बेटा ! अगर दिल करता है तो मेला देख आओ।'

आखिर मैं बच्चा ही तो था। वह अवस्था ही खेलने-कूदनेकी होती है। आज्ञा मिलते ही गलीसे बाजारमें जा पहुँचा।

बाजारमें देखता हूँ कि चारों ओर बड़ी चहल-पहल है। बच्चे नये-नये कपड़े पहने अपने माँ-बापके साथ, खुशीसे फूले न समाते हुए, उस मैदानकी तरफ जा रहे थे, जहाँ रावणका पुतला जलाया जाता है।

मैं भी उस तरफ जाने लगा। रास्तेमें 'दिल्लीवाले'की मिठाईकी दुकान आती थी। वह नाना प्रकारकी मिठाइयोंसे इस प्रकार सजी हुई थी, जैसे एक नयी नवेली दुलहिन सिरसे लेकर पैरतक अनगिनत शृङ्गार करके खड़ी हो। उस दुकानके आगे बहुत भीड़ थी। सब आदमी अपने-अपने बच्चोंको मिठाइयाँ दिला रहे थे। मैंने भी लोलुप-दृष्टिसे एक बार मिठाईके सजे हुए उन थालोंको देखा। अनजानेमें मेरा दायाँ हाथ कमीजकी जेबपर जा पहुँचा, लेकिन शीघ्र ही उसे निराश लौटना पड़ा।

मैंने ललचाये हुए नेत्रोंसे पुनः एक बार उस दुकानपर दृष्टि डाली और एक दीर्घ निःश्वास खींचकर द्रुतगतिसे आगे बढ़ गया।

ठंढी साँस भरते हुए मेरा हृदय चीख उठा था—'काश, आज मेरे पिता भी होते।'

मैं अभी थोड़ी दूर ही आगे गया था कि मैंने एक गंडेरियोंकी रेढ़ी देखी, जिसके चारों ओर बहुत भीड़ थी। पंजाबमें यह रिवाज है कि दशहरेके दिन लोग गन्ना अवश्य चूसते हैं। जो व्यक्ति ज्यादा शौकीन हों, वे गंडेरियाँ मोल लेते हैं, ताकि वे गन्ना छीलनेके कष्टसे बचे रहें। कोई दो आनेकी ले रहा था, कोई चार आनेकी। गंडेरीवालेने गन्ने पहलेसे ही छील रखे थे। गंडेरियाँ वह उसी समय काट-काटकर बनाता जा रहा था, जिससे ग्राहक ताजी गंडेरियाँ ले सकें। गंडेरियाँ काटते हुए जो गाँठें निकलती थीं, उनको वह ढेरीके पार्श्वमें लटकी हुए एक टोकरीमें डालता जाता था।

गंडेरियोंकी भीनी-भीनी गन्ध जब मेरी नाकमें पहुँची, तो मुँहमें पानी भर आया। लेकिन विवशता थी। उस समय गंडेरियोंको मोल ले सकना मेरे भाग्यमें बदा नहीं था। अथवा यों कहिये कि गंडेरियाँ मोल ले सकनेको कोई साधन न था।

परंतु तृष्णाने मुझे परास्त कर रखा था। मैं नेत्र फाड़-फाड़कर उन गंडेरियोंको देखने लगा, किंतु वे मेरे पास क्यों आने लगीं।

कुछ देर वहीं खड़े होकर सतृष्ण नेत्रोंसे गंडेरियोंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखनेके बाद मेरे बालमस्तिष्कमें एक विचार आया—'जो रस गंडेरियोंमें होता है, उसका थोड़ा-सा अंश तो इनकी गाँठोंमें भी जरूर रहता है, इसलिये यदि कुछ गाँठें ही हाथ लग जायँ तो गंडेरियोंका रसास्वादन किया जा सकता है।'

रेढ़ीवालेकी वह टोकरी गाँठोंसे आधी भर चुकी थी। वह सँभाल-सँभाल कर सब गाँठोंको उसमें डालता जा रहा था। मैंने सुन रखा था कि वे लोग उन गाँठोंको धूपमें सुखाकर उनसे आग जलाया करते हैं। अतः वे उन गाँठोंको फेंकते नहीं। लेकिन मैंने भी उन गाँठोंको हस्तगत करनेका एक उपाय सोच निकाला।

रेढ़ीवालेकी आँख बचाकर मैंने ऐसा दाँव लगाया कि उस टोकरीमें हाथ डाल दिया। हाथकी मुट्ठी गाँठोंसे भर गयी थी। मैं हाथ बाहर निकालकर दौड़नेहीवाला था कि रेढ़ीवालेने मेरी उस हरकतको देख लिया।

उसने झट अपना सोंटा सम्हाला और इतने जोरसे मेरी पीठपर दे मारा कि मेरा रोआँ-रोआँ जड़से हिल गया। मुट्ठी ढीली पड़ गयी। केवल तीन गाँठोंने साथ दिया। अन्य धोखा दे गयीं। मेरे मुँहसे एक जोरसे चीख निकल गयी, मैं घायल पशुकी तरह दौड़ उठा। परंतु हृदय उस विजेताकी तरह प्रफुल्लित था, जिसने बहुत बड़े दुर्गपर विजय पायी हो।

कुछ दूर जाकर मैं एक बंद दुकानके छड़ेपर बैठ गया। अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे कभी मैं उन गाँठोंको देखता और कभी अपनी पीठपर हाथ फेरने लगता, जो सोंटेकी चोटसे सूज गयी थी।

सोंटेकी उस ताड़नाने मेरे गंडेरियोंके रसास्वादन करनेवाले नशेको एकदम उतार दिया। तभी मेरी बाल आत्माने मुझे धिक्कारा—'जीभके वशीभूत होकर चोरी करनेवालेको ऐसी ही सजा मिलनी चाहिये।'

तब मैंने क्रोध, घृणा और तिरस्कारमिश्रित दृष्टिसे उन गाँठोंको देखते हुए उन्हें बाजारकी गंदी नालीमें फेंक दिया। उनको गटरमें फेंककर जो अवर्णनीय आनन्द मुझे उस समय प्राप्त हुआ था, उसकी तुलना गाँठोंका रस क्या करेगा।

× × ×

जब मैं घर पहुँचा तो माँने पूछा—'बेटा! बड़ी जल्दी लौट आये?'

'माँ! वहाँ बड़ी भीड़ थी, इसलिये मैं रावणको आग लगनेसे पहले ही लौट आया हूँ।'

मैं जान-बूझकर झूठ बोला, ताकि माँका रोग, मेरी सच्ची कहानी सुनकर और अधिक न बढ़ जाय।

उस घटनाको व्यतीत हुए लम्बा समय हो गया, लेकिन मैं इसे अभीतक माँको नहीं बता पाया था। मैं यही सोचता रहा कि बतानेसे उनकी आत्माको कष्ट पहुँचेगा।

अब जब मैंने वह घटना सारे संसारको सुना दी है, तो माँ भी अवश्य जान जायँगी। परंतु अब मुझे विश्वास है कि माँको यह कहानी पढ़कर यदि कुछ दुःख होगा तो उसके साथ-ही-साथ सुखकी अनुभूति इसलिये होगी कि जबसे मुझे होश आया है, मैं अगर किसी गरीब लड़केको गंडेरियोंकी रेढ़ीके पास खड़ा हुआ देख पाता हूँ तो उसे आने-दो-आनेकी गंडेरियाँ अपनी जेबसे अवश्य मोल ले देता हूँ। ऐसा करनेसे मेरी आत्माको वह शान्ति प्राप्त होती है, जो स्वर्गके देवताओंको भी उपलब्ध नहीं होती होगी।

रामफगुआ

(महात्माजी जय गौरीशंकर सीतारामजी 'कवलबास' पतित)

देखो लखन-रघुबीरा, सखी तुम ! ॥टेक॥
क्रीट मुकुट माथेपर सोहत, कानोंमें झलकत हीरा ॥
मोतियन माल गले बिच सोहै, करमें सोहै धनु-तीरा ॥
ए दोउ लाल दशरथके ढोटा, मारे रावण अस बीरा ॥
निर्मल प्रेम करि सेवरी तर गई, सहजैमें तर गई मीरा ॥
'कवलबास' प्रभु बड़े दयालू, काटैं बिषम भव-पीरा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता-तत्त्व-चिन्तन

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गीतोक्त योगके सब अधिकारी

सर्वे मानवदेहत्वात् प्रभुप्राप्त्यधिकारिणः ।
तस्मात् केनापि मार्गेण हरिं प्राप्नोति मानवः ॥

अन्य शास्त्रोंमें ज्ञान, योग आदि मार्गोंके अलग-अलग अधिकारी बताये गये हैं; जैसे—जो साधन-चतुष्टयसे सम्पन्न है, वह ज्ञानका अधिकारी है; जो मूढ़ और क्षिप्त वृत्तिवाला नहीं है, प्रत्युत विक्षिप्त वृत्तिवाला है, वह पातञ्जलयोगका अधिकारी है आदि-आदि। परंतु भगवान्‌की यह एक विचित्र उदारता, दयालुता है कि उन्होंने गीतामें मनुष्यमात्रको भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोगका अधिकारी बताया है। तात्पर्य है कि भगवान्‌की प्राप्ति चाहनेवाले सब-के-सब मनुष्य गीतोक्त योगके अधिकारी हैं।

भक्तियोगके अधिकारी

सप्ताधिकारिणो भक्तेर्ब्राह्मणाः क्षत्रियाः स्त्रियः ।
वैश्याः शूद्रा दुराचारा येऽपि स्युः पापयोनयः ॥

भगवान्‌ने भक्तिके अधिकारियोंका वर्णन करते हुए पहले नंबरमें दुराचारीका नाम लिया कि अगर दुराचारी-से-दुराचारी मनुष्य भी अनन्यभावसे मेरा भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिये; क्योंकि उसने मेरी तरफ चलनेका निश्चय कर लिया है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली शान्तिको प्राप्त हो जाता है (९। ३०-३१)।

दूसरे नंबरमें पापयोनिका नाम लिया, जिनका जन्म पूर्वकृत पापोंके कारण चाण्डाल आदिकी योनिमें हुआ है (९। ३२)।

तीसरे नंबरमें चारों वर्णोंकी स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्रोंका नाम लिया, जो कि मध्यम श्रेणीके हैं (९। ३२)।

चौथे नंबरमें पवित्र ब्राह्मण और राजर्षि क्षत्रियोंका नाम लिया, जो कि जन्म और आचरणकी दृष्टिसे उत्तम हैं (९। ३३)।

इस प्रकार दुराचारी, पापयोनि, स्त्री, वैश्य, शूद्र, ब्राह्मण और क्षत्रिय—इन भक्तिके सात अधिकारियोंके अन्तर्गत मात्र प्राणी आ जाते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि मात्र प्राणी भक्तिके अधिकारी हैं। कारण कि भगवान्‌का अंश होनेसे मात्र प्राणियोंका भगवान्‌के साथ अखण्ड, अटूट और नित्य सम्बन्ध है। उनसे यही गलती हुई कि उन्होंने जो अपना नहीं है, उसको तो अपना मान लिया और जो खास अपना है, उसको अपना मानना छोड़ दिया।

भक्तिके अधिकारी तो सात हैं, पर भावोंके अनुसार उनके चार प्रकार हैं—अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी (७। १६)। जो धनप्राप्तिके लिये भगवान्‌का भजन करते हैं और धन केवल भगवान्‌से ही चाहते हैं, धनप्राप्तिके लिये अन्यका सहारा नहीं लेते, वे (सांसारिक पदार्थोंकी कामना होनेके कारण) 'अर्थार्थी भक्त' कहलाते हैं। जिनमें अर्थार्थी भक्तों-जैसी सांसारिक कामना तो नहीं है, पर सामने दुःख आनेपर उसे सह नहीं सकते और भगवान्‌को पुकार उठते हैं अर्थात् अपना दुःख दूर करनेके लिये भगवान्‌के सिवाय अन्य किसीका सहारा नहीं लेते, वे (दुःख दूर करनेकी कामना होनेके कारण) 'आर्त भक्त' कहलाते हैं। जिनमें न तो सांसारिक पदार्थोंकी और न दुःख दूर करनेकी ही कामना है, पर जो भगवत्तत्त्व जाननेके लिये भगवान्‌का भजन करते हैं और उसको केवल भगवान्‌से ही जानना चाहते हैं, वे (तत्त्व जाननेकी कामना होनेके कारण) 'जिज्ञासु भक्त' कहलाते हैं। जो भगवान्‌से कुछ भी नहीं चाहते, केवल भगवान्‌को ही चाहते हैं और नित्य-निरन्तर भगवान्‌में ही लगे रहते हैं, वे (अपनी कुछ भी कामना न होनेके कारण) 'ज्ञानी भक्त' अर्थात् प्रेमी भक्त कहलाते हैं। ये प्रेमी भक्त भगवान्‌को अत्यन्त प्यारे होते हैं और इन प्रेमी भक्तोंको भगवान् अत्यन्त प्यारे होते हैं (७। १७)। इन प्रेमी भक्तोंको भगवान्‌ने अपनी आत्मा (स्वरूप) बताया है (७। १८)। इन्हीं भक्तोंको भगवान्‌ने पंद्रहवें अध्यायके उन्नीसवें श्लोकमें 'सर्ववित्' कहा है। तात्पर्य है कि जिन मनुष्योंका उद्देश्य केवल भगवान् ही हैं, उनमें चाहे लौकिक कामना हो, चाहे पारमार्थिक कामना हो, चाहे कोई भी कामना न हो, वे सब-के-सब भक्तिके अधिकारी हैं। श्रीमद्भागवतमें भी आया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥

(२।३।१०)

'जो बुद्धिमान् मनुष्य है, वह चाहे सम्पूर्ण कामनाओंसे रहित हो, चाहे सम्पूर्ण कामनाओंसे युक्त हो, चाहे मोक्षकी कामनावाला हो, उसे तो केवल तीव्र भक्तियोगके द्वारा परमपुरुष भगवान्‌का ही भजन करना चाहिये।'

ज्ञानयोगके अधिकारी

ये नरा ज्ञातुमिच्छन्ति स्वरूपं संशयात्मकाः।
सर्वे ते ज्ञानयोगस्य भवेयुरधिकारिणः॥

जैसे भक्तिके सभी अधिकारी हैं, ऐसे ही ज्ञानके भी सभी अधिकारी हैं। भगवान्‌ने गीतामें बताया है कि जिस ज्ञानको मनुष्य श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी सेवा करके, उनके अनुकूल बनकर जिज्ञासापूर्वक प्रश्न करके प्राप्त करता है और जिस ज्ञानको प्राप्त करके फिर कभी मोह हो ही नहीं सकता तथा जिस ज्ञानसे साधक पहले सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनेमें और फिर परमात्मामें देखता है, वही ज्ञान (तीव्र जिज्ञासा होनेपर) अत्यन्त पापीको भी प्राप्त हो सकता है (४।३४-३६)।

भगवान् कहते हैं कि जगत्‌के सम्पूर्ण पापियोंसे भी अधिक पापी अगर ज्ञान प्राप्त करना चाहता है तो वह भी ज्ञानको प्राप्त करके ज्ञानरूपी नौकाके द्वारा सम्पूर्ण पाप-समुद्रको तर जाता है। जैसे प्रदीप्त अग्नि लकड़ियोंके ढेरको जलाकर भस्म कर देती है, ऐसे ही ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण पापोंको सर्वथा भस्म कर देती है (४।३६-३७)।

जब पापी-से-पापीको भी ज्ञान हो सकता है, तब जो श्रद्धावान् है अपने साधनमें तत्पर है और जितेन्द्रिय है, उसको ज्ञान हो जाय—इसमें तो कहना ही क्या है! (४।३९)

कई तो ध्यानयोगके द्वारा, कई सांख्ययोगके द्वारा और कई कर्मयोगके द्वारा अपने-आपमें उस परमात्मतत्त्वका अनुभव करते हैं (१३।२४)। परंतु जो इन साधनोंको नहीं जानते, वे मनुष्य केवल तत्त्वज्ञ महापुरुषोंसे सुनकर, उनकी आज्ञाके अनुसार चलकर ही ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं (१३।२५)।

तात्पर्य है कि मनुष्य चाहे श्रद्धावान् साधक हो, चाहे पापी-से-पापी हो, चाहे अनजान-से-अनजान हो, अगर वह ज्ञान चाहता है तो उसे ज्ञान हो सकता है।

कर्मयोगके अधिकारी

ये निर्ममास्तु निष्कामा इच्छन्ति भवितुं नराः।
सर्वे ते कर्मयोगस्य भवेयुरधिकारिणः॥

जैसे भक्तियोग और ज्ञानयोगके सभी अधिकारी हैं, ऐसे ही कर्मयोगके भी सभी अधिकारी हैं। जो सांसारिक कामनाओंसे रहित होना चाहता है अर्थात् जो अपना उद्धार चाहता है, वह चाहे किसी भी वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय आदिका हो और जहाँ-कहीं भी रहता हो, अगर वह निष्कामभावसे अपने कर्तव्यका तत्परतासे पालन करता है तो उसको परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है (१८।४५)। जो फलासक्तिका त्याग करके ममतारहित शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिसे अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये कर्म करते हैं वे कर्मयोगी हैं (५।११)। ऐसे कर्मयोगियोंके सम्पूर्ण (क्रियमाण, सञ्चित और प्रारब्ध) कर्म लीन हो जाते हैं (४।२३)।

तात्पर्य है कि जो फलासक्तिका त्याग करके दूसरोंके हितके लिये अपने कर्तव्यका पालन करते हैं, वे सभी कर्मयोगके अधिकारी हैं।

जिसपर तुम प्रेम करते हो, बदलेमें उसके प्रेमकी आशा या चेष्टा कदापि न करना। यदि तुम्हारा प्रेम पवित्र और सच्चा होगा तो अबेर-सबेर उसके हृदयमें वह प्रवेश करेगा और वहाँसे तुम्हें उसका प्रत्युत्तर भी मिलेगा, यदि तुम्हारे स्नेहका स्रोत सीमित है, तो यह इष्ट है कि वह प्राणी किसी दिन इस विचारसे दुःखी न हो कि आखिरकार वह सूख गया है।

प्रत्येक पल सेवा करनेका समय होता है। क्योंकि यद्यपि सदा ही प्रेमभरे कार्य करनेके अवसर जीवनमें नहीं मिलते, तो भी हृदयको सदा प्रेमसे भरपूर रखनेका समय तो सदा ही मनुष्यके लिये प्रस्तुत रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

बुराईका कारण अपने ही अंदर खोजिये

आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें कुछ विलम्ब हो गया है, इसके लिये क्षमा करें। बात यह है कि हमलोग दूसरोंके अच्छे-बुरे कार्योंपर, दूसरोंकी उन्नति-अवनतिपर और दूसरोंकी सद्गति-दुर्गतिपर विचार करनेमें तथा उनपर अपना मत देनेमें जितना समय नष्ट करते हैं, उतना समय यदि श्रीभगवान्के नाम-लीला आदिके चिन्तनमें और उनके गुण-कीर्तनमें लगायें तो हमें बहुत बड़ा लाभ हो सकता है। जहाँ दूसरोंके गुण-दोष-चिन्तन और कथनमें राग-द्वेष, स्तुति-निन्दा होती है और मनमें वैसे ही संस्कार अङ्कित होते हैं, वहाँ यदि हम श्रीभगवान्के दिव्य कल्याणमय गुणगणका स्मरण-कीर्तन करें तो हमारे अंदर छिपे हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। अन्तःकरण शुद्ध होता है और भगवान्की भक्ति प्राप्त होती है। पर हम इतने मूढ़ हैं कि हमें परचर्चा बहुत मीठी लगती है और इसीसे हम अपने जीवनके अमूल्य समयको व्यर्थ ही इसमें लगाकर विविध भाँतिकी असत्-भावनाओं, कुविचारों एवं दुर्गुणोंको अपने अंदर भरते रहते हैं।

इससे एक बड़ी हानि यह होती है कि हमें अपने दोषोंकी ओर देखनेका समय नहीं मिलता और अंदर-ही-अंदर दोष बढ़ते जाते हैं। वास्तवमें बुद्धिमान् मनुष्य तो वही है कि जो अपने उत्थान-पतनकी ओर दृष्टि रखकर नित्य-निरन्तर सावधानीके साथ पतनके कारणोंको दूर करता रहता है।

आपको मैं क्या परामर्श दूँ। मुझे तो ऐसा लगता है कि जबतक आप अपनी बुराइयोंकी ओर ध्यान देकर उनको मिटानेका पूर्ण प्रयत्न नहीं करेंगे, तबतक अपने प्रतिद्वन्द्वियोंसे अच्छाईकी आशा करना आपके लिये निराशाका ही कारण होगा। मनुष्य अपनी बुराई नहीं देखता, इसीसे उसे दूसरोंमें सारी बुराईका विस्तार दीखता है। और जितनी बुराई दीखती है, उतना ही द्वेष बढ़ता है तथा जितना द्वेष बढ़ता है, उतनी ही बुराई भी अधिक दीखने लगती है। यह नियम है कि जिसमें राग होता है, उसके दोष भी गुणके रूपमें दिखायी देते हैं और जिसके प्रति द्वेष होता है, उसके गुण भी दोष दीखते हैं। मनुष्यको दूसरेकी बुराईका कारण अपनेमें खोजना चाहिये। सचाई और गहराईसे देखनेपर तुरंत ऐसा कोई दोष अपनेमें दीख जायगा, जो दूसरेमें बुराई उत्पन्न करनेमें हेतु है।

आप पढ़े-लिखे हैं, समझदार हैं। सोचिये, अपनी ओर देखिये। यदि मेरी बात मानें तो श्रीमद्भगवद्गीताके १६वें अध्यायको ध्यानसे पढ़िये और उसमें वर्णित आसुरी-सम्पदाके लक्षणोंसे अपने आचरणोंकी तुलना कीजिये। आपको पता लगेगा कि आपमें दोष हैं कि नहीं। और यदि दोष हों तो फिर, उनको दूर करनेका प्रयत्न करना आपका कर्तव्य ही होगा।

इसीके साथ-साथ आप नित्य कुछ समयतक भगवान्के मङ्गलमय नामका जप कीजिये और इस मानसिक अशान्तिके कारणका सच्चा संधान बतलाने और उसे दूर करनेके लिये दयासिन्धु भगवान्से कातर प्रार्थना कीजिये। आप विश्वास रखिये, आपकी कातर प्रार्थना अकारण-सुहृद् भगवान् अवश्य सुनेंगे और आपको मानस शान्ति प्राप्त हो, इसकी समुचित व्यवस्था कर देंगे। आपको ऐसी आँख देंगे, जिससे आप अशान्तिके कारणको, जो आपके ही अंदर वर्तमान है, स्पष्ट देख सकेंगे और साथ ही ऐसी शक्ति देंगे, जिससे आप उसका अनायास ही विनाश भी कर सकेंगे। उस कारणके मिटते ही आप निर्मल शान्तिका अनुभव करेंगे।

(२)

त्याग-तपस्या ही धर्म है

सादर हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला। उन बहनका यह कथन सर्वथा उचित है कि 'उपदेश करना सहज है, परंतु पालन करना कठिन है।' सभी स्त्रियाँ पतिव्रता बनना और कहलाना पसंद करती हैं, पर पतिव्रताकी व्याख्या क्या है? सीता, सावित्री, दमयन्ती आदि पतिव्रताकी श्रेणीकी स्त्रियोंसे पूछा जाय कि हमारी स्थितिमें तुम कैसे इस व्रतको रखती····।' इसके पश्चात् उन बहनकी आपने जो परिस्थिति लिखी, वह भी अवश्य विचारणीय है। उनका त्याग, तप, धर्मपालन, सेवा, संयम सभी सराहनीय है और हिंदूदेवीके सर्वथा योग्य है। हिंदू-स्त्री त्याग और बलिदानकी जीवित प्रतिमा है। स्वार्थी पुरुषोंके साथ उसकी तुलना करना तो उसे उसके गौरवयुक्त पदसे नीचे उतारना है। उक्त बहन 'पतिके घर और बच्चोंके साथ अपने कर्तव्यका पालन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरसक करती हैं, परंतु तब दुखी हो जाती हैं, जब वह उन व्यक्तियोंसे अवहेलना पाती हैं, जिनके ऊपर उन्होंने अपने पतिके सुखोंको निछावर कर दिया।' सो ऐसी परिस्थितिमें उनको दुःख होना भी अस्वाभाविक नहीं है। त्यागमूर्ति हिंदू-देवियोंके साथ जो लोग दुर्व्यवहार करते हैं, वे बहुत बड़ा अपराध करते हैं और इसका कुफल उनको तथा समाजको भी भोगना पड़ेगा। परंतु हिंदू-देवी तो अपना धर्म देखती है। जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त उसका प्रत्येक क्षण त्यागके लिये ही है, वह यही करती है और इसीमें उसका गौरव है। अनादिकालसे अबतक उसने बड़े-बड़े कष्टोंका सामना करके अपने इस क्षुरधारा-व्रतको निभाया है। उन बहनको भी अपने इसी पवित्र व्रतकी ओर देखना चाहिये।

मेरी उन बहनके साथ हार्दिक सहानुभूति है और मैं चाहता हूँ कि उनको शान्ति प्राप्त हो। यह सत्य है कि उनकी मनोव्यथा कितनी और कैसी है, मैं उसका सच्चा अनुमान भी नहीं कर सकता। इस स्थितिमें मैं जो कुछ कहूँगा सो उनके कथनानुसार वस्तुतः परिस्थितिके ज्ञानसे रहित केवल परोपदेशमात्र ही होगा। यथार्थ उत्तर तो कोई तपोमूर्ति अनुभूतिसम्पन्न देवी ही दे सकती है तथापि जब आपने पूछा है, तब मैं संक्षेपमें अपने विचार निवेदित करता हूँ। श्रीसीताजी, सावित्री और दमयन्ती क्या कहतीं—इसका उत्तर तो वे ही दे सकती हैं, पर पातिव्रतकी व्याख्या तो है—'केवल त्याग और तपस्याकी साधना और इसके साधनमें गौरवकी अनुभूति।' इस साधनामें क्लेश तो भारी-से-भारी आ सकते हैं, परंतु मानसिक दुःख नहीं होता। यह कल्पना या भावना नहीं है, आज भी हजारों-लाखों हिंदू-देवियोंका त्यागमय संतोषयुक्त जीवन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। स्त्री हो या पुरुष, मानव-शरीरका लक्ष्य है—'भगवत्प्राप्ति।' कायिक भोग तो अवस्थानुसार प्रत्येक योनिमें ही प्राप्त होते हैं। पुरुषके लिये भगवत्प्राप्तिके अनेक साधन हैं, पर स्त्रीके लिये तो पातिव्रत ही एक प्रधान साधन है। भगवान्‌की किस प्रकार सर्वार्पण-बुद्धिसे तथा निष्काम प्रेमसे सेवा-भक्ति करनी चाहिये, इसका जीता-जागता आदर्श हिंदू-स्त्रीका पातिव्रतधर्म है। इसीलिये हिंदू-स्त्री अपने पतिको परमेश्वर मानकर सदा सर्वात्मना उसकी सेवा करती है। और इसी भजनके द्वारा वह परमात्माकार-वृत्ति-लाभ करके अन्तमें भगवान्‌को पा लेती है। पुरुष यदि स्वार्थवश अपनेको परमेश्वर कहकर स्त्रीसे पुजवाना चाहता है तो वह बड़ी भूल करता है, परंतु स्त्रीका उसको परमेश्वर मानकर अनन्यभावसे उसका सेवन करना तो उसकी भगवत्प्राप्तिकी पवित्र साधना है। इसी तत्त्वको समझकर उन बहनको इस साधनामें तत्पर रहना चाहिये और परमेश्वरके मङ्गलविधानसे उनके लिये जैसा जो कुछ बन गया है, उसके लिये तनिक भी पश्चात्ताप न करके अपनी परिस्थितिसे लाभ उठाना चाहिये।

वे जिन सज्जनसे पवित्र निःस्वार्थभावसे मिलती हैं, सो यदि भाव पवित्र रहे तो कोई बुरी बात नहीं है, परंतु यदि कहीं कोई छिपी वासना हो तो कभी इसका परिणाम दूसरे प्रकारका भी हो सकता है। वासना होनेपर, अब भी गहराईसे देखा जाय तो किसी एक अज्ञात विलक्षण आकर्षणके रूपमें उसका पता लग सकता है। पता न भी लगे तब भी वासनाका होना सम्भव है। बहुत बार छिपी वासनाएँ धर्म, कर्तव्य और पवित्र प्रेमका बाना पहनकर प्रकट होती हैं तथा इन पवित्र नामोंपर मनुष्यको गिरानेका मीठा प्रयत्न किया करती हैं। इसलिये सावधान रहना चाहिये और जहाँतक बने, अपने मनको भगवान्‌की मङ्गलमयी लीला-कथाओंके स्मरण-चिन्तनमें लगाना चाहिये। यों भगवान्‌के नाते प्रेम तो प्राणिमात्रके साथ करना चाहिये और जो अपने हितैषी हों, अपने साथ सहानुभूति रखते हों, उनके प्रति तो प्रेम होना स्वाभाविक ही है। पर देखना यही है कि उस प्रेममें कहीं कोई आसक्ति तो नहीं है। अवश्य ही उसे ढूँढ़नेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये और ऐसा मान लेना ही चाहिये कि कहीं-न-कहीं मेरे मनमें आसक्ति है, जो मुझे भगवत्प्राप्तिकी साधनासे हटा सकती है। आसक्तिके ढूँढ़नेके प्रयत्नमें या उनको भुलानेकी चेष्टामें तो सम्भव है, उनका चिन्तन और भी बढ़ जाय। प्रायः ऐसा हुआ करता है। अतएव ऐसा न करके जीवनका प्रधान लक्ष्य समझकर श्रीभगवान्‌में ही चित्त लगानेका प्रयत्न करना चाहिये। भगवच्चरित्रोंके पठन, गीतके अभ्यास और भगवन्नामके जपसे इसमें बड़ी सहायता मिल सकती है। जीवनभर दुःखका भार सहनेपर भी यदि भगवान्‌में मन लग गया तो जीवनको सार्थक समझना चाहिये।

इन पंक्तियोंसे उन बहनको यदि कोई रास्ता मिला तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

सहृदय मित्र

सन् १९६१की एक सच्ची घटना है। मैं उन दिनों गुजरातके एक हाईस्कूलमें शिक्षकके रूपमें नौकरी करता था। हमारे स्कूलमें वाराणसीसे आये एक शास्त्रीजी संस्कृत पढ़ाते थे। हम दोनोंके बीच घनिष्ठ मित्रता हो गयी थी, परंतु कुछ बातें ऐसी हुईं, जिससे हमारे-उनके सम्बन्ध टूट गये और परस्पर मनमुटाव हो गया। इसके लिये दोनोंके बीच गलतफहमी ही मुख्य कारण था। शास्त्रीजीने समाधानके लिये प्रयत्न किया, किंतु मेरे कुछ साथियोंने मुझे इस दिशामें बढ़नेसे रोका और मैं उनकी बातोंमें आ गया।

एक दिन प्रातःकाल मेरे पिताजीका टेलिग्राम आया। तीन सौ रुपयोंकी तात्कालिक व्यवस्थाकर मुझे शामकी गाड़ी पकड़नी थी। नौकरी नयी-नयी थी और शहर भी नया-नया था। अतः तत्काल इतनी रकमकी व्यवस्था कर पाना मेरे लिये कठिन था। मेरी परेशानीको मेरे स्टाफके सभी साथी जानते थे, फिर भी जिन्हें मैं अपना मित्र समझता था, उन सबने कोई-न-कोई बहाना बताकर आर्थिक सहायता देनेसे इनकार कर दिया। शास्त्रीजीसे माँगनेका प्रश्न ही नहीं था। मैं प्रायः निराश हो चुका था।

ट्रेन पकड़नेके लिये एक घंटेका ही समय बचा था। मेरा एक मित्र मेरे घर आया और तीन सौ रुपये मेरे हाथमें रखते हुए बोला—'अन्यत्रसे व्यवस्था कर लाया हूँ।' यह देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया। मैंने ईश्वरको मन-ही-मन धन्यवाद दिया कि जिस कार्यके लिये मैं इतना चिन्तित था, वह कार्य ठीक समयपर बिना आशाके कितनी सरलतासे हो गया।

मैंने उस मित्रका आभार माना, लेकिन वह चुप ही रहा। मैं ट्रेन पकड़नेके लिये तुरंत स्टेशन चला गया।

जब गाँवसे लौटा, तब पता चला कि शास्त्रीजीको वाराणसीमें ही नौकरी मिल जानेसे वे स्कूल छोड़कर वापस जा रहे हैं। स्टाफके सभी शिक्षकोंने उन्हें बिदाई-पार्टी दी, स्टेशन-तक छोड़ने गये। पर मैं पार्टीमें सम्मिलित नहीं हुआ, स्टेशन भी नहीं गया। किंतु वाराणसी जानेसे पूर्व शास्त्रीजी स्वयं मुझसे मिलने आये और बोल उठे—'अरे भाई! कबतक नाराज रहोगे? अब तो मैं यहाँसे जा रहा हूँ। मनका मैल धोकर कुछ तो बोलो। हम दोनों मित्र हैं। किंतु तुम नहीं बोलते तो मैं क्या करूँ? तुम्हारी बहुत याद आयेगी।'

शास्त्रीजीद्वारा व्यक्त भावनाओंको मैं पढ़ता ही रह गया और वे मुझसे बिदा लेकर चले भी गये।

दो महीने बाद जब मैं अपने मित्रको तीन सौ रुपये वापस देने गया, तब उसने उन रुपयोंका मनीआर्डर शास्त्रीजीको कर दिया। आश्चर्यचकित होते हुए मैंने कहा—'मित्र! तुमने मेरे लिये शास्त्रीजीसे रुपये लिये थे? ऐसा क्यों किया तुमने?'

उसने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी इस मौन सूचनाको देखकर मैं विचारोंमें खो गया। मुझे इस स्थितिमें देखकर वह बोला—'भाई! तुम जब व्यक्ति-विशेषको नहीं पहचान सकते तो मित्रके हृदयको कैसे पहचान सकोगे? तुम्हारी कठिनाई तथा व्यथा सहृदय मित्रके रूपमें शास्त्रीजी ही देख पाये थे। उन्होंने ही मुझे एकान्तमें बुलाकर तीन सौ रुपये देते हुए कहा था—'वह मेरे साथ भले ही सम्बन्ध न रखे, लेकिन मैं उसे अपना मित्र ही समझता हूँ। ये रुपये उसे मेरा नाम बताये बिना दे देना।'

मैं अपने मित्रका रहस्य सुनकर विभोर हो उठा। शास्त्रीजीकी महानताके आगे मैं अपनेको अत्यन्त तुच्छ अनुभव करने लगा और मन-ही-मन नतमस्तक हो गया उनकी सहृदयतापर। —प्रा० चंद्रकान्त त्रिवेदी

(२)

पारस्परिक सद्भावना

अभी-अभी अमरनाथ (कश्मीर) की यात्रा करनेका मुझे अवसर मिला। बालतल-सोनमार्गके संकुचित मार्गसे श्रीनगरसे टैक्सीमें अठारह घंटेमें अमरनाथके दर्शन करके वापस आना होता है। आने-जानेमें २० कि० मी० घोड़ेपर यात्रा करनी पड़ती है। वर्षामें मार्ग संकटपूर्ण हो जाता है। प्राकृतिक सौन्दर्य तथा बर्फके शिवलिङ्गोंके दर्शन करनेका मुझे अमूल्य लाभ तो मिला, परंतु यात्राकी एक विशिष्टता हृदयको स्पर्श कर गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने घोड़ा चलानेवाले एक मुसलमानको अपने साथमें लिया था। वह सहायता करनेमें रुचि रखनेवाला मुसलमान यात्राके समय मेरा हाथ पकड़े रहता और विकट स्थलोंपर चलते समय बहुत सँभालकर ले जाता। १३,५०० फीटकी ऊँचाईपर गुफाकी ६५ सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते जब आक्सीजनकी कमीके कारण मैं हाँफने लगा, तब उस मुसलमान सज्जनने मुझसे कहा—'आप फिक्र मत कीजिये, मैं आपको उठा लूँगा और बाबाका दर्शन अवश्य कराऊँगा।' यह कहकर उसने अपने कंधेपर मुझे उठा लिया। इस प्रकार एक मुसलमानकी पीठपर चढ़कर एक श्रद्धावान् हिंदू अपने इष्टदेवके दर्शन प्राप्त करे—इस दृश्यने मेरे हृदयको झकझोर दिया।

मुसलमान भी बाबाके प्रति बहुत श्रद्धावान् था। जब मैं श्रीनगर आया तो होटलके एक-दूसरे भी मुसलमान धोबीने मुझसे आग्रहपूर्वक कहा—'बाबूजी! आप क्षीर-भवानीका दर्शन अवश्य कीजियेगा। मेरी माँ भी प्रत्येक वर्ष वहाँ दर्शनार्थ जाया करती है। वास्तवमें भारतीय देवी-देवताओंमें कुछ ऐसा विशिष्ट आकर्षण एवं दिव्य चमत्कार है कि हिंदू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध तथा जैन आदि सभी बिना किसी पारस्परिक भेदभावके उनके दर्शनोंसे अपनेको सौभाग्यशाली समझते हैं और कृतकृत्य मानते हैं। —विद्यासागर रावल

(३)

मातृत्वका आदर्श

पू० रविशंकर दादा एक समय एक गाँवमें बालकोंको एक-एक मुट्ठी चना बाँट रहे थे। सभी बालकोंने चने लिये, परंतु एक बालिकाने चने लेना अस्वीकार कर दिया। इससे दादाको आश्चर्य हुआ। उन्होंने उस बालिकासे पूछा—'क्यों चना लेना नहीं चाहती?' तब निर्धनताकी मूर्ति, परंतु तेजस्वी मुखमण्डलवाली उस बालिकाने कहा—'मेरी माँने मुझे मना किया है।' दादाके मनमें उसकी माँके दर्शन करनेकी इच्छा हुई। दादा बालिकाके साथ उसके घर गये। छोटी-सी झोपड़ीमें बालिकाकी विधवा माँने दादाका यथोचित आदर-सत्कार किया। दादाने कहा—'तुम्हारी पुत्री ही मुझे यहाँतक खींच लायी है। किसीके आगे हाथ न फैलानेका संस्कार जो तुमने इसे दिया है, इसीसे तुम्हारे दर्शन करनेकी मेरी इच्छा हुई। तुम्हारी आजीविका कैसे चलती है?' इसपर उस देवीने अपनी सम्पूर्ण स्थितियोंसे उन्हें अवगत करा दिया।

दादा उसकी बातें सुनकर तथा उसके हृदयकी विशालता एवं उदात्त भावनासे अत्यन्त प्रभावित हुए। वह विधवा बहन उस समय किसीके यहाँ मजदूरी करके जी रही थी। उसके पतिके मनमें गाँवके लोगोंके लिये कुँआ तथा पशुओंके लिये तालाब खुदवानेका शुभ संकल्प था, परंतु यह काम अधूरा रह गया और वे दिवंगत हो गये। इसलिये पतिकी अन्तिम इच्छा पूर्ण करनेके लिये उस बहिनने अपना घर बेच दिया तथा घरका सामान भी बेच दिया और स्वयं एक झोपड़ीका आश्रय लेकर पतिकी इच्छापूर्तिमें प्रतिनिधिस्वरूप कुँआ तथा तालाब खुदवाकर उनका वास्तविक तर्पण किया। वह झोपड़ीमें रहकर, मजदूरी करके अपना तथा अपनी पुत्रीका भरण-पोषण करती थी, परंतु पतिकी अन्तिम इच्छा पूर्ण करनेपर उसे पूर्ण संतोष था। साथ-ही-साथ अपनी पुत्रीके हृदयमें किसीके सामने हाथ न फैलानेकी प्रवृत्ति उत्पन्न कर चुकी थी। दादा तो उसके इस महान् समर्पणसे भावावेशमें आ गये और कहने लगे—'तुम्हारी-जैसी पत्नी यदि सब पुरुषोंको और तुम्हारी-जैसी माँ सब बच्चोंको मिलती तो कितना अच्छा होता!'

—श्रीरामदासजी महाराज

(४)

अच्छी नीयत

कुछ दिनों पूर्वकी बात है। एक बड़ा जौहरी था। राजा-महाराजाओंके दरबारमें उसका आना-जाना था। कोई भी शुभ प्रसंग आता तो उसे महलोंमें बुलाया जाता और आभूषण खरीदे जाते। उसकी दूकान भी बहुत बड़ी और प्रसिद्ध थी। कई बड़े शहरोंमें उसकी शाखाएँ थीं। इन दूकानोंमें कीमती आभूषण भीतरके भागमें तिजोरीमें रखे जाते थे। बीचके भागमें चालू चीजें रहतीं तथा बाहरके खण्डमें फैशनकी दिखावटी माल सजाया जाता। यह माल अधिकतर नकली ही होता था।

एक बार एक महिलाने बाहरके खण्डसे केवल पँचीस रुपयेमें एक मोतियोंकी उज्ज्वल नवनीतकी-सी कान्तिवाली माला खरीदी। चढ़ाव-उतारवाले आकारके मोती और सुन्दर गहरे बादामी रंगकी मखमलका केस देखकर कौन उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खरीदना नहीं चाहेगा ? महिला उस मालाको पहनकर बाहर निकलती, लेकिन किसीको उसकी कीमत नहीं बताती थी, सिर्फ उस बड़े जौहरीकी दूकानका नाम बता देती।

और एक दिन वह माला टूट गयी और उसके मोती बिखर गये। पर्याप्त श्रमके बाद उसने उन मोतियोंको बटोरकर एकत्र तो कर लिया, लेकिन एक मोती कम हो गया। इसलिये मालाका मेल बिगड़ गया। महिलाने सोचा—'चलो, उस जौहरीको ही यह काम सौंपती हूँ। माला जैसी सुन्दर थी, वैसी ही बनाकर दे देगा।'

जौहरीके यहाँ जानेपर उसने उसे बनाना स्वीकार भी कर लिया। बोला—'यह माला हमने ही बेची है, अवश्य ठीक हो जायगी, लेकिन जो मोती कम हो गया है, उसकी जगह दूसरा मोती लगानेके तीन सौ रुपये लगेंगे।'

वह महिला यह सुनकर सोचमें पड़ गयी। वह यह कैसे मान लेती ? उसने तुरंत ही कहा—'पूरी मालाकी कीमत मैंने सिर्फ पैंतीस रुपये दी थी और अब आप एक मोतीके इतने रुपये माँग रहे हैं ?'

जौहरीने जवाबमें कहा—'बात आपकी गलत नहीं है। लेकिन सच बात तो यह है कि यह कीमती माला हमारे कर्मचारीने भीतर तिजोरीमें रखनेके बदले भूलसे बाहर रख दी थी और आप ऐसी भाग्यशालिनी थीं कि पानीके मोल असली मोतियोंको नकली समझकर खरीद ले गयीं। जब इस भूलका पता चला, तो उस कर्मचारीको नौकरीसे निकाल दिया गया। लेकिन अब नया मोती पानीके मोल तो नहीं मिल सकता न !'

यह जानकर महिला आश्चर्यचकित-सी रह गयी। तो इतने दिन क्या उसने धनवानों-राजाओंकी महारानियों-जैसा कीमती हार पहना था ? अब उसे ध्यान आया कि मालाकी सुन्दरताका बखान हर कोई क्यों करता था ? लेकिन जैसे किसी पापी व्यक्तिके साथ पुण्यवान् भी पापी ही लगने लगता है, वैसे ही किसी गरीबके पास मूल्यवान् वस्तु भी सस्ती लगती है।

कुछ देर खड़ी-खड़ी वह इसी तरह सोचती रही, फिर बोली—'देखिये, भूल तो सबसे हो जाती है—यह माला आपने भूलसे मुझे सस्ती वस्तुओंवाली समझकर दे दी थी, इसलिये इसे वापस अपने पास रख लें। लेकिन इतना अवश्य कीजिये कि उस कर्मचारीको वापस कामपर बुला लीजिये।' इतना कहकर वह महिला वापस जानेके लिये घूम पड़ी। जौहरीने उसे रोककर कहा—'आप ऐसे नहीं जाने पायेंगी। आपने माला वापस देकर जो सज्जनता दिखायी है, उसका जवाब हमें भी तो देने दीजिये..... ।

जौहरीने फौरन एक हीरेकी अँगूठी उस महिलाको भेंट की तथा उस कर्मचारीको, जिसे इस भूलके कारण कार्यमुक्त कर दिया था, पुनः बुलाकर उसी कार्यमें नियुक्त कर लिया। उसके मनमें यह भाव आया कि आज भी संसारमें ऐसे लोग हैं, जो सत्यता और ईमानदारीकी रक्षाके लिये स्वार्थपूर्ण प्रलोभनका त्याग कर सकते हैं।

(अखण्ड आनन्द)

जैन बन्धुओंसे नम्र निवेदन

'कल्याण'के विशेषाङ्क 'पुराणकथाङ्क' पृष्ठ-संख्या ३२१-३२२में 'भगवान् ऋषभदेव' की कथा छपी है। इस सम्बन्धमें हमारे पास कुछ जैन बन्धुओंके पत्र आये हैं, जिनसे यह प्रतीत होता है कि कथामें वर्णित कुछ पंक्तियोंसे उन्हें कष्ट हुआ है। वस्तुतः श्रीऋषभदेवजी सनातन-धर्म एवं जैन-धर्म—दोनोंके परम आदरणीय पूज्य महापुरुष हैं और इनकी गणना अवतारकोटिमें होती है। इनके पुत्र 'भरत'के नामपर ही इस देशका नाम 'भारतवर्ष' पड़ा। अतः 'भागवतपुराण' स्कन्ध ५, अध्याय ६ के अन्तर्गत ऋषभदेवजीकी परमहंसचर्याके प्रसंगमें जो कथा आती है, उसे ही यहाँ प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया था; परंतु कथाकी प्रस्तुति (अनुकृति) में असावधानीके कारण हमारे कुछ जैन बन्धुओंको कष्टकी अनुभूति हुई होगी। प्रारम्भसे ही 'कल्याण'की नीति कभी किसी धर्म, समाज अथवा व्यक्तिपर आक्षेप अथवा उन्हें किसी प्रकारका भी कष्ट पहुँचानेकी नहीं रही है।

अस्तु, इस कथाकी प्रस्तुतिसे हमारे माननीय जैन बन्धुओंको जो मानसिक क्लेश हुआ है, उसके लिये हमें अत्यधिक खेद है। भविष्यमें ऐसी स्थिति पुनः न आये, इसका ध्यान अवश्य रखा जायगा।—'सम्पादक'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

(१)

भव्य, दिव्य, पावनकारी

पूर्व अफ्रीकामें टांगानिका प्रदेशकी राजधानी दारेसलामसे १२६ मील उत्तर टांगा शहर है। टांगानिकामें दारेसलामके पश्चात् सबसे बड़ा शहर टांगा ही है।

टांगामें मेरे यजमान मेसर्स गोपाल परसोत्तमवाला श्रीमनुभाई निवास करते थे, वे मुझे एक दिन यूरोपियन कब्रिस्तान दिखाने ले गये। वहाँ एक कब्रके ऊपर एक जर्मन स्त्रीकी सुप्तावस्थामें एक आकृति देखकर हम आश्चर्यसे स्तब्ध रह गये। उसकी आँखें खुली हुई थीं। गिरते-गिरते आँसू वहीं-के-वहीं रुके हुए थे। मृदु मुखमण्डलपर एक गहरा विषाद स्पष्ट दिखायी दे रहा था। मानो वह महिला अचानक कोई करुण समाचार सुनकर जड़ बन गयी हो। बोलना चाहती थी, परंतु बोल नहीं पाती, रोना चाहती थी, परंतु रो नहीं पाती। उसे देखनेपर मालूम होता कि वह अवश्य किसी वेदनाका अनुभव कर रही थी। प्राण तड़फ रहे हैं, ऐसा लगता है कि अभी उठकर खड़ी हो जायगी और चीत्कार मारकर रोना प्रारम्भ कर देगी। उस प्रतिमापर ओढ़ी हुई चादरकी सलवटें भी स्पष्ट उभरी दिखायी दे रही थीं। उसे इस रूपमें देखकर हम सब गद्‌गद हो गये। मनुभाईने हमें उस आकृतिके विषयमें निम्नलिखित जानकारी दी—

प्रथम विश्वयुद्धसे पूर्व जब टांगानिका जर्मनीके अधिकारमें था, तब इस स्त्रीका जर्मन पति यहाँ टांगामें किसी ऊँचे पदपर कार्यरत था। पहले वह यहाँ अकेला ही आया था। पत्नीको बुला लेनेका उसका विचार था, परंतु उसी बीच अचानक उसकी एकाएक मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्युका समाचार जर्मनमें उसकी स्त्रीको पहुँचाया गया। सर्वप्रथम जिस व्यक्तिको यह समाचार मिला, वह व्यक्ति समाचार देने गया तो स्त्री पलँगपर पड़ी थी। उसकी आँखें खुली थीं। उसे समाचार सुनाया गया और वह स्त्री उसी अवस्थामें खुली आँखोंके साथ ही मृत्यको प्राप्त हो गयी। वहाँके लोग उस स्त्रीका ऐसा उत्कृष्ट पतिप्रेम देखकर मन्त्रमुग्ध हो गये। उसी अवस्थामें उसका फोटो ले लिया गया। उस फोटोको देखकर जर्मन शिल्पकारोंने बिना कोई पारिश्रमिक लिये ही यह अद्‌भुत प्रतिमा बनायी है। उस महिलाके शवको जर्मनीसे अफ्रीका लाया गया और उसे उसके पतिके साथ ही दफनाकर यह कब्र बनायी गयी। कुछ समयके पश्चात् जर्मनीसे जब यह प्रतिमा निर्मित होकर आयी तो उसे इस महिलाकी कब्रपर स्थित कर दिया गया।

कितना 'भव्य, दिव्य, पावनकारी है यह प्रतिमा'—ऐसा हमारे मुखसे स्वतः निकल गया। अनन्तकालके लिये चिरनिद्रामें विलीन इस जर्मन दम्पतिके सामने हमारा सिर श्रद्धासे अवनत हो गया।—गोपालदास प्र० मोदी

(२)

वाह राजा ! वाह प्रजा !

एक दिन एक किसानके खेतमें दरबार, गोपालदास और उनके मित्रोंने चढ़ायी कर दी और किसानकी अनुपस्थितिमें पेटभर गन्ने चूसे। बादमें किसानने दरबारके यहाँ चोरीकी रिपोर्ट की तथा यह स्पष्ट किया कि दरबार स्वयं चोर हैं। 'भैया ! तू भी गजबका आदमी है, मेरे ऊपर चोरीका आरोप लगाना कितना भयावह काम है, क्या इसका भी तुमने विचार किया है ?' दरबारने किसानसे पूछा। प्रत्युत्तरमें उसने कहा—'हाँ बाबू ! मुझे उसका विचार है। परंतु मैं तो फिर भी यही कहूँगा कि गन्नोंकी चोरी आपने ही की है और आपके नौकर भीखाने गँड़ासेसे काटे हैं।'

'चोरीका इतना निश्चित पता तुमने कैसे लगाया ?' जब यह किसानसे पूछा गया, तब किसानने कहा—'जूतोंकी एँड़ी देखकर ! क्योंकि ऐसी एँड़ीवाला जूता दरबारको छोड़कर पूरे गाँवमें कोई नहीं पहनता है, इससे यह काम निश्चित ही उनका होना चाहिये और तत्पश्चात् भीखाके पाससे गँड़ासा लेकर जीभसे चाटकर निश्चित कर लिया कि इसीसे गन्ने काटे गये हैं।'

इस प्रकार किसानकी अवलोकन-शक्तिसे प्रसन्न होकर इस चोरीके लिये अपनेको दण्ड देनेका काम दरबारने किसानको ही सौंपा और जो वह दण्ड दे, उसे सहर्ष स्वीकार करनेका वचन दिया। किसानने कहा कि 'आपको यही दण्ड दिया जाता है कि आप अपने मित्रोंको लेकर मेरी उपस्थितिमें एक बार फिर मेरे यहाँ गन्ने खाने आयें।' दरबारने यह स्वीकार किया और स्वयं उसके अतिथि बने। धन्य राजा धन्य प्रजा !

—रामभाई काशीभाई पटेल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

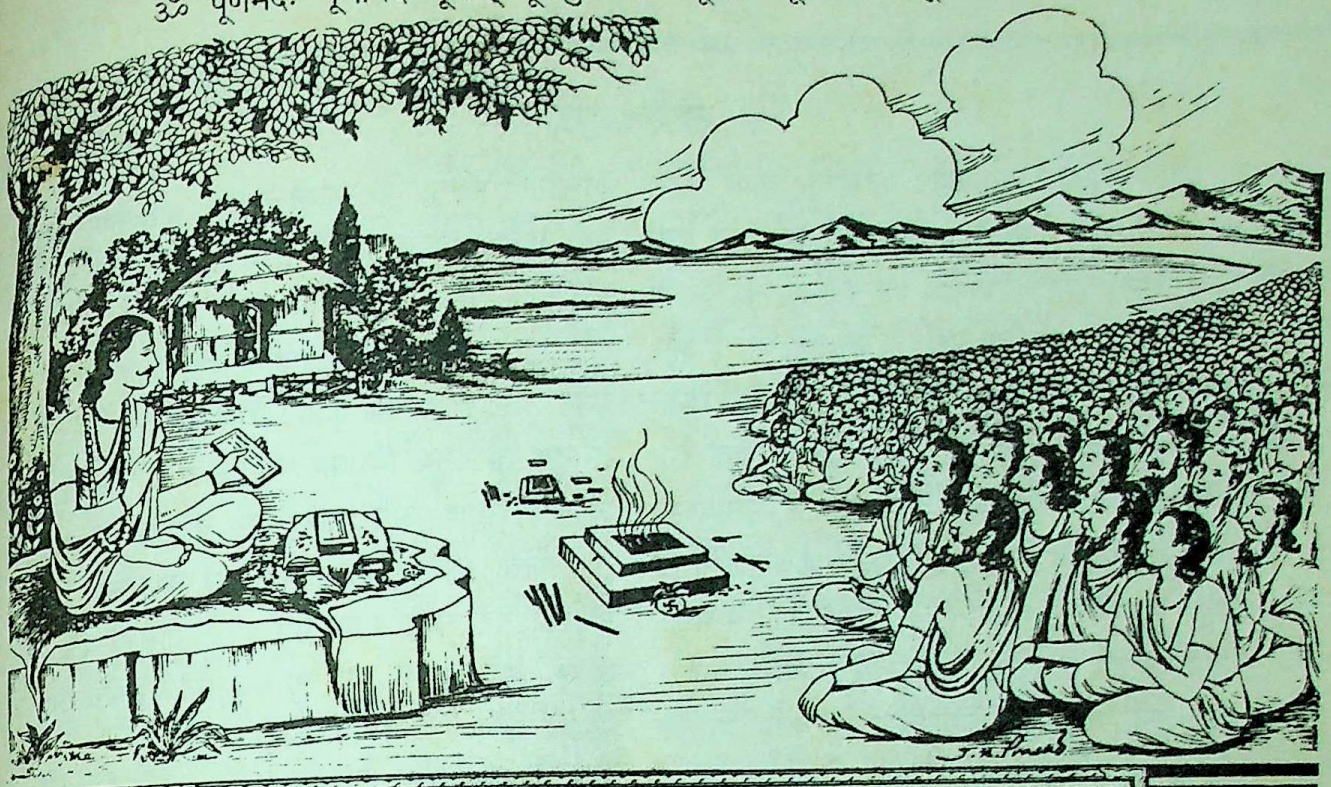

कल्याण

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत्।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥

वर्ष ६३ } गोरखपुर, सौर आश्विन, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-सं० ५२१५, अक्टूबर १९८९ ई० { संख्या ७ पूर्ण संख्या ७५२

पृथ्वी माताद्वारा सीताका स्वागत

भूतलादुत्थितं दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम् ॥
ध्रियमाणं शिरोभिस्तु नागैरमितविक्रमैः। दिव्यं दिव्येन वपुषा दिव्यरत्नविभूषितैः ॥
तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम्। स्वागतेनाभिनन्द्यैनामासने चोपवेशयत् ॥
तामासनगतां दृष्ट्वा प्रविशन्तीं रसातलम्। पुष्पवृष्टिरविच्छिन्ना दिव्या सीतामवाकिरत् ॥
साधुकारश्च सुमहान् देवानां सहसोत्थितः। साधुसाध्विति वै सीते यस्यास्ते शीलमीदृशम् ॥

(विदेहकुमारी सीताके द्वारा पृथ्वी माताकी प्रार्थना करनेपर) भूतलसे एक अद्भुत सिंहासन प्रकट हुआ, जो बड़ा ही सुन्दर और दिव्य था। दिव्य रत्नोंसे विभूषित महापराक्रमी नागोंने दिव्य रूप धारण करके उस दिव्य सिंहासनको अपने सिरपर धारण कर रखा था। सिंहासनके साथ ही पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवी भी दिव्य रूपसे प्रकट हुईं। उन्होंने मिथिलेशकुमारी सीताको अपनी दोनों भुजाओंसे गोदमें उठा लिया और स्वागतपूर्वक उनका अभिनन्दन करके उन्हें उस सिंहासनपर बिठा दिया। सिंहासनपर बैठकर जब सीतादेवी रसातलमें प्रवेश करने लगीं, उस समय देवताओंने उनकी ओर देखा। फिर तो आकाशसे उनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी लगातार वर्षा होने लगी। देवताओंके मुँहसे सहसा 'धन्य-धन्य'का महान् शब्द प्रकट हुआ। वे कहने लगे—'सीते! तुम धन्य हो, धन्य हो, तुम्हारा शील-स्वभाव इतना सुन्दर और ऐसा पवित्र है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

सदा अपने मनको देखते रहो। अभिमान, काम, क्रोध और मोह आदि लुटेरे मनरूपी महलमें ऐसे दुबककर छिपे रहते हैं कि साधारण दृष्टिसे देखनेपर यह पता ही नहीं चलता कि ये अंदर मौजूद हैं, परंतु मौका पाकर ये प्रकट हो जाते हैं और फिर सद्गुण तथा सद्विचाररूपी धनको ऐसी निर्दयतासे लूटते हैं कि उम्रभरका किया-कराया प्रायः सब नष्ट हो जाता है।

अपनेको निर्भय मानकर कभी निश्चिन्त और असावधान न रहो। जबतक इन लुटेरोंका तुम्हारे मनमें बीजनाश न हो जाय, तबतक बराबर इन्हें मारनेकी चेष्टा करते रहो। ये बड़ी-बड़ी युक्तियोंसे तुम्हारे मित्र और आज्ञाकारी सेवक-से बनकर अंदर रहना चाहेंगे, परंतु इनपर कभी विश्वास न करो। जरा-सा पता चलते ही पछाड़नेका जतन करो।

जहाँतक बने, अभिमानी, कामी, क्रोधी और लोभी मनुष्योंका इच्छापूर्वक संग न करो। उनके संगसे तुम्हारे हृदयमें कलुषित भाव पैदा होंगे और उनसे तुम्हें कोई सच्ची सहायता नहीं मिलेगी।

किसीकी निन्दा मत करो। याद रखो, इससे तुम्हारी जबान गंदी होगी, तुम्हारी वासना मलिन होगी। जिसकी निन्दा करते हो, उससे वैर होनेकी सम्भावना रहेगी और चित्तमें कुसंस्कारोंके चित्र अङ्कित होंगे।

बिना विशेष आवश्यकताके बड़े आदमियोंसे, सरकारी अफसरोंसे और मान-प्रतिष्ठा चाहनेवाले पुरुषोंसे न मिलो। क्योंकि ऐसे लोग तुम्हारी सच्ची बात सुनना नहीं चाहेंगे। उनकी हाँ-में-हाँ मिलाकर तुम्हें अपने शुद्ध विचारोंकी अवहेलना करनी पड़ेगी। कहीं उनकी रायके विरुद्ध सच बोलोगे तो वे नाराज होंगे।

याद रखो—संसारमें दोषीलोग ही दूसरेके दोषोंको ढूँढ़ा करते है; क्योंकि उन्हें अपने दोषोंको ढँकनेके लिये दूसरेके दोषोंकी आड़ आवश्यक होती है। साधुलोग तो सब जगह साधुता ही खोजते हैं और दिखलायी भी देती है उन्हें साधुता ही। वे नीर-क्षीरविवेकी हंसकी तरह गुण ही ग्रहण करते हैं।

बाहरसे बन-ठनकर लोगोंको बहुत सुन्दर दिखायी देने लगे, इससे क्या हुआ। जबतक हृदय कलुषित है, जबतक अन्तर्यामी परमात्माके सामने तुम्हारा अन्तःकरण सुन्दर होकर नहीं आता, तबतक बाहरी सुन्दरता वैसी ही है, जैसे शराबसे भरा हुआ सोनेका कलश।

प्रारब्धवश जगत्में तुम्हारी बड़ी कीर्ति हो गयी, लोग पूजने लगे। इससे क्या हुआ। जबतक तुम्हारा हृदय मलिन है, जबतक तुम लुक-छिपकर पाप करते हो, तबतक मानसिक अशान्ति, संताप और नरकदुःखसे कदापि नहीं बच सकते।

भक्ति और ज्ञानके नामपर बुरे कर्म करना भगवान्को ठगनेकी गंदी चेष्टा करना है। इन लोगोंसे वे कहीं अच्छे हैं, जो बुरे कर्म करते हैं और बुरे कहलाते हैं। भक्ति और ज्ञानके नामको जो कलंकित नहीं करते।

'परायी चुपड़ी' देखकर जलो मत और अपनी एक रोटीमेंसे गरीबको एक टुकड़ा देकर खाओ। दुःखीको देना और सुखीके सुखमें प्रसन्न होना, उनकी सेवा करना है। सबका हित चाहो, सबका हित करो और हित होते देखकर सुखी होओ।

विश्वास करो, तुमपर भगवान्की बड़ी कृपा है, तभी तो तुम्हें मनुष्यका देह मिला है। यह और भी विशेष कृपा समझो जो तुम्हें भजन करनेकी बुद्धि प्राप्त हुई और भजनके लिये सुअवसर मिला। इस सुअवसरको हाथसे मत जाने दो, नहीं तो पछताओगे।

तुम चाहे राजा हो या राहके भिखारी—तुम बड़े भाग्यवान् हो, अगर तुम अपने मनको भगवान्के भजनमें लगाते हो। भजनका धन जिसके पास है, वह राहका भिखारी भी राजा है, और जो इस धनसे कंगाल है, उस राजाको राहके भिखारीसे भी ज्यादा कमनसीब समझो।

भगवान्की कृपापर विश्वास करनेसे यह सब कुछ आप ही हो जायगा। विश्वास करो—अपनेको उसके द्वारा सुरक्षित समझो। उसकी पग-पगपर झाँकी करो। देखो, भगवत्कृपा बरस रही है—सदा, सब समय, सब ओरसे, अनन्त धाराओंसे, अविराम बरस रही है, उसमें नहाकर कृतकृत्य हो जाना तुम्हारे ही हाथ है।—**'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर और धर्म

(ब्रह्मलीन परम पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

एक बार एक प्रखरबुद्धि नास्तिकने मुझसे आदरपूर्वक समय माँगकर अपना मन्तव्य बड़ी विचित्र रीतिसे सुनाया। उसने भिन्न-भिन्न मतवादियोंके धर्मों और ईश्वरोंका विलक्षण चित्र खींचा और उनको अश्रद्धेय एवं उपहासास्पद सिद्ध किया। मैं सब सुनकर भी चुप रहा; तब उसने कहा कि 'आप कुछ ईश्वरवादपर प्रकाश डालनेकी कृपा करें।' मैंने कहा कि 'यदि आपकी यह धारणा पुष्ट है तो फिर इसके विपरीत कुछ कहना व्यर्थ है। हो सकता है कि आपके प्रिय एवं निश्चित सिद्धान्तमें कुछ विचलन भी हो।'

इसपर उन्होंने कहा कि 'फिर भी मुझे इस निश्चयमें संतोष नहीं होता, अशान्ति ही बनी रहती है। बार-बार मनमें यह भावना उठती है कि यदि सचमुच कहीं परमेश्वर और धर्मका अस्तित्व निकल पड़े तब फिर क्या होगा ? जो ईश्वरकी सेवा और उपासना करते हैं, उन्हें तो उसके झूठ होनेपर भी कोई हानि नहीं, पर सत्य होनेपर उन्हें बड़ा लाभ होगा। परंतु जो उसकी उपेक्षा करता है, परमेश्वरके झूठ सिद्ध होनेपर उसका कोई लाभ नहीं, किंतु यदि ईश्वरका अस्तित्व सही हुआ तब तो उसे उसकी उपेक्षाका घोर दण्ड अवश्य भोगना पड़ेगा।' सम्भव है वे महोदय कट्टर नास्तिक न रहे हों, परंतु यह तो मानना ही पड़ता है कि बुद्धिको यद्यपि ईश्वरपर विश्वास नहीं होता फिर भी वह सदा चाहती यही है कि यदि किसी युक्तिसे उसकी सत्ता समझमें आ जाय, उसपर विश्वास हो जाय, तो परम सुखकर हो।

साधारण व्यक्ति यही समझता है कि जिस तरह ग्रामका नेता ग्रामपति, प्रान्तका प्रभु प्रान्तपति, राष्ट्रका नियन्ता राष्ट्रपति होता है, उसी तरह सारे विश्व—अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका भी कोई-न-कोई स्वामी अवश्य होगा। ईश्वरकी सत्ता मान लेनेपर धर्म-अधर्मका भाव उठता है और उसीके तारतम्यसे प्राणियोंको सुख-दुःखकी प्राप्ति होती है। यह भाव दृश्य विश्वमात्रको माननेवाले भौतिक जड़वादी सिद्धान्तोंके मूलपर कुठाराघात करता है, इसीलिये ये ईश्वरके नामसे चिढ़ते हैं। अब सोवियत रूसमें भी ईश्वर तथा धर्मकी विशेष महत्ता मान ली गयी है, पर पहले वहाँ धार्मिक भावोंको दबानेके लिये तरह-तरहके नियम बनाये जाते थे, पर तब भी न ईश्वर गया है, न धर्म। सर्वसाधारणके हृदयमें उसका साम्राज्य बना ही रहता है। हार मानकर सोवियत सरकारको भी 'धार्मिक स्वतन्त्रता'की घोषणा करनी पड़ी। जबतक सब काम चलता रहता है, थोड़ा-बहुत सुख मिलता रहता है, तबतक ईश्वरकी याद भले ही न आये, पर विपत्ति-कालमें तो कट्टर-से-कट्टर नास्तिकको भी आश्रयकी आवश्यकता अवश्य प्रतीत होती होगी। कौन कह सकता है कि लेनिन जब पक्षाघातसे व्यथित होकर अपने अन्तिम दिनोंमें मांसकी लोथकी तरह पड़ा रहता था, तब उसे अपने कृत्योंकी यादके साथ एक अदृष्ट शक्तिका ध्यान न आता होगा—भले ही संकोच या लज्जावश उसे कोई स्वीकार न करे। यद्यपि कहा जाता है कि पूर्ण ज्ञानियोंके समान ही मूढतम या नास्तिकको भी शोक-मोह नहीं होता, केवल मध्यके लोग ही उनसे प्रभावित होते हैं—

यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः।
तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः॥

(विदुरनीति)

फिर भी घोर विपत्तियोंमें महा-महा प्रमत्तों और मूढतमोंका भी मोह-मद मिट जाता है और उनका मस्तिष्क ठिकाने आ जाता है। मूढतमोंकी निःशोकता स्थायी नहीं होती।

स्पष्ट है कि बिना परमेश्वरकी सत्ता माने प्राणी विपत्तिमें, मरण-कालमें, जहाँ कोई भी सहायक नहीं होता, वहाँ किसका सहारा पकड़ेगा, उसे संतोष कैसे होगा ? जैसे पुत्र माँकी गोदमें अपने-आपको समर्पित करके सब विपत्तियोंसे निश्चिन्त हो जाता है, वैसे ही भगवान्‌में अपने-आपको समर्पित करके भक्त उनके सहारे निश्चिन्त रहता है। ईश्वरके नामों, मूर्तियों और अनेक मन्दिरोंमें माता-पिता, बन्धु एवं गुरुजनोंकी भक्ति-श्रद्धापूर्वक प्रवृत्तियोंको देखकर बाल्यावस्थासे ही ईश्वरपर विश्वास हो जाता है। वातावरणका आन्तर-बाह्य दोनों ही प्रकारके जीवनोंपर प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। यही स्थिति धर्मकी भी है। भारतमें प्रत्यक्ष देखा जाता है, जब छोटा-सा बच्चा किसी चींटी आदिको मारने लगता है, तब माँ कहती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—'बेटा ! पाप लगेगा, चींटीको मत मार।' यह सुनकर पापसे डरकर बच्चा उस कामसे उपरत हो जाता है।

ईश्वर और धर्मकी भावना ही प्राणियोंको अपने-आप अनुचित—असत् पापकर्मोंसे वारण करती है। जबतक अपने-आप ही प्राणियोंको पापकर्मोंसे बचनेकी भावना न हो, तबतक केवल बाह्य शासनके भयसे समाजकी सुव्यवस्था नहीं हो सकती। शासक कहाँतक प्रति व्यक्तिके पीछे-पीछे घूमता रहेगा ? यदि शासक अपने भृत्योंद्वारा सब समाजके व्यक्तियोंके कार्याकार्यका निर्णय करे तो भी उन अपरिगणित भृत्योंके कर्मोंका औचित्यानौचित्य जाननेके लिये अन्य भृत्योंकी अपेक्षा होगी। उनकी भी प्रवृत्ति जाननेके लिये पुनः अन्यकी अपेक्षा होगी। फिर वह स्वयं भी अन्याय न करे इसका नियमन कौन करेगा ? मानस ही नहीं, किंतु वाचिक, कायिक भी कितने ऐसे अनुचित कार्य किये जा सकते हैं कि जिनका पता दूसरेको नहीं लग सकता। उन कार्योंसे सामाजिक तथा नैतिक विघटन और हानि पर्याप्त मात्रामें हो सकती है। अतः यदि ईश्वर-धर्म-भावनासे प्राणी अपने-आप उन कर्मोंसे न डरे तो उन कुत्सित कर्मोंकी निवृत्ति ही नहीं हो सकती।

नीति, न्याय, सत्य, धर्म, ईश्वर-भयकी शिथिलताका ही परिणाम है कि आज चारों ओर अन्याय, अधर्म, मिथ्या, छद्म, बर्बरताका साम्राज्य है। किसीको किसीपर विश्वास नहीं। एक राष्ट्र, समाज, जाति, सम्प्रदाय दूसरोंके संहारपर तुले हैं। व्यक्ति-व्यक्ति परस्पर संहारकी ही कामना कर रहे हैं। सभी शङ्कित, उद्विग्न एवं दूसरेके संहारकी घातमें हैं। कहनेके लिये तो रेल, तार, वायुयान, रेडियोद्वारा आज एक राष्ट्र दूसरेके अधिक निकट आ गये हैं, संसारभरका घनिष्ठ सम्पर्क हो गया है, किसी भी जाति या राष्ट्रकी घटनाका प्रभाव सभी राष्ट्रोंपर, जातियोंपर पड़ता है, परंतु थोड़ी गम्भीरताके साथ देखें तो मालूम होगा कि दूसरोंकी कौन कहे, आज मनुष्य अपने-आपसे ही दूर होता चला जा रहा है। अन्तरात्मासे, मनसे, शारीरिक व्यापारोंसे अत्यन्त पार्थक्य हो चला है। किसीको किसीसे सच्चा सहयोग नहीं, सहानुभूति नहीं, किसीके सुख-दुःखका कोई सच्चा साथी नहीं। स्वार्थपरायणताका ही चारों ओर बोलबाला है। जिससे जबतक स्वार्थ है, तबतक उससे मैत्री, स्वार्थ छूटते ही वही जानी दुश्मन। जो राष्ट्र आज मैत्रीवाले हैं, वही कल घोर शत्रु दिखायी देते हैं।

प्राचीन लोग दूर रहकर भी आत्मभावनासे एक-दूसरेके पास ही नहीं, किंतु हृदयमें थे। सब कुछ ब्रह्म या अन्तरात्मा ही है, आत्मा सबमें स्थित है या सब कुछ आत्मामें ही स्थित है, जीवरूपसे ईश्वर ही सर्वत्र है, किसीका अपमान भगवान्‌का ही अपमान है, इस तरह निखिल स्थूल-प्रपञ्च, सूक्ष्म-प्रपञ्च एवं कारण-प्रपञ्चकी परमात्मरूपसे क्रमिक उपासना करते-करते अन्तमें सर्वरहित सर्वातीत शुद्ध ब्रह्मकी निष्ठा होती है। सृष्टिका कोई परमाणु भी ऐसा नहीं है जो ब्रह्मात्मस्वरूपसे भिन्न हो। फिर सब राष्ट्र, सर्व वसुधा या सर्व ब्रह्माण्ड ही कुटुम्ब एवं आत्मीय है, इस भावनाका तो होना स्वाभाविक ही है। व्यवहारमें सभीको नीति एवं नियमोंमें बँधकर अपने कर्तव्योंका पालन करना पड़ता है। असत्य, अन्याय, छल आदिका संचार न होनेसे किन्हीं भी श्रेणियोंमें परस्पर संघर्षका सूत्रपात नहीं होता। थोड़े-से-थोड़े समयमें अधिक-से-अधिक कार्य कर लेना, थोड़े-से-थोड़े परिश्रममें अधिक-से-अधिक धन, स्त्री आदि सौख्य-सामग्रियोंको प्राप्त कर लेना, बस, यही वर्तमान सभ्यताका लक्ष्य हो रहा है। विश्वकी स्थायी आत्मशान्ति किससे हो, इसपर ध्यान ही नहीं जाता। परिणाम आज प्रत्यक्ष है। विविध यन्त्रों एवं कल-पुर्जोंकी महिमासे कहीं दरिद्रतासे लोकसंहार, तो कहीं धन-वृद्धिके कारण संहार हो रहा है। माल खपानेके लिये बाजारोंपर संघर्ष, तेल, कोयला, पेट्रोल, लोहेपर ही युद्ध एवं परस्पर संहार हो रहा है। फिर भी धर्म और ईश्वरकी पुकार मच रही है। अभिज्ञलोग समझ रहे हैं कि बिना इसके शान्ति नहीं होगी।

धार्मिक वातावरणकी बात दूसरी है। जिस समय भारतमें धर्मभीरुता थी, उस समय समाज भी सुव्यवस्थितरूपसे चल रहा था। हर एकको दूसरेके प्रति अपने कर्तव्यका ज्ञान था। राजा और प्रजा दोनों ही ईश्वरसे डरते थे। महर्षि लिखितने नाममात्रकी चोरीके लिये स्वयं राजाके पास जाकर प्रायश्चित्त-रूपमें अपना हाथ कटवा डाला था। तब राजा भी अपने प्रिय पुत्रोंतकको प्राणदण्ड देनेमें नहीं हिचकते थे। कल्माषपाद, असमंजस आदि राजपुत्रोंने अपने पितासे ही दण्डित होकर किन-किन दुःखोंको नहीं उठाया। क्या धर्मभीरु सैनिकोंके लिये भी यह सम्भव था कि वे वैसी ही धृष्टता तथा उद्दण्डता करते,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसी कि आजकल जहाँ-तहाँ सैनिक कर रहे हैं और क्या कोई धर्मभीरु शासक भी आजकलके शासकोंकी तरह ऐसे घोर अपराधको क्षम्य कहकर टाल देता ? पूर्वजोंके पुण्यप्रतापसे अन्य देशोंकी अपेक्षा, भारतमें अब भी ईश्वर तथा धर्मका कुछ भय बना हुआ है। सर्वसाधारणमें अब भी धर्मकी ओर रुचि है। भारत ही ऐसा देश है, जहाँ बिना किसी नोटिसबाजी या विज्ञापनके कुम्भके अवसरोंपर बीस-बीस, पचीस-पचीस लाखों-करोड़ोंकी भीड़ हो जाती है। परंतु इसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि ईश्वर तथा धर्मका जो सच्चा भय है, वह लुप्त हो रहा है। तभी उसका घोर पतन भी हो रहा है। परंतु जब ईश्वर-विमुख देशोंमें भी उसकी अपेक्षा और धर्मकी आवश्यकता प्रतीत हो रही है, तब क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि जिसे हम खो बैठे हैं, उसे फिरसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करें। परम उदार अनादि परमेश्वरीय विज्ञानमय वेदसिद्ध वैदिक धर्मकी क्या हम उपेक्षा कर सकते हैं ? विश्वकल्याणकी कुंजी उसीमें है, परंतु परिस्थिति ऐसी है कि हमें चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार दिखायी पड़ रहा है, सब ओरके मार्ग बंद-से हैं। ऐसी दशामें यही उचित जान पड़ रहा है कि लौकिक उपायोंके साथ-साथ ईश्वरका सहारा पकड़ा जाय। सच्ची बात तो यह है कि ईश्वरकी स्मृतिमें ही सर्वोपरि सुख एवं शान्ति है। गीता बार-बार कहती है—**'सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।' 'अत्यन्तं सुखमश्नुते,' 'विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्,' 'स युक्तः स सुखी नरः,' 'योऽन्तःसुखोऽन्तरारामः,' 'सुखमक्षयमश्नुते' 'योगिनं सुखमुत्तमम्,' 'उपैति शान्तरजसम्', 'ब्रह्मभूतम-कल्मषम्', 'तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्।' 'सुखं बन्धात्प्रमुच्यते', 'अशान्तस्य कुतः सुखम्'** आदि। योगवासिष्ठ तथा उपनिषदोंके प्रत्येक वाक्य ऐसे ही हैं। अतः इस समय प्रत्येक प्राणीका यह कर्तव्य होना चाहिये कि वह प्रतिदिन नियमसे **'धर्मग्लान्यधर्माभ्युत्थाननिवृत्तिपूर्वकधर्मसंस्थापनाय'** (धर्मग्लानि तथा अधर्मके अभ्युत्थानको हटाकर धर्म-संस्थापनके लिये) इस संकल्पके साथ कुछ जप, पाठ, ईश्वर-प्रार्थना आदि करता रहे।

जिज्ञासा

तुम्हें कहाँ पाऊँ भगवान् !

भूल-भुलैयाकी जगतीमें ढूँढ़ूँ कैसे मैं नादान ?
मंदिरमें बसते हो तुम यों कहते हैं कोई मतिमान,
कोई मस्जिद, कोई गिरजा बतलाते हैं वासस्थान।
ऋषि-मुनियोंकी ओर खींचकर संतत मेरा अस्थिर ध्यान,
कोई कहते ईश-प्राप्तिका साधन है केवल तप-ज्ञान।
व्रज-वनिताकी प्रेम-कथाको गा-गा करके बारम्बार,
कोई कहते ईश-प्राप्तिका अटल प्रेम ही है आधार।
कोई कहते निराकार तुम अगम स्वयंभू औ अविकार,
कण-कणमें तुम रमे, तुम्हारा संसृति है केवल विस्तार।
कोई कहते दिव्य-रूप तुम मायातीत सगुण साकार,
समय-समयपर इस धरणीपर लेते रहते हो अवतार।
भला मूढ़ मैं समझ सकूँ क्यों इन उलझी बातोंका सार ?
मुझे बता दो कहाँ छिपे हो किस आकृतिसे जगदाधार !

—गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेन्द्र'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म और उसका प्रचार

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

इस समय संसारकी प्रायः सभी जातियाँ न्यूनाधिकरूपसे अपने-अपने धर्मकी उन्नति और उसके प्रचारके लिये अपनी-अपनी पद्धतिके अनुसार प्रयत्न कर रही हैं। इनमेंसे कुछ लोग तो अपने धर्मभावोंका संदेश संसारके कोने-कोनेमें पहुँचा देना चाहते हैं और वे इसके लिये कोई कसर भी उठा नहीं रखते। क्रिश्चियन-मतका प्रचार करनेके लिये ईसाई-जगत् कितनी धनराशिको पानीकी तरह बहा रहा है ? अमेरिकातकसे करोड़ों रुपये इस कार्यके लिये भारतवर्षमें आते हैं, लाखों ईसाई स्त्री-पुरुष सुदूर देशोंमें जा-जाकर भाँति-भाँतिसे लोकसेवाकर तथा लोगोंको अनेक तरहसे लोभ-लालच देकर, फुसलाकर और उन्हें उलटी-सीधी बात समझाकर अपने धर्मका प्रचार कर रहे हैं।

कुछ भूले हुए लोग परधन, परस्त्री-अपहरण करने, धर्मके नामपर हिंसा करने और परधर्मीकी हत्या करनेको ही धर्म मान बैठे हैं और उसीका प्रचार करना चाहते हैं। इसी प्रकारके धर्मप्रचारसे चारों ओर अशान्ति और दुःखका विस्तार होता है। अपनी बुद्धिसे लोक-कल्याणके लिये जिस धर्मको अधिक उपयोगी समझा जाय, उसके प्रचारके लिये प्रयत्न करना मनुष्यका कर्तव्य है। इस न्यायसे कोई भाई यदि वास्तवमें ऐसे ही शुद्ध भावसे प्रेरित होकर केवल लोक-कल्याणके लिये ही अपने धर्मका प्रचार करना चाहते हैं तो उनका यह कार्य अनुचित नहीं है, परंतु उनके इस कार्यको देखकर हमलोगोंको क्या करना चाहिये—यह विषय विचारणीय है। मेरी समझसे एक हिन्दू-धर्म ही सब प्रकारसे पूर्ण धर्म है, जिसका चरम लक्ष्य मनुष्यको संसारके त्रितापानलसे मुक्तकर उसे अनन्त सुखकी शेष सीमातक पहुँचाकर सदाके लिये आनन्दमय बना देना है। इसी धर्मका पवित्र संदेश प्राप्तकर समय-समयपर जगत्के दुःख-दग्ध अशान्त प्राणी परम शान्तिको प्राप्त हो चुके हैं और आज भी जगत्के बड़े-बड़े भावुक पुरुष अत्यन्त उत्सुकताके साथ इसी संदेशकी प्राप्तिके लिये लालायित हैं। जिस धर्मकी इतनी अपार महिमा है उसी अनादिकालसे प्रचलित पवित्र और गम्भीर-आशय धर्मको माननेवाली जाति मोहवश जगत्के अन्यान्य अपूर्ण मतोंका आश्रय ग्रहण कर अज्ञान-सरिताके प्रवाहमें बहना चाहती है, यह बड़े ही दुःखकी बात है!

यदि भारतने अपने चिरकालीन धर्मके पावन आदर्शको भूलकर ऐहिक सुखोंकी व्यर्थ कल्पनाओंके पीछे उन्मत्त हो केवल काल्पनिक भौतिक, स्वर्गादि सुखोंको ही धर्मका ध्येय माननेवाले मतोंका अनुसरण आरम्भ कर दिया तो बड़े ही अनर्थकी सम्भावना है। इस अनर्थका सूत्रपात भी हो चला है। समय-समयपर इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। लोग प्रत्यक्ष परमानन्द-प्राप्तिके ध्येयसे च्युत होकर केवल विविध प्रकारके भोगोंकी प्राप्तिके प्रयत्नको ही अपना कर्तव्य समझने लगे हैं। धर्मक्षयका यह प्रारम्भिक दुष्परिणाम देखकर भी यदि धर्मप्रेमी बन्धु धर्म-नाशसे उत्पन्न होनेवाली भयानक विपत्तियोंसे जातिको बचानेकी संतोषजनकरूपसे चेष्टा नहीं करते, तो यह बड़े ही परितापका विषय है !

इस समय हमारे देशमें अधिकांश लोग तो केवल धन, नाम और कीर्ति कमानेमें ही अपने दुर्लभ और अमूल्य जीवनको बिता रहे हैं, परंतु भौतिक सुखोंकी चेष्टा परम ध्येयको भुला देती है। सच्चे सुखकी प्राप्तिमें पूरी सहायता तो उस शान्तिप्रद सत्य-धर्मके प्रचारसे ही मिल सकती है।

यद्यपि मुझे संसारके मत-मतान्तरोंका बहुत ही कम ज्ञान है, परंतु साधारणरूपसे मेरा यह विश्वास है कि सबसे उत्तम सार्वभौम धर्म वह हो सकता है जिसका लक्ष्य महान्-से-महान्, नित्य और अबाध आनन्दकी प्राप्ति हो और जिसमें सबका अधिकार हो। केवल ऐहिक सुख या स्वर्गसुख बतलानेवाला धर्म भी वास्तवमें बुद्धिमान्के लिये त्याज्य ही है। अतएव सर्वोत्तम धर्म वह है, जो परम कल्याणकी प्राप्ति करानेवाला होता है। ऐसा धर्म मेरी समझसे वह वैदिक सनातन धर्म ही है, जिसका स्वरूप निम्नलिखितरूपसे शास्त्रोंमें कहा गया है—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत॥
(गीता १६। १-३)

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सर्वथा भयका अभाव, अन्तःकरणकी अच्छी प्रकारसे स्वच्छता, तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति[1] सात्त्विक दान[2] इन्द्रियोंका दमन, भगवत्पूजा और अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मोंका आचरण, वेद-शास्त्रोंके पठन-पाठनपूर्वक भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन, स्वधर्मपालनके लिये कष्ट-सहन, शरीर और इन्द्रियोंसहित अन्तःकरणकी सरलता, मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना, यथार्थ और प्रियभाषण[3], अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना, कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग, अन्तःकरणकी उपरामता अर्थात् चित्तकी चञ्चलताका अभाव, किसीकी भी निन्दा आदि न करना, सब भूतप्राणियोंमें हेतुरहित दया, इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी आसक्तिका न होना, कोमलता, लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा, व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव, तेज[4], क्षमा, धैर्य, शौच अर्थात् बाहर और भीतरकी शुद्धि[5], किसीमें भी शत्रुभावका न होना, अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव, हे अर्जुन ! दैवी सम्पदाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण (ये) हैं।'

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(मनु० ६।९२)

'धैर्य, क्षमा, मनका निग्रह, चोरी न करना, बाहर-भीतरकी शुद्धि, इन्द्रियोंका संयम, सात्त्विक बुद्धि, अध्यात्म-विद्या, यथार्थ भाषण और क्रोध न करना—ये धर्मके दस लक्षण हैं।'

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

(योग० २।३०)

'अहिंसा, सत्यभाषण, चोरी न करना, ब्रह्मचर्यका पालन और भोग-सामग्रियोंका संग्रह न करना—ये पाँच प्रकारके यम हैं।'

शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।

(योग० २।३२)

'बाहर-भीतरकी पवित्रता, संतोष, तप, स्वाध्याय और सर्वस्व ईश्वरके अर्पण करना—ये पाँच प्रकारके नियम हैं।' इन सबका निष्कामभावसे पालन करना ही सच्चा धर्माचरण है।

यही धर्मके सर्वोत्तम लक्षण हैं, इन्हींसे परमपदकी प्राप्ति होती है। अतएव जो सच्चे हृदयसे मनुष्यमात्रकी सेवा करना चाहते हैं, उन्हें उचित है कि वे उपर्युक्त लक्षणोंसे युक्त धर्मको ही उन्नतिका परम साधन समझकर स्वयं उसका आचरण करें और अपने दृष्टान्त तथा युक्तियोंके द्वारा इस धर्मका महत्त्व बतलाकर मनुष्यमात्रके हृदयमें इसके आचरणकी तीव्र अभिलाषा उत्पन्न कर दें। वास्तवमें यही सच्चा धर्म-प्रचार है और इसीसे लौकिक अभ्युदयके साथ-ही-साथ देश-कालकी अवधिसे अतीत मुक्तिरूप परम कल्याणकी प्राप्ति हो सकती है। इस स्थितिको प्राप्त करके पुरुष दुःखरूप संसारसागरमें पुनः लौटकर नहीं आता। ऐसे ही पुरुषोंके लिये श्रुति पुकारती है—

न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते।

(छान्दोग्य० ८।१५।१)

इस परम आनन्दका नित्य और मधुर रस मनुष्यमात्रको आस्वादित करानेके लिये वैदिक सनातनधर्मका प्रचार करनेकी चेष्टा मनुष्यमात्रको विशेषरूपसे करनी चाहिये।

धर्मके प्रचारमें धनकी भी विशेष आवश्यकता नहीं, सम्भव है कि इससे आंशिकरूपसे कुछ सहायता मिल जाय, पर इसमें प्रधान आवश्यकता सच्चे त्यागी और धर्मज्ञ प्रचारकोंकी है। ऐसे पुरुष मान, बड़ाई, प्रसिद्धि और स्वार्थको त्यागकर प्राणपणसे धर्म-प्रचारके लिये कटिबद्ध हो जायँ तो उन्हें द्रव्यादि वस्तुओंकी तो कोई त्रुटि रह ही नहीं सकती; परंतु

१- परमात्माके स्वरूपको तत्त्वसे जाननेके लिये सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे ध्यानकी निरन्तर गाढ़ स्थितिका ही नाम 'ज्ञानयोगव्यवस्थिति' समझना चाहिये।

२- गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित गीता-तत्त्वविवेचनी, अध्याय १७ श्लोक २० का अर्थ देखिये।

३- अन्तःकरण और इन्द्रियोंके द्वारा जैसा निश्चय किया हो वैसा-का-वैसा ही प्रिय शब्दोंमें कहनेका नाम सत्यभाषण है।

४- श्रेष्ठ पुरुषोंकी उस शक्तिका नाम तेज है कि जिसके प्रभावसे उनके सामने विषयासक्त और नीच प्रकृतिवाले मनुष्य भी प्रायः अन्यायाचरणसे रुककर श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं।

५- सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यवहारसे द्रव्यकी और उसके अन्नसे आहारकी तथा यथायोग्य बर्तावसे आचरणोंकी और जल-मृत्तिकादिसे शरीरकी शुद्धिको बाहरकी शुद्धि कहते हैं तथा राग-द्वेष और कपट आदि विकारोंका नाश होकर अन्तःकरणका स्वच्छ हो जाना भीतरकी शुद्धि कही जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे अपने प्रतिपक्षियोंपर भी प्रेमसे विजय प्राप्तकर उन्हें अपना मित्र बना ले सकते हैं। केवल संख्यावृद्धिके लिये ही लोभ-लालच देकर या फुसला-धमकाकर किसीका धर्म-परिवर्तन करना वास्तवमें उसके विशेष हितका हेतु नहीं हो सकता और न ऐसे स्वार्थयुक्त धर्म-प्रचारसे प्रचारकोंको ही विशेष लाभ होता है। जब मनुष्य धर्मके महत्त्वको स्वयं भलीभाँति समझकर उसका पालन करता है तभी उसे, उससे आनन्द और शान्ति मिलती है और इस प्रकार अपूर्व आनन्द और परम शान्तिका अनुभव करके ही मनुष्य संसृतिमें फँसे हुए अशान्त, दुःखी जीवोंकी दयनीय स्थितिको देखकर करुणार्द्रचित्तसे उन्हें शान्त और सुखी बनानेके लिये प्रयत्न करते हैं, यही सच्चा धर्म-प्रचार है।

बड़े खेदकी बात है कि इस अपार आनन्दके प्रत्यक्ष सागरके होते हुए भी लोग दुःखरूप संसार-सागरमें मग्न हुए भीषण संतापको प्राप्त हो रहे हैं। मृगतृष्णासे परिश्रान्त और व्याकुल मृग-समूह जैसे गङ्गाके तीरपर भी प्यासके मारे छटपटाकर मर जाते हैं, वही दशा इस समय हमारे इन भाइयों-की हो रही है।

सत्य-धर्मके पालनसे होनेवाली अपार आनन्दकी स्थितिको न समझनेके कारण ही मनुष्योंकी यह दशा हो रही है। अतएव ऐसे लोगोंको दयनीय समझकर उन्हें वैदिक सनातन-धर्मका तत्त्व समझानेकी चेष्टा करनेमें उनका उपकार और सच्चा सुधार है। इस धर्मको बतलानेवाले हमारे यहाँ अनेक ऐसे ग्रन्थ हैं जिन सबका मनन और अनुशीलन करना कोई सहज बात नहीं। अतएव किसी एक ऐसे ग्रन्थका अवलम्बन करना उत्तम है, जो सरलताके साथ मनुष्यको इस पावन पथपर ला सकता है। मेरी समझसे ऐसा पावन ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता' है। बहुत थोड़े-से सरल शब्दोंमें कठिन-से-कठिन सिद्धान्तोंको समझानेवाला, सब प्रकारके अधिकारियोंको उनके अधिकारानुसार उपयोगी मार्ग बतलाने-वाला, सच्चे धर्मका पथप्रदर्शक, पक्षपात और स्वार्थसे रहित उपदेशोंके अपूर्व संग्रहका यह एक ही सार्वभौम महान् ग्रन्थ है। जगत्के अधिकांश महानुभावोंने मुक्तकण्ठसे इस बातको स्वीकार किया है। गीतामें सैकड़ों ऐसे श्लोक हैं[1] जिनमेंसे एकको भी पूर्णतया धारण करनेसे मनुष्य मुक्त हो जाता है, फिर सम्पूर्ण गीताकी तो बात ही क्या है।

अतः जिन पुरुषोंको धर्मके विस्तृत ग्रन्थोंको देखनेका पूरा समय नहीं मिलता है उनको चाहिये कि वे गीताका अर्थसहित अध्ययन अवश्य ही करें और उसके उपदेशोंको पालन करनेमें तत्पर हो जायँ। मुक्तिमें मनुष्यमात्रका अधिकार है और गीता मुक्ति-मार्ग बतलानेवाला एक प्रधान ग्रन्थ है, इसलिये परमेश्वरमें भक्ति और श्रद्धा रखनेवाले सभी आस्तिक मनुष्योंका इसमें अधिकार है। गीता-प्रचारके लिये भगवान्ने किसी देश, काल, जाति और व्यक्तिविशेषके लिये रुकावट नहीं की है, वरन् अपने भक्तोंमें गीताका प्रचार करनेवालेको सबसे बढ़कर अपना प्रेमी बतलाया है।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥

(१८।६८)

'जो पुरुष मेरेमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा, अर्थात् निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक मेरे भक्तोंको पढ़ायेगा या अर्थकी व्याख्याद्वारा इसका प्रचार करेगा, वह निःसंदेह मेरेको ही प्राप्त होगा।'

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

(१८।६९)

'और न तो उससे बढ़कर मेरा अतिशय प्रियकार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई है और न उससे बढ़कर मेरा अत्यन्त प्यारा पृथिवीमें दूसरा कोई होगा।'

अतएव सभी देशोंकी सभी जातियोंमें गीताशास्त्रका प्रचार बड़े जोरके साथ करना चाहिये। केवल एक गीताके प्रचारसे ही पृथ्वीके मनुष्यमात्रका उद्धार हो सकता है। इसलिये इसी गीता-धर्मके प्रचारमें सबको यत्नवान् होना चाहिये। इससे सबको आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति हो सकती है। यही एक सरल, सहज और मुख्य उपाय है।

१- जैसे गीता अ० २।७१, ३।३०, ४।३४, ५।२९, ६।४७, ७।१४, ८।१४, ९।३२, १०।९,१०, ११।५४, ५५, १२।८, १३।१०, १४।१९, २६, १५।१९, १६।१, १७।२६, १८।६५,६६ इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थनाका महत्त्व और भगवन्नाम-महिमा

(प्राचार्य डॉ० श्रीजयनारायणजी मल्लिक)

[गताङ्क पृ० सं० ६४३ से आगे]

अनासक्त और निर्लिप्त होकर कर्म करनेका नाम ही कर्मयोग है, पर यह हो कैसे ? हमारे अन्तःकरणमें छिपी वासना फलकी कामनासे सदा ग्रस्त रहती है। उपदेश देनेके लिये तो प्रायः सभी कह देते हैं कि 'वासनाका हनन करो, प्रवृत्तिको कुचलो, अनासक्त और निर्लिप्त होकर कर्म करो।' पर इन उपदेशोंसे कर्मयोगकी समस्या हल नहीं होती।

वासना अनादिकालसे जीवके हृदयमें जाल बिछाये है। हम उसे केवल वाक्य-ज्ञानसे नष्ट नहीं कर सकते। यह सत्य है कि अनासक्त होकर किया गया कर्म आत्माका स्पर्श नहीं कर पाता, पर अनासक्त होना ही तो जीवनकी सबसे बड़ी समस्या है। प्रार्थना कर्मयोगकी सहायता करती है। अकेले कर्मयोग जिस समस्याका समाधान नहीं कर सका, प्रार्थना उसे सरल कर देती है। भगवन्नाम-जपसे तथा प्रार्थनासे भक्तिका उदय होता है और भक्ति कहती है—'जीवनके सारे कर्म कर्तव्यकी प्रेरणासे भगवन्निमित्त, भगवत्कैंकर्य समझकर करो' फिर कर्मोंमें आसक्ति कैसी ? हमें भोग-वासनासे प्रेरित होकर कर्म नहीं करना चाहिये।

अनवरत प्रार्थनासे जबतक हमारे अन्तःकरणमें भगवान्‌का साक्षात्कार नहीं होता, जबतक हमारे मन-मन्दिरमें प्रेम-सिंहासनपर श्रीमन्नारायण भगवान् विराजमान नहीं होते, तबतक लाख चेष्टाएँ करनेपर भी मोह-पाश नहीं टूट सकता।

भगवान्‌की प्रार्थनासे तथा उनके ध्यान, चिन्तन और स्मरणसे हृदयके सारे विकार आप-से-आप नष्ट हो जाते हैं।

भगवान्‌के चिन्मय, ज्ञानमय, आनन्दमय रूपका प्रकाश हृदयमें आते ही अन्तःकरणका अन्धकार आप-से-आप मिट जाता है।

ज्ञानयोगकी सफलता भी प्रार्थनापर ही निर्भर है। वाक्य-ज्ञान तो केवल शास्त्रार्थका विषय होता है।

अनवरत प्रार्थनासे परमात्माका साक्षात्कार होता है और परमात्माके साक्षात्कारसे मायाका बन्धन टूट जाता है। हृदयकी गाँठ खुल जाती है और कर्म-संस्कार नष्ट हो जाता है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

(मुण्डक० २।२।८)

भक्तिसे पृथक् ज्ञानका मार्ग दुर्गम और कठिन है, पर प्रार्थनापर अवलम्बित भक्ति-पथ अत्यन्त सुलभ है।

भगवन्नामका स्मरण, प्रार्थना, सदैव भगवान्‌का चिन्तन और ध्यान, भगवान्‌में अखण्ड विश्वास, अनवरत उनकी स्मृतिका नाम ही उपासना है।

उपासनामें सबसे अधिक आवश्यकता है प्रार्थना और भगवत्प्रेमकी; क्योंकि जो जिसका अत्यन्त प्रिय होता है, दिन-रात वह उसीका ध्यान करता रहता है, उसके स्मरण और चिन्तनमें ही उसे आनन्दकी अनुभूति होती रहती है। भगवान्‌को यदि हम हृदयसे प्यार करेंगे तो उनका ध्यान सदैव हमें लगा रहेगा।

भोग-रस-पान करनेवाले चञ्चल मनको सर्वप्रथम भगवान्‌में लगानेके लिये दो साधनोंकी आवश्यकता है—भगवन्नाम-जप और अनवरत प्रार्थना। इससे मनको भगवान्‌में टिकनेकी तथा भगवान्‌से प्रेम करनेकी आदत लग जाती है। प्रार्थना भगवान्‌से मिलनेका सर्वोत्तम साधन है। भगवान्‌के प्रति अनन्य और अकिंचन-भावसे शरणागत होकर तथा भगवान्‌के चरणोंमें अपने आपको समर्पित कर प्रार्थना करनी चाहिये। भगवान्‌से कहना चाहिये—

पिता त्वं माता त्वं दयिततनयस्त्वं प्रियसुहृत्।
त्वमेव त्वं मित्रं गुरुरपि गतिश्चासि जगताम्॥

प्रपन्नका आधार, अवलम्ब और उपाय एकमात्र भगवान् हैं और उसका साधन है भगवन्नामजप और प्रार्थना। भगवान् उसे जिस अवस्थामें रखें, वह उसीमें संतुष्ट रहता है। चाहे सुखमें हो या दुःखमें, वह भगवान्‌को नहीं भूलता। विपत्ति पड़नेपर भी वह भगवान्‌को नहीं कोसता। प्रपन्नके लिये नीचानुसंधान आवश्यक है। भगवान्‌के सम्मुख वह सदैव अपनेको अपराधी समझता है और भगवान्‌के पदरजकी कामना करते हुए कह उठता है—

अपराधसहस्रभाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे।
अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात् कुरु॥

(आलवन्दारस्तोत्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जबतक हम अपनेको अनन्त अपराधी, निराधार और आर्त नहीं समझेंगे, तबतक प्रार्थनाकी भावना हमारे अन्तः-करणमें नहीं आ सकती। प्रपन्न प्रार्थनाके द्वारा अपनी रक्षाका भार भगवान्‌को देकर स्वयं निश्चिन्त हो जाता है। जैसे पत्नीको विश्वास रहता है कि स्वामी बिना कहे भी मेरी रक्षा करेंगे ही, उसी प्रकार प्रपन्न भी समझता है कि भगवान् बिना कहे भी मायाके बन्धनसे मुझे मुक्त करेंगे ही। जिस प्रकार पत्नी अपनी रक्षाके निमित्त पतिको छोड़कर अन्य किसी उपायका अवलम्बन नहीं करती, उसी प्रकार प्रपन्न भी अपने मोक्षके लिये भगवान्‌को छोड़कर अन्य किसी उपायको ग्रहण नहीं करता।

भगवान्‌की प्राप्तिमें भगवान् ही उपाय हैं, भगवान्‌की प्राप्ति अपने बलपर नहीं हो सकती; क्योंकि वह सदैव भूल करता रहता है, वह कमजोरीका पुतला है, उसके अन्तःकरणमें तृष्णाका हाहाकार है—भोग-वासनाका विषभरा मधुर नर्तन है। वासना प्रारब्ध और क्रियमाण, दोनों कर्मोंको बाँधनेवाली कड़ी है। न्यायके बलपर मोक्षकी आशा करना व्यर्थ है। वासना कर्म-संस्कार या कृत-कर्मोंकी पुत्री एवं प्रवृत्ति तथा भावी कर्मोंकी जननी है। यह असंख्य जन्मोंके कर्मोंका रस पीकर भविष्य जीवनकी पथ-प्रदर्शिका बन गयी है। वासनाके विराट् अन्धकारमें विवेकका टिमटिमाता हुआ प्रकाश क्षीण, क्षणिक और चञ्चल रहता है। प्रलोभनोंके निकट भोग-सामग्रियोंके बीच हमारा संकल्प स्थिर नहीं रह पाता। विषयोंके प्रबल झंझावातमें ज्ञानकी कमजोर दीप-शिखा काँपने लगती है और कभी-कभी बुझ भी जाती है। हमारा बाह्य रूप तो सुन्दर, पवित्र और आकर्षक रहता है, पर हमारे अन्तर्जगत्‌में तृष्णा, स्वार्थ और भोग-विलासका ताण्डव नृत्य होता रहता है। संसार हमें महात्मा, साधु, नेता या समाज-सुधारक भले ही समझ ले, पर भगवान् तो अन्तर्यामी हैं, वे हमारे छिपे अपराधोंको देख लेते हैं।

श्रीयामुनाचार्यने कहा है—

न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके
सहस्रशो यन्न मया व्यधायि।
सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द
क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे॥

(आलवन्दारस्तोत्र)

इसलिये भगवत्कृपाका आधार प्रार्थना है। न्यायके अधिकारसे नहीं, भगवत्कृपाके बलपर हम मोक्षके अधिकारी हो सकते हैं। अपने बलपर निष्काम कर्मके द्वारा मोक्ष प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि हमारे कर्मोंका सर्वथा निष्काम होना सरल नहीं। इसलिये जबतक हम अनन्य, अकिंचन होकर दीन अपराधीकी तरह काँपते हुए भगवान्‌के श्रीचरणोंमें आत्म-समर्पण नहीं कर देंगे और प्रार्थनाद्वारा भगवान्‌की प्राप्तिमें भगवान्‌को ही उपाय नहीं समझ लेंगे, तबतक उद्धार होना असम्भव-सा है। श्रीयामुनाचार्यकी तरह हमें भगवान्‌से कहना है—

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी
न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्य
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥

(आलवन्दारस्तोत्र)

हे भगवन्! धर्ममें या कर्मयोगमें मेरी निष्ठा नहीं है, क्योंकि कर्मयोगके लिये अनासक्त और निर्लिप्त होकर कर्म करना आवश्यक है, जो मुझसे नहीं हो सकता। ज्ञानयोग भी मुझसे नहीं हो सकता, क्योंकि मेरा मन चञ्चल है और मैं स्थितप्रज्ञ नहीं हूँ। भक्तियोगके लिये भी मैं असमर्थ हूँ; क्योंकि भोग-वासना मेरे चञ्चल मनको आपके चरणोंमें टिकने नहीं देती। मेरे पास मोक्षका कोई साधन नहीं है। मैं दीन, अकिंचन, निःसहाय हूँ। मेरे पास कुछ भी नहीं है, दूसरा कोई मार्ग या उपाय भी नहीं है। अतः मैं आपके ही श्रीचरणोंको अपना उपाय, अपना साधन और अपनी रक्षाका स्थान समझता हूँ, आपका शरणागत हूँ और आपके ही श्रीचरणोंपर आत्म-समर्पण कर देता हूँ।

जिस प्रकार पत्नी पतिकी सेवा प्रेमसे करती है, भार समझकर नहीं, उसी प्रकार प्रपन्न भी भगवत्कैंकर्य बड़े प्रेमसे और प्रसन्नतासे करता है, भार समझकर नहीं। भगवान्‌ने जिसको जिस परिस्थितिमें रखा है, उसके अनुकूल आचरण भगवत्कैंकर्य है। '**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।**' गीताके इस वचनके अनुसार किसानोंके लिये हल जोतना, छात्रोंके लिये अध्ययन और अनुशासन, माताओंके लिये बच्चोंका लालन-पालन और मल-मूत्र धोना, सब कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवत्कैंकर्य है। प्रत्येक नर-नारीका शरीर परमात्माका मन्दिर है, अतः मानवकी सेवा भगवत्कैंकर्य है। दूसरोंकी निन्दा करना, दूसरोंका अनिष्ट, दूसरोंका दिल दुखाना परमात्माकी अवहेलना है। प्रार्थनासे प्रपत्तिकी भावना परिपक्व होती है और आत्म-समर्पणका भाव आता है। जीवनके सारे कर्मोंको, भोग-वासनासे प्रेरित होकर नहीं, कर्तव्यकी प्रेरणासे भगवन्निमित्त भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये भगवत्कैंकर्य समझकर करना है, इसमें आसक्ति कैसी ? जब हमने अपने आपको भगवान्‌के श्रीचरणोंमें सौंप दिया, तो फिर अपने लिये—भोग-वासनाकी तृप्तिके लिये कोई कर्म ही नहीं करना है। सब कुछ भगवान्‌की प्रीति और प्रसन्नताके लिये, उन्हींके आज्ञानुसार करना है। प्रपन्नका सारा जीवन ही भगवत्कैंकर्य है। उसका व्रत है—

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यविवर्जनम्।

जो काम भगवान्‌को रुचिकर लगे, उनकी इच्छाके अनुकूल हो, उसे करना और जो काम उनकी आज्ञाके विरुद्ध हो, उनकी इच्छाके प्रतिकूल हो, उसे नहीं करना। प्रपन्न अपने समय, शक्ति और धनका दुरुपयोग नहीं करता। वह समझता है कि जीवात्मा परमात्माका अंश है, अतः किसीसे द्वेष रखना, किसीकी बुराई सोचना अनुचित है। शुक्लयजुर्वेदके उत्तर-नारायणीय सूक्तके द्रष्टा नारायणऋषिने परमात्माका साक्षात्कार किया था—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।

(शु० यजु० ३१। १८)

—और उनके मुखसे गायत्रीके रूपमें प्रथम प्रार्थना निकल पड़ी, जो सगुण साकार परब्रह्म परमेश्वरकी प्रार्थना है। उपनिषद्-ग्रन्थोंमें हम प्रार्थनाका कितना सुन्दर रूप देखते हैं—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तꣳह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥

(श्वेताश्वतर० ६। १८)

एक और वैदिक प्रार्थना है—

असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्माऽमृतं गमय।

'हे प्रभो ! आप मुझे असत्-प्रपञ्चसे हटाकर सत्-तत्त्वकी ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर और मृत्युसे अमरत्वकी ओर ले चलिये।' असत् और बुरे कामोंसे सत्कर्म और भलाईकी ओर जाना, अविद्याके अन्धकारसे ज्ञान और विद्याके प्रकाशमें जाना तथा मृत्युसे स्वस्थ जीवन एवं अमरत्वकी ओर जाना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है।

अन्तर्यामी भगवान् प्रत्येक नर-नारीके शरीरमें वर्तमान हैं, अतः मानवकी सेवा परमात्माकी सेवा है, केवल इस सेवाके अन्तस्तलमें स्वार्थ और भोग-वासना छिपी हुई न हो। भगवन्नामकी महिमा अकथनीय है। यह भवसागरका पोत है और मोक्ष-पथका प्रधान संबल। प्रार्थनाका प्रभाव अद्भुत है और प्रार्थनाका फल अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष है।

आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता
घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः।
संकीर्त्य नारायणशब्दमात्रं
विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति॥

(श्रीकूरेशस्वामिविरचित नारायणाष्टक-८)

(समाप्त)

अज्ञानसे परे प्रकाशरूप परम पुरुष परमात्माको जो पहचानते हैं, वे मृत्युको लाँघ जाते हैं। मोक्षकी प्राप्तिके लिये इस परमात्माके पहचाननेके अतिरिक्त अन्य कोई भी उपाय नहीं है।

—उपनिषद्

उस परम पुरुष परमात्माको कुछ मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिसे ध्यानद्वारा हृदयमें देखते हैं, कुछ ज्ञानयोगके द्वारा और कुछ निष्काम-कर्मयोगके द्वारा उसके दर्शन करते हैं।

—श्रीमद्भगवद्गीता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्भरा भक्ति

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गताङ्क पृ० सं० ६४६ से आगे]

'योगक्षेम'से यह अर्थ भी लिया जाता है कि भक्तके देह-परिवारादिकी रक्षा और उसके लिये आवश्यक लौकिक पदार्थोंकी व्यवस्था भी भगवान् करते हैं। और ऐसा अर्थ लेना अनुचित भी नहीं है; क्योंकि अनन्य भक्तकी तो अपने भगवान्‌को छोड़कर न किसी अन्य वस्तुमें आसक्ति है, न किसी वस्तुकी ओर उसका लक्ष्य है, न देह-परिवारादिके देख-रेखकी उसे चिन्ता है और न उसे दूसरेके अस्तित्वकी कल्पना करनेके लिये अवकाश ही है, ऐसी अवस्थामें भक्तवत्सल भगवान् उसके देह-परिवारादिके लिये आवश्यक प्राप्त सामग्रियोंकी रक्षा करें और अप्राप्तकी प्राप्ति करवा दें तो इसमें क्या अनहोनी बात है ? बल्कि भगवान्‌पर निर्भर करनेवाले भक्तका 'योगक्षेम' और भी अच्छा होना चाहिये। वह अपनी परिमित शक्तिसे उतनी रक्षा नहीं कर सकता, जितनी भगवान्‌की शक्तिसे हो सकती है, और इसी प्रकार वह अपने लिये आवश्यक वस्तुओंका भी संग्रह इच्छानुसार नहीं कर सकता, क्योंकि उसके पास उनके संग्रह करनेके लिये उतना मूल्य देनेकी भी सामर्थ्य नहीं है, परंतु समस्त ऐश्वर्यके महान् ईश्वर भगवान् जो चाहे वही वस्तु—चाहे वह वस्तु मनुष्यकी ताकतसे कितनी भी दुर्लभ हो—उसे अनायास दे सकते हैं। ऐसी अवस्थामें अपने बलपर निर्भर करनेवालेकी अपेक्षा भगवान्‌पर निर्भर करनेवाला स्वाभाविक ही उत्तम-से-उत्तम 'योगक्षेम'को प्राप्त होता है, परंतु जो भक्त अपने मनमें यह सोचकर भगवान्‌पर निर्भर होना चाहता है कि 'भगवान्‌पर निर्भर करके उनका चिन्तन करनेसे मेरा 'योगक्षेम' उत्तम-से-उत्तम होगा' तो वह वास्तवमें न तो अनन्य है और न अनन्यचित्तसे चिन्तन ही करता है। बात तो यथार्थमें यह है कि ऐसे निर्भर और अनन्य भक्तके मनमें भगवान्‌के सिवा और कुछ है ही नहीं, वह भगवान्‌पर निर्भर रहकर भगवान्‌का चिन्तन करनेके लिये ही भगवान्‌पर निर्भर करके भगवान्‌का चिन्तन करता है। उसके मनमें लौकिककी तो बात ही क्या, पारमार्थिक ''योगक्षेम'की चिन्ताके लिये भी गुंजाइश नहीं है। वह इस बातको भी नहीं जानता कि 'मुझे किस साधनपथसे चलना चाहिये और मैं कब अपने लक्ष्यको प्राप्त करूँगा।' उसके लिये कौन-सा साधन उत्तम है, किस बातमें उसका कल्याण है, इस बातको भगवान् ही सोचते हैं। उसके कल्याणका स्वयं अपने (भगवान्‌के) मनसे निश्चित किया हुआ साधन भगवान् ही उससे करवाते हैं, भगवान् ही उसके द्वारा प्राप्त साधन-सम्पत्तिकी रक्षा करते हैं और भगवान् ही उसके साधनके लक्ष्यको स्वयं वहन करके उसके समीप पहुँचा देते हैं। साधन और सिद्धि दोनोंका भार भगवान् अपने ऊपर ले लेते हैं। इसीसे ऐसा कहा जाता है कि भगवान्‌पर निर्भर करनेवाला भक्त जिस प्रकार अनायास ही अति शीघ्र भगवान्‌को प्राप्त करता है, उस प्रकार दूसरा कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता। और इसमें एक विशेषता और है, वह यह है कि ऐसा निर्भर भक्त सच्चिदानन्दघन, निष्कल, निष्क्रिय, निर्विकार, निरञ्जन, निर्गुण, सनातन, अव्यक्त और सर्वव्यापी, सर्वाधार, सर्वाश्रय, सर्वेश्वर, सर्वगुणसम्पन्न, सर्वैश्वर्यशाली भगवान्‌को अपने परम प्रेमास्पद नित्य जीवन-सहचर और परम आत्मीय सुहृद्‌के रूपमें प्राप्त करता है। परंतु इस प्रकार निर्भर करनेसे भगवत्प्राप्ति शीघ्र होगी, ऐसी शुभ भावना भी उसके मनमें नहीं होती। वह तो इससे भी ऊँचा उठकर केवल भगवान्‌पर ही निर्भर रहता है। क्योंकि यह निर्भरतापूर्ण भगवच्चिन्तन ही ऐसे भक्तके अस्तित्वका आधार होता है। फिर उसे किसी अन्य वस्तुके योगक्षेमकी चिन्ता कैसे हो सकती है ? यह निर्भरा भक्तिकी ऊँची अवस्था है, परंतु इसमें भी भगवत्प्राप्तिकी शुभ वासना छिपी है जो सर्वथा कल्याणकारिणी और परम वाञ्छनीय होनेपर भी निर्भर भक्तकी निर्भरतामें कुछ कमीका अनुभव करती है।

इसके बादकी वह अवस्था है जिसमें भक्त भगवच्चिन्तन-रूपी क्रिया भी अपने अहंकारसे प्रेरित होकर नहीं करता। वस्तुतः वह स्वयं कुछ करता ही नहीं, भगवान् ही उसके द्वारा सब कुछ करते-कराते हैं। वह तो केवल उनके हाथकी कठपुतलीमात्र होता है। जैसे जड कठपुतलीको नट अपनी इच्छानुसार इशारेपर नचाता है, वह कहीं कुछ भी नहीं बोलती, इसी प्रकार निर्भर भक्त यन्त्री भगवान्‌को सब कुछ समर्पण करके यन्त्रवत् उनके इशारेपर नाचता रहता है। वह अपने लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी वस्तुकी या कार्यकी कोई आवश्यकता ही नहीं समझता, वस्तुतः अपना भी उसे कोई पता नहीं रहता, क्योंकि वह तो अपनेको उनके हाथका यन्त्र बनाकर अपनेपनको पहले ही खो चुकता है। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥

(गीता ३।३०)

'तुम सब कर्मोंका अध्यात्मचित्तसे मुझमें संन्यास (भलीभाँति निक्षेप) करके आशा, ममताको छोड़कर और संतापसे मुक्त होकर युद्ध करो।' 'न्यास' का अर्थ है निक्षेप यानी डाल देना। कोई वस्तु—कोई काम, किसी दूसरी वस्तुपर या किसी दूसरे पुरुषपर छोड़ देनेका नाम न्यास है। न्यास निक्षेपका ही पर्याय है। **'निक्षेपापरपर्यायो न्यासः।'** न्यासके साथ **'सं'** उपसर्ग लगनेसे उसका अर्थ होता है—'भलीभाँति छोड़ देना।' भगवान् कहते हैं कि 'तुम न युद्धमें विजयी होनेकी आशा करो, न राज्यमें, न युद्धस्थलमें उपस्थित बन्धु-बान्धवोंमें, न अपने शरीरमें ही ममता रखो और न बन्धुवध और न पराजयरूप प्रतिकूल फल आदिके कारण मनस्तापको प्राप्त होओ, आसक्ति होगी तो विजयकी आशा रहेगी, अहंभाव होगा तो उसके फलस्वरूप ममता होगी। और द्वेष होगा तो मनस्ताप होगा। तुम अहंकार और राग-द्वेषसे सर्वथा मुक्त होकर यह समझकर कि मैं कुछ भी नहीं करता, मैं तो भगवान्‌की शरण हूँ, वे यन्त्री भगवान् ही मुझसे यन्त्रवत् जो कुछ कराना चाहते हैं, वही किया जाता है, इस प्रकार मुझमें सब कर्मोंका भलीभाँति त्याग करके युद्ध करो। तुम्हारे अंदर न अज्ञान रहे और न अज्ञानके कार्यरूप अहंकार, राग, द्वेष, ममता, आशा और संताप आदि ही रहें। तुम बस, मेरे हाथकी कठपुतली बनकर मेरे इशारेपर मैं जो कराऊँ सो करते रहो।' यह 'न्यासयोग' ही आगे चलकर निर्भरा भक्ति हो जाता है। इसमें भक्तका समस्त भार उसके भगवान्‌पर रहता है, परंतु भक्त भी इतना परतन्त्र हो जाता है कि वह कर्म या कर्मफलकी तो बात ही क्या, अपने अस्तित्वतकके लिये भी भगवान्‌पर ही निर्भर करता है। जैसे दिनका अस्तित्व सूर्यपर या जीवनका अस्तित्व प्राणोंपर निर्भर है, उसी प्रकार ऐसे भक्तका जीवन अपने परमाधार भगवान्‌पर निर्भर करता है। उसका आत्मा, प्राण, मन, धन, जीवन, परिवार, सम्पत्ति, लोक-परलोक, भोग और मोक्ष सब कुछ एकमात्र भगवान् ही होते हैं। भगवान् भी ऐसे भक्तके परतन्त्र होते हैं। वे भी उसके नचाये नाचते हैं, भगवान् स्वयं कहते हैं—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥
मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥

(श्रीमद्भा० ९।४।६३, ६६)

इन श्लोकोंका भाव प्रायः इस प्रकार है—हे द्विज! मैं भक्तके पराधीन हूँ, स्वतन्त्रकी तरह कुछ नहीं कर सकता। भक्तोंके प्रेमने मेरे हृदयको सर्वथा अपने अधीन कर लिया है, वे भक्त मुझे बहुत ही प्यारे हैं। मुझे अपने हृदयको सदाके लिये बाँध देनेवाले (मेरे ही इशारेपर सब कर्म करनेवाले) समदृष्टि साधु पुरुष मुझको अपनी भक्तिसे वैसे ही वशमें कर लेते हैं, जैसे पतिव्रता स्त्री अपने श्रेष्ठ पतिको वशमें कर लेती है। धन्य है! परंतु भक्त कभी यह कल्पना भी नहीं करता कि भगवान् मेरे अधीन हैं। वह तो अपनेको सम्पूर्णरूपेण समर्पण करके अन्य किसी कल्पनाके लिये अपने अंदर गुंजाइश ही नहीं रहने देता।

ऐसा निर्भर भक्त कुछ भी कर्म नहीं करता, ऐसी बात नहीं है; वह अपने लिये कुछ भी नहीं करता और न अपने लिये किसी कर्मका त्याग ही करता है। भगवान् जब जो कुछ कराते हैं, वह उसीको करता है, चाहे वह कर्मका ग्रहण हो या त्याग, क्रूर कर्म हो या सौम्य कर्म, सृजन हो या संहार। जब भगवान् खूब कर्म कराते हैं, तब वह खूब करता है, जब थोड़ा कराते हैं, तब थोड़ा करता है और जब बिलकुल नहीं कराते, तब बिलकुल नहीं करता। उसे न तो करनेसे मतलब है और न नहीं करनेसे ही। वह दोनों ही अवस्थामें अपनी स्थितिमें अविचल स्थित रहता है।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि ऐसे भक्तका सांसारिक योगक्षेम कैसे चलता है? तो इसका सीधा उत्तर यही है कि भगवान् चलाते हैं जैसे ही चलता है। इसमें कोई खास नियम नहीं है कि ऐसा भक्त लौकिक दृष्टिसे वर्णाश्रमानुसार धन, जन, मान, यश आदिसे सम्पन्न हो या इनसे सर्वथा हीन हो। दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही तरहके उदाहरण मिलते हैं। इतनी बात अवश्य है कि उसका सारा भार भगवान्‌पर चला जानेसे न तो उससे कोई निषिद्ध कर्म हो सकता है और न उसे कोई अकल्याणकारी भोग्य-पदार्थ ही वस्तुतः मिल सकता है। जिसका 'योगक्षेम' भगवान् स्वयं देखते हों, उसके लिये ऐसी कोई शङ्का तो हो ही नहीं सकती कि जिसमें उसके लिये परिणाममें किसी अमङ्गलकी जरा भी सम्भावना हो। हाँ, रहस्यको न समझनेवाले लोग मूर्खतावश मङ्गलमें अमङ्गलकी कल्पना कर सकते हैं। बच्चा साँप पकड़ने दौड़ता है, जलती आगमें हाथ डालना चाहता है, माँ लपककर उसे रोक देती है, नहीं मानता तो स्नेहवश उसे डाँट भी देती है, बच्चेको मनचाही वस्तु न मिलनेसे दुःख होता है, वह समझ सकता है कि मेरा बड़ा अमङ्गल हो गया, मुझे मनचाही चीज नहीं मिली। इसी प्रकार हम अल्पज्ञ अपनी तुच्छ बुद्धिसे जिसमें अपना मङ्गल समझते हैं, सम्भव है सर्वज्ञ भगवान्‌की बुद्धिमें उसके परिणाममें हमारा घोर अमङ्गल हो। हम जिसके संयोगमें सुख और वियोगमें महान् दुःखकी प्राप्ति समझते हैं, सम्भव है भगवान् अपनी यथार्थ दृष्टिसे उस संयोगसुखको भीषण दुःखकी और वियोग-वेदनाको महान् सुखकी भूमिका समझते हों, और हमें हमारा मनमाना फल न देकर हमारे मङ्गलके लिये अपना मनमाना फल देते हों। और ऐसा होनेमें हम मूर्खतावश अपना अमङ्गल मानते हों। जो भगवान्‌पर निर्भर करनेवाले भक्त हैं, वे तो ऐसा नहीं मान सकते, परंतु उनकी रहस्यमयी स्थितिको अपनी विषयविभ्रमरत, मोहावृत बुद्धिके तराजूपर तौलनेवाले लोग उनमें अमङ्गल मान सकते हैं। अवश्य ही उनके माननेसे भक्तोंकी स्थितिमें जरा भी अन्तर नहीं आता। वे भक्त कितने धन्य और सुखी हैं, जिनके कल्याणकी और कल्याणकारी साधनोंके संग्रहकी व्यवस्था सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान् और परम सुहृद् भगवान् स्वयं करते हैं।

इन सब बातोंपर विचार करनेसे यही निष्कर्ष निकलता है कि भगवान्‌की निर्भरा भक्ति बहुत ही उपयोगी और शीघ्र कल्याणप्रदा है। भगवान्‌पर विश्वास करके पहले निर्भरताकी भावना करनी चाहिये और भगवान्‌की कृपाप्राप्तिके लिये भगवान्‌का नित्य अनन्य और निष्काम चिन्तन करते हुए भगवान्‌पर पूर्ण निर्भर होनेका यत्न करते रहना चाहिये। इस साधनमें प्रधान चार बातें हैं—१-दृढ़ विश्वास, २-संसारी चिन्ताओंका सर्वथा त्याग, ३-अनुकूल आचरण और ४-अनन्य-चिन्तन। भक्त वृत्रासुरके इन शब्दोंके अनुसार भगवान्‌से सदा प्रार्थना कीजिये—

अहं हरे तव पादैकमूल-
दासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते
गृणीत वाक्कर्म करोतु कायः॥
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥
अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

(श्रीमद्भा० ६।११।२४—२६)

प्रार्थनाका भाव प्रायः इस प्रकार है—हे भगवन्! तुम्हारे चरण ही जिनके मुख्य आश्रय हैं, मैं पुनः तुम्हारे उन दासोंका भी दास बनना चाहता हूँ। मेरा मन सदा तुम प्राणाधारके गुणोंका स्मरण करे, मेरी वाणी तुम्हारा नाम-गुण-कीर्तन करे और शरीर सदा तुम्हारी सेवारूपी कर्ममें लगा रहे। तुम प्रियतमको छोड़कर मुझको स्वर्ग, ब्रह्माका पद, सार्वभौम साम्राज्य, पातालका राज्य, योगकी दुर्लभ सिद्धियाँ और सायुज्यमोक्ष भी नहीं चाहिये। हे कमलनयन! जिनके पंख नहीं उगे हैं, ऐसे पक्षियोंके बच्चे जैसी अनिवार्य उत्सुकतासे माँकी बाट देखा करते हैं, भूखे बछड़े जैसे वनमें गयी हुई गायका स्तनपान करनेके लिये छटपटाते हैं और परदेश गये हुए स्वामीकी प्रियतमा पत्नी जैसे पतिको आँखोंसे देखनेके लिये व्याकुल रहती है, वैसे ही मैं भी तुमको देखनेके लिये व्याकुल हो रहा हूँ। (समाप्त)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराकार एवं साकार ब्रह्म

(श्रीसुधाकरजी पाण्डेय)

'अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा।'—के अनुसार ब्रह्मके दो स्वरूप हैं—एक निर्गुण और दूसरा सगुण। निर्गुण ब्रह्म सारे विश्व तथा ब्रह्माण्डमें व्यापक है। उसे समझनेके लिये दिव्य ज्ञाननेत्रकी आवश्यकता है। जैसे दूधमें मक्खन ओतप्रोत है, पर नेत्रोंसे दिखायी नहीं पड़ता, ऐसी ही बात निर्गुण ब्रह्मके सम्बन्धमें भी है। निर्गुण ब्रह्मको जो जानता है वही देख पाता है।

समस्त प्राणियों और पदार्थोंमें रहनेके कारण वह सर्व-व्यापक है। यह सृष्टि ब्रह्मद्वयसे ही चल रही है। निराकार व्यापक होता है तथा साकार एकदेशीय। ईश्वरकी महिमामें कहा गया है—**'न तस्य प्रतिमा अस्ति'** अर्थात् ईश्वरकी कोई उपमा नहीं है। **'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।'** अर्थात् ईश्वर एक है, विद्वान् लोग उसे विविध नामोंसे पुकारते हैं। इस सृष्टिका स्रष्टा एक है, वही पालक एवं संहारक है। उसका न कोई साझीदार है न सहायक। अनादिकालसे ही वह अकेला है। एक बार अकेलेपनमें उसने एकसे बहुत बननेकी इच्छा की और वह इस ब्रह्माण्डके कण-कणमें व्याप्त हो गया। वस्तुतः परमात्माकी परमसत्ता इसी प्रकार एक अदृश्य सामर्थ्य है, जो अन्तःकरणकी श्रद्धा एवं मनके विश्वासके एकीकृत रूपमें व्यक्तिके अंदर सदैव विद्यमान है। समय-समयपर मनुष्योंको परमात्माकी दैवी सहायता मिलती रहती है, जिससे यह सिद्ध होता रहता है कि परमात्माकी अलौकिक शक्तिका अस्तित्व अवश्य है। द्रौपदी निस्सहाय कौरवोंकी सभामें खड़ी थी। दुराचारी कौरवोंद्वारा चीरहरण किया जा रहा था। कोई लाज बचानेवाला न था, परंतु कृष्णरूपी ईश्वरीय सत्ताने उसकी लाज बचायी। प्रह्लादको दुष्ट पितासे मुक्ति दिलाने एवं ग्राहके मुखसे गजको छुड़ाने स्वयं भगवान् ही आये थे। नरसी भगतके सम्मानकी रक्षा एवं मीराको विषके प्यालेसे बचाने-हेतु स्वयं भगवान्की अदृश्य सत्ता ही आगे आयी थी।

ईश्वरकी सत्ता सनातन है। वह कालगति एवं ब्रह्माण्डसे परे है। जिस प्रकार उसकी सत्ता प्राचीन कालमें थी, वैसे ही आज भी है। श्रद्धालुजन उसे प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार ईश्वरीय अनुदान श्रद्धा एवं विश्वासके रूपमें प्रकट होता रहता है। ईश्वरीय सत्ता अदृश्य है। उसे देखा नहीं जा सकता। पर यह सत्य है कि इस सुव्यवस्थित संसारके क्रियाकलापोंका कोई परोक्ष नियामक अवश्य है।

अखिल ब्रह्माण्डकी व्यवस्थापिका अदृश्य सत्ताको हम परमात्मा कहते हैं। वेदान्तके अनुसार परमात्मा सर्वज्ञ-सनातन-ज्ञान-स्वरूप तथा अनन्त है। प्रत्येक क्रियाको भगवान्की पूजा समझनी चाहिये। वेदान्तके अनुसार यह संसार नाट्यशाला है, जिसमें मनुष्य भूमिका निभानेवाला अभिनेता है। व्यक्ति यदि अपनी भूमिका सफलतासे अभिनीत करे तो यही उसकी वास्तविक पूजा एवं अर्चना है। भगवान्का अंश प्रत्येक व्यक्ति या पदार्थमें है। सार्वभौम सत्ता प्रत्येक मनुष्यके भीतर रहती है, प्रेरणा देती है तथा स्व-अस्तित्वकी उपस्थितिका बोध कराती है। सर्वोच्च सत्ताके ज्ञान एवं भावोंसे स्वयंको प्रकाशित करनेके लिये कठिन अभ्यास एवं साधना करनी पड़ती है। एक छोटे-से बालक ध्रुवने कठिन अभ्यास एवं साधनासे भगवान्का दर्शन प्राप्त कर लिया था।

निराकार ब्रह्म साकार कब होता है? अर्थात् भगवान्का अवतार कब और किस हेतु होता है, उसके संदर्भमें रामायण और गीतामें विवेचन इस प्रकार किया गया है। रामायणमें कहा गया है—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

अर्थात् जब-जब इस पृथ्वीपर धर्मकी हानि होती है, अभिमानी असुर बढ़ने लगते हैं तथा तरह-तरहकी अवर्णनीय अनीति करने लगते हैं, गौ, ब्राह्मण और देवताओंको कष्ट प्राप्त होता है, तब-तब प्रभु विविध रूपमें शरीर धारण करके सज्जनोंके कष्ट (पीड़ा) को दूर करते हैं।

गीतामें कहा गया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

अर्थात् 'हे अर्जुन! जब-जब पृथ्वीपर धर्मका नाश होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, अधर्म चरम सीमापर बढ़ जाता है, तब-तब मैं (धर्मकी स्थापना करनेके लिये) अवतार लेता हूँ।' यह अवतार कार्यको देखते हुए पूर्ण या आंशिक होता है। अवतार मनुष्य या अन्य जीवधारियोंमें होता है। ईश्वरका अवतार जब-जब भी जिस-किसी रूपमें होता है, तब वह दुष्टोंके दमन एवं सज्जनोंके उपकारके लिये होता है।

साकार-उपासनामें मूर्ति आदिको प्रतीक मानकर उसकी पूजा की जाती है और निराकार-उपासनामें अव्यक्त तत्त्वकी भावना की जाती है। सूर्यका प्रतिविम्ब जलकी लहरोंपर अगणित दिखायी पड़ता है, किंतु सूर्य एक है। ठीक इसी प्रकार ब्रह्म एक है, परंतु इसका प्रतिविम्ब प्रकाश-ज्योतिके रूपमें भिन्न-भिन्न रूपमें दिखायी पड़ता है।

सगुणकी उपासना सरल तथा निर्गुणकी उपासना कठिन है। सूरदासजी निर्गुण ब्रह्मको गूँगेका मीठा फल बताते हैं। जिस प्रकार गूँगा मीठे फलका रसास्वादन कर लेता है तथा उसे आत्मतृप्ति भी हो जाती है, परंतु उसकी अभिव्यक्ति वाणीसे नहीं कर सकता[1]। इसी प्रकार निर्गुण ब्रह्मको वही जानता है, जो उसकी अनुभूति कर लेता है, परंतु वाणीसे उसकी अभिव्यक्ति नहीं कर सकता।

तुलसीदासजी निर्गुण ब्रह्मको अकथ-अगाध-अनादि और अनूप आदिकी संज्ञा देते हैं।

वे निर्गुण ब्रह्मसे सगुण रामको श्रेष्ठ मानते हैं। गोपियाँ निर्गुण ब्रह्मसे सगुण श्रीकृष्णको श्रेष्ठ बताती हुई उद्धवसे कह रही हैं—'उद्धवजी ! आपका अनोखा रूपरहित ब्रह्म हमारे किस कामका है, अर्थात् किसी कामका नहीं है। हमें तो ऐसे सगुण-साकार ब्रह्मकी चाह है, जिसे हम देख सकें और जो हमारे बीच रहकर हमारे सभी दैनिक कार्योंमें सहायक हो।'

गीतामें अर्जुन अपनी शङ्काका समाधान करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णसे पूछते हैं कि 'प्रभो ! साकार और निराकार उपासकोंमें कौन श्रेष्ठ है ?

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः॥

(१२।१)

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनकी शङ्काका चार श्लोकोंमें समाधान करते हुए कहते हैं कि 'अर्जुन ! साकार तथा निराकार ब्रह्मके उपासक दोनों ही श्रेष्ठ हैं और दोनों ही मुझे प्राप्त होते हैं, किंतु देहाभिमानी होनेपर निर्गुणोपासकको साधनामें क्लेश अधिक उठाना पड़ता है।' यथा—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥

(१२।५)

निष्कर्षतः ब्रह्मके साकार एवं निराकार दोनों ही स्वरूपोंमें कोई अन्तर नहीं है। श्रद्धा और विश्वाससे दोनोंकी प्राप्ति हो सकती है। यदि मानव अपनेको पूर्ण भक्तिके साथ भगवान्के चरणोंमें समर्पित कर दे तो वह उन्हें अवश्य प्राप्त करेगा और उनका प्रिय हो जायगा। गीतामें भगवान्ने कहा है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

(१८।६५)

'हे अर्जुन ! तू मुझमें अचल मनवाला हो, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझे भक्तिसहित प्रणाम कर। ऐसा करनेसे तू मुझे निश्चय ही प्राप्त होगा। इसमें संदेह नहीं है।'

सरलता बिना कोई भी मनुष्य शुद्ध नहीं हो सकता, अशुद्ध जीव धर्म नहीं कर सकता, धर्म बिना मोक्ष नहीं होता और मोक्ष बिना सुखकी प्राप्ति असम्भव है।

—महावीर तीर्थङ्कर

१-अबिगत-गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगैं मीठे फल कौ रस अंतरगत हीं भावै।
× × ×
मन बानी कौं अगम-अगोचर सो जानै जो पावै॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[भगवान्‌का भजन करनेमें ही कल्याण है]

[गताङ्क पृ० ६५४ से आगे]

मनुष्य-शरीरमें आप केवल परमात्माकी प्राप्ति कर सकते हैं और कुछ नहीं कर सकते। आपको वहम है कि हम धनी हो जायँगे, हमारा नाम हो जायगा, पर कितने दिन ? जितने दिन आप उसमें राजी रहो, उतने दिन आपके मुफ्तमें, ठगाईमें चले गये। अगर आप होशमें रहते तो इस प्रकार धोखेमें नहीं आते। बड़े-बड़े विरक्त और त्यागी संत-महापुरुष हुए हैं, क्या वे बे-अक्ल थे, जो त्याग करके भजनमें लग गये ? क्या उनमें समझ नहीं थी ? वे तो सार चीजमें लगे थे।

एक संत थे। वे भिक्षाके लिये एक सेठके यहाँ गये। सेठने आकर नमस्कार किया तो संतने भी उसको नमस्कार किया। वह संतके पैरों पड़ा तो संत भी उसके पैरों पड़े। सेठ बोला कि 'महाराज ! आप कैसे पैरों पड़ते हैं ?' संत बोले कि 'तुम कैसे पैरों पड़ते हो ?' तो सेठने कहा कि 'महाराज ! आप त्यागी हो, आपने स्त्री, पुत्र, धन, जमीन, जायदाद, मकान आदिका त्याग किया है, इसलिये आप बड़े हो।' संतने उत्तर दिया कि 'अगर त्यागको देखें तो तुम बड़े हुए, क्योंकि तुमने स्त्री, पुत्र, धन आदिके लिये भगवान्‌का त्याग कर दिया है। बड़ी चीज भगवान् है कि रुपया ? त्यागी तुम बड़े हुए कि मैं बड़ा हुआ ? जो बड़ा त्याग करे, वह बड़ा त्यागी और जो छोटा त्याग करे, वह छोटा त्यागी। तुम कितने बड़े त्यागी हो कि संसारके भरोसे भगवान्‌को भी इस्तीफा देकर बैठ गये।' सज्जनो ! ऐसे त्यागी आप बने बैठे हो। जरा सोचो तो सही, एक पलक मारते ही प्राण चले जायँगे तो उस समय धन, सम्पत्ति, वैभव क्या काम आयेगा ? अगर भगवान्‌का भजन किया है तो वह काम आयेगा। लोगोंपर भी भजनका असर पड़ेगा। गोस्वामी तुलसीदासजीकी रामायणसे कितनोंको शान्ति मिलती है। कितनोंकी जीविका चलती है। कितने आदमी सुधर जाते हैं। क्या कोई करोड़पति-अरबपति आदमी दुनियाँका इतना उपकार कर सकता है ? नहीं कर सकता। अतः भगवान्‌के भजनमें लगकर आप दुनियाँका कितना भला कर सकते हैं, इसकी कोई गिनती नहीं है।

धन कमानेमें कोई स्वाधीनता नहीं है। सब लखपति नहीं बन सकते, पर एक लाख नाम रोजाना ले सकते हैं। साधारण-से-साधारण भाई-बहन भी अगर विचार कर लें कि रोजाना लाख नाम लेना है, तो लाख नाम रोजाना ले सकते हैं, परंतु लाख रुपया उम्रभरमें हरेकको देखनेको भी नहीं मिलता। जिसमें आप स्वतन्त्र हो, वह तो करते नहीं और जो करते हो, उसमें आप स्वतन्त्र नहीं। जिस धनका संग्रह करते हो, वह तो साथ जायगा नहीं और जो साथ जायगा, उस भजनका संग्रह करते नहीं। आपको होश कब आयेगा ? चेत कब होगा ? बच्चे कहते हैं कि जब हम बड़े होंगे, तब हम ऐसा करेंगे। माँ भी कहती है कि जब हमारा लाला बड़ा हो जायगा, तब ठीक काम करेगा। ऐसे ही मैं कहता हूँ कि आप कब बड़े होओगे ? कब अपने उद्धारकी बात सोचोगे ? अपने उद्धारकी बात किस दिनके लिये बाकी रखी है ? बाल सफेद होने लगे हैं तो यह बुलावा आ गया है यमराजका !

महाराज दशरथजीने दर्पण लेकर अपना मुकुट ठीक किया तो देखा कि कानके पास बाल सफेद हो गये हैं, अब वृद्धावस्था कानमें आकर कह रही है कि चेत करो, बुलावा आ गया है, मौतका संदेश आ गया है। ***'श्रवन समीप भए सित केसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा॥'*** जैसे लड़केके विवाहमें दूसरोंको बुलाते हैं तो पीले चावल देते हैं। विवाहके चावल पीले होते हैं, मौतके चावल सफेद होते हैं। बाल सफेद हो गये हैं तो ये यमराजके चावल आ गये हैं, यमराजका बुलावा आ गया है। अब जाना पड़ेगा। आप जितने दिन जी गये, आगे उतने दिन जीना मुश्किल है।

कई घरोंकी ऐसी बात मैंने सुनी है कि लड़के पिताजीसे कहते हैं कि आप भजन करो, काम हम करेंगे। परंतु आप उनके काममें बाधा डालते हो, बीचमें टाँग अड़ाते हो। लड़के बेचारे उकता जाते हैं। बूढ़ी माताएँ बहुओंको तंग कर देती हैं, उनको काम नहीं करने देतीं, बीचमें टाँग अड़ाती हैं। इससे काम बिगड़ता है, वे नाराज होती हैं और आपके आफत होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। आपको भजन करनेका मौका मिला है तो बड़ी अच्छी बात है। बेटे और बहूसे कहो कि यह लो चाबी और काम सँभालो। आप कहोगे कि महाराज ! वे काम बिगाड़ देंगे, तो यदि आप आज मर गये तो उसको कौन सँभालेगा ? उसका कौन सुधार करेगा ? अन्तमें मरना तो पड़ेगा ही, फिर पहले ही मर जाओ, भजन तो हो जायगा। वे काम बिगाड़ते हैं तो उनको सुधारनेकी बात कहो। उनको तंग क्यों करते हो ? बहू एक दिन मालकिन तो बनेगी ही। जिस दिन बहू आ जाय तो समझो कि घरकी मालकिन आ गयी। थोड़ा काम खुद भी कर दो, क्योंकि रोटी खाते हो। ऐसा करोगे तो सुखी हो जाओगे। आपका बेटा बड़ा हो जाय तो उसको धीरे-धीरे काम करना सिखा दो। जो सरकारी नौकरी करते हैं, वे भी रिटायर होते हैं। आप गृहस्थमें रहते हुए रिटायर कब होंगे ? जिसके लिये संसारमें आना हुआ है, वह असली काम कब करोगे ? अंधाधुंध होकर हाय पैसा, हाय पैसा कर रहे हो। नतीजा क्या होगा ? इधर ध्यान ही नहीं देते हो। कलकत्तामें एक भाईसे मैंने कहा कि आपके पास इतना धन है कि पीढ़ियाँतक खायें फिर बैठकर भजन क्यों नहीं करते ? पैसा-ही-पैसा कमानेमें क्यों लगे हो ? वह सज्जन आदमी था। उसने कहा कि स्वामीजी ! इसका मेरे पास जवाब नहीं है।

भगवान्‌के भजनमें लग जाओ। बड़ा सुन्दर अवसर मिला हुआ है। परंतु क्या करें ? **'पीत्वा मोहमयीं प्रमाद-मदिरामुन्मत्तभूतं जगत्'** जैसे दारू पी हो, ऐसे नशेमें चलते हैं। ख्याल नहीं करते कि मौत नजदीक आ रही है। कब चेतोगे ? कब भजन-स्मरण करोगे ? कब अपना उद्धार करोगे ? भाइयो-बहनो ! जिस कामके लिये मानव-शरीर मिला है, वह काम पहले करो। पहले परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति करो। उसमें आप सब स्वतन्त्र हो। धन कमानेमें सब स्वतन्त्र नहीं हो। दूसरेकी तिजोरी खुलेगी, तब धन मिलेगा। परंतु परमात्मप्राप्तिके लिये ऐसा नहीं है कि तिजोरी खुलेगी, तब मिलेगा। वह तो चौड़े पड़ा हुआ है।

राम दड़ी चौड़े पड़ी, सब कोइ खेलो आय।
दावा नहीं संतदास, जीते सो ले जाय॥

खुला माल पड़ा हुआ है, फिर देरी किस बातकी ? जो साथमें चलता है, वह तो लेते नहीं और जो लेते हो, वह साथ चलता नहीं। क्या दशा होगी ? जरा सोचो। अच्छा काम करोगे, भजन-स्मरण करोगे तो यह पूँजी साथमें चलेगी। लोग भी सद्भावसे याद करेंगे। दुष्टताका काम करोगे तो मरनेपर लोग राजी हो जायँगे। एक पण्डितजी थे। वे काशीसे पढ़कर आये। पुस्तकें लदी हुई थीं। शहरमें होकर निकले तो वर्षा आ गयी। पासमें छाता नहीं था, अतः एक मकानके भीतर दरवाजे-में खड़े हो गये। उसके ऊपर एक वेश्या रहती थी। बाहर कुछ आदमी एक मुर्देको लिये जा रहे थे। वेश्याने एक लड़कीसे कहा कि जाकर पता लगाओ कि 'यह स्वर्गमें गया या नरकमें गया।' यह सुनकर पण्डितजी ठहर गये कि देखें, ऐसी क्या विद्या है, जिससे मरनेवालेका पता लग जाय। थोड़ी देरमें लड़कीने आकर कहा कि 'यह तो नरकोंमें गया।' एक दूसरा मुर्दा जा रहा था। उसके लिये वेश्याने पूछा तो लड़कीने पता लगाकर कहा कि 'वह तो स्वर्गमें गया।' पण्डितजीने विचार किया कि मैं इतने वर्ष काशीमें रहा, कितनी पुस्तकें पढ़ीं, पर यह पता नहीं लगता कि मरनेवाला कहाँ गया, यह विद्या तो हमें सीखनी है। पण्डितजी ऊपर चले गये। वेश्याने देखा कि यह मेरा ग्राहक तो है नहीं। उसने पण्डितजीको पहचान लिया और पूछा कि कैसे आये ? पण्डितजीने कहा कि 'आदमी मरकर नरकोंमें गया या स्वर्गमें गया'—यह विद्या हम जानना चाहते हैं। वेश्याने उस लड़कीको बुलाया और कहा कि 'वह नरकमें गया या स्वर्गमें गया'—इसकी तूने कैसे परीक्षा की, यह महाराजको बता। वह कहने लगी कि 'महाराज! जो मुर्देको लेकर जा रहे थे, उनसे मैंने पूछा कि यह कहाँसे आया है ? किस मोहल्लेका है ? मैं उस मोहल्लेमें पहुँची। लोग रो रहे थे तो पता लगा कि इस घरका आदमी मर गया। मैंने पड़ोसियोंके घरोंमें जाकर सुना तो वे कह रहे थे कि वह आदमी मर गया तो हम निहाल हो गये। वह चुगली करता था, चोरी करा देता था, लड़ाई करा देता था, झूठी गवाही देकर फँसा देता था। मर गया तो बहुत अच्छा हुआ। नहीं तो बड़ी आफत करता वह। ऐसी बातें मैंने कई घरोंमें सुनीं तो आकर कहा कि वह नरकोंमें गया। दूसरा मुर्दा आया तो उसके मोहल्लेमें जाकर देखा कि वहाँके घरोंमें लोग आपसमें बातें करते थे कि 'वह आदमी मर गया। राम-राम, गजब हो गया। वह तो अपने मोहल्लेका एक प्रकाश था। कोई संत-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा आते तो वह सत्संग कराता, कोई बीमार होता तो रातों जागता था, दवाईका प्रबन्ध करता था, किसीपर कोई आफत आ जाय तो तन-मन-धनसे उसकी सहायता करता था, वह चला गया। हमारे मोहल्लेमें तो अँधेरा हो गया।' ऐसी बातें मैंने सुनीं तो आकर कहा कि 'वह तो स्वर्गमें गया।' पण्डितजीने कहा—अरे ! ये बातें तो शास्त्रोंमें लिखी हैं कि 'जो अच्छे काम करता है, उसकी सद्गति होती है और जो बुरे काम करता है, उसकी दुर्गति होती है,' पर यह तो हमारी अक्लमें ही नहीं आयी।

अच्छे पुरुष चले जाते हैं तो पीछे उनकी महिमा होती है और बुरे पुरुष मर जाते हैं तो लोग राजी होते हैं कि निहाल हुए, आफत मिटी। क्या आपको ऐसा बनना है कि पीछे लोग कहें कि आफत मिटी ! अच्छा या बुरा बनना आपके हाथकी बात है। इसमें आपके भाग्यकी, योग्यताकी बात नहीं है। केवल आपकी दृष्टि दूसरोंका उपकार करनेकी, सेवा करनेकी होनी चाहिये। पहले जमानेमें लोग पैदल बद्रीनारायण जाते थे। पंद्रह-बीस-पचास आदमी जा रहे हैं। उनमें बड़ी-बूढ़ी माताएँ भी हैं। रात्रिमें किसी चट्टीमें जाकर ठहरते हैं। बोझा लेकर चलनेके कारण बेचारे थक गये हैं और नींद आ रही है। उनमेंसे दो-चार अच्छे आदमी चट उठकर जाते हैं, जल भर देते हैं, लकड़ियाँ ले आते हैं और रसोई बनाते हैं। सोये हुओंको उठाकर कहते हैं कि भोजन करो। थके हुए हैं और भूख लगी हुई है, उठकर गरमागरम रोटी और दाल पा लेते हैं और फिर सो जाते हैं। बद्रीनारायण तो सब जाते हैं, पर इस प्रकार सेवा करनेवालोंको जो फल मिलता है, वह सबको मिलता है क्या ? जिनका दूसरोंकी सेवा करनेका स्वभाव होता है, वे जहाँ जायँगे, वहाँ भी दूसरोंकी सेवा करेंगे, तो उनका कितना पुण्य बढ़ेगा ? यह स्वभाव आप बना सकते हो। ऐश-आराम करनेमें, हुक्म चलानेमें कोई लाभ नहीं है। लाभ सेवा करनेमें है, दूसरोंको सुख पहुँचानेमें है। मेरेको सुख-आराम मिले—यह लोभ तो कुत्तों और गधोंमें भी होता है, इसमें कोई मनुष्यता है ? मनुष्यता तो त्याग करनेमें, सेवा करनेमें, दूसरोंको सुख पहुँचानेमें है। अगर ऐसा नहीं कर रहे हैं तो मनुष्यजन्म क्यों लिया। सीट क्यों रोकी ? हमारी जगह कोई अच्छा प्राणी आता तो वह अपना कल्याण कर लेता। भगवान् कहते हैं—**'अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति'** (गीता ३। १६) वह इन्द्रियोंके द्वारा भोगोंमें रमण करनेवाला अघायु (पापमय जीवन बितानेवाला) मनुष्य संसारमें व्यर्थ ही जीता है, वह मर जाय तो अच्छा है। ***'भजन बिनु जीवत जैसे प्रेत'*** वह जीना ही प्रेतके समान है।

भाइयो-बहनो ! मनुष्य-शरीर मिला है तो बड़ा सुन्दर मौका मिला है। भगवान्‌का भजन करो और दुनियाकी सेवा करो। अपने पासमें धन हो तो धनसे सेवा करो, सामर्थ्य हो तो शरीरसे सेवा करो, नहीं तो मनसे ही सबका भला चाहो। सब सुखी हो जायँ, सब नीरोग हो जायँ, सबका कल्याण हो जाय—ऐसा भाव रखो तो मुफ्तमें ही आपका पुण्य हो जायगा। जितना कर सको, उतना करके पुण्य कर लो, जितना दे सको, उतना देकर पुण्य कर लो और यह न कर सको तो भाव शुद्ध बना लो। भाव शुद्ध बनानेसे आपका अन्तःकरण निर्मल हो जायगा, भगवान्‌की बड़ी कृपा हो जायगी, जीवन शुद्ध हो जायगा। जितने भी अच्छे-अच्छे महात्मा हुए हैं, उनके भाव शुद्ध थे। उनके भाव दूसरोंका उपकार करनेके थे। हमारी बहनें भी यदि चाहें तो भाव शुद्ध बनाकर मीराबाई बन सकती हैं, फूलीबाई बन सकती हैं, करमाबाई बन सकती हैं, करमैतीबाई बन सकती हैं। उनकी इतनी महिमा क्यों है ? कि वे भगवान्‌में लग गयीं, भजनमें लग गयीं। फूलीबाई जाटनी थी, पढ़ी-लिखी कुछ नहीं थी। गोबर थाप रही थी। उसमें दूसरी कहती है कि यह थेपड़ी मेरी है और यह कहती है तेरी नहीं, मेरी है। इसकी पहचान क्या है ? इसे उठाकर कानमें लगाओ, यदि भगवान्‌का नाम सुनायी देता है, तब तो मेरी, नहीं तो तेरी। पंढरपुरमें एक चमार हुए। उनका नाम था चोखामेला। भगवान्‌का भजन करते थे, विट्ठल-विट्ठल जपते थे। मंगलबेड़ा गाँवमें एक मकान बन रहा था। उसमें ये काम कर रहे थे। अचानक मकानके गिर जानेसे ये दबकर मर गये। मकानका मलबा हटानेमें कई दिन लग गये। जब उसमेंसे शव निकाले गये तो यह पहचानमें नहीं आया कि चोखामेलाका शरीर कौन-सा है। चेहरा दीखे, तब तो पहचान लें, पर वहाँ तो हड्डियाँ दीख रही थीं। नामदेवजी महाराजसे पूछा गया कि चोखामेला मर गया है, उसके शवकी पहचान कैसे हो ? तो उन्होंने कहा कि उसकी पहचान सीधी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हड्डियोंको कानमें लगाओ, जिस हड्डीसे विट्ठल-विट्ठल आवाज आयेगी, वह चोखामेलाकी है। आप ख्याल करो, कितनी विचित्र बात है। उनकी हड्डियोंमें नामजपका असर हो गया, विलक्षणता आ गयी।

जिस स्थानपर संत-महात्माओंकी दाह-क्रिया की जाय, वहाँ जाकर बैठो तो भगवान्‌में मन लग जायगा, और श्मशानमें जाकर बैठो तो हृदयमें हलचल मच जायगी, शान्ति नहीं मिलेगी, मरनेके बाद भी दोनोंमें फर्क रहता है। कोई साधारण आदमी मर जाय तो उसकी कोई चीज नहीं लेते कि यह मुर्देके चीज है। परंतु कोई संत चला जाय तो उसकी चीज माँगकर लेते हैं कि उसको हम पूजामें रखेंगे। उनकी चीज पवित्र होती है। क्यों पवित्र होती है ? कि उनमें ममता नहीं होती। जिस चीजमें मनुष्यकी ममता होती है, वह चीज अपवित्र हो जाती है। संत-महात्माओंमें ममता नहीं होती, इसलिये उनकी चीज पवित्र होती है, उनका चरित्र पवित्र होता है, उनके दर्शन पवित्र होते हैं, उनकी यादगिरी पवित्र होती है। भागवतमें आया है कि संतोंको याद करनेसे घर तत्काल पवित्र हो जाते हैं—**'येषां संस्मरणात् पुंसां सद्यः शुद्ध्यन्ति वै गृहाः'** (१।१९।३३)। क्यों पवित्र हो जाते हैं ? कि वे भगवान्‌का भजन करते हैं। युद्धके समय विदुरजी तीर्थ-यात्राके लिये चले गये थे। जब वे तीर्थ-यात्रा करके लौटे, तब युधिष्ठिरजी महाराजने कहा—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥

(श्रीमद्भा० १।१३।१०)

'आप-जैसे भगवान्‌के प्रिय भक्त स्वयं तीर्थस्वरूप होते हैं। आपलोग अपने हृदयमें विराजित भगवान्‌के प्रभावसे तीर्थोंको भी महातीर्थ (महान् पवित्र) बनाते हुए विचरण करते हैं।'

पापी लोग तीर्थोंमें अपने पाप छोड़ आते हैं। जब भक्त-लोग वहाँ जाते हैं, स्नान करते हैं, तब उन तीर्थोंके पाप नष्ट हो जाते हैं और वे पवित्र हो जाते हैं। एक साधु थे। वे सभी साधुओंकी निन्दा किया करते थे कि इनका साधु बनना अवैध है, इनको साधु बननेकी शास्त्रकी आज्ञा नहीं है, आदि। अच्छे संत-महात्माओंकी, तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त महापुरुषोंकी निन्दा करनेसे उनको कोढ़ निकल आया। वे घबराये कि अब क्या करें ? तब किसीने उनसे कहा कि तुमने अपनेको ऊँचे दर्जेका साधु समझकर संतोंकी निन्दा की है, तिरस्कार किया है, उसीका यह नतीजा है कि तुम्हें कोढ़ निकल आया। अब किसी अच्छे संतके पास जाओ और उनकी सेवा करो। पीलीभीत शहरके पासमें एक संत रहते थे। लोगोंने कहा कि तुम उस संतके पास जाओ, वे बड़े दयालु हैं और तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त महापुरुष हैं। वे साधु वहाँ पहुँचे। रात हो गयी थी, महाराजकी कुटिया बंद थी, अतः वे बाहर ही ठहर गये। रात्रिमें दो स्त्रियाँ वहाँ आयीं। महाराज जहाँ स्नान करते थे, वहाँ थोड़ा-सा जल इकट्ठा था। उन दोनों स्त्रियोंने वह जल अपने शरीरपर लगाया तो उनका कालापन मिट गया और वे रूपवती हो गयीं। साधुने उनसे पूछा कि तुम कौन हो ? यहाँ कैसे आयी हो ? तो उन्होंने कहा कि हम गङ्गा और यमुना हैं। पापियोंके पापसे हम अपवित्र हो गयी थीं। अब संतोंके चरणोंके जलसे हमारे पाप दूर हो गये, हम पवित्र हो गयीं। ऐसा सुनकर उस साधुने भी उस जलको अपने शरीरपर लगाया तो उनका कोढ़ दूर हो गया। उन्होंने **'उदासीन साधो नमस्ते नमस्ते'**—ऐसा स्तोत्र संस्कृतमें बनाया। भगवान्‌को याद करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है और इसमें सब स्वतन्त्र हैं।

जाट भजो गूजर भजो, भावे भजो अहीर।
तुलसी रघुबर नाममें, सब काहू को सीर॥

भगवान्‌का नाम लेनेमें कौन मना कर सकता है ? भाई हो, बहन हो, किसी जातिका, किसी वर्णका, किसी आश्रमका क्यों न हो, भगवान्‌के भजनकी किसीको मनाही नहीं है। वेदोंके पढ़नेमें, गायत्रीका जप करनेमें सबका अधिकार नहीं है, पर भगवान्‌के चरणोंकी शरण लेनेके सब अधिकारी हैं। हिन्दू हो, मुसल्मान हो, ईसाई हो, बौद्ध हो, जैन हो, यहूदी हो, पारसी हो, कोई क्यों न हो, वह भगवान्‌के चरणोंकी शरणमें जा सकता है। 'माँ' कहनेका सबको अधिकार है। सपूत-से-सपूत भी 'माँ' कह सकता है और कपूत-से-कपूत भी 'माँ' कह सकता है। कपूत हुआ तो क्या, पूत तो है ही। ऐसे ही रामजीका नाम लेनेमें सब अधिकारी हैं। भगवान्‌को माँ कहनेके सब अधिकारी हैं—**'त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।'**

अपने पासमें अरबों-खरबों रुपये पड़े हों और इतना बड़ा राज्य हो, जिसमें सूर्यका अस्त भी न हो, पर मरनेके बाद वह काम आयेगा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरब खरब लौं द्रव्य है उदय अस्त लौं राज।
तुलसी जो निज मरन है तो आवे किहि काज॥

परंतु भगवान्‌का भजन किया जाय तो वह साथमें जायगा। भजन करनेवालेको देखनेसे, उसका संग करनेसे, उसकी बातें सुननेसे शान्ति मिलती है।

भजन करे पातालमें, प्रगट होय आकाश।
दाबी दूर्वा ना रहे, कस्तूरी की बास॥

जिन लोगोंने भजन किया है, उनमें कितनी विलक्षणता आयी है। 'रामचन्द्रिका' की रचना करनेवाले केशव कविसे किसीने पूछा कि किसकी कविता बढ़िया है ? तो वे बोले कि मेरी कविता बढ़िया है। उससे फिर पूछा कि क्या गोस्वामीजी महाराजकी कविता बढ़िया नहीं है ? वे बोले कि गोस्वामीजी-की कविता कविता नहीं है, वे तो वेदोंकी ऋचाएँ हैं, मन्त्र हैं। मैं तो कविकी बात कहता हूँ कि कवियोंमें मेरी कविता बढ़िया है। गोस्वामीजी महाराज कवि नहीं हैं, वे तो संत हैं। कवियोंकी कवितामें सुन्दरता तो होती है, पर जीवोंका उद्धार करनेकी ताकत नहीं होती। संतोंकी वाणीमें उद्धार करनेकी ताकत होती है। संतोंकी वाणी विचित्र होती है, उनके दर्शन विचित्र होते हैं, उनका संग विचित्र होता है। क्यों विचित्र होता है ? कि वे भगवान्‌में लगे हैं। माइकसे बोलनेमें कितना शब्द पैदा होता है; क्योंकि उसका सम्बन्ध बिजलीके साथ है। अगर तार काट दिया जाय तो क्या उसमें वह ताकत रहेगी ? ऐसे ही भगवान्‌का सम्बन्ध होनेसे संत-महात्माओंमें बड़ी विचित्रता आ जाती है। वह विचित्रता अपने घरकी नहीं, भगवान्‌की है। भगवान्‌का सम्बन्ध टूट जाय तो जै रामजीकी। अर्जुनने महाभारत-युद्धमें विजय प्राप्त की थी, पर भगवान्‌के अपने धाममें पधारनेके बाद जब वे गोपिकाओंको लेकर जा रहे थे, तब लुटेरोंने गोपिकाओंको लूट लिया और अर्जुन कुछ नहीं कर सके। उनमें शक्ति भगवान्‌की ही थी। भगवान्‌की शक्तिके बिना वे क्या कर सकते थे ? अगर आप भगवान्‌के भजनमें लग जाओ तो दूसरोंका कल्याण कर दो—इतनी शक्ति आपमें आ जाय।

फूलीबाई एक साधारण ग्रामीण जाटनी स्त्री थी। उसको जोधपुरके राजा अपने दरबारमें ले गये और कहा कि रानियोंको उपदेश करो। रानियाँ बढ़िया-बढ़िया शृंगार करके आसनोंपर बैठी थीं। फूलीबाई उनके पास आकर अपनी भाषामें बोली—***'गहनो-गाँठो तनकी शोभा, काया काचो भाण्डो। फूली थाने यूँ कहे, थे राम भजी री राण्डो॥'*** अरी राण्डो ! इस प्रकार बैठी कैसे हो, राम-राम करो। गहने तो शरीरकी शोभा हैं, आज मर जाओ तो वे क्या काम आयेंगे ? शरीर तो कच्चा घड़ा है, न जाने कब फूट जाय। इस तरह अपनी भाषामें सीधी-सादी बात कह दी। उसकी बातसे रानियाँ नाराज नहीं हुईं। सब लोग फूलीबाईका आदर करते थे; क्योंकि उसके मनमें किसीसे कुछ लेनेकी इच्छा थी ही नहीं। ऐसे कई भक्त हमारे देशमें हुए हैं, साधारण जातिमें हुए हैं, ऊँची जातिमें हुए हैं, पढ़े-लिखे व्यक्तियोंमें हुए हैं, अपढ़ व्यक्तियोंमें हुए हैं। जो भी भगवान्‌की तरफ लगा, वह विलक्षण हो गया। मनुष्यपना इसीमें है कि भगवान्‌की तरफ जाय।

(समाप्त)

धन्य है !

धन्य है तुमको कृपानिधान !
प्राणिमात्रके जीवन-हितमें साधन बने महान॥
पंचीकरण किया तत्त्वोंका, यह रहस्य विस्तारा।
घुल-मिलकर सबमें बैठे तुम, सबसे किये किनारा॥
कमलपत्र ज्यों जलमें रहकर उससे विलग दिखावे।
उसी प्रकार जगतमें मिलकर सबसे अलग कहावे॥

—प्रेमनारायण त्रिपाठी 'प्रेम'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्ण-भक्तिमें माधुर्य

(श्रीसुमनलता वोहरा)

मानवको सदैव आध्यात्मिक साहाय्यकी आवश्यकता रही है, जो उसे अपने भक्तिभावसे प्राप्त होता है। भक्ति अनुभूतिका विषय है, जिसका साक्षात्कार हृदय करता है। यह मनुष्यका जन्मजात भाव है, जो मनुष्यके चेतना-संस्थानको निरन्तर प्रभावित एवं उत्प्रेरित करता है। शक्तिशील तथा वैभवसे वरिष्ठ व्यक्तिके प्रति श्रद्धा तथा उसके गुणोंको आत्मसात् करनेकी अदम्य इच्छा भक्ति-भावनाके मूलमें है। इस श्रद्धा, विश्वास और अदम्य इच्छाका विस्तार जब असीम, अपरिमित तथा अजेय परमात्माके अथवा इष्टके प्रति होता है, तब वह भक्ति कहलाती है। अर्थात् भगवान्‌के प्रति अनन्यप्रेम और समर्पणकी भावना ही भक्ति है। प्रेम और समर्पणकी भावनामें आसक्ति, मोह और ममताका प्रधान स्थान है। जब यह आसक्ति और ममता मानवीय स्तरपर अपने परिचितोंके लिये होती है, तब उसे माया, मोह आदिका नाम दे दिया जाता है, परंतु जब यही भगवान्‌के प्रति हो जाय तो भक्ति बन जाती है।

शाण्डिल्यसूत्र (१।२) में कहा है—

'सा परानुरक्तिरीश्वरे' अर्थात् 'ईश्वरमें अतिशय अनुरक्ति ही भक्ति है।'

नारद-भक्तिसूत्र (२) के अनुसार—

'सा त्वस्मिन् परमप्रेमस्वरूपा' अर्थात् 'ईश्वरके प्रति परम प्रेम ही भक्ति है।

विष्णुपुराण (१।२०।१९) के अनुसार—

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु॥

'अविवेकी पुरुषोंकी विषयोंमें जो अविचल प्रीति होती है, वह आपका स्मरण करते हुए मेरे हृदयसे कभी दूर न हो।' इसी प्रकार श्रीमद्भागवत (१।२।६)में भी कहा गया है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति॥

अर्थात् 'मनुष्योंके लिये सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिससे भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति हो, जिसमें किसी भी प्रकारकी कामना न हो, जो नित्य-निरन्तर बनी रहे।'

भक्तिरसामृतसिन्धुमें भक्तिकी अत्यन्त विस्तृत व्याख्या की गयी है—

अन्याभिलषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

अर्थात् 'अन्य कामनाओंसे रहित, ज्ञान-कर्मादिसे अनावृत तथा अनुकूल-भावसे श्रीकृष्णका अनुशीलन ही उत्तम भक्ति है।' श्रीमद्भगवद्गीता (१८।६५) में कहा है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

अर्थात् 'तू मेरा भक्त हो जा, मुझमें मनवाला हो जा, मेरा पूजन करनेवाला हो जा और मुझे नमस्कार कर। ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त हो जायगा—यह मैं तेरे सामने सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है।'

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।

(१२।२)

अर्थात् 'मुझमें मन एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें परायण जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धाके साथ मुझे भजते हैं, वे भक्तगण सचमुच महान् योगी हैं।' यहाँ अनन्यभाव, श्रद्धा और ध्याननैरन्तर्यपर विशेष बल दिया गया है।

इन व्याख्याओंसे यह स्पष्ट होता है कि भगवान्‌के अस्तित्वमें अविचल विश्वास, निःस्वार्थ प्रेम और निष्काम भावना ही भक्ति है। यह भक्ति नितान्त विनयपूर्वक भगवान्‌की उपासना मात्र नहीं; अपितु बौद्धिक विश्वास एवं श्रद्धा है। श्रद्धा ही धार्मिक उपासनाका आधार होती है। भक्ति वह उपासना है, जिसका जन्म श्रद्धासे होता है और जो आरम्भिक रूपमें मनोरागयुक्त सेवा और अन्तिम रूपमें अनुपूर्ति है।

शास्त्रोंमें भक्तिके चार तत्त्व बताये गये हैं—ज्ञान, कर्म, योग और भक्ति। ज्ञानी ज्ञानमार्गसे तथा क्रियाशील साधक कर्ममार्गसे और योगी चित्तकी समस्त वृत्तियोंको एकाग्र करके इष्टकी प्राप्तिके लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। अतः भक्तिके ये तीन मार्ग—कर्म, ज्ञान और योग—जो वेदत्रयीद्वारा प्रतिपादित हैं, भक्ति इन तीनों मार्गोंकी पावन त्रिवेणीका संगम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। भगवान्‌को भी भक्ति ही अत्यन्त प्रिय है—'**त्वं तु भक्तिः प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका**' (श्रीमद्भा० मा० २।३)।

समस्त वैष्णव सम्प्रदायोंमें भक्तिको ही प्रधानता दी गयी है। कर्म, ज्ञान तथा योगका अन्तर्भाव भी भक्तिमें स्वतः ही हो जाता है। वैदिक ऋचाओंसे ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम भक्तिके लिये ध्यानयोगका विधान किया गया। आन्तरिक भावमें विश्वास रखनेवाले विद्वानोंमें भक्तिके मूल बीज विद्यमान थे और आंशिक रूपसे भक्तिके विविध रूपों, प्रकृति-पूजा अथवा देवताओंके स्वरूप या विशेष आकृतिमें विश्वास, यज्ञ आदि कर्मोंका आयोजन तथा देवी-देवताओंकी पूजा-अर्चनाका आभास उन्हें परम्परासे मिला था। आध्यात्मिक तथा दार्शनिक विचारोंमें परिपक्वता आनेपर श्रद्धा तथा उपासनाके द्वारा वैष्णव-भक्ति विकसित होकर व्यापक रूपमें परिणत हुई। जिस नवधा भक्तिकी स्थापना वैष्णव-सम्प्रदायोंमें हुई उसके अनेक अङ्ग—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, आत्मनिवेदन आदिके संकेत वेदोंमें अनेक स्थलोंपर मिलते हैं।

परंतु पुराणोंमें इसका विशद विवेचन प्राप्त होता है। पुराण-साहित्यने श्रीकृष्णावतारको भक्तिके क्षेत्रमें इतना अधिक व्यापक और आकर्षक रूप दिया कि लगभग सम्पूर्ण भारतमें श्रीकृष्णके माधुर्यपूर्ण चरित्रकी पूजा-अर्चना आरम्भ हो गयी। इसीसे प्रेरणा पाकर भारतीय धार्मिक चेतना सांस्कृतिक तथा रागात्मक एकताकी ओर अग्रसर हुई। नवधा भक्तिके माध्यमसे भक्तिको सर्वसाधारणके लिये सुलभ बना दिया गया और सख्य तथा वात्सल्यके साथ शृङ्गारका समावेश होनेसे भक्तिका क्षेत्र विस्तृत हो गया। शृङ्गारके साथ माधुर्यका सहज सम्बन्ध है। यह माधुर्य-भाव ही परवर्ती भक्ति-सम्प्रदायोंका मेरुदण्ड अथवा आधार बना।

भक्ति-भावनाको उत्कर्षपर पहुँचानेवाले पुराणोंमें ब्रह्मवैवर्तपुराण, विष्णुपुराण, पद्मपुराण तथा भागवतपुराणमें श्रीकृष्णकी लीलाओंका भौतिक और आध्यात्मिक स्वरूप व्यक्त हुआ है, परंतु रतिभावकी प्रतिष्ठा करके तथा उसे लौकिक कालुष्यसे रहित मानकर रसमय भूमिकाके रूपमें महत्त्वपूर्ण स्थान केवल भागवतपुराणका है, जो भक्तिका अजस्र स्रोत है। जिसे श्रीशुकदेवजीने अपनी मधुर वाणीसे संयुक्त कर अमृतमय बना दिया है—

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥

(श्रीमद्भा० १।१।३)

अर्थात् यह निगम-कल्पतरुका स्वयंगलित फल है, जिसे श्रीशुकदेवजीने अपनी मधुर वाणीसे अमृतद्रव-संयुक्त कर दिया है। यह भागवत रसका आलय है, जिसे संसारके भावुक रसिकोंसे बार-बार पान करनेका आग्रह किया गया है। इसके इतिवृत्त भी बड़े सरस और कवित्वमय हैं, जो ज्ञान तथा कर्मकी साधनासे बने हुए मानसमें मधुर भक्तिकी अमृतमय सरिता बहानेमें समर्थ होते हैं। लगभग सभी सम्प्रदायोंने पुराणोंमें स्वीकृत लीलावतारी श्रीकृष्ण और उनकी आह्लादिनी शक्ति राधाकी स्थापना की है और उनकी अलौकिक लीलाओंकी अनेकानेक मधुर भाव-भूमियोंकी सृष्टि की है।

भगवान् श्रीकृष्णका लीलाक्षेत्र व्रज होनेके कारण सभी सम्प्रदायोंका धर्मक्षेत्र और कर्मक्षेत्र प्रधान रूपसे व्रज ही रहा। माधुर्य-भावनासे परिपूर्ण भक्तिके लिये उन्होंने श्रीकृष्णके मधुर रूप, श्रीकृष्ण-प्रेमकी तन्मयावस्था और तलस्पर्शी गाम्भीर्यकी स्वरूपोपलब्धिमें श्रीकृष्णकी व्रजलीलाओंको अपने प्राणोंका स्पन्दन बनाया।

व्रजके श्रीकृष्ण-भक्तोंने भगवान् श्रीकृष्णकी मथुरा, द्वारिका और व्रजकी लीलाओंमेंसे केवल व्रजकी लीलाओंमें माधुर्य-भावको प्रधानता दी। मथुरा तथा द्वारिकाकी लीलाओंमें ऐश्वर्य-भावकी प्रधानता है, जिनमें भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्रभुत्वको साथ रखकर लीलाएँ करते हैं। इन लीलाओंमें श्रीकृष्ण मानवीयतासे ऊपर दिखायी पड़ते हैं, जहाँ वैभव और अलौकिकताकी प्रधानता दृष्टिगत होती है। ऐसी दशामें जनसामान्यद्वारा इन लीलाओंका रसास्वादन करना सहज नहीं है, क्योंकि इस अवस्थामें भक्त भगवान्‌के ऐश्वर्य और वैभवको देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है और भयमिश्रित श्रद्धासे नतमस्तक हो जाता है। साथ ही उसमें संकोचकी भी भावना आ जाती है। भगवान् श्रीकृष्णकी द्वारिका तथा मथुरासे सम्बद्ध लीलाएँ—जैसे जन्मके समय कारागार-रक्षकोंका निद्रामग्न हो जाना, दरवाजे खुल जाना या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेषनागद्वारा मार्गमें रक्षा किया जाना आदि ऐश्वर्य-भावकी लीलाएँ हैं। व्रजके श्रीकृष्ण-भक्तकी इन लीलाओंमें कोई विशेष रुचि परिलक्षित नहीं होती, परंतु माधुर्य-भावपरक लीलाओंमें प्रभुत्वकी भावना सर्वथा लुप्त हो जाती है। अपने परिजनों और बन्धु-बान्धवोंकी भाँति वह स्वयं प्रेमका आस्वादन करती है, जिसके अन्तर्गत भगवान् श्रीकृष्ण मुखपर माखन लपेटने, ओखलसे बँधने, हिचकियोंसे रोने आदि लीलाओंमें बालककी भाँति अपनी अलौकिक शक्तियोंको तिरोहित करके एक सामान्य बालक बन जाते हैं। इसी प्रकार अपनी अन्य लीलाओंमें वे पुत्र, सखा, मित्र, बन्धु आदि सम्बन्धोंके कारण आत्मीयतासे बद्ध प्रतीत होते हैं। इस आत्मीयतामें ही प्रेमकी प्रगाढ़ता निहित है। यही प्रेमकी तीव्रता भगवान्‌को प्रसन्न करती है।

प्रेमकी तीव्रता ही माधुर्य-भावकी लीलाओंका मूल आधार है। यही कारण है कि इन लीलाओंकी विहार-भूमि—व्रजको गौरवमय विशेष महत्त्व मिला है। माधुर्य-भावकी पाँच प्रकारकी लीलाएँ मानी गयी हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। शान्त-भावमें विरक्ति, सेवक-सेव्य-भावमें अनुवृत्ति, सख्यभावमें प्रीति और वात्सल्यमें स्नेहकी प्रधानता है। मधुर-भावमें इन सबका समावेश हो जाता है। यद्यपि ये सभी लीलाएँ माधुर्यभावसे प्रेरित हैं, परंतु प्रेमोत्कर्षकी दृष्टिसे शृङ्गारपरक मधुर लीलाओंमें श्रीकृष्ण अपनी प्रियाका प्रेम प्राप्त करनेके लिये प्रत्येककी भर्त्सना और आघात सहनेको तत्पर रहते हैं। उनका यह प्रेम लौकिक प्रेमसे विलक्षण है। इसके साथ-ही-साथ दास्यमें दास्यत्व, सख्यमें सख्यत्व और वात्सल्यमें वत्सलताका भाव अन्तर्निहित रहता है। इसी प्रकार मधुर लीलाओंमें किसी एक भावकी प्रधानता न होकर नायक और नायिकाकी परस्पर प्रीति ही प्रधान रहती है।

मधुर-भावकी लीलाएँ व्रज-लीला तथा निकुञ्ज-लीला मानी गयी हैं। व्रज-लीलामें मधुर लीलाकी प्रधानताके साथ-साथ दास्य, सख्य और वात्सल्यका मिश्रण रहता है, परंतु निकुञ्ज-लीलामें प्रिया-प्रियतम, श्रीराधा-श्रीकृष्णकी भक्तिका विहार ही सर्वस्व है, अतः अधिकांश श्रीकृष्ण-भक्ति सम्प्रदायोंमें निकुञ्ज-भावकी लीलाको ही प्रधानता दी गयी है। प्रिया-प्रियतमकी यह निकुञ्ज-लीला नित्य है, इसीलिये इसे 'नित्यविहार' नाम दिया गया है। इस नित्यविहारके दर्शन और मननके आस्वादनसे प्राप्त आनन्दको अनिर्वचनीय कहा गया है। प्रिया-प्रियतमके विहारके दर्शन तथा भावनासे जिस प्रेमकी अनुभूति होती है, वह सर्वथा शुद्ध है। उसी प्रेमका स्वरूप बतलाते हुए नारदजी कहते हैं—

गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्। (ना० भक्ति-सूत्र ५४)

इसी प्रेमको पाकर प्रेमी इस प्रेमको ही देखता है, प्रेमको ही सुनता है, प्रेमका ही वर्णन करता है और प्रेमका ही चिन्तन करता है—

'तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति ॥ (ना० भक्ति-सूत्र ५५)

माधुर्य भक्तिमें जिस प्रेमको स्वीकार किया गया है, उसे कामेच्छापरक प्रेम या सामाजिक बन्धनोंपर आधारित प्रेम न मानकर ईश्वरोन्मुख माना गया है। वस्तुतः यह प्रेम वह मधुर उष्मा है, जो साधकके हृदयको अनिर्वचनीय तत्त्व प्रदान करता है। आदानमें नहीं, प्रदानमें ही प्रेमका वास्तविक आस्वाद संनिहित है। प्रेमके अतिरिक्त अन्य सभी निस्सार हैं। प्रेम-प्रभावापन्न भक्तों और साधकोंके मतानुसार प्रेम समस्त साधनाका मूलाधार है। यह भक्तिका अनिवार्य तत्त्व ही नहीं, उसका शीर्षफल भी है। इस प्रेमको प्राप्त करनेवाली गोपियाँ श्रीकृष्णकी नित्य-कान्ताएँ, प्रेयसी और अहैतुक प्रेमकी साक्षात् मूर्तियाँ हैं।

वैष्णव-सम्प्रदायके साधकोंकी यह मान्यता है कि श्रीराधा-श्रीकृष्णकी नित्यविहार-लीलाओंके अनन्त अलौकिक भाव-राज्यमें प्रवेश पानेके लिये पुरुषभावका सर्वथा त्याग कर सखीभाव, गोपीभाव या कान्ताभावको अपने हृदयमें ग्रहण करना नितान्त आवश्यक है। यही अनन्य-भाव-साधनाका अनिवार्य तत्त्व है।

श्रीमद्भागवतपुराणमें जिस कोटिका प्रपत्तिपरक भक्तिका विधान हुआ है, उसीको नवीन रूप देकर वैष्णव भक्तोंने अपनी भक्तिका विस्तार किया और भागवतमें लक्षित गोपियोंका आदर्श प्रेम ही इन भक्तोंके साधनाक्षेत्रके लिये सतत उदाहरण बनकर प्रतिष्ठित हुआ। फलतः साम्प्रदायिक धर्म-[illegible] विशिष्ट व्यक्तित्वसम्पन्न इन सम्प्रदायोंके आचार्योंने

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपमें धार्मिक महापुरुषजनोंने राधाभाव, गोपीभाव या सखी-भावको उपस्थित कर भक्ति-साधनासे उत्पन्न रसको किसीने व्रजरस, किसीने उज्ज्वल रस और किसीने रसोपासना आदिसे व्यवहृत किया। आत्मतत्त्वकी दिव्य मनोभूमिपर इसी रसकी उदात्त अनुभूति ही भक्तोंकी प्रेमसाधनाका लक्ष्य है। यही माधुर्य-भक्तिका शाश्वत स्वरूप है। इसी कालसे साधनामें प्रेमभावके समाविष्ट हो जानेके कारण शैव और शाक्त मतोंकी साधना-पद्धतिपर भी इसका प्रभाव पड़ा। इनके अतिरिक्त निर्गुण संतों—कबीर, दादू, नानक आदिके द्वारा की गयी अभिव्यक्तिमें भी माधुर्य-भावका आभास मिलता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भक्ति-मार्गकी प्रतिष्ठा तथा इसके अन्तर्गत हृदयकी रागात्मिका वृत्तिको परिपुष्ट बनानेमें श्रीमद्भागवत आदि पुराणों तथा नारद और शाण्डिल्यके भक्ति-सूत्रोंका बहुत अधिक योगदान रहा है। अतः परम्परासे चली आती हुई ईश्वरीय प्रेमवृत्तिको वैष्णव भक्तोंने दृढ़ व्यक्तिगत अनुरागके रूपमें प्रदर्शित कर, उसे सार्वजनीन बनाकर विश्वप्रेममें रूपायित कर दिया है।

सारांश यह है कि वैदिक युगसे लेकर पौराणिक कालतक भक्ति अपने कतिपय सैद्धान्तिक विशेषताओंको लेकर अग्रसर होती रही और युगकी विशिष्ट चिन्तन-पद्धतिको विशेष रूपसे प्रभावित करती रही, परंतु समयकी विशेष परिस्थितियोंके कारण भक्तिका चरम विकास पुराणोंमें ही प्रतिष्ठित हुआ। लगभग सभी सम्प्रदायोंने पुराणोंमें प्रतिष्ठित भक्तिमें स्वीकृत प्रेमके स्वरूपका प्रतिपादन किया, परंतु भागवतमें वर्णित जो प्रेम केवल श्रीकृष्ण और गोपियोंकी लीलाओंके मधुर रसके आस्वादनतक ही सीमित था, उसे तत्कालीन श्रीकृष्णभक्तोंने श्रुति-प्रतिपादित **'रसो वै सः'**—रसरूप श्रीकृष्णको परब्रह्म मानकर उसके साथ श्रीराधाकी उपासनाको समाविष्ट कर इसे अलक्षित तत्त्व मानकर अचिन्त्य और अतर्क्य समझते हुए 'नेति-नेति' कहकर निगूढ़ बताया। इस प्रकार श्रीकृष्ण-भक्तिपरक सम्प्रदायोंके भक्तोंने अपनी लौकिक एवं आध्यात्मिक अनुभूतियोंको नवीन रूप देकर माधुर्य-भावकी भक्तिको पुष्पित कर रसमय, लावण्यमय और आनन्दमय बनानेमें महत्त्वपूर्ण योग दिया।

पथिक मन

क्यों न राम-नाम-गली गहत पथिक मन ?
काम, क्रोध, लोभ जहाँ,
कंटक-वन सघन महा—
चलत फिरत गिरत तहाँ, छिदत-छुलत तन !
क्यों न राम-नाम-गली गहत पथिक मन ?
चामीकर चपल चोर,
लागत उठि रैनि भोर,
देतु है कलेस घोर, हरत प्राण-धन !
क्यों न राम-नाम-गली गहत पथिक मन ?
'सैनिक' सार्थक स्वनाम,
ह्वै हैं जो करसि काम,
बिचर बिहर जहँ अकाम संत-सुजन जन !
क्यों न राम-नाम-गली गहत पथिक मन ?

—डॉ हनुमानप्रसाद त्रिपाठी, विशारद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवतीय प्रवचन—३१

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्

(संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)

ज्ञान और वैराग्यका दान गङ्गाजी करती हैं। विदुरजी गङ्गाजीके किनारे मैत्रेय ऋषिके आश्रममें आये। गङ्गाजीकी बड़ी महिमा है। विदुरजीने गङ्गाजीमें स्नान किया। गङ्गाजीके किनारेके ये पत्थर भाग्यशाली हैं, क्योंकि मैत्रेय ऋषि-जैसोंके चरणोंका इन्हें स्पर्श-लाभ होता रहा है। इन पत्थरोंपर वैष्णवोंकी चरणरज गिरती रही है।

विदुरजी सोचमें डूबे हुए हैं कि सभी प्रकारसे हीन होनेसे मुझे मैत्रेय ऋषि उपदेश देंगे या नहीं। मैं यद्यपि कई दृष्टियोंसे हीन अवश्य हूँ, किंतु कर्महीन नहीं हूँ। मैं पापी हूँ, अधम हूँ, किंतु परमात्माने मुझे अपनाया है। अतः मैत्रेय ऋषि मुझे अवश्य उपदेश देंगे।

भक्तिमार्गकी श्रेष्ठताका यही कारण है कि जबतक परमात्माका प्रत्यक्ष मिलन न होने पाये, तबतक भक्त ऐसा ही मानता है कि मेरे ही दोषके कारण मिलन नहीं हो रहा है। भक्तिसे दैन्यकी उत्पत्ति होती है। ज्ञानमार्गमें योगी ब्रह्मरूप होने लगता है, किंतु अभिमान आनेके कारण बहुतोंका पतन भी होता है।

आश्रममें आकर विदुरजीने मैत्रेयजीको साष्टाङ्ग प्रणाम किया है। उनके विनय-विवेकसे सभीको आनन्द हुआ।

मैत्रेय ऋषि कहते हैं—'विदुरजी ! मैं आपको पहचानता हूँ। आप साधारण व्यक्ति नहीं हैं। आप तो धर्मराजके अवतार हैं। माण्डव्य ऋषिके शापके कारण दासीपुत्रके रूपमें आपका जन्म हुआ।'

एक बार कुछ चोरोंने राजकोषसे चोरी की। चोरी करके वे भागने लगे। राजाके सेवकोंको इस चोरीका समाचार मिला तो उन्होंने चोरोंका पीछा किया। राजाके सैनिकोंको पीछे आते हुए देखकर चोर घबड़ा गये। चोरीके मालके साथ भागना कठिन था। रास्तेमें माण्डव्य ऋषिका आश्रम आया। चोरोंने चुरायी हुई वह सारी धन-सम्पत्ति उसी आश्रममें फेंक दी और भाग खड़े हुए। राजाके सैनिक पीछा करते हुए आश्रममें आये। वहाँ राजकोषसे चुरायी गयी सारी धन-सम्पत्तिको देखकर उन्होंने मान लिया कि यह माण्डव्य ऋषि ही चोर है। उन्होंने ऋषिको पकड़ा और धन-सम्पत्तिके साथ राजाके समक्ष उपस्थित कर दिया। राजाने शूलीपर चढ़ानेका आदेश दिया।

अब माण्डव्य ऋषिको वधस्तम्भपर खड़ा कर दिया गया। वे वहींपर गायत्रीमन्त्रका जप करने लगे। माण्डव्य मरते ही नहीं हैं। ऋषिका दिव्य तेज देखकर राजाको लगा कि यह तो कोई तपस्वी महात्मा लगते हैं। राजा भयभीत हो गया। ऋषिको वधस्तम्भसे नीचे उतारा गया। सारी बात जानकर राजाको दुःख हुआ और पश्चात्ताप होने लगा कि मैंने निरपराध ऋषिको शूलीपर चढ़ाना चाहा। उसने माण्डव्य ऋषिसे क्षमा करनेके लिये प्रार्थना की।

माण्डव्य ऋषि कहते हैं—'राजन् ! तुम्हें मैं क्षमा कर दूँगा, परंतु मैं उस न्यायाधीश धर्म-कर्मके मूलसाक्षी यमराजसे पूछूँगा कि मुझ निष्पापको ऐसा दण्ड क्यों मिला ? मैं यमराजको दण्ड दूँगा, उसे क्षमा नहीं कर सकता।'

अपने चरित्रपर कैसा अटल विश्वास ! भरतखण्डका एक पवित्र संत आज न्यायाधीशसे ही उत्तर माँगने जा रहा है।

यमराजकी सभामें आकर ऋषिने यमराजसे पूछा कि 'जब मैंने कोई भी पाप नहीं किया है तो मुझे शूलीपर क्यों चढ़ाया गया ? शूलीपर चढ़ानेकी सजा मुझे मेरे कौन-से पापके लिये दी गयी ?'

धर्मराज घबड़ा गये। उन्होंने सोचा कि यदि कहूँगा कि भूल हो गयी तो ये मुनि मुझे शाप दे देंगे। अतः उन्होंने ऋषिसे कहा कि जब आप बच्चे थे, तब आपने एक तितलीको काँटेसे चुभोया था, उसी पापकी यह सजा दी गयी है।

जाने या अनजाने जो भी पाप किया जाय, उसका दण्ड भुगतना ही पड़ता है। भगवान् पापको नहीं स्वीकार करते, पुण्यके उपभोगकी इच्छा न करें तो कोई बात नहीं, परंतु पाप तो भोगना ही पड़ेगा।

पुण्य कृष्णार्पण हो सकता है, पाप नहीं। पाप तो भोगना ही पड़ेगा, अन्यथा पापका नाश नहीं हो सकता।

लोग शामको दुकानसे घर लौटते समय मन्दिरमें जाते हैं और हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं—'प्रभो ! सारे दिन हम कुछ झूठ बोले हों, किसीको ठगे हों, जो कुछ भी कुकर्म किये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हों, वे सभी हम आपको समर्पित करते हैं।'

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात्।
करोति यद्यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयेत्तत्॥

मन, कर्म और वाणीसे जो पुण्य किया जाय, वह प्रभुको अर्पण करना चाहिये। पुण्य समर्पित हो सकता है, पाप नहीं। भगवान् पाप नहीं लेते।

भगवान् कहते हैं कि यह कैसा मूर्ख व्यक्ति है, जो मुझे अपने पाप अर्पित करने चला है। परमात्माको हमेशा पुण्य समर्पित करो। सदा यही सोचो कि पापकी सजा मैं सह लूँगा और ठाकुरजीको पुण्य समर्पित करूँगा।

ठाकुरजीको सर्वोत्तम वस्तु अर्पित करनी चाहिये। इसीका नाम भक्ति है। भगवान्‌को पुण्य ही समर्पित किये जाने चाहिये।

माण्डव्य ऋषिने यमराजसे कहा—'शास्त्रकी आज्ञा है कि यदि अज्ञानावस्थामें कोई मनुष्य कुछ पाप कर दे, तो उसका दण्ड उसे स्वप्नमें दिया जाय। मैं बालक था, अतः अबोध था। इसलिये उस समय किये गये पापका दण्ड मुझे स्वप्नमें ही देना चाहिये था। तुमने मुझे अनुचित प्रकारसे दण्ड दिया है। अतः मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम्हें सामान्य मनुष्यके घरमें जन्म लेकर सौ वर्षतक पृथ्वीपर रहना पड़ेगा।'

इस प्रकार माण्डव्य ऋषिके शापके कारण धर्मराजको विदुरजीके रूपमें दासीके घर जन्म लेना पड़ा। सबको अपने कृतकर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है।

रामकृष्णकी राम-भक्ति

(श्रीअनन्तप्रसादजी शर्मा, एम्० ए०)

दक्षिणेश्वरके संत श्रीरामकृष्ण परमहंस शक्तिके अनन्य उपासकके रूपमें तो लोकविश्रुत हैं ही, पर यह भी तथ्य है कि उन्हें राम-भक्ति पैतृक उत्तराधिकार (विरासत) के रूपमें मिली थी। उनकी वंशपरम्परा रामोपासकोंकी रही थी। उनके पितामह श्रीमाणिकराम चट्टोपाध्याय और पिता श्रीखुदीराम राम-भक्तिमें इतने पगे हुए थे कि अपने उपास्यदेव श्रीरघुवीरके पूजन-अर्चनके पश्चात् ही अन्न-जल ग्रहण करते थे। कामारपुकुर उनका पैतृक ग्राम नहीं था, बल्कि उनके पिता अपने गाँवके जमींदारके अत्याचारसे पीड़ित होकर घर-द्वार छोड़कर वहाँ चले आये थे। धैर्य और धर्मकी भाँति भक्तिकी भी कसौटी विपत्ति ही है। उपर्युक्त पारिवारिक विपत्तिमें भी उन्होंने अपने इष्टदेवके अनुग्रहकी प्रतिच्छाया देखी, फलतः अपनी निष्ठासे वे विचलित नहीं हुए। उसी समय एक ऐसी अलौकिक घटना हुई, जिसके फलस्वरूप अपने इष्टदेवमें उनकी निष्ठा और भी परिपुष्ट हुई। वे किसी कार्यवश बाहरसे अपने गाँवकी ओर श्रान्त-क्लान्त-अवस्थामें लौट रहे थे। मार्गमें कुछ क्षणके लिये विश्राम करने लगे। स्वप्नावस्थामें उन्हें प्रतीत हुआ कि उनके उपास्य भगवान् श्रीरामचन्द्र बालकका रूप धारण कर उनसे कह रहे हैं कि वे उक्त स्थलपर चिरकालसे प्रतीक्षारत हैं, अतः पथिक उन्हें अपने घर ले चलें। श्रीखुदीरामने स्वप्नमें ही संकोचपूर्वक भगवान्‌से निवेदन किया कि उनका अपना घर-द्वार सब छूट गया है तो सेवामें वे क्यों कर समर्थ हो सकेंगे। तब भक्तका प्रबोधन करते हुए बालकरूपी भगवान्‌ने कहा कि 'सेवामें होनेवाली किसी त्रुटिका ध्यान नहीं रखा जायगा।' इतनेमें ही स्वप्न-जाल छिन्न-भिन्न हो गया और उनका ध्यान उक्त स्थलकी ओर गया तो आश्चर्यपूर्वक उन्होंने देखा कि वहीं एक शालग्राम-शिला है, जिनपर एक व्याल छत्र ताने खड़ा है। कौतूहल संवृत न हो सका। वे उक्त स्थलके और निकट गये तो फणिधर नाग अन्तर्धान हो गया और विवर-मुखपर भगवान् शालग्राम विराजमान थे। भक्तने 'जय रघुवीर'का घोष करते हुए उन्हें शिरोधार्य कर लिया। पारिवारिक समस्याओंमें ग्रस्त भक्तको उपर्युक्त विचित्र घटनासे पुष्कल सम्बल प्राप्त हुआ और भक्तिका आवेग उनमें इतना बढ़ा कि वे अपने दैनन्दिन कार्योंका शुभारम्भ भी 'जय रघुवीर'के मन्त्रोच्चारसे ही करने लगे और कालान्तरमें जब उनकी जीवन-लीला समाप्त हुई तो उनके मुखसे 'जय रघुवीर' ही अन्तिम शब्द निकले थे।

इस प्रकारके धर्मनिष्ठ पिताके पुत्र होकर श्रीरामकृष्ण परमहंस जब कामारपुकुरमें अवतरित हुए तो स्वभावतः कुल-इष्ट श्रीरघुवीरके चरणोंमें उनकी श्रद्धारूपी वल्लरी दिनानुदिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पल्लवित और पुष्पित होती गयी। बादमें दक्षिणेश्वर आनेपर अपने साधु स्वभावके अनुरूप उन्हें अर्चकका कार्य सौंपा गया और जगन्माताके प्रति जो श्रद्धा-सुमन उन्होंने अर्पित किये, वह भक्तिके इतिहासके पृष्ठोंमें स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित होने योग्य है, किंतु उनकी भक्तिका बीज उपर्युक्त वंशानुगत राम-भक्तिमें है और यह श्रीरामकृष्णकी विशेषता है कि उन्होंने एक साथ ही अनेक इष्टदेवोंकी भक्तिकी गङ्गामें अवगाहन किया था। दास्य-भावकी भक्तिकी परिपूर्णताकी दृष्टिसे महावीर हनुमान्‌का स्वरूप-चिन्तन कर वे आत्मविभोर हो उठे थे। यहाँतक कि कुछ कालतक चाल-ढाल, भोजन, उपवेशन आदि दैनन्दिन क्रियाओंमें भी वे '**वानराणामधीशम्**' का अनुकरण करने लगे थे और वृक्षोंकी डालोंपर विचरण करते हुए 'रघुवीर-रघुवीर' रटते रहते थे। इसी अवधिमें एक अद्भुत घटना हुई। एक दिन वे पञ्चवटीकी सुखद छायामें बैठे थे (जाग्रत्-अवस्थामें) कि उनके समक्ष एक अतुलित प्रकाश-पुञ्ज महिला-मूर्ति—***'छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई'***—दीख पड़ी। वे आश्चर्यचकित हो सोचने लगे, तभी न जाने कहाँसे आकर एक वानर अकस्मात् उक्त महिलाके श्रीचरणोंमें दण्डवत् लोट गया। तब श्रीरामकृष्णको यह भान हुआ कि यह मूर्ति विदेहतनया सीता हैं और माता सीता कहकर ज्यों ही उन्होंने प्रणिपात-हेतु उनके चरणोंमें झुकना चाहा, त्यों ही वह ज्योतिःस्वरूपा क्षिप्रगतिसे आकर उनके शरीरमें समाहित हो गयी। श्रीरामकृष्णकी मान्यता है कि यह उनके जीवनकी प्रथम अलौकिक घटना है, जो स्वतः स्फूर्त हुई, किसी विचार-चिन्तनके क्रममें नहीं और उन्हें प्रतीत हुआ कि ऐसा संयोग इसलिये उपस्थित हुआ कि स्वयं उनका जीवन भी माता सीताके जीवन-जैसा ही आद्योपान्त दुःखमय रहा है।

राम-भक्ति-सम्प्रदायके एक साधु 'जटाधारी' का उल्लेख श्रीरामकृष्ण अपने शिष्य-समुदायके समक्ष बारम्बार करते रहते थे। उक्त साधु श्रीरामललाके अनन्य उपासक थे—***'बालकरूप राम कर ध्याना।'*** उन्होंने श्रीरामकृष्णको श्रीराम-मन्त्रकी दीक्षा दी थी। पूर्वकालमें श्रीरामकृष्ण अपने कुल-इष्ट श्रीरघुवीरकी उपासना दास्यभावसे करते थे, किंतु साधु जटाधारीके सम्पर्कके फलस्वरूप उनकी भक्तिमें वात्सल्य-भावका परिपाक हो गया। बालक राम (रामलला) के प्रति उनका मातृवत् स्नेह उमड़ पड़ा, वे बालरूपकी छटामें इतने मग्न हो जाते थे कि समयका उन्हें ध्यान नहीं रहता था। उन्हें प्रतीत होता था कि एक अलौकिक ज्योतिः-पुञ्जके रूपमें बालक राम उनके सतत-संगी बने हुए हैं।

एक बार श्रीरामकृष्ण कामारपुकुरसे एक अन्य गाँवकी यात्रा पालकीपर कर रहे थे, उन्हें लगा कि दो किशोर-वयके बालक उनके शरीरसे निकले और उनकी पालकीके आगे-पीछे चलते हुए बाल-लीलाएँ करने लगे और फिर उनके ही शरीरमें समा गये। साधु जटाधारीने जो —***'सब संत सुखी बिचरंति मही'***की पंक्तिके संत थे, दक्षिणेश्वरसे बिदा लेते समय श्रीरामललाकी इष्टमूर्ति श्रीरामकृष्णको दे दी, क्योंकि उन्हें इसकी प्रेरणा स्वयं भगवान्‌ने दी, ऐसा उन्हें प्रतीत हुआ। श्रीरामकृष्ण अपने व्यक्तित्वमें श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनोंका मणि-काञ्चन-संयोग मानते थे और कहा करते थे कि जो त्रेतामें श्रीराम बने और द्वापरमें श्रीकृष्ण बने, वही इस देहमें आये हैं, पर इस बार उनका आगमन वैसा ही है जैसे किसी राजाका छद्मवेश धारण करना। श्रीरामकृष्णको भक्तजन अवतारी पुरुष मानते हैं, यह सर्वविदित है।

इष्टसे सम्बन्ध रखनेवाली साधारण-से-साधारण वस्तु भी भक्तके लिये अतिशय महत्त्वपूर्ण हो जाती है। चैतन्य महाप्रभु एक बार कहीं घूम रहे थे, उनके साथियोंमेंसे किसीने कहा कि इस गाँवकी मिट्टीकी विशेषता है कि उससे ढोलक बनाये जाते हैं। इतना सुनते ही चैतन्य महाप्रभु भावावेशमें आ गये; क्योंकि उन्हें लगा कि यही तो वह मिट्टी है जिससे वे ढोल बनते हैं, जो भगवान्‌के गुणानुवादमें सहयोग देते हैं। इस भावको स्पष्ट करने-हेतु श्रीरामकृष्णने एक उपाख्यान कहा था, जिसका आशय यह है—'भगवान् श्रीरामचन्द्रके लीला-संवरणके पश्चात् विभीषण लंकामें राज्य करते रहे। एक दिन उन्हें सूचना मिली कि लंकाके तटपर लहरोंद्वारा प्रवाहित होकर एक व्यक्ति लगा हुआ है। अनेक राक्षसोंके मुखमें पानी भर आया, यह सोचकर कि उन्हें स्वादिष्ट मनुष्यका मांस भक्षण करनेको मिलेगा, किंतु विभीषणके हृदयमें भक्तिका सिन्धु उमड़ पड़ा, मात्र इस कल्पनासे कि यह वही मानव-स्वरूप है, जिसमें श्रीरामचन्द्रने लंकाके तटपर पधारकर चराचरको कृतार्थ किया था। मानवके रूपमें आराध्यके स्वरूपके पुनर्दर्शनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौभाग्य प्राप्त हुआ, ऐसा सोचकर विभीषणने उस व्यक्तिका हार्दिक स्वागत-सत्कार किया और उसे उपहारोंसे लादकर स्वदेश लौटा दिया। विभीषणकी शरणागतिका भाव—**'सकृदेव प्रपन्नाय'** भक्तोंके मानसकी वह भाव-भूमि है, जिसमें साधारण वस्तु भी भक्तिके रंगमें रँगी हुई और भक्तिको उद्दीप्त करनेवाली जान पड़ती है। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि यदि हम ईश्वरकी ओर एक कदम बढ़ाते हैं तो वे हमारी ओर दस कदम आ जाते हैं।

भक्ति-सिद्धान्तोंमें द्वैत, विशिष्टाद्वैत एवं अद्वैत—ये तीनों ही श्रीरामकृष्णको स्वीकार्य थे। वे कहा करते थे कि उपर्युक्त तीनों सिद्धान्त मानव-मनकी प्रगतिके विभिन्न सोपानोंसे सम्बन्धित हैं। वह कभी एक-दो स्वीकार करता है तो अन्य दोका बहिष्कार, किंतु क्रम-क्रमसे तीनों स्थितियोंसे गुजरता है। साधकोंके प्रति श्रीरामकृष्णका उद्बोधन था—'आगे बढ़ो, एक-एक कदम आगे बढ़ाओ, शुरूसे ही प्रारम्भ करो। चन्दनवनसे चाँदीकी खानतक जाओ, वहाँसे सोनेकी खानतक और सोनेकी खानसे हीरेकी खानतक।' साधनाका प्रथम सोपान प्रतिमा-पूजन है, जिसका अर्थ है—एक रूप या प्रतीककी सहायतासे उपासना करना। इसके बाद नामजप, महिमा-गान और चिन्तनका स्थान आता है। तत्पश्चात् ध्यान उत्तम लक्ष्यकी प्राप्ति करा देता है। इस प्रसंगमें श्रीरामकृष्ण एक उपाख्यान सुनाया करते थे, सम्भवतः जिसका आधार यह संस्कृत श्लोक है—

देहबुद्ध्या तु दासोऽहं जीवबुद्ध्या त्वदंशकः।
आत्मबुद्ध्या त्वमेवाहमित्येषा मे त्रिधा स्थितिः॥

एक बार श्रीरामने हनुमान्‌से पूछा कि तुम मुझे किस दृष्टिसे देखते हो? हनुमान्‌जीने उत्तर दिया—'जब मैं अपने प्रति देह-बुद्धि रखता हूँ, तब तो आपको स्वामी समझता हूँ और अपनेको आपका सेवक। जब मैं अपनेको जीव समझता हूँ तब आपको पूर्ण और अपनेको आपका एक अंश मानता हूँ, किंतु जब मैं सारी सीमाओंसे ऊपर उठकर अपनेको आत्मा समझता हूँ तब आपमें और अपनेमें कोई अन्तर नहीं देख पाता।' श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि व्यक्ति प्रथमतः शरीरको ही सब कुछ मानता है—**'सब कैं देह परम प्रिय स्वामी।'** अतः अपनी लघुता एवं ईश्वरकी महार्घताको दृष्टिपथमें लाकर भगवान्‌के किसी रूपसे साधना आरम्भ करें। दूसरा सोपान है, भजनानन्द प्राप्त करना, जो भजन, चिन्तन, जप, सेवा आदिसे सम्भव है। सेवा, जप और भगवान्‌के आनन्दमय रूपके ध्यानसे जो आह्लाद प्राप्त होता है, उसे हम अन्य साधकोंके साथ मिलकर बाँट सकते हैं। दूसरोंकी सेवा करनेके लिये यह आवश्यक नहीं कि हम पहलेसे ही पूर्ण प्रबुद्ध हों। तीसरा सोपान है, ब्रह्मानन्दको प्राप्त करना, जो परमात्माके साक्षात्कारसे सम्भव है और यह आध्यात्मिक दृष्टिसे प्रबुद्ध होनेकी स्थिति है, जिसे अन्तिम सोपान माना जाता है। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि कल्पना करो कि किसी सेवककी दीर्घकालीन सेवासे प्रसन्न होकर स्वामी उसके प्रति अत्यन्त सदैव अनुकूल हो उठते हैं तथा एक दिन उसका हाथ पकड़कर अपने आसनपर उसे बिठाने लगते हैं। सेवक असमंजसमें पड़ जाता है, फिर भी स्वामी उसे आग्रहपूर्वक खींचकर अपने पास बिठाकर कहते हैं कि हम दोनों एक हैं, अर्थात् अद्वैतभाव स्थापित हो गया। यह है श्रीरामकृष्णका भक्ति-दर्शन और समन्वयका पारस-स्पर्श जो मिट्टीको सोना बना सकता था।

उपर्युक्त तथ्योंके परिप्रेक्ष्यमें यह स्पष्ट है कि राम-भक्ति-धारामें अवगाहन करनेवाले महापुरुषोंमें श्रीरामकृष्ण परमहंस भी हैं, जिनकी इस प्रवृत्तिकी ओर स्वल्प ध्यान दिया गया है। श्रीरामकृष्ण इस उपाख्यानको दुहराया करते थे कि किस प्रकार वनमें विचरण करते समय श्रीराम आगे रहते थे, उनके बाद सीता माता होती थीं और तब लक्ष्मण, जो जीवके प्रतीक हैं।' विचारकोंके इस कथनसे श्रीरामकृष्ण भी सहमत थे कि जबतक माँकी कृपा नहीं होती है, जीव परमपिता परमेश्वरके दर्शन नहीं प्राप्त कर सकता है। इसी भावको महात्मा तुलसीदासजीकी ये चौपाइयाँ अभिव्यक्त करती हैं—

आगें रामु लखनु बने पाछें। तापस बेष बिराजत काछें॥
उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें॥

(रा० च० मा० २।१२३।१-२)

वस्तुतः जिन माँको श्रीरामकृष्ण पुकारा करते थे, वे सीता मातासे अभिन्न हैं, जैसा कि स्वयं उनके जीवनकी उल्लिखित घटनासे भी स्पष्ट है। दास्यभावकी भक्तिके प्रति श्रीरामकृष्णका भी उतना ही आग्रह है, जितना अन्य संतों एवं महापुरुषोंका, चाहे वे किसी भी भक्ति-सम्प्रदायके क्यों न रहे हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानसकारकी सर्वात्मवादी चेतना

(डॉ॰ श्रीरामाप्रसादजी मिश्र)

ब्रह्मकी सर्वव्यापकताकी प्रतीतिसे हृदयमें सात्त्विकताका संचार होता है। मध्ययुगीन जितने भी प्रमुख कवि हुए हैं, उनमें इस पवित्र भावनाका उन्मेष हुआ है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी ब्रह्मकी सर्वव्यापकताका उद्घोष अपने 'रामचरितमानस' में कई स्थानोंमें किया है। उनके ये विचार भले ही शृंखलाबद्ध रीतिसे प्रतिपादित न किये गये हों, किंतु रामचरितमानसमें वे प्रायः सर्वत्र व्याप्त-से दीखते हैं। उनके अनुसार समस्त विश्व ब्रह्मकी सत्तासे अनुस्यूत है। प्रत्येक व्यक्तिको इस विश्वके प्रति श्रद्धावनत होना चाहिये। ईश्वरकी सर्वव्यापकताकी अनुभूतिसे सभी भेद-बुद्धियोंका समाहार हो जाता है तथा जड-चेतनमें कोई पार्थक्य नहीं रह जाता। इस प्रकारकी अनुभूतिसे अन्तर्जगत्का परिष्कार और उदात्तीकरण होता है।

गोस्वामीजीके मतानुसार यह सारा संसार ब्रह्मकी सत्तासे ओत-प्रोत है। इस विश्वके अन्तरालमें सीता और रामका अस्तित्व विद्यमान है। सीता और राम हमारे प्रणम्य हैं और इसीलिये उनकी सत्तासे युक्त होनेके कारण यह अखिल विश्व भी हमारे लिये प्रणम्य है—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

स्पष्ट है कि सीता-रामसे अनुप्राणित होनेके कारण ही उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर विश्वको प्रणाम किया है।

विश्वमें व्याप्त राम और सीतामें कोई भिन्नता नहीं है। वाणीमें जिस प्रकार अर्थ अन्तर्निहित रहता है तथा जलमें जिस प्रकार तरंगोंकी विद्यमानता रहती है, उसी प्रकार राम और सीता भी एकाकार हैं। राम और सीताकी अभिन्नताकी अभिव्यक्ति गोस्वामीजीके निम्नाङ्कित दोहेमें भलीभाँति हुई है—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥

(मानस १।१८)

वस्तुतः ब्रह्म एक है। वह नाम, रूप और आकाङ्क्षाओंसे रहित है। वह अजन्मा, सच्चिदानन्द और परमधाम है। वह सबमें व्याप्त है। उसकी अभिव्यक्ति विश्वमें हुई है—

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥

(मानस १।१३।३-४)

सर्वव्यापक भगवान् ही देह धारण करके अनेक प्रकारकी लीला करते हैं। इस प्रकार ब्रह्मके दो रूप हैं—प्रथम व्यक्तरूप और द्वितीय अव्यक्तरूप। जिस प्रकार अग्निके दो रूप होते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मके भी दो रूप होते हैं। जिस प्रकार काठमें अग्नि तो रहती है, किंतु कभी वह अव्यक्त रहती है और कभी व्यक्त। अव्यक्तरूपमें वह अलक्षित रहती है और व्यक्त होकर चाक्षुष हो जाती है। ठीक उसी प्रकार ब्रह्म जब विश्वमें अन्तर्निहित रहता है, तब अलक्षित रहता है और जब वह देह धारण करता है, तब दृष्टिगोचर होने लगता है। कविवर तुलसीका यह सारगर्भित कथ्य निम्नाङ्कित पंक्तिमें अवलोकनीय है—

एकु दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥

(मानस १।२३।४)

भगवान् अव्यक्त-रूपमें सर्वत्र व्याप्त हैं और उनका प्रकटीकरण कभी प्रेमके वशीभूत होनेके कारण होता है और कभी लोकमङ्गलके कारण। जगत्में जितने भी जड और चेतन जीव हैं, वे सब रामकी सत्तासे सम्पृक्त हैं। इसी भावनासे अभिप्रेरित होकर उन्होंने सबका करबद्ध नमन किया है—

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥

(मानस १।७ (ग))

भगवान्की महाशक्तिका वर्णन गोस्वामीजीने दो विधियोंसे किया है—कभी विश्वमें उन्होंने भगवान्की व्यापकताका निरूपण किया है और कभी विश्वपर परमशक्तिके प्रभुत्व एवं नियन्त्रणका उल्लेख किया है। एक स्थानपर कवि मायाको वृक्षसे उपमित किया है तथा ब्रह्माण्डोंको फलोंसे जड-चेतन प्राणियोंको फलरूपी ब्रह्माण्डमें अन्तर्निहित तत्त्वके रूपमें प्रस्तुत किया है। उन ब्रह्माण्डरूपी फलोंका भक्षक काल है, जो सदैव भगवान्के नियन्त्रणमें रहता है। अतएव परमात्मा सर्वशक्तिमान् है। निम्नाङ्कित पंक्तियाँ कविके इस आशयको प्रकट करनेवाली हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥
जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना॥
ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भयँ डरत सदा सोउ काला॥

(मानस ३। १३। ६—८)

इस प्रकार तुलसीदासजीने ब्रह्मकी सर्वव्यापकता और सर्वकर्तृत्व-शक्ति—दोनोंका विवेचन किया है।

ईश्वरकी सर्वव्यापकताका अनुभव तुलसीकी भक्ति-भावनाका अजस्र उत्स है। एक स्थानपर स्वयं श्रीरामचन्द्रजीने अपने श्रीमुखसे हनुमान्‌जीसे यह कहा है—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

(मानस ४। ३)

अर्थात् यह सचराचर जगत् ब्रह्मकी अभिव्यक्ति है—ऐसा समझकर जो लोकसेवाके प्रति समर्पित होता है, वही अनन्य भक्त है। इस प्रकार तुलसीने लोकसेवा और लोकाराधनको भक्तिका पर्याय बना दिया है; क्योंकि अखिल लोक ब्रह्मके अस्तित्वसे अनुप्राणित है। नवधा भक्तिके विवेचन-कालमें भी इसी तथ्यपर बल दिया है कि सारे विश्व-को ब्रह्ममय देखना चाहिये—

सातवँ सम मोहि मय जग देखा।

(मानस ३। ३५। ३)

एक बार वनमार्गी रामने वाल्मीकिमुनिसे आग्रह किया कि वे उनके लिये कोई उपयुक्त निवास-स्थल बतायें। वाल्मीकिमुनिने उनकी सर्वव्यापकताकी ओर इङ्गित करते हुए कहा कि उन्हें वे ऐसा स्थान बतलानेमें असमर्थ हैं, जहाँ प्रभु-की विद्यमानता न हो।

पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ॥

(मानस २। १२७)

बादमें मुनिने उनके भौतिक आवासके लिये उपयुक्त स्थानका सुझाव दिया, किंतु इसके पूर्व उपर्युक्त दोहेमें उन्होंने जो कुछ कहा, उससे तो यही ध्वनित होता है कि भगवान् सर्वव्यापी हैं—इस विश्वके कण-कणमें उनकी सत्ता है।

सर्वात्मवादी भावना एक ओर हृदयका परिष्कार कर उसे शुचिता प्रदान करती है और दूसरी ओर वह अखिल विश्वके प्रति आत्मीयताका बोध कराती है। सारे जगत्‌को प्रभुमय देखनेसे निर्वैरता एवं मैत्रीके अङ्कुर फूटते हैं। सब प्राणियोंके प्रति आत्मीयताका भाव जाग्रत् होता है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी-की इस मान्यताके दर्शन इस दोहेमें किये जा सकते हैं—

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

(मानस ७। ११२)

आन्तरिक पवित्रता एवं ईश्वर-निष्ठासे सर्वात्मवादी चेतनाका उद्रेक होता है और फिर उससे अखिल लोकके प्रति प्रेमपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

इस प्रकार विश्वके कण-कणमें तथा प्रत्येक प्राणीमें परम प्रभुकी सत्ता विद्यमान है। यह सारा जगत् परम प्रभुकी आभासे आलोकित है। ब्रह्म सर्वव्यापी है। जब सबमें एक ही तत्त्वकी विद्यमानता है, तब विरोध और शत्रुताकी भावना आनी ही नहीं चाहिये—यही वह संदेश है, जिसे तुलसीदासजी सर्वात्मवादी चेतनाका निरूपण कर प्रकाशित करना चाहते हैं। उनका यह संदेश प्रासंगिक है। आज विश्वमें स्वार्थोंके टकरावके कारण भीषण संघर्षकी स्थिति उत्पन्न हो गयी है। अतिशय संकीर्ण मानसिकताके कारण मैत्री एवं बन्धुत्वका भाव तिरोहित होता जा रहा है। **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** के मार्गपर चलनेका जो उद्घोष हमारे प्राचीन मनीषियोंने किया था, वह मन्द और विलुप्त होता जा रहा है। उस स्वरको मुखरित करनेके लिये सर्वात्मवादी चेतनाकी अनुभूति सबमें होनी चाहिये। विश्व-बन्धुत्व एवं भाई-चारेकी भावनाको प्रतिष्ठित करनेके लिये तुलसीके इस संदेशको आत्मसात् करनेकी आज महती आवश्यकता है।

जब मनुष्य सुनने और देखनेके सभी पदार्थोंमें और सर्वभूतोंमें समदृष्टि रखनेवाला हो जाता है और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे छूट जाता है, तब वह ब्रह्मको प्राप्त होता है।

—महाभारत

दूसरोंकी निन्दामें अपना पाण्डित्य दिखलाना, अपने कार्योंमें उद्योग न करना और गुणज्ञोंके साथ द्वेष रखना—ये तीन विपत्तिके मार्ग हैं।

—भगवान् व्यासदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्का-समाधान—

भागवत-श्रवणसे मुक्ति

(स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)

शङ्का—मैंने, मेरे मित्रोंने तथा मेरी अनेक सुपरिचित माताओं, बहनों और भाइयोंने अनेक बार श्रीमद्भागवत सुनी तथा पढ़ी भी है। औरोंका तो पता नहीं, परंतु मुझे भगवत्प्राप्ति आदिकी बात तो दूर रही, मेरे दोषोंका विनाश तथा गुणोंका विकास भी पूर्णरूपसे नहीं हो सका, इसमें क्या कारण है? क्योंकि भागवत-माहात्म्यके गोकर्णोपाख्यानमें कहा गया है कि भागवत-सप्ताहके श्रवणसे मुक्ति, भगवान्की प्राप्ति, हृदय-ग्रन्थिका भेदन, सर्वसंशयोंका उच्छेद तथा कर्मोंका क्षय हो जाता है—

श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरु।
सप्ताहश्रवणाल्लोके प्राप्यते निकटे हरिः।
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि सप्ताहश्रवणे कृते॥

(श्रीमद्भा० माहा० ५।४१,६२,६५)

समाधान—भागवत-सप्ताह समाप्त होनेपर जब केवल धुन्धुकारीके लिये ही विमान आया, तब गोकर्णने भगवान्के पार्षदोंसे पूछा कि इन सभी श्रोताओंके लिये विमान क्यों नहीं लाये, तब उन्होंने जो उत्तर दिया है, उसीमें आपकी शङ्काका सम्यक् समाधान विद्यमान है, जो इस प्रकार है—

श्रवणस्य विभेदेन फलभेदोऽत्र संस्थितः।
श्रवणं तु कृतं सर्वैर्न तथा मननं कृतम्।
फलभेदस्ततो जातो भजनादपि मानद॥
सप्तरात्रमुपोष्यैव प्रेतेन श्रवणं कृतम्।
मननादि तथा तेन स्थिरचित्ते कृतं भृशम्॥
अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम्।
संदिग्धो हि हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः॥
अवैष्णवो हतो देशो हतं श्राद्धमपात्रकम्।
हतमश्रोत्रिये दानमनाचारं हतं कुलम्॥
विश्वासो गुरुवाक्येषु स्वस्मिन् दीनत्वभावना।
मनोदोषजयश्चैव कथायां निश्चला मतिः॥
एवमादिकृतं चेत् स्यात् तदा वै श्रवणे फलम्।

(श्रीमद्भा० माहा० ५।७१—७६)

(भगवान्के पार्षदोंने गोकर्णसे कहा—) 'हे मानद! इस फल-भेदका कारण इनके श्रवणका भेद ही है। यह ठीक है कि श्रवण तो सबने समानरूपसे ही किया है, किंतु इसके बाद मनन नहीं किया। इसीसे एक साथ भजन करनेपर भी उसके फलमें भेद रहा। इस प्रेतने सात दिनोंतक निराहार रहकर श्रवण किया था तथा सुने हुए विषयका स्थिरचित्तसे यह सतत मनन-निदिध्यासन भी करता रहता था। जो ज्ञान दृढ़ नहीं होता, वह व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार ध्यान न देनेसे श्रवणका, संदेहसे मन्त्रका और चित्तके इधर-उधर भटकते रहनेसे जपका भी कोई फल नहीं होता। वैष्णवहीन देश, अपात्रको कराया हुआ श्राद्धका भोजन, अश्रोत्रियको दिया हुआ दान एवं आचारहीन कुल—इन सबका नाश हो जाता है। गुरुवचनोंमें विश्वास, दीनताका भाव, मनके दोषोंपर विजय और कथामें चित्तकी एकाग्रता इत्यादि नियमोंका यदि पालन किया जाय तो श्रवणका यथार्थ फल मिलता है।' यदि वे श्रोता फिरसे श्रीमद्भागवतकी कथा सुनें तो निश्चय ही सबको वैकुण्ठकी प्राप्ति होगी।

इससे सिद्ध है कि श्रवणमें श्रद्धा, स्थिरचित्त, निर्मल बुद्धि एवं मननकी आवश्यकता है, साथ ही अभिमानका अभाव एवं उपवास आदि भी सहायक साधन हैं। इनके न होनेसे ही आपको श्रवणरूप फलकी मुक्ति आदिकी प्राप्ति नहीं हुई, यही आपकी शङ्काका सम्यक् समाधान है।

उपर्युक्त समाधानका कथन संक्षेपमें भी वहीं आगे श्लोकमें कहा है—

तच्छृण्वन् प्रपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः। (६।८०)

विचारपरायण मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रवण, पठन करता हुआ मुक्त हो जाता है।

इसी प्रकार अन्य पुराणादि शास्त्रोंमें जहाँ-जहाँ पूरे ग्रन्थ, एक अध्याय, एक श्लोक, एक तीर्थ या एक व्रतकी कथाके श्रवणका जो फल बताया है, वहाँ भी पूरा फल तो श्रद्धा-भक्तिसहित नियमपालनपूर्वक अनुष्ठान करनेपर ही मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं-कहीं जो केवल श्रवण-मात्रसे ही फल-प्राप्तिकी बात कही गयी है, उसका तात्पर्य तो इतना ही है कि श्रवणसे भी संस्कारका आधान हो जायगा, जो आगे सहयोगी सामग्री मिलनेपर अनुष्ठान करा देगा, तब फल प्राप्त हो जायगा। अनुष्ठान-सम्बन्धी श्रवण, व्रत, दान, स्नान, यज्ञ एवं उपवास आदिके माहात्म्ययुक्त कथाओंके लिये ही है, विशुद्ध भगवद्-यश रास-लीला आदि कृष्णचरित्र श्रवणमात्रसे ही परम मङ्गल कर देते हैं, अनुष्ठानकी अपेक्षा नहीं रखते। इस सम्बन्धमें गोपिकाएँ विरहावेशमें भगवान् श्रीकृष्णके प्रति कहती हैं कि—

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥

(श्रीमद्भा० १०।३१।९)

'प्रभो! तुम्हारी लीलाकथा भी अमृतस्वरूप है। विरहसे सताये हुए लोगोंके लिये तो वह जीवनसर्वस्व ही है। बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओं—भक्त कवियोंने उसका गान किया है, वह सारे पाप-ताप तो मिटाती ही है, साथ ही श्रवणमात्रसे परम मङ्गल—परम कल्याणका दान भी करती है। वह परम सुन्दर, परम मधुर और बहुत विस्तृत भी है। जो तुम्हारी उस लीला-कथाका गान करते हैं, वास्तवमें भूलोकमें वे ही सबसे बड़े दाता हैं।'

शङ्का—पुराणोंकी कथाएँ सत्य घटनाएँ तो हैं नहीं, वे तो केवल कविकी मिथ्या कल्पनाएँ ही हैं, ऐसा जो मानते हैं, उन्हें उन मिथ्या कल्पनाओंसे अनुष्ठानकी प्रेरणा भी नहीं मिल सकती, फिर वे अनुष्ठानमें प्रवृत्त कैसे हों?

समाधान—यद्यपि पुराणोंकी कथाएँ सत्य घटनाएँ ही हैं तथापि यदि उन लोगोंकी धारणाके अनुसार मिथ्या कल्पनाएँ ही मान लें, तो भी उनसे प्रेरणा मिल सकती है और मनुष्य अनुष्ठानमें भी प्रवृत्त हो सकता है। जैसे—उपन्यास, रेडियो, ट्रांजिस्टर, सिनेमा, टेलीविजन आदिमें देखी-सुनी-पढ़ी कथाएँ मिथ्या कल्पनाएँ ही हैं, ऐसा जो निश्चित रूपसे जानते हैं, उन्हें भी उनसे ऐसी प्रबल प्रेरणा मिलती है कि वर्तमानमें सभी देशोंके नर-नारी अपने उत्थान आदि कार्योंके अनुष्ठानमें संलग्न हो रहे हैं। अतः हमें भी अपने अभ्युदयके लिये प्रवृत्त होना चाहिये। इससे स्पष्ट होता है कि जो लोग पुराणोंकी कथाओंको सत्य घटनाएँ ही मानते हैं, उन्हें उनके पठन-श्रवणसे आत्मोत्थानके अनुष्ठानकी प्रेरणा मिलेगी, इसमें क्या संदेह?

जय जगदम्बे !

(डॉ० श्रीपरमानन्दजी पाण्डेय, एम्० ए०, बी० एल्०, डी० लिट्०)

जय अम्बे, जय जगदम्बे॥
जय जगजननी सर्वमंगला मंगलमूर्ति भवानी।
जय दुर्गा, जय शिवा भवानी, जय चंडी रुद्राणी॥ जय अम्बे०॥
दया-क्षमा-शुचि-शक्ति-स्वरूपिणि विश्व-रूपिणी माता।
समर-भयंकर असुर-त्रासिनी शरणागत-जन-त्राता॥ जय अम्बे०॥
शरण तुम्हारी आया माता एक पुत्र अज्ञानी।
भक्ति-शक्ति-बल नहीं पासमें दुर्मति है अभिमानी॥ जय अम्बे०॥
एक आस विश्वास लिये माँ! आया शरण तुम्हारी।
मैं हूँ पूत कपूत, सुमाता तू, तेरी बलिहारी॥ जय अम्बे०॥
तेरी कृपा-दृष्टि जब होती अंधा दर्शन पाता।
तू करुणामयि, दीनरक्षिणी, वाञ्छित फलदा माता॥ जय अम्बे०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता-तत्त्व-चिन्तन

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गीतामें तीनों योगोंकी समानता

कर्मयोगे ज्ञानयोगे भक्तियोगे तथैव च।
अस्ति साधनसिद्धौ च गीतायां तु समानता॥

गीतामें भगवान्‌ने कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनों ही योगोंमें एक-जैसी बात कही है, जैसे—कर्मयोगमें—

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।

(४।१८)

'जो मनुष्य कर्ममें अकर्म और अकर्ममें कर्म देखता है।'

ज्ञानयोगमें—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।

(६।२९)

'जो आत्माको सम्पूर्ण प्राणियोंमें और सम्पूर्ण प्राणियोंको आत्मामें देखता है।'

और भक्तियोगमें—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।

(६।३०)

'जो सब जगह मुझे देखता है और मुझमें सबको देखता है।'

इस प्रकार तीनों योगोंमें एक ही तरहकी बात कहनेका तात्पर्य यह है कि साधक जिस योगका अधिकारी हो, उस योगके तत्त्वको वह असंदिग्धरूपसे समझ ले। कर्मयोगमें 'अकर्म', ज्ञानयोगमें 'आत्मा' और भक्तियोगमें 'भगवान्' मुख्य हैं। तात्पर्य है कि अकर्म, आत्मा और भगवान्—तीनों तत्त्वसे एक ही हैं।

कर्मयोगमें 'कर्म'का अभाव और 'अकर्म'का भाव है। जैसे, प्रत्येक कर्मका आरम्भ और समाप्ति होती है; परंतु कर्मके आरम्भ होनेसे पहले भी अकर्म था और कर्मके समाप्त होनेके बाद भी अकर्म रहेगा। यह सिद्धान्त है कि जो वस्तु आदि और अन्तमें रहती है, वह मध्यमें भी रहती है। इसलिये कर्म करते समय भी अकर्म ज्यों-का-त्यों ही है।

ज्ञानयोगमें 'सर्वभूत'का अभाव और 'आत्मा'का भाव है। जैसे, सब शरीरोंका जन्म और मरण होता है; परंतु शरीरोंके जन्मसे पहले भी आत्मा थी और शरीरोंके मरनेके बाद भी आत्मा रहेगी। इसलिये शरीरोंके रहते हुए भी आत्मा ज्यों-की-त्यों ही है।

भक्तियोगमें 'सर्व'का अभाव और 'भगवान्'का भाव है। जैसे, संसार उत्पन्न और नष्ट होता है; परंतु संसारके उत्पन्न होनेसे पहले भी भगवान् थे और संसारके नष्ट होनेके बाद भी भगवान् रहेंगे। इसलिये संसारके रहते हुए भी भगवान् ज्यों-के-त्यों ही हैं।

अकर्म (निर्लिप्तता), आत्मा और भगवान्—ये तीनों स्वतः-सिद्ध हैं। जो वस्तु स्वतः सिद्ध होती है, वह सदाके लिये होती है, सभीके लिये होती है और सब जगह होती है। परंतु पूर्वोक्त कर्म, सर्वभूत और सर्व (वस्तु, व्यक्ति, योग्यता, परिस्थिति, अवस्था आदि)—ये तीनों स्वतःसिद्ध नहीं हैं; अतः ये सदाके लिये, सभीके लिये और सब जगह नहीं हैं।

जो वस्तु कभी है और कभी नहीं है, किसीको मिलती है और किसीको नहीं मिलती, कहीं है और कहीं नहीं है, उसकी प्राप्ति क्रिया और पदार्थसे होती है। इसलिये कर्म, सर्वभूत और सर्वकी प्राप्ति क्रिया और पदार्थके आश्रित है अर्थात् इनकी प्राप्ति अभ्याससाध्य है। परंतु अकर्म, आत्मा और भगवान्‌की प्राप्ति अभ्याससाध्य नहीं है, प्रत्युत निष्कामभाव, विवेक और विश्वासके द्वारा साध्य है। यदि इनकी प्राप्ति अभ्याससाध्य होती तो ये सदाके लिये, सभीको और सब जगह प्राप्त नहीं होते।

कर्म, सर्वभूत और सर्व कभी होते हैं और कभी नहीं होते, किसीको मिलते हैं और किसीको नहीं मिलते, कहीं होते हैं और कहीं नहीं होते, इसलिये स्वयंको इनकी किञ्चिन्मात्र भी आवश्यकता नहीं है। इनकी आवश्यकताका अनुभव करना अकर्म, आत्मा और भगवान्‌से विमुख होना है। अकर्म, आत्मा और भगवान्—इन तीनोंका अनुभव करनेके लिये उत्पत्ति-विनाशशील शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, योग्यता, परिस्थिति आदिकी किञ्चिन्मात्र भी आवश्यकता नहीं है। परंतु यह बात मनुष्यकी समझमें इसलिये नहीं आती कि वह इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तविकताको स्वयंसे अनुभव न करके इन्द्रियोंसे एवं अन्तःकरणसे अनुभव करनेकी चेष्टा करता है। कारण कि ऐसा करनेका उसका स्वभाव पड़ा हुआ है।

अकर्म, आत्मा और भगवान्—ये तीनों तत्त्वसे एक ही हैं और इनका हमारे साथ नित्य-सम्बन्ध है। परंतु कर्म, सर्वभूत और सर्व—इन तीनोंसे हमारा नित्य सम्बन्ध-विच्छेद है। कर्मसे सम्बन्ध-विच्छेदका अनुभव होनेपर 'अकर्म' शेष रह जाता है। अकर्ममें आत्मा भी है और भगवान् भी। सर्वभूतसे सम्बन्ध-विच्छेदका अनुभव होनेपर 'आत्मा' शेष रह जाती है। आत्मामें अकर्म भी है और भगवान् भी। सर्वसे सम्बन्ध-विच्छेदका अनुभव होनेपर 'भगवान्' शेष रह जाते हैं। भगवान्में अकर्म भी है और आत्मा भी।

कर्ममें अकर्मका अनुभव करनेवाला 'कृतकृत्य' हो जाता है—'**स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्**' (४।१८)। सर्वभूतमें आत्माका अनुभव करनेवाला 'ज्ञातज्ञातव्य' हो जाता है—'**ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः**' (६।२९)। सर्वमें भगवान्का अनुभव करनेवाला 'प्राप्तप्राप्तव्य' हो जाता है—'**तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति**' (६।३०)।

कृतकृत्यता, ज्ञातज्ञातव्यता और प्राप्तप्राप्तव्यता—इन तीनोंमेंसे एककी भी प्राप्ति होनेसे शेष दोनों बातें स्वतः आ जाती हैं अर्थात् कृतकृत्य होनेसे कर्मयोगी ज्ञातज्ञातव्य और प्राप्तप्राप्तव्य भी हो जाता है, ज्ञातज्ञातव्य होनेसे ज्ञानयोगी कृतकृत्य और प्राप्तप्राप्तव्य भी हो जाता है तथा प्राप्तप्राप्तव्य होनेसे भक्तियोगी कृतकृत्य और ज्ञातज्ञातव्य भी हो जाता है।

कृतकृत्यता (कुछ करना शेष न रहना), ज्ञातज्ञातव्यता (कुछ जानना शेष न रहना) और प्राप्तप्राप्तव्यता (कुछ पाना शेष न रहना)—ये तीनों होनेसे पूर्णावस्था प्राप्त हो जाती है अर्थात् मनुष्यजन्म सर्वथा सार्थक हो जाता है।

मनुष्य जबतक अपने लिये कुछ भी करता है, तबतक वह कृतकृत्य नहीं होता। परंतु जब वह अपने लिये कुछ नहीं करता, केवल दूसरोंके लिये सब कर्म करता है, तब वह कृतकृत्य हो जाता है। जब साधक अपने स्वरूपको यथार्थरूपसे जान लेता है, अनुभव कर लेता है, तब वह ज्ञातज्ञातव्य हो जाता है। केवल भगवान्को अपना माननेसे, दूसरोंको अपना न माननेसे साधक प्राप्तप्राप्तव्य हो जाता है। तात्पर्य है कि करनेके लिये केवल सेवा है, जाननेके लिये केवल अपना स्वरूप है और पानेके लिये केवल भगवान् हैं।

गोरक्षा एवं दुग्ध-उत्पादन

(श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)

लगभग बीस वर्ष पूर्व जब पुरीके शंकराचार्यजी महाराजने गोहत्या-बंदीके लिये आमरण अनशन किया था, तब सारे देशमें हलचल मच गयी थी। ६५ दिनोंके अनशनके बाद किसी तरह हमारे जगद्गुरुजी महाराजकी प्राणरक्षा हो सकी। धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजने भी दिल्लीमें गोहत्या-बंदीके लिये प्रदर्शन किया। परिणामस्वरूप वे भी लाठी-डंडा खाये और तिहाड़ जेलमें बंद हुए। राष्ट्र-संत श्रीविनोबाजीने भी गोहत्या-बंदीके लिये अपने प्राण त्याग दिये। राष्ट्रकी अमूल्य धरोहर समाप्त हो गयी, किंतु देशमें गोहत्या बंद नहीं हुई।

सन् १९८६के नवम्बर मासमें तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानीजैलसिंहजी जब काशी-गोशालाके शताब्दी-समारोहमें आये, तब उन्होंने इसे स्वीकार किया कि सरकार अपने गोहत्या-बंदीके वचनसे मुकर गयी। आज देशमें गोवंशकी संख्यामें निरन्तर ह्रास हो रहा है। हमारा पशुधन तेजीसे घटता जा रहा है। कारण, कसाईखाने निर्बाध-रूपसे चल रहे हैं एवं गोमांसका निर्यात धड़ल्लेसे हो रहा है। अब समस्या यह है कि यदि हमारे प्रयासके रहते हुए भी गो-हत्या न तो बंद हुई और न इसमें कमी ही आयी, प्रत्युत बढ़ोतरी हो गयी तो हमें लगता है कि हमारा प्रयास गलत रास्तेमें भटक गया है। हमें उस गलतीको पहचानना होगा तथा देखना होगा कि उसे कैसे दूर किया जा सकता है।

आज गोहत्या रोकनेमें सबसे बड़ा बाधक तत्त्व क्या है? हमारे गोरक्षक ऐसे गोवंशको पकड़ते हैं जो हत्याके लिये जा रहे होते हैं, किंतु पकड़नेके बादकी स्थिति इतनी भयावह है कि रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पकड़नेके बाद उस गोवंशको सँभालनेको कोई तैयार नहीं होता। कभी-कभी तो यह भी देखा गया कि ऐसी पकड़ी गयी गायें समुचित चारा-व्यवस्थाके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभावमें तथा चिकित्साकी कमीके कारण दम तोड़ देती हैं। गोरक्षकके ऊपर गोवंशको पकड़नेका ही गुरुतर भार हो तो वह वहन कर सकता है, किंतु उसके बाद उसे समाजसेवी संस्थाओंको या गोशालाओंको सँभालना होगा।

आज देशमें लगभग २,५०० गोशालाएँ हैं। इनमें अधिकांश गोशालाओंकी स्थिति संतोषजनक नहीं है। इनकी स्थिति इतनी दयनीय है कि अपार साधनोंके रहते हुए भी वे न तो अपंग गायोंकी रक्षा कर पाती हैं, न दुग्ध-उत्पादन कर रही हैं और न उपलब्ध भूमिमें हरा चारा ही उत्पादित करती हैं। इन गोशालाओंकी सम्पदाका उपयोग गोरक्षा, गोसंवर्धन, दुग्ध-उत्पादन, हरा चारा-उत्पादन आदिके कार्योंमें किया जा सकता है। यदि इन गोशालाओंको ही केन्द्रविन्दु बनाया जाय तो मेरा निश्चित विश्वास है कि गोवंशके विनाशमें पर्याप्त कमी आ जायगी, गोसंवर्धन होगा, गोपालनके प्रति आम जनतामें रुचि जाग्रत् होगी, दुग्ध-उत्पादन बढ़ेगा एवं हरे चारेका भी उत्पादन होगा। यदि गोशालाओंको स्वावलम्बनकी दिशामें सुदृढ़ किया जाय तो अन्य स्रोतोंकी आमदनीसे अपंग गोवंशकी सुरक्षा एवं देखभाल हो सकती है।

हमें सारे देशमें कार्यकर्ताओंका दल खड़ा करना होगा, सभी गोशालाओंका सर्वेक्षण कराकर उनकी आवश्यकताओं-का संकलन करना होगा तथा तदनुरूप उन्हें साधन सुलभ कराने होंगे। साधन सुलभ करानेमें सरकार एवं दातव्य संस्थाओंसे सहयोग लेना आवश्यक होगा। मेरा निश्चित मत है कि अच्छे कार्यके लिये पैसेकी कमी बाधक नहीं होती, असली कमी कार्यकर्ताओंकी होती है। आज देशकी सभी गोशालाएँ अपने उद्देश्योंकी पूर्ति करें तो कोई कारण नहीं कि गोरक्षा न हो सके एवं गोहत्या बंद न हो। जिस देशमें कभी दूध-दहीकी नदियाँ बहती थीं, उस देशके बच्चे आज दूध-दहीके अभावमें कुपोषणके शिकार हो रहे हैं, यह देशपर कलंक है। इस कलंकको मिटानेके लिये हम सभीको आगे आकर गोशालाओंकी दुर्व्यवस्थाको दूर करना होगा। अन्य प्रदेशोंसे गोवंशको बंगाल एवं केरल जानेसे रोकना कोई कठिन कार्य नहीं है, किंतु पकड़ी हुई गायोंकी सुरक्षा समुचित ढंगसे होनी चाहिये। देशसे गोमांसके निर्यातको भी रोका जा सकता है। इस प्रकार यदि कसाईखानोंको आर्थिक दृष्टिसे अलाभकारी बना दिया जाय तो गोवध अपने-आप रुक जायगा।

आज देशमें गोवंशका सड़कपर विचरण करना अनुचित है। उन्हें उपयुक्त स्थानपर रखना हम सभीका पुनीत कर्तव्य है। गायको पूजाकी वस्तु मानकर अपने कर्तव्यसे च्युत होना हम सभीका अपराध है। इस समस्यापर गम्भीरतासे विचार करना होगा तथा समयबद्ध कार्यक्रम बनाकर सभी गोशालाओंको पूर्णरूपसे उपयोगी एवं सक्षम बनाना होगा। यदि ऐसी स्थिति हो गयी तो देशमें एक क्रान्ति हो जायगी। पुनः दूध-दही सर्व-सुलभ हो जायगा, गोहत्या बंद होने एवं गोधनकी वृद्धि तथा विकाससे हमारी आर्थिक स्थितिमें भी सुधार आयेगा।

उपर्युक्त प्रयोग हमने काशी-गोशालामें करके देखे हैं और हमें इस कार्यमें पर्याप्त सफलता भी मिली है। गोरक्षा-कार्यक्रम इतनी प्रगतिपर है कि सड़क-मार्गसे कसाइयोंद्वारा गोवंशको ले जाना अत्यन्त कठिन हो गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि गोरक्षकोंने गोवंशको पकड़कर गोशालाके जिम्मे किया और गोशालाने उसकी देखभाल एवं चिकित्साका भार अपने ऊपर ले लिया। दुधारू गायोंको रखकर दुग्ध-उत्पादन बढ़ाया एवं नलकूपकी स्थापना करके हरे चारेका उत्पादन बारहों महीने करना सम्भव किया। ऐसे स्थानपर वृक्षारोपण भी किया, जिससे हरे चारेके उत्पादनमें बाधा उत्पन्न नहीं हुई। गोबरगैस-संयन्त्र लगाकर कर्मचारियोंको खाना पकानेकी सुविधा दी एवं रात्रिमें प्रकाश सम्भव हो सका। हमारी गोबरकी खाद हमारे खेतोंमें काम आयी। मधुमक्खी-पालनका प्रयास भी जारी है और इस प्रयोगमें भी सफलता मिलनेकी सम्भावना है।

अपने अनुभवके आधारपर मैंने उपर्युक्त सुझाव दिये हैं। हमें स्वयं कुछ करके दिखाना होगा। हमें यह मानकर चलना होगा कि यदि हमारे सत्प्रयासोंसे उद्देश्योंकी पूर्ति नहीं हो रही है तो हमारा प्रयास गलत दिशामें हो रहा है। उसे सही दिशामें लाकर निश्चित उद्देश्यकी पूर्ति करना ही हमारा चरम लक्ष्य है। गोशालाओंको सुदृढ़ करनेसे न केवल गोहत्या कम होगी, प्रत्युत दुग्ध-उत्पादन भी बढ़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्न और स्वप्नपर अधिकार

(श्रीरामदित्तामलजी भाटिया)

निद्रावस्थामें शरीर और मनके भावोंकी जो अनुभूति होती है, उसे स्वप्न कहते हैं। अर्थात् जब मनुष्य सोता है, होशसे बेहोशीमें जाता है, होशसे बेहोशीमें जाते समय जब वह कुछ होशमें भी होता है और बेहोशीमें भी होता है, तब शरीरमें व्याप्त प्रधान पदार्थ अथवा चित्तकी प्रधान वृत्तिके अनुसार वह कुछ अनुभव करता है, जैसे—पित्त प्रकृतिवाला मनुष्य प्रायः अग्नि और प्रकाश, वातप्रधान व्यक्ति वायु और आकाशमें गमन और कफवाला जलाशय, नदी-नालेका दृश्य देखता है। यही स्वप्न है।

निद्रित अवस्थामें मनुष्यका शरीर और मन अचेत, तमसावृत होता है, इस कारण स्वप्नमें पदार्थोंकी जाँच करनेमें भ्रान्ति होती है। हाँ, जब कभी किसीके शरीर अथवा मनमें विक्षेप कम होता है, तब स्वप्नमें भूत, वर्तमान या भविष्यके यथार्थ दृश्य उसके सामने आते हैं और वे ठीक भी निकलते हैं। इसके अतिरिक्त मानसिक कर्मों अर्थात् वासनाओं या चेष्टाओंका, जो क्रियात्मक रूपमें अभी नहीं आयी हैं, भोग भी स्वप्नमें मिलता है। जैसे कभी-कभी हम यह देखते हैं कि बिना इच्छाके ही स्वप्नमें सुख-दुःखका अनुभव होता है। और कोई स्वप्न उस अवस्थामें अनेक वर्षोंके तथा अनेक जन्मोंके जीवनके होते हैं, जैसे कोई रंक अपने-आपको राजाके रूपमें देखता है और वैसा ही जीवन व्यतीत करता है अथवा कोई राजा अपनेको फकीरके रूपमें देखता है।

इस स्वप्नावस्थाको यदि अधिकृत कर लिया जाय तो उससे सारी सृष्टिका साक्षात्कार हो सकता है, पूर्वजन्मका ज्ञान हो सकता है, सविकल्प समाधिकी प्राप्ति हो सकती है। योगी प्रयत्न करके इसी स्वप्नावस्थाको सविकल्पमें बदलकर शीघ्र जन्म-मृत्यु और जीवनसे मुक्त होनेके लिये अपने शेष मानसिक और शारीरिक भोगोंको दग्ध कर डालते हैं। यहींसे चित्तका निर्माण होता है, जिसका वर्णन योगसूत्रमें इस प्रकार आया है—'**निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात्।**' ऐसा न भी हो तो कम-से-कम स्वप्नपर अधिकार कर लेनेपर स्वप्नमें जो जाग्रद-वस्थाका भ्रम होता है और इस कारण जो भय, शोक, दुःख आदि होते हैं, वे नहीं होंगे।

स्वप्नको स्वप्नके रूपमें देखनेका अभ्यास करते-करते जब वृत्ति परिपक्व हो जायगी, तब स्वप्नमें स्वप्नका ही भान होगा, भ्रम नहीं होगा। इसी प्रकार विवेकके द्वारा जब संसारके वास्तविक स्वरूपका (जो स्वप्नवत् है) ज्ञान हो जायगा, तब संसारका कोई पदार्थ किसी अवस्थामें भी न तो ग्राह्य प्रतीत होगा और न ग्रहण ही किया जायगा अर्थात् इस तरह अपरिग्रह सिद्ध हो जायगा—**अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्ता-सम्बोधः।**' फिर तो सारी सृष्टिका सार रहस्य पूर्णरूपसे मालूम हो जायगा।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो पता चलेगा कि जाग्रत् भी प्रायः कल्पित ही है। जिस वस्तुके विषयमें हमने जैसा सुना है, अथवा जैसी कल्पना की है, उसीके अनुसार उसे मानकर हम चलते हैं। फिर संसारके भी सभी पदार्थ क्षणिक हैं। जब हम जाग्रदवस्थामें व्यवहार करते समय इस नाशवान्, क्षणिक, असार जगत्को, जो स्वप्नसे अधिक और कुछ भी नहीं, सत्य मानते हैं तो फिर स्वप्नमें भी हमारे अन्तःकरणमें वैसी ही स्फुरणा होती है। स्वप्न तो भावनासे ही बनता है और जैसी मनकी धारणा जाग्रदवस्थामें इस स्थूल या सूक्ष्म जगत्के विषयमें होती है, वैसी ही प्रतीति उसके प्रतिविम्बस्वरूप स्वप्नकी भी होती है। स्वप्नमें जिस तरह हम नाना प्रकारके कल्पित दृश्योंके कारण सुख-दुःखका अनुभव करते हैं, ठीक उसी तरह जाग्रदवस्थामें भी तो मनके ही अभ्यासके अनुसार विभिन्न पदार्थोंमें सुख-दुःखकी कल्पना करके हम सुख-दुःखका अनुभव करते हैं। अन्यथा यह जड प्रकृति शुद्ध चेतन जीवात्माको कैसे हानि-लाभ पहुँचा सकती है? मनकी प्यासके कारण ही जीव अपने-आपको सुखी-दुःखी मान रहा है।

अतः जीवनके प्रत्येक क्षणमें विवेकके द्वारा जागतिक समस्त पदार्थोंको क्षणिक, नाशवान्, दुःखरूप मानकर मनकी प्यासको एकदम मिटा देनेका अभ्यास करना चाहिये। मनपर विजय प्राप्त कर लेनेपर सर्वत्र विजय निश्चित है, सर्वाधिकार सुरक्षित है। इसके बिना अन्य सारे साधन व्यर्थ हैं, खिलवाड़ मात्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

परिस्थितिपर फिरसे विचार कीजिये

सप्रेम हरिस्मरण ! आपका पत्र मिले चार महीने हो गये। समयाभाव और स्वभावदोषसे मैं उत्तर नहीं लिख सका, इसके लिये क्षमा चाहता हूँ। आपने अपनी परिस्थिति लिखी, वह अवश्य ही विचारणीय है। ऐसी परिस्थितिमें, आपने जैसा लिखा है, दुर्बल-हृदय और अनिश्चित-बुद्धि मनुष्यके लिये बाध्य होकर इस प्रकारके कर्म करना स्वाभाविक हो जाता है, यह भी ठीक ही है। ऐसी परिस्थितिमें पड़े बिना कोई कैसे कह सकता है कि इस प्रकारके आपद्धर्ममें क्या करना चाहिये। वस्तुतः—

जाके कबहुँ न फटी बेवाँई। सो का जानै पीर पराई॥

—के अनुसार दूसरेकी परिस्थितिका अनुभव करना और उसे उस परिस्थितिमें इच्छा न रहते हुए भी क्यों ऐसा कार्य करना पड़ता है, इसका यथार्थ निर्णय करना बहुत ही कठिन है। तथापि यह तो मानना ही पड़ेगा कि मनुष्य पापको पाप बताते हुए भी यदि उसे करता है तो या तो वह उसका दम्भ है या यथार्थमें समझता नहीं। संखिया खानेसे मनुष्य मर जाता है, यह पक्का विश्वास जिसको होता है, वह सुन्दर दीखनेवाले सुमिष्ट लड्डुओंमें भी संखियेका संदेह हो जानेपर उन्हें नहीं खाता, क्योंकि वह समझता है कि खाऊँगा तो मैं मर जाऊँगा। या इतना उन्मत्त हो गया है कि अपने भले-बुरेका ज्ञान ही खो बैठा है, अथवा उसकी पापमें पापबुद्धि है ही नहीं, केवल दम्भसे उन्हें पाप बतलाता है और परिस्थितिका बहाना लेकर युक्तिवादके द्वारा अपनी दुर्बलताको अवश्यकर्तव्य बतलाकर उसका समर्थन करता है। बहुत बार अच्छाईके वेषमें बुराई आती है, धर्मके नामपर अधर्म आता है और कर्तव्यका स्वरूप धारण करके नितान्त अकर्तव्य आया करता है। ऐसी अवस्थामें मनुष्य उन शास्त्रीय शब्दों या लोकोक्तियोंका, जो अवस्थाविशेषके लिये कर्तव्य होती हैं, सहारा लेकर बुराई, अधर्म या अकर्तव्यका प्रसन्नतापूर्वक वरण करता है। जैसे—

(१) झूठ बोलनेवाला व्यापारी कहता है—व्यापारमें झूठ मिले हुए सत्यके बिना काम ही नहीं चलता। मनु महाराजने—'**सत्यानृतं तु वाणिज्यम्**' कहा है। महाभारतादिमें भी व्यापार-विवाह आदिमें मिथ्या भाषण अपराध नहीं माना गया है।

(२) परिवारमें मोह-आसक्ति रखनेवाला सोचता है—भगवान्‌ने इनको हमारे हाथों सौंपा है, इसलिये इनकी सार-सँभाल करना हमारा धर्म है। भरतजीने भी यही किया था।

(३) आलसी कहता है—

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहै सबके दाता राम॥

(४) भक्त बनकर अपनी पूजा करानेवाला कहता है—

'राम तें अधिक राम कर दासा।'

(५) कड़वा बोलनेवाला कहता है—

बुरे लगें हितके बचन हिये बिचारो आप।
कड़वी भेषज बिनु पिये मिटै न तनकी ताप॥

(६) अपनेको गुरु बताकर पुजवानेवाला उपदेश करता है—

गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेवकी जिन गोबिंद दिये मिलाय॥

(७) संत सजकर पूजा करानेवाला भगवान् रामके वचनोंका प्रमाण देता है—

'मोतें संत अधिक करि लेखा॥'

(८) चोर कहता है—स्वयं श्रीकृष्णने माखन चुराया था। इसीसे उनका नाम 'चौराग्रगण्य' है।

(९) जुआरी मानता है—'**द्यूतं छलयतामस्मि**' गीताके वचनानुसार जुआ तो भगवान्‌का स्वरूप है।

(१०) शराबी और मांसाहारी मनुका प्रमाण देते हैं—

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।

न तो मांसभक्षणमें दोष है, न मद्यमें और न मैथुनमें ही।

(११) स्त्री और सेवकोंपर अत्याचार करनेवाले सारा दोष तुलसीदासजीपर मढ़ते हुए कहते हैं—

ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥

(१२) क्रोधी कहता है—

साँच कहूँ होकर निडर कोई हो नाराज।
मैंने तो सीखा यही साँच बोलिये गाज॥

(१३) माता-पिताकी अवहेलना करके अपने मतका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्थन करनेवाला गाता है—

जाके प्रिय न राम-बैदेही।

तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥

(१४) झूठा आश्वासन देनेवाले सोचते हैं—कुछ भी कह देना है, करना तो है नहीं **'वचने का दरिद्रता।'**

(१५) बात-बातमें डाँट-डपट करनेवाला कहता है—'साँप काटे नहीं तो क्या फुफकारे भी नहीं।'

(१६) भाई-भाईसे लोभवश लड़नेवाला—कौरव-पाण्डवोंकी कथा उपस्थित करता है।

(१७) पर-दोष-दर्शन तथा परनिन्दा करनेवाले प्रमाण देते हैं—

बैद्य न जानैं रोगकौं औ जो नहिं देत बताहिं।

बैद्य धरमतें सो गिरैं रोगी प्रान नसाहिं॥

—और कहते हैं कि यदि हम किसीके दोष न देखें एवं लोगोंको बताकर सावधान न करें तो कैसे उसके दोष छूटें और कैसे लोग उसके दोषोंसे बचें।

(१८) वर्णाश्रमानुकूल धर्म, संयम-नियम, संध्या-वन्दनादिका त्याग करनेवाले अपनेको प्रेमी घोषित करके कहते हैं—'भाई! ये सब तो उन लोगोंके लिये हैं, जिन्होंने प्रेमका मुख नहीं देखा है, प्रेम-राज्यमें इनका क्या काम? एवं नारायण स्वामीके ये दोहे पढ़ देते हैं—

तब लौं यह फाँसी गले, बरनास्रम ब्रत नेम।

नारायण जब लौं नहीं, मुख दिखलावे प्रेम॥

धर्म धैर्य संयम नियम, सोच बिचार अनेक।

नारायण प्रेमी निकट, इनमें रहैं न एक॥

(१९) कर्तव्य-कर्मोंका त्याग करनेवाला अपनेको ज्ञानी मानकर भगवान्‌के शब्दोंकी दुहाई देता है—

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।

आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥

'जिसकी आत्मामें ही रति है, जो आत्मामें ही तृप्त है और आत्मामें ही संतुष्ट है, उस मनुष्यके लिये कोई भी कर्तव्य नहीं है।'

(२०) आहार-विहारमें पशुवत् व्यवहार करनेवाला गीताका श्लोक पढ़ देता है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

'विद्या-विनयसम्पन्न ब्राह्मण, चाण्डाल, गौ, हाथी और कुत्ता—इन सभीमें ज्ञानी पुरुष समदर्शी होते हैं।'

इसी प्रकार और भी अनेकों बहाने होते हैं बुराईका समर्थन करनेके लिये। वस्तुतः यह इन सद्विचारों एवं सदुक्तियोंका भीषण दुरुपयोग और अर्थका अनर्थ है, जो मूर्खतासे या दम्भसे अपनी दुर्बलताको छिपानेके लिये मनुष्य करता है।

अतएव आप अपने हृदयको टटोलकर देखिये, उसमें कोई छिपा हुआ ऐसा दोष तो नहीं है, जो युक्तिवादसे परिस्थितिका बहाना करके आपको धोखा देता हो।

फिर जो धर्मका सच्चा सेवक है और भगवान्‌के पवित्र पथपर चलना ही जीवनका परम कर्तव्य समझता है, उसके लिये तो खुला मार्ग है, उसमें किंतु-परंतुको स्थान ही नहीं है। वह तो ऐसा कोई भी कर्म, किसी भी हेतुसे नहीं करता, जो अधर्म हो और भगवान्‌के पवित्र पथसे च्युत करानेवाला हो।

(२)

आप शरीर या देह नहीं हैं

प्रिय आत्मस्वरूप!

क्या यह आप भलीभाँति अनुभव नहीं कर चुके हैं कि दुःख वास्तवमें देहको अपना स्वरूप समझनेपर ही उत्पन्न होता है। ऐसा कोई भी दुःख नहीं है कि जो शरीरको अपना न समझनेसे सदाके लिये न मिट जाय। क्योंकि सब प्रकारके दुःख शरीरको अपना समझनेपर ही होते हैं और इस भूलके निकल जानेपर सभी दुःखोंका अन्त अपने-आप हो जाता है। यह अखण्ड नियम है कि जबतक हम अपनेको शरीर समझते हैं, तभीतक दूसरेके शरीर तथा संसारके अनेक पदार्थोंमें आसक्त हो उनके गुलाम बन जाते हैं। और यह विचार करनेपर स्वयं अनुभव होता है कि जब हम अपने-आपको किसी कालमें भी शरीर अनुभव नहीं करते, तब हमको किसी भी पदार्थकी इच्छा तथा किसी भी शरीरसे मिलने तथा दर्शन करनेकी अभिलाषा बाकी नहीं रहती, और न कुछ करनेके लिये तथा जाननेके लिये शेष रहता है, प्रत्युत मानव आत्मभावको प्राप्त हो नित्य आनन्दका अनुभव करता है। बास्तवमें तो उस महापुरुषकी दृष्टिमें सृष्टिका लेशमात्र भी स्वरूप शेष नहीं रहता। आनन्द!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०४५से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०४६तक रही है।)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पूर्ववत् पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या २४,६८,५२,२०० (चौबीस करोड़ अड़सठ लाख बावन हजार दो सौ)।

(ख) नाम-संख्या ३,९४,९६,२५,२०० (तीन अरब चौरानबे करोड़ छानबे लाख पचीस हजार दो सौ)।

(ग) षोडश नाम-मन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंगुल, अंजड़, अंजनगाँव, अंधियारखोर, अम्बाला, अकबरपुर, अकलतरा, अकलेरा, अकलैरा, अकहा, अकोला, अक्कलकोट, अगौस, अघोड़ा, अजबपुरा, अजमेर, अटेर, अतर्रा, अधीया, अधोया, अनघौरा, अनवरपुर, अपानदा, अब्दुल्लागंज, अमखेंड़ा, अमरा, अमरावती, अमरावतीनगर, अमरीकलाँ, अमरोहा, अमलाई, अमावद, अमृतपुर, अमृतसर सुधार, अयोध्या, अरई, अरड़का, अरनिया-चौहान, अरसू, अरेराज, अलवर, अलहदादपुर, अलीगढ़, अलीपुर, अल्मोड़ा, अल्लागंज, अशोकपुर, असदपुर, असनावर, अहमदाबाद, अहिनौरा, अहिरौरी, अहिरौरा, अहेरी, आँकिन, आँधी, आंबके, आकोला, आकोट, आगरा, आगानगर, आजमगढ़, आजादनगर, आजेगाँव, आमस, आरंग, आर्यनगर, आलमगंज, आसरानगर, आसल, इंगोहटा, इंदरी, इंदौर, इन्द्राना, इकलहरा, इक्किल, इचलकरंजी, इछावर, इटवारा, इटारसी, इटावा, इमिलिया, इलाहाबाद, इसरौली सेठ, उधरनपुर, उचानामण्डी, उच्चैन, उज्जैन, उटीला, उड़तुम, उदनावाद, उदयपुर, उन्नाव, उरई, उरमा, उल्हासनगर, उसरी, उसरौली, ऊना, एटा, ऐतानगर, ऐली, ओकातिया, ओड़ेकेरा, ओबरा, ओमनगरी, ओलन्दगंज, औखला, औढ़नपुर, औरंगाबाद, कंगटी, कंजर, कंजाड़ी, कंटानिया, कंडारा, कंडारी, कंदिलो, कछगाँव, कछार, कछुआकलाँ, कटक, कटनी, कटलाबाजार, कटासा, कटिहार, कडलगे, कर्णकुटी, कथलौर, कन्नौज, कन्नौद, कन्हौली, कपासन, कपुरीसर, कमता, कमताना, करगहर, करना, करनाल, करमावा, करसाई, करसोंग, करेरा, करेली, कर्वी, कलकत्ता, कल्याणबीघा, कल्याणपुर, कसहा, कसहा (पूर्व), कसही, काँगड़ा, कांगपोकपी, काँटाबाजी, कांडरा, काँधला, काँवट, कागजनगर, काछियाखेंड़ी, काठगढ़, काठमाण्डू, कादीचक, कादीपुर, कानपुर, कारंजा, कारंजालाड, कालन्द्री, कालाहाँडी, कालीकट, कालीगाँव, कालीनगर, कालीमाटी, किताडीह, किलापारा, किशनबाग, किशनपुरा, किशोरगंज, किसानागाँव, कुंडवा-चैनपुर, कुंभीरग्राम, कुटिलिया, कुड़ाना, कुनौनी, कुमारगढ़िया, कुरुक्षेत्र, कुल्लू, कुसमरा, कृष्णानगर, केन्दुआ, केउटी, केकड़ी, केवलारी, कैथी, कैसरगंज, कैसरबाग, कोचीन, कोटद्वार, कोटा, कोटड़ी, कोटपूतली, कोटरा, कोटरी, कोठी, कोयम्बटूर, कोयलाबाखल, कोरबा, कोलाबनगर, कोलाहलपुर, कोलिया, कोल्हापुर, कोहड़िया, खंडवा, खजवा, खजुरहरा, खजुरीरुण्डा, खटनोल, खड्गपुर, खमगाँव, खरकड़ीकला, खरगोन, खरदहाँ नीलकंठ, खरसिया, खरसूलिया, खलपुरा, खलारी, खलीलाबाद,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खागा, खानपुर, खानपुरमेवात, खामगाँव, खालवा, खिरिया करीपुर, खिरियाबाँट, खिवान्दी, खींवसर, खीरीबूरू, खुँटपला, खुपुरा, खुरसरा, खुरहानमिलिक, खुर्जा, खेड़ापतिनगर, खेंतड़ीबाजार, खेरोट, खैरागढ़, खैराली, खोड़, खौरीडीह, गंगमौथान, गंगाखेंड़, गंगापुर, गंगापुर सिटी, गंगावती, गजनेर, गढ़पुरा, गढ़दीवाला, गढ़मोरा, गढ़वाल, गढ़ी उघमपुर, गढ़ैया, गनेड़ी, गया, गरोठ, ग्वाड़, ग्वालियर, गाँधीनगर, गाँधीपुरा, गाजियाबाद, गार्डेनरीच, गितकेरा, गिरजास्थान, गिरिडीह, गीताकुँज, गुजरा, गुजर्राबाजार, गुठिना, गुडगुर्की, गुडेबल्लूर, गुडंगाँव, गुढ़ा, गुढ़ाचक, गुदड़ी रोड, गुना, गुमला, गुरदासपुर, गुरान, गुरुकृपानगर, गुर्मारकुण्डी, गुलखण्ड, गुलबर्गा, गुलरिहा, गुहावली, गैसड़ीबाजार, गोंडा, गोकाक, गोड़हिया, गोनौन, गोपालगंज, गोपालगढ़, गोपालपुर, गोपाला, गोरखपुर, गोरखप्रासी, गोला, गोलाबाजार, गोविन्दगढ़, गोविन्दपुरा, गोविन्दपुरी, गोवर्धनपुरा, गौंडाला, गौरा, गौहाटी, घटेल, घनश्यामपुर, घरहली, घाटाबिल्लोह, घाटशिला, घाटासेर, घोंघोर, घोड़ेगाँव, चंडीगढ़, चंडेश्वर, चंदखुरी, चंदला, चन्दा, चंदेरी, चंदौरा, चंदौसी, चंद्रपुर, चंद्रहटा, चम्पा, चम्पावत, चक, चकवाड़ा, चचाई, चतुरीपुर, चनवथ, चमाला, चरौंदा, चहुँटा, चाँदपुर, चांबी, चादूखेंड़ा, चापरबोवा, चापाखोवा, चिंगावनम्, चिंचोली, चिखली, चित्रगुप्तनगर, चित्तौड़गढ़, चियाँकी, चिरचारी, चिराँवड़ा, चिलबिलवा, चिन्हारा, चीचगढ़, चुड़ी अजितगढ़, चूरू, चेंकुल, चेलावास, चैनपुर, चैनपुरापाड़ा, चौधरीबाड़ा, चौबयाना, चौबारा, छकना, छक्कन टोला, छत्ताटिप्टीगंज, छपरा, छावनी, छिन्दवाड़ा, छिलरो, छेरकपुर, जंगलोट, जगदलपुर, जगदीशपुर, जगन्नाथपुरी, जनापुर, जनोटी पालड़ी, जबरासर, जबलपुर, जमशेदपुर, जमानिया, जमालपुरा, जमुआँ, जम्मू, जयपुर, जयमलसर, जरौली, जलहर, जलहल कुकुरभुड़ा, जलालपुर, जवाहरगंज, जवाहरनगर, जसूसरगेट, जहाँगीराबाद, ज़हाजपुर, जहानाबाद, जांगरू, जाखल, जाखोली, जाजोता, जाजोद, जामजोधपुर, जालना, जालन्धर, जालौन, जावानगर, जुगसलाई, जुहू, जूनापानी, जैतहरी, जोगियारा, जोधपुर, जोबनी, जोरावरडीह, जोशीपाड़ा, जौरा, जौलजीवी, ज्यूनियाँ, ज्योलीकोट, ज्वालागढ़, झगरपुर, झगराखाड़, झड़गाँव, झाँसड़ी, झाडा, झारसुगड़ा, झाला, झालावाड़, झिराना, झुन्झनू, झुमरीतलैया, टनकपुर, टिकठा मुसल्लेपुर, टिपटा, टीकमगढ़, टूण्डला, टेपू, टेहटा, टोंक, टोला शिबनराय, ठील्हा, डगरहा, डड़वाखुर्द, डबरेड़ा, डाँगावास, डाकपत्थर, डालीगंज, डाल्टनगंज, डावलाकलाँ, डाह, डिरावटी, डींग, डीग्रस, डुमरवार, डेढ़गाँव, डोकरघाट, डोडरघाट, डोरण्डा, ढकनापुरवा, ढकलगाँव, ढाँढण, ढालपुर, ढिबकई, ढेंकानाल, ढेकमा, ढोसर, णेगाँव, तखतगढ़, तड़ीगाँव, तपोभूमि, तमकुड़ा, तमलूर, तमाड़, तमेरपारा, तरियानी छपरा, तांदड़ी, तांदलवाड़ी, ताखलाकलाँ, ताजपुर, ताड़कल्स, तामसवाड़ी, तारापुर, तालिबपुर-पण्डेरी, तालीकोटी, तालुक, तिकुनियाँ, तितरिया, तिमारपुर, तिरमहूँ, तिलहर, तिल्हापताई, तिवारी-मरहरिया, तिहाड़, तीखमपुर, तुलसीनगर, तुसरा, तेनसर, तेशवन्तपुर, तोड़ापुर, तोरनी, थड़ोली, थानेसर, दक्षिणनागशंकर, दतिया, दमोह, दरबारगढ़, दरभंगा, दरवांसी, दलसिंहसराय, दाड़ी, दादर, दादरी, दारमाधो, दार्जिलिंग, द्वारकानगर, द्वारकापुरी, दिदावली, दिलकुशा, दिल्ली, दुर्ग, दुर्गापुर, दुलारपुर, दुलावनी, देवखैरा, देवखोत, देवघर, देवजरा, देवढ़ी, देवबन्द, देवमई, देवरिया, देवरी, देवली, देवास, देवीगंज, देवीधूरा, देहरादून, दोस्तपुर, दौसा, धनगरवाड़ी, धनगाँवा, धनडीहाँ, धनपुर, धरगाँव, धरमपेठ, धरहरा, धानीबाजार, धामपुर, धार, धारा, धारूका, धूलकोटी, धूलिया, धेपुरा, धोईन्दा, धौरहरा, धौलकुआँ, नंदूरवार, नगलाकंचन, नथावत, नया-आमपारा, नयी दिल्ली, नरमण्ड, नरवर, नरसिंहपुर, नरहम, नरहरपुर, नरही, नरैना, नरौरा, नल्लजर्ला, नवनीतनगर, नवरंगपुर, नवापारा, नवामोढ़ा, नवाँशहर, नसरुल्लागंज, नांगलरोड, नांदेड़, नागपुर, नापासर, नायला, नारनौल, नारवा, नालन्दा, नासिक, नाहन, नाहरगढ़, नाहरलगन, नाहापाड़ा, निंबोली, निटरी, निटर्रा, निनवाँ, निमौर, निवारणपुर, निशातगंज, नीधरा, नीमच, नेवढ़ी, नेहेना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैनीताल, नैनोद, नोयडा, नौगाँव, नौगवाँ, न्हावी, पंचेवा, पंडरी, पंडरीतराई, पंतनगर, पकरहट, पचेवा, पचौरी, पछियारीटभका, पजावा, पटना, पट्टामुण्डी, पटियाला, पटोरी, पतुलकी, पतोर, पद्मा, पनगराँ, परनाली, परभणी, परवानू, परसरमा, परसावतनगर, परासीखुर्द, पलसी, पलेरा, पश्चिमी धमापुर, पसगवाँ, पांचालीखुर्द, पांडिया, पांडुकेश्वर, पांडेटोला, पांडेपारा, पाटवा, पाटौदी, पानापुर, पायलाकलाँ, पारसेन, पारू, पालकी, पालाखेंड़, पाली, पिंजौर, पिण्डरई, पिछौर, पिथौरागढ़, पिपंडगाँव, पिपरीगहरवार, पिपलिया मण्डी, पिपलौदा, पिलखुवा, पिलौदा, पीनना, पीपरपांती, पीपरियाबीरम्, पीपलगाँव, पीपीगंज, पीरवा, पीलीबंगा, पुख्ताबाजार, पुटुवाँ, पुणे, पुरबियाटोलापजावा, पुरवर, पुरामहोला, पुरी, पुरैना, पुन्हाना, पूनसीसर, पेरीना, पेशोक, पैंची, पैकिन, पैड़ंत, पैन-गंगानगर, पोंडी, पोड़ी, पोलायखुर्द, प्रतापगढ़, प्रद्युम्ननगर, प्रीतमपुरी, प्रेमपुरी, फतेहगढ़-चूड़ियाँ, फतेहपुर, फरहदा, फरीदाबाद, फर्रुखाबाद, फागी, फाजिल्का, फिंगेश्वर, फेरुसा, फैजाबाद, फोर्टकदूर, बंगलौर, बंडामुंडा, बंशीवट, बकतरा, बकेवर, बखरी, बगउचबाजार, बगड़ी, बगासपुर, बगौरागढ़, बघमरिहा, बजाजनगर, बढ़ेरा, बड़कुही, बड़गाँव, बड़गाँवरोड, बड़ैरा, बड़ोपल, बड़ोली (कुण्डल), बड़ौत, बड़ौदा, बतरा, बदायूँ, बनीडीह, बबयाला, बम्बई, बरगदही-बसन्तनाथ, बरनमतगवाँ, बरला, बराखड़कला, बरेली, बरोरी, बरौंधा, बरौनी, बर्नपुर, बलकवाड़ा, बलसाढ़, बलीका खेंड़ा, बसई, बसन्त, बसहा, बहराईच, बाँकी, बाँगरोद, बाँदवान, बाँदा, बाँदीकुई, बाँसधुनी, बाँसपाड़ा, बाघमऊ, बाड़मेर, बाड़ली, बाड़वाह, बानखेंड, बानापुरा, बानीपुर, बानूछपरा, बाबरपुर, बाराजलंगा, बालकोनगर, बालसर, बालसो, बालावाला, बालेसर, बावड़ियाकाजी, बावोली, बासनताला, बासाकला (दमोह), बिंजी, बिक्रमपुर, बिछुआ, बिजनौर, बिझड़ी, बिठुना, बिरझापुर, बिलासपुर, बिलौनाकला, बीगरोद, बीचपट्टी, बीजापुर, बीजुर, बीड, बीदर, बीना, बीनाकंडी, बीबीगंज, बीलीमोरा, बुंदेली, बुरहानपुर, बुलन्दशहर, बेखेड़ीगोसाई, बेगूसराय, बेडगाँव, बेतिया, बेनीकामा, बेनोडाशहीद, बेरावल, बेलरगाँव, बैतड़ी, बैरमपुर, बैरूबाजार, बैहर, बोकठा, बोकारो, बोगधार, बोदरी, बोरावड, बोशिया, ब्रह्मपुरा, ब्राह्मणवाड़ी, ब्राह्मणविगहा, भंजनगर, भगदरी, भगवानपुरा, भगीसा, भजीट, भटकरंजा, भटकोट, भटनीबुजुर्ग, भटवा, भटोहा, भदैनी, भदौरा, भद्रपुर, भद्रावती, भरतपुर, भरनी, भरुआसुमेरपुर, भरूच, भवाली, भागलपुर, भाटीब, भाटरा, भाभरी, भावनगर, भिलाई, भिवानी, भीमगंज, भीममंडी, भीरानी, भुजियाबाजार, भुरकुण्डा, भुल्लाराई, भूरंगखेल, भूपतपट्टी, भूमकहर, भेड़वन, भेलवाडीह, भैंसदेही, भैंसाना, भैरहवाँ, भैसादरहाँ, भोजूडीह, भोपाल, भोपालगढ़, भौंती, भ्रमतपुर, मंगरापर, मंगलौर, मंडी, मंडीढबवाली, मंडीबामोरा, मंदर, मंदसौर, मंसूरी, मऊगंज, मऊजक्शन, मखमेलपुर, मगदूमपुर, मठियांतिवारी, मडलौडा, मथुरा, मथुरीया, मदनपुर, मद्रास, मधुवनी, मधेपुर, मनासा, मनिगाँव, मनिजा, मनीमाजरा, मराठवाड़ा, मलकाजगिरी, मलाँव, मलारनाचौड़, मलिनियाँदिरा, मल्लीताल, मवईया, मसहाँ, मस्मोली, महादा, महना, महनियावास, महमूदपुर, महराना, महरोली, महाजनी, महावीरनगर, महासमुंद, महीधरपुरा, महुआखेंड़ा, महुड़र, महू, महेन्द्रगढ़, महोवा, मांडल, मांडाखली, माधवपुर, माधोपुर-गोविन्द, माननगर, मानसा, मानिकपुर, मायना, मायागढ़ी स्टेट, मारवाड़ जं०, मालगरु, मालब, मालवीयनगर, मालाखेंड़ा, मालासीवास, मालेर-कोटला, माहम, माहे, मिठेपुर, मिडकाबम्हौरी, मिरिक, मिर्जापुर, मिलकोट, मिलानपुर, मीनापाड़ा, मीरपुरसिहोरी, मीरापुर, मुँगेर, मुंडीवाड़ा, मुंदाहेड़ी, मुगलसराय, मुजफ्फरपुर, मुत्तौर, मुरहद्दी, मुरादनगर, मुरादपुरलेन, मुरादाबाद, मुरेठी, मुरैना, मुलताई, मुलीकेट, मुसर्रतपुर, मुसहुला, मुस्तफाबाद, मुहम्दाबाद-गोहना, मूँडी, मूँदी, मूनस्याटी, मूरतपुर, मूल, मेरठ, मेहकर, मैठानी, मैसूर, मैहरी, मोचीपुरा, मोजरी, मोठामारोती, मोड़ियाचुनार, मोतिया-डुमरियाँ, मोतीझील, मोतीनगर, मोतीपारा, मोतीहारी, मोधिया, मोर्शी, मोहनपुर, मोहपा, मोहाना, म्याऊँ, यमुनानगर, यवतमाल, रंगोली,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रकौली, रतननगर, रतनादा, रतलाम, रतिभानपुर, रतपुरकालोनी, रमपुरवाँबाजार, रसीदपुरा, रहमांपुर-स्यावली, रहुआसंग्राम, रांगिया (कामरूप), राँची, राउरकेला, राजकोट, राजगंजपुर, राजगढ़, राजनांदगाँव, राजमहल, राजरूपपुर, राजुराबाजार, राठ, रानीखेत, रानीपुर, रानीबाजार, रामगंज, रामगाँव, रामचन्द्रपुर, रामनगर, रामपुरकलाँ, रामपुरा, रायथल, रायगढ़, रायपुर, रावतभाटा, रिफाईनरीनगर, रिसाली, ऋषभदेव, ऋषिकेश, रीवाँ, रुंडौली, रुड़की, रूपनगर, रूस्तमपुर, रेवतीपुर, रेवाड़ी, रोटीथोर, रोशनाराबाग, रोसरा, रोहतक, रोहतास, रोहतासनगर, रौनियाँ, लंका, लक्सर, लक्ष्मणगंज, लक्ष्मीनगर, लक्ष्मीपुर-ककड़िया, लखनऊ, लखीमपुर, लखोरिया, लगड़ी, लगरगवाँ, लतीफपुर, लत्ता, लबरसी, ललितपुर, लवाइच, लांगीपाली, लाखनडिहरा, लाखेरी, लाजपतनगर, लाडनूँ, लातूर, लायफल, लालगढ़, लालबाग, लालपुरा, लुधियाना, लुहारी, लैलूँगा, लोअरडांडा, लोएँगा, लोरमी, लोसिंगा, लोहरदगा, लोहरौरा, लोहाघाट, लोहादी, लोहियावार्ड, वदनपुर, वरणगाँव, वर्धा, वराही, वागोरी, वामोरीशाला, वाराणसी, वारी, वासदेवासिंघिया, विकाराबाद, विकासनगर, विजतरी, विजयनगर, विदिशा, विद्यानगर, विरौंधी, वेवेजिया, वैभवनगर, वैशाली, वैसारे, शंकरनगर, शंकरसोदियान, शकूरपुर, शरह-बरौलिया, शहडोल, शहद, शहरना, शामनगर, शाहपुर, शाहपुर-टहला, शाहोपुर, शाहोपुर-बरमा, शिकारपुर, शिमला, शिलंगी, शिवरामनगर, शिवाजीनगर, शेगाँव, शेटगेरी, शेरुणा, शोभासर, श्रीगंगानगर, श्रीपुर, श्रीरामनगर, श्रीरामपुर, श्रीविद्यानगर, श्रीश्यामाश्रय, श्यामकुटी, श्यामपुर, श्यामोता, संजौली, संडीला, संबलपुर, संवादनगर, सकती, सकनी, सकरी, सकीठ, सगवाली, सतना, सतारा, सत्तवाड़ा, सथरा, सनई चौराहा, सनकुई, सन्ना, सपोटरा, सफीपुर, समस्तीपुर, समायूँ, समेसर, सरगठिया, सरडीहा, सरदारशहर, सरसई, सरस्वतीनगर, सरहरी, सराड़ा, सरायखास, सलकनपुर, सवंत, सवाई (निकोबार), सवाई-माधोपुर, सहकारनगर, सहसापुर, सहारनपुर, सांगानेर, सांगानेरीगेट, साँचोर, साकेतनगर, साखरवाड़ी, सागर, साधपुर, साफियाबाद, साबरमती, सालमगढ़, साल्हेधोरी, सावनेर, सावली, सासनी, सासाराम, सिंहपुररोड, सिंहभूम, सिकन्दरपुर, सिकराली, सिद्धरामपुर, सिनखेंड़ा, सिपलपुर, सिमरी, सिमरौल, सिरसा, सिलीगुड़ी, सिवनी, सिसोटार, सिहाल, सीकर, सीतापुर, सीतामढ़ी, सीपरी, सीपुरा, सीवान, सीसवाली, सीहोरा, सुंदरगढ़, सुखबाग, सुजानपुरा, सुनाम, सुनेल, सुपौना, सुरखेंड़ा, सुरनाना, सुरमा, सुरेबान, सुवरखोत, सूरत, सूर्यपुर, सूलिया, सेंठा, सेनगाँव, सेमरा, सेमरौर, सेरी, सेलागुटू, सेवकमबावी, सेवर, सेहजला, सेहरी, सैदापुरकलाँ, सोंधीटोला, सोईकलाँ, सोनपुर, सोनपुरा, सोनभद्र, सोनवर्षाराज, सोनीपत, सोनीहरलाल, सोमेश्वर, सोरमपुर, सौड़खुर्द, स्थाणा, स्वालवा, हंडियाना, हँसुआ, हजारीबाग, हत्था, हनुमन्ती, हमीरपुर, हरदाग, हरदी, हरदोई, हरनी, हरिद्वार, हरिपुर, हरीगंज, हरीपुरनायक, हरैया, हलद्वानी, हसनपुर, हसनपुररोड, हस्वा, हॉफा, हाथरस, हापुड़, हाबड़ा, हिंगणघाट, हिंगोली, हिम्मतगंज, हिसार, हीरपुर, हुमायूँपुर, हेनरीबाजार, हैठीवाली, हैदरगढ़, हैदरपुर, होशंगाबाद, होशियारपुर, ५६ ए०पी०ओ०, ९९ ए०पी०ओ०।

जो परमात्मा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, जो सबमें व्याप्त हैं, विश्वके स्रष्टा हैं, अनेक रूपोंवाले हैं, अखिल विश्वको सब ओरसे घेरे हुए हैं और जो कल्याणरूप हैं, उनको जो पहचान लेता है, वह आत्यन्तिक शान्ति—मोक्षको प्राप्त होता है।

—उपनिषद्

उस परमेश्वरको भलीभाँति खोजना चाहिये, जिसको प्राप्त हुए पुरुष फिरसे संसारमें लौटकर नहीं आते और जिससे इस सनातन संसार-वृक्षकी प्रवृत्ति विस्तृत हुई है, उसी आदि परम पुरुषकी शरण ग्रहण करनी चाहिये।—श्रीमद्भगवद्गीता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

पूर्वजन्म तथा कर्मफल

यह घटना लगभग ५० वर्ष पूर्वकी है। उन दिनों यक्ष्माकी समुचित चिकित्सा नहीं थी। जिसे यह रोग हो जाता, वह कुछ ही दिनोंका मेहमान माना जाता था।

बंगाल, फरीदपुर जिलेके श्रीजितेन्द्रनाथ दास वर्मन नामक एक वंगीय युवकको यक्ष्मा हो गया था। कलकत्तेके बड़े-बड़े डॉक्टरोंसे इलाज कराया गया, परंतु कोई लाभ नहीं हुआ। रोग दिनों-दिन बढ़ता ही गया। अन्तमें उसने अपने कुलगुरुके आदेशके अनुसार श्रीतारकेश्वर बाबाके मन्दिरमें पूजा-उपासना प्रारम्भ कर दी। कुछ ही दिनोंके बाद तारकेश्वर बाबासे उसको स्वप्नमें यह आदेश मिला कि 'पूर्वजन्ममें अपने पिताके प्रति बड़ा भारी अपराध करनेके कारण तुम्हें यह रोग हुआ है। तुम यदि उनके चरणरजको ताबीजमें मढ़ाकर धारण कर सको और प्रतिदिन उनका चरणोदक ले सको एवं वे संतुष्ट होकर तुम्हें क्षमा कर दें तो तुम्हारा रोग नष्ट हो सकता है, इसके सिवा अन्य कोई उपाय नहीं है। तुम्हारे पूर्वजन्मके वे पिता इस समय फरीदपुरके बड़े डॉक्टर श्रीसत्यरञ्जन घोषके नामसे प्रसिद्ध हैं, वे एक महापुरुषके शिष्य भी हैं' युवकने पूरी घटना उक्त डॉक्टर महोदयको लिख दी और उनके घर जाकर रहनेकी अनुमति माँगी। डॉक्टर बाबू ऐसे यक्ष्माके रोगीको घरमें रखनेसे घबराये। साथ ही उनके मनमें यह भी आया कि यदि मेरे अस्वीकार करनेसे लड़का मर जायगा तो उसका निमित्त मुझे बनना पड़ेगा। वे कुछ भी निश्चय नहीं कर पाये, तब उन्होंने सारी घटना लिखकर अपने गुरुदेव श्रीस्वामी धनञ्जयदासजी व्रज-विदेहीसे सम्मति चाही। स्वामीजीने उनको लिखा—'इस प्रकारके संक्रामक रोगीको घरमें रखनेसे डरना स्वाभाविक ही है, परंतु वह अपने किसी परिचित या आत्मीयके घरपर ठहर सकता है, अथवा शहरके बाहरकी ओर किसी खुली जगहमें कोई घर किरायेपर लेकर आप उसे टिका सकते हैं और प्रतिदिन टहलते हुए आप एक बार जाकर उसे चरणरज और चरणोदक दे सकते हैं। फिर जब आपके मनमें क्षमा करनेकी आये, तब क्षमा कर दें। इसमें भी असुविधा हो तो आप अपना एक छायाचित्र (फोटो) उसको भेज दें और लिख दें कि वह इस छायाचित्रको ही आपको साक्षात् प्राणमयी मूर्ति मानकर उसीकी चरणधूलि और चरणोदक ले लिया करे। ऐसा करनेसे वह साक्षात् आपसे ले रहा है, यही समझा जायगा। और यदि आप उसे रोगमुक्त करना चाहते हैं तो यह भी लिख सकते हैं कि 'मैंने तुम्हारे पूर्वजन्मके अपराधको क्षमा कर दिया है, मैं चाहता हूँ कि तुम रोगमुक्त हो जाओ।'

स्वामीजीका पत्र मिलनेपर डॉक्टर साहबने उसको एक छायाचित्र भेजकर यह लिख दिया कि 'तुम इसीको साक्षात् मेरा स्वरूप मानकर चरणरज और चरणोदक ले लिया करो, मैंने तुमको क्षमा कर दिया है।'

इस पत्रके पानेके बाद युवक क्रमशः स्वस्थ होने लगा और कुछ ही समयमें पूर्ण स्वस्थ हो गया। फिर वह स्वयं डॉक्टर साहबके पास गया। डॉक्टरने परीक्षा करके देखा, उसके फेफड़ोंमें कोई दोष नहीं है। शरीरसे भी खूब स्वस्थ और सबल है। वह एक दिन रहा और डॉक्टर साहबका चरणोदक पीकर तथा चरणरज लेकर चला गया।

(२)

सत्यकी विजय

सन् १८९६ में महाराष्ट्र और कर्नाटकमें भयंकर अकाल पड़ा। गरीब-गुरबा और गाय-बैल तथा अन्य पशु भूखों मरने लगे। बीजापुरकी तरफके 'लमाण' जातिके कुछ लोग पेट भरनेके लिये कोल्हापुर-राज्यके चिंचली गाँवमें आकर रहने लगे। उनके साथ बहुत-से गाय-बैल भी थे। ये लोग नाममात्र मूल्य लेकर अपनी गौओं और बैलोंको बेचने लगे। कसाइयोंके लिये तो यह मौका ही था। चार आनेसे लेकर बारह आनेतकमें गाय-बैल बिके और कसाई उन्हें डंडे मारते हुए ले जाने लगे।

गाय-बैल एक तो भूखे थे, दूसरे उनपर डंडोंकी मार पड़ने लगी। उनसे एक पग भी चला नहीं जाता था। रास्तेमें हनुमान्‌जीका एक मन्दिर मिला। इन गाय-बैलोंमेंसे एक गाय शायद हनुमान्‌जीको अपना रक्षक जान झुंडमेंसे निकलकर हनुमान्‌जीके सामने जाकर बैठ गयी। कसाइयोंने उसे मार-मारकर उठाना चाहा, पर वह नहीं उठी। उसपर इतनी मार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ी कि साठ-सत्तर जखम हो गये और उनमेंसे रक्त बहने लगा, नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा चल ही रहीं थी। अति दीन होकर कातरदृष्टिसे वह चारों ओर देख रही थी कि कोई भला मानुष आकर छुड़ायेगा। इसी समय गाँवके एक सज्जन व्यक्ति वहाँ आये तो उनसे यह हाल देखा न गया। उन्होंने कसाइयोंको बहुत समझाया, पर उनके निर्दय हृदयपर कोई प्रभाव नहीं हुआ। वे सज्जन गाँवके लोगोंको बुला लाये। गाँवके लोगोंने सब गौओंको अधिक मूल्य देकर छुड़ा लिया, पर दुर्बल एवं अस्वस्थ उस बैठी हुई गौको खरीदनेके लिये कोई तैयार न हुआ। तब उन सज्जनने स्वयं उसे खरीद लिया।

'गोमाता ! अब उठो' उनके यह कहते ही वह उठकर खड़ी हो गयी। सब लोग आश्चर्य करने लगे। आठ-दस दिन दवा करनेपर वह गौ अच्छी हो गयी। जिस दिन वह गौ उनके यहाँ आयी, उस दिनसे उनका भाग्य खुला, उनके घर ऐश्वर्य एवं श्रीकी वृद्धि होने लगी तथा सुख-शान्तिका साम्राज्य छा गया।

उनकी यह विभववृद्धि कुछ ईर्ष्यालु प्रकृतिके लोगोंसे न सही गयी। एक वर्षके अंदर ही 'गौ चोरी की है' इस झूठे अभियोगपर उनके नाम गिरफ्तारीका वारंट निकला। घरके सब लोग रोने लगे, गौ भी रँभाने लगी। वे दुष्ट प्रकृतिके लोग गायको मारते हुए ले जाने लगे, परंतु उन सज्जनके द्वारा गौको छीन ले जानेका प्रबल विरोध करनेपर उन्हें भी अत्यधिक मार सहन करनी पड़ी। अन्तमें वे विवश हो गये, तब उन्होंने गौको छोड़ दिया। सरकारी आदमी उसे मारते हुए महाल रायबागमें ले गये और वहाँ उसे कसकर बाँध रखा। गौने खाना-पीना छोड़ दिया और वैसे ही बिना कुछ खाये-पीये, आठ दिन जहाँ-की-तहाँ खड़ी रही। यह देखकर मजिस्ट्रेटको दया आयी और उन्होंने गौको छोड़ देने और उन्हें वापस कर देने तथा अभियुक्तोंको दण्ड देनेका आदेश दिया। अन्तमें सत्यकी ही विजय होती है, सम्मानके साथ वह गौ उनके घर पहुँचायी गयी, गौको और सबको बड़ा आनन्द हुआ।

(३)

गौओंने गवाही दी !

सतारा जिलेके कराड़ तालुकेमें कासार सिरंबा नामक एक ग्राम है। यहाँके रहनेवाले गोविन्ददास महाराज महान् गोभक्त थे। उनकी गोभक्तिकी कथा अतिशय हृदयस्पर्शी है। इनके मठमें इनके बैठने और सोनेके स्थानको छोड़ बाकी सब जगह गौओंके गोठोंसे ही भरी हुई थी। गौ-बछड़ोंकी सेवा करनेमें ही इनका सारा दिन बीतता था। एक बार इनकी कुछ गौएँ खो गयीं। इन्होंने तहसीलदारकी कचहरीमें दरख्वास्त दी और यों टहलते-टहलते पासके बेलवड़ बाजारमें चले गये तो खोयी हुई गौओंमेंसे कई इन्हें कसाइयोंके हाथोंमें दीख पड़ीं। इन्होंने पुलिसमें सूचना दी। कसाइयोंने कुछ सबूत पेश किये यह दिखानेके लिये कि गौएँ हमारी हैं। इनसे पूछा गया—आपके पास कोई सबूत ? इन्होंने जवाब दिया—'मेरी गौएँ ही मेरा सबूत हैं। वे ही मेरी गवाही देंगी।' यह सुनकर बहुत लोग हँस पड़े।

जो बोल नहीं सकती, वह गवाही कैसे दे सकती है ? पर सच्ची श्रद्धा-भक्ति हो जानेपर कुछ भी असम्भव नहीं है। पाषाणकी मूर्ति यदि भोग पा सकती है तो विश्वजननी गोमाता अपने भक्तकी ओरसे गवाही क्यों नहीं दे सकती ? तहसीलदारने जब पुनः पूछा कि आपकी तरफसे कौन गवाह है तो गोविन्ददासजीने गौओंकी तरफ पुनः अँगुलीसे इशारा किया। तहसीलदारने कहा—'आप गौओंकी तरफ इशारा करते हैं, पर ये गौएँ आपकी हैं, इसका सबूत क्या है ?' गोविन्ददासजीने कहा—'ये गोमाताएँ ही मेरी गवाह हैं। मैं इन्हें बुलाता हूँ, ये यदि मेरे पास आ जायँ और अपना प्यार दिखा दें तो आप मानेंगे या नहीं ?'

तहसीलदार तथा प्रतिपक्षी लोग जब राजी हुए तब गोविन्ददासजीने गौओंको पुकारा—'गङ्गा, गोदा, यमुना, कृष्णा, सावित्री मेरी माता ! आओ, आओ, मेरी माता ! आओ !' इस तरह पुकारते हुए ज्यों ही उन्होंने उन गौओंको अपने पास आनेके लिये हाथसे इशारा किया, त्यों ही सब गौएँ अपने बन्धन तुड़ाकर उनके पास दौड़ी आयीं और उनका बदन चाटने लगीं। यह देखकर सब लोग और कसाई भी दंग रह गये और गौएँ गोविन्ददासजीके पीछे-पीछे मठके अंदर अपने गोठोंमें आ गयीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

(१)

श्रीमत् कुलानन्द ब्रह्मचारी महोदयने श्रीश्रीसद्गुरुसङ्ग, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ९०, बँगला संवत् १२९७ के श्रावणकी डायरीमें महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामीके निम्नलिखित वृत्तान्तको उद्धृत किया है—'एक दिन कालीदहके पास यमुनाके किनारे पहुँचते ही एक प्रेत मेरे सामने आकर छटपटाने लगा। मैंने पूछा—'यों किसलिये कर रहे हैं?' उसने कहा—'प्रभु! बचाइये, बचाइये, अब यह क्लेश मुझसे सहा नहीं जाता। सैकड़ों-हजारों बिच्छू मुझे सदा काटते रहते हैं। यन्त्रणासे छटपटाता हुआ मैं दिन-रात दौड़ा करता हूँ। एक घड़ीके लिये भी मुझे शान्ति नहीं मिलती। आप मेरी रक्षा कीजिये।' मैंने उससे पूछा—'यह आपके किस पापका दण्ड है?' प्रेतने चिल्लाकर रोते हुए कहा—'प्रभु! यहाँ मैं एक मन्दिरका पुजारी था। भगवान्की सेवाके लिये मुझे जो कुछ धनादि मिलता, उसे सेवामें न लगाकर मैं भोग-विलासमें नष्ट कर देता और दुराचारमें प्रवृत्त रहता था। यही मेरा सबसे बड़ा अपराध है।' मैंने उससे पूछा—'आपके इस भोगकी शान्ति कैसे हो सकती है?' उसने कहा—'मेरा श्राद्ध नहीं हुआ। श्राद्ध होते ही मेरा यह क्लेश मिट जायगा। आप दया करके मेरे श्राद्धकी व्यवस्था करा दें।' मैंने फिर पूछा—'किस प्रकार व्यवस्था करें।' उसने कहा—'अपने श्राद्धके लिये मैंने डेढ़ हजार रुपये अपने भतीजेको सौंपे थे, परंतु उसने अबतक मेरा श्राद्ध नहीं किया। आप दया करके उसके पाससे वे रुपये मँगवा लें। उनमेंसे कुछ भगवान्की सेवामें लगा दें और शेष रुपयोंसे मेरे कल्याणके लिये श्राद्ध करवा दें।'

मैंने उस मन्दिरके पुजारीके पास जाकर उससे सारी बातें कहीं। फिर उस मृत पुजारीके भतीजेको सब बातें विस्तारपूर्वक बतलायी गयीं। पहले उसने यही सोच रखा था कि इन रुपयोंका किसीको पता नहीं है, कौन पूछेगा। जो कुछ हो, अन्तमें उसने रुपये दे दिये और विधिपूर्वक श्राद्ध-महोत्सव हो गया। इस व्यवस्थासे प्रेतकी यन्त्रणा मिट गयी।''

(२)

महात्मा श्रीसंतदास बाबाजीने कहा था कि कई वर्षों पहलेकी बात है, कलकत्ता हाईकोर्टके एक सुप्रसिद्ध न्यायाधीश परलोकवासी हो गये थे। कहा जाता है कि वे जब जीवित थे, तब उनके भोजनमें प्रतिदिन दो मुर्गियोंकी आवश्यकता होती थी। उक्त न्यायाधीश महोदय मरकर प्रेत हुए और असह्य नरकयातना भोगने लगे। उस प्रेतात्माने सहायता पानेके लिये बहुत-से आत्मीय स्वजनोंके सामने प्रकट होकर उन्हें दर्शन दिये। परंतु प्रेतात्माको देखते ही सब लोगोंके डर जानेके कारण वह किसीको अपनी दुःखगाथा नहीं सुना सकी। अन्तमें एक धर्मप्राण सज्जन व्यक्तिके सामने प्रकट होकर उसने अपनी क्लेश-कहानी सुनायी। प्रेतात्माने कहा—'मैं बड़े भारी क्लेशमें हूँ, मुझे मानो सैकड़ों बिच्छू एक साथ काट रहे हों—ऐसी असह्य यातना मैं भोग रहा हूँ। दारुण प्यासके कारण मेरे प्राण छटपटाते रहते हैं, पर मुझको पीनेके लिये जल नहीं दिया जाता, खून दिया जाता है। मेरे नामपर यदि कोई गयाजीमें पिण्ड दे दे तो मेरी यातना मिट सकती है।' उक्त सज्जन पुरुषने परलोकगत उन न्यायाधीश महोदयके नामसे गयाजीमें पिण्ड दिलवाये, पीछे ज्ञात हुआ कि उनकी यातना शान्त हो गयी।

यद्यपि वे अपने क्षेत्रमें न्यायमूर्ति एवं धर्माधीशके नामसे प्रसिद्ध थे तथापि यहाँके प्रसिद्ध न्यायमूर्ति होनेके कारण कोई परलोकमें नरक-भोगसे बच जायगा, ऐसा मानना सर्वथा भ्रम है। समस्त न्यायके अधिष्ठाता, सर्वान्तर्यामी, सर्वनियन्ता परमात्माका विधान ही सर्वोपरि है। उसकी दृष्टिमें बड़े-छोटे, धनी-निर्धन, पण्डित-मूर्ख आदि सभीके प्रति कोई भेदभाव नहीं है और उनके कर्मोंका परिणाम सर्वथा शुद्ध न्यायके अनुसार होता है तथा प्राणीका भावी जन्म या नरक-स्वर्गादिकी व्यवस्था भी उनके स्वकर्मोंके आधारपर ही होती है।

सेवाके बदलेकी आशा मत रखना, तुम जिसकी सहायता करो यदि वह तुम्हें धन्यवाद न दे, तो भी बुरा न मानना। यह स्मरण रखना कि तुमने जो सेवा की है, वह शरीरकी नहीं प्रत्युत आत्माकी है। ओठ भले ही न हिलें, तुम आत्माकी उपकार-प्रियताका दर्शन अवश्य ही कर सकोगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। भारतसे बाहर अन्य देशोंमें तो यह स्थिति और भी भयानक है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्व-शान्तिके लिये श्रीहरिके नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(बृहन्नारदीयपुराण)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवान्‌के नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्‌के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्‌के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मङ्गलमय भगवान्‌के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय भगवान्‌की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण, जप, कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक, पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष तीस करोड़ नामजपकी प्रार्थना की गयी थी। प्रतिवर्षकी भाँति यद्यपि इस वर्ष भी लोगोंने बड़े उत्साहसे भगवन्नामका जप किया है तथा साढ़े चौबीस करोड़से कुछ अधिक मन्त्र-नाम-जपकी सूचनाएँ विभिन्न स्थानोंसे हमें प्राप्त हुई हैं, जिन्हें इसी अङ्कमें अन्यत्र प्रकाशित किया गया है। पिछले वर्ष यह नाम-जपकी संख्या लगभग सवा चौबीस करोड़ थी। अधिक जपके लिये हमारी प्रार्थनापर यद्यपि जपकी संख्या कुछ अधिक बढ़ी है तथापि वह तीस करोड़ नहीं पहुँच पायी है। अतः आप महानुभावोंसे पुनः इस वर्ष तीस करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है। यह नाम-जप और अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा वि० सं० २०४७ तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्‌के इस प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं—

१-जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनाङ्क १२।११।१९८९ ई०) रविवार रखी गयी है। इसके बाद भी किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा सं० २०४७ को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

२-सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

३-एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप तो अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

४-संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अंगुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीकी माला उत्तम होगी।

५-यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समयपर आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

६-बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

७-संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं; उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रतिमन्त्रजपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जन जपकी संख्याकी सूचना ही भेजें, जप करनेवालोंके नाम आदि नहीं। सूचना भेजनेवालोंको अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें अवश्य लिखने चाहिये।

८-प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

९-जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर और प्रभावक बनते हैं।

१०-सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बंगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

११-सूचना भेजनेका पता—'नामजप-कार्यालय', द्वारा—कल्याण-सम्पादकीय-विभाग, गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस २७३००५ (गोरखपुर) है।

प्रार्थी—
राधेश्याम खेमका
सम्पादक-'कल्याण'

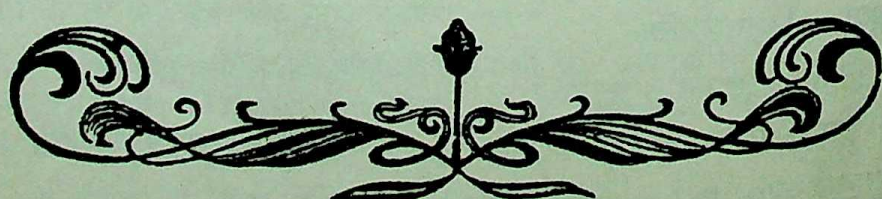

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

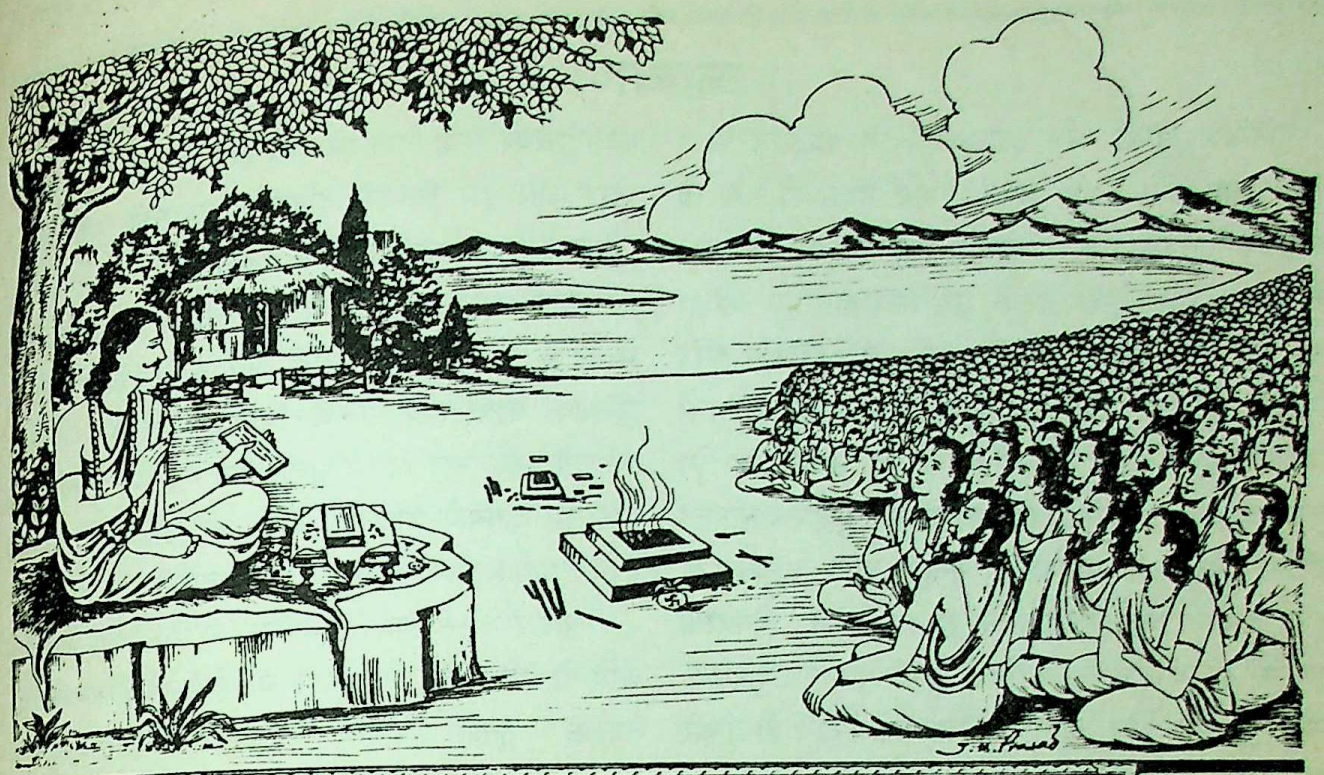

कल्याण

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत्।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥

वर्ष ६३ } गोरखपुर, सौर कार्तिक, वि०सं० २०४६, श्रीकृष्ण-सं० ५२१५, नवम्बर १९८९ई० { संख्या ८ / पूर्ण संख्या ७५३

आनन्दघनकी खीझ

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ।
मोसौं कहत मोल कौ लीन्हौ, तू जसुमति कब जायौ ?
कहा करौं इहि रिस के मारैं, खेलन हौं नहिं जात।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरौ तात ॥
गोरे नंद, जसोदा गोरी, तू कत स्यामल गात।
चुटकी दै-दै ग्वाल नचावत, हँसत सबै मुसुकात ॥
तू मोहीं कौं मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन-मुख रिस की ये बातैं, जसुमति सुनि-सुनि रीझै ॥
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत।
सूर स्याम मोहिं गोधन की सौं, हौं माता तू पूत ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

दुनियाके सुधार और उद्धारकी चिन्ता छोड़कर पहले अपना सुधार और उद्धार करो। तुम्हारा सुधार हो गया तो समझो कि दुनियाके एक आवश्यक अङ्गका सुधार हो गया। यदि ऐसा न हुआ, तुम्हारे हृदयमें उच्च भावोंका संग्रह नहीं हो सका, तुम्हारी क्रियाएँ राग-द्वेषरहित, पवित्र नहीं हुईं और तुमने दुनियाके सुधारका बीड़ा उठा लिया तो याद रखो, तुमसे दुनियाका सुधार होगा ही नहीं। यह मत समझो कि तुम लोकसेवक हो, लोकसेवा करते हो तो फिर तुम्हारे व्यक्तिगत चरित्रसे इसका क्या सम्बन्ध है। तुम्हारा चरित्र कलुषित या दूषित होगा तो तुम लोकसेवा कर ही नहीं सकते। लोकसेवा तुम उस सामग्रीसे ही तो करोगे जो तुम्हारे पास है। दुनियाके सामने तुम वही चीज रखोगे, उसे वही पदार्थ दोगे जो तुम्हारे अंदर है। दुनियाको तुम स्वाभाविक ही वही क्रिया सिखलाओगे, जो तुम करते हो। इससे दुनियाका कल्याण कभी नहीं होगा।

जबतक तुम्हारी आभ्यन्तरिक आँखोंपर राग-द्वेषका चश्मा चढ़ा है, तबतक तुमको वस्तुस्थितिका यथार्थ दर्शन नहीं होगा और यथार्थ ज्ञान बिना तुम इस बातका विचार नहीं कर सकोगे कि किस बातसे किसका सुधार या उद्धार होगा। विचार करोगे भी तो वह यथार्थ नहीं होगा। क्योंकि तुम्हारे विचारमें वही कार्य ठीक जँचेगा जिसमें तुम्हारा राग है। परंतु सम्भव है, वह कार्य ठीक न हो।

तुम यथार्थमें सुधरे हुए नहीं हो और दुनियाका सुधार करना चाहते हो, तो ऐसी हालतमें दो बातें होंगी, या तो तुम अज्ञानसे अपनेको उत्तम स्थितिमें पहुँचा हुआ—दुनियाको सुधारनेकी योग्यता रखनेवाला उच्च कोटिका पुरुष मानकर अभिमानके वश हो जाओगे अथवा दम्भ और कपट करने लगोगे। दोनों ही तरहसे तुम्हारा पतन होगा। दुनियाका सुधार तो होगा ही नहीं।

अभिमान दूसरोंको तुम्हारी दृष्टिसे अपनेसे नीचे गिरे हुए दिखायेगा। तुम उनपर शासन करना चाहोगे, उनके नेता बननेकी इच्छा करोगे, अपने झंडेके नीचे लाकर उन्हें अनुयायी बनाना चाहोगे। वे तुम्हारे अभिमानसे चिढ़ेंगे। परस्पर वैमनस्य होगा—द्वेषपूर्ण दलबंदियाँ होंगी। तुम्हारी और उनकी शक्ति एक-दूसरेको नीचा दिखानेमें खर्च होने लगेगी। चित्त अशान्त रहेगा और इस चिन्तामें दुनियाके सुधारकी बात भूलकर दुनियाका बड़ा अकल्याण कर बैठोगे।

याद रखो—जिस क्रियासे या चेष्टासे दुनियाकी यथार्थ भलाई है, उसमें तुम्हारी भलाई अवश्य ही निहित है। परंतु दुनियाकी भलाई स्वयं भले बने बिना तुम कर ही नहीं सकते। इसलिये पहले खुद अपना सुधार करो। अपना सुधार होनेके बाद तुम दुनियाके सुधारका बीड़ा नहीं उठाओगे। फिर तो तुम्हारी प्रत्येक क्रिया दुनियाका सुधार करेगी।

याद रखो—जबतक तुम मान-बड़ाईके लिये लोकसेवा करते हो, लोकसेवा करके मान-बड़ाई पानेमें प्रसन्न होते हो, तबतक तुम्हारे मनमें लोकसेवाके साथ-ही-साथ मान-बड़ाईकी एक ऐसी चाह छिपी है, जो धीरे-धीरे तुम्हें लोकसेवासे हटाकर लोकरञ्जनकी ओर ले जाती है। और जब तुम्हारे मनमें लोकरञ्जनका भाव हो जायगा—तुम्हारा उद्देश्य लोकरञ्जन हो जायगा, तब तुम्हें लोकसेवा बिलकुल छोड़नी पड़ेगी। फिर तो तुम वही करोगे जिसमें लोकरञ्जन होगा। क्योंकि उसीसे तो तुम्हें मान-बड़ाई मिलेगी। जिस क्रिया और चेष्टासे तुम्हें मान-बड़ाई नहीं मिलेगी, उसे तुम नहीं करोगे—चाहे वह लोकहित और अपने हितके लिये कितनी ही आवश्यक क्यों न हो। और जिस क्रिया या चेष्टासे तुम्हें मान-बड़ाई प्राप्त होगी, उसे बुरा माननेपर भी तुम करोगे। तुम्हारा जीवन दम्भ और कपटपूर्ण बन जायगा।

इसका यह तात्पर्य नहीं कि तुम लोकसेवा करना छोड़ दो। लोकसेवा करो—खूब करो, परंतु साथ ही अपनेको लोकसेवाके योग्य भी बनाते रहो। कूड़ा भरे हुए झाड़ूसे दूसरेका घर झाड़ने जाओगे तो वहाँ झाड़नेके बदले कूड़ा बिखेर दोगे। तुम्हारे अंदर जितनी ही पवित्रता आयेगी, उतनी ही तुम लोकसेवाकी योग्यता प्राप्त करोगे। इसलिये बड़ी सावधानीसे अपने भावोंको पवित्र बनाओ, अपने चरित्रको सुधारो, अपने आचरणोंको ऊँचा बनाओ, राग-द्वेषका त्याग करो और मान-प्रतिष्ठाकी चुहड़ी चाहको छोड़ो, फिर तुम जो कुछ करोगे, उसीसे दुनियाका सुधार या उद्धार होगा, चाहे उस समय तुम्हारी क्रियाएँ सर्वथा निवृत्तिपरक ही क्यों न हों।— 'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार-साधना

(स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज)

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥

इस जगत्में ज्ञान-जैसी पवित्र करनेवाली वस्तु दूसरी नहीं। यहाँ यज्ञ, दान, तप, सेवा, पाठ-पूजा, व्रत-उपवास, जप-ध्यान आदि जितने अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले साधन हैं तथा गङ्गा आदि तीर्थ भी जो पापका नाश करके मनुष्यको पवित्र करनेवाले हैं, इनमें कोई भी ज्ञानकी बराबरी नहीं कर सकते। ये सभी चित्तशुद्धिके द्वारा ज्ञान उत्पन्न करनेमें साधनरूप होनेके कारण पवित्रकारक माने जाते हैं। तप, पाठ-पूजा, तीर्थाटन आदि साधनमात्र हैं, परंतु ज्ञान साध्य है। तप आदिसे अन्तःकरण शुद्ध होता है, इतनी ही इनकी चरितार्थता है, क्योंकि अन्तःकरणके निर्मल होनेके बाद ज्ञानके लिये कोई दूसरा साधन नहीं करना पड़ता। अन्तःकरणके विशुद्ध होनेपर ज्ञान तो अपने-आप प्रकट होता है, क्योंकि वह स्वयम्भू है। शरीरमें सर्वत्र व्याप्त आत्मा ही ज्ञानस्वरूप है और अन्तःकरणके शुद्ध हो जानेपर आत्माका प्रतिविम्ब उसमें ठीक-ठीक पड़ता है। यह आत्मदर्शन ही ज्ञान है।

यह प्रसङ्ग चल रहा था कि इतनेमें वहाँ एक वयोवृद्ध पुरुष आये। प्रसङ्गकी समाप्तितक बैठे-बैठे सुनते रहे। फिर बोले—'स्वामीजी! आप जिसे ज्ञान कहते हैं, वह तो कोई सहज साध्य वस्तु नहीं दीखती। मैंने तो बहुत अध्ययन किया, बहुत अभ्यास किया, योगवासिष्ठ पढ़ा, विचार-सागर बाँचा, पञ्चदशी भी देखी और उपनिषद्का भी स्वाध्याय किया, परंतु ज्ञान क्या है और वह कैसे प्राप्त होता है—यह बात अभी समझमें नहीं आयी। तब फिर ज्ञानसे जन्म-मरणका बन्धन दूर होता है, यह बात कैसे समझमें आ सकती है? इनके पढ़नेसे शब्दज्ञान अवश्य हुआ और तर्कसे दूसरोंको अद्वैत ज्ञान भी समझा सकता हूँ, परंतु मेरे मनका समाधान नहीं होता कि वह ज्ञान क्या वस्तु है? और उससे भव-बन्धन कैसे कटता है? आप कृपा करके यह बात समझा दें तो मैं आया करूँ।' उस दिन तो समय हो गया था, इसलिये दूसरे दिन जरा पहले आनेके लिये कहकर मैंने उनको बिदा किया और उसके बाद दूसरे सत्सङ्गी भी धीरे-धीरे जाने लगे।

दूसरे दिन पण्डितजी यथासमय आ पहुँचे और उचित शिष्टाचारके साथ सामने बैठकर बोले—'आपकी आज्ञाके अनुसार मैं समयपर आ गया। अब कृपा करके मुझको ज्ञानका विषय समझाइये।'

मैंने कहा—'देखिये, कल मैंने यह बतलाया था कि ज्ञानको उत्पन्न नहीं करना पड़ता, अन्तःकरण शुद्ध होनेपर वह अपने-आप प्रकट हो जाता है।'

अब देखिये! प्रत्येक वस्तु अपने वास्तविक स्वरूपमें दीख पड़े—इसीका नाम ज्ञान है और इसके विपरीत जब वस्तुका यथार्थ स्वरूप समझमें न आये तो उस स्थितिको अज्ञान कहते हैं। इस अज्ञानको शास्त्र 'अविद्या' नामसे भी पुकारते हैं और वस्तुके यथार्थ स्वरूपको समझनेमें यह बाधक होती है। इस अविद्याका मूल चार प्रकारका है और उनमें फिर कितने ही दूसरे भेद उत्पन्न होते हैं। जो अपना स्वरूप नहीं है, उसे अपना स्वरूप मानना। अर्थात् जो 'मैं नहीं', उसको 'मैं हूँ'—ऐसा कहना, और जो 'मैं' है, उसको 'मैं' नहीं—ऐसा कहना। जो स्वभावतः अपवित्र है, उसको पवित्र मानना और जो सदा ही पवित्र है, उसको अपवित्र समझना। जो अजन्मा और अविनाशी है,उसको जन्म-मरणके विकारसे युक्त मानना और जो निरन्तर क्षयशील है, उसको अजर-अमर बनानेका प्रयत्न करना। जो नित्य सुखरूप, आनन्दरूप है, उसको दुखी मानना और जो कभी सुखरूप नहीं हो सकता, उसको सुख पहुँचानेमें जीवनको बर्बाद करना—यह अविद्या है। ज्ञान नित्य है, उसको उत्पन्न करना नहीं पड़ता तथापि इस अविद्याका पर्दा पड़ जानेके कारण ज्ञानका अनुभव नहीं होता। यह बात समझाते हुए भगवान्ने गीतामें कहा है—

'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥'

'अज्ञानके द्वारा ज्ञानके ढँक जानेपर प्राणी मोहको प्राप्त होते हैं।' भगवान् कहते हैं कि ज्ञान नित्य है, फिर भी अविद्याका पर्दा पड़ जानेके कारण मनुष्य अज्ञानमें भटका करता है। बादलके आ जानेपर जैसे सूर्य दीखता नहीं और न दीखनेपर कोई यह नहीं मानता कि सूर्य है ही नहीं, इसी प्रकार ज्ञानका दर्शन करनेके लिये ही अविद्याका आवरण दूर करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, ज्ञानको उत्पन्न नहीं करना पड़ता।

इस आवरणको दूर करनेके लिये योगवासिष्ठने विचारको मुख्य साधन बतलाया है। श्रीशंकराचार्य भी इसी साधनको बतलाते हुए कहते हैं—

'नोत्पद्यते विना ज्ञानं विचारेणान्यसाधनैः।'

पण्डितजी—हाँ, यह मैं जानता हूँ, यह श्लोक 'अपरोक्षानुभूति'का है।

मैं—अच्छा तो उसका अर्थ भी आप ही कीजिये।

पण्डितजी—**ज्ञानं विना विचारेण (वा) अन्यसाधनैः (किञ्चित्) नोत्पद्यते।** अर्थात् ज्ञानके बिना वस्तुके विचारमात्रसे या दूसरे साधनोंसे कुछ उत्पन्न नहीं होता।

मैं—वाह पण्डितजी वाह! आपने अपने नामको सार्थक कर दिया। **'पण्डा सूक्ष्मबुद्धिः यस्य अस्ति स पण्डितः'**—जिसकी बुद्धि सूक्ष्म है, वह पण्डित है। पण्डितजी! जरा विचारिये तो आप स्वयं कहते हैं कि यह श्लोक 'अपरोक्षानुभूति' का है। अनुभूतिका अर्थ है यथार्थ ज्ञान और वह भी परोक्ष नहीं, अपरोक्ष—अर्थात् अनुभवमें आया हुआ प्रत्यक्ष ज्ञान। अब जहाँ अपरोक्ष ज्ञानका विषय चलता हो, वहाँ साग-भाजी उत्पन्न करनेकी तो बात ही नहीं होनी चाहिये। आपने तो ऐसा ही अर्थ कर दिया। यहाँ तो ज्ञानकी बात है और अपरोक्ष ज्ञान कैसे होता है, यह समझाना है। प्रसङ्गके अनुसार पदका अर्थ करना चाहिये, न कि अपनेको जैसा ठीक लगे वैसा। इस श्लोकार्धका यह अन्वय है—

'विचारेण बिना अन्यसाधनैः ज्ञानं न उत्पद्यते।'

'विचारके बिना अन्य किसी भी साधनसे ज्ञानका उदय नहीं होता।' अविद्याका आवरण हटे, तब ज्ञानका उदय हो, इसलिये आवरणकी निवृत्तिके लिये भी विचार ही मुख्य साधन है।

आपको जो कठिनाई पड़ रही है वह यही है—**'स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः'**—जहाँ अपने-आप ही पोथी पढ़कर धीर गम्भीर विद्वान् हो जानेकी संतुष्टि होती है, वहाँ उसका ऐसा ही फल निकलता है। इसका परिणाम क्या होता है—यह आपको अज्ञात नहीं है, अतः आपको साधनसम्पन्न होना चाहिये।

विचारकी स्थिरताके लिये कुछ आश्रय चाहिये, बिना उसके वह कहाँ स्थिर रहेगा? अन्तःकरणमें तो विविध भोग-कामनाएँ भरी रहती हैं, तब फिर विचार स्थिर कहाँ रहेगा?

मान लीजिये कि आप यात्रामें निकले हैं। पासमें एक लोटा है, उसमें आपने मट्ठा भर रखा है। अब आपको दूध लेना है। यदि आप मट्ठेके साथ दूध लेंगे तो दूध बिगड़ जायगा और इससे मट्ठा भी खाने योग्य नहीं रहेगा। इसलिये या तो आपको दूध पीनेका विचार छोड़ देना चाहिये या मट्ठेका मोह त्यागना चाहिये। दोनों चीजें एक पात्रमें नहीं रह सकतीं। इसी प्रकार यदि तत्त्वज्ञान-रूपी दूध पीना है तो अन्तःकरणमें भरे हुए भोग-कामनारूपी मट्ठेको त्याग देनेसे ही छुटकारा है। यदि कामनाओंको न छोड़ सकें तो फिर तत्त्वज्ञानसे हाथ धोना पड़ेगा। दोनों एक साथ नहीं रह सकते।

इसीलिये हमारे शास्त्रोंने साधन-चतुष्टयको ज्ञान-साधनमें आवश्यक बतलाया है। इसलिये पहले तो विवेकके द्वारा सम्पूर्ण वैराग्ययुक्त बने, वैराग्ययुक्त होकर षट्सम्पत्ति प्राप्त करे; क्योंकि वैराग्य न होगा तो षट्सम्पत्तिका दम्भ भी हो सकता है, अतएव वैराग्य तो प्रमुख साधन है। इसके बाद सच्ची मुमुक्षुता जाग्रत् होगी और तब थोड़े ही साधनसे आपको ज्ञानका साक्षात्कार हुए बिना न रहेगा।

फिर, विचारके लिये बुद्धिको एकाग्र तथा तीक्ष्ण बनाना चाहिये। इसके लिये मल और विक्षेप—इन दो दोषोंको दूर करना चाहिये। इन दोनों दोषोंके दूर होनेपर सूक्ष्म विचारसे आवरण-भङ्ग सहज ही हो जायगा।

पहले जो करना चाहिये, वह किया नहीं और बारंबार पढ़नेमें ही लगे रहे, इससे भला ज्ञान स्थिर कहाँसे होगा? वाचनमें आनन्द अवश्य मिलता है, परंतु वह विषयोंके आनन्द-जैसा ही है। विषय जैसे भोग-कालमें ही आनन्द देते दीखते हैं और पूर्व-उत्तरकालमें तो केवल ग्लानिका ही अनुभव होता है, इसी प्रकार अन्तःकरणको शुद्ध किये बिना ज्ञान स्थिर नहीं होता, इसलिये जबतक बाँचते रहें या चर्चा करते रहें, तभीतक ज्ञानका आनन्द मिलता है, पूर्व-उत्तरकालमें ग्लानि ही रहती है, जैसे इस समय आपको दीखता है, वैसे ही।

अब देखिये, पण्डितजी! इस भावको श्रीशंकराचार्यने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार वर्णित किया है—

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद् भुक्तये न तु मुक्तये॥

वाणीके द्वारा धाराप्रवाह भाषण या शास्त्रकी व्याख्या करनेमें कुशलता तथा विद्वान् पुरुषकी विद्वत्ता मुक्ति प्रदान नहीं कराती, प्रत्युत केवल संसारके मायिक भोगोंको प्राप्त कराती है।'

अस्तु, विद्वत्ता और ज्ञानके बीच एक और महान् अन्तर है, वह भी समझने योग्य है। विद्वत्ता श्रमसाध्य है। पुरुष प्रयत्नसे उसको प्राप्त कर सकता है। सतत अभ्यास और परिश्रमके फलस्वरूप उसकी प्राप्ति हो सकती है, परंतु ज्ञान कृपासाध्य है। जब ईश्वरकी और गुरुकी कृपा होती है, तभी विशुद्ध अन्तःकरणमें स्वयं ज्ञानका स्फुरण होता है। रूपकसे समझावें तो ज्ञान स्वयम्भू है और विद्वत्ताकी प्रतिष्ठा परिश्रम करके करनी पड़ती है।

इस प्रकार तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये किसी प्रबल पुरुषार्थकी या बहुत-से ग्रन्थोंके बाँचनेकी आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है अन्तःकरणको निर्मल करके दृष्टिको सम करनेकी ।

अब ज्ञान क्या है, यह समझनेकी चेष्टा करें। मैंने पहले कहा था कि वस्तुका सम्यग्दर्शन होना ही ज्ञान है। इसलिये 'मैं देह हूँ—और इस कारण देहके सम्बन्धमें आनेवाले प्राणी—पदार्थ मेरे हैं'—यह अज्ञानका स्वरूप है। और 'मैं आत्मा हूँ'—यह ज्ञानका स्वरूप है। 'मैं ब्रह्म हूँ' या 'मैं आत्मा हूँ'—ऐसा केवल बोलनेसे ही आनन्द नहीं मिलता, प्रत्युत इसका पक्का निश्चय हो जाना चाहिये और वह जीवनमें उतर जाना चाहिये। यह बात श्रीअध्यात्मरामायणमें इस प्रकार समझायी गयी है—

बुद्धिप्राणमनोदेहाहंकृतिभ्यो विलक्षणः।
चिदात्माहं नित्यशुद्धो बुद्ध एवेति निश्चयम्॥
येन ज्ञानेन संवित्ते तज्ज्ञानं निश्चितं च मे।
विज्ञानं च तदेवैतत् साक्षादनुभवेद् यदा॥

'जिस (ज्ञानके) साधनके द्वारा 'मैं नित्य, शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यस्वरूप आत्मा हूँ और बुद्धि, प्राण, मन, शरीर और अहंकारसे विलक्षण हूँ'—ऐसा निश्चय होता है, वही 'ज्ञान'का स्वरूप है, यह श्रीरामचन्द्रजी स्वमुखसे कहते हैं। इस विलक्षणताका जब साक्षात् अनुभव होता है, जीवनमें जब यह बात उतर आती है, तब वह 'विज्ञान' कहलाता है।'

'मैं आत्मा हूँ' यह निश्चित हो जानेपर 'मैं सत्-चित्-आनन्दरूप हूँ—यह निश्चय हो जाता है। यह निश्चय हो जानेके बाद ऐसा अनुभव होने लगता है कि 'मैं सत् हूँ'—इसलिये मेरा जन्म-मरण नहीं होता है, 'मैं चित् हूँ'—इसलिये चेतनस्वरूप होनेके कारण ज्ञानस्वरूप हूँ, अतः ज्ञानकी प्राप्तिके लिये मुझे भटकना नहीं है तथा मैं आनन्दस्वरूप हूँ, अतएव सुखकी प्राप्तिके लिये भोगसाधन इकट्ठा करना भी नहीं है।

इसी प्रसङ्गको भगवान्ने उत्तरगीतामें इस प्रकार समझाया है—

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः।
नैवास्ति किञ्चित् कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित्॥

'जो योगी ज्ञानरूपी अमृतसे तृप्त हो गया है और इस प्रकार उसे जो करना था, वह सब कर चुका है, ऐसे तत्त्वज्ञानीको कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। यदि यह समझे कि कुछ कर्तव्य शेष रह गया है तो वह यथार्थ तत्त्वज्ञानी नहीं है। उसका ज्ञान परोक्ष है। अनुभव होनेके बाद तो कर्तव्यभ्रान्ति सर्वथा दूर हो जाती है।

इस प्रकार 'मैं आत्मा हूँ'—यह अनुभव होनेके बाद तो बस आनन्द-ही-आनन्द, चतुर्दिक् आनन्द ही है ! शरीर अपने प्रारब्धके अनुसार सुख-दुःख-भोग भोगता है। यह हमें द्रष्टाभावसे देखते रहना है। इससे हमको कोई सुख-दुःख नहीं होता।

आज हमने 'ज्ञान क्या है अर्थात् ज्ञानका सच्चा स्वरूप क्या है ?' इस सम्बन्धमें विचार किया और इस निर्णयपर पहुँचे कि 'मैं आत्मा हूँ' इतना ही ज्ञानका स्वरूप है, ऐसा अनुभव होनेके बाद ज्ञानी सदाके लिये कृतकृत्य हो जाता है।

कल हम लोग 'ज्ञानसे जन्म-मरणरूपी बन्धनकी निवृत्ति कैसे होती है' इसका विचार करेंगे। इस बीचमें आप इस विषयपर खूब विचार करके देखें और कुछ समझना हो तो फिर पूछ लें।

दूसरे दिन पण्डितजी यथासमय आ गये और हमलोगोंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात आरम्भ की। यह प्रसङ्ग कलकी अपेक्षा और भी अधिक ध्यानसे समझने योग्य है, क्योंकि इसमें सूक्ष्म विचारकी आवश्यकता है। अतः ठीक सावधान होकर सुनिये।

अब यह विचार कीजिये कि 'कौन जन्म लेता है।' वह स्थूल शरीर ही जन्म लेता है, यह तो हम प्रत्यक्ष देखते हैं, जब शरीर उत्पन्न होता है, उस समय उसका कोई भी नाम नहीं होता। नाम तो हम अपने व्यवहारकी सुविधाके लिये पीछेसे रखते हैं। पश्चात् वही शरीर जब बड़ा होता है तो वह जवान कहलाता है और फिर जीर्ण होने लगता है तब वृद्ध कहलाता है। कालक्रमसे वह शरीर जब मृत्युको प्राप्त होता है, तब कहते हैं कि अमुक व्यक्ति मर गया। आप तो शरीरकी इन सारी अवस्थाओंको देखनेवाले हैं, अतएव शरीरसे भिन्न हैं। जैसे घड़ेको देखनेवाला घड़ेसे भिन्न होता है और घड़ारूप नहीं होता, उसी प्रकार आप भी शरीरको देखनेवाले हैं, इसलिये शरीरसे भिन्न हैं और किसी कालमें आप शरीर नहीं हैं। आप प्रतिदिन व्यवहारमें कहते हैं कि आज मेरा शरीर ठीक नहीं है, आजकल मेरा शरीर दुबला हो गया है, मेरा शरीर अब वृद्ध हो गया आदि। जैसे अपनी कलमसे या अपने कोटसे आप भिन्न हैं, इसी प्रकार अपने शरीरसे भी आपको भिन्न ही होना चाहिये। यह बात शास्त्रमें इस प्रकार समझायी गयी है। अतः इसका मनन करके, 'मैं शरीरसे भिन्न हूँ और मैं शरीररूप हो सकता ही नहीं' ऐसा निश्चय कर लें—

घटद्रष्टा घटाद् भिन्नः सर्वथा न घटो यथा।
देहद्रष्टा तथा देहो नाहमित्यवधारयेत्॥

जब आप ऐसा निश्चय कर लें कि (निश्चय होना चाहिये, केवल बोलनेसे काम नहीं चलता) 'मैं शरीर नहीं, किंतु शरीरका द्रष्टा हूँ' तब फिर शरीरके जन्म लेने और मरनेसे आपको क्या लेना-देना है ? जिस प्रकार कुत्ता अपनी पूँछ हिलाये या स्थिर रखे , इसमें देखनेवालेको जैसे कोई हानि या लाभ नहीं, उसी प्रकार शरीर जन्मे या मरे, इसमें आप देखनेवालेकी भला क्या हानि या लाभ हो सकता है, जो इसके जन्म-मरणका आप निवारण करें ?

फिर, शरीरके जन्म-मरणके निवारणका कोई उपाय ही नहीं है, क्योंकि शरीरकी अवधि तो उसके जन्मके पूर्व ही निश्चित हो गयी होती है। श्रीभागवतकार स्पष्ट शब्दोंमें कहते हैं—

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते।
अद्य वाब्दशतान्तेऽपि मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवम्॥

अतः शरीरके जन्म-मरणकी निवृत्ति होनेवाली नहीं है। शुम्भ-निशुम्भ, रावण-हिरण्यकशिपु आदि तो महाबलवान् थे और मृत्युके निवारणके लिये उन्होंने अथक परिश्रम भी किया था, तथापि उनको भी मृत्युकी शरण लेनी ही पड़ी। इस प्रकार शरीरका जन्म-मरण रोका नहीं जा सकता। फिर आप तो शरीरके जन्म-मरण आदि षट् विकारोंके केवल देखनेवाले हैं, इसलिये आपका अपना तो जन्म-मरण है ही नहीं, अतः उसकी निवृत्तिके लिये आप परिश्रम क्यों करें ?

पण्डितजी—अब मैंने समझा कि शरीर ही जन्मता है और शरीर ही मरता है, इसलिये मेरा जन्म-मरण है ही नहीं, परंतु आपने मुझको शरीरका द्रष्टा बतलाया तो फिर शरीरके व्यवहारको देखनेवाला मैं हूँ कौन ?

मैं—पण्डितजी ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया? द्रष्टाका स्वभाव शास्त्रोंने जो समझाया है, उसे सुनिये—

दृग्दृश्यौ द्वौ पदार्थौ स्तः परस्परविलक्षणौ।
दृग्ब्रह्म दृश्यमायेति सर्ववेदान्तडिण्डिमः॥

अर्थात् इस जगत्में दो ही पदार्थ हैं और दोनों एक दूसरेसे भिन्न स्वभाववाले हैं। एक द्रष्टा है और दूसरा दृश्य। द्रष्टा यानी ब्रह्म या परमात्मा अथवा आत्मा और दृश्य यानी माया अथवा उसका कार्य यह नामरूपात्मक जगत्। ब्रह्म, परमात्मा, आत्मा, भगवान् आदि शब्द भिन्न-भिन्न हैं, परंतु ये सभी एक ही परम तत्त्वके वाचक हैं। वेदान्तका यह सिद्धान्त है कि आप आत्मा हैं, फिर आपका जन्म-मरण कैसे हो सकता है, जो आपको उसकी निवृत्ति करनी पड़े ?

पण्डितजी—'अब मैंने समझा कि मैं आत्मा हूँ।' तो फिर कर्म कौन करता है ? शरीर तो जड है और आत्मा निष्क्रिय तथा शान्त है। फिर उन कर्मोंका फल भोगनेवाला कौन है ? तथा उन कर्मोंको भोगनेके लिये उच्च-नीच योनियोंमें जन्म लेनेवाला कौन है ? ये प्रश्न उलझे ही रह जायँगे। अतएव इन प्रश्नोंका जबतक समाधान नहीं होता, तबतक 'मैं आत्मा हूँ'—यह निश्चय कैसे हो सकेगा ?'

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गो-महिमा और गोरक्षाकी आवश्यकता

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

गोरक्षा हिंदूधर्मका एक प्रधान अङ्ग माना गया है। प्रायः प्रत्येक हिंदू गौको माता कहकर पुकारता है और माताके समान उसका आदर करता है। जिस प्रकार कोई भी पुत्र अपनी माताके प्रति किये गये अत्याचारको सहन नहीं करेगा, उसी प्रकार एक आस्तिक और सच्चा हिंदू गोमाताके प्रति निर्दयताके व्यवहारको नहीं सहेगा, गोहिंसाकी तो वह कल्पना भी नहीं सह सकता। गौके प्राण बचानेके लिये वह अपने प्राणोंकी आहुति दे देगा, किंतु उसका बाल भी बाँका न होने देगा। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके पूर्वज महाराज दिलीपके चरित्रसे सभी लोग परिचित हैं। उन्होंने अपने कुलगुरु महर्षि वसिष्ठकी बछिया नन्दिनीकी रक्षाके लिये सिंहको अपना शरीर अर्पण कर दिया, किंतु जीते-जी उसकी हिंसा न होने दी। पाण्डवशिरोमणि अर्जुनने गोरक्षाके लिये बारह वर्षोंतक वनवासकी कठोर यातना स्वीकार की।

परंतु हाय! वे दिन अब चले गये। हिंदूजाति आज दुर्बल हो गयी है। हम अपनी स्वतन्त्रता, अपना पुरुषत्व, अपनी धर्मप्राणता, ईश्वर और ईश्वरीय क़ानूनमें विश्वास, शास्त्रोंके प्रति आदरबुद्धि, विचार-स्वातन्त्र्य, अपनी संस्कृति एवं मर्यादाके प्रति आस्था—सब कुछ खो बैठे हैं। आज हम आपसकी फूट एवं कलहके कारण छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। हम अपनी संस्कृति एवं धर्मपर किये गये प्रहारों एवं आक्रमणोंको व्यर्थ करनेके लिये संघटित नहीं हो सकते। हम अपनी जीवनी-शक्ति खो बैठे हैं। मूक पशुओंकी भाँति दूसरोंके द्वारा हाँके जा रहे हैं। राजनीतिक गुलामी ही नहीं, अपितु मानसिक गुलामीके भी शिकार हो रहे हैं। आज हम सभी बातोंपर पाश्चात्त्य दृष्टिकोणसे ही विचार करने लगे हैं। यही कारण है कि हमारी इस पवित्र भूमिमें प्रतिवर्ष लाखों-करोड़ोंकी संख्यामें गाय और बैल काटे जाते हैं और हम इसके विरोधमें अँगुलीतक नहीं उठाते। आज हम दिलीप और अर्जुनके इतिहास केवल पढ़ते और सुनते हैं, उनसे हमारी नसोंमें जोश नहीं भरता। हमारी नपुंसकता सचमुच दयनीय है!

हम सरकारके मत्थे अपनी धार्मिक भावनाओंको कुचलनेका दोष मँढ़ते हैं, हम अपने मुसलमान भाइयोंपर गायके प्रति निर्दयताका अभियोग लगाते हैं, किंतु अपने दोष नहीं देखते। गौओंके प्रति हमारी आदरबुद्धि केवल कहनेभरके लिये रह गयी है। हम केवल वाणीसे ही उसकी पूजा करते हैं। हमीं तो अपनी गौओं और बैलोंको कसाइयोंके हाथ बेचते हैं। हमीं उनके साथ दुष्टता एवं क्रूरताका बर्ताव करते हैं—उन्हें भूखों मारते हैं, उनका सारा दूध दुह लेते हैं, बछड़ेका हिस्सा भी छीन लेते हैं, बैलोंपर बेहद बोझा लाद देते हैं, न चलनेपर उन्हें बुरी तरहसे पीटते हैं, गोचरभूमियोंका सफाया करते जा रहे हैं और फिर भी अपनेको गोरक्षक कहते हैं और विधर्मियोंको गोघातक कहकर कोसते हैं। हमारी वैश्यजातिके लिये कृषि और वाणिज्यके साथ-साथ शास्त्रोंने गोरक्षाको भी प्रधान धर्म माना है, परंतु आज हमारे वैश्य भाइयोंने गोरक्षाको अनावश्यक मानकर छोड़ रखा है। हमारी गोशालाओंका बुरा हाल है और उनके द्रव्यका ठीक-ठीक उपयोग नहीं होता। उनमें परस्पर सहयोगका अभाव है। सारांश, सब कुछ विपरीत हो गया है।

दूसरी जातियाँ अपने गोधनकी वृद्धिमें बड़ी तेजीके साथ अग्रसर हो रही हैं। दूसरे देशोंमें क्षेत्रफलके हिसाबसे गौओंकी संख्या भारतकी अपेक्षा कहीं अधिक है और प्रति मनुष्य दूधकी खपत भी अधिक है। वहाँकी गौएँ हमारी गौओंकी अपेक्षा दूध भी अधिक देती हैं। कारण यही है कि वे गौओंको भरपेट भोजन देते हैं, अधिक आरामसे रखते हैं, उनकी अधिक सँभाल करते हैं और उनके साथ अधिक प्रेम और कोमलताका बर्ताव करते हैं। अन्य देशोंमें गोचरभूमियोंका अनुपात भी खेतीके उपयोगमें आनेवाली भूमिकी तुलनामें कहीं अधिक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि हम अपनेको गोपूजक और गोरक्षक कहते हैं, वस्तुतः आज हम गोरक्षामें बहुत पिछड़े हुए हैं। गोजातिके प्रति हमारे इस अनादर एवं उपेक्षाका परिणाम भी प्रत्यक्ष ही है। अन्य देशोंकी अपेक्षा हम भारतीयोंकी औसत आयु बहुत ही कम है और अन्य देशोंकी तुलनामें हमारे यहाँके बच्चे बहुत अधिक संख्यामें मरते हैं। यही नहीं, अन्य लोगोंकी अपेक्षा हमलोगोंमें जीवट भी बहुत कम है। कहना न होगा कि दूध और दूधसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बने हुए पदार्थोंकी कमी ही हमारी इस शोचनीय अवस्थाका मुख्य हेतु है। इससे यह बात प्रत्यक्ष हो जाती है कि किसी जातिके स्वास्थ्य एवं आयु-मानके साथ गोधनका कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। अस्तु,

हमारे शास्त्र कहते हैं कि गायसे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि होती है। दूसरे शब्दोंमें धार्मिक, आर्थिक, सांसारिक एवं आध्यात्मिक—सभी दृष्टियोंसे गाय हमारे लिये अत्यन्त उपयोगी है। पुराणोंमें लिखा है कि जगत्‌में सर्वप्रथम वेद, अग्नि, गौ एवं ब्राह्मणोंकी सृष्टि हुई। वेदोंसे हमें अपने कर्तव्यकी शिक्षा मिलती है, वे हमारे ज्ञानके आदिस्रोत हैं। वे हमें देवताओंको प्रसन्न करनेकी विद्या—यज्ञानुष्ठानका पाठ पढ़ाते हैं। गीतामें भी कहा है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥
देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥
इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥
अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥
एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥

(३।१०-१६)

'प्रजापति ब्रह्माजीने कल्पके आदिमें यज्ञसहित प्रजाओंको रचकर उनसे कहा कि 'तुमलोग यज्ञके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुमलोगोंको इच्छित भोग प्रदान करनेवाला हो। तुमलोग इस यज्ञके द्वारा देवताओंको उन्नत करो और वे देवता तुमलोगोंको उन्नत करें। इस प्रकार निःस्वार्थभावसे एक दूसरेको उन्नत करते हुए तुमलोग परम कल्याणको प्राप्त हो जाओगे। यज्ञके द्वारा बढ़ाये हुए देवता तुमलोगोंको बिना माँगे ही इच्छित भोग निश्चय ही देते रहेंगे।' इस प्रकार उन देवताओंके द्वारा दिये हुए भोगोंको जो पुरुष उनको बिना दिये स्वयं भोगता है, वह चोर ही है। यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और जो पापीलोग अपना शरीर पोषण करनेके लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पापको ही खाते हैं। सम्पूर्ण प्राणी अन्नसे उत्पन्न होते हैं, अन्नकी उत्पत्ति वृष्टिसे होती है, वृष्टि यज्ञसे होती है और यज्ञ विहित कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला है। कर्मसमुदायको तू वेदसे उत्पन्न और वेदको अविनाशी परमात्मासे उत्पन्न हुआ जान। इससे सिद्ध होता है कि सर्वव्यापी परम परमात्मा सदा ही यज्ञमें प्रतिष्ठित है। हे पार्थ! जो पुरुष इस लोकमें इस प्रकार परम्परासे प्रचलित सृष्टिचक्रके अनुकूल नहीं बरतता अर्थात् अपने कर्तव्यका पालन नहीं करता, वह इन्द्रियोंके द्वारा भोगोंमें रमण करनेवाला पापायु पुरुष व्यर्थ ही जीता है।'

ऊपरके वचनोंसे यह प्रकट होता है कि (१) यज्ञकी उत्पत्ति सृष्टिके प्रारम्भमें हुई और (२) यज्ञ हमारे अभ्युदय (लौकिक उन्नति) एवं निःश्रेयस (परम कल्याण) दोनोंका साधन है। यज्ञसे हम जो कुछ चाहें प्राप्त कर सकते हैं। लौकिक सुख-समृद्धि तथा ऐहिक एवं पारलौकिक भोग हमें देवताओंसे प्राप्त होते हैं। देवता भगवान्‌की ही कलाएँ—भगवान्‌की ही दिव्य चेतन विभूतियाँ हैं, जो मनुष्यों एवं मनुष्योंसे निम्न स्तरके जीवोंकी लौकिक आवश्यकताओंको पूर्ण करते हैं—हमारे लिये समयानुसार घाम, चाँदनी, वर्षा आदिकी व्यवस्था करके हमारे वनस्पतिवर्गका और उनके द्वारा हमारे जीवनका पोषण करते हैं। वे ही हमें रहनेके लिये पृथ्वी, हमारी प्यास बुझानेके लिये जल, हमारे भोजनको पकाने तथा हमारा शीतसे त्राण करनेके लिये अग्नि, साँस लेनेके लिये वायु तथा इधर-उधर घूमनेके लिये अवकाश प्रदान करते हैं। सारांश, वे ही इस संसारचक्रकी व्यवस्था करते हैं, जीवोंके कर्मोंकी देख-रेख तथा उनके अनुसार शुभाशुभ फलभोगका विधान करते हैं तथा हमारे जीवन-मरणका नियमन करते हैं। इन भगवत्कलाओंको प्रसन्न रखने—इनका आशीर्वाद, सहानुभूति एवं सद्भाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त करनेके लिये आदान-प्रदानके सिद्धान्तको चालू रखनेके लिये—जो जगच्चक्रके परिचालनके लिये आवश्यक एवं अनिवार्य है—यज्ञानुष्ठानके द्वारा इनकी आराधना करना मनुष्यमात्रका परम कर्तव्य है। जबतक भारतमें यज्ञ-यागादिके द्वारा देवताओंकी आराधना होती थी, तबतक यह देश सुखी एवं समृद्ध था, समयपर यथेष्ट मात्रामें वर्षा होती थी तथा बाढ़, भूकम्प, दुष्काल एवं महामारी आदि दैवी संकटोंसे यह प्रायः मुक्त था। जबसे यज्ञ-यागादिकी प्रथा लुप्तप्राय हो गयी, तभीसे यह देश अधिकाधिक दैवी प्रकोपोंका शिकार होने लगा है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञसे अभ्युदय एवं निःश्रेयस दोनों सिद्ध होते हैं। संसार-चक्रका परिचालन करनेवाले भगवत्कलारूप देवताओंकी प्रसन्नताद्वारा वह हमारी सुख-समृद्धिका साधन बनता है और निष्कामभावसे केवल कर्तव्यबुद्धिपूर्वक किये जानेपर वह भगवत्प्रीतिका सम्पादन कर भगवत्प्राप्ति अथवा मोक्षरूप जीवनके परम लक्ष्यकी प्राप्तिमें सहायक होता है। यही नहीं, यज्ञ-दान-तपरूप कर्मको भगवान्‌ने अवश्यकर्तव्य, अनिवार्य बताया है—**'यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्'** और यज्ञादिकी परम्पराका विच्छेद करनेवालेको पापी—अघायु कहकर उसकी गर्हणा की है। इस यज्ञचक्रको चलानेके लिये ही वेद, अग्नि, गौ एवं ब्राह्मणोंकी सृष्टि हुई है। वेदोंमें यज्ञानुष्ठानकी विधि बतायी गयी है—**'कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि'** एवं ब्राह्मणोंके द्वारा वह विधि सम्पन्न होती है। अग्निके द्वारा आहुतियाँ देवताओंको पहुँचायी जाती हैं—**'अग्निमुखा हि देवा भवन्ति'** और गौसे हमें देवताओंको अर्पण करने योग्य हवि प्राप्त होता है। इसीलिये हमारे शास्त्रोंमें गौको 'हविर्दुघा' (हवि देनेवाली) कहा गया है। गोघृत देवताओंका परम प्रिय हवि है और यज्ञके लिये भूमिको जोतकर तैयार करने एवं गेहूँ, चावल, जौ, तिल आदि हविष्यान्न पैदा करनेके लिये गो-संतति—बैलोंकी परम आवश्यकता है। यही नहीं, यज्ञभूमिको परिष्कृत एवं शुद्ध करनेके लिये उसे गोमूत्रसे छिड़का जाता है और गोबरसे लीपा जाता है तथा गोबरके कंडोंसे यज्ञाग्निको प्रज्वलित किया जाता है। यज्ञानुष्ठानके पूर्व प्रत्येक यजमानको देहशुद्धिके लिये पञ्चगव्यका प्राशन करना होता है और यह गायके दूध, गायके दही, गायके घी, गोमूत्र एवं गायके ही गोबरसे तैयार किया जाता है—इसीलिये इसे 'पञ्चगव्य' कहते हैं। इसके अतिरिक्त गायका दूध और उससे तैयार होनेवाले पदार्थ सबसे स्वादिष्ट एवं पोषक आहार हैं। दूधमें पकाये हुए चावलको—जिसे आधुनिक भाषामें खीर कहते हैं—संस्कृतमें परमान्न (सर्वश्रेष्ठ भोजन) कहा गया है और घीको हमारे यहाँ सर्वश्रेष्ठ रसायन माना गया है—**'आयुर्वै घृतम्।'** इतना ही नहीं, घृतरहित अन्नको हमारे शास्त्रोंमें अपवित्र कहा गया है। घी और चीनीसे युक्त खीरका भोजन ब्राह्मणोंके लिये विशेष तृप्तिकारक होता है और देवताओंको आहुति पहुँचानेके लिये हमारे यहाँ दो ही मार्ग माने गये हैं—अग्नि और ब्राह्मणोंका मुख। बल्कि भगवान्‌ने तो कहा है कि मैं अग्निके द्वारा यज्ञमें घीसे चूती हुई आहुतियोंका भक्षण करके उतना प्रसन्न नहीं होता, जितना ब्राह्मणोंके मुखमें पड़ी हुई आहुतियोंसे संतुष्ट होता हूँ—

नाहं तथाद्मि यजमानहविर्वितानेश्च्योतद्घृतप्लुतमदन् हुतभुङ्मुखेन।
यद् ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः॥

(श्रीमद्भा० ३।१६।८)

तात्पर्य यह कि दोनों प्रकारसे देवताओंकी तृप्तिके लिये तथा सर्वोपरि भगवत्प्राप्तिके लिये भी गौकी परमोपयोगिता सिद्ध होती है।

भारत-जैसे कृषिप्रधान देशमें आर्थिक दृष्टिसे भी गायका महत्त्व स्पष्ट ही है। जिन लोगोंने हमारे ग्रामीण जीवनका विशेष मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया है, उन सबने एक स्वरसे हमारे जीवनके लिये गौकी परमावश्यकता बतायी है। गोधन ही हमारा प्रधान बल है। गोधनकी उपेक्षा करके हम जीवित नहीं रह सकते। अतः, हमारे गोवंशका संख्या एवं गुणोंकी दृष्टिसे जो भयानक ह्रास हो रहा है, उसका बहुत शीघ्र प्रतीकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहिये और हमारी गौओंकी दशाको सुधारने, उनकी नस्लकी उन्नति करने और उनका दूध बढ़ाने तथा इस प्रकार देशके दुग्धोत्पादनमें वृद्धि करनेका भी पूरा प्रयत्न करना चाहिये। गायों, बछड़ों एवं बैलोंका वध रोकने तथा उनपर किये जानेवाले अत्याचारोंको बंद करनेके लिये कानून बनाने होंगे और विधर्मियोंको भी गौकी परमोपयोगिता बतलाकर गोजातिके प्रति उनकी सहानुभूति एवं सद्भावका अर्जन करना चाहिये। जिस देशमें कभी दूध और दहीकी एक प्रकारसे नदियाँ बहती थीं, उस देशमें असली दूध मिलनेमें कठिनता हो रही है—यह कैसी विडम्बना है!

आध्यात्मिक दृष्टिसे भी गायका महत्त्व कम नहीं है। गायके दर्शन एवं स्पर्शसे पवित्रता आती है, पापोंका नाश होता है, गायके शरीरमें तैंतीस करोड़ देवताओंका निवास माना गया है। गायके खुरोंसे उड़नेवाली धूलि भी पवित्र मानी गयी है। महाभारतमें महर्षि च्यवन राजा नहुषसे कहते हैं—

'मैं इस संसारमें गौओंके समान दूसरा कोई धन नहीं समझता। गौओंके नाम और गुणोंका कीर्तन करना-सुनना, गौओंका दान देना और उनका दर्शन करना—इनकी शास्त्रोंमें बड़ी प्रशंसा की गयी है। ये सब कार्य सम्पूर्ण पापोंको दूर करके परम कल्याण देनेवाले हैं। गौएँ लक्ष्मीकी जड़ हैं, उनमें पापका लेश भी नहीं है। गौएँ ही मनुष्यको अन्न और देवताओंको हविष्य देनेवाली हैं। स्वाहा और वषट्कार सदा गौओंमें ही प्रतिष्ठित होते हैं। गौएँ ही यज्ञका संचालन करनेवाली और उसका मुख हैं। वे विकाररहित दिव्य अमृत धारण करती और दूहनेपर अमृत ही देती हैं। वे अमृतकी आधार होती हैं और सारा संसार उनके सामने मस्तक झुकाता है। इस पृथ्वीपर गौएँ अपने तेज और शरीरमें अग्निके समान हैं। वे महान् तेजकी राशि और समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाली हैं। गौओंका समुदाय जहाँ निर्भयतापूर्वक बैठकर साँस लेता है, उस स्थानकी श्री बढ़ जाती है और वहाँका सारा पाप नष्ट हो जाता है। गौएँ स्वर्गकी सीढ़ी हैं, वे स्वर्गमें भी पूजी जाती हैं। गौएँ समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली देवियाँ हैं, उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। राजन्! यह मैंने गौका माहात्म्य बतलाया है, इसमें उनके गुणोंके एक अंशका दिग्दर्शन कराया गया है। गौओंके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन तो कोई कर ही नहीं सकता।*

ब्रह्माजी भी इन्द्रसे कहते हैं—

'गौओंको यज्ञका अङ्ग और साक्षात् यज्ञरूप बतलाया गया है। इनके बिना यज्ञ किसी तरह नहीं हो सकता। ये अपने दूध-घीसे प्रजाका पालन-पोषण करती हैं तथा इनके पुत्र (बैल) खेतीके काम आते और तरह-तरहके अन्न एवं बीज पैदा करते हैं, जिनसे यज्ञ सम्पन्न होते हैं और हव्य-कव्यका भी काम चलता है, इन्हींसे दूध, दही और घी प्राप्त होते हैं। ये गौएँ बड़ी पवित्र होती हैं और बैल भूख-प्यासका कष्ट सहकर अनेक प्रकारके बोझ ढोते रहते हैं। इस प्रकार गोजाति अपने कर्मसे

---

*गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किञ्चिदिहाच्युत॥
कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव। गवां प्रशस्यते वीर सर्वपापहरं शिवम्॥
गावो लक्ष्म्याः सदा मूलं गोषु पाप्मा न विद्यते। अन्नमेव सदा गावो देवानां परमं हविः॥
स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ। गावो यज्ञस्य नेत्र्यो वै तथा यज्ञस्य ता मुखम्॥
अमृतं ह्यव्ययं दिव्यं क्षरन्ति च वहन्ति च। अमृतायतनं चैताः सर्वलोकनमस्कृताः॥
तेजसा वपुषा चैव गावो वह्निसमा भुवि। गावो हि सुमहत्तेजः प्राणिनां च सुखप्रदाः॥
निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम्। विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षति॥
गावः स्वर्गस्य सोपानं गावः स्वर्गेऽपि पूजिताः। गावः कामदुहो देव्यो नान्यत् किंचित् परं स्मृतम्॥
इत्येतद् गोषु मे प्रोक्तं माहात्म्यं भरतर्षभ। गुणैकदेशवचनं शक्यं पारायणं न तु॥
(महा०, अनु० ५१। २६—३४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषियों तथा प्रजाओंका पालन करती रहती है। उसके व्यवहारमें शठता या माया नहीं होती, वह सदा पवित्र कर्ममें लगी रहती है।*

इस प्रकार सभी दृष्टियोंसे गाय हमारे लिये बड़े ही आदर और प्रेमकी वस्तु है, हमें सब प्रकारसे उसकी रक्षा एवं उन्नतिके लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये।

पक्षी

(श्रीआत्मारामजी देवकर 'साहित्यमनीषी')

घोंसलेमें बैठा हुआ पक्षी मधुर स्वरसे गा रहा था। प्रातःकालकी भीनी-भीनी वायु चित्तको प्रसन्न कर रही थी। भगवान् भास्करका स्वागत करनेवाले सहयोगी पक्षियोंका कलरव आनन्दको बढ़ा रहा था। नैसर्गिक शोभा किसी अलक्षित प्रेमराज्यका स्मरण दिला रही थी। अचानक एक अहेरी आकर घोंसलेके आगे खड़ा हो गया। उसने भैरव हुंकार करके पक्षीको ललकारा और तत्काल धनुषपर बाण चढ़ा लिया। घोंसला कदलीपत्रकी नाईं काँप उठा। पक्षीने व्यग्र होकर कहा—'तुम कौन हो ?' अहेरीने कड़ककर उत्तर दिया—'मुझे लोग कराल काल कहते हैं।' पक्षीने प्रश्न किया—'तुम्हारे आनेका क्या कारण है ?' अहेरीने निःस्पृहतासे कहा—'मैं तुम्हारा अन्त करनेके लिये आया हूँ।' पक्षी मुसकराकर बोला—'मैंने क्या अपराध किया है ?' अहेरीने उत्तर दिया—'तुमने कर्म-सूत्र छिन्न नहीं किया, बस, यही तुम्हारा अपराध है।' पक्षी खिलखिलाकर हँसने लगा और भौंहें चढ़ाकर बोला—'तुम महामूर्ख हो।' अहेरीने गर्जकर कहा—'यह उद्दण्डता ? तुम मुझे किस आधारपर मूर्ख बना रहे हो ?' पक्षीने उत्तर दिया—'न जानना ही मूर्खता है, जिसे जीवका धर्म कहते हैं।' अहेरीने तीव्र स्वरसे कहा—'मैं त्रिकालज्ञ हूँ, ऐसी कौन-सी बात है, जिसे मैं नहीं जान सकता ?' पक्षीने शान्तभावसे उत्तर दिया—'अच्छा, तो बतलाओ मैं कौन हूँ ?' अहेरी बोला—'पाञ्चभौतिक शरीरधारी संसारी।' पक्षीने अट्टहास किया और भर्त्सना करके कहा—'यही तुम्हारा अज्ञान है, तुम घोंसलेको मेरा रूप मान रहे हो, इसीसे मुझे पाञ्चभौतिक कहते हो। यह नहीं जानते कि तुम्हारे नष्ट हो जानेपर भी मैं बना रहूँगा।' अहेरीने साश्चर्य घोंसलेकी ओर देखकर उत्तर दिया—'अच्छा, तुम्हीं मुझे अपना वास्तविक रूप बतला दो।' पक्षीने आश्वस्त स्वरसे कहा—'मैं वही हूँ, जिसका भेद आजतक किसीको नहीं मिला, न मिल सकता है, वेदोंने जिसका अन्त नहीं पाया, जिसपर सुख-दुःखका प्रभाव नहीं पड़ता, जो काल, कर्म और स्वभावके बन्धनसे मुक्त है, जिसको नित्य, निरञ्जन एवं सच्चिदानन्द कहते हैं।' अहेरी लाल-लाल नेत्र दिखलाकर बोला—'इसका क्या प्रमाण है ?' पक्षीने दृढ़तासे कहा—'प्रत्यक्षके लिये प्रमाणकी क्या आवश्यकता है, करके देख लो।'

अहेरीने कानतक धनुष खींचकर बाण छोड़ दिया। घोंसला शाखाका आधार त्याग नीचे गिर पड़ा। अहेरीने देखा कि घास-फूँसके अतिरिक्त उसमें अन्य कोई पार्थिव पदार्थ नहीं है। एक ही क्षणके अनन्तर अहेरीको स्पष्ट सुनायी दिया कि दूसरे घोंसलेमें बैठा हुआ वही पक्षी अत्यन्त ललित, आकर्षक एवं हर्षोत्फुल्ल स्वरसे स्वर्गीय गानकी तान छेड़ रहा है।

---

* यज्ञाङ्गं कथिता गावो यज्ञ एव च वासव। एताभिश्च विना यज्ञो न वर्तेत कथंचन॥
धारयन्ति प्रजाश्चैव पयसा हविषा तथा। एतासां तनयाश्चापि कृषियोगमुपासते॥
जनयन्ति च धान्यानि बीजानि विविधानि च। ततो यज्ञाः प्रवर्तन्ते हव्यं कव्यं च सर्वशः॥
पयोदधिघृतं चैव पुण्याश्चैताः सुराधिप। वहन्ति विविधान् भारान् क्षुत्तृष्णापरिपीडिताः॥
मुनींश्च धारयन्तीह प्रजाश्चैवापि कर्मणा। वासवाकूटवाहिन्यः कर्मणा सुकृतेन च॥
(महा०, अनु० ८३। १७—२१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्चा धर्म—प्रेम और सेवा

(श्रीभगवानदासजी केला)

धर्मका अभिप्राय सत्य यानी ईश्वरकी प्राप्ति है। धर्म प्रेमका पन्थ है, फिर घृणा कैसी, द्वेष कैसा, मिथ्याभिमान कैसा? मनुष्य एक ओर तो ईश्वरकी पूजा करे, दूसरी ओर मनुष्यका तिरस्कार करे, यह बात बनने लायक नहीं।

—गाँधीजी

आज हम लोगोंको केवल एक नैतिक उपदेश देते रहें तो उससे काम नहीं होगा। आज तो हमें लोगोंकी मुश्किलें, दुशवारियाँ दूर करनी होंगी, तभी उनमें सद्विचार स्थिर होंगे। जिस समय आस-पास आग लगी हो, उस समय हम मूर्तिका ध्यान करने बैठें तो यह भक्ति-मार्गका लक्षण नहीं होगा। उस समय तो हाथमें बाल्टी लेकर आग बुझानेके लिये दौड़ना ही भक्ति-मार्गका लक्षण होगा।— विनोबा

धर्मका सार

मनुष्यको धर्मकी बारीकियों और उलझनोंमें पड़नेकी आवश्यकता नहीं। मुख्य तत्त्वकी बात जान लेनी चाहिये। कबीरने ठीक बताया है—

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अच्छर प्रेमके, पढ़े सो पंडित होय॥

इसी प्रकार तुलसीने भी कहा है—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

इस तरह सरल—सीधी भाषामें धर्मका अर्थ प्रेम और परहित-साधन या सेवा है। मनुष्यको इन्हें उपयोगमें लाकर अपना जीवन सार्थक करना चाहिये।

सद्व्यवहार ही भगवान्‌की पूजा है

हम सब भगवान्‌की पूजा-उपासना करनेका दम भरते है, पर भगवान् हमें दरिद्रनारायणके रूपमें दर्शन देता है तो हम उसकी उपेक्षा करते हैं। इसलामधर्म-ग्रन्थोंमें कहा गया है कि एक धनवान्‌के मरनेपर अल्लाह उससे कहता है कि 'ऐ आदमीके बेटे! मैं भूखा था, तूने मुझे खानेको नहीं दिया।' आदमी पूछता है— 'तूने मुझसे खाना कब माँगा और कब मैंने तुझे खाना नहीं दिया?' अल्लाह जवाब देता है—'मैं मजदूरके रूपमें तेरे पास गया और तूने मुझे मुनासिब मजदूरी नहीं दी। इससे मैं भूखा रहा।' फिर अल्लाह कहता है— ऐ आदमीके बेटे! मैं प्यासा था, तूने पानी नहीं दिया।' आदमी हैरान होकर पूछता है—'कब तूने मुझसे पानी माँगा और कब मैंने पानी नहीं दिया?' अल्लाह जवाब देता है— 'मैं मेहनत करनेके बाद प्यासा होनेपर तेरे दरवाजेपर गया और तुझसे पानी माँगा, पर तूने मुझे पानी नहीं दिया।' यह बात हमारे सामाजिक व्यवहारपर कितनी ठीक बैठती है!

प्रेममें ऊँच-नीच नहीं, समदर्शिता है

वास्तविक धर्म माननेवाले व्यक्तिके लिये यह सारा संसार ईश्वरमय है। वह सब प्राणियोंसे प्रेम करेगा, उसके प्रेमका क्षेत्र उसके परिवार या सम्बन्धियोंतक ही या उसकी जाति-बिरादरीके लोगोंतक ही सीमित नहीं होता, वह सबमें ईश्वरका स्वरूप देखता है। वह सबसे स्नेहका सम्बन्ध रखता है, सबको अपने परिवार या कुटुम्बका मानता है। वह किसीको कष्ट दे ही कैसे सकता है, उसके लिये दूसरोंको पीड़ा पहुँचाना स्वयं अपने आपको पीड़ा पहुँचाना है। वह किसीके धर्मकी निन्दा नहीं करता, वह सबमें समदृष्टि रखता है और सबकी अच्छी-अच्छी बातें ग्रहण करनेको तैयार रहता है।

सेवामय जीवन

—ऐसा प्रेमी व्यक्ति प्राणिमात्रमें एकताका अनुभव करता है और वह ऐक्य-साधन करता है। ऐक्य-साधनका मार्ग लोकसेवा है, यही प्रेमका व्यावहारिक स्वरूप है। हमारा किसीसे प्रेम करनेका अर्थ यह नहीं है कि हम उसके लिये कुछ मीठे शब्द कहकर रह जायँ। प्रेम तभी सार्थक है, जब हम अपने प्रेम-पात्रका हित चाहें और हित-साधनका प्रयत्न करें, उसके कष्टों और अभावोंको दूर करनेका उपाय निकालें और उसकी उन्नति तथा विकासका मार्ग प्रशस्त करें। धर्म-भावनावाले अपने कर्तव्य-पालनमें सब प्रकार कष्ट सहते और त्याग करते हैं तथा वे इसमें कोई दुःख अनुभव नहीं करते। उनके हृदयमें सबके लिये माताका-सा प्रेम होता है। वे अपने पासके सभी प्राणियोंको सुख पहुँचानेमें अपना सुख मानते हैं। सेवा करना उनका स्वभाव ही होता है, इसके लिये उन्हें विशेष प्रयत्न करना नहीं पड़ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवाके अनेक क्षेत्र

सेवा किसी खास प्रकारके नपे-तुले कामका नाम नहीं है और यह कोई खास व्यवसाय नहीं है। हम चाहे जो कार्य करें, उसमें परहितका लक्ष्य हो तथा सत्य, अहिंसा आदि गुणोंके अभ्यासका निरन्तर ध्यान रखें तो वही कार्य सेवा-कार्य हो जायगा। उदाहरणके लिये व्यापारकी बात लीजिये। प्रायः मनुष्य समझते हैं—यह सेवा-कार्य नहीं हो सकता। इसे धन कमानेका साधन माना जाता है। परंतु वास्तवमें यह बहुत बड़ी सेवाका कार्य है। एक गाँवमें लोगोंके भोजन-वस्त्र आदिकी प्रमुख आवश्यकताके किसी पदार्थकी कमीके कारण बहुत संकट है। व्यापारी इस पदार्थको दूसरे स्थानसे लाकर वहाँ पहुँचाता है और इसकी मूल लागतमें मार्ग-व्यय तथा अपना मामूली पारिश्रमिक जोड़कर इसे साधारण मूल्यमें जनताके हाथों बेचता है तो यह व्यापार सेवा-कार्य ही है। हाँ, यदि व्यापारीका लक्ष्य अपने कार्यद्वारा अधिक-से-अधिक धन बटोरना हो, वह लोगोंकी प्रमुख आवश्यकताओंका विचार न कर ऐसे पदार्थोंका प्रचार करता है, जो जनताके भोग-विलासके साधन हों और जिन्हें खरीदनेके लिये मनुष्य भारी मूल्य भी देनेको तैयार हों या तैयार किये जाते हों, तो यह कार्य सेवा-कार्य नहीं माना जा सकता। वास्तवमें इसे व्यापार कहना ही भूल है। यह तो सरासर लूट है, चाहे वह समाजमें खूब चल रही हो और कानूनसे अपराध न मानी जाती हो। अस्तु, परहितका ध्यान रखते हुए तथा साधारण पारिश्रमिक या मेहनताना लेकर किया हुआ व्यापार सेवा ही है। वास्तविक व्यापार और सेवामें कोई विरोध नहीं है।

इसी प्रकार यदि कोई डॉक्टर या वैद्य इस बातके लिये प्रयत्नशील है कि मनुष्य बीमार न पड़े, वह जनतामें स्वास्थ्यके नियमोंका प्रचार करता है और उन्हें सावधान करता है कि अमुक ऋतुमें ऐसा खान-पान आदि करना रोगोंको आमन्त्रित करना है, वह बीमारोंको जल्दी-से-जल्दी तथा अल्प व्ययसे ही नीरोग करनेके लिये चिकित्सा करता है तो उसका यह कार्य सेवा-कार्य ही है, भले ही वह डॉक्टर या वैद्य अपने निर्वाहके लिये लोगोंसे अपने कामकी साधारण फीस क्यों न लेता हो। इसके विपरीत, यदि वह धन-संग्रहके लिये रोगियोंको दवाईके चक्करमें डालता है, मँहगी और खूब मुनाफा देनेवाली विधियोंका उपयोग करता है, यहाँतक कि गरीब और असमर्थ लोगोंसे भी भारी-भारी फीस वसूल करता है और रोगियोंके स्वस्थ न होने तथा मर जानेपर भी अपनी फीसका अधिकार नहीं छोड़ता तो इस कार्यको सेवा-कार्य नहीं माना जायगा और इसे करनेवालेको वास्तवमें डॉक्टर या वैद्य कहना इन शब्दोंका दुरुपयोग करना है।

इसी तरह शिक्षक, लेखक, प्रकाशक, चौकीदार, मुनीम, दूकानदार आदिके कार्योंका विचार किया जा सकता है।

वास्तविक धर्मात्माकी पहचान

किसी कार्यके सेवा-कार्य होनेके लिये यह आवश्यक ही है कि वह निरहंकार तथा निष्कामभावसे किया जाय। सेवा करनेवाला अपना काम कर्तव्य समझकर करता है। उसके मनमें यह विचार नहीं आता कि मैं समाजपर कोई उपकार या एहसान करता हूँ। वह अपने आपको समाजका एक अङ्ग मानता है और अपनी बुद्धि, शक्ति तथा योग्यता आदिको समाजद्वारा प्राप्त समझता है। इसलिये वह समाजका हिस्सा चुकाकर उससे यथाशक्ति उऋण होनेका प्रयत्न करता है, इसमें अहंकार या अभिमानकी गुंजाइश ही कहाँ? अस्तु, प्रेमी और सेवाभावी सज्जन ही वास्तवमें धर्मात्मा हैं।

सावधान

एरे! अभिमानी जिहि दिन्ही नरदेही तोंहि,
जगत-पिता कहँ तूं कबलौं बिसरायगो।
कबलौं रे! जगज्जाल बंधनमें बँधो बँधो,
'सैनिक' अपार पाप-धन-कहँ कमायगो॥
तेरे तन-तर्कसते श्वाँस तीर जात चले,
छिन ही छिन आयु घटै, पीछे पछितायगो।
चेत रे! अचेत!! चेत चेत अजौं!!! याद रख,
भूल मत! लेखा पल-पलको लियो जायगो॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतनोन्मुख मानव-समाजकी रक्षा कैसे हो ?

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

पाप और पुण्यकी सीधी-सी परिभाषा यह है कि जिस भावना या क्रियासे परिणाममें अपना तथा दूसरोंका अहित होता हो, वह पाप है और जिस भावना या क्रियासे परिणाममें अपना तथा दूसरोंका हित होता हो, वह पुण्य है। जिससे दूसरोंका हित नहीं होता, उससे अपना हित कदापि नहीं होगा और जिससे दूसरोंका हित होता है, उससे अपना कभी अहित नहीं होगा—यह सिद्धान्त निश्चयरूपसे मान लेना चाहिये। हमारा वास्तविक हित दूसरोंके हितमें ही समाया है। जो मनुष्य ऐसा मानते हैं कि हम दूसरोंका अहित करके या दूसरोंके हितकी उपेक्षा करके अपना हित करते हैं या कर लेंगे, वे वस्तुतः बड़े मूर्ख हैं। वे अपना हित कभी कर ही नहीं पाते। यह मान्यता ही भ्रम है कि दूसरोंके हितकी उपेक्षा या उनका अहित करनेसे हमारा हित हो जायगा। यथार्थमें वे मनुष्य बड़े ही अभागे हैं, जो दूसरोंके अहितमें अपना हित और दूसरोंके दुःखमें अपना सुख समझते हैं। ऐसे मनुष्य ही असुर-मानव हैं, जिनका जीवन दूसरोंकी बुराईमें ही लगा रहता है। वे दूसरोंकी बुराई करने जाकर अपनी ही बुराई करते हैं।

संसारमें साधारणतया नौ प्रकारके मनुष्य होते हैं—

(१) जो दूसरोंके हितमें ही अपना हित समझते हैं, अतएव जीवनभर प्रत्येक क्रिया दूसरोंके हितके लिये ही करते हैं। अपना नुकसान करके भी दूसरोंको लाभ पहुँचाया करते हैं।

(२) जो दूसरोंके हितको प्रमुख मानते हैं और अपने हितको गौण, अतः जहाँ दूसरोंका हित होता हो, वहाँ अपने हितकी चिन्ता छोड़ देते हैं।

(३) जो दूसरोंका हित चाहते हैं—करते हैं, परंतु अपना नुकसान सहकर या अपने हितकी चिन्ता छोड़कर नहीं।

(४) जो दूसरोंका हित तो चाहते हैं और करते भी हैं, परंतु वहीं चाहते-करते हैं जहाँ अपना भी लाभ समझते हैं, नहीं तो—नहीं करते। अर्थात् अपने लाभके लिये ही दूसरोंका हित करते हैं।

(५) जो केवल अपना ही हित देखते हैं, दूसरोंके हितका विचार ही नहीं करते।

(६) जो अपने हितके लिये दूसरोंके हितको जान-बूझकर उपेक्षा करते हैं।

(७) जो अपने हितके लिये दूसरोंका अहित सोचते हैं और करनेमें नहीं हिचकते।

(८) जो अपनेको बचाकर दूसरोंका अहित ही करना चाहते हैं और दिन-रात उसीमें लगे रहते हैं।

(९) जो अपना अहित करके भी दूसरोंका अहित करनेमें लगे रहते हैं। इन नौमें प्रथम सर्वश्रेष्ठ हैं और नवम सबसे नीच—अधम।

प्रथम वस्तुतः दूसरोंको पर मानते ही नहीं। वे तो सबको अपना स्वरूप ही मानकर सबके सुख-दुःखमें स्वयं सुख-दुःखका अनुभव करते हैं, उनका 'स्व' अखिल जगत्के प्राणियोंमें प्रसरित होकर पवित्र हो जाता है। ऐसे ही लोगोंके लिये श्रीभगवान्ने भगवद्गीतामें कहा है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

(६।३२)

'अर्जुन ! जो अपने ही समान सम्पूर्ण प्राणियोंमें समदृष्टि रखता है और सबके सुख या दुःखको भी समतासे देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।' वस्तुतः उसके अनुभवमें सर्वत्र एक आत्मा ही रह जाता है। वह किसी भी वर्ग, वर्ण, जाति, पद, देश, धन, सम्प्रदाय आदिके भेदसे आत्मामें भेद नहीं मानता। भेदोंमें रहते हुए ही वह अभेदभावसे सबका वैसे ही हित चाहता और करता है, जैसे मनुष्य अपने मस्तक, हाथ, पैर और नीचेकी इन्द्रियाँ आदिके व्यवहारमें भेद मानता तथा बरतता हुआ भी उनमें समान आत्मभाव रखता और उनका सहज ही हित चाहता तथा करता है। ऐसे सबमें 'स्व' की अनुभूति करनेवालेका 'स्वार्थ' पवित्र हो जाता है, क्योंकि सबका स्वार्थ ही उसका स्वार्थ बन जाता है, सबका हित ही उसका हित बन जाता है और सबका सुख ही उसका सुख हो जाता है। वह केवल एक छोटे-से समाजमें ही नहीं, समस्त विश्वमें आत्मीयताका अनुभव करता हुआ कभी किसीका अहित तो करता ही नहीं, किसीको दुःख तो पहुँचाता ही नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके हितकी या सुखकी अवहेलना या उपेक्षा भी नहीं कर सकता। वह निरन्तर सहज ही 'सर्वभूतहित' में रत रहता है। भगवान्‌ने ज्ञानी साधकके लिये कहा है—

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥

(गीता १२। ३-४)

'जो पुरुष अपनी सारी इन्द्रियोंको भलीभाँति नियन्त्रणमें रखते हैं, समस्त प्राणियोंके हितमें रत रहते हैं और सबमें समबुद्धि रखते हैं, वे अचिन्त्य, सर्वव्यापी, अनिर्देश्य, कूटस्थ, नित्य, अचल, अव्यक्त, अक्षर ब्रह्मकी उपासना करते हुए मुझको (भगवान्‌को) प्राप्त होते हैं।'

जो सर्वत्र एक परम तत्त्वका दर्शन करते हैं, वे इन्द्रियसुखकी इच्छा कैसे करेंगे, उनकी इन्द्रियाँ सहज ही भोग-सुखोंसे हटी रहेंगी। सबमें सहज ही उनकी समबुद्धि होगी और सबका हित ही उनका सहज कर्म होगा।

भक्तके लिये तो भक्तोंकी स्वरूप-व्याख्याके आरम्भमें ही भगवान् कहते हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

(गीता १२। १३-१४)

'जो समस्त प्राणियोंमें द्वेषभावसे रहित, सबका निःस्वार्थ प्रेमी, सहज ही करुणहृदय, ममता और अहंकारसे रहित, सुख-दुःखकी प्राप्तिमें सम, क्षमाशील (अपराध करनेवालेका मङ्गल चाहनेवाला), निरन्तर लाभ-हानिकी प्रत्येक स्थितिमें संतुष्ट, मन-इन्द्रिय-शरीरको वशमें रखनेवाला दृढ़निश्चयी पुरुष है, वह मुझमें (भगवान्‌में) मन-बुद्धिको अर्पण कर चुका हुआ मेरा भक्त मुझे बड़ा प्रिय है।'

ऐसा भक्त अपने इन्द्रिय-सुख या अपने किसी पृथक् सुखके लिये कैसे प्रयत्न करेगा ? उसे तो इसकी कामना ही नहीं होगी। सबका सुख ही उसका सुख होगा।

वस्तुतः विश्वमें जब इस प्रकारके आदर्श ज्ञानी या भक्तोंका समाज बनेगा, तभी यहाँ यथार्थ सुख-शान्ति होगी। आजका समाज तो सचमुच बहुत गिर गया है या गिर रहा है, जिसमें ऐसे व्यक्ति भरे हैं, जो इन्द्रियोंके गुलाम हैं, मनके दास हैं, दिन-रात मौज-शौक-विलासमें रहना चाहते हैं,अपने इन्द्रिय-सुखके लिये दूसरोंके दुःख या अहितकी परवा ही नहीं करते, अपनेको ही सुखी बनानेकी धुनमें सदा लगे रहते हैं और इसके लिये दूसरोंका प्रत्यक्ष अहित करते रहते हैं। इस स्थितिको मिटानेके लिये भगवान्‌के आदर्श वाक्योंके अनुसार एक नवीन विश्वका निर्माण होना चाहिये, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति उपर्युक्त ज्ञानी या भक्तके आदर्श जीवनसे सम्पन्न हो। यह तभी होगा, जब मानव दूसरोंको ऐसा बनानेकी चिन्ता न करके पहले स्वयं ऐसा बनना चाहेगा और इसके लिये पूरा प्रयत्न करेगा। आजका मानव दिन-रात गला फाड़कर और कलम चलाकर दूसरोंको उपदेश करता है, पद-पदपर उनकी भूलें बताकर उन्हें भूल सुधारनेका आदेश देता है, पर स्वयं न अपनी भूलोंको देखता है और न उन्हें सुधारनेका ही प्रयत्न करता है। स्वयं दिन-रात आसुरी-सम्पदाके सेवनमें लगा रहकर ही जगत्‌को देव बनानेकी बातें किया करता है, इससे दम्भ बढ़नेके सिवा और कुछ नहीं होता। सच कहा जाय तो आजका मानव उन्नत नहीं हो रहा है—भले वह विज्ञानमें तथा अर्थपैशाचिकतामें ऊँचा चढ़ गया हो—बल्कि अपने आदर्श मानवीय गुणोंकी—जो उसे देवता बनानेमें समर्थ है—अवहेलना करके दिनोंदिन असुरत्वकी ओर—पतनकी ओर जा रहा है।

इसीसे उपर्युक्त नवम प्रकारके मनुष्य भी आज मानव-समाजमें उत्पन्न हो गये हैं, जो अपना नुकसान करके भी, अपना अहित करके भी दूसरोंको नुकसान पहुँचाने या दूसरोंका अहित करनेमें ही सुखका अनुभव करते हैं। ऐसे नराधम जगत्‌का अकल्याण ही करते हैं।

जो लोग अपना वास्तविक हित चाहते हैं और यथार्थमें अपना, देशका या विश्वका सुधार या उद्धार चाहते हैं, उनके लिये यह परम आवश्यक है कि वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरोंको अपना समझें और उनके हितमें ही अपना हित समझकर कार्य करें। ऐसा होनेपर जीवनमें संयम, सदाचार, सेवा आदि सद्गुण अपने-आप ही आ जायँगे।

आजकल एक नया रोग फैला है—'जीवनके स्तरको, रहन-सहनको ऊँचा उठाओ।' त्याग, तपस्या, संयम, सादगी, सेवा, सदाचार, मितव्ययिता आदिमें नहीं; भोग, उच्छृङ्खलता, यथेच्छाचार, विलासिता, आरामतलबी, अनाचार, फजूलखर्ची आदिमें। इसका आदर्श है—अनावश्यक आवश्यकताओंको बढ़ाते रहो। अधिक-से-अधिक वस्तुओंका उपयोग करो, मौज-शौककी चीजें बरतनेकी आदत डालो, हाथ-पैरसे कामकाज न करो, श्रम करनेमें अपमान समझो, सिनेमा-रेडियो आदिसे आनन्द लूटो, जीवनको भोगमय या इन्द्रियोंका गुलाम बना लो। फिर इन बढ़ी हुई आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये जीवनका सारा समय तथा सारी विवेक-बुद्धिको लगाते रहो।

गमछा पहनकर कुएँपर या नदीमें नहा आये तो नीचा स्तर और गुशलखानेमें टट्टीदानके बगलमें ही टबमें नंगे होकर नहाये तो ऊँचा स्तर।

शौच जाकर मिट्टीसे हाथ धोये तो नीचा स्तर, चर्बी-मिले साबुनसे हाथ धोये या न धोये तो ऊँचा स्तर।

पहननेके लिये एक जोड़ी जूता रखा तो नीचा स्तर और दसों जोड़े जूते—भोजनका, शयनकक्षका, टेनिसका, फुटबॉलका, दिनका, रातका, आफिसका, क्लबका, पार्टीका अलग-अलग—मानो मोचीकी दूकान लगी हो तो ऊँचा स्तर।

जमीनपर आसनपर बैठे और हाथसे भोजन किया तो नीचा स्तर और टेबलपर चम्मच, छूरे, काँटेसे खाया तो ऊँचा स्तर।

शुद्धताके साथ परसा हुआ भोजन किया तो नीचा स्तर, दूसरोंकी जूठन खायी, एक ही जूठे चम्मचसे ले-लेकर खाया तो ऊँचा स्तर।

घरमें रेडियो न रखा तो नीचा स्तर, रखा तो ऊँचा स्तर।

सप्ताहमें एक बार भी सिनेमा न देखा तो नीचा स्तर, रोज-रोज गये तो ऊँचा स्तर।

पाठ-संध्या-पूजा की, तिलकादि लगाया तो नीचा स्तर, उठते ही बिस्तरपर चाय पीया, सिगरेटसे धूआँ फेंका और अखबार पढ़ा तो ऊँचा स्तर।

स्त्रियाँ देशी चन्दन-कर्पूरादि पदार्थोंका लेप करें, देशी तेल, इत्र लगावें, बिंदी-सिन्दूर लगावें, मेंहदी-आलताका प्रयोग करें तो नीचा स्तर, विदेशी पेस्ट-पाउडर, स्नो-क्रीम, नखराग (नेल-पालिश), अधरराग (लिपस्टिक), बालोंके लोशन, बालोंको घुँघराले बनानेवाले थियोग्लार कोल एसिड आदिका उपयोग करें तो उँचा स्तर।

इस ऊँचे स्तरके निर्माणमें मिथ्या अभिमान, फैशन, विलासिता, बाहरी दिखावा, बेहद खर्च, समयका नाश और इन्द्रियोंका दासत्व कितना बढ़ जाता है, साथ ही शारीरिक रोग भी कितने बढ़ते हैं, इसका जरा भी ध्यान न करके हमलोग आज नकली आवश्यकताओंको बढ़ाते जाते हैं। हमारे छात्र-छात्राओंमें यह रोग बहुत तेजीसे बढ़ रहा है, जो देशके लिये अत्यन्त घातक है। विलासी तथा अनावश्यक खर्च करनेवाला आदमी न समाज या लोकहितकी बात सोच सकता है, न कर सकता है। उसका समय तथा साधन तो सारा अपनी अनावश्यक आवश्यकताओंकी पूर्तिमें ही लग जाता है। अतएव हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि हमारी इन नकली आवश्यकताओंका नियन्त्रण हो, फैशनकी इच्छा तथा बाहरी दिखावेका मोह छूटे और हमारा जीवन पवित्र, संयमपूर्ण तथा सादा-सीधा हो।

विलासिता, फैशन तथा बाहरी आडम्बरमें फँसे हुए मनुष्यकी बुद्धि तमसाच्छन्न हो जाती है, मनपरसे उसका नियन्त्रण उठ जाता है। वह पराये हितकी तो बात दूर रही, अपने हितकी बात भी नहीं सोच सकता। इसीसे अन्याय, अधर्म, चोरी, ठगीसे धन कमाकर वह अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके प्रयत्नमें लगा रहता है और फैशनकी जिस किसी चीजको देखता है, उसीको संग्रह करनेके लिये लालायित रहता है। ऐसे स्त्री-पुरुष सदा खर्चसे तंग रहते हैं, रोते हैं, पर अपनी बुरी आदतको नहीं छोड़ते। पैसेकी बहुत छूट न होनेपर भी फैशनकी चीजोंका अनावश्यक संग्रह करना चाहते हैं और करते हैं। उचित बात तो यह है कि जिनके पास पैसे अधिक हैं, उनको भी अपने लिये उतना ही खर्च करना चाहिये, जितनेसे शरीरका तथा घरका काम सादगीके साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छी तरह चलता रहे और शेष पैसा समाजके अभावग्रस्त लोगोंके अभावकी पूर्तिके द्वारा भगवान्‌की सेवामें लगाना चाहिये। तभी धनका सदुपयोग है, तभी धनके द्वारा भगवान्‌की पूजा है और तभी वह अर्थ अनर्थकारी न होकर मुक्तिका—भगवत्प्रीतिका साधन बनता है। हमारे शास्त्र तो कहते हैं कि 'मनुष्यका उतनेपर ही हक है, जितनेसे उसका पेट भरता है, इससे अधिकपर जो अपना हक मानता है, वह चोर है और उसे दण्ड मिलना चाहिये'—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(श्रीमद्भा० ७।१४।८)

जो अपने लिये ही धनका उपयोग करते हैं, अपनेको धनका स्वामी मानकर अपने ही लिये अनावश्यक वस्तुओंका संग्रह-परिग्रह करते हैं, वे ईश्वरके धनके चोर तो हैं ही, दूसरे लोगोंकी अभावपूर्तिमें बाधक बनकर एक नया पाप और करते हैं। देशमें करोड़ों आदमियोंको अङ्ग ढकनेके लिये भी पर्याप्त कपड़े नहीं हैं और कुछ लोगोंकी पेटियाँ, आलमारियाँ कपड़ोंसे भरी रहती हैं, नये-नये फैशनके कपड़े वे खरीदते ही रहते हैं। सुना है कि कोट-पैंट आदिकी सिलाईमें वे दो सौसे पाँच सौ रुपयेतक व्यय कर देते हैं। उनके घरोंमें इधर-उधर कपड़े बिखरे पड़े रहते हैं, दीमक लग जाती है, ऊनी-रेशमी कपड़ोंको कीड़े काट डालते हैं, पर परिग्रहसे उनका मन नहीं भरता। खानेके लिये मनुष्यको कितना चाहिये, पर हमलोग पचासों प्रकारकी चीजें बनाकर शरीरकी आदतोंको बिगाड़ते, नये-नये रोगोंको बुलाते तथा खाद्य पदार्थोंका विपुल संग्रह रखनेमें अपनी शान समझते हैं। जहाँ करोड़ों भाई एक समय पेटभर पूरा खा नहीं पाते, वहाँ ऐसा व्यवहार क्या पाप नहीं है? करोड़ों मनुष्य टूटी झोपड़ियोंमें रहते हैं, पर एक मनुष्य दर्जनों मकानोंपर अपना नाम रखता है। ऐसा नहीं कि वह दर्जनों मकानोंमें एक साथ सोता-बैठता हो। हाथ कहीं सोये, पैर कहीं सोये, सिर कहीं सोये—ऐसा नहीं होता, उसका अभिमानमात्र बढ़ता है। पर मनुष्यका मोह उसे ममताके विस्तारमें लगाये रखता है। वह अपने लिये मकान भी बनाता है तो उसमें बीसों कमरे होते हैं। यह सब अनावश्यक वस्तुओंकी आवश्यकता तथा उनके संग्रह-परिग्रहकी प्रवृत्ति मनुष्यको दूसरोंके हितोंकी ओरसे अंधा बना देती है और प्रकारान्तरसे वह मानव-समाजका अहित करनेमें ही लगा रहता है। यह प्रवृत्ति समाजमें इसी प्रकार बनी रही और बढ़ती रही तो पता नहीं, समाजकी क्या दशा होगी। समाजके हितैषी पुरुषोंको तथा प्रत्येक समझदार पुरुषको इसपर विचार करके ऐसे अमोघ उपाय सोचने तथा करने चाहिये जिससे मानव-समाज इस पतनोन्मुखी प्रवृत्तिसे बचे तथा सबको इहलौकिक सुख-शान्तिके साथ मानव-जीवनके प्रधान लक्ष्य विशुद्ध आत्मस्वरूपकी या भगवान्‌की प्राप्ति हो।

कुंज-लीला

कुंज मैं बिहरत नवल किसोर।
एक अचंभो देखि सखी री उग्यो 'सूर' बिनु भोर॥
तहँ घन स्याम दामिनी राजत द्वै ससि चारि चकोर।
अंबुज खंजन मधुप मिलि क्रीड़त एकहिं खोर॥
तहँ द्वै कीर बिंब फल चाखत बिद्रुम मुक्ता चोर।
चारि मुकुर आनन पर झलकत नाचत सीसनि मोर॥
तामैं एक अधिक छबि सोहै हंस कमल इक ठौर।
हेमलता तमाल गहि द्वै फल मानौ देति अँकोर॥
कनकलता नीलम राजत उपमा कहँ सब थोर।
'सूरदास' प्रभु इहिं बिधि क्रीड़त ब्रज-जुवती-चित-चोर॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ममता तू न गयी मेरे मन तें

[मोह, कारण और निवारण]

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

(१)

'बड़े निर्मोही हो तुम ! कबीर पढ़ता मैं हूँ, निर्मोही तुम बनते हो ! भूले-भटके भी तो याद कर लिया करो !'

बरसों बाद उस दिन जब संत कबीरकी वाणीके मर्मज्ञ पण्डित उदयशंकर शास्त्रीसे मिला तो उन्होंने यह स्नेहभरा उपालम्भ दिया।

पलभरके लिये मेरा 'अहं' फूल उठा। किसीने मुझे 'निर्मोही' कहा तो।

× × ×

तो क्या मैं सचमुच निर्मोही हूँ ?

अजी, राम कहिये।

मोह तो मेरे रोम-रोममें ठुँसा पड़ा है।

यह ठीक है कि मैं अपने कितने ही घनिष्ठ मित्रोंको बरसों नहीं लिखता, हितों, मित्रों और सम्बन्धियोंको भी बहुत कम लिखा करता हूँ, किसीके हाल-चाल जाननेके लिये विशेष उत्सुक नहीं रहता, लेकिन इसका मतलब कोई यह लगाये कि मैंने मोहका निवारण कर लिया तो यह सरासर गलत होगा।

चिट्ठी-पत्री न लिखना तो लापरवाहीका लक्षण है। उसमें निर्मोह कहाँ ?

× × ×

बात है १९४९ की।

होलीके तुरंत बाद एम्० ए० की परीक्षा थी। बच्चे कानपुर थे। होलीमें आग लगाकर ही मुझे नागपुरके लिये प्रस्थान कर देना था।

जाना था सबेरेकी ट्रेनसे और रातमें ही दो-ढाई सालकी बेटी मुन्नीकी तबीयत इतनी बिगड़ी कि कई बार ऐसा लगा—अब गयी, अब गयी।

एम्० ए० की डिग्रीका मोह और तिकड़म बैठ जाय तो सालभर बाद ही पी-एच्० डी० हो सकनेका मोह—बच्चीके मोहसे तगड़ा पड़ा और मैं सबेरे ही नागपुरके लिये रवाना हो गया।

× × ×

झीलके पास एक मित्रकी ससुरालमें ठहरा।

शाम होती और मैं रोज झील-किनारेकी सीढ़ियोंपर आ बैठता।

सोचता, पता नहीं मुन्नीकी तबीयत कैसी होगी !

और उधर—कानपुरसे कोई खबर ही नहीं।

× × ×

आज चिट्ठी आयेगी, कल चिट्ठी आयेगी—आशाके इसी हिंडोलेपर झूलता रहता। पर चिट्ठीका कहीं पता नहीं।

परीक्षा तो दे रहा था, पर परीक्षाभवनमें भी और बाहर भी, मुन्नीकी ही चिन्ता सवार रहती।

× × ×

छठा परचा जिस दिन करके आया, उस दिन शामको झील-किनारे बैठे-बैठे मेरे आँसू न रुक सके। भावुकतामें मैंने सोच डाला कि मुन्नी जरूर चल बसी है, तभी ये लोग कोई खबर नहीं दे रहे हैं।

सोचते होंगे कि पर्चे बिगड़ जायँगे।

पर पर्चे तो बिगड़े ही।

अन्तिम दिन परीक्षाके बाद जब डेरेपर लौटा, तब चिट्ठी मिली, मुन्नीकी तबीयत ठीक है।

तसल्ली तो हुई, पर इस मोहके चलते उस बारका मेरा परीक्षाफल गोल हो गया।

× × ×

नागपुरसे लौटकर गाँव गया और वहाँसे लौटकर जब फिर कानपुर आया, तब देखा मुन्ना-मुन्नी दोनों बुखारसे पस्त हैं।

दो-एक दिनमें ही जाहिर हो गया कि दोनोंपर शीतलाका प्रकोप है।

मुन्नी तो किसी तरह बच गयी, पर मुन्नाको शीतला देवी अपनी गोदमें खींच ही ले गयीं।

उसके दाने उभरकर बैठ गये। अठारह दिन उसने भयंकर पीड़ा झेली। अन्तिम दिनोंमें उसकी आँखोंकी ज्योति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी जाती रही और तब वह चूड़ियाँ टटोलकर अपनी माँको पहचाननेकी चेष्टा करता।

मेरा मोह उन दिनों अपनी चरम सीमापर था।

× × ×

जब देखा कि मुन्नाकी आँखें भी जाती रहीं और हालत भी खराब है, तब मैंने भगवान्‌से प्रार्थना की कि वह उसे उठा ही ले। मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि इस अपंग हालतमें आजीवन उसकी ठीकसे सेवा कर सकूँ।

और भगवान्‌ने मेरी प्रार्थना सुन ली।

उसने दो हिचकियाँ लीं, आँखोंसे मोतीके दो बूँद टपके और—

आसपास जोधा खड़े, सभी बजावें गाल।
माँझ महलसे ले चला, ऐसा काल कराल॥

× × ×

सारी रात हम सब शोकमें छटपटाते रहे। सुबह चले उसके शवको गङ्गार्पण करने। मेरे सगे-सम्बन्धी बारी-बारीसे शवको ले रहे थे, पर अन्त—अन्ततक भी मेरी हिम्मत न हुई उसे छूनेकी!

पाँच सालतक हम लोगोंने जिस शरीरको इतने स्नेह और दुलारसे पाला था, उसीको जब गलेमें बालूभरे घड़े बाँधकर जाह्नवीकी गोदमें छोड़ा गया, तब सबकी आँखें गीली हो उठीं। चि० बब्बू तो फुक्का फाड़-फाड़कर रो रहा था।

और मैं देख रहा था पूर्व दिशाकी ओर, जहाँ भगवान् भास्करको आते देख प्रभातके तारे एक-एक कर विलीन होते जा रहे थे।

कबीर मेरे मानसपर बैठे-बैठे बार-बार सचेत कर रहे थे—

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुसकी जात।
देखत ही छिप जायगा ज्यों तारा परभात॥

आज भी जब-जब यह दोहा स्मृतिपटपर आता है, तब मुन्नाका मोह जाग्रत् हुए बिना नहीं रहता!

× × ×

और एक ठीक ऐसी ही घटना।

मेरा मँझला भाई जाता रहा था। तब मैं था कोई ११-१२ सालका। उन दिनों हम लोग थे ग्वालियर राज्यमें।

घरके अन्य लोगोंके साथ मैं भी बुरी तरह सिसक रहा था।

पर पूज्य पिताजी शान्त थे। आदिसे अन्ततक।

शवको संस्कारके लिये जब वे उठा ले चले, तब मैंने केवल यह पद उनके होठोंपर देखा—

यह मोहको जाल पसार चहूँ दिसि
संतत खेलत काल अहेरो।
भाग तू मोह मया ममता तजि
काहू को तू न कहूँ कोउ तेरो॥
नस्वर या तनको सम्बन्ध
'प्रताप' छुटै छिन साम सबेरो।
छाँड़ि सबै भ्रम जाल निरन्तर
श्रीबनमें बस हे मन मेरो॥

उनका वैराग्य आज भी मुझे प्रेरणा देता है। पर, कहाँ कर पाया है मैंने मोहका निरसन?

× × ×

पिताकी आँखोंके सामने बेटा आँखें मूँद ले—यह कितनी द्रावक घटना है, बतानेकी जरूरत नहीं। आत्मीयोंके ऐसे विछोहको जो शान्तिपूर्वक झेल ले जाय, वही तो आदमी है, वही तो स्थितप्रज्ञ है।

पूज्य पिताजी पुत्र-वियोगको जिस तरह शान्तिसे पी गये, मैं भी वैसा ही कर पाता तो समझता कि मैंने मोहपर कुछ काबू कर पाया है।

पर कहाँ हो पाया ऐसा?

× × ×

और लीजिये।

मुन्नाके जानेके बाद ही गाँवपर छोटे भाईके दोनों छोटे बच्चे एक सप्ताहके भीतर चल बसे और उधर छोटी बहिनकी गोद भी सूनी हो गयी। तीनों भाई-बहिनोंके चार-चार बच्चे एक साथ स्वर्गके मैदानमें खेलने चले गये।

मेरी बूढ़ी माँ, पत्नी, बहू, बहिन—सब-की-सब गाय गोरूकी भाँति डकर रही थीं!

मैं समझानेकी कोशिश करता। ज्ञान और वेदान्त बघारता, जगत्‌की नश्वरताकी कहानियाँ सुनाता। पर कहते-कहते स्वयं मेरी आँखें गीली हो उठतीं। हृदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर-ही-भीतर रो पड़ता।

मोहका कैसा प्राबल्य !

× × ×

स्वजनों, आत्मीयों, सगे-सम्बन्धियों, हितू-मित्रोंके लिये ही मेरे हृदयमें मोह भरा हो, ऐसी बात नहीं। कागजकी छोटी-छोटी चिटोंतकसे मुझे मोह है। छदाम-छदाम, दमड़ी-दमड़ीतककी चीजोंके प्रति मेरा मोह है।

× × ×

उस दिन कानपुरसे आ रहा था काशी।

लड़ाईका जमाना। ट्रेनोंमें भीड़का पार नहीं। बड़ी मुश्किलसे एक डिब्बेमें घुस पाया।

मेरे बाद ही एक दम्पतिने डिब्बेमें प्रवेश किया।

ठसाठस भीड़में दबकर वह दुर्बल युवती साँस लेनेके लिये छटपटाने लगी।

बेहोश होते देख मैंने उसे हवा की। लोगोंसे प्रार्थना कर उसके लिये थोड़ी जगह बनायी। कुछ देरमें वह स्वस्थ हो गयी।

इस प्रसङ्गको लेकर उक्त दम्पतिसे मेरा कुछ परिचय हो गया। सबेरे इलाहाबादमें दूसरी तरफ सीटें खाली होते देख हमलोग उधर चले गये।

और तभी पिण्डदानके लिये जानेवाले गयाके यात्रियोंने बड़ी बेरहमीसे डिब्बेमें अपना सामान फेंकना शुरू किया।

मेरी एक चप्पल उस सामानमें दब गयी।

मुश्किलसे उसे निकाल पाया।

दूसरी ओर जाकर बैठते ही मेरी नजर बाँये हाथपर पड़ी।

अरे, यह क्या ! हाथमें पट्टा तो बँधा है पर घड़ी नदारद !

× × ×

मैं सन्न हो गया।

पलभरमें रिस्टवाचके मोहने बुरी तरह मुझे जकड़ लिया।

बिना घड़ीके अब कैसे चलेगा।

दफ्तर जाने, खाने, पीने, सोने—सबके लिये तो मैं घड़ीपर आश्रित था। यह सब अब कैसे होगा ?

नयी घड़ी खरीदूँ तो पैसे कहाँ ? उस समय तो यह 'सेकेंड' शायद १५ रु० में ही मिल गयी थी, पर आज तो सत्तरसे कमका नुस्खा नहीं।

जान पड़ता है कि जब मैं नीचे झुककर चप्पल ढूँढ़ रहा था तभी किसीने सफाईसे घड़ी पार कर दी !

× × ×

चमड़ेका पट्टा एक तरफ कटा था।

सेफ्टीरेजर उसपर चला हो, ऐसा तो नहीं लगता था। फिर भी कटा तो वह था ही। हो सकता है किसीने घड़ी खींची हो तो कट गया हो।

एक विचार यह भी आया कि कहीं ऊपरसे गिरे सामानके बोझसे पट्टा न कट गया हो। वैसी हालतमें घड़ी कटकर नीचे गिरी होगी, पर सामानोंके इस अम्बारमें उसे खोज निकालना ही असम्भव है।

× × ×

हमारे वे दोनों सहयात्री भी घड़ीके लिये दुखी थे।

पति-पत्नी दोनों संवेदना प्रकट कर रहे थे कि अचानक उक्त महिला बोली—'अपने पैरोंके नीचे देखिये तो वह क्या है। आपकी घड़ी तो नहीं ?'

उसी समय बिजलीकी भाँति मेरे दिमागमें भी यह विचार कौंधा कि कहीं घड़ी उधरसे छिटककर इधर न आ गयी हो।

कल्पना सही उतरी।

प्रभुको मैंने असंख्य धन्यवाद दिये—घड़ी मिल जानेके लिये ! पर मेरा घड़ीका मोह तो नंगा होकर मेरी आँखोंके आगे नाच ही उठा।

घड़ी अब भी है मेरे पास। पर, बाँधना तो उसका मैंने तभीसे छोड़-सा रखा है। बन्धन घड़ीका भी अच्छा नहीं, यह सोचकर।

× × ×

सन् ३०का आन्दोलन छिड़ा।

कालेज छोड़कर मैं भी उसमें कूद पड़ा।

पिताजी मेरे दुर्बल कंधोंपर घरका बोझ लादकर चल दिये, फिर भी आन्दोलनका चस्का मुझसे न छूटा। जेल भी गया। छूटकर फिर उसी धुनमें रमा रहा।

पर इस बीच कुछ खट्टे-मीठे अनुभव भी हुए।

एक चीज खटकी और बुरी तरह खटकी—लोक-सेवकोंमें श्रेणी-भेद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्या ८]

देखा, जो बड़े घरका है, पैसेवाला है, उसकी बड़ी कद्र है। हम-जैसे अकिंचनोंको कोई पूछनेवाला भी नहीं।

पैसेकी नहीं, डिग्रीकी भी कद्र होते मैंने देखी।

जो लोग कालेज-शिक्षाका बहिष्कार करते, डिग्रियोंका विरोध करते, उन्हें भी डिग्रियोंका भक्त देखा।

मेरे पास न धन था, न डिग्री !

ईमानदारीसे धनी बनना तो सम्भव नहीं, डिग्री अलबत्ता प्राप्त की जा सकती है।

और तभीसे मेरे मनमें डिग्रीके प्रति मोह पैदा हुआ।

× × ×

फर्स्ट ईयरसे ही कालेज छोड़ा था। घरपर रहकर बिना पूरी पुस्तकोंके दिन-रात जी-जानसे, फूटी लालटेनमें कागज चिपकाकर पढ़ते हुए इण्टरकी परीक्षा दे डाली।

पर बी० ए० में गाड़ी अटक गयी।

३६से ४६—दस साल लग गये। कारण, कोई विश्वविद्यालय प्राइवेट बी० ए० में बैठने देता नहीं। तब मैंने एक जगह अध्यापकी कबूल की।

गृहस्थीका भार सिरपर। दिनमें पढ़ाता, रातमें कलम घिसकर रोटियाँ कमाता।

'मरेको मारे शाह मदार।' अभी गाड़ी चालू हुए चार ही पाँच महीने बीते थे कि दफ्तरमें कुछ संघर्ष आ गया और 'स्वाभिमान' नामक विषैले जन्तुको ठेस लगते देख मैंने इस्तीफा दे दिया।

× × ×

नौकरी तो दूसरी जगह भी मिल रही थी, पर उसके लिये शहर छोड़ना पड़ता और शहर छोड़नेका मतलब था डिग्रीका मोह छोड़ना।

स्कूलके अधिकारी मेरी गरज जानते थे। वेतनके नामपर खातेमें दस रुपये लिख लेते थे और मेरी पत्नीके नाम दस रुपये दानकी रसीद मेरे हवाले करते ?

हिसाब-किताबका काम मैंने पाँच साल किया था। एक स्टोरमें मेरे एक मित्र मैनेजर थे। बोले—'हमारे यहाँ हिसाबका काम है। तुम कर लो।'

डूबतेको तिनकेका सहारा।

सबेरे नौ बजे घरसे निकलता। दससे सवा दोतक स्कूलमें पढ़ाता, वहाँसे स्टोर जाकर तीनसे आठ बजे राततक काम करता। नौ-साढ़े नौपर घर लौटता, रोज बारह मीलका चक्कर।

जाड़ेके दिन। पैरोंमें बिवाई फट गयी और उससे खून निकलने लगा।

रातको बुआ मोम पिघलाकर जब बिवाईपर छोड़तीं, तब रोम-रोम चिल्ला पड़ता—

'जाके पाँव न फटी बिवाई। सो का जानै पीर पराई॥'

× × ×

स्कूलसे स्टोर जाते समय रोज मैं अपनेसे पूछता—क्या तुझे बी० ए० की डिग्रीका इतना मोह है कि उसके लिये तू इतना कष्ट झेलता है ? क्या रखा है बित्तेभर कागजमें ? बी० ए० का पुछल्ला लगाकर क्या तू आसमानपर चलने लगेगा ?

और तभी भीतरसे कोई जवाब देता—अब डिग्रीका प्रश्न कहाँ है ? अब तो सवाल ही दूसरा है। या तो इस कामको शुरू ही न करता और जब शुरू कर दिया, तब विघ्नोंसे क्या डरना ! **'प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति।'**

× × ×

कोई तीन माह बाद विघ्नोंके बादल फट गये।

कायदेके अनुसार अठारह मासतक अध्यापन करा लेनेके बाद मेरे हाईस्कूलके हेडमास्टर साहबने मेरी अर्जीपर दस्तखत किये और जनवरीमें मुझे छुट्टी दी कि पढ़कर मार्चमें परीक्षा दे दूँ।

× × ×

शुरू किये कामको बीचमें नहीं छोड़ना चाहिये, यह विचार तो अच्छा है। मैंने इसका सहारा लेकर विघ्नोंको झेला, यह भी बुरा नहीं किया, परंतु आज जब तटस्थ वृत्तिसे इस प्रसङ्गपर विचार करता हूँ, तब लगता है कि डिग्रीके मेरे मोहने ही उस समय आकर्षक छद्मरूप धारण कर लिया था, नहीं तो बी० ए० के बाद मैं एम्० ए० के लिये क्यों दौड़ता ?

और एम्० ए० होनेके बाद पी-एच्० डी० का मोह मुझे सता रहा है।

'डॉक्टर बननेके इस मोहको बार-बार उठाकर ताकपर रखनेकी कोशिश करता हूँ। देखूँ, इसमें सफल हो पाता हूँ या नहीं।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत फ्रांसिस अपने शरीरको 'गदहा भाई' कहते थे, पर मैंने तो इन 'गदहा राम' को 'घोड़ा राम' बना रखा है और सारी इन्द्रियाँ इन्हींको सौंप रखी हैं। नतीजा यह है कि ये मुझे जैसा चाहते हैं, नचाते हैं और मेरा सारा जीवन इन्हींका खुरेरा करनेमें बीत रहा है।

एकाध बार भागीरथीके तटपर घंटों बैठकर मैंने सोचा कि—

'सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा॥'

आदर्शोंके अनुकूल जो शरीर नहीं चल पाता, उसे जल-समाधि क्यों न दे दी जाय!

पर यह काम भी कोई दाल-भातका कौर है?

मेरे एक मित्र एक बार जीवनसे ऊबकर रेलकी पटरीपर जा लेटे, पर इंजिनकी रोशनी देखते ही सिरपर पाँव रखकर भागे।

विचारोंके बवंडरमें मैं बुरी तरह फँस गया।

क्या होगा मेरे मरनेके बाद? जिस परिवारकी जिम्मेवारी मेरे मत्थे है, उसकी स्थिति कैसी होगी?

लोग कहेंगे कि कैसा कायर था, नालायक था, जो जीवनके संघर्षोंसे ऊबकर गङ्गामें डूब मरा!

और फिर शास्त्रोंमें कितनी निन्दा की गयी है आत्महत्याकी। कितने भयंकर नरकोंकी यातना भोगनी पड़ती है।

छिः-छिः, ऐसा घृणित पाप नहीं करना चाहिये।

यह ठीक है कि भगवान्‌ने यह रत्न-चिन्तामणि शरीर दिया है सत्कर्म करनेके लिये, इससे दुष्कर्म न होना चाहिये, पर इसका मतलब यह थोड़े ही है कि कोई गलती हो जाय तो इस शरीरको ही समाप्त कर दिया जाय।

गलती बुरी चीज है।

पर, गलती हो जानेपर 'न रहे बाँस, न बजे बाँसुरी!' ऐसा मानकर शरीरका अन्त करना तो उससे भी बुरी चीज है। गलती हो तो उसका प्रायश्चित्त किया जाय।

और इससे बढ़कर दूसरा प्रायश्चित्त हो ही क्या सकता है कि जो गलती एक बार हो जाय, उसकी पुनरावृत्ति न की जाय।

और यही मुझे करना चाहिये।

कई दिनोंके गम्भीर हृदय-मन्थनके बाद मैंने आत्महत्याके विचारको तिलाञ्जलि दे दी।

× × ×

माना, आत्महत्या बहुत बुरी चीज है, उससे विरत होकर मैंने उचित ही किया, पर आज जब शान्तचित्तसे सारी बातोंपर विचार करता हूँ, तब ऐसा ही लगता है कि मेरे इस निश्चयमें शरीरका मोह ही मूल था। शरीरके प्रति मेरी आसक्ति ही उस समय अपने पूरे वेगसे उमड़ पड़ी थी, जब उसने देखा कि—

'छूटत गाँव नगरसे नाता। छूटत महल अटारी।'

× × ×

शरीरका यह मोह आज भी कहाँ कम हो सका है?

अब तो उलटा ऐसा लगने लगा है कि ज्यों-ज्यों बाल पकने लगे हैं, आँखोंकी शक्ति क्षीण होने लगी है, शरीरमें त्रिदोष बढ़ने लगे हैं, अङ्ग-अङ्गमें शैथिल्य आने लगा है, त्यों-त्यों जीवनका मोह और ज्यादा बढ़ने लगा है।

शरीरका यह ममत्व घटनेके बजाय बढ़ता ही दीख रहा है।

घरका मोह, बाल-बच्चोंका मोह, रुपये-पैसे, धन-दौलतका मोह, मान-सम्मानका मोह—एक दो मोह हैं जो गिनाऊँ। चारों ओर मोह-ही-मोहकी पलटन खड़ी है। मेरा रोम-रोम घिरा है मोहसे।

और यह तो है ही कि—

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥

(क्रमशः)

× × ×

अपने मनमें यह कदापि न सोचो कि आज मैंने दूसरोंकी बहुत सहायता की है। हाँ, अपने हृदयमें विचारकर जरा देख लो कि इससे अधिक सहायता तुम कर सकते थे या नहीं और जरा इसपर भी सोचो कि दुनियाके दुःख-भण्डारको कम करनेमें तुम्हारी सहायता कितनी थोड़ी रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[एक निश्चय]

भगवद्गीतासे, शास्त्रोंसे और संतोंसे मुझे बहुत विलक्षण-विलक्षण बातें मिली हैं। उनमेंसे एक बात आज मैं कहता हूँ। आपलोग कृपा करके ध्यान दें। एक ऐसी सरल बात है, जिससे साधनमें बहुत तेजीसे उन्नति हो सकती है, बड़ा विलक्षण आनन्द प्राप्त हो सकता है, सदाके लिये दुःख-संताप मिट सकता है। परंतु वह सरल बात, किसके लिये है ? जो अपना उद्धार चाहता है। 'मेरा कल्याण हो'—यह भाव जितना ही अधिक होगा, उसके लिये यह बात उतनी ही सरल होगी।

हम साधन करते-करते ऊँची स्थितिपर पहुँचते हैं, फिर हमें उस तत्त्वका अनुभव होता है—ऐसा एक प्रकार है। एक प्रकार ऐसा भी है कि साधन करते-करते हम जहाँ पहुँचते हैं, वहाँ हम पहलेसे ही जा बैठें तो उतना लम्बा समय नहीं लगेगा, उतना परिश्रम नहीं पड़ेगा तथा लाभ बहुत जल्दी और विशेष होगा। इस विषयमें भगवान्‌ने कहा है कि 'निश्चयवाली बुद्धि एक होती है और अव्यवसायी मनुष्योंकी बुद्धियाँ बहु-शाखाओंवाली तथा अनन्त होती हैं' (गीता २।४१)। 'दुराचारी-से-दुराचारी मनुष्य भी यदि अनन्यभावसे मेरे भजनमें लग जाता है तो उसको साधु ही मानना चाहिये; क्योंकि उसने निश्चय बहुत अच्छा किया है' (गीता ९।३०)। इस श्लोकमें आये हुए '**सम्यग्व्यवसितो हि सः**' पदका तात्पर्य भी यही है कि 'अब हमें परमात्माकी प्राप्ति ही करनी है, हमें इस मार्गपर ही चलना है'—ऐसा अटल निश्चय हो जाय। लोग निन्दा करें या स्तुति करें, धन आ जाय या चला जाय, शरीर ठीक रहे या बीमार हो जाय, हम जीते रहें या मर जायँ, पर हम इस निश्चयपर अडिग रहेंगे। इस तरह 'मैं'-पनमें यह भाव कर लिया जाय कि 'मैं तो केवल पारमार्थिक साधक हूँ तो फिर साधन अपने-आप होगा।

आरम्भमें ही हम अपना सम्बन्ध परमात्मासे मान लें कि 'हम भगवान्‌के हैं और भगवान् हमारे हैं।' यह बात बहुत बार आपने सुनी होगी और बहुत बार मैंने कही भी है, पर आपलोग ध्यान नहीं देते। मैं आज आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस बातपर विशेष ध्यान दें। 'मुझे तो अपना कल्याण करना है; क्योंकि मैं केवल परमात्मप्राप्तिके लिये ही यहाँ आया हूँ, जन्मा हूँ, दूसरा और कोई मेरा काम नहीं है'—ऐसा आपका एक निर्णय हो जाय। इसीको व्यवसायात्मिका बुद्धि कहते हैं। ऐसी बुद्धिसे पापी-से-पापी मनुष्य भी बहुत जल्दी धर्मात्मा बन जाता है—'**क्षिप्रं भवति धर्मात्मा**' (गीता ९।३१)।

एक भूल-भुलैया होती है। उसके भीतर जानेपर फिर बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है। इसी तरह संसारमें ये जो राग-द्वेष हैं, वे भी भूल-भूलैया हैं। यह ठीक है, यह बेठीक है—इसमें मनुष्य ऐसा भूलता है कि इससे निकलना बड़ा मुश्किल हो जाता है। अतः इससे निकलनेके लिये आप एक ही निर्णय कर लें कि 'हमें केवल परमात्माकी तरफ ही चलना है। हमें संसारमें न राग करना है, न द्वेष करना है, न हर्षित होना है, न शोक करना है।' ऐसा जिसका पक्का निश्चय होता है, वह द्वन्द्वोंमें नहीं फँसता और सुखपूर्वक मुक्त हो जाता है—'**निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते**' (गीता ५।३)। समताका नाम 'योग' है—'**समत्वं योग उच्यते**' (गीता २।४८)। अतः राग-द्वेष, हर्ष-शोक, ठीक-बेठीक—इन द्वन्द्वोंमें विचलित न होना 'योग' है और इस योगसे युक्त मनुष्य बहुत जल्दी ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है—'**योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति**' (गीता ५।६)। —इस प्रकार सुखपूर्वक और बहुत जल्दी—दोनों बातें आ गयीं। परंतु यह बात पढ़ लेनेपर, पढ़ा देनेपर, विवेचन कर देनेपर, लोगोंको सुना देनेपर भी जल्दी पकड़में नहीं आती। इस बातको काममें कैसे लाया जाय—इसकी विधि बताता हूँ। नीतिमें एक श्लोक आया है—

अमन्त्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः॥

'संसारमें ऐसा कोई अक्षर नहीं है, जो मन्त्र न हो; ऐसी कोई जड़ी-बूटी नहीं है, जो ओषधि न हो; और ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जो योग्य न हो। परंतु इस अक्षरका ऐसे उच्चारण किया जाय तो यह अमुक काम करेगा, इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जड़ी-बूटीको इस प्रकार दिया जाय तो अमुक रोग दूर हो जायगा, यह मनुष्य इस प्रकार करे तो बहुत जल्दी इसकी उन्नति हो जायगी—इस प्रकार बतानेवाले पुरुष संसारमें दुर्लभ हैं।'

किस बातको किस रीतिसे काममें लाया जाय, जिससे सुखपूर्वक मुक्ति हो जाय—इसमें आपको यह खास बात बतायी है कि अपना खुदका विचार, निश्चय एक हो जाय कि हमें तो परमात्माकी प्राप्ति ही करनी है। परमात्माकी प्राप्ति भी करनी है—इसमें 'भी' की जगह 'ही' हो जाय और 'ही' पर दृढ़ रहें कि हमें तो केवल इस तरफ ही चलना है। दुःख पायें, सुख पायें, कुछ भी हो जाय, हमें तो अपना उद्धार करना है—ऐसा पक्का विचार करके चलें तो बहुत सुगमतासे, बहुत जल्दी कल्याण हो जाय। इसमें खुदका विचार ही काम आयेगा—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

(गीता ६।५)

'स्वयं अपना उद्धार करे, अपना पतन न करे, क्योंकि यह आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।'

'बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः' (गीता ६।६)—जिसने अपनेसे अपनेपर विजय कर ली है, उसके लिये यह आप ही अपना मित्र है। अपनेसे अपनेपर विजय करना क्या है कि हम समताको धारण कर लें। मेरेको अपना कल्याण करना है— यह विचार पक्का हो जाय तो समता अपने-आप आ जायगी।

आप और हम विचार करें कि हमारे सामने अनुकूलता-प्रतिकूलता कई बार आयी है और गयी है। हमने सुख भी भोगा है और दुःख भी भोगा है। परंतु हमें शान्ति तो नहीं मिली। वहम होता है कि ऐसा गुरु मिल जाय तो कल्याण हो जाय; ऐसा परिवार मिल जाय तो कल्याण हो जाय; ऐसी स्त्री मिल जाय तो बड़ा ठीक रहे; ऐसा पुत्र मिल जाय तो बड़ा ठीक रहे; ऐसा मित्र मिल जाय तो हम निहाल हो जायँ; इतना धन मिल जाय तो हम निहाल हो जायँ; ऊँचा पद मिल जाय तो हम निहाल हो जायँ; आदि-आदि। इसमें आप विचार करें कि अनुकूल स्त्री किसीको नहीं मिली है क्या? अनुकूल पुत्र किसीको नहीं मिला है क्या? अनुकूल परिस्थिति किसीको नहीं मिली है क्या? परंतु क्या वे इच्छाओंसे रहित होकर परमात्माको प्राप्त हो गये? विचार करनेसे दीखता है कि जिसको ये सब अनुकूलताएँ मिली हैं, उसकी इच्छाएँ नहीं मिटी हैं। वह कृतकृत्य, ज्ञात-ज्ञातव्य और प्राप्त-प्राप्तव्य नहीं हुआ है। अतः कोई भी इन परिस्थितियोंसे निहाल हो जाय—यह असम्भव बात है। कारण कि परिस्थितियाँ तो बदलनेवाली हैं, पर आप स्वयं बदलनेवाले नहीं हो। बदलनेवाली परिस्थितियोंसे आप ऊँचे कैसे हो जाओगे? नाशवान्‌के द्वारा अविनाशीकी उन्नति कैसे हो जायगी? हो ही नहीं सकती। असम्भव बात है। मैंने इस विषयमें खूब अध्ययन किया है। आप परमात्मप्राप्तिका ही एक निश्चय कर लो, फिर अनुकूलता आपके पीछे दौड़ेगी।

नाम नाम बिनु ना रहे, सुनो सयाने लोय।
मीरा सुत जायो नहीं, शिष्य न मुंड्यो कोय॥

मीराबाईका नाम आज भी कितने आदरसे लिया जाता है। उनका नाम लेनेसे, उनके पद गानेसे लोग अपनेमें पवित्रताका अनुभव करते हैं। उनमें क्या बात थी? ***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई। जाके सिर मोरमुकुट, मेरो पति सोई॥'*** एक ही निश्चय था कि मेरा पति वही है। क्या होगा, क्या नहीं होगा—इस बातकी कोई परवाह नहीं। अहंता बदलनेपर, एक निश्चय होनेपर राग-द्वेष कुछ नहीं कर सकते। उनमें ताकत नहीं है अटकानेकी। केवल हमारा विचार पक्का होना चाहिये।

जिस अर्थके लिये तुम दिन-रात चिन्तित रहते हो, वह अनर्थमय है, उससे रत्तीभर भी सुखकी आशा नहीं है। धनी मनुष्यको सगे पुत्रसे भी डर लगा करता है। —श्रीशंकराचार्य

घरमें रोशनी करते ही जैसे युग-युगान्तरका अँधेरा एक ही साथ नाश हो जाता है, वैसे ही भगवान्‌की तनिक-सी कृपादृष्टिसे हजारों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। —श्रीरामकृष्ण परमहंस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मरण-भक्तिकी साधना

(डॉ॰ श्रीकन्हैयालालजी शर्मा)

वे मानव धन्य हैं, जो सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते-फिरते, रोते-हँसते, श्वास लेते-छोड़ते प्रतिपल चौबीसों घंटे ईश्वरका स्मरण करते रहते हैं। ऐसे व्यक्ति सच्चे ज्ञानी, सच्चे भक्त और सच्चे कर्मयोगी हैं। वे संत, महात्मा और साधु हैं, वे दर्शनीय तथा प्रातःस्मरणीय एवं वन्दनीय हैं। वे मनुष्योंमें देवता हैं, पूज्य हैं। वे जहाँ रहते हैं, वहाँ पुष्पकी तरह खिले रहते हैं और चतुर्दिक् सुगन्धि बिखेरते रहते हैं। उनके प्रभामण्डलसे आस-पासका वातावरण आविष्ट रहता है। उनके दर्शनोंसे गङ्गा-स्नानका फल प्राप्त होता है और वाणीमें वेदमन्त्रोंकी गूँज होती है। वे ईश्वरके प्रिय होते हैं और उन्हें ईश्वर प्रिय होता है।

ईश्वरका स्मरण जितना सरल है उतना ही कठिन है। सरल तो इसलिये है कि ईश्वर अत्यन्त समीप है और प्रति व्यक्तिके स्वरूपमें है। अतः ईश्वरका स्मरण स्वरूपका स्मरण ही है, जो प्रयत्नसाध्य नहीं होता, मानसिक अवस्थासाध्य होता है। यदि हम गम्भीरतासे अपने स्वरूपसे जुड़ जायँ तो जो सदा अपना है, उसके विस्मरणका प्रश्न ही नहीं उठता। प्रश्न केवल पकड़की है। पकड़ जितनी गहरी और दृढ़ होगी, उतना ही तीव्र स्मरण बना रहेगा।

वस्तुको पकड़ने या ग्रहण करनेके लिये हमारे पास पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं—आँख, कान, नाक, जिह्वा एवं त्वचा। छठा इन्द्रिय मन भी है, जो इन सबसे निरन्तर जुड़ा रहता है। वस्तुतः नाक, कान आदि इन्द्रियोंद्वारा विषयोंका ग्रहण मन ही करता है। ये इन्द्रियाँ करण या साधन हैं, जिनके द्वारा मन विषयोंका भोग करता है। पर मन भी अन्तिम भोक्ता नहीं है, भोक्ता है जीव, जिसकी भोग-पद्धतिको समझ पाना साधारण जनके लिये कठिन है। इस प्रकार मोटे रूपसे तो मन ही विषयोंका भोक्ता बना रहता है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा विषयोंका भोग कर रहे मनकी गति इतनी तीव्र होती है कि एक समयमें एक इन्द्रियद्वारा भोक्ता बने रहनेपर भी वह एक ही समयमें पाँचों इन्द्रियोंके एक साथ विषयोंको भोगता हुआ प्रतीत होता है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सही अर्थमें मन भोक्ता नहीं है और न ही आत्मा भोक्ता है। जीव अपने अज्ञानके कारण स्वयंको भोक्ता मान लेता है—

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥

(गीता ५।१५)

'सर्वव्यापी परमात्मा न किसीके पापकर्मको ग्रहण करता है और न किसीके शुभकर्मको। किंतु अज्ञानके द्वारा ज्ञान आवृत हो जानेसे सभी जीव मोहित हो जाते हैं।'

यह अज्ञान अन्तःकरणमें उत्पन्न होता है और तबतक बना रहता है, जबतक मनुष्यकी बुद्धि एवं मन परमात्म-परायण नहीं हो जाते। सांसारिक भोगोंकी आसक्ति अन्तःकरणमें होती है। काम, क्रोध आदि विकार इसीमें होते हैं। मनुष्यमें अन्तःकरण प्रधान होता है, बाह्यकरण अपेक्षाकृत गौण है। अन्तःकरणमें मनोव्यापार प्रमुख होनेसे सामान्यजन इसे ही कर्ता एवं भोक्ता मान लेनेके भ्रमको पाले रहते हैं। करणको कर्ता मान लेना भ्रम है।

मन इन्द्रियोंद्वारा विषयका ग्रहण करता है और तत्पश्चात् आत्म-प्रक्षेपण भी करता है, अतः उसकी सहज गति बहिर्मुखी होती है। इन्द्रियाँ अपनी तृप्ति सांसारिक भोगोंमें पाती हैं और मनको उनकी ममता, कामना एवं आसक्तिमें फँसाती हैं। भोगोंकी तृप्तिकी पुनरावृत्तियाँ व्यक्तिको उनका दास बना देती हैं और उनके बिना उसका जीना भी असम्भव-सा प्रतीत होने लगता है। इसलिये मनुष्य तृप्तिदायक साधनोंके जुटाने तथा उनका रक्षण करते रहनेमें अपने जीवनकी सफलता समझता रहता है। इन्हींके लिये वह जीता-मरता है।

इससे यह स्पष्ट है कि इन्द्रियोंद्वारा भुक्त संसार ही मनुष्यके जीवनमें ओत-प्रोत रहता है। वही उसे रुचिकर लगता है और उसके बाहर निकलनेका विचारतक उसके मनमें नहीं आता। उसकी इन्द्रियाँ भी अपने-अपने भोगोंकी ओर उन्मुख, सजग, तत्पर एवं प्रवृत्त बनी रहती हैं। समस्त इन्द्रिय-भोग मनुष्यको संसारमें उपलब्ध होते रहते हैं। इसलिये संसार उसे प्रिय लगता रहता है और उसके लिये अपरिहार्य बना रहता है।

संसारका एक अन्य रूप है—परिजन, पुरजन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातिजन, ग्रामजन, देशजन आदि, जिनसे दीर्घ सम्पर्कके कारण व्यक्ति उनसे अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और उनके लिये जीता-मरता है। अपने पुत्र-कलत्रके कुशलक्षेमके लिये वह नाना प्रकारके दुष्कर्म भी करता है और इन्हीं प्रपञ्चोंमें वह फँसकर रह जाता है। इस प्रकार अपने संसारकी रचना करके वे सोते-जागते, उठते-बैठते उसीमें डूबे रहते हैं।

इससे बाहर निकल पाना उन्हींके लिये सम्भव है, जो ईश्वरके अस्तित्वको सुदृढ़ एवं पूर्ण आस्थाके साथ स्वीकार कर लेता है कि वह सर्वशक्तिमान्, सदा-सर्वत्र विद्यमान है, सर्वज्ञ, परम सुन्दर एवं परम आनन्दमय है। यह जगत् उसीकी सृष्टि है और सांसारिक भोगोंसे अधिक आनन्दमय अवस्था उसकी प्राप्तिद्वारा सम्भव है। यह संसार एवं सांसारिक भोग तो नश्वर है, क्षणभङ्गुर है। इसमें स्थायित्व है ही नहीं। इस नश्वर जगत्के समस्त सम्बन्ध मिथ्या हैं।

सर्वशक्तिमान् परमात्माकी सत्तापर सम्पूर्ण आस्था एवं विश्वास जागते ही ज्ञान, भक्ति, उपासना, योग, सेवा आदिके द्वार अपने-आप खुलने लगते हैं। साधक उनमेंसे किसी एकमें प्रवेश करके ईश्वरतक सहज ही पहुँच सकता है। सभी मार्गोंने एक सत्यको स्वीकारा है कि प्रभुका निरन्तर स्मरण बनाये रखकर ही गन्तव्यतक पहुँचा जा सकता है। चाहे ध्याता-ध्यान-ध्येयका सम्बन्ध हो, चाहे ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयका निर्वाह हो, चाहे उपासक-उपासना-उपास्यसे मार्ग गया हो, चाहे सेवक-सेवा-सेव्यसे भाव-विकास हुआ हो; प्रत्येक अवस्थामें आराध्यकी आनन्दमयी छबि आराधकके सामने होनी ही चाहिये। जिसकी पूर्णता एवं अनन्यता असंदिग्ध हो, उससे उज्ज्वल एवं पवित्र लोक-परलोकमें कुछ है ही नहीं। यह धारणा दृढ़ हो जानेपर ही साधकका अनुराग स्थायी एवं प्रगाढ़ हो जाता है। ऐसी स्थितिमें उसका स्मरण प्रत्येक क्षण बना रहेगा। स्वप्न भी उसीके दिखायी देंगे, नींद भी उसीकी गोदमें आयेगी, भोजन भी उसीके साथ बैठकर करेंगे।

प्रत्येक व्यक्ति सच्चिदानन्द परमात्माका अंश है। अतः अंशीसे अभिन्नताका भाव उसमें सदैव बना रहना चाहिये, पर मायाके कारण ऐसा नहीं हो पाता। मोहग्रस्तताके कारण संसार उसे सत्य प्रतीत होने लगता है और जीव-संज्ञक वह स्वयंको तथा परमात्माको विस्मृत किये रहता है। भगवान्की कृपासे ही उसे आत्मतत्त्वकी अनुभूति और परमात्माकी नित्य स्मृति भी होती रहती है, जैसा कि भगवान्के कृपापूर्ण उपदेशके बाद अर्जुनको दिव्य दर्शनकी प्राप्ति हुई—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।

(गीता १८।७३)

'हे अच्युत! आपके अनुग्रहसे मेरा मोह नष्ट हो गया और मुझे दिव्य स्मृति प्राप्त हो गयी।'

यह स्मृति अपने स्वरूपकी थी। एक बार इस स्मृतिके उदय हो जानेपर तथा उसमें स्थिर रहनेपर व्यक्तिसे गलत कार्य नहीं हो सकता। स्मृति-प्राप्त व्यक्ति धर्माचरण और सत्कार्योंमें प्रवृत्त रहेगा।

साधकके जीवनमें 'स्मरण'का बड़ा महत्त्व है। अपने साधना-कालमें उसका प्रयास यह रहता है कि परमात्माका स्मरण उसे सदैव बना रहे। इसके लिये वह नाम-स्मरण, नाम-जप, तप, कीर्तन, श्रवण, अर्चना, पूजा, स्वाध्याय, सत्संग, ध्यान, गुरु-सेवा आदिका आश्रय लेता है और अपनी दिनचर्या इस प्रकारकी बनाता है कि उसे अपने आराध्यका सांनिध्य अधिकाधिक प्राप्त हो, जिससे उसकी स्मृति बनी रहे। सगुणोपासक अपने आराध्यके देव-विग्रहोंको जगाते हैं, नहलाते हैं, वस्त्र पहनाते हैं, भोजन कराते हैं, शयन कराते हैं और ऋतु-पर्वानुसार उनके शृंगार तथा राग-भोग, वस्त्रालंकार आदिकी व्यवस्था करते हैं। परमात्माका निरन्तर स्मरण करते रहनेके लिये यह पूजा-विधान कितना सुन्दर है। बाह्य पूजाके साथ-साथ उसकी मानस-पूजा भी चलती रहती है। इस विधानमें पूजक सतत सतर्कता, दक्षता और सावधानीसे लौकिक और शास्त्रीय नियमोंके अनुसार अपने आराध्यकी परिचर्या करता रहता है।

निर्गुणोपासक नाम या रूप या दोनोंका सहारा लेकर अपनी उपासना आरम्भ करते हैं। धारणा, ध्यानके मार्गसे बढ़कर समाधि-अवस्थातक पहुँचकर जीवन्मुक्त-अवस्थाको प्राप्त होते हैं। मनको एकाग्र करके परम सत्ताको प्रकाश या नादके रूपमें मानकर वे अपनी यात्राका शुभारम्भ करते हैं और परिणाममें उन्हें वह अनुभूति होती है, जिसे किसी भी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्त नहीं किया जा सकता, केवल अनुभव किया जा सकता है। आत्मानुभूतिकी इस अवस्थातक समर्थ गुरु अपने योग्य शिष्यको पहुँचा देता है। शिष्य एक बार परम सत्यका अनुभव कर लेनेके पश्चात् स्मरणद्वारा ही उसे बनाये रखता है।

इस प्रकार स्मरणका दोनों प्रकारकी साधनाओंमें बड़ा महत्त्व है।

नाम-समरण परमात्माकी स्मृति बनाये रखनेका सर्वश्रेष्ठ साधन है। ॐ, राम, कृष्ण आदि शब्द अपने नामीसे उसी प्रकारसे बँधे हुए हैं, जैसे रत्नके साथ उसका मूल्य।

यद्यपि यह कहना कठिन है कि नाम और नामीमेंसे कौन बड़ा और कौन छोटा है, फिर भी राम-नामकी महिमा रामसे अधिक है। अतः नामकी सामर्थ्यको समझकर भक्त राम-नामकी रट लगाते रहते हैं—

राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।

(विनयपत्रिका, पद ६५)

एक बार नाम-जपको समर्पित हो जानेपर साधक राम कहनेमें अपना भला देखने लगता है—

राम कहे भला होइगा, नहितर भला न होई।

(कबीर-ग्रंथावली, सुमिरणको अंग)

रामके गुणगान भी राम-स्मरण ही हैं। अतः साधकको समयका सदुपयोग करना चाहिये। नाम-स्मरण जिह्वाका ही कार्य नहीं है, वह तो हृदयकी पुकार है। नाम-स्मरण योग, ज्ञान, वैराग्य आदि साधनोंसे श्रेष्ठ है।

सब साधन-फल कूप-सरित-सर सागर-सलिल-निरासा।
राम-नाम-रति-स्वाति-सुधा-सुभ-सीकर प्रेमपियासा॥

(विनयपत्रिका ६५)

अतः नित्य-निरन्तर उसी जप एवं स्मरणका अभ्यास करना चाहिये और उसीका आश्रय भी लिये रहना चाहिये, नाम-नामीकी अभिन्नता होनेके कारण यह आश्रय सर्वव्यापक सर्वेश्वर परमात्माको आकृष्ट कर लेता है और फिर शीघ्र ही सम्पूर्ण चराचर जगत्में एकमात्र उसीका भान और बाह्याभ्यन्तर दर्शन होने लगता है, जिससे उसकी विस्मृतिकी सम्भावना ही नहीं होती और यही अभ्यास उसे समग्ररूपसे परमात्मप्राप्तिके रूपमें परिणत कर देता है तथा परमात्मामें ही प्रविष्ट हो जाता है।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

(गीता १८। ५५)

विवेक-वाटिका

जो आत्माको सब भूत-प्राणियोंमें और सब भूत-प्राणियोंको आत्मामें देखता है उससे वह (परमात्मा) नहीं छिपता।

—उपनिषद्

जो सम्पूर्ण भूतोंमें परमात्माको और परमात्मामें सम्पूर्ण भूतोंको देखता है उससे परमात्मा अदृश्य नहीं होते और वह परमात्मासे अदृश्य नहीं होता। —श्रीमद्भगवद्गीता

इच्छाका त्याग करनेवालेको घर छोड़नेकी क्या आवश्यकता है ? और इच्छाके बन्धनमें रहनेवालेको वन-गमनसे क्या लाभ है ? सच्चे त्यागीका निवासस्थान ही वन तथा भजन ही कन्दरा है। —महाभारत

जो काम, मद और क्रोधसे छूटकर ईश्वरके चरणोंमें लगे हुए हैं, वे सारे संसारको ईश्वरमय देखते हैं, इसलिये वे किससे विरोध करें ? —तुलसीदास

प्रत्येक मनुष्यके साथ भलाई करो, किसीके साथ बुराई मत करो। यदि तुम्हारे साथ कोई बुराई करता है तो उसकी जिम्मेवारी उसपर है। तुम अपना मन कलुषित कर कर्तव्यसे न हटो। —मारकस आरीलियस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिधान और मानवी उत्थान

(श्रीसन्तकुमारजी अवस्थी, एम्० ए०)

अमर ज्ञान

'येनाहं नामृतः स्यां किमहं तेन कुर्याम्।'

भारतकी अन्तरात्मा सदैवसे यही कहती आयी है कि 'जिससे मुझे अमरत्व न प्राप्त हो सके, उसे लेकर मैं क्या करूँगी, वह तो मेरे लिये त्याज्य है।' अपने इस परम लक्ष्य अमरत्वको प्राप्त करनेके लिये भारतीय ऋषियोंने कार्य-जगत्के नाशको देखकर मृत्युकी समस्याको सुलझाया और कारणजगत्की नित्यताको जानकर अमरत्वका ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न किया। उन्होंने नाशवान् संसारकी छानबीन तो की, परंतु उसमें कभी रत नहीं हुए। उनकी आन्तरिक प्रेरणा विशेषरूपसे जीवनके अमरत्वकी खोजमें ही रहती आयी। इस अध्यात्म-प्रियतामें भारतीयोंका व्यक्तित्व झलकता है। जन-समाजके इसी संस्कार-पुञ्जको 'संस्कृति' की संज्ञा दी गयी है। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें इसी अध्यात्मगर्भित संस्कृतिसे भारतीय अपने उद्देश्यको प्राप्त करनेकी प्रेरणा प्राप्त करते रहे हैं, परंतु खेदकी बात है कि जिस संस्कृतिके अग्रदूत कभी त्यागी और तपस्वी थे, उन्हींकी संतान आज स्वार्थ और विलासिताकी उपासक है। प्रस्तुत लेखमें हम केवल यह दिखाना चाहते हैं कि हमारे पूर्वजोंकी वस्त्र-व्यवस्था किस प्रकार उनके उद्देश्यकी पूरक थी और आजका परिधान-प्रेम किस प्रकार पतनकी ओर ले जानेवाला है।

वस्त्र और विलास

संसारमें मनुष्यके पतनका प्रमुख कारण कामुकता है। काम दुर्जेय है। अथर्ववेदमें कामकी प्रचण्डताका वर्णन करते हुए लिखा है—'हे काम ! तू सबसे पहले पैदा हुआ। तुझको न देवोंने जीत पाया, न पितरोंने और न मनुष्योंने। तू सब प्रकार बड़ा है, अतः मैं तुझको नमस्कार करता हूँ।' इस कामको उद्दीप्त करनेवाला विलास है और हमारे वस्त्र इस विलासके प्रमुख साधन हैं। इसलिये हमारे ऋषियोंने उपर्युक्त आध्यात्मिक दृष्टिकोणको सम्मुख रखते हुए समाजकी विलासिता और कामुकतासे रक्षा करनेके लिये, बिना सिले हुए स्वदेशी वस्त्रोंके कम-से-कम प्रयोग करनेकी व्यवस्था दी थी। आर्यलोग सीधे-सादे वस्त्र पहनते थे और स्वदेशी वस्त्रोंका ही प्रयोग करते थे। धोती और दुपट्टा-जैसी सीधी-सादी पोशाक ही आर्य-संस्कृतिका प्रतिनिधित्व करती थी। राजा पाण्डुके शव-आच्छादनके लिये देशके बने हुए वस्त्रका प्रयोग किया गया था, ऐसा महाभारतमें वर्णित है।

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि अनुपयुक्त पोशाक समाजको विलासी बना देती है। पोशाक एक बाह्य उपकरण है, जिसके द्वारा मनुष्योंकी आर्थिक असमानता बड़ी सरलताके साथ आँकी जा सकती है। समाजमें विलासिता और असमानताजन्य ईर्ष्या-द्वेषको न उत्पन्न होने देनेके लिये ही ऋषियोंने सिले हुए वस्त्रोंको अपनी संस्कृतिमें स्थान नहीं दिया था। वहाँ तो धोती और चद्दरके ही पहनने-ओढ़नेकी आज्ञा है। बुद्धभगवान्के समयतक इस देशके निवासी सिला हुआ वस्त्र नहीं पहनते थे, क्योंकि तत्कालीन साहित्यमें सिले हुए वस्त्रोंका वर्णन नहीं प्राप्त होता। कुलीन आर्योंमें पंक्तिभोजनके समय, देवाराधन और यज्ञादिके समय सिले हुए वस्त्रोंके उपयोग न करनेका कारण भी वस्त्र-सम्बन्धी आर्योंकी नीति ही हो सकती है।

वस्त्र-प्रयोगका महत्त्व

वस्त्रोंका प्रयोग दो कारणोंसे किया जाता है—सरदी-गरमीसे शरीरकी रक्षा करनेके लिये और लज्जा-निवारणके लिये। लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये शरीरकी रक्षा करना नितान्त आवश्यक है, परंतु शरीर-रक्षाकी ओटमें विलास, असमानता, ईर्ष्या-द्वेषादिको उत्पन्न करनेवाले वस्त्रोंका उपयोग अनुचित है। सीधे-सादे थोड़ेसे वस्त्रोंके उपयोगसे यदि सरदी-गरमीसे शरीरकी रक्षा हो सकती है तो बाह्य आडम्बरके दलदलमें फँसना कहाँतक उपयुक्त माना जा सकता है। रही लज्जा-निवारणकी बात, सो वह शरीर-रक्षाकी अपेक्षा भी महत्त्वपूर्ण है। 'तेरे गुह्य अङ्ग न दिखने पावें' ऐसी वेदकी आज्ञा है। पशु-पक्षियोंके शारीरिक गठनके अन्तर्गत उनके गुप्ताङ्गोंकी आवरणयुक्त रचना यह पुकारकर कहती है कि गुप्ताङ्गोंका ढका रहना आवश्यक है। परंतु वेदकी उक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज्ञाके नितान्त विपरीत आज संसारमें नग्न समाजोंकी स्थापना की जा रही है। पर ऐसे समाज-संस्थापकोंको क्या पता कि वे किस विनाशकी सृष्टि कर रहे हैं। द्वापरमें दुर्योधनने दुःशासनको एक बार द्रौपदीको नग्न करनेकी आज्ञा दी थी। दुर्योधनकी वह आज्ञा ईश्वरीय-विधानके प्रतिकूल थी। फलतः भगवान्‌ने द्रौपदीकी पुकार और अपने विरदकी रक्षा करनेके लिये द्रौपदीकी साड़ीको बढ़ाकर दुःशासनके मदको नष्ट करनेके साथ-साथ दुर्योधनका भी सर्वनाश कर दिया। तात्पर्य यह कि गुप्ताङ्गोंको ढककर न रखनेसे ईश्वरीय आदेशके न पालन होनेके कारण विनाशकी सृष्टि होती है। आजकल नारियाँ प्रायः बिलकुल महीन वस्त्रोंका प्रयोग करती हैं या इतने चुस्त वस्त्र धारण करती हैं कि आवरणयुक्त होनेपर भी उनके अपने अङ्गोंके प्रदर्शनमें ईश्वरको धोखा देनेकी अधार्मिक कल्पना स्पष्टरूपसे झलकती है, जो कि सर्वथा निन्दनीय और त्याज्य है। शरीर-रक्षाकी भाँति ही लज्जा-निवारणका काम भी थोड़े और सीधे-सादे बिना भड़कीले वस्त्रोंसे चल सकता है। धोती और दुपट्टेसे पुरुषोंके लज्जा-निवारणका कार्य भली प्रकार सम्पन्न हो सकता है। ये वस्त्र भारतीयोंके अपने हैं और विशिष्ट हैं। शायद धोती तो संसारके अन्य किसी भी देशमें व्यवहृत नहीं होती।

विदेशी प्रभाव

कालान्तरमें विदेशियोंके आक्रमणोंके साथ-साथ एकके बाद एक अनेक विदेशी संस्कृतियाँ आकर भारतीय संस्कृतिमें मिलती गयीं। हूणों, मुगलों, अंग्रेजों आदिकी संस्कृतियोंसे जहाँ भारतीय संस्कृतिके अन्यान्य अङ्ग प्रभावित हुए, वहाँ वस्त्रोंमें भी कम परिवर्तन नहीं हुआ। परिणामस्वरूप यद्यपि—

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियाँ रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा॥

फिर भी वस्त्राभरणमें हम आपाद-मस्तक विदेशियोंके वशमें हो गये। पुरुषोंने इस दिशामें अधिक दासताका परिचय दिया है, पर भारतीय नारियाँ आज भी धोतियोंसे प्रेम करती हैं। आसेतु-हिमाचल, अटकसे कटक और कश्मीरसे कन्याकुमारीतक नारीवर्गमें धोतियोंके प्रयोगकी बहुलता है।

आजकी स्थिति

आजका युग फैशनका युग है। फैशन विलासका पर्याय है और वस्त्र विलासके साधन हैं, जो कामवासनाको उद्दीप्त करता है। इस प्रकारके वस्त्रोंके पहनावेसे प्रचण्ड कामके चंगुलमें फँसकर मनुष्य पतित हो जाता है। विलासितासे जब देवोंकी सृष्टि ध्वंस हो सकती है, तब भला, मानवोंका विनाश कितने समयतक रुक सकता है। देवोंकी सृष्टिके विनाशका प्रमुख कारण विलास ही था, ऐसा महाकवि प्रसादने अपने अमर महाकाव्य 'कामायनी' में अङ्कित किया है। भिन्न-भिन्न प्रकारकी काट-छाँटके वस्त्रोंका निर्माण और प्रयोग—उनसे आपाद-मस्तक शरीरको सजाना—विलासी मनकी उपज है। वस्त्र-विलास असमानताको उत्पन्न करता है, जिससे समाजमें बड़े-छोटेकी भावनाके साथ-साथ ईर्ष्या-द्वेष और दरिद्रता आदि दोष भी आ जाते हैं। परिवारकी आयका अधिकांश भाग वस्त्रोंमें व्यय हो जाता है, जिससे वे पनपने नहीं पाते। कई-कई संदूक वस्त्रोंके होनेपर भी नये आकार-प्रकारके वस्त्रोंको प्राप्त करनेकी बलवती स्पृहा मनुष्यको पतनकी ओर ले जाती है।

उपर्युक्त विवेचनका यह तात्पर्य नहीं है कि वस्त्रोंमें समयानुकूल परिवर्तन न होना चाहिये, परंतु उत्तेजनापूर्ण भड़कीले वस्त्रोंमें छिपे हुए बहुमुखी पतनको प्रत्यक्ष कर देना भी आवश्यक है। भारतीय आदर्श परम्पराओंको रूढिवादी और आडम्बरयुक्त कहकर जो उनका अपमान करते हैं, उनको भारतीय संस्कृतिके प्रतीक परम सुधारक उदार-हृदय महात्मा गाँधीजीके वस्त्रोंकी ओर दृष्टिपात करना चाहिये। अमरत्वको प्राप्त करनेमें यदि कोट, पतलून, टाई या शर्ट, बुशशर्टसे काम निकल सकता, तो गाँधीजी धोती-दुपट्टेका प्रयोग कदापि न करते, परंतु भारतीय संस्कृति तो त्यागमूलक है और इसीलिये आध्यात्मिक है, यह वह भलीभाँति जानते थे और इसीलिये न्यूनतम सीधे-सादे वस्त्रोंका प्रयोग करते थे। आधुनिक युगके वस्त्रोंका उपयोग किसीको अमरताकी ऊँचाईतक नहीं ले जा सकता। टाईधारी गाँधी, इसीलिये लँगोटीधारी गाँधी बन गये और फिर वैरिस्टर गाँधीको संसार महात्मा गाँधीके रूपमें पूजने लगा। आर्योंकी आध्यात्मिक पोशाक और आजकी भौतिकवादी पोशाकमें यही अन्तर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री और पुरुषोंकी पोशाकें अलग-अलग होती हैं। स्त्रियाँ कमीज, सलवार, पेटीकोट, साड़ी, चोली, धोती आदिका प्रयोग करती हैं तो पुरुष कोट, पतलून, कमीजका प्रयोग करते हैं। साथ ही स्त्रियोंसे पुरुषोंके कपड़ोंका रंग तथा उनकी बनावट कुछ कम भड़कीली होती है, परंतु कलाकी ओटमें सिनेमाके अश्लील शारीरिक प्रदर्शनोंका सहयोग देनेवाले नित्य नये आकार-प्रकारके वस्त्र आजके युवक और युवतियोंको वस्त्राभिरुचिके पर्याय बने हुए हैं। स्त्रियोंके रंग-विरंगे वस्त्र पुरुष धारण करते हैं तो पुरुषोंके पैंट आदिको अपनानेमें स्त्रियाँ भी संकोच नहीं करतीं। स्त्रियोंके पेटीकोटके आकार-प्रकारकी बुशशर्ट पहने हुए सभ्य कहलानेवाले युवकोंको चलते-फिरते सिनेमाके पोस्टरोंकी भाँति कहीं भी देखा जा सकता है। पोशाक मनुष्यकी मनोवृत्तिकी परिचायिका होती है। आजकलके युवक और युवतियोंकी पोशाकें उनके विलासी और निम्नस्तरकी मनोवृत्तिकी उसी प्रकार द्योतिका है, जिस प्रकार हैट और टाई किसी समय हमारी दास-मनोवृत्तिकी सूचक थीं। राम-राम और शिव-शिव—जैसे कल्याणकारी देव-नामोंसे अङ्कित रामनामी और शिवनामी दुपट्टा धारणकर्ता जिस प्रकार अपनी वृत्तिका परिचय देते हैं, उसी प्रकार सुरैया, नरगिस आदि अभिनेत्रियोंके चित्राङ्कित वस्त्रोंके धारण करनेवाले उन नटियोंपर आसक्त मानसिक व्यभिचारी भी अपनी दूषित मनोवृत्तिका खुलेआम प्रदर्शन करते हैं, जो निस्संदेह समाज-घातक है।

मनुष्य सुन्दर वस्तुओंसे सुन्दर विचारोंकी ओर और सुन्दर विचारोंसे सुन्दर जीवनकी ओर अग्रसर होता है और सुन्दर जीवनसे सर्वनिरपेक्ष परम सौन्दर्यकी ओर बढ़ता है, ऐसा दार्शनिक प्लेटोका मत है। वस्त्र वस्तुके अन्तर्गत आते हैं। हमारा वस्त्र-चयन हमारे विचारोंको सुन्दर बनानेवाला होना चाहिये, जिससे हमारा जीवन सुन्दर हो सके और हम मानव-जीवनके चरम और परम लक्ष्य अमरत्वको प्राप्त कर सकें।

दुःखोंसे मुक्ति पानेका उपाय

(श्रीनृसिंहदेवजी अरोड़ा)

जो मनुष्य विद्वानों एवं संत-महात्माओंसे पढ़ता अथवा सुनता रहता है, उसका यदि वह चिन्तन और अनुसरण न करे तो वह उनके जीवनसे न तो जुड़ ही पाता है और न उसे विशेष लाभ ही मिल पाता है।

दुःख और वेदनामेंसे चिर आनन्दको दूह लेना ही जीवन जीनेकी कला है। प्रकृतिके अनुसार चलनेवाले शीलवान् व्यक्तिके लिये मृत्यु भी उतनी ही सहज एवं सुखद हो जाती है, जितनी कि गहरी मीठी नींद। गीतामें भी आया है कि यह शरीर, आत्मारूपी सूक्ष्म देहपर पड़े वस्त्रोंसे अधिक नहीं है, जिसे कभी भी बदला जा सकता है। मैं शरीर नहीं हूँ, इस शरीरपर मेरा कोई वश नहीं है। यह चोला, मेरेसे पृथक् होकर मुझे छोड़कर कभी भी जा सकता है। इसे रोकनेकी शक्ति किसीमें नहीं है, यह प्रकृतिका धर्म है कि जो जन्म लेता है, वह मरता भी है। वास्तवमें व्यक्तिकी भूल ही उसका अहित करती है। यह भूल ममता (मोह) है। जीवनमें तभी दुःख होता है, जब हम वस्तुओंकी इच्छा करते हैं।

इस संसारका स्वामी—इसका रचयिता ईश्वर ही है। हमारा तो इस संसारपर कुछ भी अधिकार नहीं है। वैसे भी सब पदार्थोंमें सुख अस्थायी है, दुःख अधिक है। सोचने-समझनेकी बात है कि जब यह शरीर ही अपना कहना नहीं मानता, तो फिर दूसरे यदि कहना नहीं मानते तो हम दुःखी क्यों होते हैं? उनकी बुराई क्यों करते हैं? क्योंकि दूसरोंके दोष और अवगुण देखनेसे न अपना भला होता है न दूसरोंका। प्रत्येक प्राणी अपनी इच्छाके अनुसार ही करना चाहता है और करता है। उसके अपने गुण और स्वभावके अनुसार उसे जैसा जँचता है वैसा करता है, तो फिर उसे समझानेकी कला हमारेमें आनी चाहिये, न कि हमें दुःखी होना चाहिये।

अज्ञानवश भूलसे हमने अपना ही एक छोटा-सा संसार मान लिया है—एक तो स्वयं, दूसरा हमारा परिवार और तीसरा धन-सम्पत्ति। इन तीनोंको ही हम अपना संसार मानकर इसपर अपना अधिकार जमाते हैं। उस संसारके रचयिता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमशक्ति परमात्माको भूलकर हम अपने संसारके माया-जालमें मकड़ीकी भाँति फँसकर दुःख भोगते रहते हैं, क्योंकि इस सूक्ष्म संसारको ही हम अपना मानकर ममतारूपी जालमें फँसते जाते हैं और ऊपरसे सुखकी झूठी आशा करते हैं, वह यदि नहीं मिलता तो हम अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं। इसके निवारणका मूल कारण है 'ममता'—माया-मोहका छोड़ना। 'मैं' और 'मेरा' छोड़कर, 'तू' और 'तेरा' का पाठ सीखना चाहिये।

इस छोटे-से संसारको भी परमात्माका ही संसार समझकर, इस विवेकके साथ परिवारजनोंकी सेवा करनी चाहिये कि जड-सम्पत्तिसहित परिवारमें मुझपर सबका अधिकार है, परंतु मेरा किसीपर अधिकार नहीं है, क्योंकि मेरा अधिकार तो मेरे स्वयंके शरीरपर ही नहीं है। सच्चा अधिकारी तो वह परम पिता परमेश्वर ही है। अतः भगवान्‌के भक्त एवं दासानुदास बनकर सबकी सेवा करनी चाहिये और अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये, परंतु बदलेमें कुछ भी कामना नहीं करनी चाहिये। ये परिवारजन तो मेहमानके समान हैं, इनसे क्या आशा करें, अपेक्षा करें; क्योंकि आशा करना ही दुःखका कारण बनता है। निष्काम सेवासे मन दुःखी नहीं होता, वरन् प्रफुल्लित होता है एवं सुख-संतोषकी अनुभूति होती है। अपनेको भगवान्‌के चरणोंमें और शरीरको संसारकी निष्काम सेवामें सौंप दिया जायगा तो दुःख भूल जायगा।

सोचने-समझनेकी बात है कि कोई किसीको दुःख नहीं देता है। व्यक्तिके स्वयं किये कर्म ही प्रारब्धरूपमें परिणत होकर उसके सुख-दुःखके कारण बनते हैं। यह बात भी निरन्तर जीवनमें स्मरण रखनी चाहिये कि अपना प्रारब्ध भोगते समय व्यक्तिको ऐसी तृप्ति होनी चाहिये जैसे ऋण (किसीका कर्ज) चुकाते समय होती है। प्रकृति-परमेश्वर उसे ऐसी कोई विपत्ति नहीं देते जो सहन नहीं की जाय। अतः विपत्तिमें धैर्य धारण करनेका प्रयत्न करना चाहिये। प्रकृति—सृष्टिका क्रम है, विधान है कि रातके बाद सूर्योदय होगा, सूर्योदयपर अन्धकार समाप्त हो जाता है और प्रकाश फैल जाता है, धूप-छाँह, सर्दी-गर्मीकी भाँति दुःख-सुख आदिके भी द्वन्द्व हैं। दुःख मिटेगा तो सुख भी आयेगा, यह तो प्रकृतिका नियम है। कामनाओंमें, ममतामें फँसकर हम अपनेको दुःखी बना लेते हैं एवं सुखकी आशामें, दुःखके सागरमें गोते लगाकर अशान्त और दुःखी जीवन जीने लगते हैं, यही हमारी भूल है, हमारा अज्ञान है, जब कि परमात्मा तो सत्-चित्-आनन्दघन है।

अतः जिनमें हमारी ममता है अथवा जो हमसे सेवाकी अपेक्षा रखते हैं या जिनकी हम किसी प्रकार सेवा कर सकते हैं, उनकी प्रेमपूर्वक कर्तव्यके नाते निष्कामभावसे सेवा करते रहना चाहिये और उनसे प्रत्युपकारकी कोई आशा या इच्छा नहीं करनी चाहिये।

इस प्रकार प्रायः सभी सेवा और परोपकार आदिके कार्योंमें फलाशाका परित्याग और सभी प्राणी-पदार्थोंमें भगवद्भावकी स्थिरता ही शाश्वत सुख-शान्तिका अमोघ उपाय है। यहीं दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है और प्रायः सभी शास्त्रों तथा सत्पुरुषोंका भी यही सारभूत उपदेश है। अतः यही दुःख-निवृत्ति एवं शाश्वत सुख-शान्तिका चिरन्तन निष्कण्टक मार्ग है।

जो पापोंसे छूटे हुए हैं, जिनकी इन्द्रियाँ शान्त हैं और जो समाहितचित्त हैं, वे ही पुरुष सद्गुरुकी कृपासे ज्ञानद्वारा परमात्माको प्राप्त करते हैं। —उपनिषद्

जैसे अग्नि जाने या बिना जाने लकड़ीको जला देता है, वैसे ही जाने या बिना जाने लिया हुआ भगवान् श्रीहरिका नाम मनुष्यके पापको हर लेता है। —भागवत

जो मनुष्य पहलेके पापोंका विचार न करके बराबर पाप ही करता रहता है, उस खोटी बुद्धिवाले मनुष्यको यमदूतों द्वारा नरकमें गिरना पड़ता है। —महाभारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाप-निवृत्तिके कतिपय उपाय

(स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)

मनुष्यके द्वारा प्रमादवश ज्ञाताज्ञात-अवस्थामें पापोंका आचरण हो जाता है। लोक-परलोकमें इन पापोंसे मानसिक परिताप, दुर्गति एवं निन्दा आदि भी होती है, यदि उनका समुचित प्रायश्चित्त न किया जाय तो उसे भीषण नरकोंकी यातना भी भुगतनी पड़ती है। अतः बुद्धिमान् पुरुष उन पापोंकी निवृत्तिके लिये शास्त्रनिर्दिष्ट प्रायश्चित्तोंका आचरण करते हैं। इन प्रायश्चित्तोंमें सबसे अधिक प्रभावशाली प्रायश्चित्त मानसिक परिताप या पश्चात्ताप कहा गया है। इसीसे प्रभावित होकर वह अपने गुप्त पापोंका ख्यापन तथा व्रत, दान आदि पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान भी करता है। इनका यहाँ संक्षेपमें दिग्दर्शन कराया जा रहा है—

(१) विकर्मणा तप्यमानः पापाद्विपरिमुच्यते।

(महाभा०, शान्ति० १५२। २३)

यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हते।
तथा तथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते॥

(महाभा०, अनु० ११२। ५)

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात् पापात्प्रमुच्यते॥

(मनु० ११। २३०)

'यदि कोई शास्त्रविरुद्ध कर्म बन जाय तो उसके लिये पश्चात्ताप करनेवाला पुरुष पापसे मुक्त हो जाता है।' 'मनुष्यका मन जैसे-जैसे बुरे कर्मकी निन्दा करता है, वैसे-वैसे उसका शरीर उस अधर्मके बन्धनसे मुक्त होता जाता है।' 'उसके लिये अनुताप-पश्चात्ताप करे तो उस पापसे मुक्त हो जाता है।'

इन शास्त्र-वचनोंमें जो अनुतापको पापनिवृत्तिका उपाय कहा गया है, उसका तात्पर्य यह है कि अन्य सभी पापनिवृत्तिके उपाय तबतक किये ही नहीं जा सकते, जबतक मनुष्यको पापकर्मके लिये संताप (पश्चात्ताप) न हो। इस प्रकार पश्चात्ताप सभी प्रायश्चित्तोंका अनिवार्य सामान्य अङ्ग है। इसीलिये कहा है कि पश्चात्ताप सभी पापोंकी परा निष्कृति है—

पश्चात्तापो हि सर्वेषां पापानां निष्कृतिः परा।

(शिवपुराण ४। ५)

(२) पुनाति पापं पुरुषः पुनश्चेन्न प्रवर्तते।

(महाभा०, शान्ति० ३४। १)

नैव कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः॥

(मनु० ११। २३०)

तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् द्वितीयं न समाचरेत्॥

(मनु० ११। २३२)

'पुरुष यदि पुनः पापमें प्रवृत्त नहीं होता तो पवित्र हो जाता है।' 'ऐसा पुनः नहीं करूँगा' इस प्रकार निवृत्तिद्वारा वह पवित्र हो जाता है।' 'इसलिये पापमुक्तिकी इच्छा करता हुआ पुनः पाप न करे।'

इन शास्त्र-वचनोंमें पापसे मुक्तिके लिये जो पुनः पाप न करनेकी व्यवस्था रखी गयी है, वह सर्वथा उचित तथा मनोविज्ञानमूलक है, क्योंकि सभी प्रायश्चित्तोंका मुख्य उद्देश्य यही है कि मनुष्य पुनः पाप न करे। यदि यह न हो सके तो प्रायश्चित्त करना न करनेके बराबर ही होगा।

(३) मनोरथं तु यो दद्यादेकस्मा अपि भारत।
न कीर्तयेद् दत्त्वा यः स च पापात् प्रमुच्यते॥

(महाभा०, शान्ति० ३५। १५)

'अपनी सामर्थ्यके अनुसार कृपणता छोड़कर जो किसी एक भी सत्पात्रको मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करता है और देकर किसीसे भी नहीं कहता, वह पापसे मुक्त हो जाता है।'

उसकी मनोवाञ्छित वस्तुको देनेसे उसे (प्रायश्चित्तीको) संतोष होता है। किसीसे न कहनेसे दान अधिक गुणदायी हो जाता है। इसलिये उसमें पापनाशक शक्ति अधिक हो जाती है। अतः इन दो गुणोंका दानमें विधान करनेमें शास्त्रका तात्पर्य है।

(४) यदि व्याहरते राजन् विप्राणां धर्मवादिनाम्।
ततोऽधर्मकृतात् क्षिप्रमपवादात् प्रमुच्यते॥

(महाभा०, अनु० १६२। ६१)

'यदि पापी पुरुष धर्मज्ञ ब्राह्मणोंसे अपना पाप बता दे तो वह उस पापके कारण होनेवाली निन्दासे शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका कारण यह है कि अपने मुखसे अपने पापको वही कह सकता है, जिसके हृदयमें लोकनिन्दासे भी अधिक पापकर्मसे संताप हो रहा हो। तीव्र संताप पापनाशक होता है। अपने मुखसे अपनी भूल स्वीकार कर लेनेपर आज भी लोग फिर उसकी आलोचना नहीं करते। इसीलिये मनुजीने पाप-ख्यापन (पापके कथन) को भी पापनाशक माना है—

'ख्यापनेन' (११।२२७)।

जानता तु कृतं पापं गुरु सर्वं भवत्युत।
अज्ञानात् स्वल्पको दोषः प्रायश्चित्तं विधीयते॥

(महाभा०, शान्ति० ३५।४५)

'जानकर करनेपर सभी पाप भारी हो जाते हैं। बिना जाने करनेपर दोष थोड़ा होता है, इसलिये उसका प्रायश्चित्त भी (थोड़ा) बताया जाता है।'

इसका कारण यह है कि जानकर पाप करनेवालेका मन अधिक दोषयुक्त होता है। यही कारण है कि जो पाप करते समय पूरे मनसे पाप करता है तथा पाप करनेके बाद भी लज्जित नहीं होता, उसके पापका नाश नहीं होता, ऐसा शास्त्रमें कहा है—

यो हि पापसमारम्भे कार्ये तद्भावभावितः।
कुर्वन्नपि तथैव स्यात् कृत्वा च निरपत्रपः॥
तस्मिंस्तत् कलुषं सर्वं समाप्तमिति शब्दितम्।
प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति ह्रासो वा पापकर्मणः॥

(महाभा०, शान्ति० ३३।३५-३६)

कारण स्पष्ट है, क्योंकि उसका मन अतिदोषयुक्त तथा पश्चात्तापसे रहित होता है।

प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते।
न साम्परायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम्॥

(मनु० ११।३०)

'जो मुख्यविधिके अनुसार कर्म करनेमें समर्थ होकर भी गौणविधिसे काम चलाता है, उस दुर्बुद्धि मनुष्यको पारलौकिक फलकी प्राप्ति नहीं होती तथा पापनाशरूप फल प्राप्त नहीं होता।'

इसका कारण यह है कि '**दण्डो नाम दमनम्**' अर्थात् दण्ड उसे कहते हैं, जिससे मनका दमन हो जाय। अतः शास्त्रकारोंने पापकी गुरुता-लघुता, व्यक्तिकी समर्थता-असमर्थता तथा देश-काल आदिका विचार कर लघु-गुरु प्रायश्चित्तोंका विधान इस प्रकार किया है कि मानवके मनका दमन हो जाय और पुनः पापमें प्रवृत्त न हो। ऐसी दशामें समर्थ व्यक्ति यदि असमर्थके लिये कहे गये लघु प्रायश्चित्तका अनुष्ठान करेगा तो उसे कष्ट अधिक न होनेसे पापप्रवृत्ति न रुकेगी, जिससे प्रायश्चित्त करना न करनेके बराबर होगा। भगवन्नाममें सर्वपापनाशक शक्ति है। इस साधनमें कष्ट भी नहीं होता, फिर भी नाम-जापकको पापमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये, तभी नाम-जप अपना पूर्ण चमत्कार प्रकट करता है। इस बातको पूज्यपाद स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजने 'विचारपीयूष' ग्रन्थके २३५वें पृष्ठपर विशेषरूपसे स्पष्ट किया है। वहाँ उन्होंने नामपर श्रद्धा रखनेवालोंके लिये भी मनु आदि स्मृतिमें कथित कष्टप्रद प्रायश्चित्तोंकी आवश्यकता बतायी है।

इस लेखमें सामान्यतः पापनाशक उपायोंका तथा उनके रहस्योंका ही कुछ विवेचन किया गया है। विशेष-विशेष पापोंके विशेष-विशेष रूपमें कथित प्रायश्चित्तोंका ज्ञान तो धर्मशास्त्रके विद्वान् ही जानते हैं, अतः उनसे जानकर ही अनुष्ठान करना चाहिये, तभी फल होगा, अन्यथा नहीं।

स्कन्दपुराणमें कहा गया है कि विश्वासघाती तथा मित्रद्रोहीकी गति पुराणोंकी तो बात ही क्या, वेदोंमें भी नहीं बतायी गयी है। अतः विश्वासघात और मित्रद्रोह कभी नहीं करना चाहिये।

विश्वासघातिनां पुंसां मित्रद्रोहकृतां तथा।
तेषां गतिर्न वेदेषु पुराणेषु च का कथा॥

(स्कन्दपुराण ५।३।२०९।९१-९२)

'कितने ही मनुष्य माता-पिताकी सेवाका अर्थ केवल उनका भरण-पोषण करना समझते हैं, परंतु भरण-पोषण तो अपने कुत्ते और घोड़ेका भी किया जाता है। भक्ति नहीं है तो इन दोनोंमें अन्तर ही क्या है? भक्ति बिना किया गया भरण-पोषण सच्ची सेवा नहीं है।' —कनफ्यूशियस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत, जो सर्वसुलभ है

(डॉ॰ श्रीमनोहरलालजी गोयल)

कभी समुद्र-मन्थन हुआ था और उससे प्राप्त अमृतका पान देवताओंने किया था। आज भी कभी-कभी उसी जीवन-रक्षक पेय अमृतकी चर्चा होती रहती है, जो साधारण मनुष्योंके लिये अलभ्य था। परंतु सम्भवतः अभी लोग इस तथ्यसे अनभिज्ञ हैं कि इस युगमें भी अमृत सर्वसुलभ है और वह सर्वत्र प्राप्त है। इस अमृतकी दात्री यह भारतभूमि है और इसमें पेय अमृत है—गोदुग्ध, जो मनुष्यके लिये प्रकृतिप्रदत्त एक अनुपम और अद्वितीय आदर्श उपहार है। विभिन्न रूपोंमें यह मानवके हितार्थ अपने गुणोंका प्रदर्शन करता रहता है।

इलिनियास (अमेरिका) के कृषि-विभागद्वारा प्रकाशित पुस्तक—'दी काऊ इज ए मोस्ट वंडरफुल लेबोरेट्री' (गाय एक आश्चर्यजनक रसायनशाला है) में गायके दूधके गुणोंका अभूतपूर्व वर्णन है। उसमें बताया गया है कि गाय चारागाहका घास-फूस तथा खेतकी बची कड़बी खाती है। वह डंठल और पुवालकी मोटी गाँठे चबा-चबाकर उनके टुकड़े-टुकड़े कर डालती है तथा इनको मनुष्यके लिये सम्पूर्ण एवं निर्दोष खाद्यके रूपमें परिवर्तित कर देती है। इस खाद्यमें कोई ऐसी चमत्कारी वस्तु है, जिसे वैज्ञानिकोंने मानव-जातिके सर्वोत्तम स्वास्थ्यके लिये अनिवार्य और उपयोगी पाया है। यह खाद्य है—दूध, जिसे गाय हमें देती है। गोदुग्ध-जैसी अन्य पेय वस्तु अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकती।

कुछ अमेरिकी विद्वानोंने शोध करनेके पश्चात् यह खोज की है कि गाय अपने आहारमें जो घास-फूस आदिका सेवन करती है, उसका विषाक्त भाग स्वयं आत्मसात् कर लेती है और दूधमें यह अंश नहीं आता। रूसी वैज्ञानिकोंने भी कई दृष्टियोंसे विचार करके गोदुग्ध, दही, मक्खन और घीको उपयोगी और आदर्श आहार माना है।

दूध देनेवाले चौपायोंमें मात्र गाय ही ऐसी है जिसकी आँत १८० फुट लम्बी होती है, जो पर्याप्त मात्रामें डंठल, पुवाल आदि संचित करके रख सकती है, जिन्हें पचाकर गाय उसके सार-तत्त्व दूधका निर्माण करती है।

गायके दूधमें जो गुण होते हैं, वे माताके दूधके गुणोंके समान ही होते हैं। कुछ लोग तो माताके दूधसे भी उत्तम गायके दूधको मानते हैं। वैसे भी कहावत है—

जननी जनकर दूध पिलाती केवल साल छमाही भर।
गोमाता पय-सुधा पिलाती रक्षा करती जीवनभर॥

गायका दूध मधुर, स्वादिष्ट, रुचिकर, स्निग्ध, पौष्टिक और बलकारक होता है। यह मनुष्यके लिये कान्तिप्रद, बुद्धिवर्धक तथा ओज, वीर्य और मेधाजनक है। गोदुग्ध एक हितकर रसायन है, जो शक्ति और पुरुषत्व प्रदान करता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह मनुष्यके मस्तिष्कके तन्तुओंको बनाने और विकसित करनेमें सहायक होता है।

जब हम जन्मदात्री माताकी गोमातासे तुलना करते हैं तो देखते हैं कि गोमातामें जो गुण हैं, वे जन्मदात्री मातामें भी पूर्णतया नहीं प्राप्त होते। गोदुग्धसे शक्ति ही नहीं संस्कार भी मिलता है। सुसंस्कृत यह शुद्ध गोदुग्ध ही अमृत है और इसे प्रदान करनेवाली गाय सम्पूर्ण वसुन्धराकी माताके समान है।

भारतमें गायका महत्त्व प्राचीन कालसे ही रहा है। अरण्योंमें रहनेवाले भारतीय ऋषि-मुनियोंका जीवनाधार गायें ही थीं। उनके आश्रमोंमें हजारों गायें रहती थीं, जिनका दुग्ध-पान करके वे तथा उनके शिष्य और आश्रमवासी तन एवं मन दोनों दृष्टिसे शक्तिशाली बनते थे। ऐसे ही गोभक्त ऋषियोंको वेदमन्त्रोंके साक्षात् करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सत्यकामको गोदुग्ध-पानसे ही ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त हुआ था। ज्ञानकी खोजमें तपस्या करके हारे हुए गौतम वटवृक्षके नीचे चिन्तित बैठे थे। उन्होंने सुजाताद्वारा गोदुग्धसे निर्मित खीर खाकर ज्ञान प्राप्त किया था। शकुन्तलापुत्र बलवान् भरत, जिनके नामपर पुरुवंशी भारत या भरतवंशी कहलाये, बचपनमें कण्व ऋषिके आश्रममें रहते थे। तब गोदुग्ध पीकर ही वे इतने बलशाली हो गये थे कि सिंह-शावकोंके साथ खेलते थे। बाल्यकालमें गोदुग्ध और नवनीत आदि गव्य पदार्थोंका सेवन करनेवाले कृष्णने भगवान् कृष्णके रूपमें गीताका महान् ज्ञान दिया था। उस समय गायें राष्ट्रके अर्थतन्त्रसे जुड़ी थीं। लाखों गायें राजाओंके संरक्षण और पोषणमें रहती थीं। हजारों गायें दानमें दी जाती थीं। उस समय देशमें अपार गोधन था, तभी तो यह कहावत चल पड़ी कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतमें दूध-दहीकी नदियाँ बहती थीं। राजा हो या ऋषि-मुनि या अन्य लोग सभी स्नेह और प्यारसे गोधनका संरक्षण और पोषण करते थे।

कुछ इतिहास-प्रसिद्ध गौएँ भी हुई हैं, जिनकी उस समय बहुत अधिक चर्चा रही। इनमें महर्षि वसिष्ठकी शबला नामक कामधेनु विशेष उल्लेखनीय है। महर्षि जमदग्निके पास कामधेनु-कुलकी एक गाय थी। संयोगवश आखेटमें निकला हुआ सेनासहित हैहयवंशी सम्राट् सहस्रार्जुन उनके आश्रममें जा पहुँचा। महर्षिने कामधेनुके प्रतापसे समूची सेनासहित राजाका भव्य स्वागत किया और उसे सभी प्रकारके भक्ष्य-भोज्यादि पदार्थोंसे परितृप्त कर दिया। कामधेनुके प्रताप तथा महर्षिके ऐश्वर्यको देखकर राजाने जमदग्निसे बिना माँगे ही लोभवश अपने सेवकोंद्वारा गौका अपहरण कर माहिष्मती ले गया। जब महर्षिके पुत्र परशुरामजीको यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने पीछा किया और सम्राट्का सिर काटकर अपनी गाय वापस ले आये।

गोसेवाका महान् फल प्राप्त होता है। राजा दिलीपने सपत्नीक गोसेवा करके संतान प्राप्त की थी। निःसंतान दशरथने भी देवताओंद्वारा भेजी गयी गोदुग्धकी खीर अग्निदेवसे प्राप्तकर अपनी रानियोंको खिलायी थी, जिससे उन्हें राम-लक्ष्मण-जैसे श्रेष्ठ महापुरुषोंके पिता कहलानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

गोदुग्धमें सैकड़ों रसायन होते हैं, जो दुर्बलको बलवान् बनाते हैं और रोगीको आरोग्य प्रदान करते हैं। कम वजनवाले नवजात शिशुओंकी रक्षा करनेमें भी ये तत्त्व सक्षम हैं। रासायनिक जाँचसे प्रमाणित हुआ है कि गोदुग्ध सबसे उत्तम भोजन है तथा संसारके सभी पेय पदार्थोंमें उत्कृष्ट और अनुपम है। गोरस सात्त्विक भोजन है, जो स्नेहमयी गौसे प्राप्त होता है। यह नियमित सेवनसे मस्तिष्कके ज्ञान-तन्तुओंको बल देता है, स्मरणशक्ति बढ़ाता है, हृदयरोगमें लाभप्रद है तथा खूनकी खराबी और त्वचाके रोगोंको नष्ट करता है।

गोदुग्धमें प्राप्त रसायनोंमेंसे मैगनेसियम, सिलिकान तथा हड्डी और दाँतोंको सुदृढ़ बनानेवाला क्लोरीन मिलता है। मानवीय माताके दूधमें प्राप्त होनेवाले आवश्यक किस्मके प्रोटीन पदार्थ गोदुग्धमें भी प्राप्त हैं। यहाँतक कि अमीनो एसिडके कुछ ऐसे तत्त्व भी हैं, जो मात्र गायके दूधमें ही मिलते हैं। अन्य अमानवीय जीवोंके दूधमें इन तत्त्वोंका मिलना सम्भव नहीं है।

गायका दूध कितना शक्तिशाली है, इसे जाननेके लिये हमें गायके नवजात शिशुको देखना चाहिये। वह जन्म लेते ही उछल-कूद करने लगता है, जब कि अन्य दूध देनेवाले पशु या भैंसका बच्चा उस समय ठीकसे खड़ा भी नहीं हो सकता।

गायका दूध स्नेह और ममत्वसे भरा होता है, उसीसे यह अधिक पौष्टिक, सुपाच्य और लाभदायक होता है। देखा गया है कि बीसों गायोंके बीच भी गायका बच्चा अपनी माँको पहचान लेता है और उसीके थनमें अपना मुँह मारता है। इसका कारण मातृस्नेह होता है। जब कि भैंसका बच्चा अधिक भैंसोंके बीचमें किसी भी भैंसके थनपर जा लगता है। केरोटीन जो स्फूर्ति प्रदान करता है, गायके दूधमें भैंसके दूधसे दस गुना अधिक होता है। भैंसके दूधकी चिकनाई कभी-कभी रोगियोंकी नशोंमें जम जाती है, जिसके कारण दिलका दौरा पड़ सकता है। भैंससे प्राप्त पोषक तत्त्वोंके कण गायकी अपेक्षा आकारमें बड़े होते हैं, जिससे वे मनुष्यके शरीरमें भी पूरे-के-पूरे पच नहीं पाते। इसलिये या तो वे बाहर निकल जाते हैं अथवा ईंधनकी तरह जल जाते हैं। शरीर उनका लाभ नहीं उठा पाता। दूधको गर्म करनेसे भी भैंसके दूधके पोषक तत्त्व लुप्त हो जाते हैं और उसकी आधी चिकनाई और प्रोटीन तथा खनिज पदार्थ हवामें उड़ जाते हैं। गायके दूधको गर्म करनेसे भी उसके वे सारे तत्त्व उसीमें विद्यमान रहते हैं।

दूधमें औषधीय गुणोंकी भी कमी नहीं है। अनेकों रोगोंका सफलतापूर्वक उपचार गोदुग्धसे किया जा सकता है। विदेशोंमें भी इसपर अनुसंधान हुए हैं और परिणाम उत्साहवर्धक हैं। दूधके औषधीय उपयोगको लोकप्रिय बनानेका श्रेय रूसी तथा जर्मन चिकित्सकोंको दिया जा सकता है। अनिद्रा, ज्ञानतन्तु-सम्बन्धी रोग, नाड़ीकी सूजन, सिर-दर्द, अर्धशिरःपीड़ा, स्नायुकी शिथिलता, चिड़चिड़ापन, सामान्य दुर्बलता, रक्तकी अल्पता, पेट तथा आँतकी अपच, अम्ल, अफारा, फुंसी-फोड़ा, पाण्डुरोग, खाज, बालोंकी रूसी, पित्त-विकार, जुकाम या खाँसी, कब्ज, पुरानी पेचिश, अतिसार, दमा, बवासीर, गठिया, जोड़ोंकी सूजन, असामान्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्तचाप, कटि-वेदना, अंडाशयके कष्ट, प्रदर, नपुंसकता, मनोव्यथा, पित्ताशयकी पथरी, मधुमेह आदि सैकड़ों तरहकी व्याधियोंकी चिकित्सामें गोदुग्धके सेवनसे अपार लाभ होता है। रोग-निवृत्तिके पश्चात् पथ्यके रूपमें तथा पूर्ण स्वस्थता प्राप्त करनेके लिये गोदुग्धका सेवन अनिवार्य बताया जाता है।

गोदुग्धका खाद्य-मूल्य अत्यधिक है। विदेशी अखाद्य और आमिष भोजन (मांस, अंडे, मछली आदि) की मात्रा और दूधकी मात्रा तथा मूल्योंकी तुलना करते हैं तो कम मूल्यमें और समान मात्रामें दूधसे अधिक लाभ प्राप्त होनेकी बात करते हैं। गोदुग्धको आवश्यक और उपयोगी बतानेवालों और स्वास्थ्य-वैज्ञानिकोंका कहना है कि प्रत्येक मनुष्यको सामान्य स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिये प्रतिदिन कम-से-कम आधा लीटर दूध प्राप्त होना चाहिये। लेकिन भारतमें प्रति व्यक्ति दूध-प्राप्तिका औसत मात्र एक सौ ग्रामका है। बच्चोंके नब्बे प्रतिशत कुपोषणके मामलोंमें उन्हें प्रतिदिन डेढ़ लीटर दूध देकर चिकित्सा की जा सकती है।

भारतमें गायोंकी लगभग ३२ नस्लें हैं। मामूली नस्लकी गायें एक ब्यानमें लगभग सात सौ लीटर दूध देती हैं। नस्ल-सुधार और संवर्धन-संरक्षणसे इसे तीन हजार लीटरतक पहुँचाया जा सकता है। अधिक दूध देनेवाली नस्लोंमें हरियाणा, राठी, गीर, सांचेर, रेडसिंधी, शाहीवाल आदिकी गणना है। ये गायें विदेशी नस्लकी गायोंके समकक्ष मानी गयी हैं। घास खाकर भी ये गायें १०-१५ लीटर दूध देती हैं। विशेष खान-पान होनेपर यह मात्रा २०-२५ लीटरतक और खास नस्ल तथा विशिष्ट सेवा-शुश्रूषाके द्वारा ३०-३५ लीटरतक भी दूध दे सकती हैं। इन जातियोंकी नस्ल-सुधार, विशेष देखभाल और खान-पानपर ध्यान दिया जाना चाहिये। अधिक-से-अधिक गोदुग्धकी प्राप्तिके लिये गोवध-बंदी तो अनिवार्यरूपसे होनी चाहिये, क्योंकि गोधनकी बढ़ोत्तरी और सुरक्षा होनेसे ही हम यह अमृतमय गोरस प्रति व्यक्तिके पास पहुँचानेमें सक्षम होंगे।

निष्कर्ष यह है कि स्वस्थ गायसे प्राप्त स्वच्छ दूध तथा ठीक प्रकारसे तैयार किया गया एवं ठीक ढंगसे उपयोगमें लाया गया दुग्धाहार शारीरिक ढाँचेमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लानेमें समर्थ है तथा इससे मन, बुद्धि, वाणी एवं चित्तके भी सभी उपकरण सात्त्विक संस्कारोंसे सुसंस्कृत हो जाते हैं और उन सभीका प्रभाव दूरगामी होता है। उससे पार्श्ववर्ती परमाणु तथा परिवेश भी सत्त्वगुण-सम्पन्न हो जाते हैं। इसलिये गौएँ सभी प्रकार आदरणीय, पूज्य, वन्द्य एवं सर्वदा संरक्षणीय हैं।

शरणागतकी पुकार

प्रभो ! एक क्षुद्र प्राणी जिसे अपने ही अस्तित्वका पता नहीं, तुम्हारा अस्तित्व सिद्ध करनेका हास्यास्पद प्रयत्न कर रहा है, कहाँ तुम्हारी अनन्त शक्ति और कहाँ यह तुम्हारे ही हाथोंका बना एक छोटा-सा खिलौना !

लीलामय नटवर ! तुम्हारी लीला अनन्त आश्चर्यमयी अलौकिक है। इसकी मोहिनी मायाकी चमकमें चौंधियाकर मेरे चर्म-चक्षु अज्ञानान्धकारकी काली यवनिकासे ढक गये। गजब हो गया नाथ ! भूल गया अपने स्रष्टाको इस विज्ञानमयी भुलावनी विषय-तृष्णामें फँसकर ! बुद्धि तुम्हारे अस्तित्वमें भी संदेह करने लगी।

बचाओ स्वामिन् ! बुद्धि दो, वही शान्तिप्रदा स्थिर बुद्धि, जिसे पाकर तुम्हें भलीभाँति समझ सकूँ। 'मैं' के भ्रममें भ्रमित इस अनाथको सहारा दो नाथ ! नहीं तो इस अभिमानकी मस्तीमें मदमत्त हो यह मत्त पापपङ्कमें धँस जायगा।

चाहे जितने अपराध क्यों न करूँ, पर हूँ तुम्हारी ही एक क्षुद्र संतान ! प्रभो ! अपना मङ्गलमय हाथ मेरे मस्तकपर रख मुझे अभय कर दो, जिससे फिर ऐसी भूल कभी न हो और तुम्हारे दिखलाये पथपर चिरकालतक चलता रहूँ।

प्यारे मालिक ! यह जीवनकी जीर्ण तरी तुम्हारे हाथोंमें समर्पित है, मेरी सारी भूलोंको भुलाकर सँभालो अपनी चीजको, यह जीर्ण-से-जीर्ण होकर टूट जाय तुम्हारे चरणतलमें। —मोहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता-तत्त्व-चिन्तन

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गीतामें तीनों योगोंकी महत्ता

त्रयो हि योगाः सुगमा वरिष्ठाः सिद्धिप्रदाः पापमिवारकाश्च ।
तुष्टिप्रशान्तिप्रदसाम्यदाश्च ज्ञानाच्छदातार उदीरिताश्च ॥

भगवान्‌ने गीतामें तीनों योगोंको स्वतन्त्र साधन बताया है और उनकी नौ-नौ बातें बताकर उनकी महत्ता प्रकट की है—

कर्मयोग

(१) **श्रेष्ठ**—कर्मयोग ज्ञानयोगसे श्रेष्ठ है—'**तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते**' (५।२)। कारण कि कर्मयोगमें सम्पूर्ण कर्म कर्तव्य-परम्परा सुरक्षित रखनेके लिये अर्थात् दूसरोंके लिये ही किये जाते हैं। अतः अपने सुख-आराम, आदर-महिमा, विद्या-बुद्धिका अभिमान, भोग और संग्रहकी इच्छा आदिका त्याग सुगमतासे हो जाता है, जब कि ज्ञानयोगमें विवेक-विचारके द्वारा अपने सुख-आरामका त्याग करनेमें कठिनता पड़ती है।

कर्मयोग ध्यानयोगसे भी श्रेष्ठ है—'**ध्यानात्कर्मफलत्यागः**' (१२।१२)। कारण कि कर्मयोगमें सम्पूर्ण कर्मोंके फलका अर्थात् फलेच्छाका त्याग है, जब कि ध्यानयोगमें कर्मफलका त्याग नहीं है।

कर्मोंका त्याग करनेकी अपेक्षा आसक्तिरहित होकर कर्म करनेवाला कर्मयोगी श्रेष्ठ है—'**कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते**' (३।७)। कारण कि आसक्तिरहित होकर कर्म करना योग-(समता-) पर आरूढ़ होनेमें कारण है (६।३) और कर्मोंका त्याग करनेमात्रसे सिद्धिकी प्राप्ति नहीं होती (३।४)।

(२) **सुगम**—कर्मयोगी सुखपूर्वक बन्धनसे मुक्त हो जाता है—'**सुखं बन्धात्प्रमुच्यते**' (५।३)। कारण कि उसमें राग-द्वेष नहीं होते, प्रत्युत समता रहती है। ऐसे तो सम्पूर्ण मनुष्य कर्म करते ही हैं, पर राग-द्वेष होनेसे, सिद्धि-असिद्धिमें सुखी-दुःखी होनेसे वे बन्धनसे मुक्त नहीं हो पाते।

(३) **शीघ्र सिद्धि**—समतायुक्त कर्मयोगी बहुत जल्दी परमात्मतत्त्वको प्राप्त हो जाता है— '**योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति**' (५।६)। कारण कि उसमें कर्म और कर्मफलकी आसक्ति नहीं होती और संसारका आश्रय नहीं रहता (४।२०)।

(४) **पापोंका नाश**—जो केवल यज्ञके लिये अर्थात् कर्तव्य-परम्पराको सुरक्षित रखनेके उद्देश्यसे ही कर्म करता है, उसके सम्पूर्ण कर्म, पाप विलीन हो जाते हैं—'**यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते**' (४।२३)। कारण कि यज्ञार्थ कर्म करनेसे अपनेमें कर्मोंके फलकी आसक्ति, कामना आदि नहीं रहते।

कर्म क्या है और अकर्म क्या है—इसको ठीक-ठीक जानकर कर्म करनेसे कर्मयोगीके सम्पूर्ण कर्म जल जाते हैं—'**ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम्**' (४।१९)। कारण कि उसके सम्पूर्ण कर्म कामना और संकल्पसे रहित होते हैं। अतः उन कर्मोंकी बाँधनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है।

(५) **संतुष्टि**—कर्मयोगी अपने-आपमें संतुष्ट हो जाता है—'**आत्मन्येवात्मना तुष्टः**' (२।५५)। '**आत्मन्येव च संतुष्टः**' (३।१७)। कारण कि उसमें सम्पूर्ण कामनाओंका सर्वथा त्याग होता है। अतः उसकी संतुष्टि पराधीन नहीं होती।

(६) **शान्तिकी प्राप्ति**—कर्मयोगी शान्तिको प्राप्त हो जाता है—'**स शान्तिमधिगच्छति**' (२।७१), '**शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्**' (५।१२)। कारण कि उसमें कामना, ममता आदि नहीं रहते अर्थात् उसका संसारसे सम्बन्ध नहीं रहता।

(७) **समताकी प्राप्ति**—कर्मयोगी सिद्धि और असिद्धिमें सम हो जाता है—'**समः सिद्धावसिद्धौ च**' (४।२२)। कारण कि उसको कर्मकी सिद्धि-असिद्धि, पूर्ति-अपूर्तिमें हर्ष-शोक, राग-द्वेष नहीं होते।

(८) **ज्ञानकी प्राप्ति**—कर्मयोगसे सिद्ध हुए मनुष्यको अपने स्वरूपका ज्ञान (बोध) अपने-आप हो जाता है—'**तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति**' (४।३८)। कारण कि उसमें संसारका आकर्षण, जड़ता नहीं रहती। जड़ता न रहनेसे स्वतःसिद्ध स्वरूप रह जाता है।

(९) **प्रसन्नता-(स्वच्छता-) की प्राप्ति**—कर्मयोगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तःकरणकी प्रसन्नताको प्राप्त हो जाता है—**'प्रसादमधिगच्छति'** (२। ६४)। कारण कि राग-द्वेषपूर्वक विषयोंका सेवन करनेसे ही अन्तःकरणमें अशान्ति, हलचल होती है; परंतु कर्मयोगी साधक राग-द्वेषरहित होकर विषयोंका सेवन करता है; अतः उसका अन्तःकरण स्वच्छ, निर्मल हो जाता है।

ज्ञानयोग

(१) श्रेष्ठ—द्रव्यमय (आहुति देकर किये जानेवाले) यज्ञसे ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है—**'श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः'** (४। ३३)। कारण कि द्रव्यमय यज्ञमें पदार्थों और क्रियाओंकी मुख्यता रहती है, जब कि ज्ञानयज्ञमें विवेक-विचारकी मुख्यता रहती है। विवेक-विचारमें मनुष्यकी जितनी स्वतन्त्रता है, उतनी स्वतन्त्रता पदार्थों और क्रियाओंमें नहीं है।

(२) सुगम—ज्ञानयोगी साधक निर्गुण-निराकारका ध्यान करते-करते सम्पूर्ण पापोंसे रहित होकर सुखपूर्वक परमात्माको प्राप्त हो जाता है—**'सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते'** (६। २८)। कारण कि उसमें देहाभिमान नहीं रहता।

(३) शीघ्र सिद्धि—श्रद्धावान् सांख्ययोगी ज्ञानको प्राप्त होकर शीघ्र ही परम गतिको प्राप्त हो जाता है—**'ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति'** (४। ३९)। कारण कि वह इन्द्रियोंको वशमें किये हुए होता है।

(४) पापोंका नाश—पापी-से-पापी भी ज्ञानरूपी नौकासे सम्पूर्ण पापोंसे तर जाता है—**'सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि'** (४। ३६)। ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण पापोंको भस्म कर देती है—**'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते'** (४। ३७)। कारण कि स्वरूपका बोध होनेसे शरीर-संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है।

(५) संतुष्टि—अपने स्वरूपका ध्यान करनेवाला सांख्ययोगी अपने-आपमें संतुष्ट हो जाता है—**'पश्यन्नात्मनि तुष्यति'** (६। २०)। कारण कि उसका जडता अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि आदिके साथ सम्बन्ध नहीं रहता।

(६) शान्तिकी प्राप्ति—ज्ञानयोगी परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है—**'ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति'** (४। ३९)। कारण कि वह तत्त्वको जान जाता है। फिर उसके लिये कुछ भी जानना शेष नहीं रहता।

(७) समताकी प्राप्ति—जो सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनेको और अपनेमें सम्पूर्ण प्राणियोंको देखता है, वह समदर्शी हो जाता है अर्थात् उसे समताकी प्राप्ति हो जाती है—**'सर्वत्र समदर्शनः'** (६। २९)। वह सुख-दुःखमें सम हो जाता है—**'समदुःखसुखः'** (१४। २४)। कारण कि उसकी तत्त्वसे अभिन्नता हो जाती है।

(८) ज्ञानकी प्राप्ति—क्षेत्र अलग है और क्षेत्रज्ञ अलग है—ऐसा विवेक होनेपर सांख्ययोगीको स्वरूपका बोध अर्थात् परमतत्त्वकी प्राप्ति हो जाती है—**'यान्ति ते परम्'** (१३। ३४)। कारण कि उसका प्रकृति और उसके कार्यसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है।

(९) प्रसन्नता-(स्वच्छता-)की प्राप्ति—सांख्ययोगीकी अन्तःकरणकी प्रसन्नताको प्राप्त हो जाता है—**'ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा'** (१८। ५४)। कारण कि वह अहंकार, कामना आदिसे रहित होता है।

भक्तियोग

(१) श्रेष्ठ—भगवान्‌में तल्लीन अन्तःकरणवाला श्रद्धावान् भक्त सम्पूर्ण योगियोंमें श्रेष्ठ है—**'स मे युक्ततमो मतः'** (६। ४७)। कारण कि उसके श्रद्धा-विश्वास भगवान्‌पर ही होते हैं, उसका आश्रय भगवान् ही रहते हैं। सांख्ययोगी और भक्तियोगी इन दोनोंमें भक्तियोगी—श्रेष्ठ है—**'ते मे युक्ततमा मताः'** (१२। २)। कारण कि वह नित्य-निरन्तर भगवान्‌में ही लगा रहता है।

(२) सुगम—भक्त श्रद्धा-भक्तिसे जो पत्र, पुष्प, फल, जल आदि भगवान्‌को अर्पण करता है, उसको भगवान् खा लेते हैं। इतना ही नहीं किसीके पास अगर पत्र, पुष्प आदि भी न हो तो वह जो कुछ करता है, उसे भगवान्‌के अर्पण करनेसे वह सम्पूर्ण बन्धनोंसे मुक्त होकर भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है—**'पत्रं पुष्पं फलं तोयं ..... मामुपैष्यसि'** (९। २६-२८)। कारण कि भक्तमें भगवान्‌को अर्पण करनेका भाव रहता है, और भगवान् भी भावग्राही हैं।

(३) शीघ्र सिद्धि—भगवान्‌में लगे हुए चित्तवाले भक्तका उद्धार भगवान् बहुत जल्दी कर देते हैं—**'तेषामहं**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्धर्ता..... नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्' (१२।७)। कारण कि वह केवल भगवान्‌के ही परायण रहता है; अतः उसका उद्धार करनेकी जिम्मेवारी भगवान्‌पर आ जाती है।

(४) **पापोंका नाश**—भगवान् अपने शरणागत भक्तको सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर देते हैं—'**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि**' (१८।६६)। कारण कि सर्वथा शरणागत भक्तकी सम्पूर्ण जिम्मेवारी भगवान्‌पर ही आ जाती है।

(५) **संतुष्टि**—भगवान्‌में मन लगानेपर भक्त संतुष्ट हो जाता है—'**तुष्यन्ति**' (१०।९)। कारण कि भगवान्‌में ज्यों-ज्यों मन लगता है, त्यों-त्यों उसे संतोष होता है कि मेरा समय भगवान्‌के चिन्तनमें लग रहा है। सिद्धावस्थामें वह संतोष भक्तमें स्वतः रहता है—'**संतुष्टः सततं योगी**' (१२।१४)। कारण कि उसको भगवत्प्राप्ति हो गयी होती है।

(६) **शान्तिकी प्राप्ति**—भक्त परमशान्तिको प्राप्त हो जाता है—'**शान्तिं निर्वाणपरमाम्**' (६।१५), '**शश्वच्छान्तिं निगच्छति**' (९।३१)। कारण कि उसका आश्रय केवल भगवान् ही रहते हैं।

(७) **समताकी प्राप्ति**—भगवान् अपने भक्तको वह समता देते हैं, जिससे वह भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है—'**ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते**' (१०।१०)। कारण कि वे केवल भगवान्‌में ही लगे रहते हैं, भगवान्‌के सिवाय कुछ भी नहीं चाहते।

(८) **ज्ञानकी प्राप्ति**—भगवान् स्वयं अपने भक्तके अज्ञानका नाश करते हैं—'**तेषामेवानुकम्पार्थं..... ज्ञानदीपेन भास्वता**' (१०।११) कारण कि भक्त केवल भगवान्‌में ही लगा रहता है, भगवान्‌के सिवाय कुछ चाहता ही नहीं। अतः भगवान् अपनी ओरसे ही उसके अज्ञानका नाश करके भगवत्तत्त्वका ज्ञान करा देते हैं।

(९) **प्रसन्नता-(स्वच्छता-) की प्राप्ति**—भक्तका अन्तःकरण प्रसन्न, स्वच्छ हो जाता है—'**प्रशान्तात्मा**' (६।१४)। कारण कि वह भगवान्‌का ध्यान करता रहता है।

गीताकी व्यापक दृष्टि

श्रीमद्भगवद्गीता भारतवर्षके उदात्त तथा संसारके गम्भीर धर्मशास्त्रोंमें मुकुटमणि है। काव्यकी सुषमा और शक्तिका यह एक अक्षय भण्डार है। इसके पात्र समराङ्गणकी शौर्यपूर्ण अत्यन्त प्रभावशाली योजनामें अपने वीरोचित दर्प तथा प्रतापके कारण सबका ध्यान आकृष्ट करते हैं। निराशा, संदेह और अवसादके कारण अर्जुन हमें कितना 'मानव' प्रतीत हो रहा है और वहीं अपने गौरवपूर्ण, सुदृढ़ प्रभावशाली व्यक्तित्वके कारण श्रीकृष्ण कितने अलौकिक लगते हैं और ये दोनों ही प्रकारके व्यक्तित्व कितने सुस्पष्ट, सजीव और विश्वके सनातन सत्यके अमर प्रतीक हैं। इतना ही क्यों, गीता ईश्वरीय प्रेरणा, भावभरी भक्ति और मानव-हृदयको परखनेवाली सूक्ष्म अन्तर्दृष्टिसे परितः सम्पन्न है, ओतप्रोत है। हमारे कर्मसम्पादनमें नाना प्रकारकी परस्परविरोधी भावनाएँ आ-आकर जो हमें विचलित कर देती हैं, स्वार्थकी वे बेड़ियाँ जो हमें परमात्मपथमें बढ़ने नहीं देतीं, हृदयकी सूक्ष्म प्रेरणाओं और सूचनाओंकी अवहेलना कर मनमाना चलनेका जो हमारा स्वभाव बन गया है—गीतामें इन सारी बातोंका बहुत ही विशद विवेचन हुआ है और इनका अत्यन्त सुस्पष्ट दर्शन भी हमें होता है। फिर भी, गम्भीर आत्मचिन्तनकी आवश्यकताकी गीता अवहेलना नहीं करती, उसे स्वीकार करती है और इसी कारण, भारतीय दर्शनके क्रम-विकासकी एक-एक अवस्थाका, तर्क और अध्यात्मशास्त्रकी एक-एक सूक्ष्म बारीकीका गीतामें समुचित समावेश है और साथ ही भारतीय राजनीति तथा भारतीय इतिहाससे सम्बन्ध रखनेवाली अनेक समस्याओं तथा प्रश्नोंपर गीताने बड़े ही सुन्दर ढंगसे प्रकाश डाला है तथा सुलझावका व्यावहारिक मार्ग दिखलाया है—गीताका वह मार्ग-निदर्शन, वह संकेत आज भी हमारे लिये उतना ही उपयोगी और कामका है, जितना दो हजार वर्ष पूर्व था। —श्रीयुत चार्ल्स जॉन्स्टन महोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत ज्ञानदेव और उनका प्रकरण-ग्रन्थ 'अमृतानुभव'

(सुश्री प्रमिला पिंपले)

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥

(गीता ६ । ४१-४२)

'योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानोंके लोकोंको अर्थात् स्वर्गादि उत्तम लोकोंको प्राप्त होकर, उनमें बहुत वर्षोंतक निवास करके फिर शुद्ध आचरणवाले श्रीमान् पुरुषोंके घरमें जन्म लेता है। अथवा वैराग्यवान् पुरुष उन लोकोंमें न जाकर ज्ञानवान् योगियोंके ही कुलमें जन्म लेता है। परंतु इस प्रकारका जो यह जन्म है, वह संसारमें निःसंदेह अत्यन्त दुर्लभ है।'

आजसे सात सौ वर्ष पूर्व महाराष्ट्र प्रान्तके अलकापुरीके सिद्धद्वीपपर एक पर्णकुटीमें ज्ञानसूर्यका उदय हुआ। शालिवाहन शक ११९७में श्रीकृष्णजन्माष्टमीकी मध्यरात्रिमें बालयोगी संतश्रेष्ठ ज्ञानदेवजीका आविर्भाव हुआ। वारकरी-सम्प्रदायके अनुसार ज्ञानदेव भगवान् श्रीकृष्णके ही अवतार माने जाते हैं।

उनके पिताका नाम विट्ठलपंत था एवं माताका नाम रुक्मिणी (रखमाबाई)। दोनों भगवद्भक्त थे। इनके तीन पुत्र एवं मुक्ता नामकी एक कन्या थी। विट्ठलपंतने गुरुदेवकी आज्ञासे संन्यासाश्रमका त्याग करके पुनः गृहस्थाश्रम ग्रहण किया। फलस्वरूप आलंदीके ब्रह्मवृन्दने उन्हें जाति-बहिष्कृत कर दिया। अपने पुत्रोंके उपनयन-संस्कारकी आज्ञा प्राप्त करने जब वे धर्मसभामें उपस्थित हुए, तब उन्हें देहान्त-प्रायश्चित्त सुनाया गया। यह दण्ड शिरोधार्य करके विट्ठल-रुक्मिणीने प्रयागराजमें देह विसर्जित कर दिये।

अब चारों बालक प्रतिष्ठाण-क्षेत्रमें (पैठण) धर्मसभामें उपस्थित हुए। वहाँ ज्ञानदेवजीने एक महिषके मुखसे वेदमन्त्रोंका उच्चारण कराया। इस चमत्कारसे विद्वानोंको बालकोंके अधिकार एवं योग-सामर्थ्यका अनुभव हुआ। धर्मसभाने उन्हें सम्मानित किया।

प्रतिष्ठाणसे लौटते समय नेवासे ग्राममें ज्ञानदेवजीके ज्येष्ठ बन्धु एवं श्रीगुरुकी आज्ञासे उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीतापर विस्तृत व्याख्या प्रारम्भ की। जनसाधारणके उद्बोधनके लिये यह भाष्य महाराष्ट्रिय प्राकृत भाषामें है। भावार्थदीपिका नामक यह ग्रन्थ ज्ञानेश्वरी नामसे सुप्रसिद्ध है। इसमें अत्यन्त आकर्षक पद्धतिसे भक्तिकी मधुर रसवर्षा करते हुए कर्म, भक्ति एवं ज्ञानका रमणीय समन्वय द्रष्टव्य है। ज्ञानदेवजीके काव्यमें परतत्त्वका स्पर्श है, शब्दके बिना संवाद करनेका तथा इन्द्रियोंके अतीत मनको ले जानेका सामर्थ्य है, ब्रह्मतत्त्वका प्रत्यक्ष अनुभव करानेका आत्मविश्वास है।

श्रीज्ञानदेवजीने गुरुकी आज्ञासे साधनपथमें प्राप्त आत्मानुभूतिका विवरण एक स्वतन्त्र ग्रन्थमें किया है। इस ग्रन्थका नाम 'अमृतानुभव' या 'अनुभवामृत' है। गूढ-प्रक्रियात्मक आत्मानुभव प्रकट करनेवाले इस छोटेसे ग्रन्थको समझनेके लिये अपरोक्षानुभूतिकी आवश्यकता है। मङ्गलाचरणके पाँच श्लोक संस्कृत-भाषामें लिखकर अपने श्रीगुरुके चरणोंकी ज्ञानदेवजीने वन्दना की है। ग्रन्थका सम्पूर्ण विषय इसमें प्रकट हुआ है। इस लेखमें इन्हीं पाँचों श्लोकोंका विवेचन है, जो इस प्रकार है—

यदक्षरमनाख्येयमानन्दमयकेवलम् ।
श्रीमन्निवृत्तिनाथेति ख्यातं दैवतमाश्रये ॥ १ ॥

जो साक्षात् अक्षर अवर्णनीय। आनंदस्वरूप अनादि अव्यय।
परब्रह्म निवृत्ति अभिधेय। आश्रय लेत उसीका ॥ १ ॥

जो अविनाशी है, जो वर्णनातीत और केवल आनन्दमय है, उस निवृत्तिनाथ नामसे प्रसिद्ध परब्रह्म परमात्माका मैं आश्रय लेता हूँ ॥ १ ॥

भगवती श्रुति एवं संतोंके अनुसार परब्रह्म परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है। अतः सगुण-साकार एवं निर्गुण-निराकार उसीका स्वरूप है। 'सद्गुरु साक्षात् परब्रह्म है' इस उक्तिके अनुसार गुरु-रूपमें परमात्मा ही सगुण-साकार-रूपमें विद्यमान है।

गुरुरित्याख्यया लोके विद्या साक्षाद्धि शांकरी।
जयत्याज्ञा नमस्तस्यै दयार्द्रायै निरन्तरम् ॥ २ ॥

सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मविद्या। ज्ञानस्वरूप शांकरी विद्या।
जगदुद्धारक नाशत अविद्या। मेरा नमन उसको ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगद्गुरुरूपसे अभिहित होनेवाले भगवान् शंकरद्वारा उपदिष्ट साक्षात् ब्रह्मविद्या जो दयासे निरन्तर आर्द्र है, वह संसारमें सदा विजयिनी है, हम उसे सदा नमस्कार करते हैं॥ २॥

श्रीगुरु शिष्यको उपदेश करते हैं। यह ज्ञान गुरुके माध्यमसे शिष्यको परम्परासे प्राप्त होता है। भगवान् श्रीशंकरने माता पार्वतीको प्रथम यह ज्ञान बताया, अतः यह शांकरी विद्या कहलाती है। यह नाथ-सम्प्रदायकी परम्परा है। इसीलिये भगवान् शंकर आदिनाथ कहलाते हैं।

सार्धं केन च कस्यार्थं शिवयोः समरूपिणोः।
ज्ञातुं न शक्यते लग्नमिति द्वैतच्छलान्मुहुः॥ ३॥

प्रकृति एवं पुरुष में। कौन किसमें समरूपमें।
अनिर्वचनीय स्थिति उनमें। द्वैतरहित॥ ३॥

द्वैतके निमित्त बार-बार भिन्नता प्रकट करनेवाले किंतु सच्चिदानन्दरूपसे शिवरूपमें स्थित, शिव-शक्ति—प्रकृति-पुरुषमें कौन किसमें समाया है, यह समझना कठिन है, क्योंकि दोनोंकी स्थिति वाणीसे परे है, द्वैतरहित है॥ ३॥

परब्रह्म परमात्मा शिव-शक्ति दोनों रूपमें प्रकट होते हैं, जैसे सूर्य एवं उसका प्रकाश अभिन्न है, वैसे ही शिवसे शक्ति अभिन्न है। पुरुष एवं प्रकृतिमें अभेद है। पुरुष प्रकृतिका आधा भाग है या प्रकृति पुरुषका समभाग है यह स्पष्ट करना असम्भव है। अतः शिव-शक्ति नित्य पूर्णरूप हैं। उनका अनादि-अभेद है, अद्वैत है।

अद्वैतमात्मनस्तत्त्वं दर्शयन्तौ मिथस्तराम्।
तौ वन्दे जगतामाद्यौ तयोस्तत्त्वाभिपत्तये॥ ४॥

नमत जगत आदिकारण। शिवशक्ति परिपूर्ण।
अद्वैतरूपका ज्ञान। करावे मुझको॥ ४॥

शिव-शक्ति द्वैत प्रकट करके ही अद्वैत-तत्त्व बता रहे हैं। विश्वके आदिकारण शिव-शक्ति परिपूर्ण हैं। उनके अद्वैत-रूपका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे मैं उनकी वन्दना करता हूँ॥ ३॥

शिव-शक्तिकी भिन्नतामें विश्व सत्य है ऐसा आभास होता है। अतः शिव-शक्तिका सत्यस्वरूप क्या है, इस अभिलाषासे विनम्र होकर श्रीज्ञानदेवजी उनकी वन्दना करते हैं, क्योंकि भगवान् जब कृपा करते हैं, तभी उनके स्वरूपका बोध होता है। यहाँ ज्ञानदेवजी भगवान्के तत्त्वस्वरूपको जाननेकी आकाङ्क्षा रखते हैं। पुनः भगवान्का निरूपण, आनन्दावस्था-ब्रह्मानन्दका ज्ञान होनेके लिये अहंकाररहित, अत्यन्त लीनतासे ज्ञानदेवजी नमन करते हैं।

मूलायाग्राय मध्याय मूलमध्याग्रमूर्तये।
क्षीणाग्रमूलमध्याय नमः पूर्णाय शम्भवे॥ ५॥

करत उत्पत्ति स्थिति लय। क्षीणाग्र मूलमध्याय।
नमः शंभवे पूर्णाय। ब्रह्मरूपिणे॥ ५॥

विश्वका जो आदिकारण है, वही मध्य एवं अन्त है। मूल, मध्य, अन्तकी मर्यादासे जो साकार हुआ है, उसमें उत्पत्ति, स्थिति एवं लयका भाव नहीं है। उस पूर्णरूप शम्भु-शिवको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ५॥

भगवान् शिव नित्यपूर्ण हैं। स्फूर्ति-दशामें भी वे परिपूर्ण हैं। जैसे सूर्य नित्य प्रकाशरूप परिपूर्ण रहता है, बादलोंसे ढक जानेपर भी वह पूर्ण प्रकाशयुक्त रहता है, वैसे ही भगवान् शक्तिरूपमें प्रकट होनेपर भी पूर्णरूप ही होते हैं। उनपर ही शक्तिका एवं विश्वका प्राकट्य होता है, किंतु उत्पत्ति, स्थिति एवं लय-कालमें भी उनमें परिवर्तन नहीं होता। अतः शक्तिकी स्फुरणामें आदि-मध्य एवं अन्तकी मर्यादा अज्ञानियोंके लिये है। उस नित्य परिपूर्ण शिवस्वरूपकी ज्ञानदेव वन्दना करते हैं।

'अमृतानुभव' ग्रन्थमें प्रतिपादित सम्पूर्ण विषयोंका निर्देश इन पाँच श्लोकोंमें है। यही इस ग्रन्थका मङ्गलाचरण है।

'माताको देवीके समान जानो, पिता और आचार्यको देवसमान समझो।' —तैत्तिरीय उपनिषद्

'इस संसारमें कौन मनुष्य अपनी देह उत्पन्न करनेवाले पिताके उपकारका बदला दे सकता है। पिताके मनका भाव समझकर तदनुसार काम करनेवाला पुत्र उत्तम है, पिताके कहनेपर काम करनेवाला मध्यम और श्रद्धा बिना करनेवाला अधम है तथा जो पिताके कहनेपर भी तदनुसार काम नहीं करता, उसे अधमाधम—नरक समझना चाहिये।

—श्रीभागवत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

[परमार्थ-पत्रावली]

(१)

तुमने लिखा, जब हमलोगोंपर दुःख आता है, तभी हम आपकी याद करते हैं, निरन्तर याद रखें तो सदाके लिये दुःख मिट सकते हैं, सो ऐसा नहीं लिखना चाहिये। दुःखोंका सदाके लिये नाश तो श्रीभगवान्‌को याद करनेसे ही हो सकता है। इसके समान और कोई उपाय भी नहीं है। श्रीभगवान्‌को याद करनेसे बहुत जल्दी, बहुत सुगमतासे भगवान् मिल सकते हैं। गीता अध्याय ८, श्लोक १४ को अर्थसहित पढ़ना चाहिये। कलियुगमें तो इस तरहका दूसरा उपाय है ही नहीं।

तुमने लिखा—'ध्यान क्या वस्तु है, मैं तो यह जानता भी नहीं। काम करते समय भजन भी मुझसे नहीं होता' सो ठीक है। संसारमें ध्यानके समान और कुछ भी नहीं है। भजन, सत्संग, सेवा सब कुछ भगवान्‌के ध्यानके लिये ही है। अतएव ध्यान क्या वस्तु है, इसके जाननेकी चेष्टा करनी चाहिये। भजन तो साधारण चेष्टा करनेसे और भगवान्‌को सबसे उत्तम समझनेसे निरन्तर हो सकता है। गीता अध्याय १५, श्लोक १९ को अर्थसहित देखना चाहिये। भगवान्‌को सबसे उत्तम समझनेके बाद भगवान्‌का भजन छूट नहीं सकता। समझदार आदमी वही काम करता है, जिसमें अधिक लाभ हो। यदि यह कहा जाय—सोने, चाँदी, लोहे और कोयलेकी किसी भी खानको खोद सकते हो, तो मूर्ख मनुष्य भी हर समय सोनेकी खान खोदकर सोना निकालनेका काम ही करेगा। इसी तरह भगवान्‌का मर्म या प्रभाव समझनेवाला मनुष्य भी संसारसे नाशवान् भोगपदार्थोंको छोड़कर हर समय श्रीभगवान्‌को ही भजेगा।

भजन, ध्यान निरन्तर करनेकी चेष्टा रखनी चाहिये, तुमको विचारना चाहिये, तुम किस लिये आये हो? क्या करना है और क्या कर रहे हो? संसारकी कोई भी चीज तुम्हारे साथ नहीं जायगी। एक भगवान्‌को छोड़कर और कोई भी तुम्हारा नहीं है। फिर महामायाके जालमें फँसे हुए तुम अपने जीवनके समयको व्यर्थ ही क्यों बिता रहे हो? अब चेतना चाहिये। ऐसा अवसर बार-बार मिलना मुश्किल है। और कुछ भी न कर सको तो भजन, ध्यान, सेवा, सत्संगकी चेष्टा तन-मनसे करनी चाहिये। इतना भी नहीं कर सको तो निरन्तर निष्कामभावसे भगवान्‌के नामका जप ही करना चाहिये। इस युगमें केवल नामके जपसे ही श्रीभगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है।

(२)

समय बीत रहा है। गया हुआ समय फिर हाथ नहीं आता। इसलिये जबतक स्वास्थ्य ठीक है, मृत्यु दूर है, तभीतक जो कुछ करना है सो कर लेना चाहिये, जिससे पीछे पश्चात्ताप न करना पड़े। संसारकी दृष्टिसे इस समय तुम्हारे सब कुछ ठीक हैं। इससे अधिक ठीक और क्या होनेवाला है? इस समय भी तुम न चेतोगे तो फिर कब चेतोगे? एक भगवान्‌को छोड़कर तुम्हारा और कोई भी नहीं है। अतएव उस परमप्रेमी भगवान्‌को एक क्षणके लिये भी नहीं भूलना चाहिये। तन, धन आदि कोई भी वस्तु साथ नहीं जायगी। इन सबको देकर बदलेमें साथ जानेवाली वस्तुको खरीद लेना चाहिये। यानी शरीरको भगवान्‌के भजन, ध्यान, सेवा, सत्संगमें लगाना चाहिये। रुपयोंको परोपकारमें लगाना चाहिये। रुपयोंसे जब अधिकार छिन जायगा, तब पछतानेसे कुछ भी काम नहीं होगा। मनुष्य-जन्मको सफल बनाना ही मनुष्यत्व है। मनुष्यजन्ममें ही आत्माका सुधार और उद्धार हो सकता है। अन्य किसी भी योनिमें नहीं हो सकता। इस प्रकार समझकर अपना उद्धार शीघ्र हो जाय, इसके लिये कटिबद्ध होकर प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। समयको अमूल्य समझकर अमूल्य काममें ही उसे लगानेकी चेष्टा रखनी चाहिये। और कुछ न बन सके तो हर समय ध्यानसहित श्रीभगवान्‌के नामका निष्काम प्रेम-भावसे निरन्तर जप करनेके लिये तो अवश्य ही विशेष चेष्टा करनी चाहिये। नाम-जपके प्रतापसे भगवत्कृपासे बहुत जल्दी आत्माका सुधार और उद्धार हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

कर्तव्यनिष्ठ अधिकारी

मेरे एक घनिष्ठ मित्रके जीवनकी यह सत्य घटना है। उनका पेंशन सरकारी फाइलोंमें दबा पड़ा था। उनके पास कोई सिफारिश तथा पहुँच नहीं थी। वे उत्कोच (घूस) देनेके विरोधी थे, यह उनके जीवनका आदर्श सिद्धान्त था, इसलिये कर्मचारी-क्लर्क टालमटोल करते रहते। आर्थिक दृष्टिसे दुर्बल होनेके कारण ये सज्जन पेंशनके लिये परेशान हो गये थे। फलस्वरूप एक दिन कार्यालयमें पहुँचकर सम्बन्धित कर्मचारियोंपर पर्याप्त लाल-पीले हुए। क्लर्कोंने भी उन्हें धमकाया। कोलाहल सुनकर नये आये सर्वोच्च अधिकारी अपने कक्षसे बाहर निकल आये।

अधिकारीको देखकर कर्मचारियोंने नमक-मिर्चके साथ मेरे उन मित्रकी शिकायत की। अधिकारीने उनकी ओर ध्यानसे देखा और उनके मुखमण्डलके लक्षणोंसे उनके हृदयके आन्तरिक भावोंको समझ लिया तथा संकेतसे अपने कक्षमें आनेको कहा।

इस बीच क्रुद्ध हुए उक्त सज्जनने उन अधिकारी महोदयको भी खूब खरी-खोटी सुना डाली। परंतु अधिकारी महोदयने मित्रके क्रोधकी ओर ध्यान न देकर अपने चपरासीको बुलाया और चाय तथा जलपान लानेको कहा। फिर मित्रसे शान्तिसे बोले—

'भाई साहब! आप भूखे हैं, परेशान हैं। ऐसी स्थिति अच्छे-अच्छे लोगोंको व्यग्र बना देती है। आप चाय-जलपान करें। आपका काम आज सायंकालतक हो जायगा। आप सीधे मुझसे ही मिले होते।'

अधिकारीकी इस सहानुभूतिका अनुभव करते हुए मित्रने अतीव विनम्रतापूर्वक कहा—'साहब! आप अभी नये-नये आये लगते हैं। आपके पूर्ववर्ती अधिकारी महोदय बहुत ही अमानवीय व्यवहार करते थे। मेरी जान-पहचान नहीं है न....।'

'तो क्या हुआ? जिनकी जान-पहचान या पहुँच नहीं होती, उनका काम मैं पहले करता हूँ। ऐसा करके मैं किसीका उपकार नहीं करता। सरकार हमें इसी कामके लिये तो वेतन देती है न?'

प्रेमसे चाय-जलपान करानेवाले युवा अधिकारीकी ओर सजल नेत्रोंसे मेरे मित्रने देखा और भरे हुए हृदयसे कहा—'साहब! मेरे अविनयके लिये आप क्षमा करें। भगवान् आपका भला करेगा। आपने मेरे हृदयकी पीड़ाको कम किया है।'

'भाई साहब! आपको हमारे कार्यालयके कर्मचारियोंने व्यर्थमें परेशान किया, इसके लिये क्षमा तो मुझे माँगनी चाहिये। ये लोग (क्लर्क-कर्मचारी) जड फाइलोंके बीच मानवताको भूल गये हैं। परंतु उन्हें यह नहीं भूलना चाहिये कि एक दिन वे भी पेंशनर बनेंगे ही। चाहे जैसी समस्या हो, परंतु उसका कोई-न-कोई समाधान तो होता ही है और उसके लिये ही हमें सरकार वेतन देती है।' इतना कहकर अधिकारी महोदयने मेरे मित्रकी पेंशनकी फाइल निकलवाकर सम्बन्धित क्लर्कको फटकारा और उचित निर्देशके साथ तत्काल फाइल ऊपरके कार्यालयमें भिजवा दी। इतना ही नहीं, वहाँ भी फोन करके इस केसको शीघ्र निपटानेका आदेश दिया।

इस युवा अधिकारीके इस मानवीय दृष्टिकोणसे मेरे मित्रकी पेंशनका आदेश एक सप्ताहमें ही आ गया। मेरे मित्र जब इस अधिकारीके पास आभार व्यक्त करने पहुँचे, तब उन्होंने मात्र इतना ही कहा—

'मैंने अपना कर्तव्य पूरा किया है। इसमें आभार प्रदर्शन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं।'

उस समय इस युवा अधिकारीके मुखमण्डलपर कर्तव्यनिष्ठाके आनन्दकी तथा संतोषकी रेखाएँ चमक रही थीं। प्रत्येक व्यक्तिको अपने कर्तव्यका इसी प्रकार निष्ठापूर्वक पालन करना चाहिये। — डॉ० चन्द्रकान्त त्रिवेदी

(२)

भिखारी या परोपकारी

मैं प्रत्येक शुक्रवार और शनिवारको बोटाद कालेजमें व्याख्यान देने जाया करता हूँ। शुक्रवारको अध्यापनकार्य पूरा करनेके पश्चात् दोपहरको तीन बजेके मेलसे धुँधका आकर रातमें वहीं रुक जाता हूँ। प्रातःकाल धुँधकासे बोटाद जाकर अध्यापनकार्य पूरा कर सायंकाल पुनः भावनगर वापस लौट आता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन मैं अध्यापनके बाद मेल पकड़नेके लिये तेजीसे कालेजसे बाहर निकला और स्टेशन आया। रेलवेकी टिकट-खिड़कीपर पहुँचकर जेबसे पैसे निकाले और टिकट खरीदा। प्लेटफार्मपर आया। अभी मेलके आनेमें देर थी। आरामसे मैंने साँस ली और एक लकड़ीकी बेंचपर बैठ गया।

कुछ ही क्षण बीते होंगे कि एक भिखारी-जैसा लड़का मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। उसकी ओर देखकर मैंने अपनी दृष्टि घुमा ली। लड़का मेरी ओर ही देख रहा था। मुझे लगा कि अब वह कारुणिक मुद्रा बनाकर मुझसे भीख माँगेगा, परंतु वह बिना कुछ बोले एकटक मेरी ओर देखता ही रहा। उसकी दृष्टिसे बचनेके लिये मैं बुक-स्टालपर जाकर खड़ा हो गया।

मैंने देखा, वह मेरे पीछे-पीछे वहाँ भी पहुँच गया। उसके इस व्यवहारसे मुझे थोड़ी खीज हुई। अन्तमें मैंने उसकी ओर देखकर पूछा—'क्या चाहिये तुम्हें? बोलो।' और उसे अपनेसे दूर भगानेके लिये उसके सामने दस पैसेका एक सिक्का बढ़ा दिया।

वह क्षणभर मुझे देखता रहा, फिर अपनी मुट्ठी खोलकर एक कागज निकाला और मुझे दिखाते हुए बोला 'यह चेक आपका है?'

चेक देखकर मुझे अपने वेतनका चेक याद आ गया। मैंने एक ही साँसमें अपनी जेब टटोली। जेबमें चेक नहीं था। उसके हाथसे चेक लेकर देखा, तो चेक मेरा ही था।

उसने मेरी ओर देखकर कहा—'आपने टिकट लेनेके लिये जेबसे जब पैसे निकाले, तब यह गिर गया था।'

मैं अवाक् बना उसकी ओर देख रहा था। स्वस्थ हो मैं कुछ कहूँ, उससे पहले ही वह चला गया। मैं उसे मात्र देखता रहा। उस घटनाके बाद बोटाद रेलवे स्टेशनपर मैंने उस लड़केको बहुत ढूँढ़ा, परंतु फिर कभी वह दिखायी नहीं पड़ा।

—प्राध्यापक एम० देसाई

(३)

लोकोत्तर मानवता

कुछ समय पूर्वकी बात है, मैं अपने बड़े भाईके साथ बैठी बातें कर रही थी। नौकरोंकी वफादारीकी बात चलनेपर उन्होंने मुझे यह बात बतायी—

'मेरे मझले भाईको 'राजयक्ष्मा'का रोग हो गया। उसकी देख-रेख करनेके लिये माताजी, पिताजी, बड़े भाई तथा छोटे भाई उसके पास चले गये, साथमें भट्ट तथा घाटीको भी ले गये। भाईकी चिन्ताके कारण मेरी माताजीका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता था, इसलिये घरका काम-काज भट्ट तथा घाटी ही चलाते। घाटीको तो घरका छोटा-मोटा काम करनेका अभ्यास था ही, परंतु भट्ट भी रसोई बनानेके पश्चात् रोगीकी देखभाल करनेके लिये अधिक-से-अधिक समय देता और मेरे बड़े भाईकी अनुपस्थितिमें नर्सके समान ही सेवा-शुश्रूषा और देखभाल करता। उसी समय सम्भवतः आवश्यकतावश इसने हमारी माताजीसे दो सौ रुपये उधार ले लिये थे। उस समय हमारी आर्थिक स्थिति अच्छी थी, इसलिये दो सौ रुपयेका कोई विशेष महत्त्व नहीं था तथा भाईकी बीमारीके भयानक दुःखके कारण रुपयोंकी बात भी किसीको स्मरण नहीं रही।

'इस बातको बीते वर्षों हो गये। पारिवारिक झगड़ेके कारण फर्मसे रुपया लेना बंद कर दिया गया। फर्मकी सारी व्यवस्था हमारे चाचाके अधीनस्थ थी। हमलोगोंकी आर्थिक स्थिति दिन-पर-दिन बिगड़ती चली गयी। मेरा बड़ा भाई उस समय कालेजमें पढ़ता था। उसके पास फीस देने तथा छात्रावासका शुल्क चुकानेतकके लिये पैसे नहीं थे। वह बहुत कठिनाईमें पड़ गया था। हमारा यह भट्ट उस समय पड़ोसके एक घरमें रसोइयेका काम करने लगा था। पता नहीं इसे हमारी इस स्थितिका कैसे आभास हो गया। इसने अपने उस मालिकके घरसे अपने वेतन-खातेमेंसे दो सौ रुपये उधार लिये और हमारे भाईको दे गया। वे रुपये हमारे भाईके लिये बहुत अमूल्य सिद्ध हुए थे।'

एक अत्यन्त सामान्य स्थितिके सेवक व्यक्तिका आपत्तिकालमें अपने समयोचित कर्तव्यका ध्यान रखकर कहींसे रुपयेकी कठिनतापूर्वक व्यवस्था कर प्रत्युपकारका परिचय देना आश्चर्यजनक कार्य है, जो प्रायः बहुत कम देखा जाता है। ऐसी प्रत्युपकारकी भावना लोकोत्तर मानवता या मानवदेहमें देवत्वका ही द्योतक है।

—एच० एम० वैष्णव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

(१)

विद्यार्थीका आदर्श—इन्द्रियनिग्रह

देवासुर-संग्राममें मृत दैत्य-योद्धाओंको दैत्यगुरु शुक्राचार्य मृतसंजीवनी विद्यासे पुनः जीवित कर देते थे, जिससे देवताओंका ह्रास होता जा रहा था, इससे चिन्तित होकर देवताओंने परस्पर विचार-विमर्शके द्वारा यह निश्चय किया कि उनमेंसे भी किसीको संजीवनी विद्याका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। आचार्य शुक्रके अतिरिक्त इसका कोई ज्ञाता नहीं था। दीर्घकालकी तपस्याके द्वारा उन्होंने इसे भगवान् शंकरसे प्राप्त किया था। अन्तमें देवताओंने यह निर्णय किया कि बृहस्पतिका पुत्र 'कच' ही इसके लिये उत्तम पात्र हो सकता है। फिर उन लोगोंने जाकर कचसे अपनी विपत्ति सुनायी और उसे पूर्ण संयम एवं सेवाभावसे रहकर इस विद्याकी प्राप्तिके लिये आचार्य शुक्रके संनिधानमें रहनेका परामर्श देकर उनके पास भेजा। आचार्य शुक्रने कचको बृहस्पतिका पुत्र समझकर बड़े आदरसे अपने यहाँ रखा और उसे सत्पात्र समझकर प्रसन्नतापूर्वक शिक्षा देने लगे। कच बड़ी तत्परतासे उनके लिये तथा उनकी पुत्री देवयानीके लिये भी वनसे समिधा, कुश, पुष्प आदि लाता और उनकी अग्नियोंकी भी परिचर्या करता। वह देवयानीमें सदा अपनी सगी बहन तथा शुक्राचार्यमें बृहस्पतिके समान ही पितृनिष्ठा और आचार्यकी भी पूज्यभावना रखता। जिससे वे दोनों भी उसपर आत्मीयता एवं विशेष स्नेहकी भावना रखते। कच दत्तचित्त होकर अल्पकालमें ही सम्पूर्ण संजीवनी विद्या प्राप्त करनेके प्रयत्नमें तत्पर था। धीरे-धीरे असुरोंको किसी प्रकार यह ज्ञात होने लगा कि शुक्राचार्यका विद्यार्थी अन्य कोई नहीं देवगुरु बृहस्पतिका पुत्र है और केवल संजीवनी विद्याके ग्रहणके उद्देश्यसे ही यहाँ आया है। वे लोग उसके छिद्रान्वेषणमें लग गये और इस अवसरकी प्रतीक्षामें रहे कि कहीं एकान्तमें पाकर उसे मार दिया जाय। यद्यपि कच भी सतर्क था, किंतु एक दिन असुरोंने उसे वनमें पुष्प तोड़ते देख लिया और वहीं उसे टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दिया। जब देरतक वह नहीं लौटा तो देवयानीको बड़ी चिन्ता हुई, उसने आचार्य शुक्रसे कहा—'पिताजी ! कच अभीतक नहीं लौटा, लगता है उसे असुरोंने संजीवनी विद्याके द्वेषसे कहीं मारकर फेंक दिया।' शुक्राचार्यने ध्यानसे देखा और देवयानीको सारी स्थिति बतलायी। इसपर देवयानीने कहा कि यदि कच जीवित होकर नहीं लौटा तो मैं भी जीवित नहीं बच सकती। इसपर शुक्रने कहा—'बेटी ! चिन्ता न करो, मैं उसे अपनी विद्यासे जिला दूँगा और जीवित ही यहाँ बुला लूँगा।' फिर वैसा ही किया। ऐसा कई बार होता रहा। अन्तमें दैत्योंने एक दूसरी युक्ति सोची। उन्होंने कचको मारकर उसे जलाकर भस्म बना डाला और उसका मूल अंश आचार्य शुक्रके परम प्रिय पेय द्रव्यमें मिश्रितकर उन्हें पिला दिया। जब उस दिन भी देर राततक वह नहीं लौटा तो देवयानीने चिन्तित होकर अपने पितासे पुनः कहा—'पिताजी ! कचको दैत्योंने फिर मार डाला है, मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकती। अतः आप पुनः उसे संजीवनी विद्यासे आहूतकर यहाँ बुलाइये।'

इसपर शुक्राचार्यने जब उसे बुलाया तो वह उनके पेटमेंसे ही बोलने लगा। उसने कहा कि 'गुरुदेव ! मेरी स्मृति लुप्त नहीं हुई है, पर मैं यहाँ बड़ी वेदना भुगत रहा हूँ, दैत्योंने मुझे मारकर जलाकर मेरे भस्मको आपके पेय द्रव्यमें मिलाकर आपके उदरस्थ कर दिया है।' देवयानीके आग्रहपर आचार्य शुक्रने कचको सम्पूर्ण संजीवनी विद्याका ज्ञान करा दिया और कहा कि 'तुम मेरा उदर विदीर्ण कर बाहर आ जाओ और प्राप्त विद्यासे पुनः मुझे जीवित कर दो।' कचने ऐसा ही किया। असुरलोग उसे पुनः मार न डालें और कोई दूसरी नयी युक्ति न निकाल लें, ऐसी आशंकासे वह देवलोकमें प्रत्यागमनके लिये तत्पर हो गया। आचार्य शुक्रने भी अनुमति दे दी। पर वह जब देवयानीसे बिदा लेने गया, तब उसने अपना प्रणय-प्रस्ताव प्रकट किया और उससे अपनेको भी देवलोक ले चलनेके लिये आग्रह करने लगी। इसपर कचने कहा कि 'भला यह कैसे सम्भव हो सकता है ? हम-तुम तो सदासे भाई-बहनकी तरह रहते आये हैं। दोनों देवाचार्य-दैत्याचार्योंकी संतान होनेसे भाई-बहन हैं। विद्यागुरुकी पुत्री होनेसे तुम सुस्पष्ट-रूपसे ही मेरी पवित्र भगिनी हो और आचार्य शुक्रके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदरस्थ होकर मेरे बाहर निकलनेपर तो तुम मेरी सहोदरा भगिनी बन गयी हो। अतः हमलोग जब देवाचार्य और दैत्याचार्योंकी ही संतानें हैं, तो ऐसा अनर्गल एवं अनुचित सम्बन्ध कैसे स्थापित कर सकते हैं ?

इधर देवयानीका दुराग्रह कुछ और ही था। वह यही कहती रही कि मैं तुम्हारे बिना क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकती, तुम्हें इतना निष्ठुर नहीं होना चाहिये और कच शुद्ध-बुद्धिसे उसे न्यायोचित धर्माचरणका परामर्श देता रहा तथा उसे प्रणाम कर चलने लगा। इसपर देवयानी अत्यन्त रुष्ट हो गयी। वह कहने लगी कि तुम्हें मैंने अनेक बार प्राणदान करवाया, मरनेपर जिलवाया और पूरी विद्या भी दिलवायी, पर तुममें लेशमात्र भी दया और प्रत्युपकारकी भावना नहीं है। अतः इस विद्यासे तुम किसीको भी जिला नहीं सकोगे और तुम्हारी चेष्टा निष्क्रिय सिद्ध होगी!

तब कचने कहा—'विद्या तो विद्या ही है। तुम्हारे शापसे वह एक मेरे द्वारा भले निष्क्रिय हो, पर मैं इसे देवलोकमें जाकर अपने देवताओंको बताऊँगा और उनकी क्रिया सफल रहेगी। परंतु तुम जो मोहमें पड़कर मेरी पवित्र भावनाओंका आदर न कर रागान्ध हो गयी हो, अतः किसी पवित्र ब्राह्मणकी पत्नी बननेके योग्य नहीं रह गयी और तुम्हारा पति कोई ब्राह्मणेतर राजन्य आदि हो सकेंगे।' ऐसा कहकर कच देवलोकमें चला गया और उस विद्याके प्रचारसे वह सभी देवताओंको जीवित करनेमें सफल हो गया। इधर कचके शापके प्रभावसे देवयानी भी राजा ययातिकी पत्नी हुई, जिससे चन्द्रवंश चला। किंतु जितेन्द्रियोंके इतिहासमें कचका नाम अमर हो गया, जो उनकी नामावलीकी प्रथम पंक्तिमें स्वर्णाक्षरोंमें उल्लेख्य है। विद्यार्थियोंके लिये तो इन्द्रियजयी कचका आदर्श सदा प्रेरणाप्रद एवं मननीय बना रहेगा।

(२)

देवानुग्रहसे प्रत्युत्पन्न बुद्धि

एक गाड़ीवान हनुमान्‌जीका बड़ा भक्त था। उनके मन्दिरमें वह नित्य दर्शन करने जाता और वहीं बैठकर हनुमानचालीसाका पाठ करता, इसलिये कि हनुमान्‌जी अपने कानसे उसे सुन लें और यह जान लें कि भक्त जब इतनी प्रशंसा करता है तो अवश्य ही वह गहरा भाव या भक्तिभाव रखता होगा।

एक दिन गाड़ीवान अपनी गाड़ी लेकर कहीं दूर गाँव जा रहा था। रास्तेमें एक जगह भारी कीचड़ था। पहिये उसमें फँस गये। बैल उसे खींच नहीं पा रहे थे। वह स्वयं कीचड़में घुसना नहीं चाहता था। फिर बाहर कैसे निकले।

गाड़ीवान उसीमें बैठकर जोर-जोरसे हनुमानचालीसाका पाठ करने लगा। उसका अभिप्राय था कि हनुमान्‌जी आयें और गाड़ी खींचकर बाहर निकालें।

पाठ करते बहुत देर हो गयी, पर हनुमान्‌जी नहीं आये। वह झल्लाने लगा और भले-बुरे शब्द कहने लगा।

एक किसान पासके खेतसे जा रहा था। उसने यह दृश्य देखा और कहा—'मूर्ख ! हनुमान्‌जी तो पर्वतको उखाड़ लाये थे। तू उनका भक्त बनता है, तो कीचड़में उतरकर पहियेको जोर क्यों नहीं लगाता, ताकि धकेले जानेपर बैल उसे निकालनेमें समर्थ हो सकें। हनुमान्‌जी समुद्रमें कूद पड़े थे, तुझसे कीचड़में भी नहीं उतरा जाता।'

अन्धविश्वासी भक्तको चेत आया। उसे अपनी भूल प्रतीत हुई। वह कीचड़में उतरा और उसने पहियोंको जोर लगाया। गाड़ी आगे चली और कीचड़से पार हो गयी।

देवताओंकी उपासना कभी व्यर्थ नहीं जाती, वे जिस किसी प्रकार भी स्मरण किये जानेपर किसी-न-किसी रूपमें प्रकट होकर अपने उपासककी सहायता अवश्य करते हैं। समयानुकूल उसे वे आवश्यक बुद्धि भी प्रदान कर देते हैं, जिससे वह तत्काल संकटसे मुक्त हो जाता है। यहाँ गाड़ीवानके लिये हनुमान्‌जीने किसानके रूपमें आकर उसे समयानुसार युक्ति दी एवं अन्तःशरीरमें शक्ति प्रदान कर संकटसे उबारा। कहा भी गया है—देवता लाठी लेकर चरवाहेकी तरह मनुष्यकी रक्षा नहीं करते चलते, प्रत्युत उपासककी बुद्धि और शक्तिसे संयुक्त कर देते हैं, जिससे उसका परम कल्याण हो जाता है—

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तम्॥

(विदुरनीति ३।४७)

—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'प्रदेश'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख कहाँ है ?

संसारमें जितने भी भौतिक पदार्थ मनुष्यको उसके उपयोगके लिये मिले हैं, उनकी एक परिमित मात्रा ही उसे अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये काममें लानी है। यदि किसीके पास अपनी आवश्यकताओंसे अधिक जमा हो जाय तो उसे वहाँ लगा देना चाहिये, जहाँ उसकी कमी हो, जहाँ उसकी आवश्यकता हो; क्योंकि सारा मनुष्य-परिवार तो एक ही है। किसीकी आवश्यकताको पूरा करनेके लिये उस वस्तुको लगा देना वास्तवमें अपनेको ही देना है। हमारी आत्मा हमारे ही व्यक्तिगत शरीर और हमारे ही परिवारतक सीमित नहीं है, बल्कि सारा जगत् उसका विराट्-शरीर है। अतएव किसी 'और' को देना वास्तवमें अपनेको ही देना है। यही हमारे पास अपनी साधारण आवश्यकताओंसे अधिक एकत्रित हुई वस्तुओंका सदुपयोग है।

औरोंको भी यदि हम अपना ही समझते हुए उनके सुख-दुःखमें भाग लेते हैं तथा अपने तन, मन, धनसे आवश्यकतानुसार उनकी सहायता करते हैं तो हम अपनेको ही विस्तीर्ण करते हैं—फैलाते हैं, सीमासे असीमकी ओर प्रगति करते हैं, पञ्चभूतोंकी बनी इस साढ़े तीन हाथकी काल-कोठरीके कैदखानेसे अपनेको मुक्त कर उस असीम साम्राज्यके मालिक बन जाते हैं, जिसमें सबको ध्वंस करनेवाला बली काल भी सदाके लिये समा जाता है। अपनेको मिली हुई वस्तुओंका सर्वात्मभावपूर्वक इस प्रकार सदुपयोग करना ही परम आनन्दके, परम शान्तिके, सच्चे सुखके उस अखण्ड और एकच्छत्र साम्राज्यको जीत लेनेका सनातन रहस्य है।

पर इसके विपरीत यदि हम अपने ही पास वस्तुओंका संग्रह (यहाँतक कि अनीति-अन्यायसे भी) करते जाते हैं तो हम अपना ही दम घोंटनेवाली सीमा बाँधते जाते हैं, लोहेके सीखचोंमें अपनेको ही जकड़ते हुए स्वयं अपने ही हाथों अपनी हत्या कर डालते हैं। सुख-शान्ति ढूँढ़ने जाकर दुःख तथा अशान्तिके अतल गर्तमें गिर पड़ते हैं। यही है महामोहका निश्चित परिणाम! अवश्य मिलनेवाला अन्तिम फल!

आखिर हम ऐसा करते ही क्यों हैं? वह कौन-सी भावना है, जो इस अनर्थके मूलमें काम करती है? अपने पास आवश्यकतासे अधिक पदार्थोंको संग्रह करनेका एक कारण तो यह है कि हम समझते हैं कि हमारे आसपासके अभावग्रस्त निर्धनलोग हमें धनी समझेंगे, बाबूजी कहेंगे, हमारा सत्कार करेंगे, समाजमें हम प्रतिष्ठित समझे जायँगे और हमारा झूठ भी सत्यके भाव बिकने लगेगा! पर जरा हम विचार करके देखें तो हम इस प्रकार सर्वनाशके मूल अहङ्कारको ही बढ़ावा दे रहे हैं। सबके साथ घुल-मिल जानेके, सबके साथ एकीभूत हो जानेके, सर्वव्यापक, अनन्त और असीम हो जानेके विलक्षण सुखको पानेके अतिरिक्त सब ओरसे अपनेको समेटकर सबसे अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर क्रमशः अपनेको संकुचित करते हुए हम दुःखोंका ही आवाहन करते हैं! अहंता-ममताका यह भूत हमारे ऊपर सवार होकर हमें प्रकाशसे अन्धकारकी ओर, जीवनसे मृत्युकी ओर, आनन्दसे दुःखकी ओर तथा मुक्तिसे बन्धनकी ओर ले जाता है! जो सबके साथ एकत्व स्थापित करता है, सर्वात्मभावसे प्रेरित होकर सबका अपना बनना चाहता है, वह अपना आधार विस्तृत करता जाता है। विस्तृत आधारपर ठहरी हुई कोई वस्तु गिरती नहीं। पर जो अपनेको औरोंसे समेटते हुए, सिकोड़ते हुए, अलग करते हुए, अपने आधारको घटाते-घटाते एक बिन्दु मात्र कर डालता है, वह आवश्यक, अनावश्यक पदार्थोंके संग्रहसे पोषण पाये हुए अपने अहंरूपी सिरेके भारी हो जानेके कारण गिर पड़ता है। इस प्रकार बोझल चोटी हो जानेसे यही परिणाम हो सकता है।

हमें इस बातका या तो ज्ञान ही नहीं होता या हम इसे जाननेके कष्टसे बचना चाहते हैं कि जिन अभावग्रस्त निर्धन लोगोंमें (जिनको निर्धन बनानेका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कारण हम भी हैं।) बड़े कहलाकर हम पूजा-प्रतिष्ठा चाहते हैं, उनमें बहुत-से तो ऊपरसे भले ही हमारा सम्मान करते हुए प्रतीत हों, पर उनके अंदर हमारे प्रति विद्वेषकी अग्नि सुलग रही होती है। हम उनकी सहानुभूति खो बैठते हैं। यह कितना बड़ा दुर्भाग्य है। बिना एक दूसरेकी सहानुभूतिके कोई किसी बातमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितना ही बड़ा क्यों न हो, दीर्घकालतक सुखी नहीं रह सकता। हम उनकी सहानुभूति ही नहीं खो बैठते, प्रत्युत अवसर मिलते ही उनमेंसे बहुत-से तो हमें भूमिसात् कर देनेके लिये, मिटा देनेके लिये तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार हम धनके साथ-साथ अपने शत्रु भी पैदा करते जाते हैं, जिनके कारण हमें रात-दिन भयभीत रहना पड़ता है। धनिकोंके तो अपने ही घरके लोग अपने नहीं होते। उनके साथ उनके घरके लोगोंका जो प्रेम और सहानुभूति होती है, उसकी बुनियाद गहरी नहीं होती, ऐसा प्रायः देखनेमें आता है। ऐसे अभागे लोग क्या सच्चे सुखकी गोदमें बैठ सकते हैं?

दूसरा कारण अपने पास औरोंकी अपेक्षा अधिक संग्रह करनेका यह हुआ करता है कि हम इन्द्रिय-भोगोंको ही एकमात्र सुखका हेतु समझकर उन्हें बटोरने लगते हैं। कुछ लोगोंपर तो बटोरनेका यह भूत इस हदतक सवार हो जाता है कि उन्हें नीति-अनीतिसे बटोरे हुए इन भोगोंके एक अल्प अंशको भी भोगनेकी फुरसत नहीं। उन्हें खाने-सोनेतककी भी फुरसत नहीं होती। अपने प्रेमीजनोंसे (यदि कोई सच्चा प्रेमी हुआ तो) मिलनेका अवकाश नहीं मिलता। सत्सङ्ग-स्वध्यायकी तो बात ही दूर रही। वे तो तृष्णाकी अग्निमें जलते हुए बटोरते ही जाते हैं। तृष्णाकी इस अग्निने मनकी शान्तिको तो जला ही डाला, इसके साथ-साथ भोग भोगनेवाले इस शरीरपर भी इसका घातक प्रभाव पड़ता है।

और यदि किसीने भोगको ही अपने जीवनका लक्ष्य बनाया तो उसकी भी एक हद होती है। हदसे अधिक करनेपर भोग भोगनेकी क्षमता ही नष्ट हो जाती है। इन्द्रियाँ निर्बल और निस्तेज हो जाती हैं, मन बेकाबू हो जाता है, बुद्धिका नाश हो जाता है, शरीर नाना प्रकारके भयंकर रोगोंका शिकार बन जाता है। सुखके लिये तरसते-तरसते सुखकी वासना लेकर समयसे पहले ही कालका ग्रास बन जाना पड़ता है। और यदि ऐसा होनेसे पहले ही दैव-विधानसे हमारा धन, हमारे सुखके साधन हमसे छिन जाते हैं तो अकस्मात् हमारे ऊपर वज्र-सा टूट पड़ता है। इस प्रकार सब तरहसे सुखके बदले दुःख ही पल्ले पड़ता है। जो सुख अपनेको पहले मिला था, वह भी हम खो बैठते हैं! पर इसके स्थानपर यदि हम अपनी आवश्यकतासे अधिक पदार्थोंको औरोंकी आवश्यकताओंको पूरा करनेमें लगा दें तो हमारा हृदय उदार होकर हमें अपने अंदरके अक्षय सुखके खजानेका पता लग जाय, उनके प्रेम और सहानुभूतिको पाकर हम सुखसे रहने लगें और भोगोंमें आसक्ति न कर सादा जीवन बितानेसे हमारा स्वास्थ्य भी बना रहे। जिस सुखको हम भोगोंकी प्रचुरतासे प्राप्त करनेकी आशा करते हैं, वह तो हमें औरोंके साथ अपने खोये हुए सम्बन्धको पुनः स्थापित करनेसे अनायास ही मिलने लगता है। इस सत्यको हमें देर-सबेर जानना ही होगा। यदि हम ऐसा न करके औरोंसे अपना सम्बन्ध-विच्छेद करते हुए विपरीत दिशामें जाने लगें तो सारे विश्वको एक सूत्रमें ग्रथित करनेवाले विश्वनियन्ता भगवान्‌की विश्वशक्तिका कठोर आघात हमारी घोर मोह-निद्राको भंग कर देगा और हमें नतमस्तक होकर उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा। मेरे पास-पड़ोसके लोग कठिन परिश्रम करनेपर भी जीवनकी मौलिक आवश्यकताओंको पूरा न कर सकें और मैं आवश्यक-अनावश्यक पदार्थोंके प्रचुर संग्रहमें ही अपना सुख समझूँ, यह विषम स्थिति भला कबतक रह सकती है? परस्पर आदान-प्रदानसे ही जगत्‌का व्यवहार—जगच्चक्र चला करता है। मैं केवल लेने-ही-लेनेका व्यापार करूँ और किसी-न-किसी रूपमें भी देना अपना कर्तव्य न समझूँ, अपने ही परम हितका साधन न समझूँ तो मेरे सुख-स्वप्नको कठोरतापूर्वक भी नष्ट करके मुझे ठीक रास्तेपर लानेवाली विश्वकी ओटमें काम कर रही विश्वात्माकी वह प्रचण्ड शक्ति किसी भी प्रकार मुझे क्षमा नहीं कर सकती। वह अपना काम करके ही रहेगी।

'जिसने माता-पिताकी सेवा की, उसके लिये स्वर्गका दरवाजा खुला है। अपने माता-पिताको कभी कटु वचन न कहो, विनयपूर्वक उनका आदर करो और ईश्वरसे कहो कि 'हे प्रभो! इन्होंने मुझे बालकपनमें पालकर बड़ा किया है, अतएव तू इनका कल्याण कर।' —कुरान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्रीकृष्णका माता-पिताको बन्धन-मुक्त करना

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

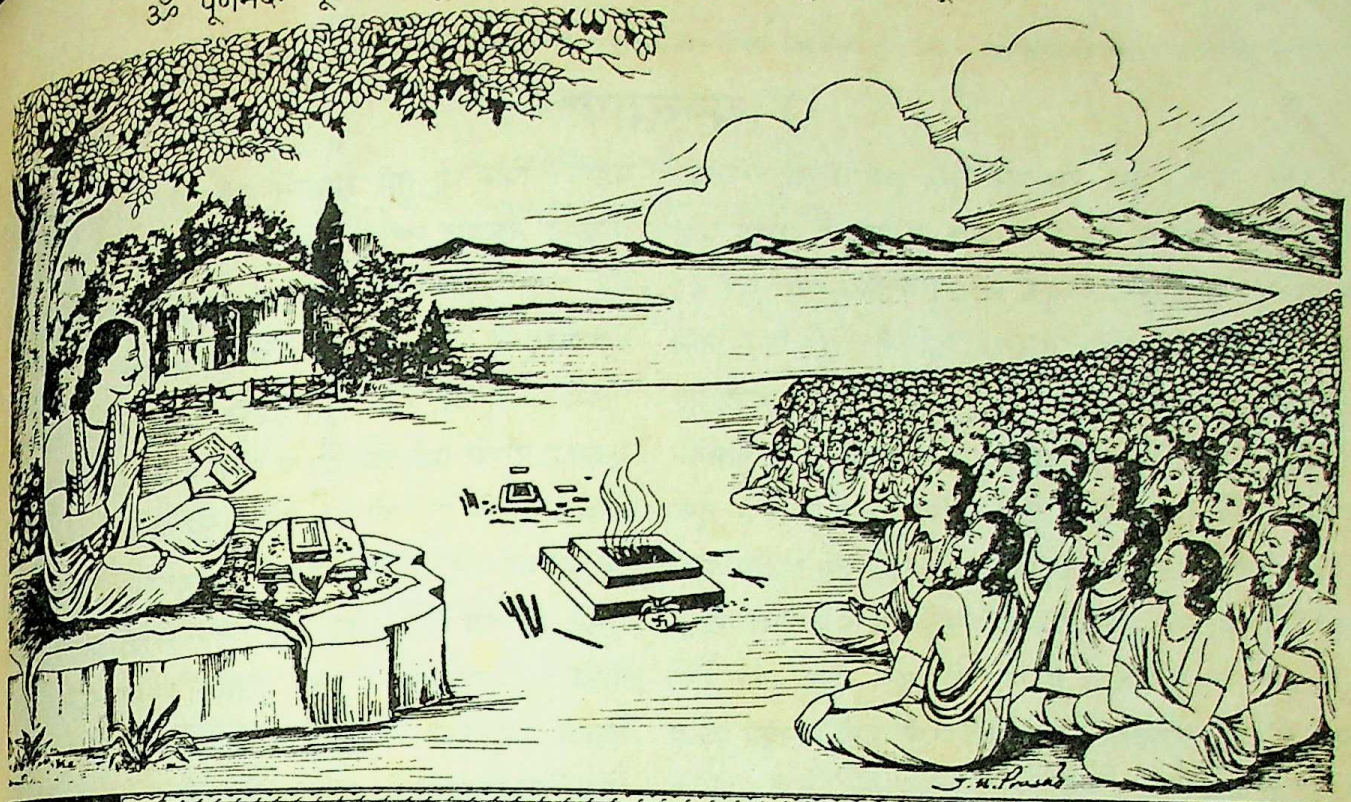

कल्याण

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत्।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥

वर्ष ६३ | गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि०सं० २०४६, श्रीकृष्ण-सं० ५२१५, दिसम्बर १९८९ ई० | संख्या ९ | पूर्ण संख्या ७५४

वसुदेव-देवकीको बन्धनमुक्त करना

जब जदु-कुल-पति कंसहि मार्‍यौ। तिहूँ भुवन भयौ सोर पसार्‍यौ ॥
तुरत मंच तैं धरनि गिरायौ। ऐसैंहि मारत बिलँब न लायौ ॥
केस गहे पुहुमी घिसटायौ। डारि जमुन के बीच बहायौ ॥
जा कंसहिं तिहुँ भुवन डराई। ताकौं मार्‍यौ हलधर भाई ॥
जाकैं धनुष टँकोरत हाथा। आसन डारि भजे सुरनाथा ॥
मारत ताहि बिलंब न कीन्हौ। उग्रसेन कौं राजस दीन्हौ ॥
जै हो जै बसुदेव कुमारा। जै हो जै तुम नंद-दुलारा ॥
सुरदेवी देवै धनि मैया। धनि जसुमति त्रिभुवन-पति धैया ॥
धन्य अक्रूर मधुपुरी ल्याए। सुर अंबर जै जै धुनि गाए ॥
दनुज बंस निरबंस कराए। धरनी सिर तैं भार गँवाए ॥
मातु पिता बंदि तैं छुड़ाए। यह बानी सुर-लोकनि गाए ॥
जो जैसौ तैसैं तिहिं भाए। सूरज प्रभु सबकौं सुखदाए ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—इस संसारमें कुछ भी नित्य, स्थायी, अपरिवर्तनशील नहीं है। सभी कुछ अनित्य है, सभी कुछ विनाशी है, सभी कुछ मृत्युके अनन्त प्रवाहमें बह रहा है। इसीलिये यहाँ कुछ भी 'तुम्हारा' नहीं है। तुम इन नित्य मृत्युमय प्रकृतिके पदार्थोंको और कर्मवश तुमसे मिले हुए प्राणियोंको 'मेरा' मानकर मोहमें पड़ जाते हो, उन्हें पकड़ने जाते हो, उन्हें नित्य अपने पास रखना चाहते हो, पर तुम्हें निराश होना पड़ता है, वे तुम्हारे हाथ नहीं आते और पास आये हुए भी छिन जाते हैं—इसीलिये कि वे तुम्हारे नहीं हैं और तुम्हें ममता-मोहके कारण शोकयुक्त होना और रोना पड़ता है। फिर भी तुम समझते नहीं, उन्हें नित्य मानकर पकड़े रखना ही चाहते हो !

याद रखो—तुम जिन खेत-जमीनको और ईंट, पत्थर, रोड़े, लोह-लक्कड़के ढाँचेको मेरा महल या मेरा आश्रम कहकर मन-ही-मन गर्व करते हो, उसमें तुम्हारा कुछ भी नहीं है। जिस जमीनपर वह ढाँचा खड़ा है, वह जमीन भी तुम्हारी नहीं। पर इस मिथ्या ममत्वके कारण तुमको दुखी होना तथा रोना पड़ता है। यह देखते हो कि जिसने सुन्दर मकान बनाया, वह मर गया, उसकी लाशको मकानसे बाहर निकाल फेंका गया, उसे आगमें फूँक दिया या जमीनमें गाड़ दिया गया। फिर उस मकानमें उसका कुछ भी अधिकार नहीं रहा, किसी भी कारणसे किसी दूसरेका उसमें निवास हो गया और वह उसे 'मेरा' कहने लगा। फिर भी तुम समझते नहीं और ईंट-पत्थर तथा लोह-लक्कड़को 'मेरा' कहकर उनसे सिर फोड़ा करते हो !

याद रखो—जगत्में बहुत बड़े-बड़े प्रभावशाली, शक्तिमान् अपनेको अनन्त पदार्थों और प्राणियोंके एकमात्र स्वामी माननेवाले हुए और मर गये। उनमेंसे बहुतोंका तो नाम-निशान भी आज नहीं मिलता। फिर तुम जो तुच्छ पदार्थोंमें मोह करके उन्हें 'मेरा' कहते हो और अपनेको ममताके बन्धनमें जकड़कर दिन-रात दुखी रहते हो, वह तुम्हारी बड़ी मूर्खता है। मूर्खता ही नहीं, ममताके कारण जो आसक्ति होती है और उससे अनाचार, दुराचार तथा पाप मन-वाणी-शरीरसे बनते हैं, उनका दुष्परिणाम भी तुम्हें भोगना पड़ेगा। फिर भी तुम समझते नहीं और इन प्राणी-पदार्थोंमें 'मेरापन' छोड़ना नहीं चाहते।

याद रखो—बड़े-बड़े महल ढह गये, बड़े-बड़े नगर भूमिसात् हो गये। देश-के-देश जलमें डूब गये या भूमिके तलमें प्रवेश कर गये। तुम जिनको 'मेरे' मानकर और 'मेरे' कहकर मोहमें पड़े हुए हो, वे सभी पदार्थ नाश होनेवाले हैं, उनका नाम-निशान भी नहीं रहेगा। तुम कितनी बड़ी भूल कर रहे हो जो उन जमीन-मकान तथा पदार्थोंके लिये दूसरोंसे लड़ते-झगड़ते हो, अपने तथा उनके मनकी शान्तिका नाश करते हो, भगवान्को भूलकर दूसरोंको परास्त करनेकी, उनपर विजय प्राप्त करनेकी, उनकी 'मेरी' मानी हुई चीजोंको अपनी 'मेरी' बनानेकी तथा अपनी 'मेरी' मानी हुई चीजोंसे चिपटे रहनेकी चाह और कोशिश करते हो। तुम्हारे जीवनका यह प्रमाद तुम्हारे लिये बड़ा ही घातक, बड़ा ही हानिकारक सिद्ध होगा। फिर भी तुम समझते नहीं और अपने ही हाथों अपनी असीम हानि कर रहे हो !

याद रखो—संसारके अन्यान्य पदार्थोंकी तो बात ही क्या है, जिस शरीरको तुम केवल 'मेरा' ही नहीं कहते, 'मैं' कहकर पुकारते हो, जिसकी अस्वस्थतामें 'मैं अस्वस्थ हूँ', जिसके मरनेकी बातपर 'मैं मर जाऊँगा' कहते हो—वह भी तुम्हारा नहीं है। वह पाँच भूतोंका पुतला है—जो प्राणसहित तुम चेतनके विलग होते ही मुर्दा होकर पड़ जायगा और जिससे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं रह जायगा। फिर भी तुम नहीं समझते और इस नश्वर पाञ्चभौतिक पुतलेको 'मैं' और 'मेरा' पुकार-पुकारकर अपनी मूर्खताकी वज्र-घोषणा करते हो और अनवरत अनिष्टकारी पाप-तापके संग्रहमें लगे रहते हो।

याद रखो—जिस आराम और नाम-यशके लिये तुम दिन-रात परेशान रहते हो, वह 'आराम' तुमको नहीं होगा, और न वह 'नाम-यश' ही तुम्हारा होगा। आराम मिलता है शरीरको और नाम-यश होता है नामका। तुम न 'शरीर' (रूप) हो और न 'नाम' हो। तुम तो आत्मा हो, शुद्ध-बुद्ध-नित्य-मुक्त हो, अपने स्वरूपको पहचानते ही सब दुःखोंसे छूट जाओगे, फिर भी तुम नहीं समझते और मिथ्या नाम-रूपके फेरमें पड़े दुःख-पर-दुःख बुलाये चले जा रहे हो। —'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार-साधना

(स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज)

[गताङ्क पृ० ७३२ से आगे]

मैं—वाह पण्डितजी ! वाह ! अब आपकी गाड़ी लीकपर आ गयी और ऐसा लगता है कि आपने बातको ठीक समझ लिया है। यह प्रसङ्ग पूर्वके प्रसङ्गकी अपेक्षा अधिक सूक्ष्म है, अतः खूब एकाग्र होकर सुनिये।

देखिये, शरीर मरता है तब क्या होता है ? हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि प्राण शरीरको छोड़कर चले जाते हैं। जबतक प्राण अपान होकर वापस लौटता रहता है, तभीतक शरीर जीवित रह सकता है, परंतु जब प्राण वापस नहीं लौटता और चला ही जाता है, तब शरीर नाशको प्राप्त होता है। प्राणको जाते हुए तो आप आँखोंसे देखते हैं, परंतु दूसरे कितने ही सूक्ष्म पदार्थ भी उसके साथ शरीरको छोड़कर चले जाते हैं, वे आँखोंसे नहीं दीखते। प्राण पाँच हैं और उनके साथ पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और मन तथा बुद्धि—इस प्रकार कुल सत्रह पदार्थ शरीरको छोड़कर चले जाते हैं। इन सत्रह पदार्थोंके समूहको 'सूक्ष्म शरीर' या 'लिङ्ग-देह' कहते हैं।

अब इस सूक्ष्म शरीरका स्वभाव समझिये, जिससे आपके प्रश्नका उत्तर मिल जायगा। यह सूक्ष्म शरीर भी स्वभावसे स्थूल शरीरके समान जड ही है, परंतु पञ्च महाभूतोंके सूक्ष्म अंशोंसे बने हुए लोहे या काठके समान अत्यन्त जड नहीं है। इनमें भी मन-बुद्धि शुद्ध सात्त्विक अंशोंसे बने हैं। अतएव वे स्थूल शरीरके समान बिलकुल जड नहीं तथा आत्माके समान स्वतः चैतन्य भी नहीं हैं, परंतु मध्यभाववाले हैं। इस कारण वे आत्माके चैतन्यको अपनेमें ग्रहण कर सकते हैं। इस प्रकार मन-बुद्धि आत्माके चैतन्यके द्वारा चेतनयुक्त होकर उस चेतनको प्राणद्वारा इन्द्रियोंमें पहुँचाते हैं और इस तरह सारा सूक्ष्म शरीर चेतनयुक्त होकर स्थूल शरीरको चेतनयुक्त कर देता है, क्योंकि सूक्ष्म शरीर सारे स्थूल शरीरमें व्याप्त होकर रहता है।

अब आप अपने प्रश्नोंका उत्तर एक-एक करके समझिये। यहाँसे मन-बुद्धि दो शब्दोंके स्थानमें केवल 'मन' शब्दका प्रयोग किया जायगा और उसमें दोनोंको साथ-साथ समझ लीजियेगा। आपका पहला प्रश्न है कि कर्मका कर्ता कौन है ? अब देखिये—स्थूल शरीर तो कर्मका कर्ता हो नहीं सकता, क्योंकि यदि वह कर्मका कर्ता होता तो प्राण निकल जानेके बाद भी वह कर्म करता हुआ दीख पड़ता, परंतु वैसा देखनेमें नहीं आता, इसलिये स्थूल शरीर तो कर्ता है ही नहीं।

तब क्या प्राण कर्ता है ? यदि प्राणको कर्ता मानें तो स्वप्नावस्थामें या सुषुप्तिमें तथा मूर्च्छामें प्राण तो उपस्थित रहता है, परंतु कोई कर्म होता नहीं दीखता। इसलिये प्राण भी कर्ता नहीं है।

तब क्या इन्द्रियाँ कर्ता हैं ? यदि इन्द्रियोंको कर्ता मानें तो स्वप्न तथा सुषुप्तिमें इन्द्रियाँ तो रहती हैं, परंतु कोई कर्म होता नहीं दीखता। जाग्रत्-अवस्थामें भी इन्द्रियाँ मनके सहयोगके बिना कुछ भी नहीं कर सकतीं—यह प्रतिदिनके अनुभवकी बात है। आँखें खुली हों तथापि यदि मन अन्यत्र लगा हो तो आँखें कुछ नहीं देखतीं तथा हम अनेकों बार कहते हैं कि 'मेरा मन अन्यत्र था, इससे तुम्हारी बात मैं सुन न सका।' इसलिये इन्द्रियाँ भी कर्ता नहीं हैं।

अब बचे मन और बुद्धि, इसलिये वे ही सच्चे कर्ता हैं। एक बढ़ईके पास जैसे अपना काम करनेके लिये बसूला, रंदा, कुल्हाड़ी आदि साधन होते हैं, उसी प्रकार ये दस इन्द्रियाँ मनके साधनमात्र हैं और इसीसे इनका एक अर्थसूचक नाम भी है—करण। करण अर्थात् हथियार, औजार या साधन। जैसे बढ़ई लकड़ी गढ़नेके समय बसूलेका उपयोग करता है और उसको चिकना करनेके लिये रंदेका प्रयोग करता है, उसी प्रकार मनको देखना होता है तो आँखका, सूँघना होता है तो नाकका और सुनना होता है तो कानका तथा चलना होता है तो पैरका और लेना-देना होता है तो हाथका उपयोग करता है। प्राणद्वारा वह सब इन्द्रियोंमें शक्ति पहुँचाता है, जिससे वे अपना-अपना काम ठीक कर सकें।

अब आपका दूसरा प्रश्न यह है कि कर्मका फल कौन भोगता है ? बिलकुल दीपक-जैसी स्पष्ट बात है। व्यवहारमें बलराम माल मँगावें और प्राणलाल जकात दें, ऐसा नहीं होता। इसी प्रकार अम्बालाल दवा पियें और वासुदेवको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जुलाब लगे, यह भी नहीं बनता, वैसे ही परमार्थमें भी जो कर्म करता है, वही उसका फल भोगता है, जैसे जो चोरी करता है, वही जेल जाता है।

अब मन-बुद्धि ही कर्मका फल भोगते हैं, इस बातको युक्तिसे सिद्ध करें। जाग्रत्-अवस्थामें मन बहिर्मुख होता है, इससे सुख-दुःखादि प्रपञ्च बाहर दीख पड़ते हैं। जब नींद आ जाती है, तब मन अन्तर्मुख हो जाता है और तब शरीरके अंदर ही जाग्रत् प्रपञ्चके-जैसा ही स्वप्नप्रपञ्च दीखता है। जब गाढ़ निद्रा आ जाती है, तब मन अपने उपादानमें लीन हो जाता है, यानी उस समय सुख-दुःखादि कोई भी प्रपञ्च नहीं दीखता। इस प्रकार अन्वय-व्यतिरेक-युक्तिसे यह सिद्ध होता है कि जहाँ मन उपस्थित होता है, वहीं प्रपञ्चका अनुभव होता है और उसकी अनुपस्थितिमें वह अनुभव नहीं होता। अन्वय यानी जहाँ मन है, वहाँ सुख-दुःखका भान होता है, जाग्रत्-स्वप्नमें मन उपस्थित रहता है, इसलिये वहाँ क्रमशः स्थूल-सूक्ष्म भोग दीख पड़ते हैं, जब सुषुप्ति-अवस्थामें मन लीन हो जाता है, तब वहाँ सुख-दुःखका भोग भी नहीं दीखता। इस प्रकार सुख-दुःखरूपी कर्मफलका भोगनेवाला मन ही है।

यह बात बहुत ही महत्त्वकी है, इसलिये एक उदाहरणसे समझिये। एक व्यक्तिके हाथपर फोड़ा हो गया। उसकी वेदनासे वह चिल्लाता है तथा खूब व्याकुल होता है। यों करते-करते थक जाता है और नींद आ जाती है, तब शान्त हो जाता है। नींद आनेपर वह स्वप्न देखता है कि वह जिस घरकी छतपर है, उसमें आग लग गयी है। उससे बचनेके लिये वह इधर-उधर दौड़-धूप करता है, परंतु कहीं भी नीचे उतरनेका रास्ता नहीं दीखता। अन्तमें एक खिड़की दीख पड़ती है और इस प्रकार जलकर मरनेकी अपेक्षा खिड़कीसे कूदना ठीक समझकर जैसे ही कूदता है, वैसे ही वह जाग जाता है। जागते ही आग तथा वह घर अदृश्य हो जाते हैं और वह अपनेको चारपाईपर सोता हुआ पाता है। अब विचारिये कि जब उस व्यक्तिको नींद आ गयी थी तो क्या फोड़ेकी वेदना मिट गयी थी? नहीं, वह तो ज्यों-की-त्यों थी, परंतु नींदमें वेदना भोगनेवाला मन वहाँ उपस्थित न था और इस कारण उस समय वेदनाका अनुभव नहीं होता था, केवल इतनी ही बात थी। उसी प्रकार स्वप्नगत आगका दुःख और जल जानेका भय भी मन अन्तर्मुख था तभीतक लगता था, मनके जाग्रदवस्थामें आ जानेपर वह दुःख और भय अदृश्य हो गया, क्योंकि उसका अनुभव करनेवाला मन बहिर्मुख हो गया, अतः स्वप्न-प्रपञ्चके साथ उसका सम्बन्ध छूट गया। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि कर्मके कर्ता जैसे मन-बुद्धि हैं, वैसे ही उस कर्मके फलको भोगनेवाले भी वे ही हैं।

आपका तीसरा प्रश्न यह है कि उच्च-नीच योनियोंमें जन्म कौन धारण करता है? फलभोगकी तरह यह स्पष्ट है कि जिसको सुख-दुःख भोगना होता है, वही उन भोगोंके अनुरूप देह धारण करता है। इसमें तो कुछ सिद्ध करना ही नहीं है। एक शरीरका प्रारब्धभोग पूरा होते ही सूक्ष्म शरीर उसको छोड़ देता है, क्योंकि फिर उस शरीरमें रहनेका उसका कोई प्रयोजन नहीं रहता। फिर नये प्रारब्धको भोगनेके लिये उस भोगके अनुरूप वह दूसरा स्थूल शरीर धारण करता है और उस शरीरके द्वारा भोग भोगता है। इस प्रकार एक शरीरसे दूसरे शरीरमें आवागमन तो सूक्ष्म शरीरका होता है, परंतु आत्मा अपने स्वरूपके अज्ञानके कारण भ्रमवश अपनेको उसके साथ आता-जाता मान बैठा है। मन-बुद्धिको कर्म करते तथा उसका फल भोगते देखकर आत्मा उसके साथ एकाकार हो जाता है और उसके कर्ता-भोक्तापनको अपनेमें मानकर स्वयं कर्ता-भोक्ता बन जाता है। इस प्रकार स्थूल देहके जन्म-मरणको अपना जन्म-मरण मानकर उसका दुःख भोगता है। जब प्राण क्षुधा-तृषासे व्याकुल होता है, तब वह स्वयं व्याकुलताका अनुभव करता है। आत्माके इस प्रकारके भ्रमको शास्त्रोंने 'देहाध्यास' अथवा 'जीवभाव' कहा है। प्रकृति या मन-बुद्धिके साथ एकात्मताका भ्रम ही जीवभाव है। इसीसे उसमें कर्ता-भोक्तापन प्रतीत होता है। इस देहाध्यास या जीवभावको छुड़ाना हो तो आत्माको उसका स्वरूप समझना चाहिये, जिससे वह अपने स्वरूपमें स्थिर हो जाय।

कुछ लोग पूछते हैं कि सर्वज्ञ परमात्मस्वरूप आत्मामें यह जीवभाव आया कहाँसे? और कब आया? यह बात तो सृष्टिके आदिसे है। हम विश्वको अनादि मानते हैं, इसलिये वह कब उत्पन्न हुआ, यह कोई नहीं जानता, क्योंकि जिसने देखा है, उसने विश्वको चलते ही देखा है। अतएव आत्मामें जीवभाव भी अनादिकालसे ही चला आ रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाशसे जब पानी गिरता है, तब वह पूर्ण स्वच्छ होता है, परंतु पृथ्वीका संग होते ही उसमें दोष आ जाता है। यह दोष पानीमें स्वाभाविक नहीं है; क्योंकि स्वभावसे तो वह निर्मल था। अतएव यह मलिनता आगन्तुक होनेके कारण फिर उस पानीको निर्मल किया जा सकता है। इसी प्रकार आत्मा स्वभावसे तो निर्मल ही है, परंतु विश्वकी सृष्टिके प्रारम्भसे ही उससे विविध शरीरोंका संग होता आ रहा है, इस कारणसे उसमें इन शरीरोंकी मलिनता आ गयी है और इसी कारण उसमें 'जीव'-भाव दृढ़ हो गया है। परंतु यह जीवभाव आगन्तुक होनेके कारण स्वरूपगत नहीं है, इसलिये जीवभावकी निवृत्ति हो सकती है और मानव-शरीरकी सार्थकता भी इसीमें है।

इसलिये अब देहाध्यास या जीवभावकी निवृत्ति कैसे करें—यह देखना बाकी रहा। श्रीशंकराचार्य इस बातको इस प्रकार समझाते हैं—

रज्ज्वज्ञानाद् भाति रज्जुर्यथाहिः
स्वात्माज्ञानादात्मनो जीवभावः।
आप्तोक्त्या हि भ्रान्तिनाशे स रज्जु-
र्जीवो नाहं देशिकोक्त्या शिवोऽहम्॥

'जैसे यह रस्सी पड़ी है, यह ज्ञान न होनेके कारण ही रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति होती है और इसी कारण रस्सी सर्परूप दीखती है। इसी प्रकार आत्माको अपने स्वरूपकी विस्मृति हो गयी है, इसी कारण शरीरके धर्मको अपनेमें कल्पित करके वह अपनेको जन्म-मरणवाला जीव मान बैठा है। अब यदि कोई आप्त पुरुष तेज प्रकाश लाकर हमें दिखलाये कि 'भाई! तुम जिसे सर्प मानते थे, वह तो रस्सी है' तो उसी क्षण सर्पकी भ्रान्ति दूर हो जाय। उसी प्रकार यदि वेद-शास्त्र तथा गुरु-वचनसे आत्माका वह स्वरूप समझमें आ जाय तो उसी क्षण निश्चय हो जाय कि जीव होनेका तो भ्रम था। मैं तो शिवस्वरूप अर्थात् मङ्गलस्वरूप आत्मा हूँ।'

अब आत्माको उसका स्वरूप कैसे समझावें, इसकी एक अद्भुत युक्ति श्रीअष्टावक्रजीने बतलायी है, उसे देखिये। वेद कहता है कि **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'**—अर्थात् यह जो कुछ है, वह सब ब्रह्मरूप है, यह पहले निश्चय करे। फिर कहते हैं—

सर्वं ब्रह्मेति बुद्धं चेन्नाहं ब्रह्मेति धीः कुतः।
अहं ब्रह्मेति बुद्धं चेत् किमसंतोषकारणम्॥

यह सब ब्रह्मरूप है, ऐसा निश्चय करनेके बाद 'मैं ब्रह्मरूप नहीं हूँ' यह नहीं कहा जा सकता; क्योंकि 'मैं' का समावेश 'यह सब' में हो जाता है। ऐसी स्थितिमें 'मैं ब्रह्म हूँ'—यह निश्चय हुए बिना रहता ही नहीं, और तब आत्मा अपने स्वरूपमें स्थिर हो जाता है और उसका जीवभाव निवृत्त हो जाता है। इस बातको संक्षेपमें कहना हो तो न्यायके एक ही सावयव-पदसे इस प्रकार कह सकते हैं—

यह सब ब्रह्मरूप है, मैं इस सबके अन्तर्गत हूँ। इसलिये मैं ब्रह्म हूँ।

विद्वान् पण्डितजी! यहाँतक तो हमने यह समझ लिया कि ज्ञान क्या वस्तु है तथा उससे जन्म-मरणरूप बन्धनकी निवृत्ति कैसे होती है—यह भी देख लिया, परंतु इतना जान लेनेसे कोई लाभ नहीं होता। इस विचारको स्थिर करनेके लिये साधन करना चाहिये, जिसकी रूप-रेखा संक्षेपमें बतलायी जा रही है, ध्यान देकर सुनिये।

पहले तो वासनाक्षय, मनोनाश और तत्त्वचिन्तनके प्रसङ्ग योगवासिष्ठसे ठीक-ठीक समझ ले और फिर उसके अनुसार अभ्यासमें लग जाय। मैं समझता हूँ कि (यदि लगा रहे तो) करीब पाँच वर्षोंमें चित्तशुद्धि हो जायगी। आप पाँच वर्ष सुनते ही चमक कैसे उठे? इसमें चमकनेकी कोई बात नहीं है। आप देखिये, व्यवहारमें एक विद्यार्थीको मैट्रिक होना हो तो पूरे ग्यारह वर्ष और बी० ए० होना हो तो पंद्रह वर्ष तन तोड़कर परिश्रम करना पड़ता है और उसका फल क्या होता है?—केवल इतना ही कि भाग्यमें हो तो नौकरी मिल जाय और पेट भरता रहे। यहाँ तो आपको अपनी जीविकाके लिये उद्यम करते हुए साधन करना पड़ता है। अन्तर केवल इतना ही है कि अबतक आपने आजीविकाको मुख्य काम माना था, उसके बदले उसको गौण मानकर अब साधनको जीवनका मुख्य कर्तव्य मानें, फिर इसका फल देखें तो अनन्त और अविनाशी है—दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्तिपूर्वक परम आनन्दकी प्राप्ति। इसकी सिद्धिके लिये पाँच वर्ष तो क्या पाँच जीवन भी देने पड़ें तो भी सौदा महँगा नहीं, ऐसा समझ लीजिये—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब अभ्यास कैसे करना चाहिये, इस सम्बन्धमें योगदर्शनका एक सूत्र सुनकर उसे ध्यानमें रखिये।

'स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः।'

इसलिये अभ्यास दीर्घकालतक करना चाहिये अर्थात् सिद्धि प्राप्त होनेतक करते रहना चाहिये। फिर अभ्यास सतत तथा धाराप्रवाह करना चाहिये। चार दिन करे और दो दिन न करे—ऐसा करनेसे काम नहीं चल सकता। अभ्यास भाव और प्रेमसे होना चाहिये, सिरसे भार उतारनेके समान नहीं। इस प्रकार अभ्यास हो, तभी वह फलदायी होता है।

अब आप अभ्यासमें प्रगति कर रहे हैं या नहीं—इसे जाननेके लिये यह कुंजी ध्यानमें रखिये—

विचारः सफलस्तस्य विज्ञेयो यस्य सन्मतेः।
दिनानुदिनमायाति तानवं भोगगृध्नता॥

'उस भाग्यशाली साधकका अभ्यास सफलतापूर्वक चल रहा है, यह कैसे जानें? यदि उसकी भोगवासना दिन-प्रति-दिन क्षीण होती जा रही हो तो समझना चाहिये कि अभ्यास ठीक हो रहा है।'

अब यह जानना है कि सिद्धि प्राप्त होनेतक अभ्यास किसलिये करना चाहिये। बहुधा मनुष्य अधीर हो जाता है और निश्चित समयमें थोड़ा भी फल नहीं दीख पड़ता तो अभ्यास छोड़ देता है। ऐसे प्रसङ्गोंमें अधिकतर अभ्यास करनेमें कोई-न-कोई त्रुटि रह जाती है और बहुधा दोष-निवृत्ति होनेमें देर लग जाती है। इसलिये सिद्धिपर्यन्त धीरजके साथ अभ्यास चालू रखना चाहिये।

श्रीरामचन्द्रजी गुरु वसिष्ठसे कहते हैं—'महाराज! समर्थ गुरु और श्रद्धाशील मुमुक्षु साधक होनेपर भी बोध होनेमें देर क्यों होती है? उत्तर देते हुए गुरु वसिष्ठ कहते हैं—

जन्मान्तरचिराभ्यस्ता राम संसारसंस्थितिः।
सा चिराभ्यासयोगेन विना न क्षीयते क्वचित्॥

जीवभाव दृढ़ करते-करते प्राणी अनेक जन्म लेते आये हैं, इसलिये उस जीवभावको निवृत्त करके उसके स्थानमें परमात्मभाव स्थिर करना है, इसमें दीर्घकाल तो लगेगा ही, इसलिये धीरजसे साधन करते रहना चाहिये।

लौकिक दृष्टान्त देकर अच्छी तरह समझाते हुए श्रीपञ्चदशीकार कहते हैं—

कालेन परिपच्यन्ते कृषिगर्भादयो यथा।
तद्वदात्मविचारोऽपि शनैः कालेन पच्यते॥

जैसे खेतमें बीज बोनेपर कहीं वह तुरंत ही जम नहीं जाता, परंतु उसके अंकुरित होनेमें देर लगती है। बेरके बीजके समान कठिन बीज हो तो अधिक समय लगता है और अनारके समान नरम बीज हो तो कम समय लगता है। इसी प्रकार माताके उदरमें गर्भके परिपक्व होनेके लिये समय चाहिये, हाथी-जैसे बड़े प्राणीके लिये अधिक और बिल्ली या चूहे-जैसे छोटे प्राणीके लिये कम समय चाहिये। वैसे ही आत्मभावना भी धीरे-धीरे कालक्रमसे परिपक्व होती है। उसमें अधीर होनेसे काम नहीं चलता। इस प्रकार सतत अभ्यास कीजिये तो मुझे विश्वास है कि इसी जन्ममें आप कृतकृत्य हो जायँगे।

सत्संग पूरा हुआ, पण्डितजी महाराज परम संतोष तथा कृतज्ञता प्रकट करते हुए चले गये।

ॐ नमो नारायणाय।

जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं, स्वयं कारणरहित हैं, जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाके अन्तर्गत और साक्षीरूपसे उनसे पृथक् हैं तथा जिनके द्वारा संजीवित होकर देह, इन्द्रिय, प्राण और हृदय अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, वे ही परमतत्त्व नारायण हैं।—श्रीमद्भागवत

गङ्गा सागरमें मिलनेके लिये जाती है, परंतु जाती हुई जगत्का पाप-ताप निवारण करती और तटके वृक्षोंको पोसती जाती है, अथवा सूर्य भगवान् नित्य परिक्रमा करते हुए संसारका अन्धकार दूर करते और कमलोंको विकसित करते जाते हैं; इसी प्रकार आत्मज्ञानी संत अपने सहज-कर्मोंसे संसारमें बँधे बंदियोंको छुड़ाते, डूबे हुओंको निकालते और आर्तोंका दुःख दूर करते रहते हैं।—ज्ञानेश्वर महाराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मांस-भक्षण-निषेध

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

य इच्छेत् पुरुषोऽत्यन्तमात्मानं निरुपद्रवम्।
स वर्जयेत मांसानि प्राणिनामिह सर्वशः॥

(महा०, अनु०११५।५५)

'जो पुरुष अपने लिये आत्यन्तिक शान्तिलाभ करना चाहता है, उसको जगत्में किसी भी प्राणीका मांस किसी भी निमित्त नहीं खाना चाहिये।'

यद्यपि जगत्में बहुत-से लोग मांस खाते हैं, परंतु विचार करनेपर यही सिद्ध होता है कि मांस-भक्षण सर्वथा हानिप्रद है। इससे लोक-परलोक दोनों बिगड़ते हैं। बहुत-से लोग तो ऐसे हैं जो मांस-भक्षणको हानिकर समझते हुए भी बुरी आदतके वशमें होनेके कारण नहीं छोड़ सकते। कुछ ऐसे हैं जो आराम और भोगासक्तिके वशमें हुए मांस-भक्षणका समर्थन करते हैं, परंतु उन लोगोंको भी विवेकी पुरुषोंके समुदायमें नीचा देखना पड़ता है। निवेदन यही है कि पाठक इस लेखको मननपूर्वक पढ़ें और उनमें जो मांस खाते हों, वे कृपापूर्वक मांस खाना छोड़ दें। मांस-भक्षणसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंका पार नहीं है। उनमेंसे यहाँ संक्षेपमें कुछ बतलाये जाते हैं—

१.मांस-भक्षण भगवत्प्राप्तिमें बाधक है।
२.मांस-भक्षणसे ईश्वरकी अप्रसन्नता प्राप्त होती है।
३.मांस-भक्षण महापाप है।
४.मांस-भक्षणसे परलोकमें दुःख प्राप्त होता है।
५.मांस-भक्षण मनुष्यके लिये प्रकृतिविरुद्ध है।
६.मांस-भक्षणसे मनुष्य पशुत्वको प्राप्त होता है।
७.मांस-भक्षण मनुष्यकी अनधिकार चेष्टा है।
८.मांस-भक्षण घोर निर्दयता है।
९.मांस-भक्षणसे स्वास्थ्यका नाश होता है।
१०.मांस-भक्षण शास्त्रनिन्दित है।

अब उपर्युक्त दस विषयोंपर संक्षेपसे पृथक्-पृथक् विचार कीजिये।

(१) सम्पूर्णरूपसे अभयपदकी प्राप्तिकी ही मुक्ति—परमपदप्राप्ति या भगवत्प्राप्ति कहते हैं। इस अभयपदकी प्राप्ति उसीको होती है, जो दूसरोंको अभय देता है। जो अपने उदरपोषण अथवा जीभके स्वादके लिये कठोरहृदय होकर प्राणियोंकी हिंसा करता-कराता है, वह प्राणियोंको भय देनेवाला और उनका अनिष्ट करनेवाला मनुष्य अभयपदको कैसे प्राप्त हो सकता है? श्रीभगवान्ने निराकार-उपासनामें लगे हुए साधकके लिये **'सर्वभूतहिते रताः'** और भक्तके लिये **'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च'** कहकर सर्वभूतहित और प्राणिमात्रके प्रति मैत्री और दया करनेका विधान किया है। भूतहित और भूतदयाके बिना परमपदकी प्राप्ति अत्यन्त दुष्कर है। अतएव आत्माके उद्धारकी इच्छा रखनेवाले पुरुषका कर्तव्य है कि वह किसी भी जीवको किसी समय किसी प्रकार किंचिन्मात्र भी कष्ट न पहुँचावे। भगवत्प्राप्तिकी तो बात ही दूर है, मांस खानेवालेको तो स्वर्गकी प्राप्ति भी नहीं होती। मनु महाराज कहते हैं—

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्॥ (५।४८)

'प्राणियोंकी हिंसा किये बिना मांस उत्पन्न नहीं होता और प्राणिवध करनेसे स्वर्ग नहीं मिलता, अतएव मांसका त्याग करना चाहिये।'

(२) समस्त चराचर जगत्के रचयिता परमपिता परमात्माकी दृष्टिमें सभी जीव समान हैं, या यों कहना चाहिये कि उनके द्वारा रचित होनेके कारण सब उन्हींकी संतान हैं। इसीलिये भक्तिकी दृष्टिमें सभी जीव अपने भाईके समान होते हैं, इस रहस्यके जाननेवाले ईश्वर-भक्तके लिये परमपिता परमात्माकी संतान अपने बन्धुरूप किसी भी प्राणीको मारना तो दूर रहा, वह किसीको किंचित् कष्ट भी नहीं पहुँचा सकता। जो लोग इस बातको न समझकर स्वार्थवश दूसरे जीवोंकी हिंसा करते हैं और हिंसा करते हुए ही अपने ऊपर ईश्वरकी दया चाहते हैं और ईश्वर-प्राप्तिकी कामना करते हैं, वे बड़े भ्रममें हैं। प्राणि-वध करनेवाले क्रूरकर्मी मनुष्योंपर ईश्वर कैसे प्रसन्न हो सकते हैं? किसी पिताका एक लड़का लोभवश अपने दूसरे निर्दोष भाइयोंको सताकर या मारकर जैसे पिताका कोपभाजन होता है, वैसे ही प्राणियोंको पीड़ा पहुँचानेवाले लोग ईश्वरकी अप्रसन्नता और कोपके पात्र होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) धर्ममें सबसे पहला स्थान अहिंसाको दिया गया है। और सब तो धर्मके अङ्ग हैं, परंतु अहिंसा परम धर्म है—'**अहिंसा परमो धर्मः।**' (महाभारत, अनु० ११५। २५) धर्मका तात्पर्य अहिंसामें है। धर्मको माननेवाले सभी लोग अहिंसा और त्यागकी प्रशंसा करते हैं। जो धर्म मनुष्यकी वृत्तियोंको अहिंसा, त्याग, निवृत्ति और संयमकी ओर ले जाता है, वही यथार्थ धर्म है। जिस धर्ममें इन बातोंकी कमी है, वह धर्म अधूरा है। मांस-भक्षण करनेवाले अहिंसा-धर्मका हनन करते हैं, धर्मका हनन ही पाप है। कोई यह कहे कि हम स्वयं जानवरोंको न तो मारते हैं और न मरवाते हैं, दूसरोंके द्वारा मारे हुए पशु-पक्षियोंका मांस खरीदकर खाते हैं, इसलिये हम प्राणिहिंसाके पापी क्यों माने जायँ ? इसका उत्तर स्पष्ट है। हिंसा मांसाहारियोंके लिये ही की जाती है। कसाईखाने मांस खानेवालोंके लिये ही बने हैं। यदि मांसाहारी लोग मांस खाना छोड़ दें तो प्राणिवध कोई किसलिये करे ? फिर यह भी समझनेकी बात है कि केवल अपने हाथों किसीको मारनेका नाम ही हिंसा नहीं है। महर्षि पतञ्जलिने हिंसाके मुख्यतया सत्ताईस भेद बतलाये हैं। यथा—

वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभ-क्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम्।

(योग० २। ३४)

अर्थात् 'स्वयं हिंसा करना, दूसरेसे करवाना और हिंसाका समर्थन करना—यह तीन प्रकारकी हिंसा है। यह तीन प्रकारकी हिंसा लोभ, क्रोध और अज्ञानके हेतुओंसे होनेके कारण (३×३=९) नौ प्रकारकी हो जाती है। और नौ प्रकारकी हिंसा मृदु, मध्य और अधिमात्रासे होनेसे (९×३=२७) सत्ताईस प्रकारकी हो जाती है। इसी तरह मिथ्या-भाषण आदिका भी भेद समझ लेना चाहिये। ये हिंसादि सभी दोष दुःख और अज्ञानरूप फलको देनेवाले हैं—ऐसा विचार करना ही प्रतिपक्ष-भावना है।' यही सत्ताईस प्रकारकी हिंसा शरीर, वाणी और मनसे होनेके कारण इक्यासी भेदोंवाली बन जाती है। इसलिये स्वयं न मारकर दूसरोंके द्वारा मारे हुए पशुओंका मांस खानेवाला भी वास्तवमें प्राणिहिंसक ही है। मनु महाराज कहते हैं—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः॥

(मनु० ५। ५१)

'सलाह-आज्ञा देनेवाला, अङ्ग काटनेवाला, मारनेवाला, मांस खरीदनेवाला, बेचनेवाला, पकानेवाला, परोसनेवाला और खानेवाला—ये सभी घातक कहलाते हैं।' इसी प्रकार महाभारतमें कहा है—

धनेन क्रयिको हन्ति खादकश्चोपभोगतः।
घातको वधबन्धाभ्यामित्येष त्रिविधो वधः॥
आहर्ता चानुमन्ता च विशस्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपभोक्ता च खादकाः सर्व एव ते॥

(महा०, अनु० ११५। ४०,४९)

'मांस खरीदनेवाला धनसे प्राणीकी हिंसा करता है, खानेवाला उपभोगसे करता है और मारनेवाला मारकर तथा बाँधकर हिंसा करता है, इस प्रकार तीन तरहसे वध होता है। जो मनुष्य मांस लाता है, जो मँगाता है, जो पशुके अङ्ग काटता है, जो खरीदता है, जो बेचता है, जो पकाता है और जो खाता है, वे सभी मांस खानेवाले (घातकी) हैं।'

अतएव मांस-भक्षण धर्मका हनन करनेवाला होनेके कारण सर्वथा महापाप है। धर्मके पालन करनेवालेके लिये हिंसाका त्यागना पहली सीढ़ी है। जिसके हृदयमें अहिंसाका भाव नहीं है, वहाँ धर्मको स्थान ही कहाँ है ?

(४) भीष्मपितामह राजा युधिष्ठिरसे कहते हैं—

मां स भक्षयते यस्माद्भक्षयिष्ये तमप्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वमनुबुद्ध्यस्व भारत॥

(महा०, अनु० ११६। ३५)

'हे युधिष्ठिर ! वह मुझे खाता है, इसलिये मैं भी उसे खाऊँगा, यह मांस शब्दका मांसत्व है ऐसा समझो।' इसी प्रकारकी बात मनु महाराजने कही है—

मां स भक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

(मनु० ५। ५५)

'मैं यहाँ जिसका मांस खाता हूँ, वह परलोकमें मुझे (मेरा मांस) खायगा। मांस शब्दका यह अर्थ विद्वान् लोग किया करते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज यहाँ जो जिस जीवके मांसको खायेगा, किसी समय वही जीव उसका बदला लेनेके लिये उसके मांसको खानेवाला बनेगा। जो मनुष्य जिसको जितना कष्ट पहुँचाता है, समयान्तरमें उसको अपने किये हुए कर्मके फलस्वरूप वह कष्ट और भी अधिक मात्रामें (मय ब्याजके) भोगना पड़ता है, इसके सिवा यह भी युक्तिसंगत बात है कि जैसे हमें दूसरेके द्वारा सताये और मारे जानेके समय कष्ट होता है, वैसा ही सबको होता है। परपीड़ा महापातक है, पापका फल सुख कैसे होगा? इसीलिये भीष्मपितामह कहते हैं—

कुम्भीपाके च पच्यन्ते तां तां योनिमुपागताः।
आक्रम्य मार्यमाणाश्च भ्राम्यन्ते वै पुनः पुनः॥

(महा०, अनु०११६।३१)

'मांसाहारी जीव अनेक योनियोंमें उत्पन्न होते हुए अन्तमें कुम्भीपाक नरकमें यन्त्रणा भोगते हैं और दूसरे उन्हें बलात्कारसे दबाकर मार डालते हैं और इस प्रकार वे बार-बार नाना योनियोंमें भटकते रहते हैं।'

(५) भगवान्‌ने सृष्टिमें जिस प्रकारके जीव बनाये हैं, उनके लिये उसी प्रकारके आहारकी रचना की है। मांसाहारी सिंह, कुत्ते, भेड़िये आदिकी आकृति और उसके दाँत, जबड़े, पंजे, नख और हड्डी आदिसे मनुष्यकी आकृति और उसके दाँत, जबड़े, पंजे, नख और हड्डीकी तुलना करके देखनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मनुष्यका खाद्य अन्न, दूध, फल और शाक आदि ही है। जल-चिकित्साके प्रसिद्ध आविष्कारक लूईकूने महोदयने भी कहा है कि 'मनुष्य मांसभक्षी प्राणी नहीं है, वह तो मांस-भक्षण करके मनुष्यकी प्रकृतिके विरुद्ध कार्य कर नाना प्रकारकी विपत्तियोंको बुलाता है।' मनुष्यकी प्रकृति स्वाभाविक ही सौम्य है। सौम्य प्रकृतिवाले जीवोंके लिये अन्न, दूध, फल, शाक आदि सौम्य पदार्थ ही स्वाभाविक भोज्य पदार्थ हैं। गौ, बकरी, कबूतर आदि सौम्य प्रकृतिके पशु-पक्षी भी मांस न खाकर घास, चारा, अन्न आदि ही खाते हैं। मांसाहारी पशु-पक्षियोंकी आकृति सहज ही क्रूर और भयानक होती है। शेर, बाघ, बिल्ली, कुत्ते आदिको देखते ही इस बातका पता लग जाता है, महाभारतमें कहा है—

इमे वै मानवा लोके नृशंसा मांसगर्द्धिनः।
विसृज्य विविधान् भक्ष्यान् महारक्षोगणा इव॥
अपूपान् विविधाकारान् शाकानि विविधानि च।
खाण्डवान् रसयोगान्न तथेच्छन्ति यथामिषम्॥

(महा०, अनु० ११६।१-२)

'शोक है कि जगत्‌में क्रूर मनुष्य नाना प्रकारके पवित्र खाद्य पदार्थोंको छोड़कर महान् राक्षसकी भाँति मांसके लिये लालायित रहते हैं तथा भाँति-भाँतिकी मिठाइयों, तरह-तरहके शाकों, खाँड़की बनी हुई वस्तुओं और सरस पदार्थोंको भी वैसा पसंद नहीं करते जैसा मांसको।'

इससे यह सिद्ध हो गया कि मांस मनुष्यका आहार कदापि नहीं है।

(६) भोजनसे ही मन बनता है, 'जैसा खावे अन्न, वैसा बने मन' कहावत प्रसिद्ध है। मनुष्य जिन पशु-पक्षियोंका मांस खाता है, उन्हीं पशु-पक्षियोंके-से गुण, आचरण आदि उसमें उत्पन्न हो जाते हैं, उसकी आकृति क्रमशः वैसी ही बनती जाती है। इससे वह इसी जन्ममें मनुष्योचित स्वभावसे प्रायः च्युत होकर पशु-स्वभावापन्न क्रूर और अमर्यादित जीवनवाला बन जाता है और मरनेपर वैसी ही भावनाके फलस्वरूप तथा अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये उन्हीं पशु-पक्षियोंकी योनियोंको प्राप्त होकर महान् दुःख भोगता है।

इससे सिद्ध है कि मांसाहारी मनुष्य जिन पशु-पक्षियोंका मांस खाता है, वैसा ही पशु-पक्षी आगे चलकर स्वयं बन जाता है।

(७) जब हम किसी जीवके प्राणोंका संयोग करनेकी शक्ति नहीं रखते, तब हमें उनके प्राणहरण करनेका वस्तुतः कोई अधिकार नहीं है। यदि करते हैं तो वह महान् अत्याचार और पाप है। मांसाहारी ऊपर लिखे अनुसार स्वयं प्राणिवध न करनेवाला हो तो भी प्राणिवधका दोषी है ही, क्योंकि प्रकारान्तरसे वही तो प्राणिहिंसामें कारण है।

(८) मांसाहारी मनुष्य निर्दय हो ही जाता है, और जिसमें दया नहीं है उसके अधर्मी होनेमें क्या संदेह है? मांसभक्षी मनुष्य इस बातको भूल जाता है कि 'मांस खाकर कितना बड़ा निर्दय कार्य कर रहा हूँ। मेरी तो थोड़ी देरके लिये केवल क्षुधाकी निवृत्ति होती है, परंतु बेचारे पशु-पक्षीके प्राण सदाके लिये चले जाते हैं। प्राणनाशके समान कौन दुःख है, संसारमें सभी प्राणी प्राणनाशसे डरते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं नाम भारत।
मृत्युकाले हि भूतानां सद्यो जायेत वेपथुः॥

(महा०, अनु० ११६। २७)

'हे भारत ! मरण सभी जीवोंके लिये अनिष्ट है, मरणके समय सभी जीव सहसा काँप उठते हैं।'

जिस मनुष्यके हृदयमें दया होती है, वह तो दूसरेके दुःखको देख-सुनकर ही काँप उठता है और उसके दुःखको दूर करनेमें लग जाता है। परंतु जो क्रूरहृदय मनुष्य पापी पेटको भरने और जीभको स्वाद चखानेके लिये प्राणियोंका वध करते हैं, वे तो स्वाभाविक ही निर्दयी हैं। निर्दयी मनुष्य भगवान्से या अन्यान्य जीवोंसे कभी दयाकी माँग नहीं कर सकता ।

दयालु पुरुष ही संकटके समय ईश्वरकी तथा अन्यान्य जीवोंकी दयाका पात्र होता है। बड़े ही खेदका विषय है कि मनुष्य स्वयं तो किसीके द्वारा जरा-सा कष्ट पानेपर ही घबरा उठते हैं और चिल्लाने लगते हैं, परंतु निर्दोष मूक जीवोंको, इन्द्रियलोलुपता, बुरी आदत और प्रमादवश मार या मरवाकर खानेतकमें नहीं हिचकते।

मनुष्य सबमें बुद्धिमान् और स्वभावसे ही सबका उपकारी जीव माना गया है। यदि वह अपने स्वभावको भुलाकर निर्दयताके साथ पशु-पक्षियोंकी हिंसामें इसी प्रकार उतारू रहेगा तो बेचारे पशु-पक्षियोंका संसारमें निर्वाह ही कठिन हो जायगा। अतएव मनुष्यको दयालु बनना चाहिये।

न हि प्राणात् प्रियतरं लोके किञ्चन विद्यते।
तस्माद्दयां नरः कुर्याद् यथात्मनि तथापरे॥

(महा०, अनु०११६। १२)

'इस संसारमें प्राणोंके समान कोई और प्रिय वस्तु नहीं है, अतएव मनुष्य जैसे अपने ऊपर दया करता है, उसी प्रकार दूसरोंपर भी करे।'

(९) मांसाहार स्वाभाविक ही स्वास्थ्यका नाशक है, इस बातको अब तो यूरोपके भी अनेकों विद्वान् और डाक्टर लोग मानने लगे हैं। इसके सिवा एक बात यह भी है कि जिन पशु-पक्षियोंका मांस मनुष्य खाता है, उनमें जो पशु-पक्षी रोगी होते हैं, उनके रोगके परमाणु मांसके साथ ही मनुष्यके शरीरमें प्रवेशकर उसे भी रोगी बना डालते हैं। इंग्लैंडके एक प्रसिद्ध डाक्टरने लिखा था कि इंग्लैंडमें कैंसरके रोगी प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। एक इंग्लैंडमें इस भयानक रोगसे तीस हजार मनुष्य प्रतिदिन मरते हैं। यह रोग मांसाहारसे होता है। यदि मांसाहार इसी तेजीसे बढ़ता रहा तो इस बातका डर है कि भविष्यकी संतानमें ढाई करोड़ मनुष्य इस रोगके शिकार होंगे।'

मांस बहुत देरसे पचता है, इससे मांसाहारी मनुष्य प्रायः पेटकी बीमारियोंसे पीड़ित रहते हैं। इसके सिवा अन्य भी अनेक प्रकारके रोग मांसाहारसे होते हैं। शास्त्रोंमें भी कहा है कि मांसाहारियोंकी आयु घट जाती है—

यस्माद् ग्रसति चैवायुर्हिंसकानां महाद्युते।
तस्माद्धि वर्जयेन्मांसं य इच्छेद्भूतिमात्मनः॥

(महा०, अनु० ११५। ३१)

'हिंसाजनित पाप हिंसा करनेवालोंकी आयुको नष्ट कर देता है, अतएव अपना कल्याण चाहनेवालोंको मांस-भक्षण नहीं करना चाहिये।'

(१०) यद्यपि शास्त्रोंमें कहीं-कहीं मांसका वर्णन आता है, परंतु उनमें मांसत्यागके सम्बन्धमें बहुत ही जोरदार वाक्य हैं। प्रायः सभी शास्त्रोंमें मांस-भक्षणकी निन्दा करके मांस-त्यागको अत्युत्तम बतलाया है। ऐसे हजारों वचन हैं, उनमें कुछ थोड़े-से यहाँ दिये जाते हैं—

मनुस्मृति—

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते॥
समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम्।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्॥

(५। ४५,४९)

'जो निरपराध जीवोंकी अपने सुखकी इच्छासे हिंसा करता है, वह जीता रहकर अथवा मरनेके बाद भी (इहलोक अथवा परलोकमें) कहीं सुख नहीं पाता। मांसकी उत्पत्तिका विचार करते हुए प्राणियोंकी हिंसा और बन्धनादिके दुःखको देखकर मनुष्यको सब प्रकारके मांस-भक्षणका त्याग कर देना चाहिये।'

यमस्मृति—

सर्वेषामेव मांसानां महान् दोषस्तु भक्षणे।
निवर्तने महत्पुण्यमिति प्राह प्रजापतिः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रजापतिका कथन है कि सभी प्रकारके मांसोंके भक्षणमें महान् दोष है और उससे बचनेमें महान् पुण्य है।'

महाभारत, अनुशासनपर्व—

लोभाद्वा बुद्धिमोहाद्वा बलवीर्यार्थमेव च।
संसर्गादथ पापानामधर्मरुचिता नृणाम्॥
स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति।
उद्विग्नवासो वसति यत्र यत्राभिजायते॥
इज्यायज्ञश्रुतिकृतैर्यो मार्गैरबुधोऽधमः।
हन्याज्जन्तून् मांसगृध्नुः स वै नरकभाङ्नरः॥

(११५। ३५-३६,४७)

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति।
नास्ति क्षुद्रतरस्तस्मात् स नृशंसतरो नरः॥
शुक्राच्च तात सम्भूतिर्मांसस्येह न संशयः।
भक्षणे तु महान् दोषो निवृत्त्या पुण्यमुच्यते॥

(११६। ११,१३)

'लोभसे बुद्धिके मोहित हो जानेसे अथवा पापियोंका संसर्ग करनेसे बल और पराक्रमकी प्राप्तिके लिये मनुष्योंकी (हिंसारूप) अधर्ममें रुचि होती है।' 'जो मनुष्य अपने मांसको दूसरेके मांससे बढ़ाना चाहता है, वह जिस किसी योनिमें जन्म ग्रहण करता है, वहाँ दुःखी होकर ही रहता है।' 'जो अज्ञानी और अधम पुरुष देवपूजा, यज्ञ तथा वेदोक्त मार्गका आसरा लेकर मांसके लोभसे जीवोंकी हिंसा करता है, वह नरकोंको प्राप्त होता है।' 'जो मनुष्य दूसरोंके मांससे अपने मांसको बढ़ाना चाहता है, उससे बढ़कर कोई नीच नहीं है, वह अत्यन्त निर्दयी है।' 'हे तात! वीर्यसे मांसकी उत्पत्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं है (इसलिये यह बहुत घृणित पदार्थ है)। इसके भक्षणमें महान् दोष और त्यागसे पुण्य होता है।'

मांस न खानेका फल

मनुस्मृति—

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः।
मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम्॥

(५। ५३)

'जो सौ वर्षतक प्रतिवर्ष अश्वमेधयज्ञ करता है और जो किसी प्रकारका मांस नहीं खाता, उन दोनोंको बराबर पुण्य होता है।'

महाभारत, अनुशासनपर्व—

शरण्यः सर्वभूतानां विश्वास्यः सर्वजन्तुषु।
अनुद्वेगकरो लोके न चाप्युद्विजते सदा॥
अधृष्यः सर्वभूतानामायुष्मान् नीरुजः सदा।
भवत्यभक्षयन् मांसं दयावान् प्राणिनामिह॥
हिरण्यदानैर्गोदानैर्भूमिदानैश्च सर्वशः।
मांसस्याभक्षणे धर्मो विशिष्ट इति नः श्रुतिः॥

(११५। ३०, ४२-४३)

'मांस न खानेवाला और प्राणियोंपर दया करनेवाला मनुष्य समस्त जीवोंका आश्रयस्थान एवं विश्वासपात्र बन जाता है, उससे संसारमें किसीको उद्वेग नहीं होता और न उसको ही किसीसे उद्वेग होता है। उसे कोई भी भय नहीं पहुँचा सकता, वह दीर्घायु होता है और सदा नीरोग रहता है। मांसके न खानेसे जो पुण्य होता है, उसके समान पुण्य न तो सुवर्णदानसे होता है, न गोदानसे और न भूमिदानसे होता है।'

उपर्युक्त विवेचनसे सिद्ध हो जाता है कि मांस-भक्षण सभी प्रकारसे त्यागके योग्य है। मेरा नम्र निवेदन है कि जो भाई प्रमादवश मांस खाते हों, वे इसपर भलीभाँति विचारकर मनुष्यत्वके नाते, दया और न्यायके नाते, शरीर-स्वास्थ्य और धर्मकी रक्षाके लिये तथा भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये इन्द्रिय-संयमकर मांस-भक्षण सर्वथा छोड़कर सब जीवोंको अभयदान देकर स्वयं अभयपद प्राप्त करनेकी योग्यता लाभ करें। जो भाई मेरी प्रार्थनापर ध्यान देकर मांस-भक्षणका त्याग कर देंगे, उनका मैं आभारी रहूँगा और उनकी बड़ी दया समझूँगा। महात्मा तुलाधार श्रीजाजलिमुनिसे कहते हैं—

यस्मान्नोद्विजते भूतं जातु किञ्चित् कथञ्चन।
अभयं सर्वभूतेभ्यः स प्राप्नोति सदा मुने॥
यस्मादुद्विजते विद्वन् सर्वलोको वृकादिव।
क्रोशतस्तीरमासाद्य यथा सर्वे जलेचराः॥
तपोभिर्यज्ञदानैश्च वाक्यैः प्रज्ञाश्रितैस्तथा।
प्राप्नोत्यभयदानस्य यद्यत्फलमिहाश्नुते॥
लोके यः सर्वभूतेभ्यो ददात्यभयदक्षिणाम्।
स सर्वयज्ञैरीजानः प्राप्नोत्यभयदक्षिणाम्॥
न भूतानामहिंसाया ज्यायान् धर्मोऽस्ति कश्चन।

(महा०, शान्ति० २६२। २४-२५,२८—३०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हे मुनिवर ! जिस मनुष्यसे किसी भी प्राणीको किसी प्रकार कष्ट नहीं पहुँचता, उसे किसी भी प्राणीसे भय नहीं रह जाता। जिस प्रकार बडवानलसे भयभीत होकर सभी जलचर जन्तु समुद्रके तीरपर इकट्ठे हो जाते हैं, उसी प्रकार हे विद्वद्वर ! जिस मनुष्यसे भेड़ियेकी भाँति सब लोग डरते हैं, वह स्वयं भयको प्राप्त होता है।

अनेक प्रकारके तप, यज्ञ और दानसे तथा प्रज्ञायुक्त उपदेशसे जो फल मिलता है, वही फल जीवोंको अभयदान देनेसे प्राप्त होता है।

जो मनुष्य इस संसारके सभी प्राणियोंको अभयदान देता है, वह सारे यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुकता है और बदलेमें उसे सबसे अभय प्राप्त होता है, अतएव प्राणियोंको कष्ट न पहुँचानेसे बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है।'

आत्माका स्वरूप

(डॉ॰ श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त)

मृत्युके स्वामी धर्मराज यमका निकेतन। शुद्ध-बुद्धि नचिकेता यमराजका अतिथि। परंतु उस राजप्रासादमें नचिकेता तीन दिनसे बिना भोजनके अवधीरित। धर्मराज अतिथि-अवधीरणा से चिन्तित हुए। अतिथिका यथाशक्ति सम्मान किया गया और तीन दिनकी अतिथि-अवधीरणाके बदलेमें अतिथिको इच्छानुसार तीन वरदान-प्राप्तिका अधिकार मिला।

'वरदान' शब्दमात्रसे देवता भी इन्द्रासन-प्राप्तिकी इच्छा सहज ही करने लगते हैं, मनुष्य या अन्य प्राणियोंकी तो बात ही क्या है ? परंतु नचिकेता विचित्र ही प्राणी था, जिसने प्रथम वरदानमें अपने माता-पिताकी शान्ति, स्वस्थचित्तता एवं अपने प्रति उनकी प्रसन्नताको चाहा। द्वितीय वरमें स्वर्गीय अग्निके बोधकी इच्छा की। अब अन्तिम वरदान ही तो शेष था और राजा यमके प्रलोभनोंकी अविरल पङ्क्ति—गज, अश्व, स्वर्ण, पृथ्वी, अप्सराएँ और अलौकिक भोग। किंतु विचित्र तो विचित्र ही होता है। जिन भोगोंके लिये सांसारिक प्राणी लालायित रहते हैं, वे भोग नचिकेताके लिये हेय थे। उसे तो कुछ और ही चाहिये, परंतु उसे स्थूल या ठोस कुछ भी नहीं चाहिये। उसे चाहिये केवल सूक्ष्म और वह भी ज्ञान। विश्वमें ज्ञान पुस्तकोंमें भले ही महत्ताको प्राप्त हो, धन, ऐश्वर्य, भोगके आकर्षणके आगे वह सदैव तिरस्कृत रहा है। बड़े-बड़े ज्ञानी—नारद-युधिष्ठिर आदि भी उस धनाकर्षणका तिरस्कार नहीं कर सके। बड़ी विचित्रता थी कि सहज ही प्राप्त होनेवाले अलौकिक ऐश्वर्यको नचिकेताने ऐसे ठुकरा दिया जैसे वह धूल हो।

वरदान श्रेष्ठ दान है तो श्रेष्ठ दान ही क्यों न लिया जाय ? प्रत्येक प्राणी उस सच्चिदानन्दका रूप है तो वरदानमें उस सच्चिदानन्दकी स्थितिको ही क्यों न जाना जाय ? जब भोग जलवीचिके समान नश्वर है तो भोगके उत्तुङ्ग शिखरपर बैठकर भी क्या कर लेगा मनुष्य ? क्षणभरमें ही जब भोग रोगमें बदल सकते हैं, तब ऐसे अत्यन्त अस्थिर चञ्चल भोगसे लाभ क्या ? नचिकेताने महादानी धर्मराजसे तृतीय वर माँगा—

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीयः॥

(कठ॰ १।१।२०)

'मृतके विषयमें जो यह संशय है—कोई कहता है कि वह (आत्मा) है, कोई कहता है कि वह नहीं है, मुझे तद्विषयक ज्ञान दीजिये, यह (मेरा) तीसरा वर है।'

यमराजने नचिकेताको उक्तविषयक रहस्यका परिज्ञान करानेकी असमर्थता व्यक्त नहीं की, परंतु वह पात्र है या नहीं यह जाननेके लिये भोगसम्पत्तिके प्रलोभनोंकी अपार सरिता प्रवाहित कर दी। भला, स्थिरधी नचिकेता भोगामृतकी सरितामें अवगाहनके लिये क्यों कर तत्पर होता, जिसका अन्त केवल डूबना है। जब कामनाएँ मनकी ही हैं, तब उनका क्या विश्वास ? रमणीया अप्सराओंके साथ दीर्घकालतक रमण इच्छानुसार भोग, परंतु उसका अन्त तो है। मनका साम्राज्य भले ही बृहत्से भी बृहत् हो, उसका आधार केवल इच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही तो आश्रित है और इच्छाओंका अन्त दुःखके अतिरिक्त और क्या है ?

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्
सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव
तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥

(कठ० १ । १ । २६)

'जितना भी वैभव है, वह क्षणभङ्गुर है। इसमें समस्त इन्द्रियोंका तेज क्षीण हो जाता है। दीर्घायु भी भोगीके लिये अत्यल्प है। (हे धर्मराज !) ये भोग-ऐश्वर्य आप अपने पास ही रखिये। नचिकेताको नहीं चाहिये।'

आत्मबल सर्वोत्तम एवं सर्वोपलब्धिका आधार है। आत्माका साक्षात्कार निश्छलतारूपी सबलतासे होता है। इसीको वेद स्पष्टतया कहते हैं कि **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।'** बल निश्छलता है और निश्छलता है निर्विकारभाव। निर्विकारभाव ही समत्वको देता है और समत्व ही योग है। यही योग आत्मसाक्षात्कार करानेका दर्शन है। धर्मराजने नचिकेताको योगीके रूपमें देखा और देखा आत्मसाक्षात्कारके लिये योग्य पात्रके रूपमें। पात्रके लिये ज्ञान देनेमें आचार्यको परम संतोष होता है। धर्मवेत्ता यमराजने सांसारिक भोगोंके प्रति पूर्णरूपसे निर्लोभी-संयमी नचिकेताकी प्रशंसा की—

स त्वं प्रियान् प्रियरूपांश्च कामा-
नभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ।
नैतां सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो
यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ॥

(कठ० १ । २ । ३)

'तुमने प्रिय और लुभावने कामभोगोंको भलीभाँति विचार करके ही त्याग दिया है। तुम इस धनादिकी परम्परासे अछूते रहे, जिसमें पड़कर बहुत-से मनुष्य डूब मरते हैं।'

यमराजने नचिकेतासे आत्माके स्वरूपके विषयमें कहना प्रारम्भ किया कि 'यह आत्मा सूक्ष्म है एवं तर्कसे ज्ञात होने योग्य नहीं है ?—

'अणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्।'

(कठ०१ । २ । ८)

उस आत्माके विषयमें यमराजने स्पष्ट किया कि 'उस दुर्दर्शनीय गुप्त छिपे हुए गुहालीनकी भाँति अज्ञात, सनातन देव आत्माको धैर्यवान् ही अध्यात्मयोगसे जानकर हर्ष और शोकसे मुक्त हो जाते हैं।'—

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं
गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं
मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥

(कठ० १ । २ । १२)

कौन है वह परमतत्त्व, जो शरीरधारियोंके अन्तरमें विद्यमान उनकी चेतना एवं उनके प्राणोंका आधार है। क्या वह दृश्य है, स्पृश्य है, मूर्त है या अमूर्त है ? या सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है ? वह किस रूपमें ज्ञातव्य है ? किस रूपमें उसकी सत्ता है ? प्रश्नोंकी ये पङ्क्तियाँ सहज ही प्रस्फुरित हो उठती हैं। धर्मराजने सभी प्रश्नोंका उत्तर 'आत्मा'के एक ही रूप 'ओम्' से दिया—

'तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्'।

(कठ० १ । २ । १५)

यह आत्मा 'ओम्' अक्षर, ब्रह्म (व्यापक) एवं सर्वोपरि है, जिसे जानकर प्राणीको सर्वस्व प्राप्त हो जाता है—

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥

(कठ०१ । २ । १६)

अपि च—यह आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत एवं पुरातन है—

'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः।'

(कठ०१ । २ । १८)

और भी—यह आत्मा शरीरके नष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं होता—

'न हन्यते हन्यमाने शरीरे।'

(कठ० १ । २ । १८)

सर्वसत्तात्मक गुण होनेपर भी यदि आत्माके रूपका दर्शन या बोध न हो तो उसे कैसे समझा जाय ? यह प्रश्न स्वतः ही उठता है। 'आत्मा' ओम् है। परंतु औत्सुक्य तो यह है कि उसका दर्शन किसे और कैसे हो सकता है ? क्या वह इतना सूक्ष्म है कि उसे किसीके द्वारा भी नहीं देखा जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता ? भगवान् यम जानते थे कि नचिकेता आत्माके केवल गुण-बोधसे संतुष्ट नहीं हो सकता, उसे आत्माका दर्शन भी कराना होगा। धर्मराजने आत्माके मूर्तरूपको स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि यह शाश्वत आत्मा सूक्ष्मतम तो है, किंतु इसका आकार भी है और निवास-स्थान भी। 'यह आत्मा अङ्गुष्ठमात्र निर्धूम ज्योतिके समान प्रकाशमान है।'

'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः।'

(कठ०२।१।१३)

आत्माका निवासस्थल भी है। वह प्राणिमात्रके हृदयमें रहता है।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।'

(कठ० २।३।१७)

स्पष्ट है कि आत्मा एक निर्मल ज्योति है, जो प्राणियोंके हृदयमें अनश्वरके रूपमें—उसकी चेतनाके रूपमें निवास करता है।

यमराजका नचिकेताको उद्बोधन है कि उक्त आत्मा दृश्य है। वह आत्मा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म-रूप होते हुए भी कामनाहीन, शोकरहित एवं निर्मलमन प्राणीके लिये महत्से भी महत्-रूपमें अपना साक्षात्कार कराता है एवं सूक्ष्मदर्शियों-द्वारा अपनी श्रेष्ठ एवं कुशाग्र-बुद्धिसे दृश्य है।

अणोरणीयान्महतो महीया-
नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः॥

(कठ०१।२।२०)

अपि च—

दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥

(कठ०१।३।१२)

यह आत्मा कामी, अशान्त, अजितेन्द्रिय और चञ्चल मनवालेको दर्शन नहीं देता। यह तो केवल प्रज्ञान और स्थैर्यसे ही दृश्य होता है—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥

(कठ० १।२।२४)

शरीर-रथमें आत्मा 'रथी' के रूपमें विद्यमान है। बुद्धि सारथि और मन प्रग्रह है। इन्द्रियाँ अश्व तथा विषय उनके मार्ग हैं। इन्द्रियों और मनसे युक्त आत्मा ही भोक्ता है।

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

(कठ० १।३।४)

असंयत सारथिकी इन्द्रियाँ नियन्त्रणमें नहीं रहतीं, परंतु ज्ञानीकी इन्द्रियाँ मनरूपी लगामके नियन्त्रणसे व्यवस्थित रहती हैं। ऐसा ज्ञानी सदा सावधान रहता हुआ पवित्रात्मा होता है और ऐसा प्राणी आत्माका दर्शन करता हुआ परमात्म-तत्त्वको भी प्राप्त कर लेता है—

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते॥

(कठ० १।३।८)

सांसारिक प्राणी यदि बाह्य विषयोंमें जानेवाली इन्द्रियोंको संयमित करके दृष्टिको अन्तर्गामी करे तो वह आत्माका दर्शन प्राप्त कर सकता है।

कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्।

(कठ० २।१।१)

वह आत्मा उस (स्थिरप्रज्ञ) से नहीं छिपता—

न ततो विजुगुप्सते एतद्वै तत्।

(कठ०२।१।१२)

शरीरोपरान्त यही अङ्गुष्ठमात्र प्रकाश (आत्मा) शरीरसे पृथक् हो जाता है। अज्ञानीका आत्मा (कर्मबन्धनके कारण) शरीर पानेके लिये पुनः गर्भमें प्रवेश करता है और ज्ञानीका आत्मा निश्चल ब्रह्ममें प्रवेश करता है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥

(कठ०२।२।७)

निष्कर्षतः वह परम ज्योतिर्मय आत्मा, जो कि स्थिरप्रज्ञोंद्वारा दृश्य है, पवित्र और अमृत है एवं उसे जानकर प्राणी भी जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भजन क्यों नहीं होता ?

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान् एक हैं, उन्हींसे अनन्त जगत्की—जगत्के समस्त चेतनाचेतन भूतोंकी उत्पत्ति हुई है, उन्हींमें सबका निवास है, वही सबमें सदा सर्वत्र व्याप्त हैं, अतएव उनकी भक्तिका, उनके ज्ञानका और उनकी प्राप्तिका अधिकार सभीको है। किसी भी देश, जाति, धर्म, वर्ण, वर्गका कोई भी मनुष्य—स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी विशुद्ध पद्धतिसे भगवान्का भजन कर सकता है और उन्हें प्राप्त कर सकता है। परंतु भजनमें एक बड़ी बाधा है—वह बाधा है भगवान्में अविश्वास और संसारके भोगोंमें विश्वास; बस, इसी कारण—इसी मोह या अविद्याके जालमें फँसा हुआ मनुष्य भगवान्का कभी स्मरण नहीं करता और भोग-विषयोंके लिये विभिन्न प्रकारके कुकार्य करनेमें अपने अमूल्य जीवनको खोकर आगेके लिये भयानक दुःखभोगके अचूक साधन उत्पन्न कर लेता है। मनुष्यमें कमजोरी होना आश्चर्य नहीं, वह परिस्थितिवश पापकर्म भी कर सकता है, परंतु यदि उसका भगवान्पर विश्वास है, भगवान्के सौहार्द और उनकी कृपापर अटूट और अनन्य श्रद्धा है तो वह भगवान्का आश्रय लेकर पाप-समुद्रसे उबर जाता है और भगवान्की सुखद गोदको प्राप्त कर लेता है। परंतु जो भोगोंको ही जीवनका एकमात्र ध्येय और सुखका परम साधन मानकर उन्हींका आश्रय ले दिन-रात उन्हींके चिन्तन, मनन और उन्हींकी प्राप्तिके प्रयत्नमें तल्लीन रहता है, उसका जीवन तो पापमय बन जाता है, वह कभी भगवान्को भजता ही नहीं। भगवान्ने गीतामें दो प्रकारके पापियोंका वर्णन किया है—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥

(७। १५)

'वे पापकर्म करनेवाले मनुष्य तो मुझको (भगवान्को) भजते ही नहीं, जो मनुष्य-जीवनके परम लक्ष्य (भगवत्प्राप्ति) को भूलकर प्रमाद तथा विषयसेवनमें लगे रहनेकी ही मूढ़ताको स्वीकार कर चुके हैं, जो विषयासक्ति तथा विषयकामनाके वश होकर नीच कर्मोंमें ही लगे रहते हैं और अपने मानव-जीवनको अधम बना चुके हैं, मायाके द्वारा जिनका विवेक हरा जा चुका है और जो असुरोंके भाव—काम, क्रोध, लोभादिका आश्रय लेकर जीवनको आसुरी बना चुके हैं।' ऐसे लोग न तो भगवान्में श्रद्धा रखते हैं और न भजनकी ही आवश्यकता समझते हैं, वे दिन-रात नये-नये पाप-कर्मोंमें प्रवृत्त होते रहते हैं, विविध प्रकारके पाप करके गौरवका अनुभव करते और सफलताका अभिमान करते हैं एवं पापोंको ही जीवनका सहारा मानकर उत्तरोत्तर गहरे भव-समुद्रमें डूबते जाते हैं।

दूसरे वे पापी हैं, जो परिस्थिति या दुर्बलताके कारण बड़े-से-बड़ा पापकर्म तो कर बैठते हैं, परंतु वे उस पापको पाप समझते हैं, पाप करके पश्चात्ताप करते हैं, पाप उनके हृदयमें शूल-से चुभते हैं और वे उनसे त्राण पाने तथा भविष्यमें पापकर्म सर्वथा न बनें, इसके लिये सदा चिन्तित और सचेष्ट रहते हैं; ऐसे लोग कहीं आश्रय, आश्वासन न पाकर अन्तमें भगवान्को ही परम आश्रय मानकर करुणभावसे उनको पुकारते हैं। भगवान् कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९। ३०-३१)

'अत्यन्त दुराचारी (पापकर्मा मनुष्य) भी यदि मुझ (भगवान्) को ही एकमात्र शरणदाता—परम आश्रय मानकर दूसरे किसीका कोई भी आशा-भरोसा न रखकर (पापनाश और मेरी भक्तिकी प्राप्तिके लिये) केवल मुझको ही भजता है, आर्त होकर एकमात्र मुझको ही पुकार उठता है, उसे साधु ही मानना चाहिये; क्योंकि उसने एकमात्र मुझ (भगवान्) को ही परम आश्रय मानने और केवल मुझको ही पुकारनेका सम्यक् निश्चय कर लिया है। केवल माननेकी ही बात नहीं, वह तुरंत ही धर्मात्मा (पापकर्मासे बदलकर धर्मस्वरूप) बन जाता है और भगवत्प्राप्तिरूप परमा शान्तिको प्राप्त होता है। अर्जुन! तुम यह सत्य समझो कि मुझको इस प्रकार भजनेवाले भक्तका कभी नाश (अधःपात) नहीं होता।'

इन दोनों प्रकारके पापियोंमें यही अन्तर है कि पहला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापको पाप न मानकर गौरव तथा अभिमानकी वस्तु मानता है, वह काम-क्रोध-लोभादिरूप आसुरभावको ही परम आश्रय समझकर उसीके परायण रहता है तथा नीच कर्मोंकी सिद्धिमें ही सफलताका अनुभव करता है और दूसरा पापी पापको पाप मानकर उनसे छूटना चाहता है और शरणागतवत्सल भगवान्‌को ही एकमात्र परम आश्रय मानकर परम श्रद्धाके साथ उनका भजन करना चाहता है। इसीसे यह भजन कर सकता है और शीघ्र ही पापमुक्त होकर भगवान्‌को प्राप्त कर लेता है।

पाप बननेमें प्रधान कारण है पापमें अज्ञानपूर्ण श्रद्धा या आस्था। मनुष्यकी विषयोंमें आसक्ति तथा कामना होती है और सङ्ग-दोषसे वह पापोंको ही उनकी प्राप्ति तथा संरक्षण-संवर्धनमें हेतु मान लेता है। फिर उत्तरोत्तर अधिक-से-अधिक पापोंमें ही लगा रहता है। संसारबन्धनसे छूटनेके लिये निष्कामभावसे तो वह भगवान्‌को भजनेकी कल्पना भी नहीं कर पाता, सकामभावसे भी भगवान्‌को नहीं भजता, उधर उसकी वृत्ति जाती ही नहीं और वह दिन-रात नये-नये पापोंमें उलझता हुआ सदा-सर्वदा अशान्तिका अनुभव करता है तथा परिणाममें घोर नरकोंकी यातना भोगनेको बाध्य होता है! भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६।२०)

'अर्जुन! ऐसे मूढ (मनुष्य-जन्मके चरम और परम लक्ष्य) मुझ (भगवान्) को न पाकर जन्म-जन्ममें—हजारों-लाखों बार आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं। तदनन्तर उससे भी अधम गतिमें — नरकोंमें जाते हैं।'

भवाटवीमें भटकते हुए जीवको अकारणकरुण भगवान् कृपा करके मनुष्य-शरीर प्रदान करते हैं, यह देवदुर्लभ शरीर मिलता ही है केवल भगवत्प्राप्तिका सफल साधन करनेके लिये। इसीके लिये इस जीवनमें विशेषरूपसे 'बुद्धि' दी जाती है, पर मनुष्य परमात्माकी दुर्लभ देन—उसी बुद्धिको भोगासक्तिसे पापार्जनमें लगाकर केवल भगवत्प्राप्तिके साधनसे ही वञ्चित नहीं होता, वरं बहुत बड़े पापोंका बोझ लादकर दुर्गतिको प्राप्त होता है! यह मानवजीवनकी सबसे बड़ी और महान् दुर्भाग्यरूप विफलता है। इसीसे विषयानुरागी मनुष्यको भाग्यहीन बतलाया गया है—

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥

× × ×

ते नर नरकरूप जीवत जग
भव-भंजन-पद-बिमुख अभागी।
निसि-बासर रुचि-पाप असुचि-मन
खल मति-मलिन, निगम पथ-त्यागी॥

× × ×

तुलसिदास हरिनाम-सुधा तजि
सठ हठि पियत बिषय-बिष माँगी।
सूकर स्वान सृगाल सरिस जन
जनमत जगत जननि दुख लागी॥

अतः मानव-जन्मकी सफलता इसीमें है कि मनुष्य अथक प्रयत्न करके भगवान्‌को या भगवत्प्रेमको प्राप्त कर ले। कम-से-कम भगवत्प्राप्तिके पवित्र मार्गपर तो आरूढ़ हो ही जाय। इसके लिये सत्सङ्ग करे और सत्सङ्गमें भगवान्‌के स्वरूप, महत्त्व तथा उनकी प्राप्ति ही मानव-जीवनका एकमात्र परम उद्देश्य है—यह जानकर उसीमें लग जाय। मनुष्यको यह बड़ा भारी मोह हो रहा है कि 'सांसारिक भोगोंमें सुख है।' यह मोह जबतक नहीं मिटता, तबतक वह कभी किसी देवताका आराधन भी करता है तो इसके फलस्वरूप वह सांसारिक विषय भोग ही चाहता है। वह छूटना तो चाहता है दुःखसे और प्राप्त करना चाहता है सुखको, परंतु विषय-सुखकी भ्रान्तिवश मोहसे वह बार-बार प्राप्त करना चाहता है विषय-भोगोंको ही, जो दुःखके उत्पत्ति-स्थान हैं—दुःखके खेत हैं—'**दुःखयोनय एव ते।**'

बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥

सत्सङ्गके बिना भगवत्कथा सुननेको नहीं मिलती। भगवत्कथाके बिना उपर्युक्त मोहका नाश नहीं होता और मोह मिटे बिना श्रीभगवच्चरणोंमें दृढ़ प्रेम नहीं होता।

यह प्रबल मोहकी ही महिमा है कि बार-बार दुःखका अनुभव करता हुआ भी मनुष्य उन्हीं दुःखदायी भोगोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहता है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहिं भजै॥
लोलुप भ्रम गृहपसु ज्यौं जहँ-तहँ सिर पदत्रान बजै।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ लजै॥

'जैसे युवती स्त्री संतान-प्रसवके समय दारुण दुःखका अनुभव करती है, परंतु वह मूर्खा सारी वेदनाको भूलकर पुनः उसी दुःखके स्थान पतिका सेवन करती है। जैसे लालची कुत्ता जहाँ जाता है, वहीं उसके सिरपर जूते पड़ते हैं तो भी वह नीच पुनः उसी रास्ते भटकता है, उस मूढको जरा भी लाज नहीं आती।'

बस, यही दशा मोहग्रस्त मानवकी है। बार-बार दुःखका अनुभव करनेपर भी वह उन्हीं विषयोंमें सुख खोजता है। इसी मोहके कारण वह भगवान्‌का भजन नहीं करता।

भगवत्कृपासे जब यथार्थ सत्सङ्ग-सूर्यका उदय होता है, तब मनुष्यकी मोह-निशा भङ्ग होती है और वह विवेकके मङ्गल-प्रभातका दर्शन प्राप्त करता है। यथार्थ सत्सङ्ग वही है जो इस मोहका नाश करनेमें समर्थ हो। जिस सङ्गसे विषय-विमोह और विषयासक्ति बढ़ती है, वह तो कुसङ्ग ही है। यह मोहकी ही महिमा है कि अपनेको साधु, जीवन्मुक्त, भक्त या महात्मा मानने तथा बतलानेवाले लोग भी विषयकामना करते और विषयोंका महत्त्व मानते हैं। सच्चे संत, महात्मा या भक्त तो वही हैं जिनका विषय-विमोह या भोग-विभ्रम सर्वथा मिट गया है। जिनकी दृष्टिमें सांसारिक विषयोंका भगवान्‌के अतिरिक्त कोई अस्तित्व ही नहीं रहा है और रहा है तो विनोद या खेलके रूपमें ही। अथवा उन संत-साधकोंका सत्सङ्ग भी बड़ा लाभदायक है, जिनकी दृष्टिमें संसारके भोग विष या मलके सदृश घृणित और त्याज्य हो चुके हैं। जो मनुष्य विषय-भोगोंका बाहरसे त्याग करके यह मानता है कि 'मैंने बहुत बड़ा त्याग किया है, कैसे-कैसे महत्त्वपूर्ण विषयोंको छोड़कर—घर-द्वार, कुटुम्ब-परिवार, धन-ऐश्वर्य, पद-अधिकारका परित्याग कर वैराग्यको ग्रहण किया है। वह पद-अधिकारका परित्याग कर वैराग्यको ग्रहण किया है। वह बाहरसे भोगपदार्थोंका त्याग करनेवाला होनेपर भी वस्तुतः मनसे भोगोंका त्याग नहीं कर पाया है; क्योंकि उसके मनमें भोगोंकी स्मृति और उनकी महत्ता बनी हुई है, तभी तो वह अपनेको 'बड़ा त्यागी' मानता है। क्या जंगलमें या पाखानेमें मल त्यागकर आनेवाला मनुष्य कभी तनिक भी मनमें गौरव करता है कि मैंने बड़े महत्त्वकी वस्तुका त्याग किया है? क्या उसे उसमें जरा भी अभिमानका अनुभव होता है? वह तो एक सहज आरामका अनुभव करता है। इसी प्रकार विषयभोगोंमें मल-बुद्धि या विष-बुद्धि होनेपर उनके त्यागमें आराम तो मिलता है, पर किसी प्रकारका अभिमान नहीं हो सकता; क्योंकि उसका वह त्याग भगवान्‌में महत्त्व-बुद्धि और भोगोंमें वास्तविक त्याग-बुद्धि होनेपर भी होता है। ऐसे पुरुषोंका जीवनचित्र ही भोग-लिप्साको दूर करनेवाला मूर्तिमान् सत्सङ्ग है। अथवा उनका सत्सङ्ग करना चाहिये जो भगवत्प्रेमके नशेमें चूर होकर या तो संसारको सर्वथा भूल चुके हैं या जिनको नित्य-निरन्तर समग्र जगत्‌में केवल अपने प्रियतमकी मधुर मनोहर झाँकी हो रही है।

सत्सङ्गके द्वारा जितना ही मोहका पर्दा हटेगा या फटेगा, उतना ही विषय-व्यामोह मिटकर भगवान्‌की ओर चित्तका आकर्षण होगा और उतनी ही अधिक भगवद्भजनमें प्रवृत्ति होगी। एवं ज्यों-ज्यों भजनमें निष्कामता, प्रेम और निरन्तरता आयेगी, त्यों-ही-त्यों मोह-निशाका अन्त समीप आता जायगा। फिर तो मोह मिटते ही भगवान् हृदयमें आ विराजेंगे। विराज तो अब भी रहे हैं, परंतु हमने अपनी अंदरकी आँखोंपर पर्दा डाल रखा है और उनके स्थानपर मलिन कामको बैठा रखा है, इसीसे वे छिपे हुए हैं। फिर प्रकट हो जायँगे और उनके प्रकट होते ही काम-तम भाग जायगा—

जहाँ काम तहँ राम नहिं जहाँ राम नहिं काम।
तुलसी कबहुँ कि रहि सकैं रबि रजनी इक ठाम॥

मुझ अव्यक्तमूर्तिसे यह सब जगत् परिपूर्ण है और सब भूत मेरे अंदर स्थित हैं, मैं उनमें स्थित नहीं हूँ और वे भूत भी मुझमें स्थित नहीं हैं; मेरी योगमाया और प्रभावको देखो कि सब भूतोंको धारण-पोषण करनेवाला और भूतोंको उत्पन्न करनेवाला मेरा आत्मा उन भूतोंमें स्थित नहीं है।—भगवान् श्रीकृष्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् शिवका मङ्गलमय नृत्य ताण्डव

(श्रीगंगारामजी शास्त्री)

भगवान् शंकरको नटराज कहा जाता है। भरत मुनिके नाट्यशास्त्रमें बताया गया है कि एक बार पितामह ब्रह्माके आदेशानुसार उनके द्वारा रचित अमृत-मन्थन समवकार (रूपकका एक भेद) का अभिनय दिखानेके लिये भरत-मुनिके शिष्य तथा देवगण मिलकर भगवान् शंकरके पास गये। वहाँ उसी प्रकार 'त्रिपुर-दाह' नामक डिमका अभिनय किया गया। उस अभिनयको देखकर महादेवजी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि मैंने भी एक बार संध्याकालमें नर्तन करते हुए अङ्गहार और करणसहित जो अभिनय किया था, उसका मुझे स्मरण हो आया है। आपने यह शुद्ध पूर्वरंगका प्रयोग किया है, इसके साथ अनेक करण, अङ्गहार, वर्धमानक, गीत, महागीत आदिका भी मिश्रण होना चाहिये, तब उसे चित्र कहा जायगा। इसीको चित्र-ताण्डव कहा गया है। इसका आशय यही है कि अङ्गसंचालनके साथ जो अभिनय किया जाता है, उसीका एक भेद ताण्डव है। इसे शिवजीके आदेशानुसार उनके प्रमुखगण तण्डुने भरतको समझाया था, इसीलिये **'तेन प्रोक्तम्'** इस व्याकरण सूत्रके अनुसार इसका नाम ताण्डव हो गया। नाट्यशास्त्रमें कहा गया है—

रेचका अङ्गहाराश्च पिण्डीबन्धास्तथैव च ॥
सृष्ट्वा भगवता दत्तस्तण्डवे मुनये तदा।
तेनापि हि ततः सम्यग्गानभाण्डसमन्वितः ॥
नृत्तप्रयोगः सृष्टो यः स ताण्डव इति स्मृतः।

(४। २५९—२६१)

इसके अनुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि ताण्डव एक प्रकारके नृत्यविशेषका ही नाम है, जिसे उस समय पुरुष किया करते थे—**'प्रायेणोद्धतप्रायं पुरुषकर्तृकं नृत्तं ताण्डवम्।'** संगीतरत्नाकरमें भी कहा गया है—**'तण्डूक्तमुद्धतप्रायं प्रयोगं ताण्डवं मतम्'** (७। ३०)। सौन्दर्यलहरीकी आनन्दगिरि व्याख्यामें कहा गया है—**'ताण्डवं तु उद्धतप्रयोगप्रधानत्वात् प्रायेण पुरुषकर्तृकं भवति।'** इसीकी लक्ष्मीधरा टीकामें कहा गया है—**पुंकर्तृकं नृत्यं ताण्डवमित्युच्यते।'**

किंतु इसका प्रयोग देवस्तुत्यादितक ही सीमित कर दिये जानेके कारण एक प्रकारसे यह शब्द शिवजीके नृत्यके लिये रूढ-सा हो गया।

प्रायेण ताण्डवविधिर्देवस्तुत्याश्रयो भवेत्।

(ना० शा० ४। २६८)

उग्र नृत्यके लिये ताण्डव शब्दका प्रयोग श्रीमद्भागवतमें भी किया गया है—

तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणातपत्रो
रक्तं मुखैरुरु वमन् नृप भग्नगात्रः।
स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं
नारायणं तमरणं मनसा जगाम॥

(१०। १६। ३०)

यमुनाके जलमें कूदकर कालिय नागके फणोंको द्रुतगतिसे अपने पादप्रहारसे कुचलते हुए उसके फणोंपर नर्तनरत भगवान् कृष्णके लिये कहा गया है कि 'उनके इस विचित्र ताण्डवनृत्यसे उस कालिय नागके फणोंका छत्ता आहत हो गया है, शरीर भग्न हो गया है, मुखसे बहुत अधिक रक्त वमन कर रहा है, इस अवस्थामें उस कालिय नागने चराचरके स्वामी पुराणपुरुष भगवान् नारायणका मनसे स्मरण किया और उनकी शरण ली।'

भगवान् शंकरका यह ताण्डव सामान्य नृत्य नहीं है। इसका विशेष अभिप्राय है, विशेष उद्देश्य है। इसलिये आधिदैविक दृष्टिसे भी इसपर विचार करना उचित होगा। शैव-शाक्त विचारधाराके अनुसार भगवान् व्योमकेश (शङ्कर)का यह ताण्डव काल-शक्तिके नृत्यका रूपक है। यह समस्त ब्रह्माण्ड ही उन नटराजकी नृत्यशाला है। व्योमकेशका अर्थ होता है—आकाश जिसके केश हों, उसके चन्द्र, तारा, ग्रह, नक्षत्र आदि आहार्य ही हो सकते हैं, सिरके आभूषण ही हो सकते हैं। तन्त्रका मानना है कि लास्य और ताण्डव प्रकृति और पुरुषके क्रियाशील होनेका प्रतीक है। जिससे संसारका सृजन-पालन-रूप व्यापार चल रहा है। संहारका अर्थ सामान्यतया विनाश समझा जाता है। पर इस संदर्भमें इसका अर्थ केवल समेटना और फैलाना होता है। इसे संकोच और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसारण कहा जा सकता है। सौन्दर्यलहरीके डिण्डिम-भाष्यमें कहा गया है—

सृष्टिस्थितिसंहाराभ्यामन्तःस्थितपदार्थस्यैव प्रकाशन-तिरोभावे उक्ते किंतु तिरोभावः सूक्ष्मरूपता बहिःप्रकाशन-स्थूलरूपता इति इयानेव भेदः।

सर्जन, पालन और संहारसे अन्तःस्थित पदार्थका प्रकाशन और तिरोभाव ही अभिप्रेत है। तिरोभाव सूक्ष्मरूपता और बाहर प्रकाशन स्थूलरूपता है, दोनोंमें मात्र इतना ही भेद है।'

इससे श्रीमद्भगवद्गीताके **'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'** की भी पुष्टि हो जाती है। सर्जन और संहार विश्वमें चलनेवाली एक सतत प्रक्रिया है। ताण्डव विनाशका सूचक न होकर नवनिर्माणकी क्रिया है। नाट्यशास्त्रमें कहा गया है—

पादतलाहतिपातितशैलं क्षोभितभूतसमग्रसमुद्रम्।
ताण्डवनृत्तमिदं प्रलयान्ते पातु जगत् सुखदायि हरस्य॥

(५।१२७)

'ताण्डव नृत्त करते समय भगवान् शिवके उग्र वेगके कारण उनके पदतलके संचारसे पर्वत गिर रहे हैं, पञ्चभूतके इस समुद्रमें क्षोभ उत्पन्न हो गया है, भूतसृष्टि क्षुब्ध हो रही है। प्रलयके अन्तमें होनेवाला शिवका यह सुखद नृत्य संसारकी रक्षा करे।'

आदिनट शिव और लास्येश्वरी भगवती पार्वती जब ताण्डव और लास्यमें प्रवृत्त होते हैं तो सर्जन होता है। जहाँ यह ताण्डव और लास्य बंद हुआ, सृष्टिके कार्यकलाप भी बंद हो जाते हैं। उक्त स्तुतिमें प्रकृतिमें जो विक्षोभ बताया गया है, वह प्रकृतिकी सृष्ट्युन्मुख होनेकी गतिशीलताका द्योतक है। सर्जन सदा आनन्दमय होता है, इसलिये इस ताण्डवको सुखदायी कहा गया है।

अर्धनारीश्वर-स्तोत्रमें कहा गया है—

प्रपञ्चसृष्ट्युन्मुखलास्यकायै समस्तसंहारकताण्डवाय।
जगज्जनन्यै जगदेकपित्र्ये नमः शिवायै च नमः शिवाय॥

'जो शक्ति पञ्चमहाभूतोंसे सृष्टि करनेके लिये उन्हें अपनी क्रियाशक्ति लास्यके द्वारा चैतन्य प्रदान करती है, वह समस्त सृष्टिकी माता है, उसे नमस्कार है। जो इस सारी सृष्टिको समेटते हुए उसका पुनः-पुनः नवीकरण करते हैं, ताण्डवमें रत भगवान् शंकरको संहारका पिता—पालक कहा गया है, उन्हें नमस्कार है।' नृत्य वास्तवमें महेश्वरकी पञ्चक्रियाओंका द्योतक है—सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह-करण—ये पाँचों क्रियाएँ सदैव एक साथ चलती रहती हैं। जिस प्रकार वसन्त, पतझड़, शीत, ग्रीष्म, सुख-दुःख, हानि-लाभ, जरा-मरण, उत्पत्ति-विनाशका क्रम निरन्तर चल रहा है, उसी प्रकार ताण्डव एक सतत-प्रक्रिया है।

श्रीदुर्गासप्तशतीमें भगवतीके लिये कहा गया है—

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि।

समयकी सूक्ष्म इकाई कला और काष्ठाके रूपमें आप ही संसारको परिणाम प्रदान करनेवाली हैं। इसीलिये सौन्दर्यलहरी (४१) में कहा गया है—

तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया
नवात्मानं मन्ये नवरसमहाताण्डवनटम्।

यहाँ शक्तिका नाम समया दिया गया है, जो शिवके साथ ताण्डवलास्यमें रत होकर उस विश्वकी परिणमन-क्रियामें सहायक होती है। समयाका अर्थ भी कालशक्ति होता है। परिणामका अर्थ विनाश नहीं है, इसे इस प्रकार समझा जा सकता है—सूर्यकी उष्मासे जल भापरूपमें परिवर्तित होता है, भाप हलकी होनेके कारण ऊपरको उठती जाती है, शीतल होनेपर वही मेघोंके रूपमें दिखायी देती है, शीत और उष्णकी मिश्रित क्रियासे वही कुहरेमें बदल जाती है, अधिक शीतल होनेपर हिमका रूप धारण कर लेती है, आर्द्र होनेकी अवस्थामें जलके रूपमें पृथ्वीपर बरस जाती है। नदी-नालोंके द्वारा वर्षाका जल जब बहकर समुद्रमें पहुँचता है, तब फिर वाष्पीकरणकी क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इस परिवर्तनके चक्रको ही परिणाम कहा गया है। महाविद्यासूत्रके अनुसार—

परिणमयित्री शक्तिर्न केवलं संहरति सृजत्यपि।

'परिणामप्रदायिनी शक्ति केवल संहार ही नहीं करती, सर्जन भी करती है।' संहारके साथ सर्जन कैसे सम्भव है, इसके लिये कहा गया है—

पूर्वपूर्वावस्था संहार एवोत्तरोत्तरावस्था सर्गो भूतानाम्।

'पूर्वकी अवस्था बदलती जाती है, मिटती जाती है, उसकी उत्तरकालीन अवस्था ही नवीन सृष्टि है।' उदाहरणके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये मिट्टीमें पड़ा हुआ बीज भूगर्भमें आर्द्र होकर उष्मासे अंकुरित होता है, यह बीजके विनाशकी अवस्था है, अंकुरसे पत्ते निकलते हैं, वही पौधा कालक्रमागत-रूपसे वृक्षका रूप धारण करता है, उसमें कोपलें आती हैं, कलियाँ खिलती हैं, फूल फलका रूप लेता है, जिसमें अनेक बीज छिपे रहते हैं। जो एकसे अनेक होनेका कारण है, वही वृक्ष पत्ररहित होता है, वसन्तमें उसमें पुनः पत्ते आते रहते हैं। इधर बीजके भूमिमें पड़नेसे नवनिर्माणकी क्रिया चलती रहती है। इस प्रकार प्रकृतिके दोनों कार्य सर्जन और संहार देखनेमें विरोधी प्रतीत होनेपर भी साथ-साथ चलते रहते हैं। इसीको अंग्रेजीमें 'ओल्ड यील्ड्स प्लेस टु न्यू' कहा जाता है। इसीलिये महाविद्यासूत्रमें आगे कहा गया है—

एकैव क्रिया द्व्यर्थकरीत्युक्तं भवति।

इसीलिये ऐसा कहा जाता है कि एक ही क्रियासे दो कार्य होते हैं। क्रिया देखनेमें एक होनेपर भी उससे दोनों ही कार्य होते हैं। यह क्रिया क्या है, इसके लिये कहा गया है—

क्रियैव ताण्डवमुच्यते।

(महाविद्यासूत्र, कालीपटल, सूत्र १५)

'क्रियाको ही ताण्डव कहा जाता है।' ईश्वरकी इस गति-शक्तिका रूप ही ताण्डव है। यही महाकालका नर्तन है। इसीको नवरसमहाताण्डवनट कहा गया है—'**नवीकरणे रस्यते आस्वाद्यते महांश्चासौ ताण्डवनटः।**' वह ताण्डव करके नाचनेवाला जो नवीकरणका रस लेता है। यहाँ महा शब्द भी विशेषार्थका बोधक है। कामकला-विलासकी टीकामें कहा गया है—'**महत्त्वं च देशकालावस्थाद्यभिन्नत्वम्।**' देश, काल और अवस्था-विशेषसे अनवच्छिन्न होना ही महत्त्व है। अतः यह ताण्डव इन्द्रियगोचर-देशपर कालका विक्षेप ही है। इस परिवर्तनमें जो आनन्द है, वही लास्यपरा समयाका शिवके ताण्डवमें—शिव-संकल्पमें योगदान है।

'नवरसमहाताण्डवनटम्'की टीकामें—पदार्थचन्द्रिकामें कहा गया है—

महाताण्डवं ब्रह्माण्डनिर्माणमेव
ब्रह्माण्डनिर्माणस्य शृंगारादिनवरसयुक्तत्वमेव।

ब्रह्माण्डकी रचना ही महाताण्डव है, ब्रह्माण्डकी रचनामें नवरसोंका समावेश है ही।'

इस प्रकार ब्रह्माण्डमें निरन्तर चलनेवाला यह ताण्डव और लास्य ब्रह्माण्डके लघुसंस्करण इस पिण्डाण्डमें भी चल रहा है। उक्त शिखरिणीछन्दमें इन दोनोंका ही संकेत किया गया है।'**तवाधारे मूले**' का अर्थ मूलाधार होता है। कुण्डली-जागरणके क्रममें उक्त वर्णन अवरोहक्रमके अनुसार किया गया है। जिन्हें उन्नेय भूमिकाका क्रम अभीष्ट है, उनमें सर जॉन वुडरफ आदिने इस व्याख्या-क्रममें छत्तीससे लेकर चालीसतकके छन्दोंका क्रम बदल कर व्याख्या की है। वैसे समयमतके अनुसार पिण्डाण्डमें इस ताण्डवका स्थान मनुष्यका मस्तिष्क ही हो सकता है।

भारतीय संस्कृतिके सुप्रसिद्ध व्याख्याकार डॉ० आनन्दकुमार स्वामीने अपने एक निबन्धमें शिवके नृत्यपर इसी प्रकारके विचार प्रकट किये हैं। उनके मतके अनुसार नृत्यसे ही सभी वस्तुओंकी सृष्टिका प्रारम्भ होता है। यह नृत्य संसारके आदिपुरुषके साथ ही प्रकट हुआ, क्योंकि इस आदिनृत्यका दर्शन हम ग्रह-नक्षत्र और तारागणोंकी गतिमें उनके सामूहिक नृत्यमें पाते हैं। यह ईश्वरके क्रियाकलापोंका प्रतिरूप बन गया है। ब्रह्माण्डमें स्पन्दनात्मिका जो भी वस्तु मिलती है, उस शक्तिका आदिस्रोत यही नृत्य है। नृत्यका स्थान विश्वका केन्द्र मनुष्यके हृदयके भीतर है।

विज्ञानके अनुसार भी एक ही न्यूक्लियसपर इलेक्ट्रान, प्रोटोन और न्यूट्रोनके अनवरत अबाधगतिसे भ्रमण करनेसे ही संसारके प्रत्येक जड और चेतनमें परिणमन क्रिया चल रही है, यही शिवका ताण्डव है, नर्तन है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि असंख्य ब्रह्माण्ड ग्रह-नक्षत्रोंसे लेकर गतिशक्तिका यह नृत्य—शंकरका यह ताण्डव मानवके हृदयकी हलचल-तकमें विद्यमान है।

ताण्डव आत्माका वह स्वर है, जिसके गर्जनसे सभी बाह्य स्वर शान्त हो जाते हैं। शिवका ताण्डव जीवनके शाश्वत संगीत और शाश्वत आनन्दका प्रतीक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[विकार आपमें नहीं है]

परमात्माकी प्राप्ति होनेसे पहले विकारोंकी निवृत्ति हो जाय—यह कोई नियम नहीं है। परंतु परमात्माकी प्राप्ति होनेके बाद विकार नष्ट हो ही जाते हैं—**रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते**' (गीता २। ५९) 'रसरूपी विकार परमात्माका साक्षात्कार होनेके बाद मिट जाता है।' इसमें एक मार्मिक और बहुत ही लाभकी बात है। आप उसको गहरे उतरकर समझें, इतनी प्रार्थना है।

हमें अनुकूल व्यक्ति, पदार्थ, परिस्थिति आदि मिलें और प्रतिकूल व्यक्ति, पदार्थ, परिस्थिति आदि न मिलें—यही संसार है। अनुकूलता-प्रतिकूलताके सिवाय संसार कुछ नहीं है। उस अनुकूलता-प्रतिकूलताका हमारेपर जो असर पड़ता है, उसका नाम ही विकार है। इन विकारोंसे हमें छूटना है; क्योंकि जबतक विकार होते रहेंगे, तबतक शान्ति नहीं मिलेगी।

इस बातकी खोज करो कि विकार कहाँ होते हैं? विकार मन और बुद्धिमें होते हैं, अन्तःकरणमें होते हैं। अतः विकार करणमें होते हैं, कर्तामें नहीं होते—यह खास समझनेकी बात है। आपको अनुकूलता मिली तो आप सुखी हो गये, प्रतिकूलता मिली तो आप दुःखी हो गये। सुखी और दुःखी होना—ये दो अवस्थाएँ हुईं। इन दोनों अवस्थाओंमें आप दो हुए या एक ही रहे? इस बातपर विचार करें। सुखकी अवस्थामें आप वे ही रहे और दुःखकी अवस्थामें भी आप वे ही रहे—यह बात सच्ची है न? वास्तवमें ये अवस्थाएँ मन-बुद्धिमें होती हैं, पर इनको आप अपनेमें मान लेते हो—यह गलती होती है। आप सुख-दुःखकी अवस्थाओंमें अपनेको सुखी-दुःखी मान लेते हो। सुख-दुःखका असर अन्तःकरणपर पड़ जाता है तो आप सुखी-दुःखी हो जाते हो। विकारोंको आप अपनेमें मान लेते हो। वास्तवमें विकार आपमें हुए ही नहीं, विकार तो अन्तःकरणमें हुए।

सुख और दुःख—इन दोनोंको आप जानते हो। दोनोंको वही जान सकता है, जो दोनोंसे अलग हो। जो दोनोंमें तदाकार हो जायगा, वह सदा सुखी ही रहेगा अथवा सदा दुःखी ही रहेगा। जो सुखमें भी रहता है और दुःखमें भी रहता है, वही सुख और दुःख—इन दोनोंको जान सकता है। सुख अलग है और दुःख अलग है। इनसे अलग रहनेवाला इन दोनोंको जानता है। अगर वह इनके साथ मिला हुआ हो तो सुख और दुःख—दोनोंको नहीं जानेगा, प्रत्युत एकको ही जानेगा, जिसके साथ वह रहा है।

दूसरी बात, सुखी होते समय भी आप वे ही हो और दुःखी होते समय भी आप वे ही हो, तभी तो आपको दोनोंका अलग-अलग अनुभव होता है। सुख और दुःख—दोनोंका अलग-अलग अनुभव करनेवाला सुख-दुःखसे अलग है। सुख-दुःखसे अलगका अनुभव कब होगा? जब आप प्रकृतिमें स्थित न होकर 'स्व' में स्थित हो जाओगे—**'समदुःखसुखः स्वस्थः'** (गीता १४। २४)। प्रकृति विकारी है। उसमें आप स्थित होंगे तो विकार होगा ही। परंतु वह विकार आपमें (स्वयंमें) कभी नहीं होगा। अज्ञान-अवस्थामें भी आपमें विकार नहीं हुआ और ज्ञान-अवस्थामें भी आपमें विकार नहीं हुआ। आपके स्वरूपमें कभी विकार हुआ ही नहीं, हो सकता ही नहीं। यदि आपमें विकार होते तो वे कभी मिटते ही नहीं। विकार प्रकृतिमें होते हैं। प्रकृतिसे अपनेको अलग अनुभव करना ही तत्त्वज्ञानको, जीवन्मुक्तिको प्राप्त करना है।

वास्तवमें आप प्रकृतिसे अलग हैं। इस बातको जाननेके लिये आप कृपा करें, थोड़ा ध्यान दें। आप आने-जानेवाले नहीं हैं। भगवान्‌ने कहा है—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥

(गीता २। १४)

'हे कुन्तीनन्दन! इन्द्रियोंके जो विषय हैं, वे अनुकूलता और प्रतिकूलताके द्वारा सुख और दुःख देनेवाले हैं। वे आने-जानेवाले और अनित्य हैं। हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! उनको तुम सहन करो।'

अनुकूलता अच्छी लगती है और प्रतिकूलता बुरी लगती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ये दोनों ही आने-जानेवाली और अनित्य हैं। इनको आप सह लो। सुख आये, उसको भी सह लो और दुःख आये, उसको भी सह लो। सुखमें सुखी हो गये और दुःखमें दुःखी हो गये तो यह आपसे सहा नहीं गया। यह आपसे गलती हुई। आप आने-जानेवाले और अनित्य नहीं हो। आप नित्य हो और विकार अनित्य हैं। जब आप अनित्यके साथ मिलते हो, तब आप अपनेमें विकार मानते हो। आने-जानेवालेके साथ रहनेवाला मिल जाता है—यहीं गलती होती है। यदि आप 'स्व' में स्थित हो जायँगे तो आपको अनुकूलता और प्रतिकूलताका ज्ञान तो होगा, पर उसका आपपर असर नहीं पड़ेगा। इसीका नाम मुक्ति है। विकारोंसे छूटना ही मुक्ति है। मुक्ति नित्य है, इसलिये मुक्तिके बाद फिर बन्धन नहीं होता—**यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव**' (गीता ४। ३५) फिर मोह नहीं होता। कारण कि वास्तवमें आपके भीतर मोह नहीं है। केवल अपने स्वरूपका अनुभव करना है। इस विषयमें आपसे बात करनेकी जितनी मेरी लगन है,उतनी आपकी लगन नहीं है।

सुख और दुःख तो आने-जानेवाले हैं और वे पहुँचते हैं मन-बुद्धितक, ज्यादा-से-ज्यादा 'अहम्' तक। 'अहम्' एकदेशीय है; क्योंकि वह प्रकाशित होता है। जैसे यह चीज दीखती है, ऐसे ही 'अहम्' दीखता है। 'अहम्' आँखोंसे नहीं दीखता, पर भीतरमें 'अहम्' अर्थात् 'मैं' का अनुभव होता है। सब विकार इस 'मैं' तक ही पहुँचते हैं। जिस प्रकाशमें यह 'मैं' दीखता है, उस प्रकाशमें कोई विकार नहीं है। जिसमें विकार होते हैं, उसको भी आप जानते हैं और विकारोंको भी आप जानते हैं। उस जाननेपनमें विकार हैं क्या? आप 'अहम्' के साथ मत मिलो। 'अहम्'के साथ मिलना प्रकृतिमें स्थित होना है। यह 'अपरा' प्रकृति है और आप जीवरूपा 'परा' प्रकृति हो। परा प्रकृतिने जगत्को धारण कर लिया—'**ययेदं धार्यते जगत्**' (गीता ७। ५)। जगत्को धारण करनेसे यह विकारोंमें फँस गया। 'शरीर मैं हूँ, शरीर मेरा है; मन मैं हूँ, मन मेरा है; बुद्धि मैं हूँ, बुद्धि मेरी है; अहम् मैं हूँ, अहम् मेरा है'—यह जो मानना है, यही जगत्को धारण करना है।

जीव अंश तो भगवान्का है, पर वह भगवान्में स्थित न होकर प्रकृतिमें स्थित हो जाता है(गीता १५। ७)। अपरा प्रकृति बड़ी सपूत है, वह बेचारी अपनेमें ही स्थित रहती है, आपमें स्थित होती ही नहीं। आप स्वतन्त्र हो, चेतन हो। चेतन होनेसे आप अपने स्वरूपमें भी रहते हो और प्रकृतिमें भी स्थित हो जाते हो। भगवान्ने कितना सुन्दर पद दिया है—'**मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि।**' ये शरीर इन्द्रियाँ आदि प्रकृतिमें ही स्थित रहते हैं, कभी प्रकृतिको छोड़कर आपमें आते ही नहीं। वास्तवमें आप प्रकृतिमें स्थित नहीं हो, प्रत्युत भगवान्के अंश होनेसे भगवान्में स्थित हो। 'अहम्' तो प्रकृति है। प्रकृतिको धारण करो अथवा न करो—इसमें आप स्वतन्त्र हो। इसमें आप पराधीन नहीं हो। जिस ज्ञानके अन्तर्गत 'अहम्' दीखता है, उस ज्ञानमें 'अहम्' नहीं है। आप उस ज्ञानमें स्थित रहो। उसमें आपकी स्थिति स्वतः है।

अपना जो स्वरूप है, उस प्रकाशमें 'अहम्' दीखता है। अगर वह नहीं दीखता तो 'अहम्' है—इसमें क्या गवाह है? आप खुद अपरा प्रकृतिको पकड़ते हो। आप जिसको पकड़ते हो, अधिकार देते हो, वही आपपर अधिकार करता है। आप अधिकार नहीं दो तो उसमें आपपर अधिकार जमानेकी ताकत नहीं है। आने-जानेवाला आपपर अधिकार कैसे जमायेगा? उसको आप 'मैं' और 'मेरा' मान लेते हो, तब आफत आती है।

सुख-दुःख दीखते हैं। विकार दीखते हैं। जैसे सब वस्तुएँ एक प्रकाशमें दीखती हैं, ऐसे ही 'अहम्' एक प्रकाशमें दीखता है। प्रकाश न हो तो 'अहम्' दीखे ही नहीं। 'अहम्' को आप पकड़ते हो तो किसी गवाहसे नहीं, प्रत्युत स्वतन्त्रतासे पकड़ते हो। कोई आपको मदद करके पकड़नेवाला है ही नहीं। 'अहम्' को आपने माना है तो आप 'अहम्'को न मानें। संतोंने कहा है—'***देखो निरपख होय तमाशा***' निरपेक्ष होकर तमाशा देखो। जो प्रकाश अपना स्वरूप है, उसमें 'अहम्' को धारण मत करो।

गाढ़ नींदमें 'अहम्' का भान नहीं होता। जागनेपर कहते हो कि 'नींदमें मेरेको कुछ पता नहीं था', अतः वहाँ 'अहम्' नहीं था, पर आप तो थे ही। गाढ़ नींदमें 'मैं अभी सोया हुआ हूँ'—ऐसा आपको अनुभव नहीं होता। जागनेपर ही आप कहते हो कि 'मैं ऐसा सोया, मेरेको कुछ पता नहीं था।' 'कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता नहीं था'—यह स्मृति है। स्मृति अनुभवजन्य होती है—'**अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः** (योगदर्शन १।११)। आपको स्मृति आती है कि मैं गहरी नींदमें सोया। गहरी नींदमें 'अहम्' (मैं) लीन था, पर आप लीन नहीं हुए थे। अगर आप लीन हो जाते तो 'मेरेको गाढ़ नींद आयी, मेरेको कुछ पता नहीं था'—यह नहीं कह सकते थे।

ममता तू न गयी मेरे मन तें

(मोह, कारण और निवारण)

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

[गताङ्क पृ० सं० ७४८ से आगे]

(२)

यह मोह आखिर है क्या ?

ममता है कौन चीज ?

सच पूछिये तो यह कुछ नहीं है।

केवल भ्रम है, अज्ञान है।

बंद गोभी है। एक-एक पत्ता उधेड़ते जाइये, अन्तमें कुछ न हाथ लगेगा। जगत्के प्राणी-पदार्थोंमें हमारी जो आसक्ति है, जो ममत्व है, जो राग है, अनुकूलके प्रति झुकाव और प्रतिकूलके प्रति जो विराग है, उसीका नाम तो मोह है। उसीको तो 'ममता' कहते हैं।

× × ×

यह मेरा है, यह मेरा बना रहे, इससे मेरी भेंट हो जाय, यह मुझे मिल जाय, यह खूब फले-फूले, इसका बाल न बाँका हो—इस तरहके जो असंख्य भाव रात-दिन हमारे मनमें उठते रहते हैं, जिन्हें लेकर हम आठ पहर चौंसठ घड़ी परेशान रहते हैं, जिनके लिये हम जमीन-आसमानके कुलावे एकमें मिलाते रहते हैं, जिनकी चिन्तामें हम डूबे रहते हैं, उन्हींको तो 'मोह' कहा जाता है।

× × ×

मोहका यह जाल कितना व्यापक है, सोचनेपर आश्चर्य होता है। एक-दो चीजोंका मोह हो सो नहीं। मोह असंख्य वस्तुओंका होता है। कहाँतक कोई गिनाये !

× × ×

शरीरका मोह होता है।

विषयोंका मोह होता है।

परिवारका मोह होता है।

धन-सम्पत्तिका मोह होता है।

परिग्रहका मोह होता है।

कुर्सीका मोह होता है।

मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठाका मोह होता है।

नामका मोह होता है।

पढ़ने-लिखनेका, डिग्रीका मोह होता है।

ज्ञानका मोह होता है।

स्थानका मोह होता है।

जाति, वर्ण, कुल-परम्पराका मोह होता है।

कल्पित धारणाओंका मोह होता है।

सेवाका मोह होता है।

त्यागका मोह होता है।

संस्थाका मोह होता है।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका मोह होता है।

जीवन, जगत्का मोह होता है।

यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमिति को बरनै पारा ॥

× × ×

शरीरका मोह किससे छिपा है ?

विज्ञान कहता है—

२२२ हड्डियाँ,

धमनियोंमें ७ पौंड रक्त,

३० लाख पसीनेकी ग्रन्थियाँ,

मस्तिष्क और रीढ़में १४० अरब शिराएँ,

सिरपर ९०हजारसे १ लाख ४० हजारतक बाल !

यह शरीर !

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दार्शनिक कहते हैं—

क्या शरीर है शुष्क धूलका थोड़ा-सा छवि-जाल।
उस छविमें ही छिपा हुआ है, वह भीषण कंकाल॥

क्या रखा है इस शरीरमें ?

हाड़-मांस, रक्त-मज्जा, थूक-खखार, मल-मूत्रसे भरा गंदा बर्तन !

× × ×

साधु-संत कहते हैं—

जारे देह भस्म ह्वै जाई, गाड़े माटी खाई।
काँचे कुंभ उदक ज्यों भरिया, तनकी यही बड़ाई॥
छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥
साधो यह तन मिथ्या जानो।
संग तिहारे कछू न चालै, ताहि कहा लपटानो॥

× × ×

यह जानते हुए भी कि यह शरीर कुछ नहीं है, पानीभरी खाल है, हमने इसे अपना जीवन-सर्वस्व बना रखा है।

जमीनपर पड़ी कुछ मिट्टी इस शरीरपर लेप लेनेके लिये, इसका वजन बढ़ानेके लिये हम रात-दिन बेचैन रहते हैं।

जरा भी, किसी भी अङ्गमें कोई शिकायत जान पड़ी कि हम बेतहाशा दौड़ते हैं—हकीम, डॉक्टरोंके पास, मानो वे इस शरीरको जरा और मृत्युसे रोग और बीमारीसे बचा ही लेंगे।

साँस निकलने-निकलनेतक हम आशावान् बने रहते हैं—शायद कोई डाक्टर इस शरीरको बचा ले।

कफ पित वात कंठपर बैठे सुतहिं बुलावत कर तें।
ममता तू न गयी मेरे मन तें॥

× × ×

इस शरीरके मोहमें पड़कर हम क्या नहीं करते ?

इसकी रक्षाके लिये, इसे स्वस्थ बनाये रखनेके लिये, इसे चिकना-चुपड़ा और सुन्दर बनाये रखनेके लिये हम बेचैन रहते हैं।

इस शरीरकी पूजा, इसकी आराधना हमारे जीवनका मूलमन्त्र बन बैठी है।

इसके लिये हमें रोटी-दाल, घी-दूध, मक्खन-मलाई, 'विटामिन' और 'कैलोरी' नहीं, तर माल भी चाहिये, माल-मलीदा भी चाहिये, च्यवनप्राश और शक्तिवर्धक 'टानिक' भी चाहिये।

इस शरीरको कहीं सर्दी न लग जाय, निमोनिया न हो जाय, ब्रंकाइटिस न हो जाय, इसका हमें पूरा ख्याल रहता है। इसके लिये हम मनों ऊनी कपड़े रखते हैं। गद्दे-रजाइयाँ रखते हैं। लोई-कम्बल रखते हैं। तूश-पश्मीना रखते हैं।

× × ×

गर्मियोंमें इस शरीरको धूप न लग जाय, लू न लग जाय—इसका हम भरपूर ध्यान रखते हैं। गर्मी इस शरीरको कहीं क्षीण न कर दे, इसका हम पूरा एहतियात रखते हैं।

बिजलीके पंखों और खसकी टट्टियों, 'कूलर' और 'एयरकंडीशंड'—वायुनियन्त्रित कमरोंकी हम पूरी व्यवस्था करते हैं। बरफका शर्बत, लस्सी और ठंडाई आदि तो मामूली चीजें हैं। इनकी माँग तो रिक्शा खींचनेवाले और झल्ली उठानेवालेतक करते हैं।

× × ×

वर्षासे बचावके लिये हम बढ़िया-से-बढ़िया मकान बनवाते हैं। पानीसे भीगकर कहीं हम बीमार न पड़ जायँ— इसकी चिन्ता किसे नहीं रहती ?

× × ×

जाड़ा हो, गर्मी हो, बरसात हो—कोई भी ऋतु हो, शरीरकी रक्षाके लिये हम पूरी सावधानी रखते हैं। उसे स्वस्थ रखनेके लिये, हृष्ट-पुष्ट रखनेके लिये, सुन्दर और आकर्षक बनाये रखनेके लिये हम पानीकी तरह पैसा बहाते हैं। यहींतक नहीं, मौका पड़ जाय तो इस शरीरके मोहके आगे हम स्त्री-पुत्र, बाल-बच्चोंतकका बलिदान कर डालते हैं। रुपया-पैसा तो हाथका मैल ही ठहरा।

× × ×

बात है उन दिनोंकी, जब जापानी सिंगापुरतक आ गये थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापानियोंने एक प्रसिद्ध बैंकपर अपना कब्जा कर लिया।

उस बैंकमें कितने ही भारतीय क्लर्क भी थे। एक क्लर्कने आपबीती सुनाते हुए कहा कि जापानियोंने बैंकमें आते ही सबसे पहले सोने-चाँदीकी सिलोंपर अधिकार जमाया। फिर हमसे बोले—'तुममेंसे जो लोग नौकरी करना चाहें, कर सकते हैं। जाना चाहें उन्हें अपनी सीमातक हम पहुँचा देंगे। कौन रहेगा, कौन जायगा ?'

जो लोग भारत लौटनेको तैयार हुए उनमें उक्त सज्जन भी थे। जापानी उन्हें नीचे ले गये खजानेमें—'उठा लो ये कागजके टुकड़े जितने चाहो।' कागजी सिक्केका—नोटोंका मूल्य ही क्या था उनकी दृष्टिमें !

इन्हें उठाते-उठाते डर लग रहा था कि कहीं बंदूकका कुंदा न जमा दें कि क्यों इतना ज्यादा पैसा समेट रहा है।

पूछा—'तुम्हारा परिवार भी है क्या ?'

परिवार था तो जरूर, पर कहें कैसे ? यहाँ तो अपना शरीर बचानेकी धुन थी। बच्चे मरें या जियें।

आखिर ठीक अपने घरके सामनेसे होकर निकल आये। स्त्री-बच्चोंको वहीं छोड़ दिया। जापानियोंने सबको सुरक्षित रूपसे अपनी सीमातक पहुँचा दिया।

× × ×

बादमें ये महाशय अनेक कष्ट भुगतकर वर्मासे होकर भारत पहुँचे।

× × ×

समयके अनुकूल जवानी तेजीसे खिसक रही है, पर हम उसे बाँध रखनेको बेचैन हैं। बालोंमें सफेदी जहाँ-तहाँ झाँकी मारती है, हम तुरंत खिजाब तलाश करते हैं, आँवलेका तेल ले आते हैं और ऐसे विज्ञापनोंपर जी-खोलकर पैसा खर्च करते हैं जो इस बातकी गारंटीका दम्भ भरते हैं कि सफेद बाल जड़से काला हो जायगा। किसीके मुँहसे हम सुनना भी पसंद नहीं करते कि हम बूढ़े होते चल रहे हैं। कोई हमें 'बुड्ढू दादा' कह भर दे, फिर देखिये हमारा ताव। कुछ न हो तो हम केशवका यह दोहा रटने लगते हैं—

केसव केसन अस करी जस अरिहूँ न कराँहि।
चंदबदनि मृगलोचनी, 'बाबा' कहि कहि जाँहि॥

शरीरका कैसा थोथा मोह।

× × ×

उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते, हँसते-खेलते हमें एक ही चिन्ता सताती है—हमारा यह शरीर चंगा रहे, हट्टा-कट्टा और स्वस्थ रहे, आकर्षक और चिकना-चुपड़ा रहे।

× × ×

शरीरके इस मोहको लेकर ही तो आज सारे संसारका अधिकांश व्यापार चलता है।

खाने-पीने, पहनने, ओढ़ने, रहने, मौज करनेके जितने साधन हैं, वे हैं तो सब इसीके लिये न।

जिधर दृष्टि डालिये, हमारी देहासक्तिको संतुष्ट करनेकी ही तैयारी दीख पड़ेगी।

× × ×

देहका मोह हममें न हो तो—

भूखों मर जायँ ये हलवाई जो चमचम और गुलाबजामुन, रसगुल्ला और मोहनभोगके बलपर अपनी तिजोरी भरते हैं।

दिवाला निकल जाय उन कम्पनियोंका जो रात-दिन पफ और पाउडर, क्रीम और पोमेड, शृङ्गार और फैशनके नामपर अपना बैंक बैलेंस बढ़ाती रहती हैं।

तबाह हो जायँ ये डॉक्टर और वैद्य, हकीम तथा जर्राह, जिनकी फीसका दारोमदार इस शरीरकी ही व्याधियोंपर है।

बंद पड़ी रहें पैंसिलिन और स्ट्रेप्टोमाइसिनकी शीशियाँ, च्यवनप्राश और मकरध्वजके डिब्बे, यदि हम शरीरके मोहके पीछे पागल न हों।

× × ×

विषयभोगोंके मोहकी तो कहानी ही निराली है।

यह खा लूँ, यह पी लूँ, यह चख लूँ, यह देख लूँ, यह पढ़ लूँ, यह सूँघ लूँ, यह छू लूँ, यह सुन लूँ, इसका उपभोग कर लूँ, इसे प्राप्त कर लूँ—इसी तरहके प्रोग्राम हम रात-दिन बनाते रहते हैं। रात-दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियोंकी तरह-तरहकी फर्माइशें पूरी करनेमें जुटे रहते हैं। मजा यह कि वे कभी पूरी हो नहीं पातीं। हों भी तो कैसे ?

बुझे न काम अगिन 'तुलसी' कहुँ बिषय भोग बहु घी तें॥

× × ×

और परिवारका मोह ?

वह कौन किसीसे कम है ?

यह मेरा बाप है, यह मेरी माँ; यह मेरा चाचा है, यह मेरी चाची; यह मेरा दादा है, यह मेरी दादी; यह मेरा मामा है, यह मेरी मामी; यह मेरा फूफा है, यह मेरी फूफी; यह मेरा भाई है, यह मेरी भावज; यह मेरी बीबी है, यह मेरा शौहर; यह मेरा बहनोई है, यह मेरा साला; यह मेरा ससुर है, यह मेरी सास; यह मेरी बेटी है, यह मेरा दामाद; यह मेरा बेटा है, यह मेरी पतोहू; यह मेरा भतीजा है, यह मेरा भानजा; यह मेरा सगा है, यह मेरा सम्बन्धी; यह मेरा कुटुम्बी है, यह मेरा रिश्तेदार।

कोई पार है इन सगे-सम्बन्धियोंकी सूचीका !

एक-एकके प्रति अपार मोह।

× × ×

अर्जुन खड़ा है कुरुक्षेत्रके मैदानमें।

सगे-सम्बन्धियोंकी पलटन उसकी दोनों ओर है।

श्रीकृष्णसे पूछता है—'क्या करूँ मैं श्रीकृष्ण ! लड़ूँ इनसे ? इन्हें देखकर तो—

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते॥
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् त्वक् चैव परिदह्यते।

'मेरा अङ्ग-अङ्ग शिथिल हो रहा है, मुँह सूख रहा है, शरीर काँप रहा है, रोमाञ्च हो रहा है, गाण्डीव हाथसे खिसका जा रहा है, त्वचा जल रही है, मेरा मन भ्रमित हो रहा है, मुझे चक्कर आ रहा है, मुझसे खड़ा नहीं हुआ जा रहा है।'

इन स्वजनोंको मैं मारूँ ?

जिनके लिये राज्य प्राप्त करनेको मैं लड़ने आया हूँ, वे ही यहाँ कटनेको तैयार खड़े हैं। इन्हें मारकर, इन्हींकी लाशोंपर मैं अपना प्रासाद खड़ा करूँ ? छिः-छिः, न होगा मुझसे ऐसा।

और फिर यह भी तो है कि ये '**लोभोपहतचेतसः**'—इनकी आँखोंपर लोभकी पट्टी बँधी है। जिससे न इन्हें कुलक्षयका दोष दिखायी पड़ता है, न मित्रद्रोहका पाप।

पर हम क्यों इन्हींकी तरह मूर्ख बन जायँ ? हम क्यों यह बात भूल जायँ कि कुलक्षयसे अधर्म फैलेगा, स्वैराचार बढ़ेगा, वर्णसंकरता आयेगी, कुलधर्म नष्ट होंगे—ऐसा भयंकर पाप हम क्यों करें ?

माना, इनकी अक्लपर पत्थर पड़ गये हैं, ये आततायी हैं, पर इन्हें मारकर हमें मिलेगा क्या ? राज्यसुखके लिये हम भी इनकी तरह अंधे क्यों बनें ? ऐसे रक्तरञ्जित राज्यको लेकर ही हम क्या करेंगे ? जाने दो श्रीकृष्ण, न चाहिये हमें राज्य, न चाहिये हमें सुख। भीष्म-द्रोण-जैसे पूज्य गुरुजनोंको मारनेसे तो कहीं अच्छा है कि हम भीख माँगकर अपना पेट भर लें।

रहने दो श्रीकृष्ण ! नहीं लड़ूँगा मैं !

× × ×

प्रबल प्रतापी वीर अर्जुनने डाल दिये अपने हथियार, पकड़ लिये श्रीकृष्णके चरण और रोकर कहा—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

× × ×

इस तरह जब किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे मार्ग दिखानेकी प्रार्थना की, तब श्रीकृष्णने सारी गीता ही कह डाली। उसे सुनकर अर्जुन बोला—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव॥

'अच्युत ! तुम्हारी कृपासे अब मेरा मोह नष्ट हो गया, मेरे संशय मिट गये। अब मैं तैयार हूँ तुम्हारी आज्ञाका पालन करनेके लिये।'

× × ×

अर्जुनकी तरह हमें भी मोह होता है, रोज होता है, कदम-कदमपर होता है, हृदयरूपी कुरुक्षेत्रमें हरदम 'यह मेरा है यह तेरा है' ऐसा द्वन्द्व चलता रहता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पग-पगपर हम बहक जाते हैं, पर कौन है जो हमारी मोहकी पट्टीको खोलकर श्रीकृष्णकी तरह पूछे—

कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनंजय।

'क्यों धनंजय! अज्ञानसे पैदा हुआ तेरा मोह मिटा क्या?'

पर अर्जुनकी तरह हम श्रीकृष्णको अपने घोड़ोंकी लगाम सौंपते कहाँ हैं? श्रीकृष्ण तो हम सबके हृदयमें विराजमान हैं, हम उनसे मोह-निरसनकी प्रार्थना करें भी तो?

कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥

सच तो यह है कि मोहके पाशमें हमने अपने-आपको इतना जकड़ रखा है कि बार-बार ठोकर खाकर भी हम चेतनेका नाम नहीं लेते!

× × ×

कहते हैं कि एक बूढ़ा अपने दरवाजेपर पड़ा-पड़ा अपनी किस्मतको रो रहा था कि बेटा बड़ा नालायक है जो जब देखो तब लात-घूँसोंसे उसकी पूजा करता रहता है!

उधरसे होकर एक साधु निकले।

बूढ़ेको रोते देख लगे समझाने—'छोड़ो बाबा, इस मोहजालको। कौन किसका बाप, कौन किसका बेटा! चलो मेरे साथ भगवान्‌का भजन करके जीवन सफल करो।'

बूढ़ा बिगड़ा—'चल, चल! बड़ा आया है ज्ञान बघारने। क्या हुआ बेटा मारता है! मेरा है, तब न मारता है! तुझे किसने बुलाया था पंचायत करने?

'माफ करो बाबा!'—कहकर साधु चल दिये।

हम इस बूढ़ेसे कम थोड़े ही हैं।

× × ×

(क्रमशः)

परमानन्दमूर्ति श्रीराम

(पं० श्रीमिथिलाप्रसादजी त्रिपाठी, साहित्याचार्य, पी-एच्० डी०)

संस्कृत-साहित्यमें रामायण-ग्रन्थोंकी सुदीर्घ परम्परा है। हिन्दी-साहित्यमें भी रामचरितको लेकर विपुल रचनाएँ प्राप्त होती हैं। हिन्दी-साहित्यकी रामकथामें तुलसीका वही स्थान है, जो संस्कृत-साहित्यमें आदिकवि महर्षि वाल्मीकिका है। 'राम'के विविध रूपोंका चित्रण कवियोंने अपने-अपने दृष्टि-कोणसे किया है। तुलसीने रामकथाका प्रणयन 'रामचरित-मानस' नामसे किया है। जिनके मानसमें रामचरित भर जाता है, उनके लिये यह श्रवणाभिराम बन जाता है।

राम चरित मानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा॥

मूलतः यह कृति 'विद्यागुरु' भगवान् शंकरकी देन है—

राम चरित मानस मुनि भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥

इस मानसका तात्पर्य-बोध 'मानस-चक्षु'से ही सम्भव होगा—

अस मानस मानस चख चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही॥
भयउ हृदयँ आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥
चली सुभग कबिता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो॥

यह मानस-चक्षु सत्सङ्गसे ही खुलता है। कवि-बुद्धि स्नान करके जब निर्मल हो जाती है, तब हृदयमें आनन्द भरकर प्रेम-प्रमोदका प्रवाह उमड़ने लगता है और रामके निर्मल यशरूपी जलसे भरी हुई सुन्दर नदीकी भाँति तुलसीकी कविता चल पड़ती है।

इस मानसका सर्जक तत्त्व ही 'आनन्द-उछाह' है। मानस-जल तो राम-यश है। मानसमें 'रामानन्द' है और यह परमानन्दसे परिव्याप्त है। तुलसीके राम परमानन्दकारक हैं। जिसकी दृष्टिमें ये भगवान् प्रतीत नहीं होते, उसके लिये भी 'आनन्द'-तत्त्वसे मोहक तो रहते ही हैं। इन्हें देखकर खर-दूषण कहते हैं—

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥

इसी प्रकार *'देखि रामु सब सभा जुड़ानी'* आदि प्रसंग भी ध्यातव्य है। तुलसीने रामका परमानन्दस्वरूप बहुत्र उपस्थित किया है। रामायण-प्राकट्यका प्रसंग सती-मोहसे प्रारम्भ होता है। शिवकी बातोंपर पूर्ण विश्वास नहीं होनेसे रामके ज्ञानकी परीक्षाके लिये सतीने सीताका रूप धारण किया, अपने आराध्यदेव श्रीरामकी पत्नीका रूप धारण करनेके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण मातृरूपमें मानते हुए उन्होंने सतीसे शारीरिक सम्बन्ध विच्छिन्न कर दिया और कहा—

जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती॥

× × ×

एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाहीं। सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं॥

'योगाग्नि' में सतीने आत्मदाह किया, परंतु वर माँगा—***'जनम जनम सिव पद अनुरागा'।*** पुनर्जन्म हुआ और ***'नाम उमा अंबिका भवानी'*** पड़ गया। 'शिव'का संयोग तो प्राप्त हुआ परंतु 'अपर्णा' बननेपर। 'शिवा' तो बन गयीं, परंतु 'सती' (पूर्वजन्म) की शङ्का यथावत् थी। घोर तपके पश्चात् 'शिवा' बनीं। उमाके प्रश्नमें जिज्ञासाकी ऊर्जस्विता, शिष्यकी निश्चलता और उनका आर्तभाव व्याप्त था, भोलेनाथकी प्रसन्नताके लिये इतना ही पर्याप्त था—

प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई॥

प्रश्नकी उत्तरभूत विषयवस्तुका स्मरण हुआ और प्रेमा-भक्तिके लक्षणभूत प्रेम, पुलक (रोमाञ्च) और अश्रुजल आदि प्रकट होने लगे—

हर हियँ रामचरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए॥

प्रेमाभक्तिका यही लक्षण नवयोगेश्वरोंमेंसे प्रथमाग्रणी योगेश्वर कविने श्रीमद्भागवत (११।२।४०)में इस प्रकार बताया है—

एवं व्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति
गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥

'जो इस प्रकार विशुद्ध व्रत—नियम ले लेता है, उसके हृदयमें अपने परम प्रियतम प्रभुके नाम-कीर्तनसे अनुरागका, प्रेमका अङ्कुर उग आता है। उसका चित्त द्रवित हो जाता है। अब वह साधारण लोगोंकी स्थितिसे ऊपर उठ जाता है। लोगोंकी मान्यताओं, धारणाओंसे परे हो जाता है। दम्भसे नहीं, स्वभावसे ही मतवाला-सा होकर कभी खिलखिलाकर हँसने लगता है तो कभी फूट-फूटकर रोने लगता है। कभी ऊँचे स्वरसे भगवान्‌को पुकारने लगता है तो कभी मधुर स्वरसे उनके गुणोंका गान करने लगता है। कभी-कभी जब वह अपने प्रियतमको अपने नेत्रोंके सामने अनुभव करता है, तब उन्हें रिझानेके लिये नृत्य भी करने लगता है।'

रामचरितका स्मरण होते ही शिवको रामजीका ध्यान होने लगता है। शिव-हृदयमें रामके रमते ही परमानन्दका प्राकट्य हो जाता है—

श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा॥

और अब रघुपतिका चरित मानससे प्रवाहित होने लगा।

मगन ध्यानरस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥

परमानन्दमूर्ति श्रीरामके बालरूपकी महिमा स्वयं शिवने ही इस प्रकार निरूपित की है—

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें॥
जेहि जानें जगु जाइ हेराई। जागें जथा सपन भ्रम जाई॥
बंदउँ बाल रूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥
करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी॥

प्रतापी रावणके नामसे देवलोक काँप जाता था, उसे आते देखकर भगदड़ मच जाती थी—ऐसी स्थितिमें देवगण सुमेरुकी गुफामें छिप गये। पापके भारसे व्यथित पृथ्वीरूप-धारिणी गौके देवताओंके पास जानेपर उसे साथ लेकर देवता ब्रह्माजीसे मिले। ब्रह्माजीने भगवान् नारायणको ही शरण्य बतलाया। देवता उन्हें ढूँढ़नेके लिये वैकुण्ठ या क्षीरसमुद्र जानेकी बात सोचने लगे। इसपर भगवान् शंकरने कहा कि भगवान् विष्णु तो सर्वव्याप्तिलक्षणात्मक ही हैं। वे सभी देश, काल और दिशाओंमें व्याप्त हैं। प्रेमसे प्रार्थना करनेपर वे यहाँ भी प्रकट हो जायँगे। फिर देवताओं, ऋषि-मुनियोंकी करुण प्रार्थना—

जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा।
अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं माया रहित मुकुंदा॥

—पर भगवान्‌ने आकाशवाणीद्वारा आश्वस्त किया और सूर्यवंशमें महाराज दशरथके पुत्ररूपमें अवतीर्ण होनेकी भावी सूचना दी—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेषा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ ॥
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई ॥

महाराज दशरथको सभी आनन्द स्वाभाविक रूपसे प्राप्त थे। भगवान्‌के पुत्र-रूपमें प्राप्त हो जानेपर सर्वातिशायी ब्रह्मानन्द भी उन्हें प्राप्त हुआ—

दसरथ पुत्र जन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना ॥

प्रभुसे महाराज दशरथको 'वात्सल्यरति' मिली थी, अस्तु, यह भक्ति-रस-परिपाक 'ब्रह्मानन्द' ही था।

'सुत विषइक तव पद रति होऊ'—द्वारा वात्सल्य-रसमयी भक्तिका निर्देश है और **'रसो वै सः'** से इसका ब्रह्ममयत्व स्पष्ट है। ब्रह्मानन्दमें लीन होते ही दशरथजीके मनमें ***'परम प्रेम'*** भर गया, शरीरमें पुलक (रोमाञ्च) हो उठा—

परम प्रेम मन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा ॥

वे सोचने लगे कि जिसका नाम ही श्रवणमात्रसे परम मङ्गलका विस्तार कर देता है, साक्षात् वे प्रभु ही मेरे यहाँ आविर्भूत हो गये हैं—

जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरें गृह आवा प्रभु सोई ॥

—यह जानकर परमानन्दसे परिपूर्ण होकर राजाने बाजे-वालोंको बाजा बजानेके लिये कहा—

परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा ॥

अवधपुरी सज उठी, जीवंत हो गयी, घर-घर बधाईके गीत होने लगे। आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी और सभी देवता तथा मनुष्य आदि परमानन्दमें निमग्न हो गये—

पुष्पवृष्टि अकास तें होई। ब्रह्मानंद मगन सब लोई ॥

राजा दशरथके प्राङ्गण, अयोध्याकी गलियाँ, सरयूका किनारा, लताओंके कुञ्ज सौन्दर्य-सार रघुनन्दनके रमण-स्थल बन गये। राघवेन्द्रका यह लावण्य अद्वितीय, अतुलनीय किंवा अनुपमेय है।

तुलसी तेहि औसर लावनिता दस चारि नौ तीन इकीस सबै।
मति भारति पंगु भई जो निहारि बिचारि फिरी उपमा न पबै ॥

भगवान्‌के किशोरावस्थाकी सुन्दरताकी उपमाके अनुसंधानमें शारदा चौदहों भुवन, नवों खण्ड, तीनों लोक और इकीसों ब्रह्माण्डोंमें भ्रमण कर आयीं, किंतु उनकी बुद्धि पंगु अर्थात् हतप्रभ हो गयी और उनकी उपमा कहीं भी नहीं प्राप्त हुई।

जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई ॥

यह शोभा देखनेके लिये कल्याणमूर्ति शिवने कैलास छोड़कर काकभुशुण्डिको साथ लेकर अवधमें प्रवेश किया। प्रेम-रसमें सराबोर वे दोनों अवधकी गलियोंमें घूमते रहे और परमानन्दमें निमग्न होते रहे—

परमानंद प्रेमसुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले ॥

इसी परमानन्दके विग्रहका नामकरण कुलपति वसिष्ठको करना था। उन्होंने विचार किया और कहने लगे—इनके नाम अनेक हैं, सभी अनुपम हैं, परंतु आनन्दका समुद्र, सुखका भण्डार, सुखधाम, जगको विश्राम देनेवाला नाम 'राम' ही है—

इन्ह के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा ॥
जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी ॥
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा ॥

एक ही तत्त्वके चार रूप राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न नामसे महाराज दशरथके यहाँ बालक बने हैं, परंतु सुखसागर राम तो कुछ अलग ही हैं—

चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा ॥

विषयानन्दसे व्यतिरिक्त आनन्दका अतिरूप दान करनेमें परमानन्दमूर्ति श्रीराम सर्वोपरि हैं—***'अति अनंद दासन्ह कहँ दीन्हा।'***

यह विग्रह (राम) स्पृष्ट हुआ कि आनन्द भर जाता है। अहल्या तो हृदयहीन पत्थर थी, परंतु ***'परसत पद पावन'*** हुआ कि ***'गै पति लोक अनंद भरी'*** दिखायी दिया। रामके दिव्य स्वरूपको देखते ही महामुनि ज्ञानी (विश्वामित्र) भी बेसुध हो जाते हैं—

राम देखि मुनि देह बिसारी।
भए मगन देखत मुख सोभा। जनु चकोर पूरन ससि लोभा ॥

महर्षि विश्वामित्र इन परमानन्दमूर्ति श्रीरामको लेकर राजा जनकके 'धनुषयज्ञ'-महोत्सवमें पहुँचते हैं। विदेहावस्थाको प्राप्त योगिराज जनक जिन्हें ब्रह्मानन्द प्राप्त था, वे भी इन्हें देखकर अपना सुध-बुध खो बैठते हैं, मुनिराजसे परिचय पूछने लगते हैं और कहते हैं—वस्तुतः ये कौन हैं? इन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखकर मेरा मन तो अब इन्हींमें अनुरक्त हो गया और इसने स्वाभाविक रूपसे निरन्तर अपने परमप्रिय ब्रह्मानन्द सुखका हठात् सर्वथा परित्याग कर दिया—

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥

× × ×

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मनु त्यागा॥

इसके उत्तरमें महर्षि विश्वामित्रने कहा—

ये प्रिय सबहिं जहाँ लगि प्रानी।
रघुकुल मनि दसरथ के जाए। मम हित लागि नरेस पठाए॥

इससे जनकजी बहुत आनन्दित हुए और बोले—

सुंदर स्याम गौर दोउ भ्राता। आनँदहू के आनँद दाता॥
इन्ह कै प्रीति परसपर पावनि। कहि न जाइ मनभाव सुहावनि॥
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू॥

रामका परमानन्द-विग्रह जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ सुखकी वृष्टि होने लगती है, आनन्द उमड़ पड़ता है और सुखका साम्राज्य छा जाता है। जनकके लिये आनन्दप्रद, विश्वामित्रके लिये सुखनिधान, बच्चोंके मन और आँखोंको ललचानेवाली अति शोभामयी यह मूर्ति जनकपुरवासियोंने इस प्रकार देखी—*'मनहुँ रंक निधि लूटन लागी॥'* नागरिकोंने देखा कि उन्हें नयन-लाभ मिल गया और वे सुखी हो गये। यही झाँकी जब युवतियोंने झरोखोंसे झाँककर देखी तो वे सुमन बरसाने लगती हैं, वे आनन्दित हो गयीं, परमानन्द पा गयीं।

हियँ हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद।
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ तहँ तहँ परमानंद॥

यद्यपि मिथिलाकी युवतियोंके लिये *'निरखहिं राम रूप अनुरागी'* लिखा गया, किंतु उन्हें परिणामतः परमानन्द ही प्राप्त होता है।

राम कभी 'नरभूषन' तो कभी शृङ्गारकी अनूपमूर्ति प्रतीत होते हैं, परंतु सीताके लिये उनका स्वरूप-चिन्तन कवियोंके मन-वाणीके परेकी वस्तु है—

रामहिं चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया॥

ब्रह्मानन्दमें सदा लीन रहनेवाले सनकादि योगिजनोंने रामको देखा और वे परमानन्दमें निमग्न हो गये—

ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना॥
मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी॥

परमानन्द श्रीरामकी दशा देखिये—

तिन्ह कै दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक सरीरा॥

सनकादिकोंने हाथ जोड़कर 'प्रेमाभक्ति' की याचना की—

परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम॥

इस प्रकार तुलसीके राम मर्यादापुरुषोत्तम, अवतारी पुरुष, चरित-नायक, भगवान् किंवा अखिल ब्रह्माण्डनायक तो हैं ही, परंतु उनका मूलस्वरूप 'विशुद्ध आनन्दमय' है। वे परमानन्द हैं, आनन्द बाँटते रहे हैं, इसीसे वे मङ्गल-भवन, सुखमूल और करुणानिधान भी हैं।

प्रार्थना

हे परमात्मन्! मानव-जीवनकी समस्त प्रार्थनाओंके भीतर एक ही अत्यन्त गम्भीरतम प्रार्थना (आकाङ्क्षा) है, उसे हम अपनी बुद्धिसे स्पष्ट जानें या न जानें, उसे हम मुँहसे बोलें अथवा न बोलें, हमारे भ्रममें भी, हमारे दुःखमें भी, हमारी अन्तरात्मासे वह प्रार्थना (आकाङ्क्षा) सदा-सर्वदा तुम्हारे अभिमुख मार्ग खोजती रहती है। वह प्रार्थना यही है कि हम अपने समस्त ज्ञानके द्वारा शान्तको जान सकें, अपने समस्त कर्मोंके द्वारा शिवका दर्शन कर सकें, अपने समस्त प्रेमके द्वारा अद्वैतको प्राप्त कर सकें। फलके लाभकी आशाको हम तुमसे निवेदन करनेका साहस नहीं कर सकते, किंतु हमारी आकाङ्क्षा यही है कि समस्त विघ्न-विक्षेप-विकृतिके मध्यमें भी इस प्रार्थनाको हम समस्त शक्तिके साथ सत्यरूपसे तुम्हारे समीप उपस्थित कर सकें। हमारी समस्त अन्य वासनाओंको व्यर्थ करके हे अन्तर्यामिन्! केवल इसी प्रार्थनाको स्वीकार करो कि हम कभी-न-कभी ज्ञानमें, कर्ममें और प्रेममें यह उपलब्धि कर सकें कि तुम्हीं 'शान्तं शिवं अद्वैतम्' हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवतीय प्रवचन—३२

संयमकी शिक्षा

(संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)

एक बार विदुरजीने मैत्रेयजीसे अनेक प्रश्न पूछे—भगवान् अकर्ता हैं फिर भी कल्पके आरम्भमें इस सृष्टिकी रचना उन्होंने कैसे की ? संसारमें सभी सुखके लिये प्रयत्न करते हैं फिर भी न तो उनका दुःख दूर होता है और न तो उन्हें सुख मिलता है। ऐसा क्यों ? इन प्रश्नोंका उत्तर मिले, ऐसी कथा कीजिये और भगवान्की लीलाओंका वर्णन कीजिये।

मैत्रेयजीने कहा—सृष्टिकी उत्पत्तिकी कथा भागवतमें बार-बार आती है। तात्त्विक दृष्टिसे जगत् मिथ्या है। अतः साधुओंने उसका अधिक विचार नहीं किया है। किंतु सृष्टिके कर्ताका बार-बार विचार किया है।

परमात्माको मायाका स्पर्श हुआ तो उसने संकल्प किया कि मैं एकसे अनेक बनूँ। **'एकोऽहं बहु स्याम्।'** पुरुषमेंसे प्रकृति, प्रकृतिमेंसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वमेंसे अहंकार उत्पन्न हुआ। अहंकारके चार प्रकार हैं। फिर पञ्चतन्मात्रसे पञ्च महाभूतोंकी उत्पत्ति हुई। किंतु ये तत्त्व स्वयं कुछ भी क्रिया नहीं कर सकते थे, अतः ईश्वरने प्रत्येक वस्तुमें प्रवेश किया।

उपनिषद्में कहा है कि प्रत्येक वस्तुमें प्रभुने प्रवेश किया है, अतः सारा जगत् परमात्माका मङ्गलमय स्वरूप है।

भगवान्की नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ। उसमेंसे ब्रह्मा प्रकट हुए। ब्रह्माजीने कमलका मूल खोजनेका प्रयत्न किया तो चतुर्भुज नारायणके दर्शन हुए। ब्रह्माजीने उनका स्तवन किया।

संतति और सम्पत्ति भगवत्कृपाका फल नहीं है, प्रारब्धका फल है। भगवान् जिसपर कृपा करते हैं, उसका मन शुद्ध होता है। बिना मनःशुद्धिके ईश्वरका दर्शन नहीं होता। ईश्वर-दर्शनके बिना जीवन सफल नहीं होता।

जिसने मुझे जन्म दिया, उसे जाननेका मैंने प्रयत्न भी नहीं किया। मेरे-जैसा मूर्ख और कौन होगा।

ब्रह्माजीको भय लगा कि संसारमें आनेपर इन्द्रियाँ कहीं अनुचित मार्गपर न चली जायँ। ब्रह्माजीने सृष्टिका निर्माण किया। कामको जन्म दिया। कामने प्रथम पिताको मोहित किया।

प्रथम हुए स्वायम्भुव मनु और शतरूपा रानी। उस समय पृथ्वी तो रसातलमें डूबी हुई थी। ब्रह्माने सोचा कि प्रजाका निर्माण तो करूँ, किंतु उसे बसाऊँ कहाँ ? क्योंकि भूतधात्री पृथ्वीको चुराकर हिरण्याक्ष दैत्यने रसातलमें छिपा रखा था। अतः नासिकामेंसे वराह भगवान् प्रकट हुए। उन्होंने पृथ्वीको पानीमेंसे बाहर निकाला। मार्गमें मिले हिरण्याक्षको मारा और पृथ्वीका शासन मनुके हाथमें सौंपकर भगवान् वराह स्वधाम लौट गये।

विदुरजीने मैत्रेयजीसे कहा कि 'आपने तो बहुत संक्षिप्त कथा सुनायी। इस कथाका रहस्य क्या है ? वह हिरण्याक्ष कौन था ? धरती रसातलमें क्यों डूबी थी ? वराहनारायणका चरित्र मुझे सुनाइये।'

यह कथा मैत्रेयजीने विदुरजीको सुनायी थी और श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षित्को।

मैत्रेयजीने विदुरजीसे कहा—दिति कश्यप ऋषिकी धर्मपत्नी थीं। एक दिन सायंकालको दिति शृङ्गार करके पतिके पास आयी और उसने पुत्र-प्राप्तिके लिये उनसे प्रार्थना की।

कश्यपने कहा—'देवि ! यह समय सायंकालका है, पुत्र-प्राप्तिकी प्रार्थनाका यह अनुचित अवसर है। जाओ, दीपक जलाओ।'

शास्त्रमें कहा गया है कि सौभाग्यवती स्त्रीमें लक्ष्मीका अंश है। सायंकालके समय लक्ष्मीनारायण घर आते हैं। उस समय घर बंद होगा तो लक्ष्मीजी 'जय श्रीकृष्ण' कहती हुई वापस लौट जायँगी। आजकल तथाकथित सुधरे हुए लोग प्रायः सायंकालमें ही ताला लगाकर बाहर निकल पड़ते हैं। घूमने जाना ही हो तो सूर्यास्तके पूर्व घरमें लौट आना चाहिये। स्त्रियोंको चाहिये कि सायंकालमें घरके बाहर भटकती न फिरें। संध्या-समय तुलसीकी पूजा करनी चाहिये और वहाँ दीपक जलाना चाहिये। भगवान्के समीप धूप-दीप जलाना चाहिये।

मनुष्यके हृदयमें अन्धकार है। वहाँ प्रकाश जलाना है।

दशम स्कन्धमें कथा है—गोपियाँ यशोदाजीसे कहती हैं कि कन्हैया हमारा माखन चुराकर खा जाता है। यशोदा कहती हैं कि अँधेरेमें माखन रखा करो, जिससे कन्हैया उसे देख ही न पाये। गोपियाँ कहती हैं कि माखन तो अँधेरेमें ही रखा था, किंतु कन्हैयाके आते ही वहाँ प्रकाश हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर परप्रकाशी नहीं है, वह तो स्वयंप्रकाशी है। परमात्माको दीपककी आवश्यकता नहीं है। दीपककी आवश्यकता तो मानवको है।

सायंकालमें सूर्य और चन्द्रके तेज क्षीण होते हैं, दुर्बल होते हैं, सूर्य बुद्धिका स्वामी है और चन्द्र मनका। मन और बुद्धिके स्वामी सूर्य-चन्द्रके सायंकालमें दुर्बल होनेके कारण मन और बुद्धिमें काम उस समय प्रवेश पा जाता है। काम मनमें सांध्यवेलामें प्रवेश करता है और रात्रिको प्रकट होता है। संध्याकालमें प्रभुके नामका जप करोगे तो मनमें कामका प्रवेश नहीं हो पायेगा।

कश्यप ऋषि दितिको समझाते हैं कि मानिनि ! मान जाओ। भूतभावन भगवान् शंकर इस समय अपने गण—भूत-प्रेतादिको साथ लिये हुए बैलपर चढ़कर विशेषरूपसे विचरा करते हैं। अतः इस समय ऐसा करनेसे भगवान् शंकरका अपमान होगा और अपमानके कारण अनर्थ होगा।

'भस्मान्तं शरीरम्।' इस शरीरका अन्तमें तो भस्म ही होगा। अतः शिवजी भस्म लगाते हैं और जगत्को वैराग्यका बोध कराते हैं। शरीरका अतिशय लालन न करो। सर्वदा स्मरण रखो कि इस शरीरको एक-न-एक दिन श्मशानमें ही जाना है। गृहस्थाश्रम विलासके लिये नहीं है, परंतु मर्यादामें रहकर विवेकसे गार्हस्थ्य-सुखका उपभोग करके कामपर विजय पानेके लिये है, वैराग्यके लिये है। नियमपूर्वक कामके विनाशके लिये यह गृहस्थाश्रम है। काम ऐसा दुष्ट है कि एक बार हृदयमें प्रवेश करनेके पश्चात् वह बाहर निकलता ही नहीं है। एक बार कामके अंदर प्रविष्ट होनेपर तुम्हारा सारा सयानापन हवा हो जायगा। अतः जीवन ऐसा सादा और पवित्र बनाओ कि राग मन-बुद्धिमें प्रवेश करनेका अवसर कभी पा ही न सके।

उल्लुओंने एक सभामें प्रस्ताव पास किया, 'सूर्य-नारायणका अस्तित्व है ही नहीं, क्योंकि वे हमें दिखायी नहीं देते।' उल्लू सूर्यको देख न सके तो क्या इसका अर्थ यह है कि सूर्यका अस्तित्व ही नहीं है ? धर्ममें आस्था न रखनेवाले, ईश्वरको न माननेवाले उल्लूके बड़े भाई ही हैं।

दितिकी भेद-बुद्धिमेंसे ही इन हिरण्याक्ष और हिरण्य-कशिपुका जन्म हुआ है। सभीमें मेरे नारायणका वास है। ऐसा अभेदभाव रखनेपर पाप नहीं होगा।

दितिने कश्यपकी बात न मानी और कश्यप भी दितिके दुराग्रहके आगे अवनत हो गये। अन्तमें दितिको अपनी क्षतिका भान हुआ। वह पछतायी। उसने कश्यपकी पूजा की और भगवान् शिवजीसे क्षमा-याचना की।

कश्यपने कहा कि 'तुम्हारे गर्भसे दो राक्षस उत्पन्न होंगे।'

पति और पत्नी उचित संयमका पालन न करें तो उनसे पापी प्रजाकी उत्पत्ति होती है। पवित्र तिथि जैसे कि दोनों पक्षोंकी द्वितीया, पञ्चमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्या तथा पर्वोंके दिन ब्रह्मचर्यका पालन अवश्य करना चाहिये। लोग कहते हैं कि काल बिगड़ गया है, अतः पापी प्रजा उत्पन्न हो रही है। वैसे काल भी कुछ-कुछ बिगड़ा तो है ही, पर लोगोंका हृदय अधिक बिगड़ गया है। एकादशी, पूर्णिमा तथा पवित्र दिनोंका विचार किये बिना ही कामान्ध हो जाते हैं, अतएव पापी प्रजा उत्पन्न हो रही है।

मनुष्य केवल इस शरीरका ही विचार करेगा, तो भी उसके हृदयमें शरीर-सुखके प्रति तिरस्कारभाव उत्पन्न होगा और वैराग्यके भावोंकी उत्पत्ति होगी। यह शरीर कैसा है? इसमें हड्डियाँ टेढ़ी-तिरछी बिठा दी गयी हैं। उसपर मांस रख दिया गया है और फिर त्वचासे मढ़ दिया गया है। अतः अंदरकी वस्तुएँ नहीं दीखतीं। अन्यथा रास्तेमें पड़े हुए हड्डीके टुकड़ेको कोई भी स्पर्श नहीं करेगा। वह सोचेगा कि उसे स्पर्श करनेसे शरीर अपवित्र हो जायगा। परंतु वही मनुष्य देहमें छिपी हुई हड्डियोंसे प्रेम करता है। ऐसी मूर्खता दूसरी और क्या होगी।

भागवतमें एक स्थानपर कहा गया है कि शरीर तो कुत्ते और लोमड़ीका भोजन है। अग्निसंस्कार न हो तो इसे कुत्ते ही खायेंगे। ऐसे शरीरका मोह छोड़ देना चाहिये।

जब दितिने जाना कि उसके गर्भसे राक्षस उत्पन्न होंगे तो वह घबड़ा गयी। कश्यपने कहा कि उनका संहार करनेके लिये भगवान् नारायण आयेंगे। दितिने कहा कि तब तो मेरे पुत्र बड़े भाग्यशाली होंगे।

कश्यपने दितिको ऐसा भी आश्वासन दिया कि तेरा पौत्र महान् भगवद्भक्त और महान् वैष्णव होगा और प्रह्लाद नामसे जगत्में विख्यात होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त-गाथा—

भक्त जन-जसवंत

(श्रीदिवाकरजी जोगलेकर साहित्यरत्न)

संवत् १६६५ के लगभग बागलाणका प्रदेश (नासिक) प्रतापशाह नामक राजपूत राजाके अधिकारमें था। मुल्हेरके किलेमें उसका निवास था। राज्यमें अन्न-वस्त्रकी कमी नहीं थी। प्रजा बड़े सुखसे जीवन-यापन करती थी। यद्यपि राज्यका प्रबन्ध कुछ दक्ष मन्त्रियोंके कारण साधारणतया ठीक था तथापि चापलूसी करनेवालोंका भी अभाव नहीं था।

कहा जाता है कि भक्त जन-जसवंतके पिता श्रीजनार्दन पंत राजाका पौरोहित्य किया करते थे, कभी-कभी राज-काज चलानेमें भी कुछ सहायता कर दिया करते थे। जनार्दन पंत शुक्लयजुर्वेदी वाजसनेयी माध्यन्दिन शाखाके शाण्डिल्यगोत्री पवित्र ब्राह्मण थे। ऐसे उच्च पवित्र कुलमें 'जन-जसवंत'का जन्म हुआ था। सातवें वर्षमें उनका यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ। थोड़े ही समयमें उन्होंने अपने पौरोहित्य कार्यके लिये जितना आवश्यक था, उतना अध्ययन कर लिया। दसवें वर्षमें उस समयकी प्रथाके अनुसार उनका विवाह कर दिया गया। इसके पश्चात् शास्त्रोंका भी अध्ययन हुआ। जसवंत स्वभावतः अध्ययनशील और सदाचारपरायण थे, परंतु कहा जाता है कि युवावस्थामें उनका एक बार अपनी पत्नीके प्रति विशेष आकर्षण हो गया था और वे उनका साथ कभी छोड़ना ही नहीं चाहते थे। फल यह हुआ कि आध्यात्मिक प्रवृत्ति तो दूर रही, व्यावहारिक कार्योंके प्रति भी उनका ध्यान नहीं रहा। धर्मपरायणा राजमाता चन्द्रावती अपने पुरोहित जनार्दन पंतके पुत्र जसवंतको उसकी सद्बुद्धिके कारण बहुत चाहती थीं। उनको जसवंतका इस प्रकारका बर्ताव अच्छा नहीं लगा। राजमाताने मौका पाकर जसवंतको बुलाया और विषयासक्तिका दुष्परिणाम बतलाकर उन्हें उचित शिक्षा दी और कहा—'यदि वह सांसारिक कार्योंको करते हुए भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा तन, मन, धनसे करेगा तो उसका उद्धार होनेमें देर नहीं लगेगी।' सौभाग्यवश राजमाताके हृदयस्पर्शी उपदेशसे थोड़े ही कालमें जसवंतको अपनी प्रवृत्तिपर पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने कामपर विजय प्राप्त की। तत्पश्चात् वे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा साधु-संतोंकी सेवामें लग गये।

कुछ दिनों बाद उन्होंने सुना कि मुल्हेरके पास गणपति धुरें नामक ग्राममें दो सिद्ध योगी पधारे हैं। अतः वे उनके दर्शनार्थ गये और फिर उन्होंने उनकी सेवा करना आरम्भ किया। जसवंत प्रतिदिन उनके लिये अपने घरसे भोजन ले जाते थे और योगियोंके भोजनके पश्चात् घर लौटकर स्वयं भोजन करते थे। योगियोंके साथ भगवच्चिन्तनमें उनका समय व्यतीत होता था। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। एक बार भोजन ले जाते समय मार्गमें उन्हें श्याम और गौर वर्णके दो युवक मिले। वे कहने लगे—'हम भूखे हैं, हमें भोजन दो।' इसपर जसवंतने कहा कि 'यह भोजन तो मैं योगियोंके लिये ले जा रहा हूँ। उनको देकर फिर आपके लिये घरसे दूसरा बनवाकर ला दूँगा।' यों कहकर जसवंत योगियोंके स्थानपर पहुँचे, परंतु उनको वे नहीं मिले। इससे उन्हें बड़ी निराशा हुई। विचार किया कि मार्गमें जो दो युवक मिले थे, उन्हें भोजन दे दूँ। आश्चर्यकी बात हुई कि वे दोनों भी वहाँसे कहीं चले गये। जसवंतके मनमें आया कि निश्चय ही इसमें कोई गूढ़ रहस्य है। अब उनकी मानसिक स्थिति विचित्र-सी हो गयी। उन्हें ऐसा लगा कि वे दोनों योगी और युवक सम्भवतः भगवान् राम-लक्ष्मण ही थे। अब तो वे उनकी खोजमें लग गये और मनमें निश्चय कर लिया कि उनका पता लगाये बिना घर नहीं जाऊँगा। जसवंतको उनके अतिरिक्त अब संसारमें किसी भी वस्तुके प्रति कोई रुचि नहीं रह गयी। उनकी खोजमें जसवंत जंगलमें इधर-उधर भटकते रहे। आशा-निराशाका झगड़ा चल रहा था। उन्हें और कुछ भी नहीं सूझता था। आखिर चलते-चलते वे थक गये। नींद आ गयी। स्वप्नमें भगवान्ने दर्शन देकर कहा—'पञ्चवटीमें जाकर मेरी सेवा करो, वहाँ दर्शन होंगे।'

सात दिन हुए जसवंतका पता नहीं था। घरमें सब लोग चिन्ताग्रस्त हो गये। लोगोंने ग्राम और उसके आस-पासका कोना-कोना छान डाला, पर कहीं जसवंतका पता नहीं मिला। एक दिन उनकी पत्नीने अकस्मात् उन्हें घरपर आये देखा। वह आश्चर्य और आनन्दमें भरकर पूछने लगी—'इतने दिन आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहाँ थे ?' जसवंतने पत्नीसे सारा वृत्तान्त कह दिया। धीरे-धीरे ग्राममें यह बात फैल गयी। अपने उपदेशकी सफलता देख राजमाता तो आनन्दमें डूब गयीं। जसवंतकी वृत्ति अब शान्त, दृढ़ और संयमपूर्ण हो गयी थी।

इस घटनाके पश्चात् राजमाताकी आज्ञा लेकर जसवंत पञ्चवटी गये। वहाँ एक गुहामें रहकर उन्होंने कठोर तप किया। ब्राह्म मुहूर्तसे लेकर रात्रिको निद्राके समयतक भजन, ध्यान, धारणा, उपासना आदि साधन लगातार चलने लगा। वे केवल कन्द-फल-मूलपर अपना निर्वाह करते थे। किसीसे कुछ नहीं माँगते-लेते थे। इस प्रकार भजन-ध्यान और नाम-संकीर्तनमें वे तन्मय हो गये। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि जसवंत अब उपदेश-ग्रहणके योग्य हो गया है। उन्होंने जसवंतको स्वप्नमें पुनः दर्शन दिया। जसवंतने देखा कि धनुर्धारी भगवान् श्रीराम सीताजी और हनुमान्‌जीके सहित खड़े हैं और अत्यन्त प्रसन्नतासे कृपाकी वर्षा-सी करते हुए आदेश दे रहे हैं कि तू अब गुरुसे उपदेश ग्रहण करने योग्य हो गया है। अतः काशी जाकर मेरे परम प्रिय भक्त तुलसीदाससे उपदेश ग्रहण कर। जसवंतने कहा—'भगवन्! अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। मेरा मनोरथ सफल हो गया। आपके इस दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गया, आप ही मेरे स्वामी, माता, पिता, गुरु सब कुछ हैं।' इसपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि 'तेरी यह बुद्धि तो बहुत ही ठीक है, मैं तुझपर बहुत प्रसन्न हूँ, पर तू मेरी आज्ञा मानकर काशी जा।' वे भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन और आदेशसे अपनेको धन्य-धन्य मानने लगे।

जसवंतको अपने ग्रामसे होकर काशी जाना था। ग्राममें पहुँचते ही उन्हें समाचार मिला कि उनकी आदिगुरु धर्मपरायणा राजमाता चंद्रावतीजीका स्वर्गवास हो गया। जसवंतने उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पण की। ग्रामवासियोंको जसवंतके काशी जानेका विचार ज्ञात होते ही उनमेंसे कुछ लोग तीर्थाटनके उद्देश्यसे उनके साथ हो लिये। उन्हें जसवंतके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। वे जसवंतको बड़ा भक्त मानते थे। जसवंतकी पत्नी और उनके साले तात्याजी भी उनके साथ काशीको रवाना हुए।

जसवंत मण्डलीके साथ-साथ सातपुड़ा पहाड़के सेंधवा घाटके निर्जन प्रदेशसे होते हुए चले जा रहे थे। रास्तेमें डाकुओंने उन सबको घेर लिया। सब डरके मारे काँपने लगे, उनका धैर्य नष्ट हो गया, भागनेके लिये कोई मार्ग नहीं था। इस कठिन परिस्थितिमेंसे पार जाना उनके लिये एक गम्भीर समस्या हो गयी। जसवंत महाराजने सबको धीरज देते हुए कहा—'आपलोग घबरायें नहीं। भगवान्‌का स्मरण करें। शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही सबके एकमात्र रक्षक और सहायक हैं। वे दीनबन्धु हैं। आपलोग उन्हें पुकारिये। सच्चे हृदयकी आर्त पुकार वे अवश्य सुनते हैं। शोक-मोह और विषादमें फँसकर धैर्य खोनेसे आप बच नहीं जायँगे, परंतु आर्तत्राणपरायण भगवान्‌का भजन अवश्य आपकी रक्षा करेगा। मेरे साथ ही आप सब लोग भगवान्‌के नामकी पुकार कीजिये।' भक्त जसवंतकी बात सुनते ही सब लोगोंमें हिम्मत आ गयी और वे आनन्द तथा विश्वासके साथ भगवान्‌का नाम-कीर्तन करने लगे। उनके अगुआ जसवंत ही थे। रामनामसे आकाश गूँज उठा। थोड़े ही समयमें सब लोगोंने देखा कि घेरा डालनेवाले लुटेरे भागे जा रहे हैं। डाकुओंने देखा कि कोई एक घुड़सवार हाथमें धनुष-बाण लिये उनको ललकार रहा है। उन्हें ऐसा लगा कि यह अभी सबको बाणोंसे बींध डालेगा। इससे वे सब भागकर अपने सरदारके पास पहुँचे। सरदारने उस सवारके पास आकर क्षमा माँगी, किंतु सवारने उससे कहा—'तुमलोग जसवंतजीकी शरणमें जाओ, वे ही तुमलोगोंको बचा सकते हैं।' इतना कहकर सवार अन्तर्धान हो गया। डाकू-सरदार आश्चर्यमें पड़कर जसवंतकी शरणमें गया। जसवंतके पूछनेपर उसने सारी घटना सुनायी। जसवंतको यह समझते देर नहीं लगी कि शरणागतकी रक्षा करनेवाले परम दयालु भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने ही सवारका रूप धारण कर हमारी रक्षा की है। उनका हृदय द्रवित हो गया, शरीर पुलकित हो गया। आँखोंसे आनन्दके आँसू बहने लगे। उन्होंने कहा—'सरदार! आपलोग धन्य हैं, जो आपको तथा आपके आदमियोंको भगवान्‌के दुर्लभ दर्शन हुए।' यह सुनकर डाकू-सरदार आश्चर्यचकित हो गया। उसको अपने बुरे कृत्योंके लिये बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था। उसने महाराजसे क्षमा माँगी। जसवंतने उसे अभय देकर कहा कि 'अबतक जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ, सो हुआ, भविष्यमें ऐसे बुरे और नृशंस कृत्योंको छोड़कर राम-भजनमें लग जाओ, जिससे तुमपर भगवान्‌की कृपा और भी होगी।' उसी समयसे वह डाकू राम-भक्त बन गया।

इस प्रदेशको जनशून्य देखकर जसवंतने सरदारसे उसका कारण पूछा। सरदारने बताया कि हमलोग भील हैं, मैं राजा हूँ। इस प्रान्तके सूबेदारके साथ हमारा झगड़ा हो गया था। फलस्वरूप सूबेदारने हमारे लड़केको कैद कर लिया। उसका बदला लेनेके लिये सूबेदारके इस प्रदेशको लूट-मार आदि उपद्रव करके हमलोगोंने निर्जन कर दिया। हमलोगोंके भयसे यहाँ कोई नहीं आता। यह सुनकर जसवंतजीने सूबेदारको बुलवाया और दोनोंमें समझौता करा दिया। वे पूर्ववत् मित्रताके साथ रहने लगे।

यात्रियोंकी मण्डली आगे बढ़ी। मालवामें जसवंतकी कीर्ति सुनकर असंख्य लोगोंने भगवान्‌के नामसंकीर्तनका लाभ उठाया। जसवंतजीकी वाणीमें प्रेम और आकर्षण था। उसका प्रभाव पड़ते देर नहीं लगती थी। वे उचित उपदेश देकर सबको सन्मार्गपर लगाते थे। इस प्रकार मार्गमें स्थान-स्थानपर राम-नामकी लूट होती रही। धीरे-धीरे यात्रियोंका दल प्रयाग होते हुए आनन्दके साथ काशी पहुँचा।

जसवंत यात्रियोंके साथ यद्यपि तीर्थाटन-विधि करनेमें व्यस्त थे, तथापि काशी जानेके मूल उद्देश्यको वे भूले नहीं थे। कहते हैं कि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीको जसवंतके सम्बन्धमें स्वप्न हुआ था। जसवंतके आगमनकी बात सुनकर वे आनन्द-पुलकित हो गये। जसवंत समित्पाणि होकर गुरुजीकी शरणमें गये। गोसाईंजीने जसवंतको आश्वासन देकर रामतत्त्वका उपदेश दिया। उपदेश ग्रहण करनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि जसवंतकी भूमिका पहलेसे ही भक्त और सत्-शिष्यकी थी। गोसाईंजी जसवंतकी बुद्धिमत्ता और सदाचरण देखकर मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। कुछ दिनोंके बाद तुलसीदासजीकी आज्ञासे जसवंतजी गयाजी हो आये। पुण्यस्थली काशीकी शोभा और पवित्रता देखकर यात्रियोंका जीवन सफल हो गया। जसवंत सब साथियोंको बिदा देकर स्वयं काशीमें ठहरे। कहते हैं कि वे एक बार गोस्वामीजीके साथ वृन्दावन भी गये थे।

काशीमें जसवंतने गुरुदेवकी संनिधि और सेवामें प्रसन्नतापूर्वक अपना काल बिताया। इसके बाद गुरुजीकी आज्ञा लेकर वे स्वदेश लौटनेके लिये प्रस्तुत हुए। बिदा होते समय गोस्वामी तुलसीदासजीने उनको पूजाके लिये प्रेमपूर्वक श्रीहनुमान्‌जीका सुन्दर विग्रह प्रसादस्वरूप दिया।

लौटते समय मार्गमें जसवंतको पाँच सौ साधुओंका एक दल मिला। वे द्वारका जा रहे थे। जसवंतजी उनके साथ हो लिये। द्वारका होकर सब लोग डाकोर गये। वहाँ तीर्थविधिका आचरण करके सब आगेकी यात्राके लिये चले। भजन, कीर्तन और सत्संग यही उनका विषय था। साधुओंने जसवंतमें अलौकिक गुणोंका अनुभव किया। मार्गमें उन्हें एक वीरान प्रदेश मिला। गरमियोंके दिन थे, कड़ाकेकी धूप थी। साधु प्यासके मारे तड़पने लगे। यह देखकर जसवंतने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी प्रार्थना की । उन्होंने कहा—'मेरे प्रभो ! ये साधु बड़े ही कष्टमें हैं। इस वृक्षहीन और निर्जल प्रान्तमें तुम्हारे बिना जल देनेवाला कौन है ? तुम दयासागर हो। जलके बिना मीन कैसे जीयेंगे ?' कहा जाता है, जसवंतको एक सूखा कुआँ दिखायी दिया। वे कुएँके पास गये और भगवान्‌का नाम लेकर उन्होंने अंदर एक पत्थर डाल दिया। बस, भगवत्कृपासे उसमें पानी आ गया। साधुओंको आश्चर्य हुआ। गद्‌गद होकर सबने जलपान किया। कहते हैं कि अब भी 'जसवंतनो कुवो' के नामसे यह कुआँ प्रसिद्ध है। साधुओंने संतुष्ट होकर जसवंतको 'जल-जसवंत' की उपाधि दी। यहाँसे जसवंत उनसे अलग होकर अपने गाँवकी ओर चले। कुछ समयमें जसवंत अपने गाँव मुल्हेर पहुँचे। उनको आया देखकर सब लोगोंको बड़ा आनन्द हुआ। मन्दिरमें लगातार आनन्दोत्सव भजन-पूजनादि होने लगा। उत्सवोंकी धूम मच गयी। जसवंत कविता भी करते थे। उन्हें लोग 'जन-जसवंत' या 'जनि-जसवंत' के नामसे पुकारने लगे। राजा प्रतापशाहको समाचार मिला कि जसवंत लौट आया है और वह बड़ी अच्छी कविता बनाता है। राजाकी इच्छा हुई कि 'जसवंत मेरा गुणगान करे।' इसलिये राजाने जसवंतको दरबारमें बुला भेजा। जसवंतको पता नहीं था कि राजाका गुणगान करनेके लिये उसे बुलाया गया है। जब राजाने जसवंतसे अपनी कीर्तिका गान करनेके लिये कहा, तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जसवंतको पता लगा। उन्हें यह बात अच्छी नहीं लगी और उन्होंने उत्तर दिया कि मैं तो केवल अपने भगवान्‌का ही गुणगान करना जानता हूँ। उन्होंने तुरंत पद्य-रचना करके कहा कि 'जो भगवान्‌का स्तवन न करके किसी मनुष्यको संतुष्ट करनेके लिये उसका स्तवन करता है, वह एक 'खरमुख' (गधेके मुँहके समान मुखवाला) ही माना जायगा। आप राजा हैं, जैसा करेंगे वैसा ही आपको फल मिलेगा, किंतु पूर्वका सूर्य पश्चिममें क्यों न उग जाय, मैं तो श्रीहरिका ही गुण गाऊँगा।' जसवंत किसीसे डरता नहीं।

अहंकारी राजाको जसवंतके वचन बहुत बुरे लगे। उस घमंडी राजाने तुरंत ही सेवकोंको आज्ञा दी कि जसवंतकी पोट बाँधकर उसे तालाबमें डुबा दो। सत्यनिष्ठ, दरबारी और प्रजाके लोगोंने राजासे प्रार्थना की कि यह काम बहुत बुरा है। ऐसा नहीं करना चाहिये, परंतु मदमत्त राजाने उनकी एक न सुनी। राजाके क्रूर सेवकोंके द्वारा जसवंत तालाबमें डुबो दिये गये, परंतु—

जाको राखे साइयाँ मार सकै नहिं कोय।
बाल न बाँका करि सकै सब जग बैरी होय॥

—इस उक्तिके अनुसार कहा जाता है कि भगवान्‌ने कूर्मका रूप धारणकर उन्हें अपनी पीठपर ले लिया और किनारेपर लाकर छोड़ दिया। यह देखकर सब लोग जसवंतकी भक्ति और उनपर भगवान्‌की जो कृपा है, उसकी प्रशंसा करने लगे। सब उनको अनन्य भक्त मानने लगे। जसवंतने कहा—

कोई निन्दो कोई बन्दो, कोई कैसो कहो रे।
रघुनाथ साथे प्रीति बाँधी, होय तैसे होय रे॥
कामलियामें मोट बाँधी, नीर था भरपूर रे।
रामचन्द्रने कूर्म होकर, राख लीन्हों पीठ रे॥
चन्द्र सूर्य जैसि ज्योति थंभ बिनु आकाश रे।
जल उपर पाषाण तारे, क्यूं न तारे दास रे॥
जपत शिव सनकादि मुनिजन, नारदादिक संत रे।
जन्म जन्मके स्वामि वर रघुनाथ, दास जनि जसवंत रे॥

यह पद्य महात्मा गाँधीकी 'आश्रम-भजनावली' (पृ० १२० पर, भजन ७९) में मिलता है। इसमें हमें जसवंतजीकी दृढ़ भक्तिका परिचय प्राप्त होता है।

इस घटनाके पश्चात् जसवंतने तुरंत ही ग्राम छोड़नेका निश्चय किया और वे तापी नदीके किनारेपर बोरठे नामक ग्राममें जाकर एकान्तवास करने लगे। वहाँ वे आनन्दके साथ भगवद्‌भजनमें अपना काल व्यतीत करने लगे। वे लोगोंको उनकी योग्यतानुसार उपदेश देते थे और प्रतिदिन हरिकीर्तन करते थे। कहा जाता है कि एक बार तापी नदीमें जोरकी बाढ़ आनेके कारण ग्रामके बह जानेकी आशङ्का हो गयी। सब ग्रामवासी निराश हो गये। जसवंतने इस समय श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे तुलसीदासजीके दिये हुए श्रीहनुमान्‌जीके श्रीविग्रहको नदीके किनारेपर रखा। बस, मूर्ति रखते ही जल धीरे-धीरे हट गया। कहते हैं कि 'हनुमान्‌जी सब पानी पी गये।' इस प्रकार वह गाँव बाढ़के भारी खतरेसे बच गया। आजकल यह मूर्ति ग्राम कुकरमुंडे (तहसील-तलोदे-पश्चिम खानदेश) में है। यह ग्राम बोरठे ग्रामसे चार मीलकी दूरीपर है। वहाँ उनके अनेकों अनुयायी हो गये। उस ग्राममें गुजराती धनी लोग रहा करते थे। जसवंतजीके प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा-भक्ति थी। उन्होंने जसवंत महाराजके लिये एक सुन्दर राममन्दिर बनवाया।

जसवंत अपना अधिकांश समय भगवान्‌के गुणगानमें ही व्यतीत करते थे। उनकी कविता आजकल उपलब्ध नहीं है। कुछ थोड़ी ही उपलब्ध हो सकी है, जिसमें रामजन्म, हनुमान्‌जीका लंका जाना, सीतासुधि आदि कुछ प्रसङ्ग हैं *।

इस प्रकार जसवंतजी महाराजने अपना जीवन-कार्य समाप्त करके तापी नदीके तटपर संवत् १६७४ की फाल्गुन शु० ८ को समाधि ग्रहण की। बोरठेमें तापीके जलमें एक शिलाखण्डपर उनकी पादुका स्थापित की गयी है।

---

* यह लेख समर्थभक्त श्रीशंकर श्रीकृष्णदेव, समर्थ-वाग्देवता मन्दिर, धुलियाके लेखके आधारपर लेखकने लिखा है। भक्त जन-जसवंत गोस्वामीजी श्रीतुलसीदासजीके शिष्य बतलाये गये हैं। पता नहीं यह कहाँतक ठीक है। जन-जसवंतजीकी जो कविताएँ मिली हैं, सभी हिंदीमें हैं, यद्यपि छन्दकी दृष्टिसे शुद्ध नहीं हैं। इन अज्ञात भक्तकी जीवनीसे लोग लाभ उठावेंगे, ऐसी आशा है।—(सं०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Siddhanta eGangotri Foundation, Chennai and eGangotri

आयुर्वेदविज्ञान एवं आचार-रसायन

(पं० श्रीवासुदेवजी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य)

पुरुष जिस शास्त्रसे आयुष्यके विषयमें ज्ञान प्राप्त करता है, (फलस्वरूप आयुकी वृद्धि होती है) मुनिवरोंने उसे आयुर्वेद कहा है—

अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेत्ति च।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेद इति स्मृतः॥

(चरक)

आयुर्वेदके अतिरिक्त विश्वके किसी भी अन्य चिकित्साशास्त्रमें दीर्घजीवन, संयम, सदाचार, रसायनद्वारा वार्धक्य तथा रोग-निवारण, अरिष्ट-विज्ञान आदिका सम्यक् विवेचन नहीं हुआ है। आयुर्वेद केवल चिकित्साशास्त्र ही नहीं, अपितु पूर्ण जीवन-विज्ञान है। आयुर्वेदका मुख्य प्रयोजन महर्षि चरकने इस प्रकार बताया है—

स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनम्।

'स्वस्थ पुरुषके स्वास्थ्यकी रक्षा तथा रोगीके विकारका प्रशमन करना आयुर्वेदका मुख्य प्रयोजन है।' अति प्राचीन कालसे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूपसे पृथ्वीके मानवोंकी आयुर्वेदद्वारा सेवा होती आ रही है।

आयुर्वेदका अनादित्व

आयुर्वेद अथर्ववेदका उपवेद है। सृष्टिके प्रारम्भमें प्रजापति ब्रह्माजीने लक्षात्मक श्लोकोंमें लोकोपकारके लिये इसकी रचना की थी, ग्रन्थमें एक हजार अध्याय थे—

इह खलु आयुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रं च कृतवान् स्वयम्भूः।

वेदके समान आयुर्वेदकी परम्परा भी नित्य सनातन एवं अनादि है। पुराकालमें पुरुषोंकी आयु चार सौ वर्षकी होती थी। उनका शरीर स्वस्थ एवं पुष्ट होता था। कालक्रमसे अधर्मका प्रादुर्भाव होनेसे आयु, आरोग्य तथा बलका ह्रास होने लगा और उसी प्रमाणमें सुख-शान्तिका ह्रास होता गया। दीर्घ आयु और चिर आरोग्यकी उपलब्धिके लिये महर्षि चरकने महत्त्वपूर्ण 'आचार-रसायन' की प्रक्रिया निर्दिष्ट की है।

यह रसायन वास्तवमें कोई पेय-ओषधि नहीं है, एक प्रकारकी नियमित आचार-प्रक्रिया है, जो रसायनसे भी अधिक कार्य करती है। यदि व्यक्ति इस आचार-रसायनके अनुसार अपनी दैनिक-चर्या व्यतीत करता है तो दीर्घ आयुष्यकी प्राप्तिके साथ ही स्वस्थ एवं सुखी रहता हुआ धर्माचरणमें सर्वथा सक्षम होता है और सात्त्विक सुख एवं आनन्दका उपभोग कर सकता है।

स्वयं महर्षि चरकने आचार-रसायनकी परिभाषा इस प्रकार की है—

सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तं मद्यमैथुनात्।
अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम्॥
जपशौचपरं धीरं दाननित्यतपस्विनम्।
देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चने रतम्॥
आनृशंस्यपरं नित्यं नित्यं करुणवेदिनम्।
समजागरणस्वप्नं नित्यं क्षीरघृताशिनम्॥
देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिज्ञमनहंकृतम्।
शास्त्राचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम्॥
उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम्।
धर्मशास्त्रपरं विद्यान्नरं नित्यरसायनम्॥
गुणैरेतैः समुदितैः प्रयुंक्ते यो रसायनम्।
रसायनगुणान् सर्वान् यथोक्तान् स समश्नुते॥

'जो व्यक्ति सत्यवादी, अक्रोधी, मद्य तथा मैथुनसे निवृत्त, हिंसारहित अनायास अर्थात् (शारीरिक, मानसिक अधिक श्रमसे रहित), अति शान्त, मृदुभाषी, जप और शुद्धिमें तत्पर, धैर्यशाली, प्रतिदिन दान करनेवाला तथा तपस्वी है, जो देव, गौ, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु तथा वृद्धोंके अर्चन (सत्कार) में रत है, नित्य अनृशंसता (अक्रूरता) परायण तथा प्राणिमात्रको दयाकी दृष्टिसे देखता है, जिसका जागरण एवं निद्रा प्रकृतिके अनुकूल है, जो नित्य घृत, दुग्धका सेवन करता और जो देश, काल (परिस्थिति)के प्रभावका ज्ञाता है, युक्तिज्ञ (कौशलसे कार्य करता) है तथा अहंकारशून्य है, जो शास्त्रोंके अनुकूल आचरण करता है, उदार प्रकृतिका है, जिसके मन, बुद्धि और विचार अध्यात्मकी ओर प्रवृत्त हैं, जो जितात्मा, आस्तिक, वृद्धोंका सेवक है, जो धर्मशास्त्रपरायण है, वह यदि रसायनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन गुणोंका सेवन करता है तो वह यथोक्त फलोंको प्राप्त करता है। महर्षि चरकका ओषधिरहित यह आचार-रसायन आजके विश्वको आयुर्वेदकी अद्भुत एवं अनुपम देन है।

आज परिस्थिति कुछ ऐसी हो गयी है कि जहाँ एक ओर तो जीवनमें चिन्ता, शोक, आयास उत्पन्न करनेवाली विषम समस्याएँ मुँह बाये खड़ी हैं, वहीं दूसरी ओर मनको शान्त करनेमें सहायक हो सके,ऐसी चर्या क्रमशः लुप्त होती जा रही है। न वह प्रातःकालीन ब्राह्म-मुहूर्तमें शय्या-त्याग रह गया है, न प्रातः शुद्ध वायुमें भ्रमण करना। न संध्या रह गयी है, न प्राणायाम रह गया है, न सूर्य-नमस्कार एवं सूर्योपासना ही रह गयी है। न व्रत, न शुद्धता, न वह भूतदया, न वृद्धों तथा अतिथियोंका सम्मान ही रह गया है। प्रायः रह गयी है केवल सतत कार्यव्यग्रता, आतुरता एवं स्वार्थपरायणता। आजके आधुनिक चिकित्सा-वैज्ञानिकोंने भी प्रबल शब्दोंमें कहा है कि इनका प्रभाव हृदय, मस्तिष्क, वृक, अधिवृक्क, अग्न्याशय, रस-रक्तवाहिनी धमनियों तथा पाचनयन्त्रपर पड़ता है। अनेक व्यवसायी, उद्योगपति, रात-दिन प्रैक्टिसमें पड़ा व्यवसायरत चिकित्सक, मालिककी शोषित मनोवृत्तिका शिकार सेवक, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सूखेकी परिस्थितिसे पिसता किसान, भारी कुटुम्बका एकमात्र पालक साधारण गृहस्थ—इन सबको आजकी विषम स्थितिका मूल्य उच्च रक्तचाप, हृदय-दौर्बल्य, यक्ष्मा, मधुमेह, यान्त्रिक शूल, मस्तिष्क-दौर्बल्य आदि रोगोंमें फँसकर अन्तमें सहसा मृत्युके रूपमें चुकाना पड़ता है। भारतीय वाङ्मयमें तथा आयुर्वेदमें मनःसमाधि (मानसिक शान्ति) का महत्त्व इसी कारण स्थान-स्थानपर वर्णित किया गया है। इसी मानसिक शान्तिको लक्ष्यकर महर्षि चरकने स्पष्ट कहा है—

प्रेत्य चेह च यच्छ्रेयो श्रेयो मोक्षे च यत्परम्।
मनःसमाधौ तत्सर्वमायत्तं सर्वदेहिनाम्॥

इस लोकमें (वर्तमान समयमें) मरणके अनन्तर जन्मान्तरमें इतना ही नहीं (मोक्ष) अपवर्गमें प्राणिमात्रको जो कल्याण उपलब्ध होता है, वह सब मनःसमाधिसे प्राप्त होता है। अतः यह मानसिक शान्ति केवल उपर्युक्त आचार-रसायनके जीवन-चर्यामें रहनेसे प्राप्त होता है, आजके विश्व-मानवके लिये आयुर्वेदकी यह देन बड़े महत्त्वकी है। आयुर्वेदने शारीरिक, मानसिक तथा आगन्तुक रोगोंका मूल कारण प्रज्ञापराध माना है—'**प्रज्ञापराधः प्रधानं रोगाणाम्**' (चरक)।

श्रीमद्भगवद्गीताकी उपयोगिता

मुख्य प्रश्न जो अर्जुनने श्रीकृष्णसे पूछा और सो भी कई बार, वह यह था—'मेरा निश्चित कल्याण किसमें है? मुझे एक निश्चित राय बताइये, जिससे मैं कल्याण प्राप्त कर सकूँ।' अतः मालूम होता है कि गीताका मुख्य विषय यह है—मानव-जातिका सबसे अधिक कल्याण किस बातमें है और वह किस तरह प्राप्त हो सकता है? संक्षेपमें भगवान् श्रीकृष्ण हमें बतलाते हैं कि मोक्ष (अर्थात् जीवात्माका जन्म-मृत्युके बन्धनसे छूट जाना) ही मनुष्यके लिये सबसे बड़ा कल्याण है और वह निष्काम (फलकी इच्छासे रहित) कर्मके अनुष्ठानसे प्राप्त हो सकता है, क्योंकि इस संसारमें हम अपने ही कर्मोंका फल भोगनेके लिये बार-बार जन्म लेते हैं। भगवद्गीता हमें निष्काम कर्मके योग्य बननेके साधन और उपाय बतलाती है और निष्काम कर्मकी पहली सीढ़ी है—जिस तरहसे भी हो स्वधर्मका पालन करना। कोई भी समाज, यदि उसके अङ्गभूत व्यक्ति अपने-अपने कर्तव्यका पालन नहीं करते, जीवित नहीं रह सकता और न कोई व्यक्ति ही उन्नति कर सकता है, न फल-फूल सकता है और न सुखी हो सकता है, यदि वह अपने विहित कर्मका त्याग कर देता है। अतः मनुष्यमात्रके कल्याणके लिये भगवद्गीता परम उपयोगी ग्रन्थ है। इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि लोग उसके आशयको भलीभाँति समझें और उसका जगत्में अधिकाधिक प्रचार हो।—श्रीश्यामाचरण दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता-तत्त्व-चिन्तन

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गीतामें योग और भोग

प्रभुणा सह सम्बन्धो जीवानां योग उच्यते।
प्रकृत्या कृतसम्बन्धः प्राणिनां भोग इष्यते॥

जीवका परमात्माके साथ जो स्वतःसिद्ध सम्बन्ध है, वह 'योग' है और वस्तु, व्यक्ति, क्रिया, पदार्थ, घटना, परिस्थिति आदि प्राकृत वस्तुओंके साथ जो माना हुआ सम्बन्ध है, वह 'भोग' है। संसारके रागका त्याग होनेसे 'योग' होता है और संसारमें राग होनेसे 'भोग' होता है। योग नित्य और भोग अनित्य है।

भोजन केवल निर्वाहबुद्धिसे किया जाय, भोजनके पदार्थोंमें राग न हो, खिंचाव न हो तो ऐसे भोजनसे भी 'योग' हो जाता है। परंतु शरीर पुष्ट हो जाय, बल अधिक हो जाय—इस दृष्टिसे तथा स्वादकी दृष्टिसे भोजन करनेसे, भोजनका रस लेनेसे 'भोग' होता है। तात्पर्य है कि राग-रहित होकर, निर्लिप्ततापूर्वक भोजन करनेसे पुराना राग मिट जाता है और स्वादबुद्धि, सुखबुद्धि न होनेसे नया राग पैदा नहीं होता, जिससे 'योग' हो जाता है। रागपूर्वक भोजन करनेसे पुराना राग पुष्ट होता रहता है और स्वादबुद्धि, सुखबुद्धि होनेसे नया राग पैदा होता रहता है, जिससे 'भोग' होता है।

सांसारिक वस्तु, पदार्थ आदिके रागके त्यागसे जो सुख होता है, उससे योग होता है (१२। १२) और भोगमें जो तात्कालिक सुख होता है, उससे बन्धन होता है (१८। ३८)।

एक कहावत है—'एक गुणा दान, सहस्रगुणा पुण्य।' फलकी इच्छासे एक रुपया दान किया जाय तो हजारगुणा पुण्य होता है अर्थात् हजार रुपयोंके साथ सम्बन्ध जुड़ता है। अतः ऐसा दान सम्बन्धजन्य भोग पैदा करता है। तात्पर्य है कि सकामभावपूर्वक दिये हुए दानसे वर्तमानमें वस्तु आदिका तात्कालिक सम्बन्ध-विच्छेद दीखनेपर भी परिणाममें वस्तु आदिका सम्बन्ध बना रहता है (२। ४२-४४)। दान देना कर्तव्य है—इस भावसे, प्रत्युपकारकी भावनासे रहित होकर अर्थात् निष्कामभावपूर्वक दान दिया जाय तो वस्तु आदिसे सम्बन्ध-विच्छेद होता है (१७। २०); क्योंकि यह त्याग है। त्यागका अनन्तगुणा पुण्य होता है। त्यागसे महान् पवित्रता आती है। त्यागसे तत्काल योग होता है (६। २३)। योगमें संसारका वियोग है (६। २३) और भोगमें संसारका योग है (५। २२)।

दूसरोंको निष्कामभावसे सुख पहुँचानेके लिये, उनका हित करनेके लिये ही उनके साथ जो सम्बन्ध जोड़ा जाता है, उससे 'योग' होता है; क्योंकि उससे अपने राग, सुख, आराम आदिका त्याग होता है। परंतु किसी वस्तु, व्यक्तिसे सुख लेनेके लिये उसके साथ जो सम्बन्ध जोड़ा जाता है, उससे 'भोग' होता है। वस्तु, व्यक्तिसे रागपूर्वक सम्बन्ध जोड़नेसे परमात्माके नित्य-सम्बन्धका अनुभव नहीं होता।

वस्तु, व्यक्तिसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर एक सुख होता है। अगर साधक उस सुखका भोग न करे तो 'योग' हो जायगा। अगर वह उस सुखका भोग करेगा, उस सुखमें राजी हो जायगा तो योग नहीं होगा, प्रत्युत 'भोग' हो जायगा।

अगर साधक भोगबुद्धिका सर्वथा त्याग कर दे तो सभी साधनोंसे 'योग' (परमात्माके नित्य-सम्बन्धका अनुभव) हो जाता है। जैसे—कर्मयोगमें केवल सृष्टिचक्रकी मर्यादाको सुरक्षित रखनेके लिये, केवल कर्तव्य-परम्पराकी रक्षाके लिये ही निष्कामभावपूर्वक कर्तव्य-कर्म करनेसे कर्मोंका प्रवाह केवल संसारकी तरफ हो जाता है और स्वयंका कर्मोंसे सम्बन्ध-विच्छेद होकर, भोगका त्याग होकर परमात्माके साथ योग हो जाता है (४। २३)।

ज्ञानयोगमें सत्-असत्के विवेक-विचारसे, वस्तु, व्यक्ति क्रिया आदि परिवर्तनशीलसे सम्बन्ध-विच्छेद होता है, जिससे परमात्माके साथ योग हो जाता है अर्थात् परमात्माके साथ अपनी स्वतःसिद्ध अभिन्नताका अनुभव हो जाता है (१३। २३, ३४)।

भक्तियोगमें सम्पूर्ण क्रिया, पदार्थ आदिको भगवान्का ही समझकर भगवान्को अर्पित किया जाता है, जिससे उन क्रिया, पदार्थ आदिसे सम्बन्ध-विच्छेद होकर भगवान्के साथ योग हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है अर्थात् भगवान्‌में आत्मीयता हो जाती है (९।२७-२८)।

ध्यानयोगमें निरन्तर परमात्मामें मन लगाते-लगाते जब मन संसारसे सर्वथा उपराम हो जाता है, केवल ध्येय वस्तु रह जाती है, तब परमात्माके साथ योग हो जाता है, अपने स्वरूपका अनुभव हो जाता है (६।२०, २८)।

अष्टाङ्गयोगमें क्रमशः यम, नियम आदि आठों अङ्गोंका निष्कामभावपूर्वक पालन किया जाय तो उससे संसारके सम्बन्धका त्याग हो जाता है और परमात्माके साथ योग हो जाता है (५।२७-२८)। परंतु उसमें साधकको विशेष सावधानी रखनी चाहिये कि कहीं वह सिद्धियोंमें न फँस जाय। अगर वह सिद्धियोंमें फँस जायगा तो भोग होगा, योग नहीं होगा।

तात्पर्य यह है कि किसी भी मार्गसे चलनेवाले साधकको व्यवहार-अवस्थामें अथवा साधन-अवस्थामें हरदम सावधान रहना चाहिये। उसको किसी भी अवस्थामें वस्तु, व्यक्ति, क्रिया, पदार्थ, योग्यता, स्थिरता आदिका सुख नहीं लेना चाहिये; क्योंकि सुख लेनेसे भोग हो जायगा, योग नहीं होगा (१४।६)।

सात्त्विक सुख सङ्गसे, राजस सुख कर्मोंकी आसक्तिसे और तामस सुख निद्रा, आलस्य एवं प्रमादसे बाँधता है (१४।६-८)। अतः साधक सावधानीपूर्वक सात्त्विक, राजस और तामस सुखसे बँधे नहीं, उसका सङ्ग न करे, तो फिर उसका परमात्माके साथ योग हो जायगा।

ईश्वर-प्रार्थनापर महात्मा गाँधीजीके उद्‌गार

ईश्वर-प्रार्थनाने मेरी रक्षा की। प्रार्थनाके आश्रय बिना मैं कबका पागल हो गया होता। अन्य मनुष्योंकी भाँति मुझे भी अपने सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत जीवनमें अनेक कटु अनुभव प्राप्त हुए। उनके कारण मेरे भीतर कुछ समयके लिये एक प्रकारकी निराशाको दूर करनेके लिये मुझे कुछ सफलता हुई, तो वह प्रार्थनाके ही कारण हो सकी। सत्यकी भाँति प्रार्थना मेरे जीवनका अङ्ग बनकर नहीं रही है। इसका आश्रय तो मुझे आवश्यकतावश लेना पड़ा। मेरी ऐसी अवस्था हो गयी कि मुझे प्रार्थनाके बिना चैन पड़ना कठिन हो गया। ईश्वरमें मेरा विश्वास ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, प्रार्थनाके लिये मेरी व्याकुलता भी उतनी ही दुर्दमनीय हो गयी। प्रार्थनाके बिना मुझे जीवन नीरस एवं शून्य-सा प्रतीत होने लगा।

जब मैं दक्षिणी अफ्रीकामें था, उस समय मैं कई बार ईसाइयोंकी सामुदायिक प्रार्थनामें सम्मिलित हुआ, परंतु उसका मुझपर प्रभाव नहीं पड़ा। मेरे ईसाई मित्र ईश्वरके सामने अनुनय-विनय करते थे, किंतु वैसा मुझसे नहीं बन पड़ा। मुझे इस कार्यमें बिलकुल असफलता रही। परिणाम यह हुआ कि ईश्वर एवं उनकी प्रार्थनामें मेरा विश्वास उठ गया और जबतक मेरी आस्था परिपक्व न हो गयी, मुझे उसका अभाव बिलकुल नहीं खला, परंतु अवस्था ढल जानेपर एक समय ऐसा आया, जब मेरी आत्माके लिये प्रार्थना उतनी ही अनिवार्य हो गयी, जितना शरीरके लिये भोजन अनिवार्य है। सच पूछिये तो शरीरके लिये भोजन भी उतना आवश्यक नहीं है, जितनी आत्माके लिये प्रार्थनाकी आवश्यकता है, शरीरको स्वस्थ रखनेमें कभी-कभी उपवास आवश्यक हो जाता है, किंतु प्रार्थनारूप भोजनका त्याग किसी प्रकार भी हितकर अथवा वाञ्छनीय नहीं कहा जा सकता। प्रार्थनाकी अजीर्णता तो कभी हो ही नहीं सकती।

…लोग मेरी आन्तरिक शान्ति देखकर मुझसे ईर्ष्या करने लगते हैं। वह शान्ति मुझे और कहींसे नहीं, ईश्वर-प्रार्थनासे मिली।… किसीके मनमें ईश्वरमें विश्वास उत्पन्न करा देना मेरी शक्तिके बाहर है। बुद्धिका अवलम्बन भ्रमजनक होता है, क्योंकि तर्कपूर्ण युक्तियोंसे चैतन्यरूप ईश्वरमें विश्वास उत्पन्न नहीं कराया जा सकता। ईश्वर बुद्धिजन्य वस्तु नहीं हैं, वे बुद्धिसे अतीत हैं। यदि एक बार आपने ईश्वरकी सत्ताको स्वीकार कर लिया तो फिर आपसे प्रार्थना किये बिना रहा नहीं जायगा। यह ठीक है कि ईश्वर यह नहीं चाहते कि हम प्रतिदिन अपनी शरणागतिका उनके सामने हवाला दें, किंतु हमारे लिये ऐसा करना आवश्यक है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि हम ऐसा करेंगे, तो फिर कोई भी दुःख हमें नहीं सतायेगा।

(संकलित)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

[परमार्थ-पत्रावली]

(१)

अब आपकी क्या इच्छा है? आपको किस बातकी आवश्यकता है? आपको तो अब केवल अपने कल्याणके लिये ही चेष्टा करनी चाहिये। मान-अपमानके बोझ-भारको अलग छोड़कर जिस कामके लिये आपका संसारमें आना हुआ है, उस कामको ही करनेके लिये तत्पर हो जाना चाहिये और विचारना चाहिये कि क्या करनेसे कल्याण हो सकता है? मैं जो कुछ करता हूँ इससे कितने समयमें कल्याण हो सकता है? जो इस तरहका विचार करता है वही बुद्धिमान् है, परंतु जो ऐसी बात अपने मनमें नहीं लाते, उन्हें पीछे पछताना पड़ेगा। जब आप यहाँसे कूच कर जायँगे, तब इस संसारमें आपका कुछ भी हिस्सा नहीं रह जायगा और न कोई वस्तु आपके काम ही आयेगी। यह शरीर भी आपके काममें नहीं आयेगा। क्योंकि वह आपका नहीं है। उस समय तो एक श्रीनारायणदेवका भजन-ध्यान ही, यदि साधन किया गया होगा तो काममें आयेगा या यदि उत्तम काममें आपने कुछ रुपये भगवदर्थ लगाये होंगे अथवा इस शरीरसे किसीका उपकार किया गया होगा तो वह काममें आयेगा। इसलिये आपसे प्रार्थना है—अब तो आप अपने जीवनके शेष समयको उत्तम-से-उत्तम काममें बिता सकें, ऐसी आपको चेष्टा करनी चाहिये, जिससे पीछे पश्चात्ताप नहीं करना पड़े। आप इस समय संसारके जालमें फँसे हुए हैं, इसलिये साधनकी विशेष चेष्टा करके इस संसारके मायाजालसे जल्दी निकलनेका उपाय करना चाहिये।

(२)

सत्सङ्गका प्रभाव जान लेना चाहिये, फिर कोई चिन्ताकी बात नहीं है। इस संसारमें पलभरके सत्सङ्गके समान त्रिलोकीका राज्य भी कोई चीज नहीं है। किंतु खेद तो यह है कि आपलोग जिस प्रकार रुपयोंका प्रभाव जानते हैं वैसा सत्सङ्गका नहीं जानते, क्योंकि जैसा आपलोगोंका रुपयोंमें प्रेम है, वैसा भगवान्में नहीं है। फिर श्रीपरमात्मदेव प्रेम हुए बिना सत्सङ्ग-भजनमें कैसे प्रेम हो? आपलोग समझते हैं, रुपयोंसे सब कुछ हो सकता है, यह बिलकुल भूल है। रुपयोंसे भगवान् कभी नहीं मिल सकते। भगवान्की बात तो दूर रही, भगवान्के प्रेमी भक्तोंसे भी रुपयोंके द्वारा मुलाकात नहीं हो सकती। यदि मुलाकात होती है तो प्रेमसे ही होती है। प्रेमके अधीन तो श्रीनारायणदेव स्वयं रहते हैं, फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है? संसारमें प्रेमके समान कुछ भी नहीं है, किंतु प्रेमके प्रभाव और मर्मको कोई प्रेमी ही जानता है। भगवद्विषयक प्रेममें बहुत आकर्षणशक्ति है, किंतु एक बार लगनेकी आवश्यकता है। जबतक मनुष्य भगवान्के प्रभावको, श्रीनारायणदेवके प्रेमके मर्मको नहीं जानता है, तबतक वह कैसे जान सकता है कि भगवान् क्या वस्तु है? श्रीनारायणदेवके प्रेममें जो मग्न हो जाता है, उसके लिये तो नारायणदेव स्वयं तैयार रहते हैं, फिर उसके लिये त्रिलोकीका राज्य भी क्या चीज है? क्योंकि त्रिलोकीके स्वामी ही प्रेमवश उसके सामने हाजिर हैं। अपने भक्तके अधीन हैं। फिर उसके लिये क्या पानेसे बाकी रह गया? भाई! इस प्रकारकी बातोंको जानकर यदि विश्वास कर लिया जाय तो फिर इस काममें अपनेको लगा देनेमें कोई बड़ी बात नहीं मालूम पड़ेगी और संसारके रुपयोंका रोजगार बेकार मालूम होने लग जायगा। भले ही कोई नीतिके अनुसार संसारका रोजगार करता भी रहे, किंतु प्रेम तो उसका एकमात्र भगवान्में ही होना चाहिये। भगवत्प्रेमीका भले ही सब कुछ नाश हो जाय, परंतु उसे इस बातकी चिन्ता नहीं होती, क्योंकि उसका प्रेम तो संसारके इन नाशवान् तुच्छ क्षणभङ्गुर पदार्थोंमें होता नहीं, उसे तो ये सब प्रत्यक्ष ही नाश हुए दीखते हैं। तब उसका इनमें प्रेम कैसे हो? जो संसारके भोगोंमें आनन्द मानकर उनके लिये मर रहे हैं, वे महामूर्ख हैं, ऐसा भगवान्के भक्त और विरक्तलोग कहते हैं। क्योंकि उन्हें तो संसारके सब भोग फीके ही लगते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

भगवान्‌के भजन-ध्यान करते समय अपने चित्तमें विक्षेपका होना लिखा सो ठीक है। वह विक्षेप नामके जपका तीव्र अभ्यास और विषयोंमें दोषदृष्टि करके वैराग्य करनेसे मिट सकता है, क्योंकि शरीर और रुपयोंकी आसक्ति ही विक्षेप होनेमें प्रधान कारण है। शरीर और रुपये नाशवान् पदार्थ हैं, ऐसा बार-बार विचार करनेपर चित्त परमात्मामें लग सकता है। संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंको और शरीरको नाशवान् तथा क्षणभङ्गुर समझना चाहिये। भजन-ध्यानके लिये आपने फिर जोरसे चेष्टा करनेकी बात लिखी सो बहुत आनन्दकी बात है। आप-जैसे समझदार व्यक्तिको स्त्री, पुत्र, शरीर और रुपयोंमें फँसकर अपने अमूल्य समयका एक क्षण भी वृथा नहीं गँवाना चाहिये; क्योंकि ये सब अनित्य होनेके कारण वास्तवमें तो हैं ही नहीं, यदि हैं भी तो विवेकदृष्टिसे दुःखरूप ही हैं। परमात्माकी प्राप्तिमें ये सब साधक नहीं हैं, प्रत्युत बाधक ही हैं। किंतु ये सब ईश्वरमें लगा देनेपर साधक भी हो सकते हैं। परंतु सबसे ऐसा होना सहज नहीं। स्त्री, पुत्र, धनकी तो बात ही क्या है, शरीर भी अपने साथ जानेवाली वस्तु नहीं है, इस प्रकारका विचार करके जो मनुष्य इनसे प्रेम नहीं करता, वही सुखी होता है। मनुष्य जब सच्चिदानन्दघन परमात्माके ध्यानमें मुग्ध हो जाता है, तब उस समय उसे त्रिलोकीका राज्य भी तुच्छ प्रतीत होता है। किंतु इसे जानकर भी मनुष्य इन तुच्छ भोगोंमें फँस जाते हैं, यह बड़े आश्चर्यकी बात है।

अच्छे पुरुषोंका सत्सङ्ग मिलनेपर साधन तेज हो सकनेकी बात आपने लिखी, सो ठीक है। यद्यपि अच्छे पुरुषोंका सत्सङ्ग बड़े भाग्यसे मिलता है, किंतु चेष्टा करनेसे आपके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। समय और रुपयोंकी कोई परवा न हो, तब तो अच्छे पुरुषोंसे बहुत बार मिलना हो सकता है। इसके लिये आप विशेष चेष्टा क्यों नहीं करते हैं? केवल युक्तियोंसे बहुत-सी बातें समझमें नहीं आतीं। इसलिये आपको इस विषयमें विचार करना चाहिये। आप तुच्छ धनके लिये समय और धनका व्यय करके तो दूर-दूरकी यात्रा करते हैं तथा शारीरिक परिश्रम उठाते हैं, किंतु विज्ञानानन्दघन परमात्माके ध्यानरूपी धनके लिये आप क्यों नहीं यथोचित परिश्रम करते? यह बात समझमें नहीं आती। यदि इसका हेतु मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा है तो आपको विचार करना चाहिये कि वह मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा हमारे किस काम आयेगी? यदि शरीरके परिश्रमकी कोई बात हो तो फिर शरीर है ही किस लिये? यदि अज्ञान हेतु है तो उसे विवेक-विचारके द्वारा नाश करना चाहिये, नहीं तो बहुत भारी पश्चात्तापका सामना करना पड़ेगा। यदि रुपयोंकी हानि या व्यय इसमें कारण हों तो विचार करना चाहिये, फिर वे इकट्ठे किये हुए रुपये आपके किस काम आयेंगे। यदि कुटुम्ब या व्यापार आदिकी सुव्यवस्था करनेके कारण सत्सङ्गमें जाना नहीं होता, तब तो आपको विचार करना चाहिये कि इन सबसे बढ़कर जो आपका प्रधान कार्य है, उसकी सुव्यवस्था क्या आपको नहीं करनी है? जगह, जमीन, मुकदमा, मकान, कुटुम्ब आदिकी सुव्यवस्था तो आपके परलोक सिधारनेके बाद भी आपके उत्तराधिकारी कर सकते हैं, किंतु आपकी सुव्यवस्था आपके परलोक सिधारनेके बाद आपको छोड़कर और किसीसे होनेकी नहीं है। अतएव जबतक शरीर आरोग्य है और मृत्यु दूर है, इसी समय आपको जो करना है उसे अति शीघ्रतासे अपनी आत्माके कल्याणके लिये जोरोंके साथ चेष्टा करनी चाहिये।

(४)

तुमने लिखा 'मेरा चित्त बहुत व्याकुल है। दशा बहुत खराब है। ऐसी दशा कभी नहीं हुई। आगे क्या दशा होगी, कुछ समझमें नहीं आता।' सो भैया! जो हुआ सो तो हो चुका। अब तो चेतना चाहिये। अब तो तुम इस बातको भलीभाँति जान ही गये कि सत्संगके बिना भजन-ध्यान होना कठिन है और भजन-ध्यान हुए बिना दशा बिगड़ जाती है। अतएव अब तुम्हें भजन-ध्यान-सत्संगके लिये ही चेष्टा करनी चाहिये। सत्-शास्त्रोंका स्वाध्याय भी एक तरहसे सत्संग ही है। अतएव जबतक सत्संगकी व्यवस्था न हो, तबतक सद्ग्रन्थोंका अभ्यास करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत-बिन्दु

हमारा सम्मान हो—इस चाहनाने ही हमारा अपमान किया है।

× × × ×

हमारा शरीर तो संसारमें है, पर हम स्वयं भगवान्‌में ही हैं।

× × × ×

मुक्ति वस्तुके त्यागसे नहीं होती, प्रत्युत इच्छाके त्यागसे होती है।

× × × ×

ममतारहित पुरुष दुनियाका जितना भला कर सकता है, उतना ममतावाला कर ही नहीं सकता।

× × × ×

व्यक्तियोंकी सेवा करनी है और वस्तुओंका सदुपयोग करना है।

× × × ×

जो हम चाहते हैं, वह होता नहीं; जो होता है, वह हमें भाता नहीं और जो हमें भाता है, वह रहता नहीं—यह सबका अनुभव है। इस अनुभवको महत्त्व दें अर्थात् चाहनाका त्याग कर दें।

× × × ×

भगवान्‌के लिये अपनी मनचाही छोड़ देना ही शरणागति है।

× × × ×

परमात्माकी प्राप्तिमें देरी नहीं लगती। देरी लगती है सम्बन्धजन्य सुखकी इच्छाका त्याग करनेमें।

× × × ×

संसारकी सामग्री संसारके कामकी है, अपने कामकी नहीं।

× × × ×

संसारसे कुछ भी चाहोगे तो दुःख पाना ही पड़ेगा।

× × × ×

वस्तुका सबसे बढ़िया उपयोग है—उसको दूसरेके हितमें लगाना।

× × × ×

मनुष्यका उत्थान और पतन भावसे होता है, वस्तु, परिस्थिति आदिसे नहीं।

× × × ×

न तो किसी वस्तुको अपना और अपने लिये मानना चाहिये और न किसी वस्तुकी कामना करनी चाहिये; क्योंकि वस्तुको अपना माननेसे अशुद्धि आती है और कामना करनेसे अशान्ति आती है।

× × × ×

आनेवाला जानेवाला होता है—यह नियम है।

× × × ×

निन्दा इसलिये बुरी लगती है कि हम प्रशंसा चाहते हैं। हम प्रशंसा चाहते हैं तो वास्तवमें हम प्रशंसाके योग्य नहीं हैं; क्योंकि जो प्रशंसाके योग्य होता है, उसमें प्रशंसाकी चाहना नहीं रहती।

× × × ×

वस्तुको दूसरेके हितमें लगाना उसका सदुपयोग है और अपने भोगमें लगाना उसका दुरुपयोग है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

कर्तव्यका पालन

श्रीआशुतोष मुखर्जी उन दिनों कलकत्ता विश्वविद्यालयके कुलपति थे, साथ-साथ कलकत्ता उच्च न्यायालयके न्यायाधीश भी थे। उच्च पदपर आसीन रहनेके बावजूद उन्हें अंग्रेजियत छू नहीं पायी थी। वे नियमितरूपसे गङ्गा-स्नान एवं धार्मिक कृत्योंमें रत रहते। एक दिन वे गङ्गा-स्नानसे लौट रहे थे। कंधेपर अंगोछा और हाथमें गङ्गा-जलसे भरा लोटा था। मार्गमें उन्होंने देखा कि एक गरीब बुढ़िया उदास बैठी है। उसके चेहरेपर दुःख और उदासी स्पष्ट झलक रही थी।

'माँ! क्या बात है? आप किस शोकमें डूबी हुई हैं?' श्रीमुखर्जीने उस वृद्धासे सहानुभूतिपूर्वक पूछा।

'बेटा! आज मुझे अपने पतिका श्राद्ध करना है। समय निकला जा रहा है। कोई भी ब्राह्मण नहीं मिल रहा है, जो कर्मकाण्ड कराकर पतिदेवकी आत्माको तृप्त करे।' वृद्धाने अपनी उदासीका कारण बतलाते हुए यह बात कही। क्षणभरके लिये आशुतोष बाबू मौन हो गये और मनमें कुछ विचार करने लगे, फिर बोले—

'चलो, मैं कराता हूँ।' यह कहकर श्रीआशुतोष बाबू वृद्धाके साथ उसके घर गये। नियमानुसार पूर्ण विधिके साथ धार्मिक क्रिया सम्पन्न करायी, दक्षिणाके रूपमें गुड़की एक-दो डली तथा चावलोंसे भरा दोना लेकर वे घर वापस चल दिये।

मार्गमें जब लोगोंने मुख्य न्यायाधीशको एक हाथमें गङ्गाजलका लोटा और दूसरेमें श्राद्ध करानेमें मिली दक्षिणासे भरा दोना लिये जाते देखा तब कुछ लोग आश्चर्यचकित हो गये।

एक परिचित व्यक्तिने जब उनसे आश्चर्यसे पूछा, तो श्रीआशुतोष बाबूने गम्भीरता और गर्वसे उत्तर दिया—'मैं न्यायाधीश हूँ तो क्या हुआ, अपने ब्राह्मणत्वको और स्वकर्मको तिलाञ्जलि कैसे दे सकता हूँ? निस्सहाय वृद्धाके पतिका श्राद्ध कराकर मैंने अपने ब्राह्मण-धर्म और कर्तव्यका ही पालन किया है।'

श्रीआशुतोष बाबू आजन्म भारतीय परम्पराओं एवं भारतीयतापर गर्व रखते थे। उनकी विद्वत्तासे प्रभावित होकर सरकारने उन्हें इंगलैंड भेजनेकी व्यवस्था की थी और तदनुसार उन्हें निमन्त्रण भी दिया था। उन दिनों विदेश जाना एक नयी बात थी।

श्रीआशुतोष मुखर्जी इंगलैंड तो जाना चाहते थे, परंतु माताकी अनुमतिके बाद ही। जैसी कि उन्हें आशंका थी, उनकी माताजीने उन्हें विदेश जानेकी अनुमति नहीं दी। श्रीआशुतोष बाबूने माताके आदेशको सहर्ष स्वीकार किया और सरकारको स्पष्ट उत्तर भेज दिया—'मेरी माताजी मुझे विदेश जानेकी अनुमति नहीं दे रही हैं, अतः मैं आपका निमन्त्रण स्वीकार करनेमें असमर्थ हूँ।

उनका यह उत्तर-पत्र तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जनको दिखाया गया। पत्र पढ़कर वायसरायको महान् आश्चर्य हुआ और क्रोध भी आया। उन्होंने सर आशुतोष मुखर्जीको प्रत्यक्ष भेंट करनेके लिये बुलाया और जब वह मिलने आये तो कहा—'अपनी मातासे कहो, वायसरायने मुझे इंग्लैंड जानेका आदेश दिया है। जाना ही पड़ेगा।'

श्रीआशुतोष मुखर्जी वायसरायके कठोर स्वभावसे परिचित थे, परंतु माताकी आज्ञाके विरुद्ध जाना भी उनका स्वभाव नहीं था। उन्होंने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'महोदय! मैं अपनी माताकी आज्ञाके विरुद्ध किसी भी स्थितिमें विदेश नहीं जा सकता।' **'मातृदेवो भव'**—भारतीय संस्कृतिकी इस उदात्त भावनासे श्रीआशुतोष मुखर्जीका रग-रग भरा था। उन्होंने स्पष्टरूपसे अपना निवेदन भेजा—'मुझपर कोई निर्णय बलपूर्वक थोपनेकी चेष्टा न की जाय। मैं अपनी माताकी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य करनेमें समर्थ नहीं हूँ।' यह जानकर लार्ड कर्जन क्षणभरके लिये तो स्तब्ध हुए। उन्हें स्वप्नमें भी यह अनुमान नहीं था कि सर आशुतोष मुखर्जी उनकी बात टालेंगे। पर वे रोमाञ्चित हो उठे और उन्होंने सर आशुतोष मुखर्जीकी मुक्तकण्ठसे सराहना की और कहा कि जबतक भारतमें ऐसे सपूत रहेंगे, तबतक यहाँकी संस्कृतिको कोई मिटा नहीं सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

सद्विचारसे दीर्घ द्वेषका अन्त

छगन पटेलका उसके पड़ोसीके साथ वर्षोंसे वैर चलता आ रहा था। पशु एक-दूसरेके खेतमें घुसकर फसल बरबाद करते, बाड़ आगे-पीछे होती रहती और झगड़ा चलता रहता। थोड़ा भी मेल-जोल नहीं। गाँवके लोगोंने समाधानके लिये प्रयत्न किया, परंतु निष्फलता ही मिली। दोनों पड़ोसी एक-दूसरेको किसी षड्यन्त्र आदिमें फँसानेका प्रयत्न करते रहते।

गर्मीके दिनोंमें लू बरसती एक दोपहरीमें छगन पटेल खेतोंका चक्कर लगाने निकला, खेतमें घुसते ही उसने देखा कि उसके पुराने वैरी तथा पड़ोसीकी स्त्रीने उसके आमके वृक्षोंपरसे कच्चे आम तोड़कर बहुत बड़ा एक टोकरा भर लिया है। उसने भी छगन पटेलको आते देखा और समझ लिया कि 'चोरी करते रँगे हाथ मालसहित मैं पकड़ी गयी।' इसलिये वह चुपचाप खड़ी हो गयी।

पटेलने विचार किया कि अच्छा दाँव हाथ लगा है। चोरीका केस चलाकर जन्मसे चली आ रही इस वैर-भावनाका बदला मैं चुका डालूँ, परंतु दूसरे ही क्षण उसके मनमें एक दूसरा ही विचार आ गया। टोकरेके समीप जाकर उसने उस स्त्रीसे कहा—'इतने अधिक आम तुम कैसे उठा सकोगी। लाओ मैं उठवा दूँ।' ऐसा कहकर चुपचाप उसने टोकरा उठवानेमें उसकी सहायता की। स्त्री चुपचाप टोकरा लेकर घर चली गयी।

दूसरे ही दिन पड़ोसीने बिना कुछ कहे-सुने अपने खेतकी बाड़ पीछे ले ली और वर्षोंके झगड़ेका निराकरण होते ही दोनोंके सम्बन्ध सुधर गये।

उस समय छगन पटेलके मनमें यही भाव आया कि यदि आमोंकी चोरीका अभियोग चलाया जायगा तो यह वैर पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहेगा, मात्र दो रुपयेके आमोंके कारण हमलोगोंको कचहरी एवं वकीलोंके घर चक्कर लगाने पड़ेंगे। जो हुआ, सो अच्छा ही हुआ। वैर तो बढ़ानेसे बढ़ता है, घटानेसे घटता है।

छगन पटेलका यह चिन्तन सर्वथा सत्य है और उसीमें सच्चा कल्याण निहित है।—दीनानाथ सी० व्यास

(३)

दयाकी मूर्ति

एक गाँवके किनारे वृद्धा जीवकोर माँकी झोपड़ी थी। उसमें वह अकेली ही रहती थी, उसके आगे-पीछे कोई नहीं था। फिर भी उसका जीवन प्रसन्न था। वह एक छोटी-सी क्यारीमें साग-भाजी बो देती, उससे खानेभरको शाकादि मिल जाता। एक खेत था, उसमेंसे बारह महीनेकी रोटीके लिये अन्न भी प्राप्त हो जाता। इतना मिल जाना वह अपने लिये पर्याप्त मानती थी।

दोनों समयके लिये वह एक ही बार भोजन तैयार कर लेती और अन्तिम पहरमें ब्यालू करके निश्चिन्त होकर स्वच्छ गोबरसे लिपे चबूतरेपर बैठकर दिया-बत्ती करती रहती। मन्दिर आने-जानेवाले लोग उससे पूछते—'जीवकोर माँ! आरतीमें नहीं आना है क्या?' वह तुरंत उत्तर देती—'भैया! हमारे लिये तो मथुरा और काशी यहीं है।' इतना कहकर वह फिर दिया-बत्ती करनेमें लग जाती।

परंतु जीवकोर माँके बारहमासी जीवनमें गर्मीके दिन स्मरण रखने योग्य हैं। माघ महीना जब पूरा होनेको होता तब वृद्धा माँ कुम्हारके घर पहुँचती और ठोक-पीटकर, ठीकसे देखकर बड़े-बड़े दो घड़े अलग रखा लेती। कुम्हार भी इस ग्राहकको पहचान गया था। घड़ा थोड़ा भी कमजोर होता तो कहता—'माँ! यह आपके कामका नहीं है। इसे किसी अन्य ग्राहकको दे दिया जायगा।' वृद्धा हँसते-हँसते दो अच्छे पके घड़े लेकर अपनी झोपड़ीपर वापस आ जाती।

चैत्र महीनेकी गरम-गरम लू प्रारम्भ होते ही वृद्धा माँ दोनों घड़े लेकर गाँवके किनारे एक वटवृक्षके नीचे एक स्थानपर रख देती। वटके समीप ही एक छोटा-सा कुँआ था। बाल्टी तथा रस्सी ले जाकर शामको दोनों घड़े मुँहतक जलसे भरकर उन्हें चारों ओरसे गीले कपड़ेसे ढँक दिया करती। प्रातःकाल होते-होते पानीका स्वाद अमृत-जैसा हो जाता। धीरे-धीरे भगवान् सूर्यनारायण जब मध्याकाशमें आने लगते तो आने-जानेवाले पथिक भी वहाँ इकट्ठे होने लगते। शहर जानेवाले गाड़ीवान भी गाड़ियोंके बैलोंको खोलकर वहाँ विश्राम करते। साग-भाजी बेचने जानेवाली महिलाएँ भी अपने सिरका बोझ उतारकर रख देतीं और शान्तिसे वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठतीं। जंगलसे काट-काटकर लकड़ी ले जानेवाले मजदूर भी वहाँ दोपहरीमें आराम करते। सभी लोग जीवकोर माँके रखे हुए उन घड़ोंका अमृतमय शीतल जल पीकर अपनी प्यास शान्त करके लाखों-लाख दुआएँ देते। आने-जानेवाले सैकड़ों यात्री वृद्धा माँकी इस जीवनप्रद प्याऊसे अपनी प्यास शान्त करते।

अनेक यात्रियोंकी प्यासको शान्त करनेवाली वे जीवकोर माँ तो अब उस अनन्तकी यात्रापर चली गयी हैं, परंतु चबूतरेपर रखे हुए उनके जीवनसाथी वे घड़े और वह घनी छायावाला वटवृक्ष अब भी उन दयाकी मूर्ति जीवकोर माँकी स्मृति दिलाते रहते हैं। —बालमुकुन्द दवे

(४)

स्वावलम्बनकी शिक्षा

खलीफा हारुन अल रशीदकी दयालुता और न्यायप्रियताकी अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। परंतु उनके राज्यमें और भी ऐसे अनेक लोग थे, जो त्यागमय, विनम्रपूर्ण और स्वावलम्बी जीवन बिता रहे थे। इनमेंसे एक थे मदरसा अब्बासियके उस्ताद।

एक बारकी बात है। खलीफा हारुन अल रशीद अपने वजीरके साथ जनताकी तकलीफें सुननेके लिये निकले। जब वे मदरसा अब्बासियके निकटसे गुजरे तो सहसा उन्हें याद आया कि उनके शहजादे भी तो इसी पाठशालामें पढ़ते हैं।

वे वजीरके साथ मदरसेके भीतर गये । देखा, विद्यार्थियोंके उस्ताद अपने हाथोंसे पानी लेकर मुँह धो रहे हैं और दोनों शहजादे उनके पास खड़े हैं। खलीफाको थोड़ा बुरा लगा—यह क्या ? शहजादोंको पानी लेकर खड़ा होना चाहिये था।

उन्होंने उस्तादसे कहा—'मैं शहरके मुआयनेपर निकला था। इधरसे गुजरा तो सोचा—'देखूँ, शहजादोंकी तालीम कैसी हो रही है ?' पर यहाँ आकर मुझे लगा कि उनकी तालीम अभी पूरी नहीं हुई है।

'कैसे ?' वृद्ध उस्तादने पूछा।

'देखिये न, आप-जैसे बुजुर्ग खुद पानी लेकर हाथ-मुँह धो रहे हैं और आपके शागिर्द पासमें खड़े हैं। पानी तो उन्हें उठाकर देना चाहिये था।'

वृद्ध उस्ताद मुस्कराये। फिर कहा—'गुस्ताखी माफ करें। आप-हम सभी चाहते हैं कि बच्चे स्वावलम्बी बनें। दूसरोंपर निर्भर न रहें। जब हम बड़े लोग स्वावलम्बी नहीं बनेंगे, तब बच्चोंसे कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि वे स्वावलम्बी बन सकेंगे ? हमें अपने आचरणसे बच्चोंको शिक्षा देनी चाहिये। मैं स्वयं पानी लेकर शहजादोंको स्वावलम्बनकी शिक्षा दे रहा था।' —गोपालदास नागर

(५)

ऋण-मुक्ति

मैं जिस कालेजमें अध्यापक हूँ, उसके निकट एक अस्सी वर्षका बूढ़ा मोची बैठता था। वह सदा प्रसन्न और संतुष्ट दिखायी देता था। एक दिन मैंने अपनी पुत्रीके नये सैंडिल ठीक करने तथा पालिस करनेके लिये उसे दिये। मोचीने पालिस आदि कर उन्हें एक ओर रख दिया था। फिर वह दूसरे जूतोंकी मरम्मतमें इस प्रकार खो गया कि कोई उसकी आँख बचाकर उन्हें चुरा ले गया।

सायंकाल स्कूलकी छुट्टी होनेके पश्चात् जब मैं सैंडिल लेने गया, तब उस मोचीने कहा—'बाबूजी ! न जाने कौन मेरी आँख बचाकर आपका सैंडिल उठा ले गया। मैं कुछ दिनोंमें नये सैंडिल बनाकर आपको दे दूँगा।'

इस घटनाके दस दिन पश्चात् सरकारी अस्पतालके जनरल वार्डमें मैं अपने एक मित्रके साथ गया तो वहाँ बीमार पड़े हुए उस मोचीने मुझे पहचान लिया और बुलवाकर कहा—'बाबूजी ! ठीक समयपर आपसे भेंट हो गयी। नहीं तो ऋणसे मेरी मौत बिगड़ जाती। अचानक बीमार हो जानेके कारण मैं नये सैंडिल बनाकर तो नहीं दे पाऊँगा, परंतु उसकी कीमत आप ले लें।' ऐसा कहकर उसने अपने बेटेसे मुझे पचीस रुपये देनेके लिये कहा।

मोचीकी दयनीय अवस्था देखकर मैंने उससे कहा—'इन रुपयोंका उपयोग तुम अपनी दवा आदिमें कर लेना।'

मोचीने कहा—'इन रुपयोंसे मेरी जिंदगी बच सकेगी, यह मैं नहीं जानता, परंतु इस ऋणको वापस लौटानेसे मेरी मृत्यु अवश्य सुधर जायगी।' और पासमें बैठे हुए अपने बेटेसे पुनः कहा—'मेरी मृत्युके पश्चात् ऋण लेकर मृत्युभोज करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ऋणसे जन्म-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरणका बन्धन समाप्त नहीं होगा और मेरे जीवनका लक्ष्य पूरा नहीं हो सकेगा।'

बेटेने बूढ़े बापकी बात माननेका वचन दिया। मैंने देखा, बूढ़ेका मुखमण्डल ऋण-मुक्तिकी भावनाकी तेजस्वितासे चमक रहा था। उसके मुखारविन्दपर एक प्रकारकी संतुष्टि थी और मनमें था आह्लाद। (अखण्ड आनन्द)

(६)

सादगीसे महानता

घटना उन दिनोंकी है, जब महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयके निमित्त धन-संग्रह कर रहे थे। इस धन-संग्रहके कार्यके लिये एक बार वे रंगून गये। वहाँ कई बड़े-बड़े धनवान् सेठ थे, जो मूलतः भारतके ही थे। करोड़ोंका उनका व्यापार था।

ऐसे ही एक करोड़पति धनवान्की हवेलीपर पण्डित मदनमोहन मालवीय पहुँचे। हवेली बड़ी थी, किंतु वहाँ सादगी थी। दरवाजेसे होकर मालवीयजी भीतर गये। कमरेमें एक चारपाई थी। चारपाईपर एक दरी बिछी थी। एक व्यक्ति सामान्य वेश-भूषामें चारपाईपर बैठा था। उसने मालवीयजी-का स्वागत किया। चारपाईपर बैठाया। बैठनेके बाद महामना मालवीयजीने उस व्यक्तिसे पूछा—'क्यों भाई! सेठजी कहाँ हैं? कब मिलेंगे? मैं काशीसे आया हूँ। मेरा नाम मदनमोहन मालवीय है।'

चारपाईपर बैठे व्यक्तिने कहा—'वह गरीब मैं ही हूँ। आपका काशीसे भेजा हुआ पत्र मुझे मिल गया था।' मालवीयजी उनकी सादगी देखकर आश्चर्यचकित रह गये।

हाथ जोड़कर सेठजीने पूछा—'कहिये, क्या आज्ञा है?'

मालवीयजीने कहा—'मैं काशीमें बन रहे एक विशाल हिन्दू-विश्वविद्यालयके लिये कुछ धनराशि प्राप्त करनेकी इच्छासे आपके पास आया हूँ।'

सेठजीने तुरंत अपने मुनीमको बुलवाया। चेक लिखनेके लिये कहा और उसपर हस्ताक्षर कर महामनाजीको दे दिया। उन दिनों रुपयोंका मूल्य आजकी अपेक्षा बहुत अधिक था।

मालवीयजी दूसरी बार आश्चर्यमें डूब गये, जब उन्हें पाँच लाख रुपयोंका चेक बिना किसी विलम्बके तुरंत प्राप्त हो गया।

सेठजीने कहा—'मालवीयजी! आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। मैं जब छोटा था, तब मुझे एक पण्डितजी पढ़ाते थे। उन्होंने मुझे एक सीख दी थी कि 'बेटा! तुम गरीब रहो या धनवान् बन जाओ, लेकिन सादगीसे रहना। ठाट-बाट या दिखावा करनेके लिये एक पाई भी खर्च मत करना।' वह बात मैं भूला नहीं हूँ। इसलिये आज मैं धनवान् बन पाया हूँ। उसमेंसे कुछ अंश विश्वविद्यालयके निर्माणके लिये दे रहा हूँ। आवश्यकता पड़नेपर मैं आगे भी विश्व-विद्यालयकी यथासम्भव सेवा करनेकी इच्छा रखता हूँ।'

महामना मालवीयजी बोल उठे—'धन्य हैं सेठजी आप!'

जिसमें ईमानदारी और सादगी होती है, वही महान् बनता है। ठाट-बाट या दिखावेसे आदमी महान् नहीं बनता। महान् बनता है सादगीसे।

पितामह भीष्मने युधिष्ठिरसे कहा—'माता-पिताकी भक्तिको मैं सबसे श्रेष्ठ धर्म मानता हूँ। तीनों लोक, तीनों आश्रम, तीनों वेद, तीनों अग्नि सब माता-पितामें और उनसे भी बढ़कर गुरुमें मौजूद हैं। जो इन तीनोंकी भक्ति करनेसे नहीं चूकता, वह तीनों लोकोंको जीत लेता है। जिसने इन तीनोंका मान किया, उसने सबका मान किया और जिसने इनका अनादर किया, उसकी सब क्रियाएँ नष्ट हो गयीं।'—महाभारत

'मनुष्योंकी उत्पत्ति और पालन आदिमें माता-पिता जो दुःख सहन करते हैं, उसका बदला सैकड़ों वर्ष सेवा करनेपर भी नहीं दिया जा सकता। अतएव सदा माता-पिता और आचार्यका प्रिय कार्य करना चाहिये। इन तीनोंके संतुष्ट होनेसे सब तप पूरे हो जाते हैं। इन तीनोंकी सेवाका नाम परम तप है। इनकी आज्ञा लेकर दूसरे धर्मोंका आचरण करना चाहिये।'—मनु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

गुण और योग्यता

एक थे सेठजी, उनके तीन पुत्र थे। उन्होंने एक दिन अपने पुत्रोंको बुलाकर कहा—'अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। कौन जाने अब कितने दिन जी पाऊँगा। परंतु तुमलोगोंसे एक बात पूछनेकी इच्छा है। बोलो, तुमलोग मुझे कितना चाहते हो ?

सबसे बड़े पुत्रने कहा—'पिताजी ! आपके प्रति मेरा प्रेम समुद्रकी तरह अथाह है। मैं आपको बहुत चाहता हूँ।'

मझले पुत्रने कहा—'पिताजी ! आपके प्रति प्रेमकी तुलना मैं किसी दूसरेसे नहीं कर सकता।'

सबसे छोटेने कहा—'पिताजी ! मैं तो इतना जानता हूँ कि आप मेरे पिता हैं और पिता-पुत्र दोनों एक-दूसरेको अपने प्राणोंसे भी अधिक चाहते हैं।'

तीनों पुत्रोंकी बात सुनकर सेठजी चुप रहे।

कुछ दिनोंके बाद सेठजीने अपने मुनीमको बुलाकर कहा—'मुनीमजी ! अब मैं वृद्ध हो गया। मेरी इच्छा है कि अब मैं तीर्थयात्रा कर लूँ। और मैं कल ही यात्रापर जानेवाला हूँ। मेरी अनुपस्थितिमें गद्दीका काम-काज ठीकसे चले, इसका ध्यान रखियेगा। सेठजी दूसरे ही दिन तीर्थयात्रापर निकल पड़े।

दो-एक महीने बाद समाचार मिला कि सेठजीका रास्तेमें ही स्वर्गवास हो गया। यह समाचार सुनकर पूरा परिवार शोकमें डूब गया।

सेठजीका सारा व्यापार अब लड़कोंके हाथमें आ गया था। परंतु सेठजीकी इच्छानुसार मुनीमजी गद्दीकी तथा काम-काजकी देख-रेख रखते थे। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया।

एक दिन एक वृद्ध संन्यासी सेठजीके घरके दरवाजेपर आ खड़े हुए। उन्होंने देखा कि एक युवक साधारण अवस्थामें उदास-सा कुछ दूर बैठा है। संन्यासीने उसके पास जाकर पूछा—'बेटा ! तुम इस तरह उदास क्यों बैठे हो ?'

उसने बताया—'महात्माजी ! मेरे पिताजी एक वर्ष पहले तीर्थयात्रापर गये थे। रास्तेमें ही उनका स्वर्गवास हो गया। उन्हींके वियोगसे मैं उदास रहने लगा हूँ। मैं उन्हें भूल नहीं सकता।' और इतना कहनेके बाद उसकी आँखोंमें आँसू भर आये।

उस संन्यासीने पूछा—'तुम्हारे दूसरे भाई हैं ?'

जी हाँ, हम तीन भाई हैं। मझला तो पिताजीके स्वर्गवास होनेके बाद मौज-मस्तीमें खो गया है। पिताजीकी सम्पत्ति उड़ा-खा रहा है। मैं तीनोंमें ज्येष्ठ हूँ, परंतु स्वस्थ न रहनेके कारण सारा काम-काज मेरा सबसे छोटा भाई ही देखता है। वह व्यापारकी देख-रेख परिश्रम और ईमानदारीसे करता है। परंतु मझला उसके कार्यमें प्रायः बाधा डालता है, इस कारण हम दोनोंको उसीकी चिन्ता रहती है।

संन्यासी वहाँसे उठकर सीधे सेठजीकी गद्दीपर पहुँचे।

सेठजीकी कुर्सीपर बैठे एक तेजस्वी युवकने विनम्रतासे संन्यासीकी ओर देखकर पूछा—'महात्माजी ! आपकी हम क्या सेवा करें ?'

उसके इतना कहते ही संन्यासी उसके पास जाकर एकदम उससे लिपट गये और बोले—'बेटा ! तुमने मेरी इच्छा पूरी की है। मैं तुम्हारा पिता हूँ। तुम तीनों भाइयोंके गुण और योग्यताकी परखके लिये ही मैंने झूठा समाचार भिजवाया था और एक वर्षतक हरिद्वारमें रहा। अब मुझे विश्वास हो गया कि तुम ही मुझे अधिक चाहते हो। तुम्हारेमें वे गुण और योग्यताएँ हैं, जो एक श्रेष्ठ पुत्रमें होना चाहिये। परंतु बेटा ! अपने बड़े और मझले भाइयोंका भी ध्यान रखना और उन्हें भी अपने-जैसा बनानेकी चेष्टा करना। मैं तो अब वापस हरिद्वार जा रहा हूँ।'

पुत्रके बहुत समझानेपर भी पिताने घर-गृहस्थीका मोह छोड़ दिया और वे हरिद्वारमें जाकर भगवद्भजन-परायण हो गये।

राम भरोसो राम बल, राम नाम बिस्वास। सुमिरत सुभ मंगल कुसल माँगत तुलसीदास॥
राम-नाम रति, राम गति, राम-नाम बिस्वास। सुमिरत सुभ मंगल कुसल, दुहुँ दिसि तुलसीदास॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

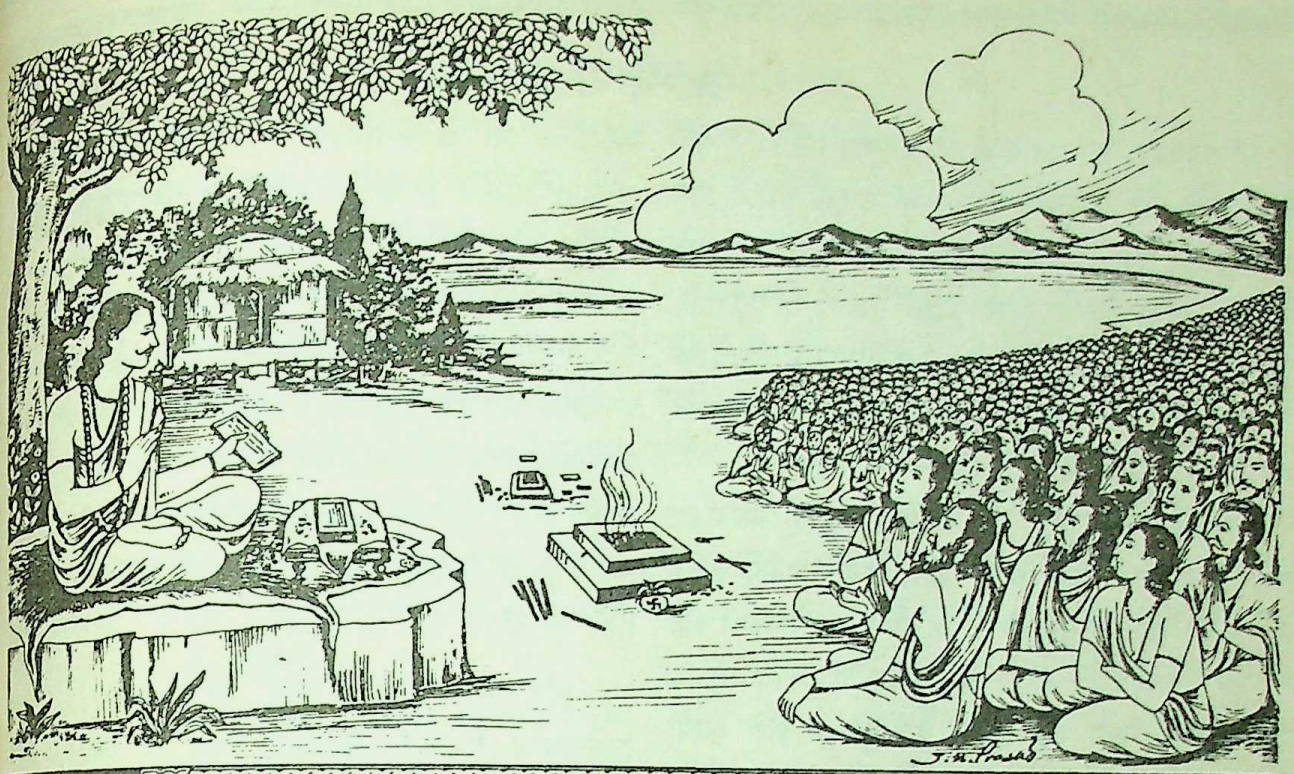

कल्याण

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत् ।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥

वर्ष ६३ } गोरखपुर, सौर पौष, वि॰सं॰ २०४६, श्रीकृष्ण-सं॰ ५२१५, जनवरी १९९० ई॰ { संख्या १० पूर्ण संख्या ७५५

मुरलीमनोहर भगवान् श्रीकृष्ण

स्याम कर मुरली अतिहिं बिराजति ।
परसति अधर सुधारस बरसति, मधुर मधुर सुर बाजति ॥
लटकत मुकुट, भौंह-छबि मटकति, नैन-सैन अति राजति ।
ग्रीव नवाइ अटकि बंसी पर कोटि मदन-छवि लाजति ॥
लोल कपोल झलक कुंडल की, यह उपमा कछु लागत ।
मानहुँ मकर सुधा-रस क्रीड़त, आपु-आपु अनुरागत ॥
बृंदावन बिहरत नँद-नंदन, ग्वाल सखा सँग सोहत ।
सूरदास प्रभु की छबि निरखत, सुर-नर-मुनि सब मोहत ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

अभिमानवश यह मत कहो कि भगवान् ऐसे ही हैं और गीताका तत्त्व यही है। याद रखो—भगवान्का यथार्थ ज्ञान पुस्तकें पढ़नेसे, तर्क-युक्तियोंकी प्रबलतासे या केवल दर्शनोंकी मीमांसासे नहीं हो सकता। इनसे बुद्धिकी प्रखरता तो बढ़ती है, परंतु आगे चलकर वही बुद्धि ऐसे तर्कजालमें फँसा देती है कि फिर बाध्य होकर अभिमान और राग-द्वेषादिका प्रभाव स्वीकार करना पड़ता है और जीवन ही जंजाल बन जाता है।

भगवान् सारी गीता कह जानेके पश्चात् अठारहवें अध्यायके अन्तिम भागमें अपने यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिके उपाय बतलाते हैं। गीता तो सुना ही दी थी, फिर आवश्यकता क्या थी उपाय बतलानेकी ? उपाय बतलानेका यही तात्पर्य है कि केवल पढ़नेसे काम नहीं होता, पढ़-सुनकर वैसा करना पड़ेगा, तब भगवान्की 'पराभक्ति' मिलेगी और पराभक्ति मिलनेपर भगवत्कृपासे भगवान्का यथार्थ ज्ञान होगा।

वे उपाय ये हैं—

पाप-तापकी, छल-छिद्रकी, दम्भ-दर्पकी और ऐसे ही अन्यान्य दोषोंकी सारी भावनाओंको मिटाकर बुद्धिको परम शुद्ध करो; एकान्तमें रहकर वृत्तियोंको संयत करो; परिमित और शुद्ध आहार करके शरीरका शोधन करो; मन, वाणी और शरीरपर अपना अधिकार स्थापित करो; दृढ़ वैराग्य धारण करो; नित्य भगवान्का ध्यान करो; विशुद्ध धारणासे अन्तःकरणका नियमन करो; शब्दादि सब विषयोंका त्याग करो; राग-द्वेषकी जड़ काटो; अहङ्कार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रहका त्याग करो। सब जगहसे ममताको हटा लो और ऐसा करके चित्तको सर्वथा शान्त कर लो, तब ब्रह्मकी प्राप्तिके योग्य होओगे। इसके पश्चात् जब ब्रह्मभूत अवस्था, अखण्ड प्रसन्नता, शोक और आकाङ्क्षासे रहित सम-स्थिति और सब भूतोंमें सम—एकात्मभावकी प्राप्ति होगी, तब भगवान्की 'पराभक्ति' प्राप्त होगी और उस पराभक्तिसे भगवान्के तत्त्वका अर्थात् भगवान् कैसे हैं, क्या हैं—यह ज्ञान होगा। तदनन्तर ऐसा यथार्थ ज्ञान होते ही तुम भगवान्में प्रवेश कर जाओगे।

भगवान्को जाननेके जो उपाय ऊपर बतलाये गये हैं, वे न हो सकें तो श्रद्धाके साथ भगवान्के शरणागत हो जाओ। कहोगे—'हम तो भगवान्को जानते ही नहीं, फिर किस भगवान्की शरण हो जायँ।' इसीलिये तो भगवान्ने अर्जुनसे कहा—'तुम एकमात्र मेरी शरणमें आ जाओ।' बस, भगवान्की इस बातको मानकर अर्जुनको उपदेश देनेवाले सौन्दर्य-माधुर्यके अनन्त अर्णव परम प्रिय परम गुरु ईश्वर पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी शरण हो जाओ। उनके इन शब्दोंको स्मरण रखो—'मुझमें मन लगाओ, मेरे भक्त बन जाओ, मेरी पूजा करो, मुझे नमस्कार करो। मैं शपथ करके कहता हूँ, तुम मुझको ही प्राप्त होओगे।' याद रखो—'तुम मुझे बड़े प्यारे हो।'

और क्या चाहिये ? बस, यदुकुलभूषण नन्दनन्दन आनन्दकन्द भगवान् मुकुन्दकी शरण हो जाओ, उनके कृपा-कटाक्षमात्रसे अपने-आप ही तुम सारे साधनोंसे सम्पन्न हो जाओगे, तुम्हें 'पराभक्ति' प्राप्त हो जायगी और तब तुम उन्हें यथार्थरूपमें जान सकोगे।

गीतामें उन्होंने जो दिव्य वचन कहे हैं, उनके अनुसार अपनेको योग्य बनानेकी चेष्टा करते रहो, दैवीसम्पत्ति और भक्तोंके गुणोंका अर्जन करो। करो उन्हींके कृपाके भरोसे। और मन, वाणी, शरीरसे बारम्बार अपनेको एकमात्र उन्हींके चरणोंमें समर्पण करते रहो। जिस क्षण तुम्हारे समर्पणका भाव यथार्थ समर्पणके स्वरूपमें परिणत हो जायगा, उसी क्षण वे तुम्हें अपनी शरणमें ले लेंगे। बस, उसी क्षण तुम निहाल हो जाओगे।

इसलिये तर्कजालमें मत पड़ो, सिद्धान्तको लेकर मत लड़ो, साध्यतत्त्वकी मीमांसा करनेमें जीवन न लगाओ। जिनको पाण्डित्यका अभिमान है, उन्हें लड़ने दो, तुम बीचमें मत पड़ो। तुम तो बस, श्रीकृष्णको ही साध्यतत्त्व मानकर उनका आश्रय ले लो। गीतामें भगवान्ने इसीको सर्वोत्तम उपाय बतलाया है। गीता पढ़कर तुमने यदि ऐसा कर लिया तो निश्चय समझो—गीताका परम और चरम तत्त्व तुम अवश्य ही जान जाओगे। नहीं तो, झगड़ते रहो और नाक रगड़ते रहो, न तत्त्व ही प्रकाशित होगा और न दुःखोंसे ही छूटोगे।—**'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यानकी आवश्यकता

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्य-जीवनका उद्देश्य भगवान्‌को प्राप्त करना है। इसके लिये प्रधान साधन दो प्रकारके हैं—भेद और अभेद। दोनों दो प्रकारके अधिकारियोंके लिये हैं, फल दोनोंका एक ही है। इसलिये यह बात नहीं कि अमुक ही करना चाहिये। अधिकांशमें भेदका साधन ही सबके लिये उत्तम और सुगम समझा जाता है। अभेदमें भी दो प्रकार हैं—एक **'अहं ब्रह्मास्मि'** मैं ब्रह्म हूँ और दूसरा **'वासुदेवः सर्वमिति'** सब कुछ वासुदेव ही है। इनमें दूसरा प्रकार श्रेष्ठ है। अपनेमें ब्रह्मका समावेश न करके भगवान्‌में ही सबका और अपना समावेश कर देना चाहिये।

भेद और अभेद दोनों ही साधनोंमें ध्यानकी सबसे अधिक आवश्यकता है। गीता, योगशास्त्र आदि सभी ग्रन्थ ध्यानकी उपादेयताका वर्णन करते हैं। गीतामें तो भगवान्‌ने **'न किंचिदपि चिन्तयेत्'** कहकर केवल भगवच्चिन्तनका ही उपदेश दिया है; परंतु अधिकांश लोग कठिन समझकर या आलस्यवश इस स्थितिपर पहुँचनेके लिये प्रयत्न ही नहीं करते। ध्यान बहुत ही कम किया जाता है और इस विषयमें लोग निरुत्साह-से हो रहे हैं। यह स्थिति बहुत शोचनीय है। मनुष्यको यह बात दृढ़ निश्चयके साथ मान लेनी चाहिये कि अभ्यास करनेसे 'अचिन्त्य-अवस्था' अवश्य होती है। जैसे लोग भ्रमवश निष्काम कर्मको असम्भव मानकर कह देते हैं कि स्वार्थरहित कर्म कभी हो ही नहीं सकता, वे इस बातको नहीं सोचते कि जब चेष्टा और अभ्यास करनेसे स्वार्थ या कामना कम होती है, तब किसी समय उनका नाश भी अवश्य हो सकता है। जो चीज घटती है, वह नष्ट भी होती है, फिर निष्काम या निःस्वार्थ कर्म क्यों नहीं होंगे, इसी प्रकार जब एक-दो क्षण मन अचिन्त्य-दशाको प्राप्त होता है तो सदाके लिये भी वह हो ही सकता है। आवश्यकता है अभ्यास करनेकी।

अभ्यास भी बड़े उत्साह और लगनके साथ करना चाहिये। क्षण-दो-क्षणके लिये संसारकी ओर मन कम जाय, इतनेमें ही संतोष नहीं मानना चाहिये। मनको परमात्मामें पूर्ण एकाग्र करना चाहिये। जबतक कम-से-कम मिनट-दो-मिनट भी मन संसारको सर्वथा छोड़कर परमात्मामें पूर्णरूपसे न लगे, तबतक ध्यानका अभ्यास छोड़कर आसनसे नहीं उठना चाहिये। यदि दृढ़ निश्चयके साथ ध्यानका अभ्यास किया जायगा तो अवश्य उन्नति होगी। संसारका चित्र मनसे सर्वथा हटानेकी चेष्टा करते-करते ऐसा स्वाभाविक अभ्यास बन सकता है कि फिर जिस समय आप चाहेंगे, उसी समय आपके मनमें संसारका अभाव हो जायगा। परमात्माके अतिरिक्त समस्त संसारका अभाव हो जाना ही अचिन्त्य-अवस्था है। इस अवस्थामें ज्ञानकी जागृति रहती है, लय नहीं हो जाता। सबको भुलाकर परमात्मामें मन नहीं रहेगा तो वह लय समझा जायगा। गीतामें उस विज्ञानानन्दघन परमात्माको सर्वज्ञ, अनादि, सबका नियन्ता, सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, सबका धारण-पोषण करनेवाला अचिन्त्यस्वरूप, प्रकाशरूप, अविद्यासे परे, शुद्ध सच्चिदानन्दघन, ज्ञानस्वरूप बतलाया है। इस प्रकार जैसा स्वरूप समझमें आवे, उसी स्वरूपको पकड़कर उसका ध्यान करना चाहिये। परमात्माका यथार्थ स्वरूप तो इसका फल है, जिसका वर्णन हो नहीं सकता। उस ज्ञानस्वरूप परमात्माको ग्रहण करके सबको भुला देना चाहिये।

ऐसा ध्यान न समझमें आवे तो सूर्यके सदृश प्रकाश-स्वरूपका ध्यान करना चाहिये, आँखें मूँदनेपर सामान्यभावसे जो प्रकाशपुञ्ज प्रतीत हो, उसीको देखता रहे और सब कुछ भुला दे। यह ब्रह्मके तेजःस्वरूपका ध्यान है और उपर्युक्त ज्ञानस्वरूपका।

इस प्रकार न किया जाय तो भगवान्‌के जिस सगुण स्वरूपमें भक्ति हो, उसी स्वरूपकी मूर्ति मनके द्वारा स्थिर करके मनको उसके अंदर भलीभाँति प्रवेश करा दे। उन भगवान्‌के सिवा संसारका और अपना कुछ भी ज्ञान नहीं रह जाय। जबतक ध्यानकी ऐसी अनन्य स्थिति न हो (हो चाहे प्रारम्भमें एक-दो-मिनट ही) तबतक आसनसे नहीं उठना चाहिये। जब ऐसी स्थिति हो जायगी, तब चित्तमें एक अपूर्व शान्ति और प्रफुल्लता होगी। जिससे ध्यानमें आप ही रुचि बढ़ जायगी। निराकारका या साकारका—कोई-सा भी ध्यान हो—होना चाहिये इस प्रकारका कि जिसमें संसारका और अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिलकुल पता ही न रहे। एक इष्टके सिवा सबका अत्यन्त अभाव हो जाय। ध्यानकी इसी स्थितिके लिये सब प्रकारके साधन किये जाते हैं; सेवा, भजन आदि जो कुछ भी किया जाय, ध्यानकी प्रगाढ़ स्थितिसे सब नीचे हैं। परमात्मामें अचल अटल वृत्ति स्थिर हो जाना ही बहुत बड़ा लाभ है। इस प्रकारके ध्यानकी कामना रखनेमें भी कोई आपत्ति नहीं है। मुक्तिकी कामना न करके ऐसे अविचल ध्यानकी कामना करना अच्छा है। जिसकी ऐसी नित्य स्थिति हो जाती है, वह दूसरोंको भी मुक्ति प्रदान कर सकता है।

चेतन ज्ञानस्वरूपमें मनके लय हो जानेपर उसकी कैसी स्थिति होती है सो बतलायी नहीं जा सकती। वैसी अवस्था हुए बिना उसे वैसे ही कोई नहीं समझ सकता जैसे आजन्म ब्रह्मचारी स्त्री-संगकी अवस्थाको नहीं समझता। जब नाशवान् भोगकी आवश्यकता नहीं समझायी जा सकती, तब ब्राह्मी स्थितिको तो वाणीसे कोई कैसे समझा सकता है? उस अवस्थाको समझनेके लिये वैसी अवस्था बनानेका प्रयत्न करना चाहिये। सबको भूलनेके बाद जो कुछ बच रहे, उसीको अपना इष्ट ध्येय बनाकर उसका ध्यान करना चाहिये। ऐसे ध्यानमें ऊँचे-से-ऊँचा आनन्द प्राप्त हो सकता है।

अपने अधिकांश लोगोंका भक्तिका मार्ग है और भक्तिके मार्गमें ध्यान प्रधान है। भगवान्ने जहाँ-जहाँपर गीतामें भक्तिकी महिमा गायी है, वहाँ ध्यानका बड़ा महत्त्व बतलाया है। किसी तरह भी भगवान्में मनको प्रवेश करा देना चाहिये। भगवान्ने उसीको उत्तम बतलाया है जो अन्तरात्माको—मनको भगवान्में प्रवेश करा देता है। भगवान् कहते हैं—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥
मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥
मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

(गीता ६।४७, १२।२,८)

'हे अर्जुन! सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मासे मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है। मुझमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त हुए मुझ परमेश्वरको भजते हैं, वे मुझको योगियोंमें भी अति उत्तम योगी मान्य हैं। इसलिये तू मुझमें मनको लगा, मुझमें ही बुद्धिको लगा, इसके उपरान्त तू मुझमें ही निवास करेगा अर्थात् मुझको ही प्राप्त होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

वन्दना

बंदौं चरन-सरोज तिहारे।
सुन्दर स्याम कमल-दल-लोचन, ललित त्रिभंगी प्रान-पियारे॥
जे पद-पदुम सदा सिवके धन, सिंधु-सुता उर तैं नहिं टारे।
जे पद-पदुम तात-रिस-त्रासत, मन-बच-क्रम प्रह्लाद सँभारे॥
जे पद-पदुम-परस-जल-पावन-सुरसरि-दरस कटत अघ भारे।
जे पद-पदुम-परस रिषि-पतिनी बलि, नृग, ब्याध, पतित बहु तारे॥
जे पद-पदुम रमत बृंदाबन अहि-सिर धरि, अगनित रिपु मारे।
जे पद-पदुम परसि ब्रज-भामिनि सरबस दै, सुत-सदन बिसारे॥
जे पद-पदुम रमत पांडव-दल दूत भए, सब काज सँवारे।
सूरदास तेई पद-पंकज त्रिबिध-ताप-दुख-हरन हमारे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धा-विश्वास

(स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती)

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥

श्रद्धा और विश्वासस्वरूप शङ्कर तथा पार्वतीकी मैं वन्दना करता हूँ। यदि किसी योगीने सिद्धि प्राप्त कर ली हो और इससे वह सिद्ध भी कहलाता हो तथापि जबतक वह श्रद्धा और विश्वासपूर्वक ज्ञानसाधन नहीं करता, तबतक उसे हृदयमें स्थित आत्मदेवका दर्शन नहीं होता।

आत्मज्ञानके साधन तो तप, तीर्थाटन, दान, सेवा, पाठ-पूजा, यज्ञ-याग, भक्ति, ज्ञान आदि अनेकों हैं, परंतु ये सब साधन ही हैं। इनके साथ श्रद्धा और विश्वास न हो तो कोई भी साधना सफल नहीं होती।

श्रद्धा और विश्वासका पृथक्करण एक कविने बहुत ही सुन्दर रीतिसे किया है, वह जाननेयोग्य है। आस्तिकताका स्वरूप समझाते हुए वह कहता है—

मैं हरिका, हरि मेरे रक्षक, यही भरोसा बना रहे।
जो हरि करते वह हित मेरा, यह निश्चय ही सदा रहे॥

ईश्वर सृष्टिका कर्ता है, इसलिये मैं ईश्वरका हूँ। ईश्वर ही सृष्टिका पालन, पोषण तथा रक्षण करता है, इसलिये मेरी रक्षा भी वह करेगा ही। ईश्वरमें ऐसा भरोसा अर्थात् ऐसी श्रद्धा होनी चाहिये। इस प्रकारकी श्रद्धाके फलस्वरूप, ईश्वर जो कुछ करता है, वह मेरे भलेके लिये ही होता है—ऐसा अटल निश्चय हो जाता है। यही ईश्वरमें विश्वास कहलाता है। ऐसी अविचल भावना, ऐसी अडिग श्रद्धा और विश्वास जिसका ईश्वरमें हो, वही सच्चा आस्तिक कहलाता है।

आस्तिक और नास्तिककी विचारसरणिमें अन्धकार और प्रकाश-जैसा भेद है। कुछ दिनों पूर्व, जहाँ मैं रहता था, वहाँ गृहस्वामीका एक बारह-तेरह वर्षका लड़का झूलेसे झूलते समय गिर पड़ा। परंतु भाग्यसे उसे कोई गहरी चोट न लगी। गृहस्वामीने कहा कि 'प्रभुने लाज रखी। यदि डोरी न टूट गयी होती तो वह चित्त गिरता और इस सीढ़ीका कोना सिरमें लगता, तब क्या होता, यह कहा नहीं जा सकता।' इस प्रकार ईश्वर शूलीके विघ्नको सूई गड़ाकर दूर कर देता है, इसका यह प्रत्यक्ष दृष्टान्त है।

उनके साथ एक कालेजवाला था, उसने कहा—'भाई ! तुम तो वैसे-के-वैसे ही रह गये। लड़का गिर गया और चोट लगनेकी कोई चीज न रही, इस कारण चोट न लगी। बहुधा कहीं अधिक चोट लगती भी नहीं। इसमें ईश्वरके रक्षकत्वकी बात कहाँसे टपक पड़ी ! हाँ, कहना ही हो तो यह कह सकते हो कि 'ईश्वरने उसको गिरा दिया, परंतु अच्छा हुआ कि चोट न लगी।'

सूक्ष्मदृष्टिसे देखिये तो पता लगेगा कि श्रद्धा विश्वासकी जननी है। परंतु माता और पुत्र निरन्तर एक ही साथ रहनेके कारण एकार्थवाची हो गये हैं। जहाँ श्रद्धा है, वहाँ विश्वास भी रहता है और जहाँ विश्वास है, वहाँ उसके मूलमें श्रद्धा होती ही है।

मान लीजिये, हम किसी अज्ञात गाँवमें जा पहुँचे और वहाँ कोई परिचित मिला, हमने उससे पूछा कि 'भाई ! बतलाओ, इस गाँवमें भला और ईमानदार दूकानदार कौन है, जिससे जरूरतकी चीजें खरीद ली जायँ।' उस भाईने किसी एक दूकानकी ओर संकेत किया और उसको हमने ध्यानमें रख लिया। दो-चार दिनोंके बाद थोड़ी चीजें खरीदनेकी जरूरत पड़ी और हम उस दूकानपर पहुँचे तथा उस दूकानदारसे कहा—'अमुक-अमुक वस्तुएँ अच्छी देखकर इतनी-इतनी दे दो।' उसने तदनुसार ठोगोंमें बाँधकर चीजें दे दीं और जितने पैसे माँगे उतने पैसे हमने चुका दिये। रास्ते चलते जीवकी संदेहवृत्ति—संदेह करनेका स्वभाव जाग्रत् हुआ और उसने कहा—'अच्छा, आँखें मूँदकर पैसे तो चुका दिये, परंतु दूसरी दो दूकानोंमें भाव-ताव पूछकर खातिरी तो कर लें कि कहीं ठगा तो नहीं गये।' तुरंत ही रास्तेमें जो दूकान आयी, वहाँ भाव पूछकर देखा तो एक वस्तुका वही भाव और दूसरी वस्तुका बहुत तेज भाव दूकानदारने बताया। आगे जाकर दूसरी दूकानमें पूछ-ताछ की तो वहाँ भी वैसा ही उत्तर मिला। अब विश्वास हो गया कि ठगाये तो नहीं । घर आकर वस्तुएँ घरमें दीं, उनको देखकर गृहिणीने कहा—'चीजें तो सभी अच्छी हैं।'

यहाँ हमने एक साधारण जान-पहचानवाले मनुष्यके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वचनके ऊपर श्रद्धा रखी और उस श्रद्धाके बलसे उस दूकानदारके ऊपर विश्वास रखा। दूसरी दूकानोंपर पूछकर खातिरी कर ली कि उसने हमको ठगा नहीं। इससे वह विश्वास दृढ़ हो गया। इस प्रकार श्रद्धा विश्वासकी जननी है।

एक विद्यार्थी पाठशालामें पढ़नेके लिये बैठा। शिक्षकने उसकी पाटीपर एकका अङ्क लिख दिया और कहा कि इसको 'एक' कहते हैं। यदि वह विद्यार्थी शिक्षकके वचनमें श्रद्धा न रखे और उलटा प्रश्न करे कि इसको 'एक' क्यों कहते हैं? घोड़ा क्यों नहीं कहेंगे?—ऐसी अवस्थामें वह विद्यार्थी पढ़ ही नहीं सकेगा। इस प्रकार जगत्में सभी कार्योंका आरम्भ श्रद्धासे ही होता है और वही श्रद्धा परिपक्व होकर विश्वासमें परिणत होती है।

बालक जब जन्मता है, तब बिलकुल अज्ञानकी हालतमें रहता है और उसको सारा ज्ञान केवल मातामें श्रद्धा रखनेसे ही मिलता है। माता कहती है—'मैं तेरी माँ हूँ और ये तेरे पिता हैं।' बालक श्रद्धासे विश्वास कर लेता है कि सचमुच ऐसी ही बात है। वह यदि ऐसा कहे कि 'इसका क्या प्रमाण है कि तू ही मेरी माँ और यही मेरे पिता हैं? प्रमाण देकर सिद्ध करके बतला तभी मैं मानूँगा, नहीं तो नहीं मानूँगा।' ऐसा हो तो उस लड़केका जीवन व्यर्थ जाता है, क्योंकि जिसको माताके वचनमें श्रद्धा नहीं, उसको जगत्के व्यवहारमें क्या श्रद्धा हो सकती है?

हम कुछ सौदा लेने किसी दूकानपर गये। वहाँ दूकानदारको यदि ऐसी श्रद्धा होगी कि उसके मालका दाम हम चुका देंगे, तभी वह दाम मिलनेके पहले माल देगा। वैसी श्रद्धा न होगी तो पहले दाम माँगेगा और कहेगा कि पैसे मिलनेके बाद माल दूँगा। हमको भी यदि उसमें श्रद्धा न हो और हम ऐसा विचार करें कि दाम लेकर माल न दिया तो?—ऐसी हालतमें हम माल लेनेके पहले पैसे नहीं देंगे। सब ओर ऐसी ही गाँठ बँध जानेपर तो फिर कोई व्यवहार ही नहीं चल सकेगा। दूकानदार दाम लेनेके पहले माल न दे और हम माल लेनेके पहले दाम न दें, तब फिर सौदा क्यों कर हो? इसलिये श्रद्धाके बिना कोई भी व्यवहार नहीं हो सकता।

श्रीकृष्णभगवान्ने गीतामें श्रद्धाके ऊपर बहुत जोर दिया है—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

(१७।३)

अपने अन्तःकरणके संस्कारके अनुसार मनुष्यमें श्रद्धा होती है। मनुष्यमात्रका जन्म अज्ञान-दशामें ही होता है, इसलिये जो संस्कार पहले जाग्रत् होता है, उसीके अनुसार उसकी श्रद्धा बन जाती है। अतएव मनुष्यमात्रमें किसी-न-किसी प्रकारकी श्रद्धाका होना स्वाभाविक है। इस प्रकार पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जैसी जिसकी श्रद्धा होती है, उसके अनुसार उसका आचरण होता है। इस प्रकार श्रद्धा मनुष्यमात्रमें एक नैसर्गिक धर्म है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४।३९)

जिस मनुष्यके मनमें ईश्वरपर श्रद्धा है और सद्गुरु तथा सत्-शास्त्रमें जिसे विश्वास है, ऐसा साधक इन्द्रियोंका संयम करके तत्परतासे साधन करता हुआ ज्ञानको प्राप्त कर लेता है और ज्ञानकी प्राप्ति हो जानेपर तत्क्षण वह परम शान्तिका अनुभव करता है।

इसके विपरीत, जिसमें ऐसी श्रद्धा नहीं होती, उसकी क्या दशा होती है, यह बतलाते हुए भगवान् कहते हैं—

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥

(गीता ४।४०)

जो मूर्ख है, किसीमें श्रद्धा नहीं रखता—ऐसा मनुष्य संशय और विपर्ययमें ही गोते खाया करता है और परिणाम-स्वरूप विनाशको प्राप्त होता है। इस प्रकारके निश्चय-विहीन मनुष्यको इस लोकमें भी सुख-शान्ति नहीं मिलती, तो फिर परलोकमें मिलनेकी तो आशा ही कैसे की जा सकती है? इसलिये श्रद्धा ही फलती है, यह समझाते हुए भगवान् कहते हैं—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥

(गीता १७।२८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'श्रद्धाके बिना किये हुए यज्ञ-यागादि, दिये हुए दानादि, की हुई तपश्चर्या, यहाँतक कि श्रद्धाके बिना किया हुआ कोई भी कर्म कोई फल नहीं देता, वह व्यर्थ जाता है। अर्जुन! उससे इस लोकमें कोई सिद्धि नहीं मिलती, फिर भला परलोकमें कैसे मिल सकती है? यानी नहीं मिलती।'

यहाँतक हमने यह आलोचना की है कि श्रद्धा और विश्वास तो मनुष्यमें साधारणतः होते ही हैं। ऐसा होनेपर भी जो मनुष्य इनको विकसित नहीं करता, वह इस लोकमें तो सुख पाता ही नहीं, उसका परलोक भी बिगड़ जाता है।

श्रद्धा और विश्वासके विषयमें इतना सुनकर अपनेको सुधरे हुए तथा प्रत्यक्ष विज्ञानको माननेवाले आधुनिक पुरुष कहेंगे कि इस प्रकारके अन्धविश्वाससे समाज निर्बल बनता है और व्यक्ति भी अपनी शक्ति गवाँ बैठता है। इसलिये तुम जो श्रद्धा-विश्वासकी बात करते हो वह तो अन्धश्रद्धा और अन्धविश्वास है। देखो, तुम्हारे मनु महाराजको हुए आज कितने वर्ष हो गये तथापि आज भी उनके बनाये नियमोंसे चिपटे रहना अन्धश्रद्धा नहीं तो और क्या है? मनुने कहा कि स्त्रियोंको रजस्वला-धर्मका पालन करना चाहिये। उस समयके देश-कालके अनुसार वह कदाचित् लाभदायी हो सकता था, परंतु आज भी उसको पकड़े रहना अन्धानुसरण नहीं तो और क्या है?

मनुने कहा—'ईश्वर है और उसीने इस सृष्टिकी रचना की है और वही पालता है।' पर इस बातमें आज वैज्ञानिक दृष्टिसे सत्य नहीं दीखता है, फिर भी इसको सत्य ही मानते रहना अन्धविश्वास नहीं तो और क्या है? मनुने जो नियम बनाये थे, वे उन दिनोंके लिये ही थे। आज इस प्रगतिके युगमें उनको पकड़े रहनेमें क्या लाभ? उन्होंने कहा है—'विधवाका व्याह फिर नहीं होना चाहिये।' एक गोत्रके पुरुष-स्त्रीमें विवाह-सम्बन्ध नहीं होना चाहिये।' 'वर्णान्तरमें विवाह-सम्बन्ध नहीं होना चाहिये तथा लड़कीको पैतृक सम्पत्तिमें उत्तराधिकार नहीं मिलना चाहिये।' हम इन सब बातोंको आज भी ऐसे ही मानते रहें तो फिर पशुमें और हममें अन्तर ही क्या है? पशु भी जैसे हाँको वैसे ही चलता है और यदि हम भी आज इस विज्ञानके युगमें मनु महाराजके हाँकनेके अनुसार चला करें तो फिर हम नर-पशु ही न कहलायेंगे? बाबू! 'अब युग बदल गया है। आज मनुष्य उन्नतिके शिखरपर खड़ा है, (सच कहा जाय तो अवनतिकी अन्तिम सीढ़ीपर है) ऐसी स्थितिमें तुमको ईश्वर और शास्त्रमें श्रद्धा न रखनेकी बात मुँहसे निकालते शर्म नहीं आती?'

अन्धविश्वास अवश्य हानिकारक है और इससे कुछ भी नहीं करना चाहिये। अन्धा जिस प्रकार दृष्टि-शक्तिविहीन होकर जहाँ-तहाँ धक्के खाता फिरता है, उसी प्रकार विवेकदृष्टिका उपयोग किये बिना सुनी या देखी हुई वस्तु या व्यवहारके ऊपर दृढ़ विश्वास कर लेनेका नाम अन्धविश्वास है और ऐसा विवेकशून्य विश्वास अवश्य अनिष्ट फल देता है।

(क्रमशः)

राधाकृष्णका दिव्य सौन्दर्य

नैन सफल अब भए हमारे।

देवलोक नीसान बजाए, बरषत सुमन सुधारे॥
जै-जै धुनि किन्नर-मुनि गावत, निरखत जोग बिसारे।
सिव-सारद-नारद यह भाषत, धनि-धनि नंद-दुलारे॥
सुर-ललना पति-गति बिसराए, रहीं निहारि-निहारि।
जात न बनै देखि सुर हरि कौ, आईं लोक बिसारि॥
यह छबि तिहूँ भुवन कहुँ नाहीं, जो बृंदाबन-धाम।
सुंदरता रस गुनकी सींवाँ, सूर राधिका स्याम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यकी अधोमुखी प्रवृत्ति और उससे बचनेके उपाय

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जैसे सारे शरीरके सभी अङ्गोंमें एक ही आत्मा व्याप्त है, किसी भी अङ्गपर आघात होता है तो हम उसे अपने ऊपर आघातका अनुभव करते हैं और स्वाभाविक ही सभी अङ्ग एक दूसरे अङ्गकी रक्षा तथा कल्याण-साधनामें लगे रहते हैं, वैसे ही समस्त समष्टि जगत्में भी एक ही आत्मा व्याप्त है,. इस सत्यका अनुभव हो जानेपर ही मानवकी मानवता पूर्णताको प्राप्त होती है। यही मानव-जीवनकी सफलता है। ऐसा हो जानेपर फिर कोई भी मानव किसी भी प्राणीका कभी बुरा नहीं चाहेगा, कभी किसीका अकल्याण नहीं करना चाहेगा, सबकी रक्षा करेगा और सबके कल्याण-साधनमें लगा रहेगा। भूल या प्रमादवश कभी कुछ अनिष्ट कार्य हो जायगा तो उसे वैसे ही दुःख होगा, जैसे भूलसे अपने ही द्वारा अपने किसी अङ्गपर चोट लग जानेसे हमें होता है। यह दूसरी बात है कि कभी किसी अङ्गमें अंदर सड़न पैदा होनेपर जैसे हम उसका ऑपरेशन कराते हैं और उस अङ्गको कटवाकर सारे शरीरको विषके प्रभावसे बचा लेते हैं, ऐसे ही शुद्ध नीयत तथा कल्याणकी भावनासे कभी समष्टि जगत्में भी ऐसा कार्य करना पड़ता है, जो देखनेमें कठोर होता है, पर वास्तवमें वहाँ उद्देश्य विशुद्ध कल्याणसाधन ही होता है।

मनुष्यको अपने जीवनमें इसी लक्ष्यको सामने रखकर चलना चाहिये। यह निश्चय रखना चाहिये कि जिस कार्यके करनेसे परिणाममें दूसरोंका अहित या अकल्याण होगा, उससे हमारा हित या कल्याण कभी नहीं होगा एवं जिससे परिणाममें दूसरोंका हित या कल्याण होगा, उससे हमारा अहित या अकल्याण कभी नहीं होगा । यही धर्मका स्वरूप है। यही पाप और पुण्यकी परिभाषा है। दूसरोंका अकल्याण ही पाप है और दूसरोंका कल्याण ही पुण्य है; क्योंकि वास्तवमें समष्टि दृष्टिसे हम सब एक ही हैं। शरीरके किसी एक अङ्गके अहितसे हमारा ही अहित होता है और हितसे हमारा ही हित होता है, यही सत्य सिद्धान्त है।'

मनुष्यका 'स्व' जब समष्टिसे निकलकर केवल व्यष्टिमें आ जाता है, तब उसका स्वार्थ (स्व-अर्थ) भी अपने व्यक्तित्वकी सीमामें ही संकुचित हो जाता है, फिर वह केवल अपनेके लिये ही सुख चाहता है,उसीके लिये सचेष्ट होता है, उसीके प्रयत्नमें लगा रहता है और जितना ही वह इस कुमार्गमें आगे बढ़ता है, उतनी ही उसकी विषयासक्ति तथा तज्जनित भोग-कामना बढ़ती रहती है। कामनापर जहाँ चोट लगती है, वहाँ क्रोधका उदय होता है और कामना जहाँ सफल होती है, वहाँ लोभ जाग उठता है। क्रोध और लोभ—दोनों ही मनुष्यकी बुद्धिका नाश कर देते हैं, फिर उसकी बुद्धिमें जो कुछ निश्चय होता है, सब जगत्के हितके विपरीत होता है और फलतः उससे उसका अपना अहित—विनाश तो निश्चित ही है—**'बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।'**

इसी बुद्धिनाशकी स्थितिमें मनुष्य अनुचित तथा अकल्याणकारी साधनोंद्वारा सुख-सामग्रीका संग्रह करना चाहता है—हिंसा, अधर्म-युद्ध, डकैती, चोरी, छल, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, अनाचार, प्रतिहिंसा, द्रोह, वैर, मद आदि दुर्गुण-दुराचार उसके जीवनके स्वभाव या स्वरूप बन जाते हैं। वह मनुष्यके रूपमें ही हिंसक पशु, असुर, पिशाच, राक्षस बन जाता है और अपने कुकृत्योंद्वारा अपना तथा जगत्के प्राणियोंका अहित करता हुआ अपने भविष्यको घोर पतन, दीर्घकालीन संकट, यातना, पीड़ा और विविध भयानक ताप-संतापोंका क्रीडा-क्षेत्र बना लेता है।

आजका मानव दुर्भाग्यवश इसी पतनकी ओर अग्रसर है। वह विश्वप्राणीकी सेवा, संयम, नियम, धैर्य, मन-इन्द्रियके निग्रह, अपरिग्रह, त्याग, प्रेम, उदारता, मर्यादा, शील, परदुःख-कातरता, पर-हित-साधन, शान्ति, भगवद्विश्वास, विनय, विचारशीलता, शास्त्र-मर्यादा, परलोककी गतिका विचार आदिको भूलकर अत्यन्त संकुचित स्वार्थग्रस्त, असंयमी, उच्छृङ्खल, अधीर, मन-इन्द्रियोंका गुलाम, संग्रह-परायण, भोग-जीवन, घृणापरायण, निज सुखाकाङ्क्षी, कृपण, मर्यादा-शून्य, शीलरहित, पर-सुख-कातर, पर-अहितपरायण, नित्य घोर अशान्त, उत्तेजित, आवेशमय, भगवद्विश्वासरहित, अभिमानी, अविवेकी, शास्त्रमर्यादानाशक और केवल इहलोककी मान्यतावाला होकर जीवन-कालमें भीषण चिन्ताओंकी अग्निसे जलता हुआ असफलजीवन होता हुआ ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युको प्राप्त हो जाता है। मृत्युके बाद तो दुर्गति—घोर नरकोंकी प्राप्ति होती ही है। मानव-जीवनका इस प्रकारका अन्त अत्यन्त ही शोचनीय है।

आज समष्टि और व्यष्टि-जगत्में जो कुछ हो रहा है, जो कुछ किया-करवाया जा रहा है, वह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। उदाहरणार्थ—विज्ञान विश्व-प्राणियोंके ध्वंसकी सामग्रीके आविष्कारमें लगा है, एक देश दूसरे देशको हड़प जाना चाहता है, एक वाद दूसरे वादको मिटा देना चाहता है, एक ही वाद या मतके लोग परस्पर एक दूसरेके पतन और विनाशके प्रयत्नमें लगे हैं, धर्मके नामपर अन्य धर्मको छल-बल-कौशलसे मिटानेकी चेष्टा हो रही है, भगवान् तथा धर्मका तिरस्कार करके स्वेच्छानुसार आचरण तथा उच्छृङ्खल व्यवहार किया जा रहा है। शिक्षामेंसे नीति-धर्म, सदाचारका बहिष्कार करके बालकों, युवकों, बालिकाओं और युवतियोंको सदाचारविरोधी, चरित्रहीन, धर्मविमुख और यथेच्छाचारी बनाया जा रहा है। मर्यादित और संयमी जीवनके स्थानपर फैशन, शौकीनी, बाहरी बनावट, चरित्रभ्रष्टता, अनियन्त्रितता, उच्छृङ्खलता आदिको जीवनका स्वरूप बनाया जा रहा है, सो भी उच्चजीवनस्तरके नामपर मनुष्यके भोग तथा अर्थलाभके लिये विश्वके इतर प्राणियोंकी भाँति-भाँतिसे निर्दय हिंसाके आयोजन हो रहे हैं—बड़े-बड़े कसाईखाने इसके प्रमाण हैं। खान-पानमें सात्त्विकता तथा विशुद्धिके स्थानपर तामस वस्तुओंका, मद्य-मांस-अंडोंका, अपवित्र अखाद्य पदार्थोंका प्रसार-प्रचार बढ़ाया जा रहा है, धनलोलुपता तो मनुष्यमें यहाँतक बढ़ी है और उसने मनुष्यको इतना गिरा दिया है कि वह छल, कपट, चोरीकी बात तो अलग रही, खान-पानकी वस्तुओंमें और दवाइयोंमें भी मनुष्यके लिये प्राणघातक वस्तुओंका मिश्रण करनेमें अपनेको द्रव्योपार्जनमें चतुर और बुद्धिमान् मानकर गौरवका अनुभव करता है। पवित्र विवाह-संस्था उठने लगी है और उसके स्थानपर पशुओंसे भी निकृष्ट अमर्यादित पशुताका हमारे युवक-युवतियोंमें उदय होने लगा है। गुरु-शिष्यका पवित्र तथा आदर्श सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो रहा है। गुरुओंमें स्नेह नहीं है और शिष्य इतने अनुशासनहीन तथा यथेच्छाचारी हो गये हैं कि गुरुओंपर घातक आक्रमण करते हैं। पैसोंके प्रलोभन, रिश्वत, दबाव, भय, छल, मिथ्या आश्वासन आदिके द्वारा जनतन्त्रोंका जीवन भयानक और घृणास्पद बनाया जा रहा है और इस प्रकार मानव आज अपने अविवेकके कारण मस्तिष्कका संतुलन खोकर मानवताके पतनके अनन्त विविध आविष्कार, विचार, योजना तथा कार्योंको नित्य नये-नये रूपोंमें अपनानेमें लगा है आत्यन्तिक अज्ञानकी महामोहमयी मदिराको पीकर! इससे पता लगता है कि मनुष्य किधर जा रहा है।

घोर दुःखकी बात तो यह है कि अध्यात्मप्रधान भारतमें—जहाँसे अतीतकालसे सारे विश्वको उसके उज्ज्वल चरित्रके द्वारा महान् प्रकाश मिलता था, आज स्वयं महान्धकारके गर्तमें गिरता चला जा रहा है। प्रकाश तिरोहित हो रहा है। यों ही होता रहा तो पता नहीं क्या होगा, पतन किस सीमातक जायगा। भारतके आस्तिक जनोंको इस घोर पतनोन्मुख परिस्थितिमें बड़े विश्वासके साथ ईश्वरकी आराधना करनी चाहिये—सभी स्थानोंमें सभी प्रकारसे उसे जीवनका प्रथम तथा परम कर्तव्य मानकर। भगवत्कृपासे ही इस भयानक अन्धकारका नाश हो सकता है।

वस्तुतः तमसाच्छन्न बुद्धि या बुद्धि-भ्रष्टताके कारण विश्वमानव इसी प्रकार कुपथपर आगे बढ़ता रहा तो इसका परिणाम बहुत ही भयानक हो सकता है। सम्भव है, इसके परिणामस्वरूप विश्वमें विनाशकारी अस्त्रोंके युद्ध हो जायँ अथवा कोई भीषण महामारी हो जाय, जिससे प्रजावर्गका महान् संहार हो जाय। पापका परिणाम विनाश, दुःख, पीड़ा, नरकयन्त्रणा आदि होते हैं। प्रकृति किसीके साथ पक्षपात नहीं करती, भगवान्के मङ्गल-नियमोंसे आबद्ध वह अपनी नीतिका पालन करेगी ही। यह भगवान्की लीला है। इस विनाश-लीलामें साधु-चरित्रों, सात्त्विक मानवोंके भी भौतिक पदार्थों तथा भौतिक देहोंका भी प्रारब्धवश भगवान्के नियमानुसार वियोग होगा ही, पर वे दुःख, पीड़ा, नरक-यन्त्रणाके भागी नहीं होंगे। परिवर्तनशील प्रकृतिके प्रत्येक परिवर्तनमें ईश्वर-विश्वासी संत भगवान्की लीलाका चमत्कार देखते हुए नित्य प्रसन्न और लीला-वैचित्र्यके दर्शनसे प्रमुदित होते रहते हैं, भले ही वह लीला सुन्दर मधुर-रसकी हो या भयानक बीभत्स-रसकी। प्रत्येक लीलामें वे लीलामयके दर्शन करते हुए मुग्ध और आनन्दमग्न रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्माकी एकता तथा अमरता, उसके सच्चिदानन्दस्वरूप तथा विश्वके रूपमें भगवान् ही प्रकट होकर सृजन-संहारकी अनवरत लीला करते हैं—ऐसा विश्वास रखने तथा अनुभव करनेवाले पुरुषोंपर इन परिवर्तनोंमें कोई दुःखमय प्रभाव नहीं पड़ सकता। वे सदा ही नित्य सत्य सनातन भगवान्के मङ्गलमय विधानमें मङ्गलमयता ही देखते हैं। वे देखते हैं विश्वमें दो ही चीज एक लीलामय भगवान्, दूसरी भगवान्की लीला एवं लीलाके रूपमें ही लीलामय ही प्रकट रहते हैं, अतएव एक भगवान् ही भगवान् ।

तथापि जगत्में रहनेवाले, विधि-विधानके अनुसार कर्मोंके अवश्यम्भावी फलमें विश्वास करनेवाले हम मानव अपने कर्तव्यसे कभी च्युत न हों। सत्कर्म-परायण अवश्य रहें, फल तो भगवान्के हाथमें है। शास्त्रमें कहा गया है और यह सत्य है कि जब-जब मनुष्य धर्मकी अवहेलना कर पाप-परायण हो जाता है, तब-तब दैवी विपत्तियाँ बड़े विशाल रूपमें आया करती हैं। उनको रोकने या उनका नाश करनेके लिये सबको अपने-अपने मत तथा विश्वासके अनुसार देवाराधना-भगवदाराधना करनी-करानी चाहिये।

देवाराधन करें-करायें निज निज मत श्रद्धा-अनुसार।
वेदाध्ययन, यज्ञ, गायत्री पुरश्चरण कल्याणाधार॥
सप्तशती, रुद्राभिषेक, जप-मृत्युञ्जय, नारायणवर्म।
पाठ गजेन्द्रमोक्ष, पावन सप्ताह भागवत पाठ सुकर्म॥
वाल्मीकि, मानस रामायण पारायण श्रद्धासे युक्त।
भगवन्नाम अखण्ड कीर्तन-जप विश्वास-भाव-संयुक्त॥
ग्वाँर बिनौला, भूसा-चारा भूखी गायोंको दें दान।
श्रद्धायुक्त हृदयसे शुचितम योग्य ब्राह्मणोंको गोदान॥
अन्नकष्ट-पीड़ित मानवको अन्नदान शुचि सह-सत्कार।
दुःख दूर हो दुखीजनोंके करें नित्य ऐसा व्यवहार॥
असहाया विधवा बहनोंको, छात्रोंको दें गुप्त सहाय।
कूएँ बनवायें, जल-कष्ट-निवारणके सब करें उपाय॥
जैन, बौद्ध, सिख, करें सभी निज-निज धर्मानुकूल आचार।
ईसा-भक्त अन्यधर्मी सब करें करुण प्रार्थना-पुकार॥
करें-करायें पुण्य कार्य ये जगह-जगह सब बारंबार।
सन्मति-शान्ति-सुखोदयके हैं ये मङ्गल-साधन अविकार॥

अपने-अपने मत तथा विश्वासके अनुसार सभी लोग देवाराधन करें तथा करावें। कल्याणके आधार वेदोंका स्वाध्याय, विविध प्रकारके वैदिक यज्ञ, गायत्री-पुरश्चरण, दुर्गासप्तशतीके विविध अनुष्ठान, रुद्राभिषेक, महामृत्युञ्जयके जप, श्रीभागवतोक्त नारायणकवच तथा गजेन्द्रमोक्षके पाठ, श्रीमद्भागवतका पावन सप्ताहपाठ-रूपी सत्कर्म, श्रद्धायुक्त हृदयसे वाल्मीकिरामायण तथा रामचरितमानसके पारायण और विश्वास तथा प्रेमके साथ भगवन्नामका अखण्ड संकीर्तन और जप करें। भूखी गौओंको ग्वाँर, बिनौला, भूसा, घास-चारा दें। सुयोग्य पवित्रतम ब्राह्मणोंको श्रद्धायुक्त हृदयसे गोदान करें। अन्नकष्टसे पीड़ित मनुष्योंको पवित्र सत्कारके साथ अन्नदान करें। नित्य ऐसा ही व्यवहार करें, जिससे दुखी प्राणियोंके दुःख दूर हों। असहाय विधवा बहिनों तथा गरीब छात्रोंकी गुप्तरूपसे सहायता करें, कुएँ बनवायें तथा जलकष्ट-निवारणके लिये अन्यान्य सब उपाय भी करें।

जैन, बौद्ध तथा सिख महानुभाव सभी अपने-अपने धर्मके अनुकूल आचरण करें तथा ईसाके भक्त ईसाई एवं अन्य धर्मावलम्बी भी सब भगवान्से करुण प्रार्थना तथा पुकार करें। ये सब पुण्य कार्य सभी लोग जगह-जगह बार-बार करें, करवायें। ये सभी सुबुद्धि, शान्ति तथा सुखकी उत्पत्तिके विकाररहित मङ्गल-साधन हैं।

विश्वमें सच्ची शान्ति तथा यथार्थ सुख तो तब होगा, जब हमारा जीवन इस प्रकार उदात्त एवं प्रभुप्रेममय बन जायगा—

विश्व चराचरमें है व्यापक नित्य सत्य चित् आत्मा एक।
देखें उसे सभी कालोंमें, सबमें रखकर दृष्टि विवेक॥
सबके सुख-हितको ही समझें नित्य 'स्वार्थ' निज सुखहित-रूप।
'स्व'को रखें न सीमित, उसका कर सदा विस्तार अनूप॥
तन-मन-धनसे कभी न चाहें करें किसीका तनिक अनिष्ट।
त्याग सर्वविध हिंसा सबका करें सदा ही मङ्गल इष्ट॥
अति हितकर शुचि 'त्याग' तथा 'कर्तव्य' करें हम अङ्गीकार।
मोह-ममत्व छोड़कर कर दें त्याग सहज 'धन' पद-अधिकार॥
करें न संग्रह कभी वस्तुएँ, बनें न असत्-अभाव-दरिद्र।
फैशन-व्यसन त्याग, रक्खें जीवनको सादा, शान्त पवित्र॥
दें अभावग्रस्तोंको समुदित सविनय अर्थ-भूमि-सम्मान।
विद्या-बुद्धि-सुसम्मति-आश्रय, जो कुछ हम दे सकें अमान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-दानव-पशु-पक्षी-कृमि सबमें नित देखें भगवान।
बरतें निज वेषानुसार, पर करें न कभी अहित-अपमान॥
सभी वस्तुएँ हैं स्वामीकी, हमें किया अधिकार प्रदान।
रखें, सँभालें, करते रहें नियमतः प्रभु सेवामें दान॥
जहाँ अभाव वस्तु जिसका, हैं माँग रहे उसको भगवान्।
प्रभुको प्रभुकी वस्तु नम्र हो, दे दें, करें नहीं अभिमान॥
सेवा करें सदा ही सबकी शुद्ध ईश-सेवाके अर्थ।
सेवाका शुचि भाव बढ़े, प्रभु रखें सदा सेवार्थ समर्थ॥
करें न किसी पवित्र 'धर्म' पर, 'मत' पर तनिक कभी आक्षेप।
कहें-करें कुछ भी न कभी जिससे हो पर-मनमें विक्षेप॥
कर सकते हैं न्याय अर्थ-अधिकार सुरक्षा-हेतु प्रयास।
पर वह वैध शास्त्रसम्मत हो, रखकर ईश्वरपर विश्वास॥
कभी न लें आश्रय अधर्मका, कभी न करें सत्यका त्याग।
तन-धन जायँ,न जाये धर्म, सत्य, प्रभुपर श्रद्धा-अनुराग॥
जीवनका उद्देश्य एक हो पावन प्रभु-पद-प्रीति अनन्य।
प्रभु-पूजाकी सामग्री बन कार्य, विचार,वस्तु हो धन्य॥

सारे जड़-चेतन विश्वमें एक चेतन आत्मा नित्य सत्यरूपमें विराजित हैं। हम सभी समय तथा सभीमें विवेक-दृष्टि रखकर उसे देखें। सभीके सुख तथा हितको ही हम अपना सुख-हितरूप 'स्वार्थ' समझें, अपने 'स्व' को सीमित (छोटे दायरेमें) न रखें। उसका सदा ही अनुपम विस्तार करते रहें। प्राणिमात्रका 'स्व' ही हमारा 'स्व' हो। तन, मन तथा धनसे कभी किसीका भी तनिक-सा भी अनिष्ट न चाहें न करें, सब प्रकारकी हिंसाका त्याग करके सभीका मङ्गल तथा इष्टसाधन करें। अत्यन्त हितकारी 'त्याग' और 'कर्तव्य'को ही जीवनमें अपनावें, मोह-ममता छोड़कर 'धन' और 'पद-अधिकार'की कामनाका सहज ही त्याग कर दें। कभी भी वस्तुओंका संग्रह न करें और झूठमूठ ही अपने अभावोंको बढ़ाकर दरिद्र न बनें। सारे फैशनों तथा व्यसनोंका त्याग करके जीवनको सादा, शान्त और पवित्र बनायें। जो अभावसे पीड़ित हैं, उनको हर्षित मनसे विनयपूर्वक मानकी इच्छा त्यागकर धन, जमीन, सम्मान, विद्या, बुद्धि, अच्छी सम्मति, आश्रय—जो कुछ हम दे सकें, उनको दें। मानव, दानव, पशु, पक्षी, कीट सभीमें सदा भगवान्‌को देखें। अपने-अपने वेष (धर्म) के अनुसार बरतें, पर कभी किसीका भी न अपमान करें, न अहित करें। हमारे पास जो कुछ हैं, वे सभी चीजें हमारे प्रभु भगवान्‌की हैं, हमें तो उन्होंने सँभाल तथा उपयोगका अधिकार दिया है। अतएव उन्हें अपनी न समझकर सुरक्षित रखें, सँभालें और विनयपूर्वक प्रभुकी सेवामें लगाते रहें। जहाँ जिस वस्तुका अभाव है, भगवान् ही वहाँ वह वस्तु हमसे माँग रहे हैं—ऐसा समझकर विनय-विनम्र होकर प्रभुकी वस्तु प्रभुके अर्पण कर दें। हमने दान किया है—ऐसा कोई अभिमान कभी न करें। प्रभुकी विशुद्ध (निष्काम) सेवाके लिये ही सभीकी सदा सेवा करें। सेवाका फल यही मिले कि सेवाका पवित्र भाव बढ़ता रहे और सेवाके लिये प्रभु हमें सदा समर्थ बनाये रखें। किसी भी पवित्र 'धर्म' और 'मत'पर आक्षेप न करें, ऐसा कुछ भी कभी न कहें, न करें, जिससे दूसरोंके मनमें विक्षेप होता हो। अपने न्याय, अर्थ तथा अधिकारकी भलीभाँति रक्षाके लिये प्रयास कर सकते हैं, पर वह प्रयास विधिसङ्गत हो—शास्त्रसम्मत हो और प्रभुपर ही विश्वास रखकर किया जाय। हम कभी भी 'अधर्मका आश्रय' न लें और कभी भी 'सत्य'का त्याग न करें। शरीर तथा धन भले ही नष्ट हो जायँ, पर धर्म, सत्य तथा प्रभुमें जो हमारी श्रद्धा तथा प्रीति है, वह कभी न हटे। पावन प्रभुके चरणकमलोंमें प्रेम ही जीवनका एकमात्र उद्देश्य हो। हमारे तनसे होनेवाले सारे कार्य, मनसे होनेवाले सारे विचार तथा उपयोगमें आनेवाली धन आदि सारी वस्तुएँ प्रभुके पूजनकी सामग्री बनकर धन्य हो जायँ।

एक भक्तने स्वप्नमें किसी सुन्दर पुरुषको देखकर पूछा कि 'तुम कौन हो और कहाँ रहते हो' तो उसने कहा कि 'मेरा नाम 'संयम' है और मैं भक्तोंके हृदयमें रहता हूँ।' फिर एक दिन किसी मैले-कुचैले भयानक व्यक्तिको देखा और उससे भी वही बात पूछी, तब उसने कहा कि 'मेरा नाम 'पाप' है और मैं विषयी पुरुषोंके हृदयोंमें रहता हूँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् श्रीकृष्णका उद्धवजीको अन्तिम उपदेश

(महात्मा श्रीभगवत्स्वरूपजी)

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा
निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो
मयाऽऽत्मभूयाय च कल्पते वै॥

(श्रीमद्भा० ११।२९।३४)

'जिस समय मनुष्य समस्त कर्मोंको छोड़कर पूर्णरूपसे मुझे आत्मसमर्पण कर देता है, उस समय वह मेरा विशेष प्रिय और माननीय हो जाता है और मैं उसे उसके जीवभावसे मुक्त कर देता हूँ, जिससे वह मुझमें मिलकर मेरा स्वरूप हो जाता है।'

जिस प्रकार महाभारतके भीष्मपर्वान्तर्गत भगवद्गीता-पर्वके अध्याय २५ से लेकर अध्याय ४२ तकके १८ अध्यायोंको भगवद्गीता कहते हैं, उसी प्रकार श्रीमद्भागवत-महापुराणके एकादश स्कन्धके सातवें अध्यायसे उनतीसवें अध्यायतकके तेईस अध्यायोंको उद्धवगीता कहा जाता है। इसमें जगद्गुरु श्रीकृष्ण भगवान्ने अपने परमप्रिय भक्त उद्धवजीको परम ज्ञानका उपदेश दिया है और अन्तमें उपसंहाररूपसे उपर्युक्त श्लोकमें अन्तिम बात कहकर उपदेशकी समाप्ति की है। इस श्लोकमें आत्मनिवेदन नामकी सर्वोत्कृष्ट भक्तिका उपदेश है। श्रीमद्भागवत (७।५।२३) में नवधाभक्तिका वर्णन इस प्रकार है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

विष्णुभगवान्की भक्तिके नौ भेद हैं—'भगवान्के गुण, लीला, नामादिका श्रवण, उन्हींका कीर्तन, उनके नाम-रूप आदिका स्मरण, उनके चरणोंकी सेवा, पूजा-अर्चा, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।'

उपर्युक्त नवधाभक्तिमें यद्यपि सभी भाव श्रेष्ठ हैं, सभी भगवत्प्राप्तिके साधनरूप हैं तथापि आत्मनिवेदन नामकी नवमी भक्ति सर्वोत्कृष्ट है।

समर्थ स्वामी रामदासजी अपने दासबोध नामक ग्रन्थमें कहते हैं—इसमें संदेह नहीं कि परमात्मा भक्तिसे ही मिलते हैं। यह भक्ति नौ प्रकारकी है और उससे बहुतसे भक्त पावन तथा मुक्त हो चुके हैं। उस नवधाभक्तिमें सबसे बड़ी 'आत्म-निवेदन' नामकी भक्ति है और उसका विचार स्वयं अपने अनुभवसे करना चाहिये। अपने ही अनुभवसे अपने-आपको ईश्वरके चरणोंमें निवेदन करना चाहिये। यही आत्मनिवेदन है। अपने-आपको निवेदन करनेवाले भक्त बहुत थोड़े होते हैं, परंतु जो निवेदन कर देते हैं, परमात्मा उनको तत्काल मुक्ति देते हैं'। (दास-बोध, हिंदी-अनुवाद)

दक्षिण भारतके महर्षि रमण अपने 'सद्दर्शन' नामक ग्रन्थके ८वें श्लोकमें कहते हैं—

भवन्तु सद्दर्शनसाधनानि परस्य नामाकृतिभिः सपर्या।
सद्वस्तुनि प्राप्य तदात्मभावा निष्ठैव सद्दर्शनमित्यवेहि॥

नवधाभक्तिमेंसे जो भक्ति भगवान्के नाम-रूपकी उपासना है, वह परम सत्यकी प्राप्तिका साधन अवश्य है, परंतु उस परम सत्यमें तादात्म्यभाव प्राप्त करके उसमें निष्ठा रखना ही सत्यका वास्तविक दर्शन है।

आत्मनिवेदनद्वारा ही यह तादात्म्यभाव प्राप्त हो सकता है, अन्य कोई उपाय नहीं। महाभागा गोपियोंके तादात्म्य-भावका वर्णन अत्यन्त मार्मिक शब्दोंमें भागवतकार इस प्रकार करते हैं—

ता नाविदन् मय्यनुषङ्गबद्ध-
धियः स्वमात्मानमदस्तथेदम्।
यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये
नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे॥

(श्रीमद्भा० ११।१२।१२)

'जैसे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि समाधिमें स्थित होकर तथा गङ्गा आदि बड़ी-बड़ी नदियाँ समुद्रमें मिलकर अपने नाम-रूप खो देती हैं, वैसे ही वे गोपियाँ परमप्रेमके द्वारा मुझमें इतनी तन्मय हो गयी थीं कि उन्हें लोक-परलोक, शरीर और अपने कहलानेवाले पति-पुत्रादिकी भी सुध-बुध नहीं रह गयी थी।'

शरणागति योग अथवा आत्मनिवेदन एक ही चीज है, केवल नामभेद है। पूर्ण आत्मनिवेदन बिना पूर्ण प्रपत्ति हो नहीं सकती। भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको जो सर्वगुह्यतम उपदेश दिया है, उसमें भी इसी आत्म-निवेदनका उपदेश है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

गीताके उपर्युक्त श्लोकमें जो '**सर्वधर्मान् परित्यज्य**' की बात कही गयी है, उसका अधिक स्पष्टीकरण श्रीमद्भागवत (११। १२। १४-१५) में दिया गया है—

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम्।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च॥
मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम्।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः॥

भगवान् उद्धवजीसे कहते हैं—'हे उद्धव! तुम श्रुति-स्मृति, विधि-निषेध, प्रवृत्ति-निवृत्ति तथा सुनने योग्य और सुने हुए विषयका परित्याग करके सर्वत्र मेरी ही भावना करते हुए समस्त प्राणियोंके आत्मस्वरूप मुझ एककी ही शरण सम्पूर्णरूपसे ग्रहण करो; क्योंकि मेरी शरणमें आ जानेसे तुम सर्वथा निर्भय हो जाओगे।'

भागवतके उपर्युक्त श्लोकमें जिस 'सर्वात्मभाव' शब्दका प्रयोग किया गया है, वह सर्वात्मभाव क्या है, इसपर थोड़ा-सा विचार करना आवश्यक है।

आचार्य शंकर भगवत्पाद विवेकचूडामणि (श्लोक ३४०)में सर्वात्मभावका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

सर्वात्मना बन्धविमुक्तिहेतुः
सर्वात्मभावान्न परोऽस्ति कश्चित्।
दृश्याग्रहे सत्युपपद्यतेऽसौ
सर्वात्मभावोऽस्य सदात्मनिष्ठया॥

संसार-बन्धनसे सर्वथा मुक्त होनेमें सर्वात्मभावसे बढ़कर और कोई हेतु नहीं है। निरन्तर आत्मनिष्ठामें स्थित रहनेसे दृश्यका बाध होनेपर इस सर्वात्मभावकी प्राप्ति होती है। या यों समझें कि असदात्मभावकी निवृत्तिसे ही सर्वात्मभावकी प्राप्ति होगी।

वेदान्तमें भगवत्प्राप्तिके लिये अन्वय (नियम) और व्यतिरेक (अपवाद) दोनोंका सहारा लिया गया है तथा दोनों भाव एक दूसरेके पूरक हैं तथा एकके बिना दूसरा अधूरा है, यह रहस्य साधकको सद्गुरुसे समझना बहुत आवश्यक है। श्रीमद्भागवत (११। २। ४१)में अन्वयभावका उदाहरण देखिये—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

'यह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष, वनस्पति, नदी, समुद्र सब-के-सब भगवान्के शरीर हैं। सभी रूपोंमें स्वयं भगवान् प्रकट हो रहे हैं, ऐसा मानकर जो कोई भी, चाहे प्राणी हो या अप्राणी, सामने आये तो उसे अनन्यभावसे—भगवद्भावसे प्रणाम करे।'

व्यतिरेकभावका वर्णन देखिये—

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्
न स्त्री न षण्ढो न पुमान्न जन्तुः।
नायं गुणः कर्म न सन्न चास-
न्निषेधशेषो जयतादशेषः॥

(श्रीमद्भा० ८। ३। २४)

गजेन्द्रने अपने उद्धार-हेतु भगवान्से इस प्रकार प्रार्थना की—वे भगवान्, जो न देवता हैं और न असुर। वे (मनुष्य और पशु-पक्षी भी नहीं हैं।) न स्त्री हैं, न पुरुष, न नपुंसक। कोई साधारण या असाधारण प्राणी भी नहीं हैं। न गुण हैं न कर्म, न कार्य हैं और न तो कारण ही। सबका निषेध हो जानेपर जो कुछ बच रहता है, वही उनका स्वरूप है तथा वे ही सब कुछ हैं। वे ही परमात्मा मेरे उद्धारके लिये प्रकट हों।

फिर भी देखिये विवर्तवादका वर्णन—

अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो
मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि।
कर्ता महानित्यखिलं चराचरं
त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः॥

(श्रीमद्भा० १०। ५९। ३०)

(पृथ्वीदेवीने शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान्से कहा—) भगवन्! मैं (पृथ्वी) जल, अग्नि, वायु, आकाश, पञ्चतन्मात्राएँ, मन, इन्द्रिय और इनके अधिष्ठातृ देवता अहंकार और महत्तत्त्व—कहाँतक कहूँ, यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपके अद्वितीय स्वरूपमें भ्रमके कारण ही पृथक् प्रतीत हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु यह व्यतिरेक ज्ञान केवल अधिकारीको ही प्राप्त हो सकता है, हर एकके वशकी बात नहीं है। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके अट्ठाईसवें अध्यायमें प्रधानतः व्यतिरेक ज्ञानका ही वर्णन परमार्थ-तत्त्वके रूपमें किया गया है। इसलिये इसको सुनकर तुरंत ही उद्धवजीने भगवान्‌से निवेदन किया—

सुदुश्चरामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः।
यथाञ्जसा पुमान् सिद्ध्येत् तन्मे ब्रूह्यञ्जसाच्युत॥

(श्रीमद्भा० ११।२९।१)

'हे अच्युत! मैं अपना मन वशमें नहीं कर सकता, इस कारण आपकी बनायी हुई योगचर्याको मैं बहुत कठिन मानता हूँ, अतः आप कोई ऐसा सरल और सुगम साधन बतलाइये, जिससे मनुष्य अनायास ही परमपद प्राप्त कर सके।'

इसके उत्तरमें उनतीसवें अध्यायके आठवें श्लोकसे उन्नीसवें श्लोकतक भगवान्‌ने भगवत्प्राप्तिका अत्यन्त सुगम मार्ग बताया है।

भगवान् कहते हैं—

अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः॥

(श्रीमद्भा० ११।२९।१९)

'मेरी प्राप्तिके जितने साधन हैं, उनमेंसे मैं तो सर्वश्रेष्ठ यही साधन मानता हूँ कि समस्त प्राणियों और पदार्थोंमें मन-वाणी और शरीरकी समस्त वृत्तियोंसे मेरी ही भावना की जाय, यही मेरा अपना भागवतधर्म है।'

आजके संसारमें जब कि जगह-जगह हिंसा, नरसंहार, विप्लव इत्यादि हो रहे हैं और मानो चारों तरफ आग-जैसे जल रही है, ऐसी स्थितिमें उपर्युक्त भागवतधर्मका आचरण ही मानवको सर्वनाशसे बचा सकता है। संसारमें परम शान्ति और सुखका इससे अच्छा कोई उपाय नहीं। इसके पालन करनेसे सर्वतोमुखी कल्याण ही कल्याण है।

आत्मिक पुकार

महाप्रभो! तुम्हें दुनिया प्रभु ही नहीं—'महाप्रभो' के नामसे भी सम्बोधित करती है। बाँकेविहारी! श्याममुरारी! तुम्हारी मञ्जुल मनोहर छवि मेरे हृदय-मन्दिरमें अङ्कित है। प्यारे कृष्ण! तुम्हारी प्रेममयी मूर्ति मुझे बहुत प्यारी है। क्या कभी उस साँवली सूरतके प्रत्यक्ष दर्शन भी हो सकेंगे?

सुनते हैं हे जगन्निवास! तुम सदासे गरीबोंको प्रश्रय देते आये हो, तुम आश्रय-स्थल हो। फिर तुम्हारे बिना मुझ अशरणको कौन शरण दे? मैं सब मार्गोंपर भटक हारी, अब तो नाथ! ठीक राह लगा दो न!

मेरे स्वामी! हे जगतारन! इतनी निष्ठुरता उचित नहीं, तुम तो महाप्रभु हो, अपने नामके विरदके अनुसार तुममें तो हजारोंको तारनेकी शक्ति है। पर अपने विरदपर ध्यान दो तब न?

लीलापुञ्ज! तुम्हारी मायाको हम नाशवान् प्राणी क्या समझें? पर जो कुछ भी तुच्छ बुद्धिसे समझा है, उसमें तो नाथ! तुम केवल निष्ठुर और निर्मोहीके रूपमें ही हमारे सामने आये हो। तुम्हारा व्यापक रूप तो तभी सफल हो, जब तुम हमें भी वह व्यापक दृष्टि दे सको।

विश्वनाथ! भक्तोंकी अब तो कठोर-से-कठोर परीक्षा हो चुकी—इस अन्तिम घड़ीमें अब उन्हें उबार लेना ही ठीक है। पर न मालूम, तुम अब भी क्या सोचते हो? सोचते होगे; देखें, कितनी आँच है? ठीक है, देखे जाओ, यहाँ आँचकी क्या कमी है, साँच जो साथमें है। झुकना आखिर तुम्हें ही है। तुम्हारी आदत जो ठहरी, तुम कभी यों सीधे-सीधे थोड़े ही मानोगे।

भक्तवत्सल! दधीचि और मोरध्वजकी कथा हमें याद है। भक्त प्रह्लाद और ध्रुवकी कसौटीको हम भूले नहीं हैं। राजा अम्बरीषकी कथाको स्मरण करानेकी हमें आवश्यकता नहीं।

पर नाथ! इस विपत्कालमें भी क्या तुम अपने महाप्रभुके नामको सार्थक न करोगे तो फिर आपके उस दिव्य बानेका मूल्य ही क्या?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[खण्डन-मण्डनसे हानि]

किसीकी बातका खण्डन करनेसे आपसमें संघर्ष बढ़ता है। हम दूसरेके मतका खण्डन करेंगे तो वह हमारे मतका खण्डन करेगा, जिससे कलह ही बढ़ेगा। अतः हो सके तो दूसरेको शान्तिपूर्वक अपनी बातका, अपने सिद्धान्तका तात्पर्य बताओ और यदि वह सुनना नहीं चाहे तो चुप हो जाओ। अपनी हार भले ही मान लो, पर संघर्ष मत करो।

सरदारशहरके 'टीचर-ट्रेनिंग कालेज'की एक बात है। वहाँ एक सज्जनने कहा कि देशका जितना नुकसान हुआ है, वह सब ईश्वरवादसे, आस्तिकवादसे ही हुआ है। मैं चुप रहा तो उन्होंने कहा कि 'बोलो !' तो मैंने कहा कि 'आपने अपना सिद्धान्त कह दिया। आपको मेरा सिद्धान्त मान्य नहीं है और मुझे भी आपका सिद्धान्त मान्य नहीं है। अब बोलनेकी जगह ही नहीं है और जरूरत भी नहीं है।' इस तरह हमारेपर कोई आक्रमण कर दे तो सह लो। सहनेसे, निर्विकार रहनेसे अपना मत, सिद्धान्त मजबूत होता है, संघर्षसे नहीं। निर्विकार रहनेमें जो शक्ति है, वह और किसी उपायमें नहीं है। आपसे अपने इष्टकी निन्दा न सही जाय तो वहाँसे उठकर चले जाओ, कान मूँद लो, सुनो मत । कारण कि ऐसे आदमियोंको भली बात भी बुरी लगती है। विभीषणने रावणको अच्छी सलाह दी, पर रावणने विभीषणको लात मारी। अतः शान्त रहना बहुत अच्छा है। अपनेसे जो सहा नहीं जाता, यह अपना दोष है। यह तो ठाकुरजी लीला करते हैं आपको पक्का बनानेके लिये। यदि सहा न जाता हो तो भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ ! हम सह नहीं सकते। कृपा करो, सहनेकी शक्ति दो।'

दूसरा हमारे मतका, हमारे इष्टका खण्डन करे तो यह हमारेको बुरा लगता है और हम अपने इष्टका मण्डन करने लगते हैं। परंतु वास्तवमें अपने इष्टका मण्डन करनेसे, प्रचार करनेसे उसका प्रचार नहीं होगा। आप चुप रह जाओ। जैसे काकभुशुण्डिजीने पूर्वजन्ममें लोमश ऋषिके पास जाकर कहा कि मेरेको रामजीका ध्यान बताओ, तो लोमश ऋषिने अच्छा ब्राह्मण समझकर उन्हें ज्ञानका उपदेश दिया। लोमशजीने बार-बार ज्ञानकी बात कही, पर काकभुशुण्डिजीने बार-बार उस बातका खण्डन कर दिया। इससे लोमशजीको गुस्सा आ गया और उन्होंने शाप दे दिया कि तू कौएकी तरह मेरी बातसे डरता है, जा, तू कौआ हो जा। काकभुशुण्डिजी कौआ बन गये, कौआ बननेपर भी उनको न भय लगा, न दीनता आयी—*'नहिं कछु भय न दीनता आई'* (मानस उत्तर० ११२।८)। लोमशजीने जब ऐसी सहनशीलता देखी तो उन्होंने प्रेमपूर्वक उसे पासमें बुलाया, रामजीका मन्त्र और ध्यान बताया। इस विषयमें काकभुशुण्डिजीने कहा है—

भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषि साप।
मुनि दुर्लभ बर पायउँ देखहु भजन प्रताप॥

(मानस, उत्तर० ११४(ख))

भजन क्या था? सहनशीलता, शान्त रहना। इस भजनके प्रतापसे मुनिने वरदान दिया कि तुम्हारे रहनेके स्थानसे योजनभर तुम्हारे पास माया नहीं आयेगी। अतः शान्त रहनेमें बहुत बड़ी शक्ति है।

एक मार्मिक बात है कि आपके इष्टका खण्डन होता है तो वह आपके मण्डन करनेसे नहीं मिटेगा। आप मण्डन करेंगे तो दूसरा और तेजीसे खण्डन करेगा। मण्डन करनेमें एक मार्मिक बात है कि आप अपने इष्टको कमजोर मानते हैं। इष्ट ऐसा कमजोर नहीं है कि उसको हमारी सहायतासे कोई बल मिलेगा। हम अपने इष्टका जितना पक्ष लेते हैं, उतना ही हम अपने इष्टको कमजोर मानते हैं। हम जितना ही अपने इष्टको दूसरोंपर लादना चाहते हैं, दूसरोंको मनवाना चाहते हैं, इष्टपर हमारी भक्ति उतनी ही कम होती है। आपको दीखे या न दीखे, पर है ऐसी ही बात ।

हमारेमें पहली कमी तो यह है कि हम अपनी बड़ाई चाहते हैं। हमसे इष्टकी निन्दा सही नहीं जाती, उसको हम सह नहीं सकते। परंतु साधकको पता नहीं लगता कि मुझे किस बातका दुःख हो रहा है। हम अपने इष्टका मण्डन करते हैं। उस मण्डनमें हम अपने इष्टको कमजोर मानते हैं। कैसे ? यदि हम अपने इष्टको कमजोर न मानें तो क्या हमारे इष्टको मण्डनकी आवश्यकता है ? खण्डन करनेवालेके सामने अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इष्टका मण्डन करके क्या हम अपने इष्टकी सहायता करते हैं ? अगर सहायता करते हैं तो हमने अपने इष्टको कमजोर ही सिद्ध किया।

अपने इष्टकी निन्दा नहीं सुन सकते तो मत सुनो। पर हमारी सहायतासे उनको बल मिल जायगा, हम अपने इष्टको सिद्ध कर देंगे—यह बात नहीं है। यदि वह खण्डन करनेवाला व्यक्ति हमारी बात सुनना चाहे तो सुनाओ, क्योंकि वह सुनना चाहेगा, तभी काम ठीक होगा। जैसे, आप सुनना चाहते हैं तो मैं आपको व्याख्यान सुनाता हूँ, परंतु मैं बाजारमें जाकर सुनाऊँ तो कोई भी नहीं सुनेगा। जो सुननेके लिये तैयार होगा, वही सुनेगा। जो सुननेके लिये तैयार नहीं है, उसको सुनानेसे अपने इष्टका अपमान ही होगा। उसके सामने हम जितना ही अपने इष्टका मण्डन करेंगे, उतनी ही खण्डनकी वृत्ति तेज होगी और उसकी हमारे इष्टपर अश्रद्धा होगी।

एक गहरी बात है कि सब परमात्माके अंश होनेसे जैसे हम अपना अपमान नहीं सह सकते, ऐसे ही खण्डन करनेवाला भी अपना अपमान नहीं सह सकता। उसकी बात कटेगी तो उसको बुरा लगेगा ही। बुरा लगेगा तो उसके भीतर हमारे इष्टके खण्डनकी अनेक युक्तियाँ पैदा होंगी, खण्डनकी युक्तियोंका प्रवाह पैदा होगा। फिर उसमें सत्य-असत्य, न्याय-अन्यायका विचार नहीं रहेगा।

एक जल्पकथा होती है, एक वितण्डाकथा होती है और एक वादकथा होती है। जल्पकथा वह होती है, जिसमें वक्ता अपनी बात कहता चला जाय। वितण्डाकथा वह होती है, जिसमें एक सोचता है कि उसकी बातका खण्डन कैसे हो और दूसरा भी यही सोचता है कि इसकी बातका खण्डन कैसे हो ? यह वितण्डावाद सबसे नीचा कहा गया है। वादकथा वह होती है, जिसमें दोनों शान्तचित्तसे सत्य-असत्यका निर्णय करते हैं। सत्य क्या है ? वास्तविकता क्या है ?—इस बातको समझनेके लिये दोनों शान्तचित्तसे विचार करते हैं। इस वादकथाको भगवान्‌ने अपना स्वरूप बताया है—*'वादः प्रवदतामहम्'* (गीता १०। ३२)।

आज जो एक दूसरेको दबाकर अपनी उन्नति चाहते हैं कि इससे काम ठीक हो जायगा, इसका नतीजा बड़ा भयंकर होगा। दबानेसे शक्ति दबती नहीं है। खण्डन करनेवाला भी परमात्माका अंश है, वह अपना तिरस्कार कैसे सहेगा ? सह नहीं सकेगा, उलटे वह हमारे इष्टका, हमारे मतका और जोरसे खण्डन करेगा। उस जोरदार खण्डनमें हम ही निमित्त होते हैं। मैंने कई बार व्याख्यानमें कहा है कि अपने मतके मण्डनमें यदि हम दूसरेके मतका खण्डन करते हैं तो वास्तवमें हम दूसरेको अपने मतके खण्डनका निमन्त्रण देते हैं कि तुम भी हमारे मतका खण्डन करो ! अतः इससे कोई फायदा नहीं होगा, प्रत्युत दोनोंका नुकसान होगा।

हमारा अपने मतमें सद्‌भाव तो कम है, पर जिद ज्यादा है, इसीलिये हम दूसरेके मतका खण्डन करते हैं। अपने मतके अनुसार चलनेसे तो कल्याण होता है, पर अपने मतका पक्ष लेनेसे कल्याण नहीं होता। पक्ष लेनेमें 'हमारे इष्टका मण्डन कैसे हो'—इस तरफ ही वृत्ति रहती है, 'हमारा इष्ट क्या कहता है'—इस तरफ ध्यान ही नहीं जाता। अतः दूसरेके मतका खण्डन करनेमें लग जायँगे तो हमारेमें अपने मतका पक्षपात तो रहेगा, पर हम अपने मतके अनुयायी नहीं बन सकेंगे। हम केवल अपने मतके मण्डनमें ही तत्पर हो जायँगे तो हम उसके अनुयायी बनकर अपना कल्याण नहीं कर सकेंगे।

आज दशा क्या हो रही है ? सबमें अपने मतका मण्डन और दूसरेके मतका खण्डन करनेकी ही धुन है। परंतु यह काम साधकका नहीं है। साधकका काम तो अपना कल्याण करना है। हम जिस मतका प्रचार चाहते हैं, उस मतके अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये ।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

(गीता ३। २)

'श्रेष्ठ मनुष्य जो-जो आचरण करता है, दूसरे मनुष्य वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण देता है, दूसरे मनुष्य उसीके अनुसार आचरण करते हैं।'

—इस श्लोकपर आप विचार करें। इसके पूर्वार्धमें **'यत्, यत्, तत्, तत्'** और **'एव'**—ये पाँच शब्द आये हैं और उत्तरार्धमें **'यत्'** और **'तत्'**—ये दो ही शब्द आये हैं। इसका तात्पर्य है कि जहाँ जबानसे कहनेसे दो गुना असर पड़ता है, वहाँ आचरण करनेसे पाँच गुना असर पड़ता है। अतः आचरण दामी है, प्रचार दामी नहीं है। वास्तवमें देखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय तो प्रचार उसीके द्वारा होता है, जिसका आचरण वैसा ही होता है। उसकी वाणीमें वजन होता है। जैसे, एक बंदूकमें गोली होती है और एक बंदूकमें केवल बारूद होता है। आवाज तो बारूद भी कर देगा, पर चोट गोली ही करेगी। ऐसे ही अपना जो आचरण है, वह गोलीके समान है, जिसका दूसरोंपर असर पड़ता है।

दूसरा हमारे इष्टका खण्डन क्यों करता है—इसमें एक बात और समझनेकी है, आप ध्यान दें। वह हमारे सामने खण्डन करता है तो हमारे अनुष्ठानमें कमजोरी है। अगर हमारा अनुष्ठान कमजोर नहीं होता तो वह खण्डन नहीं कर सकता। हम शान्तिपूर्वक अपने इष्टपर पक्के रहते तो उसमें खण्डन करनेकी हिम्मत नहीं होती और यदि कोई हमारे इष्टका खण्डन कर रहा होता तो हमारे वहाँ जाते ही वह चुप हो जाता। जैसे, हम रामजीके भक्त हैं। यदि रामजीमें हमारा पूरा विश्वास, पूरी भक्ति होगी तो खण्डन करनेवाला हमारे सामने चुप हो जायगा, खण्डन नहीं कर सकेगा और हम चुपचाप रहेंगे तो उसपर हमारा असर पड़ जायगा।

जिसके भीतर सचाई है, उसके लिये कई आदमी कहते हैं कि 'हम उसके सामने झूठ नहीं बोलेंगे।' इसी तरह हमारी भक्ति तेज होगी तो उसका दूसरोंपर असर पड़ेगा, खण्डन करनेवालेपर भी असर पड़ेगा और वह चुप हो जायगा, क्योंकि हमारा इष्ट कमजोर नहीं है। सत्यमें बहुत बल है, असत्यमें बल नहीं है। खण्डन करनेवालेमें बल नहीं होता। कबीर साहबने कहा है—

निंदक तू गल जावसी ज्यूँ पानी में लूण।
कबीर थारे राम रुखालो निंदक थारे कूण॥

मैंने संतोंकी बातें सुनी हैं। जो असली प्रचारक संत होते हैं, वे कुछ नहीं कहते, केवल अपनी मस्तीमें रहते हैं। उनके द्वारा जैसा ठोस प्रचार होता है, वैसा जबानसे नहीं होता। असली असर उनका ही पड़ता है। उनके दर्शनमात्रका दूसरोंपर असर पड़ता है। दत्तात्रेयजी महाराजके दर्शनमात्रसे एक वेश्या सब कुछ छोड़कर भगवान्‌के भजनमें लग गयी थी। दत्तात्रेयजीने कुछ भी नहीं कहा। शान्त रहनेसे स्वाभाविक असर पड़ता है। शान्तिमें, अपने मतका दृढ़तासे पालन करनेमें बड़ी शक्ति है। एक संतने कहा है कि—'लोग समझते हैं कि यह साधु है, ईश्वरका प्रचार करता है, पर मैं ईश्वरका लेशमात्र भी प्रचारक नहीं हूँ। ईश्वरका प्रचार करनेमें मेरेको शर्म आती है कि क्या हमारा ईश्वर इतना कमजोर है कि उसका प्रचार हमको करना पड़े।

जो सुनना चाहे, उसीको सुनाना चाहिये। जो सुनना ही नहीं चाहे, उसको क्या कहा जाय? अपनी बात जबरदस्ती किसीपर लादेंगे तो उसके भीतर उलटी बात पैदा होगी। एक साधु बीमार थे। संनिपातमें वे उठें तो लोग उनको दबायें। वे फिर उठें तो लोग फिर दबायें। उनको मैंने कहा कि इनको दबाओ मत। बल तो भीतर है नहीं, अपने-आप शान्त हो जायँगे। आप ज्यों दबाओगे, त्यों ही इनका बल बढ़ेगा। ऐसे ही आप अपनी बात जबरदस्ती दूसरोंपर लादोगे तो उसके भीतर विपरीत बात पैदा होगी, जिससे उसका नुकसान तो होगा ही, आपका भी नुकसान होगा। सेठजीने कहा था—कोई सत्संगी भाई कहता है कि हमारा अमुक काम है, हम घर जायँगे। अगर हम उसको कहें कि अभी क्यों जाते हो? संसारका काम तो ऐसे ही होता रहेगा तो उसके भीतर घर जानेवाली बात ही जोरसे बढ़ेगी। वह कहेगा कि नहीं महाराज! हमें तो जाना ही पड़ेगा। आपको क्या पता कि हमारा कितना जरूरी काम है? परंतु उसको यदि यह कहा जाय कि अच्छा, ठीक है, आपका काम हो तो जाना चाहिये, तो वह कहेगा कि महाराज! यहाँ सत्संगमें रहते तो अच्छा था, पर क्या करें, जाना पड़ता है। इस प्रकार वह जायगा तो भी सद्भाव लेकर जायगा।

मनुष्यको चाहिये कि जब विपत्ति आन पड़े, तब इस विचारमें समय न खोवे कि इस विपत्तिका कारण क्या है और इसे रोकनेके लिये पहले क्या करना चाहिये था। वह अवसर तो बीत गया। अब तो वर्तमान विपत्तिसे बचनेका उपाय सोचे और जो उपाय ध्यानमें आवे, उसको काममें लावे।—हितोपदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोनिग्रहका मार्ग—निरन्तर भगवच्चिन्तन

(डॉ॰ श्रीशुकरत्नजी उपाध्याय)

लंकासे लौटनेपर श्रीजानकीजीका संदेश भगवान् श्रीरामसे सुनानेके बाद हनुमान्‌जीने प्रभुसे कहा था—'प्रभो ! विपत्ति तो वही है, जिस क्षण आपका स्मरण और भजन नहीं होता।'

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

जीवनमें इससे बढ़कर क्या और कोई विपत्ति हो सकती है ? जब व्यक्ति प्रभुका चिन्तन छोड़कर और कहीं उलझ जाय। क्योंकि मनुष्य जिन वस्तुओंमें जैसी आसक्ति रखता है और तदर्थ जैसा भी चिन्तन करता है, उसका सम्पूर्ण जीवन वैसा ही बनता चला जाता है।

शरीरसे अनैतिक, पापपूर्ण और अपराधपूर्ण कर्म करनेकी अपेक्षा मनसे उनका चिन्तन करते रहना कम हानिकारक नहीं है। प्रत्युत अधिक हानिकारक है; क्योंकि मनका स्वभाव है कि वह एक ही विचारको बार-बार दोहराता रहता है। एक ही विचारके निरन्तर चिन्तनसे मनमें उसका दृढ़ संस्कार वासनामय बन जाता है और फिर जो कोई विचार मनमें उठता है, उसका प्रवाह पहलेसे किये गये चिन्तनकी दिशामें ही होने लगता है। परिणामतः विचारोंकी दिशा निश्चित हो जानेसे वही मनुष्यका स्वभाव बन जाता है, जो उसके प्रत्येक कर्ममें व्यक्त होता है।

आसक्तिसे भरे मनपर विषयोंके सम्बन्धमें शीघ्र ही वासनाएँ अङ्कित हो जाती हैं। वासनाएँ मनुष्यकी पवित्रता और आत्मप्रकाशके बीच अभेद दीवार खड़ी कर देती हैं। वासनाओंकी तीव्रताके कारण जब प्रत्येक व्यक्ति अपने ही भोगकी चिन्ता करने लगता है, तब अनजाने ही विश्वके कर्मचक्रमें विच्छृङ्खलता पैदा हो जाती है।

तृप्ति और संतोष जीवन-रथके दो चक्र हैं। इन दोनोंकी प्राप्तिके लिये ही हम धनके अर्जन और अनन्त वस्तुओं तथा भोगोंके संग्रहमें लगे रहते हैं। किंतु क्या उनसे हमारी उद्विग्नता, अशान्ति, संताप और हृदयकी जलन समाप्त हो जाती है ? नहीं, निरन्तर नये-नये भोगोंकी आकाङ्क्षा हमारी इन्द्रियों और मनको सदा मथती रहती हैं। उनमें उथल-पुथल मचाये रखती हैं। पर भक्त प्रभुके निरन्तर स्मृतिसे उनके आनन्द-स्वरूपके चिन्तनमें ही ऐसी तृप्ति और संतोषका अनुभव करता है, जिससे फिर उसे अन्य विनाशी और जड वस्तुओंमें भटकनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। वह अपने प्रभुके चरित्र-चिन्तनद्वारा सतत जीवनका परिष्कार और संस्कार तथा उनकी लीलाके स्मरणद्वारा अपनी वृत्तियोंको उन्हींमें लीन कर देता है। अत्यधिक वासना-केन्द्रित इच्छाएँ मनुष्यकी शक्तिको विभिन्न तनावोंद्वारा क्षीण कर देती हैं; किंतु निरन्तर प्रभु-स्मरणसे उसी मनुष्यका कर्म दिव्यताकी आभासे मण्डित होकर उसके दुःखों एवं दुर्बलताओंको दूर कर देता है।

भोगोंका चिन्तन बुद्धिको मलिन कर देता है, ज्ञानको कुचल डालता है और विकारोंको भड़का देता है। दुष्पूर वासनाओंका चिन्तन मनुष्यकी शान्तिका अपहरण कर लेता है तथा इसकी समस्त शक्तियोंको क्षीण करके उसे दयनीय बना देता है। एक वासना अनेक वासनाओंको जन्म देती है, जिससे कामनाओंका जाल फैलता चला जाता है और मनुष्यका पूरा जीवन उसी जालमें उलझ जाता है।

प्रभु-चिन्तन करनेवाला मनुष्य पशुत्वसे देवत्व, स्वार्थसे परमार्थ, संकीर्णतासे उदारता एवं भोगसे त्यागकी ओर अपने आप बढ़ता रहता है। उसकी सर्वतोमुखी उन्नतिके नये-नये द्वार स्वतः खुलते चले जाते हैं। धीरे-धीरे उसके जीवनमें अचल शान्तिकी प्रतिष्ठा होने लगती है; क्योंकि प्रभु श्रीरामका चिन्तन ही आनन्दका अक्षय स्रोत है। जबतक ऐसा नहीं होता, तबतक प्राणीका कल्याण नहीं—

तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम॥

उनसे जुड़े रहनेसे जीवन और जगत्‌के प्रति मनुष्यमें एक स्वस्थ एवं सुन्दर दृष्टिकोण विकसित होता है। वास्तवमें संसारमें बुद्धिमान् वही है, जो भगवच्चिन्तनका आश्रय लेकर मनको विषयमुक्त करनेका प्रयत्न करता है, किंतु मूढ़ विषयोंके चिन्तनसे उन्हींमें फँसके रह जाते हैं।

श्रीरामकृष्ण परमहंस कहा करते थे—'कागजमें यदि तेल लगा हो तो उसपर जैसे लिखा नहीं जा सकता, उसी प्रकार जीवमें जब वासनारूपी तेल लग जाता है, तो उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा साधना नहीं हो सकती। वासनाका चिह्न मात्र भी रह जानेपर भगवान् प्राप्त नहीं हो सकते। धागेमें यदि जरा भी गाँठ पड़ी हो तो सुईके छेदमें नहीं डाला जा सकता। मन जब वासनारहित होकर शुद्ध हो जाता है, तभी सच्चिदानन्दका लाभ होता है।'

हम अपना बाह्य जगत् चाहे कितनी ही सुन्दरतासे क्यों न सजा लें, क्यों न अनेक आश्चर्यजनक उपकरणोंसे उसे सुविधा-सम्पन्न बना लें, किंतु यदि हम जो उनके बीच रहनेवाले हैं, अपना चिन्तन ठीकसे करना नहीं जानते, तो उन सुन्दर, समृद्ध बाह्य जगत्के साधनोंके होनेपर भी हम सुख, संतोष और आनन्दका अनुभव नहीं कर पायेंगे, चिरस्थायी सुख-शान्ति भी नहीं प्राप्त कर सकेंगे। सच पूछा जाय तो यह संसार हमारी ही सृष्टि है। इसके होनेवाले दुःख, अशान्ति और उद्विग्नताके हम ही कारण हैं। हम अपने ही विकृत चिन्तनसे अखण्ड सुख-शान्तिपूर्ण जीवन-धाराको पीड़ाओंसे भर देते हैं। इस संसारकी समस्त विभीषिकाओं और दुःखोंका महत्त्वपूर्ण कारण हमारा दुष्ट चिन्तन ही है। काम, क्रोध, लोभ, राग-द्वेष, भय, चिन्ता और तृष्णाकी अग्निमें हमारा मन गर्म पानीकी तरह खौलता रहता है, जिससे हम अपनी कार्य-क्षमता खो बैठते हैं और जीवनमें कुछ भी पाने योग्य नहीं रह जाते। पवित्र चिन्तनसे ही हम तेजस्वी और शक्तिशाली जीवन प्राप्त कर सकते हैं।

जीवनकी सारी समस्याएँ अपरिष्कृत-अपरिपक्व चिन्तनसे ही पैदा होती हैं। अपरिपक्व चिन्तनसे मिथ्या धाराएँ और भ्रान्तियोंका जन्म होता है। उत्कृष्ट चिन्तनसे ही मनुष्यके दृष्टिकोण, भावना और आचरणमें परिवर्तन होता है तथा उसके भावनात्मक और बौद्धिक विकासमें संतुलन स्थापित होता है। जबतक भावनात्मक विकास अथवा इमोशनपर कंट्रोल करनेकी पद्धतिका मनुष्यको पता नहीं है, तबतक अनुशासनका विकास, चरित्र और विनम्रताका विकास नहीं होता। केवल बुद्धि और तर्कसे इन समस्याओंका समाधान नहीं हो सकता।

मनुष्यके भावनात्मक विकास (सम्पूर्ण विश्वमें एकमात्र भगवान्की निश्चयात्मक भावनाकी दृढ़ता) से ही बुद्धिपर नियन्त्रण किया जा सकता है। इसके बिना चरित्रकी समस्याका कोई समाधान नहीं निकल सकता तथा इस विकाससे ही शुभ आन्तरिक परिवर्तन होता है।

प्रभु श्रीरामके चरित्र-चिन्तन, उनके प्रति भक्ति एवं उनकी ओर बहनेवाले तीव्र, अटूट प्रेमसे सूक्ष्म मनको भी शक्तिशाली बनाया जा सकता है और उसका परिष्कार भी किया जा सकता है।

मनमें सब अच्छा ही अच्छा नहीं है, उसमें अच्छा भी है, बुरा भी है, अमृत भी है, विष भी है। दुष्ट संग और दुष्ट चिन्तनसे उसके भीतर रहनेवाली दुष्ट शक्तियाँ जागकर उसे अन्धकारमें फेंक देती हैं। जब परिष्कृत अन्तःकरणके कारण मनुष्यकी विशुद्ध बोधात्मिका सद्बुद्धिका उदय होता है, तभी उसके जीवनमें शुभ विचार और तदनुसार श्रेष्ठ कर्म उत्पन्न होते हैं। जिससे मङ्गलमय मार्ग प्रशस्त होता है एवं उसका यथार्थ स्वरूप और आनन्द खण्डित नहीं होता। पापीके पापपूर्ण कर्म उसके मनमें स्थित अशुभ विचारोंकी ही अभिव्यक्ति हैं। अतः यदि उसके विचारोंकी रचना और दिशाको बदला जा सके, तो उसके व्यवहारमें भी निश्चित रूपसे परिवर्तन होगा। साधारणतः हमारा मन विषयोंकी कामनाओं और भोगोंकी उत्तेजनाओंमें रमता है, जब वह प्रभु-चिन्तनकी ओर मुड़ जाता है, तब हम उस परम शान्तिका साक्षात् अनुभव करते हैं, जो हमारे जीवनको सुरक्षित एवं शक्तिशाली बनाती है। यह दिव्य और शाश्वत शान्ति ही हमारा मूल स्वरूप है। इसके ही प्रभावसे सम्पूर्ण जीवन परिवर्तित होकर वह अपने अन्तर्बाह्य-जीवनमें प्रगति और विकासके योग्य बन जाता है। प्रभुका अखण्ड स्मरण मानव-व्यक्तित्वको विनाशकारी आन्तरिक दुष्प्रवृत्तियोंसे सुरक्षित रखता है। प्रभु-चिन्तनसे जुड़े बिना कोई भी जीव स्थायी-रूपसे प्रसन्न नहीं रह सकता।

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः॥

'विपत्ति विपत्ति नहीं है और सम्पत्ति सम्पत्ति नहीं है। असली विपत्ति तो है प्रभुका विस्मरण और सच्ची सम्पत्ति है उनका स्मरण।'

निरन्तर भगवत्स्मृतिसे सब प्रकार कल्याण-ही-कल्याण है और पुरुषार्थ-चतुष्टयकी प्राप्ति भी बिना किसी विशेष प्रयासके हो जाती है। वह स्मृति निरन्तर बनी रहे, इसके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृढ़ अभ्यास, सत्सङ्ग एवं इन सबके भी मूलमें भगवान्‌की कृपाकी आवश्यकता है। सर्वात्मभावसे शरण ग्रहण करनेपर भगवान् अवश्य कृपा करते हैं और उनकी पूर्ण कृपा हो जानेपर सारे मानसिक उपद्रव शान्त हो जाते हैं और मन शान्त होकर भगवच्चिन्तनमें लग जाता है। इस बातको भगवान्‌ने **'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरति ते'**, **'मामेकं शरणं व्रज'** आदि वचनोंके द्वारा भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत आदिमें बार-बार स्पष्ट किया है।

पार्वतीका पातिव्रत्य

(स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी)

सभी अनुष्ठानोंमें पवित्र तथा शुद्ध भावना ही मूल वस्तु है। शुभ कार्य यदि पवित्र भावना-अनुस्यूत न हों तो यज्ञ, तप आदि जैसे पुनीत अनुष्ठान भी दोषावह बन जाते हैं, इसी सिद्धान्तकी परिपुष्टि-हेतु दक्ष-दुलारीने अपने पातिव्रत-धर्मका निर्वाह कर स्वयंको यज्ञ-कुण्डमें समर्पित कर दिया था।

तदनन्तर हिमवान्‌के घर पार्वतीके रूपमें अवतीर्ण होकर वे माता-पिताकी आज्ञा लेकर वनमें तपस्या करने चली गयीं। स्वयं गिरे हुए सूखे पत्तोंपर जीवनका निर्वाह कर देवाराधन करना तपकी पराकाष्ठा मानी गयी है; किंतु पार्वतीने उनका भी परित्याग कर दिया। इससे वे 'अपर्णा' नामसे प्रसिद्ध हुईं।

स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता
परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां
वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः॥

शंकर-प्राप्ति-हेतु किये जा रहे इस घोर तपके परीक्षार्थ सप्तर्षियोंने आकर शिवकी आलोचना करते हुए जब ऐसे सर्वथा अयोग्य तथा गृहादिसे विहीन वरसे विवाहमें केवल क्लेशकी बात कहकर भय दिखलाया तो पार्वतीने अपने शिव-संकल्पको दुहराते हुए कहा—'मेरा तो शिवपर स्वाभाविक प्रेम है, साक्षात् शिव भी सौ बार कहें तो भी मैं नारदजीके उपदेशका परित्याग नहीं कर सकती, शरीर भले ही छोड़ सकती हूँ। मेरा तो हठ है कि मैं आजन्म कुमारी ही रहूँगी या एकमात्र शिवको वरण करूँगी, चाहे इसमें अनन्त जन्म क्यों न लग जायँ—***'जन्म कोटि लगि रगर हमारी।'***

भगवान् शशाङ्कशेखर स्वयं पार्वतीके दृढ़ संकल्पकी परीक्षा लेने ब्रह्मचारीके वेषमें उस स्थलपर आये, जहाँ पार्वती अपनी सखियोंकी देख-रेखमें तपस्यामें निरत थीं। एक अद्भुत तेजोमय दीप्त मुखाकृति वटुको आये देखकर सखियोंने ब्रह्मचारीका यथायोग्य आतिथ्य किया और उनके पधारनेका प्रयोजन पूछा।

आगन्तुकने पार्वतीसे भेंट कर उनसे धर्म-वार्ता करनेकी काङ्क्षा प्रकट की। इसपर सखियोंने असमर्थता व्यक्त करते हुए निवेदन किया—'महात्मन्! उनकी साधनामें विघ्न डालना घोर पाप होगा और हम इस प्रायश्चित्तमें भागीदार नहीं बनना चाहतीं। यथासमय जब वे थोड़े समयके लिये साधनासे विरत होंगी, उस समय हम आपके अभिप्रायसे उन्हें अवगत करा देंगी, तबतक आप प्रतीक्षा करें।'

ब्रह्मचारीने इस आग्रहको स्वीकार किया और तपोवनमें भ्रमण करनेके बहाने जहाँ पार्वती ध्यानमग्न विराजमान थीं, उसीके सामने एक जलकुण्डमें जान-बूझकर बालकका रूप धारणकर गिर पड़े और कातरस्वरमें चिल्लाने लगे—'दौड़ो-दौड़ो! मुझे बचाओ, मेरा उद्धार करो।'

शब्द सुनकर सखियोंके साथ पार्वतीजी भी वहाँ आ गयीं। उन्होंने अपना बायाँ हाथ ब्रह्मचारीको निकालने-हेतु बढ़ाया। ब्रह्मचारीने कहा—'भद्रे! बायाँ हाथ तो स्वभावतः अपवित्र माना जाता है, दोषयुक्त भावनाओंसे परिपूर्ण बायाँ हाथ पकड़कर मैं अवज्ञाका पात्र नहीं बनना चाहता।'

भद्रे यच्छुचि नैव स्याद्यच्चैवावज्ञया कृतम्।
सदोषेण कृतं यच्च तत्स्वीकार्यं न कर्हिचित्॥
सव्यं चाशुचि ते हस्तं नावलम्बामि कर्हिचित्।

पार्वती ब्रह्मचारीके त्राण-हेतु तत्पर थी हीं, परंतु उनके समक्ष धर्मसंकट उपस्थित था। उन्होंने शालीनतापूर्वक ब्रह्मचारीसे निवेदन किया—

इत्युक्ता पार्वती प्राह नाहं हस्तं च दक्षिणम्।
ददामि कस्यचिद्विप्र देवदेवाय कल्पितम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिणं मे करं देवो ग्रहीता भव एव च।
स्मर्यते चोग्रतपसा सत्यमेतन्मयोदितम्॥

'विप्रवर ! मेरा दाहिना हाथ अपना नहीं है। यह तो मैं देवाधिदेव महादेवको अर्पित करनेका संकल्प कर चुकी हूँ। इस तपद्वारा मैं उन्हींकी प्राप्तिका चिन्तन करती हूँ, अतः आपके समक्ष सत्य बात मैंने कह दी।'

इसपर ब्रह्मचारी-वेषधारी श्रीशंकरने कहा—'देवि ! यदि आपका शिवजीके प्रति इतना आग्रह है तो मेरा उद्धार न कर अपने प्रारब्धपर ही मुझे छोड़ दीजिये। अथवा यदि ब्राह्मणके प्राणकी रक्षाको महत्त्व देती हों तो कृपया दाहिने हाथसे मुझे बाहर खींचकर मेरी रक्षा कीजिये।'

पार्वती किंकर्तव्यविमूढ-सी कुछ क्षण सोचती रहीं और फिर उन्होंने विप्र-उद्धारको सर्वोपरि मानकर अपना दाहिना हाथ बढ़ाकर ब्रह्मचारीको सरोवरसे बाहर निकाल दिया।

पार्वतीने ब्रह्मचारीको बचा तो लिया, पर वे आत्म-ग्लानिसे भर उठीं और प्रायश्चित्त-स्वरूप पर-पुरुष-कर-स्पर्शसे शरीरको उच्छिष्ट मानकर स्वयंको योगाग्निमें भस्म करनेका उपक्रम करने लगीं। इसपर ब्रह्मचारीने उनके प्राण-परित्यागका कारण पूछा, तब पार्वती शिवकी महिमा और उनके प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करने लगीं। इसी प्रसंगमें ब्रह्मचारीने शिवकी कटु आलोचना प्रारम्भ कर दी, यह सुनकर वे भागनेको उद्यत हुईं, तबतक ब्रह्मचारीने साक्षात् शिवका रूप धारणकर उनका मार्ग रोक लिया और वे शिवरूपमें बोले कि मैं तो केवल तुम्हारी परीक्षा मात्र कर रहा था। तुम्हारी तपस्या सफल हो गयी। अब तुम जो कुछ कहो, मैं वैसा ही आचरण करूँगा।

पार्वतीने कहा—'भगवन् ! मैंने जिस कार्यके लिये स्वयंको संकल्पित किया था, वह आपके दर्शनसे पूर्ण हुआ। मेरा अन्तःकरण, हृदय, मन, बुद्धि सभी आपको समर्पित हैं, परंतु यह शरीर तो जन्मदाता और पालक माता-पिताका है, अतः आप उनसे इसे दानस्वरूप माँगकर उनका सम्मान और आर्य-संस्कृतिकी रक्षा करें।'

मनसस्त्वं प्रभुः शम्भो दत्तं तच्च मया तव।
वपुषः पितरावेतौ सम्मानयितुमर्हसि॥

भारतीय संस्कृतिमें नारीके उच्चादर्शकी साक्षात् प्रतिमूर्ति पार्वतीका यह स्वरूप हमारे समक्ष तप, दृढ़ संकल्प, विवेक, पवित्रता, विश्वास और धैर्य-जैसे गरिमा-मण्डित गुण लेकर समुपस्थित है। अपनी उग्र साधनाके सुफल-रूपमें शंकरसे मिलन हो जानेके पश्चात् भी पार्वतीका यह अन्तिम मनोभाव भारतीय नारीका सर्वोत्कृष्ट आदर्श हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।

मानव-जीवनका कर्तव्य

गृहस्थको चाहिये कि वह अपने कुटुम्बकी चिन्तामें ही आसक्त न रहे और कुटुम्बी होकर भी ईश्वरके भजनको न भूले, भगवान्‌पर पूर्ण श्रद्धा-विश्वास करे। इस प्रत्यक्ष संसारकी भाँति अप्रत्यक्ष स्वर्ग आदिको भी अनित्य और नश्वर समझे। जैसे पथिक लोग किसी जलाशयपर जल पीनेके लिये आ-आकर थोड़ी देरके लिये एकत्र हो जाते हैं और जल पीकर अपने-अपने रास्ते चले जाते हैं, इस संसारमें पुत्र, स्त्री, परिवार और बन्धु-बान्धवोंके समागमको भी ठीक वैसा ही समझना चाहिये। जैसे नींद लगनेपर स्वप्न दीख पड़ता है और नींद उचट जानेपर नहीं दीखता, वैसे ही शरीर मिलनेपर स्त्री-पुत्रादिका समागम होता है और शरीर छूटनेपर वियोग हो जाता है। भगवान्‌की भक्ति करता हुआ मनुष्य अपने कर्तव्योंके पालनद्वारा भगवान्‌की आराधनामें लगा रहे, फिर चाहे वह गृहस्थ-आश्रममें रहे या वानप्रस्थी होकर वनमें चला जाय, अथवा संन्यासी हो जाय। परंतु जिसकी बुद्धि केवल परिवारमें ही फँसी है, जो पुत्र और धनके लिये ही व्याकुल है, जो स्त्री-संगमें लिप्त और मन्दबुद्धि है, वह मूर्ख मनुष्य 'यह मैं हूँ, यह मेरा है' इस प्रकार भ्रमजालमें पड़कर अनेकों जन्मोंतक जन्म-मरणके कठिन कष्टको भोगता रहता है। जिसका मन इस प्रकार केवल विषयोंकी चिन्तामें ही डूबा रहता है, वह मूढमति कभी तृप्त नहीं होता और चिन्तामें डूबा हुआ एक दिन अतृप्त ही मर जाता है और फिर नीच तामसी योनिमें जन्म लेता है। इसलिये मानवका कर्तव्य है कि वह संसारकी आसक्तिका परित्यागकर भगवान्‌के मङ्गलमय चरणोंका आश्रय ले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ममता तू न गयी मेरे मन तें

(मोह, कारण और निवारण)

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

[गताङ्क पृ० सं० ८०१से आगे]

(३)

धन-सम्पत्ति, रुपया-पैसा, जर-जमीन, मालमिलकियत-का मोह तो इतना जबर्दस्त है कि कुछ न पूछिये।

मकानकी एक-एक ईंटसे मोह होता है।

दमड़ी-दमड़ी, छदाम-छदामतककी चीजोंके लिये हम कट मरते हैं। कोई ले तो जाय, हम उसका खून पी लेंगे !

हमारी सम्पत्ति, फिर वह फटी गुदड़ी, फूटा कमण्डल, टूटा तवा अथवा टूटी छानी ही क्यों न हो, हमारे भयंकर मोहका कारण रहती है। वह हमारी है, हम उससे चिपटे बैठे रहते हैं।

सम्पत्ति हमारी है। उसपर 'हमारी', 'मेरी', 'अपनी'का ठप्पा लगा है। मजाल क्या कि कोई उसकी ओर ताक तो जाय।

× × ×

सेठजी सोते हैं तो भी उन्हें चिन्ता रहती है कि अमुक कम्पनीके शेयर गिर रहे हैं, अमुकके चढ़ रहे हैं, अलसीमें घाटा आ रहा है, रूईमें मुनाफा हो रहा है। कल बम्बईकी हुंडी सिकारनी है, परसों कलकत्तेकी। इस बैंकमें इतना बैलेंस है, उसमें इतना। इस मिलको खरीद लूँ तो सालाना कई लाखकी आमदनी बढ़ जाय। उस बँगलेको उठा दूँ तो इतना रुपया आने लगे !....

रात-दिन उन्हें रुपयेकी ही चाट लगी रहती है। दिनमें सैकड़ों बार खुश होते हैं, सैकड़ों बार दुःखी !

कौन जाने मरनेके बाद भी वे अपनी जायदादपर नाग बनकर न आ बैठें।

× × ×

परिग्रहका मोह किसे नहीं होता।

अपरिग्रहका दम भरनेवाले भी परिग्रहके मोहमें फँसे दीख पड़ते हैं।

नागा बाबा हैं और सवार हैं हाथीपर !

कहते हैं कि एक बार स्वामी दयानन्द सरस्वतीके पास दो लँगोटियाँ थीं।

स्नानसे निवृत्त हो ध्यान करने बैठते तो बराबर यही मोह सताता कि बंदर आकर दूसरी लँगोटी उठा न ले जाय !

परेशानी बहुत बढ़ी तो दूसरी लँगोटी उठाकर गङ्गामें फेंक दी।

× × ×

पर अब, दूसरी समस्या आ खड़ी हुई।

एक लँगोटी, शिष्टता और शालीनताका ध्यान।

दिनमें अब स्नान करें तो कैसे ?

दूसरे दिनसे उन्होंने इतने तड़के नहाना शुरू किया कि सूर्योदयके पहले ही भींगी लँगोटी सूख जाय।

अन्य संन्यासियोंने सुना तो उन्हें यह बात जँची ही नहीं।

सोचने लगे कि इतने तड़के हरद्वारकी इस कड़ाकेकी सर्दीमें दयानन्द नहाता तो क्या होगा, बहाना बनाता है !

दूसरोंका भंडा-फोड़ करनेके लिये हमारे मलिन मन आकुल रहते ही हैं, भले ही उसके लिये कुछ कष्ट भी उठाना पड़े !

एकाध साधुने असलियतका पता लगानेका बीड़ा उठाया।

× × ×

बात सही निकली तो लोगोंने दाँतों-तले उँगली दबायी।

पूछा—'दयानन्द ! तुझे सर्दी नहीं लगती ? हम तो इतने कपड़े कसे रहते हैं फिर भी ठिठुरते रहते हैं।'

स्वामीजी बोले—'मैंने इसका अभ्यास कर लिया है। आप कड़ी सर्दीमें भी मुँह खुला रखते हैं। मुँहके कोमल चमड़ेपर आपको सर्दी नहीं लगती। मैंने सारे शरीरको ऐसा बना रखा है !'

× × ×

इस मोहके चलते कितने ही त्यागी और महात्मा जंगलमें जाकर भी फँस जाते हैं।

साम्राज्यत्यागी, परम ज्ञानी भरतमुनिको इस मोहके ही कारण मृगयोनिमें जन्म लेना पड़ा !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जंगलमें पहले 'तरुतल बासा' रहता है, फिर झोंपड़ी पड़ती है, फिर गाय आती है, फिर धीरे-धीरे आश्रम 'मठ' बन जाता है। बड़े-बड़े महलोंके नाम होते हैं—साधन-कुटीर, त्यागाश्रम आदि-आदि।

अपरिग्रहके नामपर परिग्रहकी होड़ लग जाती है!

आवश्यक और अनावश्यक असंख्य वस्तुएँ हम रोज जुटाते चलते हैं! मोह दिन-दिन बढ़ता चलता है।

× × ×

कुर्सी? कुर्सीका मोह तो बड़े-बड़ोंसे पानी भराता है!

अङ्ग-अङ्ग जवाब दे रहा है, स्मरणशक्ति ढीली पड़ रही है, कार्यक्षमता घट रही है, पर हम हैं कि कुर्सीसे चिपके बैठे हैं।

हमसे कहीं अधिक योग्य, दक्ष, कुशल, कर्मठ व्यक्ति मैदानमें हैं, मौका मिले तो वे हमसे भी अधिक जिम्मेदारीसे हमारा काम सँभाल लें, परंतु हम उन्हें मौका ही नहीं दे सकते। हमें लगता है कि हमने इन्हें मौका दिया कि हमारी बधिया बैठी। फिर तो कोई भूलकर भी हमारा नाम न लेगा। हमारी सारी शान धूलमें मिल जायगी!

अब या तो मौत ही हमें खींचकर कुर्सीसे उठा ले जाय या विद्रोही नया खून हमारी कुर्सी उलट दे, तभी हम कुर्सी छोड़ेंगे।

प्रेमसे, दूसरोंको आगे बढ़ानेके लिये, देश, समाज और संस्थाके हितकी दृष्टिसे कभी हम सोचना भी नहीं चाहते कि हमारा कर्तव्य क्या है!

मोहकी कैसी मोटी पट्टी है यह!

× × ×

मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठाका मोह किसे नहीं सताता?

लोग हमारा आदर करें, हमारे चरणोंमें नतमस्तक हों, बड़े-बड़े लोग हमसे मिलनेके लिये लालायित रहें, प्रतिष्ठापूर्ण उपाधियाँ हमारे नामके साथ जुड़ जायँ, जनता हमें साधारण श्रेणीसे ऊपरका आदमी समझे—इस प्रकारके छिछले भाव हमसे क्या नहीं कराते?

× × ×

मान-प्रतिष्ठाके लिये हम निन्द्य-से-निन्द्य कर्म करनेमें नहीं झिझकते!

इसके लिये मौका पड़े तो हम छल-प्रपञ्च, झूठ-बेईमानी, अन्याय-अत्याचार—कुछ भी करनेसे बाज नहीं आते।

इसके लिये हम चुनावमें फर्जी वोट डलवाते हैं, चाँदीकी जूतीसे मतदाताओंको खरीदते हैं, साम-दान-दण्ड-भेद—सबका प्रयोग करते हैं, रिश्वत देते हैं, डालियाँ भेजते हैं, खुशामद करते हैं।

मोहका कैसा बीभत्स और घृणित रूप!

× × ×

गरीब और साधनहीन व्यक्ति महत्त्वाकाङ्क्षाके फेरमें पड़कर यदि इस तरह गंदे हथकंडे काममें लायें तो कोई बात भी है, पर ऐसा नहीं है। बड़े-बड़े साधनसम्पन्न व्यक्ति भी मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठाके मोहमें पड़कर इतने नीचे उतर जाते हैं।

इसके चलते दलबंदियाँ चलती हैं, प्रतिद्वन्द्विताएँ चलती हैं, विरोधियोंको पछाड़नेके लिये गंदे-से-गंदे तरीके काममें लाये जाते हैं।

मजेकी बात तो यह कि बड़े-बड़े साधु-संन्यासी, भक्त-महात्मा, विरक्त और ज्ञानी कहानेवाले और देशके लिये सर्वस्व अर्पण कर देनेवाले बलिदानी नेता भी इसके अपवाद नहीं।

तभी तो तुलसी बाबाको कहना पड़ा था—

कैसे देउँ नाथहिं खोरि।
बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि।

× × ×

नामका मोह किसे नहीं?

जिन्हें कुछ न चाहिये, उन्हें भी नाम तो चाहिये!

रुपया-पैसा, धन-दौलत—कुछ न मिले, पर नाम मिले! इसके लिये लोगोंमें जैसी बेचैनी देखनेमें आती है, वैसी शायद ही और किसी बातके लिये हो।

× × ×

नामके लिये लोग दान करते हैं।

बाग-बगीचा लगाते हैं।

कुआँ-बावली खुदवाते हैं।

प्याऊ-पोसरा बैठाते हैं।

धर्मशाला, मन्दिर, स्कूल, कालेज, अस्पताल बनवाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामके लिये पचपन सालके बुढ़ऊ सिरपर मौर सजाते हैं। बेटे होंगे, पोते होंगे—नाम चलेगा !

रुपया-पैसा है, धन-दौलत है, पर आँगन सूना है, कलेजा मुँहको आता है। यह देख लोग दूसरेका लड़का गोद लेते हैं, सीधे नहीं मिलता तो अस्पतालसे लड़केकी चोरी कराते हैं या अनाथालयसे उठा लाते हैं !

कैसे भी हो, नाम तो चले !

× × ×

अभी एक पुस्तक मेरी नजरसे गुजरी।

लिखी किसीने, नाम था उसपर किसीका। पुस्तकमें लेखकका कहीं भूलसे भी उल्लेख नहीं !

लेखककी पत्नी मेरे सामने थीं।

मैंने चुटकी ली—इसमें तो भूमिकातकमें जिक्र नहीं ! बोलीं— हमलोग तो गुप्त 'दानी' हैं ! 'बधाई है'..... मैंने कहा।

× × ×

नामके लिये लोग तस्वीरें खिंचाते हैं, अखबार निकालते हैं, किताबें छपाते हैं, वक्तव्य निकालते हैं। नामके लिये लोग हिमालयपर चढ़ाई करते हैं, आकाशमें उड़ते हैं, समुद्रकी तलीमें घुसते हैं, ध्रुवकी खोज करते हैं। और क्या नहीं करते ?

× × ×

एक नेताजी हैं। बड़े त्यागी, बड़े देशभक्त।

एक राज्यके मुख्य मन्त्री रह चुके हैं।

पर नामकी हविस बुढ़ौतीमें भी पीछा नहीं छोड़ती।

कोई पत्रकार पैर छूकर उन्हें प्रणाम करे तो बड़े खुश होते हैं। मिलते ही कहेंगे—'तुमने फलाँ जगहकी मेरी स्पीच तो ठीकसे छापी, पर ब्लाक नहीं दिया ! अबकी दफा खयाल रखना ! है कोई, जरा नाश्ता तो लाओ इनके लिये।'

× × ×

और तो और, मरकर भी नामका मोह रहता है।

'है संगे मजारपर भी तेरा नाम रवाँ,
मर कर भी उमेदे जिंदगानी न गयी ॥'

तभी तो ताजमहल देखकर भगवतीचरण वर्मा कहते हैं—

'ओ रज-कणके ढेर, तुम्हारा है विचित्र इतिहास !'

× × ×

(क्रमशः)

मनुष्य-जातिके कल्याणके लिये गीता सर्वाधिक उपयोगी ग्रन्थ है

मुख्य प्रश्न जो अर्जुनने श्रीकृष्णसे पूछा और सो भी कई बार, वह यह था—'मेरा निश्चित कल्याण किसमें है ? मुझे एक निश्चित राय बताइये, जिससे मैं कल्याण प्राप्त कर सकूँ।' अतः मालूम होता है कि गीताका मुख्य विषय यह है—मानव-जातिका सबसे अधिक कल्याण किस बातमें है और वह किस तरह प्राप्त हो सकता है ? संक्षेपमें भगवान् श्रीकृष्ण हमें बतलाते हैं कि मोक्ष (अर्थात् जीवात्माका जन्म-मृत्युके बन्धनसे छूट जाना) ही मनुष्यके लिये सबसे बड़ा कल्याण है और वह निष्काम (फलकी इच्छासे रहित) कर्मके अनुष्ठानसे प्राप्त हो सकता है, क्योंकि इस संसारमें हम अपने ही कर्मोंका फल भोगनेके लिये बार-बार जन्म लेते हैं। भगवद्गीता हमें निष्काम कर्मके योग्य बननेके साधन और उपाय बतलाती है और निष्काम कर्मकी पहली सीढ़ी है—जिस तरहसे भी हो स्वधर्मका पालन करना। कोई भी समाज, यदि उसके अङ्गभूत व्यक्ति अपने-अपने कर्तव्यका पालन नहीं करते, जीवित नहीं रह सकता और न कोई व्यक्ति ही उन्नति कर सकता है, न फल-फूल सकता है और न सुखी हो सकता है, यदि वह अपने विहित कर्मका त्याग कर देता है। अतः मनुष्यमात्रके कल्याणके लिये भगवद्गीताके समान उपयोगी ग्रन्थ कोई भी नहीं है। इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि लोग उसके आशयको भलीभाँति समझें और उसका जगत्में अधिकाधिक प्रचार हो।

—श्रीश्यामाचरण दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवतीय प्रवचन—३३

भगवद्दर्शनमें अन्तराय

(संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)

जो ठाकुरजीका सेवा-स्मरण अकेला करे वह साधारण वैष्णव है, किंतु जिसके संगसे दूसरोंको भी ईश्वरकी सेवा और स्मरण करनेकी प्रेरणा मिले तथा इच्छा जागे वह महान् वैष्णव है।

भक्तोंने एक बार महाप्रभु वल्लभाचार्यजीसे कहा कि हमें वैष्णवका लक्षण बताइये तो महाप्रभुजीने कहा कि 'जो ठाकुरजीकी सेवा करे वही वैष्णव है।' भक्तोंने कहा कि यह बात तो हम भी जानते हैं। हमें कुछ विशिष्ट लक्षण बताइये। महाप्रभुजीने कहा कि 'महान् वैष्णव वह है कि जिसके संगमें आनेवालेको ठाकुरजीकी सेवासे प्रीति हो जाय और उसपर भी कृष्ण-भक्तिका रंग लग जाय। प्रह्लाद महान् वैष्णव है।'

प्रह्लादके संगमें आनेवालेपर भी भक्तिका रंग लग जाता था। तुम्हारी संगति करनेवालेपर भक्तिका रंग न लगे तो मानो कि तुम्हारी भक्ति अभी कच्ची ही है। किंतु दूसरोंको सुधारनेकी चिन्तामें पड़नेकी साधारण मनुष्यको कोई आवश्यकता नहीं है। तुम अपना ही मन शुद्ध कर लो, बस यही पर्याप्त है।

व्यसन-जैसा कोई पाप नहीं है। जो व्यसनको पराजित कर सकता है, वही भक्ति कर सकता है। आजकल तो वेश-भूषाकी सज्जा और व्यसनमें ही समय और सम्पत्तिका व्यय किया जाता है। व्यसनके पीछे पागल बना हुआ व्यक्ति भगवान्‌की सेवा नहीं कर सकता। वैष्णव तो वह है कि जो निर्व्यसनी हो। जो भगवान्‌की आराधना करना चाहता है, उसे लौकिक व्यसनसे प्रीति नहीं करनी चाहिये। जिसे ईश्वरकी आराधना करनी है उसे चाहिये कि वह वेश-भूषाकी सज्जा और व्यसनमें न फँसे। व्यसन हो तो एक ही हो और वह व्यसन हो कृष्ण-भक्तिका **'विद्याव्यसनम्'** अथवा **'हरिपादसेवनं व्यसनम्।'**

तुकाराम महाराजको भक्तिका ऐसा ही व्यसन था। उनकी आँखोंको ऐसी आदत पड़ गयी थी कि जहाँ भी उनकी दृष्टि जाती, वहाँ उन्हें मुरलीमनोहरका स्वरूप दिखायी देता था।

भक्ति व्यसनरूप हो जायगी तो तुम्हें मुक्ति दिलायगी। भक्ति व्यसन हो जाती है तो तुरंत मुक्ति मिलती है।

राज्यशासनसे समाज उतना नहीं सुधरता जितना कि संत उसे सद्भावके द्वारा सुधार सकते हैं। प्रह्लादके संगमें जो भी आये, उन सभीका उन्होंने कल्याण किया।

दिति गर्भवती हुईं। उन्होंने सोचा कि मेरे पुत्र देवोंको कष्ट देंगे, अतः इनका जन्म शीघ्र न हो। इस विचारसे दितिने सौ वर्षोंतक गर्भ धारण किये रखा। सूर्य-चन्द्रका तेज क्षीण होने लगा। देवता घबड़ाये। वे ब्रह्माजीके पास आये और उनसे पूछा कि 'दितिके गर्भमें कौन हैं?' ब्रह्माजीने कहा—'दितिके गर्भमें सनकादि मुनियोंसे संशप्त जय-विजय नामके विष्णुके दो पार्षद हैं' जिनका विस्तृत वृत्तान्त इस प्रकार है—

एक बार मेरे मानसपुत्र सनकादि ऋषि घूमते-फिरते वैकुण्ठ-लोकमें गये। अन्तःकरणचतुष्टयके शुद्ध होनेपर ही ईश्वरके दर्शन होते हैं। ईश्वरदर्शन करनेके लिये जाते समय इन चारोंको शुद्ध करके जाना चाहिये। अन्तःकरणके चार विभाग (प्रकार) हैं। अन्तःकरण जब संकल्प-विकल्प करता है, तब उसे मन कहा जाता है, वह जब किसी वस्तुका निर्णय करता है, तब उसे बुद्धि कहते हैं। श्रीकृष्णका चिन्तन करनेपर उसे चित्त कहते हैं और उसमें जब क्रियाका अभिमान जगता है, तब उसे अहंकार कहते हैं। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—इन चारोंको शुद्ध करो। बिना इन चारोंको शुद्ध किये परमात्माके दर्शन नहीं हो सकते। ब्रह्मचर्यके बिना इन चारोंकी शुद्धि नहीं होती। ब्रह्मचर्य तभी सिद्ध होता है जब ब्रह्मनिष्ठा सिद्ध होती है।

सनकादि ब्रह्मचर्यके अवतार हैं। वे महाज्ञानी हैं फिर भी बालक-जैसे दैन्यभावसे रहते हैं। वे नारायणके दर्शन करनेके लिये वैकुण्ठमें जाते हैं।

काम और काल वैकुण्ठमें प्रवेश नहीं पा सकते। जहाँ किसी प्रकारकी कुण्ठा नहीं होती है, वह वैकुण्ठ है। वैकुण्ठके वृक्ष और पुष्प दिव्य हैं। छः ऋतुएँ सखियाँ बनकर उस धामकी सेवा करती हैं। वहाँ सात बड़े-बड़े दुर्ग हैं, जिन्हें लाँघकर जाना पड़ता है।

सनकादिकोंको अलौकिक वैकुण्ठधामका दर्शन हो रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यहाँ भ्रमर भी प्रेमसे ईश्वरके गुणगान करते हैं, ऐसा लगता है। भ्रमर गुन-गुना रहे हैं, मानो श्रीकृष्णका दर्शन-कीर्तन ही कर रहे हों। वैकुण्ठमें विषमता नहीं है। यहाँके पार्षद भगवान्-जैसे हैं और दासियाँ लक्ष्मी-जैसी हैं। पार्षद भी शङ्ख-चक्र-गदाधारी चतुर्भुज हैं।

जब ईश्वर कुछ प्रदान करने लगते हैं, तब वे देनेमें कुछ भी संकोच नहीं करते। भगवान् जब देते हैं, तब लेनेवाला लेते-लेते थक जाता है। मनुष्य आखिर कितना ले सकता है।

जब प्रतिविम्बको देखनेसे विम्बका मोह होता है, तब विम्बको देखनेसे कितना आनन्द होता होगा। वैष्णव भाग्यशाली हैं कि वे मूल विम्बको देख सकते हैं। भगवान् अपना विम्ब नहीं देख सकते। कन्हैया दर्पणमें अपना प्रतिविम्ब देखते हैं और यशोदाजीसे कहते हैं कि यह बालक बहुत सुन्दर है, मैं इसके साथ खेलना चाहता हूँ। माता समझाती हैं कि वह कोई और बालक नहीं है, वह तो तेरा ही प्रतिविम्ब है। अपने प्रतिविम्बका दर्शन करनेसे जब भगवान् स्वयं मुग्ध हो जाते हैं, तो गोपियाँ विम्बका दर्शन करके भान भूल जायँ, इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है!

सनकादि वैकुण्ठके छः द्वार पार करके सातवें द्वारपर पहुँचे। वहाँ जय-विजय खड़े थे। वे भगवान्के प्रासादमें प्रवेश करना ही चाहते थे कि भगवान्के द्वारपाल जय और विजयने उन्हें रोका।

सनकादिकोंने कहा कि हम तो अपने माता और पिता—लक्ष्मी और नारायणसे मिलने जा रहे हैं। सनकादि कौपीनधारी थे। कौपीनका अर्थ केवल लँगोटी नहीं है, जितेन्द्रिय ही कौपीनधारी हैं।

भगवान्का दर्शन करनेके लिये जितेन्द्रिय होकर ही जाना पड़ता है।

द्वारपालोंने सनकादिकोंसे कहा कि अंदरसे आज्ञा मिलनेपर हम आपको प्रवेश करने देंगे, तबतक आप यहीं रुकिये। वे यह सुनकर क्रुद्ध हो गये।

क्रोध कामानुज—कामका छोटा भाई है। अति सावधान रहनेपर कामको तो मारा जा सकता है, किंतु उसके छोटे भाई क्रोधको मारना कठिन है। कामका मूल संकल्प है। ज्ञानी किसी औरके शरीरका चिन्तन नहीं करते, अतः काम उन्हें पीड़ा नहीं दे पाता। ज्ञानी पुरुषका पतन कामद्वारा नहीं, क्रोधके कारण ही होता है।

छः द्वार पार करके ज्ञानी पुरुष आगे बढ़ता है, किंतु सातवें द्वारपर जय-विजय उसे रोकते हैं।

योगके सात प्रकारके अङ्ग ही वैकुण्ठके सात द्वार हैं। वे हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान। इन सातों द्वारोंको पार करनेके पश्चात् ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। योगके इन सातों अङ्गोंको सिद्ध करनेपर वैकुण्ठमें प्रवेश मिलेगा।

साधकको जीवनकी अन्तिम साँसतक सावधान रहनेकी आवश्यकता है। जय-विजय प्रतिष्ठाके दो प्रतीक-स्वरूप हैं। भगवान्के चिन्तनमें सिद्धि-प्रसिद्धि बाधा उपस्थित करती हैं। सिद्धिके मिलनेपर प्रसिद्धि होती है। सेवामें प्रमाद करनेवालेका पतन होता है।

जगत् मेरे लिये क्या कहेगा, इसकी चिन्ता मत करो, किंतु जगदीश्वर क्या कहेंगे, इसका ध्यान रखो। जो लौकिक प्रतिष्ठामें फँसता है, वह परमात्मासे दूर हो जाता है।

भगवान्के राजमहलके सातवें द्वारपर जीवको जय और विजय रोकते हैं।

जय-विजयका अर्थ है कीर्ति और प्रतिष्ठा। कीर्ति और प्रतिष्ठाका मोह मनुष्य नहीं छोड़ सकता। वह घरका नाम तो रखता है अशोक-निवास, किंतु वह अशोक भाई कबतक उसमें बने रहेंगे! घरको ठाकुरजीका नाम दो। घरपर भी नाम और कथामें बैठनेके लिये रखे हुए आसनपर भी नाम है। घर और आसनपर लिखे हुए ये नाम कितने दिनतक रह पायेंगे! घरका मोह छूटता है, किंतु प्रतिष्ठाका मोह नहीं छूट पाता।

शिष्य कुछ प्रशंसा कर देते हैं तो गुरु मानने लगता है कि वह ब्रह्मरूप हो गया। सेवा-स्मरणकी वह धीरे-धीरे उपेक्षा करने लगता है और पतित हो जाता है।

मनुष्यका मन नाम-रूपमें फँसा हुआ है। नाम और रूपका मोह जबतक न छूट पाये, तबतक भक्ति नहीं हो सकती। मन श्रीकृष्णके रूपमें फँस जाय तभी मुक्ति मिलती है। प्रतिष्ठाका मोह आया नहीं कि भगवान्को द्वारपरसे ही वापस लौट जाना पड़ता है।

क्रोध करनेसे सनकादिकोंको प्रभुके सातवें द्वारसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वापस लौटना पड़ा। किंतु उनका क्रोध सात्त्विक था। वे द्वारपाल भगवान्‌के दर्शनमें बाधा उपस्थित कर रहे थे, अतः वे क्रोधित हुए। अतः भगवान् अनुग्रह करके द्वारपर आये और उन्हें दर्शन दिया। किंतु वे भगवान्‌के राजमहलमें तो प्रवेश पा ही न सके।

महाप्रभुने इस चरित्रकी समाप्ति करते हुए कहा है—ज्ञानीके लिये ज्ञान-मार्गमें अभिमान विघ्नकर्ता है। अभिमानके मूलमें यही क्रोध है। कुछ अज्ञानावस्थामें मरते हैं, तो कुछ लोग ज्ञानी होकर अभिमानवश होकर मरते हैं। ब्राह्मणको शिक्षा न मिले तो वह अज्ञानी रहता है और शिक्षा कुछ अधिक पा ले तो कभी-कभी अभिमानी होकर भी मरता है।

कर्ममार्गमें विघ्नकर्ता काम है। कश्यप और दितिके मार्गमें कामने ही बाधा डाली थी। कामसे सत्कर्मका नाश होता है।

भक्तिमार्गमें लोभ बाधक बनता है। लोभ भक्तिका नाश करता है।

ज्ञान-मार्गमें क्रोध विघ्न करता है। सनकादिकोंके मार्गमें क्रोधने ही बाधा डाली। क्रोधसे ज्ञानका नाश होता है।

देहदृष्टिसे काम उत्पन्न होता है। ज्ञानीके मार्गमें काम उतना बाधा नहीं डालता, किंतु क्रोध बाधा डालता है।

इन तीनोंके कारण पुण्यका लय (क्षय) होता है। विवेकसे काम नष्ट होता है, किंतु क्रोधको नष्ट करना कठिन है।

एकनाथजी महाराजने भावार्थ-रामायणमें लिखा है कि कामी और लोभीको तो कुछ-न-कुछ तात्कालिक लाभ हो सकता है, किंतु क्रोध करनेवालेको तो कभी कुछ भी लाभ नहीं हो सकता, इतना ही नहीं, उसके पुण्यका क्षय भी हो जाता है।

वल्लभाचार्यने इस चरित्रकी समाप्तिमें कहा है—

कामेन कर्मनाशः स्यात् क्रोधेन ज्ञाननाशनम्।
लोभेन भक्तिनाशः स्यात् तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

इसी कारणसे गीताजीमें काम, क्रोध, लोभको नरकका द्वार कहा है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

(गीता १६। २१)

हिन्दूधर्म सनातनधर्मका ही पर्याय है

(प्रो॰ डॉ॰ श्रीसीतारामजी झा 'श्याम', एम्॰ए॰, डी॰लिट्॰)

सनातनका अर्थ है अति प्राचीन कालसे पारम्परिक रूपमें प्रचलित तत्त्व या मान्यता अथवा धारणा। इस प्रकार सनातनधर्म उस धर्मका परिचायक है, जो सुदूर अतीतसे चला आ रहा है, जो नित्य तथा शाश्वत है अर्थात् जिसका अस्तित्व कभी समाप्त नहीं हो सकता। सनातनधर्मावलम्बी परब्रह्मकी प्राप्तिको जीवनका चरम लक्ष्य मानते हैं और अवतारके प्रति पूर्ण आस्थावान् रहते हैं। जीवन-यापनमें चारित्र्यको वे सर्वोपरि समझते हैं। सत्य, तप, त्याग, निर्भयता आदिको सबसे अधिक महत्त्व देते हैं। शरणागति उनके जीवनकी अन्यतम विशेषता होती है। ईश्वरकी उपासनाके अतिरिक्त उन्हें कहीं भी शान्ति नहीं मिलती।

वेदको धर्मका मूल आधार माना जाता है। संसारमें इससे अधिक प्राचीन ग्रन्थ आजतक दूसरा कहीं भी उपलब्ध नहीं हो सका है[1]। फिर उपनिषद्, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारत, धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, नीति, सदाचार, पूजोपासनापद्धति आदिके उपजीव्य भी वेद ही हैं। इतना ही नहीं, जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त सामान्य व्यावहारिक स्तरोंपर सम्पन्न होनेवाले विविध प्रकारके संस्कारादिका मूल स्रोत भी वेद ही हैं। इसीलिये वेद-विधान अथवा वेद-प्रभावित पद्धतिके अनुसार संचालित होनेवाला जीवन ही सनातनधर्मका अमिट स्वरूप है, जिसे आज हिन्दूधर्मके नामसे भी अभिहित किया जाता है। उनके सर्वप्रथम सरल भाष्य धर्मशास्त्र एवं पुराणादि हैं।

भारत एक ऐसा विलक्षण भू-भाग है, जहाँ (इसके) प्रत्येक मूल निवासीके घरमें 'कुलदेवता' अथवा 'कुलदेवी' के

१- वस्तुतः भारतीय प्राचीन ग्रन्थोंकी परम्परा अनादि ही है। पुराण तो अपनेको वेदोंसे भी प्राचीन कहते हैं। यह नाम भी एतदर्थक ही है—
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥
—यह वचन पुराणोंमें कई बार आया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजनकी भी विशिष्ट परम्परा निश्चित रूपसे रही है। विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश, शक्ति और स्कन्द—इनमेंसे किसी-न-किसी देवी-देवता अथवा उनके विविध रूपोंमेंसे किसी एक रूप या कई रूपोंकी आराधना-अर्चनाका प्रचलन भारतके सभी निवासियोंमें अवश्य रहा है। हिन्दूधर्म अर्थात् भारतीयताका यह प्रधान लक्षण है। भारतीय पूजा-पद्धतिमें—गणेश, आदित्य, विष्णु, रुद्र, देवी—इन पाँच देवताओंका पूजन प्रमुख रहा है। फिर भारतमें प्रत्येक पूजा-अर्चामें गो-गङ्गाको (तीर्थावाहनमें गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरीको) विशिष्ट महत्त्व दिया जाता है। अतएव हिन्दू अथवा भारतीय कहलानेके लिये गो एवं गङ्गाके प्रति अपार श्रद्धा-भावका होना अनिवार्य है। गोमाता तथा गङ्गामाताकी उपेक्षासे भारतमाता कभी प्रसन्न रह नहीं सकतीं। सम्पूर्ण भारतमें जहाँ कहीं भी खुदाई होती है, वहाँ विष्णुकी मूर्ति अथवा शिवलिङ्ग अवश्य उपलब्ध हो जाता है, जो इस बातका द्योतक है कि वास्तवमें भगवान् विष्णु सनातनधर्मके प्रधान आश्रय हैं और फिर 'हर हर महादेव'की तुमुलध्वनिसे भारतकी धरती और आकाश कब गुञ्जायमान नहीं रहा? विभिन्न कालोंमें अगणित घातों और प्रतिघातोंके मध्य भी सनातनधर्मका अस्तित्व बना रहा, भारतीय धर्म-भावनाकी सनातनता अर्थात् हिन्दुत्वकी शाश्वतताका इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है?

हिन्दूधर्म अत्यन्त ठोस आधारों—निगम (वेद और उपनिषद्), आगम (स्मृति तथा तन्त्र) एवं पुराणपर स्थित रहनेके कारण कालजयी है—परिस्थितियोंकी प्रतिकूलतामें भी उसका अस्तित्व सुरक्षित रहा, उसके स्वरूपमें कोई तात्त्विक अन्तर नहीं आया। वेदाङ्ग—शिक्षा, निरुक्त, ज्योतिष, व्याकरण, कल्पसूत्र और छन्दःशास्त्रसे हिन्दूधर्मके विकासमें सहायता मिलती रही है, विशेषकर ज्योतिषशास्त्रसे उसको सदा अपेक्षित निर्देश प्राप्त होता रहा है। विभिन्न प्रकारके देवकर्म एवं पूजन-विधियोंका मुख्य निर्धारण ज्योतिषशास्त्रद्वारा ही होता है। हिन्दूधर्म और ज्योतिषशास्त्रमें समवाय-सम्बन्ध है। वैष्णव, शैव और शाक्तके रूपमें मूलतः एक सनातन परम्परा प्रवाहित होती आयी है। देशके किसी भागमें चले जाइये, विष्णु, शिव, गणेश, दुर्गा आदि देवी-देवताओंके भक्त सर्वत्र मिलेंगे। उनकी उपासना-पद्धतिमें किंचित् भेद भले ही दिखायी पड़े, तात्त्विक एकताके कारण वे सभी पारस्परिकताके स्तरपर अनुस्यूत अवश्य हैं, जो हिन्दूधर्मकी व्यापकताके साथ-साथ उसकी विलक्षणताका भी परिचायक है। सच तो यह है कि अपने उदार दृष्टिकोणके कारण हिन्दूधर्म न केवल विभिन्न भारतीय विचारधाराओंको ही अपनी परिधिमें आबद्ध कर लेता है, अपितु विश्वकी अन्य धार्मिक भावनाओंके प्रति भी वह समता और सद्भावका व्यवहार करता है। इस प्रकार हिन्दूधर्म एक विराट् मानवधर्म है।

भारतमें विभिन्न नामोंसे अभिहित जातियाँ और साथ ही भारतसे बाहर जाकर बसी अनेक जातियाँ भी पारम्परिक रूपसे सैकड़ों पर्वों, व्रतों एवं धार्मिकोत्सवोंका आयोजन प्रायः समानरूपसे करती आ रही हैं। उदाहरणार्थ रामनवमी, अक्षयतृतीया, वटसावित्री, गुरुपूर्णिमा, नागपञ्चमी, रक्षाबन्धन, कृष्णाष्टमी, तीज, चौथ, विश्वकर्मापूजा, अनन्तचतुर्दशी, पितृपक्ष, विजयादशमी, दीपावली, रविषष्ठीव्रत, देवोत्थानी एकादशी, कार्तिकपूर्णिमा, मकरसंक्रान्ति, वसन्तपञ्चमी, शिवरात्रि, होली आदिका उल्लेख किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणके अवसरपर पुण्य स्नान-दान भी हिन्दूसमाजका अपना धार्मिक संस्कार है। निश्चय ही ये सारे पर्व और व्रत हिन्दूधर्मके अभिन्न अङ्ग हैं। अतएव हिन्दूधर्मके स्वरूप-विश्लेषणके क्रममें इन सबका उल्लेख उसके अनिवार्य तत्त्वोंके रूपमें परम अपेक्षित है।

निष्कर्ष यह है कि वेद, स्मृति, पुराण[१]-जैसे सद्ग्रन्थोंके निर्देशोंका निष्ठापूर्वक पालन, गो-गङ्गा-तुलसीके प्रति पूर्ण श्रद्धा-समर्पण, पञ्चदेवोंकी उपासना, यज्ञ-जप, होम, श्राद्ध-तर्पण, पुनर्जन्म-सिद्धान्तमें आस्था, विविध प्रकारके अनुष्ठान, विभिन्न पर्वों एवं व्रतोंका आयोजन और सबसे बढ़कर सदाचरण हिन्दूधर्मका अपना वैशिष्ट्य है।

१- कृत्यकल्पतरु, स्मृतिचन्द्रिका, हेमाद्रि-जैसे विशाल निबन्ध मुख्यतया पुराणोंपर ही आधृत हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता-तत्त्व-चिन्तन

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गीतामें बन्ध और मोक्षका स्वरूप

गुणसङ्गो हि जीवानां बन्धनं कथ्यते महत्।
गुणसङ्गपरित्यागो जीवानां मोक्ष उच्यते॥

रसोईके स्वच्छ बर्तनको चूल्हेपर चढ़ाते हैं, तो उसपर बाहरसे धुआँ और भीतरसे अन्न चिपक जाता है और इस तरह उस बर्तनके साथ विजातीय द्रव्य-(धुआँ और अन्न-)का सम्बन्ध हो जाता है। स्वच्छ कपड़ेको मैल लग जाता है, दर्पणपर मैल आ जाता है, मकानमें कूड़ा-कचरा आ जाता है तो कपड़े, दर्पण और मकानके साथ विजातीय द्रव्यका सम्बन्ध हो जाता है। परंतु बर्तनको मिट्टी और जलसे साफ कर दिया जाय तो वह स्वच्छ (निर्मल) हो जाता है अर्थात् उसपर चिपका हुआ धुआँ और अन्न निकल जानेसे वह अपने स्वरूपमें आ जाता है। कपड़ेको साबुन और जलसे धोनेपर उसका मैल निकल जाता है और वह स्वच्छ हो जाता है, अपने स्वरूपमें आ जाता है। दर्पणको कपड़ेसे पोंछ दिया जाय तो उसका मैल उतर जानेसे वह स्वच्छ हो जाता है। मकानमें झाड़ू लगानेसे कूड़ा-करकट दूर हो जाता है तो वह स्वच्छ हो जाता है। इसी तरह यह जीवात्मा (स्वयं) प्रकृति और उसके कार्य शरीर आदिके साथ अपना सम्बन्ध मान लेता है, उनके परवश हो जाता है तो इसमें अशुद्धि आ जाती है; यही बन्धन है। परंतु जब यह प्रकृति और उसके कार्यके साथ माने हुए सम्बन्धको छोड़ देता है, तब यह स्वच्छ (निर्मल) हो जाता है, इसको अपने स्वरूपका बोध हो जाता है; यही मोक्ष है।

जैसे, बर्तनपर धुआँ और अन्न न लगे तो बर्तन साफ ही है, कपड़ेको मैल न लगे तो कपड़ा साफ ही है, दर्पणपर मैल न होनेसे दर्पण साफ ही है, मकानमें कूड़ा-करकट न हो तो मकान साफ ही है। ऐसे ही यह जीवात्मा प्रकृतिके कार्य स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीरको न पकड़े, उनके साथ अपनापन न करे, उनको अपना न माने तो यह मुक्त ही है। इन बर्तन, कपड़ा, दर्पण आदिसे इस जीवात्माकी यह विलक्षणता है कि ये बर्तन आदि मैलको स्वयं नहीं पकड़ते; किंतु इनपर मैल आ जाता है, चिपक जाता है। परंतु यह जीवात्मा प्रकृतिके कार्य शरीर-इन्द्रियों आदिके साथ सम्बन्ध जोड़ता है, उनको अपना मानता है, जिससे यह बँध जाता है। सत्-असत्, शुभ-अशुभ योनियोंमें जन्म होनेका कारण गुणोंका सङ्ग ही है (१३।२१)। सम्पूर्ण प्राणी क्षेत्र-क्षेत्रज्ञके संयोगसे ही पैदा होते हैं (१३।२६), पर यह संयोग (सम्बन्ध) क्षेत्र नहीं करता, क्षेत्रज्ञ ही करता है। क्षेत्रके साथ सम्बन्ध जोड़ना ही बन्धन है और सम्बन्ध न जोड़ना ही मोक्ष है।

भगवान्‌ने कहा है कि पृथ्वी, जल, तेज आदि आठ भेदोंवाली मेरी 'अपरा प्रकृति' है और इससे भिन्न जीव बनी हुई मेरी 'परा प्रकृति' है। इस परा प्रकृति-(जीवात्मा-)ने ही अहंता-ममता, कामना-आसक्ति आदि करके इस जगत्‌को धारण कर रखा है (७।४-५)। इस जीवलोकमें जीव बना हुआ यह आत्मा मेरा ही सनातन अंश है, पर यह भूलसे प्रकृतिमें स्थित मन-इन्द्रियोंको खींचता है, उनको अपनी मानता है (१५।७)। तात्पर्य है कि यह जीवात्मा स्वरूपसे स्वतः असङ्ग है, पर यह प्रकृतिके कार्य गुण, इन्द्रियाँ, शरीर आदिको स्वीकार कर लेता है, उनके साथ अपनापन कर लेता है; अतः यह बन्धनमें आ जाता है। यह स्त्री, पुत्र, धन आदिको जितना-जितना अपना मान लेता है, उतना-उतना यह बन्धनमें आ जाता है, परवश हो जाता है। परंतु यह उनके साथ माने हुए सम्बन्धका जितना-जितना त्याग कर देता है, उतना-उतना यह उनसे मुक्त हो जाता है।

यह स्वयं (जीवात्मा) प्रकृतिके सम्बन्धके बिना कुछ भी सांसारिक काम नहीं कर सकता। जब कुछ कर ही नहीं सकता, तो फिर यह (प्रकृतिके सम्बन्धके बिना) बन्धनमें पड़ ही नहीं सकता। प्रकृतिके सम्बन्धके बिना कुछ भी नहीं कर सकनेके कारण इसपर करनेकी जिम्मेवारी भी नहीं रहती और इसमें कर्तृत्व भी नहीं रहता। अतः गीताने जगह-जगह इसको अकर्ता बताया है (१३।२९, ३२-३३ आदि)।

प्रकृतिके साथ माने हुए सम्बन्धको तोड़नेके तीन उपाय हैं—

(१) कर्मयोग—कर्मयोगके द्वारा बन्धनसे मुक्त होनेका तरीका यह है कि मनुष्य स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीरसे जो कुछ करता है, उसको केवल लोकसंग्रहके लिये,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्तव्य-परम्पराको सुरक्षित रखनेके लिये, मनुष्योंको उन्मार्गसे हटाकर सन्मार्गपर लगानेके लिये, प्राणिमात्रका हित करनेके लिये ही करे, अपने लिये न करे (३।९,२०)। ऐसा करनेसे उसको अपनी असङ्गताका, अपने स्वरूपका बोध हो जायगा।

(२) ज्ञानयोग—ज्ञानयोगके द्वारा बन्धनसे छूटनेका तरीका यह है कि मनुष्य सत्-असत्, नित्य-अनित्यके विवेकद्वारा, असत्-(शरीर आदि-)से अपने आपको अलग अनुभव कर ले। ऐसा करनेसे वह मोक्ष पा लेता है, बन्धनसे रहित हो जाता है (१३।२३, ३४)।

(३) भक्तियोग—भक्तियोगके द्वारा बन्धनसे मुक्त होनेका तरीका यह है कि मनुष्य अपनेसहित संसारमात्रको भगवान्‌का ही मानकर केवल भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही सब कार्य करे, सब कुछ भगवान्‌के ही अर्पण करे। ऐसा करनेसे वह सांसारिक बन्धनसे मुक्त हो जाता है (९।२६-२८)।

वास्तवमें बन्धन है ही नहीं! अगर वास्तवमें बन्धन होता तो उसका कभी अभाव नहीं होता—**'नाभावो विद्यते सतः'** (२।१६) और जीव कभी बन्धनसे मुक्त नहीं होता। परंतु वास्तवमें यह बन्धन स्वयंका किया हुआ है, माना हुआ है। अतः यह जब चाहे, तब बन्धनको छोड़ सकता है। बन्धनको छोड़नेमें यह स्वतन्त्र है, सबल है, समर्थ है, योग्य है, अधिकारी है। अतः गीता कहती है कि पापी-से-पापी मनुष्य भी ज्ञान प्राप्त कर सकता है (४।३६) और दुराचारी-से-दुराचारी मनुष्य भी अनन्यभावसे भगवान्‌का भजन कर सकता है (९।३०)। अतः किसी देशका, किसी वेशका, किसी वर्णका, किसी सम्प्रदायका कैसा ही व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) क्यों न हो, वह संसारके बन्धनसे रहित हो सकता है, मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

सभी साधक अपने-अपने सम्प्रदायके अनुसार द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, अचिन्त्यभेदाभेद, द्वैताद्वैत आदि किसी एक धारणाको लेकर पारमार्थिक मार्गपर चलते हैं, और उस धारणाके अनुसार ही वे परमात्मतत्त्वका, अपने स्वरूपका अनुभव करते हैं। परंतु उन सबका परिवर्तनशील संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर उनके लिये संसारकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती; क्योंकि वास्तवमें संसारकी स्वतन्त्र सत्ता है ही नहीं।

भगवान्‌ने अपरा (जड़) और परा (चेतन)— दोनोंको अपनी प्रकृति बताया है। अपरा प्रकृतिमें निरन्तर परिवर्तन होता है, वह कभी एकरूप नहीं रहती और परा प्रकृति परिवर्तनरहित है। परा प्रकृति परमात्मासे अभिन्न है, अतः वह चाहे भिन्न होकर लीला करे, चाहे अभिन्न रहे, परमात्माके सिवाय उसकी कोई अलग (स्वतन्त्र) सत्ता नहीं होती। लीलाके कारण उसमें द्वैतपना दीखता है, पर वास्तवमें अद्वैत ही रहता है। उसका परमात्मासे नित्ययोग रहता है। तात्पर्य है कि प्रेम-रसकी अनुभूतिके लिये परा प्रकृति परमात्मासे अलग होकर लीला करती है, पर वास्तवमें वह अलग नहीं होती। इस विषयमें आचार्योंमें मतभेद है। कई आचार्य अद्वैत मानते हैं, कई द्वैत मानते हैं, कई द्वैताद्वैत मानते हैं, कई विशिष्टाद्वैत मानते हैं, आदि-आदि। उन आचार्योंके मतके, मान्यताके, सम्प्रदायके अनुसार साधकोंकी साधना चलती है अर्थात् कई साधक द्वैत मानकर चलते हैं और कई साधक अद्वैत आदि मानकर चलते हैं, पर वास्तविक अनुभव होनेपर पहले जैसी मान्यता थी, वैसी नहीं रहती। साधकको उस मान्यतासे विलक्षण तत्त्व मिलता है। जैसे, किसीने बद्रीनारायण जानेका विचार किया तो वह बद्रीनारायणके विषयमें (सुने हुएके अनुसार) कई कल्पनाएँ करने लगता है कि वहाँ ऐसा मन्दिर होगा, मन्दिरके पासमें अलकनन्दा बहती होगी, बर्फके पहाड़ होंगे आदि-आदि। पर जब वह वहाँ जाकर देखता है तो उसको वैसा नहीं मिलता, जैसा कल्पनामें था, प्रत्युत उससे विलक्षण ही मिलता है। हम किसी महात्माके विषयमें सुनते हैं, उनकी महिमा, उनके गुण सुनते हैं तो उनका ऐसा शरीर है, उनके ऐसे सफेद बाल हैं आदि कितनी ही बातें सुननेपर और वैसी धारणा कर लेनेपर भी जब प्रत्यक्ष उनसे मिलते हैं, तब वे महात्मा उस धारणासे विलक्षण मिलते हैं। ऐसे ही साधक पहले अपने सम्प्रदायके अनुसार, अपनी धारणाके अनुसार साधन करता है, पर वास्तविकताका अनुभव उस धारणासे विलक्षण होता है। अगर हम वास्तविकताके अनुभवको अपनी पूर्वधारणासे विलक्षण न स्वीकार करें, जैसा साधक-अवस्थामें मानते थे, वैसा ही स्वीकार करें तो साधक और सिद्धका भेद नहीं हो सकता। साधक और सिद्धके भेदसे ही यह सिद्ध होता है कि साधककी धारणाके अनुसार तत्त्व नहीं है। वह तत्त्व वर्णनातीत है; उसका वर्णन नहीं होता, प्रत्युत अनुभव होता है। अतः उस तत्त्वका वर्णन, विवेचन करते समय जैसी मान्यता रहती है, वैसी मान्यता अनुभव होनेपर नहीं रहती। जैसे, कोई साधक विवेक-(प्रकृति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषके भेद-) की प्रधानता रखकर साधन करता है। जब उसको वास्तविक तत्त्वका अनुभव हो जाता है, तब उसके लिये प्रकृतिकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती और विवेक वास्तविक तत्त्वमें परिणत हो जाता है। फिर उसका नाम 'विवेक' नहीं होता, प्रत्युत बोध होता है। वह बोध ही वास्तविक अनुभव है। तात्पर्य है कि साधनावस्थामें साधककी जो धारणा रहती है, वह वास्तविक तत्त्वका अनुभव होनेपर नहीं रहती। कारण कि साधकके पास विचार करनेकी जो सामग्री—इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अन्तःकरण आदि हैं, वे सब अपरा प्रकृतिके अंश हैं। अतः ये सब मिलकर भी प्रकृतिसे अतीत तत्त्वको पहचान नहीं सकते।

जो साधक दास्य, सख्य, वात्सल्य आदि भावकी प्रधानता रखकर साधन करता है, उसको जब अनुभव हो जाता है, तब वैसा भाव (अलगपना) नहीं रहता। उसका भगवान्‌से नित्ययोग हो जाता है। जैसे, रामलला वनवासमें पधारे तो माता कौसल्या सुमित्रासे पूछती हैं कि 'बहन ! तुम सच्ची बात बताओ, रामलला वनमें चले गये या यहाँ ही हैं ? अगर वे वनमें चले गये तो वे मेरी आँखोंके सामने कैसे दीखते हैं; और अगर वे वनमें नहीं गये तो फिर मेरे हृदयमें व्याकुलता क्यों है ?' इस अवस्थामें माता कौसल्याका रामजीसे नित्ययोग है। यह नित्ययोग कभी स्मृतिरूपसे होता है और कभी स्वरूपसे। 'वियोग हो जायगा'—ऐसा भाव रहता है तो यह 'योगमें वियोग' हुआ; और वियोगमें प्रेमास्पद सदा सामने दीखते रहते हैं—यह 'वियोगमें योग' हुआ। इस तरह योगमें वियोग और वियोगमें योग पुष्ट होते रहते हैं। योग और वियोगके रससे प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान होता रहता है। इसमें कई आचार्योंने योगको और कई आचार्योंने वियोगको मुख्यता दी है।

जो अद्वैतमतको माननेवाले हैं, उनको जो आनन्द प्राप्त होता है, वह अखण्ड (शान्त) होता है। परंतु जो द्वैतमतको, प्रेमको माननेवाले हैं, उनको जो आनन्द प्राप्त होता है, वह अनन्त (प्रतिक्षण वर्धमान) होता है। उस प्रेमके आनन्दमें ही योगमें वियोग और वियोगमें योग—यह प्रवाह चलता रहता है, जिसका कभी अन्त नहीं आता।

प्रश्न—पाँच प्रकारकी मुक्ति क्या है ?

उत्तर—सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य (एकत्व)—ये पाँच प्रकारकी मुक्तियाँ हैं। भगवद्धाममें जाकर निवास करना '**सालोक्य**' है। भगवद्धाममें एक विशेष आनन्द है। वहाँ सुख-दुःखवाला सुख नहीं है, प्रत्युत सुख-दुःखसे अतीत आनन्द है। सालोक्यसे आगेकी मुक्ति है—'**सार्ष्टि**'। इस मुक्तिमें भक्तको भगवद्धाममें भगवान्‌के समान ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है अर्थात् जैसा भगवान्‌का ऐश्वर्य है, वैसा ही ऐश्वर्य भक्तको प्राप्त हो जाता है। संसारकी उत्पत्ति करना, संहार करना आदि ऐश्वर्यको छोड़कर सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—ये सभी भगवान्‌के समान भक्तको भी प्राप्त हो जाते हैं। सार्ष्टिसे आगेकी मुक्ति है—'**सामीप्य**'। इस मुक्तिमें भक्त भगवद्धाममें रहते हुए भी भगवान्‌के समीप रहता है और भगवान्‌के माँ-बाप, सखा, पुत्र, स्त्री आदि सम्बन्धी होकर रहता है। सामीप्यसे भी आगेवाली मुक्ति है—'**सारूप्य**'। इस मुक्तिमें भक्तका रूप भगवान्‌के समान हो जाता है। भगवान्‌के वक्षःस्थलमें स्थिर श्रीवत्स (लक्ष्मीका निवास), भृगुलता (भृगुजीका चरणचिह्न) और कौस्तुभमणि—इन तीन चिह्नोंको छोड़कर शेष शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि सभी चिह्न भक्तके भी हो जाते हैं। सारूप्यसे भी आगेकी मुक्ति है—'**सायुज्य**' अर्थात् एकत्व। इस मुक्तिमें भक्त भगवान्‌से अभिन्न हो जाता है। अर्थात् वह अपना स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं मानता।

उपर्युक्त पाँचों मुक्तियाँ सगुण-साकारको माननेवालोंकी होती हैं। इन पाँचों मुक्तियोंमेंसे 'सायुज्य' (एकत्व) मुक्तिको निर्गुण-निराकारको माननेवाले, अद्वैत-सिद्धान्तमें चलनेवाले भी मान सकते हैं।

प्रेमी भक्त भगवान्‌की सेवाको छोड़कर इन पाँच प्रकारकी मुक्तियोंको भगवान्‌के द्वारा दिये जानेपर भी स्वीकार नहीं करता—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥

(श्रीमद्भा० ३।२९।१३)

कारण कि वह केवल भगवान्‌को सुख देना चाहता है। संसारमें जन्म-मरण होता रहे, संसार-बन्धनसे मुक्ति न हो—इसकी वह परवाह नहीं करता। बन्धनमें अपना दुःख और मुक्तिमें अपना सुख होता है, पर भगवान्‌की सेवामें अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख-दुःखकी परवाह नहीं होती, प्रत्युत केवल भगवान्‌की प्रसन्नताकी तरफ दृष्टि रहती है।

बद्ध-अवस्थामें हम ब्रह्म, जीव आदिको विलक्षण रीतिसे देखते हैं और प्रकृतिको भी कार्य-कारणरूपसे विलक्षण रीतिसे देखते हैं। परंतु साधन करते-करते साधकको ब्रह्म, जीव आदिका विलक्षण ही अनुभव होता है। सिद्ध-अवस्थामें तो उससे भी विलक्षण अनुभव होता है। अद्वैत-सिद्धान्तसे जो मोक्ष होता है, उसमें जड़तासे सम्बन्ध-विच्छेदकी मुख्यता रहती है और भक्तिसे जो मोक्ष होता है, उसमें चिन्मय-तत्त्वके साथ एकताकी मुख्यता रहती है।

भक्तगाथा—

भक्त अम्बालाल

(श्रीमिश्रीलालजी गुप्त)

भगवान् श्रीकृष्ण गीता (४।८) में कहते हैं—'मैं साधुओंका परित्राण और दुष्टोंका विनाश तथा धर्मकी संस्थापना करनेके लिये युग-युगमें अवतार लेता हूँ।'

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

भगवान्‌ने अपने इस कथनमें अवतारके तीन कारणोंको बतलाया है—

१-साधु-हित, २-दुष्ट-विनाश तथा ३-धर्म-संस्थापन। इनमें 'साधुहित'के दोनों अभिप्राय हो सकते हैं। एक तो जब संसारमें कंस और रावण-जैसे अत्याचारी पुरुष उत्पन्न होकर साधु-संतोंको कष्ट देने लगते हैं, तब भगवान् उनके कष्टोंको दूर करनेके लिये तथा उन अत्याचारी पुरुषोंका नाश करनेके लिये अवतार लेते हैं। दूसरे जब साधुपुरुष भगवान्‌की प्राप्तिके लिये विरह-व्याकुल होकर दारुण तप करने लगते हैं, तब भी वे दयामय प्रभु अपने भक्तोंके इच्छानुसार रूप धारणकर उन्हें दर्शन देते हैं। अपने इसी जीवनमें इन्हीं चर्मचक्षुओंसे अपनी इच्छाके अनुरूप भगवान्‌का दर्शन करनेवाले धन्य-पुरुष इस जगत्‌में अनेकों हो गये हैं और प्रभु-कृपासे आज भी ऐसे धन्य-पुरुषोंसे यह जगती रिक्त नहीं है। भक्त अम्बालाल भी सम्भवतः ऐसे ही पुण्यकर्मा पुरुषोंमें एक थे।

भक्त अम्बालाल पटेलका जन्म गुजरातमें मेहसाना स्टेशनके समीप एक छोटेसे ग्राममें हुआ था। एक बारकी बात है, जब उनकी अवस्था लगभग २० वर्षके आस-पासकी थी, वे अपनी सौतेली माताके व्यवहारसे असंतुष्ट होकर घरसे निकल पड़े और मेहसाना स्टेशनपर आये। वहाँ उस समय मि० बेकर स्टेशनमास्टर थे। अम्बालालने उनसे अपनी जीविकाके लिये सहायताकी प्रार्थना की। स्टेशनमास्टरने उनकी योग्यता देखकर अपने कार्यालयमें उन्हें नियुक्त कर लिया।

अम्बालालजी कुछ दिनोंतक उसी कामपर लगे रहे और धीरे-धीरे उन्होंने वहाँ तारका काम भी सीख लिया। कुछ दिनोंके बाद उन्होंने तारके कार्यमें दक्षता प्राप्त कर ली और अजमेरमें परीक्षा देकर मेहसानामें ही 'तारबाबू'के पदपर कार्य करने लगे।

अबतक तो अम्बालालका भजन-पूजन कुछ वैसा नियमित न था, परंतु तारबाबूका काम मिल जानेपर उनका भजनमें अधिक समय लगने लगा। अम्बालालका जीवन बहुत ही सादगीसे बीतता था। वे अपनी आयके अल्पांशसे ही अपना जीवन-निर्वाह कर लेते थे। शेष भाग साधु-महात्माओंकी सेवामें लगा दिया करते थे। वे सादा जीवन व्यतीत करते हुए स्वल्प सामग्रीसे ही शयन, भोजन एवं आच्छादन आदिका कार्य करते थे और सदा संतुष्ट रहते थे।

तारबाबूकी ड्यूटी सप्ताहमें ही बदला करती थी, परंतु अम्बालालने अपनी दिनचर्या ऐसी बना रखी थी कि आठ घंटे रेलवेकी ड्यूटी तथा अन्य नित्य कर्मोंके अतिरिक्त आठ घंटे भजनके लिये उन्हें प्रतिदिन निर्विघ्न मिल जाया करते थे। ड्यूटी बदलनेके साथ ही उनके भजनका समय भी बदल जाता, परंतु भजनके आठ घंटोंमें कमी न आती थी। वे अपने भजनका समय घरमें नहीं, अपितु समीपके साबरमती नदीके तटपर एकान्तमें बिताया करते थे। नदीकी धाराके बीच एक छोटा-सा भू-भाग बन गया था, वहीं उन्होंने अपना साधन-स्थान बना रखा था। वहाँ नित्यप्रति एक आसनपर बैठकर मुरलीमनोहरका ध्यान करना उनका प्रतिदिनका अनिवार्य कार्य था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार उनके जीवनके कुछ ही महीने बीते थे। एक दिन रातको वे अपने नित्यनियमके अनुसार उसी साबरमतीके भू-भागमें ध्यान लगाये बैठे थे। चाँदनी छिटक रही थी। अचानक उनकी आँखें खुलीं और देखते क्या हैं कि एक वृद्ध व्यक्ति नदीके किनारे हाथ-मुँह धो रहा है। परंतु अम्बालालको इससे क्या, उन्होंने फिर आँखें बंद कर लीं, इतनेमें वह बूढ़ा आदमी निकट आया और अम्बालालसे कहने लगा—'बेटा ! तुम किसके लड़के हो ? यहाँ कबसे और क्यों बैठे हो ? तुम्हें नदीके भयानक जानवरोंका भय नहीं ? देखो, तुम तो आँखें मूँदे बैठे थे और उधर एक भयानक मगर मुँह बाये तुम्हारी ओर आ रहा था, वह तो मेरे डरानेसे नदीमें कूद गया है। यदि मैं न आया होता तो तुम्हारे प्राण आज संकटमें ही थे !'

अम्बालाल बूढ़ेकी इन बातोंसे भयभीत नहीं हुए, उन्होंने उत्तर दिया—'महाराज ! मैं एक पटेलका लड़का हूँ, यहीं स्टेशनपर तारबाबूका काम करता हूँ। यहाँकी ठंडी हवा बहुत अच्छी लगती है, इसीलिये आकर बैठ जाया करता हूँ। आपने व्यर्थ ही उस भूखे मगरको लौटा दिया !'

वह बूढ़ा ब्राह्मण अम्बालालके इस उत्तरसे कुछ अप्रसन्न-सा हो उसे डाँटते हुए बोला—'जान पड़ता है तू इस बहुमूल्य शरीरको तुच्छ समझकर प्राण देनेपर उतारू हुआ है। देख, यह शरीर बार-बार नहीं मिलता। इसकी रक्षाकर मनुष्यको परमार्थमें लगाना चाहिये।' बूढ़ेके इन मार्मिक वचनोंको सुन अम्बालालका हृदय परिवर्तित हो गया और वे रुँधे स्वरसे हाथ जोड़कर बोले—'महाराज ! मैंने अपनी तुच्छ बुद्धिसे समझा था कि यह शरीर मगरके काम भी आ जायगा तो इसका सदुपयोग ही होगा । यदि मेरा यह निश्चय धर्मविरुद्ध है तो कृपया मुझे क्षमा कीजिये।' अम्बालालके इस उत्तरसे बूढ़ा बहुत प्रसन्न हुआ।

अम्बालालको बूढ़ेके प्रभावशाली वचनोंको सुनते ही यह विश्वास हो गया कि निस्संदेह मुझे आज अपने भाग्य-भास्कर प्राप्त हो गये हैं। इसलिये उन्होंने हाथ जोड़कर निःसंकोच-भावसे उनसे साक्षात् भगवान्‌का दर्शन करानेकी इच्छा प्रकट की। वह बूढ़ा ब्राह्मण अम्बालालको समझाने लगा—'बेटा ! तुम्हें किसीने भ्रममें डाल दिया है। ईश्वर एकदेशी नहीं है, वह तो सर्वव्यापक है। यह दृश्य-अदृश्य सब कुछ तो वही है। फिर उन सर्वव्यापकको तू इन चर्मचक्षुओंसे कैसे देख सकता है ? यदि तू अपने आत्माका दर्शन कर लेगा तो अवश्य ही उन व्यापक परमात्माको भी देख लेगा। इस हठको छोड़कर सावधानीसे अपने धर्मका पालन कर।' अम्बालालने अपनेको इस ज्ञानोपदेशका अधिकारी न पाया। उन्हें तो एक ही धुन लगी हुई थी, मुरलीमनोहरके दर्शन पानेकी। इसलिये वे बूढ़े महाराजके ज्ञानोपदेशकी अवहेलनास्वरूप चुप ही रहे। विवश होकर महाराजको पूछना पड़ा कि 'वह किस रूपका दर्शन करना चाहता है ?' अम्बालालके तो रोम-रोममें मुरली-मनोहरकी छवि समायी हुई थी, वे अत्यन्त आनन्दित हो बोल उठे—'मोर-मुकुट पीताम्बरधारी मुरलीमनोहर शङ्ख- चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज-रूपका ।' महाराजने पूछा—'क्या यही उनका एकमात्र रूप है ?' अम्बालालने उत्तर दिया—'महाराज ! यद्यपि शास्त्रोंमें ईश्वरके अनेकानेक रूपोंका वर्णन है तथापि मेरी तृप्ति तो केवल इसी रूपमें है।' यह है अनन्य भावना ! सच है—

जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम।

अस्तु, अम्बालालने आश्चर्यचकित हो देखा कि वह वृद्ध ब्राह्मण तत्काल उसीके मनचाहे चतुर्भुजी-रूपमें बदलकर अम्बालालके सामने खड़े हैं। जिस प्रकार बहुत दिनका बिछुड़ा हुआ बछड़ा गायकी ओर दौड़ता है, उसी प्रकार अम्बालाल प्रेममें उन्मत्त हो अपने उपास्यदेवके चरणोंमें गिर पड़े और लगे अपने अश्रुजलसे भगवान्‌के चरणकमलोंको धोने। करुणामयने अम्बालालको उठाकर उनके आँसू पोंछते हुए हृदयसे लगा लिया और ढाँढ़स देते हुए उन्हें धैर्यपूर्वक सांसारिक कृत्योंके करते रहनेकी आज्ञा देकर अन्तर्धान हो गये। अम्बालाल कृतार्थ हो गये। आज उनका जन्म सफल हो गया। अब उन्हें क्या चिन्ता थी ? वे भगवान्‌के उस मनोहर रूपका स्मरण करते हुए बारंबार पुलकित होने लगे। कुछ ही देरके बाद उनका ध्यान भगवान्‌की आज्ञा-पालनकी ओर गया और वे स्टेशनपर अपनी ड्यूटीपर गये। आज अम्बालालकी कुछ निराली ही चाल है। कभी तो जल्दी-जल्दी चलते हैं और कभी रुक जाते हैं। कभी मुस्कराते हैं तो कभी उनकी आँखोंसे अश्रुप्रवाह होने लगता है। भक्तकी इस अद्भुत अवस्थाके आनन्दका अनुभव केवल उन्हीं पुरुषोंको हो सकता है, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस दयामय प्रभुकी असीम कृपाको प्राप्त करनेके अधिकारी हुए हैं।

इधर ड्यूटीमें विलम्बसे पहुँचनेके कारण उनका अधिकारी उनसे बहुत असंतुष्ट हुआ और उनपर झुँझला उठा। इसपर अम्बालाल नौकरी छोड़कर सीधे आबू-पहाड़पर चढ़ गये और एक चौरस चट्टानपर दृढ़ आसन लगाकर प्रभुके ध्यानमें बैठ गये।

इस प्रकार एक ही आसनपर बैठे हुए अम्बालालके सात दिन सात रात बीत गये। इस घोर तपसे भगवान् प्रसन्न होकर एक लकड़हारेके रूपमें वहाँ आये। भगवान् उनकी भक्ति-निष्ठापर संतुष्ट तो थे ही, किरीट-मुकुट धारण किये चतुर्भुज-रूपसे विराजमान हो गये। अम्बालाल पुनः अपने इष्टदेवका दर्शनकर आनन्दसिन्धुमें हिलोरें लेने लगे। भगवान् उन्हें एक बार पुनः अपनी नौकरीपर जाने और भजन तथा साधुसेवामें कुछ दिन बितानेकी आज्ञा देकर अन्तर्धान हो गये।

अम्बालालको यद्यपि बन्धन प्रिय न था और वह यह भी जानते थे कि रेलवे-नियमके अनुसार अब उनकी नौकरी छूट गयी है तथापि भगवान्‌की आज्ञा शिरोधार्य थी, इसलिये वे वहाँसे उठे और सीधे स्टेशनकी ओर चल दिये।

स्टेशनमास्टरके पास आये। स्टेशनमास्टरने उनसे केवल इतना ही कहा कि 'अरे भगतजी ! तुम कहाँ चले गये थे।' और उनके पुनः लौट आनेपर प्रसन्नता प्रकट करते हुए उच्च अधिकारियोंकी सम्मतिसे उन्हें पुनः रख लिया।

इस रहस्यपर जो लोग श्रद्धा रखते हैं, उन्हें कुछ आश्चर्य नहीं होता। भगवद्भजन करनेवाले पुरुषोंके लिये संसारके कोई भी नियम बाधक नहीं हो सकते, क्योंकि जब उसने सारे संसारके सम्राट्‌को अपना स्वामी जान लिया और उसकी आज्ञाके पीछे अपने जीवनको अर्पण कर दिया, तब उसके लिये कोई भी सांसारिक कामना अप्राप्य कैसे रह सकती है ? परंतु सच्चे भक्त अपनी भक्तिके बदले तुच्छ सांसारिक विभवोंकी कभी इच्छा ही नहीं करते।

अम्बालाल कुछ दिनोंतक निर्भीकतापूर्वक रेलवेकी नौकरीमें लगे रहे, अन्तमें हरद्वार-कुम्भके मेलेके अवसरपर गये और तबसे फिर न लौटे। भला, जिसपर भक्तिका गाढ़ा रंग चढ़ जाता है, वह मायाके फेरमें कब पड़ सकता है ? धन्य हैं वे माता-पिता जिनकी संतान इस प्रकार भगवद्भक्तिके द्वारा अपना जीवन सफल कर दूसरोंके लिये उसको उदाहरण-रूपमें छोड़ जाती है तथा धन्य हैं वे पुरुष जिनकी रसना सदा साधुचरितकी चर्चामें लगकर भगवदाराधनका प्रसार करती है।

गोचारण

चले सब गाइ चरावन ग्वाल।
हेरी टेर सुनत लरिकनि के, दौरि गए नँदलाल॥
फिरि इत-उत जसुमति जो देखै, दृष्टि न परै कन्हाई।
जान्यौ जात ग्वाल सँग दौर्‌यौ, टेरति जसुमति धाई॥
जात चल्यौ गैयन के पाछें, बलदाऊ कहि टेरत।
पाछैं आबति जननी देखी, फिरि-फिरि इत कौं हेरत॥
बल देख्यौ मोहन कौं आवत, सखा किए सब ठाढ़े।
पहुँची आइ जसोदा रिस भरि, दोउ भुज पकरे गाढ़े॥
हलधर कह्यौ, जान दै मो सँग, आवहिं आज सबारे।
'सूरदास' बल सौं कहै जसुमति, देखे रहियौ प्यारे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत-बिन्दु

संसारका मालिक परमात्मा है और शरीरका मालिक मैं हूँ—ऐसा मानना गलती है। जो संसारका मालिक है, वही शरीरका भी मालिक है।

× × × ×

जैसे बालक हर अवस्थामें माँको ही पुकारता है, ऐसे ही हर अवस्थामें भगवान्‌को ही पुकारो।

× × × ×

शरीरकी सेवा करोगे तो संसारके साथ सम्बन्ध जुड़ जायगा और भगवान्‌के लिये संसारकी सेवा करोगे तो भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जुड़ जायगा।

× × × ×

केवल भगवान्‌की इच्छा हो तो भगवान् प्रकट हो जायँ अथवा कोई भी इच्छा न हो तो भगवान् प्रकट हो जायँ। अधूरापन नहीं होना चाहिये।

× × × ×

संसार है, अभी है और अपना है—ऐसा माननेसे ही परमात्मा है, अभी है और अपना है—इसका अनुभव नहीं होता।

× × × ×

'है'-पनको परमात्माका न मानकर संसारका मान लेते हैं—यही गलती है।

× × × ×

दूसरोंसे अच्छा कहलानेकी इच्छा बहुत बड़ी निर्बलता है। इसलिये अच्छे बनो, अच्छे कहलाओ मत।

× × × ×

जिसको भगवान्, शास्त्र, गुरुजन और जगत्‌से भय लगता है, वह वास्तवमें निर्भय हो जाता है।

× × × ×

साधक 'परमात्मा है'—यह तो मान लेता है, पर 'संसार नहीं है'—यह नहीं मानता, इसीसे परमात्मप्राप्तिमें बाधा लग रही है।

× × × ×

हम घरमें रहनेसे नहीं फँसते, प्रत्युत घरको अपना माननेसे फँसते हैं।

× × × ×

वस्तु और व्यक्ति नहीं रहते, पर उनसे माना हुआ सम्बन्ध बना रहता है। यह माना हुआ सम्बन्ध ही जन्म-मरणका कारण होता है।

× × × ×

अपनी इच्छासे सुख भोगनेवालेको अपनी इच्छाके बिना दुःख भोगना ही पड़ेगा।

× × × ×

सब संसार अपनी धुनमें जा रहा है। आप ही उसे (जाते हुएको) पकड़ते हैं और फिर उसके छूटनेपर रोते हैं।

× × × ×

अपनेको छोटा और दूसरेको बड़ा मानना असली बड़प्पन है। अपनेको बड़ा और दूसरेको छोटा मानना असली नीचपना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी—

अनन्यशरणागतिसे समाधिलाभ

बाबा रघुनाथदासजी कुछ पढ़े-लिखे नहीं थे। बचपनमें ग्रामकी पाठशालामें पढ़ने जाते अवश्य थे, किंतु जिस दिन अध्यापकने हाथ लाल कर दिये, उसी दिनसे उन्होंने भी सरस्वतीको नमस्कार कर लिया। माताके एकमात्र वही संतान थे, सो भी पितृहीन। ऐसे प्यारे बच्चे कहाँ पढ़ा करते हैं ?

कोई चिन्ता थी नहीं। माताके स्नेहने अभावका अनुभव करने ही नहीं दिया था। भोजन, खेल और अखाड़ा, बस, वे इतना ही जानते थे। शरीर अच्छा बना हुआ था। आकार भी लंबा था। लंबी आकृति, पुष्ट शरीर और गेहुआँ रंग एक भव्य मूर्ति प्रतीत होती थी।

सौभाग्य किसीका सगा नहीं है। माताका शरीरान्त होते ही अवस्था बदल गयी। घरपर कोई सम्पत्ति तो थी नहीं। यजमानोंके घर जाकर, सैकड़ों युक्तियोंसे माता सब काम चलाती थी। उसकी अनुपस्थितिमें अपने सिर भार पड़ा। यजमानी कभी की हो तो करते भी बने। कभी एक मित्रके घर भोजन कर आये और कभी दूसरेके।

इस प्रकार कितने दिन काम चलता ? अन्तमें नौकरी कर ली पुलिसमें। घरपर तो कोई था नहीं, जिसकी चिन्ता करनी हो। पैसेके लिये झूठ-सच करनेसे वैसे भी उन्हें घृणा थी। सङ्ग अच्छा मिल गया। अक्षरज्ञान तो था ही, अपने साथीकी देखादेखी 'रामचरितमानस' को उलटा-सीधा पढ़नेका अभ्यास करने लगे। प्रारम्भसे वैष्णव साधुओंपर विशेष श्रद्धा थी। कोई साधु आ जाता तो उसे भोजन बनवाकर प्रसाद कराकर तब जाने देते। पासमें एक साधुकी कुटी थी। समय मिलता तब वहाँ दिनमें एक चक्कर अवश्य लगा आते। एक-दो दोहे रामायणके साधु महाराजसे सुन आते। हो सकता तो कुछ सेवा भी कर देते।

साधु महाराज रामनवमी अयोध्याजीमें करना चाहते थे। काशी, प्रयाग, चित्रकूट होकर घूमते-घामते उन्हें अयोध्याजी जाना था। पौषमें चलनेका विचार था, जिसमें माघभर तीर्थ-राजमें कल्पवास किया जा सके। रघुनाथजीने भी उनके साथ चलनेका निश्चय किया। अवकाशके लिये प्रार्थना-पत्र भेजनेपर जब वह स्वीकृत नहीं हुआ तो नौकरीसे त्यागपत्र दे दिया।

साधु महाराजके साथ प्रयागमें कल्पवास करके चित्रकूट दर्शन करनेके अनन्तर अयोध्या पहुँचे। वहाँका जो दृश्य देखा तो फिर इच्छा न हुई कि उस दिव्यभूमिका परित्याग किया जाय। साधु महाराज तो रामनवमी करके बिदा हो गये और रघुनाथजीने बाबा सीतारामदासके चरणोंकी शरण ग्रहण की। गुरुदेवकी कृपासे वे रघुनाथसे बाबा रघुनाथदास हो गये। मस्तक लाल पगड़ीके स्थानपर जटाओंसे भूषित हुआ।

× × ×

मनुष्यको देखकर कोई नहीं कह सकता कि उसके भीतर कितने महान् संस्कार दबे पड़े हैं और कब वे किस रूपमें जाग्रत् होंगे। कौन जानता था कि एक पुलिसका अनपढ़ सिपाही एक दिन उत्कृष्ट तितिक्षु एवं प्रगाढ़ भगवद्भक्त होगा। परंतु हुआ कुछ ऐसा ही।

श्रीसरयूजीके विमल पुलिनपर कटिमें मौंजी-मेखला तथा एक कौपीन लगाये बाबा रघुनाथदास वर्षके आठ मास व्यतीत कर देते थे। केवल चातुर्मास्यमें, जब सरयूजी पुलिनको गर्भस्थ कर लेतीं तो वे घाटकी एक बुर्जमें आ जाते थे। वहाँ न धूनी थी और न कंथा। एक तुंबी अवश्य वे साथ रखते थे, नित्यकर्ममें उपयोगके लिये।

दिनमें एक बार सरयूजीमें प्रातःस्नान करनेके उपरान्त चले जाते हनुमानगढ़ी और कनकभवन। उधरहीसे स्वल्प भोजन भी कर आते। कण्ठ और कर तुलसीकी मणियोंसे भूषित थे ही। करकी सुमिरनी अविश्रान्त चलती ही रहती थी। एक ही कार्य था 'सीताराम, सीताराम' बस।

पता नहीं उनके उस गौरचर्मको स्थूल एवं कृष्णप्राय बनानेमें कितनी शीत एवं ग्रीष्म ऋतुओंने श्रम किया होगा। सरयूजीकी लहरें ही बता सकती हैं कि उनकी सीतारामकी ध्वनिकी कितनी मालाएँ श्रीकौशलकिशोरके पावन पदोंमें समर्पित हो गयी हैं। स्वयं बाबा रघुनाथदासको इन उलझनोंसे कोई प्रयोजन नहीं था। सरदी हो या गरमी, उनके लिये सब समान। उनकी समझसे 'सीताराम' का जप कभी भी पूरा नहीं हो पाता था। वे उसमें नित्य अतृप्त बने रहते थे।

यम-नियम तो व्यापक हैं। इनके बिना कोई किसी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनका अधिकारी होता ही नहीं। जो पल-पलमें आसन बदलता है, वह अभ्यास क्या करेगा? एक आसन सभी साधकोंको सिद्ध करना ही पड़ता है। बाबा रघुनाथदासजीके लिये यम-नियमोंकी चर्चा व्यर्थ है। ये तो उनके स्वभाव बन गये थे। जब वे सिद्धासन लगाकर बैठते थे तो आवश्यकता होनेपर ही उठते थे। चार-छः घंटेतक तो क्या, एकादशीको वे पूरी रात्रि एक ही आसनपर बैठे रहते थे।

मन और प्राणका अभिन्न सम्बन्ध है। प्राणनिरोधसे मनोनिरोध और मनोनिरोधसे प्राणनिरोध सम्पन्न होता है। बाबा जब अपनी 'सीताराम' रटमें तल्लीन होते तो मनको कहीं जानेका अवकाश ही नहीं मिलता। इस मनोनिरोधमें जैसा दृढ़ एवं दीर्घकालीन प्राणायाम हो जाता था, वैसा चेष्टापूर्वक कभी हो नहीं सकता। जब मन ही एकाग्र है तो इन्द्रियाँ कहाँ जायँ? उसके सहयोगके बिना उनमें शक्ति ही कहाँ है? प्रत्याहार तो स्वयं हुआ करता है।

बाबा रघुनाथदासजीने न कभी प्राणायाम किया और न प्रत्याहार। ये स्वयं हो जाते हैं, यह भी उन्होंने कभी सोचा नहीं। धारणा यदि थी तो 'सीताराम' नामकी और ध्यान था तो 'युगल सरकार' का। यह धारणा-ध्यान भी वे जान-बूझकर योग करनेके लिये नहीं करते थे।

जब वे आसन लगाकर प्रारम्भ करते 'सीताराम, सीताराम' तो उन्हें शरीर और संसार दोनों ही विस्मृत हो जाते थे। प्रारम्भ तो वे करते थे उच्च स्वरसे, पर धीरे-धीरे स्वर गिरता और अन्तमें वाणी रुक जाती। जप श्वाससे चलता और जब श्वास भी शिथिल हो जाता तो मनीराम इस गुरुतर कार्यको सँभालते। सामने रहते थे युगल सरकार और दोनों नेत्रोंसे दो धाराएँ कपोल, हृदय और घुटनोंपर होती हुई श्रीसरयूजीकी रेणुकामें अदृश्य होती जाती थीं। इसके अतिरिक्त भी कोई समाधि हो तो वह हुआ करे। इतना अवश्य है कि यह सबीज समाधि ही थी।

× × ×

'नाम' स्वयं महान् है और कहीं उसके साथ नामीका स्मरण भी रहे, तब तो उसकी तुलना केवल उसीसे हो सकती है। क्या आश्चर्य था जो नामके सहारे बाबा रघुनाथदास इस भौतिक शरीरसे ऊपर उठ जाते थे? जिस समय वे आसन लगाकर बैठते थे, लोग कहते हैं कि उनका न श्वास चलता था, न हृदय और न शरीरमें उष्णता ही रहती थी। वे कनक-भवनसे लौटकर प्रायः ग्यारह-बारह बजे बैठते थे और दस बजे रात्रितक उधर जानेवाले देखते थे कि वे वैसे ही बैठे हैं। प्रातः साढ़े तीन बजे सरयू-स्नान करनेवाले एक साधु कहते थे कि वे 'उस आसनसे चार बजेके लगभग उठते हैं। उठकर स्नानादिमें लग जाते हैं। पता नहीं वे सोते कब होंगे? सोते हैं भी या नहीं?'

एक दिन प्रातःस्नान करनेवालोंने देखा कि रघुनाथदासजी ज्यों-के-त्यों बैठे हैं। जब वे दस बजेतक भी न उठे तो भक्तोंने पुकारा, हिलाया। बड़ी कठिनतासे उन्होंने नेत्र खोले। पता नहीं, उन्हें क्या हो गया था? न तो किसीकी बात सुनते थे और न समझते थे। ऐसे चारों ओर देखते थे, मानो कोई आश्चर्य देख रहे हों। हाथ जोड़कर रोने भी लगते थे। भक्तोंने उठाकर स्नान कराया। प्रसाद सम्मुख आनेपर भी जब उन्होंने नहीं उठाया तो भक्तोंने उनके मुखमें अपने हाथसे ग्रास दिये।

थोड़े दिनों यही क्रम चलता रहा। भक्तजन लगभग नौ-दस बजे बाबा रघुनाथदासको स्नान कराते और उन्हें अपने हाथसे भोजन कराते। वे अब कभी अपने-आपमें रहते नहीं थे। भक्त उन्हें सरयू-किनारेसे उठाकर कनकभवनमें ले आये। उसी कनकभवनमें जो आरम्भसे ऐसे प्रभुके लड़ैते लालोंका क्रीडा-प्राङ्गण बनता रहा है, बाहरी घेरेके एक कमरेमें उनका आसन लगा दिया।

एक दिन लोगोंने देखा कि बाबाके मुखमण्डलसे दीप्त प्रकाश निकल रहा है। उनकी ओर देखा नहीं जाता। नेत्र चकाचौंध करते हैं। मस्तिष्कमें वहाँ पहुँचते ही 'सीताराम, सीताराम' की ध्वनि इतनी प्रबलतासे गूँजती है कि प्रतीत होता है कि यदि मुखसे दुराग्रहपूर्वक 'सीताराम' न कहा जाय तो मस्तिष्क फट जायगा। वहाँ पहुँचते ही प्रत्येक व्यक्ति बराबर वहाँ रहनेतक 'सीताराम' कहनेको विवश हो जाता है।

एक-एक करके अठारह दिन व्यतीत हो गये। भक्तोंने सब प्रकारसे हिलाकर, पुकारकर, शङ्ख-घड़ियाल बजाकर प्रयत्न कर लिया, बाबा रघुनाथदासके नेत्र नहीं खुले। उनके मुखका प्रकाश प्रखरतर होता गया। यह प्रकाश ही बतलाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि शरीरमें अभी प्राण हैं। आज है रामनवमी। ठीक बारह बजे उधर प्रभुके जन्मकी पहली तोप दगी और इधर उसी क्षण रघुनाथदासजीके कमरेमें एक धड़ाका हुआ। एक भक्तने बढ़कर देखा और फिर वहाँ भीड़ हो गयी। मस्तक ठीक मध्यसे फट गया था। शरीर रक्तारुण बना था और रघुनाथदास श्रीरघुनाथजीके दिव्यधाममें पहुँच चुके थे।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

ईश्वर सत्य है और सर्वत्र है

प्रिय महोदय ! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपके प्रश्नोंके संक्षिप्त उत्तर निम्नलिखित हैं—

१-ईश्वर सत्य है और सर्वत्र है। तुकाराम, नामदेव, सूरदास, तुलसीदास, गौराङ्ग महाप्रभु, श्रीरामकृष्ण परमहंस आदिपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं है। जो भी भगवान्‌का सच्चा भक्त हो, वह आज भी भगवान्‌के दर्शन प्राप्त कर सकता है।

२-लक्ष्मी और कीर्ति तो प्रारब्धजन्य पुण्यके फलस्वरूप बढ़ती हैं। इस जीवनमें जो दम्भ, छल, कपट आदि करते हैं, वे कोई भी हों और लोग उन्हें कुछ भी कहें या समझें, अपने कर्मोंके फलस्वरूप अनन्त दुःख तो आगे चलकर उन्हें भोगने ही पड़ेंगे।

३-धन, कीर्ति, स्वास्थ्यादि भगवान्‌की प्रार्थनासे भी मिल सकते हैं। प्रार्थनाके लिये न कोई प्रकार है, न स्थान और न समय। पूर्ण विश्वाससे, अनन्यभावसे जो सहज कातर-प्रार्थना होती है, वह कभी व्यर्थ नहीं जाती। प्रार्थना हृदयसे उठती है, उसे पुस्तकके द्वारा सीखा नहीं जाता। बँधे शब्द प्रार्थना नहीं हैं। भगवान्‌के प्रति अपने हृदयके सच्चे भावोंका पूर्ण विश्वाससे निवेदन करना ही प्रार्थना है।

४-संध्या अवश्य करनी चाहिये। संध्या न करनेसे प्रत्यवाय (एक प्रकारके दोष) की प्राप्ति होती है।

५-मनकी एकाग्रता तो अभ्याससे होती है। धैर्य एवं नियमपूर्वक अभ्यास करते रहनेसे धीरे-धीरे मन एकाग्र होने लगेगा।

६-आत्महत्या बड़ा भारी पाप है। इससे किसी कष्टकी निवृत्ति नहीं होती। प्रारब्ध तो आगे भी भोगना ही पड़ेगा और आत्महत्याके पापके फलसे वह और घोरतर हो जायगा। अतः आत्महत्या-जैसी बात तो मनसे निकाल ही देनी चाहिये। भगवान् परम दयालु हैं। उनकी कृपापर पूर्ण विश्वास करके उन दयामयसे प्रार्थना करना ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।

(२)

विचित्र प्रश्न

प्रिय महोदय ! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। धन्यवाद ! आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

१-भगवान्‌को किसने उत्पन्न किया ? आपका यह प्रश्न बड़ा विचित्र है। शास्त्रोंमें भगवान् अजन्मा, अविनाशी, नित्य, सनातन एवं सबके मूल तथा सर्वाधार होनेसे स्वयं निर्मूल, आत्ममूल, निराधार, आत्माधार एवं परात्पर कहे गये हैं—**'स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः।'** उन्हींसे सबकी उत्पत्ति होती है। उनकी कभी किसीसे उत्पत्ति नहीं होती। जो वस्तु सदा रहनेवाली है, उसकी उत्पत्ति किससे हो सकती है? जिससे सबकी उत्पत्ति, पालन और संहार-कार्य होते हैं तथा जो किसी दूसरेसे उत्पन्न न होकर सदा विद्यमान रहता है, वही भगवान् है—**'मूले मूलाभावादमूलं मूलम्'** (सांख्यदर्शन)।

२-सृष्टिरचना भगवान्‌का एक खेल है। अनन्त महासागरके वक्षःस्थलपर युग-युगसे जो अनन्त तरङ्ग-मालिकाएँ उठती और विलीन होती रहती हैं, उनमें वायुदेवके विभ्रम-विलासके सिवा और क्या कारण हो सकता है? इन उत्ताल तरङ्गोंके उत्थान और लयका क्या उद्देश्य है? कौन कह सकता है? यदि कहें भगवान्‌की वह लीला किस कामकी, जिसमें असंख्य जीव कष्ट भोगते रहते हैं? तो इसका उत्तर यह है कि मनुष्य अपने ही काम, क्रोध, लोभ आदि दुर्गुणोंसे प्रेरित होकर जो शुभाशुभ कर्म करता है, उसीके फलस्वरूप सुख-दुःख भोगता है। जो इन दुर्गुणोंसे बचकर राग-द्वेष, दर्प-अहंकार आदिसे दूर रहता है, वह दुःखका भागी नहीं होता। दुःख भी अज्ञानवश ही है, वास्तवमें नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

जब माँने मुझे मौतके मुँहसे बचाया

करुणामयी माँकी कृपा-वर्षा तो सभी प्राणियोंपर समान-रूपसे हो रही है, परंतु उनकी कृपाका अनुभव किसी विरले भाग्यशालीको ही हो पाता है। मुझे विगत वर्षोंमें माँकी कृपाका अनेक बार अनुभव हुआ है। इनमेंसे एक घटना इस प्रकार है—

बात लगभग चार वर्ष पुरानी है। जबलपुरकी विजयादशमी प्रसिद्ध है। मेरी ननद एवं सासजीकी इच्छा विजयादशमीका उत्सव देखनेकी हुई। उन लोगोंको साथ लेकर मैं जबलपुर अपनी माँके यहाँ गयी। हमने विजयादशमीके दिन दुर्गा-प्रतिमाओंकी भव्य शोभा-यात्राका दर्शन किया और विचार हुआ कि कल ग्वारीघाट जाकर नर्मदा-स्नान करनेके पश्चात् दुर्गा-विसर्जनका दृश्य देखा जायगा।

हम अगले दिन प्रातः ८ बजे घरसे रिक्शा करके ग्वारीघाटके लिये चल पड़ीं। मार्गमें गलगला चौकपर स्थित प्रसिद्ध देवी-मन्दिर मिला। हमलोगोंने वहाँ भगवती दुर्गाका दर्शन किया और मन-ही-मन माँसे निवेदन किया कि 'माँ! हम सब लौटते समय आपकी आरतीमें सम्मिलित होंगी।'

तत्पश्चात् पुनः हम सब वहाँसे रिक्शाद्वारा ग्वारीघाटके लिये चल पड़ीं। रिक्शेकी सीटपर मेरी सास तथा ननद बैठी थीं एवं पटियेपर मेरे साथ मेरा भांजा बैठा था। बादशाह हलवाईके मन्दिरके पासवाले मोड़पर नीचेकी ओरसे सहसा एक ट्रक आयी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह हमारे रिक्शेको कुचल देगी। अचानक मेरे मुँहसे निकला—'माँ! हमारी रक्षा करो।' ट्रककी जोरदार टक्कर हुई और रिक्शेके एक चक्केपर ट्रक चढ़कर रुक गयी, जैसे किसी अज्ञात शक्तिने ट्रकको रोक दिया हो। रिक्शाका चक्का चकनाचूर हो गया, परंतु हम चारों एवं रिक्शाचालक दूसरी ओर गिरे और सभी सुरक्षित बच गये। हमने हृदयसे भगवती जगदम्बाके चरणोंमें बारम्बार प्रणाम किया। सकुशल हम सब ग्वारीघाटपर प्रतिमा-विसर्जनके मनोहारी दृश्यको देखकर वापसी यात्रामें गलगला चौकपर स्थित देवी-मन्दिरकी आरतीमें सम्मिलित हुईं। तदुपरान्त अपने निवास-स्थानपर आ गयीं। सच्चे हृदयसे पुकारनेपर माँ मौतके मुखसे अवश्य बचा लेती हैं। भगवतीकी असीम कृपाका स्मरण कर आज भी मेरा हृदय गद्गद हो जाता है। —श्रीमती प्रभा वैद्य

(२)

श्रीराम-नाम-लेखन एवं मानसकी चौपाईका चमत्कार

दिनाङ्क ११-१२-१९६९ को मेरा आठ वर्षका बालक श्रीवल्लभ सहसा तीव्र ज्वरसे पीड़ित हो गया। उन दिनों विवाहका समय था, इसलिये दूकानोंमें व्यस्तता अधिक थी। अपनी व्यस्तताके कारण तथा सामान्य ज्वर समझकर मैं बच्चेके ज्वरकी ओर विशेष ध्यान न दे सका। इस प्रकार एक दिन निकल गया। दूसरे दिन उसे वैद्यको दिखाया, ओषधिकी व्यवस्था की गयी, पर उस दिन भी उसे लाभ नहीं हुआ। तीसरे दिन दोपहरको बालककी स्थिति अत्यन्त गम्भीर हो गयी। उसकी स्थिति देखकर मैं घबड़ा गया, तब मैंने अपने बड़े भाईसाहबको जो दूकानपर थे एवं श्रीबाबूलालजी असाटी तथा पड़ोसके पाण्डेयजीको बुलाया। सब लोगोंने विचार किया कि बालककी स्थिति अत्यन्त शोचनीय है, अतः प्रसिद्ध चिकित्सक थामसके पास ही बालकको ले जाना उचित होगा, पर उनका चिकित्सालय ४।३० बजे शामको खुलेगा, अभी उसमें विलम्ब है। यह विचार-विमर्श चल ही रहा था कि मुझे उसी समय एकदम करेंट-जैसा एक झटका लगा और ऐसा आभास हुआ कि कोई शक्ति मुझसे कह रही है कि 'तुम्हारे पास इस समय जितना भी श्रीराम-नाम-लेखनका कोष है, वह हमें दो।' इन दिनों मैं नित्य श्रीराम-नाम-लेखनका कार्य करता था।

मैं तत्काल उन सबको ज्वरसे आक्रान्त बालकके पास छोड़कर हाथ-पैर धोकर अपने पूजागृहमें गया। कपाट बंद कर दिये। धूप, दीप, अक्षत, फल और अगरबत्तीसे पूजन-थाल सँजोया, दीपक जलाकर सर्वसंकटोंके निवारक श्रीहनुमान्-जीका पूजन कर श्रीराम-नाम-लेखनका कोष उनके चरणोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्पित कर दिया और उनसे बार-बार बालकके स्वास्थ्य-लाभ-हेतु प्रार्थना की।

इस कार्यसे निवृत्त होकर मैं परिवार तथा सभी सहयोगी बन्धुओंके साथ विचार-विनिमय करने लगा। अपने अस्वस्थ बालकको संसारके सबसे बड़े चिकित्सकके हाथोंमें सौंपकर अब मैंने लौकिक चिकित्सकोंकी दवा करानेका भी निश्चय किया। उस समय प्रायः चार बज रहा था। मैं चिकित्सक थामसके निवासपर गया, उनके पालतू कुत्तेके कारण मेरी पुकारनेकी आवाज उनतक नहीं पहुँच सकी, मैं निराश होकर वापस लौट आया और चिकित्सालय आ गया, पुनः सोचा कि बालक तो मृत्युकी घड़ी गिन रहा है और मैं क्यों वापस लौट आया, इसलिये पुनः चिकित्सकके निवासपर गया, इस बार प्रभुने दया की, मेरे बुलानेकी आवाज उनतक पहुँची तथा उनसे बातचीत हुई, वे मुझे कारमें साथ लेकर तत्काल चिकित्सालय आये और उन्होंने बालकका निरीक्षण किया, फिर बताया कि आपके बालककी स्थिति अत्यन्त गम्भीर है, इसे अत्यन्त तेज बुखार है तथा मस्तिष्कमें पस भी पड़ गयी है। हम इसकी दवा करनेमें असमर्थ हैं।

हमलोग तो बहुत घबड़ा गये, अतः कोई अन्य उपाय न देख इन चिकित्सकसे चिकित्सा करनेके लिये साग्रह प्रार्थना की। इन्होंने यथासम्भव समुचित उपचारकर बालकको वापस घर ले जानेके लिये कहा। हम बालकको लेकर घर आ गये। घर आकर पुनः दूसरे चिकित्सकको बुलाया। उन्होंने निरीक्षण किया और बताया कि अभी जो दवा दी गयी है, वह ठीक है। रात्रिमें आवश्यकता पड़े तो मुझे बुला लीजियेगा। इससे सभीको संतोष हुआ।

बालककी स्थितिमें सुधार नहीं हुआ था। प्रभुका ध्यान करते हुए मैंने रात्रि व्यतीत की। प्रातः ४ बजे एकाएक बालकने पानी पीनेको माँगा, पानी पिलाकर मैंने उससे चाय पीनेके लिये पूछा, उसने कहा—'पियेंगे।' अतः चाय बनाकर उसे पिलायी। अब और कुछ ढाढ़स मिला, धीरे-धीरे प्रातःकाल हो गया।

पूर्वमें मैंने जिन श्रीबाबूलालजी असाटीको बुलाया था, उन्होंने उस बालककी स्थितिको देखकर उसकी स्वस्थताके हेतु श्रीरामायणकी चौपाईका जप प्रारम्भ कर दिया तथा लाभ होनेकी स्थितितक उस चौपाईका जप निरन्तर करते रहे, जिस चौपाईका उन्होंने जप किया था, वह थी—

तुरत बैद तब कीन्हि उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई॥

—इस चौपाईका उन्होंने श्रद्धा-विश्वासपूर्वक निरन्तर परिश्रमसे जप किया था। यह बात उन्होंने बालकके स्वस्थ हो जानेके पश्चात् बतायी।

प्रातः ८ बजे बालकको लेकर हम पुनः चिकित्सालय गये और चिकित्सकने बालकको देखा और कहा कि यह बालक बच गया, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। अवश्य ही इसमें ईश्वरीय कृपा कारण है।

मुझे श्रीहनुमान्‌जीकी दयापर पूरा भरोसा था। दवाके साथ प्रार्थनाका क्रम भी चलता रहा, चार-पाँच दिनके उपचारके पश्चात् बालक पूर्ण स्वस्थ हो गया।

श्रीहनुमान्‌जीको श्रीराम-नाम-लेखन समर्पित करने तथा प्रार्थनाके प्रत्यक्ष चमत्कार एवं श्रीरामायणकी मन्त्रवत् चौपाईके जपने बालक श्रीवल्लभको जीवनदान दिया। श्रीहनुमान्‌जीकी आराधना कभी व्यर्थ नहीं जाती। उन्हें श्रीराम-नामके जप तथा लेखनसे विशेष प्रसन्नता होती है।

—'प्रेमीजी' प्रेमशंकर तामकार

(३)

ईश्वरकृपासे जीवन-दान

बात जून १९८५ की है। मेरी माताजीके ट्यूमरका ऑपरेशन हुआ था। उन्हें कैंसर हो गया था। जब ऑपरेशनके बाद उन्हें घर लाया गया तो उनकी स्थिति निरन्तर बिगड़ती ही जा रही थी। डॉक्टरोंने भी अत्यधिक प्रयास किया, किंतु स्वास्थ्यमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। कुछ दिनों बाद माताजीकी हालत बहुत गम्भीर हो गयी। डॉक्टरोंने हमें बता दिया कि माताजी अब अधिक-से-अधिक एक महीना बचेंगी। हम सभी बहुत निराश हो गये, क्योंकि घरमें उनके अतिरिक्त और कोई घरका सँभाल करनेवाला न था। पिताजीका पहले ही स्वर्गवास हो चुका था।

ऐसी विषम परिस्थितिमें मेरी बुआने मुझसे कहा कि मैं प्रतिदिन हनुमान्‌जीके मन्दिरमें जल चढ़ाने जाया करूँ और चरणामृत लाकर माँको पिला दिया करूँ। अतः मैं उसी दिनसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हनुमान्‌जीके मन्दिरमें जल चढ़ाने जाता और दुःखी हृदयसे माँकी प्राण-रक्षाके लिये हनुमान्‌जीसे प्रार्थना करता तथा चरणामृत माँको पिलाया करता। मेरा छोटा भाई भी प्रतिदिन माँके समीप बैठकर रामचरितमानसका नियमित पाठ करता। हम अपनेको पूर्ण असहाय अनुभव करते थे। भगवान्‌से विनती करनेके अतिरिक्त माँके स्वास्थ्य-लाभका और कोई सहारा नहीं था। करुणावरुणालय सर्वेश्वर ही एकमात्र आधार थे हमारे। सर्वान्तर्यामी प्रभुने हमारे मनकी भावनाको जान लिया तथा हमारी विनती भी स्वीकार कर ली। धीरे-धीरे माताजीके स्वास्थ्यमें सुधार होने लगा और कुछ दिनों बाद वे पूर्ण स्वस्थ हो गयीं। आज भगवान्‌की कृपासे मेरी माताजी पूर्णतः स्वस्थ हैं। आज भी भगवान्‌का ध्यान आते ही मन श्रद्धासे भरकर उनके चरणोंमें झुक जाता है।

—के० आर० सोनारे 'दीपक'

(४)

जैसेको तैसा

बम्बई-निवासी सेठ कैलाशचन्द्रजीके एक एकलौता पुत्र था, जिसका नाम था रमेशचन्द्र। पैसेकी कमी थी नहीं, व्यापार कई जगहोंपर चल रहा था। लड़केकी इच्छा हुई कि वह अलग व्यापार करे, इसलिये घरसे दो लाख रुपये लेकर निकला और मोघा मण्डी स्टेशनपर शामको सात बजे पहुँचकर वहाँके स्टेशनमास्टरसे कहा—'बाबूजी ! मण्डी दूर है, प्रातः चला जाऊँगा, अतः रात्रिमें यहीं स्टेशनपर विश्राम-गृहमें सो जानेकी व्यवस्था कर दें; मेरे पास दो लाख रुपयोंकी रकम भी है, इसे आप अपने पास सुरक्षित रख लें।' स्टेशनमास्टरके मनमें लोभका पाप छा गया, किंतु उसे प्रकट न कर अपने मनोभावको छिपाते हुए उन्होंने कहा कि 'नहीं-नहीं, मैं इतनी बड़ी धनराशि कहाँ रखूँगा ? आप इसे अपने साथ ही रखकर प्रथम श्रेणीके विश्रामालयमें विश्राम करें। आपकी सुरक्षाके लिये मैं रेलवेके दो कर्मचारियोंको नियुक्त किये देता हूँ।' इतना कहकर वे अपने क्वार्टरमें चले गये। इन सारी बातोंको एक कर्मचारी पॉइंट्समेन कुशालसिंह ध्यानसे सुन रहा था, वह सारे रहस्यको ताड़ गया। उसे संदेह हो गया कि स्टेशनमास्टर रातमें इसकी हत्या करवाकर इसकी धनराशि हड़पना चाहते हैं। थोड़ी रात्रि बीते कुशालसिंहने सारी घटना सेठके पुत्र रमेशचन्द्रको बताकर अपने क्वार्टरपर ले जाकर सुला दिया। इधर देर रात गये मालगाड़ीसे स्टेशनमास्टरका पुत्र, जो कहीं बाहर गया हुआ था, वह रात्रिमें देरीसे आनेके कारण अपने पिताके भयसे स्टेशनपर ही प्रथम श्रेणीके उसी विश्रामागारमें जाकर सो गया। जब रात्रिके बारह बजे निर्दिष्ट कार्यके लिये स्टेशनमास्टरद्वारा नियुक्त वह कर्मचारी आया तो उसने वहाँ सोये हुए लड़केको सेठजीका लड़का समझकर उसकी हत्या कर दी और जाकर स्टेशनमास्टरको सूचना दे दी। ज्यों ही स्टेशनमास्टर धनके लोभमें मृत व्यक्तिको टटोलने लगे, त्यों ही वहाँ अपने ही लड़केको मृत देखकर अवाक् रह गये और पछाड़ खाकर जमीनपर गिर पड़े। प्रातःकाल पुलिस पहुँच गयी और आगे जो होना था सो हुआ। इधर कुशालसिंह सेठके लड़केको लेकर सीधे सेठके घर बम्बई पहुँचा और सारी घटना बतायी; तब सेठने उसकी ईमानदारीसे प्रसन्न होकर वह सारा रुपया उसे देकर सदाके लिये अपने ही यहाँ एक विशिष्ट कर्मचारीके रूपमें नियुक्त कर लिया।

इस प्रकारकी घटनाओंसे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्यको सत्कर्मोंका फल भले देरसे मिले, किंतु दुष्कर्मोंके परिणाम मिलनेमें अधिक विलम्ब नहीं होता। वह उसे अवश्य भोगना पड़ता है। अतः काम, क्रोध, लोभादिजनित दुष्कर्मोंसे अवश्य अपनी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि ऐसे कुत्सित कर्मोंके रहस्य कभी अधिक दिनतक नहीं छिप पाते। क्षणभङ्गुर मानव-जीवनके प्रत्येक क्षणका श्रेष्ठ सत्कर्मोंमें उपयोग करना ही वास्तविक बुद्धिमत्ता है और इसीमें सच्ची मानवता निहित है।

—वैद्य अचलानन्द वानप्रस्थी

कार्यके सब सांसारिक उद्देश्योंको हटा दो। इच्छारूपी प्रेतोंको उतार दो। अपने सब कामोंको पवित्र बना दो। आसक्तिके रोगसे अपनेको छुड़ा लो !—स्वामी रामतीर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

गो-सेवा तथा भगवन्नामकी महिमा

ऋतम्भर नामके एक राजा थे। उनके कई स्त्रियाँ थीं, पर कोई संतति नहीं थी। एक दिन अकस्मात् उनके घर महर्षि जाबालि आ पहुँचे। राजाने स्वागत-सत्कारके बाद संतान-प्राप्तिके लिये उपाय पूछा। महर्षिने गायोंकी महिमाका गान करते हुए कहा—

'विष्णोः प्रसादो गोश्चापि शिवस्याप्यथवा पुनः।'

—भगवान् विष्णु, गौ और भगवान् शंकरकी कृपासे पुत्रकी प्राप्ति हो सकती है।

राजाने आदरपूर्वक उनसे पूछा—'मुने! गौकी पूजा किस प्रकार की जानी चाहिये और उससे क्या फल होगा।' उन्होंने कहा—'महाराज! गो-सेवाका व्रत लेनेवाले पुरुषको गाय चरानेके लिये स्वयं प्रतिदिन जंगलमें जाना चाहिये। गायको जौ खिलाकर उसके गोबरमें जितने जौ निकलें, उनको चुनकर संग्रह करना चाहिये और पुत्रकी इच्छा करनेवाले पुरुषको उन्हीं जौओंका यवागू या सत्तू आदि बनाकर भक्षण करना चाहिये। जब गौ जल पी ले तब व्रतीको पवित्र जल पीना चाहिये। गौ जब ऊँची जगहपर रहे तब उसको नीची जगहमें रहना चाहिये। गौके शरीरसे मच्छर और डाँसोंको निरन्तर हटाना चाहिये तथा उसके खानेके लिये अपने हाथों घास लाना चाहिये। इस प्रकार यदि तुम गो-सेवा-व्रतका पालन करोगे तो गोमाता तुम्हें निश्चय ही धर्मपरायण पुत्र देंगी।'

पुत्रकामी धर्मात्मा राजा ऋतम्भरने मुनिके आज्ञानुसार गो-सेवा-व्रत ग्रहण कर लिया। एक दिन वनमें राजा प्रकृतिकी शोभा देख रहे थे कि इसी बीचमें दूसरे वनसे आकर एक सिंहने गौके ऊपर आक्रमण किया। गौ सहसा कातर-स्वरसे चिल्लायी। राजाने दौड़कर देखा और अपनी गोमाताको सिंहके द्वारा निहत जानकर वे विकल होकर रोने लगे। तदनन्तर धैर्य धारण करके वे पुनः जाबालि मुनिके पास गये और सारी घटना सुनाकर उनसे इस पापसे मुक्तिका और पुत्रप्रद-व्रतकी पूर्तिका उपाय पूछे। मुनिने कहा—पापोंसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये शास्त्रोंने भाँति-भाँतिके प्रायश्चित्त बतलाये हैं। नियमानुसार उनका अनुष्ठान करनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं। परंतु—

द्वयोर्वै निष्कृतिर्नास्ति पापपुञ्जकृतोस्तयोः।
मत्या गोवधकर्तुश्च नारायणविनिन्दितुः॥
गवां यो मनसा दुःखं वाञ्छत्यधमसत्तमः।
स याति निरयस्थानं यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥
योऽपि देवं हरिं निन्देत् सकृद्दुर्भाग्यवान् नरः।
स चापि नरकं गच्छेत् पुत्रपौत्रपरीवृतः॥
तस्माज्ज्ञात्वा हरिं निन्दन् गोषु दुःखं समाचरन्।
कदापि नरकान्मुक्तिं न प्राप्नोति नरेश्वर॥

(पद्म० पाताल० ३१। ३३—३६)

'जान-बूझकर गो-वध और भगवान् नारायणकी निन्दा करनेवाले—इन दोनों महान् पापियोंका निस्तार नहीं हो सकता। जो नराधम मनमें भी गौओंको दुःख देनेकी इच्छा करता है, उसे चौदह इन्द्रों (मन्वन्तरोंके) कालतक नरकमें रहना पड़ता है। जो अभागा मनुष्य एक बार भी भगवान् हरिकी निन्दा करता है, वह अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ नरकमें जाता है। इसलिये राजन्! जो मनुष्य जान-बूझकर भगवान्‌की निन्दा और गौओंको दुःख देता है, उसे नरकसे मुक्ति कदापि नहीं मिल सकती। परंतु अज्ञानसे किये हुए गो-वधका प्रायश्चित्त है। तुम राजा ऋतुपर्णके पास जाओ, वे तुम्हें उचित परामर्श देंगे।'

जाबालि मुनिके आज्ञानुसार राजा ऋतम्भर समदृष्टिसम्पन्न श्रीराम-भक्त राजा ऋतुपर्णके पास गये और सारी कथा सुनाकर उन्होंने उपाय पूछा। प्रतापवान्, धर्मविद्, बुद्धिमान् ऋतुपर्णने हँसते हुए कहा—'महाराज! कहाँ शास्त्रवेत्ता मुनि और कहाँ मैं। आप उन्हें छोड़कर मुझ पण्डिताभिमानी मूर्खके पास क्यों आये?' परंतु यदि आपकी श्रद्धा मेरे ही प्रति है तो मैं निवेदन करता हूँ, आप आदरपूर्वक सुनिये—

भज श्रीरघुनाथं त्वं कर्मणा मनसा गिरा।
नैष्कापट्येन लोकेशं तोषयस्व महामते॥
स तुष्टो दास्यते सर्वं तव हृत्स्थं मनोरथम्।
अज्ञानकृतगोहत्यापापनाशं करिष्यति॥

(पद्म०, पाताल० ३१। ४६-४७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'महामते ! अब आप कपट छोड़कर तन, मन, वचनसे सर्वलोकेश्वर भगवान् श्रीरामका भजन कीजिये और उनको संतुष्ट करनेमें लगिये। वे तुष्ट होकर आपके हृदयकी समस्त कामनाओंको पूर्ण कर देंगे और आपके इस अज्ञानकृत गोहत्या-पापको भी नष्ट कर देंगे।'

महाराज ऋतुपर्णसे आदेश प्राप्त करके गो-सेवाव्रती राजा ऋतम्भर भगवान् श्रीरामके भजन-स्मरणसे पवित्रात्मा होकर पुनः व्रतपालनमें लग गये। वे प्राणिमात्रके हित-साधनमें लगकर निरन्तर भगवान् श्रीरामचन्द्रके नामका स्मरण करते हुए गो-सेवाके लिये महान् वनमें चले गये। कुछ दिनोंके पश्चात् उनकी सेवासे संतुष्ट होकर कृपामयी देवी कामधेनुने प्रकट होकर उन्हें अभीष्ट वर दिया और फिर वे अन्तर्धान हो गयीं। उसी वरके फलस्वरूप नरेन्द्र ऋतम्भरके घर परम भक्त सत्यवान् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

माँ-बेटेकी बातचीत

'माँ ! ऐसा कौन-सा उपाय है, जिसके करनेसे तुम्हारी ही भाँति सब लोग मुझसे प्रेम करने लगेंगे ?' माँने बड़े स्नेहसे अपने पुत्रको दुलारते हुए कहा—'बेटा ! तुम्हारी यह इच्छा बड़ी अच्छी है। मुझे तो तुम यों भी बड़े अच्छे लगते हो, परंतु इसमें मेरी ममता भी कारण हो सकती है। जब तुम्हारे अंदर अच्छे-अच्छे गुण आ जायँगे, तब तो सभी लोगोंकी दृष्टिमें तुम अच्छे हो जाओगे। सब लोग तुम्हारा सम्मान करेंगे और तुम्हारे मनमें भी बड़ी प्रसन्नता होगी। देखो, मेरे पड़ोसीका लड़का ध्रुव कितना अच्छा बालक है। उससे सब लोग प्रसन्न रहते हैं। उसकी बातका सब विश्वास करते हैं। वह कभी असत्य नहीं बोलता। उसके मुखसे कभी किसीने कड़वी बात नहीं सुनी। आवश्यकता न होनेपर वह सच्ची बात भी नहीं कहता, चुप रह जाता है। समय देखकर किसीके हितकी बात तब कहता है, जब उसकी समझमें वह बात ठीक-ठीक बैठ जाती है। इसीसे बड़े-बड़े लोग भी उसकी बात बड़े ध्यानसे सुनते हैं। यदि तुम भी बोलनेमें सदा थोड़ा बोलने, सत्य बोलने, मधुर बोलने तथा दूसरेके हितकी बात कहनेका ध्यान रखोगे तो सब लोग तुम्हें भी उसी प्रकार मानेंगे।

'बेटा ! सत्य बोलनेका इतना ही लाभ नहीं है कि लोग उसकी बात मानें और उसका सम्मान करें, अपितु जो सत्य बोलनेका नियम ले लेते हैं, वे सच्ची बात जाननेकी चेष्टा भी करते हैं और सावधान भी रहते हैं कि कहीं मेरे मुखसे असत्य न निकल जाय, कहीं मैं गलती न कर बैठूँ। इससे उनके मनमें सचाई जाननेकी इच्छा बढ़ती है और वे सत्यस्वरूप परमात्माको जान लेते हैं। सत्यकी खोजसे और सत्यवाणीसे भगवान् प्रसन्न होते हैं और उसे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करते हैं। यहाँतक सुना गया है कि जो बारह वर्षतक सत्य ही बोलता है, कभी अनजानमें भी असत्य नहीं बोलता, उसकी वाणी सिद्ध हो जाती है और वह यदि कभी किसी वस्तुके विषयमें असावधानीसे भी कुछ कह देता है तो वह वैसी ही हो जाती है।'

'माँ ! तुम तो कहती हो कि सत्य बोलना चाहिये, परंतु मेरे कई साथी तो असत्य बोलते हैं, छल करते हैं और लोग उनका ही आदर करते हैं। तब मैं कैसे मानूँ कि सत्य बोलना अच्छा है ?'

'बेटा ! उन लोगोंकी चालाकी तभीतक चलती है, जबतक उनका भेद नहीं खुल जाता। जब सब लोग जान जायँगे कि ये असत्य बोलते हैं, तब उनकी सच्ची बातका भी विश्वास नहीं करेंगे। जो लोग स्वयं भी असत्य बोलते हैं, वे भी दूसरे असत्य बोलनेवालोंका विश्वास नहीं करते। उन्हें किसी बातका पता लगाना होता है, तब वे असत्य बोलनेवालोंसे नहीं पूछते, सत्य बोलनेवालोंसे ही पूछते हैं। इससे सिद्ध होता है कि असत्यवादी भी सत्यताके महत्त्वको स्वीकार करते हैं। असत्य भी सत्यकी आड़में ही चलता है। यदि सत्यका परदा न हो तो असत्य चल ही नहीं सकता, परंतु सत्य बिना असत्यके परदेके भी चलता है, इससे भी सत्यका ही गौरव सिद्ध होता है। इसलिये बेटा ! तुम्हें निरन्तर सत्य ही बोलना चाहिये।'

'माँ ! सत्य बोलनेपर कई बार डाँट-फटकार भी सहनी पड़ती है। यदि मैं पिताजीसे कह दूँ कि मेरे पैसे अमुक काममें खर्च हुए हैं तो वे अप्रसन्न होते हैं और कभी-कभी दण्ड भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देते हैं, परंतु यदि वही बात छिपा लेता हूँ, तब वे कुछ नहीं बोलते फिर मैं उनसे सत्य-सत्य कैसे कहूँ ?'

'बेटा ! तुम्हारे पिता बड़े समझदार हैं, उन्होंने संसार देखा है, उनका बड़ा अनुभव है, वे जिस कामसे रोकते हैं, वह तुम्हें कभी नहीं करना चाहिये। वे जब चाहते हैं कि तुम उन कामोंमें व्यर्थ पैसे न खर्च करो और तुम कर देते हो, तब उन्हें अप्रसन्न होना ही चाहिये। वे तुम्हारे हितके लिये ही तुमपर अप्रसन्न होते हैं। तुम वैसा काम ही न करो, जिससे वे अप्रसन्न हों। असत्य बोलकर उसे छिपाना तो महान् पाप है, इससे तुम्हारी प्रकृति बिगड़ जायगी और तुम्हारे अंदर बहुत-सी बुराइयाँ आ जायँगी। जब उन्हें मालूम होगा कि तुमने असत्य बोलकर उन्हें धोखा दिया है, तब तो उनकी अप्रसन्नता और भी बढ़ जायगी। एक असत्यको सत्य बनानेके लिये सौ-सौ बार असत्य बोलना पड़ता है। असत्य बोलनेसे ही मनमें तरह-तरहके पाप आ बसते हैं। यदि तुम अपनी बातें सत्य-सत्य बतला दिया करोगे तो तुम्हारे सब पाप, तुम्हारी सब बुराइयाँ स्वयं ही छूट जायँगी।

'बेटा ! तुम्हारे जो साथी असत्य बोलते हैं, उनसे अलग रहना ही अच्छा है, क्योंकि वे असत्यके बलपर अपनी बहुत-सी बुराइयाँ छिपाये रखते हैं। उनके साथ रहने और हेल-मेल करनेसे वे दोष अपने अंदर भी आ जाते हैं और उसी प्रकार असत्य बोलकर दोष छिपानेका स्वभाव हो जाता है। तुम केवल वैसे लोगोंमें ही रहा करो जो सत्य बोलते हैं और जिनका चरित्र पवित्र हो। चरित्र ही सब कुछ है। जिसका आचरण ठीक है, उसकी बुद्धि बड़ी तेज होती है, वह किसीसे डरता नहीं, उसका मुखमण्डल चमकता रहता है। शरीरके सुगठित, बलवान् और सुन्दर होनेके लिये, मनके निर्भय और ज्ञानसम्पन्न होनेके लिये चरित्रकी रक्षा परम आवश्यक है। चरित्रकी रक्षाके लिये सत्य सबसे बड़ा सहारा है।

सत्यके साथ-साथ पहले कही हुई बातोंका भी ध्यान रखनेसे सबका प्यार और सबसे बढ़कर परमात्माका प्यार प्राप्त हो जाता है। उन बातोंको फिरसे याद कर लो।

१-सत्य ही बोला जाय।

२-कड़वी बात न कही जाय, मधुर बोला जाय।

३-हितकी ही बात कही जाय।

४-जहाँतक हो सके, थोड़ेमें ही अपनी बात पूरी कर दी जाय।

५-बिना मौके कोई बात न कही जाय।

आशा है, 'तुम इन गुणोंको अपनाओगे। जब ये गुण तुम्हारे अंदर आ जायँगे, तब सब लोग तुम्हें अपना समझने लगेंगे। क्या तुम इनका अभ्यास करोगे ?' माँने पूछा। 'हाँ माँ ! मैं अवश्य करूँगा।' पुत्रने बड़े आदरसे कहा।

ईश्वर-प्राप्तिके कुछ उपाय

१-ईश्वरके प्रभाव और महत्त्वको यथार्थ जाननेवाले महापुरुषोंका संग।

२-ईश्वरके प्रभाव और महत्त्वसे पूर्ण शास्त्रोंका अध्ययन।

३-ईश्वरके नामका जप और गुणोंका श्रवण-कीर्तन।

४-ईश्वरका ध्यान।

५-विश्वरूप भगवान्‌की निष्कामभावसे सेवा।

६-ईश्वर-प्रार्थना।

७-ईश्वरके अनुकूल आचरण यानी सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, विनय, तप, स्वाध्याय, आस्तिकता और श्रद्धा आदिको बढ़ाना।

८-लोक-परलोकके समस्त भोगोंमें वैराग्य।

९-सद्‌गुरुमें परम श्रद्धा और गुरु-सेवा।

१०-ईश्वरमें अखण्ड विश्वास।

११-घर-बाहर सर्वत्र ईश्वर-चर्चा।

१२-अभिमान, दम्भ और कठोरताका सर्वथा त्याग।

१३-काम-क्रोध-लोभसे बचना।

१४-नास्तिक-संगका सर्वथा त्याग।

१५-परधर्म-सहिष्णुता।

१६-सबमें ईश्वरबुद्धि रखते हुए ही बर्ताव करनेकी चेष्टा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गु० कु० विश्वविद्यालय
हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

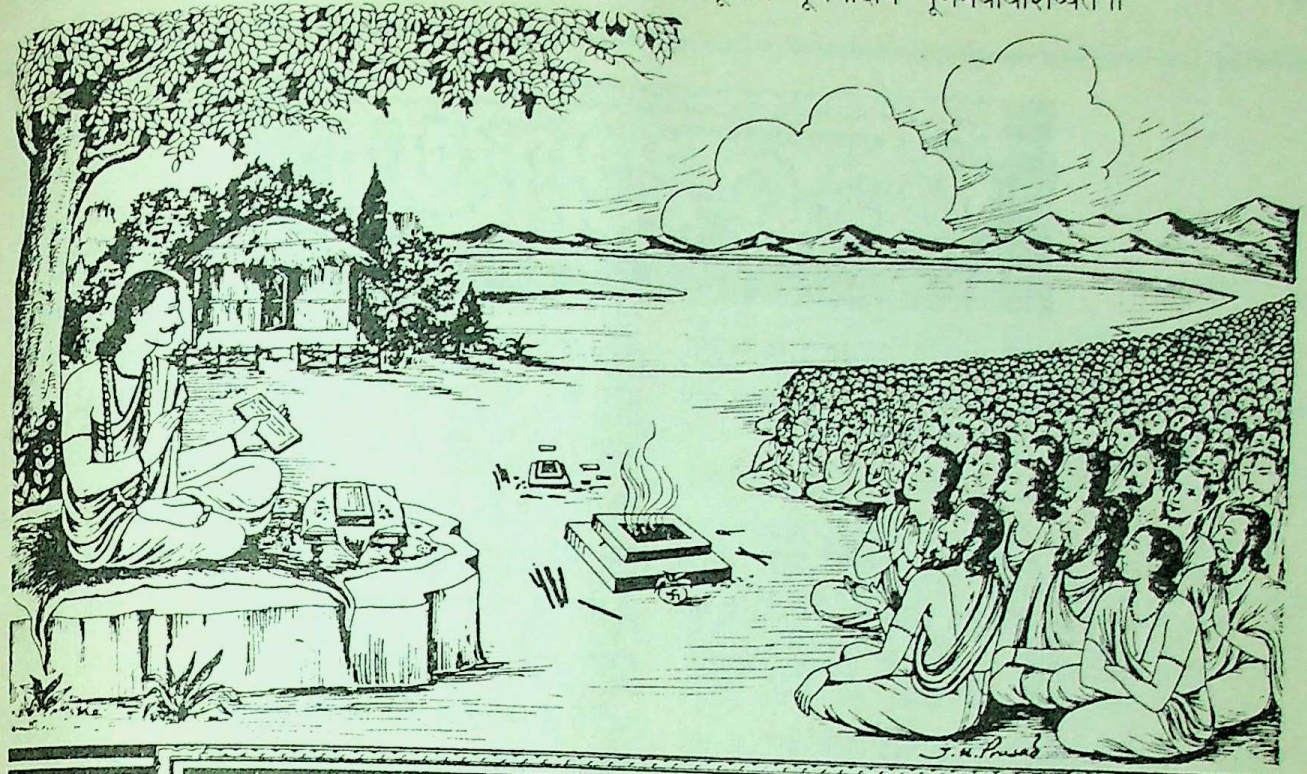

कल्याण

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत्।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥

वर्ष ६३ } गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-सं० ५२१५, फरवरी १९९० ई० { संख्या ११ पूर्ण संख्या ७५६

भगवती महालक्ष्मीकी वन्दना

कान्त्या काञ्चनसंनिभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै-
र्हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम्।
बिभ्राणां वरमब्जचक्र (युग्म)-मभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां
क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बलसितां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ॥

'जिनकी कान्ति सुवर्ण-वर्णके समान प्रभायुक्त है और जिनका हिमालयके समान अत्यन्त ऊँचे उज्ज्वल वर्णके चार गजराज अपनी सूँड़ोंसे अमृत-कलशके द्वारा अभिषेक कर रहे हैं, जो अपने चार हाथोंमें क्रमशः वरमुद्रा, अभयमुद्रा और कमल तथा चक्र धारण किये हुई हैं, मस्तकपर उज्ज्वल वर्णका भव्य किरीट सुशोभित हो रहा है, कटि-प्रदेशमें कौशेय (रेशमी) वस्त्र सुशोभित हो रहे हैं, ऐसी कमलपर स्थित भगवती लक्ष्मीकी मैं वन्दना करता हूँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेश-कणिका

सबपर दया करो, सबके दुःखोंको अपना दुःख समझो, सबके सुखी होनेमें ही सुखका अनुभव करो, परंतु ममता और अहंकारसे सदा बचे रहो।

× × ×

शरीरके किसी भी अङ्गमें सुख-दुःखकी प्राप्ति होनेपर जैसे उसका समानभावसे अनुभव होता है, वैसे ही प्राणिमात्रके सुख-दुःखकी प्राप्तिमें समता रखो, अपनेको समष्टिमें मिला दो।

× × ×

अपने इस शरीरमें पर-भावना (दूसरेका है, ऐसी भावना) करो और दूसरोंमें आत्मभावना करो, तभी तुम दूसरोंके सुख-दुःखमें सुखी-दुःखी हो सकोगे और तभी तुम उनके लिये अपना सर्वस्व त्याग सकोगे।

× × ×

जैसे विषयी पुरुष अपनी आत्माके लिये (वह देहको ही आत्मा मानता है इसलिये कहा जा सकता है कि शरीर-सुखके लिये) माता, पिता, बन्धु, स्त्री, पुत्र, धर्म और ईश्वरतकका त्याग कर देता है, वैसे ही तुम विश्वरूप ईश्वर और विश्वात्माकी सेवारूप धर्मके लिये आनन्दसे अपने शरीर तथा शरीर-सम्बन्धी समस्त सुखोंका सुखपूर्वक त्याग कर दो। विश्वात्माको ही आपनी आत्मा और विश्वको ही अपना देह समझो, परंतु सावधान ! ममता और अहंकार यहाँ भी न आने पावे। तुम जो कुछ करो सच्चे प्रेमसे करो और वह प्रेम स्वार्थ-प्रेरित न होकर हेतुरहित हो, परमात्मासे प्रेरित हो। परमात्मासे प्रेरित विश्वप्रेम ही तुम्हारा एकमात्र स्वार्थ बन जाय।

× × ×

सबके साथ आत्मवत् व्यवहार करो, किसीके द्वारा अपना बुरा हो जानेपर भी उसका बुरा मत चाहो। दाँतोंसे कभी जीभ कट जाय या अपने ही दाहिने पैरके जूतेकी ठोकर बायें पैरमें लगकर खून आने लगे तो क्या कोई बदलेमें दाँतोंको और पैरको कुछ भी चोट पहुँचाना चाहता है या उनपर अप्रसन्न होता है ? वह जानता है कि जीभ और दाँत अथवा दाहिना-बायाँ दोनों पैर मेरे ही हैं। जीभ और बायें पैरको कष्ट हुआ सो तो हुआ ही, अब दाँत और दाहिने पैरको कोई दण्ड देकर कष्ट क्यों पहुँचाया जाय ? क्योंकि वस्तुतः कष्ट तो सब मुझको ही होता है, चाहे वह किसी भी अङ्गमें हो, इसी प्रकार तुम जब सबमें अपने ही आत्माको देखोगे, तब किसी भी प्राणीका —जो तुम्हारे साथ बुरा बर्ताव करता है, उसका भी बुरा तुमसे नहीं हो सकेगा। हाँ, जैसे दाँतोंसे एक बार जीभके कटनेपर या दाहिने पैरसे बायें पैरमें ठोकर लगनेपर, उन्हें कुछ भी बदलेमें कष्ट न देकर फिर ऐसा न हो इसके लिये मनुष्य सावधानीके साथ ऐसा प्रयत्न करता है कि जिसमें पुनः दाँतोंसे जीभको और पैरसे दूसरे पैरको चोट न पहुँचे, इसी प्रकार अपना बुरा करनेवाले दूसरोंको कुछ भी नुकसान न पहुँचानेकी तनिक भी भावना न कर उन्हें शुद्ध व्यवहारके द्वारा सावधान अवश्य करते रहो, जिससे पुनः वैसा न होने पावे।

× × ×

याद रखो, बदला लेनेकी भावना परायेमें ही होती है, अपनेमें नहीं होती। जब तुम सारे विश्वमें आत्मभावना कर लोगे, तब तुम्हारे अंदर बदला लेनेकी भावना रहेगी ही नहीं। हाँ, जब किसी अङ्गमें कोई रोग होकर उसमें सड़न पैदा हो जाती है और जब उसके द्वारा सारे शरीरमें जहर फैलनेकी सम्भावना होती है तब जैसे उसके अंदरका दूषित मवाद निकालकर उसे शुद्ध, नीरोग और स्वस्थ बनानेके लिये ऑपरेशनकी आवश्यकता पड़ती है, वैसे ही कभी-कभी तुम्हें भी विश्वकी विशुद्ध हित-कामनासे उसके किसी अङ्गमें ऑपरेशन करनेकी आवश्यकता पड़ सकती है। परंतु इस ऑपरेशनमें तुम्हारा वही भाव हो जो अपने अङ्गको कटानेमें होता है। अवश्य ही शुद्ध व्यवहार होनेपर वैसी आवश्यकता भी बहुत कम ही हुआ करती है।—**'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर और संसार

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

एक सज्जन निम्नलिखित प्रश्न करते हैं। (प्रश्नकर्ताके अनुरोधके अनुसार प्रश्नोंकी भाषा कुछ सुधार दी गयी है) —

(१) वेद, पुराण, शास्त्र तथा अन्यान्य मतोंके ग्रन्थोंको देखनेसे प्रायः यही पता लगता है कि कर्मके अनुसार ही जीवात्मा एक योनिसे दूसरी योनिमें जन्म लेता है, यदि ऐसा ही है तो आरम्भमें जब संसार बना और प्रकृतिके भिन्न-भिन्न साँचों (देहों) में शुद्ध, निर्मल, कर्मशून्य आत्माका प्रवेश हुआ, उस समय आत्माको कौन-सा कर्म लागू हुआ ? यदि आत्माका आना-जाना स्वाभाविक है तो भक्तिकी क्या आवश्यकता ?

(२) आरम्भमें जब संसार बना और इसमें मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष आदिके साँचे (शरीर) बने तो वे कैसे बने ? क्या तत्त्वोंके परस्पर संयोगसे आप-ही-आप सब कुछ बन गया ? यदि ऐसा ही माना जाय तो इस समय भी प्रकृति, तत्त्व और आत्मा तो वही हैं, किंतु आप-से-आप कोई साँचा नहीं बनता। यदि यह माना जाय कि स्वयं शुद्ध-बुद्ध परमात्माने स्थूल शरीर धारणकर अपने हाथोंसे प्रत्येक साँचे (शरीर)को गढ़ा है, तो संतोंने परमात्माको निराकार क्यों बतलाया है ? स्त्री-पुरुषके संयोग बिना स्थूल शरीर बनना भी सम्भव नहीं। यदि किसी प्रकार बन भी जाय तो वह एकदेशीय व्यक्ति सर्वव्यापी नहीं हो सकता।

(३) ईश्वरने प्रकृति और संसारको बनाया, इसमें उसका क्या प्रयोजन था ?

इन प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—

(१) गुणों और कर्मोंके अनुसार ही जीवात्मा सदासे चौरासी लाख योनियोंमें जन्म लेता फिरता है। मनुष्य, कीट, पतंग आदि प्रकृति-रचित योनियाँ सृष्टिके आदिमें प्रकट होती हैं और सृष्टिके अन्तमें उसी प्रकृतिमें वैसे ही लय हो जाती हैं, जैसे नाना प्रकारके आभूषण स्वर्णसे उत्पन्न होकर अन्तमें स्वर्णमें ही लय हो जाते हैं। कारण-रूप प्रकृति अनादि है। जिसको जीवात्मा या व्यष्टि-चेतन कहते हैं, उसका इस प्रकृतिके साथ अनादिकालसे सम्बन्ध चला आ रहा है। अवश्य ही यह सम्बन्ध अनादि होनेपर भी प्रयत्न करनेसे छूट सकता है। इस सम्बन्ध-विच्छेदको ही मुक्ति कहते हैं और इस मुक्तिके लिये ही भक्ति, कर्म और ज्ञानादि साधन बतलाये गये हैं।

आत्माका आना-जाना ऐसा स्वाभाविक नहीं है जिसके रुकनेका कोई उपाय ही न हो । यदि यह कहा जाय कि 'जीवात्माका आना-जाना जब सदासे ही स्वभावसिद्ध है तो फिर वह सदा ही रहना भी चाहिये, क्योंकि जो वस्तु अनादि होती है वह सदा ही रहती है।' परंतु यह कथन ठीक नहीं, क्योंकि जीवात्माका आना-जाना अज्ञानजनक है। अज्ञान या भूल ही एक ऐसी वस्तु है जो अनादि होनेपर भी यथार्थ ज्ञान होनेके साथ ही नष्ट हो जाती है। यह बात सभी विषयोंमें प्रसिद्ध है। एक मनुष्यको जब किसी नये विषयका ज्ञान होता है तो उस विषयमें उसका पूर्वका अज्ञान नष्ट हो जाता है, परंतु वह अज्ञान यथार्थ ज्ञान न होनेतक तो अनादि ही था, उसके आरम्भकी कोई भी तिथि नहीं थी, जब भौतिक ज्ञानसे भी भौतिक अज्ञान नष्ट हो जाता है, तब परमार्थविषयक यथार्थ ज्ञान होनेपर अनादिकालसे रहनेवाले अज्ञानके नष्ट हो जानेमें आश्चर्य ही क्या है ? प्रत्युत इसमें एक विशेषता है कि परमात्माके नित्य होनेसे उसका ज्ञान भी नित्य है। इसी ज्ञानके लिये भक्ति आदि साधन करने चाहिये।

(२) प्रकृतिकी शुरुआतका बनाया हुआ कोई भी संसार नहीं माना जा सकता। शुरुआत माननेसे यह सिद्ध हो जायगा कि पहले संसार नहीं था, परंतु ऐसी बात नहीं है। उत्पत्ति-विनाश-स्वरूप प्रवाहमय संसार सदासे ही है, ऐसा माना गया है। यदि यह मान लें कि शुरू-शुरूमें तो किसी भी कालमें संसार बना ही होगा तो इससे शास्त्र-कथित संसारका अनादित्व मिथ्या हो जायगा। केवल शास्त्रोंकी ही बात नहीं, तर्कसे भी यह सिद्ध नहीं हो सकता। पूर्वमें यदि एक ही शुद्ध वस्तु थी, संसारका कोई बीज नहीं था तो वह किस कारणसे, कैसे और क्यों बनता ? अवश्य ही यह सत्य है कि सर्वशक्तिमान् ईश्वर अनहोनी बात भी कर सकता है, परंतु बिना ही कारण जीवोंके कोई भी कर्म न रहनेपर भी भिन्न-भिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थितियुक्त संसारको ईश्वर क्यों रचता ? यदि बिना ही कारण ईश्वरने यह भेदपूर्ण सृष्टि रची तो इससे ईश्वरमें वैषम्य और नैर्घृण्यका दोष आता है जो ईश्वरमें कदापि सम्भव नहीं।

यदि यह कहा जाय कि ईश्वर-सकाशके बिना ही केवल प्रकृतिसे ही संसारकी रचना हो गयी तो प्रथम तो प्रकृतिके जड होनेसे ऐसा सम्भव नहीं, दूसरे जब पहले प्रकृति शुद्ध थी तो पीछेसे किसी कालमें स्वभावसे उसमें नाना प्रकारकी विकृति, बिना ही बीज और बिना ही हेतुके कैसे उत्पन्न हो गयी ? यदि प्रकृतिका स्वभाव ही ऐसा है तो वह पहले भी वैसा ही होना चाहिये और यदि पहले भी ऐसा ही था तो विकृत-प्रकृति यानी संसार अनादि ठहर ही जाता है। अतएव 'पहले प्रकृति शुद्ध थी, स्वभावसे या ईश्वरकी इच्छासे अकारण ही संसारकी उत्पत्ति हो गयी' यह बात शास्त्र और तर्कसे सिद्ध नहीं होती। इससे यही समझना चाहिये कि परमात्मा, जीव, प्रकृति और प्रकृतिका कार्य, चराचर योनियोंसहित संसारकर्म और इनका परस्पर सम्बन्ध ये अनादि हैं। इनमें प्रकृतिका कार्यरूप संसार और कर्म तो उत्पत्ति-विनाशके प्रवाहरूपमें अनादि हैं। इनका स्थायी एक-सा स्वरूप नहीं रहता। इसलिये प्रकृतिके कार्यरूप संसार और कर्मको आदि-अन्तवाला, क्षणभंगुर, अनित्य और नाशवान् बतलाया है। प्रकृति और प्रकृतिका जीवके साथ सम्बन्ध अनादि हैं, परंतु सान्त हैं।

बहुत सूक्ष्म विचार और शास्त्रोंके सिद्धान्तोंका मनन करनेसे प्रकृति भी अनादि और सान्त ही ठहरती है। वेदान्त-शास्त्र प्रकृतिको परमेश्वरके एक अंशमें अध्यारोपित मानता है। वेदान्तके सिद्धान्तसे ज्ञान होनेपर अनादि प्रकृतिका भी अभाव हो जाता है। सांख्य और योगशास्त्र, जो अत्यन्त तर्कयुक्त दर्शन हैं और जो प्रकृति-पुरुषको अनादि और नित्य माननेवाले हैं, प्रकृति-पुरुषके संयोगको अनादि और सान्त मानते हैं। इनके संयोगके अभावको ही दुःखोंका अभाव मानते हैं और उसीको मुक्ति कहते हैं और यह भी मानते हैं कि जो जीव मुक्त या कृतकृत्य हो जाता है, उसके लिये प्रकृतिका विनाश हो गया, प्रकृति उन्हींके लिये रहती है जिनको ज्ञान नहीं है।

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात्।

(योग सू० २।२२)

इन दर्शनोंने यह भी माना है कि प्रकृति और पुरुषकी पृथक्-पृथक् उपलब्धि संयोगके हेतुसे होती है। इस संयोगका हेतु अज्ञान है। ज्ञान होनेपर तो उस आत्माकी 'केवल' अवस्था बतलायी गयी है, यदि सबकी मुक्ति हो जाय तो इनके सिद्धान्तसे भी प्रकृतिका अभाव सम्भव है, क्योंकि मुक्त ज्ञानीकी दृष्टिमें प्रकृतिका नाश हो जाता है। अज्ञानके कारण अज्ञानीकी दृष्टिमें प्रकृति रहती है। परंतु अज्ञानीकी दृष्टिका कोई मूल्य नहीं। ज्ञानीकी दृष्टि ही वास्तवमें सत्य है। अतएव सबको ज्ञान हो जानेपर किसी भी दृष्टिसे प्रकृतिका रहना सिद्ध नहीं हो सकता। इन सब सूक्ष्म विचारोंसे यही सिद्ध होता है कि प्रकृति और जीवोंके कर्म भी अज्ञानकी भाँति अनादि और सान्त ही हैं। ऐसी परम वस्तु तो एक आत्मा ही है जो अनादि, नित्य और सत् है।

न्याय और वैशेषिकके सिद्धान्तसे अनेक पदार्थोंको सत्य माना जाता है, परंतु उनकी सत्ता और सिद्धि तो थोड़ेसे विचारसे ही उड़ जाती है—जैसे वर्षासे बालूकी भीत बह जाती है या जैसे स्वप्नमें देखे हुए अनेक पदार्थोंकी सत्ता जागनेके बाद भिन्न-भिन्न नहीं रहकर एक द्रष्टा ही रह जाता है, ऐसे ही विचार करनेपर भिन्न-भिन्न सत्ताओंका अभाव होकर एक आत्म-सत्ता ही शेष रह जाती है। दूसरी सत्ताको स्थान दिया जाय तो स्वभाव या जिसे प्रकृति कहते हैं, उसको जगह मिल जाती है, परंतु वह ज्ञान न होनेतक ही रहती है। जिसको स्वप्न आता है, उस पुरुषके और उसके स्वभावानुसार संकल्पके अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तुकी सिद्धि नहीं हो सकती। स्वप्नसे जागनेके बाद स्वप्नके आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वीकी जो सत्ता ठहरती है, वही सत्ता इस संसारसे जागनेके बाद स्थूल आकाशादिकी ठहरती है, अतएव यह सोचना चाहिये कि स्वप्नके आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वीके परमाणुओंकी पृथक्-पृथक् सत्ता किस मूल भित्तिपर स्थित है ?

यह तो सिद्ध हो गया कि साँचे या शरीर उत्पत्ति-विनाश-रूपसे अनादि हैं, अब यह प्रश्न रह जाता है कि सृष्टिके आदिमें सर्वप्रथम ये कैसे बने ? अपने-आप बने या निराकार परमेश्वरने साकाररूपसे प्रकट होकर इनको बनाया अथवा निराकाररूपके द्वारा ही ये साकार साँचे ढल गये ? यदि निराकार ईश्वर साकार बना तो वह एकदेशी होनेपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वव्यापी कैसे रहा ?

—यह प्रश्न ऐसा नहीं है जिसपर बहुत सोचनेकी आवश्यकता हो। शान्तिपूर्वक विचार करनेपर इसका समाधान तो अनायास ही हो सकता है। महाप्रलयके आदिमें परमेश्वररूप पिता और प्रकृतिरूप माताके संयोगसे सब जीवोंके गुण-कर्मानुसार शरीर उत्पन्न होते हैं। गीतामें भगवान् कहते हैं—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥

(१४। ३-४)

'हे अर्जुन ! मेरी महद्ब्रह्मरूप प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया, सम्पूर्ण भूतोंकी योनि है, अर्थात् गर्भाधानका स्थान है और मैं उस योनिमें चेतनरूप बीजको स्थापन करता हूँ, इस जड-चेतनके संयोगसे सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है, तथा हे अर्जुन ! नाना प्रकारकी सब योनियोंमें जितनी मूर्तियाँ अर्थात् शरीर उत्पन्न होते हैं, उन सबकी त्रिगुणमयी माया तो गर्भको धारण करनेवाली माता है और मैं बीजको स्थापन करनेवाला पिता हूँ।'

यदि यह पूछा जाय कि दोनों पदार्थ आरम्भमें निराकार थे फिर इन दोनोंके सम्बन्धसे स्थूल देहोंकी उत्पत्ति कैसे हो गयी ? इसका उत्तर यह है कि जैसे आकाशमें सूर्यकी किरणोंमें निराकाररूपसे जल स्थित है, वही अव्यक्त सूक्ष्म जल वायुके संघर्षणसे धूमरूपको प्राप्त हो फिर बादलके रूपमें परिणत होकर स्पष्ट-रूपसे व्यक्त द्रव-जलके रूपमें होकर अन्तमें बर्फका पिण्ड बन जाता है, वैसे ही इस सृष्टिके आदिमें प्रकृतिमें लयरूपसे स्थित जीवसमूह भी परमेश्वरके संघर्षणसे बर्फ-पिण्डकी भाँति मूर्तरूपमें प्रकट हो जाते हैं। यह तो मानना ही होगा कि आकाशमें बर्फके पिण्ड स्थित नहीं हैं, होते तो वहाँ ठहर ही नहीं सकते। आकाशकी निराकारता भी स्पष्ट देखनेमें आती है, पर देखते-ही-देखते निर्मल आकाशमें मेघोंकी उत्पत्ति हो जाती है। विज्ञान और विचारसे यह सिद्ध है कि सूर्यकी किरणोंमें स्थित निराकार परमाणुरूप जल ही मेघ और स्थूलजलके रूपमें परिणत होता है। इसी प्रकार आकाशमें निराकाररूपसे रहनेवाली अग्नि कभी-कभी बादलोंके अंदर बिजलीके रूपमें चमकती हुई दीखती है। कभी कहीं गिरती है तो उस स्थानको जलाकर तहस-नहस कर डालती है। जब अग्नि और जल आदि स्थूल पदार्थ भी निराकारसे साकार बन जाते हैं, तब निराकार ईश्वर और प्रकृतिके संयोगसे साकार वस्तुका उत्पन्न हो जाना कौन बड़ी बात है ?

यह भी समझनेकी बात है कि जो साकार वस्तु जिससे उत्पन्न होती है वह लय भी उसीमें होती है। वायुके द्वारा निर्मल निराकार आकाशमें बिजली उत्पन्न होती है और फिर उसी आकाशमें शान्त हो जाती है। तेजके संघर्षणसे जलकी उत्पत्ति होती है, शीतसे उसका पिण्ड बन जाता है। फिर वही जल तेजसे तपाये जानेपर द्रव होकर भापके रूपमें परिणत होता हुआ अन्तमें आकाशमें जाकर रम जाता है। इसी प्रकार जीवोंके शरीर भी सृष्टिके आदिमें गुण-कर्मानुसार प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं और अन्तमें फिर उसीमें लीन हो जाते हैं। यह आदि-अन्तका प्रवाह अनादि है।

प्रकृतिका रूप किसी समय सक्रिय होता है और किसी समय अक्रिय, यह उसका स्वभाव है। जिस समय सत्, रज, तम तीनों गुण साम्यावस्थामें स्थित रहते हैं, तब यह गुणमयी प्रकृति अक्रियरूपमें रहती है और जब तीनों गुण विषमावस्थाको प्राप्त हो जाते हैं, तब प्रकृतिका रूप सक्रिय बन जाता है। सक्रिय प्रकृति ईश्वरके सम्बन्धसे गर्भस्थ जीवोंको मूर्तरूपमें प्रकट करती है। भगवान् कहते हैं—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥

'हे अर्जुन ! मुझ अधिष्ठाताके सकाशसे यह मेरी माया चराचरसहित समस्त जगत्को रचती है और इसी उपर्युक्त हेतुसे यह संसार आवागमनरूप चक्रमें घूमता है।'

परमेश्वर निराकार रहते हुए भी साकाररूप धारणकर किस प्रकार सर्वव्यापी रहता है, इस बातको समझनेके लिये अग्निका उदाहरण सामने रखना चाहिये। एक निराकार अग्नि सर्वत्र व्याप्त है, वही हमारे शरीरके अंदर भी है जो खाये हुए अन्नको पचा देती है। अग्नि न हो तो अन्न पचे नहीं और यदि वह व्यक्त हो तो शरीरको भस्म कर दे। इससे सिद्ध होता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे अंदर अव्यक्त अग्नि है। यही सर्वत्र व्याप्त निराकार अव्यक्त अग्नि ईंधन और संघर्षणसे साकार बन जाती है। जिस समय अग्निका साकाररूप नहीं होता, उस समय भी वह काठ आदिमें निराकाररूपसे रहती है। न रहती तो संघर्षणसे प्रकट कैसे होती ? फिर वही अग्नि जब शान्त कर दी जाती है, तब फिर निराकाररूपमें परिणत हो जाती है। जिस समय वह ज्वालाके रूपमें एक स्थानमें प्रकट होती है, उस समय कोई भी यह नहीं कह सकता कि जब अग्नि यहाँ प्रकट हो गयी तो अन्यान्य स्थानोंमें नहीं है। यह निश्चित बात है कि एक या अनेक जगह एक ही साथ प्रकट होनेपर भी निराकार अग्नि व्यापकरूपसे सभी जगह वर्तमान रहती है। इसी प्रकार परमात्मा भी मायाके सम्बन्धसे एक या अनेक जगह साकाररूपसे प्रकट होकर भी उसी कालमें निराकार व्यापकरूपसे सर्वव्यापी रहता है। उसकी सर्वव्यापकता और पूर्णतामें कभी कोई कमी नहीं हो सकती। अग्निका उदाहरण भी केवल समझानेके लिये ही दिया गया है। वास्तवमें परमात्माकी सर्वव्यापकताके साथ अग्निकी सर्वव्यापकताकी तुलना नहीं हो सकती !

(३) प्रकृतिको ईश्वरने नहीं बनाया, प्रकृति तो उसी वस्तुका नाम है जो सदासे स्वाभाविक ही हो। अवश्य ही चराचर-जगत्को भगवान्ने बनाया है। इसमें उन न्यायकारी, सर्वव्यापी, दयामय परमात्माकी अहैतुकी दया ही समझनी चाहिये। जिन जीवोंके पूर्वमें जैसे गुण और कर्म थे, उन सब चराचर जीवोंको भगवान् उन्हींके गुण-कर्मानुसार देहसहित उत्पन्न करते हैं। स्वार्थ, आसक्ति और हेतुरहित न्यायकर्ता होनेके कारण जीवोंके गुण-कर्मानुसार रचयिता होनेपर भी भगवान् अकर्ता ही माने जाते हैं। परंतु जीवोंका दुःख दूर करनेको वे अपनी मर्यादाके अनुसार सदा-सर्वदा उनके लिये दयायुक्त विधान ही किया करते हैं। यहाँतक कि समय-समयपर अपनी प्रकृतिको वशमें करके सगुण साकार-रूपमें प्रकट होकर जीवोंके कल्याणार्थ प्रयत्न करते हैं। ऐसे अहैतुक दयालु और परम सुहृद् परमात्माका भजन करना ही जीवमात्रका कर्तव्य है।

श्रद्धा-विश्वास

(स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती)

[गताङ्क पृ० सं० ८२९ से आगे]

विश्वास बहुत उत्तम वस्तु है और इसके बिना काम चल भी नहीं सकता। तथापि यदि यह अपात्र या कुपात्रमें किया जाय तो विनाशकारी सिद्ध होता है। जैसे दूध अमृततुल्य होता है, फिर यदि उसको छाछके बर्तनमें डाल दिया जाय तो वह विकृत हो जाता है, फिर उसको पीनेसे लाभके बदले हानि होती है। शुद्ध बर्तनमें रखा हुआ दूध एक बालक पीता है तो उसके अङ्गकी पुष्टि होती है, परंतु वही दूध यदि सर्प पी ले तो वह विषरूप बन जाता है और मनुष्यका प्राण ले सकता है। इसी प्रकार विश्वास एक सहज वस्तु है और इसके बिना कोई व्यवहार नहीं चलता। फिर भी, उसमें यदि विवेकबुद्धिका उपयोग न हो तो लाभके बदले हानि करता है। मनुष्यकी विशेषता तो विवेकबुद्धिका उपयोग करनेमें ही है।

हम एक अपरिचित गाँवमें जाते हैं। किसी रास्ते या स्थानपर कई मोड़ आते हैं और हम सामने आनेवाले किसी भी आदमीसे पूछते हैं, वह जिधर मुड़नेके लिये कहता है, हम उसी दिशामें जाते हैं। सम्भव है कि वह कोई ठग हो और हमें हैरान करनेके लिये विपरीत बता रहा हो तथापि हम उसकी बातपर विश्वास रखकर उस दिशामें चल पड़ते हैं। यह अन्धविश्वास है या और कुछ ?

अपने घर एक रसोइया है। वह जब रसोई बनाता है, तब उसपर कोई ध्यान भी नहीं रखता। फिर भी उसकी बनायी रसोई हम रोज खाते हैं। सम्भव है कि वह धर्मके विचारसे शून्य लोभी-लालची हो और हमारा कोई शत्रु उसे सौ-दो-सौ रुपये देकर हमारे भोजनमें विष मिलवा दे एवं लोभके वश वह आदमी ऐसा कर बैठे। ऐसा सम्भव होनेपर भी, हम उस रसोइयेमें दृढ़ विश्वास रखते हैं। यह अन्धविश्वास है या और कुछ ? हम अपने घर बैठे हैं, पेटमें दर्द शुरू हुआ और दस्त होने लगे। हमने डाक्टरको बुलानेके लिये फौरन एक आदमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजा। हमारा परिचित डाक्टर गाँवसे बाहर गया था। यह समाचार पाकर हमने किसी दूसरे अपरिचित डाक्टरको बुला लिया और उसकी दी हुई दवा विश्वासपूर्वक खा ली। उससे हम अच्छे भी हो सकते हैं और नहीं भी—इसका नाम अन्धविश्वास है या और कुछ ?

अब विचार करके देखिये। इस संसारके किसी भी काममें विश्वासके बिना काम नहीं चलता और हम सहज भावसे जहाँ-तहाँ विश्वास करते भी हैं। उसमें सभी आदमी विश्वासयोग्य नहीं भी होते, यह जानते हुए भी हमको उनपर विश्वास करना पड़ता है। क्योंकि किसी-न-किसी मनुष्यके ऊपर विश्वास रखे बिना जीवन-निर्वाह हो नहीं सकता। इस प्रकार विवश होकर हम सबके ऊपर विश्वास करते हैं, फिर भी ऐसा अभिमान रखते हैं कि हम अन्धविश्वास नहीं करते।

अब जरा और विचार कीजिये। ईश्वर, सद्गुरु और सत्-शास्त्रके ऊपर विश्वास करना अन्धविश्वास कैसे कहला सकता है ? ईश्वर सर्वशक्तिमान् तथा सर्वज्ञ है, वह प्राणिमात्रका परम सुहृद् है, इसलिये उसपर विश्वास करनेसे ठगे जानेका भय रहता ही नहीं, बल्कि एक सच्चा अवलम्बन होनेसे हमारा जीवन सुखरूप बन जाता है। सद्गुरु श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ हैं, उनको कोई लोकैषणा या वित्तैषणा है ही नहीं, जिससे वे हमको ठग सकते हों। अपने स्वार्थके बिना मनुष्य कभी किसी दूसरेको नहीं ठगता। सद्गुरुके लिये तो जगत्का कल्याण करना ही स्वार्थ है। इसके सिवा उनका कोई दूसरा लौकिक ध्येय नहीं होता। इसलिये ईश्वर और सद्गुरुके ऊपर विश्वास रखना अन्धविश्वास कैसे कहला सकता है ? फिर, तपस्वी तथा जगत्के कल्याणकी ही कामनावाले ईश्वरका साक्षात्कार प्राप्त किये हुए आप्तकाम और त्रिकालदर्शी ऋषियोंने जिन सत्-शास्त्रोंकी रचना की है, उनके ऊपर यदि विश्वास न करें तो फिर अन्य किसके ऊपर विश्वास करें ? उनसे अधिक विश्वसनीय दूसरा क्या हो सकता है ? इस प्रकार ईश्वर, सद्गुरु तथा सत्-शास्त्र हमारे हितैषी हैं तथा सर्वज्ञ हैं और इस कारण सच्चा मार्ग-दर्शन करानेवाले हैं। इसलिये इनपर विश्वास करनेको यदि अन्धविश्वास कहा जाय तो वह दुराग्रह और मूढ़ताके सिवा और क्या है ?

परंतु आजका बुद्धिमान् (?) मनुष्य उलटी ही राह चलता है। जो अत्यन्त विश्वसनीय है, वहाँ विश्वास करते डरता है तथा जहाँ विश्वास करनेका तनिक भी अवकाश नहीं, वहाँ आँखें मूँदकर विश्वास करता है और कहता है कि हम कहीं भी अन्धविश्वास नहीं करते। भलीभाँति न्यायपूर्वक देखें तो आजका मानव अन्धविश्वासमें ही जीवनयापन करता है और परम श्रद्धेय एवं विश्वसनीय स्थानमें वह विश्वास नहीं करता।

आजका सुशिक्षितवर्ग आधुनिक भौतिक विज्ञानमें ही जो अचल श्रद्धाका सेवन करता है और उनके विधानमें पूर्ण विश्वास रखता है, वह अन्धविश्वास है या नहीं, यह देखना चाहिये। पहले विश्वकी उत्पत्तिके लिये नेबुलाके सिद्धान्तको लीजिये। सूर्य एक धधकता हुआ गोला था और उसमेंसे अलग निकले हुए कुछ टुकड़े आजके हमारे सूर्यलोक हैं, यह सिद्धान्त माना जाता है और इसको हम आँखें मूँदकर स्वीकार कर लेते हैं। अब यदि तनिक विचार करें तो जान पड़ेगा कि यह बात मनकी एक निरंकुश कल्पनाके सिवा और कुछ भी नहीं है। फिर इस विश्वासको क्या कहा जाय, इसे पाठक ही निश्चय करें।

एक दूसरे सिद्धान्तको चार्ल्स डार्विनने विकासवाद कहकर पुकारा और यह निश्चय किया कि यह विशाल प्राणि-जगत् एक कोषवाले एक क्षुद्र जन्तुसे विकसित होते-होते बना है और वे मानवको वानरोंका वंशज मानते हैं। केवल समान आकृतिको लेकर ही एकमेंसे दूसरी जाति उत्पन्न होती है, ऐसा मानें तो फिर छिपकली, गिरगिट, चन्दनगोह, पाटागोह और छोटे-बड़े मगर आदि सब करीब-करीब एक ही आकृतिके प्राणी हैं, पर इससे यह नहीं कहा जा सकता कि विकासक्रमसे एकसे दूसरेका निर्माण हुआ है। डार्विनने बड़ा परिश्रम करके एक पूरी शृङ्खला तैयार की और जहाँ-जहाँ बिचली कड़ी नहीं मिली, वहाँ-वहाँ वे जातियाँ लुप्त हो गयीं, ऐसा मान लेनेका निश्चय किया। अब इस कपोलकल्पित सिद्धान्तमें कोई विश्वास करे तो उसको क्या कहेंगे, इसका निर्णय भी पाठक ही करें।

विश्वविद्यालयके प्रख्यात उपाधिधारी एक वैज्ञानिकने कुछ दिनों पहले यह प्रकट किया था कि मूँगफलीका मक्खन और उसका दूध बहुत अच्छा होता है, इसका उपयोग करना चाहिये। इसको बनानेकी रीति भी उन्होंने बतायी थी। उनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले पानीमें भिगोकर उसका लाल छिलका उतार ले और तब उसको महीन कूटकर पीस ले और उसका लोंदा बना ले। बस, मक्खन बन गया और उस लोंदेको पानीमें घोल ले तो वह दूध बन जायगा। जो मक्खन-जैसा दीख पड़े वह सब मक्खन और जो दूध-सा दिखायी दे वह दूध। यदि ऐसी ही बात हो तो पानमें खानेको जमाया हुआ चूना मक्खनकी अपेक्षा भी अधिक मुलायम और गाढ़ा होता है और उसको यदि थोड़े पानीमें घोल दिया जाय तो वह प्रवाही दूधकी अपेक्षा भी अधिक सफेद और गाढ़ा होता है। इन वैज्ञानिकोंने इस (चूनेके) मक्खन और दूधके लिये आग्रह क्यों नहीं किया, यह समझमें नहीं आता। इस बातको जिसने सच्चा समझा हो, उसको क्या कहा जाय? इसका विचार भी आप ही करें।

अपनेको मनोवैज्ञानिक कहनेवाले श्रीफ्रायड महाशयने कहा है कि 'पशु इन्द्रियसंयमका पालन नहीं करते, इससे उनको कोई रोग नहीं होता और वे जीवनभर स्वस्थ रहते हैं। इसलिये मनुष्यको भी यदि स्वस्थ रहना हो और रोगोंको न आने देना हो तो इन्द्रियोंको स्वच्छन्द विचरण करने देना चाहिये।' यह बात हमारे शास्त्रोंसे ठीक उलटी है और फिर भी आँखें मूँद करके इसे हमने सच्ची मान ली है। इसके फलस्वरूप अपने पवित्र देशमें आज अनाचार, दुराचार और यौन रोग बढ़ते जा रहे हैं। इस विश्वासको क्या कहें?

सारांश यह है कि हमारा चश्मा ही उलटा हो गया है, जिससे अच्छी वस्तु बुरी दीखती है और जो अन्धविश्वास है, वह सच्चा विश्वास दिखायी देता है। प्राथमिक शिक्षामें ही हमको यह सिखाया गया है कि हमारे बाप-दादे तो बिलकुल जंगली थे। इस कारण उनके रचे शास्त्रोंमें कोई भी बात सच्ची हो ही नहीं सकती। हम भी ऐसे जंगली हैं कि इस बातको सच्ची मान बैठे। इसीका यह परिणाम है कि आज ईश्वर तथा सत्-शास्त्रोंमें हमारा विश्वास नहीं रहा। हम यह कहना सीख गये हैं कि हमारे यहाँ जो कुछ लिखा गया है, वह सब झूठ और निराधार है तथा अंग्रेजीमें जो लिखा जाता है, वह सच्चा और विश्वसनीय ही है।

डाक्टरी जगत्का ही एक विषय लीजिये। उसके मुखपत्र लान्सेटमें जो लिखा गया हो, वह ब्रह्माके वाक्यसे भी अधिक विश्वसनीय है, ऐसा डाक्टर लोग मानते हैं। किसी कम्पनीने कोई दवा तैयार की, उसने किसी प्रतिष्ठित डाक्टर या वैज्ञानिकको राजी करके उससे एक प्रमाणपत्र प्राप्त कर लिया और 'लान्सेट'में उसके विषयमें एक सुन्दर लेख लिखकर भेज दिया। बस, उसके प्रकाशित होते ही डाक्टर लोग आँख मूँदकर उस दवाका प्रयोग करने लगते हैं और ढेर-का-ढेर वह माल हमारे देशमें आकर उतरने लगता है। पीछे भले ही भूतकालमें जैसा हुआ वैसे ही, भविष्यमें वह दवा भी हानिकारक सिद्ध हो जाय, परंतु वर्तमान कालमें तो कम्पनीका पाकेट गरम हो ही जायगा। इसका नाम अन्धविश्वास नहीं तो और क्या है?

विलायतके डाक्टरने कहा कि खूब साग-भाजी खाओ तथा साथ ही कच्चा कचुंबर खाते जाओ तो आरोग्य बना रहेगा। बस, हमारे डाक्टरोंने इसे आँख मूँदकर मान लिया है। सच है—'**आज्ञा गुरूणामविचारणीया।**' हमारे डाक्टरोंके तो वे ही गुरु हैं। इसलिये उनके वचनपर विचार भी नहीं किया जा सकता। इस प्रकार हमारे डाक्टरोंने बहुत अधिक साग खानेवाले बना दिये और अर्थकष्ट बढ़ा दिया।

अब देखिये, वे लोग तो मांसाहारी हैं। मांसके साथ यदि रेशेवाले पदार्थ पर्याप्त मात्रामें नहीं खाये जायँ तो मांस अँतड़ियोंमें ही सड़ने लगता है और इससे मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। यह एक ही तथ्य इतना प्रमाणित करनेमें पर्याप्त है कि मनुष्य मांसाहारी प्राणी नहीं है। तथापि उन जातियोंमें मांस-भक्षणके विषयमें इतनी बड़ी अन्धश्रद्धा है कि उसके बिना तो वे जी ही नहीं सकते—ऐसा वे मानते हैं। इस कारण वे मांस खाना छोड़ नहीं सकते। बुद्धिसे तो यह बात समझते हैं, परंतु अन्धविश्वासके कारण मांस खाना उनसे छूटता नहीं।

इस प्रकार अधिक साग खानेकी बात मांस खानेवाले लोगोंके लिये सोलहों आने सच्ची है, परंतु साथ ही यह भी उतनी ही सच्ची बात है कि हम निरामिषभोजियोंके लिये साग-भाजीकी इतनी आवश्यकता नहीं है। परंतु यह बात डाक्टरोंके ध्यानमें ही नहीं आयी। अन्धानुकरण करनेकी जो टेव पड़ गयी है, इससे स्वतन्त्र विचार ही नहीं हो सकता। थोड़ा भी विचार करनेसे यह ज्ञात हो जाता है कि हम जो गेहूँ, ज्वार, बाजरा, मकई आदि अनाज तथा मूँग, मोठ, उड़द,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरहर, चना आदि दाल खाते हैं, वे सब सागकी कोटिमें ही हैं। आज भी गाँवोंमें 'साबित उड़दका साग बनाया था', 'मूँगकी दालका साग किया था' इस प्रकारके शब्दप्रयोग सुननेको मिलते हैं। हम जो घी, तेल, दूध आदि खाते हैं, वह बहुत ही अल्प परिमाणमें होता है और वह योगवाही ढंगसे ही काम करता है। इस प्रकार हमारे लिये साग-भाजी निरर्थक है, फिर भी डाक्टरोंने इसका भूत ऐसा घुसेड़ दिया है कि साग-सब्जीका उपयोग बढ़ता जा रहा है और उसी परिमाणमें निर्धनता भी बढ़ती जा रही है।

अरे अविश्वासी मनुष्य ! ईश्वर, सद्गुरु और सत्-शास्त्रके ऊपर तो तुम विश्वास रखते नहीं तथा इस प्रकारके विश्वासको तुम अन्धविश्वास मानते हो। परंतु विश्वासके बिना तो तुम्हारे जीवनका निर्वाह भी नहीं होता, यानी तुमको अति तुच्छ और पामर-प्राणियोंपर विश्वास करना पड़ता है। यह क्या अन्धविश्वास नहीं है ? इसलिये मानव ! अब भी जरा चेत जाओ और अपना कल्याण चाहते हो, दुःखके समुद्रसे निकलना चाहते हो तथा अखण्ड सुख-शान्ति एवं आनन्दमय जीवन प्राप्त करना चाहते हो तो अब भी ईश्वरमें, गुरुमें तथा ऋषिप्रणीत अपने शास्त्रोंमें विश्वास करो। यह अन्धविश्वास नहीं है। परंतु इसके अतिरिक्त, दूसरे प्राणिपदार्थोंमें किया गया विश्वास ही अन्धविश्वास है, क्योंकि वे राग-द्वेषसे भरपूर होते हैं, इसलिये कब दगा देंगे—यह कहा ही नहीं जा सकता। उनमें जहाँ स्वार्थपरता है, वहाँ इनमें परार्थपरता है।

जिस मनुष्यका ईश्वरमें विश्वास नहीं है, उसका जीवन बिना लंगरके जहाजके समान है। जिस जहाजमें लंगर नहीं होता, वह हवाके झकोरोंसे चारों दिशाओंमें जहाँ-तहाँ थपेड़े खाया करता है और जो जहाज लंगर डाल देता है, वह अपनी जगहपर अचल टिक सकता है। इसी प्रकारसे जिस मनुष्यको ईश्वरमें दृढ़ श्रद्धा है और उसके विधानमें अविचल विश्वास है, उसका जीवन सुख-दुःखके झपेटेके बीच भी निश्चल और शान्त रह सकता है तथा जिस मनुष्यका ईश्वरके ऊपर विश्वास नहीं, वह पग-पगपर सुख-दुःखमें डोला करता है और कहीं भी शान्तिसे विश्राम नहीं पाता। अन्तमें जन्म-मृत्युके चक्करमें भटकता हुआ अनन्त कालतक अपार क्लेश भोगता रहता है।

अब विचार तो करो। धूपमें चलता हुआ मुसाफिर एक वृक्षका आश्रय लेता है। वृक्ष तो जड है तथापि उसको शीतल छाया देता है तथा ऋतुके अनुसार फल-फूलसे भी संतुष्ट करता है। किसी गृहस्थ या राजाकी शरणमें जानेपर वह भी मनुष्यकी यथाशक्ति सहायता करता है तथा उसके दुःख दूर करनेमें सहायक बनता है।

परम दयालु परमात्मा, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके रक्षक, सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वर—ऐसे विश्वम्भर जो प्राणिमात्रके परम सुहृद् और हितैषी हैं, उनके ऊपर श्रद्धा रखकर, उनके विधानमें विश्वास करके, उनकी शरणमें जानेवाला मनुष्य निहाल हुए बिना रह ही नहीं सकता। उसके सारे पाप-ताप तत्काल ही निवृत्त हो जाते हैं और उसको अखण्ड आनन्द तथा अविचल शान्ति मिलती है। इसीलिये भगवान्ने प्रत्येकको आग्रहपूर्वक कहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

निराशा

अचल तपस्या नहीं ध्रुवके समान नाथ !
देने वरदान जिसे मृत्युलोक आवेंगे।
भक्त भी नहीं हूँ प्रह्लादके सदृश अनन्य,
जिसकी रक्षाके हेतु खम्भ फाड़ धावेंगे॥
'नन्दन' हूँ दीन, बलिके समान दानी नहीं,
तो फिर क्यों बामन हो रूप दिखलावेंगे।
अवध-निवासी नहीं, वृन्दावनवासी नहीं,
तो ये पापराशी दृग कैसे दर्श पावेंगे॥

—भगवतीप्रसाद मिश्र 'नन्दन'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमभक्तिमें भगवान् और भक्तका सम्बन्ध

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान्‌का वास्तविक स्वरूप कैसा है इस बातको भगवान् ही जानते हैं। या किसी अंशमें वे जानते हैं, जिनको भगवान् जनाना चाहते हैं। आजतक जगत्‌में कोई भी यह नहीं कह सका कि भगवान् ऐसे ही हैं, न कोई कह सकता है और न कह सकेगा। यदि कोई ऐसा कहनेका साहस करता है तो वह या तो भोला है, या आग्रही अथवा मिथ्यावादी है। ऐसा होनेपर भी भगवान्‌के जितने वर्णन जगत्‌में हुए हैं, वे अपने-अपने स्थानमें सभी सच्चे हैं। क्योंकि महान् परमात्मामें सभीका अन्तर्भाव है, जैसे अनन्त आकाशमें सभी मठाकाश, घटाकाश समाते हैं। किसी गाँवमें होनेवाली घटनाको लेकर हम कहें कि जगत्‌में ऐसा होता है तो ऐसा कहना मिथ्या नहीं है, क्योंकि गाँव जगत्‌में ही है, अतएव वह जगत् ही है, परंतु यह बात नहीं कि जगत् वह गाँव ही है। फिर जगत्‌का तो वर्णन हो भी सकता है, क्योंकि वह प्राकृतिक, ससीम और सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा आकलन करने योग्य है, परंतु अप्राकृतिक, असीम, अनन्त, अपार, अकल, अलौकिक परमात्माका वर्णन तो हो ही नहीं सकता, इसीलिये वेद उन्हें 'नेति-नेति' कहकर चुप हो जाते हैं। निर्गुण अक्षरब्रह्म, विकारशील और जड अपरा प्रकृतिमें स्थित निर्विकार परा प्रकृतिरूप जीवात्मा, अपरा प्रकृति और उसके विकारसे उत्पन्न उत्पत्ति और विनाश धर्मवाले सब पदार्थ, भूतोंका उद्‌भव और अभ्युदय करनेवाला विसर्गरूप कर्म, व्यक्त जगत्‌का अभिमानी सूत्रात्मा अधिदैव और इस शरीरमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित विष्णुरूप अधियज्ञ—ये सब उस नित्य निर्विकार सच्चिदानन्दघन भगवान्‌के विशेष भाव हैं, या उसके आंशिक प्रकाश हैं। अवश्य ही स्वभावसे ही पूर्ण होनेके कारण आंशिक प्रकाश होनेपर भी भगवद्रूपमें सभी पूर्ण हैं। ऐसे सबमें स्थित, सर्व-नियन्ता, सर्वाधार, सबको सत्ता और शक्ति देनेवाले, सबके अद्वितीय कारण, सबसे परे और सर्वमय भगवान्‌का वर्णन कौन कर सकता है ?

भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥

(९।४-५)

'मुझ अव्यक्तमूर्तिके द्वारा यह सारा जगत् व्याप्त हो रहा है, सब भूत मुझमें हैं, परंतु मैं उनमें नहीं हूँ, वे सब भूत भी मुझमें नहीं हैं, मेरा यह ऐश्वरयोग देखो कि सम्पूर्ण भूतोंका उत्पन्न और धारण-पोषण करनेवाला होकर भी मैं स्वरूपतः उन भूतोंमें स्थित नहीं हूँ।'

भगवान्‌के इस कथनमें परस्पर विरोधी बातें प्रतीत होती हैं, 'मैं सबमें हूँ और किसीमें नहीं हूँ, सब मुझमें हैं और कोई भी मुझमें नहीं है।' इस कथनका कोई अर्थ सहज ही समझमें नहीं आता। इसीलिये 'परमार्थ' और 'व्यवहार' का भेद करके इसकी व्याख्या की जाती है। परंतु यही तो भगवान्‌का 'ऐश्वरयोग' है। हमारी विषयविमोहित जडबुद्धि इसे कैसे जान सकती है ? हमारे लिये जो असम्भव है, भगवान्‌के लिये वह सब कुछ सम्भव है। भगवान्‌में सब विरोधोंका समन्वय है। इसीलिये तो भगवान्‌का किसी भी प्रकारसे किया हुआ वर्णन भगवान्‌के लिये सत्यरूपसे लागू होता है।

भगवान् निर्गुण भी हैं, सगुण भी, निराकार भी हैं, साकार भी। वे निष्क्रिय, निर्विशेष, निर्लिप्त और निराधार होते हुए ही सृष्टि, स्थिति, संहार करनेवाले, सविशेष, सर्वव्यापी और सर्वाधार हैं। सांख्योक्त परस्पर विलक्षण अनादि पुरुष और प्रकृति, चेतन और अचेतन दोनों शक्तियाँ, जिनसे सारा जगत् उत्पन्न होता है— भगवान्‌की ही परा और अपरा प्रकृति हैं। इन दो प्रकारकी प्रकृतियोंके द्वारा वस्तुतः भगवान् ही अपनेको प्रकट कर रहे हैं। वे सबमें रहकर भी सबसे परे हैं। वे ही सबको देखनेवाले उपद्रष्टा हैं, वे ही यथार्थ सम्मति देनेवाले अनुमन्ता हैं, वे ही सबका भरण-पोषण करनेवाले भर्ता हैं, वे ही जीवरूपसे भोक्ता हैं, वे ही सर्वलोक-महेश्वर हैं, वे ही सबमें व्याप्त परमात्मा हैं और वे ही समस्त ऐश्वर्य-माधुर्यसे परिपूर्ण भगवान् हैं। वे एक होनेपर भी अनेक रूपोंमें विभक्त हुए-से जान पड़ते हैं। अनेक रूपोंमें व्यक्त होनेपर भी एक ही हैं। व्यक्त, अव्यक्त और अव्यक्तसे भी परे सनातन अव्यक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे ही हैं; क्षर, अक्षर और अक्षरसे भी उत्तम पुरुषोत्तम वे ही हैं। वे अपनी ही महिमासे महिमान्वित हैं, अपने ही गौरवसे गौरवान्वित हैं और अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित हैं।

इन भगवान्‌का यथार्थ स्वरूपज्ञान या दर्शन इनकी कृपाके बिना नहीं हो सकता। ये जिसपर अनुग्रह करके अपना ज्ञान कराते हैं, वे ही इन्हें जान सकते हैं और कृपा भक्तोंपर ही व्यक्त होती है। भक्तिरहित कर्मसे, प्रेमरहित ज्ञानसे भगवान्‌का यथार्थ स्वरूप नहीं जाननेमें आता। निष्काम कर्मसे भगवान्‌का ऐश्वर्यरूप जाना जाता है और तत्त्वज्ञानसे उनका अक्षर परब्रह्मरूप, परंतु उनके पुरुषोत्तम भावका तो अनन्य प्रेमभक्तिसे ही साक्षात्कार होता है। वैधी भक्ति करते-करते जब वह दिव्य प्रेमरूपमें परिणत होती है। जब भगवान्‌की अचिन्त्य शक्ति और अनिर्वचनीय ऐश्वर्यको जानकर भक्त केवल उन्हींको परम गति, परम आश्रय और परम शरण्य मानकर बुद्धिसे, मनसे, चित्तसे, इन्द्रियोंसे और शरीरसे सब भाँति सर्वथा अपनेको उनके चरणोंमें निवेदन कर देता है। जब वह उन्हींको मन दे देता है, उन्हींमें बुद्धि लगा देता है, उन्हींको जीवन अर्पण कर देता है, उन्हींकी चर्चा करता है, उन्हींके नाम-गुणका गान करता है, उन्हींमें संतुष्ट रहता है और उन्हींमें रमण करता है। इस प्रकार जब देह-मन-प्राण, काल-कर्म-गुण, लौकिक और पारलौकिक भोग, आसक्ति, कामना, वासना सब कुछ उनके अर्पण कर देता है। तब भगवान् उस प्रेमसे भजनेवाले भक्तको अपनी वह दिव्य बुद्धि दे देते हैं, जिससे वह अनायास ही उनको समग्ररूपमें— पुरुषोत्तमरूपमें पा जाता है।

भगवान्‌ने घोषणा की है कि मैं जैसा भक्तिसे शीघ्र मिलता हूँ, वैसा अन्य किसी साधनसे नहीं मिलता—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥

'जिस प्रकार मेरी अनन्य भक्ति मुझे वशमें करती है, उस प्रकार मुझको योग, ज्ञान, धर्म, स्वाध्याय, तप और त्याग वशमें नहीं कर सकते।'

गीतामें भगवान् कहते हैं—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(११।५३-५४)

'हे परंतप अर्जुन! जिस प्रकारसे तुमने मुझको देखा है, इस प्रकारसे मैं न वेदोंसे (ज्ञानसे), न तपसे, न दानसे और न यज्ञसे ही देखा जा सकता हूँ। इस प्रकारसे मैं केवल अनन्य भक्तिसे ही तत्त्वसे जाना जा सकता हूँ, प्रत्यक्ष देखा जा सकता हूँ, और अपनेमें प्रवेश करा सकता हूँ, अभिन्नभावसे अपने अंदर मिला सकता हूँ।'

एक बात और है—ज्ञानके साधनमें भगवान् निर्गुण, निराकार, निरंजन, परम अज्ञेयतत्त्व हैं और ज्ञानयुक्त कर्ममें भगवान् सर्वैश्वर्यसम्पन्न, सर्वगुणाधार, सर्वाश्रय, सर्वेश्वर, सृष्टिकर्ता, पालन और संहारकर्ता, नियन्त्रणकर्ता प्रभु हैं, परंतु भक्तिमें भगवान् ये सब होते हुए ही भक्तके निजजन हैं। भक्ति विश्वातीत और गुणातीत तथा विश्वमय और सर्वगुणमय परमात्माका अवतरण कराकर, उन्हें नीचे उतारकर भक्तके साथ आत्मीयताके अत्यन्त मधुर बन्धनमें बाँध देती है। भक्तिका साधक—प्रेमी भक्त भगवान्‌को केवल सच्चिदानन्दघन ब्रह्म या सर्वलोक महेश्वर ऐश्वर्यमय स्वामी ही नहीं जानता, वह उन्हें अपने परम पिता, स्नेहमयी जननी, प्राणोपम सुहृद्, प्यारे सखा, प्राणेश्वर पति, प्रेममयी प्राणेश्वरी, जीवनाधार पुत्र आदि प्राणों-के-प्राण और जीवनों-के-जीवन परम आत्मीयरूपमें प्राप्त करता है। भगवान्‌के दिव्य स्नेह, अलौकिक प्रेम, अनुपमेय अनुग्रह, परम सुहृदता, अनिर्वचनीय दिव्य नित्य सौन्दर्य, और नित्य नवीन माधुर्यका साक्षात्कार और उपभोग भक्तिके द्वारा ही किया जा सकता है, निरे ज्ञान और कर्मके द्वारा नहीं। जिनमें भक्ति नहीं है, उनकी तो कल्पनामें भी यह बात नहीं आ सकती कि भगवान् हमारे पिता-पुत्र, मित्र-बन्धु और जननी-पत्नी भी बन सकते हैं। इसी प्रेमरूपा भक्तिके प्रभावसे भगवान्‌के दिव्य अवतार होते हैं, इसीके प्रतापसे भक्त अपने भगवान्‌की दिव्य लीलाओंका आस्वादन करता है। और इसीके कारण भगवान्‌को जगत्‌के सामने अपना महत्त्व छिपाकर परम गोपनीय भावसे भक्तके सामने अपने परम तत्त्वका अपने ही श्रीमुखसे प्रकाश करना पड़ता है। तर्कशील अभक्तोंके लिये यह तत्त्व सर्वथा गुप्त ही रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌का अपने प्रेमी भक्तोंके साथ बिलकुल खुला व्यवहार होता है। क्योंकि वहाँ योगमायाका आवरण हटाकर ही लीला करनी पड़ती है। उनके सामने सभी तत्त्वोंका प्रकाश हो जाता है। निर्गुण-निराकार दोनों ही रूपोंका परम रहस्य भगवान् खोल देते हैं। इसीलिये भगवान्‌ने भक्तिकी इतनी महिमा गायी गयी है। और इसीलिये परम चतुर ऋषि-मुनि भी भक्तिके लिये लालायित रहते हैं।

भगवान् इतना ही नहीं करते, वे स्वयं भक्तका योग-क्षेम वहन करते हैं और उसके साथ खेलते हैं, खाते हैं, सोते हैं तथा प्रेमालाप करते हैं। कभी वे पुत्र बनकर गोदमें खेलते हैं—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद॥

कभी राधाजीके साथ झूला झूलते हैं—

झूलत नागरि नागर लाल।
मंद मंद सब सखी झुलावति गावति गीत रसाल॥

कभी माता-पिताकी वन्दना और उसकी सेवा करते हैं।

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥

कहीं मित्रोंके साथ खेलते हैं, कहीं प्रियाके साथ प्रेमालाप करते हैं, कहीं भक्तके लिये रोते हैं। कहीं भक्तकी सेवा करते हैं, कहीं भक्तकी बड़ाई करते हैं, कहीं भक्तके शत्रुओंको अपना शत्रु बतलाते हैं, कहीं भक्तोंकी स्तुति सुनते हैं और कहीं भक्तोंको ज्ञान देते हैं। यह आनन्द भक्त और भगवान्‌में ही होता है। भक्त और भगवान्‌में न मालूम क्या-क्या रसकी बातें होती हैं, न मालूम कैसे-कैसे रहस्य खुलते हैं और न मालूम वे भक्तको कब किस परम दुर्लभ दिव्य लोकमें ले जाकर वहाँका आनन्द अनुभव कराते हैं। वे उसके हो जाते हैं और उसको अपना बना लेते हैं। उसके हृदयमें आप बसते हैं और उसको अपने हृदयमें बसा लेते हैं। सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान, सम्पूर्ण आत्मानुभूति, सम्पूर्ण एकात्मबोध सब यहाँ दिव्य प्रेमके रूपमें परिणत हो जाते हैं। और मुक्ति? मुक्ति तो ऐसे भक्तकी सेवा करनेके लिये पीछे-पीछे फिरती है, उसके चरणोंमें लोटती है—

यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा
विलुठति चरणाग्रे मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः॥

'जिसकी श्रीमुकुन्दके चरणोंमें परमानन्दरूपा भक्ति होती है, मोक्षसाम्राज्यश्री उसके चरणोंमें लोटती हैं।'

राम-जानकीकी वैवाहिक शोभा

राजति राम-जानकी-जोरी।
स्याम-सरोज जलद सुंदरबर, दुलहिनि तड़ित-बरन तनु गोरी॥
ब्याह समय सोहति बितानतर, उपमा कहुँ न लहति मति मोरी।
मनहु मदन मंजुल मंडपमहँ छबि-सिंगार-सोभा इक ठौरी॥
मंगलमय दोउ, अंग मनोहर, ग्रथित चूनरी पीत पिछोरी।
कनककलस कहँ देत भाँवरी, निरखि रूप सारद भइ भोरी॥
इत बसिष्ठ मुनि, उतहि सतानँद, बंस बखान करैं दोउ ओरी।
इत अवधेस, उतहि मिथिलापति, भरत अंक सुख सिंधु हिलोरी॥
मुदित जनक, रनिवास रहसबस, चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी।
गान-निसान बेद धुनि सुनि सुर बरसत सुमन, हरष कहै को री॥
नयननको फल पाइ प्रेमबस सकल असीसत ईस निहोरी।
तुलसी जेहि आनंद मगन मन, क्यों रसना बरनै सुख सो री॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने-आपके साथ दुर्व्यवहार मत कीजिये

(श्रीचूड़ामन मोतीलालजी मुन्शी)

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

(गीता ६ । ५)

अर्थात् तुम स्वयं ही अपने मित्र और स्वयं ही अपने शत्रु हो।

आधुनिक कालके मनुष्योंके आचार-विचार, व्यवहार-बर्ताव, धंधा-व्यवसाय आदिपर ध्यान देकर देखिये तो आपको अनुभव होगा कि हम स्वयं अपने साथ दुष्टाचार करके अपनेको दुःखमें डाल रहे हैं। इसलिये हम अपने ही साथ आप शत्रुका व्यवहार कर रहे हैं। इसके विपरीत ऐसे भी कुछ लोग हैं, जो अपने-आपके साथ सद्व्यवहार करते हैं और अपने साथ-साथ दूसरोंका भी भला करते हैं। ऐसे व्यक्ति आपको अत्यन्त अल्पमात्रामें मिलेंगे। पर यह सत्य है कि इन दोनोंमें पहले प्रकारके लोग दुःखमय जीवन व्यतीत करते हैं और दूसरे प्रकारके लोग सुखमय जीवनका आनन्द लूटते हैं।

मनुष्यका मन निरन्तर सुख-शान्तिकी खोज करता रहता है और इसी भावनासे प्रेरित होकर मनुष्य दूसरोंसे सम्पर्क स्थापित करता और व्यवहार करता है। सुख-शान्ति पानेके लिये उसे जो शारीरिक या मानसिक कर्म करने पड़ते हैं, उन्हें ही व्यवहार कहते हैं।

व्यवहार दो प्रकारका होता है—(१) सद्व्यवहार और (२) दुर्व्यवहार। सद्व्यवहारसे आशय है—सबकी भलाईमें रत रहना, सदाचरण करना, सबको सुख पहुँचाना। तात्पर्य यह कि जिस कार्यका अन्तिम परिणाम सुखके रूपमें प्राप्त हो उस कार्यको सद्व्यवहार कहते हैं। इसके विपरीत दुर्व्यवहारका तात्पर्य है—बुरा बर्ताव करना, दुष्टाचरण करना, अत्याचार करना, पीड़ा पहुँचाना। दूसरे शब्दोंमें किसीको भी शारीरिक या मानसिक पीड़ा पहुँचानेका नाम दुर्व्यवहार है। और भी स्पष्ट शब्दोंमें कहा जाय तो यह होगा कि जिस कार्यका अन्तिम फल दुःखके रूपमें प्राप्त हो, उसे दुर्व्यवहार कहते हैं।

मनुष्य अपने द्वारा होनेवाले प्रत्येक व्यवहारका फल सुख-शान्तिके रूपमें चाहता है, परंतु वह इस बातको भूला हुआ है कि सद्व्यवहारका निश्चित सुफल सुख-शान्ति है और दुर्व्यवहारका निश्चित कुफल दुःख और बेचैनी है। इस भूलका यह तात्पर्य नहीं कि इसके लिये मनुष्य अनुत्तरदायी है। मनुष्यमें इतर प्राणियोंकी अपेक्षा बुद्धि और विचारशक्तिकी विशिष्टता है, वह अपना भला-बुरा अच्छी तरह सोच-समझ सकता है। इसलिये अपनी बुद्धिका सदुपयोग या दुरुपयोग करनेका उत्तरदायित्व मनुष्यपर है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपराध करनेके पश्चात् अपनेको यह कहकर नहीं बचा सकता कि उसे कानूनका ज्ञान नहीं था, उसी प्रकार कोई भी व्यक्ति अपने द्वारा होनेवाले बुरे व्यवहारके दुष्परिणामसे अपनेको यह कहकर नहीं बचा सकता कि उसने बुद्धिका उपयोग करनेमें भूल की है। मनुष्य अपनी बुद्धिका उपयोग करनेके लिये स्वतन्त्र है। अतः अपने कर्मोंका उत्तरदाता भी वह स्वयं ही है और उन कर्मोंका फल पानेसे उसे कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती।

आजके युगमें मनुष्योंके आचार-विचार, व्यवहार-बर्ताव, धंधा-व्यवसाय आदिपर विचार कीजिये—चाय, पान, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट आदि मादक पदार्थोंका अत्यधिक सेवन करना, चटोरापन, अत्यधिक मिठाई, खटाई, चाट आदि उत्तेजित करनेवाले पदार्थ, मनमें विकार पैदा करनेवाले दूषित पदार्थ, जूँठन, अभक्ष्य पदार्थोंका भोजनमें प्रयोग करके शरीर और मनको कष्ट देना, पशुओंका वध करना और अपेय वस्तुओंका पीना, बनाना, बेचना; दूध, घी, दवा, चाय तथा अन्यान्य खाने-पीनेकी चीजोंमें मिलावट करना, सिनेमाके गंदे फिल्म जिनसे कामोत्तेजनाको प्रोत्साहन मिलता हो, निर्मित करना, देखना, अश्लील गीत बनाना, गाना, मुँहसे अश्लील शब्दोंका उच्चारण करना, अधिक तड़क-भड़क-शान-शौकतसे रहना, बड़ी कीमतके फैशनदार भड़कीले वस्त्रोंका उपयोग करना, निरन्तर भोगविलासमें निमग्न रहना, परस्त्री या परपुरुषको कुदृष्टिसे देखना, ग्राहकोंसे वस्तुओंके अधिक दाम ऐंठना, दूसरोंका धन अनायास ही लेनेकी इच्छा या प्रयत्न करना, चोरी करना, झूठ बोलना, न्यायालय आदिमें मिथ्यावाद आदि प्रस्तुत करना, असत्य वचन देना, धोखा देना, रिश्वत लेना और भ्रष्टाचार करना आदिका प्रचार और प्रसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन-प्रतिदिन बढ़ता चला जा रहा है।

ये सब दुर्व्यवहारके स्वरूप हैं। इन कार्योंसे न केवल दूसरोंको ही हानि उठानी पड़ती है, वरं स्वयंको भी हानि उठानी पड़ती है। इस बातको बहुत कम लोग जानते होंगे कि दूसरोंके प्रति किया गया दुर्व्यवहार भी हमारे ही शरीर और मनको कष्ट पहुँचाता है। हमारे किये हुए किसी कार्यका परिणाम हमारी शारीरिक या मानसिक पीड़ा हो तो यही कहा जा सकेगा कि हमने अपने ही हाथों अपने पाँवमें कुल्हाड़ी मारकर अपनेको विपत्तिके गड्ढेमें डाल दिया।

जैसे एक मनुष्य शराब पीता है, वह इस बातको अच्छी तरह जानता है कि शराब पीनेसे मनुष्यके शरीर और मनपर दूषित प्रभाव पड़ता है, पाचन-क्रिया मन्द पड़ जाती है, हृदय और फेफड़े सड़ जाते हैं और मस्तिष्क अपना संतुलन खो बैठता है। इतना जानकर भी वह अपने दुर्व्यसनसे बाज नहीं आता। इसलिये यह कहना अनुचित न होगा कि उक्त शराब पीनेवाला जान-बूझकर अपने-आपके साथ दुर्व्यवहार करके अपने शरीर और मनको क्लेश दे रहा है।

जिस प्रकार शराब पीनेसे शारीरिक और मानसिक रोग हो जाते हैं, उसी प्रकार कामोत्तेजना पैदा करनेवाले विभिन्न प्रकारके खान-पान, दर्शन, स्पर्श, अध्ययन, मिलन आदिके रूपमें पदार्थोंका सेवन करनेसे अर्थात् दुर्व्यसनसे विभिन्न प्रकारके शारीरिक और मानसिक रोग होते हैं।

इसके अतिरिक्त जो दूसरोंके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है, वह अपने आपके साथ किस प्रकार दुर्व्यवहार हो जाता है, उसे समझिये—

बाह्य दृष्टिसे देखनेपर दूसरोंके साथ किये गये दुर्व्यवहारका प्रभाव दूसरोंपर पड़ता दिखायी देता है, किंतु आन्तरिक दृष्टिसे देखनेपर हमें पता चलता है कि दूसरोंके साथ बुरा बर्ताव करनेका विषैला प्रभाव दूसरोंकी अपेक्षा हमपर ही अत्यधिक पड़ता है।

मान लीजिये कि एक व्यक्ति किसीकी वस्तुका अपहरण करनेके विचारसे चोरी करता है। चोरी करनेके पूर्व वह जानता है कि मैं कानूनके विरुद्ध करने जा रहा हूँ और मुझे इसका दण्ड भी मिल सकता है, किंतु फिर भी वह अपने इस विचारकी अवहेलना कर, धनकी लालचमें दुर्व्यवहारसे होनेवाले दुष्परिणामकी ओरसे लापरवाह होकर चोरी करनेमें प्रवृत्त होता है और अपने लक्ष्यको भी प्राप्त कर लेता है। हो सकता है कि वह कानूनकी दृष्टिसे ओझल होकर अपनेको बचा ले, परंतु वह स्वयंके विचारोंसे होनेवाले दुष्परिणामसे अपनेको नहीं बचा सकेगा।

मनोविज्ञानके नियमानुसार प्रत्येक विचारकी प्रतिक्रिया होती है। चोरी करनेके विचार निकृष्ट विचार हैं। निकृष्ट विचारोंकी प्रतिक्रियासे मनुष्यके शरीर और मनपर दूषित प्रभाव पड़ता है—चिन्ता, भय, विषाद, रोग, शोक, निराशा आदि कष्ट पहुँचानेवाले दुर्विचार मनुष्यका पीछा नहीं छोड़ते और इस कारण मनुष्य निरन्तर अस्त-व्यस्त तथा अशान्त रहता है। इन दुर्विचारोंकी क्रिया-प्रतिक्रिया निरन्तर चलती रहनेके कारण मनुष्य दिन-प्रतिदिन चोरी-जैसे दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त होता जाता है। फलतः मनुष्यको अनेकों शारीरिक और मानसिक व्याधियाँ घेरे रहती हैं एवं अन्तमें दूसरोंके विनाशके विचार अपने ही विनाशके विचारोंमें परिणत होकर अकाल ही उसको मृत्युके मुखमें डाल देते हैं।

जिस प्रकार चोरी करनेके विचार निकृष्ट विचार हैं, उसी प्रकार दूसरोंके साथ बुरा बर्ताव करने, अत्याचार करने या उन्हें किसी भी प्रकारकी शारीरिक या मानसिक हानि पहुँचानेके विचार भी निकृष्ट विचारोंकी गणनामें आते हैं। इन विचारोंका भी वही परिणाम होता है जैसा कि ऊपर चोरीके विचारोंका बताया गया है।

मनुष्यका मन एक प्रकारका खेत है और उसके विचार बीजरूप हैं। जिस प्रकार खेतमें बीज डालनेसे बीजके अनुसार ही फसल पैदा की जाती है, उसी प्रकार हमारे मानसिक खेतमें भी विचाररूपी बीज बोनेसे उसमें उपज प्राप्त की जाती है। जैसे कृषिक्षेत्रमें गेहूँके बीज बोनेसे गेहूँकी ही फसल प्राप्त होती है, अन्य फसल प्राप्त नहीं हो सकती, उसी प्रकार हमारे मानसिक क्षेत्रमें भी बुरे विचारोंके बीजकी उपज बुरी अर्थात् दुःख, क्लेश, पीड़ा, बेचैनी, रोग-शोक आदिके रूपमें ही प्राप्त की जा सकती है, भली उपज अर्थात् सुख-शान्ति आदि नहीं प्राप्त की जा सकती।

अतः किसीके भी साथ दुर्व्यवहार करनेका विचारमात्र रखना हमारी मनोभूमिमें बुरे बीज बोना है। इसलिये यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चित है कि बुराईके बीजकी बुरी फसल हमें प्राप्त होगी और उसका कटु फल हमें ही चखना होगा। अतएव दूसरोंकी बुराईके विचार हमारे मनमें आने देना हमारा अपना स्वयंका ही विनाश करना है।

प्रकृतिके न्यायालयमें भी दण्डका विधान है। प्राकृतिक नियमोंको देखकर यह पता चलता है कि प्रकृति सभीको सुखी रखना चाहती है। चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि नियमित-रूपसे उदयास्त क्यों होते हैं ? एक बीजका प्रतिफल अनन्त फलोंके रूपमें क्यों प्राप्त होता है ? अनुकूल समयपर फल-फूल, वनस्पतियाँ, ओषधियाँ आदि क्यों उत्पन्न होती हैं ? ऋतुएँ भी अनुकूल समयपर क्यों आती-जाती हैं ? पवन अपनी गतिसे निरन्तर क्यों चलता है ? समुद्र अपनी मर्यादामें क्यों रहते हैं ? इन सबका एक ही उत्तर है, वह यह कि 'प्राणिमात्रको सुख पहुँचानेके लिये प्रकृति ही सारा कार्य नियमबद्ध और सुचारुरूपसे कर रही है।' इससे यह भली प्रकार सिद्ध हो जाता है कि प्रकृति सभीको सुखी रखनेके लिये नित्य अथक रूपसे प्रयत्नशील है। वह किसीको पीड़ित नहीं करना चाहती। इसलिये दूसरोंके साथ बुरा बर्ताव करना, उन्हें कष्ट देना प्रकृतिके सहज कार्यमें बाधा डालना है। अतः दूसरोंको दुःख देनेवाला मनुष्य प्राकृतिक नियमानुसार दण्डका भागी है। हमारा प्रत्येक प्रकारका दुःख प्रकृतिकी ओरसे दण्ड पानेका प्रतीक है। ऐसी दशामें दूसरोंको पीड़ा पहुँचाना प्रकृतिके साथ झगड़ा मोल लेना है। इस झगड़ेमें मनुष्य कदापि विजयी न हो सकेगा। इसलिये जो दूसरोंको पीड़ा पहुँचाता है, दूसरोंके साथ बुरा बर्ताव करता है, वह वस्तुतः अपने-आपके साथ दुर्व्यवहार करता है और वही अपना शत्रु कहलानेका अधिकारी है।

व्यावहारिक दृष्टिसे देखा जाय तो भी हमें दूसरोंसे उसी प्रकारका व्यवहार करना चाहिये, जो हम दूसरोंसे अपने प्रति चाहते हैं। क्या आप दूसरोंसे अपने प्रति अशिष्ट व्यवहार कराना पसंद करेंगे ? नहीं, तो जो व्यवहार आप दूसरोंसे अपने प्रति नहीं चाहते, वही व्यवहार आपको दूसरोंके साथ करनेका क्या अधिकार है ?

जो व्यक्ति दूसरोंको कष्ट पहुँचाकर उनके न्याय-स्वार्थकी हानि करके केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है, वह निरा बेसमझ है और वह अपना ही विनाश करनेपर तुला है।

आप अपने घरोंमें, मन्दिरोंमें, तीर्थस्थानोंमें, मस्जिदोंमें और गिरजाघरोंमें जाकर ईश्वर, अल्लाह अथवा गॉड (God) की पूजा-उपासना करते हैं, परंतु इससे भी बढ़कर पूजा-उपासना अपने-आपकी है। अपने-आपकी पूजा-उपासनासे तात्पर्य है—अपने-आपके साथ सद्व्यवहार करना। हम अपने साथ सद्व्यवहार तभी कर सकते हैं, जब हम दूसरोंकी भलाईमें अपनी भलाई देखें, दूसरोंके न्याय-स्वार्थका ध्यान रखते हुए अपना स्वार्थ सच्चे अर्थोंमें सिद्ध करें। दूसरोंके अधिकारका संरक्षण करें, दूसरोंके न्याय की आशाको पूर्ण करें। जो दूसरोंका बुरा नहीं करना चाहता, उसका बुरा किसी भी हालतमें नहीं हो सकता। इसलिये ऐसा व्यक्ति सुख-शान्तिमय जीवन व्यतीत करेगा, क्योंकि उसका शत्रु इस संसारमें कोई है ही नहीं। वह सबके प्रति मैत्रीभाव रखता है। अतः ऐसा ही व्यक्ति स्वयं अपना मित्र कहानेका अधिकारी है।

मनुष्यमें सबसे बड़ी शक्ति विचारोंकी शक्ति है। इसके द्वारा मनुष्यने बड़े-बड़े आविष्कार किये हैं, किंतु मनुष्य अपनी विचारशक्तिका सदुपयोग न करनेके कारण दीन-हीन और दुःखी रहता है। दुर्विचारके कारण इन शक्तियोंका सदुपयोग नहीं हो पाता और उलटा इनसे अपनी शक्तिका नाश हो जाता है। हमारी मानसिक शक्तियोंका सदुपयोग करनेपर जो शक्ति हमारा तथा दूसरोंका बड़ा भारी हित कर सकती है, वही दुरुपयोगसे अनेकों तरहके कष्टका कारण बन जाती है। हमारे विचारोंकी शक्ति महान् है। इसलिये हमें अपनी विचारशक्तिका लाभ अवश्य उठाना चाहिये। अपनी विचारशक्तिका सदुपयोग या दुरुपयोग स्वयं हमारी इच्छापर निर्भर है। हम अच्छी तरह जानते हैं कि दूसरोंके साथ भला व्यवहार करनेका फल भला और बुरा व्यवहार करनेका फल बुरा होता है। दूसरोंके साथ बुरा बर्ताव करनेसे हमारे ही शरीर और मनको पीड़ित होना पड़ता है। इसलिये हम स्वयं ही हमारे मित्र और शत्रु हैं, दूसरा कोई भी मित्र या शत्रु नहीं है। अतएव आप ही सोच-समझकर निश्चय कर लीजिये कि आप अपने साथ सद्व्यवहार करेंगे या दुर्व्यवहार ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[कर्म किसके लिये ?]

आप कृपा करके इस बातको समझनेकी चेष्टा करें, इसका दुरुपयोग न करें। थोड़ी गहरी बात है। वह यह है कि अपने लिये कुछ करना नहीं है। 'अपने' का अर्थ है—स्वयं अर्थात् परमात्माका अंश चेतन। स्वयंके लिये करना कुछ नहीं है। करना जितना होता है, वह सब प्रकृतिके सम्बन्धसे होता है। प्रकृतिके सम्बन्धके बिना करना है ही नहीं। अतः जो कुछ करना है, वह सब शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिके लिये करना है, संसारके लिये करना है, भगवान्‌के लिये करना है, परंतु अपने लिये कुछ करना नहीं है—यह सार बात है।

हम जो भी कर्म करते हैं, उस कर्मका आरम्भ और अन्त होता है। जिसका आरम्भ और अन्त होता है, उसके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि स्वयंका आरम्भ और अन्त नहीं होता। अनन्त जन्मोंसे यह जीव चला आ रहा है, पर इसका कभी आरम्भ और अन्त नहीं हुआ है। यह अनादि और अनन्त है। अतः इसके लिये करना नहीं होता। करनामात्र संसारके लिये होता है।

मेरेको कुछ मिले—यह इच्छा होते ही बन्धन हो जाता है। मिली हुई चीज कभी अपने साथ रहनेवाली है ही नहीं। कृपा करके इस बातपर थोड़ा ध्यान दो। हमें कुछ भी मिल जाय, धन मिल जाय, मान मिल जाय; विद्या, पद, अधिकार मिल जाय, पर ये मिली हुई चीजें हमारे साथ रह नहीं सकतीं। परंतु परमात्मा सबको मिले हुए हैं और सदा सबके साथ रहते हैं, कभी बिछुड़ते नहीं। उनको न जाननेसे ही उनका अभाव दीखता है। किसी देशमें, किसी कालमें, किसी वस्तुमें, किसी व्यक्तिमें, किसी क्रियामें, किसी घटनामें, किसी परिस्थितिमें परमात्मा न हों—यह है ही नहीं, हो सकता ही नहीं। वे तो निरन्तर रहनेवाले हैं और उनको ही प्राप्त करना है। मिलने और बिछुड़नेवाली चीजोंका आश्रय लेना बड़े भारी अनर्थका कारण है। मिले हुए शरीर, इन्द्रियाँ, अन्तःकरण आदि अपने कामके हैं ही नहीं। इनको अपने लिये मानते हैं। यह बहुत बड़ी गलती है। इस विषयको ठीक तरहसे समझना चाहिये।

भगवान् कहते हैं—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५। ७) 'यह जीव मेरा ही अंश है।' यह जीव चेतन, अमल और सहज सुखराशि है—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥'*** (मानस, उत्तर० ११७। १)। इसमें जडता है ही नहीं, तो फिर इसके लिये क्या करना बाकी रहा ? इसमें मल है ही नहीं, तो फिर दूर क्या करोगे ? यह सहज सुखराशि है, तो फिर इसमें सुख कहाँसे लाओगे ? मिली हुई सब चीजें बिछुड़नेवाली हैं। मिली हुई चीजोंका जो आश्रय लेना है, आधार लेना है, उनसे सुखकी आशा रखना है, उनको महत्त्व देना है—यह महान् पतनका कारण है। आप कृपा करके इस विषयको समझ लो तो बहुत ही आनन्दकी बात है।

मिली हुई चीज हमारे साथ रहनेवाली नहीं है, क्योंकि मिली हुई उसको कहते हैं, जो पहले नहीं थी और पीछे भी नहीं रहेगी। परंतु परमात्मा और उनका अंश जीवात्मा (स्वयं) पहले भी थे और पीछे भी रहेंगे। शरीर, धन-सम्पत्ति, घर-परिवार आदि मिली हुई वस्तुओंका आश्रय लेना, इनको महत्त्व देना खास पतनकी बात है। नित्य-निरन्तर रहनेवालेके लिये ये मिलकर बिछुड़नेवाली वस्तुएँ क्या काम आयेंगी ? हाँ, इनका सदुपयोग किया जा सकता है। परंतु इनका आश्रय लेना और इनसे सुखकी आशा रखना भूल है। खास भूल यही होती है कि हम मिली हुई चीजसे सुख लेते हैं। इस सुखकी आसक्ति ही बाँधनेवाली है। यह आसक्ति साधनको ऊँचा बढ़ने नहीं देती।

कोई भी काम करो, उसका न करनेसे ही आरम्भ होता है और न करनेमें ही उसकी समाप्ति होती है। अतः कर्मका आदि और अन्त होगा ही। ऐसे ही कर्म करनेसे जो कुछ मिलेगा, वह भी आदि-अन्तवाला होगा। क्रियाका भी आरम्भ और अन्त होता है तथा पदार्थोंका भी संयोग और वियोग होता है। क्रिया और पदार्थ—यह प्रकृति है। प्रकृतिसे सर्वथा अतीत जो परमात्मतत्त्व है, उसीका साक्षात् अंश यह जीवात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अतः जो क्रियाओंमें और वस्तुओंमें आसक्त है और इनसे अपनी उन्नति मानता है, वह गलतीमें है।

यह बड़े भारी आश्चर्यकी बात है कि धन मिलनेसे हम अपनेको बड़ा मान लेते हैं! अगर हम धनसे बड़े हो गये तो धन बड़ा हुआ कि हम बड़े हुए? धनके बिना तो हम छोटे ही रहे! धन तो आपका कमाया हुआ है। धन आपके पास आता है और चला जाता है। वह आपके पास रहेगा तो आप चले जाओगे। वह साथ रहनेवाला नहीं है। ऐसे ही विद्या, योग्यता, पद, अधिकार आदिसे जो अपनेको बड़ा मानता है, वह बहुत बड़ी गलती करता है। वास्तवमें आप खुद इतने बड़े हैं कि आपसे ही ये वस्तुएँ सार्थक होती हैं। आपसे ही रुपये सार्थक होते हैं। आपसे ही भोजन सार्थक होता है। आपसे ही कपड़े सार्थक होते हैं संसारकी जितनी वस्तुएँ हैं, वे सब आपसे ही सार्थक होती हैं। आप इन वस्तुओंसे अपनेको बड़ा मानते हो—यह गलती है। मिली हुई चीजसे अपना महत्त्व समझना, अपनेको बड़ा मानना बहुत बड़ी गलती है। अगर यह गलती मिट जाय तो समता अपने-आप आ जायगी, क्योंकि समतामें हमारी स्थिति स्वतः-स्वाभाविक है। यह उद्योगसाध्य, कृतिसाध्य नहीं है। करनेकी आसक्तिको मिटानेके लिये ही कर्म करना है, कुछ पानेके लिये नहीं।

हमारा मान हुआ तो उसमें हम राजी हो गये और अपमान हुआ तो हम नाराज हो गये; थोड़ा गहरा विचार करो कि मान होनेसे हमें मिल क्या गया और अपमान होनेसे हमारी हानि क्या हो गयी? आने-जानेवाली वस्तुसे आपको कोई हानि-लाभ नहीं होता। अनादिकालसे कई सर्ग-प्रलय, महासर्ग-महाप्रलय हुए, पर आप स्वयं वे-के-वे ही रहे— **'भूतग्रामः स एवायम्'** (गीता ८। १९)। ऐसे निरन्तर रहनेवाले आपको मान मिल गया तो क्या हुआ? और अपमान मिला तो क्या हुआ? धन मिल गया तो क्या हुआ? और धन चला गया तो क्या हुआ? शरीर मिल गया तो क्या हुआ? और शरीर चला गया तो क्या हो गया? बीमारी आ गयी तो क्या हो गया? और बीमारी चली गयी तो क्या हो गया? ये सब तो आने-जानेवाले हैं— **'आगमापायिनोऽनित्याः'** (गीता २। १४)। आने-जानेवाले पदार्थोंसे राजी और नाराज होना बहुत बड़ी भूल है। इस भूलका अभी त्याग न हो सके तो न सही, पर इस बातको समझ तो लें। ठीक समझ लो तो स्वतः-स्वाभाविक त्याग हो जायगा। बालक टट्टी-पेशाब करके उसमें हाथ डालता है, क्योंकि वह समझता नहीं। परंतु समझनेके बाद फिर छूयेगा क्या? छूनेपर हाथ धोयेगा। आप समझ लें कि ये मान, बड़ाई, सुख, आराम, पद, अधिकार आदि सब मलसे भी निकृष्ट हैं!

मिली हुई वस्तुओंसे केवल दूसरोंका हित करना है, अपने लिये कुछ नहीं करना है। गीता स्पष्ट कहती है—**'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥'** (गीता १२। ४) 'सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें जिनकी रति है, ऐसे मनुष्य मेरेको ही प्राप्त होते हैं।' जैसे लोभीकी धनमें, भोगीकी भोगोंमें रति (प्रीति) होती है, आकर्षण होता है, ऐसे ही हमारी रति, हमारी लगन, हमारा आकर्षण दूसरोंके हितमें होना चाहिये। सब काम दूसरोंके हितके लिये ही करना है, अपने लिये नहीं करना है। कारण कि अपने लिये करना बनता ही नहीं। प्रकृतिके सम्बन्धके बिना स्वयंमें कर्तापन है ही नहीं।

गाढ़ नींदमें अहंकार भी लुप्त हो जाता है, पर आप रहते हो। हमें यह बात बढ़िया मालूम दी है कि नींदसे पहले भी मैं था तथा नींदके बादमें भी मैं हूँ और नींदमें मेरेको कुछ पता नहीं था—इसका अनुभव तो होता है, पर नींदमें मैं नहीं था—इसका अनुभव नहीं होता। नींदमें मैं नहीं था और जागनेपर मैं उत्पन्न हो गया—ऐसा आप नहीं मानते। हमने शास्त्रोंकी कई बातें सुनी हैं, पर यह दृष्टान्त किसी पुस्तकमें आया हो—ऐसा हमें याद नहीं है। गाढ़ नींदमें शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार आदिका भान नहीं था—यह तो आप कह सकते हैं, पर गाढ़ नींदमें 'मैं' नहीं था—यह आप नहीं कह सकते। अपनी सत्ताका अनुभव करनेके लिये यह युक्ति बहुत बढ़िया है। गाढ़ नींदमें मेरेको कुछ भी पता नहीं था तो 'कुछ भी पता नहीं था'—इसका तो पता था न? तात्पर्य है कि उस समयमें भी आप थे। ऐसे नित्य-निरन्तर रहनेवाले आपको आने-जानेवाली वस्तु क्या निहाल करेगी?

जो आया है, वह जायगा ही। जिसका संयोग हुआ है, उसका वियोग होगा ही। उसमें राजी-नाराज होओगे तो अपने कल्याणसे वञ्चित रह जाओगे—इसके सिवाय और कुछ नहीं होनेका है! हमने एक कहानी सुनी है। एक मकानमें गुरु और चेला रहते थे। एक दिन मकानके भीतर एक कुत्ता आ गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेला बोला कि महाराज ! मकानमें कुत्ता आ गया, क्या करूँ ! गुरुने कहा कि किवाड़ बंद कर दो, क्योंकि उसको यहाँ तो कुछ मिलेगा नहीं और दूसरी जगह जा सकेगा नहीं। अपने पास कुछ है नहीं तो खायेगा क्या ? और मकानके भीतर बंद होनेसे दूसरोंको तंग करेगा नहीं, अतः किवाड़ बंद कर दो। इसी तरह संसारमें जाते ही किवाड़ बंद हो जाता है ! तात्पर्य है कि जैसे कुत्ता कुछ खानेके लिये घरमें गया तो वहाँ भी कुछ नहीं मिला और घरके भीतर बंद हो जानेसे बाहर भी नहीं जा सका तो वह दोनों तरफसे रीता रह गया। ऐसे ही आप संसारमें कुछ लेने जाओगे तो संसारमें कुछ मिलेगा नहीं और परमात्माकी तरफसे विमुख हो जाओगे, अतः दोनों तरफसे रीते रह जाओगे। हमें संसारसे कुछ लेना ही नहीं है—इस बातसे आप निहाल हो जाओगे। इस बातको काममें लानेका तरीका है—'**सर्वभूतहिते रताः**' अर्थात् प्राणिमात्रके हितमें रति हो जाय। तो क्या होगा इससे ? हमारेमें जो लेनेकी इच्छा है, वह मिट जायगी। दूसरोंका हित करनेकी, उनको सुख पहुँचानेकी लगन लग जायगी तो अपना सुख लेनेकी इच्छा मिट जायगी। सुख लेनेकी इच्छा सर्वथा मिटते ही परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति हो जायगी, क्योंकि आप जहाँ हैं, परमात्मा वहीं पूर्णरूपसे विद्यमान हैं, अंशरूपसे (अधूरे) नहीं। आपको (जीवात्माको) भी अंश तब कहते हैं, जब आप प्रकृतिके अंश शरीरके साथ सम्बन्ध जोड़ते हो। प्रकृतिके अंशके साथ सम्बन्ध न जोड़ो तो आप स्वयं अंशी हो।

संसारसे कुछ भी नहीं पाना है और केवल संसारके हितके लिये ही करना है। स्वयंके लिये कुछ करना है ही नहीं। मनमें जो करनेकी एक रुचि होती है, उस करनेकी रुचिको मिटानेके लिये है 'करना है'। अगर आप मान-सत्कार आदि लेते रहोगे तो यह करनेकी रुचि कभी मिटेगी नहीं। अपने परिवारके सुखके लिये करो, पर उनसे यह मत चाहो कि वे मुझे सुख देंगे। मैं तो परमात्माका अंश हूँ, अतः उनका दिया हुआ सुख शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धितक ही पहुँच सकता है, मेरेतक नहीं पहुँच सकता। मैंने एक गृहस्थाश्रमकी स्त्रीकी बात सुनी है। किसीने उससे कहा कि ये लोग तेरेको दुःख देते हैं तो उसने कहा कि मेरेतक दुःख पहुँचता ही नहीं। कितना ही कष्ट दे दो, निन्दा कर दो, अपमान कर दो, वह मेरेतक पहुँचता ही नहीं। कष्ट अपमान शरीरका होगा, निन्दा नामकी होगी, वे चेतन-तत्त्वतक कैसे पहुँच सकते हैं ? अतः कुछ भी पानेकी इच्छा न रखकर केवल संसारके लिये करना है। केवल संसारके लिये करनेसे आत्मज्ञान हो जायगा, बोध हो जायगा। परमात्माकी प्राप्ति चाहो तो वह हो जायगी। मुक्ति चाहो तो मुक्ति हो जायगी। कल्याण हो जायगा, सदा रहनेवाला लाभ हो जायगा।

आपको शरीर, विद्या, बुद्धि, योग्यता आदि जो कुछ भी मिला है, वह सब-का-सब संसारसे मिला है। संसारसे मिले हुएको बिना शर्त संसारके भेंट कर दो। आप परमात्माके अंश हो, अतः आप परमात्माके शरण हो जाओ। उत्पन्न और नष्ट होनेवालेके शरण मत होओ, उसका आश्रय मत लो। गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

(दोहावली २७७)

संसार आपका है नहीं, आपको मिला ही नहीं, आपतक पहुँचा ही नहीं। ऐसे संसारकी आशा, विश्वास, भरोसा रखना ही जीवकी जडता है, मूर्खता है—

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस-बिस्वास-भरोसो, हरो जीव-जड़ताई॥

(विनयपत्रिका १०३)

भगवान्‌से प्रार्थना करो तो जडता मिट जाय अथवा केवल दूसरोंके हितके लिये कर्म करो तो जडता मिट जाय। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, योग्यता आदि सब संसारके लिये हैं, अपने लिये हैं ही नहीं। उत्पन्न और नष्ट होनेवाली चीज अनुत्पन्न तत्त्वके लिये क्या काम आयेगी ? थोड़ा विचार करो आप। यह जीव परमात्माका अंश है, चेतन है, अमल है, सहज सुखराशि है, अविनाशी है, तो इसके लिये जड, विनाशी चीज कैसे काम आयेगी ? विनाशी चीज तो विनाशी संसारके हितके लिये, सुखके लिये, आरामके लिये खर्च करनेके लिये मिली है। उसको आप अपने लिये मानो तो आप जरूर फँस जाओगे, इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं है। मान-बड़ाई मिलनेसे आप राजी हो गये—यह कितना बड़ा अँधेरा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण कि जो मिला है वह बिछुड़ जायगा, रहेगा नहीं। शरीरको अपना मान लिया तो अब सब बीमारियाँ आयेंगी, क्योंकि मूलमें भूल हो गयी। जोड़ लगाते समय पहली पंक्तिके जोड़में ही भूल हो जाय और आगेकी पंक्तियोंमें बड़ी सावधानीसे जोड़ लगाया जाय तो क्या वह जोड़ सही हो जायगा ? आरम्भमें ही भूल हो जाय तो फिर आगे भूल-ही-भूल होगी। एक कहानी याद आ गयी। एक आदमीको ऊँटपर चढ़ाया और कहा कि कहीं जानेसे पहले हमारा ऊँट तीन बार कूदेगा, अतः सावधान रहना। उसने कहा कि मैं तो पहलेमें ही कूद जाऊँगा, दो बार कूदना बच जायगा। अगर पहलेमें ही भूल होगी तो फिर भूल-ही-भूल होगी। इसलिये पहलेमें ही भूल मत करो, शरीरको अपना मत मानो और उसके द्वारा सबकी सेवा करो, हित करो।

पुष्टि-मार्ग-प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी एवं उनके सिद्धान्त

(श्रीवसन्तकुमारजी सर्राफ)

विक्रम-संवत् १५३५की वैशाख कृष्णा एकादशीको एक वैश्वानरावतारका प्राकट्य हुआ जो जगत्में श्रीमद्वल्लभाचार्यके नामसे प्रख्यात हुआ। वैश्वानरके पिता लक्ष्मण भट्ट और माता इलम्मागारु जब काशीसे अपने आन्ध्रप्रदेशको लौट रहे थे, तब मार्गमें चम्पारण्य (रायपुरसे साठ किलोमीटर) के निर्जन वनमें समयसे डेढ़ मास पूर्व ही इनका प्राकट्य हुआ। इन्हें प्राणहीन पिण्ड समझकर वहीं एक वृक्षके कोटरमें छोड़ माता-पिता आगे बढ़ गये। कुछ दूर जानेपर माताकी ममता पुनः जागी, उनके स्तनसे दूधकी धाराएँ निःसृत होने लगीं और माता-पिता दोनोंने लौटकर देखा कि एक अद्भुत तेजःपुञ्ज यज्ञकी अग्निके सदृश अलौकिक बालक किलकारियाँ भर रहा है। इस वैश्वानर यज्ञपुरुषको पाकर लक्ष्मण भट्टने आन्ध्र जानेका निश्चय छोड़ दिया और पुनः काशी लौट आये। यहीं इस तेजःपुञ्ज बालककी शिक्षा-दीक्षा पूरी हुई। इसके बाद युवक वल्लभाचार्यजीने प्रयागमें गङ्गाके उस पार अड़ैल ग्रामको अपना स्थायी निवास बनाया। वृन्दावन जाते समय प्रयागमें रुकनेके अवसरपर चैतन्य महाप्रभुसे आचार्यकी यहीं भेंट हुई थी। यहींसे उन्होंने अपने सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये तीन बार पूरे देशकी परिक्रमा की।

जहाँ-जहाँ उन्होंने भागवतका सप्ताह-पारायण किया और कुछ दिन ठहरे, वे स्थान ८४ हैं। कालान्तरमें ये ही ८४ स्थान ८४ बैठकें कहलायीं, जो देशके सुदूर पूर्वसे पश्चिमतक एवं उत्तरसे दक्षिणतक हैं। इनकी बैठक गोवा-क्षेत्रमें भी है। इनकी यात्राओंके मानचित्रसे समूचे देशका स्वरूप भी उभरता है और अंग्रेजी-प्रभावित आधुनिक विचारकोंकी इस धारणाको खण्डित करता है कि अंग्रेजोंने भारतके विभिन्न प्रदेशोंको एक राष्ट्रके रूपमें आकार दिया है।

श्रीवल्लभके परमधाम पधारनेके विषयमें एक घटना प्रसिद्ध है। ये अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें अड़ैलसे लौटकर प्रयाग होते हुए काशी आ गये थे। वे एक दिन हनुमान-घाटपर गङ्गा-स्नान करने गये। जहाँपर खड़े होकर वे स्नान कर रहे थे, वहाँसे एक उज्ज्वल ज्योति-शिखा उठी और बहुत-से मनुष्योंके सामने श्रीवल्लभ सदेह ऊपर उठने लगे और लोगोंके देखते-ही-देखते आकाशमें लीन हो गये। जितना अद्भुत उनका प्राकट्य था, उतनी ही अलौकिक उनकी तिरोधान-लीला भी।

अपने समसामयिक देश-कालका चित्रण आचार्यचरणने 'श्रीकृष्णाश्रय'-ग्रन्थमें इस प्रकार किया है—'विदेशी और क्रूर आततायियोंसे देश आक्रान्त है, सीधे-सादे लोग दुःखोंसे व्यग्र हैं, तीर्थों और शास्त्रोंका माहात्म्य लुप्त हो चुका है, पाखंडियोंकी विमूढ़ताने धर्माचार्योंका स्थान ले लिया है। ऐसेमें मनुष्यकी आस्थाको गति कहाँ !' आचार्य वल्लभद्वारा प्रवर्तित मार्ग शुद्धाद्वैत या पुष्टिमार्गके नामसे प्रसिद्ध है।

उन्होंने तैत्तिरीय उपनिषद्के **'रसो वै सः'** सूत्रको लेकर यह प्रतिपादित किया है कि रस ही ब्रह्म है और जो ब्रह्म है वही रस है। इसीलिये सीमातीत, कालातीत प्रभुको—रसेश्वर मधुराधिपति श्रीकृष्णको इन्होंने निकुञ्जनायक 'श्रीनाथजी' कहा, क्योंकि यह ब्रह्म रस है। इसलिये यह मनोभावोंके स्वभावके रूपमें अपना साक्षात् करता है। इसलिये आचार्य-चरणने पुष्टि-पथका प्रवर्तन किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णाश्रयमें चर्चित देश-कालकी स्थितियाँ आज भी देशमें किसी-न-किसी रूपमें विद्यमान हैं और पुष्टिका पथ आज भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। पुष्टिके प्रभु मन्दिरके ईश्वर नहीं, वे जीवके अपने निजी प्रभु हैं एवं जीवके भावनात्मक सम्बन्धोंसे प्रतिबद्ध हैं। भावनात्मक सम्बन्धोंसे प्रतिबद्ध श्रीकृष्णका स्वरूप ही पुष्टिमें रसरूपी ब्रह्म है। इस प्रकार जब जीवके मनोभाव ऐसे प्रभुके मनोरथोंके पथ बन जाते हैं, तब वह निकुञ्जनायक रासेश जीवपर कृपा कर वहीं प्रकट हो जाता है, जहाँ भावनात्मक सम्बन्धोंसे उसकी सेवा हो रही है।

पर इस लीलाधारी रासेशसे पहचानके लिये, इस पुष्टि-प्रभुसे परिचयके लिये गोपीजन और श्रीयमुनाकी कृपा आवश्यक है। क्योंकि रासेश्वरने अपना मधुराधिपतिरूप उन्हींके लिये प्रकट किया है। इसलिये श्रीयमुना और गोपीजनकी कृपा होते ही जीवका पुष्टिमें अङ्गीकार हो जाता है, जीव मधुराधिपतिका हो जाता है और मधुराधिपति जीवके हो जाते हैं। इस तरह निजजनके रूपमें स्वीकार होनेके बाद मधुराधिपतिकी कृपा और अनुग्रह ही जीवके लिये परमानन्द है, अनन्य प्रीति है। इस जगत्में डग-डगपर सांसारिकताके डरावने जंगल हैं, उनमें हार-जीतके और ऊँच-नीचके प्रतिमानोंके पशु गुर्रा रहे हैं, किंतु ममता और प्रीतिकी अनन्यताने इनकी कभी परवाह नहीं की, प्यार और ममताकी पुष्टि उसे कंसोंके शासनमें भी अक्षय अभय दे जाती है। इस धरतीकी सांसारिकतामें जीना ही यदि नरकमें जीना है तो फिर सांसारिकतामें भी बीज-भाव प्रभुकी अनुकम्पाके स्नेह-निकुञ्जोंकी रचना करते हैं। प्रमेय और पुष्टिके बीजोंके अंकुरित होते ही लौकिक-सी लगनेवाली प्रीति अलौकिकमें समाहित हो जाती है।

सूरदासजीके उद्गार हैं कि **'जब लौं सत्य स्वरूप न सूझत, तब लौं मृगमद नाभि बिसारे, फिरत सकल जग बूझत'** हिरनको जबतक मनोभावोंकी नाभिकी कस्तूरीकी पहचान नहीं होती, तबतक वह सत्यके स्वरूपको भी नहीं पहचान पाता है, यह कस्तूरी ही, ये मनोभाव ही पुष्टिके बीज-भाव हैं। ये बीजभाव ही स्वरूपासक्तिमें पल्लवित और रूपायित हो जाते हैं।

सौन्दर्यका सरोवर कृष्णकी मधुरतासे छलछला रहा है। जीवकी अनुभूति जगत्की सार्थकता है—मधुराधिपतिकी मधुरिमाको देखनेमें, उसके गीत-संगीतमय-स्वरूपको सुननेमें, सेवामें, उस लीलानायकके प्रमेयको उसकी सम्पूर्णताको अनुभव करनेमें। वे प्रभु रसके सागर हैं और जीव है एक छोटा-सा घर। उसके स्वरूपसे भर जाय तो आनन्द और सौन्दर्य जीवके रोम-रोममें प्रकट होने लगता है।

इस पुष्टि-पथके मूलस्रोत हैं महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी। उन्हींकी प्रेरणासे सूरदासजी और अष्टछापके अन्य कवियोंने मध्ययुगीन साहित्यको एक नया मोड़ दिया एवं इसी धाराने वात्सल्य-रसकी काव्यमें स्थापना की। यह काव्यधारा भारतेन्दु बाबू और रत्नाकरतक अबाधित रूपसे प्रवाहित हो रही है और आज भी ये पद श्रीमद्वल्लभकुलकी प्रभुसेवा-प्रणालीके अभिन्न अङ्ग हैं। समूचे देशमें फैले वल्लभियों, वैष्णवोंके लिये वे पद वेदके समान पवित्र हैं।

मानस मन्त्रमय है

कहते हैं कि एक बार भक्तराज श्रीसूरदासजीसे किसीने पूछा कि कविता सबसे उत्तम किसकी है ? इसपर आपने कहा—'मेरी' ! फिर पूछा कि गोस्वामीजीकी कविताको आप कैसी समझते हैं ? इसपर सूरदासजी बोले—'वह तो कविता नहीं है, मन्त्र है।' इस लोकोक्तिमें कहाँतक सत्य है, इस बातका तो पता नहीं, परंतु रामचरितमानसकी चौपाइयाँ और दोहे आदि मन्त्र हैं, यह सत्य है। वे मन्त्रकी भाँति जपनेपर महान् फल देनेवाले हैं। श्रद्धा-विश्वास होना चाहिये।

परंतु उत्तम बात तो यह है कि श्रीरामचरितमानसका पाठ करना चाहिये केवल श्रीरामकी भक्ति पानेके लिये। उसमें केवल श्रद्धाकी आवश्यकता है, और कोई खास नियम नहीं है। प्रतिदिन जितना समय आसानीसे मिले, उतना ही पाठ करे। किसी भी कालमें करे। भगवान् श्रीसीतारामजीको और महावीर श्रीहनुमान्जीको अपने पास समझकर पाठ करनेसे बहुत शीघ्र बहुत उच्च श्रेणीका लाभ हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ममता तू न गयी मेरे मन तें

(मोह, कारण और निवारण)

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

[गताङ्क पृ० सं० ८४६से आगे]

(४)

मैं बी० ए० पास कर लूँ।

मैं एम्० ए० पास कर लूँ।

मैं डॉक्टर बन जाऊँ।

मैं आचार्य बन जाऊँ।

मैं साहित्यरत्न, साहित्याचार्य, विद्यावाचस्पति बन जाऊँ।

यह डिग्रियोंका मोह, विद्वान् कहलानेका मोह, भाषा-शास्त्री, भाषाविद्, सर्वज्ञ बननेका मोह कितना थोथा है—इसका पता तभी चलता है, जब ऊँट पहाड़के नीचे पहुँचता है।

× × ×

बड़े-बड़े डिग्रीयाफ्ता लोगोंसे मिलने, बात करनेका सौभाग्य मुझे मिला है, मिलता है; पर सबसे मिलकर एक ही अनुभव होता है—

जाना था कि इल्म से कुछ जानेंगे।
जाना तो यही जाना कि कुछ भी नहीं जाना॥

बड़ी-से-बड़ी डिग्रियाँ पा लेना और बात है, विषयका ज्ञान प्राप्त कर लेना और। बी०ए०, एम्०ए०, आचार्य बन जानेसे कोई किसी विषयमें पारङ्गत हो जायगा—ऐसा सोचना ही गलत है।

तभी तो भर्तृहरिने कहा था—

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किंचित्किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥

ज्ञानका एक कण मिला कि आदमी बौराया! फिर तो वह अपनेको तीसमारखाँ समझने ही लगता है; पर जब वह ज्ञानियोंके सम्पर्कमें आता है, तब ज्ञानका, विद्याका नशा उतरते देर नहीं!

× × ×

पर हम हैं कि डिग्रियोंके पीछे पागल हैं?

हमारी नस-नसमें डिग्रियोंका मोह घुसा बैठा है।

कैसा थोथा है यह मोह!

कहाँतक कोई पढ़ेगा, कहाँतक ज्ञान प्राप्त करेगा! कितना ही पढ़िये, कितनी ही विद्या प्राप्त कीजिये, कमी बनी ही रहेगी। न्यूटनने कुछ गलत थोड़े ही कहा था—

'Alas! I am only like a child picking up pebbles on the shore of the Giant Ocean of truth.'

'ज्ञानका, सत्यका अनन्त सागर मेरे आगे लहरा रहा है, मैं तो केवल बच्चेकी तरह उसके किनारेके कंकड़ चुन रहा हूँ!'

चुनिये कंकड़!

कंकड़ भी आप कितने चुन पायेंगे?

× × ×

कहते हैं कि एक ठाकुर और एक सेठमें होड़ लगी।

मूँछोंकी होड़।

ठाकुर तो ठाकुर।

भूखे प्राण भले तजैं केहरि खरु नहिं खाहिं।
चातक प्यासे ही रहैं बिन स्वाती न अघाहिं॥

ठाकुर साहबने मूँछें सतर रखनेके लिये सैकड़ों रुपयोंपर हँसते-हँसते पानी फिर जाने दिया।

पर सेठजीका नंबर आया तो उन्होंने खटसे मूँछें नीची कर लीं। बोले—अजी, इसमें रखा ही क्या है! मूँछोंकी शानके लिये सैकड़ों रुपयोंपर पानी फेरना बेवकूफी है, सरासर बेवकूफी!

× × ×

हम आप इन सेठजीपर हँसते हैं, ठाकुर साहबकी पीठ ठोंकते हैं—वाह पट्ठे! खूब किया। पैसा गया तो गया, शान तो रही!

पर सच पूछिये तो शान कुछ नहीं, अहंकारका एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकृत रूपमात्र है।

न उसमें कोई जड़, न उसमें कोई दम !

× × ×

और जाति, कुल, परम्परा, संस्कृति ?

इन सबका मोह कौन किसीसे कम है ? इन सब मान्यताओंके मोहमें फँसकर मनुष्य दूसरोंसे अपनेको श्रेष्ठ मानता है, अपने ही विकास और विस्तारकी बात सोचता है और पक्षपातका चश्मा लगाकर सत्यका हनन करनेको भी तैयार हो जाता है।

× × ×

जाति, कुल, परम्परा, संस्कृतिके ऐसे मोह लोगोंकी अक्लपर पर्दा डाल देते हैं। इनके चलते साम्प्रदायिकताका विषवृक्ष पनपता है, युद्ध होते हैं, लड़ाइयाँ ठनती हैं। इन्हींके कारण अयोग्य व्यक्ति उच्च पदोंपर बैठा दिये जाते हैं, मूर्खोंको विद्वान् बता दिया जाता है और समाज तथा देशको पतनकी ओर घसीटा जाता है।

× × ×

मोह तो स्थानका भी होता है।

प्रान्तोंकी नयी सीमा-निर्धारणके प्रश्नको लेकर इतनी मारकाट क्यों हुई ? इसीलिये न ? वर्ना, जमीनका कोई टुकड़ा इधर या उधर। क्या बनता-बिगड़ता है उससे ?

प्रसिद्ध है—

चना चबेना गंगजल जो पुरवै करतार।
कासी कबहुँ न छाड़िये, विश्वनाथ दरबार॥

तीर्थोंका मोह, बाप-दादोंकी जमीनका मोह, घरका मोह, प्रान्तका मोह, देशका मोह हमें खूब सताता है। कबीरकी तरह बिरले ही कह पाते हैं—

जो 'कबिरा' कासी मरै, रामहिं कौन निहोर।

× × ×

कल्पित धारणाओंका मोह !

किसी विषयमें, किसीके प्रति हमने अपने मनमें कोई धारणा बना ली। बस, अब मैं उसीको कसके पकड़े बैठा हूँ। भले ही उसमें कोई दम न हो, कोई तथ्य न हो, कोई असलियत न हो, मैं उसे छोड़ नहीं सकता। बँदरियाका बच्चा अपनी माँसे जितने जोरसे चिपटता है, उससे भी अधिक जोरसे हम इन कल्पित धारणाओंसे चिपट जाते हैं।

इन धारणाओंके प्रति हमारा मोह इतना बढ़ जाता है कि गलत होनेपर भी हम उनसे बिलग नहीं होना चाहते।

× × ×

और तो और, सेवा और त्यागतकका मोह होता है! आज सौ रोगियोंकी सेवा की, कल दो सौकी सेवा करूँ, आज दो संस्थाओंकी सेवा करता हूँ, कल पचासकी सेवा कर सकूँ—इस तरहके मोहमें फँसकर कभी-कभी मनुष्य कुछ भी नहीं कर पाता। अपनी सीमित शक्तिको इधर-उधर बिखेरकर वह अपनी सारी सेवा व्यर्थ कर डालता है।

त्यागके मोहमें पड़कर मनुष्य कभी-कभी दम्भ और आडम्बरपर भी कमर कस लेता है और यह तो है ही कि मिथ्याचारी कभी आत्मोन्नति कर नहीं सकता।

× × ×

संस्थाका मोह कौन किसीसे कम है !

अभी हालमें एक सेठजीके साथ मैं गया था एक व्यापारिक संस्थामें। उसके संचालक बहुत गिड़गिड़ाकर बोले सेठजीसे—'सेठजी ! किसी तरह इस संस्थाको पैरोंपर खड़ा कर दीजिये।'

एक जमाना था जब ये संचालक महोदय जमीनपर नहीं, आसमानपर चलते थे। अपने आगे किसीको कुछ न गिनते। एक अन्य संस्थाके कर्णधार थे। स्याहको सफेद और सफेदको स्याह करना इनके हाथमें था। तभी कुछ ऐसा संयोग घटा कि ये वहाँसे दूधकी मक्खीकी तरह निकाल फेंके गये। जिस संस्थाको खून-पसीना एककर पुष्ट किया, वहींसे बुरी तरह ठुकरा दिये गये।

पर, ***'बैठा बनिया क्या करे, इस कोठीका धान उस कोठी भरे।'*** आपने दूसरी संस्था खड़ी की। पूरा जोर मारा उसे चलानेका, परंतु सितारा बुलंदीपर था नहीं। बधिया बैठने-बैठनेको हुई, पर उन्होंने कंधा नहीं डाला। आज भी वे वही सपना देख रहे हैं,—'काश, हमारी संस्था एक बार फिर उठ खड़ी हो !'

× × ×

लोग जीवनके दस-दस, पंद्रह-पंद्रह साल देकर कोई संस्था खड़ी करते हैं। फिर उसे विकसित करनेके मोहमें इतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फँस जाते हैं कि नीति-अनीतिको उठाकर ताकपर रख देते हैं।

एक संस्थाको, धर्मार्थ रजिस्ट्रीशुदा संस्थाको युद्धकालमें कुछ चीजोंकी बिक्रीका एकाधिकार मिल गया।

लाभका कोई पार न रहा।

जहाँ लाभ, वहाँ लोभ !

मेरे एक परिचित सज्जन उस संस्थाके डाइरेक्टर बना दिये गये। किसलिये ?

पान-पत्तेके लिये उन्हें कुछ देकर हजारों रुपयेके झूठे बाउचरोंपर उनसे दस्तखत करा लिये जाते !

मुझे पता लगा तो मैंने दाँतों तले उँगली दबायी—धर्मके नामपर ऐसा अनर्थ। संस्थाके विकासका ऐसा झूठा मोह !

× × ×

कुछ लोग स्वयं अपने लिये छल-प्रपञ्च न करेंगे, परंतु अपनी संस्थाके लिये बेईमानी, अन्याय, शोषण करनेसे बाज न आयेंगे ! सेवा और त्यागकी दुहाई देनेवाली कितनी ही संस्थाओंमें देशसेवाके नामपर कार्यकर्ताओंकी सुख-सुविधाओंका कोई ध्यान नहीं रखा जाता। परंतु दूसरोंको त्यागका उपदेश देनेवाले स्वयं अपनी संस्थाका पैसा अलल्ले-तलल्लेसे उड़ाते हैं।

कैसा थोथा मोह !

× × ×

धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका भी मोह होता है।

धर्म क्या है, यह तो बिरले ही जानते हैं, पर हर व्यक्तिने अपना कुछ धर्म मान रखा है और उस मान्यताके मोहमें पड़कर वह न जाने क्या-क्या करता है।

× × ×

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

'जो चीज मुझे खलती है, बुरी लगती है, कष्ट देती है, वह दूसरोंको भी खलेगी। इसलिये उसे न किया जाय।'

धर्मके इस 'सर्वस्व' को हम भुला बैठे हैं।

पर धर्मके नामपर हम रात-दिन ऐसी असंख्य बातें करते रहते हैं जिनसे दूसरोंको कष्ट होता है।

मन्दिरमें जाकर ***'मो सम कौन कुटिल खल कामी'*** जैसे पदोंको जोर-जोरसे गा लेना उत्तम है, पर यही धर्म नहीं है। धर्मका तत्त्व अत्यन्त गहन है। उसमें तो पग-पगपर विवेककी आवश्यकता है और धर्मके तत्त्वको जीवनमें उतारनेकी आवश्यकता है। बाह्याचारोंमें ही हमने धर्म मान रखा है, अन्तरकी साधनापर हम जोर नहीं देते। पर हमें सोचना चाहिये कि अष्टाङ्गयोगमें क्यों यमका स्थान पहला है, नियमका दूसरा। इसीसे कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहको हम पहले अपने जीवनका अङ्ग बना लें, तब शौचादिपर जोर दें।

पर हमें तो बाह्य धार्मिकताका मोह सता रहा है।

× × ×

अर्थ तो हमारे जीवनका मूलमन्त्र बन बैठा है।

येन केन प्रकारेण, चोरी और बेईमानीसे शोषण और अत्याचारसे हमें धन मिलना चाहिये।

अर्थकी शुचिताकी ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। अर्थके मोहमें पड़कर हम दुनिया भरके पाप करते हैं। 'जहाँ नेकी, तहाँ बरकत' की बात तो हमने सर्वथा ही भुला दी है।

हमें याद रखना चाहिये कि **'योऽर्थशुचिः स शुचिः !'**

× × ×

काम हमारे धर्मका तीसरा पाया ठहरा।

उसका मोह तो हमारे रोम-रोममें घुसा बैठा है।

विकारोंका शमन करते-करते, आत्मशुद्धिद्वारा हमें परमेश्वरको पहचानना है। कामके इस लक्ष्यको तो हमने उठाकर ताकपर रख दिया है और विषय-भोगोंको उसका पर्याय मान लिया है।

कैसी विडम्बना है कामकी !

× × ×

—और मोक्ष ?

उसका सब्जबाग कौन कम आकर्षक है !

सारा जीवन चाहे जैसा बिताते रहते हैं, पर हम सोच लेते हैं कि अन्तिम प्रहरमें थोड़ा-सा दान-पुण्य, पूजा-पाठ कर लेनेसे, कसाईके खूँटेपर जानेके लिये तैयार मरियल बछियाकी पूँछ पकड़कर हम वैतरणी पार कर लेंगे, मोक्ष प्राप्त कर लेंगे !

ऐरनकी चोरी करै, करै सुई को दान।
ऊँचे चढ़कर देखते, कब आसी विमान॥

भला, ऐसे भी कहीं मोक्ष मिलता है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोक्षके लिये तो जीवनका क्षण-क्षण पवित्र होना चाहिये।

× × ×

जीवन और जगत्का मोह जबतक हमारे भीतर भरा पड़ा है, विषयोंमें जबतक आसक्ति बनी है, राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर-जैसे विकार हमपर हावी हैं, तबतक उद्धार कहाँ ?

इन असंख्य बन्धनोंके रहते मुक्तिकी कल्पना झूठी है।

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि॥

श्रीरामचरितमानसमें अतिथि और आतिथ्य

(पं० श्रीछेदीजी साहित्यालंकार, विद्यावाचस्पति)

भारतीय धर्मोंमें अतिथि-सत्कारका एक विशेष महत्त्व है। प्रत्येक गृहस्थ **'अतिथींश्च लभेमहि'** आदिकी हार्दिक प्रार्थना करता था। उसकी अनुकृति किसी-न-किसी रूपमें सम्पूर्ण विश्वमें प्रचलित है। भारतीय सिद्धान्तोंके अनुसार गृहस्थके लिये अतिथिकाआशा-भङ्ग एक महान् प्रत्यवाय है। शास्त्रोंने कहा है कि जिस घरमें अतिथि सत्कार न पाकर आशा-भङ्ग हो जानेसे निराश होकर लौट जाता है, वह उसके सारे पुण्योंका अपहरण कर अपना सम्पूर्ण पाप उसे देकर चला जाता है—

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति॥

कविकुलमूर्धन्य गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपनी अनूठी कृति रामायणका नाम 'रामचरितमानस' रखा है। मानस नाम मानसरोवरके अर्थमें है। उनका रामकाव्य (रामायण) तो रत्न-गर्भ-सागरसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।

श्रीरामचरितमानसके रत्नोंमें एक छोटा-सा परमोपयोगी ज्ञान-रत्न है अतिथिके कर्तव्य एवं आतिथ्य करनेकी कला। महर्षि विश्वामित्रजी जब यज्ञ-रक्षार्थ श्रीराम-लक्ष्मणको लाने अयोध्या गये, तब उन्होंने सर्वप्रथम सरयू नदीमें स्नान किया। तत्पश्चात् वे महाराज दशरथकी सभामें पधारे। यथा—

करि मज्जन सरऊ जल गए भूप दरबार॥

(मानस १। २०६)

इसके बाद महाराजाधिराज श्रीदशरथके अतिथि-सत्कारके विषयमें गोस्वामीजीकी उक्ति है—

मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै बिप्र समाजा॥
करि दंडवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी॥
चरन पखारि कीन्हि अति पूजा। मो सम आजु धन्य नहिं दूजा॥
बिबिध भाँति भोजन करवावा। मुनिबर हृदयँ हरष अति पावा॥

(मानस १। २०७। १—४)

इतनी सेवा करनेके पश्चात् राजाधिराज महर्षिसे बड़ी विनम्रतापूर्वक प्रश्न करते हैं—

तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावउँ बारा॥

(मानस १। २०७। ७-८)

इसके बाद महाराज दशरथने अपने प्राणोंसे भी प्रिय पुत्र राम-लक्ष्मणको उनकी यज्ञ-रक्षाके लिये समर्पित कर दिया। उनका यह दिव्य एवं अद्वितीय आतिथ्य समस्त विश्वके लिये अद्भुत आदर्श बना।

अब हम अयोध्यासे जनकपुर चलें और यह देखें कि राम-लक्ष्मणसहित महर्षि विश्वामित्रके जनकपुर पधारनेपर जनकजी किस प्रकार उनका स्वागत करते हैं।

जनकपुर जाते समय राज-भवन पहुँचनेके पूर्व राम और रामानुजसहित मुनिवर विश्वामित्र वाटिकामें रुक जाते हैं। यथा—

देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई॥
कौसिक कहेउ मोर मनु माना। इहाँ रहिअ रघुबीर सुजाना॥

(मानस १। २१४। ५-६)

तत्पश्चात् जनकजीको महर्षि विश्वामित्रके आनेकी सूचना मिलती है। वे अपने मन्त्री, पुरोहित एवं परिकरसहित उनकी सेवामें प्रस्तुत हो जाते हैं—

बिस्वामित्र महामुनि आए। समाचार मिथिलापति पाए॥

(मानस १। २१४। ८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बर गुर ग्याति।
चले मिलन मुनि नायकहि मुदित राउ एहि भाँति॥

(मानस १।२१४)

कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा। दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा॥
बिप्रबृंद सब सादर बंदे। जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे॥

(मानस १।२१५। १-२)

फिर जनकजीने दोनों राजकुमारोंके साथ उन्हें जनकपुरके सर्वोत्तम अतिथि-गृहमें स्थान दिया। रंगभूमिमें भी सर्वोच्च मंचपर उन्हें बैठाया—

सब मंचन्ह तें मंचु एक सुंदर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल॥

(मानस १।२४४)

इतना ही नहीं, धनुष-भङ्गके बाद अपनी चारों पुत्रियों एवं अपने प्रायः आधे राज्यवैभवको दहेजके रूपमें मुनिके चरणोंमें चारों भाइयोंके विवाहके अवसरपर समर्पण कर दिया। इससे अधिक अतिथि-सत्कार क्या होगा ?

महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें जब भगवान् श्रीराम पधारते हैं, तब वे प्राणप्रिय परमात्मतत्त्वको अतिथि-रूपमें प्राप्तकर उनका हृदयसे आतिथ्य करते हैं—

मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाए। कंद मूल फल मधुर मँगाये॥

(मानस २।१२५।३)

—आदि-आदि।

भ्रातृ-विरहसे व्याकुल सैन्यसहित भरत जब तीर्थराज प्रयाग पहुँचते हैं, तब मुनिवर भरद्वाज उनका जो दिव्य आतिथ्य करते हैं, वह प्रसंग भी दर्शनीय है। वे सोचते हैं—

चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई॥

(मानस २।२१३।५)

मुनिके आदेशपर ऋद्धि-सिद्धियाँ भी आयीं और भरतकी सेवामें लग गयीं—

सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं। आयसु होइ सो करहिं गोसाईं॥

(मानस १।२१३।८)

पुनः स्वयं उन्होंने अपने तपोबलसे ब्रह्माको भी आश्चर्यमें डाल देनेवाला दिव्य-वैभव आतिथ्यके रूपमें उनकी सेवामें उपस्थित कर दिया—

बिधि बिसमय दायकु बिभव मुनिबर तप बल कीन्ह॥

(मानस २।२१४)

वनमें ऋषियोंद्वारा सीतारामका आतिथ्य तो अद्भुत है ही, परंतु शबरीद्वारा रामका आतिथ्य तो भारतीय आतिथ्य-सत्कारके इतिहासमें अद्वितीय स्थान प्राप्त कर गया है। यहाँतक कहा जाता है कि उसके भक्ति-भावसे अभिभूत होकर भगवान् रामने उसके जूठे फलोंको स्वीकार किया था। फलतः गोस्वामी तुलसीदासजीको कहना पड़ा—

घर गुरुगृह प्रिय सदन सासुरे, भइ जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरीके फलनिकी रुचि माधुरी न पाई॥

(विनयपत्रिका १६४।४)

मानसमें इनके अतिरिक्त भी अनेक स्थल हैं, जहाँ अतिथि और आतिथ्यके कर्तव्योंका निदर्शन होता है। पर विस्तारभयसे उनका संग्रह न करते हुए केवल कुछ मुख्य प्रसंग दिये गये हैं।

अतिथि-सत्कार हमारा धर्म, हमारी सभ्यता, संस्कृतिका अभिन्न अङ्ग है। हमारे सद्ग्रन्थोंमें अतिथिको देवता माना गया है। महाभारतादि ग्रन्थोंमें तो अतिथिके लिये सर्वस्व समर्पण करनेका भी उल्लेख मिलता है।

पद्धतियोंके फेरमें न पड़कर अपनेको भगवान्पर छोड़ दो, रास्तोंकी छान-बीन न करो और न किसी रास्तेकी खाक ही छानो, यदि तुम अपनेको सर्वथा निराधार मानकर उनपर छोड़ सके तो वे सर्वाधार ही तुम्हारे परमाधार बन जायँगे। तुम्हारा हाथ पकड़कर, दिव्य प्रकाशकी ज्योति दिखलाकर अधिक क्या, गोदमें उठाकर खिलाते-पिलाते और आनन्द देते ले चलेंगे। पर जब तुम उनकी गोदमें आ गये, तब तुम्हें चलनेकी और कहीं पहुँचनेकी चिन्ता कैसी, तुम तो निहाल हो चुके, उनकी गोदको पाकर। भगवान्की यही शरणागति है। जो भगवान्के शरण होकर उसका कोई दूसरा फल चाहता या समझता है, वह सब कुछ छोड़कर भगवान्के आश्रयमें आया ही नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवतीय प्रवचन—३४

जीवन सात्त्विक यज्ञमय बनाना चाहिये

(संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)

भक्तिमार्गमें लोभ विघ्नरूप है। मनुष्य भगवान्‌के लिये अथवा दान देनेके लिये घटिया-से-घटिया चीज—वस्तुओंका उपयोग करता है। पुत्रके लिये कपड़े बनवाने हों तो अधिक-से-अधिक रुपये मीटरवाला कपड़ा ले आता है और ठाकुरजीके वस्त्र-शृङ्गार बनवाने हों तो कम-से-कम रुपये मीटरवाला कपड़ा ढूँढ़ता है। एक गृहस्थ बाजारमें ठाकुरजीके लिये फूल लेने जाता है। माली कहता है कि गुलाबके फूलकी कीमत चार आना है। तो ग्राहक कहता है कि कनेरका फूल ही दे दो, क्योंकि मेरे भगवान् तो भावनाके भूखे हैं। किंतु जब पत्नी कहती है कि मेरे लिये एक अच्छी-सी वेणी (सिरमें लगानेके लिये फूलोंका गजरा) ला दो तो बहुत खर्च होनेपर भी वह अच्छी मनपसंद वेणी ले आता है।

सत्यनारायणकी कथा करानी हो तो वह दो सौ रुपयेका पीताम्बर पहनकर बैठता है और जब ठाकुरजीको वस्त्र परिधान करानेका प्रसंग आता है तो कहेगा कि वह कलावा (डोरी विशेष) कहाँ है ? वही लाओ। भगवान् कहते हैं—बेटा ! मैं सब समझता हूँ। मैं भी तुझे एक दिन लँगोटी ही पहनाऊँगा। मैंने तेरी लँगोटीके लिये डोरी अमानत रूपमें रख छोड़ी है।

ऐसा नहीं करना चाहिये। भगवान्‌को उत्तमोत्तम वस्तु अर्पित करो। '२५२ वैष्णवनकी वार्ता'में जमनादास भक्तका एक दृष्टान्त है। एक बार वे ठाकुरजीके लिये फूल लेने बाजारमें निकले। मालीकी दूकानपर एक अच्छा-सा कमलका फूल देखा। उन्होंने सोचा कि आज अपने ठाकुरजीके लिये यही सुन्दर कमलका फूल ले जाऊँ। उसी समय वहाँ एक यवनराज आया, जो वेश्याके लिये फूल लेना चाहता था। जमनादास भक्तने उस कमलके फूलकी कीमत पूछी तो मालीने कहा कि इसकी कीमत पाँच रुपये हैं, तो यवनराजने बीचमें ही कह दिया कि मैं इस फूलके लिये दस रुपये दूँगा, तू यह फूल मुझे ही दे। तो इसके बाद जमनादास भक्तने कहा कि मैं पचीस रुपये देनेको तैयार हूँ, फूल मुझे ही देना। इस प्रकार फूल लेनेके लिये दोनोंके बीच होड़-सी लग गयी।

यवनराजने दस हजारकी बोली लगायी, तो भक्त जमनादासने कहा कि एक लाख। वेश्याके प्रति यवनराजको वैसा कोई सच्चा प्रेम नहीं था, केवल मोह था। उसने सोचा कि मेरे पास लाख रुपये होंगे तो कोई दूसरी स्त्री भी मिल ही जायगी, पर उधर जमनादास भक्तके लिये तो ठाकुरजी ही सर्वस्व थे। उनका प्रभुप्रेम सच्चा था, शुद्ध था। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति बेच दी और एक लाख रुपयेमें वह कमलका फूल खरीदकर श्रीनाथजीकी सेवामें अर्पित कर दिया। फूल अर्पित करते ही श्रीनाथजीके सिरसे मुकुट नीचे गिर गया। इस प्रकार भगवान्‌ने बताया कि भक्तके इस फूलका वजन मेरे लिये अत्यधिक है।

सनत्कुमार क्रोधित हुए अतः उनका पतन हुआ। प्रभुके द्वारतक पहुँचकर उन्हें वापस लौटना पड़ा।

मन और बुद्धिपर कभी विश्वास मत करो। वे बार-बार दगा दे जाते हैं। अपनेको निर्दोष माननेके समान दोष कोई और नहीं है।

काम-क्रोध अंदरके विकार हैं। वे बाहरसे नहीं आते। सनत्कुमारोंका क्रोध बाहरसे नहीं आया है। अवसर मिलते ही ये विकार बाहर आ जाते हैं। अतः मनपर सत्संगका, भक्तिका अंकुश रखो। सतत ईश्वर-चिन्तन करनेसे अंदरके विकार शान्त हो जाते हैं।

सनत्कुमारोंने क्रोधित होकर जय-विजयको शाप दिया। राक्षसोंमें ही विषमता होती है। तुम दोनोंके मनमें भी विषमता है। अतः तुम राक्षस हो जाओ।

मन्दिरमें थोड़ा-सा पाप किया जाय तो वह भी महापाप ही होता है। सनत्कुमारोंने तो वैकुण्ठमें क्रोध किया।

शुकदेवजी सावधान करते हैं—राजन् ! ऐसा पाप कभी मत करना।

सनकादिक ऋषियोंने शाप दिया कि दैत्यकुलमें तुम्हें तीन बार जन्म लेना पड़ेगा। भगवान्‌ने सोचा कि इन्होंने मेरे आँगनमें ही पाप किया है, अतः वे घरमें आनेके पात्र नहीं हैं। इन्होंने अभीतक क्रोधपर विजय नहीं पायी है। अतः वे मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धाममें आनेकी पात्रता गँवा चुके हैं। मैं बाहर जाकर उन्हें दर्शन दे आऊँ।

सनकादिकोंको अंदर प्रवेश न मिल सका। यदि वे अंदर जा सके होते तो फिर बाहर आनेका प्रश्न उपस्थित ही नहीं होता, कारण, भगवान्‌का परमधाम है वह—**'यद्गत्वा न निवर्तन्ते।'**

भगवान्‌ने लक्ष्मीजीसे कहा कि लगता है कि बाहर कुछ झगड़ा हो रहा है। वे दोनों बाहर आये। ठाकुरजीने सनत्कुमारोंकी ओर नहीं देखा। आज दृष्टि धरतीपर है।

अपने द्वारा किये हुए पापोंके लिये सच्चे हृदयसे जीव जबतक पछताये नहीं, तबतक ठाकुरजी दर्शन नहीं देते।

अगर खुदा नजर दे तो सब खुदा की है।

लोग अपनेको वैष्णव कहलाते हैं, किंतु पाप करना नहीं छोड़ते। स्वदोष-दर्शन यह ईश्वरदर्शनका फल है। सनत्कुमार वंदन करते हैं, किंतु प्रभुजीने उनकी ओर नहीं देखा। दोनों ऋषि भगवान्‌से क्षमा-याचना कर रहे हैं। प्रभुने कहा कि भूल तुमसे नहीं हुई। तुम्हारा अपमान मेरा अपमान है।

ब्राह्मण भगवान्‌को प्रिय हैं, क्योंकि वे भगवान्‌की पहचान कराते हैं। भगवान् कहते हैं कि आपने मेरी भक्ति और ज्ञानका प्रचार किया है। ब्रह्मा, लक्ष्मीसे भी मुझे मेरे भक्त अधिक प्रिय हैं। भगवान् वाणीचतुर हैं। लक्ष्मीजीको कहीं बुरा न लग जाय इसलिये सोचकर वे फिर कहते हैं कि 'पर यदि भक्ति अनन्य न हो तो वह मुझे प्रिय नहीं है।' 'लक्ष्मीजीकी भक्ति अनन्य है। वे निष्कामभावसे प्रेम करती हैं, अतः वे भगवान्‌को विशेष प्रिय हैं।' भगवान् कहते हैं—'निष्काम भक्ति मुझे अतिशय प्रिय है। यदि लक्ष्मीजीकी भक्ति भी निष्काम न हो तो मुझे वे भी प्रिय नहीं लगतीं।'

चंचला लक्ष्मी ठाकुरजीके चरणोंमें स्थिर हो जाती हैं। तुलसीजी राधाजीका स्वरूप हैं। तुलसी-विवाहका तात्पर्य जीवात्मा और परमात्माका विवाह ही है।

सनकादिक सोच रहे हैं कि हमारी प्रशंसा तो बहुत की जा रही है, किंतु हमें धामके अंदर तो बुलाते ही नहीं हैं। हमें अभी तपश्चर्या करनेकी आवश्यकता है। अभीतक हमारा क्रोध नष्ट नहीं हो पाया है। वे ब्रह्मलोकमें पधारते हैं।

जय-विजयको सांत्वना देते हुए नारायण भगवान्‌ने कहा—तुम्हारे तीन अवतार होंगे।

सनकादिकोंके शापसे जय और विजय क्रमशः हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुके रूपमें अवतरित हुए हैं।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं—

दितिके गर्भमें जय-विजय आये। दो बालकोंका जन्म हुआ। उनका नाम हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु रखा गया।

असमयमें किये गये कामोपभोगके कारण दिति-कश्यपके यहाँ राक्षसोंका जन्म हुआ। अतः कामके अधीन मत होओ। एकादशी, द्वादशी, पूर्णिमा, अमावस्या, जन्मतिथि आदि दिवसोंमें ब्रह्मचर्यका पालन करो।

महाप्रभुजीने इस चरित्रके अन्तमें कश्यपके सिरपर तीन दोष आरोपित किये हैं—कर्मत्याग, मौनत्याग और स्थानत्याग।

हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु रोज चार-चार हाथ बढ़ते थे। यदि सचमुच ही ऐसा होने लगे तो माता-पिताकी दुर्गतिकी कल्पना कर सकते हैं। मुसीबतोंका सामना करना पड़ेगा—रोज-रोज कपड़े छोटे पड़ने लगेंगे।

किंतु यह तो भागवतकी समाधिभाषा है। भागवतमें समाधिभाषा ही मुख्य है तथा लौकिकभाषा गौण है।

इससे लोभका स्वरूप बताया गया है। चार-चार हाथ रोज बढ़ते थे अर्थात् लोभ रोज-रोज बढ़ता ही जाता है। लाभसे लोभ बढ़ता है। बिना प्रभुकृपासे लोभका अंत नहीं होता। वृद्धावस्थामें शरीरके जीर्ण हो जानेके कारण काम तो मर जाता है किंतु लोभका नाश नहीं हो पाता।

लाभसे लोभ और लोभसे पाप बढ़ता है। पापके बढ़नेसे धरती रसातलमें जाती है। धरती अर्थात् मानव-समाज दुःखरूपी रसातलमें डूब जाता है।

हिरण्याक्षका अर्थ है संग्रहवृत्ति और हिरण्यकशिपुका अर्थ है भोगवृत्ति।

हिरण्याक्षने बहुत कुछ एकत्रित किया और हिरण्यकशिपुने बहुत कुछ उपभोग किया।

भोग बढ़ता है तो लोभ भी बढ़ता है, भोगके-बढ़नेसे पाप भी बढ़ता है। जबसे लोग मानने लगे हैं कि रुपये-पैसेसे ही सुख मिलता है, तबसे जगत्‌में पाप बहुत बढ़ गया है। केवल धनसे सुख मिलता हो ऐसी बात नहीं है।

हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुके संहारके लिये भगवान्‌ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रमशः वराह और नृसिंह-अवतार धारण किया था। हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु लोभके ही अवतार हैं।

भगवान्‌ने कामको मारनेके लिये एक ही अवतार लिया अर्थात् रावण-कुम्भकर्णका संहार करनेके लिये रामचन्द्रजीका अवतार लिया। क्रोधको मारनेके लिये—शिशुपालके वधके लिये एक कृष्णावतार ही लिया। किंतु लोभको मारनेके लिये दो अवतार लेने पड़े—वराह और नृसिंह-अवतार।

काम-क्रोधको मारनेके लिये एक-एक अवतार ही लेना पड़ा। किंतु लोभको मारनेके लिये दो अवतार लेने पड़े, यही बताता है कि लोभको पराजित करना बड़ा दुष्कर है।

वृद्धावस्थामें तो कई लोगोंमें सयानापन आता है, किंतु जो जवानीमें ही सयाना बने वही सच्चा सयाना है। शक्तिके क्षीण होनेपर कामको जीतनेमें कौन-सी बड़ी बात है। कोई कहना माने ही नहीं तो बूढ़ेका क्रोध मिटे तो उसमें कौन-सी अचरजकी बात हुई। किंतु यह लोभ तो वृद्धावस्थामें भी अन्ततक नहीं छूट पाता। लोभको मारना कठिन है। सत्कर्ममें विघ्नकर्ता लोभ है, अतः संतोषके द्वारा उसे मारना चाहिये। लोभ संतोषसे ही मरता है। इसलिये संतोषकी आदत डालो।

लोभ आदिके प्रसारसे पृथ्वी दुःखरूपी सागरमें डूब गयी थी। अतः भगवान्‌ने वराह-अवतार लेकर उसका उद्धार किया। वराह भगवान् संतोषके अवतार हैं।

वराह-अवतार यज्ञावतार है। वर+अह। वर अर्थात् श्रेष्ठ और अहका अर्थ है दिवस। कौन-सा दिवस श्रेष्ठ है? जिस दिन तुम्हारे हाथोंसे सत्कर्म हो वही दिन श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ कर्म करनेसे दिवस भी श्रेष्ठ बन जायगा। जिस कार्यसे प्रभु प्रसन्न हों वही सत्कर्म है। सत्कर्मको ही यज्ञ कहते हैं।

हिरण्याक्ष सत्कर्ममें विघ्नकर्ता है। मनुष्यके हाथों सत्कर्म नहीं होता, क्योंकि उसे लगता है कि प्रभुने उसे बहुत कुछ दिया है। हिरण्याक्ष लोभका स्वरूप है।

समुद्रमें डूबी हुई पृथ्वीको वराह भगवान्‌ने बाहर तो निकाला किंतु उसे अपने पास न रखा। उन्होंने पृथ्वी मनुको अर्थात् मनुष्योंको सौंप दी। जो कुछ अपने हाथोंमें आया उसे औरोंको दे दिया। यही संतोष है।

वराह भगवान् यज्ञके दृष्टान्तरूप हैं। यज्ञ करनेसे चित्तशुद्धि होती है। लोभ आदिका नाश करके चित्तशुद्धि करनी चाहिये। चित्तशुद्धि होनेसे कपिलमुनिकी अर्थात् ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति होती है।

यज्ञपूर्वक जीवन जीओगे तो ज्ञान मिलेगा। यज्ञावतारके बिना मनकी शुद्धि नहीं होती और मनःशुद्धि या चित्तशुद्धिके बिना ज्ञान नहीं मिलता। तब ज्ञानावतार भी नहीं होता और कपिलदेव भी नहीं आते। अज्ञानको दूर करनेका काम वराह-अवतार बताता है। अज्ञानको दूर करनेके लिये यज्ञ करो। सत्यभाषण भी यज्ञ है। यज्ञ करोगे तो कपिल भगवान्‌की ब्रह्मविद्या बुद्धिमें स्थिर होगी।

मनको सीख

(श्रीहरप्रसादजी बड़ौनियाँ 'पागल')

मन रे! भई चलनकी बेला।
नहिं रहने यह सब उठ जाने चार दिना को मेला॥
छीज नहीं जब चन्द्र-कलाएँ रैन अँधेरी आने।
सूख रहीं जब ताल-तलैयाँ इक दिन धूल उड़ाने॥
जा दिन पंथी कूच करैगो बहुरि लौट नहिं आने।
जा हित कोटि उपाय रचे जग सोऊ तन जरि जाने॥
जो तेरी अनजानी 'पगले'! उसी राहमें जाने।
सुमरन कर अब राम सनेही उन्हें संग ले जाने॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तगाथा—

भक्त आरण्यकमुनि

त्रेतायुगसे पहलेकी बात है। आरण्यकमुनि वनमें रहकर घोर तपस्या करते थे। उनका उद्देश्य था परमात्माको जानकर परमानन्द और परम शान्तिको प्राप्त करना। परंतु उद्देश्य सफल नहीं हुआ। तब मुनिवर मूल परमात्मतत्त्वको जाननेके लिये किसी ज्ञानी महापुरुषकी खोजमें निकले। अनेकों तीर्थोंमें घूमे, बहुत लोगोंसे बातें कीं, परंतु कहीं भी मनोरथ पूरा नहीं हुआ। एक दिन उन्होंने देखा कि दीर्घजीवी महर्षि लोमश तीर्थयात्राके लिये स्वर्गसे आये हैं। मुनिने जाकर लोमशजीके चरणोंमें प्रणाम किया और विनयपूर्वक पूछा—'हे भगवन्! दुर्लभ मनुष्यदेहको प्राप्त करके जीव किस उपायसे इस दुस्तर संसार-सागरसे पार जा सकता है? ऐसा कोई देवता, व्रत, दान, जप या यज्ञ हो तो कृपा करके मुझे बतलाइये, जिसके सेवनसे मैं घोर संसार-समुद्रसे पार हो सकूँ।' आरण्यक-मुनिकी बात सुनकर महर्षि लोमशने कहा—'दान, तीर्थ, व्रत, यम, नियम, योग, यज्ञ आदि सभी साधन उत्तम हैं, परंतु इनका फल स्वर्ग ही है। स्वर्ग विनाशी है। पुण्य जबतक रहता है, तबतक जीव स्वर्गके भोग भोगता है, पुण्य पूरा होते ही वहाँसे उसे फिर नीचे गिरना पड़ता है। अतएव जो लोग नाशवान् स्वर्ग-सुखके लिये ही दान-पुण्यादि करते हैं, वे कुछ भी शुभ कर्म न करनेवाले मूढ़ पुरुषोंकी अपेक्षा उत्तम होनेपर भी वस्तुतः बुद्धिमान् नहीं हैं। मैं तुम्हें एक गोपनीय बात बतलाता हूँ—'श्रीरामसे बढ़कर कोई देवता नहीं, रामसे उत्तम कोई व्रत नहीं, रामसे उत्कृष्ट कोई योग नहीं और रामसे ऊँचा कोई यज्ञ नहीं है। श्रीरामके नामका जप और श्रीरामका भक्तिपूर्वक पूजन करनेसे मनुष्य इस लोक और परलोकमें परम सुखी होता है और अनायास ही संसार-सागरसे तरकर भगवान्‌को प्राप्त होता है। श्रीरामका स्मरण और ध्यान करनेसे मनुष्यकी सारी कामनाएँ श्रीरामकी कृपासे पूरी होती हैं और वह जिससे परम पदको प्राप्त कर सके, ऐसी दुर्लभ अपनी भक्ति श्रीराम उसे दे देते हैं। उत्तम कुलमें उत्पन्न उत्तम कर्म करनेवाले पुरुषोंके लिये तो कहना ही क्या है, चाण्डाल भी श्रीरामका प्रेमपूर्वक स्मरण करके परम गतिको प्राप्त होते हैं। श्रीराम ही एकमात्र परम देवता हैं, रामार्चन ही प्रधान व्रत है, रामनाम ही सर्वोत्तम मन्त्र है और जिनमें रामकी स्तुति है, वही उत्तम शास्त्र है। अतएव तुम मन लगाकर दिव्य मनोहर-मूर्ति भगवान् श्रीरामचन्द्रका ही भजन करो। श्रीरामके भजनसे तुम अपार संसार-सागरसे गोपदकी तरह तर जाओगे।'

महर्षि लोमशकी बात सुनकर आरण्यकमुनिको बड़ी आशा हुई और प्रसन्नचित्तसे उन्होंने फिर पूछा कि 'भगवन्! यदि मुझपर आपकी परम कृपा है तो अनुग्रह करके मुझे श्रीरामचन्द्रका स्वरूप बतलाइये, जिससे मैं उस स्वरूपका ध्यान करके कृतार्थ हो सकूँ।' इसपर महर्षि लोमश संतुष्ट होकर कहने लगे कि 'हे मुनिवर! सुनो, मैं तुमसे श्रीरामचन्द्रका ध्यानके योग्य स्वरूप बतलाता हूँ। इस स्वरूपका मन लगाकर ध्यान करनेसे सब मनोरथ निश्चय ही पूर्ण हो जाते हैं।

'रमणीय अयोध्या नगरीमें कल्पतरुके नीचे विचित्र-मण्डपमें भगवान् श्रीरामचन्द्र विराजमान हैं। महामरकतमणि, नीलकान्तमणि और स्वर्णसे बना हुआ अत्यन्त मनोहर उनका सिंहासन है। सिंहासनकी प्रभा चारों ओर छिटक रही है। नवदूर्वादलश्याम सौन्दर्यसागर देवेन्द्रपूजित भगवान् श्रीरघुनाथजी सिंहासनपर बैठे अपनी छटासे मुनियोंका मन हरण कर रहे हैं। उनका मनोमुग्धकारी मुखमण्डल करोड़ों चन्द्रमाओंकी छविको लज्जित कर रहा है। उनके कानोंमें दिव्य मकराकृति-कुण्डल झलमला रहे हैं, मस्तकपर किरीट शोभित है। किरीटमें जड़ी हुई मणियोंकी रंग-बिरंगी प्रभासे सारा शरीर रञ्जित हो रहा है। मस्तकपर काले घुँघराले केश हैं। उनके मुखमें सुधाकरकी किरणों-जैसी दन्तपंक्ति शोभा पा रही है। उनके होंठ और अधर विद्रुममणि-जैसे मनोहर कान्तिमय हैं, जिसमें अन्यान्य शास्त्रोंसहित ऋक्, साम आदि चारों वेदोंकी नित्य-स्फूर्ति हो रही है, जवाकुसुमके समान मधुमयी रसना उनके मुखके भीतर शोभा पा रही है। उनकी सुन्दर देह, कंबु-जैसे कमनीय कण्ठसे सुशोभित है। उनके दोनों कन्धे सिंह-स्कन्धोंकी तरह ऊँचे और मांसल हैं। उनकी लंबी भुजाएँ घुटनोंतक पहुँची हुई हैं। अँगूठीमें जड़े हुए हीरोंकी आभासे अँगुलियाँ चमक रही हैं। केयूर और वलय निराली ही शोभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे रहे हैं। उनका सुमनोहर विशाल वक्षःस्थल श्रीलक्ष्मी और श्रीवत्सादि विचित्र चिह्नोंसे विभूषित है। उदरमें त्रिवली है, गम्भीर नाभि है और मनोहर कटिदेश मणियोंकी करधनीसे सुशोभित है। उनके सुन्दर निर्मल जंघाएँ और मनोहर घुटने हैं। योगिराजोंके ध्येय उनके परम मङ्गलमय चरणयुगलमें वज्र, अंकुश, जौ और ध्वजादि रेखाएँ अङ्कित हैं। हाथोंमें धनुष-बाण और कन्धेपर तरकश शोभित हैं। मस्तकपर सुन्दर तिलक है। अपनी इस छविसे वे सबका चित्त बलात् अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं।'

इस प्रकार भगवान्‌के ध्यानस्वरूपका वर्णन करके लोमशजीने कहा—'हे मुनि! तुम इस तरह श्रीरामका ध्यान और स्मरण करोगे तो अनायास ही संसार-सागरसे पार हो जाओगे।'

लोमशजीकी बात सुनकर आरण्यकमुनिने उनसे विनम्र शब्दोंमें कहा—'भगवन्! आपने कृपापूर्वक मुझे श्रीरामका ध्यान बतलाया सो बड़ा ही अच्छा किया। मैं आपके उपकारके भारसे दब गया हूँ, परंतु नाथ! इतना और बतलाइये कि ये राम कौन हैं, इनका मूलस्वरूप क्या है? और ये क्यों अवतार लेते हैं?'

महर्षि लोमशजीने कहा कि 'हे वत्स! पूर्ण सनातन परात्पर परमात्मा ही श्रीराम हैं। समस्त विश्वब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति इन्हींसे हुई है, यही सबके आधार, सबमें फैले हुए, सबके स्वामी, सबके सर्जन, पालन और संहार करनेवाले हैं। सारा विश्व इन्हींकी लीलाका विकास है। समस्त योगेश्वरोंके भी परम ईश्वर दयासागर ये प्रभु जीवोंकी दुर्गति देखकर उन्हें घोर नरकसे बचानेके लिये जगत्‌में अपनी लीला और गुणोंका विस्तार करते हैं, जिनका गान करके पापी-से-पापी मनुष्य भी तर जाते हैं। ये राम इसी हेतु अवतार धारण करते हैं।'

इसके बाद आरण्यकमुनिके पुनः पूछनेपर लोमशजीने संक्षेपमें समस्त रामचरित्र उन्हें सुनाया और उनसे कहा कि 'भगवान् श्रीरामजीके अश्वमेधयज्ञके घोड़ेके साथ रहनेवाले रामानुज शत्रुघ्नजी जब तुम्हारे आश्रमपर पधारेंगे, तब उनसे पता पाकर तुम भगवान् श्रीरामका साक्षात् दर्शन कर सकोगे और तभी तुम उनमें लीन हो सकोगे।'

महर्षिवर लोमशजीके उपदेशानुसार मुनि आरण्यक रेवा नदीके तटपर एक जीर्ण-सी कुटियामें निवास करते हुए अपना सारा समय श्रीरामजीके भजन और ध्यानमें लगाने लगे।

इस प्रकार बहुत काल बीत गया। मुनिवर भगवान् श्रीरामके भजन-ध्यानमें मस्त होकर तनकी सुधि भूल गये और नित्य परमानन्दमें मग्न रहने लगे। तदनन्तर एक दिन श्रीरामके अश्वमेधयज्ञका घोड़ा मुनिकी कुटियाके पास आ पहुँचा। उसके पीछे-पीछे विशाल सेनाके साथ बड़े-बड़े वीरोंके संग श्रीशत्रुघ्नजी भी चले जा रहे थे। उन्होंने रेवाके तटपर जीर्ण-सा आश्रम देखकर अपने साथी वीरवर सुमतिसे पूछा कि यह आश्रम किस मुनिका है। सुमतिके बतलानेपर शत्रुघ्नजी मुनिकी कुटियापर पहुँचे। मुनिने उनका स्वागत किया। और अन्तमें यह जानकर कि ये रामानुज श्रीशत्रुघ्न हैं, उन्हें लोमशजीके वचन याद आ गये। मुनि हर्षके मारे उछल पड़े। सोचने लगे—'अहा! आज चिरकालकी साध पूरी होगी। आज मुझे इन आँखोंसे भगवान् श्रीरामके दर्शन होंगे, आज मेरा जीवन सफल होगा।' यों मनोरथ करते-करते मुनिवर आरण्यक अयोध्याजीकी ओर चल पड़े। उन्होंने देवदुर्लभ परम रमणीय अयोध्या नगरीमें जाकर देखा—सरयूजीके तटपर एक सुरम्य मण्डपमें पद्मपलाशलोचन नवदूर्वादलश्याम भगवान् श्रीरामचन्द्र विराजमान हैं। अनेक महामहिम मुनियोंने उन्हें चारों ओरसे घेर रखा है। उनके दोनों ओर भरत और लक्ष्मण विराजित हैं। दीन-दरिद्रोंको मनमानी वस्तुएँ दी जा रही हैं। मुनिवर आरण्यक भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके त्रिभुवन-कमनीय सौन्दर्य-राशि मधुर स्वरूपको देखकर मन्त्रमुग्धकी भाँति एकटकी लगाये खड़े रह गये। उनकी पलकें पड़नी बंद हो गयीं, शरीर पुलकित हो गया, आँखोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बह चली। मुनिने आज अपने जीवनको सफल और धन्य समझा। इधर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने जब परम तेजस्वी तपोमूर्ति मुनिको इस दशामें देखा तो वे सहसा उठ खड़े हुए और मुनिके चरणोंमें प्रणाम करने लगे। इन्द्रादि बड़े-बड़े देवता सिर झुकाकर अपने किरीट-मणियोंकी प्रभासे जिनके चरणयुगलोंको चमकाते रहते हैं, वही देवेन्द्र-वन्दितचरण भगवान् श्रीरामचन्द्र 'हे ब्राह्मणदेव! आज आपने मेरे शरीरको पवित्र कर दिया' यों कहकर मुनिके चरणोंपर गिर पड़े। महातपस्वी आरण्यकमुनिने उन प्रणतप्रिय प्रभु भगवान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचन्द्रको शीघ्र ही दोनों भुजाओंसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। तदनन्तर भगवान् श्रीरामचन्द्रने मुनिको ऊँचे मणिमय आसनपर बैठाकर उनके चरण धोये और 'आज मैं अपने बन्धु-बान्धवोंसहित पवित्र हो गया' यों कहकर मुनिके चरणोदकको अपने मस्तकपर छिड़क लिया। इसके बाद बड़ी ही विनयपूर्ण भाषामें भगवान्ने कहा—'हे स्वामिन्! मेरा अश्वमेधयज्ञ आपके यहाँ पधारनेसे सफल हो जायगा। आपकी चरणधूलिसे पवित्र होकर यह अश्वमेधयज्ञ शीघ्र मुझे रावण-कुम्भकर्णादि ब्राह्मणसंतानोंके वधसे प्राप्त हुई ब्रह्महत्यासे मुक्त कर देगा।'

भगवान् श्रीरामके इन शब्दोंको सुनकर मुनिने हँसकर बड़े ही मधुर शब्दोंमें कहा—'भगवन्! आप मर्यादाके रक्षक हैं, आप ऐसी बातें न कहेंगे तो और कौन कहेगा? वेदज्ञ ब्राह्मण आपकी ही मूर्ति हैं। आप दूसरे राजाओंके सामने सुन्दर आदर्श रखनेके लिये ही ऐसा आचरण कर रहे हैं, परंतु भगवन्! ब्रह्महत्याके पापसे छूटनेके लिये आप अश्वमेधयज्ञ कर रहे हैं, यह सुनकर तो मैं अपनी हँसीको नहीं रोक सकता। धन्य है मर्यादापुरुषोत्तम आपकी मर्यादाको! भला, सारे शास्त्रोंसे विपरीत आचरण करनेवाला सर्वथा मूर्ख और पापी मनुष्य भी जिसका नाम-स्मरण करते ही पापोंके महान् समुद्रको लाँघकर परमपदको पा जाता है, वह ब्रह्महत्याके पातकसे मुक्त होनेके लिये अश्वमेधयज्ञ करे, यह क्या कम मजाककी बात है? हे भगवन्! जबतक मनुष्य आपके नामका भलीभाँति उच्चारण नहीं करता, तभीतक ब्रह्महत्यादि महान् पाप गरजा करते हैं। हे महाराज! राम-नामरूपी सिंहकी गर्जना सुनते ही महापापरूपी सब हाथी जान बचानेके लिये न मालूम किधर भाग जाते हैं कि फिर ढूँढ़नेपर भी उनका पता नहीं लगता। मैंने पहले गङ्गातीरवासी मुनियोंसे सुना था कि जबतक सुस्पष्टरूपसे आपके मनोहर रामनामका उच्चारण नहीं किया जाता, तभीतक व्याकुलहृदय महापापी मनुष्योंको पाप-तापका भय रहता है। हे श्रीरामचन्द्र! मैं धन्य हूँ जो आज आपके दर्शन पाकर अनायास ही संसार-तापसे मुक्त हो गया हूँ।'

आरण्यकमुनिके इन वचनोंको सुनकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने उनकी यथोचित पूजा की। उपस्थित मुनिगण श्रीरामकी यह लीला देखकर 'धन्य, धन्य' की ध्वनि करने लगे। मुनिवर आरण्यकने सदा जिनका ध्यान किया करते थे, उन भगवान्का साक्षात् दर्शन करके परम आनन्दित होकर मुनियोंसे कहा—'हे मुनिगण! आपलोग मेरे महाभाग्यकी ओर तो देखिये। स्वयं भगवान् श्रीरामचन्द्र जब मुझको प्रणाम करके मेरा स्वागत करते हैं, तब मेरे समान जगत्में दूसरे किस भाग्यवान्ने जन्म लिया है। वेद नित्य जिनके चरणकमलोंकी खोजमें लगे रहते हैं, वे भगवान् मेरा चरणोदक लेकर अपनेको पवित्र मानते हैं! अहा! आज मैं धन्य हो गया।' यों कहते ही भगवान् श्रीरामके सामने ही मुनिका ब्रह्मरन्ध्र फट गया। बड़े जोरकी आवाज हुई। स्वर्गमें दुन्दुभी बजने लगी। आकाशसे देवता फूल बरसाने लगे। मुनियोंने आश्चर्यचकित होकर देखा, आरण्यकके देहमेंसे एक विचित्र तेज निकलकर श्रीरामके सुन्दर वदनमें समा गया।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!

उसका पता

जहाँ न निष्ठुर अट्टहास है, जहाँ न पीड़ित-आँसू-दान,
जहाँ न होता नीरव रोदन, जहाँ न उठता उन्मद गान।
जहाँ न कोई मुकुट-शिरोमणि, या पाता कोई अपमान,
जहाँ न कोई हीन दीन है, कोई भरा हुआ अभिमान॥
जहाँ न शिशुका मृदुल हास्य है, या वृद्धोंका जरठ शरीर,
जहाँ न होता शवका रोदन, या जन्मोत्सवकी शुभ भीर।
जगतीकी इस चंचलताके, इस उत्थान-पतनके पार,
प्रेम-राज्यकी धवल पताका—मेरे हृदयेश्वरका द्वार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंडोंसे सावधान

(श्रीरामनिवासजी लखोटिया)

स्वतन्त्र भारतका यह दुर्भाग्य है कि फैशनके नामपर या आधुनिकताकी होड़में या भ्रामक प्रचारके फलस्वरूप कई शाकाहारी परिवारोंके सदस्य भी अंडोंका सेवन कुछ खुले आम और कुछ चोरी-छिपे कर रहे हैं। एक ओर अंडोंको पोषक तत्त्वोंसे भरपूर कहा जा रहा है तो दूसरी ओर कुछ अंडोंको 'शाकाहारी अंडे' कहकर साधारण जनताको भ्रमित किया जा रहा है। वास्तविक तथ्य तो यह है कि अंडे स्वास्थ्यके लिये महान् अनिष्टकारक हैं, वे महँगें हैं और अन्य सभी दृष्टियोंसे भी हानिकारक एवं त्याज्य हैं। प्रस्तुत लेखमें जनसाधारणके हितकी दृष्टिसे अंडोंके सेवनसे उत्पन्न खतरोंसे सम्बन्धित सही तथ्य एवं आँकड़े प्रस्तुत करनेका विनम्र प्रयास किया गया है।

मानव एक शाकाहारी प्राणी है

यह निर्विवाद सत्य है कि मानव प्रकृतिसे ही एक शाकाहारी प्राणी है। उदाहरणार्थ—बंदर-जैसा शाकाहारी प्राणी अन्य प्राणियोंकी भाँति पानीको जीभसे खींच कर पीता है, जब कि शेर आदि मांसाहारी जानवर जीभसे लपलप करके पानी पीते हैं। दाँतोंकी बनावट और शरीर-रचनाकी दृष्टिसे भी मानव एक शाकाहारी प्राणी ही है। मांसाहारी जानवरोंकी भोजन-प्रणाली उनके शरीरकी तिगुनी लम्बाईके बराबर होती है, जब कि मानवकी भोजन-प्रणाली उसके शरीरकी बारह गुनी लम्बाईके बराबर होती है। इसके कारण मांसाहार अँतड़ियोंमें ही सड़ता रहता है और भयंकर रोगोंको जन्म देता है। इसी कारण मानवका शरीर मांसाहार तथा अंडोंके सेवनके लिये सर्वथा अयोग्य है। मांसाहारी जानवरोंके पाचक अङ्गोंमें शाकाहारियोंके पाचक अङ्गोंकी अपेक्षा हाइड्रोक्लोरिक एसिड दस गुना अधिक होता है, जो मांसको आसानीसे गला सकता है। इस प्रकार प्रकृतिके नियमोंके अनुसार मनुष्य एक शाकाहारी प्राणी है और जब भी वह मांस, अंडे आदि अप्राकृतिक खाद्योंका सेवन करता है, तब वह अनेक रोगोंसे पीड़ित हो जाता है। इसके अतिरिक्त भारतीय सभ्यता सदैव ही संवेदनशील एवं सभी जीवोंके प्रति दयावान् रही है। महात्मा गाँधीने भी, जिनके नामकी दुहाई आजके नेता हर कार्यमें बार-बार देते हैं, कहा है—'मैं मर जाना पसंद करूँगा, किंतु मांस कभी नहीं खाऊँगा। मांस खाना घोर नैतिक पतन है।' चाहे जो हो, कोई भी धर्म मनुष्यको अंडे, मांस, मछली आदि खानेकी अनुमति नहीं देता।

वैज्ञानिकोंकी रायमें अंडे

इंगलैंडके प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ॰ राबर्ट ग्रास तथा प्रो॰ ओकाडा डेविडसन इरविंगके मतानुसार अंडे खानेसे पेचिश तथा मन्दाग्नि-जैसी बीमारियाँ घर कर जाती हैं और आँतें सड़ जाती हैं। जर्मनीके प्रोफेसर एग्तर बर्गका कहना है कि अंडा ५१.८३ प्रतिशत कफ पैदा करता है, जो शरीरके पोषक तत्त्वोंको असंतुलित कर देता है। १९८५ के नोबेल पुरस्कार-विजेता डॉ॰ माइकल एस॰ ब्राउन तथा डॉ॰ जोसेफ एल॰ गोल्डस्टीन नामक दो अमेरिकन डॉक्टरोंने यह सिद्ध कर दिया है कि हृदय-रोगके कारण ही अधिकांश मौतें होती हैं। इसलिये उनके अनुसार कोलेस्टेरोल नामक तत्त्वको रक्तमें जमनेसे रोकना आवश्यक है और कोलेस्टेरोल अंडोंमें सबसे अधिक पाया जाता है। एक अंडेमें लगभग ४ ग्रेम कोलेस्टेरोल होता है, यह वनस्पतिमें नहींके बराबर होता है। अंडोंमें कोलेस्टेरोलकी प्रचुर मात्रा होनेसे उच्च रक्तचाप तथा किडनीकी कई बीमारियाँ होती हैं। अंडेको भूनने या तलनेसे तो कोलेस्टेरोलकी मात्रा और भी बढ़ जाती है, जिससे अति तनाव, हृदयाघात—हार्ट अटैक-जैसे रोगोंकी आशंका बढ़ जाती है। फ्लोरिडा (अमेरिका)के 'कृषि' विभागकी 'हेल्थ बुलेटिन' के अनुसार ३० प्रतिशत अंडोंमें डी॰ डी॰ टी॰ होता है। पोल्ट्रीजको जिस तरह रखा जाता है, उस प्रक्रियामेंसे होकर डी॰ डी॰ टी॰ मुर्गीकी आँतोंमें घुलमिल जाता है। प्रत्येक अंडेके ऊपरी खोलमें १५,००० सूक्ष्म छिद्र होते हैं, जो सूक्ष्मदर्शी यन्त्रद्वारा आसानीसे देखे जा सकते हैं। उनके द्वारा डी॰ डी॰ टी॰ का विष अंडोंके द्वारा मनुष्य-शरीरमें पहुँच जाता है, जिससे कैंसरके रोग होनेका खतरा रहता है। हालमें ही इंगलैंडके डॉक्टरोंने सावधान किया है कि सालमोनेला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एन्टेराईटिस, जिसका सीधा सम्बन्ध अंडोंसे है, के कारण लाखों लोग इंगलैंडमें एक जहरीली महामारीके शिकार हो गये। भारतमें अभीतक ऐसी कोई परीक्षा-प्रणाली नहीं है जिससे सड़े अंडोंकी पहचान हो सके और ऐसे सड़े अंडोंके सेवनसे उत्पन्न होनेवाले भयंकर रोगोंसे लोगोंका बचाव हो सके। यही नहीं, डॉ० ई० वी० मेक्कालमका कहना है कि अंडोंमें कार्बोहाइड्रेट्स बिलकुल नहीं होते तथा कैल्शियमकी मात्रा भी न्यूनतम होती है, जिससे पेटमें सड़ाँध हो जाती है।

तुलनात्मक अध्ययन

अंडेको स्वास्थ्यकी दृष्टिसे शाकाहारसे अधिक हितकर समझनेका मुख्य कारण है उसका तथाकथित प्रोटीन तत्त्व। परंतु यह भी प्रचार भ्रामक है। भारत सरकारकी स्वास्थ्य बुलेटिन संख्या २३के अनुसार १०० ग्राम अंडेमें १३.३% प्रोटीन होता है तो हरे चनेमें २४%, मूँगफलीमें ३१.५% और सोयाबीनमें ४३.२%। इसके अतिरिक्त अंडेमें कार्बोहाइड्रेट 'शून्य' होता है, जब कि वह हरे चनेमें ५६.६%, सोयाबीनमें २२.९% तथा मूँगफलीमें १९.३% होता है। ऊर्जा (कैलोरी) की दृष्टिमें वह अंडोंमें १७३ होती है तो हरे चनेमें ३३४, सोयाबीनमें ४३२ और मूँगफलीमें ५४९। यदि गेहूँ, चावल, बाजरा, मक्का आदिके साथ पर्याप्त मात्रामें दालों एवं हरी सब्जियोंका सेवन किया जाय तो प्रोटीन एवं सभी आवश्यक तत्त्वोंकी पूर्ति हो जाती है। भारतमें गरीब बच्चोंकी कमजोरीका कारण प्रोटीनकी कमी नहीं, प्रत्युत पर्याप्त भोजनकी कमी है, जिसे शाकाहारी भोजनद्वारा दूर किया जा सकता है। अंडे महँगें भी हैं। ४० पैसेकी दालसे उतनी कैलोरी प्राप्त हो सकती है जितनी कि उसकी तिगुनी दामके अंडोंसे प्राप्त नहीं होती।

शाकाहारी अंडे—एक सफेद झूठ

१९६२में यूनीसेफने एक पुस्तक प्रकाशित की तथा अंडोंको लोकप्रिय बनानेके लिये अनिषेचित (इन्फर्टाइल) अंडोंको शाकाहारी अंडे (वेजीटेरियन एग) जैसा मिथ्या नाम देकर भारतके शाकाहारी समाजमें एक भ्रम फैला दिया। १९७१में मिशीगन युनिवर्सिटी (अमेरिका)के वैज्ञानिक डॉ० फिलीप जे० स्केम्बलने यह सिद्ध किया कि संसारका कोई भी अंडा निर्जीव नहीं है, फिर चाहे वह निषेचित (सेया गया) हो या अनिषेचित। यह इस बातसे भी साबित होता है कि कोई भी अंडा पेड़-पौधोंसे पैदा नहीं किया जा सकता है। अनिषेचित अंडेमें भी जीव होता है, उसमें श्वास लेनेकी क्रिया होती है जो जीवनकी निशानी है। यदि ऐसे अंडेमें श्वासोच्छ्वासकी क्रिया बंद हो जाय तो अंडा सड़ जाता है। अंडेको शाकाहारमें गिनना बहुत बड़ा धोखा है और अपने व्यापारिक स्वार्थके लिये फैलायी गयी भयानक भ्रान्ति है।

विश्व-शान्तिके लिये भी हमें संवेदनशील होकर सभी जीवोंके प्रति प्रेम एवं दयाका व्यवहार रखना चाहिये। यह सर्वथा सत्य है कि आज इंगलैंड आदि सभी पाश्चात्त्य देशोंमें अंडोंके भोजनके प्रति सर्वसाधारणको आत्यन्तिक घृणा उत्पन्न हो गयी है। उसके व्यापारी सहसा दिवालिया हो उठे हैं। प्रायः सभी लोग सादी रोटी, मट्ठा एवं फलपर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। पता नहीं, पाश्चात्त्योंके अन्धानुकरणमें रत भारतीयोंको कब बुद्धि आयेगी ? अतः जनताके स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये भी अंडोंके सेवनका प्रचार-प्रसार रोकना अत्यावश्यक है।

मिली हुई वस्तु आदिको अपनी मान लेना अर्थात् उनमें ममता करना, उनको अपने सुखभोगकी सामग्री मानना ही साधनमें विघ्न है, अतः उनका सर्वहितकारी-भावसे सेवामें उपयोग करना और बदलेमें मान-बड़ाई आदि किसी प्रकारके सुखकी कामना न करना ही साधन है।

अहितकारक प्रवृत्तियोंका और भावनाओंका त्याग करना सभीके लिये परम आवश्यक है। अतः भिन्नताको लेकर तो प्राप्त शक्ति आदिका सबकी सेवामें सदुपयोग करना और एकताको लेकर सबके साथ परम प्रेम करना ही साधकका उद्देश्य होना चाहिये।

मनुष्यमात्रको क्रिया, भाव और विवेक प्राप्त है। अतः विवेकसे प्रकाशित भाव और पवित्र भावसे भावित कर्तव्य कर्म करना चाहिये। वर्तमान कर्तव्य-कर्म किये बिना क्रियाशक्तिका वेग शान्त नहीं होता तथा करनेकी आसक्तिका नाश नहीं होता। अतः करनेकी आसक्तिसे मुक्त होनेके लिये पवित्र भावसे कर्तव्य-पालन करना आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता-तत्त्व-चिन्तन

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गीताकी समता

सिद्धसाधकयोः प्रोक्ता गीतायां समता द्विधा।
मानसी साधकानां च सिद्धानां सहजा स्मृता॥

गीतामें अगर कोई प्रभावशाली लक्षण है तो वह है—समता। वह समता किसी भी साधनसे आ जाय तो बेड़ा पार है! साधकमें एक समताके आनेपर गीता दूसरे लक्षणोंको देखती ही नहीं; क्योंकि समता साक्षात् परमात्माका स्वरूप है—**'निर्दोषं हि समं ब्रह्म'** (५।१९); **'समोऽहं सर्वभूतेषु'** (९।२९) और समतामें ही साधनकी पूर्णता है। अतः समता आनेपर दूसरे लक्षण अपने-आप आ जाते हैं। अगर किसी मनुष्यमें समता नहीं है, पर दूसरे बहुतसे लक्षण हैं, तो वह अधूरा है, उसमें पूर्णता नहीं है। समताके बिना दूसरे सब लक्षण—विद्या, योग्यता, आदर, नीरोगता, धन-सम्पत्ति आदि कुछ नहीं है। वह सब विषमता है। यह समता मनुष्यमात्रको स्वतः प्राप्त है। विषमता तो मनुष्योंकी अपनी बनायी हुई है! अतः विषमता कृत्रिम है, प्राकृत है, टिकनेवाली नहीं है; क्योंकि यह असत्-(शरीर आदि-) के संगसे पैदा होती है।

प्रत्येक क्रियाका आरम्भ होता है और समाप्ति होती है। कर्मफलका भी संयोग होता है और वियोग होता है, पर स्वयं ज्यों-का-त्यों रहता है। यह सबके अनुभवकी बात है। संयोग-वियोग तो व्यक्ति, क्रिया और पदार्थोंका हुआ, पर स्वयंका कोई संयोग-वियोग नहीं हुआ, वह ज्यों-का-त्यों ही रहा। संयोगमात्रका वियोग होना अवश्यम्भावी है अर्थात् जिसका संयोग हुआ है, उसका वियोग होगा ही। परंतु जिसका वियोग हुआ है, उसका संयोग होगा—यह नियम नहीं है। अतः संयोग अनित्य है और वियोग नित्य है। अगर इस वियोगपर मनुष्यकी हरदम दृष्टि रहे तो मनुष्यमें कभी विषमता आ ही नहीं सकती। कारण कि विषमता तो उसमें आयी हुई है और समता उसमें स्वतःसिद्ध है। इसी समताका नाम 'योग' है (२।४८)।

परमात्मा सम हैं। उनमें विषमताके लिये कोई अवकाश नहीं है। परंतु प्रकृति विषम है। अतः परमात्माकी ओर जो दृष्टि होती है, वह समदृष्टि होती है। तात्पर्य है कि सब जगह समरूप परमात्माको देखना समदृष्टि है और प्रकृति तथा उसके कार्य-(शरीर-संसार-)को देखना विषम दृष्टि है। प्रकृति और उसके कार्यमें समदृष्टि कभी हो ही नहीं सकती। अतः प्रकृतिकी ओर दृष्टि रखनेवाले कभी समदर्शी नहीं हो सकते और परमात्माकी तरफ दृष्टि रखनेवाले कभी विषमदर्शी नहीं हो सकते। इसलिये गीताने परमात्माकी तरफ दृष्टि रखनेवालोंको **'समदर्शिनः'** (५।१८), **'सर्वत्र समबुद्धयः'** (१२।४) आदि पदोंसे कहा है।

परमात्माके साथ स्वयंका नित्ययोग है और मन, बुद्धि आदिके साथ स्वयंका नित्य वियोग है (६।२३)। परमात्माके साथ नित्ययोग होते हुए भी जबतक स्वयं संसारके साथ संयोग मानता रहता है, तबतक उसको उस नित्ययोगकी अनुभूति नहीं होती। परंतु जब नित्ययोगकी अनुभूति हो जाती है अर्थात् परमात्माके साथ योग हो जाता है, तब वह योग अर्थात् समता उसके मन, बुद्धि, अन्तःकरणमें भी आ जाती है (५।१९)। फिर वह सुख-दुःख आदिमें सम हो जाता है (१४।२४-२५)। फिर उसकी समता पुण्यात्मा-पापात्मा आदि व्यक्तियोंमें भी हो जाती है (६।९)। फिर वही समता व्यवहारमें भी आ जाती है अर्थात् व्यवहारमें उसके राग-द्वेष नहीं होते (५।१८)। फिर उसकी समता पदार्थोंमें भी हो जाती है अर्थात् पदार्थोंमें उसकी प्रियता-अप्रियता नहीं होती (६।८)। तात्पर्य है कि परमात्मतत्त्वको लेकर उसकी सब जगह समता हो जाती है अर्थात् वर्ण, आश्रम, परिस्थिति, साधन आदिको लेकर उसका व्यवहार (बर्ताव) तो यथायोग्य ही होता है, पर हृदयमें राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि नहीं होते। *

समता दो तरहकी होती है—साधनरूपा और साध्यरूपा। साधनरूपा समता अन्तःकरणकी होती है और साध्यरूपा

* इसे विस्तारसे समझनेके लिये गीताकी 'साधक-संजीवनी' नामक हिंदी टीकामें पाँचवें अध्यायके अठारहवें श्लोककी व्याख्या देखनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समता परमात्मतत्त्वकी होती है। इसे क्रमशः साधककी समता और सिद्धकी समता भी कह सकते हैं।

(१) साधककी समता—कर्मयोगी साधक सिद्धि-असिद्धिमें सम रहकर कर्म करता है (२।४८)। ज्ञानयोगी साधकमें सत्-असत्का विवेक मुख्य रहता है। सत्का कभी वियोग होता नहीं और असत् कभी नित्य रहता नहीं; अतः ज्ञानयोगीमें सत्-स्वरूपसे सदा ही समता रहती है (२।१५)। भक्तियोगी साधक भगवन्निष्ठ होता है। वह भगवान्की मरजीमें सदा ही प्रसन्न रहता है। अतः उसका सांसारिक पदार्थ, वस्तु, परिस्थिति आदिके संयोग-वियोगसे, आने-जानेसे कोई मतलब नहीं रहता। उसका केवल भगवान्से ही मतलब रहता है। ऐसे भक्तोंको भगवान् स्वयं समता देते हैं (१०।१०)।

अगर कर्मयोगीमें समता नहीं आ रही है तो सिद्धि-असिद्धिमें उसकी महत्त्वबुद्धि है। अगर ज्ञानयोगीमें समता नहीं आ रही है तो असत्-पदार्थोंमें उसकी महत्त्वबुद्धि है। अगर भक्तियोगीमें समता नहीं आ रही है तो भगवान्की कृपाकी तरफ उसकी दृष्टि नहीं है। निष्कर्ष यह निकला कि विनाशी पदार्थोंका महत्त्व अन्तःकरणमें होनेसे ही स्वतःसिद्ध समताका अनुभव नहीं होता। उस महत्त्वके हटते ही समता आ जाती है।

तात्पर्य है कि समताके साथ मनुष्यका नित्ययोग है। केवल असत्को महत्त्व देनेसे ही उसमें विषमता आती है। अतः मनुष्य असत्को महत्त्व न दे।

(२) सिद्धकी समता—सिद्ध कर्मयोगी (६।८-९), सिद्ध ज्ञानयोगी (१४।२४) और सिद्ध भक्तियोगी (१२।१८-१९)—तीनोंमें समता स्वतः रहती है।

तात्पर्य है कि किसी भी मार्गके साधकपर जबतक अनुकूलता-प्रतिकूलता, सुख-दुःख आदिका किञ्चिन्मात्र भी असर पड़ता है और वह उनसे विचलित होता है, तबतक साधकमें साधनरूपा समता रहती है। जब साधकको अनुकूलता- प्रतिकूलता आदिका ज्ञान तो होता है, पर उसका उसपर किञ्चिन्मात्र भी असर नहीं पड़ता, तब साधकमें साध्यरूपा समता अटलरूपसे रहती है। उस साध्यरूपा समताके प्राप्त होनेपर अन्तःकरणमें स्वतः समता आ जाती है और अन्तःकरणकी समतासे यह मालूम होता है कि साध्यरूपा समता प्राप्त हो गयी है (५।१९)।

मानव-जीवनकी भूल

(स्वामी श्रीदिव्यानन्दजी सरस्वती)

संसारका प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी भी देशमें हो अथवा वेशमें, अमीर हो या गरीब, बाल हो या वृद्ध, पुरुष हो या स्त्री, शिक्षित हो या अशिक्षित, गृहस्थ हो या विरक्त, सभी अपने जीवनमें सुख-शान्ति और आनन्द चाहते हैं। प्रातःजागरणसे लेकर रात्रि-शयन-पर्यन्त या यों कहें कि जन्मसे लेकर मृत्यु-पर्यन्त की जानेवाली समस्त क्रियाओंके मूलमें हमारी एकमात्र यही माँग छिपी होती है—जीवनमें जितनी भी वस्तुओंका संग्रह हमने किया, इसी माँगकी पूर्तिके लिये किया, जितने भी व्यक्तियोंसे सम्बन्ध बनाया इसीलिये बनाया। एक वस्तुकी प्राप्ति तथा एक व्यक्तिका सम्बन्ध जब हमारे जीवनकी इस माँगकी पूर्ति न कर सके तो हम एकके बाद दूसरी वस्तुका संग्रह करते चले गये, एक व्यक्तिके बाद दूसरे व्यक्तिके साथ सम्बन्ध बनाते गये, इस आशाके साथ कि अब समस्या हल हो जायगी।

इतने अथक परिश्रमके बाद जीवनमें आनी तो चाहिये थी सुख-शान्ति, परंतु जीवन और अधिक दुःखी—अशान्त होता चला गया।

स्वाभाविक ही प्रश्न उठता है कि हमारा सारा प्रयास व्यर्थ क्यों चला गया? जो हम पाना चाहते थे वह मिला क्यों नहीं? आखिर हमसे भूल कहाँ हुई?

जब हम इस प्रश्नको संत-महापुरुषोंके श्रीचरणोंमें लेकर श्रद्धा और विश्वासके साथ बैठते हैं, तब वे कृपापूर्वक समाधान करते हैं और हमें अपनी भूलका अनुभव हो जाता है, जो कि हमारे जीवनमें शूल बनकर पीड़ा दे रही थी। संत समझाते हुए कहते हैं कि जरा सोच-समझकर बताओ, तुम जीवनमें जो सुख-शान्ति और आनन्द चाहते हो वह पूर्ण चाहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो या अपूर्ण, विनाशी चाहते हो या अविनाशी, हर देश-काल-परिस्थितिमें चाहते हो या किसी देश-काल-परिस्थिति-विशेषमें ?

तब व्यक्ति सहज ही कह उठता है कि हम तो ऐसी सुख-शान्ति और ऐसा आनन्द चाहते हैं जो पूर्ण हो, अविनाशी हो तथा देश-काल-परिस्थितिकी सीमासे मुक्त हो।

अब संत पुनः प्रश्न करते हैं कि प्यारे ! यह तो बताओ, तुम पूर्ण सुख-शान्ति और आनन्द तो चाहते हो, परंतु जिससे चाह रहे हो वह स्वयं पूर्ण है या अपूर्ण ? नश्वर है या नित्य ? जिस देश-काल-परिस्थितिकी सीमासे मुक्त सुख-शान्ति और आनन्द चाहते हो, वह स्वयं प्रत्येक देश-काल-परिस्थितिमें है या किसी देश-काल-परिस्थिति-विशेषमें? जरा विचार करो।

यह सुनते ही हम चौंक उठते हैं, अपनी भूलका अनुभव होने लगता है। यह तो जीवनमें हमने आजतक सोचा ही नहीं था। भूल हमारी थी और हम दोष देते रहे सदा दूसरोंको। सच ही तो है, हम संसारकी वस्तु और व्यक्तिके द्वारा ही तो शाश्वत सुख-शान्ति और आनन्द चाह रहे हैं, परंतु वास्तवमें संसारकी समस्त वस्तु एवं व्यक्ति अपूर्ण हैं, नश्वर हैं, देश-काल-परिस्थितिकी सीमामें आबद्ध हैं। अतः जब इनमें वह है ही नहीं, जो हमारे अन्तरकी माँग है तो फिर ये वस्तु और व्यक्ति हमें पूर्ण, अविनाशी तथा प्रत्येक देश-काल-परिस्थितिमें सुख-शान्ति और आनन्दकी उपलब्धि कैसे करा सकते हैं ?

जीवनकी कितनी विडम्बना है। पिता पुत्रसे सुख चाहता है और पुत्र पितासे, पति पत्नीसे आनन्द चाहता है तो पत्नी पतिसे, गुरु शिष्यसे शान्ति चाहता है तो शिष्य गुरुसे। अर्थात् सबकी अपनी झोली खाली है। जरा विचार करो, जो स्वयं दुःखी है, वह हमें कहाँसे सुख दे सकेगा, जो स्वयं आनन्द-रहित है, वह हमें कहाँसे आनन्द दे सकेगा, जिसने स्वयं अपने जीवनमें शान्तिका अनुभव नहीं किया, वह हमें कहाँसे शान्ति दे सकेगा ? हमारी खोज ही गलत थी। यह तो उसी प्रकारकी बात हुई जैसे एक भिखारी दूसरे भिखारीके सामने अपनी झोलीको फैलाकर कुछ माँगने लगे तो क्या उसे कुछ मिल सकेगा ? स्पष्ट है 'नहीं'। यही भूल तो हम भी जीवनमें कर रहे हैं फिर हमारी माँग कैसे पूर्ण होती। सारा पुरुषार्थ-मेहनत-प्रयास-समय और शक्ति व्यर्थ जाना ही था।

तो फिर क्या करें ? क्या जीवन यों ही दुःखी और अशान्त बना रहेगा ? क्या जीवनमें कभी सुख-शान्ति और आनन्दकी अनुभूति नहीं हो सकेगी ?

नहीं-नहीं। इतना निराश-हताश होनेकी आवश्यकता नहीं। जो चाहते हो वह अवश्य मिलेगा और इसी जीवनमें मिलेगा, परंतु जरा अपनी दृष्टिको पलटना होगा, दिशा बदलनी होगी। जिधर हम अभीतक चलते रहे, दौड़ते रहे, खोजते रहे, उधर हमारा अभीष्ट है ही नहीं। अतः उधरसे दृष्टि हटाओ और चलो उधर जो स्वयं पूर्ण है, अविनाशी है, प्रत्येक देश-काल और परिस्थितिमें है। जरा विचार करो ऐसा कौन है ? बहुत सत्संग किया है आपने, इसलिये अब इतनी-सी बात तो सहज ही समझमें आ जानी चाहिये कि ऐसा एकमात्र इस सारी सृष्टिका नियन्ता, सर्वान्तर्यामी, घट-घटवासी, सर्वसमर्थ, सर्वशक्तिमान् परमात्मा ही है। अपनी भावनाके आधारपर हम चाहे साकार स्वीकार करें अथवा निराकार, साकारमें भी राम, कृष्ण, शिव, विष्णु, गणेश, दुर्गा या अन्य किसी भी रूपमें स्वीकार करें, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। आवश्यकता है केवल सच्चे हृदयसे परमात्माकी शरणमें आनेकी। तभी तेरी जन्म-जन्मकी प्यास बुझ सकेगी।

'आरामकी जो तलब है तो आ रामकी शरणमें।'

जबतक परमात्माके प्रति समर्पित न होकर सांसारिक वस्तु और व्यक्तिके प्रति समर्पित रहोगे, जबतक वृत्ति भगवदाकार न बनकर विषयाकार बनी रहेगी, तबतक जीवनमें सुख-शान्ति और आनन्द मिलनेवाला नहीं है। क्योंकि जो जहाँ है, वह वहीं मिल सकेगा। अतः अभी भी समय-शक्तिके रहते अपनी इस भूलको सुधार लो।

'गई सो गई अब राख रही को।'

यदि कहीं ये शेष क्षण भी हाथसे निकल गये तो फिर मात्र पछताना ही पड़ेगा। अरे ओ भोले मानव ! यदि सृष्टिको बदलना चाहता है तो अपनी दृष्टिको बदल, अपनी दशाको बदलना चाहता है तो अपनी दिशा बदल, अपनी परिस्थितिको बदलना चाहता है तो अपनी स्थितिको बदल। तभी तेरी अन्तरकी माँग पूर्ण होगी और तभी तेरा युग-युगान्तरोंसे चला रहा जन्म-मृत्युका भटकाव समाप्त हो सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे

(श्रीयोगेश्वरजी त्रिपाठी 'योगी')

आज सहसा जगद्गुरु शंकराचार्यकी अखण्ड आनन्ददायिनी समाधि भंग हो गयी। उन्हें अपने शरीरमें रोमाञ्चके साथ-साथ अपूर्व आह्लाददायिनी सिहरनकी अनुभूति होने लगी। चिदाकाश अलौकिक दिव्य प्रभासे भर गया। प्रगाढ़ नीलनीरदकी भाँति असीम एक दिव्य कान्तिमय छविके दर्शनसे उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु ढुलक पड़े। सौम्यदर्शन अद्भुत एवं अलौकिक रूप-मुखमण्डलपर गोलाकार युगल-नेत्र आचार्य शंकरसे पूछ बैठे—'अरे शंकर! तू मुझे नहीं पहचान पाया।' वे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर मात्र छवि-सुधाका पान कर रहे थे। उनका अन्तर इस अनुपम छविके दर्शनसे आन्दोलित होने लगा। उन्होंने जगज्जननी त्रिपुरसुन्दरीका दर्शन किया था। भगवान् श्यामसुन्दर कृष्णकी कमनीय कान्ति भी उन्होंने अपने चर्मचक्षुओंसे देखी थी। परंतु जो अलौकिक छवि आज उनके समक्ष थी, वह इन दोनों रूपोंसे भिन्न तथा ज्ञान और ध्यानसे परे थी। समग्र विश्व उनके अलौकिक दिव्य प्रकाशसे देदीप्यमान हो रहा था। उनका मन्द सुस्मित हास सम्पूर्ण जड-जंगमको अपनेमें समेट रहा था। देखते-ही-देखते सारा ब्रह्माण्ड उनके मुखमें प्रविष्ट होने लगा।

सहसा उनके अन्तरमें विचार तरंगायित हो उठे। उन्हें संकेत मिला कि यह प्रत्यक्ष मूर्ति और कोई नहीं, अपितु साक्षात् भैरवकी है। उन्हें स्पष्ट प्रतिभात हुआ—जैसे वह मूर्ति कह रही है कि 'मैं ही सारे धर्मोंका सारतत्त्व तथा सम्पूर्ण जगत्का नाथ हूँ। समग्र विश्वमात्र मेरी क्रीडावस्तु है। आचार्य शंकर! मैं नीलाचलविहारी पुरुषोत्तमक्षेत्रमें वंगोपसागरके निकट तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

अपने-आपमें डूबे हुए आचार्य शंकरके देखते-ही-देखते वह कोटि-कन्दर्प-दर्पदलनकारी छवि शून्यमें विलीन हो गयी। साकार निराकार बन चुका था। आचार्य ठगे-ठगेसे उसे अपने चिदाकाशकी असीम परिधिमें खोजनेका प्रयास करने लगे। रह-रहकर उनके कर्णकुहरोंमें गूँज उठता था।—'शंकर! वंगोपसागरके संनिकट श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रमें हम तुम्हारी राह देख रहे हैं।'

उनकी समाधि टूट चुकी थी। उनकी प्रेमा भक्तिकी श्रोतस्विनी—**'जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे'**—के रूपमें प्रवाहित हो रही थी। सम्पूर्ण शिष्य-समुदाय उनकी ऐसी दशापर विस्मित था।

प्राची दिशामें उषाकी लाली व्याप्त हो उठी। भगवान् भास्करकी दिव्य छटा धरातलपर बिखर पड़ी। पक्षियोंके कलरवसे आश्रमकी दिव्य आभा और खिल गयी। आचार्य शंकर अपनी सुयोग्य शिष्यमण्डलीके साथ श्रीजगन्नाथपुरी धामकी ओर प्रस्थित हुए। जगद्गुरु शंकराचार्यकी देखरेखमें यह यात्री-दल निरापद अपनी यात्रा सम्पन्न करके यथासमय श्रीपुरुषोत्तम जगन्नाथधाम पहुँच गया, जहाँपर महाप्रभु जगन्नाथजी अपनी भुजाओंको प्रसारित किये अपने अभिन्न भक्तका मार्ग देख रहे थे। अपने उन्हीं करुणावरुणालयकी शरणमें यह यात्रीदल सुदूर केरल प्रान्तसे चलकर यहाँतक आया था। तत्पश्चात् आचार्यप्रवरने विश्रामके हेतु 'यज्ञवाराहक्षेत्र' का चयन किया।

कलिंगाधिपति महाराज महाभव गुप्त ययातिको जैसे ही आचार्य शंकरके आगमनकी सूचना मिली वैसे ही वे अपने सामन्तोंसहित उनके स्वागतार्थ पहुँच गये। महाराजकी श्रद्धायुक्त स्नेहिल अभ्यर्थना एवं सपर्यासे आचार्य शंकर मुग्ध हो गये। उन्होंने महाराजसे महाप्रभु जगन्नाथजीके दर्शनकी इच्छा व्यक्त की, जिसे सुनकर राजा उदास हो गये। इस समय नीलाचलविहारी महाप्रभु जगन्नाथजीकी रत्नवेदिका शून्य थी। 'महाप्रभु कहाँ हैं' यह किसीको ज्ञात नहीं था। जगद्गुरुसे उन्होंने सारी गाथा कह सुनायी तथा उनकी प्राप्तितक आचार्य शंकरसे वहीं विश्राम करनेकी प्रार्थना की। इसके बाद महाराज राजमहल वापस लौट गये। उन्होंने तो पूर्वकालसे ही महाप्रभुकी खोजमें अपने दूत भेज रखे थे। परंतु अभीतक कहींसे कोई सुखद समाचार प्राप्त नहीं हुआ था।

महाराजके लौट जानेपर जगद्गुरु शंकराचार्य समाधिस्थ हो गये। श्रीमन्दिरकी रत्नवेदी उन्हें भी शून्य दिखी, तभी आभासकी एक आलोक-रेखा उनके हृदयपटलपर उभरी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे त्रिपूरुषम्।
तदा रभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम्॥

(ऋ०१०।१५५।३)

इस सागरके पार जो दारु उतरा रहा है अथवा विद्यमान है, वह पुरुष नहीं है। हे दुर्हणो! उसे त्यागकर उसके परे जाओ। आचार्य प्रसन्नतासे झूम-झूमकर इस परमपावन प्रदेशकी भूमिकी प्रशंसा करने लगे। उस प्रदेशके निवासी धन्य हैं, जिनकी सहज प्रेमाभक्तिके कारण वेदोक्त पुरुष तथा तन्त्रकी पराशक्ति उनके वशमें हो गयी थी। इसी पावनभूमिमें त्रेतायुगमें श्रीरामने लक्ष्मण तथा मैथिलीके साथ पदार्पण किया था। उन्हें लगा कि वह श्रीराम ही हैं। उधरसे ध्यान हट भी न पाया कि उन्हें मुरलीवादन करते हुए भगवान् श्यामसुन्दरकी दिव्य छटा सामने दिखायी दी। वे सहसा प्रश्न कर बैठे, 'क्या आप ही कृष्ण हैं?' उत्तर मिला, 'हाँ, मैं ही शिव, राम, कृष्ण, एवं शुद्ध-बुद्ध ब्रह्म हूँ।' सहसा उन्हें फिर वही गोलाकार नेत्रोंवाला मुखमण्डल दिखायी दिया, जिसके निर्देशसे वे यहाँतक खिंचे चले आये थे। आचार्य विस्फारित नेत्रोंसे साश्चर्य उस छवि-सुधाका पान करने लगे। उनके कर्णकुहरोंमें मन्द-मन्द ध्वनि पड़ने लगी—'अरे आचार्य! तुम अधीर न हो! मेरी इच्छा है कि तुम मुझे फिरसे रत्नवेदीपर स्थापित करो। मेरी ही इच्छासे इस सम्पूर्ण सृष्टिकी स्थिति है। मेरी ही इच्छासे इसका पालन तथा संहार होता है। तुम्हें यहीं आस-पास सागरके उपकूलमें मेरी आत्मा मिलेगी। वह मिट्टीके नीचे दबी है। तुम उसे वहाँसे लाकर पुनः श्रीक्षेत्र (जगन्नाथ-धाम) में स्थापित करो।'

आचार्य तत्काल उठ खड़े हुए। वे बार-बार उसी माधुरी मूर्तिके दर्शनकी चेष्टा करने लगे।

कृपापारावारः सजलजलदश्रेणिरुचिरो
रमावाणी सोमस्फुरदमलपद्मोद्भवमुखैः।
सुरेन्द्रैराराध्यः श्रुतिगणशिखागीतचरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥

सम्पूर्ण शिष्य-समुदाय विस्मित एवं निर्निमेष दृष्टिसे गुरुदेवके मुखमण्डलका अवलोकन कर रहा था। सभी उसी संगीत-लहरीमें निमग्न होते चले जा रहे थे। सभीके शरीर पुलकित थे, नेत्रोंसे आनन्दाश्रु अविरल झर रहे थे। इसी समय जगद्गुरुको कलिंगाधिपतिका समाचार मिला कि कुछ समय-पूर्वसे सागरकी उत्ताल तरंगें ऊपरकी ओर बढ़ने लगी हैं। मन्दिर अब गिरे कि तब—यही सोचकर सेवक-समुदाय महाप्रभु जगन्नाथको सुदूर चिलका झीलके संनिकट सोनपुर ले गया। भक्तोंने आततायियोंके बर्बर आतंकके भयसे महाप्रभुकी प्रतिमाको मिट्टीके नीचे दबा दिया और संकेतके रूपमें वहीं एक वट-वृक्ष लगा दिया गया, जिसकी पूजा 'बट-देवता'के रूपमें होती चली आ रही थी।

पर्याप्त समयके बाद वहाँ पहुँचकर जगद्गुरुकी आज्ञासे महाराज महाभव गुप्तने उस स्थानका उत्खनन करवाया। लगभग एक सौ चौवालीस वर्ष पूर्व भूमिष्ठ किये गये महाप्रभु जगन्नाथका शरीर मिट्टीके साथ मिलकर एक हो चुका था। केवल ब्रह्मतत्त्व अक्षुण्ण भावसे उपलब्ध हुआ। आचार्य शंकरने उसे अपने हाथोंसे उठाकर पाट वस्त्रमें लपेट लिया। 'जय जगन्नाथ' ध्वनिसे वायुमण्डल गूँज उठा। आदिवासी शबर, ग्रामवासी तथा उपस्थित सारा जनसमुदाय हर्षसे नृत्य करने लगा। मङ्गलवाद्यों तथा जय-निनादके तुमुल उद्घोषके साथ आचार्य शंकरकी अध्यक्षतामें सारा समाज ब्रह्मतत्त्वके साथ पुरुषोत्तमधामकी ओर चल पड़ा। समग्र विश्वकी महत्तम वस्तु आज आचार्य शंकरके करकमलोंमें शोभा पा रही थी। उसका परम पुनीत स्पर्श अङ्ग-प्रत्यङ्गको पुलकित कर रहा था। आज उन्हें जिस आनन्दकी अनुभूति हो रही थी, वैसी पहले कभी नहीं हुई थी। उन्होंने अपने स्थूल नेत्रोंसे महाप्रभु जगन्नाथके फिरसे प्रत्यक्ष दर्शन किये।

आदि शंकरका मन स्वतः अपनेसे ही आनन्द-सम्भाषण करता हुआ ब्रह्मको लेकर श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्रकी ओर अग्रसर हो रहा था। ब्रह्म तो अक्षय है, अमर है। उसके अपूर्ण होनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता। वह तो —**'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥'** के रूपमें तीनों कालोंमें एक-जैसा ही रहनेवाला है। संकीर्तनकी सुमधुर स्वरलहरीके साथ यह दल श्रीजगन्नाथपुरी पहुँच गया। महाप्रभुके आदेशानुसार शास्त्रसम्मत विधिसे निर्मित नवीन विग्रहमें ब्रह्मकी स्थापना की गयी। रत्नवेदीपर श्रीबलभद्र, देवी सुभद्रा, महाप्रभु जगन्नाथ तथा सुदर्शनकी पुनः स्थापना की गयी। यही श्रीविग्रह समस्त धर्म, संस्कृति तथा विधित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत-मतान्तरोंके समन्वयका एकमात्र प्रतीक पुरीधामकी रत्नवेदीपर विराज रहा है।

आदि शंकरके नेत्र उस छवि-सुधाका पान कर रहे थे। सारा समाज तथा जाति-धर्म सभी एक सूत्रमें आबद्ध हो गये। महाराज महाभव गुप्त ययाति भी अपने सौभाग्यकी सराहना कर रहे थे। आचार्य शंकरके मुखसे निकलती हुई सुमधुर ध्वनिसे श्रीमन्दिर गुंजित हो उठा—

महाम्भोधेस्तीरे कनकरुचिरे नीलशिखरे
वसन् प्रासादान्तः सहजबलभद्रेण बलिना।
सुभद्रामध्यस्थसकलसुरसेनावसरदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥

भगवान् अपनी बाहें फैलाकर अपने भक्तोंको समेट लेनेके लिये उत्सुक थे। भक्त और भगवान् एक-दूसरेको स्नेहिल दृष्टिसे निहार रहे थे। झाँझ, मृदङ्ग, घण्टा, शङ्ख आदि वाद्योंकी ध्वनिसे सम्पूर्ण श्रीक्षेत्र निनादित हो रहा था। आनन्दकी सरस रसधारसे सारा समाज रससिक्त हो गया।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

आपने जो लिखा कि जल्दीसे काम बन जाना चाहिये, सो ठीक है। निरन्तर भजन-ध्यान होनेपर जल्दीसे काम बन सकता है। यदि काम देरसे भी बने तो कोई हर्ज नहीं, किंतु निष्काम प्रेमभावसे निरन्तर भजन-ध्यानका साधन तो होते ही रहना चाहिये। संसारमें श्रीभगवान्‌के निष्काम भजन-ध्यानके समान और कुछ है ही नहीं। ऐसा भजन-ध्यान सत्संगसे हो सकता है। उस सत्संगकी कद्र जाननी चाहिये। यह जानना चाहिये कि सत्संग कहते किसे हैं ? सत्संगकी कद्र जान लेनेके बाद मनुष्य उसे कभी नहीं छोड़ सकता। क्योंकि सत्संगके सामने संसारमें और कोई चीज उसे अच्छी लगती ही नहीं। सत्संगी पुरुषोंके दर्शनसे भी बहुत कुछ लाभ होता है। फिर सत्संगकी तो बात ही क्या है ? सत्संगद्वारा जो किसी-किसीको विशेष लाभ नहीं दिखायी देता, इसका कारण यही है कि वे सत्संगको जैसा चाहिये वैसा उत्तम नहीं समझते हैं। यदि सत्संगको सबसे उत्तम समझकर श्रद्धा और प्रेमके साथ सत्संग किया जाय तो सत्संग छोड़कर जाना नहीं बनता। शरीर भले ही नाश हो जाय, पर जबतक शरीरमें प्राण है, तबतक सत्संगके अतिरिक्त दूसरा काम उससे किस तरह हो सकता है ? क्योंकि जिन पुरुषोंको श्रीनारायणदेवके दर्शन हो चुके हैं, उन्हींके दर्शनका नाम सत्संग है। अब विचार करनेकी बात है कि ऐसे पुरुषोंका यदि किसीको संग प्राप्त हो जाय तो फिर वह उनका संग जान-बूझकर कैसे छोड़ सकता है ? भगवान्‌के साधारण भक्तोंका मिलना भी साधारण सत्संग है और उसके अनुसार ही लाभ भी होता है।

(२)

आपने जो हरदम ध्यान बने रहनेका उपाय पूछा सो श्रीभगवान्‌में पूर्ण प्रेम होनेसे ही हरदम उनका ध्यान बना रह सकता है। क्योंकि जिस वस्तुमें प्रेम होता है, उसका अपने-आप ही बारंबार चिन्तन होता है। श्रीनारायणदेवका भजन करनेसे पापोंका नाश हो जाता है, भगवान्‌में प्रीति उत्पन्न होती है और जहाँ श्रीभगवान्‌में सच्चा प्रेम हुआ कि अपने-आप ही निरन्तर उनका ध्यान बना रहने लग जाता है। पूर्वजन्म तथा इस जन्मका किया हुआ पाप ही कष्टसाध्य बीमारी है। उसके नाशके लिये श्रीभगवान्‌के नामका जप ही असली ओषधि यानी बूटी है और श्रीभगवान्‌का भक्त ही वैद्य है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और संसारके विषयभोगोंका त्याग इत्यादि और भी जो बहुतसे उत्तम आचरण हैं, वे पथ्य हैं। उपर्युक्त ओषधिका सेवन करनेसे जो रुचि पैदा होती है वह श्रद्धा है। और जो प्राणोंका आधार श्रीभगवान्‌का ध्यान है, वही जीवनकी रक्षा करनेवाला अन्न है। आरोग्यतारूपी जो सुख है, वही अमृत है, वही श्रीनारायणदेवकी प्राप्ति है। उपर्युक्त ओषधि बहुत ही तेज है, यदि पथ्य-परहेज न भी हो तो भी कोई हर्जकी बात नहीं, इस ओषधिका सेवन बराबर होते रहना चाहिये। यदि किसी समय कोई कुपथ्य हो जाय तो समय-समयपर वैद्यसे सलाह भी लेते रहना चाहिये। फिर तो कोई भी चिन्ता नहीं है।

(३)

मनकी स्थिरताके सम्बन्धमें लिखा ही था, फिर भी लिखता हूँ। अभ्यास और वैराग्यसे मनकी वृत्तियाँ स्थिर होती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१-हर समय श्वासके द्वारा यत्न, विश्वास और प्रेमसहित ॐकारके जप करनेका नाम अभ्यास है।

२-जहाँ-जहाँ मन जाय, वहाँ-वहाँ परमेश्वरके स्वरूपमें ही लगाया जाय।

३-मन जहाँ जाय वहीं भगवान्‌के स्वरूपका ही दर्शन किया जाय।

४-एकान्त स्थानमें बैठकर नासिकाके द्वारा ॐकारका जप करता हुआ धीरे-धीरे प्राणवायुको बाहर निकालकर सामर्थ्यके अनुसार रोक दे, फिर ॐकार जपता हुआ अपान वायुको पूर्ण करके छोड़ दे।

इस तरह कई प्रकारके अभ्यास हैं। इस प्रकारका अभ्यास करनेसे मन स्थिर होता है। सुनी और देखी हुई वस्तुओंकी स्मृतिसे चित्तको रहित करके परमेश्वरमें लगानेका नाम वैराग्य है। ऊपर लिखे हुए साधनोंमेंसे जिसमें मन प्रसन्न रहता हो, उसीका अभ्यास करना चाहिये।

(४)

आपके प्रेमके अनुसार मैं पत्र नहीं लिख पाता हूँ, फिर भी आप पत्र देते ही रहते हैं, यह आपकी बड़ी कृपा है। समयपर मेरे पत्र न देनेके दोषको आप दोष नहीं समझते, यह आपके प्रेम और विश्वासकी बात है। श्रीभगवान्‌के विषयको लेकर जो प्रेम है वह भगवान्‌के साथ ही प्रेम है। श्रीनारायणदेवके साथ यदि प्रेम किया जाय तो उनके मिलनेमें प्रारब्ध कुछ भी बाधा नहीं पहुँचा सकता। श्रीनारायणदेवके साथ पूर्ण प्रेम हो, इसी बातकी चेष्टा करनी चाहिये। संसारमें श्रीभगवान्‌के प्रेमके समान कुछ भी नहीं है। श्रीपरमात्मादेव ही प्रेमके मर्मको अच्छी तरह जानते हैं। उनके साथ प्रेम हो जानेपर उन्हें आना ही पड़ता है। कोई भी उन्हें रोकनेवाला नहीं है। श्रीनारायणदेव प्रेमके अधीन हैं। प्रेमके मर्मको जो कोई जानता है, वही प्रेममें बिक जाता है। श्रीनारायणके जो प्रेमी भक्त हैं, उनसे नारायणका वियोग नहीं सहा जाता और इस कारण नारायणदेवको उनके पास आना ही पड़ता है। आपलोग जबतक श्रीभगवान्‌का वियोग सह रहे हैं, तभीतक भगवान्‌का वियोग हो रहा है। जिस दिन आपलोग श्रीभगवान्‌के वियोगसे गोपियोंकी भाँति विह्वल हो जायँगे, उसी दिन भगवान्‌को आपलोगोंके पास तुरंत ही आना पड़ेगा। यदि प्रेमके द्वारा श्रीनारायणदेवको जीतना चाहें तो और भी अधिक प्रेमकी आवश्यकता है। जो बड़ा प्रेमी होता है वह तो करुणासे विह्वल होकर भगवान्‌से आनेके लिये भी प्रार्थना नहीं करता। उन भक्तोंके मनमें ऐसा भाव होता है कि भगवान् इतने बड़े प्रेमी होकर भी मेरा वियोग सहते हैं, फिर मैं तो साधारण ही प्रेमका जाननेवाला हूँ। मुझे तो उनके दर्शनके लिये भी आतुर नहीं होना चाहिये। जो प्रेमके अधीन हैं तथा प्रेमके मर्मको भलीभाँति जाननेवाला है, वह प्रेमीके हाथ प्रेममें बिक जानेके लिये सदा तैयार रहता है। वह अपने प्रेमीके पास गये बिना एक पल भी नहीं रह पाता है। श्रीभगवान् देखते हैं कि यदि मेरा प्रेमी मुझे बुलानेकी प्रार्थना करे तब तो मेरी बात रह जायगी, नहीं तो अन्तमें मुझे जाना तो है ही। यही समझकर प्रेमी कभी भगवान्‌को बुलानेकी प्रार्थना नहीं करता; क्योंकि वह जानता है कि भगवान् अन्तर्यामी हैं और प्रेमके मर्मको समझनेवाले हैं तथा प्रेमके अधीन हैं। फिर वह किस लिये खुशामद करे ? दूसरी बात वह यह सोचता है कि इतना प्रेमी होकर भी वह तुम्हारा वियोग सह रहा है, फिर तुम्हारे लिये इतना वियोग सहना कुछ भी बड़ी बात नहीं होनी चाहिये; क्योंकि तुम तो प्रेमके मर्मको उतना जानते ही नहीं। इसलिये इस विषयमें तुम्हें शूरवीरता रखनी चाहिये। श्रीभगवान्‌की शूरवीरताको देखकर भी तुम्हें शूरवीरता करनी चाहिये। तुम प्रेम करते रहोगे और प्रार्थना नहीं करोगे तो अन्तमें हारकर उन्हें दर्शन देना ही पड़ेगा। इस विषयमें भगवान् इतने शूरवीर नहीं हैं। यदि तुम खुशामद करोगे तो वे और ज्यादा खुशामद करायेंगे। इसलिये विशेष खुशामद करनेकी आवश्यकता नहीं। यदि करें भी तो उलटी उनसे गरज करानी चाहिये। यदि तुम उलटी गरज कराओगे और धक्के भी मारोगे तो भी वे आयेंगे ही, यदि तुम्हारा निष्कामभावसे तीव्र प्रेम होगा तो।

(५)

आपने लिखा कि 'मैं संसारके जालमें बहुत फँस रहा हूँ', सो ठीक है। संसारके मोहजालको जान लेनेके बाद फिर जान-बूझकर कोई भी उसमें फँसना नहीं चाहता। मनुष्य संसारके नाशवान् भोगोंमें अज्ञानके कारण आनन्द तथा सच्चा सुख समझता है, किंतु जब उसे संसारके मोह-जालका ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाता है तब उसे संसारके सभी पदार्थ प्रत्यक्ष क्षणभंगुर दीखने लग जाते हैं तथा उस समय भूलसे संसारके पदार्थोंमें जो आनन्द भासता था, वह सब दुःखरूप भासने लग जाता है। इसकी पहचान यह है कि जब एकमात्र सच्चे प्रेमी नारायणदेवके भजन-ध्यान तथा सत्संगके समान कुछ भी अच्छा न लगे, तब समझना चाहिये कि संसारका मोहजाल अब प्रत्यक्ष भासने लग गया है। विचार करनेकी बात है कि मोहजालको जानकर फिर कौन उसकी फाँसीमें फँसेगा ? किंतु मनुष्यमें अज्ञान भरा हुआ है, इसलिये उसका मोहजाल भी सुखरूप भासता है। अतः भजन-ध्यान एवं सत्संगका साधन खूब जोरके साथ निष्कामभावसे करना चाहिये। ऐसा होगा तो मोहजालसे छूटना कोई भी बड़ी बात नहीं है।

(६)

मानापमानको समान समझकर तथा सबको भगवान्‌का स्वरूप जानकर निष्कामभावसे सबकी सेवा करनी चाहिये। फिर भगवत्कृपासे अपने-आप ही भगवान्‌में प्रेम हो सकता है। भगवद्भाव होनेपर किसीपर भी क्रोध नहीं आ सकता; क्योंकि भगवान्‌पर किसीको क्रोध नहीं आना चाहिये। यदि क्रोध आये तो ऐसा समझना चाहिये कि वहाँ भगवद्भाव नहीं है। अपने चित्तमें कभी उद्वेग नहीं होना चाहिये। कोई भी परिस्थिति हो, उसीमें आनन्द मानना चाहिये, क्योंकि जो कुछ भी होता है मालिककी आज्ञासे ही और मालिकके अनुकूल ही होता है। फिर यदि सब कुछ मालिकके अनुकूल ही होता है तो अपनेको भी मालिकके अनुकूल ही रहना चाहिये। यह निश्चय रखना चाहिये कि भगवान्‌के प्रतिकूल कुछ भी नहीं हो सकता। उनकी आज्ञाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। जो ऐसा समझता है वह मालिककी राजीमें राजी रहनेवाला सब समय आनन्दमें मग्न रहता है।

(७)

आपने लिखा कि 'मेरा चित्त खराब रहता है, कुछ उपदेशकी बात लिखिये' सो उपदेशकी बात लिखनेवाला मैं कौन हूँ ? कुछ शास्त्रोंकी बातें लिखी जाती हैं, यदि आपको इनसे लाभ मालूम हो तो इन्हें काममें लाना चाहिये।

आप अपने मनको प्रसन्न रखनेके लिये कोई उपाय तो करते नहीं हैं फिर आपका मन खराब नहीं रहेगा तो कैसा रहेगा ? संसारके अन्य पदार्थ या रुपये प्रथम तो प्रारब्धसे मिलते हैं और यदि मिल भी जायँ तो वे सर्वथा क्षणभङ्गुर एवं नाशवान् हैं। और जब संसारके सारे पदार्थ नाशवान् हैं तब उनसे आनन्द कैसे मिल सकता है ? यदि एक क्षणके लिये आप उनके मिथ्या आनन्दको 'सच्चा आनन्द' मान भी लें तो भी आपको यह विचार तो करना ही चाहिये कि जिन पदार्थोंके संयोगमें जितना आनन्द है, उनके वियोगमें उससे भी बहुत अधिक दुःख होगा। संसारके पदार्थोंके साथ तो अवश्य वियोग होता ही है। उनमें आनन्द तो बिलकुल है ही नहीं, बल्कि विचार करनेसे उनमें दुःख ही दुःख है। लोगोंने भूलसे—मूर्खतावश उनमें आनन्द मान रखा है। यही कारण है कि लोग इन पदार्थोंके मोहमें पड़कर अपना अनमोल समय बिता रहे हैं। सच्चा और एकमात्र आनन्द तो आदिपुरुष श्रीनारायणदेवके दर्शनसे ही प्राप्त होता है। श्रीपरमात्मदेवसे मिले बिना मनुष्यको सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती। प्रेमके बिना श्रीभगवान् नहीं मिलते और भजन-ध्यानके साधन तथा सत्संगके बिना भगवान्‌में प्रेम नहीं होता है। इसलिये यदि आपको सच्चे आनन्दकी इच्छा है तो श्रीभगवान्‌के भक्तोंका सत्संग और भजन-ध्यान करते हुए भगवान्‌का दर्शन करानेवाले उपायमें लगना चाहिये।

बंसीधर

सोहै नील अंगनिमें लहरि पिताम्बरकी, अंबर उषाको जनु अंचल-उताल है।
आनन-'सरोज पै चिकुर अलि-बृंद राजैं, इंद्रधनु जैसी मंजु भ्रकुटि बिसाल है॥
लीन्हे कर मुरलि लकुटि इमि भासमान, असुर सँघारन सुदीन पै दयाल है।
कोटि काम हूँ सों है 'प्रमोद' अभिराम कौन ? कंठ बनमाल जाके ऐसो नँदलाल है॥

—प्रमोद त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

रामरक्षा-स्तोत्रकी महिमा

'बेटी ! यह तू क्या कर रही है ? किसके कहनेपर कर रही है ? क्यों कर रही है ?' ऐसे अनेक प्रश्न मैंने अपनी बेटीसे एक सप्ताहमें लगभग दस बार पूछे होंगे, पर उसने मुझे इनका कोई उत्तर नहीं दिया। जब मैंने डाँटा तो उसने रोना आरम्भ कर दिया। उसका हवामें नक्शे बनाना, मनमें कुछ मन्त्र बोलना, आँखें मूँदकर हाथ-पैर घिसना बिलकुल कम नहीं हुआ। मैं साम-दाम-दण्ड-भेदके अनेक उपाय काममें लायी, पर सब निष्फल सिद्ध हुए। वह चुपके-से यथावत् करती रही और उसपर दृष्टि पड़ते ही मेरी अस्वस्थता बढ़ती रही। उसका रोना-धोना बढ़ गया; क्योंकि उसके पास मेरे किसी प्रश्नका उत्तर नहीं था (या वह देना नहीं चाहती थी)। एक दिन उसने मुझे बताया कि मैं यह सब क्यों करती हूँ, मुझे ही नहीं मालूम। मैं भी छोड़ना चाहती हूँ, पर छूटता नहीं।

इतनी सुन्दर चतुर लड़की, जिसने ९वीं कक्षा ८० प्रतिशतसे अधिक अङ्क लेकर पास की है। इतना ही नहीं, जो खेल-कूदमें प्रथम श्रेणीमें रहती है, तैराकीसे लेकर शतरंजतक पारितोषिक पानेवाली इस हमारी प्यारी बेटीको यह क्या हो गया, हम समझ न पा सकीं। एक-दो महीने ऐसे ही बीत गये। मुझे मैसूरसे मेरे मायके अहमदाबाद आना ही था। सोचा था, कुछ सुधार होगा पर वह तो दुबली ही होती गयी, रोने-धोनेसे भोजन करना बिलकुल कम हो गया। चेहरा फीका पड़ गया। किसी भी प्रवृत्तिमें उसका ध्यान नहीं लगता था। वह सदा छोटे बच्चेकी भाँति मुझे पकड़े रखती थी।

अन्ततोगत्वा मैं वैद्यराज श्रीहर्डीकरजीके पास उसे ले गयी। मैंने, 'ये तुम्हारे दादाजी हैं' कहकर उसकी पहचान करायी। उन्होंने बड़े प्यारसे उससे बातचीत की। उसे मन-पसंद फल खानेको दिया और मनोविनोद करते-करते उसके मनकी बात जान लेनेका प्रयत्न किया। 'तुम्हें कुछ हुआ ही नहीं, तो रोना किसलिये ?' कहकर उसे आश्वस्त किया और शक्कर-पानीके साथ लेनेके लिये दवाकी कुछ पुड़िया दी और मुझे 'रामरक्षास्तोत्र'का पाठ करनेके लिये कहा।

रातको मेरी बेटी फिर अस्वस्थ हो उठी और बोली-'मुझे दादाजीके घर ले चलो। मुझे वहाँ ही अच्छा लगता है।' पर उस समय रातके बारह बज चुके थे। इसलिये मैंने प्रातः जानेका वचन देकर प्यार-दुलारसे 'रामरक्षास्तोत्र' का पाठ सुनाकर उसे सुला दिया। दूसरे दिन हम सब जब वैद्यराजके घर गये, तब वे पूजा कर रहे थे। मेरी बच्ची उनके बच्चोंके साथ खेलने लगी। उसका मन प्रसन्न था। मैंने वैद्यराजजीके पास बैठकर अपने दुःखभरे अनुभवोंको बतलाया। उन्होंने भगवच्चर्चासे आश्वस्त करते हुए धूप-दीप जलाकर घरके सब लोगोंको साथमें मिलकर 'रामरक्षास्तोत्र'का पाठ करनेको कहा। साथ ही मेरी बेटीको भोजन भी दिया और भगवान्‌की कथाएँ सुनाकर हमें बिदा किया। मेरी बेटीने उन्हें हमारे घर आनेका आमन्त्रण दिया और उन्होंने स्वीकार भी किया।

सायंकाल छः बजेसे मेरी बेटी उनके आनेकी प्रतीक्षा कर रही थी। जब वे सात बजेतक नहीं आये, तब वह अस्वस्थ हो उठी, रो-धोकर उनके घर जानेको निकल पड़ी। मैं भी उसके साथ 'अच्छा, चल वैद्यराजजीके घर' कहकर चल पड़ी। वैद्यराजजीका नाम सुनते ही मेरी बेटी प्रसन्नतासे उछल पड़ी। इतनेमें वैद्यराजजी आ गये और उन्होंने पुनः 'रामरक्षास्तोत्र'का पाठ किया और हमसे भी करवाया। और 'नित्य श्रद्धापूर्वक पाठ करते रहिये'—ऐसा कहकर वे वापस लौट गये।

दो ही दिनोंमें भगवान्‌की ऐसी कृपा हुई कि मेरी बेटीका रोना, चिल्लाना, हाथ-पैर पटकना आदि सभी असामान्य क्रियाएँ बंद-सी हो गयीं। मैंने वैद्यजीके पास जाकर यह शुभ-संवाद उन्हें बताया। वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। वास्तवमें यह सब 'श्रीरामरक्षास्तोत्र'के पाठका ही चमत्कार है, जिसकी प्रेरणा मुझे श्रीवैद्यजीसे मिली थी।

आज भी 'रामरक्षास्तोत्र'का पाठ चालू है और उनकी दी हुई दवा भी चालू है। अब बेटी बिलकुल सामान्य हो गयी है। पहले-जैसे खेल-कूद, मनोविनोद, गाना-बजाना आदि करने लगी है। रोना-धोना बिलकुल बंद है। सब कुछ सकुशल है। 'रामरक्षास्तोत्र'का पाठ सर्वथा कल्याणकारक है, इसका श्रद्धा-विश्वासके साथ निरन्तर पाठ करना चाहिये।

—सौ० हेमलता माधवराव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

परिस्थितिसे बाध्य

कुछ ही दिनों पहलेकी घटना है। मैं उगाहीके लिये पासके ही कुछ छोटे गाँवोंमें जाकर रात्रिको लगभग साढ़े आठ बजे साइकलपर घर लौट रहा था। मेरी जेबमें चार सौ अस्सी रुपयेके नोट थे। मैं तेजीसे चला जा रहा था कि अकस्मात् साइकल एक गड्ढेमें गिर गयी। पर न कोई खास नुकसान हुआ और न चोट लगी। पर एक आदमीने मुझे देख लिया और उसने मेरे पास आकर धमकाकर जोरसे कहा—'तुम्हारे पास जो कुछ हो सो तुरंत दे दो, नहीं तो जानसे हाथ धोना पड़ेगा।' मैं भयसे काँपने लगा। मैंने चार सौ अस्सी रुपये उसके हवाले किये और किसी तरह जान बची समझकर साइकलपर सवार होकर तेजीसे भागा।

कुछ ही दूर पहुँचा ही था कि जोरोंसे आवाज सुनायी दी—'भैया ! जरा ठहरना।' मैंने मुड़कर देखा, वही पुकारता हुआ मेरी ओर दौड़ा आ रहा था। मैं डर गया, सोचने लगा शायद साइकल ही छीनना चाहता है। मेरी चाल कुछ धीमी हो गयी, इतनेमें तो वह समीप आ पहुँचा। वह मेरे पैरोंमें लोट गया और उन रुपयोंको वापस लौटाते हुए क्षमा-प्रार्थना करने लगा। बोला—'भाई ! मैं चोर-लुटेरा हूँ, मुझे पुलिसमें ले चलो।' मैं कुछ समझ नहीं पाया। अभी-अभी जिसने जान लेनेकी धमकी देकर रुपये छीने, वह कुछ ही क्षणों बाद इतना नम्र होकर रुपये क्यों लौटा रहा है। मैंने इसका रहस्य जानना चाहा।

उसने कहा तुम मेरे घर चलो, बड़ा आग्रह किया। मैंने बहाना बनाकर इनकार कर दिया। तब उसने बताया—'भैया ! मैं बड़ा नीच काम करता हूँ, पर जब करता हूँ, तब आत्मा उसे न करनेकी प्रेरणा करता है। पर मैं बाध्य होकर ऐसे दुष्कर्म करता हूँ, कारण कि, घरमें आठ-दस आदमी हैं, खाने-पीनेका कोई भी साधन नहीं है। धंधा-रोजगार कुछ है नहीं, 'मरता क्या न करता' वाली कहावत है। भूखा व्यक्ति कुछ भी कर बैठता है, पर इस प्रकारके कर्म करनेमें चित्तमें बड़ी वेदना भी होती है·····।'

मैंने सोचा—सचमुच भूखा कुछ भी कर बैठता है। वह चोरी-डैकतीको बुरा समझता है, पर परिस्थिति उसे बाध्य कर देती है। समाज यदि इन भूखोंके अन्नकी व्यवस्था कर दे, इन्हें धंधा मिल जाय तो वे भले आदमी बने रह सकते हैं। चोर भी हम-जैसे आदमी ही होते हैं और उनके भी हृदय होता है। मनुष्यको चोर बनानेवाला अधिकांशमें समाज है।

मैंने उसको बुलाया और एक आटाचक्कीमें उसकी नौकरी लगवा दी। अब वह वहाँ काम करता है। मुझे तो वह मनुष्यके रूपमें देवता दीखता है।

—बंशीलाल एम्० अग्रवाल

(३)

शरीरका छोटा पर मनका महान्

यह अफ्रीकाका प्रसंग है। कुपी (ठिगना) उसका नाम है। हमारे आफिसमें चपरासीका काम करता है।

एक बार तिजोरीकी चाभी भूलसे उसके अंदर ही रह गयी। तिजोरीमें तीस हजारके नोट थे।

हमारा कुपी रातको भी आफिसके बाहर ही सोता था। यही था उसका घर । आफिस बंद भी वही करता और आफिसकी चाभी उसीके पास रहती। तिजोरीमें चाभी देखकर उसने कौतूहलसे खोलकर देखा तो उसे तिजोरीमें शिलिंगके नोट-ही-नोट दिखायी दिये। अच्छे-अच्छे लोगोंको भी लुभा देनेवाला प्रलोभन था। डेढ़ सौ शिलिंगकी नौकरी करनेवालेके लिये तो जीवनभरकी कमाई थी।

परंतु कुपी कुछ दूसरी ही मिट्टीका मानव था। उसने उस रातको आफिसके बाहरके बदले तिजोरीके पास आसन जमाया और रातभर वहीं पहरा देता बैठा रहा।

सबेरे मैं आफिस गया तब चाभी मेरे हाथमें देते हुए कुपी बोला—'सेठजी! यह तिजोरीकी चाभी आप अंदर ही भूल गये थे। इसमें तो तमाम नोट-ही-नोट भरे हैं। आप खोलकर गिन लें सब ठीकसे।'

मैं तो भौंचक-सा रह गया। मुझे ख्याल आया, कितनी बड़ी भारी भूल हो गयी थी मुझसे। मैंने तिजोरी खोलकर देखा तो नोटोंके बंडल ज्यों-के-त्यों बँधे पड़े थे। मैं बिना गिने ही तिजोरीका दरवाजा ढकने लगा, परंतु कुपी क्यों मानता ? उसने कहा—'सेठजी! पहले रकम गिन लें, फिर बंद करें।'

अच्छे-अच्छे पुरुषोंके मनको विचलित कर दे, ऐसी लक्ष्मीको ठोकर मारकर जिसने हाथसे छूनेतकका लालच न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया हो, नोट गिनकर उसकी ईमानदारीपर अविश्वास करनेकी धृष्टता करूँ, यह मेरे लिये कैसी बुरी बात होगी। अतएव मैंने कहा—'तुझे नोट ही ले जाने होते तो तू रातको रुकता ही क्यों ? पर अच्छा यह तो बता कि इतनी बड़ी रकम तुझे यों ही मिल रही थी, फिर तूने ली क्यों नहीं ?'

किसी तत्त्वज्ञकी तरह सिर हिलाकर उसने कहा—'सेठजी! बेईमानीका पैसा टिकता नहीं। ऐसे हरामके पैसेकी अपेक्षा मेहनतकी कमाई ही मेरे लिये बहुत है। ईश्वर देखनेवाला मौजूद है। मैं तो अब बूढ़ा हो गया हूँ, एक पैर यहाँ और दूसरा कब्रमें। इस उम्रमें यह सब करना तो 'धौलेमें धूल' डालना है।' मैंने सोचा—धन्य है यह,जो शरीरका छोटा है पर मनका कितना महान् है। – हसमुख शाह

(४)

वात्सल्यपूर्ण हृदय

बूढ़े लक्ष्मीरामके हाथमें कुंकुमकी शीशी, काजलकी डिबिया, रबड़के कड़े और नाईलोनकी रीवन देखकर हँसते-हँसते मैंने पूछा—'अरे यह क्या है ? क्या घरवालीके लिये यह सब लिये जा रहे हो ?' लक्ष्मीराम हमारे आफिसका चपरासी है—नम्र, विवेकी, भला और भोला।

खुली हँसी हँसते हुए उसने कहा—'अरे नहीं, इनसे सजकर अब घरवाली कहाँ जायगी ? यह तो लड़की बहुत दिनोंसे चीजें मँगवा रही थी, पर आज याद रखकर नहीं ले जाता तो काम चलता नहीं, बड़ी मिजाजवाली है, मनकी न हो तो तुरंत चिढ़ जाय।'

मैंने नयी बात सुनकर कहा—'परंतु तुम्हारे तो एक भी लड़की नहीं थी।'

'अरे लड़केकी बहू है न ? उसके लिये।'

मेरा आश्चर्य और बढ़ गया। मैंने कहा—'तुम्हारा लड़का तो अभी कुँआरा है।'

लक्ष्मीरामने कहा—'सगाई तो कभीकी हो गयी थी, अभी विवाह बाकी है।'

'पर बहू पहले ही तुम्हारे घर रहती है ?' मैंने पूछा। उसने विस्तारसे सारी बातें समझायीं—

लड़केकी सगाई बचपनमें ही कर दी थी। बहूकी कमनसीबीसे सगाई होनेके बाद एक ही सालमें उसके माँ-बाप दोनों मर गये। नजदीकका सम्बन्धी कोई था नहीं। एक दूरका मामा था, वह बड़ा स्वार्थी था। नन्हीं-सी गरीब लड़कीके पालन-पोषणके लिये वह तैयार नहीं हुआ। मुझसे नन्हीं-सी बहूका दुःख नहीं देखा गया। ससुरके नाते उसके बापके जितना ही अपना कर्तव्य मुझे दिखायी दिया। मैं लड़कीको घर ले आया और मैंने अपनी लड़कीकी तरह ही प्यार-दुलारसे ही उसको पाला-पोसा। वह मुझे 'बापू' ही कहती है। समझदार हुई, तबसे धीरे-धीरे उसने घरका सारा काम-काज सँभाल लिया। जरा मिजाजवाली है, पर इतनी होशियार और समझदार है कि मुझे घरकी जरा भी चिन्ता नहीं रहती। लड़का बाहर नौकरी करता है और घरवाली बरसोंसे अपंग-सी हो रही है। इस बुढ़ापेमें यह बहू ही मेरे लिये सच्चा सहारा है। सबकी सँभाल यही करती है।

मैं उसको किसी दिन भी असंतुष्ट नहीं करता और कभी उसके वचन नहीं टालता। उसको जिस वस्तुकी आवश्यकता होती है, वही ला देता हूँ। पूर्वजन्मका कोई बड़ा पुण्य होगा तभी ऐसी रत्न-जैसी बहू मेरे घर आयी है। अब मुझे जीनेका कुछ भी मोह नहीं रहा। इस लड़कीके लिये ही जीना चाहता हूँ। लगता है कि इन दोनोंका विवाह करके इन्हें सुखी देखकर ही निश्चिन्त ही मरूँगा तो मुझे सद्गति मिलेगी।'—अनन्त जे शाह

(५)

सर्वैश्वर्यप्रद 'लक्ष्मी-कवच'का प्रभाव

यह घटना लगभग चालीस-पचास वर्ष पूर्वकी है। नैनीताल-जनपदके ज्योलीकोट गाँवमें एक गरीब, भोले नारायण भट्ट नामके सीधे-सादे ब्राह्मणको उसके धनवान् भाइयोंने परिवारसे अलग कर दिया। दुकान तथा नकदीमें कोई हिस्सा नहीं दिया। चार-पाँच बच्चोंके पिता ब्राह्मण देवताके सामने महान् धर्मसंकट उपस्थित हो गया। आजीविका चलानेमें कष्ट उत्पन्न हो गया तथा बच्चोंकी पढ़ाईकी भी समस्या उत्पन्न हो गयी। तभी एक महात्माने उन्हें **'प्राच्यां तु महालक्ष्मी०'** वाला सर्वैश्वर्यप्रद लक्ष्मीश्लोक बताया, जो शीघ्रतामें उन्हें आधा अधूरा ही याद रह गया, पर इतना ही जपनेमात्रसे ही धीरे-धीरे उनकी रु० १००.०० (एक सौ रुपये) मात्र उधारकी पूँजीसे दूकान चलने लगी। बच्चोंकी प्राथमिक शिक्षा भी शुरू हो गयी। जिस निर्जन स्थानपर उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झोपड़ी थी, वह उत्तरप्रदेश सरकारकी जमीन निकलनेसे १९६०-६५के बंदोबस्तमें उनके नाम हो गयी। तब उसपर उन्होंने पक्का मकान बनाया। इसके आधेमें आज स्टेट बैंक तथा आधेमें दूकान है। उनके लड़के भी पढ़-लिखकर सरकारी नौकरियों, मिलिट्रीमें राजपत्रित पदोंतक पहुँच गये।

फरवरी १९७३ के 'कल्याण'में सर्वैश्वर्यप्रद यह 'लक्ष्मी-कवच' प्रकाशित किया गया था। उसे देखकर उन्होंने पूर्ण श्लोक कण्ठस्थ कर लिया और उसके नियमित अनुष्ठानसे पूर्ण सफलता प्राप्त की। वे अर्थसंकटसे सर्वथा मुक्त हो गये।

—प्रेषक – हरिश्चन्द्र भट्ट 'सुमित्र'

मनन करने योग्य

(सत्सङ्गका प्रसाद)

इसी बीसवीं शताब्दीकी घटना है। एक बड़े शहरमें एक बड़े प्रतिष्ठित धनी निवास करते थे। उनके चित्तमें बड़ा वैराग्य था, भगवान्‌के भजनमें बड़ी रुचि थी । वे सोचते रहते थे कि कब वह अवसर मिलेगा, जब सबकी चिन्ता छोड़कर मैं भजनमें ही लग जाऊँगा। उनके संतान नहीं थी। एक भतीजा था, जिसके पढ़ाने-लिखानेकी जिम्मेदारी सेठजीपर ही थी। वे उसको योग्य बनाकर भजनमें लगना चाहते थे।

कुछ दिनोंमें पढ़-लिखकर सेठजीका भतीजा योग्य हो गया। सेठजीने व्यापारका सारा काम-काज उसे सँभला दिया और अपना विचार प्रकट किया कि मैं तो अब व्रजमें रहकर भगवान्‌का ही भजन करूँगा। भतीजेने पूछा—'चाचाजी ! इस घरमें, व्यापारमें, रुपयेमें और भोगोंमें जो आनन्द है, भजनमें उससे अधिक आनन्द है क्या ?' चाचाजी—'इसमें क्या संदेह है, बेटा ! हमारा व्यापार, भोग और सुख तो अत्यन्त अल्प है। संसारके त्रैकालिक सुखोंको और मोक्ष-सुखको भी यदि एकत्र करके एक पलड़ेपर रखा जाय और दूसरे पलड़ेपर भजनका लेशमात्रका सुख रखा जाय, तो भी वह लेशमात्र सुख ही अधिक होगा। और तो क्या कहूँ, बेटा ! भजनमें जो दुःख होता है, वह भी संसारके सब सुखोंसे श्रेष्ठ है।' भतीजा—'चाचाजी ! जब भजनमें इतना सुख है, तब मुझे इस दुःखरूप व्यापारमें लगाकर आप अकेले क्यों उस सुखका उपभोग करने जा रहे हैं ? जिसे आप दुःख समझते हैं, उसमें मुझे डाल रहे हैं और आप सुखमें जा रहे हैं। भला, यह कहाँका न्याय है ? मैं भी आपके साथ चलूँगा।' चाचाजी—'बेटा ! मैं तो चाहता हूँ कि संसारके सभी लोग भगवान्‌में लग जायँ। मुझे कई बार इस बातका दुःख भी होता है कि लोग ऐसा सुखमय भजन छोड़कर प्रपञ्चोंमें क्यों फँसते हैं। परंतु संसारका अनुभव किये बिना इसके दुःखोंका ज्ञान नहीं होता। तुम अभी नवयुवक हो । तुम कुछ दिनोंतक संसारके व्यवहारोंमें रहकर इसके सुख-दुःखोंको देख लो, फिर तुम्हारी रुचि हो तो भजनमें लग जाना ।' भतीजा—'चाचाजी ! आपकी बात मुझे जँचती नहीं है। मैं सोचता हूँ कि जिस व्यापार आदिमें लगे रहकर आपने अपनी इतनी आयु बितायी है, उसका अनुभव आपसे अधिक मुझे कब होगा। जब आपका अनुभव इतना प्रत्यक्ष है, मेरी आँखोंके सामने है, तब फिर उसका अनुभव प्राप्त करनेके लिये इतना सुखद भजन छोड़ देना कहाँतक उचित है ? इसलिये मैं भजनके लिये अवश्य चलूँगा। आप साथ न रखेंगे तो मैं अकेला ही चला जाऊँगा।'

भतीजेका दृढ़ निश्चय देखकर सेठजीको प्रसन्नता हुई। अपनी सारी सम्पत्तिका उन्होंने ट्रस्ट बना दिया, जिससे दीन-दुखियोंकी सेवा हुआ करे। दोनोंने समस्त वस्तुओंका त्याग करके व्रजकी यात्रा की। रास्तेमें चाचाजीने अपने भतीजेसे बातचीत करते हुए कहा—'बेटा ! ऐसी बात नहीं है कि घरमें भगवान्‌का भजन हो ही नहीं सकता, हो तो सकता है, होता है। मेरे सामने संसारके व्यवहार, व्यापारमें बहुत बड़ी कठिनाई थी। आजकल व्यापारकी प्रणाली इतनी कलुषित, इतनी गंदी हो गयी है कि बड़े-बड़े सत्पुरुषोंका व्यवहार भी पूर्णतः शुद्ध नहीं होता । जहाँ दूसरोंसे सम्बन्ध रखना पड़ता है, वहाँ कुछ-न-कुछ उनके सम्बन्धका ध्यान रखना ही पड़ता है। इसलिये कैसा भी सज्जन क्यों न हो, व्यवहारके क्षेत्रमें उसे विवश होकर अपराध करना पड़ सकता है। अवश्य ही यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापारका दोष नहीं है, किंतु कलियुगमें ऐसे व्यक्तियोंकी ही भरमार है। इसीसे जो लोग अपने ईमान और सचाईकी रक्षा करना चाहते हैं, अपने अन्तःकरणको शुद्ध रखना चाहते हैं, वे थोड़े-से-थोड़ा व्यापार करते हैं अथवा उससे बिलकुल अलग होकर भजन करने लग जाते हैं। वास्तवमें भजन ही सर्वस्व है। भजनके आनन्दके सामने त्रिलोकी तुच्छ है।'

दोनों ही चाचा और भतीजे व्रजमें रहकर भजन करने लगे। सत्संग करते, लीला देखते, जप करते, ध्यान करते और व्रजकी रजमें लोटते। दोनों अलग-अलग विचरण करते, अलग-अलग भिक्षा करते और रातको दूर-दूर रहते। कुछ दिनोंके बाद तो सत्सङ्ग करते-करते उनकी बुद्धि इतनी शुद्ध हो गयी कि एकको दूसरेकी याद ही नहीं रहती। कोई कहीं रहकर भजन कर रहा है, तो कोई कहीं। दोनों मस्त थे।

एक दिन बड़ी विचित्र घटना घटित हो गयी। सेठजी जप कर रहे थे। उनके मनमें बार-बार खीर खानेकी इच्छा होने लगी। एक तो यों ही मनुष्यकी इच्छाएँ उसके साथ जोड़ी जाती हैं। दूसरे भजनके समयकी इच्छा तो कल्पवृक्षके नीचे बैठकर की हुई इच्छाके समान है। भगवान् अपने भक्तकी प्रत्येक इच्छा उचित समझकर पूर्ण करते हैं। थोड़ी ही देरमें एक बारह वर्षकी सीधी-सादी लड़की वहाँ आयी और सेठजीके सामने दूध, चावल और चीनी रख गयी। सेठजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे भगवान्‌की भक्तवत्सलता देखकर मुग्ध तो हुए, परंतु उनकी खीर खानेकी इच्छा अभी मिटी नहीं थी। उन्होंने आग जलाकर खीर पकाना शुरू किया। अब उनके मनमें भतीजेकी याद आने लगी। वे सोचने लगे कि यदि वह भी आ जाता, तो उसे भी खीर मिल जाती। चाचाके स्मरणका प्रभाव भतीजेके चित्तपर पड़ा और वह अपने स्थानसे चलकर सेठजीके पास पहुँचा।

भतीजेकी स्थिति बहुत ऊँची थी, उसमें आत्मबल था। तभी तो वह एक ही दिनमें अपनी सारी सम्पत्ति छोड़ सका था। खीरकी तैयारी देखकर उसने चाचाजीसे सब बात पूछी और उदास हो गया। उसने कहा—'चाचाजी ! यदि खीर ही खानी थी, तो घर क्यों छोड़ा ? वहीं रहकर जो कुछ बनता भजन करते, दूसरोंको खीर-पूड़ी खिलाते और खुद भी खाते। जिसको छोड़ दिया, उसकी फिर क्या इच्छा ? जिसको उगल दिया, उसको फिर खाना यह तो पशुओंका काम है। चाचाजी! आपने सनातन गोस्वामीकी बात तो सुनी ही होगी। इतने विरक्त थे वे कि अपने ठाकुरको भी बाजरेकी सूखी रोटी खिलाते थे। एक दिन ठाकुरजीने उनसे कहा—'भाई ! कम-से-कम नमक तो खिलाया करो। सूखी रोटी मेरे मुँहमें गड़ती है।' भगवान्‌की यह बात सुनकर श्रीसनातन गोस्वामीको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने कहा—'मेरे चित्तमें स्वादकी वासना होगी, तभी तुम ऐसा कह रहे हो। अन्यथा तुम्हें नमककी क्या आवश्यकता है?' सनातन गोस्वामीकी बात स्मरण करके हमें तो अपनी दशापर बड़ा दुःख हो रहा है। अभी भोगोंकी आसक्ति हमारे चित्तसे मिटी नहीं। इसीसे तरह-तरहके बहाने बनाकर और प्रत्यक्ष भी हम भोग चाहते हैं। न जाने भगवान्‌की क्या इच्छा है ?' भतीजा बोल रहा था और सेठजीकी आँखोंसे आँसू गिर रहे थे। 'यह भी भगवान्‌की कृपा ही होगी' इतना कहकर वह ध्यानमग्न हो गया।

थोड़ी देरमें वही लड़की, जो खीरका सामान दे गयी थी, आयी। वह कहने लगी—'बाबा ! तुम रोते क्यों हो? अबतक तुमने खीर भी नहीं खायी है ? ऐसा क्यों ? क्या मेरा कोई अपराध था ? उस लड़कीकी मधुर वाणी सुनकर दोनोंने आँखें खोलीं तो वह लड़की साधारण नहीं, ज्योतिर्मयी साक्षात् श्रीजी थीं। दोनोंने साष्टाङ्ग दण्डवत् करते-न-करते सुना कि श्रीजी कह रही हैं—'यह सब मेरी ही लीला थी। यह व्रजभूमि मेरी भूमि है। यहाँ रहकर तुम करने-न-करनेका अभिमान छोड़ दो। तुम कुछ करते नहीं, कर सकते नहीं। सब मैं करती हूँ। जबतक तुम अपनेको एक भी क्रिया या सङ्कल्पका कर्ता मानोगे, तबतक तुम्हें दुःख होगा। जैसे मैं रखूँ, वैसे रहो। जो कराती हूँ, सो करो। तुम मेरे हो।'

दण्डवत् करके जब उन दोनोंने आँखें खोलीं, तब वहाँसे श्रीजी अन्तर्धान हो चुकी थीं। वे जीवनभर मस्त देखे गये।

भोगोंकी वास्तविकता जाननेके लिये अर्थात् उनमें वैराग्य होनेके लिये ही मर्यादित भोगोंमें प्रवृत्त होना चाहिये। यदि विचारपूर्वक भोगवासना नष्ट कर दी जा सके तो भोगोंमें प्रवृत्ति आवश्यक नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवेम शरदः शतम्

अधिक दिनोंतक जीवित रहनेकी इच्छा प्राणिमात्रकी होती है। धर्म-प्रधान भारतवर्षमें इसी उद्देश्यसे संध्योपासनका विधान किया है। संध्योपासनमें बाह्य और आभ्यन्तर-शुद्धिके लिये अनेकों मन्त्रोंसे जलको पवित्र करके आचमन करनेका विधान है और बाह्य-शुद्धिके लिये मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित जलसे शरीरका अभिषेक करनेको लिखा है। साथ-ही-साथ आयु-वृद्धिके लिये प्राणायामका विधान है।

इसके पश्चात् भुवनभास्कर भगवान् सूर्यकी उपासनाका क्रम लिखा है। चन्दन, पुष्प आदि अर्घ्यकी वस्तुएँ जलमें मिश्रितकर सूर्यके लिये अर्घ्य प्रदान करनेकी विधि है। इसके पश्चात् सूर्योपस्थानके चार मन्त्र हैं। उनमें सूर्यकी स्तुतिके साथ उनसे अपने जीवनकी वस्तुओंके लिये प्रार्थना है। यथा—

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत ँ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्। आदि।

इससे यह प्रतीत होता है कि मनुष्यकी परमायु एक सौ वर्षकी है और वह कर्म करते हुए एक सौ वर्षतक जीवित रहना चाहता है। ईशोपनिषद्के दूसरे मन्त्रमें भी यही बात लिखी है। यथा—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

अर्थात् मनुष्यको कर्म करते हुए एक सौ वर्ष जीनेकी इच्छा रखनी चाहिये। इस तरह विहित कर्म—अग्निहोत्रादि करते रहनेसे मनुष्य कर्मफलसे लिप्त नहीं होता। अर्थात् कर्मफलको प्राप्त करनेकी इच्छासे काम्यकर्म भव-बन्धनका कारण होता है, अन्यथा निष्कामभावसे कर्तव्य समझकर कर्म करनेसे प्रारब्धका भोग हो जाता है और संचित कर्मकी उत्पत्ति होती ही नहीं, इससे परम शान्ति मिल जाती है।

प्राचीन ऋषिगण अपने इन्हीं कर्तव्योंका पालन करते थे, जिससे उनकी इन्द्रियाँ जीवनभर शिथिल नहीं होती थीं, सौ वर्षतक कर्तव्य-पालन करते हुए जीवित रहते थे।

हमलोगोंके नेत्रोंमें जो ज्योति है वह सूर्यकी ज्योति है। सूर्य ही प्रकाशके अधिष्ठाता हैं, अतः आजीवन हमारे नेत्रोंकी ज्योति बनी रहे, ऐसी प्रार्थना हम सूर्यसे करते हैं। इसी तरह अन्य इन्द्रियोंको जो शक्ति प्राप्त है वह सूर्यसे ही प्राप्त है। अतः हमें प्रतिदिन सूर्यकी उपासना करनी चाहिये—**'पश्येम शरदः शतम्'**—हम सौ वर्षतक देखें, हमारे नेत्रोंकी ज्योति कम न हो। **'जीवेम शरदः शतम्'**—हम सौ वर्षतक जीवित रहें, हम अपनी पूर्ण आयुको भोगकर कर्तव्य पालन करके भगवान्को प्राप्त करें। **'प्रब्रवाम शरदः शतम्'**—हम सौ वर्षतक बोलें अर्थात् शास्त्रोंका अध्ययन और अध्यापन करें तथा भगवान्का भजन करके अन्तमें उन्हींमें लीन हो जायँ। **'शृणुयाम शरदः शतम्'**—हम सौ वर्षतक सुनें —अर्थात् सौ वर्षतक सत्सङ्ग करें, श्रीभगवान्के गुणोंको सुनें और अन्तःकरणको पवित्र करें एवं **'अदीनाः स्याम शरदः शतम्'**—अर्थात् जबतक हम जीवित रहें, दीन न हों, जिससे आश्रममें आये हुए अतिथियोंका सत्कार कर सकें। अतः हमारे पास इतना धन रहे जिससे स्वयं भोजन करें और समागत अतिथिको भी भोजन करावें।

इस तरह अपनी आयु और इन्द्रियोंमें शक्तिके लिये सर्वत्र उपनिषदोंमें प्रार्थनाके मन्त्र पाये जाते हैं। प्रश्नोपनिषद्के शान्तिपाठके मन्त्रमें भी ऐसी ही प्रार्थना प्राप्त होती है। यथा—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥

'हे देवगण! हम कानोंसे शुभ वचन सुनें। यज्ञादि अनुष्ठान करते हुए नेत्रोंसे माङ्गलिक वस्तुओंको देखें। हमलोगोंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग दृढ़ रहें'जिससे हमलोग देवताओंका हित करते हुए अपनी पूर्ण आयुका उपभोग करें।'

ऋषिगण इसी तरह यज्ञादि-अनुष्ठान और अपने नित्यकर्म नियत समयपर करते हुए पूर्ण आयुका उपभोग करते थे और उनकी इन्द्रियाँ सबल रहती थीं। उनके शरीरके सभी अवयव दृढ़ और मजबूत रहते थे। इससे उनका जीवन भारभूत नहीं होता था।

आजकल हम नित्यकर्म भूल गये हैं, जिससे न तो हमारा शरीर सबल होता है, न मन दृढ़ रहता है, बुद्धिकी शक्ति दिनोंदिन क्षीण होती जा रही है। पचास वर्षके बाद ही हमारा जीवन हमें भार मालूम पड़ने लगता है। इन्द्रियाँ शिथिल हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती हैं, नेत्रमें ज्योति नहीं रहती। साठ वर्षकी आयु होनेपर हम किसी कामको करने योग्य नहीं समझे जाते। हमारी परमायु साठसे सत्तरके अंदर हो गयी !

जब कि वैदिक शास्त्रके अनुसार मनुष्यकी आयु सौ वर्षकी कही गयी है। वहाँ ज्योतिष शास्त्रके अनुसार तो मनुष्यकी आयु एक सौ आठ और एक सौ बीस वर्ष कही गयी है, क्योंकि मनुष्यके जीवनभरमें नवग्रहोंकी दशा एक बार बारी-बारीसे आती है और एक राशिपर उनकी स्थिति जितने दिनकी होती है उनको जोड़नेसे एक सौ बीस वर्ष होते हैं। कुछ ज्योतिर्विदोंके मतके अनुसार एक सौ आठ ही वर्षकी परमायु होती है।

पाश्चात्त्य वैज्ञानिकोंने भी इस बातको स्वीकार किया है कि आध्यात्मिक विज्ञानके समक्ष यह भौतिक विज्ञान अत्यन्त क्षुद्र है, क्योंकि आध्यात्मिक विज्ञानसे जिस वस्तुकी प्राप्ति होती है वह अक्षय होती है और भौतिक विज्ञानसे प्राप्त होनेवाली वस्तु नश्वर होती है।

आध्यात्मिक विज्ञानकी सफलताके लिये अन्तःकरणकी शुद्धि अपेक्षित है जो प्रतिदिन संध्यावन्दन करनेसे शुद्धताको प्राप्त करती है। अतः यदि हम इस संसारमें अपने जन्मको सफल बनाना चाहते हैं और अपनी इन्द्रियोंद्वारा भगवान्‌का भजन करते हुए पूर्णायुको भोगना चाहते हैं तो हमें अपने वर्णोचित संध्या-तर्पण आदिसे चित्तको शुद्ध करके ईश्वरका भजन करते हुए सौ वर्षतक जीनेकी इच्छा रखनी चाहिये। **'शतायुर्वै पुरुषः'** इस शास्त्रीय वचनको सत्य बनाना चाहिये।

प्रार्थना

हे भुवनेश्वरी ! मुझमें वह बल दो, जिससे मेरा चित्त सदा तुम्हारी ही ओर आकृष्ट होता रहे। मैं जितना ही तुम्हारी ओर बढ़नेकी इच्छा करता हूँ, उतना ही अधिक मुझे सुख और शान्तिकी अनुभूति होती है, उस समय तुम्हारी अमरज्योतिकी शीतल रश्मियाँ मेरे सामने एक दिव्य प्रकाश फैलाती हैं, उनके सुखद स्पर्शसे जीवनका समस्त संताप शमन हो जाता है। तुम्हारी भक्ति और पूजाके लिये हृदयमें अधिकाधिक दृढ़ताका भाव उदय होता है। तुम्हारी शरणागतिसे जो सुख मुझे मिलता है, उसकी बराबरी संसारकी कोई भी वस्तु नहीं कर सकती। अतः हे जगदम्बिके ! मेरी इच्छाशक्तिको इतनी बलवती बना दो कि तुम्हारी सेवामें सदा-सर्वदा मेरी रति बनी रहे, संसारकी कोई भी विघ्न-बाधा तुम्हारी पूजाकी दृढ़ भावनासे मुझे विरत न कर सके, अपने पादपद्मोंमें मुझे वह स्थान प्रदान करो, जहाँसे मैं अगणित मनुष्योंतक तुम्हारी परमज्योति पहुँचा सकूँ, तुम्हारे मङ्गलमय आशीषका प्रसाद असंख्य मनुष्योंमें वितरण कर आऊँ, तुम्हारे विमल चरणोदकसे प्राणिमात्रका जीवन धन्य कर सकूँ, उनका जीवन शुभ कर सकूँ, इतना ही नहीं, उनको तुम्हारे चरणामृतसे अमरत्व प्रदान कर दूँ।

हे सर्वेश्वरी ! तुम्हारे राज्यमें देना-ही-देना लेना है। जो जितना ही अधिक देता है, उतना ही अधिक पाता है। जिसने तुम्हारे चरणोंमें अपना सर्वस्व चढ़ा दिया, वही सबसे बड़ा धनवान् है। अतः माँ ! तुम मेरे ज्ञान-कोषको इस भाँति भर दो कि मैं उसके रत्नोंको सर्वदा लुटाता रहूँ। अज्ञानवश जो तुम्हारी सेवासे विमुख हैं, उनमेंसे कुछ थोड़ोंको भी तो सच्चे सुख-शान्तिका मार्ग बता सकूँ। इस संसारमें जिनके बीच पैदा हुआ, जीवनमें जिनसे निकटतम सम्बन्ध रहा, किंतु जिन्होंने अभीतक सर्वतोभावेन तुम्हारे चरणोंमें अपने हृदय, मन और बुद्धिकी भेंट नहीं चढ़ायी, उनको तो तुम्हारे सम्मुख ला सकूँ। वरदे ! आशीर्वाद दो कि हम सब अध्यात्म-पथमें साहस, उत्साह और दृढ़ताके साथ आगे बढ़ें। तुम्हारी अमोघ शक्ति और ज्ञानगरिमामें दक्ष महात्माओंके कल्याण-वचनामृत निरन्तर पान करने और दूसरोंको पान करानेमें कभी तृप्तिका अनुभव न करें। जननी ! हम सबको कल्याणमार्गका पथिक बना लो। जहाँ तुमने एक बार आशीर्वाद दिया कि 'कल्याण हो' फिर तो सभी संतापोंसे हमारा त्राण हो जायगा। माँ ! हम सब कुपुत्र होते हुए भी तुम्हारे पुत्र ही तो हैं। बस, एक बार कह दो 'कल्याण हो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

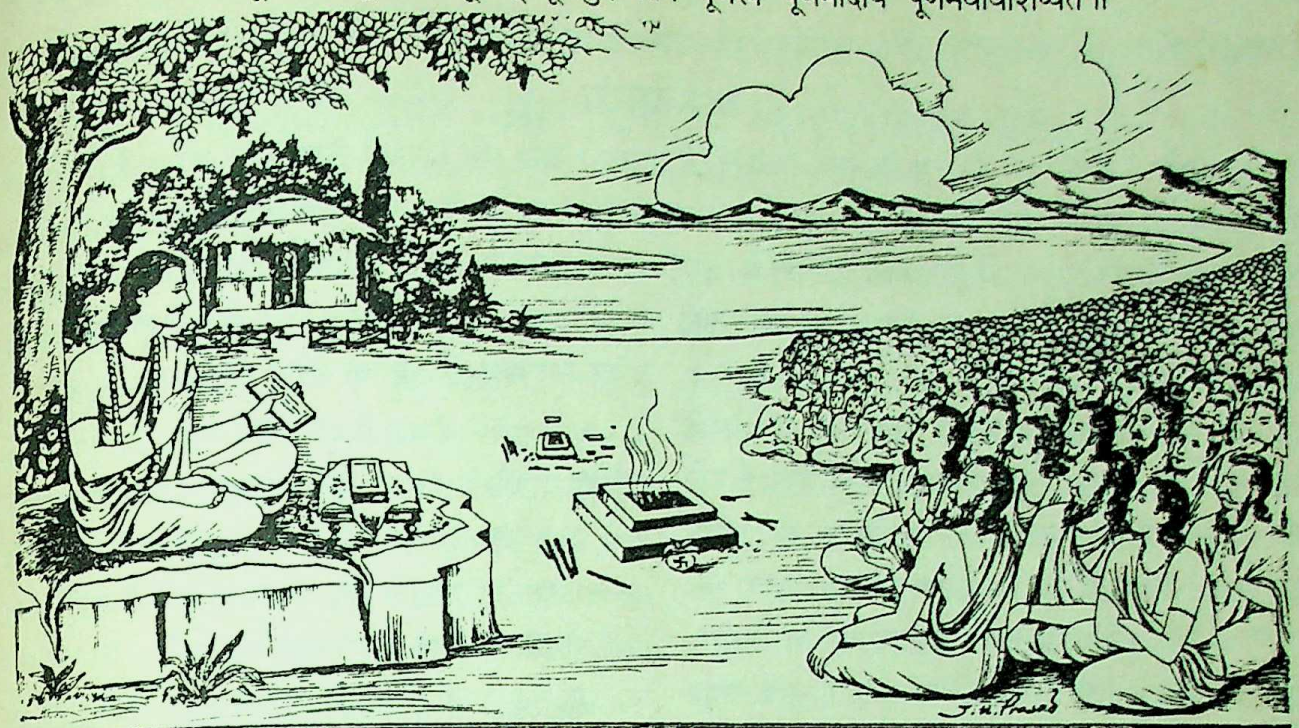

कल्याण

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत्।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥

वर्ष ६३ } गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-सं० ५२१५, मार्च १९९० ई० { संख्या १२ पूर्ण संख्या ७५७

महाभावरूपा भगवती श्रीराधाकी वन्दना

क्रीडाकमलमम्लानं पारिजातप्रसूनकम् ॥

अमूल्यरत्ननिर्माणं दधानां दर्पणोज्ज्वलम्। नानारत्नविचित्राढ्यरत्नसिंहासनस्थिताम् ॥
पादपद्मार्चितं कृष्णपादपद्मं च मङ्गलम्। हृत्पद्मे ध्यायमानां च कृष्णस्य परमात्मनः ॥
कर्मणा मनसा वाचा स्वप्ने जागरणेऽपि च। तत्प्रीतिं प्रेमसौभाग्यं स्मरन्तीं नित्यनूतनम् ॥
भावानुरक्तसंसिक्तां शुद्धभक्तां पतिव्रताम्। धन्यां मान्यां गौरवर्णां शश्वद्वक्षःस्थलस्थिताम् ॥
गोपीश्वरीं गुप्तिरूपां सिद्धिदां सिद्धिरूपिणीम्। ध्यानासाध्यां दुराराध्यां वन्दे सद्भक्तवन्दिताम् ॥

'जिनके हाथमें प्रफुल्ल क्रीडा-कमल, पारिजातका पुष्प और अमूल्य रत्नजटित स्वच्छ दर्पण शोभा पाते हैं, जो नाना प्रकारके रत्नोंकी विचित्रतासे युक्त रत्नसिंहासनपर विराजमान होती हैं, जो परमात्मा श्रीकृष्णके पद्माद्वारा समर्चित मङ्गलरूप चरणकमलका अपने हृदयकमलमें ध्यान करती रहती हैं तथा मन-वचन-कर्मसे स्वप्न अथवा जाग्रत्-कालमें श्रीकृष्णकी प्रीति और प्रेम-सौभाग्यका नित्य-नूतन रूपमें स्मरण करती रहती हैं एवं प्रगाढ़ भावानुरक्त, शुद्धभक्त, पतिव्रता, धन्या, मान्या, गौरवर्णा, निरन्तर श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर वास करनेवाली हैं तथा जो गोपीश्वरी, गुप्तिरूपा, सिद्धिदा, सिद्धिरूपिणी, ध्यानद्वारा असाध्य, दुराराध्य, सद्भक्तोंद्वारा वन्दित हैं, उन भगवती श्रीराधाकी मैं वन्दना करता हूँ।' (ब्रह्मवै० पु०, श्रीकृष्णजन्मखण्ड)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—तुम्हारे पास जो कुछ है, सब भगवान्‌का है और भगवान्‌की सेवाके लिये ही है। उसे अपना मानकर उसका केवल अपने भोगमें उपयोग करना बेईमानी है। इस बेईमानीसे बचो और समस्त प्राप्त साधनोंको भगवान्‌की सेवामें लगाओ।

याद रखो—सबमें भगवान् हैं। समस्त जीवोंके रूपमें भगवान् ही अभिव्यक्त हैं। अतएव उनके जिस किसी रूपको जब भी जिस वस्तुकी आवश्यकता हो और वह यदि तुम्हारे पास हो तो 'भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌के अर्पण कर रहे हो'—इस भावसे बिना अभिमानके नम्रतापूर्वक उसे समर्पण कर दो।

याद रखो—सच्ची सेवा करनेवाला जगत्‌में सदा-सर्वत्र सबमें भगवान्‌के दर्शन करता है। सेवा करना उसका स्वभाव ही है। वह ऊँच-नीच, अपना-पराया, मित्र-शत्रु नहीं देखता। उसे जब सेवाका अवसर मिलता है, तब वह अपना सौभाग्य समझता है।

याद रखो—सेवाका न विज्ञापन होता है, न दूकान खुलती है। सेवा सेवकका सहज स्वभाव होता है। सेवाका अभिप्राय है, अपने पास जो कुछ भी साधन-सामग्री, तन-धन, विद्या-बुद्धि आदि हैं और जो कुछ भी शक्ति है, वह सब सेवाके लिये है और सेवामें ही विनयपूर्वक किसी प्रकारकी कामना न रखते हुए उनका उपयोग करना।

याद रखो—सेवकमें सात बातें होनी चाहिये—१-सेवामें विश्वास, २-सेवाकी पवित्रता, ३-सेवामें गौरव, ४-सेवामें आत्मसंयम, ५-सेवामें उत्साह, ६-सेवामें प्रीति और ७-विनयभाव।

याद रखो—पापमें सहायता-सहयोग देना सेवा नहीं है। दूसरोंको सतानेवाले, खूनी, डकैत, व्यभिचारी, पराया स्वत्व हरण करनेवाले— ऐसे लोगोंकी उनके इन कामोंमें सहायता करना सेवा नहीं है। इन कामोंसे तो कर्ताका बड़ा अनिष्ट होता है और किसीके अनिष्ट-साधनमें सहायता करना सेवा नहीं, वह तो पापका समर्थन है।

याद रखो—सेवकमें त्याग तथा विनयका होना परमावश्यक है। बिना त्याग सेवा नहीं होती और विनय हुए बिना अभिमान उत्पन्न होता है। वह जिसकी सेवा करता है, उसको नीचा और अपनेको ऊँचा मानने लगता है। त्याग और निरभिमानता हुए बिना बदला चाहना, कृतज्ञताकी आकाङ्क्षा करना, कृतज्ञ न होने या बदला न चुकानेपर नाराज होकर उसे कृतघ्न मानना, उससे द्वेष करना आदि दोष उत्पन्न होकर सेवाके पवित्र स्वरूपको ही नष्ट कर देते हैं।

याद रखो—सेवक जिसकी सेवा करता है, न तो उसके पूर्व-इतिहासको देखता है, न भविष्यमें उसका कैसा बर्ताव होगा, यह देखता है। वह तो उसकी वर्तमान निर्दोष आवश्यकताको देखता है और सीधे-सादे तौरपर अपने साधन तथा शक्तिके अनुसार उसकी सेवा करता है।

याद रखो—सच्चे सेवककी ममता सेवामें रहती है, उसकी कामना सेवाकी शक्ति बढ़ानेकी होती है, उसका अहंकार विनम्रतामें परिणत हो जाता है और वह सेव्यको भगवान्‌के रूपमें और अपनेको नित्य सेवकके रूपमें देखता है।

याद रखो—सेवक न मान-बड़ाई चाहता है, न दूसरोंपर शासन करना चाहता है, न वह किसीको अपना-पराया मानकर राग-द्वेष रखता है, न किसीको अज्ञानी—मूर्ख मानता है या न अपनेसे नीचा मानता है, न किसीकी निन्दा-चुगली करता है और न कभी किसीसे अपने लिये आराम, अच्छे भोजन या सेवाकी ही आकाङ्क्षा करता है।

याद रखो—सच्चे सेवकमें प्राणी-मात्रकी सेवाकी भावना सहज रहती है। वह दयालु, निर्मलमन, धैर्यशील, चतुर, उद्यमी, श्रद्धालु, नित्य सत्कर्मपरायण, चरित्रवान्, संयतेन्द्रिय, अत्यन्त विनम्र तथा दूसरोंके हितके लिये ही जीवन धारण करनेवाला होता है। वह यथासाध्य सेवाको गुप्त रखना चाहता है। सेवा ही उसके जीवनका स्वरूप होता है।

याद रखो—सेवा निष्काम तथा विनम्र चित्तमें प्रकट भगवान्‌का विशुद्ध तथा मधुर प्रसाद है। वह कोई लेन-देनका व्यापार नहीं है और न अभिमान उत्पन्न करके दूसरोंको नीचा दिखानेवाला सदोष प्रयत्न है।

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

—शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेतुरहित प्रेमी और दयालु भगवान्‌का सौहार्द

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान् दया करके ही सबका उद्धार करते हैं। भगवान् बड़े प्रेमी हैं, बड़े दयालु हैं। गीतामें भगवान्‌ने अपने विषयमें स्वयं ही कहा है—

'सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥'

(५।२९)

'मुझको सम्पूर्ण भूतप्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित प्रेमी, ऐसा तत्त्वसे जानकर साधक शान्तिको प्राप्त होता है।'

यदि कहें कि हम भगवान्‌को परम दयालु, परम प्रेमी, हेतुरहित दया करनेवाले, हेतुरहित प्रेम करनेवाले मानते हैं तो हम यही कहेंगे कि आप मानते नहीं, कहते हैं। हम इस बातको जब समझ जायँगे कि भगवान् परम प्रेमी हैं तो फिर हम भगवान्‌को छोड़कर किसीसे भी प्रेम नहीं करेंगे। भगवान् प्रेममें बिक जाते हैं। प्रेमी भगवान्‌को खरीद लेता है और बेच भी सकता है। प्रेमीको भगवान्‌का दर्शन होता है, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥

यह तो नीति है कि भगवान् सब जगह व्यापक हैं और प्रेमसे प्रकट होते हैं, किंतु प्रेमसे प्रकट होकर उसको दर्शन ही देते हैं, इतनी ही बात नहीं है। वे प्रेमीके अधीन हो जाते हैं। **'अहं भक्तपराधीनः'**—मैं भक्तोंके अधीन हूँ। इतना ही नहीं, भक्त आगे-आगे चलता है, वे पीछे-पीछे चलते हैं। उनके चरणोंकी धूलि अपनेपर पड़ जाय तो अपनेको पवित्र मानते हैं—

'अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥'

(श्रीमद्भा० ११।१४।१६)

'उस महात्माके पीछे-पीछे मैं निरन्तर यह सोचकर घूमा करता हूँ कि उसके चरणोंकी धूल उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ।'

क्योंकि भक्तकी ऐसी मान्यता है—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'

(गीता ४।११)

'जो मेरेको जैसे भजते हैं, मैं भी उनको वैसे ही भजता हूँ।'

इतना ही नहीं भगवान्‌को कोई भक्त बेच दे यानी दूसरेको दे दे तो भगवान् कहते हैं कि वह मुझको दे सकता है। ऐसी कथाएँ आती हैं। नरसी मेहताके लिये भगवान्‌ने कहा है—*'बेचे तो बिक जाऊँ। नरसी म्हारो सिर धनी।'* नरसी हमारा मालिक है, मुझको बेचे तो मैं बिक जाऊँ।

नरसी मेहताने भगवान्‌पर एक हुण्डी सात सौ पचास रुपयेकी कर दी। रुपया देकर हुण्डी लेकर वे द्वारकामें गये। वहाँ पता लगा नहीं। लोगोंने पूछा—'तुम्हें क्या पता बतलाया?' उन्होंने कहा—'द्वारकाधीशके मन्दिरके पास साँवल-शाह।' तब लोगोंने कहा—'यहाँ तो कोई इस नामका आदमी नहीं और न कोई दूकान ही है। तुम किसीके धोखेमें आ गये।' वे पश्चात्ताप करते हुए वापस लौटे और सोचने लगे, चलकर नरसीकी बेइज्जती करेंगे। रात्रिका समय हो गया। द्वारकाके किनारे आकर शयन करने लगे। बड़े दुःखित थे, इसलिये नींद नहीं आयी, केवल लेट गये थे। इतनेमें भगवान् आये, बोले—'यहाँ किसीके पास मेरे नामकी सात सौ पचास रुपयेकी हुण्डी है? मैं हुण्डीवालेकी खोज कर रहा हूँ।' इसपर लेटे हुए उन व्यक्तियोंने कहा—'हम ही हुण्डी लेकर आये थे, पर आपका पता नहीं लगा।' इसपर भगवान्‌ने कहा—'आप रुपया ले लें और हुण्डी मुझे दे दें और उन्होंने ७५०) देकर हुण्डी ले ली तथा पुनः कहा—'एक मेरी प्रार्थना है—सेठके पास जाकर मेरी निन्दा मत करना। आपसे ही अपने अपराधकी माफी माँगता हूँ। मुझसे बड़ी गलती हुई। आप ढूँढ़ते रहे, रातका समय हो गया, मैं नहीं पहुँचा। मैंने सुना, तब तो दौड़कर आया, वहाँ मेरा अपराध वर्णन मत करना। आप ही मुझे माफ कर दें।' वे बोले—'देखो बिचारा भला आदमी है। हमलोग चले जाते, नरसीको गालियाँ देते, बेइज्जती करते। यह तो घरपर आकर ही हुण्डीका भुगतान दे गया।' वे सभी दूसरी बार फिर नरसीके पास पहुँचे और बोले, 'फिर हुण्डी दो।' नरसी बोले—'किसपर।' बोले—'साँवल शाहपर।' आपका गुमाश्ता तो बहुत ही भला आदमी है। हमको हुण्डीका भुगतान हमारे घरपर, हम लौटकर जा रहे थे, तब दे गया और कहने लगा—'मेरा अपराध क्षमा कर देना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जबकि उसका कोई अपराध भी नहीं था। वह हमको अपने स्थानपर नहीं मिला था, किंतु खोजते हुए हमारे पास पहुँच गया। गुमाश्ता तो आपका एक ही नम्बर है।' नरसी बोले—'धन्यभाग्य है तुम्हारा। वे तो साक्षात् भगवान् थे। मैं तो तुम्हें नमस्कार करता हूँ, तुमको उनके दर्शन हो गये। हमारी वहाँ कोई दूकान नहीं, कोई गुमाश्ता नहीं, तुम हमारे गले पड़ गये तो भगवान्के भरोसेपर हुण्डी कर दी। हुण्डी भुन गयी तुम्हारा अहोभाग्य है।' वे पश्चात्ताप करने लगे। उन्होंने द्वारकामें जाकर देखा तो अब वह दूकानदार वहाँ कहाँ मिले। तो यह एक प्रकारसे भगवान्को बेचना ही तो है। हुण्डी काट देना एक प्रकारसे बेचना है। तो भगवान्का भक्त दूसरेको भी भगवान्का दर्शन करा सकता है, स्वयं उसे भगवान्का दर्शन हो जाय तो इसमें शङ्काकी बात ही क्या है।

भगवान्के प्रेमका विषय इतना गहन है कि वाणीकी गति नही कि, उसको बतला सके। मनकी शक्ति नहीं कि कल्पना करके दृष्टान्त देकर वाणीको आज्ञा दे, बुद्धिकी भी क्षमता नहीं। समझना चाहिये कि असंख्य ब्रह्माण्डोंके मालिककी हम जैसे तुच्छ प्राणियोंके साथ मित्रता? हमारी उनकी क्या बराबरी! यह भी ऐश्वर्यको लेकर उनके प्रभावको समझे। मैंने असंख्य ब्रह्माण्डका मालिक बतलाया, यह भगवान्की उपमा, उनका प्रभाव नीचे-से-नीचे दरजेका है। ओहो! असंख्य ब्रह्माण्डका मालिक नीचे-से-नीचे दरजेका है? यह ऐश्वर्यको चाहनेवाले पुरुषोंके लिये है। ऐश्वर्यमय रूप ही तो बतलाया। एकका नहीं, बीसका नहीं, लाख ब्रह्माण्डका मालिक। भगवान्को ऐसा समझे तो एक-दो ब्रह्माण्ड ही तो देगा, तो ब्रह्माण्डके ऐश्वर्यसे उनको तौलते हैं न? भगवान् ऐश्वर्यशाली ही तो हुए। जैसे कोई हजारों गाँवोंका राजा हो, ऐसे वह हजारों ब्रह्माण्डोंका मालिक है। राजा खुश हो तो एक-दो गाँव दे दे। भगवान् खुश हों तो उसको एक-दो ब्रह्माण्डका ऐश्वर्यशाली या ब्रह्मा बना दें, तो तुम्हारी भगवान्के विषयमें यही तो बुद्धि हुई!

भगवान् प्रेममय, आनन्दमय, चिन्मय, ज्ञानमय हैं, इसकी तो थोड़ी भी आपने कल्पना ही नहीं की। आप यदि यह समझें कि मेरा आत्मा अल्पज्ञ है, परमात्मा सर्वज्ञ है, मैं घटाकाशकी तरह हूँ और परमात्मा महाकाशकी तरह है। परमात्माकी उदारता देखो कि घटाकाशकी तरह एक जीव यदि परमात्माकी शरण जाये तो महाकाशस्थानीय परमात्मा अपने-आपको उसके हाथोंमें अर्पण कर दें।

जो अपने-आपको भगवान्के समर्पण कर देता है, भगवान् भी अपने-आपको उसके समर्पण कर देते हैं, यह उनकी उदारता देखो। अपनी औकात कितनी! एक तुच्छ! हम तो अल्पज्ञ हैं, तुच्छ हैं, परमात्मा महान् हैं। उनकी महत्ताकी तरफ ख्याल करो। वे महान् ज्ञानस्वरूप, चेतनस्वरूप हैं। वह सर्वज्ञ परमात्मा अपनी सर्वज्ञता उनके अर्पण कर देता है, हम अपनी अल्पज्ञता उनके अर्पण करते हैं। उनकी सर्वज्ञताकी तरफ ख्याल करो, अपनी अल्पज्ञताकी तरफ ख्याल करो। तब तो तुमने उनको ज्ञानसे तौला, सर्वज्ञतासे तौला। तुमने ऐश्वर्यसे तौला तो क्या तौला? यह तो सब नाशवान् और मिथ्या पदार्थ हैं। तुम भगवान्को कुछ नहीं समझे। उसको आत्मासे तौलना चाहिये था। तो मनुष्य जब इस प्रकार समझ जाता है, तब वह परमात्माको छोड़कर और किसीसे प्रेम नहीं करता। वह ऐश्वर्यको देखकर मोहित नहीं होता। वह समझता है—यह स्वप्नवत् मायामात्र है, कुछ भी नहीं है। परमात्मा ऐसे प्रेमी कि जो उनसे प्रेम करता है, उसके लिये वे बिक जाते हैं। वे सब कुछ दे देते हैं। प्रेमके बदलेमें अपने-आपको अर्पण कर देते हैं। व्यक्तिका प्रेम पाकर उसके बदलेमें भगवान् अपने-आपको समर्पण कर दें, कितनी बड़ी प्रीति! कितनी बड़ी उदारता है!

दयाकी बात

यदि हम यह उदाहरण दें कि भगवान् दयाके सागर हैं तो यह उदाहरण भी नीचे दरजेका है, क्योंकि सागर भी सीमावाला है। भगवान्की दयाकी कोई सीमा नहीं। सारी दुनियामें जो दया है, वह उस दयासागरकी एक बूँद है, यह उदाहरण भी ठीक नहीं है। उदाहरण उसके लिये है ही नहीं। भगवान् कहते हैं मुझको दयालु मान ले तो परम शान्ति मिल जाय। तो दयाके तत्त्वको हमलोग समझे ही नहीं।

जब हम यह मानते हैं कि हम उसके लायक नहीं, इतना तो ठीक है। पर जब हम उसके साथ यह मान लेते हैं कि भगवान्के दर्शन हमारे लिये असम्भव हैं तो निराश हो बैठते हैं। निराश हो जाना उनकी असीम कृपाके विषयमें ठीक-ठीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न समझना ही है। यदि हम यह समझते हैं कि भगवान् बड़े भारी दयालु हैं, हमारे अवगुणोंकी तरफ देखते ही नहीं, तो फिर हमारे हृदयमें निराशा कभी आ ही नहीं सकती। भगवान् अपने विरदकी तरफ देख करके दर्शन देते हैं। इस तत्त्वरहस्यको यदि समझते तो कभी हम निराश नहीं होते। भगवान् तो इतने दयालु हैं कि हम इतना अपराध करते हैं, तो भी वे उसका दण्ड नहीं देते। यही दण्ड देते हैं कि उनके दर्शन नहीं होते, इसे ही भले दण्ड मान लो। जब भगवान् हमारे अवगुणोंकी तरफ ख्याल ही नहीं करते हैं, तो हम यह क्यों कहें कि हमारे अवगुणोंकी तरफ देखकर भगवान् दर्शन नहीं देंगे। भगवान् तो हमारे अवगुणोंकी तरफ ख्याल ही नहीं करते और हम उसको कायम करते हैं कि भगवान् हमारे अवगुणोंकी तरफ ख्याल करते हैं। तो फिर भगवान् दयालु कहाँ रहे ? हम भगवान्‌को जब परम दयालु समझ जायँगे, तब हम उनके विरदपर हिम्मत रखेंगे और विश्वास रखेंगे कि हमको भगवान्‌का अवश्य दर्शन होगा। ऐसा हमारे दिलमें जब विश्वास होगा तब हम दर्शनोंसे कभी वञ्चित नहीं रहेंगे। भगवान् कितने दयालु हैं हम समझे ही कहाँ ! भगवान्‌को दयालु मानकर भी हम दर्शनोंसे वञ्चित रहते हैं तो दयाके प्रभावको कुछ भी नहीं समझे। हमने वास्तवमें भगवान्‌को दयालु समझा ही नहीं। भगवान् पात्रको तो दर्शन देते ही हैं यह तो नीति ही है, इसमें कौन-सी आश्चर्यकी बात है। जो जिज्ञासु होता है, श्रद्धालु होता है, उसको भगवान् दर्शन देते हैं। जो प्रेमी होता है उसको दर्शन देते हैं यह न्याय ही है। भगवान् तो एक प्रकारसे कोई कैसा ही नीच अथवा पापी क्यों नहीं हो उसकी तरफ नहीं देख करके अपात्रको भी दर्शन देते हैं। कुपात्रको भी दर्शन देते हैं। कैसा भी कुपात्र और नीच क्यों न हो। केवल यह मानना है कि भगवान् सबके सुहृद् हैं। बिना कारण ही दया करनेवाले, प्रेम करनेवाले हैं।

हम यदि यह मानें कि हम पात्र नहीं हैं, इसलिये भगवान् हमको दर्शन नहीं देते, तो 'भगवान् बिना ही कारण दया करनेवाले, प्रेम करनेवाले हैं' उनके इस सुहृद्‌भावको हम कहाँ समझे ? हम तो यही समझे कि हेतुको लेकर भगवान् दया करते हैं। वास्तवमें वे तो हेतुरहित दया करनेवाले हैं। हमें यह मनुष्यका शरीर मिला यह तो मात्र उनकी अहैतुकी कृपाका परिणाम है। क्या इसे हमारे आचरणोंको देखकर भगवान्‌ने दिया ? भगवान् प्रजाजनोंको उपदेश देते हुए स्वयं कहते हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही ॥

कभी दया करके भगवान् बिना ही कारण, भगवान् प्रेमी हैं, दयालु हैं इसलिये दर्शन देते हैं, अपने विरदकी ओर देखकर। यदि जीवोंकी तरफ देखकर विचार किया जाय तो मनुष्योंकी सृष्टि ही नहीं होनी चाहिये। मनुष्योंकी सृष्टि होती है, वह भगवान् दया करके मनुष्य बनाते हैं। आचरणोंकी तरफ देख करके तो मनुष्यका शरीर मिलना सम्भव ही नहीं है। पर भगवान् देखते हैं कि क्या करें सबको मौका तो देना चाहिये। सबको ही मौका देते हैं। कुपात्र हो चाहे अपात्र हो।

हमको तो यह बात प्रतीत होती है जो भगवान्‌को एक प्रकारसे नहीं चाहता है, उसको भी भगवान् चाहते हैं। भगवान् तो दर्शन देनेके लिये लालालित रहते हैं। केवल निमित्तमात्र बनाते हैं। कोई बहाना मिल जाये, कोई निमित्त बन जाये। इतना ही हम हृदयसे मान लें कि 'भगवान् पात्र-कुपात्र नहीं देखते बड़े दयालु हैं।' उनके हृदयमें दया आ जाती है। एक माता सबको मेवा-मिष्टान्न देती है, एक लड़का कुपात्र और बदमाश है, उसको भी दिये बिना उसका हृदय नहीं मानता, किंतु उस लड़केके सामने रख दे और लड़का क्रोधमें आकर फेंक दे तो माँ क्या करे। इसी प्रकार भगवान् दया करके अपना दर्शन देनेके लिये तैयार हैं, किंतु हम दर्शन जो नहीं पा रहे हैं यह उसका दण्ड है कि हम उसकी दयाके रहस्यको नहीं जानते। दयाके रहस्यको जानते तो हम अपने आचरणकी तरफ क्यों देखते, भगवान्‌के विरदकी तरफ ही देखते और विरदकी तरफ देखते तो भगवान् मिले बिना कैसे रह सकते ? हमारेमें ही कमी है कि हम भगवान्‌के प्रभावको तो जानते ही नहीं अपितु उन्हें निर्दयी मानते हैं। निर्दयी माननेका यह अभिप्राय है कि यदि दयालु मानते तो उनकी दयापर मुग्ध हो जाते कि कैसी उनकी अपार दया है ?

यह देखा जाता है कि एक आदमी भगवान्‌का दर्शन नहीं चाहता, उसको भी भगवान् दर्शन देते हैं। फिर भी वह स्वीकार नहीं करे तो भगवान् क्या करें। दुर्योधन क्या भगवान्‌के दर्शनोंका पात्र था ? भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी अपने अवतारके रूपमें दुर्योधनको तथा औरोंको दर्शन दे रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब तो आप यह भी कह सकते हैं कि यह मनुष्य है या परमात्मा, कैसे समझें ? किंतु दुर्योधनकी सभामें दुर्योधनको जब विश्वरूप प्रकट करके दिखलाया तब तो उसको समझना चाहिये था ऐसा रूप क्या कोई मनुष्य धारण कर सकता है ? भगवान्‌ने अपात्रोंको भी बिना आकाङ्क्षाके बिना माँगके प्रकट होकर दर्शन दिया। किंतु वह दर्शन पा करके भी यह नहीं समझा कि ये साक्षात् भगवान् हैं, दर्शन पाकर भी परमात्माकी प्राप्तिसे वञ्चित रहा। तो भगवान्‌की दयामें तो कोई कमी नहीं।

विष देनेवाली पूतनाको भी भगवान्‌ने मुक्ति दी थी कि मेरे साथमें इसका किसी प्रकार भी सम्बन्ध हो गया तो इसकी तरफ क्या देखूँ, मैं अपनी तरफ देखूँ। अपने कर्तव्यकी तरफ देखूँ, तो भगवान् भक्तके कर्तव्यकी तरफ नहीं देखते। दूसरे दुष्टोंके कर्तव्यकी तरफ भी नहीं देखते फिर भक्तके कर्तव्यकी तरफ तो देखेंगे ही क्या, अपने विरदकी तरफ ही देखते हैं और अपने विरदकी तरफ जब देखते हैं तो हम सभी पात्र हो जाते हैं। किंतु भगवान्‌की दया हम स्वीकार नहीं करें, तब भगवान्‌का क्या उपाय ? भगवान् परम दयालु हैं इतनी बात तो हमको स्वीकार करनी चाहिये। जब हम भगवान्‌की दयाकी तरफ देखेंगे तो विह्वल हो जायँगे। फिर भगवान्‌के बिना हम रह नहीं सकेंगे।

बच्चा माँकी दयाके प्रभावको थोड़ा जानता है। छोटा बच्चा एक-दो सालका, माँके बिना रहना नहीं चाहता। माँ उसको छोड़कर चली जाय तो वह रोता ही रहता है। उसका उपाय तो नहीं, सिवा रोनेके। किंतु हमलोग तो रोते भी नहीं। माँका प्रभाव जितना लड़का जानता है कि माँ मेरी है, वह बड़ी दयालु है, मुझसे बड़ा प्रेम करती है, इस प्रकारसे जाननेवाला छोटा बच्चा माँके वियोगको बर्दाश्त नहीं कर सकता। किंतु हमलोग भगवान्‌के वियोगको बर्दाश्त कर रहे हैं, इसीलिये यह वियोग है।

हम लोगोंको भगवान्‌के दर्शन होनेमें जो विलम्ब हो रहा है, भगवान्‌की सुहृदताके तत्त्वको न जाननेका ही यह परिणाम है। भगवान् सबके सुहृद् हैं यदि इस प्रकार हम जाननेवाले होते तो विलम्ब नहीं होता। जब कि भगवान्‌में श्रद्धा, प्रेम न रखनेवाले पुरुष हैं, भगवान्‌को नहीं माननेवाले पुरुष हैं, भगवान्‌की दयाके तत्त्व-रहस्यको नहीं जाननेवाले पुरुष हैं, भगवान्‌के प्रेमके तत्त्वको नहीं जाननेवाले पुरुष हैं, भगवान्‌को जो नहीं चाहते हैं, उनको भी भगवान् दर्शन देनेके लिये प्रयत्न करते हैं। जो चाहते हैं, उनके लिये क्यों नहीं प्रयत्न करेंगे ? उत्तंक नहीं जानता था कि ये भगवान् हैं, ऐसा नहीं समझा था, तब भी भगवान्‌ने समझाया कि 'मैं साक्षात् भगवान् हूँ ? मुझको शाप मत देना। शाप देनेसे आपकी गुरु-भक्ति नष्ट हो जायगी। गुरुकी सेवाका मिलनेवाला फल नष्ट हो जायगा। मैं साक्षात् परमेश्वर हूँ, मुझको शाप लगता नहीं। मैंने इस समय मनुष्यके रूपमें अवतार लिया है, यह उसको भगवान् कहते हैं। मैं साक्षात् पूर्ण ब्रह्म परमात्मा जब-जब संसारमें विप्लव होता है, तब-तब अवतार लेता हूँ। मैं कच्छप, मत्स्य, वराहके रूपमें प्रकट होता हूँ। देवयोनि, मनुष्ययोनि, पशुयोनिमें आवश्यकतानुसार प्रकट होता हूँ। वर्तमानमें मनुष्य-योनिमें प्रकट हुआ हूँ।' तब उसने कहा—'यदि आप साक्षात् परमात्मा हैं तो मुझे अपना विश्वरूप दिखलाइये।' भगवान्‌ने अपना विश्वरूप उसको दिखलाया। किंतु भगवान्‌ने ही तो उसको परिचय दिया। भगवान्‌ने सोचा कि इसने आत्माके कल्याणके लिये बड़ी भारी गुरुभक्ति की है, सो आत्माका कल्याण होना ही चाहिये। भगवान्‌ने दर्शन देकर आत्माका उद्धार किया। वहाँ उसकी तरफसे भगवान्‌की माँग नहीं थी। भगवान्‌को जानता ही नहीं। माँग कैसे करे ? इस प्रकार भगवान् जब खोज-खोज करके उद्धार करते हैं, तब जो भगवान्‌को प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, उसको भगवान् दर्शन नहीं देंगे तो किसको दर्शन देंगे ? कोई कैसा ही पापी क्यों नहीं हो उसके सारे पाप 'भगवान् सुहृद् हैं' यह जाननेसे ही नष्ट हो जाते हैं। जैसे कोई गुफामें कितने ही वर्षोंका अँधेरा क्यों नहीं हो, वहाँ बिजलीकी रोशनी होनेके साथ ही अन्धकार भाग जाता है। इसी प्रकार कितना ही अज्ञान हो, ज्ञान होनेके साथ ही अन्धकार मिट जाता है। पापोंका कितना ही ढेर हो, ज्ञानाग्निसे सब दग्ध हो जाता है—

'ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥'

(गीता ४। १९)

'ऐसे उस ज्ञानरूप अग्निद्वारा भस्म हुए कर्मोंवाले पुरुषको ज्ञानीजन भी पण्डित कहते हैं।' साथ ही—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥

(गीता ४। ३६)

—भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—'यदि तू सब पापियोंसे भी अधिक पाप करनेवाला है तो भी ज्ञानरूप नौकाद्वारा निःसंदेह सम्पूर्ण पापोंको अच्छी प्रकार तर जायगा।'

किंतु जानबूझकर पाप नहीं करना चाहिये। पिछले जितने पाप हैं उनके लिये हमको यह समझना चाहिये कि भगवान् अकारण ही दया, प्रेम करनेवाले हैं। उनकी कृपासे सब पापोंका नाश हो जायगा। भगवान्‌में अपार दया है। इस बातको माननेके बाद कोई भी पापी उनकी दयासे वञ्चित नहीं रह सकता। हम तो पापी हैं, किंतु भगवान् तो निर्दयी नहीं। हम अपनेको पापी मानकर भगवान्‌को निर्दयी मानते हैं यह अपराध करते हैं। अपने पापोंको लेकर यह मानते हैं कि हमारा उद्धार होना कठिन है, असम्भव है, नहीं हो सकता। ऐसा समझना तो भगवान्‌की दयाका तिरस्कार करना है। अपने घरमें मामूली अन्धकार है, वह सूर्यसे भी दूर नहीं हो सकता यह मानना मूर्खता है। यह अन्धकार तबतक ही है जबतक सूर्य भगवान् उदय नहीं होते। सूर्य भगवान् सबपर दया करके रोज उदय होते हैं। रात्रिमें हमको यह विचार करना चाहिये कि आज सूर्य भगवान् उदय होंगे और यह अन्धकार सूर्यके उदय होनेके साथ ही एकदम दूर हो जायगा। हम प्रकाशमें जो काम करना चाहते हैं, वह सूर्यकी रोशनीमें करें। प्रातःकाल रोशनी अवश्य होगी। सूर्य भगवान् यह नहीं देखते कि मैं किसके लिये उदय होऊँ, किसके लिये नहीं। वे तो उदय हो ही जाते हैं। उदय होनेपर भी उल्लूको नहीं दीखता। उसके नेत्र बंद हो जाते हैं। तो इसमें सूर्यका कोई दोष नहीं है। भगवान्‌की दया सूर्यके प्रकाशके समान उदय हुई है, उससे यदि हम आँख मींच लेते हैं तो हमको अन्धकार-ही-अन्धकार दीखता है। हम दयासे लाभ नहीं उठावें, तो यह हमारी मूर्खता है। दयाके सामने तो दूसरेका छोटा-बड़ा अपराध कोई चीज नहीं है। हमारे कर्तव्यसे ही हमारा उद्धार होता है तो फिर दया क्या चीज है! होता है भगवान्‌की दयासे। हम समझते हैं, हमारा उद्धार हमारे कर्तव्यसे होगा, हम अभी उस दरजेपर नहीं पहुँचे हैं। उस दरजेपर पहुँचेंगे तब हमारा कल्याण होगा। तो जैसी हमारी मान्यता है, वैसा ही हमको फल मिलता है। जब पात्र होंगे तभी कल्याण होगा। जब हम यह समझते कि भगवान्‌की दया पात्र-कुपात्रको नहीं देखती तो हम उसकी दयासे वञ्चित क्यों रहते? भगवान्‌की दयाके प्रभावको हम नहीं मानते हैं, बल्कि इतने दयालु भगवान्‌को निर्दयी समझते हैं। यह एक प्रकारका अपराध है।

परम दयालु परमात्माको निर्दयी समझना क्या? कि हम दयाके पात्र नहीं हैं, इसलिये वञ्चित हैं। भगवान्‌के आगे तो सभी दयाके पात्र हैं। हम मानते हैं कि हम दयाके पात्र नहीं इसीलिये अपात्र हैं। भगवान्‌ने तो निर्णय किया नहीं कि तुम दयाके पात्र नहीं हो। भगवान्‌की सबपर अपार दया है, उसने तो दयाका भण्डार खोले रखा है। कोई भाई सदाव्रत बाँटता है, खुले दरबारमें। एक आदमी कहता है मैं वहाँ जाकर क्या करूँ। इसपर दूसरेने कहा क्यूँ नहीं गये? वह बोला—वे तो भूखोंको देते हैं, मुझको नहीं मिलेगा। तुमने जाकर देखा? मुझको विश्वास है वहाँ मिलेगा नहीं। तो तुमने उस दाताको निर्दयी समझा। वहाँ तो खुला दरबार है कोई ले आवे। तुमने ऐसा क्यों मान लिया कि वहाँ मिलेगा नहीं? इसपर उसने कहा—मैंने लोगोंसे पूछा था और पता चला कि वहाँ तो भिखारियोंको मिलता है। तो मैं उसका पात्र नहीं। भगवान्‌के आगे तो सभी भिखारी हैं, सभी पात्र हैं। भगवान् अपनी दृष्टिसे सभीको पात्र समझते हैं।

जो कोई निराकारका उपासक होता है, उसको भगवान् दर्शन देनेके लिये बाध्य नहीं हैं, यह बात ठीक है, किंतु भक्ति करनेवालेके लिये तो वे बाध्य हैं—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(गीता ११। ५४)

(भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—) 'हे श्रेष्ठ तपवाले अर्जुन! अनन्य भक्ति करके तो इस प्रकार चतुर्भुजरूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये और तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।'

भक्तके लिये तो बाध्य हैं, निर्गुण-निराकारवालोंको दर्शन देनेके लिये बाध्य नहीं हैं, किंतु यह तो नहीं कि उनको दर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं देते। यह भी नहीं जो नहीं चाहता है, उसे नहीं देते हैं। जो कुपात्र है, अपात्र है उसका उद्धार नहीं करते, ऐसी बात तो नहीं है।

भगवान् तो बिना ही कारण सबपर दया और प्रेम करनेवाले हैं—ऐसा हमलोग कहते ही हैं किंतु मानते नहीं, जानते नहीं। माननेसे ही वह आगे आकर जानता है। पहले मान लें, किंतु हम तो ऐंठ रखते हैं कि ऐसा क्यों मानें। भगवान्‌को भगवान् माननेमें भी हमको संकोच होता है, शर्म होती है। माननेसे आगे जाकर जानेंगे।तुमको स्वीकार कर लेना चाहिये। स्वीकार करनेके योग्य तो भगवान् हैं ही। किंतु हम तो स्वीकार ही नहीं करते।

जैसे कन्याके लिये वर है, वह उसके लिये वरण करने योग्य है, पति बनाने योग्य है, पति मानने योग्य है, किंतु कन्या पति बनाना नहीं चाहती उसे, स्वामीके योग्य नहीं मानती तो वर क्या उपाय करे ? तो संसारमें स्वामी बनाने योग्य एकमात्र परमात्मा ही है। उसको भी हम स्वामी मानना नहीं चाहते, तब हमारी दुर्गति हो तो इसमें स्वामीका क्या दोष है ? योग्य वरको भी जब कन्या स्वीकार नहीं करे और वह अविवाहिता रहे तो उस कन्याकी बेसमझी है। तो भगवान्‌को स्वामी मानना चाहिये। भले ही स्वामी न मानो किंतु उनका अस्तित्वमात्र माननेसे ही मनुष्यको बहुत लाभ हो जाता है। भगवान् है, निश्चय है, यह माननेसे भी बहुत लाभ हो जाता है और वह स्वामी बनानेके योग्य है तो फिर जो उन्हें याद करता है, उनका ध्यान करता है, उसके कल्याणमें शङ्का ही क्या है। गायत्री-मन्त्रका भी यह सिद्धान्त है उसमें 'वरेण्यम्' उसका यह अर्थ है जो मैंने बतलाया है। भगवान्‌को इस शब्दका अर्थ मान लिया वह पात्र हो गया।

भगवान्‌को अपना स्वामी स्वीकार कर ले। जो भगवान्‌को स्वामी स्वीकार नहीं करता है, उसके कल्याणके लिये भी भगवान् चेष्टा करते हैं, जैसे महात्मा लोग। उन महात्माओंको जो उन्हें महात्मा नहीं मानते हैं, तो भी वे इतने दयालु होते हैं कि मुझको महात्मा न माने अन्य किसीको भी मानकर अपनी आत्माका उद्धार तो कर ले। दूसरेको महात्मा मानकर अपनी आत्माका कल्याण कर लेता है तो महात्मा खुश होता है। जैसे कोई कहता है कि तुम राम-नामको भजो, उससे तुम्हारा कल्याण हो जायगा, किंतु उसकी बातपर विश्वास नहीं है। उसका विश्वास महात्मा गाँधीजीपर है तो वह कहता है—गाँधीजी राम-नामकी उपासना करते थे, भक्त थे। देखो, उन्होंने खुद कहा है—'राम-नामके समान कुछ नहीं है।' गाँधीजीको महात्मा मानकर उनका अनुकरण करो, राम-नामका भजन करो। गाँधीजीके सिद्धान्तको मानकर, उनको महात्मा मानकर, गुरु मानकर राम-नामकी उपासना करने लग जाता है तो महात्मा बड़े खुश होते हैं कि इसने रास्ता अच्छा पकड़ लिया, इसका कल्याण होनेकी सम्भावना है। किसी प्रकारसे जीवोंका कल्याण हो। महात्मा बड़े दयालु होते हैं। जैसे भगवान् दयालु हैं। वैसे ही उनके अनुयायी भी भक्त, साधु-महात्मा दयालु होते हैं। इसीलिये भगवान् कहते हैं—ऐसे दयालु मुझे प्रिय हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

× × ×

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

(गीता १२।१३-१४)

'जो सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित एवं स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है, वह मेरेमें मन-बुद्धि अर्पण करनेवाला मेरा भक्त मुझे प्रिय है।'

'वह मुझे प्रिय है'—यह भाव भगवान्‌का है एवं भक्तोंका भी यही भाव है। इसलिये उच्चकोटिके भक्त भी बड़े खुश होते हैं। यदि कोई आदमी भगवान्‌की भक्ति करता है तो उसको देखकर वे बड़े प्रसन्न होते हैं। वे कहते हैं—किसीको गुरु माने, महात्मा माने, किंतु भक्ति तो भगवान्‌की ही करता है ना। हमारे स्वामीकी करता है। इसी प्रकार किसीकी भी बात मानकर भगवान्‌की भक्ति करे, भगवान्‌का गुमाश्ता तो यही समझता है कि हमारे मालिकका भक्त बन गया। वह तो दलाल बनकर कोशिश करता है कि भगवान्‌की भक्ति करो। दूसरा दलाल पहुँच गया और उसको भगवान्‌की भक्तिमें लगा दिया तो वह प्रसन्न होता है। यह नहीं कि मेरे द्वारा ही होना चाहिये। दलाल कोई भी हो, वह भक्ति तो भगवान्‌की करता है। इस प्रकार किसीकी भी बात मानकर भगवान्‌की भक्ति अवश्य करना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन-सौन्दर्यके उत्पादक तत्त्व

(श्रीईश्वरलालजी शर्मा 'रत्नाकर' साहित्यरत्न)

प्रायः प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें अपने जीवनको आकर्षक, प्रभावशाली और सौन्दर्ययुक्त बनानेकी सदाकाङ्क्षा रहती है। मनुष्यके हृदयकी रसवृत्तियाँ सौन्दर्यतत्त्वके चरणोंमें सदैव पत्र-पुष्प चढ़ाती रहती हैं। सौन्दर्योपासना मनुष्यका स्वाभाविक गुण है। मानवीय रसैषणाकी तृप्ति सौन्दर्यरसके आस्वादनके बिना असम्भव है। इसी मनोवृत्तिसे प्रेरित होकर मनुष्य अपने जीवनमें सौन्दर्यकी क्रियात्मक प्रतिष्ठा करनेका प्रयत्न करता है। वह अपने जीवनमें ही सौन्दर्यको उत्पन्न करता है, किंतु मनुष्योंकी वर्तमान जीवन-स्थितिको देखनेसे पता चलता है कि अधिकांश मनुष्य सौन्दर्यके वास्तविक मर्मको नहीं समझते और वे सौन्दर्यके स्थानपर असुन्दर और घृणास्पद बाह्य तत्त्वोंकी उपासना करते रहते हैं। यह प्रत्यक्ष आत्मवञ्चना है।

सौन्दर्य-तत्त्वका विशेषज्ञ विद्वान् R. Toffer कहता है—"God is beauty and ideas of beauty in us are divine attributes there." इसका ध्वनितार्थ यही है कि सौन्दर्य प्रभुका प्रकाश है और मानव-जीवनमें इसकी प्रतिष्ठा करना एक दिव्यतम स्वर्गीय आशीर्वादका सत्कार करना है। हम इस लेखमें इसी जीवन-सौन्दर्यके उत्पादक तत्त्वोंपर विचार करेंगे।

दिव्य व्यक्तित्व

दिव्य व्यक्तित्व[1] (Divine Personality) जीवन-सौन्दर्यका प्रधान उत्पादक तत्त्व है। जिसका व्यक्तित्व महान् प्रभावशाली और आकर्षक होगा, वही सौन्दर्यपूर्ण जीवनस्थितिका रसानुभव कर सकेगा। किसी भी संत पुरुषके जीवनवृत्तका मनोयोगपूर्वक अध्ययन करनेसे यह सत्य स्पष्ट हो जायगा। व्यक्तित्वके सौन्दर्यकी मीमांसा करते हुए प्रो० एम्०बी० ने लिखा है—'दिव्य व्यक्तित्वकी उज्ज्वल रेखाएँ मानव-जीवनमें अनुपम सौन्दर्यकी सृष्टि कर देती हैं। इसके प्रभावसे जीवन अत्यधिक मनोज्ञ और प्रभावशाली बन जाता है। व्यक्तित्व विश्वकी शक्तियोंको अपने सौन्दर्यके प्रभावसे वशवर्ती बना लेता है और उनपर इच्छानुकूल शासन करता है। मानव-जीवनका जो कुछ सुन्दर और महनीय अंश है, वह उसका व्यक्तित्व ही है। जिस जीवनमें व्यक्तित्वकी आभा न झलकती हो उसका सारहीन अस्तित्व तो विश्वके लिये एक अभिशापमात्र है।'

इसी विषयमें Thomas A' Kempis की सम्मति इस प्रकार है—'दीर्घजीवनकी कामना करना, किंतु साथ ही जीवनमें माधुर्य, प्रकाश और व्यक्तित्व उत्पन्न करनेकी ओर ध्यान न देना एक मिथ्याभिमानमात्र है।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि दिव्य व्यक्तित्व जीवन-सौन्दर्यका मूलाधार है। व्यक्तित्व मानवीय आत्माका विकास है और जीवन-सौन्दर्य भी आत्मस्थ शीलरसका मूर्तरूप। इस तरह ये दोनों एक-दूसरेके सापेक्षिक (Relative) पदार्थ हैं और इनका अविच्छिन्न सम्बन्ध है।

निर्मल विचारधारा

निर्मल विचारधारा भी जीवनमें अद्भुत सौन्दर्यको विकसित कर देती है। इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध हमारे मनोगत सौन्दर्यतत्त्वसे है। विशुद्ध मानसिक वातावरणमें जो सूक्ष्म सौन्दर्य रहता है, वह अत्यन्त विलक्षण होता है। उसकी महिमा अपार है। सौन्दर्यात्मक विचार-अणुओंका आन्तरिक प्रवाह मानवीय अन्तःकरणकी प्रसुप्त शक्तियोंको जाग्रत् कर देता है। मनोविज्ञानके आचार्य हमें बतलाते हैं कि मानसिक सौन्दर्य स्वतः आविर्भूत होनेवाला तत्त्व है, फिर भी सुदृढ़ मनोबल और इच्छा-शक्ति इसकी अभिव्यक्तिमें समधिक सहायता प्रदान करते हैं। निर्मल विचारधाराका सौन्दर्य विज्ञान-सम्मत दृष्टिकोणसे विश्लेषण करते हुए निम्नाङ्कित बातें हमारे ध्यानको विशेषरूपसे आकर्षित करती हैं—

(क) विचार ही वास्तविक मनुष्य है। मनुष्य[2] जैसा विचार करता है, वह स्वयं वैसा ही बन जाता है। अतः विचारात्मक सौन्दर्य ही जीवन-सौन्दर्यका स्थायित्वपूर्ण अंश है।

१-सनातन भारतीय विचारधाराके अनुसार जीवनका अमृत मार्ग यह है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥(यजुर्वेद-संहिता ३१।१८)

२-यत्र यत्र मनो देही धारयेत्सकलं धिया। स्नेहाद् द्वेषाद् भयाद्वापि यातिं तत्तत्सरूपताम्॥ (श्रीमद्भा० ११।९।२२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) जबतक प्रजाशक्ति नितान्त विशुद्ध और ग्राहक नहीं हो जाती, तबतक विश्वका कोई भी तत्त्व अपना वास्तविक रूप उसके सामने प्रकट नहीं कर पाता।

(ग) जीवन-सौन्दर्यकी कल्पना मिथ्या-भ्रम प्रमाणित होगी, यदि हमारा मनस्तत्त्व विकारयुक्त और सदोष हो।

(घ) सौन्दर्य-तत्त्वकी अनुभूति और सृष्टिका कारण हमारी विचारधारा ही है। एक विशेष प्रकारकी विचार-दीप्तिका नाम ही जीवन-सौन्दर्य है।

(ङ) रचनात्मक (Constructive) विचार-सृष्टि जीवन-सौन्दर्य और जीवन-कलाकी जननी है। यह आत्मस्थ सौन्दर्य-तत्त्वको विकसित होनेमें सहायता देती है।

(च) शिवसङ्कल्प[1] और जीवन-सौन्दर्य कभी विभिन्न नहीं किये जा सकते। ए० विनेट कहता है—'At a certain depth the Good and the Beautiful are one'-शिव और सुन्दरका पृथक्करण किसी भी अवस्थामें सम्भव नहीं।

सद्व्यवहार

सद्व्यवहार भी जीवनमें सौन्दर्य-शक्तिको उत्पन्न करनेवाला एक विशेष तत्त्व है। यह एक सामाजिक गुण है, इसका सामाजिक उपयोग अत्यन्त महत्त्वशाली और उत्तर-दायित्वपूर्ण कार्य है। मानव-जीवनका अस्तित्व पारस्परिक सहयोग और स्नेहपर अवलम्बित है। हमारी जीवन-योजना[2] और व्यवहार सद्भावनायुक्त होना चाहिये। जब हम सद्व्यवहारके क्रियात्मक रूपपर विचार करते हैं तो हमें तीन तत्त्व दिखायी देते हैं—

१-त्यागवृत्ति।

२-नैतिकता (Morality)।

३-उपकारक मनोवृत्ति।

१-त्यागवृत्ति—त्यागवृत्ति हमारे लोकव्यवहारको दिव्य और सुन्दर बना देती है। कई बार मनुष्य ऐसी स्थितिमें पड़ जाता है, जहाँ उसके स्वार्थ और अन्य मानवोंके स्वार्थमें पारस्परिक विरोध हो। उस समय जो व्यक्ति अपने स्वार्थका त्याग कर देता है, जनता उसे अत्यन्त आदरकी दृष्टिसे देखती है और उसका गौरवपूर्ण सेवापरायण जीवन आत्मसौन्दर्यसे ज्योतिर्मय बन जाता है। दूसरोंके लिये अपने सुखोंका बलिदान कर देना मानव-जीवनका अत्यधिक प्रकाशपूर्ण अंश है। इससे जीवनमें दिव्य सौन्दर्यकी अद्भुत ज्योति विकीर्ण हो उठती है।

२-नैतिकता (Morality)—यह हमारे व्यावहारिक जीवनमें सौन्दर्यको उत्पन्न करनेवाला एक क्रियात्मक तत्त्व है। नीतिशास्त्र इस बातका वर्णन नहीं करता कि हमारा जीवन कैसा है, अपितु इस बातकी ओर निर्देश करता है कि हमारे जीवनको कैसा होना चाहिये। इस शास्त्रका यथार्थवाद (Realism) की अपेक्षा आदर्शवाद (Idealism) से विशेष सम्बन्ध है। सुन्दर, भव्य और आदर्श जीवनकी कल्पनाको नीतिशास्त्र हमारे सम्मुख उपस्थित करता है। नीतितत्त्वोंकी ओर ठीक-ठीक ध्यान न देनेसे मनुष्यका वैयक्तिक जीवन तो घृणित और असुन्दर हो ही जाता है, उसका सामाजिक जीवन भी कलहपूर्ण और पाशविक बन जाता है। नैतिकता (Morality) की अवहेलना करना जीवन-शक्ति और जीवन-सौन्दर्यके विरुद्ध विद्रोह करना है। नैतिकताके व्यावहारिक सिद्धान्तोंका वर्णन एक विद्वान्के शब्दोंमें इस प्रकार है—

'सत्य और औचित्यका निरन्तर ध्यान रखना ही नैतिकताकी क्रियात्मक सार्थकता है। इसके साथ ही अपने प्रत्येक क्रियाकलापमें विवेक-दृष्टिका उपयोग करना भी मनुष्यको नैतिक वातावरणमें जा बिठाता है। वास्तवमें नैतिकता मानव-जीवनका नियामक सिद्धान्त है।'

३-उपकारक मनोवृत्ति—यह वृत्ति भी मानव-जीवनकी सद्व्यवहारात्मक भूमिकाका आवश्यक उपकरण है। उपकार-कलामें निपुण होनेके लिये व्यक्तिको अपने

१-यजुर्वेदीय शिवसङ्कल्पसूक्तके यौगिक अर्थपर विचार करनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उसमें जीवन-सौन्दर्यकी साधन-प्रक्रियापर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

२- भारतीय समाज-व्यवस्थाकी विधि-निषेधात्मक पद्धतिमें जिस जीवन-विधानका निर्देश है, उसमें त्यागवृत्ति, नैतिकता और उपकारक मनोवृत्तिके क्रमिक विकासके लिये पर्याप्त अवकाश है। हमारे सामाजिक जीवनका आदर्श ब्राह्मणत्व है, जिसका शास्त्रसम्मत विश्लेषण यह है—

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती। स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ (मनु०१।९८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त ज्ञान, विवेक प्रतिभा और मनोबलसे काम लेना पड़ता है। उपकारक मनोवृत्तिमें जो सौन्दर्य निहित है, वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म और कलापूर्ण है। यह सौन्दर्य पूर्ण सात्त्विक, निर्दोष और जीवनपोषक होता है। जब मनुष्य किसी प्राणीकी भलाईका कोई काम करता है तो उसे इतना अधिक आनन्द और संतोष होता है कि वह अपने जीवनको धन्य और कृतकृत्य मानने लगता है। उपकारके स्वारस्यका आस्वादन करनेवाला व्यक्ति आत्मिक विभूतियोंसे विभूषित रहता है। उपकारक मनोवृत्ति मानव-जीवनका अलङ्कार है, सुषमा है। कह सकते हैं कि उपकार-वृत्ति आत्माकी कला है, क्योंकि वह आत्माका एक गुण है।

आत्मानुशासन

आत्मानुशासन भी मानव-जीवनको सौन्दर्य-युक्त बनानेवाला एक मौलिक तत्त्व है। जीवनशक्तियोंके समुचित विकासके लिये आत्मानुशासनका अभ्यास एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। अनियन्त्रित आत्मशक्तियाँ जीवन-सौन्दर्यको नष्ट-भ्रष्ट कर डालती हैं। आत्मानुशासन उनका नियन्त्रण करता है और उन्हें ठीक मार्गपर नियोजित करता है। चिरकालीन दुरभ्यास या स्वार्थवृत्तिसे प्रेरित होकर मनुष्य जो भयङ्कर पाप-कर्मोंमें प्रवृत्त होता और अपनी जीवन-ज्योति तथा आत्मिक माधुर्यको खो बैठता है, आत्मानुशासन उससे मनुष्यकी रक्षा करता है। गीता और उपनिषदोंने आत्मानुशासनकी बड़ी महिमा गायी है। जो व्यक्ति आत्मानुशासनके रहस्यको समझ लेता है, कहना चाहिये कि उसने अपने जीवनमें बड़ी भारी सफलता प्राप्त कर ली,क्योंकि आत्मानुशासन ही मानव-उन्नतिका मूल तत्त्व है। यह हमें विश्वकी शक्तियोंके घात-प्रतिघात सहनेके योग्य बनाता है, हमारे मनोबलको विकसित करता है और हमारी जीवन-शक्तिका दुरुपयोग नहीं होने देता। यह हमारे जीवनमें एक नियन्त्रण, एक योजना और एक सौन्दर्यदीप्तिको जाग्रत् कर देता है। आत्मानुशासनका आत्मसंयमसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, या यों कहिये कि आत्मसंयम आत्मानुशासनका ही एक अङ्ग है। आत्मसंयमके सम्बन्धमें प्रो० एम्० बी० लिखते हैं— 'आत्मसंयम समस्त मानवी शक्तियोंके विकासका मुख्य साधन है। आत्मसंयमके अभावमें मनुष्य छोटी-से-छोटी बातमें भी सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। संसारकी प्रत्येक सफलता और प्रत्येक गौरवपूर्ण कार्य परोक्षरीतिसे आत्मसंयमके महत्त्वकी ओर ही निर्देश कर रहे हैं, क्योंकि साधककी संयमपूर्ण साधनाके योगसे ही वे प्रकाशमें आ सके हैं। विश्वप्रकृतिका प्रत्येक उत्क्रान्तिमूलक तत्त्व हमें आत्मसंयमका पाठ पढ़ा रहा है।' आत्म-संयमके मूल तत्त्व ये हैं—

१-इच्छाशक्तिका नियन्त्रण।

२-क्रियाशीलताका नियन्त्रण।

३-भावशीलताका नियन्त्रण।

इस नियन्त्रणका अनिवार्य परिणाम आत्मोत्कर्ष, हृदयतत्त्वका विकास और जीवन-सौन्दर्यकी उत्पत्ति है।

सत्यपूर्ण आन्तरिक वातावरण

यह जीवन-सौन्दर्यको उत्पन्न करनेवाला अन्तिम किंतु सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न तत्त्व है। जबतक मनुष्यका आन्तरिक वातावरण सत्यकी मधुर रश्मियोंसे प्रकाशमान न हो, तबतक जीवनको सौन्दर्य-कलासे विभूषित करनेका सारा प्रयत्न मिथ्याप्रमाद और चरित्रहीनताका प्रदर्शनमात्र है। सत्यपूर्ण आन्तरिक वातावरणके अभावमें कोई भी जीवन-सौन्दर्यको उत्पन्न करनेवाला तत्त्व नहीं टिक सकता। उपनिषद् कहते हैं— **'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा'** (मुण्डकोपनिषद् ३।१।५) अर्थात् आत्म-सौन्दर्यका प्रकाश सत्य और तपस्याके द्वारा ही उत्पन्न किया जा सकता है, दूसरी कोई भी विधि नहीं है।

ये ही मुख्य तत्त्व हैं जो जीवनको प्रभावशाली, सौन्दर्ययुक्त और कलामय बना सकते हैं। इनकी सदैव साधना-आराधना करते रहना हमारा जीवन-धर्म है।

जो सदा सरल है और लोगोंको प्रिय है, विवेकी और सत्य-भाषी है, कभी मिथ्या भाषण नहीं करता, वह सर्वोत्तम भक्त जगत्में धन्य है।

जिसके मनसे दुष्ट आशा नष्ट हो गयी है, जिसको भगवत्प्रेमकी प्यास लगी रहती है, परमेश्वर जिसका ऋणी है, ऐसा भक्त धन्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिशोधकी भावनाका त्याग करके प्रेम कीजिये

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

प्रह्लादको मारनेके लिये हिरण्यकशिपुके हितैषी षण्डामर्क नामक पापी पुरोहितोंने अग्निशिखाके समान प्रज्वलित शरीरवाली कृत्याको उत्पन्न किया। उसने प्रह्लादको मारना चाहा, पर भगवान्‌की कृपासे वह प्रह्लादका बाल भी बाँका नहीं कर सकी और लौटकर उसने उन दोनों पुरोहितोंको समाप्त कर दिया एवं स्वयं भी नष्ट हो गयी। गुरुपुत्रोंको जलते देखकर प्रह्लादसे नहीं रहा गया। वे 'हे श्रीकृष्ण ! हे अनन्त ! बचाओ, बचाओ' कहते हुए दौड़े। गुरुपुत्र तो दोनों मर चुके थे। प्रह्लादको इससे बड़ा दुःख हुआ। उनके मनमें कोई शत्रु था ही नहीं, वे सबमें भगवान्‌को व्याप्त देखते थे। वे भगवान्‌से उनको पुनर्जीवित करनेके लिये प्रार्थना करते हुए बोले—'यदि मैं मुझसे शत्रुता रखनेवालोंमें भी सर्वव्यापी भगवान्‌को देखता हूँ, जिन लोगोंने मुझे विष देकर, आगमें जलाकर, हाथियोंसे कुचलवाकर और साँपोंसे डँसवाकर मारनेका प्रयत्न किया, उनके प्रति भी मेरी समानरूपसे मैत्री-भावना रही हो और उनमें मेरी पाप-बुद्धि न हुई हो तो उस सत्यके प्रभावसे ये दोनों दैत्य-पुरोहित जीवित हो जायँ[१]।'

यों कहकर प्रह्लादने उनका स्पर्श किया और वे दोनों ब्राह्मण स्वस्थ होकर उठ बैठे तथा प्रह्लादके प्रतिशोध-भावसे रहित पवित्र आत्मभावकी मुक्तकण्ठसे कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे प्रशंसा करने लगे।

प्रह्लादने महान् दुःख देनेवाले पिता हिरण्यकशिपुकी सद्गतिके लिये सर्वदा निष्काम होनेपर भी भगवान्‌से वरदान माँगा।

इसी प्रकार एक बार महर्षि दुर्वासाने क्रोधोन्मत्त होकर तपोबलसे कृत्याके द्वारा भक्तवर अम्बरीषको मारना चाहा। भगवान्‌के सुदर्शनचक्रसे सुरक्षित अम्बरीषको कृत्या नहीं मार सकी, सुदर्शनने कृत्याको ही जलाकर राखका ढेर कर दिया। तदनन्तर भीषण चक्र दुर्वासाकी ओर चला। दुर्वासा डरकर भागे। तपोबलसे वे समस्त ऊँचे-से-ऊँचे लोकोंमें जानेकी शक्ति रखते थे। वे दिशा, आकाश, पृथ्वी, पाताल, स्वर्ग, ब्रह्मलोक तथा कैलास—सभी जगह दौड़े गये, पर भगवद्भक्तके विरोधी होनेके कारण कहीं भी उनको आश्रय नहीं मिला। अन्तमें चक्रकी आगसे जलते हुए मुनि दुर्वासा वैकुण्ठमें पहुँचे और काँपते हुए वे भगवान्‌के चरणोंपर गिर पड़े। भगवान्‌से रक्षा करनेकी प्रार्थना की, परंतु वहाँ भी रक्षा नहीं हुई। भगवान्‌ने कह दिया—'निरपराध साधु-पुरुषोंका बुरा चाहनेवाले तथा करनेवालेका अमङ्गल ही हुआ करता है। मेरे भक्त सबको त्यागकर मुक्तिको भी स्वीकार न करके मेरी शरणमें रहते हैं, वे केवल मुझको ही जानते हैं। ऋषिवर ! मैं उनके अधीन हूँ। उन्होंने मुझको वैसे ही अपने वशमें कर रखा है, जैसे सती स्त्री अपने पातिव्रत्यसे सदाचारी पतिको वशमें कर लेती है। आपको बचना हो तो आप उन्हीं अम्बरीषकी शरणमें जाइये।'

दुर्वासा वैकुण्ठसे लौटकर अम्बरीषके चरणोंपर आ गिरे। अम्बरीष बड़े दुखी थे। दुर्वासाजी भागे थे, तबसे अम्बरीषने भोजन नहीं किया था। आज दुर्वासाको अपने चरण पकड़े देखकर वे बहुत ही सकुचा गये और बड़ी अनुनय-विनय करके चक्रसे बोले—'यदि मैंने कभी कोई दान, यज्ञ या धर्मका पालन किया हो और हमारे वंशके लोग ब्राह्मणोंको अपना आराध्य मानते रहे हों एवं यदि समस्त गुणोंके एकमात्र परमाश्रय भगवान्‌को मैंने समस्त प्राणियोंमें आत्माके रूपमें देखा हो तथा वे मुझपर प्रसन्न हों तो दुर्वासाजीकी रक्षा हो, इनका सारा संताप तुरंत मिट जाय[२]।'

१- यथा सर्वगतं विष्णुं मन्यमानोऽनपायिनम्। चिन्तयाम्यरिपक्षेऽपि जीवन्त्वेते पुरोहिताः॥
ये हन्तुमागता दत्तं यैर्विषं यैर्हुताशनः। यैर्दिग्गजैरहं क्षुण्णो दष्टः सर्पैश्च यैरपि॥
तेष्वहं मित्रभावेन समः पापोऽस्मि न क्वचित्। यथा तेनाद्य सत्येन जीवन्त्वसुरयाजकाः॥ (विष्णुपुराण १। १८। ४१-४३)

२- यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः। कुलं नो विप्रदैवं चेद् द्विजो भवतु विज्वरः॥
यदि नो भगवान् प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः। सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः॥
(श्रीमद्भा० ९। ५। १०-११)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अम्बरीषकी प्रार्थनासे चक्रदेव शान्त हो गये। दुर्वासाकी सारी जलन मिट गयी। तब वे प्रतिशोधकी भावनासे सर्वथा रहित तथा मारनेका पूर्ण प्रयत्न करनेवालेका मङ्गल चाहनेवाले अम्बरीषके सम्बन्धमें कहने लगे—'आज मैंने भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंका महत्त्व देखा। आप इतना भयानक अपराध करनेवालेका भी मङ्गल कर रहे हैं। महाराज! आप सच्चे भगवद्भक्त हैं। आपका हृदय करुणासे परिपूर्ण है। आपने मुझपर बड़ा ही अनुग्रह किया। मेरे सारे अपराधोंको भुलाकर मेरे प्राण बचाये। धन्य हैं।'

अम्बरीषने बड़े आदरसे उनका स्वागत-सत्कार करके उन्हें भोजन करवाकर तृप्त किया।

इसी प्रकार महात्मा ईसाने क्रूसविद्ध करनेवालोंके लिये और भक्तराज हरिदासने मारनेवालोंके लिये भगवान्‌से क्षमा-प्रार्थना की।

परदोष-दर्शन, घृणा, द्वेष, प्रतिशोध (बदला लेने) की भावना, वैर और हिंसावृत्ति—ये जितना हमें नरकोंमें ढकेलते हैं, हमारा सीमारहित बुरा करते हैं, उतना कोई भी दूसरा व्यक्ति हमारा बुरा नहीं कर सकता। इतिहासमें एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिल सकता जहाँ परदोष-दर्शन, घृणा, द्वेष तथा प्रतिशोधके द्वारा किसी भी सत्कार्यकी सिद्धि हुई हो। ये विचार या भाव मानव-जीवनके शान्ति तथा आनन्दको नष्ट कर देते हैं, इनसे बुद्धि मारी जाती है, विवेकशक्ति नष्ट हो जाती है, विचारका संतुलन मिट जाता है और मनुष्य अपना हित सोचनेमें सर्वथा असमर्थ होकर अपने ही हाथों अपने लिये कब्र खोदनेमें लग जाता है। इन दोषपूर्ण विचारोंसे जिसके प्रति ये विचार आते हैं, उसकी तो हानि होती है, उससे भी अधिक विनाशात्मक हानि उसकी होती है, जिसके हृदयमें इस प्रकारके दुर्विचार तथा दुर्भाव स्थान पाते हैं। यह वस्तुतः शारीरिक आत्महत्यासे भी बढ़कर हानिकर पाप है, क्योंकि इससे आध्यात्मिक आत्महत्या होती है।

असली बात तो यह है कि मनुष्यका कोई शत्रु है ही नहीं। जिसने मन-इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर ली है, वह स्वयं ही अपना मित्र है तथा जिसके द्वारा मन-इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त नहीं की जा सकी है एवं जो उनका गुलाम है, वह आप ही अपना शत्रु है।

संसारमें जो कुछ भी हमें फलरूपमें प्राप्त होता है, वह निश्चय ही हमारे द्वारा किये हुए अपने ही कर्मोंका फल है। बिना अपने प्रारब्ध-दोषके हमारा बुरा कोई कर ही नहीं सकता। हम कहीं किसीको हमारा अनिष्ट करते देखते हैं या मानते हैं तो यह हमारी भूल है। वह हमारे अनिष्ट करनेमें निमित्त बनकर या हमारे अनिष्टकी इच्छा करके अपने लिये अनिष्ट फलका बीज अवश्य बो देता है, पर हमारा अनिष्ट तो हमारे कर्मफलस्वरूप ही होता है। कर्मफलमें हमारा बुरा नहीं होना है तो कोई भी, किसी भी प्रयत्नसे हमारा बुरा नहीं कर सकता। इसलिये यदि कोई हमारा बुरा करना चाहता है तो वह वस्तुतः अपना ही बुरा करता है और अपने-आप अपना अनिष्ट करनेवाला मूर्ख या पागल मनुष्य दयाका पात्र होता है— घृणा, द्वेषका नहीं। इसीलिये—

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥

(मानस ५।४१।३)

—कहा गया है। संत-हृदय अपने दुःखसे द्रवित नहीं होता, पर-दुःखसे दुःखी होता है। इसीसे संत-हृदयको नवनीतसे भी अधिक विलक्षण कोमल बताया गया है—

निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

(मानस ७।१२५।४)

व्यक्तिगत ही नहीं, सामूहिक विरोधियोंके प्रति भी घृणा, द्वेषके विचार न रखकर दया और प्रेमके भाव रखने चाहिये। महान् विजेता लिंकनने ली (Lee) की सेनाके आत्मसमर्पण करनेपर अपने सेनापतिको आदेश दिया था कि वे वहाँके निवासियोंके साथ दया और प्रेमका ही व्यवहार करें।

हमारा किसीके द्वारा अनिष्ट हुआ है या हो रहा है—यह भ्रान्त धारणा हमारे मनमें उसके प्रति विरोध, घृणा, द्वेष उत्पन्न करके हमें प्रतिशोधमें प्रवृत्त करती है। यह प्रतिशोध-भावना अच्छे-अच्छे लोगोंमें बहुत दूरतक जाती है तथा जन्मान्तरोंमें भी साथ रहती है एवं नये-नये पाप-तापोंकी परम्परा चलाती रहती है। अतः इसको आने ही नहीं देना चाहिये, कहीं आ जाय तो तुरंत ही प्रेमकी प्रबल भावनासे इसको समूल नष्ट कर डालना चाहिये।

एक मनुष्यने हमें एक गाली दी, हमने उसको दो गालियाँ देकर अपनी प्रतिशोध-भावनाको चरितार्थ किया और उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये द्वेष तथा प्रतिशोधभावको उत्पन्न करके पुष्ट कर दिया। यह अधिक बदला लेनेका अमङ्गल कार्य हुआ। एकके बदलेमें एक गाली देकर भी बदला ले लिया। हमने अपनेको सभ्य मानकर गाली नहीं दी, पर पुलिसमें रिपोर्ट करके या कोर्टमें नालिश करके उसका बदला लेनेका प्रयत्न किया। अपनेको बहुत ही भला सत्पुरुष मानकर हमने कोई कानूनी कार्रवाई भी नहीं की, परंतु यह कह दिया कि 'हम क्यों गालीके बदले गाली देकर अपनी जबान गंदी करें तथा क्यों कानूनी कार्रवाई करके अपने समय, शक्ति तथा धनका अपव्यय करके वैर मोल लें। न्यायकारी ईश्वर सब देखते ही हैं, वे स्वयं ही इसको उचित दण्ड देंगे।' यों कहकर हमने न्यायकारी सर्वसमर्थ ईश्वरके दरबारमें नालिश कर दी। प्रतिशोध (बदला) लेनेकी भावनाने यहाँ भी पूरा काम किया।

इससे भी और आगे प्रतिशोधकी गुप्त भावनाका प्रकाश तब होता है, जब वर्षों बाद उस गाली देनेवालेपर कोई घोर विपत्ति आती है, उस समय हमारे मनमें प्रतिशोधका छिपा भाव प्रकट हो जाता है और मन-ही-मन हम कहते हैं—'देखो, भगवान् कितने न्यायकारी हैं! उसने हमें अमुक समय गाली दी थी, हमने तो कुछ भी बदलेमें नहीं किया, पर भगवान्ने आज उसे यह शिक्षा दे दी। अर्थात् उसपर यह विपत्ति हमें गाली देनेके फलस्वरूप ही आयी है।' इस प्रकार—चाहे उसपर वह विपत्ति किसी दूसरे कर्मके फलरूपमें आयी हो, पर—हम उसे अपने प्रतिशोध-खातेमें खतियाकर पापके भागी बन जाते हैं।

इस उपर्युक्त विवेचनसे यह पता लगता है कि मनुष्यके हृदयमें प्रतिशोधके भाव छिपे रहकर उसे समयपर कैसे गिरा देते हैं।

अतएव परदोष-दर्शन, घृणा तथा द्वेष करके कभी भी मनमें प्रतिशोधके भावको न रहने दीजिये। घृणाके बदले प्रेम कीजिये, अनिष्टके बदले हित कीजिये, अपराधके बदले क्षमा कीजिये। कभी यह भय मत कीजिये कि आपकी इससे कभी कुछ भी हानि होगी।

न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति॥

(गीता ६।४०)

भगवान्ने कहा—'प्रिय अर्जुन! मङ्गलकर्म करनेवाला कोई भी दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता।' साथ ही यह भी मत सोचिये कि आपका सत्-प्रयत्न व्यर्थ होगा। वरं आपके सद्विचार तथा सद्भाव समस्त वातावरणमें फैलकर आपके हृदयमें तथा आपसे विरोध रखनेवालेके हृदयमें भी पवित्रता, मैत्री तथा शान्तिका विस्तार करेंगे।

आप किसी शत्रुको मित्र बनाना चाहते हैं तो उसके गुण देखकर उसकी सच्ची प्रशंसा कीजिये, उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित कीजिये तथा उसके हितका, उसकी भलाईका शुभ आरम्भ कर दीजिये। उस प्रसङ्गको ही भूल जाइये, जिसके कारण आपके मनमें उसके प्रति विरोधी भाव उत्पन्न हुए थे। आप अपनी शुभ भावनासे उसके हृदयको निर्मल रूपमें देखिये, उसके हृदयमें सदा विराजित भगवान्के मङ्गलमय दर्शन कीजिये और मन-ही-मन सदा उसको नमन कीजिये।

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

(मानस १।८।१ तथा ७।११२ ख)

वनमालीकी शोभा

स्याम तनु राजति पीत पिछौरी।
उर बनमाल काछनी काछे, कटि किंकिनि छबि-रौरी॥
बेनी सुमन नितंबनि डोलति, मंद गामिनी नारी।
सूथन जँघन बाँधि नारा बँद, तिरिनी पर छबि भारी॥
नखनि रंग जावक की सोभा, देखत पिय-मन भावत।
सूरदास-प्रभु तनु-त्रिभंग ह्वै, जुवतिनि मनहिं रिझावत॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धा और विश्वास

(श्रीलाला लालचन्दजी)

श्रद्धा

पुरुष श्रद्धामय है। जैसी जिसकी श्रद्धा होती है, वैसा वह स्वयं होता है, यह अटल सत्य है।

पूरे विचारके बाद गहरे—गम्भीर तर्कके पश्चात् जिन भावोंमें मनुष्यकी गाढ़ प्रीति हो जाती है,वह उन भावोंके प्रति 'श्रद्धा' कही जाती है।

बिना पूरी खोजके जो राग या पुनः-पुनः मेल है अथवा अनुराग है, वह श्रद्धा नहीं कहा जा सकता। वह तो अन्धविश्वास है, उसमें धोखा होना सम्भव है। पर पूर्ण विचार और अनुभवके पश्चात् जिस प्रेमकी उत्पत्ति होती है, वही श्रद्धा है। वह मनुष्यके चरित्रको ऊँचा और उज्ज्वल बनाती है।

मनुष्य उन्नत हो, पूर्णताकी ओर अग्रसर हो—यह भावना जाति-उत्थानका हेतु बनती है। जब चरित्रमें अबाध उन्नति दिखायी देती है, तो अपने अनुभवपर अवलम्बित जीवनचर्या निश्चय सत्य और ऋतको चरितार्थ करती हुई स्वतन्त्रता और अदीनता लाती है।

जो मनुष्य दीन है, वह अवश्य हीन भी है। श्रद्धामय जीवन व्यतीत करता हुआ मनुष्य न तो हीन रह सकता है और न दीन ही रहेगा। वह स्वावलम्बी पुरुष सदा सीधा-सरल मार्ग ढूँढ़कर उसपर निश्चित पग रखता हुआ आगे बढ़ेगा। श्रद्धालु सज्जन ही जगत्में स्थिर और दृढ़ भावोंको धारण करते हुए सदैव सुकृतमें लगे रहते हैं और यश, मान, सम्पदा—सभी कुछ प्राप्त करते हैं।

श्रद्धामें अतुल शक्ति है। श्रद्धावान् कभी घबराता नहीं, कभी डाँवाडोल नहीं होता। श्रद्धावान्को ही निश्चयात्मिका बुद्धि प्राप्त होती है। श्रद्धा बिना कोई मेधासम्पन्न नहीं हो सकता। मनुष्य जगज्जननीको शिवसंकल्प और श्रद्धाबलसे प्राप्त होता है तथा कल्याणयुक्त मनसे सदा सबका मङ्गल करता हुआ विजयी होता है।

जय तो साधारण लोग भी संगठित होनेसे प्राप्त कर लेते हैं, पर विजयका अधिकारी तो श्रद्धावान् ही होता है। अपनेपर जय प्राप्त करना विजय है, वह उतावलापन करनेवालेको नहीं मिलती। स्थिरता और दृढ़ता बिना पूरी श्रद्धाके प्राप्त नहीं होती और इनके बिना आत्मजय सम्भव नहीं है। जबतक मनुष्य आत्मस्थ नहीं होता, वह स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। श्रद्धासे ही यह स्वस्थता प्राप्त होती है। अपने-आपमें स्थिर होना स्वस्थ अवस्था है, आत्मस्थ अवस्था है। स्वस्थ और आत्मस्थ शब्द एक ही अवस्थाविशेषको बतलानेवाले हैं।

गाढ़ श्रद्धासे प्रेमकी उत्पत्ति होती है। श्रद्धासे ही सरलता और ऋजुता मिलती है। ऋजुता और सरलतासहित श्रद्धा आनन्दकी प्राप्तिमें सहायक होती है।

मनुष्यका ध्येय आनन्दप्राप्ति है, पूर्णता है। यह बिना श्रद्धाके सम्भव नहीं। श्रद्धापूर्वक किये हुए कार्य अवश्य सफल होते हैं और मनुष्य कृतकार्य होकर आनन्द प्राप्त करता है।

श्रद्धावान् पुरुष जगत्में शुभ कार्य करता हुआ निरन्तर सुखी रहता है, श्रद्धासे किये हुए कार्य सफल होते हैं और सफल कार्य अधिक श्रद्धा बढ़ानेमें समर्थ होते हैं। फिर पुरुष शक्तिमान् होकर नम्र और क्षमावान् होता है।

श्रद्धावान् पुरुषमें पुष्टि और सुगन्धि होती है, उसका जीवन शुद्ध और सरल हो जाता है। भगवान्में श्रद्धा रखनेसे पुरुषका पुरुषार्थ सुफल होता है और वह अभय बनकर निरन्तर जनसेवा और सर्वभूतहितके सुन्दर विचार और कार्य करनेमें समर्थ होता है।

श्रद्धाहीन जीवन एक भद्दा जीवन है। श्रद्धाहीन मनुष्य केवल जीता है, उन्नति नहीं करता। उसका चित्त चञ्चल और मन विकारोंसे भरा रहता है। मानसिक विकारोंसे घिरा हुआ मनुष्य अविश्वासी हो जाता है और पग-पगपर ठोकरें खाता रहता है। वह किसी भी कार्यको निश्चयके साथ नहीं कर सकता और जब श्रद्धालु पुरुष सङ्कल्प और लगनसे कार्य करके सफल होते हैं तो वह उनसे ईर्ष्या-द्वेष करता है। ऐसा मनुष्य यदि किसी प्रकार सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है तो अपनेसे छोटोंके प्रति घृणा करने लगता है। श्रद्धामें हीं सच्चा, सीधा जीवनमार्ग मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास

संसारका इतिहास विश्वासकी महिमासे पूर्ण है। विश्वासी महापुरुषोंने ही संसारमें नाम छोड़ा है। विश्वासियोंने ही संसारकी काया पलट दी है। विश्वास ही उनकी उन्नति और अमर यशका कारण हुआ है। विश्वासने दुर्बलोंको बलवान् बनाया, रोगियोंको नीरोग बनाया और मूर्खोंको पण्डित कर दिया। विश्वासने संसारमें आश्चर्यजनक कार्य करके दिखला दिये।

विश्वासी पुरुष जिस कार्यको शान्ति और उत्साहके साथ करता है, अविश्वासी अपने उतावलेपन और अनिश्चयसे उसे बिगाड़ लेता है। विश्वासी स्त्री-पुरुष तन-मनसे सदैव पुष्ट दिखलायी देते हैं। वे कार्य करनेकी अधिक शक्ति रखते हैं, उनका जीवन मर्यादायुक्त होता है और उनकी कार्यशैली नियमबद्ध और सुशृङ्खल होती है।

विश्वासी पुरुष जीवनमें सत्यको चरितार्थ करते हैं। निश्चयसे, स्थिरतासे दृढ़ होकर, सत्यपर भरोसा रखकर वे सदा विजयी होते हैं। सत्य असीम है, अनन्त है। जितना सत्य मनुष्य जान गया है, उसपर उसे प्राणपणसे डटे रहना चाहिये। इसमें अपनी शक्तिका विकास होता है। सत्यमें जीवनकला निहित है। सत्यार्थीके जीवनमें लगन होती है, उसकी चितिशक्ति जाग्रत् रहती है और कल्याण-मार्गपर उसे सतत प्रकाश मिलता रहता है।

विश्वासी पुरुष ईर्ष्या नहीं करते, द्वेष नहीं करते, शिकायत नहीं करते, निन्दा नहीं करते, वे तो निरन्तर अपने कर्तव्यमें लगे रहते हैं। वे कार्यक्षम-कर्तव्यनिपुण पुरुषार्थी होते हैं, इसीलिये उनका जीवन मधुमय होता है। उनमें एक विशेष प्रकारकी मिठास और सुगन्धि होती है, जो संसारमें फैलती है। उनमें एक अनुपम आकर्षण-शक्ति होती है, जो सहृदय मनुष्योंको अपनी ओर खींचती है।

एक-एक विश्वासी पुरुषने संसारमें ऐसे-ऐसे अद्भुत काम किये हैं, जिनके लिये जगत् अबतक मुक्तकण्ठसे उनका यश गा रहा है और प्रलयकालतक गाता रहेगा। अमर होना यही तो है।

विश्वासी पुरुषोंमें जहाँ अदम्य उत्साह हुआ करता है, वहाँ साथ-ही-साथ अगाध प्रेम भी स्पष्ट दिखायी देता है। वे पड़ोसीके दुःखमें सहानुभूति करते हैं। वे आत्मतुष्टिमें ही प्रसन्न नहीं होते, किंतु दुःखका नाश और सुखकी वृद्धि ही उनका ध्येय हो जाता है।

विश्वासमें ऐसी अनुपम शक्ति है कि इससे भ्रम, भय, संशय सभी दूर हो जाते हैं। जिसमें विश्वास, उत्साह और प्रेम हो, उसे किसीसे भय नहीं रहता।

विश्वासी सबको प्रेममय देखता है। वह स्वयं किसीसे कपट नहीं करता। किसी विश्वासी पुरुषसे मिलनेपर हृदयके विकार सामने आ जाते हैं और उत्तम सङ्कल्पोंकी भावना उदय होने लगती है। विश्वासी अपने अंदर ऐसी आकर्षण-शक्ति भगवान्से प्राप्त करता है। विश्वासीसे मिलनेमें जो आनन्द होता है, उसे आत्मा ही अनुभव करता है। इसीलिये विश्वासी पुरुषके सत्संगसे आत्मशक्ति जाग्रत् होती है और मनुष्य पवित्र हो जाता है।

जैसा संग वैसा रंग

यादृशैः संनिवसति यादृशांश्चोपसेवते। यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति पूरुषः॥
यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव। वासो यथा रङ्गवशं प्रयाति तथा स तेषां वशमभ्युपैति॥

(महा०, शान्ति० २९९। ३२-३३)

जो जिसके साथ रहता है, जिसकी सेवा करता है और जैसा होना चाहता है वह वैसा हो जाता है। कपड़े जैसे रंगसे रँगे जाते हैं, वैसे ही हो जाते हैं। ऐसे ही जो पुरुष संत, असंत, तपस्वी अथवा चोरका—जैसा सङ्ग करता है, वह वैसा ही हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति —

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

आवश्यक शिक्षा

मनुष्यमात्र वास्तवमें विद्यार्थी ही हैं। देवता, यक्ष, राक्षस, पशु, पक्षी आदि जितनी स्थावर-जङ्गम योनियाँ हैं, वे सब भोगयोनियाँ हैं। उनमें मनुष्ययोनि केवल ब्रह्मविद्या प्राप्त करनेके लिये है, अविद्या और भोग प्राप्त करनेके लिये नहीं।

मनुष्य-शरीर केवल परमात्मप्राप्तिके लिये ही मिला है; अतः परमात्मप्राप्ति कर लेना ही वास्तवमें मनुष्यता है। इसलिये मनुष्ययोनि वास्तवमें साधनयोनि ही है। मनुष्ययोनिमें जो अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती हैं, यदि उनमें मनुष्य सुखी-दुःखी होता है तो वह भोगयोनि ही हुई और भोग भोगनेके लिये वह नये कर्म करता है तो उसमें भोगयोनिकी ही मुख्यता रही। अतः अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितिको साधन-सामग्री बना लेना और भोग भोगने तथा स्वर्गादि लोकोंकी प्राप्तिके उद्देश्यसे नये कर्म न करना, प्रत्युत परमात्मप्राप्तिके लिये शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार कर्तव्य कर्म करना ही मनुष्यता है। इस दृष्टिसे मनुष्यमात्रको साधक, विद्यार्थी कह सकते हैं।

मनुष्य-जीवनमें आश्रमोंके चार विभाग किये गये हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। जैसे, सौ वर्षकी आयुमें पचीस वर्षतक ब्रह्मचर्याश्रम, पचीससे पचास वर्षतक गृहस्थाश्रम, पचाससे पचहत्तर वर्षतक वानप्रस्थाश्रम और पचहत्तरसे सौ वर्षतक संन्यासाश्रम बताया गया है। ब्रह्मचर्याश्रम (विद्यार्थी-जीवन) में गुरु-आज्ञाका पालन, गृहस्थाश्रममें अतिथि-सत्कार, वानप्रस्थाश्रममें तपस्या और संन्यासाश्रममें ब्रह्मचिन्तन करना मुख्य है।

ब्रह्मचारी (विद्यार्थी) दो तरहके होते हैं—नैष्ठिक और उपकुर्वाण। नैष्ठिक ब्रह्मचारी वे होते हैं, जो अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए, विवेक-विचारके द्वारा भोगासक्तिका त्याग करके परमात्माकी तरफ ही चल पड़े हैं। उपकुर्वाण ब्रह्मचारी वे होते हैं, जो विचारके द्वारा भोगासक्तिका त्याग नहीं कर सके; अतः केवल भोगासक्तिको मिटानेके लिये गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते हैं। वे शास्त्रविधिपूर्वक विवाह करते हैं और धर्मका पालन करते हुए त्यागदृष्टिसे उपार्जन और भोग करते हैं। उनके सामने धर्मकी मुख्यता रहती है। धर्मका पालन करनेसे उनको भोग और संग्रहसे स्वतः वैराग्य हो जाता है—***'धर्म तें बिरति'*** (मानस ३।१६।१) और वे परमात्माकी तरफ चल पड़ते हैं।

प्रश्न—विद्यार्थी किसे कहते हैं?

उत्तर—जो केवल विद्याध्ययन करना चाहता है, उसको विद्यार्थी कहते हैं। 'विद्यार्थी' शब्दका अर्थ है—विद्याका अर्थी अर्थात् केवल विद्या चाहनेवाला। कौन-सी विद्या? विद्याओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मविद्या—**'अध्यात्मविद्या विद्यानाम्'** (गीता १०।३२)।

प्रश्न—विद्याका वास्तविक स्वरूप क्या है?

उत्तर—कुछ भी जानना विद्या है। अनेक शास्त्रोंका, कला-कौशलोंका, भाषाओं आदिका ज्ञान विद्या है। वास्तवमें विद्या वही है, जिससे जानना बाकी न रहे, जीवकी मुक्ति हो जाय—**'सा विद्या या विमुक्तये'** (विष्णुपुराण १।१९।४१)। अगर जानना बाकी रह गया तो वह विद्या क्या हुई!

एक शब्दब्रह्म (वेद) है और एक परब्रह्म (परमात्मतत्त्व) है। अगर शब्दब्रह्मको जान लिया, पर परब्रह्मको नहीं जाना तो केवल परिश्रम ही हुआ—

शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात् परे यदि।
श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः॥

(श्रीमद्भा० ११।११।१८)

अतः परमात्मतत्त्वको जानना ही मुख्य विद्या है और इसीमें मनुष्य-जीवनकी सफलता है।

जिससे जीविकाका उपार्जन हो, नौकरी मिले, वह भी विद्या है, पर वह विद्या परमात्मप्राप्तिमें सहायक नहीं होती, प्रत्युत कहीं-कहीं उस विद्याका अभिमान होनेसे वह विद्या परमात्मप्राप्तिमें बाधक हो जाती है। विद्याके अभिमानीको कोई ब्रह्मनिष्ठ महात्मा मिल जाय तो वह तर्क करके उनकी बातको काट देगा, उनको चुप करा देगा, जिससे वह वास्तविक लाभसे वञ्चित रह जायगा। अतः कहा गया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षडङ्गादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या
कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति।
यशोदाकिशोरे मनो वै न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

'छहों अङ्गोंसहित वेद और शास्त्रोंको पढ़ा हो, सुन्दर गद्य और पद्यमय काव्य-रचना करता हो, पर यदि यशोदानन्दनमें मन नहीं लगा तो उन सभीसे क्या लाभ है?'

प्रश्न—विद्या ग्रहण करनेकी क्या आवश्यकता है?

उत्तर—विद्याके बिना मनुष्यजन्म सार्थक नहीं होगा, प्रत्युत मनुष्यजन्म और पशुजन्म एक-समान ही होंगे। अतः विद्याकी अत्यन्त आवश्यकता है।

कोई भी आरम्भ होता है तो वह किसी उद्देश्यको लेकर ही होता है। मनुष्यजन्म केवल दुःखोंका अत्यन्ताभाव और परमानन्दकी प्राप्तिके उद्देश्यसे ही मिला है। इस उद्देश्यकी सिद्धि अगर नहीं हुई तो मनुष्यता नहीं है। जैसे पशु-पक्षी आदि भोगयोनि है, ऐसे ही परमात्मप्राप्तिके बिना मनुष्य भी भोगयोनि ही है। कारण कि परमात्मप्राप्तिका अवसर प्राप्त करके भी मनुष्य केवल भोगोंमें लगा रहा तो वह भोगयोनि ही हुई और उसका पतन ही हुआ—**'तमारूढच्युतं विदुः'** (श्रीमद्भा० ११।७।७४)।

यदि मनुष्यजन्म चौरासी लाख योनियोंमें जानेके लिये, बार-बार जन्मने-मरनेके लिये ही हुआ तो फिर उसमें मनुष्यता क्या हुई? अतः मनुष्यजन्ममें विद्यार्थीको परमात्माकी प्राप्ति कर लेनी चाहिये, जिससे बढ़कर कोई लाभ नहीं—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६।२२)

'जिस लाभकी प्राप्ति होनेपर उससे अधिक कोई दूसरा लाभ माननेमें भी नहीं आता और जिसमें स्थित होनेपर मनुष्य बड़े भारी दुःखसे भी विचलित नहीं किया जा सकता।'

वास्तवमें ब्रह्मविद्या ही विद्या है, अन्य विद्या तो अविद्या है। कारण कि ब्रह्मविद्याके प्राप्त होनेपर कुछ भी प्राप्त करना बाकी नहीं रहता, परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अन्य (लौकिक) विद्याएँ नहीं पढ़नी चाहिये। अन्य विद्याएँ भी पढ़नी चाहिये। अन्य भाषाओं, लिपियों आदिका ज्ञान-सम्पादन करना उचित है, पर उनमें ही लिप्त रहना उचित नहीं है; क्योंकि उनमें ही लिप्त रहनेसे मनुष्यजन्म निरर्थक चला जायगा। दूसरी बात, लौकिक विद्याओंको पढ़नेसे 'मैं पढ़ा-लिखा हूँ'—ऐसा एक अभिमान पैदा हो जायगा, जिससे बन्धन और दृढ़ हो जायगा।

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।

'शास्त्रोंको पढ़कर भी लोग मूर्ख बने रहते हैं। वास्तवमें विद्वान् वही है, जो शास्त्रके अनुकूल आचरण करता है।'

मनुष्यजन्मका उद्देश्य है—परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति करना और उसका साधन है—संसारकी सेवा। अतः लौकिक विद्या, धन, पद आदिका उपयोग संसारकी सेवामें ही है। ये संसारकी सेवामें ही काम आ सकते हैं, परमात्मप्राप्तिमें नहीं; क्योंकि परमात्मप्राप्ति लौकिक विद्याके अधीन नहीं है। जिसके पास लौकिक विद्या आदि है, उसीपर संसारकी सेवा करनेकी जिम्मेवारी है। मालपर ही जकात लगती है और इनकमपर ही टैक्स लगता है। माल नहीं हो तो जकात किस बातकी? इनकम नहीं हो तो टैक्स किस बातका?

लौकिक विद्या, धन, पद आदिको लेकर संसारमें मनुष्यकी जो प्रशंसा होती है, वह एक तरहसे मनुष्यकी निन्दा ही है। तात्पर्य है कि महिमा तो लौकिक विद्या आदिकी ही हुई, खुदकी तो निन्दा ही हुई! अतः जो लौकिक विद्या आदिसे अपनेको बड़ा मानता है, वह वास्तवमें अपनेको छोटा ही बनाता है।

प्रश्न—विद्याध्ययन बाल्यावस्थामें ही करना चाहिये या आजीवन?

उत्तर—बाल्यावस्थामें विद्याध्ययन करनेका नियम केवल उपकुर्वाण ब्रह्मचारीके लिये ही है। जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी है, उसको तो आजीवन शास्त्रोंका, ब्रह्मविद्याका अध्ययन करते रहना चाहिये।

उस दुष्ट और नीचके साथ भी, जो तुम्हें दुःख देता है, तुम भलाई करो, क्योंकि सच्चा आनन्द दूसरोंको सुख देनेमें ही है। —कबीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामकी भक्ति-भावना

(श्रीओमप्रकाशजी अग्रवाल एम्० ए० (हिन्दी, अंग्रेजी), एल्० टी०, साहित्यरत्न)

सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा अविगत, अलख, अगोचर, अनादि और अनूप हैं तथा भगवान् राम उसीके साक्षात् अवतार हैं। वेदोंने उनके स्वरूपका नित्यशः 'नेति-नेति' कहकर निरूपण किया है—

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥

(मानस २। ९३। ७-८)

उन्होंने लोक-कल्याण और संतोंके उद्धारार्थ मानव-शरीर धारण किया। पृथ्वीमाताने गौ-माताका रूप धारणकर जब भगवान् विष्णुसे आर्त स्वरमें प्रार्थना की तो उन्होंने राम-रूपमें अवतरित होकर उसके संकटोंको दूर करनेका आश्वासन दिया। इसीसे तो—

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।

(मानस १। १९२)

अपने शील-सौन्दर्य और लोक-रञ्जनकारी व्यक्तित्वसे दशरथनन्दन राम नरसे नारायण-रूप होकर जन-जनके आराध्य और घट-घटवासी हो गये और ऋषि-मुनि, योगी-यति, राजा-रंक, विरक्त-अनुरक्त सब उनके निराकार-साकार-रूपका ध्यान करने लगे तथा परमानन्द अथवा मोक्ष-प्राप्ति-हेतु उनकी अनन्य भक्तिसे सेवा-उपासनामें तल्लीन हो गये।

महर्षि वाल्मीकिने उन्हें **'साक्षाद्विष्णुः सनातनः'** माना। राम भगवान् विष्णुके पूर्णावतार माने जाने लगे। वे देवोचित एवं मानवोचित मान-मर्यादाका पालन करके 'मर्यादापुरुषोत्तम' कहलाये और आराध्य एवं इष्टदेवका परमपद प्राप्त किया, इसीसे उनका सर्वत्र गुणगान होने लगा और वे लोक-लोकान्तरोंमें सर्वव्यापक 'राम' हो गये। इसीसे—

सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥

(मानस १। १२)

श्रीराम मूर्तिमान् धर्मज्ञ हैं—**'रामो विग्रहवान् धर्मः।'**

भगवान् श्रीरामने भक्तिके क्षेत्रमें सर्वोपरि मर्यादा स्थापित करके लौकिक सुख-शान्ति-संतोष और पारलौकिक मोक्षकी प्राप्तिके लिये भक्तिका मार्ग प्रशस्त किया। उन्हें अनपायनी तथा अनन्य भक्ति सिद्ध थी। तभी तो मानसके उत्तरकाण्डमें ब्रह्मानन्दमें लीन सनकादिक रामसे अनपायनी भक्तिकी याचना करते हैं—

परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम॥

(मानस ७। ३४)

भगवान् श्रीराम नवधा भक्तिके भी पूर्ण ज्ञाता थे। उन्होंने वनमें शबरीको नवधा भक्तिके भेद इस प्रकार बतलाये हैं—

भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥
नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥

(मानस ३। ३५। ६-७)

वाल्मीकीय रामायणमें रामके प्रति कहा गया है—

दृढभक्तिः स्थिरप्रज्ञो नासद्ग्राही न दुर्वचः॥

(वा० रा० २। १। २४)

रामचरितमानस तो भक्तिका असीम पारावार ही है। उसमें रामकी सभी प्रकारकी भक्तियोंका पद-पदपर निरूपण किया गया है। सामान्यतः रामकी भक्ति पाँच प्रकारकी है—१-माता-पिता, परिजन, पुरजनके प्रति। २-गुरुजन, ऋषि-मुनि, संत एवं विप्र-वृन्दके प्रति। ३-देवी-देवताओं, गङ्गा-यमुना, तीर्थराज आदिके प्रति। ४-देश-प्रेमपरक भक्ति और ५-परब्रह्म परमात्माका चिन्तन, सन्ध्या-वन्दन। इनके विषयमें रामचरितमानसके अनुसार कुछ प्रसंग निम्न हैं—

(१) श्रीरामकी माता-पिता एवं परिजनोंके प्रति भक्ति—श्रीराम सबके प्रति सदा-सर्वदा विनय-शीलतासे नतमस्तक हो श्रद्धा अर्पित करते हैं, प्रणाम करते हैं, चरण-स्पर्श करते हैं। महाराज दशरथ जब मुनि विश्वामित्रको राम-लक्ष्मणको सौंपते हैं, तब राम पिताको प्रणामकर मातासे बिदा लेने उनके भवन जाते हैं—

सौंपे भूप रिषिहि सुत बहुबिधि देइ असीस।
जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस॥

(मानस १। २०८ [क])

पिता दशरथके जनकपुर पहुँचनेपर भगवान् राम भाई लक्ष्मणके साथ उनको दण्डवत् प्रणाम करते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुखु न समाई॥
(मानस १।३०८।३)

सुमन्त्र रामको जब कोप-भवनमें राजा दशरथके सामने लाते हैं, तब—

चरन परत नृप रामु निहारे॥
(मानस २।४४।२)

चित्रकूटमें जब मन्दाकिनी-सरिताके तटपर वैदिक रीतिसे पिताका श्राद्ध सम्पन्न करते हैं तब—

करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी॥
(२।२४८।१)

राजा दशरथद्वारा कानन-राज दिये जानेपर जब राम माता कौसल्याके पास बिदा लेने जाते हैं, तब—

रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा॥
(२।५२।१)

इसी प्रकार चित्रकूटमें जब राम सर्वप्रथम कैकेयीसे भेंट करते हैं, तब—

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायँ भगति मति भेई॥
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥
(२।२४४।७-८)

विवाहोपरान्त जब अयोध्या लौटनेपर राजभवनमें रात्रिमें राम माताओंको विनयपूर्वक सब वृत्तान्त सुनाते हैं, तब—

राम प्रतोषीं मातु सब कहि बिनीत बर बैन।
सुमिरि संभु गुर बिप्र पद किए नीदबस नैन॥
(१।३५७)

और प्रातः सोकर उठनेपर जब प्रातःकालीन नित्य-क्रियाओंसे निश्चिन्त होकर सबको प्रणाम करते हैं, तब—

बंदि बिप्र सुर गुर पितु माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता॥
(१।३५८।७)

तथा—

देव पितर पूजे बिधि नीकी। पूजीं सकल बासना जी की॥
(१।३५१।१)

वन-गमनके समय जब पुरजन-परिजन सबको समझा-बुझाकर और गुरुके चरण-कमलमें सीस नवाकर प्रणाम करते हैं, तब—

एहि बिधि राम सबहि समुझावा। गुर पद पदुम हरषि सिरु नावा॥
गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई॥
(२।८१।१-२)

(२) गुरुजन, ऋषि-मुनि आदिकी भक्ति—गुरु वसिष्ठजीके प्रति उनके राजभवन आनेपर—

गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायउ माथा॥
सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने॥
(२।९।२-३)

—इसी प्रकार जब गुरु वसिष्ठको राजा दशरथके साथ जनकपुर आते देखा तथा चित्रकूटमें दण्डवत् प्रणाम किया, तब—

चले सबेग रामु तेहि काला। धीर धरम धुर दीनदयाला॥
गुरहि देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे॥
(२।२४३।२-३)

मुनि विश्वामित्रके चरणस्पर्श करके राम जब जनकपुर दर्शन-हेतु जाते हैं, तब—

मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता। चले लोक लोचन सुख दाता॥
(१।२१९।१)

और जब मुनिवर रात्रिमें सोने लगे तो दोनों भाई उनके चरण दाबने लगते हैं—

मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥
(१।२२६।३)

तथा प्रातः जागनेपर उनके पवित्र चरणकमलोंमें सीस नवाते हैं। इसी प्रकार राम मुनि भारद्वाज, सतानंद, वाल्मीकि, अत्रिमुनि, अगस्त्य तथा 'अज्ञाततापस' (सम्भवतः तापस-रूपमें तुलसीदास) के प्रति दण्डवत्-प्रणाम एवं चरण-कमलोंका स्पर्श करके पूर्ण श्रद्धा समर्पित करते हैं। इनके साथ ही विप्र एवं गुरु-पत्नीको भी प्रणाम करते हैं—

गुरतिय पद बंदे दुहु भाईं। सहित बिप्रतिय जे सँग आईं॥
(२।२४५।१)

(३) देवी-देवताओंकी भक्ति—श्रीराम विशेष अवसरोंपर सभी सनातन देवी-देवताओंकी वैदिक रीतिसे पूजा करते हैं। धार्मिक रीति-रिवाज और परम्पराओंको आस्थासे मानते हैं। भक्तिको धर्मका मुख्य अङ्ग समझते हैं। राम जब चित्रकूट पहुँचते हैं तो वहाँ देव, किन्नर, नाग, दिक्पाल आदि सभी वेष बदलकर आ जाते हैं। राम सबको प्रणाम करते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमर नाग किंनर दिसिपाला। चित्रकूट आए तेहि काला॥
राम प्रनामु कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू॥
(२।१३४।१-२)

राम भगवान् शिवके अनन्य भक्त हैं; क्योंकि—

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा।

उनका कहना है कि—

सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥ (६।२।६)
जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। (६।३।१)
सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि। (६।३।२)
होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि॥
(६।११९ [क])

और फिर लंका-विजयकर लौटते समय पुष्पकविमानसे सेतुबंधको देखकर कहते हैं—

इहाँ सेतु बाँध्यों अरु थापेउँ सिव सुख धाम।

तदनन्तर—

सीता सहित कृपानिधि संभुहि कीन्ह प्रनाम॥
(६।११९ (क))

श्रीराम स्वयं सीताको भी गृहदेवता मानकर आदर देते हैं। कुन्दमाला नाटकमें देखिये—

'त्वं देवि चित्तनिहिता गृहदेवता मे॥'
(१।१४)

सूर्यकी पूजा—लंकामें रावणसे युद्ध करते हुए राम जब थककर चिन्ता करने लगे तो अगस्त्यमुनि उनसे भगवान् सूर्यके गोपनीय स्तोत्र 'आदित्यहृदय' का जप करनेको कहते हैं, क्योंकि यह सब शत्रुओंपर विजय दिलानेवाला है। राम शुद्ध-चित्तसे 'आदित्यहृदय'का जाप करते हैं और रावणका वध करनेमें सफल होते हैं—

आदित्यहृदयं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम्।
जयावहं जपं नित्यमक्षयं परमं शिवम्॥
आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वेदं परं हर्षमवाप्तवान्।
त्रिराचम्य शुचिर्भूत्वा धनुरादाय वीर्यवान्॥
(वा० रा०, आ० ह० ४ एवं २९)

शक्तिकी पूजा—देवीभागवतके अनुसार भगवान् रामने पराम्बा जगदीश्वरीकी पूजा की। 'कालिकापुराण' एवं कृत्तिवासरचित 'बंगलारामायण'में लंकाकाण्डमें राम दुर्गोत्सव मनाते हैं। ब्रह्माजी रामको देवी-पूजनका मन्त्र बतलाते हैं। श्रीराम सागरतटपर देवीकी मिट्टीकी मूर्ति बनाकर शास्त्रोक्तविधिसे देवीका पूजन-स्तवन और चण्डीपाठ करते हैं और अन्तमें मूर्तिको विसर्जित भी करते हैं।

(४) देश-प्रेमपरक भक्ति—रामको अपने देशसे अति प्यार है। अवध तो उनका जीवन है, प्राण है। वनगमनके समय जब सुमन्त्र उन्हें रथपर चढ़ाते हैं तो राम अवधको प्रणाम करते हैं—

चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयँ अवधहि सिरु नाई॥
(२।८३।२)

और लंकासे लौटते समय अवधके समीप आते ही—

सीता सहित अवध कहुँ कीन्ह कृपाल प्रनाम।
सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम॥
(६।१२० [क])

चित्रकूटमें रामको जब भी अवधकी याद आती है, उनके नेत्रोंमें आँसू छलक आते हैं—

जब जब रामु अवध सुधि करहीं। तब तब बारि बिलोचन भरहीं॥
(२।१४१।३)

और जन्म-भूमिके विषयमें हनुमान्, अंगद तथा विभीषणसे कहते हैं—

सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा॥
× × × ×
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि॥
(७।४।२, ४-५)

महर्षि वाल्मीकिद्वारा चित्रकूटकी महिमा सुनकर रामका मन वहीं रम जाता है और सब देवता वहीं आ जाते हैं—

रमेउ राम मनु देवन्ह जाना। चले सहित सुरथपति प्रधाना॥
(२।१३३।६)

राम चित्रकूटके समस्त वातावरणपर छा जाते हैं और सब कुछ राममय हो जाता है, भक्तिमय हो जाता है।

(५) परब्रह्म परमात्माका चिन्तन, संध्या-वन्दन आदि— मानसका उत्तरकाण्ड तो रामके आध्यात्मिक चिन्तन, ब्रह्मनिरूपण तथा भारतीय दर्शनकी भावात्मक अभिव्यक्ति ही है। रघुकुलनाथ श्रीराम धर्मधुरन्धर तथा नैतिक मूल्योंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस्थावान् हैं। सिंहासनपर बैठते ही वे द्विजोंको प्रणाम करते हैं—

रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई॥

(७।१२।२)

और जब अंगद, निषाद आदिको बिदा देते हैं तो उन्हें धर्माचरणका उपदेश देते हैं—

जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू॥

(७।२०।२)

अयोध्यामें प्रायः वेद-पाठ होता रहता है, द्विजों और सज्जनोंका समाज श्रीसरयूमें स्नानादि क्रिया सम्पन्न करके राजसभामें जुड़ता है और वसिष्ठ मुनि वेद-पुराणोंकी कथा कहते हैं तथा राम सर्वज्ञ होते हुए भी उसे आदर श्रवण करते हैं—

प्रातकाल सरऊ करि मज्जन। बैठहिं सभाँ संग द्विज सज्जन॥
बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥

(७।२६।१-२)

चित्रकूटमें भी नित्यप्रति धर्मनिष्ठ लोगोंका समाज जुड़ता है और संत-समागममें राम वेद-पुराणोंका पाठ सुनते हैं—

जहाँ बैठि मुनिगन सहित नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान॥

(२।२३७)

और फिर सियाराम स्वयं भक्ति तथा सच्चिदानन्दके रूपमें शोभित होते हैं—

लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरें भगति सच्चिदानंदु॥

(२।२३९)

राम अपनी श्रेष्ठ भक्ति-भावनाके कारण ही शील-सौन्दर्यमें अनुपम, लोकरञ्जनकारीरूपमें सर्वोपरि और अनन्त-गुण-निधान हुए तथा लोक-लोकान्तरमें निराकार-साकार रूपमें आराध्य हुए। श्रीराम आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं आधिदैविक तीनों प्रकारकी भक्तिके प्रतीक हैं, अतः भक्तशिरोमणि हैं।

सफल जीवन

पाता है जो जीवनमें सर्वत्र सदा प्रभुका संस्पर्श।
नहीं फूलता जग-सुखमें, होता न दुःखमें जिसे अमर्ष॥
प्रभु-प्रदत्त प्रत्येक परिस्थितिमें ही जिसको होता हर्ष।
वही सफल जीवन है, जिसने प्राप्त किया ऐसा उत्कर्ष॥
जड-चेतनमें सदा देख पाता जो प्रभुको ही अभिराम।
तन-मन-धनसे यथाशक्ति जो सेवा करता है अविराम॥
प्रभुकी सेवाके निमित्त ही होते जिसके सारे काम।
वही सफल जीवन है सुखमय सत्य उसीका जन्म ललाम॥
सर्वकाल जो चिन्तन करता प्रभुका रखकर भाव अनन्य।
कर मन-बुद्धि समर्पित प्रभुको, नहीं देखता कुछ भी अन्य॥
जिसके कभी न आती मनमें राजस-तामस-वृत्ति जघन्य।
वही सफल जीवन है शोभन परम उसीका जीवन धन्य॥
प्रभुके पावन पद-पंकजमें ही जिसका रहता अनुराग।
ममता एकमात्र प्रभुमें ही हुआ अन्य ममताका त्याग॥
निर्मल परम प्रीति प्रभुमें ही विषय-जगत्से सहज विराग।
वही सफल जीवन है जगमें पुण्यश्लोक वही बड़भाग॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ममता तू न गयी मेरे मन तें

(मोह, कारण और निवारण)

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

(गताङ्क पृ०-सं० ८९४ से आगे)

(५)

दो बातनको भूल मत, जो चाहै कल्यान।
'नारायन' इक मौतको, दूजे श्रीभगवान॥

हम तैयार हों, न हों, मौत आयेगी, अवश्य आयेगी और वह कब आ खड़ी होगी, इसका भी कोई ठिकाना नहीं। तब क्यों न हम हर घड़ी उसका सामना करनेके लिये तैयार रहें ?

× × ×

सोचनेकी बात है कि हम मौतसे डरते क्यों हैं ?

इसीलिये कि हमारे हाथ रक्तरंजित हैं।

हम दूसरोंको सताते हैं।

दूसरोंका जी दुखाते हैं।

बेईमानी करते हैं।

धोखा देते हैं।

छल-प्रपञ्च करते हैं।

झूठ बोलते हैं। चोरी करते हैं।

कभी जबानसे किसीका कलेजा चाक करते हैं, कभी छुरीसे।

कभी किसीसे अनुचित काम लेते हैं, कभी किसीका शोषण करते हैं।

कभी किसीकी बहू-बेटी ताकते हैं, कभी किसीपर अन्याय करते हैं।

कभी किसीकी निन्दा करते हैं, कभी किसीपर ताना मारते हैं।

अपनी इस नंगी तस्वीरपर जब कभी हमारी दृष्टि पड़ती है तो हम काँप उठते हैं।

पता नहीं यमराजके दरबारमें इन कुकर्मोंके लिये हमें कैसी यम-यातना भुगतनी पड़े।

× × ×

मौतके डरका एक बड़ा कारण यही है।

जिसका जीवन पवित्र है, सरल है, निष्कलंक है, वह मौतसे क्यों डरने लगा ?

वह तो कबीरकी तरह साफ कह देगा—

सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी,
ओढ़िके मैली कीन्ही चदरिया।
'दास कबीर' जतनतें ओढ़ी
ज्यों-की-त्यों धरि दीनी चदरिया॥

'ले मालिक ! यह पड़ी है तेरी चादर। मैंने इसमें कोई दाग नहीं लगने दिया।'

× × ×

कबीरके शब्दोंमें हमको यही भय खाये जा रहा है कि—

सुन्दर-सी सारी मोरी मैकेमें मलिन भई,
का लैके जइबे गवनवाँ हाय राम!
ना मोरे गुन ढंग, ना मोरे जोबना,
ना मोरे एकउ गहनवाँ हाय राम!
घूँघट खोलि पिया जब पुछिहैं,
करिबे तौ कौन बहनवाँ हाय राम!

उस समय कौन बहाना करना होगा ?

और यह मौका तो आने ही वाला है—

नदिया किनारे बलम मोर रसिया,
दीन्ह घुँघट पट टारी।
थरथराय तन काँपन लागे,
काहू न दीख हमारी।
आई गवनवाँकी सारी……॥

× × ×

बात है दक्षिण अफ्रीकाकी।

आँधी, वर्षा और तूफानमें गाँधीजी चले जा रहे थे कैलनबेकके साथ।

तूफान इतना तेज कि कितने भी जोरकी आवाज न सुन पड़े।

एक सड़क पार करने जा रहे थे कि इनके बिलकुल पाससे एक कार गुजरी।

बाल-बाल बच गये दोनों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तभी बापू बोले—'कैसी शानदार होती हम लोगोंकी यह मौत। इन दिनों हम अपने आदर्शोंके अनुकूल जीवन बितानेके लिये जी-जानसे सचेष्ट हैं और ऐसे समय किसीकी मौत आये तो उससे बढ़कर और होगा ही क्या ?'

× × ×

सचमुच, मौत तभी खतरनाक लगती है, भयावनी जान पड़ती है, दुःखद प्रतीत होती है जब हमारा जीवन हमारे पवित्र आदर्शोंके अनुकूल नहीं होता।

जिसका जीवन पवित्र होगा, निर्मल होगा, उसे मौतका डर सतायेगा ही क्यों ? तिनका तो चोरकी ही दाढ़ीमें रहता है।

× × ×

यह नश्वर शरीर छूटनेवाला ही है। सब जानते हैं कि—

इक दिन ऐसा होयगा कोउ काहूका नाहिं।
घरकी नारीको कहै तनकी नारी नाहिं॥

जिस शरीरके लिये यह सारा तूमतोमाड़ है—

'वह धूलधूसरित हो जायेगा
सोने-सा शरीर तेरा।'

तब इस शरीरका मोह क्यों ?

× × ×

फिर इस शरीरके लिये हम दुनियाभरका पाप क्यों बटोरें ?

घास-पात, कन्द-मूल खाकर भी जिस शरीरको जीवित रखा जा सकता है, उसके लिये इतना अनर्थ करनेकी आवश्यकता ?

× × ×

नश्वर शरीरके लिये इतना मोह करनेकी आवश्यकता ही कौन-सी है ? पर इसका मतलब यह भी नहीं कि हम शरीरको व्यर्थ ही सुखा डालें, गला डालें, जला डालें।

यह तो प्रभुकी थाती है। इसकी रक्षा, इसकी सार-सँभाल हमारा परम पुनीत कर्तव्य है।

पर यह सोचकर नहीं कि यह 'हमारा' है।

'हमारा' माना कि ममता बढ़ी, आसक्ति आयी, मोह पनपा।

× × ×

यह देहासक्ति ही तो सारे अनर्थोंकी जड़ है।

इसीके चलते मनुष्य परिवारसे मोह करता है, जातिसे मोह करता है। एकसे राग करता है, दूसरेसे द्वेष।

एकको 'अपना' माना कि दूसरेसे विरोध शुरू। देह 'अपनी', इसके सगे-सम्बन्धी 'अपने' इससे भिन्न सब 'पराये'।

मोहका विस्तार देहासक्तिसे ही होता है।

× × ×

आत्माका आवरण है शरीर।

बादामकी गिरी है आत्मा, छिलका है शरीर।
आमका गूदा है आत्मा, गुठली है शरीर॥

शरीर कपड़ा है, छिलका है, गुठली है, ऊपरका आवरण है। वह बदलता रहता है। उसमें विकार आते रहते हैं। व्याधियाँ उसे सताती हैं। रोग उसपर हमला करते हैं। जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि उसके स्वाभाविक गुण हैं।

पर आत्मा ठहरा निर्विकार। उसे न आग जला सकती है, न पानी डुबा सकता है।

आत्मा अमर है, अजर है। उसका कभी नाश नहीं होता और शरीरका नाश होनेवाला ही है। मरणसे, क्षरणसे उसे कोई बचा नहीं सकता।

× × ×

तब इस शरीरका इतना मोह क्यों ?

ठीक कहा है 'बिस्मिल'ने—

'करता हूँ बयाँ सुनिये बयाने हस्ती,
कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं, शाने हस्ती।
इस साँसकी बुनियाद ही क्या अय 'बिस्मिल'
कंधे पै हवाके है मकाने हस्ती !!'

और हम हैं कि बालूकी इस भीतको संगमरमरकी चट्टान मान बैठे हैं !

× × ×

हम ऊपर-ऊपरसे न जाने कितनी बार कहते हैं—

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।'

पर भीतर-भीतर हम मानते हैं इसका ठीक उलटा, अर्थात्

'जगत् सत्यं ब्रह्म मिथ्या।'

× × ×

सोचनेकी बात है कि सत्य क्या है ?

स्पष्ट है कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य वह, जिसका कभी नाश न हो।

असत्य वह, जो आज है, कल नहीं।

आत्मा सत्य है। उसका कभी नाश नहीं होता।

शरीर असत्य है। आज है, कल नहीं। आज जैसा है, कल वैसा नहीं। आज स्वस्थ है, कल अस्वस्थ। आज हट्टा-कट्टा है, कल रोगी और बीमार। आज बालक है, कल जवान। आज प्रौढ़ है, कल बूढ़ा। उसमें रोज परिवर्तन होता है। उसकी हालत पल-पल बदलती रहती है। तब उसे सत्य माना ही कैसे जा सकता है ?

× × ×

गीता कहती है—

'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।'

मोह कब होता है ?

जब ज्ञानपर अज्ञानका पर्दा पड़ जाता है।

और ज्ञान क्या है ?

जो अज्ञान नहीं, वह ज्ञान।

सत्यको सत्य जानना ज्ञान।

पर अज्ञान क्या है ?

असत्यको सत्य जानना अज्ञान।

जो जैसा है, जो है, वही दीखे तो ज्ञान।

जो जैसा है, जो है, वैसा न दीखे तो अज्ञान।

× × ×

रस्सी, रस्सी दीखे तो ज्ञान।

रस्सी सर्प दीखे तो अज्ञान।

यथार्थ स्वरूप दीखे तो ज्ञान।

अयथार्थ स्वरूप दीखे तो अज्ञान।

× × ×

अज्ञानके भेद अनन्त हैं।

उसकी श्रेणियाँ अनेक हैं।

जो 'मैं' है, उसे 'मैं' न मानना अज्ञान।

जो 'मैं' नहीं है, उसे 'मैं' मानना अज्ञान।

जो अपना स्वरूप है, उसे अपना स्वरूप न मानना अज्ञान।

जो अपना स्वरूप नहीं है, उसे अपना स्वरूप मानना अज्ञान।

× × ×

जो स्वभावतः पवित्र है, उसे अपवित्र मानना अज्ञान।

जो स्वभावतः अपवित्र है, उसे पवित्र मानना अज्ञान।

जो अजन्मा है, उसे मरणशील मानना अज्ञान।

जो मरणशील है, उसे अजर-अमर मानना अज्ञान।

जो सदा आनन्दरूप है, उसे दुःख-शोकमय मानना अज्ञान।

जो सदा दुःखरूप है, उसे आनन्दरूप मानना अज्ञान।

× × ×

शरीर 'मैं' नहीं है।

'मेरा शरीर' कहनेवाला शरीरसे भिन्न है ही।

शरीर स्वभावतः अपवित्र ठहरा।

चाहे जितना धोओ, मनों ही नहीं, टनों साबुन रगड़ डालो, उसकी अपवित्रता मिटनेवाली नहीं।

शरीर पैदा होनेवाला है, मरनेवाला है, निरन्तर क्षयशील है।

शरीर सदा दुःखरूप है। जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधिसे कभी भी उसका छुटकारा नहीं।

× × ×

और आत्मा ?

आत्मा ठहरा स्वभावतः पवित्र।

आत्मा ठहरा अजर-अमर।

आत्मा ठहरा सदा आनन्द-स्वरूप।

आत्मा ठहरा सदा निर्विकार।

आत्मा ठहरा सत्, चित्, आनन्द।

और 'सोऽहम्'।

वही 'मैं' हूँ।

वही है मेरा यथार्थ स्वरूप।

इस मूल तत्त्वको जानना है ज्ञान।

इसके विपरीत जो है सो सब अज्ञान।

× × ×

और जो आत्मा एक शरीरमें है, वही दूसरेमें। जो पण्डितमें वही चाण्डालमें, जो छोटेमें वही बड़ेमें, जो पशुमें वही पक्षीमें। प्राणिमात्रमें, घट-घटमें वही आत्मा प्रकाशित हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

(कठ० २।२।९)

ये नाम-रूपके भेद अस्थायी हैं। भीतर तो सर्वत्र एक ही आत्मा लहरा रहा है।

समुद्रमें नाना तरंगें उठती हैं, थोड़ी देर अठखेलियाँ करती हैं, फिर उसीमें विलीन हो जाती हैं। जो वस्तु जहाँसे उठी, वहीं समा गयी।

अब इस उठनेमें क्या खुशी ? इस मिटनेमें क्या गम ?

इसके लिये क्या बाजा बजाना और क्या खोपड़ी पीटना।

× × ×

नश्वर शरीर टिकनेवाला नहीं।

इस नश्वर शरीरके भीतर रमनेवाला अनश्वर आत्मा कभी मरता नहीं।

× × ×

और परिवार ?

उसका भी मोह कबतक ?

'पलभर पहले जो कहता था, यह तन मेरा यह घर मेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥'

जबतक हमसे परिवारका स्वार्थ सधता है, तभीतक तो उससे हमारा सम्बन्ध है। स्वार्थ टूटा, शरीर छूटा कि सब खतम। फिर तो—

माता कहे यह पुत्र हमारा बहिन कहे बिर मेरा।
भाई कहे यह भुजा हमारी नारि कहे नर मेरा॥
माथा पकरिके माता रोवै भुजा पकरिके भाई।
लपटि झपटिके तिरिया रोवै हंस अकेला जाई॥

× × ×

मरनेपर तो परिवारका सम्बन्ध छूटता ही है, जीते-जी भी ऐसे मौके आ जाते हैं। स्वार्थ न सधनेपर 'अपने' 'अपने' नहीं रह जाते। निखट्टू पतिको बीबी जूते मारकर निकाल देती है। भाई ठोकर लगाकर चल देता है। बेटा घृणासे मुँह बिचकाकर अपना रास्ता पकड़ता है और बूढ़े अपाहिज माता-पिताकी नाकद्री तो घर-घर देखी जा सकती है। जिन बाल-बच्चोंके लिये असंख्य कष्ट भोगे, वे ही लड़के-बाले, वे ही नाती-पोते पास नहीं फटकते, बात नहीं पूछते, सेवा करना तो दरकिनार।

फिर भी हम हैं जो परिवारके मोहमें बावले बने घूमा करते हैं।

× × ×

इस जगत्में कुछ भी तो टिकनेवाला नहीं।

न रहेगा शरीर।

न रहेगा परिवार।

न रहेगा नाम।

न रहेगा धन।

न रहेगी सम्पत्ति।

न रहेगा मान-सम्मान।

न रहेगा पद-गौरव।

न रहेगी शान-शौकत।

न रहेगा जगत्।

न रहेंगे जगत्के प्राणि-पदार्थ।

तब किसका मोह ? किसका शोक ?

श्रीशंकराचार्यने तभी तो कहा है—

मा कुरु धनजनयौवनगर्वं
हरति निमेषात् कालः सर्वम्॥

झोंका जो कभी मौतका आया 'बिस्मिल'
गुल हो गया दम भरमें चरागे हस्ती।

× × ×

कालचक्र पलभरमें सब कुछ साफ कर देता है।

आग लगती है और देखते-देखते उसकी लपटोंमें सर्वस्व स्वाहा हो जाता है।

बाढ़ आती है और सबपर पानी फेर देती है।

भूकम्प आता है और सब कुछ धूलमें लोटने लगता है।

बुढ़ापा आता है और आदमी कलेजा मसोसकर कह उठता है—

'मये रंगीं था सादा पानी भी,
हाय क्या चीज थी जवानी भी!'

रोग आता है और हट्टे-कट्टे शरीरको खोखला बनाकर चल देता है।

परिस्थितियाँ बिगड़ती हैं और लक्ष्मी महारानी रूठकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चल देती हैं दूसरेके घर।

'पुरुष पुरातनकी बधू क्यों न चञ्चला होय।'

उन्हें सवारी करनेको दूसरा 'उल्लू' मिल जाता है।

हम कलेजा पीटकर रह जाते हैं—हाय, हाय!

मेरा लाखका घर खाक हो गया।

× × ×

और नाम! कितना थोथा है नामका मोह।

लोग कहते हैं—***'नाम काल नहिं खाय।'***

पर कितना भ्रामक है ऐसा सोचना!

कितने लोग आपका नाम जानते हैं?

कितने दिन टिकते हैं, वे अखबार जिनमें आपका नाम छपता है?

कितने दिन चलती हैं वे किताबें, जिनमें आपका नाम छपा रहता है?

कितने दिन टिकते हैं वे मन्दिर और मठ, कुण्ड और तालाब, विद्यालय और धर्मशाला, शिलालेख और स्मारक, जिनपर आपके नामका पत्थर लगा रहता है?

कितने दिन चलता है वह फिल्म, जिसके पर्देपर आपका नाम लिखा रहता है?

× × ×

और मान लीजिये—मरनेके बाद भी कुछ दिनतक आपका नाम चला तो इससे आपको क्या लाभ? मरकर आप उसे देखने आते हैं? जीते-जागते आपने बड़ा नाम कर लिया। सैकड़ों, हजारों, लाखों, करोड़ों लोगोंने आपको जान ही लिया तो उससे क्या हो गया? आपसे भी प्रतापी, आपसे भी नामवर लोग क्या इस संसारमें नहीं हो गये? कौन जानता है आज उन्हें?

सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बली ते।
'हम' 'हम' करि धन धान सँवारे अंत चले उठि रीते॥

आखिर तो जाना खाली ही हाथ है—

'सिकंदर जब चला दुनियासे दोनों हाथ खाली थे?'

और तभी तो भावुक हृदयकी पुकार है—

'नश्वर स्वरसे कैसे गाऊँ, आज अनश्वर गीत?'

× × ×

बल हो शक्ति हो, रुपया हो पैसा हो, जर हो जमीन हो, स्त्री हो पुत्र हो, भाई हो बन्धु हो, मित्र हो सगा-सम्बन्धी हो, नाम हो यश हो, पद हो प्रतिष्ठा हो—कुछ भी हो, इसमेंसे टिकनेवाला कुछ नहीं। जगत्के प्राणि-पदार्थोंमें, जगत्की वस्तुओंमें शाश्वत कुछ है ही नहीं। यह तो रेलवेका मुसाफिरखाना है। मौतकी ट्रेन आयी कि सारा खेल खतम।

यह सब बादलकी छाया है। मृगतृष्णाका जल है। नदी-नाव-संयोग है।

'अबके बिछुरे कब मिलेंगे?'—कौन जाने।

× × ×

दुनियाका यह तमाशा पलभरका है।

इसमें सत्य है केवल ईश्वर।

टिकनेवाला है केवल ब्रह्म।

और तभी तो कहा गया है—**'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।'**

× × ×

आप कहेंगे कि यह माना कि—

(१) जगत् नश्वर है।

(२) जगत्के प्राणि-पदार्थ नश्वर हैं।

(३) शरीर और है, आत्मा और।

पर हम करें क्या? मोहसे हम छुटकारा पायें कैसे?

× × ×

उपाय उसका भी है।

वह क्या?

तुलसीबाबाके शब्दोंमें वह है—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किएँ जोग तप ग्यान बिरागा॥

× × ×

मोह-निवारणके लिये सत्संग करना चाहिये।

संतोंका, सज्जनोंका, सद्ग्रन्थोंका संग करना चाहिये।

चिन्तन और मनन करना चाहिये।

जगत्की नश्वरता, आत्माकी अमरताके तथ्यपर इतना मनन करना चाहिये कि ये तथ्य हमारे हृदयमें पक्के तौरपर धँस जायँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर, एक-दो दिनमें ऐसा होनेवाला है नहीं।

तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहुकाल करिअ सतसंगा॥

× × ×

यह तो हुआ विचार।

अब आचार क्या हो?

विचार और आचार—दोनों मिलकर ही जीवनशास्त्र बनता है।

आचारसे ही जीवनशास्त्रमें पूर्णता आती है।

× × ×

मोह-निरसनके लिये हमारे आचारमें होनी चाहिये—अनासक्ति, निष्कामता और स्थितप्रज्ञता।

जगत्‌के किसी भी पदार्थमें हम आसक्त न हों।

जगत्‌के किसी प्राणीमें हम आसक्त न हों।

अपने कर्तव्यका हम निष्काम-भावसे पालन करते रहें। और फिर—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

अथवा—

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः॥

प्रभु जो दे दें, उसीमें हम खुश रहें।

× × ×

मालिककी ही तो सारी सृष्टि है—

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।

मालिक जो दे दे हमें स्वीकार।

'राजी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रजा है।
याँ यों भी वाहवा है ओ वों भी वाहवा है।'
'मालिक जो ले ले, लौटा ले हमें मंजूर।'
'तेरा तुझको सौंपते क्या लागै है मोर?'

× × ×

शरीर हो, परिवार हो, बल हो, स्वास्थ्य हो, विद्या हो, बुद्धि हो, रुपया हो, पैसा हो, नाम हो, यश हो, पुत्र हो, स्त्री हो, पद हो, प्रतिष्ठा हो—है तो सब तेरा ही। मेरा इसमें क्या है?

तू देता है तो ठीक।

तू लेता है तो ठीक।

तू देकर छीन लेता है तो ठीक।

मोह तो तभी न होता है जब हम मालिककी इन चीजोंको 'अपनी' मान बैठते हैं।

'यह सारा खेल मालिकका है'—यह भाव आया कि मोह भागा, ममता गयी, आसक्तिसे पाला छूटा। फिर तो हम रात-दिन आनन्दसागरमें ही मस्तीसे डुबकियाँ लगाते रहेंगे। हमारा रोम-रोम पुकारेगा—

'डूबनेका खौफ हमको हो तो फिर क्या खाक हो।
हम तेरे, किश्ती तेरी, साहिल तेरा, दरिया तेरा॥'

करने योग्य

छः वेगोंका दमन करो—

वाणीका वेग, मनका वेग, क्रोधका वेग, उदरका वेग, उपस्थका वेग और जिह्वाका वेग। इन छः दुर्निवार वेगोंका दमन करनेवाला सम्पूर्ण पृथ्वीपर शासन कर सकता है।

छः बातोंका त्याग करो—

अधिक आहार, व्यर्थ कार्य, व्यर्थ अधिक बोलना, भजनके नियमका त्याग, विषयीजनोंका सङ्ग और विषय-लालसा। ये छः भक्तिमें बाधा देनेवाले हैं। इनके रहते भजनमें प्रेम नहीं होता। जो इनका त्याग करता है, वह भक्ति प्राप्त करता है।

छः बातोंको ग्रहण करो—

भजनमें उत्साह, दृढ़ निश्चय, धैर्य, भजनमें प्रवृत्ति, बुरे संगका सर्वथा त्याग और साधुके आचरण—ये छः कर्तव्य हैं। इनके पालनसे बहुत शीघ्र भक्तिकी कृपा प्राप्त होती है। (श्रीरूपगोस्वामी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाप और पुण्यकी कमाई

(डॉ॰ श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्॰ए॰, पी-एच्॰डी॰)

रमन्तां पुण्या लक्ष्मीः ।

(अथर्ववेद ७।११५।४)

अर्थात् ईमानदारीसे कमाया धन ही मनुष्यके पास ठहरता है। बेईमानीकी कमाईसे कोई फलता-फूलता नहीं।

'देवो देवेषु वनते हि वार्यं ।'

(ऋग्वेद ६।११२)

धन उन्हींके पास ठहरता है, जो सद्गुणी हैं। दुर्गुणीकी विपुल सम्पदा भी स्वल्प-कालमें नष्ट हो जाती है।

मैं उपर्युक्त दो सूक्तियोंपर विचार कर रहा था कि अचानक मन पुरानी अनुभूतियों और विगत स्मृतियोंसे भर गया। एक-एककर स्मृति-पटलपर विभिन्न चित्र तेजीसे घूमने लगे। बड़े-बड़े अफसरोंके चित्र, गरीबोंके कुशाग्रबुद्धि बालकोंके चित्र, विपुल सम्पदाके स्वामियोंके चित्र जो आज इस संसारमें कुछ नहीं, केवल अपनी यादगार मात्र छोड़ गये हैं। मेरे सामने ये चित्र बोलने लगे हैं और अपनी-अपनी कहानियाँ कहनेको आतुर हो गये हैं। तो लीजिये इनकी सच्ची कहानियाँ सुनिये—

ये पहले व्यक्ति सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलिस हैं। मोटी तनख्वाह, आलीशान जीवन, घरमें पुलिस-विभागके अनेक मुफ्तमें आये हुए नौकर, घरकी मोटर, बढ़िया कपड़े। चारों ओर अमीरीके ठाट-बाट हैं। रंगीन जीवन है, घर जाइये, तो जैसे आप किसी छोटे-मोटे राजाके यहाँ ही आ गये। वह खातिर होती कि क्या कोई जागीरदार करेगा। सरकारसे छः-सात सौ रुपये वेतन मिलता होगा, पर ठाट ऐसे कि डेढ़ हजार व्यय करें। शराब और मांसका दौरदौरा, वेश्याके नृत्य भी। शहरमें उनकी वह धाक हुई कि क्या कहें। लोग कहते, 'बड़े ऊँचे तबकेके अफसर हैं। क्या शानसे रहते हैं। खूब खाते-पीते हैं।' सुपरिंटेंडेंट साहबके एकमात्र इकलौता पुत्र है, जो कॉलेजमें अमीरीके ठाट-बाटसे आता है, मोटरके बिना धरतीपर पाँव नहीं रखता। पढ़नेमें मन्दबुद्धि है, पर अध्यापक लोग उसकी वह इज्जत करते हैं, जो किसी राजकुमारकी करते होंगे। अभिनय, संगीत और नाटकमें इस लड़केको सर्वाधिक दिलचस्पी है। कॉलेजमें ड्रामा-विभाग सारा उसीके बलबूतेपर चलता है। वह स्वयं अभिनय भी करता है, मित्रमण्डलीको खूब खिलाता भी है। एक ओर हम हैं जो एक मामूली अध्यापकके पुत्र हैं, हमारी पासवाली सीटपर बैठे हैं, सुपरिंटेंडेंट साहबके कुँवर साहब। उनका नौकर बाहर बैठा है टिफिन लिये। किसीको उनसे बात करनेकी आज्ञा नहीं है, क्योंकि उनके बढ़िया सूटके खराब हो जानेका डर है। हम सब कक्षामें हैरत और आश्चर्यसे उनकी अमीरीको देखते और मन-ही-मन ईर्ष्या करते। दिन-रात पढ़कर हम उत्तीर्ण होते, जब कि वह लड़का न पढ़नेपर भी उठते-उठते मैट्रिकमें आ गया। बड़ी शानसे एक लखपति (या शायद करोड़पति) की कन्यासे उसका विवाह हुआ। विवाहमें अनेक बहुमूल्य हीरे-जवाहिरात दहेजरूपमें मिले।

अब उनके ठाटके क्या कहने। मित्रोंको दावतें, सैर-सिनेमा, मिष्टान्न। उनकी पढ़ाई-लिखाई मैट्रिकसे ही छूट गयी। पिता पुलिसके ऊँचे अफसर थे। उनके प्रभावसे थानेदार बन गये। थानेदारीमें वेतन सौके लगभग पर खर्च पाँच सौ रुपये। लोगोंको आश्चर्य होता कि यह सब कैसे आता है ? फिर उनके पिताजीकी मृत्यु हुई। जिंदगीने पलटा खाया। हाथ तंग होने लगा। विलास, पाप और फजूलखर्चीसे तो कारूँका खजाना भी खाली हो जाता है। उनके पिताकी सम्पत्ति उड़ने लगी।

आज उन सज्जनकी हालत यह है कि घरके सब मकान-जायदाद बिक चुकी है। फटे हाल, शराबकी दूकानोंके आगे टहलते नजर आते हैं। पत्नी, जिनके पास चार कन्याओंका बोझ है, उनसे पृथक् रहती है। उनपर मक्खियाँ भिनकती हैं। यदि किसी पुराने सहपाठीसे मिल जाते हैं तो शराबके लिये दो रुपये उधार माँगते हैं। सभी उनसे कतराते हैं। तन ढकनेतकके लिये उनके पास वस्त्र नहीं है। मैं जब कभी उन्हें देखता हूँ, उनके पिताजीके समयसे आजतकका उनका पूरा जीवन सिनेमाके फिल्मकी तरह मनोजगत्पर घूम उठता है।

दुर्गुण और गरीबीका कैसा निकट सम्बन्ध है, यह उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनसे स्पष्ट है। लक्ष्मी चञ्चला है सही, पर वह सद्गुण, संयम, उदारता, प्रेम और शीलमें ही निवास करती है। यदि हममें दुर्गुण हैं, विलास-व्यभिचार-व्यसन हैं तो वही लक्ष्मी हमारे पतनका कारण बन जाती है। इसीलिये अथर्ववेदमें प्रार्थना की गयी है—

या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टा-
भिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम्।
अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा
हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः॥

(अथर्व० ७।११५।२)

अर्थात् हे जगदीश्वर ! मेरे पास जो ऐसी लक्ष्मी पड़ी हुई है जो कि 'अजुष्टा' है, जो सेवित नहीं होती, जो किसीकी प्रीतिमय सेवामें नहीं आती, वह किस कामकी है ? वह लक्ष्मी 'लक्ष्मी' नहीं है। वह लक्ष्मी दुराचार बढ़ानेका कारण होती है। 'अजुष्टा' लक्ष्मी पतनका भारी प्रलोभन होती है। ऐसा धन बुरे कार्योंमें ही बरबाद हुआ करता है और मनुष्यको नीचे गिरा देता है। ऐसी लक्ष्मीको मैं मोहके मारे त्यागता (परहितमें दे देता) भी नहीं हूँ और उस सबका स्वयं उपयोग भी नहीं कर सकता हूँ। इसलिये वह या तो बुरे काममें पतित हो जाती है या यों ही सड़कर नष्ट हो जाती है। पर सबसे बुरी बात तो यह है कि वह मेरी ऐसी 'लक्ष्मी' मुझसे चिपटी हुई, हर तरह मुझे ही बरबाद करती है, मेरे जीवन-रसको चूसती है। अतः हे मेरे प्रेरक प्रभु ! मुझमें ऐसी हिम्मत दो कि मैं उस लक्ष्मीको—इससे पहले कि वह पतित होने लगे और मुझे विनष्ट करने लगे—अन्यत्र धारित कर दूँ—किसी अच्छे कार्यमें लगा दूँ, उसे अपनेपर लादे न रखूँ। हे सवितः ! तुम ही उस दुर्लक्ष्मीको यहाँसे तो हटा दो। यह 'लक्ष्मी' नहीं है, किंतु वह मेरे लिये विनाशक, शापरूप है। वह मुझपर मोहद्वारा चिपटी हुई केवल मेरे जीवन-रसको सुखा रही है, जैसे वन्दना बेल जिस वृक्षपर लगती है उस वृक्षको बिलकुल सुखा देती है, वैसे ही यह 'अजुष्टा' लक्ष्मी मुझे घेरे हुए है, मेरा विनाश कर डालनेके लिये मुझे आच्छादित किये हुए है। हे प्रभो ! तुम इससे मुझे छुड़ाओ। मेरे मोहको भङ्ग करके इसे यहाँसे हटानेका मुझे सामर्थ्य दो, नहीं तो, यह 'अजुष्टा' लक्ष्मी मुझे चूसकर खतम कर रही है—मेरी उन्नतिको रोक रही है, मेरे आत्मतेजको हरती जा रही है।

'हे प्रेरक ! मेरी प्रार्थना है कि आगेसे ऐसा धन तो मेरे पास आने ही न पाये। मुझे तुम बहुत ही थोड़ा-सा धन देना, पर वह धन चमकता हुआ, तेजस्वी, निष्कलङ्क हो, हिरण्य हो, हितरमण हो। वह धन सर्वांशमें उपयोगी हो, उसका एक-एक अंश मेरे तेज, मेरे आत्मवीर्यका बढ़ानेवाला हो। तुम्हारे 'हिरण्यहस्त' से ही अब मैं धन चाहता हूँ। तुम्हारे चमकते हुए 'हिरण्यहस्त' से अब मुझे सदा ऐसा तेजस्वी धन मिलता रहे, जिसका कि एक-एक कण मेरे आत्मतेजको बढ़ानेमें व्यय हो तथा वह अन्यत्र भी जहाँ जाय, वहाँ मनुष्योंके तेजके बढ़ानेमें ही उपयुक्त हो।'

हमारे यहाँ एक क्लर्क थे, मुश्किलसे ४५/-६०/- रुपये मासिक पाते होंगे। उनके चार पुत्र और एक कन्या थी। एक अँधेरे-से आधे कच्चे, आधे पक्के मकानमें रहते थे। आज हमारे मुहल्लेमें उनका वह पुराना मकान भर है। मुझे स्मरण है उनका पूरा जीवन बड़ी गरीबीमें बीता। अपने लड़कोंको पुस्तकें भी वे मुश्किलसे खरीदकर देते रहे। उनकी फीसें माफ रहीं। आज वे तो मर चुके हैं, पर उनका एक पुत्र इंजीनियर है, एक उच्चतम सरकारी अफसर है, एक इंगलैंड रिटर्न्ड प्रोफेसर है और एक अध्यापक। सब बच्चे फल-फूल रहे हैं और समाजमें बहुत ऊँचा स्थान बना ले गये हैं। उन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि ये दीन-हीन गरीब क्लर्कके पुत्र हैं। उनकी थोड़ी-सी पुण्यकी कमाईमें ऐसी बरकत हुई कि वह चौगुनी-अठगुनी होकर फूली-फली है।

एक बारकी बात है कि मेरे पूज्य पिताजी, जिनकी आयु सत्तरके लगभग है, अपनी मासिक पेंशन बैंकसे लेकर लौट रहे थे। घर आये, तो मालूम हुआ कि वह पेंशनके पैसे पेंटकी जेबमेंसे रूमाल निकालते हुए कहीं बाजारमें ही गिर गये हैं। उनके मानसिक दुःखका क्या पूछना। बस, घर आये और अधमरे-से हो गये। चारपाईपर पड़ गये, खाँसी और बुखार शुरू हो गया। कुछ घंटोंमें ही वे ऐसे बीमार हो गये जैसे महीनोंके बीमार हों। वे पेशेसे अध्यापक रहे हैं और पुण्यकी कमाईमें अखण्ड विश्वास रखते हैं। वे सोच रहे थे—'मैंने कभी जीवनभर अधर्मका एक पैसा नहीं लिया, हे भगवन् ! फिर यह हानि क्यों हुई।' इसी प्रकार तीन दिन व्यतीत हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं कॉलेजमें था। घर आया तो मालूम हुआ कि थानेसे टेलीफोन आया था कि 'आपके खोये हुए रुपये मिल गये हैं। आकर ले जाइये।' बड़ा आश्चर्य हुआ। थानेमें पता चला कि बैंकके आगे लिफाफेमें रखे हुए ये रुपये मिले हैं। पुराना लिफाफा था। पर उसपर पिताजीका नाम लिखा था। पानेवालेने वे रुपये मय लिफाफेके थानेमें पहुँचाये। वहाँ उसपर लिखे पतेकी सहायतासे हमारा पता लगा और तीन दिन बाद पुण्यकी कमाईके वे रुपये मिल गये।

इसी प्रकारकी अनेक घटनाएँ हमारे समाजमें दिन-रात होती रहती हैं। इनसे स्पष्ट होता है कि यह रुपया, जो पापसे कमाया जाता है, बहुत जल्दी नष्ट होता है और प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष मार्गोंसे अपने-आप निकल जाता है। यदि इस पीढ़ीमें नहीं तो अगली पीढ़ीमें तो निश्चय ही समाप्त हो जाता है। पापकी कमाई कभी फूलती-फलती नहीं। पुण्यका हर पैसा बहुत बल रखता है। पुण्यात्मा अपने सामने और मरनेके उपरान्त भी फूलता-फलता ही रहता है। पुण्यकी जड़ हमेशा हरी रहती है। पापसे (रिश्वत, काला बाजार, धोखेबाजी, मिलावट, भ्रष्टाचार, बरबस हड़पने) कमाया हुआ धन मनुष्यके पास ठहरता नहीं। वह घरकी पूँजीको भी ले जाकर कंगाल बनाकर छोड़ जाता है। वेश्याओंकी कमाई बहुत अधिक होती है। पर क्या आपने कभी किसी वेश्याको स्थायीरूपसे समृद्धिशालिनी देखा है? एक हाथ आती है तो वह पापकी कमाई दूसरी ओरको निकल जाती है। उससे क्षणिक प्रकाश और टीपटाप भले ही दिखायी दे जाय, पर जैसे तीव्र प्रकाशके बाद घनघोर अन्धकार छा जाता है, उसी प्रकार वह कमाई क्षणमात्रमें उड़ जाती है। चोर-डाकुओं, हत्यारों, जेबकटोंकी कमाईका क्या ठिकाना? उनकी पापकी कमाई शराब, विलास और गंदे कार्योंमें नष्ट होती है। चोरके छप्परपर फूसतक नहीं रहता। इसी प्रकार अनीति, झूठ, फरेब और बेईमानीसे धन कमानेवाले गरीब-के-गरीब ही बने रहते हैं। यही ईश्वरकी सृष्टिका नैतिक विधान है। यह ईश्वरीय न्याय अटल और शाश्वत है।

पुण्यकी कमाईके साथ दैवी अणु-परमाणु जुड़े हुए हैं। इनसे दिव्य वातावरणका निर्माण होता है। ये अणु-परमाणु बड़ी तीव्रतासे मनुष्यके चारों ओर परिक्रमा किया करते हैं। इन परमाणुओंके मध्यमें ईश्वरीय शक्ति विद्यमान रहती है। यह तत्त्व बड़ा शक्तिमान् है। जर्मनीके विख्यात दार्शनिक कांट महाशयने इस नैतिक नियमको अकाट्य और शाश्वत कहा है। जो भी इस नैतिक विधानके विरुद्ध जाते हैं, वे ईश्वरीय दण्ड पाते हैं। मनुष्यकी जब विवेक-बुद्धि विपरीत होती है, तब वह विचारशून्य हो मनमाना काम करता है, उनके नियमोंको तोड़ता है, पर उसे मानसिक शान्ति नहीं मिलती, आत्मसंतोष प्राप्त नहीं होता।

प्रो० लालजीराम शुक्लके शब्दोंमें, 'यह नैतिक नियम एक वास्तविक तथ्य है। यह नियम विवेकपूर्ण है। मनुष्य जैसा है, वैसा ही वह अपने संसारको भी देखता है। जिन व्यक्तियोंका विवेक जाग्रत् नहीं होता, वे न तो संसारमें किसी नियमको कार्यान्वित होते हुए देखते हैं और न अपने जीवनकी घटनाओंमें। वे केवल घटनाओंको देखते हैं और उनसे सुखी अथवा दुःखी होते हैं, परंतु नियमको न जाननेके कारण बार-बार उन्हीं भूलोंको करते रहते हैं। उन्हें सुधारनेके लिये प्रकृति उन्हें दण्ड देती है। अन्तर्जगत्में कार्य करनेवाला यह नैतिक नियम अकाट्य है।'

हमारी कमाईके पीछे-पीछे जो आध्यात्मिक नियम कार्य करता है, उसे हमें समझना चाहिये। सम्भव है ईमानदार आदमी प्रत्यक्षरूपसे कुछ निर्धन प्रतीत हो, पर अन्ततः वह घाटेमें नहीं रहता। उसे गुप्तरूपसे ईश्वरीय पूँजी प्राप्त होती रहती है, जो उसकी थोड़ी-सी आयसे मिलकर बड़ा भारी आकार ग्रहण कर लेती है।

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चले जीवितमन्दिरे।
चलाचले तु संसारे धर्म एको हि निश्चलः॥

(चाणक्य)

'न तो लक्ष्मी सदा रहनेवाली है, न प्राण, जीवन और घर-द्वार। चलाचलीके इस डेरे—संसारमें केवल एक धर्म ही सदा रहनेवाली वस्तु है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त किशनसिंहजी

भक्तगाथा—

बीकानेर-राज्यान्तर्गत गारबदेसर एक ताजीमी ठिकाना है। भक्त किशनसिंहजी वहींके ठाकुर थे। उनका गोलोकवास हुए सौ वर्षसे भी अधिक समय हो गया है। ठाकुर साहब श्रीमुरलीधरजीके बड़े भक्त थे। जनतामें प्रसिद्धि है कि उनको प्रत्येक दिन पूजनके पश्चात् सवा मासा सोना भगवान्‌से मिला करता था और वे उस सोनेको नित्य ब्राह्मणोंको दान कर दिया करते थे। अद्यावधि मूर्तिके अधरोष्ठपर सोनेका चिह्न है। एक दिन ठकुरानी साहिबाने हठ करके सोना अपने पास रख लिया, उसके बाद मूर्तिद्वारा सोना प्राप्त नहीं हुआ। ऐसी ही अनेक बातें उनके सम्बन्धमें जनताद्वारा सुननेमें आती हैं। उनमेंसे कुछका पाठकोंको परिचय कराया जाता है। सम्भव है कि आजकलके वैज्ञानिक विद्वान् इन बातोंपर विश्वास न करें, परंतु जो भगवान्‌के भक्त हैं उनके हृदयमें इनका अक्षर-अक्षर प्रेम और भक्तिका उद्रेक उत्पन्न किये बिना न रहेगा, क्योंकि भगवत्प्रभावकी ये बातें जितनी भक्तलोग समझते हैं,उतनी और कोई नहीं। अस्तु !

ठाकुर साहब ईश्वरकी शपथका बहुत मान रखते थे, यहाँतक कि कई बार दुष्ट प्रकृतिवालोंने उनको शपथ दिलाकर धोखा देनेका भी प्रयत्न किया था।

एक बार कुछ चोरोंने उनको यह शपथ दिला दी थी कि 'ठाकुर साहब हम ऊँटोंको ले जाते हैं यदि आपने किसीसे कहा तो आपको भगवान्‌की आन (शपथ) है।' ठाकुर साहबने किसीसे नहीं कहा, परंतु चोर ऊँटोंको रात्रिभर दौड़ाकर सबेरे उसी गाँवके पास वापस आ गये। प्रातःकाल चोरोंने पूछा कि यह कौन-सा गाँव है ? लोगोंद्वारा गारबदेसर सुनकर उनको बहुत ही आश्चर्य हुआ और पकड़े जानेके भयसे वे भयभीत होकर ऊँटोंको वहीं छोड़कर भाग गये।

एक बार गारबदेसरके चारों ओर सभी जगह वर्षा हो गयी थी, परंतु वहाँ एक बूँद भी नहीं पड़ी। इससे ठाकुर साहबने कहा कि—

सो कोसाँ बिजली खिंवें, यामें कौन संदेह।
किसनाकी तृसना मिटे, जो आँगन बरसे मेह॥

भगवान्‌ने उनकी प्रार्थनापर तुरंत ध्यान दिया। उसी समय बादलोंकी घटा छा गयी और अच्छी वर्षा हुई।

ठाकुर साहब जागीरदार होते हुए भी हमेशा काठकी तलवार ही म्यानमें रखा करते थे। एक बार किसी चुगलखोरने बीकानेर नरेशसे कह दिया कि गारबके ठाकुर समयपर क्या काम आयेंगे, वे तो काठकी तलवार लटकाये रहते हैं। इसपर दशहरेके उत्सवमें, जब कि सभी जागीरदार मौजूद थे, महाराजा साहबने कोई प्रसङ्ग उठाकर सबको अपनी-अपनी तलवार दिखानेकी आज्ञा दी। सभीने अपनी-अपनी तलवारें निकाल लीं, परंतु ठाकुर साहब इतने डरे कि वे थर-थर काँपने लगे और मन-ही-मन ईश्वरसे प्रार्थना की—'हे भगवन् ! आज 'किशने' की इज्जत आपके ही हाथ है।' और डरते-डरते उन्होंने तलवारको म्यानसे निकाला, परंतु तलवारके निकालते ही राजसभामें तलवारकी चमकसे सबकी आँखोंमें चकाचौंध छा गयी। तब महाराजा साहबने उस चुगलखोरको बहुत ही बुरा-भला कहा। यह देखकर ठाकुर साहबने केवल इतना ही कहा कि 'इन्होंने तो सत्य ही कहा था, परंतु ईश्वरने इनको झूठा कर दिया है, इसमें इनका कुछ भी अपराध नहीं है !'

एक बार ठाकुर साहब किसी यात्रामें महाराजा साहबके साथ जा रहे थे। राहमें पूजाका समय हो जानेसे ठाकुर साहब कपड़ा ओढ़कर घोड़ेपर ही भगवान्‌की मानसिक पूजा करने लगे। पूजामें आप भगवान्‌को दहीका भोग लगानेकी तैयारी कर रहे थे, इसी बीचमें महाराजा साहबकी दृष्टि उधर पड़ गयी। महाराजा साहबने दो-तीन बार पुकारकर कहा—'किशनसिंह ! नींद ले रहे हो क्या ?' ठाकुर साहब पूजामें मग्न थे। उनको महाराजा साहबका पुकारना सुनायी ही नहीं पड़ा। इससे महाराजने रुष्ट होकर अपने घोड़ेको उनके घोड़ेके पास ले जाकर उनका कपड़ा खींचकर दूर कर दिया। फिर महाराजा साहबने उधर दृष्टि डाली तो उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ, क्योंकि घोड़ा और काठी सबपर दही-ही-दही फैला हुआ था। उन्होंने ठाकुर साहबसे पूछा—'किशनसिंह ! यह क्या है ?' कुछ समय तो ठाकुर साहब चुप रहे, परंतु महाराजा साहबके अधिक आग्रह करनेपर उन्होंने स्पष्ट बता दिया कि 'महाराज ! मैं मानसिक पूजनमें भगवान्‌को दहीका भोग लगा रहा था, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके वस्त्र खींचनेसे मैं चौंक उठा । अकस्मात् हिल जानेसे मेरा मानसदही गिर गया। वही दही भगवान्‌की लीलासे प्रत्यक्ष हो गया मालूम होता है।' यह सुनकर महाराजा साहबने गद्‌गद होकर उनसे कह दिया कि आप घर चले जायँ और भगवान्‌का भजन करें।

एक बार सरकारी बकाया देनेमें देरी होनेसे इनपर महाराजा साहबने रुष्ट होकर कहा—'किशनसिंह ! यह ठीक नहीं है, समयपर सरकारी लगान जमा हो जाना चाहिये।' ठाकुर साहबके मुँहसे निकल गया—'दीपावलीतक ठहरिये, आपके रुपये जमा करके ही मैं दीपावलीका पूजन करूँगा।' यों कहकर ठाकुर साहब घर लौट आये। परंतु समयपर रुपये इकट्ठे न हो सके। ठीक दीपावलीको संध्यातक उन्होंने इधर-उधरसे जुटाकर रुपये एकत्र किये। पूजन करनेका समय हो जानेसे भीतरसे आदमी बुलाने आया, पर वे बिना ही पूजन किये रुपये लेकर घोड़ेपर सवार हो गये और प्रातःकालतक साठ मील चलकर बीकानेर पहुँचे। महलमें उनको देखते ही महाराजा साहबने उनसे पूछा—'किशनसिंह ! तुम कल ही जानेवाले थे न ? क्या बात है ? गये कैसे नहीं ? रातको तुम्हारी तबीयत तो नहीं बिगड़ गयी ?' महाराजा साहबकी बातें सुनकर ठाकुर साहबने कहा—'अन्नदाताजी ! मैं तो अभी-अभी लगान जमा करनेके लिये सीधे गाँवसे चला आ रहा हूँ। मैं कल यहाँ था ही नहीं, आपको किसी दूसरेकी बातका ध्यान रह गया होगा।'

यह सुनकर महाराजा साहबने कहा—'तुम क्या कहते हो ? अभी रुपये जमा कराने आये हो ? रुपये तो तुमने कल ही जमा करा दिये थे।'

ठाकुर साहबने जवाब दिया कि 'नहीं अन्नदाता ! मैं तो कल गाँवमें ही था। आप यह क्या कह रहे हैं ?' अन्तमें महाराजा साहबने रोकड़में जमा किये हुए रुपये और उनके हस्ताक्षर दिखाये। उनको देखते ही ठाकुर साहबकी आँखें प्रेमाश्रुसे भर गयीं और उनके मुँहसे केवल इतना ही निकला—'हाँ, हस्ताक्षर तो मेरे-जैसे ही हैं।' ठाकुर साहब अपने भगवान्‌की लीलाको समझकर गद्‌गद हो गये। बीकानेरनरेश भी भक्तकी महिमा और भगवान्‌की भक्तवत्सलता देखकर मुग्ध हो गये।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !

प्रे०—पं० हरद्वारीलालजी शर्मा 'हिन्दी प्रभाकर'

सबमें स्थित भगवान्‌का तिरस्कार न करो !

भगवान् कपिलदेव माता देवहूतिजीसे कहते हैं—

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा। तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्॥
यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्। हित्वार्चां भजते मौढ्याद् भस्मन्येव जुहोति सः॥
द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः। भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति॥
अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयानघे। नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः॥

(श्रीमद्भा० ३। २९। २१-२४)

'मैं समस्त प्राणियोंमें उनकी आत्माके रूपसे सर्वदा स्थित रहता हूँ, मेरे उस स्वरूपका तिरस्कार करके मनुष्य पूजाकी विडम्बना करता है। जो समस्त प्राणियोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ ईश्वरको छोड़कर पूजा करता है, वह मूर्खतावश राखकी ढेरमें ही हवन करता है। जो एक शरीरमें अभिमान होनेके कारण अपनेको अलग समझता है और दूसरे शरीरमें स्थित मुझसे ही द्वेष करता है, प्राणियोंके प्रति वैर-भावना रखनेवाले उस पुरुषका मन कभी शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता। जो मनुष्य प्राणियोंका अपमान करता है, उसके द्वारा बहुत-सी सामग्रियोंसे किये हुए मेरे पूजनसे भी मैं प्रसन्न नहीं होता।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता-तत्त्व-चिन्तन

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गीतामें क्रिया, कर्म और भाव

कर्तृत्वभावेन सकामभावात्सर्वाः क्रिया बन्धनकारिकाश्च।
कर्तृत्वहीना अपि कामहीनाः सर्वाः क्रिया निष्फलतां प्रयान्ति॥

जड-(प्रकृति-)में केवल परिवर्तनरूप क्रिया है, कर्म नहीं और चेतन अक्रिय है अर्थात् उसमें न क्रिया है और न कर्म है। परंतु जब चेतन क्रियाशील प्रकृतिके साथ अपना सम्बन्ध जोड़कर उसकी क्रियाको अपनेमें आरोपित कर लेता है अर्थात् 'मैं करता हूँ'—ऐसा अहंकृतभाव कर लेता है (३।२७), तब प्रकृतिकी क्रिया इसके लिये कर्म बन जाती है, जो कि शुभ-अशुभ फल देनेवाली होती है। क्रिया कभी भी बाँधनेवाली नहीं होती, प्रत्युत अहंकृतभावपूर्वक किया हुआ कर्म ही बाँधनेवाला होता है। अतः गीतामें कहा गया है कि जिसमें अहंकृतभाव और फलेच्छा नहीं है, वह अगर सम्पूर्ण प्राणियोंको मार दे तो भी वह न मारता है और न बँधता ही है (१८।१७); क्योंकि उसके द्वारा केवल क्रिया होती है। जैसे, गङ्गाजीके द्वारा बहुतोंका पालन-पोषण होता है; ब्राह्मण, गायें आदि सब उसका जल पीते हैं, पर इससे गङ्गाजीको कोई पुण्य नहीं होता; और गङ्गाजीके प्रवाहमें बहुत-से जीव बह जाते हैं, मर जाते हैं, पर इससे गङ्गाजीको कोई पाप नहीं लगता। कारण कि गङ्गाजीमें 'मैं सबका पालन-पोषण करती हूँ' आदि अहंकृतभाव नहीं होता; अतः उनके द्वारा क्रियामात्र होती है, कर्म नहीं होता। सूर्यके प्रकाशमें वेदोंका पाठ होता है, यज्ञ आदि अनुष्ठान होते हैं तो सूर्य पुण्यका भागी नहीं होता; और सूर्यके प्रकाशमें कोई शिकारी पशुओंको मारता है तो सूर्य पापका भागी नहीं होता। कारण कि सूर्यमें 'मैं प्रकाश करता हूँ' ऐसा अहंकृतभाव न होनेसे उसके द्वारा केवल क्रिया होती है, कर्म नहीं होता। ऐसे ही संसारमें कई चोरियाँ होती हैं, डकैतियाँ होती हैं, हत्याएँ होती हैं, पर उनमें हमारा अनुमोदन न होनेसे, उनके साथ हमारा सम्बन्ध न होनेसे उनके द्वारा किये गये कर्म हमारे लिये क्रियामात्र होते हैं अर्थात् हमें बाँधनेवाले नहीं होते। इसी प्रकार हमारे शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदिके द्वारा जो क्रियाएँ होती हैं, उनमें अगर हमारा कर्तृत्वभाव और फलासक्ति नहीं है तो वे क्रियाएँ कर्म नहीं बनतीं, फलजनक नहीं बनतीं, जन्म-मरण देनेवाली नहीं बनतीं। परंतु उन्हीं क्रियाओंमें अगर हमारा कर्तृत्वभाव और फलासक्ति हो जाती है तो वे ही क्रियाएँ कर्म बन जाती हैं, बन्धनकारक बन जाती हैं (५।१२)।

मनुष्य बालकसे जवान होता है तो कोई पाप-पुण्य नहीं लगता, केवल क्रियामात्र होती है। शरीरमें प्राण, अपान आदिके द्वारा जो क्रियाएँ होती हैं, उनका कोई पाप-पुण्य नहीं लगता। इन्द्रियोंके द्वारा जो स्वतः-स्वाभाविक क्रियाएँ होती हैं, उनका भी हमें पाप-पुण्य नहीं लगता। परंतु जब हम उन क्रियाओंमें कर्तृत्वभाव कर लेते हैं, तब वे क्रियाएँ हमारे लिये कर्म बन जाती हैं। जैसे, श्वास लेना क्रिया है, पर कोई प्राणायाम करता है तो वह क्रिया उसके लिये कर्म बन जाती है, फलजनक हो जाती है (४।३०)।

वास्तवमें सभी क्रियाएँ प्रकृतिके द्वारा ही होती हैं, अर्थात् प्रकृतिमें ही होती हैं (१३।२९); सभी क्रियाएँ प्रकृतिके गुणोंद्वारा ही होती हैं (३।२७-२८);तथा सभी क्रियाएँ इन्द्रियोंके द्वारा ही होती हैं (५।९)। तात्पर्य है कि प्रकृति, प्रकृतिके कार्य गुण एवं गुणोंके कार्य इन्द्रियोंके द्वारा क्रियामात्र होती है, कर्म नहीं।

अठारहवें अध्यायके चौदहवें श्लोकमें कर्मोंकी सिद्धिमें अधिष्ठान, कर्ता आदि पाँच हेतु बताये गये हैं। उनमें जो कर्ता है, वह अहंकारसे मोहित अन्तःकरणवाला है। इसी कर्तासे कर्मसंग्रह बनता है अर्थात् बन्धनकारक कर्म बनते हैं। परंतु मनुष्य जहाँ अपनेको कर्ता नहीं मानता अर्थात् अपनेमें अकर्तापनका अनुभव करता है, वहाँ क्रियामात्र होती है, कर्म नहीं होता (१३।२९)।

कर्ताके भावके अनुसार ही क्रिया सात्त्विक, राजस और तामस कर्म बन जाती है अर्थात् कर्ता सात्त्विक होता है तो कर्म सात्त्विक बन जाता है; कर्ता राजस होता है तो कर्म राजस बन जाता है; और कर्ता तामस होता है तो कर्म तामस बन जाता है (१८।२३-२५)। परंतु जब मनुष्य तीनों गुणोंसे अतीत हो जाता है, तो फिर उसके द्वारा केवल क्रिया होती है, कर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होता।

हम जो कुछ देखते-सुनते हैं, उसमें अगर हमारी निर्लिप्तता है तो वह देखना-सुनना हमारे लिये क्रिया हो जाती है, जो कि बन्धनकारक नहीं होती। परंतु अगर हम रागपूर्वक देखते-सुनते हैं तो वह देखना-सुननारूप क्रिया हमारे लिये कर्म बन जाती है। यही बात सभी इन्द्रियोंकी क्रियाओंके विषयमें समझनी चाहिये।

कर्मयोगी साधक केवल लोकसंग्रहार्थ कर्म करता है, अपने लिये कुछ नहीं करता; अतः उसके द्वारा क्रियामात्र होती है, जो कि बन्धनसे मुक्त करनेवाली होती है (३।२०)।

ज्ञानयोगी साधक अपने-आपको अकर्ता अनुभव करता है; अतः उसके द्वारा क्रियामात्र होती है (१३।२९)।

भक्तियोगी साधक केवल भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही कर्म करता है (११।५५; १२।१०)। अतः उन क्रियाओंका भगवान्‌के साथ सम्बन्ध होनेसे वे क्रियाएँ कर्म नहीं बनतीं। इतना ही नहीं, उसकी क्रियाओंमें दिव्यता आ जाती है। वे क्रियाएँ दुनियाका हित करनेवाली हो जाती हैं।

ध्यानयोगी, लययोगी, हठयोगी आदि कोई भी साधक अगर प्रकृतिकी क्रियाओंके साथ अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ता तो उसके द्वारा क्रियामात्र होती है, कर्म नहीं होता।

तात्पर्य यह हुआ कि कर्मयोगीमें निष्कामभाव होनेसे, ज्ञानयोगीमें प्रकृति और उसके कार्यकी क्रियाओंसे अपनी पृथक्ताका भाव होनेसे एवं भक्तियोगीमें भगवान्‌की प्रसन्नताका भाव होनेसे उनके द्वारा क्रियामात्र होती है, कर्म नहीं होता। ज्ञानी महापुरुष भी जो कुछ करता है, उसको अपने शुद्ध (राग-द्वेषरहित) स्वभावके अनुसार ही करता है; अतः उसके द्वारा कर्म नहीं बनता, केवल चेष्टामात्र (क्रियामात्र) होती है (३।३३)।

पतित-पावनी गङ्गा

(डॉ॰ श्रीरामसेवकजी दुबे, एम्॰ एस्॰-सी॰, पी-एच्॰ डी॰)

इतिहास संस्कृतिको समेटे, युगोंसे हर बूँदमें,
इस भूमिका जो सृजन सिंचन अनवरत है कर रही।
मनुजताके उदयकी जो प्रथम-रश्मि-स्वरूपिणी,
धड़कन तुम्हीं हो आजतक इस देशकी मंदाकिनी॥

गङ्गा हमारे देशकी जीवित तुम्हीं प्रतिरूप हो,
पढ़ लें तुम्हें जो चाहते, क्या देशका प्रारूप हो।
तुम ही अनागत और गतका रच रही इतिहास हो,
सत कोटि कंठोंके स्वरोंमें सत्यकी आवाज हो॥

देकर विशेषण कोटि-श्रद्धासे तुझे मस्तक झुका,
अमृत-सलिला कह सदा सम्मान था हमने दिया।
तब थीं ऋचाएँ वेदकी तेरे तटोंसे फूटती,
प्रणव-ध्वनि चढ़कर तरंगोंपर सदा थी गूँजती॥

पर हाय हमने जिस तरह की स्वयं अपनी दुर्दशा
व्यवहार कुछ वैसा तुम्हारे साथ भी हमने किया।
स्वार्थान्ध हो, कह पूज्य शोषण हम सदा करते रहे,
पीयूष ले, अवशिष्टसे तेरा उदर भरते रहे॥

पर हुए हम बड़े, अब कुछ सभ्य कहलाने लगे,
हम बहुत विकसित हुए, यह सोच इठलाने लगे।
जागे हृदयमें भाव ये फिर आँखपर परदे पड़े,
कैसे बढ़े आगे कदम अब सोचते यह हो खड़े॥

परिणाम भुगतेगा वही जिसने किया अपराध है,
कुछ चाहता प्रतिदान भी तुझसे सदा आराध्य है।
यदि कर सको तो करो अब भी है बहुत कुछ बच रहा,
अन्यथा इतिहासने है कब किसे छोड़ा यहाँ॥

यदि गरल गङ्गामें सदा इस तरह ही घुलता रहा,
चेते नहीं हम समय रहते तो बचेगा क्या भला।
माँ ही रहेगी जब नहीं तो शेष क्या रह जायगा,
ओ आत्मघाती! किस तरह तू मनुज फिर कहलायगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

भली ननद-भाभी

आनन्दी अपने माता-पिताकी एकमात्र संतान थी। पिता जागीरदार थे। घर सम्पन्न था। एकमात्र संतान होनेके कारण आनन्दीका पालन-पोषण बड़े ही लाड़-चावसे हुआ था। उसके माता-पिता सदा उसके मुखकी ओर ही देखा करते और बिना विलम्ब उसकी प्रत्येक इच्छाकी पूर्ति होती। माता-पिता सद्गृहस्थ थे। अच्छे घरानेके थे। घरमें प्रतिदिन कथा होती। अतः कन्याको वे शिक्षित तथा सद्गुणवती बनानेकी भी सहज ही चेष्टा करते। फलतः आनन्दीमें शिक्षा तथा सद्गुणोंका समावेश हो गया। वे आनन्दीका विवाह किसी ऐसे सद्गुण-सम्पन्न लड़केसे करना चाहते थे जो अच्छे घरानेका हो और जिसके घरमें सब सदाचारी तथा भले लोग हों। बहुत खोजके बाद देहातमें एक लड़का मिला। लड़का पढ़ा-लिखा, सुन्दर, काम करनेवाला, बुद्धिमान् तथा प्रगतिशील था। घर भी अच्छा, सम्पन्न था। उसके एक बड़ी विवाहिता बहन थी तथा माता-पिता थे। कारोबार करते थे अनाजका। खेती भी थी।

विवाह हो गया। आनन्दी ससुराल गयी। बड़ा आदर-सत्कार हुआ। सास-ससुरने अपनेको धन्य माना सुन्दरी सद्गुणवती बहू पाकर। पतिने भी बड़ा प्यार किया। ननद सुभद्रा बड़ी अच्छी थी, उसका हृदय प्रेमसे भरा था। पर इन दिनों वह कुछ गम्भीर थी। पता नहीं, किस चिन्तामें रहती। स्वभावसे ही वह कम बोलती। नयी भाभीका उसने स्नेहसे स्वागत तो किया; पर, फिर वह अपनी चिन्तामें लग गयी। वह बहुत कम बोलती । अलग कमरेमें रहती, उसके चेहरेपर उदासी तथा बर्तावमें कुछ अनिच्छित-सी रुखाई थी।

आनन्दी ऐसे वातावरणमें पली थी कि इसने ननदके इस व्यवहारको अभिमान और अपना अपमान मान लिया। वह मन-ही-मन बहुत उदास रहने लगी। वह अपनी उदासी प्रकट नहीं करती, पर मन-ही-मन कुढ़ती। मनकी चीज बाहर आती ही है। वह मनकी उदासी कुछ-कुछ क्रोधके रूपमें बाहर आ गयी। वह समय-समयपर अकारण ही खीझने लगी। चतुर सासने उसे नैहर भिजवा दिया।

नैहरमें आकर उसने अपनी माँसे सब बतलाया। माँ बड़ी बुद्धिमती थी। उसने किसी बहाने एक बार सुभद्राको अपने यहाँ बुलाकर उसे सब बातें समझायीं। वह तो भली थी ही, इधर आनन्दी भी बहुत भली थी। गैर-समझ हो गयी थी। दुःख बढ़ा जा रहा था और अनर्थकी सीमातक पहुँच गया था। सुभद्रा सब समझ गयी। उसने भाभी आनन्दीके पास जाकर अपनी भूल स्वीकार की और उसको अपनी परिस्थिति बतलायी। उसने कहा—'भली भाभी ! मेरा एकमात्र लड़का सुधीरकुमार शिक्षा पानेके लिये विदेश गया था। वह दो वर्ष वहाँ रहनेवाला था। उसे साढ़े चार वर्ष हो गये थे, जब तुम्हारा विवाह हुआ था। उसके कुछ ऐसे समाचार आये थे कि मैं किसीसे कह भी नहीं सकती थी और मेरा चित्त अत्यन्त अशान्त तथा चिन्ताग्रस्त रहता था। मुझे बार-बार झुँझलाहट आया करती। इसीसे मैं ससुरालसे माँके पास आ गयी थी। मेरे पति बाहर नौकरी करते हैं—मेरी सास कुछ कड़े स्वभावकी हैं। मैंने सोचा—बात बता नहीं सकती और कभी झुँझला उठूँगी तो सास और नाराज हो जायँगी।

जब तुम आयी थी, उस समय मेरी चिन्ताका मध्याह्न था। मैं बहुत मानस-व्यथामें थी। पर अपनी व्यथा छिपाये रखती, इसीसे अलग रहती और इसीसे तुमसे भी खुलकर कभी बात नहीं कर पायी। अब तुम्हारी माताने मुझको बुलाकर सब समझाया, तब मुझे अपनी भूलका पता लगा। तुम तो मेरी बेटीके समान हो। मुझे माफ करो। अब तो सुधीरका पत्र भी आ गया है। उसकी समस्या भी सुलझ गयी है। वह अगले महीने लौट आयेगा।' यों कहकर सुभद्रा रोने लगी।

भली आनन्दीकी भी आँखोंमें आँसू आ गये। उसने रोते हुए कहा—'बाईजी ! मैं बहुत भूलमें थी। मैंने मान लिया था कि आप अभिमानवश मेरा तिरस्कार करती हैं। मैं घरमें आपको सुहाती नहीं। मैं कहीं मालकिन न बन जाऊँ, इसीसे आप मुझसे डाह करती हैं—न मालूम ऐसे कितने बुरे विचार आये। मैंने मन-ही-मन सोचा—मैं निर्दोष हूँ। ननदजीका आदर करती हूँ। पर ये अकारण ही मुझसे नाराज रहती तथा डाह करती हैं। मैं यदि इस बातको प्रकट करती हूँ तो मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पति इनके भाई हैं, इनका बहुत आदर करते हैं और मेरी सास तो इनकी माता ही हैं—वे दोनों मुझपर अप्रसन्न हो जायँगे। आपके भाई मुझे उदास देखकर बहुत दुखी होते, समझाते, पर मेरे मनमें कोई बात बैठती ही नहीं। मैंने निश्चय कर लिया था कि इस जीवनसे मृत्यु अच्छी है। अब मैं आत्महत्या कर लूँगी। मैंने अपने माता-पिताको भी कुछ नहीं लिखा । यह तो अच्छा हुआ कि सासजीने मुझे यहाँ भिजवा दिया। मैंने माँसे सब बात कह दी और माँने आपको यहाँ बुला लिया। अब आपकी बात सुनकर मुझे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है। मैं व्यर्थ ही आपपर गलत संदेह कर बैठी। मुझे आप क्षमा करें। बड़ा अनर्थ होने जा रहा था। भगवान्ने रक्षा की।' यों कहकर आनन्दीने रोते हुए ननद सुभद्राके पैर पकड़ लिये। बुद्धिमती सुभद्रा तो स्वयं दुखी थी। उसने कहा—'नहीं भाभी ! मेरा ही दोष है। तू तो बच्ची थी । बड़े लाड़-चावसे पली थी। मैंने ही यह बड़ी भूल की जो तुझसे रुखाईका बर्ताव किया। मनुष्यको यहाँ बहुत सावधान रहना चाहिये और घरमें नयी आयी बहूसे तो—जो माता-पिताको, नैहरकी स्वच्छन्दता-स्वतन्त्रताको, भाई-बहनोंके प्यार-दुलारको, लड़कपनकी उछल-कूद तथा अल्हड़पनको तथा उन्मुक्त हँसीभरे जीवनको छोड़कर बिलकुल नये घरमें अपनेको खपाने आयी है, उसके साथ तो विशेष सावधानीके साथ आदर-सत्कार, स्नेह-प्रेम और नितान्त आत्मीयता मैत्रीका बर्ताव करना चाहिये। उसे खूब हँसाना तथा प्रसन्न रखना चाहिये, जिससे वह अपनेको अकेली अनुभव करके मन-ही-मन दुखी न हो। संकोचमें पड़कर आत्माको गिरावे नहीं। वह प्रफुल्लित रहे। उसके उत्साहका—साहसका विकास हो तथा सहम-संकोचका विनाश हो। वह सहज ही इस नये घरको अपना घर मानकर निस्संकोच उसकी सार-सँभालमें लग जाय और सबके साथ सहज ही हिल-मिलकर घरमें तुरंत खप जाय। घरमें सभी लोगोंको—सास, जेठानियाँ, ननदें तथा ससुर, जेठ, देवर सभीको सावधानीके साथ निर्दोष स्नेह, दुलारका तथा मान-सम्मानयुक्त आत्मीयताका बर्ताव करना चाहिये। कदाचित् उसके रूप-गुणोंमें कमी हो तो भी उसकी जरा भी बात जबानपर नहीं लानी चाहिये। उसके माता-पिता आदिके सम्बन्धमें जरा भी नीची बात कभी भी नहीं कहनी चाहिये। पतिको तो विशेषरूपसे उसे प्यार देना चाहिये।

'नयी बहूको सास-ननदें अपने सद्व्यवहारसे साक्षात् लक्ष्मी बना सकती हैं और दुर्व्यवहारसे उसमें राक्षसीपनका उदय कर सकती हैं। बहन आनन्दी ! तुम तो आनन्दी ही हो। साक्षात् लक्ष्मी हो। मेरी भूल क्षमा करो।'

सुभद्राकी बातें सुन-सुनकर आनन्दीकी माँ रो रही थी। आनन्दी तो आनन्दमग्न थी, साथ ही अपनी भूलपर सकुचा रही थी।

आनन्दीने कहा—'बाईजी ! आप तो देवता हैं। आपने तो मेरे अंदरके देवत्वको जगा दिया है। अब मैं अपनी भूल समझ रही हूँ। क्या नयी बहूका यह कर्तव्य नहीं होता कि वह किसीपर संदेह न करके उसके हृदयको परखनेकी चेष्टा करे ? मैंने आपपर जो दोषबुद्धि की, वह क्या मेरा दोष नहीं था ? दोष तो था ही। मैं उसे छिपाये रखती। पर आपके स्नेहपूर्ण सद्व्यवहारने आपके सामने मुझे हृदय खोलकर सब बातें कहनेका साहस दे दिया। आप क्षमा करें, मेरी भूलको भूल जायँ।'

जहाँ दोनों ओरसे अपनी-अपनी भूल स्वीकार होती है और दूसरेकी भूल नहीं मानी जाती, वहाँ भूल नहीं रहती और प्रेमका सुधा-सागर उमड़ पड़ता है। जहाँ केवल दूसरेको ही दोषी साबित करनेकी चेष्टा चलती है, वहाँ भूल बढ़ती जाती है और परिणाम अत्यन्त अनर्थकारी हो जाता है।

यहाँ तो शुद्ध हृदय थे ही। अँधेरेकी छाया आयी थी, वह भी दूर हो गयी। आनन्दीको उठाकर सुभद्राने हृदयसे लगा लिया। सब ओर आनन्द छा गया।

सुभद्रा दो दिन रहकर अपने साथ ही आनन्दीको ले गयी। यह बात कुछ वर्षों पहलेकी है। आज तो आनन्दी कई संतानोंकी माता है। घरकी स्वामिनी है। सम्पन्न तथा सुखी है। उसका अपनी ननद तथा ननदके लड़के-लड़कियोंसे बड़ा ही अनोखा प्यार है। वह प्रौढ़ा ननदकी सलाह बिना कोई काम नहीं करती। बार-बार बुलाया करती है। सुभद्रा भी अत्यन्त प्रसन्न है। सुभद्राकी सुशीलता और आनन्दीकी सरलताने नरक बनते हुए घरको स्वर्ग बना दिया । धन्य !

—रामदहिन सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

भोजनमें नमकका स्वाद

मेरे एक आदरणीय मित्रने एक सच्ची घटना मुझे सुनायी, जिसे उनके एक पुराने तहसीलदार मित्रने उनसे कहा था।

तहसीलदारका एक नौकर था। वह उनका खाना भी बनाता था, परंतु दाल-सब्जीमें कभी नमक कम कभी ज्यादा डाल देता था, जिसके कारण तहसीलदार बहुत क्रोध करते थे।

एक दिन तहसीलदार नौकरको साथ लेकर देहातके दौरेपर गये। सायंकाल दौरेसे जब तहसीलदार साहब लौटे तो थके होनेपर भी प्रसन्नमन थे। हाथ-मुँह धोनेके बाद स्कूलके आँगनमें, जहाँ वे ठहरे हुए थे, पेड़के नीचे चारपाईपर बैठ गये और नौकरको खाना लानेके लिये कहा। नौकरने दाल-रोटी बड़े प्रेमसे बनायी थी, ले आया। तहसीलदार साहब जब खाने लगे तो पहला ही ग्रास लेते आगबबूला हो गये। दालमें नमक बहुत अधिक था। नौकरको गाली देते-देते रुक गये और निश्चय किया कि मैं आज इसे अवश्य शिक्षा दूँगा। जैसे-तैसे उन्होंने भोजन किया। नौकरसे हुक्का मँगवानेके बाद उन्होंने उसे कहा कि 'भई, अपना खाना तुम यहाँ ले आओ, मेरे पास बैठकर खा लो और देखो, दालमें नमक कुछ कम है।' नौकर अपना खाना ले आया और नमककी शीशी भी। इसके बाद नौकरने यह समझकर कि तहसीलदार साहबको यदि नमक कम लगा है तो ज्यादा ही कम होगा, पूरा चम्मच भरकर नमक दालमें डाल लिया। तहसीलदारने देखा पहले ही नमक इतना अधिक था, सोचने लगे—इतना डालनेके बाद यह खायेगा कैसे। परंतु वे चुप रहे, उन्हें तो सबक सिखाना था उसे। नौकरने एक रोटी खायी, दो खायी, तीन खायी और बड़े मजेसे खाता रहा। उसे खानेमें इतना मग्न देख तहसीलदारसे न रहा गया, उन्होंने उससे पूछा—'क्यों भई! तुम्हें दालमें नमक ज्यादा नहीं लगा।' नौकर बड़े सहज भावसे कहने लगा—'साहब! यह ज्यादा-कम तो बड़े लोगोंके लिये है, मैं तो दालमें जब नमक ज्यादा होता है तो रोटीके टुकड़ेके साथ कम दाल लगा लेता हूँ और जब नमक कम होता है तो टुकड़ेके साथ ज्यादा लगा लेता हूँ, इससे मेरे लिये तो हमेशा खानेका एक ही जैसा स्वाद रहता है।'

तहसीलदार उस अनपढ़ एवं मंद बुद्धिकी इस सहजतासे कही बातको सुनकर सोचने लगे—क्या समरस होना ही जीवनका गूढ़ रहस्य तो नहीं है।

—मनमोहन सिंहल

(३)

हनुमान्‌जीके स्मरणसे प्राणोंकी रक्षा

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥

श्रीरामचरितमानसकी यह चौपाई कितनी सार्थक और रहस्ययुक्त है। दैवी शक्तियाँ किस प्रकार अपने सच्चे उपासक भक्तकी प्राण-रक्षा करती हैं, इस सम्बन्धकी एक घटना इस प्रकार है—

दशरथ और लखनलाल नामके दो लड़के जिला देवासके नराणा ग्राममें रहते थे। दोनोंमें घनिष्ठ मित्रता थी। उनकी अवस्था १०-१२ वर्षकी थी। वर्ष १९८६के ग्रीष्म ऋतुके दिन थे। आकाशमें यत्र-तत्र बादल घुमड़ आते और हलकी वर्षा कर चले जाते। एक दिन दशरथने अपने मित्र लखनलालसे कहा—'मित्र! आज ग्रामके बाहर उस जामुनके वृक्षके पास चलें, उसमें जामुन खूब पकी होगी। उसने कहा—'ठीक है, आज तो जामुन खाने ही हैं।' ऐसा कहकर शीघ्रतासे वे दोनों उस जामुनके वृक्षके पास आये और उसकी एक ही शाखापर चढ़कर जामुन खाने लगे। वह शाखा थी पतली, उन दोनोंका बोझ न सँभाल सकनेके कारण टूट गयी और सीधे पृथ्वीपर आ गिरी। उसपर चढ़े हुए दोनों बालक भी जमीनपर आ गिरे। दशरथने वृक्षपरसे गिरते ही प्राण त्याग दिया। उसे गहरी चोट लगी थी; किंतु लखनलालके शरीरमें खरोंच भी नहीं लगी। वह डाली फटने और टूटनेसे बहुत ही घबराया और अचानक बोल उठा—'हे हनुमान्‌जी! मेरी रक्षा करो! मेरी रक्षा करो!!' मानो हनुमान्‌जीने सचमुच उसे हाथों-ही-हाथों ऊपर ले लिया हो। क्यों न लेते और क्यों न उसके प्राणोंकी रक्षा करते, उनका नाम जो पुकारा था उसने। नामकी मर्यादा उन्हें तो रखनी ही थी।

घटना सुनकर गाँवके लोग तथा उन दोनोंके माता-पिता आये और दशरथको मृत एवं लखनलालको जीवित तथा सकुशल पाया। पूछनेपर लखनलालने बताया कि हम दोनों एक डालीपर चढ़कर जामुन खा रहे थे। अचानक डालीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टूटनेपर मैं जोर-जोरसे 'हे हनुमान्‌जी ! हे हनुमान्‌जी !! मेरी रक्षा करो ! मेरी रक्षा करो !!' पुकार उठा। जमीनपर गिरनेपर मुझे चेतना नहीं थी, परंतु मैंने अनुभव किया कि किसी दैवी शक्तिने मुझे मानो ऊपर उठा लिया है।

लखनलाल इसके पूर्व अपने यहाँके गाँवोंमें प्रति मंगलवारको रामायण तथा कीर्तनमें जाया करता और भक्तिभावसे रामायणकी कथा एवं कीर्तन सुना करता था। अब तो धीरे-धीरे उसके कोमल और निर्मल हृदयमें श्रीहनुमंतलालके प्रति भक्ति-भावना और जाग्रत् हुई तथा हनुमान्-मन्दिर या अन्य देव-स्थानोंमें जाना उसका स्वभाव बन गया। हनुमान्‌जीका स्मरण करना और जयकार लगाना उसकी सहज प्रकृति बन गयी। वास्तवमें यदि मनुष्य नियमतः सत्संग करे, अनैतिक कार्योंका परित्याग कर दे एवं पूर्ण आस्थावान् बनकर भगवद्भजन करे तो उसे कभी दुर्दिन देखनेको न मिले और उसका सहज ही उद्धार हो जाय।

—पुरुषोत्तम प्रकाश ब्रह्मचारी

मनन करने योग्य
(सत्सङ्गका प्रसाद)

(१)

एक जिज्ञासुने पूछा—'भगवन् ! अमुक महात्मा तो अपने शिष्योंका बहुत ध्यान रखते हैं, क्या यह किसी समदर्शी महात्माके अनुरूप है ?' महात्माजीने कहा—'शिष्य भी तो महात्माजीका बहुत ध्यान रखते होंगे ?' जिज्ञासुने कहा—'क्यों नहीं, उन्हें तो रखना ही चाहिये।' महात्माजी बोले—'तब, जिसका ध्यान शिष्य रखते हैं, वह शिष्योंका ध्यान क्यों नहीं रखेगा ? दोनोंकी एक ही दृष्टि है। शिष्यकी दृष्टिमें गुरु जो कुछ है, गुरुकी दृष्टिमें शिष्य भी वही है।' इस विषयमें एक संवाद बहुत प्रसिद्ध है—

परमहंस रामकृष्ण नरेन्द्रपर बड़ी कृपा, बड़ा स्नेह रखते थे। जब दो-चार दिन नरेन्द्र (पीछे स्वामी विवेकानन्द) उनके पास न आते, तो वे बड़ी चिन्ता करने लग जाते। एक बार कई दिनतक नरेन्द्रके न आनेसे वे इतने चिन्तित हो गये कि उन्होंने नरेन्द्रको बुलानेके लिये अपने एक भक्तको भेजा। अपनी छात्रावस्थामें नरेन्द्र बहुत ही खुले हुए थे। संकोच तो उन्हें छूतक नहीं गया था। परमहंसजीके सामने तो वे नन्हें-से शिशुकी भाँति अपने मनकी सब बातें कह दिया करते थे। उन्होंने आते ही पूछा—'बाबा ! आप मुझसे इतना स्नेह करते हैं, कहीं राजा भरतकी भाँति (वे एक हरिनसे प्रेम होनेके कारण दूसरे जन्ममें हरिन हो गये थे।) आपको भी दूसरा जन्म न लेना पड़े ?' परमहंसजीने कहा—'नरेन्द्र ! तुम मेरी दृष्टिसे देखो, तब तुम्हें मालूम होगा कि तुम कौन हो। शिष्य तो केवल श्रद्धाके बलसे गुरुको भगवान् मानते हैं। गुरुकी दृष्टिमें तो ज्ञान और अनुभवसे सब भगवत्स्वरूप ही दीखता है। तुम अपनेको जैसा देखते हो, वह तो अज्ञानदृष्टि है। वास्तवमें तुम भगवत्स्वरूप हो।'

इसलिये कौन महात्मा किसे किस दृष्टिसे देखकर क्या व्यवहार करता है, इसे केवल वही जानता है। उसपर शङ्का करनेकी आवश्यकता नहीं।

(२)

व्रजके एक ख्यातिप्राप्त महात्मा थे, जिनका अभी कुछ वर्षों पूर्व ही गोलोकवास हुआ है। वे इतने मस्त थे कि बस, क्या पूछना, चोरोंको भी माखनचोर समझकर उनके साथ खेल लेते थे। कभी अपने सखाके बंदी बन जाते, तो कभी रूठकर ऐसे बैठते कि दिनोंतक मानते ही नहीं। बड़े-बड़े भक्त आते, परंतु वे खेलते ही रहते। यह सृष्टि उनके लिये कर्मजन्य थी, अज्ञान-जन्य नहीं थी, भगवान्‌की लीलामात्र थी। इसी लीलामें लीला-प्रियकी इच्छाके अनुसार पात्र बने हुए वे भी एक सखा थे।

एक दिन एक प्रसिद्ध राजासे जो कि उनके भक्त थे, उन्होंने कहा—'तू राजा बना फिरता है, मुझे भी एक दिन राजा बना दे।' राजा साहब बड़े श्रद्धालु थे। उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। बाबाको अपनी राजधानीमें ले गये और तीन दिनके लिये विधिवत् उन्हें राज्यका सब अधिकार दे दिया। अब बाबा राजा हो गये।

राजा होते ही बाबाने वहाँकी सारी व्यवस्था उलट-पलट कर दी। दीवानको दरवान और दरवानको दीवान बना दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रानीको दासीके कामपर नियुक्त कर दिया। राजकुमारको चाँटे लगवाये। चारों ओर तहलका मच गया। बाबासे ऐसी आशा तो किसीको नहीं थी। सब लोग जाकर राजा साहबसे शिकायत करते, परंतु उसका भी तो कोई फल नहीं था। राजा साहब कहते—'भाई, शान्त रहो। वे बहुत बड़े महात्मा हैं, न जाने किस उद्देश्यसे क्या करते हैं।' उनकी श्रद्धा ज्यों-की-त्यों रही। तीसरे दिन उन्होंने फिर सबको यथास्थान करके राजाको सब सँभला दिया।

राजाने बड़ी नम्रतासे पूछा—'बाबा! यह सब किस अभिप्रायसे आपने किया?' महात्माजी बोले—'तुम्हारा राज्य तो दुर्व्यवस्थाका केन्द्र हो गया था। मैनेजर चपरासियोंको बेईमान समझते थे तो चपरासी मैनेजरको जल्लाद। मैनेजरकी दिक्कतें चपरासियोंको मालूम नहीं थीं और उनकी कठिनाइयोंका मैनेजरको पता भी नहीं था। इसीसे उनमें परस्पर बड़ा वैमनस्य चल रहा था। राजकुमारको मजा आता था—दूसरोंको पिटवानेमें। उन्हें इस बातका बिलकुल अनुभव नहीं था कि पिटनेमें कितना दुःख होता है। रानी भी दासियोंकी सजा करती-करती परेशान हुई जा रही थीं। उन्हें दासियोंकी परिस्थिति और कठिनाइयोंका बिलकुल ज्ञान नहीं था। मैंने सोचा कि मैं खिलवाड़ भी खेल लूँ और तुम्हारे परिजनोंमेंसे ये दोष भी निकल जायँ। इसीलिये यह सब करना पड़ा। अस्तु, तुम अपना राज्य सँभालो। मेरी मस्तीमें, मेरे माँगे हुए रोटीके टुकड़ेमें जो सुख है, वह इस अमीरीमें कहाँ? फिर भी सब लालाकी ही लीला है। तुम खिलौनोंसे खेलो और मैं लालासे!' इसके बाद वे व्रजमें चले आये।

महात्माजीकी इस लीलासे क्या हम यह सीख सकेंगे कि हमारे जीवनमें भी अपने सामनेवालेकी परिस्थिति देखनेकी आदत पड़ जाय?

(३)

बड़े कृपालु थे वे महात्मा। जब-जब गङ्गातटपर वे आते, हम उनके दर्शनोंको अवश्य जाते थे। उनके पास कोई वस्त्र था तो केवल कौपीन और पात्र था तो एक मिट्टीकी हाँड़ी। वे बोलते बहुत कम थे, इतना कम कि उपदेशात्मक वाक्यका तो कभी उच्चारण ही नहीं करते। बहुत पूछनेपर भी यही कहते—'यह सब भगवान्‌की लीला-ही-लीला है। इसमें जो हो रहा है वही ठीक है, बेठीक कुछ भी नहीं। जो इसे बेठीक कहते हैं, वे भी ठीक ही कहते हैं। अपनी-अपनी लीला सभी पूर्ण कर रहे हैं। चोर चोरीकी, जज सजाकी और जल्लाद फाँसीकी। सब ठीक ही तो है। फिर क्या प्रश्न और क्या उत्तर। परंतु वह भी ठीक ही है।'

हमारे बहुत आग्रह करनेपर उन्होंने अपने जीवनचर्याके परिवर्तनकी एक घटना बतायी। वह उन्हींके शब्दोंमें तो नहीं, जैसी याद है सुनिये—

'मैं लोगोंको उपदेश करता फिरता था। मुझे ऐसा अभिमान था कि मैं ज्ञानी हूँ, सदाचारी हूँ। दूसरोंका जब मैं अज्ञानी और दुराचारी देखता तो मुझे बड़ी दया आती। मैं अपनेको दूधका धुला देवदूत समझता था और दूसरोंको नरकका कीड़ा। मैं उस समय कितना दयनीय था, यह अब समझ सकता हूँ। परंतु वह भी थी भगवान्‌की दया ही और यह भी दया ही है।

एक दिन मैं आरामकुरसीपर बैठकर लोगोंके पतन और उत्थानकी समस्या हल कर रहा था। सोचते-सोचते नींद आ गयी। मैंने स्वप्न देखा। स्वप्नमें मैं एक महान् विद्वान् और सदाचारी उपदेशक था। मेरे रहनेका स्थान तो स्वर्ग था, परंतु मैं कभी-कभी लोगोंको उपदेश देनेके लिये मर्त्यलोकमें भी आया करता था, विमानपर सवार होकर । मैं महान् था, वैभवशाली था, सम्मानित था और था लोगोंका उद्धारक। मैं अपनी स्थितिकी याद करके फूल उठता था।

एक दिन मैं विमानसे मर्त्यलोकमें आया। लोगोंको बताने लगा कि भगवान्‌की प्रार्थना कैसे करनी चाहिये। मैं संस्कृतका एक श्लोक बोलता और लोगोंको अपने पीछे बोलनेके लिये कहता। जब वे सीख लेते तब किस समय, किस दिशाकी ओर मुख करके खड़े होकर किस प्रकार पाठ करनेसे भगवान् प्रसन्न होते हैं—यह उनको बतलाता और सिर नवाकर वे मेरा उपदेश सुनते और मेरी प्रशंसा करते हुए चले जाते। मैं सोचता—मैंने इन लोगोंका उद्धार कर दिया।

मैंने देखा—एक आदमी यों ही बैठा हुआ है। न वह मेरा सम्मान करता है और न तो मुझसे प्रार्थना सिखानेका ही आग्रह करता है। मैंने सोचा—यह मूर्ख है, इसीसे मेरा उपदेश ग्रहण नहीं करता, मैं स्वयं चलकर इसे उपदेश दूँ। मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके पास गया। मैंने पूछा—'क्यों रे ! तू परमात्माकी प्रार्थना करना जानता है ?' उसने कहा—'नहीं !' मैं—'तब इस संसारसे तेरा उद्धार कैसे हो सकता है ? तू मुझसे प्रार्थना सीख, तब भगवान् तुझपर कृपा करेंगे।' उसने कहा—'मैं तो कुछ जानता नहीं। आप जो सिखाइये, मैं सीखनेको तैयार हूँ।'

मैं उसे प्रार्थनाके श्लोक सिखाने लगा। इतना वज्रमूर्ख था वह कि एक-एक पद सौ-सौ बार रटानेपर भी याद नहीं कर सका। किसी प्रकार उसको एक श्लोक याद कराकर विमानसे मैंने स्वर्गके लिये प्रस्थान किया। मैं सोचता जा रहा था कि 'यह कितना मूर्ख है और कितना नीचे गिरा हुआ है कि एक-दो श्लोक कण्ठस्थकर भगवान्की प्रार्थना भी नहीं कर सकता। अच्छा, मैंने एक श्लोक तो याद करा दिया न ? यदि यही याद रहा, तो उसका उद्धार हो जायगा। मैं यही सब सोच रहा था और यह भी सोच रहा था कि मेरे द्वारा कितने प्राणियोंका उद्धार हो रहा है ?'

एकाएक मैं बड़े आश्चर्यमें पड़ गया। मेरा विमान जितनी तीव्रगतिसे ऊपर चढ़ रहा था, उससे भी अत्यन्त तीव्रगतिसे कोई मेरा पीछा कर रहा था। क्षणभरमें ही मैंने देखा वही आदमी, जिसे मैं श्लोक रटाते-रटाते परेशान हो गया था, एक ज्योतिर्मय मूर्तिके रूपमें मेरे सामने खड़ा है। उसने कहा—'हे उद्धारक ! हे आचार्य ! आपका बतलाया हुआ श्लोक मुझे भूल गया। अब मैं परमात्माकी प्रार्थना कैसे करूँगा ? मैं समझता था कि वे मेरे हृदयमें निवास करते हैं—मेरी टूटी-फूटी भाषा भी समझते हैं, मैं उनसे अपनी भाषामें घंटों बातें किया करता था। सो जब वे मेरी भाषा समझते ही नहीं तो आप ठहरिये, मुझे वही भाषा सिखाइये जिसे वे समझते हों।'

मैं उसकी बात सुनकर अवाक् रह गया। मैंने कहा—'हे महात्मन् ! मैंने तुमको पहचाना नहीं। तुम्हें श्लोक रटनेकी आवश्यकता नहीं। भगवान् तो बस तुम्हारी ही भाषा समझते हैं। मैं अबतक उपदेशकपनेके भ्रममें भटक रहा था। मैं तो तुम्हारी चरणधूलिको स्पर्श करनेके योग्य भी नहीं हूँ। तुम महापुरुष हो, अपने चरणोंकी धूलि देकर तुम मुझे कृतार्थ करो।' मैं उन महापुरुषके चरणस्पर्श करने जा ही रहा था कि मैं आरामकुरसीसे नीचे गिर गया और नींदके साथ ही वह स्वप्न भी न जाने कहाँ चला गया। यद्यपि था तो वह एक स्वप्न ही, परंतु मेरे लिये जाग्रत्से अधिक मार्गोपदेशक था। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि भगवान्ने ही मेरे उद्धारके लिये यह लीला रची है। जीव जीवका क्या कल्याण कर सकता है। मेरा अभिमान मिथ्या था। भगवान् नाना रूपोंमें स्वयं सबका उद्धार कर रहे हैं। यह निश्चय होते ही मैंने उपदेशका काम छोड़ दिया। लोगोंके उद्धारका ठेका तोड़ दिया भगवान्ने। मैं तभीसे सर्वदा, सर्वत्र सब प्रकारसे भगवत्कृपाका अनुभव करता हुआ गङ्गातटपर विचरण कर रहा हूँ।'

मनको चेतावनी

काहेको फिरत मूढ मन धायो।
तजि हरि-चरन-सरोज सुधारस, रबिकर जल लय लायो॥
त्रिजगदेव नर असुर अपर जग जोनि सकल भ्रमि आयो।
गृह, बनिता, सुत, बंधु भये बहु, मातु-पिता जिन्ह जायो॥
जाते निरय-निकाय निरंतर सोइ इन्ह तोहि सिखायो।
तुव हित होइ कटै भव-बंधन, सो मगु तोहिं न बतायो॥
अजहुँ बिषय कहँ जतन करत, जद्यपि बहुबिधि डहँकायो।
पावक-काम भोग-घृत तें सठ कैसे परत बुझायो॥
बिषयहीन दुख, मिले बिपति अति सुख सपनेहु नहिं पायो।
उभय प्रकार प्रेत-पावक ज्यों धन दुखप्रद श्रुति गायो॥
छिन छिन छीन होत जीवन, दुरलभ तनु बृथा गँवायो।
तुलसिदास हरि भजहि आस तजि काल-उरग जग खायो॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबके कल्याणमें अपना कल्याण

यह कहावत प्रसिद्ध है—'कर भला तो हो भला'; पर प्रायः मनुष्य अपनी भलाई ही चाहते हैं। 'दूसरोंके भी आनन्द-मङ्गल हो, दुःख दूर हों, सुख भरपूर हो' ऐसा प्रयत्न करना तो दूरकी बात, ऐसी मङ्गलकामना भी नहीं करते। जिस शुभ कामनाके प्रकट करनेमें न अपना पैसा लगता है न शारीरिक श्रम ही करना पड़ता है—और जिसका फल बहुत ही शुभ है, ऐसा सरल और लाभप्रद काम भी मनुष्य नहीं करता। इससे अधिक दुःखकी बात और हो ही क्या सकती है। न मालूम मनुष्यमें क्यों यह कुटेव पड़ गयी है कि दूसरोंकी बुराई न भी कर सकता हो तो भी इच्छा यही करता है कि उससे अधिक सुखी कोई न हो, क्योंकि दूसरोंको अधिक सुखी देखकर उसके मनमें ईर्ष्या जाग्रत् हो उठती है। भारतीय मनीषियोंने इसीलिये ऐसी चार सुन्दर भावनाओंका निरूपण किया है जिनसे अपना कल्याण तो होता ही है, साथ ही दूसरोंका भी कल्याण-उत्थान होता है*। वे भावनाएँ हैं—१-मैत्री, २-कारुण्य, ३-प्रमोद, और ४-मध्यस्थ या उपेक्षा-भावना।

जगत्में अच्छे-बुरे, सज्जन-दुर्जन—सभी तरहके लोग रहते हैं, उन सबके साथ हमारा सम्बन्ध कैसा हो, इसका सुन्दर निरूपण इन भावनाओंमें किया गया है। जो व्यक्ति वय, रुचि, स्थिति, ज्ञान आदिमें समान हो, उसके साथ हमारा मित्रताका सम्बन्ध रहे, क्योंकि 'मित्रता' समान रुचिवालेके साथ ही हो सकती है। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि बालक अपने समान उम्र एवं रुचिवाले बालकके साथ ही मित्रता करता है, उसकी बड़े-बूढ़ोंके साथ मित्रता नहीं हो सकती, उनके प्रति आदर एवं पूज्यभाव भले ही हो। इसलिये हम समान प्रकृति और स्थितिवाले व्यक्तिके साथ मैत्री-सम्बन्ध जोड़ें, सबको अपना हित-चिन्तक मानें, किसीको भी अपना शत्रु न मानें।

मित्ती में सब भूएसू, वैरं मज्झं न केणई।

(जैनसूत्र)

अपनेसे उच्च श्रेणीवाले व्यक्तिको देखकर हमारे मनमें प्रमोदभाव जाग्रत् होना चाहिये। अधिक गुणी, धनी, सुखी, ज्ञानीको देखकर हममें ईर्ष्याभाव न जगे, प्रत्युत हम वस्तुतः मुदित हों तथा वे और भी आगे बढ़ें, फलें-फूलें—ऐसी भावनाएँ हममें जाग्रत् हों।

संसारमें चार तरहके व्यक्ति मिलते हैं—१-अपने समान कोटिके, २-उच्च कोटिके, ३-दुःखी और ४-हीन या नीच कोटिके। अपने समान और उच्च कोटिके व्यक्तियोंके साथ हमारा भाव कैसा हो, यह ऊपर बताया जा चुका है। तीसरे प्रकारके—दुःखी मनुष्योंके प्रति हमारा करुणाभाव होना चाहिये। किसीके भी दुःखको देखकर हमारे मनमें सहजरूपसे करुणा उत्पन्न हो जाय और उससे प्रेरित होकर उस व्यक्तिके दुःखके निवारणके लिये हम पूर्णतः अग्रसर हों, यह अत्यन्त आवश्यक है।

दुःख अनेक प्रकारके होते हैं। बहुतसे व्यक्ति बाहरसे सुखी दिखायी देते हैं, पर उनका मन दुःखसे व्याप्त होता है। जन्म, मरण, रोग और बुढ़ापेका दुःख तो सभीके पीछे लगा हुआ है। इसलिये समस्त महापुरुषोंने कठिन साधनाद्वारा सुख-शान्तिका मार्ग ढूँढ़ा और अपनी अनुभवसिद्ध वाणी या उपदेशद्वारा संसारी प्राणियोंको सद्धर्मका संदेश दिया, जिससे वे जन्म, जरा, मरणके दुःखको सदाके लिये दूर कर सकें। दान और सेवाधर्मका उपदेश भी इसीलिये दिया गया, क्योंकि उनके द्वारा दुखियोंका दुःख निवारण होता है—उन्हें सुख एवं शान्ति मिलती है। महापुरुषोंका उपदेश भी एक प्रकारका दान ही है, जिसे हम ज्ञान-दान कह सकते हैं। रास्ता भूले हुए व्यक्तिको रास्ता दिखाना—यही सत्-पुरुषोंका काम है। मूढजन, कल्याणका मार्ग क्या है?—समझ नहीं पाते और अकल्याणके मार्गमें प्रवृत्त होते रहते हैं। उन्हें इस प्रकार भटकते देखकर ज्ञानीजनोंके हृदयमें करुणा उत्पन्न होती है। और किसी भी तरह उनका उद्धार हो, उनके हृदयकी यह

---

* महर्षि पतञ्जलिने योगदर्शनमें कहा है—

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्। (समाधिपाद ३३)

सुखियोंके प्रति मित्रता, दुखियोंके प्रति करुणा (दया) पुण्यात्माओंके प्रति मुदिता और पापात्माओंके प्रति उपेक्षाकी भावनासे चित्तको प्रसाद (स्वच्छता) प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुकार इस प्रकारके सद्धर्मके प्रचारकी प्रेरणा देती है। इससे जगत्का बड़ा कल्याण हुआ है। यदि वे महापुरुष केवल अपना ही कल्याण करके रह जाते, दूसरोंके कल्याणकी भावना उनमें नहीं उठती, तो संसारी प्राणियोंका कल्याण होना अत्यन्त कठिन था, क्योंकि सभी व्यक्ति इतना ऊँचा आध्यात्मिक विकास नहीं कर सकते।

चौथे प्रकारके व्यक्ति वे हैं, जो समझानेपर भी नहीं समझते। बहुत बार तो हित-शिक्षा देनेवालेकी वे निन्दा करते हैं, उन्हें गालियाँ देते हैं, उन्हें अनेक प्रकारके कष्ट देनेमें भी नहीं चूकते। ऐसे निम्न स्तरके दुष्ट व्यक्तियोंके प्रति भी सत्पुरुष घृणा नहीं करते, उनका अनिष्ट-चिन्तन नहीं करते, उन्हें बुरा नहीं कहते, अपितु उनकी उपेक्षा करते हुए वे सद्भावी मध्यस्थ रहते हैं और इस तरह वे द्वेष या घृणाद्वारा होनेवाले अपने अकल्याणसे बचे रहते हैं। दुष्टजनोंको सुधारनेका वे प्रयत्न नहीं छोड़ते। पर अपने प्रयत्नमें असफल होनेपर भी वे रोष धारण नहीं करते, अपितु 'उन जीवोंकी सद्बुद्धि जाग्रत् हो, आज नहीं तो कल वे सन्मार्गपर आ जायँ यही भाव रखते हैं।' इससे दोनोंका कल्याण सुनिश्चित है।

विचारों और भावनाओंके अनुरूप ही मनुष्यका जीवन बनता है और वैसी ही प्रवृत्ति होने लगती है। इसलिये ऐसी परहित-कामना या विश्व-कल्याणकी भावनाका जीवनमें बड़ा महत्त्व है। विचारों और भावनाओंका प्रभाव अवश्य ही हमारे आचारपर भी पड़ेगा और आज नहीं तो कल हम तदनुरूप प्रवृत्ति करके स्व-परका हित-सम्पादन करेंगे।

आत्मोन्नतिका अन्य ऐसा सुगम उपाय कोई भी नहीं हो सकता कि हम पवित्र भावनाओंके द्वारा अपने जीवनको महान् बना लें और अपने अन्तस्तल या शुद्ध-हृदयकी पुकारसे विश्वके प्राणियोंको भी यत्किंचित् सुख-शान्ति पहुँचा सकें। इन उदात्त भावनाओंसे दूसरोंका कल्याण चाहे इच्छितरूपमें न हो, पर अपना महान् कल्याण तो सुनिश्चित है और इसमें हमारा कुछ जोर भी नहीं लगता, न पैसा खर्च होता है, न शरीरको श्रम ही होता है। ऐसे सुगम साधनको हम सब क्यों न अपनायें ?

संज्ञानसूक्त

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः। अन्योऽन्यमभिनवत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥

आप सबके मध्यमें विद्वेषको हटाकर मैं सहृदयता, संमनस्कताका प्रचार करता हूँ। जिस प्रकार गौ अपने बछड़ेसे प्रेम करती है, उसी प्रकार आप सब एक दूसरेसे प्रेम करें।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवति संयतः। जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्॥

पुत्र पिताके व्रतका पालन करनेवाला हो तथा माताका आज्ञाकारी हो। पत्नी अपने पतिसे शान्तियुक्त मीठी वाणी बोलनेवाली हो।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा। सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥

भाई-भाई आपसमें द्वेष न करें। बहिन बहिनके साथ ईर्ष्या न रखे। आप सब एकमत और समान व्रतवाले बनकर मृदु वाणीका प्रयोग करें।

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः। तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥

जिस प्रेमसे देवगण एक दूसरेसे पृथक् नहीं होते और न आपसमें द्वेष करते हैं, उसी ज्ञानको तुम्हारे परिवारमें स्थापित करता हूँ। सब पुरुषोंमें परस्पर मेल हो।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः। अन्योन्यस्मै वल्गु वदन्तो यात समग्रास्थ सध्रीचीनान्॥

श्रेष्ठता प्राप्त करते हुए सब लोग हृदयसे एक साथ मिलकर रहो, कभी विलग न होओ। एक दूसरेको प्रसन्न रखकर एक साथ मिलकर भारी बोझेको खींच ले चलो। परस्पर मृदु सम्भाषण करते हुए चलो और अपने अनुरक्त जनोंसे सदा मिले हुए रहो। (अथर्ववेद)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

(भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र)

'कल्याण'

—के ६३वें वर्ष (वि० सं० २०४६, सन् १९८९-९०ई०) के दूसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके

निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची

(विशेषाङ्ककी विषय-सूची उसके आरम्भमें देखनी चाहिये, वह इसमें सम्मिलित नहीं है।)

निबन्ध-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-अंडोंसे सावधान (श्रीरामनिवासजी लखोटिया)	९०२
२-अतिथि-सेवासे पुनर्जीवनकी प्राप्ति (डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरी-प्रसादजी मिश्र 'विनय')	५७४
३-अनन्यशरणागतिसे समाधिलाभ [कहानी]	८६२
४-अपने-आपके साथ दुर्व्यवहार मत कीजिये (श्रीचूड़ामन मोतीलालजी मुन्शी)	८८३
५-अमृत-बिन्दु	८१७, ८६१
६-अमृत, जो सर्वसुलभ है (डॉ० श्रीमनोहरलालजी गोयल)	७६०
७-अर्जुनका भक्ति-अभिमान-भङ्ग	४६२
८-अवतार और अधिकारी महापुरुषोंका अलौकिक प्रभाव (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	५८७, ६३८
९-अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् (संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)	७०४
१०-असूया-दोषसे पीड़ित राजा बाहुको परमपदकी प्राप्ति	४७०
११-आँवलेसे वैकुण्ठकी प्राप्ति	४४१
१२-आचार्य शंकरका शक्तितत्त्व-विमर्श (पद्मभूषण पण्डित श्रीबलदेवजी उपाध्याय)	५९१, ६४७
१३-आदिपुराण	४६०
(१) पूतना पूर्वजन्ममें कौन थी ? (कथा)	४६१
१४-आध्यात्मिक भूख (पं० श्रीराजबलीजी पाण्डेय, एम्० ए०)	६५७
१५-आत्माका स्वरूप (डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त)	७८६
१६-आत्मिक पुकार	८३६
१७-आयुर्वेदविज्ञान एवं आचार-रसायन (पं० श्रीवासुदेवजी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य)	८११
१८-आर्य-संस्कृतिका झरना (श्रीयुत आशुकुमारजी)	५४९
१९-ईश्वर (तत्त्वदर्शी महात्मा श्रीतैलङ्ग स्वामीजीका उपदेश)	६३३
२०-ईश्वर और धर्म (ब्रह्मलीन परमपूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	६८१
२१-ईश्वर और संसार (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८७३
२२-ईश्वर-प्राप्तिके कुछ उपाय	८७०
२३-ईश्वर-प्रार्थनापर महात्मा गाँधीजीके उद्गार	८१४
२४-उद्धव-संदेश—२७—२९ (डॉ० श्रीमहानामव्रतजी ब्रह्मचारी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०) [अनु०—श्रीचतुर्भुजजी तोषणीवाल]	५०६, ५५२, ६१५
२५-उपयोगी साधन [एक संतका प्रसाद]	६६३
२६-करने योग्य (श्रीरूपगोस्वामी)	९४६
२७-कर्मयोगकी सुगमता (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	५३७
२८-कल्याण (शिव)	४४०, ४८८, ५३६, ५८४, ६३२, ६८०, ७२८, ७७६, ८२४, ८७२, ९२०
२९-(भक्त) किशनसिंह [भक्तगाथा]	९५०
३०-(श्री) कृष्ण-भक्तिमें माधुर्य (श्रीसुमनलता वोहरा)	७००
३१-कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	५२३
३२-क्या ईश्वरकी सर्वज्ञता मनुष्यके पुरुषार्थमें बाधक है ? (स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)	८५१
३३-कान्ताभावकी उपासिका व्रजगोपिकाएँ (श्रीमदनगोपालजी शर्मा)	६६२
३४-गंडेरियाँ [कहानी] (श्रीदुर्गाशंकरजी व्यास)	६६९
३५-गीताकी व्यापक दृष्टि (श्रीयुत चार्ल्स जान्सटन महोदय)	७६५
३६-गीता-तत्त्व-चिन्तन (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	६१९, ६७१, ७१२, ७६३, ८१३, ८५५, ९०४, ९५२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

११०३२२
Digitized by Dr. Somai Foundation Chennai and eGangotri

विषय — पृष्ठ-संख्या

३७-गो-महिमा और गोरक्षाकी आवश्यकता (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ७३३
३८-गोरक्षा एवं दुग्ध-उत्पादन (श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला) ७१३
३९-चित्रध्वजसे चित्रकला ४६९
४०-छब्बीस एकादशियोंकी कथाएँ—
(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र) .....
(१) वैशाखमासकी एकादशियोंकी महिमा ४४२
(२) ज्येष्ठमासकी एकादशियोंकी महिमा ४४२
(३) आषाढ़मासकी एकादशियोंकी महिमा ४४३
(४) श्रावणमासकी एकादशियोंकी महिमा ४४३
(५) भाद्रपदमासकी एकादशियोंकी महिमा ५२६
(६) आश्विनमासकी एकादशियोंकी महिमा ५२७
(७) कार्तिकमासकी एकादशियोंकी महिमा ५२७
(८) पुरुषोत्तममासकी एकादशियोंकी महिमा ... ५२८
४१-जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (श्रीयोगेश्वरजी त्रिपाठी 'योगी') ९०७
४२-'जीभ मिलावै राम' (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ५०९
४३-जीवन सात्त्विक यज्ञमय बनाना चाहिये (संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज) ८९६
४४-जीवन-सौन्दर्यके उत्पादक तत्त्व (श्रीईश्वरलालजी शर्मा 'रत्नाकर', साहित्यरत्न) ९२७
४५-जीवेम शरदः शतम् ९१७
४६-त्यागका स्वरूप और साधन (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ५४३
४७-दीनता (पं० श्रीमूलनारायणजी मालवीय) ६०३
४८-दुःखोंसे मुक्ति पानेका उपाय (श्रीनृसिंहदेवजी अरोड़ा) ७५६
४९-दुर्योधनको मेवा त्यागो साग बिदुर घर पाई (संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज) ५१३
५०-देवर्षि नारदको स्त्री-रूपकी प्राप्ति ४६६
५१-धर्म और उसका प्रचार (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ६८४
५२-ध्यानकी आवश्यकता (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ८२५
५३-नाम-संकीर्तन और सत्संग (श्रीरामानन्दनप्रसादजी चौरासिया 'श्रीसंतजी महाराज') ५४०

विषय — पृष्ठ-संख्या

५४-निर्भरा भक्ति (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ६४४, ६९०
५५-निराकार एवं साकार ब्रह्म (श्रीसुधाकरजी पाण्डेय) ६९३
५६-पक्षी (श्रीआत्मारामजी देवकर 'साहित्यमनीषी') ७३७
५७-पढ़ो, समझो और करो ५३०, ५७९, ६२७, ६७५, ७२२, ७६९, ८१८, ८६५, ९१२, ९५४
५८-पतनोन्मुख मानव-समाजकी रक्षा कैसे हो? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ७४०
५९-परमानन्दमूर्ति श्रीराम (पं० श्रीमिथिलाप्रसादजी त्रिपाठी, साहित्याचार्य, पी-एच्०डी०) ८०१
६०-परिधान और मानवी उत्थान (श्रीसन्तकुमारजी अवस्थी, एम्०ए०) ७५४
६१-परिवारमें रहकर भगवत्प्राप्ति—बालकोंका लालन-पालन (ब्रह्मलीन परम पूज्य स्वामीजी श्रीशरणानन्दजी महाराजके विचार) ५४६
६२-परोपकारव्रती शबर पिङ्गाक्षको दिक्पालपदकी प्राप्ति (डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय') ४७४
६३-पाप और पुण्यकी कमाई (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र) ९४७
६४-पाप-निवृत्तिके कतिपय उपाय (स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज) ७५८
६५-पार्वतीका पातिव्रत्य (स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज) ८४२
६६-पुराणकथाङ्ककी शुभाशंसा (श्रीरवीन्द्रनाथजी गुरु) ५२२
६७-पुराणोंकी प्रामाणिकता, दार्शनिकता और महत्ता (स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज) ४७२
६८-पुराणोंमें सभी शास्त्रों, विद्याओं, कलाओं तथा ज्ञान-विज्ञानका समावेश ४४४
६९-पुष्टिमार्ग-प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी एवं उनके सिद्धान्त (श्रीवसन्तकुमारजी सर्राफ) ८८९
७०-पूजा करते समय आपके विचार क्या हों? (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ६२६
७१-पूजा-ध्यान साकारका या निराकारका? (स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज) ६६५
७२-प्रतिशोधकी भावनाका त्याग करके प्रेम कीजिये (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ९३०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या
७३-प्रार्थना	८०४, ९१८
७४-प्रार्थनाका महत्त्व और भगवन्नाम-महिमा (प्राचार्य डॉ० श्रीजयनारायणजी मल्लिक)	६४०, ६८७
७५-प्रेमभक्तिमें भगवान् और भक्तका सम्बन्ध (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	८८०
७६-बड़े भाग मानुष तनु पावा (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	५६८
७७-बुन्देलखण्डका गोचारण-लोकोत्सव (आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्०ए०, साहित्यरत्न)	५२९
७८-भक्त अम्बालाल [भक्तगाथा] (श्रीमिश्रीलालजी गुप्त)	८५८
७९-भक्त आरण्यकमुनि [भक्तगाथा]	८९९
८०-भक्त जन-जसवंत [भक्तगाथा] (श्रीदिवाकरजी जोगलेकर साहित्यरत्न)	८०७
८१-भक्त राजा रत्नग्रीव [भक्तगाथा]	५६५
८२-भक्तिकी महिमा (डॉ० श्रीराजेश्वरप्रसादजी चतुर्वेदी, डी० लिट्०)	६००
८३-भक्तोंपर संकट क्यों? (स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)	५६३
८४-भगवती मनसादेवीका उपाख्यान एवं पूजा-विधान	४७८
८५-भगवती सीता तथा द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त [कहानी]	६२४
८६-भगवत्प्रेम-चिन्तामणि (डॉ० श्रीशुकरत्नजी उपाध्याय)	५५५, ६१२
८७-(श्रीमद्) भगवद्गीताकी उपयोगिता (श्रीश्यामाचरण दे)	८१२
८८-भगवद्दर्शनमें अन्तराय (संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)	८४७
८९-(श्री) भगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना	७१८
९०-(श्री) भगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना	७२५
९१-भगवान्‌की भगवत्ता (श्रीजगन्नाथजी वेदालंकार)	५६१
९२-भगवान् श्रीकृष्णका उद्धवजीको अन्तिम उपदेश (महात्मा श्रीभगवत्स्वरूपजी)	८३४
९३-भगवान् वेदव्यास (डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्०डी, डी० लिट्०)	६५९
९४-भगवान् शिवका मङ्गलमय नृत्य ताण्डव (श्रीगंगारामजी शास्त्री)	७९२
९५-भजन क्यों नहीं होता? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	७८९
९६-भागवत-श्रवणसे मुक्ति (स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)	७१०
९७-भीमसेनका गर्व-भङ्ग	४६५
९८-भ्रामरी देवी एवं अरुण दानवकी कथा	४७५
९९-मनन करने योग्य—	५३२, ५८१, ६२९, ६७८, ७२४, ७७१, ८२२, ८६८, ९१५, ९५७
१००-मनुष्यकी अधोमुखी प्रवृत्ति और उससे बचनेके उपाय (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	८३०
१०१-मनुष्य-जातिके कल्याणके लिये गीता सर्वाधिक उपयोगी ग्रन्थ है (श्रीश्यामाचरण दे)	८४६
१०२-मनोनिग्रहका मार्ग—निरन्तर भगवच्चिन्तन (डॉ० श्रीशुकरत्नजी उपाध्याय)	८४०
१०३-ममता तू न गयी मेरे मन तें (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	७४४, ७९७, ८४४, ८९१, ९४१
१०४-(श्री) महाभागवतपुराण (देवीपुराण) (डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट)	५१७
(१) पाण्डवोंपर देवी कामाख्याकी कृपा	५२०
१०५-महाभागवत सुव्रत	४५३
१०६-माँ-बेटेकी बातचीत	८६९
१०७-मांस-भक्षण-निषेध (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७८१
१०८-माताद्वारा अपने पुत्रोंको ज्ञानोपदेश	४८२
१०९-मानव-जीवनका कर्तव्य	८४३
११०-मानव-जीवनकी भूल (स्वामी श्रीदिव्यानन्दजी सरस्वती)	९०५
१११-मानव-शरीरकी महत्ता (स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)	६१०
११२-मानसकारकी सर्वात्मवादी चेतना (डॉ० श्रीरामाप्रसादजी मिश्र)	७०८
११३-मानस मन्त्रमय है	८९०
११४-(श्री) राधाभावकी एक झाँकी (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	५९५
११५-श्रीरामकी भक्तिभावना (श्रीओमप्रकाशजी अग्रवाल)	९३७
११६-रामकृष्णकी राम-भक्ति (श्रीअनन्तप्रसादजी शर्मा)	७०५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या
११७-(श्री) रामचरितमानसमें अतिथि और आतिथ्य (पं० श्रीछेदीजी साहित्यालंकार, विद्यावाचस्पति)	८९४
११८-रामचरितमानसमें परमानन्द-दर्शन (श्रीओमप्रकाशजी अग्रवाल, एम्०ए० (हिन्दी, अंग्रेजी), एल्० टी०)	६१७
११९-रुद्राक्ष-महिमा [प्रे०-डॉ० श्रीजयनारायणजी यादव]	८५२
१२०-रोना (पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)	४९४
१२१-विचार-साधना (स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज)	७२९,७७७
१२२-विवेक-वाटिका	७५३
१२३-व्रजमें (कुँवर श्रीव्रजेन्द्रसिंहजी साहित्यालंकार)	५७६
१२४-शरणागतकी पुकार ('श्रीमोहनजी')	७६२
१२५-शरणागति (ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास)	५००
१२६-शास्त्रीय दान-विधि (स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज)	५११
१२७-शीघ्र चेतो !	६११
१२८-श्रद्धा-विश्वास (स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती)	८२७,८७६
१२९-श्रद्धा-विश्वास (श्रीलाला लालचन्दजी)	९३३
१३०-संत ज्ञानदेव और उनका प्रकरण-ग्रन्थ 'अमृतानुभव' (सुश्री प्रमिला पिंपले)	७६६
१३१-संत-मिलन (संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)	६५५
१३२-संयमकी शिक्षा (संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)	८०५
१३३-संसारका वास्तविक स्वरूप (ब्रह्मलीन परम पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	५४५
१३४-सच्चा धर्म—प्रेम और सेवा (श्रीभगवानदासजी केला)	७३८
१३५-सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र	४५५
१३६-सत्संग ईश्वरकृपासे प्राप्त होता है (संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)	५५९
१३७-सब कुछ भूलकर प्रभुमें तन्मय हो जाओ (" ")	६०७
१३८-सबके कल्याणमें अपना कल्याण	९०७
१३९-साधक निरन्तर अपनेको देखे (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका प्रवचन) [प्रेषिका—कविता डालमिया]	४९७
१४०-साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	५०४, ५५०, ६०२, ६५१, ६९५, ७४९, ७९५, ८३७, ८८६, ९३५
१४१-साधनोपयोगी पत्र	५७२, ६२३, ६७३, ७१६, ७६८, ८१५, ८६४, ९०९
१४२-सारा समय परमोपयोगी बनानेका साधन (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	४८९
१४३-सावित्रीका पातिव्रत्य	४५३
१४४-सुख कहाँ है ?	७७३
१४५-स्मरण-भक्तिकी साधना (डॉ० श्रीकन्हैयालालजी शर्मा)	७५१
१४६-स्वप्न और स्वप्नपर अधिकार (श्रीरामदित्तामलजी भाटिया)	७१५
१४७-(श्री) हनुमान्‌जीका गर्व-भङ्ग	४६४
१४८-'हनुमानबाहुक'—मन्त्रात्मक काव्य (डॉ० श्रीरंजन-सूरिदेवजी विद्याविभूषण, साहित्यमार्तण्ड)	६६६
१४९-हम शाकाहारी ही क्यों रहें (श्रीरामनिवासजी लखोटिया)	५७०
१५०-हिन्दूधर्म सनातनधर्मका ही पर्याय है (प्रो० डॉ० श्रीसीतारामजी झा 'श्याम', एम्०ए०, डी०लिट्०)	८४९
१५१-हेतुरहित प्रेमी और दयालु भगवान्‌का सौहार्द (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	९२१

पद्य-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-जग ले (श्रीबालकृष्णजी गर्ग)	५०३
२-जिज्ञासा (श्रीगौरीशंकरजी मिश्र 'द्विजेन्द्र')	६८३
३-जय जगदम्बे ! (डॉ० श्रीपरमानन्दजी पाण्डेय, एम्०ए०)	७११
४-धन्य है ! (श्रीप्रेमनारायणजी त्रिपाठी 'प्रेम')	६९९
५-निराशा (श्रीभगवतीप्रसादजी मिश्र 'नन्दन')	८७९
६-पतित-पावनी गङ्गा (डॉ० श्रीरामसेवकजी दुबे)	९५३
७-पथिक मन (डॉ० श्रीहनुमानप्रसादजी त्रिपाठी, विशारद)	७०३
८-बंसीधर (श्रीप्रमोदजी त्रिपाठी)	९११
९-मनको सीख (श्रीहरप्रसादजी बड़ौनियाँ 'पागल')	८९८
१०-माँके प्रति—समर्पण (श्रीराधाकृष्णजी श्रोत्रिय)	५८६
११-युगल-छवि (स्वामी श्रीसनातनदेवजी)	५७५
१२-रामफगुआ (महात्माजी जय गौरीशंकर सीतारामजी 'कवलबास' पतित)	६७०
१३-संकोच (श्रीरामाधारजी त्रिपाठी 'जीवन')	६४६
१४-सत्कथा (श्रीरघुनाथप्रसादजी 'साधक')	४८६
१५-स्वप्न (पं० श्रीरामचन्द्रजी वैद्य, शास्त्री, 'राम')	६५४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकलित पद्य-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-अहल्या-उद्धार	५६२
२-आनन्दघनकी खीझ	७२७
३-उसका पता	९०१
४-कुंज-लीला	७४३
५-गुरुकृपासे बालक श्रीरामका स्वस्थ होकर माताके पास पहुँचना	५३५
६-गोचारण	८६०
७-भक्तकी भावना	६३७
८-भगवान् श्रीरामसे भरतकी प्रार्थना	५५८
९-मनको चेतावनी	९५९
१०-माता कौसल्याका श्रीरामको संदेश	४९३
११-माताद्वारा गोपालका बाँधा जाना	६३१
१२-मुरलीमनोहर भगवान् श्रीकृष्ण	८२३
१३-राधाकृष्णका दिव्य सौन्दर्य	८२९
१४-रामकथा-मंदाकिनी	५६४
१५-राम-जानकीकी वैवाहिक शोभा	८८२
१६-रामराज्याभिषेकके बाद सनकादिका आगमन	४८७
१७-वन्दना	८२६
१८-वनमालीकी शोभा	९३२
१९-वसुदेव-देवकीको बन्धनमुक्त करना	७७५
२०-सरकार ! तुम्हारे नामोंमें	८५४
२१-सावधान	७३९

संकलित सामग्री

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-जगद्धात्री भगवती जगदम्बा	४३९
२-जैसा संग वैसा रंग	९३४
३-धर्मकी श्रेष्ठता	४७७
४-धर्मराजका धर्मोपदेश २रे अङ्कका तीसरा आवरण-पृष्ठ	
५-पृथ्वी माताद्वारा सीताका स्वागत	६७९
६-भगवत्कथा-श्रवणसे लाभ	४४१
७-भगवती महालक्ष्मीकी वन्दना	८७१
८-महान् दाता कौन हैं ?	४५२
९-महाभावरूपा श्रीभगवती राधाकी वन्दना	९१९
१०-राम-नामका प्रभाव	५९०
११-संज्ञानसूक्त	९६१
१२-संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष	५८३
१३-सफल जीवन	९४०
१४-सबमें स्थित भगवान्‌का तिरस्कार न करो !	९५१

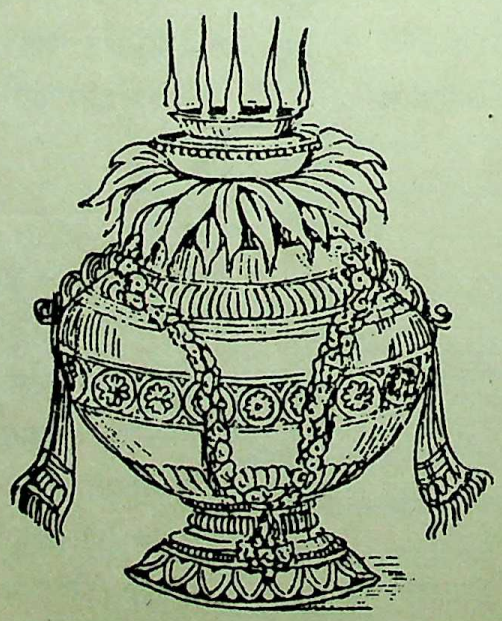

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६३

-संख्या
६३१
८२३
८२९
५६४
८८२
४८७
८२६
९३२
७७५
८५४
७३९

-संख्या
४५२
९१९
५९०
९६१
५८३
९४०
९५१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110322
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar